तो वह अपने अन्तःपुर में आके शोकसहित स्थित भये। हे भारद्वाज ! राजकुमार तभी सब चेष्टा और रससंयुक्त इन्द्रियों के विषयोंको त्याग बैठे और उनका शरीर पीला होकर मुखकी कान्ति घटगई। जैसे कमल सूखके पीत वर्ण होजाता है तैसेही रामजीका मुख पीला होगया और जैसे सूखे कमल पर भँवरे बैठते हैं तैसेही सूखे मुखकमलपर नेत्ररूपी भँवरे भासने लगे। जैसे शरत्काल में ताल निर्मल होता है तैसेही इच्छारूपी मलसे रहित उनका चित्तरूपी ताल निर्मल होगया और दिन पर दिन शरीर निर्बल होतागया वह जहां बैठें तहांही चिन्ता संयुक्त बैठेरहजावें और हाथपर चिबुकधरके बैठें। जब टहलुवे मंत्री बहुत कहैं कि, हे प्रभो! यह स्नान सन्ध्या का समय हुआहै अब उठो तब उठकर स्नानादिक करैं अर्थात् जो कुछ खाने, पीने, बोलने, चलने और पहिरनेकी क्रियाथी सोसब उन्हें बिरस होगई। तब लक्ष्मण और शत्रुघ्नभी रामजीको संशययुक्त देखके उसीप्रकारहो बैठे और राजादशरथ यह वार्त्ता सुनके रामजी के पास आये तो क्या देखा कि रामजी महाकृश होगये हैं। राजाने इस चिन्तासे आतुर हो कि, हाय २ इनकी यह क्या दशाहुई रामजीको गोदमें बैठाया और कोमल सुन्दर शब्दसे पूछनेलगे कि,हे पुत्र ! तुमको क्या दुःख प्राप्तहुआहै जिससे तुम शोकवान् हुयेहो ? रामजीने कहा कि, हे पिता ! हमको तो कोई दुःखनहीं है ! और ऐसेकहके चुपहोरहे। जब इसीप्रकार कुछदिनबीते तो राजा और सब स्त्रियां बड़ीशोक-वान्हुई। राजा राजमंत्रियोंसे मिलकेविचार करनेलगे कि, पुत्रका किसीठौर विवाह कर-ना चाहिये और यहभी विचार किया कि,क्या कारणहै जो, मेरे पुत्र शोकवान् रहतेहैं। तब उन्होंने वशिष्ठजीसे पूछा कि, हे मुनीश्वर! मेरे पुत्र शोकमें क्यों रहतेहैं ? वशिष्ठजीनेकहा हे राजन्! जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश महाभूत अल्पकार्य में बिकारवान् नहींहोते जब जगत् उत्पन्न और प्रलय होताहै तब बिकारवान् होते हैं तैसेही महापुरु-षभी अल्पकार्य में बिकारवान् नहींहोते। हे राजन्! तुम शोक मतकरो। रामजीकिसी अर्थके निमित्त शोकवान्हुये होंगे; पीछेसे इनको सुखमिलेगा। इतनाकह बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! ऐसेही वशिष्ठजी और राजा दशरथ विचार करते थे कि, उसी का-लमें विश्वामित्रने अपने यज्ञके अर्थ राजा दशरथके गृहपर आकर द्वारपालसे कहा कि, राजादशरथसे कहो कि,"गाधिके पुत्र विश्वामित्र बाहर खड़ेहैं"।द्वारपालने आकर राजासे कहा कि, हे स्वामी! एक बड़े तपस्वी द्वारपर खड़े हैं और उन्होंने कहाहै कि, राजा दशरथके पास जाके कहो कि, विश्वामित्र आये हैं। हे भारद्वाज! जब इसप्रकार द्वारपालने आकर कहा तबराजा, जो मंडलेश्वरों सहित बैठाथा और बड़ा तेजवान्था सुवर्णके सिंहासनसे उठ खड़ाहुआ और पैदल चला। राजाकी एक ओर वशिष्ठजी और दूसरी ओर बामदेवजी और सुभटकी नाईं मण्डलेश्वर स्तुति करतेचले और

जहांसे विश्वामित्र दृष्टिआये वहांसेही प्रणाम करनेलगे। पृथ्वीपर जहां शीश लगताथा वहां पृथ्वी हीरे और मोतीकी सुन्दर होजातीथी। इसीप्रकारइ नवाते राजाचले। विश्वामित्रजी कांधेपर बड़ी २ जटा धारणकिये और अग्नि समान प्रकाशमान परमशान्त स्वरूप हाथमें बांसकी तन्द्रीलियेहुये थे। उनकेचरण कमलोंपर राजा इसभांति गिरा जैसे सूर्य्यपदा शिवजीके चरणारबिन्दमें गिरे। और कहा हेप्रभो! मेरे बड़ेभाग्यहैं जो आपका दर्शनहुआ आज मुझे ऐसाआनन्दहुआ जो आदि अन्त और मध्यसे रहित अविनाशीहै हे भगवन्! आज मेरे भाग्य उदयहुये कि, मैंभी धर्मात्माओं में गिनाजाऊंगा क्योंकि आप मेरे कुशल निमित्त आये हैं हेभगवन्! आपने बड़ी कृपाकी जो दर्शनदिया। आप सबसे उत्कृष्ट दृष्टि आते हैं क्योंकि; आप में दोगुणहैं-एकतो यह कि, आप क्षत्रिय हैं पर ब्राह्मण का स्वभाव आप मेंहै और दूसरेयह कि शुभ गुणों से परिपूर्णहो। हे मुनीश्वर! ऐसी किसी की सामर्थ्य नहीं कि, क्षत्रिय से ब्राह्मणहो। आपके दर्शन से मुझे अतिलाभ हुआ। फिर वशिष्ठ जी विश्वामित्रजी के कण्ठ लगके मिले और मंडलेश्वरोंने बहुत प्रणामकिये। तदनन्तर राजादशरथ विश्वामित्रजी को भीतरलेगये और सुन्दर सिंहासन पर बैठाकर विधिपूर्व्वक पूजाकी और अर्घ्यपादार्चन करके प्रदक्षिणाकी। फिर वशिष्ठजी ने भी विश्वामित्रजी का पूजनकिया और विश्वामित्रजी ने उनका पूजनकिया इसीप्रकारअन्योन्य पूजनकर यथायोग्य अपने २ स्थानोंपर बैठे तब राजादशरथ बोले हे भगवन्! हमारे बड़े भाग्य हुये जो आपका दर्शनहुआ। जैसे किसीको अमृत प्राप्तहो वा किसीका मराहुआ बांधव विमानपर चढ़के आकाश से आवे और उसको मिलनेका आनन्द हो वैसा आनन्द मुझेहुआ। हे मुनीश्वर! जिस अर्थके लिये आपआयेहैं वह कृपा करके कहिये और अपना वह अर्थ पूर्णहुआ जानिये। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मुझको देना कठिनहै, मेरे यहां सब कुछ विद्यमानहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेविश्वामित्रागमनवर्णनंनामतृतीयस्सर्गः॥ ३॥

बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जब इसप्रकार राजाने कहा तो मुनियों में शार्दूल विश्वामित्रजी ऐसे प्रसन्नहुये जैसे चन्द्रमाको देखकर क्षीरसागर प्रसन्नहोताहै। उनके रोम खड़होआये और कहनेलगे हे राजशार्दूल! तुम धन्यहो! ऐसे तुम क्योंनकहो। तुम्हारे में दो गुणहैं—एकतो यह कि, तुम रघुवंशीहो और दूसर यहकि वशिष्ठजी ऐसे तुम्हारे गुरुहैं जिनकी आज्ञामें चलतेहो। अब जो कुछ मेराप्रयोजनहै वह प्रकट करताहूं। मैंने दशगात्र यज्ञका आरम्भ कियाहै; जब यज्ञ करने लगताहूं तब खर और दूषण निशाचर आकर ध्वंस करजातेहैं और मांस, हाड़ और रुधिर डालजातेहैं जिससे वह स्थान यज्ञ करनेयोग्य नहीं रहता और जब मैं और जगह जाताहूं

तो वहांभीवे उसीप्रकार अपवित्र कर जाते हैं इसलिये उनके नाश करनेकेलिये मैं तुम्हारेपास आयाहूं। कदाचित् यह कहिये कि, तुमभी तो समर्थहो, तो हे राजन्! मैंने जिस यज्ञका आरम्भ कियाहै उसका अंग क्षमाहै। जो मैं उनको शापदूं तौ वह भस्महो जावें पर शाप क्रोधबिन नहीं होता। जो मैं क्रोधकरूं तो यज्ञ निष्फल होताहै और जो चुपकररहूं तो राक्षस अपवित्र वस्तु डालजाते हैं। इससे अब मैं आपकीशरण आयाहूं। हे राजन्! अपने पुत्र रामजीको मेरे साथदो कि, वह राक्षसोंको भी मारें और यज्ञ भी सुफलहो। यह चिन्ता तुम न करना कि, मेरा पुत्र अभी बालकहै। यह तो महा इन्द्रके समान शूरवीरहै। जैसे सिंहके सन्मुख मृगका बच्चा नहीं ठहरसक्ता तैसेही इसके सन्मुख राक्षस न ठहर सकेंगे। इसको मेरेसाथ देनेसे तुम्हारा यश और धर्म्म दोनों रहेंगे और मेरा कार्य होगा इसमें सन्देहनहीं। हे राजन्! ऐसा कार्य त्रिलोकी में कोई नहीं जो रामजी न करसकें इसीलिये मैं तुम्हारे पुत्रको लियेजाताहूं यह मेरेहाथ से रक्षितरहेगा और कोई विघ्न न होनेदूंगा। जैसे तुम्हारे पुत्रहैं मैं और वशिष्ठजी जानते हैं किन्तु और ज्ञानवान्भी जो त्रिकालदर्शीहों जानेंगे पर किसीकी सामर्थ्यनहीं जो इनको जानें। हे राजन्! जो समयपर कार्य्य होताहै वह थोड़ेही परिश्रममें सिद्ध होताहै और समयबिना बहुत परिश्रम कियेसे भी नहींहोता। खर और दूषण बड़े दैत्य हैं और मेरे यज्ञको खण्डित करते हैं। जब रामजी जावेंगे तब वह भागजावेंगे इनके आगे खड़े न रहसकेंगे जैसे सूर्य के तेजसे तारागणका प्रकाश क्षीणहोजाताहै तैसेही रामजी के दर्शन से वे स्थित न रहेंगे। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जब विश्वामित्रजी ने ऐसे कहा तब राजा दशरथ चुपहोकर गिरपड़े और एकमुहूर्त्त पर्य्यन्त पड़े रहे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदशरथविषादोनामचतुर्त्थस्सर्ग्गः ॥ ४॥

बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! एकमुहूर्त उपरांत राजाउठे और अधीर्य्यहोकर बोले हे मुनीश्वर! आपने क्याकहा? रामजीतो अभीकुमारहैं। अभीतो उन्होंने शस्त्र और अस्त्रविद्या नहीं सीखी बलिक फूलों की शय्यापर शयन करनेवाले; अन्तःपुर में स्त्रियों के पास बैठनेवाले और बालकों के साथ खेलनेवाले हैं। उन्हों ने कभी भी रणभूमि नहीं देखी और न भृकुटी चढ़ाके कभी युद्धही किया वह दैत्यों से क्या युद्ध करेंगे? कभी पत्थर और कमलकाभी युद्धहुआहै? हे मुनीश्वर! मैं तो बहुत वर्षका हुआहूं। इस वृद्धावस्थामें मेरे घरमें चार पुत्रहुये हैं; उनचारों में रामजी अभी सोलहवर्ष के हुयेहैं और मेरे प्राणहैं। उनबिना मैं एकक्षण भी नहीं रहसक्ता, जो तुम उनको लेजावोगे तो मेरे प्राण निकलजावेंगे? हे मुनीश्वर! केवल मुझेही उनका इतना स्नेहनहीं किन्तु लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत और माताओं के भी प्राणहैं। जो तुम उनको

लेजावोगे तो सबही मरजावेंगे। जो तुम हमको रामजी के वियोगसे मारनेआयेहो तो लेजावो? हे मुनीश्वर! मेरेचित्तमें तो रामजी पूर्णहोरहे हैं उनको मैं आपकेसाथ कैसेदूं मैंतो उनको देख देख प्रसन्न होताहूं रामजी के वियोगसे मेरेप्राण कैसेबचेंगे? हे मुनीश्वर! ऐसी प्रीति मुझे स्त्री, धन तथा और पदार्थों की भी नहीं जैसी रामजी की है। मैं आपके वचन सुनकर अतिशोकवान् हुआहूं। मेरे बड़े अभाग्य उदयहुये जो आप इस निमित्त आये? मैं रामजीको कदापि नहीं देसक्ता। जो आप कहिये तो मैं एक अक्षौहिणी सेना, जो अतिशूरवीर और शस्त्र अस्त्र विद्यासे सम्पन्न हैं साथ लेकर चलूं और उनको मारूं पर जो कुबेरका भाई और विश्रवाका पुत्र रावणहो तो उससे मैं युद्ध नहीं करसक्ता। पहिले मैं बड़ापराक्रमीथा; ऐसा कोई त्रिलोकी में न था जो मेरे सामने आता पर अब वृद्धावस्था प्राप्तहोकर देहजर्जर होगई है। हे मुनीश्वर! मेरे बड़े अभाग्यहैं जो आपआये। मैंतो रावणसें कांपताहूं और केवल मैंहीं नहीं बरन इन्द्रआदि देवताभी उससे कांपते और भयपाते हैं और किसीकीसामर्थ्य है जो उससे युद्धकरे। इस कालमें वह बड़ा शूरवीरहै। जो मेरीही उसके साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहीं तो राजकुमाररामजीकी क्यासामर्थ्य है? जिनरामजीको तुम लेनेआयेहो वहतो रोगीपड़े हैं। उनको ऐसी चिन्ता लगी है जिससे महाकृश होगये हैं और अन्तःपुर में एकान्त बैठे रहते हैं। खाना पीना इत्यादि जो राजकुमारोंकी चेष्टा हैं वहभी सब उनको बिसरगई हैं और मैं नहीं जानता कि, उनको क्या दुःख हुआ। जैसे पीतवर्ण कमल होताहै तैसेही उनका मुख होगयाहै। उनको युद्धकी सामर्थ्य कहां है? उन्होंने तो अपने स्थान से बाहरकी पृथ्वी भी नहीं देखीहै। हमारे प्राण वही हैं उनके वियोगसे हम नहीं जीसक्ते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदशरथोक्तिवर्णनोनामपञ्चमस्सर्ग्गः॥ ५॥

वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार दशरथजीने महादीन और अधीर्य्य होकर कहा तो विश्वामित्रजी क्रोधकरके कहनेलगे कि, हे राजन्! तुम अपने धर्मको स्मरण करो। तुमने कहाथा कि, तुम्हारा अर्थ सिद्ध करूंगा पर अब तुम अपने धर्मको त्यागतेहो। जो तुम सिंहोंके समान होकर मृगोंकी नाई भागतेहो तो भागो पर आगे रघुवंशी कुलमें ऐसा कोई नहीं हुआ कि, जिसने वचन फेराहो। जो तुम फरतेहो सो करो हम चलेजावेंगे परन्तु यह तुमको योग्य न था क्योंकि; शून्य गृहसे शून्यही होकर जाताहै। तुम बसतेरहो और राज्यकरतेरहो जैसा कुछहोगा हम समझलेंगे इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार विश्वामित्रजी को क्रोध उत्पन्नहुआ तो पचासकोटि योजन पृथ्वी कांपनेलगी और इन्द्रादिक देवता भयवान् हुये कि, यह क्याहुआ? तब वशिष्ठजी बोले हे राजन्! इक्ष्वाकुकुल में सब परमार्थी हुये हैं और तुम अपना धर्म्म क्यों त्यागतेहो? मेरे सामने तुमने विश्वामित्रजी से कहाहै कि, तुम्हारा

अर्थ पूरा करूंगा पर अब क्यों भागतेहो । रामजी को तुम इनकेसाथ करदो; यह तुम्हारे पुत्रकीरक्षाकरेंगे । इसपुरुषके सामने किसीका बल नहीं चलता यह साक्षात् ही कालकी मूर्तिहैं जो तपस्वी कहिये तोभी इनके समान दूसरा नहीं है और शस्त्र और अस्त्रविद्याभी इनके सदृश कोई नहीं जानता क्योंकि; दक्षप्रजापति ने अपनी दोपुत्रियां जिनका नाम जय और सुभगा था विश्वामित्रजीकोदीथीं जिन्होंने पांच २ सौ पुत्रदैत्योंके मारनेकेलिये प्रकटकिये । वे दोनों इनके सन्मुख मूर्ति धारके स्थितहोती हैं इससे इनको कौन जीतसक्ताहै ? जिसकेसाथी विश्वामित्रजीहों उसको किसीका भय नहीं । आप इनके साथ अपना पुत्र निस्संशय होकरदो किसीकी सामर्थ्य नहीं कि, इनके होते तुम्हारे पुत्रको कुछ कहसके । जैसे सूर्य्यके उदयसे अन्धकारका अभाव होजाता है तैसेही इनकी दृष्टिके देखने से दुःखका अभाव होजाताहै । हे राजन् ! इनके साथ तुम्हारे पुत्रको कोई खेद न होगा । तुम इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुयेहो और दशरथ तुम्हारा नामहै; जो तुम ऐसे जब अपने धर्ममें स्थित न रहे तो और जीवोंसे धर्मकी पालना कैसे होगी ? जो कुछ श्रेष्ठपुरुष चेष्टा करतेहैं उनके अनुसार और जीव भी करतेहैं । जो तुम अपने ऐसे वचनोंकी पालना न करोगे तो और किसीसे क्याहोगा ? तुम्हारे कुलमें अपने वचनसे कोई नहीं फिरा इससे अपनेधर्मका त्यागनायोग्यनहीं । जो तुम दैत्योंके भयसे शोकवान्हो तोभी न मत करना । कदाचित् मूर्तिधारीकालआकर स्थितहो तौभी विश्वामित्रके होते तुम्हारे पुत्रको कुछ न होगा । तुम शोकमतकरो और अपने पुत्रको इनके साथ करदो । जो तुम अपने पुत्र न दोगे तो तुम्हारा दो प्रकारका धन नष्टहोगा—एक धन यह कि, कूप, बावली और ताल जो बन रहेहैं उनका पुण्य नष्टहोजावेगा और दूसरे यह कि तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिक क्रियाका फलभी नष्ट होकर तुम्हारा गृह निरर्थ होजावेगा । इससे मोह और शोककोछोड़ और धर्मको स्मरणकरके रामजीको इनके साथ करदो तो तुम्हारे सबकार्य सुफलहोंगे । हे राजन् ! इसप्रकार जो तुम्हें करनाथा तो प्रथमही विचारकर कहते क्योंकि, विचार विना कर्म करनेका परिणाम दुःख होताहै । इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तो राजादशरथ धैर्य्यवान् हुये और भृत्योंमें जो श्रेष्ठ भृत्यथा उस को बुलाकरकहा हे महाबाहु! रामजीको लेआवो । उनके साथ जो चाकर बाहर आनेजाने वाला और छलसे रहित था राजाकी आज्ञालेकर रामजीके निकटगया और एकमुहूर्त पीछे आकरकहनेलगा हे देव ! रामजी तो बड़ीचिन्तामेंबैठे हैं । जबमैंने रामजीसे वारंवार कहा कि चलिये तब वे कहनेलगे कि, चलतेहैं । ऐसेही कह २ चुप होरहतेहैं । दूतकायह वचनसुन राजाने कहा कि, रामजीके मंत्री और सबनौकरोंको बुलावो और जब वे सब निकटआये तो राजाने आदर और युक्तिपूर्वक कोमल और सुन्दर वचन मंत्रीसे इस

भांति कहा कि हे रामजीकेप्यारे! रामजीकी क्यादशा है और ऐसी दशा क्योंकर हुई है सो सब क्रमसे कहो? मंत्री बोला हे देव! हम क्या कहें? हम अतिचिन्तासे केवल आकार और प्राणमात्र दीखते हैं किन्तु मृतकसमान हैं क्योंकि; हमारे स्वामी रामजी बड़ी चिन्तामें हैं। हे राजन्! जिसदिनसे रघुनाथजी तीर्थ करके आये हैं उसदिनसे चिन्ताको प्राप्तभये हैं। जब हम उत्तमभोजन और पान करने और पहिरने और देखने के पदार्थ लेजाते हैं तो उनको देखके वे किसीप्रकार प्रसन्न नहींहोते। वे तो ऐसी चिन्तामें लीनहैं कि, देखते भी नहीं और जो देखते हैं तो क्रोधकरके सुखदायी पदार्थों का निरादर करते हैं। अन्तःपुर में उनकी माता नानाप्रकारके हीरे और मणिके भूषण देतीहैं तो उनको भी डालदेते हैं अथवा किसी निर्द्धन को देदेते हैं; प्रसन्न किसी पदार्थ में नहीं होते। सुन्दर स्त्रियां नानाप्रकारके भूषणोंसहित महामोह करनेवाली निकट आकर उनकी प्रसन्नताके निमित्त लीला और कटाक्ष करती हैं वे उनको भी विषवत् जानतेहैं वरन जैसे पपीहा और जलको देखते भी नहीं तैसेही वे भी जब अन्तःपुर में जातेहैं तब उनको देखकर क्रोधवान् होतेहैं। हे राजन्! उनको कुछ भलानहीं लगता वे तो किसी बड़ीचिन्तामें मग्नहैं। तृप्तवत्होकर भोजन नहीं करते क्षुधावन्तरहते हैं उन्हें न कुछ पहिरने और खाने पीने की इच्छा है, न राज्यकी इच्छाहै और न किसी इन्द्रियोंके सुखकी इच्छाहै वे तो महाउन्मत्तकीनाईं बैठेरहतेहैं और जब हमकोई सुखदायी पदार्थ फूलादिक लेजाते हैं तब क्रोधकरते हैं। हम नहीं जानते कि, क्या चिन्ता उनकोहुईहै जो एककोठरी में पद्मासनलगाय हाथपर मुखधरे बैठेरहते हैं। जो कोई बड़ामंत्री आके पूछताहै तो उससे कहते हैं कि, "तुम जिसको सम्पदा मानतेहो वह आपदाहै और जिसको आपदा जानतेहो वह आपदा नहीं है। संसारके नानाप्रकारके पदार्थ जो रमणीय जानतेहो वे सबझूठे हैं पर इसी में सबडूबे हैं। ये सब मृगतृष्णा के जलवत् हैं; इनको सत्यजान मूर्ख हिरण दौड़ते और दुःखपाते हैं"। हे राजन्! वे कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं और कुछ उनको सुखदायी नहीं भासता। जो हम हँसीकी वार्ता करते हैं तो वे हँसते भी नहीं। जिसपदार्थको प्रीतिसंयुक्त लेते थे उसपदार्थको अब डालदेते हैं और दिनपरदिन दुर्बल होतेजाते हैं। जैसे मेघकी बुन्दसे पर्वत चलायमान नहीं होते तैसेही वे भी चलायमान नहीं होते हैं और जो बोलते हैं तो ऐसे कहते हैं कि, न राज्य सत्यहै, न भोग सत्यहै, न यहजगत् सत्यहै, न भ्राता सत्यहै और न मित्र सत्यहैं। मिथ्यापदार्थों के निमित्त मूर्ख यत्नकरते हैं। जिनको सब सत्य और सुखदायक जानते हैं वे बन्धनके कारण हैं। जो कोई राजा अथवा पण्डित इनके पास जाताहै तो उनको देखकर कहते हैं कि, ये "पशु हैं—आशारूपी फाँसी से बँधेहुये हैं"। हे राजन्! जो कुछ भोग्यपदार्थ हैं उनको देखकर उनका चित्त

प्रसन्न नहीं होता बल्कि देखके क्रोधवान् होतेहैं । जैसे पपीहा मारवाड़में भी जावे तो मेघोंकी बुन्दोंको नहीं देखता और खेदवान् होताहै तैसेही रामजी विषयोंसे खेदवान् होते हैं। इससे हम जानते हैं कि, उनको परमपद पानेकी इच्छाहै परन्तु कदाचित् उनके मुखसे नहीं सुना । त्यागका भी अभिमान उन्हें कदाचित् नहीं है क्योंकि कभी गातेहैं और बोलते हैं तो कहतेहैं " हाय! हाय! मैं अनाथमारागया! अरेमूर्खो! तुम संसारसमुद्रमें क्यों डूबतेहो ? यह संसार परम अनर्थका कारणहै । इसमें सुख कदापि नहीं है इससे छूटनेका उपायकरो" । वह किसी के साथ बोलते नहीं और न हँसते हैं; किसी परमचिन्ता में मग्न हैं । वह किसी पदार्थ से आश्चर्यवान् भी नहीं होते । जो कोई कहे कि, आकाश में बाग लगाहै और उसमें फूल फूले हैं उनको मैं ले आया; तो उसको सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होते सब भ्रममात्र समझते हैं । उनको न किसी पदार्थसे हर्षहोता न किसीसे शोक होताहै; किसी बड़ी चिन्ता में मग्न हैं पर उस चिन्ताके निवारण करनेकी किसीमें सामर्थ्य नहीं देखते । हे राजन्! हमको यह चिन्ता लगरही है कि, रामजी को खाने, पहिरने, बोलने और देखने की इच्छा नहीं रही है और न किसी कर्मकी उनको इच्छाहै ऐसा न हो कि, कहीं मृतकहोजावें? जो कोई कहताहै कि, तुम चक्रवर्ती राजाहो; तुम्हारी बड़ी आयुबलहो और बड़ा सुखपावो तो उसके वचन सुनकर कठोरबोलते हैं । हे राजन्! केवल रामजीकोही ऐसी चिन्ता नहीं बरन लक्ष्मण और शत्रुघ्नको भी ऐसीही चिन्ता लगरही है । उनको देखकर जो कोई उनकी चिन्ता दूरकरनेवाला हो तो करे, नहीं तो बड़ी चिन्तामें डूबेरहेंगे । हे राजन्! अब क्या कहतेहो ? तुम्हारे पुत्र सबसे विरक्त हो एक वस्त्र ओढ़े बैठे हैं । इससे अब तुम वही उपाय करो जिससे उनकी चिन्ता निवृत्तहो । इतना सुन विश्वामित्रजी बोले हे साधु! जो रामजी ऐसेहैं तो हमारे पासलावो, हम उनका दुःख निवृत्तकरेंगे । हे राजा दशरथ! तुमधन्यहो; जिनका पुत्र विवेक और वैराग्यको प्राप्तहुआहै । हम तुम्हारे पुत्रको परम पदवी प्राप्तकरेंगे और अभी उनके सबदुःखमिटजावेंगे । हम और वशिष्ठादि एकयुक्तिसे उपदेश करेंगे उससे उनको आत्मपदकी प्राप्ति होगी । तब वह दशा तुम्हारे पुत्रकी होगी कि, वह लोष्टपत्थर और सुवर्णको समान जानेंगे । जो कुछ तुम्हारी क्षत्रियों की प्रकृतिका आचारहै सो वह करेंगे और हृदय में प्रेमसे उदासी होंगे और इससे तुम्हारा कुल कृतकृत्य रहेगा । तुम रामजीको शीघ्र बुलावो? इतना कहकर बाल्मीकि जी बोले हे भारद्वाज! ऐसे मुनीन्द्रके वचन सुनके राजा दशरथ ने मंत्री और नौकरों से कहा कि, राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको साथ लेआवो? जब मंत्री और भृत्योंने रामजी के पासजाके कहा तो रामजी आये और राजा दशरथ, वशिष्ठजी और विश्वामित्र को देखा कि, तीनोंपर चमर होरहे हैं और बड़े बड़े मंडलेश्वर बैठे हैं । सबने रामजीको

देखा कि, उनका शरीर कृश होरहा है। जैसे महादेवजी स्वामिकार्तिकको आते देखें तैसेही राजा दशरथने रामजी को आते देखा। रामजीने वहां आकर राजा दशरथजी के चरण पर मस्तकलगा नमस्कार किया और तैसेही वशिष्ठजी, विश्वामित्र और सभा में जो बड़े बड़े ब्राह्मण बैठेथे उनको भी नमस्कार किया। जो बड़े बड़े मंडलेश्वर बैठे थे उन्हों ने उठकर रामजी को प्रणाम किया। राजा दशरथने रामजीको गोद में बैठाकर मस्तक चूमा और बहुत प्रेमसे पुलकितहो रामजीसे कहा हे पुत्र! केवल विरक्तता से परमपदकी प्राप्ति नहीं होती। गुरु वशिष्ठजीके उपदेशकी युक्तिसे परम पदकी प्राप्तिहोगी। वशिष्ठ जी बोले हे रामजी! तुम धन्यहो और बड़े शूरहो कि विषयरूपी शत्रु तुमने जीतेहैं। विश्वामित्र जी बोले हे कमलनयन राम! अपने अन्तःकरण की चपलता को त्यागके जो कुछ तुम्हारा आशयहो प्रकटकर कहो कि, तुम को मोह कैसे हुआ, किस कारण हुआ है और कितना है एवं! अब जो कुछ तुमको वाञ्छितहो सो भी कहो हम तुमको उसी पद में प्राप्त करेंगे जिस में कदाचित् दुःख न हो। जैसे आकाशको चूहा नहीं काटसक्ता तैसेही तुमको कदाचित् पीड़ा न होगी। हे रामजी! हम तुम्हारे सम्पूर्ण दुःखनाश करदेंगे। तुम संशय मतकरो जो कुछ तुम्हारा वृत्तान्त हो सो हम से कहो। इतना कहकर बाल्मीकि जी बोले हे भारद्वाज! जैसे मेघको देखके मोर प्रसन्न होताहै तैसेही विश्वामित्र के वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हुये और अपने हृदयमें निश्चय किया कि, अब मुझको अभीष्ट पद की प्राप्तिहोगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेरामसमाजवर्णनोनामषष्ठस्सर्ग्गः॥ ६॥

श्री रामजी बोले हे भगवन्! जो वृत्तान्त है सो तुम्हारे सन्मुख क्रम से कहताहूं। मैं राजा दशरथके घरमें उत्पन्न होकर क्रमसे बड़ा हुआ और चारो वेद पढ़कर ब्रह्मचर्यादि व्रत धारण किये; तदनन्तर घरमें आया तो मेरे हृदय में विचार हुआ कि तीर्थाटन करूं और देवद्वारों में जाके देवोंके दर्शन करूं। निदान मैं पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थों में गया और गंगा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान और शालग्राम और केदार आदि ठाकुरोंके विधिसंयुक्त दर्शन करके यहां आया। फिर उत्साहहुआ तब यह विचार आया कि, प्रातःकाल उठके स्नान सन्ध्यादिक कर्म करके भोजनकरता। जब इसप्रकार से कुछ दिन व्यतीत हुये तब मेरे हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ जो मेरे हृदयको खैंच लेगया। जैसे नदीकेतटपर तृण बल्ली होती है उसको नदीका प्रवाह खींच लेजाता है तैसेही मेरे हृदय में जो कुछ जगत्की आस्थारूपी बल्ली थी उसको विचाररूपी प्रवाह खींचलेगया। तब मैंने जाना कि; राज्य करके क्याहै, भोगसे क्या है और जगत् क्या है–सब भ्रममात्रहैं–इसकी बासना मूर्ख रखतेहैं; यह स्थावर जंगम जगत् सब मिथ्याहै। हे मुनीश्वर! जितने कुछ पदार्थ हैं वह सब मनसे उत्पन्नहैं। सो मनभी

भ्रममात्रहै अनहोता मन दुखदाई हुआहै। मन जो पदार्थोंको सत्य जानकर दौड़ता है और सुखदायक जानताहै सो मृगतृष्णा के जलवत् है जैसे मृगतृष्णा के जलको देखकर मृग दौड़ते हैं और दौड़ते २ थकके गिरपड़ते हैं तौभी उनको जल प्राप्त नहीं होता तैसेही मूर्ख जीव पदार्थोंको सुखदाई जानकर भोगनेकायत्न करते हैं और शांति नहीं पाते। हे मुनीश्वर! इन्द्रियोंके भोग सर्पवत्हैं जिनका माराहुआ जन्म मरण और जन्मसे जन्मांतर पाता है। भोग और जगत् सब भ्रममात्र हैं उनमें जो आस्था करते हैं वह महामूर्ख हैं मैं विचार करके ऐसा जानताहूं कि सब आगमापायी हैं अर्थात् आतेभी हैं और जातेभी हैं। इससे जिस पदार्थका नाश न हो वही पदार्थ पाने योग्य है और इसीकारण मैंने भोगोंका त्यागकियाहै। हे मुनीश्वर! जितने सम्पदारूप पदार्थ भासते हैं वह सब आपदाहैं; इनमें रंचकभी सुख नहीं। जब इनका वियोग होताहै तब कण्टककी नाईं मनमें चुभतेहैं। जब इन्द्रियों को भोग प्राप्त होतेहैं तब जीव राग द्वेषसे जलता है और जब नहीं प्राप्तहोते तब तृष्णा से जलताहै—इससे भोग दुःखरूपही है जैसे पत्थरकी शिलामें छिद्र नहीं होता तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रञ्चकभी सुख-रूपी छिद्र नहीं होता। हे मुनीश्वर! मैं विषयकी तृष्णा में बहुतकालसे जलताहूं। जैसे हरे वृक्षके छिद्रमें रञ्चक अग्नि धरीहो तो धुवां हो थोड़ा २ जलता रहता है तैसेही भोगरूपी अग्निसे मन जलता रहता है। विषय में कुछभी सुख नहीं है और दुःख बहुतहै इससे इनकी इच्छाकरनी मूर्खताहै। जैसे खाईं के ऊपर तृण और पान होते हैं और उससे खाईं आच्छादित होजाती है उसको देख हरिण कूदके दुःखपाताहै तैसे-ही मूर्ख भोगको सुखरूप जानके भोगने की इच्छा करताहै और जब भोगता है तब जन्मसे जन्मांतररूपी खाईं में जापड़ताहै और दुःखपाताहै। हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर अज्ञानरूपी रात्रि में आत्मारूपी धन लूट लेजाता है पर उसके वियोगसे जीव महादीन रहताहै। जिस भोगके निमित्त यह यत्न करताहै वह दुःखरूपहै उनसे शान्ति प्राप्त नहीं होती और जिस शरीर का अभिमान करके यह यत्न करताहै वह शरीर क्षण भंग और असार है। जिस पुरुषको सदाभोगकी इच्छा रहती है वह मूर्ख और जड़ है। उसका बोलना और चलना भी ऐसाहै जैसे सूखे बांसके छिद्रमें पवनजाता है और उसके बेगसे शब्द होताहै जैसे थकाहुआ मनुष्य मारवाड़के मार्गकी इच्छा नहीं करता तैसेही दुःखजानकर मैं भोगकीइच्छा नहीं करता। लक्ष्मीभी परमअनर्थकारी है जब तक इसकी प्राप्ति नहीं होती तब तक उसकेपानेका यत्न होताहै और यह अनर्थ करके प्राप्त होती है। जब लक्ष्मी प्राप्तहुई तब सब सद्गुण अर्थात् शीलता, सन्तोष, धर्म, उदारता को-मलता, वैराग्य, विचारदयादिकका नाशकरदेती है। जब ऐसे गुणोंका नाशहुआ तब सुख कहांसेहो तबतो परमआपदाही प्राप्तहोती है। इसको परमदुःखका कारण जानकर मैंने

त्याग कियाहै ! हेमुनीश्वर। इस जीवमें गुण तबतकहैं जबतक लक्ष्मी नहीं प्राप्तहुई। जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहुई तब सबगुण नाशहोजाते हैं। जैसे बसन्तऋतुकी मञ्जरी तबतकहरी रहती है जबतक ज्येष्ठ आषाढ़ नहीं आता और जब ज्येष्ठ आषाढ़आया तब मञ्जरी जलजाती है तैसेही जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहुई तब शुभगुण जलजातेहैं। मधुरवचन तभी तक बोलताहै जबतक लक्ष्मीकी प्राप्तिनहीं है और जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहुई तब कोमलताका अभावही कठोरहोजाताहै। जैसे जलपतला तबतक रहताहै जबतक शीतलता का संयोगनहींहुआ और जब शीतलताका संयोगहोताहै तब बरफहोकर कठोर दुःखदायक होजाताहै; तैसे यह जीव लक्ष्मी से जड़होजाता है। हे मुनीश्वर! जो कुछ सम्पदाहै वह आपदाका मूलहै क्योंकि; जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहोती है तब बड़े २ सुख भोगताहै और जब उसका अभाव होताहै तब तृष्णासे जलताहै और जन्मसे जन्मान्तरपाताहै। लक्ष्मीकी इच्छाही मूर्खताहै। यह तो क्षणभङ्गहै, इससे भोग उपजते और नाशहोते हैं। जैसे जलसे तरंग उपजते और मिटजाते हैं और जैसे बिजली स्थिरनहीं होती तैसेही भोगभी स्थिर नहीं रहते। पुरुषमें शुभगुण तबतकहैं जबतक तृष्णा का स्पर्शनहीं और जब तृष्णा हुई तब शुभगुणोंका अभाव होजाताहै। जैसे दूधमें मधुरता तबतकहै जबतक उसे सर्प ने स्पर्श नहींकिया और जब सर्पने स्पर्श किया तब वही दूध विषरूप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेरामेणवैराग्यवर्णनंनामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

श्री रामजी बोले हे मुनीश्वर! लक्ष्मी देखनेमात्रही सुन्दरहै। जब इसकी प्राप्तिहोती है तब सद्गुणोंकानाशकरदेती है। जैसे विषकी बल्ली देखनेमात्रही सुंदरहोतीहै और स्पर्श किये से मारडालती है तैसेही लक्ष्मीकी प्राप्ति हुये से जीव आत्मपदसे मृतकहो महादीन होजाताहै। जैसे किसीके घरमें चिन्तामणि दबी हो तो उसको जबतक खोदकर यह नहीं लेता तबतक दरिद्री रहताहै तैसेही अज्ञानसे ज्ञान बिना महादीनहोरहताहै और आत्मानन्दको नहीं पासक्ता। आत्मानन्दपानेकी नाशकरनेवाली लक्ष्मीहै। इसकी प्राप्तिसे जीव महाअन्धहोजाताहै। हे मुनीश्वर! जब दीपक प्रज्वलितहोता है तब उसका बड़ाप्रकाश दृष्टिआताहै और जब बुझजाता है तब प्रकाशका अभाव होजाताहै पर काजलकी समक्षता रहजाती है; तैसेही जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहोतीहै तब बड़े भोग भुगातीहै और तृष्णारूपी काजल उससे उपजतारहताहै और जब लक्ष्मीका अभावहोताहै तब तृष्णाकी बासना समक्षता छोड़जाती है। उस बासना तृष्णासे अनेक जन्म और मरण पाताहै कदाचित् शान्ति नहींपाता। हे मुनीश्वर! जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहोती है तब शान्तिके उपजानेवाले गुणोंका नाशकरती है। जैसे जबतक पवन नहीं चलता तबतक मेघरहता है और जब पवन चलता है तो मेघका अभाव होजाता है

तैसेही लक्ष्मीजी की प्राप्तिहुये गुणोंका अभावहोताहै और गर्वकी उत्पत्तिहोती है। हे मुनीश्वर! जो शूरहोके अपने मुखसे अपनीबड़ाई न करे सो दुर्लभ है और सामर्थ्य भर किसीकी अवज्ञा न करे सबमें समबुद्धिराखे सोभी दुर्लभ है तैसेही लक्ष्मीवान् होकर शुभगुणसंयुक्तहोय सोभीदुर्लभहै। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी सर्पकेविषके बढ़ाने कोलक्ष्मीरूपी दूध है उसे पीते पवनरूपी भोग के आहार करते कभी नहीं अघाता और महामोहरूपी उन्मत्त हस्ती है उसके फिरने का स्थान पर्वतकी अटवीरूपी लक्ष्मी है और गुणरूपी सूर्य्यमुखी कमलकी लक्ष्मीरूपी रात्रि है और भोगरूपी चन्द्रमुखी कमलोंका लक्ष्मीरूपी चन्द्रमा है और वैराग्य रूप कमलिनीका नाशकरने वाला लक्ष्मीरूपी बरफहै। और ज्ञानरूपी चन्द्रमाका आच्छादनकरनेवाली लक्ष्मी-रूपीराहुहै और मोहरूपी उलूककी लक्ष्मीरूपी रात्रिहै। दुःखरूपीबिजुलीको लक्ष्मी आकाश है और तृणरूपी बल्ली को बढ़ानेवाली लक्ष्मी मेघ है। तृष्णारूपी तरङ्ग को लक्ष्मी समुद्रहै, तृष्णारूपी भँवरको लक्ष्मी कमलिनी है और जन्मके दुःखरूपी जलका यह लक्ष्मी खड्ढाहै। हे मुनीश्वर! देखनेमात्र यह सुन्दरलगतीहै यह दुःखका कारणहै। जैसे खड्गकी धारा देखनेमात्र सुन्दरहोती है और स्पर्शकियेसे नाशकरती है तैसेही यह लक्ष्मी विचाररूपी मेघका नाशकरने में वायुसी है। हे मुनीश्वर! यह मैंने विचारदेखा है कि, इसमें कुछ भी सुख नहीं सन्तोषरूपी मेघका नाशकरनेवाली लक्ष्मी शरत्कालहै। इस मनुष्य में गुण तबतक दृष्टिआते हैं जबतक लक्ष्मीकी प्राप्ति नहींहोती जब लक्ष्मी की प्राप्तिभई तब शुभगुण नाशहोजाते हैं। हे मुनीश्वर! लक्ष्मी को ऐसी दुःखदायक जानकर इसकी इच्छामैंने त्यागदीहै। यह भोगमिथ्यारूपी है जैसे बिजुली प्रकट होके छिपजाती है तैसेही लक्ष्मीभी प्रकटहोके छिपजातीहै। जैसे जलहै सो हिमहै तैसेही लक्ष्मी की ज्योति है सो मूर्ख जड़के आश्रयसे है। इसको छलरूप जानकर मैंने त्यागकियाहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेलक्ष्मीनैराश्यवर्णनंनामाष्टमस्सर्गः ॥ ८ ॥

रामजीबोले हे मुनीश्वर! जैसे पत्रके ऊपर जलकीबुंदनहींरहती तैसेही लक्ष्मी भी क्षणभंग है जैसे जलके तरंगहोके नाशहोते हैं तैसेही लक्ष्मीहोके नाशहोतीहै। हे मुनीश्वर! पवनको रोंकना कठिनहै पर वह भी कोई रोंकता है और आकाशका चूर्ण करना अति कठिन है वहभी कोई चूर्ण करडारता है और बिजुली का रोंकना अति कठिन है सोभी कोई रोंकताहै परन्तु लक्ष्मीको कोई स्थिर नहीं रख सक्ता जैसे शश की सींगों से कोई मार नहीं सक्ता और आरसी के ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता है जैसे तरंगकी गांठ नहीं पड़ती तैसेही लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती है लक्ष्मी बिजुली की चमकसी है सो होतीहै और मिटभी जातीहै और जो लक्ष्मीपाके अमर हुआ चाहै

उसे महामूर्ख जानना और लक्ष्मी पाकर जो भोगकी बाञ्छा करताहै वह महा आपदा का पात्रहै उस का जीनेसे मरना श्रेष्ठहै जीनेकी आशा मूर्ख करते हैं जैसे स्त्री गर्भकी इच्छा अपने नाश निमित्त करती है तैसेही जीनेकी आशा पुरुष अपने नाश निमित्त करते हैं और ज्ञानवान् पुरुष जिनकी परमपदमें स्थिति है और उससे तृप्त हुये हैं उनका जीना सुखके निमित्तहै उनके जीनेसे और के कार्य्य भी सिद्धहोते हैं और उनका जीना चिन्तामणिकी नाईं श्रेष्ठहै और जिनको सदा भोगकी इच्छा रहती है और आत्मपदसे विमुखहैं उनका जीना किसी सुखके निमित्त नहीं है वह मनुष्य नहीं गर्दभ है जैसे वृक्ष पक्षी पशु का जीनाहै तैसे उनकाभी जीनाहै । हे मुनीश्वर ! जो पुरुष शास्त्रपढ़ताहै और उसने अपने योग्य पदनहीं पाया तो शास्त्र उसको भाररूपहै। जैसे और भारहोताहै तैसेही पढ़नेका भी भारहै और जो पढ़के विचार–चर्चा करतेहैं और तिसके सारको नहीं ग्रहण करते तो यहविचार–चर्चा भी भारहै। हे मुनीश्वर ! यह मन आकाश रूपहै । जोमनमें शान्ति न आई तो मनभी उसको भार है और जो मनुष्य शरीरको पाकर उसका अभिमान नहीं त्यागता तो यह शरीर भी उसको भारही है। इस शरीरका जीना तभी श्रेष्ठहै जब आत्मपदको पावै अन्यथा जीना व्यर्थहै। आत्मपदकी प्राप्ति अभ्याससे होतीहै। जैसे जल पृथ्वी खोदनेसे निकलताहै तैसेही आत्मपदकी प्राप्तिभी अभ्याससे होतीहै । जो आत्मपदसे विमुख हो आशा की फाँसी में फँसे हैं वे संसार में भटकते रहते हैं। हे मुनीश्वर! जैसे संसारके तरंग अनेक कालसे उत्पन्नहोके नष्ट होजातेहैं तैसेही यह लक्ष्मी भी क्षणभंगहै। इसको पाके जो अभिमान करताहै सो मूर्ख है । जैसे बिल्ली चूहेको पकड़नेकेलिये पड़ी रहती है तैसेही लक्ष्मी उनको नरकमें डालनेके लिये घरमें पड़ीरहती है। जैसे अञ्जली में जल नहीं ठहरता तैसे ही लक्ष्मी भी नहीं ठहरती । ऐसी क्षणभंग लक्ष्मी और शरीरको पाके जो भोग की तृष्णा करताहै वह महामूर्ख है। वह मृत्युके मुखमें पड़ाहुआ जीनेकी आशा करताहै। जैसे सर्पके मुखमें मूर्ख मेंडुक पड़के मच्छर खाने की इच्छा करताहै तैसेही जो जीव मृत्युके मुखमें पड़ाहुआ भोगकी बाञ्छा करताहै वह महामूर्ख है। जब युवा अवस्था नदीके प्रवाहकी नाईं चलीजाती है तब वृद्धावस्था आती है। उसमें महादुःख प्रकट होते हैं और शरीर जर्जर होजाताहै और मरताहै। निदान एकक्षण भी मृत्यु इसको नहीं बिसारती। जैसे महाकामी पुरुषको सुन्दर स्त्री मिलती है तो उसके देखने का त्याग नहीं करता तैसेही मृत्यु मनुष्यको देखे बिना नहीं रहता। हे मुनीश्वर ! मूर्ख पुरुषका जीना दुःखके निमित्तहै। जैसे वृद्ध मनुष्य का जीना दुःखका कारण है तैसेही ज्ञानीका जीना दुःखकाकारणहै। उसके बहुतजीनेसे मरना श्रेष्ठहै। जिस पुरुषने मनुष्यशरीर पाके आत्मपद पानेका यत्न नहीं किया उसने अपना आप नाश किया और वह आत्म-

हत्यारा है। हे मुनीश्वर ! यह माया बहुत सुन्दर भासतीहै पर अंत में नाशहोजातीहै। जैसे काष्ठको भीतरसे घुनखाजाताहै और बाहरसे बहुत सुन्दर दिखाताहै तैसेही यह जीव बाहरसे सुन्दर दृष्टि आताहै और भीतरसे उसको तृष्णा खाजातीहै। जो मनुष्य पदार्थको सत्य और सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करताहै वह सुखी नहीं होताहै। जैसे कोई नदी में सर्पको पकड़के पार उतराचाहे तो पार नहीं उतरता मूर्खतासे डूबेहीगा तैसेही जो संसारके पदार्थोंको सुखरूप जानकर आश्रय करता है सो सुखनहीं पाता संसार समुद्रमें डूबजाताहै। हे मुनीश्वर ! यह संसार इन्द्रधनुषकी नाईं है। जैसे इन्द्रधनुष बहुत रंगका दृष्टिमें आताहै पर उससे अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता तैसेही यह संसार भ्रममात्रहै इसमें सुखकी इच्छारखनी व्यर्थहै। इसप्रकार जगत्को मैंने असत्रूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा की है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसंसारसुखनिषेधवर्णनंनामनवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! अहङ्कार अज्ञान से उदय हुआहै। यह महादुष्ट है और यही परम शत्रुहै। इसने मुझको दबाडाला है पर मिथ्या है और सब दुःखोंकी खानि है। जबतक अहङ्कार है तबतक पीड़ाकी उत्पत्ति का अभाव कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर ! जो कुछ मैंने अहङ्कार से भजन और पुण्यकिया, जो कुछ लिया दिया और जो कुछ किया वह सब व्यर्थहै। इससे परमार्थ की कुछ सिद्धि नहीं है। जैसे राख में आहुति धरी व्यर्थ होजातीहै तैसेही मैं इसे जानताहूं। जितने दुःख हैं उनका बीज अहङ्कार है। जब इसका नाश हो तब कल्याण हो। इससे आप इसके निवृत्ति का उपाय कहिये। हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत्य है उसके त्याग करनेमें दुःख होताहै और जो वस्तु नाशवान्है और भ्रमसे दिखती है उसके त्याग करनेमें आनन्द है। शान्तिरूप चन्द्रमाके आच्छादन करने को अहङ्काररूपी राहु है जब राहु चन्द्रमा को ग्रहणकरताहै तो उसकी शीतलता और प्रकाश ढपजाताहै। तैसेही जब अहङ्कार ढपजाताहै तब समता ढपजाती है। जब अहङ्काररूपी मेघगरजके वर्षताहै तब तृष्णा रूपी कंटकमञ्जरी बढ़ जातीहै और कदाचित् नहीं घटती। जब अहङ्कार का नाशहो तब तृष्णा का अभावहो। जैसे जबतक मेघ है तबतक बिजुली है; जब विवेकरूपी पवन चले तब अहङ्काररूपी मेघका अभाव होके तृष्णारूपी बिजुली नाश होजाती है और जैसे जबतक तेल और बाती है तबतक दीपक का प्रकाश है जब तेल बाती का नाशहोता तब दीपकका प्रकाश भी नाश होजाता है तैसेही जब अहङ्कार का नाशहो तब तृष्णा का भी नाशहोता है। हे मुनीश्वर ! परम दुःखका कारण अहङ्कार है। जब अहङ्कारका नाशहो तब दुःखका भी नाश होजाय। हे मुनीश्वर ! यह जो मैं राम हूं सो नहीं और इच्छा भी कुछ नहीं क्योंकि; मैं नहीं तो इच्छा किसकोहो? और

इच्छाहो तो यही हो कि, अहंकारके रहित पदकी प्राप्तिहो। जैसे जनेन्द्रको अहंकारका उत्थान नहीं हुआ तैसा मैं होऊं ऐसी मुझको इच्छा है। हे मुनीश्वर! जैसे कमलको बरफ नाश करताहै तैसेही अहंकार ज्ञानका नाशकरताहै। जैसे व्याधा जालसे पक्षी को फँसाता है और उससे पक्षी दीन होजातेहैं तैसेही अहंकाररूपीव्याधा ने तृष्णा-रूपी जाल डालके जीवको फँसाया है उससे वह महादीन होगये हैं जैसे पक्षी अन्नके दाने सुखरूप जानकर चुगनेआताहै फिर चुगते २ जालमेंफँस बन्धनसे दीन होजाता है तैसेही यह जीव विषयभोग की इच्छा कियेसे तृष्णारूपीजालमेंफँसकर महादीन होजाता। इससे हेमुनीश्वर! मुझसे वही उपाय कहियेजिससे अहङ्कारका नाशहो जब अहङ्कार का नाश होगा तब मैं परमसुखी हूंगा। जैसे बिंध्याचलपर्वतके आश्रयसे उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं तैसेही अहङ्काररूपी बिन्ध्याचल पर्वतके आश्रयसे मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकार के सङ्कल्प विकल्परूपी शब्द करता है इससे आप वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कार का नाशहो जो अकल्याण का मूलहै। जैसे मेघका नाश करनेवाला शरत्कालहै तैसेही वैराग्य का नाश करनेवाला अहङ्कार है। मोहादिक विकाररूप सर्पोंके रहनेका अहङ्काररूपी बिलहै और वह कामी पुरुषों की नाईं है। जैसे कामीपुरुष कामको भोगताहै और फूलकी माला गले में डालके प्रसन्न होताहै तैसेही तृष्णारूपी तागाहै और मनरूपी फूलहैं सो तृष्णारूपी तागे के साथ गुहे हैं सो अहङ्काररूपी कामीपुरुष उनको गलेमें डालता है और प्रसन्न होताहै। हे मुनीश्वर! आत्मारूपी सूर्य्यहै उसका आवरण करनेवाला मेघरूपी अहङ्कारहै। जब ज्ञानरूपी शरत्काल आता है तब अहङ्काररूपी मेघ का नाश होजाताहै और तृष्णा-रूपी तुषारका भी नाशहोता है। हेमुनीश्वर! यह निश्चयकर मैंने देखा है कि जहां अहङ्कार है वहां सब आपदा आ प्राप्त होती हैं। जैसे समुद्र में सब नदी आके प्राप्त होती हैं तैसेही अहङ्कार में सब आपदा की प्राप्तिहै। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कारका नाशहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेअहङ्कारदुराशावर्णनंनामदशमस्सर्गः॥ १०॥

श्री रामजी बोले हे मुनीश्वर! मेरा चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःख से जर्जरीभूत होगया है और महापुरुषों के गुण जो वैराग्य, विचार, धीर्य्य और सन्तोष हैं उनकी ओर नहीं जाता—सर्वदा विषय की गरदमें उड़ताहै। जैसे मोरका पंख पवनके लगे नहीं ठहरता तैसेही यह चित्त सर्वदा भटकता फिरताहै पर कुछ लाभ नहीं प्राप्त होता। जैसे श्वान द्वार द्वार पर भटकता फिरता है तैसेही यह चित्त पदा-र्थोंके पानेके निमित्त भटकता फिरताहै पर प्राप्त कुछ नहीं होता और जो कुछ प्राप्त होताहै उससे तृप्त नहीं होता बल्कि अन्तःकरण में तृष्णा बनी रहतीहै। जैसे पिटारे

में जल भरिये तो वह पूर्ण नहीं होता क्योंकि; छिद्रसे जल निकलजाता है और पिटारा शून्यका शून्य रहताहै तैसेही चित्त भोग और पदार्थोंसे संतुष्ट नहीं होता सदा तृष्णा ही रहती है । हे मुनीश्वर ! यह चित्तरूपी महामोह का समुद्रहै; उसमें तृष्णारूपी तरङ्ग उठतीही रहती हैं और कदाचित् स्थिर नहीं होतीं । जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण तरंग से तटके वृक्ष बहजाते हैं तैसेही चित्तरूपी समुद्रमें विषयबहजाताहै । बासनारूपी तरंग के बेग से मेरा अचल स्वभाव चलायमान होगया है; इसलिये इस चित्तसे मैं महा दीन हुआहूँ । जैसे जलमें पड़ा हुआ पक्षी दीन होजाताहै तैसेही चित्त धीवरके बासनारूपी जालमेंबँधाहुआ मैं दीनहोगयाहूँ । जैसे मृगके समूह से भूली मृगी अकेली खेदवान् होती है तैसेही मैं आत्मपदसे भूलाहुआ चित्तमें खेदवानहुआहूँ । हे मुनीश्वर ! यह चित्त सदा क्षोभवान् रहता है कदाचित् स्थिर नहीं होता। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल से क्षोभवान् हुआथा तैसेही यह चित्त सङ्कल्प विकल्पसे खेद पाता है । जैसे पिंजरेमें आया सिंह पिंजरेही में फिरता है तैसे बासना में आया चित्त स्थिर नहीं होता । हे मुनीश्वर ! जैसे भारी पवनसे सूखा तृण दूरसे दूर जापड़ता है तैसेही इस चित्तरूपी पवन ने मुझको आत्मानन्दसे दूरफेंकाहै । जैसे सूखे तृणको अग्नि जलाती है तैसेही मुझको चित्त जलाता है । जैसे अग्निसे धूमनिकलता है तैसेही चित्तरूपी अग्निसे तृष्णारूपी धूम निकलता है उससे मैं परम दुःख पाताहूं । यह चित्त हंस नहीं बनता । जैसे राजहंस मिले दूध और जल को भिन्न भिन्न करता है उसकी नाईं मैं अनात्मासे अज्ञानके कारण एकसा होगयाहूं उसको भिन्न नहीं कर सक्ता और जब आत्मपद पानेका यत्न करता हूं तब अज्ञान उसे प्राप्त नहीं करने देता। जैसे नदीका प्रबाह समुद्र में जाता है उसको पहाड़ सूधे नहीं चलने देता और समुद्र की ओर नहीं जाने देता तैसेही मुझको चित्त आत्माकी ओरसे रोकता है—वह परमशत्रु है । हे मुनीश्वर ! वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी शत्रुका नाशहो । जैसे मृतक शरीरको श्वान और श्वाननी भोजन करते हैं तैसेही तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है। आत्माके ज्ञान बिना मैं मृतक समानहूं । जैसे बालक अपनी परछाहींको बैताल मानकर भयपाताहै और जब विचार करके समर्थहोताहै तब बैतालका भय नहीं होता तैसेही चित्तरूपी बैतालने मेरा स्पर्श किया है उससे मैं भयपाताहूं । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी बैताल नष्ट होजावे । हे मुनीश्वर ! अज्ञानसे मिथ्या बैताल चित्त में दृढ़ होरहा है उसके नाशकरने को मैं समर्थ नहीं होसक्ताहूं । अग्नि में बैठना बड़े पर्वतके ऊपरजाना और बड़े वज्रका चूर्ण करना मैं सुगम मानताहूं परंतु चित्तका जीतना महाकठिन है । चित्तसदाही चलायमान स्वभाववाला है । जैसे थम्भ में बांधा हुआ बानर कदाचित् स्थिरहो नहीं बैठता तैसेही चित्त बासनाके मारे कदाचित् स्थिर

नहीं होता। हे मुनीश्वर! बड़े समुद्रका पान करजाना, अग्निका भक्षण करना और सुमेरुका उल्लंघन करना सुगम है परन्तु चित्तका जीतना महाकठिनहै जो सदा चल रूप है। जैसे समुद्र अपना द्रवी स्वभाव कदाचित् नहीं त्याग करता, महाद्रवीभूत रहता है और उससे नानाप्रकारके तरंग उठते हैं तैसेही चित्त भी चञ्चल स्वभाव कभी नहीं त्यागता और नाना प्रकार की बासना उपजती रहती हैं। चित्त बालक की नाईं चञ्चल है, सदा विषयकी ओर धाता है; कहीं २ पदार्थकी प्राप्ति होती है परन्तु भीतर सदा चञ्चल रहता है। जैसे सूर्यके उदयहुये दिन होता है और अस्तहुये से दिननाश होता है, तैसेही चित्त क उदय हुये त्रिलोकी की उत्पत्ति है और चित्त के लीनहुये से जगत्‌भी लीनहोजाता है। हे मुनीश्वर! चित्तरूपी समुद्र है और बासना रूपी जल है, उसमें छलरूपी सर्प है, जब जीव उसके निकट जाता है तब भोगरूपी सर्प उसको काटता है और तृष्णारूपी विष स्पर्श करता है उससे मरता है। हे मुनीश्वर! भोगको सुखरूप जानकर चित्त दौड़ता है पर वह भोग दुःखरूपहै। जैसे तृण से आच्छादित खाईं को देखकर मूर्ख मृग खाने दौड़ताहै तो खाईं में गिरकर दुःख पाता है तैसेही चित्तरूपी मृग भोगको सुखजानकर भोगने लगता है तब तृणरूपी खाईंमें गिरपड़ता है और जन्मजन्मान्तर दुःख भोगता रहता है। हे मुनीश्वर! यह चित्त कभी २ बड़ा गम्भीरभी हो बैठताहै। जैसे चीलपक्षी आकाशमें ऊँचेफिरताहै पर जब पृथ्वीपर मांसदेखता है तो वहांसे पृथ्वीपरआके मांसलेताहै तैसेही यह चित्त तब तक उदार है जबतक भोगनहीं देखता और जब विषय देखता है तब आसक्त हो विषय में गिरजाता है। यहचित्त बासनारूपी शय्या में सोयारहताहै और आत्मपदकी ओर नहीं जागता इसचित्तके जालमें मैं पड़गयाहूं। वह कैसा जाल है कि उसमें बासनारूपी सूत है, संसारकी सत्यतारूपी गांठ है और भोगरूपी चून है जिसको देखके मैं फँसाहूं और कभी पाताल में और कभी आकाश में बासनारूपी रस्सी से बँधा घटीयंत्रकी नाईं फिरताहूं इस से हे मुनीश्वर! तुम वही उपायकहो जिससे चित्तरूपी शत्रुको जीतूं। अब मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं और जगत्‌की लक्ष्मी मुझको बिरस भासती है। जैसे चन्द्रमा बादलकी इच्छा नहीं करता पर चतुरमास में आच्छादित होजाता है तैसेही मैं भोगकी इच्छा नहीं करता और जगत्‌की लक्ष्मीभी नहीं चाहता पर मेरा चित्तही मेरा परमशत्रु है। महापुरुष जब इसके जीतने का यत्नकरते हैं तब परमपद पाते हैं, इससे मुझे वही उपाय कहो जिससे मनको जीतूं। जैसे पर्वतपरके वनपर्वत के आश्रय से रहते हैं तैसेही सब दुःख इसके आश्रयसे रहते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेचित्तदौरात्म्यवर्णनंनामएकादशस्सर्गः॥ ११॥

श्री रामजीबोले हे ब्राह्मण! चेतनरूपी आकाश में तृष्णारूपी रात्रिआई है और

उस में काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक उल्लू विचरते हैं । जब ज्ञानरूपी सूर्य उदयहो तब तृष्णारूपी रात्रिका अभावहोजावे और जब रात्रि नष्टहो तब मोहादिक उलूक भी नष्टहों जैसे जब सूर्यका उदय होता है तब बरफ उष्णहो पिघल जाता है तैसेही सन्तोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता पिघलाजाती है । आत्मपदसे शून्य चित्त भयानक वन है, उसमें तृष्णारूपी पिशाचिनी मोहादिक परिवार अपने साथलिये फिरती रहती है और प्रसन्न होती है हे मुनीश्वर ! चित्तरूपी पर्वतहै उसके आश्रयसे तृष्णारूपीनदीका प्रवाहचलताहै और नानाप्रकारके सङ्कल्परूपी तरंगको फैलाताहै । जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होताहै तैसेही तृष्णारूपी मोरभोगरूपी मेघको देखकर प्रसन्नहोता है इससे परम दुःखका मूल तृष्णाहै । जब मैं किसीसन्तोषादि गुणका आश्रयकरताहूं तब तृष्णा उसको नाशकरदेती है । जैसे सुन्दर सारंगीको चूहाकाटडालता है तैसेही सन्तोषादि गुणको तृष्णा नाशकरती है । हे मुनीश्वर ! सबसे उत्कृष्ट पदमें विराजनेका मैं यत्न करताहूं पर तृष्णा मुझे विराजने नहीं देती । जैसे जालमें फँसाहुआ पक्षी आकाश में उड़ने का यत्नकरता है परन्तु उड़ नहीं सक्ता तैसेही अनात्मपदसे आत्मपद को प्राप्तनहींहोसक्ता । स्त्री, पुरुष, पुत्र और कुटुम्बका उसने जाल बिछाया है उसमें फँसाहूं निकलनहीं सक्ता । और आशारूपी फांसी में बँधाहुआ कभी ऊर्ध्व को जाताहूं और कभी अधःपात होताहूं, घटीयंत्रकी नाईं मेरी गतिहै । जैसे इन्द्रका धनुष मलिन मेघ में बड़ा और बहुत रंगों से भरा होता है परन्तु मध्य में शून्य है तैसेही तृष्णा मलिन अन्तःकरण होतीहै सो बड़ी है और गुणरूपी धागेसे रहित है । यह ऊपरसेही देखनेमात्र सुन्दर है परन्तु इससे कुछ कार्य्य नहीं सिद्ध होता । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी मेघ है उससे दुःखरूपी बूंद निकलते हैं और तृष्णारूपी काली नागिनहै उसका स्पर्शतो कोमलहै परन्तु विषसे पूर्ण है उसके डसेसे मृतक होजाताहै तृष्णारूपी बादल है सो आत्मरूपी सूर्य के आगे आवरण करता है । जब ज्ञानरूपी पवन चले तब तृष्णारूपी बादलका नाशहोकर आत्मपदका साक्षात्कारहो । ज्ञान रूपी कमलको संकोच करनेवाली तृष्णारूपी निशाहै । उस तृष्णारूपी महाभयानक कालीरात्रि में बड़े धीरवान्‌भी भयभीत होते हैं और नयनवालों को भी अन्धा कर डालती है । जब यह आतीहै तब वैराग्य और अभ्यासरूपी नेत्रको अन्धा करडालती है । अर्थात् सत्य असत्य विचारने नहीं देती । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी डाकिनी है वह सन्तोषादिक पुत्रोंको मारडालती है । तृष्णारूपी कन्दराहै उसमें मोहरूपी उन्मत्त हाथी गर्जते हैं । तृष्णारूपी समुद्रहै उसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती है इससे वही उपाय मुझसे कहिये जिससे तृष्णारूपी दुःख से छूटूं । हे मुनीश्वर ! अग्नि और खड्गके प्रहार और इन्द्र के वज्रसे भी ऐसा दुःख नहीं होता जैसा दुःख

तृष्णासे होताहै सो तृष्णाके प्रहार से घायलहुआ मैं बड़ेदुःखकोपाता हूं और तृष्णारूपी दीपकजलताहै उसमें सन्तोषादिक पतंग जलजाते हैं जैसे जलमें मछली रहती है सो जलमें कंकड़ रेत आदि को देख मांस जानकर मुखमें लेती है उससे उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता तैसे तृष्णा भी जो कुछ पदार्थ देखती है उसकेपास उड़ती है और तृप्ति किसीसे नहीं होती तृष्णारूपी एक पक्षिणी है सो इधर उधर उड़जाती है और स्थिर कभीनहीं होती तृष्णारूपी बानरहै वह कभी किसी वृक्षपर और कभी किसीके ऊपर जाताहै स्थिर कभी नहीं होता है । जो पदार्थ नहीं प्राप्तहोता उसके निमित्त यत्न करताहै और भोगसे तृप्त कदाचित् नहीं होता जैसे घृतकी आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होती तैसेही जो पदार्थ प्राप्तयोग्य नहीं है उसकीओरभी तृष्णादौड़ती है शान्ति नहीं पाती । हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी उन्मत्त नदी है वह बहेहुये पुरुषको कहांसे कहां लेजाती है कभी तो पहाड़के बाजूमें लेजाती और कभी दिशामें लेजाती है और तृष्णारूपी नदी है उसमें वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं कदाचित् मिटते नहीं तृष्णारूपी नटिनी है और जगतरूपी अखाड़ा उसने लगाया है उसको शिर ऊंचाकर देखती है और मूर्ख बड़े प्रसन्न होते हैं जैसे सूर्य के उदयहुये सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा होताहै तैसेही मूर्ख भी तृष्णाको देखकर प्रसन्नहोताहै तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है जो पुरुष इसका त्याग करता है तो उसके पीछे लगी फिरती ही है कभी उसका त्याग नहीं करती तृष्णारूपी डोर है उसके साथ जीवरूपी पशु बँधेहुये भ्रमते फिरते हैं। तृष्णा दुष्टिनी है जब शुभ गुण देखती है तब उसको मार डालती है उसके संयोग से मैं दीन होताहूं जैसे पपीहा मेघको देखकर प्रसन्न होताहै और बूंद ग्रहण करने लगताहै और मेघको जब पवन लेजाता है तब पपीहा दीन होजाताहै तैसेही तृष्णा जब शुभ गुणों का नाशकरती है तब मैं दीन होजाताहूं हे मुनीश्वर! जैसे सूखे तृणको पवन उड़ाकर दूरसेदूर डालताहै तैसेही तृष्णारूपी पवनने मुझको दूरसेदूर डालदिया है और आत्मपदसे दूरपड़ाहूं हे मुनीश्वर! जैसे भवँरा कमल के ऊपर और कभी नीचे बैठताहै और कभी आसपास फिरताहै स्थिर नहीं होता तैसेही तृष्णारूपी भवँरा संसाररूपी कमलके नीचे ऊपर फिरताहै कदाचित् नहीं ठहरता। जैसे मोतीके बांससे अनेक मोती निकलते हैं तैसेही तृष्णारूपी बांससे जगतरूपी अनेक मोती निकलते हैं उससे लोभीका मन पूर्ण नहीं होता। तृष्णारूपी डब्बे में अनेक दुःखरूपी रत्नभरे हैं इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णा निवृत्तहो । हे मुनीश्वर! यह विरागसे निवृत्तहोती है और किसी उपायसे नहीं निवृत्त होती। जैसे अन्धकारका प्रकाश से नाशहोता है और किसी उपाय से नहीं होता तैसेही तृष्णा का नाश और उपायसे नहीं होता। तृष्णारूपी हल गुणरूपी पृथ्वी को खोदडालताहै और तृष्णा

रूपी बेलि गुणरूपी रसको पीती है। तृष्णारूपी धुर है वह अन्तःकरणरूपी जल में उछलके मलीन करती है। हे मुनीश्वर! जैसे वर्षाकाल में नदी बढ़ती है और फिर घट जातीहै तैसेही जब इष्टभोग रूपी जल प्राप्तहोताहै तब हर्षसे बढ़ती है और जब वह जल घटजाताहै तब सूखके क्षीणहोजातीहै। हे मुनीश्वर! इस तृष्णाने मुझको दीन किया है। जैसे सूखेतृणको पवन उड़ालेजाता है तैसेही मुझको भी तृष्णा उड़ाती है इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णाका नाश होकर आत्मपदकी प्राप्तिहो और दुःखों का नाश होकर आनन्दहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेतृष्णागारुड़ीवर्णनंनामद्वादशस्सर्गः १२॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! यह अमंगलरूप शरीर, जो जगत्में उत्पन्न हुआहै, बड़ा अभाग्यरूप है और सदा विकारवान् मांस मज्जासे पूर्ण और अपवित्र है। इस से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता इसलिये इस विकाररूप शरीरकी मैं इच्छानहीं रखता। यह शरीर न अज्ञहै और न तज्ञहै—अर्थात् न जड़है और न चैतन्यहै। जैसे अग्निके संयोगसे लोहा अग्निवत् होताहै सो जलताभी है परंतु आपनहीं जलता; तैसेही यह देह न जड़ है न चैतन्य है। जड़ इसकारण नहीं है कि, इससे कार्य भी होताहै और चैतन्य इसकारण नहीं कि, इसको आपसे कुछ ज्ञान नहीं होता। इसलिये मध्यमभाव में है क्योंकि; चैतन्य आत्मा इसमें व्यापरहा है पर आप तो अपवित्ररूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र और विष्ठासे पूर्ण और विकारवान्है। ऐसी देह दुःखका स्थान है। इष्टके पाये से हर्षवान् और अनिष्टके पायेसे शोकवान् होती है इससे ऐसे शरीर की मुझको इच्छा नहीं। यह अज्ञानसे उपजती है। हे मुनीश्वर! ऐसे अमंगलरूपी शरीर में जो अहंपन फुरताहै सो दुःखका कारणहै। यह संसार में स्थित होकर नाना प्रकारके शब्दकरताहै। जैसे कोठरी में बैठाहुआ बिलाव नानाप्रकार के शब्दकरताहै तैसेही अहंकाररूपी बिलाव देहमें बैठाहुआ अहंअहंकरताहै चुप कदाचित्नहींरहता। हे मुनीश्वर! जो किसीके निमित्त शब्दहो सोही सुन्दरहै अन्यथा सब शब्द व्यर्थ हैं। जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुन्दरहोताहै तैसेही अहंकारसेरहित जो पदहै सोही शोभनीक है और सब व्यर्थ हैं। शरीररूपी नौका भोगरूपी रेत में पड़ी है इसलिये इसका पारहोना कठिन है। जब वैराग्यरूपीजल बढ़े और प्रबाहहो और अभ्यासरूपी पतवार का बललगे तब संसार के पाररूपी किनारेपर पहुँचे। शरीररूपी बेड़ाहै जो संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जलमें पड़ाहै जिसका बड़ाप्रवाह है और भोगरूपी उसमें मगरहैं सो शरीररूपीबेड़ेको पार नहींलगनेदेते; जबशरीररूपीबेड़ेको वैराग्यरूपी वायु और अभ्यासरूपी पतवारका बललगे तब शरीररूपी बेड़ापारहो। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने उपायकरके ऐसे बेड़े को संसार समुद्र से पारकिया है वही सुखीहुआ है

और जिसने नहीं किया वह परम आपदाको प्राप्तहोताहै—वह उस बेड़ेसे उलटा डूबेगा क्योंकि उस शरीररूपी बेड़ेका तृष्णारूपी छिद्रहै उससे संसारसमुद्रमें डूबजाताहै और भोगरूपी मगर इसको खालेताहै। यही आश्चर्यहै कि, बेड़ा अपने निकट नहीं भासता और मनुष्य मूर्खता करके आपको बेड़ामानता है और तृष्णारूपी छिद्रकरके दुःखपाताहै। शरीररूपी वृक्षहै उसमें भुजारूपी शाखा, उँगली पत्र, जङ्घास्थम्भ, मांसरूपी अन्दरका भोगबासना उसकी जड़ और सुख दुःख इसके फूलहैं। तृष्णारूपी घुन उस शरीररूपी वृक्षको खातारहताहै। जब उसमें श्वेतफूललगे तो नाशका समयआताहै अर्थात् मृत्युके निकटवर्ती होताहै। शरीररूपी वृक्षकी भुजारूपी शाखाहैं और हाथ पांव पत्रहैं। पखने इसके गुच्छे और दांत फूलहैं; जंघा स्थंभहैं और कर्म जलसे बढ़जाता है। जैसे वृक्षसे जल चिक्रटा निकलताहै वैसेही जल शरीरकेद्वार निकलता रहताहै। इसमें तृष्णारूपी विषसे पूर्ण सर्पिणी रहती है जो कामना के लिये इसवृक्षका आश्रय लेताहै तो तृष्णारूपी सर्पिणी उसको डसती है और उस विषसे वह मरजाता है। हे मुनीश्वर! ऐसे अमङ्गलरूपी शरीर वृक्षकी इच्छा मुझको नहीं है। यह परम दुःख का कारणहै। जब यह पुरुष अपने परिवार अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और इनमें जो अहंभावहै इसका त्यागकरे तब मुक्ति हो अन्यथा मुक्ति नहीं होती। हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुषहैं वे पवित्र स्थानमेंही रहते हैं अपवित्र में नहीं रहते। वह अपवित्र स्थान यह देहहै और इसमें रहनेवालाभी अपवित्रहै। अस्थिरूपी इसघर में ईंटें हैं, रुधिर, मूत्र और विष्ठाका गारा लगाहै और मांसकी कहगिलकीहै। अहंकाररूपी इसमें श्वपचरहता है, तृष्णारूपी श्वपचिनी उसकी स्त्री और काम, क्रोध, मोह और लोभ इसके पुत्रहैं और आंतों और विष्ठादिसे भराहुआहै। ऐसे अपवित्र स्थान अमंगलरूपी शरीरको मैं अंगीकार नहीं करता यह शरीर रहे चाहे न रहे इसके साथ अब मुझे कुछ प्रयोजन नहीं। हे मुनीश्वर! शरीररूपी बड़ागृह है और उसमें इन्द्रियरूपीपशुहैं। जब कोई उसगृहमें पैठताहै तब बड़ीआपदाको प्राप्तहोताहै—तात्पर्य यह कि जो इसमें अहंभाव करताहै तो इन्द्रियरूपी पशु विषयरूपी सींगोंसे मारतेहैं और तृष्णारूपी धूलि उसको मलीन करती है हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरको मैं अंगीकार नहीं करता जिसमें सदा कलह पड़ीरहतीहै और ज्ञानरूपी सम्पदा प्रवेश नहीं होती। शरीररूपी गृहमें तृष्णारूपी चण्डी स्त्री रहती है; वह इन्द्रियरूपी द्वारसे देखती रहती और सदा कल्पना करती रहती है। उससे शम दमादिरूप संपदाका प्रवेश नहीं होता। उस घरमें एक सुषुप्तिरूप शय्याहै जब उसके ऊपर वह विश्राम करता है तब वह कुछ सुखपाता है परन्तु तृष्णाका परिवार अर्थात् काम, क्रोधादिक विश्राम नहीं करने देते हे मुनीश्वर! ऐसे दुःखके मूल शरीररूपी गृहकी इच्छा मैंने त्यागदी है। यह परम

दुःख देनेवाला है, इसकी इच्छा मुझको नहीं । हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्षहै उसमें तृष्णारूपी कागिनी आस्थित हुई है । जैसे कागिनी नीच पदार्थ के पास उड़ती है तैसेही तृष्णाभोग आदिक मलिन पदार्थों के पास उड़ती है । तृष्णा बन्दरी की नाईं शरीररूपी वृक्षको हिलाती है नहीं स्थिर होने देती और जैसे उन्मत्त हाथी कीच में फँसजाता है तब निकल नहीं सक्ता और खेदवान्होता है तैसेही अज्ञानरूपी मदसे उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फँसाहै सो निकल नहीं सक्ता है पड़ाहुआ दुःख पाता है । ऐसा दुःख पानेवाला शरीर है उसको मैं अङ्गीकार नहीं करता । हे मुनीश्वर ! यह शरीर अस्थि मांस रुधिर से पूर्ण अपवित्र है । जैसे हाथी के कान सदा हिलते हैं तैसेही मृत्यु इसको हिलाता है । कुछ काल का विलम्ब है मृत्यु उसको ग्रासकरलेवेगा; इससे मैं इस शरीरको अङ्गीकारनहीं करताहूं । यह शरीर कृतघ्नहै । भोग भुगतता है और बड़े ऐश्वर्यको प्राप्तकरता है परन्तु मृत्यु इससे सखापन नहीं करता । जीव इसको अकेला छोड़कर परलोक जाता है । जीव इसके सुखके निमित्त अनेक यत्नकरता है परन्तु संगमें सदा नहीं रहता । ऐसे कृतघ्न शरीरको मैंने मनसे त्याग दियाहै । हे मुनीश्वर ! और आश्चर्य देखिये कि, यह उसीकाभोग करताहै पर उसके साथ नहीं चलता । जैसे धूलिसे मार्ग नहीं भासता तैसेही यह जीव जब चलने लगता है तब शरीर से क्षोभवान् होता और बासनारूपी धूलिसंयुक्त चलता है परन्तु दीखतानहीं कि कहां गया । जब परलोक जाताहै तब बड़ाकष्टहोताहै क्योंकि; शरीरके साथ इसने स्पर्शकियाहै । हे मुनीश्वर ! जैसे जलकी बूंद पत्र के ऊपर क्षणमात्र रहती है तैसेही शरीर भी क्षणभंगहै । ऐसे शरीर में आस्थाकरनी मूर्खताहै और ऐसे शरीर के ऊपर उपकारकरना भी दुःखके निमित्तहै सुख कुछनहीं । धनाढ्य इसशरीरसे बड़े भोगभोगते हैं और निर्द्धन थोड़े भोगभोगतेहैं परन्तु जराअवस्था और मृत्युदोनोंकोहोती हैं इसमें विशेषताकुछनहीं शरीरका उपकार करना और भोग भुगतना तृष्णाके कारण उलटा दुःखका कारण है । जैसे कोई नागिनिको घरमें रखके दूध पिलावै तो अन्तमें वह उसेकाटके मारेगी तैसेही जिस जीवने तृष्णारूपी नागिनीके साथ मित्रताकी है वह मरेगा क्योंकि नाशवन्तहै । इसके निमित्त भोग भुगतनेका यत्नकरना मूर्खता है । जैसे पवनका वेग आता और जाताहै तैसेही यह शरीरभी आता और जाताहै इससे प्रीति करनी दुःखका कारणहै । जैसे कोई बिरलामृग मरुस्थल की आस्था त्यागता है और सब पड़े भ्रमते हैं तैसेही सबजीव इसकी आस्थामें बाँधेहुये हैं इसकात्यागकोई बिरलेही ने कियाहै । हे मुनीश्वर ! बिजली और दीपकका प्रकाश भी आताजाता दीखता है परन्तु इस शरीरका आदि अन्त नहीं दीखता कि कहांसे आताहै और कहांजाताहै । जैसे समुद्रमें बुद्बुदे उपजते और मिटजाते हैं उसकी आस्था करने से कुछ लाभ नहीं तैसेही यह शरीर है इसकी

आस्थाकरनी योग्यनहीं। यह अत्यन्त नाशरूपहै स्थिर कदाचित् नहीं होताहै। जैसे बिजली स्थिरनहीं होती तैसेही शरीरभी स्थिरनहीं रहता इसलिये इसकी मैं आस्था नहीं करता। इसका अभिमान मैंने त्यागदिया है जैसे कोई सूखे तृणको त्यागदेताहै तैसे मैंने अहंममता त्यागीहै। हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरको पुष्टकरना दुःखका निमित्त है। यह शरीर किसी अर्थ नहींआता जलाने योग्य है। जैसे लकड़ी जलाने के सिवाय और काममें नहींआती तैसेही यह शरीरभी जड़ और गूंगाजलानेके अर्थ है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने काष्ठरूपी शरीरको ज्ञानाग्निसे जलायाहै उसका परमअर्थ सिद्ध हुआ है और जिसने नहीं जलाया उसने परमदुःखपायाहै। हे मुनीश्वर! न मैं शरीर हूं, न मेरा शरीर है; न इसका मैंहूं, न यह मेरा है; अब मुझको कामना कोई नहीं मैं निराशी पुरुषहूं और शरीरसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं। इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे मैं परमपद पाऊं। हे मुनीश्वर! जिसपुरुषने शरीरका अभिमान त्यागा है वह परमानन्दरूपहै और जिसको देहका अभिमान है वह परमदुःखी है। जितने दुःखहैं वे शरीरके संयोगसे होते हैं। मान-अपमान, जरा-मृत्यु; दम्भ-भ्रांति; मोह-शोक आदि सर्व विकार देहके संयोग से होते हैं। जिनको देहमें अभिमान है उनको धिक्कारहै और सब आपदाभी उन्हींको प्राप्तहोतीहैं। जैसे समुद्रमें नदी प्रवेश करती है तैसेही देहाभिमानमें सर्वआपदा प्रवेशकरती हैं। जिसको देहका अभिमान नहीं है वह मनुष्यों में उत्तम और वन्दना करने के योग्य है ऐसेको मेराभी नमस्कार है और सर्व सम्पदाभी उसीको प्राप्तहोती हैं। जैसे मानसरोवरमें सब हंस आयरहते हैं तैसेही जहां देहाभिमान नहीं रहा वहां सर्व सम्पदा आ रहती हैं। हे मुनीश्वर! जैसे अपनी छाया में बालक बैताल कल्पताहै और उससे भयपाताहै पर जब उसको विचारकी प्राप्तिहोती है तब बैतालका अभाव होजाताहै तैसेही अज्ञानसे मुझको अहंकाररूपी पिशाचने शरीरमें दृढआस्था बताई है। इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे अहंकाररूपी पिशाचका नाशहो और आस्थारूपी फाँसीटूटे। हे मुनीश्वर! प्रथम मुझको अज्ञान से अहंकाररूपी पिशाचका संयोगथा; उसके अनन्तर शरीर में आस्था उपजी। जैसे बीजसे प्रथम अंकुरहोताहै-फिर अंकुर से वृक्षहोताहै तैसेही अहंकारसे शरीरकी आस्था होती है। हे मुनीश्वर! जैसे बालक छायामें बैताल देखकर दीनताको प्राप्तहोता है तैसेही अहंकाररूपी पिशाच ने मुझको दीन किया है। वह अहंकाररूपी पिशाच अविचारसे सिद्धहै। जैसे प्रकाशसे अन्धकार नाश होजाता है तैसेही विचार किये से अहंकारनाश होजाताहै। हे मुनीश्वर! जिस शरीर में आस्थारक्खी है वह जलके प्रवाहकी नाईंहै स्थिरनहीं होता जैसे बिजली का चमकना स्थिरनहीं और गन्धर्व नगरी की आस्थाव्यर्थ है तैसेही शरीरकी आस्था करनीव्यर्थ है। हे मुनीश्वर! जो शरीरकी

आस्थाकरके अहंकारकरते हैं और जगत्के पदार्थों के निमित्तयत्नकरते हैं वे महा मूर्ख हैं। जैसे स्वप्न मिथ्याहै तैसेही यह जगत् मिथ्याहै। जो उसको सत्यजानताहै वह अपने बंधनके निमित्त यत्न करताहै। जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी अपने बन्धन के निमित्त गुफाबनाती है और पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करता है तैसेही अज्ञानी को अपने देहका अभिमान और भोग की इच्छा अपनेही नाशके निमित्तहै। हे मुनीश्वर! मैंतो इस शरीर को अंगीकार नहींकरता। इस शरीरका अभिमान परम दुःख देनेवाला है। जिसको देहका अभिमान नहींरहा उसको भोगकी इच्छा भी न रहैगी। इससे मैं निराशहूं और मुझे परमपदकी इच्छा है जिसके पाये से फिर संसार समुद्रकी प्राप्ति न हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेदेहनैराश्यवर्णनन्नामत्रयोदशस्सर्गः १३ ॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! इस जीवको संसारसमुद्र में जन्मपाकर प्रथम बाल अवस्था प्राप्त होती है वहभी परम दुःखका मूलहै। उससे वह परमदीन होजाताहै और इतने अवगुण इसमें आ प्रवेशकरते हैं अर्थात् अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता, दुःख, संताप इतने बिकार इसको प्राप्तहोते हैं। यह बाल्यावस्था महा बिकारवान् है। बालक पदार्थकी ओर धाताहै और एक वस्तुका ग्रहणकर दूसरी को चाहताहै स्थिर नहीं रहता फिर और में लगजाता है। जैसे बानर स्थिर नहीं बैठता और जो किसीपर क्रोधकरता है तो भीतरसे जलता है। वह बड़ी बड़ी इच्छाकरताहै पर उसकी प्राप्तिनहीं होती सदा तृष्णामें रहताहै और क्षणमें भयभीत होजाताहै शान्ति प्राप्तनहीं होती और जैसे कदलीबनकाहाथी जँजीरसे बँधाहुआ दीन होजाताहै तैसेही यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्था से दीन होजाता है वह जो कुछ,इच्छा करता है सो विचार बिना है उससे दुःखपाता है। यह मूढ़ गूंगी अवस्था है उससेकुछ सिद्धिनहीं होती और जो किसी पदार्थकी प्राप्ति होती है तो उसमें क्षणमात्र सुखीरहताहै फिर तपने लगता है। जैसे तपती पृथ्वीपर जल डालिये तो एक क्षण शीतल होती है फिर उसी प्रकारसे तपती है तैसेही वहभी तपतारहता है। जैसे रात्रिके अन्तमें सूर्य्यउदय होताहै उससे उलूकादि कष्टवान् होते हैं तैसेही इस जीवको स्वरूप के अज्ञानसे बाल्यावस्था में कष्टहोता है। हे मुनीश्वर! जो बालकअवस्थाकी सङ्गति करता है वहभी मूर्ख है क्योंकि; यह विवेकरहित अवस्थाहै और सदा अपवित्रहै और सदा पदार्थकी ओर धावती है। ऐसी मूढ़ और दीन अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं इसमें जिस पदार्थको देखता है उसकी ओर धाता है। जैसे कुत्ता क्षण क्षणमें द्वारकीओर जाताहै और अपमानपाताहै तैसेही बालक अपमानपाता है। बालक को माता, पिता, बांधव और आपसे बड़े बालक और पशु पक्षी का भी भय रहताहै। हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकी मुझको

इच्छानहीं। जैसे स्त्रीके नयन और नदीका प्रवाह चञ्चल है उससेभी मन और बालक चञ्चल हैं और सब चञ्चलता बालकसे कनिष्ठ हैं। हे मुनीश्वर! जैसे वेश्याकाचित्त एक पुरुषमें नहीं ठहरता तैसेही बालकका चित्त एक पदार्थ में नहीं ठहरता और उसको यह विचारभी नहीं होता कि, इस पदार्थ से मेरा नाशहोगा वा कल्याणहोगा बालक ऐसेही व्यर्थ चेष्टा करताहै, सदा दीनरहता है और सुख दुःखकी इच्छासे तपायमान रहताहै। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़में पृथ्वी तपायमान होती है तैसेही बालक तपतारहताहै शान्ति कदाचित् नहीं पाता। वह जब विद्यापढ़ने लगता है तब गुरूसे ऐसे भयभीत होताहै जैसे कोई यमको देखके भयपावे और जैसे गरुड़को देखके सर्प डरे। जब शरीर में कोई कष्ट प्राप्तहोता है तबभी वह बड़े दुःखको प्राप्त होता है और उस दुःख को निवारण नहीं करसक्ता और सहनेकीभी सामर्थ्य नहीं होती; भीतरही भीतर जलताहै और मुखसे कुछ बोल नहीं सक्ता। जैसे वृक्ष कुछ नहीं बोलसक्ता और जैसे तिर्यक योनि दुःखपाती हैं, न कुछ कहसक्ती हैं न दुःखका निवारण करसक्ती हैं और न संहारही करसक्तीं भीतरही भीतर जलती हैं तैसेही बालकभी गूंगा और मूढ़हुआ दुःख पाता है। हे मुनीश्वर! ऐसी बालक अवस्थाकी स्तुति करनेवाला मूर्ख है। यह तो परम दुःखरूप अवस्था है। इसमें विवेक और विचारभी कुछ नहीं होता। बालक खानेको पाता है और रुदनकरता है। ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती। जैसे बिजली और जलके बुद्बुदे स्थिरनहीं रहते तैसेही बालकभी कदाचित् स्थिर नहीं रहता। हे मुनीश्वर! यह महामूर्ख अवस्था है। इसमें कभीकहता है कि हे पिता! मुझको बरफका टुकड़ाभूनदे और कभी कहता है कि मुझको चन्द्रमा उतारदे। ये सब मूर्खताके वचन हैं इससे ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता। जैसे दुःखका अनुभव बालकको होता है वह हमारे स्वप्नेमें भी नहीं आया। यह बाल्यावस्था अवगुण का भूषण है और अवगुणसे शोभित है। ऐसी नीच अवस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता। इसमें गुण कोई भी नहीं है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यबाल्यावस्थावर्णनन्नामचतुर्दशस्सर्गः॥ १४॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! दुःखरूप बाल्यावस्था के अनन्तर युवावस्था आती है सो नीचेसे ऊंचे चढ़ती है वह भी उत्तम नहीं अधिक दुःखदायक है। जब युवावस्था आतीहै तब कामरूपी पिशाच आ लगताहै। वह कामरूपी पिशाच युवावस्थारूपी गढ़में आ स्थितहोता है, चित्तको फिराताहै और इच्छा पसारता है। जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्य्यमुखीकमल खिलआताहै और पंखुरियों को पसारता है तैसेही युवावस्थारूपी सूर्य्य उदयहोकर चित्तरूपी कमल और इच्छारूपी पंखुरीको पसारता है। फिर जैसे किसीको अग्निके कुण्डमें डालदियाहो और वह दुःखपावे तैसेही कामके वशहुआ

दुःखपाता है । हे मुनीश्वर ! जो कुछ बिकार हैं सो सब युवावस्था में प्राप्त होते हैं। जैसे धनवान्‌को देखके सब निर्द्धन धनकी आशाकरते हैं तैसेही युवावस्था देखकर सब दोष इकट्ठेहोते हैं । जो भोगको सुखरूपजानकर भोगकी इच्छाकरता है वह परम दुःखका कारणहै । जैसे मद्यका घटभराहुआ देखनेमात्र सुन्दरलगताहै परन्तु जब उस को पानकरै तब उन्मत्त होकर दीनहोजाता है और निरादरपाताहै तैसेही भोग देखने मात्र सुन्दर भासते हैं परन्तु जब इनको भोगताहै तब तृष्णासे उन्मत्त और पराधीन होजाता है । हे मुनीश्वर ! यह काम, क्रोध, लोभ,मोह और अहंकार आदि सब चोर युवारूपी रात्रिको देखकर लूटने लगते हैं और आत्मज्ञानरूपी धनको लेजाते हैं उस से जीव दीनहोता है । आत्मानन्दके वियोगसेही जब दीनहुआहै । हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःख देनेवाली युवावस्था का मैं अंगीकार नहीं करता । शान्ति चित्तके स्थिरकरने केलियेहै पर युवावस्था में चित विषयकी ओर धावताहै । जैसे बाण लक्षकी ओरजाता है तब उसको विषयका संयोगहोताहै और वही विषयकीतृष्णा निवृत्तनहींहोती और तृष्णाकेमारेजन्मसे जन्मान्तररूपदुःखपाताहै । हे मुनीश्वर! ऐसीदुःखदायक युवावस्था की मुझको इच्छानहीं है। हे मुनीश्वर ! जैसे प्रलयकालमें सब दुःख आन स्थितहोते हैं तैसेही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चपलता इत्यादिक सब दुःख युवावस्था में स्थिरहोते हैं जो सब बिजलीकी चमकसेहैं होकेमिटजाते हैं । जैसे समुद्रमें तरंगहोकर मिटजातेहैं तैसेही यह क्षण भंगहै और तैसेही युवावस्थाहोके मिटजाती है। जैसे स्वप्न में कोई स्त्री बिकारसे छलजाती है तैसेही अज्ञानसे युवावस्था छलजाती है। हे मुनीश्वर ! युवावस्था जीवकी परमशत्रुहै । जे पुरुष इस शत्रुके शस्त्रसे बचेहैं वही धन्यहैं । इस-के शस्त्र काम और क्रोध हैं जो इनसे छुटा वह वज्रके प्रहारसे भी न छेदाजावेगा और जो इनसे बँधाहुआहै वह पशुहै। हे मुनीश्वर ! युवावस्था देखने में तो सुन्दरहै परन्तु भीतरसे तृष्णासे जर्जरीभूत है । जैसे वृक्ष देखनेमें तो सुन्दरहो पर भीतरसे घुनलगा हुआहो तैसेही युवावस्थाहै जो भोगोंके निमित्त यत्नकरती है वे भोग आपातरमणीय हैं कारण यह कि, जबतक इन्द्रियों और विषयका संयोगहै तबतक अविचार से भला लगताहै और जब वियोग होताहै तब दुःख होता है । इसलिये भोगकरके मूर्खप्रसन्न और उन्मत्त होते हैं उनको शांति नहीं होती भीतर सदा तृष्णारहती है और स्त्री में चित्तकी आसक्ति रहती है जब इष्टवनिताका वियोग होताहै तब उसको स्मरण करके जलताहै जैसे वनका वृक्ष अग्निसे जलताहै तैसेही युवावस्था में इष्ट वियोगसे जीव जलताहै। जैसे उन्मत्त हस्ती जंजीरसे बँधता तो स्थिर होताहै कहीं जा नहींसक्ता तैसे ही कामरूपी हस्ती को जंजीररूपी युवावस्था बंधनकरती है । युवावस्थारूपी नदी है उसमें इच्छारूपी तरंग उठते हैं वे कदाचित् शांति नहीं पाते । हे मुनीश्वर ! यह युवा-

वस्था बड़ी दुष्टहै। बड़े बुद्धिमान, निर्मल और प्रसन्न पुरुषकी बुद्धिको भी मलिनकर डालतीहै। जैसे निर्मलजलकी बड़ीनदी वर्षाकाल में मलिन होजाती है तैसेही युवावस्था में बुद्धि मलिन होजाती है। हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्षहै उसमें युवावस्थारूपी वल्ली प्रकट होती है सो पुष्ट होतीजाती है तब चित्तरूपी भँवरा आबैठता है और तृष्णारूपी उसकी सुगन्धसे उन्मत्त होता है और सब विचार भूलजाताहै। जैसे जब प्रबलपवन चलताहै तब सूखेपत्रोंको उड़ालेजाताहै तैसेही युवावस्था वैराग्य, सन्तोषादिक गुणोंका अभाव करती है दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य्य है उसके उदयसे सब दुःख प्रफुल्लित होआते हैं। इससे सब दुःखों का मूल युवावस्था है। जैसे सूर्य्य के उदयसे सूर्य्यमुखी कमल खिलआते हैं तैसेही चित्तरूपी कमल संसाररूपी पँखुरी और सत्यतारूपी सुगन्धसे खिलआताहै और तृष्णारूपी भँवरा उसपर आ बैठता और विषयकी सुगन्ध लेताहै। हे मुनीश्वर! संसाररूपी रात्रिहै उसमें युवावस्थारूपी तारागण प्रकाशते हैं अर्थात् शरीर युवावस्थासे सुशोभित होता है। जैसे धानके छोटे वृक्ष हरे तब तक रहते हैं जबतक उसमें फलनहीं आया। जब फूल आताहै तब वृक्ष सूखने लगते हैं और अन्नके कणपरिपक्व होते हैं वृक्षकी हरियाली नहीं रहसक्ती तैसेही जबतक जवानी नहीं आई तबतक शरीर सुन्दर कोमल रहताहै जब जवानी आई तब शरीर क्रूर होजाता है और फिर परिपक्व होकर क्षीण और वृद्धहोताहै। इससे हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवावस्थाकी मुझको इच्छा नहीं। जैसे समुद्र बड़े जलसे तरंगों को पसारता और उछालताहै तोभी मर्यादा नहीं त्यागकरता क्योंकि; ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामें रहनेकीहै और युवावस्था तो ऐसी है कि शास्त्र और लोककी मर्यादा मेटके चलती है और उसको अपना विचार नहीं रहता। जैसे अन्धकार में पदार्थकाज्ञान नहींहोता तैसेही युवावस्थामें शुभाशुभ का त्याग नहीं होता। जिसको विचार नहीं रहा उसको शांति कहांसेहो; वह सदा व्याधि तापमें जलता रहताहै। जैसे जल बिना मच्छको शांति नहीं होती तैसेही विचार बिना पुरुष सदा जलतारहता है। जब युवावस्थारूप रात्रि आती है तब काम पिशाच आके गरजता है और यही संकल्प उठते हैं कि, कोई कामी पुरुष आवे तो उसकेसाथ में यही चर्चा करूं कि हे मित्र! यह स्त्री कैसी सुन्दर है और उसके कैसे कटाक्ष हैं। वह किस प्रकार मुझको प्राप्तहो? हे मुनीश्वर! इस इच्छा से वह सदा जलताही रहता है। जैसे मरुस्थलकी नदीको देख मृग दौड़ताहै और जल की अप्राप्तिसे जलताहै तैसेही कामी पुरुष विषयकी बासनासे जलताहै और शांति नहीं पाता। हे मुनीश्वर! मनुष्य जन्म उत्तमहै परंतु जिनके अभाग्य हैं उनको विषय से आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती। जैसे किसी को चिन्तामणि प्राप्त हो और

वह उसका निरादर करे उसकागुण न जानकर डाल दे तैसेही जिस पुरुष ने मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया वह बड़ा अभागी है और मूर्खतासे अपने जन्मको व्यर्थ खोडालताहै वह युवावस्थामें परमदुःखकाक्षेत्र अपने निमित्त बोताहै और मान, मोह, मद इत्यादि विकारोंसे पुरुषार्थका नाश करताहै। हे मुनीश्वर ! युवावस्था ऐसे बड़े विकारोंको प्राप्तकरती है। जैसे नदी वायुसे अनेक तरंग पसारती है तैसेही युवावस्था चित्तके अनेककामोंको उठाती है। जैसे पक्षी पङ्खसे बहुत उड़ताहै और जैसे सिंह भुजाके बलसे पशुको मारने दौड़ता है तैसेही चित्त युवावस्था से विक्षेपकी ओर धाता है। हे मुनीश्वर ! समुद्रका तरना कठिनहै क्योंकि; उसमें जल अथाहहै, उसका बिस्तार भी बड़ाहै और उसमें कच्छ मच्छ मगर भी बड़े देहधारी जीव रहते हैं पर मैं उसका तरनाभी सुगम मानता हूं परन्तु युवावस्थाका तरना महाकठिन है अर्थात् युवावस्था में निर्दोष रहना कठिन है। ऐसी सङ्कटवाली युवावस्थामें जो चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्य हैं और वन्दना करने योग्य हैं। हे मुनीश्वर ! यह युवावस्था चित्तको मलिन कर डालती है। जैसे जलकी बावली के निकट राख और कांटे हों और पवन चलनेसे सब आ बावली में गिरें तैसेही पवनरूपी युवावस्था दोषरूपीधूर और कांटों को चित्तरूपी बावली में डालके मलिनकरदेताहै। ऐसे अवगुणोंसे पूर्ण युवावस्थाकी इच्छा मुझको नहीं है। युवावस्था मुझपर यहीकृपाकर कि तेरादर्शन न हो। तेराआना मैं दुःखका कारण मानताहूं। जैसे पुत्रके मरण का सङ्कट पिता नहीं सहसक्ता और सुखका निमित्त नहीं देखता तैसेही तेरा आना मैं सुखका निमित्त नहीं देखता। इससे मुझपर दयाकर कि, अपना दर्शन न दे। हे मुनीश्वर ! युवावस्था का तरना महाकठिन है। यौवनवान् नम्रतासंयुक्त नहीं होते और शास्त्र के गुण वैराग्य, विचार, संतोष और शान्ति इनसे भी सम्पन्न नहीं हैं। जैसे आकाशमें वन होना आश्चर्य्य है तैसेही युवावस्था में वैराग्य, विचार, शान्ति और संतोष होनाभी बड़ा आश्चर्य्य है। इससे आप मुझसे वही उपायकहिये जिससे युवावस्था के दुःखकी मुक्तिहोकर आत्मपदकी प्राप्तिहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेयुवागारुडीवर्णनंनामपंचदशस्सर्गः ॥ १५ ॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर ! जिस काम विलासके निमित्त पुरुष स्त्री की वाञ्छा करता है वह स्त्री अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र और विष्ठासे पूर्ण है और इन्हीं की पुतली बनीहुई है। जैसे यंत्रीकी बनी पुतली तागे के द्वारा अनेक चेष्टा करती है वैसेही यह अस्थि, मांसादिक की पुतली में कुछ और नहीं है। जो विचारसे नहीं देखता उसको रमणीक दिखती है। जैसे पर्वतके शिखर दूरसे सुन्दर और गंगमाला सहित भासते हैं और निकटसे असार हैं—पत्थरही पत्थर दिखते हैं तैसेही स्त्री वस्त्र और भूषण से

सुन्दर भासती है और जो अंगको भिन्न भिन्न विचारकर देखो तो सार कुछ नहीं। जैसे नागिनिके अंग बहुत कोमल होते हैं परन्तु उसका स्पर्शकरे तो काटके मारडालती है तैसेही जो कोई स्त्रीको स्पर्शकरते हैं उनको वह नाशकरडालती है। जैसे विषकी बेल देखनेमात्र सुन्दर लगती है परन्तु स्पर्श किये से मारडालती है और जैसे हाथी को जंजीर से बांधे तो जिस द्वारपै रहताहै वहांहीं स्थिर रहता है तैसेही अज्ञानी का चित्तरूपी हाथी कामरूपी जंजीरसे बँधाहुआ स्त्रीरूपी एक स्थान में स्थिर रहता है वहांसे कहीं जा नहीं सक्ता। जब हाथी को महावत अंकुशका प्रहार करता है तबभी वह बन्धन को तोड़के निकलजाताहै तैसेही इस चित्तरूपी मूर्ख हाथीको जब महावत रूपी गुरु उपदेशरूपी अंकुशका वारंवार प्रहारकरताहै तब निर्बन्ध होजाता है। हे मुनीश्वर! कामी पुरुष स्त्रीकी वांछा अपने नाशके निमित्त करताहै। जैसे कदलीवन का हाथी कागज की हथिनी देखकर और छलपाके बन्धन में आता है और उससे परमदुःख पाताहै तैसेही परमदुःखका मूल स्त्रीकासंगहै। हे मुनीश्वर! जैसे वनके दाह की अग्नि वनको जलाती है तैसेही स्त्रीरूपी अग्नि उससेभी अधिक है क्योंकि; उस अग्निके स्पर्शकियेसे तप्त होती है और स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरणमात्रसेही जलाती है। जो सुख रमणीय दिखता है वह आपातरमणीय है; जब स्त्रीसुखका वियोगहोता है तब मुरदेकी नाईं होजाता है—हे मुनीश्वर! यह तो अस्थि, मांस और रुधिरका पिंजरा है सो अग्नि में भस्म होजायगा अथवा पशु पक्षीके खाने का आहारहोगा और प्राण आकाशमें लीन होजावेंगे—इस से इस स्त्रीकी इच्छाकरनी मूर्खताहै। जैसे अग्निकी ज्वालाके ऊपर श्यामता होती है तैसेही स्त्री के शीश के ऊपर श्यामकेशहै और जैसे अग्नि के स्पर्शकियेसे जलताहै तैसेही स्त्रीके स्पर्श करनेसे पुरुष जलताहै इससे जलना दोनों में तुल्यहै। हे मुनीश्वर! युवावस्था को नाश करनेवाली स्त्रीरूपी अग्नि है जो स्त्री की इच्छा करते हैं वह महामूर्ख और अज्ञानी हैं। वह स्त्री की इच्छा अपने नाश के निमित्त करते हैं। जैसे पतंग अपने नाश के निमित्त दीपककी इच्छाकरताहै तैसेही कामी पुरुष अपने नाश के निमित्त स्त्री की इच्छा करता है। हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी विषकी वल्ली है, हाथ पांव के अग्रभाग उस के पत्र हैं, भुजा डाली हैं, अस्थिरूप गुच्छे हैं और नेत्र आदिक इन्द्रियां फूलहैं उसपर कामी पुरुषरूपी भँवरे आ बैठते हैं। कामरूपी धीवरने स्त्रीरूपी जाल पसारा है उस पर कामीपुरुषरूपी पक्षी आफँसते हैं। कामरूपी धीवर उनको फँसाकर परमकष्ट देता है। ऐसे दुःखके देनेवाली स्त्रीकी जो वांछा करते हैं वह महामूर्ख हैं। हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी सर्पिणी है जब उसका फूत्कार निकलता है तब वैराग्यरूपी कमल जल जाते हैं और जब सर्पिणी डसती है तब विष चढ़ता है। स्त्रीरूपी सर्पिणीका चिन्तन

करतेही भीतरसे आपही विष चढ़जाता है। हे मुनीश्वर! जैसे व्याधा छलकर मछली को फँसाता है तैसेही कामी पुरुष छली के सदृश सुन्दर स्त्रीरूपी जाल देखके फँसता है और स्नेहरूपी तागे से बन्धन पा खैंचा चला जाता है, तब तृष्णारूपी छुरी से काम उसे मारडालता है। हे मुनीश्वर! ऐसे दुःख के देनेवाली स्त्री की मुझको इच्छा नहीं। कामरूपी व्याध रागरूपी इन्द्रियों से जाल बिछा कामीपुरुषरूपी मृगों को आसक्त कर डालता है। स्त्री की स्नेहरूपी डोरी है उससे कामीपुरुषरूप बैल बँधा है और स्त्री का मुखरूपी चन्द्रमा देखकर कामीपुरुषरूपी कमलिनी खिल आती हैं। जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होते हैं और सूर्य्यमुखी नहीं होते तैसेही कामीपुरुष भोगसे प्रसन्न होते हैं और ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होते। जैसे नेवला सर्प्पको बिल से निकालके मारता है तैसेही कामीपुरुष को स्त्री आत्मानन्द में से निकालके मारडालती है। पुरुष जब स्त्रीके निकटजाताहै तब वह उसको भस्मकर डालती है। जैसे सूखे तृण और घृतको अग्नि भस्म करडालती है तैसेही कामीपुरुष को स्त्रीरूपी नागिनि भस्म करडालती है। हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी रात्रि का स्नेहरूपी अन्धकारहै और काम, क्रोधादिक उसमें उलूक और पिशाचहैं। हे मुनीश्वर! जो स्त्रीरूपी खड्गके प्रहारसे युवारूपी संग्राममें बचाहै वहपुरुष धन्यहै; उसको मेरा नमस्कार है। स्त्रीका संयोग परमदुःख का कारण है इससे मुझको इसकी इच्छा नहीं। हे मुनीश्वर! जो रोगहोता है उसी के अनुसार जो औषधि करता है तो रोग निवृत्त होता है और कुपथ्य से उसका प्रलयहोता है और रोगबढ़जाता है इससे मेरे रोग के अनुसार औषधिकरो। मेरा रोग सुनिये कि, जरा और मृत्यु मुझको बड़ा रोग है। उसके नाशकी औषधि मुझको दीजिये स्त्री आदिक सब भोग तो रोगके वृद्धिकर्त्ता हैं। जैसे अग्निमें घृत डालिये तो बढ़जाती है तैसेही भोग से जरा मृत्यु आदि रोग बढ़ते हैं। इससे इस रोग के निवृत्ति की औषधि करो नहीं तो सबका त्याग कर मैं वनमें जा रहूंगा। हे मुनीश्वर! जिसके स्त्री है उसको भोगकी इच्छाभी होती है और जिसके स्त्री नहीं होती उसको स्त्रीकी इच्छाभी नहीं। जिसने स्त्रीका त्याग कियाहै उसने संसारका भी त्यागकिया है और वही सुखी है। संसारका बीज स्त्री है इससे मुझको स्त्री की इच्छा नहीं। मुझको वही औषधि दीजिये जिससे जरामृत्यु आदि रोगकी निवृत्ति हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेस्त्रीदुराशावर्णनंनामषोडशस्सर्गः॥ १६॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! बालकअवस्था तो महाजड़ और अशक्त है। जब युवावस्था आती है तब बाल्यावस्था का ग्रहण करलेती है और उसके अनन्तर जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है और बुद्धि क्षीण होजाती है फिर मृत्युपाता है। हे मुनीश्वर! इसप्रकार अज्ञानी का जीना व्यर्थ है कुछअर्थ की सिद्धि

नहीं। जैसे नदीके तटपरके वृक्ष जलके प्रवाहसे जर्जरीभूत होजाते हैं तैसेही वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरीभूत होजाता है जैसे पवनसे पत्र उड़जाते हैं तैसेही वृद्धावस्थामें शरीर नाशपाता है। जितनेकुछ रोग हैं वह सब वृद्धावस्था में आ प्राप्तहोते हैं और शरीर कृशहोजाता है उससमय स्त्री, पुत्रादिकभी सब वृद्धका त्यागकर देते हैं। जैसे पके फलको वृक्ष त्यागदेताहै तैसेही वृद्धको कुटुम्ब त्यागदेताहै और जैसे बावलेकोदेख के सब हँसके बोलते हैं कि, इसकी बुद्धिजातीरही तैसेही इसकोभी देखके हँसते हैं जैसे कमलकाफूल बरफपड़ने से जर्जरीभूत होजाताहै तैसेही जरावस्था में पुरुष जर्जरीभावको प्राप्तहोताहै, शरीर कुबड़ा होजाताहै; केश श्वेत होजातेहैं और शक्तिक्षीणहोजातीहै। जैसे चिरकालके बड़े वृक्षमें घुनलगताहै तैसेही इसमें कुछ शक्ति नहींरहती। हे मुनीश्वर! औरभी सब कृत्य क्षीण होजाती है परन्तु एक आशक्तिमात्र रहतीहै। जैसे बड़ेवृक्षपर उलूक आरहते हैं तैसेही इसमें क्रोधशक्ति आरहती है और सब शक्ति क्षीण होजाती हैं। हे मुनीश्वर! जरावस्था दुःखका घरहै। जब जरावस्था आतीहै तब सब दुःखइकट्ठे होतेहैं उनसे पुरुष महादीन होजातेहैं। युवावस्था का जो कामका बलरहता है सोभी जरामें क्षीण होजाताहै, इन्द्रियोंकी आशक्ति घटजाती है और उनकी चपलता का अभाव होजाताहै। जैसे पिताके निर्द्धनहुये पुत्र दीनहोजाताहै तैसेही शरीरके निर्ब्बलहुये इन्द्रियांभी निर्ब्बलहोजाती हैं केवल एक तृष्णा उन्मत्तहो बढ़जातीहै। हे मुनीश्वर! जब जरारूपी रात्रिआती है तब खांसीरूपी स्यार आ शब्दकरते हैं और आधिव्याधिरूपी उलूक आ निवासकरते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसी नीच वृद्धावस्थाकी मुझको इच्छा नहीं जैसे पक्केफलसे वृक्ष झुकजाताहै तैसेही जराके आनेसे देह कुबड़ी होजातीहै युवावस्थामें स्त्री पुत्रादिक चाहते और उसकी टहलकरते थे पर वही सब उसको वृद्धावस्थामें जैसे वृद्धबैलको बैलवाला त्यागदेताहै तैसेही त्यागदेतेहैं, देखके हँसतेहैं और अपमानकरतेहैं। उनको वह तब ऊंटकीनाईं भासता है। हे मुनीश्वर! ऐसी नीच अवस्थाकी मुझको इच्छानहीं। अब जो कुछ कर्त्तव्यहो मुझसे कहिये मैं करूं? इस शरीरकी तीनों अवस्था में कोई सुखदायी नहीं क्योंकि; बाल्यावस्था महामूढ़ है, युवावस्था महा विकारवान् है और जरावस्था महादुःखका पात्र है। बाल्यावस्था को युवावस्था ग्रास करलेती है; युवावस्था को जरावस्था ग्रास करलेती है और जरावस्था को मृत्यु ग्रास करलेती है। यह अवस्था सब अल्पकालकी हैं इनके आश्रय से मुझको क्या सुख होगा? इससे आप मुझे वही उपाय बताइये जिससे इस दुःखसे मुक्त होजाऊं। हे मुनीश्वर! जब जरावस्था आती है तब मरनाभी निकट आताहै। जैसे सन्ध्या के आये रात्रि तत्काल आजाती है और जो सन्ध्याके आये दिनकी इच्छा करते हैं वह मूर्ख हैं तैसेही जरा के आये जीनेकी आशा रखनी महामूर्खता है। हे मुनीश्वर! जैसे

बिल्ली चिन्तवन करती है कि, चूहाआवे तो पकड़ लूं तैसेही मृत्युभी चितवती है कि, जरावस्था आवे तो मैं इसका ग्रहणकरलूं । हे मुनीश्वर ! यह परम नीच अवस्थाहै । यह जब आतीहै तब शरीरको जर्जरीभूत करदेतीहै; कँपनी लगती है और शरीरको निर्बल और क्रूर करदेती है । जैसे कमलपर बरफकी वर्षाहो और वह जर्जरीभूत होजाय तैसेही यह शरीरको जर्जरीभूत कर डालती है । जैसे वन में बाघ आके शब्द करते हैं और मृगका नाश करते हैं तैसेही खांसीरूपी बाघ आ मृगरूपी बलका नाश करते हैं । हे मुनीश्वर ! जब जरा आतीहै तब जैसे चन्द्रमाके उदयसे कमलिनी खिलआती है तैसेही मृत्यु प्रसन्नहोती है । यह जरावस्था बड़ी दुष्टाहै; इसने बड़े बड़े योधोंको भी दीनकरदिया है । यद्यपि बड़े २ शूर संग्राम में शत्रुओंको जीते हैं पर उनको भी जराने जीतलियाहै । जो बड़े २ पर्वतों को चूर्णकरडालते हैं उनको भी जरा पिशाचिनीने महादीन करदियाहै । इस जरारूपी राक्षसीने सबको दीन करदिया है । यह सबको जीतनेवाली है । हे मुनीश्वर ! जैसे वृक्षमें अग्नि लगती और उसमें से धूम निकलताहै । तैसेही शरीररूपी वृक्षमें से जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धुवां निकलताहै । जैसे डिब्बे में बड़े रत्न रहते हैं । तैसेही जरारूपी डिब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न रहतेहैं । जरारूपी वसन्तऋतुहै; उससे शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रससे होता है । जैसे हाथी जंजीरसे बँधाहुआ दीनहोजाता है तैसेही जरारूपी जंजीरसे बँधा पुरुष दीन होजाताहै,उसके अंग सबशिथिल होजाते हैं, बल क्षीण होजाता; इंद्रियांभी निर्बल होजाती हैं और शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता है परन्तु तृष्णा नहीं घटती वह तो नित्य बढ़तीही चलीजाती है । जैसे रात्रि आती है तब सूर्यवंशी कमल सब मुँदजाते हैं और पिशाचिनी आ बिचरने लगती है और प्रसन्न होती है तैसेही जरारूपी रात्रि के आयेसे सब शक्तिरूप कमल मुँदजाते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी प्रसन्न होती है । हे मुनीश्वर ! जैसे गङ्गातट के वृक्ष गंगाजलके वेगसे जर्जरीभूत होजाते हैं तैसे ही जो यह आयुरूपी प्रवाह चलता है उसके वेगसे शरीर जर्जरीभूत होजाता है । जैसेमांसके टुकड़ेको देख आकाशसे उड़ती चील नीचे आ लेजाती है तैसेही जराव-स्थामें शरीररूपी मांसको काल लेजाता है । हे मुनीश्वर ! यह तो कालका ग्रास बन हुआहै जैसे वृक्षको हाथी खाजाताहै तैसे जरावाले शरीर को काल देखके खाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेजरावस्थानिरूपणंनामसप्तदशस्सर्गः ॥ १७ ॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गढ़ा है उसमें अज्ञानी गिराहै पर संसार रूपी गढ़ा तो अल्पहै और अज्ञानी बड़ा होगयाहै । संकल्प, विकल्पकी आधिक्यता से बढ़ाहै । जो ज्ञानवान् पुरुषहै वह संसारको मिथ्या जानताहै और संसाररूपी जालमें नहीं फँसता और जो अज्ञानी पुरुष है वह संसार को सत्यजानकर उसकी आस्था

रूपीजालमें फँसताहै और भोगकी वांछाकरताहै वह भौंराऐसे हैं जैसेदर्पणमें प्रतिबिम्ब देखकर बालक पकड़नेकी इच्छा करताहै तैसे अज्ञानी संसारको सत्यजानकर जगत्के पदार्थकी वांछा करताहै कि यह मुझे प्राप्तहो और यह न हो। यह सबसुख नाशात्मकहैं अभिप्राय यह कि, आतेहैं और जातेहैं स्थिर नहीं रहते; इनको कालग्रास करताहै जैसे पके अनारको चूहाखाजाताहै तैसेही सब पदार्थोंको काल खाताहै। हे मुनीश्वर! यहसब पदार्थ कालग्रसितहैं जैसे नेवला सर्पको भक्षण करजाताहै तैसेही बड़ेबड़े बली सुमेरु ऐसे गंभीर पुरुषों को कालने ग्रसित किया है। जगत्रूपी एकगूलरकाफल है; उसमें मज्जा ब्रह्मादिकहैं और उसकावन ब्रह्मरूपहै। उसब्रह्मरूपवनमें जितने वनहैं सो सब इसका आहारहैं। यहकालसबको भक्षणकरजाताहै। हे मुनीश्वर! यहकालबड़ाबलिष्ठहै; जो कुछ देखने में आताहै सो सब इसने ग्रासकरलियाहै तो और का क्याकहनाहै और हमारे जो बड़े ब्रह्मादिकहैं उनकाभी कालग्रास करजाताहै। जैसे मृगका ग्रास सिंह करलेताहै काल किसीसे जाना नहींजाता क्षण,घरी,प्रहर, दिन, मास और वर्षादिकसे जानिये सोईकालहै और कालकी मूर्ति प्रकट नहीं है। यह किसीको स्थित नहीं होने देता। एक बेलि कालने पसारी है उसकी त्वचा रात्रिहै और फूल दिनहै और जीवरूपी भौंरे उसपर आ बैठते हैं। हे मुनीश्वर! जगत्रूपी गूलरका फूलहै उसमें जीवरूपी बहुत मच्छर रहतेहैं। जैसे तोता अनार का भक्षण करताहै तैसेही काल उस फूलका भक्षण करताहै। जगत्रूपी वृक्षहै,जीवरूपी उसके पत्रहैं और कालरूपी हस्ती उसकाभक्षण करजाताहै। शुभ अशुभरूपी भैंसेको कालरूपी सिंहछेदछेदके खाताहै। हे मुनीश्वर! यह कालमहाक्रूरहै; किसीपर दया नहींकरता; सबका भोजनकरजाताहै। जैसे मृग सब कमलोंको खायजाताहै उससेकोई नहीं बचता तैसेही कालभी सबको खाताहै परन्तु एक कमल बचाहै। उसकमलके शान्ति और मैत्री अंकुरहैं और चेतनामात्र प्रकाशहै इसकारण वह बचाहै। कालरूपीमृग इसतक नहीं पहुँचसक्ता बलिक इसमें प्राप्त हुआ कालभी लीनहोजाताहै। जोकुछप्रपंचहैं सो सबकालके मुखमेंहैं। ब्रह्मा,विष्णु,रुद्र,कुबेर आदि सब मूर्ति कालकी धरीहुई हैं। यह उनकोभी अन्तर्द्धानकरदेताहै। हे मुनीश्वर! उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब कालसे होतेहैं। अनेकबेर इसने महाकल्पकाभी ग्रास कियाहै और अनेकबेर करेगा। कालको भोजनकिये से तृप्ति कदाचित् नहींहोती और कदाचित् होनेवालीभी नहीं। जैसे अग्निघृतकी आहुतिसे तृप्तनहींहोता तैसेही जगत् और सब ब्रह्माण्डका भोजनकरकेभी काल तृप्त नहीं होता। इसका ऐसास्वभावहै कि, इन्द्रको दरिद्री करदेताहै और दरिद्रीको इन्द्रकरदेताहै; सुमेरुको राई बनाता है और राईको सुमेरु करताहै सबसे बड़े ऐश्वर्यवान्को नीचकरडालताहै और सबसे नीचको ऊंच करडालता और बूंदको समुद्र करडालताहै और समुद्रको बूंद करता है। ऐसी

शक्तिकालमेंहै । यह जीवरूपी मच्छरों का शुभाशुभकर्मरूपी छुरे से छेदता रहता है । कालकूपका चक्र जीवरूपी हँड़ियाको, शुभ अशुभ कर्मरूपी रस्सी से बांधकर फिराता है और जीवरूपी वृक्षको रात्रि और दिनरूपी कुल्हाड़ेसे छेदताहै । हे मुनीश्वर जितना कुछ जगत् विलास भासता है काल सब का ग्रहण करलेगा । जीवरूपी रत्न का काल डब्बाहै सो सबको अपने उदरमें डालता जाताहै । काल यों खेलकरताहै कि चन्द्र, सूर्य्यरूपी गेंदों को कभी ऊर्ध्वको उछालता है और कभी नीचे डालता है । जो महापुरुष है वह उत्पत्ति और प्रलयके पदार्थों में से किसीके साथ स्नेह नहीं करता और उसका कालभी नाश नहीं करसक्ता । जैसे मुण्डकी माला महादेवजी गलेमें धारे हैं तैसेही यहभी जीवोंकी माला गले में डालताहै । हे मुनीश्वर ! जो बड़ेबड़े बलिष्ठ हैं उनकाभी काल ग्रहण करलेताहै जैसे समुद्र बड़ाहै उसको बड़वानल पान करलेताहै और जैसे पवन भोजपत्रको उड़ाताहै वैसाही कालकाभीबलहै, किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके आगेस्थितरहै । हे मुनीश्वर ! शांतिगुणप्रधान देवता, रजोगुणप्रधानबड़ेराजा और तमोगुणप्रधान दैत्य और राक्षसहैं उनमें किसीको सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थितहों । जैसे तौलीमें अन्न और जलभरके अग्निपर चढ़ादेनेसे अन्न उछलता है और वह अन्नके दाने करछीसे कभीऊपर और कभीनीचे फिरजाते हैं तैसेही जीवरूपी अन्नकेदाने जगत्रूपी तौली में पड़ेहुये रागद्वेषरूपी अग्निपर चढ़े हैं और कर्मरूपी करछीसे कभी ऊपरजाते हैं और कभी नीचे आते हैं । हे मुनीश्वर ! यह काल किसीको स्थिर नहीं होने देता यह महाकठोर है दया किसीपर नहीं करता । इसकाभय मुझको रहताहै इससे वही उपाय मुझसे कहिये जिससे मैं कालसे निर्भय होजाऊं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालनिरूपणंनामाष्टादशस्सर्गः ॥ १८ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! यह काल बड़ाबलिष्ठहै । जैसे राजाकेपुत्र शिकार खेलने जातेहैं तो वनमें पशु पक्षी उनसे खेदपाते हैं तैसेही यहसंसाररूपी वनहै उसमें प्राणिमात्र पशुपक्षी हैं । जब कालरूपी राजपुत्र उसमें शिकार खेलने आता है तब सब जीव भयपाते हैं और जर्जरीभूतहोते हैं और वह उनकोमारताहै । हे मुनीश्वर ! यह काल महाभैरवहै सबकाग्रास करलेताहै । प्रलयमें सबका प्रलय करडालता है और इसकी जो चंडिका शक्तिहै उसका बड़ाउदर है । वह कालिका सबका ग्रासकरके पीछे नृत्यकरती है । जैसे वनके मृगको सिंह और सिंहनी भोजनकरके नृत्य करते हैं तैसेही जगत्रूपी वनमें जीवरूपी मृगको भोजनकरके काल और कालिका नृत्य करते हैं । फिर इन्हींसे जगत्का प्रादुर्भाव होताहै । नानाप्रकारके पदार्थोंको रचते हैं और पृथ्वी, बगीचे, बावली आदि सब पदार्थ इन्हीं से उत्पन्न होते हैं । सुन्दरजीवोंकी उत्पत्तिभी इनसे होती है और एकसमयमें उनकानाशभी करदेती है । सुन्दर समुद्र रचके

फिर उनमें अग्निलगादेती है और सुन्दर कमल को बनाके फिर उसके ऊपर बरफ की वर्षाकरती है। जहां बड़े बड़े स्थान बसते हैं उनको उजाड़डालती है और फिर उजाड़ में बस्ती करती है और नाशभी करती है; स्थिर रहने किसीको नहीं देती। जैसे बागमें वानरआके वृक्षको ठहरने नहींदेता तैसेही कालरूपी वानर किसी पदार्थकोस्थिर रहने नहीं देता। हे मुनीश्वर! इसप्रकारसे सबपदार्थ कालसे जर्जरीभूतहोते हैं। उनका आश्रय मैं किसरीतिसेकरूं? मुझको तो यह सब नाशरूप भासताहै इससे अब मुझको किसी जगत्‌के पदार्थकी इच्छा नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालविलासवर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्गः॥ १९॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! इसकालका महापराक्रम है। इसके तेजके सन्मुख कोई नहीं रहसक्ता यह क्षणमें ऊंचकोनीच और नीचको ऊंच करडालताहै। उसका निवारण कोई नहीं करसक्ता सब उसीके भयसे कँपते हैं। यह महाभैरवहै सब विश्वका ग्रास करलेताहै। इसकी चण्डिकारूप शक्तिहै वह अतिबलवान्‌है और नदीरूपहै उसका उल्लङ्घन कोई नहीं करसक्ता। महाकालरूप कालीहै उसका बड़ा भयानक आकार है। कालरूप जो रुद्रहै उससे अभिन्नरूपी कालिकाहै वह सबकापान करके पीछे भैरव और भैरवी नृत्यकरते हैं। उसकाल और कालिकाका बड़ा आकारहै। उसका आकाश शीश, पातालमें चरणहैं और दशोंदिशा भुजाहैं। सप्तसमुद्र उसके हाथमें कङ्कण हैं; सम्पूर्ण पृथ्वीरूप उसके हाथमें पात्रहै; और उसपर जो जीव हैं वह भोजन योग्य हैं। हिमालय और सुमेरु पर्वत दोनों कानोंमें कुण्डलहैं; चन्द्रमा और सूर्य्य उसके दोनों लोचनहैं और सबतारागण उसके मस्तकमें बिंदुहैं। कालकेहाथमें त्रिशूल और मुसल आदिशस्त्रहैं और कालिकाकेहाथमें तन्द्रारूपीफांसी है उससे जीवोंको मारती है। ऐसी कालिकादेवी सबजीवोंका ग्रासकरके महाभैरवके आगे नृत्यकरतीहै, अट्टाट्टशब्द करती है और जीवोंको भोजन करके उनकी मुण्डमाला गले में धारणकरती है। भैरव जिनके सन्मुख रहनेकी किसीमें शक्ति नहीं जहां उजाड़है वहांक्षणमें बस्ती करडालताहै और जहां बस्ती है वहां क्षणमें उजाड़करताहै। इसीसे उसकानाम दैवकहते हैं। वह बड़ेबड़े पदार्थोंका उत्पन्न और नाशकरताहै स्थिर किसीको रहने नहीं देता इससे इसकानाम कृतान्त है और नित्यरूप भी यही है क्योंकि; परिणाम जिसका अनित्यरूप है इसीसे इसकानामकर्म है। जब अभावरूपी धनुष हाथमें धरताहै तो उससे राग द्वेषरूपी बाण चलाताहै और उसबाणसे जर्जरीभूत करके नाशकरता है। जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है और उठाकर नाशभी करदेता है तैसेही कालको उपजाने और नाश करने में कुछ यत्न नहीं करना पड़ता। हे मुनीश्वर! कालरूपी धीवरहै और उसने क्रियारूपी जालपसारा है। उसमें जीवरूपी पक्षी फँसते हैं सो फँसेहुये शान्ति नहीं पाते।

हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं इनमें आश्रय किसका करूं कि जिसमें सुखहो । यह तो स्थावर जंगम जगत् सब कालके मुखमें है यह सब नाशरूप मुझको दृष्टि आवैहैं इससे जो निर्भय पदहोय सो मुझको कहिये ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालजुगुप्सावर्णनन्नामविंशतितमस्सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! जितने पदार्थ भासते हैं वह सब नाशरूप हैं तो मैं किसकी इच्छाकरूं और किसका आश्रयकरूं ? इनकी इच्छाकरनी मूर्खताहै । जितनी चेष्टा अज्ञानी करताहै वह सब दुःखके निमित्त है और जीने में अर्थकी सिद्धि कुछ नहीं है क्योंकि; बालक अवस्था में मूढ़तारहती है, कुछ बिचार नहीं रहता । जब युवावस्था आती है तब मूर्खतासे विषयको सेवता है और मानमोहादि विकारों से मोहा जाता है—उसमें भी कुछ विचार नहीं होता और स्थिरभी नहीं रहता दीनकादीन रहके विषयकी तृष्णाकरता है—शान्ति नहीं पाता । हे मुनीश्वर ! आयुष्य महाचञ्चलहै और मृत्यु तो निकट है उसमें अन्यथा भाव नहीं होता । हे मुनीश्वर ! जितने भोग हैं वे रोगहैं, जिसको सम्पदा जानते हैं वह आपदा है, जिसको सत्य कहते हैं वह असत्य रूपहै, जिन स्त्री, पुत्रादिकों को मित्र जानते हैं वह सब बन्धनके कर्ता हैं और इन्द्रियां महाशत्रुरूप हैं । वह सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं, यह देह विकाररूप है, मन महाचञ्चल और सदा अशान्तरूप है और अहंकार महानीचहै इसनेही दीनताको प्राप्त कियाहै । इससे जितने पदार्थ इसको सुखदायक भासते हैं वह सब दुःखके देनेवाले हैं इससे कदाचित् शान्तिनहीं होती । इससे मुझको इनकी इच्छानहीं । यद्यपि यह देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं पर इनमें सुखकुछनहीं और स्थिर न रहेंगे । जैसे समुद्रमें नाना प्रकारके तरंगभासते हैं पर वह सब बड़वाग्निसे नाशहोते हैं तैसेही यह पदार्थ भी नाशहोजाते हैं । मैं अपनी आयुमें कैसे आस्था करूं ? हे मुनीश्वर ! बड़ेसमुद्र, सुमेरु राक्षस, दैत्य, देवता, सिद्ध, गन्धर्व, पृथ्वी, अग्नि, पवन, यम, कुबेर, बरुण, इन्द्र, ध्रुव चन्द्रमा और बड़े ईश्वर जगत्के कर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और काल जो सबको भक्षण करता है, कालकीस्त्री, सबका आधार आकाश और जितना जगत् है यह सब नष्ट होजावेंगे तो हमारी कौन गिनती है । हम किसकी आस्थाकरें और किसका आश्रय करें ? यह सब जगत् भ्रममात्रहै; अज्ञानीकी इसमें आस्थाहोती है और हमारी नहीं कि, जगत् भ्रम कैसे उत्पन्नहुआ है । मैं इतना जानताहूं कि, संसार में जीवको इतना दुःखी अहङ्कारने किया है । हे मुनीश्वर ! यह जीव अपने परमशत्रु अहंकारसे भटकता फिरताहै । जैसे रस्सी से बँधेहुये पतंग कभी ऊर्ध्व और कभी नीचेजाते हैं स्थिरकभी नहीं रहते-तैसेही जीव अहंकार से कभीऊर्ध्व और कभी अधोजाता है स्थिर कभी नहीं होता । जैसे अश्वसे आरूढ़ रथके ऊपर बैठके सूर्य आकाशमार्ग में भ्रमते हैं तैसेही

यह जीव भ्रमताहै स्थिर कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूपसे भूलाहुआ भटकता है, अज्ञानसे संसार में आस्था करता है और भोगको सुखरूप जानकर उसमें तृष्णाकरता है। पर जिसको सुखरूप जानताहै वह रोगसमान है और विषसे पूर्णसर्प जीवका नाशकरनेवालाहै जिसको सत्य जानताहै वह असत्य है सबकालक मुखमें ग्रसेहुये हैं। हे मुनीश्वर! विचार विना जीव अपना नाश आपही करताहै क्योंकि; इसका कल्याण करनेवाला बोध है। जब सत्य विचार बोधके शरण जाय तो कल्याणहो। जितने पदार्थ हैं वह स्थिर नहीं रहते। इनको सत्य जानना दुःख के निमित्त है। हे मुनीश्वर! जब तृष्णा आती है तब आनन्द और धीर्य्य को नाश करदेती है। जैसे वायु मेघका नाश करडालता है तैसेही तृष्णा ज्ञानका नाश करडालती है। इससे मुझे वही उपाय कहिये जिससे जगत्का भ्रम मिटजावे और अविनाशी पदकी प्राप्तिहो। इस भ्रमरूप जगत्की आस्था मैं नहीं देखता इससे जैसी इच्छाहो वैसाकरे परन्तु जो सुखदुःख इसको होने हैं वह अवश्य होंगे कभी न मिटेंगे। चाहे पहाड़की कन्दरामें बैठे चाहे कोटमें परन्तु जो होनेको है वह अवश्यहोगा। इस निमित्त यत्नकरना मूर्खता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेकालविलासवर्णनंनामएकविंशतितमस्सर्गः २१॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! यह जो (नानाप्रकार के सुन्दरपदार्थ) भासते हैं वह सब नाशरूप हैं इनकी आस्था मूर्ख करते हैं। यह तो (मनकी कल्पनासे रचेहुये हैं उनमें से मैं किसकी आस्थाकरूं? हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीवका जीना व्यर्थ है क्योंकि; जीने से उनका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जब कुमारअवस्था होती है तब बुद्धिमूढ़ होती है उसमें कुछ विचार नहीं होता। जब युवावस्था आती है तब काम क्रोधादिक विकार उत्पन्नहोते हैं ये सदा ढांपे रहते हैं। जैसे जालमें पक्षी बँधजाता है और आकाशमार्ग को देखभी नहींसक्ता तैसेही काम क्रोधादिक से ढँपाहुआ जीव विचारमार्गको नहीं देख सक्ता। जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत और महादीन होजाता है और शरीर को भी त्याग देता है। जैसे कमल के ऊपर बरफ पड़ता है तब उसको भँवरा त्याग करताहै तैसेही जब शरीररूपी कमलको जरा का स्पर्श होता है तब जीव-रूपी भँवरा त्याग करदेता है। हे मुनीश्वर! यह शरीर तबतक सुन्दरहै जबतक वृद्धावस्था नहीं प्राप्तहोती। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश जबतक राहु दैत्यने आवरण नहीं किया तबतक रहता है; जब राहु दैत्य आवरण करताहै तब प्रकाश नहींरहता; तैसेही जरावस्था के आये युवावस्था की सुन्दरता जाती रहती है। हे मुनीश्वर! जरा के आने से शरीर कृश होजाताहै जैसे वर्षाकालमें नदी बढ़जाती है तैसेही जरावस्था में तृष्णा बढ़जाती है और जिस पदार्थकी तृष्णा करता है वह पदार्थ भी दुःखरूप

है इसलिये तृष्णा करके आपही दुःख पाता है । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी समुद्र में चित्तरूपी बेड़ा पड़ा है और रागद्वेषरूपी मच्छोंसे कभी ऊर्ध्व को जाता है और कभी नीचे आता है स्थिर कदाचित् नहीं रहता हे मुनीश्वर ! कामरूपी वृक्ष में तृष्णारूप लता और विषयरूपी फूल हैं; जब जीवरूपी भँवरा उसके ऊपर बैठता है तब विषयरूपी बेलसे मृतक होजाता है । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी एकबड़ी नदी है उसमें राग द्वेषादिक बड़े २ मच्छरहते हैं । उस नदीमें पड़ेहुये जीव दुःख पाते हैं और जो संसार की इच्छा करता है वह नाशरूप है हे मुनीश्वर ! उन्मत्तहाथी और तरङ्गों के समूहके रणरूपी समुद्रको तरजानेवाले को भी मैं शूर नहीं मानता परन्तु जो इन्द्रियरूपी समुद्र में मनोवृत्तिरूपी तरंग उठते हैं उस समुद्र के तरजानेवालेको मैं शूर मानताहूं ऐसी क्रिया अज्ञानी जीव आरंभ करते हैं कि, जिसके परिणाम में दुःखहो । जिसके परिणाम में सुखहै उसका आरंभ वे नहीं करते और कामके अर्थकी धारणा करते हैं । ऐसे आरंभ कियेसे शरीरकी शान्तिके पीछेभी सुखकीप्राप्ति नहीं होती । वे कामनाकरके सदा जलते रहते हैं । जो अनात्मपदार्थकी तृष्णा करते हैं उनको शान्ति कैसे प्राप्तहो ? हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी नदीमें बड़ा प्रवाह है; उसके किनारेपर वैराग्य और संतोष दो वृक्ष खड़ेहैं सो तृष्णा नदीके प्रवाह से दोनोंका नाश होताहै । हे मुनीश्वर ! तृष्णा बड़ी चंचल है किसीको स्थिर नहीं होने देती । मोहरूपी एक वृक्ष है उसके चारों ओर स्त्रीरूपी वल्लीहै सो विषसे पूर्ण है; । उसपर चित्तरूपी भँवरा आबैठताहै तब स्पर्शमात्रसे नाशहोता है । जैसे मोरका पुच्छ हिलता रहता है तैसेही अज्ञानी का चित्त चंचल रहता है इसलिये वह मनुष्य पशुके समान है । जैसे पशु दिनको जंगल में जा आहार करते और चलते फिरते हैं और रात्रिको घर में आय खूंटे से बाँधेजाते हैं तैसेही मूर्ख मनुष्य भी दिनको घर छोड़के व्यवहार में फिरते हैं और रात्रि को आ अपने घरमें स्थिर होते हैं पर इससे परमार्थकी कुछ सिद्धि नहीं होती वे अपना जीवन वृथा गँवातेहैं बाल्यावस्थामें तो शून्य रहतेहैं और युवावस्थामें कामसे उन्मत्त होताहै उस कामसे चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कन्दरा में जा स्थित होताहै पर वहभी क्षणभंगुर है । फिर वृद्धावस्था आती है उससे शरीर कृश होजाता है । जैसे बरफ से कमल जर्जरीभाव को प्राप्त होताहै तैसेही जरासे शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता और सब अंग क्षीण होजाते हैं पर एक तृष्णा बढ़जाती है । हे मुनीश्वर ! यह जीव मनुष्यरूपी पर्वतपर आ आकाशके फूलरूपी जगत् के पदार्थोंकी इच्छा करता है सो नीचे गिर रागद्वेषरूपी कंटकके वृक्षमें जापड़ेगा । हे मुनीश्वर ! जितने जगत् के पदार्थ हैं वह सब आकाश के फूल की नाईं नाशवान् हैं । इनमें आस्था करनी मूर्खताहै यह तो शब्दमात्र हैं । इनसे अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता । जो ज्ञानवान्

पुरुष हैं उनको विषय भोगकी इच्छा नहीं रहती क्योंकि; आत्माके प्रकाशसे वे इनको मिथ्या जानते हैं। हे मुनीश्वर ! ऐसे ज्ञानवान् दुर्विज्ञेय पुरुष हमको तो स्वप्न में भी नहीं भासते। ऐसे विरक्तात्मा दुर्लभ हैं कि, जिनको भोगकी इच्छा नहीं और सर्वदा ब्रह्मकी स्थिति में भासते हैं। ऐसे पुरुषोंको संसारकी कुछइच्छा नहीं रहती क्योंकि; यह पदार्थ नाशरूप हैं। हे मुनीश्वर ! जैसे पर्वतको जिसओर देखिये पत्थरोंसे; पृथ्वी मृत्तिकासे; वृक्ष काष्ठसे और समुद्र जलसेपूर्ण दृष्टि आते हैं तैसेही शरीर अस्थि मांस से पूर्ण भासताहै। ये सब पदार्थ पंचतत्त्वसेपूर्ण और नाशरूप हैं। ऐसा जानके ज्ञानी किसीकी इच्छा नहीं करता हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब नाशरूप है; देखतेही देखते नाशहोजाता है उसमें मैं किसका आश्रय करके सुखपाऊं ? जब युगों की सहस्र चौकड़ी व्यतीत होती हैं तब ब्रह्माका एक दिन होता है। उस दिनके क्षयहुये से सब जगत् का प्रलय होता है और ब्रह्माभी काल पाकर नाशहोजाता है। ब्रह्माभी जितने होगये हैं उनकी संख्या नहीं होसक्ती; असंख्य ब्रह्मा नाशहोगये हैं तो हम सारिखोंकी क्या वार्त्ता है । हम किसी भोगकी वासना नहीं करते क्योंकि; सब चलरूप हैं; स्थिर रहनेके नहीं, सब नाशरूप हैं इसलिये इनकी आस्था मूर्ख करते हैं, इनके साथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं। जैसे मरुस्थल को देख मृग जलपान करनेको दौड़ता और शान्ति नहींपाता तैसेही मूर्खजीव जगत् के पदार्थोंको सत्यमानकर तृष्णाकरता है परन्तु शान्ति नहीं पाता क्योंकि; सब असाररूप हैं । स्त्री, पुत्र, और कलत्र जबतक शरीर नष्ट नहीं होता तभीतक भासते हैं; जब शरीर नष्ट होजायगा तो जाना न जावेगा कि कहांगये और कहांसे आये थे। जैसे तेल और बत्तीसे दीपक बड़ा प्रकाशवान् दृष्टिआताहै; जब बुझजाताहै तब जाना नहीं जाता कि, कहांगया तैसेही बत्तीरूप बान्धवहैं और उसमें स्नेहरूपी तेलहै उससे जो शरीर भासताहै सो प्रकाशहै। जब शरीररूपी दीपका प्रकाश बुझजाता है तब जाना नहीं जाता कि कहांगया । हे मुनीश्वर ! बन्धुका मिलाप ऐसा है जैसे कोई तीर्थयात्राको संग चलाजाताहो सो सब एकक्षण वृक्षकी छायाके नीचे बैठते हैं फिर न्यारे न्यारे होजाते हैं। जैसे उस यात्रामें स्नेहकरना मूर्खता है तैसेही इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है। हे मुनीश्वर ! अहंममताकी रस्सी के साथ बांधेहुये घटीयन्त्रकी नाईं सब जीव भ्रमते फिरते हैं उनको शान्ति कदाचित् नहीं होती यह देखनेमात्र तो चेतनदृष्टि आताहै परन्तु पशु और बन्दर इनसे श्रेष्ठ हैं जिनकी सम्मति देह और इन्द्रियों के साथही बँधीहुई है और आगमापायी हैं उनको आत्मपदकी प्राप्तिहोनी कठिनहै। जैसे पवनसे वृक्षके पातटूटके उड़जाते हैं फिर उन को वृक्षकेसाथ लगना कठिन है तैसेही जो देहादिक से बँधेहुये हैं उनको आत्मपदका पाना कठिन है। हे मुनीश्वर ! जब आत्मपद से विमुख होता है तब जगत् के भ्रम

देखता है और जब आत्मपदकी ओरआता है तब संसार इसको बड़ा विरसलगता है। ऐसा पदार्थ जगत्‌में कोई नहीं जो स्थिररहै, जो कुछ पदार्थ हैं सो नाशको प्राप्तहोते हैं। इससे मैं किसकी आस्थाकरूं और किसका आश्रयकरूं सब तो नाशवन्तभासते हैं? वह पदार्थ मुझसे कहिये जिसका नाश न हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसर्वपदार्थाभाववर्णनन्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः॥ २२॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! जितना स्थावर-जंगम जगत् दिखता है वह सब नाशरूप है कुछभी स्थिर न रहेगा। जो खाईंथी वह जलसे पूर्णहोगई है और जो बड़े जल से भरेहुये समुद्र दिखते थे वे खाईरूप होगये; जो सुन्दरबड़े बागीचेथे वे आकाश की नाईं शून्यहोगये और जो शून्यस्थान थे वे सुन्दर वृक्षहुये वन में दृष्टि आते हैं जहां बस्ती थी वहां उजाड़होगई और जहां उजाड़ थी वहां बस्ती होगई; जहां गढ़े थे वहां पर्वतहोगये और जहां बड़े पर्वतथे वहां समान पृथ्वी होगई। हे मुनीश्वर! इसप्रकार पदार्थ देखते देखते विपर्यय होजाते हैं स्थिर नहीं रहते तो फिर मैं किसका आश्रयकरूं और किसके पानेका यत्नकरूं? ये पदार्थ तो सब नाश रूप हैं। जो बड़ेबड़े ऐश्वर्य्य से सम्पन्न और बड़े कर्त्तव्य करते और बड़े वीर्यवान् तेजवान् हुये हैं वे भी मरणमात्र होगये हैं तो हम सारिखोंकी क्यावार्त्ता है? सब नाश होते हैं तो हमेंभी घड़ी पल में चलाजाना है। हे मुनीश्वर! ये पदार्थ बड़े चञ्चलरूप हैं; एकरस कदाचित् नहीं रहते। एकक्षणमें कुछहोजाते और दूसरे क्षणमें कुछ होजाते हैं; एकक्षणमें दरिद्रीहोजाते और दूसरे क्षणमें सम्पदावान् होजाते हैं, एकक्षणमें जीते दृष्टिआते हैं और दूसरे क्षणमें मरजाते हैं; और एकक्षणमें फिर वेभी जी उठते हैं। इस संसारकीस्थिरता कभी नहीं होती। ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते एकक्षण में समुद्रके प्रवाह के ठिकाने मरुथल होजाते और मरुथल में जलके प्रवाह होजाते हैं। हे मुनीश्वर! इस जगत्‌का आभास स्थिर नहीं रहता-जैसे बालकका चित्त स्थिर नहीं रहता तैसेही जगत्‌का पदार्थ एकभी स्थिर नहीं रहता। जैसे नट नानाप्रकार के स्वांग धरता है तैसेही जगत् के पदार्थ और लक्ष्मी एकरस नहीं रहती। कभी पुरुष स्त्री होजाता और कभी स्त्री पुरुष होजाती है; कभी मनुष्य पशु होजाता और कभी पशु मनुष्यहोजाताहै, स्थावरका जङ्गमहोजाताहै और जंगमका स्थावर होजाताहै, मनुष्यका देवता होजाता और देवताका मनुष्य होजाता है। इसी प्रकार घटीयंत्रकी नाईं जगत् की लक्ष्मी स्थिर नहींरहती कभी ऊर्ध्वको जाती है और कभी अधको जाती है स्थिर कभी नहीं रहती-सदा भटकतीरहती है। हे मुनीश्वर! जितने कुछ पदार्थ दृष्टि आतेहैं वे सब नष्ट होजावेंगे; किसी भांति स्थिर न रहेंगे। ये सब नदियां बड़वाग्नि में लय होजावेंगी और जितने पदार्थ हैं वे सब अभावरूपी बड़वाग्निको प्राप्तहोंगे। बड़े २

बलिष्ठभी मेरे देखतेही देखते लीन होगये हैं। जो बड़े २ सुन्दर स्थानथे वे शून्य होगये और सुन्दर ताल और बगीचे जो मनुष्यों से परिपूर्ण थे शून्य होगये। मरुथल की भूमि सुन्दर होगई और घट के पट होगये हैं। बरके शाप होजाते हैं। और शापके बर होजाते हैं। इसीप्रकार हे विप्र! जो जगत् दृष्टि आताहै वह कभी सम्पत्तिवान् और कभी आपत्तिवान् दृष्टि में आताहै और महाचपल है। हे मुनीश्वर! ऐसे सब अस्थिररूप पदार्थों का विचार विना मैं कैसे आश्रयकरूं और किसकी इच्छा करूं सब तो नाशरूप हैं? ये जो सूर्य्य प्रकाशयुक्त दृष्टि आते हैं वे भी अन्धकाररूप होजावेंगे, अमृत से पूर्ण चन्द्रमाभी शून्य होजायगा और सुमेरु आदिक पर्वत, सब लोक, मनुष्य, देवता, यक्ष और राक्षस सब नाशहोंगे। इससे हे मुनीश्वर! और किसीका क्या कहना है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जगत् के ईश्वरभी शून्य होजायँगे। जो कुछ जगत् दृष्टि आता है और स्त्री, पुत्र, बांधव, ऐश्वर्य, वीर्य्य और तेज से युक्त नाना प्रकारके जो जीव भासते हैं वे सब नाशरूप हैं फिर मैं किसपदार्थ का आश्रय करूं और किसकी इच्छाकरूं? हे मुनीश्वर! जो पुरुष दीर्घदर्शी है उसको तो सब पदार्थ विरस होगये; वह किसी पदार्थ की इच्छानहीं करता क्योंकि; उसे तो सब पदार्थ नाशरूप भासते हैं और वह अपनी आयुष्यको बिजली के चमत्कारवत् देखता है। जिसको अपनी आयुष्यकी प्रतीति होती है सो किसीकी इच्छा नहीं करता जैसे किसी को बलिदान के अर्थ पालते हैं तो वह खाने पीने और भोगनेकी इच्छानहीं करता तैसेही जिसको अपना मरना सन्मुख भासता है उसको भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती। ये सब पदार्थ आपही नाश रूप हैं तो हम किसका आश्रयकरके सुखीहों। जैसे कोई पुरुष समुद्रमें मच्छका आश्रय करके कहै कि, मैं इसपर बैठके समुद्रके पार जाऊंगा और सुखी होऊंगा तो वह मूर्खता से डूबही मरेगा; तैसेही जिस पुरुषने इन पदार्थोंका आश्रय लियाहै और उन्हें अपने सुखके निमित्त जानताहै वह नाश होगा। हे मुनीश्वर! जो पुरुष जगत्को विचारता रहता है उसको यह जगत् रमणीय भासता है और जो रमणीय जानके नानाप्रकारके कर्म्म करता है और नाना प्रकारके सङ्कल्प करके जगत्में भटकत है उसीको यह भटकाताहै। जैसे पवनसे धूर कभी ऊंचे और कभी नीचे आती है स्थिरनहींरहती तैसेही यहजीव भटकता फिरता है स्थिर कभी नहीं रहता और जिसपदार्थ की इच्छा करताहै वह सब कालका ग्रासरूप है। ईंधनरूपी जगत् वनमें कालरूपी अग्नि लगी है उसने सबको ग्रासलियाहै। जो इन पदार्थोंकी इच्छा करते हैं वे महामूर्ख हैं। जिनको आत्म विचारकी प्राप्तिहै उनको यह जगत् भ्रमरूप भासता है और जिसको आत्मविचारकी प्राप्ति नहीं है उसको यह जगत् रमणीय भासता है। जगत् तो देखतेही देखते नाशहोजाता है इसस्वप्न

पुरीकी नाईं संसारकी मैं कैसे इच्छा करूं; यहतो दुःखकानिमित्त है ? जैसे विषमिली मिठाई के भोजन करने वाले मृत्युपातेहैं तैसेही विषय भोगनेवाले नाश होते हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेजगद्विपर्ययवर्णनन्नामत्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! इस संसार में भोगरूपी अग्नि लगी है उससे सब जलते हैं। जैसे तालमें हाथीके पांवसे कमलका चूर्ण होजाताहै तैसेही भोगसे मनुष्य दीन होजातेहैं । जैसे वायुसे मेघ नष्ट होजाता है तैसेही काम, क्रोध और दुराचारसे शुभगुण नष्ट होजाते हैं । जैसे भटकटैया के पत्ते और फलमें कांटे होजाते हैं तैसेही विषयकी बासनारूपी कंटक आलगते हैं। हे मुनीश्वर ! यह सब जगत् नाशरूपहै, कोई पदार्थ स्थिर नहीं । बासनारूपी जल और इन्द्रियरूपी गांठहै उसमें पुरुष कालसे फँसाहै वह बड़े दुःख पावेगा । हे मुनीश्वर ! बासनारूपी सूतमें जीवरूपी मोती पिरोये हुये हैं और मनरूपी नटआय पिरोयकर चैतन्यरूपी आत्माके गले में डालता है जब बासनारूपी तागा टूटपड़ताहै तबयह सब भ्रमभी निवृत्त होजाताहै। हे मुनीश्वर ! इस जीवको भोगकी इच्छाही बन्धनका कारणहै उसी से यह भटकता है और शान्ति नहीं पाता । इससे मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं; न राज्यकीही इच्छाहै और न घरकी न वनकी इच्छाहै; न मरनेका दुःखही मानताहूं और न जीनेकासुख मानताहूं। मुझे किसी पदार्थका सुख नहीं; सुखतो आत्मज्ञानसे होताहै अन्यथा किसी पदार्थसे नहींहोता । जैसे सूर्यके उदयहुये विनाअन्धकारका नाशनहीं होता तैसेही आत्मज्ञान विना संसारके दुःखका नाशनहीं होता । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे मोह का नाशहो और मैं सुखी होऊँ हे मुनीश्वर ! भोगके भोगनेवाले अहङ्कार को मैंने त्यागदिया फिर भोगकी इच्छा कैसेहो ? हे मुनीश्वर ! विषयरूप सर्प ने जिसका स्पर्श किया उसका नाशहोजाताहै । सर्पजिसकोकाटताहै वह एकही बेर उसको मारडालताहै पर विषयरूपी सर्प जिसको काटताहै वह अनेक जन्मपर्यंत मारताही चलाजाता है। इससे परमदुःखका कारण विषय भोगही है और परमविषहै । हे मुनीश्वर ! आरेसे अङ्गका कटाना और बज्रसे शरीरका चूर्णहोना मैं सहूंगा परन्तु विषय का भोगना मुझसे किसीप्रकार सहा नहीं जाता । यह तो मुझको दुःखदायकही दृष्टि आताहै । इससे वही मुझसे कहिये जिससे मेरे हृदय से अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश हो और जो न कहोगे तो मैं अपनी छाती पर धीर्य्यरूपी शिला धरके बैठारहूंगा परन्तु भोगकीइच्छा न करूंगा । हे मुनीश्वर ! जितने पदार्थ हैं वे सब नाशरूप हैं । जैसे बिजली का चमत्कार होके छिप जाताहै और अंजलि में जल नहीं ठहरता तैसेही विषयभोग और आयुष्य नाश होजाते हैं—ठहरते नहीं । जैसे कंठी से मछली दुःख पातीहै तैसेही भोगकी तृष्णासे जीव दुःख पातेहैं । इससे मुझे किसीपदार्थकी इच्छा

नहीं। जैसे कोई मरीचिका के जलको सत्यजान जलपानकी इच्छा करे और दौड़े पर जल नहीं पाता। इससे मैं किसीपदार्थ की इच्छा नहीं करता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसर्वान्तप्रतिपादनन्नामचतुर्विंशतितमस्सर्गः॥ २४॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! संसाररूपी गढ़े और मोहरूपी कीच में मूर्ख का मन गिरजाताहै उससे वह दुःखहीपाताहै शान्तिवान् कभी नहींहोता। जब जरावस्था आती है तब जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवनसे हिलतेहैं तैसेही अंग हिलतेहैं और तृष्णा बढ़ जाती है। जैसे नीमकावृक्ष ज्यों२वृद्धहोताहै त्यों२ कटुताबढ़ती है तैसेही तृष्णाबढ़तीहै। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने देह इन्द्रियादिकोंका आश्रय अपने सुखनिमित्त लियाहै वह मूर्ख संसाररूपी अंधकूप में गिरताहै और निकल नहीं सक्ता। अज्ञानी का चित्त भोग का त्याग कदाचित् नहींकरता। हे मुनीश्वर! जगत्के पदार्थों से मेरीबुद्धिमलीन होगई है। जैसे वर्षा कालमें नदी मलीनहोती है। और जैसे मार्गशीर्ष मासमें मंजरी सूख जाती है तैसेही जगत्की शोभा देखते २ मेरीबुद्धि विरस होजाती है। जैसे जगत् का पदार्थ मूर्खको रमणीय भासता है और जैसे पानीका गढ़ा तृणसे आच्छादित होता है और मृगका बालक उसतृणको रमणीयजानकर खानेजाता तो गिरजाता है तैसेही यह मूर्खजीव भोगको रमणीय जान भोगके गिरपड़ता है फिर महादुःख पाताहै। हे मुनीश्वर! जगत् के पदार्थोंसे मेरीबुद्धि चञ्चल होगई है इससे वही उपाय कहिये जिस से मेरी बुद्धिपर्वतकी नाईं निश्चलहो और परमानन्द जो निर्भय निराकार है और जिसके पायेसे किसीपदकी इच्छा नहीं रहती पाऊं। हे मुनीश्वर! ऐसे पदसे मेरीबुद्धि शून्यहै इससे मैं शान्तिवान् नहीं होता। यह संसार और संसारके कर्म्म मोहरूप हैं इसमें पड़हुये शान्ति नहीं पाते। जनकादिक और शान्तिवान् संसारमें रहे हुये कमल की नाईं निर्लेप रहतेहैं। उनकी क्या समझ है कृपाकरके कहिये और आप ऐसे सन्त जन विषय भोगते दृष्टि आते और जगत् की सब चेष्टा करते हैं पर निर्लेप कैसे रहते हैं वह युक्ति कहिये। यह बुद्धि जैसे ताल में हाथी प्रवेश करता है और पानी मलीन होजाताहै तैसेही मोहसे मलीन होजाती है। इससे वही उपाय कहिये जिससे बुद्धि निर्मलहो। यह सन्तोष बुद्धि स्थिर कभीनहीं रहती। जैसे कुल्हाड़ेका कटावृक्ष मूलसे स्थिर नहींहोता तैसेही वासनासे कटीबुद्धि स्थिर नहीं रहती। हे मुनीश्वर! संसाररूपी विशूचिका मुझको लगी है इससे वही उपाय कहिये जिससे दृश्य का नाश हो–इसने मुझको बड़ादुःख दिया। आत्मज्ञान कब प्रकाशहोगा जिसके उदय हुये मोहरूपी अंधकारका नाशहो? हे मुनीश्वर! जैसे बादलसे चन्द्रमा आच्छादितहोजाताहै तैसेही बुद्धिकी मलीनता से मैं आच्छादित हुआहूं। इससे वही उपाय कहिये जिस से आवरण दूरहो और आत्मानन्द जो नित्यहै प्राप्तहो। इसके पायेसे फिर कुछ पानेकी

आवश्यकता नहीं रहती और इससे सम्पूर्ण दुःख नाश होजाते हैं और अंतःकरण शीतल होजाता है । ऐसेपदकी प्राप्तिका उपाय मुझसे कहिये । हे मुनीश्वर ! आत्म ज्ञानरूपी चन्द्रमाकी मुझको इच्छा है; जिसके प्रकाश से बुद्धिरूपी कमलिनी खिल आती है और जिसकी अमृतरूपी किरणों से तृप्तवृत्तिहोती है । हे मुनीश्वर ! अब मुझको गृहमें रहने की इच्छानहीं और वनमें जानेकी भी इच्छानहीं । मुझको तो उसी पदकी इच्छा है जिसके पायेसे अंतःकरण शान्तहोजाय ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेवैराग्यप्रयोजनवर्णनन्नामपंचविंशतितमस्सर्गः २५ ॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! जो जीनेकी आस्थाकरते हैं वे मूर्ख हैं । जैसे पत्रपर जलकी बूंद नहीं ठहरती तैसेही आयुष्यभी क्षणभंगुरहै । जैसे वर्षाकालमें दादुर बोलते हैं और उनका कट चंचल सदा फड़कता रहता है तैसेही आयुर्दा क्षण २ में चंचल होजाती है । जैसे शिवजी के कपाल में चन्द्रमाकी रेखा छोटीसी है तैसेही यह शरीर है हे मुनीश्वर ! जिसको इसमें आस्थाहै वह महामूर्ख है—यह तो कालका ग्रासहै । जैसे बिल्ली चूहेको पकड़लेती है तैसेही सबको काल पकड़ लेताहै । जैसे बिल्ली चूहेको सँभलने नहीं देती तैसेही काल सबको अचानक ग्रहण कर लेता है और किसी को नहीं भासता । हे मुनीश्वर ! जब अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होके नृत्य करता है । जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षाकरता है तब दुःखरूपी मंजरी बढ़ने लगती है, लोभरूपी बिजली क्षण २ में हो हो नष्टहोजाती है और तृष्णारूपी जालमें फँसेहुये जीवरूपी पक्षी पड़े दुःख पाते हैं—शांतिकी प्राप्ति नहीं होती । हे मुनीश्वर ! यह जगतूरूपी बड़ा रोग लगा है उसके निवारण करने का कौनसा पदार्थ है ? जो पानेयोग्यहै और जिससे भ्रमरूपी रोग निवृत्तहो वही उपाय कहिये । यह जगत् मूर्खको रमणीय दिखता है । ऐसे पदार्थ पृथ्वी, आकाश, देवलोक और पाताल में भी नहीं जो ज्ञानवान्को रमणीय दीखें । ज्ञानवान् को सब भ्रमरूप भासता है और अज्ञानी जगत्में आस्था करताहै । हे मुनीश्वर ! चन्द्रमामें जो कलङ्कहै उससे शोभा सुन्दर नहीं लगती । जब कलङ्क दूर होजाय तब सुन्दर लगे तैसेही मेरे चित्तरूपी चन्द्रमामें कामरूपी कलङ्क लगाहै इससे वह उज्ज्वल नहीं भासता । आप वही उपाय कहिये जिससे कलङ्क दूरहो । हे मुनीश्वर ! यह चित्त बहुत चञ्चलहै स्थिर कदाचित् नहीं होता । जैसे अग्निमें डालदिया पारा उड़ जाताहै तैसेही चित्तभी स्थिर नहीं होता विषयकी ओर सदाधाताहै । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्त स्थिरहो । संसाररूपी वनमें भोगरूपीसर्प रहते हैं और जीवको काटते हैं उनसे बचने का उपाय कहिये । जितनी क्रियाहैं वे राग द्वेषके साथ मिली हुई हैं; इससे वही उपाय कहिये जिससे राग द्वेषका प्रवेश न हो और संसारसमुद्र में पड़के तृष्णारूपी जल

का स्पर्श न हो। और ऐसा उपायभी कहिये जिससे राग द्वेषका स्पर्श न हो। मन में जो मननरूपी सत्ताहै वह युक्तिसे दूरहोती है—अन्यथा दूरनहीं होती। उसकी निवृत्ति के अर्थ आप मुझसे युक्ति कहिये और आगे जिसको जिसप्रकार निवृत्तिहुई है और जिसप्रकार आपके अन्तःकरणमें शीतलता हुईहै वह कहिये। हे मुनीश्वर! जैसे आप जानतेहैं सो कहिये और जो आपनेही वह युक्ति नहीं पाई तब मैंतो कुछनहीं जानता। मैं सब त्यागकर निरहंकार होरहूंगा और जबतक वह युक्ति मुझको न प्राप्तहोगी तब तक मैं भोजन, जलपान और स्नानादिक क्रिया और किसी सम्पदा और आपदा का कार्य्य न करूंगा—निरहङ्कार होऊंगा। यह न मेरी देहहै, न मैं देहहूं; सब त्यागकरके बैठारहूंगा। जैसे कागजके ऊपर मूर्त्ति चित्रितहोती है तैसेही होरहूंगा। श्वास आते जाते आपही क्षीण होजायँगे। जैसे तेल बिना दीपक बुझजाता है तैसेही अनर्थवान् देह निर्वाण होजायगा तब महाशान्ति पाऊंगा। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! ऐसे कहकर रामजी चुपहोरहे। जैसे बड़े मेघको देखके मोर शब्द करके चुप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेऽनन्यत्यागदर्शनन्नामषड्विंशतितमस्सर्गः॥ २६॥

इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले; हे पुत्र! जब इसप्रकार रघुवंशरूपी आकाश के रामचन्द्ररूपी चन्द्रमाबोले तब सब मौनहोगये और सबके रोम खड़े होगये—मानो रोमभी खड़ेहोकर रामजी के वचन सुनते हैं और सभामें जितने बैठेथे वे सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्र में मग्नहोगये। वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र आदि जो मुनीश्वर थे और दृष्टि आदिक मंत्री, राजा दशरथ और मण्डलेश्वर, चाकर, नौकर और माता कौशल्याआदिक सब मौनहोगये—अर्थात् अचलहोगये। पिंजड़ेमें जो तोते और बगीचेमें पशु आदिथे; जो पक्षी आलयमें बैठेथे वे भी सुनकर मौनहोगये आकाश के पक्षी जो निकटथे वे भी स्थिरहोगये और आकाशमें देव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरभी आके सुनने और फूलोंकी वर्षा करने तथा सब धन्यधन्य शब्द करनेलगे। उससमय फूलोंकी ऐसी वर्षाभई मानो बरफकी वर्षा होती है और क्षीरसमुद्रके तरंग उछलते आतेथे मानो मोती के मालाकी वृष्टि होनेलगी। जैसे माखनके पिण्ड उड़तेहों इसप्रकार आधीघड़ीपर्यन्त फूलोंकी वर्षाहुई और बड़ीसुगंध फैली। फूलोंपर भँवरे फिरनेलगे और बड़ा विलास उसकालमें हुआ। सब नमोनमः शब्द करनेलगे और देव बोले हैं कमलनयन! रघुवंशी आकाशमें चन्द्रमारूप तुम धन्यहो। तुमने बड़े श्रेष्ठस्थान देखेहैं और बहुत प्रकारके वचन सुनेहैं। जैसे तुमने वचन कहेहैं वैसे हमने कभीनहीं सुने। यह वचनसुनके हमारा जो देवतोंका अभिमान था सो सब निवृत्तहोगया और अमृतरूपी वचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्णहोगई है।

हे रामजी ! जैसे वचन तुमने कहे हैं ऐसे बृहस्पति भी नहीं कहसक्ते । तुम्हारे वचन परमानन्दके करनेवाले हैं इससे तुम धन्यहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेसिद्धसमाजवर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्गः ॥ २७ ॥

बाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! सिद्ध ऐसे वचन कहके विचारने लगे कि, रघुवंश का कुल पूजन योग्य है जिसमें रामजीने बड़े उदारवचन मुनीश्वरके सन्मुखकहे हैं । अब जो मुनीश्वर उत्तरदेंगे वहभी सुनाचाहिये । जैसे फूलके ऊपर भँवरा स्थिरहोता है तैसेही व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्यआदि सबसाधु सभामें स्थितहुये तब वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठखड़ेहुये और उनकी पूजाकरनेलगे । पहिले राजादशरथ ने पूजाकी और फिर नानाप्रकारसे सबने उनकी पूजाकी और यथायोग्य आसनके ऊपरबैठे । उनमें नारदजी हाथमें बहुत सुन्दर वीणालिये और श्याममूर्त्ति व्यासजी नानाप्रकारके रंगसे रंजित वस्त्र पहिनेहुये मानो तारागणोंमें महाश्यामघटा आई है विराजमानथे । ऐसेही दुर्वासा, वामदेव, पुलह, पुलस्त्य, बृहस्पति के पिता अङ्गिरा भृगु और मैं भी वहां था और ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, देवता, मुनीश्वर सबआके उस सभा में स्थितहुये । किसीकी बड़ीजटा, कोई मुकुटपहिरे, कोई रुद्राक्षकी माला और कोई मोतीकीमाला पहिनेथे, किसीके कण्ठमें रत्नकीमाला और हाथमें कमण्डलु और मृगछाला, किसीके महासुन्दरवस्त्र, किसीकी कटिपै कोपीन और किसीकी कटिपै सुवर्णकी जंजीरथी ऐसे बड़ेबड़ तपस्वी जो वहां आकेबैठेथे उनमें कोई राजसी और कोई सात्विकी स्वभावकेथे और सब विद्वान् वेदपढ़नेवाले प्राप्तहुये । कोई सूर्यवत्; कोई चन्द्रमावत्; कोई तारावत्; कोई रत्नवत् प्रकाशमान और पुरुषार्थपर यत्नकरने वाले यथायोग्य आसनपर स्थितहुये । मोहनीमूर्ति और दीनस्वभाववाले रामजी भी हाथ जोड़के सभामें बैठे और उनकी सब पूजाकर कहनेलगे कि, हे रामजी ! तुम धन्य हो । नारद सबके सन्मुख कहनेलगे कि, हे रामजी ! तुमने बड़ेविवेक और वैराग्यके वचनकहे जो सबको प्यारेलगे और सबके कल्याणकरनेवाले और परम बोध के कारण हैं । हे रामजी ! तुम बड़ेबुद्धिमान् और उदारात्मा दृष्टिआतेहो और महावाक्य का अर्थ तुम से प्रकट होता है । ऐसे उज्ज्वलपात्र साधु और अनन्त तपस्वियों में कोई बिरला होता है । जितने मनुष्य हैं वे सब पशु से दृष्टिआते हैं क्योंकि; जिसको संसारसमुद्र के पारहोने की इच्छा है और जो पुरुषार्थपर यत्नकरता है वही मनुष्य है । हे साधो ! वृक्ष तो बहुत होते हैं परन्तु चन्दनका वृक्ष कोई होताहै; तैसेही शरीरधारी बहुत हैं परन्तु ऐसाकोई होता है और सबअस्थिमांस रुधिर के पुतले से मिले हुये भटकते फिरते हैं । वे जैसे यंत्र की पुतली होती है तैसेही अज्ञानी जीव हैं। हाथी तो बहुत हैं परन्तु बिरले के मस्तकसे मोती निकलताहै तैसेही मनुष्य तो बहुत

हैं परन्तु पुरुषार्थपर यत्न करनेवाला कोई बिरलाही होता है। जैसेवृक्षबहुतेरे हैं परन्तु लवङ्ग का वृक्षकोई बिरलाहीहोता है तैसेही मनुष्य बहुत हैं परन्तु ऐसाकोई बिरलाही होताहै ऐसेपात्रसे थोड़ाअर्थ कहाभी बहुत होजाताहै। जैसे तेलकी बुंद थोड़ीही जलमें डालिये तो फैलजातीहै तैसेही थोड़े वचन तुम्हारे हियेमें बहुत होते हैं। तुम्हारी बुद्धि बहुत विशेष है और दीपकसी प्रकाशवाली और बोधका परम पात्र है। कहनेमात्र सेही तुमको शीघ्र ज्ञानहोवेगा और जो हमारे सामने तुमको ज्ञान न हो तो जानना कि हमसब मूर्ख बैठे हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेमुनिसमाजवर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः २८॥

समाप्तमिदं वैराग्यप्रकरणम्॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथश्रीयोगवाशिष्ठे

द्वितीयमुमुक्षुप्रकरणप्रारम्भः ॥

बाल्मीकिजी बोले हे साधो ! ये वचन परमानन्दरूप हैं और कल्याणके कर्त्ता हैं। इनमें सुनने की प्रीति तब उपजती है जब अनेक जन्मके बड़े पुण्य इकट्ठे होते हैं। जैसे कल्पवृक्ष के फलको बड़े पुण्यसे पाते हैं तैसेही जिसके बड़े पुण्यकर्म इकट्ठे होते हैं उसकी प्रीति इन वचनों के सुननेमें होती है—अन्यथा नहीं होती। ये वचन परमबोधके कारण हैं। वैराग्यप्रकरण के एकसहस्र पांचसौ श्लोकहैं। हे भारद्वाज ! इसप्रकार जब नारदजी ने कहा तब विश्वामित्र बोले कि हे ज्ञानवानों में श्रेष्ठ रामजी ! जितना कुछ जानने योग्य था सो तुममें है इससे अब तुम्हें जानना और नहीं रहा पर उसमें विश्राम पाने के लिये कुछ मार्जन करनाहै। जैसे अशुद्ध आदर्श की मलिनता दूर करने से मुख स्पष्ट भासता है तैसेही कुछ उपदेशकी तुमको अपेक्षा है। हे रामजी ! आपही के सदृश भगवान् व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी भी हुये हैं। वह भी बड़े बुद्धिमान् थे; उन्होंने जो जानने योग्यथा सो जानाथा पर विश्रामके निमित्त उनका भी अपेक्षार्थी सो विश्रामको पाकर शान्तिमान् भये। इतना सुन रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! शुकजी कैसे बुद्धिमान् और ज्ञानवान्थे और कैसी विश्रामकी अपेक्षा उनको थी और फिर कैसे उन्होंने विश्राम पाया सो कृपा करके कहो ? विश्वामित्रजी बोले; हे रामजी ! अंजनके पर्वतके समान और सूर्यके सदृश प्रकाशवान् भगवान् व्यासजी स्वर्ण के सिंहासनपर राजा दशरथ के यहां बैठे थे। उनके पुत्र शुकजी सब शास्त्रों के वेत्ताथे। और सत्यको सत्य और असत्यको असत्य जानतेथे। उन्हों ने शान्ति और परमानन्द रूपआत्मा में विश्राम न पाया तब उनको विकल्प उठा कि, जिसको मैंने जाना है सो न होगा क्योंकि; मुझको आनन्द नहीं भासता। यह संशय करके एक कालमें व्यास जी जो सुमेरुपर्वतकी कन्दरा में बैठेथे तिनके निकट आकर कहने लगे; हे भगवन् ! यह संसार सब भ्रमात्मक कहांसे भयाहै; इसकी निवृत्ति कैसे होगी और आगे कभी इसकी निवृत्ति भईहै सो कहो ? हे रामजी ! जब इसप्रकार शुकजी ने कहा तब विद्वद्शिरोमणि वेदव्यासजी ने तत्काल उपदेश किया। शुकजी ने कहा; हे भगवन् ! जो

कुछ तुम कहतेहो वह तो मैं आगे सेही जानताहूं; इससे मुझको शान्ति नहीं होती। हे रामजी! तब सर्वज्ञ वेदव्यासजी विचार करने लगे कि, इसको मेरे वचनसे शान्ति प्राप्त न होगी क्योंकि; पिता पुत्रका सम्बन्ध है। ऐसा विचार करके व्यासजी कहने लगे, हे पुत्र! मैं सर्वतत्त्वज्ञ नहीं तुम राजा जनकके निकट जाओ; वे सर्वतत्त्वज्ञ और शान्तात्मा हैं उनसे तुम्हारा मोह निवृत्तहोगा। तब शुकदेवजी वहांसे चलकर मिथिलानगरी में आये और राजा जनकके द्वारपर स्थित भये। द्वारपाल ने जाकर जनकजी से कहा कि, व्यासजी के पुत्र शुकजी खड़े हैं। राजाने जाना कि, इनको जिज्ञासाहै। इसलिये कहा खड़े रहनेदो इसी प्रकार द्वारपने जा कहा और सातदिन उन्हें खड़ेही बीतगये। तब राजाने फिर पूंछा कि, शुकजी खड़े हैं कि, चलेगये हैं द्वारपालने कहा, खड़े हैं। राजाने कहा आगे लेआओ। तब वे उनको आगे लेआये। उस दरवाज़े पर भी वे सातदिन खड़ेरहे। फिर राजाने पूंछा कि, शुकजी हैं? द्वारपने कहा कि, हां खड़ेहैं। राजनेकहा कि, अन्तःपुरमें लेआओ और नानाप्रकारके भोग भुगताओ। तब वे उन्हें अन्तःपुरमें लेगये। वहां स्त्रियों के पास भी वे सातदिन तक खड़ेरहे। फिर राजा ने द्वारपसे पूंछा कि, उसकी अब कैसी दशा है और आगे कैसी दशाथी? द्वारपने कहा कि, आगे वे निरादरसे न शोकवान् हुये थे और न अब भोगसे प्रसन्न हुये; वे तो इष्ट अनिष्ट में समान हैं। जैसे मन्दपवनसे मेरु चलायमान नहीं होता तैसेही यह बड़े भोगके निरादरसे चलायमान नहीं हुये। जैसे पपीहेको मेघके जलबिना नदी और तालआदि के जलकी इच्छा नहीं होती तैसेही उसको भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं है तब राजा ने कहा उन्हें यहांलेआओ और जब शुकजी आये तब राजा जनकने उठके खड़ेहो प्रणाम किया। फिर जब दोनों बैठगये तब राजा ने कहा कि, हे मुनीश्वर! तुम किस निमित्त आये हो; तुमको क्या वाञ्छाहै सो कहो कि उसकी प्राप्ति मैं करदेऊं? श्रीशुकजी बोले हे गुरो! यह संसारका आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे शान्तहोगा सो तुमकहो? इतनाकह विश्वामित्रजी बोले हे रामजी जब इसप्रकार शुकदेवजीने कहा तब जनकने यथाशास्त्र उपदेश जो कुछ व्यासने कहा था सोई कहा। यह सुन शुकजीनेकहा कि, भगवन्! जो कुछ तुम कहते हो सोई मेरे पिता भी कहते थे; सोई शास्त्र भी कहताहै और विचारसे मैं भी ऐसाही जानताहूं कि, यह संसार अपने चित्तमें उत्पन्नहोताहै और चित्तके निर्वेदहुये भ्रमकी निवृत्तिहोती है पर मुझको विश्राम नहीं प्राप्तहोता है? जनकजी बोले; हे मुनीश्वर! जो कुछ मैंने कहा और जो तुम जानतेहो इससे पृथक् उपाय न जानना और न कहनाही है। यह संसार चित्तके संवेदनसेहुआ है; जब चित्त फुरने से रहित होता है तब भ्रम निवृत्त होजाता है। आत्मतत्त्व नित्यशुद्ध, परमानन्दस्वरूप केवल चैतन्य है; जब उसका अभ्यास

करोगे तब तुम विश्रामपावोगे । तुम मुक्तिस्वरूपहो क्योंकि; तुम्हारा यत्न आत्माकी ओरहै; दृश्यकी ओरनहीं;इससे तुम बड़ेउदारात्माहो । हे मुनीश्वर! तुम मुझको व्यास जीसे अधिकजान मेरे पासआयेहो पर तुम मुझसेभी अधिकहो क्योंकि; हमारीचेष्टा तो बाहरसेदृष्टिआती हैऔर तुम्हारीचेष्टाबाहरसे कुछभीनहीं पर भीतरसे हमारीभीइच्छा नहींहै । इतनाकह विश्वामित्रजीबोले; हे रामजी! जबइसप्रकार राजाजनकने कहा तब शुकजीने निःसङ्ग निःप्रयत्न और निर्भय होकर सुमेरु पर्वतकी कन्दरामेंजाय दशसहस्र वर्षतक निर्विकल्पक समाधि की । जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही वेभी निर्वाण होगये । जैसे समुद्र में बुंदलीन होजाती है और जैसे सूर्य्य का प्रकाश सन्ध्याकाल में सूर्य्य के पास लीन होजाता है तैसेही कलना रूप कलङ्क को त्याग कर वे ब्रह्मपदको प्राप्त हुये ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेमुनिशुकनिर्वाणवर्णनन्नामप्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

विश्वामित्रजी बोले; हे राजादशरथ! जैसे शुकजी शुद्धबुद्धिवाले थे तैसेही रामजी भीहैं । जैसे शान्ति के निमित्त उन को कुछ मार्जन कर्त्तव्यथा तैसेही रामजी कोभी विश्रामके निमित्त कुछ मार्जन चाहिये क्योंकि; आवरण करनेवाले जो भोगहैं उनसे इन कीइच्छा निवृत्तभई है और जो कुछ जानने योग्यथा सोजाना है । अब हम कोई ऐसी युक्ति करेंगे जिससे इनको विश्रामहोगा जैसे शुकजीको थोड़े से मार्जन से शान्तिकी प्राप्तिहुईथी तैसेही इनकोभी होवेगी । हे राजन्! जैसे ज्ञानवान्को अध्यात्मक आदि दुःख स्पर्श नहींकरते तैसेही रामजी कोभी भोगकी इच्छा नहीं स्पर्श करती । भोगकी इच्छा सब को दीन करती है इसकाही नाम बन्धन है और भोगकी वासनाका क्षय करना इसकाही नाम मोक्षहै । ज्यों ज्यों भोगकी इच्छाकरताहै त्यों त्यों लघुहोताजाता है और ज्यों ज्यों भोगकी वासना क्षयहोती है त्यों त्यों गरिष्ठ होताहै । जबतक आत्मानन्द प्रकाशनहीं होता तबतक विषयकी वासना दूरनहीं होती और जब आत्मानन्द प्राप्तहोता है तब विषयवासना कोई नहीं रहती । जैसे मरुथल में बल्ली नहीं उत्पन्न होती तैसेही ज्ञानवान् को विषयवासना की उत्पत्ति नहींहोती । हे साधो! ज्ञानवान् किसी फलकी इच्छा से विषय भोगका त्याग नहीं करता स्वभावसेही उसकी विषय वासना चली जाती है । जैसे सूर्य्यके उदय हुये अन्धकार का अभाव होजाता है तैसेही रामजी को अब किसीभोग पदार्थकी इच्छानहीं रही । अब तो वे विदितवेद हुयेहैं आपही विश्रामकी इच्छारखते हैं इससे जो कहो वहीकरूं जिससे वे विश्रामवान् हों । हे राजन्! भगवान् वशिष्ठजी की युक्तिसे ये शान्त होंगे और आगेसे वही रघुवंश कुलके गुरु हैं । इनके उपदेश द्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये हैं । ये सर्व्वज्ञ और साक्षिरूप हैं और त्रिकाल और ज्ञान के सूर्य्य हैं । इनके उपदेश से

रामजी आत्मपदको प्राप्तहोंगे। हे वशिष्ठजी! जब हमारा तुम्हारा विरोध हुआथा और ब्रह्माजीने मन्दराचल पर्वतपर, जोऋषीश्वरों और अनेक वृक्षोंसे पूर्णथा, संसार वासना के नाश, हमारे तुम्हारे विरोधकी शान्ति और और जीवोंके कल्याण निमित्त जो उपदेश कियाथा वह तुमको स्मरण है? अब वहीउपदेश तुम रामजीको करो क्योंकि, ये भी निर्मल ज्ञानपात्रहैं। ज्ञान विज्ञान और निर्मलयुक्ति वहीहै जो शुद्धपात्रमें अर्पणहो और पात्र विना उपदेश नहीं सोहता। जिसमें शिष्यभाव और विरक्तता नहो ऐसे अपात्र मूर्ख को उपदेश करना व्यर्थ है। कदाचित् विरक्त हो और शिष्यभावना नहीं तौभी उपदेश न करना चाहिये। दोनोंसे सम्पन्नकोही उपदेश करना चाहिये। पात्र विना उपदेश व्यर्थ है अर्थात् अपवित्र होजाता है। जैसे गऊकादूध महापवित्र है पर श्वान की त्वचामें डारिये तो अपवित्र होजाता है तैसेही अपात्रको उपदेश करना व्यर्थ है। हे मुनीश्वर! जोशिष्य वैराग्यसे सम्पन्न और उदारआत्माहै वहतुम्हारे उपदेशकेयोग्यहै और तुम वीतराग और भयक्रोधसेरहित परमशान्तरूपहो, इसलिये तुम्हारे उपदेशके पात्र रामजी हैं। इतनाकहकर बाल्मीकिजीबोले कि, जब इसप्रकार विश्वामित्रजी ने कहा तब नारद और व्यासादिक ने साधुसाधु कहा अर्थात् भलाभलाकहा कि ऐसेही यथार्थ है उससमय राजादशरथकेपास बहुतप्रकारकेसाधु बैठेहुये थे। ब्रह्माजीकेपुत्र वशिष्ठ जीनेकहा कि, हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने आज्ञा कीहै वह हमनेमानी। ऐसी किसीकी सामर्थ्यनहीं कि, सन्तकीआज्ञा निवारणकरे। हे साधो! राजादशरथके जितने पुत्रहैं उनसबके हृदयमें जो अज्ञानरूपीतमहै वह मैं ज्ञानरूपीसूर्यसे ऐसे निवारण करूंगा जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकार दूरहोताहै। हे मुनीश्वर! जो कुछ ब्रह्माजी ने उपदेश कियाथा वह मुझको अखण्डस्मरणहै मैं वही उपदेशकरूंगा जिससेरामजी निःसंशयपनको प्राप्तहोंगे। इतनाकहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार वशिष्ठजी ने विश्वामित्रसे कह रामजी से मोक्षका उपाय कहनेलगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेमुनिविश्वामित्रोपदेशोनामद्वितीयस्सर्गः॥ २॥

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! ब्रह्माजी ने मुझको जीवोंके कल्याणके निमित्त उपदेश कियाथा वह मुझे भलेप्रकार स्मरणहै और वही अब मैं तुमसे कहताहूं। इतनासुन श्रीरामजी ने पूछा; हे भगवन्! कुछ प्रश्न करनेका अवसरआया है। एकसंशय मुझको है सो दूरकरो। मोक्ष उपाय जो संहिताकहते हो सो तो तुम सब कहोगे परन्तु यह जो तुमने कहा कि, शुकदेवजी विदेह मुक्त होगये तो भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञथे सो विदेहमुक्त क्यों न हुये? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जैसे सूर्यके किरणकेसाथ त्रसरेणु उड़ती देखपड़ती हैं और उनकी संख्या कुछ नहीं होती तैसेही परमसूर्य के संवेदन रूपी किरणमें त्रिलोकीरूपी असंख्य त्रसरेणु हैं अनन्त होकर मिटजाते हैं और

अनन्तहोते हैं। अनन्त त्रिलोकी ब्रह्म समुद्रमें हैं उनकी संख्या कुछ नहीं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे जो व्यतीतहोगये हैं और आगे जो होवेंगे उनकी कितनी संख्या है? वर्त्तमानको तो मैं जानताहूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनन्त कोटि त्रिलोकीके गण उपजे हैं और मिटगये हैं। कितनेई होतेहैं और कितनेई होवेंगे इनकी कुछसंख्या नहीं है क्योंकि, जीव असंख्य हैं और जीवप्रति अपनी २ सृष्टिहै। जब ये जीव मृतक होजाते हैं तब उसी स्थानमें अपने अन्तवाहक संकल्परूपीपुर में इनका बन्धभासता है और उसीस्थानमें परलोक भास आता है पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश पंचभूत भासता है और नानाप्रकारकी वासनाके अनुसार अपनी २ सृष्टि भासआती है। फिर जब वहांसे मृतक होता है तब भी वही सृष्टि भास आती है। नाम रूप संयुक्त वही जाग्रत् सत्य होकर भास आती है। फिर जब वहांसे मरता है तब इस पंचभूत सृष्टिका अभाव होजाताहै। और २ भासती है और वहां के जो जीव होते हैं उनको भी इसीप्रकार अनुभव होता है। इसीप्रकार एक २ जीवकी सृष्टि होती है और मिटजाती है उसकी संख्या कुछ नहीं। तब ब्रह्माकी सृष्टिकी संख्या कैसे हो? जैसे मनुष्य घूमता है और उसको सर्वपदार्थ भ्रमसे दृष्टि आते हैं; जैसे नौका में बैठेहुये नदीके वृक्ष चलते दृष्टि आते हैं; जैसे नेत्रके दोषसे आकाशमें मोतीकी माला दृष्टि आती है और जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है तैसेही जीवको भ्रमसे यह लोक परलोक भासता है; वास्तवमें जगत् कुछ उपजाही नहीं, एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है तिसमें द्वैतभ्रम अविद्यासे भासता है। जैसे बालकको अपनी परछाहीं में वैताल भासता है और भयपाताहै तैसेही अज्ञानीको अपनीकल्पना जगत्रूपहोकर भासती है। हे रामजी! व्यासजीको बत्तीसआकारसे मैंने देखाहै। उनमें दशएक आकार और क्रिया और निश्चयरूपहैं; दशसमसमानहुयेहैं और बारहआकारक्रिया और चेष्टामें विलक्षणहुयेहैं। जैसे समुद्रमेंतरंगहोती हैं तो उनमें कईसम औरकई विलक्षण उपजती हैं तैसेही व्यासहुयेहैं। सम जो दशहुयेहैं उनमें दशव्यास यही हैं और आगेभी आठबेर यही होंगे और महाभारत कहेंगे। नवीं बेर ब्रह्माहोकर विदेहमुक्तहोंगे। हम और बाल्मीकि, भृगु और बृहस्पतिका पिता अङ्गिरा इत्यादि भी मुक्तहोवेंगे। हे रामजी! एक सम होते हैं और एक विलक्षण होते हैं। मनुष्य, देवता, तिर्य्यगादिकजीव कईबेर समानहोते और कितनेबेर विलक्षण होते हैं। कितनेजीव समान आकार आगेसे कुल क्रियासहित होतेहैं और कितनेसंकल्पसे उड़ते फिरते हैं। आना, जाना, जीना, मरना स्वप्नभ्रमकी भांति दीखताहै पर वास्तवमें न कोई आताहै, न जाता है, न जन्मताहै, न मरता है। यह भ्रम अज्ञानसे भासता है विचारकियेसे कुछ नहीं भासता। जैसे कदलीकाखंभ बड़ा पुष्ट दीखता है पर यदि खोदके देखो तो कुछ सार नहीं निकलता तैसेही जगत् भ्रम

अविचारसे सिद्धहै; विचारकिये से कुछ नहीं भासता । हे रामजी! जो पुरुष आत्मसत्तामें जगा है उसको द्वैतभ्रम नहीं भासता । वह आत्मदर्शी, सदा शांत आत्मा परमानन्द स्वरूप और इच्छासे रहितहै । जैसे जीवन्मुक्तको कोई चला नहीं सक्ता तैसेही व्यासदेवजी को सदेहमुक्ति और विदेहमुक्तिकी कुछ इच्छा नहीं वे तो सदा अद्वैत रूपहैं । हे रामजी! जीवन्मुक्तको सर्वत्र सर्वात्मा पूर्णभासता है और स्वस्वरूपहै । वह ता स्वरूप, सार, शांतिरूप अमृतसे पूर्ण और निर्वाण में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेअसंख्यसृष्टिप्रतिपादनन्नामतृतीयस्सर्गः॥ ३॥

इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति में कुछ भेद नहीं है । जैसे जल स्थिर है तौ भी जल है और तरंग है तौ भी जलहै तैसेही जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिमें कुछ भेद नहीं है । हे रामजी! जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का अनुभव तुमको प्रत्यक्ष नहीं भासता क्योंकि; स्वसंवेद है और उनमें जो भेद भासता है सो असम्यक्दर्शी को भासता है ज्ञानवान्को कुछ भेद नहीं भासता है । हे मननकारियों में श्रेष्ठ रामजी! जैसे वायु स्पंदरूप होती है तौभी वायुहै और निस्स्पंदरूप होती है तौ भी वायुहै निश्चय करके कुछ भेद नहीं पर और जीवको स्पंदहोती है तो भासती और निस्स्पंदहोती है तोनहीं भासती;तैसेही ज्ञानवान्पुरुषको जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिमें कुछ भेद नहीं—वह सदा अद्वैत और इच्छासे रहितहै । जब जीवको उसका शरीर भासता है तब जीवन्मुक्ति कहते हैं और जब शरीर अदृश्यहोता है तब विदेहमुक्ति कहते हैं पर उसको दोनोंतुल्यहैं । हे रामजी! अब प्रकृत प्रसंग को जो श्रवणका भूषणहै सुनिये । जो कुछ सिद्धहोताहै । सोअपने पुरुषार्थ से सिद्धहोताहै । पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता । लोग जो कहते हैं कि, दैवकरेगा सो होगा यह मूर्खता है । चन्द्रमा जो हृदयको शीतल और उल्लासकर्त्ता भासताहै इसमें यह शीतलता पुरुषार्थसे हुई है । हे रामजी! जिस अर्थ की प्रार्थना और यत्नकरे और उस से फिरे नहीं तो अविस्मयकर जरूर पाताहै । पुरुषप्रयत्न किसका नामहै सो सुनिये । सन्तजन और सत्यशास्त्रकेउपदेशरूप उपायसे उसकेअनुसार चित्तका विचरना पुरुषार्थप्रयत्नहै और उससे इतर जो चेष्टाहै । उसका नाम उन्मत्त चेष्टाहै । जिस निमित्त यत्नकरताहै सोई पाताहै । एकजीव पुरुषार्थ प्रयत्नकरके इन्द्रकी पदवी पाकर त्रिलोकीका पतिहो सिंहासनपर आरूढ़हुआ । हे रामचन्द्र! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य सम्पत्ति है सो सम्पद्रूप होकर फुरती है और सोई अपने पुरुषार्थ से ब्रह्माके पदको प्राप्तभई है । तिसे देख जिसको कुछ सिद्धता प्राप्तहुई है सो अपने पुरुषार्थसेही हुई है । केवल चैतन्य आत्मतत्त्वहै उसमें चित्तसंवेदन स्पन्द रूपहै यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ से गरुड़पर आरूढ़होकर विष्णुरूप होताहै और पुरुषोत्तमकहाताहै और यही चैतन्यसंवेदन अपने पुरुषार्थ से रुद्ररूपहो अर्द्धंग

में पार्वती, मस्तक में चन्द्रमा और नीलकंठ परमशांतिरूपको धारण करताहै इससे जो कुछ सिद्धहोता है सो पुरुषार्थसेही होताहै। हे रामजी! पुरुषार्थ से सुमेरुका चूर्ण किया चाहे तो वहभी करसक्ताहै। यदि पूर्व दिनमें दुष्कृत कियाहो और अगले दिनमें सुकृत करे तो दुष्कृत दूरहोजाताहै। जो अपने हाथ से चरणामृतभी ले नहीं सक्ता वह यदि पुरुषार्थ करे तो वही पृथ्वी को खंड खंड करने को समर्थ होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थोपक्रमोनामचतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! चित जो कुछ वांछा करता है और शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता सो सुख न पावेगा क्योंकि उसकी उन्मत्त चेष्टाहै। पुरुषार्थभी दो प्रकारकेहैं—एक शास्त्रके अनुसार और दूसरा शास्त्र विरुद्धहै। जो जो शास्त्रकोत्याग करके अपनी इच्छाके अनुसार विचरताहै सो सिद्धता न पावेगा और जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करेगा वह सिद्धताको प्राप्त होगा कदाचित् दुःख न पावेगा। अनुभवसे स्मरण होताहै और स्मरणसे अनुभव होताहै यह दोनों इसहीं से होते हैं। दैव तो कुछ न हुआ। हे रामजी! और दैव कोईनहीं; इसका कियाही इसीको प्राप्त होता है परन्तु जो बलिष्ठहोताहै उसीके अनुसार विचरता है। जिसके पूर्व्व के संस्कारबली होतेहैं उसीकी जय होती है और जो विद्यमान पुरुषार्थ बलीहोताहै तब उसको जीत लेते हैं। जैसे एक पुरुषके दो पुत्रहैं तो वह उनदोनोंको लड़ाताहै पर दोनोंमें से जो बली होताहै उसीकी जय होती है परन्तु दोनों उसी के हैं तैसेही दोनों कर्म्म इसके हैं जिसका पूर्व्वका संस्कार बली होता है उसीकी जयहोती है। हे रामजी! यह जीव जो सत्संग करता है और सत्शास्त्र को भी विचारता है पर फिर भी पक्षी के समान जो संसार वृक्षकी ओर उड़ताहै तो पूर्व्वका संस्कार बली है उससे स्थिर नहीं होसक्ता। ऐसा जानकर पुरुष प्रयत्नका त्याग न करे। पूर्व्व के संस्कार से अन्यथा नहीं होता परन्तु पूर्व्वका संस्कार बलीभी हो। और सत्संग करे और सत्शास्त्रकाभी दृढ़अभ्यासहो तो पूर्व्व के संस्कारको पुरुषप्रयत्नसे जीतलेताहै। जैसे पूर्व्व के संस्कार में दुष्कृत किया है और आगे सुकृतकरे तो अगले का अभाव होजाता है सो पुरुष प्रयत्नसेही होताहै। पुरुषार्थ क्याहै और उससे क्यासिद्ध होताहै सो श्रवण करिये। ज्ञानवान् जो सन्तहैं और सत्शास्त्र जो ब्रह्मविद्या है उसके अनुसार प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थहै और पुरुषार्थसे पानेयोग्य आत्माहै जिससे संसारसमुद्रसे पार होताहै। हे रामजी! जो कुछ सिद्ध होताहै सो अपने पुरुषार्थसेही सिद्ध होताहै—दूसरा कोई दैव नहीं। जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ को त्यागकर कहता है कि, जो कुछ करेगा सो दैव करेगा वह मनुष्योंमें गर्दभहै उसका संगकरना दुःखका कारण है। मनुष्यको प्रथम तो यह करनां चाहिये कि, अपने वर्णाश्रमके शुभआचारों को ग्रहणकरे और

अशुभका त्यागकरे। फिर सन्तोंका संग और सत्शास्त्रों का विचारना और उनको विचारकर अपने गुण दोषकोभी विचार करना चाहिये कि, दिन और रात्रिमें क्याशुभ अशुभ कियाहै। आगे फिर गुण और दोषोंकाभी साक्षीभूत होकर जो सन्तोष, धैर्य्य विराग, विचार और अभ्यास आदि गुणहैं उनको बढ़ावे और जो दोष विपरीत हैं उनका त्याग करे। जब ऐसे पुरुषार्थ को अंगीकार करेगा तब परमानन्दरूप आत्मतत्त्वको पावेगा। इससे हे रामजी! जैसे वनका घायलहुआ मृग घास, तृण और पत्तों को रसीला जानके खाताहै तैसेही स्त्री, पुत्र, बान्धव, धनादि में मग्न न होनाचाहिये। इनसे विरक्तहोना और दांतोंसे दांतों को चबाकर संसार समुद्रके पारहोनेका यत्नकरना चाहिये। जैसे केशरी सिंह बलकरके पिंजर में से निकलजाताहै तैसेही निकलजाना इसीका नाम पुरुषार्थ है। हे रामजी! जिसको कुछ सिद्धताकी प्राप्तिहुईहै उसे पुरुषार्थ सेही हुई है, पुरुषार्थ विना नहीं होती। जैसे प्रकाश विना किसी पदार्थ का ज्ञाननहीं होता। जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्यागदियाहै और दैवके आश्रयहो यहसमझता है कि, हमारा दैव कल्याण करेगा वह कभी सिद्ध न होगा। जैसे पत्थरसेतेल निकाला चाहे तो नहीं निकलता तैसेही उसका कल्याण दैवसे न होगा। इसलिये हे रामजी! तुम दैवका आश्रय त्यागकर अपने पुरुषार्थका आश्रय करो। जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागाहै उसको सुन्दरकांति और लक्ष्मी त्यागजाती है। जैसे वसन्तऋतु की मंजरी वसन्तऋतुके गयेसे विरसहोजातीहै तैसेही उनकी कांति लघुहोजाती है। जिस पुरुष ने ऐसा निश्चय कियाहै कि, हमारा पालनेवाला दैवहै वह पुरुष ऐसाहै जैसे कोई अपनी भुजाको सर्पजान भयखाके दौड़ताहै और भयपाताहै और पुरुषार्थ यहहै कि, सन्तकासंग औरसत्शास्त्रोंका विचारकरके उनके अनुसार विचरे। जो उनको त्यागके अपनी इच्छाके अनुसार विचरतेहैं सो सुख और सिद्धता न पावेंगे और जो शास्त्रकेअनुसार विचरते हैं वह इसलोक और परलोकमें सुख और सिद्धतापावेंगे। इससे संसाररूपी जालमें न गिरनाचाहिये पुरुषार्थ वही है कि, सन्तजनों का संगकरना और बोधरूपी कमल और विचाररूपी स्याहीसे सत्शास्त्रोंके अर्थ हृदयरूपी पत्रपै लिखना जब ऐसे पुरुषार्थ करके लिखोगे तब संसाररूपी जालमें न गिरोगे। हे रामजी! जैसे यह पहले नियतहुआहै कि,जो पटहै सो पटहै; जो घटहै सो घटहीहै; जो घटहै सो पट नहीं और जो पटहै सो घट नहीं तैसेही यहभी नियतहुआ है कि, अपने पुरुषार्थ विना परमपदकी प्राप्ति नहींहोती। हे रामजी! जो संतोंकी संगतिकरताहै औरसत्शास्त्रभी विचारताहै पर उनके अर्थमें पुरुषार्थ नहींकरता उसको सिद्धता नहीं प्राप्त होती। जैसे कोई अमृतके निकट बैठाहो तो पानकियेविना अमर नहीं होता तैसेही अभ्यास कियेविना अमर नहीं होता और सिद्धताभी प्राप्तनहींहोती। हे रामजी! अज्ञानीजीवअपनाजन्म व्यर्थखोते हैं।

जबबालकहोते तब मूढ़अवस्थामें लीनरहते; युवावस्थामें विकारको सेवते हैंऔरजरामें जर्जरीभूत होते हैं। इसीप्रकार जीना व्यर्थ खोतेहैं। और जो अपनापुरुषार्थ त्यागकर के दैवका आश्रय लेते हैं सो अपनेहन्ताहोते हैं वहसुख न पावेंगे। हेरामजी! जोपुरुष व्यवहार और परमार्थमें आलसीहोके और परमार्थको त्यागके मूढ़होरहे हैं सो दीन होकर पशुओं केसदृश दुःखको प्राप्तहुयेहैं। यह मैंने विचारकरके देखा है। इससे तुम पुरुषार्थका आश्रयकरो और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी आदर्शकेद्वारा अपने गुण कर और दोषको देखके दोषका त्यागकरो और शास्त्रोंके सिद्धांतोंपर अभ्यासकरो। जब दृढ़ अभ्यास करोगे तब शीघ्रही आनन्दवान् होगे। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सायङ्कालका समयहुआ तो सब सभा स्नानके निमित्त उठके खड़ीहुई और परस्पर नमस्कार करके अपने २ घरकोगये और सूर्य्यकी किरणके निकलतही सब आ फिर स्थिरभये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थवर्णनन्नामपञ्चमस्सर्गः ॥ ५ ॥

वशिष्ठजी बोले हेरामजी! इसकाजोपूर्वका किया पुरुषार्थहै उसीकानामदैवहै औरदैव कोईनहीं। जब यह सत्संग और सत्शास्त्रका विचार पुरुषार्थसेकरे तबपूर्वकेसंस्कार को जीतलेताहै। जिसइष्टपुरुषके पानेका यह शास्त्रद्वारा यत्नकरेगा उसको अवश्यमेव अपने पुरुषार्थसे पावेगा अन्यथा कुछनहीं होता, नहुआहै और न होगा। पूर्वजोकोई पापकियाहोताहै उसका जबफलदुःखपाताहै तोमूर्खकहताहै कि, हादैव! हादैव! हाकष्ट! हाकष्ट! हे रामजी! इसका जो पूर्वका पुरुषार्थ है उसीकानाम दैवहै औरदैवकोई नहीं! जो कोई दैव कल्पते हैं सो मूर्खहैं। जोपूर्वके जन्ममें सुकृतकर आयाहै वही सुकृतसुखहोके दिखाईदेताहै और जिसकापूर्वका सुकृत बली होताहै उसहीकी जयहोती है। जोपूर्वका दुष्कृत बलीहोताहै और शुभका पुरुषार्थ करताहै और सत्संग और सत्शास्त्रको भी विचारता, सुनता और करताहै तो पूर्वके संस्कारको जीतलेताहै। जैसे पहिलेदिन पाप कियाहो और दूसरेदिन बड़ा पुण्यकरेतो पूर्वकापाप निवृत्तहोजाताहै तैसेही जबयहांदृढ़ पुरुषार्थकरे तो पूर्वके संस्कारको जीतलेताहै। इससे जो कुछ सिद्धहोताहै सो पुरुषार्थ सेही सिद्धहोता है। एकत्र भावसे प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थ है। जो एकत्रभावसे यत्न करेगा उसको अवश्यमेव प्राप्त होगा और जो पुरुष और दैवको जानके अपना पुरुषार्थ त्याग बैठेगा सो दुःखपाकर शांतिवान् कभी न होगा। हे रामजी! मिथ्या दैवके अर्थ को त्यागके तुम अपने पुरुषार्थ को अङ्गीकारकरो। सन्तजनों और सत् शास्त्रों के वचनों और युक्ति सहित यत्न और अभ्यास करके आत्मपदको प्राप्त होना इसीका नाम पुरुषार्थ है। जैसे प्रकाश से पदार्थका ज्ञानहोता है तैसेही पुरुषार्थ से आत्मपदकी प्राप्तिहोतीहै। जो पूर्व कर्मानुसार बड़ापापी होताहै तोयहां दृढ़पुरुषार्थ

करनेसे उसको जीतलेताहै। जैसे बड़ेमेघको पवन नाशकरती है और जैसे वर्षदिनके पके खेतको बरफ नाशकरदेती है तैसेही पुरुषका पूर्वसंस्कार प्रयत्नसे नाशहोता है। हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि को तीक्ष्ण करके संसार समुद्र तरनेका पुरुषार्थ कियाहै। जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहींकी और पुरुषार्थको त्यागबैठाहै वहपुरुष नीचसे नीचगतिको पावैगा जे श्रेष्ठपुरुषहैं वे अपने पुरुषार्थसे परमानन्द पदको पावैंगे; जिसके पानेसे फिर दुःखी न होंगे। जो देखने में दीनहोताहै वहभी सत्संगति और सत्शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करताहै तो उत्तमपदवीको प्राप्तहोता दीखताहै। हे रामजी! जिस पुरुषने पुरुष प्रयत्न कियाहै उसको सबसम्पदाआप्राप्तहोती हैं और परमानन्दसे पूर्णरहताहै। जैसे समुद्र रत्नसे पूर्ण है तैसेही वहभी परमानन्दसे पूर्णहोताहै। इससे जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे अपने पुरुषार्थद्वारा संसारके बन्धनसे निकलजाते हैं—जैसे केशरीसिंह अपने बलसे पिंजरेमें से निकलजाताहै। हे रामजी! यह पुरुष और कुछन करे तो यहतो अवश्य करे कि, अपने वर्णाश्रमके अनुसार विचरे और सार पुरुषार्थ करे। जब सन्त और सत्यशास्त्रके आश्रयहोके उसके अनुसार पुरुषार्थ करेगा तब सबबन्धनसे मुक्तहोगा। जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका त्याग कियाहै और किसी और देवको मानके कहता कि, वह मेरा कल्याण करेगा सो जन्म मरणको प्राप्तहोकर शान्तिवान् कभी न होगा हेरामजी! इसजीवको संसाररूपी विशूचिका रोगलगाहै। उसको दूरकरनेका उपाय मैं कहताहूं। सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अर्थ में दृढ़ भावना करके जो कुछ सुना है उसका वारंवार अभ्यास करके और सब कल्पना त्याग के एकान्त होकर उसका चिन्तवन करे तब परमपदकी प्राप्तिहोगी और द्वैतभ्रम निवृत्त होकर अद्वैतरूप भासेगा इसीका नाम पुरुषार्थ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पुरुषार्थ से इसको अध्यात्मक आदि ताप आ प्राप्तहोते हैं उससे शान्ति नहीं पाता। तुमभी रोगी न होना अपने पुरुषार्थ द्वारा जन्म मरणके बन्धनसे मुक्तहोना और कोई देव मुक्ति नहीं करेगा; अपने पुरुषार्थही द्वारा संसार बन्धन ते मुक्ताहोताहै। जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है और किसी और देवको मानकर उसमें परायण हुआहै उसका धर्म, अर्थ और काम सभी नष्टहोजाता है और नीचसे नीचगति को प्राप्तहोताहै। हे रामजी! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आप और वास्तवरूप है उसके आश्रय जो आदिचित्त संवेदन स्फूर्ति है सो अहं ममत्व संवेदन होके फुरने लगती है। इन्द्रियां भी अहंस्फूर्ति है जब यह स्फुर्ना सन्तों और शास्त्रोंके अनुसारहो तब पुरुष परम शुद्धताको प्राप्तहोताहै और

जो शास्त्रके अनुसार न हो तो बासनाके अनुसार भाव अभावरूप भ्रमजाल में पड़ा घटी यंत्र की नाईं भटककर शान्तिवान् कभी नहीं होता। हे रामजी ! जिस किसीको सिद्धता प्राप्तहुईहै अपने पुरुषार्थसेही हुईहै। विना पुरुषार्थ सिद्धताको प्राप्त न होगा। जब किसी पदार्थ को ग्रहण करना होताहै तो भुजा पसारे सेही ग्रहण करना होता है और जो किसी देशको जानाचाहै तो चलने सेही पहुँचताहै अन्यथा नहीं। इस से पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कहताहै कि, जो दैव करेगा सो होगा वह मूर्ख है। हे रामजी! और दैव कोई नहींहै। इस पुरुषार्थकाही नाम दैवहै। यह दैव शब्द मूर्खों का प्रचार कियाहुआहै कि, जब किसी कष्टसे दुःख पाते हैं तो कहतेहैं कि दैवका किया है। पर कोई दैवनहीं है। हे रामचन्द्रजी! जो अपना पुरुषार्थ त्याग के दैवके आश्रय होरहेगा वह कभी सिद्धताको न प्राप्तहोगा क्योंकि; अपने पुरुषार्थ बिना सिद्धता किसीको प्राप्त नहीं होती। जब बृहस्पतिने दृढ़पुरुषार्थ किया तब सर्व देवताओंके राजा इन्द्र के गुरू हुये और शुक्रजी अपने पुरुषार्थ द्वारा सब दैत्यों के गुरू हुये हैं एवम् और और जो समान जीव हैं उनमें जिस पुरुषने प्रयत्न किया है सो पुरुष उत्तम हुआ है। जिसको जितनी सिद्धता प्राप्त हुई है अपने पुरुषार्थ सेही हुई है और जिस पुरुषने सन्तों और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया उसका बड़ा राज्य, प्रजा, धन और विभूति मेरे देखतेही देखते क्षीण होगई और नरक में जला। जिस से कुछ अर्थ सिद्धहो उसका नाम पुरुषार्थहै और जिससे अनर्थ की प्राप्ति हो उसका नाम अपुरुषार्थ है। हे रामजी! मनुष्यको सत्शास्त्रों और सन्तसंग से शुभ गुणोंको पुष्ट करके दया, धैर्य्य, सन्तोष और वैराग्य का अभ्यास करना चाहिये। जैसे बड़े तालसे मेघ पुष्ट होताहै और फिर वर्षा करके तालको पुष्ट करता है तैसेही शुभ गुणोंसे बुद्धि पुष्ट होती है और पुष्ट बुद्धिसे शुभगुण पुष्ट होते हैं। हे रामजी! जो बालक अवस्था से अभ्यास किये होताहै उसको शुद्धता प्राप्तहोतीहै अर्थात् दृढ़ अभ्यास विना शुद्धता प्राप्त नहीं होती। जो किसी देश अथवा तीर्थ को जाना चाहे तो मार्ग में निरालस होके चलाजावे तभी जा पहुँचेगा, जब भोजन करेगा तभी क्षुधा निवृत्त होगी—अन्यथा न होगी और जब मुखमें जिह्वा शुद्धहोगी तभी पाठ स्पष्ट होगा—गूंग से पाठ नहीं होता। इसलिये जो कुछ कार्य्य सिद्ध होताहै सो अपने पुरुषार्थ सेही सिद्ध होता है; चुप होरहनेसे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता। यहां सब गुरु बैठे हैं इनसे पूंछदेखो; आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो और जो मुझ से पूंछो तो मैं सब शास्त्रोंका सिद्धान्त कहताहूं जिससे सिद्धता को प्राप्तहोगे। हे रामजी! सन्तों अर्थात् ज्ञानवान् पुरुषों और सत्शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मविद्याके अनुसार संवेदन, मन और इन्द्रियों का विचार रखना और जो इनसे विरुद्धहो उन

को न करना। इससे तुमको संसारका राग द्वेष स्पर्श न करेगा और सब से निर्लेप रहोगे—जैसेजलसे कमल निर्लेप रहताहै तैसेही तुमभी निर्लेप रहोगे। हे रामजी! जिस पुरुषसे शान्ति प्राप्तिहो उसकी भली प्रकार सेवा करनी चाहिये क्योंकि; उसका बड़ा उपकार है कि, संसारसमुद्रसे निकाललेताहै। हे रामजी! सन्तजन और सत्शास्त्रभी वही हैं जिनके विचार और संगतिसे संसारसे चित्त उसकीओरहो और मोक्षका उपाय वही है जिससे और सब कल्पनाको त्यागके अपने पुरुषार्थको अंगीकार करे जिससे जन्म मरणका भय निवृत्त होजावे। हे रामजी! जिस वस्तुकी जीव वांछाकरताहै और उसके निमित्त दृढ़ पुरुषार्थ करता तो अवश्यमेव वह उसको पाताहै। बड़ेतेज और विभूतिसे सम्पन्न जो तुमको दृष्टि आता और सुनाजाताहै वह अपने पुरुषार्थसेही भया है और जो महानष्ट सर्प, कीट, आदिक तुमको दृष्टिआते हैं उन्होंने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है तभी ऐसे हुये हैं। हे रामजी! अपने पुरुषार्थ का आश्रयकरो नहीं तो सर्प, कीटादिक नीच योनि को प्राप्तहोगे। जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्यागा और किसी दैवका आश्रय लिया है वह महामूर्ख है क्योंकि; यह वार्त्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है कि, अपने उद्यम किये विना किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती तो परमार्थकी प्राप्ति कैसे हो। इससे परमपद पानेके निमित्त दैवको त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार यत्नकरो तब जे दुःख हैं ते मुक्त होवेंगे। हे रामजी! जनार्दन विष्णुजी अवतार धारणकरके दैत्योंको मारतेहैं और २ चेष्टा भी करते हैं परन्तु उनको पापका स्पर्श नहीं होता क्योंकि; वे अपने पुरुषार्थ सेही अक्षयपद को प्राप्त हुयेहैं। इससे तुमभी पुरुषार्थका आश्रय करो और संसारसमुद्रको तरजावो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थोपमावर्णनन्नामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! यह जो शब्द है कि "दैव हमारी रक्षाकरेगा" सो किसी मूर्ख की कल्पनाहै। हमको तो दैवका आकार कोई दृष्टि नहीं आता और न कोई दैवका कालही जान पड़ताहै और न दैव कुछ करताहीहै। मूर्ख लोग दैव दैव कहते हैं पर दैव कोई नहींहै इसका पूर्वका कर्महीं दैवहै। हे रामजी! जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका त्याग कियाहै और दैव परायण हुआहै कि, वह हमारा कल्याण करेगा वह मूर्खहै क्योंकि; अग्निमें जापड़े और दैव निकालले तब जानिये कि, कोई दैवभी है, पर सोतो नहींहोता और स्नान दान भोजन आदिक त्यागकरके चुपहोबैठे और आपही दैवकरजावे सोभी कियेविना नहींहोता इस से और दैव कोई नहीं; अपनापुरुषार्थही कल्याण कर्त्ताहै। हे रामजी! जीवका किया कुछ नहीं होता और दैवही करनेवाला होता तो शास्त्र और गुरुका उपदेशभी न होता। इससे स्पष्ट है कि, सत्शास्त्रके उपदेश से अपने पुरुषार्थद्वारा इसको वांछितपदवी प्राप्त होती है। इससे

और जो कोई दैव शब्द है सो व्यर्थ है। इस भ्रमको त्यागकरके सन्तों और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ कर तब दुःखसे मुक्त होगा। हे रामजी! और दैव कोई नहीं है; इसका पुरुषार्थ जो स्पंद है सोई दैव है। हे रामजी! जो कोई और दैव करनेवाला होता तो जब जीव शरीरको त्यागताहै और शरीर नाशहोजाताहै—कुछ क्रिया नहीं होती क्योंकि; चेष्टा करनेवाला त्याग जाताहै तो सभी शरीरसे चेष्टा कराता सोतो चेष्टा कुछ नहीं होती; इससे जानाजाता है कि, दैव शब्द व्यर्थ है। हे रामजी! पुरुषार्थ की वार्त्ता अज्ञानी जीवकोभी प्रत्यक्षहै कि, अपने पुरुषार्थ विना कुछ नहींहोता। गोपालभी जानताहै कि, मैं गौओं को न चराऊं तो भूखीही रहेंगी। इससे वह और दैवके आश्रय नहीं बैठ रहता आपही चरा लेआताहै। हे रामजी! दैवकी कल्पना भ्रमसेकरते हैं। हमको तो दैव कोई दृष्टि नहीं आता और हाथ, पांव, शरीरभी दैव का कोई दृष्टि नहीं आता—अपने पुरुषार्थसेही सिद्धता दृष्टि आती है और जो कोई आकार से रहित दैव कल्पिये तोभी नहीं बनता क्योंकि; निराकार और साकार का संयोग कैसेहो। हे रामजी! और दैव कोई नहीं है केवल अपना पुरुषार्थही दैव रूप है। जो राजा ऋद्धि—सिद्धि संयुक्त भासता है सोभी अपने पुरुषार्थ से हुआ है। हे रामजी! ये जो विश्वामित्रहैं; इन्होंने दैव शब्द दूरही से त्याग दियाहै। ये भी अपने पुरुषार्थसेही क्षत्रीसे ब्राह्मण हुयेहैं और और जो बड़े २ विभूतिमान् हुये हैं सो भी अपने पुरुषार्थसेही दृष्टि आते हैं। हे रामजी! जो दैव पढ़ेविना पण्डितकरे तो जानिये कि, दैवने किया; पर पढ़ विना तो पण्डित नहीं होता और जो अज्ञानी से ज्ञानवान् होते हैं सोभी अपने पुरुषार्थसेही होते हैं। इससे और दैव कोई नहीं। मिथ्याभ्रम को त्याग कर सन्तजनों और सच्छास्त्रों के अनुसार संसार समुद्र तरने का प्रयत्न करो। तुम्हारे पुरुषार्थ विना और दैवकोई नहीं। जो और दैव होता तो बहुत बेर क्रिया बलभी अपनी क्रियाको त्याग के सो रहता कि, आप दैवही करेगा परऐसे तो कोई नहीं करता। इस से अपने पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता और जो कुछ इसका किया न होता तो पापकरनेवाले नरक न जाते और पुण्य करनेवाले स्वर्ग न जाते परन्तु पापकरनेवाले नरकमेंजाते और पुण्य करनेवाले स्वर्गमें जाते हैं; इससे जो कुछ प्राप्त होता है सो अपने पुरुषार्थसे ही होता है। हे रामजी! जो कोई ऐसा कहे कि, और कोई दैव करता है तो उसका शिर काटिये जो वह दैवके आश्रय जीतारहे तो जानिये कि, कोईदैवहै; पर सोतो जीता कोई भी नहीं। इससे दैवशब्दको मिथ्याभ्रम जानके संतजनों और सच्छास्त्रों के अनुसार अपने पुरुषार्थसे आत्मपदमें स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनन्नामअष्टमस्सर्गः॥ ८॥

इतनासुनकर रामजी ने पूछा; हे भगवन् सर्व धर्मके वेत्ता! आप कहते हैं कि, और

दैव कोई नहीं परन्तु इसलोक में प्रसिद्ध है कि; ब्राह्मणभी दैवहै और दैवकाकिया सब कुछ होता है ? वशिष्ठजी बोले हे रामजी ! मैं तुमको इसलिये कहताहूं कि, तुम्हारा भ्रम निवृत्तहोजावे । अपनेही किये हुये शुभ अथवा अशुभकर्म का फल अवश्यमेव भोगनाहोताहै;उसे दैवकहो वा पुरुषार्थकहो और दैव कोई नहीं । कर्त्ता,क्रिया,कर्मआदिकमें तो दैव कोईनहीं और न कोई दैवकास्थानही है और न रूपही है तो और दैव क्या कहिये । हे रामजी ! मूर्खोंके परचाने के निमित्त दैवशब्द कहा है । जैसे आकाश शून्यहै तैसे दैवभी शून्यहै । फिररामजी बोले, हे भगवन् सर्वधर्म के वेत्ता ! तुमकहतेहो कि, और दैवकोईनहीं और आकाशकीनाईं शून्यहै सो तुम्हारे कहनेसेभी दैव सिद्धहोताहै । तुमकहतेहो कि, इसके पुरुषार्थका नाम दैवहै और जगत्में भी दैवशब्दप्रसिद्धहै । वशिष्ठजी बोले हे रामजी ! मैं इसलिये तुमको कहताहूं कि, जिससे दैवशब्दतुम्हारे हृदयसे उठजावे । दैवनाम अपने पुरुषार्थकाहै, पुरुषार्थ कर्मका नाम है और कर्मनाम बासनाकाहै । बासना मनसे होती है और मनरूपी पुरुष जिसकी बासना करता है सोई उसको प्राप्तहोता है । जो गांवके प्राप्तहोनेकी बासना करता है सो गांवको प्राप्त होता है और जो पत्तनकी बासनाकरता सो पत्तनको प्राप्तहोता है । इससे और दैव कोई नहीं । पूर्वकाजो शुभ अथवा अशुभ दृढ़पुरुषार्थ किया है उसका परिणाम सुख दुःख अवश्यहोता है और उसकाहीनाम दैवहै । हे रामजी ! तुम विचारकरकेदेखो कि, अपना पुरुषार्थकर्मसे भिन्ननहीं है तो सुख दुःख देनेवाला और लेनेवालाकोई दैव नहींहुआ । जीव जो पापकी बासना और शास्त्रविरुद्ध कर्मकरताहै सो क्यों करता है ? पूर्वके दृढ़पुरुषार्थकर्मसेही पापकरता है । जो पूर्वकापुण्यकर्मकियाहोता है तो शुभमार्ग में विचरता । फिर रामजीने पूछा; हे भगवन् ! जोपूर्वकी दृढ़बासना के अनुसार यह विचरता है तो मैं क्याकरूं ? मुझको पूर्वकीबासनाने दीन कियाहै अब मुझकोक्याकरना चाहिये ? वशिष्ठजी बोले;हेरामजी ! जोकुछ पूर्वकी बासनादृढ़होरही है उसकेअनुसार जीव विचरता है परजो श्रेष्ठ मनुष्य है सो अपने पुरुषार्थसेपूर्वके मलिनसंस्कारों को शुद्धकरता है तो उसके मल दूरहोजाते हैं जबतुम सच्छास्त्रों और ज्ञानवानोंकेवचनोंकेअनुसार दृढ़पुरुषार्थ करोगे तब मलिनबासना दूर होजावेगी । हे रामजी ! पूर्वके मलिन और शुभसंस्कारोंको कैसे जानिये सोसुनो । जो चित्त विषय और शास्त्रविरुद्ध मार्गकी ओरजावे और शुभकी ओर न जावे तो जानिये कि; कोईपूर्वका कर्म मलीन है और जो संतजनों और सच्छास्त्रोंके अनुसार चेष्टाकरे और संसारमार्गसे विरक्तहो तो जानिये कि, पूर्वका शुद्धकर्म है । इससे हे रामजी ! तुमको दोनोंसे सिद्धता है कि, पूर्व का संस्कार शुद्ध है इससे तुम्हाराचित्त सत्संग और सच्छास्त्रों के वचनों को ग्रहणकरके शीघ्रही आत्मपदको प्राप्तहोगा और जो तुम्हारा चित्त शुभमार्ग में स्थिर

नहीं होसक्ता तो दृढ़पुरुषार्थ करके संसार समुद्रसेपारहो । हे रामजी ! तुम चैतन्यहो; जड़तोनहीं हो; अपने पुरुषार्थका आश्रयकरो और मेराभीयही आशीर्वादहै कि तुम्हाराचित्त शीघ्रही शुद्धआचरण और ब्रह्मविद्याके सिद्धान्तसारमें स्थितहो । हे रामजी ! श्रेष्ठपुरुषभी वही है जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपि मलीनभीथा परन्तु संतों और सच्छास्त्रोंकेअनुसार दृढ़पुरुषार्थ करके सिद्धताको प्राप्तहुआहै और मूर्खजीव वहहै जिसने अपनापुरुषार्थ त्यागदियाहै जिससेसंसारसे मुक्तनहींहोता। पूर्वकाजो कोईपापकर्म किया होताहै उसको मलिनतासे पापमें धावताहै और अपने पुरुषार्थ के त्यागने से अन्धा होजाता औरविशेषकर और भी धावताहै । जो श्रेष्ठपुरुषहै उसको यहकरनाचाहिये कि, प्रथम तो पांचोंइन्द्रियोंको वशकरे; फिर शास्त्रके अनुसार उनको वर्त्तावे और शुभवासना दृढ़करे, अशुभका त्यागकरे । यद्यपि त्यागनीय दोनोंबासना हैं पर प्रथम शुभबासनाको इकट्ठीकरे फिर अशुभका त्यागकरे । जब शुद्ध बासनाकरके कषाय परिपक्कहोगा अर्थात् अन्तःकरण जबशुद्धहोगा तब सन्तों और सच्छास्त्रों के सिद्धांतका विचार उत्पन्नहोगा और उससे तुमको आत्मज्ञान की प्राप्तिहोगी । उसज्ञानकेद्वारा आत्मसाक्षात्कारहोगा फिर, क्रिया और ज्ञानकाभी त्यागहोजावेगा और केवलशुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेषभासेगा। इससे, हे रामजी ! और सब कल्पनाका त्यागकर सन्तजनों और सच्छास्त्रोंके अनुसार पुरुषार्थकरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनन्नामनवमस्सर्ग्गः ॥ ९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! मेरे वचनका ग्रहणकरो । यहवचन बांधवकेसमानहै अर्थात् तुम्हारे परममित्र होंगे और दुःखसे तुम्हारी रक्षाकरेंगे । हे रामजी ! यहजोमोक्ष उपाय तुमसेकहताहूं उसकेअनुसार (तुमपुरुषार्थकरो तब तुम्हारा परमअर्थसिद्धहोगा । यह चित्तजो संसारके भोगकी ओर जाताहै उसभोगरूपी खाड़में चित्त को गिरने मतदो । भोगके बिसरजानेके त्याग दो हैं । वहत्याग तुम्हारा परममित्रहोगा और त्याग भी ऐसाकरो कि, फिर उसका ग्रहण न हो । हे रामजी ! यह मोक्षउपाय संहिताहै इसको चित्तकोएकाग्रकरके सुनो;इससे परमानन्दकी प्राप्तिहोगी। प्रथम शम और दमको धारणकरो सम्पूर्ण संसारकी बासना त्यागकरके उदारतासे तृप्त रहने का नाम शमहै और बाह्यइन्द्रियोंके वशकरनेको दम कहतेहैं जब प्रथम इनको धारणकरोगे तब परम तत्त्वका विचार आपही उत्पन्नहोगा और विचारसे विवेकद्वारा परमपदकी प्राप्तिहोगी। जिसपदको पाकर फिर कदाचित् दुःख न होगा और अविनाशी सुख तुमकोप्राप्तहोगा । इसलिये इस मोक्षउपाय संहिताके अनुसार पुरुषार्थकरो तब आत्मपदको प्राप्तहोगे। पूर्वजो कुछ ब्रह्माजीने हमको उपदेशकियाहै सो मैं तुमसे कहताहूं । इतनासुनकरराम जीबोले; हे मुनीश्वर ! आपको जो ब्रह्माजीने उपदेशकियाथा सो किसकारण कियाथा

और कैसे तुमने धारणकिया था सो कहो ? वशिष्ठजी बोले हे रामचन्द्रजी ! शुद्ध चिदाकाशएकहै और अनन्त, अविनाशी, परमानन्दरूप, चिदानन्द—स्वरूप ब्रह्महै तिसमें संवेदनस्पन्दरूप होता है सोही विष्णुहोकर स्थितभया है । वे विष्णुजी स्पन्द और निस्स्पन्दमें एकरसहैं कदाचित् अन्यथाभाव को नहीं प्राप्तहोते । जैसे समुद्रमें तरंग उपजतेहैं तैसेही शुद्ध चिदाकाशसे स्पन्दकरके विष्णुउत्पन्नहुये हैं । उन विष्णुजी के स्वर्णवत् कीर्णनाभि कमल से ब्रह्माजी प्रकटभये; उन ब्रह्माजी ने ऋषि और मुनीश्वरों सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्नकी और उसमनोराजसे जगत्का उत्पन्न किया । उस जगत्के कोणमें जो जम्बूद्वीप भरतखण्ड है उसमें मनुष्यको दुःखसे आतुरदेख उनके करुणाउपजी जैसे पुत्रको देखकर पिताके करुणा उपजती है । तब उनकेसुखकेनिमित्त तपउत्पन्नकिया कि, वेसुखी हों और आज्ञाकी कि, तपकरो ! तब वे तपकरनेलगे और उस तपकरनेसे स्वर्गादिकको प्राप्तहोनेलगे । परउनसुखोंको भोगकर वे फिर गिरे और दुःखी हुये तब ब्रह्माजी ने ऐसे देखकर सत्यवाक् धर्मको प्रतिपादनकिया और उनके सुखके निमित्त आज्ञाकी । उस धर्म के प्रतिपादनसेभी लोगोंको सुख प्राप्त होने लगा और वहांभी कुछ काल सुखभोगकर फिर गिरे और दुःखी के दुःखीरहे । फिर ब्रह्माजीने दान, तीर्थादिक पुण्य क्रिया उत्पन्न करके उनको आज्ञादी कि, इनके सेवने से तुमसुखी रहोगे । जब वे जीव मनको सेवने लगे तब बड़े पुण्यलोकमें प्राप्त होकर उनके सुख भोगनेलगे और फिर कुछकाल अपने कर्मके अनुसार भोग भोगकरगिरे । तब उन्होंने तृष्णाकी कि, बहुत सुख दुःखभये और दुःखकर आतुरहुये । उससमय ब्रह्माजीने देखा कि, यह जीवन और मरण के दुःखसे महादीन होते हैं इससे वह उपाय कीजिये जिससे उनका दुःख निवृत्तहो । हे रामचन्द्रजी ! ब्रह्माजी ने विचारा कि, इनका दुःख आत्मज्ञान विना निवृत्त नहीं होगा इससे आत्मज्ञानको उत्पन्न कीजिये जिससेये सुखी होवें । इसप्रकार विचार कर वे आत्मतत्त्वका ध्यान करने लगे । उस ध्यानके करने से शुद्ध तत्त्व ज्ञान की मूर्त्तिहोकर मैं प्रकटहुआ । मैंभी ब्रह्माजीके समानहूं । जैसे उनके हाथमें कमण्डलु है तैसे मेरे हाथमें भीहै; जैसे उनके कण्ठमें रुद्राक्षकी मालाहै तैसे मेरे कण्ठमेंभी है और जैसे उनके ऊपर मृगछाला है तैसेही मेरेऊपर भीहै । मेरा शुद्धज्ञान स्वरूप है । और मुझको जगत् कुछ नहीं भासता और भासता है तो सुषुप्तिकी नाईं भासता है । तब ब्रह्माजीने विचारकिया कि, इसको मैंने जीवों के कल्याण के निमित्त उत्पन्न कियाहै पर यहतो शुद्धज्ञान स्वरूप है और अज्ञान मार्गका उपदेश तबहो जब कुछ प्रश्नोत्तरहो और तभी मिथ्याका विचार होवे । हे रामजी ! तब जीवों के कल्याण के निमित्त ब्रह्माजी ने मुझको गोदमें बैठाया और शीशपर हाथफेरा । तब तो जैसे चन्द्रमाकी किरण से शीतलता होती है तैसेही मैं उससे शीतल होगया । फिर

ब्रह्माजीने मुझको जैसे हंसको हंसकहे तैसे कहा; हे पुत्र ! जीवोंके कल्याणके निमित्त तुम एक मुहूर्त्त पर्य्यन्त अज्ञानको अंगीकार करो। जो श्रेष्ठ पुरुषहैं सो औरोंके निमित्तभी अंगीकार करते आयेहैं। जैसे चन्द्रमा बहुत निर्मल है परन्तु श्यामताको अंगीकार कियेहै तैसेही तुमभी एकमहूर्त्त अज्ञानको अंगीकारकरो। हे रामजी ! इसप्रकार मुझको कहकर ब्रह्माजीने शाप दिया कि, तू अज्ञानीहोगा। तब मैंने ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी औ शापको अङ्गीकार किया और मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व अपना आपथा सो अन्यकी नाईं होगया। मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण होगई और मेरामन जाग आया। तब भाव अभावरूप जगत् मुझको भासनेलगा और अपने को मैं वशिष्ठ और ब्रह्माजीका पुत्र जाननेलगा और नाना प्रकारके पदार्थ सहित जगत् जानकर उनकीओर चञ्चलहोनेलगा। फिर मैंने संसारजाल को दुःखरूपजानकर ब्रह्माजीसे पूछा; हे भगवान् ! यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे लीन होताहै ? हे रामजी ! जब मैंने इस प्रकार पिता ब्रह्माजी से प्रश्न किया तो उन्हों ने भली प्रकार मुझको उपदेश किया तिस से मेरा अज्ञान नष्ट होगया। जैसे सूर्य्य के उदय होने से तम निवृत्तहोजाताहै और जैसे आदर्शको मार्जन करने से शुद्ध होजाताहै तैसेही मैंभी शुद्ध हुआ। हे रामजी ! उस उपदेशसे मैं ब्रह्माजी से भी अधिक होगया। उस समय मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजी ने आज्ञा की कि, हे पुत्र ! जम्बूद्वीप भरतखण्डमें तुमको अष्ट प्रजापतिका अधिकार है वहां जाकर जीवों को उपदेश करो। जिसको संसारके सुखकी इच्छाहो उसको कर्म्ममार्ग का उपदेश करना जिससे वे स्वर्गादिक सुख भोगें और जो संसार से विरक्तहो और आत्मपदकी इच्छा रखताहो उसको ज्ञान उपदेश करना। हे रामजी ! इस प्रकार मेरा उपदेश और उत्पत्ति हुई और इस प्रकार मेरा आना हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेवशिष्ठोपदेशागमनन्नामदशमस्सर्गः ॥ १० ॥

इतना सुनकर रामजी बोले, हे भगवन् ! उस ज्ञानकी उत्पत्ति से अनन्त जीवोंकी शुद्धि कैसे भई सो कृपाकर कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो शुद्ध आत्मतत्त्व है उसका स्वभावरूप संवेदन–स्फूर्ति है; वह ब्रह्मा रूप होकर स्थिति भई है। जैसे समुद्र अपनी द्रवता से तरङ्गरूप होताहै तैसेही ब्रह्माजी हुये हैं। उन्हों ने सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करके तीनों काल उत्पन्न किये। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तो कलियुग आया उससे जीवोंकी बुद्धि मलिन होगई और पापमें विचर कर शास्त्रवेदकी आज्ञा उल्लङ्घन करने लगे। जब इस प्रकार धर्म्मकी मर्य्यादा छिपगई और पाप प्रकट भया तो जितनी कुछ राजधर्म्मकी मर्य्यादाथी सोभी सब नष्ट होगई और अपनी इच्छाके अनसार जीव विचर कर कष्ट पाने लगे। उसको देखकर ब्रह्माजी के करुणा उपजी और दया करके मुझसे, सनत्कुमार से और नारदसे बोले कि, हे

पुत्रो ! तुम भूलोकमें जाकर जीवोंको शुद्ध उपदेशकर धर्म्मकी मर्य्यादा स्थापनकरो। जिसजीवको भोगकी इच्छाहो उसको कर्म्मकाण्ड और जप,तप,स्नान,संध्या, यज्ञादिकका उपदेश करना और जो संसारसे विरक्तहुये हों और मुमुक्षुहों और जिन्हें परमपद पानेकी इच्छाहों उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना। यह आज्ञा देकर हमको भूमिलोकमें भेजा। तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचारने लगे कि, जगत्की मर्य्यादा किस प्रकारहो और जीव शुभमार्ग में कैसे विचरैं ? तब हमने यह विचार किया कि, प्रथम राज्यका स्थापनकरो कि, उसकी आज्ञानुसार जीव विचरैं। निदान प्रथम दण्डकर्त्ता राज्य स्थापन किया। जिनराजोंके बड़ेवीर्य्यवान्, तेजस्वी और उदार आत्माथे उनको भी हमने अध्यात्मविद्या का उपदेश किया जिससे वे परमपदको प्राप्तभये और परमानन्दरूप अविनाशिपद ब्रह्मविद्या के उपदेश से उनको हुआ तब वे सुखीहुये। इस कारण ब्रह्मविद्या का नाम राजविद्या है। तब हमने वेद, शास्त्र, श्रुति और पुराणोंसे धर्म्मकी मर्य्यादा स्थापनकर जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान आदिक क्रियाप्रकटकी और उपदेशकिया कि, जीव इसके सेवनसे सुखीहोगा। तब सबफलको पाकर उसको सेवने लगे पर उन में कोई विरले निरहङ्कार हृदयकी शुद्धता के निमित्त सेवन करतेथे। हे रामजी ! जो मूर्ख थे सो कामनाके निमित्त मन में फूलके कर्म्म करते थे और घटीयंत्र की नाईं भटककर कभी ऊर्ध्व और कभी नीचे को जाते थे और जो निष्काम कर्म्म करतेथे उनका हृदय शुद्ध होताथा और ब्रह्मविद्या के अधिकारी होतेथे। उस उपदेश द्वारा आत्मपदकी प्राप्तिकर कितने तो जीवन्मुक्त हुये और कई राजा विदितवेद सिद्धहुये सो राज्यकी परम्परा चलाय हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानीहुये। राजादशरथ भी ज्ञानवान् हुये और तुमभी इसी दशाको प्राप्तहुये हो। जैसे तुम विरक्त हुये हो वैसेही आगेभी स्वाभाविक विरक्तहुये हैं सो स्वभाव से ही देह शुद्ध है इसी कारण तुम श्रेष्ठहो। जो कोई अनिष्ट दुःख प्राप्त होताहै तिससे विरक्तता उपजती है सो तुमको नहीं हुई तुम्हेंतो सब इन्द्रियोंके विषय विद्यमान होने पर वैराग्यहुआहै; इससे तुम श्रेष्ठहो। हे रामजी ! मसानआदिक कष्टके स्थानोंको देखके तो सबको वैराग्य उपजता है कि, कुछ नहीं; मरजाना है पर उनमें जो कोई श्रेष्ठपुरुष होता है सो वैराग्यको दृढ़रखताहै और मूर्ख है सो फिर विषयमें आसक्त होताहै। इससे जिनको अकारण वैराग्य उपजता है सो श्रेष्ठहैं। हे रामजी ! जो श्रेष्ठपुरुष हैं सो अपने वैराग्य और अभ्यासके बलसे संसारबंधन से मुक्तहोजाते हैं—जैसे हस्ती बंधनको तोड़के अपनेबलसे निकलजाताहै और सुखी होताहै तैसेही वैराग्य अभ्यासके बलसे बंधनसे ज्ञानी मुक्तहोते हैं। हे रामजी ! यह संसार बड़ाअनर्थरूपहै। जिसपुरुषने अपने पुरुषार्थसे इसबंधनको नहीं तोड़ा उसको राग-द्वेषरूपी अग्नि जलाती है और जिस

पुरुषने अपने पुरुषार्थसे शास्त्रों और गुरुके प्रमाण से ज्ञानसाधन किया है वह उस पदको प्राप्त हुआ है । जैसे वर्षाकाल में बहुत वर्षा के होने से वनको दावानल नहीं जलासक्ता तैसेही ज्ञानीको आध्यात्मक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप कष्ट नहीं देसक्ते । हे रामजी ! जिन श्रेष्ठपुरुषोंने संसारको विरस जानकर त्यागदिया है उनको संसारके पदार्थ गिरा नहीं सक्ते और जो मूर्ख हैं तिनको गिरादेते हैं । जैसे तीक्ष्ण पवन के वेगसे वृक्ष गिरजाते हैं परन्तु कल्पवृक्ष नहीं गिरता तैसेही हे रामजी ! श्रेष्ठपुरुष वही है जो संसारको विरसजानकर केवल आत्मतत्त्वकी इच्छा करके परायण हो । उसकोही ब्रह्मविद्याका अधिकार है और वही उत्तम पुरुष है । हे रामजी ! तुमभी वैसेही उज्ज्वल पात्रहो । जैसे कोमल पृथ्वीमें बीजबोते हैं तैसेही तुमको मैं उपदेश करताहूं । जिसको भोगकी इच्छा है और संसारकी ओर यत्न करता है सो पशुवत् है । श्रेष्ठपुरुष वही है जिसको संसार तरनेका पुरुषार्थ होता है । हे रामजी ! प्रश्न उससे कीजिये जिससे जानिये कि, यह प्रश्नके उत्तरदेनेमें समर्थहै और जिसको उत्तर देनेकी सामर्थ्य न हो उससे कदाचित् प्रश्न न करना । उत्तरदेनेको समर्थहो और उसके वचनमें भावना न हो तब भी प्रश्न न करे क्योंकि; दम्भसे प्रश्नकरने में पापहोता है । गुरुभी उन्हींको उपदेश करता है जो संसारसे विरक्तहों और जिनको केवल आत्मपरायण होनेकी श्रद्धा और आस्तिकभावहो । हे रामजी ! जो गुरु और शिष्य दोनों उत्तम होते हैं तो वचन शोभते हैं । तुम उपदेशके शुद्धपात्रहो । जितने शिष्यके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं सो सब तुममें पायेजाते हैं और मैंभी उपदेश करनेमें समर्थहूं इससे कार्य्य शीघ्रहोगा । हे रामजी! शुभगुणोंसे तुम्हारी बुद्धि निर्मल होरही है इसलिये मेरा सिद्धान्तका सारवचन तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करेगा । जैसे उज्ज्वल वस्त्र में केशरका रंग शीघ्र चढ़जाता है तैसेही तुम्हारे निर्मल चित्तको उपदेशका रंगलगेगा । जैसे सूर्य्यके उदयसे सूर्य्यमुखी कमल खिलताहै तैसेही तुम्हारी बुद्धि शुभगुणसे खिल आईहै । हे रामजी ! जो कुछ शास्त्रका सिद्धान्त आत्मतत्त्व में तुमसे कहताहूं उसमें तुम्हारी बुद्धि शीघ्रही प्रवेश करेगी । जैसे निर्मल जलमें सूर्य्यकी कांति प्रवेश करतीहै तैसेही तुम्हारी बुद्धि आत्मतत्त्वमें शुद्धतासे प्रवेशकरेगी । हे रामजी ! मैं तुम्हारे आगे हाथजोड़के प्रार्थना करताहूं कि, जो कुछ मैं तुमको उपदेश करताहूं उसमें ऐसी आस्तिकभावना कीजियेगा कि, इनवचनोंसे मेराकल्याण होगा । जो तुमको धारणा न हो तो प्रश्न मतकरना । जिस शिष्यको गुरुके वचन में आस्तिकभावना होती है उसका शीघ्रही कल्याण होताहै । अब जिस से तुमको आत्मपद प्राप्तहो सो मैं कहताहूं । प्रथम जो अज्ञानी जीव में असत्य बुद्धि है उसका संग त्याग करो और मोक्षद्वारके चारों द्वारपालोंसे मित्रभावना करो । जब उनसे मित्रभाव होगा तब वह मोक्षद्वार में पहुँचादेंगे और तभी तुमको

आत्मदर्शन होवेगा। उनद्वारपालों के नामसुनो— शम, सन्तोष, विचार और सत्सङ्ग यह चारों द्वारपाल हैं जिसपुरुषने इनको वश किया है उसको यह शीघ्रही मोक्षरूपी द्वारके अन्दर करदेते हैं। हे रामजी! जो चारों वश न हों तो तीन कोही वशकरा अथवा दोहीको वशकरलो अथवा एकको वशकरो। जो एकभी वशहोगा तो चारोंही वशहो जायँगे। इन चारोंका परस्पर स्नेहहै। जहां एकआताहै तहां चारों आके रहते हैं। जिन पुरुषोंने इनसे स्नेहकिया है सो सुखीहुये हैं और जिसने इसका त्याग किया है सो दुःखी हैं। हे रामजी! यदि प्राणका त्यागहो तौभी एक साधनता बलसे वश करना चाहिये एकके वश कियेसे चारोंही वशीभूतहोंगे तुम्हारी बुद्धिमें शुभगुणोंने आके निवासकिया है जैसे सूर्य्यमें सब प्रकाश आजाते हैं तैसेही सन्तों और शास्त्रोंने जो निर्मल गुणकहे हैं सो सब तुममें पायेजाते हैं। हे रामजी! तुम मेरे वचनों के तैसे अधिकारी हुयेहो जैसे तन्त्रीके सुननेको अन्दोरा अधिकारीहोता है। चन्द्रमाके उदयसे जैसे चन्द्रवंशीकमल खिलआते हैं तैसेही शुभगुणों से तुम्हारी बुद्धि खिलआई है। हे रामजी! सत्सङ्ग और सत्शास्त्रद्वारा बुद्धिको तीक्ष्णकरनेसे शीघ्रही आत्मतत्त्वमें प्रवेशहोता है। इससे श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने संसारको विरसजानके त्यागदियाहै और सन्तों और सत्शास्त्रोंके वचनोंद्वारा आत्मपद पाने का यत्नकरता है। वह अविनाशीपदको प्राप्त होता है जो शुभ मार्ग त्यागकरके संसारकी ओर लगाहै वह महामूर्ख जड़ है जैसे शीतलतासे जल बर्फ होजाता है तैसेही अज्ञानी मूर्खतासे दृढ़ आत्ममार्ग से जड़होजाताहै। हे रामजी! अज्ञानीके हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहता है इससे वह कदाचित् शांति नहीं पाता और कभी आनन्दसे प्रफुल्लित नहीं होता वह तैसेही आशासे सदा संकुचित रहताहै जैसे अग्निमें मांस सकुच जाता है। हे रामजी! आत्मपदके साक्षात्कारमें विशेषआवरण आशाही है। जैसे सूर्य्य के आगे मेघका आवरण होताहै तैसेही आत्मतत्त्वके आगे दुराशा आवरण है। जब आशारूपी आवरण दूरहो तब आत्मपद का साक्षात्कार होवे। हे रामजी! आशा तब दूरहो जब सन्तोंकी संगति और सत्शास्त्रोंका विचारहो हे रामजी! संसाररूपी एकबड़ा वृक्षहै सो बोधरूपी खड्ग से छेदा जासक्ताहै। जब सत्संग और सत्शास्त्र से बुद्धिरूपी खड्ग तीक्ष्णहो तब संसाररूपी भ्रमका वृक्ष नष्ट होजाताहै। जब शुभगुणहोते हैं तब आत्मज्ञान आके बिराजताहै। जहां कमलहोते हैं तहां भौंरे भी आके स्थित होते हैं। शुभगुणों में आत्मज्ञान रहता है। हे रामजी! शुभगुणरूप पवनसे जब इच्छारूपी मेघ निवृत्तहोता है तब आत्मारूपी चन्द्रमाका साक्षात्कार होताहै। जैसे चन्द्रमाके उदय हुये आकाश शोभादेताहै तैसेही आत्मा के साक्षात्कार हुयेसे तुम्हारी बुद्धि खिलेगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेवशिष्ठोपदेशोनामैकादशस्सर्गः॥ ११॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अब तुम मेरे वचनके अधिकारी हो । मूर्ख मेरे वचन के अधिकारी नहीं क्योंकि; जप, तप, वैराग्य, विचार, सन्तोष आदि जिज्ञासुके शुभ गुण जो शास्त्रों और सन्तजनों ने कहे हैं उनसे तुम सम्पन्नहो और जितने गुरु के गुण शास्त्रमें वर्णनकिये हैं सो सब मुझमें हैं । जैसे रत्नसे समुद्र सम्पन्न है तैसेही गुणोंसे मैं सम्पन्नहूं । इससे तुम मेरे वचनको रज और तम आदि गुणोंको त्यागकर शुद्ध सात्विकवान् होकर सुनो । हे रामजी ! जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे चन्द्रकान्तमणिं द्रवीभूत होता है और उसमेंसे अमृत निकलताहै पर पत्थरकी शिलामेंसे नहीं निकलता तैसेही जो जिज्ञासुहोता है उसीको परमार्थ वचन लगता है;अज्ञानीको नहींलगता। जैसे निर्मल चन्द्रमुखी कमलिनी हो पर चन्द्रमा न हो तो वह प्रफुल्लित नहीं होती तैसेही जो शिष्य शुद्धपात्र हो और उपदेश करनेवाला ज्ञानवान् न हो तो उसको आत्माका साक्षात्कार नहीं होता । इसलिये तुम मोक्षके पात्रहो और मैं भी परमगुरु हूं । मेरे उपदेशसे तुम्हारा अज्ञान नष्टहोजावेगा । अब मैं मोक्षका उपायकहताहूं; यदि तुम उसको भले प्रकार विचारोगे तो जैसे महाप्रलय के सूर्य्य से मन्दराचल पर्वत जलजाता है तैसेही तुम्हारे मलिन मनकी वृत्तिका अभाव होजावेगा । इससे हे रामजी ! वैराग्य और अभ्यास के बलसे इस मनको अपने में लीनकर शांतात्माहो । तुमने बाल्यावस्थासे अभ्यास कर रक्खा है इससे मन उपशम पाके आत्मपदको प्राप्त होगे । हे रामजी ! जिन्होंने सत्सङ्ग और सत्शास्त्रों द्वारा आत्मपद पायाहै सो सुखी भये हैं,फिर उनको दुःख नहीं लगा क्योंकि; दुःख देहाभिमान से होता है सो देहकाअभिमान तो तुमने त्यागही दिया है। जिसने देहका अभिमान त्याग दियाहै और देहका आत्मता से फिर ग्रहण नहीं करता सो सुखी रहताहै । हे रामजी ! जिसने आत्माका बलधरके विचारद्वारा आत्मपद प्राप्त किया है वह लोक अकृत्रिम आनन्द से सदा पूर्ण है और सब जगत् उसको आनन्दरूप भासता है । जो असम्यग्दर्शी हैं उनको जगत् अनर्थरूप भासता है । हे रामजी ! यह संसाररूप सर्प अज्ञानियोंके हृदयमें दृढ़होगया है वह योगरूपी गारुड़मंत्र करके नष्ट होजाताहै, अन्यथा नहीं नष्ट होता । सर्प के विषसे एकजन्म में मरताहै और संसरणरूपी विषसे अनेक जन्म पाकर मरता चला जाता है—कदाचित् शांतिमान् नहीं होता । हे रामजी ! जिस पुरुष ने सत्सङ्ग और सतशास्त्र के वचनद्वारा आत्मपदको पाया है वह आनन्दित हुआ है उसको भीतर बाहर सब जगत् आनन्दरूप भासताहै और सब क्रिया करने में उसे आनन्दविलास है। जिसने सत्संग और सत्शास्त्रोंका विचार त्यागाहै और संसारके सन्मुखहै उसको संसार अनर्थरूप दुःखदेताहै । कोई सर्पके दंशसे दुःखी होते हैं, कोई शस्त्रसे घायल होते हैं, कितने अग्निमें पड़ेकी नाईं जलते हैं कितने रस्सी के साथ बँधे होते हैं और

कितने अंधकूपमें गिरके कष्ट पाते हैं । हे रामजी ! जिन पुरुषोंने सत्संग और सत्-शास्त्रोंद्वारा आत्मपद को नहीं पाया उनको नरकरूप अग्नि में जलना, चक्कीमें पीसाजाना; पाषाणकी वर्षासे चूर्ण होना; कोल्हूमें पेरा जाना और शस्त्रसे काटाजाना इत्यादिक जो बड़े बड़े कष्टहैं प्राप्त होते हैं । हे रामजी ! ऐसा दुःख कोई नहीं जो इस जीव को प्राप्त नहीं होता; आत्माके प्रमादसे सब दुःख होते हैं । जिन पदार्थोंको यह रमणीक जानताहै सो चक्रकी नाईं चञ्चल हैं; कभी स्थिर नहीं रहते । सत्मार्गको त्यागकर जो इनकी इच्छाकरते हैं सो महादुःखको प्राप्त होते हैं और उनका दुःख इस लिये नष्ट नहीं होता कि, वह ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ नहीं करते । जो पुरुष संसार को निरस जानकर पुरुषार्थकी ओर दृढ़हुआ है उसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है । हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्मपदकी प्राप्ति भईहै उसको फिर दुःखनहीं होता । अज्ञानीको संसार दुःखरूपहै और ज्ञानीको सब जगत् आनन्दरूप है—उसको कुछ भ्रम नहीं रहता । हे रामजी ! ज्ञानवान्में नानाप्रकारकी चेष्टाभी दृष्टि आती हैं तौभी वह सदा शान्त और आनन्दरूप है । संसारका दुःख उसको स्पर्श नहीं करसक्ता क्योंकि; उसने ज्ञानरूपी कवच पहिना है । हे रामजी ! ज्ञानवान्कोभी दुःखहोता है बड़े २ ब्रह्मर्षि और राजर्षि बहुत ज्ञानवान् भये हैं । वेभी दुःखको प्राप्त होतेरहे हैं परन्तु वे दुःखसे आतुर नहींहोतेथे वे सदा आनन्दरूप हैं । जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रआदि नाना प्रकारकी चेष्टा करते जीवकी दृष्टि आते हैं पर अन्तर से वे सदा शान्तरूपहैं; उनको कर्त्ताका कुछ अभिमान नहीं । हे रामजी ! अज्ञानरूपी मेघसे उत्पन्न मोहरूपी कुहड़ों का वृक्ष ज्ञानरूपी शरत्काल से नष्ट होजाता है । इससे स्वसत्ताको प्राप्त होताहै और सदा आनन्दसे पूर्ण रहता है । वह जो कुछ क्रिया करते हैं सो तिनको विलासरूप है सब जगत् आनन्दरूप है । शरीररूपी रथ और इन्द्रियरूपी अश्व हैं । मनरूपी रस्से से उन अश्वोंको खींचतेहैं । बुद्धिरूपी रथभी वही है जिस रथमें वह पुरुष बैठाहै और इन्द्रियरूपी अश्व उसको खोटे मार्गमें डालते हैं । ज्ञानवान् के इन्द्रियरूपी अश्व ऐसे हैं कि, जहां जाते हैं वहां आनन्दरूप हैं; किसी ठौरमें खेद नहींपाते सब क्रियामें उनको विलासहै और सर्वदा आनन्दसे तृप्त रहते हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेतत्त्वज्ञमाहात्म्यंनामद्वादशस्सर्गः ॥ १२ ॥

वशिष्ठजी बोले हे रामजी ! इसी दृष्टिका आश्रय करो कि, तुम्हारा हृदय पुष्टहो फिर संसारके इष्ट अनिष्ट से चलायमान न होगा । जिस पुरुषको इसप्रकार आत्मपदकी प्राप्तिहुई है सो आनन्दित हुआहै । वह न शोक करताहै, न याचना करताहै और हेयोपादेय सेभी रहित परमशान्तिरूप, अमृतसे पूर्ण होरहा है । वह पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टाकरते दृष्टिआता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं करता । जहां उसके मनकी वृत्ति

जातीहै वहां आत्मसत्ता भासती है । जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृतसे पूर्ण रहता है तैसेही ज्ञानवान् परमानन्दसे पूर्ण रहता है । हे रामजी ! यह जो मैंने तुमसे अमृतरूपी वृत्ति कही है इसको तब जानोगे जब तुमको साक्षात्कार होगा । जैसे चन्द्रमा के मण्डलमें ताप नहीं होता तैसेही आत्मज्ञानकी प्राप्तिहोनेसे सब दुःख नष्ट होजाते हैं । अज्ञानीको कभी शान्ति नहीं होती; वह जो कुछ क्रियाकरता है उसमें दुःखपाता है जैसे कक्करके वृक्षमें कण्टककीही उत्पत्तिहोती है तैसेही अज्ञानीको दुःखकीही उत्पत्ति होती । हे रामजी ! इस जीवको मूर्खता और अज्ञानता से बड़े २ अद्भुत दुःख प्राप्त होते हैं जिनके समान और दुःख नहीं । यदि आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा में हाथमें ठीकराले चांडालके घरकी भिक्षा ग्रहणकरे वहभी और ऐश्वर्य्योंसे श्रेष्ठहै पर मूर्खता से जीना व्यर्थ है । उस मूर्खताके दूरकरनेका मैं मोक्ष उपाय कहताहूं । यह मोक्ष उपाय परमबोधका कारण है । इसके लिये कुछ संस्कृतबुद्धिभी होनी चाहिये जिससे पदपदार्थ का बोधहो और मोक्षउपाय शास्त्र को विचारे तो उसकी मूर्खता नष्ट होकर आत्मपदकी प्राप्ति होगी । नानाप्रकारके दृष्टान्तों सहित जैसा आत्मबोधका कारण यह शास्त्र है वैसा कोई शास्त्र त्रिलोकी में नहीं । इसे जब विचारोगे तब परमानन्दको पावोगे ॥ यह शास्त्र अज्ञान तिमिर के नाशकरने को ज्ञानरूपी शलाका है । जैसे अन्धकार को सूर्य नाशकरता है तैसेही अज्ञानको इस शास्त्रका विचार नाशकरताहै । हे रामजी ! जिसप्रकार इस जीवका कल्याणहै सो सुनिये । जब ज्ञानवान्गुरु सत्शास्त्रोंका उपदेशकरे और शिष्य अपने अनुभव से ज्ञानपावे अर्थात् गुरु अनुभव और शास्त्र जब ये तीनों इकट्ठे मिलें तब कल्याण होताहै । जबतक अकृत्रिम आनन्द न मिले तबतक दृढ़अभ्यास करे । उस अकृत्रिम आनन्दको प्राप्त करनेवाला मैं गुरुहूं । जीवमात्रका मैं परममित्रहूं । हमारी संगति जीवको आनन्द प्राप्त करानेवाली है । इसलिये जोकुछ मैं कहताहूं सो तुमकरो । संसारके क्षणमात्रके भोगोंको त्यागकरो । क्योंकि, विषयके परिणाम में अनन्तदुःख हैं और हमसे ज्ञानवानों का संगकरो । हमारे वचनोंके विचारसे तुम्हारे सबदुःख नष्टहोजावेंगे । जिसपुरुषने हमारे साथ प्रीतिकी है उसको हमने आनन्दकी प्राप्ति, जिससे ब्रह्मादिक आनन्दित भये हैं; करादी है । ज्ञानवान् आनन्दित हुये हैं और निर्दुःखपदको प्राप्तहुये हैं । हे रामजी ! आत्माका प्रमाद जीवको दीन करताहै । जिसने संतों और शास्त्रोंके विचारद्वारा दृश्यको अदृश्य जानाहै वह निर्भयहुआ है । अज्ञानीका हृदयकमल तबतक सकुचारहताहै जबतक तृष्णारूपीरात्रि नष्ट नहीं होजाती है और हृदयकमल आनन्दसे नहीं खिलआता । हे रामजी ! जिस पुरुषने परमार्थमार्ग त्यागदियाहै और संसारके खान पान आदि भोग में मग्नहुआहै उसको तुम मेडुकाजानो, जो कीचमें पड़ा शब्दकरताहै । हे रामजी ! यह

संसार बड़ाआपदाका समुद्रहै। इसमें जो कोई श्रेष्ठपुरुषहै वह सत्संग और सत्शास्त्र के विचारसे इससमुद्रको उलंघजाताहै और परमानन्द निर्भयपदको जो आदि, अन्त और मध्यसे रहित है प्राप्तहोताहै और जो संसारसमुद्र के सन्मुख हुआहै वह दुःखसे दुःखरूपपदको प्राप्तहोताहै और कष्टसे कष्ट नरक को प्राप्तहोताहै; जैसे विषको विष जान उसका पानकरताहै और वह विष उसको नाशकरताहै तैसेही जो पुरुष संसारको असत्य जानकर फिर संसारकी ओर यत्नकरताहै सो मृत्युको प्राप्तहोताहै। हे रामजी! जो पुरुष आत्मपदसे विमुख है पर उसे कल्याणरूप जानता है और उसके अभ्यास कात्यागकर संसारकी ओर धावताहै वह वैसेही नाशहोगा और जन्म मरणको पावेगा जैसे किसी के घरमें अग्नि लगे और वह तृण के घर और तृणही की शय्या में शयन करे तो वह नाशको पावे। जो संसारके पदार्थ देखकर राग द्वेषवान् हुये हैं वे सुख बिजुली की चमकसे हैं जो होके मिटजाते हैं–स्थिर नहीं रहते। संसारका दुःख आगमापायी है। हे रामजी! यह संसार अविचारसे भासता है और विचारकिये से लीनहोजाता है। यदि विचार कियेसे लीन न होता तो तुमको उपदेश करनेका काम नहींथा। इसीकारण पुरुषार्थ चाहिये–जैसे हाथमें दीपकहो और अन्धाहोकर कूप में गिरे सो मूर्खताहै तैसेही संसार भ्रमके निवारणवाले गुरुशास्त्र विद्यमानहैं जो उनकी शरण न आवे वह मूर्खहै। हे रामजी! जिस पुरुषने संतकी संगति और सत्शास्त्रके विचार द्वारा आत्मपदको पाया है सो पुरुष केवल कैवल्यभावको प्राप्त हुआ है अर्थात् शुद्ध चैतन्यको प्राप्तहुआ है और संसारभ्रम उनका निवृत्तहोगयाहै। हे रामजी! यह संसार मनके संसरने से उपजा है जीवका कल्याण बान्धव, धन, प्रजा, तीर्थ, देवद्वार और ऐश्वर्यसे नहीं होता केवल एकमनके जीतनेसे कल्याणहोता है। हे रामजी! जिसको ज्ञानपरमपद रसायन कहते हैं; जिसके पायेसे जीवका नाश न हो और जिसमें सर्वसुखकी पूर्णताहो इसीका साधन समता और संतोष है। इनसे ज्ञान उत्पन्नहोता है। आत्मज्ञानरूपी एकवृक्षहै उसका फूल शान्तिहै और स्थिति फलहै जिस पुरुषको यह ज्ञान प्राप्तहुआहै सो शान्तिमान् होकर निर्लेपरहताहै। उसको संसारकाभावाभावरूप स्पर्श नहीं है जैसे आकाश में सूर्य्यउदय होनेसे जगत् की क्रिया होती है और जब वह अदृश्यहोताहै तब जगत्की क्रियाभी लीन होजाती है; और जैसे उसक्रियाके होने और न होने में आकाश ज्योंका त्यों है तैसेही ज्ञानवान् सदा निर्लेप है उस आत्मज्ञान की उत्पत्तिका उपाय यह मेराश्रेष्ठशास्त्रहै। हे रामजी! जोपुरुष इसमोक्षोपाय शास्त्रको श्रद्धासंयुक्तपढ़े अथवा सुने तो उसी दिनसे वह मोक्षका भागीहो। मोक्षके चारद्वारपालहैं सो मैं तुमसे कहताहूं। जब इनमेंसे एकभी अपने वशहो तब मोक्षद्वारमें शीघ्रही प्रवेशहोगा उन चारोंकानाम सुनिये; हे रामजी! शम जीवके परमविश्रामका कारणहै। यह संसारजो

दिखताहै सो मरुथलकी नदीवत् है इसको देखकर मूर्खअज्ञानी सुखरूप जलजान कर मृगके समान दौड़ताहै और शान्तिको नहीं प्राप्तहोता । जब शमरूपी मेघकी वर्षा हो तब सुखीहो । हे रामजी ! शमही परमआनन्द, परमपद और शिवपदहै । जिसपुरुष ने शमपायाहै सो संसारसमुद्रसे पारहुआहै । उसके शत्रुभी मित्रहोजाते हैं । हे रामजी ! जैसे चन्द्रउदय होता है तब अमृतकी कणा फूटती हैं और शीतलता होती है तैसेही जिसके हृदय में शमरूपी चन्द्रमा उदय होता है उसके सब ताप मिटजाते हैं और परमशान्तिमान् होता है । हे रामजी ! शमदेवता के अमृत समान कोई अमृत नहीं शमसे परमशोभाकी प्राप्तिहोती है । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमाकी कान्ति परमउज्ज्वल होती है तैसेही शमको पाके जीवकी उज्ज्वल कान्ति होती है । जैसे विष्णु के दो हृदय हैं—एक तो अपने शरीर में और दूसरा सन्तों में है तैसेही जीव के भी दो हृदय होते हैं एक अपने शरीर में और दूसरा शममें । जैसा आनन्द शमवान् को होता है तैसा अमृत के पिये से भी नहीं होता । हे रामजी ! कोई प्राणसे प्रिय अन्तर्द्धान हो-कर फिर प्राप्तहो तो जैसा आनन्द होताहै उस आनन्दसे भी अधिक आनन्द शम-वान् को होताहै । उसके दर्शनसे भी जैसा आनन्द होताहै ऐसा आनन्द राजा, मंत्री और सुन्दरस्त्रीको भी नहीं । हे रामजी ! जिस पुरुषको शमकी प्राप्तिहुई है वह वन्दना करने और पूजने योग्यहै । जिसको शमकी प्राप्ति हुई है तिसको उद्वेग नहीं आता और और लोगोंसे भी उद्वेग नहीं पाता । उसकी क्रिया और वचन अमृतकी नाईं मीठे और चन्द्रमाकी किरण समान शीतल और सबको हृदयारामहैं । हे रामजी ! जैसे बालक माता को पाके आनन्दित होताहै तैसेही जिसको शमकी प्राप्ति भई है उसके संगसे जीव अधिक आनन्दवान् होताहै । जैसे किसी का बांधव मुवाहुआ फिरआवे और उसको आनन्द प्राप्तहो उससेभी अधिक आनन्द शमसम्पन्न पुरुष को होताहै । हे रामजी ! ऐसा आनन्द चक्रवर्ती और त्रिलोकी के राज्यपाये से भी नहीं होता । जिसको शमकी प्राप्ति हुईहै उसके शत्रुभी मित्र होजाते हैं; उसको सर्प और सिंहका भयभी नहीं रहता बल्कि किसीका भी भय नहीं रहता वह सदा निर्भय शान्तरूप रहता है । हे रामजी ! जो कोई कष्टप्राप्तहो और कालकी अग्निभी आलगे तो भी वह चलायमान नहीं होता—सदा शांतरूप रहता । जैसे शीतल चांदनी चन्द्रमामें स्थित है तैसेही जो कुछ शुभगुण और सम्पदाहै सब शमवान् के हृदय में आ स्थित होती हैं । हे रामजी ! जो पुरुष अध्यात्मकादि तापसे जलताहै उसके हृदयमें कदाचित् शमकी प्राप्तिहो तो सबताप मिटजाते हैं । जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा से शीतल होजाती है तैसेही उसका हृदय शीतल होजाताहै । जिसको शमकी प्राप्तिहुई है सो सब क्रियामें आनन्दरूप है—उसको कोई दुःख नहीं स्पर्शकरता । जैसे वज्र और

शिलाको बाण नहीं बेधसक्ता तैसेही जिस पुरुषने शमरूपी कवच पहिना है उसको अध्यात्मकादि ताप बेध नहीं सक्के—वह सर्वदा शीतलरूप रहता है। हे रामजी! तपस्वी, पण्डित, याज्ञिक और धनाढ्य पूजामें मान करने योग्य हैं परन्तु जिसको शमकी प्राप्ति हुई है सो सबसे उत्तम और सबके पूजने योग्य है। उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्व को ग्रहण करती है और सब क्रिया में सोहती है। जिस पुरुष को शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध क्रिया के विषयों के इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष नहीं होता उस को शान्तात्मा कहते हैं। हे रामजी! जो संसार के रमणीय पदार्थ में बध्यमान नहीं होता और आत्मानन्दसे पूर्ण है उसको शान्तिमान् कहते हैं। उसको संसार के शुभ अशुभ का मलिनपना नहीं लगता वह तो सदा निर्लेप रहता है। जैसे आकाश सब पदार्थों से निर्लेप है तैसेही शान्तिमान् सदा निर्लेप रहताहै। हे रामजी! ऐसा पुरुष इष्ट विषयकी प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता और अनिष्टकी प्राप्ति में शोकवान् नहीं होता। वह अन्तःकरण से सदा शान्त रहता है और उसको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता; वह अपने आप में सदा परमानन्दरूप रहता है। जैसे सूर्य्य के उदय होतेही अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही शान्ति के पाये सब दुःख नष्ट होकर सदा निर्विकार रहता है। हे रामजी! वह पुरुष सब चेष्टा करते दृष्टिआताहै परन्तु सदा निर्गुणरूप है; कोई क्रिया उसको स्पर्श नहीं करती। जैसे जल में कमल निर्लेप रहता है तैसेही शान्तिमान् सदा निर्लेप रहताहै। हे रामजी! जो पुरुष बड़ी राज्य-सम्पदा और बड़ी आपदाको पाकर ज्योंका त्यों अलग रहता है उसे शान्तिमान् कहिये। हे रामजी! जो पुरुष शान्तिसे रहित है उसका चित्त क्षण क्षण राग द्वेष से तपता है और जिसको शान्तिकी प्राप्ति भई है सो भीतर बाहर शीतल और सदा एक रस है। जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है तैसेही वह सदा शीतल रहताहै। उस के मुखकी कान्ति बहुत सुन्दर होजातीहै। जैसे निष्कलङ्क चन्द्रमाहै तैसेही शान्तिमान् निष्कलङ्क रहताहै। हे रामजी! जिसको शान्ति प्राप्तभई है सो परमआनन्दित हुआहै और उसीको परमलाभ प्राप्त होताहै। ज्ञानी इसीको परमपद कहते हैं। जिस को पुरुषार्थ करना है उसको शान्तिकी प्राप्ति करनी चाहिये। हे रामजी! जैसे मैंने कहा है उस क्रमसे शान्तिका ग्रहणकरो तब संसारसमुद्रके पार पहुँचोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेशमनिरूपणंनामत्रयोदशस्सर्गः॥ १३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब विचारका निरूपण सुनिये। जब हृदय शुद्धहोता है तब विचार होताहै और शास्त्रार्थके विचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है। हे रामजी! अज्ञानवनमें आपदारूपी बेलिकी उत्पत्ति होती है उसको विचाररूपी खड्ग से जब काटोगे तब शान्तआत्मा होगे। मोहरूपी हस्ती जीव के हृदयकमलका खण्ड खण्ड

करडालताहै–अभिप्राय यह है कि, इष्ट अनिष्ट पदार्थमें राग द्वेषसे छेदाजाताहै। जब विचाररूपी सिंह प्रकटे तब मोहरूपी हस्तीका नाशकर शान्तात्मा हो। हे रामजी! जिसको कुछ सिद्धता प्राप्तहुई है उसे विचार और पुरुषार्थसेही हुई है। जब प्रथम राजा विचारकर पुरुषार्थ करताहै तब उसी से राज्यको प्राप्तहोताहै। प्रथम बल, दूसरे बुद्धि, तीसरे तेज, चतुर्थ पदार्थका आगमन और पञ्चम पदार्थकी प्राप्ति इन पांचों की प्राप्ति विचार से होती है अर्थात् इन्द्रियों का जीतना, बुद्धि आत्माव्यापिनी और तेज पदार्थका आगमन इनकी प्राप्ति विचारसे होती है। हे रामजी! जिसपुरुषने विचार का आश्रय लियाहै वह विचारकी दृढ़ता से जिसकी वांछा करताहै उसको पाताहै। इससे विचार इसका परममित्र है। विचारवान् पुरुष आपदामें नहीं मग्नहोता जैसे तुम्बी जलमें नहीं डूबती तैसेही वह आपदा में नहीं डूबता। हे रामजी! वह जो कुछ करताहै विचार संयुक्त करताहै और विचार संयुक्तही देता लेताहै। उसकी सब क्रिया सिद्धताका कारणरूप होती हैं और धर्म अर्थ काम मोक्ष विचारकी दृढ़तासेही सिद्धहोते हैं। विचाररूपी कल्पवृक्षमें जिसका अभ्यासहोताहै सोई पदार्थों की सिद्धिको पाताहै। हे रामजी! शुद्धब्रह्म का विचार ग्रहणकरके आत्मज्ञान को प्राप्तहोजाओ। जैसे दीपकसे पदार्थका ज्ञानहोता है तैसेही पुरुष विचारसे सत्य असत्य को जानता है। जो असत्यको त्याग कर सत्यकी ओर यत्नकरताहै उसेही विचारवान् कहते हैं। हे रामजी! संसाररूपी समुद्रमें आपदाकी तरंगें उठती हैं। विचारवान् पुरुष उनके भाव अभावमें कष्टवान् नहीं होता। जो कुछ क्रिया विचार संयुक्त होती है उसका परिणाम सुखहै और जो विचार बिना चेष्टाहोती है उससे दुःख प्राप्त होताहै। हे रामजी! अविचाररूप कण्टक के वृक्षसे दुःखके बड़े कण्टक उत्पन्न होते हैं। अविचाररूपी रात्रि में तृष्णारूपी पिशाचिनी विचरती है और जब विचाररूपी सूर्य उदय होता है तब अविचाररूपी रात्रि और तृष्णारूपी पिशाचिनी नष्ट होजाती हैं। हे रामजी! हमारा यही आशीर्वाद है कि, तुम्हारे हृदयसे अविचाररूपी रात्रि नष्टहोजाय। विचाररूपी सूर्य से अविचारित संसार दुःखका नाशहोता है। जैसे बालक अविचारसे अपनी परछाहीं को वेताल कल्पके भय पाताहै और विचार कियेसे भय नष्टहोजाता है तैसेही अविचारसे संसार दुःख देताहै और सत्शास्त्रद्वारा युक्तिकर विचार कियेसे संसार का भय नष्टहोजाता है। हे रामजी! जहां विचारहै तहां दुःख नहीं है। जैसे जहां प्रकाशहै तहां अंधकार नहीं होता और जहां प्रकाश नहीं तहां अंधकार रहताहै; तैसेही जहां विचार है वहां संसार भय नहीं है और जहां विचार नहीं तहां संसार भय रहता है। जहां आत्मविचार उत्पन्न होता है वहां सुखके देनेवाले शुभगुण स्थित होते हैं। जैसे मानसरोवर में कमलकी उत्पत्ति होती है तैसेही विचारमें शुभगुणों की उत्पत्ति होती है। जहां

विचार नहीं है तहांही दुःखका आगमन होता है। हे रामजी! जो कुछ अविचार से क्रिया करते हैं सो दुःखका कारण होती हैं। जैसे चूहा बिलको खोदके मृत्तिका निकालता है वह जहां इकट्ठी होती है वहां बिलकी उत्पत्ति होती है तैसेही अविचारसे जीव मृत्तिकारूपी पाप क्रियाको इकट्ठी करता है और उससे आपदारूपी बिल उत्पन्नहोती है। अविचाररूपी घुनकेखाये सूखेवृक्षसे सुखरूपी फल नहीं निकलते हैं। अविचार उस का नामहै जिसमें शुभ और शास्त्रानुसार क्रिया न हो। हे रामजी! विवेकरूपी राजाहै और विचाररूपी उसकी ध्वजा है जहां विवेकरूपी राजा आता है वहां विचाररूपी ध्वजाभी उसके साथ फिरती है और जहां विचाररूपी ध्वजा आती है वहां विवेकरूपी राजा भी आता है। जो पुरुष विचारसे सम्पन्न है सो पूजने योग्यहै। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा को सब नमस्कार करते हैं तैसेही विचारवान्को सब नमस्कार करते हैं। हे रामजी! हमारे देखते देखते अल्पबुद्धिभी विचारकी दृढ़तासे मोक्षपदको प्राप्तहुये हैं। इससे विचार सबका परममित्र है। जैसे हिमालय पर्वत भीतर बाहरसे शीतल रहता है तैसेही वह भी शीतल रहताहै। देखो विचारसे जीव ऐसे पदको प्राप्त होता है जो नित्य, स्वच्छ, अनन्त और परमानन्दरूपहै। उसको पाकर फिर उसके त्यागकीइच्छा नहीं होती और न औरके ग्रहण कीही इच्छा होती है उसको इष्ट अनिष्ट सब समानहैं जैसे तरंग के होने और लीन होने में समुद्र समान रहता है तैसेही विवेकी पुरुषको इष्ट अनिष्टकी समता रहती है और संसार भ्रम मिटजाता है। आधाराधेयसे रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होता है। हे रामजी! यह जगत् अपने मनके मोह से उपजताहै और अविचारसे दुःखदायी दीखताहै। जैसे अविचारसे बालकको बेताल भासताहै तैसेही इसको जगत भासताहै। जब ब्रह्मविचारकी प्राप्ति हो तब जगत् का भ्रम नष्ट होजावे। हे रामजी! जिसके हृदयमें विचार होता है उसके समताकी उत्पत्ति होती है। जैसे बीज से अंकुर निकल आता है तैसेही विचार से समता हो आती है और विचारवान् पुरुष जिसकी ओर देखता है उस ओर आनन्द दृष्टआता है; दुःख नहीं भासता। जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं दृष्ट आता तैसेही विचारवान् को दुःख नहीं दृष्ट आता। जहां अविचार है वहां दुःख है; जहां विचार है वहां सुख है। जैसे अन्धकार के अभावहुये बेताल के भयका अभाव होजाता है तैसेही विचार किये से दुःख का अभाव होजाता है। हे रामजी! संसाररूपी दीर्घरोग के नाश करने को विचार बड़ी औषधहै। जैसी पूर्णमासी के चन्द्रमाकी उज्ज्वल कांति होती है तैसेही विचारवान् के मुखकी उज्ज्वल कांति होती है। हे रामजी! विचारसेही परमपदकी प्राप्ति होती है। जिससे अर्थ सिद्धहो उसका नाम विचार है और जिससे अनर्थ सिद्धहो उसका नाम अविचार है। जो अविचाररूपी मदिराको पान करताहै सो उन्मत्त

होजाता है उससे शुभविचार कोई नहीं होता और शास्त्रके अनुसार क्रियाभी उससे नहीं होती है। हे रामजी! इच्छारूपी रोग विचाररूपी औषध से निवृत्त होता है। जिस पुरुषने विचार द्वारा परमार्थ सत्ताका आश्रय लिया है सो परम शांत होजाता है और हेयोपादेय बुद्धि उसकी नहीं रहती वह सब दृश्यको साक्षीभूत होकर देखता है और संसारके भाव अभाव में ज्यों का त्यों रहता है। वह उदय अस्त से रहित निस्संग रूपहै। जैसे समुद्र जलसे पूर्ण है तैसेही विचारवान् आत्मतत्त्वसे पूर्ण है जैसे अन्धे कूप में पड़ाहुआ हाथ के बल से निकलता है तैसेही संसाररूपी अन्धकूप में गिराहुआ विचार के आश्रय होकर विचारवान्ही निकलने को समर्थ होता है। हे रामजी! राजाको जो कोई कष्टप्राप्त होता है तो वह विचार करके यत्न करता है तब कष्ट निवृत्त होजाता है; इससे तुम विचारकर देखो कि जो किसीको कष्टप्राप्त होता है तो विचारसेही मिटता है। तुमभी विचार का आश्रय करके सिद्धिको प्राप्तहो। वह विचार इस प्रकार प्राप्तहोता है कि, वेद और वेदान्त के सिद्धान्तको श्रवण कर पाठ करे और भलेप्रकार विचार तब विचार की दृढ़ता से आत्मतत्त्व को प्राप्तहोगा। जैसे प्रकाश से पदार्थका ज्ञानहोताहै तैसेही गुरु और शास्त्रके वचनों से तत्त्वज्ञान होताहै जैसे प्रकाश में अन्धेको पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती तैसेही गुरु, शास्त्र और विचार से जो शून्यहो उसको आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! जो विचाररूपी नेत्र से सम्पन्नहैं सोई देखतेहैं और जो विचाररूपी नेत्रसे रहितहैं वे अन्धेहैं। हे रामजी! ऐसा विचार करे कि, "मैं कौनहूं"?"यह जगत् क्याहै"?"इसकी उत्पत्ति कैसे हुई है" और "लीन कैसे होताहै"? इसप्रकार सन्तों और शास्त्रोंके अनुसार विचार करके सत्यको सत्य औ असत्यको असत्य जान जिसको असत्य जाने उसका त्याग करे और सत्य में स्थितहो। इसी का नाम विचारहै। इस विचार से आत्मपदकी प्राप्ति होती है। हे रामजी! विचाररूपी दिव्यदृष्टि जिसको प्राप्त हुई है उसको सब पदार्थोंका ज्ञानहोता है और विचारसेही आत्मपदकी प्राप्ति होती है, जिसके पायेसे परिपूर्ण होजाताहै और फिर शुभ अशुभ संसार में चलायमान नहीं होता—ज्योंकात्यों रहता है। जबतकप्रारब्धका वेगहोता है तबतक शरीरकी चेष्टा होती है और जबतक अपनी इच्छाहोती है तबतक शरीरकी चेष्टा करताहै फिर शरीरको त्यागकर केवल शुद्धरूप होजाताहै। इससे; हे रामजी! ब्रह्मविचार का आश्रय करके संसार समुद्रको तरजाओ। इतनारुदन रोगी और कष्टवान् पुरुष भी नहींकरता जितना विचार रहित पुरुष करता है। हे रामजी! जो पुरुष विचार से शून्यहै उसको सब आपदा आ प्राप्त होती हैं। जैसेसब नदी स्वभावसेही समुद्र में प्रवेश करती हैं तैसेही अविचारसे सब आपदा प्रवेशकरती हैं। हे रामजी! कीचका कीट, गर्तका कण्टक और अँधेरे बिलमें सर्प होना भला

है परन्तु विचारसे रहितहोना तुच्छहै। जोपुरुष विचारसे रहितहोकर भोगमें दौड़ता है वह श्वानहै। हे रामजी! विचार से रहित पुरुष बड़ा कष्टपाताहै। इससे एकक्षण भी विचार रहित नहीं रहना। विचार से दृढ़होकर निर्भय रहना। "मैं कौनहूं" और दृश्य क्याहै ऐसा विचार करके और सत्यरूप आत्माको जानकर दृश्यका त्यागकरना हे रामजी! जो पुरुष विचारवान् है सो संसारके भोगमें नहीं गिरता सत्यमेंही स्थित होताहै। जब विचार स्थितहोता है तब तत्त्वज्ञानहोताहै और जबतत्त्वज्ञानसे विश्राम होता है तब विश्रामसे चित्तका उपशम होकर दुःखनाश होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेविचारनिरूपणंनामचतुर्दशस्सर्गः॥ १४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे अविचार शत्रुके नाशकर्त्ता रामजी! जिस पुरुषको सन्तोष प्राप्तहुआ है वह परमानन्दित होकर त्रिलोकी के ऐश्वर्य को तृणकी नाईं तुच्छ जानताहै। हे रामजी! जो आनन्द अमृतके पान किये और त्रिलोकके राज्यसे नहीं होता वह आनन्द सन्तोषवान् को होता है। हे रामजी! इच्छारूपी रात्रि हृदयरूपी कमल को सकुचा देती है; जब सन्तोष सूर्य उदय होता है तब इच्छारात्रिका अभाव हो जाताहै जैसे क्षीर समुद्र उज्ज्वलतासे शोभायमानहै तैसेही संतोषवान्की कांतिसुशोभित होती है। हे रामजी! त्रिलोकीके राजाकीभी इच्छा निवृत्त न भई तो वह दरिद्री है और जो निर्द्धन सन्तोषवान् है सोसबका ईश्वरहै। सन्तोष उसकाही नामहै जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करे और प्राप्तभी हो तो इष्ट अनिष्टमें रागद्वेष न धरे। सन्तोषवान् सदा आनन्द पुरुष है और आत्मस्थितिसे तृप्तहुआहै उसको और इच्छा कुछनहीं। संतुष्टता से उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ है जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होता है तैसेही संतोषवान् प्रफुल्लित होजाता है जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा नहीं करता और जो अनिच्छित प्राप्त हुई को यथाशास्त्र क्रमसे ग्रहण करता है उसका नाम संतोषवान्है। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अमृतसे पूर्णहोताहै तैसेही संतोषवान्का हृदय संतुष्टतासे पूर्णहोता है। जो सन्तोषसे रहितहै उसके हृदयरूपी वनमें सदा दुःख और चिन्तारूपी फूलफल उत्पन्नहोते हैं। हे रामजी! जिसका चित्त सन्तोष से रहित है उसको नानाप्रकारकी इच्छा समुद्रकी नानाप्रकारकी तरंगोंके समान उपजती हैं। सन्तुष्टात्मा परमआनन्दित है। उसकोजगतके पदार्थोंमें हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती। हे रामजी! जैसाआनन्द संतोषवान्को होताहै वैसाआनन्द अष्टसिद्धिके ऐश्वर्य और अमृत के पानकिये सेभी नहींहोता। संतोषवान् सदा शांतरूप और निर्मल रहताहै। इच्छारूपी धूर सर्वदा उड़ती रहती है सो सन्तोषरूपी वर्षासे शांत होजाती है इस कारण सन्तोषवान् निर्मल है। हे रामजी! जैसे आंबका परिपक्वफल सुन्दरहोता है और सबको प्यारालगता है तैसेही संतोषवान् पुरुष सबको प्यारा लगता है और

स्तुतिकरने के योग्य है। जिस पुरुषको संतोष प्राप्तभया है उसको परमलाभ भयाहै। हे रामजी! जहां सन्तोष है वहां इच्छा नहीं रहती और संतोषवान् भोगमें दीनहोकर नहीं रहता। वह उदारात्मा सर्वदा आनन्द से तृप्त रहता है। जैसे मेघ पवनके आये से नष्ट होजाता है तैसेही संतोष के आये से इच्छा नष्ट होजाती है। जो संतोषवान् पुरुषहै उस को देवता और ऋषीश्वर सब नमस्कार करते और धन्यधन्य कहते हैं। हे रामजी! जब इस संतोष को धरोगे तब परमशोभा पावोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेसंतोषनिरूपणंनामपंचदशस्सर्गः॥ १५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितने दान और तीर्थादिक साधन हैं उनसे आत्मपद की प्राप्तिनहीं होती; आत्मपदकी प्राप्ति साधुसङ्गसेही होती है। साधुसंगरूपी एक वृक्षहै और उसकाफूल आत्मज्ञान है। जिस पुरुषने फूलकी इच्छाकी है सो अनुभव-रूपी फलको पाताहै। जो पुरुष आत्मानन्दसे रहित है सो सत्संग करके आत्मानन्द से पूर्णहोता है, जो अज्ञानसे मृत्युपाता है सो सन्तके संगसे ज्ञानपाकर अमर होताहै और जो आपदासे दुःखी है सो सन्तके संगसे सम्पदापाताहै। आपदारूपी कमलका नाश करनेवाली सत्संगरूपी बरफकी वर्षा है। सत्संगसेही आत्मबुद्धि प्राप्तहोती है जिससे मृत्युनहीं होती और सब दुखों से छूटकर परमानन्द को प्राप्तहोता है। हे रामजी! संत की संगतिसे हृदय में ज्ञानरूपी दीपकजलता है जिस से अज्ञानरूपी तमनष्टहोजाता और बड़े २ ऐश्वर्य्य को प्राप्तहोता है। फिरउसे किसी भोग्यपदार्थकी इच्छा नहीं रहती और बोधवान्हो के सबसे उत्तमपद में विराजताहै जैसे कल्पवृक्षके निकटगयेसे वांछित फलकी प्राप्तिहोती है तैसेही संसारसमुद्रके पारउतारने वाले संतजन हैं। जैसे धीवर नौकासे पारलगाता है तैसेही संतजन युक्तिसे संसार समुद्र से पारकरते हैं। हे राम-जी! मोहमेघका नाशकरनेवाला सन्तका संग पवन है। जिसको अनात्म देहादिक से स्नेह नष्टभयाहै और शुद्धआत्मा में जिसकी स्थितिहै वह उससे तृप्त भयाहै। फिर संसार के इष्ट अनिष्ट में उसकी बुद्धि चलायमान नहीं होती; वह सदा समताभाव में स्थितरहता है। सन्तजन संसार समुद्रके पारउतारने में पुलकेसमान हैं और आपदारूपी बेलिको जड़ समेत नाश करनेवाले हैं। हे रामजी! सन्तजन प्रकाशरूप हैं; उनके सङ्गसे पदा-र्थोंकी प्राप्तिहोती है। जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रसे हीनहुये हैं उनको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती। जिसपुरुषने सत्संगकात्यागकिया है वहनरकरूपी अग्निमेंलकड़ीकी नाई जरेगा और जिस पुरुषने सत्संग किया है उसको नरक की अग्निका नाश करने वाला सत्संगरूपी मेघ है। हे रामजी! जिसने सत्संगरूपी गंगाका स्नानकिया है उसको फिर तप दान आदिक साधनोंका प्रयोजन नहीं। वह सत्संगसेही परमगतिको प्राप्तहोगा

इससे और सब उपायोंको त्यागकर सत्संगकोही खोजना चाहिये जैसे निर्द्धन मनुष्य चिन्तामणि आदिक धनको खोजताहै तैसेही मुमुक्षु सत्संगको खोजता है । जो अध्यात्मकादि तीनों तापसे जलता है उसको शीतल करनेवाला सत्संगही है? जैसे तपीहुई पृथ्वी मेघसे शीतलहोती है तैसेही हृदय सत्संगसे शीतल होता है । हे रामजी ! मोहरूपी वृक्षका नाश करनेवाला सत्संगरूपी कुल्हाड़ा है । सत्संगसेही मनुष्य अविनाशी पदको प्राप्तहोता है; जिसपदके पायेसे और कुछ पानेकी इच्छा नहीं रहती । इससे सबसे उत्तम सत्संगही है । जैसे । सब अप्सराओं से लक्ष्मी उत्तम हैं तैसेही सत्संगकर्त्ता सब से उत्तम है । इससे अपने कल्याणके निमित्त सत्संग करनाही तुमको योग्य है । हे रामजी ! ये जो चारों मोक्षके द्वारपाल हैं उनका वृत्तान्त तुम से कहा । जिस पुरुषने इनके साथ प्रीतिकी है वह शीघ्र आत्मपदको प्राप्तहोगा और जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षको न प्राप्तहोंगे । हे रामजी ! इन चारोंमें से एकभी जहां आता है वहां तीनों और भी आजाते हैं । जैसे जहां समुद्र रहता है वहां सब नदी आजाती हैं तैसेही जहां शम आता है वहां सन्तोष, विचार और सत्संग ये तीनों भी आजाते हैं और जहां साधुसंगम होता है वहां सन्तोष, विचार और शम ये तीनों आजाते हैं । जहां कल्पवृक्ष रहता है वहां सब पदार्थ स्थित होते हैं । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में गुण कला सब इकट्ठी होजाती हैं तैसेही जहां सन्तोष आता है वहां और तीनों भी आते हैं और जहां विचार आता है वहां सन्तोष, उपशम और सत्संग भी आरहते हैं । जैसे श्रेष्ठ मंत्री से राज्यलक्ष्मी आ स्थित होती है तैसेही जहां विचार होताहै वहां और भी तीनों आते हैं । इससे हे रामजी ! जहां ये चारों इकट्ठे होते हैं उसे परम श्रेष्ठ जानना । हे रामजी ! यदि ये चारों न हों तो एकका तो अवश्य आश्रय करना । जब एक आवेगा तब चारों आ स्थित होंगे । मोक्ष की प्राप्ति होने के ये चार परम साधन हैं । और उपायसे मुक्ति न होगी । श्लोक । सन्तोषःपरमोलाभःसत्संगःपरमंधनम् ॥ विचारः परमंज्ञानं शमंचपरमंसुखम् ७ ॥ हे रामजी ! ये परम कल्याण कर्त्ता हैं । जो इन चारों से सम्पन्न है उसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं । इससे दन्तको दन्तलगा इनका आश्रय करके मनको वशीभूतकरो । हे रामजी ! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुश से वशहोता है । मनरूपी वनमें वासनारूपी नदी चलती है उस के शुभ अशुभ दो किनारे हैं । पुरुषार्थ करना यह है कि, अशुभकी ओर से मनको रोकके शुभकी ओर चलाना । जब अन्तर्मुख आत्मा के सम्मुख वृत्तिका प्रवाह होगा तब तुम परमपदको प्राप्त होगे । हे रामजी ! प्रथमतो पुरुषार्थ करना यही है कि, अविचाररूपी ऊँचाई को दूर करे । जब अविचाररूपी बँट दूर होगा तब आपही प्रवाह चलेगा । हे रामजी ! दृश्य की ओर जो प्रवाह चलता है सो बन्धन का कारण है । जब आत्माकी ओर

अन्तर्मुख प्रवाहहो तब मोक्षका कारण होजाय। आगे जो तुम्हारी इच्छाहो सोकरो॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेसाधुसंगनिरूपणंनामषोडशस्सर्गः ॥ १६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ये मेरे वचन परम पावन हैं। विचारवान् शुद्ध अधिकारीको ये परम बोधके कारणहैं। शुद्ध पात्र पुरुष इन वचनोंको पाके सोहते हैं और वचनभी उनको पाके शोभा पाते हैं। जैसे शरद् कालमें मेघके अभाव से चन्द्रमा और आकाश शोभा देते हैं तैसेही शुद्ध पात्रमें ये वचन शोभते हैं और जिज्ञासू निर्म्मल वचनों की महिमा सुनके प्रसन्न होताहै। हे रामजी ! तुम परमपात्रहो और मेरे वचन अति उत्तमहैं। यह महारामायण मोक्षोपायक शास्त्र आत्मबोधका परम कारण है। इसमें परमपावन वाक्य की सिद्धता और युक्तियुक्तार्थ वाक्यहैं और नाना प्रकारके दृष्टांत कहे हैं। जिसके बहुत जन्मके पुण्य इकट्ठे होते हैं उसको कल्पवृक्ष मिलताहै और फलसे झुकपड़ताहै तब उसको यह शास्त्र श्रवण होताहै। नीचको इसका श्रवण प्राप्त नहीं होता और न उसकी वृत्ति इसके श्रवण में आती है। जैसे धर्मात्मा राजाकी इच्छा न्याय शास्त्रके सुननेमेंहोती है और पापात्माकी नहींहोती तैसेही पुण्यवान्की इच्छा इसके सुननेमें होती है और अधर्मकी इच्छा नहींहोती। जो कोई इस मोक्षोपायक रामायणका आदिसे अन्तपर्यन्त अध्ययन करेगा अथवा निष्कामसंतके मुखसे श्रद्धायुक्त सुनकर एकत्र भावहोकर विचारेगा उसका संसार भ्रम निवृत्त होजावेगा। जैसेरस्सी के जाननेसे सर्पकाभ्रम दूरहोजाताहै तैसेही अद्वैतात्मा तत्त्वके जाननेसे उसका संसारभ्रम नष्टहोजावेगा। इसमोक्षोपायक शास्त्रके बत्तीससहस्र श्लोक और षट्प्रकरणहैं। पहिला वैराग्य प्रकरण वैराग्यका परमकारणहै। हे रामजी ! जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता और कदाचित् बड़ीवर्षाहो तो वहांभी वृक्षहोताहै तैसेही अज्ञानीकाहृदय मरुस्थलकी नाईंहै उसमें वैराग्यवृक्ष नहीं होता पर जो इसशास्त्र की बड़ीवर्षाहो तो वैराग्यवृक्ष उसमें उत्पन्नहोता है। इस वैराग्यप्रकरणके एकसहस्रपांच सौ श्लोक हैं। उसके अनन्तर मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण है; उसके परम निर्म्मल वचन हैं। जैसे मलीनमणि मार्जन किये से उज्ज्वल होजातीहै तैसेही इन वचनों से ज्ञानी का हृदय निर्मल होता है और विचार के बलसे आत्मपद पाने को समर्थ होता है। इस के एक सहस्र श्लोक हैं। इसके अनन्तर उत्पत्ति प्रकरण के पांच सहस्र श्लोक हैं। उसमें बड़ी सुन्दरकथा दृष्टान्तों सहित कही है जिसके विचारसे जगत् की उत्पत्तिका भाव मनसे चलायमान रहताहै—अर्थात् इस जगत् का अत्यन्त अभाव जान पड़ता है। हे रामजी ! इस जगत् में जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी आदि और स्वर्गलोक, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश आदि स्थावर जङ्गम अज्ञानसे भासते हैं इनकी उत्पत्ति कैसेहुई ? जैसे रस्सीमें सर्प; सीपमेंरूपा; सूर्यकी किरणों में जल,

आकाशमें तारे और दूसरा चन्द्रमा; गन्धर्वनगर और मनोराज की सृष्टि भासती है और जैसे समुद्रमेंतरंग; आकाशमें नीलता और नौकामें बैठनेसे किनारे के वृक्ष और पर्वतचलते दृष्टिआते हैं एवम् जैसेबादलके चलने से चन्द्रमा धावतादीखताहै, स्तम्भ मेंपुतली भासती हैं और भविष्यत् नगरसे आदिले असत्यपदार्थ सत्यभासते हैं तैसे-ही सबजगत्है। अज्ञानसे अर्थाकार भासता है और अज्ञानसेही इसकी उत्पत्ति दी-खती है और ज्ञानसे लीनहोजाता है। जैसे निद्रामें स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्तिहोती है और जागेसे निवृत्त होजाती है तैसेही अविद्यासे जगत्की उत्पत्तिहोती है और सम्यक्ज्ञा-न से निवृत्त होजाती है वह अविद्या कुछ वस्तुही नहीं है। सर्वब्रह्म, जो चिदाकाशरूप शुद्ध, अनन्त और परमानन्द स्वरूपहै उससे न जगत् उपजताहै और न लीन होता है-क्योंकात्यों आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। उसमें जगत् ऐसा है जैसे भीतमें चित्रहोताहै वा जैसे स्तम्भमें पुतलियांहोती हैं जो हुये विना भासती हैं तैसेही यहसृ-ष्टि मनमें है वास्तवमें कुछ बनी नहीं-सब आकाशरूप है जब चित्तसंवेदन स्पन्दरूप, होताहै तब नानाप्रकारका जगत् होके भासताहै और जब निस्स्पन्दहोता है तब मिट जाताहै। इसप्रकार से जगत्की उत्पत्तिकही है। उसके अनन्तर स्थितिप्रकरणहै; उसमें जगत्की स्थिति कही है। जैसे इन्द्रके धनुषमें अविचार से रंग है और जैसे सूर्यकी किरणों में जल और रस्सी में सर्प भासताहै और वह सब सम्यक् दृष्टि से निवृत्तहोताहै तैसेही अज्ञानसे जगत्की प्रतीति होती है। केवल मनोराज से जगत् रचलेताहै-कुछ उत्पन्न नहीं हुआहै। यह जगत् सङ्कल्पमात्र है जैसे जबतक मनोराज है तब तक वह नगर होताहै जब मनोराजका अभाव हुआ तब नगरकाभी अभाव होजाता है तैसेही जब तक अज्ञान होता है तब तक जगत्की उत्पत्ति होती है जब सङ्कल्पकालय होता है तब जगत्काभी अभाव होजाता है। जैसे ब्रह्माजी के दशपुत्रोंकी सृष्टि सङ्कल्प से स्थित भई थी तैसेही यह जगत् भी है। कोई पदार्थ अर्थरूप नहीं। हे रामजी! इसप्रकार स्थितिप्रकरण कहा है। उसके तीन सहस्र श्लोकहैं; तिनके विचार से जगत्की सत्य-ता जातीरहती है। उसके अनन्तर उपशम प्रकरणहै उसके पांचसहस्र श्लोकहैं। जैसे स्वप्नसे जागेसे वासना जाती रहती है तैसेही इसके विचार कियेसे अहंत्वमादिक वा-सना लीनहोजाती हैं क्योंकि; उसके निश्चय में जगत् नहीं रहता। जैसे एक पुरुष सोया है उसको स्वप्नेमें जगत् भासता है और उसके निकट जो जाग्रत पुरुषहै उसके स्वप्नका जगत् आकाशरूपहै तो जब आकाशरूपहुआ तब वासना कैसेरहै और जब वासना नष्टहुई तब मनका उपशम होजाताहै। तब देखने मात्र उसकी सब चेष्टाहोती है और मनमें अर्थरूप इच्छानहीं होती। जैसे अग्निकी मूर्त्ति देखने मात्र होती है-अर्था-कार नहीं होती तैसेही उसकी चेष्टा होतीहै। हे रामजी! जैसे तेलसेरहित दीपक निर्वाण

होजाताहै तैसेही इच्छासे रहितमन निर्वाण होता है। उसके अनन्तर निर्वाण प्रकरणहै। उसमें परमनिर्वाण वचन कहे हैं। अज्ञानसंचित्त और चित्तकासम्बन्ध है; विचारकियेसे निर्वाण होजाता है। जैसे शरद्काल में मेघ के अभाव से शुद्ध आकाशहोता है तैसेही विचार से जीव निर्मल होता है। हे रामजी! अहङ्कार पिशाच विचार से नष्ट होता है और जितनी कुछ इच्छा फुरती हैं सो निर्वाण होजाती है। जैसे पत्थरकी शिला फोरने से रहितहोती है तैसेही ज्ञानवान् इच्छा से रहित होताहै। तब जितनी कुछ उसकी जगत् की यात्राहै सो होचुकती है और जो कुछकरना है सो करचुकताहै। हे रामजी! शरीर होतेही वह पुरुष अशरीरी होजाता है। नानाप्रकार का जगत् उसको नहीं भासता; जगत्की नेतिसे वह रहित होता है और अहंत्वमादिक तमरूप जगत् उसको नहीं भासता। जैसे सूर्य्यको अन्धकार दृष्टि नहीं आता तैसेही उसको जगत् दृष्टि में नहीं आता और बड़े पदको प्राप्तहोताहै। जैसे सुमेरुपर्वत के किसी कोने में कमल होता है और उसपर भँवरे स्थित रहते हैं तैसेही ब्रह्मके किसी कोने में जगत् तुषाररूपहै और जीवरूपीभँवरे उसपरस्थित हैं। वह पुरुष अचिन्त्य चिन्मात्र है; रूप, अवलोकन और मन उसका आकाश रूप होजाता है। वह उसपदको प्राप्त होता है जिसपदकी उपमा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रभी नहीं कहसक्ते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेसुमुक्षुप्रकरणेषट्प्रकरणविवरणन्नामसप्तदशस्सर्गः॥ १७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ये परम उत्तमवाक्यहैं। इनको विचारनेवाला उत्तम पद को प्राप्तहोताहै। जैसे उत्तमखेतमें उत्तम बीजबोयेसे उत्तमफलकी उत्पत्ति होती है तैसे ही इनका विचारनेवाला उत्तमपदको प्राप्तहोताहै। ये वाक्य युक्ति पूर्वक हैं; कदाचित् युक्ति से रहित वाक्यार्थभी हों तो उनका त्यागकरना चाहिये और युक्ति पूर्वक वाक्य अंगीकार करनाही चाहिये। हे रामजी! जो ब्रह्माकेभी वचन युक्तिसे रहित हों तो उनको भी सूखे तृण समान त्यागकरना चाहिये और यदि बालक के वचन युक्तिपूर्वक हों तो उनको अंगीकार करना चाहिये। जैसे पिता के कूपका खारीजल हो तो उसे त्यागकर निकटके मिष्टकूपके जलको पान करते हैं तैसेही बड़े और छोटे का विचार न करके युक्ति पूर्वक वचनका अंगीकार करना चाहिये। हे रामजी! मेरे वचन सब युक्ति पूर्वक और बोधके परमकारण हैं। जो पुरुष एकाग्र होके इसशास्त्रको आदि से अन्त पर्य्यंत पढ़ेगा अथवा पण्डित से श्रवण करके विचारेगा तब उसकी बुद्धिसंस्कारित होगी। जब पहिले वैराग्य प्रकरणको विचारोगे तब वैराग्य उपजेगा। जितने जगत् के रमणीय भोगपदार्थ हैं उनको बिरसजानकर किसी पदार्थ की वाञ्छा न करोगे। जब भोगमें वैराग्य होता है तब शान्तिरूप आत्मतत्त्व में प्रतीतहोती है और जब विचार से बुद्धि संस्कारित होगी तब शास्त्रका सिद्धान्त बुद्धि में स्थित

होगा। जैसे शरद्काल में बादलके अभाव हुये से आकाश सब ओर से स्वच्छ हो-जाता है तैसेही संसारके विकार छूटकर बुद्धिनिर्मलहोगी और फिर आधि व्याधिकी पीड़ा न होगी। हे रामजी! ज्यों ज्यों विचार दृढ़होगा त्यों त्यों शान्तात्मा होगा। इससे जितने संसारके यत्न हैं उनको त्याग इस शास्त्र के वारंवार विचार से चैतन्यसत्ता उदय होगी और त्योंहीं त्यों लोभ,मोहादिक विकारकी सत्ता नष्टहोगी। जैसे ज्यों ज्यों सूर्य उदय होता है त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता है तैसेही विकार नष्टहोगा। तब उस पदकी प्राप्ति होगी जिसके पाये से संसार के क्षोभ मिटजायँगे। जैसे शरद् कालमें मेघ नष्टहोजाता है तैसेही संसारके क्षोभ मिटजाते हैं। हे रामजी! जिस पुरुषने कवच पहनाहो उसको बाण नहीं बेध सक्ते; तैसेही ज्ञानवान् पुरुषको संसार के राग द्वेष नहीं बेध सक्ते। उसको भोगकी भी इच्छा नहीं रहती और जब विषय भोग आते हैं तब उनको विषयभूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अन्तःपुर से बाहर नहीं निकलती तैसेही उसकी बुद्धि भीतर से बाहर नहीं निकलती। हे रामजी! बाहरसे तो वहभी प्रकृति जन्म के समान दृष्टिआते हैं और जो कुछ अनिच्छित प्राप्त होते हैं उनको भुगतताहुआ दृष्टिमें आता है पर अन्तरसे उसको रागद्वेष नहीं फुरता। हे रामजी! जो कुछ जगत्की उत्पत्ति और प्रलयका क्षोभ है वह ज्ञानवान् को नष्टनहीं करसक्ता। जैसे चित्रकी बेलिको आंधी नहीं चला सक्ती तैसेही उसको जगत्का दुःख नहीं चला सक्ता। वह संसार की ओरसे जड़ होजाता है और वृक्षके समान गम्भीर पर्वत की नाईं स्थिर और चन्द्रमाके सदृश शीतल होजाताहै। हे रामजी! वह आत्म-ज्ञानसे ऐसे पदको प्राप्त होताहै जिसके पाये से और कुछ पानेयोग्य नहीं रहता। आत्मज्ञान का कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है इसमें नाना प्रकार के दृष्टान्त कहे हैं। जो वस्तु अपरिच्छिन्न हो और देखने में न आवे और उसका न्याय देखने में हो तो उसको उपमासे विधिपूर्वक समझाने का नाम दृष्टान्तहै। हे रामजी! यह जगत्कार्य कारणसे रहित है तो आत्मा जगत् की एकता कैसे हो इससे मैं जो दृष्टान्त कहूंगा उसका एक अंश अंगीकारकरना सर्वदेश अंगीकार न करना। हे रामजी! कार्यकारण की कल्पना मूर्खोंकी है। उसके मिटनेके लिये मैं स्वप्नदृष्टान्त कहताहूं उसके समझने से तेरेमन का संशयनष्ट होजावेगा। दृग और दृश्यका भेद मूर्ख को भासताहै। उसकेदूरकरने के अर्थ मैंस्वप्नदृष्टान्तकहूंगा जिसके विचारनेसे मिथ्याविभाग कल्पना का अभाव होताहै। हे रामजी! ऐसी कल्पनाका नाशकर्त्ता यहमेरा मोक्षउपाय शास्त्रहै। जो पुरुष आदिसे अंतपर्यंत इसे विचारेगा सो संस्कारीहोगा। जो पद पदार्थको जानने वालाहो और दृश्यको वारंवार विचारे तो उसका दृश्यभ्रम नाशहोगा इसशास्त्रके विचार में किसी तीर्थ, तप, दान आदिककी अपेक्षानहीं है। जहां स्थानहो वहां बैठे और जैसा

भोजन गृहमें हो वैसाकरे और वारंवार इसका विचारकरे तो अज्ञान नष्टहोकर आत्म पदकी प्राप्ति होवेगी। हे रामजी! यह शास्त्र प्रकाशरूपहै। जैसे अन्धकारमें पदार्थ नहीं दीखता और दीपकके प्रकाशसे चक्षुसहित दीखता है तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचार-रूपी नेत्रसहित हो तो आत्मपदकी प्राप्तिहो। हे रामजी! आत्मज्ञानविचार विना वर और शापसे प्राप्त नहीं होता। जब विचार करके दृढ़ अभ्यास कीजिये तब प्राप्तहोता है। इससे इस मोक्षपावन शास्त्रके विचारसे जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा और जगको देखते २ जगद्भाव मिटजावेगा। जैसे लिखीहुई सर्पकी मूर्त्तिसे विना विचार भ्रमहोता है और जब विचारकर देखिये तब सर्पभ्रम मिटजाताहै तैसेही यह जगत् भ्रम विचार कियेसे नष्ट होजाता और जन्म मरणका भयभी नहीं रहता। हे रामजी! जन्म मरण का भयभी बड़ा दुःखहै परन्तु इस शास्त्रके विचारसे वहभी नष्टहोजाताहै। जिन्हों ने इसका विचार त्यागाहै वह माताके गर्भमें कीटहोकर भी कष्टसे न छूटेंगे और विचार-वान् पुरुष आत्मपदको प्राप्तहोंगे। जो श्रेष्ठ ज्ञानी है उसको अनन्त सृष्टि अपनाही रूप भासता है; कोई पदार्थ आत्मसे भिन्ननहीं भासता। जैसे जिसको जलका ज्ञान है उसको लहर और आवर्त्त सब जलरूपही भासती है तैसेही ज्ञानवान्को सब आत्म-रूपही भासताहै और वह इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें इच्छा द्वेष नहींकरता—सदा एकरस मनके सङ्कल्पते रहित शान्तरूप होताहै जैसे मन्दराचलपर्वत के निकलने से क्षीरसमुद्र शान्तहुआ है तैसेही सङ्कल्प विकल्परहित मनुष्य शान्तरूप होता है। हे रामजी! और तेजदाहक होताहै परन्तु ज्ञानका तेज जिस घटमें उदय होता है सो शीतल और शान्तरूप होजाताहै और फिर उसमें संसारका विकार कोई नहीं रहता। जैसे कलियुग में शिखावाला तारा उदय होताहै और कलियुग के अभाव हुये नहीं उदय होता तैसेही ज्ञानवान् के चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता। हे रामजी! संसार भ्रम आत्मा के प्रमादसे उत्पन्न होता है पर आत्मज्ञान के प्राप्तहुये वह यत्न विनाही शांत होजाताहै। फूल और पत्रके काटने मेंभी कुछ यत्नहोताहै परन्तु आत्माके पाने में कुछयत्न नहीं होता क्योंकि; बोधरूपी बोधही से जानताहै। हे रामजी! जो जाननेमात्र ज्ञानस्वरूप है उसमें स्थित होनेका क्या यत्नहै। आत्मा शुद्ध और अद्वैतरूप है और जगत् भ्रममात्र है। जिसकी सत्यता पूर्वापर विचार किये से न पाइये उसको भ्रम-मात्र जानिये और जिसका पूर्वापर विचारकिये से सत्यहो उसका सत्यरूप जानिये। सो इस जगत्की सत्यता आदि अन्तमें नहीं है। इससे स्वप्नवत्है। जैसे स्वप्न आदि अन्तमें कुछ नहीं होता तैसेही जाग्रतभी आदि अन्त में नहीं है इससे जाग्रत और स्वप्न दोनों तुल्यहैं। हे रामजी! यह वार्त्ता बालकभी जानता है कि, जिसकी आदि अन्तमें सत्यता न पाइये सो स्वप्नवत्है। जिसका आदिभी न हो और अन्तभी न रहे

उसका मध्य भी असत्य जानिये। उसका दृष्टान्त यह है कि, सङ्कल्पपुरीवत्; ध्यान नगरकीनाईं; स्वप्नपुरीकी नाईं; वर और शापसे जो उपजता है उसकी नाईं और औषधीसे उपजकी नाईं। इन पदार्थोंकी सत्यता न आदिमें होती है और न अन्तमें होती है और मध्यमें जो भासताहै सो भी भ्रममात्रहै। तैसेही यह जगत् अकारणहै और कार्य कारणभाव सम्बन्धमें भासता है तो कार्य कारण जगत् हुआ पर आत्मसत्ता अकारण है। जगत् साकार और आत्मा निराकारहै। इस जगत्का दृष्टांत जो आत्मामेंदेंगे उसका तुमको एकअंश ग्रहणकरना चाहिये। जैसे स्वप्नकी सृष्टिका पूर्वअपरभाव आत्मतत्त्वमें मिलताहै क्योंकि; अकारण है और मध्यभावका दृष्टान्त नहींमिलता क्योंकि; उपमेय अकारण है तो उसका इसके समान दृष्टांत क्योंकर हो। इससे अपने बोध के अर्थ दृष्टान्तका एकअंश ग्रहणकरना। हे रामजी! जो विचारवान् पुरुषहैं सो गुरु और शास्त्रके वचन सुनके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक २ अंश ग्रहणकरते हैं तो उनको आत्मतत्त्वकी प्राप्तिहोती है क्योंकि; वे साग्राहक होते हैं और जो अपने बोधकेअर्थ दृष्टांतका एकअंश ग्रहण नहीं करते और वाद करते हैं उनको आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं होती है। इससे दृष्टान्तका एकअंश सारभूत ग्रहणकरके दृष्टांतके सर्वभाव से न मिलनाचाहिये और पृथक्को देखकर तर्क न करनाचाहिये। जैसे अन्धकारमें पदार्थ पड़ाहो तो दीपकके प्रकाशसे देखलेते हैं क्योंकि; दीपकके साथ प्रयोजनहै; ऐसे नहीं कहते कि,दीपक किसकाहै और तेलबत्ती कैसीहै और किसस्थानकीहै।तैसेही दृष्टांतका एकअंश आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करना। हे रामजी! जिससे वाक्अर्थ सिद्ध हो और जो अनुभवको प्रकटकरे वह वचन अंगीकार करना और जिससे वाक्यार्थ सिद्ध न हो उसका त्यागकरना। जो पुरुष अपने बोधके निमित्त वचनको ग्रहणकरता है वही श्रेष्ठहै और जो वाद के निमित्त ग्रहण करताहै वह मूर्खहै। जो कोई अभिमान को लेकर ग्रहण करताहै वह हस्तीके समान अपने शिरपर मट्टी डालता है—उसका अर्थ सिद्ध नहीं होता और जो अपने बोधके निमित्त वचन को ग्रहणकरके विचार पूर्वक उसका अभ्यास करता है उसका आत्मा शान्त होताहै। हे रामजी! आत्मपद पानेके निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिये। जब शम, विचार, संतोष और सन्त समागमसे बोधकी प्राप्तहो तब परमपदको पाताहै। हे रामजी! जो कोई दृष्टांत देताहै वह एकदेशलेकर कहता है; सर्वमुख कहनेसे अखंडताका अभाव होजाताहै। सर्वमुख दृष्टांत मुख्यको जानिये वह सत्यरूप होता है। ऐसे तो नहीं होता कि, आत्मा तो सत्यरूप, कार्य कारण से रहित, शुद्ध और चैतन्य है उसके बताने के लिये कार्य कारण जगतका दृष्टान्त कैसे दीजिये जो कोई जगत्का दृष्टान्त देता है वह केवल एक अंश लेके कहता है और बुद्धिमान् भी दृष्टान्त के एकअंशको ग्रहण करते हैं। श्रेष्ठपुरुष

अपने बोधके निमित्त सारकोही ग्रहणकरते हैं। जैसे क्षुधार्थी को चावलपाक प्राप्तहो तो भोजनकरने का प्रयोजन है तैसेही जिज्ञासू को भी यही चाहिये कि, अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहणकरके वाद न करे क्योंकि, उसकी उत्पत्ति और स्थिति का वाद करना व्यर्थ है। हे रामजी! वाक्य वही हैं जो अनुभवको प्रकटकरे और जो अनुभव को प्रकट न करे उसका त्याग करना चाहिये। कदाचित् स्त्री का वाक्य आत्मअनुभव को प्रत्यक्ष करनेवालाहो तो उसका भी ग्रहण करना चाहिये और जो परमगुरु के वेद वाक्य हों और अनुभवको प्रकट न करे तो उसका त्यागकरना चाहिये। जबतक विश्रामको न पावे तबतक विचारकरना चाहिये। विश्राम का नाम तूर्य्यपद है। जैसे मन्दराचल पर्वत के क्षोभसे क्षीरसमुद्र शान्तहुआथा तैसेही विश्रामकी प्राप्तिहोने से अक्षयशान्ति होतीहै। हे रामजी! तूर्य्यपद संयुक्त पुरुषको श्रुति-स्मृति उक्त कर्मोंके करने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और न करनेसे कुछ प्रत्यवाय नहींहोता। वह सदेहहो चाहे विदेहहो गृहस्थहो चाहे विरक्तहो उसको कुछ नहीं करनाहै। वह पुरुष संसार समुद्रसे पारहा है। हे रामजी! उपमेयकी उपमा एकअंशसे ग्रहणकर जानता है तब बोधकी प्राप्ति होती है और बोधके विना मुक्ति को प्राप्त नहीं होता वह केवल व्यर्थवादकरताहै। हे रामजी! जिसकेघटमें शुद्धस्वरूप आत्मसत्ता विराजमानहै वह जो उसको त्यागकर और विकल्प उठाताहै तो वह चोग चुञ्च और मूर्ख है। हे रामजी! प्रत्यक्ष प्रमाण माननेयोग्यहै क्योंकि, अनुमान और अर्थापत्ति आदि प्रमाणों से उसकी सत्ता प्रत्यक्ष की होतीहै। जैसे सब नदियोंका अधिष्ठान समुद्रहै तैसेही सब प्रमाणोंका अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाणहै। वह प्रत्यक्ष क्या है सो सुनिये। हे रामजी! चक्षुरूपीज्ञान सम्मत संवेदन है; जो उस चक्षुसे विद्यमान होताहै उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाणहै। उन प्रमाणोंको विषय करनेवाला जीव है। अपने वास्तवस्वरूपके अज्ञानसे अनात्मारूपी दृश्य बनाहै। उसमें अहंकृतिसे अभिमान हुआहै और अभिमान सब दृश्यहै उससे हेयोपादेय बुद्धि होती है जिससे राग-द्वेष करके जलता है और आपको कर्ता मानकर बहिर्मुख हुआ भटकता है। हे रामजी! जब विचारकरके संवेदन अन्तर्मुखी हो तब आत्मपद प्रत्यक्ष होकर निजभाव को प्राप्त होता है और फिर प्रच्छिन्नभाव नहींरहता शुद्ध शान्तिको प्राप्त होताहै। जैसे स्वप्नसे जगकर स्वप्नकाशरीर और दृश्यभ्रम नष्ट होजाताहै तैसेही आत्माके प्रत्यक्षहुये से सब भ्रम मिटजाता है और शुद्ध आत्मसत्ता भासती है। हे रामजी! यह दृश्य और द्रष्टा मिथ्याहै। जो द्रष्टाहै सो दृश्य होता और जो दृश्यहै सो द्रष्टा होताहै-यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है। जैसे पवनमें स्पन्दशक्ति रहती है तैसेही आत्मामें संवेदन रहती है। जब संवेदन स्पन्दरूप होती है तब दृश्यरूपहोके स्थित होती है। जैसे स्वप्न में अनुभवसत्ता दृश्यरूप होके स्थितहोती है तैसेही यह

दृश्य हैं । सब आत्मसत्ताही है ऐसे विचारकरके आत्मपदको प्राप्त होजावो और जो ऐसे विचारकरके आत्मपदको प्राप्त न होसको तो अहङ्कार जो उल्लेख फुरताहै उसका अभावकरो। पीछे जो शेषरहेगा सो शुद्धबोध आत्मसत्ताहै। जब तुम शुद्धबोधको प्राप्त होगे तब ऐसीचेष्टा होगी जैसे जंत्रीकी पुतली संवेदन बिना चेष्टाकरती है तैसेही देह-रूपी पुतलीका चलानेवाला मनरूपी संवेदन है उस बिना पड़ीरहेगी और अहंकृतिका अभावहोगा । इससे यत्न करके उस पदके पानेका अभ्यासकरो जो नित्य, शुद्ध और शान्तरूपहै । हे रामजी ! " दैव " शब्दको त्यागकर अपना पुरुषार्थकरो और आत्म-पदको प्राप्तहो। जो कोई पुरुषार्थ में शूरमाहै सो आत्मपदको प्राप्त होता है और जो नीच पुरुषार्थका आश्रय करताहै सो संसारसमुद्र में डूबता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेदृष्टान्तप्रमाणंनामअष्टादशस्सर्गः ॥१८॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! जब सत्सङ्ग करके मनुष्य शुद्धबुद्धिकरे तब आत्मपद पानेको समर्थ होताहै । प्रथम सत्सङ्ग यह है कि, जिसकी चेष्टा शास्त्रके अनुसार हो उसका संगकरे और उसके गुणोंको हृदयमेंधरे। फिर महापुरुषोंके शम और सन्तोषादि-कगुणोंका आश्रयकरे। शम सन्तोषादिकसे ज्ञान उपजताहै। जैसे मेघसे अन्नउपजताहै; अन्नसे जगत् होताहै और जगत् से मेघहोताहै तैसेही शम, संतोष और शमादिकगुण और आत्मज्ञान परस्पर होते हैं। शमादिक गुणोंसे ज्ञान उपजता है और आत्मज्ञान करने से शमादिकगुण स्थितहोते हैं। जैसे बड़ेतालसे मेघ और मेघ से ताल पुष्ट होताहै तैसेही शमादिकगुणों से आत्मज्ञान होता और आत्मज्ञानसे शमादिगुणपुष्टहोते हैं। ऐसे विचार करके शम सन्तोषादिक गुणोंका अभ्यासकरो तब शीघ्रही आत्मतत्त्व को प्राप्तहोगे । हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुषको शमादिक गुण स्वाभाविक प्राप्तहोते और जिज्ञासू को अभ्यास करके प्राप्तहोते हैं । जैसे धान्यकी पालना जब स्त्रीकरती है और ऊँचेशब्दसे पक्षियोंको उड़ाती है तबफलको पाती है और उससे पुष्टहोती है, तैसेही शम संतोषादिक के पालने से आत्मतत्त्वकी प्राप्तिहोती है । हे रामजी ! इस मोक्ष उपाय शास्त्र को आदि से लेकर अन्तपर्य्यन्त विचारे तो भ्रान्ति निवृत्तिहोके धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व्व पुरुषार्थ से सिद्धहोते हैं। यह शास्त्रमोक्षउपायका परमकारणहै। जो शुद्धबुद्धिमान्पुरुष इसको विचारेगा उसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहोगी । इससे इस मोक्षउपाय शास्त्र का भलीप्रकार अभ्यासकरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेआत्मप्राप्तिवर्णनन्नामएकोनविंशतितमस्सर्ग्गः॥१९॥
समाप्तमिदम् मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम् ॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे ॥

तृतीयउत्पत्तिप्रकरणप्रारम्भः ॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! ब्रह्म और ब्रह्मवेत्तामें "तुम" "इदम्" "सः" इत्यादिक सर्व शब्दआत्मसत्ताके आश्रय से स्फुरतेहैं। जैसे स्वप्ने में सब अनुभव सत्तामें शब्द होते हैं तैसेही यहभीजानो और जो उसमें यह विकल्प होते हैं कि, "जगत्क्याहै" "कैसे उत्पन्न हुआहै" और किसकाहै" इत्यादिक चोगचञ्चुहैं। हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूपहै यहां स्वप्नका दृष्टांत विचारलेनाचाहिये। इसके पहिले मुमुक्षुप्रकरण मैंने तुमसे कहाहै अब क्रमसे उत्पत्तिप्रकरण कहताहूं सो सुनिये-जो ज्ञानवस्तु स्वभावहै। हे रामजी ! जो पदार्थ उपजता है वही बढ़ता, घटता, बन्ध, मोक्ष और नीच, ऊंच होताहै और जो उपजता न हो उसकाबढ़ना, घटना, बंध, मोक्ष और नीच, ऊंचहोनाभीनहींहोता। हे रामजी! स्थावर, जंगम जो कुछ जगत् दीखताहै सो सब आकाशरूप है। द्रष्टाका जो दृश्यके साथ संयोगहै इसी का नाम बन्धनहै। और उसी संयोगके निवृत्तहोनेका नाम मोक्ष है। उस निवृत्तका उपाय मैं कहताहूं। देहरूपी जगत् चिन्मात्ररूप है और कुछ उपजा नहीं और जो उपजा भासताहै सो ऐसेहै जैसे सुषुप्ति में स्वप्न। जैसे स्वप्ने में सुषुप्ति होती है तैसेही जगत्का प्रलय होताहै और जो प्रलय में शेष रहताहै उसकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त रखताहै। नित्य, सत्य, ब्रह्म, आत्मा, सच्चिदानन्दइत्यादिक जिसके नाम रक्खे हैं वह सबका अपना आपरूपहै। चेतनतासे उसका नाम जीवहुआ है और शब्द अर्थों का ग्रहण करने लगाहै। हे रामजी ! चेतनमें जो स्पन्दताहुई है सो सङ्कल्प विकल्परूपी मनहोकर स्थितहुआहै। उसके संसरनेसे देश,काल,नदियां,पर्वत, स्थावर और जंगमरूप जगत् हुआहै। जैसे सुषुप्ति से स्वप्नहो तैसेही जगत् हुआ है। उसको कोई अविद्या; कोई जगत्; कोई माया; कोई सङ्कल्प और कोई दृश्यकहते हैं; वास्तवमें सबब्रह्मस्वरूपहै-इतर कुछ नहीं। जैसे स्वर्णसे भूषण बनताहै तो भूषण स्वर्णरूप है; स्वर्णसे इतर भूषण कुछ वस्तु नहीं है; तैसेही जगत् और ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं है। भेद तो तब हो जब जगत् उपजाहो; जो उपजाही नहीं तो भेद कैसे भासे और जो भेद

भासता है सो मृगतृष्णाके जलवत् है—अर्थात् जैसे मृगतृष्णाकीनदी के तरंग भासते हैं पर वहां सूर्य्यकी किरणेंही जलके समान भासती हैं; जलका नामभी नहीं; तैसेही आत्मामें जगत् भासता है। चेतनके अणुअणुप्रति सृष्टि आभासरूप है कुछ उपजी नहीं। अद्वैतसत्ता सर्व्वदा अपने आपमें स्थित है फिर उसमें जन्म, मरण और बन्ध मुक्त कैसे हो ? जितनी कल्पना बन्धमुक्तआदिक भासती हैं सो वास्तविक कुछ नहीं हैं आत्माके अज्ञान से भासती हैं। हे रामजी ! जगत् कोई नहीं उपजा; अपनी कल्पनाही जगत्रूप होकर भासती है और प्रमाद से सत् होरही है निवृत्त होना कठिन है। अनियत और नियत शब्द जो कहे हैं सो भाव्यर्थ हैं ऐसे वचनों से तो जगत् दूरनहीं होता। हे रामजी ! अर्थयुक्त वचनों विना दृश्यभ्रम नहीं निवृत्त होता। जो तर्कों करके और तप, तीर्थ, दान, स्नान, ध्यानादिक करके जगत्के भ्रमको निवृत्त किया चाहे वह मूर्ख है। इसप्रकारसे तो और भी दृढ़होताहै। क्योंकि, जहांजावेगा वहां देश, काल और क्रियासहित नित पञ्चभौतिक सृष्टिही दृष्टि आवेगी और कुछ दृष्टि न आवेगा इससे इसका नाश न होगा और जो जगत्से उपरान्त होकर समाधिलगा के बैठेगा तब भी चिरकाल में उतरेगा और फिर भी जगत्का शब्द और अर्थ भास आवेगा। जो फिर भी अनर्थरूप संसार भासा तो समाधिका क्या सुखहुआ क्योंकि जबतक समाधिमें रहेगा तभीतक वह सुखरहेगा। निदान इन उपायों से जगत् निवृत्त नहीं होता। जैसे कमलके डोड़े में बीज होताहै और जबतक उस बीजका नाश नहीं होता तबतक फिर उत्पन्न होता रहता है और जैसे वृक्षके पात तोड़िये तो भी बीजकानाश नहीं होता तैसेही तप, दानादिकों से जगत् निवृत्त नहीं होता और तभीतक अज्ञानरूपी बीजभी नष्ट नहीं होता। जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होगा तब जगत्रूपी वृक्षका अभाव होजावेगा। और उपायकरना मानों पत्तोंका तोड़नाहै। इनउपायों से अक्षयपद और अक्षयसमाधि नहीं प्राप्तहोती। हे रामजी ! ऐसी समाधि तो किसीको नहीं प्राप्त होती कि, शिलाके समान होजावे। मैं सब स्थान देख रहाहूं कदाचित् ऐसे भी समाधी हों तोभी संसारसत्ता निवृत्त न होगी क्योंकि, अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं हुआ। समाधि ऐसीहै जैसे जाग्रत् से स्वप्न होताहै क्योंकि, अज्ञानरूपी वासनाके कारण सुषुप्तिसे फिर जाग्रत् आती है; तैसेही अज्ञानरूपी वासनासे समाधिमें भी जाग आता है क्योंकि उसको वासना खैंच लेआती है। हे रामजी ! तप, समाधि आदिकोंसे संसार भ्रम निवृत्त नहीं होता। जैसे कांजीसे क्षुधा किसीकी निवृत्त नहींहोती तैसेही तप और समाधिसे चित्तकी वृत्ति एकाग्र होतीहै परन्तु संसार निवृत्त नहीं होता। जबतक चित्त समाधिमें लगा रहताहै तबतक सुख होताहै और जब उच्चाट होताहै तब फिर नाना प्रकारकी शब्द और अर्थों संयुक्त संसार भासताहै। हे रामजी ! अज्ञानसे जगत् भासता

है और विचार किये से निवृत्त होता है। जैसे बालक को अपनी अज्ञानता से परछांहीं में वैतालकी कल्पना होती है और ज्ञान से निवृत्त होती है तैसेही यह जगत् अविचारसे भासता है और विचार से निवृत्त होता है। हे रामजी! वास्तवमें जगत् उपजा नहीं–असत्रूप है। जो स्वरूप से उपजा होता तो निवृत्त न होता पर यह तो विचार से निवृत्त होता है इससे जाना जाता है कि, कुछ नहीं बना। जो वस्तु सत्य होतीहै उसकी निवृत्ति नहीं होती और जो असत्है सो थिरनहीं रहती। हे रामजी! सत्स्वरूप आत्माका अभाव कदाचित् नहीं होता और असत्रूप जगत् स्थिर नहीं होता। जगत् आत्मामें आभासरूप है आरम्भ और परिणाम से कुछ उपजा नहीं। जहां चेतन नहीं होता है वहां सृष्टिभी नहीं होती क्योंकि; आभासरूप है आत्मारूप आदर्श है उसमें अनन्तसृष्टि प्रतिबिम्बित होती है। और आदर्श में प्रतिबिम्बभी तब होताहै जब दूसरा निकट होता है पर आत्माके निकट दूसरा कोई नहीं और प्रतिबिम्ब होता है क्योंकिः आभासरूप है। एकही आत्मसत्ता चैत्यता से द्वैत की नाईं होकर भासती है पर कुछ बना नहीं। जैसे फूलमें सुगन्ध होती है तिलों में तेलहोता है और अग्नि में उष्णताहोती और जैसे मनोराज की सृष्टिहोतीहै; तैसेही आत्मा में जगत् है जैसे मनोराज से मनोराज की सृष्टिभिन्न नहीं होती तैसेही यह जगत् आत्मा से भिन्न नहीं बना॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबोधहेतुवर्णनन्नामप्रथमस्सर्ग्गः॥ १॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! एक आकाशज आख्यान जो श्रवणका भूषण और बोधका कारण है उसको सुनिये। आकाशज नामक एकब्राह्मण शुद्धचिदंश से उत्पन्न हुये। वह धर्मनिष्ठ सदा आत्मा में स्थित रहते थे, भलेप्रकार प्रजा की पालना करते थे और चिरंजीवी थे। तब मृत्यु विचार करने लगी कि, मैं अविनाशीहूं और जो जीव उपजते हैं उनको मारतीहूं परन्तु इस ब्राह्मणको मैं नहीं भोजन करसक्ती। जैसे खड्ग की धार पत्थर पर चलाये से कुण्ठित होजाती है तैसेही मेरी शक्ति इस ब्राह्मण पर कुण्ठित होगई है। हे रामजी! ऐसे विचार के मृत्यु ब्राह्मण के भोजन करने के निमित्त उठी और जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचार कर्मको नहीं त्याग करते तैसेही मृत्युभी अपने कर्मोंको विचारकरचली। जब ब्राह्मणके गृहमें मृत्युने प्रवेशकिया तो जैसे प्रलयकालमें महातेजसंयुक्त अग्नि सबपदार्थोंको जलानेलगती है तैसेही अग्नि इसके जलानेकोउड़ी और आगे दौड़ के जहां ब्राह्मण बैठाथा अन्तःपुर में जाकर पकड़ने लगी पर जैसे बड़ा बलवान् पुरुषभी और के संकल्परूप पुरुषको नहीं पकड़सक्ता तैसेही मृत्युब्राह्मण को न पकड़सकी। तब उसने धर्मराजके गृहमें जाकर कहा; हे भगवन्! जो कोई उपजा है उसको मैं अवश्य भोजन करतीहूं परन्तु एक ब्राह्मण जो आकाशसे उपजा है उसको मैं वशनहीं करसकी। यह क्या कारण है? यम बोले; हे मृत्यु! तुम किसीके

नहीं मारसक्की; जो कोई मरता है वह अपने कर्मों से मरता है। जो कोई कर्मोंका कर्ता है उसके मारने को तुमभी समर्थहो पर जिसका कोई कर्म नहीं उसके मारनेको तुम समर्थ नहीं हो। इससे तुम जाकर उस ब्राह्मण के कर्म खोजो; जब कर्म पावोगी तब उसके मारने को समर्थ होगी–अन्यथा समर्थ न होगी। हे रामजी! जब इस प्रकार यमने कहा तब कर्म खोजने के निमित्त मृत्युचली। कर्म वासना का नाम है। वहां जाके ब्राह्मण के कर्मों को ढूंढ़ने लगी और दशों दिशामें ताल, समुद्र, बगीचे और द्वीपसे द्वीपान्तर इत्यादिक सब स्थान देखते फिरी परन्तु ब्राह्मण के कर्मोंकी प्रतिमा कहीं न पाई। हे रामजी! मृत्यु बड़ी बलवन्त है परन्तु उस ब्राह्मणके कर्मोंको उसने न पाया तब फिर धर्मराज के पासगई—जो सम्पूर्ण संशयों को नाश करनेवाले और ज्ञानस्वरूप हैं–और उनसे कहने लगी; हे संशयों के नाश कर्त्ता! इस ब्राह्मण के कर्म मुझको कहीं नहीं दृष्टि आते मैंने बहुत प्रकार से ढूंढ़ा। जो शरीर धारी हैं सो सब कर्म संयुक्त हैं पर इसका तो कर्म कोई भी नहीं है इसका क्या कारणहै? यम बोले; हे मृत्यु इस ब्राह्मण की उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाशसे हुई है जहां कोई कारण न था। जो कारण विना पदार्थ में भासताहै सो ईश्वररूपहै। हे मृत्यु! शुद्ध आकाशसे जो इसका होना हुआहै तो यह भी वही रूप है। यह ब्राह्मण भी शुद्ध चिदाकाश रूप है और इसका चेतनही वपु है इसका कर्म कोई नहीं और न कोई क्रिया है। अपने स्वरूप से आपही इसका होना हुआ है इसकारण इसकानाम स्वयम्भूहै औरसदा अपने आपमें स्थितहै। इसको जगत् कुछ नहीं भासता–सदा अद्वैतरूपहै। मृत्युबोली; हे भगवन्! जो यह आकाश स्वरूपहै तो साकाररूप क्यों दृष्टि आता है? यमजी बोले; हेमृत्यु! यह सदा निराकार चैतन्यवपु है और इसके साथ आकार और अहंभावभी नहीं है इससे इसका नाश कैसेहो। यहतो अहंत्वं जानताही नहीं और जगत्का निश्चयभी इसको नहीं है। यह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्र है जिसके मन में पदार्थोंका सद्भाव होता है उसका नाशभी होता है और जिसको जगत् भासताही नहीं उसका नाश कैसेहो? हे मृत्यु! जो बड़ा कोई बलिष्ठभीहो और सैकड़ों जंजीरें भी हों तौभी आकाशको बांध न सकेगा तैसेही ब्राह्मण आकाशरूप है इसका नाश कैसेहो? इससे इसके नाश करने का उद्यम त्याग कर देहधारियों को जाकर मारो–यह तुमसे न मरेगा। हे रामजी! यह सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत् हो अपने गृह लौटआई। रामजी बोले; हे भगवन्! यह सो हमारे बड़े पितामह ब्रह्माकी वार्त्ता तुमने कहीहै। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह वार्त्ता तो मैंने ब्रह्माकी कहीहै परन्तु मृत्यु और यमके विवाद निमित्त यह कथा मैंने तुमको सुनाई है। इसप्रकार जब बहुतकाल व्यतीतहोकर कल्पका अन्तपात हुआ तब मृत्यु सर्व भूतों को भोजनकर फिर ब्रह्माको भोजन करने गई। जैसे किसी का कामहो और यदि

एकबारसिद्ध न भया तौ यह उसे छोड़ नहींदेता फिर उद्यम करताहै तैसेही मृत्युभी ब्रह्मा के सम्मुखगई। तब धर्मराजने कहा; हे मृत्यु! यह ब्रह्मा है। यह आकाशरूप है और आकाशही इसका शरीर है। आकाश के पकड़ने को तुम कैसे समर्थ होगी? यह तो पंचभूत के शरीर से रहित है। जैसे संकल्प पुरुष होता है तो उसका आकाशही वपुहोता है तैसेही यह आकाशरूप आदि, अन्त, मध्य और अहंत्वं के उल्लेख से रहित और अचेत चिन्मात्र है इसके मारने को तू कैसे समर्थहोगी? यह जो इसका वपुभासताहै सो ऐसे है जैसे शिल्पी के मनमें थम्भकी पुतलीहोती है पर वह कुछहुई नहीं तैसेही स्वरूप से इतर इसका होना नहीं है यह तो ब्रह्मस्वरूप है हमारे तुम्हारे मनमें इसका प्रतिमाहुई है यह तो निर्वपु है। जो पुरुष देहवान् होता है उसको ग्रहणकरना सुगम होता है और बन्ध्याके पुत्र के ग्रहणमें श्रमहोता है क्योंकि निर्वपुहै तैसे यह भी निर्वपुहै; इसके मारने की कल्पना को त्याग देहधारियों को जाकर मारो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेप्रथमसृष्टिवर्णनन्नामद्वितीयस्सर्गः॥ २॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुद्धचिन्मात्र सत्ता ऐसी सूक्ष्म है कि उसमें आकाशभी पर्वत के समान स्थूलहै। उस चित्तमें जो अहमस्मि चैत्योन्मुखत्व हुआ है उससे अपने साथ देहको देखा। पर वह देहभी आकाशरूप है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में चैत्यका उल्लेख किसीकारण से नहीं हुआ स्वतः स्वाभाविकही ऐसे उल्लेख आयफुरा है उसीका नाम स्वयम्भू ब्रह्मा है। उस ब्रह्माको सदा ब्रह्महीका निश्चयहै। ब्रह्मा और ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं है। जैसे समुद्र और तरङ्गमें; आकाश और शून्यतामें और फूल और गन्धमें कुछ भेदनहींहोता तैसेही ब्रह्मा और ब्रह्ममें भेदनहीं। जैसे जलद्रवताकेकारण तरङ्गरूप होकर भासताहै तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यतासे ब्रह्माहोकर भासती है। ब्रह्मा दूसरीवस्तु कुछनहीं है सदा चैतन्यआकाश है और पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है। हे रामजी! न कोई इसका कारणहै और न कोई कर्म है। रामजी बोले; हे भगवन्! आपने कहा कि, ब्रह्माजीका वपु पृथ्वीआदि तत्त्वों से रहित है और सङ्कल्पमात्र है तो इसका कारण स्मृतिका संस्कार क्यों न हुआ। जैसे हमको और और जीवोंकी स्मृतिहै तैसेही ब्रह्मा कोभी होनीचाहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! स्मृति संस्कार उसी का कारणहोता है जो आगेभी देहवान्हो। जो पदार्थ आगे देखा होता है उसकी स्मृति संस्कारसे होती है और जो देखा नहीं होता उसकी स्मृति संस्कारसे भी नहीं होती। ब्रह्माजी अद्वैत, अज और आदि, मध्य, अन्त से रहितहैं; इनकी स्मृति कारण कैसेहो? वहतो शुद्ध बोधरूपहै और आत्मतत्त्व ब्रह्मारूपहोकर स्थितहुये हैं। अपने आप से जो इसकाहोना हुआहै इसीसे इसका नाम स्वयम्भू है। शुद्धबोधमें चैत्य उल्लेखहुआ है–अर्थात् चित् चैतन्यस्वरूप का नाम है। अपना चित्संवित्ही कारण है और दूसरा कोई कारण

नहीं–सदा निराकार और सङ्कल्परूप इसका शरीरहै और पृथ्वी आदिक भूतों से शुद्ध अन्तवाहक वपु है। रामजी बोले; हे मुनीश्वर! जितने जीव हैं तिनके दो दो शरीर हैं–एक अन्तवाहक और दूसरा आधिभौतिक। ब्रह्माका एकही अन्तवाहक शरीर कैसे है, यह वार्त्ता स्पष्टकर कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो सकारणरूप जीव हैं उनके दो दो शरीर हैं पर ब्रह्माजी अकारण हैं इसकारण उनका एक अन्तवाहकही शरीर है। हे रामजी! सुनिये; जीवोंका कारण ब्रह्मा हैं इसकारण यह जीव दोनों देहोंको धरते हैं और ब्रह्माजीका कारण कोई नहीं यह अपने आपसेही उपजे हैं–इनकानाम स्वयम्भूहै। आदि जो इसका प्रादुर्भाव हुआ है सो अन्तवाहक शरीर है। इनको अपने स्वरूपका विस्मरण नहीं हुआ सदा अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हैं इससे अन्तवाहक हैं और दृश्यको अपना सङ्कल्पमात्र जानते हैं। जिनको दृश्यमें दृढ़प्रतीतिहुई है उनको अधिभूत कहते हैं। जैसे जड़ता से जलकी बरफ होती है तैसेही दृश्यकी दृढ़तासे आधिभौतिकहोते हैं। हे रामजी! जितना जगत् तुमको दृष्टिआताहै सो सब आकाशरूप है, किसी पृथ्वी आदिक भूतों से नहीं हुआ केवल भ्रमसे आधिभौतिक भासते हैं। जैसे स्वप्न नगर आकाशरूप होता है किसीकारण से नहीं उपजता और न किसी पृथ्वी आदिक तत्त्वों से उपजता है केवल आकाशरूप है और निद्रादोष से आधिभौतिक होकर भासता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत्भी अज्ञानसे आधिभौतिक आकाश भासता है। जैसे अज्ञान से स्वप्न अर्थाकार भासता है तैसेही जगत् अज्ञानसे अर्थाकार भासता है। हे रामजी! यह सम्पूर्ण जगत् सङ्कल्पमात्रहै और कुछ बनानहीं। जैसे मनोराजके पर्वतआकाशरूप होते हैं; तैसेही जगत्भी आकाशरूप है। वास्तवमें कुछ बना नहीं सब पुरुष के सङ्कल्प हैं और मनसे उपजे हैं। जैसे बीजसे देशकालके संयोगसे अंकुर निकलता है; तैसेही सब दृश्य मनसे उपजता है। वह मनरूपी ब्रह्मा है और ब्रह्मादि मनरूप हैं। उनके सङ्कल्पमें जो सम्पूर्ण जगत् स्थित है वह सब आकाशरूप है–आधिभौतिक कोईनहीं। हे रामजी! आधिभौतिक जो आत्मा में भासता है सो भ्रान्तिमात्र है जैसे बालकको परछाहीं में वेताल भासता है; तैसेही अज्ञानीको जो आधिभौतिक भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र है–वास्तव कुछ नहीं है। हे रामजी! जितने जीव हैं वे सब अन्तवाहक हैं परन्तु अज्ञानीको अन्तवाहकता निवृत्त होकर आधिभौतिकता दृढ़होगई है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो अन्तवाहकरूपही हैं। हे रामजी! जिन पुरुषों को प्रमाद नहीं हुआ वे सदा आत्मामें स्थित और अन्तवाहकरूप हैं और सबजगत् आकाशरूपहै। जैसेसङ्कल्प पुरुष, गन्धर्व्वनगर और स्वप्नपुर होते हैं तैसेही यह जगत् है जैसे शिल्पी कल्पता है कि, इस थम्भ में इतनी पुतलियाँ हैं सो पुतलियाँ उपजी नहीं थम्भा ज्योंका त्यों स्थितहै पुतलीका सद्भाव केवल शिल्पी के मनमें होताहै; तैसेही सब विश्व मनमें स्थितहै उसका

स्वरूप कुछ नहीं बना । जैसे तरङ्गही जलरूप और जलही तरङ्गरूप है तैसेही दृश्य भी मनरूपहै और मनही दृश्यरूप है । हे रामजी ! जबतक मनका सद्भाव है तबतक दृश्यहै—दृश्यका बीज मनहै जैसे कमलके डोड़ेका सद्भाव उसके बीजमें होताहै और उससे कमलके डोड़ेकी उत्पत्ति होती है तैसेही जगत्का बीज मनहै—सब जगत् मनसे उत्पन्न होता है । हे रामजी ! जब तुमको स्वप्न आताहै तब तुम्हाराही चित्त दृश्यको चेतताजाताहै और तो कोई कारण नहीं होता तैसेही यह जगत्भी जानना । यह तुम्हारे अनुभवकी वार्त्ता कही है क्योंकि; यह तुमको नित अनुभव होताहै । हे रामजी ! मनहीं जगत्का कारणहै और कोई नहीं । जब मन उपशाम होगा तब दृश्यभ्रम मिटजावेगा । जबतक मन उपशम नहीं होता तबतक दृश्य भ्रमभी निवृत्त नहीं होता और जबतक दृश्य निवृत्त नहीं होता तबतक शुद्धबोध नहीं होता एवम् जबतक शुद्धबोध नहीं होता तबतक आत्मानन्द भी नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबोधहेतुवर्णनन्नामतृतीयस्सर्ग्गः ॥ ३ ॥

इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार मुनिशार्दूल वशिष्ठजी कहकर तूष्णीं हुये और सर्वश्रोता वशिष्ठजी के वचनोंको सुनके और उनके अर्थ में स्थितहो इन्द्रियों की चपलता को त्याग वृत्तिको स्थित करते भये तरङ्गों के वेग स्थिर होगये; पिंजरों में जो तोते थे सो भी सुनकर तूष्णी होगये; ललना जो चपलथीं सो भी उस कालमें अपनी चपलता को त्याग करती भईं और वनके पशु पक्षी जो निकट थे सो भी सुनकर तूष्णीं हुये । निदान मध्याह्नका समयहुआ तब राजाके बड़े भृत्यों ने कहा; हे राजन् ! अब स्नान सन्ध्या का समय हुआ उठकर स्नान सन्ध्या कीजिये । तब वशिष्ठजी बोले; हे राजन् ! अब जो कुछ कहनाथा सो हम कहचुके, कल फिर कुछ कहेंगे । राजाने कहा बहुतअच्छा और उठकर अर्घ्य पाद्य नैवेद्य से वशिष्ठजी का पूजन किया और और जो ब्रह्मर्षि थे उनकी भी यथायोग्य पूजा की । तब वशिष्ठजी उठ खड़े हुये और परस्पर नमस्कार कर अपने अपने स्थानों को चले । आकाशचारी आकाश को, पृथ्वी पर रहनेवाले ब्रह्मर्षि और राजर्षि पृथ्वीपर, पातालवासी पाताल को और सूर्य्य भगवान् दिनरात्रिकी कल्पनाको त्यागकर स्थिर होरहे और मन्दमन्द पवन सुगन्ध सहित चलनेलगी मानो पवन भी कृतार्थ होने आयाहै । इतने में सूर्य्य अस्त होकर और ठौर में प्रकाशनेलगे क्योंकि; सन्तजन सबठौर में प्रकाशते हैं । इतने में रात्रिहुई तो तारागण प्रकट होगये और अमृतकी किरणों को धारणकिये चन्द्रमा उदयहुआ । उससमय अन्धकार का अभाव होगया और राजा का द्वारभी चन्द्रमा की किरणों से शीतल होगया—मानों वशिष्ठजी के वचनों को सुनकर इनकी तप्तता मिटगई । निदान सब श्रोताओं ने विचारपूर्व्वक रात्रि को व्यतीत किया; जब सूर्य्य

की किरण निकली तो अन्धकार नष्ट होगया–जैसे सन्तों के वचनों से अज्ञानी के हृदयका तम नष्ट होताहै–और सब जगत्की क्रिया प्रकट हो आई तब खेचर, भूचर और पाताल के वासी सबश्रोता स्नान सन्ध्याकर अपने अपने स्थानों में आये और परस्पर नमस्कार कर पूर्व के प्रसंगको उठाकर रामजी सहित बोले; हे भगवन्! ऐसे मनका रूप क्याहै जिससे कि, संसाररूपी दुःखों की मञ्जरी बढ़ती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस मन का रूप कुछ देखने में नहीं आता। यह मन नाममात्र है। वास्तव में इसकारूप कुछ नहीं है और आकाश की नाईं शून्यहै। हे रामजी! मन आत्मा में कुछ नहीं उपजा। जैसे सूर्य्य में तेज; वायु में स्पन्द; जलमें तरंग; सुवर्ण में भूषण; मरीचिकाजल है और आकाश में दूसरा चन्द्रमा है तैसेही मन भी आत्मामें कुछ वास्तव नहीं है। हे रामजी! यह आश्चर्य्य है कि, वास्तव में कुछ उपजा नहीं पर आकाशकी नाईं सब घटों में वर्तता है और सम्पूर्ण जगत् मनसे भासताहै। असत्रूपी जगत् जिससे भासताहै उसीका नाम मनहै। हे रामजी! आत्मा शुद्ध और अद्वैत है; द्वैतरूप जगत् जिसमें भासताहै उसका नाम मन है और सङ्कल्प विकल्प जो फुरताहै वह मनका रूपहै। जहां जहां सङ्कल्प फुरता है वहां वहां मनहै जैसे जहां जहां तरंग फुरते हैं तहां तहां जलहै तैसेही जहां जहां सङ्कल्प फुरता है वहां वहां मन है मनके और भी नाम हैं–स्मृति, अविद्या, मलिनता और तम ये सब इसी के नाम ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं। हे रामजी! जितना जगत् जाल भासता है सो सब मन से उत्पन्न हुआ है और सब दृश्य मनरूप हैं क्योंकि; मनका रचाहुआ है वास्तव में कुछ नहीं है। हे रामजी! मनरूपी देहका नाम अन्तवाहक शरीर है वह सङ्कल्परूप सब जीवोंका आदिवपु है। उस सङ्कल्प में जो दृढ़ आभास हुआ है उससे आधिभौतिक भासनेलगा है और आदिस्वरूपका प्रमाद हुआ है। हे रामजी। यह जगत् सब संकल्परूप है और स्वरूप के प्रमादसे पिण्डाकार भासता है। जैसे स्वप्न देह का आकार आकाशरूप है उसमें पृथ्वीआदितत्त्वों का अभाव होता है परन्तु अज्ञान से आधिभौतिकता भासती है सो मनहीं का संसरनाहै तैसेही यह जगत्है; मनके फुरनेसे भासता है। हे रामजी! जहां मनहै वहां दृश्यहै और जहां दृश्य है वहां मनहै। जब मन नष्टहो तब दृश्य भी नष्टहो। शुद्धबोधमात्र में जो दृश्यभासताहै सोई मन है। जबतक दृश्यभासताहै तबतक मुक्त न होगा; जब दृश्यभ्रम नष्टहोगा तब शुद्धबोधप्राप्तहोगा हे रामजी! "द्रष्टा, दर्शन, दृश्य" यह त्रिपुटी मनसे भासती है। जैसे स्वप्न में त्रिपुटी भासती है और जब जागउठा तब त्रिपुटीका अभाव होजाता है और आपही भासता है तैसेही आत्मसत्तामें जागेहुये को अपना आप अद्वैतही भासता है। जबतक शुद्ध बोध नहीं प्राप्त हुआ तबतक दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता। वह बाह्य देखता है तो भी

सृष्टिही दृष्टि आतीहै; अन्तर देखेगा तौभी सृष्टिही दृष्टिआती है और उसकोसत्यजान कर राग द्वेष कल्पना उठती है । जब मन आत्मपदको प्राप्त होता है तब दृश्य भ्रम निवृत्त होजाताहै। जैसे जब वायुकी स्पन्दता मिटी तब वृक्षके पत्रोंका हलना भी मिट जाता है । इससे मनरूपी दृश्यही बन्धनका कारणहै; रामजी बोले; हे भगवन्! यह दृश्यरूपी विसूचिका रोगहै उसकी निवृत्ति कैसे हो सो कृपा करके कहो? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! संसाररूपी बैताल जिसको लगा है उसकी निवृत्ति अकस्मात् होती है। प्रथमतो विचार करके जगत्का स्वरूप जानो; उसके अनन्तर जब आत्मपदमें विश्रान्त होंगे तब तुम सर्व आत्मा होगे । हे रामजी! दृश्य भ्रम जो तुमको भासता है उसको मैं उत्तर ग्रन्थसे निवृत्त करूंगा; इसमें सन्देह नहीं । सुनिये, यह दृश्य मनसे उपजा है और इसका सद्भाव मनमेंहीहुआ है। जैसे कमल के डोडेका उपजना कमल के डोडेके बीज में है तैसेही संसार का उपजना स्मृति से होता है । वह स्मृति अनुभव आकाश में होती है। हे रामजी! स्मृति उस पदार्थको होती है जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होता है। जितना कुछ जगत् तुमको भासता है सो सङ्कल्प रूपहै—कोई पदार्थ सत्रूप नहीं । जो वस्तु असत्रूप है उसकी स्थिरता नहीं होती और जो वस्तु सत्रूप है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता । जितना कुछ प्रपंच भासता है सो असत्रूप है मनके चिन्तनसे उत्पन्न हुआ है। जब मन फुरने से रहितहो तब जगत् भ्रम निवृत्त होता है । हे रामजी! पृथ्वी, पर्वत आदिक जगत् असत् रूप न होते तो मुक्त भी कोई न होता। मुक्त तो दृश्य भ्रमसे होता है; जो दृश्य भ्रम नष्ट न होता तो मुक्त भी कोई न होता; पर ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुये हैं इस कारण कहताहूं कि, दृश्य असत्यरूप मनके सङ्कल्पमें स्थितहै। हे रामजी! एक मनको स्थिरकर देखो फिर अहंत्वं आदिक जगत् तुमको कुछ न भासेगा। चित्तरूपी आदर्शमें सङ्कल्परूपी दृश्य मलीनता है । जब मलीनता दूर होगी तब आत्मा का साक्षात्कार होगा। हे रामजी! यह दृश्यभ्रम मिथ्या उदय हुआहै। जैसे गन्धर्व्वनगर और स्वप्नपुर तैसेही यह जगत् भी है। जैसे शुद्ध आदर्शमें पर्वतका प्रतिविम्ब होता है तैसेही चित्तरूपी आदर्श में यह दृश्य प्रतिविम्ब है । मुकुर में जो पर्व्वतका प्रतिविम्बहोता है सो आकाशरूपहै उसमें कुछ पर्वतका सद्भावनहीं तैसेही आत्मा में जगत्का सद्भाव नहीं। जैसे बालकको भ्रमसे परछाहीं में पिशाच बुद्धि होती है तैसेही अज्ञानी को जगत् भासताहै—वास्तव में जगत् कुछनहीं है । हे रामजी! न कुछ मन उपजा है और न कुछ जगत् उपजा है--दोनों असत्रूप हैं। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही आत्मामें जगत् भासता है। जैसे आकाश अपनी शून्यता और समुद्र जल से पूर्ण है तैसेही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित और पूर्ण है और

उसमें जगत्का अत्यन्त अभावहै। इतना सुन रामजीने पूछा; हे भगवन्! यह तुम्हारे वचन ऐसे हैं जैसे कहिये कि, बन्ध्याके पुत्रने पर्वत चूर्णकिया; शशेकेशृंगअतिसुन्दर हैं, रेतमें तेल निकलताहै और पत्थरकी शिला नृत्य करती वा मूर्त्तिका मेघ गरजता और पत्थरकी पुतलियां गान करती हैं। तुम कहतेहो कि, दृश्य कुछ उपजाही नहीं और हैही नहीं और मुझको ये, जरा मृत्यु आदिक विकारों सहित प्रत्यक्ष भासते हैं इससे मेरे मनमें तुम्हारे वचनोंका सद्भावनहीं स्थितहोता। कदाचित् तुम्हारेनिश्चयमें इसीप्रकार है तो अपना निश्चय मुझको भी बतलाइये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! हमारे वचन यथार्थ हैं। हमने असत् कदाचित् नहीं कहा! तुम विचार के देखो यह जगत् आडम्बर विना कारण है। जब महाप्रलय होताहै तब शुद्धचैतन्य संवित रहजाता है और उसमें कार्य--कारण कोई कल्पना नहीं रहती हैं--उसमें फिर यह जगत् कारणविना फुरताहै। जैसे सुषुप्तिमें स्वप्न सृष्टि फुरआतीहै और जैसे स्वप्न सृष्टि अकारणहै तैसेही यह सृष्टि भी अकारणहै। हे रामजी! जिसका समवायकारण और निमित्त कारण नहो और प्रत्यक्षभासे उसे जानिये कि, भ्रान्तिरूपहै। जैसे तुमको नित्य स्वप्नका अनुभव होताहै और उसमें नाना प्रकारके पदार्थ कार्य कारण सहित भासतेहैं पर कारणविनाहैं तैसेही यहजगत्भीकारणविनाहै। इससे आदिकारणविनाही जगत् उपजाहै। जैसे गन्धर्वनगर, सङ्कल्पपुर और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासताहै; तैसेही यह जगत् भासताहै--कोई पदार्थ सत् नहीं। जैसे स्वप्नमें राजपति और नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं सो किसी कारणसे तो नहीं उपजे केवल आकाशरूप मनके संसरनेसे सब भासते हैं; तैसेही यह जगत् चित्तके संसरनेसे भासताहै। जैसे स्वप्नमें और स्वप्ना भासताहै और फिर उसमें और स्वप्ना भासता है तैसे यह जगत् भासताहै और तैसेही जाग्रत् जगत्जाल मनकी कल्पनासे भासताहै। हे रामजी! चलना, दौड़ना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूंघना इत्यादिक विषय और रागद्वेषादिक विकार सब मनके फुरनेसे होते हैं--आत्मा में कोई विकार नहीं जब मन उपशम होता है तब सब कल्पना निवृत्त होजाती हैं इससे संसार का कारण मनही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणबोधहेतुवर्णनन्नामचतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

रामजी बोले; हे भगवन्! मनका रूप क्या है? वह तो मायामयहै इसका होना जिससे है सो कौन पदहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब महा प्रलय होता है तब सब जगतका अभाव होजाताहै और पीछे जो शेष रहताहै सो सत्रूप है। आदि सर्गका भी सत्रूप होताहै उसकानाश कदाचित् नहीं होता वह सदा प्रकाशरूप, परमदेव, शुद्ध, परमात्मतत्त्व, अज, अविनाशी और अद्वैतहै। उसको बाणी नहीं कहसक्ती। वहपद जीवन्मुक्त पाताहै। हे रामजी! आत्म आदिक शब्द उद्देश

में कल्पित हैं; स्वाभाविक कोई शब्द नहीं प्रवर्त्तता। शिष्यको बतानेके लिये शास्त्र-कारोंने देवके बहुत नाम कल्पे हैं मुख्य तो देवको " पुरुष " कहते हैं। वेदांतवादी उसी को " ब्रह्म " कहते और विज्ञानवादी उसीका विज्ञान से "बोध" कहते। कोई कहतेहैं कि "निर्मलरूप" है, शून्यवादी कहते हैं "शून्य" ही शेष रहताहै; कोई कहते हैं "प्रकाशरूप" है जिसके प्रकाशसे सूर्य्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको "वक्ता" कहते कि, आदिवेदका "वक्ता" वही है और स्मृतिकर्त्ता कहते कि, सबकुछ वह स्मृतिसे करनेवाला है और सब कुछ उसकी इच्छासे हुआहै इससे सबकाकर्त्ता सर्व " आत्मा " है। हे रामजी! इसी तरह अनेक नाम शास्त्रकारोंने कहे हैं। इनसबका अधिष्ठान परमदेव है और अस्तिआदि षट्विकारोंसे रहित शुद्ध, चैतन्य और सूर्यवत् प्रकाशरूप है। वही देव सब जगत्में पूर्णहोरहाहै। हे रामजी! आत्मारूपी सूर्य है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रा-दिक उसकी किरणें हैं। ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग बुदबुदे उत्पन्न होकर लीन होते हैं और सब पदार्थ उस आत्माके प्रकाशसे प्रकाशते हैं। जैसे दीपक अपने आपसे प्रकाशताहै और औरोंको भी प्रकाश देताहै तैसेही आत्मा अपने प्रकाश से प्रकाशता है और सबको सत्तादेनेवाला है। हे रामजी! वृक्ष आत्मसत्तासे उपजताहै, आकाशमें शून्यता उसीकी की है और अग्निमें उष्णता, जलमें द्रवता और पवनमें स्पर्श उसीकी की है। निदान सब पदार्थोंकीसत्ता वही है। मोरोंके पङ्खों में रंग आत्मसत्तासेही हुआहै; पत्थरमेंसूंगा और पत्थरोंमें जड़ता उसीकी की है। और स्था-वर-जङ्गम जगत् का अधिष्ठानरूप वही ब्रह्म है। हे रामजी! आत्मरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे ब्रह्मांडरूपी त्रसरेणु उत्पन्न होती है। वह चन्द्रमा शीतलता और अमृतसे पूर्ण है। ब्रह्मरूपी मेघहै उससे जीवरूपी बूँदियां टपकती हैं। जैसे बिजलीका प्रकाश होता है और छिपजाता है तैसेही जगत् प्रकटहोताहै और छिपजाताहै। सबका अधि-ष्ठान आत्मसत्ता और वह नित्य, शुद्ध बुद्ध और परमानन्दरूप है। सब सत्य अस-त्यरूप पदार्थ उसी आत्मसत्ता से होते हैं। हे रामजी! उसदेवकीसत्तासे जड़ पुर्य्यष्टक चैतन्यहोकर चेष्टाकरती है। जैसे चुम्बक पत्थरकी सत्तासे लोहा चेष्टाकरता है तैसे ही चैतन्यरूपी चुम्बकमणिसे देहचेष्टा करती है। वह आत्मा नित्य चैतन्य और सब का कर्त्ता है; उसका कर्त्ता और कोई नहीं वह सबसे अभेद रूप समान सत्ता है और उदय अस्तसे रहित है। हे रामजी! जो पुरुष उसदेवको साक्षात् करता है उसकी सब क्रिया नष्ट होजाती हैं और चिद्जड़ ग्रन्थि छिदजाती हैं और केवल बोधरूप होते हैं। जब स्वभाव सत्ता में मन स्थितहोताहै तब मृत्युकोसम्मुख देखकर भी बिह्वल नहीं होता। इतना कहकर फिर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वहदेव किसीस्थानमेंनहीं रहता और कहीं दूर भी नहीं है वह तो अपने आपहीमें स्थितहै। हे रामजी! घटघट

में वह देव है पर अज्ञानी को दूरभासता है । स्नान, दान, तप, आदि से वह प्राप्त नहीं होता केवल ज्ञानसेही प्राप्त होता है—कर्त्तव्यसे प्राप्तनहींहोता । जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है वह कर्त्तव्यतासे निवृत्त नहीं होती केवल ज्ञातव्यसेही निवृत्त होती है तैसेही जगत्की निवृत्ति आत्मज्ञानसेही होती है । हे रामजी ! कर्त्तव्यभी वही है जो प्राप्तहोनेका ज्ञातव्यरूप है—अर्थात् यह कि जिससे ज्ञातव्य स्वरूपकी प्राप्ति होती है । रामजी बोले; हे भगवन् ! जिस देवके जानने से पुरुष फिर जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता वह कहां रहता है और किसतप और क्लेश से उसकी प्राप्तिहोती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! किसी तपसे उस देवकी प्राप्ति नहीं होती केवल अपने पुरुष प्रयत्न सेही उसकी प्राप्तिहोती है । जितना कुछ राग, द्वेष, काम, क्रोध, मत्सर और अभिमान सहिततप है वह निष्फल दंभ है इनसे आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती । हे रामजी ! इसकी परमऔषधि सत्संग और सत्शास्त्रोंका विचार है जिससे दृश्यरूपी विसूचिका निवृत्त होती है । प्रथम इसका आचारभी शास्त्र और लौकिक अविरुद्धहो अर्थात् शास्त्रोंके अनुसारहो और भोगरूपी गढ़े में न गिरे । दूसरे सन्तोष संयुक्त यथालाभ सन्तुष्टहोकर अनिच्छित भोगोंको प्राप्तहो और जो शास्त्र अविरुद्धहो उसको ग्रहण करे और विरुद्धहो उसका त्यागकरे—इनसे दीन नहो । ऐसे उदार आत्मको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है । हे रामजी ! आत्मपद पानेका कारण सत्संग और सत्शास्त्र है । सन्त वह है जिसको सब लोग भलासाधु कहते हैं और सत्शास्त्र वही है जिस में ब्रह्म निरूपणहो । जब ऐसे सन्तोंका संग और सत्शास्त्रोंका विचारहो तो शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहोती है । जब मनुष्य श्रुति विचारद्वारा अपने परम स्वभाव में स्थित होता है तब ब्रह्मा विष्णु और रुद्रभी उसपर दया चाहते हैं और कहते हैं कि यहपुरुष परब्रह्महुआहै । हे रामजी ! सन्तोंका संग और सत्शास्त्रोंका विचार निर्मल करता और दृश्यरूप मैलको नाश करता है । जैसे निर्मली रेतसे जलका मैल दूरहोताहै तैसेही यह पुरुष निर्मल और चैतन्य होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेप्रयत्नोपदेशोनामपञ्चमस्सर्गः ॥ ५ ॥

इतनासुन, रामजीने पूछा; हे भगवन् ! वह देव जो तुमनेकहा कि, जिसके जानने से संसार बन्धन से मुक्तहोता है कहां स्थित है और किसप्रकार मनुष्य उसको पाता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वहदेव दूरनहीं शरीरमेंहीं स्थितहै । नित्य, चिन्मात्र सब में पूर्ण और सर्वविश्वसे रहितहै । चन्द्रमाको मस्तकमें धरनेवाले सदाशिव, ब्रह्माजी और विष्णु और इन्द्रादिक सब चिन्मात्ररूप हैं । बल्कि सब जगत् चिन्मात्ररूप है रामजी बोले, हे भगवन् ! यहतो अज्ञान बालक भी कहते हैं कि, आत्मा चिन्मात्र है; तुम्हारे उपदेशसे क्यासिद्धहुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस विश्वके चिन्मात्र

जानने से तुम संसार समुद्रको नहीं लंघसक्के इस चैतन्यका नाम संसार है। यह चैतन्य जीव पशुहै; संसार नामरूपहै इससे जरा मरणरूप तरङ्ग उत्पन्नहोते हैं क्योंकि, हेयरूप दुःखपाता है। हे रामजी! चैतन्य होकर जो चैतन्यता है सो अनर्थ का कारणहै और चैतन्यसे रहित जो चैतन्यहै वह परमात्मा है। उस परमात्माको जानकर मुक्ति होती है तब चैतन्यता मिटिजातीहै। हे रामजी! परमात्मा के जाननेसे हृदय की चिद्जड़ ग्रन्थि टूट पड़ती है अर्थात् अहंमम नष्ट होजाताहै, सब संशय छेदेजाते हैं और सब कर्म क्षीण होजाते हैं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! चित्त चैतन्योन्मुख होताहै तब आगे दृश्य स्पष्ट भासता है; इसके होते चित्तके रोकने को क्योंकर समर्थ होताहै और दृश्य किस प्रकार निवृत्त होताहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दृश्यसंयोगी चेतनजीवहै, वह जन्मरूपी जङ्गलमें भटकता २ थकजाताहै। इस चेतनको जो चैतन अर्थात् चिदाभास जीव प्रकाशी कहते हैं सो पण्डित भी मूर्खहैं। यह तो संसारी जीवहै इसके जाने से कैसे मुक्तिहो। मुक्ति परमात्माके जाननेसे होती है और सर्वदुःखनाशहोते हैं। जैसे विशूचिका रोग उत्तम औषधिसेही निवृत्त होताहै तैसेही परमात्माके जाननेसे मुक्तहोता है। रामजी ने यहपूछा, हे भगवन्! परमात्माकाक्यारूपहै कि, जिसके जाननेसे जीव मोहरूपीसमुद्र को तरता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देशसे देशान्तरको दूर जो संवित निमेषमें जाताहै उसके मध्यजो ज्ञानसंवितहै सो परमात्माकारूप है और जहां संसारका अत्यन्त अभाव होताहै उसके पीछे जो बोधमात्र शेषरहता वह परमात्माका रूपहै। हे रामजी! ऐसा आकाश जहांद्रष्टा दर्शन दृश्यका अभावहोताहै वह भी परमात्माका रूप है और जो अशून्यहै और शून्यकीनाईं स्थितहै और जिसमें सृष्टिकासमूहशून्यहै ऐसी अद्वैत सत्ता परमात्माका रूपहै हे रामजी! महाचेतनरूप बड़ेपर्वतकी नाईं जो स्थितहै और अजड़है पर जड़के समान स्थितहै वह परमात्माका रूपहै और जो सबकेभीतर बाहर स्थितहै और सबकोप्रकाशताहै सो परमात्माकारूप है। हे रामजी! जैसे सूर्य प्रकाशरूप और आकाश शून्यरूपहै तैसेही यह जगत् आत्मरूपहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जोसब परमात्माहीहै तो क्यों नहीं भासता और जो सबजगत्भासताहै इसकानिर्वाण कैसेहो? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! यहजगत् भ्रमसे उत्पन्नहुआहै—वास्तवमें कुछनहीं है। जैसे आकाशमें नीलता भासती है तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै। जब जगत्का अत्यन्तअभावजानोगे तब परमात्माका साक्षात्कारहोगा और किसीउपायसे न होगा। जब दृश्यका अत्यन्त अभावकरोगे तब दृश्य उसीप्रकार स्थितरहेगा पर तुमको परमार्थ सत्ताही भासेगी। हे रामजी! चित्तरूपी आदर्श दृश्यके प्रतिबिम्ब विना कदाचित् नहीं रहता। जबतक दृश्यका अत्यन्तअभाव नहींहोता तबतक परमबोधका साक्षात्कार नहीं होता इतनासुनकर रामजीने फिर पूछा कि, हे भगवन्! यहदृश्यजाल आडम्बर मनमें कैसे

स्थितहुआहै ? जैसे सरसोंकेदानोंमें सुमेरुका आना आश्चर्य है तैसेही जगत्का मनमें आनाभी आश्चर्यहै वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एकदिन तुम वेदधर्मकी प्रवृत्तिसहित सकाम यज्ञ योगादिक त्रिगुणसे रहितहोकर स्थितहो और सत्संगति और सत्शास्त्र परायणहो तब मैं एकही क्षणमें दृश्यरूपी मैल दूरकरूंगा। जैसे सूर्यकी किरणोंके जानेसे जलका अभाव होजाताहै तैसेही तुम्हारे भ्रमका अभाव होजावेगा। जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टाभी शान्तहोवेगा और जब दोनोंका अभावहुआ तब पीछे शुद्ध आत्मसत्ताही भासेगी। हे रामजी ! जबतक द्रष्टाहै तबतक दृश्यहै और जबतक दृश्य है तबतक द्रष्टाहै जैसे एककी अपेक्षासे दोहोतेहैं–दोहैं तोएकहै और एकहै तबदोभी हैं–एक न हो तब दोकहांसेहों–तैसेही एकके अभावहुये दोनोंका अभाव होताहै। द्रष्टाकी अपेक्षासेही दृश्यकी अपेक्षा करके द्रष्टाहै। एकके अभावसे दोनों का अभावहोजाताहै। हे रामजी ! अहन्तासे आदिलेकर जो दृश्यहै सो सब दूरकरूंगा। हे रामजी ! अनात्मासे आदिलेके जो दृश्यहै वही मैलहै। इससे रहित होकर चित्तरूपीदर्पण निर्मलहोगा। जोपदार्थ असत्है उसका कदाचित् सत् नहीं होता और जो पदार्थ सत्है सो असत् नहीं होगा। जो वास्तव सत् न हो उसका मार्ज्जनकरना क्याबातहै; हे रामजी ! यह जगत् आदिसे उत्पन्न नहीं हुआ। जोकुछ दृश्यभासताहै वह भ्रान्तिमात्रहै। सर्व निर्मल ब्रह्म चैतन्य है। जैसे सुवर्णसे भूषण होताहै तो वह सुवर्ण भूषण से भिन्ननहीं तैसेही जगत् और ब्रह्ममें कुछभेद नहीं। हे रामजी ! दृश्यरूपी मलके मार्जन के लिये मैं बहुत प्रकारकी युक्ति तुमसे विस्तारपूर्वक कहूंगा उससे तुमको अद्वैत सत्ताका भासहोगा। यह जगत् जो तुमको भासताहै वह किसीकेद्वारा नहींउपजा। जैसे मरुथलकी नदी भासतीहै और आकाशमें दूसरा चंद्रमा भासताहै तैसेही यह जगत् विना कारणभासता है। जैसे मरुथलमें जलनहीं; जैसे बन्ध्याका पुत्रनहीं और जैसे आकाश में वृक्षनहीं तैसेही यह जगत्है। जो कुछ देखतेहो वह निरामयब्रह्म है। यह वाक्य तुमको केवल वाणीमात्र नहीं कहे किन्तु युक्तिपूर्व्वक कहे हैं। हे रामजी ! गुरुकी कही युक्तिको जे मूर्खतासे त्यागकरतेहैं उनको सिद्धांत नहीं प्राप्तहोता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेदृश्यअसत्यप्रतिपादनंनामषष्ठस्सर्ग्गः॥ ६॥

इतनासुन रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर ! वह युक्ति कौनहै और कैसेप्राप्त होती है जिसके धारणकियेसे पुरुष आत्मपदको प्राप्तहोताहै ? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी ! मिथ्या ज्ञानसे जो विशूचिकारूपी जगत् बहुत कालका दृढ़ होरहाहै वह विचाररूपी मंत्रसे शान्तहोताहै। हे रामजी ! बोधकी सिद्धता के लिये मैं तुमसे एक आख्यान कहताहूं उसको सुनके तुम मुक्तात्माहोगे और जो अर्द्धप्रबुद्ध होकर तुम उठजावोगे तब तिर्यगादिक धर्मको प्राप्तहोगे। हे रामजी ! जिस अर्थके पानेकी जीव इच्छा करताहै उसके

पानेके अनुसार यत्नभी करे और थककर फिरे नहीं तो अवश्य उसको पाताहै इससे सत्सङ्गति और सत्शास्त्रपरायणहो जब तुम इनके अर्थमें दृढ़अभ्यास करोगे तब कुछ दिनों में परमपद पावोगे। फिर रामजीने पूछा; हे भगवन्! आत्मबोधका कारण कौन शास्त्रहै और शास्त्रोंमें श्रेष्ठ कौनहै कि, उसके जानने से शोक न रहे? वशिष्ठजी बोले; हे महामते रामजी! महाबोधका कारण शास्त्रोंमें परमशास्त्र महारामायणहै। उसमें बड़े२ इतिहासहैं जिनसे परमबोधकी प्राप्ति होती है। हे रामजी! सर्व इतिहासों का सार मैं तुमसे कहताहूं जिसको समझकर जीवन्मुक्त हो तुमको जगत् न भासेगा, जैसे स्वप्न में जागेहुयेको स्वप्नके पदार्थ भासते हैं। जो कुछ सिद्धान्तहै उन सबका सिद्धान्त इसमें है और जो इसमेंनहीं वहऔरमेंभीनहींहै इसको बुद्धिमान् सब शास्त्रविज्ञान भंडार जानतेहैं। हे रामजी! जो पुरुष श्रद्धासंयुक्त इसको सुने और नित्यसुनके विचारेगा उसकी बुद्धि उदार होकर परमबोध को प्राप्तहोगी—इसमें संशय नहीं। जिसको इस शास्त्रमें रुचिनहीं है वह पापात्माहै। उसको चाहिये कि, प्रथम और शास्त्रोंको विचारे उसके अनन्तर इसको विचारे तो जीवन्मुक्त होगा। जैसे उत्तम औषधि से रोग शीघ्रही निवृत्त होताहै तैसेही इसशास्त्र के सुनने और विचारने से शीघ्रही अज्ञान नष्ट होकर आत्मपदको प्राप्तहोगा। हे रामजी! आत्मपदकी प्राप्ति वर और शापसे नहीं होती जब विचारसे अभ्यासकरे तो आत्मज्ञान प्राप्तहोता है। हे रामजी! दानदेने, तपस्या करने और वेदके पढ़नेसे भी आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती केवल आत्मविचार सेही होती है। संसार भ्रमभी अन्यथा नष्ट नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसच्छास्त्रनिर्णयोनामसप्तमस्सर्गः॥ ७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिस पुरुष के चित्त और प्राणों की चेष्टा और परस्पर बोध आत्मा का है और जो आत्माको कहता भी है; आत्मा से तोषवान् भी है और आत्माही में रमताभीहै ऐसा ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त होकर फिर विदेहमुक्तहोता है। रामजी बोले; हे मुनीश्वर! जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तका क्या लक्षण है कि, उस दृष्टि को लेकर मैंभी वैसेही विचरूं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष सब जगत् के व्यवहार करता है और जिसके हृदय में अद्वैत भ्रम शांतहुआ है वह जीवन्मुक्त है; जो शुभक्रिया करता है और हृदय से आकाशकी नाईं निर्लेप रहता है वह जीवन्मुक्त है; जो पुरुष संसार की दशा से सुषुप्त होकर स्वरूप में जाग्रत् हुआ है और जिसका जगत् भ्रम निवृत्त हुआ है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! इष्टकी प्राप्ति में जिसके मुखकी क्रांति नहीं बढ़ती और अनिष्टकी प्राप्ति में न्यून नहीं होती वह पुरुष जीवन्मुक्त है और जो पुरुष सब व्यवहार करता है और हृदय से द्वेषरहित शीतल रहताहै वह जीवन्मुक्तहै। हे रामजी! जो पुरुष राग द्वेषादिक संयुक्त दृष्टि आताहै;

इष्टमें रागवान् दिखता है और अनिष्ट में द्वेषवान् दृष्टिआताहै पर हृदय से सदा शांतरूप है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुषको अहंममता का अभाव है और जिसकी बुद्धि किसी में लेपायमान नहीं होती वह कर्म्मकरे अथवा न करे परन्तु जीवन्मुक्त है। हे रामजी! जिस पुरुषको मानापमान, भय और क्रोधमें कोई विकार नहीं उपजता और आकाशकी नाईं शून्य होगया है वह जीवन्मुक्त है। जो पुरुष भोगता भी पर हृदयसे अभोक्ता है और संचित दृष्टिआता है पर अचित है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुषसे कोई दुःखीनहीं होता और लोगोंसे वह दुःखीनहीं और राग, द्वेष, भय और क्रोध से रहित है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! जो पुरुष चित्तके फुरनेसे जगत्की उत्पत्ति जानता है और चित्तके अफुर हुये जगत्का प्रलय जानता है और सबमें समबुद्धि है वह जीवन्मुक्तहै। जो पुरुष भोगोंसे जीता दृष्टिआताहै और मृतककीनाईं स्थित और चेष्टा करता दृष्टिआताहै पर पर्व्वतके सदृश अचलहै वह जीवन्मुक्तहै। हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करता दृष्टिआता है और जिसके चित्तमें इष्ट अनिष्ट विकार कोई नहीं है वह जीवन्मुक्तहै। जिस पुरुषको सब जगत् आकाशरूप दीखता है और जिसकी निर्वासनिक बुद्धि भई है वह जीवन्मुक्त है क्योंकि वह सदा आत्मस्वभाव में स्थित है और सब जगत् को ब्रह्मस्वरूप जानता है। इतना सुनकर रामजी बोले; हे भगवन्! जीवन्मुक्तकी तो तुमने कठिन गति कही। इष्ट अनिष्टमें सम और शीतल बुद्धि कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इष्ट अनिष्टरूपी जगत् अज्ञानी को भासता है और ज्ञानीको सब आकाशरूप भासताहै उसे राग द्वेष किसीमें नहीं होता। और की दृष्टिमें वह चेष्टाकरता दृष्टिआताहै परन्तु जगत्की वार्त्तासे सुपुप्तहै। हे रामजी! जीवन्मुक्त कुछकाल रहकर जब शरीरको त्यागताहै तब ब्रह्मपदको प्राप्तहोताहै। जैसे पवन स्पन्दको त्यागकर निस्पन्द होता है तैसेही वह जीवन्मुक्तपदको त्यागकर विदेहमुक्त होता है। तब वह सूर्य्यहोकर तपता है; ब्रह्माहोकर सृष्टि उत्पन्नकरता है; विष्णु होकर प्रतिपालनकरता है; रुद्रहोके संहारकरताहै; पृथ्वीहोके सबभूतोंको धरता और औषधि अन्नादिकोंको उत्पन्न करताहै, पर्व्वतहोके पृथ्वीकोरखताहै; जलहोके द्रवता रसदेताहै, अग्निहोके उष्णताको धारताहै, पवनहोके पदार्थोंको सुखाताहै; चंद्रमाहोके औषधियोंको पुष्टकरताहै, आकाशहोके सब पदार्थोंको ठौरदेताहै, मेघहोके वर्षाकरताहै और स्थावर जंगम जितना कुछ जगत् है सबमें आत्माहोके स्थित होताहै। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! विदेहमुक्त शरीरके धारणसे क्षोभवान्होकर जगत्में आताहै तो त्रैलोकी का भ्रम क्यों नहीं मिटता? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जगत् आडंबर अज्ञानी के हृदयमें स्थित है और ज्ञानवान्को सब चिदाकाशरूप है। विदेहमुक्त वही रूपहोता है जहां उदय अस्त की कल्पना कोई नहीं केवल शुद्धबोधमात्र है। हे रामजी! यह

जगत् आदिसे उपजा नहीं केवल अज्ञान से भासता है। मैं तुम और सबजगत् आकाश रूपहैं। जैसे आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासते हैं । और जैसे मरुस्थल में जल भासताहै तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै। हे रामजी! जैसे स्वर्णमें भूषण कुछ उपजा नहीं और जैसे समुद्रमें तरङ्ग होती है तैसेही आत्मामें जगत् उपजा नहीं। यह सब जगत् जाल मनके फुरने से भासता है स्वरूप से कुछ नहीं बना। ज्ञानीको सदा यही निश्चय रहता है फिर जगत्का क्षोभ उसको कैसे भासे? हे रामजी! यहभी मैंने तुम्हारे जाननेमात्रको कहा है; नहीं तो जगत् कहां है जगत् का तो अत्यन्त अभाव है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जगत्के अत्यन्त अभाव हुये विना आत्मबोध की प्राप्ति नहीं होती। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दृश्य द्रष्टाका मिथ्या भ्रम उदय हुआ है। जब दोनों में से एकका अभाव हो तब दोनों का अभाव हो और जब दोनों का अभाव हो तब शुद्धबोधमात्र शेषरहे। जिस प्रकार जगत् का अत्यन्त अभाव हो वह युक्ति मैं तुमसे कहता हूं। हे रामजी! चिरकाल का जो जगत् दृढ़ होरहाहै वह मिथ्या ज्ञान विसूचिका है। वह विचाररूपी मंत्रसे निवृत्त होता है। जैसे पर्वत पर चढ़ना और उतरना शनैःशनैः होताहै तैसेही अविद्यक भ्रम चिरकाल का दृढ़ होरहा है विचार करके अनुक्रम से उसकी निवृत्ति होतीहै। जगत् के अत्यन्त अभाव हुये विना आत्मबोध नहीं होता। उसके अत्यन्त अभावके निमित्त मैं युक्ति कहता हूं उसके समझने से जगत् भ्रम नष्ट होगा और जीवन्मुक्त होकर तुम विचरोगे। हे रामजी! बन्धन से वही बँधता है जो उपजाहो और मुक्तभी वही होता है जो उपजा हो। यह जगत् जो तुमको भासता है वह उपजा नहीं। जैसे मरुस्थलमें नदी भासती है वहभी उपजी नहीं है भ्रम से भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है पर उपजा नहीं। जैसे अर्द्ध मीलित नेत्र पुरुष को आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही भ्रमसे जगत् भासता है। हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब स्थावर, जङ्गम, देवता, किन्नर, दैत्य, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत्का अभाव होता है। इसके अनन्तर जो रहताहै सो इन्द्रिय ग्राहक सत्ता नहीं और असत्य भी नहीं और न शून्य, न प्रकाश, न अन्धकार, न द्रष्टा, न दृश्य, न केवल, न अकेवल, न चेतन, न जड़, न ज्ञान, न अज्ञान, न साकार, न निराकार, न किञ्चन और न अकिञ्चनही है। वह तो सर्व शब्दों से रहित है उसमें वाणीकी गम नहीं और जो है तो चैतन्य से रहित चेतन आत्मतत्त्वमात्र है जिसमें अहं त्वं की कोई कल्पना नहीं। ऐसे शेष रहताहै और पूर्ण, अपूर्ण, आदि, मध्य, अन्तसे रहित है। सोई सत्ता जगत्रूप होकर भासती है और कुछ जगत् बनानहीं। जैसे मरीचिका में जल भासता तैसेही आत्मा में जगत् भासताहै। हे रामजी! जब चित्तशक्ति स्पन्द रूपहो भासती है तब जगदाकार भासता है और जब निस्पन्द होती है तब जगत् का

अभाव होताहै पर आत्म सत्ता सदा एकरस रहती है। जैसे वायु स्पंदरूप होताहै तो भासता है और निस्पन्दरूप नहीं भासता परन्तु वायु एकही है। तैसेही जब चित् संवेदन स्पंदरूप होताहै तब जगत् रूप होकर भासता है और जब निस्पंदरूप होताहै तब जगत् मिट जाता है। हे रामजी! चेतन तब जानाजाता है जब संवेदन स्पन्द रूप होता है। जैसे सुगन्ध का ग्रहण आधारभूत से होता है और आधारभूत द्रव्य विना सुगन्ध का ग्रहण नहीं होता। जैसे वस्त्र श्वेत होताहै तब रङ्गको ग्रहण करता है अन्यथा रंग नहीं चढ़ता तैसेही आत्मा का जानना स्पंद से होताहै; स्पंद विना जानने की कल्पना भी नहीं होती। जैसे आकाशमें शून्यता और अग्निमें उष्णता भासती है तैसेही आत्मामें जगत् भासता है–वह अनन्य रूपहै। जैसे जल द्रवतासे तरंगरूप होके भासता है तैसेही आत्म सत्ता जगत् रूप होके भासती है। वह आकाशवत् शुद्ध है और श्रवण, चक्षु, नासिका, त्वचा, देह और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे रहित है और सब ओरसे श्रवण करता, बोलता, सूंघता, स्पर्श करता और रसलेता भी आप-ही है। आत्मरूपी सूर्य्यकी किरणोंमें जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती हैं। जैसे जल में चक्र आवृत फुरते भासते सो जल से इतर कुछ नहीं, जलरूपही हैं तैसेही जगत् आत्मा से भिन्न नहीं आत्मरूपही है। आत्माही जगत् रूप होकर भासता है। रसना नहीं पर बोलताहै; अभोक्ता है पर भोक्ताहोके भासता है; अफुरहै पर फुरता भासताहै; अद्वैतहै पर द्वैतरूपहोकर भासता है और निराकारहै पर साकाररूप होके भासता है। हे रामजी! आत्मसत्ता सब शब्दों से अतीत है पर वही सब शब्दों को धारती है और अनद्रष्टाहोके भासती है, इतर कुछ है नहीं। कई सृष्टि समान होती हैं और कई विलक्षण होती हैं परन्तु स्वरूपसे कुछ भिन्न नहीं सदा आत्मरूप हैं। जैसे सुवर्ण में भूषण समान आकारभी होते और विलक्षणभी होते हैं और कंकण से आदि लेके जो भूषण हैं सो सुवर्ण से इतर नहीं होते–सुवर्ण रूपीही हैं तैसेही जगत् आत्मस्वरूप है और शुद्ध आकाश से भी निर्मल बोधमात्र है। हे रामजी! जब तुम उसमें स्थित होगे तब जगत् भ्रम मिट जावेगा। जगत् वास्तव में कुछ नहीं है सदा ज्योंकात्यों अपने आपमें स्थित है; और केवल मनके फुरने सेही जगत् भासता है मनके फुरने से रहित हुये सब कल्पना मिट जाती हैं और आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों भासती है। वह सत्ता ज्योंकी त्योंही है और सब का अधिष्ठानरूप है। यह सब जगत् उसी से हुआहै और वही रूपहै। सब का कारण आत्मसत्ता है और उसका कारण कोई नहीं। अकारण, अद्वैत, अजर, अमर और सब कल्पनासे रहित शुद्ध चिन्मात्ररूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमकारणवर्णनन्नामअष्टमस्सर्गः॥ ८॥

इतना सुनकर रामजीने पूछा; हे भगवन्! जब महाप्रलय होता है और सब पदार्थ

नष्ट होजाते हैं उसके पीछे जो रहता है उसे शून्य कहिये वा प्रकाश कहिये क्योंकि तमतो है नहीं; चेतनहै अथवा जीवहै; मनहै वा बुद्धिहै; सत, असत; किञ्चन, अकिंचन इनमें कोई तो होवेगा; आप कैसे कहते हैं कि, वाणीकी गमनहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह तुमने बड़ा प्रश्न कियाहै। इस भ्रमको मैं विना यत्न नाश करूंगा। जैसे सूर्य्यके उदयहुये अन्धकार नष्टहोजाता है तैसेही तुम्हारे संशयका नाशहोगा। हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सम्पूर्ण दृश्यका अभाव होजाता है पीछे जो शेष रहता है सो शून्य नहीं क्योंकि; दृश्याभास उस में सदा रहता है और वास्तव में कुछ हुआ नहीं। जैसे थम्भ में शिल्पी पुतलियां कल्पता है कि, इतनी पुतलियां इस थम्भ से निकलेंगी सो उस थम्भमेंही शिल्पी कल्पता है जो थम्भ न हो तो शिल्पी पुतलियां किसमें कल्पता ? तैसेही आत्मरूपी थम्भे में मनरूपी शिल्पी जगत्रूपी पुतलियां कल्पता है; जो आत्मा न हो तो पुतलियां किसमें कल्पै। जैसे थम्भे में पुतलियां थम्भारूप हैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मरूप है–ब्रह्मसे इतर जगत्का होनानहीं। जैसे पुतलियों का सद्भाव और असद्भाव थम्भमें है क्योंकि, अधिष्ठानरूप थम्भा है–थम्भे विना पुतलियांनहीं होतीं; तैसेही जगत् आत्माविना नहीं होता। हे रामजी! सद्भाव होजाता है वह सत्से होता है असत्से नहीं और असद्भाव सिद्ध होता है वह सतही में होता है असत् में नहीं होता। इससे सत् शून्य नहीं जो शून्य होता तोकिसमें भासता जैसे सोमजलमें तरङ्गका सद्भाव और असद्भावभी होता है। असद्भाव इस कारण होता है कि तरङ्ग भिन्न कुछ नहीं और सद्भाव इसकारणसे होताहै कि,जलही में तरङ्ग होताहै;तैसेही जगत्का सद्भाव असद्भाव आत्मामें होताहै शून्यमें नहीं। जैसे सोमजलमें कहनेमात्रको तरङ्गहैं नहीं तो जलही है; तैसेही जगत् कहनेमात्रको है; हुआ कुछ नहीं– एकससाही है। और शून्य औरअशून्यभी नहीं क्योंकि;शून्य और अशून्य ये दोनों शब्द उसमें कल्पित हैं। शून्य उसको कहते हैं जो सद्भावसेरहित अभावरूपहो और अशून्य उसकोकहते जो विद्यमानहो। पर सत्तासे इन दोनोंसे रहितहै अशून्यभी शून्यका प्रतियोगी है; जो शून्य नहीं तो अशून्य कहांसे हो। ये दोनोंही अभावमात्र हैं। हे रामजी! यह सूर्य्य, तारा, दीपक आदिक भौतिक प्रकाश भी वहां नहीं क्योंकि; प्रकाश अन्धकार का विरोधी है। जो यह प्रकाश होता तो अन्धकार सिद्ध न होता। इससे वहां प्रकाशभी नहीं है और तमभी नहीं है क्योंकि; सूर्य्यादिक जिससे प्रकाशते हैं वह तम कैसे हो? आत्मा के प्रकाश विना सूर्य्यादिक भी तमरूप हैं। इससे वह न शून्यहै; न अशून्य है; न प्रकाशहै; न तम है; केवल आत्मतत्त्वमात्र है। जैसे थम्भमें पुतलियां कुछहैं नहीं तैसेही आत्मामें जगत् कुछ हुआ नहीं। जैसे बिल्ली और बिल्लीकी मज्जा में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेद नहीं और जैसे जल और तरङ्ग में

और मृत्तिका और घटमें कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद नहीं; नाम-मात्र भेद है। हे रामजी! जल और मृत्तिकाका जो दृष्टान्तदियाहै ऐसेभी आत्मामें नहीं। जैसे जलमें तरंग होताहै और मृत्तिका में घट होता है सो भी परिणामरूप होता है। आत्मामें जगत् भान नहीं है और जो मानसिक है तो आकाशरूप है। इससे जगत् कुछ भिन्ननहीं है रूप, अवलोकन, मनसा, कार्य्यता जो कुछ भासता है वहसब आकाशरूप है। आत्मसत्ताही चित्तके फुरने से जगत्रूपहो भासती है—जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं है जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें जलाभास होता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी! थम्भे में जो शिल्पाकार पुतलियां कल्पताहै सो भी नहीं होती और यहां कल्पनेवाला भी बीचकी पुतली है वह भी होने विना भासती है। हे रामजी! जिस से यह जगत् भासता है उसको शून्य कैसे कहिये और जो कहिये कि, चैतन्य है तौ भी नहीं क्योंकि; चैतन्य भी तब जानना होता है जब चित्कला फुरती है; जहां फुरना न हो वहां चेतनता कैसे रहे? जैसे जब कोई मिरचको खाता है तब उसकी तिखाई भासती है खाने विना नहीं भासती; तैसेही चैतन्य जानना भी स्पन्दकलामें होता है आत्मा में जानना भी नहीं होता चैतन्यता से रहित चिन्मात्र अक्षय सुषुप्ति रूप है उसको जो तुरीय कहता है वह ज्ञेय ज्ञानवान् से गम्य है। हे रामजी! जो पुरुष उसमें स्थित हुआ है उसको संसाररूपी सर्प नहीं डससक्ता; वह अचैत्य चिन्मात्र होता है। और जिसकी आत्मा में स्थिति नहीं होती उसको दृश्यरूपी सर्प डसता है। आत्मसत्ता में तो कुछ द्वैत नहीं हुआ आत्मसत्ता तो आकाश से भी स्वच्छ है। इनका द्रष्टा, दर्शन, दृश्य स्वतः अनुभवसत्ता आत्माकारूप है और वह अभ्यास करने से प्राप्तहोती है। हे रामजी! उसमें द्वैत कल्पना कुछ नहीं है। वह अद्वैतमात्रहै वह न द्रष्टाहै न जीवहै न कोई विकार और न स्थूल, न सूक्ष्म है—एकशुद्धअद्वैतरूप अपने आपमें स्थित है जो यह चैत्यका फुरनाही आदिमें नहीं हुआ तो चेतनकलाका जीव कैसेहो और जो जीवही नहीं तो बुद्धिकैसेहो? जो बुद्धिहीनहो तो मन और इन्द्रियां कैसेहों; जो इन्द्रियां नहीं तो देहकैसेहो और जो देहनहो तो जगत्कैसेहो? हे रामजी! आत्मसत्तामें सब कल्पना मिटजाती हैं;उसमें कुछ कहना नहीं बनता वह तो पूर्ण, अपूर्ण, सत्, असत् से न्याराहै भाव और अभावका कभी उसमें कोई विचार नहीं; आदि, मध्य, अंतकी कल्पनाभी कोईनहीं वह तो अजर, अमर, आनंद, अनंत, चित्स्वरूप, अचेत, चिन्मात्र और अवाक्यपदहै। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म आकाशसे भी अधिक शून्य और स्थूलसेभी स्थूल एक अद्वैत और अनन्त चिद्रूपहै। इतनासुन रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह अचिन्त्य, चिन्मात्र और परमार्थसत्ता जो आपने कही उसकारूप बोधके निमित्त मुझसे फिरकहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सब जगत् नष्ट हो-

जाताहै पर ब्रह्मसत्ता शेष रहती है उसका रूप मैं कहताहूं । मनरूपी ब्रह्मा है मन की वृत्ति जो क्षीणहोती है वह एक प्रमाण; दूसरी विपर्य्यय; तीसरी विकल्प; चौथी अभाव और पांचवीं स्मरणहै । प्रमाणवृत्ति तीन प्रकार की हैं—एक प्रत्यक्ष; दूसरी अनुमान जैसे धुवांसे अग्नि जानना और तीसरी शब्दरूप ये तीनों प्रमाणवृत्ति आप्तकामिका हैं । द्वितीय विपर्य्ययवृत्तिहै—हाव और भावसे तृतीय विकल्पवृत्तिहै । जिससे शब्द ज्ञान और अर्थज्ञान होताहै । जैसे चेतन पुरुष कहा तो इससे यह ज्ञान हुआ कि, जो एक पुरुषहो और उसका द्वितीय चैतन्य स्वरूपहो तो यह चैतन्यपुरुष कहा जाता है । चेतन ईश्वररूपहै और साक्षी पुरुषरूप है अर्थात् जैसे सीप पड़ीहो और उसमें संशय वृत्ति चांदीकी होकर साक्षी सीपीभासे तो उसका नाम विकल्पहै । चतुर्थ निद्रा—अभाव वृत्तिहै और पञ्चम स्मरणवृत्तिहै । यही पांचो वृत्तिहैं और इनका अभिमानी मनहै जब तीनों शरीरोंका अभिमानी अहङ्कार नाशहो तब पीछे जो रहता है सो निश्चल सत्ता अनन्त आत्मा है । मैं असत् नहीं कहताहूं । हे रामजी ! जाग्रत् के अभाव हुये पर जब तक सुषुप्ति नहीं आती वह रूप परमात्माका है । अंगुष्ठको जो शीत उष्णका स्पर्श होताहै उसको अनुभव करनेवाला परमात्मा सत्ताहै जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य उपजता है और फिर लीन होता है वह परमात्मा का रूप है । उस सत्ता में चैतन्यताभी नहीं है । हे रामजी ! जिसमें चेतन अर्थात् जीव और जड़ अर्थात् देहादिक दोनों नहीं हैं वह अचेत चिन्मात्र परमात्मरूप है । जो सब व्यवहार होता है और जिसके अन्तर आकाश रूप है—कोई क्षोभ नहीं ऐसी सत्ता परमात्माका रूपहै । वह शून्य है परन्तु शून्यतासेरहित है । हे रामजी ! जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों प्रतिबिम्बित हैं और आकार हैं—ऐसी सत्ता परमात्माका रूपहै । जो स्थावर में स्थावर भाव और चेतनमें चेतन भावसे व्याप रहा है और मन बुद्धि । इन्द्रियां जिसको नहीं पासक्तीं ऐसी सत्ता परमात्माका रूपहै । हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका जहां अभाव होजाता है उसके पीछे जो शेष रहता है और जिसमें कोई विकल्प नहीं ऐसी अचेत चिन्मात्र सत्ता परमात्माका रूपहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमात्मस्वरूपवर्णनन्नामनवमस्सर्गः ९ ॥

इतना सुन रामजी बोले; हे भगवन् ! यह दृश्य जो स्पष्ट भासता है सो महा प्रलय में कहाजाता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! बन्ध्यास्त्रीका पुत्र कहां से आता है और कहां जाता है और आकाश का वन कहांसे आता—और कहां जाता है ? जैसे आकाश का वन है तैसेही यह जगत् है । फिर रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर ! बन्ध्या का पुत्र और आकाशका वन तो तीनों कालमें नहीं होता, शब्दमात्र है और उपजा कुछनहीं पर यह जगत् तो स्पष्ट भासता है बन्ध्या के पुत्रके समान कैसेहो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसे बन्ध्याका पुत्र और आकाश का वन उपजा नहीं तैसेही यह जगत्भी उपजा नहीं । जैसे सङ्कल्पपुरहोताहै

और जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्ष भासता है और आकाशरूप है; इनमें से कोई पदार्थ सत् नहीं तैसेही यह जगत् भी आकाशरूप है और कुछ उपजा नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में; काजल और श्यामता में; अग्नि और उष्णता में; चन्द्रमा और शीतलता में; वायु और स्पन्द में और आकाश और शून्यता में भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं–सदा अपने स्वभाव में स्थित है। हे रामजी! जगत् कुछ बनानहीं, आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है और उसमें अज्ञान से जगत् भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा, मरुस्थल में जल और आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में अज्ञान से जगत् भासता है। इतना सुन फिर रामजीने पूछा; हे भगवन्! दृश्य के अत्यन्त अभाव विना बोधकी प्राप्ति नहीं होती और जगत् स्पष्टरूप भासता है। द्रष्टा और दृश्य जो मन से उदय हुये हैं सो भ्रमसे हुये हैं। जो एकभी है तो दोनों बन्ध हुये हैं और जब दोनों में एकका अभाव हो तो दोनों मुक्तहों क्योंकि; जहां द्रष्टा है वहां दृश्यभी है और जहां दृश्य है वहां द्रष्टाभी है। जैसे शुद्ध आदर्श विना प्रतिबिम्ब नहीं होता तैसेही द्रष्टाभी दृश्य विना नहीं रहता और दृश्य द्रष्टा विना नहीं। हे मुनीश्वर! दोनों में एक नष्टहो तो दोनों निर्वाण हों इससे वही युक्ति कहो जिससे दृश्यका अत्यन्त अभाव होकर आत्मबोध प्राप्तहो। कोई ऐसेभी कहते हैं कि, दृश्य आगेथा अब नाश हुआ है तो उसको भी संसारभाव देखावेगा। और जिसको विद्यमान नहीं भासता और उसका अन्त सद्भाव है तो फिर संसार देखेगा जैसे सूक्ष्मबीज में वृक्षका सद्भाव होता है तैसे ही स्मृति फिर संसारको देखावेगी और आप कहते हैं कि, जगत्का अत्यन्त अभाव होता है और जगत् का कारण कोई नहीं–आभासमात्र है–और उपजा कुछ नहीं? हे मुनीश्वर! जिसका अत्यन्त अभाव होताहै वह वस्तु वास्तव में नहीं होती और जो हैही नहीं तो बन्धन किसको हुआ तबतो सब मुक्त स्वरूप हुये पर जगत् तो प्रत्यक्ष भासता है? इससे आप वही युक्ति कहो जिससे जगत्का अत्यन्त अभावहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दृश्य के अत्यन्त अभाव के निमित्त मैं एक कथा सुनाताहूं; जिसके अर्थ निश्चय कर समझने से दृश्य शान्त होकर फिर संसार कदाचित् न उपजेगा। जैसे समुद्रमें धूर नहीं उड़ती तैसेही तुम्हारे हृदयमें संसार न रहेगा। हे रामजी! यह जगत् जो तुमको भासता है सो अकारण रूपहै; इसका कारण कोई नहीं। हे रामजी! जिसका कारण कोई न हो और भासे उसको जानिये कि, भ्रममात्र है–उपजा कुछनहीं। जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है वह किसी कारणसे नहीं उपजी केवल संवित्रूपहै तैसेही सर्गआदि कारणसे नहींउपजा केवल आभासरूपहै-परमात्मा का कछु नहीं। हे रामजी! जोपदार्थ कारण विना भासे तो जिसमें वह भासताहै वही वस्तु उसका अधिष्ठानरूपहै। जैसे तुमको स्वप्ने में स्वप्नका नगर होकर भासताहै पर वहां तो कोई पदार्थ नहीं केवल आभासरूप है और संवित् ज्ञानही चैतन्यता से नगर होकर

भासताहै, तैसेही विश्व अकारण आभास आत्मसत्ता से होके भासताहै । जैसे जल में द्रवता; वायु में स्पन्द; जलमें रस और तेजमें प्रकाश है तैसेही आत्मामें चित्तसंवेदन है । जब चित्त संवेदन स्पंदरूप होताहै तब जगत्‌रूपहोकर भासताहै-जगत् कोई वस्तु नहीं है । हे रामजी! जैसे और तत्त्वोंके अणु और ठौरभी पायेजाते हैं और आकाशके अणु और ठौर नहीं पायेजाते क्योंकि; आकाश शून्यरूपहै; तैसेही आत्मासे इतर इस जगत् का भाव कहीं नहीं पाते क्योंकि, यह आभासरूप है और किसी कारण से नहीं उपजा कदाचित् कहो कि,पृथ्वी आदिक तत्त्वोंसे जगत् उपजाहै तो ऐसे कहनाभी असम्भव है । जैसे छाया से धूप नहीं उपजती तैसेही तत्त्वोंसे जगत् नहीं उपजता क्योंकि; आदि आपही नहीं उपजे तो कारण किसकाहो ? इससे ब्रह्मसत्ता सर्वदा अपने आपमेंस्थित है । हे रामजी ! आत्मसत्ता जगत्‌का कारण नहीं क्योंकि; वह अभूत और अजड़ रूप है सो भौतिक और जड़का कारण कैसेहो ? जैसे धूप परछाहीं का कारण नहीं तैसेही आत्मसत्ता जगत्‌का कारण नहीं । इससे जगत्‌कुछ हुआनहीं वही सत्ता जगत् रूपहोकर भासती है । जैसे स्वर्ण भूषणरूप होता है और भूषण कुछ उपजा नहीं तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है । जैसे अनुभव संवित् स्वप्न नगररूप हो भासता है तैसेही यह सृष्टि किञ्चनरूप है दूसरी वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है और जितना कुछ जगत् स्थावर जंगमरूप भासता है वह आकाशरूपहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमार्थरूपवर्णनन्नामदशमस्सर्गः १० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आत्मसत्ता नित्य, शुद्ध, अजर, अमर और सदा अपने आप में स्थित है । उसमें जिसप्रकार सृष्टि उदय हुई है वह सुनिये । उसके जाने से जगत्‌कल्पना मिट जावेगी । हे रामजी ! भाव-अभाव; ग्रहण-त्याग; स्थूल-सूक्ष्म; जन्म-मरण आदि पदार्थों से जीव छेदाजाता है उससे तुम मुक्तहोगे । जैसे चूहे सुमेरु पर्वतको चूर्ण नहीं करसक्ते तैसेही तुमको संसार के भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करसकेंगे । हे रामजी ! आदिशुद्ध-देव अचेत चिन्मात्र है; उसमें चैत्यभाव सदा रहता है क्योंकि; वह चैतन्यरूप है । जैसे वायु में स्पन्दशक्ति सदा रहती है तैसेही चिन्मात्र में चैत्यका फुरना रहकर "अहमस्मि" भावको प्राप्तहुआहै । इसकारण उसका नाम चैतन्य है । हे रामजी ! जबतक चैतन्य-संवित् अपने स्वरूप की ठौर-नहीं आता तबतक इसका नाम जीव है और सङ्कल्प का नाम बीज चित्-संवित है उसीसे सर्वभूत जाति उत्पन्न हुईहै । इससे सबका जीव चित्-संवित् है । जब जीव संवित् चैत्य को चेतता है तब प्रथम शून्यहोकर उसमें शब्दगुण होता है । उस आदि शब्द तन्मात्रा से पद, वाक्य और प्रमाणसहित वेद उत्पन्न हुये । जितना कुछ

जगत्में शब्दहै उसकाबीज तन्मात्राहै जिससे सर्ववायु अरस्परस होता है। फिररूप तन्मात्रा हुई; तिससे सूर्य्य, अग्नि आदिक प्रकाशहुये। फिर रस तन्मात्राहुई जिससे जल हुआ और सब जलोंका बीज वही है। फिर गन्ध तन्मात्राहुई जिससे पूर्णपृथ्वी हुई और सब पृथ्वी का बीज वही है। हे रामजी! इसी प्रकार पांचोभूत हुये हैं फिर पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाशसे जगत् हुआ है सो भूत पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत है। यह भूत शुद्ध चिदाकाशरूप नहीं क्योंकि; सङ्कल्पमैल युक्तहुये हैं। इस प्रकार चिद्अणु में सृष्टि भासी है। जैसे वटबीज मेंसे वटका विस्तार होता है तैसेही चिद्अणु में सृष्टि है। कहीं क्षणमें युग और कहीं युगमें क्षण भासता है। चिद्अणु में अनन्तसृष्टि-फुरती हैं। जब चित् संवित् चैत्योन्मुख होता है तब अनेक सृष्टि होकर भासती हैं और जब चित् संवित् आत्मा की ठौर आता है तब आत्माके साक्षात्कार होने से सब सृष्टि पिण्डाकार होकर जाती है-अर्थात् सब आत्मरूप होती है। इससे इसजगत्का बीज सूक्ष्मभूत है और इनका बीज चिद्अणु है। हे रामजी! जैसा बीज होता है तैसाही वृक्ष होता है। इससे सब जगत् चिदाकाशरूप है। सङ्कल्पसे यह जगत् आडम्बर होता है और सङ्कल्पके मिटेसे सब चिदाकाश होताहै। जैसे सङ्कल्प आकाशरूपहै तैसेही जगत् भी आकाशरूपहै; जो सब आत्म अनुभव आकाशरूप है और जिस से क्षणमें एकरूप होता है जैसे सङ्कल्प नगर और स्वप्नपुर होता तैसेही यह जगत् है। हे रामजी! इस जगत्का मूल पंचभूत है जिसका बीज संवित् और स्वरूप चिदाकाश है। इसी से सब जगत् चिदाकाश है; द्वैत और कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगदुत्पत्तिवर्णनन्नामएकादशस्सर्गः ११॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! परब्रह्म सम, शान्त, स्वच्छ, अनंत, चिन्मात्र और सर्वदाकाल अपने आप में स्थितहै। उसमें सम-असमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। सम अर्थात् सजातीयरूप और असम अर्थात् भेदरूप कैसे हुये सो भी सुनिये। प्रथम तो उसमें चैत्यका फुरना हुआहै; उसका नाम जीव हुआ और उसने दृश्यको चेता उससे तन्मात्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उपजे। उन्हींसे पृथ्वी, अप् तेज वायु, और आकाश पंचभूतरूपी वृक्षहुआ और उसवृक्षमें ब्रह्माण्डरूपी फललगा। इससे जगत्का कारण पञ्चतन्मात्राहुई हैं और तन्मात्राका बीज आदि संवित् आकाश है और इसीसे सर्व्वजगत् ब्रह्मरूपहुआ। हे रामजी! जैसा बीज होता है वैसाही फल होता है इसका बीज परब्रह्महै तो यह भी परब्रह्महुआ। जो आदि अचेत चिन्मात्र स्वरूप परमाकाश है और जिस चैतन्यसंवित् में जगत् भासता है वह जीवाकाश है। वहभी शुद्ध निर्मल है क्योंकि; वह पृथ्वी आदिक भूतों से रहितहै। हे रामजी! यह

जगत् जो तुमको भासता है सो सब चिदाकाशरूप है और वास्तव में द्वैत कुछ नहीं बना। यह मैंने तुमसे ब्रह्माकाश और जीवाकाश कहा। अब जिससे इसको शरीर ग्रहणहुआ सो सुनिये। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्योन्मुखत्व "अहंअस्मि" हुआ और उस अहंभाव से आपको जीव अणु जाननेलगा। आप वास्तव स्वरूप अन्य भावकी नाईं होकर जीव अणुमें जो अहंभाव दृढ़हुआ उसीका नाम अहंकार हुआ। उस अहंकारकी दृढ़तासे निश्चयात्मक बुद्धिहुई और उससे सङ्कल्परूपी मनहुआ। जब मन इसकी ओर संसरनेलगा तब सुनने की इच्छाकी इससे श्रवण इन्द्रिय प्रकट हुई; जब रूप देखने की इच्छा की तब चक्षु इन्द्रिय प्रकट हुई; जब स्पर्शकी इच्छाकी तो त्वचा इन्द्रिय प्रकट हुई और जब रसलेनेकी इच्छाकी तो जिह्वाइन्द्रिय प्रकटहुई। इसी प्रकार से देह इन्द्रिय चेतता से भासीं और उनमें यह जीव अहंप्रतीति करने लगा। हे रामजी! जैसे दर्पण में पर्वतका प्रतिबिम्ब होता है वह पर्वतसे बाह्यहै तैसेही देह और इन्द्रियां बाह्यदृश्य हैं पर अपने में भासी हैं इससे उनमें अहंप्रतीति होती है। जैसे कूपमें मनुष्य आपको देखे तैसेही देहमें आपको देखता है जैसे डब्बे में रत्नहोता है तैसेही देहमें आपको देखताहै। वही चिद्अणुदेह के साथ मिलकर दृश्यको रचता है। उसअहंसे रूपमें क्रिया भासनेलगी। जैसे स्वप्नमें दौड़े और जैसे स्थित में स्पन्द होती है तैसेही आत्मामें जो स्पन्दक्रिया हुई वह चित्तसंवितसेही हुई है और उसी का नाम स्वयम्भू ब्रह्मा हुआ। जैसे सङ्कल्प से दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही मनोमय जगत् भासताहै। जैसे शशेके शृंग होते हैं तैसाही यह जगतहै। कुछ उपजा नहीं केवल चित्तके स्पन्दमें जगत् फुरता है। जैसे २ चित्त फुरता तैसे २ देश, काल, द्रव्य, स्थावर, जंगम, जगत् की मर्यादाहुई हैं। इससे सबजगत् सङ्कल्परूपहै; सङ्कल्पसे इतर जगत् का आकार कुछ नहीं। जब सङ्कल्प फुरता है तब आगे जगत् दृश्य भासता है और जब सङ्कल्प निस्पन्द होता है तब दृश्यका अभाव होता है। हे रामजी! इस प्रकार से यह ब्रह्मा निर्वाण हो फिर और उपजते हैं इससे सब सङ्कल्पमात्रही हैं। जैसे नटवा नानाप्रकारके पटके स्वांग करके बाहर निकलआता है तैसेही देखो यह सब मायामात्र है। हे रामजी! जब चित्तकी ओर संसरताहै तब दृश्यका अन्त नहीं आता और जब अन्तर्मुख होता है तब सब जगत् आत्मरूप होताहै। चित्तके निस्पद होनेसे एक क्षणमें जगत् निवृत्त होताहै क्योंकि; सङ्कल्परूपहीहै इससे यह जगत् आकाशरूपहै उपजा कुछ नहीं और आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आप में स्थित है। जैसे स्वप्ने में पर्वत और नदियां भ्रमसे दिखते हैं तैसेही यह जगत् भी भ्रमसे भासताहै। जैसे स्वप्ने में आपको मुआ देखताहै सो भ्रममात्र है तैसेही यह जगत् भ्रममात्र है। हे रामजी! यह स्थावर, जंगम, जगत् सब चिदाकाश है। हमको तो सदा चिदाकाशही भासता

है। आदि विराट्रूप में ब्रह्माभी वास्तवमें कुछ उपजे नहीं तो जगत् कैसे उपजा। जैसे स्वप्न में नानाप्रकार के देशकाल और व्यवहार दृष्टि आते हैं सो अकारणरूपहैं; उपजे कुछ नहीं और आभासमात्र हैं; तैसेही यह जगत् आभासमात्रहै। कार्य कारण भासते हैं तोभी अकारणहै। हे रामजी! हमको जगत् ऐसाभासताहै जैसे स्वप्नसे जागेमनुष्यको भासताहै। जो वस्तु अकारण भासी है सो भ्रान्तिमात्रहै। जो किसी कारण द्वारा जगत् नहीं उपजा तो स्वप्नवत्है। जैसे संकल्पपुर और गन्धर्वनगर भासते हैं तैसेही यह जगत्भी जानो। आदिविराट् आत्मा अन्तवाहकरूपहै और वह पृथ्वी आदितत्वों से रहित आकाशरूपहै तो यह जगत् अधिभूत से कैसे हो। सब आकाशरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेस्वयम्भूउत्पत्तिवर्णनन्नामद्वादशस्सर्गः॥ १२॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! यह दृश्य मिथ्या असत्रूपहै। जो है सो निरामय ब्रह्म है। वह ब्रह्म आकाशजीवकी नाईं हुआहै। जैसे समुद्रद्रवतासे तरङ्गरूप होताहै तैसेही ब्रह्मजीवरूपहोता है आदिसंवित स्पन्दरूप ब्रह्माहुआहै और उस ब्रह्मासे आगे जीवहुये हैं जैसे एकदीपकसे बहुतदीपकहोते और जैसे एकसंकल्पके बहुतसंकल्प होतेहैं तैसेही एक आदिजीवसे बहुतजीव हुये हैं। जैसे थम्भेमें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै पर वह पुतलियां शिल्पीके मनमें होतीहैं, थम्भा ज्योंका त्योंही स्थितहै; तैसेही सब पदार्थ आत्मामें मन कल्पेहै; वास्तवमें आत्मा ज्योंकात्यों ब्रह्म है। उन पुतलियों में बड़ी पुतली ब्रह्मा है और छोटी पुतली जीव है। जैसे वास्तवमें थम्भाहै, पुतली कोई नहीं उपजी; तैसही वास्तवमें आत्मसत्ता है जगत् कुछ उपजा नहीं; संकल्पसे भासता है और संकल्प के मिटे से जगत् कल्पना मिटजाती है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! एक जीवसे जो बहुतजीव हुये हैं तो क्या वे पर्वतमें पाषाणकी नाईं उपजते हैं वा कोई जीवोंकी खानिहै कि, इसप्रकार इतनेजीव उत्पन्नहोआते हैं; अथवा मेघकीबूंदों वा अग्नि से विस्फुलिङ्गों की नाईं उपजते हैं सो कृपा कर कहिये? और एक जीव कौनहै जिससे सम्पूर्ण जीव उपजते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! न एक जीव है और न अनेक हैं। तेरे ये वचन ऐसे हैं जैसे कोई कहे कि,मैंने शशेके शृङ्ग उड़ते देखे हैं। एक जीव भी तो नहीं उपजा मैं अनेक कैसे कहूं? शुद्ध और अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। वह अनन्त आत्मा है; उसमें भेदकी कोई कल्पना नहीं है। हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो सब आकाशरूप है कोई पदार्थ उपजा नहीं, केवल सङ्कल्पके फुरनेहीसे जगत् भासता है। जीव शब्द और उसका अर्थ आत्मा में कोई नहीं उपजा यह कल्पना भ्रमसे भासती है। आत्मसत्ताही जगत् की नाईं भासती है; उसमें न एक जीव है और न अनेक जीवहैं। हे रामजी! आदिविराट् आत्मा आकाशरूप है, तिससे और जगत् उपजा है। मैं तुमको क्याकहूं? जगत् विराट्रूप है,

विराट् जीवरूप है और जीव आकाश रूप है, फिर और जगत् क्या रहा और जीव क्या हुआ? सब चिदाकाशरूप है। ये जितने जीव भासते हैं वे सब ब्रह्मस्वरूप हैं, द्वैत कुछ नहीं और न इनमें कुछ भेद है। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आप कहते हैं कि, आदिजीव कोई नहीं; तो इन जीवों को पालनेवाला कौन है? वह नियामक कौन है जिसकी आज्ञा में ये विचरते हैं? जो कोई हुआही नहीं तो ये सर्वज्ञ और अल्पज्ञ क्योंकर होते हैं और एकमें कैसे हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिसको तुम आदिजीव कहते हो वह ब्रह्मरूप है। वह नित्य, शुद्ध और अनन्त शक्तिमान् अपने आपमें स्थित है और उसमें जगत् कल्पना कोई नहीं। हे रामजी! जो शुद्ध चिदाकाश अनन्त शक्ति में आदिचित्त किञ्चन हुआ है वही शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ता जीवकी नाईं भासने लगी है। स्पंद द्वारा हुयेकी नाईं भासती है पर अपने स्वरूप से इतर कुछ हुआ नहीं चैतन्य संवित आदि स्पन्द से विराट् आत्मा ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआ है और उस से सङ्कल्प करके जगत् रचा है। उसी में शुभ अशुभ कर्म रचे हैं और उनसे नीति रची है— अर्थात् यह शुभ है और यह अशुभ है; वही आदि नीति महाप्रलयपर्य्यन्त ज्योंकी त्यों चली जाती है। हे रामजी! वह अनन्त शक्तिमान् देव जिससे आदि फुरना हुआ है वैसेही स्थित है। जो आदि सर्वशक्ति फुरी है वह तैसेई है—जो अल्पज्ञ फुरा है सो अल्पज्ञही है। हे रामजी! संसार के पदार्थोंमें नीति शक्ति प्रधान है; उसके लंघनेको कोई भी समर्थ नहीं है। जैसे रची है तैसेही महाप्रलयपर्य्यन्त रहती है। हे रामजी! आदि— नित्य—विराट् पुरुष अन्तवाहकरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है और यह जगत् भी अन्तवाहकरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से नहीं उपजा—सब संकल्परूप है। जैसे मनोराजका नगर शून्य होता है तैसेही यह जगत् शून्य है। हे रामजी! इस सर्ग का निमित्त कारण और समवाय कारण कोई नहीं। जो पदार्थ निमित्त कारण और समवाय कारण बिना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये; वह उपजा नहीं। जो पदार्थ उपजता है वह इन्हीं दोनों कारणों से उपजता है पर वह जगत् का कारण इनमें से कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता नित्य, शुद्ध और अद्वैत सत्ता है उस में कार्य्य कारणकी कल्पना कैसेहो? हे रामजी! यह जगत् अकारण है केवल भ्रांति से भासता है। जब तुमको आत्मविचार उपजेगा तब दृश्य भ्रम मिटजावेगा। जैसे दीपक हाथ में लेकर अन्धकारको देखिये तो कुछ दृष्टि आता तैसेही जो विचार करके देखोगे तो जगत् भ्रम मिट जावेगा। जगत् भ्रम मन के फुरने सेही उदय हुआ है; इससे संकल्पमात्र है। इसको अधिष्ठान ब्रह्म है, सब नामरूप उस ब्रह्मसत्ता में कल्पित है और षड्विकार भी उसी ब्रह्मसत्ता में फुरे हैं पर सब से रहित और शुद्ध चिदाकाशरूप है और जगत् भी वही रूप है। जैसे समुद्र में द्रवतासे तरंग, बुद्बुदे और फेन भासते हैं तैसेही आत्मसत्ता में

चित्तके फुरने से जगत् भासता है। जैसे आदिचित्तमें पदार्थसत्ता दृढ़ हुई है, तैसेही स्थित है और आत्माके साथ अभेद है, इतर कुछ नहीं; सब चिदाकाश है। इच्छा, देवता, समुद्र, पर्वत ये सब आकाशरूप हैं। हे रामजी! हमको सदा चिदाकाशरूपही भासता है और आत्मसत्ताही मन, बुद्धि, पर्वत, कन्दरा सब जगत् होकर भासता है। जब चैत्योन्मुखत्व होताहै तब जगत् भासता है। जैसे वायु स्पन्दरूप होताहै तो भासताहै और निस्पन्दरूप होताहै तो नहीं भासता, तैसेही जब चित्त संवेदन स्पन्दरूप होताहै तो जगत् भासता है और जब चित्त संवेदन स्फुरणरूप होताहै तो जगत् कल्पना मिटजाती है। हे रामजी! चिन्मात्र में जो चैत्यभाव हुआ है इसीका नाम जगत्है; जब चैत्यसे रहित हुआ तो जगत् मिटजाता है। जब जगत्ही न रहा तो भेद कल्पना रही सो भेदकल्पना आत्मा में कैसेहो? इससे न कोई कार्य्य है, न कारण है और न जगत् है–सब भ्रममात्र कल्पना है। शुद्ध चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में चित्त सदा किञ्चन रहता है। जैसे मिरचों के बीजमें तीक्ष्णता सदा रहती है परन्तु जब कोई खाता है तब तीक्ष्णता भासती है, अन्यथा नहीं भासती; तैसेही जब चित्त संवेदन चैत्योन्मुखत्व होताहै तब जीवको जगत् चैतन्य भासता है और संवेदन से रहित जीवको जगत् कल्पना नहीं भासती। हे रामजी! जब संवेदन के साथ परिच्छिन्न संकल्प मिलता है तब जीव होताहै और जब इससे रहित होता है तो शुद्ध चिदात्मा ब्रह्महोता है। जिस पुरुषकी अशेष कल्पना मिटगई है और जिसको शुद्ध निर्विकार ब्रह्मसत्ताका साक्षात्कार हुआ है वह पुरुष संसार भ्रमसे मुक्त हुआ है। हे रामजी! यह सब जगत् आत्माका आभासरूप है। वह आत्मा अछेद्य, अदाह्य; अक्लेद्य, नित्य, शुद्ध, सर्वगत स्थानकी नाईं अचल अहंरूप है और सब जगत् चिदाकाशरूप है। हमको तो सदा ऐसेही भासता है पर अज्ञानी वाद विवाद किया करते हैं। हमको वाद विवाद कोई नहीं क्योंकि, हमारा सब भ्रम नष्ट होगया है। हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है और द्वैत कुछ नहीं। जिसको यह निश्चय भयाहै उसके सब अंग अपना स्वरूपही है तो निराकार और निर्वपुसत्ता के अङ्ग अपना स्वरूप क्यों न हो। ये सब प्रपञ्च चिदाकाशरूपहैं परन्तु अज्ञानी को भिन्न भिन्न और जन्म मरण आदि विकार भासते हैं और ज्ञानवान्को सब आत्मरूपही भासते हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश सब आत्माके आश्रय फुरते हैं और चित्त शक्तिही ऐसे होकर भासती है। जैसे वसन्तऋतु आती है तो रसाशक्तिसे वृक्ष और वेलें सब प्रफुल्लित होकर भासती हैं तैसेही चित्तशक्ति–स्पन्दताही जगत्रूप होकर भासती है। हे रामजी! जैसे वायु स्पन्दता से भासता है तैसेही जगत् फुरने में भासता है और तैसेही चित्त संवित जगत्रूप होकर भासता है। इस फुरने सेही जगत् है

और कोई वस्तु नहीं है; इसीसे जगत् कुछ नहीं है । जैसे समुद्र तरङ्गरूप हो भासता है, तैसेही आत्मा जगत् रूपहो भासताहै । इससे जगत् दृश्यभावसे भासताहै पर संवित्से कुछ नहीं । वायुजड़है और आत्मा चैतन्य है और जलभी परिणामसे तरंग रूप होता है; आत्माच्युत और निराकारहै । हे रामजी ! चैतन्यरूप रत्नहै और जगत् उसका चमत्कारहै अथवा चैतन्यरूपी अग्निमें जगत्रूपी उष्णताहै । हे रामजी ! यह चैतन्य प्रकाशही भौतिक प्रकाशरूप होकर भासताहै, इससे जगत् है; और वस्तुसे नहीं । चैतन्य सत्ताही शून्य आकाशरूप होकर भासताहै इसभावसे जगत् है वास्तवमें नहीं हुआ । इससे जगत् कुछनहीं चेतनसत्ताही पृथ्वीरूपहोकर भासती है, दृश्यमें आताहै इससे जगत् है पर आत्मसत्तासे इतर कुछ नहीं हुआ । चैतन्य बिन घन अन्धकार में जगत्रूपी कृष्णता है; अथवा चैतन्यरूपी काजल का पहाड़है और जगत्रूपी उसका प्रमाण भ्रमहै और चैतन्यरूपी सूर्य्यमें जगत्रूपी दिनहै; आत्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरंगहै; आत्मरूपी कुसुम में जगत्रूपी सुगन्ध है आत्मरूपी बरफ में शुक्लता और शीतलतारूपी जगत् है; आत्मरूपी बेलि में जगत्रूपी फूलहै; आत्मरूपी स्वर्ण में जगत्रूपी भूषण है; आत्मरूपी पर्वत में जगत्रूपी जड़ सघनताहै; आत्मरूपी अग्नि में जगत्रूपी प्रकाशहै; आत्मरूपी आकाश में जगत्रूपी शून्यताहै; आत्मरूपी ईख में जगत्रूपी मधुरता है; आत्मरूपी दूधमें जगत्रूपी घृत है, आत्मरूपी मधुमें जगत्रूपी मधुरताहै अथवा आत्मरूपी सूर्य्य में जगत्रूपी जलाभासहै और नहीं है हे रामजी ! इसप्रकार देखो कि जो सर्व,ब्रह्म,नित्य, शुद्ध, परमानन्द स्वरूपहै वह सर्वदा अपने आपमें स्थितहै—भेद कल्पना कोई नहीं । जैसे जल द्रवता से तरङ्गरूपहोके भासताहै; तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होके भासती है । न कोई उपजताहै और न कोई नष्टहोता है । हे रामजी ! आदि जो चित्तशक्ति स्पंदरूपहै वह विराट्रूप ब्रह्म है और चिदाकाशरूप है; आत्म सत्तासे इतरभावको नहीं प्राप्तहुआ । जैसे पत्रके ऊपर लकीरेंहोती हैं सो पत्रसे भिन्न वस्तु नहीं पत्ररूपही हैं तैसेही ब्रह्ममें जगत् है कुछ इतर नहीं है बल्कि; पत्र के ऊपर लकीरें तो आकार हैं पर ब्रह्ममें जगत् कोई आकारनहीं ! सब आकाशरूप मनमें फुरता है; जगत् कुछहुआ नहीं । जैसे शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै तैसेही आत्मामें मनने जगत् कल्पना की है । वास्तवमें कुछ हुआ नहीं शिलावज्रकी नाईं पीनहै और सब जगत्को धरि रही है और आकाशकी नाईं विस्ताररूप होकर शांत रूपहै। निदान हुआ कुछ नहीं जो कुछहै सो परब्रह्मरूपहै और जो ब्रह्मही है तो कल्पना कैसेहो ? इतनाकहकर बाल्मीकि जी बोले कि, इसप्रकार जब मुनिशार्दूल वशिष्ठ जी ने कहा तब सायंकालका समयहुआ और सबसभापरस्पर नमस्कारकरके अपने २

आश्रमकोगई। फिरसूर्यकी किरणोंके निकलतेही सब अपने अपने स्थानों पर आबैठे॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनन्नामत्रयोदशस्सर्गः॥ १३॥
वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आत्मामें कुछउपजा नहीं भ्रमसे भासरहा है। जैसे आकाशमें भ्रमसे तरवरे और मुक्तमाला भासती हैं तैसेही अज्ञानसे आत्मामें जगत् भासता है। जैसे थम्भेकी पुतलियां शिल्पी के मनमें भासती हैं कि, इतनी पुतलियां इस थम्भेमें हैं सो पुतलियां कोई नहीं क्योंकि, किसी कारणसे नहींउपजीं; तैसेही चेतनरूपी थम्भे में मनरूपी शिल्पी त्रिलोकीरूपी पुतलियां कल्पता है परंतु किसी कारण से नहीं उपजीं—ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्योंही स्थितहै। जैसे सोमजलमें त्रिकाल तरंगोंका सद्भाव होताहै। वास्तवमें जगत्का होनाकुछनहीं चित्तकेफुरनेसेही जगत् भासताहै। जैसे सूर्यकी किरणें झरोखोंमें आती हैं और उसमें सूक्ष्म त्रिसरेणु होते हैं उनसेभी चिद्-अणु सूक्ष्म हैं जैसे त्रिसरेणुसे सुमेरु पर्वत स्थूलहै तैसेही चिद्अणुसे त्रिसरेणुस्थूल है। ऐसे सूक्ष्म चिद्अणुसे यह जगत् फुरता है सो वह आकाशरूपहै; कुछ उपजानहीं और फुरनेसे भासताहै। हे रामजी! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक जो कुछ जगत् भासताहै सो कुछ उपजा नहीं तो और पदार्थ कहां उपजाहो? निदान सब आकाशरूपहै वास्तवमें कुछ उपजा नहीं और जो कुछ अनुभवमें होता है वहभी असत् है। जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवसे होती है वह उपजी नहीं, असत्रूपहै? तैसेही यह जगत्भी असत्रूप है। शुद्ध निर्विकार सत्ता अपने आपमें स्थितहै; उससत्ताकोत्याग करके जो अवयव अवयवीके विकल्प उठाते हैं उनको धिक्कारहै। यह सब जगत्आकाशरूपहै और अधिभौतिक जगत् जो भासता है सो गन्धर्वनगर और स्वप्नसृष्टिवत् है। हे रामजी! पर्वतों सहित जो यह जगत् भासताहै सो रत्तीमात्रभी नहीं। जैसे स्वप्नके पर्वत जाग्रत्की रत्तीभरभी नहीं होते क्योंकि, कुछ हुये नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मरूपहै और भ्रांतिकरकेभासताहै। जैसे संकल्प का मेघ सूक्ष्महोताहै तैसेही यह जगत् आत्मामें तुच्छहै। जैसे शशेकेशृंग असत्होते हैं तैसेही यह जगत्असत्है और जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत्होती है तैसेही यह जगत् असत्है; असम्यक् ज्ञानसेही भासता है और विचार कियेसे शान्तिहोजाती है। जब शुद्धचैतन्यसत्ता में चित्तसंवेदन होता है तब वही संवेदन जगत्रूप होकर भासता है परन्तु जगत् हुआ कुछ नहीं। जैसे समुद्र अपनी द्रवताके स्वभावसे तरंगरूप हो भासता है परन्तु तरंग कुछ और वस्तुनहीं है जलरूपही है तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूपहोकर फुरती है। सोजगत्कोईभिन्न पदार्थनहीं है ब्रह्मसत्ताही किञ्चनद्वारा ऐसे भासतीहै। जैसाबीज होताहै तैसाही अंकुर निकलता है इसलिये; जैसी आत्मसत्ताहै तैसेही जगत्है दूसरी वस्तु कोई नहीं आत्मसत्ता अपने आपमेंही स्थितहै पर चित्तसंवेदनके स्पंदसे जगत्रूप होताहै। हे राम

जी ! इसीपर एक आख्यान तुमको सुनाताहूं, वह श्रवणका भूषणहै और उसके समझने से सब संशय मिटजावेंगे और विश्राम प्राप्तहोगा। इतना सुन रामजी बोले, हे भगवन्! मेरे बोधकी वृद्धिके निमित्त मण्डपाख्यान जिसविधि से हुआ है सो संक्षेपसे कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस पृथ्वी में एक महातेजवान् राजापद्म हुआथा। वह लक्ष्मीवान्, सन्तानवान्, मर्य्यादा के धारनेवाला, अति सतोगुणी और दोषों का नाशकर्त्ता एवम् प्रजापालक, शत्रुनाशक और मित्र प्रियथा और सम्पूर्ण राजसी और सात्त्विकी गुणों से सम्पन्न मानो कुलका भूषण था। लीलानाम उसकी स्त्री बहुत सुन्दर और पतिव्रताथी। मानो लक्ष्मी ने अवतार लियाथा। उसके साथ राजा कभी बागों और तालों और कभी कदम्बवृक्षों और कल्पवृक्षों में जायाकरताथा, कभी सुन्दर २ स्थानों में जाके क्रीड़ा करताथा; कभी बरफका मन्दिर बनवाके उसमें रहताथा और कभी रत्न मणिके जड़े हुये स्थानों में शय्या बिछवाके विश्राम करताथा। निदान इसी प्रकार दोनों दूर और निकट के ठाकुर द्वारों और तीर्थोंमें जाके क्रीड़ाकरते और राजसी और सात्त्विकी स्थानों में विचरते थे वे दोनों परस्पर श्लोकभी बनातेथे एकपद कहे दूसरा उसको श्लोक करके उत्तर दे और श्लोक भी ऐसेपढ़ें कि पढ़ने में तो भाषा और अर्थ में संस्कृतहों। इसी प्रकार दोनोंका परस्पर अतिस्नेहथा। एक समय रानीने विचार किया कि, राजा मुझको अपने प्राणोंकी नाईं प्यारे और बहुत सुन्दर हैं इसलिये कोई ऐसा यत्न, यज्ञ वा तप–दान करूँ कि, किसी प्रकार इसकी सदा युवावस्था रहे और अजर अमरहो इसका और मेरा कदाचित् वियोग न हो। ऐसे विचार कर उसने ब्राह्मणों ऋषीश्वरों और मुनीश्वरोंसे पूछा कि, हे विप्रो! नर किसप्रकार अजर–अमर होताहै? जिसप्रकार होताहो सो हमसे कहो? विप्र बोले, हे देवि ! जप,तप आदि से सिद्धता प्राप्तहोती है परन्तु अमर नहींहोता। सब जगत् नाशरूप है इस शरीरसे कोई स्थिर नहीं रहता। हे रामजी! इसप्रकार ब्राह्मणोंसे सुन और भर्त्ताके वियोगसे डरकर रानी विचार करनेलगी कि, भर्त्ता से मैं प्रथम मरूं तो मेरे बड़े भागहों और सुखवान्हूं और जो यह प्रथम मृतकहो तो वही उपायकरूँ जिससे राजाकाजीव मेरे अन्तःकरणमेंहीरहे– बाह्य न जावे–और मैं दर्शन करतीरहूँ। इससे मैं सरस्वतीकी सेवाकरूँ। हे रामजी! ऐसा विचार कर शास्त्रानुसार तपरूप सरस्वतीका पूजन करनेलगी। निदान त्रिरात्र और दिन पर्य्यन्त निराहार रह चतुर्थ दिनमें व्रतपारणकरे और देवतों, ब्राह्मणों, पण्डितों, गुरु और ज्ञानियोंकी पूजाकर, स्नान, दान, तप, ध्यान नित्यप्रति कीर्त्तन करे पर जिसप्रकार आगे रहतीथी उसीप्रकार रहि भर्त्ताको न दिखावे। इसीप्रकार नेम संयुक्त क्लेश से रहित तप करनेलगी। जब तीनसौ दिन व्यतीत हुये तब प्रीतियुक्तहो सरस्वतीकी पूजाकी और वागीश्वरीने प्रसन्नहोकर दर्शनदिया और कहा; हे पुत्रि!

तूने भर्त्ताके निमित्त निरन्तर तप किया है इससे मैं प्रसन्नहुई; जो वर तुझे अभीष्टहो सो मांग। लीला बोली; हे देवि! तेरी जयहो! मैं अनाथ तेरी शरणहूं, मेरी रक्षा कर। इस जन्मको जरारूपी अग्नि जो बहुत प्रकारसे जलाती है उसके शान्त करने को तुम चन्द्रमाहो और हृदयके तम नाश करने को तुम सूर्य्यहो। हे मातः! मुझको दो वरदो-एक यह कि, जब मेरा भर्त्ता मृतकहो तब उसका पुर्य्यष्टक वपु बाहय न जावे अन्तःपुरही में रहे और दूसरा यहकि, जब मेरी इच्छा तुम्हारे दर्शनकी हो तब तुम दर्शन दो। सरस्वती ने कहा ऐसेही होगा। हे रामजी! ऐसा वरदान देकर; जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजके लीन होते हैं; तैसेही देवी अन्तर्द्धान होगई और लीला वरदान पाकर बहुत प्रसन्नभई। कालरूपी चक्रमें क्षणरूपी आरे लगेहुये हैं, और उसकी तीनसौसाठ कीलें हैं वह चक्रवर्षपर्य्यन्त फिरकर फिर उसीठौर आता है। ऐसे कालचक्र के वेग से राजापद्म रणभूमिकासे विषयरूपी घरमें पड़ाहुआ मृतक हो ऐसा होगया जैसे सूखे पत्रसे रस निर्मल होजाता है। पुर्य्यष्टकके निकलने से राजाका शरीर कुम्हिलागया और रानी उसके मरने से बहुत शोकवान् भई। जैसे कमलिनी जल विना कुम्हिला जाती है तैसेही उसके मुखकी कान्ति दूर होगई और विलाप करनेलगी। कभी ऊँचे स्वरसे रुदन करे और कभी चुप रहजावे। जैसे चकवेके वियोग से चकवी शोकवान् होती है और जैसे सर्पकी फूत्कार लगेसे कोई मूर्च्छित होताहै तैसेही राजाके वियोगसे लीला मूर्च्छित होगई और व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी। तब सरस्वतीजी ने दया करके आकाशवाणी की कि, हे सुन्दरि! यह जो तेरा भर्त्ता मृतक भया है इसको तू सर्व ओरसे फूलोंसे ढांपकर रख; तुझको फिर भर्त्ताकी प्राप्ति होवेगी और यह फूल न कुम्हिलावेंगे। तेरे भर्त्ताकी ऐसी अवस्थाहै जैसे आकाशकी निर्मल कांतिहै और वह तेरेही मंदिर मेंहै कहीं गया नहीं। हे रामजी! इस प्रकार कृपा करके जब देवी ने वचन कहे तो जैसे जल विना मछली तड़पती हुई मेघकी वर्षासे कुछ शांतिमान् होती है; तैसेही लीला कुछ शांतिमान् हुई। फिर जैसे धनहो और कृपणता से धनका सुख न होवे तैसेही वचनों से उसे शांति हुई और भर्त्ताके दर्शन विना जब शांति न हुई तब उसने ऊपर नीचे फूलोंसे भर्त्ताको ढांपा और उसके पास आप शोकवान् होकर बैठी रुदन करने लगी। फिर देवीकी आराधना की तो अर्द्धरात्रि के समय देवीजी आ प्राप्त हुई और कहा; हे सुन्दरि! तैंने मेरा स्मरण किस किस निमित्त कियाहै और तू शोक किस कारण करती है यह तो सब जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे मृगतृष्णा की नदी होती है; तैसेही यह जगत् है। अहं त्वं इदंसे ले आदिक जो जगत् भासता है सो सब कल्पनामात्रहै और भ्रम करके भासता है। आत्मामें हुआ कुछ नहीं तुम किसका शोक करती हो। लीला बोली, हे परमेश्वरि! मेराभर्त्ता कहां स्थित है और उसने क्यारूप धारण किया है? उसको

मुझे मिलाओ; उस विना मैं अपना जीना नहीं देखसक्ती । देवी बोली, हे लीले! आकाश तीनहैं—एक भूताकाश, दूसरा चित्ताकाश और तीसरा चिदाकाश । भूताकाश चित्ताकाशके आश्रयहै और चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रयहै तेरा भर्त्ता अब भूताकाशको त्यागकर प्रत्यक्ष चिदाकाशकोगयाहै । चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रयस्थितहै इससे जब तू चिदाकाशमें स्थित होगी तब सब ब्रह्माण्ड तुझको भासेगा । सब उसीमें प्रतिबिंबित होते हैं वहां तुझको भर्त्ताका और जगत्का दर्शन होगा । हे लीले! देशसे क्षणमें संवित् देशांतरको जाताहै उसके मध्य जो अनुभव आकाशहै वहचिदाकाशहै । जब तू सङ्कल्पको त्यागदे तो उससे जो शेषरहेगा सो चिदाकाशहै । हे लीले! यहां जो जीव विचरते हैं सो पृथ्वी के आश्रयहैं और पृथ्वी आकाशके आश्रयहै, इससे ये सबजीव जो विचरते हैं सो भूताकाशके आश्रय विचरते हैं और चित्त जिसके आश्रय से एकक्षणमें देशदेशान्तर भटकताहै सो चित्ताकाशहै । हे लीले! जब दृश्यका अत्यन्त अभावहोताहै तब परमपदकी प्राप्तिहोती है सो चिरकाल के अभ्याससे होती है और मेरा यह वर है कि, तुझको शीघ्रही प्राप्तहो । हे रामजी! जब इसप्रकार कहकर ईश्वरी अन्तर्द्धान होगई तब लीला रानी निर्विकल्प समाधिमें स्थितभई और चित्तसहित देहका अहङ्कार त्यागकर पक्षीसमान अपने गृहसे उड़कर एकक्षणमें आकाशको पहुँची जो नित्यशुद्ध, अनन्त, आत्मा, परमशान्तिरूप और सर्वका अधिष्ठान है उस में जाकर भर्त्ताको देखा । रानी स्पन्द कल्पना लेगईथी उससे अपने भर्त्ता को वहां देखा और बहुत मंडलेश्वरभी सिंहासनोंपर बैठे देखे । एकबड़े सिंहासन पर बैठे अपनेभर्त्ता कोभी देखा जिसके चारोंओर जयजय शब्द होताथा । उसने वहां बड़े सुन्दर मन्दिर देखे और देखा कि, राजाके पूर्वदिशा में अनेक ब्राह्मण, ऋषीश्वर और मुनीश्वर बैठे हैं और बड़ी ध्वनिसे पाठ करतेहैं; दक्षिणदिशामें अनेक सुन्दरी स्त्रियां नानाप्रकारके भूषणों सहित बैठीहुई हैं उत्तरदिशा में हस्ती, घोड़े, रथ, प्यादे और चारों प्रकार की अनन्त सेना देखी और पश्चिममें मण्डलेश्वर देखे । चारों दिशामें मण्डलेश्वर उसके जीवके आश्रय विराजते देखके आश्चर्य में हुई । फिर नगर और प्रजा देखी कि, सब अपने व्यवहार में स्थित हैं और राजाकी सभामें जा बैठी पर रानी सबको देखती थी और रानीको कोई न देखताथा । जैसे और के संकल्पपुरको और नहीं देखसक्ता तैसेही रानीको कोई देख न सके । तब रानीने उसका अन्तःपुर देखा जहां ठाकुरद्वारे बने हुये देवताओंकी पूजाहोतीथी । वहांकी गन्धधूप और पवन त्रिलोकी को मग्नकरती थी और राजाकायश चन्द्रमाकी नाईं प्रकाशितथा । इतने में पूर्वदिशा से हरकारेने आके कहा कि, हे राजन्! पूर्व दिशामें और किसी राजाका क्षोभ हुआ है; फिर उत्तर दिशासे हरकारेने आ कहा कि, हे राजन्! उत्तरदिशा में और राजाका क्षोभ हुआ है

और तुम्हारे मण्डलेश्वर युद्धकरते हैं । इसी प्रकार दक्षिण दिशाकी ओरसे भी हरकारा आया और उसने भी कहा कि, और राजाका क्षोभ हुआ है और पश्चिम दिशा से हरकारा आया उसने कहा कि, पश्चिम दिशामें भी क्षोभ हुआ है । एक और हरकारा आया उसने कहा कि, सुमेरु पर्वतपर जो देवतों और सिद्धों के रहने के स्थान हैं वहां क्षोभ हुआ है और अस्ताचल पर्वत क्षोभ हुआ है । तब जैसे बड़े मेघ आवें तैसेही राजाकी आज्ञासे बहुतसी सेना आई । रानी ने बहुत से मंत्री, नन्द आदिक टहलुये, ऋषीश्वर और मुनीश्वर वहां देखे । जितने भृत्यथे वे सब सुन्दर और वर्षासरहित श्वेतबादरोंकी नाईं श्वेतवस्त्र पहिने देखे और बड़े वेदपाठी ब्राह्मण देखे जिनके शब्दसे नगारे के शब्दभी सूक्ष्म भासते थे । हे रामजी ! इसप्रकार ऋषीश्वर मन्त्री, टहलुये और बालक उसमें देखे सो पूर्व्व और अपूर्व्व दोनों देखती भई और आश्चर्यवान् हो चित्तमें यह शङ्का उपजी कि, मेरा भर्त्ताही मुआ है वा सम्पूर्ण नगर मृतक भया है जो ये सब परलोक में आये हैं । तब क्या देखा कि, मध्याह्न का सूर्य्य शीशपर उदितहै और राजा सुन्दर षोड़शवर्ष का प्रथमकी जरावस्था को त्यागकर नूतन शरीरको धारे बैठा है । ऐसे आश्चर्य्य को देखके रानी फिर अपने गृह में आई उससमय आधीरात्रिका समय था अपनी सहेलियों को सोईहुई देख जगाया और कहा जिस सिंहासन पर मेरा भर्त्ता बैठता था उसको साफकरो मैं उसके ऊपर बैठूंगी और जिसप्रकार उसके निकट मंत्री और भृत्य आनबैठतेथे उसीप्रकार आवें । इतना सुनकर सहेलियों ने जा बड़े मंत्रीसे कहा और मंत्री ने सबको जगाय और सिंहासन झड़वाकर मेघकी नाईं जलकी वर्षा की । सिंहासन पर और उसके आसपास वस्त्र बिछाये और मशालेंजगाकर बड़ा प्रकाश किया । जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको पान कियाथा तैसेही अन्धकारको प्रकाशने जब पान करलिया तब मन्त्री, टहलुये, पण्डित, ऋषीश्वर, ज्ञानवान् जितने कुछ राजाके पास आते थे वे सब सिंहासन के निकट आकर बैठे और इतने लोग आये मानो प्रलयकालमें समुद्रका क्षोभ हुआ है और जलसे पूर्ण प्रलयहुई सृष्टि मानो अनन्त उत्पन्न भई है । लीला इसप्रकार मन्त्री, टहलुये, पण्डित और बालकोंको भर्त्ता विना देख बड़े आश्चर्यको प्राप्तभई कि, एक आदर्शको अन्तरबाहर दोनोंओर देखती है । इसप्रकार देखके हृदयकी वार्त्ता किसीको न बताई और भीतर आकर कहने लगी कि, बड़ा आश्चर्य है; ईश्वरकी माया जानी नहीं जाती कि, यह क्या है । इसप्रकार आश्चर्यवान् होकर उसने सरस्वती जीकी आराधना की और सरस्वती कुमारी कन्याका रूप धरके आन प्राप्तभई । तब लीलाने कहा; हे भगवति ! मैं वारंवार पूछती हूं तुम उद्वेगवान् न होना; बड़ों का यह स्वभाव होता है कि जो शिष्य वारंवार पूछे तौभी खेदवान् नहीं होते । अब मैं पूछ-

तीहूं कि, यह जगत् क्या है और वह जगत् क्याहै ? दोनों में कृत्रिम कौनहै और अकृत्रिम कौनहै ? देवी बोली; हे लीले ! तूने पूछा कि, कृत्रिम, कौनहै और अकृत्रिम, कौन है सो मैं पीछे तुझ से कहूंगी । लीला बोली; हे देवि ! जहां तुम हम बैठे हैं वह अकृत्रिम है और वह जो मेरे भर्त्ताका स्वर्ग है सो कृत्रिमहै क्योंकि; सूर्य्यस्थानमें वहसृष्टि हुई है । देवी बोली; हे लीले ! जैसा कारण होता है तैसाही कार्य्य होता है । जो कारण सत्होता है तो कार्य्य भी सत् होता है और सत्से असत् नहीं होता और असत् से सत् भी नहीं होता और न कारण से अन्यकार्य्य होता है । इससे जैसे यह जगत् है तैसाही वह जगत्भी है । इतना सुन फिर लीला ने पूछा; हे देवि ! कारण से अन्यकार्य्यसत्ता होती है क्योंकि; मृत्तिका जलके उठाने में समर्थ नहीं और जब मृत्तिका का घट बनता है तब जलको उठाता है तो कारण से अन्यकार्य्यकी भी सत्ताहुई । देवी बोली; हे लीले ! कारण से अन्यकार्य्य की सत्ता तब होती है जब सहायकारी भिन्नभिन्न होते हैं । जहां सहायकारी नहीं होता वहां कारण से अन्यकार्य्य की सत्तानहीं होती । तेरे भर्त्ता की सृष्टिभी कारण विना भासी है । उसका जीव पुर्यष्टक आकाशरूप था, वहां न कोई समवाय कारण था और न निमित्त कारण था इससे उसको कृत्रिम कैसे कहिये ? जो किसीका कियाहो तो कृत्रिमहो पर वह तो आकाश रूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है । जो समवाय कारणही न हो तो उसका निमित्त कारण कैसेहो । इससे तेरे भर्त्ताका सर्ग अकारण है । लीला ने पूछा; हे देवि ! उस सर्ग की जो स्मृति संस्कार है सो कारण क्यों न हो ? देवी बोली; हे लीले ! स्मृति तो कोई वस्तुनहीं है । स्मृति आकाशरूपहै । स्मृति सङ्कल्पकानामहै सो वहभी सङ्कल्प आकाश रूपहै और कोई वस्तु नहीं वह मनोराजरूपहै इससे उसकी सत्ताभी कुछनहीं है केवल आभासरूपहै लीला बोली; हे महेश्वरि ! जो वह संकल्पमात्र आकाशरूप है तो भी आकाशरूपहै और जहां हम तुम बैठे हैं वहभी वही है तो दोनों तुल्य हैं देवी बोली; हे लीले ! जैसे तुम कहतीहो तैसेही है । अहं, त्वं, इदं, यह, वह सम्पूर्ण जगत् आकाश रूपहै और भ्रान्तिमात्र भासताहै । उपजा कुछनहीं सब आकाशमात्र है और स्वरूप से इनका कुछ सद्भाव नहीं होता जो पदार्थ सत्य न हो उसकी स्मृति कैसे सत् हो ? लीला बोली; हे देवि ! अमूर्त्तिवत् मेरा भर्त्ता था सो मूर्त्तिवत्हुआ और उसको जगत् भासनेलगा सो कैसे भासा ? उसका स्मृति कारण है वा किसी और प्रकार से यह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्तिके निमित्त मुझको वही रूपक हुआहै । देवी बोली, हे लीले ! यह और वह सर्ग दोनों भ्रमरूप हैं । जो यह सत्हो तो इसकी स्मृतिभी सत्हो पर यह जगत् असत्रूप है । जैसे यह भ्रम तुमको भासाहै सो सुनो । एक महाचिदाकाश है जिसका किञ्चन चिद्अणुहै और उसके किसी अंशमें जगत्रूपी वृक्षहै । सुमेरु उस

वृक्षके थम्भहैं सप्तलोक डालीहैं; आकाश शिखा हैं सप्तसमुद्र उसमें रस हैं और तीनों लोक फलहैं। सिद्ध, गन्धर्व, देवता, मनुष्य और दैत्यरूप मच्छर उसमें रहते हैं और तारागण उसके फूलहैं। उसी वृक्षके किसी छिद्रमें एकदेश है और उस में एक पर्वत है जिसके नीचे एक नगर बसताहै। वहां एकनदीका प्रवाह चलता है और वशिष्ठ नाम एक ब्राह्मण जो बड़ा धार्मिकहै वहां सदा अग्निहोत्र करताहै धन, विद्या, पराक्रम और कर्मों में वशिष्ठजी ऋषीश्वरों के समानथा परन्तु ज्ञानमें भेदथा। जो खेचर वशिष्ठका ज्ञानहै तैसा भूचर वशिष्ठका ज्ञान न था। उसकी स्त्रीकाभी नाम अरुन्धतीथा। वह पतिव्रता और चन्द्रमा के समान सुंदरथी और उसी अरुन्धती के समान विद्या, कर्म्म, क्रान्ति, धन, चेष्टा और पराक्रम उसका भी था और चैतन्यता अर्थात् ज्ञान और सब लक्षण एक समान थे। वह आकाश की अरुन्धती थी और यह भूमि की अरुन्धती थी। एक काल में वशिष्ठ ब्राह्मण पर्व्वत के शिखरपर बैठाथा। वह स्थान सुन्दर हरे तृणों से शोभायमान था एक दिन एक अतिसुन्दर राजा नानाप्रकार के भूषणों से भूषित परिवार सहित उस पर्व्वत के निकट शिकार खेलने के निमित्त चला जाताथा। उसके शीशपर दिव्यचमर होता ऐसा शोभा देताथा मानो चन्द्रमा की किरणें प्रसर रही हैं और शिरपर अनेकप्रकार के छत्रोंकी छाया मानो रूपेका आकाश विदितहोता था। रत्नमणि के भूषण पहिरेहुये मंडलेश्वर उसके साथ थे और हस्ती, घोड़े, रथ और पैदल चारोंप्रकार की सेना जो आगे चलीजाती थी उनकी धूर बादल होकर स्थितभई। निदान नौबत नगारे बजतेहुये राजाकी सवारी जाती देखके वशिष्ठ ब्राह्मण मनमें चिन्तवन करनेलगा कि, राजा को बड़ासुख प्राप्तहोता है क्योंकि, सब सौभाग्य से राजा सम्पन्नहोता है। इसप्रकार राज्य मुझको भी प्राप्तहो। तब तो वह यह वांछा करने लगा कि, मैं कब दिशाओं को जीतूंगा और मेरे यश से कब दशों दिशा पूर्णहोंगी। ऐसे छत्र मेरे शिरपर कब ढरेंगे और चारों प्रकार की सेना मेरे आगे कब चलेगी। सुन्दर मन्दिरों में सुन्दरी स्त्रियों के साथ में कब बिलास करूंगा और मन्दमन्द शीतल पवन सुगन्धता के साथ कब परसहोगा। हे लीले! जब इसप्रकार ब्राह्मण ने सङ्कल्प को धारण किया और जो अपने स्वकर्म थे सो भी करतारहा कि, इतनेही में उसको जरावस्था प्राप्तहुई; जैसे कमल के ऊपर बरफ पड़ता है तो कुम्हिला जाता है तैसेही ब्राह्मणका शरीर कुम्हिला गया और मृत्युका समय निकट आया। जब उसकी स्त्री भर्ताकी मृत्यु निकट देखके कष्टवान् हुई तो उसने मेरी आराधना, जैसे तूने की है, की और भर्त्ताकी अजर अमरता को दुर्लभ जानके मुझसे वरमांगा कि; हे देवि! मुझको यह वरदे कि, जब मेरा भर्त्ता मृतकहो तब इसका जीव बाह्य न जावे। तब मैंने कहा ऐसेही होगा। हे लीले! जब बहुत काल व्यतीतहुआ तो ब्राह्मण मृतक

हुआ पर उसका जीव मन्दिर में ही रहा । जैसे मन्दिर में आकाशही रहता है तैसेही मन्दिर में रहा । हे लीले ! जब वह आकाशरूप होगया तब उसकी पुर्य्यष्टकमें जो राजा का दृढ़ सङ्कल्पथा इसलिये जैसे बीज से अंकुर निकल आता है तैसेही वह सङ्कल्प आनफुरा और उससे वह अपने को त्रिलोकी का राजा और परमसौभाग्य सम्पन्न देखने लगा कि, दशोंदिशा मेरे यश से पूर्णहो रही हैं; मानो यशरूपी चन्द्रमाकी यह पूर्णमासी है । जैसे प्रकाश अन्धकार को नाशकरता है तैसेही शत्रुरूपी अन्धकार का नाशकर्त्ता प्रकाशहुआ और ब्राह्मणों के चरणों का सिंहासनहुआ अर्थात् ब्राह्मणों को बहुत पूजनेलगा । निदान अर्थियों को कल्पवृक्ष और स्त्रियों को कामदेव इत्यादिक जो सात्त्विकी और राजसी गुणहैं उनसे सम्पन्नहुआ । पर उसकी स्त्री उसको मृतक देख के बहुत शोकवान्हुई । जैसे जेठ आषाढ़की मंजरी सूखजाती है तैसेही वह सूखगई और शरीरको छोड़के अन्तवाहक शरीर से अपने भर्त्ताको वैसेही जामिली जैसे नदी समुद्रको जामिलती हैं और ब्राह्मण के पुत्र धन संयुक्त अपने गृहमें रहे । उस ब्राह्मण को मृतकहुये अब आठदिन हुये हैं कि, वही वशिष्ठ ब्राह्मण तेराभर्त्ता राजापद्महुआ अरुन्धती उसकी स्त्री तू लीला हुई । जितना कुछ आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी और त्रिलोकी है सो वशिष्ठ ब्राह्मणके अन्तःपुरमें एक खुर्ण में स्थित है । वहां तुमको आठदिन व्यतीत भये हैं और अभी सूतकभी नहींगया पर यहां तुमने साठसहस्र वर्ष राज्य करके नानाप्रकार के सुन्दर भोग भोगे हैं । हे लीले ! जिसप्रकार तूने जन्मलिया है सो मैंने सब कहा है । पर वह क्या है ? सब भ्रममात्र है । जितना कुछजगत् तुझको भासता है सो आभासमात्र है सङ्कल्प से फुरता है वस्तुगत कुछ नहीं है । हे लीले ! जो यहजगत् सत् न हुआ तो इसकी स्मृति कैसे सत्यहो । तुम हम और सब उसी ब्राह्मण के मन्दिर में स्थित हैं । लीला बोली; हे देवि ! तुम्हारे वचनको मैं असत् कैसे कहूं ? परजो तुम कहतीहो कि उसब्राह्मणका जीव अपने गृहमेंही रहा; वहां हम तुम बैठे हैं और देशदेशांतर, पर्वत, समुद्रलोक और लोकपालक सब जगत् उसीही गृहमें हैं तो वह उसमें समाते कैसे हैं ? ये वचन तुम्हारे ऐसेहैं जैसे कोईकहै कि, सरसों के दानेमें उन्मत्तहाथी बांधेहुयेहैं; सिंहोंके साथमच्छर युद्ध करते हैं; कमलके डोड़े में सुमेरुपर्व्वत आयाहै; कमलपर बैठकर भ्रमर रसपान करगया और स्वप्नमें मेघ गर्जताहै, चित्रामणिके मोर नाचते हैं और जाग्रतकी मूर्त्ति के ऊपर लिखाहुआ मोर मेघको गर्जता देखके नृत्य करता है । जैसे ये सब असम्भव वार्त्ता हैं तैसेही तुम्हारा कहना मुझको असम्भव भासता है । देवी बोली; हे लीले ! यह मैंने तुझसे झूठ नहीं कहा । हमारा कहना कदाचित् असत् नहीं क्योंकि; यह आदि परमात्माकी नीति है कि, महापुरुष असत् नहीं कहते । हमतो धर्म्म के प्रति-

पादन करनेवाली हैं; जहांधर्मकी हानिहोती है वहां हम प्रतिपादनकरती हैं और जोहम धर्मका प्रतिपादन न करें तो धर्मको और कैसेमानें। हे लीले! जैसेसोयेहुये के स्वप्नमें त्रिलोकी भास आती है सो अन्तःकरण में ही होती है और स्वप्नसे जाग्रत होती है तैसेही मरना भी जान। जब जहां मृतक होता है तहांही जीव पुर्यष्टक आकाशरूप होजाताहै और फिर वासनाके अनुसार उसको जगत् भासि आता है। जैसे स्वप्नमें जगत् भासआताहै वह क्या रूप है? आकाशरूपही है तैसेही इसको भी जान। हे लीले! यह सब जगत् तेरे उसी अन्तःपुरमें है क्योंकि; जगत् चित्ताकाशमें स्थितहै। जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही चित्तमें जगत् है और आकाशरूपहै इससे जो चित्त अन्तःपुरमें हुआ तो जगत्भी हुआ। हे लीले! यह जगत् जो तुझको भासताहै सो आकाशरूपहै। जैसे स्वप्न और सङ्कल्पनगर और कथाके अर्थ भासते हैं तैसेही यह जगत्भी है और जैसे मृगतृष्णा का जल भासता है तैसेही यह जगत् भी जान। हे लीले! वास्तवमें कोई पदार्थ उपजा नहीं भ्रमसे सब भासते हैं। जैसे स्वप्नमें स्वप्नान्तर फिर उससे और स्वप्नादिखाताहै तैसेही तुमको भी यह सृष्टि भ्रम भासितहै। हे लीले! यह जगत् आत्मरूप है। जहां चिद्अणु है वहां जगत्भी है परन्तु क्या रूप है; आभासरूप है। जैसे वह आकाशरूप है तैसेही यह जगत् भी आकाशरूप है। जिस प्रकार यह चैत्यता है उस प्रकार हो भासता है इससे संकल्पमात्र है। जैसे स्वप्नपुर भासता है और जैसे सङ्कल्पनगर होताहै तैसेही यह जगत् है। जैसे मरुथल की नदी के तरङ्ग भासते हैं तैसेही यह जगत् भासता है। इससे इसकी कल्पना त्यागके रहो। इतना सुन फिर लीलाने पूछा; हे देवि! उस वशिष्ठ ब्राह्मणको मरे आठ दिन बीते हैं और हमको ये साठ सहस्र वर्ष बीते हैं यह वार्त्ता कैसे सत् जानिये? थोड़े कालमें बड़ाकाल कैसे हुआ? देवी बोली; हे लीले! जैसे थोड़े देश में बहुत देश आते हैं तैसेही थोड़ेकाल में बहुत काल भी आता है। अहन्ता ममता आदिक जितना कुछ जगत् है सो आभासमात्र है उसे क्रमसे सुन। जब जीव मृतक होता है तब मूर्च्छा होती है और फिर मूर्च्छा से चैतन्यता फिर आती है; उसमें यह भासता है कि, यह आधार है तो यह आधेय है; यह मेरा हाथ; यह मेरा शरीर है; यह मेरा पिता है; इसका मैं पुत्र हूं; अब इतने वर्ष का मैं हुआ; ये मेरे बांधव हैं; इनके साथ में स्नेह करता हूं; यह मेरा गृह है और यह मेरा कुल चिरकाल का चलाआता है। मरने के अनन्तर इतने क्रमको देखता है। हे लीले! जिस प्रकार वह देखता है तैसेही यह भी जान। एक क्षण में और का और भासने लगताहै। यहजगत् चैतन्य का किंचन है। जैसे चेतनसंवित में चैत्यता होती है तैसेही यह जगत् भी भासताहै और जैसे स्वप्नमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों भासते हैं; तैसेही आत्मसत्ता में यह

जगत्किंचन होता है और भ्रमसे भासताहै, वास्तवमें नानात्व कुछ हुआ नहीं। जैसे स्वप्ने में कारण बिना नानाप्रकार का जगत् भासताहै तैसेही परलोक में नानाप्रकार का जगत् कारण बिनाही भासताहै सो आकाशरूप है और मन के भ्रमसे भासताहै तैसेही यह जगत्भी मनके भ्रमसे भासताहै। स्वप्न जगत्,परलोक जगत् और जाग्रत जगत्में भेदकुछ नहीं। जैसे वह भ्रममात्र है तैसेही यहभी भ्रममात्रहै—वास्तवमें कुछ उपजा नहीं। जैसे समुद्र में तरंग कुछ वास्तव नहीं तैसेही आत्मामेंजगत् कुछ वास्तव नहीं; असत्ही सत्की नाईं भासताहै। किसी कारणसे उपजा नहीं इसकारणसे अविनाशी है। हे लीले! जैसे चैत्योन्मुखत्वहुये चेतन आकाशभासताहै तैसेही चैत्यता में चेतन आकाशहै क्योंकि; कुछ हुआ नहीं। जैसे समुद्र में तरंगहोता है तो वह तरंग कुछ जलसे इतरहै नहीं, जलही है; तैसेही आत्मा में जगत् कुछ इतर नहीं बल्कि; जलमें तरंगकी नाईं भी आत्मा में जगत् नहीं। जैसे शशे के शृंग असत् हैं तैसेही जगत् असत्है—कुछ उपजा नहीं। हे लीले! जब जीव मृतक होता है तब उसको देश काल, क्रिया, उत्पत्ति, नाश, कुटुम्ब, शरीर, वर्ष आदिक नानारूप भासते हैं पर वे सब आभासरूप हैं। जिसप्रकार क्षणक्षणमें इतनेभासआते हैं तैसेही कारण बिना यह जगत् भासित है तो दृश्य और द्रष्टा भी कोई न हुआ। देश, काल, क्रिया द्रव्य, इन्द्रियां, प्राण, मन और बुद्धि सब भ्रमसे भासते हैं। आत्मा उपाधि से रहित आकाश रूपहै और उसके प्रमादसे जगत् भ्रम उदय हुआ है। हे लीले! भ्रम में क्यानहीं होता? जैसे एक रात्रि में हरिश्चन्द्रको द्वादशवर्ष भ्रम से भासे थे तैसेही यहां भी थोड़े कालमें बहुतकाल भासाहै। दो अवस्थामें औरका और भासता है। स्वप्नेमें औरका और भासताहै और उन्मत्ततासे भी औरका और भासताहै। अभोक्ता आपको भोक्तामानताहै और भ्रमसे उत्साह और शोकको इकट्ठा देखताहै। किसी को उत्साहहोताहै और स्वप्ने में मृतकभाव शोकको देखताहै। बिछुड़ाहुआ स्वप्नेमें मिला देखताहै और जोमिलाहै सो आपको बिछुड़ाजानताहै। कालहै। और भ्रम करके और कालदेखताहै। इससे देखो यहसब भ्रमरूपहै। जैसेभ्रमसे यहभासताहै तैसेहीयहजगत भी भ्रमसेभासताहै परन्तु ब्रह्मसे इतर कुछनहीं। इससे न बन्धहै और न मोक्षहै। जैसे मिरचमें तीक्ष्णता है तैसेही आत्मामें जगत् है; जैसे थम्भमें पुतलियां होती हैं तैसेही आत्मामें जगत्है और जैसे थम्भेमें पुतलियां कुछहुई नहीं ज्योंका त्योंहै और शिल्पी के मनमें पुतलियां हैं तैसेही ब्रह्ममें जगत्है नहीं पर मनरूपी शिल्पी ने जगत्रूपी पुतलियांकल्पी हैं आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों नित्य, शुद्ध, अज, अमर अपने आपमें स्थितहै॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमण्डपाख्यानेपरमार्थप्रतिपादनंनाम चतुर्दशस्सर्गः ॥ १४ ॥

देवी बोली; हे लीले! जब जीवको मृत्युसे मूर्च्छाहोती है तब शीघ्रही उसको फिर कुछ जन्म और देश, काल, क्रिया, द्रव्य और अपना परिवार आदि नानाप्रकार का जगत् भास आताहै पर वास्तव कुछनहीं—स्मृति भी असत्‌है। एक स्मृति अनुभव से होती है और एक स्मृति अनुभव विना भी होती है पर दोनों स्मृति मिथ्या हैं। जैसे स्वप्नमें अपना देह देखता है तो वह अनुभव असत् है क्योंकि, वह कुछ अपने मरनेकी स्मृतिसे नहीं भासा और उस मनकी स्मृति भी असत्‌है। स्वप्नमें कोई पदार्थ देखा तो जाग्रतमें उसको स्मरण करनाभी असत् है क्योंकि, वास्तवमें कुछहुआ नहीं। इससे यह जगत् अकारणरूपहै और जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूपहै। न कुछ विदूरथ की सृष्टिसत्‌है और न यह सृष्टि सत्‌है—सब सङ्कल्पमात्रहै। इतना सुन लीलाने पूछा; हे देवि! जो यह सृष्टि भ्रममात्रहै तो वह जो विदूरथकी सृष्टिहै सो इस सृष्टिके संस्कार से हुई है और यह सृष्टि उस ब्राह्मण और ब्राह्मणकी स्मृति संस्कारसे हुई है तो ब्राह्मण और ब्राह्मणीकी सृष्टि किसकी स्मृति में हुई है। देवीबोली; हे लीले! वह जो वशिष्ठ ब्राह्मणीकी सृष्टिहै सो ब्राह्मण के सङ्कल्प में हुई है और ब्रह्मा ब्राह्मण में फुरा है परन्तु वास्तवमें ब्रह्माभी कुछ नहीं हुआ तो उसकी सृष्टि क्या कहों। यह जितनी कुछ सृष्टि है सो उसी ब्राह्मण के मन्दिरमें है; वास्तवमें कुछ हुई नहीं सब सङ्कल्परूप है और मनके फुरने से भासती है। जैसे जैसे संकल्प फुरताहै तैसेही तैसे होकर भासता है। यह सृष्टि जो तेरेभर्त्ताको भासिआई है वह दृढ़सङ्कल्पके भावसे भासिआई है। थोड़े कालमें बहुतभ्रम होकर भासता है। लीलाने पूछा; हे देवि! जहां ब्राह्मण को मृतकहुये आठदिन व्यतीतभये हैं उस सृष्टिको हम किसप्रकार देखें? देवीबोली; हे लीले! जब तू योगाभ्यास करे तब देखे। अभ्यास विना देखने की सामर्थ्य न होगी क्योंकि, वह सृष्टि चिदाकाशमें फुरती है। जब तू चिदाकाशमें अभ्यास करके प्राप्तहोगी तब तुझको सब सृष्टि भासिआवेगी। वह जो सृष्टिहै सो औरके सङ्कल्पमेंहै जब उसके सङ्कल्पमें प्रवेशकरे तो उसकी सृष्टिभासे; अन्यथा नहीं भासती। जैसे एक के स्वप्नेको दूसरा नहीं जानसक्ता तैसेही औरकी सृष्टि नहीं भासती। जब तू अन्तवाहकरूपहो तब वह सृष्टि देखे। जबतक आधिभौतिक स्थूल पंचतत्त्वों के शरीर में अभ्यासहै तबतक उसको न देखसकेगी क्योंकि, निराकारको निराकार ग्रहणकरताहै आकार नहीं ग्रहण करसक्ता। इससे यह आधिभौतिक देह भ्रमहै; इसको त्यागकर चिदाकाश सत्ता में स्थितहो। जैसे पक्षी आलयको त्यागकर आकाशमें उड़ता है और जहां इच्छाहोती है वहां चलाजाताहै; तैसेही चित्तको एकाग्र करके स्थूल शरीरको त्यागदे और योगअभ्यासकर आत्मसत्ता में स्थितहो। जब आधिभौतिक को त्यागकर अभ्यासके बलसे चिदाकाशमें स्थितहोगी तब आवरणसे रहितहोगी और फिर जहां इच्छाकरेगी वहां

चलीजावेगी और जो कुछ देखाचाहेगी वह देखेगी। हे लीले! हम सदा उस चिदाकाशमें स्थितहैं। हमारा वपु चिदाकाशहै इस कारण हमको कोई आवरण रोक नहींसक्ता हमसे उदारोंकी सदा स्वरूपमें स्थिति है और हम सदा निरावरणहैं कोई कार्य्य हमको आवरण नहीं करसक्ता; हमस्वइच्छितहैं–जहांजायाचाहें वहांजाते हैं और सदा अन्तवाहकरूप हैं। तू जबतक आधिभौतिकरूप है तबतक वह सृष्टि तुझको नहीं भासती और तू वहां जाभीनहींसक्ती। हे लीले! अपनाही सङ्कल्प मनोराज होता है। उसमें जबतक चित्तकी वृत्तिलगी है उसकाल में यह अपना शरीर नहीं भासता तो और का कैसे भासे? जब तुझको अन्तवाहकता का दृढ़ अभ्यासहो और आधिभौतिकस्थूल शरीरकी ओरसे वैराग्यहो तब आधिभौतिकता मिटजावेगी क्योंकि; आगेही सबसृष्टि अन्तवाहकरूपहै पर सङ्कल्पकी दृढ़ता से आधिभौतिक भासती है। जैसे जल दृढ़शीतलतासे बरफरूप होजाताहै तैसेही अन्तवाहकतासे आधिभौतिक होजाते हैं–भ्रमादरूप सङ्कल्प वास्तवमें कुछ हुआ नहीं। जब वही सङ्कल्प उलटकर सूक्ष्म अन्तवाहककी ओर आताहै तब आधिभौतिकता मिटजाती है और अन्तवाहकता आ उदय होती है। जब इसप्रकार तुझको निरावरणरूप उदयहोगा तब देखनेमात्र और जानने में कुछ यत्न न होगा। साकारसे निराकारको ग्रहण नहीं करसक्ता। निराकारकी एकता निराकारके साथही होती है–अन्यथा नहींहोती। जब तू अन्तवाहकरूप होगी तब उसकी सङ्कल्प सृष्टिमें तेराप्रवेशहोगा। हे लीले! यह जगत् संकल्प भ्रममात्रहै, वास्तवमें कुछ हुआनहीं; एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और द्वैत कुछ है नहीं। लीलाबोली; हे देवि! जो एक अद्वैत आत्मसत्ता है तो कलना यह दूसरी वस्तु क्या है सोकहो? देवी बोली; हे लीले! जैसे स्वर्णमें भूषण कुछ वस्तु नहीं; जैसे सीपी में रूपा दूसरी वस्तु कुछ नहीं और जैसे रस्सीमेंसर्प दूसरी वस्तु नहीं तैसेही कलनाभी कुछ दूसरी वस्तुनहीं है एक अद्वैत आत्मसत्ता सहज ज्योंकी त्यों स्थित है; उसमें नानात्व भासताहै पर वह भ्रममात्र है–वास्तव में अपनाआप एक अनुभवसत्ता है इतना सुन फिर लीला ने पूछा; हे देवि! जो एक अनुभवसत्ता और मेरा अपना आप है तो मैं इतनाकाल क्यों भ्रमतीरही? देवीबोली; हे लीले! तू अविचार भ्रमसे भ्रमतीरही है। विचार किये से भ्रम शांतहोजाता है भ्रम और विचारभी दोनों तेरेही स्वरूप हैं और तुझसेही उपजे हैं। जब तुझको अपना विचारहोगा तब भ्रमनिवृत्त होजावेगा। (जैसे दीपकके प्रकाशसे अन्धकार नष्टहोजाताहै तैसेही विचारसे द्वैतभ्रम नष्टहोजावेगा) और जैसे रस्सी के जानेसे सर्पभ्रम नष्ट होजाता है और सीपके जानेसे रूपे का भ्रम नष्ट होजाता है तैसेही आत्माके जानेसे आधिभौतिक भ्रम शान्त होजावेगा।) जब दृश्य की अत्यन्ताभाव जानके दृढ़ वैराग्य करिये और आत्मस्वरूप का दृढ़ अभ्यास हो

तब आत्माका साक्षात्कार होकर भ्रम शांतहोजाता है और इसीसे कल्याण होताहै। हे लीले! जब दृश्यजगत् से वैराग्य होताहै तब वासना क्षयहोजाती है और शान्ति प्राप्त होती है। हे लीले! तू आत्मसत्ताका अभ्यासकर तो तेरा जगत्भ्रम शान्त होजावेगा। भ्रमभी कुछ वस्तु नहीं है क्योंकि; देह आदिक भ्रमभी कुछ हुआ नहीं। जैसे रस्सी के जाने से सांपका अभाव विदित होता है तैसेही आत्माके जाने से देहादिकोंका अत्यन्त अभाव होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविश्रान्तिवर्णनन्नामपञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

देवी बोली; हे लीले! जितने कुछ शरीर तुझको भासते हैं सो सब स्वप्नपुरकी नाईं हैं। जैसे स्वप्ने में शरीर भासताहै पर जब निज स्वरूपमें स्मृति होती है तब स्वप्ने का शरीर वास्तव नहीं भासता। जैसे सङ्कल्पके त्यागसे सङ्कल्प शरीर नहीं भासता तैसेही बोधकाल में यह शरीर भी नहीं भासता और जैसे मनोराज के त्यागसे मनोराजका शरीर नहीं भासता तैसेही यह शरीर भी नहीं भासता। जब स्वरूप का ज्ञान होगा तब यह भी वास्तव न भासेगा। जैसे स्वरूपके स्मरण हुये स्वप्न शरीर शान्त होता है तैसेही वासनाके शान्त हुये जाग्रत् शरीर भी शान्त होजाता है। जैसे स्वप्नका देह अभावज्ञानसे असत् होताहै तैसेही जाग्रत् शरीरकी भावना त्यागसे यह भी असत् भासता है इसके नष्ट हुये अन्तवाहक देह उदय होवेगा। जैसे निद्रासे स्वप्नमें राग द्वेष होताहै और जब पदार्थोंकी वासना बोधसे निर्बीज होती है तब उनसे मुक्तहोता है तैसेही जिस पुरुषकी वासना जाग्रत् पदार्थों में नष्ट हुई है सो पुरुष जीवन्मुक्तपदको प्राप्त होता है। और यदि उसमें फिरभी वासना दृष्ट आवे तो वह वासनाभी निर्वासनाहै। जो सर्व कल्पनाओं से रहित है तिसका नाम सत्तासामान्यहै। हे लीले! जिस पुरुषने वासना रोकी है और ज्ञाननिद्रासे आवर्या हुआ है उसको सुषुप्तिरूप जान उसकी वासना सुषुप्तिहै और जिसकी वासना प्रकटहै और जाग्रत् रूपसे विचरता है उसको अधिक मोहसे आवर्या जानिये। जो पुरुष चेष्टा करता दृष्टि आताहै और जिसकी अन्तःकरणकी वासना नष्ट भई है उसको तुरिया जान। हे लीले! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करताहै और अन्तःकरणकी वासनासे रहितहै वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुषका चित्त सत्पदको प्राप्त भयाहै उसको जगत् की वासना नष्ट होजाती है और जो वासना फुरती भासती है तौभी सत्य जानके नहीं फुरती। जब शरीरकी वासना नष्ट होती है तब आधिभौतिकता नष्ट होजाती है और अन्तवाहकता आन प्राप्त होतीहै। जैसे बरफ की पुतली सूर्य्य के तेज लगेसे जलरूप होजाती है तैसेही आधिभौतिकता क्षीणहोकर अन्तवाहकता प्राप्तहोती है। जब अन्तवाहकता प्राप्तहोती है तब शरीर अभासमय चित्तरूप होता है और अपने जन्मान्तरों, व्यतीत सृष्टि और सर्वज्ञान

होआता है। तब वह जहां जानेकी इच्छा करता है वहां जा प्राप्त होता है और यदि किसी सिद्धके मिलने अथवा किसी के देखने की इच्छाकरे सो सब कुछ सिद्धहोता है; परन्तु अन्तवाहक विना शक्ति नहीं होती। जब इस देहसे तेरा अहंभाव उठेगा तब सब जगत् तुझको प्रत्यक्ष भासेगा । हे लीले ! जब आधिभौतिक शरीर की वासना नष्टहोतीहै तब अन्तवाहक देह होती है और जब अन्तवाहकमें वृत्ति स्थित होती है तब और के संकल्पकी सृष्टि भासती है। इससे तू वासना घटाने का यत्नकर । जब वासना नष्टहोगी तब तू जीवन्मुक्त पदको प्राप्तहोगी। हे लीले! जबतक तुझको पूर्णबोध नहीं प्राप्त होता तबतक तू अपनी इस देहको यहां स्थापनकर वह सृष्टिचल कर देख जैसे अन्तवाहक शरीर से मांसमय स्थूल देहका व्यवहार नहीं सिद्ध होता तैसेही स्थूल देहसे सूक्ष्मकार्य्य नहीं होता। इससे तू अन्तवाहक शरीर का अभ्यास कर; जब अभ्यासकरेगी तब वह सृष्टि देखने को समर्थ होगी। हे लीले! जैसे अनुभवमें संस्थिति होती है सो मैंने तुझसे कही। यह वार्त्ता बालकभी जानते हैं कि यह वर और शापकी नाईं नहीं है। जब अपना आपही अभ्यास करेगी तब बोधकी प्राप्तिहोगी । हे लीले ! सब जगत् अन्तवाहकरूप है अर्थात् संकल्परूप और अबोधरूप है । संकल्पके अभ्यास से आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है; इससे संसारकी वासना दृढ़भई है और जन्म मरणआदिक विकार चित्तमें भासते हैं। जीव न मरता है और न जन्मता है। जैसे स्वप्ने में जन्म मरण भासते हैं और जैसे संकल्पसे भ्रम भासताहै तैसेही जन्म-मरण भ्रमसे भासताहै। जब तुम आत्मपदका अभ्यास करोगी तब यह विकार मिटजावेगा और आत्मपदकी प्राप्तिहोगी लीला ने पूछा; हे देवि ! तुमने मुझसे परमनिर्मल उपदेश कहाहै जिसके जानने से दृश्य बिसूचिका निवृत्ति होती है; पर वह अभ्यास क्याहै; बोधका साधन कैसे होताहै; अभ्यास पुष्ट कैसे होताहै और पुष्टहोने से फल क्या होता है ? देवीबोली; हे लीले ! जो कुछ कोई करता है सो अभ्यास विना सिद्धनहीं होता । सबका साधक अभ्यासहै । इस से तू ब्रह्मअभ्यासकर । हे लीले ! चित्त में आत्मपदकी चिन्तना; कथन; परस्परबोध; प्राणोंकी चेष्टा और आत्मपदके मननका नाम ब्रह्माभ्यास कहते हैं । बुद्धिमान् चिन्तना किसको कहते हैं सोभी सुन । शास्त्र और गुरुसे जो महावाक्य श्रवणकिये हैं उनको युक्तिपूर्वक विचारना और कथन करना चिंतना कहातीहै । शिष्य को अन्योन्य उपदेश करना; परस्पर बोध करना और समान धर्मचर्चा और निर्णय निश्चयकर करना; इनतीनों के परायण रहने को बुद्धिमान् ब्रह्मअभ्यास कहतेहैं । जिन पुरुषों के पाप अन्तको प्राप्तभये हैं और पुण्य बचे हैं वे राग द्वेष से मुक्तहुये हैं; उनको तू ब्रह्मसेवक जान । हे लीले ! जिन पुरुषों को रात्रिदिन अध्यात्म शास्त्रके चिन्तनमें व्यतीत होते हैं और वासनाको नहीं प्राप्त

होते उनको ब्रह्माभ्यासी जान–वे ब्रह्माभ्यासमें स्थित हैं। हे लीले! जिनकी भोगवासना क्षीण हुई है और संसारके अभावकी भावना करते हैं वे विरक्तचित्त महात्मा पुरुष भव्यमूर्ति शीघ्रही आत्मपद को प्राप्तहोते हैं और जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रङ्ग से रँगीहै और आत्मानन्दकी ओर वृत्तिधातीहै ऐसे उदार आत्माओं को ब्रह्माभ्यासी कहते हैं। हे लीले! जिन पुरुषोंने जगत्का अत्यन्त अभाव जानाहै कि, यह आदि से उत्पन्न नहीं हुआ और दृश्य को असत् जानके त्यागते हैं; परमतत्त्व को सत्य जानते हैं और इसयुक्ति में अभ्यास करते हैं वे ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं। जिस पुरुषको असम्भव दृश्य का बोधहुआ है और राग द्वेषसे रहित है–वह जगत् में ही है–इस बुद्धिकाभी जो अभावकरके परमात्मपद में प्राप्ति करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं हे लीले! दृश्यके अभाव जाने विना राग और द्वेष निवृत्त नहीं होते। राग द्वेष बुद्धि इस लोकमें दुःखोंको प्राप्तकरती है और जिसको दृश्यकी असम्भव बुद्धि प्राप्तभई है उसको ज्ञेय अर्थात् परमात्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्तहोता है। जब उसपदमें दृढ़ अभ्यास होता है तब परमानन्द निर्वाण पदको प्राप्तहोताहै और जो इस निमित्त यत्नकरताहै वह प्राकृत है। हे लीले! बोधका साधन अभ्यासहै; अभ्यास शास्त्रसे होताहै; प्रयत्न से पुष्ट होताहै और पुष्टहुये से आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है। हे लीले! जिनका नाम ब्रह्माभ्यासी वा ब्रह्मके सेवक कहते हैं वे तीनप्रकारके हैं–एक उत्तम, दूसरे मध्यम और तीसरे प्राकृत। उत्तम अभ्यासी वह है जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है और दृश्यका असम्भव बोध हुआहै। जिसको दृश्यका असम्भव बोध हुआहै पर बोधकला नहीं उपजी और वह उसके अभ्यासमें है वह मध्यम है। जिसको दृश्यका असम्भव बोध नहीं हुआ और सदा यही हृदयमें रहताहै कि, दृश्यका असम्भवहो यह प्राकृत है। इससे जिसप्रकार मैंने तुझको अभ्यास कहाहै तैसेही अभ्यास कियेसे तू परमपदको प्राप्तहोगी। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे अज्ञानरूपी निद्रामें जीव शयनकररहाहै तिससे जगत्को नानाप्रकारका देखताहै तैसेही अविद्यारूपी निद्रामें विवेकरूपी वचनोंके जलकी वर्षाकरके जब देवी ने लीलाको जगाया तब उसकी अज्ञानरूपी निद्रा ऐसे नष्टहोगई जैसे शरत्कालमें मेघकी कुहड़ नष्टहोजाती है। बाल्मीकिजी बोले, जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तो सायंकालका समयहुआ और सर्व सभा परस्पर नमस्कार करके स्नानको गई और जब सूर्यकी किरणें उदयहुईं तब फिर सब आ स्थित भये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविज्ञानअभ्यासवर्णनन्नामषोड़शस्सर्गः॥ १६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार अर्द्धरात्रि के समय देवी और लीला का संवाद हुआ। उस समय सबलोग और सहेलियां बाहर पड़ी सोतीथीं और लीलाको

भर्त्ता फूलोंमें दबा हुआथा उसके पास दिव्यवस्त्र पहिरेहुये चन्द्रमाकी कांतिके समान सुन्दर देवियां सर्वकलनाओं को त्यागके और अंगों को संकोचकर ऐसी समाधि में स्थितभईं मानों रत्नके थम्भे से पुतलियां उत्कीर्णकिये स्थित हैं। अन्तःपुर भी उनके प्रकाशसे प्रकाशवान् भया और वे ऐसी शोभा देतीथीं मानों कागज़के ऊपर मूर्त्तियां लिखी हैं। इस प्रकार सब दृश्य कलनाको त्यागके वे निर्विकल्प समाधिमें स्थितभईं जैसे कल्पवृक्षकी लता दूसरी ऋतुके आयेसे अगले रसको त्यागके दूसरी ऋतुके रसको अङ्गीकार करती हैं तैसेही वे सब दृश्य भ्रमको त्यागके आत्मतत्त्वमें स्थितहुईं और अहंसत्तासे आदिलेकर उनका दृश्य भ्रम शांतिहोगया। दृश्यरूपी पिशाच के शांतहुये, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होताहै; तैसेही वे निर्मल भावको प्राप्त भईं। हे रामजी! यह जगत् शशेके शृंगकी नाईं असत्है। जो आदि न हो; अन्तभी न रहे और वर्त्तमानमें दृष्टिआवे वहभी असत् जानिये। जैसे मृगतृष्णाका जल असत्यहै तैसेही यह जगत् भी असत्यहै। ऐसे जब स्वभावसत्ता उनके हृदय चिदाकाश में स्थितभईं तब अन्य सृष्टिके देखनेका जो संकल्पथा सो आन फुरा। उस फुरने से वे आकाशरूप देहसे चिदाकाशमें उड़ीं और सूर्य और चन्द्रमाके मण्डलोंको लंघकर दूरसे दूर जाकर अनन्त योजनपर्य्यन्त स्थान लांघे। फिर भूतोंकी सृष्टि देखी उसमें प्रवेश किया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनन्नाम सप्तदशस्सर्गः॥ १७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार परस्पर हाथ पकड़कर वे दूरसे दूर गईं; मानों एकही आसनपर दोनों चलीजाती हैं। जहां मेघों के स्थान और अग्नि और पवन के वेग नदियोंकी नाईं चलतेथे और जहां निर्मल आकाशथा वहां से भी आगे गईं। कहीं चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाशही न था और कहीं चन्द्रमा और सूर्यप्रकाशवान् थे; कहीं देवता विमानोंपर आरूढ़ थे; कहीं सिद्ध उड़ते थे और कहीं विद्याधर, किन्नर और गंधर्व गानकरते थे। कहीं सृष्टि उत्पन्नहोती; कहीं प्रलय होती और कहीं शिखाधारी तारे उपद्रव करते उदयहुये थे। कहीं प्राणी अपने व्यवहार में लगेहुये; कहीं अनेक महापुरुष ध्यानमेंस्थित;कहीं हस्ति,पशु–पक्षी और दैत्य–डाकिनी विचरते और योगिनियां लीला करतीथीं। कहीं अन्धे गूंगे रहतेथे, कहीं गीध पक्षी; सिंह और घोड़के मुखवालेगण विचरते और कहीं वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमादिक लोकपाल बैठे थे। कहीं बड़े पर्वत सुमेरु, मंदराचल आदिक स्थित; कहीं अनेक योजनों पर्य्यन्त वृक्षही चलेजाते; कहीं अनेक योजन पर्य्यन्त अविनाशी प्रकाश; कहीं अनेक योजन पर्य्यन्त अविनाशी अंधकार; कहीं जलसे पूर्ण स्थान; कहीं सुन्दर

पर्वतोंपर गंगाके प्रवाह चलेजाते और कहीं सुन्दर बगीचे, बावड़ी, ताल और उनमें कमल लगेहुये थे । कहीं भूत भविष्यत् होता; कहीं कल्पवृक्षों के वन; कहीं अनन्त चिन्तामणि; कहीं शून्यस्थान; कहीं देवता और दैत्यों के बड़ेयुद्ध होते और नक्षत्र चक्र पड़े फिरते और कहीं प्रलयहोताथा। कहीं देवता विमानों में फिरते; कहीं स्वामिकार्त्तिकके रक्खे हुये मोरोंके समूह विचरते; कहीं कुक्कुट, मोर आदिक पक्षी विद्याधरों के वाहन विचरते और कहीं यमके वाहन महिषों के समूह विचरते थे । कहीं पाषाण संयुक्त पर्वत; कहीं भैरवके गण नृत्य करते; कहीं विद्युत् चमकती; कहीं कल्पतरु; कहीं मन्दमन्द शीतल पवन सुगन्ध समेत चलता और कहीं पर्वत रत्न और मणि शोभते थे निदान इसी प्रकार अनेक जगतोंकी जाल उन देवियोंने देखी । जीवरूपी मच्छड़ त्रिलोकरूपी गूलरों के अनन्त वृक्षोंमें देखे। इसके अनन्तर उन्होंने भूमण्डलको देखके महीतल में प्रवेश किया ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेआकाशगमन वर्णनन्नामअष्टादशस्सर्ग्गः ॥ १८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! तब देवियों ने भूतल ग्राममें आकर ब्रह्माण्ड खप्परमें प्रवेश किया । वह ब्रह्माण्ड त्रिलोकरूपी कमलहै और उसकी अष्ट पखुड़ियां हैं । उस में पर्वतरूपी ढोड़ाहै; चेतनता सुगन्धहै और नदियां समुद्र अम्बुकण हैं । जब रात्रि रूपी भँवरे उसपर आन विराजते हैं तब वे कमल सकुचाय जाते हैं। वे पाताल रूपी कीचड़में लगे हैं; पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं; दैत्य राक्षस उसके कण्टक हैं और डोड़ी उसकी शेषनाग है । जब वह हिलताहै तब भूचालन होताहै और दिनकर से प्रकाशताहै । इसका विस्तार इस प्रकार है कि, एक लाख योजन जम्बूद्वीप है और उसके परे दुगुना खारा समुद्र है । जैसे हाथका कंकण होताहै तैसेही उस जलसे वह द्वीप आवरण किया है । उससे आगे दुगुना शाकद्वीप है और उससे दुगुने क्षीर समुद्रसे वेष्टित है उसके आगे उससे दुगुनी पृथ्वी है जिसका नाम कुशद्वीप है और उस से दूने घृतके समुद्र से वेष्टित है । उसके आगे उस से दूनी पृथ्वी का नाम क्रौंच द्वीप है वह अपने से दूने दधिके समुद्रसे वेष्टितहै । फिर शाल्मली द्वीपहै और उससे दूना मधुकासमुद्र उसके चारों ओर है । फिर प्लक्षद्वीप है तिससे दूना इक्षुरसका समुद्र है । फिर उससे दूना पुष्कर द्वीपहै और उससे दूना मीठे जलका समुद्र उसे घेरे है इस प्रकार सप्त समुद्र हैं । उससे परे दशकोटि योजन कञ्चन की पृथ्वी प्रकाशवान् है और उससे आगे लोकालोक पर्वत है और उनपर बड़ा शून्य वन है । उससे परे एक बड़ा समुद्र है समुद्र से परे दशगुणी अग्नि है; अग्नि से परे दशगुणी वायु है; वायुसे परे दशगुणा आकाश है और आकाश से परे ल

योजन पर्य्यन्त घनरूप ब्रह्मांडका कन्ध है । उस को देखके दोनों फिर आईं ॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेभूलोकगमनवर्णन
न्नामएकोनविंशस्सर्ग्गः ॥ १९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! वहांसे फिरके उन्होंने वशिष्ठ ब्राह्मण और अरुन्धती का मण्डल, ग्राम और नगरको देखा कि शोभा जातीरहीहै । जैसे कमलोंपर धूलकी वर्षाहो और कमलकी शोभा जातीरहे; जैसे वनको अग्निलगे और वनकी लक्ष्मी जातीरही है; जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र को पानकरलिया और समुद्रकी शोभाजाती रहीथी; जैसे तेल और बातीके पूर्ण भये से दीपकका प्रकाश अभाव होजाता है और जैसे वायुके चलनेसे मेघका अभाव होताहै तैसेही ग्रामकी शोभाका अभाव देखा जो कुछ प्रथम शोभाथी सो सब नष्ट होगई थी और दासियां रुदन करतीथीं । तब लीलारानी को, जिसने चिरकाल तप और ज्ञानका अभ्यास कियाथा, यह इच्छाउपजी कि; मुझे और देवीको मेरे बांधव देखें । तब लीलाके सत् सङ्कल्पसे उसके बांधवों ने उनको देखकर कहा कि; यह वनदेवी गौरी और लक्ष्मी आई हैं इनको नमस्कार करना चाहिये । वशिष्ठके बड़ेपुत्र ज्येष्ठशर्मा ने फूलों से दोनोंके चरण पूजे और कहा; हे देवि ! तुम्हारी जय हो । यहां मेरे पिता और माता थे वह अब दोनों कालके वश स्वर्गको गये हैं इससे हम बहुत शोकवान् भये हैं । हमको त्रैलोक शून्य भासते हैं और हम सबही रुदन करते हैं । वृक्षोंपर जो पक्षी रहते थे सोभी उनको मृतक देखके वन को चले गये; पर्वतकी कन्दरासे पवन मानों रुदन करता आता है; और नदी जो वेगसे आती है और तरङ्ग उछलते हैं मानों वहभी रुदन करते हैं । कमलोंपर जो जल के कण हैं मानों कमलों के नयनों से रुदन करके जल चलता है और दिशा से जो उष्ण पवन आताहै मानों दिशाभी उष्ण श्वासें छोड़ती है । हे देवियो ! हम सबही शोकको प्राप्त भये हैं तुम कृपा करके हमारा शोक निवृत्त करो क्योंकि; महापुरुषों का समागम निष्फल नहीं होता और उनका शरीर परोपकारके निमित्तहै । हे रामजी ! जब इस प्रकार ज्येष्ठशर्माने कहा तब लीलाने कृपा करके उसके शिर पर हाथ रक्खा और उसके हाथ रखतेही उसका सब ताप नष्ट होगया । और जैसे ज्येष्ठ—आषाढ़ के दिनोंमें तपीहुई पृथ्वी मेघकी वर्षा होनेसे शीतल होजातीहै तैसेही उसका अन्तःकरण शीतलहुआ जो वहांके निर्द्धनथे वह उनके दर्शन करनेसे लक्ष्मीवान् होकर शांतिको प्राप्त भये और शोक नष्ट होगया और सूखे वृक्ष सफल होगये । इतना सुन रामजी बोले; हे भगवन् ! लीलाने अपने ज्येष्ठशर्माको मातारूप होकर दर्शन क्यों न दिया इसका कारण मुझसे कहो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ता में जो स्पन्द संवेदन हुई है सो संवेदन भूतोंका पिण्डाकारहो भासती है और वास्तव में आकाश-

रूप है भ्रान्ति से पृथ्वीआदिक भूत भासते हैं। जैसे बालक को छाया में भ्रम से वेताल भासताहै तैसेही संवेदनके फुरने से पृथिव्यादिक भूतभासते हैं। जैसे स्वप्नेमें भ्रमसे पिण्डाकार भासते हैं और जागेसे आकाशरूप भासते हैं तैसेही भ्रमके नष्टहुये पृथ्वी आदिक भूत आकाशरूप भासते हैं। जैसे स्वप्नके नगर स्वप्नकालमें अर्थाकार भासते हैं और अग्नि जलाती है पर जागे से सब शून्यहोजाती है; तैसेही अज्ञान के निवृत्त हुये से यह जगत् आकाशरूप होजाताहै। जैसे मूर्च्छामें नानाप्रकारके नगर; परलोक जगत्; आकाशमें तरवरे और मुक्तमाला और नौकापरबैठे तटके वृक्ष चलते भासते हैं तैसेही यह जगत् भ्रमसे अज्ञानी को भासता है और ज्ञानवान् को सब चिदाकाश भासता है—जगत्की कल्पना कोई नहीं फुरती। इससे लीला उसको पुत्रभाव और आपको माताभाव कैसे देखती। उसका अहं और ममभाव नष्ट होगया था। जैसे सूर्य्य के उदयहुये अन्धकार नष्ट होताहै तैसेही लीलाका अज्ञानभ्रम नष्टहोगया था और सब जगत् उसको चिदाकाश भासनाथा। इसकारण यह आपको माताभाव न जानतीभई। जो उसमें कुछ ममत्वहोता तो उसको माताभावसे देखती परन्तु उसको यह अहंममभाव न था इस कारण माताभाव और देवीरूपमें दिखाया और शिरपर हाथ इसलिये रक्खा कि,सन्तोंका दयालु स्वभावहै। माता पुत्रकी कल्पना उसमें कुछ न थी इसकारण उसके शिरपर हाथरक्खा। और कल्पना कुछ न थी—केवल आत्मारूप जगत् उसको भासता था॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेसिद्धदर्शनहेतुकथन न्नामविंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर वहांसे देवी और लीला दोनों अन्तर्द्धानहोगईं। तब वहांके लोग कहनेलगे कि, वनदेवियोंने हमारे ऊपर बड़ी कृपाकरके हमारे दुःख नाश किये और अन्तर्द्धान होगईं। हे रामजी! तब दोनों आकाश में आकाशरूप अन्तर्द्धान भई और परस्पर संवाद करनेलगीं। जैसे स्वप्ने में संवाद होता है तैसेही उनका परस्पर संवादहुआ। देवीनेकहा, हे लीले! जो कुछ जाननाथा सो तूनेजाना और जो कुछ देखनाथा सोभी देखा-यह सब ब्रह्मकी शक्तिहै। और जो कुछ पूछनाहो सो पूछो। लीला बोली; हे देवि! मैं अपने भर्त्ता विदूरथ के पासगई तो उसने मुझे क्यों न देखा और मेरीइच्छासे ज्येष्ठशर्माआदिने मुझे क्योंदेखा इसका कारण कहो? देवी बोली; हे लीले! तब तेरा द्वैतभ्रम नष्टहुआ न था और अभ्यास करके अद्वैतको न प्राप्तभई थी। जैसे धूपमें छायाका सुख नहीं अनुभवहोता तैसेही तुझको अद्वैतका अनुभव न था। हे लीले! जैसे ऋतुकाफल मधुर होता है। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ विदित हो और वर्षा नहीं आई तैसेही तूथी—अर्थात् यह कि; संसारमार्ग को लंघीथी पर अद्वैत

तत्त्वको न प्राप्तभईथी इससे आत्मशक्ति तुझको न प्रत्यक्ष भईथी । आगे तेरा सत्सङ्कल्प न था और अब तू सत्सङ्कल्पहुई है । अब तैंने सत्सङ्कल्प कियाहै कि, तुझको ज्येष्ठशर्मा ने देखा और इसीसे वेसब तुझको देखतेभये । अब तू विदूरथके निकटजा तो पूर्ववत् तेरे साथ व्यवहारहो । लीला बोली; हे देवि! इस मण्डप आकाश में मेराभर्त्ता वशिष्ठब्राह्मणहुआ और फिर जब मृतकहुआ तब इसीलोक मण्डप आकाश में उस को पृथ्वी लोक फुरिआया जिससे पद्मराजाहो उसने चिरकालपर्यन्त चारोंद्वीपोंका राज्य किया और जब फिर मृतक हुआ तब इसी मण्डप आकाश में उसको जगत् भासित होकर पृथ्वीपति हुआ तिसका नाम विदूरथ हुआ । हे देवि! इसी मण्डप आकाश में जर्जरी भाव और जन्म मरण हुआ और अनन्त ब्रह्माण्ड इस में स्थित हैं । जैसे सम्पुट में सरसों के अनेक दाने होते हैं तैसेही इस में सब ब्रह्माण्ड मुझको समीपही भासते हैं और भर्त्ताकी सृष्टिभी मुझको अब अनन्तर भासती है अब जो कुछ तुम आज्ञा करो सो मैं करूं? देवी बोली; हे भूतल अरुन्धती! तेरे जन्म तो बहुत भयेहैं और अनेक तेरे भर्त्ताहुये हैं पर उन सबमें यहभर्त्ता इस मण्डपमें है । एकवशिष्ठ ब्राह्मणथा सो मृतक हो उसका शरीर तो भस्म होगया है और फिर पद्मराजाहुआ उसका शव तेरे मण्डप में पड़ाहै और तीसरा भर्त्ता संसारमण्डप में वसुधापतिहुआ वह संसारसमुद्र में भोग रूपी कल्लोलकर व्याकुलहै । वह राजमें चतुर हुआ है पर आत्मपदसे विमुखहुआहै । आज्ञासे जानताथा कि, मैं ईश्वरहूं; मेरीआज्ञा सबकेऊपर चलती है और मैं बड़े भोगों का भोगनेवाला और सिद्ध बलवान्हूँ । हे लीले! वह सङ्कल्प विकल्परूपी रस्सी से बांधाहुआ है । अब तू किस भर्त्ता के पास चलती है । जहां तेरी इच्छाहो वहां मैं तुझको लेजाऊँ । जैसे सुगन्ध को वायु लेजाता है तैसेही मैं तुझको लेजाऊँगी । हे लीले! जिस संसारमण्डल को तू समीप कहती है सो वह चिदाकाशकी अपेक्षा से समीप भासता है और सृष्टिकी अपेक्षा से अनन्तकोटि योजनोंका भेदहै । इसकावपु आकाश रूपहै । ऐसी अनन्तसृष्टि पड़ी फुरती है । समुद्र और मन्दराचलपर्वत आदिक अनन्त हैं उनके परमाणु में अनन्तसृष्टि चिदाकाश के आश्रय फुरती है । चिद्अणुमें रुचिके अनुसार सृष्टि बड़े आरम्भसे दृष्टि आती है और बड़े स्थूल गिरि पृथ्वी दृष्टिआते हैं पर विचारकर तौलिये तो एकचावलके समानभी नहीं होते । हे लीले! नानाप्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण पर्वतभी दृष्टिआते हैं पर आकाशरूपहैं । जैसे स्वप्नमें चैतनका किञ्चन नानाप्रकार का जगत् दृष्टि आता है तैसेही यह जगत् चैतनका किञ्चन है । पृथ्वी आदिक तत्त्वों से कुछ उपजा नहीं । हे लीले! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आप में स्थित है । जैसे नदी में नानाप्रकार के तरङ्ग उपजते हैं और लीनभी होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् जाल उपजता और नष्टभी होजाता है पर आत्मसत्ता इनके उपजने

और लीन होने में एकरस है। यह सब केवल आभासरूप है वास्तव कुछ नहीं। लीलाबोली; हे मातः! अब पूर्वकी मुझको सब स्मृतिहुई है। प्रथम मैंने ब्रह्मासे राजसी जन्म पाया और उस से आदि लेकर नाना प्रकारके जो अष्टशत जन्म पाये हैं वे सब मुझको प्रत्यक्ष भासते हैं प्रथम जो चिदाकाश से मेरा जन्म हुआ उस में मैं विद्याधर की स्त्रीभई और उस जन्म के कर्मसे भूतल में आकार मैं दुःखी हुई। फिर पक्षिणी भई और जाल में फँसी और उस के अनन्तर भीलनी होकर कदम्बवन में विचरनेलगी। फिर वनलता भई; वहां गुच्छे मेरेस्तन और पत्र मेरे हाथथे। जिसकी पर्णकुटी में मैं लता थी वह ऋषीश्वर मुझको हाथ से स्पर्श किया करता था इससे मैं मृतक होकर उसके गृह में पुत्री भई। वहां जो मुझसे कर्महो सो पुरुषही का कर्महो इससे मैं बड़ी लक्ष्मीसे सम्पन्न राजा भई। वहां मुझसे दुष्टकर्महुये इससे मैं कुष्ठरोग ग्रसित बन्दरी होकर आठवर्ष वहां रही। फिर मैं बैलहुई; मुझको किसीदुष्टने खेती के हलमें जोड़ा और उससे मैंने दुःख पाया। फिर मैं भ्रमरी भई और कमलों पर जाकर सुगन्ध लेतीथी। फिर मृगीहोकर चिरपर्यंत वनमें विचरी। फिर एक देशका राजा भई और सौ वर्षपर्यन्त वहां सुख भोगे और फिर कछुयेका जन्म लेकर; राजा हंसका जन्म लिया। इसी प्रकार मैंने अनेक जन्मों को धारण करके बड़े कष्ट पाये हे देवि! आठसौ जन्म पाकर मैं संसार समुद्र में वासनासे घटीयन्त्रकी नाईं भ्रमीहूं। अब मैंने निश्चय किया है कि, आत्मज्ञान विना जन्मोंका अन्त कदाचित् नहीं होता सो तुम्हारी कृपासे अब मैंने निःसङ्कल्प पदको पाया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेजन्मान्तरवर्णनन्नाम एकविंशतितमस्सर्ग्गः॥ २१॥

इतनीकथासुन रामजीने पूछा; हे भगवन्! वज्रसारकी नाईं वह ब्रह्माण्ड खप्पर जिसका अनन्त कोटि योजनोंपर्यन्त विस्तार था उसे ये दोनों कैसे लंघती गईं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वज्रसार ब्रह्माण्ड खप्पर कहां है और वहांतक कौनगया है? न कोई वज्रसार ब्रह्माण्ड है और न कोई लांघगयाहै सब आकाशरूप है। उसी पर्वतके ग्राममें जिसमें वशिष्ठ ब्राह्मणका गृहथा उसी मण्डप आकाशरूप वह सृष्टिका अनुभव करता भया। हे रामजी! जब वशिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया तब उसी मण्डपाकाशके कोनेमें आपको चारों ओर समुद्रोंपर्यन्त पृथ्वी का राजा जाननेलगा कि, मैं राजापद्महूं और अरुन्धती को लीलाकरके देखा कि, यह मेरी स्त्री है। फिर वह मृतक हुआ तो उसको उसी आकाशमण्डपमें और जगत्का अनुभवभया और उसने आप को राजा विदूरथ जाना इससे तुम देखो कि, कहांगया और क्यारूपहै? उसी मण्डप आकाशमें तो उसकोसृष्टिका अनुभवहुआ; इससे जोसृष्टिहै वह उसी वशिष्ठके चित्त में

स्थितहै। तब ज्ञप्तिरूप देवी की कृपासे अपनेही देहाकाशमें लीला अन्तवाहक देहसे जो आकाशरूपहै, उड़ी और ब्रह्माण्डको लांघके फिर उसी गृहमें आई। जैसे स्वप्नसे स्वप्नान्तर को प्राप्तहो तैसेही देखआई। पर वह गई कहां और आई कहां? एकही स्थानमें होके एकसृष्टिसे अन्य सृष्टिको देखा। इनको ब्रह्माण्डके लंघजाने में कुछ यत्न नहीं क्योंकि; उनका शरीर अन्तवाहकरूपहै। हे रामजी! जैसे मनसे जहां लंघना चाहे वहां लंघजाताहै तैसेही वह प्रत्यक्ष लंघीहै। वह सत्यसङ्कल्परूपहै और वस्तु से कहे तो कुछ नहीं। हे रामजी! जैसे स्वप्नेकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारोंसाहित बड़ीगम्भीर भासती है पर आभासमात्रहै तैसेही यह जगत् देखते हैं पर न कोई ब्रह्माण्डहै न कोई जगतहै और न कोई कुण्डहै केवल चैतन्यमात्रका किञ्चनहै और बनाकुछ नहीं। जैसे चित्तसंवेदन फुरताहै तैसेही आभासहो भासता है। केवल वासनामात्रही जगत् है; पृथ्वी आदिक भूत कोई उपजा नहीं—निरावरण ज्ञान आकाश अनन्तरूप स्थितहै। जैसे स्पन्द और निस्पन्द दोनोंरूप पवनही हैं तैसेही स्फुर और अफुररूप आत्माही है कि, वनमें भी ज्योंका त्यों है और शान्त और सर्वरूप चिदाकाश है। जब चित्त किञ्चन होताहै तब आपही जगत्रूप हो भासताहै—दूसरा कुछनहीं। जिन पुरुषोंने आत्माको जानाहै उनको जगत् आकाशसे भी शून्य भासता है और जिन्होंने नहीं जाना उनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ़ भासता है। जैसे स्वप्नेमें नगर भासते; तैसे ही यह जगत् है। जैसे मरुस्थल में जल और सुवर्णमें भूषण भासतेहैं तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी! इसप्रकार देवी और लीलाने संकल्पसे नाना प्रकार के स्थानोंको देखा जहां झरनोंसे जल चलाआताथा; बावली और सुन्दरताल और बगीचे देखे जहां पक्षी शब्द करतेथे और सुन्दरमेघ पवनसंयुक्त देखे मानों स्वर्ग यहांहीथा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेगिरिग्रामवर्णन
न्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः॥ २२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार देखके वे दोनों शीतल चित्त ग्राम में वास करती भईं और चिरकाल जो आत्म अभ्यास कियाथा उससे शुद्ध ज्ञानरूप और त्रिकालज्ञानसे सम्पन्न हुईं। उससे उन्हें पूर्व्वकी स्मृति हुई और जो कुछ अरुन्धती के शरीर से कियाथा सो देवीसे कहा कि, हे देवि! तुम्हारी कृपा से अब मुझको पूर्व की स्मृति भई। जो कुछ इसदेशमें मैंने किया था सो प्रकट भासता है कि; यहां एक ब्राह्मणी थी; उसका शरीर; वृद्धथा और नाड़ियां दीखतीथीं और भर्त्ताको बहुत प्यारी और पुत्रोंकी माताथी वह मैंहीहूं। हे देवि! मैं यहां देवतों और ब्राह्मणों की पूजा करती थी, यहां दूध रखती, यहां अन्नादिकों के बासन रखती थी यहां मेरे पुत्र, पुत्रियां, दमाद और दुहिते बैठे थे; यहां मैं बैठती थी और भृत्यों को कहती थी कि,

शीघ्रही कार्यकरो । हे देवि ! यहां मैं रसोई करतीथी और भर्त्ता मेरा शाक और गोबर लेआताथा और सर्व मर्यादा कहता था । ये वृक्ष मेरे लगायेहुये हैं; कुछ फल मैंने इनसे लियेहैं और कुछरहे हैं वो ये हैं । यहां मैं जलपान करती थी । हे देवि ! मेराभर्त्ता सब कर्मोंमें शुद्धथा पर आत्मस्वरूपसे शून्यथा । सब कर्म मुझको स्मरण होते हैं । यहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृहमें रुदन करताहै यह बेल मेरे गृह में विस्तरी है और सुन्दर फूल लगेहैं । इनके गुच्छे छत्रोंकी नाईं हैं और झरोखे बेलसे आवरेहुये हैं । यह मेरा मण्डप आकाश है; इस में मेरे भर्त्ताका जीव आकाश है । देवी बोली; हे लीले ! इस शरीरके नाभिकमलसे दशअंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाशहै और सोअंगुष्ठमात्र हृदयहै; उसमें उसका संवित् आकाश है । उसमें जो राजसी वासना थी उससे उसको चारों समुद्र पर्यंत पृथ्वीका राज्य फुरआया कि, "मैं राजाहूं," । यहां उसे आठदिन मृतकहुये बीते हैं और यहां चिरकाल राज्यका अनुभव करताहै । हे देवि ! इस प्रकार थोड़ेकाल में बहुत काल अनुभव होताहै और हमारेही मण्डपमें वह सब पड़ाहै । उसकी पुर्यष्टक में जगत् फुरताहै उसमें आपका राजा विदूरथहै । इस राज्यके सङ्कल्पसे उसकी संवित् इसी मण्डप आकाशमें स्थितहै । जैसे आकाशमें गन्धको लेके पवन स्थितहो तैसेही उसकी चैतन संवित् सङ्कल्पको लेकर इसी मण्डपाकाशमें स्थितहै । उसकी संवित् इस मण्डप आकाश में है उस राजाकी सृष्टि मुझको कोटि योजनों पर्यन्त भासती है । यदि मैं पर्वत और मेघ अनेक योजनोंपर्यन्त लंघती जाऊं तब भर्त्ता के निकट प्राप्त होऊं और चिदाकाशकी अपेक्षासे अपने पासही भासता है । अब व्यवहार दृष्टि से वह कोटि योजनों पर्यन्तहै इससे चलो जहां मेरा भर्त्ता राजा विदूरथ है वह स्थान दूरहै तौ भी निश्चयहै । इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार कहकर वे दोनों; जैसे खड्गकीधारा श्याम होती हैं; जैसे विष्णुजी का अङ्ग श्यामहै; जैसे काजर श्याम होता और जैसे भ्रमरेकी पीठ श्याम होती है तैसेही श्याम मण्डपाकाशमें पखेरू के समान अन्तवाहक शरीरसे उड़ीं और मेघों और बड़े वायुके स्थान; सूर्य; चन्द्रमा और ब्रह्मलोक पर्यन्त देवतोंके स्थानोंको लंघकर इस प्रकार दूरसे दूर गईं और शून्य आकाशमें ऊर्ध्व जाके ऊर्ध्वको देखती भई कि, सूर्य्य और चन्द्रमा आदिक कोई नहीं भासता । तब लीलाने कहा; हे देवि ! इतना सूर्यआदिकका प्रकाशथा वह कहांगया ? यहां तो महाअन्धकार है; ऐसा अन्धकार है कि; मानों सृष्टिमें ग्रहण होता है । देवी बोली; हे लीले ! हम महाआकाशमें आई हैं । यहां अन्धकार का स्थान है सूर्य आदिक कैसे भासें ? जैसे अन्धकूपमें त्रसरेणु नहीं भासते तैसेही यहां सूर्य चन्द्रमा नहीं भासते हम बहुत ऊर्ध्वको आयेहैं । लीलाने पूछा; हे देवि ! बड़ा आश्चर्य्य है कि; हम दूरसे दूर आये हैं जहां सूर्य्यादिको का प्रकाशभी नहीं भासता इससे आगे अब कहां

जानाहै ? देवी बोली; हे लीले ! इसके आगे ब्रह्मांड कपाट आवेगा । वह बड़ा वज्रसार है और अनन्त कोटि योजनों पर्य्यन्त उसका विस्तार है और उसकी धूरकी कणिका भी इन्द्रके वज्रसमान हैं । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसप्रकार देवी कहतीही थी कि, आगे महावज्रसार ब्रह्माण्ड कपाट आया और अनन्त कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार देखकर उसकोभी वे लांघगईं पर उन्हें कुछभी क्लेश न भया क्योंकि; जैसा किसीको निश्चय होताहै वैसाही अनुभव होताहै । वह निरावरण आकाशरूप देवियां ब्रह्मांड कपाटको लांघगईं । उसके परे दशगुणा जलका आवरण; उसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व; उसके परे दशगुणा वायु; उसके परे दशगुणा आकाश और उसके परे परमाकाश है । उसका आदि, मध्य और अन्त कोई नहीं । जैसे बन्ध्याके पुत्रकी कथाकी चेष्टाका आदि अन्त कोई नहीं होता तैसेही परमआकाश है वह नित्य, शुद्ध और अनन्तरूप है और अपने आपमें स्थितहै । उसका अन्त लेनेको यदि सदाशिव मनरूपी वेगसे और विष्णुजी गरुड़पर आरूढ़ होके कल्प पर्यन्त धावें तौभी उसका अन्त न पावें और पवन अन्त लिया चाहे तो न यह भी पावे । वहतो आदि, मध्य और अन्तकलनासे रहित बोधमात्र है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपुनराकाशवर्णनंनामत्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥ २३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब ये पृथ्वी, अप्, तेज आदिक आवरणोंको लांघ गईं तब परमाणुसे रहित परमआकाश उनको भासित हुआ उसमें उनको धूरकी कणिका और सूर्य्यके त्रसरेणुके समान ब्रह्माण्ड भासे । वह महाशून्यको धारनेवाला परम आकाश है और आप कणचिद् अणुसृष्टि जिसमें फुरती है वह ऐसा महासमुद्र है कि, कोई उसमें अधको जाताहै और कोई ऊर्ध्वको जाता और कोई तिर्य्यक् गतिको जाता है । हे रामजी ! चित् संवित् में जैसा जैसा स्पन्द फुरताहै तैसाही तैसा आकार हो भासता है; वास्तवमें न कोई अधहै, न कोई ऊर्ध्व है, न कोई आता है और न कोई जाता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें ज्योंकी त्यों स्थित है । फुरने से जगत् भासता है और उत्पत्ति हो फिर नष्ट होता है । जैसे बालका संकल्प उपज के नष्ट होजाता है तैसेही चैतन संवित् में जगत् फुरके नष्ट होजाता है । रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! अध और ऊर्ध्व क्या होते हैं तिर्य्यक् क्या भासते हैं और यहां क्या स्थित है सो मुझसे कहो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! परमाकाश सत्ता आवरण से रहित शुद्ध बोधरूप है । उसमें जगत् ऐसे भासता है जैसे आकाशमें भ्रान्ति से तरुवरे भासते हैं । उसमें अध और ऊर्ध्व कल्पनामात्र है । जैसे हलों के बेटेके चौगिर्द चींटियां फिरती हैं और उनको मन में अध ऊर्ध्व भासता है सो उनके मन में अध ऊर्ध्वकी कल्पना हुई है । हे रामजी ! यह जगत् आत्मा का आभासरूप है ।

जैसे मन्दराचल पर्व्वतके ऊपर हस्तियों के समूह विचरते हैं तैसेही आत्मामें अनेक जगत् फुरते हैं जैसे मन्दराचल पर्व्वतके आगे हस्तिहो तैसेही ब्रह्मके आगे जगत है और वास्तव में सर्व ब्रह्मरूप है । कर्त्ता, कर्म्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण सर्व ब्रह्मही हैं और ये जगत् ब्रह्मसमुद्रके तरंग हैं । उन जगत् ब्रह्माण्डों को देवियों ने देखा । जैसे ब्रह्माण्ड उन्होंने देखे हैं वे सुनिये । कई सृष्टि तो उन्होंने उत्पन्न होती देखीं और कई प्रलय होती देखीं । कितनों के उपजनेका आरम्भ देखा—जैसे नूतन अंकुर निकलताहै; कहीं जलहीजलहै कहीं अन्धकारही है—प्रकाश नहीं; कहीं सर्व व्यवहार संयुक्तहैं और कहीं वेदशास्त्रके अपूर्व कर्म्म हैं । कहीं आदि ईश्वर ब्रह्मा हैं उनसे सब सृष्टि हुई हैं; कहीं आदि ईश्वर विष्णुहैं उनसे सब सृष्टि हुई हैं और कहीं आदि ईश्वर सदाशिव हैं । इसी प्रकार कहीं और प्रजापति से उपजते हैं; कहीं नाथको कोई नहीं मानते सब अनीश्वर वादी हैं; कहीं तिर्य्यक्ही जीव रहते हैं; कहीं देवताही रहते हैं और कहीं मनुष्यही रहते हैं । कहीं बड़े आरम्भ करके सम्पन्नहैं और कहीं शून्यरूप हैं । हे रामजी ! इसी प्रकार उन्होंने अनेक सृष्टि चिदाकाश में उत्पन्न होती देखीं जिनकी संख्या करनेको कोई समर्थ नहीं चिदात्मा के आभासरूप फुरती हैं और जैसी फुरना होती हैं उसके अनुसार फुरती हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेब्रह्मांडवर्णनन्नामचतुर्विंशतितमस्सर्गः ॥ २४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसप्रकार दोनों देवियां राजाके जगत् में आकर अपने मंडप स्थानोंको देखतीभई । जैसे सोया हुआ जागके देखताहै तैसेही जब अपने मंडप में उन्होंने प्रवेश किया तब क्या देखा कि; राजाका शव फूलों में ढांपा हुआ पड़ाहै । अर्द्धरात्रि का समयहै; सब लोग गृहमें सोये पड़े हैं और राजा पद्मकेशव के पास लीला का शरीर पड़ाहै । और अन्तःपुरमें धूप, चन्दन, कपूर और अगरकी सुगन्ध भरी है । तब वे विचारनेलगीं कि, वहां चलें जहां राजा राज्य करताहै । उसकी पुर्यष्टक में विदूरथका अनुभव हुआथा उस संकल्पके अनुसार विदूरथकी सृष्टिदेखनेको देवीके साथ लीला चली और अन्तवाहक शरीर से आकाशमार्ग को उड़ीं । जातेजाते ब्रह्माण्डकी बाटको लांघगईं तब विदूरथके सङ्कल्पमें जगत्को देखा । जैसे तालाब में सेवार होती है तैसेही उन्होंने जगत्को देखा । सप्तद्वीप, नवखण्ड , सुमेरुपर्वत, द्वीपादिक सबरचना देखीं और उसमें जम्बूद्वीप और भरतखण्ड और उसमें विदूरथ राजा का मण्डपस्थान देखती भईं । वहां उन्होंने राजा सिंधको भी देखा कि, राजा विदूरथ की पृथ्वी की कुछ हद उसके भाइयोंने दबाई थी और उसके लिये सेना भेजी राजा विदूरथनेभी सुनके सेनाभेजी और दोनों सेनामिलके युद्धकरनेलगीं । फिर उन्होंनेदेखा कि, त्रिलोकी युद्धका कौतुक देखने को आई है; देवता विमानोंपर आरूढ़ और सिद्ध

चारण, गन्धर्व और विद्याधर शास्त्रों को छोड़के देखनेको स्थितभये हैं । विद्याधरी और अप्सराभी आई हैं कि, जो शूरमा युद्धमेंप्राणोंको त्यागेंगे हम उनकोस्वर्ग में लेजा-वेंगी । रक्त और मांस भोजन करनेको भूत, राक्षस, पिशाच, योगिनियां भी आन स्थित भई हैं । हे रामजी ! शूरपुरुषतो स्वर्गकेभूषणहैं और अक्षयस्वर्गकोभोगेंगे और जिनका मरना धर्मपक्षसे संग्राममें होगा वहभी स्वर्गकोजावेंगे । इतनासुन रामजीने पूछा;हे भग-वन् ! शूरमा किसको कहते हैं और जो युद्धकरके स्वर्गकोनहीं प्राप्तहोते वे कौनहैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो शास्त्रयुक्त युद्धनहींकरते और अनर्थरूपी अर्थके निमित्त युद्धकर-ते हैं सो नरक को प्राप्तहोते हैं और जो धर्म, गौ, ब्राह्मण,मित्र, शरणागत और प्रजाकी पालनाके निमित्त युद्धकरते हैं वे स्वर्गके भूषण हैं । वेही शूरमा कहाते हैं और मरके स्वर्ग में जाते हैं और स्वर्ग में उनका यश बहुत होताहै । जो पुरुष धर्म के अर्थ युद्ध करते हैं वे अवश्य स्वर्गलोक को प्राप्तहोते हैं और जो अधर्म से युद्धकरते हैं वे मृतक हो नरकको प्राप्तहोते हैं । हे रामजी ! जो पुरुष कहते हैं कि, संग्राममें मरे सब स्वर्ग को प्राप्तहोते हैं वे मूर्ख हैं । स्वर्गको वही जाते हैं जिनका मरना धर्मके अर्थ हुआ है । जो किसी भोगके अर्थ युद्ध करते हैं सो नरक कोही प्राप्तहोते हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेगगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णन्नाम पञ्चविंशतितमस्सर्गः ॥ २५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! दोनों देवियोंने रण संग्राममें क्या देखा कि, एक महा शून्य वनहै उसमें जैसे दो बड़े समुद्र उछलकर परस्पर मिलने लगें तैसेही दोनों सेना जुड़ी हैं । तब उन्होंने क्या देखा कि, सब योधा आन स्थित हुये हैं और मच्छव्यूह गरुड़व्यूह और चक्रव्यूह भिन्न २ भाग करके दोनों सेनाके योधा एकएक होकर युद्ध करने लगे हैं । प्रथम परस्पर देख एकने कहा कि, यह बाण चलावे और दूसरेने कहा कि, नहीं त चला; उसने कहा नहीं तुही प्रथम चला । निदान दोषदृष्टि करके सब स्थिर होरहे–मानों चित्र लिख छोड़े हैं । इसके अनन्तर दोनों सेनाके और योधा आये मानों प्रलयकालके मेघ उछले हैं उनके आनेसे एक एक योधाकी मर्यादा दूर होगई सब इकट्ठे युद्ध करने लगे और बड़ेशस्त्रों के प्रवाहके प्रहार करने लगे । कहीं खड्गोंके प्रहार चलतेथे और कहीं कुल्हाड़े, त्रिशूल, भाले, बरछियां, कटारी, छूरी, चक्र, गदादिक शस्त्र बड़े शब्दकरके चलाने लगे । जैसे वर्षा कालमें मेघवर्षा करते हैं तैसेही शस्त्रों की वर्षा होनेलगी । हे रामजी ! प्रलय कालके जितने उपद्रव थे सो सब इकट्ठे हुये । योधा युद्धकी ओर आये और कायर भागगये । निदान ऐसा संग्रामहुआ कि, अनेकों योधाओं के शिरकाटेगये और उनके हस्ती घोड़े मृत्युको प्राप्त भये । जैसे कमल के फूल काटे जाते हैं तैसेही उनके शीश काटे जातेथे । तब दोनों

सेनाओं के राजा चिन्ता करनेलगे कि, क्या होगा। हे रामजी! इसयुद्ध में रुधिरकी नदियांचलीं; उनमें प्राणी बहते जातेथे और बड़े शब्द करते थे जिनके आगे मेघोंके शब्दभी तुच्छ भासतेथे। हे रामजी! दोनों देवियां सङ्कल्पके विमान कल्पके आकाश में स्थित हुईं तो क्या देखा कि, ऐसायुद्ध हुआहै जैसे महाप्रलय में समुद्र एकरूप होजाते हैं। और बिजुली की नाईं शस्त्रोंका चमत्कार होताथा। जो शूर वीर हैं उनके रक्तकी जो बूंदियां पृथ्वीपर पड़ती हैं उन बूंदों में जितने मृत्तिकाके कणके लगे होते हैं उतनेही वर्ष वे स्वर्गको भोगेंगे। जो जो शूरमा युद्धमें मृतक होतेथे उनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजातीथीं और देवगण स्तुति करतेथे कि, ये शूरमा स्वर्गको प्राप्त भये हैं और अक्षय अर्थात् चिरकाल स्वर्ग भोगेंगे। हे रामजी! स्वर्गलोक के भोग मनमें चिन्तन करके शूरमा हर्षवान् होतेथे और युद्धमें नानाप्रकारके शस्त्र चलाते और संहन करलेथे और फिर युद्धके सन्मुख धीरजधरके स्थितहोते थे। जैसे सुमेरु पर्वत धीर्य्यवान् और अचल स्थितहै उससेभी अधिक वे धीर्य्यवान्थे। संग्राममें योधा ऐसेचूरणहोते थे जैसे कोई वस्तु उखली में चूरणहोतीहै परंतु फिरसन्मुखहोते और बड़े हाहाकार शब्द करतेथे। हस्तिसे हस्तिपर परस्पर युद्धकरते शब्दकरतेथे। हे रामजी! इसीप्रकार अनेक जीव नाशको प्राप्तभये। जो जो शूरमा मरतेथे तिनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजाती थीं। निदान परस्पर बड़े युद्धहुए खड्गवाले खड्गवाले से और त्रिशूलवाले त्रिशूलवाले से युद्धकरते थे। जैसा जैसा शस्त्र किसी के पासहो तैसेही उसके साथ युद्धकरें और जब शस्त्र पूर्ण होजावें तो मुष्टि के साथ युद्धकरें। इसी प्रकार दशोंदिशा युद्ध से पूर्ण हुईं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेरणभूमिवर्णनन्नामषड्विंशतितमस्सर्गः॥ २६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार बड़ायुद्धहुआ तो गङ्गाजीके समान शूरमों के रुधिरका तीक्षण प्रवाह चला और उस प्रवाहमें हस्ती, घोड़े, मनुष्य, रथ सब बहेजातेथे और सेना सृष्टि नाशको प्राप्त होतीजाती थी। हे रामजी! उससमय बड़ाक्षोभ उदयहुआ और राक्षस, पिशाचादिक तामसी जीव मांस भोजन करते और रुधिर पानकरते उत्साहक्रिया प्राप्तभई। जैसे मन्दराचल पर्वत से क्षीरसमुद्रको क्षोभ हुआ था तैसेही युद्ध संग्राम में योद्धाओं का क्षोभहुआ और रुधिरका समुद्र चला उसमें हस्ती, घोड़े, रथ और शूरमा तरङ्गों की नाईं उछलते दृष्टिआते थे। रथवालों से रथ वाले; घोड़ेवालों से घोड़ेवाले; हस्तिवाले से हस्तिवाले और प्यादेसे प्यादे युद्धकरते थे। हे रामजी! जैसे प्रलयकालकी अग्निमें जीवजलते हैं तैसेही जो योद्धा रणभूमिमें आवें सो नाशको प्राप्तहों। जैसे दीपकमें पतङ्ग प्रवेशकरताहै और जैसे समुद्रमें नदियां प्रवेश करती हैं तैसेही रणभूमिमें दशोंदिशाके योद्धा प्रवेशकरतेथे। किसीका शीश

काटाजावे और धड़ युद्धकरे; किसीकी भुजाकाटीजावें और किसीके ऊपर रथचले जावें और हस्ती, घोड़े, उलट उलट पड़ें और नाशहोजावें । हे रामजी ! दोनों राजाओं की सहायता के निमित्त पूर्वदिशा, काशी, मद्रास, मीला, मालव, सकला, कवटा, किरात म्लेच्छ, पारसी, काश्मीर, तुरक, पञ्जाब, हिमालयपर्वत, सुमेरुपर्वत इत्यादि के अनेक देशपाल, जिनके बड़े भुजदंड, बड़ेकेश और बड़े भयानक रूप थे, युद्धके निमित्तआये । बड़ी ग्रीवावाले, एकटँगे, एकाचल, एकाक्ष, घोड़े के मुखवाले, श्वानके मुखवाले, और सुमेरु और कैलास के राजा और जितने कुछ पृथ्वी के राजाथे सो सबही आये । जैसे महाप्रलयके समुद्र उछलते हैं और दिशास्थान जलसे पूर्णहोतेहैं तैसेही सेनासे सब स्थान पूर्णभये और दोनों ओर से युद्धकरनेलगे । चक्रवाले चक्रवाले से और खड्ग कुल्हाड़े, त्रिशूल, छुरी, कटारी, बरछी, गदा, बाणादिक शस्त्रोंसे परस्पर युद्ध करने लगे । एककहै कि, प्रथम मैं जाताहूं, दूसराकहै कि, मैं प्रथम जाताहूं । हे रामजी ! उसकालमें ऐसा युद्ध होनेलगा कि, कहनेमें नहीं आता । दौड़ दौड़के योद्धा रण में जावें और मृत्युको प्राप्तहों । जैसे अग्निमें घृतकी आहुति भस्म होती है तैसेही रण में योद्धानाशको प्राप्तहोते थे । ऐसायुद्धहुआ कि, रुधिरका समुद्रचला उसमें हस्ती, घोड़े रथ और मनुष्य तृणों की नाईं बहते थे और सम्पूर्ण पृथ्वी रक्तमय होगई । जैसेआंधी से फल, फूल और वृक्ष गिरते हैं तैसेही पृथ्वीपर कट कट शब्दकरते शिर गिरते थे । हे रामजी ! जो उसकालमें युद्धहुआ वह कहानहीं जाता । सहस्रमुख शेषनागभी उस युद्ध के कर्म्मों को सम्पूर्ण वर्णन न करसकेंगे तब और कौन कहेगा । मैंने वह संक्षेप से कुछ सुनायाहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेद्वंद्वयुद्धवर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्गः ॥ २७ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इसप्रकार युद्धहुआ तो सूर्य्य अस्तहुआ मानों उसकी किरणेंभी शस्त्रों के प्रहारसे अस्तताको प्राप्त हुईं । तब विदूरथने सेनापति और मंत्रीको बुलाकर कहा कि, हे मंत्रियो ! अब युद्धको शान्तकरो क्योंकि; सूर्य अस्त भयाहै और योद्धाभी सब युद्धकरके थके हैं । रात्रिको सब आरामकरें दिनको फिर युद्ध करेंगे । इससे आज्ञाफेरो कि, अब युद्ध शान्तहो । तब मन्त्रीने दोनों सेनाके मध्यमें ऊंचे चढ़के वस्त्रफेरा कि, अब युद्धको शान्तकरो; दिनको फिर युद्धकरेंगे । निदान दोनों सेनाओंने युद्धका त्यागकिया और अपनी अपनी सेनामें नौबत नगारे बजाने लगे और राजाविदूरथभी अपने गृहमें आ स्थितभया । जैसे शरत्कालमें मेघों से रहित आकाश निर्मल होताहै तैसेही रणमें संग्रामशान्तहुआ । रात्रिको राक्षस, पिशाच, गीदड़, भेड़िये और डाकिनी मांसका भोजन करने और रुधिर पान करने लगे । कितनों के शिर और अंग कटेगये पर जीते थे और पड़े हायहायकरते थे वे निशाचरों को देखके डरने

लगे और कितने लोगोंने भाई और मित्रोंको देखा । हे रामजी ! तब राजा विदूरथने स्वर्णके मन्दिरमें जो फूलों सहित चन्द्रमाकीनाईं शीतल और सुन्दर शय्यापर सब किवाड़ चढ़ाके विश्रामकिया और मंत्रियोंकेसाथ विचारकिया कि, प्रातःकाल उठकेऐसे करेंगे । ऐसे विचारकरके राजाने शयनकिया पर एकमुहूर्त्त पर्यंतसोया और फिरचिन्ता से जग उठा इधर इन दोनों देवियों ने आकाश से उतरके; जैसे सन्ध्याकालमें कमल के मुख मूंदते हैं और उनमें वायुप्रवेश करजाता है तैसेही मन्दिरों में सूक्ष्म परमाणु के मार्गसे प्रवेश किया । इतनासुन रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! शरीर से परमाणुके रंध्रमें देवियोंने कैसे प्रवेशकिया वहतो कमलके तंतु और बालके अग्रसेभी सूक्ष्महोते हैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! भ्रांतिसे जो अधिभौतिक शरीर हुआ है उस अधिभौतिक शरीरसे आपसे सूक्ष्मरंध्रमें प्रवेश कोई नहीं करसक्ताहै परन्तु मनरूपी शरीरको कोई नहीं रोकसक्ता । हे रामजी ! देवी और लीलाका अन्तवाहक शरीर था उस से सूक्ष्म परमाणुके मार्ग से उनको प्रवेशकरने में कुछ विचार न हुआ । जो उनका अधिभौतिक शरीर होता तो यत्नभी होता । जहां अधिभौतिक नहो वहां यत्नकी शङ्का कैसे हो ? हे रामजी ! और भी सब शरीर चित्तरूपी हैं पर जैसा निश्चय अनुभव संवित में होताहै तैसेही सिद्धता होतीहै अन्यथा नहीं होती । जिसके निश्चय में ये शरीरादिक आकाशरूपहैं उसको अधिभौतिकताका अनुभव नहीं होता और जिसके निश्चय में अधिभौतिकता दृढ़ होरही है उसको अन्तवाहकता का अनुभव नहीं होता । जिस पुरुष को पूर्वार्द्धका अनुभव नहीं उसको उत्तरार्द्ध में गमन नहीं होता-जैसे वायुका चलना ऊर्ध्व को नहीं होता, तिरछा स्पर्श होता है; अग्निका चलना अधको नहीं होता और जलका अर्ध्वको नहीं होता । जैसे आदि चेतनसंवितमें प्रवृत्तिभईहै तैसेही अब तक स्थितहै । इससे जिसको अन्तवाहक शक्ति उदय भईहै उसको अधिभौतिकता नहीं रहती और जिसको अधिभौतिकता दृढ़है उसको अन्तवाहक शक्ति उदय नहीं होती । हे रामजी ! जो पुरुष छाया में बैठाहो उसको धूपका अनुभव नहीं होता और जो धूपमें बैठाहै उसको छाया का अनुभव नहीं होता । अनुभव उसीको होताहै जिसके चित्तमें दृढ़ता होता है अन्यथा किसीको कदाचित् नहीं होता । हे रामजी ! जैसा प्रमाण चित्तसंवित में होता है तो जब तक और प्रतीति नहीं होती तब तक तैसेही सिद्धता होती है । जैसे रस्सी में भ्रमसे सर्प भासता है और मनुष्य भयसे कंपायमान होताहै; सो कंपना भी तब तक है जब तक सर्पका अनुभव अन्यथा नहीं होता; जब रस्सीका अनुभव उदय होताहै तब सर्पभ्रम नष्ट होताहै; तैसेही जैसा अनुभव चित्त संवित में दृढ़ होता है उसीका अनुभव होताहै । यह वार्त्ता बालकभी जानताहै कि, जैसी जैसी चित्तकी भावनाहोती है तैसाही रूप भासताहै । निश्चय औरहो और अनुभव

और प्रकारहो ऐसा कदाचित् नहीं होता । हे रामजी ! जिनको ये आकार स्वप्नसङ्कल्पपुरकी नाईं हुये हैं सो आकाशरूप हैं । जिनको ऐसा निश्चयहो उनको कोई रोकनहीं सक्ता । औरोंकाभी चित्तमात्र शरीर है पर जैसा जैसा संवेदन दृढ़भया है तैसाही तैसा आपको जानता है । हे रामजी ! आदि में सब कुछआत्मा से स्वाभाविक उपजा है सो अकारणरूप है और पीछेसे प्रमादसे द्वैतकार्य्य अकारणरूप होके स्थितभया है । हे रामजी ! आकाश तीनहैं—एक चिदाकाश; दूसरा चित्ताकाश है और तीसरा भूताकाश । उनमें वास्तव एक चिदाकाश है और भावना करके भिन्नभिन्न कल्पनाहुई हैं । आदि शुद्ध अचेत, चिन्मात्र चिदाकाश में जो संवेदन फुरा है उसकानाम चित्ताकाश है और उसी में यह सम्पूर्ण जगतहुआ है । हे रामजी ! चित्तरूपी शरीर सर्वगत होकर स्थितभया है । जैसा जैसा उस में स्पन्दहोताहै तैसाही तैसाहोके भासताहै । जितनेकुछ पदार्थ हैं उन सभों में व्यापरहाहै; त्रसरेणुके अन्तरभी सूक्ष्मभाव से स्थितभया और आकाशके अन्तरभी व्यापरहाहै । पत्रफल उसीसे होते हैं; जलमें तरङ्गहोके स्थितभया है; पर्वतके भीतर यही फुरता, मेघहोकेभी यही वर्षता और जलसे बरफभी यह चित्तहीहोताहै । अनन्त आकाश परमाणुरूप भीतर बाहर सर्वजगत्में यहीहै । जितना जगत् है वह चित्तरूपही है और वास्तव में आत्मा से अनन्यरूप है । जैसे समुद्र और तरङ्गमें कुछभेदनहीं तैसेही आत्मा और चित्त में कुछभेदनहीं (जिस पुरुषको ऐसे अखण्डसत्ता आत्माका अनुभव हुआ है और जिसका सर्गके आदि में चित्तही शरीर है और अधिभौतिकताको नहीं प्राप्तभया वह महाआकाशरूप है उसको पूर्वका स्वभाव स्मरणरहाहै इसकारण उसका अन्तवाहक शरीरहै ।) हे रामजी ! (जिसपुरुषको अन्तवाहकतामें अहंप्रत्यय है उसको सब जगत् संकल्पमात्र भासता है वह जहांजाने की इच्छाकरताहै वहांजाताहै और उसको कोई आवरणनहींरोकसक्ता । जिसको अधिभौतिकतामें निश्चयहै उसको अन्तवाहक शक्तिनहीं होती) । हे रामजी ! सबहीअन्तवाहकरूप हैं और भ्रमसे अनहोता अधिभौतिक देखते हैं । जैसेमरुथल में जलभासताहै और जैसे स्वप्नमें बंध्याके पुत्रका सद्भाव होताहै तैसेही अधिभौतिकजगत् भासता है । जैसेजल शीतलतासे बरफ होजाताहै तैसेही जीव प्रमाद से अन्तवाहक से अधिभौतिक शरीरहोता है । इतनासुन रामजीने पूछा; हे भगवन्! चित्तमें क्याहै; कैसेहोताहै और कैसे नहीं होता; यह जगत् कैसे चित्तरूप है और क्षणमें अन्यथा कैसेहोजाताहै ? बशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! एकएक जीवप्रति चित्तहोताहै । जैसा जैसा चित्तहै तैसेही तैसी शक्तिहै । चित्तमें जगत् भ्रम होताहै क्षणमें कल्प और सम्पूर्ण जगत् उदय होआताहै और क्षणमें सम्पूर्ण लयहोताहै । किसीको निमेषमें कल्प होआता है और किसीको क्रमसे भासता है सो मन लगाकर सुनिये । हे रामजी ! जबमरने की

मूर्च्छा होती है तो उस महाप्रलयरूप मृत्युमूर्च्छाके अनन्तर नानाप्रकारका जगत् फुर आताहै जैसे स्वप्न में सृष्टि फुरआती है और जैसे सङ्कल्पका पुरभासताहै तैसेही मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर सृष्टि भासती है जैसे महाप्रलय के अनन्तर आदि विराट्रूप ब्रह्मा होताहै तैसेही मृत्युके अनन्तर इसको अनुभव होता है यह भी विराट् होता है क्यों-कि; इसका मनरूपी शरीर होता है। रामजी बोले; हे भगवन्! मृत्यु के अनन्तर जो सृष्टि होती है वह स्मृति से होती है; स्मृति विना नहीं होती इस लिये मृत्यु के अनन्तर जो सृष्टि हुई तो सकारणरूप हुई ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब महा-प्रलय होता है तब हरिहरादिक सबही विदेह मुक्त होते हैं। फिर स्मृतिका सम्भव कैसेहो ? हमसे आदिले जो बोधआत्मा हैं जब विदेह मुक्तहुये हैं तब स्मृति कैसे स-म्भव हो ? अब के जो जीव हैं उनका जन्म मरण स्मृति कारण से होता है क्यों-कि; मोक्ष नहीं होता—मोक्षका उनको अभाव है। हे रामजी ! जब जीव मरते हैं तब उन्हें मृत्यु मूर्च्छा होतीहै पर कैवल्यभावमें स्थितनहीं होते; मूर्च्छासे उनका संवित आकाशरूप होताहै तिससे फिर चित्तसंवेदन फुरआता है। तब उन्हें क्रमकरके जगत फुरआताहै पर जब बोध होताहै तब तन्मात्रा और काल, क्रिया, भाव, अभाव, स्था-वर-जंगम जगत् सब आकाशरूप होजाता है। जिसका संवेदन दृश्यकी ओर धावता है उनको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर अज्ञान संवेदन फुरता है उससे उन्हें शरीर और इन्द्रियां भासआती हैं। वह अन्तवाहक शरीर है परन्तु चिरकालकी प्राप्ति करके अधि-भौतिक हो भासताहै। तब देश, काल, क्रिया, आधार, आधेय उदय होकर स्थितहो-ते हैं। जैसे वायु स्पन्द और निस्पन्दरूप है पर जब स्पन्दहोताहै तब भासता है और निस्पन्द हुये से नहीं भासता; तैसेही संवेदन से जब जगत् भासता है तब जानता है कि, मैं यहां उपजाहूं। जैसे स्वप्नमें अङ्गनाके स्पर्शका अनुभव होताहै वह मिथ्या है तैसेही भ्रमसे जो आपको उपजा देखताहै वहभी मिथ्याहै। हे रामजी ! जहां यह जीव मृतक होताहै वहीं जगत् भ्रमदेखताहै। वास्तवमें जीवभी आकाशरूप है और जगत भी आकाशरूपहै। अज्ञानसे जीव आपको उपजामानताहै और नाना जगत् भ्रम देख-ताहै कि, यह नगर है; यह पर्वत है, ये सूर्य्य और चन्द्रमा हैं; ये तारागण हैं और जरा-मरण, आधि-व्याधि सङ्कटसे व्याकुल होताहै। वह भाव-अभाव, भय, स्थूल सूक्ष्म, चर-अचर, पृथ्वी, नदियां, पर्वत, भूत-भविष्य-वर्त्तमान; क्षय-अक्षय और भूमिकोभी देखताहै और समझताहै कि, मैं उपजाहूं, मैं अमुकका पुत्रहूं, यह मेराकुल है; यह मेरी माताहै; ये मेरे बांधव हैं; इतना धन हमको प्राप्तभया है इत्यादि अनेक वासना जालमें दुःखी होताहै और कहताहै कि; यह सुकृतहै और यह देहाकृतहै; प्र-थम मैं बालकथा; अब मेरी यह अवस्था हुई और यह मेरा वर्ण है इत्यादिक अनेक

जगत् कल्पना हर एक जीवको उदय होती है । हे रामजी ! संसाररूपी एक वृक्ष उगा है; चित्तरूपी उसका बीजहै; तारागण उसके फूल हैं और चञ्चल मेघ पत्रहैं । जङ्गम जीव मनुष्य, देवता, दैत्यादिक पक्षी उसपर बैठनेवाले हैं और रात्रि उसके ऊपर घूरहै; समुद्र उसकी तलावड़ी है; पर्वत उसमें शिलबट्टे हैं और अनुभवरूप अंकुर हैं । जहां जीव मरताहै तहीं क्षणमें ये सब देखताहै । इसी प्रकार एक २ जीवको अनेक जगत् भासते हैं । हे रामजी ! कितनेकोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, पवन और सूर्य्यादिक हुये हैं । जहां सृष्टिहै वहीं ये होते हैं इस से चिद्‌अणुमें अनेक सृष्टिहैं जीवभी अनन्त हुये हैं और उन्हों में सुमेरु, मण्डल, द्वीप और लोकभी बहुतेरे हुये हैं । जो चिद्‌अणुमेंही सृष्टिका अन्तनहीं तो परब्रह्म में अन्त कहांसे आवे ? वास्तव में है नहीं; जैसे पर्वतकी दीवार में शिल्पी पुतलियां कल्पे तो कुछ है नहीं तैसेही जगत् चिदाकाश में नहीं है केवल मनोमात्रही है । हे रामजी ! मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप है और चिदाकाश में मनन और स्मरण है । जैसे तरङ्गभी जलरूप हैं और जलही में होते हैं; जलसे इतर तरंग कुछ वस्तु नहीं हैं; तैसेही मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप जानो । हे रामजी ! दृश्य कुछ भिन्नवस्तुनहीं है; द्रष्टाही दृश्यकी नाईं होकर भासताहै । जैसे मनाकाश नाना प्रकार हो भासताहै; तैसेही चिदाकाशका प्रकाश नाना प्रकार जगत् होकर भासता है । यह विश्व सब चिदाकाशरूप है; हमको तो ऐसेही भासताहै पर तुमको अर्थाकार रूप भासता है इसी कारण कहा है कि; लीला और सरस्वती आकाशरूप, सर्वज्ञ स्वच्छरूप और निराकार थीं । वे जहां चाहती थीं तहां जाय प्राप्तहोती थीं और जैसी इच्छा करतीथीं तैसी सिद्धि होतीथी क्योंकि; जिसको चिदाकाशका अनुभव हुआ है उसको कोई रोक नहीं सकता है । सर्वरूप होके जो स्थित हुआ उसे गृहमें प्रवेश करना क्या आश्चर्य्य है । वहतो अन्तवाहक रूपहैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेस्मृत्यनुभववर्णनन्नामअष्टाविंशतितमस्सर्गः ॥ २८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब दोनों देवियां जिनकी चन्द्रमा के समान कान्तिथी राजाके अन्तःपुर में सङ्कल्प से प्रवेशकर सिंहासन पर स्थित भईं तो बड़ा प्रकाश अन्तःपुर में हुआ और शीतलतासे व्याधि ताप शान्तहुआ । जैसे नन्दनवन होता है तैसेही अन्तःपुर होगया और जैसे प्रातःकाल में सूर्यका प्रकाश होताहै तैसेही देवियों के प्रकाशसे अन्तःपुर पूर्णभया; मानों देवियोंके प्रकाश से राजापर अमृतकी सींचना हुई तब राजाने देखा कि मानो सुमेरुके शृंगसे दो चन्द्रमा उदय हुये हैं । ऐसे देखके वह विस्मय को प्राप्तहुआ और चिन्तना की कि, ये देवियां हैं । इसलिये; जैसे शेषनागकी शय्यासे विष्णु भगवान् उठते हैं तैसेही उसने उठके और वस्त्रों को एक ओर

करके हाथों में पुष्पलिये और हाथजोड़के देवियोंके चरणोंपर चढ़ाये और माथा टेकके पद्मासन बांध पृथ्वी पर बैठगया और कहनेलगा; हे देवियो! तुम्हारी जयहो। तुम जन्म दुःख तपके शांतकरनेवाले चन्द्रमाहो और अपूर्व सूर्य हो—अर्थात् पूर्व्व सूर्य्य के प्रकाशसे बाह्यतम नष्ट होताहै और तुम्हारे प्रकाशसे अन्तर अज्ञानतमभी नष्ट होता है; इससे अपूर्व सूर्यहो। इसके अनन्तर देवी ने मंत्रीको जो राजाके पास नदी के तटके फलों के वृक्षों के समान सोया था जन्म और कुलके कहावने के निमित्त सङ्कल्प से जगाया और मंत्री उठके फलों से देवियों का पूजनकर राजाके समीप जा बैठगया। तब सरस्वती कहनेलगीं; हे राजन्! तू कौनहै; किसका पुत्रहै और कबका तूने जन्म लिया है? हे रामजी! जब इसप्रकार देवी ने पूछा तब मंत्री, जो निकट बैठाथा, बोला; हे देवि! तुम्हारी कृपासे राजाका जन्म और कुल मैं कहताहूं। इक्ष्वाकु कुलमें एक राजाहुआ था जिसके कमलकी नाईं नेत्र थे और वह श्रीमान् था उसका नाम कुन्दरथ था। निदान उसका पुत्र बुधरथ हुआ; बुधरथके सिन्धुरथ हुआ; उसका पुत्र महारथ हुआ; महारथका पुत्र विष्णुरथ हुआ; उसका पुत्र कलारथ हुआ; कलारथ का पुत्र सयरथ हुआ; सयरथ का पुत्र नभरथ हुआ और उस नभरथके बड़े पुण्य करके यह विदूरथ पुत्र हुआ। जैसे क्षीर समुद्र से चन्द्रमा निकला है तैसेही सुमित्रा माता से यह उपजाहै। जैसे गौरीजी से स्वामिकार्त्तिक उत्पन्न भये हैं तैसेही यह सुमित्रा से उत्पन्न हुये हैं। हे देवि! इस प्रकार तो हमारे राजा का जन्म हुआ है। जब यह दश वर्ष का भया तब पिता इसको राज्य देकर आप वनको चलागया और उस दिनसे इसने धर्मकी मर्यादासे पृथ्वीकी पालनाकी और बड़े पुण्य किये हैं। उन्हीं पुण्यों का फल तुम्हारा दर्शन अब इसको भया है। हे देवि! जो तुम्हारे दर्शन के निमित्त बहुत वर्षों तप करते हैं उनको भी तुम्हारा दर्शन पाना कठिनहै; इससे इसके बड़े पुण्य हैं कि, तुम्हारा दर्शन प्राप्तहुआ। हे रामजी! इस प्रकार कहके जब मंत्री तूष्णीहुआ तब देवीजी ने कृपाकरके राजाविदूरथ के शीशपर हाथरखकर कहा; हे राजन्! तुम अपने पूर्व जन्मको विवेकदृष्टिकरके देखो कि, तुम कौनहो? देवी के हाथरखने से राजा के हृदय का अज्ञानतम निवृत्त होगया; हृदय प्रफुल्लित हुआ और देवीके प्रसाद से राजा को पूर्वकी स्मृति फुरआई। लीला और पद्मका सम्पूर्ण वृत्तान्त स्मरणकरके कहने लगा हे देवि! बड़ा अचरज है कि, यह जगत् मनसे रचा है। यह मैंने तुम्हारे प्रसाद से जाना कि, मैं राजापद्मथा और लीला मेरी स्त्री थी। मुझको मृतकहुये एक दिन ऐसे में भासा और यहां मैं सौ वर्षका भयाहूं सो अबतक भ्रमसे मैंने नहीं जाना; अब प्रत्यक्ष जानताहूँ। सौ वर्षों में जो अनेक कार्य मैंने किये हैं वह सब मुझको स्मरण होतेहैं और अपने प्रपितामह और अपनी बाल्यावस्था व यौवन अवस्था, मित्र और बांधव भी

स्मरण आते हैं— यह बड़ा आश्चर्य हुआहै । सरस्वती बोली; हे राजन्! जब जीव मृतक होतेहैं तब उनको बड़ी मूर्च्छा होती है। उस मूर्च्छाके अनन्तर और २ लोक भास आते हैं और एक मुहूर्त्त में वर्षोंका अनुभव होता है। जैसे स्वप्ने में एक मुहूर्त्त में अनेक वर्षोंका अनुभव होताहै तैसेही तुझको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर यह लोक भ्रम भासाहै। हे राजन्! जहां तुम पद्मराजा थे उस गृह में मृतकहुये तुमको एकमुहूर्त्त बीता है और यहां तुमको बहुतेरे वर्षोंका अनुभव हुआहै । इससे भी जो पिछला वृत्तान्त है वह सुनिये। हे राजन्! पहाड़के ऊपर एक ग्राम था उसमें एक वशिष्ठ ब्राह्मण रहता था और अरुन्धती उसकी स्त्री थी । वह दोनों मन्दिर में रहते थे। अरुन्धती ने मुझसे वरलिया कि, जब मेराभर्त्ता मृतक हो तब उसका जीव इसही मण्डपाकाश में रहे। निदान जब वह मृतक हुआ तब उसकी पुर्य्यष्टक उसही मन्दिर में रही पर उस के संवित् में राजाकी दृढ़ वासना थी इसलिये उस मण्डपाकाश में उसको पद्मराजा की सृष्टि फुरआई और अरुन्धती उसकी स्त्री लीला होकर उसको प्राप्तभई। राजा पद्मका मण्डप उस ब्राह्मणके मण्डपाकाश में स्थितहुआ और फिर उस मण्डप में जब तू राजा पद्म मृतक हुआ तब तेरे संवित्में नाना प्रकार के आरम्भ संयुक्त यह जगत् फुरआया। हे राजन्! यह तेराजगत् पद्मराजा के हृदय में फुरआयाहै और पद्मराजाके मण्डपाकाश में स्थित है पद्मराजा का जगत् उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है और वही वशिष्ठ ब्राह्मण तुम विदूरथराजा हुयेहो । हे राजन्! यह सब जगत् प्रतिभामात्र है और मनकी कल्पना से भासताहै—उपजा कुछ नहीं। इतना सुन विदूरथ बोले, बड़ा आश्चर्य्यहै कि; जैसे मेरा यह जन्म भ्रमरूप हुआ तैसेही इक्ष्वाकुका कुल और मेरे माता पिता सब भ्रमरूप हुये हैं तिसमें मैं जन्मलेके बालकहुआ और जब दशवर्षका था तब पिताने मुझको राज्य देके वनवासलिया। फिर मैंने दिग्विजयकरके प्रजाकी पालना की और शतवर्षोंका मुझको अनुभव होता है । फिर मुझको दारुण अवस्था युद्धकी इच्छाहुई है और युद्धकरके रात्रिको मैं गृहमेंआया। अब तुम दोनों देवियां मेरे गृहमें आई और मैंने तुम्हारी पूजाकी तब तुम दोनों में से एकदेवीने कृपाकरके मेरे शीशपर हाथरक्खाहै उसीसे मुझको ज्ञानप्रकाशभयाहै। जैसे सूर्यके प्रकाश से कमल प्रफुल्लित होताहै तैसेही मेरा हृदय देवीके प्रकाश से प्रफुल्लित भयाहै। इनकी कृपासे मैं कृतकृत्य हुआ और अब मेरा सब सन्ताप नष्टहोकर निर्वाण, समता, सुख और निर्म्मल पदको प्राप्तहुआहूं । सरस्वती बोली; हे राजन्! जो कुछ तुझको भासा है वह भ्रममात्र है और नानाप्रकार के व्यवहार और लोकान्तर भी भ्रममात्र हैं क्योंकि; वहां तुझको मृतकहुये अभी एक मुहूर्त्त व्यतीत हुआ है और इसी अनन्तर में उसी मण्डप आकाशमें तुझको यह जगत् भासा। पद्मराजाकी वह सृष्टि ब्राह्मण के मण्डपमें स्थित है

और यहां तुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत सम्पूर्ण जगत् भासि आये हैं। हे राजन्! मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर कभी वही जगत् भासता है, कभी और प्रकार भासता है और कभी पूर्व-अपूर्व भी भासता है। यह केवल मनकी कल्पना है पर वास्तव में असत्‌रूप है और अज्ञान से सत्‌की नाईं भासता है। जैसे एक मुहूर्त्त शयनकरके स्वप्ने में बहुतेरे वर्षों का क्रम देखता है; तैसेही जगत् का अनुभव होता है। जैसे सङ्कल्पपुर में अपना जीना, मरना और गन्धर्वनगर भ्रममात्र होता है; जैसे नौकामें बैठेहुये मनुष्य को तटके वृक्ष चलतेहुये भासते हैं; भ्रमण करने से पर्वत, पृथ्वी और मन्दिर भ्रमते भासते हैं और स्वप्ने में अपना शिर कटा भासता है तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै। हे राजन्! अज्ञान से तुझको मिथ्या कल्पना उपजी है; वास्तव में न तू मृतकहुआ और न तूने जन्मलिया तेरा अपना आप जो शुद्ध विज्ञान शांतिरूप आत्मपदहै उसी में स्थित है। नानाप्रकारका जगत् अज्ञानसे भासता है और सम्यक्‌ज्ञान से सर्वात्मसत्ता भासती है। आत्मसत्ताही जगत् की नाईं भासती है। जैसे बड़ी मणिकी किरच नाना प्रकार हो भासती है सो वह मणिसे भिन्ननहीं; तैसेही आत्मसत्ताका किञ्चन आकाशरूप जगत् भासताहै। गिरि और ग्राम और किञ्चनरूपहो जितना जगत् विस्तार तुमको भासता है वह लीला और पद्म राजाके मण्डपाकाशमें स्थितहै और लीला और पद्मकी राजधानी उस वशिष्ठब्राह्मण के मण्डपाकाशमें स्थितहै। हे राजन्! यह जगत् वशिष्ठ ब्राह्मणके हृदय मण्डपाकाशमें फुरताहै। वह मण्डपाकाश जो आकाशमें स्थितहै उसमें न पृथ्वीहै न पर्वत हैं। न मेघहैं; न समुद्रहैं और न कोई मुमुक्षुहै। केवल शून्य शून्यस्थितहै और न कोई जगतहै, न कोई देखनेवालाहै—यह सब भ्रान्तिमात्रहै। हे राजन्! यह सब तेरे उस मण्डपाकाशमें फुरते हैं। विदूरथ बोले; हे देवि! जो ऐसे हैं तो यह मेरे भृत्यभी अपने आत्ममें सत्हैं वा असत्हैं कृपाकर कहिये? देवी बोली, हे राजन्! विदित वेद जो पुरुष है वह शुद्ध बोधरूपहै। उसको कुछभी जगत् सत्यरूप नहीं भासता; सब चिदाकाशरूपही भासताहै। जैसे भ्रम निवृत्तहुये रस्सी में सर्प नहीं भासता; तैसेही जिन पुरुषोंको आत्मबोध हुआहै और जिनका जगत् भ्रम निवृत्तहुआहै उनको जगत् सत् नहीं भासता। जैसे सूर्य्यकी किरणों में जलको असत्‌जाने तो फिर जलसत्ता नहीं भासती; तैसेही जिनको आत्मबोध हुआहै और जगत्‌को असत् जानते हैं उनको सत् नहीं भासता। हे राजन्! जैसे स्वप्ने में कोई भ्रमसे अपना शीश कटा देखे और जागेसे स्वप्नका मरना नहीं देखता तैसेही ज्ञानवान्‌को जगत् सत् नहीं भासता। जैसे स्वप्नेका मरना भ्रमसे देखताहै तैसेही अज्ञानीको जगत् सत् भासताहै परन्तु वास्तवमें कुछनहीं शुद्धबोध में जगत् भ्रम भासता है। जैसे शरत्‌कालमें मेघसे रहित शुद्ध आकाश होता है तैसेही

शुद्धबोधवालोंको अहंत्वं आदिक व्यर्थशब्दका अभाव होता है । हे राजन् ! तुम और तुम्हारे भृत्य इत्यादिक जो यह सृष्टिहै वहसब आत्मामें फुरे हैं और वास्तवमें कुछनहीं हुआ । केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और भ्रमसे और कुछ भासता है पर शुद्धविज्ञान घनरूपही उसका शेषरहता है । इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार जब देवी और विदूरथका संवाद वशिष्ठजी ने रामजी से कहा तब सूर्य्य अस्त होकर सायङ्कालका समयहुआ और सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नानको गई जब रात्रि बीतगई सूर्य्यकी किरणों के निकलतेही सब अपने २ स्थानोंपर आके बैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेलीलोपाख्यानेभ्रान्तिविचारोनामएकोनत्रिंशतितमस्सर्गः २९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो पुरुष अबोध हैं अर्थात् परमपद में स्थित नहींहुये उनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ़है । जैसे मूर्ख बालकको अपनी परछाहीं में वैताल भासताहै तैसेही अज्ञानीको असत्रूप जगत् सत्हो भासता है और जैसे मरुस्थल में मृगको असत्रूप जलाभास सत्यहो भासता है; स्वप्ने में क्रिया अर्थ भ्रमकरके भासती हैं; जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती उसको भूषणबुद्धि सत् भासती है और जैसे नेत्र दूषणसे आकाशमें मुक्तमाला भासती हैं तैसेही असम्यक्दर्शीको असत्रूप जगत् सत्हो भासताहै । हे रामजी ! यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्नाहै; अहंतासे दृढ़ जाग्रत् रूप हो भासताहै और वास्तव में कुछ उपजानहीं परमचिदाकाश सर्वदा शान्ति और अचिन्त्य चिन्मात्रस्वरूप सर्वशक्ति सर्व आत्माही है; जहां जैसा स्पन्द फुरता है वैसाही जगत् होकर भासता है । जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है वह स्वप्नभ्रम चिदाकाश में स्थितहै । उस चिदाकाश में एकस्वप्नपुर फुरताहै और वही द्रष्टाहो दृश्यको देखता है । वह द्रष्टा और दृश्य दोनों चेतन संवित् में आभासरूप हैं तैसेही यह जगत् भी आभासरूप है । हे रामजी ! सर्ग की आदि जो शुद्ध आत्मसत्ताथी उस में आदि संवेदन स्पंद हुआ है—वही ब्रह्माजी हैं और उसी के संकल्पमें यह संपूर्ण जगत् स्थितहै । यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नकी नाईं है; उस स्वप्नरूप में तुम्हारा सद्भाव हुआ है । जैसे तुमहो तैसेही और भी हैं । जैसे स्वप्ने में स्वप्ननरको और स्वप्नाहो और जैसे स्वप्न नगर वास्तव सत् नहीं होता तैसेही यह जगत् भी जो दृष्टि आता है भ्रममात्र है । जैसे स्वप्ने में असत्नहीं सत् होके भासता है तैसेही यह भी अहंत्वं आदिक भासते हैं और जैसे स्वप्ने में सब कर्म होते हैं तैसेही यह भी जानो । इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! स्वप्नसे जब मनुष्य जागता है तब स्वप्न के पदार्थ उसे असत्रूप हो भासते हैं पर येतो ज्यों के त्यों रहते हैं और जब देखिये तब ऐसेही हैं; फिर आप जाग्रत् और स्वप्नको कैसे समान कहते हैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसा स्वप्न है वैसेही जाग्रत् है; स्वप्न और जाग्रत् में कुछ भेदनहीं । स्वप्नको भी असत् तब जा-

नता है जब जागता है; जबतक जागानहीं तबतक असत् नहीं जानता; तैसेही मनुष्य भी जबतक आत्मपद में नहीं जागता तबतक असत् नहीं भासता और जब आत्मपद में जागता है तब यह जगत् भी असत्रूप भासताहै। हे रामजी! यह जगत् असत्रूप है और भ्रमसे सत्की नाईं भासता है। जैसे स्वप्न की स्त्री असत्रूप होती है और उसको पुरुष सत्रूप जानता है; तैसेही यह जगत् भी असत्रूप सत्हो दिखाई देता है। केवल आभासरूप जगत् है और आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है, जहां जैसा चिन्तता है वहां वैसेही होके भासता है। जैसे डिब्बेमें अनेक रत्न होते हैं उसमें जिसको चाहता है लेता है; तैसेही सर्वगत चिदाकाश है जहां जैसा चिन्तता है वहां वैसा हो भासता है। हे रामजी! अब पूर्वका प्रसङ्ग सुनो जब देवीने विदूरथ पर अमृतके समान ज्ञान वचनों की वर्षा की तब उसके हृदय में विवेकरूप सुन्दर अंकुर उत्पन्न हुआ तब सरस्वती ने कहा; हे राजन्! जो कुछ कहनाथा वह मैं तुझसे कहचुकी। अब तुम रणसंग्राम में मृतक होगे—यह मैं जानती हूं। अब हम जाती हैं; लीलादि को देखाने के लिये हम आईथीं सो सब दिखाचुकीं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार मधुरवाणी से सरस्वती ने कहा तब बुद्धिमान् राजा विदूरथ बोला। हे देवि! बड़ेका दर्शन निरर्थक नहीं होता वह तो महाफल देनेवाला है। हे देवि! जो अर्थी मेरे पास आता है उसे मैं निरर्थक नहीं जानेदेता और सबका अर्थ पूरा करता हूं। तुमतो साक्षात् ईश्वरी हो इसलिये मुझे यह वर दो कि, देहको त्यागकर मैं लोकान्तर में पद्मकेशव में प्राप्त होऊं और मेरे मंत्री और लीला भी मेरे साथहों। हे देवि! जो भक्त शरण में प्राप्तहोताहै उसको बड़े लोग त्याग नहीं करते बल्कि उसके सर्व अर्थ सिद्ध करते हैं। सरस्वती बोली हे राजन्! ऐसेही होगा। तू पद्मराजाके शरीर में प्राप्तहोगा और बोध सहित निश्शङ्क होकर राज्यकरेगा। हमारी आराधना किसी को व्यर्थ नहीं होती जैसी कामना करके कोई हमको सेवता है तैसेही फलको प्राप्त होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेस्वप्नपुरुषसत्यतावर्णनंनामत्रिंशतितमस्सर्गः ३०॥

सरस्वती बोली; हे राजन्! अब तुम रणमें मृतकहोके पूर्व के पद्मराजा के शरीर में प्राप्तहोगे और यह तुम्हारी भार्या और मंत्रीभी तुम्हें वहां प्राप्तहोंगे। हे राजन्! तुम ऐसे चले जावोगे जैसे वायु चलीजाती है। जैसे अश्व और खर; मृग और ऊंट हाथी का संग नहीं करते तैसेही तुम्हारा हमारा क्यासंगहै—इससे हम जाती हैं। इतनाकहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब एक पुरुष ने आकर कहा; हे राजन्! जैसे प्रलय कालमें मन्दराचल और अस्ताचल आदिक पर्वत वायु

से उड़ते हैं तैसेही शत्रुचले आते हैं और चक्र गदा आदिक शस्त्रोंकी वर्षाकरते हैं। जैसे महाप्रलय में सब स्थान जलसे पूर्ण होजाते हैं तैसेही सेनासे सब स्थान पूर्ण हुये हैं और उन्होंने अग्निभी लगाई है उससे स्थान जलने लगे हैं । वे शब्द करते हैं और नदी के प्रवाह की नाईं बाण चले आते हैं । अग्नि ऐसी लगी है जैसे महाप्रलय की बड़वाग्नि समुद्र को सोखती है । तब दोनों देवियां और राजा और मंत्री ऊंचे चढ़के और झरोखे में बैठ के क्या देखने लगे कि, जैसे प्रलयकाल में मेघ चले आते हैं तैसेही सेना चली आती है और जैसे प्रलयकी अग्नि से दिशा पूर्ण होती हैं तैसेही अग्निकी ज्वाला से सब दिशा पूर्ण हुई हैं और उस से ऐसी चिनगारियां उड़ती हैं मानों तारागण गिरते हैं और अङ्गारों की वर्षा होती है उससे जीव जलते हैं सुन्दर स्त्रियां जो नाना प्रकारके भूषणों से पूर्ण थीं वह तृणों की अग्निमें जलती हैं और पुरुषोंकी देह और वस्त्रभी जलते हैं । सब हाय हाय शब्दकरते हैं और जलते जलतेबांधव, पुत्र और स्त्रियोंको ढूंढ़ते हैं । हे रामजी ! यह आश्चर्य देखो कि, ऐसे स्नेह से जीव बांधे हुये हैं कि, मृत्युकाल में भी स्नेहनहीं त्याग सक्ते पर सेना के लोग दूसरे लोगों को मारके स्त्रियों को लेजाते हैं । हे रामजी ! उस काल रणभूमिका में चहुंओर शब्द छागया; कोई कहता था हाय पिता; कोई कहता था हाय माता; हाय भाई, हाय पुत्र, हाय स्त्री । घोड़े, गौ, बैल, ऊंट आदिक पशु इकट्ठे मिलगये और अग्निकी ज्वाला वृद्धि होतीजातीहै और बड़ा क्षोभ उदय हुआ। जैसे महाप्रलय की अग्नि होती है तैसेही सब स्थान अग्निसे पूर्ण हुये और उनमें अनेक जीव और स्थान दग्ध होने लगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेअग्निदाहवर्णनंनाम एकत्रिंशतितमस्सर्गः ३१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार राजा नगर को देखताथा कि, लीला सहेलियों सहित अपने दूसरे स्थानसे जहां राजा विदूरथथा आई; उसके महासुन्दर भूषण कुछ टूटेहुये और कुछ शिथिलथे । एक सहेली ने कहा; हे राजन् ! तुम्हारे अन्तःपुर में जोस्त्रियां थीं उन्हें शत्रु लेगये हैं पर इस लीलाराणी को हम बड़े यत्न से चुराकर लेआई हैं; और दूसरे लोगों को उन शत्रुओं ने बड़ा कष्टदिया है । तुम्हारे द्वारे पर जो सेना बैठी है उसको भी वह चूर्ण करते हैं और समस्त नगरको जलाकर लूटलियाहै । हे रामजी ! जब इस प्रकार सहेली ने राजासे कहा तब राजा ने सरस्वतीजी से कहा; हे देवीजी ! यहलीला तुम्हारी शरण आई है और तुम्हारे चरण कमलोंकी भ्रमरी है; इसकी रक्षाकरो और मैं अब युद्ध करने जाताहूं । जब इस प्रकार कहकर राजा क्रोध संयुक्त युद्धकरने को रणकी ओर मत्तहाथी के समान चला

तब देवी के साथ जो प्रथम लीला थी उसने क्या देखा कि, उस लीला का अपनीही मूर्त्तिसा सुन्दर आकार है। जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब होता है तैसेही देखके कहने लगी; हे देवि! इसमें मैं क्योंकर प्राप्त हुई? जब मैं प्रथम आई थी तब तो मुझको मन्त्री, टहलुये और अनेक पुरवासी दीखते थे और वह संशय मैंने तुम से निवृत्त कियाथा; फिर अब मैं इस प्रकार कैसे आन स्थित हुई? यह दृश्यरूप कैसा आदर्श है जिस के भीतर बाहर प्रतिबिम्ब होता है? यह मन्त्री और टहलुये और मेरा यह स्वरूप क्या है और दृश्यभाव हो क्योंकर भासता है? मेरा यह संशय दूरकरो। देवी बोली; हे लीले! जैसे चित्त संवित् में स्पन्द फुरता है तैसेही तत्काल सिद्ध होताहै। जिस अर्थ को चिन्तन करनेवाला चित्त संवित् शरीर को त्यागता है उसी अर्थको प्राप्तहोता है और उसी क्षण में देश, काल और पदार्थ की दीर्घताहोती है। जैसे स्वप्न सृष्टि फुरआती है तैसेही परलोक सृष्टि भासआती है। हे लीले! जब तेरा भर्त्ता मृतकहोनेलगाथा तब तुझमें और मन्त्रियों में इसका बहुत स्नेहथा इससेवही रूप सतहोकर अपनी वासनाके अनुसार उसे भासा है जैसे सङ्कल्पपुर और स्वप्नसेना भासती है तैसेही यह "देश, काल और पदार्थ,, भासे हैं। हे लीले! जो कोई असत्पदार्थ सतरूप होकर भासते हैं वह अज्ञानकाल मेंही भासते हैं, ज्ञानकाल में सब तुल्य होजाते हैं, न्यूनाधिक कोई नहीं रहता; जाग्रत् में स्वप्न मिथ्या भासता और स्वप्न में जाग्रत्का अभाव होजाता है। जाग्रत् शरीर मृतक में नाश होजाता है; मृतक जन्ममें असत् होजाता है और मृतकमें जन्मअसत् होजाता है। हे लीले! जब इसप्रकार इनको विचारकर देखिये तो सब अवस्था भ्रांतिमात्र हैं; वास्तव में कोई सत्य नहीं। हे लीले! सर्गसे आदि महाप्रलय पर्य्यन्त कुछनहीं हुआ। सदा ज्योंकी त्यों ब्रह्म सत्ता अपने आपमें स्थित है; जगत् कल्पना आभासमात्र है और अज्ञानसे भासता है जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भ्रम से भासता है और वास्तव में कुछभी नहीं है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजकर लीन होते हैं तैसेही आत्मामें जगत् उपजकर लीनहोते हैं। इससे 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द भ्रांतिमात्र हैं। हे लीले! यह जगत् मृगतृष्णा के जलवत् है। इसमें आस्थाकरनी अज्ञानता है और भ्रान्तिभी कुछनहीं। जैसे घनतममें यक्ष भासताहै पर वह यक्ष कोईवस्तु नहीं है; ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्योंहै; तैसेही भ्रांति भी कुछवस्तु नहीं। जन्म मृत्यु और मोह सब असत्रूप हैं। 'अहं' 'त्वं' आदिक जितने शब्द हैं उनका महाप्रलयमें अभावहोजाता है; उसके पीछे जो शुद्ध शान्तरूप है अबभी वहीजान कि, ज्यों की त्यों ब्रह्मसत्ता है। हे लीले! यह जो पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं सो भी संवित्रूप हैं क्योंकि; जब चित्त संवित् स्पन्दरूप होता है तब यह जगत् होके भासता है और इसी कारण सं-

वितरूप है । हे लीले ! जीवरूपी समुद्र में जगत्‌रूप तरङ्ग उत्पन्न होते हैं और लीनभी होते हैं पर वास्तव में जलरूप हैं; और कुछनहीं । जैसे अग्नि में उष्णता होती है तैसेही जीवमें सर्ग है । जो ज्ञानवान्‌है उसको सर्वात्मा भासताहै और अज्ञानी को भिन्न भिन्न कल्पना होती है । हे लीले! जैसे सूर्य्यकी किरणों में त्रसरेणु भासते हैं पवनमें स्पन्दहोता है और उसमें सुगन्धहोती है सो सब निराकारहैं; तैसेही जगत् भी आत्मामें निर्वपुहै । भाव-अभाव; ग्रहण-त्याग; सूक्ष्म-स्थूल; चर-अचर इत्यादिक सब ब्रह्मके अवयव हैं । हे लीले ! यह जगत् जो साकाररूप भासताहै सो आत्मासे भिन्न नहीं । जैसे वृक्षके अङ्गपत्र, फल, टासरूप हो भासते हैं; तैसेही ब्रह्मसत्ताही जगत्‌रूप होकर भासती है और कुछ नहीं । जैसे चेतन संवित् में जैसा स्पन्द फुरताहै तैसेही होकर भासता है पर वह आकाशरूप संवित् ज्यों की त्यों है उसमें और कल्पना भ्रम मात्र है । हे लीले ! यह तो जगत् भासता है वह न सत्‌है और न असत् है । जैसे रस्सीमें भ्रमसेसर्प भासताहै तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै । जिसको असम्यक्‌ज्ञान होताहै उसको रस्सीमें सर्प भासता है तो वह असत् न हुआ और जिसको सम्यक् बोध होता है उसको सर्प सत् नहीं । ऐसेही अज्ञान से जगत् असत् नहीं भासता और आत्मज्ञानहुये सत् नहीं भासता क्योंकि; कुछ वस्तुनहीं है । हे लीले ! जैसे जिस के अन्तःकर्ण में स्पन्द फुरता है उसका वह अनुभव करता है । जब यह जीव मृतक होता है तब इसको एकक्षण में जगत् फुरआता है किसीको अपूर्वरूप फुरआता है; किसीको पूर्वरूप फुरआता है और किसीको पूर्वअपूर्व मिश्रित फुरआता है । इस कारण तेरे भर्त्ताको भी वही मन्त्री, स्त्री और सभा वासना के अनुसार फुरआये हैं क्योंकि; आत्मा सर्वत्ररूप है; जैसा जैसा इसमें तीव्र स्पन्द फुरता है तैसाही होकर भासता है । हे लीले ! जैसे अपने मनोराज में जो प्रतिभा उदय हो आती है वह सत्‌रूप हो भासती है; तैसेही यह जो लीला तेरे सन्मुख बैठी है सो यहीहुई है और तेरे भर्त्ताकी जो तेरे में तीव्रवासना थी इस से उसको तेरा प्रतिविम्ब रूप होकर यह लीलाप्राप्तहुई और तेरासा शील, आचार, कुल, बपु इसको प्रतिबिम्बित हुआ है । हे लीले ! सर्वगत संवित् आकाश है । जैसाजैसा उसमें फुरना होता है तैसाही २ चिद्रूप आदर्श में प्रतिविम्ब भासता है । इस सब जगत् का चेतन दर्पणमें प्रतिबिम्ब होता है; वास्तव में तू और मैं, जगत, आकाश, भवन, पृथ्वी, राजाआदिक सब आत्म रूप हैं । आत्माही जगत्‌रूपहो भासता है । जैसे बिल्ली से मज्जा भिन्न नहीं तैसेही यह जगत् ब्रह्मस्वरूपहै ॥

इति श्रीयोगवा०उत्पत्तिप्रकरणेलीलोपा०अग्निदाहवर्णनंनामद्वात्रिंशस्सर्गः ३२ ॥

देवी बोली, हे लीले ! तेराभर्त्ता राजाविदूरथ रण में संग्रामकरके शरीर त्यागेगा

और उसी अन्तःपुरमें प्राप्तहोकर राज्यकरेगा। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार देवीने कहा तब विदूरथ के पुरवाली लीला ने हाथ जोड़ के देवी को प्रणाम किया और कहा; हे देवि! भगवति! मैंने ज्ञप्तिरूपका नित्य पूजन किया और उसने स्वप्नमें मुझको दर्शन दिया। जैसे वह ईश्वरीथी तैसेही तुमभी मुझको दृष्टि आती हो। इससे मुझपर कृपाकरके मनवाञ्छित फल दो! तब देवी अपने भक्त पर प्रसन्न होकर बोलीं; हे लीले! तू ने अनन्य होकर मेरी भक्तिकी है और उससे तेरा शरीर भी जीर्णहोगया है; अब मैं तुझपर प्रसन्नहूं जो कुछ तुझको वाञ्छितहो वह बरमांग! लीला बोली; हे भगवति! जब मेराभर्त्ता रणमें देह त्याग दे तो मैं इसी शरीरसे उसकी भार्याहोऊं! देवीबोली तूने भावनासहित भली प्रकार पुण्यादिकों से निर्विघ्न मेरी सेवा की है इससे ऐसाही होगा। तब पूर्व लीलाने, कहा हे देवि! तुम तो सत्यसङ्कल्प, सत्यकाम और ब्रह्मस्वरूप हो, मुझको उसी शरीर से तुम विदूरथ के गृह में वशिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टि में मुझे क्यों न लेगई? देवी बोली, हे लीले! मैं किसी का कुछ नहीं करती। सब जीवों के सङ्कल्पमात्र देह हैं और मैं ज्ञप्तिरूपहूं। एक एक जीवके अन्तर चेतनमात्र देवता होकर मैं स्थित हूं; जो जो जीव जैसी जैसी भावना करता है तैसीही तैसी उसको सिद्धता होती है। हे लीले! जब तूने मेरा आराधन कियाथा तब तूने यह प्रार्थना कीथी कि, मेरे भर्त्ताका जीव इसी आकाश मण्डपमेंरहे और मुझको ज्ञानकी भी प्राप्तिहो। उसी के अनुसार मैंने तुझको ज्ञान का उपदेशदिया और तुझको ज्ञानप्राप्त भया। इसी निमित्त तूने पूजनकिया था इससे तुझको यही प्राप्तहुआ है कि, देहसहित भर्त्ता के साथ जावेगी। जैसा जैसा चित्त संवित् में स्पन्द दृढ़होता है तैसीही तैसी सिद्धता होती है। हे लीले! जो तप करते हैं उनकी दृढ़ता से चिदात्माही देवतारूप होके फलको देते हैं। जैसे जैसे सङ्कल्पकी तीव्रता किसीको होती है चैतनसंवित् से उसको वैसाही फल होता है। चित्तसंवित् से भिन्न किसीसे किसीको कदाचित् कुछ फलनहीं प्राप्तहोता। आत्मा सर्वगत और सर्व के अन्तःकर्ण में स्थित है। जैसे उसमें चैत्यताका यत्नहोता है उसको वैसाही शुभाशुभ भाव प्राप्तहोता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसत्यकामसङ्कल्पवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशस्सर्गः ३३॥

रामजीबोले, हे भगवन्! राजा विदूरथ जब देवीसे कहकर संग्राममेंगया तो उसने वहां क्याकिया? वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! जब राजा गृहसे निकला तो तारों में चन्द्रमाके सदृश सम्पूर्ण सेनासे सुशोभितहुआ और रथपर आरूढ़होकर सभासहित संग्राम में आया। वह रथ मोती और माणिकों से पूर्ण था और उसमें आठ घोड़े लगे थे जो वायुसे भी तीक्ष्ण चलते थे और उसमें पांचध्वजाथीं। उस रथपर आरू

ढ़हो राजा इसभांति संग्राम में आया जैसे सुमेरु पर्वत पङ्खोंसे समुद्र में जापड़े । तब जैसे प्रलयकाल में समुद्र इकट्ठे होजातेहैं वैसेही दोनों सेना इकट्ठी होगई और बड़ा युद्ध होनेलगा और मेघोंकी नाईं योधों के शब्द होनेलगे । जैसे मेघसे बूंदोंकी वर्षा होती है और अग्निसे चिनगारियां निकलती हैं तैसेही शस्त्रों की वर्षा होनेलगी । जैसे प्रलयकालकी बड़वानल अग्निहोती है तैसेही शस्त्रोंसे अग्नि निकलती थी और उन शस्त्रोंसे अनेक जीवमरे । इस प्रकार जब बड़ा युद्ध होनेलगा तब विदूरथकी सेना कुछ निर्बलहुई और ऊर्ध्व में जो दोनों लीलादेवीकी दिव्य दृष्टिसे देखती थीं उन्होंने कहा; हे देवि ! तुमतो सर्व शक्तिमान् हो और हमारे पर तुम्हारी दयाभी है हमारे भर्त्ताकी जय क्यों नहीं होती इसका कारण कहो ? देवी बोली; हे लीले ! विदूरथ के शत्रु राजा सिद्ध ने जयके निमित्त चिरकाल पर्य्यंत मेरी पूजा की है और तुम्हारे भर्त्ता ने जयके निमित्त पूजा नहीं की मोक्षके निमित्त की है इससे जीत सिद्ध राजा की होगी और तेरे भर्त्ता को मोक्षकी प्राप्ति होगी । हे लीले ! जिसजिस निमित्त कोई हमारी सेवा करताहै हम उसको वैसाही फल देती हैं । इससे राजासिद्ध विदूरथको जीतकर राज्यकरेगा । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! फिर सेनाको सब देखनेलगीं और दोनों राजोंका परस्पर तीव्रयुद्ध होनेलगा दोनों राजोंने ऐसे बाण चलाये मानों दोनों विष्णु हो खड़े हैं । विदूरथ ने एक बाण चलाया उसके सहस्र होगये और उसके आगे जाकर लाखहोगये और परस्पर युद्ध करते २ टुकड़े टुकड़े होके गिरपड़े । ऐसे दूरसे दूर बाण चलेजाते थे कि, जैसे निर्वाण किया दीपक नहीं भासता । तब राजा सिद्धने मोह रूपी अस्त्र चलाया और उसके आनेसे विदूरथ के सिवा सब सेना मोहित हुई । जैसे उन्मत्तता से कुछ सुधि नहीं रहती तैसेही उनको कुछ सुधि न रही और परस्पर देखतेही रहगये मानों चित्र लिखे हैं । तब राजा विदूरथ को भी मोह का आवेश होने लगा तो उसने प्रबोध रूपी शस्त्र चलाया उस से सब का मोह छूटगया और जैसे सूर्य्य के उदय हुये सूर्य्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं तैसेही सब के हृदय प्रफुल्लित होगये । तब सिद्ध राजा ने नागास्त्र बाण चलाया उससे अनेक ऐसे नागनिकल आये मानों पर्वत उड़े आते हैं । निदान सबदिशा नागोंसे पूर्ण होगईं और उनके मुखसे विष और अग्नि की ज्वाला निकली जिससे विदूरथ की सेना ने बहुत कष्टपाया तब राजा विदूरथ ने गरुड़ास्त्र चलाया उससे अनेक गरुड़ प्रकट हुये और जैसे सूर्य्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही सर्प्प नष्टहुये और नागोंको नष्टकरके गरुड़भी अन्तर्द्धान होगये । जैसे सङ्कल्प के त्यागे से सङ्कल्प सृष्टि का अभाव हो जाताहै तैसेही गरुड़ अन्तर्द्धान होगये और जैसे स्वप्नसे जागेहुये को स्वप्न नगर का अभाव होजाता है तैसेही गरुड़ों का अभाव होगया फिर जब कोई बाण सिद्ध

चलावे तो विदूरथ उसको नष्टकरे-जैसे सूर्य्य तमको नाशकरे और उसने बड़ी बाणोंकी वर्षाकी उससे सिद्धभी क्षोभको प्राप्त हुआ। तब पिछली लीलाने झरोखे से देखके देवीजी से कहा; हे देवि! अब मेरे भर्त्ताकी जय होतीहै। देवी सुनके मुसकराई पर मुखसे कुछ न कह हृदय में विचारा कि, जीवका चित्त बहुत चंचलहै। ऐसे देखतेहीथे कि सूर्य्य उदय हुये-मानों सूर्य्य भी युद्ध का कौतुक देखने आये हैं-और सिद्धने तमरूप अस्त्र चलाया जिससे सर्व दिशा श्याम होगई और कुछभी न भासित होताथा-मानों काजलकी समष्टिता इकट्ठीहुई है। तब विदूरथने सूर्य्यसा प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया जिससे सर्वतम नष्ट होगया। जैसे शरत्काल में सब घटा नाश होजाती हैं केवल शुद्ध आकाशही रहताहै; जैसे आत्मज्ञानसे लोभादिक का ज्ञानी को अभाव होजाता और जैसे लोभ रूपी कज्जल के निवृत्तहुये ज्ञानवान्की बुद्धि निर्मल होती है तैसे प्रकाश से तमनष्ट होगया और सर्व दिशा निर्मल हुईं। जैसे अगस्त्यमुनि समुद्रको पानकरगये थे तैसेही प्रकाश तमका पानकरगया। तब सिद्धने बैताल रूपी अस्त्र चलाया जिससे विदूरथकी सेना मोहितहोगई और उसमें से महाविकराल और परछाहीं समान मूर्ति धारण किये ऐसे श्यामरूप बैताल भासने लगे; जो ग्रहण न किये जावैं और जीवके भीतर प्रवेश करजावैं और जिनके रहने का स्थान शून्य मन्दिर, कीचड़ और पर्वत हैं शस्त्र से निकलकर विदूरथ की सेनाको दुःख देनेलगे। (पिशाच वह होते हैं जिनकी शास्त्रोक्त क्रिया नहीं होती और जो मरके भूत, पिशाच और बैताल होते हैं और राग, द्वेष, तृष्णा और भूखसे जलते रहते हैं।) उनका कोई बड़ा सरदार विदूरथ के निकट आनेलगा तब विदूरथ ने रूपका नामक अस्त्र चलाया और उससे महाभयानकरूप बड़ेनख, केश, जिह्वा उदर और होठ सहित नग्नरूप भैरव प्रकट होकर बैतालों को भोजन करने और खप्पर में रक्त भरकरपीने और नृत्य करनेलगे और सबों को दुःख देनेलगे। तब सिद्धने क्रोध करके राक्षसरूपी अस्त्रचलाया जिससे एक कोटि भयानक रूप और काले राक्षस पाताल और दिशाओं से निकले जिनकी जिह्वा निकली हुई और ऐसा चमत्कार करतेथे जैसे श्याम मेघ में बिजली चमत्कार करती है। वे जिसको देखैं उसको मुख में डालके लेजावैं और उनको देखके विदूरथ की सेना बहुत डरगई क्योंकि, जिसके सन्मुख वे हँसके देखैं वह भयसे मरजावे। तब राजा विदूरथने अपनी सेना को कष्टवान् देख विष्णु अस्त्र चलाया जिससे सब राक्षस नष्ट होगये। फिर राजा सिद्धने अग्निनामक अस्त्रचलाया जिससे सम्पूर्ण दिशाओं में अग्नि फैलगई और लोग जलने लगे; तब राजा विदूरथने वरुणरूपी बाणचलाया जिससे, जैसे सन्तों के सङ्गसे अज्ञानी के तीनों ताप मिटजाते हैं तैसेही अग्निका ताप मिटगया। जलसे सब स्थान पूर्ण होगये और सिद्ध की बहुत सेना जल में बह गई।

तब सिद्धने शोषणमय अस्त्रचलाया जिससे सब जल सूखगया पर कहीं २ कीचड़रह- गई इससे उसने फिर तेजोमय बाण चलाया जिससे कीचड़भी सूखगई और विदूरथ की सेना गरमीसे व्याकुलहोकर ऐसी तपनेलगी जैसे मूर्खका हृदय क्रोधसे जलता है। तब विदूरथ ने मेघनामक अस्त्रचलाया जिससे मेघ वर्षनेलगे और शीतल मन्दमन्द वायुचलने लगा। जैसे आत्माकी ओर आये जीवका संसरना घटता जाता है तैसेही विदूरथ की सेना शीतल हुई। फिर सिद्धने वायुरूपी अस्त्रचलाया जिससे सूखेपत्रकी नाई विदूरथ फिरने लगा। तब विदूरथने पहाड़रूपी अस्त्रचलाया जिस से पहाड़ों की वर्षाहोनेलगी और वायु का मार्ग रुकगया और वायुके क्षोभ मिट जाने से सब पदार्थ स्थिरभूत होगये। जैसे संवेदन से रहित चित्तशान्त होता है तैसेही सब शान्तहोगये। जब पहाड़ उड़ २ के सिद्धकी सेनापर पड़े तब सिद्धने वज्ररूप अस्त्र चलाया जिससे पर्वतनष्ट हुये। जब इसप्रकार वज्र वर्षे तब विदूरथने ब्रह्मअस्त्रचलाया जिससे वज्र नष्टहुये और ब्रह्मअस्त्र अन्तर्द्धान होगये। हे रामजी! इसप्रकार परस्पर इनका युद्ध होताथा जो अस्त्र सिद्ध चलावे उसको विदूरथ विदारणकरे और जो विदूरथ चलावे उसको सिद्ध विदारण करडाले। निदान विदूरथ राजाने एक ऐसा अस्त्रचलाया कि राजासिद्धका रथ चूर्ण होगया और घोड़ेभी सब चौपट कर डाले। तब सिद्ध राजा ने रथसे उतर ऐसा अस्त्र चलाया कि, विदूरथका रथ और घोड़े नष्टहुये और दोनों ढाल और तलवार लेकर युद्धकरने लगे। फिर दोनों के रथवाहक और रथ लेआये उसके ऊपर दोनों आरूढ़ होकर युद्धकरने लगे। विदूरथ ने सिद्ध पर एक बरछी च- लाई जो उसके हृदय में लगी और रुधिर चला। तब उसको देख लीलाने देवी से कहा; हे देवि! मेरे भर्त्ताकी जयहुई है। हे रामजी! इसप्रकार लीला कहतीहीथी कि सिद्धने बरछी चलाई सो विदूरथ के हृदयमें लगी और उसको देखके विदूरथ की लीला शोकवान् होकर कहने लगी; हे देवि! मेराभर्त्ता मरताहै; सिद्धदुष्टने बड़ा कष्ट दियाहै। हे रामजी! फिर सिद्धने एक ऐसा खड्ग चलाया कि जिससे विदूरथ के पांव कटगये और घोड़ेभी काटेगये पर तौभी विदूरथ युद्धकरता रहा। फिर सिद्धने विदूरथ के शिरपर खड्गका प्रहार किया तो वह मूर्च्छाखाके गिरपड़ा। ऐसे देखके उसके सा- रथी रथको गृहमें लेआनेलगे तो सिद्ध उसके पीछे दौड़ा कि, शीश मैं इसका लेआऊं परन्तु पकड़ न सका। जैसे अग्नि में मच्छर प्रवेश नहीं कर सकता तैसेही देवी के प्रभाव से विदूरथ को वह न पकड़ सका॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविदूरथमरणवर्णनंचतुस्त्रिंशस्सर्गः॥ ३४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब सारथी राजा को गृहमें लेआया तो स्त्रियां, मंत्री बांधव और कुटुम्बी रुदन करनेलगे और बड़े शब्द होनेलगे। सिद्धकी सेना लूटने

लगी और हाथी, घोड़े, स्वामीविना फिरतेथे फिर ढिंढोरा फिरायागया कि, राजासिद्ध की जय है। निदान सर्वओर से शान्तिहुई सिद्धराजा के ऊपर छत्र होनेलगा और सब पृथ्वीका राजा वही हुआ। जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल निकल के शान्तहुआ तैसेही सर्वओर शान्तिहुई। हे रामजी! जब राजा विदूरथ गृहमें आया तब उसकी और दूसरी लीलाको देखके प्रबुधलीला कहनेलगी; हे देवि! यह लीला इस शरीर से वहां क्योंकर जा प्राप्तहोगी? यह तो भर्त्ताको ऐसे देखके मृतकरूप होगई है और राजा भी मृत्यु के निकट पड़ाहै केवल कुछश्वास आते जाते हैं। देवी बोली, हे लीले! यह जितने आरम्भ तू देखती है कि, युद्धहुआ और नानाप्रकार का जगत् है सो सब भ्रान्तिमात्र है और तेरा भर्त्ता जो पद्मथा उसका हृदय जो मण्डपाकाश में था वहीं यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है। पद्मका मण्डपाकाश वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थितहै और वशिष्ठ ब्राह्मणका मण्डपाकाश चिदाकाश के आश्रय स्थितहै। हे लीले! यह सम्पूर्ण जगत् वशिष्ठ ब्राह्मणके मण्डपाकाश की पुर्य्यष्टक में स्थित है सो आकाशमेंही आकाश स्थित है। किञ्चन है इससे सम्पूर्ण जगत् फुरता है पर वास्तव में किञ्चन भी कुछवस्तुनहीं आत्मसत्ताही अपने आप में स्थित है। उस आत्मसत्ता में 'अहं, 'त्वं, जगत् भ्रमसे भासता है; कुछ उपजा नहीं। हे लीले! उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में नानाप्रकार के स्थान हैं और उन में प्राणी आते जाते और नाना व्यवहार करते भासते हैं। जैसे स्वप्न सृष्टि में नानाप्रकारके आरम्भ भासते हैं सो असत्रूपहैं तैसेही यह जगत् भी असत्रूप है। हे लीले! न यह द्रष्टा है और न आगेदृश्य है; सब भ्रमरूप हैं। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य त्रिपुटी पदार्थों में है। जो दृश्यनहीं तो द्रष्टा कैसेहो? सब असत्रूप है। इनसे रहित जो परमपद है वह उदय-अस्त से रहित, नित्य, अज, शुद्ध अविनाशी और अद्वैतरूप अपने आप में स्थित है। जब उसको जानता है तब दृश्यभ्रम नष्ट होजाता है। हे लीले! दृश्य भ्रमसे भासता है। वास्तव में न कुछ उपजा है और न उपजेगा। जितने सुमेरु आदिक पर्वत जाल और पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं जैसे स्वप्न सृष्टि प्रत्यक्ष भासती है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं तैसेही इस जगत् को भी जानो। हे लीले! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि है परन्तु उसमें सार कुछ नहीं। जैसे केलेके थम्भे में सार कुछनहीं निकलता तैसेही इस सृष्टि में विचार कियेसे सार कुछनहीं निकलता-चित्तसंवेदन के फुरनेसे भासती है। हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्मकी जो सृष्टि है सो वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है अर्थात् विदूरथ का जगत् पद्मके हृदय में स्थित है वहां तेरा शरीर पड़ा है और राजा पद्मकाभी शवपड़ाहै। हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्मकी सृष्टि हमको प्रादेशमात्र है। उस प्रादेशमात्र में अंगुष्ठ

प्रमाण हृदय कमलहै; उसमें तेरे भर्त्ताका जीवाकाश है और उसी में यह जगत् फुरता है सो प्रादेशमात्रभी है और दूरसेदूर कोटि योजनों पर्य्यन्त है । मार्गमें वज्रसारकी नाईं तत्त्वोंका आवरण है उसको लाँघ के तेरेभर्त्ता की सृष्टि है। जहां वह शव पड़ा है उसकेपास यह लीला जाय प्राप्तहुई है । लीलाने पूछा; हे देवि । ऐसे मार्गको लाँघके वह क्षणमें कैसे प्राप्तहुई और जिस शरीर से जानाथा वह शरीर तो यहांहीं पड़ा है वह किसरूप से वहांगई और वहांके लोगोंने उसको देखके कैसे जाना है सो संक्षेप मात्रसे कहो ? देवीबोलीं; हे लीले ! इस लीलाके वृत्तान्तकी महिमा ऐसी है जिस के धरेसे यह जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। उसे मैं संक्षेपमात्र से कहतीहूं । हे लीले ! जो कुछ जगत् भासताहै वह सब भ्रममात्र है । यह भ्रमरूप जगत् पद्मके हृदय में फुरता है । उसमें विदूरथका जन्मभी भ्रममात्र है; लीलाका प्राप्तहोना भी भ्रमहै; संग्रामभी भ्रमरूपहै; विदूरथका मरनाभी भ्रमरूपहै और उसके भ्रमरूप जगत् में तुम हम बैठे हैं। लीला तूभी और राजाभी भ्रमरूप है और मैं सर्वात्माहूं-मुझको सदा यही निश्चय रहताहै । हे लीले ! जब तेराभर्त्ता मृतक होनेलगाथा तब तुझसे उसका स्नेह बहुत था इसलिये तू महासुन्दरभूषण पहिने हुये वासनाके अनुसार उसको प्राप्तहुई । हे लीले ! जब जीव मृतकहोताहै तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीर होता है; फिर वासना से आधिभौतिक होताहै । उसी के अनुसार तेराभर्त्ता जबमृतक हुआ तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीर था; उससे आधिभौतिक होगया और जब आधिभौतिकहुआ तब प्रथम उसको जन्मभीहुआ और मरणभी हुआ। जब तेराभर्त्ता मृतक हुआ तब उसको अपनाजन्म और कुल लीलाकाजन्म, माता, पिता और लीलाकेसाथ विवाहभासआये । जैसे तू पद्मको भासीआई थी तैसेही वह सब विदूरथकोभासआये । हे लीले ! ब्रह्म सर्वात्मा है; जैसा जैसा उसमें तीव्र स्पन्द होताहै तैसेही सिद्धहोताहै । मैं ज्ञप्तिरूप चेतन शक्तिहूं मुझको जैसी इच्छाधरके लोग पूजते हैं तैसेही फलकी प्राप्तिहोती है । हे लीले ! जैसी जैसी इच्छाधरके कोई हमको पूजताहै उसको वैसेही सिद्धता प्राप्तहोती है। लीलाने जो मुझसे बरमांगाथा कि, 'मैं बिधवा न होऊं और इसी शरीरसे भर्त्ता के निकट जाऊं, और मैंने कहा था कि, ऐसेही होगा इसलिये मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर उसको अपना शरीर भासआया और अपने शरीर सहित जहां तेरे भर्त्ता पद्मका शव पड़ा था वहां मण्डप में वैसेही शरीरसे उसके निकट तू भी जा प्राप्तहुई है, हे लीले ! उसको यह निश्चय रहा कि, मैं उसी शरीरसे आई हूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेमृत्युमूर्च्छानन्तरप्रतिमावर्णनं नामपंचत्रिंशतितमस्सर्गः ॥ ३५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिस प्रकार वह लीला पद्मराजा के मण्डपमें जा प्राप्त

हुई है वह सुनिये। जब वह लीला मृतक मूर्च्छाको प्राप्तहुई तो उसके अनन्तर उस को पूर्व के शरीरकीनाईं वासनाके अनुसार अपना शरीर भासआया और उसने जाना कि, मैं देवीका वरपाके उसही शरीरसे आईहूं। वह अन्तवाहक शरीर से आकाशमें पक्षीकीनाईं उड़ती जाती थी तब उसको अपने आगे एक कन्या दृष्टिआई उससे लीलाने कहा; हे देवि! तू कौन है? देवी ने कहा मैं ज्ञप्तिदेवीकी पुत्रीहूं और तुझे पहुँचाने के लिये आई हूं। लीला ने कहा; हे देवीजी! मुझे मेरे भर्त्ता के पास लेचलो। हे रामजी! तब वह कन्या आगे और लीला पीछे हो दोनों आकाश में उड़ीं और चिरकालपर्यंत आकाश में उड़ती गईं। पहिले मेघों के स्थान मिले; फिर वायुके स्थान मिले; फिर सूर्य्य का मण्डल और तारामण्डल मिला; फिर और लोकपालों के स्थान; ब्रह्मा विष्णु और रुद्रके लोकआये। इन सबको लाँघ महा वज्रसारकी नाईं ब्रह्माण्ड कपाट आया उसको भी लाँघ गईं। जैसे कुम्भ में बरफ़ डालिये तो उसकी शीतलता बाहर प्रकट होती है तैसेही वह ब्रह्माण्ड से बाह्य निकलगईं। उस ब्रह्माण्ड से दशगुणा जल तत्त्व आया; इसीप्रकार वह अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व आवरणको भी लाँघगईं। उस के आगे महाचैतन्य आकाश आया उसका अन्त कहीं नहीं—वह आदि, अन्त और मध्यसे रहितहै। हे रामजी! जो कोटि कल्प पर्यन्त गरुड़ उड़ते जावें तो भी उस का अन्त न पावें; ऐसे परमाकाश में वह गईं और वहां इनको कोटि ब्रह्माण्ड दृष्टि आये। जैसे बनमें अनेक वृक्षों के फल होते हैं और परस्पर नहीं जानते तैसेही वह सृष्टि आपको न जानती थी फिर एक ब्रह्माण्डरूपी फल में दोनों प्रवेशकरगईं जैसे फलको मुखमार्ग में प्रवेश करजाती हैं। उसमें फिर उन्हों ने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित त्रिलोकी देखी उनके भी लोक लाँघगईं और उनके नीचे और लोकपालों के स्थान लाँघे। फिर वे चन्द्रमा, तारा, वायु और मेघ मण्डलों को लाँघके उतरीं और राजा के नगर और उस मण्डपाकाश में जहां पद्मराजा का शव फूलों से ढँपा पड़ा था प्रवेश करगईं। इसके अनन्तर वह कुमारी इस भांति अन्तर्द्धान होगई जैसे कोई मायावी पदार्थ हो और अन्तर्द्धान होजावे। लीला पद्मके पास बैठगई और मन में विचार ने लगी कि, यह मेरा भर्त्ता है। वहां इसने संग्राम किया था, अब शूरमाकी गतिको प्राप्त भयाहै और इस परलोक में आयके सोयाहै। उसके पास मैंभी अपने शरीरसे देवीजीके बरसे आनप्राप्त हुईहूं। मेरे ऐसा अब कोई नहीं और मैं बड़े आनन्दको प्राप्त हुईहूं। हे रामजी! ऐसे विचारके पास एक चमर पड़ाथा उसको हाथमें लेके भर्त्ता के हिलानेलगी। जैसे चन्द्रमा किरणों सहित शोभापाताहै तैसेही उसके उठाने से वह चमर शोभा पानेलगा। देवी से लीला ने पूछा; हे देवि! यह राजा तो अब मृतक होता है। इसके श्वास अब थोड़े से रहे हैं जब यहांसे मृतक होके पद्मके शरीरमें जावेगा

तब राजाके जागेहुये मंत्री और नौकर कैसे जानेंगे? देवी बोली; हे लीले! तब मंत्री और नौकर जो होवेंगे उनको द्वैतकलना कुछ न भासेगी कि, यह क्या आश्चर्य हुआहै। इसवृत्तान्तको तू, मैं और पूर्व लीला जानेगी और कोई न जानेगा क्योंकि; इसके संकल्पको और कोई कैसे जाने? लीलाने फिर पूछा; हे देवि! पूर्व लीला जो वहां जाय प्राप्त हुईथी उसका शरीर तो यहां पड़ाहै और तुम्हारा उसको बरभीथा तो फिर इसदेहके साथ वह क्यों न प्राप्तहुई? देवी बोली; हे लीले! छायाभी कदाचित् धूप में गईहो और सच झूठभी कदाचित् इकट्ठा हुआहो, यह आदिनीति है। जैसे जैसे आदिनीति हुई है तैसेही होताहै—अन्यथा नहीं होता। हे लीले! जो परछाहीं में बैताल कल्पना मिटी तो परछाहीं और बैताल इकट्ठे नहीं होते तैसेही भ्रमरूप जगत्का शरीर उस जगत् में नहींजाता और दूसरेके सङ्कल्पमें दूसरा अपने शरीर से नहीं जासक्ता क्योंकि; वह और शरीरहै और यह और शरीरहै; तैसेही राजाके जगत् दर्पण में लीलाके सङ्कल्पका शरीर नहीं प्राप्तहुआ मेरे बरसे तब उसदेहसे प्राप्त होई कि, जब उसको मृत्यु मूर्च्छा प्राप्तभई तब उसको उसकासाही अपना शरीरभी भास आया। उसका शरीर सङ्कल्पमें स्थित था सो अपना सङ्कल्प वह साथलेगई है इससे अपने उसी शरीरसे वह गई है उसने आपको ऐसे जाना कि मैं वही लीलाहूं। हे लीले! आत्मसत्ता सर्व्वात्मरूप है। जैसी जैसी भावना उसमें दृढ़होती है वैसाही वैसारूप होजाता है। जिसको यह निश्चय हुआहै कि, मैं पञ्चभौतिकरूपहूं उसको ऐसेही दृढ़होताहै कि, मैं उड़नहींसक्ता। हे लीले! यह लीला तो अविदितवेद न थी अर्थात् अज्ञानसहित थी और उसका आधिभौतिक भ्रमनहीं निवृत्तहुआथा परन्तु मेरा बर था इसकारणसे उसको मृत्यु मूर्च्छाके अनन्तर भासआया कि, मैं देवीके बरसे चलीजाऊंगी। इसवासनाकी दृढ़तासे वह प्राप्तहुईहै। हे लीले! यहजगत् भ्रांतिमात्रहै। जैसे भ्रमसे जेवरी में सर्प्प भासताहै तैसेही आत्मामें भी भ्रमसे जगत् भासता है। सब जगत् आत्मामें आभासरूपहै। सर्व्वका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपनेही अज्ञान से दूरभासता है। हे लीले! ज्ञानवान् पुरुष सदाशान्तरूप और आत्मानन्दसे तृप्तरहते हैं पर अज्ञानी शान्ति कैसे पावें? जैसे जिसको तप चढ़ा होताहै उसका अन्तःकरण जलता है और तृषाभी बहुत लगती है; तैसेही जिसको अज्ञानरूपी तप चढ़ाहुआ है उसका अन्तरराग द्वेषसे जलता है और विषयोंकी तृष्णारूपी तृषाभी बहुत होती है। जिसका अज्ञानरूपी तमनष्टहुआ है उसका अन्तरराग द्वेषादिक से नहीं जलता और उसकी विषय की तृष्णारूपी तृष्णाभी नष्टहुई है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेमण्डपाकाशगमन वर्णनन्नामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३६॥

देवीबोली; हे लीले! जो पुरुष अविदितवेद है अर्थात् जिसने जानने योग्य पद नहीं जाना वह बड़ा पुण्यवान् भी हो तो भी उसको अन्तवाहकता नहीं प्राप्त होती। अन्तवाहक शरीरभी झूठ है क्योंकि; सङ्कल्परूप है। इससे जितना जगत् तुझको भासता है वह कुछ उपजानहीं; शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आप में स्थित है। फिर लीलाने पूछा; हे देवि! जो यह सब जगत् सङ्कल्पमात्र है तो भाव और अभावरूप पदार्थ कैसे होते हैं? अग्नि उष्णरूप है; पृथ्वी स्थिररूप है; बरफ शीतलहै; आकाशकी सत्ता है; कालकी सत्ताहै; कोई स्थूल है; कोई सूक्ष्म पदार्थ है; ग्रहण, त्याग, जन्म, मरण होता है; और मृतकहुआ फिर जन्मता है इत्यादिक सत्ता कैसे भासती हैं? देवी बोली हे लीले! जब महाप्रलय होता है तब सर्व पदार्थ अभावको प्राप्त होते हैं और कालकी सत्ताभी नष्टहोजाती है। उसके पीछे अनन्त चिदाकाश; सब कलनाओं से रहित और बोधमात्र ब्रह्मसत्ताही रहती है। उस चेतनमात्रसत्ता से जब चित्संवित् चैत्यता होती है तब चेतन संवित् में आपको तेज अणु जानताहै। जैसे स्वप्ने में कोई आपको पक्षीरूप उड़ता देखे तैसेही देखताहै। उससे स्थूलता होती है; वही स्थूलता ब्रह्माण्डरूप होती है उस से तेज अणु आप को ब्रह्मारूप जानता है। फिर ब्रह्मारूप होकर जगत् को रचता है। जैसे जैसे ब्रह्मा चेतता जाता है तैसेही तैसे स्थिरतारूप होता जाता है। आदि रचनासे जैसा निश्चय धारण कियाहै कि 'यह ऐसे हो, और 'इतने काल रहे, उसका नाम नीति है। जैसे आदि रचना नियत की है वह ज्योंकी त्यों होती है; उसके निवारण करने को किसीकी सामर्थ्य नहीं वास्तवमें आदि ब्रह्माभी अकारणरूपहै अर्थात् कुछ उपजा नहीं तो जगत् का उपजना मैं कैसे कहूं? हे लीले! कोई स्वरूप नहीं उपजा परन्तु चेतन संवेदन के फुरने में जगत् आकारहोके भासता है। उस में जैसे निश्चय है तैसेही स्थित है। अग्नि उष्णही है; बर्फ शीतलही है और पृथ्वी स्थित रूपही है। जैसे उपजे हैं तैसेही स्थित हैं। हे लीले! जो चेतन है उसपर भी नीति है कि, वह उपदेशका अधिकारी है और जो जड़ है उसमें वही स्वभाव है। जो आदि चित् संवित् में आकाशका फुरना हुआ तो आकाशरूप होकरही स्थित हुआ। जब कालका स्पन्द फुरता है तब वही चेतन संवित् कालरूप होकर स्थित होता है; जब वायुकी चैतन्यता होती है तब वही संवित् वायुरूप होकर स्थित होता है। इसी प्रकार अग्नि, जल, पृथ्वी नानारूप होकर स्थित हुये हैं। स्थूल, सूक्ष्मरूप होकर चेतन संवित्ही स्थित होरहाहै। जैसे स्वप्न में चेतन संवित्ही पर्वत वृक्षरूप होकर स्थित होता है तैसेही चेतन संवित् जगत्रूप होकर भी स्थित हुआ है। हे लीले! जैसे आदिनीति में पदार्थों के संकल्परूप धरे हैं तैसेही स्थित हैं उसके नि-

धारण करने की किसी की सामर्थ्य नहीं क्योंकि; चेतनका तीव्र अभ्यास किया है। जब वही संवित् उलटाकर और प्रकार स्पन्दहो तब औरही प्रकार हो; अन्यथा नहीं होता। हे लीले! यह जगत् सत्नहीं। जैसे सङ्कल्पनगर भ्रम सिद्धहै और जैसे स्वप्नपुरुष और ध्याननगर असत्रूप होता है; तैसेही यह जगत् भी असत्रूप है और अज्ञानसे सत्की नाईं भासता है। जैसे स्वप्न सृष्टिके आदिमें सन्मात्र सत्ता होती है और उस सन्मात्रसत्ताका आभास किंचित् स्वप्नसृष्टि का कारण होता है; तैसेही यह जाग्रत जगत्के आदि सन्मात्रसत्ता होती है और उससे किंचन अकारण रूप यह जगत् होता है। हे लीले! यह जगत् वास्तव में कुछ उपजा नहीं; असत्ही सत्की नाईं होकर भासता है। जैसे स्वप्ने की अग्नि स्वप्ने में असत्ही सत् रूपहो भासती है; तैसेही अज्ञानसे यह असत् जगत् सत् भासता है और जन्म, मृत्यु और कर्मों का फल होताहै सो तू श्रवण कर। हे लीले! बड़ा और छोटा जो होता है सो देशकाल और द्रव्यहोता है। एक बाल्यावस्था में मृतक होते हैं और एक यौवन अवस्था में मृतक होते हैं जिसकी देशकाल और द्रव्यकी क्रिया चेष्टा यथाशास्त्र होती है उसकी क्रिया भी शास्त्र के अनुसार होती है और जो चेष्टा शास्त्र के विरुद्ध होती है तो आयुबल भी वैसीही होती है एक क्रिया ऐसी है जिससे आयु वृद्धि होती है और एक क्रियासे घटजाती है। इसी प्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयु के घटाने बढ़ाने वाली हैं उन्हों में जीवों के शरीर बड़ी सूक्ष्म अवस्था में सोये हैं। यह आदि नीति रची है। युगोंकी मर्य्यादा जैसे है तैसेही है। एक सौ दिव्य वर्ष कलियुग के; दोसौ दिव्य वर्ष द्वापरके; तीनसौ त्रेताके और चार सौ सतयुगके—यह दिव्य वर्ष हैं। लौकिक वर्षों के अनुसार चारलाख बत्तीस हजार वर्ष कलियुग है; आठलाख चौंसठ हजार वर्ष द्वापरयुग है; बारहलाख छानबे हजार वर्ष त्रेताहै और सत्रहलाख अट्ठाइसहजार वर्ष सतयुग है। इस प्रकार युगोंकी मर्य्यादा है जिन में जीव अपने कर्म्मों के फलसे आयु भोगते हैं। हे लीले! जो पाप करने वाले हैं वह मृतक होते हैं और उनको मृत्युकालमें भी बड़ा कष्ट होताहै। फिर लीलाने पूछा; हे देवि! मृतकहुये सुख और दुःख कैसे होते हैं और कैसे उन्हें भोगते हैं? देवी बोली, हे लीले! जीवकी तीनप्रकार की मृत्यु होती है एक मूर्ख की दूसरी धारणाभ्यासी की और तीसरी ज्ञानवान् की। उनका भिन्न भिन्न वृत्तान्त सुनो। हे लीले! जो धारणाभ्यासी हैं वह मूर्ख भी नहीं; और ज्ञानवान् भी नहीं; वह जिस इष्टदेवता की धारणा करते हैं शरीर को त्यागके उसही देवता के लोकको प्राप्तहोते हैं और जो ब्रह्माभ्यासी हैं पर उनको पूर्णदशा नहीं प्राप्तहुई उनका सुखसे शरीर छूटता है। जैसे सुषुप्तिहोजाती है तैसेही धारणाभ्यासी शरीर त्यागता है और फिर सुख भोगकर आत्मतत्त्व

को प्राप्तहोता है। ज्ञानवान् का शरीर भी सुख से छूटता है; उसको भी यत्न कुछ नहीं होता और उसज्ञानी के प्राण भी वहांहीं लीन होते हैं और यह विदेह मुक्त होता है। जब मूर्ख की मृत्यु होने लगती है तो उसे बड़ाकष्ट होता है। मूर्ख वही है जिसकी अज्ञानियों की संगति है; जो शास्त्रों के अनुसार नहीं विचरता और सदा विषयोंकी ओर धावता और पापाचार करता है। ऐसे पुरुष को शरीर त्यागने में बड़ा कष्ट होताहै। हे लीले! जब मनुष्य मृतक होने लगताहै तब पदार्थों से आवरण अर्थ बुद्धि जो सम्बन्धी थी उससे वियोग होने लगता है और कण्ठ रुकजाता है; नेत्र फटजाते हैं और शरीर की कान्ति ऐसी विरूप होजाती है जैसे कमलका फूल कटाहुआ कुम्हिलाजाता है। अङ्ग टूटने लगते हैं और प्राण नाड़ियों से निकलते हैं। जिन अङ्गों से तदात्म सम्बन्ध हुआथा और पदार्थों में बहुत स्नेह था उनसे वियोग होने लगता है इससे बड़ा कष्ट होता है। जैसे किसी को अग्निके कुण्डमें डालने से कष्टहोता है तैसेही उसको भी कष्टहोता है। सब पदार्थ भ्रमसे भासते हैं; पृथ्वी आकाशरूप और आकाश पृथ्वीरूप भासते हैं। निदान महाविपर्य्यय दशामें प्राप्त होताहै और चित्तकी चेतनता घटती जाती है। ज्यों ज्यों चित्तकी चेतनता घटती जाती है त्यों त्यों पदार्थ के ज्ञानसे अन्धा होजाता है। जैसे सायङ्काल में सूर्य्य अस्त होता है तो भ्रान्तिवान् नेत्र को दिशाका ज्ञान नहीं रहता तैसेही इसको पदार्थों का ज्ञान नहीं रहता और कष्टका अनुभव करता है। जैसे आकाशसे गिरता है और पाषाणमें पीसाजाता है, जैसे अन्धकूप में गिरताहै और कोल्हू में पेराजाता है जैसे रथसे गिरता है और गले में फाँसीडाल के खींचाजाता है; और जैसे वायुसे तरङ्गों में उछलता और बड़वाग्निमें जलताकष्टपाताहै; तैसेही मूर्ख मृत्युकालमें कष्टपाताहै। जब पुर्य्यष्टकका वियोगहोताहै तब मूर्च्छा से जड़सा होजाताहै और शरीर अखण्डित पड़ारहताहै। लीला ने पूछा; हे देवि! जब जीव मृतकहोनेलगताहै तब इसको मूर्च्छा कैसेहोती है? शरीरतो अखण्डित पड़ारहता है कष्टकैसे पाताहै? देवी बोली; हे लीले! जो कुछजीवने अहङ्कारभावको लेकर कर्मकिये हैं वे सब इकट्ठे होतेजाते हैं और समय पाके प्रकट होते हैं जैसे बोया बीज समय पाके फलदेताहै तैसेही उसको कर्म वासना सहित फल आन प्रकटहोताहै। जब इस प्रकार शरीर छूटने लगता है तब शरीर को तादात्म्यता और पदार्थों के स्नेहके वियोगसे इसको कष्टहोता है। प्राण अपानकी जो कलाहै और जिसके आश्रय शरीर होताहै सो टूटने लगताहै। जिन स्थानोंमें प्राण फुरतेथे उन स्थानों और नाड़ियों से निकल जाते हैं और जिन स्थानों से निकलते हैं वहां फिर प्रवेश नहीं करते। जब नाड़ियां जर्जरीभूत होजाती हैं और सब स्थानों को प्राण त्यागजाते हैं तब यह पुर्य्यष्टक शरीर को त्याग निर्वाण होताहै। जैसे दीपक निर्वाण होजाता और पत्थर

की शिला जड़ीभूत होती है तैसेही पुर्य्यष्टक शरीरको त्यागकर जड़ीभूत होजाती है और प्राण अपान की कला टूटपड़ती है। हे लीले! मरना और जन्मभी भ्रान्ति से भासता है—आत्मा में कोई नहीं। संवित्मात्र में जो संवेदन फुरता है सो अन्यस्वभावमें सत्ताकी नाईं होकर स्थित होता है और मरण और जन्म उसमें भासते हैं और जैसी जैसी वासना होती है उसके अनुसार सुखदुःखका अनुभवकरता है। जैसे कोई पुरुष नदी में प्रवेशकरता है तो उसमें कहीं बहुत जल और कहीं थोड़ाहोता है कहीं बड़ेतरङ्गहोते हैं और कहीं सोमजल होताहै पर वे सब सोमजलमें होते हैं; तैसेही जैसी वासना होतीहै उसीके अनुसार सुखदुःख का अनुभव होताहै और अध, ऊर्ध्व, मध्य, वासनारूपी गढ़ेमें गिरते हैं। शुद्ध चेतनमात्र में कोई कल्पनानहीं अनेक शरीर नष्टहोजाते हैं और चेतनसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है। जो चेतनसत्ताभी मृतक होतो एकके नष्टहुये सब नष्टहोजावें पर ऐसे तो नहींहोता चैतन्यसत्ता सबकुछ सिद्ध होती है; जो वह न हो तो कोई किसी को न जाने। हे लीले! चेतनसत्ता न जन्मती है और न मरतीहै; वह तो सर्व कल्पना से रहित केवल चिन्मात्र है उसका किसी कालमें कैसे नाशहो? जन्ममरणकी कल्पना संवेदन में होती है अचेत चिन्मात्रमें कुछ नहीं हुआ। हे लीले! मरता वही है जिसके निश्चय में मृत्युका सद्भाव होता। जिसके निश्चय में मृत्युका सद्भावनहीं वह कैसेमरे? जब जीवको दृश्यका अत्यन्त अभाव हो तब बन्धनों से मुक्तहो वासनाही इस के बन्धनका कारणहै; जब वासनासे मुक्तहोता है तब बन्धन कोई नहींरहता। हे लीले! आत्म विचार से ज्ञानहोता है और ज्ञानसे दृश्यका अत्यन्ताभाव होताहै। जब दृश्यका अत्यन्ताभाव हुआ तब सब वासना नष्ट होजाती हैं यह जगत् उदयहुआ नहीं परन्तु उदयहुये की नाईं वासना से भासताहै। इस से वासनाका त्यागकरो! जब वासना निवृत्तहोगी तब बन्धन कोई न रहेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमृत्युविचारवर्णनन्नामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३७॥

लीलाने पूछा; हे देवि! यहजीव मृतककैसेहोताहै और जन्मकैसे लेताहै, मेरे बोधकी दृढ़ताके निमित्त फिरकहो? देवी बोली; हे लीले! इसके अनन्तर पान अपानकी कलाके आश्रय यह शरीर रहताहै और जब मृतकहोने लगता है तब प्राणवायु अपनेस्थानको त्यागताहै और जिसजिस स्थानकी नाड़ीसे वहनिकलताहै वहस्थान शिथिल होजाता है। जब पुर्य्यष्टकशरीर से निकलताहै तब प्राणकला टूटपड़ती है और चैतन्यताजड़ीभूत होजातीहै। तब परिवारवाले लोग उसको प्रेतकहते हैं। हे लीले! तब चित्तकी चैतन्यता जड़ीभूत होजाती है और केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ता है सो ज्योंकी त्यों रहती है जो स्थावर-जंगम सर्व जगत् और आकाश, पहाड़, वृक्ष, अग्नि, वायु आदिक सर्व पदार्थों में व्यापरहाहै और उदयअस्त से रहितहै। हे लीले! (जब मृत्यु मूर्च्छा होती है

तब प्राण पवन आकाशमें लीन होते हैं। उसप्राण में चैतन्यता होती है और चैतन्यता में वासना होती है। ऐसी जो प्राण और चैतन्यसत्ताहै सो वासनाको लेकर आकाशमें आकाशरूप स्थित होती है। जैसे गन्धको लेकर आकाशमें वायुस्थित होता है तैसेही वासनाको लेकर चैतन्यता स्थित होती है। हे लीले! उस अपनी वासनाके अनुसार उसे देवस्थान सहित फिर जगत् फुरआता है उससे वह देश, काल क्रिया और द्रव्य करके देखताहै। मृत्युभी दोप्रकारकी है एक पापात्माकी और दूसरी पुण्यात्माकी। पापी तीनप्रकारकेहैं एकमहापापी; दूसरे मध्यमपापी और तीसरेअल्पपापी। ऐसेही पुण्यवान्भी तीनप्रकारके हैं—एक महापुण्यवान्; दूसरा मध्यमपुण्यवान् है और तीसराअल्प पुण्यवान्। प्रथम पापियोंकी मृत्यु सुनिये। जब बड़ापापी मृतकहोताहै तब वह जर्जरीभूत होजाताहै और घनपाषाणकी नाईं सहस्रों वर्षोंतक मूर्च्छा में पड़ारहताहै। कितने ऐसेजीवहैं जिनको उस मूर्च्छा में भी दुःखहोताहै। जैसे बाहर इन्द्रियोंको दुःखहोता है तब उसके रागद्वेषकोलेकर चित्तकी वृत्ति हृदय में स्थितहोती है तैसेही पापवासना का दुःख हृदयमें होता है और भीतरसे जलताहै। इसप्रकार जड़ीभूत मूर्च्छा में रहता है। इसके अनन्तर उसको फिर चैतन्यता फुरआती है तब अपनेसाथ शरीर देखता है। फिर नरक भोगताहै और चिरकाल पर्य्यन्त नरक भोगके बहुतेरे जन्म पशु आदिकों के लेताहै और महानीच और दरिद्री निर्धनों के गृहमें जन्मलेकर वहांभी दुःखोंसे तप्त रहताहै। हे लीले! यह महापापियोंकी मृत्यु तुझसे कही। अब मध्यम पापीकी मृत्यु सुन। जब मध्यमपापी की मृत्युहोती है तब वहभी वृक्षकीनाईं मूर्च्छा से जड़ीभूतहोजाताहै और भीतर दुःखसे जलताहै। जड़ीभूत से थोड़ेकाल में फिर चेतनता पाता है। फिर नरक भुगतता है और नरकभोगके तिर्य्यगादिक योनि भुगतता है। तिसके पीछे वासना के अनुसार मनुष्य शरीर पाताहै। अब अल्पपापीकी मृत्युसुनो। हे लीले! जब अल्पपापी मृतकहोता है तब मूर्च्छितहोजाताहै और कुछकाल में उसको चेतनता फुरती है। फिर नरक जाकर भुगतता है; फिर कर्मोंके अनुसार और जन्मों को भुगतता है और फिर मनुष्य शरीर धारता है। हे लीले! यह पापात्माकी मृत्युकही अब धर्म्मात्माकी मृत्युसुन। जो महाधर्मात्मा है वह जब मृतकहोता है तब उसके निमित्त विमान आते हैं उनपर आरूढ़ कराके उसे स्वर्ग में लेजाते हैं। जिस इष्टदेवताकी वासना उसके हृदय में होती है उसके लोकमें उसे लेजाते हैं और वहां वह कर्म्मानुसार स्वर्गसुखभुगतता है। स्वर्गसुख जो गन्धर्व, विद्याधर, अप्सरा आदिक भोग हैं तिनको भोगके फिरगिरताहै और किसीफलमें स्थितहोताहै। जब उसफलको मनुष्यभोजन करताहै तब वीर्यमें जास्थित होताहै और उसवीर्यसे माताके गर्भमें स्थितहोताहै। वहांसे वासनाके अनुसार फिर जन्म लेता है; जो भोगकी कामना होती है तो श्रीमान् धर्मात्माके गृहमें

जन्महोता है और जो भोगसे निःकाम होताहै तब सन्तजनों के गृह में जन्मलेता है। अब मध्यम धर्मात्माकी मृत्युसुनो। हे लीले ! जो मध्यम धर्मात्मा मृतक होताहै उसको शीघ्रही चैतन्यता फुरआतीहै और वह स्वर्ग में जाकर अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गभोग के फिर गिरकर किसी फलमें स्थित होताहै। जब फिर उस फलको कोई पुरुष भोजन करताहै तब पिताके वीर्यद्वारा माताके गर्भ में आता है और वासना के अनुसार जन्म लेता है। अल्प धर्मात्मा जब मृतक होता है तब उसको यह फुरआता है कि, मैं मृतक हुआहूं; मेरे बान्धवों और पुत्रोंने मेरी पिण्डक्रियाकी है और मैं पितरलोकको चला जाताहूं। वहां वह पितरलोक का अनुभव करताहै और वहांके सुख भोगके गिरता है तब धान्य में स्थित होताहै। जब उस धान्यको पुरुष भोजन करता है तब वीर्य्य रूप होके स्थित होताहै। फिर उस वीर्यद्वारा माता के गर्भमें आताहै और वासना के अनुसार जन्म लेताहै। हे लीले ! जब पापी मृतक होता है तब उसको महाक्रूरमार्ग भासताहै और उस मार्ग पर चलताहै जिसमें चरणों में कण्टक चुभते हैं; शीशपर सूर्य तपताहै और धूपसे शरीर कष्टवान् होताहै। जो पुण्यवान् होताहै उसको सुन्दर छाया का अनुभव होताहै और बावली और सुन्दर स्थानों के मार्गसे यमदूत उसको धर्मराजके पास लेजाते हैं। धर्मराज चित्रगुप्त से पूछते हैं तो चित्रगुप्त पुण्यवानों के पुण्य और पापियों के पाप प्रकट करते हैं और वह कर्मों के अनुसार स्वर्ग और नरकको भुगतताहै फिर वहांसे गिरके धान्य अथवा और किसी फलमें आन स्थित होताहै। जब उस अन्नको पुरुष भोजन करताहै तब वह स्वप्न वासनाको लेकर वीर्य्य में आन स्थित होताहै। जब पुरुषका स्त्रीके साथ संयोग होताहै तब वीर्य्यद्वारा माताके गर्भमें आताहै। वहांभी अपने कर्मों के अनुसार माताके गर्भको प्राप्तहोताहै और उस माताके गर्भमें इसको अनेकजन्मोंका स्मरणहोताहै। फिर बाहर निकलके महामूढ़ बालअवस्था धारण करताहै; तब उसेपछिलीस्मृति विस्मरणहोजाती है और परमार्थकी कुछसुधनहीं होती केवल क्रीड़ा में मग्नहोताहै। उससे आगे यौवन अवस्था आतीहै तो कामादिक विकारोंमें अन्धाहोजाताहै और कुछ विचार नहीं रहता। फिर वृद्ध अवस्था आती है तो शरीर महाकृश होजाताहै बहुतरोग उपजते हैं और शरीर कुरूप होजाताहै। जैसे कमलोंपर बरफपड़ती और वे कुम्हिला जाते हैं तैसेही वृद्ध अवस्था में शरीर कुम्हिला जाता है और सब शक्ति घटकर तृष्णा बढ़ती जाती है। फिर कष्टवान् होकर मृतक होताहै तब वासनाके अनुसार स्वर्ग नरकके भोगोंको प्राप्तहोताहै। इस प्रकार संसार चक्रमें वासनाके अनुसार घटी यंत्रकी नाईं भ्रमता है-स्थिर कदाचित् नहीं होता। हे लीले! इस प्रकार जीव आत्मपदके प्रमादसे जन्म मरण पाताहै और फिर माता के गर्भमें आके बाल, यौवन, वृद्ध और मृतक अवस्थाको प्राप्त होताहै। फिर वासना के

अनुसार परलोक देखताहै और जाग्रत स्वप्नेकी नाईं भ्रमसे फिर देखता है। जैसे स्वप्नमें स्वप्नान्तर देखताहै तैसेही अपनी कल्पनासे जगत् भ्रम फुरताहै। स्वरूप में किसीको कुछ भ्रम नहीं; आकाशरूप आकाश में स्थितहै भ्रमसेविकार भासते हैं लीलाने पूछा; हे देवि ! परब्रह्ममें यह जगत् भ्रमसे कैसे हुआहै ? मेरे बोधकी दृढ़ता के निमित्त कहो। देवी बोली; हे लीले ! सब आत्मरूप हैं; पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी, आकाशादिक स्थावर-जङ्गम जो कुछ जगत् है वह सब परमार्थ घनहै और परमार्थ सत्ताही सर्व्व आत्माहै। हे लीले ! उससत्तासंवित् आकाशमें जब संवेदन आभास फुरताहै तब जगत् भ्रमभासताहै। आदिसंवेदन जो संवित्मात्रमें हुआ है सो ब्रह्मरूप होकर स्थित हुआहै और जैसे वह चेततागया है उसी प्रकार स्थावर जङ्गम जगत् होकर स्थित हुआहै। हे लीले ! शरीर के भीतर नाड़ी है नाड़ी में छिद्रहैं और उन छिद्रों में स्पन्दरूप होकर प्राण विचरता है उसको जीव कहते हैं। जब जीव निकलजाता है तब शरीर मृतक होताहै। हे लीले ! जैसे २ आदिसंवित्मात्रमें संवेदनफुराहै तैसेही तैसे अब तक स्थितहै। जबउसने चेता कि, मैं जड़ होऊं तब वहजड़ रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु आकाश, पर्व्वत, वृक्षादिक स्थित भये और जब चेतन की भावनाकी तब चेतनरूप होकर स्थित हुआ। हे लीले ! जिसमें प्राणक्रिया होती है वह जङ्गमरूप बोलते चलते हैं और जिसमें प्राण स्पन्द क्रिया नहीं पाईजाती सो स्थावर रूप हैं पर आत्मसत्ता में दोनोंतुल्यहैं; जैसे जङ्गमहैं तैसेहीस्थावरहैं और दोनों चैतन्यहैं जैसे जङ्गममें चैतन्यता है तैसेही स्थावरमें चैतन्यताहै। यदि तू कहे कि, स्थावरमें चेतनता क्योंनहीं भासती तो उसका उत्तर यह है कि; जैसे उत्तर दिशाके समुद्रवाले मनुष्यकी बोली को दक्षिण दिशाके समुद्र वाले नहीं जानते और दक्षिण दिशा के समुद्रवाले की बोली उत्तरदिशा के समुद्रवाले नहीं समझसक्ते; तैसेही स्थावरों की बोली जङ्गमनहीं समझसक्ते और जङ्गमोंकी बोली स्थावर नहीं समझसक्ते परन्तु परस्पर अपनी अपनी जाति में सब चेतन हैं-उसका ज्ञान उसको होता है और उसका ज्ञान उसको होता है। जैसे एक कूपका दर्दुर और कूप के दर्दुर को नहीं जानता और और कूपका दर्दुर उसकूप के दर्दुर को नहीं जानता तैसेही जंगमों की बोली स्थावर नहीं जानसक्ते। और स्थावरों की बोली जंगम नहीं जानसक्ते। हे लीले ! जो आदि संवित् में संवेदन फुरा है वैसाही रूप होकर महाप्रलयपर्य्यन्त स्थित है-अन्यथा नहीं होता। जब उस संवित् में अवकाश का संवेदन फुरता है तब आकाशरूप होकर स्थितहोता है; जब स्पन्दता को चेतता है तब वायुरूप होकर स्थित होता है; जब उष्णता को चेतता है तब अग्निरूप होकर स्थित होता है; जब द्रवताको चेतता है तब जलरूप होकर स्थित होता है और जब गन्धकी चिन्तवना करता है तब पृथ्वीरूप होकर स्थित

होताहै इसी प्रकार जिस जिसको चेततहि सो सो पदार्थ प्रकट होते हैं । आत्मसत्तामें सब प्रतिबिम्बितहे। वास्तवमें न कोई स्थावरहै न जङ्गम है केवल ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थितहै। और उसमें भ्रमसे जगत् भासतेहैं और दूसरी कुछ वस्तु नहीं । हे लीले ! अब राजा विदूरथको देख कि, मृतक होताहै ? लीलाने पूछा; हे देवि ! यह राजा पद्म शव शरीरवाले मण्डपमें किस मार्गसे जावेगा और इसके पीछे हम किस मार्गसे जावेंगे ? देवी बोली; हे लीले ! यह अपनी वासना के अनुसार मनुष्यमार्ग के राह जावेगा । हैतो यह चिदाकाशरूप परन्तु अज्ञानके वश इसको दूरस्थान भासेगा और हमभी इसहीके मार्ग इसके सङ्कल्पके साथ अपना सङ्कल्प मिलाके जावेंगे । जब तक सङ्कल्पसे सङ्कल्प नहीं मिलता तब तक एकत्वभाव नहीं होता। इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार देवीजीने लीलाको परमबोधका कारण उपदेशकिया कि, इतनेमें राजा जर्जरीभूत होनेलगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेसंसारभ्रमवर्णनोनामअष्टत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ॥ ३८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार देवी और लीला देखतीथीं कि, राजाके नेत्र फटगये और शरीर निरसहो गिरपड़ा और श्वास नासिका के मार्ग्ग से निकलगया । तब जैसे रससे रहित पत्र और कटाहुआ कमल विरस होजाता है तैसेही राजाका शरीर निरसहोगया; जोकुछ चित्तकी चैतन्यता थी वह जर्जरीभूतहोगई; मृत्यु मूर्च्छा रूपी अन्धकूपमें जा पड़ा और चेतना और वासना संयुक्त प्राण आकाशमेंजा स्थित हुये । प्राणोंमें जो चेतना थी और चेतनामें वासनाथी उस चेतना और वासना सहित प्राण जैसे वायु गन्धको लेकर स्थितहोताहै आकाश में जा स्थितहुआ । हे रामजी ! राजा की पुर्यष्टकतो जर्जरीभूत होगई परन्तु दोनों देवियां उसको दिव्यदृष्टिसे ऐसे देखतीथीं जैसे भ्रमरी गन्धको देखतीहै । राजाएक मुहूर्त्तपर्यन्त तो मूर्च्छामेंरहा फिर उसको चेतनता फुरआई और अपने साथ शरीर देखने लगा उसने जाना कि मेरे बान्धवों ने मेरी पिण्डक्रिया की है उससे मेरा शरीर भयाहै और धर्म्मराजके स्थानको मुझेदूत लेचले हैं हे रामजी ! इस प्रकार अनुभव करता वह धर्मराजके स्थानको चला और उसके पीछे देवी, जैसे वायुके पीछे गन्ध चलीजाती है, चली जैसे गन्धकेपीछे भ्रमरी जाती हैं तैसेही राजा विदूरथ धर्मराजके पास पहुँच गया । धर्मराजने चित्रगुप्तसे कहा कि, इसके कर्म विचारकेकहो? चित्रगुप्तने कहा; हे भगवन् ! इसने कोई अपकर्म्म नहीं किया बल्कि बड़े बड़े पुण्यकिये हैं और भगवती सरस्वती का इसको बरहै । इसका शव फूलों से ढपा हुआहै; उस शरीरमें यह भगवती के बरसे जाकर प्रवेश करेगा । इससे अब और कुछ कहना पूछना नहीं; यह तो देवीजीके बरसे बँधाहै । हे रामजी ! ऐसे कहकर यमराज

ने राजाको अपने स्थानसे चलादिया तब राजा आगे चले और उसके पीछे दोनों देवियां चलीं। राजाको यह देवियां देखतीथीं पर राजा इनको न देख सकताथा। तबतीनों उस ब्रह्माण्डको लांघ जिसका राज्य विदूरथ ने कियाथा दूसरे ब्रह्मांडमें आये और उसको भी लांघके पद्मराजा के देशमें आकर उसके मन्दिर में जहां फूलसे ढपा शव था आये। जैसे मेघसे वायु आन मिलताहै तैसेही एकक्षण में देवियां आनमिलीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! वह राजा तो मृतकहुआथा; मृतकहोकर उस ने उसमार्गको कैसे पहिचाना? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह विदूरथजो मृतकहुआथा उसकी वासना नष्ट न हुईथी। अपनीउस वासना से यहअपने स्थानको प्राप्तहुआ। हे रामजी! चिद्अणु जीवके उदरमें भ्रांतिमात्र जगत्है—जैसे बटके बीजमें अनन्त बट वृक्षहोते हैं तैसेही चिद्अणु में अनन्त जगत्हैं—जो अपने भीतर स्थित है उसको क्योंनदेखे? जैसे जीव अपने जीवत्वका अंकुर देखताहै तैसेही स्वाभाविक चिद्अणु त्रिलोकी को देखता है। जैसे कोईपुरुष किसी स्थानमें धन दबारक्खे और आप दूर देशमें जावे तो धन की वासना से देखताहै तैसेही वासनाकी दृढ़ता से विदूरथने देखा और जैसे कोई जीव स्वप्नभ्रमसे किसी बड़े धनवान्के गृहमें जा उपजता है और भ्रमके शान्त हुये उसका अभाव देखताहै तैसेही उसको अनुभव हुआ। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिसकी वासना पिण्डदान क्रियाकी नहीं होती वह मृतक हुये अपने साथ कैसे देहको देखताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पुरुषजो मातापिताके पिण्डकरताहै उनकी वासना हृदय में होती है और वही फलरूप होकर भासती है कि, मेरा शरीरहै; मेरेपीछे मेरे बान्धवों ने पिण्डदान किया है उससे मेरा शरीर हुआ है। हे रामजी! सदेह हो अथवा विदेह अपनी वासनाही के अनुसार अनुभव होताहै—भावना से भिन्न अनुभव नहीं होता। चित्तमय पुरुषहै; चित्तमें जो पिण्ड की वासना दृढ़ होती है तो आपको पिण्डवान्ही जानताहै और भावनाकेवशसे असत्भी सत् होजाताहै। इससे पदार्थोंका कारण भावनाही है; कारण विना कार्य्यकाउदय नहीं होता। महाप्रलय पर्य्यन्त कारण विना कार्य होता नहीं देखा और सुनाभीनहीं। इससे कहाहै कि, जैसी वासना होती है तैसाही अनुभव होताहै। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जिस पुरुषको अपने पिण्डदान आदिक कर्म्मों की वासनानहीं वहजब मृतकहोताहै तब क्या प्रेतवासना संयुक्त होता है कि, मैं पापी और प्रेतहूं? अथवा पीछे उसके बान्धव जो उसके निमित्त क्रियाकर्म करते हैं और जो बान्धवोंने पिण्डक्रियाकी है उससे उसे यह भावना होती है कि, मेरा शरीर हुआहै वहक्रिया उसको प्राप्त होती है वा नहींहोती? अथवा उसके बान्धवों के मनमें यह दृढ़ भावनाहुई कि इसको सब क्रिया प्राप्तहोगी और वह अपने मनमें धन अथवा पुत्रादिकों के अभाव से निराशहै और किसी प्रभावसे किसी ने पिण्डादिक क्रियाकी वह उसको

प्राप्त होतीहै अथवानहींहोती ? आपतो कहते हैं कि, भावना के वशसे असत्भी सत्हो-जाताहै—यहक्याहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! भावना; देश काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा इन पांचों से होती है । जैसी भावना होतीहै वैसीही सिद्धहोती है; जिसकी कर्त्त-व्यता बली होती है उसकी जय होती है । पुत्र, दारादिक बान्धव सब वासना रूपहैं । जो धर्मकी वासना होती है तो बुद्धि में प्रसन्नता उपजआती है और पुण्यकर्मों से पूर्व भावना नष्टहो शुभगतिको प्राप्त होताहै । जो अतिबली वासना होती है उसकी जय होती है । इससे अपने कल्याणके निमित्त शुभका अभ्यास किया चाहिये । रामजी बोले; हे भग-वन् ! जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा इनपांचों से वासनाहोती है तो महाप्रलय सर्ग की आदिमें देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं होती तो जहां पांचो कारण नहीं होते और उनकी वासना भी नहीं होती उस अद्वैतसे जगत् भ्रम फिर कैसे होताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! महाप्रलय और सर्गकी आदिमें देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं रहती और निमित्त कारण और समवाय कारण का अभावहोताहै । चिदात्ममें जगत् कुछउपजा नहीं और है भीनहीं; वास्तवमें दृश्यका अत्यन्त अभाव है और जो कुछ भासता है वह ब्रह्मका किञ्चन है । वह ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है । ऐसेही अनेक युक्तियों से मैं तुमसे कहूंगा अब तुम पूर्वकथा सुनो । हे रामजी ! जब वे दोनों देवियां उसमन्दिरमें पहुँचीं तो क्या देखा कि, फूलों से सुन्दर शीतल स्थान बने हुये हैं—जैसे वसन्त ऋतु में वन भूमिका होती है—और प्रातः काल का समय है; सुवर्ण के मङ्गलरूपी कुम्भ जलसे भरे रक्खे हैं; दीपकोंकी प्रभा मिटगई है; किवाड़ चढ़े हुये हैं, मन्दिरोंमें लोग सोये हुये मनुष्यों के श्वास आते जाते हैं और महासुन्दर झरोखे हैं । ऐसे बने हुये स्थान शोभा देते हैं जैसे सम्पूर्ण कलासे चन्द्रमा शोभता है और जैसे इन्द्र के स्थान सुन्दर हैं । जिस सुन्दर कमलसे ब्रह्माजी उपजे हैं तैसेही वे कमल सुन्दर हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमरणानंतरावस्थावर्णनंनामएकोन चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तब दोनों देवियों ने उसशवकेपास विदूरथकी लीला को देखा कि, वह उसकी मृत्युसे पहिले वहां पहुँचीहै और पूर्वकेसे वस्त्रभूषण पहिरेहुये; पूर्वकासा आचार किये; पूर्वकीसी सुन्दर है और पूर्वकासाही उसका शरीरहै । एवम् उ-सका सुन्दरमुख चन्द्रमाकी नाईं प्रकाशताहै और महासुन्दर फूलोंकी भूमिपर बैठी है । निदान लक्ष्मी के समानलीला और विष्णुके समान राजाको देखा पर जैसे दिनके समय चन्द्रमाकी प्रभा मध्यमहोती है तैसे उन्हों ने लीलाको कुछ चिन्ता सहित राजाकी बाईं ओर एकहाथ चिबुकपर रक्खे और दूसरे हाथ से राजाको चमर करती देखा । लीलाने

इनको न देखा क्योंकि; ये दोनोंप्रबुध आत्मा और सत् सङ्कल्प थीं और लीला इन के समान प्रबुध न थी। रामजीने पूछा; हे भगवन्! उस मण्डपमें पूर्व लीलाजो देहको स्थापन कर और ध्यानमें विदूरथ की सृष्टि देखने को सरस्वती के साथगई थी उस देहका आपने कुछवर्णन न किया कि; उसकी क्या दशाहुई और कहांगई? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! लीला कहांथी, लीलाका शरीर कहां था और उसकी सत्ता कहांथी? वहतो अरुन्धती के मन में लीला के शरीरको भ्रान्तिप्रतिभा हुईथी। जैसे मरुस्थलमें जलकी प्रतिभा होती है तैसेही लीला के शरीरकी प्रतिभा उसे हुईथी। हे रामजी! यह अधिभौतिक अज्ञानसे भासताहै और बोधसे निवृत्त होजाताहै। जब उस लीलाको बोधमें परिणामहुआ तब उसका अधिभौतिक शरीर निवृत्तहोगया—जैसे सूर्य्यके तेजसे बरफका पुतला गलजाताहै— और अन्तवाहकता उदयहुई। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वहसब आकाशरूपहै। जैसे रस्सीमें सर्प भ्रमसे भासताहै तैसेही अन्तवाहकता में अधिभौतिकता भ्रमसे भासती है। आदि शरीर अन्तवाहकहै अर्थात् सङ्कल्पमात्र है उसमें दृढ़भावना होगई उससे पृथ्वी आदि तत्त्वों का शरीर भासने लगा। वास्तवमें न कोई भूत आदिक तत्त्वहै और न कोई तत्त्वोंका शरीरहै। उसका शव शशेकी शृंगोंकी नाईं असत्है। हे रामजी! आत्मामें अज्ञानसे अधिभौतिक भासेहैं। जब आत्माका बोधहोताहै तब अधिभौतिक नष्ट होजाते हैं। जैसे किसी पुरुषने स्वप्नमें आपको हरिणदेखा और जब जागउठा तब हरिण का शरीर दृष्टिनहीं आया तैसेही अज्ञानसे अधिभौतिकता दृष्टि आईहै और आत्मबोध हुये अधिभौतिकता दृष्टि नहीं आती। जब सत्यका ज्ञान उदय होता तब असत् का ज्ञान लीनहोजाता है। जैसे रस्सी के अज्ञानसे सर्प भासताहै और रस्सी के ज्ञानसे सर्पकाज्ञान लीनहोता है तैसेही सम्पूर्ण जगत् मनसे उदयहुआ है और अज्ञानसे अधिभौतिकता को प्राप्त हुआहै। जैसे स्वप्नेमें जगत् अधिभौतिक हो भासता है और जागेसे स्वप्नशरीर नहीं भासता तैसेही आत्मज्ञानसे अधिभौतिकता निवृत्तहोजाती है और अन्तवाहक शरीर भासता है। रामजी बोले; हे भगवन्! योगीश्वर जो अन्तवाहक शरीर से ब्रह्मलोक पर्यन्त आतेजाते हैं उनके शरीर कैसे भासते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अन्तवाहक शरीर ऐसे हैं जैसे कोई पुरुष स्वप्नमेंहो उसको पूर्वके जाग्रत् शरीर का स्मरण हो तब स्वप्न शरीर दृष्टिभी आताहै पर उसको आकाशरूप जानताहै; तैसेही अधिभौतिकता बोधसे नष्ट होजाती है। जैसे शरत्काल का मेघ देखनेमात्र होताहै तैसेही ज्ञानवान् योगीश्वरोंका शरीर देखनेमात्र होताहै और अदृश्यरूप है; और को शरीर भासताहै पर उसको आकाशरूपही भासताहै। हे रामजी! यह देहादिक आत्मामें भ्रान्ति से दृष्टिआते हैं और आत्मज्ञान से निवृत्त होजाते हैं। जैसे रस्सी के अज्ञानसे सर्प

भासता है; जब रस्सी का सम्यक् ज्ञान होताहै तब सर्पभाव उसका नहीं रहता तैसेही तत्त्वबोधके हुये देह कहांहै और देहकी सत्ता कहांरहै दोनों का अभावही हो केवल अद्वैत ब्रह्मसत्ता भासती है । रामजी बोले; हे भगवन् ! अन्तवाहक से अधिभौतिक रूप होता है वा अधिभौतिक से अन्तवाहक रूप होता है यह मुझसे कहिये ? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी ! मैंने तुमको बहुत बेर कहाहै तुम मेरे कहे को धारण क्यों नहीं करते ? मैंने आगे भी कहा है कि, जो कुछ जीव हैं वह सब अन्तवाहकहैं अधिभौतिक कोई नहीं । आदिमें जो शुद्ध संवित्मात्र से संवेदन आभास उठा है उससे इस जीवका सङ्कल्प रूप अन्तवाहक आदि शरीर हुआ । जब उसमें दृढ़ अभ्यास होता है तब वह सङ्कल्प रूपी शरीर अधिभौतिक होकर भासने लगता है । जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफ रूप होजाता है तैसेही प्रमादसे सङ्कल्पके अभ्यास से अधिभौतिक रूप होजाता है । उस अधिभौतिक के तीन लक्षण होते हैं भारी शरीर होताहै; कठोर भाव होता है और शिथिल होता है उस से अहंप्रतीत होती है इस कारण अधिभौतिक कहाता है । जब तत्त्वका बोध होताहै तब अधिभौतिकता आकाश रूप होजाती है । जैसे स्वप्ने में देहसे आदिलेकर जगत् बड़ास्पष्ट रूप भासता है और जब स्वप्ने में स्वप्नका ज्ञान होता है कि, यह स्वप्ना है तब वह स्वप्ने का शरीर लघु होजाता है अर्थात् संकल्परूप होजाता है; तैसेही परमात्मा के बोध से अधिभौतिक शरीर निवृत्त होजाता है और सङ्कल्प रूप भासता है । हे रामजी ! आधिभौतिकता अबोध के अभ्यास से प्राप्त होती है । जब उलट के उसीही अभ्यास का बोध हो तब आधिभौतिकता नष्ट होजावे और अन्तवाहकता उदय हो । हे रामजी ! जीव एक शरीर को त्यागके दूसरे का अङ्गीकार करताहै—जैसे स्वप्ने से स्वप्नान्तर प्राप्तहोता है और जब बोध होता है तब शरीर और कुछ वस्तु नहीं वही आधिभौतिक शरीर शान्त होजाता है जैसे स्वप्नेसे जागके स्वप्नशरीर शान्त होजाताहै । हे रामजी ! जो कुछ जगत् तुम को भासता है वहसब भ्रममात्रहै अज्ञानसे सत्की नाईं भासता है । जब आत्मबोध होगा तब सब आकाश रूप होगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेस्वप्ननिरूपणोनामचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब वह दोनों देवियां अन्तःपुरमें गईं तब प्रबुधलीला कहनेलगी; हे देवीजी ! समाधिमें लगे मुझको कितना काल व्यतीत हुआ ? मैं ध्यानसे भूपालकी सृष्टिमें गईथी और मेरा शरीर यहां पड़ाथा वह कहां गया ? देवी बोली; हे लीले ! तुझको समाधिमें लगे इकतीस दिन व्यतीत हुये हैं । जब तू ध्यानमें लगी तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथकी सृष्टिमें विचरता फिरा जब इस शरीर की वासना तेरी निवृत्त

होगई तब जैसे रससे रहित पत्र सूखजाताहै तैसेही तेरा शरीर निर्जीव होकर गिरपड़ा और जैसे काष्ठ पाषाण होता है तैसेही हो बरफकी नाईं शीतल होगया। तब देखके सबने विचार किया कि, यह मरगई इसको जलाइये और चन्दन और घृत से लपेट के जलादिया। बान्धव जन रुदनकरनेलगे और पुत्रोंने पिण्डक्रियाकी। हे लीले! जो तू ध्यानसे उतरती तो तुझको देखके लोग आश्चर्यवान् होते और अबभी देखके सब आश्चर्यवान् होवेंगे कि, रानी परलोकसे फिरआई है। हे लीले! अब तुझको बोध उदय हुआहै इससे इस शरीरकी वासना नष्टहोगई और अन्तवाहकमें दृढ़ निश्चय हुआ इस कारण वह शरीर जीवितहुआ। अब जो उसके समान तेरा शरीर हुआहै वह इस कारण है कि, तुझको लीलाकी वासना में बोधहुआहै कि, मैं लीलाहूं इसकारण तेरा शरीर तैसाहीरहा। यहलीला शरीरकी तेरी वासना नष्ट न हुईथी इस कारण तू निर्वाण न हुई नहीं तो विदेहमुक्तहोजाती। अब तू सत् सङ्कल्पहुई है जैसे तेरीइच्छाहोगी तैसे-ही अनुभव होगा। हे लीले! जैसी वासना जिसको होती है उसके अनुसार उसको प्राप्त होता है। जैसे बालक को अन्धकारमें जैसी भावना होती है तैसाही भानहोताहै—जो बे-ताल की भावना होती है तो बैतालहो भासताहै परन्तु वास्तव में बैतालकोई नहीं। तैसे जितनी आधिभौतिकता भासतीहै वहभ्रममात्रहै। सब जीवों का आदि शरीर अन्तवा-हकहै सो प्रमादसे आधिभौतिक भासता है। हे लीले! एक लिंगशरीरहै; एक अन्त वाहक शरीरहै—यह दोनों सङ्कल्पमात्रहैं और इनमें इतनाभेदहै कि, लिंगशरीर संक-ल्परूपी मनहै उसमें जिसको अधिभौतिकता का अभिमान होता है उसको गौरत्व और कठोररूप और वर्णाश्रमका अभिमान होताहै। जिसपुरुषको ऐसे अनात्मामें आत्माभिमान हुआहै जिसकी आधिभौतिक लिंगदेहहै उसकी चिन्तना सत्यनहींहो-ती। जिसको आधिभौतिक का अभिमान नहीं होता वह अन्तवाहक शरीर है। वह जैसा चिंतवन करताहै वैसीही सिद्धिहोती है। हे लीले! तू अब अन्तवाहकमें दृढ़स्थित हुई है इस कारण तेरा फिर वैसाही शरीर हुआहै। तेरी आधिभौतिक बुद्धिनष्ट होगई और वह स्थूल शरीर शवहोकर गिरपड़ा है जैसे जलसेरहित मेघहो और जैसे सुग-न्धसे रहितफूल हो तैसेही तेरा शरीर होगयाहै और अब तू सत्य सङ्कल्प हुई है। जै-सी चिन्तवनकर तैसाही होगा। हे लीले! यह कमल नयनी लीला तेरे भर्त्ता के पासबैठी है और उसको इस अन्तःपुरके लोग और सहेलियां जाननहीं सक्तीं क्योंकि; मैंने इनको निद्रा में मोहित कियाथा। जब तक मेरा दर्शन इसको न होवेगा तब तक इसको और कोई न जानसकेगा अब यह हमको देखेगी। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ऐसे विचारके देवी उसको अपने संकल्प से ध्यान करनेलगी तब उस लीला ने देखा कि, अन्तःपुरमें बहुत से सूर्योंका प्रकाश इकट्ठाहुआ है और चन्द्रमाकी नाईं

शीतल प्रकाशहै । ऐसे दोनों देवियों को देखके उसने नमस्कारकर मस्तक नवाया और दोनों को स्वर्णके सिंहासनपर बैठा के कहनेलगी; हे जीवकीदाता! तुम्हारी जय हो! तुम ने मुझपर बड़ीकृपाकी । तुम्हारेही प्रसाद से मैं यहां आई । देवी बोली; हे पुत्री! तू यहां कैसे आई और क्या वृत्तान्त तूने देखा सो कह? विदूरथकी लीला बोली; हे देवि! जब मेराभर्त्ता संग्राम में घायल हुआ तब उसको देखके मैं मूर्च्छितहो गिरपड़ी परन्तु मृतक न भई । इसके अनन्तर फिर मुझको चेतनाफुरी तो मैंने अपना वही शरीर देखा और उस शरीर से मैं आकाशमार्गको उड़ी । जैसे वायु गन्धलेकर उड़ता है तैसेही एक कुमारी मुझे उड़ाकर परलोक में भर्त्ताके पास बैठा आप अन्तर्द्धान होगई । मेरा भर्त्ता जो संग्राममें थकाथा वह आके सोरहाहै और मैं सँभालती देखती मार्ग्ग में आई हूँ परन्तु मुझको तुमदृष्टि कहीं न आई । यहां कृपाकर तुमने दर्शन दियाहै । इतना कह कर वशिष्ठजी बोले हे रामजी! इसप्रकार सुनके देवीने प्रबुध लीला से कहा कि; अब मैं राजाकी जीवकलाको छोड़ती हूँ । ऐसे कहके देवीने नासिकाके मार्ग से जीवकला को छोड़दिया और जैसे कमल के भीतर वायु प्रवेश करजावे अथवा शरीरमें वायुप्रवेश करजावे तैसेही शरीरमें जीवकला प्रवेश करगई । जैसे समुद्र जलसे पूर्ण होताहै तैसेही पुर्यष्टक वासना से पूर्णथी । शरीरकी क्रांति उज्ज्वल होगई और जैसे वसन्तऋतु में फूल और वृक्षों में रस फैलताहै अङ्गों में प्राणवायु फैलगई । तब सब इन्द्रियां खिलआईं जैसे वसन्त ऋतुमें फूल खिलआतेहैं । तब राजा फूलों की शय्या से इस भांति उठ खड़ा हुआ जैसे रोका हुआ विन्ध्याचल पर्वत उठआवे । तब दोनों लीला राजाके सन्मुख आ खड़ी हुई और राजाने कहा मेरे आगे तुम कौन खड़ी हो? प्रबुध लीलाने कहा; हे स्वामी! मैं तुम्हारी पूर्व पटरानी लीलाहूं; जैसे शब्द के सङ्ग अर्थ रहताहै तैसे सदा तुम्हारे सङ्ग रहीहूं? जब तुम यहां शरीर त्यागके परलोक में गये थे तब मुझमें तुम्हारा अतिस्नेह था इससे मेरा प्रतिबिम्ब यह लीला तुमको भासीथी । अब जो और कथाका वृत्तान्तहै सो मैं तुमसे कहतीहूं । हे राजन्! हमारे ऊपर इस देवीने कृपा की है जो हमारे शीशपर स्वर्ण के सिंहासन पर बैठी है । यह सरस्वती सर्वकी जननी है; इसने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है और परलोकसे तुम्हें ले आई है । हे रामजी! ऐसे सुनके राजा प्रसन्नहो उठखड़ा हुआ और सरस्वती के चरणोंपर मस्तक नवाकर बोला; हेसरस्वति! तुमको मेरा नमस्कारहै । तुम सबकी हितकारीहो और तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह कियाहै । अब कृपाकरके मुझको यह वरदो कि, मेरी आयुर्बल बड़ीहो; निष्कण्टक राज्य करूं; लक्ष्मी बहुतहो; रोग कष्ट न हो और आत्मज्ञान से सम्पन्न होऊं अर्थात् भोग और मोक्ष दोनोंदो । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार राजाने कहा तब देवीने उसके शीशपर हाथधरके आशीर्वाद दिया कि, हे राजन्! ऐसेही होगा ।

तेरी आयुर्बल बड़ी होगी; तेरा शत्रुभी कोई न होगा; निष्कण्टक राज्य करेगा; आपदा तुझको नहोगी; लक्ष्मी संपदासे सम्पन्न होगा; तेरी प्रजाभी बहुत सुखी रहकर तुझको देखके प्रसन्न होगी; तेरी प्रजा में आपदा किसी को न होगी और तू आत्मानन्द से भी पूर्णहोगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवजीवनवर्णनंनामएकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहके देवी तो अन्तर्द्धान होगई और प्रातःकालका समय हुआ; सबलोग जाग उठे; सूर्य भी उदय हुआ और सूर्यमुखी कमल खिलआये। राजा दोनों लीलाको कण्ठलगा प्रसन्न और आश्चर्यवान् हुआ मन्दिर में नगारे बजने लगे और नाना शब्द होने लगे मन्दिर में बड़ा हुलास और आनन्द हुआ अनेक अंगना नृत्य करने लगीं और बड़ा उत्साह हुआ। विद्याधर सिद्ध देवता, फूलों की वर्षा करने लगे और लोग बड़े आश्चर्यवान् हुये कि, लीला परलोक से फिर आईहै और अपने भर्त्ता और एक आपसी दूसरी लीला ले आई है। हे रामजी! यह कथा देशसे देशान्तर चलीगई और सब लोग सुनके आश्चर्यवान् हुये। जब इस प्रकार यहकथा प्रसिद्धहुई तब राजाने भी सुना कि, मैं मरके फिर जियाहूं और विचारा कि, फिर मेरा अभिषेक हो निदान मंत्री और मण्डलेश्वरों ने उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओर से सब समुद्र और सर्व तीर्थों का जल मँगा राजाको राज्यका अभिषेक किया और चारों समुद्रों पर्यन्त राजा निष्कण्टकराज्य करने लगा। राजा और लीला यह पूर्वकी कथाको विचारते और आश्चर्यवान् होते थे। सरस्वती के उपदेश और प्रसाद से अपना पुरुषार्थ पाके राजा और दोनोंलीला ने इसभांति सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवन्मुक्त होके राजकिया और मनसहित षट्इन्द्रियों को वशकरके यथालाभ संतुष्टरहे और दृश्यभ्रम उनकानष्टहोगया। ऐसा सुन्दर राजा था कि, उसकी सुन्दरताकी कणिका मानों चन्द्रमाथी और उसके तेजकी कणिका मानों सूर्य्यथी निदान उसने प्रजाको भलीप्रकार संतुष्टकिया और सबप्रजा राजाको देखकेप्रसन्नहुई और विदेहमुक्तहो दोनोंलीला और तीसराराजानिर्वाणपदकोप्राप्तहुये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेलीलोपाख्यानेनिर्वाणवर्णनं नामद्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह दोनोंकथा एक आकाशज ब्राह्मणकी और दूसरी लीलाकी मैंने तुमको दृश्यदोषके निवृत्तिअर्थ विस्तारपूर्वक सुनाई है। हे रामजी! दृश्यकी दृढ़ता जो हो रही है उसको त्यागकरो। अब तुम इनदोनों इतिहासों को संक्षेप मात्रसे सुनो। यह जगत् जो तुमको भासता है आभासरूपहै—आदि से कुछ उपजा नहीं जो वस्तु सतहोती है उसके निवारण में प्रयत्न होताहै और जो वस्तु असतही हो उसके

निवृत्ति होने में कुछ यत्न नहीं। इस कारण ज्ञानवान्को सब आकाशरूप भासताहै और आकाश की नाईं स्थित होताहै। हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मसत्ता से आभास संवेदन फुराहै सो ब्रह्मरूप होकर स्थितहुआहै। वह ब्रह्म पृथ्वी आदिक भूतों से रहितहै। जो आपही आभासरूपहो उसके उपजाये जगत् कैसे सत्हो ? हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष आकाशरूप है। जिसको आत्मपदका साक्षात्कार हुआ उसको दृश्यभ्रमका अभाव होजाताहै और जो अज्ञानी है उसको जगत् भ्रम स्पष्टभासता है। शुद्ध चिदाकाशका एक अणुजीव है और उस जीव अणु में यह जगत् भासता है, उस जगत्की सृष्टिमें तुमको क्याकहूं; नीति क्याकहूं; वासनाक्याकहूं और पदार्थोंको क्याकहूं ? हे रामजी ! जगत् कुछ उपजा नहीं केवल संवेदन के फुरने से जगत् भासता है। शुद्ध संवित् में संवेदनरूपी नदी चली है और उसमें यह जगत् फुरता है। जब संवेदनको यत्न करके रोकोगे तब दृश्यभ्रम नष्टहोजावेगा। प्रयत्न करना यही है कि, संवेदनको अन्तर्मुख करे और जब तक आत्माका साक्षात्कार न हो तबतक श्रवण, मनन और निदिध्यासन से दृढ़ अभ्यास करना चाहिये। जब साक्षात्कार होताहै तब दृश्य नष्ट होजाताहै। हे रामजी ! यह सर्व जगत् जो तुमको भासताहै सो हमको अखण्ड ब्रह्मसत्ताही भासताहै। जगत् मायामयहै परन्तु मायाभी कुछ और वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। रामजी बोले; बड़ा आश्चर्य्य है ! बड़ाआश्चर्य्य है ! हे मुनीश्वर ! आपने मुझसे परमदशा कही है। आपका उपदेश दृश्यरूपी तृणोंका नाशकर्त्ता दावाग्निहै और आध्यात्मक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापों का शान्तकर्त्ता चन्द्रमा है। हे मुनीश्वर ! आपके उपदेशसे अब मैं ज्ञातज्ञेय हुआहूं और पांचविकल्प मैंने विचारेहैं। प्रथम यह कि, यह जगत् मिथ्याहै और इसका स्वरूप अनिर्वचनीय है; दूसरे यह कि, आत्मा में आभास है; तीसरे यह कि, इसका स्वभाव परिणामी है चौथे यह कि, अज्ञानसे उपजा है और पांचवें यह कि, यह अनादि अज्ञानपर्यन्त है। ऐसे जानके मैं ज्ञानवानों और निर्वाणमुक्तों की नाईं शान्तात्मा हुआ। हे मुनीश्वर ! और शास्त्रों से यह आपका उपदेश आश्चर्य है। श्रवणरूपी पात्र आपके वचनरूपी अमृत से तृप्त नहीं होते। इससे मेरा यह संशय दूरकरो कि, लीलाके भर्त्ताको प्रथम वशिष्ठ, फिर पद्म और फिर विदूरथ की सृष्टिका अनुभव कैसे हुआ और उनमें उसको कहीं दिन हुआ, कहीं मास, कहीं वर्षों का अनुभवभया सो कालका व्यतिक्रम कैसे हुआ ? हे मुनीश्वर ! इस से स्पष्ट करके कहिये कि, आपके वचन मेरे हृदय में स्थितहों। एकबेर कहने से हृदय में स्थित नहीं होते इससे फिर कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुद्ध संवित् सबका अपना आप है। उस से जैसा संवेदन फुरता है तैसा रूपहो भासता है। कहीं क्षण में कल्पों के समूह बीते भासते हैं और कहीं कल्प में क्षणका अनुभवहोताहै। हे रामजी !

जिसको विषमें अमृत भावना होती है उसको अमृतही हो भासताहै और जिसको अमृतमें विषकी भावना होती है तब वही विषरूप हो भासताहै। किसी पुरुषका कोई शत्रुहोता है पर उसमें वह मित्रकी भावना करता है तो वह मित्ररूपही भासताहै और जिसको मित्रमें शत्रुभावना होती है तब वही शत्रुहो भासता है। हे रामजी! जैसा संवेदन फुरताहै तैसाही स्वरूपहो भासता है। जिसका संवेदन तीव्रभाव के अभ्यास से निर्मलभाव को प्राप्त होता है उसका संकल्प सत् होता है और जैसे चेतता है तैसेही सिद्धहोताहै। इससे संवेदनकी तीव्रता हुई है। हे रामजी! रोगीको एकरात्रि कल्प के समान व्यतीत होतीहै और जो आरोग्य होताहै उसको रात्रि एक क्षण की नाईं व्यतीत होतीहै। एक मुहूर्त्त के स्वप्ने में अनेक वर्षोंका अनुभव करताहै और जानता है कि, मैं उपजाहूं; ये मेरे माता पिता हैं; अब मैं बड़ाहुआ और ये मेरे बान्धव हैं। हे रामजी! एक मुहूर्त्त में इतने भ्रम देखताहै और जागे पर एक मुहूर्त्तभी नहीं बीतता। हरिश्चन्द्रको एक रात्रि में बारह वर्षोंका अनुभव हुआ था और राजा लवण को एक क्षण में सौवर्षका अनुभव हुआ था। इससे जैसा जैसा रूप होकर संवेदन फुरता है तैसाही तैसा होकर भासता है। हे रामजी! ब्रह्मा के एक मुहूर्त्त में मनुष्य की आयुर्बल व्यतीत होजाती है। ब्रह्मा जितने कालमें एक मुहूर्त्तका अनुभव करताहै मनुष्य उतनेही में पूर्ण आयुर्बलका अनुभव करताहै और ब्रह्मा जितने कालमें अपनी सम्पूर्ण आयुर्बलका अनुभव करता है सो विष्णुका एक दिन होताहै। ब्रह्माका आयुर्बल व्यतीत होजाताहै और विष्णुको एक दिनका अनुभव होता है। इससे जैसे जैसे संवेदन में दृढ़ता होती है तैसा २ भान होता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् तुम देखते हो सो संवेदन फुरने में स्थित है। जब संवेदन स्थित होता है तब न दिन भासता है; न राति भासती है; न कोई पदार्थ भासते हैं और न अपना शरीर भासता है केवल आत्मतत्त्वमात्र सत्ता रहती है। इससे तुम देखो कि; सब जगत् मनके फुरने में होताहै। जैसा जैसा मन फुरता है तैसा तैसा रूपहो भासता है। कड़वे में जिसको मीठेकी भावना होतीहै तो कड़वा उसको मीठा होजाता है और मीठे से जिसको कटुक भावना होती है तब मधुर भी उसको कटुकरूप होजाताहै। स्वप्ने और शून्यस्थान में नाना प्रकार के व्यवहार होते भासते हैं और सि २ पड़ा स्वप्ने में दौड़ता फिरता है। इससे जैसा फुरना मनमें होता तैसाही हो भासताहै। हे रामजी! नौका में बैठेहुये पुरुष को नदी के तट वृक्षों सहित दौड़ते भासते हैं। जो विचारवान् हैं वे चलते भासने में उन्हें स्थिरही जानते हैं। और जो पुरुष भ्रमता है उसको स्थिरभूत मन्दिर भ्रमते भासते हैं और जो विचार में दृढ़ है उसको भ्रमते भासने में भी अचलबुद्धि होती है। इससे जैसा २ निश्चय होताहै तैसाही तैसा हो भासता है। हे रामजी! जिसके नेत्र में

दूषण होता है उसको श्वेत पदार्थ भी पीतवर्ण भासता है और जिस के शरीर में वात, पित्त, कफ का क्षोभ होता है उसको सब पदार्थ विपर्य्यय भासते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी आकाशरूप भासती है और आकाश पृथ्वीरूप हो भासता है; चल पदार्थ अचल रूप भासता है और अचल पदार्थ चलता भासता है। हे रामजी! जैसे स्वप्ने में अंगना असत्रूप होती है परन्तु भ्रान्तिसे उसको स्पर्श करके प्रसन्न होता है तो उसकाल में प्रत्यक्षही भासती है और जैसे बालक को परछाहीं में बेताल भासता है सो असत्ही सत्रूपहो भासता है। हे रामजी! शत्रुमें जो मित्रभावना होती है तो वह शत्रुभी मित्र सुहृद्हो भासता है और जो मित्रमें शत्रुभाव होताहै तो वह सुहृद् शत्रुरूप हो भासता है। जैसे रस्सी में सर्प है नहीं परन्तु भ्रमसे सर्प भासता है और भय देताहै तैसेही बांधवोंमें जो बांधवकी भावना न करे तो बांधवभी अबांधवहो भासता है और अबांधवभी भावना के अभावसे बांधव होजाते हैं। हे रामजी! शून्यस्थान में और स्वप्ने में बड़े क्षोभ भासते हैं और निकटवर्त्ती को जागे से कुछ नहीं भासता। स्वप्नेवाले को सुननेका अनुभव होता है और जाग्रत्वाले को जाग्रत्का अनुभव होताहै इत्यादिक पदार्थ विपर्यय भ्रमसे भासते हैं। जब मन फुरताहै तबहीं भासताहै। तैसेही लीलाके भर्त्ताकोभी ऐसी सृष्टि का अनुभव हुआ। जैसे जाग्रत् के एक मुहूर्त्त का स्वप्ने में बहुतकाल का अनुभव होताहै तैसेही लीलाके भर्त्ताको भी हुआ था। जैसी जैसी मन की स्फूर्ति होती है तैसाही तैसा रूप चैतन्य संवित् में भासताहै। हमको सदा ब्रह्मका निश्चय है इससे हमको सब जगत् ब्रह्मस्वरूपही भासता है और जिसको जगत्भ्रम दृढ़है उसको जगत्ही भासता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् भासताहै सो कुछ आदिसे उपजा नहीं—सब आकाशरूप है। रोकनेवाली कोई भीति नहीं है बड़े विस्तार से जगत् है परन्तु स्वप्नवत्है। जैसे थम्भे में बनाने बिना पुतली शिल्पी के मन में भासती है और थम्भे में कुछ बनी नहीं तैसेही आत्मारूपी थम्भाहै उसमें जगत्रूपी पुतलियों को संवेदन रचताहै परन्तु वह कुछ पदार्थ नहीं है आत्मसत्ताही ज्योंकीत्यों है। हे रामजी! जैसे एक स्थान में दो पुरुष लेटेहों और उनमें एक जागताहो और दूसरा स्वप्ने मेंहो तो जो स्वप्ने में है उसको बड़े युद्ध होते भासते हैं और जागेहुये को आकाशरूपहै तैसेही जो प्रबोध आत्मज्ञानवान्है उसको जगत्का सुषुप्तिकी नाईं अभाव है और जो अज्ञानी है उसको नाना प्रकारके व्यवहारोंसहित स्पष्ट भासताहै। जैसे वसन्तऋतु में पत्र, फल और गुच्छे रससहित भासतेहैं तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यतासे जगत् रूप भासतीहै। जैसे स्वर्ण में द्रवता सदा रहतीहै परन्तु जब अग्निका संयोग होताहै तभी भासतीहै। हे रामजी! आत्मा और जगत् में कुछ भेदनहीं। जैसे अवयवी और अवयवों में और पृथ्वी और गन्ध में कुछ भेदनहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेदनहीं।

ब्रह्मसत्ताही संवेदन से जगत्‌रूप होकर भासती है और दूसरी कोई वस्तु नहीं। जब महाप्रलय होताहै और सर्ग नहींहोता तब कार्य्य कारण की कल्पना कोई नहीं होती केवल चिन्मात्र सत्ता होती है और उसमें फिर चिदाकाश जगत् भासता है तो वही रूप हुआ। जो तुम कहो कि, इस जगत्‌का कारण स्मृतिहै तो सुनो; जब महाप्रलय होताहै तब ब्रह्माजी तो विदेहमुक्त होते हैं फिर वह जगत् के कारण कैसे हों और जो तुम स्मृतिका कारण मानो तो स्मृतिभी अनुभव में होती है जो स्मृतिसे जगत् हुआ तौभी अनुभवरूप हुआ। रामजीने पूछा; हे भगवन्! पद्मराजाके मन्त्री, नौकर और सबलोग विदूरथको कैसे जाकर मिले? यह वार्त्ता फिर कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! केवल चेतन संवित् सबका अपना आपहै उस संवित्‌के आश्रय से जैसा संवेदन फुरताहै तैसाही रूपहो भासता है। हे रामजी! जब राजा विदूरथ मृतक होनेलगा तब उसकी वासना उनमें थी और मंत्री, नौकर आदिक राजाके अंगहैं इसकारण वैसेही मंत्री और नौकर राजाको मिले। हे रामजी! जैसी भावना संवेदनमें दृढ़होती है तैसाही रूप हो भासता है। एक चलपदार्थ होते हैं और एक अचल होते हैं जो अचल पदार्थ हैं उनका प्रतिबिम्ब आदर्शमें भासताहै और चलपदार्थ रहता नहीं भासता इससे उसका प्रतिबिम्ब नहीं भासता। तैसेही जिस पदार्थ की तीव्रसंवेगभावना होती है उसी का प्रतिबिम्ब चेतनदर्पण में भासता है अन्यथा नहीं भासता। जैसे तीव्रवेगवान् बड़ानद समुद्र में शीघ्रही जामिलताहै और दूसरे नहीं प्राप्त होसक्ते तैसेही जिसकी दृढ़वासना होती है वह उसके अनुसार शीघ्र जाकर पाताहै। हे रामजी! जिसके हृदयमें अनेक वासना होती हैं और अच्छी तीव्रता होती है उसीकी जय होती है। जैसे समुद्र में अनेक तरङ्गहोते हैं तो कोई उपजता है और कोई नष्ट होजाता; कोई सदृशहोताहै कोई विपर्यय होताहै उसके सदृश मंत्री और नौकरभीहुये। हे रामजी! एक एक चिद् अणुमें अनेक सृष्टि स्थितहोती हैं पर वास्तव में कुछनहीं केवल चिदाकाशही चिदाकाशमें स्थितहै। यह जो जगत् भासताहै सो आकाशही रूपहै जो जाग्रत्‌रूप होकर असत्‌ही सत्‌रूपकी नाईं भासताहै। जैसे पत्र, फल, फूल, वृक्षरूप हैं और वृक्षही ऐसे रूप होकर स्थित हैं तैसेही अनन्तशक्ति परमात्मा अनेकरूप होकर भासता है। हे रामजी! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, त्रिपुटी ज्ञानी को अजन्मापद भासता है और अज्ञानी को द्वैतरूप जगत् होकर भासता है। कहीं शून्य भासताहै; कहीं तम भासताहै और कहीं प्रकाश भासताहै। देश, काल, क्रिया द्रव्यआदिक सब जगत् आदि, अन्त और मध्य से रहित स्वच्छ आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै जैसे सोम जलमें जो तरंग होते हैं सो जलहीरूपहैं तैसेही अहं,त्वम् आदिक जगत् भी बोधरूप है और सदा अपने आपमें स्थित है—उसमें द्वैतकल्पनाका अभाव है॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्रकरणेलीलोपा० प्रयोजनवर्णनन्नामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४३

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अहं त्वम् आदिक दृश्य भ्रांति कारण बिना परमात्मा से कैसे उदय हुई है? जिस प्रकार में समझूं उसी प्रकार मुझको फिर समझाइये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ कारण कार्य्य जगत् भासता है वह परमात्मा से उदय हुआ है अर्थात् संवेदन के फुरने से इकट्ठे हो पदार्थ भास आये हैं और सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वात्मा, अजरूप अपने आप में स्थित है। हे रामजी! यह सर्व शब्द और अर्थ रूप कलना जो भासी है सो ब्रह्मरूप है; ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं और ब्रह्मसत्ता सर्व शब्द अर्थ की कलना से रहित अपने आपमें स्थितहै। जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं और तरङ्ग जल से भिन्न नहीं तैसेही ब्रह्म से भिन्न जगत् नहीं—ब्रह्मस्वरूपही है। हे रामजी! ईश्वर जो आत्मा है सो जगत् रूप है जगत् ईश्वर रूप है। जैसे सुवर्ण भूषणरूप है और भूषण स्वर्ण रूप है अर्थात् सुवर्ण में भूषण शब्द और अर्थ कल्पित हैं—वास्तव नहीं—तैसेही जगत् आत्मा का आभास रूप है—वास्तव में कुछ नहीं। हे रामजी! जो कुछ जगत् है सो ब्रह्मरूप है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे अवयव अवयवी से भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से जो कुछ अवयवी जगत् है सो भिन्न नहीं। आत्मा में संवेदन के फुरने से तन्मात्रा फुरी है और आत्मामें ही इनका उपजना सम हुआहै; पीछे विभाग कल्पना हुई है इसलिये उनसे जो भूत हुये हैं वे आत्मा से अन्य नहीं। जैसे शिला में चितेरा भिन्न भिन्न पुतली कल्पता है सो शिलारूपही हैं; भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहं त्वम् आदिक जगत् चिद्घन आत्मा में मनरूपी चितेरे ने कल्पाहै सो चिद्घनरूपही है कुछ भिन्न नहीं। जैसे जल में तरंग स्थित होते हैं सो जलरूपही हैं; तरंगों का शब्द और अर्थ जलमें कोई नहीं; तैसेही आत्मा जगत् स्थित है पर जगत् के शब्द और अर्थ से रहित है। हे रामजी! जगत् परमपद से भिन्न नहीं और परमपद जगत् बिना नहीं; केवल चिद्रूप अपने आप में स्थित है। जैसे वायु और स्पंद में कुछ भेद नहीं है स्पंद और निस्स्पंद दोनों रूप वायुकेही हैं। जब स्पन्दरूप होताहै तब स्पर्शरूप होकर भासता है और निस्स्पंद हुये स्पर्श नहीं भासता; तैसेही जगत् और ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं; जब संवेदन किंचित्रूप होता है तब जगत्रूप हो भासता है और संवेदन के निस्स्पंद हुये से जगत् नहीं भासता पर आत्मसत्ता सदा एकरूप है। हे रामजी! जब संवेदन फुरने से रहित होकर आत्मपद में स्थितहो तब यदि संकल्परूप जगत् फिरभी भासे तो आत्मरूपही भासे। जैसे वायुके स्पंद और निस्स्पंद दोनोंरूप अपने आपही भासते हैं तैसेही इसको भी भासता है। जैसे वायु में स्पंदता वायुरूप स्थित है तैसेही आत्मामें जगत् आत्मरूप से स्थित है। जैसे तेज अणुका प्रकाश जब मंदिर में होता है तब बाहर भी प्रकट होताहै तैसेही जब केवल संवित्मात्र में संवेदन स्थित होताहै तब

फुरने में भी संवित्मात्रही भासता है। हे रामजी! जैसे रस तन्मात्रामें जल स्थित होता है तैसेही आत्मामें जगत् स्थित है। जैसे गन्धतन्मात्राकेभीतर सम्पूर्ण पृथ्वी स्थितहै तैसे ही किञ्चनरूप जगत् आत्मा में स्थितहै। वह निराकार और चिन्मात्ररूप आत्मसत्ता उदय और अस्त से रहित अपने आपमें स्थित है; प्रपंच भ्रम उस में कोई नहीं। हे रामजी! जे ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको दृढीभूत जगत् भी आकाशरूप भासता है और जे अज्ञानी हैं उनको असत्रूप जगत्भी सत्रूपहो भासताहै। हे रामजी! जैसा जैसा संवेदन चित्त संवित् में फुरता है तैसाही तैसारूप जगत् हो भासता है। ये जितने तत्त्व और तन्मात्राहैं वे सब चित्त संवेदन के फुरने से स्थित हुये हैं; जैसी जैसी उससे स्फूर्ति होती है तैसी २ होकर भासती है क्योंकि; आत्मा सर्व्वशक्तिमान् है इस लिये जिस २ पदार्थ का फुरना फुरता है वही अनुभवमें सत्रूप होकर भासता है। पंचज्ञानेन्द्रिय और छठे मन का जो कुछ विषय होताहै वह सब असत्रूपहै और आत्मसत्ता इनसे अतीतहै। विश्वभी क्यारूपहै; जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं तैसेही आत्मामें जगत् स्थितहै। जैसे तेज और प्रकाश अनन्यरूप हैं तैसेही आत्मा और जगत् अनन्यरूपहैं। जैसे थम्भेमें शिल्पी पुतलियां देखताहै; जैसे मृत्तिका के पिंडमें कुम्हार बर्तन देखताहै और जैसे भीत पर चितेरा रंगकीमूरतें लिखताहै सो अनन्यरूपहैं तैसेही परमात्मा में सृष्टि अनन्यरूप है। हे रामजी! जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा का जल और तरंगें असत्हैं पर सत्रूपहो भासती हैं; तैसेही आत्मा में असत्रूप जगत् त्रिलोकी भासती है। जब चित्तसंवित्में संवेदन फुरताहै तब जगत् भासताहै और जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत् भी नहीं भासता। जगत् कुछ ब्रह्मसे भिन्न नहीं। जैसे बीज और वृक्षमें; क्षीर और मधुरतामें; मिरच और तीक्ष्णतामें; समुद्र और तरंग में और वायु और स्पंद में कुछ भेद नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे अग्नि में उष्णता स्वाभाविक स्थित है तैसेही निराकार आत्मामें सृष्टि स्वाभाविक ही स्थित है। हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मरूपी रत्नका किञ्चनहै; जैसा जैसा किञ्चन होता है तैसाही तैसा होकर भासता है। अकारण पदार्थ अकारणही होता है और जिस अधिष्ठानमें भासताहै उससे अनन्यरूप होताहै; अधिष्ठानसे भिन्न उसकी सत्ता नहीं होती; तैसेही यह जगत् आत्मा में अनन्यरूप होताहै—कुछ उपजा नहीं परन्तु संवेदन फुरने से भासताहै। जितने जगत् और वासनाहैं उनका बीज संवेदनहै इससे वे भ्रम हैं। इसलिये संवेदन के अभावका पुरुषार्थ करो; जब संवेदन का अभाव होगा तब जगत् भ्रम नष्टहोगा। वास्तव में कुछ न उपजाहै और न कुछ नष्ट होताहै; सर्व शांत रूप चिद्घन ब्रह्मशिला घनकी नाईं अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! चित्परमाणुमें चैत्यतासे अनेकसृष्टि भासती हैं। उन सृष्टियों में जो परमाणुहैं उन परमाणुओं के भीतर

और सृष्टि स्थित हैं उनकी कुछ संख्यानहीं । जैसे जलमें अनेक तरंग होते हैं उनमें से कोई गुप्त और कोई प्रकट होतेहैं पर वे सब जलकी शक्तिरूपहैं और जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था जीवोंके भीतर स्थितहैं पर कोई गुप्तहै कोई प्रकटरूप है । हे रामजी ! जबतक संवेदन द्वैतकेसाथ मिलाहुआहै तबतक सृष्टिका अन्तनहीं । जब चित्त उपशमहोगा तब जगत् भ्रम मिटजावेगा । जब भोगों में कुछभी वृत्ति न उपजे तब जानिये कि, आत्मपद प्राप्तहोगा । यह श्रुतिका निश्चयहै । हे रामजी ! ज्यों २ ममत्व दूरहोताहै त्यों २ बन्धनोंसे मुक्तहोताहै । जब अहंभाव अर्थात् जीवत्वभाव निर्वाणहोता है तब जन्मोंकी सम्पदा नष्ट होजाती हैं केवल शुद्धरूपही होताहै और तब स्थावर जंगमरूप जगत् सब आत्मरूप प्रतीतहोताहै । जैसे समुद्रको तरङ्ग और बुद्बुदे सब अपने आपरूप भासते हैं तैसेही ज्ञानवान्को सब जगत् आत्मरूप भासताहै । हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्तामें जो संवेदन फुराहै उसने आपको ब्रह्मरूप जाना और भावना करके संकल्परूप नाना प्रकारका जगत् रचाहै पर उसको अन्तर अनुभव असत्यरूप किया । उसमें कहीं निमेषमें अनेक युगोंका अन्त भासताहै और कहीं अनेकयुगों में एक निमेष का अनुभव होताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगत्किञ्चनवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चिद्परमाणुमें जो एक निमेषहोताहै उसके लाखवेंभाग में जगतोंके अनेक कल्प फुरते हैं । और उन सृष्टियोंमें जो परमाणुहैं उनमें सृष्टि फुरती हैं । जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं सो जलरूपही हैं तरङ्ग शब्द और उसका अर्थ भ्रम रूपहै—तैसेही आत्मामें भ्रमरूप अनेक सृष्टि फुरती हैं । जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाकी नदी चलती दृष्टिआती है तैसेही आत्मामें यह जगत् भासताहै । जैसे स्वप्नसृष्टि और गंधर्वनगर भासतेहैं; जैसे कथाके अर्थ चित्तमें फुरतेहैं और सङ्कल्पपुर भासताहै; तैसेही जगत् असत्रूप सत् हो भासता है । इतनासुन रामजी ने पूछा; हे ज्ञानवानों में श्रेष्ठ ! जिस पुरुषको विचारद्वारा सम्यक्ज्ञान हुआ और निर्विकल्प आत्मपदकी प्राप्तिहुई है उसको अपनेसाथ देह कैसे भासतीहै; उसकी देह कैसे रहती है और देह प्रारब्ध से उसका शरीर कैसे रहताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मशक्तिमें संवेदन फुराहै उसका नाम नीतिहुआहै । उसमें जो संभावनाकी है कि, यह पदार्थ ऐसे होगा; इससे होगा और इतनेकाल रहेगा वैसेही अनेक कल्पपर्यन्त होताहै । जितनाकाल उसने धाराहै उतनेकालका नाम नीतिहै । महासत्भी उसीको कहते हैं और महाचेतनाभी उसीको कहते हैं । महाशक्तिभी उसी का नामहै और महाअदृष्ट वा महाकृपा भी वही है और महाउद्भव भी उसीको कहतेहैं । अर्थ यह कि, वह नीति अनन्त ब्रह्मांडोंकी उपजानेवाली है । जैसा फुरना दृढ़हुआहै तैसाही रूपहोकर स्थितहै । यह स्थावररूपहै

यह जंगमहै; यह दैत्यहै; यह देवताहै; यह नागहै; यह नागिनीहै; ब्रह्मासे तृणपर्यन्त जैसी उसमें अभ्यासहै उसीप्रकार स्थितहै । स्वरूपसे ब्रह्मसत्ता का व्यभिचार कदाचित् नहीं हुआ वह तो सदा अपने आपमें स्थितहै । जो ज्ञानवान् पुरुषहै उसको सब ब्रह्मस्वरूप भासताहै और जो अज्ञानी है उसको जगत् और नीतिभी भिन्न भासती है । ज्ञानवान् को सब अचल ब्रह्मसत्ताही भासती है और अज्ञानियों को चलनरूप जगत् भासता है । वह जगत् ऐसाहै जैसे कि; आकाश में वृक्ष भासते हैं और शिलाके उदरमें मूर्ति होतीहै । जो ज्ञानवान् हैं उनको सर्ग और निमित्त सब ज्ञानरूपही भासते हैं । जैसे अवयवीके अवयव अपनाहीरूप होतेहैं तैसेही ब्रह्मसत्ताके अवयव ब्रह्मनित्य सर्गादिक अपनाही रूपहैं । हे रामजी ! उसी नीतिको दैवभी कहते हैं । जो कुछ किसी को प्राप्त होताहै वह उसी दैवकी आज्ञासे प्राप्तहोताहै क्योंकि; आदिसे यही निश्चयधराहै कि, इस साधनसे यह फल प्राप्तहोगा । जैसा साधन होताहै तैसाही फल अवश्य सबको उस दैवसे प्राप्तहोता है । इसकारण नीतिको दैव कहते हैं और दैवको नीतिकहते हैं । हे रामजी ! पुरुष जो कुछ पुरुषार्थ करता है उसके अनुसार फल प्राप्त होताहै । इसी कारण इसकानाम नीति है और इसीका नाम पुरुषार्थ है । तुमने जो मुझसे दैव और पुरुषों का निर्णय पूछा और मैंने कहा उसीकी तुम पालना करो । इसीका नाम पुरुषार्थहै और इसका जो फल तुमको प्राप्तहो उसका नाम दैवहै । हे रामजी ! जो पुरुष ऐसा दैवपरायण हुआ है कि; मुझको जो कुछ दैव भोजन करावेगा सोही करूंगा और मौनधारी होके अक्रियहो बैठे उसको जो आय प्राप्तहो सोभी नीतिहै और जो पुरुष भोगों के निमित्त पुरुषार्थ करताहै वह भोगोंको भोगकर मोक्षपर्यन्त अनेक शरीरोंको धारेगा; यह भी नीतिहै । हे रामजी ! जो आदि संवित् में संवेदन फुरकर भवितव्यता धरी है उसही प्रकार स्थितहै उसका नाम भी नीतिहै । उस नीतिको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रभी उल्लंघन नहीं करसक्ते तो और कैसे उल्लंघिसके । हे रामजी ! जो पुरुष पुरुषार्थको त्यागबैठे हैं उनको फल नहीं प्राप्तहोता—यहभी नीतिहै और जो पुरुष फलके निमित्त पुरुषार्थ करताहै उसको फल प्राप्त होताहै—यह भी नीतिहै । जो पुरुष प्रयत्नको त्यागकर निष्क्रियहो बैठे हैं और मनसे विषयों की चित्तमें वासना करते हैं वे निष्फल ही रहते हैं और जो पुरुष कर्तृत्वको त्यागकर चित्तकी वृत्तिसे शून्य दैवपरायणहो-रहे हैं और विषयों की चित्तमें वासना नहीं करते उनको सफलताही होती है क्योंकि; फुरने से रहित होनाभी पुरुषार्थ है । यह भी नीति है कि, अर्थ चिन्तवन करनेवालेको प्राप्त नहीं होती और अयाचकको प्राप्तहोती है । हे रामजी ! पुरुषार्थ सफल भी नहीं है जो आत्मबोध के निमित्त न हो । जब ब्रह्मसत्ताकी ओर तीव्र अभ्यास होताहै तब परमपदकी अवश्य प्राप्ति होती है और जब परमपद पाया तब सब जगत् चिदाकाशरूप

हो भासताहै। नीति आदिक जो विस्तार कहे हैं सो सर्व भ्रमरूपहैं केवल ब्रह्मसत्ताही ऐसे हो भासती है। जैसे पृथ्वी में रस सत्ताहै और वह तृणवत्, गुच्छे और फूल रूपहोकर स्थितहैं तैसेही नीति आदिक सबजगत् होकर ब्रह्मही स्थित है; और कुछवस्तु नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेदैवशब्दार्थविचारोनामपंचचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ तुमको भासताहै सो सर्व प्रकार, सर्वदा और सर्व ओरसे ब्रह्मतत्त्वही सर्वात्मा होकर स्थित हुआहै। वह अनन्त आत्माहै; जब उसमें चित्तशक्ति प्रकट होतीहै अर्थात् शुद्ध चैतन्यमात्र में अहंस्फूर्त्तिहोती है तब जगत् भासताहै; कहीं उपजताहै; कहीं नष्ट होताहै; कहीं हुलास करताहै; कहीं चित्त भासताहै; कहीं किंचनहै; कहीं प्रकटहै और कहीं अप्रकट भासताहै। निदान नानाप्रकार का जगत् है जहां जैसा तीव्र अभ्यास होताहै वहां वैसा होकर भासताहै क्योंकि; आत्मा सर्व शक्ति और सर्व रूपहै; जैसा २ फुरना उसमें दृढ़होताहै वही रूपहोकर भासताहै। हे रामजी ! ये जो नानाप्रकारकी शक्तियां कही हैं सो वास्तव में आत्मा से कुछ भिन्न नहीं; बुद्धिमानोंने समझाने के निमित्त नानाप्रकारके विकल्प जाल कहे हैं आत्मा में विकल्प जाल कोई नहीं। जैसे जल और उसकी तरङ्गमें; सुवर्ण और भूषणों में और अवयवी में और अवयवमें कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और शक्तिमें कुछ भेद नहीं । हे रामजी ! एक संवित् है और एक संवेदन है; संवित् वास्तव है और संवेदन कल्पना है। जब संवित् में चिन्मात्र संवेदन फुरता है तो वह जैसे चेतता जाता है तैसेही होकर स्थित होता है। शुद्धचिन्मात्र संवित् में भीतर और बाहर कल्पना कोई नहीं । जब स्वभावसे किञ्चनरूप संवेदन होताहै तब आगे कुछ देखताहै और उस देखने से नानाप्रकारके आकार भासते हैं पर वह और कुछ नहीं सर्व ब्रह्मही है। हे रामजी ! शक्ति और शक्तिमान् में भेद अज्ञानी देखते हैं और अवयवी और अवयव भेदभी कल्पते हैं । परमार्थ में कुछ भेद नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है उसके आश्रय सङ्कल्प आभास होता है। जब सङ्कल्पकी तीव्रता होती है तब वह सत्हो अथवा असत् परन्तु उसही का भान होताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबीजावतारोनामषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जो सर्वगत देव, परमात्मा महेश्वर है यह स्वच्छ अनुभव, परमानन्दरूप और आदि अन्त से रहित है। उस शुद्धचिन्मात्र परमानन्दसे प्रथम जीव उपजा; उससे चित्त उपजा और चित्त से जगत् उपजा है। रामजीने पूछा; हे भगवन् ! अनुभव परिणाम से जो शुद्धब्रह्मतत्त्व; सर्व व्यापी, द्वैत से रहित स्थित है उस में तुच्छरूप जीव कैसे सत्यताको पाताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ब्रह्म सदा भास है अर्थात् असत् रूप जगत् उससे सत् भासता है और स्वच्छ है अर्थात्

आभासरूपी जगत् से भी रहितहै। बृहत् है अर्थात् बड़ा है बड़ाभी दो प्रकारकाहै; अविद्याकृत जगत् से जो बड़ाहै सो अविद्याकी बड़ाई मिथ्याहै। ब्रह्मबड़ाई सर्वात्मक रूपहै सो सर्व देश, सर्वकाल और सर्ववस्तुसे पूर्णहै और अविद्याकृत बड़ाई देश,काल वस्तुसे रहित निराकारहै सो ज्ञानीका विषयहै इससे बृहत् है और परम चेतन है। भैरवहै अर्थात् जिसके भयसे चन्द्रमा, सूर्य्य, अग्नि, वायु और जल अपनी मर्य्यादा में चलते हैं। परमानन्दहै, अविनाशी है सर्व ओरसे पूर्ण है; समहै; शुद्ध है और अचिंत्यहै अर्थात् वाणी से नहीं कहाजाता और क्षोभसे रहित चिन्मात्र है ऐसी आत्मसत्ता ब्रह्मका जो स्वभाव सम्पत् है उसी का नाम जीव है अर्थात् जो शुद्ध चिन्मात्रमें अहंफुरनाहै उसी का नाम जीवहै। उस अनुभव रूपी दर्पण में अहंरूपी प्रतिबिम्बफुरने को जीव कहते हैं। जीव अपने शांतपदको त्यागेकी नाईं स्थित होताहै सो चिदात्माही फुरने के द्वारा आपको जीवरूप जानता है। जैसे समुद्र द्रवता से तरंगरूप होताहै पर समुद्र और तरंग में कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्मही जीवरूपहै। जैसे वायु और स्पन्द और बरफ और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जीवमें कुछ भेद नहीं। हे रामजी! चित्तरूपी आत्मतत्त्वकोही अपने स्वभाव वशसे मायाकरके संवेदनसहित जीवरूप कहते हैं वह जीव आगे फुरने से बड़े विस्तार धारण करताहै। जैसे इन्धन से अग्निके बहुत अणु होते हैं और बड़े प्रकाशको प्राप्त होताहै तैसेही जीव फुरने से जगत्रूप को प्राप्त होता है। जैसे आकाशमें नीलता भासती है सो नीलता कुछ भिन्न वस्तु नहीं है तैसेही अहंभाव ते ब्रह्ममें जीवरूप भासता है और अहंकृत को अङ्गीकार करके कल्पितरूप की नाईं स्थित होताहै। जैसे घनकी शून्यतासे आकाश में नीलता भासती है तैसेही स्वरूप के प्रमादसे देश, काल वस्तुके परिच्छेद सहित अहंकाररूपी जीव भासते हैं पर वास्तव में चिदाकाशही चिदाकाश में स्थित है। जैसे वायु से समुद्र तरङ्गरूप होता है तैसेही संवेदन फुरने से आत्मसत्ता जीवरूप होती है। जीवकी चैत्योन्मुखत्वताके कारण इतनी संज्ञाहैं—चित्त, जीव, मन, बुद्धि, अहंकार मायाप्रकृति सहित ये सब उसही के नामहैं। उसजीवने सङ्कल्पसे पंचभूत तन्मात्रा को चेता तो उन पंचतन्मात्राके आकारसे अणुरूपहोकर स्थितहुआ; उससे अणुअनउपजेही उपजेकी नाईं स्थितहुये और भासने लगे। फिर उसी चित्त संवेदनने अणु अङ्गीकार करके जगत् को रचा और जैसे बीज से सत्अंकुर वृक्ष होता है तैसेही संवेदन ने विस्तारपाया। प्रथम वह एकअण्डरूपी होकर स्थितहुआ और फिर उस ने अण्डाको फोड़ा। जैसे गन्धर्वनगर और स्वप्नसृष्टि भासती है तैसेही उसमें जगत् भासने लगा। फिर उसमें भिन्न भिन्न देह और भिन्न भिन्न नाम कल्पे। जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना कल्पताहै और उनका भिन्न भिन्न नाम रखताहै तैसेही स्थावर, जंगम

आदिकनाम । कल्पनाकी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश है-इनपांचोंभूतोंकी सृष्टि संकल्पसे उपजीहै । हे रामजी ! आदि ब्रह्मसे जो जीवफुराहै उसका नाम ब्रह्माहै । वह ब्रह्मा आत्मामें आत्मरूप होकर स्थितहै और उससे क्रमकरके जगत् हुआहै । जैसे वह चेतताहै तैसेही होकर स्थित होताहै । जैसे समुद्र में द्रवतासे तरंगहोते हैं, तैसेही ब्रह्ममें चित्तस्वभावसे जीवहोताहै । वह जीव जब प्रमादसे अनात्मभाव को धारणकरताहै तब कर्म्मों से बन्धमान होताहै । जैसे जल जब दृढ़ जड़ताको अंगीकार करताहै तब बरफरूप होकर पत्थरके समान होजाता है; तैसे जीव जब अनात्ममें अभिमान करता है तब कर्मों के बन्धन में आताहै । हे रामजी ! कर्मोंका बीज सङ्कल्पहै और सङ्कल्प जीवसे फुरता है । जीवत्वभाव तब होता है जब शुद्धचेतनमात्र स्वरूप से उत्थान होताहै । उत्थान के अर्थ ये हैं कि, जब प्रमादहोता है तब जीवत्वभाव होताहै और जब जीवत्वभाव होताहै तब अनेक संकल्प कल्पना फुरती हैं । उन संकल्प कल्पनाओं से कर्महोते हैं; और कर्मोंसे जन्म, मरण आदिक नानाप्रकार के विकार होते हैं । जैसे बीजसे अंकुर और पत्रहोते हैं; फिर आगे फूल, फल और टास होतेजाते हैं तैसेही संकल्प कर्मोंसे नानाप्रकारके विकार होते हैं । जैसे२ कर्म जीव करताहै उनके अनुसार जन्म, मरण और अध-ऊर्ध्वको प्राप्तहोता है । हे रामजी ! मनके फुरने का कर्म्म नाम है; फुरनेकाही नाम चित्तहै; फुरनेकाही नाम कर्म्महै और फुरनेकाही नाम दैवहै । उसही से जीवको शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होताहै । सबका आदि कारण ब्रह्महै; उससे प्रथम मन उत्पन्न हुआ फिर उस मनही ने सम्पूर्ण जगत्की रचनाकी है । जैसे बीजसे प्रथम अंकुर होताहै और फिर पत्र, फूल, फल और टासहोते हैं तैसेही ब्रह्म से मन और जगत् उपजा है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबीजांकुरवर्णननामसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आदि कारण ब्रह्मसे मन उत्पन्न हुआहै । वह मन संकल्प रूपहै और मनसेही सम्पूर्ण जगत् हुआहै । वह मन आत्मा में मनत्वभाव से स्थितहै और उस मननेही भाव अभावरूपी जगत् कल्पाहै । जैसे गन्धर्वकी इच्छा से गन्धर्व नगर होता है तैसेही मनसे जगत् होता है । हे रामजी ! आत्मामें द्वैतभेद की कुछ कल्पना नहीं । इसमनसेही ऐसी संज्ञाहुई है । ब्रह्म, जीव, मन, माया, कर्म, जगत् और द्रष्टा आदि सबभेद मनसे हुये हैं; आत्मामें कोई भेद नहीं । जैसे समुद्र में तरंग उछलते और बड़े विस्तार धारणकरते हैं तैसेही चित्तरूपी समुद्रमें संवेदन से जो नानाप्रकार जगत् विस्तार पाताहै सो असत्रूपी है क्योंकि; स्थित नहीं रहता और सदा चलरूप है और जो अधिष्ठान स्वरूपभावसे देखिये तो सत्रूप है । इससे द्वैत कुछ न हुआ । जैसे स्वप्नेका जगत् सत् असत्रूप चित्तसे

भासताहै तैसेही सत् असत् रूप यह जगत् भासताहै। वास्तव में कुछ उपजा नहीं चित्त के भ्रमसे भासता है। जैसे इन्द्रजाली की बाजी में जो नानाप्रकार के वृक्ष और औषधि भासते हैं सो भ्रममात्र हैं तैसे यह जगत् भ्रममात्र है। हे रामजी! यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्नाहै और मन के भ्रमसे सत्होकर भासता है। जैसे बालक भ्रम से परछाहीं में भूतकल्पता है और भयपाता है तैसेही यह पुरुष चित्त के संयोगसे द्वैत कल्पके भय पाताहै। जैसे विचार किये से बैताल का भय नष्टहोताहै तैसेही आत्म-ज्ञानसे भयआदिक विकार नष्ट होजातेहैं। हे रामजी! आत्मा, अनादि, दिव्यस्वरूप और अंशांशी भाव से रहित, शुद्ध चैतन्यरूप है। जब वह चेतन संवित् चैत्योन्मुखत्व होताहै तब चित्त अर्थात् जो चेतनताका लक्षण है उससे जीव कल्पना होती है। उस जीवमें जब अहंभाव होताहै कि, 'मैंहूँ' तब उससे चित्त फुरताहै; चित्तसे इन्द्रियां होती हैं उन इन्द्रियों से देहभाव होताहै और उस देह भ्रम से मलिन हुआ नरक, स्वर्ग, बन्ध, मोक्षआदिकी कल्पना होती है जैसे बीजसे अंकुर, पत्र, फूल, फल और टास होतेहैं तैसेही अहंभावसे जगत् विस्तार होताहै। हे रामजी! जैसे देह और कर्मों में कुछभेद नहीं तैसेही ब्रह्म और चित्तमें कुछभेद नहीं। जैसे चित्त और जीवमें कुछ भेद नहीं तैसेही चित्त और देहमें कुछ भेद नहीं। जैसे देह और कर्मों में कुछ भेद नहीं तैसेही जीव और ईश्वर में कुछ भेद नहीं और तैसेही ईश्वर और आत्मा में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! सर्वब्रह्म स्वरूपहै; द्वैत कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवविचारोनामअष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो नानात्व भासता है सो वास्तव एक ब्रह्मस्वरूप है, चैत्यता से एक का अनेक रूप हो भासताहै। जैसे एक दीपसे अनेक दीप होते हैं तैसेही एक परब्रह्मसे अनेकरूपहो भासते हैं। हे रामजी! यह असत्रूपी जगत जिस में आभासहै उस आत्मतत्त्वका जब पदार्थ ज्ञान होताहै तब चित्त में जो अहं-भावहै सो नष्ट होजाताहै और उस अहंभावके नष्ट हुये सब शोक नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! जीव चित्त रूपीहै और चित्त में जगत् हुआहै। जब चित्त नष्ट हो तब जगत् भ्रमभी नष्ट होजावेगा। जैसे अपने चरणमें चर्मकी जूती पहनते हैं तो सर्व पृथ्वी चर्मसे लपेटी प्रतीत होतीहै और तापकण्टक नहीं लगतेहैं तैसेही जब चित्तमें शांति होती है तब सर्व जगत् शांतरूप होताहै। जैसे केले के थम्भमें पत्रोंके सिवाय अन्य कुछ सार नहीं निकलता तैसेही सब जगत् भ्रममात्र है और इससे सारकुछ नहीं निकलताहै। हे रामजी! इतनाभ्रम चित्त से होताहै। बाल्यावस्था में क्रीड़ा करता फिरताहै; यौवन अवस्था धारण करके विषयों को सेवताहै और वृद्धावस्था में चिन्तासे जर्जरीभूत होताहै फिर मृतक होकर कर्मों के अनुसार नरक स्वर्ग में चलाजाताहै। हे रामजी!

यह सबमनका नृत्यहै। मनहींभ्रमताहै जैसे नेत्रदूषणसे आकाशमें दूसराचन्द्रमा भासताहै तैसेही अज्ञानसे जगत् भ्रम भासता है। जैसे मद्यपानकरके वृक्ष भ्रमते भासते हैं तैसेही चित्तके संयोगसे भ्रमकरके जगत्द्वैत भासतेहैं। जैसे बालक लीलाकरके भ्रमसे जगत्को चक्रकीनाईं भ्रमता देखताहै तैसेही चित्तकेभ्रमसे जीव जगत्भ्रम देखताहै। हे रामजी! जब चित्त द्वैतनहीं चेतता तबयह द्वैतभ्रम मिटजाताहै। जबतक चित्तसत्ता फुरती है तबतक नानाप्रकारका जगत् भासताहै और शांतिनहींपाता और जबघनचेतनता पाताहै तब शान्तिपाकर जगत्भ्रम मिटजाताहै। जैसे पपीहा बकता है और शान्तिवान् नहींहोता पर घनवर्षासे तृप्तहोकर शान्तहोताहै तैसेही जब जीव महाचैतन्य घनताकोप्राप्त होताहै तब शांतिवान् होताहै तबवह चाहे व्यवहार में हो अथवा तूष्णीरहे सदा शांतिवान् होताहै। हे रामजी! जब चित्तकी चैतन्यता फुरती है तब जगत्भ्रमसे नानाप्रकारके बिकारदेखताहै और भ्रमसेही ऐसे देखताहै कि, मैं उपजाहूं, अबबड़ा हुआ हूं और अब मैं मरूंगा। पर वास्तवमें जीव चेतन ब्रह्मसे अनन्यस्वरूप है। जैसेवायु और स्पन्दमें कुछभेदनहीं तैसेही ब्रह्म और चैतन्यतामें कुछभेदनहीं जैसे वायु सदारहताहै परजब स्पन्दरूप होताहै तब स्पर्शकरता भासताहै तैसेही चैतन्यता मिटतीनहीं। ब्रह्मकी चेतनाहो तब जगत्भ्रम मिटजाता है और केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्पभ्रम होताहै और रस्सी के यथार्थ जानेसे सर्प भ्रम मिटजाताहै तो रस्सीही भासती है; तैसेही ब्रह्मके अज्ञानसे जगत् भ्रम भासता है और जब चित्तसे दृढ़चैत्यता भासती है तब भ्रम पदार्थका ज्ञानहोता है और तभी जगत् भ्रमभी मिटजाताहै केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है। हे रामजी! दृश्यरूपी व्याधिरोग लगा है और उस रोगका नाशकर्त्ता संवित्मात्र है जबतक चित्तबहिर्मुख होकर दृश्यको चेतताहै तबतक शान्त नहीं होता और जब सर्व वासना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित अन्तर्मुख होगा तब उसही कालमें मुक्तिरूप शान्तहोगा—इसमें कुछ संशयनहीं। जैसे रस्सी दूरके देखने से सर्प भासती है और जब निकटहोकर देखे तब सर्प भ्रम मिटजाता है रस्सीही भासती है; तैसेही आत्माका निवृत्तरूप जगत् है; जब बहिर्मुखहो के देखताहै तब जगत्ही भासताहै और जब अन्तर्मुख होके देखताहै तब जगत्भ्रम मिटकर आत्माही भासताहै। हे रामजी! जिसमें अभिलाषाहो उसकोत्याग दे। ऐसे निश्चयसे मुक्ति प्राप्त होती है त्यागका यत्नकुछ नहीं। महात्मा पुरुषप्राणोंको तृणकीनाईं त्यागदेते हैं और बड़ेदुःखको सहरहतेहैं। तुमको अभिलाषा त्यागनेमेंक्या कठिनताहै? हे रामजी! आत्माके आगे अभिलाषाही आवरणहै। अभिलाषाके होते आत्मानहीं भासताहै। जैसे बादलों के आवरणसे सूर्य नहीं भासता और जब बादलोंका आवरण नाश होताहै तब सूर्य भासताहै; तैसेही अभिलाषाके निवृत्तहुये आत्मा

भासता है। इससे जो कुछ अभिलाषा उठे उसकोत्यागो और निरभिलाषा होकर आत्मपदमें स्थितहो। प्रकृत आचार देह और इन्द्रियों में ग्रहणकरो और जो कुछ त्याग करनाहो उसको त्यागकरो परदेहमें ग्रहणत्यागकी बुद्धिनहो। हे रामजी! जो तुम सम्पूर्ण दृश्यकी इच्छा त्यागोगे तो जैसे हाथमें बेलफल प्रत्यक्ष होताहै और जैसे नेत्रोंके आगे प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष भासताहै तैसेही अभिलाषाके त्यागसे आत्मपद तुमको प्रत्यक्ष भासेगा और सब जगत् भी आत्मरूपही भासेगा। जैसे महाप्रलयमें सब जगत् जलमें भासता है और कुछ दृष्टिही नहीं आता तैसेही आत्मपदसे भिन्न तुमको कुछ न भासेगा। आत्मतत्त्वको न जानने काही नाम बन्धनहै और आत्मपदका जाननाही मोक्ष है और मोक्षकोई नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसंश्रितउपशमयोगेनामएकोनपंचाशात्तमस्सर्गः ४९॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! मन क्योंकर उत्पन्न हुआ है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ब्रह्मअनन्तशक्तिहै और उसमें अनेक प्रकार का किंचन होताहै। जहां जहां जैसी जैसी शक्ति फुरती है तहां २ तैसाही तैसा रूपहोकर भासता है। जब शुद्ध चिन्मात्रसत्ता चेतन में फुरती है कि, 'अहंअस्मि, तब उस फुरनेसे जीव कहाताहै। वही चित्त शक्ति सङ्कल्प का कारण भासती है। जब वह दृश्यकी ओर फुरती है तब जगत् दृश्य होकर भासताहै और नाना प्रकार के कार्य्य-कारण हो भासते हैं। रामजी ने फिर पूछा कि, हे मुनियों में श्रेष्ठ! जो इस प्रकारहै तो दैव किसका नामहै; कर्म क्याहै और कारण किसको कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फुरना अफुरना दोनों चिन्मात्रसत्ताके स्वभावहैं। जैसे फुरना अफुरना दोनों वायुके स्वभावहैं परन्तु जब फुरताहै तब आकाश में स्पर्शहोकर भासता है और जब चलने से रहित होताहै तब शान्त होजाता है; तैसेही शुद्ध चिन्मात्रमें जब चैत्यताका लक्षण, 'अहंअस्मि' अर्थात् 'मैंहूं' होता है तब उसका नाम 'स्पन्द बुद्धीश्वर' कहते हैं। उससे जगत् दृश्यरूपहो भासताहै। उस जगत् दृश्यसे रहित होनेको निस्पन्द कहते हैं। चित्तके फुरनेसे नानाप्रकार जगतहो भासताहै और चित्तके अफुरहुये जगत्भ्रम मिटजाता है और नित्य शांत ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है। हे रामजी! जीव, कर्म और कारण ये सब चित्तस्पन्दके नाम हैं और चित्तस्पन्दमें भिन्न अनुभव नहीं, अनुभवही चित्तस्पन्द हुयेकी नाईं भासता है। जीव, कर्म और कारणका बीजरूप चित्तस्पन्दही है। चित्तस्पन्द से दृश्यहोकर भासताहै, फिर चिदाभासद्वारा देहमें अहंप्रतीत होती है और उस देहमें स्थित होकर चित्त संवेदन दृश्यकी ओर संसरता है। संसरनाहै दो प्रकारकाहै-एकबड़ा और दूसरा अल्प कितनोंको। संसरने में अनेक जन्म व्यतीत होते हैं और कितनों को एकजन्म होता है। आदिही फुरकर जो स्वरूप में स्थित हैं उनको प्रथमजन्म होताहै और जो आदि उपजकर प्रमादी हुये हैं सो फुरकर दृश्यकी ओर

चलेजाते हैं और उनके बहुतेरे जन्म होते हैं । चित्तके फिरनेसे ऐसा अनुभव करते हैं। पुण्यक्रिया करके स्वर्ग में जाते हैं और पापक्रिया करके नरकमें जाते हैं । इस प्रकार दृश्यभ्रम देखते हैं और अज्ञानसे बन्धन में रहते हैं । जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है तब मोक्षका अनुभव करते हैं सो बड़ा संसरनाहै और जो एकही जन्म पाकर आत्माकी ओर आते हैं वह अल्पसंसरना है । हे रामजी ! जैसे स्वर्णही भूषणरूप धारण करताहै तैसेही संवेदनही काष्ठलोष्ठ आदिकरूप होके भासता है । इस चित्तके संयोगसेही अज और अविनाशी पुरुषको नानाप्रकारके देहप्राप्तहोते हैं और जानताहै कि, मैं अब उपजा, अबजीताहूं फिर मरजाऊंगा । जैसे नौकामें बैठे भ्रमसे तटके वृक्ष भ्रमते दीखते हैं तैसेही भ्रमसे अपने में जन्मादि अवस्था भासती हैं । आत्मा के अज्ञान से जीवको 'अहं' आदि कल्पना फुरती हैं । जैसे मथुराके राजालवणको स्वप्ने में चाण्डाल का भ्रमहुआ था तैसेही चित्तके फुरने से जीव जगत् भ्रम देखते हैं । हे रामजी ! यह सब जगत् मनके भ्रम से भासता है । शिवजो परमतत्त्व है सो चिन्मात्रहै; उसमें जब चैत्योन्मुखत्व होता है कि,'मैंहूं' उसकाहीनाम जीवहै । जैसे सोमजल में द्रवता होताहै, इस से उसमें चक्र फुरते हैं और तरङ्ग होते हैं; तैसेही ब्रह्मरूपी सोमजल में जीवरूपी चक्र फुरते हैं और चित्तरूपी तरंग उदय होते हैं और सृष्टिरूपी बुद्बुदे उपजकर लीन होजाते हैं । हे रामजी ! चेतन स्फूर्त्तिद्वारा जीव की नाईं भासता है । जैसे समुद्रही द्रवतासे तरंग रूप हो भासता है; तैसेही चित्तचैत्यके संयोगसे जीव कहाता है । उस जीव में जब संकल्पका फुरना होताहै तब मन कहाताहै; जब संकल्प निश्चय रूप होताहै तब बुद्धि होकर स्थित होताहै और जब अहंभाव होता है तब अहंप्रतिकार कहाता है । उस अहंभाव को पाकर तन्मात्रा की कल्पना होतीहै और पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये सूक्ष्म भूत होते हैं—उन के पीछे जगत् होता है । हे रामजी ! असत्रूपी चित्तके संसरने सेही जगत्रूपहो भासता है । जैसे नेत्रदूषण से आकाश में मुक्तमाला भ्रममात्र गन्धर्व नगर और स्वप्नभ्रमसे स्वप्न जगत् भासते हैं तैसेही चित्तके संसरने से जगत् भ्रम भासता है । हे रामजी ! शुद्धआत्मा नित्य, तृप्त, शान्तरूप, सम और अपने आपही में स्थित है । उसमें चित्त संवेदन ने जगत् रचाहै और उस को भ्रम से सत्यकी नाईं देखताहै । जैसे स्वप्नसृष्टि को मनुष्य भ्रमसे देखताहै; तैसेही यह जगत् फुरने से सत्य भासताहै । हे रामजी ! मनके संसरने का नाम जाग्रतहै; अहंकार का नाम स्वप्न है; चित्तजो सजातीयरूप चेतनेवाला है उसका नाम सुषुप्ति है और चिन्मात्र का नाम तुरीयपद है । जब शुद्ध चिन्मात्र में अत्यन्त परिणाम हो तब उसका नाम तुर्यातीत पदहै । उसमें स्थित हुआ फिर शोकवान् कदाचित् नहीं होता । उसी ब्रह्मसत्ता से सब उदय होते हैं और उसही में सब लीन होते हैं और वास्तव में न कोई

उपजा है और न कोई लीन होताहै; चित्तके फुरने सेही सब भ्रम भासता है। जैसे नेत्र दूषण से आकाश में मुक्तमाला भासती हैं तैसेही चित्तके फुरनेसे यह जगत् भासताहै। हे रामजी! जैसे वृक्ष के बढ़ने को आकाश ठौरदेताहै कि, जितना बीजका सत्ताहो उतनाही आकाश में बढ़ता जावे तैसेही सबको आत्मा ठौरदेता है। अकर्त्ता रूपभी संवेदन से कर्त्ता भासताहै। हे रामजी! जैसे निर्मल किया हुआ लोहा आरसीकी नाईं प्रतिबिम्ब ग्रहण करताहै तैसेही आत्मा में संवेदन से जगत् का प्रतिबिम्ब होता है पर वास्तव में जगत्भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं है। जैसे एकही बीज, पत्र, फूल, फल और टास हो भासता है तैसेही आत्मा संवेदन से नानारूप जगत्हो भासता है। जैसे पत्र और फूल वृक्षसे भिन्न नहीं होते तैसेही अबोध रूप जगत् भी बोधरूप आत्मा से भिन्न नहीं। जो ज्ञानवान् है उसको अखण्ड सत्ताही भासती है जैसे समुद्रही तरङ्ग और बुद्बुदे होकर और बीजही पत्र, फूल, फल और टासहोकर भासते हैं; तैसेही अज्ञानी को भिन्न २ नाम रूप सत्ता भासती है। 'मूर्ख' जो देखता है तो उनके नामरूप सत् मानता है और ज्ञानवान् देखके एक रूपही जानता है। ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ताही अनन्त भासती है और जगत् भ्रम उनको कोई नहीं भासता है। इतना सुन रामजी ने कहा; बड़ा आश्चर्य है कि; असत्रूपी जगत् सत्होकर बड़े विस्तार से स्पष्टभासता है। यह जगत् ब्रह्मका आभासहै; अनेक तन्मात्रा उसके जल और बूँदोंकी नाईं हैं और अविद्याकरके फुरती हैं। ऐसाभी मैंने सुनाहै। हे मुनीश्वर! यह स्फूर्त्ति बहिर्मुख कैसे होती है और अन्तर्मुख कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार दृश्यका अत्यन्त अभावहै। अनहोते दृश्यके फुरने से अनुभव होताहै। शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मसत्ता में फुरनेसे जो जीवत्वहुआ है वह जीवत्व असत्है और सत्की नाईं होताहै। जीव ब्रह्मसे अभिन्न है पर फुरनेसे भिन्नकी नाईं स्थित होताहै। उस जीवमें जब संकल्प कलना होती तब मन रूप होके स्थित होता है; स्मरण करके चित्त होता है, निश्चय करके बुद्धि होती है और अहंभाव करके अहंकार होता है। फिर काकताली की नाईं चिद्अणु में तन्मात्रा फुर आती हैं। जब शब्द सुनने की इच्छाहुई तब श्रवण इन्द्रिय प्रकट हुई; जब देखने की इच्छाहुई तब नेत्र इन्द्रिय प्रकट हुई; गंधलेने की इच्छासे नासिका इन्द्रिय प्रकट हुई; स्पर्शकी इच्छासे त्वचा इन्द्रिय प्रकट हुई और रसलेने की इच्छा से रसना इन्द्रिय प्रकट हुई। इस प्रकार पाँचों इन्द्रियां प्रकट हुई हैं और भावना से सत्ही असत् की नाईं भासने लगीं। हे रामजी! इस प्रकार आदि जीवहुये हैं और उस की भावना से अन्तवाहक शरीर हो आये हैं। चलते भासते हैं पर अचल रूप हैं, इस से जो कुछ जगत् भासता है वह सब ब्रह्मस्वरूप है भिन्न कुछ नहीं। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय ब्रह्म है और संवेदन ब्रह्म सेही अनेकरूप

नानाप्रकारके भासते हैं । जैसा २ संवेदन फुरताहै तैसा २ रूप होकर भासता है । जब दृश्यको चेतता है तब नानाप्रकार का दृश्य भासता है और जब अन्तर्मुख ब्रह्म चेतता है तब ब्रह्मरूप होकर भासताहै । हे रामजी ! दृश्य कुछ उपजा नहीं, आत्मा सदा अपने आपमें स्थित है । जब दृश्य असंभव हुआ तब बन्धन और मोक्ष किस को कहिये और विचार किसका कीजिये ? सर्व कल्पना का अभाव है । यह जो तुम्हारा प्रश्न है उसका उत्तर सिद्धान्तकाल में होगा यहां न बनेगा । जैसे कमल के फूलोंकी माला अपने काल में बनती है और विना समय शोभा नहीं देती तैसेही तुम्हारा प्रश्न सिद्धान्तकाल में शोभा पावैगा समय विना सार्थक शब्द भी निरर्थक होताहै । हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ हैं उनका फलभी समय पाके होताहै; समय विना नहीं होता इससे अब पूर्वप्रसङ्ग सुनो । हे रामजी ! ब्रह्ममें चैत्योन्मुखत्व से आदि जीवने आप को पिता माता जाना । जैसे स्वप्न में आपको कोई देखे तैसेही ब्रह्माजीने आपको जाना उन ब्रह्मा ने प्रथम 'ॐ' शब्द उच्चारण किया; उस शब्द तन्मात्रा से चारों वेद देखे और उस के अनन्तर मनोराज से सृष्टि रची । तब असत् रूप सृष्टि भावना से सत्य होकर भासने लगी । जैसे स्वप्न में सर्प और गन्धर्व नगर भासते हैं तैसेही असत्यरूप सृष्टि सत्यभासने लगी । हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता में जैसे ब्रह्माआदिक उपजेहैं तैसेही और जीव, कीट आदिभी उत्पन्न हुये । जगत् का कारण संवेदन है । संवेदन भ्रमसे जीवों का जगत् भासताहै । उनको भौतिक शरीर में जो अहंप्रतीति हुई है उससे अपने निश्चय के अनुसार शक्ति हुई । ब्रह्मामें ब्रह्माकी शक्तिका निश्चय हुआ और चींटी में चींटीकी शक्तिका निश्चय हुआ । हे रामजी ! जैसी २ वासना संवित्मेंहोती है उसके अनुसारही अनुभव होता है । शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्योन्मुखत्व हुआ उसी का नाम जीवहुआ । उसमें जो ज्ञानरूप सत्ताहै सोई पुरुषहै और जो फुरनाहै सोई कर्महै । जैसे जैसे फुरता है तैसेही तैसे भासताहै । हे रामजी ! आत्मसत्तामें जो अहं हुआ है उसी का नाम चित्तहै । उससे जो जगत् रचाहै वहभी अविचार सिद्धहै; विचार किये से नष्ट होजाताहै । जैसे अविचार से अपनी परछाहीं में भूत पिशाच कल्पताहै और उससे भय उत्पन्न होताहै पर विचार किये से पिशाच और भय दोनों नष्ट होजाते हैं; तैसेही हे रामजी ! आत्मविचारसे चित्त और जगत् दोनों नष्टहोजाते हैं । हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है; उसमें चित्त कल्पना कोई नहीं और प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, भी ब्रह्मसे भिन्न नहीं तो द्वैतकी कल्पना कैसेहो ? जैसे शशेके शृंग असत्हैं; तैसे आत्मा में द्वैत कल्पना असत्यहै । हे रामजी ! यह ब्रह्माण्ड भावना मात्रहै । जिस को सत्य भासता है उस को बन्धन का कारणहै । जैसे घुरान अर्थात् कुशवारी अपना गृह अपने बन्धनका कारण बनाती है और उसमें फँस मरतीहै; तैसेही

जो जगत् को सत्य मानते हैं उनको अपना माननाही बन्धन करता है और उस से जन्म मरण देखते हैं। जिसको जगत् का असत्य निश्चय हुआ है उसको बन्धन नहीं होता- उसको उल्लास है। हे रामजी! अनुभव सत्ता सब का अपना आपहै। उस में जो जैसा निश्चय किया उसको अपने अनुभव के अनुसार पदार्थ भासते हैं। वास्तव में तो जगत् उपजाही नहीं। जगत् का उपजनाभी मिथ्याहै; बढ़नाभी मिथ्याहै; रसभी मिथ्याहै और रसलेनेवालाभी मिथ्याहै। शुद्धब्रह्म सर्वगत, नित्य और अद्वैत सदा अपने आपमें स्थित है परन्तु अज्ञानसे शुद्धभी अशुद्ध भासता है; सर्व जगत् भी परिच्छिन्न भासताहै; ब्रह्मभी अब्रह्म भासताहै; नित्यभी अनित्य भासताहै और अद्वैतभी द्वैत सहित भासता है। हे रामजी! अज्ञान से ऐसा भासता है। जैसे जल और तरंग में मूर्ख भेदमानते हैं परन्तु भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत्में भेद अज्ञानी देखते हैं। जैसेसुवर्ण में भूषण और रस्सीमें सर्प मूर्ख देखते हैं; तैसेही ब्रह्ममें नानात्वमूर्ख देखतेहैं;ज्ञानी को सब चिदाकाश हैं। हे रामजी! जब आत्मसत्ता में अनात्मरूप दृश्यकी चैत्यताहोती है तब कल्पना उत्पन्न होतीहै और मन रूप होके स्थित होती है। उसके अनन्तर अहंभावहोताहै और फिरतन्मात्रकी कल्पनाहोकर शब्दअर्थकी कल्पनाहोती है। इसीप्रकार चिदसत्ता में जैसी जैसी चैत्यता फुरतीहै तैसाही तैसारूप भासनेलगताहै। सत् असत् पदार्थवासनाकेवश फुरआतेहैं। जैसेस्वप्नसृष्टिफुरआती है सो अनुभवरूपही होती है तैसे ही यहजगत् फुर आयाहै सो अनुभवरूपहै। इससे सृष्टिमेंभी चिन्मात्र है और चिन्मात्र ही में सृष्टि है। सबको सत्तारूपी भीतर बाहर ऊर्ध्व अध चिन्मात्रही है। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय सब पद चिन्मात्रही में धारे हैं नित्यउपशान्त रूपहै समसत् जगत् की सत्ता उसही से होती है सो एकही सम है और तुरीया अतीतपद नितही स्थितहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसत्योपदेशोनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रसंगपर एक पुरातन इतिहासहै और उसमें महा प्रश्नों का समूहहै सो सुनो। काजलके पर्वत की नाईं कर्कटीनाम एक महाश्याम राक्षसी हिमालय पर्वत के शिखरपर हुई। विसूचिकाभी उसका नाम था। अथिर बिजलीकी नाईं उस के नेत्र और अग्निकी नाईं बड़ी जिह्वा चमत्कार करतीथी और उसके बड़ेनख और ऊंचाशरीर था। जैसे बड़वाग्नि तृप्तनहीं होता तैसेही वहभी भोजन से तृप्त न होतीथी। उसके मन में विचार उपजा कि जम्बूद्वीप के सम्पूर्ण जीवोंको भोजनकरूं तो तृप्तहोऊं अन्यथा मेरी तृप्ति नहीं होती। आपदा उद्यम कियेसे दूरहोतीहै इससे मैं अखण्डचित्त होकर तपकरूं। हे रामजी! ऐसा विचार कर वह एकान्त हिमालय पर्वतकी कन्दरामें एक टांगसे स्थित हुई और दोनों भुजाओं को उठाके नेत्र आकाशकी ओर किये मानो मेघको पकड़ती है। शरीर और प्राणोंको स्थित करके मूर्त्तिकी नाईं होगई। शीत और

उष्णके क्षोभसे रहित हुई और पवनसे शरीर जर्जरीभाव हुआ। जब इस प्रकार सहस्र वर्ष दारुण तप किया तब ब्रह्माजी आये। और राक्षसी ने उन्हें देखके मन से नमस्कार किया और मन में बिचारा कि, मेरे वरदेने के निमित्त यह आये हैं। तब ब्रह्माजी ने कहा हे पुत्री ! तूने बड़ा तपकिया। अब उठ खड़ीहो और जो कुछ चाहती है वह वर मांग। कर्कटी बोली, हे भगवन् ! मैं लोहेकी नाईं वज्रशूचिका होऊं जिससे जीवों के हृदय में प्रवेश करजाऊं। हे रामजी ! जब ऐसे उसमूर्ख राक्षसी ने वरमांगा तब ब्रह्माजीने कहा ऐसेही हो तेरा नामभी प्रसिद्ध विसूचिका होगा। हे राक्षसी ! जो दुराचारीजीव होंगे उनके हृदय में तू प्राणवायु के मार्ग से प्रवेश करेगी और जो गुणवान् तेरे निवृत्त करने के निमित्त ॐ मन्त्र पढ़ेंगे और यह पढ़ेंगे कि, हिमालयकेउत्तर शिखरमें कर्कटी नाम राक्षसी विसूचिकाहै सो दूरहो और विसूचिकाका दुःखी चन्द्रमा के मण्डलमें चितवे कि, अमृतके कुण्डमें बैठाहै और राक्षसी हिमालयके शिखरकोगई तब तू उनको त्यागजाना। उनमें तू प्रवेश न करसकेगी। हे रामजी ! इस प्रकार कहके ब्रह्माजी आकाशको उड़े और इन्द्र और सिद्धों के मार्ग से गये और वही मन्त्र उनको भी सुनाया। जब उन्होंने उसमन्त्र को प्रसिद्धकिया तब कर्कटीका शरीर सूक्ष्म होनेलगा। जैसे सङ्कल्पका पहाड़ सङ्कल्पके क्षीणहुये से क्षीणहोजाताहै तैसेही क्रमसे प्रथम जो उस का मेघवत् आकारथा सो घटकर वृक्षवत् होगया। फिर वह पुरुष रूप होगई; फिर हस्तमात्र; फिर प्रादेशमात्र और फिर लोहेकी सुईकी नाईं सूक्ष्म होगई। हे रामजी ! ऐसे रूपको कर्कटी ने धारा जिसको देख मूर्ख अविचारी पुरुष तृणकी नाईं शरीर को त्यागतेहैं। जो पुरुष परस्परकी विचारते हैं सो पीछे से कष्टनहीं पाते औरजो पूर्वापर विचारसे रहितहैं सो पीछे कष्ट पाते हैं और अनर्थकरके औरोंको कष्ट देते हैं। वेएकपदार्थको केवल भलाजानके उसके निमित्त यत्नकरते हैं; न धर्मकी ओर देखते हैं और न सुखकी ओर देखते हैं। इसप्रकार मूर्ख राक्षसीने भोजनके निमित्त बड़े गम्भीर शरीरको त्यागकर तुच्छशरीरको अङ्गीकार किया। उसके एक शरीरतो सूक्ष्म हुआ और दूसरा पुर्यष्टक हुआ। कहींतो सूक्ष्म शरीर से जिस को इन्द्रियांभी न ग्रहण करसकें प्रवेशकरे और कहीं पुर्यष्टकसे जा प्रवेश करे। कहीं प्राणवायु के साथ प्रवेश करके दुःख दे और कहीं प्राणों को विपर्यय करे तब प्राणी कष्ट पावें और कहीं रक्तआदिकरसों का पानकर एकबूंदसे उदर पूर्ण होजावे परन्तु तृष्णा निवृत्त नहो। शरीर से बाहर निकले तब भी कष्टपावे और वायुचले उससे गढ़े और कीचड़ में गिरे और चरणोंके तले आवे। निदानकभी देशों में रहे और कभी घास और तृणोंमें रह जो नीच पापी जीवहैं उनको कष्टदे और जो गुणवान्हों उनको कष्ट न दे सके। मंत्रपढ़े से निवृत्तहोजावे। जो आपकिसी छिद्रमें भी गिरे तो जाने कि मैं बड़े कूपमें गिरी। हे रामजी ! मूर्खता से उस ने इतने कष्टपाये। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि,

इस प्रकार जब वशिष्ठजीने कहा तब सूर्य अस्त होकर सायंकाल का समय हुआ तब सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान कोगई और विचार संयुक्त रात्रिव्यतीत करके सूर्यकी किरणों के निकलतेही फिर आ स्थित हुई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेविशूचिकाव्यवहारवर्णनन्नामएकपंचाशत्तमस्सर्गः ५१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार प्राणियोंको मारते उसे कुछ वर्ष बीते तब उसके मनमें विचार उत्पन्नहुआ कि, बड़ाकष्टहै! बड़ाकष्ट!! यह विशूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्त हुआहै!!!मैंने मूर्खतासे यहवर ब्रह्माजी से मांगाथा। मूर्खता बड़े दुःखको प्राप्त करती है! कैसा मेघकी नाईं मेरा शरीर था कि, सूर्यादिकको ढांकलेती थी॥ हाय मंदराचल पर्वतकी नाईं मेरा उदर और बड़वाग्नि की नाईं मेरीजीभ कहां गई? जैसे कोई अभागी पुरुष चिन्तामणि को त्यागदे और कांच अङ्गीकार करे तैसेही मैंने बड़े शरीर को त्यागके तुच्छ शरीर का अङ्गीकार किया जो एक बूंदसेही तृप्त होजाताहै परंतु तृष्णा पूरी नहीं होती। उस शरीर से मैं निर्भय विचरती थी यह शरीर पृथ्वी के कणसे भी दबजाताहै। अबतो मैं बड़े कष्टपातीहूं यदि मैं मृतक होजाऊं तो छूटूं; परन्तु मांगी हुई मृत्युभी हाथनहीं आती इससे मैं फिर शरीर के निमित्त तपकरूं। वह कौन पदार्थहै जो उद्यम किये से हाथ न आवे। हे रामजी! ऐसे विचारकर वह फिर हिमालय पर्वतके निर्ज्जन स्थान वनमें जा एकटांग से खड़ीहुई और ऊर्ध्वमुख करके तप करने लगी। हे रामजी! जब पवन चलेतो उसके मुखमें फल,मांस और जलके कणके पड़ें परन्तु वह न खाय बल्कि मुखमूंदले। पवन यह दशादेखके आश्चर्य्यवान् हुआकि, मैंने सुमेरु आदि कोभी चलायमान कियाहै परन्तु इसका निश्चय चलायमाननहीं होता। निदान मेघकी वर्षा से वह कीचड़ में दबगई परन्तु ज्योंकी त्योंही रही और मेघके बड़े शब्दसे भी चलायमानहुई। हे रामजी! इसप्रकार जब सहस्रवर्ष उसको तप करते बीते तब दृढ़ वैराग्य से उसका चित्त निर्मलहुआ और सब सङ्कल्पों के त्यागसे उसको परम पदकी प्राप्ति हुई; बड़े ज्ञानका प्रकाश उदय हुआ और परब्रह्म का उसको साक्षात्कार हुआ उससे परमपावनरूप होकर चित्त सूची हुई अर्थात् चैतन में एकत्वभाव हुआ। जब उसके तपसे सातोंलोक तपायमान हुये तब इन्द्रने नारदजी से प्रश्न किया कि, ऐसा तप किसने कियाहै जिससे लोक जलने लगे हैं? तब नारदजी ने कहा; हे इन्द्र! कर्कटी नाम राक्षसीने सातहजारवर्ष बड़ाकठिन तपकिया। जिससे वह शूचिका हुई। वह शरीर पा उसने बहुत कष्टपाया और लोगोंको भी कष्टदिया जैसे विराट् आत्मा और चित्तशक्ति सबमें प्रवेश करजाती है तैसेही वहभी सबकी देहमें प्रवेश करजातीथी। जो मन्त्रजाप न करें उनके भीतर प्रवेश करके रक्तमांस भोजन करे परन्तु तृप्त न हो मन में तृष्णारहे

और सूक्ष्मशरीर धूड़में दबजावे । इस प्रकार उसने बहुत कष्टपाके विचारकिया कि, उद्यम से सबकुछ प्राप्त होता है इससे पूर्व शरीर के निमित्त फिर एकान्त स्थान में जाकर तप करूं इतने में एकगीध पक्षी वहांआकर कुछ भोजन करनेलगा कि, उसकी चोंचके मार्ग से विसूचिका भीतर चलीगई । जब वहपक्षी कष्टपाके उड़ा तो वह विसूचिका उसकी पुर्यष्टकसे मिलके और उसको प्रेरके हिमालय पर्वतकी ओर इस भांति लेचली जैसे वायु मेघको लेजाताहै । उस गीधने वहां पहुंचकर वमन करके विसूचिकाको त्यागदिया और आप सुखीहोकर उड़गया । तब उसीशरीरसे विसूचिका वहां तपकरनेलगी । हे रामजी ! इस प्रकार इन्द्रने सुनकर उसके देखने के निमित्त पवन चलाया । तब पवन आकाश छोड़ के भूतल में उतरा और लोकालोक पर्वत, स्वर्णकी पृथ्वी, समुद्रों और द्वीपों को लांघके क्रमसे हिमालयके वनमें सूक्ष्म शरीर से आया और क्यादेखा कि, पवन चलरहाहै और सूर्य्य तपरहे हैं परन्तु वह चलायमान नहीं होती और प्राणवायु का भी भोजन नहीं करती तब पवनने भी आश्चर्य्यमान होके कहा । हे तपस्विनी ! तू किसलिये तपकरती है ? पर विसूचिका तबभी न बोली । पवनने फिर कहा भगवती विसूचिका ने बड़ा तप किया है-अब इसको कोई कामना नहीं रही ऐसे कहके पवन उड़ा और क्रमसे इन्द्र के पास गया । इन्द्र विसूचिकाके दर्शन के माहात्म्यसे पवनको कंठलगाय मिले और बड़ा आदर किया कि, तू बड़े पुण्यवान्का दर्शन करके आया है । पवनने भी सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा, हे राजन् ! उसके तपके तेज से हिमालयकी शीतलता दबगईहै । आप ब्रह्माजीके पास चलिये नहीं तो उसके तपसे सब जगत् जलेगा । तब इन्द्र पवन और देवतागणों सहित ब्रह्माजी के पास आये और प्रणाम करके बैठे । ब्रह्माजीने कहा तुम्हारी जो अभिलाषाहै वह मैंनेजानी । इसप्रकार इन्द्रसे कहकर ब्रह्माजी विसूचिकाके पास जिसका नाम सूची था आये और उसको देखके आश्चर्यवान् हुये कि, तृणकी नाईं विसूचिकाने सुमेरु से भी अधिक धीर्य्य धारणकियाहै जैसे मध्याह्न का सूर्य तेजवानहोताहै तैसेही इसका तपसे तेजहुआहै और परब्रह्ममें स्थितहुई है। अब इसका जगत्भ्रम शांतहोगया है इससे वन्दना करनेयोग्यहै । हे रामजी ! फिरआकाशमें स्थितहोकर ब्रह्माजी ने कहा; हे पुत्री ! तू अब वर ले तब विसूचिका विचारकर कहने लगी कि, जो कुछ जानने योग्यथा सो मैंनेजाना और शांतरूपहुईहूं सम्पूर्णसंशय मेरे नष्टहुये अब वरसे मुझे क्या प्रयोजन है ? यह जगत् अपने संकल्प से उपजा है । जैसे बालकको अपनी परछाहीं में वैताल बुद्धि होती है और उससे भयपाताहै तैसे ही मैं स्वरूपके प्रसाद से भटकती फिरी । अब इष्ट अनिष्ट जगत्की मुझको कुछ इच्छा नहीं । अब मैं निर्विकार शान्तिमें स्थितहूं । हे रामजी ! ऐसे कह कर जब सूची तूष्णी होरही तब वीतराग और प्रसन्न बुद्धि ब्रह्माजी उसके भावको देखके कहने लगे; हे कर्क-

टी ! तू कुछ वरले क्योंकि; कुछकाल तुझे भूतलमें विचरना है। भोगोंको भोगके तू विदेह मुक्तहोगी। अब तू जीवन्मुक्त होकर विचरेगी। नीतिके निश्चयको कोई नहीं लांघ सक्ता। जब तू तपकरनेलगी थी तब पूर्व देहके पानेका सङ्कल्प कियाथा। तेरा वह सङ्कल्प अब सफल हुआहै। जैसे बीज में वृक्षका सद्भाव होताहै सो कालपाकर होताहै तैसे-ही तेरे में पूर्व शरीर का जो सङ्कल्प था सो अब प्राप्तहोवेगा अर्थात् वैसाही शरीर पाके तू हिमालय के बनमें विचरेगी। हे पुत्री ! तुझे तो अनिच्छित योगहुआहै। जैसे कोई छायाके निमित्त आंबके वृक्षके निकट आनबैठे और उसे छाया और फलदोनों प्राप्तहों तैसेही तूने शरीरकी वृद्धिके लिये यत्नकिया था वह तुझे तृप्ति करनेवाला हुआ है और ब्रह्मतत्त्व भी प्राप्तहुआ। हे पुत्री ! राक्षसी शरीर में जीवन्मुक्त होके तू विचरेगी और दूसरा जन्म तुझको न होगा। इसजन्ममें तू परमशान्तरहेगी और शरत्कालके आकाश की नाईं निर्मल होगी। जब तेरी वृत्ति बहिर्मुख फुरेगी तब सब जगत् तुझको आत्म-रूपभासेगा; व्यवहार में समाधिरहेगी और समाधिमें भी समाधिरहेगी। पापी जीवोंको तू भोजन करेगी; न्यायबान्धव तेरा नाम होगा और विवेक पालक तेरी देह होगी। इससे पूर्व के शरीर को अङ्गीकार कर। इतना कह फिर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ऐसे कह-कर जब ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये तब सूची ने कहा ऐसेही हमको दोनों तुल्यहैं। तब जैसे बीजसे वृक्ष होताहै तैसेही क्रमसे शरीर बढ़गया। प्रथम प्रादेशमात्र हुआ, फिर हस्तमात्र हुआ; फिर वृक्षमात्रहुआ और फिर योजनमात्र होगया। जैसे सङ्कल्पकवृक्ष एक क्षणमें बढ़जाताहै तैसे उसका शरीर बढ़गया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसूचीशरीरलाभोनामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे वर्षा कालका बादल सूक्ष्म से स्थूलहोजाता है तैसे सूची सूक्ष्म शरीर से फिर कर्कटी राक्षसी होगई। जैसे सर्प कंचुकी त्यागके फिर ग्रहण नहीं करता तैसेही राक्षसीने आत्मतत्त्वके कारण शरीर न ग्रहणकिया। छःमहीनेतक पहा-ड़के शिखरकी नाईं खड़ीरही और फिर पद्मआसन बांध संवित्सत्ता और निर्विकल्पपद में स्थितहुई। जब प्रारब्धके वेगसे जागी तब वृत्ति बहिर्मुखहुई और क्षुधालगी क्यों-कि; शरीरके स्वभाव शरीर पर्यंत रहते हैं। तब विचारनेलगी कि, जो विवेकी हैं उनका मैं भोजन न करूंगा; उनके भोजनसे मेरा मरना श्रेष्ठहै परजो न्यायसे भोजन करने योग्यहै उसको खाऊंगी और जो शरीर भी नष्टहो तौ भी न्यायविना भोजन न करूंगी। देहादिक सब सङ्कल्पमात्रहैं; मुझे न मरने की इच्छा है और न जीनेकी। हे रामजी ! जब ऐसे विचार कर सूची तूष्णीहो बैठी और राक्षसी स्वभाव का त्याग किया तब सूर्य भगवान्ने आकाशवाणी से कहा; हे कर्कटी ! तू जाके मूढ़जीवों का भोजनकर। जब तू उनका भोजन करेगी तब उनका कल्याण होगा। मूढ़ोंका उद्धार करनाभी सन्तोंका स्वभा-

वहै। जो विवेकी पुरुष हैं उनको न खाना और जो तेरे उपदेश से ज्ञानपावें उनकोभी मारना जोउपदेशसे भी बोधात्मा न हों उनका भोजनकरना-यहन्यायहै। तबराक्षसी ने कहा, हे भगवन्! तुमने अनुग्रहकरके जो कहाहै वही मुझसे ब्रह्माजीनेभी कहाथा। ऐसेकहकर सूची हिमालयके शिखरसे उतरी और जहां किरातदेशथा और बहुत मृग और पशुरहतेथे उनमें विचरनेलगी। रात्रिमें श्यामराक्षसी और श्यामही तमालवृक्षभी महाअन्धकार भासतेथे—मानों कज्जलका मेघ स्थित भयाहै। ऐसी श्यामतामें किरातीदेश के राजा मंत्री और वीरों सहित यात्राको निकले तो उनको आते देख राक्षसी ने विचारा कि; मुझे भोजनमिला। यहमूढ़ अज्ञानी हैं और इनको देहाभिमानहै; इनमूर्खों के जीने से न यह लोक न परलोक कुछ अर्थ सिद्धनहीं होता। ऐसे जीवोंका जीनादुःखके निमित्त है इसलिये इनको यत्नकरके भी मारनायोग्यहै और इनका पालनाअनर्थ के निमित्त है क्योंकि, यह पापको उदय करते हैं। ब्रह्माकी आदि नीति है कि, पापी मारने योग्यहैं और गुणवान् मारने योग्यनहीं। कदाचित् ये गुणवानहों तो मैं इन्हें न मारूंगी। गुणवान्भी दो प्रकार के होते हैं। जो अमानी, अदंभी, अहिंसक, शान्तिवान् और पुण्यकर्म करनेवाले हैं वेभी गुणवान् हैं पर महागुणवान् तो ब्रह्मवेत्ताहैं जिनके जीने से बहुतों के कार्य्य सिद्धहोते हैं इसलिये जो मेरा शरीर भोजन विना नष्टभी होजावे तौभी मैं गुणवान्को न मारूंगी जो उदार पुरुषहै वह पृथ्वीका चन्द्रमाहै; उसकी संगति से स्वर्ग और मोक्ष होता है। जैसे संजीवनी बूटी से मृतकभी जीता है तैसेही सन्तों के संगसे अमृत होताहै। इससे मैं प्रश्न करके इनकी परीक्षालूं; कदाचित् यहभी गुणवानहों। यह कमलनयन ज्ञानवान् भासते हैं; यदि यथार्थ ज्ञानवान् पुरुषहैं तो पूजने योग्यहैं और जो मूर्ख हैं तो दण्ड देने योग्यहैं और मैं उनको अवश्य भोजन करूंगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीविचारोनामत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब वह राक्षसी उनको देखके मेघकी नाईं गरजनेलगी और कहा; अरे आकाशके चन्द्रमा और सूर्य्य! तुम कौनहो? बुद्धिमानहो अथवा दुर्बुद्धि हो? कहांसेआयेहो और तुम्हारा क्या आचारहै? तुमतो मुझको ग्रासकी नाईं आनप्राप्त हुयेहो इससे अबमैं तुमको भोजन करूंगी। राजा बोले; अरी! इसभौतिक तुच्छ शरीर को पाकर तू कहांरहतीहै? हमको देखके जो तू गरजती है सो तेराशब्द हमको भ्रमरीके शब्दवत् भासताहै; हमको कुछ भय नहीं। हे राक्षसी! यह शरीर तेरा मायामात्रहै इस लिये इस तुच्छ स्वभावको त्यागके जो कुछ तेरा अर्थहै वहकह हमपूर्णकरदेंगे। तब राक्षसीने उनके डराने को ग्रीवा और भुजाको ऊंचेकर के प्रलयकालके मेघोंकी नाईं फिर बड़ाशब्द किया कि, जिसके नाद से पहाड़भी चूर्णहोजावें। निदान सबदिशा शब्दसे भरगईं और वह बीजलीकी नाईं नेत्रोंको चमकाने लगी। उसकी मूर्त्तिदेख राक्षस और

पिशाचभी शङ्कायमान हों पर ऐसे भयानक स्वरूपको देखके भी उन दोनों ने धीरज रक्खा। मंत्रीने कहा; अरीराक्षसी! ऐसे शब्द तू व्यर्थकरतीहै। इससेतो तेरा कुछ प्रयोजन न सिद्धहोगा इस लिये इस आरम्भको त्यागके अपना अर्थ कह। बुद्धिमान् पुरुष उस अर्थको ग्रहण करते हैं जो अपना विषय भूत होताहै और जो अपना विषय भूत नहींहोता उसके निमित्त वे यत्न नहींकरते हमतेरा विषयभूतनहीं तुझऐसेतोहज़ारों हमने मारडालेहैं। हे राक्षसी! हमारे धीरजरूपी पवनसे तुझऐसी अनन्त मक्खियां तृणवत् उड़ती फिरती हैं। इससे अपने नीचस्वभावको त्याग स्वस्थचित्तहोके जो कुछतेरा प्रयोजनहो सो कह। बुद्धिमान् स्वस्थचित्त होके व्यवहार करते हैं; स्वस्थहुये विना व्यवहार भी सिद्धनहींहोता; यह आदिनीतिहै। हमारे पाससे स्वप्नेमेंभी कोई—अर्थीव्यर्थ नहींगया। हम सबकाअर्थ पूर्णकरते हैं इसलिये तूभी हम से अपना प्रयोजन कहदे। तब राक्षसी समझी कि, यह कोई बड़े उदार आत्मा और उज्ज्वल आचारवान् हैं और जीवों के समाननहीं। यह बड़े प्रकाशवान् और धीरजवान् जानपड़ते हैं उदारता केसे इनके वचन ज्ञानवानों से मिलते हैं। अब मैंने इनको जाना है और इन्होंने मुझको जाना है इससे मुझसे इनका नाशभी न होगा। अविनाशी पुरुष ब्रह्मसत्तामें स्थित हैं इससे ज्ञानवान् हैं। ऐसा निश्चय ज्ञानविना किसीको नहीं होता परन्तु कदाचित् अज्ञानी हो तो फिर सन्देहको अङ्गीकार करके पूछतीहूं। जो सन्देहवान् होकर बोधवानूसे नहीं पूछते वे भी नीच बुद्धि हैं। हे रामजी! ऐसे मनमें विचार फिर उसने पूछा; तुम कौनहो और तुम्हारा आचार क्याहै? निष्पाप महापुरुषोंको देखके मित्रभाव उपज आता है! मंत्रीबोला; किरातदेशका यह राजाहै और मैं इसका मंत्रीहूं। रात्रिमें तुमसे दुष्टों के मारने के निमित्त उठे हैं। रात्रि दिनमें हमारा यही आचार है कि, जो जीव धर्म्मकी मर्यादा त्यागनेवाले हैं। उनका हम नाश करते हैं। जैसे अग्नि ईंधन का नाशकरताहै। राक्षसीबोली; हे राजन्! यह तेरा दुष्टमंत्री है। जिसराजाका मंत्रीभला नहीं होता वह राजाभी भला नहीं होता और जिसराजाका मंत्री भला होताहै उस की प्रजाभी शान्तिमान् होती है। भला मंत्री वह कहाता है जो राजाको न्याय और विवेक में लगावे। जो राजा विवेकी होताहै वह शान्तात्मा होता है और जो राजा शान्तिमान् हुआ तब प्रजाभी शान्तिमान् होती है। सब गुणों से जो उत्तमगुण है वह आत्मज्ञान है। जो आत्माको जानता है वही राजा और जिसमें प्रभुता और समदृष्टि हो वही मन्त्री है जो प्रभुता और समदृष्टि से रहितहै वह न राजा है न मन्त्री है। हे राजन्! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुषहो तो तुम कल्याणरूप हो। जो ज्ञानसे रहित होताहै उसको मैं भोजन करतीहूं। तुम्हारे छूटनेका उपाय यही है कि, जो मैं प्रश्नों का समूह पूछतीहूं उसका उत्तर दो। जो तुमने प्रश्नों का उत्तर दिया तो मेरे पूजने

योग्यहो और जो मेरा अर्थ होगा सो कहूंगी तुम पूर्णकरना और जो तुमने प्रश्नोंका उत्तर न दिया तो तुम्हारा भोजन करूंगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीविचारोनामचतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इस प्रकार राक्षसी ने कहा तब राजा बोला तू प्रश्नकर हम तुझको उत्तरदेंगे । राक्षसी बोली, हे राजन् ! वह एक कौन अणु है जिससे अनेक प्रकार हुये हैं और एकके अनेक नाम हैं और वह कौन अणुहै जिसमें अनेक ब्रह्माण्ड होते हैं और लीन होजाते हैं ? जैसे समुद्र में अनेक बुद्बुदे उपजकर लीन होते हैं । वह कौन आकाशहै जो पोलसे रहितहै और वह कौन अणुहै जो न किञ्चित् है न अकिञ्चित् है ? वह कौन अणु है जिसमें तेरा और मेरा अहं फुरता है और वह कौन है जो अहंत्वं एकमें जानता है ? वह कौन है जो चला जाता है और कदाचित् नहीं चलता और वह कौनहै जो तिष्ठितभी है और प्रतिष्ठितभी है ? वह कौन है जो पाषाणवत् है और वह कौन है जिसने आकाशमें चित्र किये हैं ? वह कौन अग्निहै जो दाहकशक्ति से रहित है और अग्निरूप है और वह अग्नि कौन है जिससे अग्नि उपजी है ? वह कौन अणु है जो सूर्य्य, अग्नि, चन्द्रमा और तारों के प्रकाश से रहित और अविनाशी है और वह कौनहै जो नेत्रों से देखा नहीं जाता और सब प्रकाशों को उत्पन्न करताहै ? वह कौन ज्योतिहै जो फूल, फल और बेलको प्रकाशती है और जन्मान्धको भी प्रकाशती है ? वह कौन अणु है जो आकाशादिक भूतोंको उपजाता है और वह कौन अणुहै जो स्वाभाविक प्रकाशमानहै ? वह भण्डार कौनहै जिससे ब्रह्माण्ड रूपी रत्न उपजते हैं ? वह कौन अणुहै जिसमें प्रकाश और तम इकट्ठे रहते हैं और वह कौन अणुहै जिसमें सत् असत् दोनों इकट्ठे रहते हैं ? वह कौन अणुहै जो दूरहै परन्तु दूर नहीं और वह कौन अणुहै जिसमें सुमेरु आदिक पर्वतभी समाय रहे हैं ? वह कौन अणुहै जिसमें निमेषमें कल्प और कल्पमें निमेषहै और वह कौन है जो प्रत्यक्ष और असद्रूपहै ? वह कौनहै जो सत् और अप्रत्यक्षरूप है ? वह कौन चेतन है जो अचेतनहै और वह कौन वायुहै जो अवायुरूप है ? वह कौनहै जो अशब्दरूप है और वह कौनहै जो सर्व और निष्किञ्चित्है ? वह कौन अणुहै जिसमें अहं नहीं है ? वह कौनहै जिसको अनेकजन्मों के यत्नसे पाताहै और पाके कहताहै कि, कुछनहींपाया और सबकुछ पाया ? वह कौन अणुहै जिसमें सुमेरु आदिक तीनों भुवन तृणसमानहैं और वह कौन अणुहै जो अनेक योजनों को पूर्णकरता है ? वह कौन अणुहै जिसके देखने से जगत् फुरआता है और वह कौन अणु है जो अणुता को त्यागे विना सुमेरु आदिक स्थूल आकारको प्राप्तहोता है ? वह कौन अणुहै जो बाल का सौवांभाग और सुमेरु सेभी ऊंचाहुआहै ? वह कौन अणुहै जिसमें सब अनुभव स्थितहै और वह कौन अणुहै जो अत्यन्तनिस्वाद

है और आपही सब स्वाद होताहै ? वह कौन अणु है जिसको अपने ढांपने की सामर्थ्य नहीं और सबको ढांपरहाहै और वह कौन अणुहै जिससे सब जीते हैं ? वह कौन अणु है जिसका अवयव कोई नहीं और सब अवयवको धारण कर रहाहै ? वह कौन निमेष है जिसमें बहुतेरे कल्प स्थित हैं ? वह कौन अणुहै जिसमें अनन्त जगत् स्थितहै जैसे बीजमें वृक्ष होताहै ? वह कौन अणु है जिसमें बीजसे आदि फलपर्य्यन्त अनउदय हुये भी भासते हैं ? वह कौन है जो प्रयोजन और कर्त्तत्व से रहित है और प्रयोजनवान् और कर्त्तत्ववान्की नाईं स्थित है ? वह कौन द्रष्टा है जो दृश्य से मिलकर दृश्यहोता है और वह कौनहै जो दृश्यके नष्ट हुये भी आपको अखण्ड देखता है ? वह कौन है जिसके जाने से द्रष्टा--दर्शन--दृश्य तीनों लयहोजाते हैं ; जैसे सोनेके जानेसे भूषण भाव लीन होजाते हैं और वह कौनहै जिससे भिन्न कुछ नहीं; जैसे जलसे भिन्न तरङ्गों का अभावहै ? वह एकही कौनहै जो देश, काल, वस्तुके परिच्छेदसे रहित सत् असत् की नाईं स्थितहै और वह कौन अद्वैतहै जिससे द्वैतभी भिन्ननहीं--जैसे समुद्रसे तरंग भिन्न नहीं ? वह कौन है जिसके देखे से सत्ता असत्ता सब लीन होता है और वह कौन है जिसमें भ्रमरूपी अनन्त जगत् स्थित है--जैसे बीजमें वृक्ष होता है ? वह कौनहै जो सबके भीतर है-जैसे वृक्षमें बीजहोते हैं और वह कौन है जो सत्ता असत्ता रूपी आपही हुआ है-जैसे बीज वृक्षरूप है और वृक्ष बीजरूप है ? वह अणु कौन है जिसमें तान्तभी सुमेरुकी नाईं स्थूल है और जिसके भीतर कोटि ब्रह्माण्ड हैं ? हे राजन् ! उस अणुको देखाहो तो कहो ? यही मुझको संशयहै इसको तुम अपने मुखसे दूरकरो। जिससे संशय निवृत्त न हो उसको पण्डित न कहना चाहिये। जो ज्ञानवान् हैं उन को इन प्रश्नों का उत्तर कहना सुगम है। इन संशयों को वह शीघ्रही निवृत्त कर देते हैं। जो अज्ञानी हैं उनको उत्तरदेना कठिनहै। हे राजन् ! जो तुमने मेरे प्रश्नोंका उत्तरदिया तो तुम मेरे पूजने योग्यहो और जो मूर्खतासे प्रश्नोंका उत्तर न दोगे और प्रश्नोंके विपर्य्यय जानोगे तो तुम दोनोंको भोजन करजाऊंगी और फिर तुम्हारी सब प्रजाको ग्रासकरलूंगी क्योंकि; मूर्ख पापियोंका मारना श्रेष्ठहै कि, आगेको पापकरने से छूटेंगे। इतनाकहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसप्रकार राक्षसी कहकर और शुद्ध आशयको लेकर तूष्णी हुई और जैसे शरत्काल में मेघमण्डल निर्म्मल होता है तैसे निर्मल हुई ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीप्रश्नवर्णनन्नामपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अर्द्धरात्रि के समय महाशून्य वनमें जब उस राक्षसी ने ये महाप्रश्न किये तब महामन्त्री ने उससे कहा; हे राक्षसी ! ये जो तुमने संशय प्रश्न किये हैं उनका मैं क्रमसे उत्तर देताहूं। जैसे उन्मत्तहाथी को केसरीसिंह नष्टकरता

है तैसे मैं तेरे संशयोंको निवृत्तकरताहूं । तूने सब प्रश्न परमात्माही के विषय किये हैं इससे तेरे सब प्रश्नों का एकही प्रश्नहै परन्तु तूने अनेक प्रकार से किये हैं सो ब्रह्मवेत्ताके योग्य हैं । हे राक्षसी ! जो अनामाख्य है अर्थात् सर्व इन्द्रियों का विषय नहीं और अगमहै और मनकी चिन्तना से रहित है ऐसी सत्ता चिन्मात्र है और उसका आकारभी सूक्ष्महै इस कारण सूक्ष्म कहाताहै । सूक्ष्मतासेही उसकी अणुसंज्ञाहै । उस अणुमें सत् असत्की नाईं जगत् स्थितहै और उसही चिद्अणु में जब कुछ संवेदन फुरता है । वही संवेदन सत्य असत्य जगत्की नाईं भासता है इससे उसे चित्त कहते हैं । सृष्टिसे पूर्व उसमें कुछ न था इससे निष्किञ्चन कहाताहै । और इन्द्रियोंका विषय नहीं इससे न किञ्चित्है । उसी चिद्अणु में सब का आत्माहै इससे वह अनन्तभोक्ता पुरुष किञ्चनहै और उससे कुछ भिन्ननहीं इससे किञ्चननहीं । वही चिद्अणु सबका आत्मा है और एकही आभास से अनेकरूप भासता है—जैसे सुवर्ण से नानाप्रकारके भूषण भासते हैं । वही चिद्अणु परमाकाशरूप है जो आकाशसेभी सूक्ष्म और मन वाणी से अतीतहै । वह सर्वात्मा है शून्य कैसेहो ? सत्को जो शून्य कहते हैं वह उन्मत्त हैं क्योंकि; असत् भी सत् विना सिद्ध नहीं होता । जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होताहै सो सत्है । वह चिद्अणु पंचकोशों में नहीं छिपता । जैसे कपूरकी गंधनहीं छिपती तैसेही पंचकोश में आत्मा नहीं छिपता अनुभवरूप है । वही चिन्मात्र सर्वरूप से किञ्चित् है और अचेतन चिन्मात्रहै इससे अकिञ्चित् इन्द्रियों से रहित और निर्मल है । उसही चिद्अणु में फुरनेसे अनेक जगत् स्थितहैं । जैसे समुद्र में फुरनेसे तरंग उपजते हैं और फिर लीन होते हैं तैसेही चिद्अणु में फुरने से अनेक जगत् उपजके लीन होते हैं वह मन और इन्द्रियों से अतीत है इससे शून्य कहाता है और अपने आपही प्रकाशताहै इससे अशून्यहै । हे राक्षसी ! मेरा और तेरा अहंएकही आत्माहै । अहं की अपेक्षासे त्वं है और त्वं की अपेक्षा से मैं परिच्छिन्न हूं परन्तु दोनों का उत्थान एक आत्मतत्त्वसेही है । उसही चिद्अणु के बोध से ब्रह्मरूप होता है और उसही बोध में अहंत्वं सब लीन होते हैं अथवा सर्व्व आपही होताहै । त्रिपुटिरूपभी वही है । वही चिद्अणु अनेक योजनों पर्य्यंत जाताहै और कदाचित् चलायमान नहींहोता क्योंकि; संवित् अनन्तरूप है । योजनों के समूह उसके भीतर हैं वास्तव में न कोई आता है और न जाताहै, अपने आकाशकोश में सब देशकाल स्थित है । जिसमें सबकुछ हो उसकी प्राप्ति वास्तवमें क्याहोय ? यह जितना जगत् है वह तो आत्मामेंहै फिर आत्मा कहांजावे ? जैसे माताकीगोदमें पुत्रहो तो फिर वह उस निमित्त कहांजावे तैसेही आत्मा में यह जगत् स्थित है फिर आत्मा कहां जाय; देहकी अपेक्षा से चलता भासता है वह कदाचित् चलानहीं । जैसे आकाशमें घटादिक स्थितहैं तैसेही चिद्अणुमें देशकाल

स्थितहै। जैसे घट एकदेशसे देशान्तरको जावे तो घट जाताहै आकाश नहीं जाता पर घटकी अपेक्षा से आकाश जाता भासताहै वास्तव में घटाकाश कहीं नहींगया क्योंकि; आकाश में सबदेश स्थितहैं यह कहां जावे तैसेही आत्माभी जाताहै और नहीं जाता। उसही चिन्मात्र परमात्ममें संवेदन आकार रचे हैं और आदि अन्त से रहित विचित्र रूपी जगत् रचाहै। वही चिद्अणु अग्निकी नाईं प्रकाशरूप है और जलाने से रहित है। ज्ञानअग्निसे प्रकाशमान है; अग्नि भी उससे उपजी है और सर्व्वगत वही है। द्रव्योंको पचाताभी वही है; प्रलय में सब भूत उसमेंही लीन होते हैं और पुष्कलमेघ इकट्ठाहो तोभी उसको आवरण नहीं करसकते। वह सदा प्रकाश और ज्ञानरूप है; आकाशसेभी निर्मलहै और अग्निभी उससे उत्पन्नहोतीहै। सबको सत्तादेनेवाला वही है और सूर्य्यादिकभी उसके प्रकाश से प्रकाशते हैं वह अनुभवरूप है और नेत्रों विना भासताहै। ऐसा हृदयरूपी मंदिरका दीपक आत्मा अनंत और परमप्रकाशरूप है और मन और इन्द्रियों का विषय नहीं। वह लता, फूल, फल आदिक सबको आत्मत्व से प्रकाशताहै सबका अनुभवकर्त्ता वही है और काल, आकाश, क्रियाआदिक पदार्थों को सत्ता देनेवालाभी वही चिद्अणुहै। सब का स्वामीकर्त्ता वही है; सबका पिता भोक्ताभी वही है; और सदा अकर्त्ता अभोक्ता रूपहै। जैसे स्वप्न में कर्त्ता भोक्ता भासताहै पर अकर्त्ता अभोक्ताहै; उससे भिन्ननहीं; इस कारण किञ्चनरूप है और जगत्को धारण करने वालाहै। स्वरूपसे मातृ, मान, मेय जिससे प्रकाशते हैं और कुछ उपजानहीं। चिदात्माका किञ्चनहै; किञ्चनसे जगत्की नाईं भासताहै। तूने जो पूछा था कि, 'दूर और निकट कौन है' सो अलख भावसे दूरभी वहीहै और चिद्रूपभाव से निकटभी वही है अथवा ज्ञानसे निकटहै और अज्ञान से दूरसे दूरहै। अज्ञानसे तमरूपहै और ज्ञानसे प्रकाशरूपभी वहीहै और उसही चिद्अणुमें संवेदन से सुमेरु आदिक स्थितहैं। हे राक्षसी! जो कुछ जगत् भासता है वह सब संवेदनरूप है। सुमेरु आदिक पदार्थ कुछ उपजे नहीं, चिद्सत्ता ज्योंकीत्यों स्थितहै; उसमें जैसा संवेदन फुरताहै तैसा आकार होभासताहै। जहां निमेषका संवेदन फुरताहै वहां निमेष कहाताहै और जहां कल्पका संवेदन फुरता है वहां उसे कल्प कहते हैं। कल्प, क्रिया आदिक जगत् विलास सब निमेष में फुरआये हैं। जैसे मनके फुरने से बहुत योजनों पर्य्यंत पुरुष देख आता है और जैसे छोटे शीशे में बड़े विस्तार नगरका प्रतिबिम्ब समाजाता है तैसेही एक निमेष के फुरने में सब जगत् फुरआताहै। एक निमेष में कल्प, समुद्र, पुरइत्यादिक अनन्तयोजनों का विस्तार चिद्अणुमें स्थितहै और एक दोके भ्रमसे रहितहै। हे राक्षसी! इस जगत् का स्वरूप कुछनहीं, संवेदन से भासताहै; जैसा २ संवेदन में दृढ़प्रतीत होताहै तैसाही तैसा अनुभव होताहै। देख कि, क्षणके स्वप्न में सत् असत् जगत् फुरआता है और

बहुत कालका अनुभव होताहै । जो दुःखी होते हैं उनको थोड़े काल में बहुत काल भासता और सुखीजनों को बहुत काल में थोड़ा काल भासता है । जैसे हरिश्चन्द्र को एक रात्रि में द्वादश वर्षका अनुभव हुआ था । इससे जितना जितना संवेदन दृढ़ होता है उतने देशकालहो भासते हैं और सत्भी असत्की नाईं भासता है । जैसे सुवर्ण में भूषण बुद्धि होती है तो भूषण भासते हैं और समुद्र में तरंगों की दृढ़ता से तरङ्ग भिन्न भासते हैं; तैसेही निमेषमें कल्प भासते हैं पर वास्तवमें न निमेष है; न कल्प है; न दूरहै और न निकट है; चिद्‌अणु आत्माका सब आभास है । हे राक्षसी ! प्रकाश और तम; दूर और निकट सब चैतन सम्पुटमें रत्नोंकी नाईं है और वास्तव में अनन्यरूप है; भेदाभेद कुछ नहीं । हे राक्षसी ! जबतक दृश्यका सद्‌भाव दृढ़ होता है तबतक द्रष्टा नहीं भासता—जैसे जबतक भूषण बुद्धि होती है तबतक स्वर्ण नहीं भासता और जब स्वर्ण जाना गया तब भूषण बुद्धि नहीं रहती स्वर्णही भासता है; तैसेही जबतक दृश्यका स्पन्दभाव होताहै तबतक द्रष्टा नहीं भासता और जब आत्मज्ञान होताहै तब केवल ब्रह्मसत्ताही निर्म्मलहो सद्रूप से सर्व्वत्र भासती है । दुर्ल्लक्षता अर्थात् मन और इन्द्रियों के अविषय से असत्‌रूप कहते हैं; चैत्यता से उसको चैतन कहते हैं और चैत्य के अभावसे अचैतनरूप कहते हैं अर्थात् चैत्यके अभावसे अचैत्य चिन्मात्र कहते हैं । चैतन चमत्कार से जगत्‌की नाईं हो भासता है । हे राक्षसी ! और जगत् उससे कोई नहीं—जैसे वायुका गोला वृक्षाकार हो भासता है और सघन धूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही एक अद्वैत चैतनघन चैतन्यता से जगत्‌की नाईं हो भासता है । जैसे सघन शून्यता से आकाश में नीलता भासती है तैसेही दृढ़सघन चैतनतासे जगत् भासता है । जैसे सूर्य्यकी सूक्ष्म किरणों का किंचन मृगतृष्णा का जल होता है; उस नदी का प्रमाण कुछ नहीं तैसेही इस जगत्‌की आस्था भासती है पर सब आकाशरूप है । जैसे भ्रमसे धूलिके कणमें स्वर्ण की नाईं चमत्कार होताहै तैसेही जगत् कल्पना चित्तके फुरनेसे भासती है । जैसे स्वप्नपुर और गन्धर्व्व नगर आकार सहित भासते हैं सो न सत् हैं न असत् हैं तैसेही यह जगत दीर्घस्वप्ना है; न सत् है और न असत् है । हे राक्षसी ! जब आत्मा में अभ्यास हो तब यह कुण्डादिक ऐसेही रहें और आकाशरूप हो भासें । कुण्डादिक भी आकाश रूप हैं; आकाश और कुण्डादिकों में भेद कुछ नहीं मूढ़ता से भेद भासता है । ज्ञानी को सब चिदाकाशरूप भासता है । हे राक्षसी ! ब्रह्मा से तृणपर्य्यन्त के संवेदन में जैसी कल्पना दृढ़ होरही है तैसेही भासती है और वास्तव में वही चिदाकाश प्रकाशता है । घन चैतनता से वही चिदाकाश आकारों की नाईं प्रकाशता है और उसीका यह प्रकाश है । जैसे बीज और वृक्ष अनन्यरूप हैं तैसेही असंख्यरूप

जगत् जो ब्रह्मसत्ता में स्थित है वह अनन्यरूप है। जैसे बीज में वृक्ष का भाव स्थित है सो आकाशरूप है तैसेही ब्रह्म में जगत् स्थित है सो अक्षोभरूप है—अन्यभाव को नहीं प्राप्त हुये। ब्रह्मसत्ता सब ओर से शान्तरूप, अज, एक और आदि मध्य अन्तसे रहितहै। उसमें एक और द्वैतकी कल्पना नहीं। वह अनउदयही उदय हुआ है और निर्मल स्वप्रकाश आत्मा है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीप्रश्नभेदोनामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ५६॥

वशिष्ठजी बोले; बड़ा आश्चर्य है २ कि मंत्री ने तो यह परमपावन परमार्थवचन कहे और कमलनयन राजानेभी कहा; हे राक्षसी! यह जो जाग्रत् जगत्की प्रतीति होती है इसका जब अभाव हो तब आत्मप्रतीति होती है। जब सब संकल्पकी चैत्यता का नाशहो तब आत्मा का साक्षात्कार हो। उस आत्मसत्ता में संवेदन फुरने से जगत् भासताहै और संवेदन के संकोचसे सृष्टिका प्रलय होताहै। सब का अधिष्ठानरूप वही आत्मसत्ता है तिसको वेदान्त वाक्य जतावने के अर्थ कुछ कहते हैं क्योंकि; वाणी से अतीतपद है। हे राक्षसी! यह जो द्रष्टा, दर्शन और दृश्य है इसके अन्तर जो अनुभवसत्ता है सो परमात्माहै। वह परमात्माही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होकर भासता है। उसी में यह सब जगत् लीला है; नानात्वभाव से भी वह कुछ खण्डित भावको नहीं प्राप्तहुआ; अखण्डही है। उसी सन्मात्रसत्ताको ब्रह्म कहते हैं। हे भद्रे! वही चिद्अणु संवेदन से वायुरूप हुआ है और वायु उसमें अत्यन्त भ्रान्तिमात्र है क्योंकि; केवल शुद्ध चिन्मात्र है। जब उसमें शब्द का संवेदन फुरता है तब शब्दरूप हो भासता है और शब्दरूप उस में भ्रांतिमात्र है। उसमें शब्द और शब्द का अर्थ देखना दूरसे दूर है क्योंकि; केवल चिन्मात्र है। उसमें अहं त्वं कुछ नहीं। वह निष्किञ्चन है ऐसे रूप होकर भासता है क्योंकि; शक्तिरूप है। उसमें जैसी प्रतिभा फुरती है तैसाही होकर भासता है इससे फुरनाही इस जगत् का कारणहै। जो अनेक यत्नों से मिलता है सो भी आत्मसत्ता है। जब उसको कोई पाता है तब उसने कुछ नहीं पाया और सब कुछ पायाहै। पाया तो इस कारण नहीं कि, आगे भी अपना आप था और सब कुछ इस कारण पाया कि, आत्मा के पाये से कुछ और पाना नहीं रहता। हे राक्षसी! अज्ञानरूपी वसन्तऋतु में जन्मों की परम्परावलि तबतक बढ़ती जाती है जबतक इसके काटनेवाला बोधरूपी खड्ग नहीं प्राप्त हुआ। जब बोधरूपी खड्ग प्राप्त होता है तब जन्मरूपी बेलिको काटता है। हे राक्षसी! चिद्अणु संवेदन द्वारा आप को दृश्य में प्रीति करताहै—जैसे किरणों का चमत्कार जलरूप होकर स्थित होताहै—सो शुद्धही आपको संवेदन द्वारा फुरता देखता है। चिद्अणु द्वारा जो जगत् हुआ है सो मेरुसे आदिलेकर तीनों भुवनों में किरणों की नाईं स्थित होता है और वास्तव

में सब मायामात्र हैं भ्रमसे भासते हैं। जैसे स्वप्न में रागीको स्वप्न स्त्री का आलिङ्गन होता है तैसेही यह जगत् मन के फुरने से भासता है सो भ्रममात्र है। हे राक्षसी! सर्वशक्तिरूप आत्मा में जैसे सृष्टि का आदि फुरना हुआ है तैसाही रूपहोकर भासने लगा है। और जैसे सङ्कल्प कियाहै तैसेही स्थित हुआहै। इससे सब जगत् सङ्कल्पमात्र है। जैसे जिसमें बालक का मन लगता है तैसाही रूप उसका हो भासता है; तैसेही संवित् के आश्रय जैसा संवेदन फुरताहै तैसाही रूप हो भासताहै। हे राक्षसी! चिद्अणु परमाणु सेभी सूक्ष्म है और उसनेही सब जगत् को पूर्णकियाहै और सब जगत् अनन्तरूप आत्माहै उसमें संवेदन से जगत्की रचना हुई है। जैसे नटनायक जैसे जैसे बालकको नेत्रोंसे जताताहै तैसेही तैसे वह नृत्यकरता है और जब वह ठहर जाता तब यहभी ठहरजाता है; तैसेही चित्तके अवलोकन से सुमेरु से तृणपर्य्यन्त जगत् नृत्यकरता है। जैसे चित्त संवेदन अनन्तशक्ति आत्मा में फुरता है तैसेही तैसे हो भासताहै। हे राक्षसी! देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से आत्मसत्ता रहित है, इस कारण सुमेरु आदिकसेभी स्थूलहै; उसके सामने सुमेरु आदिक तृणके समान हैं और बाल के अग्र के सहस्रवें भागसेभी सूक्ष्महै। अल्पतासे ऐसा सूक्ष्म नहीं जिसमें सरसों का दानाभी सुमेरुवत् स्थूलहै। मायाकी कला बहुतसूक्ष्महै उससेभी चिद्अणु सूक्ष्महै क्योंकि; निर्मायिक पद परमात्मा है। जैसे सुवर्ण और भूषणकी शोभा समान नहीं अर्थात् स्वर्ण में भूषण कल्पितहै समान कैसेहो; तैसेही माया परमात्माके समान नहीं क्योंकि; कल्पितहै। हे राक्षसी! जैसे कुछ सूर्य आदिक सब अनुभवसे प्रकाशते हैं इनका सद्भाव कुछ न था उस सत्तासेही इनका प्रकटहोना हुआहै और फिर जर्जरीभूत होते हैं शुद्ध चिन्मात्रसत्ता प्रकाशरूप है और वह सदा अपने आप में स्थित है उस चिद्अणु के भीतर बाहर प्रकाशहै और यह जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदिक प्रकाशहैं सो तमसे मिलेहुये हैं अर्थात् भेदरूप हैं। येभी तमरूप हैं क्योंकि; प्रकाश की अपेक्षा रखते हैं। इनमें इतना भेदहै कि, प्रकाश शुक्लरूपहै और तम कृष्णरूप है इस से रङ्गका भेदहै प्रकाशरूप कोई नहीं। जैसे मेघका कुहिरा श्याम होताहै और बरफ का शुक्ल होता है पर दोनों कुहिरे हैं; तैसेही तम और प्रकाश दोनों तुल्य हैं और आत्मसत्ता दोनों को प्रकाशती है इससे दोनों का आश्रयभूत आत्मसत्ताही है। हे राक्षसी! रात्रि, दिन, भीतर, बाहर, नदियां, पहाड़ आदिक सब लोक आत्मसत्ता के प्रकाश से प्रकाशते हैं—जैसे कमल और नीलोत्पल दोनों को सूर्य प्रकाशता है। कमल श्वेत है और नीलोत्पल श्याम है; जहां श्वेत कमल है वहां नीलोत्पलका अभाव है और जहां नील कमलहै तहां श्वेत कमल का अभाव है पर दोनों का प्रकाशक सूर्य है; तैसेही तम और प्रकाश दोनों का प्रकाशक चिदात्मा है। जैसे रात्रि और दिन दोनों

सूर्य से सिद्धहोते हैं तैसेही तम और प्रकाश दोनों आत्मासे सिद्धहोते हैं। जैसे दिन तब कहाताहै जब सूर्य उदय होताहै और जब सूर्य अस्तहोता है तब रात्रिहोती है आत्मा तैसेभी नहीं। आत्मप्रकाश सदा उदयरूपहै और उदय अस्तसे रहितभीहै। उस विना कुछ सिद्ध नहीं होता सब का प्रकाशक चिद्अणुही है। हे राक्षसी! उस अणु के भीतर विचित्र अनुभव अणुहैं। जैसे वसन्तऋतु के भीतर पत्र, फूल, फल और टास होते हैं तैसेही चिद्अणुमें सब अनुभव अणुहोते हैं। जैसे एकबीजसे अनेकवृक्ष क्रमसे होजाते हैं तैसेही एक चिद्अणु से अनेक अनुभव अणु होते हैं। कई व्यतीतहुये हैं; कई वर्त्तमान हैं और कई होंगे। जैसे समुद्र में तरंग होते हैं सो कोई अब वर्तते हैं और कई आगे होंगे; तैसेही आत्मा में तीनों कालकी सृष्टि वर्तती है। हे राक्षसी! चिद्अणु आत्मा उदासीन है और आसीनकी नाईं स्थित होता है। सबका कर्त्ताभी है और भोक्ताभी है और स्पर्श किसी से नहीं किया जाता। जगत् की सत्यता उसी से उदय होती है इसकारण यह सबका कर्त्ता है और सबका अपना आपहै इससे सबको भोगताहै। वास्तवमें न कुछ उपजाहै और न लीनहोताहै। चिन्मात्रसत्ता ज्योंकी त्यों सदा अपने आपमें स्थितहै और अखण्ड और सूक्ष्महै इस कारण किसी से स्पर्शनहीं कियाजाता। हे राक्षसी! जो कुछ जगत् दीखताहै वह सब आत्मरूपहै; आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। आत्मा और जगत् कहनेमात्रको दोनों नामहैं वास्तव में एक आत्माही है। आत्माका चमत्कारही जगत्रूप हो भासता है वास्तव में जगत् कुछ बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपने आप में स्थितहै और जो कुछ कहनाहै वह उपदेश के निमित्तहै वास्तवमें दूसरी कुछ वस्तु नहीं बनी—तीनों जगत् चिदाकाशरूप हैं। हे राक्षसी! द्रष्टा जब दृश्यपद को प्राप्त होता है तब स्वाभाविकही अपने भाव को नहीं देखता। जैसे नेत्र जब घटको देखताहै तब घटही भासता है अपना नेत्रत्वभाव नहीं दृष्टि आता; तैसेही दृश्य के होते द्रष्टानहीं भासता और जब दृश्य नष्ट होताहै तब द्रष्टाभी अवास्तवहै क्योंकि; द्रष्टाभी दृश्य के सम्बन्धसे कहते हैं। जब दृश्य नष्ट होजावे तब द्रष्टा किसका कहिये। दृश्यविषयभूत वह होताहै जो अदृश्यहै; वह विषयभूत किसीकानहीं इसकारणउसमें और कोईकल्पना नहीं बनती और यह जगत्भी उसकाही आभासहै। हे राक्षसी! जैसे भोक्ता विना भोग नहींहोते; तैसेही द्रष्टाविनादृश्य नहीं होता। जैसे पिता विना पुत्र नहींहोता; तैसेही एक विना द्वैतनहींहोते। हे राक्षसी! द्रष्टाको दृश्य उपजाने की सामर्थ्य है परन्तु दृश्यको द्रष्टा उपजाने की सामर्थ्यनहीं क्योंकि; दृश्य जड़ है। जैसे सुवर्ण से भूषण बनता है पर भूषण से स्वर्ण नहीं बनता; तैसेही द्रष्टासे दृश्य होताहै; दृश्यसे द्रष्टा नहीं होता। हे राक्षसी! सुवर्णमें जैसे भूषणहै तैसेही द्रष्टामें जो दृश्य है वह भ्रमरूपहै—इसी से जड़रूप है। जब द्रष्टा दृश्यको देखता

है तब दृश्य भासता है—द्रष्टत्वभाव नहीं भासता और जब द्रष्टा अपने स्वभाव में स्थित होता है तब दृश्य नहीं भासता । जैसे जबतक भूषणबुद्धि होती है तबतक सुवर्ण नहीं भासता—भूषणही भासता है और जब सुवर्णका ज्ञानहोता है तब सुवर्णही भासताहै—भूषणनहीं भासता । एक सत्ता में दोनों नहीं सिद्ध होते । जैसे अन्धकार में किसी पुरुष को देखकर उस में पशुत्व भ्रमहो तो जबतक पशुबुद्धि होती है तबतक पुरुषका निश्चय नहीं होता और जब निश्चय करके पुरुष जाना तब फिर पशुबुद्धि नहीं रहती; तैसेही जब द्रष्टा दृश्यको देखता है तब द्रष्टाभाव नहीं दीखता दृश्यही भासताहै । जैसे रस्सी के ज्ञानसे सर्पका अभाव होजाता है तैसेही बोधकरके दृश्यका अभाव होता है तब एकही परमात्मसत्ता भासती है—द्रष्टासंज्ञा भी नहीं रहती । जैसे दूसरे की अपेक्षा से एक कहाता है और दूसरे के अभावहुये एक एक नहीं कहसक्ते; तैसेही दृश्य के अभावहुये द्रष्टा कहना नहीं रहता केवल शुद्ध संवित्मात्र पद शेष रहता जिसमें वाणीकी गमनहीं । जैसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशताहै तैसेही द्रष्टा, दर्शन और दृश्यको प्रकाशता है और बोधसे मातृ, मान और मेय त्रिपुटी लीन होजाती है । जैसे सुवर्णके जाननेसे भूषणकी कल्पनाका अभाव होजाताहै तैसेही ज्ञानसे त्रिपुटी का अभाव होजाता है केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहताहै । हे राक्षसी ! परमअणु जो अत्यन्त निस्वादरूपहै वह सर्व स्वादोंको उपजाता है । जहां रससहित होता है वहां चिद्अणु करके होताहै । जैसे आदर्शविना प्रतिबिम्ब नहींहोता तैसेही सबस्वाद चिद्अणु विना नहींहोते । सब को रस देनेवाला चिद्अणुही है । आत्मभावसे सबका अधिष्ठानहै और सूक्ष्म से सूक्ष्महै इससे निस्वादहै । वह चिद्अणु आपको छिपानहींसक्ता । सब ज़गत् को उसने ढांपरक्खा है और आप किसीसे ढांपा नहीं जाता । वह चिदाकाशरूपहै; सब पदार्थोंको सत्तादेनेवाला है और सबका आश्रयभूत है । जैसे घासके वनमें हाथी नहीं छिपता तैसेही आत्मा किसी पदार्थ से नहीं छिपता । हे राक्षसी ! जिससे सबपदार्थ सिद्धहोते हैं और जो सदा प्रकाशरूपहै वह मूर्खोंको नहीं भासता—यह बड़ा आश्चर्य्य है । वह सदा अनुभवरूप है और यह सब जगत् उसही से जीता है । जैसे वसन्तऋतु से फूल, फल, टास और पत्र फूलते हैं तैसेही सबजगत् आत्मासे फूलताहै । वही चिदात्मा जगत्रूप होके भासता है और सर्वात्मभावसे सब उसकेही अवयवहैं । परमार्थ निरवयव और निराकाररूप है उस में कुछ उदय नहीं हुआ । हे राक्षसी ! एक निमेष के अबोध से चिद्अणु में अनेक कल्पों का अनुभव होताहै । जैसे एक क्षण के स्वप्ने में पहिले आपको बालक और फिर वृद्ध अवस्था देखने लगता है । उन कल्पों में जो निमेष है उस में अनेक कल्प व्यतीत होते हैं क्योंकि; अधिष्ठान सर्व्वशक्तिमान् है जैसा संवेदन जहां फुरता है वैसारूपहो भासता है । जैसे स्वप्ने में अभोक्ता को भोक्तृ-

त्वका अनुभव होताहै । तैसेही निमेषमें कल्पका अनुभव होता है । वासनासे आवेष्टित अभोक्ताही आपको भोक्ता देखता है जैसे स्वप्न में मनुष्य अपना मरण प्रत्यक्ष देखता है तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै । जैसी जहां स्फूर्ति दृढ़होती है वैसेही होकर वहां भासता है । हे राक्षसी ! जो कुछ आकार भासते हैं वे भ्रान्तिमात्र हैं । जैसे निर्मल आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में विश्व भासताहै । आत्मा सर्वगत और सबका अनुभवरूप है । हे राक्षसी ! उसमें व्याप्य-व्यापकभाव भी नहीं क्योंकि; सर्व आत्मा है और सर्वरूपभी वही है । जब शुद्धचित्त संवित् में संवेदन फुरता है तब पृथक् पृथक् भाव चेतता है । इच्छासे जिस पदार्थकी उपलब्धि होती है उसमें व्याप्य व्यापक भावकी कल्पना होती है-वास्तव में जो इच्छाहै वही पदार्थ है । जैसे जलमें द्रवता होतीहै और उससे तरंग, फेन और बुद्बुदे होते हैं सो सब जलरूपहैं, जलसे भिन्न नहीं; तैसेही इच्छा से उपजे पदार्थ आत्मारूपहैं उससे भिन्ननहीं । आत्मा देश, काल और वस्तु के परिच्छेदसे रहितहै; केवल शुद्ध चिन्मात्र और सर्वरूप होकर स्थितहुआ है और सबका अनुभव भी उसी में हुआहै । वह तो शुद्धसत्तामात्रहै उसमें द्वैतकल्पना कैसे कहिये ? हे राक्षसी ! जब कुछ द्वैत होता है तब एकभी होता है; जो द्वैतही नहीं तो एक कैसे कहिये ? जैसे धूपकी अपेक्षा से छाया है और छायाकी अपेक्षा से धूप है; तैसेही एककी अपेक्षासे द्वैत कहाताहै । इस कल्पना से जो रहित है वही चिन्मात्ररूप है और जगत् भी उस से व्यतिरिक्त नहीं । जैसे जल और द्रवता में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं । हे राक्षसी ! नाना प्रकारके आरम्भ उसमें दृष्टि आते हैं तौभी आत्मसत्ता समहै । हे राक्षसी ! जब सम्यक्बोध होता है तब द्वैत भी अद्वैतरूप भासता है क्योंकि; अज्ञान से द्वैत कल्पना होती है । वास्तवमें द्वैत कुछ नहीं; अज्ञान के अभावसे द्वैतकाभी अभाव होजाताहै ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद नहीं । जैसे जल और द्रवता; वायु और स्पन्दता और आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं । हे राक्षसी ! द्वैत और अद्वैत जानना दुःखका कारणहै । द्वैत और अद्वैत की कल्पनासे रहितहोने कोही परमपद कहते हैं । द्रष्टारूप जो जगतहै वह चिद् परमाणमें स्थितहै और उसमें सुमेरु आदिक स्थित हैं बड़ा आश्चर्य्य है कि,मायासे चिद्परमाणु में त्रिलोकियोंकी परम्परा स्थितहैं इसी से असंभवरूप और मायामय है । जैसे बीज में वृक्ष स्थित है तैसेही चिद्अणु में जगत् स्थित है । जैसे शाखा, पत्र, फूल और फलसे बीज अपना बीजत्व नहीं त्यागता और अखण्ड रहताहै तैसेही चिद्अणु के भीतर जगत्का विस्तार है और अणुत्वभाव नहीं त्यागता--अखण्डही रहता है । हे राक्षसी ! जैसे बीज परिणाम से वृक्षभावमें प्राप्तहोता है तैसेही चिद्अणु भी परिणाम से जगत्रूप होताहै । सब चिद्अणुका किंचनरूपहै

इससे ऐसे दिखाई देता है; वास्तव में न द्वैत है; न अद्वैत है; न बीजहै-न अंकुर है; न स्थूलहै-न सूक्ष्महै; न कुछ उपजाहै-न नष्टहोताहै; न अस्तिहै-न नास्तिहै; न समहै-न असम है और न जगत् है-न अजगत् है; केवल चिदानन्द आत्मसत्ता अचिन्त्य चिन्मात्र अपने आपमें स्थितहै जैसीजैसी भावनाहोतीहै तैसीही तैसी हो भासती है। हे राक्षसी! यह अनउदयही संवेदन के वशसे उदय होकर भासता है। जैसे बीजसे वृक्ष अनन्यरूप अनेक हो भासता है तैसेही एकआत्मा अनेकरूप हो भासता है। न कुछ उदय हुआहै और न मिटताहै। हे राक्षसी! उस चिद्अणुमें कमल के डंडीकी तांत सुमेरुकीनाईं स्थूलहै। जैसे कमलकी डंडीकी तांत से सुमेरु स्थूल है तैसेही चिद् अणु से कमलकी डंडी स्थूल है और दृश्यरूप है पर चिद्अणु दृश्य और मन सहित षड् इन्द्रियों का विषय नहीं इस कारण तांतसे भी सूक्ष्महै उस चिद् अणुमें अनन्त सुमेरु आदिक स्थित हैं सो क्यारूपहै; जैसे आकाश में शून्यताहोती है तैसेही आत्मा में जगतहै। हे राक्षसी! जिसको आत्माका बोधहुआ है उसको जगत् सुषुप्तिकी नाईं भासताहै। वह आत्मसत्ता सदा अद्वैतरूप और परिणामसे रहित है उसमें मुक्तपुरुष सदा स्थितहै। परमार्थ से जगत् भी ब्रह्मरूपहै भिन्नभाव कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसूच्युपाख्याने परमार्थनिरूपणन्नाम सप्त पञ्चाशत्तमस्सर्गः ५७॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! इसप्रकार राजाके मुखसे सुनकर कर्कटी ने वनके मर्कटी-रूप जीवोंके मारनेकी चपलता त्यागकी और भीतर से शीतल होकर विश्रामपाया। जैसे वर्षाकालमें मोरनी प्रसन्नहोती है, चन्द्रमाको देखके चन्द्रवंशी कमल प्रफुल्लित होते हैं और मेघके शब्दसे बगली गर्भवान् होती है तैसेही राजाके वचन सुनके कर्कटी परमानन्द हुई और बोली; बड़ाआश्चर्य है। बड़ाआश्चर्य है!। हे राजन्! तुमने महा-पावन वचनकहे। इससे मैंने तुम्हारा विमलबोधदेखा और अमृतसार और समरस से पूर्ण, शुद्ध और रागद्वेषआदिक मलसे रहित है। जैसे पूर्णिमाका चन्द्रमा शीतल; अमृत से पूर्ण और शुद्धहोता है तैसेही तुम्हारा बोधहै विवेकी जगतमें पूज्य है। जैसे चन्द्रमाको देखके कमलिनी प्रफुल्लित होती है; फूलों से मिलके वायु सुगन्धवान् होती है और सूर्य के उदयहुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होआते हैं; तैसेही सन्तोंकीसङ्गति से बुद्धि सुखपाती है। हे राजन्! वह कौन है जो दीपक हाथ में लेकर गढ़े में गिरे और वह कौनहै जो दीपक हाथ में लेकर तमदेखे? तैसेही वह कौन है जो सन्तों की संगति करे और दुःखीरहे। सन्तों की संगतिसे सभी दुःख नष्टहोते हैं। हे राजन्! तुम इस वनमें किसप्रयोजनसे आयेहो? तुमतो पूजने योग्यहो! राजा बोले, हे राक्षसी! मेरे नगर में जो मनुष्य रहते हैं उनको एक विसूचिका व्याधिरोग लगा है और उससे

वे बहुतकष्टपाते हैं। औषधिभी हम बहुतकररहे हैं पर दुःख दूरनहींहोता। हमनेसुना है कि, एक राक्षसी जीवोंको कष्ट देती है और उसका एक मंत्रभी है उस मंत्रके पढ़ेसे निवृत्त होजाती है। इसलिये उस तुमसी राक्षसियों के मारनेके निमित्त मैं रात्रिको वीरयात्रा करने निकलाहूं। जो वह राक्षसी तूही है तो हमारा तेरा संवाद भी होचुका है उसको अंगीकारकरके प्राणियोंकी हिंसाकरना छोड़ और किसी को कष्ट न दे। राक्षसी बोली; हे राजन्! तुमने सत्यकहा। अब मैंने हिंसाधर्म्मका त्यागकिया और अब किसी जीवको न मारूंगी। राजा बोले, हे राक्षसी! तूने तो कहा कि, मैं अब किसी जीवको न मारूंगी पर तेरा आहार तो जीवहैं जीवोंको मारेविना तेरे शरीरका निर्वाह कैसेहोगा? राक्षसी बोली; हे राजन्! हजारवर्ष मैं समाधिमें स्थितरही और जब समाधिखुली तब मुझे क्षुधालगी। अब मैं फिर हिमालय पर्वतकी कन्दरा में जाकर निश्चल समाधि में; जैसे मूर्त्ति लिखी होती है तैसेही स्थितहूंगी और जब समाधि से उतरूंगी तब अमृत की धारणा में विश्रामकरूंगी। जब उससे उतरूंगी तब शरीरका त्यागकरूंगी परन्तु हिंसा न करूंगी। हे राजन्! जिसप्रकार मैंने हिंसाधर्म्म को अंगीकार कियाथा वह सुन। मुझको जब बड़ी क्षुधालगी तब उसके निवारण के अर्थ मैं हिमालय पर्वत के उत्तर शिखरपर वनमें एक सोनेकी शिलाके पास लोहे के थम्भकी नाईं जीवोंके नाश के निमित्त तप करनेलगी और जब बहुत वर्ष व्यतीत हुये तब ब्रह्माजी ने मनोवांछित वर मुझको दिया। तब मेरे दो शरीर हुये—एक आधारभूत सूर्य्यकी नाईं और दूसरा पुर्यष्टक और मैं विसूचिका नाम राक्षसी हुई। उस शरीर से मैं अनेक जीवोंके भीतर जाकर उनको भोजन करती रही परन्तु ब्रह्माजीने मुझसे कहाथा कि, जो गुणवान् होंगे और जो 'ओं' मंत्रपढ़ेंगे उनपर तेराबल न चलेगा तू निवृत्तहोजावेगी। हे राजन्! उसीमंत्रका उपदेश अब तुमभी अंगीकार करो। उसमंत्रके पाठसे सबके रोगनष्टहोंगे। ब्रह्माजीका जो उपदेशहै उसको तुम नदी के तटपर जाकर और पवित्रहोकर शीघ्रही ग्रहणकरो। उसकेपाठसे तुम्हारी प्रजाका दुःख नष्टहोजावेगा। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार जब अर्द्धरात्रि के समय राक्षसी ने कहा तब राजा, मंत्री और राक्षसी तीनों निकट नदी के तीरपर गये और अनन्य व्यतिरेक करके आपस में सुहृद् हुये। जब तीनों पवित्र होकर बैठे तब जो मंत्र राक्षसी को ब्रह्माजीने उपदेश कियाथा वही मंत्र विसूचिका ने प्रीतिसंयुक्त राजाको उपदेश किया और वहां से चलने लगी तब राजाने कहा; हे महादेवी! तू हमारी गुरु है इस से हम कुछ प्रार्थना करते हैं उसे अंगीकार कर। जो महापुरुष हैं उनका सुन्दर सुहृद्पना बढ़ता जाताहै और तुम्हारा शरीर भी इच्छाचारी है। इससे मन के हरनेवाले भूषण—वस्त्र संयुक्त स्त्री कासा लघु शरीर धरके कुछ काल हमारे नगर में निवास करो। राक्षसी बोली;

हे राजन् ! मैं तो लघु आकारभी धरूंगी परन्तु तुम मुझे भोजन न देसकोगे। जो लघु स्त्रीका शरीर धरूंगी तोभी मेरास्वभाव राक्षसी का है इसको तृप्तकरना समान जनों की नाईं तो नहीं। जैसा कुछ शरीरका स्वभाव है सो सृष्टिपर्य्यन्त तैसाही रहता है-अन्यथा नहीं होता। राजा बोले; हे कल्याणरूपी ! तू स्त्री समान शरीर धरके हमारे नगर में चलकर रह; जो चोर पापी मेरे मण्डल में आवेंगे वे हम तुझे देंगे और तू उन्हें स्त्रीरूप को त्याग करके राक्षसी शरीर से एकान्त ठौर लेजाकर अथवा हिमालय की कन्दरा में जाके भोजन करना क्योंकि; बड़े भोजन करनेवाले को एकान्त में खाना सुखरूप है। जब उनको भोजन करके तृप्त होना तब सो रहना; जब निद्रासे जागना तब समाधि में स्थित होना और जब समाधि से उतरना तब फिर हमारे पास आना हम तेरे निमित्त बन्दीजन इकट्ठे कर रक्खेंगे उन को लेजाकर भोजन करना। जो धर्म्म के निमित्त हिंसा है वह हिंसा पापरूप नहीं और जिसकी हिंसा करता है उसका मरण भी नहीं बल्कि उस पर दया है क्योंकि; वह पाप करने से छूटता है। राक्षसी बोली; हे राजन् ! तुमने युक्ति सहित वचन कहे हैं इससे मैं स्त्री का शरीर धरके तुम्हारे साथ चलती हूं। युक्तिपूर्वक वचन को सब कोई मानते हैं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार कहकर राक्षसी ने महासुन्दर स्त्री का शरीर धारण किया और बहुत कंकण आदिक नानाप्रकार के भूषण और वस्त्र पहिनकर राजाके चली। निदान राजा और मंत्री आगे चले और स्त्री पीछे चली। राजा उसको अपने ठाममें लेआया और एकान्तस्थान में तीनों बैठ रात्रिको परस्पर चर्चा करते रहे। जब प्रातःकाल हुआ तब सौभाग्यवती स्त्रीरूप राक्षसी राजा के अन्तःपुर में जा बैठी और जो कुछ स्त्रियों का व्यवहार है वह करतीरही और राजा और मन्त्री अपने व्यवहार में लगे। इसी प्रकार जब छःदिन व्यतीतहुये तब राजाके मण्डल में जो तीनसहस्र चोर बँधेहुये थे उन्हें सबको उसने कर्कटी को देदिया और उसने राक्षसी का शरीर धारके उनको भजा मण्डल में ले जैसे मेघ बूंदोंको धारता है; हिमालय के शिखरको चली। जैसे किसी दरिद्री को सुवर्ण पाने से प्रसन्नता होती है तैसे वह प्रसन्नहुई और वहां जा तृप्त होके भोजन किया और सुखीहोके सोरही। दो दिनपर्य्यन्त सोईरही उसके उपरान्त जागके पांचवर्ष पर्यन्त समाधि में लगी रही और जब समाधि खुली तब फिर राजा के पास आई। इसी प्रकार जब वहआवे तब राजा उसकी पूजाकरे और जितने दुष्टजन इकट्ठे कियेहों उसको देदे। वह उन्हें लेजाकर हिमालयकी कन्दरामें भोजन करके फिर ध्यान में लगे और जब ध्यानसे उतरे तब फिर वहां आवे और फिर लेजावे। हे रामजी ! इसीप्रकार जीवन्मुक्त होकर वह राक्षसी प्रकृत स्वभाव को करतीरही और अनेक वर्ष

व्यतीतहुये तब राजा विदेहमुक्त हुआ। फिर जो कोई उस मण्डल का राजाहो उससे भी राक्षसी की सुहत्ता हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराक्षसीसुहत्तावर्णनन्नामाष्टपंचाशत्तमस्सर्ग्गः ५८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! निदान जब राक्षसी आवे तब किरात देशका राजा पूर्व की नाईं उसकी पूजाकरे और जो कुछ विसूचिका अथवा दूसरा कोई रोग उनकी प्रजा में हो उसे वह राक्षसी निवृत्तकरदे। इसी प्रकार अनेक वर्ष व्यतीत हुये। एकबार उस को ध्यानमें लगे बहुत वर्ष व्यतीत होगये तब किरात देशके राजाने दुःखके निवृत्तिके लिये ऊंचेस्थानपर उसकी प्रतिमा स्थापनकी और उस प्रतिमा का एकनाम कन्दरादेवी और दूसरा नाम मङ्गलादेवी रक्खा। उसका ध्यान करके सब पूजा करनेलगे और उसी से उसका कार्य्य सिद्ध होनेलगा। हे रामजी ! उस प्रतिमा में उस देवी ने आप निवास किया। जो कोई जिसफलके निमित्त उस प्रतिमाकी पूजाकरे उसका कार्य्य सिद्धहो और न पूजे तो दुःखित हो। इससे जो कोई कुछ कार्य्य करने लगे वह प्रथम मंगलादेवी की पूजाकरे तो उसका कार्य्य सिद्धहोवे और जो विधिकरके उसकी पूजाकरे उससे वह बहुत प्रसन्नहो। हे रामजी ! अबतक वह प्रतिमा किरात देशमें स्थित है। जिस जिस फलके निमित्त उसकी कोई सेवाकरता है तैसा तैसा फल उसको वह देती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसूच्याख्यानसमाप्ति वर्णनन्नामैकोनषष्टितमस्सर्ग्गः ५९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह आनन्दित कर्कटीका आख्यान जैसे पूर्व हुआ है तैसेही मैंने तुमसे कहा है। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! राक्षसी का कृष्णवपु किस निमित्त था और कर्कटी इसका नाम क्योंथा ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह राक्षसों के कुलकी कन्या थी राक्षसोंका वपु शुक्ल भी होताहै; कृष्णभी होताहै, और रक्त, पीत आदि भी होता है। हे रामजी ! कर्कटी नाम एक जलजन्तु भी होता है और उसका श्याम आकार होता है; उसी के समान कर्कट नाम एक राक्षस था उसके समान उस की यह पुत्री हुई; इस कारण इसका नाम कर्कटी हुआ। हे रामजी ! यहां कर्कटी का और कुछ प्रयोजन न था; अध्यात्मप्रसंग और शुद्धचेतन के निरूपण के निमित्त मैंने तुमसे यह व्याख्यान कहाहै। यह आश्चर्य है कि, असत्‌रूप जगत् के पदार्थ सत्‌रूप होकर भासते हैं और जो आत्मसत्ता सदा सम्पन्नरूप है वह अविद्यमान की नाईं भासता है। हे रामजी ! वास्तव में तो एक अनादि, अनन्त और परमकारण आत्मसत्ता स्थितहै; भावना के वशसे उसमें जगत्‌रूप भासता है और अनन्यरूप है। जैसे जल और तरंगमें कुछ भिन्नता नहीं होती तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भिन्नता नहीं। आत्मा में जगत् कुछ द्वैतरूप नहीं हुआ आत्मसत्ता सदा अपने आपही में स्थित है

और उस में जैसा जैसा चित्तस्पन्द दृढ़ होता है तैसाही तैसारूप होकर भासता है। जैसे वानर रेतको इकट्ठा करके उसमें अग्निकी भावना करते हैं और तापते हैं तो उन का शीत उसी से निवृत्त होता है तैसेही सम, स्थिर और शान्तरूप आत्मा में जब जगत् की भावना फुरती है तब नाना प्रकार का भासताहै। जैसे थम्भे में पुतलियां अनउदयही शिल्पी के मन में उदयकी नाईं भासती हैं तैसेही भावनाके वशसे आत्मा ही जगत् हो भासता है। जैसे बीज में पत्र, फूल, टहनी और वृक्ष अनन्यरूप होते हैं तैसेही ब्रह्म में जगत् अनन्यरूप है। जैसे बीज और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं; अविचार से भेद भासता है और विचार किये से जगत् भेद नष्ट होजाता है। हे रामजी! अब यह विचार न करना कि, कैसे उपजाहै; कहां से आयाहै और कबका हुआहै ? जैसे हुआ तैसे हुआ अब इसकी निवृत्ति का उपाय करना चाहिये। जब तुम यह जानोगे तब हृदयकी चिद्जड़ग्रन्थि टूटजावेगी। शब्द और अर्थकी जो कुछ कल्पना उठती है सो मेरे वचनों और स्वरूपमें स्थितभये से नष्ट होजावेगी। हे रामजी! यह सब जगत् अनर्थरूप चित्तसे उपजाहै और मेरेवचनों के सुनने से शान्त होजावेगा। इस में संशय नहीं कि, सबजगत् ब्रह्मसे उपजा है और सब ब्रह्मस्वरूपही है पर जब तुम ज्ञान में जागोगे तब ज्योंकात्योंही जानोगे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो जिससे होताहै वह उससे व्यतिरेक होताहै; जैसे कुलालसे घट भिन्नरूप होताहै; तो आप कैसे कहते हैं कि; सबजगत् ब्रह्मसे उपजाहै और ब्रह्मस्वरूप ही है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मसेही उपजाहै। जितने कुछ प्रतियोगी शब्द शास्त्रोंने कहे हैं सो दृश्य में हैं। शास्त्र ने उपदेश जताने के निमित्त कहे हैं वास्तव में यह शब्द कोई नहीं। जैसे किसी बालकको परछाहीं में वेताल भासता है तो पूछते हैं कि, किसभाग में स्थित होकर वेताल ने भयदिया है और वह कहता है कि, अमुक ठौरमें वेताल ने भयदियाहै सो वह व्यवहारके निमित्त कहताहै पर वेताल तो वहां कोई भी न था; तैसेही आत्मा में उपदेशके निमित्त भेद कल्पना करी है वास्तवमें उसमें द्वैत कल्पना कोई नहीं। हे रामजी! ब्रह्मसे जगत् हुआ है यह अर्थ केवल व्यतिरेक में नहीं होता। कुलाल जो दण्ड से घट उपजाताहै सो व्यतिरेक के अर्थ है। स्वामीका टहलुआ यह भिन्न के अर्थ है और ये अभिन्नरूपभी होते हैं। जैसे अवयवी के अवयव हैं; सुवर्ण से भूषणहुये हैं और मृत्तिकासे घटहुये हैं तैसेही यह अभिन्न और अवयवीको स्वरूपहै। जैसे भूषणस्वर्णरूपहै और घट मृत्तिकारूपहै तैसेही ब्रह्मसेउपजा जगत् ब्रह्मरूपही है। वास्तव में भिन्न-अभिन्न; कारण-परिणाम; भाव-विकार;अविद्या और विद्या; सुख-दुःख आदिक मिथ्या कल्पना अज्ञानसे उठती हैं। हे रामजी! अबोध से भेदकल्पनाहोती है और ज्ञान से सबकल्पना शान्तहोजाती हैं। केवल अशब्दपद

शेषरहताहै। जब तुम ज्ञानयोगहोगे तब ऐसे जानोगे कि, आदि-मध्य-अन्तसेरहित; अविभाग और अखण्डरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है। अज्ञान से अथवा जिज्ञासीको उपदेशके निमित्त द्वैतवाद कल्पनाहै; बोधहुयेसे द्वैतभेद कुछ नहीं रहता। हे रामजी! वाच्य-वाचकभाव द्वैत विना सिद्धनहीं होता। जब बोध होता है तब वाच्य का मौन होताहै। इससे महावाक्यके अर्थ में निष्ठाकरो और जो कुछ भेद कल्पना मन ने रचीहै उसकी निवृत्तिके अर्थ मेरे वचन सुनो। हे रामजी! यह मन ऐसे उपजा है जैसे गन्धर्व्व नगर होता है और उसी ने जगत् की रचनाकी है मैंने जैसे देखाहै तैसे तुमसे दृष्टान्त में कहताहूं; जिसके जानेसे सब जगत् तुमको भ्रांतिमात्र भासेगा। वह निश्चय धारण करके तुम जगत् की वासना दूरसे त्याग दोगे और बोधसे सब जगत् तुमको मन का मननरूप भासेगा। तब तुम आत्मरूप होकर अपने आप में निवासकरोगे अर्थात् जगत्की कल्पना त्यागकरके अपने स्वभावसत्ता में स्थित होगे। इसलिये इसको सावधान होकर सुनो। हे रामजी! यह मनरूपी बड़ारोगहै इसलिये विवेकरूपी औषधि से उसको शान्तकरना चाहिये। सब जगत् चित्तकी कल्पनाहै। वह वास्तवमें शरीरआदिक कुछ नहीं। जैसे रेतसे तेल नहीं निकलता; तैसेही जगत्से वास्तव में कुछ नहीं निकलता-चित्तद्वारा भासताहै। वह चित्तरूपी संसार स्वप्ने की नाईं है और रागद्वेषआदिक संकल्पोंसे युक्तहै। उससे रहित होताहै वही संसार समुद्र के पारजाता है। इसलिये शुभ गुणोंसे चित्तकी शुद्धताकरो। जो विवेकी हैं वे शुभकार्य करते हैं अशुभ नहीं करतेहैं और आहार व्यवहार भी विचारके करते हैं। उन्हीं आर्योंकी नाईं तुमभी शास्त्रों के अनुसार सचेष्टा करो। जब तुमको ऐसा अभ्यासहोगा तब तुम शीघ्रही ज्ञानवान्होगे और ज्ञानके प्राप्तहुये से सब कल्पना मिटजावेंगी और आत्मस्थितिहोगी। चित्तने सबजगत् रूपी चित्र मनमेंही रचे हैं। जैसे मोरका अण्डा काल पाकर अनेक रङ्ग धारण करता है तैसेही मन अनेक प्रकार के जगत् धारण करता है वह मन जड़ और अजड़रूप है। उसमें जो चेतनभाग है वह सब अर्थोंका बीजरूप है अर्थात् सबका उपादान है और जड़ भाग जगत्रूप है। हे रामजी! सर्गके आदिमें पृथ्वी आदिक तत्त्व न थे। जैसे स्वप्न में जगत् विद्यमानकी नाईं भासताहै तैसेही ब्रह्माने विद्यमानकी नाईं उस को देखा। जड़ संवेदन से पहाड़ आदिक जगत् देखा और चेतन संवेदन से जंगम रूप देखा। वह सब जगत् दीर्घवेदना है। वास्तव में देहादिक सब शून्यरूप हैं और आत्मामें व्यापे हुये हैं। आत्माका कोई शरीर नहीं। अपने से जो दृश्यरूप मन चेता है वही आत्मा का शरीर है। वह आत्मा विस्तरणरूप है और निर्म्मल स्थित है और मन उसका आभासरूप है। जैसे सूर्य्य की किरणों से जलभासहोता है तैसेही आत्मा का आभास मन है। वह मनरूपी बालक अज्ञान से जगत्रूपी पिशाच को देखता है

और ज्ञानसे परमात्मपद शान्तरूप निरामयको देखता है। हे रामजी! जब आत्मा चैत्यताको प्राप्त होताहै तब वही चित्तरूप दृश्य एक ब्रह्मको द्वैत देखताहै। उसकी निवृत्ति के लिये मैं तुमसे एक कथा कहताहूं गुरुके वचन जो दृष्टान्तसहित होते हैं और वाणी भी मधुर और स्पष्ट होती है तो श्रोताके हृदय में वह अरोक्ष जैसे जलमें तेलकी बूंद फैलजाती है तैसेही, फैलजाते हैं और जो दृष्टान्तसे रहित होते और अर्थ स्पष्ट नहीं होता तो वह क्षोभसंयुक्त वचन कहाताहै और अक्षर पूर्ण नहीं होते; इस लिये वे वचन श्रोताके हृदयमें नहीं ठहरते और उपदेष्टा के निष्फल होजाते हैं। मैं तुमसे एक आख्यान नानाप्रकार के दृष्टांतों सहित, मधुरवाणी में स्पष्ट करके कहताहूं। जैसे चन्द्रमा की किरणें अपने गृह पर उदय हों और मन्दिर शीतल होजावे तैसेही मेरे स्पष्टवचन और प्रकाशरूप अर्थ सुने से तुम्हारा भ्रम निवृत्त होजावेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमनअंकुरोत्पत्तिकथनन्नामषष्टितमस्सर्ग्गः॥ ६०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पूर्व जो मुझसे ब्रह्माजी ने सर्गका वृत्तान्त कहा है वह मैं तुम से कहता हूं। एक समय मैंने ब्रह्माजी के पास जाकर पूछा कि, हे भगवन्! ये जगत् गण कहांसे आये और कैसे उत्पन्न हुये? तब पितामहजी ने मुझसे इन्दु ब्राह्मण का आख्यान इस भांतिकहा वे बोले; हे मुनीश्वर! यह सब जगत् मनसे उपजाहै और मनसेही भासताहै। जैसे जलमें द्रवताके कारण नानाप्रकारके तरंग और चक्र फुरते हैं तैसेही मनके फुरनेसे सब जगत् फुरते हैं और मनरूपही हैं। हे मुनीश्वर! पूर्व कल्पमें मैंने एक वृत्तान्त देखाहै उसे सुनो। एकसमय जब दिनका क्षयहुआ तब मैं सम्पूर्ण सृष्टिको संहार करके एकाग्रभावहो रात्रिको स्वस्थभाव होकर रहा जब मेरी रात्रि व्यतीत हुई और मैं जागा तब मैंने उठकर विधिसंयुक्त सन्ध्यादिक कर्म्म किये और बड़े आकाशकी ओर देखा कि, तम और प्रकाश से रहित;शून्यरूप और इतरसेरहितव्यापित है। चिदाकाशमें चित्तको मिलाके जब मैंने सर्ग के उपजाने का सङ्कल्प चित्तमें धारण किया तब मुझको शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाश में सृष्टि दृष्टि आई। वह सृष्टि मुझे बड़े विस्तार सहित और परस्पर अदृष्टरूप दृष्टआई है और हरसृष्टिमें–ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र-तीनों देवताभी थे। देवता, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य; सुमेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत; पृथ्वी, नदियां, सातोसमुद्रादिक सब सृष्टिके विस्तार हैं। वे दशसृष्टि हैं। उनमें जो दश ब्रह्मादेखे वे मानों मेरेही प्रतिबिम्ब कमल से उत्पन्नहुये हैं और राजहंसके ऊपर आरूढ़हैं। उनकी भिन्नभिन्न सृष्टि है। उनमें नदीके बड़े प्रवाह चलते हैं; वायु आकाश में चलता है; सूर्य्य और चन्द्रमा उदयहोते हैं; देवता स्वर्गमें क्रीड़ाकरते हैं; मनुष्य पृथ्वी में फिरते हैं; दैत्य और नाग पाताल में भोग भोगते हैं और कालचक्र फिरताहै। बारहमास उसकी बारह कीलें हैं और वसन्तादिक

षट्ऋतु हैं । वासना के अनुसार शुभाशुभ आचार करके लोग नरक स्वर्ग भोगते हैं और मोक्ष फल पाते हैं । हर सृष्टिमें सप्तद्वीप हैं; उत्पत्ति और प्रलय कल्प होते हैं और गंगाजी का प्रवाह जगत् के गले में यज्ञोपवीत है । कहीं ऐसे सृष्टि स्थित है; कहीं सदा प्रकाश रहताहै और कहीं अहंकार से स्थावर-जंगम प्रजाहैं । बिजली की नाईं सृष्टि उपजती और मिटजाती है । जैसे वृक्ष के पत्र उपजते हैं और नष्ट होजाते हैं वैसेही और गन्धर्वनगरवत् सृष्टि देखी । एक एक ब्रह्माण्डमें स्थावर जंगम ऐसी प्रजा देखी जैसे गूलरके फलमें अनेक मच्छर होते हैं । आत्मामें कालकाभी अभावहै । क्षण, लव, दिन, मास और वर्षों का प्रवाह चलाजाता है । हे मुनीश्वर ! अन्तवाहकदृष्टि से मैंने उन सृष्टियों को देखा । जब मैं चर्मदृष्टि से देखूं तब कुछ न भासै और दिव्य दृष्टि से देखूं तो सब कुछ भासै । चिरकालपर्य्यन्त मैं यह चरित्र देखता रहा कि कदाचित् चित्त भ्रम हो तो स्पष्ट हो भासै । तब एक सृष्टि के सूर्य्य को देखके मैंने आवाहन किया और जब वह मेरे निकटआया तो मैंने उससे कहा; हे देवदेवेश भास्कर ! तुम कुशलसे तो हो ? ऐसे कहकर मैंने फिर कहा कि; हे सूर्य्य ! तुम कौन हो और यह सृष्टि कहां से उपजी है ? यह एक जगत् है व ऐसे अनेक जगत् हैं; जैसे तुम जानते हो कहो ? तब वह सूर्य्य भी जो त्रिकालज्ञान रखता था मुझको जानके प्रणामकर आनन्दित वाणी से बोला; हे ईश्वर ! इस दृश्यरूपी पिशाच के आपही नित्य कारण होते हैं । आपतो सब जानतेही हैं तो मुझसे क्यों पूछते हैं ? यदि लीला के अर्थ पूछते हो । तो जैसे वृत्तान्तहुआ है तैसे मैं आप के सन्मुख निवेदन करताहूं । हे भगवन् ! यह जो सत् असतरूपी नानाप्रकारों के व्यवहारों संयुक्त जगत् भासता है वह सब मनके फुरनेमें स्थितहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेआदित्यसमागमनन्नामैकषष्ठितमस्सर्गः ॥ ६१ ॥

भानुबोले; हे भगवन् ! आपका जो कल्पका दिन व्यतीत भया है उसमें जो जम्बूद्वीप था उसके एक कोने में कैलास पर्वत था और उसकी कन्दरामें सुवर्णज्येष्ठ नाम आपका एक पुत्र रहता था । उसने वहां एक कुटीरची जिसमें साधुजन निवास करते थे इन्दुनाम ब्राह्मण वेदका वेत्ता शांतरूप कश्यपऋषिके कुलमें उत्पन्न हो स्त्री सहित उस कुटी में जाके निवास किया और उस स्त्रीसे प्राणोंकी नाईं स्नेहकरता था । जैसे मरुस्थलमें घास नहीं उपजती तैसेही उससे सन्तान न उपजे । और जैसे शरत्कालकी बेलि बहुत सुन्दर होतीहै परन्तु फलसे शून्यहोती है तैसेही वह स्त्रीथी । तब दोनों स्त्री पुरुष पुत्र के निमित्त कैलासके निकट निर्जनस्थान और कुंजमें एक वृक्षकेऊपर चढ़बैठे और तप करनेलगे । कुछ दिन तक वे केवल जलपानकर भोजन कुछ न करें और रात्रि दिन व्यतीतकरें । फिर कुछ समय तक एकही अंजली जल पान करनेलगे

और फिर उसकाभी त्यागकर और फुरने से रहित हो वृक्षकी नाईं बैठेरहे। निदान जब उनको तप करते त्रेता और द्वापरयुग बीते तब शशिकलाधारी भवानीशङ्कर तुष्टमान होकर आये और क्यादेखा कि, स्त्रीपुरुष दोनों वृक्षपर बैठे हैं। तब उन्हों ने शिवजी को देखके प्रणामकिया तो जैसे दिनकी तपनसे सकुचीहुई चन्द्रमुखी कमलिनी चन्द्रमाके उदयहुये प्रफुल्लित हो आती है तैसेही महाहिमकी नाईं शिवजी को देखकर वे प्रफुल्लित हुये—मानो आकाश और पृथ्वी दोनों रूपधर के आनखड़ेहुयेहैं। ऐसे भवानीशंकरने उस ब्राह्मणसे कहा; हे ब्राह्मण ! मैं तुझपर तुष्टहुआ; जो कुछ तुझको वांछित वरहै सो तू मांग। हे ब्रह्माजी ! जब ऐसे शिवजी ने कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित होकर कहने लगा; हे भगवन् ! देवदेवेश ! मेरे गृह में दशपुत्र बड़े बुद्धिमान् और कल्याणमूर्त्तिहों जिससे मुझको फिर शोक कदाचित् न हो। तब ईश्वर ने कहा ऐसे ही होगा। ऐसे कहकर जब शिवजी समुद्र के तरंगवत् अन्तर्द्धान हुये तब वे स्त्री पुरुष दोनों शिवके चरणों को ग्रहण करके प्रसन्न हुये और जैसे सदाशिव और भवानी की मूर्त्ति है तैसेही प्रसन्न होकर वे अपने गृहमें आये। निदान ब्राह्मणी गर्भवती हुई और समयपाके उसके दश पुत्र हुये। जैसे द्वितीया के चन्द्रमाकी शोभाहोती है तैसेही उसकी शोभाहुई और षोड़शवर्षके आकारकीनाईं ब्राह्मणीका आकाररहा वृद्ध न हुई। वे बालक दशों संस्कारोंको ले उपजे और जैसे वर्षाकालकी बदली थोड़ीभी शीघ्रबड़ीहोजाती है तैसेही वे थोड़ेही कालमें बड़े होगये। जब सातवर्षोंकेहुये तब वे सब वाणी के वेत्ताहुये और उनके माता और पिता दोनों शरीर त्याग के अपनी गतिमें प्राप्त हुये। वे दशो ब्राह्मण माता पिता से रहित हो गृहको त्याग के कैलास के शिखर पर जाचढ़े और परस्पर विचार करने लगे कि, वह कौन ईश्वर है जो परमेश्वररूप है और वह कौन ईश्वरपदहै जिसके पायेसे फिर दुःखी भी न हो और नाशभी न हो और सबकाईश्वर हो। तब एक भाई ने कहा कि, सबसे बड़ा ऐश्वर्य्य मण्डलेश्वर का है। क्योंकि सबपर उसकी आज्ञा चलती है। दूसरे भाई ने कहा कि, मण्डलेश्वरकी विभूति भी कुछ नहीं क्योंकि; वह भी राजाके आधीनहोताहै; इससे राजाका पद बड़ा है। तीसरे ने कहा राजाकी विभूति भी कुछनहीं क्योंकि;राजा चक्रवर्त्ती केआधीन होताहै। इसलिये चक्रवर्त्तीका पद बड़ा है चौथेने कहा चक्रवर्त्तीभी कुछ नहीं क्योंकि, वह भी यमके आधीन होताहै, इससे यमका पद बड़ा है। पांचवेंने कहा कि, इन्द्रके आगे यमकी विभूति कुछ नहीं इससे इन्द्रका पद बड़ाहै। छठेनेकहा कि,इन्द्रकी विभूतिभी कुछनहीं ब्रह्माके एक मुहूर्त्त में इन्द्र नष्ट होजाताहै। तब सबसे बड़े भाईने जो बड़ा बुद्धिमान्था गंभीर वचन से कहा कि, जो कुछ विभूतिहै सो सब ब्रह्माकेकल्पमें नष्ट होजातीहै—इससेबड़ा ऐश्वर्य ब्रह्माजीकाहै उससे बड़ा और कोई नहीं। हे भगवन् ! इसप्रकार जब बड़ेभाई ने

कहा तब सबनेकहा भलीकही ! भलीकही ! फिर सबने बड़े भाई से कहा, हे तात ! जो सबका दुःखनाशकर्त्ता और जगत्पूज्य ब्रह्मपदहै तो उसको हम कैसे प्राप्तहों ? जिस उपायसे हम प्राप्तहों वह उपायकहो । उसने कहा, हे भाइयो ! और सबभावनाओंको त्यागकरो और यह निश्चयकरो कि, हम ब्रह्माहैं और पद्मासन पर बैठेहैं । सब सृष्टिके कर्त्ता और सबकी पालना और संहारकर्त्ता हमही हैं और जो कुछ जगत्जाल है उसका आश्रयभूत हम नहीं । सब सृष्टि हमारे अंग में स्थितहै जब हम ऐसा निश्चय और सजाति भावना धरके बैठेंगे तब हमको ब्रह्माका पद प्राप्तहोगा । हे भगवन् ! जब इसप्रकार बड़ेभाई ने कहा तब छोटे भाइयों ने कहा, हे तात ! तुमने यथार्थ कहा है जैसे तुमने कहाहै तैसेही हम करते हैं । ऐसाकहकर सब ध्यानमें स्थितहुये और जैसे कागजपर मूर्त्ति लिखीहोती है तैसेही दशो ध्यान में स्थितहुये । मनमें हरएकने यही चिन्तवनकिया कि, मैं ब्रह्माहूं; कमल मेरा आसनहै, मैं सृष्टिकर्त्ता और भोक्ताहूं और महेश्वर भी मैंहीहूँ । सांगोपांग जगत् कर्म्म मैंनेही रचे हैं; सरस्वती और गायत्री सहित वेद मेरे आगे आखड़े हैं और इस लोकपाल और सिद्धों के मण्डलों को पालने वाला भी मैंहीहूँ । स्वर्ग्ग, भूमि, पाताल, पहाड़, नदियां और समुद्र सब मैंनेही रचे हैं और महाबाहु वज्रके धारनेवाला और यज्ञोंका भोक्ता इन्द्र मैंनेही रचा है । सूर्य मेरेही आज्ञासे तपताहै और जगत् की मर्यादा के निमित्त सब लोकपाल मैंनेही रचे हैं जैसे गौको गोपाल पालता है तैसेही लोकपाल मेरी आज्ञा पाकर जीवोंको पालते हैं और जैसे समुद्र में तरंग उपजते हैं और मिटजाते हैं तैसेही जगत् मुझसे उपजाहै और फिर मुझमेंही लीनहोताहै । क्षण, दिन, मास, वर्ष, युग आदिक काल मेरेही रचेहुये हैं और मैंनेही सब कालके नामरक्खे हैं। मैंही दिनको उत्पन्न करताहूं और रात्रिको लीन करलेता हूं;सदा आत्मपदमें स्थितहूं और पूर्ण परमेश्वर मैंहीहूं । हे ब्रह्माजी ! इसप्रकार वे दशो भाई भावना धारणकर बैठेरहे—मानो कागज पर मूर्त्तिलिख छोड़ी है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेऐन्दवसमाधिवर्णनं नामद्विषष्टितमस्सर्ग्गः ॥ ६२ ॥

भानुबोले; हे भगवन् ! इसप्रकार इन्द्रके दशोपुत्र पितामहकी भावना धारण करके बैठे और जैसे जेठ–आषाढ़ में कमलके पत्र सूखकर गिरपड़ते हैं तैसेही उनकी देह धूप और पवनसे सूखकर गिरपड़ी । तब वनचर उनके शरीरों को आपस में खैंच कर भक्षण करगये । जैसे वानर फल पकड़ते हैं और विदारण करते हैं तैसेही इनके देह वे बिदारने लगे तौभी उनकी वृत्ति ध्यान से छूट के बाह्यदेहादिक अभ्यास में न आई ब्रह्माकी भावनामेंही लगी रही । इसप्रकार जब चारों युग का अन्त हुआ और तुम्हारे कल्प दिनकाक्षय होने लगा तब द्वादशसूर्य्य तपने लगे; पुष्कल मेघ गरजके

वर्षनेलगे; बड़ाभौचाल आया; वायु चलनेलगा; समुद्र उछलनेलगे; सब जलही जल होगया और सबभूत क्षयहोगये । जब सबको संहारकरके रात्रिको वे आत्मपद में स्थित हुये तब उन के शरीरभी नष्टहोगये और पुर्यष्टक आकाश में आकाशरूप होके ब्रह्माके संकल्प को लेकर तीव्र भावनाके वशसे दशोंसृष्टि सहित भिन्नभिन्न अपनी अपनी सृष्टिके दश ब्रह्माहुये । फिर जागकर देखते हैं कि, आकाश में फुरते हैं । हे भगवन्! उन दशों ब्राह्मणोंके चित्त आकाशमेंही सबसृष्टि स्थितहैं । उन दश सृष्टियों में से एक सृष्टिका सूर्य मैंहूं । आकाश में मेरामन्दिरहै और क्षण, दिन, पक्ष, मास और युग मुझही से होतेहैं—इसक्रियामें मुझको उन्होंने लगायाहै । हे भगवन्! इसप्रकार मैंने आपसे दशों ब्रह्मा और उनकी दशों सृष्टिकहीं वे सृष्टि सब मनोमात्र हैं । अब जैसी आपकी इच्छाहो तैसी कीजिये । भिन्न भिन्न जगत् जाल कल्पना जो इन्द्रजाल की नाईं विस्तृत हुई हैं वे चित्तके भ्रमसे भासती हैं ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजगद्रचनानिर्वाणवर्णनन्नामत्रिषष्टितमस्सर्गः॥६३॥

इतना कहकर ब्रह्मा बोले; हे ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! इसप्रकार ब्रह्माके सूर्य ब्रह्मासे कहकर जब तूष्णीहुये तब उसके वचनोंको विचारकर मैंने कहा; हे भानु! तुमने सृष्टि दश कहीं अब मैं क्यारचूं? यह तो दशसृष्टिहुई हैं और दशही ब्रह्माहैं अब मेरेरचने से क्या सिद्धहोगा? हे मुनीश्वर! जब इसप्रकार मैंने कहा तब सूर्य विचार कर बोले; हेप्रभो! आपतो निरिच्छित हैं, आपको सृष्टिरचने में कुछ इच्छा नहीं सृष्टिका रचना आपको विनोदमात्र है किसी कामना के निमित्त नहीं रचते । आप निष्कामरूप हैं । जैसे जल में सूर्यका प्रतिबिम्ब होता है और जल विना प्रतिबिम्ब की कल्पना नहीं होती तैसेही संवेदन करके आप से सृष्टिकी रचना होतीहै । अज्ञानी को आप सृष्टिकर्त्ता भासते हैं पर आपतो सदा ज्योंकेत्यों निष्क्रियरूपहैं । हे भगवन्! आपको शरीर आदिक की प्राप्ति और त्याग में कुछ द्वेष नहीं और उत्पत्ति और संहार की आपको कल्पना नहीं—लीलामात्र आपसे सृष्टिहोती है । जैसे सूर्य से दिनहोता है और सूर्यके अस्तहोनेसे दिन लय होजाता है पर सूर्य असंसक्तरूपहैं तैसेही आप में संवेदन के फुरने से सृष्टिहोती है और संवेदनके अस्फुर हुये सृष्टिका लय होता है पर आप सदा आसक्त हैं । जगत् की रचना आपका नित्यकर्म है और उस कर्मके त्याग कियेसे आपको कुछ अपूर्व वस्तु भी नहीं प्राप्त होती इससे जो कुछ आपका नित्यकर्म्म है उसे कीजिये । हे जगत्पति! जैसे निष्कलंक दर्पण प्रतिबिम्ब अङ्गीकार करता है तैसेही महापुरुष यथाप्राप्त कर्मको असंसक्त होकर अंगीकार करते हैं । जैसे ज्ञानवान्को कर्म करने में कुछ प्रयोजन नहीं तैसेही उसको करने में और न करने में कुछ प्रयोजन नहीं; करना न करना दोनों उसको समहैं । इसकारण दोनों में

आप सुषुप्तिरूप हैं। हे भगवन्! आप तो सदा सुषुप्तिरूप हैं और उत्थान किसी प्रकार नहीं। इससे आप सुषुप्ति प्रबोध होकर अपने प्रकृत आचार कीजिये। जो इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रोंकी सृष्टि देखो तबभी विरुद्ध कुछ नहीं। जो ज्ञानदृष्टि से देखो तो एकही अद्वैत ब्रह्महै और कुछ नहीं बना और जो चित् दृष्टिसे देखो तो संकल्परूप अनेकसृष्टि फुरती हैं। उनमें आस्था करनी क्याहै। जो चर्मदृष्टिसे देखो तो आपको सृष्टि भासतीही नहीं। उनके साथ आपको क्या है; उनकी सृष्टि उनहीं के चित्तमें स्थित है और उनकी सृष्टि आप नाश भी न करसकोगे क्योंकि जो इन्द्रियोंसे कर्म होताहै वह नाश होसक्ता है परन्तु मनके निश्चयको कोई नाश नहीं करसक्ता। हे भगवन्! जो निश्चय जिसके चित्तमें दृढ़होगया है उसको वही निवृत्तकरे तो निवृत्तहोता है और कोई निवृत्त नहीं करसक्ता। देह नष्टहो परन्तु निश्चय नहीं नष्टहोता। जो चिरकालका निश्चय दृढ़होरहाहै उसका स्वरूपसे नाशनहीं होता। हे भगवन्! जो मनमें दृढ़निश्चय होरहाहै वही पुरुषका रूपहै; उसका निश्चय और किसी से नहीं होता। जैसे जल सींचने से पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही चित्तका निश्चय और से चलायमान नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेऐंद्रवनिश्चयकथनन्नामचतुःषष्टितमस्सर्गः॥६४॥

भानु बोले, हेदेवेश! इसपर एकपुरातन इतिहासहै वह आप सुनिये। इन्द्रद्युम्ननामक एक राजाथा और उसकी कमलनयनी अहल्या रानी थी। उसके नगर में इन्द्रनामक एक ब्राह्मण का पुत्र बहुत सुन्दर और बलवान् रहता था। एक समय उस रानीने पूर्व की अहल्या गौतमकी स्त्री और इन्द्रकी कथा सुनी तब एक सहेली ने कहा; हे रानी! जैसे पूर्व अहल्या थी तैसेही तुमभी हो और जैसा वह इन्द्र सुन्दर था तैसेही तुम्हारे नगरमें भी एक इन्द्र ब्राह्मणहै। हे भगवन्! जब इसप्रकार रानीनेसुना तब उस इन्द्र में रानीका अनुरागहुआ परन्तु वह रानीको न मिले और रानीका शरीर इसीकारण दिनपर दिन सूखताजावे। निदान राजानेसुना कि, इसको गरमीका कुछ रोगहै इसकारण उसकी निवृत्तिके लिये केलेके पत्र और शीतल औषध उसको दिलवाये परन्तु उसको वांछित पदार्थ कोईदृष्टि न आये और खाना, पीना, शय्यादिक जो कुछ इन्द्रियों के वांछित पदार्थहैं वह उसको कोई सुखरूप न भासे। वह दिन दिन पीतवर्ण होतीजावे और इन्द्र के वियोगसे जैसे जल विना मछली मरुस्थलमें तड़फे तैसे वह तड़फतीरहे और कहे हा इन्द्र! हा इन्द्र! निदान जब उसने लोकलाज त्यागदी और इन्द्रमें उसका बहुत स्नेह बढ़गया तब विचारकर एक सखीने कहा, हे रानी! मैं इन्द्र ब्राह्मणको ले आतीहूं यह सुन रानी सावधान हुई और जैसे चन्द्रमा को देखके कमलनी खिलआती है तैसे वह खिलआई। वह सखी रानीसे कहके ब्राह्मण के घरगई और उस इन्द्रको प्रबोधकरके

रात्रिके समय अहल्याकेपास लेआई । जब वह गोप्यस्थानमें इकट्ठे हुये तो परस्पर लीला करनेलगे और दोनोंका चित्त परस्पर स्नेह से बँधगया और बहुत प्रसन्नहुये । जैसे चकवी–चकवे और रति और कामदेवका स्नेह होताहै तैसेही उनका स्नेहहुआ और एक दूसरे विना एकक्षणभी रह न सकें । निदान सब क्रिया उनकी निवृत्त होगई और लज्जा भी दूर होगई । जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्नहों तैसेही एक दूसरे को देखके वे प्रसन्न होवें । हे भगवन् ! उस रानी का भर्त्ताभी बड़ा गुणवान् था परन्तु रानीने भर्त्ताका त्याग किया और इन्द्र से उसका स्नेह किया । जब राजाने उनका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना तो उनको दण्ड देने लगा परन्तु उनको कुछ खेद न हो और जब कीचड़ में डालें तब कमलकी नाईं ऊपरही रहें कुछ कष्ट न हो । फिर जब बरफमें उनको डाला तौभी खेदवान् न हुये । तब राजाने कहा, हे दुर्मतियो ! तुमको दुःख क्यों नहीं होता ? उन्होंने कहा हमको दुःख कैसेहो; हमतो अपने आप को भी नहीं जानते ? तब अहल्याने कहा मुझको सब इन्द्रही भासता है; भिन्न दुःख क्या हो ? इन्द्रने कहा मुझको सब अहल्याही भासती है भिन्न दुःख कहां हो ? तेरे दण्डदेने से हमको कुछ दुःख नहीं होता हम परस्पर हर्षवान् हैं । तब राजाने उनको बांधकर अग्नि में डालदिया तौभी वह न जले और फिर हाथीके चरणों तले डलवा-दियेगये तौभी उनको कुछ कष्ट न हुआ । तब राजाने कहा, रे पापियो ! तुमको अग्नि आदिक में दुःख क्यों नहीं होता ? तब इन्द्रने कहा; हे राजन् ! जो कुछ जगत् जाल है वह मन में स्थित है । जैसा मन है तैसा पुरुषरूप है । जैसा निश्चय मन में दृढ़ होता है उसको कोई दूर नहीं करसक्ता । चाहे कोई हमको दण्ड दे परन्तु हम को कुछ दुःख न होगा क्योंकि, हमारे हृदयमें परस्पर प्रतिभा होरही है । जो कोई अनिष्ट हमको हो तो दुःखभी हो; हमको अनिष्ट तो कोई नहीं तब दुःख कैसेहो ? हे राजन् ! जो कुछ मनमें दृढ़ीभूत होता है वही भासता है उसका निश्चय कोई दूर नहीं कर सक्ता । शरीर नष्ट होजाताहै परन्तु मनका निश्चय नाश नहीं होता । हे राजन् ! जो मन में तीव्र संवेग होताहै सो वर और शापसे भी दूर नहीं होता । जैसे सुमेरु पर्वतको मन्द मन्द वायु नहीं चलासक्ता तैसेही मनके निश्चयको कोई नहीं चलासक्ता । मेरे हृदयमें इसकी मूर्त्ति स्थिरीभूतहै और इसके हृदयमें मेरी मूर्त्ति स्थिरीभूतहै । इसको सब जगत् मैंहीं भासताहूं और मुझको सब जगत् यही भासती है । जो कुछ दूसरा भासे तो दुःखभी हो । जैसे लोहे के कोटमें कोई दुःख नहीं देसक्ता तैसेही मुझको कोई दुःख नहीं मैं जहां जाताहूं वहां सब ओरसे अहल्याही भासती है । जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ की वर्षा में पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही हमको दुःख नहीं होता । हे राजन् ! मन काही नाम अहल्या और इन्द्रहै और मनहीने सब जगत् रचाहै । जैसा जैसा मन में

दृढ़ निश्चय होताहै तैसाही भासताहै और सुमेरुकी नाईं स्थिर होजाताहै कदापि नष्टनहीं होता। जैसे पत्र, फल, फूल और टहनीकेकाटे से वृक्ष नहीं नष्ट होता; जब बीजही नष्टहो तब वृक्ष नष्ट होताहै तैसेही शरीर के नष्ट हुये से मन का निश्चय नहीं नष्ट होता। जब मनका निश्चयही उलटपड़े तबहीं दूर होताहै। एक शरीर जब नष्ट होताहै तब जीव और शरीर धरलेता है। जैसे स्वप्न में यह शरीर रहताहै और और शरीर धरके चेष्टा करताहै तो शरीर केही आधीन हुआ; तैसेही शरीर के नष्ट हुये मन का निश्चय दूर नहीं होता। जब मन नष्ट होता है तब शरीरके होते भी कुछ क्रिया सिद्ध नहीं होती। इससे सबका बीज मनही है। जैसे पत्र, टहनी, फल और फूलका कारण जलहै; तैसेही सब पदार्थों का कारण मनहै। जैसा चित्त है तैसा रूप पुरुषका है। इससे जहां मेरा चित्त जाताहै वहां सब ओरसे रानीही भासती है। मुझको दुःख कैसे हो?

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेकृत्रिमइन्द्रवाक्यंनामपंचषष्टितमस्सर्गः ॥ ६५ ॥

भानु बोले; हे भगवन्! इस प्रकार जब इंद्र ब्राह्मण ने कहा तब कमलनयन राजाने भरत नाम ऋषीश्वरसे जो समीप बैठेथे कहा, हे सर्वधर्म्मोंके वेत्ता भरत मुनीश्वर! तुम देखो कि यह कैसा ढीठ पापात्मा है। जैसा इनका पापहै उसके अनुसार इनको शाप दो कि, यह मरजावें। जो मारने योग्य न हो और उसको राजा मारे तो उसको पाप होताहै; तैसेही पापी के न मारनेसे भी पापहोता है। इससे इन पापियोंको शापदो कि यह नष्ट होजावें। भरत मुनि ने उनका पाप विचार के कहा, अरे पापियो! तुम मर जावो तब उस इन्द्र ब्राह्मणने कहा, रे दुष्टो! तुमने जो शाप दिया उससे हमारा क्या होगा? केवल हमारा शरीर नष्ट होगा मन तो नष्ट होनेका नहीं। तुम चाहेलाख यत्नकरो उस मनसे हम और शरीर धारण करेंगे—हमारे मनके नष्ट हुये विना विपर्यय दशा न होगी। ऐसाकहकर दोनों पृथ्वीपर इस भांति गिरपड़े जैसे मूलके काटेसे वृक्ष गिर पड़ताहै और वासना संयोग से दोनों मृग हुये वहां भी परस्पर स्नेहमें रहे और फिर उस जन्मको भी त्यागकर पक्षी हुये। कुछ दिनके पश्चात् उन्होंने उसदेहको भी त्यागकिया और अब हमारी सृष्टि में तपकर्त्ता पुण्यवान् ब्राह्मण और ब्राह्मणी हुये हैं। इससे तुम देखो कि, भरतमुनिने शापदिया तो उनके शरीर नष्ट हुये परन्तु मनका जो कुछ निश्चय था सो नष्ट न हुआ। वे जहां शरीर पावें वहां दोनों इकट्ठेही अकृत्रिम प्रेमवान् रहें और किसी से आनन्दवान् न हों ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेऽहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनन्नामषट्षष्टितमस्सर्गः ॥ ६६ ॥

भानु बोले; हे नाथ! आप देखें कि, जैसा मन का निश्चय होताहै उसके अनुसार

आगे भासता है। इन्द्रके पुत्रकी सृष्टिवत् मनके निश्चयको कोई दूरनहीं करसक्ता। हे जगत्केपति! मनही जगत्का कर्त्ता और मनही पुरुषहै। मनका किया सबकुछ होता है और शरीरका किया कोईकार्य नहीं होता। जो मनमें दृढ़ निश्चय होताहै वह किसी औषधिसे दूरनहीं होता। जैसे मणिमें प्रतिबिम्ब मणिके उठाये विना नहीं दूरहोता तैसेही मनका निश्चयभी किसी औरसे दूरनहीं होता जब मनही उलटे तबहीं दूरहो। इसीसे कहाहै कि, अनेक सृष्टि के भ्रम चित्त में स्थित हैं। इससे, हे ब्रह्माजी! आप भी चिदाकाश में सृष्टिरचो। हे नाथ! तीन आकाशहैं-एक भूताकाश; दूसरा चित्ताकाश और तीसरा चिदाकाश। ये तीनों अनन्तहैं; इनका अन्त कहीं नहीं। भूताकाश चित्ताकाश के आश्रय स्थितहै और चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय है। भूताकाश और चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाश के आश्रय प्रकाशितहैं। इससे चिदाकाश के आश्रय जितनी आपकी इच्छाहो उतनी सृष्टि आपभी रचिये। चिदाकाश अनन्त रूप है। इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रोंने आपका क्या लिया है? अपना नित्य कर्म्म आपभी कीजिये! ब्रह्मावोले; हे वशिष्ठजी! इस प्रकार जब सूर्यने मुझसे कहा तो मैंने विचार करके कहा; हे भानु! तुमनेयुक्त वचन कहे हैं कि; एकभूताकाश है; दूसरा चित्ताकाश है और तीसरा चिदाकाश है, वे तीनों अनन्त हैं परन्तु भूताकाश और चित्ताकाश दोनों चिदाकाश के आश्रय फुरते हैं। इससे हमभी अपने नित्यकर्म करते हैं और जो कुछ मैं तुमको कहताहूं वह तुम भी मानो। मेरी सृष्टिके तुम मनु प्रजापति हो और जैसी तुम्हारी इच्छाहो तैसे रचो। सूर्यने मेरी आज्ञामानके अपने दो शरीर किये-एकतो पूर्वके सूर्यसे उस सृष्टिका सूर्य हुआ और दूसरा शरीर स्वायम्भुवमनुका किया। और मेरी आज्ञा के अनुसार उसने सृष्टि रची। इससे मैंने तुम से कहा है कि, यह जगत् सब मनका रचाहुआहै। जो मनमें दृढ़ निश्चय होताहै वही सफल होताहै। जैसे इन्द्र ब्राह्मण की सृष्टिहुई। हे मुनीश्वर! देहके नष्टहुये भी मनका निश्चय दूरनहीं होता; चित्तमें फिरभी वही भासआताहै। वह चित्त आत्माका किंचनरूपहै। जैसे उस में स्फूर्त्ति होती है तैसेही होकर भासताहै। प्रथम जो शुद्ध संवित्रूप में उत्थान हुआहै वह अन्तवाहक शरीर है और फिर जो उसमें दृढ़अभ्यास और स्वरूपका प्रमादहुआ तो अधिभौतिक शरीर हुये और जब अधिभौतिक का अभिमानी हुआ तब उसका नामी जीव हुआ। देहाभिमान से नाना प्रकारकी वासना होती हैं और उनके अनुसार घटी यन्त्रकी नाइं भटकता है। जब फिर आत्माका बोध होताहै तब देह से आदिलेकर दृश्य शान्त होजाताहै। हे मुनीश्वर! यह सब दृश्यभ्रम से भासताहै; वास्तवमें न कोई उपजा है और न कोई जगत् है। यह सब भ्रम चित्तने रचा है उसके अनुसार घटी यन्त्र की नाईं भटकता है। जब फिर आत्माका बोध होताहै तब देह से आदिले सब

प्रपंच शान्त होजाते हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ दृश्य भासताहै वह मनसे भासता है। वास्तव में न कोई मायाहै और न कोई जगत् है—यह सब भ्रम भासता है। हे वशिष्ठजी! और द्वैत कुछनहीं; चित्तके फुरने सेही अहं त्वं आदिक भ्रम भासते हैं। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र मन के निश्चय से ब्रह्मारूप होगये तैसेही मैं ब्रह्मा हूं। शुद्ध आत्मा में जो चैत्यता होती है वही ब्रह्मारूप होकर स्थित है और शुद्ध आत्मामें जो चैत्यता होती है वही मनरूपहै। उस मनके संयोगसे चेतनको जीव कहते हैं। जब इसमें जीवत्व होता है तब अपनी देह देखता है और फिर नानाप्रकार के जगत् भ्रम देखता है। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रोंको सृष्टिभासी और जैसे भ्रमसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा और रस्सीमें सर्प्प भासता है तैसेही जगत् सत्यभी नहीं और असत्यभी नहीं। प्रत्यक्ष देखने से सत्य भासता है और नाशभाव से असत्य है और वह सब मनमें फुरता है। मनके दोरूपहैं—एकजड़ और दूसरा चेतन। जड़रूप मनका दृश्यरूप है और चेतनरूप ब्रह्महै। जब दृश्यकी ओर फुरताहै तब दृश्यरूप होता है और जब चेतनभावकी ओर स्थितहोताहै तब जैसे सुवर्णके जानेसे भूषण-भाव नष्ट होजाता है तैसेही दृश्यरूप जड़भाव नष्ट होजाताहै। जब जड़भाव में फुरताहै तब नानाप्रकारके जगत् देखताहै। वास्तव में ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सबही चेतन-रूपहैं। जड़ उसको कहना चाहिये जिसमें चित्तका अभाव हो। जैसे लकड़ी में चित्त नहीं भासता और प्राणधारियों में चित्त भासताहै परन्तु स्वरूपमें दोनों तुल्यहैं क्योंकि; सर्व परमात्म द्वारा प्रकाशते हैं। हे वशिष्ठजी! सब चेतन स्वरूपहैं, जो चेतन स्वरूप न हों तो क्यों भासें। चेतनतासे उपलब्धरूप होते हैं। जड़ और चेतन का विभाग अवाच्य ब्रह्ममें नहीं पायाजाता; प्रमाद दोष से है वास्तवमें नहीं। जैसे स्वप्ने में जो दो प्रकार के जड़ और चेतनभूत भासते हैं उनका प्रमाद होता है तब उस चेतन भूत प्राणी को जड़ चेतन विभाग भासता है और स्वरूपदर्शी को सब एक स्वरूप है। हे मुनीश्वर! ब्रह्ममें जो चैत्यता हुई वही मन हुआ उस मन में जो चेतन भागहै वही ब्रह्मा है और जड़भाग अबोध है। जब अबोधभाव होताहै तब दृश्यभ्रम देखता है और जब चेतनभाव में स्थित होजाता है तब शुद्धरूप होताहै। हे मुनीश्वर! चेतनमात्र में अहंकार का उत्थान दृश्य है और परमार्थ में कुछ भेद नहीं। जैसे तरंग जल से भिन्न नहीं तैसेही अहं चेतनमात्र से भिन्न नहीं होता। सब की प्रतीत ब्रह्महीमें होती है वह परमपद है और सब दुःखों से रहित है वही शुद्ध चित्त जीव जब चैत्यभावको चेतता है तब जड़भाव को देखता है जैसे स्वप्ने में कोई अपना मरना देखता है तैसेही वह चित्त जड़भाव को देखता है। आत्मा सर्वशक्तिमान् है; कर्त्ता है तो भी कुछ नहीं कर्त्ता और उसके समान और कोई नहीं। हे मुनीश्वर! यह जगत्

कुछ वास्तवमें उपजा नहीं चित्तके फुरने से भासताहै । जब चित्तकी स्फूर्ति होतीहै तब जगत् जाल भासता है और जब चेतन आत्मा में स्थित होताहै तब मनका जड़भाव नहीं रहता । जैसे पारस मणिके मिलापसे तांबा सुवर्ण होजाताहै और फिर उसका ताबा भाव नहीं रहता तैसेही जब मन आत्मा में स्थित होता है तब उसकी जड़ता दृश्यभाव नहीं रहती । जैसे सुवर्ण को शोधन किये से उसका मैल जलजाता है और शुद्धही शेष रहताहै तैसेही चित्त जब आत्मा में स्थित होताहै तब उसका जड़भाव जलजाता है और शुद्ध चैतनमात्र शेष रहता है । वास्तव में पूछो तो शुद्धभी द्वैत में होता है; आत्मामें द्वैतनहीं इससे शुद्ध कैसेहो ? जैसे आकाश के फूल और वृक्ष वास्तव में कुछ नहीं होते तैसेही शोधनभी वास्तवमें कुछ नहीं । हे मुनीश्वर ! जबतक आत्माका अज्ञानहै तब तक नानाप्रकार का जगत् भासता है और जब आत्मा का बोधहोताहै तब जगत् भ्रम नष्टहोजाता है । यह जगत् भ्रम चित्तमें है; जैसा निश्चय चित्तमें होताहै तैसाहीहो भासताहै । इसीपर अहल्या और इन्द्रका दृष्टान्त कहा है । इससे जैसी भावना दृढ़ होती है तैसा हो भासता है । हे वशिष्ठजी ! जिसको यही भावना दृढ़है कि, मैं देहहूं वह पुरुष देहके निमित्त सब चेष्टा करता है और इसी कारण बहुत काल पर्य्यन्त कष्ट पाता है । जैसे बालक बैतालकी कल्पना से भय पाता है तैसेही देहमें अभिमानसे जीव कष्ट पाताहै । जिसकी भावना देहसे निवृत्त होकर शुद्ध चैतनभावमें प्राप्त होती है उसको देहादिक जगत् भ्रम शान्तहोजाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेजीवक्रमोपदेशोनामसप्तषष्टितमस्सर्ग्गः ६७ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इसप्रकार ब्रह्माजीने मुझसे कहा तब मैंने फिर प्रश्न किया कि, हे भगवन् ! आपने कहा है कि; शापमें मन्त्रादिकों का बल होताहै । वह शापभी अचलरूपहै मिटता नहीं । मैंने ऐसे भी देखा है कि; शाप से मन, बुद्धि और इन्द्रियांभी जड़ीभूत होजाती हैं पर ऐसातो नहीं है कि, देहको शापहो और मनको न हो । हे भगवन् ! मन और देह तो अनन्यरूपहैं । जैसे वायु और स्पन्द में और घृत और चिकनाई में भेद नहीं होता तैसेही मन और जगत् में भेद नहीं । यदि कहिये कि, देह कुछ वस्तु नहीं चैतन्यही चित्तहै और देह भी चित्तमें कल्पितहै—जैसे स्वप्नदेह; मृगतृष्णा का जल और दूसरा चन्द्रमा भासता है सो एक के नष्टहुये दोनों क्यों नहीं नष्ट होते तैसे देहके शापसे चाहिये कि, मनको भी शाप लगजावे तो मैंने देखाहै कि, शापसेभी जड़ीभूत होगये हैं और आप कहते हैं कि; देहकाकर्म मनको नहीं लगता । यह कैसे जानिये ? ब्रह्माबोले; हे मुनीश्वर ! ऐसापदार्थ जगत् में कोई नहीं जो सब कर्मों को त्यागकर पुण्यरूप पुरुषार्थ कियेसे सिद्ध न हो । पुरुषार्थ कियेसे सब कुछ होताहै । ब्रह्मासे चींटी पर्य्यन्त जिस जिसकी भावना होती है तैसाही रूपहो भासता

है। सब जगत्के दो शरीरहैं—एक मनरूपी जो चञ्चलरूपहै और दूसरा अधिभौतिक मांसमय शरीर है। उसका किया कार्य्य निष्फल होताहै और मनसे जो चेष्टा होतीहै वह सुफल होती है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषको मांसमय शरीरमें अहंभावहै उसको आधिव्याधि और शापभी अवश्य लगता है और मांसमय शरीर जो गूंगे; दीन और क्षणनाशी हैं उनके साथ जिसका संयोगहै वह दीनरहताहै। चित्तरूपी शरीर चञ्चल है वह किसी के वशनहीं होता अर्थात् उसका वशकरना महाकठिनहै। जब दृढ़ वैराग्य और अभ्यासहो तब वह वशहो—अन्यथा नहीं होता। मन महाचञ्चलहै और यह जगत् मनमेंहै। जैसा २ मनमें निश्चय है सो दूर नहीं होता। मांसमय शरीर का किया कुछ सुफल नहीं होता और जो मनका निश्चय है सो दूरनहीं होता। हे मुनीश्वर! जिन पुरुषोंने चित्तको आत्मपद में स्थित कियाहै उनको अग्निमें भी डालिये तौभी दुःख कुछ नहीं होता और जल में भी उनको दुःख नहीं होता क्योंकि; उनका चित्त शरीरादिकभाव ग्रहण नहीं करता केवल आत्मामें स्थित होताहै। हे मुनीश्वर! सब भावोंको त्यागकर मनका निश्चय जिसमें दृढ़होता है वही भासताहै। जहां मन दृढ़ीभूत होकर चलताहै उसको वही भासता है और किसी संसार के कष्ट और शापसे चलायमान नहीं होता। जो किसी दुःखशापसे मन विपर्ययभाव में प्राप्त होजावे तो जानिये कि, यह दृढ़लगा नथा—अभ्यासकी शिथिलताथी। हे मुनीश्वर! मनकीतीव्रताके हिलानेमें किसी पदार्थकी शक्ति नहीं क्योंकि; सृष्टि मानसी है। इससे मनमेंमनको समाय चित्तको परमपदमें लगावो। जब चित्त आत्मामें दृढ़होताहै तब जगत्के पदार्थों से चलायमान नहीं होता। मांडव्य ऋषीश्वरको जिनका चित्त आत्मा में लगाहुआथा शूलीपरभी खेद न हुआ। हे मुनीश्वर! जिसमें मन दृढ़ होकर लगताहै उसको कोई चला नहींसक्ता। जैसे इन्द्र ब्राह्मण चलायमान न हुआ तैसेही आत्मामें स्थिरहुआ मन चलायमान नहीं होता। हे मुनीश्वर! जैसा २ मन में तीव्रभाव होताहै उसीकी सिद्धता होती है। दीर्घतपा एक ऋषिथा वह किसीप्रकार अन्धेकूपमें गिरपड़ा और उसकूपमेंमनको दृढ़कर यज्ञ करनेलगा। उसयज्ञसे मन में देवता होकर इन्द्रपुरी में फल भोगने लगा और जैसे इन्द्र ब्राह्मणके पुत्र मनुष्योंके समानथे और उनके मन में जो ब्रह्माकी भावनाथी उससे वे दशों ब्रह्माहुये और दशोंने अपनी अपनी सृष्टिरची और वह सृष्टि मुझसेभी नहीं खण्डित होती। इस से जोकुछ दृढ़अभ्यास होताहै वह नष्ट नहीं होता। देवता और महाऋषि आदि जो धीर्य्यवान् हुये हैं और जिनकी एक क्षणमात्रभी वृत्ति चलायमान नहीं होतीथी उनको संसारका आधि—व्याधि ताप, शाप, मंत्र और पाप कर्म से लेकर संसार के जो क्षोभ और दुःखहैं नहीं स्पर्श करतेथे। जैसे कमल फूलका प्रहार शिला नहीं फोड़ सक्ता तैसेही धीर्य्यवानको संसारका ताप नहीं खण्डन

करसक्ता। जिसको आधि व्याधि दुःख देते हैं उसे जानिये कि, वह परमार्थ दर्शनसे शून्यहै। हे मुनीश्वर! जो पुरुष स्वरूप में सावधान हुये हैं उनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता और स्वप्ने में भी उनको दुःखका अनुभव नहीं होता क्योंकि; उनका चित्त सावधान है। इससे तुमभी दृढ़ पुरुषार्थ करके मनसे मनको मारो तो जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा। हे मुनीश्वर! जिसको स्वरूपका प्रमाद होता है उसको क्षणमें जगत् भ्रम दृढ़ होजाताहै। जैसे बालकको क्षणमें वैताल भासि आताहै तैसेही प्रमाद से जगत् भासता है। हे मुनीश्वर! मनरूपी कुलालहै और वृत्तिरूपी मृत्तिका है; उस मनसे वृत्तिक्षणमें अनेक आकार धरती है। जैसे मृत्तिका कुलाल द्वारा घटादिक अनेक आकारको धरतीहै तैसेही निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारोंको पाती है। जैसे सूर्य्य में उलूकादिक अपनी भावना से अन्धकार देखते हैं; कितनों को चन्द्रमा की किरणें भी भावना से अग्नि रूप भासती हैं और कितनों को विषमें अमृतकी भावना होतीहै तो उनको विषभी अमृत रूपहो भासताहै। इसी प्रकार कटुक आमल और लवण भी भावनाके अनुसार भासते हैं। जैसा मनमें निश्चय होताहै तैसेही भासता है। मन रूपी बाजीगर जैसी रचना चाहता है तैसीही रचलेता है और मनका रचा जगत् सत्य नहीं और असत्यभी नहीं। प्रत्यक्ष सुने से सत्यहै असत्य नहीं और नष्ट भाव से असत्यहै सत्यनहीं और सत्य असत्यभी मनसे भासताहै वास्तवमें कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमनोमाहात्म्यवर्णनन्नामअष्टषष्ठितमस्सर्गः ६८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार प्रथम ब्रह्माजी ने जो मुझसे कहा था वह मैंने अब तुमसे कहाहै। प्रथम ब्रह्म जो अहंशब्द पदमें स्थितथा उसमें चित्तहुआ अर्थात् अहं अस्मि चेतनता का लक्षण हुआ और उसकी जब दृढ़ताहुई तब मनहुआ; उस मन ने पञ्चतन्मात्राकी कल्पनाकी वह तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाताहै। हे रामजी! वह ब्रह्माजी मन रूपहैं और मनही ब्रह्मारूपहै। उसकारूप संकल्पहै जैसा संकल्प करताहै तैसाही होताहै। उस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पी है। अनात्ममें आत्माभिमान करनेका नाम अविद्याहै। फिर अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी। इसी प्रकार पहाड़, तृण, जल, समुद्र, स्थावर-जङ्गमसम्पूर्ण जगतको उत्पन्न किया। इसप्रकार ब्रह्माहुआ और इसप्रकार जगत्हुआ। तुमने जो कहा कि, जगत् कैसे उपजताहै और कैसे मिटताहै सो सुनो। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते हैं और समुद्रही में लीन होते हैं तैसेही सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममें उपजताहै और ब्रह्महीमें लीन होताहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्तामें जो अहंका उल्लेख हुआहै सो मनहै और वही ब्रह्माहै; उसी ने नानाप्रकारका जो जगत् रचाहै वही सर्वचित्त शक्ति फैलीहै और चित्तके फुरनेही से नानात्व भासता है। हे रामजी! जो कुछ जीवहैं उन सब में आत्मसत्ता स्थित है परन्तु अपने

स्वरूप के प्रमादसे भटकते हैं। जैसे वायुसे वनके कुंजों में सूखे पात भटकते हैं तैसेही कर्म्मरूपी वायुसे जीव भटकते हैं और अद्ध और ऊर्ध्व में घटीयन्त्र की नाईं अनेक जन्म धरते हैं। जब काकतालीवत् सत्सङ्गकी प्राप्ति हो और अपना पुरुषार्थ करे तब मुक्तहो। इसकी जब तक प्राप्ति नहीं होती तब तक कर्मरूपी रस्सी से बांधेहुये अनेक जन्म भटकते हैं और जब ज्ञानकी प्राप्तिहोगी तभी दृश्यभ्रमसे छूटेंगे अन्यथा न छूटेंगे। हे रामजी! इसप्रकार ब्रह्मासे जीव उपजते और मिटते हैं। अनन्त सङ्कटोंकी कारण वासनाही है जो नानाप्रकार के भ्रम दिखाती है और जगत् रूपी मनकी जन्मरूपी वैतालबेल वासना जलसे बढ़ती है। जब सम्यक् ज्ञान प्राप्तहो तब उसी कुठारसे काटो जब मनमें वासना का क्षोभ मिटे तब शरीर रूपी अंकुर मनरूपी बीजसे न उपजे जैसे भुने बीजमें अंकुर नहीं उपजता तैसेही वासना से रहित मन शरीर को नहीं धारण करता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेवासनात्यागवर्णनंनामएकोनसप्ततितमस्सर्गः ६९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितनी भूत जातिहैं वह ब्रह्मसे उपजी हैं। जैसे समुद्र में जो तरंग और बुद्बुदे कोई बड़े, कोई छोटे और कोई मध्यभावके होते हैं वे सब जलहैं तैसेही यहजीव ब्रह्मसे उपजे हैं और ब्रह्मरूपहैं। जैसे सूर्य्यकी किरणों में जल भासता है अग्निसे चिनगारे उपजते हैं तैसेही ब्रह्मसे जीव उपजते हैं। जैसे कल्पवृक्षकी मञ्जरी नानारूप धरतीहै तैसेही ब्रह्मसे जीवहुये हैं। जैसे चन्द्रमासे किरणोंका विस्तारहोताहै और वृक्षसे पत्र, फल और फूल आदिक होते हैं तैसेही ब्रह्मसे जीवहोते हैं। जैसे सुवर्ण से अनेक भूषणहोते हैं तैसेही ब्रह्मसे जगत् होते हैं। जैसे झरनों से जलकेकण उपजते हैं तैसेही परमात्मासे भूतउपजते हैं। जैसे आकाशएकही है पर उससेघट मठकी उपाधि से घटाकाश और मठाकाश कहाता है तैसेही संवेदन के फुरनेसे जीव कल्पना होती है जैसेजलही द्रवता से तरंग और आवृत्तरूपहो भासताहै तैसेही ब्रह्मही संवेदनसे जगत रूपहो भासताहै। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य सब ब्रह्मसेही उपजे हैं। जैसे सूर्य्यकेतेजसेमृगतृष्णाकी नदी भासती है तैसे संवेदनसे ब्रह्म में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य–त्रिपुटी भासती है पर वास्तवमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य कोई कल्पनानहीं जैसे चन्द्रमा और शीतलता में और सूर्य्य और प्रकाशमें कुछ भेदनहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेदनहीं। जैसे समुद्रमें तरंग उपजते हैं और समुद्रमेंही लीनहोते हैं तैसेही जीव ब्रह्महीसे उपजते हैं और ब्रह्महीमें लीनहोते हैं। कोई सहस्र जन्मों के अनन्तर प्राप्तहोते और कोई थोड़ेही जन्मों में प्राप्तहोते हैं। हे रामजी! इसप्रकार जगत् परमात्मासे हुआहै और उसहीकी इच्छाअनुसार सब व्यवहार करते हैं। वही व्यवहारकी नाईंहोभासते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनामसप्ततितमस्सर्गः ७०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कर्त्ता और कर्म्म अभिन्नरूप हैं और इकट्ठेही ब्रह्म से उत्पन्नहुये हैं । जैसे फूल और सुगन्ध वृक्षसे इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं तैसेही कर्त्ता और कर्म्म इकट्ठे उत्पन्न हुये हैं । जब जीव सब सङ्कल्प कलना को त्यागता है तब निर्म्मल ब्रह्म होता है । जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् कल्पना फुरती है पर आत्मा अद्वैत सदा अपने आपमें स्थित है । यह भी अज्ञानी के बोधके लिये कहता हूं कि, जीव ब्रह्म से उपजे हैं । इसप्रकार सात्त्विक, राजस और तामस गुणों के भेद स्थित हैं । जो ज्ञानवान् हैं उनकेप्रति यह कहना भी नहीं बनता कि, ब्रह्म से सब उपजे हैं; तौभी दूसरा कुछनहीं पर दूसरेको अंगीकार करके उपदेश करताहूं वास्तव में ब्रह्मसत्तामें कोई कल्पनानहीं; वहतो सदा अपने स्वभाव में स्थित है । जो ज्ञानवान् हैं उनको सदा ऐसेही प्रत्यक्ष भासता है और अज्ञानी दूरसे दूर चलाजाता है—उसको सुमेरु और मंदराचल की नाईं आत्मा और जीव का अन्तर भासता है । जैसे वसन्तऋतु में नानाप्रकार के नूतन अंकुर उपजते हैं और उसके अभाव हुये नष्ट होते हैं तैसेही चित्तके फुरने से जीव राशि उपजते हैं और चित्त के अफुरहुये नष्ट होते हैं । मन और कर्म्म में कुछ भेद नहीं; मन और कर्म्म इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं । जैसे वृक्ष से फल और सुगन्ध इकट्ठे उपजते हैं तैसेही आत्मा से मन और कर्म्म इकट्ठेही उपजते हैं और फिर आत्मा में लीन होते हैं । हे रामजी ! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जो कुछ जीव तुमको भासते हैं वे आत्मा से उपजे हैं और फिर आत्माही में लीन होते हैं । इनका उत्पत्ति कारण अज्ञानहै; आत्मा के अज्ञान से भटकते हैं और जब आत्मज्ञान उपजता है तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है । रामजी बोले, हे भगवन् ! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाण से सिद्धहै वही सत्यहै और शास्त्रप्रमाण वही है जिसमें राग द्वेष से रहित निर्णय है और अमानित्व अदंभित्व आदिक गुण प्रतिपादन किये हैं । उस दृष्टिसे जो उपदेश कियाहै सोही प्रमाण है और उसके अनुसार जो जीव विचरते हैं सो उत्तमगति को प्राप्तहोते हैं और जो शास्त्र प्रमाण से विपरीत वर्त्तते हैं वह अशुभ गतिमें प्राप्त होते हैं । लोकमें भी प्रसिद्ध है कि; कर्मों के अनुसार जीव उपजते हैं—जैसा जैसा बीज होता है तैसाही तैसा उससे अंकुर उपजता है; तैसेही जैसा कर्म होता है तैसी गतिको जीव प्राप्त होता है । कर्त्ता से कर्म होता है इसकारण यह परस्पर अभिन्न हैं इनका इकट्ठा होना क्योंकर हो ? कर्त्ता से कर्म होते हैं और कर्म से गति प्राप्ति होती है पर आप कहते हैं कि, मन और कर्म ब्रह्मसे इकट्ठेही उत्पन्न हुये हैं इससे तो शास्त्र और लोगोंके वचन अप्रमाण होते हैं । हे देवताओं में श्रेष्ठ ! इस संशय के दूर करने को तुमही योग्यहो । जैसे सत्य हो तैसेही कहिये । वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी ! यह प्रश्न तुमने अच्छा किया है इसका उत्तर मैं तुमको

देताहूं जिसके सुनने से तुमको ज्ञानहोगा। हे रामजी! शुद्ध संवित्मात्र आत्मतत्त्व में जो संवेदन फुराहै सोही कर्मका बीज मनहुआ और सोही सबका कर्मरूप है इसलिये उसी बीजसे सब फल होते हैं—कर्म्म और मन में कुछ भेद नहीं। जैसे सुगन्ध और कमल में कुछ भेद नहीं तैसेही मन और कर्म में कुछ भेद नहीं। मन में सङ्कल्प होता और उस से कर्म्म अंकुर ज्ञानवान् कहते हैं। हे रामजी! पूर्व्व देह मनही है और उस मनरूपी शरीरसे कर्म्म होते हैं। वह फल पर्य्यन्त सिद्ध होता है। मन में जो स्फूर्त्ति होती है वही क्रिया है और वही कर्म्म है। उस मनसे किया कर्म्म अवश्य सिद्ध होता है अन्यथा नहीं होता। ऐसा पर्वत और आकाशलोक कोई नहीं जिसको प्राप्तहोकर कर्म्मों से छूटे; जो कुछ मनके संकल्प से किया है वह अवश्यमेव सिद्ध होता है। पूर्व्व जो पुरुषार्थ प्रयत्न कुछकिया है वह निष्फल नहीं होता अवश्यमेव उसकी प्राप्तिहोती है। हे रामजी! ब्रह्म में जो चैत्यता हुई है वही मनहै और कर्म्मरूप है और सब लोकोंका बीज है कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! जब कोई देशसे देशान्तर जाने लगता है तब जानेका संकल्पही उसे लेजाताहै; वह चलना कर्म्म है इससे स्फूर्त्ति रूप कर्म्म हुआ और स्फूर्त्ति रूप मनका भी है इससे मन और कर्म्म में कुछ भेद नहीं। अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्महै इस में द्रवतारूपी चैत्यता है। वह चैत्यता जीव रूपहै और उसही का नाम मन है। मन कर्म्म रूप है इसलिये जैसे मन फुरता है और जो कुछ मन से कार्य्य करता है वही सिद्ध होता है शरीर से चेष्टा नहीं सिद्ध होती। इसकारण कहा है कि, मन और कर्म्म में कुछ भेद नहीं पर भिन्न भिन्न जो भासताहै सो मिथ्या कल्पनाहै। मिथ्या कल्पना मूर्ख करते हैं बुद्धिमान् नहीं करते जैसे समुद्र और तरङ्गों में भेद मूर्ख मानते हैं, बुद्धिमान् को भेद कुछ नहीं भासता। प्रथम परमात्मासे मन और कर्म्म इकट्ठेही उपजे हैं। जैसे समुद्रसे द्रवता से तरंग उपजते हैं तैसेही चित्त फुरने से आत्मा से कर्म्म उपजते हैं। जैसे तरंग समुद्र में लीन होते हैं तैसेही मन और कर्म्म परमात्माही में लीन होते हैं। जैसे जो पदार्थ दर्पण के निकट होताहै उसीका प्रतिबिम्ब भासताहै। तैसेही जो कुछ मनका कर्म्म होताहै सो आत्मारूपी दर्पण में प्रतिबिम्ब भासता है। जैसे बरफका रूपशीतल है—शीतलता बिना बरफ नहीं होती तैसेही चित्त कर्म्म है—कर्मोबिना चित्तनहीं होता। जब चित्तसे स्पन्दता मिटजाती है तब चित्तभी नष्ट होजाताहै चित्तके नष्टहुये कर्म्मभी नष्ट होजाते हैं और कर्म्मके नाशहुये मनका नाशहोताहै। जो पुरुष मनसे मुक्त हुआहै वही मुक्त है और जो मनसे मुक्त नहीं हुआ वही बन्धनमें है। एकके नाश हुये दोनोंका नाश होताहै। जैसे अग्निके नाशहुये उष्णताभी नाशहोतीहै और जब उष्णतानाशहोती है तब अग्नि भी नाशहोताहै तैसेही मनकेनष्टहुये कर्म्मभी नाशहोते हैं और कर्म्मनाश

हुये मनभी नष्टहोताहै। एक के अभावहुये दोनोंका अभावहोता है। कर्मरूपी चित्त है और चित्तरूपी कर्म है इस से परस्पर अभेदरूप हैं॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्र०कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनन्नामएकसप्ततितमस्सर्गः७१

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! मनभावनामात्र है। भावना फुरनेका नाम है और फुरना क्रियारूप है उस फुरनेक्रिया से सर्वफलकी प्राप्तिहोती है। रामजी बोले; हे ब्राह्मण ! इस मनकारूप जो जड़-अजड़ है वह विस्तारपूर्वक कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आत्मतत्त्व अनन्तरूप और सर्वशक्तिमान् है। जब उसमें संकल्प शक्ति फुरती है तब उसको मनकहते हैं जड़ अजड़के मध्यमें जो डोलायमान होता है उस मिश्रितरूप का नाम मनहै। हे रामजी ! भावरूप जो पदार्थ हैं उनके मध्यमें जो सत्य असत्यका निश्चय करताहै उसका नाम मनहै। उसमें जो यह निश्चय देह से मिलकर फुरताहै कि,मैं चिदानन्दरूपनहीं; कृपण हूं सो मनकारूपहै। कल्पनासे रहित मन नहीं होता। जैसे गुणों विना गुणी नहींरहता तैसेही कर्म कल्पना विना मन नहींरहता। जैसे उष्णताकी सत्ता अग्निसे भिन्न नहीं होती तैसेही कर्मोंकी सत्ता मन से भिन्न नहीं होती और मन और आत्मा में कुछ भेदनहीं। हे रामजी ! मनरूपी बीज से सङ्कल्परूपी नाना प्रकार के फूलहोते हैं; उनमें नाना प्रकार के शरीरों से संपूर्ण जगत् देखता है और जैसी २ मनमें वासना होती है उसके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है। इस से मनकाफुरनाही कर्मों का बीजहै और उससे जो भिन्न क्रियाहोती हैं सो उस वृक्षकी शाखा और नाना प्रकार के विचित्रफलहैं। हे रामजी ! जिस ओर मनका निश्चय होताहै उसीओर कर्म इन्द्रियांभी प्रवर्त्तितहोती हैं और जो कर्महै वही मनकाफुरना है और मनही स्फूर्त्तिरूपहै। इसीकारणकहाहै कि, मन कर्मरूपहै। उस मनकी इतनी संज्ञाकही हैं मन, बुद्धि, अहंकार, कर्मकल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, प्रकृति, माया इत्यादिक। कल्पनाही संसार के कारणहैं। चित्तको जब चैत्यका संयोग होता है तब संसार भ्रम होता है और ये जितनी संज्ञा तुमसे कही हैं सो चित्तके फुरनेसे काकतालिवत् अकस्मात् फुरी हैं। रामजी बोले; हे भगवन् ! अद्वैततत्त्व परमसंवित् आकाश में इतनी कलना कैसे हुई और उन में अर्थरूप दृढ़ता कैसेहुई ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुद्ध संवित्मात्र सत्ता फुरनेकी नाईं जो स्थितहुई उसका नाम मनहै। जब वह वृत्ति निश्चयरूपहुई तो भाव अभावपदार्थोंको निश्चय करनेलगी कि, यह पदार्थ ऐसा है; यह पदार्थ ऐसाहै-उस वृत्तिका नाम बुद्धिहै। जब अनात्म में आत्मभाव परिच्छिन्नरूप मिथ्या अभिमान दृढ़हुआ तब उसका रूप अहंकार हुआ। वही मिथ्या अहंवृत्ति संसारबन्धनका कारण है; किसी पदार्थ को धावती करती है और किसी को त्याग करती है और बालककी नाईं विचार से रहित ग्रहणाहै उसका नाम चित्त है। वृत्तिका धर्म्म फुरना है उस फुरने में फलको आरोप

करके उसकी ओर धावना और कर्त्तव्य का अभिमान फुरना कर्म है। पूर्व्व जो कार्य्य किये हैं उनको त्याग उनका संस्कार चित्तमें धरकर स्मरण करने का नाम स्मृति है अथवा पूर्व्व जिसका अनुभव नहींहुआ और हृदय में फुरे कि, पूर्व्व मैंने यह कियाथा इसका नामभी स्मृतिहै। जिस पदार्थका अनुभवहो और जिसका संस्कार हृदय में दृढ़ होवै उसके अनुसार जो चित्त फुरे उसका नाम वासना है। हे रामजी! आत्मतत्त्व अद्वैतहै; उसमें अविद्यमान द्वैत विद्यमानहो भासता है इस से उसका नाम अविद्या है और अपने स्वरूपको भुलाकर अपने नाश के निमित्त स्पन्द चेष्टा करने और शुद्ध आत्मा में विकल्प उठने का नाम मूल अविद्या है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन पाँचों इन्द्रियों को दिखानेवाला परमात्मा है और अद्वैततत्त्व आत्मा में जिस दृढ़ जालको रचा है उस स्पन्दकलनाका नाम प्रकृति है और जो असत्य को सत्य और सत्य को असत्यकी नाईं दिखाती है वह माया कहाती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का अनुभव करना कर्महै और जिससे शब्द,स्पर्श,रूप,रस, गन्धहोते हैं वह कर्त्ता, कार्य, कारण कहाताहै। शुद्ध चेतन चैत्यको कलनाकी नाईं प्राप्त होता है; उस फुरनवृत्ति को विपर्य्यय कहते हैं। उससे जब सङ्कल्प जाल उठता है तब उसको जीव कहते हैं; मनभी इसीका नाम है; चित्तभी इसी का नाम है और बन्धभी इसीका नामहै। हे रामजी! परमार्थ शुद्ध चित्तही चैत्यके संयोगसे और स्वरूप से बरफकी नाईं स्थित हुआ है। रामजी बोले; हे भगवन्! यह मन जड़है किंवा चेतन है; एकरूप मुझ से कहिये कि, मेरे हृदय में स्थितहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मन जड़ नहीं और चेतनभी नहीं। जड़ चेतनकी गाँठके मध्यभावका नाम मनहै और सङ्कल्प विकल्प में कल्पित रूप मन है। उस मनसे यह जगत् उत्पन्न हुआहै और जड़ और चेतन दोनों भावों में डोलायमान है अर्थात् कभी जड़भाव की ओर आता है और कभी चेतनभाव की ओर आता है। शुद्ध चेतनमात्रमें जोफुरना हुआ उसी का नाम मन है और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीवादिक अनेक संज्ञा उसी मन की हैं। जैसे एक नट अनेक स्वांगों से अनेक संज्ञा पाता है—जिसका स्वांग धरता है उसी नाम से कहाताहै तैसेही सङ्कल्प से मन अनेक संज्ञा पाता है। जैसे पुरुष विचित्र कर्मों से अनेक संज्ञा पाता है—पाठसे पाठक; और रसोईं से रसोइयां कहाताहै तैसेही मन अनेकसङ्कल्पों से अनेक संज्ञा पाताहै। हे रामजी! ये जो मैंने तुम से चित्तकी अनेक संज्ञा कही हैं उन के अन्य अन्य बहुत प्रकार वादियों ने नाम रक्खे हैं; जैसा जैसा मत है तैसाही तैसा स्वभाव लेकर मन, बुद्धि और इन्द्रियों को मानते हैं। कोई मनको जड़ मानते हैं; कोई मनसे भिन्न मानते हैं और कोई अहंकारको भिन्न मानते हैं वे सब मिथ्याकल्पना हैं। नैयायिक कहते हैं कि, सृष्टितत्त्वोंके सूक्ष्मपरमाणुओं से उपजती हैं। जब प्रलय

होताहै तब स्थूलतत्त्व प्रलय होजाते हैं और उनके सूक्ष्म परमाणु रहते हैं और फिर उत्पत्ति कालमें वही सूक्ष्मपरमाणु दूने तिगुने आदिक होकर स्थूलहोते हैं; उन्हीं पाँचों तत्त्वोंसे सृष्टिहोती है। सांख्य मतवाले कहते हैं कि, प्रकृत और माया के परिणामसे सृष्टि होती है और चारवाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारोंतत्त्वों के इकट्ठे होने से सृष्टि उपजती मानते हैं और चारोंतत्त्वों के शरीर को पुरुष मानते हैं और कहते हैं कि, जब तत्त्व अपने आपसे बिछुरजाते हैं तब प्रलय होते हैं। आर्हत औरही प्रकार मानते हैं और बौद्ध और वैशेषिक आदिक और और प्रकारसे मानते हैं। पञ्चरात्रिक और प्रकारही मानते हैं परन्तु सबही का सिद्धान्त एकहीब्रह्म आत्मतत्त्वहै। जैसे एकही स्थानके अनेक मार्गहों तो उन अनेक मार्गों से उसी स्थानको पहुंचता है तैसेही अनेक मतोंका अधिष्ठान आत्मसत्ताहै और सबका सिद्धान्त एकही है उसमें कोई वाद प्रवेश नहीं करता। हे रामजी! जितने मतवाले हैं वे अपने अपने मतको मानते हैं और दूसरे का अपमान करते हैं। जैसे मार्गके चलनेवाले अपने अपने मार्गकी उपमा करते हैं—दूसरे की नहीं करते तैसेही मनके भिन्न भिन्न रूपसे अनेक प्रकार जगत् को कहते हैं। एक मनकी अनेक संज्ञा हुई हैं। जैसे एक पुरुषको अनेक प्रकार से कहते हैं; स्नान करने से स्नानकर्त्ता; दान करने से दानकर्त्ता; तप करने से तपस्वी इत्यादि क्रिया करके अनेक संज्ञा होती हैं तैसेही अनेक शक्ति मनकी कही हैं। मनही का नाम जीव; वासना और कर्म्महै। हे रामजी! चित्तही के फुरने से सम्पूर्ण जगत् हुआ है और मनही के फुरने से भासता है। जब वह पुरुष चैत्यके फुरने से रहित होता है तब देखता है तो भी कुछ नहीं देखता। यह प्रसिद्ध जानिये कि, जिस पुरुष को इन्द्रियोंके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इष्ट अनिष्टमें हर्ष शोक देताहै उसका नाम जीवहै। मनहीसे सब सिद्ध होता है और सब अर्थोंका कारण मनहीहै। जो पुरुष चैत्य से छूटताहै वह मुक्तरूप है और जिसको चैत्यका संयोग है वह बन्धनमें बँधा है। हे रामजी! जो पुरुष मनको केवल जड़ मानते हैं उनको अत्यन्त जड़ जानो और जो पुरुष मनको केवल चेतन मानतेहैं वे भी जड़हैं। यह मन केवल जड़ नहीं और न केवल चेतनही है जो मन का एकही रूपहो तो सुख दुःख आदिक विचित्रता न हो और जगत्की लीनता भी नहीं। जो केवल चैतन्यही रूपहो तो जगत् का कारण नहीं होसक्ता और जो केवल जड़रूपहो तौभी जगत् का कारण नहीं क्योंकि; केवल जड़ पाषाणरूप होता। जैसे पाषाणसे कुछ क्रिया उत्पन्न नहीं होती तैसेही केवल जड़ मन जगत् का कारण नहीं होता। मन केवल चैतन्यभी नहीं;केवल चैतन्य तो आत्माहै जिसमें कर्तृत्वआदि कल्पना नहीं होतीं इससे मनकेवल चैतन्यभी नहीं और केवल जड़भी नहीं। चैतन्य और जड़का मध्य भावही जगत् का कारणहै। हे रामजी! जैसे प्रकाश सब

पदार्थोंके प्रकाशका कारणहै तैसेही मन सब अर्थोंका कारण है जबतक चित्तहै तबतक चैत्य भासताहै और जब चित्त अचित्तहोताहै तब सर्वभूतजात लीनहोजाते हैं। जैसे एकही जलरस से अनेकरूपहो भासता है तैसेही एकही मन अनेक पदार्थरूप होकर भासताहै और अनेक संज्ञा इसकी शास्त्रोंके मतवालों ने कल्पी हैं। सबका कारण मनहीहै और परमदेव परमात्माकी सर्व शक्तियों मेंसे एकशक्ति है। उसी परमात्मासे यह फुरी है और जड़भाव फुरकर फिर उसही में लीनहोती है। जैसे मकड़ी अपने मुखसे जाला निकालकर फैलाती है और फिर आपही में लीन करलेती है तैसेही परमात्मासे यह जड़भाव उपजताहै। हे रामजी! नित्यशुद्ध और बोधरूप ब्रह्महै; वह जब प्रकृतभावको प्राप्तहोताहै तब अविद्याके वशसे नानाप्रकारके जगत्को धारताहै और उसही के सर्व पर्यायहैं। जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार इत्यादिक संज्ञा मलीन चित्तकी होतीहैं। ये संज्ञा भिन्नभिन्न मतवादियों ने कल्पी हैं पर हमको संज्ञासे क्या प्रयोजन है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमनोसंज्ञाविचारोनामद्विसप्ततितमस्सर्गः ७२॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! यह सब जगत् आडम्बर मनही ने रचाहै और सब मनरूपहै और मनही कर्मरूप है—यह आपके कहने से मैंने निश्चय कियाहै परन्तु इसका अनुभव कैसेहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह मन भावनामात्र है। जैसे प्रचण्ड सूर्य्यकी धूप मरुस्थलमें जलहो भासती है तैसेही आत्माका आभासरूप मन होताहै। उस मनसे जो कुछ जगत् भासता है वह सब मनरूपहै; कहीं मनुष्य; कहीं देवता; कहीं दैत्य; कहीं पत्नी; कहीं गन्धर्व; कहीं नागपुर आदिक जो कुछ रूप भासते हैं वे सबही मनसे विस्तार को प्राप्त हुये हैं पर वे तृण और काष्ठ के तुल्य हैं। उनके विचारने से क्या है? यह सब मनकी रचना है और मन अविचारसे सिद्धहै विचार किये से नष्ट होजाताहै। मनके नष्ट हुये परमात्माही शेष रहताहै जो सबका साक्षीभूत सर्व पदसे अतीत; सर्वव्यापी और सबका आश्रयभूतहै। उसके प्रमादसे मन जगत् को रचसकाहै इसकारण कहाहै कि, मन और कर्म एकरूप हैं और शरीरों के कारण हैं हे रामजी! जन्म मरण आदिक जो कुछ विकारहैं वे मनसेही भासते हैं और मन अविचारसे सिद्धहै विचार किये से लीन होजाताहै। जब मन लीन होताहै तब कर्म आदिक भ्रमभी सब नष्ट होजातेहैं। जो इस भ्रमसे छुटाहै वही मुक्तहै और वह पुरुष फिर जन्म और मरणमें नहीं आता उसका सब भ्रम नष्ट होजाताहै। इतना सुन रामजी ने पूंछा; हे भगवन्! आपने सात्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकारके जीवकहेहैं और उनका प्रथम कारण सत्य असत्यरूपी मन कहाता वह मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वसे उपजकर बड़े विस्ताररूपी विचित्र जगत्को कैसे प्राप्तहुआ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आकाश तीनहैं एक चिदाकाश; दूसरा चित्ताकाश और तीसरा भूताकाश

भावसे वे समान रूप हैं और आप अपनी सत्ता है। जो चित्ताकाशसे नित्य उपलब्ध रूप और चेतनमात्र सबके भीतर बाहर स्थित हैं अनुमाता; बोधरूप और सर्वभूतों में समव्याप रहाहै वह चिदाकाश है। जो सर्वभूतों का कारणरूपहै और आप विकल्प रूपहै और सब जगत्को जिसने बिस्ताराहै वह चित्ताकाश कहाता है। दश दिशाओं को विस्तारकर जिसका वपु प्रच्छेदको नहीं प्राप्तहोता, शून्यस्वरूप है और पवनआदिक भूतों के आश्रयभूतहै वह भूताकाश कहाता है। हे रामजी! चित्ताकाश और भूताकाश दोनों चिदाकाश से उपजे हैं और सबके कारण हैं। जैसे दिनसे सब कार्य्य होते हैं तैसेही चित्तसे सबपदार्थ प्रकटहोते हैं। वहचित्त जड़भी नहीं और चैतन्यभी नहीं आकाशभी उसी से उपजताहै। हे रामजी! ये तीनों आकाशभी अप्रबोधक के विषयहैं ज्ञानी के विषय नहीं। ज्ञानवान् तीन आकाश अज्ञानी के उपदेश के निमित्त कहते हैं। ज्ञानवान्को एक परब्रह्म पूर्ण सर्वकल्पना से रहित भासता है। द्वैत; अद्वैत और शब्द भी उपदेश के निमित्त हैं प्रबोधका विषय कोई नहीं। हे रामजी! जब तक तुम प्रबोध आत्मा नहीं हुये तबतक मैं तीन आकाश कहताहूं—वास्तव में कोई कल्पनानहीं। जैसे दावाग्निलगे से वन जलकर शून्य भासता है तैसेही ज्ञानाग्नि से जले हुये चित्ताकाश और भूताकाश चिदाकाशमें शून्यकल्पना भासते हैं। मलिन चैतन्य जो चैत्यताको प्राप्तहोता है इससे यह जगत् भासता है। जैसे इन्द्रजालकी बाजीहोती है तैसेही यह जगत् है। बोधहीन को यह जगत् भासता है। जैसे असम्यग्दर्शी को सीपी में रूपा भासता है तैसेही अज्ञानी को जगत् भासताहै—आत्मतत्त्व नहीं भासता जब दृश्यभ्रम नष्टहोजावे तब मुक्तरूपहो ॥

इति श्रीयोगवा०उत्पत्तिप्रकरणेचिदाकाशमाहात्म्यवर्णनन्नामत्रिसप्ततितमःसर्ग्गः७३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जो कुछ उपजा है इसे तुम चित्तसे उपजाजानो यह जैसे उपजा है तैसे उपजा है अब तुम इसकी निवृत्तिके लिये यत्नकरके आत्मपद में चित्तलगाओ तब यह जगत्भ्रम नष्टहोजावेगा। हे रामजी! इसचित्तपर एक चित्ताख्यान जो पूर्व्वहुआ है उसेसुनो; जैसे मैंने देखा है तैसेही तुमसे कहताहूं। एक महाशून्य वन था और उसके किसी कोने में यह आकाश स्थितथा उस उजाड़में मैंने एक ऐसा पुरुष देखा जिसके सहस्रहाथ और सहस्रलोचनथे और चञ्चल और व्याकुल रूपथा। उसका बड़ा आकारथा और सहस्र भुजाओं से अपने शरीर के मारे आपही कष्टवान् हो अनेक योजनों तक भागता चलाजाता था। जब दौड़ता २ थकजाय और अंग चूर्ण होजायँ तो एक कृष्ण रात्रिकी नाईं भयानकरूप कूप में जापड़े और जब कुछ कालबीते तब बहां से भी निकलकर कञ्ज के वन में जापड़े और जब वहां कंटक चुभें तो कष्टपावे। जैसे पतङ्ग दीपकको सुखरूप जानके उसमें प्रवेश करे और

नाश हो तैसेही वह जहां सुखरूप जानके प्रवेश करे वहांही कष्टपावे और फिर उसी वनमें जापड़े । फिर वहां से निकलकर आपको अपनेही हाथों से मारे और कष्टवान्हो और फिर दौड़ता दौड़ता कूप में जापड़े । वहां से निकल फिर कदली के वन में जावे और उस से निकलकर फिर आपको मारे जब कदलीवन में जावे तब कुछ शांतिमान् और प्रसन्नहो दौड़े और आपको मारे और कष्टवान् होके दूर से दूर जापड़े इसी प्रकार वह अपना किया आपही कष्ट भोगे और भटकता फिरे । तब मैंने उसको पकड़ के पूंछा कि, अरे तू कौनहै;यह क्या करताहै और किस निमित्त करताहै तेरानाम क्या है और यहां क्यों मिथ्या जगत्में मोहको प्राप्तहुआ है ? तब उसने मुझसे कहाकि; न मैं कुछ हूं; न यह कुछ है और न मैं कुछ करता हूं। तूतो मेराशत्रु है; तेरे देखने से मैं नाश होताहूं । इसप्रकार कहकर वह अपने अङ्गों को देखने और रुदन करनेलगा । एक क्षणमें उसका वपु नाश होनेलगा और प्रथम उस के शीश, फिर भुजा, फिर वक्षस्थल और फिर उदर क्रमसे गिरपड़े । जैसे स्वप्ने से जागे स्वप्नेका शरीर नष्ट होता है । तब मैं नीति शक्तिको विचारके आगे गया तो और एक पुरुष इसी भांति का देखा । वह भी इसी प्रकार आपको आपही प्रहारकरे; कष्टवान् हो और पूर्वोक्त क्रियाकरे । जब उस ने मुझको देखा तब प्रसन्न होकर हँसा और मैंने उसको रोकके उसी प्रकार पूंछा तो उसनेभी मेरे देखते २ अपने अङ्गोंको त्याग दिया और कष्टवान् और हर्षवान् भी हुआ । फिर मैं आगे गया तो एक और पुरुष देखा वहभी इसी प्रकारकरे कि, अपने हाथों से आपको मारके बड़े अन्धे कुवें में जापड़े । चिरकालपर्य्यन्त मैं उसको देखता रहा और जब वह कूप से निकला तब मैंने उसपर प्रसन्नहोकर जैसे दूसरे से पूंछा था पूंछा पर वह मूर्ख मुझको न जानके दूरसे त्याग गया और जो कुछ अपना व्यवहार था उसमें जालगा । इसके अनन्तर चिरकालपर्यंत मैं उस वनमें विचरतारहा तो उसीप्रकार मैंने फिर एकपुरुष देखा कि, वह आपही आपको नाशकरताथा । निदान जिसको मैं पूंछूं और जो मेरे पास आवे उसको मैं कष्टसे छुड़ादूं और आनन्द को प्राप्त करूं और जो मेरे निकटही न आवे और मुझको त्याग जावे तो उस वनमें उस का वही हालहो और वही व्यवहार करे । हे रामजी ! वह वन तुमने भी देखाहै परंतु तुमने वह व्यवहार नहीं किया और उस अटवी में जाने योग्यभी तुम नहीं। तुम बालक हो और वह अटवी महाभयानक है उस में प्राप्तहुये कष्टसे कष्ट पाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तोपाख्यानंनामचतुःसप्ततितमस्सर्गः ७४ ॥

रामजी बोले;हे ब्राह्मण ! वह कौन अटवी है; मैंने कब देखी है और कहां है और वे पुरुष अपने नाशके निमित्त क्या उद्यम करते थे सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे राम जी ! वह अटवी दूर नहीं और वह पुरुष भी दूर नहीं । यह जो गम्भीर बड़ा आकार

रूप संसारहै वही शून्य अटवी है और विकारों से पूर्ण है । यह अटवीभी आत्मासे सिद्ध होतीहै । उसमें जो पुरुष रहते हैं वे सब मन हैं और दुःखरूपी चेष्टा करते हैं । विवेक ज्ञानरूपी मैं उनको पकड़ता था । जो मेरे निकट आते थे वे तो जैसे सूर्य्य के प्रकाशसे सूर्य्यमुखी कमल खिलआते हैं तैसे मेरे प्रबोधसे प्रफुल्लित होकर महामती होते थे और चित्तसे उपशम होकर परमपद को प्राप्त होते थे और जो मेरे निकट न आये और अविवेकसे मोहे हुये मेरा निरादर करते थे वे मोह और कष्टही में रहे । अब उनके अंग; प्रहार; कूप; कंज और केलेके वनका उपमान सुनो । हे रामजी ! जो कुछ विषय अभिलाषा हैं वे उस मन के अंगहैं । हाथों से प्रहार करना यह है कि, सकाम कर्म्म करते हैं और उन से फटे हुये दूरसेदूर दौड़ते, और मृतक होते हैं । अन्धकूप में गिरना यही विवेक का त्यागकरना है । इस प्रकार वह पुरुष आपको आपही प्रहारकरते भटकते फिरते हैं और अभिलाषारूपी सहस्र अंगों से घिरेहुये मृतक होकर नरक रूपी कूपमें पड़ते हैं । जब उस कूप से बाहर निकलते हैं तब पुण्यकर्म्मों से स्वर्ग्ग में जाते हैं वही कदली के वन समानहै वहां कुछ सुख पाते हैं स्त्री, पुत्र, कलत्र आदिक कुटुम्ब कंजके वन हैं और कंजमें कण्टक होते हैं सो पुत्र, धन और लोकोंकी कामना हैं उनसे कष्टपाते हैं । जब महापापकर्म्म करते हैं तब नरकरूपी अन्धकूप में पड़ते हैं और जब पुण्यकर्म्म करते हैं तब कदलीवनकी नाई स्वर्गको प्राप्त होते हैं तो कुछ उल्लास को भी प्राप्त होते हैं । हे रामजी ! गृहस्थाश्रम महादुःखरूप कंजवनकी नाई है ये मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि, अपने नाश के निमित्तही दुःखरूप कर्म्म करते हैं । उनमें जो विहित करके विवेक के निकट आते हैं वे शुभ अशुभ कर्म्मों के बन्धन से मुक्त होकर परमपदको प्राप्तहोते हैं और जो विवेकसे हित नहीं करते वे दूरसे दूर भटकते हैं । हे रामजी ! जो पुरुष भोग भोगने के निमित्त तप आदिक पुण्य कर्म्म करते हैं वे उत्तम शरीर धर के स्वर्ग्ग सुख भोगते हैं । वे जो मनरूपी पुरुष मुझ को देखके कहते थे कि, तू हमारा शत्रु है तुझसे हम नष्ट होते हैं और रुदन करते थे वे विषय भोग त्यागने के निमित्त मूर्खचित्त मनुष्य कष्टपाते थे क्योंकि; मूर्खोंकी प्रीति विषय में होती है और उस के त्यागने से वे कष्टवान् होते हैं और विवेक को देख के रुदन करने लगते हैं कि ये अर्द्धप्रबुध हैं । जिनको परम पदकी प्राप्ति नहीं हुई वे भोगों को त्यागे से कष्टवान् होते हैं और रुदन करते हैं । जब अर्द्ध-प्रबोध मूर्खचित्त अभिलाषारूपी अंगों से तपायमान हुआ अज्ञान को त्याग करता है और विवेक को प्राप्त होताहै तब परमतुष्टिमान् हो हँसने लगता है । इस से तुम भी विवेकको प्राप्तहोकर संसारकी वासना को त्यागो तब आनन्दवान् होगे । पूर्व के स्वभाव और नीच चेष्टाको त्यागकर वह इस लिये हँसताहै कि, मैं मिथ्या चेष्टाकरता

था और चिरकालपर्य्यन्त मूर्खता से कष्ट पातारहा। हे रामजी! जब इस प्रकार विवेक को प्राप्तहोकर चित्त परमपद में विश्राम पाता है तब पूर्व्वकी दीनचेष्टा को स्मरणकरके हँसताहै। हे रामजी! जब मैं उस मनरूपी पुरुष को रोककर पूंछता था और वह अपने अङ्गों को त्यागता जाता था वहभी सुनो। मैं विवेकरूपहूं। जब मैं उस चित्तरूपी पुरुष को मिला तब उसके सहस्र हाथ और सहस्रलोचनरूपी अभिलाषाओं का त्यागहुआ और वह अपने प्रहार करने से भी रहगया और जब उस पुरुष का शीश और परिच्छिन्नदेह अभिमानी गिरपड़ा तब दुर्वासनारूपी अङ्गों को उसने त्याग दिया। उनको त्यागकर वह आपभी नष्ट होगया सो अहंकारने अपनी निर्वाणता को देखा अर्थात् परब्रह्ममें लीन होगया। हे रामजी! पुरुषको बन्धनका कारण वासना है। जैसे बालक विचारसे रहित चंचलरूपी चेष्टा करताहै और कष्ट पाता है और जैसे कुसवारी कीट आपही अपने बैठनेकी गुफा बनाके फँसमरती है तैसेही मनुष्य अपनी वासनासे आपही बन्धन में पड़ताहै। जैसे मर्कट लकड़ी में हाथ डालके कील को निकालने लगताहै और लीलाकरता है तो उसका हाथ फँसजाताहै और कष्ट पाताहै तैसेही अज्ञानी को अपनी चेष्टाही बन्धनकरती है क्योंकि, विचार विना करता है। इस से हे रामजी! तुम चित्तसे शास्त्र और संतों के गणों में चिरपर्य्यन्त चलो और जो कुछ अर्थ शास्त्र में प्रतिपाद्यहै उसकी दृढ़भावना करो। जब अभ्याससे तुम्हाराचित्त स्वस्थहोगा तब तुमको कोई शोक न होगा। हे रामजी! जब चित्त आत्मपदमें स्थित होगा तब राग और द्वेषसे चलायमान न होगा और जो कुछ देहादिकों से प्रच्छिन्न अहंकारहै सो नष्ट होगा। जैसे सूर्य के उदय हुयेसे बरफ गलजाती है तैसेही तुच्छ अहंकार नष्ट होजावेगा और सर्व आत्माही भासेगा। हे रामजी! जबतक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक शास्त्रों के अनुसार आनन्दित आचार में विचरे; शास्त्रों के अर्थ में अभ्यास करे और मनको रागद्वेषादिक से मौनकरे तब पानेयोग्य, अजन्मा शुद्ध और शान्तरूप पदको प्राप्त होताहै और सब शोकों से तरके शांतरूप होता है। हे रामजी! जब तक आत्मतत्त्वका प्रमादहै तब तक अनेक दुःख दृढ़होते जाते हैं शांति नहीं होती और जब आत्मपदकी प्राप्तिहोती है तब सब दुःख नष्ट होजाते हैं॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्र० चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनंनामपंचसप्ततितमस्सर्गः ७५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह चित्त परब्रह्मसे उपजाहै सो आत्मरूप है और आत्मरूपभी नहीं। जैसे समुद्रसे तरंग तन्मय और भिन्नहोते तैसेही चित्तहै। जो ज्ञानवान्हैं उनको चित्त ब्रह्मरूपही है कुछ भिन्ननहीं। जैसे जिसको जलका ज्ञानहै उसको तरङ्ग भी जलरूप भासते हैं और जो ज्ञानसे रहित हैं उनको मन संसार भ्रम का कारण है। जैसे जिसको जलका ज्ञान नहीं उसको भिन्न भिन्न तरङ्ग भासते हैं

तैसेही अज्ञानी को भिन्न भिन्न जगत् भासता है और ज्ञानवान् को केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है। हे रामजी ! ज्ञानवान् अज्ञानी के उपदेशके निमित्त भेद कल्पते हैं; अपनी दृष्टिमें उनको सर्व ब्रह्मही भासता है । मन आदिक भी जो तुमको भासते हैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं अनन्य और शक्तिरूप हैं । उससे अन्य कोई पदार्थ नहीं; सर्व्व शक्त परब्रह्म नित्य और सर्व्वओर से पूर्ण अविनाशी है और सबही ब्रह्मसत्ता में है सर्व्व शक्तिमान् आत्माहै। जैसी उसको रुचिहै वही शक्ति प्रत्यक्ष होती है और सर्व्व शक्ति रूप होकर फैलाहै। जीवों में चेतन शक्ति ज्ञान; वायुमें स्पन्दता; पत्थरमें जड़ता; जल में द्रवता; अग्निमें तेज; आकाशमें शून्यता; स्वर्ग्ग में भाव; कालमें नाश; शोक में शोक; मुदिता में आनन्द; वीरोंमें वीर; सर्ग्ग के उपजाने में उत्पत्ति और कल्पके अन्त में नाश शक्ति आदि जो कुछ भाव अभाव शक्तिहै सो सब ब्रह्महीकी है। जैसे फूल फल, बेलि, पत्र, शाखा, वृक्ष विस्तार बीजके अन्दर होताहै तैसेही सब जगत् ब्रह्म में स्थित होता है और जीव, चित्त और मन आदिक भी ब्रह्मही में स्थितहैं। हे रामजी ! जैसे वसन्त ऋतुमें एकही रस नानाप्रकारके फूल, फल, टहनियों सहित बहुत रूपोंको धरता है तैसेही एकही आकाश ब्रह्म चैत्यतासे जगत्रूपहो भासता है और उसमें देशकालादिक कोई विचित्रता नहीं सम्पूर्ण जगत् वही रूपहै । वह ब्रह्मात्मा सर्व्वज्ञ, नित्य उदित और बृहत्रूपहै। हे रामचन्द्र ! उसीकी मनन कलना मन कहाती है। जैसे आकाशमें आंखसे तरवरे और सूर्य्यकी किरणों में जल भासताहै तैसेही आत्मा में मन है। हे रामजी ! ब्रह्ममें चित्त मनकारूप हैं और वह मन ब्रह्मकी शक्तिरूप है; इसीकारण ब्रह्मसे भिन्न नहीं ब्रह्मही है-ब्रह्मसे भिन्न कल्पना करनी अज्ञानता है। ब्रह्ममें मैं ऐसा उत्थान हुआ है इसका नाम मनहै और जड़ अजड़रूप मनसे जगत् हुआहै। प्रतियोगी और व्यवच्छेदक संख्यारूप सब मनकेकल्पे हैं। प्रतियोगी और व्यवच्छेदक संख्याका भेद यह है कि, प्रतियोगी विरोधीको कहते हैं; जैसे चेतन का प्रतियोगी जड़ और व्यवच्छेद इसे कहते हैं कि, जैसे घट अवच्छिन्न पट । ऐसे अनेकरूप दृश्य सब मनके कल्पे हैं। जैसे जैसे ब्रह्ममें इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रोंकी नाई मन दृढ़ होताहै तैसेही तैसे भासता है। जैसे समुद्र में द्रवता से तरंगचक्रहो भासते हैं तैसेही शुद्ध चिन्मात्र में जीव फुरने से नानाप्रकारका जगत्हो भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं ब्रह्मही अपने आप में स्थितहै। जैसे तरंगों के होने और मिटने में जल एकही रस रहताहै तैसेही जगत् के उपजने और मिटने से ब्रह्म ज्योंका त्यों है। जैसे सूर्य्यकी किरणों में दृढ़ तेजसे जल भासताहै तैसेही आत्मतत्त्वमें विचित्रता भासती है परन्तु सदा अपने आप में स्थितहै। हे रामजी ! कारण, कर्म्म और कर्त्ता; जन्म; मरणादिक जो कुछ भासते हैं सो सब ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं और आत्मा

शुद्धरूपहै उसमें न लोभहै; न मोहहै और न तृष्णाहै क्योंकि; अद्वैतरूप और सर्वात्माहै । जैसे सुवर्णसे नानाप्रकारके भूषणहो भासतेहैं तैसेही ब्रह्मसे जगतहो भासताहै । जो ज्ञानवान् पुरुष है उस को सदा ऐसेही भासता है और जो अज्ञानी है उस को भिन्न भिन्न कल्पना भासती है । जैसे किसीका बांधव दूर देशसे चिरकाल पीछे आवे तो वह देशकाल के व्यवधान से बांधव को भी अबांधव जानता है तैसेही अज्ञान के व्यवधान से जीव अभिन्न रूप आत्मा को भिन्नरूप जानताहै । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रम से भासता है तैसेही सत्य असत्यरूप मन आत्मा में भासता है । उस मनने शब्द–अर्थ–रूप भिन्न भिन्न कल्पना रची हैं पर आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है और उसमें बन्ध मोक्ष कल्पना का अभाव है । इतना सुन रामजीने पूँछा; हे भगवन् ! मनमें जो निश्चय होता है वही होता है अन्यथा नहीं होता पर मन में जो बन्धका निश्चय होताहै सो बन्ध कैसे सत्य है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बन्ध की कल्पना मूर्ख करते हैं इससे वह मिथ्याहै और जो बन्ध की कल्पना मिथ्या हुई तो बन्ध की अपेक्षा से मोक्ष भी मिथ्या है–वास्तव में न बन्ध है और न मोक्ष है । हे महामते रामजी ! अज्ञान से अवस्तु भी वस्तुरूपहो भासती है–जैसे रस्सी में सर्प्प भासता है पर ज्ञानवान् को अवस्तु सत्य नहीं भासती । जैसे रस्सी के ज्ञान से सर्प्प नहीं भासता तैसेही बन्ध–मोक्ष कल्पना मूर्खों को भासती है; ज्ञानवान् को बन्ध मोक्ष कलना कोई नहीं । हे रामजी ! आदि परमात्मा से मन उपजा है उसनेही बन्ध और मोक्ष मोह से कल्पा है और फिर दृश्य प्रपंच को रचा है । वह प्रपंच कल्पना मात्र है और बालककी कथावत् मूर्खों को रुचता है अर्थात् जो विचार से रहित हैं उन को यह जगत् सत्य भासताहै ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तचिकित्सावर्णनन्नामषट्सप्ततितमस्सर्गः ७६ ॥

रामजी बोले; हे मुनियों में श्रेष्ठ! बालककी कथा क्याहै वह क्रमसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र ! एक मूर्खबालकने दाईसे कहा कि, कोई अपूर्व कथा जो आगे न हुईहो मुझसे कह तब उसके विनोद निमित्त महाबुद्धिमान् धात्री एक कथा कहने लगी । वह बोली हे पुत्र ! सुन; एकबड़ा शून्यनगरथा और उसका एक राजाथा । उस राजाके शुभ आचारवान् और बड़े सुन्दर तेजोवान् तीनपुत्रथे । उनमें से दो तो उपजे न थे और एक गर्भमेंही आया न था । वे तीनों शुभ आचारवान् और शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतने को चले और शून्यनगरसे बाहरजा निर्मागरूप नगर में ते निर्बुध और शोक सहित इकट्ठे ऐसे चले जैसे बुध, शुक्र और शनैश्चर । इकट्ठे चलनेका दृष्टांत शुक्र, शनैश्चर और बुधका नहीं है निर्बुध और शोकका ग्रहणरूप दृष्टान्त है । सरसों के फूलों की नाईं उनके अंग कोमल थे इसलिये वे मार्ग में थकगये और

ऊपरसे सूर्य्यकी धूप तपने लगी । जैसे ज्येष्ठ--आषाढ़की धूपसे कमल कुम्हिलाजाते हैं तैसेही वे भी कुम्हिला गये और तप्त चरणों से तपनेलगे और महाशोकको प्राप्त हुये । चरणों में डाभके कण्टकलगे; मुख धूरसे धूसल होगये और तीनों कष्टवान् हुये आगे चलकर उन्होंने तीन वृक्ष देखे जिनमें से दो तो उपजे नहीं और तीसरे का बीज भी नहीं बोयागया । उनतीनोंने एकएक वृक्षके नीचे आकर विश्राम किया--जैसेस्वर्गमें कल्पवृक्षकेनीचे इन्द्र और यम आ बैठें--और उनकेफल भक्षण किये; फलोंको काटकेरस पानकिया; उनकेफूलोंकी माला गले में पहिरी और चिरकाल पर्यन्त वहां विश्रामकर फिरदूरसेदूरचलेगये । इतने में मध्याह्नका समयहुआ उससे वे तपायमानहुये । आगे उन्होंने तीन नदियांदेखीं और उनके निकटगये जो तरङ्गों से लीलायमान थीं । उन मेंसेदोमें तो कुछभी जल न था और तीसरी सूखीपड़ीथी । उनमें वे चिरकालपर्यन्त क्रीड़ा करते रहे--जैसे स्वर्गकी गङ्गामें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकलोलकरते हैं और जलपान किया । फिर जब दिन अस्तहोने लगा तब वहांसे चले तो एक भविष्यत् नगर देखा जो बड़ी ध्वजाओं से सम्पन्न और रत्न मणि और सुवर्ण से जड़ा मानों सुमेरुका शिखर था । उसमें उन्होंने हीरे और माणिकोंसे जड़ाहुआ एक मन्दिरदेखा जो निराकाररूप था । उसमें वे घुसगये तो वहां बहुत अङ्गनादेखीं और फिर विचारकिया कि, रसोई कीजिये और ब्राह्मणको भोजन खवाइये । तब उन्होंने कञ्चनकी तीन बटलोइयां मँगवाई जिनमें से दोका करनेवाला तो उपजानहीं अर्थात् आधार से रहितथीं और तीसरी चूर्णरूपथी । उस चूर्णरूप बटलोई में उन्होंने सोलहसेर रसोई चढ़ाई और ब्रह्मा आदि विदेहरूप और निर्मुख ऋषियों ने भोजन किया । उससे उन्हों ने सैकड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराय आपभी भोजन किया । इसप्रकार वह राजपुत्र आज तक सुखसे स्थितहैं । हेपुत्र! यह रमणीककथा मैंने तुझको सुनाईहै । यदि तू इसको हृदय में धारेगा तो पंडितहोगा । हे रामजी! इस प्रकार धात्रीने जब बालकको कथासुनाई तब बालकके मनमें सच प्रतीति हुई । जैसे उस कथा का रूप सङ्कल्पसे भिन्नकुछ न था तैसेही यह जगत् सब सङ्कल्पमात्र है अज्ञानसे हृदय में स्थिर होरहाहै; भ्रमसे इसमें आस्था हुईहै और बन्ध, मोक्षभी कल्पनामात्र हैं; सङ्कल्पसे भिन्न इसका स्वरूपनहीं । हे रामजी! शुद्ध आत्मा निष्किञ्चन रूपहै पर सङ्कल्पके वशसे किञ्चनरूपहो भासताहै । पृथ्वी, वायु, आकाश, नदियां, देश आदिक जो पंचभौतिक सृष्टि हैं सो सब सङ्कल्पमात्र हैं जैसे स्वप्न में नाना प्रकारकी सृष्टि भासतीहै और कुछ नहीं उपजी तैसेही इस जगत्को जानो । जैसे कल्पित राजपुत्र भविष्यत् नगरमें स्थित हुये थे और वह रचना सङ्कल्प बालकको स्थिरीभूत हुईथी तैसेही यह जगत् सङ्कल्पमात्र मनके फुरने से दृढ़ हुआहै । जैसे द्रवता से जो जलमें तरङ्ग होते हैं वह जलही जलहै तैसेही आत्माही

आत्मा में स्थितहै। यहसब जगत् सङ्कल्प से उपजताहै और बड़े विस्तार को प्राप्त होताहै जैसे दिनहोने से सब व्यवहार विस्तारको प्राप्तहोते हैं तैसेही सङ्कल्प से उपजा जगत् विस्तार को प्राप्तहोता है और चित्तका विलास है; चित्त के फुरनेही से भासता है। इससे; हे रामजी! सङ्कल्परूपी मैलको त्यागकरके निर्विकल्प आत्मतत्त्व का आश्रयकरो। जब उस पदमें स्थित होगे तब परम शान्तिकी प्राप्तिहोगी॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेबालकाख्यायिका
वर्णनन्नामसप्तसप्ततितमस्सर्गः ७७॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! मूढ़ अज्ञानी पुरुष अपने सङ्कल्प से आपही मोहको प्राप्त होता है और जो पण्डित है वह मोहको नहीं प्राप्त होता। जैसे मूर्ख बालक अपनी परिछाहींमें पिशाच कल्पकर भयपाताहै तैसेही मूर्ख अपनी कल्पनासे दुःखी होताहै। रामजी बोले; हे भगवन्! ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! वह सङ्कल्प क्या है और छाया क्याहै जो असत्यही सत्यरूप पिशाचकी नाईं दीखती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पंचभौतिक शरीर परछाहींकी नाईं है क्योंकि; अपनी कल्पना से रचाहै और अहंकार रूपी पिशाचहै। जैसे मिथ्या परछाहीं में पिशाचको देखके मनुष्य भयवान् होता है तैसेही देहमें अहंकार को देखके खेद प्राप्त होता है। हे रामजी! एक परमआत्मा सर्व में स्थितहै तब अहंकार कैसे हो? वास्तवमें अहंकार कोई नहीं परमात्माही अभेदरूप है और उसमें अहंबुद्धि भ्रमसे भासती है। जैसे मिथ्यादर्शी को मरुस्थलमें जल भासताहै तैसेही मिथ्याज्ञानसे अहंकार कल्पना होती है। जैसे मणि काप्रकाश मणिपरपड़ताहै सो मणिसे भिन्ननहीं, मणिरूपहीहै; तैसेही आत्मामें जगत भासताहै सो आत्माही में स्थितहै। जैसे जलमें द्रवता से चक्र और तरंगहो भासते हैं सो जलरूपही हैं; तैसेही आत्मा में चित्तसे जो नानात्वहो भासताहै सो आत्मासे भिन्न नहीं; असम्यक् दर्शनसे नानात्व भासताहै। इस से असम्यक् दृष्टिको त्याग के आनन्द रूपका आश्रयकरो और मोहके आरम्भ को त्यागकर शुद्ध बुद्धि सहित विचारो और विचारसे सत्य ग्रहणकरो; असत्य का त्यागकरो। हे रामजी! तुम मोहका माहात्म्य देखो कि, स्थूलरूप देह जो नाशवन्तहै उसके रखने का उपाय करता है पर वह रहता नहीं और जिस मनरूपी शरीरके नाशहुये कल्याण होताहै उसको पुष्ट करताहै। हे रामजी! सब मोहके आरम्भ मिथ्या भ्रमसे दृढ़ हुये हैं, अनन्त आत्मतत्त्व में कोई कल्पना नहीं; कौन किसको कहे। जो कुछ नानात्व भासताहै वह है नहीं और जीव ब्रह्मसे अभिन्न है। उस ब्रह्मतत्त्वमें किसे बन्ध कहिये और किसे मोक्ष कहिये; वास्तव में न कोई बन्ध है न मोक्षहै क्योंकि; आत्मसत्ता अनन्तरूप है। हे रामजी! वास्तव में द्वैतकल्पना कोई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में है। जो आत्मतत्त्व अनन्त

है वही अज्ञान से अन्यकीनाई भासता है । जब जीव अनात्म में आत्माभिमान करता है तब परिच्छिन्न कल्पना होती है और शरीर को अच्छेदरूप जानके कष्टवान् होता है पर आत्मापद में भेद अभेद विकार कोई नहीं क्योंकि; वह तो नित्य, शुद्ध, बोध और अविनाशी पुरुष है । हे रामजी ! आत्मामें न कोई विकारहै; न बन्धन है और न मोच है क्योंकि; आत्मतत्त्व अनन्तरूप; निर्विकार, अच्छेद, निराकार और अद्वैत रूप है । उसको बन्ध विकार कल्पना कैसेहो ? हे रामजी ! देहके नष्ट हुये आत्मा नष्ट नहीं होता । जैसे चमड़ी में आकाश होता है तो वह चमड़ी के नाश हुये नाश नहीं होता तैसेही देहके नाशहुये आत्मानाश नहीं होता । जैसे फूलके नाश हुये गन्ध आकाश में लीन होती है; जैसे कमल पर बरफ पड़ता है तो कमल नष्ट होजाता है भ्रमरा नाश नहीं होता और जैसे मेघके नाश हुये पवनका नाश नहीं होता; तैसेही देहके नाश हुये आत्माका नाश नहीं होता । हे रामजी ! सब का शरीर मन है और वह आत्माकी शक्ति है; उसमें यह शरीर आदिक जगत् रचा है । उस मनका ज्ञान विनानाश नहीं होता तो फिर शरीर आदिके नष्ट हुये आत्मा का नाश कैसेहो ? हे रामजी ! शरीर के नष्ट हुये तुम्हारा नाश नहीं होगा, तुम क्यों मिथ्या शोकवान् होते हो ? तुमतो नित्य, शुद्ध और शान्तरूप आत्माहो । हे रामजी ! जैसे मेघके क्षीणहुये पवन क्षीण नहीं होता और कमलोंके सूखे से भ्रमरा नष्ट नहीं होता तैसेही देहके नष्टहुये आत्मानहीं नष्टहोता । संसारमें क्रीडाकर्त्ता जो मनहै उसको संसारमें नाशनहीं होता तो आत्माका नाश कैसेहो ? जैसे घटके नाश हुये घटाकाश नाश नहीं होता । हे रामजी ! जैसे जलके कुण्ड में सूर्य्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है और उस कुण्डके नाश हुये प्रतिबिम्ब नाशनहीं होता; यदि उस जलको और ठौर ले जावें तो प्रतिबिम्बभी चलता भासता है तैसेही देहमें जो आत्मा स्थितहै सो देहके चलने से चलता भासता है । जैसे घटके फूटेसे घटाकाश महाकाश में स्थित होता है तैसेही देहके नाशहुये आत्मा निरामयपद में स्थित होता है । हे रामजी ! सब जीवोंका देह मनरूपी है । जब वह मृतक होता है तब कुछ काल पर्य्यन्त देश, काल और पदार्थका अभाव होजाताहै और इसके अनन्तर फिर पदार्थ भासते हैं; उस मूर्च्छा का नाम मृतक है । आत्माका नाशतो नहीं होता चित्तकी मूर्च्छा से देश, काल और पदार्थोंके अभाव होनेका नाम मृतक है । हे रामजी ! संसार भ्रमके रचनेवाला जो मन है उसका ज्ञानरूपी अग्निसे नाश होताहै; आत्मतत्त्वका नाश कैसेहो ? हे रामजी ! देश काल और वस्तु से मनका निश्चय विपर्यय भावको प्राप्त होताहै; चाहो अनेक यत्न करे परन्तु ज्ञानबिना नष्ट नहीं होता । हे रामजी ! कल्पितरूप जन्मका नाश नहीं होता तो जगत् के पदार्थोंसे आत्मसत्ताका नाशकैसेहो ? इसलिये शोक किसीका न करना । हे महा-

वाहो ! तुमतो नित्यशुद्ध अविनाशी पुरुषहो। यह जो सङ्कल्प वासनासे तुम में जन्म मरण आदिक भासते हैं सो भ्रममात्रहैं। इससे इस वासनाको त्याग के तुम शुद्ध चिदाकाश में स्थित होजाओ। जैसे गरुड़ पक्षी अण्डा त्यागके आकाशको उड़ता है तैसेही वासनाको त्याग करके तुम चिदाकाश में स्थित होजाओ। हे रामजी ! शुद्ध आत्मा में जो मनन फुरता है वही मन है; वह मननशक्ति इष्ट अनिष्ट से बन्धन का कारण है और वह मन मिथ्या भ्रान्ति से उदय हुआ है। जैसे स्वप्न द्रष्टा भ्रान्ति मात्र होता है तैसेही जाग्रत सृष्टि भ्रान्तिमात्रहै। हे रामजी ! यह जगत् अविद्या से बन्धनमय और दुःख का कारण है और उस अविद्याको तरना कठिन है। अविचार से अविद्या सिद्धहै; विचार किये से नष्ट होती है। उसी अविद्या ने जगत् विस्तारा है। यह जगत् बरफ की दीवार है जब ज्ञानरूपी अग्निका तेज होगा तब निवृत्त होजावेगी। हे रामजी ! यह जगत् आकाश रूप है; अविद्या भ्रान्ति दृष्टि से आकार हो भासता है और असत्य अविद्या से बड़े विस्तारको प्राप्त होता है। यह दीर्घस्वप्ना है; विचार किये से निवृत्त होजाता है। हे रामजी ! यह जगत् भावना मात्रहै; वास्तव में कुछ उपजानहीं। जैसे आकाश में भ्रान्ति से मोरके पुच्छकी नाईं तरवरे भासते हैं तैसेही भ्रान्ति से जगत् भासताहै। जैसे बरफ की शिला तप्तकरने से लीन होजाती है तैसेही आत्म विचारसे जगत् लीन होजाता है। हे रामजी ! यह जगत् अविद्या से बँधा है सो अनर्थका कारण है। जैसे जैसे चित्त फुरता है तैसेही तैसे हो भासता है। जैसे इन्द्रजाली सुवर्ण की वर्षा आदिक माया रचता है तैसेही चित्त जैसा फुरता है तैसाही हो भासता है। आत्माके प्रमाद से जो कुछ चेष्टामन करता है वह अपनेही नाशके कारण होती है। जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी की चेष्टा अपनेही बन्धनका कारण होती है तैसेही मनकी चेष्टा अपने नाश के निमित्त होती है और जैसे नटवा अपनी क्रियासे नानाप्रकारके रूपधारता है तैसेही मन अपने संकल्पको विकल्प करके नाना प्रकारके भावरूपोंको धारता है। जब चित्त अपने संकल्प विकल्पको त्यागकर आत्माकी ओर देखता है तब चित्त नष्ट होजाता है और जब तक आत्माकी ओर नहीं देखता तब तक जगत् को फैलाताहै सो दुःखका कारण होताहै। हे रामजी ! संकल्प आवरणको दूर करो तब आत्मतत्त्व प्रकाशेगा। संकल्प विकल्पही आत्मा में आवरण है। जब दृश्यको त्यागोगे तब आत्मबोध प्रकाशेगा। हे रामजी ! मनके नाशमें बड़ा आनन्द उदय होताहै और मनके उदय हुये बड़ा अनर्थ होता है इससे मनके नाश करने का यत्नकरो। मनके बढ़ाने का यत्न मत करो। हे रामजी ! मनरूपी किसानने जगतरूपी वन रचा है; उसमें सुखदुःखरूपी वृक्ष हैं और मनरूपी सर्प रहताहै। जो विवेकसे रहित पुरुषहैं उनको वह भोजन करता है।

हे रामजी ! यह मन परमदुःखका कारणहै; इससे तुम इस मनरूपी शत्रुको वैराग और अभ्यासरूपी खड्गसे मारो तब आत्मपदको प्राप्तहोगे । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सायङ्काल का समय हुआ और सब श्रोता परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानको गये और फिर सूर्य्य की किरणों के उदयहुये अपने अपने स्थानपर आबैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेमननिर्वाणोपदेशवर्णनन्नामअष्टसप्ततितमस्सर्गः ७८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह चित्रभी परमात्मासे उठे हैं । जैसे समुद्र में लीला से जलकणिका होती हैं तैसेही परमात्मा से मन हुआ है । उस मनने बड़े विस्तार का जगत् रचाहै जो कि, छोटेको बड़ाकरलेताहै और बड़ेको छोटाकरता है; जो अपना आप रूपहै उसको अन्यकी नाईं दिखाता है और जो अन्य रूपहै उसको अपना रूप दिखाताहै अर्थात् आत्माको अनात्मभाव प्राप्त करताहै और अनात्माको आत्म भाव प्राप्त करताहै । ऐसा भ्रान्तिरूप मन निकट वस्तुको दूर दिखाता और दूर वस्तुको निकट दिखाता है-जैसे स्वप्ने में निकट वस्तु दूर भासती है और दूरवस्तु निकट भासती है । हे रामजी ! मन एक निमेषमें संसारको उत्पन्न करता और एक निमेषमेंही लीन कर लेताहै । जो कुछ स्थावर-जंगम रूप जगत् भासता है वह सब मनहीसे उपजा है और देश, काल, क्रिया और द्रव्य अनेक शक्ति विपर्यय रूप मनही दिखाताहै और अपने फुरने से नानाप्रकार के भाव अभावको प्राप्त होताहै । जैसे नट लीला करके नानाप्रकार के स्वांग रचता और सचको झूठ और झूठ को सच दिखाताहै तैसेही मनमें जैसा फुरना दृढ़ होता है तैसेही भासता है । जैसा जैसा निश्चय चंचल मनमें होता है उनके अनुसार इन्द्रियां भी विचरती हैं । हे रामजी ! जो मनसे चेष्टाहोती है वही सफल होती है, शरीरकी चेष्टा मन बिना सफल नहीं होती । जैसे जैसा बेलका बीज होताहै वैसाही उसका फल होताहै और प्रकार नहीं होता तैसेही जो कुछ मनमें निश्चय होताहै वही सफल होताहै । जैसे बालक मृत्तिका की सेना बनाता है और नानाप्रकार के उसके नाम रखता है तैसेही मनभी सङ्कल्प से जगत् रच लेताहै । जैसे मट्टीकी सेना मट्टीसे भिन्न नहीं तैसेही आत्मा में जो नाना प्रकार का जगत् कल्पाहै वह आत्मासे भिन्न नहीं । जैसे संकल्पमें मन नानाप्रकार अर्थोंको कल्पताहै तैसेही जाग्रत जगत्भी भ्रमसे कल्पाहै । हे रामजी ! एक गोपदमें मन अनेक योजन रचलेताहै और कल्पका क्षण और क्षणका कल्प रचलेताहै । जैसा कुछ मन में तीव्र संवेगहोताहै तैसाही होकर भासताहै, उसको रचने में बिलम्ब नहीं लगता; जो कुछ देशकाल पदार्थ हैं वह मनसे उपजे हैं और सबका कारणरूप मनही

है। जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी वृक्षसे उपजे हैं वे वृक्षरूपहैं; जैसे समुद्र में लहरें होतीहैं वे जलरूपहैं और जैसे अग्नि उष्णतारूप है, तैसेही नानाप्रकार के स्वभाव मनसे उपजे दृष्ट आते हैं और सब मन रूप हैं। हे रामजी! कर्त्ता-कर्म-क्रिया; द्रष्टा-दर्शन-दृश्य सब मनहीका फैलावाहै। जैसे सुवर्ण से नानाप्रकार के भूषण भासते हैं और जब सुवर्ण का ज्ञानहुआ तब सब भूषण एक सुवर्णही भासता है, भूषण भाव नहीं भासता तैसेही, जबतक आत्माका प्रमादहै तबतक द्वैतरूप जगत् भासताहै और जब आत्मज्ञान होता है तब सबभ्रम मिटजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तमाहात्म्यवर्णनन्नाम एकोनाशीतितमस्सर्गः ७९॥

वशिष्ठजीबोले; हे रामजी! अब एकवृत्तांत जो पूर्वकालमें हुआ है तुमको सुनाताहूं। यहजगत् इन्द्रजालवत् है। जैसेमनरूपी इन्द्रजालमें यहजगत् स्थितहै तैसे तुमसुनो। इसपृथ्वी में एक उत्तरपाद नाम देशथा, उसमें एक बड़ा वनथा और वहां नानाप्रकार के वृक्ष, फूल, फल और ताल थे जिनपर मोर आदिक अनेक प्रकार के पक्षी शब्द करतेथे। फूलोंसे सुगन्धें निकलतीथीं और विद्याधर, सिद्धगण और देवता आनकर विश्राम करतेथे, किन्नर गानकरतेथे और मन्द २ पवनचलताथा। निदान उस स्थान में महासुन्दर रचना बनीथी और स्वर्णवत् महाकल्पवृक्षलगे थे। उस देशका लवण नाम राजा अतितेजवान् और धर्मात्मा राजा हरिश्चन्द्रके कुलमें उपजा। उसका ऐसा तेजहुआ कि शत्रु उसका नाम स्मरणकरे तो उसको ताप चढ़जावे और वह श्रेष्ठ पुरुषोंकी पालनाकरे। उसराजाके यशसे सम्पूर्ण पृथ्वी पूर्णहोगई और स्वर्ग में देवता और विद्याधर यशगाते थे। उस राजामें लोभ और कुटिलता न थी और वह बड़ा बुद्धिमान् और उदारथा। एक दिन सभामें बड़े ऊंचे सिंहासन पर वह बैठा था और सुन्दर स्त्रियों का नृत्यहोताथा; अतिसुन्दर बाजे बजते थे और मधुरध्वनि होती थी। राजाके शीशपर चमर झुलताथा और मंत्री और मण्डलेश्वरों की-सेना आगेखड़ी राजाको देश मण्डलकी वार्त्ता सुनाती थी। इतिहास और कथाकी पुस्तकें ढांपके उठारक्खी थीं और भाट स्तुति करते थे। केवल दो मुहूर्त्त दिन रहगया था कि, उसकालमें एक इन्द्रजाली बाजीगर आडम्बर संयुक्त सभामें आया और राजासे कहने लगा; हे राजन्! आप मेरा एक कौतुक देखिये। इतना कहकर उसने अपना पिटारा खोला और उसमें से एक मोरकी पूंछ निकालकर घुमाने लगा। उससे राजा को नानाप्रकारकी रचना भासने लगी-मानो परमात्माकी मायाहै और नाना प्रकार के रङ्ग राजाने देखे। उसी क्षणमें किसी मण्डलेश्वरका दूत एक घोड़ा लेकर राजा के निकट आया और बोला; हे राजन्! यह महाबलवान् घोड़ा राजाने आपको दिया

है। जैसे उच्चैःश्रवा इन्द्रका घोड़ा समुद्र मथने से निकला है तैसाही यह है और इसका पवनके सदृश वेगहै। मेरेस्वामीने कहाहै कि, जो उत्तम पदार्थ है वह बड़ेको देनाचाहिये और यह आपके योग्यहै इससे आप इसे ग्रहण कीजिये। तब इन्द्रजाली बोला; हे राजन्! आप इस घोड़े पर आरूढ़हों; इसपर चढ़कर आप शोभा पावेंगे। इतना सुन राजा घोड़े की ओर देख मूर्च्छित होगया और भयसे मंत्रीभी उसे न जगावें और उसके हाथ पांवभी कुछ न हिलें। जैसे कीचड़ में कमल अचल होता है तैसेही राजा अचल होगया और दो मुहूर्त्तपर्य्यन्त मूर्च्छित रहा। भाट और कवि जो स्तुति करते थे वे सब चुप होरहे और मंत्री और नौकर भय और संशयके समुद्र में डूबगये और उन्होंने जाना; राजाके मन में कोई बड़ी चिन्ता उपजी है और सब के सब अति आश्चर्यमान थे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेइन्द्रजालोपाख्याने नृपमोहोनामअशीतितमस्सर्गः ८०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दो मुहूर्त्त के उपरान्त राजा चैतन्य हुआ और उसका अंगहिलकर सिंहासनसे गिरनेलगा, तब राजाके मंत्री और २ नौकरों ने उसकी भुजा पकड़के थांभा परन्तु राजाकी बुद्धि व्याकुल होगई और बोले कि, यह नगर किसकाहै, यह सभा किसकी है और इसका कौन राजाहै? जब इस प्रकारका वचन मंत्रियों ने सुना तो शान्त हुये और प्रसन्न होकर कहने लगे; हे राजन्! आप क्यों व्याकुल हुये हैं? आपका मनतो निर्मलहै और आप उदारात्मा हैं। जिन पुरुषों की प्रीति पदार्थों में होती है और आपातरमणीय भोगों में चित्तहै उनका मन मोहमें भरजाता है और जो सन्तजन उदारहैं उनका चित्त निर्मल होताहै। उनका मन मोहमें कैसे पड़े? हे देव! जिनका चित्त भोगों की तृष्णामें बँधाहै उनका मन मोहजाता और जो महापुरुष सन्त जनहैं उनका मन मोहमें नहीं डूबता। जिनका चित्त पूर्ण आत्मतत्त्व में स्थित हुआ है और बड़ेगुणों से सम्पन्नहैं उनको शरीरके रहने और नष्टहोने में कुछ मोह नहीं उपजता; और जिनको आत्मतत्त्वका अभ्यास नहीं प्राप्तहुआहै और जो अविवेकीहैं उनका चित्त देश, काल, मंत्र और औषधके वशसे मोहको प्राप्तहोताहै। आपका चित्त तो विवेक भावको ग्रहण करताहै क्योंकि, आप नित्यही नूतन कथा और शब्द सुनतेहो। अब आप कैसे मोहसे चलायमान हुयेहो? जैसे वायुसे पर्व्वत चलायमानहो तैसेही आप चलायमानहुये हैं-यह आश्चर्य है! आप अपनी उदारता स्मरणकीजिये। इतना सुन कर राजा सावधानहुआ और उसके मुखकी कान्ति उज्ज्वलहुई-जैसे शरतकाल की सूखीहुई मञ्जरी वसन्तऋतुमें प्रफुल्लित होती है तैसेही, राजा नेत्रोंको खोलकर देखने लगा और जैसे सूर्य राहुकी ओर और सर्प नेवलेकी ओर देखताहै तैसेही इन्द्रजाली

की ओर देखकर बोला, हे दुष्ट इन्द्रजाली ! तूने यह क्या कर्म किया ? राजासेभी कोई ऐसाकर्म करता है ? जैसे जलबिना मछली कष्टपाके फिर जल में प्रसन्नहो तैसेही मैं हुआहूं। बड़ाआश्चर्य है परमात्मा की अनन्त शक्ति हैं और अनेक प्रकारके पदार्थ फुरतेहैं। मैंने दो मुहूर्त्त में क्याही भ्रमदेखा। मेरामन सदा ज्ञानके अभ्यासमें था सोतो मोहगया तो प्राकृतजीवों का क्याकहना है ? मैंने बड़ाआश्चर्य भ्रम देखा है ! यह इन्द्रजाली मानों शम्बरदैत्य है कि, उसने दो मुहूर्त्त में मुझको अनेक देश, काल और पदार्थ दिखाये। जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्त्त में नानाप्रकारके पदार्थ रचलेवें तैसेही एकमुहूर्त्त में इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं। मैं वह सब तुम्हारे आगे कहताहूं—मानों सारीसृष्टि इसके पिटारे में है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेराजाप्रबोधोनामएकाशीतितमस्सर्गः ८१॥

राजाबोला;हे साधो ! मैं इस पृथ्वीका राजाहूं और सब पृथ्वीमें मेरी आज्ञा चलती है और मैं इन्द्रजाली की नाईं सिंहासनपर बैठताहूं जैसे स्वर्ग में इन्द्रके आगे देवता होते हैं तैसेही मेरे आगे भृत्य और मंत्री हैं। ऐसी उदारता से मैं सम्पन्नहूं पर मैंने बड़ा भ्रम देखा। हे साधो ! जब इस इन्द्रजालीने पिटारे से मोरकी पूंछ निकालकर घुमाई तो वह मुझको सूर्य्यकी किरणोंकी नाईं भासी और जैसे बड़ामेघ गरजके शान्त होजाता है और पीछे इन्द्रधनुष दिखता है तैसेही वह विचित्ररूप पूंछ मुझको दीखी। फिर एक दूत घोड़ालेकर आया उसपर मैं आरूढ़ हुआ और वह चित्तही से मुझको दूर से दूर लेगया। जैसे भोगों की वासनासे मूर्ख घरही बैठे दूरसे दूर भटकते फिरते हैं तैसेही मुझको वह घोड़ा दूरसे दूरलेगया। फिर वह मुझे एक महाभयानक निर्जन देशमें लेगया जैसे प्रलयकाल के जलेहुये स्थानों के समान था। वहां मानों दूसरा आकाश था और सात समुद्र थे और उनके समान एक आठवां समुद्रथा। चारोंदिशा के जो चारसमुद्र वर्णन किये हैं उनके समान वह मानों पांचवां समुद्र था निदान वह मुझे महाभयानक स्थानों और देशोंको लांघकर एक महावन में लेआया। जैसे ज्ञानीका चित्त आकाशवत् होता है और जैसे अज्ञानी का चित्त कठोर और शून्य होता है तैसेही स्थान में मुझे लेगया; जहां घास, वृक्ष, जीव, मनुष्य कोईभी दृष्टि न आताथा वहां मैं महाकष्ट और दीनताको प्राप्तहुआ। जैसे धन और बांधवों से और देश और बलसे रहित पुरुष कष्टपाता है तैसेही मैं कष्टवान् हुआ। तब दिनका अन्तहोगया और वहां उजाड़में कष्टसे मैंने रातबिताई और पृथ्वीपर सोया परन्तु निद्रा न आई और दुःख से कल्पसमान रात्रि होगई। जब सूर्य्य उदय हुआ तब मैं वहांसे चला और आगे गया तो पक्षियों का शब्द सुना और वृक्ष देखे परन्तु खाने पीने को कुछ न पाया। उन वृक्षों को देखके मैं प्रसन्न हुआ-जैसे मृत्युसे छुटा

पुरुष रोगसे भी प्रसन्नहो—और एक जामुनके वृक्षके नीचे बैठ गया—जैसे मार्कण्डेय ऋषी ने प्रलय के समुद्रमें भ्रमकर बटका आश्रय लियाथा । तब वह घोड़ा मुझको छोड़के चलागया और सूर्य्य अस्तहुआ तो मैंने वहां रात्रिबिताई परन्तु न कुछ भोजन किया और न जलपान किया और न स्नानही किया। इससे मैं महादीन हुआ। जैसे कोई बिका मनुष्य दीन होजाता है और जैसे अन्धकूपमें गिरामनुष्य कष्टमान होताहै तैसेही मैं कष्टमानहुआ और कल्पके समान रात्रिबीती । जब वहां अन्नपानी कुछ दृष्टि न आया तब मैं आगे गया जहां पक्षी शब्द करते थे। उससमय आधापहर दिन रहगया था तब एक कन्या मुझे दिखाईदी जो अपने हाथमें मृत्तिकाकी एकमटकी में पकेहुये चावल और जांबूके रसका भराहुआ पात्र लिये जातीथी मैं उसके सन्मुख आया—जैसे रात्रिके सन्मुख चन्द्रमा आता है और कहा कि, हे बाले ! मुझको भोजनदे, मैं क्षुधासे आतुरहूं ! जो कोई दीन आर्त्तको अन्नदेताहै वह बड़ी सम्पदा पाता है। हे साधो ! जब मैंने वारंवार कहा तब उसने कहा तुमतो कोई राजा भासते हो कि, नानाप्रकारके भूषण वस्त्र पहिने हुयेहो, मैं तुमको भोजन न दूंगी। ऐसे कहके वह आगेचली और मैं भी उसके पीछे जैसे छायाजावे तैसे चला । मैं कहता जाताथा कि, हे बाले ! मुझे भोजनदे कि, मेरी क्षुधा शान्त हो और वह कहती, हे राजन् ! हम नीचलोग हैं अपने प्रयोजन विना किसीको भोजन नहीं देते; जो तुम मेरे भर्त्ताहो तो मैं तुमको यह अन्न जो अपने पिताके निमित्त लेचलीहूं दूं। मेरा पिता मशानमें बैतालकी नाईं अवधूतहो बैठाहै और धूरसे अङ्गभरे हैं, जो तुम मेरेभर्त्ता बनो तो मैं देतीहूं क्योंकि; भर्त्ता प्राणोंसे भी प्यारा होताहै पितासे क्षमा कराऌंगी। मैंने कहा अच्छा मैं तुझसे विवाह करूंगा पर मुझे भोजनदे। हे साधो ! ऐसा कौन है जो ऐसी आपदा में अपने वर्णाश्रम के धर्म को दृढ़ रक्खे ! उसने मुझको आधा भोजन और आधा जांबूका रसदिया, उसे भोजनकर मैं कुछ शान्तिमान् हुआ परन्तु मेरा मोह निवृत्त न हुआ । तब उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ के मुझको आगे कर लिया और अपने पिता के निकट लेगई—जैसे पापीको यमदूत लेजाते हैं—और कहा, हे पिता ! यह मैंने भर्त्ता किया है । उसके पिताने कहा अच्छा किया और ऐसे कहकर चावल और जांबू के रस का भोजन किया। फिर उसके पिताने कहा, हे पुत्री ! इसको अपने घरलेजा। तब वह मुझको अपने घरलेगई और जब अपने घरके निकट गई तब मैंने देखा कि, वहां अस्थि, मांस और रुधिर है और कुत्ते, गर्दभ, हस्ति आदिक जीवोंकी खालें पड़ी हैं । उनको लांघकर वह मुझे अपने घरमें लेगई—जैसे पापीको नरकमें यमदूत लेजाते हैं । वहांसे एक बगीचा था उसमें जाकर वह अपनी माता के पास मुझेलेगई और कहा; हे माता ! यह तेरा जामातृ हुआ है। माताने कहा अच्छी बातहै । निदान

उनके घर हमने विश्रामकिया और उस चाण्डाली ने मुझको जो भोजन दिया उसको मैंने भोजन किया--मानों अनेक जन्मों के पाप भोगे । फिर विवाह का दिन नियत कियागया और उस दिन मैंने विवाह किया । चाण्डाल हँसते थे और नृत्य करते थे मानों मेरे पाप नृत्य करते थे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचाण्डालीविवाहवर्णनन्नामद्व्यशीतितमस्सर्गः ८२ ॥

राजा बोले हे साधो ! बहुत क्याकहूं सात दिनतक विवाहका उत्साहरहा और फिर वहां मैं एक बड़ा चाण्डाल हुआ । आठमहीने वहां रहके फिर मैं और स्थानों में रहा । निदान वह चाण्डाली गर्भवतीहुई और उससे एक कन्या उत्पन्नहुई जो शीघ्रही बढ़गई । तीन वर्ष पीछे एक बालक उत्पन्नहुआ और फिर एक पुत्र और एक कन्या और भी उपजी । इसीप्रकार उसके तीन पुत्र और तीन कन्या उत्पन्न हुईं और मैं एक बड़ा परिवारवान् चाण्डाल हुआ । उस चाण्डाली सहित मैं चिरकाल पर्यन्त चाण्डालों में विचरता रहा और जैसे जालमें पक्षी बँधजाताहै तैसे मैं उन में बन्धमानहुआ । हे साधो ! उनमें मैंने बड़ेकष्टपाये, प्रथम जिस शिरमें पटका भी चुभताथा उसपर मैं भारउठाऊं; नीचे नंगे चरणजलें और शिरपर सूर्य्यतपें । रात्रिको मैं कांटोंपर सोऊं; कोई वस्त्र न मिले और जीव जन्तुओं के लोहूसे भरेहुये और गीले पुराने कपड़े शिरहाने रक्खूं । कुक्कुट, हस्ती आदिक अशुचि पदार्थों का भोजन करूं और उनके रुधिरका पानकरूं । ऐसी मेरी चेष्टा होगई कि, जालसे पक्षी मारूं; कण्डी से मच्छ कच्छ आदिक पकडूं; अनेक प्रकार के क्रूर नीचकर्म्म करूं और जैसी कैसी वस्तु मिले उसे भोजन करूं; निदान ऐसी व्यवस्था होगई कि अस्थि मांस के निमित्त हम आपसमें लड़ें और शीतकाल में शीत से; उष्णकाल में उष्णतासे कष्टमान हों । इस से मेरा शरीर बहुतकृश होगया और अवस्था भी वृद्धहुई; मशानों में हमारा बहुत काल व्यतीत हुआ और मांस और रक्त पान करते रहे । जो बैताल जन आवें उनको हम मारें--जैसे चण्डिकाने दैत्यों को माराथा और उनकी आंतड़े और चमड़े तले बिछाके सोवें और शिरके शिरहाने रक्खें । ऐसेही चिरकाल पर्यन्त हम चेष्टा करते रहे और बंधुओं में बहुत स्नेह बढ़गया पर वर्षाकालकी नदीकी नाईं हमारी तृष्णा बढ़ती जाती थी । जिन मृत्तिका के पात्रों में चाण्डाल भोजन करजाते थे उन्हीं बासनों में हमभी भोजन करते थे कालवशात् वर्षा बन्दहोगई और कालपड़ा; सूर्य्य ऐसे तपने लगे मानों द्वादश सूर्य्य इकट्ठे तपते हैं और दावाग्नि वनमें लगी है । वनके जीव अन्न जलके निमित्त कष्ट पानेलगे और अपनादेश छोड़के देशान्तर जानेलगे । निदान महाउपद्रव हुआ; समय विनाही मानों प्रलय आया है तब क्षुधा और तृष्णा से कितने जीव मृतक होगये; कितने गिरपड़े और हमको भी बहुत कष्ट

हुआ । तब हम तीनों पुत्रों; तीनों कन्या और स्त्री सहित वहां से निकले और जहां अन्न जल सुनें वहांही जावें। फिर यह भी हाथ न आवें तब हम बहुत शोकवान् हुये और शरीर निरससा होगया । निदान सब ऐसे कष्टवान् हुये कि, पुत्र पिताको न सँभाले और पिता पुत्रको न सँभाले; बान्धवों का स्नेह आपसमें छूटगया और सब अपने अपने वास्ते दौड़ें ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेइन्द्रजालोपाख्यानेउपद्रव वर्णनन्नामत्र्यशीतितमस्सर्ग्गः ॥ ८३ ॥

राजा बोले; हे सभा ! इसप्रकार हम चिरकालतक विचरते फिरे; शरीर बहुत वृद्धहोगया और बाल बरफकी नाईं श्वेत होगये । जैसे सूखापात वायुसे विचरता है तैसेही हमभी कर्मों के वश से भ्रमते रहे । जो कुछ राजा का अभिमानथा वह मुझे विस्मरण होगया और चाण्डालभाव दृढ़ होगया । सब जीव कष्टवान् होके कलत्र को छोड़गये और कितने पहाड़पर चढ़कर दुःखके मारे गिरगिरपड़े । और जैसे चिड़िया को बाज भोजन करताहै तैसेही जीवों को भेड़िये भोजन करते थे। एक वृक्षके नीचे मैंने विश्राम किया तब एक बालक जो सबसे छोटा था मेरे पास आया और बोला; हे पिता ! मुझको मांस दे कि; मैं भोजन करूं; नहीं तो मेरे प्राण निकलते हैं । तब मैंने कहा मांस तो नहीं है; उसने कहा कहींसे लादे ! छोटा पुत्र सबसे प्यारा होता है इससे मैंने कहा; हे पुत्र ! मेरामांस है वह खाले ! तब उस दुर्बुद्धिने कहा; दे ! मैंने वनसे लकड़ियां इकट्ठी करके अग्नि जलाई और कहा, हे पुत्र ! मैं अग्निमें प्रवेश करताहूं जब परिपक्व होजाऊं तब तू भोजन करना । हे सभा ! इसप्रकार मैंने स्नेह के वश कहा कि, किसी प्रकार यह जीतेरहें । ऐसे कहकर मैं चितामें घुसगया और जब मुझको उष्णता लगी तब मैं कांपा और तुमको दृष्टआया। फिर कुछसावधान हुआ और तुरियां बाजने लगीं । हे साधो ! इसप्रकार मैंने चरित्र देखा सो तुम्हारे आगे कहा। जैसे मार्कण्डेयने प्रलयमें क्षोभ देखे और देवतों से कहे तैसेही मैंने तुमसे अपना वृत्तान्त कहाहै। जब इन्द्रजालीने पूंछ घुमाई थी तब उसके सामने मैं घोड़ेपर आरूढ़ हुआ था और इतनेकाल प्रत्यक्ष भ्रम देखता रहा। बड़ा आश्चर्य है कि, मेरे से विवेकवान् राजाको इसने मोहित किया तो और प्राकृत जीवों की क्या वार्ताहै ! वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इस प्रकार तेजोवान् राजाने कहा तब वह सांबरीक अन्तर्द्धान होगया और सभामें जो मंत्री आदि बैठे थे सब आश्चर्यवान् हुये और परस्पर देखके कहनेलगे; बड़ा आश्चर्य है ! बड़ा आश्चर्यहै ! भगवान्की माया विचित्ररूप है। यह सांबरी माया नहीं है क्योंकि; सांबरी अपने लोभके निमित्त तमाशा दिखाताहै पीछे यत्नसे धन आदिक पदार्थ मांगता है पर यह लिये विनाही अन्तर्द्धान होगया । यह

ईश्वरकी मायाहै जिससे ऐसा विवेकवान् राजा मोह गया। जो ऐसा बड़ा तेजोवान् और शूरमाराजा मोहित हुआ तो सामान्य जीवोंकी क्या वार्त्ताहै। हे रामजी! ऐसे संदेहवान् होकर सब स्थितहुये और मैंभी उस सभामें बैठा था। यह वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखाहै किसी के मुखसे सुनके नहीं कहा। हे रामजी! यह जो अणुरूप मनहै सो महामोह और अविद्याहै। इसके फुरने से अनेक प्रकारों का मोह दिखताहै। जब यह मन उपशमहो तभी कल्याणहै। इससे इस मनको जो बहुत कल्पना उठती हैं उनको त्याग कर आत्मपदमें स्थितकरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसांबरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनन्नाम चतुरशीतितमस्सर्ग्गः॥८४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आदि जो शुद्ध परमात्मासे चित्त संवेदन फुरा है वह कलनारूप होके स्थितहुआहै; उसीसे दृश्य सत्यहो भासताहै। आत्माके प्रमाद से मोहमें प्राप्तहुआ है और चित्तके फुरने से चिरपर्यंत जगत्में मग्नहोरहाहै। वह मन असत्यरूप है और उस मननेही सम्पूर्ण जगत् विस्तारा है जिससे अनेक दुःखों को प्राप्त हुआ है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वेताल कल्पकर आपही भयवान् होताहै। वही मन जब संसारकी वासनाको त्यागकर आत्मपदमें स्थित होताहै; तब जैसे सूर्य की किरणों से अन्धकार नष्ट होजाताहै; तैसेही एक क्षणमें सब दुःख नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यास किये से प्राप्त न हो। इससे जब आत्मपदका अभ्यास कीजियेगा तब वह प्राप्तहोगा। आत्मपद के अभ्यास किये से आत्मा निकट भासताहै और संसार दूरभासता; और जब जगत्का अभ्यास दृढ़होताहै तब जगत् निकट भासताहै और आत्मा दूरभासताहै। हे रामजी! जो मूर्ख मनुष्य है उसको अभयपदमें भय होताहै। जैसे पथिकको दूरसे वृक्षमें वेताल कल्पना होती है और भय पाताहै तैसेही चित्तकी वासना से जीव भय पाताहै। हे रामजी! वासना सहित मलिन मनमें नानाप्रकार संसार भ्रम उठताहै और जब आत्मपद में स्थितहोताहै तब भ्रम मिटजाताहै। जैसा मनमें निश्चय होताहै तैसाही हो भासताहै; यदि मित्रमें शत्रुबुद्धि होती है तो निश्चय करके वह शत्रुहोजाताहै और मदसे उन्मत्तको सम्पूर्ण पृथ्वी भ्रमती दीखतीहै और व्याकुल होताहै; तो चन्द्रमाभी श्यामसा भासताहै। जो अमृतमें विषकी भावना होतीहै तो अमृतभी विषकी नाईं भासताहै। यह जाग्रत् पदार्थ देश, काल और क्रिया मनसे भासते हैं। हे रामजी! संसार का कारण मोह है; उससे जीव भटकता है। इस लिये ज्ञानरूपी कुल्हाड़े से वासनारूपी मलिनता को काटो; आत्मपद पाने में वासनाही आवरण है। हे रामजी! वासनारूपी जाल में मनुष्यरूपी हरिण फँसकर संसाररूपी वनमें भटकताहै। जिस पुरुषने विचार करके वासन

नष्टकीहै उसको परमात्माका प्रकाश भासताहै । जैसे बादलसे रहित सूर्य्य प्रकाशित होताहै तैसेही वासना रहित चित्तमें आत्मा प्रकाशता है । हे रामजी ! मनही को तुम मनुष्य जानो; देहको मनुष्य न जानना क्योंकि; देहजड़है और मन जड़ और चेतनसे विलक्षण है । मनसे कियाहुआ कार्य्य सफल होताहै । जो मनसे दिया और जो मनसे लिया है वही दिया और लियाहै और जो देहसे किया है वह भी मननेही किया है । हे रामजी ! यह सम्पूर्ण जगत् मनरूप है । मनही पर्वत, आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी है सूर्य्यादिकों का प्रकाश मनहींसे होता है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सब मनहींसे ग्रहण होते हैं और नानाप्रकारकी वासनाओंसे नानाप्रकारके रूप मनही धरता है । जैसे नटवा नानाप्रकार के स्वांग धरताहै तैसेही नानाप्रकार के रूप मनही धरताहै लघु पदार्थको मनही दीर्घ करता है । सत्यको असत्यकी नाईं और असत्य जगत्के पदार्थको सत्यकी नाईं मनही करताहै; और मनही मित्रको शत्रु और शत्रुको मित्र करताहै । हे रामजी ! जैसी वृत्ति मनकी दृढ़होती है वही सत्यहो भासती है । हरिश्चन्द्रको एक रात्रिमें बारह वर्षका अनुभवहुआ था और इन्द्रको एक मुहूर्त्त में युगों का अनुभवहुआथा और मनही के दृढ़ निश्चय से इन्द्रब्राह्मण के दशोंपुत्र ब्रह्मपदको प्राप्त हुये थे । हे रामजी ! जो सुखसे बैठेहुये को मनमें कोई चिन्ता आन लगी तो सुखही में उसको रौरव नरक होजाताहै और जो दुःख में बैठाहै और मनमें शान्त है तो दुःख भी सुखहोता है । इससे जैसा निश्चय मन में होताहै वैसाही हो भासता है और जिस ओर मनका निश्चय होता है उसी ओर इन्द्रियों का समूह विचरता है । इन्द्रियोंका आधारभूत मनहै; जो मन टूटपड़ताहै तो इन्द्रियां भिन्न भिन्न होजाती हैं । जैसे तागेके टूटेसे मालाके दाने भिन्न भिन्न होजाते हैं तैसेही मनसे रहित इन्द्रियां अर्थोंसे रहित भिन्न होती हैं वास्तव में आत्मतत्त्व सब में अधिष्ठान स्थितहै और स्वच्छ, निर्विकार, सूक्ष्म, समभाव नित्य और सबका साक्षीभूत और सब पदार्थोंका ज्ञाताहै । वहदेहसेभी अधिक सूक्ष्मरूपहै अर्थात् अहंभावके उत्थान से रहित चिन्मात्रहै; उसमें मनके फुरनेसे संसार भासताहै, वास्तव में द्वैत भ्रमसे रहितहै । सब जगत् आत्माका किञ्चिन्मय रचा है और सब में चेतन शक्ति व्यापी है । वायु में स्पन्द; पृथ्वी में कठोरता; सूर्य्य और अग्नि आदिक में प्रकाश; जलमें द्रवता; और आकाशमें शून्यता वही है और सब पदार्थों में वही चेतन शक्ति व्यापरही है । वास्तव में उसमें अनेकता नहीं है, मनसे भासती है; शुक्लपदार्त्थ को कृष्ण और देश, काल पदार्थ, क्रिया और द्रव्यको मनही विपर्यय करताहै । हे रामजी ! जैसे निश्चय मन में दृढ़ होता है वही सिद्ध होता है और मन विना किसी पदार्थका ज्ञान नहीं होता । हे रामजी ! जिह्वा से नानाप्रकार के भोजन करता है परन्तु मन और ठौर होता है तो

उसका कुछ स्वाद नहीं आता और नेत्रों से चित्त सहित देखता है तो रूपका ज्ञान होताहै; इसकारण मन विना किसी इन्द्रिय का विषय सिद्ध नहीं होता और अन्धकार और प्रकाश भी मन विना नहीं भासते। हे रामजी! सब पदार्थ मनसे भासते हैं। जैसे नेत्रों में प्रकाश नहींहोता तो कुछ नहीं भासता तैसेही विद्यमान पदार्थ भी मन विना नहीं भासते। हे रामजी! इन्द्रियों से मन नहींउपजा परन्तु मनसे इन्द्रियां उपजी हैं और जो कुछ इन्द्रियों का विषय दृश्य जालहै वह सब मनसे उपजाहै। जिन पुरुषों ने मन वश कियाहै वही महात्मापुरुष पण्डितहैं और उनको नमस्कार है। हे रामजी! यदि नानाप्रकार के भूषण और फूल पहिरेहुये स्त्री प्रीतिसे कण्ठ लगे पर जो चित्त आत्मपद में स्थितहै तो वह मृतक के समान है अर्थात् उसको इष्ट अनिष्ट का राग द्वेष कुछ नहीं उपजता। इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष मनही उपजाताहै; मनके स्थितहुये राग द्वेष कुछ नहीं उपजता। हे रामजी! एक वीतराग ब्राह्मण ध्यान स्थित वन में बैठाथा और उसके हाथको कोई वनचरजीव तोड़लेगया परन्तु उसको कुछ कष्ट न हुआ क्योंकि; मन उसका स्थित था। यही मन फुरने से सुखको भी दुःख करताहै और अपने में स्थितहुये दुःखको भी सुख करताहै। हे रामजी! कथाके सुनने में जो मन किसी और चिन्तवनमें जाता है तो कथाके अर्थ समझमें नहींआते और जो अपने गृहमें बैठाहै और मनके संकल्पसे पहाड़पर दौड़ता २ गिरपड़ताहै तो उसको प्रत्यक्ष अनुभव होताहै सो मनकाही भ्रमहै। जैसी फुरना मनमें फुरती है वही भासती है। जैसे स्वप्ने में एकक्षणमें नदी पहाड़ आकाशादिक पदार्थ भासने लगते हैं तैसेही यह पदार्थ भी भासतेहैं। हे रामजी! अपने अन्तःकरण में सृष्टिभी मनके भ्रमसे भासती है। जैसे जलके भीतर अनेक तरङ्ग होतेहैं और वृक्ष में पत्र, फूल, फल, टास होते हैं तैसेही एकमन के भीतर जाग्रत्, स्वप्न आदिक भ्रमहोते हैं। जैसे सुवर्ण से भूषण अन्य नहीं होते तैसेही जाग्रत् और स्वप्न अवस्था भिन्न नहीं। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे जल से भिन्न नहीं और जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंको लेकर अनेकरूप धरता है तैसेही मन वासना से अनेकरूप धारताहै। हे रामजी! जैसा स्पन्दमें दृढ़होताहै तैसाही अनुभव होताहै जैसे लवणराजाको भ्रम से चाण्डाली का अनुभव हुआ था तैसेही यह जगत् का अनुभव मनोमात्र है; चित्तके भ्रमसे भासता है। हे रामजी! जैसीजैसी प्रतिभा मनमें होतीहै तैसाही तैसा अनुभव होताहै और यह सम्पूर्ण जगत् मनमात्र है। अब जैसे तुम्हारी इच्छाहो वैसे करो। जैसा जैसा फुरना मनमें होताहै तैसा तैसा हो भासताहै। मनके फुरनेसे देवता दैत्य और दैत्य देवता होजाते हैं और मनुष्य; नाग और वृक्षहोजाते हैं, जैसे लवणराजाने आपदाका अनुभव कियाथा। हे रामजी! मन के फुरनेसेही मरना और जन्म होताहै और संकल्पसेही पुरुष से स्त्री और स्त्री से पुरुष

होजाता; पिता; पुत्रहोजाताहै और पुत्र; पिता होजाताहै । जैसे नटवा शीघ्रही अपने स्वांगसे अनेक रूप धरताहै; तैसेही अपने सङ्कल्पसे मन भी अनेक रूप धरताहै। हे रामजी ! जीव निराकार है पर मनसे आकारकी नाईं भासता है । उस मनमें जो मनन है वही मूढ़ताहै; उस मूढ़तासे जो वासना हुईहै उस वासनारूपी पवनसे यह जीवरूपी पत्र भटकता है और संकल्प के वश हुआ सुख दुःख और भयको प्राप्त होता है । जैसे तेल तिलों में रहता है; तैसेही सुख दुःख मनमें रहते हैं । जैसे तिलों को कोल्हूमें पेरनेसे तेल निकलता है तैसेही मनको मनके संयोगसे सुखदुःख प्रकट भासते हैं । संकल्पदेशमें काल—क्रियासे घनत्व होता है और देश काल आदिक भी मनमें स्थितहोते हैं । जिनका मन फुरता है उनको नानाप्रकारका क्षोभवान् जगत् भासता है । हे रामजी ! जिनका मन आत्मपद में स्थित है उनको क्षोभ भी दृष्टि आता है परन्तु मन आत्मपद से चलायमान नहीं होता । जैसे घोड़ेका सवार रणमें जा पड़ता है तो भी घोड़ा उसके वश रहता है; तैसेही उसका मन जो विस्तारकी ओर जाता है तौभी अपने वशही रहता है । हे रामजी ! जब मनकी चपलता वैराग्से दूर होतीहै तब मन वश होजाता है । जैसे बन्धनों से हस्ती वश होता है तैसेही जिस पुरुष का मन वश होता है और संसारकी ओरसे निवृत्त होकर आत्मपदमें स्थित होता है वह श्रेष्ठ महापुरुष कहाता है । जिसका मन संसारकी ओर धावता है वह दलदलका कीट है और जिसका मन अचपल है और शास्त्रके अर्थरूपी संग और संसारकीओर से निवृत्त होकर एकाग्रभावमें स्थितहुआहै और आत्मपदके ध्यानमें लगाहुआ है वह संसार के बन्धनसे मुक्त होता है । हे रामजी ! जब मन से मनन दूर होताहै तब शान्ति प्राप्त होती है—जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल निकला तो शान्तहुआ था । जिस पुरुषका मन भोगोंकी ओर प्रवृत्त होताहै वह पुरुषसंसाररूपी विषय के वृक्षका बीज होताहै । हे रामजी ! जिसका चित्त स्वरूपसे मूढ़ हुआ है और संसार के भोगों में लगाहै वह बड़े कष्टपाताहै । जैसे जलके चक्रमें आया तृण क्षोभवान् होता है तैसेही यह जीव मन भावको प्राप्तहुआ भ्रम पाताहै । इससे तुम इस मनको स्थित करो कि, शान्तात्मा हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्तवर्णनन्नामपंचाशीतितमस्सर्गः ॥ ८५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह चित्तरूपी महाव्याधि है, उसकी निवृत्ति के अर्थ मैं तुमको एक श्रेष्ठ औषध कहता हूं वह तुम सुनो कि; जिसमें यत्नभी अपना हो; साध्य भी आपहीहो औरऔषध भी आपहो और सब पुरुषार्थ आपहीसे सिद्ध होता है । इस यत्नसे चित्तरूपी वैतालको नष्टकरो । हेरामजी ! जोकुछ पदार्थ तुमको रससंयुक्त दृष्टि आवें उनको त्याग करो । जब वांछित पदार्थों का त्याग करोगे तब मनको जीत लोगे

और अचल पदको प्राप्तहोगे। जैसे लोहे से लोहा कटताहै तैसेही मनसे मनको काटो और यत्न करके शुभगुणों से चित्तरूपी वैतालको दूरकरो। देहादिक अवस्तु में जो वस्तुकी भावना है और वस्तु आत्मतत्त्व में जो देहादिककी भावना है उनका त्यागकर आत्मतत्त्वमें भावना लगाओ। हे रामजी! जैसे चित्तमें पदार्थोंकी चिन्तना होती है तैसेही आत्मपद पानेकी चिन्तनासे सत्यकर्मकी शुद्धतालेकर चित्तको यत्न करके चैतन संवित्की ओर लगाओ और सब वासनाको त्यागके एकाग्रताकरो तब परमपदकी प्राप्ति होगी। हे रामजी! जिन पुरुषोंको अपनी इच्छा त्यागनी कठिन है वे विषयों के कीट हैं क्योंकि; अशुभ पदार्थ मूढ़ता से रमणीय भासते हैं। उस अशुभको अशुभ और शुभको शुभ जानना यही पुरुषार्थ है। हे रामजी! शुभ अशुभ दोनों पहलवानहैं; उन दोनों में जो बली होताहै उसकी जय होती है। इससे शीघ्रही पुरुष प्रयत्न करके अपने चित्तको जीतो। जब तुम अचित्त होगे तब यत्न विना आत्मपदको प्राप्त होगे। जैसे बादलों के अभाव हुये यत्न विना सूर्य भासता है तैसेही आत्मपद के आगे चित्तका फुरना जो बादलवत् आवरण है उसका जब अभाव होगा तब अयत्न सिद्ध आत्मपद भासेगा सो चित्तके स्थित करनेका मंत्र भी आपसे होताहै। जिसको अपने चित्त वशकरने कीभी शक्ति नहीं उसको धिक्कार है वह मनुष्योंमें गर्दभहै। अपने पुरुषार्थ से मनका वशकरना अपनेसाथ परममित्रता करनी है और अपने मनके वशकिये विना अपना आपही शत्रु है अर्थात् मनके उपशम किये विना घटी यंत्रकी नाईं संसारचक्र में भटकता है। जिन मनुष्यों ने मनको उपशम किया है उनको परमलाभ हुआ है। हे रामजी! मनके मारने का मंत्र यहीहै कि, दृश्यकी ओरसे चित्तको निवृत्तकरे और आत्मचेतन संवित् में लगावे; आत्म चिन्तना करके चित्तको मारना सुखरूपहै। हे रामजी! इच्छासे मन पुष्ट रहता है। जब भीतरसे इच्छा निवृत्त होती है तब मन उपशम होता है और जब मन उपशम; होताहै तब गुरु और शास्त्रों के उपदेश और मंत्र आदिकोंकी अपेक्षा नहीं रहती। हे रामजी! जब पुरुष असङ्कल्परूपी औषध करके चित्तरूपी रोगकाटे तब उसपदको प्राप्तहो जो सर्व और सर्वगत शान्तरूपहै। इस देहको निश्चयकरके मूढ़मनने कल्पा है। इससे पुरुषार्थ करके चित्तको अचित्त करो तब इस बन्धनसे छुटोगे। हे रामजी! शुद्ध चित्त आकाशमें यत्न करके चित्त को लगाओ। जब चिरकालपर्यंत मनका तीव्र संवेग आत्माकी ओर होगा तब चैतन चित्तको भक्षण करलेगा और जब चित्तका चिन्तत्व निवृत्त होजावेगा तब केवल चेतनमात्रही शेषरहेगा। हे रामजी! जबजगत्की भावनासे तुममुक्तहोगे तब तुम्हारीबुद्धि परमार्थ तत्त्व में लगेगी अर्थात् बोधरूप हो जावेगी। इससे इसचित्तको चित्तसे ग्रासकरलो; जब तुम परमपुरुषार्थ करके चित्तको

अचित्त करोगे तब महा अद्वैत पदको प्राप्तहोगे। हे रामजी! मनके जीतने में तुमको और कुछ यत्न नहीं केवल एक संवेदनका प्रवाह उलटनाहै कि; दृश्यकी ओरसे निवृत्त करके आत्माकी ओर लगाओ; इसी से चित्त अचित्त होजावेगा। चित्तके क्षोभसे रहित होना परमकल्याणहै; इससे क्षोभसे रहित होजाओ। जिसने मनको जीताहै उसको त्रिलोकी का जीतना तृणसमानहै। हे रामजी! ऐसे शूरमाहैं जोकि, शस्त्रोंके प्रहारसहतेहैं; अग्निमें जलनाभी सहते हैं और शत्रुको मारते हैं तब स्वाभाविक फुरनेके सहने में क्या कृपणता है? हे रामजी! जिनको अपने चित्तके उलटानेकी सामर्थ्य नहीं वे नरों में अधम हैं। जिनको यह अनुभवहोताहै कि, मैं जन्माहूं; मैं मरूंगा और मैं जीवहूं; उनको वह असत्य रूप प्रमाद चपलतासे भासताहै। जैसे कोई किसी स्थान में बैठाहो और मनके फुरने से और देशमें कार्य करने लगे तो वह भ्रमरूपहै; तैसे-ही आपको जन्म मरण भ्रमसे मानता है। हे रामजी! मनुष्य मनरूपी शरीरसे इस लोक और परलोक में मोक्ष होने पर्यंत चित्तमें भटकता है। जो चित्तभी मोक्ष पर्यंत नाशनहीं होता तो तुमको मृत्युका भय कैसे होता है? तुम्हारा स्वरूप नित्यशुद्ध बुद्ध और सर्व विकारसे रहितहै। यह लोक आदिक भ्रम चित्तमें मनके फुरने से उपजाहै; मनसे भिन्न चित्तका कुछ रूपनहीं। पुत्र, भाई, नौकर आदिक जो स्नेह के स्थान हैं और उनके क्लेशसे आपको क्लेशित मानते हैं वह भी चित्त से मानते हैं। जब चित्त अचित्त होजावे तब सर्व बन्धन से मुक्तहो। हे रामजी! मैंने अध ऊर्ध्व सर्व स्थान देखे हैं; सब शास्त्रभी देखे हैं और उनको एकांतमें बैठकर वारंवार विचाराभी है; शांत होनेका और कोई उपाय नहीं; चित्तका उपशम करनाही उपाय है। जबतक चित्त दृश्यको देखता है तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती और जब चित्त उपशम होता है तब उस पदमें विश्राम होताहै जो नित्य, शुद्ध, सर्वात्मा और सबके हृदय में चैतन आकाश परम शान्तरूपहै। हे रामजी! हृदयाकाश में जो चैतन चक्र है अर्थात् जो ब्रह्माकार वृत्ति है उसकी ओर जब मनका तीव्र संवेग हो तब सबही दुःखों का अभाव होजावे। मनका मनन भाव उसी ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रसे नष्ट होता है। हे रामजी! संसार के भोग जो मनसे रमणीय भासते हैं वे जब रमणीय न भासें तब जानिये कि, मनके अङ्कुरकटे। जो कुछ अहं और त्वं आदि शब्दार्थ भासते हैं वे सब मनोमात्र हैं। जब दृढ़ विचार करके इनकी अभावना हो तब मनकी वासना नष्टहो। जैसे हँसिये से खेती कटजाती है तैसेही वासना नष्ट होने से परमतत्त्व शुद्ध भासता है। जैसे घटाके अभावहुये से शरद काल का आकाश निर्मल भासताहै तैसेही वासना से रहित मन शुद्ध भासेगा। हे रामजी! मनही जीवका परमशत्रुहै और इच्छा सङ्कल्प करके पुष्ट होजाता है। जब इच्छा कोई न उपजे तब आपही निवृत्त होजावेगा। जैसे अग्निमें

काष्ठ डालिये तो बढ़जाती है और यदि न डालिये तो आपही नष्ट होजाती है। हे रामजी! इस मनमें जो सङ्कल्प कल्पना उठतीहै उसका त्यागकरो तब तुम्हारा मन स्वतः नष्ट होगा। जहां शस्त्र चलते हैं और अग्निलगती है वहां शूरमा निर्भय होके जापड़ते हैं और शत्रुको मारते हैं; प्राणजाने का भय नहीं रखते तो तुमको सङ्कल्प त्यागने में क्या भय होताहै? हे रामजी! चित्तके फैलाने से अनर्थ होताहै और चित्तके अस्फुरण हुये से कल्याण होताहै—यह वार्त्ता बालकभी जानताहै। जैसे पिता बालकको अनुग्रह करके कहताहै, तैसेही मैंभी तुमको समझाताहूं कि; मनरूपी शत्रुने भय दिया है और सङ्कल्प कलनासे जितनी आपदा हैं वे मनसे उपजती हैं। जैसे सूर्य्य की किरणों से मृगतृष्णा का जल दिखता है; तैसेही सब आपदा मन से दिखती हैं। जिसका मन स्थिर हुआ है उसको कोई क्षोभ नहींहोता। हे रामजी! प्रलयकाल का पवन चले; सप्त समुद्र मर्यादात्यागके इकट्ठे होजावें और द्वादश सूर्य इकट्ठे होके तपें तौभी मन से रहित पुरुषको कोई विघ्न नहीं होता—वह सदा शान्त रूप है। हे रामजी! मन-रूपी बीजहै, उससे संसारवृक्ष उपजाहै; सातलोक उसके पत्र हैं और शुभ अशुभ सुख दुःख उसके फलहैं। वह मन सङ्कल्पसे रहित नष्ट होजाताहै और सङ्कल्प के बढ़ने से अनर्थ का कारण होता है। इससे सङ्कल्प से रहित उस चक्रवर्ती राजपद में आरूढ़हुआ परमपदको प्राप्तहोगा जिस पदमें स्थितहुये चक्रवर्ती राजा तृणवत् भासताहै। हे रामजी! मनके क्षीणहोनेसे जीव उत्तम परमानन्द पदको प्राप्त होता है। हे रामजी! सन्तोष से जब मन वश होताहै तब नित्य, उदय रूप, निरीह, परमपावन, निर्मल, सम, अनन्त और सर्व विकार विकल्पसे रहित जो आत्मपद शेष रहता है वह तुमको प्राप्तहोगा॥

इति श्रीयोगवा० उत्पत्तिप्र० मनशक्तिरूपप्रतिपादनन्नामषडशीतितमस्सर्गः॥८६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिसके मनमें तीव्र संवेग होताहै उसको मन देखताहै। अज्ञानसे जो दृश्य का तीव्रसंवेग हुआहै उससे चित्त जन्म मरणादिक विकार देखता है और जिसका निश्चय मनमें दृढ़होताहै उसी का अनुभव करता है; जैसा मनका फुरना फुरताहै तैसाही रूप होजाता है। जैसे बरफका शीतल और शुक्ल रूप है और काजलका कृष्ण रूप है; तैसेही मनका चञ्चल रूपहै। इतना सुन रामजीने पूछा; हे ब्रह्मन्! यह मन जो वेग अवेग का कारण चञ्चल रूप है उस मनकी चपलता कैसे निवृत्त हो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तुम सत्य कहते हो; चञ्चलता से रहित मन कहीं नहीं दिखता क्योंकि; मनका चञ्चल स्वभावही है। हे रामजी! मनमें जो चञ्च-लता फुरना मानसी शक्ति है वही जगत् आडम्बरका कारण रूप है। जैसे वायुका स्पन्द रूपहै तैसेही मन का चञ्चल रूपहै। जिसका मन चञ्चलतासे रहितहै। उसको

मृतक कहते हैं । हे रामजी ! तप और शास्त्रका जो सिद्धान्त है वह यही है कि; मनके मृतकरूपको मोक्ष कहते हैं; उसके क्षीणहुये सब दुःख नष्ट होजाते हैं । जब चित्तरूपी राक्षस उठताहै तब बड़े दुःखको प्राप्तहोता है और चित्तके लयहुये अनन्त सुखभोग प्राप्तहोते हैं अर्थात् परमानन्द स्वरूप आत्मपद प्राप्त होताहै । हे रामजी ! मन में चञ्चलता अविचारसे सिद्धहै और विचार से नष्ट होजाती है । चित्तकी चञ्चलतारूप जो वासना भीतर स्थित है जब वह नष्टहो तब परमसारकी प्राप्तिहो; इससे यत्न करके चपलता रूपी अविद्याका त्यागकरो । जब चपलता निवृत्त होगी तब मन शान्त होगा । सत्य, असत्य और जड़, चैतनके मध्य जो डोलाय शक्तिहै उसका नाम मनहै । जब यह तीव्रता से जड़की ओर लगता है तब आत्मा के प्रमाद से जड़ रूप होजाताहै; अर्थात् अनात्म में आत्म प्रतीति होती है और जब विवेक विचारमें लगताहै तब उस अभ्याससे जड़ता निवृत्तहोजाती है । और केवल चैतन आत्मतत्त्व भासताहै । जैसा अभ्यास दृढ़होताहै तैसाही अनुभव इसको होताहै और जैसे पदार्थ की एकता चित्तमेंहोती है अभ्यासके वशसे तैसाहीरूप चित्तहोजाता है । हे रामजी ! जिसपदके निमित्त मन पुरुष प्रयत्नकरता है उसपदको प्राप्तहोता है और अभ्यासकी तीव्रतासे भावितरूप होजाता है । इसीकारण तुमसे कहताहूं कि, चित्तको चित्त से स्थिरकरो और अशोक पदका आश्रयकरो । जो कुछ भाव अभावरूप संसारके पदार्थ हैं वे सब मनसे उपजे हैं; इससे मनके उपशम करने का प्रयत्नकरो; मनके उपशम बिना छूटने का और कोई उपायनहीं और मनको मनही निग्रहकरताहै और कोई नहीं करसक्ता । जैसे राजासे राजाही युद्धकरताहै और कोई नहीं करसक्ता; तैसेही मनसे मनही युद्धकरताहै । इससे तुम मनहीसे मनकोमारो कि; शांतिको प्राप्तहो । हे रामजी! मनुष्य बड़े संसार समुद्रमें पड़ा है जिसमें तृष्णारूपी सिवारने इसको घेरलिया है; इसकारण अधःको चलाजाताहै और राग, द्वेषरूपी भवँरमें कष्टपाताहै । उससे तरने के निमित्त मनरूपी नावहै, जब शुद्धमनरूपी नावपर आरूढ़हो तब संसार समुद्र के पारउतरे; अन्यथा कष्टको प्राप्तहोताहै । हे रामजी ! अपना मनही बन्धन का कारण है, उसमनको मनहीसे छेदनकरो और दृश्यकी ओर जो सदा धाताहै उससे वैराग्य करके आत्मतत्त्वका अभ्यासकरो तब छूटोगे; और उपाय छूटने का नहीं । जहां जैसी वासना से मन आशाकरके उठे उसको वहांही बोधकरके त्यागसे तुम्हारी अविद्या नष्ट होजावेगी । हे रामजी ! जब प्रथम भोगों की वासना का त्यागकरोगे तब यत्न बिनाही जगत् की वासना छूटजावेगी । जब भाव अभाव रूप जगत्का त्याग किया तब निर्विकल्प सुखरूप होगा । जब सब दृश्य भाव पदार्थों का अभाव होता है तब भावना करनेवाला मनभी नष्ट होता है । हे रामजी ! जो कुछ संवेदन फुरता है उस संवेदन

का होनाही जगत् है और असंवेदन होने का नाम निर्वाण है संवेदन होने से दुःख है, इससे प्रयत्न करके संवेदन का अभावही कर्त्तव्यहै । जब भावनाकी अभावनाहो तब कल्याणहो । जो कुछ भाव अभाव पदार्थों का राग द्वेष उठता है वह मनके अबोधसे होताहै पर वे पदार्थ मृगतृष्णाके जलवत्मिथ्याहैं । इससे इनकी आस्थाको त्यागकरो, ये सब अवस्तु रूप हैं और तुम्हारा स्वरूप नित्य तृप्त अपने आपमें स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसुखोपदेशवर्णनन्नामसप्ताशीतितमस्सर्गः ८७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह वासना भ्रान्तिसे उठी है । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रान्तिसे भासताहै तैसेही आत्मामें जगत् भ्रान्तिसे भासताहै—इसकी वासना दूरसे त्यागकरो । हे रामजी ! जो ज्ञानवान् हैं उनको जगत् नहीं भासता और जो अज्ञानी हैं उनको अविद्यमानही विद्यमान भासताहै और संसार नाम से संसार को अंगीकार करता है । ज्ञानवान् सम्यक् दर्शीको आत्मतत्त्वसे भिन्न सब अवस्तु रूप भासता है । जैसे समुद्र द्रवतासे तरंग और बुद्बुदे होके भासता है परन्तु जल से भिन्न कुछनहीं तैसेही अपनेही विकल्पसे भाव अभावरूप जगत् देखताहै; जो वास्तव में असत्य रूपहै क्योंकि, आत्मतत्त्वही अपने स्वरूपमें स्थितहै जो नित्य, शुद्ध सम और अद्वैत तुम्हारा अपना आपहै न तुम कर्त्ता हो, न अकर्त्ताहो; कर्त्ता, अकर्त्ता; ग्रहण, त्याग; भेदको लेकर कहाता है । तुम दोनों विकल्पों को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहो और जो कुछ क्रियाआचार आप्राप्तहों उनको करो पर भीतरसे अनासक्त हो अर्थात् अपनेको कर्त्ता और भोक्ता मतमानो क्योंकि; कर्त्तव्य आदिक तब होते हैं जब कुछ ग्रहण वा त्यागकरना होताहै और ग्रहणत्याग तब होता है जब पदार्थ सत्य भासता है पर ये सब पदार्थ तो मिथ्या इन्द्रजालकी मायावतहैं । हे रामजी ! मिथ्या पदार्थों में आस्था करनी और उसमें ग्रहण और त्यागकरना क्या है ? सब संसारका बीज अविद्याहै और वह अविद्या स्वरूपके प्रमाद से अविद्यमानही सत्यकी नाईं हो भासती है । हे रामजी ! चित्तमें चैत्यमय वासना फुरती है सोही मोहकाकारणहै । संसार रूपी वासनाकाचक्रहै; जैसे कुम्हार चक्रपर चढ़ाके मृत्तिकासे अनेक प्रकारके घटआदिक बरतन रचताहै तैसेही चित्तसे जो चैत्यमय वासना फुरतीहै वह संसारके पदार्थों को उत्पन्न करती है । यह अविद्यारूपी संसार देखनेमात्र बड़ासुन्दर भासताहै पर जैसे बांस बड़े विस्तारको प्राप्तहोताहै और भीतरसे शून्यहै तैसेही यह भी भीतरसे शून्य है और जैसे केलेका वृक्ष देखने को विस्तार सहित भासताहै और उसके भीतर सार कुछनहींहोता तैसेही संसार असाररूप है । जैसे नदीका प्रवाह चलाजाता है तैसेही संसार नाशरूप है हे रामजी ! इस अविद्याको पकड़िये तो कुछ ग्रहण नहीं होता; कोमल भासती है पर अत्यन्त क्षीणरूप है और प्रकट आकार भी दृष्टि आते हैं

पर मृगतृष्णाके जल समान असत्यरूपहै । अविद्या-माया जिससे यह जगत् उपजता है, कहीं विकारहै; कहीं स्पष्ट है और कहीं दीर्घ रूप भासतीहै और आत्मासे व्यतिरेक भावको प्राप्त होती है । जड़है परन्तु आत्माकी सत्ता पाके चैतन होती है और चैतन रूप भासती है तौभी असत्यरूपहै । एकनिमेषके भूलने से वह बड़े भ्रमको दिखातीहै । जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्माहै उस में तम दिखाती कि, मैं आत्मा नहीं जानता । जैसे उलूकको सूर्यमें अन्धकार भासता है तैसेही मूर्खोंको अनुभव रूप आत्मा नहीं भासता, जगत् भासताहै जो असत्यरूपहै । जैसे मृगतृष्णा की नदी विस्तार सहित भासती है तैसेही अविद्या नानारङ्ग, विलास, विकार, विषम, सूक्ष्म, कोमल और कठिन रूपहै और स्त्रीकी नाईं चंचल और क्षोभरूप सर्पिणी है; जो तृष्णारूपी जिह्वा से मारडालती है । वह दीपक की शिखावत् प्रकाशवान् है । जैसे जबतक स्नेह होताहै तबतक दीपशिखा प्रज्वलित होती और जब तेल चुकजाता है तब निर्वाण होजातीहै तैसेही जबतक भोगों में प्रीतिहै तबतक अविद्या वृद्धहै और जब भोगों में स्नेह क्षीणहोताहै तबनष्ट होजातीहै । रागरूपी अविद्या तृष्णा बिना नहीं रहती और भोगरूप प्रकाश बिजली की नाईं चमत्कार करती है । इनके आश्रय में जो कार्य करो तो नहीं होता, क्षणभंगुर रूपहैं । जैसे बिजली मेघके आश्रय है तैसेही अविद्या मूर्खों के आश्रय रहतीहै और तृष्णा देनेवाली है । भोग पदार्थ बड़े यत्न से प्राप्त होते हैं और जब प्राप्त हुये तब अनर्थ उत्पन्न करते हैं । जो भोगों के निमित्त यत्न करते हैं उनको धिक्कार है क्योंकि; भोग बड़े यत्न से प्राप्तहोते हैं और फिर स्थिर भी नहीं रहते बल्कि अनर्थ उत्पन्न करते हैं । उनकी तृष्णा करके जो भटकते हैं वे महामूर्ख हैं । हे रामजी ! ज्यों ज्यों इनका स्मरण होता है त्यों त्यों अनर्थ होते हैं और ज्यों ज्यों इनका विस्मरण होता है त्यों त्यों सुख होता है । इसकारण अत्यन्त सुखका निमित्त इनका विस्मरण है और स्मरण दुःख का निमित्त है । जैसे किसी को क्रूर स्वप्ना आता है तो उसके स्मरण में कष्टवान् होता है और जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होने की स्मृति में अनर्थ जानता है; तैसेही अविद्याजगत् के स्मरण में अनर्थ कष्ट होता है । अविद्या एक मुहूर्त्त में त्रिलोकी रचिलेती है और एक क्षण में ग्रासकरलेती है । हे रामजी ! स्त्रीके वियोगी और रोगी पुरुष को रात्रि कल्पकी नाईं व्यतीत होती है और जो बहुत सुखी होताहै उसको रात्रि क्षणकी नाईं व्यतीत होजाती है । काल भी अविद्या प्रमाद से विपर्ययरूप होजाताहै । हे रामजी ! ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो अविद्या से विपर्यय न हो । शुद्ध, निर्विकार, निराकार, अद्वैततत्त्वमें इसके कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पन्द फुरताहै । हे रामजी ! यह सब जगत् जाल तुमको अविद्या से भासताहै । जैसे दीपकका प्रकाश चक्षु इन्द्रियों को रूप दिखाता है तैसेही अविद्या जिन

पदार्थोंको दिखातीहै वह सब असत्यरूपहैं जैसे नानाप्रकारकी सृष्टि मनोराजमें है और जैसे स्वप्नसृष्टि भासतीहै और उनमें अनेक शाखासंयुक्त वृक्ष भासते हैं वे सब असत्य रूपहैं तैसेही यह जगत् असत्य रूपहै जैसे मृगतृष्णाकी नदी बड़े आडम्बर सहित भासती है तैसेही यह जगत् भीहै जैसे मृगतृष्णाकी नदीको देखके मूर्ख मृग जाय पानके निमित्त दौड़तेहैं और कष्टवान् होते हैं; तैसेही जगत् के पदार्थों को देखकर अज्ञानी दौड़के यत्न करते हैं और ज्ञानवान् तृष्णा के लिये यत्न नहीं करते। ज्यों ज्यों मूर्ख मृग दौड़ते हैं त्यों त्यों कष्टपाते हैं, शान्ति नहीं पाते; तैसेही अज्ञानी जगत् के भोगोंकी तृष्णा करते हैं परन्तु शान्ति नहीं पाते। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे सुन्दर भासते हैं परन्तु ग्रहण किये से कुछ नहीं निकलते तैसेही शान्ति का कारण जगत् में सार पदार्थ कोई नहीं निकलता। जड़रूप अविद्या चिदाकार हुई है, वह चैतन से अभिन्न रूपहै परन्तु भिन्नकी नाईं स्थित हुई है। जैसे मकड़ी अपनी तन्तु फैलाकर फिर अपने में लीनकरलेती है, वह उससे अभिन्न रूपहै परन्तु भिन्नकी नाईं भासती है और जैसे अग्नि से धूम निकलकर बादल का आकारहो रस खैंचताहै और मेघ होकर वर्षा करताहै तैसेही अविद्या आत्मा से उपजकर और आत्मा की सत्ता पाकर जगत् रचती है उस जगत् में यह जीव घटी यंत्र की नाईं भटकता है। जैसे रस्सी से बँधीहुई टीड़ी ऊपर नीचे भटकती है तैसेही तीनों गुणों की वासना से बँधाहुआ जीव भटकता है। जैसे कीचड़से कमल की जड़ उपजती है और उसके भीतर छिद्र होते हैं तैसेही अविद्यारूपी कीचड़ से यह जगत् उपजा है और विकार रूपी द्रव्य इसमें छिद्र हैं—सारभूत इसमें कुछनहीं। जैसे अग्नि; घृत और ईंधन के संयोग से बढ़ती जाती है तैसेही अविद्या विषयों की तृष्णा से बढ़ती जाती है। जैसे घृत और ईंधन से रहित अग्नि शांतहोजाती है तैसेही तृष्णा से रहित अविद्या शांत होजाती है। जब विवेकरूपी जलपड़े और तृष्णारूपी घृत न पड़े तब अग्नि रूपी अविद्या नष्ट होजाती है—अन्यथा नहीं नष्ट होती। हे रामजी! यह अविद्या दीपककी शिखा तुल्यहै और तृष्णारूपी तेलसे अधिक प्रकाशवान् होती है। जब तृष्णारूपी तेल से रहितहो और विवेकरूपी वायुचले तब दीपकशिखारूप निर्वाण होजावेगी और न जानियेगा कि, कहांगई अविद्या कुहिरे की नाईं आवरण करती भासती है परन्तु ग्रहण करिये तो कुछ हाथ नहीं आती; देखनेमात्र स्पष्ट दृष्टि आती है परन्तु विचार किये से अणुमात्रभी नहीं रहती। जैसे रात्रिको बड़ा अन्धकार भासता है परन्तु जब दीपकलेकर देखिये तब अणुमात्र भी अन्धकार नहीं दीखता तैसेही विचार किये से अविद्या नहीं रहती। जैसे भ्रान्तिसे आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासताहै; जैसे स्वप्नेकी सृष्टि भासती है, जैसे नावपर चढ़े से तटकेवृक्ष

चलते भासते हैं और जैसे मृगतृष्णाकी नदी, सीपी में रूपा और रस्सी सर्प भ्रमसे भासते हैं तैसेही अविद्यारूपी जगत् अज्ञानी को सत्यभासता है। हे रामजी ! यह जाग्रत जगत्‌भी दीर्घकालका स्वप्नाहै । जैसे सूर्यकी किरणों में जलबुद्धि मृग के चित्त में आती है तैसेही जगत्‌की सत्यता मूर्खकेचित्तमें रहती है। हे रामजी! जिनपुरुषों को पदार्थों में रति होरही है, उनकी भावना से उनका चित्त खिंचताहै और उन पदर्थों को अंगीकार करके बड़े कष्टपाता है । जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है पर दाने में उसकी प्रीति होती है उससे चुगने के निमित्त पृथ्वीपर आताहै और सुखरूप जानके चुगने लगता है तो जाल में फंसता है और कष्टवान् होता है । जैसे कणकी तृष्णा पक्षी को दुःख देती है तैसेही जीवोंको भोगोंकी तृष्णा दुःखदेती है । हे रामजी ! ये भोग प्रथम तो अमृतकीनाईं सुखरूपभासतेहैं परन्तु परिणाममें विषकीनाईं होते हैं; मूर्खअज्ञानीको ये सुन्दर भासते हैं। जैसे मूर्खपतङ्ग दीपकको सुखरूपजानके वांछाकरता है परन्तु जब दीपकसे स्पर्शकरता है तब नाशको प्राप्तहोता है तैसेही भोगोंके स्पर्श से ये जीव नाशहोते हैं। जैसे संध्याकाल आकाशमें लाली भासती है तैसेही अविद्यासे जगत् भासता है। जैसे भ्रमसे दूर वस्तु निकटभासती है और निकटवस्तु दूरभासती है; और स्वप्ने में बहुतकालमें थोड़ा और थोड़ेकाल में बहुत भासता है तैसेही यह सब जगत् जाल अविद्याहो भासताहै । वह अविद्या आत्मज्ञानसे नष्टहोती है इससे यत्न करके मन के प्रवाहको रोको। हे रामजी ! जो कुछ दृश्यमान्‌जगत्‌है वह सब तुच्छरूप है बड़ा आश्चर्य है कि; मिथ्याभावना करके जगत् अन्धहुआ है। हे रामजी ! अविद्या निराकार और शून्य है; उसने सत्यहोकर जगत्‌को अन्धाकियाहै अर्थात् संसारी लोग असत्‌रूप पदार्थोंको सत्‌जानके यत्नकरते हैं। जैसे सूर्यके प्रकाशमें उल्लूको अन्धकार भासता है और भ्रांतिसे सूर्य उसको नहीं भासता । तैसेही चिदानन्दआत्मा सदाअनुभवसे प्रकाशताहै और अविद्यासे नहींभासता । असत्यरूप अविद्याने जगत्‌को अन्धा कियाहै; जो विकर्मोंको कराती है और विचारकिये से नहीं रहती, उससे अपना आप नहीं भासता और बड़ाआश्चर्य है कि, धैर्य्यवान् धर्मात्माको भी अपनेवशकरके समर्थ होने नहींदेती। अविचार सिद्ध अविद्यारूपी स्त्री ने पुरुषों को अन्धा किया है और अनन्त दुःखोंका विस्तार फैलाती है; यह उत्पत्ति और नाश, सुख और दुःखको कराती है, आत्माको भ्रमाती है, अनन्त दुःख अज्ञान से दिखाती है; बोधसे हीन करती है और काम, क्रोध उपजाती है और मनमें वासनासे यही भावना वृद्धि करती है। हे रामजी ! यह अविद्या निराकाररूप है और इसने जीवको बांधाहै । जैसे स्वप्ने में कोई आप को बँधा देखे तैसीही अविद्या है । स्वरूप के प्रमादकाही नाम अविद्या है और कुछ नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेअविद्यावर्णनन्नामअष्टाशीतितमस्सर्गः ॥ ८८ ॥

इतनासुन रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! जो कुछ जगत्दीखता है वह सब यदि अविद्यासे उपजा है तो वह निवृत्त किसभांति होती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे बरफ की पुतली सूर्य के तेजसे क्षणमें नष्ट होजाती है तैसेही आत्मा के प्रकाशसे अविद्या नष्ट होजाती है। जबतक आत्माका दर्शन नहीं होता तबतक अविद्या मनुष्य को भ्रम दिखाती है और नानाप्रकारके दुःखोंको प्राप्तकरती है पर जब आत्मा के दर्शनकी इच्छा होती है तब वही इच्छा मोहका नाश करती है। जैसे धूप से छाया क्षीण होजाती है तैसेही आत्मपदकी इच्छासे अविद्या क्षीण होजाती है और सर्व्वगत देवआत्मा के साक्षात्कारहुये से नष्टहोजाती है। हे रामजी ! दृश्यपदार्थोंमें इच्छाउपजनेकानाम अविद्या है और उस इच्छा के नाशकानाम विद्या है। उस विद्याही का नाम मोक्ष है। अविद्या का नाश संकल्पमात्र है। जितने दृश्य पदार्थ हैं उनकी इच्छा न उपजे और केवल चिन्मात्र में चित्तकी वृत्ति स्थितहो--यही अविद्याके नाशका उपायहै ! जबसब वासना निवृत्तहों तब आत्मतत्त्वका प्रकाशआवै। जैसे रात्रिके क्षयहुये सूर्य प्रकाशताहै तैसेही वासना के क्षयहुये आत्मा प्रकाशताहै। जैसे सूर्य के उदयहुये से नहीं विदित होता कि, रात्रि कहांगई तैसेही विवेकके उपजे नहीं विदित होता कि, अविद्या कहांगई। हे रामजी ! मनुष्य संसारकी दृढ़ वासना में बँधाहै। और जैसे संध्याकालमें मूर्ख बालक परछाहीं में बैताल कल्पकर भयवान् होताहै तैसेही अपनी वासनासे भयपाताहै। रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! यहसबदृश्य अविद्यासे हुआ है और अविद्या आत्मभावसे नाश होती है तो वह आत्मा कैसाहै ? वशिष्ठजी बोले; चैत्योन्मुखत्वसे रहित और सर्वगत समान और अनुभव रूप जो अशब्दरूप चेतन तत्त्व है वह आत्मा परमेश्वर है। हे रामजी ! ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त जगत् सबआत्मा है और अविद्या कुछ नहीं। हे रामजी ! सब देहोंमें नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थित हैं; उसमें मनोनाम्नी कल्पना अन्यकी नाईं आभासहोकर भासती है पर आत्मतत्त्वसे भिन्न कुछनहीं। हे रामजी ! कोई न जन्मता है, न मरताहै और न कोई विकारहै; केवल आत्मतत्त्व प्रकाश सत्तासमान, अविनाशी, चैत्य से रहित, शुद्ध, चिन्मात्रतत्त्व अपने आप में स्थित है और नित्य, सर्वगत, शुद्ध, चिन्मात्र, निरुपद्रव, शान्तरूप, सत्तासमान, निर्विकार अद्वैत आत्माहै। हे रामजी ! उस एक सर्वगत देव, सर्वशक्ति महात्माकी जब विभाग कलना शक्ति प्रकट होती है तो उसकानाम मन होताहै। जैसे समुद्रमें द्रवता से लहरें होतीहैं तैसेही शुद्धचिन्मात्रमें जो चैत्यताहोती है उसकानाममनहै। वही सङ्कल्पकलना से दृश्यकीनाईं भासताहै और उसी सङ्कल्प कल्पनाका नाम अविद्याहै। सङ्कल्पहीसे वह उपजी है और सङ्कल्पसेही नाशहोजाती है। जैसे वायुसे अग्नि उपजती है और वायुसेही लीनहोती है तैसेही संकल्पसे अविद्यारूपी जगत् उपजताहै और संकल्पही से

नष्ट होजाताहै। जब चित्तकी वृत्ति दृश्यकी ओर फुरती है तब अविद्या बढ़ती है और जब दृश्यकी वृत्ति नष्ट हो और स्वरूपकी ओर आवे तब अविद्या नष्टहोजाती है। हे रामजी ! जब यह संकल्प करता है कि, मैं 'ब्रह्मनहीं हूं' तबमन दृढ़ बन्धमय होता है और जब यहीसंकल्प दृढ़ करताहै कि, सब ब्रह्महै, तबमुक्तहोताहै। जब अनात्ममें अहं अभिमानका संकल्प दृढ़करता है तब बन्धन होता है और सर्वब्रह्मके संकल्पसे मुक्त होताहै। दृश्यकासंकल्प बन्ध है और असंकल्पही मोक्षहै; आगे जैसी तुम्हारी इच्छाहो तैसेकरो। जैसे बालक आकाशमें सुवर्णके कमलों की कल्पनाकरे कि, सूर्यवत् प्रकाशित और सुगन्धसे पूर्ण हैं तो वे भावनामात्र होते हैं; तैसे अविद्या भावनामात्र है। अज्ञानी जो जानताहै कि, मैं कृश, अतिदुःखी और वृद्धहूं और मेरे हाथ, पांव और इन्द्रिय हैं तो ऐसे व्यवहार से बन्धमान होताहै और यदि ऐसे जाने कि, मैं दुःखी नहीं न मेरी देहहै; न मेरे बन्धनहैं; न मैं मांसहूं और न मेरे अस्थिहैं मैं तो देहसे अन्य साक्षीहूं; ऐसे निश्चयवान्को मुक्त कहना चाहिये। जैसे सूर्य में और मणिके प्रकाशमें अन्धकार नहीं होता तैसेही आत्मामें अविद्यानहीं। जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाशमें नीलता कल्पता है तैसेही अज्ञानी आत्मामें अविद्या कल्पता है–वास्तव में कुछनहीं। फिररामजीने पूंछा; हे भगवन् ! सुमेरुकी छाया आकाशमें पड़ती है अथवा तमकी प्रभा है व और कुछ है; आकाशमें नीलताकैसे भासती है ? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी ! आकाशमें नीलता नहीं है; न सुमेरुकी छायाही है और न तम है, आकाश पोलमात्र है यह शून्यता गुण है। हे रामजी ! यह ब्रह्माण्ड तेजरूप है, इसका प्रकाशही स्वरूप है; तमका स्वभावनहीं। तम ब्रह्माण्डके बाह्यहै, भीतर नहीं; ब्रह्माण्ड का प्रकाश स्वभाव है और दृढ़ शून्यतासे आकाश में नीलता भासती है और कुछ नहीं। जिसकी मन्ददृष्टिहै उसको नीलता भासती है और जिसकी दिव्यदृष्टिहै उसको नीलता नहीं भासती–पोल भासताहै। जैसे मन्ददृष्टिको आकाश में नीलता भासती है, तैसेही अज्ञानीको अविद्या सत्य भासती है। जैसे दिव्यदृष्टिवाले को नीलता नहीं भासती, तैसेही ज्ञानवान्को अविद्या नहीं भासती–ब्रह्मसत्ताही भासती है। हे रामजी ! जहां तक इसके नेत्रोंकी दृष्टिजातीहै वहांतक आकाश भासताहै और जहांवृत्ति कुंठित होती है वहां नीलता भासती है। हे रामजी ! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है उसको नीलता भासती है तैसेही जिस जीवकी आत्मदृष्टि क्षय होती है, उस को अविद्यारूपी सृष्टि भासने लगती है–वही दुःख रूपहै। हे रामजी ! चेतन को छोड़के जो कुछ स्मरण करताहै उसका नाम अविद्याहै और जब चित्त अचलहोताहै तब अविद्या नष्ट होजाती है–असङ्कल्प होनेसेही अविद्या नष्ट होती है। जैसे आकाशके फूल हैं तैसेही अविद्या है। यह भ्रमरूप जगत् मूर्खोंको सत्य भासता है वास्तव में कुछ नहीं

है। मन जब फुरने से रहित हो तब जगत् भावनामात्र है। उसी भावना का नाम अविद्याहै और वह मोहका कारण है। जबवही भावना उलटकर आत्माकी ओर आवे तब अविद्या का नाश हो। वारंवार चिन्तना करने का नाम भावना है। जब भावना आत्माकी ओर वृद्धिहोती है तब आत्माकी प्राप्ति होती है और अविद्या नष्ट होजाती है। मनके संसरने का नाम अविद्या है। जब आत्माकी ओर संसरना होता है तब अविद्या नष्ट होजाती है। हे रामजी! जैसे राजाके आगे मंत्री और टहलुये कार्य्य करते हैं; तैसेही मनके आगे इन्द्रियां कार्य करती हैं। हे रामजी! बाह्य के विषय पदार्थों की भावना छोड़के तुम भीतर आत्मा की भावना करो तब आत्मपदको प्राप्तहोगे जिन पुरुषों ने अन्तःकरण में आत्माकी भावना का यत्न किया है वे शान्तिको प्राप्त हुये हैं हे रामजी! जो पदार्थ आदि में नहीं होता, वह अन्तमें भी नहीं रहता; इससे जो कुछ भासता है वह सब ब्रह्मसत्ता है। उससे कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्न भासता है वह मनमात्र है। तुम्हारा स्वरूप निर्विकार और आदि अन्त से रहित ब्रह्मतत्त्व है। तुम क्यों शोक करते हो? अपना पुरुषार्थ करके संसार की भोग वासना चित्तके मूलसे उखाड़ो और आत्मपदका अभ्यास करो तो दृश्यभ्रम मिटजावे। हे रामजी! इस संसार की वासना का उदय होना जरा मरण और मोह देनेवाला है। जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब जीवको यह कल्पना उठती है और आकाशरूपी अनन्त फाँसियों से बन्धमान होता है। तब वासना और भी वृद्धि होजाती है और कहता है कि ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरा धन है, ये मेरे बान्धव हैं; यह मैंहूं; वह औरहै। हे रामजी! जिस शरीर से मिलकर यह कल्पना करताहै वह शरीर शून्यरूपहै। जैसे वायुगोले के साथ तृण उड़ते हैं; तैसे अविद्यारूपी वासना से शरीर उड़ते हैं अहं त्वं आदिक जगत् अज्ञानीको भासता है और ज्ञानवान् को केवल सत्यब्रह्म भासता है। जैसे रस्सीके न जानने से सर्प भासता है और रस्सीके सम्यक् ज्ञानसे सर्पभ्रम नष्ट होजाताहै, तैसेही आत्माके अज्ञानसे जगत् भासता है और आत्माके सम्यक् ज्ञान हुये से जगत् भ्रम नष्ट होजाताहै। इससे तुम आत्माकी भावनाकरो। हे रामजी! रस्सी में दो विकल्प होते हैं एक रस्सी का और दूसरा सर्पका; वे दोनों विकल्प अज्ञानी को होते हैं ज्ञानी को नहीं होते। जो जिज्ञासी होता है उसकी वृत्ति सत्य और असत्यमें डोलायमान होती है और जो ज्ञानवान् है उसको विचार से रहित ब्रह्मतत्त्वही भासता है। इससे तुम अज्ञानी मत होना, ज्ञानवान् होना; जो कुछ जगत्की वासना है उन सबका त्यागकरो तब शान्तिमान होगे। हे रामजी! संसार भोगकी वासना भी तब होती है जब अनात्मा में आत्माभिमान होताहै; तुम इसके साथ काहेको अभिमान करते हो? यह देह तो मूक जड़ है और अस्थि मांसकी थैली है। ऐसी देह तुम क्यों

होते हो ? जब तक देहमें अभिमान होताहै तबतक सुख और दुःख भोगता है और इच्छा करता है । जैसे काष्ठ और लाख; और घट और आकाश का संयोग होताहै तैसेही देह अभिमान और देहीका संयोग होताहै । जैसे झिल्ली के अन्तर आकाश होताहै सो उसके नष्टहुये आकाश नहीं नष्टहोता और जैसे घटके नष्टहुये घटाकाश नहीं नष्टहोता; तैसेही देह के नष्टहुये आत्मा नहीं नाशहोता । हे रामजी ! जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांति से भासती है तैसेही अज्ञान से सुख दुःखकी कल्पना होती है । इससे तुम सुखदुःखकी कल्पनाको त्यागके अपने स्वभाव सत्तामें स्थित हो । बड़ा आश्चर्य है कि; ब्रह्मतत्त्वसत्यस्वरूप है पर मनुष्य उसे भूलगया है और जो असत्य अविद्या है उसको वारंवार स्मरण करताहै । ऐसी अविद्याको तुम मत प्राप्तहो । हे रामजी ! मनका मननही अविद्याहै और अनर्थका कारणहै; इससे जीव अनेक भ्रम देखता है । मनके फुरने से अमृतसे पूर्ण चन्द्रमाका विम्बभी नरककी अग्निसमान भासता है और बड़ी लहरों; तरंगों और कमलोंसे संयुक्त जलभी मरुथलकी नदीसमान भासता है । जैसे स्वप्ने में मनके फुरने से नाना प्रकार के सुख और दुःखका अनुभव होता है तैसेही यह सब जगत् भ्रम चित्तको वासनासे भासताहै । जाग्रत और स्वप्नेमें यह जीव मनके फुरने से विचित्र रचना देखता है । जैसे स्वर्ग में बैठेहुये को भी स्वप्ने में नरकों का अनुभव होताहै तैसेही आनन्दरूप आत्मा में प्रमादसे दुःखका अनुभव होता है । हे रामजी ! अज्ञानी मन के फुरने से शून्य अणुमें भी सम्पूर्ण जगत् भ्रम दिखताहै; जैसे राजा लवणको सिंहासन पर बैठे चाण्डालकी अवस्था का अनुभव हुआ था । इससे संसार की वासना को तुम चित्तसे त्यागदो । यह संसार वासना बन्धनका कारण है । सब भावों में बर्त्तो परन्तु राग किसी में न हो । जैसे स्फटिकमणि सब प्रतिविम्बों को लेताहै परन्तु रंग किसीका नहीं लेता तैसेही तुम सब कार्य्य करो परन्तु द्वेष किसी में न रक्खो । ऐसा पुरुष निर्बन्धन है उसको शास्त्र के उपदेशकी आवश्यकता नहीं; वह तो निजरूप है हे रामजी ! जो कुछ प्रकृत आचार तुम को प्राप्तहो तो देना, लेना, बोलना, चालना आदिक सब कार्य्य करो परंतु भीतरसे अभिमान कुछ न करो; निरभिमान होकर कार्य करो—यह ज्ञान सबसे श्रेष्ठहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेयथाकथितदोषपरिहारोपदेशो नामनवाशीतितमस्सर्गः ८९ ॥

इतना कहकर बाल्मीकि जी बोले कि; इसप्रकार जब महात्मा वशिष्ठजी ने कहा तब कमलनयन रामजी ने वशिष्ठजी की ओर देखा और उनका अन्तःकरण रात्रि के मुंदेहुये कमल की नाईं प्रफुल्लित होआया । तब रामजी बोले कि; बड़ा आश्चर्य है ! पद्मकी तांत के साथ पर्वत बांधा है । अविद्यमान अविद्याने सम्पूर्ण जगत् वश

किया है और अविद्यमान जगत् को वज्रसारवत् दृढ़ किया है। यह सब जगत् असत्यरूप है और सत्यकी नाईं स्थित किया है। हे भगवन्! इस संसारकी नटनी माया का क्या रूप है; महापुण्यवान् लवणराजा ऐसी बड़ी आपदा में कैसे प्राप्त हुआ और इन्द्रजाली जिसने भ्रम दिखाया था वह कौन था कि, उसको अपना अर्थ कुछ न था? वह कहां गया और इसदेही और देहका कैसे सम्बन्ध हुआ और शुभ अशुभ कर्मोंके फल कैसे भोगता है? इतने प्रश्नों का उत्तर मेरे बोध के निमित्त दीजिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह देह काष्ठ मट्टी के समान है। जैसे स्वप्ने में चित्तके फुरने से देह भासता है तैसेही यह देहभी चित्तका कल्पित है और चित्तही चैत्य सम्बन्ध से जीवपदको प्राप्त हुआ है। वह जीव चित्तसत्तासे शोभायमान है; उस चित्तके फुरनेसे संसार उपजाहै; वह वानरके बालकके समान चंचल है और अपने फुरनेरूप कर्मोंसे नाना प्रकार के शरीर धरता है। उसी चित्तके नाम अहंकार, मन और जीवहैं। वह चित्तही अज्ञान से सुख दुःख भोगता है; शरीर नहीं भोगता। जो प्रबोधचित्त है वह शान्तरूप है। जबतक मन अप्रबोध है और अविद्यारूपी निद्रा में सोया है तबतक स्वप्नरूप अनेक सृष्टि देखता है और जब अविद्या निद्रा से जागता है तब नहीं देखता। हे रामजी! जबतक जीव अविद्या से मलिन है तब तक संसार भ्रम देखता है और जब बोधवान् होता है तब संसार भ्रम निवृत्त हो-जाता है। जैसे रात्रि होनेसे कमल मुंदजाते हैं और सूर्य्य के उदय हुये खिलआते हैं तैसेही अविद्यासे जगत् भ्रम देखता है और बोधसे अद्वैतरूप होताहै। इससे अज्ञा-नही दुःखका कारण है। अविवेकसे पंचकोशदेह में अभिमानी होकर जैसे कर्मकरता है तैसेही भोगता है; शुभ करताहै तो सुख भोगता है और अशुभसे दुःख भोगता है जैसे नटवा अपनी क्रियासे अनेक स्वाँग धरता है तैसेही मन अपने फुरने से अनेक शरीर धरता है। जो कुछ इष्ट–अनिष्ट–सुख दुःख हैं वे एक मनके फुरने में हैं और शरीर में स्थित होकर मनहीं करता है। जैसे रथपर आरूढ़ होकर सारथी चेष्टा करताहै और बाँबी में बैठके सर्प चेष्टा करता है तैसेही शरीर में स्थित होकर मन चेष्टा करताहै। हे रामजी! अचलरूप शरीरको मन चञ्चल करताहै। जैसे वृक्षको वायु चंचल करताहै तैसे जड़ शरीर को मन चंचल करता है। जो कुछ सुख–दुःख की कलना है वह मनहीं करता है और वहीभोगता और वही मनुष्य है। हे राम जी! अब लवणका वृत्तान्त सुनो। लवणराजा मनके भ्रमने से चाण्डाल हुआ। जो कुछ मनसे करता है वही सफल होता है। हे रामजी! एक काल में हरिश्चंद्र के कुल में उपजा राजा लवण एकान्त बगीचे में बैठ के विचारने लगा कि; मेरा पितामह बड़ा राजा हुआ है और मेरे बड़ों ने राजसूय यज्ञ किये हैं। मैं

भी उनके कुल में उत्पन्न हुआहूं इससे मैं भी राजसूय यज्ञ करूं । इसप्रकार चिन्तना करके लवणने मानसी यज्ञ आरम्भ किया और देवता, ऋषि, सुर, मुनीश्वर, अग्नि, पवन आदिक देवताओंकी मनसे पूजाकी और मन्त्र और सामग्री जो कुछ राजसूय यज्ञ का कर्म है सो संपूर्ण करके मनसे दक्षिणादीं । सवाबर्ष पर्यंत उसने यह यज्ञाकिया और मनहीसे उसका फल भोगा । इससे हे रामजी ! मनहींसे सब कर्म होता है और मनहीं भोगताहै । जैसाचित्तहै तैसाही पुरुष है, पूर्णचित्त से पूर्णहोताहै और नष्ट चित्त से नष्ट होताहै अर्थात् जिसका चित्त आत्मतत्त्वसे पूर्ण है सो पूर्ण है और जो आत्मतत्त्वसे नष्ट चित्त है वह नष्ट पुरुष है । हे रामजी ! जिसको यह निश्चयहै कि; मैं देहहूँ वह नीचबुद्धि है और अनेक दुःखोंको प्राप्त होगा और जिसका चित्त पूर्ण विवेकमें जागा है उसको सब दुःखोंका अभाव होजाताहै । जैसे सूर्यके उदयहुये कमलों का सकुचना दूर होजाता है और वे खिल आते हैं, तैसेही विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशसे रहित पुरुष दुःखों में संकुचित रहते हैं । जो विवेकरूपी सूर्य्यके प्रकाश से प्रफुल्लित हुये हैं वे संसार के दुःखोंसे तरजाते हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसुखदुःखभोक्तव्योपदेश
कथनन्नामनवतितमस्सर्गः ९० ॥

रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! राजा लवणने राजसूय यज्ञ मनसे किया और मनहीं से उसका फल भोगा परन्तु ऐसा सांबर कौनथा जिसने उसको भ्रम दिखाया । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब वह सांबरी लवणराजाकी सभा में आया तब मैं वहां था । मुझसे लवण और उस के मन्त्रीने पूंछा कि, यह कौनहै ? तब मैंने उनसे जो कुछ कहाथा वह तुझसे भी कहता हूं । हे रामजी ! जो पुरुष राजसूय यज्ञ करताहै उसको द्वादश वर्षकी आपदा प्राप्तहोतीहै उस द्वादशवर्ष में वह अनेकदुःख देखताहै । राजा लवणने जो मनसे यज्ञ किया इसलिये उसको आपदा भी मनसेही प्राप्तहुई । स्वर्ग्ग से इन्द्रने अपना दूत आपदा भुगवाने के निमित्त भेजा । वह सांबरी का रूप होकर आया और राजाको चाण्डाल की आपदा भुगताकर फिर स्वर्ग्ग में चलागया । हे रामजी ! जो कुछ मैंने प्रत्यक्ष देखाथा वह तुमसे कहा । इससे मनहीं करता है और मनहीं भोगता है । जैसा जैसा दृढ़ संकल्प मन में फुरताहै उसके अनुसार उसको सुख दुःखका अनुभव होताहै । हे रामजी ! जबतक चित्तफुरताहै तबतक आपदा प्राप्तहोतीहै जैसे ज्योंज्यों कीकरका वृक्ष बढ़ताहै त्योंत्यों कण्टकबढ़तेजाते हैं; तैसेही मनके फुरने से आपदा बढ़ती जाती हैं । जब मन स्थिर होताहै तब आपदा मिटजाती हैं । इससे, हे रामजी ! इस चित्तरूपी बरफको विवेकरूपी तपनसे पिघलाओ तब परमसारकी प्राप्ति होगी । यह चित्तही सकल जगत् आडम्बरका कारणहै; उसको तुम अविद्या जानो ।

जैसे वृक्ष, विटप और तरु एकही वस्तुके नामहैं; तैसेही अविद्या, जीव, बुद्धि, अहंकार सब फुरनेके नामहैं। इसको विवेकसे लीनकरो। हे रामजी! जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही देखताहै। हे रामजी! वह कौन पदार्थहै जो यत्न किये से सिद्ध न हो? जो हठसे न फिरे तो सब कुछ सिद्ध होताहै। जैसे बरफके बासनों को जल में डालिये तो जलकी एकताही होजाती है तैसेही आत्मबोधसे सब पदार्थों की एकता होजाती है। रामजीने फिर पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, सुख दुःख सब मनहीं में स्थित हैं और मनकी वृत्ति नष्टहुये सब नष्ट होजाती हैं सो चपल वृत्ति कैसे क्षयहो? वशिष्ठजी बोले, हे रघुकुल में श्रेष्ठ और आकाशके चन्द्रमा! मैं तुमसे मनके उपशमकी युक्ति कहताहूँ। जैसे सवारके वश घोड़ा होताहै तैसेही मन तुम्हारे वश रहेगा। हे रामजी! सब भूत ब्रह्महीसे उपजे हैं। उनकी उत्पत्ति तीन प्रकारकी है—एक सात्त्विकी; दूसरी राजसी और तीसरी तामसी। प्रथम शुद्ध चिन्मात्रब्रह्म में जो कलना उठी है उसी बाह्यमुखी फुरनेका नाम मनहुआहै। वही ब्रह्मारूपहै, उस ब्रह्माने जैसा संकल्प किया तैसाही आगे देखा; उसने यह भुवन आडम्बर और उसमें जन्म मरण और सुख, दुःख, मोह आदिक संसरना कल्पा। इसीप्रकार अपने आरम्भ संयुक्त, जैसे बरफका कणुका समुद्र से उपजकर सूर्य्य के तेजसे लीन होजावे; तैसेही आरम्भ से निर्वाण होगया, संकल्प के वश से फिर उपजा और फिर लीनहोगया। इसीप्रकार कईअनन्त कोटि ब्रह्माण्ड ब्रह्मासे उपज उपज कर लीनहोगये हैं और कितनेहोंगे और कितने वर्त्तमानहैं। अब जैसे मुक्त होतेहैं सो सुनो। हे रामजी! शुद्ध ब्रह्मतत्त्वसे प्रथम मन सत्ता उपजी; उसने जब आकाश चेता तब आकाश हुआ, उस के उपरान्त पवन हुआ, फिर अग्नि और जल हुआ और उसकी दृढ़तासे पृथ्वी हुई। तब चित्तशक्ति दृढ़ संकल्पसे पांच भूतोंको प्राप्तहुई और अन्तःकरण जो सूक्ष्म प्रकृतिहै सो पृथ्वी, तेज और वायुसे मिलकर धान्यमें प्राप्त हुआ। उसको जब पुरुष भोजन करते हैं तब वह परिणाम होकर वीर्य्य और रुधिररूपहोके गर्भमें निवास करता है; जिससे पुरुष उपजता है। वह पुरुष जन्ममात्रसे वेदपढ़नेलगताहै; फिर गुरूके निकट जाता और क्रमसे उसकी बुद्धि विवेकद्वारा चमत्कारवान् होजाती है तब उसको ग्रहण और त्याग और शुभ अशुभमें विचार उपजता है। और निर्म्मल अन्तःकरण सहित स्थित होताहै और क्रम से सप्तभूमिका चन्द्रमाकीनाईं उसके चित्तमें प्रकाशती हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेसात्त्विकजन्मावतारोनामएकनवतितमस्सर्गः ९१॥

रामजी बोले, हे सर्वशास्त्रों के तत्त्ववेत्ता, भगवन्! ज्ञानकी वे सप्तभूमिका कैसे निवास करनेवाली हैं संक्षेप में मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानकी सप्तभूमिका हैं और ज्ञानकी सप्तभूमिकाहैं और उनके अन्तर्गत और बहुत अवस्था

हैं कि, उनकी कुछ संख्या नहीं परन्तु वे सब इन्हीं सत्तके अन्तर्गत हैं । हे रामचन्द्र ! आत्मरूपी वृक्षहै और अपना पुरुषार्थरूपी वसन्तऋतु है; उससे दो प्रकारकी वेलें उत्पन्न होती हैं-एक शुभ और दूसरी अशुभ । पुरुषार्थरूपी रसके बढ़ने से फलकी प्राप्तिहोती है । अब ज्ञान किसको कहते हैं सो सुनो । शुद्धचिन्मात्रमें चैत्यदृश्य फुरने से रहित होकर स्थित होनेकानाम ज्ञानहै और शुद्ध चिन्मात्र अद्वैतमें अहं संवेदना उठती है सो स्वरूप से गिरनाहै; वही अज्ञानदशाहै । हे रामचन्द्र ! यह मैंने तुम से संक्षेपसे ज्ञान और अज्ञान का लक्षण कहाहै । शुद्ध चिन्मात्रमें जिनकी निष्ठाहै; सत्य स्वरूपसे चलायमान नहीं होते और राग द्वेष किसी से नहीं रखते, वे ज्ञानी हैं और ऐसे शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपसे जो गिरे हैं वे अज्ञानी हैं । और जो जगत् के पदार्थों में मग्नहैं वे अज्ञानी हैं । इससे परममोह और कोई नहीं-यही परममोह है । स्वरूप-स्थित इसका नाम है कि, एक अर्थको छोड़के जो संवित् और अर्थको प्राप्त होता है । जैसे जाग्रतको त्यागकर सुषुप्ति प्राप्तहोती है और उसके मध्यमें जो निर्मननरूप सत्ताहै उसमें स्थितहोना स्वरूप स्थिति कहाताहै । हे रामचन्द्र ! भलीप्रकार सर्व्व संकल्प जिसके शान्तहुये हैं और जो शिला के अन्तरवत् शून्य है वह स्वरूप स्थिति है । अहं त्वं आदिक फुरने से और भेद विकार और जड़से रहित अचैत्य चिन्मात्र है सो आत्म स्वरूप कहाता है । उस तत्त्व में फिरकर जो जीवोंकी अवस्था हुई है वह सुनो । हे रामचन्द्र ! १ बीज जाग्रत है; २ जाग्रत; ३ महाजाग्रत; ४ जाग्रत स्वप्न; ५ स्वप्न; ६ स्वप्न जाग्रत और ७ सुषुप्ति ये सात प्रकार की मोहकी अवस्था हैं । इनके अन्तर्गत और भी अनेक अवस्था हैं पर मुख्य ये सातही हैं अब इनके लक्षण सुनो। हे रामजी ! आदि जो शुद्ध चिन्मात्र अशब्दपद तत्त्व से चैतनता का अहं है उसका भविष्यत् नाम जीव होता है । आदि वह सर्व पदार्थों का बीजरूप है और उसी का नाम बीज जाग्रत है । उसके अनन्तर जो अहं और यह मेरा इत्यादिक प्रतीति दृढ़हो और जन्मान्तरों में भासे उसका नाम जाग्रत है । यह है, मैं हूं इत्यादिक शब्दों से तन्मयहोना और जन्मान्तर में बैठे हुये जो मन फुरता है मनोराज में वह फुरना दृढ़हो भासना जागृत स्वप्न कहाता है और दूसरा चन्द्रमा, सीपी में रूपा, मृगतृष्णा का जल इत्यादिक विपर्यय भासना भी जागृत स्वप्न है । निद्रा में जब मन फुरने लगता है और उससे नाना पदार्थ भासने लगते हैं तो जब जाग उठता है तब कहता है कि, मैंने अल्प कालमें अनेक पदार्थ देखे और निद्राकाल में जो पदार्थ देखे थे उनको असत्यरूप जागृत में जानने लगता है । उस निद्राकाल में मन के फुरने का नाम स्वप्ना है । स्वप्न आवे और उसमें यह दृढ़ प्रतीति होजावे कि, दीर्घकाल बीतगया उसका नाम महा जाग्रत और महा जागृत में अपना

बड़ा वपुदेखा और उस में अहं, ममभाव दृढ़हुआ और आपको सत्य जानकर जन्म मरण आदिक देखे, देह रहे अथवा न रहे; उसका नाम स्वप्न जागृत है। यह स्वप्ना महाजागृतरूप को प्राप्त होता है। इन छः अवस्थाओं का जहां अभाव हो; जड़रूप और भविष्यत् हो उसका नाम सुषुप्ति है। उस अवस्था में घास, पत्थर, वृक्षादिक स्थित हैं। हे रामजी ! यह अज्ञानकी सप्तभूमिका कही; उस में एक एक में अवस्था भेद हैं। हे रामचन्द्र ! स्वप्न चिरकाल से जागृतरूप होजाता है; उस के अन्तर्गत और स्वप्न जागृत है और उसके अन्तर और है। इस प्रकार एक एक के अन्तर अनेक हैं। यह मोह की घनता है और उससे जीव भ्रमते हैं। जैसे जल नीचे से नीचे चला जाता है, तैसेही जीव मोह के अनन्तर मोहपाते हैं। हे रामजी ! यह तुम से अज्ञान की अवस्था कही जिसमें नानाप्रकार के मोह और भ्रम विकार हैं। इनसे तुम विचार-कर मुक्तहो तब तुम महात्मा पुरुष और आत्मविचार करके निर्मल बोधवान् होगे और तभी इस भ्रमसे तरजावोगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेअज्ञानभूमिकावर्णनन्नामद्विनवतितमस्सर्गः ९२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र ! अब तुम ज्ञानकी सप्तभूमिका सुनो। भूमिका चित्त की अवस्थाको कहते हैं। ज्ञानकी भूमिका जानने से जीव फिर मोहरूपी कीचड़में नहीं डूबता। हे रामचन्द्र ! और मतवाले भूमिकाको बहुत प्रकारसे कहते हैं पर मेरा अभि-मत पूंछो तो यहहै कि, इससे सुगम और निर्मल बोध प्राप्तहोता है। स्वरूपमें जागने कानाम ज्ञानहै; उसज्ञानकी सप्तभूमिका हैं और जो मुक्त इन सप्तभूमिकाओं के परे हैं वे विदेहमुक्तहैं वे ये हैं—१ शुभेच्छा, २ विचारना, ३ तनुमानसा, ४ सत्वापत्ति, ५ असं-शक्ति, ६ पदार्थाभावनी और ७ तुरीया। इनके सारको प्राप्तहुआ फिर शोक नहीं कर-ता। अब इसका अर्थ सुनो। जिसको यह विचार फुरआवे कि, मैं महामूढ़हूं; मेरी बुद्धि सत्यमें नहीं है संसारकी ओर लगी है और ऐसे विचारके वैराग्य पूर्वक सत्शास्त्र और सन्तजनों की संगति की इच्छाकरे तो इसकानाम शुभेच्छा है। सत्शास्त्रों को विचा-रना; सन्तों की संगति; विषयों से वैराग्य और सत्यमार्ग का अभ्यास करना; इनके सहित सत्यआचार में प्रवर्त्तना और सत्यको सत्य और असत्य को असत्यजान-कर त्याग करना इसका नाम विचार है। विचार और शुभेच्छा सहित सत्त्व का अभ्यास करना और इन्द्रियों के विषयों से वैराग करना यह तीसरी भूमिका तनुमा-नसा है। इन तीन भूमिकाओं का अभ्यास करना; इंद्रियों के विषय और जगत् से वैराग करना और श्रवण, मनन, और निदिध्यासन से सत्य आत्मा में स्थित होने का नाम सत्वापत्ति है। इस में सत्यआत्माका अभ्यास होता है। ये चार भूमि-का संयमका फल जो शुद्ध विभूति है उस में असंशक्त रहने का नाम असंशक्ति

है। दृश्यका विस्मरण और भीतर बाहर से नानाप्रकार के पदार्थों के तुच्छ भासने का नाम पदार्थभावनी है; यह छठी भूमिका है । हे रामचन्द्र! चिर पर्य्यन्त छठी भूमिका के अभ्यास से भेद कलना का अभाव होजाता है और स्वरूप में दृढ़ परिणाम होताहै । छः भूमिका जहां एकता को प्राप्तहों उस का नाम तुरीया है । यह जीवन्मुक्त की अवस्था है। जीवन्मुक्त तुरीयापदमें स्थित है। तीन भूमिका जगत् की जाग्रत अवस्था में हैं; चौथी तत्त्वज्ञानी की है; पांचवीं और छठी जीवन्मुक्त की अवस्था है और तुरीयातीत पदमें विदेहमुक्त स्थित होता है । हे रामचन्द्र ! जो पुरुष महाभाग्यवान् है वह सप्त भूमिका में स्थित होता है और वही आत्मारामी महापुरुष परमपदको प्राप्त होताहै । हे रामचन्द्र ! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे सुख दुःख में मग्न नहीं होते और शान्तरूप होके अपने प्रकृत आचारको करते हैं; अथवा नहीं करते तो भी उनको कुछ बन्धन नहीं; उनको क्रिया का बोध कुछ नहीं रहता । जैसे सुषुप्ति पुरुष के निकट जाके कोई क्रियाकरे तो उसे कुछ बोध नहीं होता तैसेही उसको भी क्रिया बोध कुछ नहीं होता; वह तो सुषुप्तिवत् उन्मीलित लोचन है । हे रामचन्द्र ! जैसे सुषुप्त पुरुष को रूप, इन्द्रिय और उन का अभाव होजाताहै; तैसेही सप्तभूमिका में अभाव होजाता है । यह ज्ञानकी सप्तभूमिका ज्ञानवान् का विषय है; पशु, वृक्ष, म्लेच्छ, मूर्ख और पापाचारियों के चित्त में इनका अधिकार नहीं होता । जिस का मन निर्मल है उसको इन भूमिकाओं में अधिकार है; कदाचित् पशु, म्लेच्छ आदिको भी इनका अभ्यास हो तो वह भी मुक्त होजाता है; इसमें कुछ संशय नहीं । हे रामचन्द्र ! आत्मज्ञान से जिनके हृदयकी गांठ टूटगई है उनको संसार मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्याभासताहै और वे मुक्तरूप हैं और जो संसारसे विरक्त होकर इन भूमिकाओं में आये हैं और मोहरूपी समुद्र से नहीं तरे और पूर्णपदको भी नहीं प्राप्त हुये और सप्तभूमिकामें से किसी भूमिका में लगे हैं वे भी आत्मपदको पाकर पूर्णआत्माहोंगे हे रामचन्द्र ! कोई तो सप्तभूमिकाओंको प्राप्त हुये हैं; कोई पहिलीही भूमिकामें; कोई दूसरी और कोई तीसरीको प्राप्तहुये हैं । कोई चौथीको; कोई पंचम; कोई छठीको और कोई अर्द्धभूमिकाकोही प्राप्तहुये हैं । कोई गृहमें कोई बनमें हैं; कोई तपसी हैं और कोई अतीतहैं । इससे आदिलेकर वे पुरुष धन्य और बड़े शूरमा हैं कि, जिन्होंने इन्द्रिय रूपी शत्रुको जीता है । जिस पुरुषने एक भूमिकाको भी जीताहै सो वन्दना करने योग्यहै; उसको चक्रवर्ती राजा जानना बल्कि, उसके सामने राज्य और बड़ा ऐश्वर्य्य विभूति भी तृणवत् है । वह परमपदको प्राप्त हुआ है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेज्ञानभूमिकोपदेशोनामत्रिनवतितमस्सर्गः ९३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसे सोने में भूषण फुरे और अपना सुवर्णभाव भूलके

कहे मैं भूषणहूं तैसेही चित्तसंवेदन जिस स्वरूप से फुराहै उससे भूलकर अहंवेदना हुई है उस से अहंकाररूप धराहै कि, मैं यह कुछहूं। रामजीने पूंछा; हे भगवन्! सोने में जो भूषण होते हैं वे मैं जानताहूं परन्तु आत्मा में अहंभाव कैसे होताहै वह कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! अहंकार आदिकों का होना असत्यरूप आगमापाई है। इसका कुछ भिन्नरूप नहीं है; यह आत्माका चमत्कार है वास्तव में द्वैत कुछ नहीं। जैसे समुद्र में अध ऊर्ध्व जलही जल है, और कुछ नहीं; तैसेही परमतत्त्व में और विभाग कल्पना कोई नहीं–शान्तरूप है। जैसे समुद्रमें द्रवतासे तरंग आदिक भासते हैं तैसेही संवेदना से जगत् भ्रम भासते हैं। आत्मा में नानाप्रकार का भ्रम भासता है परन्तु और कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण में भूषण; जलमें द्रवता और वायुमें स्पन्द भासतेहैं तैसेही आत्मामें जगत् भासता है। फुरने से रहित शान्त रूप केवल परमपद है। हे रामजी! जैसे मृत्तिकाकी सेना में जो हाथी, घोड़ा, पशु होते हैं वे सब मृत्तिकारूप हैं कुछ भिन्न नहीं तैसेही सब जगत् आत्मरूप है, भ्रमसे नानातत्व भासता है; वास्तव में आत्माही पूर्णरूप आपमें स्थितहै। जैसे आकाशमें आकाश स्थितहै, तैसेही ब्रह्म में ब्रह्म स्थित है और सत्य में सत्य स्थित है। जैसे दर्पणमें प्रतिविम्ब होता है तैसेही आत्मामें जगत् है; जैसे स्वप्न में दूरपदार्थ निकट भासते हैं और निकट दूर भासते हैं सो भ्रममात्र हैं तैसेही आत्मामें विपर्य्यय दृष्टिसे जगत् भासता है। हे रामजी! असत्य जगत् भ्रमसे सत्‌रूप भासता है; वास्तव में असत्य रूप है। जैसे दर्पणमें नगर का प्रतिविम्ब; जैसे मृगतृष्णाका जल और आकाश में दूसरा चंद्रमा भासता; तैसेही है यह जगत् आत्मा में भासता है। जैसे इन्द्रजाल के योगसे आकाश में नगर भासता है तैसेही यह असत्य रूप जगत् अज्ञानसे सत्य भासता है। जब तक आत्म विचाररूपी अग्निसे अविद्यारूपी बल्ली को तू न जलावेगा तब तक जगतरूपी बेल निवृत्त न होगी बल्कि, अनेक प्रकार के सुख दुःख दिखावेगी। जब तू विचार करके मूल सहित इसको जलावेगा तब शान्तपदको प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेयुक्तोपदेशोनामचतुर्नवतितमस्सर्गः ९४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! जैसे सुवर्ण में भूषण मिथ्या रूप हैं तैसेही आत्मा में 'अहं' 'त्वं' आदिक अविद्यारूप हैं। लवणकी कथा जो तुमने सुनीहै उसे अब फिर सुनो। लवणराजा दूसरेदिन विचार करने लगा कि, यह मुझको भ्रमसे भासाहै परंतु सत्य रूप होकर देखाहै। देश, नगर, मनुष्यादिक पदार्थ मुझको प्रत्यक्ष दृष्टि आये हैं इस से अब तो वहां जाकर देखूं कि, कैसी वार्त्ता है। ऐसे विचारसे दिग्विजयका मन करके मंत्री और सेनाको साथलेकर दक्षिण दिशाकी ओर चला। देशों को लांघता २ विन्ध्याचल पर्व्वतमें पहुंचा और पूर्व और दक्षिण के समुद्रके मध्यमें मार्गको भ्रमता

भ्रमता किरातदेशमें जा पहुँचा जो वृत्तान्त और देश ग्राम आदिक भ्रममें देखेथे सो प्रत्यक्ष देखे और अतिविस्मित हो विचार करने लगा कि; हे दैव! यह क्या है? जो कुछ मैंने भ्रममें देखाथा वह अब भी मुझको प्रत्यक्ष भासता है। यह बड़ा आश्चर्य है! ऐसे विचारके आगे गया तो क्या देखा कि, अग्निसे वृक्ष जलेहैं और अकाल पड़ाहै। अपने सम्बन्धियोंकी चेष्टा के स्थान देखे और उनकी कथा सुनी। इसप्रकार देखते देखते आगेगया तो क्या देखा कि, चाण्डाल शरीरकी सासु बैठी रुदन करती है कि; हे दैव! मेरा पुत्र कहां गया! हे पुत्र! तुम कहां गये, जिनका चन्द्रमा की नाईं मुखथा? मेरी मृगनयनी कन्या जीर्णदेह होगईहै—और पौत्र, पौत्रियां दुर्भिक्षतासे सब जातेरहे। उनके यह खानेके पदार्थ हैं और ये चेष्टाके स्थान हैं। जो रतिकाकी माला कण्ठ में डाले जीवों के मांसखाते और रुधिर पान करते थे वह कहां गये? इसी प्रकार पुत्र, पुत्री, भर्त्ता, दामादआदिका नाम लेकर वह रुदन करतीथी और और लोग जो आ बैठते थे वह भी रुदन करते थे। तब राजा उनका रोना बन्द कराके वृत्तान्त पूछने लगा कि, तू किस निमित्त रुदन करती है? किससे तेरा वियोग हुआ है?॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचाण्डालीशोचनवर्णनन्नामपञ्चनवतितमस्सर्गः ९५

चाण्डाली बोली, हे राजन्! एक समय वर्षा न होने से कालपड़ा और सब जीवों को बड़ा दुःख हुआ। उस समय मेरे पुत्र, पौत्र, पौत्रियां, जामात, भर्त्ता आदिक बांधव यहांसे निकलगये और कहीं कष्ट पाके मरगये। उनके वियोगसे मैं दुःखी होकर रुदनकरतीहूं और उनके विना मैं शून्य होगई हूं! जैसे बिछुरीहुई हथिनी अकुलाती है तैसेही मैं कुरलाती हूं। हे रामचन्द्र! जब इस प्रकार चाण्डालीने कहा तब राजा अतिविस्मित हुआ और मन्त्री के मुख की ओर ऐसे देखनेलगा जैसे काग़ज़ पर पुतली होती है। निदान राजा विचारे और आश्चर्य्यवान्हो; उस चाण्डाली से वारंवार पूछे और वह फिर कहे और राजा आश्चर्य्यवान् होवे। तब राजा उसको यथायोग्य धन देकर चिरपर्य्यन्त वहांरहा और फिर अपने राजमंदिर में आया। जब प्रातःकाल हुआ तब सभा में आकर मुझसे पूछनेलगा; हे मुनीश्वर! यह स्वप्न मुझको प्रत्यक्ष कैसेहुआ? इसको देखकर मैं आश्चर्य्यवान् हुआ हूं! तब मैंने प्रश्नानुसार उसको युक्तिसे उत्तर दिया और उसके चित्तका संशय ऐसे दूर करदिया जैसे मेघ को वायु दूरकरे; वही तुमसे कहताहूं। हे रामजी! अविद्या ऐसी है कि, असत्यको शीघ्रही सत्य और सत्यको असत्य कर दिखाती है और बड़ा भ्रम दिखानेवाली है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! स्वप्न कैसे सत्य हुआ; यह मेरे चित्तमें बड़ा संशय स्थित हुआहै। उसको दूरकीजिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य्य है? अविद्या से

सब कुछ बनताहै। स्वप्नमें तुम प्रत्यक्ष देखतेहो कि, घटसे पट और पटसे घट होजाता है। स्वप्न और मृत्युमें मूर्च्छा के अनन्तर बुद्धि विपर्य्यय होजाती है। जिनका चित्त वासनासे वेष्टितहै उनको जैसा संवेदन फुरताहै तैसेही भासताहै। हे रामजी! जिनका चित्त स्वरूप से गिराहै उनको अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है। जैसे मद्यपान और विषपीनेवाला भ्रमको प्राप्त होता है तैसेही अविद्या से जीव भ्रमको प्राप्त होता है। एक और राजा था उसकी भी वही व्यवस्था हुई थी जो लवण राजा के चित्त में फुर आई थी। जैसे उसकी चेष्टा हुई थी तैसेही इसको भी फुरआई तब उसने जाना कि, मैंने यह क्रिया की है। जैसे अभोक्ता पुरुष आपको स्वप्न में भोक्ता देखताहै कि, मैं राजा हुआहूँ; मैं तृप्तहूँ, अथवा भूखा सोयाहूँ; और यह क्रिया मैंने करी है; तैसेही लवणको फुरआयाथा सो प्रतिभासहै। सभामें बैठे चाण्डाली चेष्टा लवण की फुरआई अथवा विन्ध्याचल पर्वत के चाण्डालोंकी प्रतिमा लवणकीफुरी सो लवण के चित्तका भ्रम उसको दृढ़ होगया। एकही सदृश भ्रम अनेकोंको फुर आता है और स्वप्न भी सदृश होता है जैसे एकही रस्सी में अनेकोंको सर्प भासता है। इसी प्रकार अनेक जीवोंको एक भ्रम अनेक हो भासताहै। हे रामजी! जितने पदार्थ भासते हैं उनकी सत्तारूप संवेदनहै। जैसे उनमें सङ्कल्प दृढ़ होता है तैसेही होकर भासताहै। जो पदार्थ सत्यरूप हो भासताहै वह सत्य होता है और जो असत्यरूपहो भासता है वह असत्य हो जाताहै। सबही पदार्थ संवेदनरूपहैं और तीनों कालभी संवेदन से उपजे हैं इनका बीज संवेदनहै। सब पदार्थ अविद्यारूपहैं और जैसे रेत में तेलहै तैसेही आत्मामें अविद्याहै। आत्मासे अविद्या का सम्बंध कदाचित् नहीं क्योंकि; सम्बन्ध समरूपका होता है। जैसे काष्ठ और लाखका सम्बन्ध होता है सो आकार सहित है और जो आकारसे रहितहो उसका सम्बन्ध कैसेहो? जैसे प्रकाश और तमका सम्बन्ध नहीं होता तैसेही चैतनसे चैतनका सम्बन्ध होता है और विजातीय का सम्बन्ध नहीं। इससे अविद्यारूप देहको आत्मा से सम्बन्ध नहीं। जो जड़से आत्मा का सम्बन्धहो तो आत्मा जड़हो पर आत्मा तो सदा चैतनरूप है और सर्वदा अनुभव से प्रकाशता है; उसको जड़ कैसे कहिये? जैसे स्वादको जिह्वा ग्रहण करती है और अंगनहीं करते; तैसेही चैतनसे चैतनकी, जड़से जड़की, जलसे जलकी, माटी से माटी की, अग्निसे अग्निकी, प्रकाशसे प्रकाशकी, तमसे तमकी, इसीप्रकार सब पदार्थों की सजातीय पदार्थों से एकता होती है; विजातीयसे नहीं होती। इससे सब चैतन्याकाशहै और पाषाणादिक दृश्यवर्ग कोई नहीं; भ्रमसे इनके आकार भासते हैं। जैसे सुवर्ण बुद्धिको त्यागकर नानाप्रकारके भूषण भासते हैं तैसेही जब अहंवेदना आत्मा में फुरती है तब अनेकरूप होकर विश्व भासताहै। जैसे सुवर्ण की ओर देखिये तब

सब भूषण स्वर्णरूप भासते हैं तैसेही जब ब्रह्मसत्ताकी ओर देखिये तब सब जगत् ब्रह्मरूपही भासता है। जैसे मृत्तिका की सेना बालकों को अनेकरूप भासती है और बुद्धिमान् को एक मृत्तिकारूपहै; तैसेही अज्ञानी को यह जगत् नानारूप भासता है ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ताही भासती है। वह कौन ब्रह्महै जिसमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य फुरेहैं? इनके मध्य और इनसे रहित जो सत्ताहै। वह ब्रह्मसत्ताहै। हे रामचन्द्र! जो सत्ता चैतन्यरूप और शिलाके कोशवत् निर्विकल्प तन्मयरूप है उसमें जब स्थित हो और समाधि में रहो अथवा उत्पन्न न हो तब तुमको सब वहीरूप भासेगा। हे रामचन्द्र! जो पुरुष निरमन सत्तामें स्थित भया है वह शरीर के इष्ट में हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट में शोकवान् नहीं होता; वह निर्मल रूप होकर स्थित होता है। जैसे भविष्यत् नगर में जो अनेक चिन्तायुक्त जीव बसते हैं वह सब उसके चित्तमें स्थित होते हैं। जैसे पुरुष को देशान्तर जाते अनेक पदार्थ मार्ग में इष्ट अनिष्ट रूप भासते हैं परन्तु जहां जानाहै उसकी ओर वृत्ति रहती है; मार्ग के पदार्थों में उसको राग द्वेष नहीं होता; तैसेही तुम होजावो। जैसे पत्थर से जल और जल से अग्नि नहीं निकलती, तैसेही आत्मा में चित्त नहीं, अविचार भ्रमसे चित्त जानताहै, विचार से नहींपाता। जैसे भ्रमसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसेही आत्मा में चित्त भासता है; वास्तव में कुछ नहीं। वह सत्ता नित्य, शुद्ध, परमानन्द स्वरूप अपने आप में स्थित और अनुभवरूपहै; उसके विस्मरण करने से दुःख प्राप्त होता है और अमृतरूपी चंद्रमा में अग्नि प्राप्त होतीहै। इससे हे रामचन्द्र! तुम सावधान हो! यह जो फुरना उठताहै इसीका नाम चित्त है और चित्त कोई नहीं। इस चित्तको दूरसे त्यागकरो जो तुमहो वही स्थितहो। हे रामचन्द्र! असत्यरूप चित्तही संसार है, जो उसको असत्य जानके त्याग नहीं करता वह आकाशके वनमें विचरता है; उसको धिकार है। जिसका मननभाव नष्ट हुआहै वह महापुरुष संसारसे पार होकर परमपद निश्चित रूपमें प्राप्त हुआ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेचित्ताभावप्रतिपादनन्नामषण्णवतितमस्सर्गः॥९६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मनुष्य जिस प्रकार भूमिकाको प्राप्त होता है उस का क्रम सुनो। प्रथम जन्म से पुरुष को कुछ बोध होता है और फिर क्रमसे बड़ा होकर सन्तोंकी संगति करता है। सदा सदरूप जो संसार का प्रवाहहै उसके तरनेको सत्य शास्त्र और सन्तजनों की संगति बिना समर्थ नहीं होता। जब सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचार करने लगता है तब उसको ग्रहण और त्यागकी बुद्धि उपजती है कि, यह कर्त्तव्यहै और यह त्यागने योग्यहै। इस विचार का नाम शुभेच्छा है। जब यह इच्छा हुई तब शास्त्रद्वारा यह विचार उपजताहै कि, यह शुभ है और यह अशुभ

है; शुभको ग्रहण करना और अशुभ को त्याग करना और यथाशास्त्र विचारना इसका नाम विचारहै। जब सम्यक् विचार दृढ़होताहै तब मिथ्यारूप संसारकी वासना त्यागताहै और सत्यमें स्थितहोताहै—इसका नाम तनुमानसाहै। जब संसारकी वासना क्षीण होती है और सत्यका दृढ़ अभ्यास होता है तब उस वैराग्य और अभ्यास से सम्यक् ज्ञान उपजता और आत्मा का साक्षात्कार होता है—उसका नाम सत्त्वापत्तिहै। मन से वासना नष्टहोके सिद्धि आदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, इनकी प्राप्ति में भी संसक्त नहीं होता; स्वरूप में सदा सावधान रहता है। सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्धसे प्राप्तहोते हैं उनको स्वप्नरूप जान कर्म्मों के फल में बन्धमान नहीं होता—इस का नाम असंसक्त है। इसके अनन्तर जब मनकी तनुता होगई है और स्वरूप की ओर चित्तका परिणाम हुआ तब दृढ़ परिणाम से व्यवहार का भी अभाव होजाता है जो पल पल में कर्म्म प्रारब्ध वेग से करता है, बल्कि; उस के चित्तमें फुरना भी नहीं फुरता और वह मन क्षीणभावमें प्राप्तहोता है। वह कर्त्ता हुआ भी वह कुछ नहीं करता और देखता है पर नहीं देखता अर्द्ध सुषुप्तिवत् होता है; उसे कर्त्तव्यकी भावना नहीं फुरती और मन भी नहीं फुरता—इसका नाम पदार्थाभावनी योगभूमिकाहै। इसमें चित्तलीन होजाताहै। इस अवस्था में जब स्वाभाविक चित्तका कुछ काल इस अभ्यासमें व्यतीत होताहै और भीतर से सब पदार्थों का अभाव दृढ़ होजाताहै तब तुरीया रूप होताहै और जीवन्मुक्त कहाता है। तब वह इष्टको पाके हर्षवान् नहीं होता और उसकी निवृत्तिमें शोकवान् नहीं होता: केवल विगत सन्देह हो उत्तमपद को प्राप्त होताहै। हे रामचन्द्र! तुम भी अब ज्ञातज्ञेय हुयेहो। जो कुछ जाननेके योग्यहै सो तुमने ज्योंकात्यों जानाहै और सब तुम्हारी पदार्थोंकी भावना तनुताको प्राप्तहुईहै। अब तुम्हारेसाथ शरीर रहे अथवा न रहे तुम हर्ष शोक से रहित निरामय आत्माहो और स्वच्छ आत्मतत्त्व में स्थित सर्व्वगत सदा उद्योत रूप जन्म, मरण, जरा, सुख, दुःखसे रहित आत्म और बोधरूप शोकसे रहितहो और अद्वैतरूप अपने आपमें स्थितहो। देह उदयभी होताहै और लीनभी होजाता है पर देश, काल, वस्तुके भेदसेरहित जो आत्माहै वह उदय और अस्त कैसेहो। हे रामचन्द्र! तुम अविनाशीहो; आपको नाशरूप जानकर शोक काहेको करतेहो तुम अमृत स्वच्छ रूपहो। जैसे घटके फूटनेसे घटाकाश नाशनहींहोता, तैसेही शरीर के नाशहुये तुम नाश नहीं होते। जैसे सूर्यकी किरणोंके जाने से मृगतृष्णाके जलका नाशहोजाताहै, किरणों का नाश नहीं होता। हे रामचंद्र! जो कुछ जगत् के पदार्थ भासते हैं सो असत्यरूपहैं और उनकी वासना भ्रांति से होतीहै पर तुमतो अद्वैतरूपहो और यह सब तुम्हारी छायामात्र है। तुम किसकी वाञ्छाकरतेहो? शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह जो पांचो

विषयरूप दृश्यहैं सो तुमसे रञ्चकमात्र भी भिन्ननहीं; सब तुम्हारा स्वरूपहै । तुम भ्रम मतकरो ! हे रामजी ! आत्मा सर्वशक्तिहै; वही आभासकरके अनेकरूपहो भासता है । जैसे आकाशमें शून्यताशक्ति आकाशसे भिन्ननहीं, तैसेही आत्मामें सब शक्ति है । जो जगत् द्वैतरूपहोकर भासताहै वही चित्तसे दृढहुआ है सो क्रमसे तीन प्रकारका त्रैलोक्य जगत्जीवको भ्रमहुआहै--एकसात्विक, दूसरा राजस और तीसरा तामस । जब इनतीनों का उपशमहो तब कल्याण होता है । जब वासना क्षयहो तब उसके वे कर्मभी क्षयहोजाते हैं-उससे भी भ्रम नाश होजाता है । चित्तके संसरने का नाम वासना है कर्म संसार मायामात्रहैं; इनके नष्ट हुये सब शांत होजाते हैं । हे रामजी ! यह संसारघटी यन्त्रकी नाईं है और जीव वासना से बँधेहुये भ्रमते हैं । तुम आत्मविचाररूपी शस्त्रसे यत्न करके इसको काटो । जबतक अविद्याको जीव नहीं जानता तबतक यह बड़े मोह और भ्रमदिखाती है और जब इसको जानताहै तब बड़े सुखको प्राप्तकरती है अर्थात् जबतक अविद्याको वास्तव में नहीं जानता तबतक संसार सत्यभासता है और उसमें अनेक भ्रम भासते हैं और जब इसका स्वरूप जाना कि, कुछ वस्तु नहीं, भ्रमरूप है तब संसार वृत्ति त्याग करताहै और स्वरूपको प्राप्तहोता है । यह संसार भ्रमसे उपजा है और उसीसे भोगभोगता और लीलाकरता है और फिर ब्रह्ममें लीन होजाताहै । हे रामचन्द्र ! शिवतत्त्व अनन्तरूप अप्रमेय और निर्दुःखरूपहै; सब उसी भूततत्त्व से उपजते हैं । जैसे जलसे तरंग और अग्नि से उष्णता होती है तैसेही ब्रह्मसे जगत होताहै; उसी में स्थित है और वही रूपहै । वह सब का आत्माहै और वही आत्मा ब्रह्मकहाता है । उसके जानने से जगत् जानता है पर तीनोंलोकोंको जानने से उसको नहीं जानता वह जो अव्यक्त और निर्वाणरूप है; उसके जानने के निमित्त शास्त्रकारोंने ब्रह्म, आत्मा आदिक नाम कल्पे हैं; वास्तवमें कोईनाम संज्ञानहीं । हे रामचन्द्र ! वह पुरुष रागद्वेषसे रहितहै और इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों के संयोग वियोगमें द्वेषको नहीं प्राप्तहोता । वह तो एक, चैतन, शुद्ध संवित्, अनुभवरूप, अविनाशी और आकाशसे भी स्वच्छ निर्म्मलहै । उसमें जगत् ऐसे स्थित है जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब अन्तर्बाह्यरूप होकर स्थित है-उससे द्वैतरूप कुछ नहीं । हे रामचन्द्र ! देहसे रहित निर्विकल्प चैतन तुम्हारा आकारहै । लज्जा, मोह आदिक विकार तुमको कहां हैं ? तुम आदिरूपहो, और लज्जा, हर्ष, भयादिक असत्यरूप हैं । तुम क्यों दुर्बुद्धि मूर्खकीनाईं विकल्प जालको प्राप्तहोते हो ? तुम चैतन आत्मा अखण्डरूपहो; देहके खण्डितहुये आत्माका अभाव नहीं होता । असम्यक्दर्शी भी ऐसे मानतेहैं तो बोधवानोंका क्याकहनाहै । हे रामचन्द्र ! जो चित्त संवेदन जानताहै उसके अनुभव करनेवाली सत्ता सूर्य्य के मार्ग से भी नहीं रोकीजाती, उसी को तुम (चित्सत्ताजानो; वही पुरुषहै, शरीर पुरुषरूप नहीं।)

हे रामचन्द्र! शरीर सत्यहो अथवा असत्य पर पुरुष तो शरीर नहीं। देहके रहने और नष्ट होने से आत्मा ज्योंका त्योंहीं है। ये जो सुख दुःख ग्रहण करते हैं वे देह इन्द्रियादिक चिदात्माको नहीं ग्रहण करते। जिन पुरुषों को अज्ञानसे देहमें अभिमान हुआ है उनको सुख दुःख का अभिमान होताहै ज्ञानवान् को नहीं होता। आत्मा को दुःख स्पर्श नहीं करता; वह तो सब विकारों से रहित मनके मार्ग से अतीत शून्य की नाईं स्थितहै; उसको सुख दुःख कैसेहो? और देहसे मिलाहुआ जो भासताहै सो स्वरूपको त्यागकर दृश्यके चेतने से देहादिक भ्रम भासते हैं और वासना के अनुसार देहसे सम्बन्धहोताहै। जैसे भ्रमर और कमलोंका संयोग होताहै। देह पिंजर के नाश हुये आत्मा का नाश तो नहीं होता। जैसे कमलके नाशहुये भ्रमरका नाश नहीं होता। इससे तुम क्यों वृथाशोक करतेहो? हे रामजी! जगत्को असत्यजानकर अभावनाकरो। मन निरीक्षितहो साक्षीभूत, सम, स्वच्छ, निर्विकल्प चिदात्मामें जगत्हो भासता है। जैसे मणि प्रकाशरूपहो भासता है तो फिर जगत् और आत्मा का सम्बन्ध कैसेहो। जैसे अनिच्छित दर्प्पण में प्रतिविम्ब आ प्राप्त होताहै, तैसेही आत्माको जगत् का सम्बन्ध भासताहै जैसे दर्प्पणमें प्रतिविम्ब द्वैतरूपहोताहै, तैसेही आत्मा में जगत् भेद भी अभेदरूप है। जैसे सूर्य्य के उदय होने से सब जीवोंकी क्रिया होती है और दीपक से पदार्थोंका ग्रहण होताहै तैसेही आत्मसत्ता से जगत्के पदार्थोंका अनुभव होताहै। यह जगत् चैतन्य तत्त्व के स्वभाव से उपजा है। प्रथम आत्मा से मन उपजाहै और उस से यह जगत् जाल रचाहै—वास्तवमें आत्मसत्तामें आत्मसत्तास्थितहै। जैसे शून्याकाश शून्यता में स्थित है और उसमें जगत् भासता है सो ऐसेहै जैसे आकाशमें नीलता और इन्द्रधनुषहै परन्तु वह शून्यस्वरूपहै। हे रामचन्द्र! यह जगत् चित्तमें स्थितहै और चित्त सङ्कल्परूपहै। जब सङ्कल्प क्षयहोताहै तब चित्त नष्ट होजाताहै और जब चित्त नष्ट हुआ तब संसाररूपी कुहिरा नष्ट होजाताहै और निर्मल शरत्कालके आकाशवत् आत्मसत्ता प्रकाशती है। वह चैतनमात्र सत्ता एक, अज, आदि-मध्य-अन्त से रहितहै; उसीसे जो स्पन्दफुराहै वह सङ्कल्परूप ब्रह्माहोकर स्थितहुआहै और उसमें नानाप्रकार का जगत् रचाहै। वह शून्यरूपहै मूर्खबालकको सत्यरूप भासताहै। जैसे बालकको परछाहींमें वैताल भासता है और जैसे जीवोंको अज्ञानसे देहाभिमानहोता है, तैसेही असत्यरूपही सत्यरूपहोकर भासताहै। जब सम्यक्ज्ञान होताहै तब लीन होजाताहै। जैसे समुद्र से तरङ्ग उपजकर समुद्रमें लीनहोते हैं तैसेही आत्मामें जगत् उपजकर आत्मामेंही लीनहोताहै॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठेआर्षेमहारामायणेशतसाहस्र्यां संहितायामुत्पत्तिप्रकरणेमोक्षोपायेपरमार्थनिरूपणंनामसप्तनवतितमस्सर्गः ९७॥

समाप्तमिदंश्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणंतृतीयम्॥ ३॥

ॐसच्चिदानन्दायनमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

स्थितिप्रकरणं चतुर्थं प्रारभ्यते ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अब स्थितिप्रकरण सुनिये जिसके सुनने से जगत् निर्व्वाणताको प्राप्तहो । कैसा जगत् है कि, जिसके आदि अहन्ताहै । ऐसा जो दृश्य रूप जगत् है सो भ्रांतिमात्र है । जैसे आकाश में नानाप्रकार के रंगोंसहित इन्द्र-धनुष असत्‌रूपहै, तैसेही यह जगत् है । जैसे द्रष्टाबिना अनुभव होताहै और निद्रा बिना स्वप्न और भविष्यत् नगर भासताहै तैसेही भ्रमसे चित्तमें जगत् स्थित हुआ है । जैसे वानर रेत इकट्ठी करके अग्निकी कल्पना करते हैं पर उस से शीतनिवृत्ति नहीं होती; भावनामात्र अग्नि होती है, तैसेही यह जगत् भावनामात्र है । जैसे आ-काश में रत्नमणिका प्रकाश और गन्धर्व्व नगर भासता है और जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है; तैसेही यह असत्‌रूप जगत् भ्रमसे सत्‌रूप हो भासता है । जैसे दृढ़ अनुभव से संकल्प भासताहै पर वह असत्‌रूप है और जैसे कथाके अर्थ चित्त में भासते हैं; तैसेही निःसाररूप जगत् चित्त में साररूप हो भासता है । जैसे स्वप्ने में पहाड़ और नदियां भासआती हैं, तैसेही सब भूत बड़े भी भासते हैं पर आकाश-वत् शून्यरूप हैं । जैसे स्वप्ने में अंगनासे प्रेमकरता अर्थ से रहित और असत्‌रूप है और जैसे मूरत के लिखे अग्नि और सूर्य्य होते हैं परन्तु उनसे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता है; तैसेही यह जगत् भी प्रत्यक्ष भासता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं अर्थ से रहित है । जैसे चित्रकी लिखी कमलनी सुगन्ध से रहित होतीहै; तैसेही यह जगत् शून्यरूप है । जैसे आकाश में इन्द्रधनुष और केले का थम्भ सुन्दर भासता है परन्तु उसमें कुछ सार नहीं निकलता, तैसेही यह जगत देखने में रमणीय भासता है परन्तु अत्यन्त असत्‌रूप है; इस में सार कुछ नहीं निकलता । देखने में प्रत्यक्ष अनुभव होता है परन्तु मृगतृष्णा की नदीवत् असत्‌रूप है । रामजीने पूछा, हे भग-वन् ! सर्वसंशयों के नाशकर्त्ता ! जब महाकल्प क्षय होता है तब दृश्यमान सब जगत्

आत्मरूप बीज में लीन होताहै। जैसे बीज में अंकुर रहता है, उससे उपजता है, उसी में स्थित होता है और फिर उसी में लीन होता है। यह बुद्धि ज्ञानकी है अथवा अज्ञानकी? सर्वसंशयों से निवृत्त के अर्थ मुझसे स्पष्ट करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार महाकल्प के क्षय हुये बीजरूप आत्मा में जगत् स्थित होता है। जो ऐसे कहते हैं। वह परमअज्ञानी और महामूर्ख बालकहैं जो ब्रह्मको जगत्का कारण बीजसे अंकुर की नाईं कहते हैं वह मूर्खहैं। बीज तो दृश्यरूप इन्द्रिय का विषय होताहै। जैसे वट बीज से अंकुर होता है और फिर विस्तार पाता है सो इन्द्रियों का विषय है और जो मनसहित षट्इन्द्रियों से अतीत है, अर्थात् इन्द्रियों का विषय नहीं, आकाश से भी अधिक निर्मलहै; उसको जगत् का बीज कैसे कहिये? जो आकाश से भी अधिक सूक्ष्म, परमउत्तम, अनुभव से उपलब्ध और नित्य प्राप्तहै उसको बीजभाव कहना नहीं बनता। हे रामजी! जो कि, शांत सूक्ष्म, सदा प्रकाश सत्ताहै और जिसमें दृश्य जगत् अस्तरूप है उसको बीजरूप कैसे कहिये? और जब बीजरूप कहना नहीं बनता तब उसे जगत् कैसे कहिये। आकाश से भी अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपद में सुमेरु, समुद्र, आकाश आदिक जगत् नहीं बनता। जो किञ्चन और अकिञ्चन है और निराकार, सूक्ष्मसत्ताहै उसमें विद्यमान जगत् कैसे हो वह महासूक्ष्मरूप है और दृश्य उसमें विरुद्धरूप है। जैसे धूपमें छाया नहीं, जैसे सूर्य्य में अन्धकार नहीं; जैसे अग्निमें बरफ़ नहीं, और जैसे अणुमें सुमेरु नहीं होता; तैसेही आत्मामें जगत् नहीं होता। सत्यरूप आत्मामें असत्यरूप जगत् कैसे हो? वटकाबीजभी साकाररूप होता है और निराकाररूप आत्मामें साकाररूप जगत् होना अयुक्तहै। हे रामजी! कारण दो प्रकारका होता है—एक समवायकारण और दूसरा निमित्तकारण; आत्मा दोनों कारण भावों से रहितहै। निमित्तकारण तब होता है जब कार्य से कर्त्ता भिन्न हो पर आत्मा तो अद्वैतहै; उसके निकट दूसरी वस्तुनहीं है वह कर्त्ता कैसेहो और किसकाहो; सहकारी भी नहीं जिससे कार्य करे, वह तो मन और इन्द्रियों से रहित निराकार अविकृतरूप है। और समवायकारण भी परिणाम से होता है। जैसे वट बीज परिणाम से वृक्ष होता है; पर आत्मा तो अच्युतरूप है, परिणामको कदाचित् नहीं प्राप्त होता तो समवायकारण कैसे हो। जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यते; इन षट् विकारों से रहित निर्विकार आत्मा जगत् का कारण कैसेहो? इससे यह जगत् अकारणरूप भ्रांतिसे भासताहै। जैसे आकाश में नीलता; सीपमें रूपा और निद्रादोष से स्वप्नदृष्टि भासते हैं तैसेही यह जगत् भ्रांति से भासताहै। और जब स्वरूप में जागे तब जगत् भ्रम मिटजाताहै। इससे कारण कार्यभ्रमको त्यागकर तुम अपने स्वरूपमें स्थितहो। दुर्बोधसे सङ्कल्प रचना

हुई है उसको त्याग करो और आदि, मध्य और अन्त से रहित जो सत्ता है उसी में स्थितहो तब जगत्भ्रम मिटजावेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगत्निराकरणन्नामप्रथमस्सर्ग्गः १ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे देवताओं में श्रेष्ठ रामजी ! बीजसे अंकुरवत् आत्मा से जगत् का होना अंगीकार कीजिये तो भी नहीं बनता क्योंकि आत्मा सर्व कल्पनाओं से रहित महाचैतन्य और निर्मल आकाशवत् है; उसको जगत्का बीज कैसे मानिये ? बीज के परिणाम में अंकुर होताहै; और कारण समवायों से होता है; आत्मा में समवाय और निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते । जैसे वन्ध्यास्त्रीकासन्तान किसीनेनहींदेखा तैसेही आत्मासे जगत् नहीं होता । जो समवाय और निमित्त कारण विना सहकारी पदार्थ भासे तो जानिये कि यह है नहीं भ्रान्तिमात्रभासता है । आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । और सृष्टि, स्थिति, प्रलयसे ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै । जो इसप्रकार स्थित है तो कारण कार्यका क्रम कैसेहो और जो कारण–कार्यभाव न हुआ तो पृथ्वी आदिक भूत कहांसे उपजे ? और जो कारण कार्यमानिये तो पूर्व जो विकारकहे हैं उनका दूषण आताहै । इससे न कोई कारण है और न कार्य है; कारण–कार्य विना जो पदार्थ भासे उसको सत्रूप जाने । वह मूर्ख बालक और विवेकसे रहित है जो उसे कार्य कारण मानताहै–इससे यह जगत् न आगेथा; न अबहै और न पीछेहोगा–स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आपमें स्थितहै । जब जगत्का अत्यन्त अभावहोता है तब सम्पूर्ण ब्रह्मही दृष्टिआताहै । जैसे समुद्र में तरंग भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भासता है–अन्यथा कारण कार्यभाव कोई नहीं और न प्राग्य, प्रध्वंसा और अन्योन्याभावही है । प्राग्यभाव उसे कहते हैं कि, जो प्रथम न हो; जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता और पीछे उत्पन्न होताहै और जैसे मृत्तिकासे घट उत्पन्न होताहै । प्रध्वंसाभाव वह है जो प्रथम होकर नष्ट होजाता है; जैसे घटथा और नष्ट होगया । अन्योन्याभाव वह है; जैसे घटमें पटका अभाव है और पटमें घटका अभाव है । ये तीन प्रकार के भाव जिसके हृदयमें हैं उसको जगत् दृढ़होता है और उसको शान्ति नहीं होती । जब जगत का अत्यन्ताभाव दीखताहै तब चित्त शान्तिमान् होता है । जगत् के अत्यन्ताभाव के सिवाय और कोई उपाय नहीं और अशेष जगत्की निवृत्ति विना मुक्ति नहीं । सूर्य्य से आदि लेकर जो कुछ प्रकाश पृथ्वी आदिक तत्त्व; क्षण, वर्ष, कल्प आदिक काल और मैं, यह; रूप, अवलोक, मन, संस्कार इत्यादिक जगत् सब सङ्कल्पमात्र है और कल्प, कल्पक, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रसे कीट आदि पर्यन्त जो कुछ जगत् जाल है वह उपज उपजकर अन्तर्द्धान होजाता है । महा चैतन्य परम आकाश में अनन्त वृत्ति उठती है । जैसे जगत्के पूर्व शांतसत्ता थी तैसेही तुम अबभी जानो और

कुछनहींहुआ। परमाणुके सहस्रांशकीनाईं सूक्ष्मचित्तकला है, उस चित्तकलामें अनन्त कोटिसृष्टियां स्थितहैं; वही चित्तसत्ता फुरने से जगत्‌रूप हो भासतीहै और प्रकाश रूप और निराकार शांतरूप है; न उदय होताहै; न अस्त होता है; न आता है और न जाता है। जैसे शिलामें रेखा होती है तैसे आत्मामें जगत् है। जैसे आकाश में आकाशसत्ता फुरती है तैसेही आत्मामें जगत् फुरताहै और आत्माही में स्थितहै। निराकार, निर्विकार रूप विज्ञान घनसत्ता अपने आपमें स्थित और उदय और अस्त से रहित, विस्तृतरूप है। हे रामजी! जो सहकारी कारण कोई न हुआ तो जगत् शून्य हुआ। ऐसे जानेसे सर्व कलंक कलना शांत होजाती है। हे रामजी! तुम दीर्घनिद्रा में सोयेहो, उस निद्राका अभाव करके ज्ञानभूमिका को प्राप्तहोजाओ। जागे से निःशोक पद प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेस्मृतिबीजोपन्यासोनामद्वितीयस्सर्गः २॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! महाप्रलयके अन्त और सृष्टि के आदि में जो प्रजापति होताहै वह जगत्‌को पूर्वकी स्मृतिसे उसीभांति रचताहै तो ये जगत् स्मृतिरूप क्यों न होवे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कि, महाप्रलय के आदि में प्रजापति स्मरण करके पूर्वकी नाईं जगत् रचता है जो ऐसे मानिये तो नहीं बनता क्योंकि; महाप्रलय में प्रजापति कहांरहताहै? जो आपही न रहे उसकी स्मृति कैसे मानिये? जैसे आकाश में वृक्ष नहीं होता तैसेही महाप्रलय में प्रजापति नहीं होता। फिर रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मण्य! जगत्‌के आदि में जो ब्रह्माथा उसने जगत् रचा; महाप्रलय में उस की स्मृतिका नाश तो नहीं होता; वह तो फिर स्मृतिसे जगत् रचताहै आप कैसे कहते हैं कि, नहीं बनता? वशिष्ठजी बोले, हे शुभव्रतरामजी! महाप्रलयके पूर्व जो ब्रह्मादिक होते हैं वह महाप्रलय में सब निर्वाण होजाते हैं अर्थात् विदेहमुक्त होते हैं। जो स्मृति करनेवाले अन्तर्द्धान होगये तो स्मृति कहांरही और जो स्मृति निर्मूलहुई तो उसको जगत् का कारण कैसे कहिये? महाप्रलय उसका नाम है जहां सर्व शब्द अर्थ सहित निर्मूल होजाते हैं; जहां सर्व अन्तर्द्धान होगये तहां स्मृति किसकी कहिये और जो स्मृतिका अभावहुआ तो कारण किसका किसकी नाईं कहिये? इससे सर्व जगत चित्तके फुरनेमात्र है। जब महाप्रलय होताहै तब सबयत्न विनाही मोक्षभागी होते हैं और जो आत्मज्ञानहो तो जगत्‌के होते भी मोक्षभागी होते हैं पर जो आत्मज्ञान नहीं होता तो जगत् दृढ़होताहै; निवृत्त नहीं होता। जब दृश्यजगतका अभाव होताहै तब स्वच्छ चैतन्य सत्ता जो आदि अन्तसे रहित है प्रकाशती है और सब जगत् भी वही रूप भासताहै सर्व में अनादि सिद्ध ब्रह्मतत्त्व प्रकाशित है, उसमें जो आदि संवेदन फुरताहै वह ब्रह्मरूप है और अन्तवाहक देह विराट् जगत् हो भासताहै। उसका एक

प्रमाणरूप यह तीनों जगतहैं, उस में देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि क्रमहुआहै। उसके अणुमें जो जगत् फुरते हैं सो क्या है? सब सङ्कल्परूप है और ब्रह्मसत्ता का प्रकाश है। जो प्रबुध आत्मज्ञानी है उसको सब जगत् एक ब्रह्मरूपही भासता है और जो अज्ञानी है उसके चित्तमें अनेक प्रकार जगत्की भावना होती है। द्वैत भावना से यह भ्रमता है। जैसे इस ब्रह्माण्डके अनेक जीव परमाणु हैं; उनके भीतर अनन्त सृष्टियां हैं और उनके अन्तर और अनन्त सृष्टी हैं तैसेही और जो अनन्त सृष्टी हैं उनके अन्तर और अनन्त सृष्टियां फुरती हैं सो सब ब्रह्मतत्त्वकाही प्रकाश है। ब्रह्मरूपी महा सुमेरु है, उसके भीतर अनेक जगत्रूपी परमाणु हैं सो सब अभिन्न रूप हैं। हे रामजी! सूर्य्यकी किरणों के समूहमें जो सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं उनकी संख्या कदाचित् कोई करभी सके परन्तु आदि अन्तसे रहित जो आत्मरूपी सूर्य्य है उसकी त्रिलोकीरूपी परमाणुओं की संख्या कोई नहीं करसक्ता। जैसे समुद्र में जल और पृथ्वी में धूरके असंख्य परमाणु हैं; तैसेही आत्मा में असंख्य परमाणु सृष्टि हैं। जैसे आकाश शून्यरूप है तैसेही आत्मा चिदाकाश जगत्रूप है; यह जो मैंने उसकी सृष्टी कही है जो इनको तुम जगत् शब्द से जानोगे तो अज्ञान बुद्धि है और दुःख और भ्रम देखोगे और जो इनको ब्रह्म शब्द का अर्थ जानोगे तो इस बुद्धिसे परमसार को प्राप्तहोगे। सर्व्व विश्व ब्रह्मसे फुरता है और विज्ञानघन ब्रह्मरूपही है; द्वैत नहीं। जब जागोगे तब तुमको ऐसेही भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगत्अनन्तवर्णनन्नामतृतीयस्सर्गः ३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन्द्रियों का जीतना मोक्ष का कारणहै और किसी क्रम तथा उपायसे संसारसमुद्र नहीं तराजाता। सन्तों के संग और सतशास्त्रों के विचारसे जब आत्मतत्त्व का बोध होता है तब इन्द्रियां जीतीजाती हैं और जगत् का अत्यन्त अभाव होता है। जबतक संसार का अत्यन्त अभाव नहीं होता तबतक आत्मबोध नहीं होता। यह मैंने तुमसे क्रम कहाहै सो संसार समुद्र तरने का उपायहै। बहुत कहने से क्या है, सबकर्मों का बीज मनहै; मनके छेदसेही सब जगत्का छेदन होताहै। जब मनरूपी बीज नष्ट होताहै तब जगत्रूपी अंकुर भी नष्ट होजाताहै। सर्व जगत् मनका रूप है, इसके अभाव का उपाय करो। मलीन मन से अनेक जन्म के समूह उत्पन्न होते हैं और इसके जीतने से सब लोकों में जय होती है। सब जगत् मन से हुआहै, मन के रहित हुये से देह भी नहीं भासती; जब मन से दृश्यका अभाव होता है तब मनभी मृतक होजाताहै, इसके सिवाय कोई उपाय नहीं। हे रामजी! मनरूपी पिशाच का नाश और किसी उपायसे नहीं होता। अनेक कल्प बीत गये हैं और बीतजायँगे तब भी मनका नाश न होगा। इससे जबतक जगत् दृश्यमान है तबतक

इसका उपायकरे । जगत् का अत्यन्त अभाव चिन्तना और स्वरूप आत्माका अभ्यास करना यही परम औषध है। इस उपाय से मनरूपी द्रष्टा नष्ट होता है जब तक मन नष्ट नहीं होता तबतक मनके मोहसे जन्म मरण होताहै और जब ईश्वर परमात्माकी प्रसन्नता होती है तब मन बन्धनसे मुक्त होताहै। सम्पूर्ण जगत् मनके फुरनेसे भासताहै; जैसे आकाश में शून्यता और गन्धर्व नगर भासते हैं, तैसेही सम्पूर्ण जगत् मन में भासता है। जैसे पुष्प में सुगन्ध; तिलोंमें तेल; गुणी में गुण और धर्मीमें धर्म्म रहते हैं तैसेही यह सत्, असत्; स्थूल, सूक्ष्म; कारण, कार्य्यरूप जगत् मनमें रहताहै जैसे समुद्रमें तरङ्ग; आकाशमें दूसराचन्द्रमा और मरुस्थल में मृगतृष्णा का जल फुरताहै तैसेही चित्तमें जगत् फुरताहै। जैसे सूर्य्य में किरणें;तेजमें प्रकाश और अग्निमें उष्णता है; तैसेही मनमें जगत् है। जैसे बरफ में शीतलता; आकाशमें शून्यता और पवन में स्पन्दता है तैसेही मनमें जगत् है। सम्पूर्ण जगत् मनरूप है, मन जगत्रूप है और परस्पर एकरूप हैं; दोनों में से एक नष्टहो तब दोनों नष्ट होजाते हैं। जब जगत् नष्टहो तब मन भी नष्ट होजाताहै। जैसे वृक्षकेनष्ट हुये पत्र, टास, फूल, फल नष्ट होजाते हैं और इनके नष्टहुये वृक्ष नष्ट नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेअंकुरवर्णननामचतुर्थस्सर्गः ४॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप सर्वधर्मोंके वेत्ता और पूर्व अपरके ज्ञाताहैं; मन के फुरने से जगत् कैसे फुरता है और कैसे हुआ है? दृष्टांत सहित मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों की दश सृष्टिहुई और दशाही ब्रह्माहुये सो मनके फुरनेसेही उपजकर मनके फुरने में स्थितहुये और जैसे लवण राजाको इन्द्रजाल की माया से चाण्डाल की प्रतिमा दृढ़होकर भासी, तैसेही यह जगत मनमें स्थित हुआ है। जैसे शुक्र मन के फुरने से चिरकाल स्वर्गको भोगते रहे और अनेक भ्रम देखे, तैसेही यह जगत् मनके भ्रमसे स्थित हुआहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! भृगुऋषीश्वर के पुत्र ने मन के भ्रमसे कैसे स्वर्ग सुखभोगे; वह कैसे भोगका अधिपति हुआ है और कैसे संसारी होकर भ्रम देखा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भृगुके पुत्रका वृत्तान्त सुनो। भृगु और कालका संवाद मन्दराचल पर्वत में हुआ है। एक समय भृगु मन्दराचल पर्वत में जहां कल्पवृक्ष और मन्दारवृक्ष आदिक वृक्ष, बहुत सुन्दर स्थान और दिव्यमूर्त्तिहैं तपकरते थे और शुक्रजी उनकी टहल करते थे जब भृगुजी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुये तब निर्मल मूर्त्ति शुक्र एकान्त जा बैठे। वे कण्ठ में मन्दार और कल्पवृक्षों के फूलों की माला पहरेहुये विद्या और अविद्या के मध्यमें स्थित थे। जैसे त्रिशंकुराजा चाण्डालथा पर विश्वामित्र के वरको पाके जब स्वर्ग में गया, तब देवताओं ने अनादरकर उसे स्वर्ग से गिरादिया और

विश्वामित्रने देखके कहा कि; वहांहीं खड़ारह इससे वह भूमि और आकाश के मध्यमें स्थितरहा; तैसेही शुक्र बैठे तो क्या देखा कि, एक महासुन्दर अप्सरा उसके ऊर्ध्व स्वर्गकी ओर चलीजाती है । जैसे लक्ष्मीकी ओर विष्णुजी देखें तैसेही अप्सरा को शुक्रने देखा कि, महासुन्दर और अनेक प्रकार के भूषण और वस्त्र पहिनेहुये महासुगन्धित है और महासुन्दर आकाशमार्ग्ग भी उससे सुगन्धित हुआ है । पवन भी उसको स्पर्श करके सुगन्ध पसारती है और महामद से उसके घूर्णे नेत्रहैं । ऐसी अप्सराको देखके शुक्रका मन क्षोभायमान हुआ और जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखके क्षीरसमुद्र क्षोभित होता है तैसेही उसकी वृत्तिमार्ग से रहित होकर अप्सरा में जा स्थितहुई और कामदेवका बाण आ लगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवसंवित्गमनंनामपञ्चमस्सर्ग्गः ५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार उसने अप्सरा को देखके नेत्र मूंदे और मनोराजको फैलाकर चिन्तनेलगा कि, यह मृगनयनी ललना जो स्वर्गको गई है मैं भी उसके निकट पहुँचूं ! ऐसे विचार के वह उसके पीछे चला और जाते जाते मन से स्वर्ग में पहुँचा । वहां सुगन्धसहित मन्दार और कल्पतरु; द्रव स्वर्ण की नाईं देवताओं के शरीर और हास विलास संयुक्त स्त्रियां जिनके हरिणकी नाईं नेत्र हैं देखे । मणियों के समूह कि, परस्पर उनमें प्रतिबिम्ब पड़ते हैं और विश्वरूपकी उपमा स्वर्गलोक में देखी । मन्दमन्द पवन चलती है, मन्दार वृक्षों में मंजरी प्रफुल्लित हैं और अप्सरा गण विचरती हैं । इन्द्रभाग में आगे गया तो देखा कि, ऐरावत हस्ती जिसने युद्धमें दांतों से दैत्य चूर्ण किये हैं बड़ेमद से खड़ा है, देवताओं के आगे अप्सरा गान करती हैं; सुवर्ण के कमल लगेहुये हैं । ब्रह्माके हंस और सारस पक्षी विचरते हैं और देवताओं के नायक विश्राम करते हैं । फिर लोकपाल, यम, चन्द्रमा, सूर्य्य, इन्द्र, वायु और अग्नि के स्थान देखे जिनका महाज्वालावत् प्रकाशहै । ऐरावत के दांतों में दैत्योंकी पंक्तीदेखी, देवता देखे जो विमाननपर आरूढ़ भूषण पहिनेहुये फिरते हैं और उनके हार मणियों से जड़ेहुये हैं । कहीं सुन्दर विमानों की पंक्ती विचरती हैं; कहीं मन्दारवृक्षहैं, कहीं कल्पवृक्षहैं, उनमें सुन्दरलता हैं; कहीं गंगाका प्रवाह चलताहै, उसपर अप्सरा गण बैठी हैं; कहीं सुगन्धता सहित पवन चलता है; कहीं झरने में से जल चलता है; कहीं सुन्दर नन्दन वनहै; कहीं अप्सरा बैठी हैं कहीं नारद आदिक बैठे हैं और कहीं जिन लोगों ने पुण्य किये हैं वे बैठे सुख भोगते हैं और विमानों पर आरूढ़ हुये फिरते हैं । कहीं इन्द्रकी अप्सरा कामदेवसे मस्त हैं और जैसे कल्पवृक्षमें पके फल लगते हैं तैसेही रत्न और चिन्तामणि लगे हैं; और कहीं चन्द्रकान्तिमणि स्रवती है । इस प्रकार शुक्रने मनसे स्वर्ग

की रचना देखी, मानों त्रिलोक की रचना यहांही है। शुक्रको देखके इन्द्र उठखड़ा हुआ कि, दूसरा भृगु आया है और बड़े प्रकाश संयुक्त शुक्रकी मूर्त्तिको प्रणाम किया और हाथ पकड़ के अपनेपास बैठाके बोला, हे शुक्रजी! आज हमारे धन्यभाग्य हैं जो तुम आये। आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल, शोभित और निर्मल हुआ है। अब तुम चिरपर्यन्त यहांही रहो। जब ऐसे इन्द्रने कहा तब शुक्रजी शोभित हुये और उसको देखके सुरों के समूहने प्रणाम किया कि, भृगुकेपुत्र शुक्रजी आये हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवमनोराजवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार शुक्रजी इन्द्रकेपास जा बैठे तब अपना जो निजभावथा उसको भुलादिया। वह जो मन्दराचल पर्व्वतपर अपना शरीर था सो भूलगया और वासना से मनोराज का शरीर दृढ़ होगया। एक मुहूर्त्तपर्य्यन्त इन्द्रके पास बैठे रहे परन्तु चित्त उस अप्सरा में रहा। इसके अनन्तर उठ खड़ेहुये और स्वर्ग्गको देखनेलगे तब देवताओं ने कहा कि, चलो स्वर्ग्गकी रचना देखो। तब शुक्रजी देखते देखते जहां वह अप्सराथी वहां गये। बहुतसी अप्सरों में वह भी बैठीथी, उसको शुक्रजी ने इसभांति देखा जैसे चन्द्रमा चांदनी को देखे। उसे देखके शुक्रका शरीर द्रवीभूत होकर प्रस्वेद से पूर्ण हुआ, जैसे चन्द्रमा को देखके चन्द्रकान्तिमणि द्रवीभूत होती है; और कामदेवके बाण उसके हृदय में आलगे उससे व्याकुल होगया। शुक्रको देखके उसका चित्त भी मोहित होगया—जैसे वर्षाकाल की नदी जलसे पूर्ण होती है तैसेही परस्पर स्नेह बढ़ा। तब शुक्रजी ने मनसे तम रचा उससे सब स्थानों में तम होगया जैसे लोकालोक पर्व्वत के तटमें तम होता है तैसेही सूर्य्यका अभाव होगया। तब भूतजात सब अपने २ स्थानों में गये जैसे दिन के अभावहुये पशु पक्षी अपने २ गृहको जाते हैं और वह अप्सरा शुक्रके निकट आई। शुक्रजी श्वेत आसन पर बैठगये और अप्सरा भी जो सुन्दर वस्त्र और भूषण पहिने हुये थी चरणों के निकट बैठी और स्नेहसे दोनों कामवशहुये; तब अप्सराने मधुरवाणी से कहा, हे नाथ! मैं निर्बल होकर तुम्हारी शरण आई हूं मुझको कामदेव दहन करता है, तुम रक्षा करो; मैं इससे पूर्ण होगई हूं। स्नेहरूपी रसको वही जानता है जिसको प्राप्त हुआहै, जिसको रसका स्वाद नहींआया वह क्या जाने। हे साधु! ऐसा सुख त्रिलोकी में और कोई नहीं जैसा सुख परस्पर स्नेहसे होता है। अब तुम्हारेचरणों को पाके मैं आनन्दवान् हुई हूं और जैसे चन्द्रमाको पाके कमलिनी और चन्द्रमा की किरणों को पाके चकोर आनन्दवान् होते हैं तैसेही मुझको स्पर्शकरके आप आनन्द होंगे। जब इसप्रकार अप्सरा ने कहा तब दोनों काम के वशहोकर क्रीड़ा करनेलगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवसंगमोनामसप्तमस्सर्गः ७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार उसको पाके शुक्रने आपको आनन्दवान् मान, मन्दार और कल्पवृक्ष के नीचे क्रीड़ा की और दिव्यवस्त्र, भूषण और फूलों की माला पहिनकर वन, बगीचे । और किनारों में क्रीड़ा करते और चन्द्रमाकी किरणोंके मार्ग से अमृत पान करते रहे । फिर विद्याधरों के गणोंके साथ रह उनके स्थानों और नन्दन वन इत्यादिक में क्रीड़ा करते कैलास पर्वतपर गये और अप्सरा सहित वन कुंज में फिरते रहे । फिर लोकालोक पर्वतपर क्रीड़ा की, फिर मन्दराचलपर्वत के कुंजमें विचर अर्द्धसतयुगपर्य्यन्त श्वेतद्वीप में रहे; फिर गन्धर्वों के नगरों में रहे और फिर इन्द्रके वन में रहे । इसीप्रकार बत्तीस युगपर्य्यन्त स्वर्ग में रहे; जब पुण्य क्षीण हुआ तब भूमिलोक में गिरा दियेगये और गिरते गिरते उनका शरीर टूटगया । जैसे झरनेमें से जल बन्दहो तैसेही शरीर अन्तर्द्धान होगया । तब उनकी चिन्ता संयुक्त पुर्यष्टक आकाशमें निराधार होरही और वासनारूप दोनों चन्द्रमाकी किरणों में जा स्थित हुये । फिर शुक्रने तो किरणोंके द्वारा धान्यमें आ निवास किया और उसधान्य को दशारण्य नाम ब्राह्मणने भोजन किया तो वीर्य होकर ब्राह्मणी के गर्भ में जारहा और उस धान्यको मालवदेशके राजाने भी भोजन किया उसके वीर्यद्वारा वह अप्सरा उसकी स्त्रीके उदरमें जा स्थित हुई निदान दशारण्य ब्राह्मणके गृह में शुक्रपुत्र हुआ और मालव देशके राजाके यहां अप्सरा पुत्री हुई । क्रमसे जब षोड़शवर्षकी हुई तो महादेवकी पूजाकर यह प्रार्थना की कि, हे देव ! मुझको पूर्वके भर्त्ता की प्राप्ति हो इस प्रकार वह नित्य पूजन करे और वर मांगे; निदान वहां वह यौवनवान् हुआ यहां यह यौवनवती हुई तब राजाने यज्ञका आरम्भ किया और उसमें सब राजा और ब्राह्मण आये । दशारण्य ब्राह्मणभी पुत्रसहित वहां आया तब उस पूर्व्वजन्म के भर्त्ता को देखकर स्नेहसे राजपुत्री के नेत्रोंसे जल चलनेलगा और उसके कण्ठमें फूलकीमाला डालके उसे अपना भर्त्ता किया । राजा यह देखके आश्चर्य्यवान् हुआ और निश्चय किया कि, भलाहुआ । फिर क्रमसे विवाह किया और पुत्री और जामातृको राज्य देके आप वनमें तपकरने के लिये चलागया । यहां ये पुरुष और स्त्री मालव देशका राज्यकरनेलगे और चिरकालतक राज्य करतेरहे । निदान दोनों वृद्धहुये और उनका शरीर जर्ज्जरीभूत होगया तब उसको वैराग्यहुआ कि, स्त्री महादुःख स्वरूप है पर उसे सामान्य वैराग्य हुआथा इससे जर्ज्जरीभूत अङ्गमें सेवने से तो अशक्त हुआ परन्तु तृष्णा निवृत्ति न हुई । निदान मृतक हुआ और बान्धवों ने जलादिया तब ज्ञानकी प्राप्ति विना महाअन्धकूप मोह में जा पड़े । हे रामजी ! मृत्यु मूर्च्छा के अंतर उसको परलोक भासिआया और वहां कर्म्म के अनुसार सुख दुःख भोगके अङ्गबङ्ग देश में धीवर हुआ और अपने धीवरकर्म्म करता

रहा। फिर जब वृद्धअवस्था आई तब शरीर में वैराग्यहुआ कि, यह संसार महादुःख रूपहै। ऐसे जानके सूर्य्यभगवान्का तप करनेलगा और जब मृतकहुआ तब तपके वशसे सूर्यवंशमें राजाहोकर भावनाके वशसे कुछ ज्ञानवान् हुआ। इस जन्ममें वह योगकरने और वेदपढ़नेलगा और योगकी भावनासे जब शरीर छूटा तब बड़ागुरु हुआ और सबको उपदेश करनेलगा, मंत्र सिद्धकिया और वेदमें बहुत परिपक्वहुआ। मंत्रके वशसे वह विद्याधरहुआ और एक कल्पपर्य्यन्त विद्याधर रहा जब कल्पका अन्तहुआ तब शरीर अन्तर्द्धान होगया और पवनरूपी शरीर वासनासहित होरहा। जब ब्रह्माकी रात्रि क्षयहुई; दिनहुआ और ब्रह्माने सृष्टि रची तब वह एक मुनीश्वरके गृहमें पुत्र हुआ और वहां उसने बड़ा तप किया। वह सुमेरु पर्वतपर जाकर स्थित हुआ और एक मन्वन्तरपर्य्यन्त वहां रहा। जब इकहत्तर चौयुगी बीतीं तब वह भोगों के वश हरिणीका पुत्र हुआ और मनुष्य के आकार से वहां रहा और पुत्र के स्नेह से मोह को प्राप्तहो निरन्तर यही चिन्तना करनेलगा कि, मेरे पुत्रको बहुत धन, गुण, आयुर्दा, बलहो। इसकारण तपके भ्रष्ट होने से अपने धर्म्म से विरक्तहुआ; आयुष्य क्षीणहुई और मृत्युरूप सर्पने ग्रासलिया और तपकी अभिलाषा से शरीर छूटा इस कारण भोगकी चिन्ता संयुक्त मद्रदेश के राजाके गृह में उत्पन्न हुआ; फिर उस देश का राजाहुआ और चिरपर्य्यन्त राज्यभोग के वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ और शरीर जर्ज्जरीभूत होगया। वहां तपकी अभिलाषा में उसका शरीर छूटा उससे तपेश्वर के गृहमें पुत्रहुआ और सन्तापसे रहितहोकर गङ्गाजी के किनारे पर तप करने लगा। हे रामजी! इस प्रकार मनके फुरने से शुक्रने अनेक शरीर भोगे॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवोपाख्यानेविविधजन्मवर्णनन्नाम
अष्टमस्सर्गः ८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार शुक्र मनसे भ्रमता फिरा। भृगुके पास जो उसका शरीर पड़ा था सो निर्ज्जीव हुआ; पुर्य्यष्टक निकलगई थी और पवन और धूप से शरीर जर्ज्जरीभूत होगया जैसे मूल से काटावृक्ष गिरपड़ता है, तैसे शरीर गिरपड़ा। चंचल मन भोगकी तृष्णा से वहां गया था। जैसे हरिण वनमें भ्रमता है और चक्रपर चढ़ा बासन भ्रमता है; तैसेही उसने भ्रमसे भ्रमान्तर देखा पर जब मुनीश्वर के गृह में जन्मलिया तब चित्त में विश्रामहुआ और गङ्गाके तटपर तप करनेलगा। निदान मन्दराचलपर्व्वतवाला शरीर निरस होगया; अस्थिचर्म्ममात्र शेष रहगया और लोहू सूखगया। जब शरीर के रन्ध्रमार्ग से पवन चले तब बांसुरीवत् शब्दहो; मानों चेष्टाको त्याग के शरीर आनन्दवान् हुआ है। जब बड़ा पवनचले तब भूमिमें लोटने लगे; नेत्र आदिक जो रन्ध्र थे सो गर्त्तवत् होगये और

मुख फैलगया—मानों अपने पूर्व स्वभाव को देखके हँसता है । जब वर्षाकाल आवे तब वह शरीर जलसे पूर्ण होजावे और जल उसमें प्रवेशकरके रन्ध्रों के मार्ग से निकले—जैसे झरने से निकलता है और जब उष्णकाल आवे तब महाकाष्ठ की नाईं धूपसे सूखजावे निदान वह शरीर वनमें मौनरूप होकर स्थितरहा । और पशु पक्षियों ने भी उस शरीरको नाश न किया । उसका एकतो यह कारण था कि, रागद्वेषसे रहित पुण्य आश्रम था—और दूसरे भृगुजी महातपस्वी तेजवान् के निकट कोई आ न सक्ता था । इस कारण उस देहको कोई नष्ट न करसका । यहां तो शरीरकी यह दशाहुई और वहां शुक्र पवन के शरीर से चेष्टा करतारहा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवकलेवरवर्णनंनामनवमस्सर्गः ९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब सहस्र वर्ष अर्थात् भूमिलोक के तीनलाख और साठ सहस्र वर्ष बीते तब भगवान् भृगुजी समाधि से उतरे तो उन्हें शुक्रका शरीर दृष्टि न आया । जब भलेप्रकार नेत्र फैलाकर देखा तब मालूम हुआ कि, उसका शरीर कृश होके गिरपड़ाहै । यह दशा देख उन्होंने जाना कि, कालने इसको भक्षण कियाहै और धूप, वायु और मेघसे शरीर जर्ज्जरीभूत होगयाहै, नेत्र गढ़ेरूप होगये हैं; शरीर में कीड़े पड़गये हैं और जीवों ने उसमें आलय बनाये हैं। घुराण अर्थात् कुसवारी और मक्खियां उसमें आतीजाती हैं; श्वेत दांत निकलआये हैं—मानो शरीरकी दशाको देखके हँसते हैं और मुख और ग्रीवा महाभयानक रूप, खपर श्वेत और नासिका और श्रवणस्थान सब जर्ज्जरीभूत होगये हैं । उस शरीरकी यह दशा देखके भृगुजी उठ खड़े हुये और क्रोधवान् होकर कहने लगे कि, कालने क्या समझा जो मेरे पुत्र को मारा । शुक्र परमतपस्वी और सृष्टि पर्यन्त रहनेवाला था सो विना काल-कालने मेरे पुत्रको क्यों मारा, यह कौन रीतिहै ? मैं कालको शापदेकर भस्म करूंगा । तब कालका रूप काल अद्भुत शरीर धरकर आया । उसके षट्मुख, षट्भुजा; हाथ में खड्ग, त्रिशूल और फांसी और कानों में मोती पहिने हुये; मुखसे ज्वाला निकलतीथीं; महाश्याम शरीर, अग्निवत् जिह्वा और त्रिशूल के अग्रसे अग्निकी लाटें निकलती थीं । जैसे प्रलयकालकी अग्निसे धूम निकलता है तैसेही उस का श्याम शरीर और बड़े पहाड़की नाईं उग्ररूप था और जहां वह चरण रखता था वहां पृथ्वी और पहाड़ कांपने लगते थे। निदान भृगुजी महाप्रलय के समुद्रवत् क्रोधसे पूर्ण थे उनसे कहने लगा; हे मुनीश्वर ! जो मर्यादा और परावर परमात्माके वेत्ता हैं वे क्रोध नहीं करते और जो कोई क्रोधकरे तौभी वे मोहके वशहोकर क्रोधवान् नहीं होते । तुम कारण विना क्यों मोहित हो क्रोध को प्राप्त हुये हो ? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हो और हम नीतिके पालक हैं । तुम हमारे पूजने योग्यहो—यही नीतिकी

इच्छा है और तपके बल से तुम क्षोभमतकरो, तुम्हारे शापसे मैं भस्मभी नहीं होता। प्रलय कालकी अग्निभी मुझको दग्ध नहीं करसक्ती तो तुम्हारे शापसे मैं कब भस्म होसक्ताहूं। हे मुनीश्वर! मैं तो अनेक ब्रह्माण्ड भक्षण करगयाहूं; और कईकोटि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र मैंने ग्रास लिये हैं; तुम्हारा शाप मुझको क्या करसक्ता है? जैसे आदि नीति ईश्वरने रची है तैसेही स्थित है। हम सब के भोक्ता हुये हैं और तुम से ऋषि हमारे भोगहुये हैं, यही आदिनीति है। हे मुनीश्वर! अग्नि स्वभाव से ऊर्ध्व को जाता है और जल स्वभावसे अधको जाता है; भोक्ताको भोग प्राप्त होताहै और सब सृष्टि कालके मुखमें प्राप्त होती है। आदि परमात्माकी नीति ऐसेही हुई है और जैसे रची है तैसेही स्थित है पर जो निष्कलङ्क ज्ञान दृष्टि से देखिये तो न कोई कर्त्ता है, न भोक्ताहै, न कारणहै, न कार्य है एक अद्वैत सत्ताही है और जो अज्ञान कलङ्क दृष्टि से देखिये तो कर्त्ता भोक्ता अनेक प्रकार के भ्रम भासते हैं। हे ब्राह्मण! कर्त्ता भोक्ता आदिक भ्रम असम्यक् ज्ञान से होता है; जब सम्यक् ज्ञान होताहै तब कर्त्ता, कार्य्य और भोक्ता कोई नहीं रहता। जैसे वृक्षमें पुष्प स्वभावसे उपज आते हैं और स्वभावसेही नष्ट होजाते हैं; तैसेही भूत प्राणी सृष्टि में स्वाभाविक फुर आतेहैं और फिर स्वाभाविक रीतिसेही नष्ट होजाते हैं। ब्रह्मा उत्पन्न करता है और फिर नष्ट भी करता है। जैसे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जलके हिलने से हिलता भासता है और ठहरने से ठहरा भासता है तैसेही मनके फुरने से आत्मा में कर्त्तव्य भोक्तव्य भासता है वास्तव में कुछ नहीं; सब मिथ्या है जैसे रस्सी में सर्प भ्रमसे भासताहै तैसेही आत्मामें कर्त्तव्य भोक्तव्य भ्रमसे भासता है। इस से क्रोधमतकरो; यह दुष्टकर्म आपदा का कारण है। हे मुनीश्वर! मैं तुमको यह वचन अपनी विभूति और अभिमान से नहीं कहता। यह स्वतः ईश्वर की नीति है और हम उस में स्थित हैं। जो बोधवान् पुरुषहैं वे अपने प्रकृति आचार में बिचरते हैं और अभिमान नहीं करते। जो कर्त्तव्य के वेत्ता हैं वे बाहर से प्रकृत आचार करते हैं और हृदय से सुषुप्तिकी नाईं स्थित रहते हैं। वह ज्ञान दृष्टि, धैर्य्य, और उदार दृष्टि कहांगई जो शास्त्रमें प्रसिद्धहै? तुम क्यों अन्धेकी नाईं मोहमार्ग में मोहित होतेहो? हे साधु! तुमतो त्रिकालदर्शी हो, अविचार से मूर्खकी नाईं जगत् यंत्र में क्यों मोहको प्राप्त होतेहो? तुम्हारा पुत्र अपने कर्मोंके फलको प्राप्त हुआहै और तुम मूर्ख की नाईं मुझको शापदिया चाहते हो? हे मुनीश्वर! इस लोक में सब जीवों के दो दो शरीर हैं—एक मनरूप और दूसरा अधिभूतरूप। अधिभूतरूप जड़ और अत्यन्त विनाशी है और जहां इस को मन प्रेरता है वहां चलाजाता है—आप से कुछ कर नहीं सक्ता। जैसे सारथी भला होता है तो रथको भले स्थान को लेजाता है और जो सारथी भला नहीं होता

तो रथको दुःखके स्थानमें लेजाता है; तैसेही यदि जो मनभला होता है तो उत्तम लोकमें जाता है और जो दुष्ट होता है तो नीच स्थान में जाता है । जिसको मन असत् करता है सो असत् भासताहै और जिसको मन सत्करता है वह सत्भासता है । जैसे मट्टी की सेना बालक बनाले और फिर भंग करते हैं; कभी सत्करते, कभी असत्करते हैं और जैसे करते हैं तैसेही देखते हैं; तैसेही मनकी कल्पनाहै । हे साधु ! चित्तरूपी पुरुष है; जो चित्त करता है वह होता है और जो चित्त नहीं करता वह नहीं होता । यह जो फुरना है कि, यह देह है, ये नेत्र हैं, ये अंग हैं इत्यादिक सब मनरूप हैं । जीवभी मन का नाम है और मनका जीनाजीव है । वही मनकी वृत्ति जब निश्चयरूप होती है तब उसका नाम बुद्धि होता है; जब अहंरूप धारती है तब उसका नाम अहंकार होता है और जब देहको स्मरण करती है तब उसका नाम चित्त होता है । इससे पृथ्वी रूपी शरीर कोई नहीं; मनही दृढ़ भावना से शरीर रूप होता है और वही अधिभौति हो भासता है और जब शरीर की भावना को त्यागताहै तब चित्त परमपदको प्राप्त होता है । जो कुछ जगत् है वह मनके फुरने में स्थित है; जैसा मनफुरता है तैसाही रूपहो भासता है । तुम्हारे पुत्र शुक्रने भी मन के फुरने से अनेक स्थान देखे हैं । जब तुम समाधि में स्थित थे तब वह विश्वाची अप्सरा के पीछे मन से चला गया और स्वर्ग में जापहुंचा । फिर देवता होकर मन्दारवृक्षों में अप्सरा के साथ बिचरने लगा और फिर पारिजात तमाल आदि वृक्ष और नन्दन वन में बिचरता रहा । इसीप्रकार बत्तीस युग पर्यंत विश्वाची अप्सरा के साथ लोक-पालों के स्थान इत्यादि में बिचरता रहा और जैसे भँवरा कमल को सेवता है तैसेही तीव्र संवेगसे भोग भोगतारहा । जब पुण्य क्षीणहुआ तब वहांसे इस भांति गिरा जैसे पक्काफल वृक्ष से गिरता है । तब देवता का शरीर आकाश मार्ग में अन्तर्द्धान होगया और भूमिलोक में आपड़ा । फिर धान्यमें आकर ब्राह्मण के वीर्यद्वारा ब्राह्मणी का पुत्र हुआ; फिर मालव देशका राज्यकिया और फिर धीवर का जन्मपाया । फिर सूर्य्यवन्शी राजाहुआ, फिर विद्याधर हुआ और कल्पपर्यंत विद्याधरों में विद्यमान् रहा और फिर विन्ध्याचल पर्वतमें गैबहोकर क्रांतदेश में धीवरहुआ । फिर तरङ्गीत देश में राजाहुआ, फिर क्रांतदेश में हरिणहुआ और वन में बिचरा और फिर विद्यावान् गुरुहुआ । निदान श्रीमान् विद्याधर हुआ और कुण्डलादिक भूषणों से संपन्न बड़ा ऐश्वर्यवान् गन्धर्वों का मुनिनायक हुआ और कल्प पर्यंत वहां रहा । जब प्रलय होनेलगा तब पूर्व के सबलोक भस्म होगये--जैसे अग्निमें पतंग भस्महोते हैं--तब तुम्हारा पुत्र निराधार और निराकार वासना से आकाश मार्ग में भ्रमतारहा । जैसे आलय विना पक्षी रहता है तैसेही वह रहा और जब ब्रह्माकी राति व्यतीत हुई

और सृष्टिकी रचनावनी तव वह सतयुग में ब्राह्मण का बालक वसुदेवनामहो गङ्गाके तटपर तप करनेलगा। अब उसे आठसौ वर्ष तपकरते बीते हैं; जो तुमभी ज्ञानदृष्टि से देखोगे तो सब वृत्तान्त तुमको भासआवेगा। इससे देखो कि, इसीप्रकार है अथवा किसी और प्रकार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकालवाक्यन्नामदशमस्सर्गः १०॥

कालबोले, हे मुनीश्वर! ऐसी गङ्गाके तटपर जिस में महातरंग उछलते और झनकारशब्द होते हैं तुम्हारा पुत्र तप करता है। शिरपर उसके बड़ी जटाहैं और सर्व इन्द्रियों के भ्रमको उसने जीता है। जो तुमको उसके मनके विस्तार देखने की इच्छाहै तो इननेत्रों को मूंदकर ज्ञान के नेत्रों से देखो। हे रामजी! जब इस प्रकार जगत् के ईश्वरकालने, जिसकी समदृष्टि है, कहा; तब मुनीश्वरने नेत्रों को मूंदकर, जैसे कोई अपनी बुद्धि में प्रतिबिम्ब देखे ज्ञाननेत्रोंसे एक मुहूर्त्त में अपने पुत्रका सब वृत्तान्त देखा और फिर मन्दराचल पर्वतपर जो भृगुशरीर पड़ाथा उसमें प्रवेशकर अन्तवाहक शरीर से अपने अग्रभागमें काल भगवान्‌को देखकर पुत्रको गङ्गाके तट पर देखा। यह दशा देख वह आश्चर्य्य को प्राप्तहुआ और विकार दृष्टिको त्यागकर निर्म्मल भाव से वचन कहे। हे भगवन्! तीनों कालके ज्ञाता ईश्वर! हम बालक हैं; इसी से निर्दोष हैं। तुम सरीखे बुद्धिमान् और तीन काल अमलदर्शी हैं। हे भगवन्! ईश्वरकीमाया महाआश्चर्य्यरूप है जो जीवोंको अनेक भ्रम दिखाती है और बुद्धिमान्‌को भी मोह करती है तो मूर्खोंकी क्या बातहै? तुम सब कुछ जानतेहो; जीवोंकी सब वार्त्ता तुम्हारे अन्तर्ग्गतहै। जैसी जीवों के मनकी वृत्तिहोतीहै उसके अनुसारवे भ्रमते हैं। वह मनकी वृत्ति सब तुम्हारे अन्तर्ग्गत फुरती है। जैसे इन्द्रजाली अपनी बाजीका वेत्ता होताहै तैसेही तुम इनसबों के वेत्ताहो। हे भगवन्! मैंने भ्रमको प्राप्त होकर क्रोध इस कारण से किया कि, मेरे पुत्रकी मृत्यु न थी, वह चिरंजीवीथा और उसको मैं मृतक हुआ देखके भ्रमको प्राप्तहुआ। हमारा क्रोध आपदा का कारण नहीं था क्योंकि, जब मैंने पुत्र का शरीर निर्जीव देखा तब कहा कि, अकारण मृतक हुआ इस कारण क्रोधहुआ। क्रोध भी नीति रूपहै अर्थात् जो क्रोध का स्थानहो वहां क्रोध चाहिये। मैंने संसारकी गति विचारके क्रोध नहीं किया; अर्थात् पुत्रकी अवस्था देखके क्रोध नहीं किया; निर्ज्जीव शरीर को देखके क्रोधकिया; इसीसे यह क्रोध आपदा का कारण नहीं। अयुक्ति कारण से जो क्रोध होताहै वह आपदा का कारण है और युक्तिसे जो क्रोध है वह सम्पदा का कारण है यह कर्त्तव्य संसारकी सत्तामें स्थित है। यह नीति है कि, जब तक जीव है तब तक जगत् क्रम है। जैसे जब तक अग्निहै तब तक उष्णता भीहै। जो कर्त्तव्यहै वह करनाहै और जो त्यागनेयोग्यहै वह त्यागना

है । यह नीति जगत् में स्थित है । जो हेयोपादेय नहीं जानता उसको त्यागना योग्य है । इससे मैंने पुत्रका अकालमृत्यु देखके क्रोध किया था परन्तु विचार करके जब तुमने स्मरण कराया तब मैंने विचार करके देखा कि, मेरापुत्र अनेक भ्रमपाकर अब गङ्गाके तटपर तप करताहै । हे भगवन् ! तुमने तो कहा कि, सब जीवोंके दो दो शरीर हैं--एक मनोमय और दूसरा आधिभौतिक; पर मैं तो यह मानताहूं कि, केवल मनही एक शरीर है; दूसरा कोईनहीं । मनही का किया सफलहोताहै; शरीर का नहीं होता । काल बोले; हे मुनीश्वर ! तुमने यथार्थ कहा; शरीर एकमनही है । जैसे घटको कुलाल रचता है, तैसेही मन देह रचता है । जो मन शरीर से रहित निराकार होता है तो क्षण में आकारको रच लेता है । जैसे बालक परछाहीं में वेतालको भ्रमसे रचता है । मनमें जो फुरनसत्ता है वह स्वप्नभ्रम दिखाती है और उसमें बड़े आकार और गन्धर्व नगर भासिआते हैं पर वह मनही की सत्ताहै स्थूलदृष्टि से जीवों को दो शरीर भासते हैं बोधवान् को तीनों जगत् मनरूप भासते हैं और सब मनसे रचे हैं । जब भेदवासना होती है तब असत्‌रूप जगत् नाना प्रकार हो भासताहै । जैसे असम्यग्दृष्टि से दो चन्द्रमा भासते हैं तैसेही सम्यग्दर्शी को एक चन्द्रमावत् सब शान्तरूप आत्माही भासता है और भेदभावना घट पट आदिक अनेक पदार्थ भासते हैं कि, मैं दुर्बल हूं व मोटाहूं; सुखीहूं व दुःखीहूं; यह जगत् है, यह काल है, इत्यादिक सो संसार वासनामात्र है । जब मन शरीरकी वासना को त्यागकर परमार्थकी ओर आताहै तब भ्रमको नहीं प्राप्तहोता । हे मुनीश्वर ! समुद्रसे तरंग उठकर ऊर्ध्वको जाताहै, जो वह जाने मैं तरंग होताहूं तो मूर्ख है--यही अज्ञानदृष्टिहै । ऊर्ध्वको जावेगा तब जानेगा मैं ऊर्ध्वको गयाहूं, नीचे जावेगा तब जानेगा मैं पातालको गयाहूं, यह कल्पनाही अज्ञानहै, वास्तव नहीं । वास्तवदृष्टि यह है जो अधहो अथवा ऊर्ध्वहो परन्तु आपको जलरूप जाने । तैसेही जो पुरुष परिच्छिन्न देहादिक में अहं प्रतीत करताहै सो अनेक भ्रम देखताहै; सम्यग्दर्शी सब आत्मरूप जानताहै । सर्व जीव आत्मरूप समुद्र के तरंग हैं, अज्ञानसे भिन्न हैं और ज्ञानसे वहीरूप है । आत्मरूपी समुद्र सम, स्वच्छ, शुद्धआदि रूप, शीतल, अविनाशी और विस्तृत अपनी महिमामें स्थितहै और सदा आनन्दरूप है । जैसे कोई जलमें स्थितहो और तटपर पहाड़में अग्निलगीहो तो उस अग्नि का प्रतिबिम्ब जलमें देख वह कहे कि, मैं दग्धहोताहूं । जैसे भ्रमसे उसको ज्वलनता भासतीहै तैसेही जीवको आभासरूप जगत् दुःखदायक भासताहै । जैसे तटके वृक्ष, पर्वतादि पदार्थ जलमें नानाप्रकार प्रतिबिम्बवत् भासते हैं तैसेही आभासरूप जगत्को जीव नानारूपमानते हैं । जैसे एक समुद्रमें नानातरंग भासतेहैं तैसेही आत्मामें अनेकआकार जगत् भासताहै; वास्तवमें द्वैत कुछ नहीं सर्व शक्तिरूप ब्रह्मसत्ताही है उसीसे विचित्र

रूप चंचल भासता है पर वह एकरूप अपने आपमें स्थित है। ब्रह्ममें जगत् फुरता है और उसी में लीन होता है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और फिर उसी में लीन होते हैं, कुछ भेद नहीं, पूर्ण में पूर्णही स्थित है। जैसे जलसे तरंग और ईश्वर से जगत् और पत्र, डाल, फूल, फल, वृक्षरूप हैं तैसेही सब जगत् आत्मारूप है और वह आत्मा अनेक शक्तिरूप है। जैसे एक पुरुष अनेक कर्मका कर्त्ता होता है और जैसा कर्म करता है तैसेही संगको पाताहै अर्थात् पाठ करने से पाठक और पाक करने से पाचक और जाप करने से जापक आदिक अनेकनाम धारता है; तैसेही एक आत्मा अनेक शक्ति धारता है। जैसे जिस आकारकी परछाहीं पड़ती है तैसाही आकार भासता है और एक मेघमें अनेक रंग सहित इन्द्रधनुष भासता है; तैसेही यह अनेक भ्रम पाता है। हे साधु! सब जगत् ब्रह्मा से फुराहै और जो जड़ भासते हैं वे भी चैतन्यसत्तासे फुरे हैं। जैसे मकड़ी अपने मुख से जाला निकालकर आपही ग्रास लेती है तैसेही चैतन्य से जड़ उत्पन्न होके फिर लीन होजाते हैं। चैतन्य जीवसे सुषुप्ति जड़ता उपजती है और फिर उसी में निवृत्त होती है। इससे अपनी इच्छा से यह पुरुष बन्धायमान होता है और अपनी इच्छासेही मुक्त होताहै। जब बहिर्मुख देहादिक अभिमानसे मिलताहै तब आपको बन्धायमान करता है–जैसे घुरान आपही गृह रचके बन्धायमान होतां है और जब पुरुषार्थ करके अन्तर्मुख होताहै तब मुक्तिपाता है। जैसे अपने हाथ के बलसे बन्धनको तोड़के कोई बली निकल जाता है। हे साधु! ईश्वर की विचित्ररूप शक्ति है; जैसी शक्ति फुरती है तैसाही रूप देखाती है। जैसे ओस आकाशमें उपजती है और उसीको ढांपलेती है तैसेही आत्मामें जो इच्छाशक्ति उपजती है वही आवरण करलेती है और उसी में तन्मयरूप होजाती है। वास्तवमें जीव को बन्धन और मोक्ष नहीं है; बन्ध और मोक्ष दोनों शब्द भ्रांतिमात्रहैं। मैं नहीं जानता कि, बन्ध और मोक्ष लोकमें कहांसेआये हैं। आत्माको न बन्धनहै और न मोक्षहै; ऐसे सत्यरूपको असत्यरूप ने ग्रास कर लिया है जो कहताहै कि, मैं दुःखी व सुखी हूं; दुबला हूं व मोटा हूं इत्यादिक माया महाआश्चर्य्यरूप हैं जिसने जगत् को मोहित कियाहै। हे मुनीश्वर! जब चित्त संवित्कलनारूप होता है अर्थात् दृश्य से मिलके स्फूर्तिरूप होता है तब कुसवारी की नाईं आपही आपको बन्धन करता है और जब दृश्यसे रहित अन्तर्मुख होताहै तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है। बन्ध और मुक्ति दोनों मनकी शक्ति हैं; जैसा जैसा मन फुरताहै तैसा तैसा रूप भासताहै। अनेक शक्ति आत्मा से अनन्यरूप है, सब आत्मासे उपजा है और आत्मामेंही स्थितहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और उसी में स्थित होकर लीन होजाते हैं और चन्द्रमा से किरणें उदय होकर भिन्न भासतीं पर फिर उसी में लीन होती हैं; तैसेही जीव उपजकर लीन

होजाते हैं । परमात्मारूपी महासमुद्र है, चेतनतारूपी उसमें जलहै जिससे जीवरूपी अनेक तरंग उपजते हैं और उसी में स्थित होकर फिर लीन होजाते हैं । कोई तरंग ब्रह्मारूप, कोई विष्णु, कोई रुद्र होकर प्रकाशते हैं और कोई लहर प्रमादसे रहित यम, कुबेर, इन्द्र, सूर्य्य, अग्नि, मनुष्य, देवता, गन्धर्व्व, विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होकर उपजते हैं और फिर लीन होजाते हैं । कोई स्थित होकर चिरकालपर्य्यंत रहतेहैं—जैसे ब्रह्मादिक; कोई उपजकर और कुछ काल रहकर विध्वंस होजातेहैं—जैसे देवता, मनुष्यादिक और कोई कीट, सर्प आदिक फुरते हैं और चिरकाल भी रहते हैं और अल्पकाल में भी नष्ट होजाते हैं । कोई ब्रह्मादिक उपजकर अप्रमादी रहते हैं और कोई प्रमादी होजाते हैं और तुच्छ शरीर होते हैं, यह संसार स्वप्न आरम्भहै और दृढ़ होकर भासताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारावर्त्तवर्णनन्नामैकादशस्सर्गः ११ ॥

काल बोले, हे मुनीश्वर ! देवता, दैत्य, मनुष्यादिक आकार ब्रह्मसे अभिन्नरूप हैं और यह सत् हैं । जब मिथ्या संकल्प से जीव कलङ्कित होता है तब जानता है कि, "मैं ब्रह्म नहीं"। इस निश्चय को पाके मोहित होता है और मोहितहुआ अध को चला जाता है । यद्यपि वह ब्रह्मसे अभिन्नरूप है और उसमें स्थित है तौ भी भावना के वशसे आपको भिन्न जानके मोहको प्राप्त होता है । शुद्ध ब्रह्ममें जो संवित् का उल्लेख होता है वही कलङ्कित रूप कर्म्म का बीज है; उससे आगे विस्तार को पावता है जैसे जल जिस जिस बीज से मिलता है उसी रस को प्राप्त होता है तैसेही संवित् का फुरना जैसे कर्म्म से मिलता है तैसी गतिको प्राप्त होता है । सङ्कल्पसे कलङ्कित हुआ अनेक दुःख पाता है । यह प्रमादरूप कर्म कंजके बीजसा है जिसको जो मुट्ठीभरभर बोता है सो अपने दुःख का कारण है और यह जगत् आत्मरूप समुद्रकी लहरहै जो विस्तारसे फुरती है और कोई ऊर्ध्वको जाती है और कोई अधको जाती है फिर लीन होजाती हैं । ब्रह्मा आदि तृणपर्य्यंत इन सब का यही धर्म है । जैसे पवन का स्पन्दधर्म है तैसेही इनकाभी है पर उनमें कोई निर्मल पूजनेयोग्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं कुछ मोहसंयुक्तहैं—जैसे देवता, मनुष्य, सर्प कोई अनंत मोह में स्थितहैं—जैसे पर्वत, वृक्षादिक; कोई अज्ञान से मूढ़ हैं—जैसे कृमि, कीटादिक योनि ये दूरसे दूर चलेगये हैं । जैसे जलके प्रवाह से तृण चलाजाता है तैसेही देवता, मनुष्य, सर्पादिक कितने भ्रमवान् भी होते हैं और कोई तटके निकट आके फिर बहजाते हैं अर्थात् सत्सङ्ग और सत्शास्त्रों को पाके फिर माया के व्यवहारमें बहजाते हैं । और यमरूप चूहा उनको काटता है । एक अल्प मोहको प्राप्त होकर फिर ब्रह्मसमुद्र में लीन हुये हैं; कोई अन्तर्गत ब्रह्मसमुद्रको जानके स्थित हुये हैं और तम अज्ञान से

तरे हैं; कोई अनेक कोटिजन्म में प्राप्त होते हैं और कोई अधसे ऊर्ध्वको चलेजाते हैं। और फिर ऊर्ध्वसे अधको चलेआते हैं। इसीप्रकार प्रमादसे जीव अनेक योनि दुःख भोगते हैं। जब आत्मज्ञान होता है तब आपदा से छूट के शांतिमान् होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेउत्पत्तिविस्तारवर्णनन्नामद्वादशःसर्गः १२॥

काल बोले, हे साधु ! ये जितने जगत् भूत जाति विस्तार हैं वे सब आत्मरूप समुद्र के तरंग हैं–एकही अनेक विचित्र विस्तार को प्राप्त हुआ है। जैसे वसंत ऋतु में एकही रस अनेक प्रकार के फल फूलों को धारता है। इन जीवों में जिसने मनको जीतकर सर्व्वात्मा ब्रह्मका दर्शन कियाहै वह जीवन्मुक्त हुआहै। मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व्वादिक सब भ्रमते हैं; इनसे इतर स्थावर मूढ़ अवस्था में हैं उनकी क्या बात करनी है। लोकों में तीन प्रकारके जीव हैं–एक अज्ञानी जो महामूढ़हैं; दूसरे जिज्ञासी हैं और तीसरे ज्ञानवान्। जो मूढ़ हैं उनको शास्त्र के श्रवण और विचार में कुछ रुचि नहीं होती और जो जिज्ञासी हैं उनके निमित्त ज्ञानवानों ने शास्त्र रचे हैं। जिस जिस मार्ग्ग से वे प्रबुध आत्मा हुये हैं उस उस प्रकारके उन्होंने शास्त्र रचेहैं और उससे और जीव भी मोक्षभागी होतेहैं। हे मुनीश्वर ! सत्शास्त्र जो ज्ञानवानोंने रचेहैं उनको जब निष्पाप पुरुष विचारता है तब उसको निर्म्मल बोध उपजकर मोह निवृत्त होताहै और जब निर्म्मल बुद्धि होती है तब जैसे सूर्य्य के प्रकाश से तम नष्ट होताहै तैसेही सत्शास्त्र के अभ्यास से मोह नष्ट होता है। जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे आत्मा के प्रमाद और विषयकी तृष्णा से मोहको प्राप्त होते हैं जैसे अँधेरी रात्रिहो और ऊपरसे कुहिरा भी गिरताहो तब तमसे तम होताहै; तैसेही मूढ़ मोहसे मोहको प्राप्त होते हैं और अपने संकल्प से आपही दुःखी होते हैं। जैसे बालक अपनी परछाहीं में वेताल कल्पकर आपही दुःखी होताहै। इससे जितने भूतजातहैं उन सबके सुख दुःखका कारण मनरूपी शरीर है; जैसे वह फुरताहै तैसी गतिको प्राप्त होताहै। मांसमय शरीरका किया कुछ सफल नहीं होता और असत् मांस आदिकका मिला हुआ जो आधिभौतिक शरीर है वह मनके संकल्पसे रचा है–वास्तव में कुछ नहीं। संकल्पकी दृढ़तासे जो आधिभौतिक भासने लगा है वह स्वप्न शरीरकी नाईं है। मनरूपी शरीरसे जो तेरे पुत्रने कियाहै उसीगतिको वह प्राप्तहुआ है। इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं है। हे मुनीश्वर ! अपनी वासना के अनुसार जैसा कोई कर्म्म करताहै तैसेही फलको प्राप्त होताहै। मांस शरीर से कुछ नहीं होता। जैसी २ तीव्र भावनासे तेरे पुत्रका मन फुरता गया है तैसी तैसी गति वह पाता गयाहै। बहुत कहने से क्या है, उठो अब वहीं चलो जहां वह ब्राह्मण का पुत्र होकर गङ्गाके तट पर तप करनेलगा है। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब काल

भगवानने कहा तब दोनों जगत्‌की गतिको हँसके उठ खड़ेहुये और हाथ से हाथ पकड़के कहने लगे कि,ईश्वरकी नीति आश्चर्यरूपहै जो जीवों को बड़ेभ्रम दिखातीहै। जैसे उदयाचल पर्वत से सूर्य उदय होकर आकाशमार्ग्ग में चलता है तैसेही प्रकाश की निधि उदार आत्मा दोनों चले। इसप्रकार जब वशिष्ठजी ने रामजी से कहा तब सूर्य अस्त हुआ और सर्व सभा अपने अपने स्थानको गई। दिनहुये फिर अपने अपने आसन पर आन बैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभृगुआसनन्नामत्रयोदशस्सर्ग्गः १३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! काल और भृगुजी दोनों मन्दराचल पर्वत से भूमि पर उतरे और देवताओं के महासुन्दर स्थानोंको लांघते लांघते वहां गये जहां ब्राह्मण शरीरसे गङ्गाके किनारे शुक्र समाधिमें लगा था। उसका मनरूपी मृग अचल होकर विश्रामको प्राप्त हुआ था। जैसे चिरकाल का थका चिरकालपर्य्यन्त विश्राम करताहै तैसेही उसने विश्राम पाया। वह अनेक जन्मोंकी चिन्तनामें भटकता भटकता अब तपमें लगाथा और राग द्वेषसे रहित होकर परमानन्दपद में स्थित था। उसको देख के कालने बड़ेशब्दसे कहा, हे भृगु! देख यह समाधिमें स्थितहै अब इसे जगाइये। तब उसकी कलना फुरनेसे और बाहर शब्दसे; जैसे मेघके शब्दसे मोर जागे; तैसेही शुक्रजी जागे और अर्धोन्मीलित नेत्र खोलके काल और भृगुको अपने आगे देखा पर पहिंचाना नहीं। उसने देखा कि, दोनों के श्याम आकार और बड़े प्रकाशरूप हैं— मानों साक्षात् विष्णु और सदाशिवजी हैं। उन्हें देख वह उठ खड़ाहुआ और प्रीति पूर्वक चरण वन्दना और नम्रतासहित आदर करके कहा कि, मेरे बड़े भाग्य हैं जो प्रभुके चरण इस स्थान में आये वहां एक शिला पड़ीथी उसपर वे दोनों बैठगये तब वसुदेव नाम शुक्र, जिसका तपके संयोगसे पीछे सातातपनाम हुआ था उस शान्त हृदय तपसी ने अगम वचन काल और भृगु से कहे, वह बोला, हे प्रभो! मैं तुम्हारे दर्शन से शान्तिमान् हुआहूं। तुम सूर्य्य और चन्द्रमा इकट्ठे मेरे आश्रममें आयेहो और तुम्हारे आनेसे मेरे मनका मोह नष्टहोगया जो शास्त्रों और तपसे भी निवृत्तहोना कठिनहै। हे साधो! जैसा सुख महापुरुषों के दर्शनसे होता है वैसा किसी ऐश्वर्य और अमृतकी वर्षा से भी नहींहोता। तुम ज्ञानकेसूर्य और चन्द्रमाहो। हे ऋषीश्वरो! तुमने हमारा स्थान पवित्र किया और मैं शान्तात्मा हुआ। तुम कौन हो जो प्रकाशरूप, उदारआत्मा मेरे स्थानपर आये हो? जब इसप्रकार जन्मान्तरके पुत्रने भृगुजी से पूछा तब भृगुजी ने कहा; हे साधु! तू आपको स्मरणकर कि, कौनहै? अज्ञानी तो नहीं तू तो प्रबोधआत्माहै। जब इसप्रकार भृगुजी ने कहा तब नेत्र मूंदकर शुक्र ध्यान में लगा और एक मुहूर्त्त में अपना सब वृत्तान्त देखके नेत्र खोले और विस्मय होकर

कहने लगा कि, ईश्वर की गति विचित्ररूप है; इसके वश होकर मैंने बड़े भ्रम देखे हैं और जगत्‌रूपी चक्रपर आरूढ़ हुआ मैं अनन्त जन्म भ्रमा हूँ । उन सबको स्मरण करके मैं आश्चर्यवान् होताहूँ कि, मैंने बहुत दुःख और अनेक अवस्था भोगी हैं। स्वर्ग और मन्दार, कल्पवृक्ष, सुमेरु, कैलास आदिक वनकुंजोंमें मैं रहा और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मैंने नहींपाया; ऐसा कोई कार्य नहीं जो मैंने नहीं किया, और ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक–स्वर्ग नहीं जो मैंने नहीं देखा। जो कुछ जानने योग्यहै वह क्याहै? अब मैं आत्मतत्त्व में विश्रामवान् हुआहूँ और सङ्कल्प भ्रम मेरा नष्ट होगयाहै। अब आप वहां चलिये जहां मन्दराचलपर्वतपर मेरा शरीरपड़ा है। हे भगवन्! अब मुझको कुछ इच्छा नहीं है। यद्यपि हेयोपादेय मुझको कुछ नहीं रहा तथापि नीतिकी रचना देखके कहता हूँ। जो बोधवान् हैं वह प्रकृत आचार में विचरते हैं, आगे जैसी इच्छाहो तैसे कीजिये। बोधवान् उसी आचारको अंगीकार करते हैं। इससे अपने प्रकृत आचारको ग्रहण करके व्यवहार में विचरे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवजन्मान्तरवर्णनन्नामचतुर्दशस्सर्गः १४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार विचार करके तीनों आकाशमार्गको चले और शीघ्रही मेघमण्डलको उल्लंघ के सिद्धों के मार्ग्ग से मन्दराचल पर्व्वत पर स्वर्ण की कन्दरा में पहुँचे और पूर्व शरीर को देख शुक्रने कहा; हे तात ! मेरे पूर्व शरीर को देखो, जिसे तुमने बहुत पालन किया था। जो शरीर कपूर सुगन्ध से शोभित था और फूलोंकी शय्यापर शयन करता था, वह अब माटी में लपटा पड़ा है और सूख गया है। जिस शरीर को देखके देवस्त्रियां मोहित होती थीं और कंठमें मुक्तमाला ऐसी शोभितथीं मानों तारोंकी पंक्ति हैं वह शरीर अब पृथ्वीपर गिरपड़ा है। नन्दन वनमें इसने अनेकभोग भोगे हैं और आत्मरूप जानके इसको मैं पुष्ट करता था वह अब मुझको भयानक भासता है। जो शरीर देवांगनाओं से मिलता और रागवान् होता था वह अब उनकी चिन्तामें सूखगया है। जिन जिन विलासों को चाहता था उनको वह करता था और अब वही चितासे रहित महाअभागी हुआ धूप से सूखगया है और महाविकराल भयानक सा भासता है। जिसको मैं आत्मरूप जानता था; जिसमें अहंकारके विलास करता था और जिसमें फूल कमल पड़ते और तारागण प्रकाशते थे उसमें अब चींटियां फिरती हैं। जो शरीर द्रव स्वर्णवत् सुन्दर प्रकाशरूप था वह अब धूपसे सूखा भयानक भासता है और सब गुण इसको छोड़ गये हैं–मानों विरक्त आत्मा हुआ और विषयसे मुक्त निर्विकल्प समाधि में स्थित हुआ है। हे शरीर! तू अदृष्ट तनको प्राप्त हुआ है; अब तेरे में कोई क्षोभ नहीं रहा। अब चित्तरूपी वेताल तेरेमें शांत होगया है और आने जाने से रहित विश्रामवान्

हुआ है; सब कल्पना तेरी नष्ट हुई हैं और सुखसे सोया है। चित्तरूपी मर्कट से रहित शरीररूपी वृक्ष ठहर गया है और सब अनर्थ से रहित पहाड़ की नाईं अचल हुआ है। यह देह अब सर्व दुःख से रहित परमानन्दमें स्थित है। हे साधो! सब अनर्थों का कारण चित्त है। जबतक चित्त शांतिमान् नहींहोता तबतक जीवको आनन्द नहीं मिलता। जब अमन शक्तिपदको प्राप्त होता है तब महाआधि व्याधि जगत् के दुःखोंको तरके विगत परमानन्द को प्राप्त होताहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्व धर्मों के वेत्ता भृगुका जो शुक्र पुत्र था उसने तो अनेक शरीर धरे थे और फिर फिर भोग भोगेथे तो भृगुसे जो शरीर उत्पन्न था तिसको देख बहुत शोच क्यों किया और देहों का चिन्तन क्यों न किया? इसका क्या कारण है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुक्रकी संवेदन कलना जो जीव भाव को प्राप्त हुई थी सो कर्मात्मक होकर भृगुसे उपजी। सुनो; आदि परमात्मतत्त्वसे चित्तकला फुरकर भूताकाशको प्राप्त हुई और वही वातकला में स्थित होकर प्राण, अपानके मार्गसे भृगुके हृदयमें प्रवेश करगई और वीर्य के स्थानको प्राप्त होकर गर्भमार्गसे उत्पन्नहो क्रम करके बड़ी हुई जिससे विद्या और गुण सम्पन्न शुक्रका शरीर हुआ। उस शरीर को जो उसने चिरकाल सेवन किया था इससे उसका शोच किया। यद्यपि वह वीतराग और निरिच्छित था तौ भी चिरकाल जो अभ्यास किया था वही फुर आया। हे रामजी! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी व्यवहार दोनों का तुल्य होता है परन्तु शक्ति अशक्ति का भेद है। ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेप रहता है और अज्ञानी क्रिया में बन्धमान होता है। ज्ञानवान् मोक्षरूप है और अज्ञानी दरिद्री है। जैसे वनमें जालसे पक्षी फँसता है तैसेही अज्ञानी लोकव्यवहार में बन्धमान होता है। व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है तैसेही अज्ञानी करता है। जो वासना रहित है वह निर्बंधहै; वासना सहित बन्ध है इससे वासनामात्र भेदहै। जबतक शरीर है तबतक सुख दुःखभी होता है परन्तु ज्ञानवान् दोनों में शान्त बुद्धि रहता है और अज्ञानी हर्ष शोकसे तपायमान होता है। जैसे थम्भेका प्रतिबिम्ब हिलने से जलमें हिलता भासता है परन्तु स्वरूप में स्थितही है तैसेही अज्ञान में सुख दुःखसे सुखी दुःखी भासताहै परन्तु स्वरूप ज्यों का त्यों है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जलके हिलने से हिलता भासता है परन्तु स्वरूप से ज्यों का त्यों है तैसेही ज्ञानवान् इन्द्रियों से सुखी दुःखी भासता है पर स्वरूपमें ज्यों का त्यों है। अज्ञानी बाहरसे क्रिया का त्याग करता है तौ भी बन्ध रहता है और ज्ञानवान् क्रिया करता है तौ भी मोक्षरूप है। अन्तःकरण में जो अनात्म धर्म में बन्धमान है वह बाहर कर्मइन्द्रियसे मुक्त है तौ भी बन्धनमें है और जो अन्तःकरण से मुक्त है वह कर्मइन्द्रियसे बन्धन भासता है तौ भी मुक्तरूप है। जो सब क्रीड़ाको त्याग बैठा

है और हृदय में जगत्‌की सत्यता रखता है वह चाहे कुछ करे वा न करे तौ भी बन्धनमें है और जो बाहर चाहे जैसा व्यवहार करता है पर हृदय से अद्वैत ज्ञान में है तो वह मुक्तरूपहै–उसको कर्म बन्धन नहीं करता। इससे, हे रामजी! सबकार्य करो पर अन्तःकरण से शून्य रहकर सर्व ईषणा से रहित आत्मपद में स्थित होजाओ और अपन प्रकृति व्यवहार को करो। यह संसाररूपी समुद्र है जिसमें आधि व्याधि और अहं ममतारूपी गढ़ा है जो उसमें गिरताहै वह ऊर्ध्वसे अधको जाता है। इससे संसार के भाव में मत स्थित हो और शुद्धबुद्धि आत्मस्वभावमें स्थितहो। जो ब्रह्मशुद्ध, सर्वात्मा, निर्विकार, निराकार आत्मपद में स्थित हैं उनको नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशुक्रप्रथमजीवननामपंचदशस्सर्ग्गः १५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जब शुक्रने शरीर का वर्णन किया और विकरालरूप देखके उसमें त्याग बुद्धिकी तब काल भगवान् शुक्रके वचनको न मान के गम्भीर वाणी से बोले; हे शुक! तू इस तपरूपी शरीर को त्यागकर भृगुके पुत्रका जो शरीर है उसको अंगीकार कर। जैसे राजा देशदेशांतर को भ्रमता भ्रमता अपने नगर में आता है तैसेही तू भी इस शरीर में प्रवेशकर क्योंकि; भार्गवतन से तुझे असुरों का गुरुहोनाहै। यह आदिपरमात्माकी नीति है; महाकल्पपर्य्यन्त तेरी आयुर्बल है। जब महाकल्प का अन्त होगा तब भार्गवतन नष्ट होगा और फिर तुझको शरीर का ग्रहण न होगा। जैसे रस सूखे से पुष्प गिरपड़ता है तैसेही प्रारब्धवेगके पूर्ण हुये से तेरा शरीर गिर पड़ेगा और शरीर के होते जीवन्मुक्त पद को प्राप्त हुआ प्राकृत आचारमें विचरेगा। इससे इस शरीर को त्यागकर भार्गव शरीरमें प्रवेशकर। अब हम जाते हैं, तुम दोनों का कल्याणहो और तुमको वाञ्छित फल मिलें। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! काल भगवान् ऐसे कहकर और दोनोंपर पुष्प डालकर अन्तर्द्धान होगये। तब वह तपसी नीति को विचारनेलगा कि; क्या होना है। विचारकर देखा तो विदित हुआ कि, जैसे काल भगवान् ने कहा है तैसेही होना है। ऐसे विचारके महाकृशरूप जो शरीर था उसमें प्रवेश किया और तपस्वी ब्राह्मण का देह त्याग दिया। तब उस शरीर की शोभा जाती रही और कम्पकम्पके पृथ्वीपर गिरपड़ा। जैसे मूलके काटेसे बेलि गिर पड़ती है तैसेही वह देहगिरा और शुक्रदेहजीव कला संयुक्त होआया। तब भृगुजी उस कृशदेह को जीवकला संयुक्त देखके उठखड़े हुये और हाथमें जलका कमण्डलु ले मंत्रविद्यासे जो पुष्टिशक्ति है पाठकर पुत्र के शरीरपर जल डाला और उसके पड़ने से शरीर की सब नाड़ियां पुष्ट होगईं। जैसे वसन्तऋतु में कमलनी प्रफुल्लित होती हैं तैसेही उसका शरीर प्रफुल्लित होआया और श्वास आने जाने लगे। तब शुक पिता के सन्मुख गया और जैसे मेघ जलसे

पूर्ण होकर पर्वत के आगे नमताहै तैसेही विधिसंयुक्त नमस्कारकरके शिरनवाया और स्नेहसे नेत्रों में जल चलनेलगा। तब पुत्र को देखके भृगुजीने उसे कण्ठ लगाया कि, यह मेरा पुत्र है। ऐसे स्नेह से पूर्ण होगया। हे रामजी! जबतक देह है तबतक देहके धर्म फुरआते हैं। इसीप्रकार भृगु ज्ञानी को भी ममता स्नेह फुरआया तो और की क्या बातहै। पिता और पुत्र दोनों बैठगये और एक मुहूर्त्त पर्य्यन्त कथा वार्त्ता करते रहे। फिर उठकर उन्होंने उस तपस्वी शरीरको जलाया क्योंकि, बुद्धिमान् शास्त्राचार में स्थितहोतेहैं। इसके अनन्तर जिनका वपु तपसे प्रकाशताहै और जिनकी श्यामकान्ति है ऐसे जीवन्मुक्त उदारात्मा होकर वहां रहे और समय पाकरके शुक्रजी दैत्यों का गुरु होगा और भृगुजी समाधि में स्थित होंगे। इससे जो सब विकार से रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगद्गुरुहैं वह सबके पूजने योग्यहैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेभार्गवजन्मांतरवर्णननामषोडशस्सर्गः १६॥

रामजी बोले, हे भगवन्! जैसे भृगुके पुत्र को यह प्रतिमा फुरती गई और सिद्ध होती गई तैसीही और जीवोंको क्यों नहीं सिद्ध होती? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुक्रका जो ब्रह्मतत्त्वसे फुरना हुआ वही भार्गव जन्म हुआ और जन्मसे कलङ्कित नहीं हुआ और वह सर्व ईषणासे रहित शुद्ध चैतन्यथा। निर्मल हृदय को जैसी स्फूर्ति होतीहै तैसेही सिद्धि होजाती है और मलिनहृदयवान् का संकल्प शीघ्रही सिद्ध नहीं होता। जैसे भृगुके पुत्रको मनोराज हुआ और भ्रमता फिरा तैसेही सबही स्वरूपके प्रमादसे भ्रमते हैं। जबतक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता तबतक शांति प्राप्त नहीं होती। यह मैंने भृगुके पुत्रका वृत्तान्त मनोराजकी दृढ़ता के लिये तुमको सुनाया है। जैसे बीजही अंकुर, फूल, फल अनेकभावको प्राप्त होता है तैसेही सब भूत जातको मनका भ्रमना अनेक भ्रमको प्राप्त करता है। जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह सब मनके फुरनेका रूप है; मिथ्याभ्रम से नानात्व भासता है और कुछ नहीं है। एक एक प्रति ऐसा भ्रम है और सब संकल्पमात्र है; न कुछ उदय होता है और न अस्तहोता; सब मिथ्यारूप मायामात्र है। जैसे स्वप्नपुर और संकल्पनगर भासता है तैसेही परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं पर कुछ नहींहै और तैसेही यह जाग्रत् भ्रमभी अज्ञान से दृष्टि आता है। भूत, पिशाच आदिक जितने जीव हैं उनका भी सङ्कल्पमात्र शरीर है; जैसे उनको सुख दुःखों का भोग होताहै तैसेही तुम हमको भी होताहै। जैसे यह जगत् है तैसेही अनन्त जगत् बसते हैं और एक दूसरे को नहीं जानता। जैसे एक स्थान में बहुत पुरुष शयन करतेहों तो उनको मनोराज और स्वप्न भ्रम परस्पर अज्ञात होता है तैसेही यह जगत्है पर वास्तव में कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जो इस जगत्को सत् जानता है उसका पुरुषार्थ

नष्ट होताहै जो वस्तु भ्रांति से भासती है उसका सम्यक्ज्ञान से अभाव होजाता है। यह जाग्रत् जगत् भी दीर्घ स्वप्ना है। चित्तरूपी हस्ती को बन्धन है और चित्तसत्तासे जगत् सत् भासता है और जगत् सत्तासे चित्तहै। एक के नाशहुये से दोनोंका नाश होजाता है। जो जगत् का सत्भाव नष्टहोता है तब चित्त नहीं रहता और जब चित्त उपशम होता है तब जगत् शान्त होताहै। इसप्रकार एक के नाशहुये दोनों का नाश होता है। दोनोंका नाश आत्मविचारसे होताहै। जैसे उज्ज्वल वस्त्र पर केशरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है, मलिन वस्त्र पर नहीं चढ़ता; तैसेही जिसका निर्मल हृदय होता है उसको विचार उपजता है। हृदय तब निर्मल होता है जब शास्त्र के अनुसार क्रिया करता है। हे रामजी! एक एक जीवके हृदय में अपनी २ सृष्टि है। पर मलिनचित्त से एकको दूसरा नहीं जानता; जब चित्त शुद्ध होताहै तब और की सृष्टिको भी जान लेता है। जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिलजाती है। जब दृढ़ अभ्यास होता है तब चिर पर्य्यंत सबकुछ भासने लगता है क्योंकि; सबका अधिष्ठाता एक आत्मा है उस में स्थित होनेसे सबका ज्ञानहोता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! शुक्रको प्रतिभामात्र आभासहुआथा उस में देश, काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ़होकर कैसेभासे? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! शुक्रने अपने अनुभवरूपी भण्डार में मनसे जगत् देखा। जैसे मोरके अण्डेसे अनेकरंग निकलते हैं तैसेही उसको अपने हृदयमें भ्रम भासितहुआ। जैसे बीजसे पत्र, टास, फूल, फल निकलते हैं तैसेही जीव जीवको अपने २ अनुभव में संसारखण्ड फुरते हैं। यहां स्वप्न दृष्टांत प्रत्यक्षहै। जैसे एक एकके स्वप्नेमें जगतहोताहै तैसेही यह जगत् है। दीर्घ स्वप्ना जाग्रतहो भासता है और जैसा दृढ़होता है तैसाही भासनेलगता है। फिर रामजीने पूछा, हे भगवन्! सृष्टिके समूह परस्पर मिलते कैसे हैं और नहीं कैसे मिलते? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मलिनचित्त परस्पर नहीं मिलता; शुद्ध मिलता है—जैसे शुद्ध धातु मिलजाती है। सुषुप्तिरूप आत्मा से सब फुरते हैं सो तन्मयरूप हैं; जिसको उसमें विश्राम होताहै सो ज्ञानदृष्टि से सबसे मिल जाता है। जैसे जलसे जल मिलजाताहै तैसेही वह सब से मिलकर सबको जानता है; और नहीं जानता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमनोराजसंमीलनवर्णनंनामसप्तदशस्सर्गः १७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ संसारखण्ड हैं उन सबका बीजरूप आत्माहै और सब आत्माहीका आभासहै। आभासके उदय-अस्त होनेमें आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है; अपने स्वभाव के त्यागसे रहित है; सर्व जीवोंका अपना आप वास्तव रूप है और सुषुप्ति की नाईं स्फूर्ण है। उसी सत्तामें जीव फुरते हैं तब स्वप्नवत् जगत् भ्रम देखते हैं। जीव जीवप्रति अपनी २ सृष्टि स्थित है; जो पुरुष उलटके आत्मपरायण

होता है वह आत्मपद में प्राप्त होता है। जिस पुरुषको आत्मब्रह्मसे एकताहुई है उस को परस्पर और की सृष्टि भासती है। अन्तःकरणमें सृष्टि होती है सो उस का अन्तःकरण मिलता है और उस अन्तःकरण जीवकलाके मिले से परस्पर सृष्टि भासआती है सब का अपनाआप सन्मात्र सत्ताहै, उस में सब सृष्टि स्थित होती है। जैसे कपूरका पर्वत हो तो उसके अणुअणु में सुगन्ध होती है और सर्व अणु सुगन्ध पर्वत में एकता होती है; तैसेही सब जीवोंका अधिष्ठान आत्मसत्ता है। जैसे सब नदियों के जलका अधिष्ठान समुद्र है तैसेही सब जीवोंका अधिष्ठान आत्मा है। सृष्टि कहीं परस्पर मिलती है और कहीं भिन्नभिन्न स्थित है। जहां चेतनमात्र सत्तासे एकताहै वहां चित्त की वृत्ति जिसके साथ मिलनी चाहे उसको मिलजाती है पर मलिनचित्तवाला नहीं मिलसक्ता। एकएक जीवमें सहस्रों सृष्टि परस्पर गुप्तरूप होती हैं। जहां जैसा फुरना दृढ़होताहै वहां वैसाही भासताहै; जहां मनका फुरना कोमल होताहै सो सफल नहींहोता और जहां दृढ़होता है सो भासने लगता है। हे रामजी! जब देहकी भावना मिट जाती है तो प्राण पवनही स्थित करनेसे चित्तकी वृत्ति स्वभाव में स्थित होती है और तब और के चित्तकी चेष्टा अपने चित्त में फुरआती है और जब तक चित्त मलिन होता है और देहकी भावनाको नहीं त्यागता तब तक किसी पदार्थ से एकता नहीं होती। जिसका चित्त निर्मल होता है उसको जैसे और के चित्तका ज्ञान हो आता है तैसेही और सृष्टि में मिलने कीभी शक्ति होती है; अशुद्धको नहीं होती। सर्व्व जीवों की तीन अवस्था होती हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। यह तीनोंही अवस्था आत्मा में जीवितका लक्षण हैं। जैसे मृगतृष्णाकी नदी के तरंग सूर्यकी किरणों में हैं वास्तव में उनका अभाव है तैसेही जीवको आत्मा में प्रमाद है उससे तीनों अवस्थाओं में भटकताहै। जब चित्तकला तुरीयामें स्थित होतीहै तब जीवन्मुक्त होता है। आत्मसत्ता स्वभावमें स्थितहुये से आत्मासे एकताको प्राप्त होताहै और सबजीवसे सुहृद्भावहोता है। जब अज्ञानी पुरुष सुषुप्ति आत्मसत्तासे जागताहै अर्थात् संसारको चितवताहै तब संसारको प्राप्त होताहै वह संसारमें और संसार उस में, इस प्रकार प्रमाद करके अनेक सृष्टि देखताहै। जैसे केलेके थम्भसे पत्रका समूह निकलआताहै तैसेही वह सृष्टि से सृष्टिको देखताहै, शान्ति नहीं पाता और जब उलटके अपने स्वभाव में स्थितहोताहै तब नानात्वभाव मिटजाता और शान्तरूप होताहै—जैसे केलेके भीतर शीतल होताहै। हे रामजी! जगत्के समूह भासते हैं तौभी आत्मासे द्वैत नहीं। जैसे केलेके भीतर पत्र से भिन्न कुछ नहीं निकलता तैसेही आत्मासे जगत् भिन्न नहीं। जैसे बीजही फूल भावको प्राप्त होताहै और फूलसे फिर बीज होताहै तैसेही ब्रह्मसे मन होताहै और बुद्धिसे ब्रह्महोताहै। जीव का कारण रसहै आत्मामें कारण-कार्य्य भाव कुछ नहीं बनता वह

तो अद्वैत अचिन्त्यरूपहै। आदि परमात्मा अकारणरूप हैं, वही विचारने योग्य है औरसे क्याप्रयोजनहै? बीज जब अपने भावको त्यागता है तब फूलभावको प्राप्तहोता है और ब्रह्मसत्ता अपने स्वभावको कदाचित् नहीं त्यागती। बीज परिणाम से आकाशरूपहै आत्मा अकृत्रिम, निराकार और अच्युतरूप है; इस कारण आत्मा बीज की नाईं भी नहीं कहाजासक्ता। आकाश से आकाश नहीं उपजता और अभिन्नरूप है; न कोई उपजाहै, न किसीको उपजायाहै केवल ब्रह्मआकाश अपनेआपमें स्थितहै। जब द्रष्टा पुरुषको देखताहै तब आपको नहीं देखसक्ता क्योंकि, जब मनोराजकापरिणामजगत्में जाता है तब विद्यमान वस्तुकी सँभाल नहीं रहती। देहादिक में आत्म अभिमान होताहै। जो पुरुष आत्मसत्ताको देखता है उसको जगत्भाव नहीं रहता और जो जगत्को देखताहै उसको आत्मसत्ता नहीं भासती। जैसे जो मृगतृष्णाकी नदी को झूंठजानता है उसको जलभाव नहीं रहता और जो जलजानता है उसको असत्बुद्धि नहीं होती। आकाशकी नाईं पूर्ण पुरुष द्रष्टा है वह जब इस दृश्यकी ओर जाता है तब आपको नहीं देखसक्ता। आकाशकी नाईं ब्रह्मसत्ता सबठौर पूर्ण है सो अज्ञानी को नहीं भासती, उसे जो दृश्यका अत्यन्त भावहै वही भासताहै, अनुभवका भासना दूरहोगया है। हे रामजी! स्थूलपदार्थ के आगे पटल आता है तब वह नहीं भासता तो जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है उसके आगे आवरण आवे तब वह कैसे भासे? जो द्रष्टा पुरुष है वह अपनेही भाव में स्थित है दृश्यभावको नहीं प्राप्त होता, दृश्यभासता है तब द्रष्टा नहीं दीखता और दृश्य कुछ वस्तु है नहीं। इस से द्रष्टा एक परमात्माही अपने आपमें स्थित है, जो आत्मरूप सर्वशक्तिमान् देव है। जैसा फुरना उस में होता है वैसाही शीघ्र भासआता है। जैसे वसन्तऋतुमें एकरस अनेक रूपों को धरताहै और उससे टास, फूल, फल होते हैं तैसेही एक आत्मसत्ता अनेकजीव देह होके भासती है। जैसे अपनेही भीतर अनेक स्वप्नभ्रम देखता है तैसेही अहम्आदिक जगत् दृश्यभ्रमको अनुभव प्राप्तही होताहै और स्वरूप से और कुछ नहीं हुआ। जैसे एक बीजके भीतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होतेहैं और उसमें और बीज होताहै; बीजके भीतर और वृक्ष और उसके भीतर और बीज होताहै इसी प्रकार एक बीजके भीतर अनेक वृक्ष होते हैं; तैसेही एक आत्मामें और अनेक चिद्अणु फुरते हैं; उन के भीतर सृष्टि होतीहै और फिर उन सृष्टियोंके भीतर चिद्अणु, फिर चिद्अणुके भीतर सृष्टि इसीप्रकार अनेक सृष्टि ब्रह्माण्ड हैं उनकी संख्या कुछ कही नहीं जाती व सब अपने आप से फुरते हैं और आपही स्वाद लेता है। जैसे तिलमें तेल है तैसेही चिद्अणु में आकाश, पवन आदिक अनेक सृष्टि स्थितहैं। आकाशमें पवन, अग्नि में जल, सर्वभूतोंमें पृथ्वी सृष्टि स्थितहैं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो चित्त से सत्तारहित

ही; जहां चित्तहै वहां उसका आभासरूप द्रष्टाभी स्थित है । जैसे डब्बे में लौंगहोते हैं तो उनके नष्टहुये डब्बा नहीं होता । जैसा जैसा उसमें फुरना होता है तैसाही तैसा स्थितहोताहै । सबका अधिष्ठानरूप आत्माहै; जैसे कमलको पूर्ण करनेवाला जल है उससे सब विस्फूर्जित होते और प्रकाशते हैं तैसेही सब नष्टोंको सत्तादेने वाला और आश्रयरूप आत्मतत्त्व है । यह जगत् दीर्घस्वप्नरूप अपने अनुभव से उदय हुआ है सो बाह्यरूप होकर भासता है; उस स्वप्ने से और स्वप्नान्तर होता है उसके आगे और स्वप्नाहोताहै इसी प्रकार सृष्टिकी स्थिति हुईहै । जैसे एक बीजसे अनेक वृक्ष होते हैं तैसेही एक चिद्अणु में अनेक सृष्टि स्थित हैं । जैसे जलमें अनेक तरंग भासते हैं तैसेही आत्म अनुभव में अनेक जगत् भासते हैं और अभिन्नरूप हैं । इससे द्वैतभ्रम को तुम त्यागदो; न कोई देशहै, न कालक्रिया है केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै । ब्रह्मासे कीटपर्य्यन्त जो जगत् भासताहै सो एक परमात्माही अपने आपमें किंचनरूप होताहै । जैसे एक रस सत्ताही कहीं फल और सुगन्ध सहित भासती है और कहीं काष्ठरूपको प्राप्त होती है तैसेही एक परमात्मसत्ता कहीं चैतन्य और कहीं जड़रूप होकर दिखाई देती है । जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है वही सब का बीजरूपहै, और उसी के भीतर सब जगत् स्थितहै । पर जिसको आत्मा का प्रमाद है उसको नानारूप भासता है । जैसे कोई जलमें डूबे और फिर निकले; फिर डूबे, फिर निकले और जैसे स्वप्न में और स्वप्न होताहै; तैसेही प्रमाद दोष से भ्रमसे भ्रमान्तर नानाप्रकार के जगत् जीव देखता है । जगत् और आत्मा में कुछ भेद नहीं है क्योंकि; जगत् कुछ है नहीं आत्माही जगतसा हो भासता है । जैसे विचार रहित को सुवर्ण में भूषणबुद्धि होती है और विचार किये से भूषणबुद्धि नष्ट होजाती है, सुवर्णही भासताहै; तैसेही जो विचारसे रहितहै उसको यह जगत् पदार्थ भासते हैं कि; यहमैंहूं, यह जगतहै, यह उपजाहै और यह लीनहोताहै; और जिसको सत्सङ्ग और शास्त्रके संयोग से विचार उपजाहै उसको दिनदिनप्रति भोगकीतृष्णा घटतीजाती है और आत्मविचार दृढ़ होताजाताहै । जैसे किसीको तप आताहो तो औषधि करके निवृत्तहोजाताहै और दोलक्षण उसमें प्रत्यक्ष होते हैं; एक तो जो तृषानिवृत्त होजाती है, दूसरे शरीर से तपन निवृत्तहोजाती है और शीतलता प्रकटहोती है तैसेही ज्योंज्यों विवेक दृढ़ होताहै त्योंत्यों इन्द्रियोंकोजीतताहै; सन्तोषसे हृदय शीतल होताहै और सर्व आत्माही भासता है । यह विवेकका फलहै । हे रामजी ! जैसे अग्निके लिखे चित्रसे कुछ कार्य नहीं सिद्धहोता तैसेही निश्चयसे रहित वचन का विवेक दुःखको निवृत्त नहीं करता और शान्ति प्राप्त नहीं होती । जैसे जब पवन चलताहै तब पत्र और वृक्ष हिलते हैं और उसका लक्षण भासता

है पर वाणी से कहिये तो नहीं हिलते तैसेही जब विवेक हृदय में आताहै तब भोगकी तृष्णा घट जाती है; मुखके कहने से तृष्णा घटती नहीं। जैसे अमृतका लिखा चित्र पान करने से अमर होने का कार्य्य नहीं करता; चित्रकी लिखी अग्नि शीतनहीं निवृत्त करती और स्त्रीके चित्रके स्पर्श से सन्तान उपजनेका कार्य नहीं होता; तैसेही मुखका विवेक वाणीविलास है और भोगकी तृष्णाको निवृत्तकरके शान्तिको नहीं प्राप्त करता। जैसे चित्र देखने मात्रही होताहै तैसेही वह विवेक वाग्विलास है। हे रामजी! प्रथम जब विवेक आताहै तब रागद्वेषको नाश करताहै और ब्रह्मलोकपर्य्यन्त जो कुछ विषय भोगरूप हैं उनसे तृष्णा और वैरभाव को नष्ट करताहै। जैसे सूर्य के उदयहुये अन्धकार नष्टहोताहै तैसेही विवेक उदय हुये अज्ञान नष्ट होजाता है और पावनपद की प्राप्ति होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजीवपदवर्णनन्नामअष्टादशस्सर्गः १८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्व जीवोंका बीज परमात्मा है। और वह सर्व ओर से आकाश की नाईं स्थित है। उसके फुरने का नाम जीव है और उसजीव के भीतर जगत्है। उसके आगे और नानाप्रकारकी रचनाहै पर वास्तव में चिद्घनजीवके रूपसे भीतर स्थित हुआहै इससे सब जीव चिद्घनरूपहैं। जैसे केलेके थम्भमें पत्रहोते हैं तैसेही आत्मसत्ताके भीतर जीव स्थित हैं। जैसे शरीरके भीतर कीटहोते हैं तैसेही आत्माके भीतर जीव राशिहैं और जैसे प्रस्वेद से जूं और लीख आदिक जीव उपजते हैं और दूसरे पदार्थ में कीट उपजआते हैं तैसेही आत्मामें चित्तकला के फुरने से जीवके समूह फुरआतेहैं। फिर जीव जैसी जैसी सिद्धिके निमित्त यत्न उपासना करते हैं तैसी तैसी गतिपाते हैं। जो देवताकी उपासना करते हैं वह देवताको प्राप्त होते हैं और यज्ञके उपासक यज्ञको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जिसकी जो उपासना करते हैं उसीको वे प्राप्त होते हैं। ब्रह्मके उपासक ब्रह्मकोही प्राप्त होते हैं। इससे जो अतुच्छ पदहै उस महत्पद का तुम आश्रय करो। जैसे शुक्र जब दृश्य के ओर लगा तब उसने अनेक प्रकार के दृश्य भ्रमको देखा और जब शुद्ध बुद्धिकी ओर आया तब निर्मल बोधको प्राप्त हुआ तैसेही जिसकी कोई उपासना करता है उसीको वह प्राप्त होताहै; अन्यको नहीं प्राप्त होता। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत् और स्वप्न का भेद कहिये कि, जाग्रत् क्या है और स्वप्न क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्थिर प्रतीतिका नाम जाग्रत्है अस्थिर प्रतीति का नाम स्वप्न है। जो चिरकाल रहता है उसका नाम स्थिरहै और जो अल्पकाल रहे उसका नाम अस्थिर है अर्थात् दीर्घ काल प्रतीति का नाम जाग्रत् है और अल्पकालका नाम स्वप्न है। इनमें कोई विशेष भेद नहीं है, दोनोंका अनुभव सम होताहै। शरीर के भीतर स्थित होकर जो शरीर को

जिवाताहै उसका नाम जीवहै । वह तेज और बीजरूपहै । जीवधातुहै यह सब उस के नामहैं । जब जीवधातु स्पन्दरूप होताहै तब वह जीवितके रन्ध्रों में फैलताहै; मन, वाणी और देहसे सब व्यवहार होताहै और रन्ध्र खुलजाते हैं तब उसको जाग्रत् कहते हैं । जब चित्तकला जाग्रत् व्यवहार में स्पष्टरूप होती है और भीतर होकर फुरतीहै तब उसके भीतर जगद्भ्रम भासने लगताहै, वह स्वप्ना कहाता है । अब सुषुप्तिका क्रम सुनो । मन, वाणी और शरीरसे जहां कोई क्षोभ नहीं और स्वच्छवृत्ति जीवधातु भीतर स्थितहै; हृदयकोशमें प्राणवायु से क्षोभ नहीं होता और नाड़ी रस से पूर्ण होती हैं उस मार्ग से प्राण आनेजाने से रहित होते हैं और क्षोभसे रहित सम वायु चलताहै उसका नाम सुषुप्ति है । जैसे वायुसे रहित एकान्त गृह में दीपक उज्ज्वल प्रकाशताहै तैसेही वहां संवित्सत्ता अपने आपका अनुभव लेती है । जैसे तिलों में तेल स्थित होताहै तैसेही जीव संवित्कलनासे जो कल्पता है सो उसकाल में अपने आपमें स्थित होताहै । जैसे बरफमें शीतलता और घृतमें चिकनाई होती है तैसेही वहां संवित्सत्ता स्थित होती है; उसका नाम सुषुप्ति अवस्था है जड़रूप उस सुषुप्ति अवस्थासे जागकर दृश्यभावको न प्राप्त हो और निर्विकल्प प्रकाशमें स्थित हो सो ज्ञानरूप तुरीय है । तब वह व्यवहारकरे तो भी जीवन्मुक्त है; वह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में बन्धायमान नहीं होता । हे रामजी ! आत्मसत्ता से फुरनाहोकर स्वरूप विस्मरण होजाताहै और फुरना दृढ़ होकर स्थित होताहै इसी का नाम जाग्रत् है । स्वरूप से प्रमाद दोष करके फुरे और जो जगत् भासे उसको सत्रूप जाने और यह प्रतीति थोड़े काल रहकर फिर निवृत्त होजावे इसका नाम स्वप्न है । दृश्य के फुरने का अभाव होजावे और अज्ञातवृत्ति जड़तारूप रहै उसका नाम सुषुप्ति है । अनुभवमें ज्ञान स्थित रहै और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति का व्यवहारहो पर निश्चयमें इनका सद्भाव रंचक भी न हो केवल ज्ञान में अहं प्रतीतहो और वृत्ति उससे चलायमान न हो उसका नाम तुरीयपद है । उसमें स्थितहुआ जीवन्मुक्त होताहै । जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में जीव स्थित होतेहैं । जब नाड़ी अन्न के रससे पूर्ण होजाती हैं और प्राणवायु हृदयनाम्नी नाड़ी में नहीं आता तब चित्त संवित् अक्षोभ रूप सुषुप्ति होताहै । जब अन्न उस नाड़ी से पचताहै और प्राणवायु चलने लगताहै तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फुरने लगताहै और उस फुरने से अपने भीतर हो बड़े जगत् भ्रम देखताहै; जैसे बीजसे वृक्ष होताहै । जब वायुकारस नाड़ी में बहुत होताहै तब चित्त सत्ता आकाश में उड़ना, वायु, अँधेरी आदिक पदार्थोंको देखताहै; जब कफका रस नाड़ीमें अधिक होताहै तब फूल, बेल, बावलियां, जल, मेघ, बगीचे आदिक पदार्थ भासते हैं और जब पित्तकी अधिकता होती है तब उष्णरूप अग्नि, रक्त, वस्त्र आदिक

भासने लगते हैं। इस प्रकार वासना के अनुसार जगद्भ्रम देखताहै और जैसी जैसी भावना दृढ़होतीहै तैसाही पदार्थ दृढ़हो भासता है । जब पवन क्षोभायमान होताहै तब चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वारकेबाहर निकलकर रूपादिकका अनुभव करताहै। चिरपर्य्यन्त सत् जानने का नाम जाग्रत्है। वासनाके अनुसार मनरूपी शरीरसे जीव नेत्र, जिह्वादिक विना जो रूप रसादिक का अनुभव होताहै उसका नाम स्वप्न है पर स्वरूपसे न कोई स्वप्नहै, न जाग्रत्है और न सुषुप्ति है; केवल सत्ता अपने आपमें स्थितहै; उसीके फुरनेका नाम जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिहै । चिरकाल फुरनेका नाम जाग्रत् है और अल्पकाल फुरने का नाम स्वप्नहै सो केवल प्रतीतिका भेदहै वास्तव में कुछ भेदनहीं और जो वास्तव में भेद न हुआ तो जगत् स्वप्नरूप हुआ । इससे यही भावना दृढ़करो कि, जगत् असत् रूप स्वप्नवत् है इसमें सत्भावना करनी दुःख का कारण है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति तुरीयरूप वर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्गः १९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह मैंने तुमको मनका रूप निरूपण करके दिखाया है और अवस्थाओं का निरूपणभी इसी निमित्त किया है; और प्रयोजन कुछ नहीं। इससे जैसा निश्चय चित्त में होताहै तैसाही हो भासताहै । जैसे अग्नि में लोहा डालिये तो अग्निरूप होजाता है तैसेही मन जिस पदार्थ से लगताहै उसीका रूपहो-जाताहै। भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनही से होते हैं; न कोई सत्है, न असत्है केवल मन की चपलता से सब फुरते हैं। मनके मोहसे ही जगत् भासताहै और मन के नष्टहुये से नष्ट होजाताहै। जो मलिनमन है सो अपने फुरने से जगत् को रचताहै। यह मनही पुरुषहै इसको तुम अशुभमार्ग में न लगाना । जब मनको जीतोगे तब सब जगत् में तुम्हारी जय होगी। मन के जीते से सब जगत् जीता जाताहै और तब बड़ी विभूति प्राप्त होतीहै। जो शरीरकानाम पुरुषहोता तो शुक्रका शरीर पड़ाथा, वह दूसराशरीर न रचता पर उसका शरीर तो वहां पड़ारहा और मन और शरीरों को रचता फिरा; इससेशरीरका नाम पुरुष नहीं मनहीकानाम पुरुष है। शरीर चित्तका किया होता है, शरीर का किया चित्त नहीं होता। जिस ओर चित्तजालगता है उसी पदार्थ की प्राप्तिहोती है; इसमें संशय नहीं। इससे यह अतितुच्छपदहै। आत्मसत्ताका चित्तमें सदा अभ्यास करो और भ्रमको त्यागदो। जब मन दृश्यकी ओर संसरता है तब अनेक जन्मके दुःखों को प्राप्तहोताहै और जब आत्माकीओर इसका प्रवाह होता है तब परमपदको प्राप्तहोता है। इससे दृश्यभ्रमको त्याग के आत्मपदमें स्थितकरो ॥

इति श्रीयोगवा० स्थितिप्रकरणेभार्गवोपा० समाप्तिवर्णनन्नामविंशतितमस्सर्गः २० ॥

रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! सर्व्व धर्म्मों के वेत्ता ! जैसे समुद्रमें तरंग उपजके फैल जाताहै तैसेही मेरे हृदय में एक बड़ा संशय उत्पन्न होकर फैलगयाहै कि, देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित नित्य, निर्म्मल, विस्तृत और निरामय आत्मसत्ता में मलिनसंवित् मननात्मक कहां से आया और कैसे स्थितहुआ ? जिस से भिन्न कुछ वस्तु नहीं है और न आगे होगी उसमें कलंकता कहां से आई ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुमने भला प्रश्न किया । अब तुम्हारी बुद्धि मोक्षभागी हुई है । जैसे नन्दनवन के कल्पवृक्ष में कल्पमंजरी लगती है तैसेही तुम्हारी बुद्धि पूर्व्व अपरके विचारसे जागी है । अब तुम उस पदको प्राप्तहोगे जिसपदको शुक आदिक प्राप्तहुये हैं । तुम्हारे इस प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धान्तकाल में दूंगा और उसकाल में तुमको आत्मपद हस्तामलकवत् भासेगा । हे रामजी ! सिद्धान्तका प्रश्नोत्तर सिद्धान्तकाल में सोहता है और जिज्ञासुका प्रश्नोत्तर जिज्ञासुकाल में सोहता है । जैसे वर्षाकाल में मोरकी वाणी शोभती है और शरद्काल में हंसकी वाणी शोभती है और जैसे वर्षाकालके नष्टहुये स्वाभाविकही आकाशकी नीलता भासती है और वर्षाकाल में मेघ की घटा शोभती है तैसेही प्रश्नोत्तरभी हैं । जैसा समयहो तैसाही शोभता है । हे राम जी ! मैं तुमको मन का स्वरूप अनेक प्रकारके दृष्टांतों और युक्तियों से कहूंगा और जिसप्रकार यह निवृत्तहोता है वह भी क्रमसे बहुतप्रकार कहूंगा । मनकी शान्ति के उपाय जो वेदोंने निर्णय किये हैं और शास्त्रकारों ने कहे हैं उन के लक्षण तुम सुनो । चञ्चल मन जैसा जैसा भाव अंगीकार करताहै तैसाही तैसा रूपहोकर भासने लगता है । जैसे पवन जैसी सुगन्धसे मिलता है तैसाही उसका स्वभाव होजाता है और जैसे जल जिसरंग से मिलता है तैसाही रूपहो भासता है तैसेही मन जिस पदार्थ से मिलताहै उसका रूप होजाताहै । मन से रहित जो शरीरसे क्रिया करता है उसका फल कुछ नहीं होता और मनसे करताहै उसका पूर्णफल होताहै । जिस ओर मन जाताहै उसी ओर शरीरभी लगजाताहै । बुद्धि इन्द्रिय जो मनरूपहैं वे यदिक्षोभको प्राप्तहों और देह इन्द्रिय स्थिरहों तौभी कार्य्य होताहै पर यदि मन क्षोभित न हो और कर्मेन्द्रिय क्षोभित न हों तो कार्य्य नहींहोता । जैसे धूड़ क्षोभायमानहो तो पवन विना आकाशको उड़नहीं सक्ती और पवन क्षोभायमान हो तो चाहे जैसी धूड़स्थितहो उसको उड़ालेजाती है; तैसेही देह पड़ारहता है मन अपने फुरने से स्वप्न में अनेक अवस्थाको प्राप्तहोता है और जाग्रत्में भी जिस ओर मन फुरताहै देहकोभी वहांही लेजाताहै । इससे सब कार्य्यों का बीज मनही है और मनसेही सब कर्म होते हैं । मन और कर्म परस्पर अभिन्नरूपहैं । जैसे फूल और सुगन्ध अभिन्नरूपहैं तैसेही मन और कर्म हैं । जिसकर्मका अभ्यास मनमें दृढ़ होता है उसीकी शाखा फैलती हैं; उसीफल को प्राप्त होताहै और उसी

स्वादका अनुभव करता है। जिस जिस भावको चित्त ग्रहण करताहै उसी २ भावको प्राप्त होता है और उसीको कल्पनारूप मानता है। धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पदार्थ हैं; उनमें जिसकी दृढ़ भावना मन करता है उसी को सिद्ध करता है। कपिलदेवने सब शास्त्र अपने मनकी सत्ताही से बनाये हैं। उसने निर्णय किया है कि, प्रकृत अर्थात् माया के दोस्वभाव हैं—एक अनुलोमपरिणाम और दूसरा प्रतिलोम परिणाम। जब प्रतिलोमपरिणाम होताहै तब दृश्यभाव प्राप्त होताहै और अनुलोमपरिणाम से अन्तर्मुखआत्माकी ओर आताहै। आत्मा शुद्धरूपहै इस से आत्माकी ओर अनुलोमपरिणामही मोक्षका कारणहै और कोई उपाय नहीं। वेदान्तवादियों ने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्महीं है। शम, दम आदिकसे जब मन सम्पन्न होता है तब यह निश्चय धारण होता है कि; सर्व ब्रह्म है। उनके चित्तमें यही निश्चय है। ब्रह्मज्ञान के सिवा और किसी यत्न से मोक्ष नहीं होता विज्ञानवादी कहते हैं कि, जबतक बुद्धि फुरती है तबतक संसार है और जब यह अपने स्वभाव में फुरती है तब उस कालमें स्वरूप स्थित होता है। जब वह काल आवेगा तब मोक्षकी प्राप्ति होगी। अर्हतजी से बड़े हैं उनको अपने निश्चयानुसार भासता है। मीमांसा, पातञ्जल, वैशेषिक और न्यायादिक शास्त्रकार अपनी २ बुद्धि से जैसा २ निश्चय धरते हैं तैसाही तैसा उनको भासताहै; स्वरूपमें न कोई मतहै और न शास्त्र है। सब का कारण मन है, मनकोही अङ्गीकार करके सब मत डूबे हैं। न नींब कड़ुआ है; न मधु मिष्टहै; न अग्नि उष्णहै और न चन्द्रमा शीतल है; जैसा जैसा जिसके मन में निश्चय होता है तैसाही तैसा उसको भासताहै। किसीको नींब प्यारी होतीहै और मधु कटु लगता है। नींब के कीटको मधु नहीं रुचता तो क्या मधु कटुक होगया? विरहिणीस्त्रीको चन्द्रमा अग्निवत् भासताहै और चकोर अग्निको भक्षणकरलेता है निदान जैसी २ भावना पदार्थ में होती है तैसाही तैसाहो भासता है। सब जगत् भावनामात्रहै; जिस पुरुषको दृश्य में भावनाहै वह अनेक दुःख और भ्रम देखताहै और जिसको शम दमादिक साधन से अकृत्रिम पदकी प्राप्ति होतीहै और मन तदाकार हुआहै वह शान्तिमान् होताहै दूसरा उस सुखको नहीं प्राप्त होताहै। हे रामजी! यह जगत् दृश्य तुम्हारे मनके स्मरण में स्थितहुआ है सो तुच्छरूप है। इसको मनसे त्यागकरो। ये सुख दुःखादिक महाभ्रम देनेवाले हैं और यह संसार अपवित्र और असत् तथा मोहरूप महाभयका कारण है। आभास मायामात्र और अविद्यारूपहै। इसकीभावना भयका कारणहै। जब जगत्के साथ संवित्की तन्मयता होती है तब उसका नाम कर्म बुद्धीश्वर कहते हैं। जब द्रष्टाको दृश्यसे संयोग होता है तब बड़े मोहको प्राप्तहोता है; दृश्यसे मिलके भ्रम से अनात्ममें आत्माभिमान करताहै और देहादिकको अपना आप जानताहै। संसाररूप

मदसे जीव उन्मत्त होजाता है और स्वरूपकी सँभाल इसको नहींरहती-इसीका नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं। जो दृश्य से मिला है उसका कल्याण नहीं होता और जि.के आगे मनका पटल है उसको स्वरूपका भान नहीं होता। जैसे सूर्य्य के आगे जब मेघका आवरण आता है तब वह नहीं भासता; तैसेही मनके आवरण से आत्मा नहीं भासता। इससे मनरूपी आवरणको दूरकरो। मनकारूप फुरना है; उसको सङ्कल्प कहते हैं। जो जो सङ्कल्प फुरें उनको त्यागकरो; असङ्कल्प होने से मन नष्ट होजावेगा। हे रामजी! जब तुम सर्वभाव और सर्व पदार्थों में असङ्ग होगे तब द्रष्टापुरुष प्रसन्न होगा और उससे तुम को निर्विकल्प चिदात्माकी प्राप्ति होगी जहां न जगत्की सत्ता है, न सुख है और न दुःखहै केवल केवलीभाव है जो अपने आप में प्रकाशता है। जब संसार की भावना तुम्हारे हृदय से उठजावेगी तब तुम निर्मल स्वरूप में स्थित होगे और तब दृश्यभ्रम निवृत्त होजावेगा। जैसे रस्सी के सम्यक् ज्ञानसे सर्पभ्रम नष्ट होजाता है तैसेही चिदात्मा के सम्यक्ज्ञान से जगद्भ्रम नष्ट होजावेगा। इससे तुम दृश्यभावनाको त्याग के चिदात्माकी भावनाकरो; जैसी भावना होती है तैसेही भासता है। यदि प्रथम भावना को त्याग के और भावना करता है तो प्रथमका अभाव होजाताहै। जैसे दिनहुये से रात्रिका अभाव होजाताहै तैसेही आत्मभावनासे दृश्यभावना का अभाव होजाता है। जैसे लोहेको लोहा काटता है तैसेही भावनाको भावना काटती है। इससे अतुच्छ निरुपाधि और निःसंशयपद का आश्रय करो। जब उसकी भावना दृढ़ होगी तब तुम भ्रमसे रहित सिद्धपदको प्राप्त होगे। हेरामजी! तुम्हारा आत्मस्वरूपहै; तुम बुद्धिआदिक की कल्पना मतकरो। जैसे बालकसे कहिये कि, शून्यमें सिंहहै तो वह भयवान् होताहै तैसेही जब शून्यशरीरादिकों में विचारसे बुद्धि नहीं आती और यह मैं हूं, 'यह और है' इत्यादिक जो कल्पना होती हैं सो ऐसी हैं जैसे बालकको अपनी परछाहीं में वेताल कल्पना होती है। जोकि अपनी कल्पना के वशसे भाव, अभाव, शुभ, अशुभ क्षणक्षण प्राप्तहोते हैं और कोई सत्रूप कोई असत्रूप, भासते हैं। जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसाभासता है; परस्त्री में जब कामबुद्धि होती है तब स्पर्श से स्त्रीवत् आनन्ददायकहोती है और जो उसी स्त्री में माताकी भावना करताहै तो उससे कामबुद्धि जाती रहती है। इससे देखो जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसाहो भासता है। भावनाके अनुसार फल होता है और तत्काल उसीआकारको देखताहै। ऐसापदार्थ कोई नहीं जो सत् नहीं और ऐसा कोई नहीं जो असत् नहीं। जैसा २ किसीका निर्णयकियाहै तैसाही तैसा उसको भासता है। इससे इस संसारकी भावना को त्यागके स्वरूपमें स्थितहो। हे रामजी! मणि में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको मणि दूरनहीं करसक्ती पर तुम तो मणिवत् जड़ नहीं

हो; तुम चैतन्यरूप आत्माहो; तुम्हारे में जो दृश्यका प्रतिविम्ब पड़ता है तुम उस को त्यागकरो। जो संकल्प दृश्यका उठे उसको असत्‌रूप जानके त्यागदो और प्रकृत व्यवहार जो प्राप्तहों उनको करो और मणिकी नाईं भीतर से रञ्जतते रहितहोरहो। जैसे मणिमें प्रतिविम्ब बहिर्दृष्टि आता है और भीतर रंग नहीं चढ़ता तैसेही बहिर्दृष्टि व्यवहार तुम्हारे में भासे पर हृदयमें राग द्वेष स्पर्श न करे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेविज्ञानवादोनामैकविंशतितमस्सर्गः २१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब जीवको सन्तों के संग और सत्‌शास्त्रों के विचार से विचार उपजता है तब दूसरी ओर से वृत्ति निवृत्त होती है और संसारका मनन भी निवृत्त होजाता है तब विवेकरूपी बुद्धि उदय होती है और संसार दृश्यकी त्याग बुद्धि होती है। तथा द्रष्टाआत्मामें अंगीकार बुद्धि होती है। द्रष्टापुरुष प्रकटहोता है और दृश्य अदृश्यताको प्राप्तहोताहै अर्थात् द्रष्टाके लक्ष्यसे दृश्यको असत्‌रूपजानता है। जब यह पुरुष ज्ञानज्ञेय होता है तब परमतत्त्व में जागता है और संसारकी ओर से घन सुषुप्ति, मृतककी नाईं होजाता है और संसारकी ओर से वैराग्य, भोग में अभोग और रसमें निरस बुद्धि उपजती है। जब ऐसी बुद्धि होती है तब मन अपनी सत्ताको त्यागकर आत्मरूप होता है। जैसे बरफका पुतला सूर्य्य के तेज से जलरूप होजाताहै तैसेही जब मनमें संसारकी सत्यता होतीहै तब उस फुरने से जड़भागी होता है। जब विवेकरूपी सूर्य्य उदय होता है तब मन गलके आत्मरूप होजाता है जैसे जबतक मरुस्थल में धूपहोती है तबतक वहां से मृगतृष्णाकी नदी नष्ट नहीं होती और जब वर्षा होती है तब नष्ट होजाती है तैसेही जबतक संसारकी सत्यता होती है तबतक मन नष्ट नहीं होता और जब ज्ञानकी वर्षा होती है तब दृश्यसहित मन नष्ट होजाता है। हे रामजी! संसाररूपी वासना के जाल में जीवरूपी पक्षी फँसे हैं; जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतरे तब जीव निर्बन्धहो। जैसे मलिनजल निर्म्मलहोता है तैसेही वैराग्यके वशसे जीवका स्वभाव निर्म्मल होजाता है। जब जीव निराग निरुपाधि के संग और राग, द्वेष और मोह से रहित होता है तब जैसे पिंजरे के टूटे पक्षी निर्बन्ध होता है तैसेही जीव निर्बन्ध होजाता है सन्देह दुर्मति शान्त होजाती है जगत् भ्रम नष्ट होजाता है और हृदय पूर्ण होजाताहै। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभताहै तैसेही ज्ञानवान् शोभताहै, सबसे उत्तम सौंदर्य्यताको प्राप्त होताहै और उस का उदय अस्त रागद्वेष नष्ट होजाताहै; सर्व समताभाव वर्त्तता है और न्यूनता और विशेषताभाव नष्ट होजाताहै। जैसे पवनसे रहित सोम समुद्र अचल होताहै तैसेही असङ्ग पुरुष मूक जड़ अन्धकर्मकी वासना से रहित अचल होजाता है और वह सब चेतन प्रकाश देखता है; उसकी बुद्धि विवेकसे प्रफुल्लित होजाती है। जैसे सूर्य्य के

उदयहुये सूर्य्यमुखी कमल प्रफुल्लित होआते हैं तैसेही वह पुरुष पूर्णिमाके चन्द्रमावत् परम लक्ष्मीसे शोभता है । बहुत कहने से क्याहै ज्ञानज्ञेय पुरुष आकाशवत् होजाताहै; वह न उदय होताहै और न अस्त होताहै । विचार करके जिसने आत्मतत्त्वको जानाहै वह उस पदको प्राप्त होताहै जहां ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं और सबही उसपर प्रसन्न होते हैं । प्रकट आकार उसका भासताहै पर हृदय अहंकारसे रहितहै और विकल्पके समूह उसको नहीं खींचसक्ते—जैसे जलके अभावजाननेवालेको मृगतृष्णा की नदी नहीं खींचसक्ती । हे रामजी ! आविर्भाव और तिरोभावरूप जो संसारहै उसको रमणीयरूप जानके ज्ञानवान् खेदनहीं पाता, देहके नाशमें वह अपना नाश नहीं मानता और उपजने में उपजना नहीं मानता । जैसे घट उपजे से आकाश नहीं उपजता क्योंकि, आगे सिद्ध है और घटके अभावसे आकाशका अभाव नहीं होता, तैसेही देहकेउपजेसे आत्मा नहींउपजता और देहके नष्टहुये नष्टनहीं होता । जब ऐसा विवेक उदय होताहै तब वासना का जल नष्ट होजाताहै और कोई भ्रम नहीं रहता । जैसे मृगतृष्णाकी नदीका ज्ञानसे अभाव होजाताहै । जब तक जीवको यह विचार नहीं उपजता कि, मैं कौनहूं, और जगत् क्याहै, तब तक संसाररूपी अन्धकार रहता है जो पुरुष ऐसे जानताहै कि, 'संसार भ्रम मिथ्या उदय हुआहै' और 'परम आपदाका कारण देह अनात्मरूपहै' आत्मासे यह जगत् भिन्न नहीं और सब आत्मसत्ता करके स्थित है वही यथार्थ देखता है । सब चैतन्यसत्ता है; मैं अनन्त चिदाकाशरूपहूं और देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहितहूं और आधि, व्याधि, भय, उद्वेग, जरा, मरण, जन्म आदिक संयुक्त देशमें नहीं; ऐसे जो देखता है, वही यथार्थ देखता है । बालके अग्रका लक्षभाग करिये और फिर एक भागके कोटिभाग करिये ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापी है; ऐसे जो देखता है; वही यथार्थ देखता है । मैं सर्व शक्तिमान् अनन्त आत्माहूं; सर्व पदार्थों में स्थित और अद्वैत चिदादित्यहूं; ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है । अध ऊर्ध्व मध्य और सबमें मैं व्यापाहूं, मुझसे भिन्न द्वैत कुछ नहीं; ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है । जैसे तागे में मालाके दाने पिरोये होते हैं तैसेही सब मुझसे पिरोये हैं, ऐसे जो देखताहै वही यथार्थ देखताहै । न मैंहूं, न यह जगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै; सत् असत् के मध्य में जो एक देव प्रकाशकहै और त्रिलोकी में जो एकहै वही मैं एक अविनाशी पुरुषहूं । जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं और लीनहोजाते हैं तैसेही मेरेमें जगत् फुरते हैं और लीनहोते हैं । अथवा प्रथम अहं है, तब दृश्य जगत् होता है; सो न मैं हूं, न जगत् है केवल एक आत्मसत्ताहै । अहं और मम उसमें कोई नहीं ऐसे जो देखताहै सो यथार्थ देखता है । दृश्यसे रहित मैं चैतन्यरूप भैरव अपारहूं और मैंही जगत् जाल को पूर्णकर

रहाहूं। जो पुरुष ज्ञानवान् हैं वे सुख दुःख और भाव-अभावमें चलायमान नहीं होते, वे केवल ब्रह्मरूपमें स्थित हैं और जगत्के भाव-अभावसे रहित अनाभास सन्मात्ररूप हैं। जो हेयोपादेय बुद्धिसे रहित आकाशवत् सर्वात्मभावमें स्थितहुआ है उसको जगत्का कोई पदार्थ अपने वशनहीं करसक्ता; वह महात्मा पुरुष महेश्वर, तमप्रकाशसे रहित, सब कल्पनाओं से मुक्त, सम और स्वच्छरूपहै और उदय अस्तसे रहित समवृत्तहै। जो ऐसीपरमबोध अनन्त सत्तामें स्थितहै उसको मेरानमस्कारहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेअनुत्तमविश्रामवर्णनन्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः २२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसने उत्तम पदका आश्रय कियाहै ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषका कुम्हारके चक्रकीनाईं प्रारब्धशेष रहाहै। वह पुरुष शरीररूपी नगर में राज्य करताहै और लेपायमान नहीं होता। उसको भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। जैसे इन्द्रका वन सुखरूप है तैसेही उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होताहै। शरीर के सुखसे वह सुखी नहीं होता और दुःखसे दुःखी नहीं होता, अपने स्वरूप में स्थित रहता है। रामजी ने पूछा, हे महा मुनीश्वर! शरीररूपी नगर कैसा है; उस में रहके योगीराज क्या करताहै और सुख कैसे भोगताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानी का शरीररूपी नगर रमणीय होताहै और सर्वगुण संयुक्त ज्ञानवानों को अनन्त आनन्द विलास दिखाता है; जैसे सूर्य्य प्रकाशको उदय करता है। उस शरीर रूपी नगर में गांठें ईंटें हैं; रुधिर और मांस गारा है; अस्थि थम्भे हैं; किवाट पट हैं; रोम वनस्पति हैं उदर खाईं है; छाती चौकहै; नव द्वार हैं और उन में नेत्र झरोखे हैं; उन द्वारों से त्रिलोकी का प्रकाश होता है; हाथगली हैं, जिनसे लेतादेता है; मुखबड़ी कन्दरा है; ग्रीवा और शीश बड़े मन्दिर हैं और रेखा मालाहैं जो भिन्न भिन्न लगी हुई हैं; नाड़ी विभाग करने के स्थान हैं और प्राणवायु आदिकसे नाड़ी में जीव विचरते हैं; चिन्तामणिरूपी आत्म में श्रेष्ठ बुद्धिरूपी स्त्री रहती है जिसने इन्द्रिय रूपी वानर बांध रक्खे हैं; और जिसके हास्य में महासुन्दर फूलहैं। ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञानवान् को महासुखका निमित्त है और सौभाग्य सुन्दररूप है। उस शरीर के सुखदुःखसे ज्ञानवान् सुखी दुःखी नहीं होता। हे रामजी! जो अज्ञानी हैं उनको शरीररूपी नगर अनन्त दुःखका भण्डारहै क्योंकि, अज्ञान से वे शरीरके नष्ट हुये आपको नष्टहुआ मानते हैं और ज्ञानवान् इसके नाशहुये अपना नाश नहीं मानते। वे जब तक रहते हैं तब तक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनको ग्रहण करते हैं; वे इष्टरूप होके भासते हैं और शरीररूपी नगर में भ्रमसे रहित निष्कण्टक राज्य करते हैं। वे लोभसे रहित हैं इस कारण शत्रु कुछ नहीं लेते और उनको अपने स्थानमें आने नहीं देते। वे शत्रु काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देशहैं, उनमें वे

आप प्रवेश नहींकरते और अपने देशमें उनको आने नहीं देते; सावधानही रहते हैं। उनके देश उदारता, धीरज, सन्तोष, वैराग्य, समता, मैत्रता, मुदिता और उपेक्षा हैं; उनमें अज्ञान नहीं प्रवेश करने पाता और आप ध्यानरूपी नगर में रहताहै; सत्यता और एकता दोनों स्त्रियोंको साथ रखता है और उनसे सदा शोभायमान रहता है। जैसे चन्द्रमा चित्रा और विशाखा दोनों स्त्रियों से शोभताहै तैसेही ज्ञानवान् सत्यता और एकतासे शोभताहै। वह मनरूपी घोड़ेपर आरूढ़ होके और विचाररूपी लगाम उसके लगाकर जीवब्रह्मकी एकतारूपी सङ्गम तीर्थ में स्नान करने जाताहै जिससे सदा आनन्दवान् रहताहै और भोग और मोक्ष दोनों से सम्पन्न होताहै। जैसे इन्द्र अपने पुरमें शोभताहै तैसेही ज्ञानवान् देहमें शोभताहै और जैसे घटके फूटेसे आकाशकी कुछ न्यूनता नहीं होती तैसेही देहके नाशहुये ज्ञानीकी कुछ हानि नहीं होती वह ज्योंका त्योंहीं रहताहै। यद्यपि उसके देह होती है तौभी वह उससे स्पर्श नहीं करता—जैसे घटसे आकाश स्पर्श नहीं करता और सर्व क्रियाको कर्त्ता भोक्ता है परन्तु किसी में लिप्त नहीं होता, सदा एकरस भगवान् आत्मदेवमें रहताहै। जब वह विमान पर आरूढ़होके शरीररूपी नगर में विचरताहै तब मैत्रीरूपी नेत्रों से सबको देखता है; मैत्रीभाव उसमें सदा रहता है और सत्यता और एकता सदा उसके पास है उससे शोभताहै और सदा आनन्दवान् विचरता है। वह जीवोंको दुःखरूपी आरे से कटते देखता है जैसे कोई पहाड़पर चढ़के पृथ्वी में लोगोंको जलता देखे और आप आनन्दवान् हो; तैसे वह ज्ञानवान् जीवोंको दुःखी देखताहै और आप आनन्दवान्है। उसकी दृष्टिमें तो सदा अद्वैतरूप है और आत्मानन्दकी अपेक्षा से अनात्म धर्मको दुःखी देखता है उसके निश्चय में जगत्जीव कोई नहीं और वह चारों प्रयोजन—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्णताको प्राप्तहोताहै। किसी ओर से उसको न्यूनता नहीं; वह सर्व सम्पदा सम्पन्न विराजमान होताहै। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा न्यूनता से रहित विराजताहै तैसेही यद्यपि वह भोगोंको सेवताहै तौभी उसको वे दुःखदायक नहींहोते। जैसे कालकूट विषको सदाशिवने पानकियाथा परन्तु उनको वह दुःखदायक न हुआ; तैसेही वह भी समर्थ है। जैसे चोरको जानके जब उसे अपने वशवर्ती किया तब मित्रभाव होजाताहै तैसेही भोग, उसको दुःख नहीं देते। जब जीव भोगोंको जानताहै कि, ये कुछ वस्तु नहीं हैं तब वे सुखके कारण होते हैं और जबतक इनको सत्जानके आसक्त होता है तबतक दुःखके कारण होते हैं। हे रामजी! जैसे यात्रा में अनेक स्त्री, पुरुष मिलते हैं और परस्पर इकट्ठे बैठते और चलते फिरते हैं परन्तु आपस में आसक्त नहीं होते—आगे पीछे चलेजाते हैं—तैसेही ज्ञानवान् संसारके पदार्थों में चित्तको नहीं लगाते। जैसे कोई कासिद किसी देश में जाताहै और मार्ग में

कोई सुन्दर रमणीय स्थान दृष्टिआते और कोई मलीन कष्टके स्थान भासते हैं परन्तु वह राग द्वेष किसी में नहींकरता, जैसेतैसे देखता चलाजाताहै, तैसेही ज्ञानवान् भोग क्रियामें राग द्वेषसे बन्धमान नहीं होता। उसके सर्व संशय सम्यक्ज्ञानसे शांतहोजाते हैं, कोई आश्चर्य पदार्थ उसको नहीं देखाई देते; उसके वासनाके समूह नष्ट होजाते हैं, चक्रवर्ती राजाकी नाईं शोभता है और परिपूर्ण होके स्थित होता है। जैसे क्षीर समुद्र अपने आपमें पूर्ण नहीं समाता तैसेही ज्ञानी अपने आपमें पूर्ण नहीं समाता। हे रामजी! इन जीवोंको भोगकी इच्छाही दीन करती है जिससे वे आत्मपदसे गिरते हैं और अनात्म में प्राप्तहो कृपण होजाते हैं। उनको देखके उत्तम आत्मपद आलम्बी हँसते हैं कि, ये मिथ्या दीनभावको प्राप्तहुये हैं। जैसे कोई स्वामी होकर स्त्री के वश हो और स्त्री स्वामीकी नाईं हो तो उसको देखके लोग हँसते हैं; तैसेही ज्ञानवान् भोगकी तृष्णावालेको दीनदेखके हँसते हैं। चञ्चल मनहीं परमसिद्धान्त सुखसे जीवों को गिराताहै; इससे तुम मनरूपी हस्ती को विचाररूपी कुन्दे से वश करो तब सिद्ध पदको प्राप्त होगे। जिसका मन विषयोंकी ओर धावताहै वह संसाररूपी विषका बीज बोताहै। इससे प्रथम इस मनको ताड़न करो तब शांतिकी प्राप्ति होगी। जो मानी होताहै और कोई उसका मान करताहै तो वह उपकार कुछ नहीं मानता पर जब प्रथम उसको ताड़न करके थोड़ेही उपकार किये से प्रसन्न होताहै। जैसे धान्य जलसे पूर्ण होते हैं तब जलके सींचने से उनमें उपकार नहीं होता और जो ज्येष्ठ आषाढ़की धूपसे तप्त होते हैं तो थोड़ा जल सींचने से भी उनको अमृतवत् होता है, तैसेही जो प्रथम मनका सन्मान करिये तो मित्रभाव नहीं होता और यदि ताड़न करके पीछे सन्मान कीजिये तो उपकार मानके मित्रभाव रक्खेगा। ताड़न करना विषय से संयम करनाहै जब संयम करके निर्वाणहो तब यह सन्मान करना चाहिये कि, संसारके पदार्थों में वर्त्तना। तब वह शत्रुभावको त्यागके मित्र होजाता है, जैसे वर्षाकाल में जब नदी जलसे पूर्ण होती है तब उसमें जलका उपकार नहीं होता पर शरद्कालमें जलका उपकार होताहै। जैसे राजाको और देशका राज्य प्राप्तहो तो वह कुछ प्रसन्न नहीं होता पर यदि प्रथम उसे बन्दीस्थान में डालिये और फिर थोड़ाग्रास दीजिये तो उससेभी प्रसन्न होताहै; तैसेही जब प्रथम मनको ताड़न कीजिये तब थोड़े सन्मानसेभी सुखदायक होताहै। इससे तुम हाथसेहाथ दबाके; दांतों से दांत मिलाके और अंगसे अंग रोकके इन्द्रियोंको जीतलो। मनुष्यके हृदयमें मनरूपी सर्प कुण्डल मारके बैठाहै और कल्पनारूपी विषसे पूर्ण है। जिसने उसको मर्द्दन किया है उसको मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशरीरनगरवर्णनंनामत्रयोविंशतितमस्सर्गः २३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अज्ञानीजीव महानरकको प्राप्त होताहै । आशारूपी बाणकी शलाका उसको लगती है और इन्द्रियरूपी शत्रुमारते हैं । इन्द्रियां दुष्ट बड़ी कृतघ्न हैं; जिसदेहके आश्रय रहती हैं उसको शोक और इच्छा से पूर्ण करती हैं । ये महादुष्ट और दुःखदायक भण्डार हैं; इनको तुम जीतो । इन्द्रियां और मनरूपी चील पक्षी हैं, जब इनको विषयभोग नहीं होते तब ऊर्ध्वको उड़ते हैं और जब विषय प्राप्तहोते हैं तब नीचेको आ गिरते हैं । जिस पुरुषने विवेकरूपी जालसे इनको बांधाहै उसको ये भोजन नहीं करसक्के--जैसे पाषाणके कमलको हाथी भोजन नहीं कर सक्ता । हे रामजी ! ये भोग आपातरमणीय और अत्यन्त विरस हैं; जो पुरुष इनमें रमण करता है वह नरक को प्राप्तहोगा और जो पुरुष ज्ञानके धनसे सम्पन्नहै और देहरूपी देशमें रहता है वह परमशोभा पाताहै और आनन्दवान् होताहै क्योंकि; बड़े ऐश्वर्य्य से उसने इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं । हे रामजी ! सुवर्ण के मन्दिर में रहने से ऐसा सुख नहीं मिलता जैसा निरवासनिक ज्ञानवान्को होताहै । जिस पुरुषने इन्द्रियों और असत्‌रूपी शत्रुको जीताहै वह परमशोभासे शोभताहै--जैसे हिमऋतुको जीत के वसन्तऋतुमें मञ्जरी शोभती हैं । जिस पुरुष के चित्तकागर्व नष्ट हुआहै और जिसने इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं उसकी भोगवासना नष्ट होजाती हैं--जैसे शीतकाल में पद्मनियां नष्ट होजाती हैं । हे रामजी ! वासनारूपी वेताल निशाचर तबतक विचरते हैं जबतक एकतत्त्वका दृढ़ अभ्यासकरके मनको नहीं जीतते; जब विवेकरूपी सूर्य्य उदय होताहै तब अन्धकार नष्ट होजाताहै । जब विवेक से मनुष्य मनको वशकरता है तब इन्द्रियां भृत्य (टहलुये) होजाती हैं, मनरूपी सब मित्र होजातेहैं और आप राजा होके स्वरूप राजको भोगताहै । हे रामजी ! विवेकी की इन्द्रियां पतिव्रतास्त्रीवत् होजाती हैं; मन सीताकीनाईं पालना करनेवाला होता है और चित्त सुहृद्होजाता है । जब निश्चयवान् पुरुष सत्‌शास्त्रको विचारताहै तब परमसिद्धांतको प्राप्तहोताहै और मन अपने मननभावको त्याग के शान्तरूप पितावत् प्रतिपालक होजाताहै । इससे तुम मनको विवेक से वशकरो । मनरूपी मणिको आत्मविचार शिला से घिसो; वैराग जल से उज्ज्वल करो और अभ्यासरूपी छेदकरके विवेकरूपी तागे से पिरोय कण्ठमें पहिनो तो शोभादेती है । जन्मरूपी वृक्षको विवेकरूपी कुदाड़ा काटडालताहै और मनरूपी शत्रु को विवेकरूपीमित्र नष्टकरताहै और सदा शुभकर्मकराता है और विषय के परिणामिक दुःखको निकट नहीं आनेदेता । इससे मनको वशकरनाही आनन्दका कारणहै । जबतक मन वशनहीं होता तबतक दुःखदेताहै और जब वशहोताहै तब सुखदायक होताहै । हे रामजी ! मनरूपी मणि भोगकी तृष्णासे कलङ्कित हुई है; जब विवेकरूपी जलसे इसको शुद्धकरे तब शोभायमानहोगी । यह संसार महाभयका देनेवालाहै । अल्प

विवेकवान् पुरुषभी मायारूपी संसारमें गिरपड़ते हैं; तुम और जीवों की नाईं इसमें मतगिरो। यह संसार मायारूप है और अनेक अर्थों की जंजीर संयुक्त है। महामोह रूपी कुहिरे से जीव अन्धे होगये हैं; इससे तुम विवेकपदका आश्रय करके बोधसे सत् का अवलोकन करो और इन्द्रियों से वैराग्यरूपी नौकासे संसार समुद्र को तरजावो। शरीर भी असत् है और इसमें सुख और दुःखभी असतहैं। तुम दाम, व्याल और कटकी नाईं मतहो पर भीम, भास और दृटकी स्थितिको ग्रहण करके विशोक हो। 'अहं' 'ममादिक' निश्चय वृथा है; उसको त्यागके तत्पदका आश्रयकरो। चलते, बैठते, खाते, पीते, मनमें मननका अभाव हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमनस्विसत्यताप्रतिपादनं नामचतुर्विंशतितमस्सर्गः २४॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप संसारताप के दूर करनेवाले हैं। यह आपने क्याकहा? इसको खोलकरकहो कि, दाम, व्याल और कटकी नाईं कैसे और भीम, भास, दृटकी स्थिति कैसे है? जैसे वर्षाकाल के मेघ तपनको दूर करते हैं और मोरको शब्द करके जगाते हैं तैसेही तुम अपनी कृपासे जगावो। वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! प्रथम इसकीनाईं स्थितहो, पीछे जो इष्टहो उसमें विचरना। पातालमें शम्बरनाम एकदैत्यराजा माया और सर्व आश्चर्य्यरूप मनके मोहनेवाला था। उस दैत्यने अपनी मायासे आकाश में एकनगर रचा और उसमें बाग, दैत्यों के मन्दिर, सूर्य्य, चन्द्रमा और अनन्त ऐश्वर्य्य से सम्पन्न दैत्य और रत्नोंकी स्त्रियां रचीं; जो गान करती थीं और जिन्हों ने देवताओं की स्त्रियां भी जीतीं। उसने वृक्षबनाये जिनमें चन्द्रवत् फल लगे और श्वेत पीत रत्नों की कमलनी और सुवर्ण के हंस सारस और कमल सुवर्ण के वृक्षों की बड़ी शाखोंपर बैठेहुये बनाये और कंजकेवृक्ष जिनमें कमल वृक्षके फूल लगाये और रत्नों से जड़ेहुये सुन्दर स्थान, बरफकी नाईं शीतल बगीचे, वनस्थान चन्दन के रचे। इन्द्रका नन्दनवन किन्तु उससे विशेष और सर्वऋतु के फूललगाये; उन में दैत्यों की स्त्रियां क्रीड़ाकरती थीं और बड़े ऐश्वर्य्य रचे थे। विष्णु और सदाशिवके सदृश ऐश्वर्य्य संयुक्त उसने अपना नगर किया और बड़े प्रकाश संयुक्त रत्नके तारागण रचे। जब रात्रिहो तब वे चन्द्रमा के साथ उदय हों और पुतलियां गानकरें। मायाके हाथी ऐसे रचे जो इन्द्र के ऐरावत को जीतलेवें। इसीप्रकार त्रिलोकी की विभूति से उत्तम विभूति उसने रची और भीतर बाहर सर्व सम्पदाओं से पूर्ण किया। सब दैत्य मण्डलेश्वर वन्दना करतेथे, आप सब दैत्यों का राजा शासन करनेवालाहुआ और सब उस की आज्ञामें चलतेथे। बड़ी भुजावाले दैत्य उस नगर में विश्राम करतेथे निदान जब शम्बर दैत्य शयनकरै अथवा देशान्तर में जाय तब अवकाशदेखके देवताओं के नायक

उसकी सेनाको मारजावें और नगर लूटलेजावें । तब शम्बरने रक्षाकरनेवाले सेनापति रचे पर समय देखके देवता उनकोभी मारगये । शम्बर ने यह सुनके बड़ा कोप किया और जीमें ठाना कि, इनको मारूं । ऐसे विचारके वह अमरापुरी पर चढ़गया और देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वत में भवानीशंकर के पास अथवा वनकुञ्ज और समुद्र में जाछिपे । जैसे प्रलयकाल में सब दिशा शून्य होजाती हैं तैसेही स्वर्ग्ग शून्य होगया । तब महाबलवान् दैत्यराज अमरपुरी को शून्य देखके औरभी कोपवान् हुआ और उस में अग्नि लगाकर लोकपालों के सब पुर जला दिये और देवताओं को ढूंढ़ता रहा परन्तु वे कहीं न दीखे- जैसे पापी पुण्य को देखें और वे कहीं दृष्ट न आवें तैसेही उसे देवता कहीं दृष्ट न आये । तब शम्बर ने कुपित होके ऐसे बड़े बली तीन राक्षस सेना की रक्षाके निमित्त माया से रचे कि वे मानों कालकी मूर्त्ति थे और उनके बड़े आकार ऐसे हिलते थे मानों पंखों से संयुक्त पर्वत हिलते हैं- उन्हीं के नाम दाम, व्याल, कट हैं वे अपने हाथों में कल्पवृक्ष की नाईं बड़े बड़े शस्त्र और भुजा लिये यथा प्राप्त कर्म्म में लगे रहें । उनको धर्म्म और कर्म्म का अभाव था क्योंकि; पूर्व्व वासना कर्म्म उनको न था और निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था । वे अपने स्थूल शरीरके स्वभाव सत्तामें स्थित न थे और अनात्मभावको भी नहीं प्राप्त भये थे । एक स्पन्दमात्र कर्मरूप चेतना उनमें थी वही कर्मका बीज चित्त कलना स्पन्दरूप हुई थी । वे मननात्मकशस्त्र प्रहारको रचेथे और उसीको बड़े करते परन्तु हृदयमें स्पष्टवासना उनको कोई न फुरती थी केवल अवकाशमात्र सुभाव से उनकी क्रियाहो । जैसे अर्धसुषुप्त बालक अपने अंगको स्वाभाविक हिलाताहै तैसेही वह वासना विना चेष्टाकरें । वे गिरना और गिराना कुछ न जानते थे और न यही जानतेथे कि, हम किसीको मारतेहैं अथवा हमीं मरते हैं ॥ वे न भागना जानें और न जानें कि, हम जीते हैं व मरते हैं । जीत हारको भी वे कुछ न जानें केवल शस्त्रका प्रहारकरें । जैसे यंत्रीकी पुतली तागेपर चेष्टा विना संवेदन करतीहै तैसेही दाम, व्याल और कट चेष्टाकरें । वे ऐसे महाबली थे कि, जिनके प्रहारसे पहाड़ भी चूर्णहोजावें । उनको देखके शम्बर प्रसन्नहुआ कि, ये सेनाकी रक्षाको बड़े बली हैं और इनका नाशभी उनसे न होगा क्योंकि; इनको इष्ट-अनिष्ट कुछ नहीं है । जिनको इष्ट अनिष्टका ज्ञान और वासना नहीं है उनका नाश कैसे हो और वे कैसे भागें जैसे देवता के हाथी बड़े बलीहोके भी सुमेरु को नहीं उखार सक्के तैसेही देवता बड़े बली भी हैं परन्तु इनको न मारसकेंगे । ये बड़े बली रक्षक हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटउत्पत्ति वर्णनन्नामपञ्चविंशतितमस्सर्गः २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जब निर्णय करके शम्बरने दाम, व्याल, कट स्थापनकिये तो जब देवताओंकी सेना भूतलमें आतीथी और शम्बर चढ़ताथा तब वे भागजातेथे। निदान शम्बरकी सेनाको देखके देवता भी समुद्र और पहाड़से उछल के निकल दोनों बड़ी सेनासहित युद्धकरनेलगे। जैसे प्रलयकालके समुद्र क्षोभते हैं और सब जलमय होजाताहै तैसेही देवता और दैत्य सब ओरसे पूर्णहोगये और बड़े बाणों से युद्धकरनेलगे। शंखध्वनिकरके जो शस्त्रचलते थे उनसे शब्दहों और अग्नि निकले और तारोंकीनाईं चमत्कारहो। शरीरों से शिरकटें और धड़ कांप २ के गिरपड़ें और दोनोंओरसे शस्त्रचलें पर दाम, व्याल, कट न भागें, मारतेहीजावें; जिनके प्रहार से पहाड़ चूर्णहों। सब दिशाओं में शस्त्र पूर्ण होगये और रुधिरके ऐसे प्रवाह चले कि, उनमें देवता दैत्य मरेहुये बहतेजावें और महाप्रलयकी नाईं भय उदय हुआ। एक एक अस्त्र ऐसा चले जिससे शस्त्रोंकी नदियां निकल पड़ें। कोई अग्निरूप; कोई मेघरूप और कोई तमरूप अस्त्र चलावें; दूसरे प्रकाशरूप; कोई निद्रारूप; कोई प्रबोधरूप; कोई सर्प्परूप और कोई गरुड़रूप अस्त्र चलावे। इस प्रकार वे परस्पर युद्ध करें और ब्रह्मास्त्र चलावें और शिलाकी वर्षा करें। सब पृथ्वी रक्त और मांससे पूर्ण होगई और अनेक जीवों के धड़ और शीश गिरपड़े। जैसे वृक्षसे फल गिरते हैं तैसेही देवता और दैत्य गिरे और बड़ा घोरयुद्ध हुआ। बहुत से गन्धर्व, किन्नर और देवता नष्टहुये और दैत्यभी बहुत मारेगये परन्तु दैत्योंकीही कुछ जीतरही। इसप्रकार मायावी शम्बरकी सेना और देवताओं का युद्धहुआ। जैसे वर्षाकालमें आकाश में मेघ घटा पूर्ण होजातीहै तैसेही देवता और दैत्योंकी सेना इकट्ठी होगई और दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होगये॥

इति श्रीयोगवा० स्थितिप्र० दाम,व्याल,कटसंग्रामवर्णनंनामषड्विंशतितमस्सर्गः २६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार घोरसंग्राम हुआ कि, देवता और दैत्यों के शरीर ऐसेगिरे जैसे पंखटूटेसे पर्वत गिरते हैं। रुधिरके प्रवाह चलतेथे और बड़े शब्द होतेथे जिससे आकाश और पृथ्वी पूर्णहोगई। दामने देवताओंके समूहोंको घेरलिया और व्यालने पकड़के पहाड़में पीसडाला। कटने देवताओंके समूह चूर्णकिये; उनके स्थान तोड़डाले और बड़ा क्रूर संग्राम किया। देवताओं का हाथी जो मदसे मस्तथा वह ताड़नसे क्षीण होगया तो वहांसे भयभीत होकर भागा और देवताभी भागे। जैसे मध्याह्नके सूर्य्यका बड़ा प्रकाशहोताहै तैसेही दैत्य प्रकाशवान् हुये और जैसे बाँधके टूटने से जलका प्रवाह तीक्ष्ण वेगसे चलताहै तैसेही देवता तीक्ष्ण वेगसे भागे। जलके प्रवाहवत् मर्य्यादा छूटगई और दाम, व्याल,कटकी सेना जीतगई। तब तो वे देवताओं के पीछे लगके मारतेजावें। निदान जैसे काष्ठसेरहित अग्नि अन्तर्द्धान होजाती है तैसेही

बलवान् देवता बलसेहीन होकर अन्तर्द्धान होगये और दैत्य उनको ढूंढ़ते फिरे परन्तु जैसे जालसे निकले पक्षी और बन्धनसे छूटे मृग हाथ नहीं आते तैसेही देवता भी हाथ न आये तब दाम, व्याल, कट तीनों सेनासहित पातालमें अपने स्वामी शम्बर के पास उसकी प्रसन्नताके लिये आये। जब देवतोंने सुना कि, दैत्य पाताल में गये हैं तब वे विचार करने लगे कि, किसी प्रकार इनसे ईश्वर हमारी रक्षाकरे। ऐसी चिन्ता से आतुरहुये देवतोंको देख ब्रह्माजी जिनका अमिततेजहै और सुन्दर रक्त वस्त्र पहिने हैं देवताओं के निकटआये और जैसे संध्याकालमें रक्तवर्ण बादलमें चन्द्रमा शोभता है तैसेही प्रकाशवान् ब्रह्माजी को देखके इन्द्रादिक देवताओं ने प्रणाम किया और शम्बर दैत्यकी शत्रुतासे कहा कि, हे त्रिलोकी के ईश्वर! हम आपकी शरण आये हैं; हमारी रक्षा करो। शम्बर दैत्यने हमको बहुत दुःख दियाहै और उसके सेनापति दाम, व्याल, कट जो बड़े दैत्य हैं किसी प्रकार हमसे नहीं मारेजाते। उन्हों ने हमारी सेना बहुत चूर्णकी है इस निमित्त आप इनके मारने का उपाय हमसे कहिये। तब संपूर्ण जगत् पर दयाकरनेवाले ब्रह्माजी ने शान्तिके कारण वचनकहे। हे अमरेश! ये दैत्य अभी तो नष्ट न होंगे, जब इनको अहंकार उपजेगा तब ये मरेंगे और तुमहीं इनको जीतोगे। मैंने इनकी भविष्यत देखी हैं; ये दैत्य युद्धमें भागना नहीं जानते और मरने, मारनेका ज्ञानभी इनको नहीं है ये शम्बर दैत्यकी मायासे रचे हैं इनका नाश कैसेहो। जिसको 'अहं' 'मम' का अभिमानहो उसीका नाशभी होताहै पर ये तो 'अहं' 'ममादिक' शत्रुओंको जानतेही नहीं इनका नाश कदाचित् न होगा। जब इनको अहङ्कार उपजेगा तब इनका नाशहोगा इस लिये अहङ्कार उपजानेका उपाय मैं तुम से कहताहूं। तुम उनके साथ युद्ध करतेरहो और इस प्रकार युद्धकरो कि, कभी उनके सम्मुखरहो, कभी दाहिनेरहो, कभी बायेंरहो और कभी भागजावो। इस प्रकार जब तुम वारंवार करोगे तब उनके युद्धके अभ्यासवश से अहङ्कार का अंकुर उपजेगा और जब अहङ्कारका चमत्कार हृदयमें उपजा तब उसका प्रतिबिम्बभी देखेंगे जिस से यह वासनाभी फुरआवेगी कि; हम यह हैं हमको यह कर्त्तव्यहै, यह ग्रहणकरने योग्य है और यह त्यागने योग्यहै। तब वे आपको दाम, व्याल, कटजानेंगे और तुम उनको वशकरलोगे और तुम्हारी जयहोगी। जैसे जालमें फँसाहुआ पक्षी वश होता है तैसेही वे भी अहङ्कार-करके वशहोंगे अभी वशनहींहोते। वे तो सुख दुःख से रहित बड़े धी-र्य्यवानहैं अभी उनका जीतना कठिनहै। हे साधो! जो पुरुष वासनाकी तांत से बँधेहुये हैं और कोटके कार्य्य के वश हैं वे इसलोक में वश होजाते हैं और जो बुद्धिमान् पुरुष निर्वासनिक हैं और जिनकी सर्वत्र असंशक्त बुद्धि है, जो किसी में बन्धवान् नहीं होते और इष्ट अनिष्टमें समभाव रहते हैं वे किसीसे जीतेनहींजाते। जिनके हृदयमें वास-

नाहै वे इसीरस्सी से बँधेहुयेहैं । जिनकी देहमें अभिमानहै वे चाहो सर्वशास्त्रों के वेत्ता भीहों तो भी उनको एकबालकभी जीतलेवे सब आपदाओंके पात्रहैं । यह देहमात्र परिच्छिन्नरूपहै, जो पुरुष उसे अपना जानताहै और उसमें भावती भावना करताहै वह कदाचित् सर्वज्ञहो तौभी कृपणताको प्राप्तहोताहै—उसमें उदारता कहांहै । सबका अपना स्वरूप अनन्त आत्मा अप्रमेयहै; जिसको देहादिकमें आत्माभिमान हुआहै उसने आपको आपही दीन कियाहै । जब तक आत्मतत्त्व से भिन्न त्रिलोकी में कुछभी सत भासताहै तब तक उपादेय बुद्धिहोती हैं और भावना से बँधारहता है। संसारमें सत भावना करनी अनन्त दुःखका कारणहै और संसारमें असत्बुद्धि सुखका कारणहै । हे साधो ! जब तक दाम, व्याल, कटको जगत्के पदार्थोंमें आस्थाभाव नहीं होती तब तक तुम उनको, जैसे मक्खी वायुको नहीं जीतसक्ती तैसेही न जीत सकोगे । जिसको देहमें अहंभावना और जगत्में सतबुद्धिहोती है वह जीवहै और वही दीनताको प्राप्त होताहै । वह चाहेकैसा बलीहो उसको जीतना सुगमहै क्योंकि, वह तो तुच्छ कृपणहै। जिसके अन्तष्करणमें वासनानहीं है और मक्षिकावत्है तौभी सुमेरुकी नाईं गरिष्ठ होजाताहै । हे देवताओ ! जो वासना संयुक्तहै वह परमकृपणताको प्राप्त होताहै—वही गुणी गुणों से बँधजाता है । जैसे मालाके दानेमें छिद्रहोताहै तो तागेसे पिरोयाजाताहै और जो छिद्रसे रहितहै वह पिरोया नहीं जाता तैसेही जिसका हृदय वासना से बिंधगयाहै उसके हृदयमें गुण अवगुण प्रवेशकरते हैं और जो निर्बंधहै उसके भीतर प्रवेश नहीं करते । इससे जिसप्रकार 'अहं' 'इदं' आदिक वासना दाम, व्याल, कटके भीतर उपजे वही उपायकरो तब तुम्हारी जयहोगी । जिसजिस इष्ट अनिष्टके भाव अभावको जीवप्राप्त होते हैं वही तृष्णारूपी कञ्जका वृक्षहै उसीसे आपदाको प्राप्तहोते हैं। इससे रहित आपदाका अभाव होजाताहै । जो वासनारूपी तांतसेबँधेहुये हैं वह अनेकजन्म दुःख पावेंगे; जो बलवान् और सर्व्वज्ञ कुलका बड़ाहै वहभी जो तृष्णासंयुक्त है तो बांधाहै । जैसे सिंह जंजीर से पिंजड़े में बँधाहै तो उसका बल और बड़ाई किसी कामनहीं आती तैसेही जो तृष्णा से बँधाहै सो तुच्छहै । जिसको देहमात्रमें अहंभाव है और जिसके हृदयमें तृष्णा उत्पन्न होती है वह पुरुष ऐसाहै जैसा पंख तागे से बँधा हो और उसको बालकभी खींच ले । यमभी उसीको वशकरता और जो निर्वासनिक पुरुषहै उसको कोई नहीं मारसक्ता—जैसे आकाशमें उड़ते पक्षीको कोई नहीं पकड़ सक्ता । इससे शस्त्रयुद्धको त्यागो और उनको वासना उपजाओ, तब वे वशहोंगे । हे इन्द्र! जिसको 'अहं' 'मम' 'इदं' आदिक वासना नहीं है और रागद्वेषसे जिसका अन्तष्करण क्षोभवान् नहीं होता उसको शस्त्र और अस्त्रसे कोईनहीं जीतसक्ता । इससे दाम, व्याल, कटको और किसी उपायसे न जीत सकोगे । युद्धके अभ्याससे जब उनको अहङ्कार

उपजाओगे तब वह तुम्हारे वशहोंगे । हे साधो ! ये तो सम्बर दैत्यके रचेहुये यन्त्र पुरुषहैं, इनके हृदय में कोई वासना नहीं है जैसे उसने रचे हैं तैसेही ये निर्वासनिक पुरुषहैं । जब इनको युद्धका अभ्यास कराओगे तब इनको अहङ्कार वासना उपज आवेगी यह तुमको मैंने वश करनेकी परमयुक्तिकही है । जबतक उनके अन्तष्करणमें वासना नहीं फुरती तब तक तुम से वे अजीत हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदामोपाख्यानेब्रह्मवाक्य वर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्ग्गः २७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजके और शब्द करके लीनहोताहै तैसेही ब्रह्मा कहके जब अन्तर्द्धान होगये तब देवता अपनी वाञ्छित दिशाओं कोगये और कईदिन अपने स्थानमें रहे । फिर अपने कल्याणके निमित्त उनके नाश करने को उठके युद्धको चले, प्रथम उन्हों ने शंख बजाये जिनसे प्रलयकालके मेघोंके गर्जने के समान शब्दसे सबस्थान पूर्णहोगये निदान पाताल छिद्रसे शब्द सुनके दैत्य निकले और आकाश मार्ग से देवताआये और युद्धहोनेलगा । बरछी, बाण, मुद्गर, मुशल, गदा, चक्र, वज्र, पहाड़, वृक्ष, सर्प, अग्नि आदिक शस्त्र अस्त्र परस्पर चलने लगे और ऐसे शस्त्र अस्त्रके प्रवाहचले कि, देश प्रदेशमें पहाड़ों और वृक्षोंकी नदियां चलीं । चक्र, मुशल, त्रिशूल आदिक शस्त्र ऐसे चले जैसे गङ्गाका प्रवाह चलता है । देवताओं और दैत्यों के समूह नष्टहोगये अंगफटगये, शीश भुजा कटगये और जैसे समुद्रके उछलने से पृथ्वी जलसे पूर्ण होजाती है तैसेही रुधिरसे पृथ्वी पूर्ण होगई और आकाश दिशामें अग्निका तेज ऐसा बढ़गया जैसे प्रलयकाल में द्वादशसूर्य्यका तेज होताहै । बड़े पहाड़ोंकी वर्षाहोनेलगी और रुधिरके प्रवाहमें पहाड़ ऐसे भ्रमते फिरते थे जैसे समुद्र में तरंग और भँवर फिरते हैं । हे रामजी ! ऐसायुद्ध हुआ कि, क्षणमें पहाड़ और शस्त्र के प्रवाह; क्षणमें सर्प; क्षणमें गरुड़ दीखें और अप्सरागण अन्तरिक्ष में भासें; क्षणमें जलमय होजावें; क्षणमें सब स्थान अग्निसे पूर्ण होजावें, क्षणमें सूर्य्य का प्रकाश भासे और क्षणमें सर्व ओर से अन्धकार भासे । निदान महा भयानक युद्धहोने लगा । दैत्य आकाशमें उड़ २ के युद्ध करें और देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावें और जैसे पंखसे रहित पहाड़ गिरते हैं तैसेही दैत्यों के अनेक समूह गिरके भूमिलोक में आपड़े और उनमें किसी का शिर, किसी की भुजा और किसी के हाथ पैर कटे हैं । वृक्षों और पहाड़ों के समान उनके शरीर गिर २ पड़े और अनेक संकटको देवता और दैत्य प्राप्तहुये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसुरासुरयुद्धवर्णन न्नामअष्टाविंशतितमस्सर्ग्गः २८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! देवताओं का धैर्य्य नष्ट होगया और युद्ध त्याग के अन्तर्द्धान हुये और पैंतीस वर्षके उपरान्त फिर युद्ध करनेलगे। कभी पांच वा सात; कभी आठ दिन के उपरान्त युद्ध करते थे और फिर छिपजाते थे ऐसे विचारकर छल से वे उन से युद्ध करें, कभी दाम, व्याल, कटके निकट जावें; कभी दाहिने, कभी बायें कभी आगे और कभी पीछे दौड़ने लगे और इधर उधर देखके मारनेलगे। इसप्रकार जब देवताओं ने बहुत उपाय किया तब युद्धके अभ्यास से दाम, व्याल, कट भी देवताओं के पीछे दौड़ने लगे और इधर उधर देखने लगे और अपने देहादिक में उनको अहङ्कार फुरआया। हे रामजी ! जैसे निकटता से दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है दूरका नहीं पड़ता, तैसेही अतिशय अभ्यास से अहङ्कार फुर आता है—अन्यथा नहीं फुरता। जब अहङ्कार उनको फुरा तब पदार्थ की वासना भी फुरआई और फिर यह फुरा कि, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसी प्रकार जीते रहें; इस इच्छासे वे दीनभावको प्राप्तहुये और भयपाने लगे कि, इस प्रकार हमारा नाशहोगा; इस प्रकार हमारी रक्षाहोगी; वही उपायकरें जिससे हम जीते रहें। इस प्रकार आशाकी फांस में बँधेहुये वे दीनभावको प्राप्तहुये और आपको देहमात्र में आस्था करने लगे कि, देहरूपी लता हमारी स्थिररहै; हम सुखीहों, इस वासना संयुक्त हो और पूर्वका धैर्य्य त्यागके वे जानने लगे कि, यह हमारेशत्रु नाशकर्त्ता हैं, इनसे किसी प्रकार बचें। उनका धैर्य्य नष्टहोगया और जैसे जल विना कमलकी शोभाजाती रहती है तैसेही इनकी शोभाजातीरही; खाने पीने की वासना फुरआई और संसारकी भयानक गतिको प्राप्तहुये। तब वे आश्रय लेकर युद्ध करने लगे और ढाल आदिक आगे रक्खें। वे अहङ्कारसे ऐसे भयभीत हुये कि, ये हमको मारते हैं, हम इनको मारते हैं। इस चिन्ता में इन सबके हृदय फँसगये और शनैः शनैः युद्ध करनेलगे। जब देवता शस्त्र चलावें तब वे बचजावें और भयभीत होकर भागें। अहङ्कार के उदय होने से उनके मस्तकपर आपदाने चरण रक्खा और वे महादीन होगये और ऐसे होगये कि, यदि कोई उनके आगे पड़े तौभी उसको न मारसकें। जैसे काष्ठ से रहित अग्नि क्षीर को नहीं भक्षण करती तैसेही वे निर्बल होगये। उनके अंग काटेजावें तो वे भागजावें और जैसे समान शूर युद्धकरते हैं तैसेही युद्ध करनेलगे। हे रामजी ! कहां तक कहूं वे मरने से डरने लगे और युद्ध न करसके तब देवता वज्र आदिक से उनको प्रहार करने लगे जिनसे वे चूर्ण होगये और भयभीत होकर भागे। निदान दैत्यों की सब सेना भागी और जो जो देश देशान्तर से आये थे वह भी सब भागे; कोई किसी देशको, कोई किसी देशको, पहाड़, कन्दरा और जलमें चले गये और जहां जहां स्थान देखा वहां वहां चले गये। निदान जब दैत्य भयभीत

होकर हारे और देवताओं की जीतहुई तो दैत्य भागके पाताल में जाकर छिपरहे ॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम, व्याल, कटोपाख्यानेऽसुरहतनन्नाम एकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः २९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तब देवता प्रसन्नहुये और देवताओं का भय पाके दाम, व्याल, कट पाताल में गये और शम्बरसेभी डरे । शम्बर प्रलयकाल की प्रज्वलित अग्नि का रूपथा उसका भयकर दाम, व्याल, कट सातवें पातालमें गये और दैत्यों के मण्डलको छेदके जहां यमकिङ्कर रहते हैं उसमें कुकुहा नाम होकर जारहे । नरकरूपी समुद्रके आपालक यमकिङ्करों ने दयाकरके इनको बैठाया और जैसे पापीको चिन्ता प्राप्त होती है तैसेही इनको स्त्रियां प्राप्तहुईं उनकेसाथ सातवें पाताल में रहे । फिर इनके पुत्र पौत्रादिक बड़ी सन्तान हुई और उन्हों ने सहस्त्रवर्ष वहां व्यतीत किये । वहां उनको यह वासना दृढ़होगई कि, 'यह मैंहूं; 'यहमेरी स्त्रीहै' और पुत्र कलत्र बांधवों में बहुत स्नेह होगया । एककाल में वहां अपनी इच्छासे धर्म्मराज नरक के कुछ कामके लिये आया और उसको देख के सब किंकर उठखड़ेहुये और प्रणामकिया पर दाम, व्याल, कटने जो उसकी बड़ाई न जानते थे उसे किंकर समान जान के प्रणाम न किया । तब यमराज ने क्रोधकिया और समझा कि, ये दुष्ट मानी हैं इनको शासना देनीचाहिये । इसप्रकार विचार करके यमने किंकरको सैनकी कि, इनको परिवार संयुक्त अग्निकी खाईं में डालदो यह सुन वे रुदन करने और पुकारने लगे पर इनको उन्हों ने डालदिया और परिवार संयुक्त नरककी अग्नि में वे ऐसे जले जैसे दावाग्नि में पत्र, टास, फूल, फल संयुक्त वृक्ष जलजाता है । तब मलिन वासनासे वे क्रान्तदेशके राजाके धीवरहुये और जीवों की हिंसाकरतेरहे । जब धीवरका शरीर छूटा तब हाथी हुये; फिर चीलहुये; फिर बगुले हुये; फिर तिरगत देशमें धीवरहुये और फिर बर्बरदेशमें मच्छरहुये और मगध देश में कीटहुये । हे रामजी ! इसप्रकार दाम, व्याल, कट; तीनोंने वासनासे अनेक जन्म पाये और फिर काश्मीर देशमें एकताल है उसमें तीनों मच्छरहुये हैं । वनमें अग्नि लगीथी इसलिये उसका जलभी सूखगया है, अल्पजल उष्णरहाहै उस में रहते हैं और वही जल पानकरते हैं; मरते हैं, न जीते हैं, जिनकी जो सम्पदा है उसको भी नहीं भोगते-चिन्तासे जलते हैं । हे रामजी ! अज्ञानसे जीव अनेकबार जन्मते मरते हैं । जैसे समुद्र में तरंग उपजते और मिटते हैं और जलके भँवरमें तृण भ्रमताहै तैसेही वासनासे भ्रमसे वे फिरें । अब तक उनको शान्ति नहीं प्राप्तहुई । अहङ्कार वासना महादुःखका कारण है; इसके त्यागसे सुख है अन्यथा सुख कदाचित नहीं ॥
श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम, व्याल, कटजन्मान्तरवर्णनन्नामत्रिंशत्तमस्सर्गः ३०

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रबोधके निमित्त मैंने तुमको दाम, व्याल, कटका न्याय कहाहै; उनकी नाईं तुम मतहोना। अविवेकी का निश्चय ऐसा है कि, अनेक आपदाको प्राप्त करता है और अनन्त दुःख भुगाता है; कहां शम्बरदैत्यकी सेना के नाथ और देवतों के नाशकर्त्ता और कहां तप्तजलके मच्छहो जर्जरीभावको प्राप्तहुये; कहां वह धैर्य्य और बल जिससे देवताओं को नाशकरना और भगाना और आप चलायमान न होना और कहां कान्तदेश के राजाके किंकर धीवर होना! कहां वह निरहंकारचित्त, शान्ति,उदारता और धैर्य्य और कहां वासना से मिथ्या अहंकार से संयुक्त होना। इतने दुःख और आपदा केवल अहंकार से हुये। अहंकार से संसार-रूपी विषकी मंजरी शाखा प्रतिशाखा बढ़ती है। संसाररूपी वृक्षका बीज अहंकार है। जबतक अहंकार है तबतक अनेक दुःख और आपदा प्राप्त होती हैं; इससे तुम अहंकारको यत्नकरके मार्ज्जनकरो। मार्ज्जन करना यहहै कि, अहंवृत्तिको असत्‌रूप जानो कि, 'मैं कुछ नहीं'। इस मार्ज्जन से सुखी होगे। हे रामजी! आत्मरूपी अमृत का चन्द्रमा है, और शीतल और शांतरूप उसका अंगहै; अहंकाररूपी मेघसे वह अदृष्ट हुआ नहीं भासता। जब विवेकरूपी पवनचले तब अहंकार बादल नष्टहो और आत्मारूपी चन्द्रमा प्रत्यक्ष भासे। जब अहंकाररूपी पिशाच उपजा तब तो दाम, व्याल, कट तीनों मायारूप दानव सत्‌होके अनेक आपदाओंको भोगते हैं। अब तक वे काश्मीरके तालमें मच्छरूपसे पड़े हैं और सिवालके भोजन करनेको यत्न करते हैं; जो अहंकार न होता तो इतनी आपदा क्यों पाते? रामजी बोले, हे भगवन्! सत्‌का अभाव नहीं होता और असत्‌का भावनहीं होता। असत् दाम, व्याल, कट सत् कैसेहुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकारहै कि, जो सत् नहीं सो किसीको कभी कुछ भान नहीं होता परन्तु कोई सत् असत् को प्राप्तहुआ देखता है और कोई असत्‌को नहीं हुआ देखताहै—जो स्थितहुआहै। इसी तुम्हारे कहनेसे मैं युक्ति से तुमको प्रबोध करूंगा। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! हम, तुम जो ये सब हैं वे सत्य-रूपहैं और दामादिक मायामात्र असत्‌रूप थे वे सत् कैसे हुये, यह कहिये? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! जैसे दामादिक मायारूप मृगतृष्णाके जलवत् असत्‌से स्थितहुये थे तैसेही तुम, हम, देवता, दानव सम्पूर्ण संसार असत् मायामात्र सत् होके भासता है वास्तवमें कुछनहीं। जैसे स्वप्नेमें जो अपना मरना भासताहै वह असत्‌रूप है तैसेही हम, तुम आदिक यह जगत् असत्‌रूप है। जैसे स्वप्ने में जो अपने मरे बान्धव आन मिलते हैं और प्रत्यक्ष चर्चा करते भासते हैं वे असत्‌रूप होते हैं; तैसेही यह जगत् भी असत्‌रूप है। हे रामजी! ये मेरे वचन मूढ़को विषयभूत नहीं, उनको नहीं शोभते क्योंकि; उनके हृदयमें संसारका सद्भाव दृढ़ होगयाहै और अभ्यास विना

इस निश्चयका अभाव नहीं होता। जैसा निश्चय किसी के हृदयमें दृढ़ होरहाहै वह दृढ़ अभ्यासके यत्न विना कदाचित् दूरनहीं होता। जिसको यह निश्चयहै कि, जगत् सत् है वह मूर्ख उन्मत्तहै और जिसके हृदयमें जगत् का सद्भाव नहीं होता वह ज्ञानवान् है, उसे केवल ब्रह्मसत्ता का भाव होताहै और अज्ञानी को जगत् सत् भासता है अज्ञानी के निश्चय को ज्ञानी नहीं जानता और ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता। जैसे मदमत्त के निश्चय को अमत्त नहीं जानता और अमत्त के निश्चय को मत्त नहीं जानता तैसेही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय इकट्ठा नहीं होता। जैसे प्रकाश और अन्धकार और धूप और छाया इकट्ठी नहीं होतीं तैसेही ज्ञानी और अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता। जिसके चित्तमें जो निश्चय है उसको जब वही अभ्यास और यत्न करके दूरकरे तब दूर होताहै अन्यथा नहीं होता। ज्ञानी भी अज्ञानी के निश्चय को दूर नहीं करसक्ता; जैसे मृतक की जीवकला को मनुष्य ग्रहण नहीं करसक्ते कि, उसके निश्चयमें क्या है। जो ज्ञानवान् है उसके निश्चयमें सर्व ब्रह्मका भान होता है और उसे जगत् द्वैत नहीं भासता और उसी को मेरे वचन शोभते हैं। आत्मअनुभव सर्वदा सत्‌रूप है और सब असत् पदार्थ हैं। ये वचन प्रबुध के विषय हैं और उसीको शोभते हैं। अज्ञानी को जगत् सत् भासता है इससे ब्रह्मवाणी उसको शोभा नहीं देती। ज्ञानी को यह निश्चय होता है कि, जगत् रंचकमात्रभी सत्यनहीं, एक ब्रह्मही परमसत्ता स्वरूपहै। यह अनुभव बोधवान्‌काहै, उस के निश्चय को कोई दूरनहीं करसक्ता कि, परमात्मासे व्यतिरेक कुछनहीं। जैसे सुवर्ण में भूषणभाव नहीं तैसेही आत्मामें सृष्टिभाव नहीं। अज्ञानी को पंचभूत से व्यतिरेक कुछ नहीं भासता, जैसे सुवर्ण में भूषण नाममात्र है तैसेही वह आपको नाममात्र जानता है। सम्यक्‌दर्शी को इससे विपरीत भासताहै। जो पुरुषहोके कहे, 'मैं घटहूं' तो जैसे यह निश्चय उन्मत्तहै तैसेही हम तुम आदिक भी असत्‌रूप हैं; सत् वही है जो शुद्ध, संवित्‌बोध, आकाश, निरंजन, सर्वगत, शान्तरूप, उदय—अस्त से रहित है। जैसे नेत्र दूषणवाले को आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही अज्ञानी को जगत् सत रूप भासता है। आत्मसत्ता में जैसा जैसा किसी को निश्चय होगया है तैसाही तत्काल हो भासता है, वास्तवमें जैसे दामादिक थे तैसेही तुम हम आदिक जगत् हैं और अनन्त चेतन आकाश सर्व्वगत निराकार में स्फूर्ति है वही देहाकारहो भासती है। जैसे संवित्‌का किंचन दामादिक निश्चय से आकारवान् हो भासे तैसेही हम तुम भी फुरनेमात्र हैं और संवेदन के फुरनेही से स्थितहुये हैं। जैसे स्वप्ननगर और मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही हम तुम आदिक जगत् आत्मरूप भासते हैं। प्रबुध को सब चिदाकाशही भासता है और सब मृगतृष्णा और स्वप्ननगरवत् भासता है।

जो आत्माकी ओर जागे हैं और जगत्की ओर सोये हैं वे मोक्षरूप हैं; और जो आत्माकी ओर से सोये और जगत्की ओर जागे हैं वे अज्ञानी बन्धरूप हैं पर वास्तवमें न कोई सोये हैं, न जागे हैं, न बँधे हैं, न मोक्ष हैं, केवल चिदाकाश जगत्रूप होके भासता है। निर्वाणसत्ताही जगत् लक्ष्मी होकर स्थित हुई है और जगत् निर्व्वाणरूप है-दोनों एक वस्तुके पर्याय हैं। जैसे तरु और विटप एकही वस्तु के दो नाम हैं तैसेही ब्रह्म और जगत् एकही वस्तुके पर्य्याय हैं। जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं और हैं नहीं केवल आकाशही है तैसेही अज्ञानी को ब्रह्ममें जो जगत् भासते हैं वे हैं नहीं ब्रह्मही है। जैसे नेत्रमें तिमिररोगवाले को जो तरवरे भासते हैं वे तरवरे नेत्ररोगसे भिन्न नहीं तैसेही अज्ञानी को अपना आपही अन्यत्रूप चिदाकाश स्थानमें भासता है वह चिदाकाश सर्व ओर व्यापकरूपहै और उससे भिन्न जगत् असत् है। सत्यरूप, एक, विस्तृत आकार, महाशिलावत्, घनस्वच्छ, निस्पन्द, उदय अस्तसे रहित वही सत्ताहै इसलिये सर्व कलनाको त्यागकर उसी अपने आपमें स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेनिर्वाणोपदेशोनामएकत्रिंशत्तमस्सर्गः ३१॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! असत् सत्की नाईं होके जो स्थित हुआहै वह बालक को अपनी परछाहींमें वेतालवत् भासता है सो जैसे हुआ तैसे हुआ, अब आप यह कहिये कि; दाम, व्याल, कटके दुःखका अन्त कैसे होगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब उनको यमराजने अग्निमें भस्म कराया तब यमराजसे किङ्करोंने पूंछा कि, हे प्रभो! इनका उद्धार कब होगा? तब यमराजने कहा, हे किङ्करो जब ये तीनों आपसमें बिछुर जावेंगे और अपनीसम्पूर्ण कथा सुनेंगे तब निःसन्देहहोके मुक्तहोंगे यही नीतिहै। रामजी ने फिर पूंछा, हे भगवन्! वह वृत्तान्त कहां सुनेंगे, कब सुनेंगे और कौन निरूपण करेगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! काश्मीरदेश में कमलों से पूर्ण एक बड़ा तालहै और उसके निकट एक छोटा तालहै उसमें वे चिरपर्यन्त वारंवार मच्छ होंगे और मच्छ का शरीर त्याग करके सारस पक्षी होके कमलों के तालपर रहकर कमल, कमलिनी और उत्पलादिक फूलोंमें विचरेंगे और सुगन्धको लेते चिरकाल व्यतीत करेंगे। दैवसंयोगसे उन के पाप नष्ट होंगे और बुद्धि निर्म्मल होआवेगी तब तीनों आपस में बिछुर जावेंगे और युक्तिसे मुक्ति पावेंगे। जैसे राजस, तामस, सात्विकगुण आपमें स्वेच्छित बिछुर जाते हैं तैसेही वे भी स्वेच्छित बिछुर जावेंगे। काश्मीर देश में एक पहाड़ है उस के शिखर पर एक नगर बसेगा तिसका नाम प्रद्युम्न होगा और उस शिखर पर कमलों से पूर्ण एक ताल होगा जहां राजाका एक स्थान होगा और ईशान कोणकी ओर उसका मन्दिर होगा। उस मन्दिर के छिद्रमें व्याल नामक दैत्य आलय बना चिड़िया होकर रहेगा और निरर्थक शब्द करेगा। उस काल में श्रीशङ्कर नाम राजा गुण और भूतिसे

सम्पन्न मानों दूसरा इन्द्र होगा और उसके मन्दिरकी छतिकी कड़ीके छिद्रमें दामनाम दैत्यमच्छरहोकर भूं भूं शब्दकरता विचरेगा। कटनाम दैत्य वहांक्रीड़ाकापक्षीहोगा और रत्नोंसे जड़ेहुये पिंजड़ेमेंरहेगा। उसराजाका नरसिंहनाम मन्त्री बड़ा बुद्धिमान् होगा। जैसे हाथमेंआंवला होताहै तैसेही उस मन्त्रीको बन्ध और मुक्तिका ज्ञान प्रसिद्धहोगा। वह मन्त्री राजाके आगे दाम, व्याल, कटकी कथा श्लोक बांधकर कहेगा तब वह करकर नाम पक्षी अर्थात् कट दैत्यको पिंजड़े में सुनने से अपना वृत्तान्त सब स्मरण होगा और उसको विचारेगा तब उसका मिथ्या अहङ्कार शान्तहोगा और वह परम निर्वाणसत्ताको प्राप्त होगा। इसी प्रकार राजाके मन्दिर में चिड़िया हुआ व्यालनाम दैत्यभी सुनकर परमनिर्वाण सत्ताको प्राप्त होगा और लकड़ी के छिद्रमें मच्छर हुआ दाम नाम दैत्यभी मोक्षहोगा। हे रामजी! यह सम्पूर्ण क्रम मैंने तुम से कहाहै। यह संसार भ्रम मायामय है और अत्यन्त भास्वर प्रकाशरूप भासता है पर महाशून्य और अविचार सिद्धहै विचार करके ज्ञानहुये से शान्त होजाताहै-जैसे मृगतृष्णा का जल भली प्रकार देखे से शान्त होजाताहै। यद्यपि अज्ञानी बड़े पदको प्राप्त होता है तौ भी मोहसे अधो से अधो चलाजाता है—जैसे दाम, व्याल, कट महाजालमें पड़े थे। कहां तो वह बल कि, भौंह टेढ़ी करने से सुमेरु और मन्दराचलसे पर्वत गिरजावें और कहां राजाके गृह में काष्ठके छिद्रमें मच्छर हुये; कहां वह बल जिसके हाथकी चपेट से सूर्य और चन्द्रमा गिर पड़ें और कहां प्रद्युम्न पहाड़ के गृह छिद्र में चिड़िया होना; कहां वह बल जो सुमेरु पर्वतको पीले फूलकी नाईं लीला करके उठालेना और कहां पहाड़ के शिखरपर गृह में पक्षी होना। एक अज्ञानरूपी अहंकार से इतनी लघुता को जीव प्राप्त होते हैं और अज्ञान से रञ्जित हुये मिथ्याभ्रम देखते हैं। प्रकाशरूप चिदाकाश सत् विना इनको भासता है और अपनी वासनाकी कल्पना से जगत् सत् रूप भासता है। जैसे मृगतृष्णाका जल भ्रमसे सत् भासता है तैसेही अपनी कल्पना से जगत् सत् भासता है। इस संसारसमुद्र को कोई नहीं तरसक्ता जो पुरुष शास्त्रके विचारद्वारा निर्वासनिक हुआ है और जो संसार निरूपण शास्त्र का, जिसका प्रकाशरूप शब्द है, आश्रय करताहै वह संसारके पदार्थोंको शुभरूप जानताहै; इससे नीचे गिरताहै-जैसे कोई गढ़े को जलरूप जानके स्नान के निमित्त जावे और गिरपड़े। हे रामजी! अपने अनुभवरूपी प्रसिद्ध मार्ग में जो प्राप्तहुये हैं उनका नाश नहीं होता वे सुखसे स्वच्छन्द चलेजाते हैं-जैसे पथिक सूधेमार्ग में चलाजाताहै। ब्रह्मनिरूपक शास्त्र निर्वेदमार्ग है और संसार निरूपक शास्त्र दुःखदायक मार्ग है। यह जगत् असत् रूप और भ्रान्तिमात्र है; जिसकी बुद्धि इसी में है कि, ये पदार्थ और ये सुख मुझको प्राप्त हों वे इस प्रकार संसार के विषय की तृष्णा करते हैं

और वे अभागी हैं और जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् घास और तृणकी नाईं तुच्छ भासता है। जिसपुरुष के हृदयमें परमात्मा का चमत्कार हुआहै वह इस ब्रह्माण्ड खण्डलोक और लोकपालों को तृणवत् देखता है। जैसे जीव आपदा को त्यागताहै तैसेही उसके हृदय में ऐश्वर्य्यभी आपदारूप त्यागने योग्यहै। इससे हृदय से निश्चयात्मक तत्त्वमें रहो और बाहर जैसा अपना आचारहै तैसा करो। आचारका व्यतिक्रम न करना क्योंकि व्यतिक्रम करने से शुभ कार्य्य भी अशुभ होजाताहै—जैसे राहु दैत्य ने अमृतपान करने का यत्न किया था पर व्यतिक्रम से शरीर कटा। इससे शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्याण का कारणहै। सन्तजनोंकी सङ्गति और सत् शास्त्रोंके विचार से बड़ा प्रकाश प्राप्तहोता है। जो पुरुष इनको सेवता है वह मोह अन्धकूप में नहीं गिरता। हे रामजी! वैराग्य, धैर्य्य, सन्तोष, उदारता आदिक गुण जिसके हृदय में प्रवेश करते हैं वह पुरुष परम सम्पदावान् होता है और आपदा को नष्ट करता है। जो पुरुष शुभगुणों से सन्तुष्ट है और सत् शास्त्र के श्रवण राग में राग है और जिसे सत्की वासना है वही पुरुष है; और सब पशु हैं। जिसमें वैराग्य, सन्तोष, धैर्य्य आदि गुणों से चांदनी फैलती है और हृदयरूपी आकाश में विवेकरूपी चन्द्रमा प्रकाशता है वह पुरुष शरीर नहीं मानों क्षीरसमुद्र है; उसके हृदय में विष्णु भगवान् विराजते हैं। जो कुछ उसको भोगना था वह उसने भोगा और जो कुछ देखना था वह देखा फिर उसे भोगने और देखने की तृष्णा नहीं रहती। जिस पुरुष का यथाक्रम और यथा शास्त्र आचार और निश्चय है उस को भोगकी तृष्णा निवृत्त होजाती है और उस पुरुष के गुण आकाश में सिद्ध, देवता और अप्सरा गान करते हैं और वही मृत्यु से तरताहै भोग के तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते। हे रामजी! जिन पुरुषों के गुण चन्द्रमा की नाईं शीतल हैं और सिद्ध और अप्सरा जिनका गान करते हैं वेही पुरुष जीते हैं और सब मृतक हैं। इस से तुम परम पुरुषार्थ का आश्रय करो तब परमसिद्धता को प्राप्त होगे। वह कौन वस्तु है जो शास्त्रानुसार अनुद्वेग होकर पुरुषार्थ किये से प्राप्त न हो? कोई वस्तु क्यों न हो अवश्यमेव प्राप्त होतीहै यदि चिरकाल व्यतीत होजावे और सिद्धि न हो तो भी उद्वेग न करे तो वह फल परिपक्व होकर प्राप्त होगा—जैसे वृक्ष से जब परिपक्व होके फल उतरता है तब अधिक मिष्ट और सुखदायक होता है। यथा शास्त्र व्यवहार करनेवाला उस पदको प्राप्त होता है जहां शोक, भय और यत्न सब नष्ट होजाते हैं और शांतिमान् होताहै। हे रामजी! मूर्खजीवों की नाईं संसारकूप में मत गिरो! यह संसार मिथ्या है। तुम उदार आत्मा हो; उठखड़े हो और अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो और इस शास्त्र को विचारो। जैसे शूर रणमें प्राण निकलने लगे तो भी

नहीं भागता और शस्त्र को पकड़ के युद्ध करता है कि, अमर पद प्राप्तहो; तैसेही संसाररूपी रण में शस्त्र पुरुषार्थ है; यही पुरुषार्थ करो और शास्त्र को विचारो कि, कर्त्तव्य क्या है । जो विचार से रहित हैं वह दुर्भागी दीनता और अशुभ को प्राप्त करनेवाला है। महामोहरूपी घननिंद्राको त्याग करके जागो और पुरुषार्थ को अङ्गीकार करो जो जरा–मृत के शांतिका कारण है और जो कुछ अर्थ है वह सब अनर्थ रूप है; भोग सब रोगके समान हैं और सम्पदा सब आपदारूप हैं ये सब त्यागने योग्य हैं । इसलिये सन्मार्ग्ग को अङ्गीकार करके अपने प्राकृत आचार में विचरो और शास्त्र और लोक मर्य्यादाके अनुसार व्यवहार करो क्योंकि, शास्त्रके अनुसार कर्म्म का करना सुखदायक होता है । जिस पुरुषका शास्त्र के अनुसार व्यवहार है उसका संसार दुःख नष्ट होजाता है और आयुर्बल, यश, गुण और लक्ष्मीकी वृद्धि होतीहै । जैसे वसन्तऋतुकी मञ्जरी प्रफुल्लित होतीहै तैसेही वह प्रफुल्लित होताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णनन्नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सर्व्वदुःखका देनेवाला और सर्व्व सुखका फल, सब ठौर, सब कालमें, सब की अपने कर्म्म के अनुसार होताहै । एक दिन नन्दीगणने एक सरोवर पर जाके सदाशिवका आराधनकिया और सदाशिव प्रसन्नहुये तो उसने मृत्यु को जीता, प्रथम नन्दी था सो नन्दीगण नाम हुआ और मित्र, बांधव सबको सुख देनेवाला अपने स्वभावसे यत्न करके हुआ । शास्त्र के अनुसार यत्न करने से दैत्य क्रमसे देवताओंको जो सबते उत्कृष्ट हैं मारते हैं । मरुत् राजाके यज्ञमें संवृत नामक एक महाऋषि आया और उसने देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि अपने पुरुषार्थ से रची–मानों दूसरा ब्रह्माथा और विश्वामित्र ने वारंवार तपकिया और तपकी अधिकता और अपनेही शुद्धाचार से राजर्षि से ब्रह्मर्षिहुये । हे रामजी ! उपमन्युनाम एक दुर्भागी ब्राह्मण था और उसको अपने गृह में भोजन की सामान्य प्राप्तिहोती । निदान एकदिन उसने एक गृहस्थके घर पितासंयुक्त दूध, चावल और शर्करा सहित भोजन किया और अपने गृह में आ पितासे कहनेलगा मुझको वही भोजनदो जो खायाथा । पिताने सांवेके चावल और आटेकादूध घोलके दिया और जब उसने भोजनकिया तब वैसा स्वाद न लगा; तो फिर पिता से बोला कि, मुझको वही भोजनदो जो वहां खायाथा । पिताने कहा, हे पुत्र ! वह भोजन हमारेपास नहीं, सदाशिवके पास है; जो वे देवें तो हमखावें । तब वह ब्राह्मण सदाशिवकी उपासना करनेलगा और ऐसातपकिया कि, शरीर अस्थिमात्र होरहा और रक्तमांस ! सब सूख गया । तब शिवजीने प्रसन्न होकर दर्शनदिया और कहा, हे ब्राह्मण ! जो तुमको

इच्छाहै वह वरमांगो। ब्राह्मणने कहा दूध और चावलदो ? तब सदाशिवने कहा दूध और चावल क्या कुछ और मांग पर जो तूने कहाहै तो यहीभोजनकियाकर। तबउसको वहीभोजन प्राप्तहुआ और शिवजी ने कहा जब तू चिन्तन करेगा तब मैं दर्शनदूंगा। हे रामजी ! यहभी अपना पुरुषार्थ हुआ। त्रिलोकीकी पालना करनेवाले विष्णु को भी काल तृणकीनाईं मर्दन करताहै पर उसकालको श्वेतने उद्यम करके जीताहै और सावित्रीका भर्त्ता मृतक हुआ था पर वह पतिव्रताथी उसने स्तुति और नमस्कार करके यमको प्रसन्नकिया और भर्त्ताको परलोकसेलेआई—यहभी अपनाही पुरुषार्थ है। श्वेतनाम एक ऋषीश्वर था उसने अपने पुरुषार्थ से कालको जीतके मृत्युञ्जय नाम पाया। इससे ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो यथा शास्त्र उद्यमकिये से प्राप्त न हो। अपने पुरुष प्रयत्न का त्यागकरना न चाहिये; इससे सुख, फल और सर्वकी प्राप्ति होती है। जो अविनाशी सुखकी इच्छाहो तो आत्मबोधका अभ्यासकरो। और जो कुछ संसार के सुख हैं वे दुःखसे मिलेहुये हैं और आत्मसुख सब दुःखका नाशकर्त्ता है किसी दुःखसे नहीं मिला वास्तव कहिये तो सम असम सर्व ब्रह्महीं है पर तौभी सम परम कल्याणका कर्त्ता है। इससे अभिमान का त्याग करके समका आश्रय करो और निरन्तर बुद्धिसे विचार करो। जब यत्नकरके सन्तोंका संगकरोगे तब परमपदको प्राप्त होगे। हे रामजी ! संसार समुद्र के पार करने को ऐसा समर्थ कोई तप नहीं और न तीर्थ है। सामान्य शास्त्रोंसेभी नहीं तरसक्ता, केवल सन्तजनों के सेवने से भवसागरसे सुख से तरताहै। जिसपुरुष के लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिनदिन प्रति क्षीण होते जातेहैं और यथा शास्त्र जिसके कर्म हैं ऐसे पुरुष को सन्त और आचार्य्य कहते हैं। उसकी संगति संसार के पापकर्मोंसे निवृत्त करती है और शुभ में लगाती है। आत्मवेत्ता पुरुषकी संगतिसे बुद्धि में संसारका अत्यन्त अभाव होजाताहै। जब दृश्यका अत्यन्त अभाव हुआ तब आत्मा शेषरहताहै। इस क्रमसे जीवका जीवनभाव निवृत्त होजाताहै और बोधतत्त्व शेषरहताहै। जगत् न उपजताहै, न आगे होगा और न अब वर्त्तमानमें है। इस प्रकार मैंने तुमसे अनन्त युक्तिसे कहाहै और कहूंगा। ज्ञानवान्को सर्वदा ऐसाही मन होताहै। अचल चिदात्मा में चञ्चलचित्त फुराहै और उसीने जगत् आभास रचाहै। जैसे २ वह फुरताहै तैसेही तैसे भासताहै और वास्तव में कुछ नहीं। जैसे सूर्य्य और किरणोंमें कुछ भेदनहीं। तैसेही जगत् और आत्मामें कुछ भेद नहीं। अहंरूप आत्मामें आपको न जाननाही आत्माकाश में मेघरूपी मलिनताहै। जब परमार्थमें अहंभावको जानेगा तब अनात्ममें अहंभाव लीन होजावेगा और तभी चिदाकाशसे जीवकी अत्यन्त एकता होती है। जैसे घटके फूटे से घटाकाशकी महाकाश से एकता होती है। निश्चय करके जानो कि, अहंआदिक दृश्य वास्तव में कुछ नहीं है विचार

किये से नहीं रहता । जैसे बालककी परछाहीं में पिशाच भासता है सो भ्रांतिमात्रहोताहै तैसेही यह जगत् भ्रांति सिद्ध है, अपनी कल्पनासे भासता है और दुःखदायक होताहै पर विचार किये से नष्टहोजाता है । हे रामजी ! आत्मरूपी चन्द्रमा सदा प्रकाशित है और अहंकाररूपी बादल उसके आगे आताहै उससे परमार्थ बुद्धिरूपी कमलिनी विकाशको नहीं प्राप्तहोती; इससे विवेकरूपी वायुसे उसको नष्टकरो । नरक, स्वर्ग, बन्ध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त्याग आदिक सब अहंकार से फुरते हैं । हृदयरूपी आकाशमें अहंकाररूपी मेघ जबतक गरजता और वर्षा करताहै तबतक तृष्णारूपी कण्टक मञ्जरी बढ़तीजाती है । जबतक अहंकाररूपी बादल आत्मरूपी सूर्य्यको आक्रमण करता है तबतक जड़ता और अन्धकार है और प्रकाश उदय नहीं होता । अहंकार वृक्षकी अनन्तशाखा फैलती हैं । 'अहं' 'मम' आदिक विस्तार अनेक अर्थों को प्राप्त करताहै । जो कुछ संसार में सुख दुःख आदिक प्राप्तहोता है वह सब अहंकारसे प्राप्तहोता है । संसाररूपी चक्रकी अहंकार नाभि है जिससे भ्रमता है और 'अहं' 'मम' रूपी बीजसे अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परंपरा उदय और क्षयहोती है और कभी नष्ट नहीं होता । इससे यत्न करके इसका नाशकरो । जबतक अहंकाररूपी अन्धकार है तबतक चिन्तारूपी पिशाचिनी विचरती है और अहंकाररूपी पिशाच ने जिसको ग्रहण किया है उस नीच पुरुषको मन्त्र तन्त्रभी दीनतासे छुड़ा नहींसक्ते । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! निर्मल चिन्मात्र आत्मसत्ता जो अपने आपमें स्थित है उसमें अहंकाररूपी मलीनता कहांसे प्रतिबिम्बित हुई ? वशिष्ठजी बोले, हे राघव ! अहंकार चमत्कार जो भासता है वह वास्तव धर्म्म नहीं, मिथ्या है, वासना भ्रमसे हुआ है और पुरुष प्रयत्न करके नष्ट होजाताहै । न मैं हूं, न मेरा कोई है, 'अहं' 'मम' में कुछसार नहीं । जब अहंकार शांतहोगा तब दुःखभी कोई न रहैगा । जब ऐसी भावना का निश्चय दृढ़होगा तब अहंकार नष्ट होजावेगा । आत्मामें अहं कोई नहीं, दृश्यमें सारे हैं । इसप्रकार जब फुरना शान्त हुआ तब अहंकार भी नष्ट होजावेगा और जब अहंकार नष्टहुआ तब हेयोपादेय बुद्धि भी शान्त होजावेगी और समता आदिक प्रसन्नता उदयहोगी । अहंकारकी प्रवृत्तिही दुःखका कारणहै । रामजीने पूछा, हे प्रभो ! अहंकारका रूप क्या है; त्याग कैसे होता है; शरीर से रहित कबहोता है और इसके त्यागसे क्याफल होताहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अहंकार तीनप्रकार का है । दो प्रकारका श्रेष्ठ अहंकार अङ्गीकार करने योग्यहै और तीसरात्यागने योग्य है । इसका त्याग शरीर सहित होताहै । 'यह सब दृश्य मैंहींहूं और परमात्मा अद्वैतरूपहूं-मुझसे भिन्न कुछनहीं'; यह निश्चय परमअहंकारका है और मोक्षदेनेवाला है—बन्धन का कारण नहीं; इसमें जीवन्मुक्त विचरते हैं । यह अहंकार भी मैंने तुमको उपदेशके

निमित्त कल्पके कहाहै वास्तवमें यह भी नहीं है केवल अचेत चिन्मात्रसत्ताहै। दूसरा अहंकार यहहै कि मैंसबसे व्यतिरेकहूं और बाल के अग्रभागका सौभाग सूक्ष्म हूं; ऐसा निश्चयभी जीवन्मुक्तिकाहै और मोक्षदायक है—बन्धनका कारणनहीं। यह अहंकारभी मैंने तुमसे कल्पकेकहाहै, वास्तवमें यह कहनाभी नहीं है। तीसरा अहंकार यह है कि, हाथ, पांवआदि इतनामात्र आपको जानना; इसमें जिसका निश्चय है वह तुच्छ है और अपने बन्धनका कारण है। इसको त्यागकरो, यह दुष्टरूप परम शत्रु है; इसमें जो जीव मरते हैं वे परमार्थकी ओर नहीं आते। यह अहंकाररूपी चतुरशत्रु बड़ाबली है और नानाप्रकार के जन्म और मानसीदुःख—काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिकका देनेवाला है। यह सबजीवोंको नीच करता है और संकटमें डालताहै। इस दुष्टअहंकारके त्यागके पीछे जो शेष रहताहै वह आत्मभगवान् मुक्तरूप सत्ता है। हे रामजी! लोकमें जो बपुकी अहंकार भावनाहै कि, 'मैं यह हूं'; 'इतनाहूं'; यही दुःख का कारण है। इसको महापुरुषोंने त्यागकिया है; वे जानते हैं कि, हम देहनहीं हैं; शुद्ध चिदानन्द स्वरूपहैं। प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुमको कहे हैं वह अंगीकार करने योग्य और मोक्षदायकहैं और तीसरा अहंकार त्यागने योग्यहै क्योंकि; दुःखका कारण है। इसी अहंकारको ग्रहणकरके दाम, व्याल, कट आपदाको प्राप्तहुये जो महाभयदायक है और कहने में नहीं आती और जिन्होंने भोगीहै उनको क्या कहना है; वह जानतेही हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! तीसरा अहंकार जो आपने कहा है उसका त्यागकिये से पुरुषका क्याभाव रहताहै और उसको क्या विशेषता प्राप्तहोती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब जीव अनात्मा के अहंकारको त्यागकरता है तब परमपदको प्राप्तहोता। जितना जितना वह त्यागकरता है उतनाही उतना दुःख से मुक्तहोताहै; इससे इसको त्यागकरके आनन्दमानहो। इसको त्यागके महापुरुष शोभता है। जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊंचेपदको प्राप्तहोगे। सर्वकाल सर्वयत्न करके दुष्टअहंकारको नष्टकरो; परमानन्द बोधकेआगे आवरणयही है, इसके त्यागसे बोधवान होते हैं। जब यह अहंकार निवृत्तहोताहै तब शरीर पुण्यरूपी होजाताहै और परमसारके आश्रयको प्राप्तहोताहै। यही परमपद है। जब मनुष्य स्थूल अहंकार का त्याग करताहै तब सर्व व्यवहार चेष्टामें आनन्दमान होताहै। जिस पुरुषका अहंकार शांतहुआ है उसको भोग और रोग दोनों स्वादनहीं देते—जैसे अमृतसे जो तृप्तहुआ है उसको खट्टा और मीठा दोनों स्वाद नहीं देते अर्थात् रागद्वेषसे चलायमान नहींहोता एकरस रहताहै। जिसका अनात्मा में अहंभाव नष्टहुआ है उसको भोगों में राग नहीं होता और तृष्णा, राग, द्वेष नष्टहोजाता है। जैसे सूर्य्यके उदय हुये अन्धकार नष्टहोजाता है तैसेही अपने दृढ़ पुरुषार्थ से जिसके हृदयसे अहंकारका अनुसंधान

नष्ट होताहै वह संसार समुद्रको तरजाताहै । इससे यही निश्चय धारण करो कि, 'नमैंहूं,' न कोई मेराहै;' अथवा, सर्व मैंहींहूं, 'मुझसे भिन्नकुछवस्तु नहीं, यह निश्चय जब दृढ़होगा तव संसारकी द्वैत भावना मिटजावेगी और केवल आत्मतत्त्वका सर्वदा भानहोगा ॥ इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटोपाख्याननामत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३३

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब दाम, व्याल, कट युद्धकरते२ भागगये तब शम्बरके नगरकी जो अवस्था हुई सो सुनो । पहाड़ के समान नगर में जब शम्बरकी जितनी कुछ सेनाथी वह सब नष्ट होगई तब देवता जीतकर अपने अपने स्थानों में जाबैठे और शम्बरभी क्षोभको पाके बैठरहा । जब कुछ वर्ष व्यतीतहुये तब देवताओं के मारने के निमित्त शम्बर फिर युक्ति विचारनेलगा कि, दामादिक जो मायासे रचे थे सो मूर्ख और बलवान् थे परन्तु मिथ्या अहंकार का बीज अज्ञान उनको था इससे उनको मिथ्या अहंकार आनफुरा जिससे वे नष्टहुये और भागे । अब मैं ऐसे योद्धारचूं जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् और निरहंकार हों और जिनको कदाचित् अहंकार न उत्पन्न हो तो उन को कोई जीतभी न सकेगा और वे सब देवताओंकी सेनामारेंगे । हे रामजी ! इसप्रकार चिन्तन करके शम्बरने मायासे इस भांति दैत्य रचे जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रचले- वे सर्वज्ञ, विद्याके वेत्ता और वीतराग आत्मा थे और यथाप्राप्त कामकरते थे । उनको आत्मभाव का निश्चयथा और आत्मरूप उत्तमपुरुष उपजे । भीम, भास और दृट उनके नाम थे । वे तीनों सम्पूर्ण जगत् को तृणवत् जानते थे और परम पवित्र उनके हृदय थे । वे गरजने और महाबलसे शब्द करनेलगे जिससे आकाश पूर्ण होगया । तब इन्द्रादिक देवता स्वर्गमें शब्द सुनके बड़ी सेना संगलेकरआये और यह बड़ेबलीभी बिजलीवत् चमत्कार करनेलगे । दोनों ओर से युद्ध होनेलगे और शस्त्रों की नदियों का प्रवाहचला पर भीम, भास, दृट धैर्य्यसे खड़ेरहे । कभी कोई शस्त्रका प्रहार लगे तब युद्धके अभ्याससे देहका मोह आनफुरे पर फिर विचारमें सावधान हों कि, हमतो अशरीर हैं और चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूपहैं; हमारे संग शरीर कहांहै । जब जब मोहआवे तब तब ऐसे विचार करें और जरामरण उनको कुछ न भासे वे निर्भय होकर वासना की जालसे मुक्तहुये शत्रुको मारते और युद्ध कार्य्य करतेथे और हेयोपादेय से रहित सम दृष्टिहो युद्ध कार्यको करतेरहे निदान दृढ़युद्ध हुआ तब देवताओं की सेना मारी गई और जो कुछ शेषरहे सो भीम, भास, दृटके भय से भागे । जैसे जल पर्वतसे उतरताहै और तीक्ष्ण वेगसे चलताहै तैसेही देवता तीक्ष्ण वेगसे भागे और क्षीरसमुद्र में विष्णु भगवान् की शरणमें गये । उनको देख के विष्णु भगवान् ने कहा कि, तुम यहां ठहरो मैं उनको युद्धकरके मारआताहूं । ऐसे कहकर विष्णु भगवान् सुदर्शन चक्र लेकर शम्बरकी ओर आये और उसका शम्बर का

बड़ा युद्धहुआ—मानो अकाल प्रलय आयाहै। बड़े बड़े पर्वत उछलने लगे और युद्ध होनेलगा तब शम्बर भागा और महाप्रकाश रूप सुदर्शन चक्रसे विष्णुजी ने उसको मारलिया। शम्बर शरीरको त्यागके विष्णुपुरी को प्राप्त हुआ और विष्णुभगवान् ने भीमभास दट के अन्तःपुर्यष्टकमें प्रवेश किया और उनकी चित्तकला जो प्राण से मिश्रित थी उसको असत् किया। जैसे पवन दीपकको निर्वाण करता है तैसेही उनकी पुर्यष्टक फुरने से निर्वाण हुई। आगे वे जीवन्मुक्त थे सो अब विदेहमुक्तहुये। हे रामजी! वे भीम, भास, दट निर्वासनिकथे इस कारण दीपकवत् निर्वाण होगये। जो वासना संयुक्त है वह बन्धमान जो निर्वासनिक है वह मुक्तरूपहै। तुमभी विवेक से निर्वासनिक हो। जब यह निश्चय होताहै कि, सब जगत् असत्रूप है तब वासना नहीं फुरती; इससे यथार्थ देखना कि, किसी जगत् के पदार्थमें आसक्त बुद्धि न हो। वासना और चित्त एकही वस्तुके नाम हैं; सर्व्वपदार्थों के शब्द और अर्थ चित्त में स्थित हैं। जब सत्का अवलोकन सम्यक्ज्ञान होगा तब यह लय होजावेगा और परमपद शेष रहेगा। जो चित्त वासना संयुक्त है उसमें अनेक पदार्थ की तृष्णा होती है। जो मुक्त है उसेही मुक्त कहते हैं और नानाप्रकार के घट पटादिक आकार चित्तफुरने से अनेकताको प्राप्त होते हैं। जैसे परछाहीं से बैताल भ्रम होताहै तैसेही नानात्वभ्रम चित्तमें भासता है। हे रामजी! जैसी जैसी वासनाको लेकर चित्त स्थित होता है तैसाही आकार निश्चय होकर भासताहै। दाम, व्याल, कट का रूप चित्तके परिणामसे विपर्यय होगया था तुमको भीम, भास, दटका निश्चय हो;। दाम, व्याल, कटका निश्चय न हो। हे रामजी! यह वृत्तान्त मुझसे पूर्वमें ब्रह्माजीने कहा था वही मैंने अब तुम से कहा है। इस संसारमें कोई बिरला सुखी है; दुःख दशा में अनेक हैं जब तुम इस संसार की भावना त्यागो गे तब देहादिक में बन्धमान न होगे और व्यवहार में भी आसक्तता न होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदाम,व्याल,कटोपाख्यान समाप्तिवर्णनन्नामचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्या से संसारकी ओर जो मन सन्मुख हुआ है उसको जिस पुरुषने जीता है वही सुखी और शूरमा है और उसही की जय है। यह संसार सर्व उपद्रवका देनेवाला है। इसका उपाय यही है कि अपने मनको वशकरे। यह मेरा शास्त्र सर्व ज्ञान संयुक्त है; इसको सुनके आप को विचारे। कि, यह जगत क्या है। ऐसे विचारकर भोग से उपरान्त होना और सत्स्वरूप आत्मा का अभ्यास करना। जो कुछ भोग इच्छा है वह बन्धनका कारण है, इसके त्यागने का नाम मोक्ष कहते हैं और सर्व शास्त्र का विस्तार है। जो विषय भोग हैं उनको विष और अग्नि

की नाईं जाने । जैसे विष और अग्नि नाशका कारण हैं तैसेही विषयभोग भी नाश का कारण हैं । ऐसे जानके इनका त्यागकरे और वारंवार यही विचारकरे कि, विषय भोग विषकी नाईं है । ऐसे विचारके जब विषयोंको चित्तसे त्यागेगो तब सेवते हुये भी ये दुःखदायक न होंगे । जैसे मन्त्रशक्ति सम्पन्न को सर्प्प दुःखदायक नहीं होता तैसेही त्यागी को भोग दुःखदायक नहीं होते । इससे संसार को सत् जानके वासना फुरती है सो दुःखका कारण है—जैसे पृथ्वी में जो बीज बोयाजाता है सोही उगता है; कटुकसे कटुक उपजता है, मिष्ट से मिष्ट उपजताहै; तैसेही जिसकी बुद्धिमें संसार के भोग वासनारूपी बीज हैं उससे दुःखकी परम्परा उत्पन्न होती है और जिसकी बुद्धि में शान्तिकी शुभ वासना गर्भित होती है उससे शुभगुण वैराग्य, धैर्य्य, उदारता और शांतिरूप उत्पन्न होते हैं । जब शुभवासनाका अनुसन्धान होगा तब मन बुद्धि निर्मलभाव को प्राप्तहोगी और जब मन निर्मल हुआ तब शनैः शनैः अज्ञान नष्ट होजावेगा और सज्जनता बुद्धिहोगी । जैसे शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला बढ़तीजाती है । जब इन शुभगुणोंकी परम्परा स्थितहोती है तब विवेक उत्पन्न होता है और उसके प्रकाशसे हृदयका मोहरूपी तम नष्ट होजाताहै तब धैर्य्य और उदारता वृद्धिहोती है । जब सत्संग और सत्शास्त्रके अभ्यासद्वारा शुभगुण उदय होते हैं तब महाआनन्दका कारण शीतल शान्तरूप प्रकट होताहै । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमाकी कान्ति आनन्ददायक शीतलता फैलती है तैसेही सत्संगरूपी वृक्षका फल प्राप्तहोताहै । हे रामजी ! सत्संगरूपी वृक्षसे विवेकरूपी फल उत्पन्न होताहै और उस विवेकरूपी फलसे समतारूपी अमृत स्रवताहै, उससे मन निर्द्वन्द और सर्वकामना से रहित निरुपद्रव होता है । मनकी चपलता शोक और अनर्थका कारण है, मन के अचल हुये सब शांतहोजाता है । शास्त्रके अर्थ धारने से सन्देह नष्ट होजाते हैं और नानाप्रकार की कल्पना जाल शान्त होजाती है । इस से जीवन्मुक्त अलेप होता है; संसार का कोई क्षोभ उस को स्पर्श नहीं करता और वह निरीच्छित, निरुपस्थित, निर्लेप, निर्दुःख होताहै । शोकसे रहित हुआ चित् जड़ग्रन्थि से मुक्त और परमानन्द रूपहोता है । तृष्णारूपी सूत्रके जालसे जो पुरुष निकलगया है वही शूरमा है और जिस पुरुष ने तृष्णा नष्ट नहीं की वह अनेक जन्म दुःख में भ्रमता है । जब तृष्णा घटती है तब मनभी सूक्ष्म होजाता है और जब भोगकी तृष्णा नष्ट होती है तब मनभी नष्ट होजाता है । हे रामजी जैसे भले नौकर स्वामी के निमित्त रण में शरीरको तृणवत् त्यागते हैं और उससे स्वामी की जयहोती है पर जो दुष्ट हैं वे नहीं त्यागते उससे दुःख होते हैं; तैसेही मनका उदय होना जीवोंको दुःखका कारणहै और मनका नष्ट होना सुखदायक है । ज्ञानवान्का मन नष्ट होजाता है; अज्ञानी का

मनरूद्ध होताहै । सम्पूर्ण जगत् चक्र मनोमात्रहै; यह पर्वत, मण्डल, स्थावर, जङ्गमरूप जो कुछ जगत्‌है वह सब मनरूपहै । मन किसको कहते हैं सो सुनो चिन्मात्र शुद्धकलामें जो चित्तकलाका फुरना हुआहै वही संवेदन सङ्कल्प विकल्पसे मिलकर मलीन हुआहै और स्वरूप विस्मरण होगया है; उसीका नाम मनहै । वही मन वासनासे संसार भागी होताहै । जब चित्त संवेदन दृश्यसे मिलता है तब उससे तन्मय होकर चित्‌संवित् का नाम जीव होताहै और वही जीव दृश्य वर्गसे मिलके संसार दशा में चला जाता है और अनेक विस्तारको प्राप्तहोताहै आत्मपुरुष परब्रह्म संसारी नहीं; वह न रुधिर है, न मांसहै और न शरीर है। शरीरादिक सर्व जड़रूप हैं, आत्माचेतन आकाशवत् अलेपहै । यदि शरीर को भिन्न भिन्नकर देखिये तो रुधिर, मांस, अस्थि से भिन्न कुछ नहीं निकलता । जैसे केलेके वृक्षको खोलकर देखिये तो पत्र से भिन्न कुछ नहीं तैसेही मनही जीव है और जीवही मन है; मनसे भिन्न आकार कोई नहीं वही सर्व विकार भावको प्राप्त होता है । हे रामजी ! जीवके बन्धनका कारण अपनी कल्पना है । जैसे कुसवारी अपने यत्न से आपही बन्धनको प्राप्त होती है तैसेही मनुष्य अपनी वासनासे आपही संसार बन्धन में फँसता है । इस से तुम भोग की वासना मनसे दूर करो; संसार का बीज वासनाहीहै । जिस वासना संयुक्त दिनमें विचरता है तैसाही स्वप्ना भी होता है जैसी जैसी वासना होती है तैसाही पुण्य पाप के अनुसार परलोक भासता है अपनेही वासना से जगत् भास आता है । जैसे अन्न जिस द्रव्य से मिलता है तैसाही भासता है अर्थात् मिष्टसे मिष्ट; खट्टेसे खट्टा; कटुक से कटुक होताहै तैसेही जैसी वासना जिसके हृदय में दृढ़ होती है तैसेही हो भासता है। जैसे बड़े पुण्यवान् को स्वप्ने में अपनी मूर्त्ति इन्द्रकी भासती है; नीचको नीचही भासती है और भूतके सङ्गीको भूतादिक भासआते हैं तैसेही वासनाके अनुसार परलोक भासआता है । जब मनमें निर्मलभाव स्थित होताहै तब मनकी कल्पना और पापवासना मिटजातीहै और जब मनमें मलीन वासना बढ़तीहै तब निर्मलता नहीं भासती वहीरूप फल प्राप्त होताहै । इससे तुम दुर्वासना कलङ्कको त्यागके पूर्णमासी के चन्द्रमावत् विराजमानहो । यह संसार भ्रान्तिमात्र है सत्‌रूप नहीं । अज्ञानकरके भेद विकार भासते हैं; वास्तव में न कोई बन्धहै, न मोक्षहै और न कोई बन्ध करनेवालाहै; सब इन्द्रजालीकीनाई मिथ्याभ्रम भासते हैं । जैसे गन्धर्व नगर; मृगतृष्णाका जल और आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासताहै वह असत्‌रूपहै; तैसेही यह जगत् असत्‌रूप है । जीवों को अज्ञान से ऐसा निश्चय हो रहा कि, मैं अनन्त आत्मा नहीं हूं—नीचहूं—जब इस निश्चयका अभावहो और निश्चय करके आपको अनन्त आत्मा जाने प्रथम इसका अभ्यासकरै—तब हृदयमें स्थितिहो । इस निश्चय

से उस नीच निश्चयका अभाव होजाताहै । सर्व जगत् स्वच्छ निर्मलआत्मा है, उससे अतिरिक्त जिसको देहादिक भावना हुई है उसको लोकमें बन्धन होताहै और अपने संकल्पसे आपही शुककी नाई बन्धन में आताहै । जिसको स्वरूप में भावना होती है उसको मोक्ष भासता है । आत्मसत्ता मोक्ष और बन्ध दोनों से रहित है । एक और अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । जबमन निर्मल होताहै तब इसप्रकार भासताहै और किसी पदार्थमें बन्धवान् नहीं होता और जब मन इसभाव से रहित अमन होताहै तब ब्रह्मसत्ताको देखता है अन्यथा नहीं देखता । जब वैराग्य और अभ्यासरूपी जल से मनको निर्मलभाव होताहै तब ब्रह्मज्ञानरूपी रंग चढ़ताहै और सर्व आत्माही भासताहै और जब सर्वात्मभावना होती है तब ग्रहण और त्यागकी वृत्तिनष्ट होजाती है और बन्धमोक्षभी नहीं रहता । जब मनके कषाय परिपक्व होते हैं अर्थात् भोगकी सूक्ष्म वासना से मुक्त होताहै और सत्शास्त्रके विचारसे क्रमसे बुद्धिमें वैराग्य उपजताहै तब परमबोधको प्राप्तहोताहै और कमलकीनाई बुद्धि खिलआती है । मनसेही सर्व पदार्थ रचे हैं जब उससे मिलकर तद्रूप होजाताहै उसका नाम असम्यक् ज्ञानहै और जब सम्यक् दृष्टिहोतीहै तब उसकातत्काल नाशकरताहै जब भीतर बाहर दृश्यको त्यागकरता है और मन सत्भावमें स्थित होता है तब परमपदको प्राप्तहुआ कहाताहै । हे रामजी ! ये द्रष्टा और दृश्य जो स्पष्ट भासते हैं वे असतहैं । उन असत् के साथ तन्मयहोजाना यह मनका रूप है जोपदार्थ आदि अंतमें न हो और मध्यमेंभासे उसको असत् रूप जानिये; सो यह दृश्य आदिमें भी नहीं उपजा और अन्तमेंभी नहीं रहता, मध्यमें जो भासताहै वह असत् रूपहै । अज्ञानसे जिनको यह सत् भासता है उनको दुःखकी प्राप्तिहै । आत्म भावना बिना दुःख निवृत्तनहीं होता । जबदृश्यमेंआत्म भावना होतीहै तब दृश्यभी मोक्षदायक होजाताहै । जल और है, तरङ्ग और है; यह अज्ञानीका निश्चय है । जल और तरंग एकही रूपहै; यह ज्ञानी का निश्चयहै । नाना रूप जगत् अज्ञानी को भासताहै उससे दुःख पाताहै और ग्रहण और त्यागकी बुद्धि में भटकताहै । ज्ञानी को सर्व आत्मा भासताहै और भेद भावना से रहित अन्तर्मुख सुखीहोताहै । हे रामजी ! नानात्व मनके फुरने से रचाहै और मनकारूप है । अपने संकल्प बलका नाम मनहै सो असत्रूप है । जो असत् विनाशी रूपहै उसको सत् मानने से क्लेश होताहै । जैसे किसीका बान्धव परदेश से आताहै और उसको वहनहीं पहिंचानता दृष्टि आताहै और उसमें रागनहीं होता पर जब उसमें अपनेकी भावना करताहै तब राग भी होताहै; तैसेही जब आत्मा में अहं प्रतीति होती है और देहादिकमें नहींहोती तब देहादिक सुख दुःख स्पर्श नहीं करते और जब देहादिक में भावना होती है तब स्पर्श करते हैं । हे रामजी ! जब शिवतत्त्वकाज्ञानहो तब कोईदुःख नहीं रहता

वह शिव द्रष्टा और दृश्यके मध्यमें व्यापकहै, उसमें स्थितहोकर मन शांतहोजाताहै। जैसे वायु से रहित धूलनहीं उड़ती तैसेही मनके शांतहुये धूलरूपी देह होजाती हैं और फिर संसाररूपी कुहिरा नहीं रहता । जब वर्षाऋतुरूपी वासना क्षीणहोजाती है तब जाना नहीं जाता कि, जड़तारूपी बेल कहां गई । जब अज्ञानरूपी मेघ शान्त होताहै तब तृष्णारूपी बेल सूखजाती है और हृदयरूपी पवन से मोहरूपी कुहिरा नष्ट होजाता है। जैसे प्रातःकाल हुये रात्रि नष्ट होजाती है । अज्ञानरूपी मेघ के क्षीणहुये देहाभिमान रूपी जड़ता जानी नहीं जाती कि, कहांगई । जबतक अज्ञानरूपी मेघ गरजता है तबतक संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं और जब अहंकार रूपी मेघ नष्ट होजाता है तब परम निर्म्मल चिदाकाश आत्मारूपी सूर्य्य स्वच्छ प्रकाशताहै । जब मोहरूपी वर्षाकाल का अभाव होता है तब ज्ञानरूपी शरत्काल में दिशा निर्म्मल होजाती हैं और आत्मारूपी चन्द्रमा शीतल चांदनी से प्रकाशताहै जो सर्व्व सम्पदा का देने और परमानन्द की प्राप्ति करनेवाला है । जब प्रथम शुभगुणों से विवेकरूपी बीज संचित होताहै तब शुभमन सर्व सम्पदाका देनेवाला परमानन्द अतिसफल भूमि को प्राप्त होताहै । उस विवेकी पुरुषको वन, पर्वत, चतुर्दशभुवन सर्व्व आत्माही भासताहै और वह निर्म्मल से निर्म्मल और शीतल से शीतल भावना में भासता है हृदयरूपी तालाब अतिविस्तारवान् है और फटिकमणिवत् उज्ज्वल स्वच्छ जल से पूर्ण है; उसमें धैर्य्य और उदारतारूपी कमल विराजते हैं और उस हृदय कमल पर अहङ्काररूपी भँवरा विचरताहै वह जब नष्ट होजाताहै तो फिर नहीं उपजता । वह पुरुष निरपेक्ष, सर्व्वश्रेष्ठ, निर्वासनीक, शान्तमन अपने देहरूपी नगर में विराजमान ईश्वर होताहै। जिसको आत्मप्रकाश उदय हुआहै उसबोधवान् का मन अत्यन्त गल जाताहै, भय आदिक विकार नष्टहोजाते हैं और देहरूपी नगरमें विगतज्वर होके विराजमान् होताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेउपशमरूपवर्णनंनामपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३५ ॥

रामजी बोले, हे भगवन् ! आत्मा तो चेतनरूप विश्वसे अतीतहै, उस चिदात्मा में विश्व कैसे उत्पन्न हुआ ? बोधकी वृद्धिके निमित्त फिर मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे सोम जलमें तरंग अव्यक्तरूप होते हैं परन्तु त्रिकालदर्शी को उनका सद्भाव नहीं भासता और उनका रूप दृष्टमात्र होताहै तैसेही आत्मा में जगत् संकल्प मात्र होता है । जैसे आकाश सर्वगत है परन्तु सूक्ष्म भावसे नहीं दिखता तैसेही आत्मा निरंश, निराकार, सर्वगत और सर्व्व्यापकहै परन्तु लखानहीं जाता अव्यक्त और अच्युत रूपहै; उस आत्मा में जगत् ऐसे है जैसे कोई थम्भमणिरूपहो और उस में शिल्पी कल्पनाकरे कि इतनी पुतलियां इसमें हैं । सो वह क्याहैं; कुछनहीं

केवल शिल्पी के मनमें फुरती हैं तैसेही यहजगत् आत्मामें मनरूपी शिल्पीने कल्पाहै सो आत्माके आधारहै और आत्माके आश्रय आत्मामें स्थितहै और आत्मा कदाचित् उससे स्पर्शनहीं करता। जैसे मेघआकाशके आश्रय आकाशमें स्थितहै परन्तु आकाश उससे स्पर्शनहीं करता तैसेही आत्मास्पर्शहै और सर्वत्रपूर्णहै परन्तु पुर्य्यष्टक रूप हृदयमें भासताहै। जैसे सूर्य्यका प्रकाश सब ठौर व्यापकहै। परन्तु जलमें प्रतिबिम्बितहोताहै और पृथ्वी, काष्ठइत्यादिमें प्रतिबिम्बित नहींहोता तैसेही आत्माका देह इन्द्रिय और प्राणमें प्रतिबिम्बित नहींहोता हृदयपुर्य्यष्टकमें भासताहै। वहआत्मा सर्व संकल्प और संगसे रहित स्वरूपहै; उसको ज्ञानवान् पुरुष उपदेशके निमित्त चैतन्य अविनाशी, आत्मा, ब्रह्मादिक कहते हैं पर आकाश से भी सूक्ष्म निर्म्मल है। आत्मा आभास से जगत्रूप हो भासताहै, जगत् कुछ और वस्तुनहीं है। जैसे जल द्रवता से तरंगरूप हो भासता है परन्तु तरंग कुछ भिन्नवस्तु नहीं है; तैसेही आत्मासे व्यतिरेक जगत् नहीं; चैतन सत्ताही चैत्यता फुरनेसे जगत्रूप हो भासती है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उसको तो एक आत्माही भासता है और अज्ञानी को नानाप्रकार जगत् भासता है। जगत् कुछ वस्तु नहीं है केवल आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है; अनुभव स्वभावसे प्रकाशताहै और सूर्य्यादिक सबको प्रकाशने वालाहै। सब स्वादों का स्वाद वही है और सबभाव उसीसे सिद्धही हैं। वह सत्ता उदय, अस्त और चलने, नचलने से रहित है; वह न लेताहै, न देताहै, अपने आपमें स्थित है। जैसे अग्निका समूह लाटरूप और जलका समूह तरंगरूप हो भासता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है और जीव अपने संवेदन फुरने से नानाप्रकार के संकल्प से विपर्य्ययरूप देखता है कि; यह पदार्त्थ है, यह मैं हूँ; यह और है इत्यादिक पर जब अपने आपको जानता है तब अज्ञान भ्रम नष्ट होजाता है। जैसे वृक्ष में बीज सत्ता परिणाम से आकार के आश्चर्य्य से बढ़ताजाता है, तैसेही आत्मसत्ता में चित्त संवेदन फुरता है। फुरना जो आत्मसत्ता के आश्रय विस्तार को प्राप्त होता है सो संकल्परूप है और उसमें जगत्की दृढ़ता है; जैसे संवेदन फुरता है तैसेही स्थित होताहै। उसमें नीति है कि, जो पदार्त्थ जिस प्रकार हो सो तैसेही स्थित है अन्यथा नहीं होता। जैसे वसन्तऋतुमें रस अतिविस्तार पाताहै; कार्त्तिक में धान उपजते हैं; हिम ऋतुमें जल पाषाणरूप होजाताहै; अग्नि उष्णहै; बरफ शीतल है इत्यादिक जितने पदार्थ रचे हैं वैसेही वे सब महाप्रलय पर्यंत स्थित हैं; अन्यथा भावको नहीं प्राप्तहोते। जगत् में चतुर्दश प्रकार के भूतजात हैं पर उनमें जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है वेहीशांतरूप आत्मापाके आनन्दमान होते हैं और जिनको प्रमादहै वे भटकते और जन्म मरणको प्राप्त होते हैं। जैसे २ कर्म वे करते हैं तैसी २ गति पातेहैं

और आवागमनमें भटकते भटकते यमके मुखमें जापड़ते हैं। जैसे समुद्र में तरंग उपजकर लय होजाते हैं तैसेही जन्म जन्म उपजते हैं मरते जाते हैं। उन्मत्तकी नाईं प्रमादी भ्रमते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेचिदात्मरूपवर्णनन्नामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार जगत्की स्थिति है सो सर्व चंचल आकार और विपरिणामरूपहै। जैसे समुद्रमें तरंग चञ्चलरूप हैं तैसेही जगत्की गति चञ्चलहै आत्मासे जगत् स्वतः उपजता है; किसी कारणसे नहीं होता; और पीछे कारण कार्यभाव होजाता है और वही चित्तमें दृढ़हो भासता है; आत्मामें यह कोई नहीं। जैसे जलसे तरंग स्वाभाविक उठकर लयहोजातेहैं, तैसेही आत्मासे स्वाभाविक जगत् उपजके लय होतेहैं। जैसे ग्रीष्मऋतुमें तपनसे मरुथल जल की नाईं स्पष्ट भासता है पर जल कुछभी नहीं है और जैसे मदसे मत्तपुरुष आपको औरका और जानता है, तैसेही ये पुरुष आत्मरूप हैं चित्तसे आपको देवता, मनुष्य आदिक शरीर जानते और कहते हैं। हे रामजी! यह जगत् आत्मामें न सत्है, न असत्है; जैसे सुवर्ण में भूषण हैं तैसेही मूढ़जीव आपको आकार मानते हैं। इससे तुम दृश्यको त्याग के द्रष्टा में स्थितहो और जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक सबको जानता है उसीको आत्मब्रह्म जानो; वह सर्व में पूर्णस्थित, स्वच्छ और निर्म्मलहै। आत्मसत्ता में एकद्वैत कल्पना कुछनहीं। जबतक आत्मासे भिन्न कुछवस्तु भासतीहै तबतक वासना उसकी ओर धावती है। हे रामजी! आत्मासे व्यतिरेक कुछ सिद्धनहीं होता तो किसकी वांछाकरे; किसका अनुसन्धान करे और किसका ग्रहण, त्याग करे? आत्माको ईप्सित, अनीप्सित, इष्ट, अनिष्ट आदिक कोई विकार विकल्प स्पर्श नहीं करता और कर्त्ता, कारण, कर्म्म तीनोंकी एकता है न कोई आधार है, न आधेय है; द्वैत कल्पनाका असंभव है और अहं—त्वं आदिक कुछनहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै। ऐसे जानके सर्व्वदा निर्द्वंद्व होकर सर्व्व सन्तापसे रहित कार्य्यमें प्रवृत्त होजाओ। पूर्व्व जो तुमने कुछकिया और नहीं किया उस करने और न करने से तुमको क्या सिद्धहुआ और पाने योग्य कौन पदपाया और भूतकी गणतीमें क्याबातहै। तुम आपको हृदयमें अकर्त्ता भावना करो और बाहर से इन्द्रियों से जगत्के कार्य्य करो; जब स्थिरतारूपी समुद्रमें तुम्हारी वृत्ति धैर्य्यवान होगी तब शांतात्मा होगे पर दृश्य जगत् में तो दूर से दूरभी गये हृदय में शांतिनहींहोती। जहांचाहे वहांजावे और चाहे जैसे पदार्त्थ पानेकायत्नकरे पर उसके पायेसेभी शांति प्राप्त न होगी। जगत् के सर्व्वदृश्यपदार्त्थ त्यागकर जो शेष अपना स्वरूप रहता है वही चिदात्मा है। उसमें स्थितहुये से शान्ति प्राप्त होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेशान्त्युपदेशकरणन्नामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ३७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जो ज्ञानी पुरुष हैं उनमें कर्त्तव्य भावभी दृष्टिआताहै और हिंसादिक तामसी कर्म्मभी करते हैं तौभी स्वरूपके ज्ञानसे वे अकर्त्ता-हीहैं उन्होंने कदाचित् कुछ नहीं किया और जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे जैसाकर्म्म करतेहैं वैसाही फल भोगते हैं। मनमें सत्य जानके जिस पदार्थ के ग्रहण की इच्छाकरता है सो फुरना वासना रूप होता है उसी सद्भाव फुरने का नाम कर्त्तव्य है और उसी चेष्टा से फलकी प्राप्ति होती है । जिस पदार्थ को सत् जानके वासना फुरती है उसका अनुभव होताहै; शरीर करे अथवा न करे पर जैसी वासना मनमें दृढ़ होती है वह शुभहो अथवा अशुभ उसी के अनुसार दृश्य भासि आता है । शुभ से स्वर्ग्ग भासताहै और अशुभ से नरक भासताहै । जिस पुरुष को आत्माका अज्ञानहै यद्यपि वह प्रत्यक्ष अकर्त्ता है तौभी अनेक कर्म्म के फलको अनुभव करताहै और जो ज्ञानवान् हैं उनके हृदय में पदार्थों का सद्भाव और वासना दोनों नहीं होतीं क्योंकि उन में कर्त्तव्य का अभावहै । यद्यपि वे करतेहैं तौभी कर्त्तव्य के फलको नहीं प्राप्तहोते । और संसारको असत्य जानते हैं; केवल शरीर का स्पन्दमात्र उनका कर्म्म है, हृदय में बन्धमान नहींहोते। पूर्व्व के प्रारब्धसे सुख दुःख फल उनको प्राप्तभी होताहै परन्तु वे आत्मासे भिन्न उस को नहीं जानते; वे सर्व्व ब्रह्मही देखते हैं और जो अज्ञानी हैं वे अवयव के स्पन्द में आप को कर्त्ता मानते हैं और उसके अनुसार सुख दुःख भोगते और मोह को प्राप्त होते हैं । जिनका मन अनात्मभाव में मग्नहै वे अकर्त्ताहुये भी कर्त्ता होते हैं और मन से रहित केवल शरीर से किया कर्म्म कियाभी न कियाहै । इससे मनहीं कर्त्ताहै शरीर कुछ नहीं करता । यह जब जगत् मन से उपजा है, मनरूप है और मनहीं में स्थित है जिसका मन अमनभाव को प्राप्तहुआहै उसको सब शांतरूप है । जैसे तीक्ष्ण धूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है और जब वर्षा होती है तब शांत होजातीहै; तैसेही जब आत्मज्ञान होताहै तब यह सब जगत् शान्त होजाता है और संसार के सुख दुःख स्पर्श नहीं करते । न वह चञ्चलहै, न सत्यहै और न असत्यहै, सर्व्व विकारसे रहित शान्तरूप है । वह संसारकी वासना में नहीं डूबता पर अज्ञानी डूबता है क्योंकि उसका मन संसार भ्रममें मग्नरहता और सदा पदार्थोंकी तृष्णा करता है । ज्ञानी नहीं करता। हे रामजी ! और दृष्टान्त सुनो कि, अज्ञानी के अकर्त्तव्यमें भी कर्त्तव्यहै और ज्ञानी के कर्त्तव्यमें भी अकर्त्तव्यहै । जैसे कोई पुरुष शय्यापर सोया हो और स्वप्न में गिरके दुःखपावे तो वह अकर्त्तव्य में कर्त्तव्य हुआ और जैसे समाधि में स्थित होकर गढ़े में गिरा है पर उसको सर्व शान्तरूप है, यह कर्त्तव्यमें भी अकर्त्तव्य हुआ क्योंकि; शय्यापर सोया था उसका मन चलता था इससे अकर्त्तव्यमें उसको कर्त्तव्य हुआ और दुःखका अनुभव करने लगा और दूसरेको सुख का अनुभव हुआ । इससे यह

निश्चय हुआ कि, जैसा मन होता है तैसीही सिद्धता प्राप्तहोती है । तुमभी असंसक्त होकर कर्म्मकरो तब अकर्त्ता हो रहोगे । जो कुछ जगत् भासता है वह आत्मा से व्यतिरेक नहीं । जिसको यह निश्चय होता है उस ज्ञानवान्‌को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते; उसे आधार, आधेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इच्छा, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता जब ऐसे निश्चय होताहै कि, मैं देह नहीं, सब पदार्थों से व्यतिरेक और बाल के अग्रके सौवें भागसे भी सूक्ष्महूं अथवा जो कुछ दृश्य जगतहै सो सर्व्व मैंहीं हूं, सर्व्व तत्वका प्रकाशक और सर्व्व व्यापी हूं; इस निश्चयसे उसको सुख दुःखका क्षोभ नहीं होता और विगतज्वर होकर स्थित होताहै । यद्यपि दुःख और संकट ज्ञानवान् को भी आ प्राप्तहोते हैं तौ भी उसको नहीं भासता; वह परमानन्द से आनन्दवान् लीला मात्र विचरताहै । जैसे चन्द्रमा की चांदनी शीतल प्रकाशित होती है तैसेही वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होताहै; उसको न चिन्ता होतीहै, न कोई दुःखहै । वह शांतरूप कर्म्म को कर्त्ता भी है पर अकर्त्ता है क्योंकि, मन से सदा अलेप रहताहै । हे रामजी ! हस्त, पादादिक इन्द्रियों से करनेका नाम कर्म्म नहीं, मनके करनेका नाम कर्म्महै। मनही सब कर्म्मोंका कर्त्ताहै । अहं त्वं सब भाव सब लोकों का बीज, सर्व्व गत मनहै। जब मन नाशहो तब सब कर्म्म नष्ट होजाते हैं और सब दुःख मिटजाते हैं। जैसे बालक मन से नगर रचे और फिर लीन करले तो उसको उपजाने और लीनकरने में हर्ष शोक कुछ नहीं होता तैसेही परमार्थ दर्शीको किसी कर्म्मका लेप नहीं होता; वह करताहुआ भी कुछ नहीं करता और उसमें कर्त्तव्य, भोक्तव्य, सुख, दुःख, अज्ञानी मोहसे अध्यारोप करते हैं और कुछ नहीं । ज्ञानवान्‌को बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख, कुछ नहीं भासता क्योंकि, वह तो असंसक्त मनहै । जिसका मन आसक्तहै उस को नाना दृश्य भासता है और ज्ञानवान्‌को केवल आत्मसत्ता जो एक द्वैत कलना से रहित है भासती है । जैसे जलसे तरंग भिन्न नहीं तैसेही आत्मासे जगत् भिन्न नहीं । न कोई बन्ध है, न कोई मोक्ष है और न कोई बाँधने योग्य है; अज्ञान दृष्टिसे दुःखहै, बोधसे लीन होजाते हैं । बन्ध और मोक्ष संकल्प से कल्पित मिथ्यारूप हैं । तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकार को त्यागके आत्मामें निश्चय करो और धीरज बुद्धिवान् होकर प्रकृत आचारको करो । तब तुम्हें कुछ स्पर्श न करेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमोक्षोपदेशोनामअष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ३८ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! सच्चिदानन्द, अद्वैत, निर्विकारादिक गुणों से सम्पन्न ब्रह्मतत्वमें अविद्यमान विचित्र जगत् अविद्या कहांसे आया ? वशिष्ठजी बोले, हे राजपुत्र ! यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूपहै और ब्रह्मसत्ता सर्व शक्ति है; इस कारण दृश्यरूप हो रहाहै और सत्य, असत्य, एक, अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है

जैसे जल में जल उल्लासरूप नानाप्रकार के तरङ्ग, बुद्बुदे, आवर्त्त आकार हो भासता है तैसेही चिद्घन में चिद्घन सर्वशक्ति और सर्व्वरूप होकर फुरता है। कहीं कर्म रूप, कहीं वाणीरूप, कहीं गुह्यरूप, कहीं मनरूप और कहीं भरण, पोषण और नाश का कारण होता है। सब पदार्थों का बीज उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मसत्ता है; जैसे समुद्र से तरंग उपजकर उसी में लय होजाते हैं तैसेही सब पदार्थ उपजकर ब्रह्म में लय होते हैं। रामजी ने फिर पूंछा कि, हे भगवन् ! आप के वचन का उच्चार प्रकट है तो भी कठिन और अति गम्भीर है; इनका तौल नहीं पाया जाता और इनका यथार्त्थ भाव मैं पा नहीं सक्ता। कहां मन संयुक्त षट्इन्द्रियों की वृत्तियों से और सब पदार्त्थ की रचना से रहित स्वरूप और कहां जगत् ? जो पदार्त्थ जिससे उपजता है वह उसी का रूप होता है। जैसे दीपक से उपजा दीपक, मनुष्य से मनुष्य और अग्निसे अग्नि होताहै; इसी प्रकार कारणसे जो कार्य्य उपजता है सो भी उसी के सदृश होता है। तैसेही जो निर्व्विकार आत्मा से जगत् उपजा है वह भी निर्व्विकार होना चाहिये पर वह तो ऐसे नहीं; आत्मा निर्व्विकार और शांतरूप है और जगत् विकारी और दुःखरूप है; उससे कलंकरूप जगत् कैसे उपजा ? इतना कह वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार रामजी ने कहा तब ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी बोले कि, हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है पर नाना प्रकार मलिनरूप जो भासता है सो मलिनता नहीं है। जैसे तरंग के समूह समुद्र में फुरते हैं सो मलिनता धूल नहीं हैं, वही रूप हैं; तैसेही आत्मा में जगत् कुछ कलंक नहीं है वही रूप है। जैसे अग्नि में उष्णता अग्निरूप है तैसेही आत्मा में जगत् आत्मारूप है, भिन्ननहीं। रामजी ने फिर पूंछा कि, हे ब्रह्मन् ! निर्दुःख और निर्द्धर्म्म से जो यह दुःखरूप जगत् उपजा है यही कलंक है। आपके वचन आकाशरूप हैं और मुझे स्पष्ट नहीं भासते। मैं इसको नहीं जानसक्ता। तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी ने विचारा कि, परम प्रकाश को अभी इसकी बुद्धि नहीं प्राप्तहुई; कुछ निर्म्मल हुई है और पदार्त्थ भूमिका को जानता है परन्तु परमार्त्थवेत्ता नहीं हुआ। जिसको परमार्त्थ बोध प्राप्त होता है और जिसका मनशांत होताहै वह ज्ञाता ज्ञेय पुरुष मोक्ष उपाय की वाणी के पार प्राप्त होता है और संसार रूपी अविद्या मल उसको नहीं भासता। वह केवल अद्वैतसत्ता देखता है। जब तक मैं और उपदेश रामजी को न करूंगा तबतक इसको विश्राम न होगा। जो अर्द्ध प्रबुद्ध है उसको सब ब्रह्मही कहना नहीं शोभता क्योंकि, उसका चित्त भोगों से सर्वथा व्यतिरेक नहीं हुआ। सर्व ब्रह्मके वचन सुनके वह भोगों में आसक्त होगा जो नाश का कारण है। जिसको परमदृष्टि प्राप्तहुई है उसको भोगकी इच्छा नहीं उपजती। इससे सर्व ब्रह्म का कहना रामजी को सिद्धान्तकाल में शोभेगा। गुरु को शिष्य

के प्रति प्रथम सर्वब्रह्म कहना नहीं बनता। प्रथम शम दम आदिक गुणों से शिष्यको शुद्ध करे, फिर सर्वब्रह्म शुद्ध है ऐसे उपदेश करे तो उससे वह जग उठता है। जो अज्ञानी अर्द्धप्रबुद्धहै उसको ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसको महा नरकमें डालताहै। जो प्रबुद्धहै उसको भोगकी इच्छा क्षीणहोजाती है और वह निष्काम पुरुष है इससे उसको अविद्यारूपी मल नहीं रहता और उसको उपदेश करनेकी आवश्यकता नहीं। इस प्रकार विचार कर अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता और ज्ञानके सूर्य्य भगवान् वशिष्ठजी ने रामजी के प्रति कहा। वशिष्ठजी बोले, हे राघव! कलनारूप कलङ्क ब्रह्ममें है वा नहीं है, यह मैं तुम से सिद्धान्तकाल में कहूंगा अथवा तुम आपही जानोगे। ब्रह्मसत्ता सर्व शक्तिरूप, सर्व व्यापक और सर्वगतहै और सब उसी में रचे हैं। जैसे इन्द्रजाली विचित्र शक्तिसे अनेक रूप रचताहै और सत्यको असत्य और असत्यको सत्यकर दिखाताहै तैसेही आत्मा मायावी परम इन्द्रजाली अघटन घटना है अर्थात् जो न बने उसको भी बनाताहै। वह अपनी शक्तिसे पहाड़को गढ़ा करता है; वल्लीमें पाषाण लगाताहै और पाषाण में बेल लगाताहै। वनकी पृथ्वी को आकाश करताहै और आकाशको पृथ्वी करताहै; और आकाश में वन लगाताहै—जैसे आकाशमें गन्धर्वनगर भासता है, वनको आकाश करता है—जैसे पुरुषकी छाया आकाश होजाती है और आकाश को पृथ्वी भाव प्राप्त करताहै—जैसे रत्नकी कन्दरा पृथ्वी पर हो और उसमें आकाश का प्रतिबिम्ब पड़े। हे रामजी! यह विचित्ररूप दृश्य जो तुम से कहा है सो शुद्ध व्यक्ततत्त्व--अचैत्य--चिन्मात्रमें जो चेतनता का लक्षण जाननाहै उसीसे रचाहै और कैसा रचाहै कि, वही चित्तसंवेदन फुरने से जगत् रूप हो भासता है। उसमें सब प्रकार और सर्व रूप वही है जो एकरूप अविद्यमान है तो हर्ष, शोक और आश्चर्य किसका मानिये? यह अन्यथा कोई नहीं, सब एक रूप है। इसी कारण हमको समता भाव रहता है और हर्ष, शोक, आश्चर्य और मोह नहीं प्राप्त होता। ममता और चपलता आदिक विकार हमको कोई नहीं होता और ऐसे हम कदाचित् जानतेही नहीं। देश, काल, वस्तु जगत् अवसान को प्राप्त हो भासते हैं और उनका विपर्यय होना भी भासता है पर वह अपने स्वभाव में स्थित है क्योंकि; यह दृश्य उनको अपने स्वरूप का आभास फुरता भासता है। जो कुछ दृश्य प्रपञ्च है वह सत्य चित्त संवित् की स्पन्द कलासे फुरता है और नानाप्रकार देश, काल, क्रिया और द्रव्य होकर भासता है। उसको आत्मसत्ता किसी यत्न से नहीं रचती बल्कि स्वाभाविकही फुरने से फुरते हैं। जैसे समुद्र तरंगों को किसी यत्नसे नहीं उपजाता और लीन करता स्वाभाविकही चमत्कार फुरता और लीन होता है; तैसेही आत्मा में स्वाभाविकही सृष्टि फुरती है और लय होती है। जैसे समुद्र और तरंग

में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं--वहीरूप है। जैसेदूध घृतरूपहै घट पृथ्वीरूप है और रेशम तांतरूप है तैसेही जगत् आत्मरूप है। जैसे वटधान्य वृक्षरूपहो भासताहै और समुद्र तरङ्गरूपहो भासताहै तैसेही आत्मा जगत् रूपहो भासता है। हे रामजी! इन दृष्टान्तोंका एकअंग लेना; कारण कार्य्य भाव न लेना क्योंकि, आत्मा में न कोई कर्ताहै, न कोई भोक्ताहै और न कोई विनाश होताहै केवल आत्मतत्त्व, साक्षी, निरामय और अद्भुत अपनेआप स्वभावसत्तामें स्थित है। यह जगत् आत्माका प्रकाशहै; जैसे दीपक और सूर्य्यका प्रकाश। जैसे पुष्पका स्वभाव सुगन्धहै तैसेही आत्माका स्वभाव जगतहै; किसीकारण कार्य्यसे नहीं हुआ। जगत् आत्माका स्वभाव आभासरूप है और आत्मासे कुछ भिन्न नहीं हुआ। जैसे पवनका स्वभाव स्पन्दरूपहै और जब निस्पन्दहोताहै तब नहींभासता तैसेही आत्मामें संवेदनफुरता है तब जगतहो भासताहै और जब लयहोताहै तब जगत्नहीं भासता। जगत् कुछनहीं है न सतहै और न असतहै। कहीं प्रकटभासता है और कहीं अप्रकट भासताहै और नानाप्रकारका विचित्ररूप भासताहै। जैसे वनमें पुष्प का रसहोताहै पर उनके उपजने और नष्टहोनेसे न वन उपजताहै और न नष्टहोता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्के उपजने और नष्टहोनेसे रहित है वास्तवमें उपजा कुछ नहीं इससे आत्माही अपने आपमें स्थित है पर असम्यक्ज्ञान से जगत्भासता है और अनन्त शाखाओं से फैलरहाहै इसलिये इसको ज्ञानरूपी कुठारसे काटो तब सुखी होगे। जगत्रूपी वृक्षका असम्यक् ज्ञान बीजहै, शुभ अशुभरूपी फूल हैं और आशारूपी वल्ली से वेष्टित है; दुःखरूपी उसकी शाखाहैं, भोग और जरारूपी फल हैं और तृष्णारूपी लतासे घिरेहुये भासते हैं। ऐसे संसाररूपी वृक्षको आत्म विवेकरूपी कुठारसे यत्न करके काटकर मुक्त हो। जैसे गजपति अपने बलसे बन्धन तोड़के सुखचित्त विचरताहै तैसेही तुम भी निर्बंध होकर विचरो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसर्वैकताप्रतिपादनन्नाम
एकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ३९॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! ये जो जीव हैं वे ब्रह्मसे कैसे उत्पन्नहुये और कितने हुये हैं, मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! जैसी विचित्रता से ये उपजते,नाशहोते, बढ़ते और स्थित होते हैं वह क्रम सुनो। हे निष्पाप राम! शुद्ध ब्रह्मतत्त्व की वृत्ति जो चेतन शक्ति है सो निर्मल है; जब वह स्फुरणरूप होती है तब कलनारूप घनभावको प्राप्त होती है और सङ्कल्परूप धारणकरती है; और फिर तन्मय होकर मनरूप होती है। वह मन सङ्कल्प मात्रसे जगत् को रचता है और विस्तार भावको प्राप्त करता है। जैसे गन्धर्व नगर विस्तार को प्राप्त होता है

तैसेही मनसे जगत् विस्तार होताहै। ब्रह्म दृष्टिको त्यागके जो जगत् रचताहै सो सब आत्मसत्ता का चमत्कार है। हमको तो सब आकाशरूप भासताहै पर दूरदर्शी को जगत् भासता है। जैसे चित्त संवित् में सङ्कल्प फुरता है तैसाही रूप होताहै। प्रथम ब्रह्मा का सङ्कल्प फुरा है इसलिये उस चित्त संवित् ने आपको ब्रह्मारूप देखा और ब्रह्मारूप होकर जब जगत्को कल्पा तब प्रजापति होकर चतुर्दश प्रकारके भूत जात उत्पन्न किये; वास्तवमें सब ज्ञप्तिरूप हैं। उसके फुरने से जो जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है। वास्तव में शरीर कुछ नहीं सङ्कल्पमात्र हैं स्वप्न नगरवत् भ्रांतिसे भासते हैं। उसभ्रान्तिरूप जगत्में जो जीव हुये हैं और कोई मोहसे संयुक्त हैं, कोई अज्ञानी हैं, कोई मध्यस्थितहैं और कोई ज्ञानी उपदेष्टा हैं जो कुछ भूतजात हैं वे सब आधिव्याधि दुःखसे दीन हुये हैं। उनमें कोई ज्ञानवान् सात्त्विकी हैं और कोई राजसी सात्त्विकी हैं। जो शान्तात्मा पुरुषहैं उनको संसार के दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते वे सदा ब्रह्ममें स्थित हैं। हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे भूत जात कहे हैं सो ब्रह्म, शान्त, अमृतरूप, सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्य स्वरूप, अनन्तात्मा और आधिव्याधि दुःखसे रहित निभ्रमहै। जैसे अनन्त सोमजलके किसी स्थानमें तरङ्गफुरते हैं तैसेही परब्रह्म सत्ताके किसी स्थान में जगत् प्रपञ्च फुरता है। फिर रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! ब्रह्मतत्त्वतो अनन्त, निराकार, निरवयवरूप है उस का एक अंश एकस्थान कैसे हुआ? निरवयवमें अवयवक्रम कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसकरके उपजे हैं अथवा उससे उपजे हैं यह जो कारण और उपादान है वह भ्रांतिमात्र है। यह शास्त्ररचना व्यवहार के निमित्त कही है परमार्थ में कुछ नहीं है अवयवसे जो देशादिक कल्पना है वह क्रमसे नहीं उपजी; उदय और अस्त पर्यंत दृष्टिमात्र भी होती है पर कल्पना मात्र है। वह कल्पना भी आत्मरूप है। आत्मासे रहित कल्पना भी न कुछ वस्तु है न हुईहै और न कुछहोगी। उसमें जो शब्द, अर्थ आदिक युक्तिहै वह व्यवहारके निमित्तहै परमार्थ में कुछ नहीं। शब्द अर्थमात्र जगत्कलना उसकरके उपजीहै और उससे उपजीहै यहद्वितीय कल्पनाभी नहीं यह तो तन्मय शांतरूप आत्माहीऔरकुछनहीं। जैसे अग्निसे अग्नि की लाठें फुरती हैं सो अग्निरूपहैं; और 'उससे उपजी' और 'उसकरके उपजी' यह कल्पना अग्निमें कोई नहीं, अग्निही अग्नि है; तैसेही जन और जनक अर्थात् कार्य और कारणभेद आत्मामें कोईनहीं। कार्य कारणभाव कल्पनामात्रहै; जहांअधिकता और ऊनता होतीहै वहां कारण कार्यभाव होताहै कि, यह अधिककारणहै और वहकार्य है। भिन्न भिन्न कारण कार्य शब्द बनताभी है और जहां भेदहोताहै वहां भेद कल्पना भी हो पर एक अद्वैतमें शब्दकैसेहो और शब्दका अर्थकैसेहो? जैसे अग्नि और अग्नि

की शिखामें भेदनहीं होता तैसेही कारण कार्य्यभाव आत्मा में कोई नहीं—शब्दअर्थ कल्पनामात्र है। जहां प्रतियोगी, व्यवच्छेद और संख्या भ्रमहोता है वहां द्वैत और नानात्व होता है । जैसे चैतनका प्रतियोगी जड़ और जड़का प्रतियोगी चैतन है; व्यवच्छेद अर्थात् परिच्छिन्न वहहै जैसे घटमेंआकाश होताहै और संख्या यह है कि जैसे जीव और ईश्वर । यह शब्द अर्थ द्वैतकल्पना में होते हैं और जहांएक—अद्वैत आत्माहीहै वहां शब्द अर्थ कोईनहीं । जैसे समुद्रमें तरङ्ग बुदबुदे सबहीजलहैं और जलसेकुछ भिन्ननहीं, तैसेही शब्द और अर्थकल्पना ब्रह्महै । जो बोधवान् पुरुषहैं उनको सब ब्रह्महीं भासताहै; चित्तभी ब्रह्महै, मनभी ब्रह्महै और ज्ञान, शब्द, अर्थ ब्रह्मही है, ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं और उससे जो भिन्नभासताहै वह मिथ्याज्ञानका विकल्पहै जैसे अग्नि और अग्निकी लाटोंकी कल्पना भ्रांतिमात्रहै तैसेही आत्मामें जगत्की भिन्न कल्पना असत्रूपहै । जो ज्ञानसे रहितहै उसकी दृष्टिदोषसे सत्यहो भासताहै । इससे सर्वब्रह्म है, ब्रह्मसे भिन्नकुछनहीं । निश्चयकरके परमार्थब्रह्मसे सबब्रह्मही है । सिद्धांत काल में तुमको यही दृष्टि उपजेगी । यह जो सिद्धांत पिञ्जर मैंने तुमसे कहाहै उसपर उदाहरण कहूंगा कि, यहक्रम अविद्याका कुछभी नहीं; अज्ञानके नाशहुये अत्यन्त असत् जानोगे । जैसे तमसे रस्सी में सर्पभासताहै और जब प्रकाश उदयहोताहै तब ज्योंका त्यों भासताहै और सर्पभ्रम नष्ट होजाताहै; तैसेही अज्ञान दृष्टिसे जगत् भासता है । जब शुद्ध विचारसे भ्रान्ति नष्टहोगी तब निर्मल प्रकाश सत्ता तुमको भासेगी इसमें संशयनहीं । यह निश्चितार्थ है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेब्रह्मप्रतिपादनन्नाम
चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४० ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! आपके ये वचन क्षीरसमुद्रके तरङ्गवत् उज्ज्वल; तीनों तापों के नाशकर्त्ता; हृदयके मल दूरकरनेको निर्मलरूप और अज्ञानरूपी तमकेनाशकर्त्ता प्रकाशरूपहैं और गम्भीर हैं; मैं उनकी तोल नहीं पासक्ता एकक्षणमें मैं संशय से अंधकारको प्राप्तहोताहूं और एक क्षणमें निःसंशयरूप प्रकाशको प्राप्तहोताहूं जैसे चपलरूप मेघसे सूर्य्यका प्रकाश कभी भासता और कभी घिरजाता है । इससे मेरा संशय दूरकरो कि, अप्रमेयरूप आत्मानन्द सत्ता प्रकाशरूप और असत्य भावसे रहित साररूपहै तो उस अद्वैत तत्त्व में कल्पना कहांसे आई ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ मैंने तुमसे कहाहै वह यथार्थ है और जैसे कहा है तैसेही है । यह वचन असमर्थभी नहीं क्योंकि, जिसके हृदयमें ठहरें उसको आत्मपद में प्राप्त करें; विरूपभी नहीं है क्योंकि, इनका रूपफल प्रकटहै जिसके धारणसे संसार के सब दुःख मिटजाते हैं और पूर्वापर विरोध भी नहीं है कि, प्रथम कुछ और कहा और पीछे कुछ

और कहा । जो कुछ मैंने कहाहै सो यथार्थ कहाहै परन्तु ज्ञानदृष्टि से जब तुम्हारा हृदय निर्मल होगा और विस्तृत बोधसत्ता हृदयमें प्रकाशेगी तब तुम मेरे वचन के तात्पर्य्यको हृदय में जानोगे । तुमको जो मैं उपदेश करता हूं सो वाच्य वाचक शास्त्र के सम्बन्ध जताने के निमित्त करताहूं । जब इन युक्त वचनों से तुम जानोगे तब तुम्हें अद्वैत सत्ता निर्मल भासेगी और जो कुछ वाच्य-वाचक शब्द अर्थ रचना है उसको त्याग करोगे । ज्ञानवान् को सदा परमार्थ अद्वैत सत्ता भासती है । आत्मा में इच्छादिक कल्पना कुछ नहीं; निर्दुःख निर्द्वन्द्व हैं और जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है । इस प्रकार मैं तुमको विचित्र युक्तिसे कहूंगा । जब तक सिद्धान्त उपदेशका आकाश है तब तक आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती । जब आत्मबोध होगा तब आपही जानोगे । अज्ञान रूपी तम वाक्‌विस्तार विना शान्त नहीं होता । इसकारण मैं तुमको अनेक युक्तिसे कहूंगा । तब तक सिद्धान्त उपदेशका अवकाशहै । हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताके आश्रय जो संवेदना भास फुरताहै उसीका नाम अविद्याहै । वह दो रूपरखती है-एक उत्तम और दूसरा मलीन । जो स्पन्दकला अविद्या के नाश निमित्त प्रवर्तती है वह उत्तम है और विद्याभी उसीका नामहै और सबदुःख नाशकरती है और जो संसारकी ओर फुरती है वह अविद्या है अर्थात् आत्माकी ओर फुरती है सो विद्या है और दृश्यकी ओर जो फुरती है वह अविद्याहै पर दोनों स्पंदरूप हैं । इससे अविद्यासे अविद्याका नाशकरो । जैसे ब्रह्मअस्त्र से ब्रह्मअस्त्र शान्त होताहै; विषको विष नाश करता है और शत्रुको शत्रु मारताहै; तैसेही अविद्यासे अविद्या नाश होती है । इसी प्रकार तुमभी इसको नाशकरो तब सुखदायक होगे । विचारसे जब इसका नाश होताहै तब जानी नहीं जाती कि, कहां गई; जैसे दीपकसे अन्धकार देखिये तो नहीं दीखता कि, कहां गया । बड़ा आश्चर्य्य है कि, जीवका ज्ञान इसने ढांपलिया है आत्मसत्ता सदा अनुभव और उदय रूपहै पर अज्ञानी जीवको नहीं भासती । जब तक अविद्या नहीं जानी तबतक फुरती है और जबजानी तब नहीं जानता कि, कहां गई इससे भ्रममात्र सिद्धहै । बड़ा आश्चर्य है कि मायाने संसार को बांध रक्खा है और सत्यकीनाई प्राप्तहुई है पर असत्य है । बुद्धिमानोंकोभी यह नाशकर छोड़ती है तो और जीवोंका क्याकहनाहै । निरन्तर अभेदरूप आत्मा में अविद्याभेद कल्पना कोई नहीं; जिस पुरुष ने संसार मायाको ज्योंका त्यों जाना है वही पुरुषोत्तम है । जिसको यह भावना हुई है कि अविद्या परमार्थ से कुछनहीं असत्यरूप है सो ज्ञानवान्‌है । जोकुछ जानने योग्य है वह इसने जाना है-इसमें संशय नहीं । जबतक तुम स्वरूप में न जागो तबतक मेरे वचन में आसक्त बुद्धि करो और निश्चय धारो कि, अविद्यानाश रूपहै और है नहीं । जो कुछ जगत् दृश्यभासता है वह मनका मनन

असत्‌रूप है जिसको यह निश्चय हुआ है वही पुरुष मोक्षभागी है । यह जो मन का फुरनारूप जगत् दृश्यभावको प्राप्तहुआहै वह सब ब्रह्मरूपहै । जिसके हृदय में यह निश्चय स्थित है वहीपुरुष मोक्षभागी है और जिसको चराचर जगत् में दृढ़ भावना है वह बन्धभागी है-जैसे पक्षीजालमें बन्धायमान होताहै । हे रामजी ! सम्पूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टिसे बांधे हुयेहैं । सब जगत् स्वप्न भ्रांतिरूप है पर उसमें जिसको असत् बुद्धि है अथवा सत्‌ब्रह्म बुद्धि है वह अशक्तहोकर संसार दुःखमें नहीं डूबता और जिसको अनात्मधर्म देहादिकमें भावना है और स्वरूप में आत्मबोध नहीं वह हर्ष-शोक आपदाको प्राप्त होताहै जिसको स्वरूप में स्वरूपबोध है और अनात्म धर्म्मका त्यागहै उसको संसार अविद्या नहीं रहती और दुःख विकार स्पर्श नहीं करसक्ता । जैसे जलमें धूलनहीं उड़ती तैसेही उस महात्मा पुरुषके चित्तमें दुःख उदय नहीं होते । ज्ञानवान् पुरुषके हृदयमें जगत्‌के शब्द अर्थका रङ्गनहीं चढ़ता । जैसे सूत बिना वस्त्र नहीं होता-पटतन्तुही रूपहै तैसेही आत्मा बिना जगत् नहीं होता-जगत् आत्मा रूपहै । जैसे जानके जो व्यवहार में वर्त्तताहै वह पुरुष मानसी दुःखको नहीं प्राप्तहोता और जो अविद्यासे संसार में भटकता है वह आत्म तत्त्वको नहीं पासक्ता और विद्यमानभी उसको नहीं भासता । केवल आत्मज्ञानसे अविद्याका नाश होताहै; जिसको आत्मज्ञान हुआहै वह अविद्यारूपी नदीको तरजाता है । आत्मसत्ता के प्राप्तहुये अविद्याक्षीण होजाती है; जिनको अविद्यारूपी संसारके पदार्थ की इच्छा उदय होती है वे अविद्यारूपी नदी में बहजाते हैं । हे रामजी ! यह अविद्या बड़े मोह और भ्रमदेती है । जब यह दृढ़होकर स्थित होती है तब तत्पदको घेरलेती है; इससे तुम यह न विचारो कि, अविद्या कहां से उपजी है और कौन इसका कारण है यही विचारो कि, यह नाश कैसे होती है । इसके क्षयका उद्यमकरो; जब यह नष्ट होगी तब इसकी उत्पत्तिभी जानलोगे कि, इस प्रकार उपजी है, और यह इसका स्वरूप है; यहकारणहै और यह कार्य्य है । हे रामजी ! अविद्या वास्तव में कुछहै नहीं, अविचार सिद्धहै और विचार दृष्टिसे नष्ट होजातीहै, तब जानीनहीं जाती कि, कहांगई पर जब स्वरूप विस्मरण होताहै तब उपजकर दृढ़होतीहै और फिर दुःख देतीहै । इससे बलकरके इसका नाशकरो । बड़ेबड़े शूरमा हुये हैं पर उनको भी अविद्याने व्याकुल कियाहै; ऐसा बुद्धिमान् कोई नहीं जिसको अविद्याने व्याकुल नहीं किया । अविद्या सर्वरोगोंका मूल है; यत्नकरके इसकी औषधकरो कि, जिससे जन्म दुःख कुहिरा न प्राप्तहो । जो कुछ आपदाहै उसकी यह अधिष्ठाता सखीहै; अज्ञानरूपी वृक्षकी बेलि है और अनर्थरूपी अर्थकी जननी है । ऐसी अविद्यारूपी मलीनताको दूर करो जो मोह, भय, आपदा और दुःखकी देनेवाली है और हृदय में मोह उपजाकर जीवोंको

व्याकुल करती हैं। अज्ञान चेष्टासे इसकी वृद्धिहोती है। जब अविद्यारूपी संसार समुद्र से पारहोगे तब शान्तिहोगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेअविद्याकथनन्नामएकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्यारूपी रोगको काटकर जब शान्तरूप स्थित होते हैं और विचाररूपी नेत्रसे देखते हैं तब यह नष्ट होजाती है। इस विस्तृत व्याधिकी औषध सुनो, जीव जगत्का विस्तार मैं तुमसे कहताहूं। सात्त्विक, राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारने के लिये मैं प्रवर्त्तता था। जो तत्त्वअमृत और ब्रह्म स्वरूप है वह सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्यप्रकाश, अनन्त और आदि अन्तसे रहित निःभ्रम है। जब वह चैतन्य प्रकाश स्पन्दरूपहो फुरता है तब दीपकवत् तेजप्रकाश चैतनरूप चित्तकला जगत्को चेतने लगता है-तब जगत् फुरताहै। जैसे सोमजल समुद्रमें द्रवतासे तरंग होता है सो जलसे भिन्न नहीं है तैसेही सर्वात्मासे भिन्न किसी कलाका रूप कुछ नहीं-यह स्पन्दरूपभी अभेद है। जैसे आकाश में आकाशस्थित है तैसेही आत्मामें चित्तशक्ति है; जैसे नदीमें वायुके संयोगसे तरङ्ग उठते हैं तैसेही आत्मामें चित्तकला दृश्य जगत् होताहै बल्कि, ऐसेभी नहीं; आत्मा अद्वैत है, स्वतः उसमें चित्तकला होआती है। जैसे वायुमें स्वाभाविक स्पन्द होताहै। स्पन्द और निस्पन्द दोनों वायुके रूप हैं पर जब स्पन्द होता है तब भासता है। और निस्पन्द होता है तब अलक्ष होजाता है तैसेही चित्तकला फुरतीहै तब लक्षमें आती है और निस्पन्द हुई अलच होती है तब शब्दको गमनहीं होती। स्पन्द से जगत् भाव को प्राप्त होती है। जैसे समुद्रमें तरंग और चक्र फुरते हैं तैसेही चैतनमें चित्तकला फुरती है। जैसे आकाशमें मुक्तमाल भासती है सो है नहीं तैसेही आत्मा में वास्तव कुछ है नहीं पर स्पन्दभावसे कुछभूषित दूषितहो भासती है। आत्मासे भिन्न कुछ नहीं परन्तु भिन्नकी नाईं भासती है। जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी कोटि रविसम स्थित होती है तैसेही आत्मामें चित्तशक्तिहै और देश, काल, क्रिया और द्रव्यको जैसे जैसे चेतती है तैसेही तैसे हो भासती है। फिर नामसंज्ञा होती है और अपने स्वरूपको विस्मरण करके दृश्यसे तन्मय होती है तौ भी स्वरूपसे व्यतिरेक नहीं होती परन्तु व्यतिरेक की नाईं भावना होती है। जैसे समुद्रसे तरंग और सुवर्ण से भूषण भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से चित्तशक्ति भिन्न नहीं; परन्तु अपने अनन्त स्वभावको विस्मरण करके देश, काल, क्रिया, द्रव्यको नहीं मानती, सङ्कल्पके धारनेसेही कल्पना भावको प्राप्त होती है और विकल्प कलनासे क्षेत्रज्ञरूप होती है। शरीरका नाम क्षेत्र है और शरीर को भीतर बाहर जानने से क्षेत्रज्ञनाम होता है। वह क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभावकी वासना करती है और उस अहंकार से आत्मासे भिन्न रूप धरती है। फिर अहङ्कार

में निश्चय कलना होती है उसका नाम बुद्धि होता है । अहंभावसे जब निश्चय सङ्कल्प कलना होती है उसका नाम मन होता है; वही चित्कला मनभाव को प्राप्त होती है । जब मनमें घन विकल्प उठतेहैं तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी भावना से इन्द्रियां फुर आतीहैं और फिर हाथ, पांव, प्राण संयुक्त देह भासिआताहै । इस प्रकार जगत्से देहको पाकर जीव जन्म मृत्युको प्राप्त होता है; वासना में बँधाहुआ दुःखके समूहको पाताहै; कर्म्मसे चिन्तामें दीनरहता है और जैसे कर्म करताहै तैसेही आकार धरताहै । जैसे समय पाके फल परिपक्वताको प्राप्त होता है तैसेही स्वरूपके प्रमादसे जीव दृश्यभावको प्राप्तहोताहै; आपको कारण, कार्य्य मानके अहंभावको प्राप्त होताहै; निश्चय वृत्तिसे बुद्धिभावको प्राप्तहोताहै और सङ्कल्प संयुक्त मनभावकोप्राप्त होताहै । वही मन तब देह और इन्द्रियांरूप होकर स्थित होताहै और अपना अनन्त रूप भूलजाता है और परिच्छिन्न भावको ग्रहण करके प्रतियोग और व्यवच्छेद भाव भासताहै और तभी इच्छा, मोहादिक शक्तिको प्राप्त होता है । जैसे समुद्र में नदियां प्रवेशकरतीहैं तैसेही सब आपदा और दुःख आय प्राप्तहोते हैं । इसीप्रकार अहंकार अपनी रचनासे आपही बन्धवान् होताहै; जैसे कुसवारी अपने स्थानको रचकर आपही बन्धवानहोतीहै । बड़ाखेद है कि,मन आपही सङ्कल्पसे दृश्यको रचताहै और फिर उसीदेहमें आस्थाकरताहै, जिससे आपही दुःखीहोताहै; भीतरसे तपता रहता है और आपको बन्धायमान कर संसार जङ्गलमें अविद्यारूप आशाकोलेके फिरता है। अपनेही सङ्कल्प कलनासे तन्मात्रा देहहुईहै और उस में अहंप्रतीत होतीहै । जैसे जलमें तरंग होते हैं तैसेही देहादिक उदय हुयेहैं और उनसे बँधाहुआ जीव दुःखित होताहै; जैसे सिंह जंजीर से बांधाजावे । एकस्वरूपहै वही फुरनेके वशसे नानाभावको प्राप्त हुआहै; कहीं मन, कहीं बुद्धि, कहीं अहंकार, कहीं ज्ञान, कहींक्रिया; कहीं पुर्यष्टक, कहीं प्रकृति, कहीं माया, कहीं कर्म, कहीं विद्या, कहीं अविद्या और कहीं इच्छा कहाताहै ।हेरामजी ! इसीप्रकार जीव अपने चित्त से भ्रममें प्राप्त हुआहै और तृष्णारूपी शोकरोगसे दुःखपाताहै । तुम यत्न करके इससे तरो । जरा मरण आदिक विकार और संसार की भावनाही जीव को नष्टकरतीहै । यहभलाहै ग्रहणकीजिये; यहबुरा है, त्यागकरने योग्यहै; इसीसंकल्प–विकल्पमें ग्रसा अविद्याके रंगसे रंजितहुआहै; इच्छा करनेसे इसका रूप सकुचगयाहै और कर्मरूपी अंकुर से संसाररूपी वृक्ष बढ़गयाहै जिससे अपना वास्तवस्वरूप विस्मरण हुआहै और कलनासे आपको मलीन जान कर अविद्या के संयोग से नरक भोगताहै और संसार भावना रूपी पर्वतके नीचे दबकर आत्मपदकी ओर नहीं उठसक्ता । संसाररूपी विषका वृक्ष जरा मरणरूपी शाखा से बढ़गयाहै और आशारूपी फांससे बांधे हुये जीव भटककर चिन्तारूपी अग्नि में

जलते हैं और क्रोधरूपी सर्पने जीवोंका चर्वण कियाहै जिससे अपनी वास्तवता वि स्मरण होगईहै । जैसे अपने यूथसमूहसे भूला हरिण शोकसे दुःखी होताहै; पतंग दीपक की शिखामें जल मरताहै और मूलसेकाटा कमल विरूप होताहै तैसेही आशा से क्षुद्रहुआ मूर्ख बड़ा दुःखपाताहै। जैसे कोई मूढ़ विषको सुखरूप जानके भक्षणकरे तो दुःखपाताहै तैसेही इसको भोगमें मित्र बुद्धिहुईहै परन्तु वह इसका परमशत्रुहै,इसको उन्मत्त करके मूर्च्छा करता और बड़ादुःख देता है । जैसे बांधाहुआ पक्षी पिंजरे में दुःखपाता है तैसेही यह दुःख पाता है । इससे इसको काटो । यह जगत् जाल असत् और गन्धर्व्व नगरवत् शून्यहै और इसकी इच्छा अनर्थका कारणहै; तुम इससंसार समुद्रमें मतडूबो । जैसे हाथी कीचड़से अपनेबलसे निकलताहै तैसेही अपना उद्धार करो । संसाररूपी गढ़ेमें मनरूपी बैल गिराहै जिससे अंगजीर्ण होगये हैं । अभ्यास और वैराग्यके बलसे इसको निकालके अपना उद्धारकरो । जिसपुरुष को अपने मनपरभी दयानहीं उपजती कि, संसार दुःखसे निकले; वह मनुष्यका आकार है परन्तु राक्षस है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजीवतत्त्ववर्णनन्नामद्विचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार जो जीव परमात्मासे फुरकर संसार भावना करतेहैं उनकी संख्या कुछनहीं कही जाती; कोई पूर्व उपजेहैं, कोई अपूर्व उपजे हैं और कोई अबतक उपजतेहैं । जैसे फुरनेसे जलके कणके प्रकट होते हैं तैसेही ब्रह्म सत्तासे जीव फुरते हैं पर अपनी वासनासे बांधेहुये भटकते हैं और विवशहोकरनाना प्रकार की दशाको प्राप्त होतेहैं; चिन्तासे दीनहोजातेहैं; और दशोंदिशा जल थल में भ्रमतेहैं । जैसे समुद्र में तरंग उपजतेहैं और नष्टहोतेहैं तैसेहीजीव जन्म और मरण पातेहैं । किसी का प्रथम जन्महुआहै, किसीके सौ जन्म होचुकेहैं; कोई असंख्य जन्म पाचुके हैं; कोई आगेहोंगे कोई होकर मिटगयेहैं और कोई अनेक कल्पपर्यंत अज्ञान से भटकेंगे । कोई अब जरामें स्थितहैं; कोई यौवनमें स्थितहैं; कोई मोहसे नष्ट हुयेहैं; कोई अल्पवय होकर स्थितहैं; कोई अनन्त आनन्दी हुयेहैं; कोई सूर्यवत् उदितरूपहैं; कोई किन्नरहैं कोई विद्याधरहैं; और कोई सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, बरुण, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, यक्ष, वैताल और सर्पहैं । कोई ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य और शूद्रगण कहातेहैं और कोई क्रांत, चांडाल आदिकहैं । कोई तृण, औषध, पत्र, फूल, मूलको प्राप्तहुयेहैं और कोई लता, गुच्छे, पाषाण, शिखरहुयेहैं । कोई कदम्ब वृक्ष, ताल और तमालहैं और कोई मंडलेश्वर चक्रवर्त्ती हुये भ्रमतेहैं । कोई मुनीश्वर मौनपद में स्थितहैं; कोई कृमि, कीट, पिपीलिका आदिकरूपहैं । कोई सिंह, मृग, घोड़े, खच्चर, गर्दभ, बैल आदिक पशुयोनिमें हैं और कोई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगुलादिकपक्षीहैं । कोई कमल

कली, कुमुद, सुगंधादिकहैं और कोई आपदासे दुःखीहैं । कोई सम्पदावान्हैं, कोई स्वर्ग और कोई नरकमेंस्थितहैं । कोई नक्षत्र चक्रहैं, कोई आकाशमें वायुहैं, कोई सूर्यकी किरणोंमें और कोई चन्द्रमाकी किरणों में रसलेतेहैं । कोई जीवन्मुक्त हैं, कोई अज्ञान से भ्रमते हैं; कोई कल्याणभागी चिरपर्यंत भोगको भोगते हैं; कोई परमात्मामें प्रणमीगयेहैं । कोई अल्पकाल और कोई शीघ्रही आत्मतत्त्व में लयहुये हैं; कोई चिरकाल में जीवन्मुक्त होवेंगे; कोई मूढ़ दुर्भावना करते अनात्मामें भ्रमते हैं; कोई मृतकहोकर इस जगत् में जन्मते हैं; कोई और जगत् में जा स्थित होते हैं और कोई न यहां और न वहां उपजते हैं केवल आत्म तत्त्व में लय होते हैं । कोई मन्दराचल, सुमेरु आदि पर्वत होकर स्थित होते हैं; कोई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र, इक्षुरस, जल आदिक समुद्र हुये हैं । कोई नदियां, तड़ाग, वापिकादि भये हैं; कोई स्त्रियां, कोई पुरुष और कोई नपुंसकरूप हुये हैं । कोई मूढ़, कोई प्रबुध, कोई अत्यन्त मूढ़हुये हैं; कोई ज्ञानी, कोई अज्ञानी, कोई विषय तप्त और कोई समाधि में स्थित हैं । इसी प्रकार जीव अपनी वासनासे बांधेहुये भ्रमते हैं और संसार भावनासे जगत् में कभी अध और कभी ऊर्ध्वको जाकर काम, क्रोधादिक दुःखकी पीड़ा पाते हैं । वे कर्म और आशारूपी फांसी से बांधेहुये हैं और अनेक देहको उठाये फिरते हैं । जैसे भारवाही भारको उठाते हैं तैसेही कोई मनुष्य शरीर से फिर मनुष्य शरीर को धारते हैं; कोई वृक्षसे वृक्ष होते हैं और कोई और से और शरीर धारते हैं । इसी प्रकार आत्मरूपको भुलाकर जो देह मिलेहुये वासनारूप कर्म्म करतेहैं वे उनके अनुसार अध ऊर्ध्वपन्थ में भ्रमते हैं । जिनको आत्मबोध हुआहै वे पुरुष कल्याणरूपहैं और सब दुःखी मायारूप संसारमें मोहितहुये हैं । यह संसार रचना इन्द्रजालकी नाईं है; जबतक जीव अपने आनन्द स्वरूपको नहीं पाता और साक्षात्कार नहीं होता तबतक संसारभ्रम में भ्रमताहै और जिस पुरुषने अपने स्वरूप को जाना है और जीवकीनाईं त्याग नहीं किया और वारंवार संसारके पदार्थोंसे रहित आत्माकी ओर धावता है वह समयपाकर आत्मपदको प्राप्तहोगा और फिर जन्म न पावेगा । कोई जीव अनेक जन्म भोगके ज्ञानसे अथवा तप से ब्रह्माके लोकको प्राप्तहोते हैं तब परमपद पाते हैं; कोई सहस्र जन्म भोग भोगकर फिर संसारमें प्राप्तहोते हैं; कोई बुद्धिमान् विवेकको भी प्राप्तहोते हैं और फिर संसारमें गिरते हैं अर्थात् मोक्षज्ञानको पाके फिर संसारी होते हैं; कोई इन्द्रपद पाकर तुच्छबुद्धि से फिर तिर्यक् पशुयोनि पाते हैं और फिर मनुष्याकार धारते हैं; कोई महाबुद्धिमान् ब्रह्मपदसे उपजकर उसी जन्ममें ब्रह्मपदको प्राप्तहोते हैं; कोई अनेक जन्ममें और कोई थोड़े जन्ममें प्राप्तहोते हैं । कितने एक जन्म से और ब्रह्माण्डको प्राप्त होते हैं; कोई इसीमें देवता से पशुजन्म पाते हैं;

कोई पशुसे देवता होजाते हैं और कोई नाग होजाते हैं। निदान जैसी जैसी वासना होती है तैसाहीरूप होजाता है। जैसे यह जगत् विस्ताररूप है तैसेही अनेक जगत् हैं; कोई समानरूप हैं, कोई विलक्षण आकारहैं; कोई हुयेहैं, कोई होवेंगे; विचित्ररूप सृष्टि उपजती है और मिटती है और कोई गन्धर्व्व भाव, कोई यक्ष, देवता आदिक भावको प्राप्त हुये हैं। जैसे जीव इस जगत् में व्यवहार करते हैं तैसेही और जगतों में भी व्यवहार करतेहैं पर आकार विलक्षणहैं और अपने स्वभाव के वशहुये जन्म मरणपातेहैं। जैसे समुद्रसे तरङ्ग उपजते हैं और मिटजातेहैं तैसेही सृष्टिकी प्रवृत्ति, उत्पत्ति और लयहोती है। जब संवित् स्पन्द होतेहैं तब उपजते हैं और जब निस्पन्दहोतेहैं तब लयहोतेहैं। जैसे दीपकका प्रकाश लयहोताहै; सूर्य्यसे किरणें निकलती हैं तप्त लोहे और अग्नि से चिनगारी निकलती हैं; कालमें ऋतु निकलती हैं; पुष्प से सुगन्ध प्रकटहोती है और समुद्र से तरंग उपजते और फिर लयहोते हैं तैसेही आत्मसत्तासे जीव उपजते हैं और लय होते हैं। जितने जीव हैं वे सब समय पाके अपने पद में लय होंगे और स्वरूप में इनका उपजना, स्थित, बन्धन नष्ट होना मिथ्या है। त्रिलोकीरूप महामाया के मोह से उपजते हैं और समुद्र के तरंगकी नाईं नाश होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजीवबीजसंस्थावर्णनन्नाम त्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४३॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! जीव इसक्रमसे आत्मस्वरूप में स्थित है फिर अस्थि, मांससे पूर्ण देह पिंजर इनको कैसे प्राप्तहुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने प्रथम तुमको अनेकप्रकारसे कहाहै पर तुम अबतक जाग्रत् नहींहुये। पूर्वापरके विचार करनेवाली तुम्हारी बुद्धि कहांगई? जो कुछ शरीरादिक स्थावर-जङ्गम जगत् दृष्टि आता है वह सब आभासमात्र है और स्वप्नेकी नाईं उठा है पर दीर्घ स्वप्न है और मिथ्याभ्रम से भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्र है और भ्रमनेसे पर्वत भ्रमते भासते हैं; तैसेही जगत् अज्ञान से भासता है। जिन पुरुषों की अज्ञान निद्रा नष्टहुई है और निश्चयसे संसार वासना लगगई है वे प्रबुद्ध चित्त हैं। संसार को वे स्वप्नरूप देखते हैं और स्वरूप भावसे कुछ नहीं देखते अपनेही स्वभाव में संसार कल्पित है। जीव संसार मोक्षसे प्रथम सर्वदा सत्रूप देखते हैं और उन की संसार भावना असत् नहीं होती। वे जगत् आकार सर्वदा अपने भीतर कल्पते हैं और जीवके अनेक आकार चपलरूप क्षणभंगहोते हैं। जैसे जल में तरंग चञ्चल रूप होते हैं, बीजमें अंकुर रहता है और उसी के भीतर पत्र, फूल और फल होते हैं तैसेही कल्पनारूपी देह मनके फुरने में रहती है। हे रामजी! देह न हो परन्तु जहां

मन फुरता है वहांही देह रचलेताहै । जैसे स्वप्नेमें मनोराज देह रच लेताहै तैसेही यह देह और जगतभी क्रमसे रचाहुआ है । जैसे चक्रपर चढ़ाया मृत्तिकाका पिण्ड घटरूप होजाताहै तैसेही मन के फुरने से देह बनता है । सब देह मन के फुरने में स्थितहै और जो कुछ जगत भासता है वह सब संकल्पमात्र है । जैसे मृगतृष्णा का जल असतरूप होताहै तैसेही यह जगत असत्यहै । जैसे बालकको अपनी परछाहीं में बेताल भासता है तैसेही जीवको अपने फुरने से देहादिक भासते हैं । हे रामजी ! सृष्टि के आदि में जो शरीर उत्पन्नहुये हैं वे आभासमात्र संकल्पसे उपजे हैं । प्रथम ब्रह्मा पद्म में स्थितहुये और उन्होंने संकल्प के क्रमसे संकल्पपुरकीनाईं विस्तार किया सो सब मायामात्र है । मायाकी घनतासे यह जगत भासता है—स्वरूप में कुछ नहीं । रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! आदि जीव जो मनरूप फुरनेको पाकर ब्रह्मपदको प्राप्तहुआ वह ब्रह्मा कैसेहुआहै और कैसे स्थितहै वह मुझसे क्रमसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहु रामजी ! प्रथम जिस प्रकार ब्रह्मा ने शरीरको पाकर ग्रहण कियाहै उसको सुनकर स्थितिभी जानोगे । देश काल आदिकके परिच्छेद से रहित आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थितहै । वह अपनी लीला शक्तिसे देश, काल, क्रिया कल्पितरूप हुआ है और उससे जीवके इतने नाम हुये हैं वासना से तद्रूपहुई चित्तकला चपलरूप मनहुआ और वह दृश्यकलनाके सन्मुख हुई । प्रथम उसी चित्तकलाने मानसी शक्तिहोकर आकाशकी भावनाकी और स्वच्छ बीज रूप जो शब्दहै उसके सन्मुख हुई । जैसे नूतन बालक प्रकट होता है तैसेही आकाश पोलरूप फुरआया । फिर स्पर्श बीजके सन्मुख हुई तब पवन फुरआया । जब शब्द स्पर्श, आकाश और पवन का संघर्षण हुआ तब मन के तन्मय होने से अग्नि उपजा और बड़ाप्रकाश हुआ । फिर रस तन्मात्रा की भावना की तब शीतल भावना से जल फुरआया जैसे अतिउष्णता से स्वेद निकल आता है । फिर गन्ध तन्मात्राकी भावना की उससे घ्राणइन्द्रिय निकली; स्थूलकी भावना से जल चक्र पृथ्वी होकर स्थित हुये और आकाश में बड़ा प्रकाश हुआ । अहंकारकी कलासे युक्त और बुद्धिरूपी बीज से समुच्चितरूप हुई और अष्टम जीवसत्ताहुई । इन अष्टकानाम पुर्य्यष्टक हुआ और वही देहरूपी कमलका भँवरा हुआ । उस आत्मसत्ता में तीव्र भावना करके उस चित्तसत्ता ने बड़ास्थूल वपु देखा । जैसे बीज से वृक्ष फूल होनेसे रस प्रणमता है तैसेही निर्मल आकाश में वृत्तिस्पन्द अस्पन्दरूप हुई है । जैसे भूषण बनाने के निमित्त सांचे में स्वर्ण आदिक धातु डालते हैं तो वह भूषणरूप होजाती है तैसेही ब्रह्माजी ने अपनी चैतन्य संवेदन मनरूपी संवित् में तीव्र भावनाकी उससे स्थूलता को प्राप्तहुये । स्वतः यह दृश्यका रूप फुरना क्रमसे हुआ कि, ऊर्ध्व शीश है, मध्य उदरहै, अधः पादहैं, चारों दिशा हाथ हैं और मध्यमें उदर धर्म्महै । जैसे नूतन बालक प्रकट होता है और महा

उज्ज्वल प्रकाश ज्वालाकी लाटों के समान उसके अंगहोते हैं तैसेही ब्रह्मा का शरीर उत्पन्न हुआहै। इस प्रकार वासना और कल्पित मन से शरीर उत्पन्न करलियाहै। आदि ब्रह्माका प्रकाशही शरीर हुआहै जो सदा ज्ञानरूप, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, शक्ति, तेज और उदारता से सम्पन्न स्थित है। इस प्रकार ब्रह्म जी सब जीवों का अधिपति द्रवस्वर्णवत् कांति परमआकाश से उपजकर आकाररूप स्थित हुआ और अपनी लीला के निमित्त अपने निवास का गृहरचा। हे रामजी! कभी ब्रह्मा जी परमआकाश में रहते हैं; कभी कल्पांतर महाभास्कर अग्निमें रहते हैं और कभी विष्णुजी के नाभिकमलमें रहते हैं। इसी भांति अनेक प्रकार के आसनरचकर कभी कहीं, कभी कहीं स्थितहोते हैं और लीला करते हैं। जब परमतत्त्वसे प्रथम वह इस प्रकार फुरते हैं तब अपने साथ शरीर देखते हैं;जैसे बालक निद्रा से जागकर अपने साथ शरीर देखते हैं—जिसमें बाण के प्रवाहसदृश प्राण अपान जाते आते हैं—तब पंचतत्त्व जो द्रव्यहैं उनको रचते हैं। इस शरीरमें बत्तीस दांत, तीन थम्भ; पांच देवता—अर्थात् ब्रह्मा,विष्णु,रुद्र,ईश्वर, सदाशिव, नवद्वार; दो जंघस्थल दोपांव;दोभुजा; बीस अंगुली; बीसनख,एक मुख और दो नेत्रहैं। कभी अपनी इच्छा से अनेक भुजा और अनेक नेत्र करलेताहै और मांस कहगिलकीहै। ऐसा शरीर चित्त रूपी पक्षीका घर है; कामदेव भोगने का स्थान है; वासनारूपी पिशाचिनी का गृह है; जीवरूपी सिंहकी कन्दरा है और अभिमानरूपी हस्ती का वन है। इस प्रकार ब्रह्माजीने शरीरको देखा और बड़े उत्तम कान्तिमान् शरीरको देखकर ब्रह्माजी जो त्रिकालदर्शी हैं चिंतवन करनेलगे कि, इसके आदि क्या हुआ है और अब हमें क्या करना है, तो उन्होंने क्या देखा कि, जो आगे भूतका सर्ग्ग वेद संयुक्त व्यतीत हुआ है ऐसे अनेक सर्ग्ग हुये हैं। उनके सब धर्म्म स्मरण करके देखा और वाङ्मय भगवती और वेदका स्मरण किया और सर्व्व सृष्टिके धर्म्म, गुण, विकार, उत्पत्ति, स्थिति, बढ़ना, परिणाम, क्षीण और नाशको स्मृति शक्ति में देखा जैसे योगेश्वर ने अपना और और का अनुभव करताहै और चित्तशक्तिमें स्थित होकर स्मृति शक्तिसे देख लेता है तैसेही ब्रह्माजी ने दिव्यनेत्र से अनुभव किया। फिर इच्छाहुई कि; विचित्ररूप प्रजाको उत्पन्न करूं। ऐसे विचारकर प्रजाको उत्पन्न किया और जैसे गन्धर्व्वनगर तत्काल होजाता है तैसेही सृष्टि होगई है। धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ उनके साधन रचे और फिर उनमें विधि निषेध रचे कि, यह कर्त्तव्यहै, यह अकर्त्तव्यहै; उनके अनुसार फलकी रचना की और शुभ अशुभ विचित्रता रची। हे रामजी! इस प्रकार फुरने से सृष्टि हुईहै और फुरने की दृढ़तासेही स्थित है। उस में तीन काल, क्रिया, द्रव्य, कर्म धर्म्म रचे हैं। जैसे नीति रची है तैसेही स्थित है। जैसे वसन्तऋतु में पुष्प उत्पन्न होते हैं तैसेही ब्रह्माके मन ने सृष्टि रचीहै। यह विचित्ररूप रचनाका विलास चित्ररूप

ब्रह्माके चित्तमें कल्पितहै; कालमें उत्पन्न हुई है और कालही से स्थितहै । स्वरूप में न कुछ उपजाहै और न कुछ नष्टहोताहै। जैसे स्वप्नसृष्टि होतीहै तैसेही यहसंसाररचनाहै॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारप्रतिपादनंनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४ ॥
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जो उपजाहै वह कुछ नहीं उपजा और न स्थितहै—शून्य आकाशरूप है और मनके फुरने से सृष्टिभासती है । बड़े देश, काल क्रिया संयुक्त जो ब्रह्माण्ड दृष्टिआताहै उसने परमार्थमें कुछभी स्थान नहीं रोका, स्वप्न पुरवत् सङ्कल्पमात्र है और आधार विना चित्र है । जैसे मूर्त्तिका चित्र आधार विना मिथ्या होताहै तैसेही यह जगत् बड़ा भासताहै पर मिथ्याहै, असत्य तमरूपहै और आकाशमें चित्रकी नाई है । जैसे स्वप्ने में भासरूप जगत् भासता है वह असत्रूप है तैसेही यह शरीरादिक जगत् मनके फुरनेसे भासता है—मनका फुरनाही इसका कारणहै । जैसे नेत्रका कारण प्रकाशहै तैसेही जगत्का कारण चित्तहै । सब जगत् आकाशमात्रहै और घट, पट, गढ़ाआदिक क्रमसहित भी असत्रूप है । जैसे जलमें जो चक्रावर्त्त भासते हैं वे असत्यरूप हैं तैसेही पर्वतादिक जगत् असत्यरूप हैं; अपने निवासके निमित्त मनने यह शरीर रचाहै । जैसे कुसवारी अपने निवासके निमित्त गृह रचतीहै और आपही बन्धनमें आतीहै तैसेही मन शरीरादिकको रचकर आपही दुःखी होताहै । ऐसापदार्थ कोईनहीं जो संकल्पसे रहित सिद्धहो और मनके यत्नसे सिद्ध न हो, कठिन क्रूर पदार्थ भी मनसे सिद्ध होताहै । परमात्मा जो देवहै वह सर्वशक्तिमान् है, मनभी उसीकी शक्तिहै, वह कौन पदार्थ है जो मनसे सिद्ध न हो; मनसे सबकुछ बन जाताहै क्योंकि; जो कुछ पदार्थ हैं उनमें सत्ता परमात्माकी है—उससे कुछ भिन्न नहीं। इससे परमात्मा देवमें सबकुछ सम्भवहै । आदि चित्तकला ब्रह्मारूपहोकर उदय हुई है। उस भावना के अनुसार उसने आपको ब्रह्माका शरीर देखा और उसने कलना रूप देवता; दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जंगमरूप जगत् रचा है और संकल्प में स्थित है । जब तक उसका संकल्प है तब तक तैसेही स्थित है । जब सङ्कल्प मिट जावेगा तब सृष्टि भी नष्ट होजावेगी । जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही जगत भी होजावेगा क्योंकि, आकाशवत् सबही कलनामात्र है और दीर्घ स्वप्नवत् स्थित है । वास्तव में न कोई उपजा है, न मरता है । परमार्थ से तो ऐसे हैं और अज्ञान से सब पदार्थ विकार संयुक्त भासते हैं । न कोई वृद्धि है, न कोई नष्ट होताहै उसमें और विकार कैसे मानिये ? जैसे पत्रकी रेखाके उपजने और नाश होनेमें वनको कुछ अधिकता और न्यूनता नहीं होती तैसेही शरीर के उपजने और नष्ट होने में आत्मा को लाभ हानि कुछ नहीं । सब जगत् दृश्य भ्रांति से भासताहै । ज्ञानदृष्टि से देखो अज्ञानीवत् क्यों मोहित होतेहो ? जैसे मृगतृष्णा का जल प्रत्यक्ष भासता है तो भी

मिथ्या भ्रममात्र होता है तैसेही ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब भ्रान्तिमात्र है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही मिथ्या ज्ञानसे जगत् भासता है। जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष स्थान चलते दृष्टि आते हैं तैसेही भ्रमदृष्टि से जगत् भासता है। इस जगत्को तुम इन्द्रजालवत् जानो; यह देह पिंजर है और मन के मननसे असत्यरूपही सत्यकी नाईं स्थित हुआ है। जगत् द्वैत नहीं है मायसिरची ब्रह्मसत्ताही ज्योंकीत्यों स्थितहै और शरीरादिक कैसे किसकीनाईं स्थितकहिये। पर्वत तृणादिक जो जगत् आडम्बर है वह भ्रान्तिमात्र मनकी भावनासे दृढ़हो भासता है और असत्यही सत्यरूपहो स्थितहुआहै। हे रामजी! यह प्रपञ्च नानाप्रकारकीरचना संयुक्त भासताहै पर भीतर से तुच्छहै। इसकी तृष्णा त्यागके सुखीहो; जैसे स्वप्ने में बड़े आडम्बर भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र असत्यरूप हैं वास्तव में कुछ नहीं तैसेही यह जगत् दीर्घकालका स्वप्नाहै, चित्तसे कल्पितहै और देखनेमें बड़ा विस्ताररूप भासता है विचार करके ग्रहणकरिये तो कुछ हाथ नहींआता। जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में कुछ नहीं मिलती और कुसवारी को अपना रचा गृह बन्धन करताहै तैसेही अपना रचा जगत् मनको दुःख देताहै; इससे इसको त्यागकरो। जिस पुरुष ने इसको असत्य जाना है वह जगत्की भावना फिर नहीं करता। जैसे मृगतृष्णाके जलको जिसने असत्य जानाहै वह पानके निमित्त नहीं धावता और जैसे अपने मनकी कल्पी स्त्रीसे बुद्धिमान् राग नहीं करता; तैसेही ज्ञानवान् जगत्के पदार्थों में राग नहीं करता और जो अज्ञानी है वह रागकरके बन्धायमान होताहै। जैसे स्वप्ने में असत्य स्त्री से चेष्टाकरताहै तैसेही अज्ञानी असत्य जगत्को सत्यजान के चेष्टा करताहै; बुद्धिमान् सत्यमानकर नहीं करता। जैसे रस्सीमें सर्प भासताहै तैसेही मनके मोहसे जगत् भासताहै और भयदायक होता है पर सब भावनामात्रहै। जैसे जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब चञ्चल भासताहै और उसके ग्रहणकी इच्छा बालक करताहै, बुद्धिमान् नहीं करताहै; तैसेही जगत् के पदार्थोंकी इच्छा अज्ञानी करतेहैं ज्ञानवान् नहीं करते। हे रामजी! यह मैंने परमगुणों का समूह तुमको उपदेश कियाहै। इसकी भावना करके तुम सुखीहोगे। जो मूर्ख इन वचनों को त्याग के दृश्यकी ओर सुखरूपजानके लगते हैं वे ऐसेहैं जैसे कोई शीतसेदुःखी हो और प्रत्यक्ष अग्निको त्यागकर जलमें प्रतिबिम्बित अग्निका आश्रयकरे और उस से जाड़ा निवृत्त कियाचाहे तो वह मूढ़है। तैसेही आत्मविचारको त्यागके जो जगत् के पदार्थोंकी सुखके निमित्त इच्छा करते हैं वे मूढ़ हैं। सब जगत् असत्यरूपहै और मनके मननसे रचाहै। जैसे स्वप्ने में चित्त से नगर भासताहै तो यदि वह नगर जलता भासे तो पुरुष कदाचित् नहीं जलता तैसेही जगत् के नाशहुये आत्मा नाश नहीं होता। वह उपजने, बढ़ने, घटने और नाश होने से रहितहै। जैसे बालक अपनी क्रीड़ा के

निमित्त हाथी घोड़ा नगर रचलेताहै और समेट छोड़ताहै तो वह उपजने मिटने में ज्योंका त्यों है और जैसे बाजीगर बाजीको फैलाता है और फिर लय करता है तो उत्पत्ति लय में बाजीगर ज्योंका त्यों है तैसेही आत्मा जगत्की उत्पत्ति लयमें ज्योंका त्यों है उसका कुछ कदाचित् नष्ट नहीं होता। जो सब सत्यहै तो किसीका कुछ नाश नहीं होता इस कारण जगत्में हर्ष शोक करना योग्यनहीं और जो सब असतहै तौभी नाश किसीका न हुआ और दुःखभी किसीको न हुआ। सत्य असत्य दोनों प्रकार हर्ष शोक नहींहोता। स्वरूपमें किसीका नाश नहीं और सबजगत् ब्रह्मरूपहै तो दुःख सुख कहां है? ब्रह्म सत्तामें कुछ द्वैत जगत् बनानहीं, सब जगत् प्रत्यक्ष जो अनन्वय होता है तौभी असत्रूप है। उस असत्रूप संसार में ज्ञानवान् को ग्रहण करने योग्य कोई पदार्थनहीं और सब जगत् में ब्रह्मतत्त्वहै—कुछ भिन्न नहीं तो त्रिलोकी में तो इसी पदार्थके ग्रहण त्याग की इच्छा कीजिये। जगत् सत्यरूप हो अथवा असत्य ज्ञानवान् को सुख दुःख कोईनहीं। तृतीय भ्रांतिदृष्टि अज्ञानीको दुःखदायकहोती है। जो वस्तु आदि अन्त में असत्यहै उसे मध्यमेंभी असत्य जानिये और उसकेपीछे जो शेष रहता है वह सत्यरूप है जिससे असत्यभी सिद्धहोता है। जिनकी बालबुद्धि मोह से आवृत हैं वे जगत् के पदार्थोंकी इच्छा करते हैं—बुद्धिमान् नहीं करते। बालक को जगत् विस्ताररूप भासताहै; उससे वे अपना प्रयोजन चाहते हैं और सुख दुःख भोगते हैं। तुम बालक मतहो, जगत् अनित्यहै, इसकी आस्था त्यागकर सत्यात्मा में स्थितहो। जो आप संयुक्त सम्पूर्ण जगत् असत्रूप जानो तौभी विषाद कुछ नहीं और जो आप संयुक्त सब सत्य जानो तौभी इस दृष्टिसे हर्ष शोक नहीं। ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं। आप संयुक्त सब असत्यरूप जानोगे तो दुःख न होगा वाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य अस्तहुआ और सब सभा नमस्कार करके अपने अपने स्थानको गई और सूर्यकी किरणों के निकलतेही फिर अपने अपने आसन पर आबैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेयथार्थोपदेशयोगोनाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धन, स्त्री आदि नष्ट होजावें तो इन्द्रजालकी बाजीवत् देखिये। इससेभी शोक का अवसर नहीं होता। जो क्षणमें दृष्टिआये और फिर नष्ट होगये उनका शोक करना व्यर्थ है। जैसे गन्धर्वनगर जो रत्नमणिसे भूषित कियाहो अथवा दुःखसे दूषित कियाहो उसमें हर्ष शोकका स्थान कहां है; तैसेही अविद्यासे रचे पुत्र, स्त्री, धनादिकके सुख दुःखका क्रम कहांहै? जो पुत्र, धनादिक बढ़े तौभी हर्ष करना व्यर्थ है क्योंकि, मृगतृष्णाका जल बढ़ाभी अर्थ सिद्ध नहीं करता; तैसेही धन, दारादि-

क बढ़े तो हर्ष कहां है; शोकवान्‌ही रहता है ? वह कौन पुरुषहै जो मोह मायाके बढ़े
शांतिमान्‌हो ? वह तो दुःखदायकही है । जो मूढ़हैं वे भोगोंको देखके हर्षवान् होते हैं
और अधिक से अधिक चाहते हैं और बुद्धिमानोंको उन भोगों से वैराग्य उपजता है ।
जिनको आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ और भोगोंको अन्तवन्त नहीं जानते उनको
भोगकी तृष्णा बढ़ती है और जो बुद्धिमान् हैं वे भोगोंको आदिसे अन्तवन्त जानते
हैं और दुःखरूप जानकर उसकी इच्छा नहींकरते । इससे हे राघव ! ज्ञानवान्‌कीनाई
व्यवहारोंमें विचरो । जो नष्टहो सोहो और जो प्राप्तहो सोहो उसमें हर्ष शोक न करना ।
उसको यथाशास्त्र हर्षशोक से रहित भोगो और जो न प्राप्तहो उसकी इच्छा न करो ।
यह पण्डितों का लक्षण है । हे रामजी ! यह संसार दुःखरूप भोगसे आया है, इस में
मोहको प्राप्त न होना; जैसे ज्ञानवान् विचरतेहैं तैसेही विचरना मूढ़वत् नहीं विचरना ।
यह संसार आडम्बर अज्ञानसे रचाहै; जो इसको ज्योंकात्यों नहीं देखते वे कुबुद्धि नष्ट
होतेहैं संसार के जिन २ पदार्थोंकी इच्छाहोती है वे सब बन्धन के कारणहैं और उन
में जीव डूबजाता है । जो बुद्धिमान् हैं वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते और
जिसने निश्चय से जगत् को असत्यरूप जाना है वह किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं
होता; अविद्यारूप पदार्थ उस को खेद नहीं देते और वस्तुबुद्धि से वह खैंच नहीं
सक्ताहै । जिसकी बुद्धिमें यह निश्चय हुआ कि, 'सर्व मैंहूं' वह किसी पदार्थकी इच्छा
नहीं करता । हे रामजी ! शुद्धतत्त्व जो सत्य असत्य जगत् के मध्यभाव में है उसका
हृदयसे आश्रयकरो और जो भीतर बाहर जगत् दृश्यपदार्थ हैं उनको मत ग्रहणकरो ।
इनकी आस्था त्यागकरके परमपदको प्राप्तहोकर अतिविस्तृत स्वच्छरूप आत्मा में
स्थितहो और राग द्वेषसे रहित सब कार्यकरो । जैसे आकाश सब पदार्थों में व्यापक
और निर्लेपहै तैसेही सब कार्यकरते भी निर्लेपहो । जिस पुरुषको पदार्थों में न इच्छा
है, न अनिच्छाहै और जो कर्मोंमें स्वाभाविक स्थितहै उसको कर्मका स्पर्श नहीं होता
वह कमलवत् सदा निर्लेप रहता है । देखना, सुनना आदिक व्यवहार इन्द्रियों से
होताहै; इससे तुम इन्द्रियों से व्यवहार करो अथवा न करो परन्तु इन में निरिच्छित
रहो और अभिमानसे रहित होकर आत्मतत्त्व में स्थितहो । इन्द्रियों के अर्थका सार
जो अहंकार है जब यह हृदयमें न फुरेगा तब तुम योग्य पदको प्राप्तहोगे और राग
द्वेषसे रहित संसार समुद्र को तरजावोगे । जब इन्द्रियों के राग द्वेषसे रहितहो तब
मुक्तिकी इच्छा न करे तो भी मुक्तिरूप है । हे रामजी ! इस देह से आपको व्यतिरेक
जानकर जो उत्तम आत्मपदहै उसमें स्थित होजावो तब तुम्हारा ऐसा परमयश होगा
जैसे पुष्प से सुगन्धि प्रकट होती है । इस संसाररूपी समुद्र में वासनारूपी जल है
उसमें जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी नावपर चढ़ते हैं वे तरजाते हैं और जो नहीं चढ़ते

वे डूबजाते हैं। यह बोध मैंने तुमसे क्षुरधारकी नाईं तीक्ष्ण कहा है। यह अविद्या का काटनेवाला है इसको विचारकर आत्मतत्त्व में स्थित हो। जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मतत्त्व को जानकर व्यवहार में विचरते हैं तैसेही तुम भी विचरो, अज्ञानी की नाईं न विचरना। जैसे जीवन्मुक्त पुरुष का नित्य तृप्त का आचार है उसको तुम भी अंगीकार करना, भोग में दीन न होना और मूढ़ के आचारवत् आचार न करना। जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुष हैं वे न कुछ ग्रहणकरते, न त्यागकरते हैं और न किसीकी वांछा करते हैं। वे जैसा व्यवहार प्रारब्ध वेगसे प्राप्तहोताहै उसी में विचरते हैं और रागद्वेष किसीमें नहीं करते। बड़ा ऐश्वर्य्यहो; बड़े गुणहों; लक्ष्मी आदिक बड़ी विभूतिहो तौ भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहींकरते। महाशून्य वनमें वे खेदवान् नहींहोते और देवताका सुन्दरवन विद्यमान हो तो उससे हर्षवान् नहीं होते उन्हें न किसी से इच्छा है, न त्यागहै; जैसी अवस्था आन प्राप्तहो राग द्वेष से रहित उसीमें विचरते हैं। जैसे सूर्य्य समभाव से लीन विचरता है तैसेही वे अभिमानसे रहित देहरूपी पृथ्वी में विचरते हैं। अब तुमभी विवेकको प्राप्त होजावो, बोधके बलमें स्थितहो और किसी पदार्थकी ओर दृष्टि न करो। निर्वैर, निर्मल दृष्टिको ले विचरो और समभाव में सम उत्तमभाव पृथ्वी में स्थितहोकर संसारकी इच्छा दूरसे त्यागकर यथा व्यवहारमें विचरो और परमशांतरूप रहो। बाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार निर्मल वाणी से वशिष्ठजीने कहा तब रामजी का निर्मल चित्त अमृत से शीतल और पूर्णहुआ। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अमृत से शीतल पूर्ण होताहै तैसेही रामजी शान्त होकर पूर्णहुये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेयथाभूतार्थबोधयोगोनाम षट्चत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४६॥

रामजी बोले, हे भगवन्! आप सर्व धर्म और वेदवेदांत के पारज्ञ हैं; आपके शुद्ध, उदार, विरक्तरूप, कोमल और उचित वचनों से मैं स्वस्थ हुआहूं और उन अमृत रूपी वचनों को पानकर मैं तृप्त नहीं होता। हे भगवन्! आप राजस-सात्त्विक जगत् कहनेलगे थे सो कुछ संक्षेपसे कहा था कि, उसमें अवकाश पाकर आपने ब्रह्माजी की उत्पत्ति कही उसमें मुझको यह सन्देह उत्पन्नहुआ कि, कहीं ब्रह्माकी उत्पत्ति कमल से कही है कहीं आकाशसे कही, कहीं अण्डेसे कही और कहीं जलसे कही है सो विचित्र रूप शास्त्रने कैसे कहा। आप सब संशयके नाशकर्त्ता हैं कृपा करके शीघ्र मुझको उत्तर दीजिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कईलक्ष ब्रह्मा और अनेक विष्णु और रुद्रहुये हैं और अब भी अनेक ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार के व्यवहार संयुक्त प्रस्तुत हैं। कितने तुल्य होते हैं; कितने बड़े छोटे कालके स्वप्न जगत्की नाईं उत्पन्न होतेहैं; कितने बीते हैं और कितने आगे होंगे उनमें से (तुमने एक ब्रह्माकी उत्पत्ति पूछी है सो सुनो

यहभी अनेक प्रकारके होतेहैं; कभी सृष्टि सदाशिवसे उत्पन्न होतीहै, कभी ब्रह्मासे; कभी विष्णुसे और कभी मुनीश्वर रचलेते हैं । कभी ब्रह्मा कमलसे उपजते हैं; कभी जलसे; कभी पवनसे और कभी अण्डेसे उपजे हैं । कभी किसी ब्रह्माण्डमें इन्द्र त्रिनेत्र होते; कभी विष्णु होते हैं और कभी सदाशिव होतेहैं । कभी सृष्टिमें पर्वत उपजते हैं और कभी मनुष्यों से और कभी वृक्षोंसे पूर्ण होती है । सृष्टिकी उत्पत्ति भी अनेक प्रकार होतीहै, किसी ब्रह्माण्डमें मृत्युका भय होताहै, कभी पाषाणमय होतीहै, कभी मांसमय होतीहै और कभी सुवर्णमय होतीहै । कई सृष्टियों में चतुर्दशलोकहैं; किसी सृष्टिमें कई लोक हुयेहैं और किसी सृष्टिमें ब्रह्मा नहीं हुये । इसी प्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्वसे फुरी हैं और फिर लय हुई हैं । जैसे समुद्रमें तरंग उपजकर लय होतेहैं तैसेही आत्मामें अनेक सृष्टि उपजकर लय होजाती हैं । जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाकी नदी भासती है और पुष्पमें सुगन्धि होतीहै तैसेही परमात्मामें जगत्‌है । जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें त्रसरेणु भासते हैं और उनकी संख्या नहीं कहीजाती यदि कोई ऐसा समर्थभी हो कि, उनकी संख्याकरे परन्तु ब्रह्मतत्त्व में जो सृष्टि फुरती हैं उनकी संख्या वहभी न करसकेगा । जैसे वर्षाऋतुमें गनियेके क्षेत्रमें मच्छर होते हैं और नष्ट होजाते हैं तैसेही आत्मामें सृष्टि उपजकर नष्टहोजातीहै । वह काल नहीं जानाजाता जिसकालमें सृष्टिका उपजना हुआहै । आत्मतत्त्वमें नित्यही सृष्टिका उपजना और लयहोनाहै । जैसे समुद्रमें पूर्वापर तरंग फुरतेहैं उनका अन्त नहीं इसीप्रकार सृष्टिका आदि और अन्त कुछ नहीं जानाजाता । देवता, दैत्य, मनुष्यआदिक कितने उपजकर लयहुयेहैं और कितने आगेहोंगे । जैसे यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मासे रचागयाहै तैसेही अनेकब्रह्माण्ड होगये हैं और जैसे अनेक घटिका एक वर्ष में व्यतीत होती हैं तैसे बीते हैं । जैसे समुद्र में तरंगहोते हैं तैसेही ब्रह्मतत्त्व में असंख्य जगत् होते हैं । कितनी सृष्टि हो बीती हैं, कितनी अबहैं और कितनी आगे होंगी जैसे मृत्तिका में घट होता है; वृक्षमें अनेकपत्र होते हैं फिर मिटजाते हैं और जैसे जबतक समुद्रमें जलहै तबतक तरंग--आवर्त्त निवृत्त नहींहोते उपजते और लयहोते हैं तैसेही ब्रह्म चिदाकाश है । त्रिलोकी जगत् उपज २ कर उसी में लयहोते हैं । जबतक अपने स्वरूपका प्रमाद है तबतक विकार संयुक्त जगत् है और बड़े विस्तार से भासताहै । जब आत्मस्वरूप देखोगे तब कोई विकार न भासेगा । जब तक आत्मदृष्टिसे नहीं देखा तब तक आभास गतिमें उपजते और मिटते हैं पर न सत्य कहे जासक्ते हैं और न असत्य कहे जासक्ते हैं । वास्तव में ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, समुद्रमें तरंग की नाईं अभेदहै; अविद्या से भिन्नहोकर भासते हैं और विचार कियेसे निवृत्त होजाते हैं । चर अचररूप जगत् जो नानाप्रकार का चेष्टा संयुक्त अनन्त सर्वेश्वर आत्मा में फुरते हैं सो उससे भिन्न नहीं । जैसे शाखा

और फूल, फल वृक्षसे भिन्न नहीं और भिन्न भासतेहैं तौभी अभिन्न हैं; तैसेही आत्मा से जगत् भिन्न भासते हैं तौभी भिन्न नहीं आत्मरूप हैं। हे रामजी! मैंने जो तुमसे चतुर्दश भुवन संयुक्त सृष्टि कही हैं उनमें कोई अल्प व कनिष्ठरूप है और कोई बड़ी है पर सब परमात्मा आकाश में उपजती हैं और वही रूपहै । ब्रह्मतत्त्वसे कभी प्रथम ब्रह्म आकाश उपजताहै और प्रतिष्ठा पाताहै फिर उससे ब्रह्मा उपजताहै और उसका नाम आकाशजा होताहै । कभी प्रथम पवन उपजता है और प्रतिष्ठित होता है फिर उससे ब्रह्मा उपजता सो वायुजा कहाता है । कभी प्रथम जल उत्पन्न होता है उससे ब्रह्मा उपजकर जलजानाम होताहै और कभी प्रथम पृथ्वी उत्पन्न होके विस्तार भाव को प्राप्त होती है और उससे ब्रह्मा उपजता है और पार्थिवजा उसका नाम होता है एवम् अग्निसे उपजताहै तब अग्निजा नाम पाताहै । हे रामजी! यह पंचभूतसे जो ब्रह्माकी उत्पत्तिहुई वह तुमसेकही। जब चारतत्त्व पूर्ण होते हैं और पंचम तत्त्व सबसे बढ़ताहै तब उससे प्रजापति उपज कर अपने जगत् को रचता है और कभी ब्रह्म-तत्त्वसे आपही फुरआता है । जैसे पुष्पसे सुगन्धि फुरआती है तैसेही ब्रह्माजी उपज कर पुरुष भावना से पुरुषरूप स्थित होताहै और उसका नाम स्वयंभू होता है। कभी पुरुष जो विष्णुदेव है उसकी पीठि से उपजता है; कभी नेत्रसे प्रकट होता है और कभी नाभिसे उत्पन्न होताहै तब प्रजापति, नेत्रजा, पद्मजा नाम होताहै । वास्त-वमें सब मायामात्र है और स्वप्नवत् मिथ्यारूप हो सत्यहो भासताहै। जैसे मनोराज की सृष्टि भास आती है तैसेही यह जगत्है और जैसे नदी में तरङ्ग अभिन्नरूप फुरते हैं तैसेही आत्मामें अभेद जगत् फुरताहै वास्तव में दूसरा कुछ नहीं है जब शुद्धसत्ता का आभास संवेदन फुरता है तब वही जगत्रूप हो भासता है। जैसे बालक के मनो-राजमें सृष्टिफुरती है सो वास्तवमें कुछनहीं होती तैसेही यहहै। कभी शुद्ध आकाश में मननकला फुरती है उससे सुवर्णका अण्ड उपजताहै और अण्डसे ब्रह्मा उपज आताहै और कभी पुरुष विष्णुदेव जलमें वीर्य्य डालताहै उससे पद्मउपजताहै और उसीपद्मसे ब्रह्मा प्रकट होतेहैं और कभी सूर्य्य से फुर आते हैं । इसी प्रकार विचित्ररूप रचना ब्रह्मपदसे उपजतीहै और फिर लय होजाती है। तुम्हारे दिखाने के निमित्त मैंने अनेक प्रकारकी उत्पत्ति कहीहै पर वह सब मनके फुरनेमात्र है और कुछ नहीं। हे रामजी! तुम्हारे प्रबोधके निमित्त मैंने सृष्टिका क्रम कहाहै पर इसकारूप मनोमात्रहै, उपजउपज कर लयहोजाता है। फिर फिरदुःख,सुख; अज्ञान, ज्ञान; बन्ध-मोक्षहोते हैं और मिटजाते हैं। जैसे दीपकका प्रकाश उपजकर नष्ट होजाताहै तैसेही देहउपजकर नष्टहोजातेहैं। काल की ऊनता और विशेषता यहीहै कि, कोई चिरकाल पर्य्यन्त रहताहै और कोई शीघ्रही नष्ट होजाताहै परन्तु सबही विनाशरूपहैं ब्रह्मासे आदि कीट पर्य्यन्त जोकुछ

आकार भासता है वह कालके भेदको त्यागकर देखो कि, सब नाशरूपहैं। कभी सतयुग, कभी त्रेतायुग, कभी द्वापर और कभी कलियुग फिर फिर आते और जाते हैं। इसी प्रकार कालकाचक्र भ्रमता है । मन्वन्तरका आरम्भ होताहै और कालकी परम्परा व्यतीत होतीहै । जैसे प्रातःकाल में फिर प्रातःकाल आताहै तैसेही जगत् की वही वही गतिहै अन्धकार से प्रकाश होताहै और जगत् ब्रह्मतत्त्वसे स्फुरणरूप होकर फिर लीन होताहै। जैसे तप्तलोहे से चिनगारें उड़तीहैं सो लोहेमेंही होतीहैं तैसेही यह सब भाव चिदाकाश से उपजताहै और चिदाकाश मेंही स्थितहै । कभी अव्यक्त रूप होताहै और कभी प्रकट होताहै। जैसे समुद्र में तरंग और वृक्षमें पत्र होते हैं तैसेही आत्मामें जगत्है और जैसे नेत्रदूषण से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं तैसेही चित्तके फुरनेसे आत्मा में जगत् भासतेहैं और उसी में स्थित और लयहोते हैं। जैसे चन्द्रमा की किरणें उत्पन्न और स्थित होकर लय होती हैं तैसेही आत्मा में जगत्है सो स्वरूपसे कहीं आरम्भ नहीं हुआ मनके फुरनेसे भासता है। हे रामजी! आत्मा सर्वशक्तिहै जो शक्ति उससे फुरतीहै वह उसीकारूपहो भासती है। सब जगत् असत्यरूप है जिसके चित्तमें महाप्रलयकी नाई असत्यका निश्चय है वह पुरुष फिर संसारी नहींहोता। स्वरूपमें लगा रहताहै। ऐसे महामती ज्ञानवान्की दृष्टिमें सर्वब्रह्म का निश्चय होताहै। हमको यही निश्चयहै कि, संसार नहीं सर्वब्रह्मतत्त्वहीहै और सदा विद्यमानहै। अज्ञानकी दृष्टिमें जगत् निरन्तर सत्यरूपहै और संसार उसको विद्यमान है सो फिरफिर उपजकर नष्ट होताहै। स्वरूप उपजने विनशनेसे भी नष्टनहीं होता परन्तु अज्ञानी जगत्को असत्यनहीं जानते सदास्थित जानते हैं उससे नष्ट होतेहैं। जगत् के सबपदार्थ विनाशरूपहैं परन्तु दृश्यसे जगत् असत्य नहीं भासता। जिन पदार्थोंकी सत्यता दृढ़होगईहै वे नाशरूपहैं—कुछ न रहेगा। कोई पदार्थ सत्य भासताहै, कोई असत्य भासताहै, इस जगत्में ऐसा कौन पदार्थ है जो कलनारूप करने से विस्ताररूप ब्रह्म में न बने। यह जगत् महाप्रलय में नष्ट होजाता है और फिर उत्पन्न होता है। जन्म और मरण होताहै और सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत सब फिर फिर उपज आते हैं। जैसे सूर्य्यकी प्रभा उदय अस्तको प्राप्त होती रहती है तैसेही सृष्टि उदय अस्त होती भासती है । देवता और दैत्य लोकान्तर क्रम होते हैं और स्वर्ग, मोक्ष, इन्द्र, चन्द्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य्य, वरुण, अग्नि आदिक लोकपाल फिर फिर होते हैं। सुमेरु आदिक स्थान फुरआते हैं और तमरूप हस्ति के भेदने को सूर्य्यरूप केशरी सिंह उपज आते हैं। स्वर्ग, इन्द्र, अप्सरागण अमृत से होआते हैं और धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, क्रिया, कर्म्म, शुभ अशुभरूप होआते हैं और यज्ञ, दान, होम आदिक सर्व्व क्रिया संयुक्त संसारी जीव होते हैं। शुभ कर्म्म

करनेवाले स्वर्ग में विचरते हैं और सुख भोगतेहैं पर पुण्यके क्षीणहुये गिरादिये जाते हैं और मृत्युलोकमें आते हैं। इस प्रकार कर्म्म करते, उपजते और नष्टहोते हैं। स्वर्ग रूपी कमल में इन्द्ररूपी भँवरे हैं जो स्वर्ग कमल की सुगन्धको लेनेआते हैं। जितना पुण्यकर्म्म क्रिया होती है उतने काल सुख भोगकर नष्ट होजाते हैं और सत्ययुगआदिक युग और सर्व देश, काल, क्रिया, द्रव्य, जीव उपजआते हैं। जैसे कुलाल चक्रसे बासन बनाताहै तैसेही चित्तकला फुरनेसे जगत्के अनेक पदार्त्थ उत्पन्न करती है। जीवसंयुक्त सुन्दर स्थान होते हैं और फिर नष्ट होजातेहैं। असत्य मात्र जगज्जाल जीवसे रहित शून्य मसान होजाताहै और कुलाचल पर्व्वतके आकारवत् मेघ जल की वर्षा करते हैं उसमें जीव बुद्बुदेरूप होकर स्थितहोते हैं। द्वादश सूर्य्याग्नि उदय होते हैं, शेषनाग के मुख से अग्नि निकलती है उससे सब जगत् दग्ध होजाता है और फिर अग्नि की ज्वाला शान्त होजाती है एक शून्य आकाशही शेष रहताहै। और रात्रि होजाती है। जब रात्रि का भोग होचुकता है तब फिर जीव जीर्ण देह से संयुक्त मन रूप ब्रह्मा रच लेता है। इस प्रकार शून्य आकाश में मन जगत्को रचताहै। जैसे शून्य स्थानमें गन्धर्व माया से नगर रचलेता है तैसेही जगत् को मन रचलेता है और फिर प्रलय होजाता है। इस प्रकार जगद्गण उपजकर महा प्रलय में नष्ट होते हैं और ब्रह्मा के दिन क्षयहुये फिर जब ब्रह्मा का दिन होता है तब फिर रचलेता है फिर महाप्रलय में ब्रह्मादिक सब अन्तर्द्धान होजाते हैं। इसी प्रकार प्रलय, महाप्रलय होके अनेक जगत् गण व्यतीत होते हैं और महादीर्घ मायारूपी कालचक्र फिरता है उसमें मैं तुमको सत्य और असत्य क्या कहूं? सब भ्रान्तिरूप दासुरके आख्यानवत् है और कल्पना मात्र रचितचक्र वास्तव में शून्य आकाशरूप है और बड़े आरम्भ संयुक्त विस्ताररूप भासता है पर असत्यरूप है। जैसे भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही यह जगत् मूढ़ के हृदयमें सत्य भासताहै। तुम मूढ़ न होना, ज्ञानवान्के समान विचारकर जगत् को असत्य जानना॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेजगत्सत्यासत्यनिर्णयोनाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिनका भोग और ऐश्वर्य्य में चित्त खिंचाहै वे नाना प्रकारके राजस, तामस और सात्त्विक कर्म्म बड़े आरम्भ से करते हैं। पर वे मूढ़ आत्मशांति नहीं पाते, जब वे भोग की तृष्णा से रहितहों तब आत्माको देखें। जिस पुरुष को इन्द्रियां वश नहीं करसक्तीं वह आत्मा को हाथ में बेलफलवत् प्रत्यक्ष देखताहै और जिस पुरुष ने विचार करके अहंकाररूपी मलिनशरीर का त्याग किया है उसका शरीर जगत् रूप होजाता है। जैसे सर्प्प कंचुकीको त्यागता है और नवतन

पाताहै तैसेही मिथ्या शरीर को त्यागकर आत्मविचार से वह आत्मशरीर को पाता है। ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं वे जगत् के पदार्थों में आसक्त भासते हैं पर जन्म मरण नहीं पाते। जैसे अग्नि से भूनाबीज खेत में नहीं उपजता तैसेही ज्ञानवान् फिर जन्म नहीं पाता। जिस अज्ञानी की भोगों में आसक्त बुद्धि है वह मन और शरीर के दुःखसे दुःखी होकर वारंवार जन्म और मरण पाताहै। जैसे दिन होता है और फिर रात्रि होती है तैसेही वह जन्म मरण पाताहै। इससे तुम अज्ञानीकी नाईं न होना। व्यवहार चेष्टा जैसे अज्ञानी की होती है तैसेही करो परन्तु हृदयसे भोगादिक की ओर चित्त न लगाकर आत्मपरायण हो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो कहा कि, संसार चक्र दासुर के आख्यानवत् है, कल्पना करके रचित है और उस का आकार वास्तव में शून्यहै यह आपने क्याकहा? इसको प्रकट करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायारूप जगत् मैंने वर्णन के निमित्त तुमसे कहाहै और दासुरके प्रसंगसे कुछप्रयोजन न था परंतु तुमने पूछा है तो अब सुनो। हेरामजी! इस सृष्टिमें मगधनाम एक देशहै जो बड़े २ कदम्बों, वनस्पतियों और तालोंसे विचित्ररूप पंखोंसहित मनके मोहनेवाला अनेकवृक्षों और फूलों फलों से पूर्ण है जिनपर कोकिला आदिक पक्षी शब्दकरते हैं। उस नगर में एकपरम धर्म्मात्मा तपसी दासुरनाम हुआ जो वनमें जाकर कदम्ब वृक्षपर बैठके तप करताथा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! वह ऋषीश्वर तपसी वनमें किसनिमित्त आयाथा और कदम्ब वृक्षपर किस निमित्त बैठा वह कारण कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सरलोमा नाम ऋषीश्वर उसका पिता मानों दूसरा ब्रह्मा उस पर्व्वत पर रहताथा। उसके गृहमें दासुर नाम पुत्र हुआ—जैसे बृहस्पति के गृहमें कचहो निदान दासुर संयुक्त उसने वनमें चिरकाल व्यतीत किया और युग के क्षीण हुये देहका त्यागकर स्वर्गलोक में गया—जैसे पक्षी आलय को त्यागकर आकाशमें उड़ताहै। तब उस वनमें दासुर अकेला रहगया और पिताके वियोगसे ऐसे रुदन करनेलगा जैसे हथिनी वियोगसे कुरलाती है और जैसे हिमऋतुमें कमल की शोभा नष्ट होजाती है तैसेही दीन होगया। वहां अदृष्ट शरीर वनदेवी थी उसने दया करके आकाश वाणी की कि, हे ऋषिपुत्र! अज्ञानी की नाईं क्या रुदन करता है? यह सर्व्व संसार असत्रूप है। तू इस संसार को देखता नहीं कि, यह नाशरूप और महा चञ्चल है; सब काल उत्पन्न और विनाश होताहै और कोई पदार्थ स्थित नहीं रहता। ब्रह्मासे आदि कीट पर्य्यंत जो कुछ जगत् तुझको भासता है वह सब नाशरूप है—इसमें कुछ सन्देह नहीं। इससे तू पिताके मरनेका विलाप मतकर। यह बात अवश्य इसी प्रकारहै कि, जो उत्पन्नहुआ है वह नष्ट होगा, स्थिरकोई न रहेगा—जैसे सूर्य्य उदय होकर अस्त होताहै। हे रामजी! जब इसी प्रकार शरीरदेवीकी

वाणी दासुरने सुनी तो धैर्य्यवान् हुआ और जैसे मेघका शब्द सुनकर मोर प्रसन्न होता है तैसे शान्तिमान् होकर यथाशास्त्र पिताकी सब क्रियाकी । इसके अनन्तर सिद्धताके निमित्त तत्पदका उद्यम किया परन्तु अज्ञात हृदय था । ऐसा श्रोत्री होकर तपके निमित्त उठ विचार किया कि, कोई पवित्र स्थानहो वहां जाकर तपकरूं । निदान देखता २ पृथ्वी के किसी स्थानमें चित्त विश्रान्तवान् न हुआ सब पृथ्वी उसको अशुद्धही दीखी कहीं कोई विघ्नभासे औ कहीं कोई विघ्न दृष्टिगोचर हो । निदान उसने विचार किया कि, और स्थान तो सब अशुद्ध हैं परन्तु वृक्षकी शाखापर बैठकर तप करूं । ऐसा कोई उपायहो जो वृक्षकी शाखा के अग्रभाग में मैं स्थितिपाऊं । ऐसी चिन्तना करके उसने अग्नि जलाई और अपने मुखकामांस काट २ कर होमने लगा । तब देवता का मुख जो अग्निहै उसने विचारा कि, ब्राह्मण का मांस मेरे मुखमें न आवै और बड़े प्रकाशसे देहधरकर ब्राह्मण के निकट आया और कहा, हे ब्राह्मणकुमार ! जो कुछ तुझको वांछितवरहै वह मांग । जैसे कोई भण्डारको खोलकर मणिलेता है तैसेही तू मुझसे वरले तब दासुरने पुष्प, धूप, सुगन्धि आदिकसे अग्निका पूजनकिया और प्रसन्न होकर कहा, हे भगवन् ! प्राणाहुती के पवन शरीर से मैंने तप करने के निमित्त उद्यम किया है सो और कोई शुद्ध स्थान मुझको नहीं भासता है इसलिये मैं चाहता हूं कि, इस वृक्षकी अग्रशिखा में स्थितहोने की मुझको शक्तिहो और यहां बैठकर मैं तप करूं । यही वर मुझको दो तब अग्निदेवने कहा ऐसेही हो । इस प्रकार कहकर अग्नि अन्तर्द्धान होगया जैसे सन्ध्याकाल के मेघ अन्तर्द्धान हो जाते हैं । तब वर पाके ब्राह्मण कुमार ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से प्रसन्न होता है और जैसे चन्द्रमा के प्रकाश को पाकर कमलिनी शोभित होती है तैसेही वर पाके वह शोभितहुआ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितप्रकरणेदासुरोपाख्यानेवनोपरुदनन्नामअष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार वरको पाकर दासुर कदम्ब वृक्षकी टास पर जो अद्भुत और बड़ासुंदर था और जिसका पत्र आकाश में लगता था जा बैठा तो उसने दिशाका चञ्चलरूप कौतुक देखा कि, दृश्यरूप मानों चञ्चल पुतली है, श्याम आकाश उसका शीश है, श्यामकेशही प्रकाशरूप है, पाताल उसके चरण हैं, मेघरूपी वस्त्र है और पुष्पवत् गौरअंग है । ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है, समुद्र कैलास जिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरने से चलती है, मोहरूपी शरीर है, वनस्पति रोम हैं, सूर्य्य चन्द्रमा उसके कुण्डल हैं पर्वत बड़े हैं पवन प्राणवायु है, दिशा हस्त हैं,

समुद्र आरसी है, सूर्य्यादिक उष्णता उसका पित्त है और चन्द्रमा कफ है। ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानेअवलोकनन्नामएकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः ४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस वृक्षके ऊपर स्थित होकर वह तप करनेलगा उसका नाम कदम्ब तपासुरहुआ। एक क्षण उसने दिशाको देख वहांसे वृत्तिको खींचा और पद्मासन बांधकर मनको एकाग्र किया। दासुर परमार्थ पदसे अज्ञात था इसलिये फलकी कृपणता से कर्मान्तरमें स्थित था और फलकी ओर उसका मन था (मन से उसने यज्ञका आरम्भकिया और जो कुछ सामग्रीकी विधिथी वह सब यथाशास्त्र मनसेहीकी और दशवर्ष मनमें व्यतीत किये। उसने सब देवताओं का पूजन किया और गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधि संयुक्त मनसे किये और ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणादी। इस प्रकार समयपाकर उसका अन्तःकरण शुद्धहुआ और विस्तीर्ण निर्मल चित्तमें स्थित हुआ। जो बलात्कारसे उसके हृदय में ज्ञानप्रकाशित होकर आत्माके आगे मलीन वासना का जो आवरणथा सो नष्ट होगया और जैसे शरत्काल में तड़ाग निर्मल होताहै तैसेही उस मुनीश्वर का चित्त संकल्पसे रहित हुआ। एक दिन उसने एक वनदेवी को जिसके बड़े विशाल नेत्र, चपलरूप, पुष्पोंकी नाईं दांत और रतिके समान महा सुन्दर शरीर था काम के मद से पूर्ण मन के हरनेवाली अग्रभाग में देखी कि, नम्र होकर देखतीहै मुनीश्वरने उससे कहा, हे कमलनयनि! तू कौन है? कैसी तू शोभितरूप है और इन पुष्पों से संयुक्तलता में किस निमित्त आई है? तब कामदेव के मोहनेवाली गौरी बोली, हे मुनीश्वर! (जो पदार्थ इस पृथ्वी में बड़े कष्ट से प्राप्त होताहै वह महापुरुषोंकी कृपासे सुगमतासे मिलता है। हम इस वनके देवता लीला करते फिरते हैं और जिस निमित्त मैं तुम्हारे आगे आई हूं वह सुनो। हे मुनीश्वर! पिछले दिन चैत्रशुक्ल त्रयोदशी थी, उस दिन इन्द्र के नन्दनवन में उत्साह हुआ था। सब वनदेवियां एकत्र होकर त्रिलोकी से आईं और सब पुत्रों संयुक्त पुष्पों से बड़े विलास क्रीड़ा करती थीं पर मैं अपुत्र थी इस कारण मैं दुःखित हुई और उस दुःख के दूर करने के लिये तुम्हारे पास आई हूं तुम अर्थ के सिद्धकर्त्ता हो और बड़े वृक्ष पर स्थितहो। मैं अनाथ पुत्र की वांछाकर तुम्हारे निकट आई हूं, इससे मुझको पुत्र दो और जो न दोगे तो मैं अग्नि जलाकर जल मरूंगी और इस प्रकार पुत्र का दुःख दाह निवृत्त करूंगी हे रामजी! जब इस प्रकार वनदेवी ने कहा तब मुनीश्वर हँसे और दया करके हाथ में पुष्प दिया और कहा, हे सुन्दरि! जा तेरे एक मास के उपरान्त पूजने योग्य और महासुन्दर पुत्र होगा परंतु तूने जो इच्छाधारी

थी कि, जो पुत्र न प्राप्त होगा तो जल मरूंगी, इससे अज्ञानी पुत्रहोगा पर यत्न से उसको ज्ञान प्राप्तहोगा । जब इसप्रकार मुनीश्वर ने कहा तब प्रसन्न होकर वनदेवीने कहा, हे मुनीश्वर ! मैं यहां रहकर तुम्हारी टहल करूंगी । परन्तु मुनीश्वर ने उसका त्यागकिया और कहा, हे सुन्दरि ! तू अपने स्थान में जारह । तब वह वनदेवियों में जारही और समयपाके उसके पुत्र उत्पन्नहुआ । जब वह दशवर्षका बालक हुआ तब वह उसे मुनीश्वर के निकट लेआई और पुत्रसंयुक्त प्रणाम करके पुत्रको मुनीश्वर के आगे रखकर कहा, हे भगवन् ! यह कल्याण मूर्त्ति बालक तुम हम दोनों का पुत्र है । इसको मैंने सम्पूर्ण विद्या सिखाकर परिपक्व किया है और अब वह सर्वकावेत्ता हुआ है परन्तु केवल ज्ञान इसे प्राप्त नहीं हुआ जिससे इससंसार यन्त्र में फिर दुःखपावेगा इसलिये आप कृपाकरके इसको ज्ञान उपदेश करो । हे प्रभो ! ऐसा कौन कुलीन है जो अपने पुत्रको मूर्खरखना चाहे । हे रामजी ! जब इसप्रकार देवी ने कहा तब मुनीश्वर बोले तुम उसको यहां छोड़जावो । तब वह देवी उसको छोड़कर चलीगई, बालक पिता के पासरहा और बड़ेयत्न से उसको ज्ञान की प्राप्ति हुई । मुनीश्वर ने नानाप्रकार के उक्त आख्यान, इतिहास और अपने दृष्टान्त कल्पकर चिरपर्यन्त पुत्रको जगाया और वेदवेदान्त का निश्चय अनुद्वेग होकर उपदेश किया । विस्तार पूर्वक कथा के क्रम जो अनुभव और बड़े गूढ़ अर्थ हैं वे भी कहे और जो अपने अनुभव वश से प्रत्यक्ष था सो भी बलकरके उपदेश किया कि, जिससे वह जगा और शान्त आत्माहुआ । तब तो जैसे मेघके शब्द से मोर प्रसन्न होता है तैसेही वह बालक प्रसन्न हुआ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरसुतबोधनन्नामपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! उसी समय में भी कैलास वाहिनी गंगाजी के स्नान के निमित्त अदृष्ट शरीर संयुक्त आकाश की वीथी में सप्तर्षियों के मण्डलसे चलाजाताथा जिस वृक्षपर वह बैठाथा जब उसके पीछे मैं आया तो कुछ शब्द सुना कि, उसवृक्षके ऊपर छिद्रसे शब्द होताहै । मूंदे कमलसे भँवरेके शब्दवत् कोई इसप्रकार कहताहै कि, हे पुत्र ! सुन । मैं तुझसे वस्तु के निरूपण के निमित्त एक आश्चर्यमय आख्यान कहता हूं । महापराक्रमी और त्रिलोकमें प्रसिद्ध श्वेतथनामी एकराजाहै जो बड़ालक्ष्मीवान जगत्की रचना क्रम करता है । सब मुनि जो जगत् में बड़े नायक हैं वे भी उत्तम चूड़ामणिकरके उसको शीशमें धरते हैं और वह असंख्य कर्म और नानाप्रकार के आश्चर्य व्यवहार करता है । उस महात्मा पुरुषको त्रिलोकी में किसीने वशनहीं किया; सहस्रों उसके आरम्भ हैं और सुख और दुःख देनेवाला है । उसके आरम्भ की संख्या कुछ नहीं कही जाती—जैसे समुद्र के कल्लोल तरंगों की कुछ संख्या नहीं कही जाती तैसेही उसके आरम्भ हैं—और उसका पराक्रम किसी शस्त्र, अस्त्र और अग्नि से नष्ट नहीं

होता। जैसे आकाशको मुष्टिप्रहारसे तोड़नहीं सक्ती तैसेही वह है। उसकी विस्तृत भुजाहैं और लीला करके आरम्भ रचताहै। उसके आरम्भ को कोई दूर नहीं करसक्ता; इन्द्र, विष्णु और सदाशिव भी समर्थ नहीं हैं। हे महाबाहो! उसके तीनदेह हैं जो दिशाको भररहे हैं। उनतीनों देहोंसे वह जगत्में उत्तम, अधम, मध्यम करके फैल रहाहै और बड़े विस्ताररूपी आकाशसे उत्पन्नहुआ है और वहांहीं शरीर में स्थित हुआ है। जैसे आकाश का पक्षी आकाश में रहताहै और जैसे पवन आकाशमेंहै ऐसेही वह पुरुष जगत् में फैलरहाहै। उस परम आकाश में उसने बगीचे संयुक्त एक स्थान अपनी क्रीड़ा के निमित्त रचाहै और पर्व्वत के शिखरमें मोतीकी बेलेंरची हैं। उसमें सात बावलियों से वह स्थान शोभता है और दो दीपक उसमें रचे हैं जो तेल और बाती बिना प्रकाशते हैं और शीत और उष्णरूप हैं कभी अधको और कभी ऊर्ध्व को नगरमें भ्रमते हैं। उसने मूर्खबरांक गणभी रचे हैं, कोई ऊर्ध्व में स्थित है कोई मध्यम और कोई अधमें स्थितहैं। कोई दीर्घकालमें नष्ट होते हैं, कोई शीघ्रही नष्ट होजाते हैं, कोई वस्त्रों से आच्छादित हैं और कोई वस्त्ररहित हैं। उस नगरमें उसने नवद्वार स्थानकिये हैं और उसमें निरन्तर बहुतसे वृक्ष रोपे हैं। उसने पञ्चद्वीप देखने निमित्त किये हैं और तीन स्तम्भ रचना किये हैं, जिनमें और छोटे स्तम्भभी हैं। मूलमें के स्तम्भों पर लेपन कियाहै और पाद तलसे संकुलकिये हैं निदान महामाया से उस राजाने वह नगर रचाहै और नगरकी रक्षा निमित्त सेना रची है। एक नीति देखने वाले यक्ष हैं, विवरक गणसे वे चलते नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते हैं। उन शरीरों से वह सब ठौरोंमें विचरता है; यक्ष सब ठौरों में समीप रहता है और लीला करके एक स्थानको त्याग कर और स्थानमें जाकर चेष्टाकरताहै। कभी इच्छाहोती है तब चंचल चित्तसे भविष्यत् पुरको रचकर उसमें स्थित होताहै और कभी भयसे वेष्टित हुआ वहांसे उठआता है और वेगकरके गन्धर्व्व नगर रचता फिरता है। जब इच्छा करता है कि, मैं उपजूं तब उपज आताहै और जब इच्छा करताहै कि, मैं मरजाऊं तब मर· जाताहै। जैसे समुद्रमें तरंग उपजते हैं और फिर लय होजाते हैं उसी प्रकार वह राजा बड़े व्यवहार करता है और वारंवार रचना करके कभी आपही रुदन करने लगता है कि, मैं क्या करूं; मैं अज्ञानी दुःखी हूं; और चित्तसे आतुर होताहै और कभी ऐसे विचार करके उदय होकर बड़ास्थूल होजाता है–जैसे वर्षा कालकी नदी बढ़ती है तैसेही बढ़कर आपको सुखी मानताहै और विस्तार पाकर चलता फिरता है और बड़े प्रकाशसे प्रकाशता है उस महीपति की बड़ी महिमा है और उच्चितरूप होकर नगर में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेऽवैतथ्यवैभववर्णनन्नामएकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५१॥

हे रामजी ! जब इस प्रकार दासुर ने कहा तब पुत्रने प्रश्न किया कि, हे भगवन् ! वह स्वेतथ राजा कौनहै कि, जगत् में जिसकी कीर्त्ति प्रसिद्ध है और उसने कौन नगर रचा है जो भविष्यत् नगर में रहता है ? रहना तो वर्त्तमान में होता है भविष्यत् में कैसे रहता है ? यह विरुद्ध अर्थ कैसेहै ? इन वचनों से मेरी बुद्धि मोहित हुई है । दासुर बोले, हे पुत्र ! मैं तुझसे यथार्थ कहता हूं तू सुन; जिसके जाने से संसारचक्रको ज्योंका त्यों देखेगा कि, यह वास्तव में क्या है । यह संसार आरम्भ सत्य विस्तार संयुक्त भासताहै तो भी असत्यरूप है कुछ हुआ नहीं । जैसे यह संसार स्थितहै तैसे मैं तुझ से कहताहूं । यह आख्यान मैंनें तुझ से जगत् निरूपण के निमित्त कहा है । हे पुत्र ! जो शुद्ध अचेत्य चिन्मात्र चिदाकाशहै उससे जो संकल्प उठाहै उस संकल्प का नाम स्वेतथहै । वह आपही उपजताहै और आपही लीन होजाता है । सबजगत् उस का रूपहै जो बड़े विस्तार संयुक्त भासता है और उसके उपजने से जगत् उपजता और नष्ट होनेसे नष्ट होताहै । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक सब उसके अवयव हैं । जैसे वृक्षके अंग टास होते हैं और पर्वत के अंग शिखर होते हैं तैसेही उसके अंग शून्य आकाश में हैं उससे यह जगत्रूपी नगर रचा है । प्रतिभासके अनुसन्धान से वही चित्तकला विरञ्चि पदको प्राप्त हुई है । चतुर्दश स्थान जो कहे हैं वे विस्तार संयुक्त चतुर्दश लोकहैं और वन, बगीचे, उपवन संयुक्त पर्वत महाचल, मन्दराचल, सुमेरु आदिक क्रीड़ा के स्थानहैं । उष्ण शीत जो दो दीपक तेलबाती विना कहे हैं वे सूर्य और चन्द्रमा हैं जो जगत्रूपी नगर में अध ऊर्ध्व को प्रकाशते हैं । सूर्य की किरणों का जो प्रकाशहै वही मानों मोतीके तरङ्ग फुरते हैं और क्षीर जल आदि जो सात समुद्र हैं वे बावलियां हैं । उसमें जीव व्यवहार करते, लेते, देते अध—ऊर्ध्व को जाते हैं--पुण्यसे स्वर्गलोक में जाते हैं और पापसे नरक में चले जाते हैं । जगत् में संकल्प से जो क्रीड़ाके निमित्त उसने विवरगण रचे हैं वे देह हैं; कोई देवता होकर ऊर्ध्व स्वर्गमें रहते हैं, कोई मनुष्य होकर मध्यलोक में रहते हैं और कोई दैत्य होकर नागलोक आदिक पाताल में रहते हैं । पवनरूपी प्रवाहसे समस्त यन्त्र चलते फिरते हैं, अस्थिरूपी उनमें लकड़ियां हैं और रक्त-मांससे लेपन किये हैं । कोई दीर्घकाल में और कोई शीघ्रही नष्ट होजाते हैं । शीशपर केश श्याम वस्त्र हैं और कर्ण, नासिका, नेत्र, जिह्वा और मूत्र पुरीष के स्थान, लिङ्गइन्द्रिय और गुदा ये नव द्वार हैं जिनसे निरन्तर पवन चलता है । शीत उष्णरूप पान अपान हैं, नासिका आदिक उसके झरोखे हैं; भुजारूप गलियां हैं; और पञ्चदीपक पञ्च इन्द्रियां हैं । हे महाबुद्धिमान् ! ये सर्व संकल्परूपी मायासे रचे हैं; अहंकाररूपी यक्ष है; महाभय का स्थान यह अहंकार से होता है और देहरूपी विवरगण अहंकाररूपी

यक्षसंयुक्त विचरतेहैं वे असत्यरूपहैं परन्तु सत्यहोकर इसके साथ क्रीड़ा करते हैं। जैसे भाण्डमें बिलाव, बांबीमें सर्प और बांसमें मोती हैं तैसेही देहमें अहंकार है जो क्षणमें उदय होताहै और क्षणमें शांत होजाताहै। दीपकवत् देहरूपी गृहमें संकल्प उठताहै, जैसे समुद्रमें तरंग उठतेहैं और भविष्यत् नगर भासताहै। सुन, अपना जो कोई स्वार्थ चितवताहै कि, यह कार्य इस प्रकार करूंगा और फलाने दिन इसदेश में जाऊंगा तो जैसे चितवताहै तैसेही भासिआताहै और उसमें जा प्राप्तहोता है। जब तक दुर्वासना है तबतक अनेक दुःख होतेहैं और यह दुष्ट मन अहंकार से स्थूल होजाताहै और संकल्पसे रहित हुये शीघ्रही इसका नाश होता है। जब तू संकल्प नाश करेगा तब शीघ्रही कल्याण पावेगा। अपना संकल्प उठकर आपही को दुःखदायक होताहै–जैसे बालकको अपनी परछाहीं में वेताल कल्पना होती है और आपही भय पाताहै तैसेही अपना संकल्प अनन्त दुःखदायक होताहै, उससे सुख कोई नहींपाता। संपूर्ण जगत् विस्तार संकल्पसे होता है और आत्माकी सत्तासे बढ़ता और फिर नष्ट होजाता है–विचार कियेसे नहीं रहता। जैसे सायंकालमें धूपका अभाव होजाता है और प्रकाश उदय हुये तमका अभाव होजाताहै तैसेही विचारसे संकल्प आपही नष्ट होजाते हैं। मन आपही क्रिया करताहै और आपही दुःख पाताहै और रुदन करने लगताहै–जैसे वानर काष्ठके यन्त्रकी कीलको हिलाकर फँसताहै और दुःख पाता है; तैसेही अपनाही संकल्प आपको दुःखदायक होता है। संकल्पसे कल्पित विषय का आनन्द जब जीवको प्राप्त होताहै तब वह ऊंची ग्रीवा करके हर्षवान् होता है–जैसे किसी वृक्षके फल ऊंटके मुखमें आलगें और वह ऊंची ग्रीवा करके विचरे तैसेही अज्ञानीजीव विषयकी प्राप्तिमें ऊंची ग्रीवाकरके हर्षवान् होते हैं। क्षणमें जीवको विषय की प्राप्ति उपजती है और विशेष करके इष्टकी प्राप्ति में बढ़ते हैं पर जब कोई दुःख होताहै तब वह प्रीतिकी प्रसन्नता उठजाती है और क्षणमें विकारी होताहै और क्षणमें प्रसन्न होकर वस्तुगुणकी प्राप्तिमें हर्षवान् होताहै। शुभ संकल्पसे शुभको देखता और अशुभ संकल्पसे अशुभको देखताहै। शुभसे निर्मलहोताहै और अशुभ से मलिन होताहै; आगे जैसे तेरी इच्छाहो तैसेकर। स्वेतथके जो मैंने तुझसे तीन शरीर कहे थे– उत्तम, मध्यम और अधम वे सात्त्विक, राजस, तामस यही तीनगुण तीन देहहैं। येही सबके कारण जगत्में स्थितहैं; जब तामसीसंकल्पसे मिलता है तब नीचरूप पापचेष्टा कर्म्म करके महाकृपणता को प्राप्त होता है और मृतक होकर कृमि और कीट योनिमें जन्म पाताहै। जब राजसीसंकल्प से मिलताहै तब लोकव्यवहार अर्थात् स्त्री, पुत्रादिकके रागसे रंजित होताहै और पापकर्म नहीं करता तो मृतक होकर संसार में मनुष्य शरीर पाताहै जब सात्त्विकीभावमें स्थित होताहै तब धर्म्मज्ञानपरायण होता है; मोक्ष

पदकी उसको अन्तर्भावना होतीहै और धर्म्मज्ञानपाकर चक्रवर्ती राजाकी नाईं स्थित होताहै। जब उन भावोंको त्याग करताहै तब सङ्कल्पभाव नष्ट होजाताहै और अक्षय परमपद शेष रहताहै। इससे संसारदृष्टि को त्याग करके और मन से मन को वश करके भीतर बाहरहो जो दृश्यका अर्थ चित्तमें स्थित है उस संस्कार को निवृत्त करके शान्तात्माहो। हे पुत्र! इस विना और उपाय नहीं। जो तू सहस्रवर्ष दारुण तपकरे अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्णकरे; समुद्रमें प्रवेश करे, वड़वाग्नि में प्रवेश करे; गढ़े में गिरे; खड्गधाराके सन्मुख युद्धकरे अथवा सदाशिव, ब्रह्मा, विष्णु वा बृहस्पति दया करके तुझे उपदेशकरें और पाताल, पृथ्वी, स्वर्ग इत्यादिक और स्थानों में जावे तौभी और उपाय कल्याण के निमित्त कोई नहीं। जैसे सङ्कल्पका उपशम करना उपाय है तैसे जो अनादि, अविनाशी, अविकारी, परमपावन सुख है वह सङ्कल्प के उपशम से पाताहै। इससे यत्नसे सङ्कल्प को उपशम करो। जो कुछ भाव पदार्थ हैं वे सब सङ्कल्परूपी तत्त्वसे पिरोयेहुये हैं। जब सङ्कल्परूपी तांत टूटता है तब नहीं जाना जाता कि, पदार्थ कहांगये। सत्य असत्य सब पदार्थ सङ्कल्पमात्रहैं। जबतक सङ्कल्पहै तबतक ये भासते हैं और सङ्कल्पके निवृत्तहुये असत्य होजाते हैं। सङ्कल्पसे जैसी २ चिन्तना करताहै क्षणमें तैसेही होजाताहै। संसार भ्रम सङ्कल्पसे उदय हुआहै, और सङ्कल्प निवृत्त किये से चित्त अद्वैत के सन्मुख होता है। सर्व जगत् असत्यरूप है और मायासे रचाहै; जब सङ्कल्प को त्यागकर यथाप्राप्ति में विचरेगा तब तुझको खेद कुछ न होगा। असत्यरूप जगत् के कार्य्यमें दुःखित होना व्यर्थहै; जब आप संयुक्त जगत् को असत्य जानोगे तब दुःखी भी न होगे जबतक जगत् का सद्भान भासता है तबतक दुःख होताहै और जब असत्यजाना तब दुःखभी नहीं रहता। बोधवान्को कोई दुःखभी नहीं भासता; इससे जो नित्यप्राप्त सत्तारूप है उसमें स्थित होकर विकल्पके बड़े समूहों को त्याग करो और अद्वैत आत्मामें विश्राम सुखको प्राप्तहोकर सुषुप्तिरूप चित्तवृत्ति को धारके विचरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेसंसारविचारोनामद्विपंचाशत्तमस्सर्ग्गः ५२॥

इतना सुन पुत्रने पूंछा; हे भगवन्! सङ्कल्प कैसाहै और वह उत्पन्न, वृद्ध और नाश कैसे होताहै? दासुर बोले, हे पुत्र! अनन्त जो आत्मतत्त्व है वह सत्ता समान रूप है; जब वह चेतनसत्ता द्वैतके सन्मुख होती है तब चेतनता का लक्षण जो ज्ञानरूप है वही बीजरूप संवित् उल्लासमात्र सत्ताको पाकर घनभावको प्राप्तहोताहै; फुरनाकर आकाशको चेतताहै और आकाशको पूर्णकरता है। जैसे जल से मेघ स्पष्टहोता है तैसेही फुरनेकी दृढ़तासे आकाश होताहै। अपना स्वरूप आत्मसत्तासे भिन्न भासताहै—यह भावना चित्तमें भावित होजातीहै। जैसे बीज अंकुरभावको प्राप्त होताहै तैसेही चित्त

संवित् संकल्प भावको प्राप्तहोता है। संकल्पही से सङ्कल्प उपजता है और आपही
बढ़ता है जिससे सुखी दुःखी होता है। जब अचलरूप से चित्त संवेदन दृश्य की
ओर फुरता है तब उस फुरने का नाम संकल्प होता है और स्वरूप से भूलकर जब
दृश्यकी ओर फुरता है तब संकल्प वृद्धहोता है जो जगत्‌जाल रचता है। जो कुछ
प्रपञ्चहै वह संकल्पका रचा संकल्पमात्र है—जैसे समुद्र जलमात्र होता है, जलसे भि-
न्ननहीं; तैसेही जगत्‌भी संकल्पसे भिन्ननहीं। आकाशमात्र से भ्रान्तिरूप जगत् फुर
आयाहै—जैसे मृगतृष्णाका जल और आकाश में द्वितीय चन्द्रमा भासता है तैसेही
तुम्हारा उपजना और बढ़ना भ्रममात्र है। जैसे तमका चमत्कार होता है तैसेही
यह जगत् मिथ्या संकल्प से उदय हुआ तुझको भासता है। हे पुत्र! तेरा उपजनाभी
असत्यहै और बढ़नाभी असत्यहै; जब तू इस प्रकार जानेगा तब इसकी आस्था लीन
होजावेगी। 'यह पुरुषहै' 'वहहै' 'मैंहूं' ये सब भाव दुःख सुख से संयुक्त पदार्थ अज्ञान
से व्यर्थ भासते हैं। और इनमें आस्थाकरके हृदयसे तपता रहता है। 'अहम्' 'त्वम्'
आदिक दृश्य सब असत्यरूपहैं—जब यह भावना करेगा तब तू पृथ्वी में कल्याणरूप
होकर विचरेगा और फिर संसारको प्राप्त न होगा। अहं त्वं से आदिलेकर जब सब दृश्य
की भावना हृदय से जावेगी तब इसका अभाव होजावेगा। हे पुत्र! फलको तोड़कर
मर्दन करनेमेंभी कुछ यत्न होताहै परन्तु आप से सिद्ध और भावमात्र संकल्पके त्या-
गकरने में कुछ यत्न नहीं; फूलके ग्रहण करनेमेंभी यत्नहै क्योंकि हाथका स्पन्द होताहै
पर इसमें जो कुछ भावरूपहै वह है नहीं तो उसके त्यागने में क्या यत्न है? इससे कुछ
है नहीं इस दृश्य प्रपञ्चसे विपर्ययभाव करना कि, 'न मैंहूं' 'न जगत्है' जिस पुरुष
ने इस दृश्य जगत् का सद्भाव सङ्कल्प नाश कियाहै वह शांतरूप होताहै। यह सङ्कल्प तो
एक निमेषमें लीला से जीतलेताहै। भावरूप जो आत्मसत्ताहै उसमें जब अपना आप
उपशमकरे तब स्वस्तिक होताहै। जो अपने मनके सङ्कल्प से मन संकल्पको छेदेगा
वह आत्मतत्त्व में स्थित होगा, इसमें क्यायत्न है। संकल्पके उपशम हुये जगत् उप-
शम होताहै और संसारके सब दुःख मूलसे नाश होजाते हैं। संकल्प, मन, बुद्धि, जीव
अहंकार आदिक जो सब नामहैं सो भेद कहनेमात्र हैं, इनके अर्थरूपमें कुछ भेद नहीं।
जो कुछ दृश्य प्रपञ्चजाल है वह सब संकल्पमात्रहै; संकल्पके अभावहुये कुछ नहीं रह-
ता। इससे संकल्पको हृदयसे काटो—आकाशकी नाईं जगत् शून्यहै; जैसे आकाश
में नीलता भ्रांतिसे भासतीहै तैसेही यह जगत् असत्य विकल्पसे उठा है। संकल्प
और जगत् दोनों असत्यहैं इससे सब असत्यरूप है। असत्यरूप संकल्पने यह सब
सिद्धकियाहै इसकी भावनामें आस्था करनी मिथ्या है। जब ऐसे जाना तब इष्टरूप
किसको जाने; वासना किसकी करे और अनिष्ट किसको जाने; तब सब वासना नष्टहो-

जातीहै और वासनाके नष्टहुये सिद्धिप्राप्तहोतीहै। हे पुत्र ! जो यह जगत् सत्यहोता तो विचार कियेसेभी दृष्टिआता सोतो विचार कियेसे इसका शेषकुछ नहीं रहता। जैसे प्रकाशके देखेसे तम दृष्टिनहीं आता तैसेही विचारकर देखेसे जगत् सत्य नहीं भासता। इससे यह अविचार से सिद्धहै; असत्यरूप है और बुद्धिकी चपलता से भासता है। जिस पुरुषको जगत् भावना उठगई है उसको जगत्के सुख दुःख स्पर्श नहीं करते। निर्णय से जो असत्यरूप जाना उसमें फिर आस्था नहीं उदयहोती और जब आस्थागई तब भाव अभाव बुद्धिभी नहीं रहती। संसार के सुख दुःख सब मिथ्या मनके फुरनेसे रचे हैं और मनोराज के नगरवत् स्थित हुयेहैं। भूत, भविष्य, वर्त्तमान जगत् मनकी वासनासे फुरता है और मानसी शक्तिमें स्थित है। वह मन क्षणमें बड़ा दीर्घ आकार करता है और क्षणमें ऐसा सूक्ष्म आकार धरताहै कि, ग्रहण करिये तो ग्रहण नहीं कियाजाता। जैसे समुद्रकी लहरको ग्रहण करिये तो पकड़ी नहीं जाती तैसेही मन है। यद्यपि बड़े आकार संयुक्त जगत् भासता है तौ भी कुछ वस्तु नहीं है; क्षण भंगुर है और असार वासनासे भासता है और वासनाके क्षयहुये शान्त होजाता है। जब तुझको वासना फुरे, तब उसी कालमें उसको शीघ्रही त्यागकर ऐसी भावना कर कि, यह दृश्य प्रपञ्च कुछ है नहीं, असत्यरूप है तो वासना नष्ट होजावेगी—इसमें कुछ संदेह नहीं। जो यह संकल्परूप जगत् हो तो इस के त्याग करने में यत्न भीहो पर यह तो असत्य भूत प्रपञ्च है इसका अनर्थ चिकित्सा से तुझको खेद कुछ न देगा। जो हैही नहीं तो उसके त्यागमें क्या यत्न है ? जो यह संसार मूल सत्य होता तो इस के नाश निमित्त कोई न प्रवर्त्तता पर यह तो सब असत्यरूप है और विचार किये से कुछ नहीं पाया जाता। इससे असत्य अहंकाररूप दृश्य को त्यागकर सत्य आत्माका अङ्गीकार करो। जैसे धानसेभूसी निकालकर चावलको अङ्गीकार करतेहैं तैसेही यत्न करकेसर्व दृश्य को त्यागके आत्मपद में प्राप्त हो। यह परम पुरुषार्थ है और क्रिया किस निमित्त करता है ? मलरूप संसारका नाशकर और युक्ति करके जान कि, संसार असत्य कृत्रिमरूप है तो उसके नाशमें क्या यत्न है ? जैसे तांबेसे युक्ति पूर्वक मलदूर होताहै तब निर्मल भासता है; तैसेही युक्तिसे दृश्यमल जब दूर हो तब बोध स्वरूप प्राप्त हो। इस कारण उद्यमवान् हो। हे पुत्र ! यह संसार संकल्प विकल्प से उत्पन्न हुआ है और विचारकर अल्पयत्न सेही निवृत्त होजाताहै। देख कि, वहकौन है जो सदा स्थित रहताहै ? सब पदार्थ असत्यरूप हैं और देखते २ नष्ट होजाते हैं— जैसे दीपकके प्रकाशसे अन्धकारका अभाव होजाताहै और भ्रांतिदृष्टि से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है और स्वच्छ दृष्टि से अभाव होजाता है तैसेही विचार करके जगत्भ्रम नष्ट होता है। न यह जगत् तेराहै; न तू इसका है; यह केवल भ्रमसे

भासताहै इससे भ्रमको त्यागकर देख कि, असत्यरूप है । अपनी गुरुत्वता का बड़ा ऐश्वर्य प्रकाश का विलास है सो तेरे हृदय में मत हो । यह मिथ्या भ्रमरूप है हृदय से उठे तो आपको और जगत् को भी असत्यजान । आत्मतत्त्व से कुछ भिन्न नहीं । जब ऐसे निश्चय करेगा तब जगत् भावना नष्ट होजावेगी और सर्वात्मा प्रकाश भासेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानेजगत्चिकित्सा वर्णनन्नामत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रघुकुलरूपी आकाशके चन्द्रमा रामजी ! जब इस प्रकार दासुर ने पुत्रको उपदेश किया तबमैं उसके पीछे आकाश में स्थितथा सो कदम्बवृक्षके अग्र भाग में जा स्थित हुआ—जैसे मेघवर्षासेरहित तूष्णीहोकर पर्वतकेशिखरपर जास्थित होताहै तैसेही मैं भी जा स्थित हुआ । दासुर शूरमाने जो अज्ञानरूपी शत्रु का नाश कर्त्ता और परम शक्ति से प्रकाशवान् था; तपसे उसकीदेह ऐसी होगईथी मानो सुवर्ण का चमत्कार है; मुझको अपने आगे देखा कि, वशिष्ठमुनि आये हैं । ऐसे जानकर उसने उठके अर्घपाद्य से पूजन किया और फ़िर हम दोनों वृक्ष के पत्र पर बैठगये । उसने फिर पूजन किया और जब पूजन करचुका तब हमदोनों कथा का प्रसंग चलाने लगे । और उस चर्चाके वचनों से उसके पुत्रको संसार समुद्र के पारकरने के निमित्त जगाया । फिर मैंने वृक्षकी ओर देखा जो महासुन्दर फूलों और फलोंसे शोभायमान था और दासुरकी इच्छाद्वारा मृग और पक्षी उसके आश्रय रहतेथे । उसके पुत्रको हमने विज्ञान दृष्टि से रमणीय दृष्टांत और युक्ति सहित उपदेश किया और नाना-प्रकारके विचित्र इतिहासों से उस बालक को जगाया । रात्रिको हम सिद्धांत कथा में लगे रहे और हमको एक मुहूर्त्तवत् रात्रि व्यतीत हुई; जब प्रातःकाल हुआ तब मैं उठखड़ाहुआ और दासुर अपने पुत्र संयुक्त मेरे साथ चला । जहांतक कदम्ब का आकाशतल था वहांतक वे मेरे संग आये पर मैंने बहुत करके उनको ठहराया और मैं गङ्गाजीकी ओर चला और स्नानकरके सप्तर्षि के मण्डल में जाय स्थित हुआ । हे रघुनन्दन ! यह दासुरका आख्यान मैंने तुमसे कहा है । यह जगत् प्रतिबिम्ब आ-भास के सदृश है; प्रत्यक्ष भासता है तोभी असत्यरूप है । जगत् के निरूपण निमित्त मैंने यह आख्यान तुमको सुनायाहै । यह जगत् असत्यरूपहै, कुछ वस्तु नहीं बुद्धि से तुझको रागमतहो । जब इस कथाका सिद्धान्त हृदयमें धारणकर विचारोगे तब सं-सार रूपी मल तुमको स्पर्श न करेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेदासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुःपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! 'यह प्रपञ्चहैही नहीं' ऐसे जानके सब पदार्थों से निराग हो। जो वस्तुहोही नहीं उसकी आस्था करनी क्या है ? इस प्रपञ्चके भासने, न भासने से तुमको क्या है ? तुम निर्विघ्न होकर आत्मतत्त्वमें स्थित हो और ऐसे जानो कि, जगत् है भी और नहीं भी है। इस निश्चय से भी तुम असंग हो जाओ। इस चल अचल दृष्टि आने में तुमको क्या खेद है ? हे रामजी ! यह जगत् न आदि है, न अनादि है; केवल स्वेतथका जो चित्त संवित् मनरूपथा उसके फुरने से इस प्रकार भासता है; वास्तवमें कुछ नहीं। यह जगत् किसी कर्त्ता ने नहीं किया और न किसी अकर्त्ताने किया है केवल आभास रूप है और आभास में कर्त्ता अकर्त्ता पदको प्राप्त हुआ है पर अकृत्रिम रूप है और किसी का किया नहीं इससे तुमको इससे सम्बन्ध न हो। यह भावना हृदयमें धारो कि, कुछ नहीं है क्योंकि; किसी कर्त्ता से नहीं उत्पन्न हुआ आत्मा सर्वइन्द्रियों से अतीत जड़की नाई अकर्त्तारूपहै उसको कर्त्ता कैसे कहिये। यह कहना नहीं बनता। यह जो जगत्जाल अकस्मात् फुरआयाहै सो आभासरूप है उसमें आसक्तहोना क्याहै ? यह असत् भ्रांतिरूपहै इसमें आस्था मूढ़बालक करते हैं बुद्धिमान् तो नहीं करते ? स्वरूप में जगत् उपजानहीं और नाशभी नहीं होता; निरन्तर दृष्टिमें आताहै और अज्ञानसे वारंवार भावनाहोती है तो भी कुछ है नहीं असत्रूप है और निरन्तर प्रत्यक्ष नष्ट होता जाताहै। तुम विचार करके देखो कि, अवस्थ और स्थान कहां जाते हैं और कहां गये हैं इससे तुम सब इन्द्रियों से अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्त्तारूपहै उसमें स्थित होकर विगतज्वर होजाओ। वास्तवमें जगत् कुछ बनानहीं पर आभाससत्तामें बना भासता है। तुम आभाससत्तामें नित्यदृढ़होजाओ। जैसे हुआ है, तैसेहै; भाव अभाव दुःखदशा है। आदर्शरूपी आभास में दीर्घरूप दृश्य स्थित हुआ जैसे हुआ है तैसेही है; विपर्यय नहीं होता। हे रामजी ! दृश्यधर्म्म में अपराजितकाल है सो अनन्तहै; दृश्य पदार्थका कुछ अन्तनहीं। जो आत्म विचारसे देखिये तो स्वप्नवत्है कुछ है नहीं। जो वास्तवमें ऐसेहो तो उसमें आस्था करके यत्न करना व्यर्थहै। जगत्के पदार्थ नाशरूप हैं इनमें आस्था नहीं बनती क्योंकि; आत्मासत्है और जगत् असत्है इससे अन्योन्य विलक्षण स्वभाव है—जड़ और चैतन्यका संयोग कुछनहीं बनता। जगत्के पदार्थ यदि स्थिर मानिये तो नहीं रहते; इस कारण आस्था शोभा नहीं पाती। जैसे जलके तरंग का आश्रय लेकर कोई पारहुआ चाहे तो दुःखपाता है, तैसेही जगत् के पदार्थोंका आश्रय किये से जीव दुःखी होताहै। जगत्की आस्था करनाही बन्धनहै और नाशरूप है। तुम स्थिररूपहो इससे आस्था नहीं संभवती। कहीं जलके तरंग और पर्वत का सम्बन्ध हुआहै ? जो तुमने जगत्को असत्य और आपको सत्यजाना तोभी जगत्के पदार्थों की वांछा नहीं बनती

क्योंकि, सत्यकी असत्यकी वांछानहीं होसक्ती और असत्यकी असत्यमें भावना करनी क्याहै ? जो आपसंयुक्त जगत् सत्यजानते हो तौभी वांछानहीं होसक्ती क्योंकि, सत्य अद्वैत आत्माहै उसके समीप कुछ द्वैत वस्तु नहीं । तुमतो एकअद्वैतहो वांछा किसकी करतेहो ? इससे तुमको किसी पदार्थकी इच्छा अनिच्छा नहींबनती हेयोपादेयसे रहित केवल स्वरुथहोकर अपने आपमें स्थित होजाओ । वह आत्मतत्त्व है जो सबका कर्त्ता और सर्वदा अकर्त्ता है कदाचित् कुछनहीं करता और उदासीन की नाईं स्थित है । जैसे दीपक सब पदार्थोंको प्रकाश कर्त्ताहै और किसीकी इच्छा अपने अर्थके सिद्धकरने के निमित्तनहीं करता–स्वाभाविकही प्रकाशरूप है; तैसेही आत्मतत्त्व सबका कर्त्ताहै और उसका कर्त्ता कोईनहीं । जैसे सूर्य्य सबकी क्रियाको सिद्धकरताहै और आप किसी क्रियाके आश्रयनहीं क्योंकि; आपही प्रकाशरूप है; चलता है और कदाचित् चलायमान नहीं होता और जो सूर्यका प्रतिबिम्ब चलता भासता है सो प्रतिबिम्बका चलना सूर्यमें नहीं है; तैसेही तुम्हारा स्वरूप आत्मासदा अकर्त्ता अचलहै उसमें स्थितहो । जितना कुछ जगत् भासताहै उसमें विचरो परन्तु भावना करके उसमें बन्धायमान् मतहो, यह असत्रूप है । हे रामजी ! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से जगत् सत् भासताहै तौभी हैनहीं । स्वतः चित्तहोकर आपको विचारो और आपमें स्थितहो तब जगत् कुछ न भासेगा । जो प्रत्यक्ष बड़े तेज, बल और वीर्य से सम्पन्न भासताहै और अन्तर्द्धान होगया तो सत्य कैसे कहिये ? इसविचार से भी तुमको जगत्की भावना नहीं बनती । जैसे चक्रपर आरूढ़हुयेसे सबस्थान भ्रमते दृष्टिआतेहैं और स्वप्ननगर भ्रमसे भासताहै सो किसी कारण कार्य्य से नहीं होता–आभासरूप मनके फुरने से उपजआताहै । जैसे कोई जीव अकस्मात् आनिकलता है तो वह मित्रताका भागी नहीं होता और विचार किये विना बुद्धिमान् उसमें रुचिनहीं करते, न वह सुहृदता का पात्र होताहै; तैसेही भ्रमसे जो जगत्भासा है वह आस्था करके भावना बांधने योग्यनहीं । जैसे चन्द्रमामें उष्णता, सूर्य्यमें शीतलता और मृगतृष्णाकीनदीमें जलकी भावना करनी अयोग्यहै तैसेही जगत्में सत्यभावना अयोग्य है । यह संकल्पपुर, स्वप्ननगर, द्वितीय चन्द्रमावत् असत्यहै; भ्रमकरके सत्यभासताहै । हे रामजी ! हृदयसे भाव पदार्थकी आस्थालक्ष्मीको त्यागकरो और बाहर लीलाकरते विचरो पर हृदयसे अकर्त्ता पदमें स्थितरहो और सब भावपदार्थों में स्थित पर सबसे अतीतहो । आत्मा सब पदार्थों में सर्वदाकालस्थितहै और सबसे अतीत है; उसकी सत्तासे जगत् नीति में स्थित है । जैसे दीपकसे सबपदार्थ प्रकाशवान् होते हैं पर दीपक इच्छासे रहित प्रकाशताहै–उससे सबकी क्रिया सिद्धहोती है और जैसे सूर्य्य आकाशमें उदयहोताहै और उसके प्रकाशसे जगत्कार्य्यव्यवहारहोता है; तैसेही अनि-

च्छिन्न आत्माकी प्रकाशसत्तासे सब जगत् प्रकाशता है । जैसे इच्छासे रहित रत्न का प्रकाश होताहै और स्थानमें फैलजाता है; तैसेही आत्मदेवकी सत्तासे जगत्गण प्रवर्त्तते हैं । वह कर्ताहै पर सबइंद्रियों के विषय से अतीतहै इसकारण अकर्त्ता-अभोक्ताहै; सब इंद्रियों के अन्तर्गत स्थित है इसकारण कर्ता भोक्ता वही है । इस प्रकार दोनों आत्मामें बनते हैं-कर्त्ता भोक्ता होसक्ता है और अकर्त्ता अभोक्ताभी है; जिसमें तुम अपना कल्याण जानो उसमें स्थितहोजाओ । हे रामजी ! इसप्रकार निश्चयकरो कि, सब मैंहींहूं और अकर्त्ता-अभोक्ता हूं । ऐसी दृढ़भावनासे जगत्के कार्य्यको करते भी कुछ बन्धन न होगा और सबआत्मा कर्त्तव्य भोक्तव्यसे रहित है इसप्रकार निश्चय कियेसे भोगकी वासना निवृत्त होजावेगी और तब चेतनभोगकी ओर फिर न चित्त आवेगा । जिसको यह निश्चय है कि, मैंने कदाचित् कुछ कियानहीं और सदा अक्रियरूपहूं, वह भोगके समूहोंकीकामना किसनिमित्त करेगा और त्याग किसकाकरेगा ? इससे तुम यही निश्चय धरो कि, मैं नित्य अकर्त्तारूप हूं । जब यह बुद्धि दृढ़ होगी तब परम अमृतरूप समानसत्ता शेष रहेगी । अथवा यही निश्चयधरो कि, सब का कर्त्ता मैंहीं हूं; मैं महाकर्त्ता हूं और सबके हृदय में स्थितहोकर सब कार्य्य करता हूं । हे रामजी ! यह दोनों निश्चय तुमको कहे हैं जिसमें तुम्हारी इच्छाहो उसमें स्थित हो । जहां यह निश्चय होताहै कि, सबका कर्त्ता मैं हूं और सब जगत्भ्रमभी मैं हूं तब इन पदार्थों के भाव अभावमें राग द्वेष न होगा । जो सब आपही हुआ तो राग द्वेष किसका करे ? उसको यह निश्चय होता है कि, यह शरीर मेरा दग्धहोताहै, वह शरीर सुगन्धादिक से लीला करता है उसको खेद और उल्लास किसका हो । इससे तुमको जगत् के क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्तमें सुख दुःख न हो सबकाकर्त्ता मैंहूं तो खेद उल्लास भी मैं करताहूं और जब आत्मा और कर्त्तव्य की एकता हुई तब खेद उल्लास सब आपही लय होजाता है और सत्ता समान शेष रहता है । वही सत्ताभाव पदार्त्थ में अनुस्यूत होकर स्थित है और उसमें जब चित्तकी इच्छा स्थितहोती है तब फिर दुःख नहीं पाता । हे रामजी ! सबकाकर्त्ता आपको जानो कि, कर्त्तापुरुष मैं हूं व अकर्त्ताजानो कि, मैं कुछ नहीं करता अथवा दोनों निश्चय त्यागकर निस्सङ्कल्प निर्म्मन होजाओ तो तुम्हारा जो स्वरूपहै वही सत्ताशेष रहेगी । यह जगत्है, यह मैं हूं, यहमेराहै, इस कुत्सित भावनाको त्यागकरो । इस अभिमान में स्थित न होना; इस देहमें अहंकार कालसूत्र नाम करके नरककी प्राप्तिका कारण है, नरकका जालहै; शस्त्रकी वर्षा होती है; इन दुःखों से देह अभिमान दुःखस्थान है अर्त्थात् अनन्त दुःखदायक है । इससे पुरुष प्रयत्न करके इसका त्यागकरो, यह सबके नाशमें स्थितहै । भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वह इससे स्पर्श नहीं करते-जैसे चाण्डाली की गोद में श्वान का मांसहो

तो उसके साथ श्रेष्ठपुरुष सङ्ग नहीं करते तैसेही देहाभिमान से स्पर्श न करना–यह महानीचहै। यह अहंकाररूपी बादल नेत्रोंकेआगे पटलहै इससे आत्मा नहीं भासता। जब विचारकरके इसपटलको दूरकरोगे तब आत्मसत्ताका प्रकाश उदय होगा। जैसे मेघघटा के दूर हुये चन्द्रमा प्रकाशित होताहै तैसेही अहंकार के अभाव से आत्मा प्रकाशता है। जब तुम इन निश्चयों में कोई निश्चय धारोगे तब सब दुःखों से रहित शान्तपद को प्राप्तहोगे। यह निर्णय सबसे उत्तमहै और उत्तम पुरुष इस निश्चयमें सदा स्थितहै। अब तुमभी विधि अथवा निषेध दोनों में कोई निश्चय धारण करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकर्त्तव्यविचारोनामपंचपंचाशत्तमस्सर्गः ५५॥

रामजी ने पूंछा; हे ब्रह्मन्! जो कुछ तुमने सुन्दर वचन कहे हैं वह सत्यहैं। अकर्त्ता रूप आत्मा कर्त्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतों को धारनेवाला, सबका आश्रयभूत और सर्व्वगत व्यापक, चिन्मात्र, निर्म्मलपद, अनुभवरूप देव सर्व्वभूतों के भीतर स्थितहै। हे प्रभो! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्व है वह मेरे हृदयमें रसरहाहै और आपके वचनों से प्रकाशने लगा है। आपके वचन शीतल और शान्तरूप हैं; तप्तताको मिटाते हैं और जैसे वर्षासे पृथ्वी शीतल होती है तैसेही मेरा हृदय शीतल हुआहै। आत्मा उदासीनकी नाईं अनिच्छित स्थितहै कर्त्तव्य–भोक्तव्य से रहित है, सब जगत् को प्रकाशता है और सब क्रिया उससे सिद्ध होती हैं। इसकारण कर्त्ता भी वही है और भोक्ता भी वहीहै परन्तु मुझको कुछसंशयहै उसको अपनी वाणी से निवृत्तकरो। जैसे चन्द्रमाका प्रकाश तमको नाश करताहै तैसेही आप मेरे संशयको दूरकरो। यह सत्यहै; यह असत्यहै; यह मैंहूं; वह औरहै इत्यादिक द्वैत कल्पना एकअद्वैत विस्तृत शान्तरूप में कहां से स्थितहुई है? निर्म्मल में मल कैसे हुआहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस तुम्हारे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धान्तकाल में कहूंगा अथवा तुम आपही जानलोगे। इस मोक्ष उपाय शास्त्रका सिद्धान्त जब भलीप्रकार तुम्हारे हृदयमें स्थित होगा तब तुम इस प्रश्नके पात्र होगे अन्यथा योग्य न होगे–उस अवस्थामें अन्यथा प्राप्त नहींहोते। हे रामजी! जैसे सुन्दर स्त्रियोंकी सुन्दर वाणी से सुन्दर गीत होता है और उसके अधिकारी यौवनवान् पुरुष होतेहैं तैसेही सिद्धान्त अवस्था में मेरे वचन के तुम अधिकारी होगे। जैसे रागमयी कथा बालक के आगे कहनी व्यर्थ होती है तैसेही बोध समय विना उदार कथा कहानी व्यर्थ होती है। जैसे शरत्काल में वृक्ष पत्र संयुक्त और वसन्तऋतु में पुष्पसे शोभता है तैसाही जैसी अवस्था पुरुष की होती है तैसाही उपदेश कहना शोभता है और उपदेश भी तब दृढ़ लगता है जब बुद्धि शुद्ध होती है–मलिनबुद्धि में दृढ़ नहीं होता। जैसे निर्म्मल वस्त्र पर केसरका रंग शीघ्रही चढ़जाताहै और मलिन वस्त्रपर नहीं चढ़ता; तैसेही प्राप्तरूप जो आत्मा है

उसका विज्ञान उस देश सिद्धांत अवस्थावाले को लगता है जिसको बोधसत्ता प्राप्त होती है। तुम्हारे प्रश्नका उत्तर मैंने संक्षेपमात्र कहा भी है–विस्तारसे नहीं कहा पर जो तुम नहीं जानते तौ भी प्रत्यक्ष है। जब तुम आप से आपको प्राप्त होगे तब आपही इस प्रश्नके उत्तरको जानलोगे–इसमें कुछ सन्देह नहीं। सिद्धान्त कालमें जब तुम बोधको प्राप्त होकर स्थित होगे तब मैं भी इस प्रश्न का उत्तर विस्तारसे कहूंगा। जब आपसे अपना आप निर्म्मल करोगे तब अपने आपको जानलोगे। हे रामजी! कर्त्ता और कर्म का विचार जो मैंने तुमको कहाहै उसको विचारकर वासनाका त्यागकरो। जबतक संसारकी वासना इस हृदय में होती है तबतक बन्धायमानहै और जब वासना दूर होती है तब मुक्ति होती है; इससे तुम वासना को त्यागो और मोक्षके अर्थ जो वासना है उसका भी त्यागकरो तब सुखी होगे। इस क्रमसे वासना को त्यागकर प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासना का त्यागकरो; फिर विषय की वासना का त्यागकरो और मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इस निर्म्मल वासना को अङ्गीकार करो। मैत्री के अर्थ यह हैं कि, सब में ब्रह्मभावसे द्रोह किसी का न करना। दुःखीपर दया करनी करुणा कहलाती है; धर्मात्मा पुरुषको देखके प्रसन्न होनेका नाम मुदिता है और पापीको देखके उदासीन रहना पर निन्दा न करना उपेक्षा कहलाता है। इन चारों प्रकार की वासनाओंसे संपन्नहो हृदयसे इनकाभी त्यागकरके इनका अभिमान न रखना चाहिये यदि बाहरसे इनका व्यवहार हो पर हृदयसे दृश्यमें गुणकी वासना त्यागकर चिन्मात्र वासना रखनी चाहिये और पीछे इसको भी मन बुद्धिकेसाथ मिश्रित त्यागकरना तब जिससे वासना त्यागी हैं वह शेषरहेगा तो उसको भी त्यागकरना। हे रामजी! चिन्मात्र तत्त्वसे कल्पना करके देह, इन्द्रियां, प्राण, तम, प्रकाश, वासनादिक भ्रममात्र भासिआये हैं। जब मूल अर्थात् अहंकार संयुक्त इनको त्यागकरोगे तब आकाशवत् सम स्वच्छहोगे। इसप्रकार सबको त्यागकर पीछे जो तुम्हारा स्वरूपहै वह तुष्टहोगा। जो हृदयसे इसप्रकार त्यागकर स्थितहोताहै वह पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है; चाहे वह समाधि में रहे; अथवा कर्मकरे वा न करे। जिसके हृदय से सब अर्त्थों की आस्था नष्टहुई है वह मुक्त और उत्तम उदार चित्तहै। उसको करने, न करने में कुछ हानि लाभ नहीं और न समाधिकरनेमें अर्थहै, न तपसे है क्योंकि; उसकामन वासना से रहितहुआहै। हे रामजी! मैंने चिरकालपर्यंत अनेक शास्त्र विचारेहैं और उत्तम २ पुरुषोंसे चर्चाकी है परन्तु परस्पर यही निश्चय कियाहै कि, भलीप्रकार वासनाका त्याग करे। इससे उत्तम और पद पानेयोग्य नहीं। जो कुछ देखने योग्य है वह मैंने सब देखा है और दशों दिशाओं में भ्रमाहूं; कई जन यथार्थदर्शी दृष्ट आयेहैं और कितने हेयोपादेय संयुक्त देखे पर सब यही यत्न करतेहैं और इससे भिन्न कुछनहीं करते। सब

ब्रह्मांडका राज्यकरे अथवा अग्नि और जलमें प्रवेश करे पर ऐसे ऐश्वर्य से संपन्न होके भी आत्मलाभ विना शान्ति नहीं प्राप्त होती । बड़े बुद्धिमान् और शान्तभी वही हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं और वही शूरमे हैं उनको जरा, जन्म और मृत्युका अभावहै–वह पुरुष उपासना करने योग्यहै । हे रामजी ! ज्ञानवान् को किसी दृश्य पदार्थ में प्रीति नहीं होती क्योंकि; पृथ्वी आदिक पञ्चभूतही सब ठौर मिलते हैं–त्रिलोकी में इनसे भिन्न और कोई पदार्थ नहीं तो प्रीति किस विधिहो । युक्तिसे ज्ञानवान् संसारसमुद्रको गोपदवत् तरजाते हैं पर जिन्हों ने युक्ति का त्याग किया है उनको सप्तसमुद्रकी नाईं संसार होजाताहै । जो पुरुष उदारचित्त हैं उनको यह सम्पूर्ण जगत् कदम्ब वृक्षके गालवत् होजाताहै; उसमें वे त्याग किसका करें और भोग किसका करें। हेयोपादेयसे रहित पुरुषको जगत् तुच्छसा भासताहै इसकारण जगत्के पदार्थोंके निमित्त वह यत्न नहीं करता और जो दुर्बुद्धिजीव होते हैं वे तुच्छ ब्रह्माण्डरूप पृथ्वीपर युद्ध करते हैं, अनेकजीवोंका घात करते हैं और ममतामें बन्धायमानहैं यह जगत् संकल्प मात्रमें नष्ट होजाताहै क्षण क्षणमें आस्थासे यत्न करना बड़ी मूढ़ताहै। सब जगत् आत्माके एक अंशसे कल्पितहै; इसकी उपमा तृणसमानभी नहीं । इसप्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी को जानकर आत्मवेत्ता किसी पदार्थ केहर्ष शोकमें बन्धायमान नहींहोते और ग्रहण और त्यागसे रहितहैं । सदाशिवके लोक आदि पातालपर्यंत जल, रस, देह, राजस, सात्त्विक, तामस संयुक्त जगत्के पदार्थ ज्ञानवान्को प्रसन्न नहीं करसक्ते और उसकी इच्छा किसीमें नहीं होती क्योंकि, वह तो एक अद्वितीयात्मभावको प्राप्तहुआ है; आकाशवत् व्यापक उसकी बुद्धिहोती है; अपने आपमें स्थितहै और चित्तदृश्यसे रहित, अचेतन चिन्मात्रहै । शरीररूपी जाल जो भयानक कुहिराहै और जिससे जगत् धूसर होरहा है सो तिस पुरुषका शांत होजाता है और द्वितीय वस्तुका अभावहोता है ब्रह्मरूपी बड़ा समुद्र है उसके झागके बोयेवत् कुलाचल पर्वतहैं; चेतनरूपी सूर्य में मृगतृष्णा की नदीरूप जगत्की लक्ष्मी है और ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरंग उड़ते और लय होतेहैं; ऐसे जाननेवाला जो ज्ञानवान्है उसको यह जगत् आनन्ददायक कैसेहो ? सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि जो तुमको प्रकाशरूप भासते हैं वेभी घट, काष्ठ आदिकवत् जड़ रूपहैं और जिससे यह प्रकाशतेहैं वह सबको सिद्धकर्त्ता आत्मसत्ताहै और कोई नहीं। देह जो रुधिर, मांस और अस्थिसे बनी है और इन्द्रियों से वेष्टित है, उस देहरूपी डब्बे में चेतन जीवरूपी रत्न विराजता है; चेतन विना जड़ मुग्धरूप है। हे रामजी ! यह जो स्त्रीका देह भासताहै सो चर्मकी पुतली बनी है; उसको देखके मूढ़ प्रसन्न होता है । जैसे वायुके चलने से पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् संसार के पदार्थों से प्रसन्न नहीं होता। ज्ञानवान् उस उत्तमपदमें विराजताहै जिसकी अपेक्षासे

चन्द्रमा और सूर्य पातालमें भासते हैं अर्थात् इनका बड़ा प्रकाश भी तुच्छ भासताहै। ज्ञानवान् परम उत्तमपद में विराजते हैं। ये संसारी मूढ़ जीव संसारसमुद्र में सर्प्पकी नाईं बहेजाते हैं। जैसे ये हमको भासते हैं तैसे कहते हैं। इस जगत् में ऐसा भाव पदार्थ कोई नहीं जो ज्ञानवान्को रागसे रंजितकरे। जैसे राजाके गृहमें महासुन्दर विचित्ररूप रानियांहों तो उसको ग्रामकी मूढ़ नीचस्त्रियां प्रसन्न नहीं करसक्कीं; तैसेही ये जगत्के भावपदार्थ तत्त्ववेत्ता को प्रसन्न नहीं करसक्के और उसके चित्त में प्रवेश नहीं करते। जैसे आकाशमें मेघरहते हैं परन्तु आकाशको स्पर्श नहीं करसक्के तैसेही वे निर्लेप रहते हैं। जैसे सदाशिव महासुन्दर गौरीके नृत्य देखनेवाले और गौरी संयुक्त हैं उनको वानरी का नृत्य हर्षदायक नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् को जगत् के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते। जैसे जलसे पूर्ण कुम्भमें रत्नका प्रतिबिम्ब देखके बुद्धिमान्का चित्त उसे ग्रहण नहीं करता तैसेही ज्ञानवान्का चित्त जगत्के पदार्थों को नहीं चाहता। यह संसारचक्र जो बड़ा विस्ताररूप भासता है सो असत्यरूप है; उसको देखके ज्ञानवान् कैसे इच्छाकरे क्योंकि, यहतो चन्द्रमाके प्रतिबिम्बवत् है। शरीर भी असत्यहै; इसकी इच्छा मूढ़ करते हैं–जैसे सेवारको मच्छ भोजन करते हैं और राजहंस नहीं करते तैसेही (संसार के विषयों की इच्छा अज्ञानी करते हैं–ज्ञानी नहीं करते॥)

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेपूर्णस्वरूपवर्णनन्नामषट्पंचाशत्तमस्सर्गः ॥ ५६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सिद्धान्त जो परम उचित वस्तु है उसकी गाथा बृहस्पति के पुत्र कचने गाईथी–वह परम पावनरूप है। एक कालमें सुमेरु पर्वत के किसी गहन स्थानमें देवगुरु का पुत्र कच जाबैठा। अभ्यास के वशसे कदाचित् उस को आत्मतत्त्वमें विश्रांतिहुई; उसका अन्तःकरण सम्यक् ज्ञानरूपी अमृतसे पूर्णहुआ; पाञ्चभौतिक जो मलिन दृश्य हैं उनसे विरक्तहुआ और ब्रह्मभाव में अस्फुर होकर रमने लगा। तब उसे ऐसा भासा कि, निराभास आत्मतत्त्वसे कुछभिन्न नहीं–एक अद्वैतहीहै; ऐसे देखता हुआ गद्गद वाणी से बोला कि, मैं क्या करूं; कहां जाऊं; क्या ग्रहण करूं और किसका त्याग करूं सब विश्व एक आत्मासे पूर्ण होरहा है? जैसे महाकल्प में सब ओरसे जल पूर्ण होजाता है तैसेही दुःख भी आत्मा है सुख भी आत्मा है और आकाश, दशोंदिशा और अहं त्वं आदि सब जगत् आत्माही है। बड़ा कष्टहै कि, मैं अपने आपमें नष्टहुआ बन्धायमानथा। देहके भीतर–बाहर, अध–ऊर्ध्व, यहां–वहां सब आत्माही है, आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। सब ओर से एक आत्माही स्थित है और सब आत्मा में स्थित है; यह सब मैं हूं और अपने आपमें स्थितहूं। अपने आपमें मैं नहीं समाता अर्थात् आदिअन्त से रहित अनन्त आत्माहूं। अग्नि,

वायु, आकाश, जल, पृथ्वी मैंहींहूं; जो पदार्थ में नहीं वह हैही नहीं और जो कुछ है वह सब विस्तृतरूप मैंहींहूं। एक पूर्ण परम आकाश भैरव अर्थात् भररहाहूं; सब जगत्भी अज्ञानरूप है और समुद्रवत् एक पूर्ण आत्मा स्थितहै। वह कल्याणमूर्ति इस प्रकार भावना करताहुआ स्वर्ण के पर्वत के कुंजमें स्थित हुआ और ओंकारका उच्चार बड़े स्वर से करनेलगा। ओंकारकी जो अर्द्धकला है; जिसको अर्द्धमात्राभी कहते हैं; वह फूलसे भी कोमलहै उसमें वह स्थितहुआ। वह अर्द्धमात्रा कैसी है कि, न अन्तः स्थित है और न बाहर है; हृदय में भावना करताहुआ उसमें स्थित हुआ और कलनारूपी जो मल था उससे रहित होकर निर्म्मलहुआ और उसके चित्तकी वृत्ति निरन्तर लीन होगई। जैसे मेघके नष्ट हुये शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसेही कलंकित कलनाके दूर हुये से वह निर्मलहुआ। जैसे पर्व्वतकी पुतली अचलरूप होतीहै तैसेही कच समाधि में स्थित अचल हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकचगाथावर्णनन्नामसप्तपंचाशत्तमस्सर्ग्गः ५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अङ्गनाओं के शरीरादिक भोग और जगत् के पदार्थों में कुछ सुख नहीं। ज्ञानवानों को ये पदार्थ तुच्छ भासते हैं, वे इनमें आस्था नहीं करते तो फिर किस पदार्थ की इच्छा करें। इन भोग ऐश्वर्य पदार्थों से मूढ़ असाधु संतोष पाते हैं पर जो ज्ञानवान् साधुहैं वे इनमें प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं उनको भोगही सरस है पर भोग आदि अन्त और मध्य में दुःखरूप है। जो पुरुष इनमें आस्था करते हैं वे गर्दभ और नीच पशु हैं। हे रामजी! स्त्री रक्त, मांस और अस्थि आदि से पूर्ण है; जो इसको पाकर तोषित होते हैं वे सियार हैं—मनुष्य नहीं। जो ज्ञानवान् हैं वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते। पृथ्वी सर्वमृत्तिका; वृक्षकाष्ठ; देह मांस, और पर्वत पाषाणरूपहैं। पाताल अधहै और आकाश ऊर्ध्व है सो दिशाओं से व्यापा है सर्व्वविश्व पाञ्चभौतिकरूप है इसमें तो अपूर्व्व सुख कोई नहीं जिसमें ज्ञानवान् प्रीति करें। इन्द्रियों के पञ्चविषय मोक्ष के हरनेवाले और विवेक मार्ग के रोकनेवाले हैं और जो कुछ जगज्जाल की सम्पूर्ण विभूति है वह सब दुःखरूप है। प्रथम इनका प्रकाश भासताहै पर पीछे कलंक को प्राप्त करते हैं। जैसे दीपक प्रथम प्रकाश को दिखाताहै और फिर काजल कलंक को देताहै, तैसेही इन्द्रियों के विषय आगमापायी हैं—इनसे शान्ति नहींहोती। अज्ञानीको स्त्रियादिक पदार्थ रमणीय भासते हैं पर ज्ञानवान् की वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती। अज्ञानीको ये स्थिररूप भासते हैं, स्वाददेते और तुष्टकरते हैं पर ज्ञानवान् को असत्य और चलरूप भासते हैं और तुष्टता के कारण नहीं होते। ये विषमभोग हैं विषकी नाईं हैं और स्मरणमात्र से भी विषवत् मूर्च्छा करते हैं और सत्यविचार भूलजाता है। इससे तुम इनको त्याग करके अपने

स्वभावमें स्थितहोजाओ और ज्ञानवानोंकीनाईं विचरो। हे रामजी! जब इस जीवको अनात्म में आत्माभिमान होता है तब असङ्गरूप जगज्जालभी सत्यहो भासता है। ब्रह्माको भी वासनाके वशसे कल्प देहका संयोग होताहै। जैसे सुवर्ण का प्रतिबिम्ब जलमें पड़ताहै और उसकी झलक कन्धे पर पड़तीहै पर कन्धे से सुवर्ण का कुछ संयोग नहीं होता तैसेही ब्रह्माका संयोग देहसे वास्तवमें कुछ नहीं–कल्पनामात्र देहहै। रामजीने पूंछा, हे महामते! आत्मा विरञ्चिके पदको प्राप्तहोकर फिर यह सघनरूप जगत् कैसे रचते हैं वह क्रमसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुये तब जैसे गर्भ से बालक उपजताहै तैसेही उपजकर वारंवार इस शब्दका उच्चार किया कि, 'ब्रह्म'! 'ब्रह्म'! इसकारण उसको ब्रह्मा कहते हैं। फिर संकल्प जालरूप और कल्पित आकार मनहोआया; उसमनने संकल्पलक्ष्मी फैलाई। प्रथम संकल्पसे माया उपजती है; फिर तेज अग्निके चक्रवत् फुरनेलगा और उससे बड़ा आकार होगया। फिर वह ज्वालाकीनाईं, सुवर्ण लतारूप, बड़ीजटा संयुक्त, प्रकाश को धारे और शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होकर स्थितहुआ और अपनेसमान आकार बड़ेप्रकाश संयुक्त कल्पा और ज्वालाका मण्डल आकाश के मध्य स्थितहुआ–अग्निरूप और जिसके अग्निही अङ्गहैं। हे महाबुद्धिमान् रामजी! इसप्रकार तो ब्रह्मासे सूर्यहुये हैं और दूसरी जो तेज किरणें फुरती हैं वे आकाशमें तारागण बिम्बपर आरूढ़ फिरते हैं। फिर ज्यों ज्यों वह संकल्प करतागया त्यों त्यों तत्कालही सिद्धहोकर भासनेलगा। इसीप्रकार आगे जगत् रचा। जिसप्रकार इस सृष्टि में ब्रह्मारचताहै उसीप्रकार और सृष्टि में रचते हैं। प्रथम प्रजापति, फिर कालकलना, नक्षत्र और तारागण; फिर देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष, नदियां, समुद्र, पर्वत सब इसीप्रकार कल्पे और जैसे समुद्र में तरंग कल्पितहोते हैं तैसेही सिद्धरचके उनके कर्मरचे। वे भी शुभसंकल्परूपहैं जैसा संकल्पकरें वही सिद्धहो-कर भासनेलगे। इसीप्रकार फिर भूत और तारागण उत्पन्नकिये और उन्होंने और उ-त्पन्न किये। तब ब्रह्माजी ने वेद उत्पन्न किया और जीवोंकेनाम, आचार, कर्मवृत्ति बनाये और जगत् मर्यादाके लिये नीतिरूप स्त्रीकोरचा। इसीप्रकार ब्रह्मकी माया ब्रह्मारूप से बड़े शरीर धररही है। आगे सृष्टिका विस्तार है, लोक और लोकपालोंके क्रमकिये हैं और सुमेरु और पृथ्वी के मध्य दशोंदिशा रचकर सुख, मृत्यु, राग, द्वेष प्रकट किये। इस प्र-कार सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणरूप ब्रह्माजीने रचा और जैसे उसने रचाहै तैसेही स्थितहै। यह जो कुछ सम्पूर्ण दृश्य भासता है वह सब माया मात्र है। हे रामजी! इस प्रकार जगत् का क्रमहुआ है। संकल्परूप संसार बड़ा स्थित होकर अज्ञान से भासता है। यह तो संकल्पसे रचा है, संकल्प के वशसे जगत् की क्रिया फैलाता है; संकल्पवशसे देवनीति होकर स्थित हुआ है और सब ब्रह्माके संकल्प में स्थित है। जब उसकासंक-

रूप निर्वाण होता है तब जगत्‌भी लय होजाता है। एक समय ब्रह्माजी पद्मासन धर बैठेथे और विचारने लगे कि, यह जगज्जाल मनके संकल्प फुरने मात्र है, मन के फुरने से उपज आता है और नानाप्रकार के विकार संयुक्त व्यवहार, इन्द्र, उपेन्द्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वी से लेकर सर्व जगज्जाल माया मात्र और बड़ा फैलरहा है इसलिये अब मैं इससे निवृत्तहोऊं। ऐसे विचार उन्हों ने अनर्थ रूप संकल्प को दूरकरके, आदि-अन्त रहित अनादि मत परम ब्रह्मस्फार आत्मा रूप आत्मतत्त्व में मन लय किया और आनन्द रूप आत्मा होकर अपने आपमें स्थित होकर निर्मल निरहंकार परम तत्त्वको प्राप्तहुये। जैसे कोई व्यवहार से थका हुआ विश्राम करता है तैसेही वह अपने आपसे आत्मतत्त्व में स्थित हुये। जैसे समुद्र अक्षोभ होताहै तैसेही वह अक्षोभ हुये और ध्यान में लगे और फिर जब ध्यान से जगे तो जैसे द्रवतासे समुद्र से तरंग फुरआवें तैसेही चित्तके वशसे ब्रह्माजी फुरन रूप होगये तब जगत्‌को देखके फिर चिन्तन करनेलगे कि, संसार दुःख, सुखसे संयुक्त अनन्त फांसीसे बन्धायमान है और राग, द्वेष, भय, मोहसे दूषित है। हे रामजी! इसप्रकार जीवों को देखके ब्रह्माजी को दया उपजी तो अध्यात्म ज्ञान से सम्पन्न वेद उपनिषद् और वेदान्त प्रकटकिये और बड़े अर्थसंयुक्त नानाप्रकारके शास्त्ररचे। फिर जीवोंकी मुक्तिके निमित्त पुराणरचे और परमपद जो आपदासे रहित है उसमें स्थित हुआ। जैसे मन्दरा चल पर्व्वतके निकलेसे क्षीरसमुद्र शांत होताहै तैसेही शांतरूपहोकर स्थितहुआ और फिर उसीप्रकार जागके जगत् को देख मर्यादामें लगाया फिर कमलपीठ में स्थित होकर आत्मतत्त्वके ध्यान परायण हुआ। इसीप्रकार जो कुछ अपने शरीर की मर्यादा ब्रह्माजीने की है उसीप्रकार नीतिके संस्कार पर्यंत क्रीड़ा करते हैं और कुलालके चक्रवत् नीतिके अनुसार विचरतेहैं। जैसे ताड़ना और वासनासे रहित चक्र फिरता है तैसेही वह जन्म मरण से रहितहै। उसको शरीर के रखने और त्यागने की कुछ इच्छा नहीं और न कुछ जगत् की स्थिति और न अनस्थिति में इच्छाहै। वह किसी पदार्थ के ग्रहण और त्यागकी भावनामें आसक्तनहीं होता और सबमें समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थितहै। कभी सब संकल्पसे रहित शान्तरूप होरहतेहैं और कभी अपनी इच्छासे जगत् रचते हैं परन्तु उनको जगत् के रचनेमें कुछ भेद नहीं—सर्व पदार्थोंकी अवस्था में तुलताहै। हे रामजी! यह मैंने तुमसे ब्रह्माजी की स्थिति कही है यह परमदशा और भी किसी देवताको उपजे तो उसको समता जानिये क्योंकि, वह शुद्ध सात्त्विकरूप है। सृष्टिके आदिजो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व में चित्तकला फुरी है वही मन कला ब्रह्मारूप होकर स्थित हुई है। जब फिर जगत् के स्थिति क्रममें कलना उत्पन्न होती है तब वही ब्रह्मारूप आकाश, पवनको आश्रय लेकर औषध और पत्रों में

प्रवेश करती है । कहीं देवताभाव को, कहीं मनुष्यभाव को; कहीं पशु पक्षी तिर्य्यगादिक भाव में प्राप्त होती है और कहीं चन्द्रमा की किरणद्वारा अन्नादिक औषध में प्राप्त होती है । जैसे भावको लेकर चित्तकला फुरती है तैसाही भाव शीघ्र उत्पन्न होआता है । कोई उपजकर संसारके संसर्ग वशसे उसी जन्मके बन्धनसे मुक्त होजाते हैं क्योंकि, उन्हें अपने स्वरूप का चमत्कार होता है; कोई अनेक जन्म से मुक्त होते हैं और कोई थोड़े जन्म से मुक्त होते हैं । हे रामजी ! इसप्रकार जगत् का क्रम है । कोई प्रत्यक्ष, संकट, कर्म्म, बन्ध, मोक्षरूप उपजते हैं और कोई मिटजाते हैं । इस प्रकार संसार बन्ध मोक्षसे पूर्ण है । जब यह कलनामल नष्ट होता है तब संसार से मुक्त होता है और जबतक कलनामल है तबतक संसार भासता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेकमलजाव्यवहारोनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्ग्गः ५८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो रामजी ! इसप्रकार ब्रह्माजी ने निर्म्मलपद में स्थित होकर सर्ग्ग फैलाया । संसाररूपी कूपमें जीव भ्रमते हैं और जीवरूपी टीड़ी तृष्णारूपी रस्सी से बँधेहुये कभी अध और कभी ऊर्ध्व को जाते हैं । जब वासनारूपी रस्सी टूटपड़ती है तब ब्रह्मतत्त्व से उठे ब्रह्मतत्त्व में एकत्र होजाते हैं । ब्रह्मसत्ता से जीव उपजते हैं और फिर ब्रह्मसत्ता मेंही लय होते हैं । जैसे समुद्र से मेघजल कणके धूम्रद्वारा उपजते हैं और फिर वर्षासे उसीमें प्रवेशकरते हैं; तैसेही जब तन्मात्रा मण्डल से चित्तकला निकलती है तब उसी के साथ जीव एकरूप होजाते हैं । जैसे मन्दार वृक्ष के पुष्पकी सुगन्धि वायुसे मिलकर एकरूप होजाती है तैसेही चित्तकला जीवतन्मात्रा से मिलकर प्राणनाम पाती है । इसप्रकार प्राणवायुसे आदि तन्मात्रा जीवकला को खैंचने लगता है जैसे बड़े प्रचण्ड दैत्य के समूह देवताओं को खैंचें तैसेही खैंचाहुआ जीव तन्मात्रा से एकरूप होजाता है । जैसे गन्ध और वायु तन्मय होते हैं तैसेही वह प्राण तन्मात्रा जीवके शरीर में वीर्य्य स्थान में जा प्राप्त होता है और जगत् में उपजकर प्राण प्रत्यक्ष होते हैं । कई धूम्रमार्ग से देहवान् के शरीर में प्रवेश करते हैं और कई मेघ में प्रवेश कर बुन्दमार्ग्ग से औषध में रस रूप होकर स्थित होते हैं और उसको भोजन करनेवाले के भीतर वीर्य्य रूप होकर स्थित होते हैं । कई और प्राण वायुद्वारा प्रकट होते हैं और चर स्थावर रूप होते हैं, कई पवनमार्ग से धानके खेत में चावलरूप स्थित होते हैं और उनको जीव भोजन करते हैं तो वीर्य्य में प्राप्त होते हैं और नानाप्रकार के रंगभेद से प्राण धर्म्म उपजते हैं और कोई उपजने मात्र से जीवकी परम्परा तन्मात्रासे वेष्टित जब तक चन्द्रमा उदय नहीं हुआ आकाश में स्थित होते हैं और जब चन्द्रमा उदय होताहै तब उसका रस जो शीतल किरणों और श्वेत क्षीरसमुद्रवत् है उसमें जा प्राप्त

होते हैं और उसके अन्तर्गत होकर पत्र औषध में स्थित होते हैं। जैसे कमल पर भँवरे आ स्थित होते हैं तैसेही औषध में जाकर जीव स्थित होते हैं और फलमें स्वाद रूप होकर स्थित होते हैं। जैसे घुना रससे पूर्ण होता है तैसेही जीवसे औषध और फलपूर्ण होजाते हैं। जैसे दूधसे स्तन पूर्ण होते हैं तैसेही जीवसे फल पूर्णहोते हैं। जब वे फल परिपक्कहोते हैं तो उनको देहधारी भक्षणकरते हैं और उसमें जीव वीर्य्य और जड़ात्मकरूप होकर स्थित होते हैं। वह सुषुप्ति वासना से वेष्टितहुये गर्भ पिंजरे में जा पड़तेहैं। हेरामजी! जैसे मृत्तिकामें घटादिक, काष्ठमें अग्नि और दूध में घृत सदारहता है तैसेही वीर्य्य में जीव रहताहै इसप्रकार परमात्मा महेशरूप से जीवकी परम्परा उपजती है। वायु, धूम्र, मेघ, औषध, प्राण, चन्द्रमा की किरणें इत्यादिक अनेक मार्गों से जीव उपजते हैं जो उपजनेसे आत्मसत्तासे अप्रमादी रहते हैं और जिनको अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और महा उदार व्यवहार-वान् होते हैं और जिनको उपजना विस्मरण होजाता है और फिर उसी शरीर में आत्माका साक्षात्कार होता है वह सात्त्विकी रूप है और जो उपजकर नानाप्रकार के व्यवहार करते हैं और जिनको स्वरूप विस्मरण होजाता है जन्म की परम्परा पाकर स्वरूपका साक्षात्कार होता है वे राजस सात्त्विकी कहाते हैं। जिनको अन्तका जन्म आरहता है उनको जिस प्रकार मोक्ष होताहै वह क्रम अब तुमसे कहताहूं। हे रामजी! उपजने मात्रसे जो अप्रमादी हुये हैं वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और वेही ब्रह्मादिक हैं और जो प्रथम जन्मसे बोधवान् हुये हैं वे सात्त्विकी हैं और जो कभी किसी जन्म मोक्षहुये हैं वे राजसी सात्त्विकी हैं। इससे भिन्न नानाप्रकारके मूढ़, जड़ और तम संयुक्त स्था-वरादिक अनेक हैं। जिनको आत्मपद प्राप्तहुआ है उनको जो मिलते हैं उनको अन्त का जन्महै। ऐसे पुरुष विचारते हैं कि, मैं कौनहूं और यह जगत् क्याहै और इस विचार के क्रमसे मोक्षभागी होते हैं वे राजससे सात्त्विकी होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेविचारपुरुषनिर्णयोनाम एकोनषष्टितमस्सर्गः ५९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो राजससे सात्त्विकी होते हैं वे पृथ्वीपर महागुणों से शोभायमान होते हैं और सदा उदितरूप रहते हैं। जैसे आकाशमें चन्द्रमा रहता है। वे पुरुष खेद नहीं पाते-जैसे आकाशको मलीनता नहीं स्पर्श करती तैसेही उनको आपदा स्पर्श नहीं करती। जैसे रात्रिके आये से सुवर्ण के कमल नहीं मुँदते; जो कुछ प्रकृति आचार है उसके अनुसार चेष्टा करते हैं और जैसे सूर्य्य अपने आचार में विचरताहै और आचार नहीं करता; तैसेही वे सत्यमार्ग में विचरते हैं और हृदय से पूर्ण शान्तरूप हैं। जैसे चन्द्रमा की कला क्षीण होती है तो भी वह अपनी शीतलता

नहीं त्यागता; तैसेही ज्ञानवान् आपदाके प्राप्तहुये भी मलीनताको नहीं प्राप्त होते। वे सर्व्वदाकाल मैत्री आदिक गुणोंसे सम्पन्न रहते हैं, और सदा उनसे शोभते हैं। समतारूप जो सम रसहै उससे वे पूर्ण और शान्तरूप हैं और निरन्तर शुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्य्यादामें स्थितरहते हैं। हे रामजी! तुम भी महापुरुषों के मार्ग्ग में सदा चलो और जो मार्ग्ग परमपावन, आपदासे रहित और सात्त्विकी है उसके अनुसार चलो तब आपदा के समुद्रमें न डूबोगे। जैसे वे खेदसे रहित जगत्में विचरते हैं तैसेही विचरो। जिस क्रमसे राजस से सात्त्विकी मोक्षभागी होता है सो सुनो। प्रथम आर्यभावको प्राप्त होना अर्थात् यथाशास्त्र सद्व्यवहार करना तो उससे अन्तःकरण शुद्ध होता है। उस आर्य्यपदको पाकर सन्तों के साथ मिलकर वारंवार सत्शास्त्रों को विचारना और जो संसारके अनित्य पदार्थ हैं उनमें प्रीति न करनी। विरक्तता उपजानी और जो त्रिलोकी के पदार्थों के उपजने विनशने में सत्यरूपहै वारंवार उसकी भावना करनी और दूसरी भावना शीघ्रही मिथ्याजानकर त्यागनी। जो कुछ दृश्य जगत् भासता है उसे असम्यक् दृश्य है। निष्फल, नाशरूप और व्यर्थजानकर भावना त्यागनी और सम्यक्ज्ञानको स्मरण करना। सन्तजन और सत्शास्त्र जो ज्ञान के सहायक हैं उनके साथ मिलके विचार करना कि, मैं कौनहूं और जगत् क्या है। भलीप्रकार प्रयत्न करके विवेक संयुक्त सदा अध्यात्मशास्त्रका विचार करना और सत्य व्यवहार और सात्त्विकी कर्म करना और अवज्ञा करके मृत्युको विस्मरण न करना। जो मृत्युविस्मरण करके संसार कार्य्य में लगजाता है वह डूबता है; इससे स्मरणकरके सन्मार्ग में लगना और जिसपद में महाउदार और शीतल चित्त ज्ञानी पुरुष स्थित हैं उस पदके मार्ग और दर्शन में सदा इच्छा रखनी। जैसे मोरको मेघकी इच्छारहती है। हे रामजी! अहंकार जो देहमें स्थित है यह देह संसार में उपजी है; इसको भलीप्रकार विचार करके नाशकरो। यह सांसारिक देह, रुधिर, मांस, मज्जा आदिक की बनावट है। जितने भूतजातहैं वे सब चेतनरूपी तागेमें मोती पिरोये हैं; उनभूतों को त्याग करके चिन्मात्र तत्त्व को देखो। चेतनसत्ता सत्य, नित्य और विस्मृतरूप है और शुद्ध, सर्व्वगत और सर्व्वभाव उसमें है। वह त्रिलोकी का भूषण आश्रय भूत है जो चेतन आकाश सूर्य्य में है। वही चेतन पृथ्वी के छिद्रमें कीट है जैसे घटाकाश और महाकाशमें भेद कुछ नहीं तैसेही शरीर और चेतन में भेद नहीं। जैसे सब मिरचों में तीक्ष्णता एकही है तैसेही सर्वभूतों में चेतनता एकही अनुस्युत है—अनुभवसे जानताहै। उस एक चिन्मात्र में भिन्नता कहां से हो? एकसत्य सत्ता जो निरन्तर चिन्मात्र वस्तुरूप है उसमें जन्म मरण आदिक अज्ञानसे भासता है; वास्तवमें न कोई उपजाहै और न मरताहै, एक आत्मतत्त्व सदा ज्योंकात्यों स्थितहै। और उसमें

जगत् विकार आभास मात्रहै; न सत्यहै न असत्यहै। चित्तके फुरने से भासताहै और चित्तके शान्तहुये शान्त होजाता है। जो जगत्को सत्यमानिये तो अनादि हुआ इससे भी शोक किसी का नहीं बनता और जो जगत् असत्य मानिये तो भी शोकका स्थान नहीं बनता। इससे दृढ़विचार करके स्थितहो और शोकको त्यागो। तुमको न जन्म है और न मरण है-आकाशवत् निर्मल सम शान्तरूप होजावो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेमोक्षविचारोनामषष्टितमस्सर्गः ६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धैर्य्यवान् पुरुष बुद्धिमान् हैं वे सत्शास्त्रको विचारें; सन्तजनों का सङ्ग करके उनका आचार ग्रहणकरें और जो जो दुःखकी नाशकर्त्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि हैं उनको यत्नकरके अंगीकार करें तब सन्तजनता प्राप्त होगी। सन्त जन जो विरक्तात्मा हैं उनसे मिलकर जब सत्शास्त्र को विचारे तब परमपद मिलता है। हे रामजी! जो पुरुष सत्शास्त्र का विचारनेवाला है और सन्तजनों का संग तथा वैराग्य अभ्यास आदर संयुक्त करता है वह तुम्हारी नाईं विज्ञानका पात्र है। तुम तो उदारात्मा हो और धैर्य्यवान् के जो गुण शुभाचार हैं उनके समुद्रहो निर्दुःख होकर स्थित हो। अब राजसी सात्त्विकी और मनन शील हुयेहो फिर ऐसे दग्धरूप संसारमें दुःखकेपात्र न होगे। यह तुम्हारा अन्तका जन्महै जो अपने स्वभावकी ओर धावते हो, अन्तर्मुख यत्न करते हो, निर्म्मल दृष्टि तुमको प्रकट हुई है और भूत जगत् वस्तु को जानते हो। जैसे सूर्य्य के प्रकाश से यथार्थ वस्तुका ज्ञान होता है। अब मेरे वचनों की पंक्ति से सर्व्व मल दूर होजावेंगे-जैसे अग्नि से धातुका मल जलजाता है तैसेही तुम्हारा मल जलजावेगा और निर्म्मलता से शोभायमान होगे। जैसे मेघ के नष्ट हुये शरत्काल का आकाश शोभता है तैसेही संसार की भावना से मुक्त होकर चिन्तासे रहित निर्म्मल भाव से शोभोगे। (अहं, ममादि कल्पना से मुक्तहुयेही मुक्त है इसमें कुछ संशय नहीं।) हे रामजी! तुम्हारा जो यह अनुभव उत्तम व्यवहार है उसके अनुसार विचरोगे तो तुम अशोकपद पावोगे। और कोई इस व्यवहार को वर्तेगा वह भी संसार समुद्र को अनुभवरूपी बेड़े से तरजावेगा। तुम्हारे तुल्य जिसकी मति होगी वह समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्यहै। जैसे सर्व्व कान्तिमान् सुन्दरताका पात्र पूर्णमासी का चन्द्रमा होताहै। तुम तो अशोकदशाको प्राप्त हुयेहो और यथाप्राप्ति में वर्त्तते हो। जबतक देहहै तबतक राग द्वेषसे रहित स्थित बुद्धि रहो और यथाशास्त्र जो उचित आचारहैं उन्हें वर्त्ताकरो पर हृदयमें सर्व्व कल्पना से रहित शीतल चित्त हो-जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतल होता है। हे रामजी! इन सात्त्विक और राजससे-सात्त्विक से भिन्न जो तामसी जीव हैं उनका विचार यहां न करना; ये मूढ़ सियार हैं और मद्यादिक के पीनेवाले हैं, उनके विचारसे क्या प्रयोजन है? जो मैंने

तुम से सात्त्विकी जन कहे हैं उनके सेवन से बुद्धि अन्त के जन्मकी होती है और जो तामसी हैं उनको सेवे तो उनकी बुद्धि भी उदार होजातीहै । जिस जिस जाति में जीव उपजताहै उस जाति के गुणसे शीघ्रही संयुक्त होजाताहै । पूर्व जो कोई भाव होता है वह जातिके वश से वहां जाता रहता है और जिस जाति में वह जन्मता है उसके गुणों को जीतने का पुरुषार्थ करताहै, तब यत्न से पूर्वके स्वभावको जीत लेताहै । जैसे धैर्य्यवान् शूरमा शत्रुको जीत लेताहै । जो पूर्व्व संस्कार मलिन है तो धैर्य्य करके मलिन बुद्धिका उद्धार करे—जैसे मुग्ध पशु गढ़े में फँसजावे और उसको काढ़ लेवे तैसेही बुद्धिको मलिन संस्कार से काढ़िले । हे रामजी ! जो तामस—राजसी जाति है उसको भी जन्म और कर्म्म के संस्कारवश से सात्त्विक प्राप्त होता है और वह भी अपने विचार द्वारा सात्त्विक जातिको प्राप्त होता है । पुरुष के भीतर अनुभवरूपी चिन्तामणि है उसमें जो कुछ निवेदन करता है वही रूप होजाता है । इससे पुरुषार्थ करके अपना उद्धारकरो । प्रयत्न से पुरुष बड़े गुणों से सम्पन्न हो मोक्ष पाताहै और उसके अन्तका जन्म होता है, फिर जन्म नहीं पाता और अशुभ जाति के कर्म निवृत्त होजाते हैं । ऐसा पदार्थ पृथ्वी, आकाश और देवलोक में कोई नहीं जो यथा शास्त्र प्रयत्न करके न पाइये । हे रामजी ! तुम तो बड़े गुणों से सम्पन्नहो और धैर्य्य उत्तम वैराग्य और दृढ़बुद्धि से संयुक्तहो और उसके पाने को धर्मबुद्धि से वीतशोक रूपहो । तुम्हारे क्रमको जो कोई जीव ग्रहण करेगा वह मूढ़तासे रहित होकर अशोक पदको प्राप्तहोगा । अब तुम्हारा अन्तका जन्महै और बड़े विवेकसे संयुक्तहो तुम्हारी बुद्धिमें शान्तिके गुण फैलगये हैं और उनसे तुम शोभतेहो । सात्त्विकगुण क्रम से सबमें रमरहे हो और संसार की बुद्धि,मोह और चिन्ता तुमको मिथ्या है–तुम अपने स्वस्थ स्वरूप में स्थितहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमहारामायणेस्थितिप्रकरणेमोक्षोपायवर्णनन्नामैक षष्टितमस्सर्ग्गः ६१ ॥

इति ॥

ॐसच्चिदानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

उपशमप्रकरणं पञ्चमम्प्रारभ्यते ॥

इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले, हे साधो ! अब स्थितिप्रकरण के अनन्तर उपशमप्रकरण कहता हूं जिसके जाने से निर्वाणता पावोगे। जब वशिष्ठजी ने इसप्रकार वचन कहे तब सब सभा ऐसी शोभितहुई जैसे शरत्कालके आकाश में तारागण शोभतेहैं। वशिष्ठजीके वचन परमानन्दके कारण हैं। ऐसे पावनवचन सुनके सब मौन होगये और जैसे कमलकी पंक्ति कमलकी खानि में स्थितहो तैसेही सभाके लोग और राजा स्थितहुये। स्त्रियां जो झरोखों में बैठीथीं उन के महाविलासकी चञ्चलता शांतहोगई और घड़ियालों के शब्द जो गृह में होते थे वे भी शांत होगये। शीशपर चमर करनेवाले भी मूर्तिवत् अचल होगये और राजा से आदि लेकर जो लोग थे वे कथा के सन्मुख हुये। राम जी बड़े विकाश को प्राप्तहुये--जैसे प्रातःकाल में कमल विकाशमान होता है और वशिष्ठजी की कही वाणी से राजा दशरथ ऐसा प्रसन्नहुआ जैसे मेघकी वर्षा से मोर प्रसन्न होता है। सब के चंचल वानररूपी मन विषय भोग से रहितही स्थितहुये और मंत्री भी सुनके स्थित होरहे और अपने स्वरूप को जानने लगे। जैसे चन्द्रमाकी कला प्रकाशतीहै तैसेही आत्मकला प्रकाशितहुई और लक्ष्मणने अपने लक्षस्वरूप को देखके तीव्रबुद्धि से वशिष्ठजी के उपदेशको जाना। शत्रुघ्न जो शत्रुओं को मारनेवाले थे उनका चित्त अतिआनन्द से पूर्णहुआ और जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा स्थितहोताहै तैसे मंत्रियों के हृदयमें मित्रता होगई और मन शीतल और हृदय प्रफुल्लितहुआ। जैसे सूर्य्य के उदयहुये कमल तत्काल विकाशमान होताहै। और और जो मुनि, राजा और ब्राह्मण स्थितथे उनके रत्नरूपी चित्त स्वच्छ और निर्मल होगये। जब मध्याह्नकालका समय हुआ और बाजे बजकर उनके ऐसे शब्दहुये जैसे प्रलयकाल में मेघोंके शब्द होते हैं और उन बड़े शब्दों से मुनीश्वरों का शब्द आच्छादित होगया--जैसे मेघके शब्द से कोकिला का शब्द दबजाता है।

तब वशिष्ठजी चुप होगये और एक मुहूर्त्तपर्यंत शब्द होतारहा । जब घन शब्द शान्तहुआ तब मुनीश्वर ने रामजी से कहा, हे रामजी! जो कुछ आज मुझे कहना था वह मैं कहचुका अब कल फिर कहूंगा । यह सुन सर्वसभाके लोग अपने २ स्थानों को गये और वशिष्ठजी ने राजासे लेकर रामजी आदि से कहा कि, तुम भी अपने २ घर में जावो । सबने चरणवन्दना और नमस्कार किया और जो नभचारी, वनचारी और जलचारी थे उन सबको बिदाकर आप भी अपने २ स्थानों को गये और ब्राह्मण की सुन्दरवाणी को विचारते और अपने २ अधिकार की क्रिया दिन को करते रहे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपूर्वदिनवर्णनंनामप्रथमस्सर्ग्गः ॥ १ ॥

इतना कहकर फिर बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इस प्रकार अपने २ स्थानों में सब यथा उचित क्रिया करनेलगे । वशिष्ठ, राजा, राघव, मुनि और ब्राह्मणों ने अपने २ स्थानों में स्नान आदिक क्रिया की और गौ, सुवर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन आदिक ब्राह्मणों को यथायोग्य पात्रदानदिये । सुवर्ण और रत्नों से जड़े स्थानों में आकर राजाने देवतों का पूजन किया और कोई विष्णुका और सदाशिवका, कोई अग्नि का और किसीने सूर्य्य आदिक का पूजन किया । तदनन्तर पुत्र, पौत्र, सुहृद्, मित्र, बांधवसंयुक्त नाना प्रकार के उचित भोजन किये । इतने में दिनका तीसरा पहर आया तब सबने अपने सम्बन्धियों संयुक्त और २ क्रिया की और जब सांझ हुई और सूर्य्य अस्त हुआ तब सायंकालकी विधिकी और अघमर्षण गायत्री आदिक का जापकिया और पाठश्रोत्र और पुनरपि मनोहर कथा मुनीश्वरों की कही । फिर रात्रिहुई तब स्त्रियों ने शय्या बिछाई और उनपर वे विराजे पर रामजी विना सबको रात्रि एक मुहूर्त्तवत् व्यतीतहुई रामजी स्थित होकर वशिष्ठजी के वचनकी पंक्तियों को विचारनेलगे कि, जिसका नाम संसार है इसमें भ्रमणेका पात्र कौन है; नानाप्रकार के भूतजात कहां से आते हैं; कहां जाते हैं; मनका स्वरूप क्याहै; शांति कैसे होती है; यह माया कहांसे उठी है, और कैसे निवृत्त होती है; निवृत्तहुये विशेषता क्या होती है, नष्ट किसकी होती है; अनन्तरूप जो विस्तृत आत्मा है उसमें अहंकार कैसे होता है; मनके क्षय होने और इन्द्रियों के जीतने में मुनीश्वरों ने क्याकहाहै और आत्माके पावने में क्यायुक्ति कही है । जीव, चित्त, मन और माया सबही एकरूपहैं; विस्ताररूप संसार इसनेही रचाहै और जैसे तेंदुयेने हाथीको बांधाथा और वह कष्टपाताथा तैसेही असत्रूप संसारमें बँधकर जो जीव कष्टपाते हैं उस दुःख के नाश करने के निमित्त कौन औषध है । भोगरूपी मेघमालामें मोहितहुई मेरीबुद्धि गलितहोगई है; इसको मैं किसप्रकार भिन्नकरूं । यह तो भोगकेसाथ तन्मयहोगई है और मुझको भोगोंके त्यागनेकी सामर्थ्य भी नहीं; भोगों के त्यागने के विना बड़ी आपदाहै और उनके संहारने की भी सामर्थ्य

नहीं। बड़ा आश्चर्य है और हमको बड़ा कष्ट प्राप्तहुआ है। आत्मपद की प्राप्ति मनके जीतने से होती है और वेदशास्त्र के कहने का प्रयोजन भी यही है। गुरुके वचनों से भ्रम नष्ट होजाता है—जैसे बालक को परछाहीं में वेताल भासताहै—उस भ्रमको जैसे बुद्धिमान् दूरकरताहै तैसेही मनरूपी भ्रमको गुरु दूर करते हैं। वह कौन समयहोगा कि, मैं शांति पाऊंगा और संसारभ्रम नष्ट होजावेगा। जैसे यौवनवती स्त्री भर्त्ताको पाके सुखसे विश्राम करती है; तैसेही मेरीबुद्धि आत्माको पाके कब विश्रामवतीहोगी। नानाप्रकार के संसार के आरम्भ मेरे कब शांतहोंगे और कब मैं आदि अन्त से रहित पदमें विश्रांतवान् होऊंगा। मेरा मन कब पावनरूप होगा और पूर्णमासीके चन्द्रमावत् सम्पूर्ण कलासे सम्पन्न होकर स्वच्छ, शीतल और प्रकाशरूप पदमें कब स्थित होऊंगा। मैं कब जगत् देखके हँसूंगा और कब मलिन कलना को त्याग के आत्मपदमें स्थित होऊंगा। कब मैं मनको संकल्प विकल्प से रहित शान्तरूप देखूंगा—जैसे तरङ्गसे रहित नदी शान्तरूप दीखती है। तृष्णारूपी तरंग से व्याकुल जो संसारसमुद्र है वह मायाजाल से पूर्णहै और राग द्वेषरूपी मच्छों से संयुक्तहै, उसको त्यागके मैं वीतज्वर कब होऊंगा। उस उपशमसिद्धिपदको मैं कबपाऊंगा जो बुद्धिमानों ने मूढ़ताको त्यागके पाया है। मैं कब निर्दोष और समदर्शीहोऊंगा और अज्ञानरूपी ताप मेरा कब नाश होगा जिससे सम्पूर्ण अङ्ग मेरे तपते हैं। सब धातु क्षोभरूपहोगई हैं और उनसे बड़ा दीर्घज्वर हुआ है इससे कब मेरा चित्त शांतवान् होगा—जैसे वायुविना दीपक शांतहोता है। कब मैं भ्रम त्यागके प्रकाशवान् हूंगा और कब मैं लीलाकरके इन्द्रियों के दुःखों को तरजाऊंगा।दुर्गन्धरूप देहसे मैं कब न्याराहोऊंगा और 'अहम्' 'त्वम्' आदिक मिथ्याभ्रम का नाश मैं कब देखूंगा। जिसपदके आगे इन्द्रादिकोंका सुख ऐश्वर्य मन्दारादिक वृक्षों की सुगन्ध और नानाप्रकार के भोग तृणवत् भासते हैं वह आत्मसुख हमको कब प्राप्त होगा। वीतराग मुनीश्वर ने, जो हमसे ज्ञानकी निर्मलदृष्टि कही है उसको पाके मन विश्रामवान् होता है। संसार तो दुःखरूप है मन तू किसका पद पाके विश्रामवान् हुआ है। माता, पिता, पुत्रादिक जो सम्बन्धी हैं उनकापात्र मैं नहीं हूं; इनका पात्र भोगी होताहै। बुद्धि तू मेरीबहन है, तू मेरा शीघ्रही अर्थ भ्रातृवत् पूर्णकर कि, तुम हम दोनों दुःखसे मुक्तहों। मुनीश्वरके वचनों को विचार के हमारी आपदा नाशहोगी, हम भी परमपदको प्राप्त होंगे और तुझको भी शान्तिहोगी। हे मेरीबुद्धि! तू ज्योंकात्योंस्मरण कर कि, वशिष्ठजीने क्या कहा है। प्रथम तो वैराग्यकहा है, फिर मोक्षव्यवहार कहा है; फिर उत्पत्तिप्रकरण कहा है कि, संसार की उत्पत्ति इस क्रमसे हुई है और फिर स्थितिप्रकरण कहाहै कि, ईश्वर से जगत् की स्थिति है और नानाप्रकार के दृष्टान्तों से उसे निरूपण कियाहै। निदान जितने प्रकरणकहे हैं वे ज्ञानविज्ञानसंयुक्तहैं। हे बुद्धि! जिस

प्रकार वशिष्ठजी ने कहा है तैसे तू स्मरणकर और अनेक बार विचारकर । बुद्धि में निश्चय न हो तो वह क्रिया भी निष्फल है । जैसे शरत्काल का मेघ बड़ा घनभी दृष्टि आता है परन्तु वर्षा से रहित निष्फल होता है तैसेही बुद्धिमें अनुसन्धान से रहित विचार किया निष्फल होता है । जो बुद्धिमें अनुसन्धान कीजिये वह विचार सफल होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउपदेशानुसारवर्णनन्नामद्वितीयस्सर्गः २ ॥

बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार बड़े उदार आत्मा रामजीने चित्त संयुक्त रात्रि व्यतीतकी तो कुछ तम संयुक्त तारागणहुये और दिशा भासने लगीं । प्रातःकाल के नगारे नौबत बजने लगे तब रामजी ऐसे उठे जैसे कमलों की खानिसे कमल उठे और भाइयों के साथ प्रातःकाल के सन्ध्यादिक कर्म कर कुछ मनुष्यों के संयुक्त वशिष्ठजी के आश्रम में आये । वशिष्ठजी एकान्त समाधि में स्थित थे उनको दूरसे देख रामजी ने नमस्कार सहित चरण वन्दनाकी और प्रणाम करके हाथ बांध खड़ेरहे । जब दिशाका तम नष्ट हुआ तब राजा और राजपुत्र, ऋषि, ब्राह्मण जैसे ब्रह्मलोकमें देवताआवें तैसेआये । वशिष्ठजीका आश्रमजनोंसे पूर्णहोगया और हाथी, घोड़े, रथ, प्यादा चारप्रकारकी सेना से स्थान शोभित हुआ । तब तत्काल वशिष्ठजी समाधिसे उतरे और सर्व लोगों ने प्रणामकिया । वशिष्ठजी ने उन सबका प्रणाम आचार पूर्वक यथायोग्य ग्रहण किया और विश्वामित्रको संग लेकर सबसे आगे चले बाहर निकलकर रथपर आरूढ़हुये—जैसे पद्ममें ब्रह्मा बैठे और दशरथके गृहको चले । जैसे ब्रह्माजी देवताओंसेवेष्टित इन्द्रपुरीको आतेहैं तैसेही वशिष्ठजी बड़ी सेनासे वेष्टितदशरथके गृहआये और जो विस्तृत रमणीय सभाथी उसमें प्रवेश किया जैसे हंसवेष्टित राजहंस कमलों में प्रवेशकरे । तब राजा दशरथने जो बड़े सिंहासनपर बैठे थे उठकर आगेआ चरणवन्दना की और नम्रहोकर चरण चूंबे । वशिष्ठजी सर्व के अग्रहोकर शोभित हुये और अनेक मुनि, ऋषि और ब्राह्मणआये । दशरथसे लेकर राजा सर्व मंत्री और बन्दीजन और रामजी से आदिलेकर राजपुत्र, मण्डलेश्वर; जगत्के अधिष्ठाता और मालव आदि सर्वभृत्य और टहलुये आ यथायोग्य अपने अपने आसनपर बैठे और सबकी दृष्टि वशिष्ठजी की ओर हुई । बन्दीजन जो स्तुति करतेथे और सर्व लोक जो शब्द करतेथे चुप होगये निदान सूर्य उदय हुआ और किरणों ने झुककर झरोखों से प्रवेश किया; कमल खिलआये; पुष्पों से स्थान पूर्ण होगये और उनकी महासुगन्ध फैली झरोखे में स्त्रियां अपनी अपनी चंचलता त्यागकर मौन हो बैठीं और चमर करनेवाली मौन होकर शीशपर चमर करनेलगीं और सब वशिष्ठजी की महासुन्दर कोमल मधुरवाणी को स्मरणकर आपसमें आश्चर्य्यवान् होनेलगे । तब

आकाशसे राजऋषि, सिद्ध, विद्याधर और मुनि आये और वशिष्ठजी को प्रणाम किया पर गम्भीरतासे मुखसे न बोले और यथायोग्य आसनपर बैठगये। पुष्पों की सुगन्ध युक्त वायु चली और अगर चन्दनादि की सभामें बड़ी सुगन्ध फैलगई। भँवरे शब्द करते फिरते थे और कमलोंको देखकर प्रसन्न होते थे। रत्न मणि भूषण जो राजा और राजपुत्रोंने पहिने थे उनपर सूर्य्यकी किरणें पड़ने से बड़ा प्रकाश होताथा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसभास्थानवर्णनन्नामतृतीयस्सर्ग्गः ३॥

वाल्मीकिजी बोले कि, उस समय दशरथजी ने वशिष्ठजी से कहा, हे भगवन्! कलके श्रम से आप श्रमित हैं और आपका शरीर गरमी से अति कृश सा होगयाहै इस निमित्त आपसे कहाहै। हे मुनीश्वर! आपने जो आनन्दवचन कहे हैं वे प्रकटरूप हैं और वचन रूपी अमृतकी वर्षासे हम आनन्दवान् हुये हैं। हमारे हृदयका तम दूरहोकर शीतल चित्त हुआहै—जैसे चन्द्रमाकी किरणों से तम और तपन दोनों निवृत्तहोते हैं तैसेही आपके वचनों से हम अज्ञानरूपी तम और तपन से रहित हुये हैं। आप के वचन अमृतवत् अपूर्व्व रस आनन्द देते हैं और ज्यों ज्यों ग्रहण करिये त्यों त्यों विशेष रस आनन्दआता है। ये वचन शोकरूपी तप्तको दूर करनेवाले और अमृतकी वर्षारूप हैं। आत्मारूपी रत्न को दिखानेवाले परमार्थरूपी दीपक हैं; सन्तजनरूपी वृक्षकी वेलि हैं; और दुरिच्छा और दुष्ट आचरण के नाश करनेवाले हैं। जैसे तमको दूर करने और शीतलता करने को शांतरूप चन्द्रमा है तैसेही सन्तजनरूपी चन्द्रमाकी किरणरूपी वचनों से अज्ञानरूपी तप्तका नाश होता है। हे मुनीश्वर! तृष्णा और लोभादिक विकार आपकी वाणी से ऐसे नष्ट होगये हैं जैसे शरत्कालका पवन मेघको नष्ट करता है और आपके वचनों से हम निष्पाप हुये हैं। आत्मदर्शन के निमित्त हम प्रवर्त्तते हैं। आपने हमको परमअंजन दिया है उससे हम सचक्षु हुये हैं और संसाररूपी कुहिरा हमारा निवृत्त हुआ है। जैसे कल्पवृक्षकी लता और अमृत का स्नान आनन्द देता है तैसेही उदारबुद्धि की वाणी आनन्ददायक होती है। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, ऐसे वशिष्ठजी से कहकर रामजी की ओर मुख करके दशरथजी ने कहा; हे राघव! जो काल सन्तोंकी संगतिमें व्यतीत होता है वही सफल होताहै और जो दिन सत्संग विना व्यतीत होता है वह वृथाजाताहै। हे कमलनयन रामजी! तुम फिर वशिष्ठजी से कुछ पूछो तो वे फिर उपदेश करें—वे हमारा कल्याण चाहते हैं। वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार राजादशरथ ने कहा तब रामजी की ओर मुख करके उदार आत्मा वशिष्ठ भगवान् बोले कि, हे राघव! अपने कुलरूपी आकाशके चन्द्रमा! मैंने जो वचन कहे थे वे तुमको स्मरण आते हैं? उन वाक्योंका अर्थ स्मरणमें है और पूर्व और अपर का कुछ विचार किया है? हे महाबोधवान्

महाबाहो ! और अज्ञानरूपी शत्रुके नाशकर्त्ता ! सात्त्विक, राजस और तामस गुणों के भेदकी उत्पत्ति जो विचित्र रूप है वह मैंने कही है । तुम्हारे चित्त में है सर्वभी वही है असर्वभी वही है सत्यभी वही है और असत्य भी वही है और सदा शांत अद्वैत रूप है । यह परमात्मा देवका विस्मृतरूप स्मरण है । जैसे विश्व ईश्वरसे उदय हुआ है वह स्मरणहै; यह जो देववाणी है इसका पात्र शुद्ध चित्तहै; अशुद्ध नहीं । हे सत्य-बुद्धि रामजी ! अविद्या जो विस्मृतरूप भासती है उसकारूप स्मरण है ? अर्थ से शून्य, क्षणभंगुररूप, सम्यक् दर्शन से रहित, निर्जीवहै । यह जो लवण के विचारद्वारा मैंने प्रतिपादन किया है वह भली भांति स्मरण है ? और वाक्यों का समूह जो मैंने तुमको कहाहै उनको रात्रि में विचारके हृदयमें धाराहै ? जबपुरुष वारंवार विचारते हैं और तात्पर्य हृदय में धारते हैं तब बड़ा फलपाते हैं और जो अवज्ञा से अर्थ का विस्मरण करते हैं तो फल नहींपाते । हे रामजी ! तुम तो इन वचनों के पात्रहो—जैसे उत्तम बांस में मोती फलीभूत होते हैं और में नहीं उपजते; तैसेही जो विवेकी उदार आत्मचित्त पुरुषहैं उनके हृदयमें ये वचन फलीभूत होते हैं । बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजीने कहा तब महाओजवान् गम्भीर रामजी अवकाश पाके बोले; हे भगवन् ! सब धर्मोंके वेत्ता । आपने जो परम उदार वचन कहेहैं उनसे मैं बोधवान् हुआहूं और जैसे आप कहते हैं तैसेही सत्य है, अन्यथा नहीं । हे भगवन् ! मैंने समस्त रात्रि आपके वाक्यों के विचार में व्यतीत कीहै । आप तो हृदयके अज्ञान रूपी तमको नाशकर्त्ता पृथ्वीपर सूर्यरूप विचरते हैं । हे भगवन् ! आपने जो व्यतीत दिन में आनन्ददायक, प्रकाशरूपी, रमणीय और पवित्रवचन कहे थे वे मैंने सब अपने हृदय में भलीप्रकार धरे हैं । जैसे समुद्र से नानाप्रकार के रत्न निकलतेहैं तैसेही आपके वचन कल्याणकर्त्ता और बोधवान् हैं अर्थात् सबके सहायक और हृदयगम्य आनन्दका कारणहैं । वह कौनहै जो आपकी आज्ञा शिरपर न धरे ? जो मुमुक्षु जीवहैं वे सब आपकी आज्ञा शीशपर धरते हैं और अपने कल्याण के निमित्त जानते हैं । हे मुनीश्वर ! आपके वचनों से मेरेसंशय निवृत्तहुये हैं—जैसे शरत्काल में मेघ और कुहिरा नष्ट होजाताहै और निर्मल आकाश भासता है । यह संसार आपातरमणीय हो भासता है; जबतक पदार्थों का अभाव नहीं होता तबतक सुखदायक भासते हैं और जब विषय पदार्थ इन्द्रियों से दूरहोते हैं तब दुःखदायक होजाते हैं आप के वचन ऐसेहैं कि, जिनके आदिमें भी यत्न कुछ नहीं, सुगम मधुर आरम्भ है; मध्यमें सौभाग्य मधुरहै अर्थात् कल्याण करताहै और पीछे से अनुत्तमपद को प्राप्त करते हैं जिसके समान और कोई पदनहीं । यह आपके पुण्यरूप वचनोंकाफल है और आपके वचन रूपी पुष्प सदा कमल समान खिलेहुये निर्मल आनन्द के देनेवाले हैं और उदित

फूलहैं, उनका फल हमको प्राप्त होगा। सबशास्त्रोंमें जो पुण्यरूपी जल है उसका यह समुद्र है, अब मैं निष्पाप हुआ हूं मुझको उपदेश करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेराघववचनंनामचतुर्थस्सर्गः ४॥

वशिष्ठजी बोले, हे सुन्दर मूर्त्ति रामजी! यह उत्तम सिद्धांत जो उपशम प्रकरण है उसे सुनो, तुम्हारे कल्याण के निमित्त मैं कहताहूं। यह संसार महादीर्घ रूप है और जैसे दृढ़थम्भ के आश्रय गृह होता है तैसेही राजसी जीवों का आश्रय संसार मायारूपहै। तुम सारिखे जो सात्त्विक में स्थित हैं वे शूरमे हैं; जो वैराग, विवेक आदिक गुणों से सम्पन्नहैं वे लीला करके यत्न विनाही संसार माया को त्याग देते हैं और जो बुद्धिमान् सात्त्विक जागे हुये हैं और जो राजस और सात्त्विकहैं वे भी उत्तम पुरुष हैं। वे पुरुष जगत् के पूर्व अपूर्व को विचारते हैं। जो सन्तजन और सत्शास्त्रों का संगकरता है उसके आचरणपूर्वक वे विचरते हैं और उससे ईश्वर परमात्माके देखने की उन्हें बुद्धि उपजती है और दीपकवत् ज्ञान प्रकाश उपजताहै। हे रामजी! जब तक मनुष्य अपने विचारसे अपना स्वरूप नहीं पहिंचानता तब तक उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जो उत्तमकुल, निष्पाप, सात्त्विक–राजसी जीवहैं उन्हीं को विचार उपजता है और उस विचारसे वे अपने आपसे आपको पाते हैं। वे दीर्घदर्शी संसारके जो नानाप्रकार के आरम्भ हैं उनको विचारते हैं और विचार द्वारा आत्मपद पाते हैं और परमानन्द सुखमें प्राप्त होते हैं। इससे तुम इसी संसार को विचारो कि, सत्य क्या है और असत्य क्याहै? ऐसे विचार से असत्य का त्यागकरो और सत्य का आश्रय करो। जो पदार्त्थ आदि में न हो और अन्त में भी न रहे उसे मध्यमें भी असत्य जानिये। जो आदि, अन्त एकरस है उसको सत्य जानिये और जो आदि अन्त में नाश रूप है उसमें जिसको प्रीति है और उसके रागसे जो रंजितहै वह मूढ़ पशु है; उसको विवेक का रंगनहीं लगता। मनहीं उपजता है और मनहीं बढ़ता है; सम्यक् ज्ञानके उदय हुये मन निर्वाण होजाता है। मनरूपी संसार है और आत्मसत्ता ज्योंकी त्योंहै। रामजीने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो कुछ आप कहते हैं वह मैंनेजाना कि, यह संसार सर्वभावना में मनरूप है और जरा मरण आदिक विकारका पात्रभी मनहीं है। उसके तरने का उपाय निश्चयकरके कहो। हम सब रघुवंशियों के कुलके अज्ञानरूपी तमको हृदय से दूर करने को आप ज्ञान के सूर्य्य हैं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम तो जीवको विचारपूर्वक वैराग कहा है कि, सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों से मनको निर्मलकरे। जब मनको निर्मलकरेगा तब स्वजनता से सम्पन्न होगा और वैराग उपजेगा। जब वैराग प्राप्त होगा तब ज्ञानवान् गुरु के निकट जावेगा और जब वह उपदेश करेंगे तब ध्यान, अर्चनादि के क्रम से परमपदको प्राप्त होगा। जब निर्मल

विचार उपजता है तब अपने आपको आपसे देखता है—जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने बिम्बको आपसे देखता है। जबतक विचाररूपी तटका आश्रय नहीं लिया तबतक संसारमें तृणवत् भ्रमताहै और जब विचार करके ज्यों की त्यों वस्तु जानता है तब सब दुःख मनसे नष्ट होजाते हैं। जैसे सोमजलके नीचे रेत जा रहतीहै तैसेही आधी पीड़ा उसकी रहजाती है फिर उत्पन्न नहींहोता। जैसे जबतक सुवर्ण औ राख मिली हुईहै तबतक सोनार संशय में रहताहै और जब सुवर्ण और राख भिन्न हो-जातीहै तब संशय रहित सुवर्ण को प्रत्यक्ष देखता है और तभी निःसंशय होता है; तैसेही अज्ञानसे जीवोंको मोह उत्पन्न होताहै और देह इन्द्रियोंसे मिला हुआ संशय में रहताहै। जब विचारसे भिन्नभिन्नजाने तब मोह नष्ट हो और तभी संशयसे रहित शुद्ध अविनाशी रूप आत्माको देखताहै। विचार किये से मोहका अवसर नहीं रहता जैसे अज्ञान पुरुष चिन्तामणिकी कीमत नहीं जानसक्ता, जब उसको ज्ञान प्राप्तहोता है तब ज्योंका त्यों जानताहै और मोहसंशय निवृत्त होजाताहै; तैसेही जीव जबतक आत्मतत्त्वको नहीं जानता तबतक दुःखका भोगी रहता है और जब ज्योंका त्यों जानता है तब शुद्ध शांतिको प्राप्त होता है। हे रामजी! आत्मा देहसे मिश्रित भासता है पर वास्तव में कुछ मिश्रित नहीं; इससे अपने स्वरूप में शीघ्रही स्थित होजावो। निर्मल स्वरूप जो आत्माहै उसको रंचकमात्र भी देहसे सम्बन्ध नहीं—जैसे सुवर्ण कीचमें मिश्रित भासता है तो भी सुवर्णको कीचका लेप नहीं—निर्लेप रहता है तैसेही जीवको देहसे कुछ सम्बन्ध नहीं निर्लेपही रहताहै—आत्माभिन्न है; देहभिन्न है। जैसे जल और कमल भिन्न रहते हैं। मैं ऊंची भुजा करके पुकारताहूं, मेरा कहा कोई नहीं मानता कि, सङ्कल्पसे रहित होना परमकल्याण है। यही भावना हृदय में क्यों नहीं करते? जबतक जड़ धर्म है अर्थात् विषय भोगों में आस्था करताहै और आत्म-तत्त्वसे शून्य रहता है तब तक मूढ़ रहता है; जब तक स्वरूप का प्रमाद है तब तक हृदयसे संसारका तम और किसीप्रकार दूर नहीं होता। चन्द्रमा उदयहो और अग्नि का समूहहो वा द्वादशसूर्य्य इकट्ठे उदय हों तोभी हृदय तम रंचकमात्र भी दूर नहीं होता और जब स्वरूप को जानकर आत्मामें स्थितहो तब हृदय का तम नष्टहोजावे-गा। जैसे सूर्य्य के उदय हुये जगत् का अन्धकार नष्ट होताहै। जब तक आत्मपदका बोधनहीं होता और भोगों में मन तद्रूप है तब तक संसार समुद्रमें बहे जावोगे और दुःखका अन्त न आवेगा। जैसे आकाशमें धूलि भासती है परन्तु आकाश को धूलिका सम्बन्ध कुछ नहीं और जैसे जलमें कमल भासताहै परन्तु जलसे स्पर्श नहीं करता, सदा निर्लेप रहता है; तैसेही आत्मा देहसे मिश्रित भासता है परन्तु देहसे आत्माका कुछ स्पर्शनहीं, सदा विलक्षण रहता है, जैसे सुवर्ण कीच और मल से अलेप रहता

है। देह जड़ है; आत्मा उससे भिन्न है और सुख दुःख का अभिमान आत्मा में भासता है वह भ्रममात्र असत्यरूप है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा और नीलता असत्य रूप है तैसेही आत्मा में सुख दुःखादि असत्यरूप हैं। सुख दुःख देहको होता है; सब से अतीत आत्मा में सुख दुःखका अभाव है। यह अज्ञान करके कल्पित है, देहके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता; इससे सुख दुःख भी आत्मा में कोई नहीं, सर्वात्मामय शान्तरूप हैं। यह जो विस्तृतरूप जगत् दृष्टि आता है वह मायामय है; जैसे जलमें तरङ्ग और आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में जो जगत् भासता है सो आत्माही है; न एक है, न दो हैं; सब आभासमात्र हैं और मिथ्यादृष्टि आकार भासता है। जैसे मणिका प्रकाश मणिसे भिन्न नहीं और जैसे अपनी छाया दृष्टि आती है तैसेही आत्माका प्रकाश रूप जो जगत् भासता है वह सब ब्रह्मरूप है। मैं औरहूं, यह जगत् और है; इस भ्रमको त्याग करो; विस्मृत रूप ब्रह्मघनसत्तामें और कोई कल्पना नहीं। जैसे जलमें तरंग कुछ भिन्न वस्तु नहीं जलरूपही है; तैसेही सर्वरूप आत्मा एकरूप है, उसमें द्वितीय कल्पना कोई नहीं। जैसे अग्नि में बरफके कणके नहीं होते; तैसेही ब्रह्ममें दूसरी वस्तु कुछ नहीं। इससे अपने स्वरूपकी आपही भावना करो कि, 'मैं चिन्मात्ररूपहूं' "जगत्जाल सब मेराही स्वरूपहै" और मैंहीं विस्तृतरूप हूं,। जो कुछ है वह देवही है; न शोकहै, न मोह है, न जन्म है न देह है। ऐसे जानके विगतज्वर होजावो; तुम्हारी स्थिर बुद्धि है और तुम शान्तरूप, श्रेष्ठ, मणिवत् निर्मलहो। हे राघव ! तुम निर्द्वन्द होकर नित्यस्वरूप में निर्योगक्षेम, आत्मवान्, विशोक होकर स्थित होजावो और सत्य सङ्कल्प, धैर्य्यवान्, यथा प्राप्ति में वर्त्तो। तुम वीतराग, निर्यत्न, निर्मल, वीतकल्मष हो; न देतेहो, न लेतेहो; ग्रहण त्यागसे रहित शान्तरूप हो। विश्वसे अतीत जो पद है उसमें प्राप्त होकर जो पाने योग्य पदहै उसको पाकर परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप, सन्तापसे रहित विचरो। हे रामजी ! संकल्पजालसे मुक्त और मायाजाल से रहित अपने आपसे तृप्त और विगतज्वर होजावो। आत्मवेत्ताका शरीर अनन्त है और तुमभी आदि अन्त से रहित पर्वतके शिखरवत् विगतज्वरहो। हे रामजी ! तुम अपने आप से उदार होकर अपने आप आनन्द से आनन्दी होवो। जैसे समुद्र और पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने आनन्द से आनन्दवान् है तैसेही तुम भी आनन्दवानहो। यह जो प्रपंचरचना भासती है सो असत्यहै; जो ज्ञानवान् हैं वे असत्य जानकर इसकी ओर नहीं धावते। तुम तो ज्ञानवान् हो असत्य कल्पना त्यागकरके दुःखसे रहितहो और नित्य, उदित, शान्तरूप, शुभगुण संयुक्त उपदेश द्वारा चक्रवर्ती होकर पृथ्वी का राज्यकरो प्रजाकी पालना करो और समदृष्टिसे विचरो। बाहरसे यथाशास्त्रकरो शुभचेष्टा और राज्यकी

मर्यादा रक्खो पर हृदयसे निर्लेप रहना । तुमको त्याग और ग्रहणसे कुछ प्रयोजन नहीं और ग्रहण त्यागसे समबुद्धि समभाव से राज्यकरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रथमउपदेशोनामपञ्चमस्सर्ग्गः ५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिसकी हृदयसे वासना नष्ट हुई है वह पुरुष जो कार्य्यों में वर्त्तताहै तौभी मुक्तहै । हमारे मतमें बन्धन का कारण वासनाहै; जिसकी वासना क्षय हुईहै वह मुक्तस्वरूपहै और जिसकी वासना पदार्थों में सत्यहै वह बन्ध में है । कोई पुरुष अपने पुरुषार्थों का आश्रयकर कर्त्तव्यभी करते हैं और प्रीति करके प्रवर्त्तते हैं तो वे अपनी वासनासे स्वर्ग में जाते हैं और फिर स्वर्गको त्यागकर दुःख और नरक भोगते हैं वे अपनी वासनासे बांधेहुये पशु आदिक स्थावरयोनिको प्राप्त होते हैं और कोई आत्मवेत्ता पुण्यवान् पुरुष मनकी दशाको विचारते हैं और तृष्णारूपी बन्धनको काटकर निर्मल आत्मपदको प्राप्तहोते हैं । जो पुरुष पूर्व जन्म को भोगकर इसजन्ममें मुक्त होते हैं वे राजस–सात्त्विकी होते हैं । जिनका यह जन्म अन्तका होताहै वे क्रम करके परिपूर्ण पदको प्राप्त होते हैं–जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा क्रम से पूर्णमासी का होताहै और सब कलाओं से पूर्ण होताहै । जैसे वर्षाकाल में कण्टक वृक्षकी मञ्जरी बढ़ जाती है तैसेही सौभाग्य और लक्ष्मी उनको बढ़तीजातीहै । हे रामजी ! जिनका यह जन्म अन्तका होताहै उनमें निर्मल गुण जो वेदने कहे हैं अर्थात् मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता और आर्य्यता प्रवेश करते हैं । सब जीवोंपर दयाकरनी मैत्री है; हृदय में सदा समताभाव रहना और कोई क्षोभ न उठना मुक्तता कहानाहै; सदा प्रसन्न रहना सौम्यताहै; यथा शास्त्र आचार करना आर्यताहै और ज्ञानका नाम ज्ञातव्यताहै । जैसे राजाके अन्तःपुरमें–श्रेष्ठ अंगना आ प्रवेश करती हैं तैसेही जिस को अन्तका यही जन्महै सो राजस–सात्त्विकी है और उसके हृदय में मैत्री आदिक सर्वगुण आ प्रवेश करते हैं । संसारी पुरुष सबकार्यौंको करताहै परन्तु उसके हृदय में लाभ अलाभका राग द्वेष नहीं होता और सर्वदा काल समभाव रहताहै । वह न तोषवान् होताहै और न शोकवान् होताहै । जैसे सूर्य के उदय हुये तम नष्ट होजाता है तैसेही आत्मभाव से राग द्वेष नष्ट होजाते हैं और सर्वगुण सिद्धताको प्राप्त होते हैं । जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होताहै तैसेही वह कोमल और सुन्दर होताहै और उसका मधुर आचार होताहै; सर्वजीव उसके आचारकी वाञ्छा करते हैं और उसको देखके मोहित होजाते हैं । जैसे मेघकीध्वनिसे बगुले आ प्रवेश करते हैं तैसेही उस पुरुषमें सबगुण प्रवेश करते हैं और गुणोंसे पूर्णहोकर वह गुरुकी शरण जाताहै । तब वह उसे विवेकका उपदेश करता है और उस विवेकसे वह परमपद में स्थित होताहै । हे रामजी ! जो वैराग्य और विचारसे सम्पन्न चित्तहै वह आत्मा देखके

देखताहै, उसको दुःख स्पर्श नहीं करता; वह यथार्थ एक आत्मरूपको देखताहै। तुम विचारका आश्रय करके मनको जगावो; जिसमें मन नहीं मथनहै अर्थात् सदा प्रपञ्च दृश्यका मननभाव करता है जो अन्तका जन्मवान् पुरुष है वह मनरूपी मृगको जगाताहै। प्रथम तो गुण ज्ञानसे जगाताहै; फिर बड़े गुणों से जगाताहै और फिर ज्ञानके सेवनका यत्न करताहै उससे जगाता है। वह निर्म्मलबुद्धि से चित्तरूपी रत्नोंको विचार करताहै; उस विचार से जगत् को आत्मरूप देखता है और आत्माके प्रकाश विचार से अविद्या मल नष्ट होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेक्रमोपदेशवर्णनन्नामषष्ठस्सर्ग्गः ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तुमसे मैंने क्रम कहा सो वह सब जीवों को समान है इससे जो विशेष है वह तुम सुनो। इस जगत् के आरम्भमें जो देहधारी जीव हैं उन जीवोंका प्रकाश से मोक्ष होताहै। एक उत्तम क्रमहै और एक समान क्रमहै। जो गुरुके निकटजावे और वह उपदेशकरे तो उस उपदेशके धारणसे शनैश्शनैः एक जन्मसे अथवा अनेक जन्मों से सिद्धता प्राप्त होती है और दूसरा क्रम यही है जो अपने आपसे वह उत्पन्न होताहै अर्थात् समझ लेताहै। जैसे वृक्ष से फलगिरे और किसीको आप्राप्तहो तैसेही ज्ञान प्राप्तहोताहै। इसीपर पूर्वका वृत्तान्त मैं तुमसे कहताहूं सो तुम सुनो। वह महापुरुषों का वृत्तान्त है शुभ अशुभ गुणों के समूह जिनके नष्ट हुये हैं और अकस्मात् फल जिनको प्राप्तहुआ है उनका निर्मल क्रम सुनो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेक्रमसूचनानामसप्तमस्सर्ग्गः ७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसकी सर्व सम्पदा उदय हुईथी और सब आपदा नष्ट हुईथी; ऐसा एक उदार बुद्धि विदेह नगर का राजा जनक हुआ है। वह बड़ा धैर्य्यवान् था, अर्थी का अर्थ कल्पवृक्षकी नाईं पूर्ण करे; मित्ररूपी कमलों को सूर्य्यवत् प्रफुल्लितकरे; बांधवरूपी पुष्पों को वसन्तऋतुवत् और स्त्रियों को कामदेववत् था। ब्रह्मरूपी चन्द्रमुखी कमलका वह शीतल चन्द्रमा था, दुष्टरूपी तम का नाश कर्त्ता सूर्य्यथा और स्वजनरूपी रत्नों का समुद्र पृथ्वी में मानो विष्णु सूर्य्य स्थितहुआ था ऐसा राजाजनक एकसमय लीला करके अपने बागमें जिसमें मीठे फल लगे थे और नानाप्रकारके सुन्दर बेलोंपर कोकिला शब्द करती थीं इसभांति गया जैसे नन्दनवनमें इन्द्र प्रवेशकरे। उस सुन्दरवनमें पुष्पोंसे सुगन्ध फैलरहीहै। राजा अपने संगके अनुचरों को दूर त्यागकर आप अकेला कुञ्जोंमें विचरने लगा। वहां शाल्मलीनामक एकवृक्षथा उसके नीचे राजाने शब्दसुना कि, अदृष्टसिद्ध जो विरक्त चित्त और नित्य पर्वतों में विचरनेवाले हैं आत्मगीताका उच्चार करते हैं जिससे आत्मबोध प्राप्त होता है। उस गीताको राजाने सुना कि, पहिला सिद्धबोला; यह द्रष्टा जो पुरुष है और दृश्य जो

जगतहै उसद्रष्टा और दृश्यके मिलापसे जो बुद्धिमें निश्चित आनन्द होताहै और इष्टके संयोग और अनिष्टके वियोग का जो आनन्द चित्तमें दृढ़ होताहै वह आनन्द आत्मा तत्त्वसे उदयहोताहै । स्पन्दरूप जिस आत्मा आनन्दसे लवउठता है उसकी हम उपासना करते हैं । दूसरा सिद्ध बोला कि, द्रष्टा, दर्शन और दृश्यको वासना सहित त्याग करो । जो दर्शन से प्रथम प्रकाशरूप है और जिसके प्रकाशते यह तीनों प्रकाशते हैं उस आत्माकी हम उपासना करते हैं । तीसरा सिद्ध बोला जो निराभास, निर्मल और आभासरूप है; जिसमें मनन के भावका अभाव है; द्वितीय कल्पना का अभाव है और अद्वैतरूप है उसकी हम उपासना करते हैं । चौथा सिद्धबोला कि, जो दोनों के मध्य में है और अस्ति नास्ति दोनों के पक्षोंसे रहित प्रकाशरूपसत्ता है और सब सूर्य आदिक को भी प्रकाशता है उस आत्माकी हम उपासना करते हैं । पञ्चमसिद्ध बोला कि, जो ईश्वर सकार और हकार है अर्थात् सकार जिसके आदि में है और हकार जिसके अन्त में है सो अन्त से रहित, आनन्द, अनन्त शिव परमात्मा सर्व जीवों के हृदयमें स्थित है और निरन्तर जो अहंरूप होकर उच्चारहोता है उस आत्मा की हम उपासना करते हैं । छठा सिद्ध बोला कि, हृदय में स्थित जो ईश्वर है उसको त्यागकर जो और देवके पाने की यत्नकरते हैं वे पुरुष हाथ में कौस्तुभमणि को त्यागकर और रत्नों की वाञ्छा करते हैं । सातवां सिद्ध बोला कि, जो सब आशा त्यागता है उसको फल प्राप्त होता है और आशारूपी विष की बेल वह मूल संयुक्त नष्ट होजाती है अर्थात् जन्म मरण आदिक दुःख नष्ट होजाते हैं और फिर नहीं उपजते । जो पदार्थों को अत्यन्त विरसरूप जानता है और फिर उनमें आशा बांधता है वह दुर्बुद्धि गर्दभ है-मनुष्य नहीं । जहां जहां विषयों की ओर दृष्टि उठतीहैं उनको विवेक से नष्टकरो-जैसे इन्द्रने वज्रसे पर्वतों को नष्ट किया था । जब इसप्रकार शुद्ध आचरण करोगे तब समभाव को प्राप्तहोगे और उससे मन उपशम आत्मपद को प्राप्त होकर अक्षय अविनाशी पदपावेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसिद्धगीतावर्णनन्नामाष्टमस्सर्गः ८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! महीपति इस प्रकार सिद्धों की गीता सुनकर जैसे संग्राम में कायर विषादको प्राप्तहोता है तैसेही विषाद को प्राप्तहुआ और सेना संयुक्त अपने गृहमेंआया । नौकर और सबलोग किनारे खड़ेरहे और राजा उनको छोड़कर चौखंडेपर गया और झरोखे में संसार की चञ्चलगति को इधर उधर देखकर विलाप करनेलगा कि, बड़ा कष्टहै कि; मैं भी संसार में लोगों की चञ्चल दशा से आस्थाबांध रहाहूं । ये तो सबजीव जड़रूप हैं, चैतन्य कोई नहीं; जैसे और जीव पाषाणरूप हैं तैसेही मैं भी इनमें पाषाण होरहाहूं । काल अन्त से रहित अनन्त है और उसके कुछ

अंशमें मेराजीनाहै-इस जीने में मैं आस्था कररहाहूं। मुझको धिक्कारहै कि, मैं अधम चेतनहूं। ये मेरे मंत्री और राज्य और जीना सब क्षणभंगुर हैं। ये जो सुखहैं वे दुःखरूपहैं; इन से रहित मैं किस प्रकार स्थितहोऊं-जैसे महापुरुष बुद्धिमान् स्थित होते हैं जीवन आदिअन्त में तुच्छरूप हैं और मध्य में पेलवरूप हैं उनमें मैंने क्या मिथ्या आस्थाबांधीहै-जैसे बालक चित्रके चन्द्रमा को देख चन्द्रमा मानकर आस्था बांधे। यह प्रपञ्चरचना इन्द्रजालकी बाजीवत्है; बड़ाकष्टहै इसमें मैं क्यों मोहितहुआ हूं? जो वस्तु उचित, रमणीय, उदार और अकृत्रिम है वह इस संसार में रंचक भी नहीं; मेरी बुद्धि क्यों नष्टहुई है। जो पदार्थ दूरहो और उसके पाने का मेरे मन में यत्नहो तो वह निकटही है यह निर्णयकरो अथवा अर्थाकार जो संसार के पदार्थ हैं उनकी आस्था मैं त्यागताहूं। ये लोग सब आगमापायी हैं अर्थात् उदय होते और मिटजाते हैं और जल के तरंगोंके सदृश सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं। जितने सुख दृष्टि आतेहैं वे दुःखसे मिश्रित हैं उन से मैंने क्या आस्था बांधी है। सुख कदाचित् दिन, पक्ष, मास, वर्षादिक में आते हैं और दुःख वारंवार आते हैं; मैं किससुख से जीने की आस्था बांधूं? जो बड़ेबड़े हुये हैं वे सब नष्ट होगये हैं और स्थिर कोई न रहेगा। मैं वारंवार विचार कर देखताहूं इससे मैंने जाना है कि, इस जगत् में सत्य पदार्थ कोई नहीं-सब नाशरूप हैं। ऐसा कौन पदार्थ है कि, जिसमें आस्था बांधे? जो अब बड़े ऐश्वर्यवान् विराजते हैं सो कुछ दिन पीछे नीचे गिरपड़ेंगे। हे चित्त! बड़ाखेद है तूने किस बड़ाई में आस्थाबांधी है। आयुर्बल से बांधा हुआ मैं किस विना कलङ्कित हुआहूं? ऊंचेपद में स्थित होके भी मैं अधको गिराहूं। बड़ा कष्ट है कि, मैं आत्माहूं और नाश को प्राप्त होताहूं। किसकारण अकस्मात् मुझको मोह आया है और मेरी बुद्धिको इसने उपहत कियाहै-जैसे सूर्य के आगे मेघ आता है और सूर्य नहीं भासता तैसेही मुझे आत्मा नहीं भासता। भोगोंसे मेरा क्याहै और बान्धवोंसे मेरा क्याहै? इन में मैं क्यों मोहित हुआहूं? देहाभिमान से जीव आपही बंधायमान होताहै। देह में अहंकारही जरा मरणादिक विकारोंका कारणहोताहै; इससेइनसेमेरा क्या प्रयोजनहै। इन अर्थों में क्या बड़ाई है और राज्यमें मैं क्यों धैर्यधरके बैठाहूं। ये सब पदार्थ क्षोभके कारण हैं और ये ज्यों के त्यों रहते हैं। इनमें न मुझको ममता है न संगहै-ये सर्व असत्यरूप हैं। संसारके सुख विषरूपहैं और इनमें आस्थाकरनी मिथ्याहै;जो बड़े बड़े ऐश्वर्यवान् और बड़े पराक्रमी गुणवान् हुये हैं वे सब परिवारसंयुक्त मरगये हैं तो वर्तमानमें क्याधैर्य करनाहै। कहां वह धन और राज और कहां उस ब्रह्माका जगत्? कई पुरुषोंकी पंक्ति बीतगईहै हमको उनसे क्या विश्वासहै। देवताओं के नायक अनेक इन्द्रनष्ट होगये हैं-जैसे जलमें बुद्बुदे उपजकर नष्टहोजाते हैं-तो मैं क्या इस संसार में

आस्था बांधकर जीऊंगा । सन्त जन मुझको हँसेंगे; कई ब्रह्मा होगये हैं, कई पर्वत हो-गये हैं और कईधूलकी कणिकावत् राजाहोगये हैं तो मुझको इसजीनेमें क्या धैर्य है ? संसाररूपी रात्रिमें देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्ना है; उस भ्रमरूप में जो मैंने आस्था बांधी है इससे मुझको धिक्कारहै । यह, वह और मैं इत्यादिकभ्रम आत्मामें मिथ्याकल्पना उठीहै और अज्ञानियोंकी नाईं मैं स्थितहुआहूं । अहंकाररूपी पिशाचकरके क्षण क्षणमें आयुर्बल व्यतीतहोती है; देखतेहुये भी नहीं दीखती । कालकी सूक्ष्मगति है जो सबको चरणकेनीचे धरेहै; सदाशिव और विष्णुको जिसने खेलनेका गेंद किया है और वह सबको भोजन करता है । इससे मुझको जीने में क्या आस्था बांधनी है ? जितने पदार्थ हैं वे निरन्तर नाशहोते हैं;कोई दिनमें, कोई पक्ष में और कोई वर्ष में नाश होजाताहै । जो अविनाशी वस्तु है वह अबतक नहीं देखी वर्षोंव्यतीत होगये हैं जीवोंकी चित्तरूपी नदी में भोगोंकी तृष्णारूपी तरंग उछलती है; शान्त कदाचित् नहींहोती—जैसे वायुसे नदी में तरंग उछलते हैं और सोमतासे रहित होजाते हैं । जिनको चित्तमें भोगोंकी अभिलाषा है उनको अतुच्छपद दृष्टि नहीं आता और वे कष्टसे कष्टकोप्राप्तहोते हैं और उन्हें दुःखसे दुःखान्तर प्राप्तहोताहै । अबतक मैं विरक्त नहींहुआ इससे मुझको धिक्कार है । जिसका अन्तःकरण नीच है उसने जिस जिस वस्तु में कल्याणरूप जानके आस्था बांधी है वह वह नष्टहोती दीखती है । यह शरीर अस्थि–मांससे बनाहै और आदि अन्त संयुक्त इसका आकार है; मध्यमें कुछ रमणीय भासता है परन्तु सब अपवित्र पदार्थों से रचा बिना स्वरूप है;स्पर्श करने के भी योग्य नहीं,उससे मुझको क्याप्रयोजनहै । जिस जिस पदार्थसे लोग आस्था बांधते हैं उस उस में मैं दुःखही देखताहूं और ये जीव ऐसे जड़ मूढ़ हैं कि,सदा इसमें लगे रहते हैं कि, कल यह पदार्थ मुझको प्राप्तहोगा, अगलेदिन यह मिलेगा । दिनदिन पापकरते और खेदपाते हैं तौभी त्याग नहींकरते । बालक अग्निमेंपूर्ण मूढ़तासे विचरते हैं; यौवन अवस्था कामादि विकारसे मिश्रित है और शेष जो वृद्धावस्था है उसमें चित्तसे दुःखीहोताहै तो यह जड़ मूर्ख परमार्थ कार्य्यको किसकाल में साधेगा । ये सब जगत्के पदार्थ आगमापायी विरसहैं और विषमदशासे दूषितहैं अर्थात् एक भावमें नहीं रहते । सर्व जगत् असाररूपहै और सत्यबुद्धि से रहित असत्यरूप है; सारपदार्थ इसमें कोईनहीं । जो राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञकरते हैं वे महाकल्प के किसी अंशकाल में स्वर्गपाते हैं अधिकतो नहीं भोगते ? जो अश्वमेधयज्ञ करताहै वह इन्द्रहोताहै पर जो ब्रह्माका एकदिनहोताहै उसमें चतुर्दश इन्द्र राज्य भोगकर नष्ट होजाते हैं । जब सहस्र चौकड़ी युगोंकी व्यतीत होतीहैं तब ब्रह्माका एकदिन होताहै ऐसे तीसदिनोंका एकमास और द्वादश मासका एकवर्ष होताहै । सौवर्ष ब्रह्माकी

आयुर्बलहै उस आयुर्बलको भोगकर ब्रह्माजीभी अन्तर्द्धान होजातेहैं उसका नाम महाप्रलयहै। उसमहाप्रलयकेअंत में इसने स्वर्ग भोग किया तो असार सुखकीआस्था क्या योग्यहै? ऐसासुख स्वर्गमें कोईनहीं; न पृथ्वी में है और न पातालमें है जो आपदा और दुःखसे मिश्रित न हो। सर्वलोक आपदा संयुक्त हैं और सब दुःखों का मूल चित्त है जो शरीररूपी बांबी में सर्पवत् रहता है और आधि-व्याधि बड़े दुःखरूपी विष देता है। यह जब किसीप्रकार निवृत्त हो तब सुखी हो। इससे सब जीव नीचप्रकृति होरहेहैं; कोई विरलासाधु है जिसके हृदय में चित्तरूपी सर्व भोगोंकी तृष्णारूप विषसंयुक्तनहीं होता। ये जगत्के पदार्थ सत्यताके मस्तकपर असत्यता हैं; जो रमणीय भासताहै उसके मस्तकपर अरमणीय स्थित हैं और जो सुखरूप हैं उसके मस्तकपर दुःख स्थितहैं जिसका मैं आश्रयकरूं वह दुःखसे मिश्रित है; दुःखतो दुःखसे मिश्रित क्याकहिये वहतो आपही दुःखहै और जो सुख सम्पदा है सो आपदा दुःखसे मिश्रितहै; फिर मैं किसका आश्रय करूं? ये जीव जन्मते और मरते हैं; इनमें कोई विरला दुःखसे रहित है। ये सुंदर स्त्रियां जिनके नील कमलवत् नेत्रहैं और परम हास्य विलास आदिक भूषणों से संयुक्त हैं, इनको देखके मुझको हँसीआती है कि; ये तो अस्थि मांसकी पुतली हैं और क्षणमात्र इनकी स्थिति है। जिन पुरुषों के निमेष खोलनेसे जगत् होता है और उन्मेष मूंदनेसे जगत् का अभाव होजाता है वे भी नष्टहुये हैं तो हमारी क्या गिनती है? जो पदार्थ बड़े रमणीय भासते हैं वे अस्थित रूपहैं उनपदार्थोंकी चिन्ता और क्या इच्छाकरनी है? नानाप्रकारकी सम्पदा प्राप्त होती हैं पर इनमें जब कोई चित्तको आलगता है तब सब सम्पदा आपदारूप होजाती हैं और जो बड़ी आपदा आ प्राप्तहोती है और चित्तमें क्षोभ नहीं होता शान्तरूपहै तब वेही आपदा सम्पदारूप हैं? इससे यही सिद्धहुआ कि, सब मन के फुरने मात्र हैं। क्षणभंगुररूप मनकी वृत्ति अकस्मात् जगत् में इनकी स्थितिभई है और अज्ञानसे अहं इसकी कल्पनाहै उसमें त्याग और ग्रहणकी भावना मिथ्याहै। क्षीणरूप संसारमें सुख आदिअन्त संयुक्त है। जो सुखजानकर जीव इसकी ओर धावता है वह सुख फिर नष्ट होजाता है—जैसे पतङ्ग दीपकशिखाको सुखरूप जानकर उसकी ओर धावता है तो दग्धहोजाता है तैसेही संसारके सुख ग्रहण करनेवाले तृष्णासे दग्धहुये हैं। जैसे नरकका अग्नि दग्धकरता है पर वहभी श्रेष्ठ है परन्तु क्षणभंगुर जो संसार के सुख हैं वे महानीच हैं—नष्टहुयेभी दुःख देजातेहैं। और दुःखोंकी सीमाहैं पर जो इस संसारसमुद्र में गिरते हैं वे सुखनहीं पाते। संसारमें दुःख स्वाभाविकहैं और दुःखसे मिश्रितहैं। मैंभीअज्ञानीकीनाईं काष्ठलोष्टवत्स्थितहोरहाहूं और बड़ाखेदहै। कि अज्ञानीवत् शमादिक सुखको त्याग करके क्षणभंगुर संसारके सुखके निमित्तयत्नकरताहूं।

जैसे बरफ से अग्नि नहीं उपजती तैसेही संसार से सुखनहीं उपजते; जितने जीव हैं वे जड़ धर्मात्मक हैं संसाररूपी एक वृक्षहै और सहस्रों अंकुर, शाखा, पत्र, फल, फूलों से पूर्णहै । उस संसाररूपी वृक्षका मूल मनहै उसके सङ्कल्परूपी जल से विस्तारको प्राप्तहुआहै और सङ्कल्पके उपशम हुये नष्ट होजाताहै । इससे जिसप्रकार यहनष्टहो वही उपाय मैं करूंगा । संसारमें भोग देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं और भीतरसे दुःख रूपहैं । मन मर्कटवत् चञ्चलरूपहै, उसने यह रचनारचीहै । जबतक इसको वास्तव में नहीं जाना तबतक चञ्चलहै और जब विचारसे जानताहै तब पदार्थोंकी रमणीयता सहित मनका अभाव होजाताहै; इससे मैं मायारूप पदार्थों में नहीं रमता । संसार की वृत्ति अनेक फांसियों से मिश्रितहै उस में गिरके जीव फिर उछलते हैं और शांत कदाचित् नहीं होते । ऐसी संसार की वृत्ति को मैंने चिरकालपर्य्यन्त भोगाहै अब मैं भोगसे रहित होकर ब्रह्मही होताहूं । इस संसार में वारंवार जन्म मरण होताहै और शोकही प्राप्त होताहै इससे अब संसार की वृत्ति से रहित हो शोक से रहित होताहूं अब मैं प्रबुद्ध और हर्षवान् हुआहूं । मैंने अपने चोर आपही देखेहैं । जिसका नाम मनहै इसीको मारूंगा । इस मनने मुझको चिरपर्य्यन्त माराहै । इतने कालपर्य्यन्त मेरा मनरूपी मोती अवेध रहाथा अब मैंने इसको वेधाहै अर्थात् आत्मविचार से रहितथा सो अब उसको आत्मविचार में लगाया है; और अब यह आत्मज्ञान के योग्य है । मनरूपी एक बरफका कण जड़ताको प्राप्त हुआ था अब विवेकरूपी सूर्य्य से गलगयाहै और अब मैं अक्षय शांति को प्राप्तहुआहूं । अनेक प्रकारके वचनों से साधुरूप जो सिद्धथे उन्होंने मुझको जगाया है और अब मैं आत्मपद को प्राप्त हुआहूं । परमानन्दसे अब मैं आत्मरूपी चिन्तामणिको पाकर एकान्त सुखी होकर स्थित होऊंगा । जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होताहै तैसे होऊंगा । मनरूपी शत्रुने मुझको भ्रमदिखायाथा वह अब विवेक से नाश कियाहै और उपशमको प्राप्त हुआहूं हे विवेक ! तुझको नमस्कार है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजनकविचारोनामनवमस्सर्ग्गः ९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जब राजा चिन्तन करताथा तब एक दासीने राजा के निकट आकर कहा; हे देव ! अब उठिये और दिनका उचित विचार अर्थात् स्नानादिक कीजिये । स्नानशालामें पुष्प, केसर और गंगाजल आदिके कलशे लेकर स्त्रियां खड़ी हैं और कमल पुष्प उनमें पड़े हैं जिनपर भँवरे फिरते हैं, छत्र चमर पड़े हैं, स्नानका समयहै । हे देव ! पूजनके निमित्त सब सामग्री आईहै और रत्न और औषध ले आये हैं । हाथों में ब्राह्मण स्नानकरके और पवित्रे डालकर अघमर्षण जाप कररहे हैं और आपके आगमन की राह देखते हैं । हाथों में चमर लेकर

सुन्दरकान्ता तुम्हारे सेवन के निमित्त खड़ी हैं और भोजनशाला में भोजन सिद्धहो-रहा है; इससे शीघ्र उठिये और जो कार्य है वह कीजिये; जैसा काल होता है उसके अनुसार कर्म बड़े पुरुष करते हैं इसका त्याग नहीं करते। इससे काल व्यतीत न कीजिये। हे रामजी! जब इसप्रकार दासीने कहा तब राजाने विचारा कि, संसार की जो विचित्र स्थिति है वह कितेकमात्र है। राजसुखों से मुझ को कुछ प्रयोजन नहीं, यह क्षणभंगुरहैं; इस सम्पूर्ण मिथ्या आडम्बरको त्यागके मैं एकान्त जा बैठताहूं—जैसे समुद्र तरंगोंसे रहित शान्तरूपहोताहै तैसेही शान्तरूप होऊंगा। यह जो नानाप्रकारके राजभोग और क्रियाकर्म हैं उनसे अब मैं तृप्तहुआ हूं और सबकर्मों को त्याग कर केवल सुखमें स्थित होऊंगा। मेराचित्त जिन भोगोंसे चञ्चलथा वे भोग तो भ्रम रूप हैं इनसे शांति नहीं होती और तृष्णा बढ़ती जाती है। जैसे जलपर सेवाल बढ़तीजाती है और जलको ढांपलेती है तैसेही तृष्णा ढांपलेती है। अब मैं इसको त्याग करता हूं। हे चित्त! तू जिस जिस दशा में गिरा है और जो जो भोगभोगे हैं वे सब मिथ्या हैं; तृप्ति तो किसी से न हुई? इससे भ्रमरूप भोगों को जब मैं त्यागूंगा तब परम सुखी होऊंगा। बहुत उचित अनुचित भोग वारंवार भोगे हैं परन्तु तृप्ति कभी न हुई; इससे, हे चित्त! इनको त्यागकरके परमपदके आश्रय होजा। जैसे बालक एक को त्यागकर दूसरे को अंगीकार करताहै तैसेही यत्न विना तूभी कर। जब इन तुच्छ भोगोंको त्यागेगा और परमपदका आश्रय करेगा तब आनन्दी तृप्तिको प्राप्त होगा और उसकोपाकर फिर संसारी न होगा। हे रामजी! इसप्रकार चिन्तन करके जनक तूष्णी होरहा और मनकी चपलता त्यागकरके सोमाकारसे स्थितहुआ जैसे—मूर्त्ति लिखीहोती है तैसेही होगया और प्रतिहारीभी भयभीत होकर फिर कुछ न कहसकी। इसके अनन्तर मनकी शमताके निमित्त फिर राजाने चिन्तनाकिया कि,मुझको ग्रहण और त्यागकरने योग्य कुछनहीं है; किसको मैं साधूं और किस वस्तु में मैं धैर्यधारूं; सब पदार्थ नाशरूपहैं मुझको करनेसे क्या प्रयोजनहै और न करनेसे क्याहानिहै। जोकुछ कर्त्तव्यहै वह शरीरकरताहै निर्मल अचलरूप चेतन न करताहै, न भोगताहै। इससे मुझको कुछ कर्त्तव्यनहीं। जो त्यागकरूंगा तो शरीर करने से रहितहोगा और जो करूंगा तो भी शरीर करेगा, मुझको क्या प्रयोजन है? इससे करने और न करने में मुझकोलाभ हानि कुछनहीं जोकुछ प्राप्तहुआहै उसमें विचरताहूं अप्राप्तकी मैं वाञ्छा नहीं करता और प्राप्त में त्यागनहीं करता अपने स्वरूपमें स्थितहोकर स्वस्थहोऊंगा और जोकुछ प्राप्तकर्म है वही करताहूं, न कुछ मुझको करनेमें अर्थहै और न करने में दोष है जो क्रियाहो सोहो करो अथवा न करो और युक्तहो अथवा अयुक्तहो मुझको ग्रहण त्याग करनेयोग्य कुछनहीं। इससे जोकुछ प्राप्तकरने योग्य कर्म हैं वेही करूंगा

कर्मका करना शरीर प्रकृति से होताहै; आत्माको तो कुछ कर्त्तव्य नहीं, इससे मैं इनमें निःसंग होरहूंगा । जो निस्पन्द चेष्टाहो तो क्या सिद्धहुआ और क्या किया । जोमन कामनासे रहित स्थित विगतज्वर हुआ अर्थात् हृदयमें राग द्वेष मलिनता न उपजी तो देहसे कर्महो तौभी इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्ति में तुलनारहेगी और जो देहसे मिलकर मन कर्म करताहै तब कर्त्ता भोक्ताहै और इष्ट—अनिष्टकी प्राप्तिमें राग द्वेषवान् होता है । जब मनका मनन उपशम होताहै तब कर्त्तव्यमें भी अकर्त्तव्य है । जैसा निश्चय हृदय में दृढ़होता है वही रूप पुरुषका होता है; जिसके हृदय में अहंकृत नहीं है और बाहर कर्म चेष्टाकरताहै तौभी उसने कुछ नहीं किया और जिसके हृदयमें अहंकृत अभिमान है वह बाहर से अकर्त्ता भासता है तौभी अनेक कर्मकरता है । इससे जैसा निश्चय हृदयमें दृढ़होताहै तैसाही फल होता है । जो बाहर कर्त्ता है परन्तु हृदय में कर्तव्य का अभिमान नहीं रखता तो वह धैर्य्यवान् पुरुष अनामयपदको प्राप्त होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजनकनिश्चयवर्णनन्नामदशमस्सर्गः १० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार विचारके राजा यथाप्राप्त क्रिया के करने को उठ खड़ा हुआ और जो इष्ट अनिष्टकी वासना थी वह चित्तसे त्यागदी । जैसे सुषुप्तिरूप पुरुषहोता है तैसेही वह जाग्रत् में होरहा । निदान दिन को यथाशास्त्र क्रिया करे और रात्रिको लीलाकरके ध्यान में स्थितहो । मनको समरसकर जब रात्रिक्षीण हुई तब इसप्रकार चित्तको बोधकिया कि, हे चञ्चलरूप चित्त ! परमानन्द स्वरूप जो आत्मा है वह क्या तुझको सुखदायक नहीं भासता जो इस मिथ्या संसार सुखकी इच्छा करता है । जब तेरी इच्छा शांत होजावेगी तब तू सार सुख आत्मपद को प्राप्त होगा । ज्यों ज्यों तू संकल्प लीलासे उठताहै त्योंत्यों संसार जाल विस्तार होताजाता है । इस दुःखरूप संसार से तुझको क्या प्रयोजनहै ? हे मूर्खचित्त ! ज्यों ज्यों संकल्प इच्छा करता है त्यों त्यों संसार का दुःख बढ़ता जाता है । जैसे जल सींचने से वृक्षकी शाखाबढ़ती है तैसेही संसार सुखसे अधिक दुःख प्राप्त होता है । ऐसे दुःखरूप भोगों की इच्छा क्यों करता है ? यह संसार चित्तजालसे उपजाहै; जब तू इसका त्यागकरेगा तब दुःख मिटजावेगा । फुरने का नाम दुःखहै इसके मिटेसे दुःखभी कोई न रहेगा । यह महाचञ्चल संसार देखने में सुन्दर है वास्तव में कुछ नहीं । जो तुझ को इससे कुछ सार प्राप्तहो तो इसका आश्रयकर पर यह तो क्षणभंगुरहै और दुःखकी खानिहै; इसकी आस्था त्याग, आत्मतत्त्वका आश्रयकर और शुद्ध निर्मल होकर जगतमें विचर, तब तुझको दुःख स्पर्श न करेगा । जगत् स्थितहो अथवा शान्तहो इसके उदय अस्त की वासना से इसके गुण अवगुण में आसक्त मतहो । जो अविद्यमान असत्यरूप हो उसकी आस्था क्याकरनी ? यह असत्यरूप है और तू सत्यरूपहै; असत्य और सत्य

सम्बन्धक कैसे हो ? मृतक और जीते का कभी सम्बन्ध हुआ है ? जो तू कहे कि, चेतनतत्त्व दृश्यरूप है तो दोनों सत्य स्वरूप हैं और विस्तृतरूप आत्माही हुआ तो हर्ष विषाद किसका करता है ? इससे तू मूढ़मतहो; समुद्रकी नाईं अक्षोभरूप अपने आपमें स्थित हो और संसार की भावना त्याग करके मान मोह मलको त्यागकर। इसकी इच्छाही दुःख का कारणहै; इसको त्याग करके आत्मतत्त्व में स्थितहो तब परिपूर्ण पदको प्राप्त होगा। इसलिये बलकरके और इसका आश्रय करके चंचलता को त्याग॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तानुशासनन्नामैकादशस्सर्गः ११॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार विचारकरके राजाने सब काम किये और आनन्दवृत्तिमें उसका प्रबोधवान् मन मोहको न प्राप्त हुआ। वह इष्टमें हर्षवान् न हो और अनिष्टमें द्वेषवान् न हो केवल सम और स्वच्छ अपने स्वरूप में स्थित हुआ और जगत्में विचरने लगा; न कुछ त्यागकरे, न कुछ ग्रहणकरे और न कुछ अंगीकार करे, केवल वीतशोक होकर सन्तापसे रहित वर्त्तमान में कार्य्यकरे और उसके हृदय में कोई कल्पना स्पर्श न करे—जैसे आकाश को धूलकी मलिनता स्पर्श नहीं करती। मलिनता से रहित अपने स्वरूप के अनुसंधान और सम्यक् ज्ञान के अनन्त प्रकाश में उसका मन निश्चलता को प्राप्त हुआ; मनकी जो संकल्प वृत्तिथी वह नष्ट होगई और महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदय में प्रकाशित हुआ। जैसे आकाश में सूर्य प्रकाशताहै तैसेही अनन्त आत्मा प्रकट हुआ और सम्पूर्ण पदार्थ उसमें प्रतिबिम्बित देखे। जैसे शुद्ध मणिमें प्रतिबिम्ब भासता है तैसेही उसने सर्व पदार्थ अपने स्वरूप में आत्मभूत देखे; इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषयों की प्रीति में हर्ष खेद मिट गया और सर्व्वदा समान हो प्रकृत व्यवहार करके जीवन्मुक्त हो विचरनेलगा। हे रामजी! जनकको ज्ञानकी दृढ़ता हुई उससे लोकोंके परावर को जानकर उसने विदेह नगर का राज्य किया और जीवोंकी पालना में हर्ष विषाद को न प्राप्त हुआ। वह संताप से रहितहो कोई अर्थ उदय हो अथवा अस्त होजा परन्तु हर्ष शोक कदाचित् न करे और कार्यकर्त्ता दृष्टि आवे परन्तु हृदय से कुछ न करे। हे रामजी! तैसेही तुम भी कार्य सब करो परन्तु निरन्तर आत्मस्वरूप में स्थितरहो। तुम जीवन्मुक्त वपुहो राजा जनक की सब पदार्थ भावना अस्त होगई थी, उसकी सुषुप्तिवत् वृत्तिहुई थी, भविष्यत्की इच्छानहीं करताथा और व्यतीतकी चिंतना करताथा जो वर्तमान कार्य्य प्राप्तहो उसको यथाशास्त्र करे और अपने विचार के वश से उसने पाने योग्य पदपाया और इच्छा कुछ न की। हे रामजी! जीव आत्मपद को तभीतक नहीं प्राप्त होता जबतक हृदय में अपना पुरुषार्थरूपी विचार नहीं

उपजा; जब अपने आपसे अपना विचाररूप पुरुषार्थ जागे तब सब दुःख मिटजावे और परमसंपदा को प्राप्तहो। ऐसा पद शास्त्र अर्थ और पुण्यक्रियासे नहीं प्राप्त होता जैसा अपने हृदय में विचार कियेसे होताहै। वह पद निर्मल और स्वच्छ है और हृदय की तपनको निवृत्त करता है। बुद्धिके विचाररूपी प्रकाश से हृदय का अज्ञान नष्ट होजाता है; और किसी उपाय से नहीं नष्ट होता। जो बड़ा आपदारूप दुःख तरने को कठिन है वह अपनी बुद्धिसे तरना सुगम होताहै—जैसे जहाज से समुद्र को लंघजाताहै। जो बुद्धि से रहित मूर्ख है उसको थोड़ी आपदा भी बड़ा दुःख देती है—जैसे थोड़ा पवन भी तृणको बहुत भ्रमाताहै। जो बुद्धिमान् है उसको बड़ी आपदा भी दुःख नहीं देती—जैसे बड़ा वायु भी पर्वत को चला नहीं सक्ता। इसीकारण प्रथम चाहिये कि, संतों का संग और सतशास्त्रों का विचार करे और बुद्धिबढ़ावे। जब बुद्धि सत्यमार्ग की ओर बढ़ेगी तब परमबोध प्राप्त होगा—जैसे जलके सींचने और रखने से फूल फल प्राप्त होता है तैसेही जब बुद्धि सत्यमार्ग की ओर धाती है तब परमानन्द प्राप्त होताहै। जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा पूर्णमासी से बहुत प्रकाशता है; जितने जीव संसार के निमित्त यत्न करते हैं वही यत्न सत्यमार्ग की ओर करें तो दुःखसे मुक्त हों और परमसंपदाके भंडार को पावें। संसाररूपी वृक्षका बीज बुद्धिकी मूढ़ता है; इस से मूढ़तासे रहित होना बड़ालाभ है। स्वर्ग पाताल का राज आदिक जो कुछ पदार्थ प्राप्त होते हैं सो अपने बोधरूपी भंडार से मिलते हैं। संसाररूपी समुद्र के तरने को अपनी बुद्धिरूपी जहाज है और तप तीर्थ आदिक शुभआचार से जहाज चलता है। बोधरूपी पुष्पलता के बढ़ाने को दैवीसंपदा जल है उसके बढ़ने से सुन्दर फल प्राप्त होता है। जो बोधसे रहित बल ऐश्वर्य से बड़ा भी है उसको तुच्छ में अज्ञान नाशकरडालता है—जैसे बल से रहित सिंह को गीदड़ हरिण भी जीतलेते हैं। इससे जो कुछ प्राप्त होता दृष्टि आता है वह अपने प्रयत्न से होता है। अपनी बोधरूपी चिन्तामणि हृदय में स्थित है उस से विवेकरूपी फल मिलता है—जैसे कल्पलता से जो मांगिये वह पाते हैं तैसेही सर्वफल बोध से पाते हैं। जैसे जाननेवाला केवट समुद्र से पारकरता है अजान नहीं उतारसक्ता तैसेही सम्यक्‌बोध संसारसमुद्र से पारकरता है और असम्यक्‌बोध जड़ता में डालता है। जो अल्प भी बुद्धि सत्यमार्ग की ओर होती है तो बड़े संकट दूर करती है—जैसे छोटी बेड़ी भी नदीसे उतार देतीहै हे रामजी! जो पुरुष बोधवान् है उसको संसार के दुःख नहीं वेध सक्ते—जैसे लोह आदिक का कवच पहिने हो तो उसको बाण वेध नहीं सक्ते। बुद्धि से मनुष्य सर्वात्म पदको प्राप्त होता है, जिस पदके पानेसे हर्ष, विषाद, संपदा, आपदा कोई नहीं रहती। अहंकाररूपी मेघ जब आत्मरूपी सूर्य्य के आगे आता है तो माया मलिनता से

आत्मरूपी सूर्य्य नहीं भासता। बोधरूपी वायु से जब यह दूरहो तब आत्मरूपी सूर्य्य ज्यों का त्यों भासता है–जैसे किसान प्रथम हल आदिकसे पृथ्वीको शुद्धकरता, फिर बीज बोता है और जब जल सींचता है और नाश करनेवाले पदार्थों से रक्षा करता है तब फल पाता है; तैसेही जब आर्य्यवादिगुणों से बुद्धि निर्मलहोती है तब शास्त्रका उपदेशरूपी बीज मिलता है और अभ्यास वैराग्य करके करता है उस से परमपदकी प्राप्ति होती है वह अतुलपद है, उसके समान और कोई नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्राज्ञमहिमवर्णनंनामद्वादशस्सर्गः १२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जनककी नाईं अपने आप से आप को विचार करो और पीछे जो विदित वेद पुरुषोंने किया है उसीप्रकार तुमभी निर्वाण होजाओ। जो बुद्धिमान् पुरुष हैं और जिनका यह अन्तका जन्म है वे राजस-सात्त्विकी पुरुष आपही परमपदको प्राप्त होते हैं। जबतक अपने आप से आत्मदेव प्रसन्न न हो तबतक इन्द्रियरूपी शत्रुओं के जीतनेका यत्नकरो और जब आत्मदेव जो सर्ववत् परमात्मा ईश्वरोंकाभी ईश्वर है प्रसन्न होगा तो आपही स्वयं प्रकाश देखेगा और सर्वदोषदृष्टि क्षीण होजायगी। मोहरूपी बीजको जो मुट्ठी भरभर बोता था और नानाप्रकारकी आपदारूपी वर्षा से महामोहकी बेलि जो होती दृष्टि आतीथी वह सब नष्ट होजाती है। जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है तब भ्रांतिदृष्टि नहीं आती। हे रामजी! तुम सदा बोधसे आत्मपदमें स्थितहो, जनकवत् कार्य्योंका आरम्भ करो और ब्रह्मलक्ष्यवान् होकर जगत् में विचरो तब तुमको खेद कुछ न होगा। जब नित्य आत्मविचार होता है तब परमदेव आपही प्रसन्न होता है और उस के साक्षात्कार हुये से तुम चञ्चलरूपी संसारीजनोंको देखकर जनककी नाईं हँसोगे। हे रामजी! संसारके भय से जो जीव भयभीत हुये हैं उनको अपनी रक्षा करने को अपनाही पुरुष प्रयत्न है और दैव अथवा कर्म वा धन, बांधवों से रक्षा नहीं होती। जो पुरुष दैवको निश्चयकरके रहे हैं पर शास्त्रविरुद्धकर्म करते हैं और सङ्कल्प विकल्प में तत्पर होते हैं वे मध्यबुद्धि हैं उनके मार्गको ओर तुम न जाना उनकी बुद्धि नाश करती है, तुम परमविवेक का आश्रयकरो और अपने आपको आपसे देखो। वैराग्यवान् शुद्धबुद्धि से संसारसमुद्रको तरजाता है। यह मैंने तुम से जनकका वृत्तान्तकहाहै–जैसे आकाशसे फल गिरपड़े तैसेही उसको सिद्धों के विचार से ज्ञानकी प्राप्तिहुई। यह विचार ज्ञानरूपी वृक्षकी मञ्जरी है। जैसे अपने विचार से राजा जनकको आत्मबोध हुआ तैसेही तुमको भी प्राप्तहोगा। जैसे सूर्य्यमुखी कमल सूर्य्यको देखकर प्रसन्नहोताहै तैसेही इस विचारसे तुम्हारा हृदय प्रफुल्लितहोआवेगा और मनका मननभाव जैसे बरफका कणका सूर्य्यसे तप्तहो गलजाताहै शान्त होजा-

वेगा। जब अहंत्वरूप आदिक रात्रि विचाररूपी सूर्य्यसे क्षीण होजावेगी तब परमात्मा का प्रकाश साक्षात् होगा; भेदकल्पना नष्ट होजावेगी और अनन्त ब्रह्माण्ड में जो व्यापक आत्मतत्त्व है वह प्रकाशित होगा। जैसे अपने विचार से जनकने अहंकार वासनाका त्याग किया है तैसेही तुमभी विचार करके अहंकार वासना का त्यागकरो। अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होगा और चित्ताकाश निर्मल होगा तब आत्मरूपी सूर्य्य प्रकाशित होगा। जबतक अहंकाररूपी मेघ आवरण है तबतक आत्मरूपी सूर्य्य नहीं भासता। विचाररूपी वायु से जब अहंकाररूपी मेघ नाश हो तब आत्मरूपी सूर्य्य प्रकट भासेगा। हे रामजी! ऐसे समझो कि, न मैं हूं न कोई और है; न नास्ति है; न अस्ति है; जब ऐसी भावना दृढ़होगी तब मन शान्त होजा-वेगा और हेयोपादेय बुद्धि जो इष्ट पदार्थों में होती है उसमें न डूबोगे। इष्ट अनिष्ट के ग्रहण त्याग में जो भावना होती है यही मनका रूप है और यही बंधन का कारण है—इससे भिन्न बन्धन कोई नहीं। इससे तुम इन्द्रियों के इष्ट—अनिष्ट में हेयोपादेय बुद्धि मतकरो और दोनोंके त्यागसे जो शेषरहे उसमें स्थितहो। इष्ट अनिष्ट की भावना उसकी कीजाती है जिसको हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती और जबतक हेयोपादेय बुद्धि क्षीण नहीं होती तबतक समता भाव नहीं उपजता। जैसे मेघके नष्टहुये बिना चन्द्रमाकी चांदनी नहीं भासती तैसेही जबतक पदार्थों में इष्ट अनिष्ट बुद्धि है और मन लोलुप होता है तबतक समता उदय नहीं होती। जबतक युक्त अयुक्त लाभ अलाभ इच्छा नहीं मिटती तबतक शुद्ध समता और निरसता नहीं उपजती। एक ब्रह्मतत्त्व जो निरामयरूप और नानात्व से रहित है उसमें युक्त क्या और अयुक्त क्या? जबतक इच्छा—अनिच्छा और वांछित—अवांछित यह दोनों बातें स्थित हैं अर्थात् फुरते और क्षोभ करते हैं तबतक सौम्यता भाव नहीं होता। जो हेयोपादेय बुद्धि से रहित ज्ञानवान् है उस पुरुषको यह शक्ति आ प्राप्त होती है—जैसे राजा के अन्तःपुरमें पटरानी स्थित होती है। वह शक्ति यह है; भोगोंमें निरसता; देहाभि-मानसे रहित निर्भयता, नित्यता, समता, पूर्णआत्मदृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, निरिच्छता, निरहंकारता, आपको सदा अकर्ता जानना, इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनन्द स्वरूप रहना, धैर्यसे सदा एकरस रहना, स्वरूप में निवृत्ति न फुरना, सब जीवों से मैत्रीभाव; सत्यबुद्धि, निश्चयात्मकरूपसे तुष्टता, मुदिता और मृदुभाषणा; इतनी शक्ति हेयोपादेयसे रहित पुरुषको आ प्राप्तहोती हैं। हे रामजी! संसारके पदार्थोंकी ओर जो चित्त धावता है उसको वैराग्यसे उलटाके खैंचना—जैसे पुलसे जलके वेगका निवारण होताहै तैसेही जगत् से निवारकर मन की आत्मपदमें लगाने से आत्मभाव प्रकाशताहै। इससे हृदयसे सब वासनाका त्याग

करो और बाहरसे सबक्रियामेंरहो। वेगचलो, श्वासलो और सर्वदा, सर्वप्रकार चेष्टा करो, पर सर्वदा सर्वप्रकारकी वासना त्यागकरो। संसाररूपी समुद्र में वासनारूपी जल है और चिन्तारूपी सिवार हैं; उस जल में तृष्णावान्‌रूपी मच्छ फँसे हैं। यह विचार जो तुमसे कहाहै उस विचाररूपी शिलासे बुद्धिको तीक्ष्णकरो और इस जाल को छेदो तब संसारसे मुक्तहोगे। संसाररूपी वृक्षका मूल बीज मन है। ये वचन जो कहेहैं—उनको हृदयमें धरकर धैर्यवान्‌हो तब आधि व्याधि दुःखोंसे मुक्तहोगे। मन से मनकोछेदो; जो बीतीहै उसको स्मरण करो और भविष्यत्‌की चिन्ता न करो क्यों-कि; वह असत्यरूपहै और वर्त्तमान को भी असत्य जानके उसमें विचरो। जब मनसे संसारका विस्मरणहोताहै तब मनमें फिर न फुरेगा। मनमें असत्यभाव जानके चलो, बैठो, श्वासलो, निःश्वासकरो, उछलो, सोवो, सबचेष्टाकरो परन्तु भीतर सब असत्यरूप जानो तब खेद न होगा। अहंममरूपी जो मलको त्याग करो प्राप्तिमें विचरो अथवा राज आ प्राप्तहो उसमें विचरो परन्तु भीतरसे इसमें आस्था न हो। जैसे आकाशका सब पदार्थों में अन्वय है परन्तु किसी से स्पर्श नहीं करता तैसेही बाहर कार्य्य करो परन्तु मन से किसीमें बन्धायमान न हो तुम चेतनरूप अजन्मा महेश्वर पुरुष हो; तुमसे भिन्न कुछ नहीं और सबमें व्यापरहेहो। जिसपुरुषको सदा यही निश्चयरहता है उसको संसारके पदार्थ चलायमान नहीं करसक्के और जिनको संसारमें आसक्त भावनाहै और स्वरूप भूलेहैं उनको संसारके पदार्थोंसे विकार उपजताहै और हर्ष, शोक और भय खींचतेहैं; उससे वे बांधेहुये हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष राग द्वेष से रहित हैं उनको लोहा, बट्टा, पाषाण और सुवर्ण सब एक समानहै। संसार वासनाके त्याग-नेकाही नाम मुक्तिहै। हे रामजी! जिस पुरुषको स्वरूप में स्थितिहुई है और सुख दुःखमें समताहै वह जो कुछ करता, भोगता, देता, लेता इत्यादिक क्रियाकरताहै सो करता हुआ भी कुछ नहीं करता। वह यथाप्राप्तकार्य्य में बर्तताहै और उसे अन्तः-करण में इष्ट अनिष्टकी भावना नहीं फुरती और कार्य्यमें राग द्वेषवान् होकर नहीं डूबता। जिसको सदा यह निश्चय रहता है कि, सर्व्व चिदाकाशरूप है और जो भोगोंके मननसे रहितहै वह समता भाव को प्राप्त होताहै। हे रामजी! मन जड़रूपहै और आत्मा चेतनरूपहै; उसी चेतनकी सत्तासे जीव पदार्थोंको ग्रहणकरताहै इसमें अपनी सत्यता कुछ नहीं। जैसे सिंहकेमारेहुये पशुको बिल्ली भी खानेजाती है, उसको अपनाबल कुछनहीं; तैसेही चेतनकेबलसे मन दृश्यका आश्रयकरताहै, आप असत्य रूपहै चेतनकी सत्तापाकर जीताहै; संसारके चिन्तनको समर्थ होताहै और प्रमाद से चिन्तासे तपायमानहोताहै। यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि; मनजड़है और चेतनरूपी दीपकसे प्रकाशितहै। चेतनसत्तासे रहित सब समानहै और आत्मसत्तासेरहित उठभी

नहीं सक्ता । आत्मसत्ताको भुलाकर जो कुछ करता है उस फुरने को बुद्धिमान् कलना कहते हैं । जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है तब आत्मभाव को प्राप्त होता है और प्रमाद से रहित आत्मरूप होता है । चित्तकला जब चैत्यदृश्य से स्फुर होतीहै उसका नाम सनातन ब्रह्म होता है और जब चैत्य के साथ मिलती है तब उसका नाम कलना होता है; स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं केवल ब्रह्म तत्त्व स्थित है और उस में भ्रांतिसे मन आदि भासते हैं । जब चेतन सत्ता दृश्यके सन्मुख होतीहै तब वही कलनारूप होती है और अपने स्वरूपके विस्मरण किये से और सङ्कल्पकी ओर धावने से कलना कहाती है । वह आपको परिच्छिन्न जानतीहै उससे परिच्छिन्नहो-जाती है और हेयोपादेय धर्मिणी होती है । हे रामजी ! चित्तसत्ता अपनेही फुरने से जड़-ता को प्राप्त हुई है और जबतक विचारकरके न जगावे तबतक स्वरूप में नहीं जागती इसी कारण सत्पत्व शास्त्रों के विचार और वैरागसे इन्द्रियोंका निग्रह करके अपनी कलना को आप जगाओ । सब जीवों की कलना विज्ञान और सम करके जगाने से ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त होती है और इससे भिन्न मार्ग्ग से भ्रमता रहताहै । मोहरूपी मदिरा से जो पुरुष उन्मत्त होताहै वह विषय रूपी गढ़े में गिरता है । सोई हुई कलना आत्मबोध से नहीं जगाते अप्रबोधही रहते हैं सो चित्तकलना जड़रहती है; जो भास-ती है तौभी असत्य रूपहै । ऐसा पदार्थ जगत् में कोईनहीं जो सङ्कल्प से कल्पितनहो; इससे तुम अजड़धर्मा होजाओ । कलनाजड़ उपलब्ध रूपिणी है और परमार्थ सत्तासे विकाशमान होती है—जैसे सूर्य्य से कमल विकाशमान होताहै । जैसे पाषाण की मूर्त्तिसे कहिये कि, तू नृत्यकर तो वह नहीं करती क्योंकि जड़रूपहै; तैसेही देह में जो कलना है वह चेतन कार्य्य नहीं करसक्ती । जैसे मूर्ति का लिखाहुआ राजा गुर गुर शब्द करके युद्ध नहीं करसक्ता और मूर्त्ति का चन्द्रमा औषध पुष्ट नहीं करसक्ता तैसेही कलना जड़रूप कार्य नहीं करसक्ती । जैसे निरवयव अंगना से आलिंगन नहीं होता; संकल्प के रचे आकाश के वनकी छाया के नीचे कोई नहीं बैठता और मृगतृष्णा के जलसे कोई तृप्त नहीं होता तैसेही जड़रूप मन क्रिया नहीं करसक्ता । जैसे सूर्य की धूप से मृगतृष्णाकी नदी भासती है तैसेही चित्तकलनाके फुरने से जगत् भासता है । शरीर में जो स्पन्दशक्ति भासतीहै वही प्राण शक्ति है और प्राणोंसेही बोलता, चलता, बैठताहै । ज्ञानरूपसंवित् जो आत्मतत्त्व है उससे कुछ भिन्न नहीं; जब सङ्कल्प कला फुरतीहै तब अहंत्वं इत्यादिक कलनासे वहीरूप होजाताहै और जब आत्मा और प्राणका फुरना इकट्ठा होताहै अर्थात् प्राणों से चेतन संवित् मिलताहै तब उसका नाम जीव होताहै । और बुद्धि, चित्त, मन सब उसीके नाम हैं । सब संज्ञा अज्ञानसे कल्पित होती हैं । अज्ञानीको जैसे भासित है, तैसेही उसको है; परमार्थसे कुछ हुआ नहीं; न मन

है न बुद्धिहै न शरीरहै केवल आत्मामात्र अपने आपमें स्थितहै—द्वैतनहीं। सब जगत् आत्मरूपहै और काल क्रियाभी सब आत्मरूपहै; आकाशसेभी निर्मल, अस्ति, नास्ति, सर्ववही रूपहै और द्वितीय फुरने से रहितहै इस कारणहै और नहीं ऐसास्थितहै और सर्वरूप से सत्यहै। आत्मा सब पदों से रहित है इस कारण असत्यकी नाईं है और अनुभवरूपहै इससे सत्यहै और सर्व कलना से रहित केवल अनुभवरूपहै। ऐसे अनुभवका जहां ज्ञान होताहै वहां मन क्षीण होजाताहै—जैसे जहां सूर्यका प्रकाश होता है वहां अन्धकार क्षीण होजाताहै जब आत्मसत्तामें संवित् करके इच्छा फुरती है तो वह संकल्पके सन्मुख हुई थोड़ी भी बड़े विस्तारको पाती है; तब चित्तकलाको आत्मस्वरूप विस्मरण होजाता है; जन्मोंकी चेष्टा से जगत् स्मरण होआताहै और परम पुरुषको संकल्प से तन्मय होनेकरके चित्तनाम कहाता है। जब चित्तकला संकल्पसे रहित होती है तब मोक्ष रूप होताहै। चित्तकला फुरनेका नामचित्त और मन कहते हैं और दूसरी वस्तु कोईनहीं। एकतामात्रही चित्तका रूप है और सम्पूर्ण संसारका बीज मनहै। संकल्प के सन्मुख होकरके चेतन संवित्का नाम मन होता है और निर्विकल्प जो चित्तसत्ता है वह जब संकल्प करके मलीन होती है तब उसको कलना कहते हैं। वही मन जब घटादिक की नाईं परिच्छिन्न भेदको प्राप्त होता है तब क्रिया शक्ति से अर्थात् प्राण और ज्ञानशक्ति से मिलता है; उस संयोग का नाम सङ्कल्प विकल्प का कर्त्ता मन होता है। वही जगत् का बीज है और उसके लीन करने के दो उपाय हैं—एक तत्त्वज्ञान दूसरा प्राणों का रोकना। जब प्राण शक्ति का निरोध होता है तब मन भी लीन होजाता है और जब सत्य शास्त्रों के द्वारा ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान होता है तौ भी लीन होजाता है। प्राण किसका नाम है और मन किसको कहते हैं? हृदयकोश से निकल कर जो बाहर जाता है और फिर बाहर से भीतर आता है वह प्राणहै, शरीर बैठाहै और वासना से जो देश देशान्तर भ्रमता है उसका नाम मन होता है; उसको वैराग और योगाभ्यास से वासना से रहित करना और प्राणवायु को स्थित करना ये दोनों उपाय हैं। हे रामजी! जब तत्त्वज्ञान होताहै तब मन स्थिर होजाताहै क्योंकि, प्राण और चित्तकला का आपस में वियोग होताहै और जब प्राण स्थित होताहै तब भी मन स्थिर होजाताहै क्योंकि; प्राण स्थितहुये चेतन कलासे नहीं मिलते तब मन भी स्थित होजाता है और नहीं रहता। मन चेतनकला और प्राण फुरने विना नहीं रहता। मनको भी अपनी सत्ता शक्ति कुछ नहीं, स्पन्दरूपजो शक्ति है वह प्राणों की है सो चलरूप जड़ात्मक है और आत्मसत्ता चेतनरूपहै और वह अपने आपमें स्थितहै। चेतन शक्ति और स्पन्द शक्तिके सम्बन्ध होने से मन उपजा है सो उस मनका उपजनाभी मिथ्या है। इसी का नाम मिथ्याज्ञान है। हे रामजी!

मैंने तुमसे अविद्या जो परम अज्ञानरूप संसाररूपी विषके देनेवाली है कही है । चित्तशक्ति और स्पन्द शक्तिका सम्बन्ध सङ्कल्प से कल्पित है; जो तुम सङ्कल्प न उठावो । तो मनसंज्ञा क्षीण होजावेगी । इससे संसार भ्रम से भयमान मत हो । जब स्पन्दरूप प्राणको चित्तसत्ता चेतती है तब चेतने से मन चित्तरूप को प्राप्त होता है और अपने फुरने से दुःख प्राप्त होता है जैसे बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्प कर भयमान होता है । अखण्डमण्डलाकार जो चेतनसत्ता सर्वगत है उसका सम्बन्ध किसके साथहो और अखण्डशक्ति उन्निद्ररूप आत्मा को कोई इकट्ठा नहीं करसक्ता इसी कारण सम्बन्ध का अभाव है । जो सम्बन्धही नहीं तो मिलना किससे हो और मिलाप न हुआ तो मनकी सिद्धता क्या कहिये ? चित्त और स्पन्दकी एकता मन कहाती है, मन और कोई वस्तु नहीं । जैसे रथ, घोड़ा, हस्ति, प्यादा इनकेसिवा सेना कारूप और कुछ नहीं, तैसेही चित्त स्पन्दके सिवा मनका रूप और कुछ नहीं—इस कारण दुष्टरूप मनके समान तीनोंलोकों में कोई नहीं । जब सम्यक्ज्ञान हो तब मृत-करूप मन नष्ट होजाता है मिथ्या अनर्थका कारण चित्त है इसको मतधरो अर्थात् सङ्कल्पका त्याग करो । हे रामजी ! मनका उपजना मिथ्याहै; परमार्थ से नहीं । सङ्कल्प का नाम मन है इसकारण कुछ है नहीं । जैसे मृगतृष्णाकी नदी मिथ्या भासती है तैसेही मन मिथ्या है हृदयरूपी मरुथल है, चेतनरूप सूर्य्य है और मनरूपी मृग-तृष्णा का जल भासता है जब सम्यक्ज्ञान होता है तब इसका अभाव होजाता है । मन जड़ता से निःस्वरूप है और सर्वदा मृतकरूप है उसी मृतक ने सब लोगोंको मृतक किया है । यह बड़ा आश्चर्य्य है कि, अङ्गभी कुछ नहीं देह भी नहीं और न आधार है, न आधेय है पर जगत् को भक्षण करता है और बिना जालके लोगों को फँसाये है । सामग्री से बल, तेज, विभूति, हस्त पदाति रहित लोगोंको मारता है; मानों कमलके मारने से मस्तक फटजाता है । जो जड़मूक अधम हैं वे पुरुष ऐसे मानते हैं कि, हम बांधे हैं; मानों पूर्णमासी के चन्द्रमा की किरणोंसे जलते हैं । जो शूरमा होते हैं वे उसको हनन करते हैं । जो अविद्यमान मन है । उसी ने मिथ्याही जगत् को मारा है और मिथ्या सङ्कल्पसे उदय और स्थित हुआ है । ऐसा दुष्ट है जो कि किसी ने उसको देखानहीं । मैंने तुम से उसकी शक्तिकही है सो तो बड़ाआश्चर्यरूप विस्तृतरूप है चञ्चल अस्तरूप चित्तसे मैं विस्मित हुआ हूं । जो मूर्ख है वह सर्व आपदाका पात्र है कि, मन है नहीं पर उससे वह इतना दुःख पाता है । बड़ाकष्टहै कि, सृष्टि मूर्खता से चलीजाती है और सब मनसे तपते हैं यह मैं मानता हूं कि, सर्व जगत् मूढ़रूप है और तृष्णारूपी शस्त्र से कण कण होगया है; पेलवरूपहै जो कमल से विदारण हुआहै, चन्द्रमाकी किरणों से दग्ध होगये हैं; दृष्टि

रूपी शस्त्रसे बेधे हैं और सङ्कल्परूपी मनसे मृतक होगये हैं। वास्तव में कुछ नहीं मिथ्या कल्पना ने नीचकृपण करके लोगों को हनन किया है; इससे वे मूर्ख हैं। मूर्ख हमारे उपदेश योग्य नहीं, उपदेशका अधिकारी जिज्ञासी है। जिसको स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ पर संसार से उपराम्त हुआ है, मोक्षकी इच्छा रखता है और पदपदार्थ का ज्ञाता है वही उपदेश करने योग्य है। पूर्ण ज्ञानवान् को उपदेश नहीं बनता और अज्ञानी मूर्ख को भी नहीं बनता। मूर्ख वीणाकी धुनि सुनकर भयमान होताहै और बान्धव निद्रामें सोयापड़ाहै; उनको मृतक जानके भयमान होता है और स्वप्न में हाथी को देखकर भयसे भागता है। इस मन ने अज्ञानियों को वश किया है और भोगोंका लव जो तुच्छ सुख है उसके निमित्त जीव अनेक यत्न करते हैं और दुःख पाते हैं। हृदयमें स्थित जो अपना स्वरूपहै उसको वे नहीं देखसक्ते और प्रमाद से अनेक कष्टपाते हैं। अज्ञानी जीव मिथ्याही मोहित होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमननिर्वाणवर्णनन्नामत्रयोदशस्सर्गः १३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपी समुद्रमें राग द्वेषरूपी बड़ेकलोल उठते हैं और उसमें वे पुरुष बहते हैं जो मनको मूढ़ जड़रूप नहीं जानते। उनको जो आत्मफल है सो नहीं प्राप्त होता। यह विचार और विवेककी वाणी मैंने तुम से कही है सो तुम सारिखों के योग्य है। जिन मूढ़ जड़ोंको मनके जीतने की सामर्थ्य नहीं है उन को यह नहीं शोभती और वे इन वचनों को नहीं ग्रहण करसक्ते; उनको कहने से क्या प्रयोजन है? जैसे जन्मके अन्धेको सुन्दर मंजरी का वन दिखाइये तो वह निष्फल होता है क्योंकि वह देख नहीं सक्ता तैसेही विवेक वाणी का उपदेश करना उनको निष्फल होता है। जो मनको जीत नहीं सक्ते और इन्द्रियों से लोलुप हैं उनको आत्म-बोध का उपदेश करना कुछ कार्य नहीं करता। जैसे कुष्ठसे जिसका शरीर गलगया है उसको नानाप्रकार की सुगन्धका उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसेही मूढ़को आत्म-उपदेशक बोध सुखदायक नहीं होता। जिसकी इन्द्रियां व्याकुल और विपर्यय हैं और जो मदिरा से उन्मत्त है उसको धर्म के निर्णयमें साची करना कोई प्रमाण नहीं करता। ऐसाकुबुद्धि कौनहै जो श्मशानमें शवकी मूर्त्तिपाकर उससे चर्चा विचार और प्रश्नोत्तर करे? अपने हृदयरूपी बांवी में मूकजड़ सर्पवत् मनस्थित है जो उसको निकालडाले वह पुरुष है और जो उसको जीतनहीं सक्ता उस दुर्बुद्धि को उपदेश करना व्यर्थ है। हे रामजी! मन महातुच्छहै। जो वस्तु कुछ नहीं उसके जीतने में कठिनतानहीं। जैसे स्वप्ननगर निकट होता है और चिरपर्यंतभी स्थितहै पर जागकर देखिये तो कुछ नहीं, तैसेही मनको जो विचारकर देखिये तो कुछ नहीं जिसपुरुष ने अपने मनको नहीं जीता वह दुर्बुद्धि है और अमृतको त्यागकर विषपान करता है और मरजाता है। जो

ज्ञानी है वह सदा आत्माही देखताहै । इन्द्रियां अपने अपने धर्म में विचरती हैं प्राण की स्पन्द शक्तिहै और परमात्मा की ज्ञानशक्तिहै, इन्द्रियोंको अपनी शक्तिहै फिर जीव किससे बन्धायमान होता है ? वास्तव में सर्वशक्ति सर्वात्मा है उससे कुछ भिन्न नहीं । यह मन क्या है ? जिसने सबजगत् नीचकिया है ? हे रामजी ! मूढ़ोंको देखकर मैं दया करता और तपताहूं कि ये क्यों खेद पाते हैं ? और वह दुःखदायक कौन है जिससे वे तपतेहैं ? जैसे उष्ट्र कंटकके वृक्षोंकी परम्परा को प्राप्त होता है तैसेही मूढ़ प्रमाद से दुःखोंकी परम्परा पाताहै । और वह दुर्बुद्धि देहपाकर मरजाता है । जैसे समुद्र में बुद्बुदे उपजकर मिटजाते हैं तैसेही संसार समुद्र में उपजकर वह नष्ट हो जाता है; उसका शोक करना क्याहै, वह तो तुच्छ और पशुसे भी नीच है ? तुम देखो कि, दशो दिशाओं में पशु आदिक होते हैं और मरते हैं उनका शोक कौनकरता है ? मच्छरादिक जीवनष्टहोजाते हैं और जलचर जल में जीवोंको भक्षणकरते हैं उनका विलाप कौन करताहै ? आकाश में पक्षी मृतकहोते हैं उनका कौन शोककरता है ? इसीप्रकार अनेक जीव नाशहोते हैं उनकाविलाप कुछ नहीं होता; तैसेही अब जो हैं उनका विलाप न करना क्योंकि, कोई स्थिर न रहेगा सब नाशरूप और तुच्छहैं । सबका प्रतियोगी काल है और अनेक जीवोंको भोजन करता है । जूंआदिकों को मक्षिका और मच्छर आदिक खाते हैं और मक्षिका मच्छरादिकों को दर्दुरखाते हैं । मेढ़कों को सर्प; सर्पों को नेवला; नेवलेको बिल्ली; बिल्लीको कुत्ते; कुत्तोंको भेड़िया; भेड़ियों को सिंह; सिंहोंको सरभ और सरभको मेघकी गर्जना नष्टकरती है । मेघकोवायु; वायु को पर्वत; पर्वत को इन्द्रका वज्र और इन्द्रके वज्रको विष्णुजी का सुदर्शनचक्र जीतलेताहै और विष्णुभी अवतारों को धरके सुखदुःख जरामरण संयुक्तहोते हैं । इसीप्रकार निरन्तर भूत जाति को काल जीर्णकरताहै; परस्पर जीव जीवोंकोखाते हैं और निरन्तर नानाप्रकार के भूत जात दशोदिशाओं में उपजते हैं । जैसे जलमें मच्छ, कच्छ; पृथ्वी में कीट आदि; अन्तरिक्षमें पक्षी; वनवीथीमें सिंहादिक; मृगस्थावरमें पिपीलिका, दर्दुर, कीटादि; विष्ठामें कृमि और और नानाप्रकारके जीवगण इसीप्रकार निरन्तर उपजते और मिटजाते हैं । कोई हर्षवान् होताहै, कोई शोकवानहोताहै, कोई रुदन करता है और कोई सुख और दुःखमानते हैं । पापी पापों के दुःख से निरन्तर मरते हैं और सृष्टि में उपजते और नाश होते हैं । जैसे वृक्षसेपत्ते उपजते हैं तैसेही कितने भूत उपजकर नाश होजाते हैं उनकी कुछ गिनती नहीं । जो बोधवान् पुरुष हैं वे अपने आपसे आपपर दयाकरके आपको संसारसमुद्र से पारकरते हैं । हे रामजी ! और जितनेजीव हैं वे पशुवत् हैं; मूढ़ों और पशुओं में कुछ भेद नहीं और उनको हमारी कथा का उपदेश नहीं । वे पशुधर्मी इस वाणी के योग्य नहीं; देखनेमात्र मनुष्य हैं परन्तु मनुष्य का अर्थ उनसे कुछ

सिद्ध नहीं होता। जैसे उजाड़ वनमें ठूंठवृक्ष छाया और फलसे रहित किसी को वि-श्रामदायक नहीं होते तैसेही मूढ़जीवों से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जैसे गले में रस्सी डालकर पशुको जहां खैंचतेहैं वहां चलेजाते हैं तैसेही जहांचित्त खैंचताहै वे वहीं चलेजाते हैं। मूढ़चित्त जीव पशु विषयरूपी कीचमें फँसे हैं और उससे बड़ी आपदा को प्राप्तहोते हैं। उनमूढ़ोंको आपदा में देखके पाषाण भी रुदन करते हैं। जिन मूर्खोंने अपने चित्तको नहीं जीता उनको दुःखों के समूह प्राप्तहोते हैं और जिन्होंने चित्तको बन्धनसे निकालाहै वे संपदावान् हैं; उनके सब दुःख मिटजाते हैं और वे संसार में फि नहीं उपजते। इससे अपने चित्तके जीतेविना दुःखनष्ट नहीं होते। जो चित्तजीतने से परमसुख न प्राप्तहोता तो बुद्धिमान् इसमें न प्रवर्त्तते पर बुद्धिमान् इसके जीतने में प्रवर्त्तते हैं इससे जानिये कि, चित्तभी वशहोता है और मनरूपी भ्रमके नष्टहुए आत्मसुख प्राप्त होता है। हे रामजी! मनभी कुछ है नहीं मिथ्याभ्रमसे कल्पित है जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वेताल बुद्धि होती है और उससे वह भयवान् होता है तैसेही भ्रमरूप मन से नाशमानते हैं। जबतक आत्मसत्ताका विस्मरण है तबतक मूढ़ता है और हृदय में मनरूप सर्प विराजता है; जब अपना विवेकरूपी गरुड़ उदय हो तब वे नष्ट होजाते हैं। अब तुम जागेहो और ज्योंका त्यों जानते हो। हे शत्रुनाशक रामजी! अपनेही संकल्पसे चित्त बढ़ताहै, इसलिये उस सङ्कल्प का शीघ्रही त्यागकरो तब चित्त शान्तहोगा। जो तुम दृश्यका आश्रयकरोगे तो बन्ध-न होगा और अहंकार आदिक दृश्यकात्यागकरोगे तो अचित्त मोक्षवान् होगे। यह गुणों का सम्बन्ध मैंने तुमसे कहाहै कि, दृश्यका आश्रय करना बन्धन है और इससे रहित होना मोक्ष है। आगे जैसे इच्छाहो वैसेकरो। इसप्रकार ध्यानकरो कि, न मैं हूं और न यह जगत् है। मैं केवल अचलरूप हूं। ऐसे निःसंकल्पहुये से आनन्द चिदा-काश हृदय में आ प्रकाशेगा। आत्मा और जगत् में जो विभाग कलना आ उदय हुई है वही मलहै। इस द्वैतभावके त्यागकिये से जो शेषरहेगा उसमें स्थित हो। आ-त्मा और जगत् में अन्तरक्या है? द्रष्टा और दृश्य के अन्तर जो दर्शन और अनु-भव सत्ताहै सर्वदा उसीकी भावनाकरो और स्वाद और अस्वाद लेनेवाले को त्याग कर उनके मध्य जो स्वादरूपहै उसमें स्थितहो। वही आत्मतत्त्वहै उसमें तन्मय होजा-ओ अनुभव जो द्रष्टा और दृश्य है उसके मध्यमें जो निरालम्ब साक्षीरूप आत्मा है उसी में स्थितहोजाओ। हेरामजी! संसार भावअभावरूप है उसकी भावना को त्याग करो और भावरूप आत्मकी भावनाकरो वही अपना स्वरूप है। प्रपञ्चदृश्य को त्याग किये से जोवस्तु अपनास्वरूपहै वहीरहेगा–जोपरमानन्द स्वरूप है। चित्तभावको प्राप्त होना अनन्तदुःखहै और चित्तरूपी सङ्कल्पही बन्धनहै; उसबन्धन को अपने स्वरूप

के ज्ञान युक्त बलसे काटो तब मुक्ति होगी। जब आत्माको त्यागकर जगत् में गिरताहै तब नानाप्रकारके संकल्प विकल्परूप दुःखों में प्राप्त होताहै। जब तुम आत्माको व्यतिरेक शब्द करोगे तब मन दुःखके समूह संयुक्त प्रकटहोगा और व्यतिरेक भावना त्यागने से सब मनके दुःख नष्ट होजावेंगे। यह सर्व्व आत्मा है—आत्मासे कुछ भिन्न नहीं; जब यह ज्ञान उदयहो तब चैत्य, चित्त और चेतना—तीनों का अभाव होजावेगा। मैं आत्मा नहीं—जीवहूं इसी कल्पनाका नाम चित्तहै। इससे अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। जब यह निश्चय हुआ कि, मैं आत्माहूं—जीव नहीं; वह सत्यहै कुछ भिन्न नहीं इसीका नाम चित्त उपशम है। जब यह निश्चय हुआ कि; सब आत्मतत्त्व है आत्मासे कुछ भिन्न नहीं तब चित्त शान्त होजाताहै—इसमें कुछ संशय नहीं। इस प्रकार आत्मबोध करके मन नष्ट होजाताहै। जैसे सूर्य्यके उदय हुये तम नष्ट होजाता है। मन सब शरीरों के भीतर स्थित है, जबतक रहता है तबतक जीवको बड़ा भय होताहै। यह जो परमार्त्थयोग मैंने तुमसे कहाहै इससे मनको काटडालो। जब मन का त्यागकरोगे तब भय भी न रहेगा। यह चित्त भ्रममात्र उदय हुआहै। चित्तरूपी वेताल का सम्यक् ज्ञानरूपी मंत्रसे अभाव होजाता है। हे बलवानों में श्रेष्ठ निष्पाप रामजी ! जब तुम्हारे हृदयरूपी गृहमें से चित्तरूपी वेताल निकल जावेगा तब तुम दुःखों से रहित और स्थित होगे और फिर तुम्हें भय उद्वेग कुछ न व्यापेगा। अब तुम मेरे वचनों से वैरागी हुयेहो और तुमने मनको जीताहै। इस विचार विवेकसे चित्त नष्ट और शान्त होजाता है और निर्दुःख आत्मपदको प्राप्त होताहै। सब इषणा को त्याग करके शांतरूप स्थितहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तचैत्यरूपवर्णनन्नामचतुर्दशस्सर्ग्गः १४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार तुम देखो कि, चित्त आप विचित्ररूपहै और संसाररूपी बीजकी कणिकाहै। जीवरूपी पक्षीके बन्धनका जाल संसारहै। जब चित्त संवित् आत्मसत्ताको त्यागताहै तब दृश्यभावको प्राप्त होताहै और जब चित्त उपजता है तब कलनारूप मल धारण करताहै वहचित्तबढ़कर मोह उपजताहै, मोहसे संसारका कारण होताहै और तृष्णारूपी विषकी वेलि प्रफुल्लित होती है उससे मूर्च्छित होजाताहै और आत्मपदकी ओर सावधान नहींहोता। ज्योंज्यों तृष्णा उदयहोती है त्योंत्यों मोहको बढ़ाती है। तृष्णारूपी श्यामरात्रि अनन्त अन्धकारको देती है; परमार्थ सत्ताको ढांप लेती है और प्रलयकालकी अग्निवत् जलाती है उसको कोई संहार नहीं सक्ता वह सब को व्याकुल करती है। तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड्गकीधारा दृष्टिमात्र कोमल, शीतल और सुन्दरहै पर स्पर्श किये से नाशकरडालतीहै और अनेक संकट देतीहै। जो बड़े असाध्य दुःखहैं व जिनकी प्राप्ति बड़े पापों से होती है वे तृष्णारूपी फूलका फलहैं। तृष्णारूपी

कुतिया चित्तरूपी गृहमें सदा रहती है; क्षणमें बड़े हुलासको प्राप्त होती है और क्षण में शून्यरूप होजाती है और बड़े ऐश्वर्य संयुक्तहै । जब मनुष्यको तृष्णा उपजती है तब वह दीन होजाताहै । जो देखने में निर्द्धन कृपण भासताहै पर हृदयमें तृष्णासे रहितहै वह बड़ा ऐश्वर्यवान्है । जिसके हृदय छिद्रमें तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं पैठी उसके प्राण और शरीर स्थित हैं और उसका हृदय शान्तरूप होताहै । निश्चयजानो कि, जहां तृष्णारूपी काली रात्रिका अभाव होताहै वहां पुण्य बढ़ते हैं-जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा बढ़ताहै । हे रामजी ! जिस मनुष्यरूपी वृक्षका तृष्णारूपी घुनने भोजन किया है उसकी पुण्यरूपी हरियाली नहीं रहती और वह प्रफुल्लित नहीं होता । तृष्णारूपी नदी में अनन्त कल्लोल आवर्त उठते हैं और तृणवत् बहती है; जीवरूपी खेलने की पुतली है और तृष्णारूपी यंत्रीको भ्रमावती है और सब शरीरों के भीतर तृष्णारूपी तागाहै उससे वे पिरोये हैं और तृष्णा से मोहित हुये कष्ट पाते हैं पर नहीं समझते-जैसे हरेतृणसे ढँपेहुये गढ़ेको देखकर हरिणका बालक चरनेजाता है और गढ़े में गिर पड़ता है । हे रामजी ! ऐसा और कोई मनुष्य के कलेजे को नहीं काटसक्ता जैसे तृष्णारूपी डाकिनी इसका उत्साह और बलरूपी कलेजा निकाल लेती है और उससे वह दीन होजाताहै । तृष्णारूप अमंगल इन जीवों के हृदयमें स्थित होकर नीचताको प्राप्त करता है तृष्णा करके विष्णु भगवान् इन्द्रके हेतुसे अल्पमूर्त्ति धारकर बलिके द्वार गये और जैसे सूर्य्य नीतिको धरकर आकाशमें भ्रमताहै तैसेही तृष्णारूपी ताग से बांधे जीव भ्रमते हैं । तृष्णारूपी सर्प्पिणी महाविषसे पूर्ण होती है और सब जीवोंको दुःखदायक है; इससे इसको दूरसे त्याग करो । पवन तृष्णासे चलताहै; पर्व्वत तृष्णा से स्थित हैं; पृथ्वी तृष्णा से जगत् को धरती है और तृष्णासेही त्रिलोकी वेष्टित है निदान सब लोक तृष्णा से बांधेहुये हैं (रस्सी से बांधाहुआ छूटता है परन्तु तृष्णा से बँधा नहीं छूटता तृष्णावान् कदाचित् मुक्त नहीं होता; तृष्णासे रहित मुक्तहोताहै।) इस कारण; हे राघव ! तुम तृष्णाका त्यागकरो सब जगत् मनके संकल्पमें है उस सङ्कल्प से रहितहो । मनभी कुछ और वस्तु नहीं है युक्तिसे निर्णय करके देखो कि, सङ्कल्प प्रमाद का नाम मनहै । जब इसका नाश हो तब सब तृष्णा नाश होजावे । अहं, त्वं, इदं इत्यादिक चिन्तन मतकरो; यह महामोहमय दृष्टि है; इसको त्याग करके एक अद्वैत आत्माकी भावना करो ।) अनात्मा में जो आत्मभाव है वह दुःखों का कारणहै । इसके त्यागे से ज्ञानवानों में प्रसिद्धहोगे । अहंभावरूपी अपवित्र भावना है उसको अपने स्वरूप शलाका की भावनारूप से काट डालो । यह भावना पञ्चम भूमिकाहै; वहां संसारका अभावहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णावर्णनन्नामपञ्चदशस्सर्गः १५ ॥

रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर ! ये आपके वचन गम्भीर और तोलसे रहित हैं। आप कहते हैं कि, अहंकार और तृष्णा मतकरो। जो अहंकार त्यागें तो चेष्टा कैसेहोगी ? तब तो देहकाभी त्याग होजावेगा। जैसे वृक्ष थम्भके आश्रय होते हैं। थम्भके नाशहुये वृक्षनहीं रहते तैसेही देहको अहंकार धारण कररहाहै; उससे रहित देह गिरजावेगी, इससे मैं अहंकार को त्याग करके कैसे जीतारहूंगा ? यह अर्थ मुझको निश्चय करके कहिये क्योंकि, आप कहनेवालों में श्रेष्ठहैं। वशिष्ठजी बोले, हे कमलनयन रामजी ! सर्व ज्ञानवानों ने वासना का त्याग कियाहै सो दो प्रकारकाहै। एक का नाम ध्येयत्यागहै और दूसरे का नाम ज्ञेयत्याग है। मैं यह पदार्थरूपहूं; मैं इनसे जीताहूं; इन बिना मैं नहीं जीता और मेरे सिवा यह भी कुछ नहीं, यह जो हृदय में निश्चय है उसको त्याग करके मैं विचारताभयाहूं कि न मैं पदार्थहूं और न मेरे पदार्थ हैं। ऐसी भावना करने वाले जो पुरुष हैं उनका अन्तष्करण आत्मप्रकाश से शीतल होजाता है और वे जो कुछ क्रिया करते हैं वह लीलामात्र है। जिस पुरुषने निश्चय करके वासना का त्याग कियाहै वह सर्व क्रियाओं में सर्व आत्मा जानता है। उसको कुछ बन्धनका कारण नहीं होता; उसके हृदयमें सर्व वासना का त्यागहै और बाहर इन्द्रियों से चेष्टाकरताहै। जो पुरुष जीवन्मुक्त कहाताहै उसने जो वासना का त्याग कियाहै उस वासना के त्याग का नाम ध्येयत्यागहै और जिस पुरुषने मन संयुक्त देह वासनाका त्यागकियाहै और उस वासनाकाभी त्यागकियाहै वह ज्ञेयत्याग है। ज्ञेयवासनाके त्यागसे विदेहमुक्त कहाताहै। जिसपुरुषने देहाभिमानका त्यागकियाहै; संसारकी वासना लीला से त्यागकी है और स्वरूप में स्थितहोकर क्रियाभी करताहै वह जीवन्मुक्त कहाता है। जिसकी सब वासना नाशहुईहैं और भीतर बाहरकी चेष्टासे रहित हुआ है अर्थात् हृदयका सङ्कल्प और बाहरकी क्रिया त्यागी है उसका नाम ज्ञेयत्यागहै—वह विदेहमुक्त जानो। जिसने ध्येय वासना का त्याग किया है और लीला करके करताहुआ स्थित है वह जीवन्मुक्त महात्मापुरुष जनकवत्है। जिसने ज्ञेय वासना त्यागी है और उपशमरूप होगयाहै वह विदेहमुक्त होकर परमतत्त्वमें स्थितहै। परात्पर जिसको कहते हैं वही होताहै। हे राघव! इन दोनों समपदत्यागों में स्थित हुये ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। वे विगतसन्ताप उत्तमपुरुष दोनों मुक्त स्वरूपहैं और निर्मलपदमें स्थित होते हैं। एककी देह स्फुरन रूप होती है और दूसरेकी अस्फुरहोती है। वह विदेहमुक्तरूप देहमें स्थित होताहै और क्रिया करता सन्तापसे रहित जीवन्मुक्त ज्ञानको धरता है और फिर दूसरी देह त्यागके विदेहपदमें स्थित होताहै; उसके साथ वासना और देह दोनों नहीं भासते। इससे विदेहमुक्त कहाताहै। जीवन्मुक्तके हृदयमें वासना का त्याग है और बाहर क्रिया करताहै। जैसे समयसे सुख दुःख प्राप्त होता है तैसेही वह निरन्तर रागद्वेषसे रहित

प्रवर्त्तताहै और सुखमें हर्ष नहीं दुःखमें शोक नहीं करता वह जीवन्मुक्त कहाता है। जिस पुरुषने संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी इच्छा त्यागी है सो सब कार्यमें सुषुप्ति की नाईं अचलवृत्ति है, वह जीवन्मुक्त कहाता है। हेयोपादेय, मैं और मेरा इत्यादि सब कलना जिसके हृदय से क्षीण होगई हैं वह जीवन्मुक्त कहाता है जिसकी वृत्ति सम्पूर्ण पदार्थों से सुषुप्ति की नाईं होगई है; जिसका चित्त सदा जाग्रत् है और जो कलना क्रिया संयुक्त भी दृष्टि आता परन्तु हृदयसे आकाशवत् निर्मल है वह जीवन्मुक्त पूजने योग्य है। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजीने कहा तब सूर्य्य भगवान् अस्तहुये; सभाके सब लोग स्नान के निमित्त परस्पर नमस्कार करके उठे और रात्रि व्यतीत करके सूर्य्योदय के साथ परस्पर नमस्कार करके यथायोग्य अपने २ आसनपर आबैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णाचिकित्सोपदेशोनामषोडशस्सर्ग्गः १६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो पुरुष विदेहमुक्त हैं वह हमारी वाणी का विषय नहीं; इससे तुम जीवन्मुक्त काही लक्षण सुनो । जो कुछ प्राकृत कर्म्म है उसको जो करता है परन्तु तृष्णा और अहंकार से रहित है और निरहंकार होकर विचरता है वह जीवन्मुक्त है । दृश्य पदार्थों में जिसकी दृढ़ भावना है वह तृष्णा से सदा दुःखी रहता है और संसार के दृढ़ बन्धनसे बन्ध कहाता है और जिसने निश्चय करके हृदय से संकल्पका त्याग किया है और बाहर से सब व्यवहार करता है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है। जो बाहर जगत् में बड़े आरंभ करता है और इच्छा संयुक्त दृष्टि आता है पर हृदय में सब अर्थोंकी वासना और तृष्णा से रहित है वह मुक्त कहाता है। जिस पुरुषको भोगोंकी तृष्णा मिट गई है और वर्त्तमान में निरन्तर विचरता है वह निर्दुःख निष्कलंक कहाता है। हे महाबुद्धिमान् ! जिसके हृदय में इदं अहंकार निश्चय है और जो उसको धारकर संसार की भावना करता है उसको तृष्णारूप जंजीर से बांधा और कलना से कलंकित जानो । इससे तुम, मैं और मेरा; सत् और असत्य बुद्धि संसार के पदार्थों का त्याग करो और जो परमउदार पद है सर्वदा काल उसमें स्थित होजाओ । बन्ध, मुक्त, सत्य, असत्यकी कल्पना को त्याग के समुद्रवत् अक्षोभ चित्त स्थित हो; न तुम पदार्थ जालहो; न यह तुम्हारे हैं; असत्यरूप जानके इनका विकल्प त्यागो । यह जगत् भ्रान्तिमात्र है और इसकी तृष्णा भी भ्रांतिमात्र है; इनसे रहित आकाश की नाईं सन्मात्र तुम सत्य स्वरूप हो और तृष्णा मिथ्यारूपहै । तुम्हारा और इसका क्या सङ्ग है ? हे रामजी ! जीव को चारप्रकार का निश्चय होता है और वह बड़े आकार को प्राप्त होताहै । चरणों से लेकर मस्तक पर्यंत शरीर में आत्मबुद्धि होना और माता पिता से उत्पन्न हुआ

जानना; यह निश्चय बन्धनरूप है और असम्यक् दर्शन भ्रान्ति से होता है। यह प्रथम निश्चय है। द्वितीय निश्चय यह है कि, मैं सब भावों और पदार्थों से अतीतहूं; बालके अग्रसे भी सूक्ष्महूं और साक्षीभूत सूक्ष्म से अति सूक्ष्महूं । यह निश्चय शान्तिरूप मोक्षको उपजाता है । जो कुछ जगज्जाल है वह सब पदार्थों में मैंहीं हूं और आत्मारूप में अविनाशी हूं । यह तीसरा निश्चय है; यह भी मोक्षदायक है । चौथा निश्चय यह है कि, मैं भी असत्यहूं और जगत् भी असत्य है; इनसे रहित आकाश की नाईं सन्मात्रहै। यहभी मोक्षका कारणहै। हे रामजी! ये चारप्रकारके निश्चय जो मैंने तुमसे कहेहैं उनमें से प्रथम निश्चय बन्धनका कारणहै और बाकी तीनों मोक्ष के कारण हैं और वे शुद्ध भावना से उपजते हैं। जो प्रथम निश्चयवान् है वह तृष्णा रूप सुगन्ध से संसार में भ्रमता है और बाकी तीनों भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरुषकी हैं। जिसको यह निश्चय है कि, सर्व जगत् में आत्मस्वरूपहूं उसको तृष्णा और राग द्वेष फिर नहीं दुःख देते। अध, ऊर्ध्व, मध्य में आत्माही व्यापाहै और सब मैंहीं हूं, मुझसे कुछ भिन्न नहीं है; जिसके हृदयमें यह निश्चय है वह संसार के पदार्थों में बन्धायमान नहीं होता। शून्य प्रकृति माया, ब्रह्मा, शिव, पुरुष, ईश्वर सब जिसके नाम हैं वह विज्ञानस्वरूप एक आत्माहै। सदा सर्वदा एक अद्वैत आत्मा मैंहूं, द्वैतभ्रम चित्त में नहीं है और सदा विद्यमान सत्ता व्यापकरूपहूं। ब्रह्मासे आदि तृणपर्यंत जो कुछ जगज्जालहै वह सर्व परिपूर्ण आत्मतत्त्व भररहा है—जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे सर्व जलरूप हैं तैसेही सर्व जगज्जाल आत्मरूपही है। सत्यस्वरूप आत्मा से द्वैत कुछ वस्तुनहीं है जैसे बुद्बुदे और तरंग कुछ समुद्रसे भिन्न नहीं हैं और भूषण स्वर्ण से भिन्न नहीं होते तैसेही आत्मसत्तासे कोई पदार्थ भिन्न नहीं । द्वैत और अद्वैत जो जगत् रचना में भेद है वह परमात्मा पुरुष की फुरन शक्तिहै और वही द्वैत और अद्वैत रूपहोकर भासताहै। यह अपना है, यह और काहै; यह भेद जो सर्वदा सबमें रहता है और पदार्थों के उपजने और मिटने में सुख दुःख भासता है उनका मत ग्रहण करो; भावरूप अद्वैत आत्मसत्ताका आश्रय करो और भ्रमद्वैतको त्यागकरके अद्वैत पूर्ण सत्ताहोजाओ; संसारके जो कुछ भेद भासते हैं उनको मत ग्रहणकरो इस भूमिकाकी भावना जो भेदरूप है वह दुःखदायीजानो । जैसे अन्धहस्ति नदी में गिरताहै और फिर उछलताहै तैसेही तुम पदार्थों में मतगिरो। तुम पूर्णस्वरूपहो; महात्मा पुरुष के राग द्वेष कुछ सम्भव नहीं होते। सर्वगत आत्मा एक, अद्वैत, निरन्तर, उदयरूप और सर्वव्यापकहै। एक और द्वैतसे रहित भीहै; सर्वरूपभी वही है और निष्किञ्चनरूप भी वही है। न मैंहूं, न यह जगत् है, सर्व अविद्यारूप है; ऐसे चिन्तनकरो और सबका त्यागकरो। अथवा ऐसे विचारो कि, ज्ञान स्वरूप सत्य असत्य सब मैंहीं हूं । तुम्हारा

स्वरूप सर्व्व का प्रकाशक, अजर, अमर, निर्विकार, निष्क्रिय, निराकार और परम अमृतरूप है और निष्कलंक जीवशक्ति का जीवनरूप और सर्व्व कलना से रहित कारण का कारण है। निरन्तर उद्योत ईश्वर विस्तृतरूप है और अनुभव स्वरूप सब अनुभव का बीज है। अपना आप आत्मपद उचित स्वरूप ब्रह्म, मैं और मेरा भाव से रहित है। इससे अहं और इदं कलना को त्याग करके अपने हृदय में यह निश्चय धारो और यथा प्राप्त क्रिया करो। तुम तो अहङ्कार से रहित शांतरूप हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णाउपदेशोनामसप्तदशस्सर्गः १७॥

वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है उन महात्मा पुरुषों का यह स्वभाव है कि, असम्यक् दृष्टि और देहाभिमान से नहीं रहते पर लीला से जगत् के कार्यों में विचरते हैं और जीवन्मुक्त शान्त स्वरूप हैं। जगत्कीगति आदि, अन्त, मध्य में विरस और नाशरूप है इससे वे शान्तरूप हैं और सब प्रकार अपना कार्य्य करते हैं। सब वृत्तियों में स्थितहोकर उन्होंने हृदयसे ध्येयवासना त्यागी है; निरालम्ब तत्त्वका आश्रयलिया है और सर्व में उद्वेगसे रहित सर्व अर्थ में सन्तुष्टरूपहैं। विवेक रूपी वनमें वे सदा विचरते हैं; बोधरूपी बागीचे में स्थितहैं और सबसे अतीतपदका अवलम्बन किया है। उनका अन्तष्करण पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतलभया है; संसार के पदार्थों से वे कदाचित् उद्वेगवान् नहींहोते और उद्वेग और असन्तुष्टत्व दोनों से रहित हैं। वे संसारमें कदाचित् दुःखी नहीं होते। वे चाहे शत्रुओं के मध्य में होकर युद्धकरें अथवा दया वा बड़े भयानक कर्म करते दृष्टिआवें तौ भी जीवन्मुक्त हैं। संसार में वे दुःखी नहीं होते और न किसी पदार्थ में आनन्दवान् होते हैं; न किसी में कष्टवान्होते हैं न किसी पदार्थकी इच्छाकरते हैं और न शोक करते हैं; मौनमें स्थित यथा प्राप्त कार्य करते हैं और संसार में दुःख से रहित सुखीहोते हैं। जो कोई पूछता है तो वे यथाक्रम ज्योंकात्यों कहते हैं और पूछे विना मूकजड़ वृक्षवत् होरहते हैं। इच्छा अनिच्छासे मुक्त संसारमें दुःखी नहीं होते और सबसे हितकरके और कोमल उचित वाणीसे बोलते हैं। वे यज्ञादि कर्म भी करते हैं परन्तु संसारी कार्य में नहीं डूबते। हे राम जी! जीवन्मुक्त पुरुष युक्त अयुक्त नानाप्रकारकी उग्रदशा संयुक्त जगत्की वृत्तिको हाथ में बेल फलवत् जानताहै परन्तु परमपद में आरूढ़ होकर जगत् की गति देखतारहताहै और अपना अन्तष्करण शीतल और जीवोंको तप्त देखता है। वह स्वरूप में कुछ द्वैत नहीं देखता है परन्तु व्यवहार की अपेक्षा से उसकी महिमाकही है। हे राघव! जिन्हों ने चित्तजीता है और परमात्मा देखा है उन महात्मा पुरुषों की स्वभाववृत्ति मैंने तुमसे कही है और जो मूढ़हैं और जिन्होंने अपना चित्त नहीं जीता और भोगरूपी कीचमें मग्नहैं; ऐसे गर्दभों के लक्षण हमसे नहीं कहते बनते। उनको उन्मत्त कहिये

उन्मत्त इसप्रकार होते हैं कि, महानरक की ज्वाला स्त्री है और वे उस उष्णनरक अग्निके इंधन हैं उसीमें जलते हैं और नानाप्रकारके अर्थोंके निमित्त अनर्थ उत्पन्नकरते हैं। भोगोंकी अनर्थरूप दीनतासे उनके चित्त हत हुये हैं और संसारके आरम्भ से दुःखीहोते हैं नानाप्रकारके कर्म जो वे करते हैं उनकेफल हृदयमें धारते हैं और उन कर्मों के अनुसार सुख दुःख भोगते हैं। ऐसे जो भोग लम्पट हैं उनके लक्षण हमनहीं कहसके। हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुषोंकी दृष्टि पूर्व जो कही है उसीका तुम आश्रय करो। हृदय से ध्येय वासनाको त्यागो और जीवन्मुक्त होकर जगत् में विचरो। हृदय की संपूर्ण इच्छा त्यागके वीतराग और निर्वासनिक होरहो। बाहर सब आचारवान् होकर लोगों में विचरो और सर्वदिशा और अवस्था का भलीप्रकार विचारकर उनमें जो अतुच्छ पदहों उनकाआश्रयकरो पर भीतर सर्वपदार्थों से निरस और बाहर इच्छाके संमुखहो। भीतर शीतलरहो और बाहर तपायमान हो; बाहरसे सबकार्योंका आरम्भकरो और हृदयसे सब आरम्भसे विवर्जितहोरहो। हेरामजी ! अब तुम ज्ञानवान् हुयेहो और सब पदार्थोंकीभावनाका तुम्हें अभाव हुआहै; जैसे इच्छाहो तैसे विचरो। जब इन्द्रियों का इष्टपदार्थ होआवे तब कृत्रिम हर्षवानहोना और दुःखआय प्राप्तहो तब कृत्रिम शोक करना। क्रियाका आरम्भकरना और हृदयमें सारभूतरहना अर्थात् बाहर क्रियाकरो पर भीतर अहंकारसे रहित आकाशवत् निर्मलरहो। कार्यकलनासे रहित होकर जगत् में विचरो और आशारूप फांसी से मुक्तहोकर इष्ट अनिष्टसे हृदयमें सम रहो और बाहरकार्य करते लोगों में विचरो। इस चेतन पुरुषको वास्तवमें न बन्ध है और न मोक्ष है; मिथ्या इन्द्रजालवत् बन्धमोक्ष संसारका वर्त्तनाहै। सब जगत् भ्रांतिमात्रहै पर प्रमादसे जगत् भासताहै। जैसे तीक्ष्ण धूपसे मरुस्थलमें जल भासताहै तैसेही अज्ञानसे जगत् भासता है। आत्मा अबन्ध और सर्वव्यापकरूपहै, उसे बन्ध कैसेहो और जो बन्ध नहीं तो मुक्त कैसे कहिये। आत्मतत्त्वके अज्ञानसे जगत् भासताहै और तत्त्वज्ञान से लीन होजाता है—जैसे रस्सीके अज्ञानसे सर्प भासता है और रस्सीके ज्ञानसे सर्प लीन होजाताहै। हे रामजी ! तुम तो ज्ञानवान् हुयेहो और अपनी सूक्ष्म बुद्धि से निरहंकार हुयेहो अब आकाशकी नाईं निर्मल स्थित हो रहो। जो तुम असत्यरूप हो तो संपूर्ण मित्रभ्रात भी तैसेही हैं उनकी ममताको त्यागकरो क्योंकि, जो आपही कुछ न हुआ तो भावना किसकी करेगा और जो तुम सत्य स्वरूपहो तो अत्यन्त सत्य आत्माकी भावनासे दृश्यजगत्की भावनासे रहितहो। यह जो अहंमम भोगवासना जगत् में है वह प्रमादसे भासतीहै और अहंमम और बांधवोंका शुभकर्म आदिक जो जगत् जालभासता है इनसे आत्माका कुछ संयोग नहीं तुमक्यों शोकवान् होते हो ? तुम आत्मतत्त्वकी भावनाकरो; तुम्हारासंबंध किसीसे नहीं—यह प्रपञ्च भ्रममात्र है। जो

निराकार अजन्मा पुरुषहो उसको पुत्र बान्धव दुःख सुखका क्रमकैसेहो ? तुम स्वतः, अजन्मा, निराकार, निर्विकारहो तुम्हारा सम्बन्ध किसीसे नहीं तुम इनका शोक काहे को करते हो ? शोक करने का स्थान वह होता है जो नाशरूप हो सो न तो कोई जन्मता है और न मरता है और जो जन्म मरण भी मानिये तो आत्मा उसको सत्ता देनेवाला है जो इस शरीर के आगे और पीछेभी होगा। आगे जो तुम्हारे बड़े बुद्धिमान्, सात्विकी और गुणवान् अनेक बान्धव व्यतीत हुये हैं उनका शोक क्यों नहीं करते ? जैसे वे थे तैसेही तो येभी हैं ? जो प्रथमथे वे अब भी हैं। तुम शांतरूप हो; इससे मोहको क्यों प्राप्त होतेहो जो सत्यस्वरूप है उसका न कोई शत्रु है और न वह नाश होता है। जो तुम ऐसे मानतेहो कि, मैं अबहूं आगे न हूंगा तौ भी वृथा शोक क्यों करते हो ? तुम्हारा संशय तो नष्ट हुआहै; अपनी प्रकृतिमें हर्ष शोकसे रहित होकर विचरो और संसारके सुख दुःख में समभाव रहो। परमात्मा व्यापकरूप सर्वत्र स्थित है और उससे कुछ भिन्न नहीं। तुम आत्मानन्द आकाशवत् स्वच्छ विस्तृत और नित्य शुद्ध प्रकाशरूपहो जगत्के पदार्थों के निमित्त क्यों शरीर सुखाते हो ? सर्व पदार्थ जातिमें एक आत्मा व्यापक है—जैसे मोतीकी माला में एकतागा व्यापक होता है तैसेही आत्मा अनुस्युत है; ज्ञानवानोंको सदा ऐसेही भासता है और अज्ञानियों को ऐसे नहीं भासता। इससे ज्ञानवान् होकर तुम सुखीरहो। यह जो संसरणरूप संसार भासता है वह प्रमाद से सारभूत होगया है। तुम तो ज्ञानवान् और शांत बुद्धिहो। दृश्यभ्रममात्र संसारका क्यारूपहै ? भ्रम और स्वप्नमात्रसे कुछ भिन्ननहीं। स्वप्नमें जो क्रम और जो वस्तु हैं; सब मिथ्याही है तैसेही यह संसार है। सर्वशक्त जो सर्वात्मा है उसमें जो भ्रममात्रशक्ति है उससे यह संसारमाया उठी है, सो सत्य नहीं है। वास्तवमें पूंछो तो केवल ज्ञानस्वरूप एक आत्मसत्ताही स्थित है। जैसे सूर्य प्रकाशता है तो उसको न किसीसे विरोध है और न किसी से स्नेह है, तैसेही वह सर्वरूप, सर्वत्र, सर्वदा सर्व का ईश्वर है। उस सत्ताका आभास संवेदन स्फूर्ति है और उससे नानारूप जगत् भासता है और भिन्न भिन्न रूप निरन्तरही उत्पन्न होते हैं। जैसे समुद्रमें तरंग उपजते हैं तैसेही देहधारी जैसी वासना करता है उसके अनुसार जगत् में उपजकर विचरता और चक्रकी नाईं भ्रमताहै। स्वर्ग में स्थित जीव नरक में जाते हैं और जो नरक में स्थित हैं वे स्वर्ग्ग में जाते हैं; योनि से योन्यांतर और द्वीपसे द्वीपांतर जाते हैं और अज्ञानसे धैर्यवान् कृपणताको प्राप्त होता है और कृपण धैर्यको प्राप्तहोताहै। इसीप्रकार भूत उछलते और गिरते हैं और अज्ञान से अनेक भ्रममें प्राप्तहोते हैं पर आत्मसत्ता एकरूप, स्थित, स्थिर, स्वच्छ और अपने आपमें अचल है और दुःख, भ्रम उसमें कोई नहीं। जैसे अग्निमें बरफका कणका

नहीं पायाजाता तैसेही जो आत्मसत्तामें स्थित है उसको दुःख क्लेश कोई नहीं होता । उसका हृदय जो शीतल रहता है सो आत्मसत्ताकी बड़ाई है । संसार की यही दशा है कि जो बड़े २ ऐश्वर्य से सम्पन्न दृष्टि आते थे वे कितनेक दिनपीछे नष्ट होते देखे हैं । तुम और मैं इत्यादिक भावना आत्मामें मिथ्याभ्रम से भासती हैं । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासताहै तैसेही ये बान्धवहैं, ये अन्य हैं यह मैंहूं इत्यादिक मिथ्यादृष्टि तुम्हारी अब नष्ट हुई है । संसारकी जो विचार दृष्टि है जिससे जीव नष्ट होते हैं उसे मूलसे काटकर तुम जगत् में क्रिया करो । जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्तसंसारमें विचरतेहैं तैसेही विचरो--भारवाहककी नाईं भ्रममें न पड़ना । जहां नाश करनेवाली वासना उठे वहां यह विचारकरो कि, यह पदार्थ मिथ्याहै तब वह वासना शांत होजावेगी। यह बन्ध है, यह मोक्ष है, यह पदार्थ नित्य है इत्यादिक गिनती लघुचित्तमें उठती हैं, उदार चित्तमें नहीं उठतीं । उदारचित्त जो ज्ञानवान् पुरुषहैं उनके आचरणके विचारने में देहदृष्टि नष्ट होजावेगी । ऐसे विचारो कि, जहां मैं नहीं वहां कोई पदार्थ नहीं और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो मेरा नहीं; इस विचारसे देहदृष्टि तुम्हारी नष्ट होजावेगी । ऐसे ज्ञानवान् पुरुष संसारके किसी पदार्थसे उद्वेगवान् नहीं होते और किसी पदार्थ के अभावहुये आतुर भी नहीं होते । वे चिदाकाशरूप सबको सत्य और स्थितरूप देखते हैं; आकाशकी नाईं आत्माको व्यापक देखते हैं और भाई, बान्धव भूतजातको अत्यन्त असत्यरूप देखते हैं । नानाप्रकारके अनेक जन्मों में भ्रमसे अनेक बान्धव होगये हैं—वास्तवमें त्रिलोकी और बान्धवों में भी बान्धव वही है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तवर्णनन्नामअष्टादशस्सर्गः १८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रसंगपर एक पुरातन इतिहास है जो बड़े भाई ने छोटे भाई से कहा है सो सुनो । इसी जम्बूद्वीप के किसी स्थान में महेन्द्र नाम एक पर्वतहै वहां कल्पवृक्ष था और उसकी छायाकेनीचे देवता और किन्नर आकर विश्राम करते थे उस पर्वत के बड़े शिखर बहुत ऊंचे थे और ब्रह्मलोक पर्य्यन्त गये थे जिनपर देवता सामवेद की ध्वनि करते थे । किसी और जलसे पूर्ण बड़े मेघ विचरते थे, कहीं पुष्पसे पूर्ण लता थीं, कहीं जलके झरने बहते थे और कन्दराके साथ उछलते मानों समुद्रके तरङ्ग उठते थे, कहीं पक्षी शब्द करते थे, कहीं कन्दरा में सिंह गर्जते थे, कहीं कल्प और कदम्ब वृक्ष लगे थे, कहीं अप्सरागण विचरती थीं, कहीं गंगाका प्रवाह चला जाताथा और किसी स्थान में महासुन्दर रमणीय रत्नमणि विराजते थे । वहां गंगा के तटपर एक उग्रतपस्वी स्त्री संयुत तप करता था और उसके महासुन्दर दो पुत्र थे । जब कुछ काल व्यतीत हुआ तो पुण्यक नामक पुत्र ज्ञानवान् हुआ पर पावन अर्द्धप्रबुद्ध और लोलुप अवस्थामें रहा । जब काल-

चक्र के फिरते हुये कईवर्ष व्यतीत हुये तो उस दीर्घतपस्वी का शरीर जर्जरीभूत
होगया और उसने शरीर की क्षणभंगुर अवस्था देखकर चित्तकी वृत्ति देहसे विरक्त
अर्थात् विदेह होनेकी इच्छाकी। निदान दीर्घतपाकी पुर्यष्टका कलनारूप शरीर को
त्यागती भई और जैसे सर्प कंचुकी को त्याग दे तैसेही पर्वतकी कन्दरामें जो आश्रय
था उसमें उसने शरीर को उतारदिया और कलनासे रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्ता
स्वरूप में स्थितहुआ और राग द्वेषसे रहित जो पद है उसमें प्राप्त हुआ। जैसे धूम्र
आकाश में जा स्थितहो तैसेही चिदाकाश में स्थित हुआ। तब मुनीश्वरकी स्त्रीने
भर्त्ताका शरीर प्राणों से रहित देखा और जैसे दण्डसे कमल काटा हो तैसेही चित्त
विना शरीर देखती भई। निदान चिरकालपर्यन्त योगकर्म कर उसने अपना शरीर प्राण
और पवनको वशकरके त्याग दिया और जैसे भवँरा कमलिनी को त्यागे तैसेही शरीर
त्यागकर भर्त्ताके पदको प्राप्तहुई। जैसे आकाशमें चन्द्रमा अस्त होताहै और उसकी
प्रभा उसके पीछे अदृष्टहोती है तैसेही दीर्घतपाकी स्त्री दीर्घतपा के पीछे अदृष्ट हुई।
जब दोनों विदेह मुक्त हुये तब पुण्य जो बड़ा पुत्रथा उनके दैहिककर्म में सावधान
होकर कर्म करनेलगा पर पावन माता पिता विना दुःखको प्राप्तहो शोककरके उसका
चित्त व्याकुल होगया और वन कुञ्जों में भ्रमनेलगा। पुण्य जो माता पिताकी देहा-
दिक क्रिया करता था जहां पावनशोकसे विलाप करताथा आया और भाई को शोक
संयुक्त देखकर पुण्यने कहा; हे भाई! शोक क्यों करतेहो जो वर्षाकाल के मेघवत्
आंसुओं का प्रवाह चलाजाताहै? हे बुद्धिमान्! तुम किसका शोक करतेहो? तुम्हारे
पिता और माता तो आत्मपदको प्राप्त हुये हैं जो मोक्षपद है। वही सर्व जीवों का
स्थान है और ज्ञानवानों का स्वरूपहै यद्यपि सबका अपना आप स्वरूप एकै है पर
तौभी ज्ञानवान्को इसप्रकार भासता है और अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता। वे तो
ज्ञानवान् थे और अपने स्वरूप में प्राप्त हुये हैं उनका शोक तुम किस निमित्त करते
हो? यह क्या भावना तुमने बांधी है? संसारमें जो शोक मोक्षदायक है वह तू नहीं
करता और जो शोक करने योग्य नहीं वह करता है। न वह तेरी माता थी; न वह
तेरा पिता था और न तू उनका पुत्र है; कई तेरे माता पिता होगये हैं और कई पुत्र
होगये हैं; असंख्यबार तू उनका पुत्र हुआहै और असंख्य पुत्र उन्होंने उत्पन्न किये हैं
और अनेक पुत्र,मित्र,बांधवों के समूह तेरे जन्मजन्मके बीत गये हैं। जैसे ऋतु ऋतु में
बड़े वृक्षों की शाखाओं में फलहोते और नष्ट होजाते हैं तैसेही जन्महोते हैं; तू काहेको
पिता माता के स्नेहमें शोक करता है? जो तेरे सहस्रों माता पिता होकर बीतगये हैं
उनका शोक काहेको नहीं करता? जो तू इस जन्मके बान्धवोंका शोक करताहै तो
उनका भी शोककर? हे महाभाग! जो प्रपञ्च तुझको दृष्ट आता है वह जाग्रद्भ्रम है;

परमार्थ में न कोई जगत् है, न कोई मित्र है और न कोई बान्धव है। जैसे मरुथल से बड़ी नदी भासती है परन्तु उसमें जलका एक बूंद भी नहीं होता तैसेही वास्तवमें जगत् कुछ नहीं। बड़े २ लक्ष्मीवान्, जो छत्रचामरों से सम्पन्न शोभते हैं वे विपर्यय होंगे क्योंकि, यह लक्ष्मी तो चञ्चल स्वरूप है कोई दिनों में अभाव होजाती है। हे भाई! तू परमार्थ दृष्टि से विचार देख, न तू है और न जगत् है; यह दृश्य भ्रांतिरूप है इसको हृदयसे त्याग। इसी मायादृष्टिसे बार बार उपजता और विनशता है। यह जगत् अपने सङ्कल्पसे उपजा है, इसमें सत्पदार्थ कोई नहीं। अज्ञान रूपी मरुथल में जगत्रूपी नदीहै और उसमें शुभ अशुभरूपी तरंग उपजते और फिर नष्ट होजाते हैं॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपावनबोधवर्णनन्नामएकोनविंशतितमस्सर्गः १९॥

पुण्य बोले; हे भाई! कई माता और कई पिता होहोकर मिटगये हैं। जैसे वायु से धूलके कणके उड़ते हैं तैसेही बान्धव हैं; न कोई मित्र है; और न कोई शत्रु है; सम्पूर्ण जगत् भ्रांतिरूप है और उसमें जैसी भावना फुरती है तैसेही हो भासती है। बान्धव, मित्र, पुत्र आदिकों में जो स्नेह होता है सो मोहसे कल्पित है और अपने मन से माता पितादिक संज्ञाकल्पी है। जगत् प्रपञ्चमें जैसी संज्ञाकल्पता है तैसेही हो भासती है; जहां बान्धवकी भावना होती है वहां बान्धव भासता है और जहाँ और की भावना होती है वहां और ही हो भासता है। जो अमृत में विषकी भावना होती है तो अमृतभी विष होजाताहै सो कुछ अमृत में विष नहीं भावनारूप भासताहै; तैसेही न कोई बान्धव है और न कोई शत्रु है, सर्वदा काल विद्यमान एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है उसमें अपने और औरकी कल्पना कोई नहीं और जो कुछ देहादि हैं वे रक्त मांसादिके समूहसे रचे हैं उनमें अहंसत्ता कौनहै और अहंकार, चित्त, बुद्धि और मन कौन है? परमार्थ दृष्टि से यह तो कुछ नहीं है, विचार किये से न तू है, न मैं हूं, यह सब मिथ्याज्ञान से भासते हैं। एक अनन्त चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है उस में तेरी माता कौन है और पिता कौन है, यह सर्व मिथ्या भ्रमसे भासता है, वास्तव में कुछ नहीं। शरीर से देखिये तो जो कुछ शरीर है वह पञ्चतत्त्वों से रचा जड़रूप है, उस में चेतन एक रूप है और अपना और पराया कौनहै। इस भ्रम दृष्टिको त्यागके तत्त्व का विचार करो; मिथ्या भावना करके माता पिताके निमित्त क्यों शोकवान् हुयेहो? जो सम्यक् दृष्टिका आश्रय करके उस स्नेहका शोक करतेहो तो और जन्मों के बान्धव और मित्रोंका शोक क्यों नहीं करते? अनेक पुष्पों और लताओं में तू मृगपुत्र हुआ था, उस जन्मके तेरे अनेक मित्र बान्धव थे उनका शोक क्यों नहींकरता? अनेक कमलों संयुक्त तालाबमें हाथी विचरते थे वहां तू हाथी का पुत्र था; उन हस्ति बान्धवों का शोक क्यों नहीं करता? एक बड़े वन में वृक्ष लगे थे और तेरे साथ फल पत्र

हुये थे और अनेक वृक्ष तेरे बान्धवथे, उनका शोक क्यों नहीं करता? फिर नदी तालाव में तुम मच्छहुये थे और उसमें मच्छयोनि के बान्धवथे; उनका शोक क्यों नहीं करता! दशार्णव देशमें तू काक और वानर हुआ, तुषार्ण देशमें तू राजपुत्र हुआ और फिर वन काक हुआ, बंगदेश में तू हाथी हुआ, विराजदेश में तू गर्दभ हुआ; मालवदेश में सर्प्प और वृक्ष हुआ और बंगदेश में गृद्धहुआ, मालवदेशके पर्वतमें पुष्पलता हुआ और मन्दराचल पर्वत में गीदड़ हुआ; कोशलदेश में ब्राह्मण हुआ; बंगदेश में तीतर हुआ; तुषारदेश में घोड़ाहुआ; कीट अवस्था में हाथी हुआ; एक नीचग्राम में बछरा हुआ और पन्द्रह महीने वहां रहा, एक वन में तड़ाग था वहां कमल पुष्प में भ्रमरा हुआ और जम्बूद्वीप में तू अनेकबार उत्पन्न हुआहै। हे भाई! इस प्रकार वासना पूर्वक वृत्तान्त मैंने कहा है। जैसी तेरी वासना हुई है तैसे तूने जन्म पाये हैं मैं सूक्ष्म और निर्मल बुद्धिसे देखताहूं कि, ज्ञान विना तूने अनेक जन्म पाये हैं। उन जन्मोंको जानके तू किस २ बान्धवका शोक करेगा और किसका स्नेह करेगा? जैसे वे बान्धवथे तैसेही यह भी जानले। मेरे भी अनेक बान्धव हुये हैं; जिन जिन में मैंने जन्मपाया है और जो २ बीत गये हैं तैसेही सब मेरे स्मरण में आते हैं और अब मुझको अद्वैत ज्ञान हुआ है। हे भाई! त्रिरागदेशमें मैं तोता हुआ; तड़ागके तटपर हंस हुआ; पक्षियों में काक हुआ; बैल हुआ, बंगदेश में वृक्ष हुआ, इस वन पर्वत में बड़ा उष्ट्र होकर विचरा; पौंड्रदेश में राजा हुआ और सह्याचल पर्वतकी कन्दरामें भेड़िया हुआ जहां तू मेरा वहां बड़ा भाई था। फिर मैं दशवर्ष मृगहोकर रहा; पांच महीने तेरा भाई होकर मृगरहा सो तेरा बड़ा भ्राताहूं। इस प्रकार ज्ञानसे रहित वासना कर्म के अनुसार कितने जन्मों में हम भ्रमते फिरे हैं। मैंने तुझसे सब कहा है और सब मुझको स्मरण है। इस प्रकार जगत् जालकी स्थिति मैंने तुझसे कही है। तेरे और मेरे अनेक जन्मके माता, पिता, भाई और मित्र हुये हैं उनका शोक तू क्यों नहीं करता? यह संसार दुःख सुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इस कारण सबको त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थित होजाओ। यह सब प्रपञ्च भ्रान्तिरूप है; इनकी वासना त्याग जब अहंकार वासना को त्यागकरे। तब उस पदको प्राप्त होगे जहां ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं। इससे, हे भाई! यह जो जीवभाव अर्थात् जन्म, मरण, ऊर्द्ध्व जाना और फिर गिरना व्यवपार है उसमें बुद्धिमान् शोकवान् नहीं होते; वे दुःखकी निवृत्ति के अर्थ अपना स्वरूप स्मरण करते हैं जो भाव, अभाव और जरा मरण विना नित्य शुद्ध परमानन्द है। तू उसको स्मरणकर, और मूढ़ मतहो; तुझको न सुख है, न दुःख है; न जन्म है, न मरण है; न माताहे, न पिताहै; तू तो एक अद्वैत रूप आत्मा है और किसी से सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि; कुछ भिन्न नहीं है, हे साधु! यह जो

नानाप्रकार का संसार विषय संयुक्त यंत्र है इसको अज्ञानरूप नटुआ ग्रहण करता है और इष्ट अनिष्टसे बन्धायमान होता है। जो आत्मदर्शी पुरुषहैं उनको कुछ क्रिया स्पर्श नहीं करती; वे केवल सुखरूप हैं और जो अज्ञानी हैं वे देह इन्द्रियों के गुणों में तद्रूप होजाते हैं और इष्ट अनिष्टसे सुखदुःख के भोक्ता होते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे देखनेवाले साक्षीभूत होते हैं;। करते हुये भी अकर्त्तारूप हैं और इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में रागद्वेष से रहित हैं। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब आपड़ताहै परन्तु दर्पणभले बुरेरङ्ग से रञ्जित नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् रागद्वेष से रञ्जित नहींहोता। सब इच्छा और भयकलनासे रहित स्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लित रूप है और पुत्र, कलत्र, बान्धवों के स्नेह से रहित है और उसका हृदय कमल सर्व इच्छा और अहं मम से रहित अपने स्वरूप में सन्तुष्टवान् होता है। इससे मिथ्या देहादिकों की भावना को त्यागकर अपने नित्य, शुद्ध, शान्त और परमानन्द स्वरूप में तू भी स्थित हो। तू तो परब्रह्म और निर्मल रूप है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेपावनबोधोनामविंशतितमस्सर्गः २० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार पुण्य ने पावन से बोध उपदेश किया तब पावन बोधवान् हुआ। तब दोनों ज्ञानवान् के पारगामी और निरिच्छित आनन्दित पुरुष होकर चिरकाल पर्यन्त विचरते रहे और फिर दोनों विदेह मुक्त निर्वाण पदको प्राप्त हुये। जैसे तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाताहै तैसेही प्रारब्ध कर्म के क्षीणहुये दोनों विदेह मुक्त हुये। हे रामजी! इसी प्रकार तू भी जान। जैसे वे मित्र, बान्धव, धनादिक के स्नेह से रहित होकर विचरे तैसेही तुम भी स्नेह से रहित होकर विचरो और जैसे उन्होंने विचार कियाथा तैसेही तुमभी करो। इस मिथ्यारूप संसार में किसकी इच्छाकरे और किसका त्यागकरे; ऐसे विचारकर अनन्त इच्छा और तृष्णाका त्यागकरना, यही औषधि है; तृष्णाकी इच्छाका पालना औषधि नहीं क्योंकि; पालने से पूर्ण कदाचित् नहीं होती। जो कुछ जगत् है वह चित्त से उत्पन्न हुआ है और चित्तके नष्ट हुये संसार दुःख नष्ट होजाता है। जैसे काष्ठके पाने से अग्नि बढ़ता जाताहै और काष्ठसे रहित शान्त होजाताहै तैसेही चित्तकी चिन्तना से जगत् विस्तार पाताहै और चिन्तना से रहित शान्त होजाता है। हे रामजी! ध्येय वासनावान् त्यागरूपी रथपर आरूढ़ होकर रहो, करुणादया और उदारता संयुक्त होकर लोगों में विचरो और इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष से रहित हो। यह ब्रह्मस्थिति मैंने तुमसे कही। निष्काम, निर्दोष और स्वस्थरूप को पाकर फिर मोहको नहीं प्राप्तहोता। परम आकाशही इसका हृदयमात्र विवेक है और बुद्धि इसकी सखी है जिनके निकट विवेक और बुद्धि है वे परम व्यवहार करते भी सङ्कटको नहीं प्राप्त होते; इससे तुम

परम विवेक और बुद्धि का संगलेकर जगत् में विचरोगे तब संकट और दुःख से मोहित न होगे। नानाप्रकार के दुःख, संकट, स्नेह आदिक विकाररूप जो समुद्र है उस के तरने के निमित्त एक अपना धैर्यरूपी बेड़ा है और कोई उपाय नहीं सो धैर्य क्या है-दृश्य जगत् से वैराग्य और सत् शास्त्र का विचार। इन श्रेष्ठ गुणों के अभ्यास से आत्मपद की प्राप्ति होती है। वह आत्मपद त्रिलोकी के ऐश्वर्यरूपी रत्नों का भण्डार है। जो त्रिलोकी के ऐश्वर्यसे भी नहीं प्राप्त होता वह वैराग्य, विचार, अभ्यास और चित्तके स्थिर करने से होता है। तब तक मनुष्य जगत् कोषमें उपजता है और मन तृष्णारूपी तापसे रहित नहीं होता तब तक कष्टहै और जब आत्मविवेक से मन पूर्ण होताहै तब सर्व जगत् अमृतरूप भासता है। जैसे जूती के पहिरने से सर्व पृथ्वी चर्म से वेष्टितसी होजाती है तैसेही पूर्ण पद इच्छा और तृष्णाके त्यागने से पाताहै। जैसे शरद्कालका आकाश मेघों से रहित निर्मल होता है तैसेही इच्छा से रहित पुरुष निर्मल होता है। जिनपुरुषों के हृदय में आशा फुरती है उनके वशहुये चित्त शून्य होजाता है और जैसे अगस्त्य मुनिने समुद्र को पान किया था तब समुद्र जलसे रहित होगया था तैसेही आत्म जलसे रहित समुद्रवत् चित्त शून्य हो जाता है। जिस पुरुष के चित्तरूपी वृक्षमें तृष्णारूपी चञ्चल मर्कटी रहती है उसको वह स्थिर होने नहीं देती और सदा शोभायमान होती है और जिसका चित्त तृष्णा से रहित है उस पुरुष को तीनों जगत् कमल की कलीके समान होजाते हैं, योजनों के समूह गोपदवत् सुगम होजाते हैं और महाकल्प अर्द्ध निमेषवत् होजाता है। हे रामजी! चंद्रमा और हिमालय पर्वत भी ऐसा शीतल नहीं और केलेका वृक्ष और चन्दन भी ऐसा शीतल नहीं जैसा शीतल चित्त तृष्णासे रहित होता है। पूर्णमासी का चन्द्रमा और क्षीर समुद्र भी ऐसा सुन्दर नहीं और लक्ष्मी का मुख भी ऐसानहीं जैसा इच्छासे रहित मन शोभायमान होताहै। जैसे चन्द्रमाकी प्रभा को मेघ ढाँपलेताहै और शुद्धस्थानों को अपवित्र लेपन मलीन करता है तैसेही अहंतारूप पिशाचिनी पुरुषों को मलीन करती है। चित्तरूपी वृक्षके बड़े २ टास दिशा विदिशा में फैलरहे हैं सो आशारूपहैं, जब विवेकरूपी कुल्हाड़ेसे उनको काटेंगे तब अचित् पदकी प्राप्तिहोगी और तभी एक स्थानरूपी चित्तरहेगा अविवेक और अधैर्य तृष्णा शाखा संयुक्तहैं उनकी अनेक शाखा फिरहोंगी इसलिये आत्मधैर्यको धरो कि, चित्त की वृद्धि न हो। उत्तम धैर्यकरके जब चित्त नष्ट होजावेगा तब अविनाशी पद प्राप्त होगा। हे रामजी! उत्तम हृदय क्षेत्र में जब चित्तकी स्थिति होती है तब आशारूपी दृश्य नहीं उपजनेदेती केवल ब्रह्मरूप शेष रहता है। जब तुम्हारा चित्त वृत्तिसे रहित अचित्रूपहोगा तब मोक्षरूप विस्तृतपद प्राप्तहोगा। चित्तरूपी उलूकपक्षीकी तृष्णा

रूपी स्त्री है । ऐसा पक्षी जहां विचरता है तहां अमङ्गल फैलाता है । जहां उलूक पक्षी विचरते हैं वहां उजाड़ होता है विवेकादि जिससे रहित होगये हैं ऐसे चित्तकी वृत्ति से तुम रहित होरहो । ऐसे होकर विचरोगे तब अचिन्त्यपदको प्राप्त होगे । जैसी जैसी वृत्ति फुरती है तैसाही तैसारूप जीव होजाता है; इस कारण चित्त उपशम के निमित्त तुम वही वृत्ति धरो जिससे आत्मपदकी प्राप्तिहो । हे महात्मापुरुष ! जिस को संसार के पदार्थोंकी इच्छा और ईर्षणा उपशम हुई है और जो भाव अभाव से मुक्त हुआ है वह उत्तमपद पाता है और जिसका चित्त आशारूपी फांसी से बाँधाहै वह मुक्त कैसे हो ? आशा संयुक्त कदाचित् मुक्त नहीं होता और सदा बन्धायमान रहता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेतृष्णाचिकित्सोपदेशोनामएकविंशतितमस्सर्ग्गः २१

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसको बुद्धिसे विचारो । रामजी बोले; हे भगवन् ! सर्व धर्मों के वेत्ता ! तुम्हारे प्रसादसे जो कुछ जानने योग्यथा वह मैंने जाना; पाने योग्य पदपाया और निर्मलपदमें विश्राम किया भ्रमरूपी मेघ से रहित शरत्कालके आकाशवत् मेरा चित्त निर्मल हुआ है; मोहरूपी अहङ्कार नष्ट होगया है; अमृत से हृदय पूर्णमासी के चन्द्रवत् शीतल हुआ है और संशय रूपी मेघ नष्ट होगया है परन्तु आपके वचनरूपी अमृतको पान करता मैं तृप्त नहीं होता । जिस प्रकार बलिको विज्ञान बुद्धि भेद प्राप्त हुआ है, बोधकी वृद्धि के निमित्त वह मुझसे ज्यों का त्यों कहिये । नम्रभूत शिष्यप्रति कहते हुये बड़े खेद नहीं मानते । वशिष्ठजी बोले; हे राघव ! बलिका जो उत्तम वृत्तान्त है वह मैं कहताहूं सुनो; उससे निरन्तर बोध प्राप्त होगा । हे रामजी ! इस जगत् के नीचे पाताल है । वह स्थान महा क्षीरसमुद्रकी नाईं सुन्दर उज्ज्वल है और वहां कहीं महासुन्दर नागकन्या विराजती हैं; कहीं विषधर सर्प, जिनके सहस्रशीश हैं विराजते हैं; कहीं दैत्यों के पुत्र रहते और कटकट शब्द करते हैं; कहीं सुन्दर सुखके स्थान हैं; कहीं जीवोंके परम्परा समूह नरकों में जलते हैं और कहीं दुर्गन्धिके स्थान हैं । सातपाताल हैं उन सब में जीव स्थित हैं कहीं रत्नों से खचित स्थानहैं; कहीं कपिलदेवजी, जिनके चरण कमलोंपर देवता और दैत्य शीश धरते हैं, विराजते हैं और कहीं रत्नों के सुगन्धित बाग लगे हैं । ऐसी दो भुजाओं से पाली हुई पृथ्वी में दानवों में श्रेष्ठ विरोचन का पुत्र राजाबलि रहता था जिसने सर्व्व देवताओं और विद्याधरों और किन्नरों को लीला करके जीता था और त्रिलोकी अपने वशकर छोड़ी थी । सब देवताओं का राजाइन्द्र उसके चरण सेवन की वाञ्छा करता है; त्रिलोकी में जो जाति जाति के रत्न हैं वे सब उसके विद्यमान रहते हैं और सब शरीरों की रक्षा करने और भावनाके धर्मों के धरने-

वाले विष्णुदेव द्वारपाल हैं । ऐरावत हाथी जिसके गण्डस्थलसे मद झरता है उसकी वाणी सुन ऐसा भयवान् होता है जैसे मोरकी वाणी सुनकर सर्प भयवान् होताहै उस का ऐसा तेज था जैसे सप्तसमुद्रों का जल कुहीड़ शोषलेती है और जैसे प्रलयकाल के द्वादश सूर्य्यों से समुद्र सूखने लगता है । उसने ऐसे यज्ञकरे जिसके क्षीर घृतकी आहुति का धुवां मेघ बादलहोकर पर्व्वतों पर विराजा । जिसकी दृढ़ दृष्टि देखकर कुलाचल पर्व्वत भी नम्रीभूत होता था । जैसे फूलों से पूर्णलता नमती है तैसेही लीलाकरके उसने भुवन को विस्तार सहित जीता और त्रिलोकी को जीतकर दशकोटि वर्ष पर्यंत राजाबलि राज्य करता रहा । राजाबलिने युगों के समूह व्यतीत हुये देखे थे और अनेक देवता और दैत्य भी उपजते मिटते अनेक बार देखे थे । त्रिलोकी के अनेक भोग भी उसने भोगे थे निदान उन से उद्वेग पाकर सुमेरु के शिखर पर एक ऊंचे झरोखे में अकेला जा बैठा और संसारकी स्थितिकी चिन्तना करने लगा कि, इस बड़े चक्रवर्त्ती राज्य से मुझको क्या प्रयोजन है ? यद्यपि त्रिलोकी का राज्य बड़ा है तौ भी इसमें आश्चर्य्य क्याहै । इसमें मैं चिरकाल भोग भोगता रहाहूं परन्तु शांति न हुई । ये भोग उपजकर फिर नष्ट होजाते हैं, इन भोगों से मुझे शांति सुख प्राप्त नहीं हुआ पर वारंवार मैं वही कर्म और वही व्यवहार करताहूं और दिनरात्रि वही क्रिया करने में लज्जाभी नहीं आती । वही स्त्री आलिङ्गन करती, फिर भोजन करना; पुष्पों की शय्यापर शयन करना और क्रीड़ा करनी; ये कर्म बड़ों को लज्जा के कारणहैं वही निरस व्यवहार फिर करना जो एक बार निरस हुआ और उस काल में तृप्त करताहै; फिर वारंवार दिन २ करते हैं यह मैं मानताहूं कि, यह काम बुद्धिमानों को हँसने योग्य और लज्जा का कारणहै । जीवों के चित्तमें वृथा सङ्कल्प विकल्प उठते हैं—जैसे समुद्रमें तरंग उपजते और मिटते हैं तैसेही यह सङ्कल्प और इच्छा जाल जो उठते और मिटते हैं सो उन्मत्त की नाईं जीवोंकी चेष्टाहै यह तो हँसी करने योग्य बालकों की लीला है और मूर्खतासे अनर्थ फैलाती है । इस में जो कुछ बड़ा उदार फल हो वह मैं नहीं देखता बल्कि इसमें भोगों से भिन्नकार्य कुछ नहीं मिलता इसलिये जो कुछ इससे रमणीय और अविनाशी हो उसको शीघ्रही चिन्तन करूं ऐसे विचार कर कहने लगा कि, मैंने प्रथम भगवान् विरोचनसे पूंछा था । मेरा पिता विरोचन आत्मतत्त्व का ज्ञाताथा और सर्वलोकों में गया था उससे मैंने प्रश्न किया था कि, हे भगवन् महात्मन् ! जहां सब दुःखों और सुखों का अन्त होजाता है और सर्व भ्रम शान्त होजाता है वह कौन स्थान है ? वह पद मुझसे कहिये जहां मन का मोह नाश होजाता है; सर्व इच्छासे मुक्त होताहै और रागद्वेषसे रहित जिसमें सर्वदा विश्राम होता है फिर कुछ क्षोभ नहीं रहता । हे तात ! वह कौन पदहै जिसके पायेसे और कुछ

पानानहीं रहता और जिसके देखे से और कुछ देखनानहीं रहता ? यद्यपि जगत् के अत्यन्त भोग पदार्थ हैं तौ भी सुखदायक नहीं भासते हैं क्योंकि; क्षोभ करते हैं और उनसे योगीश्वरों के मनभी मोहित होकर गिर पड़ते हैं । हे तात ! जो सुख सुन्दर विस्तीर्ण आनन्द है वह मुझसे कहिये । उसमें स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाऊंगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेविरोचनवर्णनंनाम
द्वाविंशतितमस्सर्गः २२ ॥

विरोचन बोले, हे पुत्र ! एक अति विस्तीर्ण विपुल देश है उसमें अनेक सहस्र त्रिलोकियां भासती हैं । वहां समुद्र, जल, धारा, पर्वत, वन, तीर्थ, नदियां, तालाब, पृथ्वी, आकाश, नन्दनवन, पवन, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्यलोक, देश, देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, कमलों की शोभा, काष्ठ, तृण, चर, अचर, दिशा, ऊर्ध्व, अध, मध्य, प्रकाश, तम, अहं, विष्णु, इन्द्र, रुद्रादिक नहीं हैं; केवल एकही है—जो महान्ता नानाप्रकार प्रकाश को धरनेवाला है; सबका कर्त्ता, सर्व व्यापक है और सर्व रूप तूष्णीं भाव से स्थित है । उसने सब मंत्रियों सहित एक मंत्री संकल्प किया । वह मंत्री जो न बने उसको शीघ्रही बनालेता है और जो बने उसको न बनाने का भी समर्थ है वह आप से कुछ नहीं भोगता और सब जानने को समर्थ है । केवल राजा के अर्थ वह सर्व कार्यका कर्त्ता है । यद्यपि वह आप अज्ञ है तौ भी राजा के बलसे तनुतासे ज्ञाता और कार्य करता है । यह सब कार्यौंको करता है और उसका राजा एकतामें केवल अपने आप में स्थित है । बलिने पूंछा, हे प्रभो ! आधि-व्याधि दुःखों से रहित जो प्रकाशवान् है वह देश कौनहै, उसकी प्राप्ति किस साधन से होती है और आगे किस ने पाया है ? ऐसा मंत्री कौन है और वह महाबली राजा कौन है जो जगत् जाल संयुक्त हमने भी नहीं जीता ? हे देव ! यह अपूर्व आख्यान तुम ने कहा है जो आगे मैंने नहीं सुनाथा । मेरे हृदय आकाश में संशयरूपी बादल उदय हुआ है सो वचनरूपी पवन से निवृत्तकरो । विरोचन बोले, हे पुत्र ! उस देशका मंत्री भगवान् और अनेक कल्पके देवता और असुर गणों से वश नहीं होता; सहस्र नेत्र जो इन्द्र हैं उनके वशभी नहीं होता; यम, कुबेर उसे वश कर नहीं सक्के और देवता और असुरों से भी जीता नहीं जाता । मुशल, वज्र, चक्र, गदादिक खड्ग उसपर चलाये कुण्ठित होजाते हैं—जैसे पाषाण पर चलाये से कमल कुण्ठित होजाते हैं । वह मंत्री अस्त्र और शस्त्रसे वशनहीं होता और बड़े युद्ध कर्मों से भी नहीं पायाजाता । देवता और दैत्य सबको उसने वश कियाहै; विष्णु पर्यंत देवता और हिरण्यकशिपुआदिक असुर उसने डाल दिये हैं । जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरु के कल्पवृक्ष को गिरा देता है । प्रमाद से इस त्रिलोकी को वशकर चक्रवर्त्ती राजावत् वह स्थितहै और सुर

असुरों के समूह उससे भासते हैं। यद्यपि वह गुह्य और गुणहीन है तो भी दुर्मति, दुष्ट अहंकार और क्रोध उससे उदय होते हैं। देवता और दैत्यों के समूह फिर फिर उपजाता है सो इसकी क्रीड़ा है। ऐसा मंत्रोंसे संयुक्त मंत्री है। हे पुत्र! जब उस के राजा को वशकीजिये तब उसके मंत्रीको वशकरना सुगम होता है। राजाको वशकिये विना मंत्री वश नहीं होता; कभी भीतर रहता है कभी बाहर जाता है। जिसकाल में राजाकी इच्छाहोती है कि, मंत्री अपने को जीते तब यत्न विना जीत लेता है। वह ऐसा बली मल्लहै जिससे तीनों जगत् उल्लासको प्राप्तहुये हैं वह मंत्री मानो सूर्य है जिसके उदयहुये से त्रिलोकीरूपी कमलों की खानि विकाशको प्राप्तहोती है और जिसके लयहुये से जगत्रूपी कमल लय होजाते हैं। हे पुत्र! यदि उसके जीतनेकी तुझको शक्ति है तब तो तू पराक्रमवान् है और यदि मोहसे रहित एकत्र बुद्धि हो उससे एकको जीतसकेगा तब तू धैर्यवान् है और तेरी सुन्दर वृत्ति है क्योंकि; उसके जीतने से जो नहीं जीता उसपर जीतपाता है और जो उसको नहीं जीता पर और और लोक सब जीते हैं तौभी जीते अजीत होजावेंगे। इसकारण जो तू अनन्तसुख चाहता है तो जो नित्य अविनाशी है उसके जीतने के निमित्त यत्नसे स्थितहो और बड़े कष्ट और चेष्टा करकेभी उसको वशकर। देवता, दैत्य, यक्ष, मनुष्य, महासर्प और किन्नरों संयुक्त अतिबली हैं तौभी सर्व ओर से यत्नकरने से वश होते हैं। इससे उसको वश कर॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिवृत्तान्तविरोचन
गाथानामत्रयोविंशतितमस्सर्गः २३॥

बलिने पूंछा, हे भगवन्! किसउपाय से वह जीताजाता है और ऐसा महावीर्यवान् मंत्री कौन है और राजा कौन है? यह वृत्तान्त सब समुझै शीघ्रही कहिये कि, उपाय करूं। विरोचन बोले, हे पुत्र! स्थित हुआ भी त्यागने योग्य है। ऐसा मंत्री जिस उपाय से जीतिये सो भली प्रकर कहताहूं तू सुन। उस युक्ति के ग्रहण किये से शीघ्रही वश होताहै; युक्ति विना वश नहीं होता। जैसे बालकको युक्ति से वश करते हैं तैसेही जो पुरुष युक्ति से उस मंत्रीको वशकरता है उसको राजा का दर्शन होता है। और उससे परमपद पाता है। जब राजा का दर्शन होता है तब मंत्री वश होजाता है और उस मंत्री के वश किये से फिर राजाका दर्शन होता है। जबतक राजा को न देखा तबतक मंत्री वश नहीं होता और जबतक मंत्री को वश नहीं किया तब तक राजाका दर्शन नहीं होता। राजा के देखे विना मंत्रीका जीतना कठिन है और मंत्रीके जीतेविना राजाको देखना कठिन है। इसकारण दोनों का इकट्ठा अभ्यासकर। राजाका दर्शन और मंत्री का जीतना अपने पुरुष प्रयत्न और शनैः शनैः अभ्यास

से होता है और दोनों के सम्पादन से मनुष्य शुभता को प्राप्तहोता है । जब तू अभ्यास करेगा तब उस देश को प्राप्तहोगा; यह अभ्यास का फल है । हे दैत्यराज ! जब उसको पावेगा तब रंचक भी शोक तुझको न रहेगा और सब यत्नोंसे शान्त होकर नित्य प्रफुल्लित और प्रसन्न रहेगा । जो साधु जन हैं वे सर्व संशय से रहित उस देश में स्थित होते हैं । हे पुत्र ! सुन, वह देश अब मैं तुझसे प्रकट करके कहता हूं । देशनाम मोक्षका है जहां सर्वदुःख नष्टहोजाते हैं और राजा उसदेशका आत्म भगवान् है जो सर्वपदोंसेअतीत है । उस महाराजाने मंत्री मनको कियाहै सो मन परिणामको पाकर सर्व ओरसे विश्वरूप हुआ है। जैसे मृत्तिकाका पिण्ड घटभाव को प्राप्तहुआहै और जैसे धूम्रबादलको धरता है तैसेही मनने विश्वरूपधराहै । उस मन को जीतेसे सबसुख विश्वके जीतपाताहै । मनका जीतना कठिनहै परन्तु युक्तिसे वश होता है । बलिने पूछा, हे भगवन् ! उस मनके वश करने की युक्ति मुझसे कहिये । विरोचन बोले, हे पुत्र ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके रसकी सर्वदा सर्व ओरसे आस्था त्यागनी अर्थात् नाशवन्त और भ्रमरूप जानना, यही मनके जीतनेकी परम युक्ति है । मनरूपी हाथी विषयरूपी मदसे मस्तहै वह इस युक्तिसे शीघ्रही दमन होजाताहै । यह युक्ति कठिन है और अतिदुःखसे प्राप्तहोती है परन्तु अभ्याससे सुखनही प्राप्त होजाती है । क्रम से अभ्यास कियेसे और विरक्ततासे यह युक्ति सर्वओरसे प्रकट होतीहै—जैसे रसवान् पृथ्वीसे लता उपजती हैं तैसेही जो२ शठजीवहैं वे इसकी वांछाकरतेहैं परन्तु अभ्यास विना उन्हें नहीं प्राप्त होती और अभ्यासवान् को प्रकट होती है । इससे तुम भी अभ्यास सहित युक्ति का आश्रयकरो । जबतक विषयों से विरक्तता नहीं उपजती तबतक संसाररूपी वनके दुःखोंमें भ्रमताहै पर विषयोंसे विरक्तता अभ्यासविना किसीको नहीं प्राप्त होती । जैसे अभ्यास विना नहीं पहुंचता तैसेही जब आत्मा ध्येयको पुरुष निरन्तर धरता है तब अभ्यासवान्की वृत्ति विषयों में अप्रतीत होतीहै । जैसे जलके अभ्यास से बेलको सींचते हैं तब लता वृद्धि होती है; ऐसेही पुरुषार्थ से सब कार्योंकी प्राप्तिहोती है; भिन्न नहीं होता । यह निश्चयकियाहै कि जो क्रिया आपसे आप करिये उसका फल अवश्य प्राप्त होताहै। वही लोगोंमेंदेव कहाताहै । जो अवश्य होनाहै उसकी जो नीति है वह दूरनहीं होती उसेही देव शब्द कहिये वा नीतिकहिये पर अपनेही पुरुषार्थ का फलपाताहै—जैसे मरुथलमें भ्रम से जल भासता है और सम्यक्ज्ञानसे भ्रमनिवृत्त होजाताहै । इसदेव और नीति को अपने पुरुषार्थ से जीतो । जैसा पुरुषार्थसे सङ्कल्प दृढ़ करता है तैसाही भासता है । जैसे आकाशको नीलता ग्रहणकरती है पर वह नीलता कुछ है नहीं; तैसेही सुख दुःख देनेवाला और कोई नहीं; जैसा सङ्कल्प करताहै तैसाहीहो भासता है और जैसी नीति

होती है तैसाही सङ्कल्प करता है उसी नीति से मिलकर कदाचित् कर्म करता है तो उससे इस जगत् कोशमें जीव शरीर धारकर फिरताहै—जैसे आकाश में पवन फिरता है पर वह कदाचित् नीतिसे और कदाचित् नीतिसे रहित फिरता है; तैसेही दोनों सीढ़ियां मनमें होती हैं। आकाशरूपी मनमें नीति अनीति रूपी वायु फिरता है इस कारण, जबतक मन हैं तब तक नीति है और देव है। मनसे रहित न नीति है, न देव है; मनके अस्त हुये जो है वहीं रहता है; तैसेही जीवपुरुषसे पुरुषार्थ कर जैसा संकल्प इस लोकमें दृढ़होता है सो कदाचित् अन्यथा नहीं होता। हे पुत्र! अपने पुरुषार्थ विना यहां कुछ सिद्धनहीं होता; इससे परम पुरुषार्थ करके विषयसे विरक्त हो। जब तक विरक्तता नहीं उपजती तब तक परम सुखके देनेवाली मोक्षपदवी और संसारभयका नाशकर्त्ता नहीं प्राप्तहोता। जब तक विषयों में मोहकारणप्राप्ति है तब तक संसार दशा डोलायमान करती है; दुःखदायक होती है और सर्प की नाईं विष फैलाती हैं; अभ्यासकिये विना निवृत्तनहीं होती। फिर बलिने पूछा कि, हे सब असुरों के ईश्वर! चित्तमें भोगोंसे विरक्तता कैसे स्थितहोती है; जो जीवोंको दीर्घ जीनेका कारणहै? विरोचन बोले; हे पुत्र! जैसे शरत्काल की महालता में फूल से फल परिपक्कहोता है तैसेही आत्मावलोकन करनेवाले पुरुषको भोगोंमें विरक्तता प्रकट होती है। आत्माके देखनेसे विषयोंकी प्रीति निवृत्त होजाती है और हृदय में स्थिति प्राप्त होती है। जैसे कमलोंके उदरमें सुन्दरशोभा स्थित होती है तैसेही बीजलक्ष्मीस्थित होती है। इससे सूक्ष्मबुद्धि विचारवेत्ताने आत्मदेवको देखकर विषयोंकी प्रीतिकी है उसे सब ओरसे निवारो। प्रथम दिनके दोभाग भोग कर्म देहके कार्यकरो; एक भाग शास्त्रोंका श्रवण विचार करो और एक भाग गुरुकीसेवा टहलकरो। जब कुछ विचार संयुक्त मनहो तब दो भाग वैराग्य संयुक्त शास्त्रोंको विचारो और दोभागध्यान और गुरुके पूजन में रहो। इसक्रमसे जीव ज्ञान कथाके योग्य होताहै और क्रम से निर्मल भावको ग्रहण करता है; तब शनैश्शनैः उत्तमपदको भावना होती है। इसप्रकार शास्त्रों के अर्थ विचारमें चित्तरूपी बालक को परचावो। जब परमात्मामें ज्ञान प्राप्त होताहै तब कर्म फांसीसे छूटजाता है। जैसे चन्द्रमाके उदयहुये चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत होताहै तैसेही वह शीतलहो विराजताहै। बुद्धिके विचारसे सर्वदा सम और आत्मदृष्टि देखनी और तृष्णाका बन्धन त्यागना यह परस्पर कारण है। (परमात्मा के देखनेसे तृष्णा दूरहो जाती है और तृष्णाके त्याग से आत्माका दर्शन होता है। जैसे नौका को केवट लेजाता है और नौका केवट को लेजाती है तैसेही परमात्मा का दर्शन होता है और भोगों का त्याग होता है। परब्रह्म में जो अनन्त विश्रान्ति नित्य उदय होती है सो मोक्षरूप आनन्द उदय होता है उसका अभाव कदाचित्

नहीं होता। जीवों को आनन्द आत्मविश्रान्ति के सिवा न तपों से प्राप्त होता न दानों से प्राप्त होता है और न तीर्थों से प्राप्त होता है । जब आत्मस्वभाव का दर्शन होता है तब भोगों से विरक्तता उपजती है पर आत्मस्वभाव का दर्शन अपने प्रयत्न विना और किसी युक्ति से नहीं प्राप्त होता है । हे पुत्र ! भोगों के त्याग करने और परमार्थ दर्शन के यत्न करने से ब्रह्मपद में विश्रान्त और परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होता है । ब्रह्मासे आदि काष्ठपर्य्यन्त को इस जगत् में ऐसा आनन्द कोई नहीं जैसापरमात्मामें स्थित हुये से है । इससे तुम पुरुष प्रयत्न का आश्रय करो और दैवको दूर से त्यागो । इसमार्ग के रोंकनेवाले भोगहैं, उनकी निन्दा बुद्धिमान् करते हैं । जब भोगों की निन्दा दृढ़ होती है तब विचार उपजता है—जैसे वर्षाकाल गये से शरत्कालकी सर्व दिशा निर्मल होजाती हैं तैसेही भोगों की निन्दा से विचार और विचारसे भोगों की निन्दा परस्पर होती हैं जैसे समुद्रकी अग्निसे धूम्र उदय होता है और बादल रूपहो वर्षाकर फिर समुद्रको पूर्ण करता है और जैसे मित्र आप से परस्पर कार्य्य सिद्ध करदेता है । इससे प्रथम तो दैवका अनादर करो और पुरुष प्रयत्न करके दांतों से दांतोंको पीसकर भोगोंकी प्रीति त्यागो और फिर पुरुषार्थ से प्रथम अविरोध उपजावो और उसे अपने गुणवान् जन्म और कल्याणमूर्त्ति को अर्पणकरो और भोगों से असंग होकर उनकी निंदाकरो तब विचार उपजेगा । फिर शास्त्रज्ञान को संग्रहकरो तब परमपद की प्राप्तिहोगी । हे दैत्यराज ! समयपाकर जब तू विषयों से विरक्तचित्त होगा तब विचारके वश से परमपद पावेगा । अपने आपमें जो पावनपद है उस में तब तू भलीप्रकार अत्यन्त विश्राम पावेगा और फिर कल्पना दुःख में न गिरेगा । अंग और देशाचार के कर्म से अल्पधन उपजाना फिर निन्दा से उसे साधू के संग लगाना । उनके संग से वैराग्य और विचार संयुक्तहुये तुझको आत्मलाभ होगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलोपाख्यानेचित्तचिकित्सोपदेशोनामचतुर्विंशतितमस्सर्ग्गः २४ ॥

बलिने विचारकिया कि, इसप्रकार मुझ से पूर्व पिताने कहाथा । अब मैं स्मृतिदृष्टि से प्रसन्नहुआ हूं और भोगोंसे विरक्तता उपजी है कि, इसलिये शान्त और सम, निर्मल, अमृतरूपी, शीतल सुखमें स्थितहोऊं । धन एकत्र होताहै और नाश होजाता है फिर आशा उपजती है और फिर धनसे पूर्णहोता है; फिर स्त्रियोंकी वांछा उपजती है और फिर उन्हें अंगीकार करता है । अब मैं विभूतिकी स्थिति से खेदवान् हुआहूं । अहो आश्चर्य है कि, इस रमणीय पृथ्वी से अब मैं सम शीतल चित्त होताहूं और दुःख सुखसे रहित सर्वशांति को प्राप्त होताहूं । जैसे चन्द्रमाके मण्डल में स्थित हुआ समशीतल होता है तैसेही भीतरसे मैं हर्षवान् और शीतल होताहूं । दुःखरूपी

विभूति ऐश्वर्य से रहितहो अब मैं अक्षोभहूंगा। यह सब मनरूपी बालक की दिन दिन प्रतिकला है। प्रथम मैं स्त्रीसे चिढ़ताथा फिर मोहसे मेरी प्रीति बढ़गई थी; जो कुछ दृष्टि से देखने योग्यथा वह मैंने देखा है; जो कुछ भोगने योग्यथा वह चिरकाल पर्यन्त अखण्ड भोगा है और सर्वभूतजातों को वशकररहाहूं पर उससे क्या शोभनीक हुआ। फिर २ उनमें वहीचेष्टा से और और देखे, इससे चित्तअपूर्व पदार्थ को नहीं देखता फिर २ जगत्के वही पदार्थ हैं। इससे अपनी बुद्धि से इनका निश्चय त्यागकर पूर्णसमुद्रवत् अपने आप से आपमें स्वच्छ, स्वस्थ और स्थितहूं। पाताल, पृथ्वी और स्वर्ग में, जो स्त्री और रत्न, पन्नगादिक सार हैं वे भी तुच्छ हैं, समयपाकर उन्हें कालग्रास लेता है। इतनेकाल पर्यन्त मैं बालकथा और जो तुच्छ पदार्थ मनके रचेहुये हैं उनकी इच्छा से दुःखकर देवतोंके साथ द्वेष करताथा। उनके दुःखों के त्यागनेसे क्या माहात्म्य का अनर्थ होगा? बड़ा कष्ट है कि, मैंने चिरकाल अनर्थ में अर्थ बुद्धिकीथी; अज्ञानरूपी मदसे मतवाला था और चंचल तृष्णासे इस जगत् में क्या नहीं किया। जो कार्य पीछे ताप बढ़ाते हैं वही मैंने किये हैं पर अब पूर्व तुच्छ चिन्तासे मुझको क्याहै। वर्त्तमान चिकित्सा पुरुषार्थ से सुफल होगा। जैसे समुद्र मथने से अमृत प्रकटभया है तैसेही अपरमित रूप आत्मा की भावना से अब सब ओर से सुखहोगा। मैं कौनहूं; और आत्मा के दर्शनकी युक्ति गुरुसे पूछूंगा। इसलिये अब मैं अज्ञानके नाश निमित्त शुक्र भगवान्का चिन्तनकरूं; वह जो प्रसन्नहोकर उपदेश करेगा उससे अनन्त विभवअपने आपमें आपसे स्थितहोगा और निष्काम पुरुषोंका उपदेश मेरे हृदय में फैलेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिचिन्तासिद्धांतोपदेशं नामपंचविंशस्सर्गः २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन करके बलिने नेत्रों को मूंदा और शुक्रजी जिनका आकाश में मन्दिर है और जो सर्वत्र पूर्ण चिन्मात्र तत्त्व के ध्यान में स्थित हैं आवाहनरूप ध्यान किया; और शुक्रजी ने जाना कि, हमारे शिष्य बलि ने हमारा ध्यान कियाहै। तब चिदात्मस्वरूप भार्गव अपनी देह वहांलेआये जहां रत्न के झरोखे में बलि बैठाथा और बलि उज्ज्वल और प्रभारूप गुरुको देखकर उठा और जैसे सूर्य्यमुखी कमल सूर्य्यको देखकर प्रफुल्लित होतेहैं तैसेही उसकाचित्त प्रफुल्लित होगया। तब उसने रत्न अर्घ्य पुष्पों से चरणवन्दना की और रत्नों से अर्घ दिया और बड़े सिंहासन पर बैठाकर कहा, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से मेरे हृदय में जो प्रतिभा उठती है वह स्थिर होकर मुझको प्रश्नमें लगाती है अब मैं उन भोगों से जो मोहके देने वालेहैं विरक्तहुआहूं और तत्त्वज्ञान की इच्छा करताहूं जिस से महामोह निवृत्त हो। इस ब्रह्माण्ड में स्थिर वस्तु कौनहै और उसका कितना प्रमाण है? इन्द्र क्या है

और अहं क्याहै ? मैं कौनहूं ? तुम कौनहो और यह लोक क्याहै ? इन प्रश्नोंका उत्तर कृपा करके कहिये । शुक्र बोले, हे दैत्यराज ! बहुतकहनेसे क्याहै; मैं आकाशमें जानाचाहता हूं इससे सबका सार संक्षेप से मैं तुम से कहता हूं सो सुनो । जो चेतनतत्त्व और विस्तृतरूप है वह सब चेतनमात्र है और चेतनही प्रमाण है । तूभी चैतनस्वरूप है, मैं भी चैतनहूं और यह लोक भी चैतनरूप है । यही सबका सार है । इस निश्चय को हृदयमें दृढ़कर धारोगे तब निर्मल निश्चयात्मकबुद्धिसे अपने को आपसे देखोगे और उससे विश्रान्तिमान् होगे । हे राजन् ! यदि तुम कल्याणमूर्त्तिहो तो इसी कहने से सब सिद्धान्त को प्राप्त होगे और सबकासार जो चिदात्मा है उसको पावोगे और यदि कल्याणमूर्ति नहीं हो तो फिर कहना भी निरर्थक होताहै । चैतन को जो चैत्यकलाका सम्बन्ध है वही बन्धन है । इससे जो मुक्त है वही मुक्तहै । आत्मतत्त्व चैतनस्वरूप चैत्यकलना से रहित है । यह सब सिद्धान्तों का संग्रह है । हे राजन् ! इस निश्चयको धारो और निर्मल बुद्धि से अपने आपसे आपको देखो; यही आत्मपद की प्राप्ति है । सप्तऋषियों से देवताओं का कोई कार्य्य है उस निमित्त मैं अब आकाश जाताहूं । जबतक यह देह है तबतक मुक्त बुद्धिको यथा प्राप्त कार्य त्यागने से योग्य नहीं । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे कहकर शुक्र बड़ेवेग से आकाश में चले और जैसे समुद्रसे तरङ्ग उठकर लीन होजावें तैसेही शुक्रजी अन्तर्द्धान होगये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबल्युपदेशोनामषड्विंशतितमस्सर्गः २६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! देवता और दैत्योंके पूजनेयोग्य शुक्रकेगये से बलवानों में श्रेष्ठ बलि मन में विचारने लगा कि, भगवान् शुक्रजी यह क्या कहगये कि, त्रिलोकी चिन्मात्ररूप है; मैं भी चैतनहूं, दिशाभी चैतनरूपहैं; परमार्थ से आदि जो सत्स्वरूप है वह भी चैतन उससे भिन्न नहीं; यह जो सूर्य है उसमें चैतन होनेसेही सूर्यत्वभाव भासता है और यह जो भूमि है उसको चैतन न चेते तो इसमें भूमित्वभाव नहीं । यह जो दशों दिशा हैं यदि इनको चैतन न चेते तो दिशा में दिशात्वभाव न रहे; पर्वत में पर्वतता भी चेतन विना नहीं; इस जगत् में जगद्भाव; आकाश में आकाशता; शरीर में लक्षणभी चैतन विना न पाइयेगा; इन्द्रियां भी चैतन हैं; मनभी चैतन है; भीतर बाहर सब चैतन है और चिदात्माही अहंत्वंभावरूप होकर स्थित है । चैतन मैंहूं; सब इन्द्रियों संयुक्त विषयों का स्पर्श मैं करताहूं और कदाचित् कुछ नहीं किया । काष्ठलोष्ट तुल्य शरीर से मेराक्याहै ? मैंतो संपूर्ण जगत् में आत्मा चैतनहूं और आकाश में भी एक मैं आत्माहूं । सूर्य और भूत, पिञ्जर, देवता, दैत्य और स्थावर जङ्गम सबका चैतन आत्मा एक अद्वैत चैतन है और द्वैतकलना नहीं । बस यदि इस लोकमें द्वैतका असम्भव है तो शत्रु कौनहै और मित्र किसको कहिये ? जिस शरीर

का नामवलि है उसका शिरकाटा तो आत्मा का क्याकाटा ? सब लोगों में आत्मा पूर्ण है पर जब चित्त दुःख चेतता है तब दुःखी होता है चेतने विना दुःख नहीं पाता। इस कारण जो दुःखदायक भाव-अभाव पदार्थ भासते हैं वे सर्व आत्मरूप हैं, चैतनतत्त्व से भिन्न कुछ नहीं। सब ओर से आत्मा पूर्ण है, आत्मा से भिन्न जगत्का कुछ व्यवहार नहीं। न कोई दुःखहै; न कोई रोगहै; न मन है; न मनकी वृत्तिहै; एक शुद्ध चैतनमात्र आत्मतत्त्व है और विकल्पकलना कोई नहीं। सब ओरसे चैतन स्वरूप, व्यापक, नित्यानन्द, अद्वैत, सब से अतीत और अंशांशीभाव से रहित चैतनसत्ता व्यापक है। चैतन आदिक नाम से भी मैं रहितहूं वे चैतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं। चैतन जो आत्मा की स्फुरन शक्ति है वही विस्तार में जगत्रूप होकर भासती है; द्रष्टा, दर्शनसे मुक्त केवल अद्वैतरूप है और प्रकाश प्रकाशक भावसे रहित निराभास द्रष्टा परमेश्वर रूपहूं। न मैं कर्त्ताहूं और न मैं भोक्ताहूं;मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप कलना कलंक से रहितहूं। इन से परेहूं और यह स्वरूप भी मैंहूं। यह मेरे में आभासमात्र है और मैं उदित नित्य और आभास से भी रहित एक प्रकाशरूपहूं। स्वरूपा होने से मेराचित्त दृश्यके रागसे रहित मुक्तरूपहै। प्रत्यक्ष चैतन जो मेरास्वरूपहै उसको नमस्कार है। चित्त दृश्य से रहित है और युक्ति अयुक्ति सर्वका प्रकाश स्वरूप मैंहूं, मुझको नमस्कार है। मैं चित्त से रहित चैतनहूं; सब ओरसे शान्तरूपहूं; फुरने से रहितहूं और आकाशकी नाईं अनन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म; दुःख सुख से मुक्त और संवेदन से रहित असंवेदनरूपहूं। मैं चैत्यसे रहित चैतनहूं, जगत् के भाव अभाव पदार्थ मुझको नहीं छेदसक्ते। अथवा यह जगत् के पदार्थ छेदते हैं वह भी मुझसे भिन्न नहीं क्योंकि, छेद मैंहूं और छेदने वाला मैंहूं। स्वभावभूत वस्तु से वस्तु ग्रहण होती है अथवा नहीं होती तौभी किससे किसका नाशहो; मैं सर्वदा, सर्व प्रकार सर्वशक्तिरूप हूं; सङ्कल्प विकल्प से अब क्या है। मैं एकही चैतन अजड़रूप होकर प्रकाशता हूं। जो कुछ जगज्जाल है वह सब मैंहींहूं मुझसे भिन्न कुछ नहीं। इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इस प्रकार तत्त्व के वेत्ता राजा बलि ने विचारा तब ओंकार की अर्द्धमात्रा तुरीयपद की भावना से ध्यान में स्थित हुआ और उसके संकल्प भली प्रकार शान्त होगये। वह सब कलना और चित्त चैत्य से रहित निःसंग होकर स्थित हुआ और ध्याता जोहै अहंकार; ध्यान जो है मनकी वृत्ति और ध्येय जिसको ध्याता था तीनोंसे रहितहुआ और मन से सब वासना नष्ट होगई। जैसे वायु से रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है तैसेही बलि शान्तरूप पदको प्राप्त हुआ और रत्नों के झरोखे में बैठे दीर्घ काल बीत गया। जैसे स्तम्भ में पुतली हो तैसेही सर्व इषणा से रहित वह समाधि में

स्थित रहा और सब क्षोभ, दुःख, विघ्न से रहित निर्म्मल चित्त, शरत्काल के आकाशवत् होरहा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिविश्रान्तवर्णनन्नामसप्तविंशतितमस्सर्गः २७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इस प्रकार दैत्यराज बहुत कालपर्य्यन्त समाधि में बैठा रहा तब बान्धव, मित्र, टहलुये, मंत्री रत्नों के झरोखे में देखने चले कि, राजा को क्या हुआ । ऐसा विचार कर उन्होंने किवाड़ों को खोला और ऊपर चढ़े । यक्ष, विद्याधर और नाग एक ओर खड़े रहे और रंभा और तिलोत्तमादिक अप्सरागण हाथों में चमरले खड़ीहुई और नदियां, समुद्र, पर्वत आदिक मूर्त्ति धारकर और रत्न आदिक भेंट लेकर सब प्रणाम के निमित्त खड़ेहुये और त्रिलोकी के उदरवर्ती जो कुछ थे वे सब आये पर राजा बलि ध्यान में ऐसा स्थित था मानों चित्रकी मूर्ति लिखी है और पर्वतवत् स्थित है । उसको देख कर सब दैत्यों ने प्रणाम किया; कोई उसे देख कर शोकवान् हुये, कोई आश्चर्यवान्, कोई आनन्दवान् हुये और कोई भय को प्राप्त हुये । तब मंत्री विचारने लगे कि राजा की क्या दशाहुई है । इस लिये उसने शुक्रजीका ध्यान किया और भार्गवमुनि झरोखे में आये । उनको देख कर दैत्यगणोंने पूजन किया और बड़े सिंहासन पर गुरु को बैठाया बलिको ध्यान स्थित देख कर शुक्रजी अति प्रसन्न हुये कि, जो पद मैंने उपदेश किया था । उसमें इसने विश्राम पाया है इसका भ्रम अब नष्ट हुआ है और क्षीर समुद्रवत् प्रकाश है । ऐसे देख कर शुक्रजी ने कहा बड़ा आश्चर्य है कि, दैत्यराज ने विचार करके निर्मल आत्मप्रकाश पाया है । अब भगवान् सिद्धहुआ है और अपने स्वरूप में जो सब दुःखों से रहित पद है उसमें यह स्थितहुआ है और चिन्ता भ्रम इसका क्षीण हुआ है । अब इसको मत जगाओ । यह आत्मज्ञान को प्राप्त हुआ है और यत्न और क्लेश इसका दूर होगया है । जैसे सूर्य्य के उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाताहै । अब मैं इसको नहीं जगाता यह आपही दिव्यवर्ष में जागेगा क्योंकि, प्रारब्ध अंकुर इसका रहता है और उठकर अपना राज कार्य्य करेगा । अब तुम इसको मत जगाओ, अपने राज कार्य्य में जा लगो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इस प्रकार शुक्रजी ने कहा तब सब सुन कर सूखे वृक्षकी मंजरी ऐसे होगये और शुक्रजी अन्तर्द्धान होगये दैत्य भी अपने राजा विरोचन की सभामें जाकर अपने २ व्यवहार में लगे और खेचर भूचर और पातालवासी अपने २ स्थानमें गये और देवता, दिशा, पर्वत, समुद्र, नाग, किन्नर, गन्धर्व सब अपने २ व्यवहार में जालगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलिविज्ञानप्राप्ति नामाष्टविंशतितमस्सर्गः २८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हुये तब दैत्यराज समाधि से उतरे; नौबत नगारे बाजनेलगे; देवता और दैत्य बड़े जय जय शब्दकरने लगे नगरवासी देख कर बड़े प्रसन्न हुये और जैसे सूर्य के उदय हुये कमल खिल आते हैं तैसेही खिलआये। जबतक दैत्य न आये थे तबतक राजाने विचारा कि, बड़ा आश्चर्य है कि, परमपद जो ऐसी रमणीय, शान्तरूप और शीतल पदवी है उसमें स्थित होकर मैंने परम विश्राम पाया है। इससे फिर उसीपद का आश्रयकरूं और उसीमें स्थित होऊं राज्य विभूति से मेरा क्या प्रयोजन है ऐसा आनन्द शीतल चन्द्रमा के मण्डल में भी नहीं होता जैसा अनुभव में स्थित हुये से पाया जाताहै। हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन कर वह फिर समाधि करने लगा कि, जिससे गलित मन हो। तब दैत्यों की सेना, मन्त्री, भृत्य, बान्धवोंने आनकर उनको घेरलिया और जैसे चन्द्रमा को मेघ घेर लेताहै तैसेही घेर करके प्रणाम करने लगे। बलिराजाने मनमें विचारा कि, मुझको त्यागने और ग्रहण करने योग्य क्या है; त्याग उसका करना चाहिये जो अनिष्ट और दुःखदायक हो और ग्रहण उसका कीजिये जो आगे न हो पर आत्मा से व्यतिरेक कुछ नहीं उसमें ग्रहण और त्याग किसका करूं। मोक्ष की इच्छा भी मैं किसकारण करूं, क्योंकि; जो बन्ध होता है तो मोक्षकी इच्छा करता है सो जब बंधही नहीं तो मोक्षकी इच्छा कैसे हो? यह बंध और मोक्ष बालकों की क्रीड़ा कही है वास्तव में न बंध है, न मोक्ष है। यह कल्पना भी मूढ़ता में है सो मूढ़ता तो मेरी नष्ट हुई है; अब मुझको ध्यानविलाससे क्या प्रयोजनहै और ध्यानसे क्या है। अब मुझको न परमतत्त्वकी इच्छा है और न कुछ ध्यानसे प्रयोजन है अर्थात् न विदेह मुक्तकी इच्छा है न जगत् में स्थित रहनेकी इच्छा है; न मैं मरताहूं; न जीता हूं; न सत्यहूं; न असत्यहूं; न समहूं, न विषमहूं; न कोई मेरा है और न कोई और हूं; अद्वैतरूप मैं एक आत्माहूं सो मुझको नमस्कार है। इस राजक्रिया में मैं स्थितहूं तोभी आत्मपद कार्य्य में स्थितहूं; और सदा शीतलहूं। ध्यानदिशासे मुझको सिद्धता नहीं और न राजकार्य्य विभूतिसे कुछ सिद्ध होना है। इससे राजकार्य्य से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं; मैं आकाशवत्ही रहताहूं। मैं न कुछ इच्छा करूंगा, न राज्यकरूंगा तोभी मेरा कुछसिद्ध नहीं होता इससे जो कुछ प्राकृत आचारहै उसी को मैं करूं। बंधनका कारण अज्ञान है सो तो नष्ट हुआ है अब कोई क्रिया मुझको बंधनरूप नहीं। हे रामजी! इसीप्रकार निर्णय करके बलिने दैत्योंकी ओर देखा तब देवता और दैत्योंने शीशसे प्रणाम किया और राजाने दृष्टि करके उनकी प्रणाम बन्दना अङ्गीकार की। तब राजाबलिने ध्येय वासनाको मनसे त्यागकिया और राज्य के कार्य्य करनेलगा। ब्राह्मण, देवता और गुरुका पूर्ववत् पूजन किया, जो कोई अर्थी

और मित्र, बांधव टहलुये थे उनका अर्थ पूर्ण किया; स्त्रियों को नानाप्रकार के वस्त्र आभूषणदिये और जो दण्डदेनेयोग्यथे उनको दण्डदिया। फिर उसने यज्ञका आरम्भ करके सुरगणों का पूजन किया और शुक्रजी से आदिले मुख्य २ देवता यज्ञ कराने के निमित्त बैठे। फिर विष्णु भगवान् ने इन्द्रके अर्थ सिद्ध करने के निमित्त छल करके बलिराजाको वञ्चित करलिया और बांधकर पाताल में स्थित किया। वह आगे इन्द्र होगा अब जीवन्मुक्त, स्वस्थवपु, सदा ध्यानस्थित और इषणासे रहित पुरुष पाताल में है। हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुष राजाबलि सम्पदा और आपदा में समचित्त विचरता है; वह सम्पदामें हर्ष नहीं करता और आपदा में शोक नहीं करता। अनेक जीवोंको उपजना और लयहोना बलिने देखा है; दश करोड़ वर्ष पर्यन्त तीनों लोकों का कार्य्य किया और बड़े विषय भोग भोगे हैं। अन्त में भोगों को विरस जानकर उसका मन विरस हुआ, विचार कियेसे तृष्णा नष्ट होगई और मन उपशम हुआ। हेयोपादेयकी नानाप्रकारकी चेष्टा बलिने देखीं पर पदार्थों के भाव अभाव में मन शान्तिको न प्राप्त हुआ। अब भोगोंकी अभिलाषा त्याग आत्मारामी हो नित्य स्वरूप में स्थित पातालमें विराजता है। हे रामजी! इस बलिको फिर इस जगत् का इन्द्र होना है और सम्पूर्ण जगत्का कार्य्य करनाहै वह अनेक वर्ष आज्ञा चलावेगा परन्तु इन्द्रपदको पाकरभी तुष्टवान् न होगा और अपने ऐश्वर्य्य पदके गिरनेसे खेदवान् भी न होगा और सब पदार्थों और विभूतियों के उदय और अस्तमें अमरहोगा। यह बलिकी विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तान्त कहाहै। इसी दृष्टिका आश्रय करके तुम भी स्थितहो और बलिकी नाईं अपने विवेक से नित्य तृप्ति आत्मनिश्चय को धारो कि, सर्व्व मैंहींहूं। इस निश्चयसे निर्द्वन्द्व और परमपद प्राप्त होगा। हे रामजी! दश करोड़ वर्ष तीन लोकोंका राज्य बलिने भोगा और अन्त में विरक्त हुआ तैसेही तुम भी भोगों से विरक्त होजावो। ये भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागकर परमपद में प्राप्त होजाओ। यह जो दृश्य प्रपंच नानाप्रकार के विकार संयुक्त भासता है वह न कोई तेराहै और न तू किसीका है। जैसे पर्व्वत और शिला में बड़ा भेद है तैसेही जिस पुरुष का मन संसार की ओर धावता है वह मनकी वृत्ति में डूबताहै। जब तुम मनको हृदय में धरोगे तब सब जगत्का प्रकाश होगा। तुम आत्मस्वरूप हो तो अपना क्या और पराया क्या-यह सब मिथ्या कल्पना है। तुम सबके आदि पुरुषोत्तम हो, तुमहीं साकाररूप पदार्थ और तुमहीं सबओर पूर्ण और सब जगत् में चेतनरूपहो। और स्थावर-जंगम जगत् सब तुममें पिरोया है-जैसे सूत में मालाके दाने पिरोये हैं। तुम नित्यशुद्ध, उदित, बोध स्वरूप और भ्रान्ति से रहित हो। जन्म आदिक सर्व्व रोगके नाश निमित्त आत्मविचार करके बलात्कार से भोगों का त्यागकर सर्व्व के

भोक्ता होजाओ। तुम केवल स्वरूप जगत्के नाथ हो और चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्व्वदा स्थित हो। सर्व्व जगत् तुम्हारे प्रकाश से प्रकाशता है और सुख दुःख की कल्पना तुम्हारे में कोई नहीं तुम तो शुद्ध, सर्वात्मा और सर्व्व प्रकाशक हो; इष्ट अनिष्ट को त्याग करके केवल अपने स्वरूपमें स्थितहो। इष्ट अनिष्टके त्यागसे निरन्तर सत्यता उदय होती है उस सत्यता को हृदय में धार फिर जन्म मरण भी नहीं आता। जिस २ पदार्थ में मन लगे उससे निकालकर आत्मतत्त्व में लगाओ। जब इस प्रकार तुम दृढ़ अभ्यास करोगे तब मन जो उन्मत्तहाथी है वह बांधा जावेगा और तभी सर्व्व सिद्धान्त के परमसार को प्राप्त होगे। हे रामजी! तुम मूढ़ोंकी नाईं मत हो। क्योंकि, मूढ़ जीव सब चेष्टा मिथ्याही करता है मिथ्या चेष्टा से जिनकी बुद्धि नष्ट हुई है और अविद्यारूपी धूर्त्त से बिके हैं उनके तुल्य न होना। यह जगत् अणुमात्र भी कुछ नहीं है। पर बड़ा विस्ताररूपी जो दृष्ट आता है सो निर्णय से देखा है कि, मूढ़ता से भासित हुआ है। मूढ़ता परमदुःखरूप है, इस से अधिक दुःख कोई नहीं। आत्मारूपी सूर्य के आगे आवरणकर्त्ता जो अज्ञानरूपी मेघ है उसको विवेकरूपी पवन से नाशकरो तब आत्मा का साक्षात्कार होगा। आत्म विचार के अभ्यास और विषयों से वैराग्य विना आत्माका साक्षात्कार नहीं होता। वेदरूप वेदान्तशास्त्र जो दृष्टान्त और तर्कयुक्त है उन से भी अपने विचार विना साक्षात्कार नहीं होता। आत्मविचार और पुरुषार्थ से आत्माकी प्रसन्नता होती है और बुद्धि की निर्मलता और बोधसे प्राप्त होती है। इससे सङ्कल्प विकल्प से रहितहोकर चेतनतत्त्व में स्थित होजाओ। विस्तृत और व्यापकरूप आत्मतत्त्व की स्थिति मेरे वचनों से ग्रहण करके सब सङ्कल्प तुम्हारे लीन होगये हैं; संवेदनरूपी भ्रमशांतहुआ है और संसार कौतुकरूपी कुहिरा तुम्हारा नष्ट हुआ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेबलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनन्नामएकोनत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः २९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम विज्ञानप्राप्ति के निमित्त और क्रम सुनो जैसे दैत्य असुर प्रह्लाद को आत्मा की सिद्धताहुई तैसे तुमभी होजाओ। पाताल में एक हिरण्यकशिपु दैत्य महाबलिष्ठ हुआहै जिसने इन्द्रभगाये थे और विष्णुजी के सम उसका पराक्रम था। सम्पूर्ण भुवन उसने वशकर छोड़े थे और सर्व देवता और दैत्यों को वशकरके जगत्का कार्य्य करता था। वह दैत्यों और तीनों भुवनों का ईश्वर हुआ और समयपाकर कई पुत्र उत्पन्नकिये—जैसे वसन्तऋतु अंकुर उत्पन्न करती है। उस के पुत्रों में बड़ापुत्र प्रह्लाद सबसे अधिक प्रकाशवान् हुआ और तिसपुत्रसे हिरण्यकशिपु ऐसा शोभितहुआ जैसे सर्व्व सुन्दरलता से वसन्तऋतु शोभित है। जैसेप्रलय

कालमें सूर्य्य सब लोकों को तपाताहै तैसेही वह सबको तपाने लगा । जब दुष्टक्रीड़ासे देवताओं को दैत्य दुःख देनेलगे तब सबदेवता मिलकर विष्णुकी शरणगये और बिनती की कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है इसका नाशकरो और हमारी रक्षा करो। वारंवार दुखावने से महापुरुष भी क्रोधवान् होजाते हैं । हे रामजी ! जब इसप्रकार देवताओं ने प्रार्थना की तब विष्णुदेवने कहा अब तुमजाओ मैं उसको पुत्रके हेतु से मारूंगा । ऐसे कहकर विष्णुभगवान् अन्तर्द्धान होगये और हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्य्य की शिक्षा प्रह्लाद को देनेलगा परन्तु वह ग्रहण न करे और बहुत प्रकार ताड़ना भी दे तौभी उसकी शिक्षाको प्रह्लाद अङ्गीकार न करे । वह ईश्वर विष्णुजी की आराधनामें रहताथा इस कारण ताड़नाका दुःख प्रह्लादको कुछ न हो । तब दैत्य अपने हाथमें खड्ग लेकर कहनेलगा कि, हे दुष्ट ! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तू आराधन करता है ? मेरे सिवा ईश्वर और कौन है ? प्रह्लादने कहा मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है । तब हिरण्यकशिपुने कहा इस खम्भे में कहाँ है ? जो है तो दिखादे और यदि न दिखावेगा तो तुझको मारूंगा । तब सर्व्वव्यापक विष्णु खम्भे से भासने लगे और बड़े शब्द होनेलगे । फिर उस खम्भे को फोड़कर बड़ी भुजा और तीक्ष्णनखों के संयुक्त महाभयानकरूप से विष्णुभगवान् ने नरसिंहरूप प्रकटकरके हिरण्यकशिपु को नखोंसे विदारण किया और ऐसा कोपवान् रूपधरा जिससे दैत्योंके स्थान जलने लगे और दृष्टिसे मानों पर्व्वतचूर्ण होते थे दैत्योंके कई समूह मारेगये कईभाग और बहुत से दिशा विदिशा को दौड़गये—जैसे वायुके मारे मच्छर उड़ जाते हैं और कुछ पातालछिद्रमें नाशहोगये । निदान प्रलयकालवत् स्थान शून्य होगये मानों अकाल प्रलयआया है और दैत्यों को नाशकरके फिर विष्णुदेव अन्तर्द्धान होगये । कुछ दैत्य बांधव और टहलुये जो रहे थे वे प्रह्लाद के निकट मुख कुम्हिलाये हुये आये—जैसे जलसे रहित कमल होता है और भाई, बांधव मिलकर प्रह्लाद को समझाने लगे । प्रह्लादने सबसे मिलकर पिताका शोचकिया और फिर उठकर सबकर्म किये । निदान संशय संयुक्त सब दैत्य बैठे और विचार करके शोकवान् हुये और सब सूखकर चित्र की पुतलीवत् होगये । जैसे दग्धवृक्ष सूखकर रससे रहित होजाता है तैसेही हिरण्यकशिपु विना दैत्य शोकवान् और महादुःखी हुये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेहिरणकशिपुवधोनामत्रिंशत्तमस्सर्गः ३० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब हिरण्यकशिपुके मारने से दैत्य बहुतदुःखीहुये तब प्रह्लादने मौन होकर विचारा कि, पातालमें सब दैत्य मिलकर चिन्ता संयुक्त बैठेहैं । उनसे जाकर प्रह्लादने कहा कि, अब अपनी रक्षाके निमित्त कौन उपाय कीजियेगा, हमारे दैत्यों के नाश करनेवाले विष्णु बड़ेबली हैं; जिनके नख तीक्ष्णखड्ग की धार-

वत् हैं। जैसे सिंह मृगोंको मारताहै तैसे वे हमको मारते हैं और पातालमें दैत्य शांतिमान् कदाचित् नहीं होने पाते। जब दैत्य बर्धमान होते हैं तब विष्णु आ उन्हें नाश करते हैं और जैसे कमलों पर पर्व्वत आपड़े तैसे उन्हें चूर्ण करते हैं। बड़े आकाश गौरवशब्द करनेवाले दैत्य उपज उपज नष्ट होजाते हैं—जैसे जलमें तरंग उपज उपज नष्ट होजाते हैं भीतर बाहर वह हमको बड़ा कष्ट देता है। हमारा शत्रु बड़ादृढ़ और बड़ा अपूर्व तम आबढ़ाहै; हमाराहृदय तमसे पूर्णहोगया है और सम्पदा नष्टहोगई है। जो देवता हमारे पिता से चूर्णहुये थे उनका बल अब हम से अधिक होगयाहै और वे हमारी स्त्रियों को वशकर लेगये हैं—जैसे मृगको व्याधलेजाताहै। वे हमारा सब धन भी लेगये हैं। और हम दीन होरहे हैं। जैसे जल विना कमल कुम्हिलाजाताहै, तैसेही हम भी बांधव विना हुये हैं। हमारे घरोंमें धूल उड़ती है, जो बड़े स्थान मिलकर खचितकिये थे वे शून्यहोगये और हमारे स्थानोंमें जो बड़े कल्पवृक्ष लगेथे वे उखड़कर नन्दनवन में लगाये हैं। नरसिंहजी की सहायता से देवताओंने ऐसा बलपाया है। हमारे वृक्ष और स्थान नरसिंहजी ने जलादिये हैं जिन देवताओंकी स्त्रियोंके मुख दैत्य देखतेथे, उनसब दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख अब देवता देखते हैं। जिस सुमेरु पर्व्वत पर कल्प और मन्दारवृक्ष विराजते थे वे स्थान अबशून्य होगये, वहां धूलउड़ती है और सुमेरु दुर्लभ होगया है। जो दैत्यों की स्त्रियां अपने स्थानोंमें बैठीथीं वे अब देवांगनाओंके शिरपर चमर करती हैं और वे हास विलास करती हैं; यह बड़ा कष्ट है। हमको आपदा ने दीन किया है। हे दैत्यो! हमको और उपाय कोई दृष्टि नहीं आता जब उसही विष्णु की शरण में जावें तब सुखी होऊंगा वह कैसापुरुष है, जिसके दो भुजारूपी वृक्षों की छाया में देवता विश्राम करते हैं और जैसे हिमालय पर्व्वत कदाचित् तपायमान नहीं होता तैसेही जो पुरुष विष्णुकी शरणजाता है वह तपायमान नहीं होता। तुम देखते हो कि, जो देवाङ्गना असुरों की स्त्रियों की पूजन करती थीं वे अब अपने को पुजानेलगी हैं और हम दैत्यों की स्त्रियों के मुख कुम्हिला गये हैं। जैसे बरफ की वर्षा से कमल सूख जाता है तैसेही हमारे मण्डप टूट गये हैं और नीलमणि के खम्भे गिरपड़े हैं। दैत्यसेना जो आपदा के समुद्र में डूबती थी उस के रक्षा करने को हमारे पितादि बड़े समर्थ थे और डूबने न देते थे। जैसे क्षीरसमुद्र में मन्दराचल को कच्छपरूपने डूबने न दिया था हमारे पितादि जो बड़े बड़े बली रक्षा करने वाले थे उन को विष्णुजी ने मारके चूर्ण किया—जैसे प्रलयकाल का पवन पर्वतों को चूर्ण करता है। ऐसे मधुसूदन की गति अतिविषम है वे दैत्यों की भुजारूपी दण्ड के काटने वाले कुठार हैं, उनकी सहायता से इन्द्रादिक देवता दैत्य सेना को जीतने और मारनेलगे हैं—जैसे बालक को वानरमारें। इस पुण्डरीकाक्ष विष्ण

को जीतना कठिन है। जो वे शस्त्रों विनाहों तौभी हमारे शस्त्र इनको छेद नहीं सकते और वज्र भी छेद नहीं सक्ता । वे महा पराक्रमी हैं, उन्होंने युद्धका बड़ा अभ्यास किया है और पर्वतों के साथ युद्ध करतेरहे हैं । हमारा पिता जो बड़ाबली था और जिसने त्रिलोकी के राजा और सब देवता वशकिये थे उसको भी इसने मारडाला तो हमारा मारना कौन कठिन है। यह महाबली है इसको हम नहीं जीत सक्ते; इसलिये एक उपाय मैं तुमको कहताहूं उससे विष्णु प्रकट वश होंगे। उपाय यह है कि, विष्णु जो सर्वात्मा, सबका प्रकाशक और सबका कारण है उसकी हम शरणहों; और हमारी कोई गति आश्रय नहीं । हे दैत्यो ! उससे अधिक इस त्रिलोकी में कोई नहीं; जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकर्त्ता वही देवता है। उसके ध्यान में लगो और एक निमेष भी उसके ध्यान से न उतरो। मैं भी उसके ध्यान में लगता हूं। वह नारायण अजन्मा पुरुष है और मैं सदा उसके परायणहूं और सब प्रकार नारायण में हूं। 'ॐनमोनारायणाय;' यह मंत्र सब अर्थोंको सिद्ध कर्त्ता है, इसमंत्र के ध्यान जाप करते हुये हमारे हृदय में स्फुरन रूप होगा । वह हरि सब का आत्माहै पृथ्वी भी हरिहै, यह सब जगत्‌भी हरिहै, मैंभी हरिहूं, आकाशभी हरिहै और सब का आत्मा भी हरिहै । अविष्णु होकर जो विष्णुका पूजन करते हैं वे पूजनेका फल नहीं पाते और जो विष्णुहोकर विष्णुका पूजन करते हैं वे परम उत्तमफलपाते हैं । इससे मैं विष्णुरूप होकर स्थित होताहूं । मैं अनन्त आत्मा आकाश गरुड़ पर आरूढ़हूं और सुवर्ण के भूषण पहिरेहूं मेरे हाथ रूप वृक्षपर जीवरूप सब पक्षी विश्राम पाते हैं। यह मेरी चतुर्भुजा हैं। जब मैंने क्षीरसमुद्र मथन किया था तब यह परस्पर घसे हैं और यह मेरे पार्षद हैं, सुन्दर चमर जिनके हाथों में है, इनको मैंने क्षीर समुद्र से उपजायाहै । त्रिलोकी रूपी वृक्षकी यह सुन्दर मञ्जरी जो महाधवल मनके हरनेवाली है। यह मेरे पार्षदों में माया है जिसने अनन्त जगत् जाल निरन्तर उत्पत्ति, प्रलय किया है और इन्द्रजाल की विलासिनी है । यह मेरे पार्षदों में जो शक्ति है इन्हों ने लीला करके त्रिलोकी खण्ड वश किया है। जैसे कल्पवृक्ष लता फूलती है तैसेही मेरे पार्षदों में यह फूलती है शीत उष्ण मेरे दो नेत्र हैं जो सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशते हैं और चन्द्रमा और सूर्य उनके नाम हैं । यह मेरा नीलकमल और महा सुन्दरश्याम मेघवत् देह महाप्रकाश रूप है। यह मेरे हाथ में पांचजन्य शंखज जिसकी फुरनरूप धुनिहै क्षीरसमुद्रसे निकला है। यह नाभिकमलहै जिससे ब्रह्मा उत्पन्नहुये और इस में निवास करते हैं—जैसे भ्रमरा कमलमें निवास करता है। यह मेरे हाथ में कौमोदकी गदा है जो सुमेरु के शिखरवत् रत्नोंकी बनीहुई है और दैत्यदानवों के नाश करने वाली है। यह मेरे हाथों में महाप्रकाश रूप सुदर्शन चक्र है जिसका तेज ज्वाला के

पुंजवत् है और साधुको सुखदेने वाला है। यह मेरे हाथों में अग्नि के समूह वाला कुठार है सो दैत्यरूपी वृक्षोंको काटने वाला है और साधुओं को आनन्ददायक है। यह मेरे हाथमें शार्ङ्गधनुष है, इसकी महाप्रकाशवत् धुनि है। यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं यह वैजयन्ती मालाहै और कौस्तुभमणि मेरे कण्ठमें है। ऐसा मैं विष्णु देवहूं। अनन्त जगत् जो उत्पत्ति और लयहोगये हैं सबोंका धारने वालाहूं। यह पृथ्वी मेरे चरण हैं, आकाश मेरा शीश है, तीनों लोक मेरा वपुहै, दशोदिशा मेरे वक्षस्स्थल हैं और मैं साक्षात् विष्णुहूं नील मेघवत् मेरीकान्ति है; गरुड़पर आरूढ़, शंख, चक्र, गदा, पद्मका धारने वालाहूं। जिसका चित्त दुष्टहै वह हमको देखकर भागजाता है यह सुन्दर, शीतल चन्द्रमावत् मेरी कान्ति है और पीतवस्त्र श्याम वदन गदाधारीहूं। लक्ष्मी मेरे वक्षस्स्थल में है और अच्युतरूपी विष्णु मैंहूं। वह कौनहै जो मेरे साथ विरोध करसके? मैं त्रिलोकी जला सक्ता हूं; जो मेरे साथ युद्धकरनेको सन्मुखआवे उसको अप और तेज नाशका कारणहै। जैसे अग्निमें पतंग जल मरतेहैं तैसेही मेरा तेजहै। मेरी दृष्टि कोई सह नहीं सक्ता। मैं विष्णु ईश्वरहूं, ब्रह्मा, इन्द्र और यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं और तृण काष्ठ स्थावर जंगम जो कुछ जाल है सबके भीतर व्यापक रूपहूं। त्रिलोकी में मैं प्रकाश रूप अजन्मा और भयनाश कर्त्ताहूं। ऐसे मेरे स्वरूप को मेरा नमस्कार है॥

इति श्री योगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादविज्ञाननामएकत्रिंशत्तमःसर्गः ३१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार प्रह्लादने अपना नारायण स्वरूप करके ध्यान किया। फिर पूजनके निमित्त वैष्णवों का चिन्तन किया और मन में विष्णुजी की दूसरी मूर्त्ति जो गरुड़ पर आरूढ़ और चारशक्ति--अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्षसे सम्पन्न चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये श्याम रंग हैं; चन्द्रमा और सूर्य जिसके सुन्दर नेत्र हैं और हाथमें शार्ङ्गधनुष है; धारण करके परिवार संयुक्त भली प्रकार धूपदीप और नाना प्रकार के विचित्र वस्त्र और भूषणों सहित पूजन किया और अर्घ दिया। चन्दन का लेपन, धूप, दीप, नाना प्रकार के भूषणों सहित पिस्ता, खजूर, बदाम आदिक मेवों से; भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य चतुर प्रकार के भोजन कराये। फिर अपना आप विष्णु को अर्पण किया और परम भक्तिको प्राप्तहुआ। जिस प्रकार मनसे पूजनकिया उसी प्रकार अन्तःपुर में विष्णु की मूर्त्ति देखकर पूजा। इसी प्रकार दिन प्रति दिन विष्णुका पूजन किया और जिस प्रकार प्रह्लाद मनकी चिन्तन से पूजाकरे उसी प्रकार और दैत्य भी मानसी पूजा करें। उनको प्रह्लाद ने सिखाया और उस पुर में सब दैत्य कल्याणमूर्त्ति विष्णुभक्त होगये। जैसा राजा होता है तैसीही उसकी प्रजा होती है इसमें कुछ आश्चर्य

नहीं । यह वार्त्ता देवलोकमें प्रकटहुई कि, दैत्यों ने विष्णुका द्वेष त्याग किया है और भक्त हुये हैं । तब देवता आश्चर्य्यको प्राप्तहुये और इन्द्रादिक अमरगण विचारने लगे कि, यह क्या हुआ जो दैत्यों ने विष्णुकी भक्ति ग्रहण की और इनको यह प्राप्त कैसेहुई । ऐसे आश्चर्य्यवान् होकर क्षीर समुद्र के दैत्यों की वार्त्ता करने के निमित्त वे विष्णु के निकट गये और कहा, हे भगवन् ! यह आपने क्या माया फैलाई कि, जो दैत्य सर्वदा विरोध करते थे वे अब तुम्हारे साथ तन्मयरूप होरहे हैं; कहां वह दुर्वृत्ति पर्वत को चूर्ण करनेवाले दैत्य और कहां तुम्हारी भक्ति, जो अनेकजन्मों से भी दुर्लभ है । हे जनार्दन ! तुम्हारी भक्ति कहां और उनकी वृत्ति कहां । यह तो अपूर्व वार्त्ता हुई है । जैसे समय विना पुष्पोंकी माला नहीं शोभती तैसेही पात्रविना तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती और यह हमको सुखदायक नहीं भासती । जैसा जैसा कोई होता है तैसेही तैसे स्थान में शोभताहै । जैसे कांचमें महामणि नहीं शोभती तैसेही दैत्यों में तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती । जैसागुण किसी में होताहै तैसीही पंक्ति में वह शोभता है और में स्थित हुआ नहीं शोभता है । जो सुदेश नहीं होता तो दुःखदायक होता है जैसे अंगों में वज्र दुःखदायक होता है । जैसा गुणवान्हो तैसा पदार्थ जब प्राप्त होताहै तो वह शोभा पाताहै विपर्यय हो तब शोभा नहीं पाता । जैसे कमलनी जलमें शोभती है, मरुस्थलमें नहीं शोभती तैसेही कहां वह अधर्म्म नीचजन भयानक कर्म करनेवाले और कहां तुम्हारी आश्चर्य्य भक्ति । जैसे कमलनी पृथ्वी पर नहीं शोभती तैसेही तुम्हारी भक्ति दैत्यों में नहीं शोभती और तैसेही भक्ति हम को उनमें सुखदायक नहीं भासती ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेविविधव्यतिरेको नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ३२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इसप्रकार बड़े शब्द से देवता कहने लगे तब माधव आकर बोले; हे देवगण ! तुम शोक मत करो । प्रह्लाद मेरा भक्त है; इसका यह अन्त का जन्म है, और अब मोक्षको प्राप्त होकर फिर जन्म न पावेगा । हे देवगण ! गुणवान् के गुणों को त्यागकर द्वेष ग्रहण करना अनर्थरूप होता है और जो प्रथम गुणों से रहित निर्गुण हो और फिर उनको त्यागकर गुण ग्रहणकरे और शास्त्र मार्ग में विचरे तो यह सुखदायक होताहै । प्रह्लादकी विचित्र चेष्टा तुमको सुखदायक होगी । अब तुम अपने स्थानों में जाओ, प्रह्लाद मेरा भक्तहै । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार कहकर भगवान् क्षीरसमुद्र में अन्तर्द्धान होगये देवता नमस्कार करके अपने २ स्थानों में गये और प्रह्लादसे द्वेषभावना त्याग की । प्रह्लाद दिनप्रतिदिन अपने घरमें जनार्दनकी मनसा, वाचा और कर्मणा से भक्ति

करने लगा और समय पाकर दैत्यों में बड़ी भक्ति होगई । तब उन्हें परम विवेक प्राप्त हुआ और विषय भोग से वैराग्यवान् हुये । वे विषयों से प्रीति न करें; सुंदरस्त्रियों से न रमें; दृश्यमें उनकी प्रीति न उपजे और यह भोग जो रोगरूपहैं उनमें उनका चित्त विश्राम न पावै और रागभी न करें परन्तु मुक्त कर्त्ता जो आत्मबोधहै सो उन्हें प्राप्त न हुआ वे मुक्त फलके निकट आ स्थितहुये और भोगोंकी अभिलाष त्यागकर निर्मल होगये पर परमसमाधिको न प्राप्तहुये चित्त अवस्थामें डोलायमानहोरहे । तब श्याम-मूर्ति विष्णुदेव प्रह्लादकी वृत्ति विचारकर पाताल में उसके गृह पूजाके स्थान में महाप्रकाश सुन्दररूप से प्रकटे और उनको देखकर प्रह्लादने विशेष पूजाकी और प्रेमसे गद्गद हो कहा हे ईश्वर ! त्रिलोकी में सुन्दर मूर्ति, सब के धारनेवाले, सब कलंकों के हरनेवाले, प्रकाशस्वरूप, अशरणों के शरण, अजन्म । और अच्युत मैं तुम्हारी शरणहूं । हे नीलोत्पल और कमलों के पर्वत, श्यामरूप, असंग चित्त से ध-रनेवाले ! मैं तुम्हारी शरणहूं । हे निर्मलरूप, केलेवत् कोमल अंग और श्वेत कमल की नाईं श्वेतशंख हाथमें धारण किये ! तुम्हारे नाभि कमलमें भँवरेरूप ब्रह्मास्थितहो वेदका उच्चाररूपी गुरुगुरु शब्द करते हैं और हृदय कमल में विराजनेवाले जल के ईश्वर रूप मैं तुम्हारी शरणहूं ! जिसके श्वेतनख तारागणवत् प्रकाशरूप; हँसता मुखचन्द्रमा के मण्डलवत्, हृदय मणि सबका प्रकाशक और शरत्कालके आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप ! मैं तेरी शरण हूं । हे त्रिभुवनरूपी कमलनियों के प्रकाशनेवाले चन्द्रमा ! मोहरूपी अन्धकार के नाशकर्त्ता सूर्य ! अजड़, चिदात्मा, सम्पूर्ण जगत् के कष्ट हरनेवाले ! मैं तुम्हारी शरण हूं । हे नूतन विकसितरूप कमल पुष्पों से भूषित अङ्ग और स्वर्णवत् पीताम्बरधारी महासुन्दर स्वरूप ! मैं तेरी शरण हूं । हे ईश्वर ! लीलाकरके सृष्टिके उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले और परमशक्ति शङ्कर योग-बत दृढ़ देह ! मैं तेरी शरण हूं । हे दामिनीवत् प्रकाशरूप सबको संहारकर जल में बालकरूप धर बटके नीचे शयन करनेवाले ! मैं तेरी शरण हूं हे देवता रूप कमलों के प्रकाश करनेवाले सूर्य्यमण्डल; दैत्य पुत्ररूपी कमलनियों के तुषाररूपी बरफ ज-लानेवाले और हृदयरूपी कमलों के आश्रयभूत ! मैं तेरी शरण हूं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जब अनेकगुणों से आठ श्लोक प्रह्लाद ने कहे तब विष्णुजी ने प्रह्लाद से कहा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादाष्टकानन्तरनारायणागमनं नामत्रयस्त्रिंशत्तितमस्सर्गः ३३ ॥

श्रीभगवानजी बोले, हे गुणनिधि; दैत्यकुलके शिरोमणि ! जो तुझ को वाञ्छित फल है सो मांगो और जन्मदुःख के शान्ति निमित्त वरमांगो प्रह्लाद बोले, हे सर्व

सङ्कल्प के फलदायक और सर्वलोकोंमें व्यापकरूप । जो वस्तु दुर्लभतरहै वहशीघ्रही मुझसे कहिये और दीजिये । श्रीभगवान्‌जी बोले, हेपुत्र ! सब भ्रमके नाश करनेवाले और परमफलरूप ब्रह्मसे विश्रान्ति होती है और वह जिस आत्मविवेककी समता से प्राप्त होतीहै वही आत्मविवेक तुझको होगा । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार दैत्येन्द्र से कहकर विष्णु अन्तर्द्धान होगये । फिर प्रह्लादने पुष्पाञ्जली दी और पूजा करके श्रेष्ठआसन बिछा उसपर आप पद्मासनधरके बैठा और विधिसंयुक्त उत्तमशास्त्रों का पाठ करने लगा । जब पाठ करके निश्चिन्त हुआ तब विचारनेलगा कि, विष्णुने मुझसे क्या कहा था, उन्होंने कहाथा कि, तुझको विवेकहोगा । इसलिये संसार समुद्र तरने के निमित्त शीघ्रही विचार करूं । इस संसार आडम्बरमें मैं कौनहूं जो बोलता हूं; नर और यह जगत तो मैं नहीं; यह तो असत्य उपजा है और जड़रूप पवन से स्फुरणरूप होता है सो मैं कैसे होऊं ? यह देहभी मैं नहीं, क्योंकि, यह तो क्षण क्षण में काल से लीन होता है और जड़रूप है । श्रवणरूपी जड़भी मैं नहीं क्योंकि, जो शब्द सुनते हैं वह शून्य से उपजा है । त्वचा इन्द्रीभी मैं नहीं इसका क्षण क्षणमें विनाश स्वभाव है । प्राप्त हुआ अथवा न हुआ; यह इष्ट है, यह अनिष्ट है; इन्द्री आप जड़ है पर इसके जानने वाला चेतन तत्त्व है और चेतन के प्रमाद से ये विषय उपलब्ध होते हैं । इससे न मैं त्वचा इन्द्रीहूं और न स्पर्श विषय हैं; यह जड़ात्मक है । यह जो चञ्चलरूपी तुच्छ जिह्वा इन्द्री है और जिसके अग्र में अल्प जल अणु स्थित है वही रसग्रहण करता है; वह रसभी आत्मसत्ताकरके लब्धरूप होता है आपजड़ है; इससे यह जड़रूप जिह्वा और रस मैं नहीं ये जो विनाशरूप नेत्र दृश्यके दर्शन में लीन हैं सो मैं नहीं और न मैं इनका विषयरूप हूं, ये जड़ हैं । यह जो नासिका पृथ्वीका अंश है सो केवल आत्मा के आधार है यह आप जड़ है पर इसका जाननेवाला चेतन है; सो न मैं नासिकाहूं, न गन्धिहूं; मैं अहंममसे और मन के मनन से रहित शांतरूपहूं और ये पञ्चइन्द्रियां मेरे में नहीं, मैं शुद्ध चेतन रूप कलना कलङ्क से और चित्त से रहित चिन्मात्र और सर्व का प्रकाशक सब के भीतर बाहर व्यापक और निःसङ्कल्प निर्मल शांतरूपहूं । आश्चर्य है कि अबमुझको अपना स्वरूप स्मरण आता है । प्रकाशरूप चेतन अनुभव अद्वैत मेरे अनुभव चेतन से स्थित है । सूर्य, घट, पटादिक सब पदार्थ में प्रकाशताहूं । जैसे दीपक से उत्तमतेज भासे तैसेही चेतन अनुभव से इन्द्रियों की वृत्ति स्फुरणरूप होती है । जैसे तेजसे चिनगारे स्फुरणरूप होते हैं तैसेही सर्वज्ञ अनुभव सत्तासे मनकी मनन रूप शक्ति फुरती है । जैसे सूर्यके तेजसे मरुस्थल में मृगतृष्णाकी नदी फुरती है तैसेही अनुभव सत्ता से पदार्थ भासते हैं । जैसे दीपक में शुक्लादि रंग भासते हैं, तैसेही

इन पदार्थों में अहं आदिक पदार्थ भासते हैं। वह जाग्रतवत् सब पदार्थोंका प्रकाशक है, सबको अनुभवसे भासता है और सबके भीतर आत्मभाव से स्थित है। जैसेबीज में अंकुर स्थित होता है तैसेही चेतनरूप दीपक के प्रकाश से विकल्परूपी पदार्थों की शक्ति भासती है। उष्णरूपी सूर्य, शीतलरूपी चन्द्रमा, घनरूपी पर्वत, द्रवतारूपी जल है और इसी प्रकार अनुभव सत्ता से सकलपदार्थ प्रकट होते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश से घट पटादिक होते हैं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र ये सबके कारणरूप जगत् में स्थित हैं और इनका कारण अनुभवतत्त्व आदि अन्त से रहित और सब कारणों का कारण है। जैसे बरफ़से शीतलता उपजती है तैसेही अनुभव से जगत् उदय होता है चित्त, चैत्य, दृश्य, दर्शन कलना से रहित प्रकाशरूप सत्तामेराआत्मा मुझको नमस्कार है। इसीसे सर्वभूत उत्पन्न और स्थित होकर फिर लयहोते हैं सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रयभूत आत्मा है। जो इस चित्तसे अन्तःकरण कल्पितरूप होजाता है। वही होता है। आत्मा से रहित सत्यभी असत्य होजाता है। जो चेतन संवित् में कल्पितरूप होता है सोही पदार्थ अपने स्वरूप को पाता है और जो चित्त संवित् में कल्पितरूप नहीं होता सो सत्यभी असत्यरूप होजाता है। ये जो घट, पटादि पदार्थों के समूह भासते हैं वे विस्तृतरूप चिदाकाश दर्पण में प्रतिबिम्बित हैं और अनुभव सत्ता सर्व भूतोंका आदर्शरूप है। जिनका चित्त नष्ट होजाता है उन सन्त पुरुषोंको ऐसे दृढ़भाव प्राप्तहैं और वे परमआकाशरूप आत्मा में अभ्यास से तन्मय होजाते हैं? अनुभव सत्ता पदार्थोंके वृद्ध होनेसे वृद्ध नहीं होती और नष्ट होनेसे नष्ट नहीं होती। पदार्थोंके भाव अभाव में सत्ता सामान्य ज्योंकी त्यों है जैसे सूर्यके प्रतिबिम्बमें घट सत्य हो अथवा असत्य हो सूर्य ज्योंका त्यों है। संसाररूप नानाप्रकारकी विचित्र रचना ऐसे आत्मामें स्थितहै। जैसे विचित्र गुच्छोंके संयुक्त वृक्षोंकी पंक्तिकी विचित्र रचना पर्वतपर स्थित होती है तैसेही संसाररूप दृश्य नानाप्रकारकी मंजरी को धरने वाला आत्मसत्ता वृक्ष है जितने भूतगण त्रिलोकी उदर में वर्तते हैं वे सब आत्मासे अभिन्नरूप हैं ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त सर्वका प्रकाशक आत्मा है। वह अनुभवसत्ता आदि अंत से रहित है; जिसका सर्वरूप आकार है और स्थावर जंगम सर्वजगत् भूत जात अन्तर अनुभवरूप स्थित है। वह एक अनुभव आत्मा मैं हूं; द्रष्टा दर्शनदृश्य सर्वरूप आत्मामैंहूं और सहस्रनेत्र सहस्रहस्त मेरे हैं। मैंहीं चिदाकाशरूप हूं; सूर्यदेह से आकाश में विचरताहूं और पवन देहसे बहता वायुवाहनपर आरूढ़हूं। मैं विष्णुरूप शंख, चक्र, गदा, पद्मके धरनेवाला हूं; सर्वसौभाग्य देखने वालाहूं और सब दैत्योंको भगाता और नाशकर्त्ता मैंहींहूं। मैं नाभि कमल से उत्पन्न हुआहूं; पद्मासन से निर्विकल्प समाधि में स्थितरूप ब्रह्माहूं और मनवृत्तिरूपको प्राप्त

हुआ। मैंनेही त्रिनेत्र आकर लिया है; गौरी मेरी अर्द्धांगना हैं और सृष्टिके अंत में सबको मैंहीं संहार करताहूं। जैसे कोई अपने अंगोंको संकोचले तैसेही मैं संहार करताहूं। त्रिलोकी रूपी मढ़ीकी इन्द्ररूप होकर मैं पालना करताहूं और कर्मों के अनुसार जैसा कोई तपकरे तैसा फलदेताहूं। तृणबल्लिमें गुच्छे और रसहोकर मैं स्थित हूं; मैंहीं उत्पत्तिकर्त्ता और चेतन रूपहूं और लीलाके निमित्त जगत् आडम्बर विस्तार रूप मैंनेही किया है जैसे मृत्तिका के खिलौने बालक रचलेता है। मेरे में सर्वकर्म अर्पण करने से सर्वशांति प्राप्तहोती है और मुझसे रहित कुछ वस्तु नहीं; मैं सत्ता स्वरूप आदर्शहूं; सब पदार्थ मेरे में प्रतिबिम्बित होते हैं; तब यह असत्य रूपभी सत्यताको प्राप्तहोताहै—इससे मुझसे भिन्नकुछ नहीं। पुष्पों में सुगन्ध, पत्रोंमें सुन्दरता, पुरुषों में अनुभव और स्थावर—जंगमरूप जो जगत् दृष्ट आताहै वह सर्व मैंहूं। मैं सब सङ्कल्पसे रहित परम चैतन्यहूं और अहंत्वं आदिकसे परेहूं, जलमें रसशक्ति, अग्नि में उष्णता और बरफ में शीतलता मैंहींहूं। जैसे काष्ठ में अग्नि तैसेही सर्व में स्थितहूं, सब पदार्थों में मैं परमात्मा व्यापकहूं और सब को अपनी इच्छा से उपजाताहूं। जैसे दूधमें घृत शक्ति, जलमें रसशक्ति और सूर्यमें प्रकाश शक्तिहै तैसेही मैं चेतन स्वरूप सब पदार्थोंमें स्थितहूं। त्रिकाल का जगत् सब मेरे में स्थित है और मैं चित्त के उपचार फुरने से रहित शुद्धस्वरूप और सबका भरण और पीने वाला और वैराट्राज होकर स्थित भयाहूं। त्रिलोकी का राज्य मुझको अपूर्व प्राप्त हुआ है, जो शस्त्रों और देवों के दल विना निरक्षित विस्तृतहै। बड़ाआश्चर्य है कि मैं इतनाबड़ा विस्तृतरूप हूं और अपने आपमें नहीं समाता, जैसे कल्पान्तर के वायुसे उछला समुद्र आपमें नहीं समाता। मैं अनन्तरूप आत्मा अपनी इच्छा से आप प्रकाशताहूं। जैसे क्षीरसमुद्र अपनी उज्ज्वलता से शोभता है तैसेही मैं भी अपने आपसे शोभताहूं। यह जगत्रूपी मटकी महाअलपरूप है—जैसे बिल में हाथी नहीं समाता तैसेही मैं अपने आपमें विस्तृत रूपसे जगत् में नहीं समाता। मैं कोटि ब्रह्माण्ड में व्यापकहूं और ब्रह्मलोकसे परे जो तत्त्वोंका अन्तआता है उससे भी परे मैं अनन्तरूपहूं। यह मैंहूं यह मैं नहीं, यह निर्बलता मेरे में तुच्छरूप है; मैं तो आदि अन्तसे रहित चेतन आकाशहूं और मेरेमें परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी। मैं, तू, यह, वह आदिक मिथ्याभ्रमहै। देह क्या, पर क्या और अपर क्या; मैं तो सर्वव्यापक चेतन तत्त्वहूं। मेरे पितामह बड़े नीचबुद्धि थे जो ऐसे ऐश्वर्य को त्याग कर तुच्छऐश्वर्य में खचितहुये थे कहां यह महादृष्टि सर्वका कर्त्ता ब्रह्मवपु और कहां वह संसार भ्रमका राज अनित्यरूप सुखभोग दुःखदायक। अनन्तसुख, परमउपशमस्वभाव, शुद्धचेतन दृष्टि अब मेरेमें हुई है। सब भावपदार्थों में चैत्य से रहित

मैं चेतन आत्मास्थितहूं। अब मुझको नमस्कार है क्योंकि मेरी जय हुई है और जीर्ण रूप संसार भ्रमसे निकलाहूं। इससे मेरी जीत पाई है, पानेयोग्य आत्मपद पाया है और जीवित सार्थक हुआ है। ऐसाउत्तम समराज चक्रवर्ती में भी नहीं रसता ये जीव निरन्तर बोधको त्यागकर दुःखरूपी कार्योंमें रमते हैं। काष्ठ, जल और मृत्तिका से संयुक्त जो पृथ्वी है उसको पाकर जो मुलायमान हुये हैं उनको धिक्कारहै; वे कीट हैं। यह द्रव्य ऐश्वर्य अविद्यारूप है, अविद्यासे उपजे हैं और अविद्यारूप इनका बढ़ना है। इनमें क्या गुणहै जिसनिमित्त यत्न करते हैं ? इस जगत् रूपी मढ़ीमें कई वर्ष हिरण्यकशिपुने राजसुख भोगा परन्तु उपशम जो शान्ति सुखहै उनको न प्राप्त हुआ। उसने एक जगत्का राजकिया है परन्तु जो सौ जगतों का राज़सुख हो तौभी अनास्वाद है इससे वह जो समतारूप आत्मानन्द है सो नहीं प्राप्तहोता। जब उस आत्मानन्द के स्वादका यत्नहो तब प्राप्तहो, अन्यथा नहीं होता। जिस पुरुषको बड़े ऐश्वर्य और इन्द्रियों के सुख प्राप्त हुये हैं पर समतासुखसे रहित है तो जानिये कि, उसको कुछ ऐश्वर्य और सुख नहीं मिला और जिनको कुछ ऐश्वर्य और सुख नहीं प्राप्त हुआ पर समता सुख संयुक्त हैं उनको सब कुछ प्राप्त हुआ जानिये। वे परम अमृतसे संपन्न हैं और अखण्डित सुख जो आत्मा है उस परमसुख को प्राप्त हुये हैं और आनन्दरूपहैं। जो अखण्डपदको त्यागकर परिच्छिन्नताको प्राप्तहै वह मूढ़ है और जो पण्डित और ज्ञानवान् है वह परिच्छिन्नतामें प्रीति नहीं करता। जैसे ऊंट दूसरे पदार्थोंको त्यागकर कंटकोंके पास धावताहै और दूसरा पशु नहीं जाता तैसेही मूढ़ विना ऐसा कौनहै जो आत्मसुखको त्यागकर जलेहुये राजसुखमें रमै और अमृतको त्यागकर कंटक और नीमका पानकरे। मेरे पितामह और २ जो बड़े सब मूढ़ हुये हैं वे इस परमअमृतरूप दृष्टिको त्यागकर राजकंटक में प्रीतिवान् हुये हैं। कहां फूल फलादिकसे संयुक्त नन्दनवनकी भूमिका और कहां जलेहुये मरुस्थलकी भूमिका। तैसेही कहां यह शान्तरूप बोधदृष्टि और कहां भोगों में आत्मबुद्धि। इससे ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जिसकी मैं इच्छाकरूं। सब चेतन स्वरूप हैं और अनुभवकर्त्ता चेतनतत्त्व स्वच्छ समभाव और निर्विकार, सर्वदा, सर्व में, सर्वओर से स्थित है। यह जैसे है तैसा पाया जाता है—ज्ञानवान् को प्रत्यक्ष है। सूर्य में प्रकाश, चन्द्रमा में अमृत स्रवन, ब्रह्मा में महत्, इन्द्रमें त्रिलोकपालन, विष्णुजी में सब ओर से पूर्णलक्ष्मी शक्ति है, शीघ्र मन कर्त्ता शक्ति मनकी है, बलवान् शक्ति पवन में, दाहक अग्नि में, रसशक्ति जलमें है और मौन से महातपकी सिद्धता शक्ति और बृहस्पति विद्या देवताओं में विमानोंपर आरूढ़ होकर आकाश मार्ग गमन करने की शक्ति है। पर्वतों में स्थिरता, वसन्तऋतु में पुष्प, सबकाल मेघोंकी शान्त शक्ति,

पक्षों में, ममत्वशक्ति, आकाश में निर्लेपता, बरफ में शीतलता, ज्येष्ठ आषाढ़ में तप्त इत्यादिक देश, काल, क्रियारूप नानाप्रकार के आकार विकार जो त्रिकाल के उदर में स्थित हैं सो सर्व्वशक्ति, स्वच्छ, निर्विकार कलनारूप कलंक से रहित चेतनकी है सो इस प्रकार हो भासती है और वही आत्मतत्त्व समपदार्थ जाति में व्यापक हुआ है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व्व ओरसे समान उदय होताहै तैसेही वह सर्व्वदेश पदार्थों का भण्डार और सर्व्वका आश्रयभूतहै; त्रिकाल उसीमें कल्पितरूप होते हैं। जैसे अनुभव उसमें होताहै तैसाही तत्कालही भासताहै। जैसे २ चेतनतत्त्वमें देश, काल और क्रिया द्रव्यका फुरनाहोताहै तैसाही तैसा भासताहै। आत्मामें त्रिकालों की समप्रतिभा फुरी है, उसमें फिर अनन्तकालकी प्रतिभाहुई है और शुद्ध चेतनतत्त्वमें सर्व्व ओरसे पूर्ण है। त्रिकाल के स्मरण में दृश्यसंयुक्त भासता है तो चेतनतत्त्व शेष रहता है और इसको त्रिकाल का ज्ञान होता है। मधुर, कटुक आदिक भिन्न भिन्नसे एक समता भासतीहै। जैसे मधुरता पानकरनेवाले जीवोंको मधुरता भासती है और को नहीं भासती तैसेही सर्व्व जो सङ्कल्प कलना है सबको भोगता है। सूक्ष्म चेतन सत्तास्वरूप सर्व्व पदार्थों का अधिष्ठान है उससे अनागत होकर द्वैत जगत् भासता है और नानाप्रकार की जो पदार्थ लक्ष्मी है वह अत्यन्त दुःख को प्राप्त करती है। जब त्रिकाल का अनुभव होता है तब सबही सम भासता है। भाव पदार्थों में जो पदार्थ हैं वे ईश्वर के हैं; उन भाव पदार्थोंको त्यागकर अभाव की भावना करनेसे दुःख सब नष्टहोजाते हैं और संतुष्टता प्राप्त होती है इससे त्रिकालको मत देखो, यह बन्धनरूप है। त्रिकालसे रहित जो चेतनतत्त्व है उसके देखने से विभाग कल्पना कालका अभाव होजाता है और एकसम आत्मा शेष रहता है जिसको वाणी वशकर नहीं सक्ती और जो असत्यकी नाईं निरन्तर स्थित है उसकी प्राप्तिहोती है। अनामय सिद्धांत शून्यवादी की नाईं स्थित होता है निष्किंचन आत्मा ब्रह्म होता है अथवा सर्व्वरूप परमउपशम में लीन होता है और जिसका अन्तःकरण मलीन है और सङ्कल्प से सम्यक्दर्शी है उसको ज्योंकात्यों नहीं भासता—जगत् भासताहै और जिसकी इच्छा नष्ट हुई है और परमपद का अभ्यास करता है उसको आत्मतत्त्व भासताहै जो किसी जगत् के पदार्थ की वांछा करता है और हेयोपादेय फांसी से बांधाहै वह परमपद नहीं पासक्ता—जैसे पैरसे बांधा पक्षी आकाशमार्ग में नहीं उड़सक्ता। जो पुरुष संकल्प कलना संयुक्त है वह मोहरूपी जालमें गिरपड़ताहै—जैसे नेत्रों विना मनुष्य गिरपड़ता है। संकल्प कलनाजालसे जिसका चित्त वेष्टितहै वह विषयरूपी गढ़े में गिराहै और अच्युतपदवी को प्राप्त नहीं होता। मेरे पितामह कई दिन पृथ्वी में फुर फुरके लीन होगये हैं वे बालकवत् नीचथे। जैसे गढ़े में मच्छर लीन होजाते हैं तैसेही अज्ञानसे वे परमतत्त्व

को न जानते थे। भोगोंकी वांछा जो दुःखरूप है अज्ञानी करते हैं और उससे भाव अभावरूप गढ़े और अन्धकूप में नष्ट होते हैं। और इच्छा और द्वेषसे जो उठा है उससे बन्धमान हुये हैं। जैसे पृथ्वी में कीट मग्न होते हैं वे जीव उनके तुल्य हैं और जिनको मृगतृष्णारूप जगत् के पदार्थों में ग्रहण त्याग की बुद्धि शांत हुई है वे पुरुष जीते हैं और सब नीच मृतकरूप हैं कहां निर्मल और अविच्छिन्नरूप चेतन चन्द्रमावत् शीतलता और कहां उष्णकाल कलंक संयुक्त चित्त की अवस्था अब मेरे आत्मा को नमस्कार है जो अविच्छिन्न प्रकाशता है और प्रकाश और तम दोनों का प्रकाशरूप है। हे चिदात्मा देव! मुझको तू चिरकाल से प्राप्तहोकर परमानन्द हुआ है जो विकल्परूपी समुद्रसे मेरा उद्धार किया है। जो तू है, वह मैं हूं और जो मैं हू सो तू है तुझको नमस्कार है। संकल्प विकल्प कलनाके नष्ट हुये अनन्त शिव आत्म तत्त्व का चन्द्रमा सदा निर्मल और उदित रूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपदेशोनामचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३४॥

प्रह्लाद बोले कि, जिसका नाम 'ॐ' है वह विकारसे रहित ब्रह्म मैं हूं। जो कुछ जगत् है वह सब आत्म स्वरूप, सत्य–असत्य से अतीत, चेतन स्वरूप और सब जीवों के भीतर है। सूर्य्यादिक में प्रकाश वही है, अग्नि आदिकको उष्णकर्त्ता वही है और चन्द्रमा में शीत कर्त्ता वही है। अमृतका स्रवना आत्मा सेही है और इन्द्रियों के भोगों का भोक्ता अनुभवरूप यही है। राजाकी नाईं खड़ा बैठाहूं तो मैं कभी नहीं बैठा और चलताहूं तो कभी नहीं चलता और न व्यवहार करताहूं। मैं सदा शांतरूप कर्त्ताहूं किसी से लेपायमान नहीं होता। त्रिकालों में समरूपहूं और सर्व्वदा सर्व अवस्था में पदार्थों के उपजने और मिटने में सदा ज्योंकात्योंहूं। ब्रह्मा से आदि तृण पर्यन्त सब जगत् आवृत आत्मतत्त्व स्थित है पवन जो स्पंद रूप है उसमें भी मैं अतिसूक्ष्म स्पंद रूपहूं; पर्व्वत स्थान जो अचल पदार्थ हैं उनसे भी मैं अचलहूं; आकाशसे भी अतिनिर्लेपहूं। मनको भी आत्मा चलाता है–जैसे पत्रोंको पवनचलाताहै और इन्द्रियों को आत्मा फेरताहै–जैसे घोड़े को सवार चलाता है। समर्थ चक्रवर्ती राजाकी नाईं मैं भोगभोगताहूं और अपने ऐश्वर्य से आप शोभताहूं। संसार समुद्र में जरा मरणरूपी जल के पार करनेवाला आत्मा है। यह सबसे सुलभ है और अपने आपसे जानाजाता है और बान्धवकी नाईं प्राप्त होता है आत्मा शरीर रूपी कमलों के छिद्रों का भँवरा है और विना खेंचे बुलाये सुलभ आ प्राप्त होताहै। जो कोई अल्पभी उसको बुलाता है तो उसी क्षण वह उसके सन्मुख होता है इसमें कोई संशय और विकल्प नहीं। वह निष्कलंक और परम संपदावान् है और सदा

स्वस्थरूप है । रसदायक पदार्थों में जैसे रस स्वाद है, पुष्पोंमें सुगंधि और तिलों में तेल है तैसेही वह देव परमात्मा देहों में स्थित है तौभी अविचार के वशसे नहीं जाना जाता; जैसे चिरकाल उपरान्त आया बांधव अपने आगे आन स्थित हो तो भी उसको नहीं पहिंचाना जाता । जब विचार उदय होता है तब ऐसे आत्मा परमेश्वर को जानलेता है । जैसे किसी प्रियतम बांधव के पाये से आनन्द उदय होता है तैसेही आत्मा देवके साक्षात्कार हुये से परमआनन्द उदय होता है और सब बांधवपन नष्ट होजाता है; जितनी कुछ दुष्ट चेष्टा है उसका अभाव होजाता है, सब ओरसे बंधन फांस टूटजाती है; सब शत्रुक्षय होजाते हैं और आशा फिर नहीं फुरती—जैसे पर्व्वत को चूहा तोड़ नहीं सक्ता । ऐसे देव के देखेसे सब कुछ देखना होता है और सुनेसे सब कुछ सुनना होताहै; उसके स्पर्श किये से सब जगत्का स्पर्श होता है और उसकी स्थितिसे सर्व्वजगत् स्थित भासताहै । यह जो जाग्रत् है सो संसारकी ओरसे स्वप्न है; उसी जाग्रत् से अज्ञान नष्ट होजाताहै और जितनी आपदा हैं उनका कष्ट दूर होजाता है । आत्माके प्राप्तहुये आत्मामय होजाता है । और वह विस्तृतरूप आत्मा दीपकवत् साक्षीभूत होता है जगत् की स्थिति में भोगोंसे राग उठा है, सब ओर से आत्मतत्त्व का प्रकाश भासता है और भीतर शांतरूप सबको अनुभव करनेवाला सबदेहोंमें में स्थित हूं । जैसे मिरचों में तीक्ष्णता स्थित है तैसेही सब जगत् के भीतर बाहर में व्यापरहाहूं । जो कुछ जगत् के पदार्थ भासते हैं उन सबमें ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है; आकाश में शून्यता; वायु में स्पंदता; तेजमें प्रकाश; जल में रस; पृथ्वी में कठोरता; चन्द्रमा में शीतलता रूप वही है और सब जगत् में अनुस्युत एक आत्मतत्त्वही व्यापरहा है । जैसे बर्फ़ में श्वेतता; और पुष्पों में गंध है तैसेही सब देहोंमें आत्मा व्यापकहै । जैसे सर्व्व गत काल है और सर्व्वव्यापक आकाश है तैसेही सब जगत् में आत्मा व्यापक है । जैसे राजाकी प्रभुता सबमें होती है तैसेही मुझसे भिन्न और कोई कलना नहीं है । जैसे धूलिको पकड़के आकाश को स्पर्श नहीं करसक्ते; कमलों को जल स्पर्श नहीं करता और पाषाण को स्फुरनभ्रम स्पर्श नहीं करता तैसेही मेरेसाथ किसीका सम्बन्ध नहीं स्पर्श करता । सुख—दुःखका सम्बन्ध देहको होता है यदि देह चिरकालरहे अथवा अबहींनष्टहो तो मुझको लाभ हानि कुछ नहीं । जैसे दीपक की प्रभा रज्जुसे नहीं बांधी जाती तैसेही आत्मा किसी से बांधा नहीं जाता; सब पदार्थों के ग्रहणमें अबंध रूप है जैसे आकाश किसी से बांधा नहीं जाता और मन किसी से रोका नहीं जाता तैसेही परमात्मा को देह इन्द्रियका सम्बन्ध वास्तव में नहीं होता । यदि शरीरके टुकड़े होजावें तौभी आत्मा का नाश नहीं होता—जैसे घट फूटे से दूध आदिक पदार्थ नहीं

रहता परन्तु आकाश कहीं नहीं जाता वह ज्योंका त्योंहीं रहता है तैसेही देहके नाश हुये प्राणकला निकल जाती है आत्मा का कुछ नाश नहीं होता और पिशाच की नाईं उदय होकर भासताहै। जिसका नाम मनहै उस मनसे जगत् भासित हुआ है और उसीमें जड़ शरीर के नाशका निश्चय हुआ है, हमारा क्या नाश होताहै। जिसके मनसे दुःख सुखसे वासना नाशहोतीहै सो भोगोंसे निवृत्ति सुख सम्पन्न होताहै और ग्रहण करते भोगसे और इन्द्रियके अज्ञान से मूढ़ दुःख पाते हैं। यह बड़ा आश्चर्य्य है कि, आत्माके अज्ञानसे मूढ़ दुःखपाता है। अब मैंने आत्मतत्त्व देखा है, उस से मेरा भ्रम शान्तहोगयाहै और कुछ भी किसीसे मुझको क्षोभ नहीं अब मुझे न कुछ भोगों के ग्रहण करनेकी इच्छा है और न त्यागकी वांछा है; जो जावे सो जावे और जो प्राप्तहो सोहो, न मुझको देहादि के सुखकी अपेक्षा है; न दुःखके निवृत्ति की अपेक्षा है सुख दुःख आवे और जावे मैं एक रस चिदानन्द स्वरूपहूं जिस देह में वासना करने से नानाप्रकारकी वासना उपजती है वह देहभ्रम मेरा नष्टहोगयाहै, यह वासना नहीं फुरती। इतने काल पर्यन्त मुझको अज्ञानरूपी शत्रुने नाश किया था अब मैंने आपको जाना है और अब इसको मैं चूर्ण करताहूं। इस शरीररूपी वृक्ष में अहंकाररूपी पिशाच था सो मैंने परमबोधरूपी मंत्रसे दूरकिया है इससे पवित्र हुआहूं और प्रफुल्लित वृक्षवत् शोभताहूं। मोहरूपी दृष्टि मेरी शान्त हुई है, दुःख सब नष्ट हुये हैं और विवेकरूपी धन मुझको प्राप्तहुआ है। अब मैं परमईश्वररूप होकर स्थित हुआहूं। जो कुछ जानने योग्यथा सो मैंने जानाहै और जो कुछ देखने योग्यथा वहदेखाहै। अबमैं उस पदको प्राप्त हुआहूं जिसके पायेसे कुछ पानेयोग्य नहीं रहता। अब मैंने आत्मतत्त्वको देखा है; विषयरूपी सर्प मुझको त्यागगया है; मोहरूपी कुहिरा नष्ट होगया है; इच्छारूपी मृगतृष्णा शांत होगई और रागद्वेषरूपी धूलिसे रहित सब ओरसे निर्मलहुआ हूं। अब मैं उपशमरूपी वृक्षसे शीतल हुआ हूं और सब ओरसे विस्तृतरूपको प्राप्तहुआहूं। अब मैंने सबसे उचित परमात्म देव परमार्थ को ज्ञान और विचार से पाया है और प्रकट देखा है। अधोगति का कारण जो अहंकार है उसको मैंने दूरसे त्याग दिया है और अपना स्वभावरूप जो आत्मभगवान् सनातनब्रह्म है सो जो अहंकार के वशसे विस्मरण हुआ था उसे अब चिरकाल करके देखाहै। इन्द्रियरूपी गढ़ेमें मैं गिराथा और रागद्वेषरूपी सर्प से दुःखपाकर मृत्युको प्राप्त हुआथा। मृत्युकी भूमिका टोये विना तृष्णारूपी करंजुये की कुंजोंमें मैं भ्रमतारहा जहां कामरूपी कोयल के शब्द होते थे और जन्मरूपी कूपमें दुःखपाताथा। सुखके पानेकी आशामें डूबा; वासनारूपी जालमें फँसा; दुःखरूपी दावाग्निमें जला और आशारूपी फांसी से बँधा हुआ मैं कईबार जन्म मरण

को प्राप्तहुआ था क्योंकि अहंकार के वशहुये जन्ममृत्युको प्राप्त होताहीहै—जैसे रात्रि में पिशाच दिखाई दे और अधीरता को प्राप्तकरे तैसेही मुझको अहंकार ने किया था सो अब परमात्मरूप की मुझ को तुमने प्रेरणा की है और अपनीशक्तिविष्णुरूप धारकर विवेक उपदेश किया और जगाया है । हे देव ईश्वर ! तुम्हारे बोधसे अहंकाररूपी राक्षस नष्ट हुआ है । हे विभु ! अब मैं उस को नहीं देखता जैसे दीपक से तम नहीं भासता । अहंकाररूपी जो यक्ष था और मन में जो वासना थी वह सब नष्ट हुई है । अब मैं नहीं जानता कि, वे कहां गये—जैसे दीपक निर्वाण होता है तब नहीं जाना जाता कि, प्रकाश कहांगया । हे ईश्वर ! तुम्हारे दर्शनसे मेराअहंभाव नष्टहुआ है । जैसे सूर्य्य के उदयहुये चोरभय मिटजाता है तैसेही देहरूपी रात्रि में अहंकाररूपी पिशाच उठाथा वह अब नष्ट हुआ है और अब मैं परमस्वस्थ हुआ हूं । जैसे वानरों से रहित वृक्ष स्वस्थ होता है तैसेही मैं परमनिर्वाण को प्राप्त हुआहूं । अब मैं सम और शांत बोध में जागा हूं और चिरपर्य्यन्त चोरों से जो घिराथा सो अबछूटा हूं । अब मेरा हृदय शीतलहुआ है और आशारूपी मृगतृष्णा शांत होगई है । जैसे जलसे पर्व्वत की तप्तता मिटे और वर्षा से शीतलताको प्राप्तहो तैसेही विवेकरूपी विचार से अहंकाररूपी तप्तता दूर होगई है । अब मोह कहां और दुःख कहां, आशारूपी स्वर्ग कहां और नरक कहां; बन्धकहां और मुक्त कहां । अहंकारके होनेसे पदार्थ भासते हैं अहंकार के गये इनका अभाव होजाता है । जैसे मूर्त्ति दीवारपर लिखी जाती है आकाशपर नहीं लिखी जाती तैसेही अहंकार संयुक्त जो चैतन है वह नहीं शोभता; अहंकार सेही सुख दुःखादिक का पात्र होता है । जैसे मलीनवस्त्रपर केशर का रंग नहीं शोभता तैसेही उसमें ज्ञान नहीं शोभता । जब अहंकाररूपी मेघ का अभाव हो तब तृष्णारूपी कुहिरा भी नहीं रहता और शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है । निरहंकाररूपी जलमें प्रसन्नतारूपी कमलों से शोभता है । हे आत्मा! तुझको नमस्कार है । इन्द्रियांरूपी तँदुये और चित्तरूपी बड़वाग्नि, दोनों जिससे नष्ट भये हैं ऐसे आत्मारूपीसमुद्र आत्मा को नमस्कार है; जिससे अहंकार मेघ दूर हुआ है और दावाग्नि शांत हुई है । ऐसा जो आत्मानन्दरूपी पर्वत है उस आनन्दके आश्रय मैंने विश्राम पाया है । हे देव ! तुझ को नमस्कार है । जिसमें आनन्दरूपी कमल प्रफुल्लित हैं और जिससे चित्तरूपी तरंग शान्त हुआ है ऐसा जो मानसरोवर मैं आत्माहूं उसको नमस्कार है । आत्मारूपी हंस में संवित्रूपी पंख हैं और हृदयरूपी कमलों से पूर्ण मानसरोवर पर विश्राम करनेवाले को नमस्कार है । कालरूपी कलना से रहित निष्कलंक; सदा उदितरूप, सब ओरसे पूर्ण और शांत आत्मा तुझको नमस्कार है मैं सदा उदित, शीतल हृदय का तमदूर कर्त्ता, और सर्व

व्यापक हूं परन्तु अज्ञान से अदृष्टहुआ था सो उस चैतन सूर्य्यको नमस्कार है। मन
के मनसे जो उपजे थे वह अब शांत हुये हैं और मनको मनसे और अहं को अहं से
छेदके जो शेषरहे सोही मेरी जयहै। भावरूप जो दृश्यपदार्थ हैं उनको आत्मभाव से
तृष्णा को अतृष्णाके छेदे से, अनात्मा को आत्म विचारके नष्ट किये से और ज्ञान से
ज्ञेय को जाने से मैं निरहंकार पदको प्राप्त हुआहूं और भाव अभाव क्रिया नष्ट हो-
गई है। मैं अब केवल स्वस्थितहूं और निर्भय, निरहंकार, निर्मन, निस्पन्द, शुद्धा-
त्माहूं। मेरा शरीर जीव की नाईं स्थित है, लीला करके मनने अहंकारको जीता है;
परमउपशम को प्राप्त हुआहूं और परमशांति मुझको प्राप्त हुई है मोहरूपी वैताल
और अहंकाररूपी राक्षस नष्टहुये हैं; वासनारूपी कुत्सित भूमिका से मुक्त और वि-
गतज्वर हुआहूं और तृष्णारूपी रस्सी से जो बँधाहुआ देह पिंजरा था और उसमें
अहंकाररूपी पक्षी फँसाथा सो तृष्णारूपी रस्सी विवेकरूपी कतरनी से काटी है।
अब जाना नहीं जाता कि, शरीररूपी पिंजरे से अहंकाररूपी पक्षी कहां निकल गया।
अज्ञानरूपी वृक्ष में अहंकाररूपी पक्षी रहता था उसके जानने से जाना नहीं जाता
कि, कहां गया? दुराशारूपी दुर्मतिने धूसर किया था; भोगरूपी भस्मने शुद्ध दृष्टि
दूर कीथी और वासना से हम मृतक होगये थे। इतने काल से मैं चित्तकी भूमिका में
मिथ्या अहंकार को प्राप्त हुआ था अब मैं उपजाहूं आजही मेरी बड़ीशोभा बढ़ी
है; अहंकाररूपी महामेघ नष्ट हुआ है और उस में तृष्णारूपी समताथी वह नष्ट
हुई है। अब मैं निर्मल आकाशवत् शोभताहूं; अब मैंने आत्मा भगवान् देखा है
और अपने स्वरूप को प्राप्त हुआहूं और अनुभवरूप सदा प्राप्त है। प्रभुता के समूह
के आगे अज्ञान अल्परूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआत्मलाभचिन्तनं
नामपंचत्रिंशतितमस्सर्गः ३५॥

प्रह्लाद बोले, हे महात्मा पुरुष! तुझ को नमस्कारहै। तू सर्वपदसे अतीत आ-
त्मा चिरकाल में मुझको स्मरण आया है और तेरे मिलने से मेरा कल्याण हुआ है।
हे भगवन्! तुम को देखकर सब ओर से नमस्कार करताहूं और हृदय से तुमको
आलिङ्गन करूंगा। त्रिलोकी में तुझसे अन्य बांधव कोई नहीं तू सबसे सुखदायक
है और सबका तूही संहार करता और रक्षा करता है और देने और लेनेवाला भी
तू ही है। अब तू क्या करेगा और कहां जावेगा? तूने अपनी सत्तासे विश्वको पूर्ण
किया है और विश्वरूपभी तूही है। अब सब ओर से मैं तुझको देखताहूं और तूही
नित्यरूप सर्वत्रहै। तेरे और मेरे में अनेक जन्मका अन्तर पड़ाथा पर अब कल्याण
हुआ जो तुझको देखा है। तू अत्यन्त निकट है और परमबांधवरूप है—तुझको

नमस्कार है। तू सबका कृतकृत्य स्वरूप कर्त्ता हर्त्ता है और संसार तेरी नृत्य है। हे नित्य निर्मल स्वरूप ! तुझको नमस्कारहै। शंख, चक्र, गदा और पद्मके धारनेवाले विष्णु और अर्द्धचन्द्रमाके धारनेवाले सदाशिवरूप तुझको नमस्कारहै। हे सहस्र-नेत्र इन्द्र ! तुझको नमस्कार है। पद्म जन्म ब्रह्मा सब देवविद्या का सम्बन्ध तूही है। तेरे में कुछ भेदनहीं तो तुम्हारे हमारे में भेद कैसे हो। जैसे समुद्र और तरंगों का संयोग अभेद है तैसेही तेरा और मेरा संयोग अभेदहै। तूही अनन्त और विचित्र-रूप है और भाव अभावरूप जगत् के धरनेवाली नीति है—जो जगत् की मर्य्याद करती है। हे द्रष्टारूप ! तुझको नमस्कार है। हे सर्वज्ञ ! सर्व स्वभावरूप आत्मा देव ! जन्म प्रति जन्म में बहुत दुःख मार्ग में विचराहूं और तेरी माया से चिरकाल दग्ध हुआहूं। हे देवेश ! देश लोक मैंने अनन्त देखे हैं और दृष्टान्त द्रष्टाभी अनेक देखा है परन्तु किसी से तृप्त न हुआ। जगत्को जिस ओर देखूं उसी ओर से काष्ठ, पाषाण, जल, मृत्तिका, आकाश दृष्ट आता था अब तुझ विना कुछ और दृष्ट नहीं आता अब वाञ्छा किसकी करूं जब तुझको देखाहै और उपलब्ध स्वरूपको प्राप्तहुआ हूं। तुझको नमस्कार है। नेत्रोंकी श्यामता में जो पुतलीरूप स्थित है और रूपको देखता है वह साक्षीभूत भीतर कैसे नहीं देखता। जो त्वचा में स्पर्श करता है और शीत उष्णादिक को जानता है ऐसा सर्वअङ्गों में व्यापक अनुभव कर्त्ता है—जैसे तिलों में तेल व्यापक होता है। उसको अनुभव कोई नहीं करता। जो शब्द श्रवण इन्द्रिय के भीतर ग्रहण करता है उस शब्द शक्तिका जो जाननेवाली सत्ता है और जिसमें शब्द शक्तिका विचार होता है इस से रोम खड़े हो आते हैं सो सत्ता दूर कैसे हो ? जो जिह्वाके अग्रमें रसस्वाद को ग्रहण करता है उस रसके अनुभव करनेवाली सत्ता दूर कैसेहो ? नासामें जो ग्रहणशक्ति है उसको गन्धआती है उसको अनुभव करनेवाली अलेप सत्ताहै सो सन्मुख कैसे न हो ? वेद, वेदान्त, सप्तसिद्धान्त, पुराण और गीतासे जो जानने योग्य आत्मा है उसको जब जाना तब विश्राम कैसे न हो ? वहतो परावर परमात्मा पुरुष है। जिनभोगों की मैं तृष्णाकरताथा वह भोग विद्यमान रमणीय हैं तौभी तेरे दर्शनसे रसनहीं देते। हे स्वच्छरूप निर्मल प्रकाश ! तू सूर्यभाव होकर प्रकट हुआ है और तेरी सत्तासे चन्द्रमा शीतल हुआ है; तेरी सत्तासे पृथ्वी स्थित है; तेरीसत्तासे देवता आकाश मार्गमें विचरते हैं और तेरीसत्ता से आकाश में आकाशभाव है। मेरी अहंता तेरेमें तत्त्वको प्राप्त हुईहै; तेरे और मेरेमें भेद कुछनहीं। तुझे और मुझे नमस्कार है। मैं सम, स्वच्छ, साक्षीरूप, निर्विकार और देश, काल पदार्थ के छेदसे रहितहूं। मन जब क्षोभको प्राप्त होता है तब इन्द्रियोंकी वृत्ति स्फुरण-रूप होती है और प्राण, अपानशक्ति जब उल्लास को प्राप्त होती है तब देहरूपी यंत्र

बहता है उसयंत्र में चर्म अस्थि आदिक लकड़ियां और रस्सी हैं; इन्द्रीरूपी घोड़े हैं और मनरूपी सारथी चलानेवाला है। उस देहरूपी रथमें मैं चैतनरूप स्थितहूं परन्तु मैं किसी में आस्था नहीं करता। देहरहे अथवा गिरे मुझको कुछ इच्छा नहीं; मैं अब आत्मलाभको प्राप्त हुआहूं और चिरकालपर उपशम को प्राप्त हुआहूं। जैसे कल्पके अन्त में जगत् शान्तिको प्राप्त होता है तैसेही दीर्घसंसार मार्गमें मैं चिरकाल तक भ्रमता२ अब विश्रामको प्राप्त हुआहूं। जैसे कल्पके अन्त में वायु चलता२ रह जाता है। हे सर्वरूपात्मा! तुझको नमस्कार है–जो तुझको और मुझको इस प्रकार जानते हैं। हे देव! सम्पूर्ण जगत्जाल जो विस्तृतरूप है उसका तुमने कदाचित् स्पर्श नहीं किया–तुम्हारी जय है। जैसे पुष्पों में गंध और तिलोंमें तेल रहता है तैसे-ही तुम सब देहोंमें रहते हो। तुम सर्व जगत् के प्रकाशक दीपहो। उत्पत्ति और प्रलय कर्त्ता और सदा अकर्त्तारूप हो तेरी जय है तेरे परमाणु चिदअणु में यह विस्तार रूप जगत् स्थित है जैसे वटबीज में वृक्ष होता है; फिर और में और होता है तैसेही चिदअणु में जगत् है। जैसे आकाशमें एकबादलके अनेक आकार दृष्टआते हैं तैसेही चित्तकला फुरने से अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं। इस संसारके जो क्षणभंगुर रूप पदार्थ हैं इन की अभावना किये से अब भाव अभाव से रहित भाव को देखताहूं मुझे अब यह निश्चय हुआ है कि, मान, मद, क्रोध और कलुषता, कठोरता आदिक विकारों में महापुरुष नहीं डूबते पर जिनकी नीच प्रकृति है वे इन दोषों और अव-गुणों में डूबते हैं। पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीचअवस्थाथी उसको स्मरणकरके अबमैं हँसताहूं कि, मैं कौनथा और क्या जानता था। हे मेरेआत्मा! मैं उसपदको प्राप्तहुआ था जहां चिन्तारूपी अग्निकी ज्वालाथी और दग्धहुये जीर्ण संसार के आरम्भथे पर अब देहरूपी नगर में स्फाररूपी मनोरथ की जय है और अब दुःखग्रहणकर नहीं स-के। जहां दुष्ट इन्द्रियांरूपी घोड़े और मनरूपी हाथी जाताथा उस भोगरूपी शत्रु को अब चारों ओरसे भक्षण कियाहै और निष्कण्टक राजा चक्रवर्ती हुआहूं। तू परमसूर्य है और परमआकाश में तेरा मार्ग है; उदय अस्त से रहित तू नित्य प्रकाशरूप है और सबके भीतर बाहर प्रकाशता है। अब मैं भोगोंको लीलारूप देखता हूं–जैसे कामी कामिनी को देखे परन्तु इच्छासे रहित हो तैसेही तू ग्रहण करता है। नेत्ररूपी झरोखे में बैठकर तू रूप विषय को ग्रहण करता है और अपनी शक्तिसे इसी प्रकार सब इन्द्रियों में वहीरूप धारकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयों को ग्रहण करता है। ब्रह्मकोटर में जो देश हैं उनमें प्राण अपान शक्तिसे तूही बिचरता है ब्रह्म-पुरी में जाता है और क्षण में फिर आता है और सब जगत् देहों में तूही बिचरता है। देहरूपी पुष्पों में तू सुगन्ध है; देहरूपी चन्द्रमा में तू अमृत है; देहरूपी वृक्ष में तू

रस है और देहरूपी बर्फ में तू शीतलता है । दूधमें घृत, काष्ठ में अग्नि, उत्तम स्वादों में स्वाद; तेज में प्रकाश और सर्व्व असर्व अर्थकर्त्ता पूर्ण तूही है और सर्व्व जगत्का प्रकाशक भी तूही है। वायुमें स्पन्द, मन में मुदित और अग्नि में तेज तुझी से सिद्ध है; प्रकाश में प्रकाश तू है और सब पदार्थों को सिद्धकर्त्ता दीपक तू है पर लीन हुये से जाना नहीं जाता कि, कहांगया। संसार में जितने पदार्थ और अहं त्वं आदिक शब्द हैं वे ऐसेहैं जैसे सुवर्ण में भूषण होते हैं सो उसने अपनी लीला के निमित्त कियाहै और आपही प्रसन्न होता है । जैसे मन्दवायु से खण्ड खण्ड हुये बादल के हाथी आदिक आकार होभासते हैं तैसेही तू भौतिक दृष्टि से भिन्न भिन्न रूपभासता है । हे देव! ब्रह्माण्डरूपी मोतीमें तू निरिच्छित व्यापक है भूतोंरूपी जो अन्नका तू खेतहै और चेतनरूपी रससे बढ़नेवाला है । तू अस्तकी नाईं स्थित है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों से रहित अव्यक्तरूप है और सर्व पदार्थों का प्रकाशक है। जो पदार्थ शोभा संयुक्त विद्यमान होता है पर यदि तेरी अवस्था उस में नहीं होती तो वह अस्तहोता है—जैसे सुन्दर स्त्री भूषणों सहित अन्धे के आगे स्थित हो तो वह अस्तभूत होती है तैसेही विद्यमान पदार्थ हो और तू न कल्पे तो अस्त होजाता है। जैसे दर्पण में मुखका प्रतिबिम्ब होताहै उसको देखकर अपनी सुन्दरता विना कोई प्रसन्न नहींहोता। हे आत्मा! तेरे संकल्प विना देहत्रुटितहो काष्ठलोष्ठवत् होतीहै। जब पुर्यष्टक शरीरसे अदृष्टहोतीहै तब सुख दुःख आदिक क्रमनष्ट होजाता है और किसी का ज्ञान नहींहोता—जैसे तममें कोई पदार्थ दृष्टि नहीं आता । तेरे देखने से सुख दुःख आदिक स्थित होतेहैं—जैसे सूर्य की दृष्टि से प्रातःकाल शुक्ल वर्ण से प्रकाश आता है । जब अपने स्वरूप को प्राप्त होताहै तब अज्ञानरूप सर्व विकार नष्ट होजाते हैं—जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट होताहै तो पदार्थ ज्योंका त्यों भासता है तैसेही अज्ञान के नष्टहुये से आत्मा ज्योंका त्यों भासता है। यह जो मनरूप तू है तेरे उपजने से सुख दुःख की लक्ष्मी उपजआती है और तेरे अभाव हुयेसे सर्व नष्ट होजाता है। स्वरूप से तू अनामय रूपहै और क्षणभंगुर देहमें जो मनने आस्था की है सो महासूक्ष्म अणु निमेषके लक्षभाग ऐसा सूक्ष्महै सुख दुःखादिक की भावना करके अनीश्वरताको प्राप्त हुआहै। तेरे प्रमाद से फुरनरूप होताहै और तेरे देखने से सर्वलीन होजाता है। यह जो पुर्यष्टक तेरारूप है उसके देखने से क्षीणपदार्थ जातभासि आते हैं—जैसे नेत्रों के खोलने से रूपभासता है और अन्तर्द्धान मनके मरने से सर्वनष्ट होजाता है और फिर किसीसे ग्रहण नहींहोता। जो वस्तु क्षणभंगुरहै उससे कुछ कार्य्य सिद्ध नहींहोता—जैसे बिजुलीके प्रकाशसे कोई कार्य सिद्ध नहींहोता तैसेही अन्तर्द्धान होनेसे देहसे कुछअर्थ सिद्धनहींहोता। जो उपजकर तत्काल नष्ट होजाताहै उससे क्या कार्य सिद्धहो ? देहा-

दिक जड़ और नाशवन्त हैं और जो सबको प्रकाशता है वह सदा निर्विकार सच्चिदानन्द रूपहै। सुख दुःखआदिक अज्ञानी के चित्तको स्पर्श करतेहैं और जिसका सम चित्तहै उसको स्पर्श नहीं करते। हे देव! ये जो सुख दुःख आदिक अविवेक के आश्रय हैं सो अविवेक नष्ट होगया है। तू निरीह निरंश निराकारहै और सत्य असत्यसे परे भैरवरूप परमात्मा तेरी सदाजयहै। तू सर्वशस्त्रों का असिपद है। तू जात अजातरूप सदाजय है; तेरेनाश और अविनाश रूपकीजय है और तेरे भाव और अभाव रूपकीजयहै और जीतने और न जीतने योग तेरीजय है। मायाहुलास और उपशांति को प्राप्तहुआ है तुझको नमस्कार है। हे निर्दोष! तेरे में स्थित होनेसे मेरे राग द्वेष मिटगये हैं अब बंध कहां और मोक्ष कहां और आपदा, सम्पदा और भाव-अभाव कहां। अब मेरे सर्व विकार शांतहुये हैं और सम समाधि में स्थित हुआहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेसंस्तवननामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार चिन्तनकर महाधैर्यवान् प्रह्लाद निर्विकार निरानन्द समाधि में ऐसे स्थित हुआ जैसे मूर्त्तिका पर्व्वत हो। जब बहुतकाल अपने भुवन में सुमेरुवत् समाधि में स्थित रहा तब दैत्य उसको जगानेलगे परन्तु वह न जागा—जैसे समय विना बीज अंकुर नहींलेता—और पांचसहस्रवर्ष समाधिमें व्यतीत भये पर शरीर उसीप्रकार पुष्टरहा। दैत्योंके नगरमें शान्तिहोगई और वह परमानन्द आत्मा को प्राप्तहुआ; निरानन्द जो प्रकाश है सो प्रकाशमात्र रहगया और कलना सब मिटगई। इतना काल जब इसप्रकार व्यतीतहुआ तब रसातलमण्डल में राजभय दूरहोगया और छोटेको बड़ा भक्षण करनेलगा। निदान दैत्यमण्डली की विपर्यय दशा होगई और निर्बल को बलवान् मारके लूट लेगये। तब अनेक मल्ल मिलकर प्रह्लाद को जगानेलगे पर तौभी वह न जागा—जैसे सूर्यमुखीकमल को रात्रिमें भँवरे गुंजारकरें और तौभी वह प्रफुल्लित नहीं होता मुंदाही रहताहै। संवित्कला जो चित धातुहै सो उसकेभीतर फुर्ती न भासतीथी जैसे मूर्तिका लीला सूर्यप्रकाश से रहितहोता है तैसेही उसे देखकर दैत्य उद्वेगवान् हुये और जहां किसीको सुखदायक देशस्थान मिला वहां जारहे; मर्य्यादा सब दूरहोगई मत्सर होनेलगा और पुरुष स्त्रियां रुदन करने और शोकवान् होनेलगे। कोई मारेजावें, कोई लूटेजावें और कोई व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले होगये। सब दैत्यता पारायण हुये, बांधवनष्ट होगये और उपद्रव उत्पन्न होनेलगे। दिशाके मुख अग्निरूप होगये देवता आन दिखाई देनेलगे और दैत्य निर्बल को वधिलेजानेलगे। दैत्यमूलभूमिसे रहित निर्लक्ष्मी उजाड़से होगये

और दैत्यपुर में अनीति अकाण्ड उपद्रव हुआ । जैसे कल्पके अन्तमें जीव दुःखपाते हैं तैसेही दैत्य दुःख पानेलगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेदैत्यपुरीप्रभंजनवर्णनंनाम सप्तत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३७ ॥

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! इसप्रकार जब दैत्यपुरी की दशाहुई तब सम्पूर्ण जगत् जालके क्रमपालनेवाले विष्णुदेव, जो क्षीरसमुद्र में शेषनागकी शय्यापर शयन करने वाले हैं, चतुर्मास वर्षाकालकी निद्रासे जागे और बुद्धिके नेत्रों से जगत् की मर्य्यादा विचारी तो देखा कि, पातालमें प्रह्लाददैत्य समाधि में पद्मासन बांधकर स्थितहुआ है और सृष्टि दैत्योंसे रहितहुई है । बड़ाकष्टहै कि, अब देवता जीतनेकी इच्छासे रहित होकर आत्मपद में स्थित होजावेंगे और जब देवता और दैत्योंका विरोध रहता है तब जीतने के निमित्त याचना करते हैं कि, दैत्यनष्टहोवें । अब सब देवता निर्द्वन्द्वरूप होकर परमपदको प्राप्तहोवेंगे । जैसे रससे रहित बेलि सूखजाती है तैसेही अभिमान और इच्छासे रहित देवता जगत् की ओरसे सूखकर आत्मपदको प्राप्तहोंगे । जब देवतोंके समूह शान्ति को प्राप्तहोंगे तब पृथ्वी में यज्ञ तपादिक उत्तमक्रिया निष्फल होजावेंगी न कोई करेगा, न किसीको प्राप्तहोगा और जब पृथ्वीलोकसे शुभक्रिया नष्ट हुई तब लोक भी नष्टहोजावेंगे, अकाण्डप्रलय प्रसंगहोगा और सब मर्यादा क्रम जगत्का नष्टहोजावेगा । जैसे धूपसे बर्फ नष्टहोताहै तैसेही जगत्क्रम सबनष्ट होवेगा इसके नष्टहुये भी मुझको कुछ नहीं परन्तु मैंने अपनी लीलारचीहै सो सब नष्टहोजावेगी तब मैं भी इस शरीरको त्यागकर परमपद में स्थित हूंगा और अकाण्डीही जगत् उपशमको प्राप्तहोगा । इससे इसमें मैं कल्याणनहीं देखता । जो दैत्योंके उद्वेग से रहित देवताभी शान्तहोजावेंगे तो तपक्रियानष्टहोजावेगी और जीवदुःखी होकर नष्ट होजावेंगे । इससे मैं जगत्कर्मको स्थापनकरूं कि, परमेश्वरकी नीति इसीप्रकार है । अब रसातलको जाऊं और जगत्की मर्यादा ज्योंकी त्यों स्थापन करूं पर जो मैं प्रह्लादसे भिन्न पातालका राज्य करूंगा तो वहदेवताओं का शत्रुहोगा इससे ऐसे भी न करूंगा । प्रह्लादका यह अन्तका जन्म है और परमपावन देह है और कल्प पर्यंत रहेगी । यह ईश्वरकी नीति है सो ज्योंकी त्यों है; इससे मैं जाकर दैत्येन्द्र प्रह्लाद को जगाऊं कि अब वह जागकर जीवन्मुक्त हुआहै दैत्यों का राज्यकरे । जैसे मणिमल से रहित प्रतिबिम्बको ग्रहण करतीहै तैसेही प्रह्लादभी इच्छासे रहितहोकर प्रवर्त्ते। इस प्रकार सृष्टि देवता दैत्यों संयुक्त रहेगी और परस्पर इनकाद्वेष न होगा और मेरी क्रीड़ा लीला और इच्छा होगी । यद्यपि सृष्टि का होना न होना मुझको तुल्य है तौभी जो नीति है वह जैसे स्थित है तैसेही रहे । जो वस्तु भाव में तुल्यहो उसका

नाश और स्थित में प्रयत्न करना कुबुद्धि है; आकाश के हननके यत्न के तुल्य है॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेभगवान्चित्तविवेकोनामअष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ३८॥
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार चिन्तनकर सर्वात्मा विष्णुदेव अपनेपरिवार सहित क्षीरसमुद्र से चले-जैसे मेघघटा एकत्र होकर चले-और आकर प्रह्लादकेनगर को प्राप्तहुये। वह नगर मानो दूसरा इन्द्रलोक था और प्रह्लादके मन्दिर में देखा कि, निकट दैत्य थे वे विष्णुजीको दूरसे देखकर भागगये-जैसे सूर्यसे उलूकादिक भागजावें तब जो मुख्यदैत्य थे उनकेसाथ विष्णुजीने दैत्यपुरी में प्रवेशकिया-जैसे तारासंयुक्त चन्द्रमा आकाश में प्रवेश करता है तैसेही विष्णुजी गरुड़पर आरूढ़ लक्ष्मी साथ चमरकरतीं और अनेकऋषि, देव, सहित प्रह्लाद के गृह आये। आतेही विष्णुजी ने कहा, हे महात्मा पुरुष! जाग! जाग! ऐसे कहकर पांचजन्य शंख बजाया जिस-से महाशब्दहुआ। फिर उस प्रह्लाद के कानोंके साथ लगाया और जैसे प्रलयकालमें इकट्ठा मेघका शब्दहो तैसेही बड़ेशब्द को सुनकर दैत्य पृथ्वीपर गिरगिरपड़े। निदान शनैःशनैः दैत्येन्द्रको जगाया और प्राणशक्ति जो ब्रह्मरन्ध्र में थी वहांसे विष्णुजी ने उठाई और वह शरीरमें प्रवेश करगई। जैसे सूर्यके उदयहुये सूर्यकी प्रभा वनमें प्रवेश करजाती है तैसे नवद्वारोंसे प्रवेशकरगई। तब प्राणरूपी दर्पणमें चित्तसंवित् प्रतिबि-म्बितहोकर चैतन्य मुखत्वहुई और मनभावको प्राप्तहुई और तब जैसे प्रातःकाल में कमल खिलआते हैं तैसेही उसके नेत्र प्रफुल्लित होआये और प्राण औ अपान नाड़ी में छिद्रोंके मार्ग विचरने लगे। जैसे वायु से कमलस्फुरने लगते हैं तैसेही मन और प्राणशक्ति से अंग फुरनेलगे और जाग जाग शब्द जो भगवान् कहते थे उस से वह जगा और उसने जाना कि, मुझको विष्णुभगवान् ने जगाया है और जैसे मेघ का शब्द सुनकर मोर प्रसन्नहोता है तैसे वह प्रसन्नहुआ और मनमें दृढ़ स्मृति होआई। तब त्रिलोकीके ईश्वरविष्णुदेवने, जैसे पूर्व कमलोद्भव ब्रह्मासे कहाथा कहा कि,हे साधु! तू अपनी महालक्ष्मीको स्मरणकर कि, तू कौनहै। समय विना देहके त्यागनेकी इच्छा क्याकी थी। जो ग्रहणत्यागके संकल्प से रहित पुरुष हैं उनको भाव अभावके होने में क्या प्रयोजन है? उठकर अपने आचार में सावधान हो, तेरा यह शरीर कल्पपर्यंत रहेगा और नष्ट नहीं होगा। इस नीतिको ज्योंकी त्यों मैं जानताहूं। हे आनन्दित! तू जीवन्मुक्त हुआ राज्यमें स्थितहो। हे क्षीणमन! गतउद्वेग तेरा देह कल्पपर्यन्त रहेगा और फिर कल्पके अन्त में तू शरीर त्यागकर अपनी महिमा में स्थितहोगा-जैसे घट के फूटे से घटाकाश महाकाश को प्राप्त होताहै। अब तू निर्मल दृष्टिको प्राप्तहुआ है; लोकोंका पारावार तूने देखाहै और अब तू जीवन्मुक्त विलासीहुआ है। हे साधु! द्वादश सूर्य जो प्रलयकालमें तपतेहैं उदय नहीं हुये तो तू क्यों शरीर त्यागता है; उन्मत्त पवन

जो त्रिलोकीकी भस्म उड़ानेवाला वह तो नहीं चला है और देवताओंके विमान उस से नहीं गिरे तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागताहै ? सबलोगों के शरीर सूखेवृक्षकी मञ्जरीवत् नहीं सूखे; पुष्कर मेघ और वह बिजुली फुरने नहीं लगी पर्वत तो युद्धकरके परस्पर नहीं गिरनेलगे, अबतक में भूतोंको खैंचने नहीं लगा लोकोंमें विचरता हूं । यह अर्थ है, यह मैंहूं, यह पर्वत है, ये भूत प्राणी हैं, यह जगत् है, यह आकाश है, तू देह मत त्याग; देहको धारेरह । हे साधो ! जो जीव अज्ञानयोग से शिथिल हुआ है अर्थात् जिसकी देहमें आत्म अभिमान है कि, मैं और ममसे व्याकुल रहता है और दुःखों से जीर्ण होता है उसको मरना शोभता है । जिसको तृष्णा जलाती है और हृदय में संसार भावना जीर्ण करती है और जिसके मनरूपी वनमें चित्तरूपी लता दुःखसुखरूपी पुष्पों से प्रफुल्लित है और उदय होती है उसको मरना श्रेष्ठ है । जो पुरुष अपनी देह में आधिव्याधिदुःखों से जलता है और जिसके हृदय में काम क्रोध रूपी सर्प फुरते हैं और देहरूपी सूखावृक्ष निष्फल है और चित्त चञ्चलहै ऐसी देह के त्यागने को लोकमें मरना कहते हैं; स्वरूपमें नाश किसीका नहीं होता । क्या ज्ञानी का हो क्या अज्ञानी का हो । हे साधो ! जिसकी बुद्धि आत्मतत्त्व के अवलोकन से उप-रान्त नहीं होती ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है और जिसका हृदय राग द्वेषसे रहित शीतल हुआ है और दृश्यवर्गको साक्षीभूत होकर देखता है उसका जीना श्रेष्ठ है । जो पुरुष सम्यक् ज्ञानद्वारा हेयोपादेयसे रहित है और चेतनतत्त्व में तद्रूप चित्त हुआ है; जिसने सङ्कल्प मलसे रहित चित्तको आत्मपद में लगाया है और जिस पुरुषको जगत् के इष्ट-अनिष्ट पदार्थ समान भासते हैं और शांतचित्त हुआ लीलावत् जगत् के कार्य करता है; जो इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में राग द्वेष नहीं करता, जिसे ग्रहण त्यागकी बुद्धि उदय नहीं होती और जिसके श्रवण और दर्शन किये से औरोंको आनन्द उपजता है उसका जीना शोभता है । जिसके उदय हुये से जीवोंके हृदय कमल प्रफुल्लित होते हैं उसका चिरजीना प्रकाशमान शोभताहै और वही पूर्णमासी के चन्द्रमावत् सफल प्रकाशताहै—नीच नहीं शोभते ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादोपाख्यानेनारायणवनोपन्यासयोगो नामैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ३९ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे साधो ! यह जो देहसंग दृष्टि आती है उसका नाम जीना कहते हैं और इसदेहको त्यागकर और देहमें प्राप्त होनेका नाम मरना है । हे बुद्धि-मान् ! इन दोनों पक्षों से अब तू मुक्त है; तुझको मरना क्या है और जीना क्या है—दोनों भ्रममात्र हैं । इस अर्थके दिखाने के निमित्त मैंने तुझ से मरना और जीना कहा है कि, गुणवानों का जीना श्रेष्ठ है और मूढ़ोंका मरना श्रेष्ठ है पर तू न जीता

है, न मरेगा। देहके होते भी तू विदेह है और तेरे आकाश की नाईं अङ्ग हैं। जैसे आकाश में वायु नित्य चलताहै परन्तु उससे आकाश निर्लेप रहताहै तैसेही तू देहमें निर्लेप रहेगा। देह, इन्द्रियां, मन आदिककी क्रिया सब तुझसे होती हैं, सबका कर्त्ता और सत्तादेनेवाला तूही है और स्वरूपसे सदा अकर्त्ताहै। जैसे वृक्षकीउँचाईका कारण आकाश है तैसेही तेरे में कर्त्तव्य है। तू अब जागाहै, तूने वस्तु ज्यों की त्यों जानी हैं और तू अस्ति नास्ति सर्व्व का आत्मा है। यह परिच्छिन्नरूप जो देह है सो अज्ञानीका निश्चयहै और यह केवल दुःखोंका कारण है। तू तो सर्व्व प्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाश है, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है और तुझको देह अदेह क्या और ग्रहण और त्याग क्या। जो तत्त्वदर्शी पुरुष हैं उनका भाव पदार्थ उदयहो अथवा लीनहो और प्रलयकालका पवनचले तो भी उनको चला नहीं सक्ता और जिसका मन भाव अभावसे रहित है वह जो पर्व्वतके ऊपर पर्व्वत पड़े और चूर्णहो और कल्पकी अग्निमें जलनेलगे तो भी अपने आपमें स्थित है--चलायमान नहीं होता। सब भूत स्थित होवें; इकट्ठे नष्ट होजावें अथवा वृद्ध होवें वह सदा अपने आप में स्थितहै। इस देहके नष्टहुये नाश नहीं होता और विरोधीहुये प्राप्त नहीं होता। इस देह में जो परमेश्वर आत्मा स्थित है वह मैंहूं। मेरा अनात्म भ्रम नष्ट होगया है और ग्रहण त्याग मिथ्या कल्पना उदय नहीं होती। जो विवेकी तत्त्ववेत्ता है उसका सङ्कल्प भ्रम नष्ट होजाता है और जो प्रबुद्ध पुरुष है वह सब क्रिया करता भी अकर्त्ता पदको प्राप्त होता है। वह सर्व्व अर्थों में अकर्त्ता, अभोक्ता रहताहै और जगत्के किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता। जब कर्त्तृत्व भोक्तृत्व शांत होता है तब आत्मपद शेष रहता है। इस निश्चयकी दृढ़ता को बुद्धिमान् और मुक्त कहते हैं। प्रबुद्ध पुरुष चिन्मात्र स्वरूप है और सबको अपने वशकरके स्थित है; वह ग्रहण किसकाकरे और त्याग किसकाकरे। ग्राह्य और ग्राहक शब्द भाव अविद्या है और देह इन्द्रियों से होताहै सो ग्रहण करना क्या और त्याग करना क्या? जब ग्राह्य-ग्राहक भाव हृदयसे दूरहुआ उसी का नाम मुक्त है। जिसको ऐसी स्थिति उदय होती है वह परमार्थसत्ता में सदा स्थित रहता है और वह पुरुषों में पुरुषोत्तम सुषुप्तकी नाईं स्थित है; उसके अंगों की चेष्टा बोधको प्राप्त हुई है। परमविश्रान्ति-मान् निर्वासनिक पुरुषोंकी वासना भी जगत् में स्थित दृष्टि आती है और अर्द्ध सुषुप्तकी नाईं चेष्टा करते हैं पर वे सब जगत् में आत्मा देखते हैं। वे आत्मविषयिणी बुद्धिसे सुख में हर्षवान् नहीं होते और दुःखमें भी शोकवान् नहीं होते एकरस आत्म-पदमें स्थित रहते हैं। नित्य प्रबुद्ध पुरुष कार्यभावको ग्रहण करताहै पर जैसे इच्छा से रहित दर्पण प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है तैसेही भली बुरी भावना उसको स्पर्श

नहीं करती । वह आत्मपद में जाग्रत् है और संसारकी ओरसे सोया है और सुषुप्ति रूप है । जैसे पालने में सोया हुआ बालक स्वाभाविक अंग हिलाता है तैसेही उसका हृदय सुषुप्तिरूप है और व्यवहार करता है । हे पुत्र ! तू अजात परमपदको प्राप्त हुआ है । तू इस देहसे ब्रह्माका एकदिन भोगेगा और इस राजलक्ष्मी को भोगकर फिर अच्युत परमपदको प्राप्त होगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादबोधोनाम
चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अद्भुत जिसका दर्शन है ऐसे जगत्रूपी रत्नोंके डब्बे विष्णुदेवने जब शीतल वाणीसे इस प्रकार कहा तब प्रह्लादने नेत्रोंको खोलकर धैर्य सहित कोमल वचन और मनन भावको ग्रहण करके देखा और चर्मदृष्टि से बाहर देखा कि, बड़ा कल्याण हुआ है । परमेश्वर अपना आप स्वरूप अनन्त आत्मा है और सर्वसङ्कल्प से रहित आकाशवत् निर्मल है । अब मुझको न शोक है, न मोह है और न वैराग्य से देह त्यागकी चिन्ता है । जो कुछ कार्य भयदायक होता है सो एक आत्मा के विद्यमान रहते शोक कहां; नाश कहां; देहरूपी संसार कहां; संसार की स्थिति कहां; भय कहां और अभयता कहां; मैं यथाइच्छित अपने आप में स्थितहूं । इस प्रकार मैं निर्मल विस्ततरूप केवल पावन में स्थितहूं और संसारबन्धन को त्यागकर विरक्त हुआहूं । जो अप्रबुध मूढ़हैं उनकी बुद्धिमें हर्ष, शोक, चिन्ता, विकार सदा रहता है । वे देह के भावमें सुख मानते हैं और अभाव में दुःखी होते हैं । यह चिन्तारूपी विषकी पंक्ति मूढ़ोंको लेपायमान होती है । यह इष्ट है, यह अनिष्ट है; यह ग्रहण करने योग्य है; यह त्यागने योग्य है; इस प्रकार मूर्खों के चित्तकी अवस्था चलायमान होती है पण्डितों की नहीं होती । मैं भिन्नहूं और वह भिन्न है यह अज्ञान से अंध वासना है, शुद्धबुद्धि के विद्यमान नहीं रहती जैसे सूर्यकी किरणों से रात्रि दूर रहती है तैसेही यह वासना दूर रहती है । यह त्याग और यह ग्रहण कीजिये सो मिथ्या चित्तका भ्रम है और उन्मत्त अज्ञानी के हृदय में होता है; ज्ञानवान् के हृदय में यह भ्रम उदय नहीं होता है । हे कमलनयन ! सर्व तूही है और विस्तत आत्मरूप है । हेयोपादेय और द्वैतभाव कल्पना कहां है ? यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ताका आभासहै । सत्य असत्यरूप जगत्में ग्रहण त्याग किसका कीजिये । केवल अपने स्वभाव से द्रष्टा और दृश्यका विचार किया है उस में मैं प्रथम क्षीण विश्रान्तवान् हुआथा अब भाव अभाव जगत् के पदार्थों से मुक्तहुआहूं और हेयोपादेय से रहित आत्मतत्त्व मुझको भासता है और समभाव को प्राप्त हुआहूं । अब मुझको संशय कुछ नहीं रहा, जो कुछ करताहूं वह आत्मासे करताहूं । त्रिलोकी में तब

तक तू पूजने योग्य हैं जबतक उन्मत्त नहीं हुआ इससे मैं आदरसंयुक्त पूजन करता हूं तुम ग्रहण करो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार दैत्यराजने कहकर क्षीर समुद्रमें शयन करनेवाले विष्णुको श्रेष्ठ सुमेरुकी मणिसे पूजा और फिर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदिक शस्त्रोंका पूजन करके गरुड़की पूजाकी और फिर देवता और विद्याधरों की पूजाकी। इस प्रकार भगवान् के आत्मस्वरूप का हृदय में ध्यान रख के परिवारसंयुक्त पूजन किया, तब लक्ष्मीपति बोले, हे दैत्येश्वर ! तू उठकर सिंहासनं पर बैठ, मैं तुझको अपने हाथ से अभिषेक करताहूं और पांचजन्य शंख बजाता हूं उसका शब्द सुनकर सब सिद्ध और देवता आकर तेरा मंगल करेंगे। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार कहकर विष्णुजीने दैत्यको इसभांति सिंहासन पर बैठाया। जैसे सुमेरुपर मेघ आबैठे और फिर क्षीरसमुद्र और गंगादि तीर्थों का जल मँगाके पांचजन्य शंख बजाया जिसके शब्दसे सब सिद्धगण, ऋषि, ब्राह्मण, विद्याधर, देवता और मुनियों के समूह आये और सबने स्तुतिकी। इस प्रकार अभिषेक देकर मधुसूदन बोले, हे निष्पाप ! जबतक सुमेरु के धरनेवाली पृथ्वी और सूर्य चन्द्रमाका मंडलहै तबतक तू इष्ट अनिष्ट में समबुद्धि; वीतराग और क्रोधसेरहित होकर राज्यभोग और राज्यकी पालना कीजिये। तुझको पूर्ण भूमिका प्राप्त हुई है उसमें स्थित होकर जैसे प्राप्तहो तैसेही हर्ष शोक और उद्वेग से रहित होकर विचरो। हेयोपादेय से रहितहो। तू बन्धयमान न होगा। संसारकी स्थिति तूने सब देखीहै और सबको जानता है अब मैं तुझको क्या उपदेश करूं। तू राग द्वेषसे रहित होकर राज्य भोग; अब दैत्यों का रुधिर धरती पर न पड़ेगा अर्थात् देवताओं के साथ विरोध न होगा। आज से देवता और दैत्योंका संग्रामगया। जैसे मंदराचल से रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् हुआथा तैसेही सब जगत् स्वस्थ रहेगा। मोहरूपी तम तेरे हृदयसे दूर हुआ है और सदा प्रकाशस्वरूप लक्ष्मीहुई है और अनन्त विलासों को राजलक्ष्मी से भोगता आत्मपद में स्थितरह॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादाभिषेकोनामै
कचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार कहकर पुण्डरीकाक्ष परिवारसंयुक्त चले मानो दूसरी संसारकी रचना दैत्य के मन्दिरसे चली है। तिस पीछे प्रह्लाद ने पुष्पांजलिदी और क्रमसे क्षीरसमुद्र में पहुँचे और देवताओं को बिदाकरके आप शेषनाग के आसनपर जैसे श्वेतकमलपर भँवरा बैठे तैसे स्वस्थ होकर बैठे। हे रामजी! यह दृष्टि अज्ञान के सम्पूर्ण मलके नाशकरनेवाली है। (प्रह्लाद को बोध की प्राप्ति की जो

अवस्था मैंने तुमसे कही है वह चन्द्रमा के मंडलवत् शीतल है। जो मनुष्य बड़ापापी हो और इसको विचारे तो वह भी शीघ्रही परमपदको प्राप्तहो और जो पापसे रहित हैं उसकी क्या वार्त्ता कहिये केवल सम्यक् विचार करके पाप नष्ट होजाताहै। वह कौन है जो इन वाक्यों को विचार के परमपद को न प्राप्तहो। हे रामजी ! अज्ञानरूप पाप इसके विचार से नष्ट होजाते हैं और पापों का कारण जो अज्ञान है उसका नाश करने-वाला यह विचार है—इस से विचार का त्याग कदाचित् न करो। यह जो प्रह्लाद की सिद्धता कही है इसको जो मनुष्य विचारे उसके अनेक जन्मों के पाप नष्ट होजावें इसमें कुछ संशय नहीं। रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! प्रह्लाद का मन तो परमपद में लगगयाथा पाञ्चजन्य शब्द से उसको विष्णुजी ने कैसे जगाया ? वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप रामजी ! लोकमें मुक्ति दोप्रकारकी है एक सदेह और दूसरी विदेह, उनका भिन्न भिन्न विभागसुन। जिसपुरुषकी बुद्धि देहादिकों से असंशक्ति है और जिसको ग्रहण त्यागकी इच्छा नहीं और निरहंकार हुआ चेष्टा करता है उसको तुम सदेहमुक्त जानो और देहादिक सब नष्ट होजावें फिर न जन्म धारणकरे उसको विदेहमुक्त जानो। वह उस पदको प्राप्त होताहै जो अदृश्यरूप है। अज्ञानी की वासना कच्चेबीज की नाईं है जो जन्मरूपी अंकुरको प्राप्तकरती है और ज्ञानवान् मुक्तकी वासना भूनेबीज की नाईं जो जन्मरूपी अंकुर से रहित होती है। विदेहमुक्तकी वासनाका अंकुर दृष्टि नहींआता जीवन्मुक्त पुरुषके हृदय में शुद्ध वासना होती है और पावनरूप परम उदारता सत्ता-मात्र नित्य आत्म ध्यान में है और संसार की ओर से सुषुप्ति की नाईं शांतरूप है। सहस्र वर्ष का अन्त होजावे और शुद्ध वासनाका बीज हृदय में हो तो वह पुरुषसमा-धिसे जागेगा—वह जीवन्मुक्तहै। इससे प्रह्लादके हृदयमें शुद्धवासना थी उससे पाञ्चज-न्य शंखके शब्द से वह जागा। विष्णुजी सब भूतों के आत्मा हैं जैसे जिसकी इच्छा फुरती है तैसेही तत्काल होता है और वे सर्वज्ञ और सबके कारण हैं। जब विष्णु ने चिन्तना की तब प्रह्लाद जागा। आप अकारण है कोई इसका कारण नहीं यही सब भूतों का कारण है सृष्टि की स्थिति निमित्त आत्मा पुरुष ने विष्णु वपुधारा है और आत्मा के देखनेही से विष्णुजी का दर्शन होताहै और विष्णुकी आराधना से शीघ्रही आत्मा का दर्शन होता है। आत्माके देखने के निमित्त तुम भी इसी दृष्टि का आश्रय करो। तुम विराट्रूपहो, इसी दृष्टि से शीघ्रही आत्मपद की प्राप्तिहोगी। यह वर्षाकाल की नदीवत् संसार असार बादल है सो विचाररूपी सूर्यके देखे विना जड़ता दिखाता है। विष्णुरूप जो आत्मा है उसकी प्रसन्नता से बुद्धिमान् को यह भास्वररूप माया नहीं बेधती। जैसे यक्ष माया यंत्र मंत्रवालेको नहीं बधसक्ती तैसेही आत्मा की इच्छा से यह संसारमाया घनता को प्राप्तहोती है और आत्माकी इच्छा से निवृत्त होती है।

यह संसार माया ईश्वर की इच्छा से वृद्ध होती है–जैसे अग्नि की ज्वाला वायुसे वृद्ध होती है और वायुही से नष्ट होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादव्यवस्थावर्णनन्नाम
द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४२॥

इतना सुनकर रामजी ने पूंछा, हे भगवन् सब धर्मों के वेत्ता! आपके वचन परम शुद्ध और कल्याण स्वरूप हैं जिनको सुनकर–मैं आनन्दवान् हुआहूं–जैसे चन्द्रमा की किरणों से औषधि पुष्ट होती है–और आपके वचनों के सुननेको, जो पावन और कोमल हैं, जिसकी वाञ्छा है वह पुरुष जैसे पुष्पोंकी मालासे सुन्दरछाती शोभती है तैसेही शोभता है। हे गुरु! आप कहते हैं कि, सबकार्य्य अपने पुरुष प्रयत्न से सिद्ध होते हैं; जो ऐसे है तो प्रह्लाद माधवके वर बिन क्यों जागा–जब विष्णुने वरदिया तब उसको ज्ञान प्राप्तहुआ? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! प्रह्लाद को जो कुछप्राप्त हुआ वह पुरुषार्थ से प्राप्तहुआ; पुरुषार्थ बिन कुछ प्राप्त नहीं होता। जैसे तिलों और तेल में कुछ भेद नहीं तैसेही विष्णु भगवान् और आत्मा में कुछ भेद नहीं। विष्णु है वह आत्माहै और जो आत्माहै वह विष्णु है; विष्णु और आत्मा दोनों एक वस्तु के नाम हैं जैसे विटप और पादप दोनों एक वृक्षके नाम हैं। प्रह्लादने जो प्रथम अपने आप से अपनी प्रेमशक्ति विष्णुभक्तिमें लगाई सो आत्मशक्ति से लगाई; आत्मा से आपही वरपाया और आपही विचारकर अपने मनको जीता। कदाचित् आत्मा में आपही अपनी शक्ति से जागता है अथवा विष्णु शक्तिसे जागताहै। हे रामजी! प्रह्लादचिर पर्यंत आराधना करता प्रतापवान् हुआ। विचार से रहित को विष्णुभी ज्ञान नहीं देसक्ता। आत्मा के साक्षात्कार में मुख्य कारण अपने पुरुषार्थ से उपजा विचार है और गौणकारण वर आदिकहै; इस से तू मुख्य कारण का आश्रयकर। प्रथम पांचों इन्द्रियों को वशकर और चित्त को आत्म विचार में लगा। जो कुछ किसीको प्राप्तहोता है वह अपने पुरुषार्थ से होताहै; पुरुषार्थ विना नहीं होता। अपने पुरुषार्थ प्रयत्न से इन्द्रियरूपी पर्वतको लांघे तो फिर संसार समुद्र से तरजावे और तब परमपद की प्राप्तिहो। जो पुरुष यत्न विना जनार्दन मुक्ति दें तो मृगपक्षियों को क्यों दर्शन देकर उद्धारनहीं करता जो गुरु अपने पुरुषार्थ विना उद्धार करते तो अज्ञानी अविचारी ऊंट, बैल आदिक पशुओं को क्यों नहीं करजाते। इस से विष्णु, गुरु इत्यादि और किसीके पाने की इच्छा बुद्धिमान् नहीं करते हैं। अपने मनके स्वस्थकिये विना परम सिद्धता की प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते। जिन्होंने वैराग्य और अभ्यास से इन्द्रियरूपी शत्रु वश किये हैं वे अपने आपसे उसको पातेहैं और किसीसे नहींपाते। हे रामजी! आप से अपनी आराधना और अर्चनाकरो; आपसे आपको देखो और

आपसे आपमें स्थितरहो । शास्त्र विचारसे रहित मूढ़ोंकी प्रकृतिके स्थितिके निमित्त वैष्णवभक्ति कल्पी है प्रथम जो अभ्यास यत्नका सुख कहा है उससे जो रहित पुरुष है उसको गौणपूजाका क्रमकहा है क्योंकि; उसने इन्द्रियों को वश नहीं किया और जिसने इन्द्रियोंको वशकिया उसको भेदपूजा से क्या प्रयोजन है। विचार और उपशम विनाभी विष्णुभक्ति सिद्धनहीं होती और जब विचार और उपशम संयुक्त हुआ तब कमल और पाषाणसे क्या प्रयोजन है। इससे विचार संयुक्तहोकर आत्मा का आराधन करो; उसकी सिद्धतासे तुम सिद्धहोगे जिसने उसको सिद्ध नहीं किया वह वनका गर्दभ है जो प्राणी विष्णुके आगे प्रार्थना करते हैं वे अपने चित्तके आगे क्यों नहीं करते ? सब जीवों के भीतर विष्णुजी स्थित हैं उनको त्यागकर जो बाहर के विष्णु परायण होजाते हैं वे बुद्धिमान् नहीं । हृदय गुफामें जो चेतनतत्त्व स्थित है वह ईश्वर का मुख्य सनातन वपु है और शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हाथ में है वह आत्माका गौण वपु है। जो मुख्यको त्यागकर गौणकी ओर धावते हैं वे विद्यमान अमृत को त्यागकर जो साधनसे सिद्धहो उसकी प्राप्ति निमित्त यत्न करते हैं। हे रामजी ! मनरूपी हाथीको जिस पुरुषने आत्म विवेकसे वश नहीं किया उस अविवेकी चित्तको रागद्वेष ठहरने नहीं देते । जिसके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्महै उस ईश्वर की जो अर्चना करते हैं वे कष्ट तपस्या से पूजन करते हैं; उनका चित्त समय पाकर निर्मलभाव, अभ्यास और वैराग्य को प्राप्तहोता है। नित्य अभ्यास से भी चित्त निर्मल होताहै तो आत्म फल को प्राप्तहोता है; चित्त निर्मल विना आत्म फलको प्राप्त नहीं होता और जब चित्त निर्मलहुआ तब वैराग्य और अभ्यासवान् होकर आत्मफलका भोगी होताहै—जैसे बोयाबीज समयपाकर फलदेता है तैसेही क्रम करके फलहोता है। हे रामजी ! विष्णु पूजाका क्रमभी निमित्त मात्र है । आत्म तत्त्व के अभ्यासरूपी शाखा से फल प्राप्त होता है और जो सब से उत्तम परम सम्पदा का अर्थ है वह अपने मनके निग्रह से सिद्धहोताहै। अपने मनका निग्रह करनाही बीजहै जो चेतनरूपी क्षेत्रसे प्रफुल्लित होकर फलदायक होता है। संपूर्ण पृथ्वी की निधि और शिलामात्र बड़ी २ मणिकीहोवें तौभी मनके निग्रहके समान नहीं । जैसा दुःख का नाशकर्त्ता और बड़ा पदार्थ मनको निग्रह है वैसा और कोई नहीं। जब तक जीव अनेक जन्म पाता है तब तक अनउपशम मनरूपी मत्स्य संसार समुद्रमें भ्रमाता है। हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु और महेशको चिरकाल पर्यंत पूजतारहे पर यदि मन उपशम और विचार संयुक्त न हुआ तो देवता कृपालहों तो भी उसको संसार समुद्र से नहीं तारसक्ते। यह जो भास्वर आकार जगत्के पदार्थ भासते हैं उनको इन्द्रियों से त्याग कीजिये तब जन्मके अभावका कारण जानिये। विषयोंकी चिन्तनासे रहित होकर,

निरामय और सब दुःखोंसे रहित आत्मसुख में स्थितहो और जो सत्तामात्र तत्त्व है और सबका साररूप है उसका स्वादलेकर मनरूपी नदीके पारहो॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेप्रह्लादविश्रांतिवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः४३

वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! यह संसाररूप नाम्नी माया अनन्त है और किसीप्रकार इसका अन्तनहीं आता। जब चित्त वशहो तब यह निवृत्तहोजाती है, अन्यथा नहीं निवृत्त होती। जितना जगत् देखने और सुननेमें आता है वह सब मायामात्र है और मायारूप जगत्के भ्रमसे भासता है। इसपर एक पूर्व इतिहासहुआ है सो तुम सुनो। हे रामजी! इस पृथ्वीपर कोशलनाम एक देशहै जो सुमेरु पर्व्वतवत् रत्नोंसे पूर्ण है और जो २ उत्तम पदार्थ हैं वे सब उस देशमें हैं वहांगाधि नाम एक ब्राह्मण जो वेदों में प्रवीण–मानों वेदकी मूर्त्तिथा–रहताथा बाल्यावस्थासे वह वैराग्यादिक गुणोंसे प्रकाशित भुवनवत् शोभताथा। एकसमय वह कुछकार्य मनमें धरके तपकरनेकेनिमित्तवनमें गया और उस वनमें एक कमलोंसेपूर्ण ताल देख कंठपर्यंत जलमें खड़ाहोकर तपकरने लगा। आठमास पर्यंत दिन रात्रि जबजलमें खड़ारहा तो उसके दृढ़तपको देखकर विष्णुप्रसन्न हुये और जहां वह ब्राह्मण तप करताथा वहां,ज्येष्ठ आषाढ़की तपी पृथ्वीपर मेघवत् आकर कहा, हे ब्राह्मण! जलसे बाहर निकल और जो कुछ वाञ्छित फलहै वह मांग तब गाधिने कहा, हे भगवन्! असंख्य जीवोंके हृदयरूपी कमल के छिद्रमें आप भँवरे हैं और त्रिलोकीरूपी कमलों के आप तड़ाग हैं आप ऐसे ईश्वर को मेरा नमस्कार है। हे भगवन्। यही इच्छा मुझको है कि, आप की आश्चर्य्य रूप माया को, जिससे यह जगत् रचा है, किसी प्रकार देखूं। तब विष्णुजी ने कहा, हे ब्राह्मण! तुम माया देखोगे और देखकर फिर त्याग भी दोगे। ऐसे कहकर जब विष्णु अन्तर्द्धान होगये तब ब्राह्मण वर पाकर आनन्दवान् हुआ और जल से निकला जैसे निर्द्धनपुरुष धनपाकर आनन्दवान् होताहै तैसेही वह ब्राह्मण वर पाकर आनन्दवान् हुआ। चलते बैठते उसकी सुरत विष्णु के वरकी ओर लगी रहे और यही विचारे कि, मैं माया कब देखूंगा। एक काल में उसी तालाब पर वह स्नान करनेलगा और डुबकी मार मन में अघमर्षणमंत्र जपने लगा (अघमर्षण पापों के नाश करने वाले मंत्र को कहते हैं) उस मंत्रको जपते २ जब उसका चित्त विपर्यय होकर निकल गया तब उसको कृष्ण मंत्र भूलगया और आप को फिर अपने गृह में स्थित देखा। फिर उसने आपको मृतक हुआ देखा और देखा कि, सब कुटुम्ब के लोग रुदन करते हैं और शरीरकी कांति ऐसी जातीरही है जैसे टूटे कमलोंकीशोभा जाती रहती है। जैसे पवनके ठहरे से वृक्ष अचल होजाते हैं तैसेही अङ्गअचल होगया और होठफटकर विरसहोगये मानों अपने जीनेको हँसते हैं। माता गाधिको पकड़े बैठीरही

और सब परिवारवाले ऐसे इकट्ठे हुये जैसे वृक्षपर पक्षी आन इकट्ठे होते हैं और जैसे पुलके टूटे जल चलता है तैसेही रुदन करते हैं फिर बांधवलोग कहनेलगे कि, अब यह अमङ्गलरूप है, इसको जलाना चाहिये । ऐसे कहकर उसे सब जलाने लेचले और चितामें डालके जलादिया और फिर अपने गृह में आकर क्रियाकर्म किया । हे रामजी ! उस के उपरान्त वह ब्राह्मण एकदेश में चाण्डाल हुआ । उस देश में एक चाण्डालों का ग्रामथा वहां उसने एक चाण्डाली के गर्भमें, श्वानकी विष्ठा में कृमिवत् प्रवेश हुये देखा और समय पाकर गर्भसे बाहर निकला—जैसे पकाफल वृक्षसे गिरताहै, तो वहां वह बहुत सुन्दर बालकजन्मा और चाण्डाली इससे प्रीति करनेलगी। इस प्रकार दिन २ बढ़नेलगा जैसे छोटावृक्ष बढ़जाताहै । निदान वह बारहवर्षका होके फिर सोलह वर्षका हुआ तब श्वानों को साथ लेकर वन में जावे और मृगोंको मारे और इसी प्रकार बहुत स्थानों में विचरे । फिर उसका विवाह हुआ तब उसने यौवन अवस्थाको यौवनमें व्यतीतकिया और बहुत बड़ा कुटुम्बीहुआ । फिर जब वृद्धहोकर शरीर जर्ज्जरीभूत होगया तो तृणोंकी कुटी बनाकर बाहर जारहा—जैसे मुनीश्वर रहते हैं । दैववशात् वहां दुर्भिक्षपड़ा और इसके बांधव क्षुधासे मरनेलगे तब वहांसे अकेला निकला और बहुतेरे स्थान लांघता हुआ क्रांतदेश में पहुंचा । उस सुन्दर देशका राजा मरगया था और उसके मंत्रियोंने एक बड़े हाथी को इस निमित्त छोड़ा था कि, जो कोई पुरुष इसके मुखसे लगे उसको राजा कीजिये यह राजमार्ग में चला जाताथा उस हाथीको देखा कि, बहुत सुन्दर चरणों से सुमेरु पर्व्वतवत् चला आता है। जब निकट आया तब उसने इसको शीशपर ऐसे चढ़ालिया जैसे सूर्य को सुमेरु शीशपर बैठाले । इसके हाथीपर आरूढ़ होतेही नगारे और तुरहियां बजनेलगीं और बड़ेशब्द होनेलगे—मानों प्रलय कालके मेघ गर्ज्जते हैं; भाट आदिक आनकर स्तुति करनेलगे और हाथीपर बैठे से इसके मुखकी शोभा औरही होगई । निदान सेना सहित राजा ऐसा शोभायमान हुआ जैसे तारोंमें चन्द्रमा शोभता है और अन्तःपुर में जाकर रानियों में बैठा और सब रानियां और सहेलियां इसके निकट आईं और इससे मिलनेलगीं । सहेलियोंने स्नान कराके, नाना प्रकारके हीरे, मोती, भूषण और सुन्दरवस्त्र पहिराये । निदान सब प्रकार सुशोभित होकर राज्य करनेलगा और सब स्थान और सबदेशों में इसकी आज्ञा चलनेलगी और सब लोग इससे भय पावें । वहां वह बड़े तेज और लक्ष्मीसे सम्पन्न हुआ और तेजवान् होकर ऐसे विचरनेलगा जैसे वन में सिंह विचरता है और हाथीपर चढ़कर शिकार खेलने जाता था । वहां उसका नाम गावल हुआ ॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्र० गावलोपाख्यानचांडालनामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार लक्ष्मीपाकर वह आनन्दवान् हुआ और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही शोभित हुआ। जब आठवर्ष पर्यन्त इस प्रकार राज्यकिया तब एक दिन उसके मन में सङ्कल्प फुरा कि, मुझको वस्त्र और भूषणोंके पहिरने से क्याहै और इनकी सुन्दरता क्याहै;मैं तो राजाधिराज हूं और अपने तेजसे तेजस्वी शोभायमान हूं। हे रामजी ! ऐसे विचारकर उसने भूषण उतारडाले; शुद्ध श्याममूर्ति होकर स्थित हुआ और जैसे प्रातःकाल में तारागणों से रहित श्याम आकाश होता है तैसेही होकर फिर अपनी चाण्डाल अवस्था के वस्त्रपहिन अकेला निकलकर बाहर डेवढ़ीपर जा खड़ाहुआ। निदान उस देशके बड़े चाण्डाल जिनको यह दुर्भिक्ष से छोंड़ आया था उसमार्ग में आनिकले; उनमें एक चाण्डाल तन्द्री हाथ में लिये आता था उसने राजा को देखकर पहिचाना और श्याम पर्व्वतवत् राजाके सम्मुख आकर कहा; हे भाई ! इतने काल तू कहांथा ? हमको छोंड़कर यहां आकर सुख भोगनेलगा है ? हे भाई ! यहां के राजाने तुझको सुखीकिया होगा क्योंकि; तू गाताभला है ? राजा को राग प्यारा होता है और तू कोकिला की नाईं गाता है इस कारण प्रसन्न होकर उसने तुझे बहुत धन दिया होगा अथवा किसी और धनी ने तुझसे प्रसन्न होकर मन्दिर और धन दिया होगा। हे रामजी ! इसप्रकार वह चांडाल मुख से कहता और भुजा फैलाता इसके सम्मुख चला और यह नेत्रों और हाथों से उसको संकेतकरे, कि चुपरह पर वह चाण्डाल कुछ न समझे सम्मुख होकर चलाही आवे। ज्यों ज्यों वह पासआता था त्यों त्यों राजा की कांति घटती जाती थी कि, इतने में झरोखों में से सहेलियोंने देखा और देखकर विचार किया कि यह राजा चाण्डाल है। ऐसे विचारकर वे महाशोक को प्राप्त हुईं और कहनेलगीं कि, हमको बड़ा पाप हुआ कि, इसके साथ हमने स्पर्श और भोजन किया। इस शोकसे सबकी कान्ति नष्ट होगई जैसे बर्फपड़नेसे कमलपंक्ति की कान्ति जाती रहती है; और जैसे वन में अग्नि लगने से वृक्षोंकी कान्ति जाती रहती है तैसेही उनकी कान्ति जाती रही। सब नगरवासी भी यह सुनकर शोकवान् हुये और हाय २ शब्द करनेलगे। जब वह चाण्डाल राजा अपने अन्तःपुर में आया तो उसको देख करके सब भागे और निकट कोई न आताथा। जैसे पर्व्वत में अग्नि लगे तो वहां से पशु पक्षी भागजाते हैं तैसेही चाण्डाल राजा के निकट कोई न आवे। उस देश में जो बुद्धिमान् पण्डित थे उन्हों ने विचार किया कि, बड़ा अनर्थ हुआ जो हम इतने कालतक चाण्डाल राजा से जिये। हमको बड़ा पाप लगा है इस लिये इस पाप का और पुरश्चरण कोई नहीं, हम सबही चिता बना के अग्निमें प्रवेश कर जल मरेंगे तब यह पाप निवृत्त होगा। हे रामजी ! ब्राह्मण और क्षत्रियों ने यह विचार करके

चिता बना पुत्र, कलत्र और बान्धवों को छोड़कर चिता में प्रवेश करनेलगे और जैसे दीपक में पतंग प्रवेश करें तैसेही जलने लगे। जैसे आकाश में तारे दृष्ट आवें तैसेही चिताका अनेक चमत्कार दृष्ट आताथा और धुवेंसे अन्धकार होगया। कोई धर्म्मात्मा मनुष्य अपनी इच्छासे जलें और जो अपनी इच्छा से न जलें उनको और ले जलावें। चाण्डाल राजाने विचारा कि, मुझ एक के निमित्त इतने नगरवासी व्यर्थ जलते हैं; इस संसार में उसका जीना श्रेष्ठ है जिस में शोभा उत्पत्तिहो और जिस के जीने से पापकी उत्पत्तिहो उसका मरना श्रेष्ठ है। हे रामजी ! ऐसे विचारकर उस राजाने भी चिता बनाई और जैसे दीपक में पतंग प्रवेश करता है तैसेही प्रवेश करगया। जब अग्नि का तेज शरीर में लगा तब गाधिका शरीर जो तलाव में डुबकी लगाये था कांपा और जलसे बाहर शीश निकाला परन्तु सावधान न हुआ। इतना कहकर बाल्मीकि जी बोले, कि, जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सूर्य्य अस्त हुआ और सबसभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेराजप्रध्वंसवर्णनन्नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इतना भ्रम उसने दो मुहूर्त्त में देखा और अर्द्धघटी पर्य्यन्त उसे कुछ बोध न हुआ पर उसके उपरान्त बोधवान् हुआ और उस संसार भ्रमसे रहित हुआ। जैसे मद्यप नशेके क्षीणहुये बोधवान् हो तैसाही वह बोधवान् हुआ और बाहर निकलकर विचारने लगा कि, मुझको कुछ भ्रमसा हुआ है। कहां वह मेरा गृहमें मरना, फिर चाण्डालके गृह में जन्म लेना, फिर कुटुम्बमें रहना और फिर राज्यकरना। बड़ा भ्रम मुझको हुआ है। हे रामजी ! ऐसे विचारकर फिर उस ने सन्ध्यादिक कर्म्म किये और इस भ्रम को फिर फिर स्मरण करके आश्चर्य्यवान् हो पर यह जानसके कि, भगवान् का वरपाकर मैंने यह माया देखी है। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब एक क्षुधार्त्थी दुर्बल ब्राह्मण थका हुआ इसके आश्रमपर आया-मानों ब्रह्मा के आश्रम पर दुर्बासाऋषि आये-तब गाधिने उस ब्राह्मण को आदर संयुक्त बैठाया और फल फूल इकट्ठे करके जैसे वसन्तऋतु में फल फूल से वृक्षपूर्ण होता है तैसेही उसको पूर्णकिया। वह ब्राह्मण कई दिन वहांरहा। सन्ध्यादिक कर्म और मंत्र जाप दोनों इकट्ठे करें और रात्रिको पत्रोंकी शय्या बनाकर शयनकरें। एकरात्रिकेसमय शय्यापर बैठे दोनों चर्चा वार्त्ता करते थे कि, प्रसङ्गपाकर गाधिने पूंछा हे ब्राह्मण ! तेरा शरीर जो ऐसाकृश और थका हुआ है इसका क्या कारण है ? उसने कहा हे साधो ! जो कुछ तूने पूंछाहै सो मैं कहताहूं, हमसत्यवादी हैं-जैसे वृत्तान्तहुआहै सो तू सुन। एक कालमें मैं देशान्तर फिरता फिरता उत्तर दिशाकी ओर गया और क्रान्त देशमें जा

पहुँचा और वहां रहनेलगा। वहांके गृहस्थ भली प्रकार मेरी टहल करें और उनकेभले भोजन और वस्त्रोंसे मैं प्रसन्नहो रसस्वाद से मेरा चित्त मोहगया। एकदिन मेरेमुखसे यह शब्द निकला कि, यहांके लोग बहुत श्रद्धावान् और दयावान् हैं तब जो लोग पास बैठेथे कहने लगे, हे साधो! आगे यहां दया धर्म्म बहुत था अब कुछ कम होगया है। तब मैंने पूंछा कि, क्यों? तब उन्होंने कहा कि, इस देशका राजा मृतक हुआ तब एक चाण्डाल राजा हुआ था। प्रथम किसीने न जाना और वह आठवर्ष पर्यंत राज्य करता रहा। जब उसकी वार्त्ता प्रकट हुई कि, यह चाण्डालहै तब देश के रहने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय चिताबनाकरके जलमरे और फिर राजाभी जलमरा। ऐसापापइस देशमें हुआहै इस कारण दयाधर्म कुछ कम होगया है। हे ब्राह्मण! जब मैंने इसप्रकार नगरवासियों से सुना तब मैं बहुत शोकवान् हुआ और वहां से यह विचारता चला कि, हायहाय मैं बड़े पापी देशमें रहाहूं। ऐसे विचारकर मैं प्रयागादि तीर्थोंपर चला और तीर्थ करके कुछ और चान्द्रायण व्रतकरे अर्थात् कृष्णपक्ष में एकएक ग्रासघटाता जाऊं और जब अमावास्या आवे तब निराहाररहूं और जब शुक्लपक्ष आवे तब एक एकग्रास बढ़ाता जाऊं और पूर्णमासी के चन्द्रमा के कला से बढ़ाना और कला से घटना इस प्रकार मैंने तीन कृच्छ्र चान्द्रायण किये हैं वहां से चल तेरे आश्रमपर आकर व्रत खोला है। हे साधो! इस निमित्त मेराशरीर कृश और निर्बल हुआ। हे राम जी! जब इसप्रकार ब्राह्मणने कहा तब गाधि विस्मय को प्राप्त हुआ कि, मैं जानता था कि, मुझको भ्रम ऐसा होगयाहै सो इसने प्रत्यक्ष वार्त्ता कह सुनाई। ऐसे विचार कर फिर गाधिने पूंछा और फिर उसने ऐसेही कहा तब सुनकर आश्चर्य्यवान् हुआ। जब रात्रि व्यतीत हुई और सूर्य्य उदय हुआ तब सन्ध्या आदिक कर्म्म किये और फिर एकान्त में विचारनेलगा कि, मैंने कैसा भ्रम देखा है और ब्राह्मण ने सत्य कैसे देखा; इससे अब उसदेशको चलकर देखूं जहां मुझको चाण्डालका शरीर हुआ था। हे रामजी! इसप्रकार विचारकर मनोराज के भ्रम को देखने को गाधि ब्राह्मण चला और चलता चलता उस देश में जा पहुँचा। जैसे ऊंट कांटोंको ढूंढ़ता कण्टकों के वनमें जाता है तैसेही यह जब चाण्डालों के स्थानों को प्राप्तहुआ तब चाण्डालोंके स्थान देखे और जहां अपना स्थान था उसको देखा और अपने खेती लगानेका स्थान देखा कि, कुछ बेड़ खड़ी है और कुछ गिरगई है और पशु के हाड़ चर्म्म जो अपने हाथ से डालेथे वे प्रत्यक्षदेखे और आश्चर्य्यवान् हुआ कि, हे देव! क्या आश्चर्य्य है कि, चित्तका भ्रम मैंने प्रत्यक्षदेखा। जो बालक अवस्था में क्रीड़ा करने के और भोजन और मद्य पीने के और पात्र इत्यादिक जो खान पान भोगके स्थानथे वह प्रत्यक्ष देखे और महावैराग्यको प्राप्तहुआ। ग्राम

वासी मनुष्यों से भी पूछा कि, हे साधो ! यहां एक चाण्डाल बड़े श्याम शरीर वाला हुआ था तुमको भी कुछ स्मरण है ? हे रामजी ! जब इसप्रकार ब्राह्मण ने पूछा तब ग्रामवासियों ने कहा; हे ब्राह्मण ! यहां एक कटजल नाम चाण्डाल क्रम करके बड़ा हुआ, फिर उसका विवाह हुआ और बेटे बेटी परिवार सहित बड़ा कुटुम्बी हुआ । फिर जब वृद्ध हुआ तो दैवसंयोग से अकेला कहीं चलागया और जाता २ क्रान्त-देशमें वहां के राजाके मरनेके कारण वहांका राज इसको मिला और आठ वर्ष पर्यंत राज करता रहा । जब नगरवासियों ने सुना कि, यह चाण्डाल है तब वह बहुत शोक-वान् हुये और चिता बनाकर जल मरे । इस प्रकार सुनकर गाधि बहुत आश्चर्यवान् हुआ और एक से सुनकर और से पूछा उसने भी इसी प्रकार कहा । ऐसे वारंवार लोगों से पूछते रहा और एक मास वहां रह फिर आगे चला और नदियां, पहाड़, देश, हिमालय पर्वतों की उत्तर दिशा क्रान्तदेश में पहुँचा । जिन स्थानों का वृत्तान्त सुना था सो सबही देखे । जहां सुन्दर स्त्रियां थीं और जहां चमर झूलते थे उनको प्रत्यक्ष देखा । फिर नगरवासियों से पूछा कि, यहां कोई चाण्डाल राजाभी हुआ है; तुमको कुछ स्मरण है तो मुझसे कहो ? नगरवासियोंने कहा, हे साधो ! यहांका राजा मरगयाथा और मंत्रियोंने एकहाथी छोड़ाथा कि, जो कोई मनुष्य इस हाथी के संमुख आवे उसको राजाकरें । जब वह हाथी चला तब उसके संमुख एक चाण्डाल आया और हाथीने जब उस चाण्डालको शीशपर चढ़ालिया तब और विचार किसीने न किया और उसको राजतिलक दिया । आठवर्ष पर्यन्त वह राज करता रहा पीछे जब उस के बान्धव आये और उससे चर्चा करने लगे तब सहेलियों ने ऊपर से देखा कि, यह चाण्डाल है । ऐसे देख उन्हों ने उसका त्याग किया और विचारवान् लोग जो उसके साथ चेष्टा करते थे वे उसे चाण्डाल जानकर जलमरे और वह राजा भी आप को धिक्कार कर जलमरा । अब उसको बारहवर्ष मृत्युपाये व्यतीत हुये हैं । हे रामजी ! इस प्रकार सुनके गाधिब्राह्मण आश्चर्य को प्राप्त हुआ कि, कहां मैं जलमें स्थितथा और कहां इतनी अवस्था देखी । ऐसे विचार करता था, कि, इतनेमें पूर्वका वृत्तान्त स्मरण आया कि यह आश्चर्य्य भगवान् की माया है । मैंने वर मांगाथा इस माया से इतना भ्रम देखा है । यह आश्चर्य्य है कि, यहां दो मुहूर्त्त बीते हैं और वहां स्वप्नभ्रम की नाईं इतना काल मुझको भासित हुआ और सत सा स्थित हुआ है सो बड़ा आश्चर्य्य है । इससे संशय निवृत्त करने के निमित्त फिर उन विष्णुजी का ध्यानकरूं जिनकी माया से मैंने इतना भ्रम देखा है और कोई इस संशय को दूर नहीं करसक्ता । हे रामजी ! इस प्रकार विचारकर गाधिब्राह्मण फिर पहाड़ की कन्दरा में जाकर तप करनेलगा और केवल एक अंजुली जल पानकरे और कुछ भोजन न

करे। इस प्रकार डेढ़वर्ष पर्यन्त उसने तपकिया तब त्रिलोकी के नाथ विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर उसके निकट आये और कहा, हे ब्राह्मण! मेरी माया को देख जो जगत् जालकी रचनेवाली है अब और क्या इच्छा करता है? हे रामजी! जब विष्णु भगवान् ने ऐसे कहा तब ब्राह्मण इसप्रकार बोला जैसे मेघको देखकर पपीहा बोलता है। हे भगवन्! तेरी माया तो मैंने देखी परन्तु एक संशय मुझको है कि, यह जो स्वप्न भ्रम की नाईं मैंने देखा इसमें कालकी विषमता कैसे हुई कि, यहां दो मुहूर्त्त व्यतीत हुये हैं और वहां चिरकाल पर्य्यन्त भ्रमता रहा और उन झूठे पदार्थों को जाग्रत् में प्रत्यक्ष कैसे देखा? श्रीभगवान् बोले, हे ब्राह्मण! और कुछ नहीं तेरे चित्तही का भ्रम है। जिसके चित्त में तत्त्व की अदृष्टता है उसको यह चित्त भ्रम होता है। और वह क्या भ्रम था, जितना कुछ जगत् प्रत्यक्ष देखता है वह तेरे मनमें स्थित है। पृथ्वी आदिक तत्त्व कोई नहीं; जैसे बीज के भीतर फूल, फल, पत्र होते हैं तैसेही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश जो पञ्च भौतिक हैं वह सब विस्तार चित्तमें स्थित है। जैसे वृक्षका विस्तार बीजमें दृष्टि नहीं आता पर जब बोया हुआ उगता है तब विस्तार से दृष्टि आता है; तैसेही जब चित्त ज्ञान में लीन होता है तब जगत् नहीं भासता और जब स्पन्दरूप होता है तब बड़े विस्तार संयुक्त भासता है। हे ब्राह्मण! जो कुछ जगत् देखता है वह सब चित्तका भ्रम है। जैसे एक कुलाल घटादिक वासना उत्पन्न करता है तैसेही एक चित्तही अनेक भ्रमरूप पदार्थों को उत्पन्न करता है और जो चित्त वासना से रहित है उस से भ्रमरूप पदार्थ कोई नहीं उपजता इससे चित्तको स्थितकर। हे ब्राह्मण! इस चित्तमें कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं। जो तुझको चाण्डाल अवस्था का अनुभव हुआ तो इस में क्या आश्चर्य हुआ और तू कहता है कि, मैंने बड़ी आश्चर्यरूप मायादेखीहै सो उसकोही माया कहताहै। अब जो तुझको विद्यमान भासता है वह सबभी मायाहै। जो तुझको अपनेगृह में अनुभव हुआ था और चाण्डाल के गृह में जन्म लिया, कुटुम्बी हुआ और राज किया, फिर चितामेंजला, फिर अतिथि ब्राह्मणसे मिला, फिर जाकर सब स्थान देखे सोभी मायाथी। जैसे इतना भ्रम तूने मायासे देखा तैसेही यह फैलाव भी सबमाया है। हे साधो! जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं और जैसे मदिरा पानकरनेवाले को सब पदार्थ भ्रमते दिखते हैं तैसेही यह जगत्भी भ्रमसे भासता है। जैसे नौकापर बैठेको तटवृक्ष भ्रमते भासते हैं तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र भासता है और चित्तके स्थित कियेसे जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा-अन्यथा निवृत्त न होवेगा। जैसे पत्र, फूल, फल, टास काटने से वृक्ष नाश नहींहोता जबमूलसे काटिये तब नाश होजाता है तैसेही जब जगत् भ्रमकामूल चित्तही नष्टहोजावेगा तब संपूर्णभ्रम निवृत्त होजावेगा यह चित्त का नाश

होना क्याहै ? चित्तकी चैत्यता जो दृश्यकी ओर धावतीहै वही जगत्का बीज है; जब यही चैत्यता दृश्यकी ओर फुरनेसे रहित हो तब जगत्भ्रम भी मिटजावेगा और जगत्की ओर फुरना तबमिटै जब जगत्को मायामात्र जानोगे। हेसाधो! यहसब जगत मायामात्र है, कोई पदार्थ सत्यनहीं। जैसे वह भ्रमको मायामात्र भासित है तैसेही यह भी सब मायामात्र जानो। इससे इस भ्रमको त्यागकर अपने ब्राह्मण के कर्म्म करो। हे रामजी! इसप्रकार कहकर जब विष्णुदेव उठखड़े हुये तब गाधि और और ऋषीश्वर जो वहां थे उन्होंने विष्णुकी पूजाकी और विष्णु क्षीरसमुद्र को गये तब वह ब्राह्मण फिर उसी भ्रमको देखनेचला। निदानवह फिर क्रांतदेशमें गया और उसको देखकरआश्चर्यवान् हुआ विष्णु मायामय कहाते हैं जो कुछ मैंने भ्रममें देखाथा सोई प्रत्यक्ष देखताहूं। ऐसे विचारकर फिरकहा कि, जो इस संशयको और कोई दूर नहीं करसक्ता इससे फिर मैं विष्णुका आराधन करूंगा। हे रामजी! इसप्रकार विचार कर गाधि फिर पहाड़की कन्दरा में जाकर तपकरनेलगा तब थोड़ेकाल में विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर आये और जैसे मेघ मोरसे कहे तैसेही ब्राह्मणसे बोले; हे ब्राह्मण! अब क्या चाहताहै ? तब गाधिनेकहा, हेभगवन्! तुम कहतेहो सब भ्रम-मात्रहै और यह तो प्रत्यक्ष भासताहै। जो भ्रमहोताहै सो प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता और मैंने फिर वह स्थान देखे और थोड़ेकाल से बहुतकाल देखनेका मुझको संशय है सो दूरकरो। हे रामजी! जब इस प्रकार गाधि ने कहा तब भगवान्ने कहा, हे ब्राह्मण! जो कुछ तुझको यह भासता है वह सब मायामात्र है और जिसप्रकार तुझको यह भासता है वह सब मायामात्र है। जिसप्रकार तुझको यह अनुभवहुआहै वह सुन; हे ब्राह्मण! कण्टकजलनाम चाण्डाल एक चाण्डाल के गृह में उत्पन्न हुआ था और क्रमसे बड़ाहोकर बड़ा कुटुम्बी हुआ। फिर वहां दुर्भिक्ष पड़ा तब उस देशको त्यागकर क्रांत देश का राजा हुआ। फिर लोगोंने सुना तब सबही अग्नि में जले और वह चाण्डाल आपभी अग्निमें जला। वह कण्टकजल चाण्डाल था, और यह अवस्था उसकी हुईथी और वही प्रतिभा तुझको आनफुरीहै। जैसी अवस्था उसकी हुईथी सो तेरे चित्तमें आनफुरी इसकारण तूने जाना कि, यह अवस्था मैंने देखी है। हे साधो! अकस्मात् ऐसेभी होताहै, कि, और की प्रतिभा औरको फुरआती है। कहीं अन्यथा भी होती है कहीं एक ऐसी भी होतीहै; इसभ्रमका अन्तलेना नहीं बनता क्योंकि यह चित्त के फुरनेसे होताहै। जब चित्तआत्मपदमें स्थित होताहै तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। कालकी विषमताभी होतीहै—जैसे जाग्रत्की दोघड़ीमें अनेक वर्षोंका स्वप्नदेखता है तैसेही यह सब चित्त का भ्रमजान। तू इस भ्रमको न देख; चित्तको स्थित करके अपने ब्राह्मण का आचारकर। हे रामजी! ऐसे कहकर विष्णु गुप्त होगये परन्तु

ब्राह्मणका संशय दूर न हुआ। वह मनमें विचारे कि, औरकी प्रतिभा मुझको कैसेहुई यह तो मैंने प्रत्यक्ष भोगी है और जाकर देखी है यह और की वार्त्ता कैसेहो। जो आंखों से नहीं देखी होती उसका अनुभव भी नहीं होता और मैंनेतो प्रत्यक्ष अनुभव किया है। ऐसे ऐसे विचारकर फिर वही स्थान देखे और आश्चर्यवान् हुआ फिर विचार किया कि, यह मुझको बड़ा संशय है इसके दूरकरने का उपाय भगवान्से पूछूं। हे रामजी! ऐसे चिन्तनकर फिर तप करनेलगा और जब कुछकाल पहाड़की कन्दरामें तपकरते बीता तब फिर विष्णुने आकरकहा, हे ब्राह्मण! अबतेरी क्या इच्छा है? ऐसे जब विष्णुने कहा तब गाधि ब्राह्मण बोला, हे भगवन्! तुम कहतेहो कि, यह और की प्रतिभा तुझको फुरआईहै और अपनी होकर भासती है और काल की विषमता भी भासती है। यह संशय जिसप्रकार मेरे चित्तसे दूर हो सो उपाय कहो। और मेरा प्रयोजन कुछ नहीं है केवल यह भ्रम निवृत्त करो। श्रीभगवान् बोले, हे ब्राह्मण! यह जगत् सब मेरी माया से रचाहै इससे मैं तुझसे सत्य क्या कहूं और असत्य क्या कहूं। जो कुछ तुझको भासता है वह सब माया मात्र है और चित्त के भ्रमसे भासता है। उस चाण्डालकी अवस्था तेरे चित्तमें भासि आई थी। जैसे किसी को भ्रमसे रस्सी में सर्पभासे इसीप्रकार औरोंको भी रस्सी में सर्प भासता है तैसेही प्रतिभा तुझको भासि आई है। कालका रूप आकार कुछ नहीं पर कालभी तुझको एक पदार्थ की नाईं फुर आया है। चित्तमें पदार्थ काल से भासतेहैं और काल पदार्थों से भासता है। अन्योन्य घटबंध जो भासता है सो स्वप्नकी नाईंहै—जैसे जाग्रत् के एक मुहूर्त्त में स्वप्नके अनन्तकाल का अनुभव होता है। यह चित्तका फुरना जैसे २ फुरता है तैसे २ होभासता है; रोगीको थोड़ा काल भी बहुत भासता है और भोगी को बहुतकाल भी थोड़ा भासता है। हे साधो! जो नहीं भोगा होता उसका भी अनुभव होता है। जैसे त्रिकालदर्शीको भविष्यत् वृत्तान्तभी वर्त्तमानकी नाईं भासता है; तैसेही तुझको भी अनुभव हुआहै। एक ऐसे भी होताहै कि, प्रत्यक्ष अनुभव किया विस्मरण होजाता है। यह सब मायारूप चित्तका भ्रम है। जबतक चित्त आत्मपद में स्थित नहीं हुआ तबतक अनेक भ्रम भासते हैं और जब चित्त स्थित होता है तब भ्रम मिटजाता है और तब केवल एक अद्वैत आत्मतत्त्वही भासता है। जैसे सम्यक् मंत्रका पाठकर गढ़ेका मेघनष्ट होजाताहै—असम्यक् मंत्रसे नाशनहीं होता तैसेही तेरा चित्त अब तक वश नहीं हुआ। चित्त को आत्मपदमें लगाने से सब भ्रम निवृत्त होजावेगा। अहं त्वं आदिक जो कुछ शब्द हैं वे अज्ञानी के चित्तमें दृढ़ होतेहैं; ज्ञानवान् इनमें नहीं फँसता। हे साधो! जो कुछ जगतहै सो अज्ञानसे भासताहै और आत्मज्ञानहुयेसे नाश होजाताहै। जैसे जलमें तुंबी नहीं डूबती तैसेही अहं त्वं आदिक शब्दों में ज्ञानवान् नहीं

डूबता। सर्वशब्द चित्तमें वर्त्तते हैं सो ज्ञानीका चित्त अचित्त पदको प्राप्तहोताहै इससे तू दशावर्ष पर्यन्त तपमें स्थितहो तबतेरा हृदयशुद्धहोगा। जब चित्तपद प्राप्तहोगा तब सब संकल्प से रहित आत्मपद तुझको प्राप्तहोगा और जब आत्मपद प्राप्तहोगा तब सबसंशय जगत्भ्रम मिटजावेगा। हे रामजी! ऐसे कहकर जब त्रिलोकीके नाथ विष्णु अन्तर्द्धान होगये तब गाधि ब्राह्मण ऐसे मन में धरकर तप करने लगा और मनके संसरने को स्थित कर दशवर्ष पर्यंत समाधि में चित्तको स्थित किया। जब ऐसे परम तपकिया तब उसे शुद्ध चिदानन्द आत्माका साक्षात्कार हुआ। फिर शान्तवान् होकर बिचारा और जो कुछ रागद्वेष आदिक विकार हैं उनसे रहित होकर शान्तिको प्राप्त हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेगाधिबोधप्राप्तिवर्णनंनामषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह गाधिका आख्यान मैंने तुझसे मायाकी विषमता जताने के निमित्त कहाहै कि, परमात्मा की माया मोहको देनेवाली है और विस्तृत रूप और दुर्गम है। जो आत्मतत्त्व को भूलाहै उसको यह आश्चर्य्यरूप भ्रम दिखाती है। तू देख कि, दो मुहूर्त्त कहां और इतना काल कहां? चाण्डाल और राज भ्रमको जो वर्षों पर्य्यन्त देखता रहा। भ्रम से भासना और प्रत्यक्ष देखना यह सब मायाकी विषमता है सो असत्‌रूप भ्रम है और जो दृढ़होकर प्रसिद्ध भासित होता है इससे आश्चर्यरूप परमात्मा की माया है जब तक बोध नहीं होता तब तक यह अनेक भ्रम दिखातीहै। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! यह माया संसारचक्रहै उसका बड़ातीक्ष्णवेग है और सब अंगों को छेदने वाला है; जिससे यह चक्ररुके और इस भ्रमसे छूटूं वही उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मायामय संसारचक्र है उसका नाभिस्थान चित्त है। जब चित्तवश हो तब संसारचक्रकावेग रोकाजावे; और किसी प्रकार नहीं रोकाजाता। हे रामजी! इसवार्त्ताको तू भलीप्रकार जानताहै। हे निष्पाप! जब चक्रकीनाभि रोकीजाती है तब चक्र स्थित होजाताहै—रोके विना स्थितनहींहोता संसाररूपी चक्रकी चित्तरूपी नाभिको जब रोकते हैं तब यह चक्रभी स्थित होजाता है—रोकेविना यहभी स्थितनहीं होता। जब चित्तको स्थित करोगे तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा और जब चित्त स्थित होता है तब परब्रह्म प्राप्त होता है। तब जो कुछ करना था सो किया होता है और कृतकृत्य होता है और जो कुछ प्राप्तहोना था सो प्राप्त होता है—फिर कुछ पाना नहीं रहता। इससे जो कुछ तप, ध्यान, तीर्थ, दान आदिक उपाय हैं उन सबको त्यागकर चित्तके स्थित करनेका उपाय करो। सन्तोंके संग और ब्रह्मविद् शास्त्रोंके विचार से चित्तआत्मपद में स्थित होगा। जो कुछ संतों और शास्त्रों

ने कहा है उसका वारंवार अभ्यास करना और संसार मृगतृष्णा के जल और स्वप्नवत् जानकर इससे वैराग्य करना । इन दोनों उपायों से चित्त स्थित होगा और आत्मपदकी प्राप्तिहोगी और किसी उपायसे आत्मपदकी प्राप्ति न होवेगी । हे रामजी ! बोलने चालनेका वर्जननहीं;बोलिये, दानदीजिये अथवा लीजिये परन्तु भीतर चित्तको मत लगाओ इनका साक्षी जाननेवाला जो अनुभव आकाश है उसकीओर वृत्तिहो युद्ध करनाहो तौभी करिये परन्तु वृत्ति साक्षीहीकी ओरहो और उसीको अपनारूप जानिये और स्थितहोइये । शब्द,स्पर्श, रूप, रस, गन्धि; ये जो पांचविषय इन्द्रियोंके हैं इनको अंगीकार कीजिये परन्तु इनके जाननेवाले साक्षीमें स्थित रहिये । तेरा निजस्वरूप वही चिदाकाश है; जब उसका अभ्यास वारंवार करियेगा तब चित्त स्थित होगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी । हे रामजी ! जब तक चित्त आत्मपद में स्थित नहीं होता तब तक जगत्भ्रमभी निवृत्त नहींहोता । इसचित्त के संयोग से चेतन का नाम जीव है । जैसे घटके संयोग से आकाशको घटाकाश कहते हैं पर जब घट टूटजाता है तब महाकाशही रहताहै; तैसेही जब चित्तका नाश होगा तब यह जीव चिदाकाश-ही होगा । यह जगत्भी चित्तमें स्थित है; चित्तके अभाव हुये जगत्भ्रम शांतहोजा-वेगा हे रामजी ! जबतक चित्त है तबतक संसारभी है; जैसे जब तक मेघ है तब तक बूंदेंभी हैं और जब मेघ नष्ट होजावेगा तब बूंदेंभी न रहेंगी जैसे जब तक चन्द्रमाकी किरणें शीतल हैं तबतक चन्द्रमाके मण्डलमें तुषारहै तैसेही जबतक चित्त है तबतक संसार भ्रम है । जैसे मांसका स्थान मशान होता है और वहां पक्षी भी होता है; और ठौर इकट्ठे नहींहोता; तैसेही जहां चित्त है वहां रागद्वेषादिक विकारभी होते हैं और जहां चित्तका अभाव है वहां विकारकाभी अभाव है । हे रामजी ! जैसे पिशाच आदिककी चेष्टा रात्रि में होती है, दिन में नहीं होती; तैसेही राग, द्वेष, भय, इच्छा आदिक विकार चित्तमें होतेहैं । जहांचित्त नहीं वहां विकारभी नहीं—जैसे अग्नि विना उष्णता नहीं होती; शीतलताविना बरफ नहीं होती;सूर्यविना प्रकाश नहीं होता और जल विना तरंग नहीं होवे तैसेही चित्तविना जगत्भ्रम नहीं होता । हे रामजी ! शां-तिभी इसीका नाम है और शिवताभी वही है; सर्वज्ञताभी वही है जो चित्तनष्ट हो आत्माभी वही है और तृप्तताभी वही है पर जो चित्तनष्ट नहीं हुआ तो इतने पदों में कोई भी नहीं है । हे रामजी ! चित्तसे रहित चेतन चेतन कहाता है और अमनशक्ति भी वही है; जबतक सब कलनासे रहित बोध नहीं होता तबतक नानाप्रकारके पदा-र्थ भासते हैं और जब वस्तुका बोधहुआ तब एक अद्वैत आत्मसत्ता भासती है । हे रामजी ! ज्ञानसंवित्की ओर वृत्ति रखना; जगत्की ओर न रखना और जाग्रत् की ओर न जाना । जाग्रत्के जाननेवालेकी ओर जाना स्वप्न और सुषुप्तिकी ओर न जाना ।

भीतरके जानने वाली जो साक्षीसत्ताहै उसकी ओर वृत्तिरखनाही चित्त के स्थित करने का परमउपाय है। संतों के संग और शास्त्रों में निर्णय किये अर्थ का जब अभ्यासहो तब चित्तनष्ट हो और जो अभ्यास न हो तौभी सन्तोंकासंग और सत्शास्त्रों को सुन कर बलकीजिये तो सहजही चमत्कार हो आवेगा। मनको मनसे मथिये तो ज्ञानरूपी अग्नि निकलेगी जो आशारूपी फांसीको जलाडालेगी। जब तक चित्त आत्मपद से विमुखहै तबतक संसारभ्रम देखताहै परजब आत्मपदमें स्थितहोताहै तबसब क्षोभमिट जाते हैं जब तुमको आत्मपदका साक्षात्कारहोगा तब कालकूट विष भी अमृत समान होजावेगा और विषका जो विषभाव मारना है सो न रहेगा। जीव जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब संसार का कारण मोह मिटजाता है और जब निर्मल निरंश आत्मसंवित् से गिरता है तब संसार का कारण मोह आन प्राप्त होता है। जब निरंश निर्मल आत्मसंवित्में स्थित होता है तब संसारसमुद्र से तरजाता है। जितने तेज ईश्वर बलवान् हैं उन सबों से तत्त्ववेत्ता उत्तमहै; उसके आगे सबलघु होजाता है और उस पुरुषको संसार के किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रहती क्योंकि उस का चित्त सत्यपद को प्राप्तहोता है। इससे चित्तको स्थित करो तब वर्त्तमानकाल भी भविष्यत्काल की नाईं होजावेगा और जैसे भविष्यत्काल का रागद्वेष नहीं स्पर्श करता तैसेही वर्त्तमानकालका रागद्वेष भी स्पर्श न करेगा। हे रामजी! आत्मा परम आनन्दरूप है, उसके पायेसे अमृत भी विषसमान होजाता है। जिस पुरुष को आत्मपद में स्थिति हुई है वह सब से उत्तम है जैसे मेरुपर्व्वत के निकट हाथी तुच्छ भासता है तैसेही उसके निकट त्रिलोकी के पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं वह ऐसे दिव्यतेज को प्राप्त होता है जिसको सूर्य्य भी नहीं प्रकाश कर सक्ता वह परम प्रकाशरूप सब कलनासे रहित अद्वैततत्त्व है। हे रामजी! उस आत्मतत्त्व में स्थितहो रहो जिस पुरुषने ऐसे स्वरूप को पाया है उसने सब कुछ पाया है और जिसने ऐसे स्वरूप को नहीं पाया उसने कुछ नहीं पाया। हमको ज्ञानकी वार्त्ता करते ज्ञानवान् को देखकर कुछ लज्जा नहीं आती और जो उस ज्ञानस्वरूप की वार्त्ता से विमुख है यद्यपि वह महाबाहो हो तौभी गर्दभवत् है। जो बड़ेऐश्वर्य से संपन्न है और आत्मपदसे विमुख है उसको तू विष्ठाके कीटसे भी नीचजान। जीना उनको श्रेष्ठहै जो आत्मपदके निमित्त यत्न करते हैं और जीना उनका वृथा है जो संसार के निमित्त यत्न करते हैं वे देखने मात्र तो चैतन्य हैं परन्तु शवकीनाईं हैं। जो तत्त्ववेत्ताहुयेहैं वे अपने प्रकाश से प्रकाशते हैं और जिनको शरीर में अभिमान है वे मृतक समान हैं। हे रामजी! इस जीवको चित्तने दीन किया है। ज्यों ज्यों चित्त बड़ा होता है त्यों त्यों इसको दुःख होता है और जिसका चित्त क्षीण हुआ है उसका कल्याण हुआ है।

जब आत्मभाव अनात्म में दृढ़ होता है और भोगों की तृष्णा होती है तब चित्त बड़ा होजाता है और आत्मपदसे दूर पड़ता है। जैसे बड़ेमेघ के आवरण से सूर्य नहीं भासता तैसेही अनात्मा अभिमान से आत्मा नहीं भासता। जब भोगों की तृष्णा निवृत्त होजाती है तब चित्त क्षीण होजाता है। जैसे वसन्तऋतु के गयेसे पत्र कृश होजाते हैं तैसेही भोग वासना के अभावसे चित्त कृश होजाताहै। हे रामजी! चित्तरूपी सर्प दुर्वासना रूपी दुर्गंधि, भोगरूपी वायु और शरीर में दृढ़ आस्थारूपी मृत्तिकास्थान से बड़ा होजाता है; और उन पदार्थों से जब बड़ा हुआ तब मोहरूपीविष से जीव को मारता है। हे रामजी! ऐसे दुष्टरूपीसर्प को जब मारे तब कल्याण हो। देह में जो आत्मअभिमान होगया है, भोगोंकी तृष्णा फुरती है और मोहरूपी विष चढ़गया है; इससे यदि विचाररूपी गरुड़ मन्त्र का चिन्तन करता रहे तो विष उतरजावे इसके सिवाय और उपाय विष उतरनेका कोई नहीं। हे रामजी! अनात्मा में आत्माभिमान और पुत्र, दारा आदिक में ममत्वसे चित्त बड़ा होजाता है और अहंकाररूपी विकार, ममतारूपीकीड़ा और यह मेरा इत्यादि भावना से चित्त कठिन होजाता है। चित्तरूपी विषकावृक्ष है जो देहरूपी भूमि पर लगा है; सङ्कल्प विकल्प इसके टासहैं; दुर्वासनारूपीपत्र हैं और सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं; अहंकाररूपी कर्म जल है उसके सींचने से बढ़ता है और काम भोग रूपी पुष्प हैं। चिन्तारूपी बड़ीबेल को जब विचार और वैराग्यरूपी कुठार से काटे तब शान्ति हो—अन्यथा शान्ति न होगी। हे रामजी! चित्तरूपी एक हाथी है उसने शरीररूपी तालाब में स्थित होकर शुभवासनारूपी जलको मलीन करडाला है और धर्म, सन्तोष, वैराग्यरूपी कमलको तृष्णारूपी शुण्डसे तोड़डाला है। उसको तुम आत्मविचाररूपी नेत्रों से देख नखों से छेदो। हे रामजी! जैसे कौवा अपवित्र पदार्थोंको भोजन करके सर्वदा काँ काँ करता है तैसेही चित्त देहरूपी अपवित्र गृह में बैठा सर्वदा भोगोंकी ओर धावता है; उनके रसको ग्रहण करता है और मौन कभी नहीं रहता। दुर्वासनासे वह काककी नाईं कृष्णरूप है—जैसे काकके एकहीनेत्र होताहै तैसेही चित्त एक विषयों की ओर धावता है। ऐसे अमंगलरूपी कौवे को विचाररूपी धनुष से मारो तब सुखी होगे। चित्तरूपीचील पखेरू है जो भोगरूपी मांसके निमित्त सब ओर भ्रमता है जहां अमंगलरूपी चील आता है वहां से विभूति का अभाव होजाता है। वह अभिमानरूपी मांसकी ओर ऊंचा होकर देखता है और नम्रभाव नहीं होता। ऐसा जो अमंगलरूपी चित्त चील है उसको जब नाश करो तब शान्तिमान् होगे। जैसे पिशाच जिसको लगता है वह खेदवान् होता है और शब्द करता है; तैसेही इसको चित्तरूपीपिशाच लगा है और तृष्णारूपी

पिशाचिनी के साथ शब्द करता है उसको निकालो जो आत्मासे भिन्न अभिमान करताहै । ऐसे चित्तरूपी पिशाचको वैराग्यरूपी मंत्रसे दूर करो तब स्वभावसत्ता को प्राप्तहोगे । यह चित्तरूपी वानर महाचंचल है और सदा भटकता रहता है; कभी किसी पदार्थ में धावता है—जैसे वानर जिस वृक्षपर बैठता है उसको ठहरने नहीं देता । हे रामजी ! चित्तरूपी रस्सी से सम्पूर्ण जगत् कर्त्ता, कर्म्म, क्रियारूपी गांठ करके बँधा है । जैसे एक जंजीरके साथ अनेक बन्धवान् बँधते हैं और एक तागे के साथ अनेक दाने पिरोयेजाते हैं तैसेही एक चित्तसे सब देहधारी बांधे हैं । उसरस्सी को असंग शस्त्रसे काटे तब सुखी हो । हे रामजी ! चित्तरूपी अजगर सर्प भोगों की तृष्णारूपी विषसे पूर्ण है और उसने फुंकारके साथ बड़े २ लोक जलाये हैं और शम, दम, धैर्य्यरूपी सब कमल जलगये हैं । इस दुष्टको और कोई नहीं मारसक्ता; जब विचाररूपी गरुड़ उपजे तब इसको नष्ट करे और जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हो तब आत्मरूपी निधि प्राप्त होगी । हे रामजी ! यह चित्त शस्त्रोंसे काटा नहीं जाता; न अग्निसे जलता है और न किसी दूसरे उपाय से नाश होता है, केवल साधु के सङ्ग और सत्शास्त्रों के विचार और अभ्यास से नाशहोताहै । हे रामजी ! यह चित्त-रूपी गढ़ेका मेघ बड़ा दुःखदायक है, भोगोंकी तृष्णारूपी बिजली इसमें चमकती है और जहां वर्षा इसकी होती है वहां बोधरूपी क्षेत्र और शम-दमरूपी कमलों को नाश करती है । जब विचाररूपी मंत्रहो तब शान्तहो । हे रामजी ! चित्तकी चप-लताको असंकल्पसे त्यागो । जैसे ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्र छिदता है तैसेही मनसे मनको छेदो अर्थात् अन्तर्मुखी कर स्थितकरो । जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होगा तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभसे रहित होगा । शुद्धबोध से मनको जीतो और यह जगत् जो तृणसे भी तुच्छ है उससे पारहोजाओ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेराघवसेवनवर्णनन्नामसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मनकी वृत्तिही इष्ट-अनिष्टको ग्रहण करती है और खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है; इसमें तुम प्रीति मतकरो बल्कि इसको मिथ्या जानकर त्यागकरो । हे रामजी ! बोधरूपी बेलि जो शुभक्षेत्र और शुभकाल से प्राप्त हुई है उसको विवेकरूपी जलसे सींचो तब परमपदकी प्राप्ति हो । हे रामजी ! जबतक शरीर मलिनताको प्राप्त नहीं हुआ और जबतक पृथ्वीपर नहीं गिरा तबतक बुद्धि को उदारकरके संसारसे मुक्तहो । मैंने जो वचन तुझसे कहे हैं उनको तुमने जाना है, अब इनका दृढ़ अभ्यासकरो तब दृश्यभ्रम निवृत्तहोजावेगा । हे रामजी ! यह पाञ्च-भौतिक शरीर जो तुमको भासताहै सो तुम्हारारूप नहीं है; तुमतो शुद्धचेतनरूपहो । शुद्धबोध से विचारकरके पाञ्चभौतिक अनात्म अभिमानको त्यागो । रामजीने पूंछा,

हे भगवन् ! किसक्रम और किसप्रकारसे इसका अभिमान त्यागकर उद्दालक सुखीहुआ है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! पूर्व्व में जैसे उद्दालक भूतों के समूहको विचार करके परमपदको प्राप्तहुआ है सो तुम सुनो । हे रामजी ! जगत्‌रूपी जीर्णघर के वायव्यकोण में एकदेशहै जो पर्व्वत और तमालादिक वृक्षोंसे पूर्ण है और महामणियोंका स्थान है । उस स्थानमें उद्दालकनाम एक बुद्धिमान् ब्राह्मण मानकरने के योग्य विद्यमान था परन्तु अर्द्धप्रबुद्धथा क्योंकि; परमपदको उसने न पाया था । वह ब्राह्मण यौवन अवस्था के पूर्व्वहीं शुभेच्छासे शास्त्रोक्त यम, नियम और तपको साधनेलगा तब उसके चित्त में यह विचार उत्पन्नहुआ कि, हे देव ! जिसके पायेसे फिर कुछ पानेयोग्य न रहे; जिस पदमें विश्राम पायेसे फिर शोक न हो और जिसके पायेसे फिर जन्म से बन्धन न हो ऐसा पद मुझको कब प्राप्तहोगा ? कब मैं मन के मननभावको त्यागकर विश्रान्तिमान् हूंगा—जैसे मेघ भ्रमनेको त्यागकर पहाड़के शिखर में विश्रान्ति करता है—और कब चित्तकी दृश्यरूप वासना मिटैगी जैसे तरंगसे रहित समुद्र शान्तिमान् होताहै तैसेही कब मैं मनके सङ्कल्प विकल्पसे रहित शान्तिमान् हूंगा ? तृष्णारूपी नदीको बोधरूपी बेड़ी और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी मल्लाह से कब तरूंगा, चित्तरूपी हाथी जो अभिमानरूपी मदसे उन्मत्त है उसको विवेकरूपी अंकुशसे कब मारूंगा और ज्ञान रूपी सूर्य्यसे अज्ञानरूपी अन्धकार कब नष्टकरूंगा ? हे देव ! सब आरम्भोंको त्याग कर मैं अलेप और अकर्ता कब होऊंगा ? जैसे जलमें कमल अलेप रहता है तैसेही मुझको कर्म कब स्पर्श न करेंगे ? मेरा परमार्थरूपी भास्वर वपु कब उदय होगा जिससे मैं जगत्‌कीगतिको हँसूंगा हृदयमें सन्तोष पाऊंगा और पूर्णबोध विराट्‌आत्माकी नाईं होऊंगा ? वह समय कब होगा कि, मुझ जन्मोंके अन्धेको ज्ञानरूपीनेत्र प्राप्त होगा, जिससे मैं परमबोध पदको देखूंगा ? वह समय कब होगा जब मेरा चित्तरूपीमेघ वासनारूपी वायुसे रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्व्वत में स्थित होकर शान्तिमान् होगा ? अज्ञानदशा कब जावेगी और ज्ञानदशा कब प्राप्तहोगी ? अब वह समय कब होगा कि, मन और काया प्रकृतियों को देखकर हँसूंगा ? वह समय कब होगा जब जगत्‌के कर्मोंको बालक की चेष्टावत् मिथ्या जानूंगा और जगत् मुझको सुषुप्तिकी नाईं होजावेगा । वह समय कब होगा जब मुझको पत्थर की शिलावत् निर्विकल्प समाधि लगेगी और शरीररूपी वृक्षमें पक्षी आलयकरेंगे और निस्संग होकर छातीपर आनबैठेंगे ? हे देव ! वह समय कब होगा जब इष्ट—अनिष्ट विषय की प्राप्तिसे मेरेचित्तकी वृत्ति चलायमान न होगी और विराट्‌की नाईं सर्वात्मा होऊंगा ? वह समय कब होवेगा जब मेरा सम असम आकार शान्त होजावेगा और सब अर्थोंसे निरिच्छितरूप में होजाऊंगा ? कब मैं उपशमको प्राप्त होऊंगा—जैसे

मन्दराचलसे रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होता है-और कब मैं अपना चेतन वपु पाकर शरीरको अशरीरवत् देखूंगा ? कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्तिहोगी और कब मेरे भीतर बाहरकी सब कलना शान्त होजावेंगी और सम्पूर्ण चिन्मात्रही का मुझे भान होगा ? मैं ग्रहण त्यागसे रहित कब संतोष पाऊंगा और अपने स्वप्रकाश में स्थित होकर संसाररूपी नदी के जरामरणरूपी तरंगोंसे कब रहित होऊंगा और अपने स्वभाव में कब स्थित होऊंगा, हे रामजी ! ऐसे विचार कर उद्दालक चित्त को ध्यान में लगाने लगा परन्तु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकलजावे पर स्थित न हो। तब वह फिर ध्यानमें लगावे और फिर वह भोगों की ओर निकलजावे। जैसे वानर नहीं ठहरता तैसेही चित्त न ठहरे। जबउसने बाहर विषयोंको त्यागकरचित्तको अन्तर्मुख किया तब भीतर जो दृष्टिआई तौभी विषयोंको चिन्तनेलगा। निर्विकल्प न हो और जब रोकरक्खे तब सुषुप्ति में लीनहोजावे । सुषुप्ति और लय जो निद्रा है उसही में चित्त रहता है। तब वह वहांसे उठकर और स्थानको चला-जैसे सूर्य सुमेरु की प्रदक्षिणाको चलता है और गन्धमादनपर्व्वतकी एक कन्दरा में स्थित हुआ जो फूलोंके संयुक्त सुन्दर और पशुपक्षी मृगोंसे रहित एकान्त स्थान था और जो देवताको भी देखना कठिन था। वहां अत्यन्त प्रकाशभी न था और अत्यन्त तमभी न था; न अत्यन्त उष्ण था और न शीत जैसे मधुर कार्तिकमास होता है तैसेही वह निर्भय एकांतस्थान था। जैसे मोक्षपदवी निर्भयएकांतरूप होतीहै तैसेही उसपर्वतमें कुटीबना और उसकुटीमें तमालपत्र और कमलोंका आसनकर और ऊपर मृगछाला बिछाकर वह बैठा और सब कामनाका त्याग किया। जैसे ब्रह्माजी जगत्को उपजाकर छोड़बैठे तैसेही वह सब कलनाको त्यागबैठा और विचार करनेलगा कि, अरे मूर्खमन ! तू कहां जाता है, यह संसार मायामात्र है और इतने काल तू जगत्में भटकतारहा पर कहीं तुझको शान्ति न हुई क्योंकि; वृथा धावतारहा । हे मूर्खमन ! उपशमको त्याग कर भोगोंकी ओर धावता है सो अमृतको त्यागकर विषकाबीज बोता है, यहसब तेरीचेष्टा दुःखोंके निमित्त है। जैसे कुशवारी अपनाघर बनाकर आपही को बन्धन करती है तैसेही तूभी आपको आपसङ्कल्प उठाकर बन्धनकरता है। अबतू संकल्पके संसरनेको त्याग कर आत्मपदमें स्थितहो कि, तुझको शान्तिहो। हे मन ! जिह्वाके साथ मिलकर जो तू शब्द करताहै वह दर्दुरके शब्दवत् व्यर्थहै। कानों के साथ मिलकर सुनता है तब शुभ अशुभ वाक्य ग्रहण करके मृगकी नाईं नष्ट होताहै; त्वचाके साथ मिलकर जो तू स्पर्शकी इच्छा करताहै सो हाथीकी नाईं नाशहोताहै; रसनाके स्वादकी इच्छा से मछली की नाईं नाशहोताहै और गन्ध लेनेकी इच्छासे भँवरेकी नाईं नाश होजावेगा। जैसे भँवरा सुगन्ध के निमित्त फूलमें फँस मरता है तैसे तू फँस मरेगा और सुन्दर

स्त्रियों की वाञ्छा से पतंग की नाईं जल मरेगा। हे मूर्खमन! जो एक इन्द्रियका भी स्वादलेते हैं वे नाशहोते हैं तूतो पंचविषयका सेवनेवालाहै क्या तेरा नाश न होगा। इससे तू इनकी इच्छात्याग कि तुझको शान्तिहो। जो इनभोगोंकी इच्छा न त्यागेगा तो मैंही तुझको त्यागूंगा। तूतो मिथ्या असत्यरूप है तुझसे मेरा क्या प्रयोजन है। विचारकर मैं तेरा त्याग करताहूं। हे मूर्खमन! जो तू देहमें अहं अहं करता है सो तेरा अहं किस परमार्थका है। अंगुष्ठसे लेकर मस्तक पर्य्यन्त अहं वस्तु कुछ नहीं। यह शरीर तो अस्थि, मांस और रक्तका थैला है; यह तो अहंरूप नहीं और श्वास वायुरूप और पोल आकाशरूप है। यह पञ्चतत्त्वों का जो शरीर बना है उसमें अहंरूप वस्तु तो कुछनहीं है। हे मूर्खमन! तू अहं अहं क्यों करताहै? यह जो तू कहता है कि, मैं देखता हूं, मैं सुनताहूं, मैं सूंघताहूं, मैं स्पर्श करता हूं मैं स्वाद लेताहूं और इनके इष्ट–अनिष्टमें रागद्वेष से जलता है सो वृथा कष्ट पाताहै। रूप को नेत्र ग्रहण करते हैं; नेत्र रूपसे उत्पन्न हुये हैं और तेजका अंश उनमें स्थित है जो अपने विषयको ग्रहण करता है; इनके साथ मिलकर तू क्यों तपायमान होता है? शब्द आकाश में उत्पन्न हुआ है और आकाशका अंश श्रवण में स्थित है जो अपने गुण शब्दको ग्रहण करता है; इसके साथ मिलकर तू क्यों रागद्वेष कर तपायमान होता है? स्पर्शइन्द्रिय वायु से उत्पन्न भया है और वायुका अंश त्वचा में स्थित है वही स्पर्शका ग्रहण करता है; उससे मिलकर तू क्यों राग द्वेषसे तपायमान होता है? रसनाइन्द्रिय जलसे उत्पन्न हुई है और जलका अंश जिह्वा है जो अग्रभागमें स्थित है वही रसको ग्रहण करती है; इससे मिल तू क्यों वृथा तपायमान होताहै? और घ्राणइन्द्रिय गन्धसे उपजी है और पृथ्वीकाअंश घ्राण में स्थितहै वही गन्धको ग्रहण करताहै; उससे मिलकर तू क्यों वृथा राग द्वेषवान् होता है? हे मूर्ख मन! इन्द्रियां तो अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं पर तू क्यों इनमें अभिमान करताहै कि, मैं देखता हूं, मैं सुनताहूं, मैं सूंघताहूं मैं स्पर्श करताहूं, और रसलेता हूं। यह इन्द्रियां तो सब आत्मभर हैं अर्थात् अपने विषयको ग्रहण करती हैं और के विषयको ग्रहण नहीं करतीं कि, नेत्र देखते हैं श्रवण नहीं करते और कान सुनते हैं देखते नहीं इत्यादिक। सब इन्द्रियां अपना धर्म किसीको देतीभी नहीं और न किसीका लेती हैं। वे अपने धर्ममें स्थित हैं और विषयों को ग्रहण कर इनको राग द्वेष कुछ नहीं होता। इनको ग्रहण करनेकी वासनाभी कुछ नहीं होती और तू ऐसा मूर्ख है कि, औरोंके धर्म आपमें मान कर रागद्वेष से जलता है। जो तूभी रागद्वेष से रहित होकर चेष्टाकरे तो तुझको दुःख कुछ न हो। जो वासना सहित कर्म करता है वह बन्धनका कारण होता है;वासना विना कुछ दुःख नहीं होता। तू मूर्ख है जो विचार

कर नहीं देखता। इस से मैं तुझको त्याग करता हूं । तेरे साथ मिलके मैं बड़े खेद पाताहूं। जैसे भेड़िये के बालक को सिंह चूर्ण करता है तैसेही तूने मुझको चूर्ण किया है। तेरे साथ मिलकर मैं तुच्छ हुआहूं। अब तेरे साथ मेरा प्रयोजन कुछ नहीं, मैं तो निर्विकल्प शुद्ध चिदानन्दहूं। जैसे महाकाश घट से मिलकर घटाकाश होता है तैसेही तेरे साथ मिलकर मैं तुच्छ होगयाहूं। इस कारण मैं तेरा सङ्ग त्यागकर परमचिदाकाशको प्राप्त होऊंगा। मैं निर्विकारहूं और अहं त्वं की कल्पना से रहितहूं। तू क्यों अहं त्वं करता है? शरीर में व्यर्थ अहं करनेवाला और कोई नहीं तू ही चोर है। अब मैंने तुझको पकड़कर त्याग दिया है। तूतो अज्ञान से उपजा मिथ्या और असत्यरूप है जैसे बालक अपनी परछाहीं में वेताल जानकर आप भय पाता है तैसेही तूने सबको दुःखी किया है। जब तू नाशहोगा तब आनन्द होगा। तेरे उपजने से महादुःख है—जैसे कोई ऊंचे पर्वत से गिरके कूप में जापड़े और कष्टवान् हो तैसेही तेरे संगसे मैं आत्मपदसे गिरा देहअभिमानरूपी गढ़े में रागद्वेषरूपी दुःख पाता था पर अब तुझको त्यागकर मैं निरहंकारपद को प्राप्तहुआहूं। वह पद न प्रकाश है, न तम है, न एक है, न दो है, न बड़ा है और न छोटा है; अहं त्वम् आदि से रहित अचैत्य चिन्मात्रहै। जरा, मृत्यु, राग, द्वेष और भय सब तेरे संयोग से होते हैं। अब तेरे वियोग से मैं निर्विकार शुद्धपद को प्राप्त होताहूं। हे मन! तेरा होना दुःख का कारण है। जब तू निर्वाण होजावेगा तब मैं ब्रह्मरूप होऊंगा। तेरे संग से मैं तुच्छ हुआहूं; जब तू निवृत्तहोगा तब मैं शुद्धहोऊंगा—जैसे मेघ और कुहिरे के होने से आकाश मलिन भासता है पर जब वर्षा होजातीहै तब शुद्ध और निर्मलहो रहताहै, तैसेही तेरे निवृत्त हुये निर्लेप अपनाआप आत्मा भासता है। हे चित्त! ये जो देह इन्द्रियादिक पदार्थ हैं सो भिन्न हैं, इनमें अहंवस्तु कुछनहीं; इनको एक तूनेही इकट्ठा किया है। जैसे एक तागा अनेक मणियोंको इकट्ठा करताहै तैसेही सबको इकट्ठा करके तू अहं अहं करता है। तू मिथ्या राग द्वेष करता है इससे तू शीघ्रही सब इन्द्रियों को लेकर निर्वाण हो जिसमें तेरी जयहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकविचारोनामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४८॥

उद्दालक बोले; आत्मा जो सूक्ष्मसे सूक्ष्महै, स्थूलसे स्थूल है और शुद्ध, निर्विकार और शान्तरूप है सो मैं अचैत्य चिन्मात्रहूं मेरे में कोई विकार नहीं और जितने जन्म मरणादिक विकार भासतेहैं वे आत्मा में चित्तके कल्पे हैं वास्तविक आत्मा को कोई विकार नहीं। जन्म उसको कहते हैं जो पहिले न हो और पीछे उपजे। आत्मा तो आगेही सिद्धहै फिर जन्म कैसे कहिये? और मृत्यु वह कहाता है जो पीछे न हो

पहिले अभाव होजावे पर आत्मा तो जगत् में अन्तभी सिद्धहै इस से सब विकारों से रहित है; फिर मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहिये? देहके आदि, मध्य, अन्त तीनों काल सिद्ध हैं; इससे वह सबविकारों से रहित है और चित्त के संयोग से विकारों सहित भासता है। हे चित्त! तेरे संयोग से मैंने इतने भ्रम पाये थे और शरीर में व्यर्थ अहं अहं होता है सो जाना नहीं जाता कि, कौनहै। शरीर तो रक्तमांसकापिण्डहै, इन्द्रियां, मन आदिक सब जड़ हैं तो अहं करनेवाला कौन है। जब अहं होता है तब भाव अभाव पदार्थ को ग्रहण करता है पर जहां अहं का अभाव है तहां भाव अभाव कैसे हो? अहंकार झूठहै, इन्द्रियां अपने अपने विषयों को ग्रहण करती हैं और मनआदिक भी अपने स्वभाव में स्थित हैं। यह अहं करनेवाला नहीं पायाजाता कि कौन है? अहं का रूप कुछ नहीं इस से निश्चय हुआ कि, सब पदार्थ झूठे हैं। अहंकार का ग्रहण करनेवाला भी झूठ है और जितने पदार्थ हैं वे अहंकार से होते हैं। मैं इस से मिलकर देह इन्द्रियों के इष्ट–अनिष्ट में क्या राग द्वेष करूं? इसका और मेरा कुछ संयोग नहीं मैं तो निर्लेप और अद्वैत आत्माहूं संयोग किससे हो? मैं भावरूप ब्रह्म हूं मेरा संयोग किससे हो? यह तो सब असत्यरूप है और जो कहिये देहादिक हैं तो भी संयोग नहीं बनता–जैसे लोहे और बट्टेका संयोग नहीं होता। यह बड़ा आश्चर्य है कि, सब का अहं करनेवाला कौन था? यह मिथ्या अहंकार अज्ञान से दुःखदायक था। जैसे अज्ञान से बालक को वेताल भासकर दुःख देता है तैसेही अविचार से दुःख होता है। जैसे पहाड़पर बादल स्थित होता है तो पहाड़ बादल नहीं होता और बादल पहाड़ नहीं होता; तैसेही आत्मा अनात्मा नहीं होता और अनात्मा आत्मा नहीं होता। जैसे सूर्य की किरणों में जल और रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मामें अहंकार भासता है और विचार किये से अहंकार कुछ नहीं निकलता। जहां अहंकार होता है वहां दुःख भी आस्थित होते हैं जैसे जहां मेघ होता है वहां बिजुली भी होती है, तैसेही जहां अहंकार होताहै तहां शरीररूपी वृक्ष की मंजरी बढ़ती है। जैसे गरुड़के विद्यमान होते सर्प नहीं रहता तैसेही आत्म विचार के विद्यमान रहते अहंकार नहीं रहता। इससे चित्तादिक सब झूठे हैं और अज्ञान से भासते हैं तो इनसे रचाहुआ जगत् कैसे सत्य हो। यह जगत् अकारण है इससे मिथ्या भ्रम से भासता है। जैसे भ्रांति से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है; नौका में बैठेसे तटके वृक्ष चलते भासते हैं और गन्धर्वनगर भासता है। जब चित्त नष्ट होता है तब सब भ्रमका अभाव होजाता है। देहमें जो अभिमान है सोही दुःखों का कारण है। जबतक विचार नहीं उपजता तबतक भासता है–जैसे बरफ की पुतली तबतक होती है जबतक सूर्यका तेज नहीं लगा और जब सूर्यका तेज लगता

है तब बरफकी पुतली गलजाती है जैसे बालकको घूमने से पृथ्वी भ्रमती भासती है तैसेही चित्तके भ्रमसे यह जगत् भासता है और विचारके उपजे से अहंकार गल जाता है हे मन ! तेरे साथ मिलने से बड़ादुःख होताहै । तुझसे रहित मैंने आपको देखा है, अब तू सब इन्द्रियों सहित निर्वाण हो । आत्मविचार से आत्मअग्नि में स्थित हो कि सब मल तेरा जलकर शुद्धताको प्राप्तहो । इस देहके साथ तेरा मिलाप दुःखके निमित्त है । मन और देहके भीतर से आपसमें शत्रुभावहै पर बाहरसे स्नेह भासता है । भीतर दोनों परस्पर नाशकरने की इच्छा करते हैं । जो दुःख होताहै तो मन उसके नाशकी इच्छाकरता है और देह कहती है मन न हो तो मेरे में कोई दुःख नहीं—इसका मिलनाही दुःखका कारण है । हे मूर्खमन ! देहको तेरे संगसे दुःखहोता है । आप इसमें भी कोई नहीं । मनमें देहका अभिमान न हो तौभी कोई दुःखनहीं, इनके संयोगसेही दुःखहोता है और बिछुरने से दुःख कुछ नहीं—तैसेही मन और देह में वियोग कुछ नहीं । जैसे जहां अंगारे की वर्षा होती है वहां बुद्धिमान् नहीं रहते तैसेही इनमें मिलाप करना हमको योग्य नहीं । हे मूर्खमन ! जितना कुछ दुःख तुझ को होता है सो देहके मिलापसे होता है तो फिर इसके साथ तू किस निमित्त मिलता है और आपको सुख जानता है । इसके मिलने से तुझको दुःखही होताहै परन्तु तू ऐसा मूर्ख है जो वारंवार देहकी ओरही दौड़ता है और सुख जानता है पर तेरा नाश होता है । जैसे पतङ्ग दीपकको सुखरूप जानकर मिलनेकी इच्छा करताहै पर जल मरताहै और मछली मांसकी इच्छा करती है सो कुण्डी में फँस मरती है तैसेही तू देह की इच्छा करताहै और नाशको प्राप्तहोताहै; इससे इसका अभिमान त्याग तो तुझको शान्तिहो । देह कुछ वस्तु नहीं केवल मनहीका विकार है । पंचतत्त्वोंकी देह बनीहुई है सोभी कुछ वस्तु नहीं है, सब मनके फुरनेसेरचेहैं, इससे फुरनेकोत्यागकर आत्मपदमें स्थितहो कि, तुझको शान्तिहो । मैंतो इससे अतीत शुद्ध चिदानन्दस्वरूपहूं; मेरे पास न कोई मन है और न इन्द्रियां हैं । मैं अद्वैतरूपहूं । जैसे राजाके समीप में दोड़ नहीं होता तैसेही मेरे निकट मन और इन्द्रियां कोई नहीं—मैं शुद्ध आत्मतत्त्वहूं । भोगोंसे मुझे क्या प्रयोजनहै कि, उनसे मिलकर दीनताको प्राप्तहोऊं । मुझको इनके साथ कुछ प्रयोजन नहीं, चिरपर्यंत रहें अथवा अबहीं नष्टहोजावें; इनके नाशहोने से मेरा नाश नहीं होता और ठहरनेसे प्रयोजन नहीं होता मैंनेइनसे आपको भिन्न जाना है । जैसे तिलोंसे तेल निकाललिया तब फिर तिलोंमें नहीं मिलता और दूधसे माखन निकाललिया तब फिर दूधमें नहीं मिलता; तैसेही विचारकरके अपना आप निकाल लिया तब फिर इनके साथ नहीं मिलता । मैं शुद्ध चिदानन्द आत्माहूं, सब जगत् मेरे आश्रयहै और सबमें मैंएकही अनुस्यूत व्यापाहूं । अब मैं उसी स्वरूपमें स्थितहोऊं ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे विचारकर उद्दालक ब्राह्मण विषयोंसे वृत्तिको निवृत्त करके पद्मासन बाँध प्रणव अर्थात् अर्द्धमात्रा और अकार-उकार-मकारकी क्रमसे उपासना करनेलगा और प्राणायामकरके मात्राका ध्यान किया। अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव और अर्द्धमात्रा तुरीया इनको क्रमसहित करनेलगा। प्रथम रेचक प्राणायाम करनेलगा और अकारकी ध्वनिके साथ रेचककिया उससे सब प्राणवायु भीतरसे निकले और हृदयशून्य और शुद्धहुआ-जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्र को शून्य कियाथा-और आकाश से ऐसी ध्वनिहुई जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रपर्यंत चलीगई और देहाभिमान को त्यागकर पुर्यष्टक को सुषुम्णाके मार्गमें प्राप्तकिया। जैसे पक्षी आलयको त्यागकर आकाशमार्गको उड़ता है तैसेही उद्दालकने पुर्यष्टकको ब्रह्मरन्ध्र में स्थित किया। हठ करनेसे दुःखहोता है इसकारण जबतक सुखरहा तबतक स्थित रहा और जब थका और पुर्यष्टक का वायु अधसे आया तब उकार विष्णुरूपकी ध्वनि और ध्यानके साथ कुम्भक किया। जब सब प्राणवायुको आधारचक्रमें रोंका न नीचेजावे न ऊपरआवे-तो प्राण स्थित संघटहुये और उससे अग्नि निकली जिससे इसका पाप पुण्यरूपी शरीर जलगया। उसमें जबतक सुखरहा तबतक स्थितरहा क्योंकि, हठयोग दुःखदायक है और फिर मकारकी ध्वनिसे रुद्रका ध्यानकरके पूरक प्राणायाम किया। पूरक प्राणायाम करके सब स्थान वायुसे पूर्ण किये और ऊर्ध्व को चित्तकला प्राप्तहुई उस से यह और को पवित्र करनेवाला हुआ। जैसे धुआं आकाशको जाता है और जलपाकर औरों को शीतल करनेवाला होता है तैसेही इसका शरीर औरों को पवित्र करनेवाला हुआ जैसे मन्दराचल मथे हुये क्षीरसमुद्र से कल्पवृक्ष निकला तैसेही इसके शरीरमें प्राणवायु स्थितहुई और पद्मासन बाँधकर इन्द्रियों को रोंका जैसे हाथी बंधनों से बँधता है तैसेही इसने इन्द्रियों को रोंका अर्द्धमात्रा जो तुरीयापद है उसके दर्शन के निमित्त यत्न करनेलगा उसने नेत्रों को आधा मूंदा और बाह्यविषयों को त्याग इन्द्रियों को भी त्यागकिया और प्राण अपान का मूलचक्रमें रोंका जिससे नवों द्वारे रोंके गये। जैसे बालकके खेलने का पानी चोर होता है और उसके मूंदने से चलता पानी सब छिद्रोंसे रोंका जाता है, तैसेही मूलचक्र के रोंकनेसे नवोद्वार रोंकेगये। इसप्रकार उसने चित्तको रोंका और जब मनरूपी चंचलमृग दौड़े तब वैराग्य और अभ्यासके बलसे फिर उसे रोंके। जैसे बांधसे जल का वेग रुकता है तैसेही उसने जब चित्तको स्थित किया तब अन्तःकरण की जो सात्त्विकी वृत्ति है उसकोभी त्यागकर स्थित हुआ। जब मनकी वृत्ति जो निद्रारूप है उसमें मन मूर्च्छित होगया तब राजस-तामसका प्रवाह फिर फुरने लगा और उसको आत्मविवेकसे निवृत्तकिया। जैसे प्रकाश तमको निवृत्त करता है तैसेही इस विकल्प

रूपी तमको उसने निवृत्त किया और विवेकके बलसे चित्तकलामें लगा और चित्तकी वृत्ति से साक्षात्कार किया पर उसमें एकक्षण चित्त स्थित रहा और फिर बाहर निकल गया। जैसे बांधको तोड़कर जल निकल जाताहै। निदान उसने फिर अभ्यास के बलसे उसे आत्मकलामें लगाया तब उस परमशान्त आत्मपदमें चित्तकी वृत्ति स्थित हुई और परमआनन्द अमृत में मग्नहुई जो अशब्द, आनन्द और परिणाम से रहितहै और जिस पदमें देवता, ऋषीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं। हे रामजी ! जो उसपद में एकक्षण भी स्थित हुआहै और जो वर्षपर्यन्त स्थित हुआ है दोनों तुल्यहैं। जिसको उस पदका अनुभव हुआहै वह भोगोंकी इच्छा नहीं करता। जैसे जिसने स्वर्गका नन्दनवन देखाहै वह कञ्ज के वन देखने की इच्छा नहीं करता, तैसेही ज्ञानवान् भोगोंकी वाञ्छा नहीं करता और शोक कदाचित् नहीं उपजता। जैसे जिसको राज्यहुआहै वह दीनता को नहीं प्राप्त होता, तैसेही जिसने आत्मपदमें स्थिति पाईहै उसको विषयोंकी तृष्णा और शोक नहीं उपजता। हे रामजी ! जब इसप्रकार उद्दालक स्थितथा तब सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरोंके गण जिनके सुख चन्द्रमा की नाईं थे उसके निकट आये और नमस्कार करके बोले, हे भगवन् ! स्वर्गमें चलके दिव्यभोग भोगो, तुमने बड़ी तपस्याकी है। धर्म्म, अर्थ और पुण्यका सार कामहै और कामका सार जो स्त्रियां हैं वे तुम्हारे भोगनेके निमित्तहैं, जिनसे स्वर्गभी शोभता है— जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी और पुष्पों से पृथ्वी शोभती है। इससे तुम विमानोंपर आरूढ़ होकर स्वर्ग में चलो और बहुत कालपर्यन्त भोग भोगो। हे रामजी ! जब सिद्धोंने इसप्रकार बहुत कहा तब उद्दालकने उनको अतिथिजानकर निरादर तो न किया किन्तु यथायोग्य पूजाकरके हँसा और कहा कि, हे सिद्धो ! तुमको नमस्कार है, आवो। पर वह उनकी सिद्धता में आसक्तहुआ क्योंकि, परमानन्दमें स्थितथा और विषयों के सुख तुच्छ जानता था। जैसे अमृत खानेवाला विषकी इच्छा नहीं करता तैसेही उद्दालक सुखको न चाहता था। कुछदिन रहकर सिद्ध पुजते रहे और फिर उठगये पर यह परमपद में स्थितरहकर अपने प्राकृत व्यवहार करता रहा। फिर मेरु और मन्दराचल पर्व्वत में विचरा और कन्दरामें ध्यानलगा बैठा। कहीं एक दिनभर बैठारहे और कहीं वर्षों के समूह बीतजावें; इसप्रकार समाधि करके उतरा तब समाधि होगई। हे रामजी ! चित्त तत्त्वज्ञ अभ्यास से महाचेतन तत्त्वको प्राप्त होता है। दिशा में जैसे चित्रका सूर्य्य होता है तैसेही उदय अस्त से रहित हो उसने परमउपशमपदको पाया, चित्त भलीप्रकार शान्तहोगया और और जन्मरूपी फाँसी को तोड़ उसका देहरूपी भ्रम क्षीण होकर शरत्काल के आकाशवत् निर्मल हुआ और विस्तृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उसका वपुहोगया। तब वह सत्ता

सामान्य में स्थित होकर विचरने लगा और परम शान्ति को प्राप्त हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकविश्रान्तिवर्णनन्नामैकोन
पञ्चाशत्तमस्सर्ग्गः ४९॥

रामजी ने पूंछा, हे आत्मरूप! आप ज्ञानदिनके प्रकाशकर्त्ता सूर्य्य हैं; संशयरूपी तृणों के जलानेवाले अग्निहैं और ज्ञानरूपी तापोंके शान्तिकर्त्ता चन्द्रमाहैं। हे ईश्वर! सत्ता सामान्यका रूप क्याहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत् के अत्यन्त अभावकी भावनाकरके जब चित्त क्षीणहो और उसमें जो शेषरहे सो सत्तासामान्यहै। जब चित्त से रहित आत्मसत्ता हो और उसमें चित्त लीन होजावे तब सत्ता सामान्य उदय हो; जो असत्यकी नाईं स्थित है सोही सत्ता सामान्य है। हे रामजी! जब सब इन्द्रियोंका प्रपञ्च शान्तहोकर शुद्धबोध रहे; भीतर बाहरका व्यवधान मिटजावे और सब जगत् एकरूप होकर समाधि और उत्थान एकसा होजावे ऐसी दशाकी जो प्राप्तिहै सोही सत्ता सामान्यहै। वह देहके होतेही विदेहरूपहै और उसको तुरीयातीतपद कहते हैं। समाधिमें स्थितिहो तौभी केवलरूपहै और उत्थानहो तौभी केवलरूप है। अज्ञानी समाधि और उत्थानके तुल्य नहीं होता क्योंकि, ज्ञान से उपजी समाधि उसको नहीं प्राप्तिहुई। हमसे आदि लेकर नारद, देवर्षि, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रआदिक जिनको ज्ञान की दृष्टि पुष्टहुईहै वे सत्तासामान्यमें स्थितहैं और उनको समाधि और उत्थानमें तुल्यता है। जैसे आकाश में पवनका चलना और ठहरना समानहै और जैसे पृथ्वी में जल स्थितहै और अग्निमें उष्णता स्थितहै; तैसेही सत्तासामान्य में वह स्थित है। जब तक जगत् में विचरने को उसकी इच्छाथी तबतक वह ऐसे विचरता रहा और जब विदेहमुक्ति होनेकी इच्छाहुई तब पहाड़की कन्दरा में पत्रोंका आसन बनाकर पद्मा-सनबांध और दांतों से दांतों को मिलाकर सब सङ्कल्पोंका त्यागकिया और प्राणवायु को मूल आधारचक्र करके नवें द्वार खेचरीमुद्रासे रोंके। न भीतर, न बाहर, न अध, न ऊर्द्ध्व,सर्वभाव–अभाव विकल्पोंको त्यागकर उसने जब आत्मतत्त्वमें चित्तकी वृत्ति को लगाया तब शुद्धचिन्मात्र में चित्तकीवृत्ति जा प्राप्तहुई और रोम खड़ेहोआये। जब उस व्युत्थानको भी उसने त्यागकिया तब सत्तासामान्य विश्वम्भर पदको प्राप्त हुआ, जो परमविश्रान्त, अनादि, आनन्द और सुन्दररूप है। तब पुतली की नाईं उस का शरीर होगया और जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसेही निर्मल पद को प्राप्तहुआ। जैसे सूर्य्यकी किरणों के द्वारा वृक्षमें रस होता है और सूर्य्य उसे खैंचलेता है और जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर उसही में लीन होता है तैसेही उसका चित्त जिससे उपजाथा उसीमें लीनहोगया; सम्पूर्ण उपाधि विलाससे संकल्प रहित हुआ और उस आनन्दपद को प्राप्तहुआ जिस में इन्द्रादिकों का आनन्द

भी तुच्छ भासता है। ऐसा विश्वम्भर आनन्द जो उत्तम पुरुषों से सेवने योग्य है और जो अद्वैत और अशब्द सत्तासामान्य है उसमें जब उद्दालक प्राप्त हुआ तो परमशान्तिरूप होगया। निदान कुछकाल पीछे उसका शरीर गिरपड़ा—जैसे रस सूखे से वृक्ष गिरपड़ता है। जैसे वीणा बजती है और उसका शब्द प्रकट होता है तैसेही जब वायु चले और उसके शरीर में प्रवेश कर निकले तो शब्द प्रकट होता था। कुछकाल पीछे देवताओं की स्त्रियां; अश्विनीकुमार की शक्ति जिनका अग्निकी नाईं तेज है और देव देवी जो सब देवताओं से पूज्य हैं सखियोंसहित आईं और उस शरीरको सुगंधित पुष्पों की माला पहिराकर उसकी पूजा करके नृत्य करने लगीं और लीला की। हे रामजी! उद्दालक के चित्तकी वृत्तिमें कलना से रहित विवेक रूपी बेलिहुई और उसमें आत्मानन्दरूपी फल लगा। जिसके हृदयमें ऐसे फूलोंकी सुगंधि स्थितहो वह सब भ्रमसे तरजावे। जिसको ऐसा विवेक प्राप्तहो तो वहसबभ्रम से मुक्तहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेउद्दालकनिर्वाणवर्णनंनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसप्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपदको प्राप्तहुआ है उसी क्रमसे अपने आपको विचार करके तू भी आत्मपद को प्राप्तहो। हे कमल-नयन! कर्त्तव्य यही है कि, गुरु और शास्त्रों के वचनों को धारण कर जगत् भ्रम से मुक्तहो और आत्म अभ्यास से शान्त पदको प्राप्त हो। प्रथम गुरु और शास्त्रों के वाक्यों को समझिये और उससे जो विषयभूत अर्थ है उसके अभ्यास में बुद्धि को लगाइये। इस प्रकार जब दृढ़ता हो तब परमपदकी प्राप्तिहो। अथवा बुद्धि में एक तीक्ष्ण अभ्यास हो और कलङ्क कलना से रहित ऐसा बोधहो तो साधनादि सामग्री से रहितहो अथवा वैराग्यादिक सामग्री से रहितहो तौभी अविनाशी पद को प्राप्तहो। रामजीने पूंछा; हे भूतभविष्यके ईश्वर! एक ज्ञानवान् पुरुष तो समाधि में स्थित होताहै और फिर जगत् व्यवहारमें विचरता है और एक समाधि में स्थित है जगत्का व्यवहार नहीं करता; इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम समाधि का लक्षण सुनो कि, समाधि किसको कहते हैं और व्युत्थान क्या है। यह गुणोंकासमूह अहङ्कार से लेकर तत्त्वगुणात्मक है। जो इनको अनात्मरूप देखता है; आपको केवल इनका साक्षी चेतन जानताहै और स्वाभाविक जिसका चित्त शीतल है उसको समाधि कहते हैं। जो मैत्री, करुणा, अमान्यता आदिक गुणोंमें स्थित हुआ है और जिसका मन आत्मविषयसे शांतिको प्राप्त होताहै उसको समाधि कहते हैं। हे रामजी! जिसको ऐसा निश्चय होता है कि, मैं शुद्ध चिदानन्दस्वरूप दृश्य के सम्बन्ध से रहितहूं वह चाहे वनमें रहे अथवा गृहमें रहे दोनों स्थान उसको तुल्य

हैं और वे दोनों पुरुष तुल्य हैं। अन्तःकरण का शीतल होना बड़े तपोंका अनंत फल है। हे रामजी! जो इन्द्रियोंको शमन करके बैठा है और मनसे जगत्के पदार्थों की चिन्तना करता है उसकी समाधि मिथ्या है। वह उन्मत्तकी नाईं नृत्य करता है। और जिसके मनमें कोई वासना नहीं और व्यवहार करता है उसको बुद्धिमानों की समाधि के तुल्य जानो। कोई ज्ञानी व्यवहार करता है और कोई ज्ञानवान् व्यवहारको त्यागकर वन में समाधि लगाकर स्थितहो बैठा है पर दोनों निश्चय से परमपद में प्राप्तहोते हैं-इसमें संशय नहीं। ज्ञानवान् निर्वाह पुरुषार्थ करताभी दृष्टआता है तौभी अकर्त्ता है और अज्ञानी जो कर्त्ताभी नहीं परन्तु वासनासे कर्तव्यभाव को प्राप्त होताहै। जैसे कोई पुरुष कथा सुनने बैठाहो और उसका मन किसी और ठौर निकल गयाहो तो सुनता बैठाभी नहीं सुनता; तैसेही ज्ञानवान्का चित्त आत्मपद की ओर लगा है इससे वह कर्त्ताभी नहीं कर्त्ता क्योंकि, उसको कर्तृत्वका अभिमान नहींहोता। घन वासना सहित अज्ञानी सब इन्द्रियों को स्थित करके सोगयाहो तो उसको स्वप्न आवे और पर्वतसे गढ़ेमें आपको गिरा देखता है और कष्टवान् होता है। इससे जहां वासना है वहां क्षोभभी है और जहां कुछ वासना नहीं वहां शान्ति है। हे रामजी! जिसमें कर्तृत्व का अभिमान नहीं और निश्चय से आपको अकर्त्ता जानता है उसको केवलीभावसे समाधि में स्थित जानो और जिसमें कर्तृत्व अभिमान है और समाधि में बैठा है तौभी उसको व्युत्थान जानो। हे रामजी! चित्तके चलानेका कारण स्मृति है जो स्मृति जगत्को लेकर समाधि लगा बैठता है। तौभी चित्त वासनासे फैलजाता है। जैसे बीजसे अंकुर उपजता है और फैलजाता है तैसेही मनमें जो वासनाकी स्फूर्ति होती है उससे चित्त फैलजाता है। और जो जगत् की वासना मनसे जाती रहती है अर्थात् जगत्का सत्तभाव निवृत्त होजाता है तब चित्त अचल हो जाता है। हे रामजी! जिस चित्तसे वासना नष्ट होती है उसको अचल स्थिति कहते हैं; वह ध्यानमें केवलीभाव में स्थित होता है और जिसके चित्त में सदा वासना फुरती है उसको सदा क्षोभ होता है। इससे निर्वासनिक होकर तुम परमपदको प्राप्तहो। हे रामजी! जिस चित्तमें वासनागन्ध होती है उसमें कर्तृत्वका अभिमानभी फुरता है और उससे सदा दुःखी होता है। वासनाके क्षीण हुयेसे मुक्त होता है। जिस पुरुषके चित्तसे जगत्की आस्था निवृत्तहुई है और वीतशोक हुआ है वह स्वस्थ आत्मा है। तिसको समाधि कहते हैं। हे रामजी! जिसके हृदयसे संसार का राग द्वेष मिटगया है और शान्तिको प्राप्तहुआ है उसको सदिव्य समाधि कहते हैं। इससे चित्तमें जो पदार्थभावना है उसको त्यागकर अपने स्वभावमें स्थितहो; तब गृहमें रहो अथवा वनमें जावो दोनों तुमको तुल्य हैं। हे रामजी! जो गृह में

स्थित है और चित्त समाहित है और अहंकार के दोष से रहित है उसको कुटुम्ब और जनोंके समूहभी वनकी नाईं हैं। ज्ञानवान्‌को गृह और वन तुल्य है और देह अभिमानी जो अज्ञानी है वह वनमें जाय और समाधि लगा बैठता है पर चित्तकी वृत्ति विषयोंकी ओर रहती है तब वह जगत्‌के समूहको देखता है अथवा सुषुप्ति में जड़भूत होजाता है। हे रामजी! चित्त उत्थानमें स्वरूपसे गिराहुआ जगत् भ्रम दिखाता है और जब चित्त निर्वाणपद आत्मा में स्थित होता है तब उपशम होता है। हे रामजी! जो पुरुष सब भाव पदार्थोंमें आत्माको अतीत जानता है वह समाहित चित्त कहाताहै और जिसको जाग्रत जगत् स्वप्नवत् भासता है वह समाहित चित्त कहाता है। वह पुरुष जन के समूह में रहता है तौभी उसका सम्बन्ध किसी से नहीं। जैसे कोई पुरुष राजमार्ग में चलाजाताहै तो मार्गके किसी पदार्थ से सम्बन्ध नहीं रखता तैसेही उस पुरुषका अभिमान किसी में नहीं फुरता। जिस पुरुषका चित्त अन्तर्मुख हुआ है वह सोवे अथवा बैठे; चले अथवा देखे उसे नगर और ग्राम सब महावनरूप भासताहै और सब जगत् उसको आकाशरूप भासता है। जिस पुरुषको आत्मामें प्रीति हुई है वह अन्तर्मुखी कहाता है और जिसका हृदय आत्मज्ञान से शीतल हुआ है उसको सब जगत् शीतलरूप भासता है। वह जबतक जीता है तबतक विगतज्वर होकर जीता है और जिसका हृदय तृष्णासे जलता है उसको सब जगत् दावाग्निसे तपता भासता है। हे रामजी! यह सब जगत् चित्त में स्थित है; जैसी भावना चित्तमें होती है उसके अनुसार जगत् भासता है। स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, नदियां, आकाश, देश, काल जो कुछ जगत् है वह सब चित्त अन्तःकरण में है और वही बाहर विस्तार होकर भासता है। जैसे बटके बीजमें बट फैलजाता है तैसेही चित्तमें जगत् का विस्तार होता है। बाहर जो सूर्य आदिक भासता है वह भी चित्तके भीतर स्थित है—जैसे फूल खिलताहै उसके भीतर की सुगन्ध बाहर भासती है और वास्तवमें न कुछ भीतर है न बाहर है जैसा किंचन होता है तैसाही चैत्यता से फुरता है—तैसेही वहीसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है। जगत् सब आत्मरूप है और न कोई सत्यहै, न असत्य है; एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको सदा ऐसेही भासता है। हे रामजी! जिसके हृदय में शान्ति है उसको सब जगत् शान्तिरूप है और जिसका हृदय देहाभिमान में स्थित है सो नाश होता है, और भयपाता है किसी ओर से उसको शान्ति नहीं प्राप्त होती। वह स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, देश, काल सबको प्रलयकालकी अग्निवत् जलता देखता है। जिसके हृदय में ताप होता है उसको सब जगत् तपता भासता है पर आत्मज्ञानी को शान्तरूप भासता है—जैसे अंधेको सब जगत् तमरूप

भासता है और नेत्रोंवाले को सब जगत् प्रकाशरूप भासता है । हे रामजी ! जिस पुरुष को आत्मपदमें प्रतीति हुई है और इन्द्रियों से कर्म भी करता है परन्तु हर्ष शोकके वशनहीं होता वह समाहितचित्त कहाता है । जो पुरुष सबको आत्म देखता है, चित्तको नहीं चितवता; भविष्यत्की इच्छा नहीं करता और वर्त्तमानमें राग द्वेष से रहित होकर बिचरता है वह समाहितचित्त कहाता है। हे रामजी ! जो पुरुष जगत् की पूर्वापर गतिको देखकर हँसता है; समपद में स्थित होताहै और किसी में ममता नहीं करता वह समाहितचित्त कहाता है । जो पुरुष अहंममता से और जगत् की विभाग कलना से रहित है और जिससे चैतन अचैतन भाव नहीं फुरता वह पुरुष सत्य है और आकाशकी नाईं स्वच्छ निर्मल है और राग, द्वेष, क्रोध विकारों से काष्ठ लोष्ठ समान हो रहता है । वह सब भूतोंको अपने समान देखता है और और के द्रव्यको देखकर दृष्टि नहीं करता। वह स्वभावही से उसे नहीं चाहता द्वन्द्व के भय से नहीं त्यागता । ऐसे जो देखता है और अहंकार से रहित होता है वह न जगत् के सत्यभावको देखता है, न असत्यभावको देखताहै; न ज्ञानको देखताहै; न अज्ञान को देखताहै; न जड़ को देखता है; न चैतनको देखता है; वह तो केवल अद्वैत तत्त्व देखता है । वह महाशान्तपद में स्थित है; वह उठ खड़ा हो अथवा बैठा रहे; उदय हो अथवा अस्तहो; बड़ेभोगों में रहे अथवा वन में जा बैठे; अथवा मद्यपानसे उन्मत्तहो और नृत्यकरे और गयादिक तीर्थों में निवास करे अथवा कन्दरा में निवास करे शरीर को अगरचन्दन का लेपनकरे अथवा कीचड़ के साथ लपेटे; देह अभी गिरपड़े अथवा कल्पपर्यन्त रहे; उस पुरुष को कदाचित् कुछ कलंक नहीं लगता । जैसे सुवर्ण को कीचड़ के मिलाप से दोष नहीं लगता तैसेही ज्ञानवान् को कर्त्तृत्वका दोष नहीं लगता । हे रामजी ! इस संवित् को अहंताही कलंक है । महापुरुष अहंकार से रहित है इससे उनको कृतत्व स्पर्श नहीं होता । जैसे सीपीको रूपे का आभास नहीं स्पर्श करता तैसेही ज्ञानवान् को क्रिया स्पर्श नहीं करती । हे रामजी ! अहंताही से जीवदीन होता है । जब अहंता फुरती है तब अनेक प्रकार के दुःख सुख देखता है और परम्परा जन्मोंको देखताहै और भयपाता है । जैसे किसी को रस्सी में सर्प भासता है और भयपाता है पर जब भली प्रकार दीपक के प्रकाश से देखता है तब सर्पभय निवृत्त होता है; तैसेही अहंता से यह दुःख पाताहै और अहंता के शान्त हुये शान्तिवान् होता है । हे रामजी ! ज्ञानवान् जो कुछ कर्म करता, खाता, पीता, लेता, देता, हवन करता है उसमें अहंताका अभिमान नहीं करता इससे करने में उसका कुछ अर्थसिद्ध नहीं होता और जो नहीं करता उसमें भी कुछ अभिमान नहीं इससे करने से उसकी कुछ हानि नहीं होती वह अपने स्वभाव में स्थित है और

जगत् को द्वैतभाव से नहीं देखता, सबको आत्मभावसे देखताहै इससे उसे कर्म स्पर्श नहीं करता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेध्यानविचारोनामएकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चित्त आदिक जो जगत् है सो वास्तव में आत्मा से भिन्न नहीं है। आत्मारूपी मिरच है उसमें चित्त अहंतारूपी देशकाल तीक्ष्णता भिन्न नहीं जैसे इक्षुसे मधुरता भिन्न नहीं तैसे आत्मासे जगत् भिन्न नहीं। जैसे पत्थर में कठोरता है तैसेही आत्मामें जगत् है; जैसे पर्व्वतमें जड़ता होती है तैसेही आत्मा में अहंता होती है जैसे जलमें द्रवता होती है तैसेही आत्मा में अहंता आदिक होती है। जैसे फूल, फल, टास वृक्षसे भिन्न नहीं होते तैसेही आत्मा में अहंता आदिक अभेद होते हैं; जैसे तीच्णता मिरचों से भिन्न नहीं होती तैसेही चित्त अहंता रूपी देशकाल आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे अग्नि में उष्णता; बरफ में शीतलता; सूर्य्य में प्रकाश और गुड़में मधुरता होती है; तैसेही आत्मा में जगत् होता है। जैसे अमृत में स्वादवेदना होती है तैसेही आत्मा में देश, काल वेदना होती है। हे रामजी! जैसे मणिमें प्रकाश होता है तैसे आत्मा में अहंता होती है और जैसे जलसे तरंग भिन्न नहीं होता तैसेही आत्मासे अहंता आदिक भिन्न नहीं होते। जो कुछ जगत् भासता है सो आत्मतत्त्वका प्रकाश है जो अनन्तआत्मा सब में पूर्ण है और एकही ईश्वरभाव में स्थित महाघन शिलाकी नाईं स्थित है—उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे आकाश अपनेभावमें स्थितहै तैसेही सत्यकेवल आत्मामें स्थित है और अपने आपसे निर्वेद है पर वेदना भी उससे भिन्न नहीं। जैसे जलही तरंगरूप हो भासताहै तैसेही आत्मा वेदनरूप हो भासता है और जैसे जलमें द्रवता और पवनमें चलना भासता है तैसेही ज्ञानरूप आत्मामें अहंतारूप देश, काल, जगत् भासताहै। हे रामजी ! जीवों का जीना ज्ञानसे होताहै और ज्ञानसत्ताका जीना चैतनसे होता है। चिन्मात्र और जीवों में रञ्चकमात्र भी कुछ भेदनहीं। जैसे ज्ञान चैतनसत्ता और जीवमें भेदनहीं तैसेही ज्ञाता और जगत् में कुछ भेदनहीं—एकही अखण्डसत्ता ज्योंकीत्यों स्थितहै। हे रामजी ! सर्वसत्ता एक, अज, अनादि और आदि, अन्त, मध्यसेरहित, प्रकाशरूप, चिन्मात्र अद्वैतत्त्व अपने आपमें स्थित है। वह अशब्द है उसमें वाणी प्रवेशनहीं करसक्ती और जितने वाक्यहैं वह उसके जताने के निमित्त कहे हैं वास्तव में द्वैत वस्तु कुछनहीं है एक आत्मतत्त्वको अपने हृदय में धारणकर स्थितहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेभेदनिरासवर्णनन्नामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक आगे पुरातन इतिहास हुआहै उसको तुमसुनो। उत्तरदिशा में एक सुगन्धितपृथ्वी है वह मानो कपूरसे लिपी हुई है और मानो सदा-

शिवके हंसआ स्थितहुये हैं। हिमालयके शिखरपर वह कैलास पर्वतहै जो सब पर्वतों से उत्तम और उज्ज्वल है वह रुद्रके रहनेका स्थान है, वहां कल्पवृक्ष लगे हैं और गङ्गाका प्रवाह चलता है। और भी बहुतसी बड़ीनदी वहां चलती हैं और कमलों सहित बहुत महासुन्दर तालाब स्थित हैं जहां बहुत मृगपक्षी हैं। उस हिमालय के नीचे स्वर्णवत् जटावाले क्रांत रहते हैं—जैसे वृक्षके मूल में पिपीलिका रहती हैं। उस क्रांत देशका राजा सुरघ मानोप्रत्यक्ष लक्ष्मी मूर्तिधारेहुए, वेगवान् ऐसा मानो पवनकी मूर्त्ति वैराग्यवान् मानोगजेन्द्र, बुद्धिमान् मानो बृहस्पति और शुक्रके समान कविथा। राजा ऐसाथा मानो इन्द्रहै; और धनी ऐसा मानो कुबेरथा। ऐसाराजा होकर वह राज्य करता था और भलीप्रकार प्रजाकी पालना करता था। जो भलेमार्ग्ग में चलें उनकी वह रक्षाकरे और जो पापकर्म्म चोरी आदिककरें उनको दण्डदे और जैसाकर्म्म प्राप्तहो उसमें द्वेषसेरहित होकर व्यतीतकरे। एक समय वह अपने स्थानमें बैठाथा तब चित्त में विचार उपजा और संशयरूपी वायुसे उसकी बुद्धिरूपी पक्षिणी डोलायमान हुई कि, बड़ाअनर्थ है कि, मैं जीवोंको कष्टदेताहूं। इससे मैं इनको धनदेऊं और कष्ट न देऊं। जैसे तिलोंको तेलीपेरताहै तैसेही मैं पापियोंको कष्ट देताहूं। दुष्टोंको कष्टदिये विना राज्य नहीं चलता—जैसे जलविना नदीका प्रवाहनहीं चलता—और यदि दण्ड देताहूं तो वे दुःखपावते हैं। मैं क्याकरूं दोनों बातोंमें कष्टहै। हे रामजी! ऐसेविचारमें राजा बहुत भ्रमतारहा निदान एकदिन उसके गृहमें मांडवमुनिआये—जैसे इन्द्रकेघरमें नारदआवें—तब राजाने भलीप्रकार उनका पूजनकिया और संदेहवान् होकर पूछा;हे भगवन्! तुम सर्वधर्मगतहो, तुम्हारे आनेसे मैं बड़ेआनन्दको प्राप्तहुआहूं जैसे वसन्तऋतुसे पृथ्वी प्रफुल्लित होती है तैसेहीमैं प्रफुल्लितहुआहूं मैंभी अब आपको पुण्यवान् जानताहूं कि, मैंभी पुण्यवानों में प्रसिद्धहोऊंगा क्योंकि; तुम मेरेगृहमें आयेहो। जैसे सूर्य्यके उदयहुये प्रकाशहोआताहै तैसेही मैं तुम्हारे दर्शनसे प्रसन्नभयाहूं। हे भगवन्! मुझको एक संशय है उसके निवारणकरनेको आपही योग्यहो। जैसे सूर्य्य के उदय हुये अन्धकार नष्टहोजाताहै तैसेही तुमसे मेरासंशय निवृत्तहोगा। जो कोई महापुरुषोंका सङ्ग करताहै उसका संशय अवश्य निवृत्त होताहै। संशयही परमदुःखों का कारण है इससे मेरे संशयको तुम दूरकरो। मुझे यह संशय है कि, यदि कोई दुष्ट कर्मकरताहै तो उसको मैं दण्डदेताहूं और जब उसको दुःखीदेखताहूं तो दया उपजती है। जैसे सिंहनखसे हाथीको खैंचताहै तैसेही यह संशय मुझको खैंचता है। इससे यही उपाय कहो जिससे मुझको समताप्राप्तहो। जैसे सूर्य्यकीकिरणें सबठौर में सम होती हैं तैसेही इष्ट—अनिष्टमें मैं समहोऊं। कृपाकरके मुझसे वही उपाय कहिये। मांडव बोले, हे राजन्! यहतो बहुत सुगमहै और अपने आधीनहै; आपहीसे सिद्ध होता

है और अपनेही गृहमें है । हे राजन्! सब उपाधि मनमें उठती है वह मन तुच्छ है और विचारकियेसे निवृत्तहोजाताहै। जैसे उष्णतासे बरफ जलमय होजाताहै तैसेही विचार कियेसे जब मनभाव लीन होजाताहै तब तापभी निवृत्त होजाताहै। जैसेशरत्काल के आये से कुहिरा नष्ट होजाताहै तैसेही विचार कियेसे मनभाव नष्टहोजाताहै। विचारो कि, मैं कौनहूं, इन्द्रियां क्या हैं जगत् क्या है और जन्म मरण किसको कहते हैं? इस विचार से जबतुम अपने स्वभावमें स्थित होगे तब तुमको हर्ष, शोक, क्रोध और राग द्वेष चलायमान न करसकेगा। जैसे वायुसे पर्वत चलायमान नहीं होता है तैसेही तुम अचल रहोगे। हे राजन्! जब आत्मबोधहोगा तब मन अपने मनभावको त्याग देगा और तुम सन्ताप से रहित अपनेस्वरूपको प्राप्तहोगे। जैसे तरंग भाव मिटने से जल निर्मलहोताहै तैसेही तुम अचलहोगे और मनधर्मभी रहेगा परन्तु मध्यसे अज्ञान नष्ट होजावेगा और आत्मसत्ता भावहोगा। जैसे काल वही रहता है परन्तु ऋतु और होजाती है तैसेही मन वही होगा परंतु स्वभाव और होजावेगा। तेरे नौकर और प्रजाभी साधु होजावेंगे और तेरी आज्ञामें चलेंगे और तुझको देखकर प्रसन्न होंगे। हे राजन्! जब तुझको विवेकरूपीदीपक से आत्मारूपीमणि मिलेगा तब तेरी बड़ाई सुमेरु और समुद्र और आकाशसेभी अधिक होगी। जब तुझको विवेक से आत्म महत्त्वता का प्रकाश होगा तब तू संसार की तुच्छ वृत्ति में न डूबेगा। जैसे गोपद के जल में हाथी नहीं डूबता तैसेही तू राग द्वेष में न डूबेगा। जिसको देहमें अभिमान है और चित्तमें वासना है वह तुच्छसंसारकी वृत्तिमें डूबताहै; इससे जितना अनात्मभाव दृश्य है उसका त्यागकर पीछे जो शेषरहे सो परमतत्त्व आत्मा है। हे राजन्! जो कुछ सत्य वस्तु है उसको हृदयमें धरो और जो असत्य है उसका त्यागकरो। जैसे तब तक कल्लरसे सोनार धोता है जब तक सुवर्ण नहीं निकलता और जब सुवर्ण निकलता है तब धोनेका त्याग करता है; तैसेही तब तक आत्मविचार कर्त्तव्य है जब तक आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ। जब आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है तब विचारसे प्रयोजन नहींरहता। हे राजन्! सबमें, सबप्रकार, सबकाल, सब आत्माकी भावनाकरो अथवा जितना दृश्यभाव है सो सब त्यागकरो तो जो शेष रहेगा सो तुम को भासि आवेगा। जबतक सर्व दृश्यका त्याग न करोगे तबतक आत्मपद का लाभ न होगा। सर्व दृश्यके त्यागसे आत्मपद भासेगा। हे राजन्! जब किसी वस्तु के पानेका यत्न करता है तो औरका त्यागकर उसीका यत्न करिये तो प्राप्त होता है तो आत्मतत्त्व अनन्य होकर चित्त विना कैसे प्राप्तहोगा। जब अपना सम्पूर्ण यत्न एकही ओर लगाता है तब उस पदकी प्राप्ति होती है। इससे आत्मपद के पानेके लिये सब दृश्यका त्यागकर सबके त्याग किये से जो शेष रहे सो परमपद है। हे राजन्!

सबके त्याग कियेसे जो सत्ता अधिष्ठान रहेगा सो तुझको आत्मभाव से प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघव्हत्तान्तमांडवोपदेशोनाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार कहकर जब मांडवमुनि अपने स्थानको गये तव सुरघराजा एकान्तमें बैठकर विचार करनेलगा कि, मैं कौनहूं? न मैं सुमेरुहूं, न मेरा सुमेरुहै; न मैं जगत्‌हूं, न मेरा जगत्‌है; न मैं पृथ्वीहूं, न मेरी पृथ्वी है; न मैं क्रान्त मण्डलहूं और न मेरा क्रांतमण्डल है क्योंकि; यह अपने भावमें स्थितहै, मेरे भावसे तो नहीं। जो मैं न होऊं तौभी यह ज्योंकेत्यों स्थित हैं तो यह मेरे कैसे होवें और मैं इनका कैसे होऊं? न मैं नगरहूं और न मेरा नगरहै। हाथी, घोड़ा, मन्दिर, धन, स्त्री, पुत्रादिक जो कुछ पदार्थ हैं सो न मेरे हैं और न मैं इनकाहूं। इनमें आसक्त होना वृथाहै; इनमें मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जितने भोगोंके समूहहैं ये न मैं हूं और न ये मेरे हैं। नौकर, भृत्य और कलत्र सब अपने भावसे सिद्ध हैं, मेरा इनसे सम्बन्ध कुछ नहीं। न मैं राजाहूं, न मेरा राज्य है। मैं एकाएकी शरीर मात्र हूं और इनमें मैं ममत्व करताहूं सो वृथा है। शरीरमें जो मैं अहं करताहूं सोभी व्यर्थ है क्योंकि; हाथ पांव आदिकका स्वरूप भिन्न है; न यह मैंहूं और न ये मेरे हैं। इनमें मेरा शब्द कुछ नहीं यह रक्त, मांस, हाड़ आदिकरूप हैं सो मैं नहीं। यह जड़ हैं और मैं चेतनहूं; इनके साथ मेरा कैसे सम्बन्धहो। जैसे जलका स्पर्श कमलको नहीं होता तैसेही इनका स्पर्श मुझको नहीं। न मैं कर्म इन्द्रियां हूं और न मेरी कर्म इन्द्रियां हैं। यह जड़ है, मैं चैतन्यहूं। न मैं ज्ञानइन्द्रीहूं, न मेरी ज्ञान इन्द्रियां हैं। इनसेपरे मनहै सोभी मैं नहीं क्योंकि, यह जड़ है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सब अनात्मारूप हैं। मेरा इनके साथ अविद्या से सम्बन्ध है। भ्रांतिसे मैं इनको अपना स्वरूप जानता था पर यह सब भूतोंका कार्य्य है। इनके पीछे चेतन जीव है जो चेतन दृश्यको चेतनेवाला है सो चेतन चेतनामी मैं नहीं। इन सबसे शेष अचेत चिन्मात्रसत्ता मेरा स्वरूप है। बड़ा कल्याण हुआ जो मैंने अपना आप पाया। अब मैं जागा हूं। बड़ा आश्चर्य है कि, मैं वृथा देहादिक को अपना जानकर शोक और मोहको प्राप्त होताथा। मैं तो एक निर्विकल्प चेतन और अनन्त आत्मा सब में व्याप रहाहूं और ब्रह्मरूप आत्मा हूं। इन्द्रियों से आदि जितने भूतगणहैं उन सबका मैं आत्माहूं। यह भगवान्‌आत्मा सब के भीतर व्यापा है। जैसे सबके भीतर तत्त्व होते हैं तैसेही यह चेतनरूप सर्व भावको भर रहा है और सर्व भावों में व्याप रहा है। भैरव और उदय अस्त भाव आदि विकारों से वह रहित है। ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सबका आत्मायही है। सब प्रकाशोंका प्रकाशनेवाला दीपक वही है और संसाररूपी मोतियों के पिरोने

वाला तागा और सबका कारण कार्य्य यही है । वह साकार से रहित है और शरीरादिक सब उसीकी सत्तासे उपलब्ध होते हैं । शरीररूपी रथ इसी से चलता है पर वास्तव में शरीरादिक कुछ वस्तु नहीं । यह जगत् चित्तरूपी नटकी नृत्य लीलारूप है । चित्त में जगत् फुरता है वास्तव में और कुछ वस्तु नहीं । बड़ा कष्ट है कि, मैं वृथा संग्रह असंग्रह की चिन्ता करता था । यह गुणों का प्रवाह है इस में मैं क्यों शोकवान् होता था ? बड़ाआश्चर्य्य है कि, असत्यभ्रम सत्यहो मुझको दीखता था । अब मैं निश्चय करके सम प्रबोध हुआ हूं और दुर्दृष्टि मेरी दूरहुई है । दृष्टि की जो अलख दृष्टि है सो अब मैंने देखी है और जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया है और अचैत्य चिन्मात्र तत्त्व को प्राप्त हुआ हूं । जो कुछ दृश्य है उसको मैं स्वरूप से देखता हूं और अहंमम दुःख मेरा नष्टहुआ है । मैं चिदानन्द पूर्ण और नित्य शुद्ध अनन्तआत्मा अपने आप में स्थित हूं । ग्रहण क्या और त्याग क्या ? यह क्लेश कोई नहीं और न कोई दुःख है, न सुख है; सर्व ब्रह्म है और दूसरी वस्तु कुछ नहीं । मैं राग किसका करूं और द्वेष किसका हो ? मैं मिथ्या मूढ़ता को प्राप्त हो कर दुःखी होताथा; अब कल्याण हुआ कि, मैं अमूढ़ होकर अपने आप स्वभाव में स्थित हुआ हूं । ऐसे आत्माके साक्षात्कार विना मैं दुःखी था । इसके देखे से अब किसका शोक करूं और मोह को कैसे प्राप्त होऊं ? अब मैं क्या देखूं; क्याकरूं और कहां स्थित होऊं ? यह सब जगत् आत्माके प्रकाश से है और सब आत्मारूप है । हे अतत्त्वरूप ! अर्थात् जिसमें तत्त्वों की उपाधि कुछ नहीं; तेरी दृष्टि निष्कलंक है । मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हूं । मेरा मुझही को नमस्कार है । मैं अनन्त आत्मा अनुभवरूप, निष्कलंक, सब इच्छा और भ्रम रहित, सुषुप्तिकी नाईं शान्तरूप, अचैत्य, चिन्मात्र सदा अपने आप में स्थित हूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघवृत्तान्तवर्णनन्नामचतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ५४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! क्रान्त जो सुवर्णरूप देश है उसका राजा परमानन्द को प्राप्त हुआ । वह इसप्रकार विचार अभ्याससे ब्रह्मरूप हुआ । जैसे गाधिकापुत्र विश्वामित्र तपस्या करके उसी शरीर से क्षत्रीसे ब्राह्मण हुआथा तैसेही राजा सुरघ अभ्यास करके ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ और जैसे सूर्य्य इष्ट–अनिष्ट में समहै और विगतज्वर होकर दिनों को व्यतीत करताहै तैसेही रागद्वेष से रहित वह राज्य का कार्य्य करतारहा । जैसे जल ऊंची नीची ठौर में जाता है और अपना जलभाव नहीं त्यागता, समरहता है; तैसेही राजा हर्षशोकसे रहित होकर राज्यकार्य्य करता रहा और स्वभाव को न त्यागा । आत्मविचार को धार सुषुप्ति की नाईं उसकी वृत्तिहोगई

और संसार भावका फुरना रुकगया । जैसे वायु से रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही वह शुद्ध प्रकाश धारताभया । हे रामजी ! वह दयाकरता भी दृष्टि आवे परन्तु उसकी दृष्टि में कुछ दया नहीं और दया से रहित भी औरोंको दीखे परन्तु उसकी दृष्टि में निर्दयता नहीं । न कुछ सुख, न दुःख, न अर्थ, न अनर्थ सब पदार्थों में एक समभाव आत्मा देखे और हृदयसे पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतल रहे । वह जगत् आत्मा का किंचनरूप जानताथा और उसके सुख दुःखकाभाव शांतहोगया जैसे सूर्य्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही उसके सुख दुःख नष्टहोगये थे । शोक, विलास, कर्त्ता, मत्तहोता, स्थितहोता, चलता, श्वासलेता और पांचों विषयों को ग्रहणकर्त्ता वह रागद्वेष को प्राप्त न होता था । जैसे पत्थर में फुरना कुछ नहीं फुरता तैसेही उसको कर्तृत्व, भोक्तृत्वका मान कुछ न फुरा; सब कर्त्तव्यको कर्त्ता भी निःसंगरहा । जैसे जल में कमल अलेप रहता है तैसेही वह राज्य में निर्लेप होकर जीवन्मुक्त हुआ । इसप्रकार जब बहुत काल बीता तब उसने शरीर का त्याग किया । जैसे बरफ का कणका सूर्य्य के तेज से जलमय होजाताहै तैसेही उसका शरीर अपने भावको त्यागकर आत्मतत्त्व में लीनहोगया । जैसे नदी समुद्र में लीनहोती है और फिर भिन्न नहीं भासती तैसेही सुरघ अपने भावको त्यागकर उज्ज्वलभाव को प्राप्तहुआ और कलनारूपी मलको त्यागकर निर्मल ब्रह्महुआ । जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है तैसेही यह निर्मल चिदानन्द ज्योतिभावको प्राप्तहुआ और जैसे घटफूटेसे घटाकाश महाकाश होजाता है तैसेही वह पूर्णब्रह्म चिदानन्द तत्त्व हुआ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघवृत्तान्तसमाप्तिर्नाम पंचपंचाशत्तमस्सर्गः ५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुमभी इसी दृष्टिका आश्रयकरके बिचारो तब सब भय मिट जावेगा । जैसे घोरतम में बालक भय पाता है और जब दीपक का प्रकाश होता है तब निर्भयहोता है तैसेही संसाररूपी घोरतम में आया पुरुष दुःख पाता है और जब ज्ञानरूपी दीपक उदयहोता है तब निर्भयहोजाता है । हे रामजी ! जब आत्म विचार में कुछभी मनुष्य का चित्त विश्रामपाता है तब उस विश्रामका आश्रय कर वह संसार समुद्र से निकलजाता है; जैसे गढ़ेमें गिरे और तृणका वृक्षहाथ लगे तो भी उसके आश्रयसे निकलआताहै । हे रामजी ! यह पावन दृष्टि मैंने तुमसे कही है इस को चित्त में बिचारो और परस्पर मिलकर उदाहरण के साथ अभ्यासकर नित्य एक समाधि में स्थितहो और पृथ्वीका भूषण होकर लोगों में बिचरो । इतनासुन रामजीने पूछा; हे मुनीश्वर ! एकसमाधि किसको कहते हैं । और कैसे होती है सो कहो जिस में मेराचित्त जो फुरता है सो स्थितहो । जैसे वायु से मोरकी पुच्छ हिलती है तैसेही

चञ्चलरूप चित्त सदा फुरता है। बशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सुरघ प्रबुद्धहुआथा तब उसका संवाद पर्णाद राजऋषिकेसाथ हुआथा वही अद्भुत समाधि है; उसको सुनकर विचारोगे तो तुमभी एक समाधिमान् होगे। उसने परस्पर मिलकर जो चर्चा कीथी सो सुनो। हे रामजी! पारसदेशका राजा महावीर्यवान्था। उसका परघ नामथा और वह सुरघका मित्रथा। जैसे नन्दनवनमें कामदेव और वसन्तऋतुका मित्रभाव होताहै तैसेही सुरघ और परघका मित्रभाव था। एककालमें परघकेदेशमें प्रलयकाल विना प्रलयकालकी नाईं समयहुआ और उससे सब जीव दुःख पानेलगे निदान प्रजाकी पापबुद्धिका फल आनलगा और महादुर्भिक्षपड़ा। कोई क्षुधा से मृतकहुये, कोई अग्निसे जलमरे और बहुतेरे झगड़ाकरके मृतकहुये। प्रजा बहुत दुःखको प्राप्त हुई पर राजाको कुछ दुःख न प्राप्तहुआ। जब प्रजाने बहुत दुःखपाया और राजा ने प्रजाको दुःखीदेखा पर प्रजाका दुःख निवृत्त न करसका तो प्रजा अपने२ कुटुम्बको त्यागकर चलीगई—जैसे वनमें अग्नि लगेसे पक्षी त्यागजाते हैं। तब राजा एकपहाड़ की कन्दरा में तप करनेलगा और ऐसा तप करनेलगा जैसा कि, जिनेन्द्रने कियाथा। वह उस कन्दरा में फल न पाये केवल सूखे पत्तेलेकर खावे—जैसे अग्नि सूखे पत्तों को भक्षण करती है उससे उसका नाम पर्णाद हुआ। निदान चित्तकीवृत्तिको आत्मपद में लगाकर सहस्रवर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब अभ्यासके बलसे चित्त स्थित हुयेसे केवल ज्ञानरूप आत्मतत्त्व हृदयकी निर्मलतासे प्रकाश आया और सबतप्तता मिटगई। तब वह राग द्वेषसे रहितहो निष्क्रिय—आत्मदर्शी—जीवन्मुक्त होकर विचरने लगा। जैसे सरोवरों में कमलों के निकट भँवरा हंसों के साथ जा मिलता है तैसेही सिद्धों के साथ राजा जामिले। ऐसे फिरता फिरता वह क्रान्तदेश में सुरघ के स्थानों को गया। सुरघ पूर्वमित्रको देखकर उठखड़ाहुआ और परस्पर कण्ठलगाके मिले। फिर परस्परभाव करके एक आसन पर चन्द्रमा और सूर्य्य के समान दोनों बैठगये और आपसमें कुशल पूछनेलगे। प्रथम परघ बोले, हे मित्र! तेरे दर्शनसे जैसे कोई चन्द्रमाके मण्डलमें जा आनन्दवान् हो तैसेही मैं आनन्दवान् हुआहूं। बहुत काल का जो वियोग होता है तो बहुत प्रीति बढ़ती है। जैसे वृक्षको ऊपर काटेसे बढ़ता है तैसेही प्रीति बढ़ती है। हे साधु! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ और तू भी माण्डव मुनि और आत्माके प्रसादसे ज्ञानको प्राप्त हुआ है। हे राजन्! मेरा अभीष्ट प्रश्न यह है कि, तू अब दुःखोंसे मुक्त होकर विश्रामको प्राप्त हुआ है। आत्मपद पानेकी बड़ाई मेरु आदिकसे भी ऊंची है उसको तू प्राप्त हुआ है और परमकल्याणवान् आत्मारामी हुआ है। तुम राग द्वेष मलसे रहित हुयेहो—जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होताहै—और सब कार्य्योंके करते भी समभावमें रहते हो। आधि-व्याधि ताप

तुम्हारे दूरहुयेहैं; तुम्हारी प्रजा भी विगतज्वर हुई है और धन, राज्य और मालमें
भी कुशल है। जैसे चन्द्रमाकी किरणें शीतलता फैलाती हैं तैसेही तुम्हारा यश
दशों दिशाओं में फैलरहा है और तुम्हारायश ग्रामवासी क्षेत्रों में लड़कियां गातीहैं।
हे राजन्! तुम्हारे प्रजा, नौकर, पुत्र और कलत्र सब आधि-व्याधिसे रहित हुयेहैं।
विषयपदार्थ आपातरमणीय हैं उनमें अब तुम्हारी प्रीति नहीं है और तृष्णारूपी
सर्पिणी तुमको अब तो नहीं डसती। हे राजन्! तुम्हारी हमारी मित्राई हुई थी।
समय पाकर तुम कहां रहे और हम कहांरहे; अब फिर इकट्ठे हुये हैं। बड़ा आश्चर्य
है? ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती; सुखसे दुःख होजाता है और दुःख गये से
सुख होजाता है। संसारकी दशा आगमापायीहैं; संयोगका वियोग होता है और
वियोगका संयोग होता है। तैसेही तुम्हारा हमारा भी संयोगका वियोग होगया था
और अब फिर वियोगका संयोग हुआ है। बड़ा आश्चर्य है—ईश्वरकी नीति अद्भुत
रूप है। सुरघ बोले, हे देव! परमात्मादेवकी नीति जाननहींसक्ते। वह महागम्भीर,
विस्मयके देनेवाली और दुर्ज्ञात है। तुम्हारा हमारा वियोग हुआ तब दूरसे दूर
जापड़े; तुम कहां थे और हम कहां थे वे अब फिर इकट्ठेहुये हैं। देवकी नीति आश्चर्य
रूप है। तुमने जो मुझसे कुशल पूछी सो तुम्हारा आनाही पुण्य है उससे मैं परम
पावन हुआहूं और तुम्हारे दर्शनसे सब पाप नष्ट होजाते हैं। आज हमारे पुण्य का
फल लगाहै जो तुम्हारा दर्शन हुआ और जो कुछ यश सम्पदा है वह सब आज
प्राप्त हुई है। हे भगवन्! सन्तोंका आना मधुर अमृतकी नाईं है। जैसे अमृत झरने
से निकलता है तैसेही तुम्हारे दर्शन और वचनों से परमार्थरूपी अमृत स्रवता है।
जिसको पाकर जीव निर्भयताको प्राप्त होता है। सन्तोंका मिलना परमपदके तुल्य है
इसलिये हम परमशुद्धताको प्राप्त हुये हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसुरघपरघसमागमवर्णनं
नामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जब वे पूर्व वृत्तान्त कहरहेथे तब फिर परघ
बोले, हे राजन्! समाहितचित्त इस जगत् जालमें जो जो कर्म करता है सो सुखरूप
होता है। संकल्पसे रहित जो परमविश्राम और परमउपशम समाधि है उसमें अब
तुम स्थित हुयेहो। सुरघ बोले, हे भगवन्! तुम्हीं कहो कि, सब संकल्पों से रहित
परमउपशम समाधि किसको कहते हैं? और यदि तुम मुझसे पूछो तो सुनो। जो
ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं वे चाहें तूष्णीं रहें अथवा व्यवहार करें असमाहितचित्त
कदाचित् नहीं होते। हे साधु! जिनका नित्यप्रबुद्धचित्त है वे जगत्के कार्य्य भी करते
हैं पर आत्मतत्त्वमें स्थित हैं तो वह सर्वदा समाधिमें स्थितहैं और जो पद्मासन बांध

कर बैठते हैं और ब्रह्मअंजली हाथमें रखते हैं पर चित्त आत्मपदमें स्थित नहीं होता और विश्रान्ति नहीं पाते तो उनको समाधि कहां ? वह समाधि नहीं कहाती । हे भगवन् ! परमार्थतत्त्वबोध आशारूपी सब तृणोंके जलानेवाली अग्नि है । ऐसी निराशरूप जो समाधिहै वही समाधिहै । तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं है । हे साधु ! जिसका चित्त समाहित, नित्य तृप्त और सदा शान्तरूपहै और जो यथाभूतार्थ है अर्थात् जिसे ज्योंका त्यों ज्ञानहुआ है और उसमें निश्चयहै वह समाधि कहाती है; तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं है जिसके हृदयमें संसाररूप सत्यताका क्षोभ नहीं है, जो निरहंकार है और अनउदयही उदय है वह पुरुष समाधि में कहाता है । ऐसा जो बुद्धिमान् है वह मेरुसेभी अधिक स्थितहै । हे साधु ! जो पुरुष निश्चिन्तहै, जिसकी ग्रहण और त्याग बुद्धि निवृत्त हुई है; जिसे पूर्ण आत्मतत्त्वही भासता है वह व्यवहारभी करता दृष्टआता है तौभी उसको समाधि कही है । जिसका चित्त एकक्षणभी आत्मतत्त्व में स्थित होताहै उसको अत्यन्त समाधि होजाती है और क्षण २ बढ़तीजाती है निवृत्त नहीं होती । जैसे अमृतके पान किये से उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है तैसेही एक क्षणकी भी समाधि बढ़तीही जाती है । जैसे सूर्य्यके उदयहुये सब किसी को दिन भासताहै तैसेही ज्ञानवान्को सब आत्मतत्त्व भासता है–कदाचित् भिन्न नहीं भासता जैसे नदीका प्रवाह किसीसे रोंका नहीं जाता तैसेही ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि किसी से रोंकी नहीं जाती और जैसे कालकी गति कालको एक क्षणभी विस्मरण नहीं होती तैसेही ज्ञानवान् को आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती । जैसे चलने से ठहरे पवन को अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को चिन्मात्रतत्त्वका विस्मरण नहींहोता और जैसे सत् शब्द विना कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को आत्मा सिवाय कोई पदार्थ नहीं भासता । जिस ओर ज्ञानवान्की दृष्टि जाती है उसे वहां अपना आपही भासता है–जैसे दर्पण के मन्दिर में सर्व ओर अपनाही मुख भासता है । जैसे उष्णता विना अग्नि नहीं, शीतलता विना बर्फ नहीं और श्यामता विना काजर नहीं होता तैसेही आत्मा विना जगत् नहीं होता । हे साधु ! जिसको आत्मासे भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता उसको उत्थान कैसेहो ? मैं सर्वदा बोधरूप, निर्मल और सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्तहूं; इससे उत्थान मुझको कदाचित् नहीं होगा । आत्मासे भिन्न मुझको कोई नहीं भासता सर्वप्रकार आत्मतत्त्वही मुझको भासताहै । हे साधु ! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्यहै । सर्वदा और सर्वप्रकार आत्मा स्थित है फिर समाधि और उत्थान कैसेहो ? जिसको कार्यकारणमें विभागकलना नहीं फुरती और जो आत्मतत्त्वमेंही स्थित है उसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि और उत्थानका वास्तवमें कुछ भेद नहीं । आत्मतत्त्व सदा अपने

आपमें स्थित हैं, द्वैत भेद कुछ नहीं तो समाहित असमाहित क्या कहिये?॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसमाधिनिश्चयवर्णनंनाम
सप्तपंचाशत्तमस्सर्गः ५७॥

सुरघबोले, हे राजन्! निश्चय करके अब तुम जागेहो और परमपदको प्राप्तहुये
हो। तुम्हारा अन्तःकरण पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतल हुआहै और परमशोभा से
तुम्हारा मुख शोभित होकर तुम ब्रह्मलक्ष्मी सम्पन्न और परमानन्द से पूर्णहुयेहो।
तुम्हारा हृदय कमल शीतल और स्निग्ध विराजमानहै और निर्मल तुम्हारी विस्तृत
गम्भीरता मुझको प्रकट भासती है। निर्मल शरत्कालके आकाशवत् तुम्हारा हृदय
भासताहै और अहङ्काररूपी मेघ तेरा नष्टहुआहै। हे राजन्! अब तुमको सर्वत्र
स्वस्थ और सर्वथा सन्तुष्टता है और किसी में राग नहीं। तुम वीतराग होकर विरा-
जतेहो; सार असारको तुमने भली प्रकार जाना है और उसे जानकर असार संसार-
रूपी समुद्रसे पारहुयेहो और महाबोधको तुमने ज्योंका त्यों जानकर अखण्ड स्थिति
पाई है और भाव अभाव पदार्थ दोनों को तुम जानते हो। तुम जगत् के सम असम
पदार्थों से मुक्तहुये हो और तुम्हारा आशय मुदिता–शान्त हुआ है। इष्ट, अनिष्ट,
ग्रहण, त्याग तुम्हारा निवृत्त हुआहै, राग द्वेष और तृष्णारूपी बादलों से रहित निर्मल
आकाशवत् तुम शोभतेहो और अपने आपसे तृप्तहुयेहो कुछ इच्छा तुमको नहीं है।
सुरघ बोले, हे मुनीश्वर! इस जगत्में ग्रहण करने योग्य वस्तु कोई नहीं। जो कुछ
दृश्य पदार्थहैं वे सब आभासरूपहैं तो ग्रहण किसको कीजिये? और जो कहिये कि,
ग्रहण करनेयोग्य नहीं इससे त्यागकरिये तो आभासरूप पदार्थोंका त्याग क्या कीजिये
और ग्रहण क्या कीजिये क्योंकि,है नहीं सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं। जैसे सूर्य्यकी
किरणों में जल भासता है तो उस जलभासका कौन अंग ग्रहणकीजिये और कौन अंग
त्याग कीजिये, तैसेही यह जगत्भी है। हे मुनीश्वर! जगत् के कोई पदार्थ तुच्छ हैं
और कोई अतुच्छहैं। जो थोड़ेकालमें नष्टहोजातेहैं सो तुच्छहैं और जो चिरकालपर्यन्त
रहते हैं वे अतुच्छहैं परन्तु दोनों कालसे उपजे हैं अब मैंने अकालरूपको देखा
है इससे दोनों तुल्यहोगये हैं फिर इच्छा किसकी करूं? हे मुनीश्वर! जो पदार्थों को
रमणीय जानते हैं वे उनकी इच्छा करतेहैं पर त्रिलोकी में रमणीय पदार्थ कोई नहीं,
सब तुच्छ और नाशरूपहैं और अविचार से जीवोंको भासतेहैं। शब्द, स्पर्श,रूप,रस,
गन्ध जो इन्द्रियों के विषय हैं वे भी सब असाररूप हैं। स्त्री को बड़ा पदार्थ जानते
हैं पर वहभी देखनेमात्र सुन्दर है और भीतर से रक्त, मांस, विष्ठा और मूत्रका थैला
बना हुआहै–इसमें भी कुछ सार नहीं। पर्वत बड़े पदार्थ हैं सो पत्थर बड़े हैं समुद्र
जलहै, वनस्पति काष्ठ–पत्रहैं और इनसे आदि जो पदार्थहैं वे सब आपातरमणीयहैं

विचार विना सुन्दर भासते हैं। इनकी जो इच्छा करते हैं वे अपने नाशके निमित्त करते हैं-जैसे पतङ्ग दीपक की इच्छा करता है सो अपने नाश के निमित्त करता है और हरिण नादकी इच्छासे नाशको प्राप्त होताहै, तैसेही जो विषयोंकी तृष्णा करते हैं वे अपने नाशको करते हैं। इससे विचारसे रहित जो अज्ञानी हैं वे पदार्थों को रमणीय जानकर अपने नाशके निमित्त इच्छा करतेहैं और जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं वे उन्हें अरमणीय जानकर किसी जगत्के पदार्थ की इच्छा नहीं करते। जैसे सूर्य्य के उदय हुये अन्धकारका अभाव होताहै तैसेही जब पदार्थों का राग उठगया तब तृष्णा किसमें रहे ? हे साधो ! राग, द्वेष, इच्छा, ग्रहण, त्याग जो कुछ विकार हैं उन सबसे रहित शुद्ध आत्मतत्त्वमें स्थितहो। बहुत कहनेसे क्याहै जिस पुरुषके मनसे वासना नष्ट होगई है वह उपशमवान् कल्याणमूर्त्ति परमपद को प्राप्त हुआ है और संसारसमुद्र से तरगया है ॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्र०सुरघपरघनिश्चयवर्णनंनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार सुरघ और परघ जगत्को भ्रमरूप विचारते परस्पर गुरु जानकर पूजतेरहे फिर कुछ दिन उपरान्त परघ चलागया। हे रामजी ! इनका जो परस्पर संवाद तुमको सुनाया है सो परमबोध का कारण है। इस विचारके क्रमसे बोधकी प्राप्ति होती है। तीक्ष्ण बोध से जब विचार करोगे तब अहंकाररूपी बादलका अभाव होजावेगा और शुद्ध हृदयरूपी आकाश में आत्मरूपी सूर्य्यका प्रकाश होजावेगा। इससे परमपदके लाभके निमित्त अहंकाररूपी बादल के अभावका यत्नकरो। आत्मा जो सत्य और सब आनन्दों की सम्पदा चिदाकाश है उससे स्थितिपावोगे। हे रामजी ! जो पुरुष नित्य अन्तर्मुखी अध्यात्ममय है और नित्य चिदानन्दमें चित्तको लगाताहै वह सदा सुखीहै-उसको शोक कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष आत्मपदमें स्थित हुआहै वह बड़े व्यवहारकरे और राग द्वेष सहित दृष्टिआवे तौभी उसको कुछ कलङ्क नहीं होता। जैसे कमल जलमें दृष्ट आता है तौभी ऊंचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता; तैसेही ज्ञानवान्को व्यवहार का राग द्वेष हृदयमें स्पर्श नहीं करता। हे रामजी ! जिसका मन शान्तहुआ है उसको संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थ चला नहीं सक्ते। जैसे सिंहों को मृग दुःख दे नहीं सक्ते, तैसेही ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ दुःख नहीं देसक्ते। जिस पुरुषको आत्मानन्द प्राप्त हुआहै उसको विषयों की तृष्णा नहीं रहती और न वह विषयोंके निमित्त कदाचित् दीनहोताहै। जैसे जो पुरुष नन्दनवनमें स्थितहोता है वह कंटकों के वृक्षकी इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् जगत् के पदार्थों की इच्छा नहीं करता। हे रामजी ! जिस पुरुषने जगत्को अविद्यारूप जानकर त्याग कियाहै उसके चित्तको जगत् के

पदार्थ दुःख दे नहीं सक्के। जैसे विरक्तचित्त पुरुषकी स्त्री मरजावे तो उसको दुःख नहीं होता तैसेही ज्ञानवान्‌के चित्तमें भोगोंकी दीनता ऐसे नहीं उपजती जैसे नन्दन वनमें कंटकका वृक्ष नहीं उपजता। जिस पुरुषको आत्मबोध हुआ है और संसारका कारण मोह निवृत्त हुआ है वह जगत् का कार्य्यकर्त्ता दृष्टि आता है परन्तु उनको स्पर्श नहीं करता—जैसे आकाश में अन्धकार दृष्टि आता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! अविद्या के निवृत्तिका कारण विद्या है; और किसी उपायसे निवृत्ति नहीं होती। जैसे प्रकाश विना तम निवृत्त नहीं होता तैसेही विचार विना अविद्या निवृत्त नहीं होती। अविचार का नाम अविद्या है और विचार का नाम विद्या है; जब अविद्या नष्ट होगी तब विषयभोग स्वाद न देवेंगे और आत्मानन्दसे संतुष्टवान् रहोगे। हे रामजी! ज्ञानवान् को विचारकेकारण इन्द्रियों के व्यवहार अन्धा नहीं करसक्के—जैसे जलमें मछली रहती है उसको जल अन्धा नहीं कर सक्ता पर और अन्धा होजाता है। जब ज्ञानरूपी सूर्य्य उदयहोताहै तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त होजाती है; चित्त परमानन्दको प्राप्त होजाताहै और रागद्वेषरूपी निशाचर नष्टहोजाता है। तब फिर वह मोहको नहीं प्राप्तहोता। जिसके हृदय आकाश में आत्मज्ञानरूपी सूर्य्य उदय हुआहै उसका जन्म और कुल सफल होताहै। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अपने अमृत को पाकर अपनेमेंही शीतल होता है तैसेही जो पुरुष आत्मचिन्तना में अभ्यासकरता है वह शांति पाता है। हे रामजी! बुद्धि और श्रेष्ठ दिन; मृत्यु और सत्‌शास्त्र वही हैं जिससे संसारसे वैराग्य और आत्मतत्त्व की चिन्तना उपजे। जब जीव आत्मपदको पाता है तब उसका सब क्लेश मिटजाता है और जिनको आत्मचिन्तनामें रुचि नहीं वे महाअभागी हैं। ऐसे पुरुष चिर पर्य्यंत कष्ट पावेंगे और जन्मरूपी जंगलके वृक्ष होंगे। हे रामजी! जीवरूपी बैल अनेक आशारूपी फांसियों से बाँधाहै, जरा अवस्थारूपी पत्थरों के मार्ग से जर्ज्जरीभूत होता है, भोगरूपी गढ़े में गिरा है और कर्म्मरूपी भारको लिये जन्मरूपी जङ्गलमें भटककर कर्म्म कीचड़ में फँसाहुआ रागद्वेषरूपी मच्छरों से दुःखी होता है स्नेहरूपी रथको पकड़के खैंचता है और पुत्र, स्त्रीआदिक के ममतारूपी कीचड़ में गोते खाता है और मोह संसाररूपी मार्ग में कर्मरूपी रथ के साथ लगता है और ऊपरसे ज्ञानरूपी तप्ततासे जलता है और सन्तजन और सत्‌शास्त्ररूपी वृक्षकी छाया नहीं पाता। हे रामजी! जीवरूपी ऐसा बैल है। उसे निकालने का यत्न करो जब तत्त्व का अवलोकन करोगे तब चित्तभ्रम नष्ट होजावेगा। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र के तरनेका उपाय सुनो। महापुरुष और सन्तजन मल्लाह हैं, उनका युक्तिरूपी जहाज है उससे संसाररूपी समुद्र तरजावेगा; और उपाय कोई नहीं यही

परमउपाय है । जिस देश में सन्तजनरूपी वृक्ष नहीं हैं और जिनकी फलोंसहित शीतल छाया नहीं है उस निर्ज्जन मरुस्थल में एक दिन भी न रहिये । हे रामजी ! सन्तजनरूपी वृक्ष हैं; जिनके स्निग्ध और शीतल वचनरूपी पत्र हैं, प्रसन्न होना सुन्दरफूल है और निश्चय उपदेशरूपी फल है । जब यह पुरुष उन के निकट जावे तब महामोहरूपी तप्तता से छूटेगा और शान्ति पाकर तृप्तहोगा । तभी तीनों फलोंको पाकर अघावेगा और सब दुःखों से मुक्तहोगा । हे रामजी ! अपना आपही मित्रहै और अपना आपही शत्रु है । अपने आपको जन्मरूपी कीचड़में न डाले । जो देहमें अहंभावना से विषयों की तृष्णा करता है वह अपना आपही नाश करता है । जो देहभावको त्यागकर आत्मअभ्यास करता है वह अपना आप उद्धार करता है और वह अपना आपही मित्र है और जो आप को संसारसमुद्र में डालता है वह अपना आपही शत्रु है । हे रामजी ! प्रथम यह विचार कर देखे कि, जगत् क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ है और कैसे निवृत्त होगा ? मैं कौन हूं; सत्य क्या और असत्य क्या है ? ऐसे विचार कर जो सत्य है उसको अंगीकार करे और जो असत्य है उसका त्यागकरे । हे रामजी ! न धन कल्याण करताहै न मित्र बान्धव और न शास्त्र कल्याण करते हैं; अपना उद्धार आपही होताहै । इससे तुम अपने मनके साथ मित्रता करो। जब वह दृढ़ वैराग्य और अभ्यास करे तब संसार कष्टसे छूटे । जब वैराग्य अभ्यास से तत्त्व के अवलोकनरूपी बेड़ी कटे तब संसारसमुद्र से तरजाता है। हे रामजी ! जीव-रूपी हाथी जन्मरूपी गढ़े में गिरा हुआ है; तृष्णा और अहंकाररूपी जञ्जीर से बँधा है और कामनारूपी मद से उन्मत्त है । जब उनसे छूटे तब मुक्तहो । हे रामजी ! हृदयरूपी नेत्रों में अनात्म अभिमानरूपी मल रक्त होगया है; जब विचाररूपी औषधि से उसको दूरकीजिये तब आत्मरूपी सूर्य्य का दर्शन हो । हे रामजी ! और उपाय कोई न करो तो एक उपाय सो अवश्य करो कि, देह को काष्ठ-लोष्टवत् जानकर इस का अभिमान त्यागो । जब अहं अभिमानरूपी बादल नष्टहोगा तब आपही आत्म-रूपी सूर्य्य प्रकाश आवेगा । जब अहंकाररूपी बादल लयहोगा तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य्य भासेगा; वह परमानन्दस्वरूप है; सुषुप्ति से मौन अंकुर है और केवल अद्वैत तत्त्वहै; वाणी से कहा नहीं जाता अपने अनुभव से आपही जानाजाताहै । हे रामजी ! सब जगत् अनन्त आत्माहै । जब चित्त का दृढ़ परिणाम उसमें हो तब स्थावर जंगम रूप जगत् में वही दिव्यदेव भासेगा और वासना सब निवृत्त होजावेगी । तब अनु-भवसे केवल परमानन्द आत्मतत्त्व दिखाईदेगा सो स्वरूप पूर्ण और अद्वैतहै । सब जगत् का त्यागकर उसी के पानेका यत्नकरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेकारणोपदेशोनामैकोनषष्टितमस्सर्गः ५९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मनसे मनको छेदो और अहंमनभावको त्यागो। जब तक मन नष्ट नहीं होता तबतक जगत्के दुःख निवृत्त नहीं होते। जैसे मूर्त्तिका सूर्य्य मूर्त्तिके नष्टहुये विना अस्त नहीं होता—जब मूर्त्ति नष्ट हो तब सूर्य्यका आकार भी दूर हो; तैसेही जब मन नष्टहो तब संसार के दुःख नष्ट होजावेंगे—अन्यथा नष्ट न होंगे। हे रामजी! जैसे प्रलयकालमें अनन्त दुःख होता है तैसेही मनके होने से अनन्त दुःख होते हैं और जैसे मेघके वर्षने से नदी बढ़तीजाती है तैसेही मन के जागे से आपदा बढ़ती जाती है। इसही पर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो परस्पर सुहृदों का हेतुहै। हे रामजी! सह्याचलसब पर्व्वतों में बड़ा पर्व्वतहै। उसपर फूलोंके समूह और नानाप्रकार के वृक्षहैं; जलके झरने चलते हैं और मोतियों के स्थान और सुवर्ण के शिखर हैं। कहीं देवताओं के स्थान हैं और कहीं पक्षी शब्द करते हैं। नीचे कांत रहते हैं ऊपर सिद्ध, देवता और विद्याधर रहते हैं, पीठमें मनुष्य रहते हैं और नीचे नाग रहते हैं—मानों सम्पूर्ण जगत्का गृह यही है। उसके उत्तरदिशा में सुन्दर वृक्ष और फलोंसे पूर्ण तालाब है जिसकी महासुन्दर रचनाकी स्वर्गकीसी उपमा है। वहां अत्रिनाम एक ऋषीश्वर साधुओं के श्रम दूर करनेवाला रहताथा। उसके आश्रम के पास दो तपस्वी आ रहने लगे—जैसे आकाश में बृहस्पति और शुक्र आ रहे। उन दोनों के गृह में दो महासुन्दर पुत्र जैसे कमल उत्पन्न हो तैसेही उत्पन्न हुये और एक का नाम भास और दूसरे का नाम विलास हुआ। दोनों क्रमसे बड़े हुये और जैसे अंगुली के दोनों पत्र बढ़ते हैं तैसेही वे बढ़नेलगे। परस्पर उनकी प्रीति बहुत बढ़ी और इकट्ठे रहनेलगे। जैसे तिल और तेल; और फूल और सुगन्धि इकट्ठे रहते हैं और जैसे स्त्री और पुरुषकी प्रीति आपसमें होती है; तैसेही उनकी प्रीति बढ़ी। वे देखनेमात्र तो दो मूर्त्ति दृष्टआतेथे परन्तु मानों एकही थे। उनकी स्नान आदिक क्रिया और मानसीक्रिया भी एक समान थी और वे महासुन्दर प्रकाशवान् थे। जैसे चन्द्रमा और सूर्य्यहों। जब कुछ काल व्यतीतहुआ तब उनके माता पिता शरीर त्यागकर स्वर्ग को गये और उनके वियोगसे वे दोनों शोकवान् हुये और जैसे कमलकी कांति जल विना जाती रहे तैसेही उनके मुखकी कांति कुम्हिला गई। फिर उन्होंने उनके मरने की सब क्रियाकी और उनके गुण सुमिरण करके विलापकरें और महाशोकवान् हों क्योंकि, महापुरुष भी लोकमर्यादा नहीं लंघते। हे रामजी! इस प्रकार शोककर उन का शरीर कृश होगया ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेभासविलासवृत्तांतवर्णनंनामषष्टितमस्सर्गः ६० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे उजाड़ वनका वृक्ष जलविना सूख जाता है तैसेही उनका शरीर सूखगया। तब वे दोनों विरक्तज्वर होकर विचरने लगे। जैसे समूह से

बिछुड़ा हरिण शोकवान् होताहै तैसेही वे दुःखीहुये क्योंकि; उनको निर्मलज्ञान प्राप्त न था। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब वे फिर आमिले। विलासने कहा, हे भाई! हृदय को आनन्द देनेवाला अमृतका समुद्र जीवनरूपी जो वृक्ष है उसका फल सुख है सो तुम इतनेकाल सुखसे रहेहो। तुम्हारा हमारा वियोग होगया था तब तुम कैसी क्रिया करतेरहे? तुमने अपना कुछ चित्त निर्मल किया है और अब आत्मपद पायाहै। अब तुम्हारी बुद्धि शोकसे रहित होकर विद्या तुमको फली है और तुम अब कुशलरूप हुये हो। भास बोले, हे साधु! अब हमको कुशलहुई जो तुम्हारा दर्शन हुआ जगत् में कुशल कहां है; इस संसारमें स्थितहुये हमको सुख और कुशल कहां है? हे साधु! जब तक ज्ञेय परमात्मतत्त्वको नहीं पाया, जब तक चित्तभूमिका क्षीणनहीं हुई और जबतक संसारसमुद्र को नहींतरे तब तक कुशल कहां है जब तक चित्तसे दुःख निवृत्त नहीं होता तब तक चित्तकी भूमिका नष्ट नहीं होती। जब तक संसारसमुद्र से पार को नहीं होते तब तक हमको सुख कहां है! जब तक चित्तरूपी क्षेत्र में आशारूपी कंटकों की बेलि बढ़तीजाती है और आत्मविचाररूपी हँसिये से नहीं काटी तब तक हमको कुशल कहां, जब तक आत्मज्ञान उदय नहीं हुआ तब तक हमको कुशल कहां है? हे साधु! संसाररूपी विसूचिकारोग आत्मरूपी औषध विना दूर नहीं होता। सब जीव नित्य वही क्रिया करते हैं जिससे दुःख प्राप्त हो इससे सुखको नहीं पाते। देहरूपी वृक्ष में बाल अवस्थारूपी पत्र हैं और यौवन और वृद्ध अवस्थारूपी फल हैं सो मृत्युके मुखमें जापड़ताहै। उपजता है और फिर नष्ट होता है। यह सुख जो लवाकार है और दुःख जिसका दीर्घ से दीर्घ स्थावर है। ऐसे जो शुभाशुभ आरम्भ हैं उन में इनको दिन रात्रि व्यतीत होते हैं। हे साधु! चित्तरूपी हाथी वैराग रूपी जंजीर विना तृष्णारूपी हथिनी के पीछे दूरसे दूर चला जाता है। जैसे चील्ह पक्षी मांसकी ओर चला जाता है तैसेही चित्त विषयोंकी ओर धावता है और आत्मा रूपी चिन्तामणिकी ओर नहीं जाता। अहंकाररूपी चील्ह देहादिकरूपी मांस की ओर धावता है और सुखरूपी कमल अपमानरूपी धूलिसे धूसर होजाता है और रोगरूपी बरफ से नष्ट होजाता है। हे साधु! वह देहरूपी कूप में गिरा है, जिस में भोगरूपी सर्प है, आशारूपी कंटक है और तृष्णारूपी जल है उसमें दुःख पाता है। हे साधु! नानाप्रकार के रंग रंजनारूपी रंगहै और जिस में तृष्णारूपी चञ्चलताहै ऐसे चैत्यदृश्य में मग्न है। चित्तरूपीध्वजा कालरूपीवायु से हिलती है। चित्तरूपी समुद्र में चिन्तारूपी भँवर हैं जिसमें जीवरूपी तृण आय कष्ट पाताहै और बुद्धिरूपी पक्षिणी है जो वासनारूपी जालमें कष्ट पाती है। यह मैंने किया है; यह करतीहूं और यह करूंगी; इसी वासनारूपी जालमें बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्टपाती है—एकक्षणभी विश्राम

वान् नहीं होती। हे भाई ! इस चित्तरूपी कमलको रागद्वेषरूपी हाथी चूर्णकरता है। यह मेरा सुहृद है, यह मेरा शत्रु है; यह 'अहं' 'मम' ही इसको मारताहै। शुद्ध आत्मरूपको त्यागकर देहादिक अनात्मरूपमें अहंभाव करता है और दीनता को प्राप्तहोता है। जैसे राज्य से रहित राजा कष्ट पाताहै तैसेही आत्मभाव से रहित कष्ट पाता है और देहाभिमान जन्म मरण के दुःख देखताहै। जब देहाभिमानको त्यागकरे तब कुशल हो अन्यथा कुशल नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेअन्तरप्रसङ्गोनामएकषष्टितमस्सर्गः ६१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार उन्होंने परस्पर कुशल प्रश्न किया। जब कुछ काल व्यतीतहुआ तब अभ्यासद्वारा उनको निर्मलज्ञान प्राप्तहुआ और मोक्षपदको प्राप्त हुये। इससे, हे रामजी ! कल्याण के निमित्त ज्ञान के सिवा और मार्ग कोई नहीं जिसका चित्त आशारूपी फांसी से बँधा हुआ है वह संसारसमुद्र से पार नहीं होसक्ता। इससे जीव संसारसमुद्र में गोते खाताहै और ज्ञानवान् शीघ्रही ऐसे तरजाताहै जैसे गोपद लंघने में सुगम होता है। जैसे जिसपक्षी के पंख टूटे हैं सो समुद्रको नहीं तरसक्ता बीचमेंही गिरके गोते खाताहै और गरुड़ पङ्खों से शीघ्रही लंघ जाता है; तैसेही जिन पुरुषों के वैराग्य और अभ्यासरूपी पंखटूटे हैं वे संसारसमुद्र से पार नहीं होसक्ते और जिन पुरुषों के वैराग्य और अभ्यासरूपी पङ्ख हैं वे शीघ्रही तर जाते हैं। हे रामजी ! जो देहसे अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्व में स्थित हुये हैं वे ऊंचे होकर देखते हैं और अपने देहको देखके हँसते हैं–जैसे सूर्य जनता को देख हँसता है अर्थात् जगत्की क्रियासे निर्लेप रहता है। जैसे रथके टूटे से रथ वायुको कुछ खेद नहीं होता तैसेही देहके दुःखसे ज्ञानवान्को कदाचित् खेद नहीं होता और मनके क्षोभसे भी आत्मतत्त्वमें कुछ क्षोभ नहीं होता। जैसे तरंगपर धूलि पड़ती है तो उससे समुद्रको कुछ लेप नहीं होता तैसेही मनके दुःखसे आत्माको क्षोभ नहीं होता। हे रामजी ! जैसे जल और हंसका और जल और बेड़ीका कुछ सम्बन्ध नहीं तैसेही देह और आत्माका कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे पहाड़ और समुद्रका सम्बन्ध नहीं; जैसे जल, पत्थर और काष्ठ एक ठौर रहते हैं परन्तु कुछ सम्बन्ध नहीं और जैसे जल और बेड़ी का संघट्ट होता है तो जलकणके उठते हैं तैसेही देह और आत्माके संयोगसे चित्तवृत्ति फुरती है। हे रामजी ! जीव को दुःख संगसेही होता है। जहां अहंमम अभिमान होताहै वहां दुःखभी होता है और जहां अहंममका अभिमान नहीं वहां दुःखभी कुछ नहीं होता जैसे मछली को जल में ममत्व होता है और उसके वियोगसे कष्टपातीहै तैसेही जिस पुरुषको देहमें अहंमम भाव है वह बड़ाकष्टपाता है और जिसको देह में अभिमान नहीं उसको दुःख भी

कुछ नहीं होता। हे रामजी! ज्यों ज्यों मनसे संसर्गता निवृत्ति होती है त्यों त्यों भाग प्रवाह कष्ट नहीं देता जैसे जल और पत्थरको कष्ट नहीं होता और जैसे दर्पण में पर्व्वतका प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पणको प्रतिबिम्बका सङ्ग नहीं होता और कष्ट भी नहीं होता तैसेही जब देहसे संसर्गभाव उठजाता है तब कोई कष्ट भी नहीं होता। जैसे दर्पणको कुछ कष्ट नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत्की क्रिया है। हे रामजी! सर्वथा संवित्मात्र आत्मतत्त्व स्थित है। वह शुद्ध है और द्वैत शब्द के फुरने से रहित है। जो उसमें स्थित है उसको द्वैत शब्द नहीं फुरता और जो अज्ञानी है उसको द्वैत कलना उठती है। हे रामजी! यह सब जीव अदुःखरूप हैं परन्तु अज्ञानभ्रमसे आपको दुःखी जानते हैं। जैसे स्थान में चौर भावना अविचारसे होती है तैसेही आत्मामें दुःखकी भावना अविचारसे होती है। यह जीव अशब्दरूप है परन्तु कल्पनाके वशसे आपको सम्बन्धी जानता है। जैसे स्वप्ने में अङ्गना बन्धन करती है और स्थानमें बैताल भासता है और भय प्राप्त होता है तैसेही अपनी कल्पनासे जीव बन्धायमान होता है। हे रामजी! देह और आत्माका सम्बन्ध असत्य है—जैसे जल और बेड़ी का सम्बन्ध असत्य है। यदि जलका अभाव होतो बेड़ीको कुछ चिन्ता नहीं होती और बेड़ीका अभावहो तो जलको कुछ चिन्ता नहीं; तैसेही आत्मा और देहका सम्बन्ध असत्य है। जब ऐसे जानकर हृदयसङ्गसे रहितहो तब देहका दुःख कुछ नहीं लगता। देहके दुःखमें आपको दुःखीमानना; देहसे अहंभावना करके आत्मा दुःखी होता है। जब देहमें अभिमानको त्यागदे तब सुखीहो। ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं। जैसे जल और पत्थर इकट्ठे रहते हैं परन्तु भीतर सङ्गका अभावहै इससे उन्हें कुछ दुःख नहीं होता तैसेही हृदय से सङ्ग रहित हो तब देह इन्द्रियों के होते भी दुःखका स्पर्श कुछ न हो और निर्दुःख पदमें प्राप्तहो। हे रामजी! जिसको देहमें आत्माभिमान है उसको जन्ममरण दुःखरूप संसारभीहै। जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है तैसेही देहाभिमानसे सुख दुःखरूप संसार उत्पन्न होताहै और संसार समुद्रमें डूबताहै। जो हृदय संगसे रहित होताहै सो संसारसमुद्र के पार होजाता है। हे रामजी! जिसके हृदय में देहाभिमान है उसके चित्तरूपी वृक्षमें मोहरूपी अनेक शाखा उत्पन्न होती हैं और जिसका हृदय संगसेरहितहै उसका मोहलीन होजाताहै। उसको चित्तलीन कहते हैं। जिसका चित्त देहादिकों में बन्धायमान है उसको नानाप्रकार का भ्रमरूप जगत् भासताहै और जिसकाचित्त देहादिकोंमें बन्धायमान नहीं वह एक आत्मभावको देखताहै जैसे टूटी आरसी में अनेक प्रतिबिम्ब भासते हैं और साजी एकही प्रतिबिम्बको ग्रहणकरती है; तैसेही संशययुक्त चित्तमें नानाप्रकारका जगत्भासताहै और शुद्धचित्त में एक आत्माही भासता है। हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करते हैं और सङ्ग से

रहित हैं ऐसे निर्मल पुरुष संसारसे मुक्त हैं और जो सर्व व्यवहारको त्याग बैठते हैं पर तपभी करते हैं और चित्त आसक्तहै सो बन्धनमें है। जो हृदय में सङ्ग से रहित है वह मुक्तहै और अन्तरचित्त किसीपदार्थ में बन्धहै वह बन्धहै। बन्ध और मुक्तका इतनाही भेदहै। जिसका हृदय असङ्गहै वह सब कार्य्य कर्त्ताभी अकर्त्ताहै। जैसे नट सब स्वांगों को धरताभी अलेपहै तैसेही वह पुरुष अलेपहै। जो हृदय में अभिमान सहित है वह कुछनहीं करता तौभी करता है। जैसे सर्वव्यवहार त्यागकर जीवशयन करताहै और स्वप्ने में अनेक सुख दुःख भोगताहै तैसेही वह सब कुछ कर्त्ता है। चित्त के करनेसे कर्त्ता है चित्तके न करनेसेही अकर्त्ता है। शरीरसे करना सो करना नहीं और शरीरसे न करना सो न करना नहीं। ब्रह्महत्यासे भी असंसक्त पुरुषको कुछपाप नहीं लगता और जो अश्वमेध यज्ञकरे तो कुछ पुण्य नहीं होता। जिसके चित्तसे सब आसक्तता दूर हुई है वह पुरुष मुक्तस्वरूपहै और धन्य २ है और जिसका चित्त आसक्तहै वह बन्ध और दुःखीहै। जो पुरुष आसक्ततासे रहित है वह आकाश की नाईं निर्मल है और समभाव, एक अद्वैत आत्मतत्त्व में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेअन्तरअसङ्गविचारोनामद्विषष्टितमस्सर्गः ६२॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! संगकिसको कहते हैं? बन्धरूप संगकिसको कहते हैं; मोक्षरूप संग किसको कहते हैं और संगबन्धनों से मुक्तकिसका नामहै और किस उपायसे मुक्तहोताहै वह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देह और देहीका जो विभागहै उसका त्यागकरो और उसके साथ जो मिलकर करता है और देहमात्र में अपना विश्वास करताहै कि, इतनाही मैंहूं; इसीको संग और बन्धकहते हैं। हे रामजी! आत्मतत्त्व अनन्तहै। देहमात्रमें अहंभावनासे आपको उतनाही मानना और उसमें अभिमान करके सुखकी इच्छा करना इसीका नाम बन्ध है और इसीको संग कहते हैं। जिसको यह निश्चय हुआ है कि, सर्व आत्माहीहै, । मैं किसकी इच्छाकरूं और किसका त्यागकरूं; वह इस असंग से जीवन्मुक्त कहाता है। अथवा न मैंहूं, न यह जगतहै; सर्व भाव अभाव को त्यागकर अद्वैत सत्तामें स्थित होनेकानाम जीवन्मुक्त है। जिसे न कर्मों के त्यागकी इच्छा है, न करने की इच्छाहै और हृदय से कर्त्तृत्वभाव नहीं इस सङ्गका जिसने त्यागकिया है वह असङ्ग कहाताहै। हे रामजी! जिसको आत्मतत्त्वमें निश्चयहै और जो राग, द्वेष, हर्ष,शोकके वशनहीं होता है वह असंसर्ग कहाता है। जिसने सर्वकर्मों का फल यह समझकर त्यागकिया है कि, मैं कुछ नहीं करता ऐसा जो मनसे त्यागी है वह असंसर्ग कहाता है और उसको कोई कर्म्मबन्धन नहीं करसक्ता पर सर्व सम्पदा उसको होती है और जो संसक्त पुरुष कर्त्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमान सहित है उसको अनन्त दुःख उत्पन्न होते हैं। जैसे कोई गढ़े में गिरे

और उसमें कण्टकोंके वृक्षहों तौ उनसे वह कष्टपाताहै तैसेही संसक्त पुरुष कष्टपाता है। हे रामजी! संगके वशसे विस्तृत दुःखकी परम्परा उत्पन्न होती है—जैसे गढ़े के वृक्षसे कण्टक उत्पन्नहों। हे रामजी! जैसे नासिका में रस्सी डलाकर ऊंट, बैल और गधे भारउठाते फिरते हैं और मारखाते हैं तैसेही संसक्त पुरुष आशारूपी फांसी से बांधेहुये दुःख पाते हैं। वही संसक्तताका फल ऊंटादिक भोगते हैं; जलमें रहते हैं; शीत उष्णसे कष्टवान् होते हैं और कुहाड़ेके साथ काटेजाते हैं। इसीप्रकार संसक्तता का फल वृक्ष भोगते हैं पृथ्वी के छिद्र में कीट होते हैं और अंग पीड़ा से कष्ट पाते हैं। अन्नादिक उगते हैं; हँसिये के साथ काटे जाते हैं और हृदयमें दुःख पाते हैं; फिर बोये जाते हैं और फिर काटते हैं सो संसक्तताकाही फल भोगते हैं; इसी प्रकार जो योनि पातेहैं और कष्टवान् होते हैं सो संसक्त हैं। हरेतृणों को हरिण खाते हैं और बधिक उनको बाणसे मारताहै तब कष्टवान् होते हैं। जो जीव तुझको दृष्टि आते हैं वे इस प्रकार संसक्तता से बांधे हुये हैं। संसक्तता भी दोप्रकारकी है—एकबन्ध और एक बन्धन करने योग्य। जो तत्त्ववेत्ताहै वह वन्दना करने योग्यहै। हे रामजी! जो आत्म-तत्त्व से गिराहै और देहादिकमें अभिमानी हुआ है वह मूढ़ है और संसार में जन्म मरणको प्राप्त होताहै; और जिसको आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआहै और निष्ठाहै वह वन्द-ना करने योग्य है—उसको फिर संसारका जन्म मरण नहीं होता। जिसके हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्महै; जिसको आत्मतत्त्वमें निश्चय है और आत्मतत्त्वमें संसक्तहै और जो तीनों लोकोंकी पालना करताहै वह वन्दना करनेयोग्यहै। निरालम्ब सूर्य्य जो आकाशमें बिचरताहै और सदास्वरूप निष्ठहै वह वन्दना करने योग्यहै। महा-प्रलय पर्यन्त जो जगत्को उत्पन्न करता है; जो सदाशिवस्वरूपमें संसक्तहै और जो ब्रह्मारूप होकर बिराजताहै वह वन्दना करने योग्यहै। जो लीलासे स्त्रीको अर्धांग रखताहै, उसके प्रेमरूपी बन्धनसे बँधाहै; विभूति लगाताहै सदास्वरूपमें संसक्तहै और शंकर वपु धारकर स्थितहै वह वन्दना करने योग्यहै इनसे आदिलेकर सिद्ध, देवता, विद्याधर, लोकपाल जिनकी स्वरूपमें संसक्ति है वे सब मुक्तस्वरूप हैं और वन्दना करने योग्य हैं और जो देहादिकों में संसक्त हैं वे बन्ध हैं और जन्म, जरा और मृत्यु पाते हैं और कष्टवान् होते हैं। हे रामजी! जिनको शरीर में अभिमान है वे यदि बाहर से उदार भी दृष्टिआते हैं परन्तु जब भोगोंको देखते हैं तब इस प्रकार गिरते हैं जैसे मांसको देखकर आकाशसे चील पखेरू गिरते हैं तो वे वृथा यत्न करते हैं। हे रामजी! जो संसक्त जीव हैं वे बाँधे हुये हैं; कोई देवतारूप धार स्वर्ग में रहते हैं और कई मनुष्यलोक में रहते हैं; बहुत से सर्प आदिक होके पा-तालमें रहते हैं और तीनोंलोकों में भटकते फिरते हैं। जैसे गूलर में मच्छर रहते

हैं तैसेही ब्रह्माण्डमें संसक्त—जीव रहते और मिटजाते हैं। कालरूपी बालक का जीवरूपी गेंदहै, वह उसे कभी नीचेको उछालताहै और कभी ऊपरको उछालताहै। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह सब असत्यरूप है। मनरूपी चितेरेने सङ्कल्परूपी रंगसे शून्य आकाशमें जो देहादिक जगत् लिखाहै वह सब असत्यरूपहै जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते और मिटजाते हैं तैसेही जीव ब्रह्माण्डमें उपजते रहते हैं। जिसका मन देहादिक में संसक्त है वह तृष्णारूपी अग्निसे तृणोंकी नाईं जलता है। हे रामजी! जो संसक्त पुरुष है उसके शरीर पानेकी कुछ संख्या नहीं। मेरुके शिखर से लेकर चरणों पर्यन्त यदि गंगाका प्रवाह चले तो उसके कणके चाहे गिनेजासकें परंतु संसक्त जीवके शरीरकी संख्या नहीं होसक्ती जो कुछ आपदा हैं वह उनको प्राप्त होती हैं। जैसे समुद्र में सब नदियां प्राप्त होती हैं तैसेही सब आपदा उसको प्राप्त होती हैं। हे रामजी! जो देह अभिमानी सदा विषयोंकी सेवना करते हैं वे रौरव, कालसूत्र आदिक नरकों में जलेंगे और जो कुछ दुःखके स्थान हैं वे सब उनको प्राप्तहोंगे। जो असङ्ग संगती चित्त हैं उन पुरुषों को सब विभूति प्राप्तहोती हैं। जैसे वर्षाकाल में नदियां जलसे पूर्ण होती हैं और मानसरोवरमें सब हंस आन स्थितहोते हैं तैसेही असंसक्त चित्त पुरुषको सब सम्पदा प्राप्त होती हैं। जिस पुरुषको देहाभिमान बढ़जाताहै उसे विषकी नाईं जानो और जिसका देहाभिमान घटजाता है उसको अमृतरूप जानो। विष ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों मारताहै और अमृत ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों अमर होताहै। हे रामजी! जो पुरुष देहाभिमान का त्यागकर स्वरूप में संसक्त होता है वह सुखी होता है और जिसके हृदयमें दृश्यका संग है उसको यह संसक्तरूपी अंगार जलावेगा। जिसके हृदयमें संगनहीं वह असङ्गरूपी अमृत से सुखी होवेगा और चन्द्रमा की नाईं शीतल मुक्तरूपहोगा उसका अविद्यारूपी विसूचिकारोग नष्ट होकर वह शान्तरूप होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंसक्तविचारोनामत्रिषष्टितमस्सर्गः ६३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको विचार करके अभ्यास करो और सर्वदाकाल सर्वस्थान और सर्वकर्मों के कर्त्ता चित्तको देहादिक में मत संसक्त कर केवल आत्मचेतनमें स्थित करो। हे रामजी! किसी वस्तु को सत्य जानके चित्त न लगाओ। न आकाशमें, न अधमें, न ऊर्ध्वमें, न दिशामें, न बाहर, न भीतर, न प्राणमें, न उरमें, न मूर्द्धमें, न तालुमें, न भौंहके मध्यमें, न नासिकामें, न जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिमें, न तममें, न प्रकाशमें, न श्याममें, नरक्तमें, न पीतमें, न श्वेतमें, न स्थिरमें, न चलमें, न आदिमें, न अन्तमें, न मध्यमें, न दूरमें, न निकटमें, न चित्तादि अन्तःकरणमें, न शब्दमें, न स्पर्श, रूप, रस, गन्धमें और न कलना

अकलनामें चित्तलगावे। सब ओर से चित्तको रोककर चेतनतत्त्व में विश्राम करो द्वैतको लेकर चेतनतत्त्वका आश्रयन करो ! हे रामजी ! जब सबसे निराश होगे और आत्मतत्त्वमें स्थित होगे तब विगतसंगहोगे और जीवका जीवतत्त्व चला जावेगा केवल चिदात्मा होकर स्थित होगे । तब सर्व्वव्यवहारकरो अथवा न करो करते भी अकर्त्ता होगे अथवा इसका भी त्यागकरो केवल चिदानन्दशान्तरूप जो तत्त्व है उसमें स्थित हो तब अद्वैतरूपतत्त्व स्वाभाविक भासेगा । जैसे बादलों के दूरहुये सूर्य्य स्वाभाविक भासता है तैसेही फुरने से रहित होने से चेतनतत्त्व भास आवेगा और जैसे प्रकाशरूप चिन्तामणि स्वाभाविक भासि आती है तैसेही आत्मप्रकाश स्वाभाविक भास आवेगा । फिर जो कुछ क्रिया तुम करोगे वह सब फलदायक न होगी । जैसे कमल को जल नहीं स्पर्श करता तैसेही तुमको क्रिया न स्पर्श करेगी और चित्त आत्मगति निर्वाणरूप होगा और क्रिया कर्त्ता भी अकर्त्ता रहोगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेशांतसमाचारयोगोपदेशो नामचतुःषष्टितमस्सर्गः ६४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! असंसक्त पुरुष ध्यानकरे अथवा व्यवहार करे वह सदा ध्यान में स्थित और शोकसे रहित है। बाहर से यदि वह क्षोभवान् दृष्टि आता है परन्तु हृदय उसका सर्व्व कलना से रहित है और वह सम्पूर्ण लक्ष्मी से शोभता है। हे रामजी ! जिस पुरुषका चित्त चैत्य से रहित अचल है सो विगतज्वर है, उसको कुछ दुःख स्पर्श नहीं करता। जैसे जल कमलों को स्पर्श नहीं करता और औरों को निर्मल करता है और जैसे निर्मली मलीन जलको निर्मल करती है तैसेही वह जगत् को निर्मल करता है। जो आत्मतत्त्व में लीन है सो क्षोभवान्भी दृष्टि आताहै परन्तु क्षोभ उसे कदाचित् नहीं। जैसे सूर्य्यका प्रतिबिम्ब क्षोभवान् दृष्टि आताहै परन्तु सूर्य्यको कदाचित् क्षोभ नहीं; तैसेही ज्ञानवान्का चित्त क्षोभायमान दृष्टि आताहै पर क्षोभ उसे कदाचित् नहीं । हे रामजी ! आत्मारामी पुरुष बाहर से मोर के पुच्छवत् चञ्चल भी दृष्टि आता है परन्तु हृदयसे सुमेरु पर्व्वतकी नाईं अचल है जिनकाचित्त आत्मपद में स्थित हुआ है उनको सुख दुःख अपने वश नहीं करसक्ते। जैसे फटिक को प्रतिबिम्बका रंग नहीं चढ़ता तैसेही ज्ञानवान्को सुख दुःखका रंग नहीं चढ़ता। जिस पुरुष को परावर ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ है उसका चित्त रागद्वेष से रंजित नहीं होता । जैसे आकाश में बादल दृष्टि आता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् के चित्तको रागद्वेष स्पर्श नहीं करता । जो आत्मध्यानी है और जो परमबोधका साक्षात्कार होकर कलनामल से मुक्त हुआ है वह पुरुष असंसक्त कहाता है। हे रामजी ! जो आत्मारामी पुरुषहै उसको आत्मज्ञानके अभ्यास से संसक्तता

निवृत्त होजाती है-अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता। जब चित्त परिणाम
आत्माकी ओर होगा-जैसे चन्द्रमा परिणाम के वशसे अमावस्या को सूर्य्यरूप
होजाता है तब चित्त दृढ़ परिणाम के वश से आत्मारूप होजावेगा। जब चित्त
चैत्यभाव से हीन होता है तब क्षीणचित्त कहाता है और शांत कलना कहाता है।
तब जाग्रत् भी सुषुप्तिरूप होजाता है। उस अवस्था में जो कुछ क्रिया करता है सो
फलका आरम्भ नहीं होती क्योंकि; वह तो निरहंकार होजाता है। जैसे यंत्री की
पुतली अहंकार से रहित चेष्टा करती है और संवेदन से रहित है उसको कोई दुःख
नहीं होता; तैसेही निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख और निर्लेप कहाता है। हे
रामजी! इष्ट-अनिष्ट; भाव-अभावरूपीजगत् चित्त में होता है। जब चित्त आत्म-
भावको प्राप्तहुआ तब किससे किसको बन्धनहो तब तो सर्व आत्मतत्त्व होता है। जैसे
नट सर्वस्वांग को धारता है और अपना अभिमान किसी में नहीं करता तैसेही सुषुप्ति
बोध पुरुष जगत् की क्रिया करता है और बन्धवान् नहीं होता; जीवन्मुक्त होकर
स्थित होताहै। हे रामजी! सुषुप्तिबोधका आश्रय करके जगत् की क्रियाकरो पर
क्रिया, कर्म, कर्त्ता त्रिपुटी की भावना से रहितहो तब तुमको कुछ दुःख होगा न ग्रहण
और त्यागमें अभिमान होगा यथा प्राप्त में स्थित होगे। सुषुप्तिबोध में जो स्थित है
सो कर्त्ता हुआ भी कुछ नहीं करता। ऐसे निश्चय को धार करके जैसे इच्छाहो तैसे
करो। हे रामजी! ज्ञानवान् की चेष्टा बालकवत् होती है जैसे बालक अभिमान से
रहित पालने में अङ्गोंको हिलाताहै तैसेही ज्ञानवान् अभिमान से रहित कर्म करता है
और फलका स्पर्श उसे नहीं होता। जब चित्त अचित्तरूप होजाता है तब जाग्रत्जगत्
सुषुप्तिरूप होजाता है और जो कुछ क्रिया करताहै वह स्पर्श नहीं करती। हे रामजी!
जब जगत् से सुषुप्तिदशा प्राप्तहोती है तब हृदय शीतल होजाता है; रागद्वेष कुछ
नहीं फुरते और आत्मानन्दसे पूर्ण होता है और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है
तैसेही वह शोभताहै। जो सुषुप्तिबोध में स्थित है वह महातेजवान् होता है और
आत्मानन्दसे पूर्णचन्द्रमा की नाईं होजाताहै। हे रामजी! जो पुरुष सुषुप्तिअवस्था
में स्थित है वह संसारके किसी क्षोभ से चलायमान नहींहोता-जैसे पर्वत सर्वदाकाल
में क्षोभायमान नहीं होता और भूकंप में सब वृक्षादिक चलायमान होते हैं पर
अस्ताचल पर्व्वत कम्पायमान नहींहोता; तैसेही ज्ञानवान् चलायमान नहीं होता।
जैसे पर्व्वत सब काल में सम रहता है और तरु उगके गिरपड़ता है पर्व्वत ज्योंका
त्यों रहताहै तैसेही ज्ञानवान् अनेक प्रकारकी क्रियामें सम रहताहै। हे रामजी! ऐसी
सुषुप्तिदशा अभ्यासयोगसे प्राप्त होती है। जब यह दशा प्राप्तहोती है तब उसको
तत्त्ववेत्ता तुरीया पद कहते हैं सो परमानन्दरूप है उसमें सब दुःख नाश होजाते हैं

और असंसक्त होजाता है। जब मनका मननभाव निवृत्त होजाता है तब ज्ञानवान् को परमसुख उदय होताहै और उससे वह परमानन्द होजाता है। जो इस संसार रचना को लीलारूप देखता है और सर्व्वशोकसे रहित निर्भय होताहै उससे संसार भ्रम दूर होजाता है। जब तुरीयापदमें प्राप्त होताहै तब संसार में फिर नहीं गिरता। जो यत्नवान् पुरुष परमपावनपदमें स्थित हुये हैं वे संसार की अवस्था को देखकर हँसते हैं। जैसे पहाड़पर बैठा पुरुष नगरको जलता देखकर हँसताहै तैसेही ज्ञानवान् आत्मानन्द को पाकर संसार के कार्यों में दुःख जानकर हँसता है। हे रामजी! तुरीया अवस्था में स्थित होने से अविनाशी होता है और आनन्दरूप आनन्दकलना से आनन्दकलना है। जब ऐसे तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है तब जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होता है और अभिमान आदिक कलना से रहित परमज्योति में लीन होता है। जैसे नमककी गोली समुद्र में जलरूप होजाती है तैसेही वह आत्मरूप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंसक्तचिकित्सानामपञ्चषष्टितमस्सर्गः ६५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जबतक तुरीयापद में स्थित रहता है तबतक केवल जीवन्मुक्त होता है और इससे उपरान्त विदेहमुक्त तुरीयातीत है सो वाणी का विषय नहीं। जैसे आकाश को भुजा से कोई नहीं पकड़सक्ता तैसेही तुरीयातीत वाणी का विषय नहीं। तुरीयातीतपदसे विश्रान्त भी दूरहै विदेह मुक्तसे पाता है। अब तुम कुछकाल ऐसी सुषुप्ति अवस्था में स्थित होरहो, फिर परमानन्दपद में स्थित होना। हे रामजी! तुरीयावस्था में जो स्थित हुआ है वह निर्द्वन्द्वभावको प्राप्त हुआ है। जब तुम सुषुप्ति अवस्थामें स्थित होगे तब जगत् के कार्य्यभी करते रहोगे और सदा पूर्ण रहोगे और तुमको उदय अस्तकाभाव कदाचित् न प्राप्तहोगा। जैसे मूर्त्तिका लिखा चन्द्रमा उदय अस्तको नहीं प्राप्त होता है तैसेही तू उदय अस्त भावको न प्राप्त होवेगा। हे रामजी! इस शरीरको अपना जानकर जीव रागद्वेषमें जलताहै और जिस पदार्थ का सन्निवेशहोता है उसके नष्टहुये नष्ट होजाता है। जैसे मृत्तिका का अन्वय घट में होता है पर घटके नाशहुये मृत्तिका का नाश नहीं होता तैसेही तुम भ्रमको मत अंगीकारकरो। तुम सदा ज्योंके त्योंहो तुम्हारा सन्निवेश इसमें कुछ नहीं। इससे ज्ञानवान् देहके नाशहुये शोकवान् नहीं होता और देहके स्थितहुये सुखी भी नहीं होता क्योंकि; उसका देहके साथ कुछ संबन्ध नहीं। जो तत्त्वदर्शी पुरुष है वह व्यर्थ प्राप्ति में निर्दोष होकर विचरताहै और अभिमानादिक विकारों से रहित निर्मल आकाशवत् है। जैसे शरत्कालकी रात्रि में चन्द्रमा से आकाश निर्मल होता है तैसेही मनकी वृत्ति विकारों से रहित होकर आत्मपद में स्थित होती है—संसार की ओर नहीं

गिरती। जैसे योग, मन्त्र, तप और सिद्धि से सम्पन्न पुरुष आकाश में उड़ता जाता है वह फिर पृथ्वीपर नहीं गिरता। हे रामजी! तुम भी अपने प्राकृतभाव में स्थित होकर यथाप्राप्त क्रिया को करते निर्द्वंद्व रहो। तुम भी अब स्वरूप के ज्ञाता हुये हो और परमपदमें जागकर अपने स्वरूप को प्राप्त हुये हो इससे पृथ्वी में विशोकवान् हो विचरो तब इच्छासे अनिच्छा को त्यागकर शीतल, प्रकाश, अन्धकार, तप्त और मेघसे रहित शरत्काल के आकाशवत् निर्मल शोभोगे। हे रामजी! यह जगत् चिदानन्दस्वरूप है और आदि अन्त से रहित है। जो अहंत्वम् आदिक भ्रमसे रहित है उसमें स्थितहो। आत्मा केवल अव्यक्त और चिन्तना से रहित है उसका शरीर के साथ सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा आदिक नाम भी उपदेश व्यवहारके लिये कल्पे हैं; वह तो नामरूप भेद और भय से रहित अशब्द पदहै और वही जगत्रूप होकर स्थित हुआहै—जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल तरङ्गरूप हो भासता है सो जल से भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा से भिन्न जगत् नहीं और जैसे समुद्र सब जलरूपहो जल से कुछ भिन्ननहीं; तैसेही सब जगत् आत्मरूप है भिन्ननहीं। जैसे जल और तरङ्ग में भेद नहीं और पट और तन्तुमें भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत्में भेदनहीं। हे रामजी! द्वैत कुछ वस्तु है नहीं परन्तु मैं तेरे उपदेश के निमित्त द्वैत अंगीकार करके कहता हूं। यह जो शरीर है उसके साथ तेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे धूप और छाया का सम्बन्ध नहीं होता और प्रकाश और तम इकट्ठे नहीं होते; तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। देह जड़ और मलिन है और दृश्य असत्य है; आत्मा निर्मल, चेतन और सत्य है तो उसका देहसे सम्बन्ध कैसे हो? जैसे शीत और उष्णका परस्पर विरोध है तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। जैसे वन में अग्नि लागे से जंतु जलते हैं तैसेही भ्रम दृश्यरूप देह में अहंभाव करके जीव जलते हैं। हे रामजी! जैसे दावाग्नि में कुबुद्धि जलबुद्धिकरे तैसेही अज्ञानी देह में आत्मबुद्धि करते हैं। जैसे मरुस्थलमें सूर्यकी किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मा में देहभाव रखते हैं हे रामजी! चिदात्मा निर्मल, नित्य और स्वयंप्रकाश है और देह मलिन और अस्थि, मांस और रक्तमय है इसके साथ आत्माका सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा में देह का अभाव है—केवल एक अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थित है उसमें द्वैत भ्रम कैसे हो? हे रामजी! स्वरूपसे न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है सर्वसत्ता एक आत्मतत्त्व स्थित है और भीतर बाहर सब वही है। मैं सुखी हूं; मैं दुःखी हूं; मैं मूढ़हूं इस मिथ्या दृष्टि को दूर से त्यागो और आपको केवल आत्मरूप जानकर स्थित हो। यह दृश्य परमदुःख देनेवाला है और इसमें दुःख प्राप्त होवेगा। जैसे तृण और पहाड़ की और पट और पत्थर की एकता नहीं होती तैसेही आत्मा और शरीर की एकता

नहीं होती। जैसे तम और प्रकाशका संयोग नहीं होता तैसेही देह और आत्माका संयोग नहीं होता और दोनों तुल्यभी नहीं होते। जैसे शीत और उष्ण; और जड़ और चेतन की एकता नहीं होती तैसेही शरीर और आत्माकी एकता नहीं होती। हे रामजी! शरीर जो चलता, बोलता है सो वायुके बलसे चलता—बोलता है। आठ स्थानों में वायुके बलसे, अक्षरोंका उच्चार होता है—उर, कंठ, शिर, जिह्वामूल, दंत, नासिका, ओष्ठ, तालु यही अष्ट स्थान हैं। क, ख, ग और घ—इनचारोंका उच्चार कंठ में होता है; च, छ, ज और झ—इनचारोंका तालुस्थान में उच्चार होताहै; ट, ठ, ड और ढ—इन वर्गों का मूर्द्धा में उच्चार होताहै; त, थ, द और ध—इनका दांतोंमें उच्चार होता है; प, फ, ब, भ और म—इनपांचोंका ओष्ठोंमें उच्चार होता है और ङ, ञ, न और ण—इनका नासिका में उच्चार होता है। जिह्वामूलमें जिह्वाका उच्चार होता है और जिस पदके आदि हकार हो वह हृदय से बोलाजाता है। आठों स्थानों में इन वर्गोंका वायु से उच्चार होता है और सूक्ष्म नवस्वरका उच्चार होता है पर आत्मा इनसे निर्लेप होता है। जैसे बांसुरी वायुसे शब्द करती है तैसेही इन पांच तत्त्वों से शब्द होता है; इनमें आत्माभिमान करना महामूर्खता है। नेत्रादिक इन्द्रियांभी वायु से चेष्टा करती हैं; इससे इस भ्रमको त्याग कर आत्मपद में स्थित हो—आत्मा आकाशवत् सबमें पूर्ण है। जैसे आकाश सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहां आदर्श होता है वहां प्रतिबिम्ब होकर भासता है तैसेही आत्मा सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहां चित्त होता है वहां भासता है। हे रामजी! जहां वासना से चित्तरूपी पत्नी जाता है वहां आत्माको ऐसा अनुभव होता भासता है कि, मैं यहांहूं। जैसे जहां पुष्प होताहै वहां सुगन्धिभी होती है; तैसेही जहां चित्त होता है वहां अहंभाव भी होता है। जैसे आकाश सब ठौर में है परन्तु जहां प्रतिबिम्ब होता है वहां भासता है और जैसे जल सब पृथ्वी में है परन्तु भासता वहीं है जहां खोदाजाता है तैसेही आत्मा सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासता वहीं है जहां चित्तहै। जैसे सूर्य्यका प्रतिबिम्ब सबठौर है परन्तु जहां आदर्श अथवा जलहै वहां भासता है तैसेही आत्मा जहां तहां पूर्ण है परन्तु चित्तके अहंभाव से भासता है। आत्माका प्रतिबिम्ब चित्तही में भासता है और वह चित्त आत्माकी सत्तासे जगत् रचना फैलाता है व जैसे सूर्य्यकी किरणें धूपको फैलाती हैं। हे रामजी! भूतोंका कारण अन्तःकरणही है; आत्मतत्त्व तो अतीत है; आदिकारण नहीं है वास्तव में अकारण है। जगत् जो सत् भासता है सो अविचार से भासता है। उसीके निवृत्त का उपाय आत्मज्ञान है। हे रामजी! संसारका कारण अन्तःकरण है और असम्यक्ज्ञानसे सत्यरूप भासता है जैसे मरुस्थल में असम्यक् ज्ञानसे जल भासता है। जब यथार्थ ज्ञान होता है तब जगत् का कारण चित्तसे नष्टहो

जाता है जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मज्ञान से चित्त नष्ट होजाता है। संसारका कारण अपना चित्तही है इसीका नाम जीव, अन्तःकरण, चित्त और मन है। रामजी ने पूछा, हे महाआनन्द के देनेवाले! इतनी संज्ञा चित्तकी कैसे हुई हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्व भावरूप एक परमात्मतत्त्व है। जैसे समुद्र, नदियां, तरंगादि संज्ञा एक जलही धरता है तैसेही चित्तादिक अनेक संज्ञाको आत्मा धारता है पर सदा एकरूप है; संवेदन फुरनेसे अनेक रूप धरताहै। जैसे एक जल कहीं तरंग, कहीं बुद्बुदे, कहीं जल, कहीं चक्र और कहीं स्थिर—इतनी संज्ञाको धारता है परन्तु सबही जलरूप है तैसेही सर्वशक्ति आत्मा सब शरीरों में सर्वरूप होता है जब स्पन्दकलना दूरहोती है तब शुद्धस्वरूप हो भासता है और जहां अज्ञान संसरनेको अंगीकार करता है तहां वही अनन्त आत्मा जीव कहाता है। जैसे केसरी सिंह पिंजड़े में फँसता है तैसेही यह जीवरूप होताहै। हे रामजी! जहां अहंभाव फुरता है वहां जीव कहाता है; जहां निश्चय वृत्तिसे फुरता है उसको बुद्धि कहते हैं; सङ्कल्प विकल्पसे मन, चिन्ताकरने से चित्त और प्रकृतिभाव से प्राकृत कहाता है। हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है वह जड़ कहाता है। और चेतन है सो जीव कहाता है। जड़ जो दृश्यभावसे संवित् भाग है और अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभावसे सिद्ध होता है; इनके जो मध्य है सो परमात्मा तत्त्व है सो नानारूपहो भासता है। (बृहदारण्यउपनिषद् और वेदान्तशास्त्रों में बहुत प्रकार से जीवकारूप कहाहै इससे भिन्नसंज्ञा शास्त्रकारों ने कल्पनाकर कही है सो वृथा कल्पना है।) जबतक अहंभाव से चित्त संसरता है तबतक जगत्भ्रम होता है—जैसे जब तक सूर्य्य है तबतक प्रकाश होता है और जब सूर्य्य अस्तहोता है तब प्रकाश जाता रहताहै तैसेही जब चित्तका अभाव हुआ तब जगत् भ्रम जाता रहता है। देह में आत्मबुद्धि करनी महामूर्खता है क्योंकि; यह अधऊर्ध्वसंयोग है जो आत्मा ऐसे संयोग न हो तो देहके नाशहुये आत्मा भी नाशहोजावे पर देहके नाश हुये आत्माका तो नाश नहीं होता। जैसे वृक्षके पत्तों के नाशहुये वृक्ष का नाश नहीं होता और घटके नाश हुये आकाशका नाश नहीं होता तैसेही शरीरके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता। जैसे पुरातन वस्त्रको त्याग कर पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है तैसेही आत्मा पुरातन शरीरको त्यागकर नूतन शरीर अङ्गीकार करता है। इसीका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं पर शरीर के नाश हुये आत्माका नाश तो कुछ नहीं होता। हे रामजी! जिसका चित्त निर्वासनिकहुआ है उसका शरीर जब छूटता है तब उसका चित्त चिदाकाश में लीन होजाता है और जिसका चित्त वासनासहित है वह एक शरीर को त्यागकर और शरीर पाता है। जो देहके नाश हुये आपको

नाश मानताहै वह मूर्खहै—जैसे एक स्थानमें अज्ञान से वेताल भासताहै और जैसे माताके स्तनों में मूर्ख बालक को वेताल भासताहै तैसेही अज्ञानसे आत्मा में मृत्यु भासती है जो इसका आत्मत्व नाशहो अर्थात् चित्त नाशहोजावे और फिर न फुरे तो आनन्दहो । जो शरीरके नाशहुये आत्माका नाश कहते हैं वे मूढ़ हैं और मिथ्या कहते हैं । जैसे कोई देशसे देशांतर जाताहै तो उसका अभाव नहीं होता तैसेही एक शरीर को त्यागकर और शरीर को प्राप्त होताहै तो आत्माका नाश नहीं होता । जैसे जलमें तरंग फुरके फिर लीन होकर और ठौरमें जा फुरते हैं तैसेही आत्मा एक शरीर को त्यागकर और को धारताहै । जैसे पक्षी उड़ता उड़ता दूरजाताहै तब दृष्टि नहीं आता परन्तु नाश नहीं होता तैसेही शरीरके नाश हुये आत्मा और ठौर प्रकट होताहै नाश नहीं होता । हे रामजी ! वासनाके वशसे यह जीव एक शरीरको त्यागकर और शरीर को प्राप्तहोताहै । इसी प्रकार वासनाके अनुसार जीव फिरताहै । वासनारूपी रस्सी से बँधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानों में भटकताहै और कभी ऊर्ध्वलोक और कभी मनुष्यलोक में घटीयंत्रकी नाईं भ्रमता है । हे रामजी ! जीवके हृदय में जो वासना होती है उसीसे जरा, मृत्यु, जन्म आदिका दुःख पाताहै और कमलरूपी भार उठाकर कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी मध्यस्थानमें जाताहै शांति कदाचित् नहीं पाता । इससे हे रामजी ! अविद्यारूपी जो संसारहै इसको भ्रमरूप जानकर इसकी वासनाको त्यागकरो और अपने स्वरूप में स्थितहो । इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य्य अस्तहुआ तो सब सभा स्नान के निमित्त उठी और परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानको गये फिर रात्रि बिताके सूर्य्यकी किरणोंके निकलतेही आबैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंसारयोगोपदेशोनामषट्षष्टितमस्सर्गः ६६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मा देहके उपजे से नहीं उपजता और नाश हुये से नाश नहीं होता इसलिये तुम निष्कलङ्क आत्माहो; तुमको देहके साथ सम्बन्ध कदाचित् नहीं । जैसे कुञ्जमें फूल और फल घटमें और घटाकाश होताहै सो परस्पर भिन्नरूप होतेहैं, एकके नाशहुये दूसरे का नाश नहीं होता; तैसेहीं देहके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता । जो देहके नाशमें अपना नाश मानता है वह मूर्ख जड़है; उस अर्द्धचेतना को धिक्कारहै । हे रामजी ! जैसे रथ, रस्सी और घोड़ेका स्नेह से रहित संयोग होता है तैसेही शरीर और इन्द्रियों का संयोग है । हे रामजी ! रथ टूटे से जैसे रथवायुकी हानि नहीं होती तैसेही देह और इन्द्रियों के नाश हुये आत्माका नाश नहीं होता । जैसे पृथ्वी पहाड़पर जलके प्रवाहका संयोग होता है और वियोग भी होता है सो एकके नाशहुये से दूसरे का नाश नहीं होता तैसेही

देह और इन्द्रियों का संयोग है पर इनके नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता
जैसे एक स्थान में वेताल भासता है और भयवान् होता है तैसेही देह में अहंभाव
से राग, द्वेष, सुख, दुःख पाता है। जैसे एक काष्ठकी अनेक पुतली होती हैं सो
काष्ठसे इतर कुछ नहीं हैं तैसेही जो कुछ शरीरहै वह पञ्चभूतोंकाहै पञ्चभूतों से भिन्न
कुछ वस्तु नहीं। जब यह पञ्चभूतों का शरीर पञ्चभूतों में लीन होता है तब उसको
मृतक हुआ कहते हैं। यह आश्चर्य है जो प्रत्यक्ष पञ्चभूतों का शरीर है उसमें
आत्मभावना श्वान करते हैं और फिर हर्षकर शोकको प्राप्त होता है इसीसे मूर्ख है।
हे रामजी! न कोई पुरुष है और न कोई स्त्री है पर इनके निमित्त मूढ़ रुदन करते
हैं। जैसे मृत्तिका के हाथी घोड़ा आदिक खिलौने विचित्र रचना होती है और
उसकी प्राप्तिमें अज्ञानी बालक तुष्टवान् और खेदवान् होता है तैसेही अज्ञानी
पाञ्चभौतिक रचना देखकर उसकी प्राप्ति में राग द्वेष करता है ज्ञानवान् को सबभूत
पदार्थ भ्रान्तिमात्र भासते हैं। जैसे माटी के पुरुषों को आपस में मिलने से राग द्वेष
कुछ नहीं होता तैसेही बुद्धि, इन्द्रियां, मन और आत्माका जो मिलाप है इससे तुम
को राग द्वेष कुछ नहीं होता। जैसे पाषाणकी पुतलियां मिलती हैं तो उनको स्नेहबन्धन
कुछनहीं होता तैसेही देह, इन्द्रियां, प्राण और आत्मा का आपसमें स्नेह बुद्धिसे रहित
है। इससे तुम स्नेहसे रहित हो रहो; शोक काहेको करतेहो। जैसे तृण और जल के
तरंगका संयोग होता है तो तृण इधर उधर जाता है और जलको कुछ हर्ष शोक
नहीं होता तैसेही देहभूत आत्माका योगहै इनके मिलाप और बिछुरेका दुःख सुख कुछ
नहीं होता। आत्मा और अनात्मा देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदिक विलक्षण
भावहै और परस्पर इनके क्षय और उदय में हर्ष शोक कुछ नहीं परन्तु चित्तके उदय
से अनात्मा धर्म्म आत्मामें प्रतिबिम्बित भासताहै। तुम तत्त्वबोधका विचारकरके
चित्तको त्याग अपने स्वरूप में स्थित हो–जैसे जल तरंगभावको त्यागकर अपने
स्थिर स्वभावको प्राप्तहोताहै। जब तुम अपने अक्षोभ भावको प्राप्तहोगे तब भौतिक
देहसे आपको भिन्न जानोगे। जैसे वायुमण्डलको प्राप्तहुआ देहादिक जीव पृथ्वी
मण्डलको देखता है तैसेही तुम आत्मपदको स्थित होकर देहादिक भूतोंको देखोगे।
हे रामजी! तुम देहादि भूतोंको देखके त्यागकरो और अतीत अजन्मा पुरुष हो
रहो तब तुम परमप्रकाशको पावोगे। जैसे सूर्य्यकान्तमणि सूर्य्य के उदयहुये परम
प्रकाशको प्राप्त होताहै तैसेही जब बोधकरके द्रष्टा, दर्शन, दृश्यभाव तुम्हारा जाता
रहेगा तब तुम अपने भावको ज्योंका त्यों जानोगे। जैसे मनुष्य मद्यसे मत्तहोजाता
है और मद्यके उतरे से आपको ज्योंका त्यों जानता है और मद्यभाव को स्मरण
करता है तैसेही स्मरण करोगे। आत्मतत्त्वका जो स्पन्द फुरना हुआ है उसीका नाम

चित्त है सो अवस्तुरूप है । जैसे समुद्र में तरंगभाव उदय होताहै सो कुछ वस्तु नहीं तैसेही चित्तादिक कुछ वस्तु नहीं भ्रान्तरूपहै । इसप्रकार जानकर महाबुद्धिमान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्तहुये हैं और महाशान्तपदकी प्राप्ति में विचरते हैं । जैसे रत्नमणिकी किञ्चन नानाप्रकारकी लहर होती है सो मननकलना से रहित चमत्कार हैं तैसेही मनुष्यों में जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुषहैं उनका व्यवहार कलना से रहित होता है जैसे कूपमें प्रतिबिम्ब पड़ता है और आकाशमें धूलि उड़ती भासती है पर आकाश मलभावको नहीं प्राप्त होता तैसेही ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहार में कर्तृत्वके अभिमान को नहीं प्राप्त होता । जैसे मेघके आने जाने से समुद्र को राग द्वेष नहीं होता तैसेही आत्मा ज्ञेय पुरुषको भोगों के आने जाने में रागद्वेष नहीं होता हे रामजी ! जिस मनमें जगत् के किसी पदार्थकी मननवासना नहीं फुरती उस चित्तमें जो कुछ फुरना भासताहै सो विलासस्वरूप जानो वह उसको बन्धनका कारण कुछ नहीं होता और जिस चित्तमें अहं त्वम् आदिक जगत्की भावनाहै परन्तु हृदय से उस की सत्यता बुद्धिहै उससे वह दृश्य, द्रष्टा और दर्शन सम्बन्ध तीनोंकालों संयुक्त जगत् को फैलावेगा । जो कुछ दृश्यहै वह असत्रूपहै और जो सत्य है सो एक अव्यक्तरूप है । उसका आश्रयकरके अलेपहो तब हर्षशोककी दशा कहां है ? जो कुछ दृश्य जगत् भासता है वह सब असत्रूपहै और जो सत्य है वह सदा ज्यों का त्यों है । असत्रूप दृश्यके निमित्त तुम क्यों वृथा मोहको प्राप्तहोते हो । असम्यग्दर्शन को त्यागकर सम्यग्दर्शी हो । हे सुलोचन रामजी ! जो सम्यग्दर्शी हैं वे मोहको नहीं प्राप्त होते दृश्य और दर्शन इन्द्रियों के साक्षित्व सम्बन्ध में अर्थात् विषयेन्द्रिय के साक्षिरूप आनन्दका जिसे सुख है वो परब्रह्म कहाताहै और अनुत्तम सुखसे जो उस संवित् में स्थित है वह ज्ञानवान् है उसको मोक्ष प्राप्तहै । जो दृश्य दर्शनके मिलने में स्थितहोता है उस अज्ञानीको वह संवित् संसारभ्रम दिखाती है । दृश्य–दर्शन में जो अनुभव सत्ता है वह सुख आत्मरूपहै, जो दृश्यके साथ लगा है वह बन्ध है और जो दृश्य से मुक्तहो संवित् में स्थितहै वह मुक्त कहाता है । हे रामजी! दृश्य–दर्शन के सम्बन्ध में जो मध्य संवित्है वह अनुभव गोचर है; उस संवित्का आश्रयकरके जो दृश्य दर्शन मुक्तहै वह संसारसमुद्रसे तरेगा । यह सुषुप्तिरूप अवस्थाहै; इसको प्राप्तहुआ परम प्रकाशको प्राप्त होताहै और इसीको मुक्तकहतेहैं । जो दृश्य दर्शनसे मुक्तबुद्धिहै वह मुक्तकहाताहै और जो दृश्यदर्शनके साथ बँधा है वह बन्ध है । अन्यसर्व्वोंका अनुभव करनेवाला आत्माहै, वह न स्थूलहै, न अणुहै; न प्रत्यक्षहै, न अप्रत्यक्षहै; न चेतन है, न जड़है; न सत्यहै, न असत्यहै; न अहं है, न त्वं है; न एकहै, न अनेकहै; न निकट है, न दूर है; न अस्तिहै, न नास्तिहै; न प्राप्तिहै, न अप्राप्तिहै; न सर्व है, न असर्व है; न

पदार्थहै, न अपदार्थहै; न पाञ्चभौतिक हैं, न अपाञ्चभौतिक है; जो कुछ दृश्य जाति है सो मनसहित षट् इन्द्रियों से भावको प्राप्तहोता है। जो इनसे अतीत है वह इनका विषय नहीं। क्योंकि, निष्किञ्चनरूपहै। यह भी सब वहीरूप है और ज्योंका त्यों जाने से सब आत्मरूपहै। जगत् अनात्मरूप कुछ नहीं, सम्यग्ज्ञानसे ऐसे भासताहै। यह जो कठिनरूप पृथ्वी, द्रवतारूप जल, स्पन्दरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि और अवकाश रूप आकाश भासते हैं वे सब आत्मरूपहैं। जो कुछ वस्तु—अवस्तुरूप जगत् भासताहै सो आत्मसत्तासे भिन्न नहीं। आत्मासे भिन्न जगत् को मानना उन्मत्तचेष्टा है और मूर्खमानते हैं। महात्मा पुरुषोंको कालकलनारूप जगत् सब आत्मरूप है। कल्पसे आदि लेकर अन्तपर्य्यन्त सब आत्माका चमत्कारहै; ऐसे जानकर तुम अपने स्वरूपमें स्थितहो और संसारसमुद्रसे तरजावो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमोक्षस्वरूपोपदेशोनामसप्तषष्ठितमस्सर्गः ६७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मैंने तुझको द्वैतके त्यागकी विचारदृष्टि कही है इस विचारसे अपना जो आत्मस्वभाव है सो प्राप्तहोताहै, जैसे बुद्धिमान्को उपासना अभ्यास से चिन्तामणि प्राप्तहोती है। इसके उपरान्त एक और भी परमदृष्टि सुनो जिससे मनुष्य अचल आत्मस्वरूपको देखताहै वह यह है कि, मैंही आकाश, दिशा, सूर्य्य, अध, ऊर्ध्व, देवता, दैत्य, प्रकाश, तम, मेघ, पर्व्वत, पृथ्वी, समुद्र, पवन, धूलि, अग्नि आदिक स्थावर जंगम जगत् हूं। हे रामजी! सर्व्वजगत् आत्माही है तो अहं और त्वं से भिन्न और अनेक और एक कैसे हो। जिसके हृदयमें ऐसा निश्चय होताहै उसको सब जगत् आत्मरूप भासता है और वह पुरुष हर्षशोक नहीं पाता। सब जगत् मनोमात्रहै तो अपना और पराया क्या कहिये? ज्ञानवान्को आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता इससे वह हर्ष विषाद को नहीं प्राप्तहोता। हे रामजी! अहंकार भी तीन प्रकारके हैं। दोप्रकारका तो सात्त्विक निर्मलहै; तत्त्वज्ञानसे प्रवर्त्तताहै और मोक्षदायक परमार्थरूपहै; और तीसरा संसार दिखाताहै। एक तो अहं है जो तुमको कहा है कि, सर्व्व मैंही हूं—मुझसे अन्य कुछ नहीं और दूसरा यहहै कि, परमअणु जो सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्महै सो साक्षीभूत अव्यक्तरूप मैंहूं-ये दोनों मोक्षदायक हैं और तीसरा यह कि, आपको नख, शीशपर्य्यन्त देहरूप जानना सो दुःखदायक और संसारका कारणहै शान्तिसुखका कारण नहीं। अथवा इनतीनोंका त्यागकर स्थितहो यह सर्वसिद्धान्तका कारणहै। जैसे तुम्हारी इच्छाहो तैसेकरो पर आत्मा सबसे अतीत और सबसे परेहै तो भी अपनी सत्तासे जगतको पूर्ण कररहाहै और सबका प्रकाशकरूप वही है। वह अपने अनुभव से सदा वस्तु उदयरूपहै और किसी प्रमाणका विषय नहीं; अनुमान आदिक और सत्यवादसे रहित है और सर्व्वकाल सबको अपने प्रकाशसे प्रकाशताहै। यह

जो दृश्यजगत् है वह सब आत्माभगवान् है और दृश्य, दर्शन, सत, असत् सूक्ष्म, स्थूल सब से आत्मा रहित है । वही सर्वरूप सबकीवाणी कहने में भी वही आता है और किसी से कहा भी नहींजाता । जो नानात्व भासता है वह भी उससे अन्य नहीं । आत्मा आदिक संज्ञाभी शास्त्रोंने उपदेश के निमित्तकल्पी हैं । वह सर्वत्र, तीनोंकालों में स्थित और प्रकाशरूप है । सूक्ष्मभाव और स्थूलभावसे वही है और सब ठौर व्यापक अपने फुरने से जीवरूपहो भासता है । जब चित्त संवित् स्फूर्त्तिरूपहोती है तब जीवादिकरूपहो भासता है और फुरने से रहित द्वैतकलना मिटजाती है—जैसे आकाश में जब पवन फुरताहै तब उष्ण शीतहोभासता है तैसेही फुरने से जीवादिक भासताहै । आत्माचेतन सर्वत्र व्यापकरूपहै और कभी किसीभावको प्राप्तनहीं होता । जैसे पदार्थ अपने भावमें स्थित हैं तैसेही परमेश्वर आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है परन्तु उसका भासना पुर्यष्टका में होताहै । जैसे वायु विना धूलि नहीं उड़ती और अन्धकार में प्रकाश विना पदार्थ नहीं भासता तैसेही पुर्यष्टका विना आत्मा नहीं भासता पुर्यष्टकामें प्रतिबिम्ब भासता है । जैसे सूर्य्य के उदयहुये सर्व्वजीवों का व्यवहार होता है और सूर्य्य के अस्तहुये से लीन होजाता है पर सूर्य्य दोनों से अलेप है; तैसेही आत्मा सब का प्रकाशक और निर्लेप है । शरीरोंके व्यवहार होने और इष्टता में वह ज्योंकात्यों है; न उपजता है, न बिनशताहै, न वाञ्छा करता है, न त्यागता है, न मुक्त है, न बन्धहै; सर्व्वदा सर्व्वप्रकार ज्योंकात्यों एक रूपहै । उसके अज्ञानसे जीव अनात्मभावको प्राप्त होताहै—जैसे रस्सी में सर्पभासता है—और केवल दुःखों का कारण होता है । आत्मा आदि–अन्त से रहित और अज–अविनाशी है और अपने आपसे भिन्न नहीं हुआ इससे वाञ्छा, त्याग, देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित है बन्ध नहीं और जो बन्ध नहीं तो मुक्त कैसे हो ? सर्व्वकलना से रहित आत्मा सब का अपना आप है पर अविचार से मूढ़रुदन करते हैं; इससे मैंने जो तुम को उपदेश किया है उसको आदि से लेकर अन्तपर्य्यन्त भलीप्रकार विचार देखो और इस युक्ति से शोक का त्यागकरो—मूर्खों के समान लोगों में शोक मतकरो । हे सुमते ! बन्ध मोक्षकी कल्पना का त्यागकरो । न बन्ध के त्यागकी इच्छाकरो और न मोक्ष के प्राप्ति की इच्छाकरो, यंत्री की पुतलीवत् अभिमान से रहित चेष्टाकरो—इसका नाम आत्मामौन है । हे रामजी ! मोक्ष कोई पदार्थ का नाम आकाश में नहीं और न पाताल में है; न भूमिलोक में है—चित्तका निर्मल होनाही मोक्ष है । अनात्मा के साथ आपको मिलाना और उसमें आत्माभिमान करना यही मेल है और इसका त्याग करना और शुद्ध आत्मा में चित्तका लगाना इसका नाम मोक्ष है जब चित्तसे गुणोंमें वृत्तिका त्यागहो और सम्यक् आत्मज्ञानहो उसीको तत्त्वदर्शी मोक्ष

कहते हैं। हे रामजी ! जबतक आत्मबोध नहीं होता तबतक यह दीन दुःखी होता
है और जब आत्माका निर्मलबोध होता है तब दुःखों से मुक्तहोता है इससे और उ-
पायों को त्याग भक्तिकरके मोक्षकी वाञ्छाकरो और चिरकालसे जब इस बोधको साधु
चित्त विस्तृतपदको प्राप्त हुआ तब दशमोक्षकी भी वाञ्छानहीं करता एकमोक्ष क्या
है। हे रामजी ! जीवको और कोई उपाय मोक्षका नहीं; आत्मबोधकोही पाकर सुखी
होगे। जब चित्त अचित्त होता है तब सबजगत्भ्रम मिट जाता है और जगत् भी
कुछ दूसरी वस्तु नहीं; अद्वैत आत्मतत्त्वही है; और जो वहीहै तो बंध किसको कहिये
और मोक्ष किसको कहिये ? बंध मोक्षकी कल्पना तुच्छ है उसका त्यागकर चक्रवर्ती
हो पृथ्वी की पालनाकरो तो तुमको कर्तृत्वका स्पर्श कुछ न होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआत्मविचारोनामअष्टषष्टितमस्सर्गः ६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सङ्कल्पसेही जगत् उपजा है। अज्ञानसे आपको
शरीर जानता है और अपने सङ्कल्पको उपजाके अपना स्वरूप जानता है। जैसे
कोई सुन्दरपुरुष हो और उसको देखे विना कुरूपजाने तैसेही आत्माके साक्षात्कार
विना देहरूप आत्माको जानता है कि, मैं देहहूं। ज्यों ज्यों आत्माका प्रमाद होता है
त्यों त्यों देहमें अधिक अभिमान होताहै—जैसे ज्यों ज्यों मद्यपान करता है त्यों त्यों
उन्मत्त होता है। हे रामजी ! यह नानाप्रकारकादृश्य अज्ञानसे भासताहै। जैसे सूर्य्य
की किरणों से मरुस्थल में जल भासता है तैसेही असम्यक्ज्ञान से आत्मामें जगत्
भासता है। एक कलनाके फुरनेसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियां और देहभा-
सती है; एक फुरने की ही इतनी संज्ञा है। जैसे एकजलकी अनेक संज्ञा होतीहैं तैसे-
ही एक फुरने की अनेक संज्ञा हुई हैं। जो चित्त है सो अहंकार है; जो अहंकार है
वही मन है; और जो मन है वही बुद्धि है इसमें कुछ भेद नहीं। जैसे बरफ और
शुक्लता और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही मन, बुद्धि आदिकमें कुछ भेद नहीं
एकके नाश हुये दोनों का नाश होजाताहै। इससे मन में जो कुछ कलना है उसका
त्यागकर मोक्षकी इच्छाका भी त्यागकरो और बन्धन वृत्तिकोभी त्यागकरो। हे
रामजी ! वैराग और विवेक का अभ्यास करके मनको निर्मलकरो। जब मन निर्मल
होगा तब मनका मननभाव नष्ट होजावेगा। जब यह फुरना फुरता है कि, 'मैं
मुक्तहोऊं, तब भी मन जगआता है और मनके जागेसे मननभी होआता है। जब
मनन हुआ तब अपने साथ शरीर भी भासि आता है अनेक दुःखभी भासि आते
हैं। हे रामजी ! आत्मतत्त्व सब से अतीत है और सर्व्वरूप भी वही है तब कौन
बन्ध है और कौन मोक्षहै ? जब मनका मनन निवृत्त हुआ तब न कोई बन्ध है और
न कोई मुक्त है—आत्मा सर्व्वक्रिया से अतीतहै। क्रियाभी इसप्रकारहोती है कि, जैसे

वायुके हिलनेसे वृक्षसेपत्र और फूल हिलते हैं तैसेही प्राणोंके फुरनेसे हाथपांव आदिक इन्द्रियां चेष्टा करती हैं। हे रामजी ! चित्तशक्ति सर्व्वव्यापी, सूक्ष्म और अचलहै;वह न आपही चलती है, न और किसीकी प्रेरीहुई चलती है; सदा स्थितरूपहै। जैसे मेरु पर्व्वत न आपही चलता है और न वायुसे चलाया चलता है। हे रामजी ! जितने पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूपी दर्पणमें प्रतिबिम्बित भासते हैं। जैसे सर्व्वपदार्थोंको दीपक प्रकाशता है तैसेही सब पदार्थोंको आत्मा प्रकाशकरता है। सबपदार्थों में एक आत्मा अनुस्युत प्रकाशता है; और अहं त्वं आदिक कलनासे रहित है। जहां अहं त्वं आदिककलना नहीं फुरती वहां सुख दुःखभी नहीं फुरता। जैसे वृक्षों और पहाड़ों से अहं त्वं शब्द नहीं फुरता तैसेही आत्मा में भी नहीं फुरते; इससे ज्ञानवान् में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते। हे रामजी ! आत्मा निरहङ्कार और निराकार उस में कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवे ? आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व अज्ञान से भासता है—जैसे मरुस्थल में जल भासता है। हे रामजी ! अज्ञानरूपी मदिरा पान करके मनरूपी मृग मन हुआ है उससे वह सत् असत्का विचार नहीं करसक्ता—जैसे मृगतृष्णाकी नदी असतही सत् भासती है और मृग उसको सत् जानकर पान करने के निमित्त दौड़ता है; तैसेही यह जीव अरूपसंसार को रूप जानकर दौड़ता है। जब आत्मसत्ताका सम्यक्बोध होता है तब यह अविद्या नाश होजाती है। जैसे ब्राह्मणों के मध्य चाण्डाली आन बैठे और जब ब्राह्मण उसको पहिचाने कि, यह चाण्डाली है तो वह छुपजाती है तैसेही जब अविद्याको जाना तब वह नष्ट होजाती है। हे रामजी ! जब अविद्या को ज्योंकी त्यों जाना तब अविद्यारूपीजगत् मन को नहीं खैंचसक्ता—जैसे मृगतृष्णाकी नदी को जब जाना तब तृषाहो तौ भी मन को जल नहीं खैंचसक्ता। हे रामजी ! जब परमार्थसत्ता का बोध होता है तब मूलसे वासना नष्टहोजाती है, जैसे दीपके उदयसे अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मज्ञानसे अविद्या वासना सहित नष्ट होजाती है। हे रामजी ! अविद्या अविचारसे सिद्ध है; जब सच्छास्त्रों की युक्तिसे विचार प्राप्त होता है तब अविद्या नाश होजाती है। जैसे वरफ का कणका धूपसे गलकर जलमय होजाता है तैसेही विचारसे अज्ञान नष्ट होजाता है। हे रामजी ! देह जड़ है और आत्मा सदा चेतनरूपहै; फिर जड़ देह के निमित्त भोगोंकी वाञ्छा करनी बड़ीमूर्खता है। जो ज्ञानवान् पुरुषहैं वे इस बन्धनको तोड़डालते हैं। हे रामजी ! आशारूपी फांसीको हृदय से काटो; जब आशारूपी आवरण दूर होगा तब पूर्णमासीके चन्द्रमावत् हृदय शीतलहोजावेगा। तैसेही यह पुरुष भी तीन तापोंसे मुक्त शीतलहोजाता है—जैसे पर्व्वतमें अग्नि लगे और उसके ऊपर जलकी बहुत वर्षा हो तो वह तप्ततासे मुक्तहो शान्तिमान् होता है। हे रामजी ! जैसे

केशरी सिंह पिंजरे को तोड़कर निकलता है तैसेही ज्ञानवान्पुरुष भोग वासना के बन्धनको तोड़ डालता है। हे रामजी! जैसे रंकको त्रिलोकी का राज्य मिलने से वह आनन्दको प्राप्तहो तैसेही ज्ञानवान्को आत्मा के साक्षात्कार हुये आनन्द प्राप्त होता है और वह परमनिर्मल लक्ष्मी से शोभता है जब हृदयसे आशारूपी मैल जाता है तब जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है तैसेही वह शोभता है। हे रामजी! ज्ञानवान्पुरुष अपने आप में नहीं समाता—जैसे महाकल्प का समुद्र नहीं समाता और जैसे मेघजल को त्याग कर मौन होजाता है तैसेही ज्ञानवान् आशाको त्याग कर आत्ममौन होजाता है। जैसे अग्नि लकड़ी को जलाकर धुवें से रहित अपने आपमें स्थित होजाती है तैसेही चित्त की वृत्तिसे रहित हुआ आत्मपद में निर्वाण होजाता है जैसे दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही चित्त निर्वाणहुआ परमानन्दको प्राप्त होता है। जैसे अमृत को पानकर पुरुष आनन्दवान् होता है तैसेही वह परमानन्द से पूर्ण अपने आपमें प्रकाशताहै जैसे वायुसे रहित दीपक प्रकाशताहै और शुद्धमणि अपने प्रकाश से प्रकाशती है तैसेही ज्ञानवान् अपने आप से प्रकाशता है। मैं सर्व्वात्मा, सर्व्वगत, ईश्वर, सर्व्वाकार, निराकार, केवल चिदानन्द आत्मा हूं और सदा अपने आपमें स्थित हूं। हे रामजी! ज्ञानी अपने आपको ऐसे जानते हैं और पूर्व्व के व्यतीत हुये दिनको हँसते हैं। मैं तो अनन्तआत्मा हूं; माया के भ्रमसे आप को कर्त्ता भोक्ता मानताथा। ऐसे जानकर जो राग द्वेषसे रहित परमशांति को प्राप्त होताहै उसके सब ताप निवृत्त होजाते हैं; उसकी सदा आत्मा में प्रीति रहती है; उस का चित्त सब ओरसे पूर्ण होजाता है; वह सबको पवित्र करनेवाला होता है; वह काम-रूपी चक्रसे मुक्तहोकर जन्मोंके बन्धन काट डालता है; रागद्वेष आदिक द्वंद्व और सर्वभयसे मुक्त होता है; अविद्यारूपी संसारसमुद्रसे तरजाता है; उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त होताहै अर्थात् परमपद पाता है और फिर संसारके जन्म मरणको नहीं प्राप्त होता है और उसके कर्मोंका अन्त होजाता है। हे रामजी! ज्ञानवान्की क्रियाको देख-कर और सब वाञ्छा करतेहैं परन्तु औरोंकी क्रियाको देखकर ज्ञानवान् किसीकी वाञ्छा नहीं करता। वह सबको आनन्दवान् करता है और आप किसीसे आनन्दवान् नहीं होता। वह न किसी को देताहै, न लेताहै, न किसीकी स्तुति करता, न निन्दा करता है; न किसी उत्तम पदार्थों को पाकर उदय होता है और न अनिष्टको पाकर नष्ट होता है और हर्ष शोकसे रहित है। उसने सब फलका त्याग किया है और सब उपाधि से रहित है और कर्तृत्व भोक्तृत्व से आपको न्यारा मानता है। ऐसा जो पुरुष है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! जब तुम सब इच्छा त्यागकर मौन हो तब निर्विशेष भावको प्राप्त होगे। जैसे मेघ जलका त्यागकर मौन भाव को प्राप्तहोता है

तैसेही तू मोक्ष भावको प्राप्त होगा। हे रामजी ! जैसे कामी पुरुष स्त्रीको कंठमेंलगाकर आनन्दवान् होता है पर उसको ऐसा आनन्द नहीं होता जैसा आनन्द निर्वासनिक पुरुष को होताहै, फूलके गुच्छे से वसन्तऋतु ऐसी नहीं शोभती जैसे उदारबुद्धि आत्म मौनवान् शोभताहै; हिमालय पर्व्वतमें प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा निर्वासनिक पुरुषका मन शीतल होताहै; मोतियोंकी मालासे और केले के वनको प्राप्त हुआ भी ऐसा सुख नहींपाता और चन्दनों के पान करनेवाला भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा शीतल निर्वासनिक मन होताहै; और चन्द्रमाके स्पर्श सेभी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होताहै। चन्द्रमा बाहरकी तप्तता मिटाताहै परन्तु भीतरकी तप्त निवृत्त नहीं करता पर निराशतासे हृदयकी तप्तता मिटजातीहै और परम शांतिको प्राप्तहोताहै। जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुषके संगसे होतीहै तैसी और किसी उपाय से नहीं प्राप्त होती। हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्ग में नहीं प्राप्तहोता और न सुन्दर स्त्रियों के स्पर्शसे होताहै जैसा सुख निर्वासनिक को प्राप्त होताहै। निर्वासनिक पुरुष उस सुखको प्राप्तहोताहै जिससुखमें त्रिलोकी के सुख तृणवत् भासते हैं। हे रामजी ! आशारूपी कञ्जके वृक्षके काटनेको उपशमरूपी कुल्हाड़ा है। जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है उसको सब पृथ्वी गोपद के समान तुच्छ भासतीहै; मेरु पर्वत एक टूटे वृक्ष के समान भासता है और दिशा डिब्बी के समान भासती हैं क्योंकि वह उत्तमपद को प्राप्तहुआ है और त्रिलोकी की विभूति तृणकी नाईं तुच्छ देखता है। जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है वह जगत् को देखकर हँसता है और कदाचित् उसे जगत् के पदार्थोंकी कल्पना नहीं फुरती। तृणवत् जानकर उसने जगत् को त्याग दिया है और सदा आत्मतत्त्व में स्थित है उसको किसकी उपमा दीजिये उस पुरुषकी उदय, अस्त, अहं त्वं आदिक कलना नष्ट होगई हैं और केवल आत्मस्वभाव को प्राप्त हुआ है। उस ईश्वर आत्मा को कौन तोल सक्ता है; जब दूसरा उसके समान हो तब तोले। हे रामजी ! वह पुरुष सब सङ्कटों के अन्त को प्राप्तहुआ है। यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है। जैसे आकाश में भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा; मरुस्थल में नदी और मद्यपान से नगर भ्रमता भासता है; तैसेही यह मिथ्या जगत् भ्रमसे भासता इसकी आशा मत करो। तुम तो बुद्धिमान् पण्डितहो मूर्खोंकी नाईं मोहको क्यों प्राप्त होतेहो ? यह मैं और यह मेरा अज्ञानसे भासता है; इस कलनाको चित्तसे दूरकरो। यह वास्तव में कुछ नहीं, सब जगत् आत्मरूप है और नानात्व कुछ नहीं है जो सम्यक्दर्शी पुरुष है वह जगत् को एक रूप जानकर धैर्य्यवान् रहता है कदाचित् खेद नहीं पाता। हे रामजी ! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है और आत्म विचार से आत्मपदको प्राप्त हुआ है उसको देखकर मोहने-

वाली मायाभी भागजातीहै और निकट नहीं आती। जैसे सिंहके निकट मृगनहीं आता तैसेही ज्ञानवान् के निकटमाया नहींआती। सुन्दर स्त्रियां, मणि, कञ्चनादिक, धन और पत्थर, काष्ठ सब उसको तुल्य भासताहै; भोगों से उसको सुखनहीं होता और आपदासे खेदनहीं होता; वह सदा ज्योंका त्यों रहता है। जैसे पर्व्वत वायुसे चलायमान नहीं होता तैसेही वह पुरुष सुख दुःखसे चलायमान नहीं होता। सुन्दर बालास्त्री उस के चित्तको खींच नहीं सक्ती; कामदेव के चलाये बाण उसके ऊपर टुकड़े२ होजाते हैं और रागद्वेष उसको खींच नहीं सक्ते। वह सदा आपको निराकार, अद्वैत, निष्क्रिय और निर्गुणजानताहै और सुन्दर बगीचे, ताल, बेल, शय्या, इन्द्रियों के विषय भोग और दुःख देने वाले उसको तुल्य हैं रागद्वेषको नहीं प्राप्त करते। जैसे पर्व्व में ऋतु के अनुसार मीठा और कटु फूल होता है तो उसको किसी में रागद्वेष नहीं होता। अकस्मात् जो भोग प्राप्तहोता है उसको वह भोगताहै परन्तु हर्ष और शोकवान् नहींहोता। हे रामजी! यथार्थदर्शी इष्टअनिष्ट में चलायमान नहीं होता—जैसे वसन्तऋतुके आने जाने में पर्व्वत सुख दुःखको प्राप्त नहींहोता। वह कर्म्म इन्द्रियोंसे कर्म्मकरताहै परन्तु उसमें आसक्त नहीं होता और बाहरदृष्टिसे आसक्त भासता है परन्तु भीतर आसक्त नहीं होता। वह जो बाहर आसक्त दृष्टि नहीं आता परन्तु चित्त आसक्त है वह मग्नहो डूबताहै—जैसे शुद्ध मणि कीचड़में दृष्टिआती है तौ भी उसको कुछ कलङ्क नहीं और जो बीच से खोटी है वह यदि बाहरसे उज्ज्वलभी भासती तौभी सकलङ्कहै; तैसेही जो चित्त से आसक्तहै वह आसक्तहै और जो चित्तभावसे आसक्तनहीं वह आसक्तनहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप, नित्य, शुद्ध और परमानन्द स्वरूप है। जिस पुरुषको अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञानहै उसको विस्मरण नहीं होता। हे रामजी! जिसके शरीरसे अहंभाव उठगयाहै और इन्द्रियोंसे कर्म करता है तो वह करताभी नहीं करता और जिसके देह में अहंभाव है वहनहीं करता भी करता है। जैसे किसीको चिरकाल के उपरान्त बांधव मिला विस्मरण नहीं होता तैसेही जिसने अपना स्वरूप जाना है उसको वह फिर विस्मरण नहीं होता। हे रामजी! जिनको शुद्ध स्वरूपका सम्यक् ज्ञान होताहै उनको भ्रान्तिरूप जगत् नहीं भासता—जैसे रस्सी में भ्रमसे सर्प भासता है पर जब भ्रम निवृत्त हुआ तब ज्यों की त्यों रस्सी भासती है सर्प नहीं भासता। जैसे मरुस्थल में जल बुद्धि निवृत्त हुये फिर जलबुद्धि नहीं होती, तैसेही आत्माके जानेसे देहभाव नहीं होता। जैसे पहाड़से नदी उतरती है सो फिर पहाड़पर नहीं चढ़ती और सुवर्णका खोट अग्निसे जला हुआ चाहे कीचड़में डालिये तौभी खोटा नहीं होता तैसेही जब हृदय की चिद्ग्रंथि टूटी तब गुणोंके व्यवहारमें गांठनहीं पड़ती अर्थात् बन्धवान्नहीं होता। जैसे वृक्षसे टूटाफल फिरनहीं लगता तैसेही जिसका देहाभिमान टूटाहै वह फिर

नहीं होता और स्वरूपमें अभिमान नहींहोता । जैसे लोहेके हथौड़ेसे परकाचूर्ण किया तो फिर वह नहीं फुरता । जिसपुरुषने अविद्याको जाना है वह फिर उसकी संगति नहीं करता और जिस ब्राह्मणने चाण्डालोंकीसभा जानी फिर वह उनकी संगति नहीं करता, तैसेही जब आत्मविचार से मनको चूर्णकिया तब फिर वह नहीं फुरता । जिस पुरुषने अविद्यारूप जगत् को जानाहै वह फिर जगत्के पदार्थों में आसक्त नहीं होता । हे रामजी ! विष जो मधुरजलसे मिलाहो तो जब तक जाना नहीं तब तक उसको कोई पानकरता है और जब उसको जाना तब फिर पान नहीं करता तैसेही जब तक इस संसारको ज्योंका त्यों नहीं जाना तब तक इसके पदार्थोंकी इच्छाकरताहै पर जब जाना कि, यह मायामात्र है तब इसकी इच्छा नहीं करता । हे रामजी ! सुन्दरस्त्री जो नाना प्रकारके वस्त्र और भूषण सहित दृष्टिआती हैं उनको ज्ञानवान् जानता है कि, ये असत् मांस, रुधिर, आदिककी पुतलियां बनी हैं और कुछ नहीं और जो उनकी इच्छा त्यागता है तो वह निवृत्त होजाता है । जैसे मूर्त्तिपर नील, पीत, श्यामरंग लिखेहोते हैं तैसेही उसके वस्त्र और केश हैं । हे रामजी ! जिस पुरुष को आत्माका साक्षात्कार होता है उसको अवस्तु में वस्तु बुद्धि नहीं होती । अवस्तु में वस्तु बुद्धि तब होती है जब वस्तुका विस्मरण होता है सो ज्ञानवान् को तो सदा स्वरूप का स्मरण है उसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि कैसे हो ? जिसको आत्मबुद्धि हुई है उसको विस्मरण नहीं होता । जैसे किसी पुरुषने किसीके पास गुड़ रक्खा हो और वह खाजावे तो उसको वह दण्डआदि दे सकेगा परन्तु उसका रस दूरनहीं कर सक्ता, तैसेही जिसको आत्माका अनुभव हुआ है उसको कोई कुछ नहीं कर सक्ता । हे रामजी ! जैसे कुलटा नारीका किसी पुरुषसे चित्त लगता है तो वह गृहका कार्य्य भी करती है परन्तु चित्त उसका सदा उसमेंही रहता है; तैसेही ज्ञानवान् क्रिया करताहै परन्तु उसका चित्त सदा आत्मपद में रहता है और जैसे परव्यसनी नारीको उस का भर्त्ता दण्डभी करता है पर तौभी स्पर्शका सुख उसके हृदयसे दूर नहीं करसक्ता, तैसेही जिसको आत्म अनुभव हुआ है उसको कोई दूर नहीं करसक्ता और जो देवता और दैत्य दूर नहीं करसक्ते तो औरोंकी क्या वार्त्ता है । जो बड़े सुख अथवा दुःखका अनुभव प्रवाह आनपड़े तौभी उनको खण्डन नहीं करसक्ता; कर्त्ता हुआ भी वह अकर्त्ता हुआ है । जैसे परव्यसनी नारी परपुरुष के संयोग से दुःख पाती है परन्तु उसको स्पर्शके सुखका अनुभव हुआहै उसके सङ्कल्पसे अखण्ड अनुभव करती है उससे उसको दुःख नहीं भासता; तैसेही जिसको आत्मसुख हुआ है उसको दुःखसुख और कुछ नहीं भासता हे रामजी ! सम्यक् ज्ञानसे जिसकी अविद्या नष्ट हुईहै वह दुःख नहीं देखता । जो उसके अङ्ग काटे जावें तौभी उसके दुःख नहीं होता

और शरीर के नष्टहुये वह नष्ट नहीं होता सुख दुःख उसके नष्ट होगये हैं और सदा वह आत्मपदमें निश्चय रखता है। संकटवान् भी वह दृष्ट आताहै परन्तु उसको संकट कोई नहीं। वह वनमें रहे अथवा गृहमें रहे; व्यवहार करे अथवा समाधिकरे; वह सदा ज्योंका त्यों रहता है और उसको खेदकष्ट किसी प्रकारसे नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेनीरास्पदमौनविचारोनामैकोनसप्ततितमस्सर्गः६९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! राजाजनक राजव्यवहार करता था परन्तु आत्मपद में स्थित था इससे उसको कलङ्क न हुआ और सदा विगतज्वरही रहा; तुम्हारा पितामह राजादिलीप भी सर्व आरम्भों को करतारहा परन्तु रागद्वेष को न प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होके चिरपर्यंत पृथ्वीकाराज्य करतारहा; राजाअज नानाप्रकारके युद्ध और राजव्यवहार की पालना करताहुआ सदा जीवन्मुक्त स्वभाव में स्थित था; राजामान्धाता नानाप्रकारकी युद्धचेष्टा करता था परन्तु सदा परमपदमें निश्चितरहा और कदाचित् मोहको न प्राप्त हुआ; राजाबलि महात्यागी पाताल में राजव्यवहार को करता भी दृष्टआया परन्तु स्वरूपके ज्ञानसे सदा शांतरूप जीवन्मुक्त होकर विचरता था; नभचर दैत्योंका राजा सदा नानायुद्ध आदिक क्रिया में रहा करता था और देवताओं के साथ सदाविरोध रखता था परन्तु हृदय में उसके कुछ ताप न था इन्द्रने युद्ध में वृत्रासुर दैत्यको मारा परन्तु सदा शीतल रहा कदाचित् क्षोभको न प्राप्त हुआ और दैत्योंका राजाप्रह्लाद पाताल में राज्यकरतारहा परन्तु हृदय में उसे कुछ क्षोभ न आया। हे रामजी! संबरनामकदैत्य अपनी सृष्टिके रचनेको उदय हुआ पर रचने में बन्धवान् न था वह सदासांबरीमाया परायणरहा और मायासे एकमायावी रूप होकर स्थितहुआ। हे रामजी! यहसंसारजो सांबरीमायारूपहै उसको सांबरीवत् त्यागकर अपने स्वरूपमेंसे स्थितहो। विष्णु भगवान् सदा दैत्योंको मारते और युद्ध करते रहतेहैं पर हृदयमें अलेप बुद्धिहै इससे सदासुखी जीवन्मुक्त हैं और मुसलनाम दैत्यने विष्णु से युद्धमें शरीर छोड़ा परन्तु हृदयमें उसे देहसे कुछ संबन्ध न था इससे जीवन्मुक्त सुखीरहा और पीड़ाको न प्राप्त हुआ। हे रामजी! सर्व्व देवताओं का मुख अग्नि है सो यज्ञ लक्ष्मीको चिरकाल पर्य्यन्त भोगता है परन्तु ज्ञानवान् है इससे क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है; देवता सदा चन्द्रमाकी किरणों से अमृत पानकरते हैं परन्तु चन्द्रमा को कुछ क्षोभ नहीं होता और देवता गुरु बृहस्पतिने स्त्रीकेलिये चन्द्रमा से युद्ध किये और देवताओं के निमित्त नानाप्रकार के कर्म करते हैं परन्तु राग द्वेष को नहीं प्राप्त होते इससे जीवन्मुक्त हैं। हे रामजी! दैत्योंके गुरु शुक्रजी दैत्योंके निमित्त सदा यत्नकरते रहतेहैं और लोभीकीनाईं अर्थ चिन्तवते हैं परन्तु जीवन्मुक्त हैं। जो हृदयसे सदा शीतल रहता है वह कदाचित् खेद नहीं

पाता । पवन प्राणियों के अङ्गोंको चिरकाल फेरता है और चेष्टाकरताहै पर खेदको नहीं प्राप्त होता इससे जीवन्मुक्त हैं; ब्रह्मा सदा लोकोंको उत्पन्न करता है और प्रलयपर्य्यन्त इसी क्रियामें रहता है परन्तु उसे स्वरूपका साक्षात्कारहै इससे जीवन्मुक्त है; विष्णुभगवान् युद्धादिक द्वन्द्वों में रहते हैं और जरा मृत्यु आदिक भावों को प्राप्त होते हैं परन्तु सदा मुक्तस्वरूप हैं; सदाशिव त्रिनेत्र अर्द्धाङ्गधारी हैं परन्तु हृदय में संसक्तनहीं हैं इससे जीवन्मुक्त हैं; गौरी मोतियोंकी माला कण्ठ में धारती हैं और त्रिनेत्र को सदा मालावत् कण्ठ के रखती हैं परन्तु हृदय से शीतल रहती हैं इससे जीवन्मुक्त हैं, स्वामिकार्त्तिक दैत्यों के साथ युद्ध करते रहे परन्तु ज्ञानरूपी रत्नों के समुद्र थे और हृदयसे शीतल थे सदाशिवके भृङ्गीगण अपना रक्तमांस माता को देतेथे परन्तु धैर्य्य में थे इससे खेदको न प्राप्तहुये और नानाप्रकार की क्रिया करते थे परन्तु जीवन्मुक्त थे इससे सदा सुखी थे नारदमुनि सदा मुक्तस्वभाव हैं और सदा जगत्की क्रियाजाल में रहते हैं परन्तु क्षोभ नहीं पाते इससे जीवन्मुक्त हैं; जीवन्मुक्त और मनमौन जो विश्वामित्र हैं वे वेदोक्तकर्म्म करते फिरते रहते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं; सूर्य्यभगवान् दिनको प्रकाश करते हैं और फिरते रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्त और सदासुखी रहते हैं; यम सदा जीवोंको दण्ड करते रहते हैं और क्षोभमें रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्त हैं; इन्द्र कुबेर से आदिलेकर त्रिलोकी में बहुत जीवन्मुक्त हैं जो व्यवहारमें शीतलहैं । कोई मूढ़ शिलावत् हो रहे हैं; कोई परमबोधवान् वन में जा स्थित हुये हैं–जैसे भृगु, भारद्वाज और विश्वामित्र; बहुतेरे चिरकालपर्यंत राजपालन करते रहते हैं–जैसे जनक, मान्धाता आदि; कोई आकाश में बड़ी कांति धारकर बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र, सप्तर्षि आदिक स्थित हुये हैं; कोई स्वर्ग में अग्नि, वायु, कुबेर, यम, नारदादिक हैं; पातालमें जीवन्मुक्त प्रह्लादादिक हुयेहैं कोई देवतारूप धारकर आकाश में स्थित हैं कोई मनुष्यरूप धारकर मनुष्यलोकमें स्थित हैं और कोई तिर्यग्योनिमें स्थित हैं उनको सर्वथा, सर्वप्रकार, सर्व में सर्वात्मारूपही भासता है कुछ भिन्न नहीं भासता । नानाप्रकार का व्यवहार है सो भी अद्वैत से किया है । हे रामजी ! दिव्य विष्णु धाता, सर्व ईश्वर और शिवआदिक सब आत्माकेही नाम हैं। वस्तुरूप में जो अवस्तु है और अवस्तु में जो वस्तु है सो अवस्तु से वस्तु तब निकलताहै जब युक्तिहोती है और वस्तु से अवस्तु भी युक्तिसेही दूरहोती है । जैसे अवस्तुरूप रेतसे सुवर्ण युक्तिसे निकलता है और वस्तुरूपी सोने से मैल युक्तिसे दूरहोताहै तैसेही अवस्तुरूप देहादिकों में वस्तुरूप आत्मा शास्त्रों की युक्तिसे पाता है और वस्तुरूप आत्मासे दृश्यरूप अवस्तु भी शास्त्रोंकी युक्तिसे दूरहोती है । हे रामजी ! जो पापों से भय करता है वह जब धर्ममें प्रवर्तता है तब निर्भय होताहै और दुःखों के भयसे जीव आत्मपदकी ओर

प्रवर्त्तताहै तब भावनाके वशसे असत्‌से सत्‌पाताहै। ध्यान और योगभी शून्यहै परंतु यत्नके बलसे उससे सत्‌पाता है और जो असत्‌है वह उदयहोकर सत्‌भासती है। जैसे बाजीगरकी बाजी से शशेके सींग भासिआते हैं तैसेही आत्मामें असद्रूप जो जगत्‌है सो अज्ञान से दृढ़हो भासता है परन्तु कल्पके अन्तमें यहभी नष्ट होजाताहै। हे रामजी! यह जो सूर्य्य, चन्द्रमा, इन्द्रादिकहैं उनके नाम भिन्न रहेंगे और बड़े सुमेरु आदिक पर्व्वत,समुद्र और भावपदार्थ जो उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ जो भासतेहैं वे सब नाशहोजावेंगे क्योंकि,सब मायामात्र हैं,कोई न रहेगा। ऐसे विचार करके इनके भाव अभाव में हर्ष शोक मत करो और समताभाव को प्राप्तहो। हे रामजी! जो असत् है वह सत् की नाईं भासता है और जो सत् है सो असत्‌की नाईं भासता है, इस से यथार्थविचार कर सत्‌रूप आत्मपद में स्थितहो रहो और असत्‌रूप जगत् की आस्था त्याग के समताभाव को ग्रहण करो। इस लोकमें जो अविवेक मार्ग में विचरता है वह मुक्त नहीं होता। इसप्रकार कोटिजीव संसारसमुद्रमें डूबते हैं और जो विवेकमें प्रवर्त्ततेहैं वे मुक्तहोते हैं। हे रामजी! जिसका मन क्षयहुआ है उसको मुक्तरूप जानो और जिसकामन क्षय नहीं हुआ वह बन्धनमें है। इस से जिसको सर्वदुःखसे मुक्तिकी इच्छाहो सो आत्मविचारकरे उसीसे सब दुःख नाश होजावेंगे। हे रामजी! दुःखोंका मूल चित्त है और जबतक चित्तहै तबतक दुःखहै; जब चित्त नष्ट होजाता है तब दुःख सब मिट जाते हैं। हे रामजी! जब आत्मज्ञान होता है तब चित्तका अभाव होजाता है; दुःख सब मिटजाता है और राग, इच्छा सब भय मिटकर केवल शान्तरूप होताहै। जनक आदिक जो जीवन्मुक्त हुये हैं सो विराग और निस्सन्देह होकर महाबोधवान् व्यवहारभी करतेरहे परन्तु सदा शीतलचित्त रहे। इससे तुमभी विवेकसे चित्तको लीन करो। हे रामजी! मुक्ति भी दो प्रकारकी है—एक जीवन्मुक्ति है और दूसरी विदेहमुक्ति। जो पुरुष सब पदार्थों में असंसक्त है और जिसका मन शांत हुआ है वह मुक्त कहाता है और जिस पुरुषका ज्ञानसे सब पदार्थों में स्नेह नष्ट हुआ है और व्यवहार करता दृष्ट आता है तो भी शीतलचित्त है वह जीवन्मुक्त कहाता है। जो पुरुष सर्वभाव अभाव पदार्थोंको त्यागकर केवल अद्वैत तत्त्वको प्राप्त हुआ है और जिसकी शरीर आदि कोई क्रिया दृष्ट नहीं आती वह विदेहमुक्त कहाता है जिसका स्नेह पदार्थोंसे दूर नहीं हुआ वह मुक्तिके अर्थभी यत्न करताहै तो भी बन्ध कहाताहै जो युक्तिपूर्वक यत्न करताहै उसको दुस्तर भी सुगम होजाताहै और जो युक्तिसे रहित यत्न करता है उसको गोपद भी समुद्र होजाता है। हे रामजी! जिन्हों ने आत्मा से आत्मविचार किया है उसको विस्तृत जगत् समुद्र गोपद होजाता है और अज्ञानी को गोपदभी दुस्तरहोजाता; उसे कोई इष्ट अनिष्ट अल्प भी प्राप्त होताहै तो उससे

डूब जाताहै निकल नहीं सक्ता। उसको गोपदभी समुद्रहै । ज्ञानीको अत्यन्त विभूति और ऐश्वर्य मिले अथवा उसका अभाव होजावे तौभी वह उसमें राग द्वेष करके नहीं डूबता। हे रामजी ! अपने प्रयत्न के बल सब होताहै; जो कोई प्रधान हुआ है वह प्रयत्नरूपी वृक्षके फलसेही हुआ है। आत्मपदकी प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्ष का फल है। इससे और उपाय त्यागकर आत्मपदकी प्राप्तिका प्रयत्न करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेमुक्तामुक्तविचारोनामसप्ततितमस्सर्ग्गः ७० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ जगज्जाल है वह सब आत्मा ब्रह्मका आभासरूप है; अज्ञानसे स्थिरताको प्राप्त हुआ है और विवेकसे शान्त होजाता है। ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्‌रूपी आवृत जो फुरते हैं उनकी संख्या कोई नहीं करसक्ता। आत्मरूपी सूर्य्य के जगतरूपी त्रसरेणु हैं। हे रामजी ! असम्यग्दर्शनही जगत् की स्थिति का कारण है और सम्यग्दर्शनसे शान्त होजाता है—जैसे मरुस्थल में असम्यग्दर्शनसे जल भासताहै और सम्यग्दृष्टि से अभाव होजाताहै। हे रामजी ! संसाररूपी अपार समुद्रसे युक्ति और आत्म अभ्यास विना तरना कठिन है। मोहरूपी जलसे वह पूर्ण है; मरणरूपी उस में आवर्त्त है; पुण्यरूपी जग है, वड़वाग्नि इसके अंगों में नरक समान है; तृष्णारूपी भँवर है; इन्द्रियां और मनरूपी तेंदुये और मच्छ हैं; क्रोधरूपी सर्प हैं; जीवरूपी नदियां हैं उस में प्रवेश करती हैं; और जन्ममरणरूपी आवृतचक्र हैं उन से जो तरजाता है वही पुरुष है। स्त्रियां जो सुन्दर लगती हैं उन के महाबलवान् नेत्रहैं जिनसे पहाड़ोंकोभी खींचसक्ती हैं और मोतियों कीनाईं दांत इत्यादिक जो सुन्दर अङ्गहैं वे महादुःखके देनेवाले वड़वाग्नि की नाईं हैं। जो इनसे तरजाताहै वही पुरुष है। हे रामजी ! जो जहाज और मल्लाहों के होते भी इनको नहीं तरते उनको धिक्कार है। जहाज और मल्लाह कौनहैं सो सुनो। जिस मनुष्य के शरीर में कुछ विचार सहित बुद्धिहै वही जहाजहै और सन्तरूपी मल्लाहहै। इन को पाकर जो संसारसमुद्र से नहीं तरते उनको धिक्कार है। ऐसे संसारसमुद्र को ग्रहण कर जो तरगया है उसी को पुरुष कहते हैं। हे रामजी ! जिस पुरुष ने आत्मविचार में बुद्धि लगाई है वह तरजाता है अन्यथा कोई नहीं तरसक्ता। जिसको आत्म अभ्यास दृढ़ हुआ है वह तरसक्ता है। हे रामजी ! प्रथम ज्ञानवान् पुरुषों के साथ विचार और बुद्धि से संसारसमुद्र को देखो। जब तुम इसको ज्यों का त्यों जानोगे तब विलास और क्रीड़ा करने योग्य होगे। हे रामजी ! तुम तो भगवान् हो परन्तु बोधके विचार से संसारसमुद्र से तरजाओ। तुम तो जवान हो तुम्हारे पीछे और तुम्हारे स्वभाव के विचार से और भी संसारसमुद्र से तरजावेंगे। जो इस शुभमार्ग को त्यागकर विषयमार्गकी ओर जाते हैं वे संसारसमुद्र में डूबे हैं। हे रामजी ! ये

जो विषयभोग हैं वे विषरूप हैं; जो इनको सेवेगा वह नष्ट होगा परन्तु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है उसको यह; जैसे गारुड़मन्त्र पढ़नेवाले को सर्प दुःख नहीं देसक्ते तैसेही दुःख दे नहीं सक्ते। जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है वह विभूतिमान् है बल, वीर्य और तेज यह तीनों तत्त्वके साक्षात्कारसे चढ़आतेहैं। जैसे वसन्तऋतु के आये से रस, फूल, फल सब सुन्दर हो आतेहैं। हे रामजी! जिसे ज्ञानकी धर्मलक्ष्मी प्राप्त भई है वह पूर्ण अमृततुल्य शीतल, शुद्ध और सम प्रकाशरूपहै। यह लक्ष्मी पाकर विदितवेद स्थित हो रहतेहैं॥

इति श्रीयोगवा०उपशमप्र० संसारसागरयोगोपदेशोनामैकसप्ततितमस्सर्गः ७१॥

रामजी ने पूंछा, हे मुनीश्वर! तत्त्ववेत्ताके लक्षण संक्षेपसे फिर कहिये और जिन को तत्त्वका चमत्कार हुआ है उनकी वृत्ति उदार वाणीसे कहिये। ऐसा कौन है जो आप के वचन सुनके तृप्तहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्त के लक्षण मैंने तुमको बहुत प्रकारसे आगे कहे हैं पर अब फिर भी सुनो। हे महाबाहो! संसार को ज्ञानवान् सुषुप्तिकी नाईं जानता है और सब इषणा उसकी नष्ट होजाती हैं। वह सब जगत् को आत्मरूप देखता है और कैवल्य भावको प्राप्तहोता है। संसार उसे सुषुप्तिरूप होजाताहै और आत्मानन्दमें घूर्मरहताहै वह देताहै परन्तु अपने जानने से किसी को नहीं देता। और लोकदृष्टि में प्रत्यक्ष हाथोंहाथ ग्रहण करता है परन्तु अपनी दृष्टि से कुछ नहीं लेता ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदार आत्मा है वह यन्त्री की पुतलीवत् चेष्टा करता है जैसे यन्त्रीकी पुतली अभिमान से रहित चेष्टा करती है तैसेही ज्ञानवान् अभिमान से रहित चेष्टा करताहै देखता, हँसता, लेता, देताहै परन्तु हृदयसे सदा शीतल बुद्धि रहता है। वह भविष्यत् का कुछ विचार नहीं करता; भूतका चिन्तन नहीं करता और वर्त्तमानमें स्थिति नहीं करता। सबकामों में वह अकर्त्ता है, संसार की ओरसे सो रहा है और आत्माकी ओर जाग्रत् है। उस ने हृदय से सबका त्यागकिया है; बाहर सब कार्यों को करता है और हृदयमें किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। बाहर जैसे प्राकृत आचार प्राप्त होताहै उसे अभिमान से रहित करता है द्वेष किसी में नहीं करता और सुख दुःख में पवनकी नाईं होताहै। एवम् भ्रम को त्यागकर उदासीनकीनाईं सबकार्य्य करताहै; न किसीकी वाञ्छा है और न किसी में खेदवान् है। बाहर से सब कुछ करता दृष्टआता है पर हृदय से सदा असङ्ग है। हे रामजी! वह भोक्ता में भोक्ताहै; अभोक्ता में अभोक्ता है; मूर्खों में मूर्खवत् स्थित है; बालकों में बालकवत्; वृद्धों में वृद्धवत्; धैर्यवानोंमें धैर्यवान्; सुखमें सुखी; दुःखमें धैर्यवानहै। वह सदा पुण्यकर्त्ता, बुद्धिमान्, प्रसन्न, मधुरवाणीसंयुक्त और हृदयसे तृप्त है उसकी दीनता निवृत्त हुई है, वह सर्व्वथा कोमलभाव चन्द्रमाकी नाईं शीतल और

पूर्ण है। शुभकर्म्म करने में उसे कुछ अर्थ नहीं और अशुभ में कुछ पापनहीं; ग्रहण में ग्रहणनहीं और त्यागमें त्यागनहीं, वह न बन्धहै, न मुक्तहै और न उसे आकाशमें कार्य्य है, न पाताल में कार्य्य है, वह यथावस्तु और यथादृष्टि आत्माको देखता है, उसको द्वैतभाव कुछ नहीं फुरता और न उसको बन्ध मुक्तके निमित्त कुछ कर्त्तव्यहै क्योंकि, सम्यक्ज्ञानसे उसके सब सन्देह जलगये। जैसे पेटी से छूटा पक्षी आकाश में उड़ता है तैसेही शङ्कासे रहित उसका चित्त आत्म आकाशको प्राप्त हुआ है। हे रामजी! जिसका मन संसार भ्रमसे मुक्तहुआ है और जो समरस आत्माभावमें स्थितहै उसको इष्ट अनिष्ट में कुछ राग द्वेषनहीं होता; वह आकाशकी नाईं सब में सम रहताहै। जैसे पलने में बालक अभिमानसे रहित अङ्ग हिलाता है तैसेही ज्ञानीकी चेष्टा अभिमानसे रहित होती है और जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त होजाता है तैसेही आत्मानन्द में ज्ञानी घूर्म होजाताहै और द्वैतकी संभाल उसको कुछ नहीं; हेयोपादेय बुद्धिसे रहित होता है। हे रामजी! वह सबको सर्व प्रकार ग्रहण करता है और त्याग भी करता है परन्तु हृदयसे ग्रहण त्याग कुछ नहीं करता। जैसे बालकों को ग्रहण त्यागकी बुद्धि नहीं होती तैसेही ज्ञानीको नहीं होती और न उसको सब कार्यों में राग द्वेषही फुरता वह जगत्के पदार्थोंको न सत् जानकर ग्रहण करता है और न असत् जानकर त्याग करता है; सबमें एक अनुस्युत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्टमें सुख बुद्धि करता है और न अनिष्टमें द्वेष बुद्धि करता है। हे रामजी! जो सूर्य्य शीतल होजावें; चन्द्रमा उष्ण होजावें और अग्नि अधोको धावे तौभी ज्ञानी को कुछ आश्चर्य नहीं भासता। वह जानताहै कि, सब चिदात्माकी शक्ति फुरती है वह न किसी पर दयाकरताहै और न निर्दयता करताहै; न लज्जा करताहै, न निर्लज्जहै; न दीन होताहै, न उदार होता है; न सुखी होता है, न दुःखी होता है; और उसे न हर्ष है, न उद्वेग है; वह सब विकारों से रहित शुद्ध अपने आपमें स्थितहै। जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है तैसेही वहभी निर्मल भावमें स्थित है और जैसे आकाश में अंकुर नहीं उदय होता तैसेही उसको राग द्वेष उदय नहीं होता। हे रामजी! ऐसा पुरुष सुख दुःखको कैसे ग्रहण करे? उसको जगत् जाल ऐसे भासता है जैसे जलमें तरङ्ग। ऐसे जानकर तुम भी अपने स्वभाव में स्थितहो। हे रामजी! जैसे स्वप्न में एक निमेष में स्वप्नसृष्टि फुरआती है और एकही क्षण में नष्ट होजाती है, तैसेही जाग्रत् में भी सृष्टि उपज आती है और लीन होजाती है। जो कुछ इच्छा, अनिच्छा, दुःख, सुख, शोक, मोह आदिक विकार हैं वे सब मन में फुरते हैं; जहां मन होताहै वहां विकारभी होता है। जैसे जहां समुद्र होताहै वहां तरङ्गभी होताहै तैसेही जहां मन होता है वहां विकारभी होताहै। और जहां चित्तका अभावहै वहां विकारों का भी अभाव है। जब तक चित्त

फुरता है तब तक जगत् भ्रम होता है और जब विचाररूपी सूर्य्य के तेजसे मनरूपी बरफ़का पुतला गलजाता है तब आनन्द होताहै। तब सुख दुःखकी दशा शान्तहोजाती है और जब सुख दुःखका अभाव हुआ तब ग्रहण त्याग भी मिटजाता है और इष्ट अनिष्ट वाञ्छित नष्ट होजाते हैं। जब ये नष्ट होजाते हैं। तब शुभअशुभभी नहीं रहते और जब शुभ अशुभ न रहे तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट होजाताहै और भोगों की इच्छाभी नष्ट होजाती है। जब भोगोंकी इच्छा नष्ट होजाती है तब मनभी निराश पदमें लीन होजाता है। हे रामजी! जब मूलसे मन नष्ट हुआ तब मनमें जो संसारके सङ्कल्प हैं वे कहांरहे? जैसे तिलों के जले से तेल नहीं रहता तैसेही मन में सङ्कल्प विकल्प नहीं रहते तब केवल शान्त आत्माही शेष रहता है। जैसे मन्दराचलके क्षोभ मिटेसे क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होताहै तैसेही चित्त शान्त होताहै। हे रामजी! इससे भाव में अभावकी भावना दृढ़ करो और स्वरूप का अभ्यास करो। जैसे शरत्काल का आकाश निर्म्मल होता है तैसेही कलना को त्यागकर महात्मा पुरुष निर्म्मल होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तवर्णनंनामद्विसप्ततितमस्सर्गः ७२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जलमें द्रवतासे चक्र आवृत होते हैं सो असतही सत्होकर भासते हैं तैसेही चित्त के फुरनेसे असत् जगत् सत्हो भासता है। और जैसे नेत्रोंके दुखने से आकाशमें तरवरे मोरके पुच्छवत् मुक्तमालाहो भासते हैं सो असतही सत् भासते हैं तैसेही चित्तके फुरनेसे जगत् भासता है। जैसे बादलों के चलनेसे चन्द्रमा चलता दृष्टि आताहै तैसेही चित्तके फुरने से जगत् भासता है। रामजी बोले, हे भगवन्! जिससे चित्त फुरता है और जिससे अफुर होता है वह प्रकार कहिये कि, उसका मैं उपाय करूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बरफ़में शीतलता; तिलोंमें तेल, फूलों में सुगन्ध और अग्निमें उष्णता होतीहै तैसेही चित्तमें फुरना होता है। चित्त और फुरना दोनों एक अभेद वस्तु हैं; दोनों में जब एक नष्टहो तब दोनों नष्ट होजाते हैं। जैसे शीतलता और श्वेतता के नष्टहुये बरफ नष्ट होजाता है तैसेही एक के नाश हुये दोनों नाश होते हैं। इसलिये चित्त के नाशके दो क्रम हैं– योग और ज्ञान। चित्तकी वृत्तिके रोकने को योग कहते हैं और सम्यक् विचारनेका नाम ज्ञान है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! वृत्तिका निरोध किस युक्तिसे होताहै और प्राण, अपान पवन क्योंकर रोकेजाते हैं कि, जिस योगसे अनन्त सुख और सम्पदा प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस देह में जो नाड़ी हैं उनमें प्राण वायु फिरता है–जैसे पृथ्वी पर नदियों का जल फिरता है। वह प्राणवायु एकही है पर स्पन्दके वशसे नानाप्रकारकी विचित्र क्रियाको प्राप्त होता है उससे अपान आ-

दिक संज्ञापाता है । योगीश्वरों की कल्पना हैं कि, जैसे पुष्प में सुगन्ध और बरफ़में श्वेतता अभेद है और आधार आधेय एकरूप है तैसेही प्राण और चित्त अभेद रूप है । जब भीतर प्राणवायु फुरती है तब चित्तकला फुरकर जो संकल्प के सम्मुख होती है उसीकानाम चित्त है । जैसे जल द्रवीभूत होता है और उसमें लहर और चक्र फुरआते हैं तैसेही प्राणों से चित्त फुरआता है । चित्तके फुरनेका कारण प्राणवायुही है जब प्राणवायुका निरोध होता है तब निश्चयकरके मनभी शान्तहोताहै और मन के लीनहुये संसारभी लीन होजाता है—जैसे सूर्य्यके प्रकाश के अभाव हुये रात्रि में मनुष्यों का व्यवहार शांत होजाता है । रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह जो सूर्य्य और चन्द्र निरन्तर आगमन करते हैं तो देहरूपी गृहमें प्राणवायुका रोकना किस प्रकार होता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सन्तजनोंके संग, सत्शास्त्रों के विचार और विषयके वैराग्यसे योगाभ्यास होता है । प्रथम जगत् में असत् बुद्धि करनी चाहिये और वाञ्छित जो अपना इष्टदेवहै उसका ध्यान करना चाहिये । जब चिरकाल ध्यान होता है तब एक तत्त्वका अभ्यास होता है उससे प्राणोंका स्पन्द रोकाजाता है । रेचक, पूरक और कुम्भक जो प्राणायाम हैं उनका जब अखेद चित्त होकर अभ्यास दृढ़करे और एक ध्यानसंयुक्त हो उससे भी प्राणोंका स्पन्द रोकाजाता है । ॐकारका उच्चार करनेसे ऊर्ध्व उसकी जो सूक्ष्म ध्वनिहोती है तो प्रथम शब्द बड़ीध्वनि से होताहै और फिर सूक्ष्मध्वनि शेष रहती है उसमें चित्तकी वृत्ति लगावे तो सुषुप्तिरूप अवस्था में वृत्ति तद्रूप होजाती है तभी प्राणस्पन्द रोकाजाता है । रेचक प्राणायामके अभ्यास से विस्तृत प्राणवायु से शून्यभाव आकाश में जाय लीन होता है तबभी प्राणस्पन्द रोकाजाता है । कुम्भक के अभ्यास के बलसे भी प्राणवायु रोकाजाता है । तालुमूल के साथ यत्नसे जिह्वाको तालुघंटासे लगा खेचरी मुद्रासे वायु ऊर्ध्वरंध्र को जाती है और ऊर्ध्वरंध्रमें गयेसे भी प्राण वायुका स्पन्द रोकाजाता है । नासिका के अग्रमें जो द्वादश अंगुल पर्यंत अपानरूपी चन्द्रमा का निर्मल स्थान आकाश में है उसको ज्योंकात्यों देखे तौभी प्राणस्पन्द रोकाजाता है । तालुके द्वादश अंगुल ऊर्ध्वरंध्रका अभ्यास होतो उसके अन्त में जब प्राणोंको लगावे तब उस संवित् में प्राणों का फुरना नष्ट होजाता है । जो भ्रुवमध्य त्रिपुटी में प्रकाश को त्यागकर जहां चेतनकला रहती है वहां वृत्ति लगावे तो उससे भी प्राणकला रोकीजाती है । जो सर्व वासना को त्यागकर हृदय आकाशमें चेतन संवित्का ध्यानकरे तो भी चिरकालके अभ्यास से प्राणस्पन्द रोकाजाता है । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जगत् के भूतोंका हृदय क्या कहाताहै जिस महा आदर्श में सर्वपदार्थ प्रतिबिम्बित होजाता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जगत् के भूतों के दो हृदय हैं—एक ग्रहणकरने योग्य है और दूसरा त्यागने योग्य । नाभिसेजो दश

अंगुल ऊर्ध्व है वह त्यागने योग्यहै परिच्छिन्न भावसे जो देहके एक स्थानमें स्थितहै और उसमें जो संवित्‌मात्र ज्ञान स्वरूप अनुभव से प्रकाशता है वह मनुष्यको ग्रहण करने योग्य है जो भीतर बाहर व्याप रहाहै और वास्तवमें भीतर बाहरसे भी रहित है वही प्रधान हृदय है और सर्व पदार्थों का प्रतिबिम्ब धारनेवाला आदर्श है। सर्व सम्पदा का भण्डार और सब जीवोंका संवित् हृदय वही है; एक अङ्गका नाम हृदय नहीं। जैसे जलमें एक पुरातन पत्थर पड़ाहो तो वह जल नहीं होजाता तैसेही संवित्‌मात्रके निकट संवित्‌मात्र तो नहीं होता? यह जड़रूप है और आत्मा चेतन आकाश है। इस प्रधान हृदय से बल करके संवित्‌मात्रकी ओर चित्त लगावे तब प्राण स्पन्दभी रोका जावेगा। हे रामजी! यह प्राणोंका रोकना मैंने तुमसे कहा है और भी शास्त्रों में अनेक प्रकारसे कहा है पर जिस जिस प्रकार गुरु के मुखसे सुने उसी प्रकार अभ्यास करे तब प्राणों का निरोध होता है; गुरुके उपदेश से अन्यथा सिद्ध नहीं होता। जिसको अभ्यास करके निरोध सिद्ध हुआ है वह कल्याण मूर्ति है और कोई कल्याण मूर्ति नहीं होता। हे रामजी! अभ्यास करके प्राणायाम होता है और वैराग्य की दृढ़तासे वासना क्षय होता है अर्थात् वासना रोकी जाती है। जब दृढ़ अभ्यासकरे तब चित्तअचित्त होजाता है। हे रामजी! भृकुटीके दश अंगुल पर्यन्त जो वायु जाता है उसका वारंवार जब अभ्यास करते तब वह क्षीण होजाता है और खेचरीमुद्रा अर्थात् तालुसे जिह्वा लगाकरके जो अभ्यास करे तौभी प्राण रोके जाते हैं। इसके अभ्याससे चित्तकी व्याकुलता जाती रहती है, और परम उपशमको प्राप्त होता है। जो यह अभ्यास करता है वह पुरुष आत्मारामी होता है, उसके सबशोक दूर होजाते हैं और हृदयमें आनन्दकी प्राप्ति होती है। इससे तुमभी अभ्यास करो। जब प्राणस्पन्द मिट जाता है तब चित्तभी स्थित होजाता है; उसके पीछे जो पद है सोही निर्वाणरूप है। हे रामजी! जब प्राणस्पन्द मिट जाते हैं तब चित्तभी स्थित होजाताहै। और जब चित्त स्थित हुआ तब वासना नष्ट होजाती हैं; जब वासना नष्ट होजाती है तब मोक्षकी प्राप्ति होती है। जब तक चित्त वासना से लपेटा है तब तक जन्म मरण देखता है और जब मन वासना से रहित होता है तब मोक्ष होता है। हे रामजी! प्राणवायुको रोककर वासना से रहितहो जहां तुम्हारी इच्छाहो वहां विचरो तो तुमको बन्धन न होगा। जब प्राण फुरता है तब मन उदय होता है और जब मन उदय हुआ तब संसारभ्रम होता है। जब मन क्षीण होताहै तब संसारभ्रम नष्ट होजाता है। हे रामजी! जब मन से संसारकी वासना मिटजाती है तब अशब्दपद प्राप्तहोताहै। जिससे यह सर्व है, और यह सर्व है, जिससे न सर्व है और जो न सर्व है; जो न सर्व में है और जिसमें न यह सर्व है ऐसा जो निर्गुण तत्त्वहै सो सर्व कलना

के त्यागे से प्राप्त होता है उसकी उपमा किसकी दीजे । आत्मा अविनाशी, निर्विकल्प और निर्गुण है; यह जगत् नाशरूपी संकल्प से रचित गुणरूप है; उसका किस पदार्थ से दृष्टान्त दीजे ? अर्थात् दूसरा कुछ नहीं; जो कुछ स्वाद है उनको स्वाद कर्त्ता वही है और जितने प्रकाश हैं उनको प्रकाशकर्त्ता वही है; सर्व्व कलना का कलनारूप वही है और जितने पदार्थ हैं उनसबका अधिष्ठानरूप वही है। वह चित्त और आवरण के दूर हुये प्राप्त होता है और सब पदार्थोंकी सीमा वही है । ऐसा जो आत्मरूप शीतलचन्द्रमा है जब उस में बुद्धिमान् स्थित होताहै तब जीवन्मुक्त कहाताहै और उसके सर्वइच्छा और आश्चर्य नष्टहोजाताहै अहं त्वं आदिक कल्पना मिटजाती है सर्व व्यवहार विस्मरण होजाता है । ऐसा जो मुक्तमन है सो पुरुषोत्तम होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेजीवन्मुक्तज्ञानवर्णनोनामत्रिसप्ततितमस्सर्गः ७३ ॥

रामजीने पूछा हे प्रभो ! योगीकी युक्ति तो आपने कही जिससे चित्त उपशमहोता है अब सम्यक् ज्ञानका लक्षण भी कृपाकरके कहिये । वशिष्ठजी बोले,हे रामजी ! यह तो निश्चय है कि, आत्मा आनन्दरूप, आदि-अन्तसे रहित, प्रकाशरूप, सर्व्व, परमात्मा तत्त्व है इसी निश्चय को बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं । यह जो घट पटादिक अनेक पदार्थ शक्ति है वह सब परमानन्दरूप आत्मा है उस से भिन्न नहीं । यह सम्यक्ज्ञान की दृष्टि है । और सर्व्वात्मा नित्य, शुद्ध परमानन्दस्वरूप, सदा अपने आप में स्थितहै ऐसा निश्चय सम्यक् ज्ञान है और जो इस से भिन्न हो सो असम्यक् ज्ञान है । हे रामजी ! सम्यक्दर्शी को मोक्ष है और असम्यक्दर्शी को बन्ध है क्योंकि; उसको आत्मा जगत्रूप भासता है और सम्यक्दर्शी को केवल आत्मा भासता है । जैसे रस्सी में असम्यक्दर्शी को सर्प भासता है और सम्यक्दर्शी को रस्सीही भासती है । सर्व्व संवेदन और संकल्प से रहित शुद्ध संवित् परमात्मा है उसको जो जानता है वही परमात्मा के जाननेवाला बुद्धीश्वर है । इस से भिन्न अविद्या है । हे रामजी ! आत्मतत्त्व सदा अपने आप में स्थित है और उस में द्वैत कलना कोई नहीं । ऐसा जो यथार्थदर्शी है वही सम्यक्दर्शी है । सर्व्व आत्मा पूर्ण है उस में भाव, अभाव, बन्ध, मोक्ष कोई नहीं और न एक है न द्वैत है; ब्रह्मही अपने आप में स्थित है जो सब चिदाकाशहै तो बन्ध किसेकहिये और मोक्ष कौनहो ? ऐसा जिनको ज्ञान है उनको काष्ठ पाषाण ब्रह्मा से च्यूंटी पर्यन्त सब सम भासता है अल्पमात्र भी भेद नहीं भासता तो वह कल्पना के सन्मुख कैसे होवे ? हे रामजी ! वस्तुके आदि अन्त अन्वय व्यतिरेक करके आत्मा सिद्धहोता है अर्थात् पदार्थ है सो है तौभी आत्मसत्ता से सिद्ध होता है और जो पदार्थका अभाव होजाता है तौभी

आत्मसत्ता शेष रहती है। तुम उसी के परायण होरहो, वही अनुभव सत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है और जरा-मरण आदिक जो नानाप्रकार के विकार वस्तुरूप भासते हैं वह वस्तु अपने आपमेंही फुरती है। जैसे जलमें द्रवतासे नानाप्रकार के तरंग बुद्‌बुदे होते हैं सो वे जलरूपहैं। कुछ भिन्न नहीं; तैसेही चित्तके फुरनेसे जो नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं। आत्मतत्त्वही अपने आप में स्थित है; जब उस में स्थित होता है तब फिर दीन नहीं होता। जो पुरुष दृढ़ विचारवान्‌है वह भोगों से चलायमान नहीं होता—जैसे मन्द पवनसे मेरु पर्वत चलायमान नहीं होता—और जो अज्ञानी है और विचार से रहित मूढ़ है उसको भोग ग्रासकरलेते हैं—जैसे जलसे रहित मछलीको बगुला खालेता है। जिसको सर्व्व आत्माही भासता है वह सम्यक्‌दर्शी पुरुष कहाता है—वही मुक्तरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसम्यक्‌ज्ञानवर्णनन्नामचतुस्सप्ततितमस्सर्गः ७४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विवेकी पुरुष जो भोगों के निकट आ प्राप्त होता है तौभी उनकी इच्छा नहीं करता क्योंकि; उसको उन में अर्थ बुद्धि नहीं—जैसे चित्रकी लिखी हुई सुन्दर कमलिनी के निकट भँवरा आन प्राप्त होता है तौभी उसकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी! सुख दुःखकी प्राप्ति और निवृत्ति में इच्छा तबतक होती है जबतक देहाभिमान होताहै; जब देहाभिमान निवृत्तहुआ तब कुछ इच्छा नहीं होती। हे रामजी! ममता करके दुःख होता है; जब रूप को नेत्र देखता है—तब उसको इष्ट मानकर प्रसन्न होता है और अनिष्ट मानकर द्वेष करता है। जैसे बैल भारवाहक चेष्टा करता है उसको लाभ और हानि कुछ नहीं और जिसको उस में ममत्व होता है वह लाभ-हानिका हर्ष-शोक करता है; तैसेही ममत्वसे जीव इन्द्रियोंके विषयों में हर्ष शोकवान् होता है। जैसे गर्दभ कीचड़ में डूबे और राजा शोककरे कि, मेरे नगरका गर्दभ डूबा है; तैसेही ममत्व करके इन्द्रियों के विषयों में जीव दुःखपाता है; नहीं तो गर्दभ कीचड़ में डूबे तो राजाका क्यानष्ट होताहै। हे रामजी! यह इन्द्रियां तो अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं और इनमें जीव तपायमान होता है सोही आश्चर्य है। जिन विषयोंकी जीव चेष्टा और इच्छा करते हैं सो क्षणमें नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! जो मार्ग में किसीके साथ स्नेह होजाता है तो ममत्व और प्यारसे दुःख होता है। जो देह में ममत्व करेगा उसको दुःख क्यों न होगा? चाहे कैसाही बुद्धिमान् हो वा शूरमाहो तौभी संगसे बन्धवान् होताही है अर्थात् इन्द्रियों के विषयोंका अहंभाव ग्रहण करेगा तो उनके नाशहोने से वहभी नाशहोवेगा। जिन नेत्रोंका विषय रूप है सो नेत्र साक्षी होकर रूपको ग्रहण करता है और जीव ऐसा मूर्ख है कि, औरों के धर्म आपमें मान लेता है और उन में तपायमान होता है। जैसे भ्रमदृष्टि से आकाश में मोरपुच्छवत

तरवरे और दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही मूर्खतासे जीव इन्द्रियों के धर्म अपने में मानलेताहै । जैसे इन्द्रियोंका साक्षी होकर जीव विषयों को ग्रहण करता है तैसेही चित्तभी अभिमानसे रहित साक्षीहोकर ग्रहण करे तो रागद्वेषसे तपायमान न हो जैसे जलमें चक्र तरङ्ग फुरते दृष्टिआते हैं तैसेही इन्द्रियों के रूपमें और इन्द्रियां फुरआती हैं; आधार आधेयसे इनका संवन्ध होताहै और चित्त इनके साथ मिलकर व्याकुल होताहै रूप, इन्द्रिय और मन इनका परस्पर असंग भाव है जैसे मुख, दर्पण और प्रतिविम्ब भिन्न २ असंग है तैसेही यह भी भिन्न २ असंग है परन्तु अज्ञान से मिले हुये भासते हैं । जैसे लाखसे सोने, रूपे और चीनीका संयोग होताहै तैसेही अज्ञान से रूप, अवलोक और मन संस्कार का संयोग होता है । जब ज्ञान अग्निसे अज्ञान रूपी लाख जलजावे तब परस्पर सब भिन्न २ होजाते हैं और फिर किसी का दुःख सुख किसीको नहीं लगता । जैसे दो लकड़ी का संयोग लाखसे होताहै तैसेही अज्ञान से विषय इन्द्रियों और मनका संयोग होताहै और ज्ञानरूपी अग्निसे जब बिछुरजाते हैं तब फिर नहीं मिलते । जैसे मालाके भिन्न २ दाने तागे में इकट्ठेहोते हैं तैसेही देह और इन्द्रियों में अज्ञानसे मेलहोते हैं और जब विचार करके तागा टूटपड़े तब भिन्न२ होजावे फिर न मिले । हे रामजी ! जिन पुरुषों को आत्म विचार हुआ है वे ऐसे विचारते हैं कि हम को दुःख देनेवाला चित्त था और चित्त के नष्टहुये आनन्द हुआ है । जैसे मन्दिरमें दुःख देनेवाला पिशाच रहता है तब दुःख होता है, नहीं तो मन्दिर दुःखनहीं देता, पिशाचही दुःखदेता है; तैसेही शरीररूपी मन्दिर में दुःख देनेवाला चित्तही है । हे चित्त ! तूने मिथ्या मुझको दुःखदिया था । अब मैंने आप को जाना है । तू आदि भी तुच्छ है, अन्त भी तुच्छहै और वर्त्तमानमें भी मिथ्या जीवोंको दुःख देता है । जैसे मिथ्या परछाहीं बालक को वैताल होकर दुःख देती है—बड़ा आश्चर्य्य है । हे चित्त ! तू तब तक दुःखदेता है जब तक आत्मस्वरूप को नहीं जाना । जब आत्मस्वरूपका ज्ञान होताहै तब तू कहीं दृष्टि नहीं आता । तू तो मायामात्र है । तू अथवा जो मैं अब तुझसे मोहित नहीं होता । तू तो मूर्ख जड़ और मृतक है और तेरा आकार अविचारसे सिद्ध है । अब मैंने पूर्व्वका स्वरूप पाया है; तू तत्त्व नहीं, भ्रान्तिमात्र है । जो मूढ़ है वह तुझसे मोहित होता है, विचारवान् मोहित नहीं होता । जैसे दीपक से अन्धकार दृष्टि नहीं आता, तैसेही ज्ञानसे तू दृष्टि नहीं आता । हे मूर्खचित्त ! तू बहुत काल इस देहरूपी गृह में रहा है और तू वैतालरूप है । जैसे अपवित्रता और श्मशान आदिक स्थानों में वैताल रहता है तैसेही सत्संगसे रहित देहरूपी गृह श्मशानकेसमान सदा अपवित्रहै वहां तेरे रहनेका स्थान है । जहां सन्तों का निवास होताहै वहां तुझसरीखे ठौर नहीं पाते सो अब मेरे देहरूपी गृह में सत

विचार सन्तोषादिक सन्तजन आन स्थित हुये हैं तेरे बसनेका ठौर नहीं। हे चित्त पिशाच ! तू पूर्व्वरूपी तृष्णा पिशाचिनी और काम क्रोधादिक गुह्यक अपने साथ लेकर चिरपर्य्यन्त विचरा है अब विवेकरूपी मन्त्रसे मैंने तुझ को निकाला है तब कल्याण हुआ। हे चित्त पिशाचरूप ! तू प्रमादरूपी मद्यपानकर मत्त हुआ था और चिरपर्यन्त नृत्यकरता था। अब मैंने विवेकरूपी मन्त्रसे तुझको निकालाहै तब देहरूपी कन्दरा शुद्ध हुई हैं और शुद्धभाव पुरुषोंने निवास किया है। हे चित्त ! मैंने तुझको विवेकरूपी मित्रद्वारा वश किया है। अब तेरा क्या पराक्रम है ? तू तब तक दुःख देता था जब तक विचाररूपी मित्र न पायाथा। अब तेरा बल कुछ नहीं चलता। अब मैं महाकेवल भावमें स्थितहूं। आगे भी मैं तुझको जगाताथा, आपसेही तू सब रूप है। जैसे कच्चे मन्त्रवाला सिंहको जगाताहै और आपकष्टपाता है तैसेही मैं तुझ को जगाकर कष्ट पाता था। अब मैंने आत्मविचारसे परिपक्वमन्त्रसे तुझे वश किया है तब शांतिमान् हुआहूं। अब ममता और मान मेरे कुछ नहीं रहे, मोह, अहंकार सब नष्ट होगये हैं और इनका कलत्रभी नष्ट होगया है। मैं निर्मल और चेतन आत्माहूं। मेरा मुझको नमस्कार है। न मेरे में कोई आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्तृत्व है, न मन है,न भोक्तृत्व है, और न देहहै; ऐसा मेरा निर्गुणरूप आत्मा है। मेरा मुझको नमस्कार है। न कोई आत्मा है, न अनात्मा है, न अहं है, न त्वं है; किसी शब्दका वहाँ प्रवेश नहीं ऐसा निराश है। प्रकाशरूप, निर्मल आत्मा मैं अपने आप में स्थितहूं। ऐसा जो मैं आत्माहूं मेरा मुझको नमस्कार है। मैं विकार नहीं हूं; मैं तो नित्यहूं, निराशहूं, सर्व्वकार्यों में अनुस्युतहूं, और अंशांशीभावसे रहितहूं। ऐसा सर्व्वात्मा जो मैंहूं सो मेरा मुझको नमस्कार है। मैं सम सर्व्वगत, सूक्ष्म और अपने स्वभावमें स्थितहूं और पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं और मैंहीं सर्व पदार्थ होकर भासताहूं। ऐसा मैं सर्वात्माहूं। अब मैं सर्व भावको प्राप्त हुआहूं और मन भाव मुझसे दूर हुआ है। मेरे प्रकाशसे विश्वभासता है; मैं अजर, अमर और अनन्त हूं और गुणातीत अद्वैत हूं। मन न जिससे दूरहुआ है ऐसा जो मैं सुन्दररूपहूं जिस में विश्व प्रकट है और स्वरूप से अविनाशीहूं उस अनन्त अजर अमर गुणातीत ईश्वररूप को नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तउपशमनामपञ्चसप्ततितमस्सर्गः ७५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार विचारकर तत्त्ववेत्ता आत्माको सम्यक् कर जानते हैं। तुम भी आत्म विचार का आश्रयकरके आत्मपद के आश्रय होरहो। यह जगत् सब आत्मरूप है; ऐसे जानकर चित्तसे जगत् की सत्यताको त्याग करो। जब ऐसे विचार करे तब चित्त कहां है ? बड़ाआश्चर्य है कि जो चित्त वस्तुरूप दिखाई

देता था सो अविदित मायामात्र अस्तरूप था । जैसे आकाश के फूल कहनेमात्र हैं तैसेही चित्त कहनेमात्र है और अविचारसे दिखाई देता है । विचारवान् को चित्त असत् भासता है क्योंकि, अविचारते सिद्ध है । जैसे नौकापर बैठे बालक को तट के वृक्ष चलते भासते हैं पर बुद्धिमान् को चलने में सद्भाव नहींहोता; तैसेहीमूर्खको चित्त सत्ता भासती है और विचारवान् का चित्त नष्ट होजाता है । जब मूर्खतारूपभ्रम शांत होताहै तब चित्त कुछ नहीं पाया जाता । जैसे बालक चक्रपर चढ़ाहुआ फिरता है तो पर्व्वत आदिक पदार्थ उसको भ्रमसे भासते हैं और जब चक्र ठहर जाताहै तब चक्र आदि पदार्थ अचल भासते हैं; तैसेही चित्तके ठहरने से द्वैत कुछ नहीं भासता । आगे मुझको द्वैत भासताथा इससे चित्तके फुरने से नानाप्रकार की तृष्णा इच्छा उठती थीं, अब चित्तके नष्टहुये इन पदार्थोंकी भावना नष्ट हुई हैं और सबसंशय और शोक भेरे नष्ट होगये हैं । अब मैं विगतज्वर स्थितहूं जैसे मैं स्थितहूं, तैसेहूं , इषणा कोई नहीं । जब चित्तका चैत्यभाव नष्ट हुआ तब इच्छा आदिक गुण कहां रहे ? जैसे प्रकाश के नष्ट हुये वर्णज्ञान नहीं रहता तैसेही चित्तके नाश हुये इच्छाआदिक नहीं रहते । अब चित्तनष्टहुआ, तृष्णा नष्टहोगई और मोहका पिंजड़ा टूटपड़ा अब मैं निरहंकार बोधवानहूं; सबजगत् शान्तरूप आत्माहै और नानात्व कुछ नहीं । मैं निराभास, आदि–अन्तसे रहित आनन्द पद को प्राप्त हुआहूं । मेरा सर्वगत सूक्ष्म आत्मतत्त्व अपना आप है और उसमें मैं स्थितहूं । इन विचारों से अबक्या प्रयोजन है ? जब तक आप को मैं देह जानता था तब तक ये विचार मूर्ख अवस्था में थे; अब मैं अमित, निरा- ...र केवल परमानन्द सच्चिदानन्द को प्राप्तहुआ । आगे मैं चित्तरूपी वैताल को ...गाता था और आपही दुःखी होताथा, अब विचाररूपी मन्त्र से मैंने इस ...या है और निर्णय से अपने स्वरूप को प्राप्त हुआहूं । मैं शान्तात्मा अपने

हे भगवन ...तहूं । हे रामजी ! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है वह निर्द्वंद्व रागद्वेष

सर्वथा दूर है । ...

अर्थात् कोई अन्त...कर स्थित होताहै और प्राकृत कर्म करता है और मान मदसे रहित

कहिए तो सही, ...पूर्ण होता है जैसे शरत्काल की रात्रिको पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से

किस प्रकार प... ...सेही प्रकृत आचार कार्य्यकर्त्ता ज्ञानवान् का हृदय शान्त पूर्णआत्मा है ॥

...मधुर्स्गिवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेचित्तशान्तिप्रतिपादनंनामषट्सप्ततितमस्सर्गः ७६॥

...ष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह विचार वेदविदोंने कहा है । पूर्व मुझसे ब्रह्माजी ...ह विचार विन्ध्याचल पर्वत में कहाथा । इसी विचार से वह परमपद में स्थित हुआहै । इसी दृष्टिका आश्रय करके आत्मविचार होकर तमरूपी संसार समुद्र से तरजावो । हे रामजी ! इसपर एक और परमदृष्टि सुनो वह दृष्टि परमपदके प्राप्त करनेवाली है । जिस प्रकार वीतव मुनीश्वर विचार करके निःशङ्क स्थित हुआहै सो

सुनो महातेजवान् वीतव मुनीश्वरने संसार आधिव्याधि से वैराग्यकिया और नागादिहोके पर्व्वतों की कन्दराओं में विचरने लगा। जैसे सूर्य्य सुमेरु पर्व्वत के चौफेर फिरता है तैसेही वह विचरने लगा और संसारकी क्रियाको दुःखरूप विचारता था कि, यह बड़ेभ्रम देनेवाली। ऐसे जानकर वह उद्वेगवान् हुआ और निर्विकल्प समाधि की इच्छाकर अपने व्यवहार को त्यागदिया और अपनी गौरकुटी त्यागकर और केलेके पत्रोंकी बनाकर बैठा। जैसे भँवरा कमल को त्यागकर नीलकमल पर जा बैठता है तैसेही गौरकुटी को त्यागकर वह श्यामकुटी में जाबैठा। नीचे उसने कुश बिछाया, उसपर मृगछाला बिछाया और उसपर पद्मासन कर बैठा और जैसे मेघजलको त्यागकर शुद्धमौन स्थित होताहै तैसेही और क्रियाको त्यागकर शान्तिके निमित्त शांतरूप स्थितहुआ। हाथोंको तलेकर मुख ऊपरकर और ग्रीवाको सूधाकरके स्थित हुआ और इन्द्रियोंकी वृत्तिकोरोक फिर मनकी वृत्तिकोभीरोका। जैसे सुमेरु की कन्दरा में सूर्य्यका प्रकाश बाहरसे मिटजाताहै तैसेही इन्द्रियोंकी रोकीवृत्ति बाहरसेभी मिटजाती है। और हृदय से भी विषयोंकी चिन्तना का योग उसने त्यागकिया। इस प्रकार वह क्रमकरके स्थितहुआ। जब मन निकलजावे तब वह कहे कि, बड़ा आश्चर्य है, मन महाचंचलहै कि, जो मैं स्थित करताहूं तो फिर निकलजाताहै। जैसे सूखापत्ता तरंगमें पड़ानहीं ठहरता तैसेही मन एकक्षणभी नहीं ठहरता सर्वदा इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर धाताहै। जैसे गेंदको ज्यों२ ताड़ना करते हैं त्यों २ उछलताहै तैसेही इस मूर्ख मनको जिस २ ओरसे खैंचताहूं उसीओर फिर धावताहै और उन्मत्त हाथीकीनाईं भ्रमताहै; जो घटकी ओरसे खैंचताहूं तो रसकी ओर निकलजाता है और जो रसकी ओरसे खैंचताहूं तो गन्धकी ओर धावता है स्थिर कदाचित् नहीं होता। जैसे वानर कभी किसी डालपर कभी किसी डालपर जा बैठताहै इसीप्रकार मूर्खमनभी शब्द,स्पर्श,रूप, रस, गन्धकी ओर धावताहै स्थिर नहीं होता। इसके ग्रहण करनेके पंचस्थान हैं जिन मार्गों से विषयोंको ग्रहण करता है सो पंचज्ञान इन्द्रियां हैं। अरे मूर्ख मन! तू किस निमित्त विषयोंकी ओर धावताहै यह तो आप जड़ और असत्तरूप भ्रान्तिमात्र हैं तू इनसे शान्तिको कैसे पावेगा? इनमें चपलतासे इच्छाकरना अनर्थका कारणहै। ज्यों ज्यों इनके अर्थोंको ग्रहण करेगा त्यों २ दुःखके समूहको प्राप्तहोगा। ये विषय जड़ और असत् रूप हैं और तूभी जड़ है जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है तैसेही ये भी असत्तरूप हैं। हे मन! ये तो सब असार रूप हैं तूभी इन्द्रियों सहित जड़ रूप है; तू कर्तृत्वका अभिमान क्यों करता है? सबका कर्त्ता चिदानन्दआत्मा भगवान् सदा साक्षीभूत है तैसेही आत्माभी साक्षीभूतहै तू क्यों वृथा तपायमान होताहै? जैसे सूर्य सबकी क्रियाओंको कराता साक्षीभूतहै तैसेही आत्मा साक्षीभूत है और सब

जगत् भ्रान्तिमात्रहै । जैसे अज्ञानसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही अज्ञानसे आत्मा में जगत् भासता है । जैसे आकाश और पातालका सम्बंध कुछ नहीं होता, ब्राह्मण और चाण्डालका संयोग नहीं होता और सूर्य्य और तमकासम्बन्ध नहीं होता; तैसेही आत्मा चित्त और इन्द्रियोंका सम्बन्ध नहीं होता । आत्मा सत्तामात्र है और ये जड़ और असत्रूप हैं इनकासम्बंध कैसेहो ? आत्मा सबसे न्यारा साक्षीभूतहै । जैसे सूर्य्य सब जनोंसे न्याराहरहताहै तैसेही आत्मा सबसेन्यारा साक्षीभूतहै । हे चित्त ! तूतो मूर्ख है विषयरूपी चबेने में रह सर्व ओरसे भक्षणकरता भी कदाचित् तृप्तनहीं होता और विचार कि, मिथ्या कूकरकीनाईं चेष्टाकरताहै । तेरेसाथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं । हे मूर्ख ! तूतो मिथ्या अहं अहं करताहै और तेरी वासना अत्यन्त असत्रूपहै । और जिन पदार्थोंकी तू वासनाकरता है वे भी असत्रूपहैं । तेरा और आत्माका सम्बन्ध कैसेहो ? आत्मा चेतनरूपहै और तू मिथ्याजड़रूपहै ? यह मैंनेजानाहै कि, जन्ममरण आदिक विकार और जीवत्व भावको तूने मुझको प्राप्तकिया है । मैंतो केवल चेतन परब्रह्महूं मिथ्या अहंकार करके जीवत्व भावको प्राप्तहुआ है ? और देहमात्र आप को जानता है । मैंतो संवित्मात्र नित्यशुद्ध आदि अन्तसे रहित परमानन्द चिदाकाश अनन्त आत्माहूं । अबमैं स्वरूप में आपजगा और सद्भाव मुझको कुछ नहीं दृष्ट आता । हे मूर्खमन ! जिन भोगोंको तू सुखरूप जानकर धावताहै वे अविचारसे प्रथम तो अमृतकी नाईं भासते हैं और पीछे विषकीनाईं होजाते हैं और वियोगसे जलाते हैं । आपको तू कर्त्ताभोक्ताभी मिथ्या मानताहै; तू कर्त्ताभोक्तानहीं और इन्द्रियां कर्त्ता भोक्ता नहीं क्योंकि; जड़ हैं । जो तुमजड़ हुये तो तुम्हारे साथ मित्रभाव कैसेहो और जो तू जड़ और असत्रूप है तो कर्त्ता भोक्ता कैसे हो ? और जो तू चेतन और सत्रूप है तौभी तेरे में कर्त्तृत्व भोक्तृत्व नहीं होसक्ता क्योंकि, तू मिथ्या है और मैं प्रत्यक्ष चेतनहूं । तू कर्त्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या अपने में स्थापन करताहै; तू मिथ्या है । जब मैं तुझको सिद्ध करताहूं तब तू होता है तू निश्चय करके जड़ है, तुझको कर्त्तृत्व भोक्तृत्व कैसे हो ? जैसे पत्थरकी शिला नृत्य नहीं करसक्ती तैसेही तुझको कर्त्तृत्व की सामर्थ्य नहीं । तेरे में जो कर्त्तृत्व है सो मेरी शक्ति है–जैसे हसुआ घास, तृणआदिकको काटताहै सो केवल आपसे नहीं काटता पुरुषकी शक्तिसे काटता है और खड्गमें जो हननक्रिया होती है वह भी पुरुष की शक्ति है; तैसेही तुम्हारे में कर्त्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिसे है । जैसे पात्रसे जल पान करते हैं तो पात्र नहीं करता पान पुरुषही करताहै और पात्र करके पानकरता तैसेही तुम्हारे में कर्त्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति करती है और मेरी सत्तापाकर तुमअपनी चेष्टामें विचरतेहो । जैसे सूर्य्यका प्रकाश पाकरलोग अपनी२ चेष्टा करते हैं तैसेही मेरी शक्तिपाकर तुम्हारी चेष्टाहोती है । अज्ञान करके तुम जड़

जीवसे रहतेहो और ज्ञानकरके लीन होजाते हो । जैसे सूर्य के तेजसे बर्फका पुतला गल जाता है । इससे, हे चित्त ! अब मैंने निश्चय कियाहै, तू मृतकरूप और मूढ़है । परमार्थसे न तू है और न इन्द्रियां हैं । जैसे इन्द्रजालकी बाजीके पदार्थ भासतेहैं सो सब मिथ्याहैं । मैं केवल विज्ञानस्वरूप अपने आपमें स्थित निरामय, अजर, अमर, नित्य, शुद्ध, बोध, परमानन्दरूपहूं और मैंही नानारूप होकर भासताहूं परंतु कदाचित् द्वैत भावको नहीं प्राप्त होता सदा अपने आप में स्थितहूं । जैसे जलमें तरंग बुदबुदे दृष्टि आते हैं सो जलरूप हैं तैसेही सर्व पदार्थ मेरे में भासते हैं सो मुझसे भिन्न नहीं । हे चित्त ! तूभी चिन्मात्र भावको प्राप्तहो; जबतू चिन्मात्र भावको प्राप्तहोगा तब तेरा भिन्न भाव कुछ न रहेगा और शोकसे रहित होगा । आत्मतत्त्व सर्व भाव में स्थित और सर्वरूपहै; जब तू उसको प्राप्तहोगा तब सब कुछ तुझको प्राप्तहोगा । न कोई देह है और न जगत् है सर्व ब्रह्महो है; ब्रह्मही ऐसे भासता है; वास्तव में अहं त्वं कल्पना कोई नहीं । हे चित्त ! आत्मा चेतनरूप और सर्वगत है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं तौभी तुझको संताप नहीं और जो अनात्मा, जड़ और असत्रूप है तौभी तू न रहा । जो कुछ परिच्छिन्नसा तू बनता है सो मिथ्या भ्रम है; आत्मतत्त्व सर्व व्यापक रूप है द्वैत कुछ नहीं और सर्व वही है तो भिन्न अहं त्वंकी कल्पनाकैसे हो ? असत् से कार्य्यकी सिद्धता कुछ नहीं होती । जैसे शशेके सींग असत् हैं और उनसे मारने का कार्य्यसिद्ध नहीं होता तैसेही तुमसे कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य्य कैसेहो ? औरजो तू कहे कि, मैं सत्–असत् और चेतन–जड़के मध्यभावमें हूं–जैसे तम और प्रकाशका मध्यभाव छाया है–तो सूर्य्यरूप परमात्मा निरंजन के विद्यमान रहते मंदभावी छाया कैसे रहे जिससे कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहीं होता क्योंकि; तू जड़है । जैसे हसुवा अपने आप कुछ नहीं काटसक्ता जब मनुष्यके हाथकी शक्ति होती है तब कार्य्य होता है; तैसेही तुमसे कुछ कार्य्य नहीं होता जब आत्मसत्ता तुमसे मिलती है तब तुमसे कार्य्य होता है । तुम क्यों अहंकार करके वृथा तपायमान होतेहो ? हे चित्त ! जो तू कहे कि ईश्वर का उपकार है तो ईश्वर जो परमात्माहै उसको करने न करने में कुछ प्रयोजन नहीं । सबका कर्त्ता भी वही है और अकर्त्ता भी वही है । जैसे आकाश पोलसे सबको दृढ़ता देनेवाला है परन्तु स्पर्श किसी से नहीं करता तैसेही परमात्मा सब सत्ता देनेवाला है और अलेप है । हे मूर्खमन ! तू क्यों भोगोंकी वाञ्छा करता है ? तू तो जड़ और असत्रूपहै और देह भी जड़ असत्रूपहै, भोग कैसे भोगोगे ? और जो परमात्मा के निमित्त इच्छा करतेहो तो परमात्मा तो सदा तृप्त है और इच्छासे रहित है । सर्व में वही पूर्ण है और दूसरे से रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित है– तुझको किसकी चिन्ता है ? इससे वृथा कल्पना को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो–

जहां सर्व क्लेश शांत होजाते हैं। जो तू कहे कि, परमात्मा के साथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्व सम्बन्ध है तोभी नहीं बनता–जैसे फूल और पत्थरका सम्बन्ध नहीं होता। तैसेही परमात्माके साथ तेरा सम्बन्ध नहीं होता। समान, अधिकरण और द्रव्यका सम्बन्ध होता है–जैसे जल और मृत्तिका का सम्बन्ध होता है; जैसे औषधमें चन्द्रमा की सत्ता प्राप्त होती है; जैसे सूर्य्यकी तपनसे शिला तपजाती है; जैसे बीज अंकुरका सम्बन्ध होता है; पिता और पुत्र का सम्बन्ध होता है और द्रव्य और गुणका सम्बन्ध होता है। आकार सहित वस्तुका सम्बन्ध निराकार निर्गुण वस्तुसे कैसे हो? परमात्मा चेतन है, तू जड़ है; वह प्रकाशरूप है, तू तमरूप है; वह सत्‌रूप है, तू असत्‌रूप है, इस कारण सम्बन्ध तो किसीके साथ नहीं बनता है तो तू क्यों वृथा जलता है? तू मननरूपहै परमात्मा सर्वकलनासे रहित है। तेजकी एकता तेजसे होती है और जलकी एकता जलसे होती है। तू कलंकरूप है, परमात्मा निष्कलंक रूपहै; तेरी एकता उससे कैसेहो? जिसका कुछ अंग होता है उसका सम्बन्ध भी होता है सो सम्बन्ध तीन प्रकार का है–सम, अर्द्धसम और विलक्षण। जैसे जलसे जलकी एकता और तेजसे तेजकी एकता होतीहै यह समसम्बन्धहै पर तेरा आत्माके साथ समसम्बन्ध नहीं। दूसरा अर्द्धसम सम्बन्ध यह है कि, जैसे स्त्री और पुरुष के अंग समान होते हैं परन्तु विलक्षणरूप हैं सो अर्द्धसम संबन्धभी तेरा और आत्मा का नहीं। कुछ अन्य की नाईं भी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे जल और दूधका सम्बन्ध होता है तैसे भी तेरा सम्बन्ध नहीं–और अत्यन्त जो विलक्षण हैं उनकी नाईंभी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे काष्ठ और लाख; पुरुष और हाथी, घोड़ा आदिकका सम्बन्ध नहीं। आधार–आधेयवत् भी तेरा सम्बन्ध नहीं–जैसे बीज और अंकुर, पिता और पुत्र आदिक का जो सम्बन्धहै तैसेभी तेरा और आत्माका सम्बन्ध नहीं क्योंकि; सम्बन्ध उसका होता है जिसके साथ कुछभी अङ्ग मिलता है; जिसका कोई अंग नहीं मिलता और परस्पर विरोध हो उसका सम्बन्ध कैसे कहिये? जैसे कहिये कि, शशे के सींग पर अमृत का चन्द्रमा बैठाहै वा तम और प्रकाश इकट्ठे हैं तो जैसे यह नहीं बनता तैसेही आत्मा के साथ देह, मन और इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं बनता क्योंकि; आत्मा सर्व कलना से अतीत, नित्य शुद्ध, अद्वैत और प्रकाश रूप है और मनआदिक जड़ असत, मिथ्या और तमरूप हैं इनका सम्बन्ध नहीं। जिनका परस्पर विरोध हो उनका सम्बन्ध कैसेहो? तुम तो परमात्माके अज्ञानसे मन, इन्द्रियां और देहादिक सहित उदय हुयेहो और आत्मा के ज्ञान से अभाव होजाते हो फिर सम्बन्ध कैसे हो? हे मन! जो कुछ जगत् है वह सब ब्रह्मस्वरूप है–द्वैत नहीं और अहं त्वं की कल्पना भी कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है; सब कलना तेरे में थी और तू

तब तक था जब तक स्वरूपका अज्ञान था। जब स्वरूप का ज्ञान होताहै और अज्ञान नष्ट होता है तब तू कहां है। जैसे रात्रिके अभावसे निशाचरों का अभाव होजाता है तैसेही अज्ञान के नाशहुये तेरा अभाव होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेचित्तानुशासनंनामसप्त सप्ततितमस्सर्गः ७७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार वीतव मुनीश्वर विन्ध्याचल पर्व्वत की कन्दरा में तीक्ष्णबुद्धिसे विचारनेलगा और और भी जो कुछ उसने कहा सो सुनो। अनात्मा जो देह इन्द्रियां मनआदिक हैं वे सङ्कल्पसे उपजे हैं, जब ज्ञान उदय होता है तब इनका अभाव होजाता है। हे मन! जैसे सूर्य्यके उदय हुये तम नष्ट होजाता है तैसेही नित्य उदितरूप अनुभवस्वरूप परमात्माके उदय हुये तुम्हारा अभाव होजाता है। वासनासे उसका आवरण होता है और जब वासनाका अभाव होजाता है तब आवरणका भी अभाव होजाता है। जैसे मेघ के नष्ट हुये सूर्य्य प्रकाशता है तैसेही वासना के अभाव हुये आत्मतत्त्व प्रकाशता है। वासना का मूल अज्ञान है; जब अज्ञान सहित वासना नष्ट होती है तब चिदानन्द ब्रह्म प्रकाशता है। वासनाही का नाम बन्ध है और वासना की निवृत्ति का नाम मोक्ष है। जब वासनारूपी रस्सी काटोगे तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा। जैसे प्रकाश विना अन्धकार का नाश नहीं होता तैसेही मन, इन्द्रियां, देहादिक आत्मविचार बिना नाश नहीं होतीं। जब विचार करके आत्मपद प्राप्त हो तब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव होजाता है अर्थात् इनका अभिमान नष्ट होता है और इनके धर्म्म अपने में नहीं भासते। जब तक देह इन्द्रियों के साथ आवरण है तबतक आत्मपद नहीं प्राप्त होसक्ता; इससे कल्याणके निमित्त आत्मपद पानेका अभ्यास करो। जबतक जीव मन और इन्द्रियोंके गुणोंके साथ आपको मिला जानता है तबतक अपने स्वरूपकी विभुता और सिद्धता नहीं भासती; जब आत्माका साक्षात्कार होजावेगा तब राग द्वेषादिक विकार नष्ट होंगे। जैसे सूर्यके उदयहुये निशाचरों का अभाव होजाताहै तैसेही आत्माके साक्षात्कार हुये विकारोंका अभाव होता है। जिसके देखेसे इनका अभाव होजाता है उसका आत्माके साथ सम्बन्ध कैसेहो? जैसे प्रकाश और तमका सम्बन्ध नहीं होता तैसेही सत् असत् का सम्बन्ध नहीं होता और जैसे जीवसे मृतक का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही आत्मा अनात्मा का सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा सर्व कल्पनासे रहित है और मन आदिक सर्व कल्पनारूप हैं। कहां यह मूक, जड़ और अनात्मा रूप और कहां नित्य, चेतन, प्रकाश, निराकार, आत्मारूप इनका परस्पर विरोधरूप है तो सम्बन्ध कैसे कहिये—ये तो निश्चय करके अनर्थ के कारण हैं।

जब तक इनका अभिमान है तब तक जगत् दुःखरूप है और जब इनका वियोग हो तब जगत् परमात्मरूप होताहै । जब तक आत्माका अज्ञान है तब तक मनुष्य आपको इनमें मिला देखता है और दुःख पाता है और जब आत्मा का ज्ञानहोताहै तब अपने साथ इनका संयोग नहीं देखता । यह मैंने निश्चय करके जाना है कि, इन्द्रियां और मनके संयोग से जगत् भासता है और जब इन्द्रियों का ग्राम नष्ट होजाता है तब जगत् परमात्मरूप होजाताहै । मैं जो आत्मा, मन और इन्द्रियों को इकट्ठा जानता था सो प्रमादरूपी मद्यके पानसे मत्तहुआ मनसे जानता था । अब आत्मविचारसे मन नष्ट हुआ तब सुखी हुआहूं । जो विषको पानकरके मूर्च्छितहो सो तो बनता है परन्तु पानकिये विना मूर्च्छितहो सो आश्चर्य है । इससे यदि अनात्मा का इसके साथ संयोग होता है तो सुख दुःख करके रागद्वेषवान् होनाभी बनता पर आत्मा तो सुख दुःखका साक्षीभूत है । सुखका संयोगही जिससे नहीं और राग द्वेषसे जलता है तो महामूर्खता है । आत्मा तो सुख दुःखका साक्षीभूत है जैसा उस के आगे अभ्यास होता है तैसाही भासताहै, कदाचित् विपर्ययभावको नहींप्राप्त होता सुख दुःखमें मूर्ख मन रागद्वेषवान् होताहै, आत्मा तो सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है उसके साथ इन्द्रियों का संयोग कैसेहो ? अब जो संयोगका अभाव सिद्ध हुआ तो आत्मामें कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे कहिये ? जहां चित्तकलना होती है वहां कर्तृत्व भोक्तृत्व भी होता है और जहां चित्तकलना का अभाव है वहां कर्तृत्व भोक्तृत्व का भी अभाव है । ऐसा निष्कलङ्क आत्मतत्त्व मैंहूं कि, न कर्त्ताहूं, न भोक्ताहूं, न मेरे में बंध है, न मोक्ष है, न हन्ताहैं, न अहन्ता हैं; मैं सर्वात्मा अलेप रूपहूं । हे मन ! तू भी मैंहूं और पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश पांचोतत्त्व भी मैंही हूं । इस प्रकार निर्णय करके जिसने धारा है वह मोहको नहीं प्राप्त होता । जो अहम् अभिमान करनेवाला आत्मासे आपको भिन्न जानता है वह दुःखीहोताहै और जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब परमसुखी होता है । इससे जिसको कल्याणकी इच्छाहो उसको एकआत्मा परमात्मपरायण होना योग्यहै । जब स्वरूपका त्यागकर सङ्कल्पकी ओर धावता है तब दुःखोंके समूहको प्राप्तहोता है । हे चित्त ! जो तू अपनेमें कर्तृत्व देखता था सो इन्द्रियों सहित जड़रूप पत्थर के समान हैं—जैसे आकाश में पवन नहीं लगता तैसेही तुमसे कर्तृत्व नहीं होता । जब स्वरूपका प्रमाद होता है तब जीव चित्त आदिक से आपको मिला जानता है और चित्तादिक आत्मा की सत्तापाकर चेतन होताहै जैसे अग्नि की सत्तापाकर लोहाभी जलासक्ता है तैसेही तुम आत्माकी सत्तापाकर कर्तृत्व भोक्तृत्व में समर्थ होतेहो । जब आत्मविचार करके स्वरूपका साक्षात्कार होता है, अज्ञानवृत्ति निवृत्त होजाती है और मनआदिक का वियोग होता है तब सर्व कलना

से रहित हुआ केवल मोक्षरूप आत्माहोता है और कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभाव होजा-
ता है। जैसे आकाश में लालीका अभाव है तैसेही आत्मामें कर्तृत्वका अभाव है। सब
जगत् आत्मा स्वरूप भासता है। जैसे समुद्र तो तरङ्ग आदिक नानाप्रकार से होता है
सो सब जलरूपहै—भिन्ननहीं; तैसेही सर्व जगत् आत्मारूप है—आत्मासे भिन्न नहीं।
सच्चिदानन्द आत्मा मैं अपने आपमें स्थितहूं और द्वैतकलना मेरे में कोई नहीं। जैसे
समुद्र उष्णतासे रहितहै तैसेही परमात्मा सर्वकलनासे रहितहै और जैसे आकाश में
वन नहीं होता तैसेही परमात्मा में कलना नहीं होती वह संवेदन से रहित, संवित्मात्र
सर्वात्मा है; जब उसका साक्षात्कार होताहै तब अहं त्वम् आदिक कलना का अभाव
होजाता है। वह अनादि, अरूप, सर्वगत, सदा अपने आपमें स्थित है; ऐसा जो अद्वैत
तत्त्व है उसको द्वैतकलना आरोपणकरने को कौन समर्थहै ऐसा कौन है जो आकाश
में ऋग्वेदलिखे? नित्यउद्योत, सर्वका सार, अद्वैत आत्मा है उस में द्वैतकलना का
अभाव है और सब में पूर्ण, निर्मल, नित्य आनन्दरूप है। ऐसे आत्मा को अब मैं
प्राप्त हुआहूं; जगत्का सुखदुःख अब नष्टहुआ है और सम शांतरूप हुआहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेऽनुशासनयोगोप-
देशोनामाऽष्टसप्ततितमस्सर्गः ७८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनिश्रेष्ठ विचारता था। फिर जो
कुछ वह निर्मलबुद्धि से विचारने लगा सोभी सुनो। हे इन्द्रियरूप मन! तुम क्यों
अपने अर्थोंकी ओर धावतेहो? तुमको तो विषयोंसे शांति नहींहोती-जैसे मृग मरु-
स्थलकी नदी देखकर दौड़ताहै और शान्तिमान् नहींहोता। इससे तुमभी विषयों की
ओर तृष्णा करने से शान्तिमान् न होगे। इनकी इच्छा त्यागकर जो परमात्म तत्त्व
अविनाशी, सर्व्व अवस्था में एकरस और सत्यहै उसको ग्रहण करो तब सब दुःख
तुम्हारे मिट जावेंगे। तुम्हारे साथ मैं मिलाथा तब मैंने भी दुःख पाया। तुम अज्ञान
से उत्पन्न हुये हो और जो तुम्हारे साथ मिलताहै उसको भी दुःख प्राप्त होताहै। जैसे
तपी हुई लाख जिसके शरीर से स्पर्श करती है उसको जलाती है तैसेही जिसको तु-
म्हारासङ्ग हुआहै वह दुःख पाताहै। हे मन! यह जीव तुम्हारे संगसे कालके मुख में
जापड़ताहै—जैसे नदी जलसहित होती है तब समुद्रकी ओर चली जाती है—जलसे
रहित हो तो क्यों जावे; तैसेही तुम्हारा संग करके जीव कालके मुखमें जापड़ता है,
तुम्हारा संग न हो तो क्यों पड़े? जैसे मेघ कुहिरे से सूर्य्य को घेर लेता है; तैसेही
मनरूपी मेघ इच्छारूपी कुहिरे से आत्मारूपी सूर्य्यको घेरलेता है और परम्परा
दुःखोंकी वर्षा करनेवालाहै। हे मन! तेरे में चिन्ता उठती है इससे तू मर्कटकी नाईं है।
जैसे मर्कट वृक्षको ठहरने नहीं देता, हिलाता है तैसेही चित्त देहको ठहरने नहीं देता।

चित्तरूपी पखेरू के लोभ और लज्जा दो पंख हैं और रागद्वेषरूपी चोंच है जिससे शरीररूपी वृक्षपर बैठा शुभगणों को काट २ खाता है। चित्तरूपी महानीच कुत्ता भोगभावनारूपी महाअपवित्रपदार्थों को हृदयरूपी स्थानमें इकट्ठा करता है और ऐसी चेष्टा से कदाचित् रहित नहीं होता। चित्तरूपी उलूक अज्ञानरूपी रात्रि में विचरता है; चेष्टाकरके प्रसन्न होताहै और शब्दकरताहै। जैसे श्मशानसे वेताल शब्द करताहै। जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्टहो तब चित्तरूपी उलूककाभी अभाव हो और सम्पदा आन प्रवेशकरे। जैसे सूर्य्य के उदयहुये सूर्य्यमुखी कमल उदयहोताहै तैसेही सम्पदा प्रफुल्लित होती है जब मोहरूपी कुहिरा और इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाश से निवृत्त होती है तब निर्मल आकाश प्रकट होता है। हे चित्त! जबतक तू नष्ट नहीं होता तबतक शान्ति नहीं होती। स्वस्थ बैठे हुये जो चिन्ता प्राप्त होती है वह तेरेही संयोग से होती है। जहां चित्त नष्ट होता है तहां सर्व्व आनन्द होकर शीतलता और मित्रतासे पावन होता है। जैसे शीतकालका आकाश निर्मल होता है और मेघके नष्टहुये सूर्य्य प्रकाशता है तैसेही अज्ञान के नष्ट हुये आत्मा प्रकाशता और प्रसन्नता, गम्भीरता, महत्त्वता, और समताहोती है। जैसे वायु और मन्दराचल पर्व्वतसे रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् होता है और पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही अज्ञान के नाशहुये आत्मानन्दपाकर यह मनुष्य शोभता है। हे चित्त! यह स्थावर जंगम जगत् संवित्रूप आकाशमें है। उस महत् ब्रह्मको तुमभी प्राप्त हो। जो पुरुष आशारूपी फांसी को तोड़कर आत्मपद में प्राप्तहुआ है और जिसने संसारका सद्भाव निवृत्त किया है वह जन्म मरण के बन्धन में नहीं पड़ता। जैसे जलाहुआ पत्र फिर हरा नहीं होता तैसेही चित्त नष्ट हुआ जन्ममरण नहीं पावता। हे चित्त! तू सब को भक्षण करनेवाला है। जो तू संसार को सत्मानकर उसकी ओर धावेगा तो तेरा कल्याण न होगा और जो आत्माकी ओर आवेगा तो तेरा कल्याण होगा। जब तू अपना अभावकर आत्मपद में स्थित होगा तब कल्याणरूप होगा और जो तू अपना सद्भाव करेगा कि, आकारको न त्यागेगा तो दुःखी होगा। जो तेराजीना है वह मृत्यु समान है और जो मृत्यु है सो जीने के समान है। दोनों पक्षों में जो तेरीइच्छा हो सो अंगीकार कर। जो तू अबहीं आपको आत्मपदमें निर्वाण करेगा तो परमपदको प्राप्तहोकर परमसुखी होगा और जो न करेगा तो परमदुःखी होगा जो आत्मपदकात्याग करेगा वह मूढ़है। तेरा निर्वाणहोना आत्मपदमें जीने का निमित्तहै और आत्मासे भिन्न जो तू जीने की इच्छा करताहै सो तेरा जीना मिथ्याहै अर्थात् तू आदिमी मिथ्या है और अब भी विचार विना भ्रममात्रहै; विचार किये से नष्ट होजावेगा। जैसे सूर्य्य के प्रकाश विना अन्धकार होताहै और प्रकाशसे नष्ट होजाता है तैसेही विचार विना

चित्त है; विचार से नाश होजाता है। इतने काल में अविवेकसेही जीताथा। जैसे बालकों को अपनी परछाहीं में वेताल कल्पना होती है और विचार बिना भयपाता है-विचार किये से निर्भय होता है; तैसेही अब मैं तेरे सङ्गसे छूट अपने पूर्व्वस्वरूप को प्राप्तहुआहूं और विवेकसे तेरा अभाव हुआ है। इससे विवेक को नमस्कार है। हे चित्त! अविवेकसे तू मेरा मित्र था अब बोध से तेरा चित्तभाव नष्ट होगया। तू परमेश्वररूप है। अब वासना नष्ट हुई है। आगे तेरे में नानाप्रकार की वासना थी उससे तू मलिन और दुःखरूपथा। अब वासना के नष्ट होने से तेरा परमेश्वररूप हुआ है। तेरे में अज्ञानसे चित्तस्वभाव उपजा दुःखों का कारण था सो विवेकसे लीन हुआ है। जैसे रात्रिके पदार्थ सूर्य्यके उदयहुये लीन होजाते हैं तैसेही विवेक से चित्त भाव नष्टहुआ है सो सिद्धान्त का कारण है। तेरे सङ्गसे मैं तुच्छसा होगया था; अब शास्त्रोंकी युक्तिसे निर्णय किया है कि, न तू आगेथा, न अब है और न फिर होगा। जबतक मैंने आपको न जानाथा तब तक तेरा सद्भावथा; अब मैंने आपको जाना है और अपने आप में स्थित हुआ हूं। अब मैं परम निर्वाण और शान्तरूप हूं; सब ताप मेरे नष्टहुये हैं और नित्यशुद्ध चिदानन्द परब्रह्म स्वरूपहूं। जगत् की सत्य-असत्य कलना मेरी नष्ट हुई है क्योंकि, कलना सब चित्त में थी; जब चित्त निर्वाण होगया तब कलना कहां रही? मैं केवल शुद्ध आत्माहूं मेरा प्रतियोगी कोई नहीं और न व्यवच्छेद है क्योंकि; दूसरा कोई नहीं केवल चित्तकी चेतना फुरती थी सो निर्वाण होगई है और अब मैं स्वस्थ हुआ हूं। जैसे तरंगों से रहित समुद्र अचल होता है तैसेही सर्व्व कलना से रहित मैं वीतरागहूं और संवेदन से रहित समसत्तामात्र अपने आप में स्थित हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेचित्तोपदेशोनाम एकोनाशीतितमस्सर्गः ७९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वीतवने निर्वासनिक हो निर्णय करके विन्ध्याचल पर्वतकी कन्दरा में समाधि लगाई और आकाशवत् निर्मल चित्तहो इन्द्रियों की वृत्ति बाहर से खींचकर अचल की और फिर ग्रीवाको थामकरके चित्तकी वृत्ति अनन्त आत्मा साक्षीभूत में स्थित की। जैसे लकड़ियों को जलाकर अग्नि की ज्वाला शान्तहोजाती है तैसेही उसके प्राण और मनकी वृत्ति का स्पंद मिटगया और जैसे शिला में खोदी हुई पुतली होती है और मूर्ति की लिखी हुई पुतली होती है तैसेही स्थित होगया। मेघोंकी वर्षा शिरपर हो, मण्डलेश्वर शिकार खेलें, बड़े शब्द हों, रीछ और वानर शब्द करें, बारासिंगों और हाथियों के शब्दहों, वन में अग्नि लगे, पत्थरों की वर्षा हो, वायुचले और धूप पड़े तो भी वह समाधि से न

जागे और जैसे पहाड़में शिला दबी होती है तैसेही उसका शरीर दबगया। जब तीनसौ वर्ष इसीप्रकार व्यतीत हुये तब चित्त फुर आया कि, शरीर मेरे साथ है परन्तु प्राण नहीं फुरे और चित्तके फुरने में आपको कैलास पर्वत के ऊपर और कदम्बके वृक्षकेनीचे देखा। सौ वर्ष पर्य्यन्त मौनहोकर जीवन्मुक्त और निर्मल आत्मा हो विचरा। सौ वर्ष पर्य्यन्त विद्याधर होकर विद्याधरों में विचरा, उसके अनन्तर और पंचयुग बीतकर इंद्र हुआ तब देवता उसे नमस्कार करते थे। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! देशकाल और मन आदिक प्रतिभा उसको अनियत और अनियम कैसे भासित हुई ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! चित्त सर्वात्मरूप है; जैसा जैसा उसमें फुरना होता है तैसाही तैसा भासता है। जैसे जैसे देशकालका फुरना होता है तैसेही तैसे अनुभव होता है। हे रामजी ! जैसा कुछ प्रपंच है वह मनोमात्र है। जैसा फुरना तीव्र होता है तैसेही अनुभव सत्तामें भासित हो वहां स्थित होता है जब और भ्रममें गया तो नियमके अनुसार तैसेही होता जाता है। जो अज्ञानी होता है उसको वासना से नानाप्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् होता है वह सब आत्माको देखता है; उसका फुरना भी अफुरना है और वासनाभी अवासना है। वीतव मुनीश्वर ने चित्त के फुरनेसे इतना देखा परन्तु स्वस्थरूप था इस से उसकी वासना भी अवासना थी। जैसे भुनाबीज नहीं उगता तैसेही उसकी वासना भी अवासना थी और भ्रान्तिका कारण न था। फिर कल्पपर्य्यन्त वह चन्द्रधार सदाशिवजी का गण हो समस्त विद्याका ज्ञाता और सर्वज्ञ, त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त होकर विचरा। हे रामजी ! जैसा किसी का संस्कार दृढ़ होता है। तैसाही उसको अनुभव होता है। जैसे वीतव चित्तको स्पन्द करके जीवन्मुक्तका अनुभव करता था। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो ऐसे हैं तो जीवन्मुक्त के मतमें बन्ध मोक्ष हुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जीवन्मुक्तको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है; बंधमोक्ष अवस्था उसमें कहां है ? ज्ञानमात्र आकाश में जैसा फुरना होताहै तैसा हो भासताहै। हे अंग ! यह सब चिन्मात्र स्वरूप है और जगत् नानाप्रकारका मनसे भासता है; वास्तवमें न जगतहै; न अजगतहै; केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है। जगत् के भूत भविष्यत् केवल ब्रह्मसत्ता भासताहै। चिन्मात्रसे भिन्न जगत् मनके फुरने से भासता है जिनको ऐसा ज्ञान नहीं उनको जगत् वज्रसारसे भी दृढ़ हो भासता है और ज्ञानवान् को आकाशवत् भासता है। हे रामजी ! अज्ञानसे मन उपजाहै और उससे सम्पूर्ण जगत् हुआ है; वास्तवमें और कुछ नहीं। जैसे समुद्रमें तरंग और उल्लास होते हैं तैसेही चिदाकाश में आकार भासते हैं। जब चित्त अचित्त होजाता है तब कुछ द्वैत नहीं भासता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवमनोयज्ञवर्णनंनामाशीतितमस्सर्गः ८० ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! वीतव मुनीश्वरका जो शरीर विन्ध्याचल पर्व्वत में फँसाथा फिर उसकी क्या अवस्था हुई ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! उसके अनन्तर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर एककालमें शरीर गणोंको मनसे विचारने लगा कि, कई नष्ट होगये हैं। उन अनष्टों में पृथ्वी के मध्य जो उसका स्थित था उसको देखा कि, कन्दराकी धूड़में वर्षासे फँसगया है और ऊपर तृणजाल जमगया है। उसको देखकर कहनेलगा कि, इसमें प्रवेशकरूं पर फिर विचारकिया कि, यह तो जड़, गूंगा और फँसा हुआ है और इसको मैं नहीं निकालसक्ता; इससे सूर्यमण्डल को जाऊं कि सूर्य्य के सारथी अरुण पंगु इसको निकालेंगे; अथवा इसके साथ मेरा क्या प्रयोजन है ? यह नाश होजावे अथवा रहे इतना यत्न मैं किस निमित्त करूं ? मैं अपने निर्गुण स्वरूपमें स्थित होऊं देहसे मेरा क्या है। इसप्रकार विचार वीतव तूष्णीं होगया और एक क्षणके अनन्तर फिर चिन्तन करनेलगा कि, पृथ्वी में देह से न कुछ त्यागने योग्य है और न कुछ ग्रहण करने योग्य है; इससे देहको त्यागना और रखना समान है तो यह शरीर किस निमित्त दबारहे। कुछ काल और इसका प्रारब्धवेग है इसलिये आकाश में जो सूर्य्य स्थित है उसमें प्रवेशकरूं–जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब प्रवेश करता है और उस शरीरको सूर्य्यके सारथी से निकलवाऊं। हे रामजी ! ऐसे विचार कर मुनीश्वर पुर्यष्टकारूपसे आकाशमार्ग में चढ़ा और प्रणामकरके सूर्य्य के भीतर वायुरूप हो प्रवेश किया–जैसे शस्त्र पिंडमें अग्नि प्रवेश करती है। सूर्य्य भगवान् ने जाना कि, वीतव मुनीश्वर ने प्रवेश किया है और सर्वज्ञ थे इससे जाना कि, पृथ्वी में इसका शरीर कीचड़ और तृणों से दबा हुआ है उसके निकलवाने के निमित्त आयाहै। ऐसे विचार सूर्य्य ने अपने सारथीसे कहा, हे सारथी ! विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में वीतव मुनीश्वरका शरीर दबापड़ा है उसको तू जाकर निकालदे। तब अरुण नामक सारथीने जिसका शरीर हाथी के समान है विन्ध्याचल पर्व्वत में आकर नखोंसे वह शरीर निकाला। उसके नख ऐसे थे जिनसे वह पहाड़ उखाड़ डाले, उन नखोंसे धराकोटर में गड़े हुये उस शरीर को उसने निकाला। जैसे समुद्र के तीरे भीहका तंतुकीड़ा पाते हैं तैसेही पर्व्वत की कन्दरासे उस शरीर को निकाल डाला। तब मुनीश्वरने पुर्यष्टकासे उस शरीर में प्रवेश किया–जैसे पक्षी आकाशमार्गसे उड़ता उड़ता आलयमें आ प्रवेश करे–और सावधान होकर अरुणको नमस्कार किया और अरुणने भी वीतवको नमस्कार किया और अपने २ कार्य्यकी ओर हुये। अरुण तो आकाशमार्गको गया और मुनीश्वर का शरीर कीचड़से भराहुआ था इससे उसने तालाबपर जाकर डुबकीमारी और जैसे हाथी मल धोताहै तैसेही स्नानकरके सन्ध्यादिक कर्म किये और सूर्य्य भगवान्का पूजन किया। जैसे प्रथम तपसे शरीर शोभता था

तैसेही भूषित किया और मैत्री, समता, सत् मुदिता आदिक गुणों से सम्पन्न होकर ब्रह्मलक्ष्मी से सुशोभितहुआ और सबके सङ्गसे रहित भी रहा कि, इन गुणों को भी स्वरूपमें स्पर्श न करे और आपको शुद्ध स्वरूप जाने ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवसमाधियोगोपदेशो नामैकाशीतितमस्सर्गः ८१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार जब कुछ दिन व्यतीतहुये तब समाधि के निमित्त मुनीश्वरका मन उदयहुआ और विन्ध्याचल पर्व्वतकी कन्दरा में जाबैठा । पूर्व्व जो विचार अभ्यास किया था और परावर परमात्मदृष्टि हुईथी उससे फिर चित्त को कहा कि, हे चित्त और इन्द्रियो ! मैंने तुम्हारा पूर्व्वही प्रहार कर छोड़ा है । अब तुम्हारे अचित्त में अर्थ अनर्थ कोई नहीं क्योंकि; अस्तिनास्ति कलना मेरी नष्टहुई है । अस्तिनास्तिके पीछे जो शेष रहताहै उसमें स्थितहूं । जैसे पहाड़का शृंग अचलहोताहै तैसेही अचलहूं । सदा उदयरूप असत्की नाईं स्थितहूं और सदा ज्ञानस्वरूप प्रकाशवान्हूं । असत्की नाईं इसप्रकार कि, सदा अक्रियरूपहूं और असत्रूप उदय की नाईं स्थितहूं । असत् इसप्रकारसे कि, मन इन्द्रियों का विषय नहीं और उदयकी नाईं इस कारणसे कि, सबका साक्षीभूत हूं और सदा समरस प्रकाशरूप अपने आपमें स्थितहूं । प्रबुद्ध और सुषुप्ति विषय स्थितहूं । प्रबुद्ध इस कारण कि, जो इन्द्रियों के विषयका उपलब्धि करताहूं और सुषुप्ति इस कारण कि, हर्ष, शोक, इष्ट, अनिष्टसे रहित और जगत्की ओर से सुषुप्ति समाधि में हूं और वहां जाग्रत् हुआ तुरीया पद आत्मतत्त्वमें स्थितहूं । जैसे किसी स्थान में खम्भ स्थित होताहै तैसेही स्थितरूप नित्य, शुद्ध, समानसत्ता जो आत्मपद है वहां मैं निरामय स्थितहूं । हे रामजी ! इस प्रकार ध्यान करता हुआ वह मुनीश्वर ध्यान में लगा और छःदिनतक ध्यान में रहा और फिर जब जगा तो उस कालको क्षणके समान जाना—जैसे सोया हुआ क्षणमें जागे । इसी प्रकार वीतव शुद्ध पदको प्राप्तहुआ और जीवन्मुक्त होकर चिरकाल पर्य्यन्त विचरता रहा । न कोई वस्तु उसे हर्ष दे और न शोक दे; चलता हुआ भी स्थिर रहे और इन्द्रियोंका व्यवहार करता भी इष्ट–अनिष्टकी प्राप्ति में समरहे—कदाचित् किसी में चलायमान न हो । वह चलता बैठता मन और इन्द्रियों से कहे, हे इन्द्रियो ! मरो । हे मन ! अब तू समवान् हुआ है और आत्माको पाकर अब देख तुझको क्या सुख है । जिस सुखके पायेसे और पानेयोग्य कुछ नहीं रहता, वह निरोग सुख है । ऐसा जो परमशान्तरूप अचल सुख है तिसको आश्चर्य्य करके चंचलताको त्याग और हे इन्द्रियो ! तुम्हारा वास्तव में कुछ स्वरूप नहीं और आत्मपदमें तुम दृष्ट नहीं आतीं । अपने स्वरूप के जानेबिना तुम मुझको दुःख देती थीं;

अब मैं अपने स्वरूप को प्राप्त हुआहूं और अब तुम मुझे वशनहीं करसक्तीं क्योंकि; तुम अवस्तुरूपहो आत्मा के प्रमाद से तुम्हारा भान होता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में जो अनात्मभावना और अनात्मामें आत्मभावना होती है सो अविचार से होती है और विचार किये से नहीं होती। अब विचार करके यह भ्रम निवृत्त हुआ है; तुम इन्द्रियांगण और हो; अहंकार और है, ब्रह्म और है, कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है। और का दुःख आपमें मानना यही मूर्खता है। जैसे वनकी लकड़ी और है, बांस और है और चर्म और है जिससे रथ बनता है और लोहा, पीतल और कड़े जिनसे रथ जड़ाजाता है—सो भी और २ हैं और बैल जो रथको चलाता है सो भी जुदाहै; इन सबसे रथ बनता है और जैसे गृहका आकार होता है तैसे रथ है उस में बैठनेवाला पुरुष भी और होताहै और रथकी सब सामग्री परस्पर और २ होती है तो यदि उस में बैठनेवाला कहै कि मैं रथहूं तो नहीं बनता; तैसेही शरीररूपी रथ अज्ञान से मिला है। इन्द्रियां और हैं और मनआदिक और हैं उसमें पुरुष है सो जीव है; यदि जीव कहे कि, मैं शरीर हूं तो बड़ी मूर्खता है। उस शरीर के सुख दुःख मूर्खता से आपको मानता है जो विचार करके देखो तो राग द्वेषके क्षोभसे मुक्तहो। मैंने अविचाररूप विस्मृतिस्वरूपको दूरसे त्यागाहै और स्वरूपकी स्मृति स्पष्ट की है कि, आत्मातत्त्व सत्है। उसीको मैंने सत्जानाहै और अनात्मा असत् है उसको असत् जाना है। जो सत् है वह स्थित है, जो असत् है वह क्षीण होजाता है। हे रामजी! इसप्रकार वीतवमुनि विचार करके जीवन्मुक्त हुआ और अपने स्वरूप में बहुत वर्षोंको व्यतीत किया। निर्भयपद में चित्तादिक भ्रम सब नष्ट होजाते हैं। ऐसे शुद्धपद को प्राप्तहुआ वह यथाभूतार्थ आत्मध्यान में स्थित हुआ और ग्रहण और त्यागकी कुछ भावना न रही परिपूर्ण आत्मपद को प्राप्त हुआ। अगस्त्यमुनिका पुत्र वीतवमुनि उस पद को पाकर निर्वासनिक हुआ। फिर जिस काल में और जिस प्रकारसे वह विदेहमुक्त हुआ है वह भी सुनो। बीस हज़ार और सातसै वर्ष वह जीवन्मुक्त रहकर फिर विदेहमुक्त हुआ, जो इच्छा अनिच्छासे रहित पद है और जन्म मरणका जिसमें अन्त है उस राग द्वेषसे रहित पदको प्राप्त हुआ। हे रामजी! फिर उसने हिमालय पर्व्वत की कन्दरा में प्रवेशकिया और पद्मासन बांध हाथ जोड़कर कहा, हे राग! तुम निरोगता और निर्द्वेषताको प्राप्तहो। तुम्हारेसाथ मैंने चिरपर्यन्त विवेक से रहित क्रीड़ाकी है। तुम अब जावो, मेरा तुम को नमस्कार है। हे भोग! तुम्हारी लालसा से मुझको परमपदका विस्मरण होगया था। जैसे माता सुखके निमित्त पुत्रकी लालसा करती है तैसेही मैं सुख जानकर तुम्हारी लालसा करता था। अब तुम जावो तुमको मेरा नमस्कार है। अब मैं निर्वाण

पदको प्राप्त होताहूं । हे दुःख ! तुमको भी नमस्कार है । तेरे उपदेशसे मैं आत्मपदको प्राप्तहूं क्योंकि, मैं सदाभोग और सुख चाहताथा, और जब सुख प्राप्त होताथा तब तुझको भी साथ लेआताथा । सुखसे तेरी उत्पत्तिहोती है; सुखकी लालसामें तो मैं अनेक जन्मपातारहा पर जब सुखआवे तब तुझको भी साथलेआवे । तुझको देखकर मुझको आत्मपदकी इच्छा उपजी और तेरे प्रसादसे मैं परमशीतल पदवी को प्राप्तहुआहूं । हे दुःख ! तूतो दुःखथा परन्तु मुझको आत्मपद प्राप्तकिया इससे तेराकल्याणहो तू अब जा हेमित्र ! संसारमेंजीना असारहै; जिसका संयोग होताहै उसका वियोगभी होताहै । तूनेमेरे साथ बड़ा उपकार किया कि, अपना नाशकिया और मुझको सुख प्राप्तकिया क्योंकि जब तू मुझको प्राप्त न था तोभी आत्मपदके निमित्त कब यत्नकरताथा । तूने अपना नाशकरना माना परन्तु मुझको सुख प्राप्तकिया । हे मित्र ! तू बांधवोंकी नाईं चिरकाल पर्यंत मेरे साथरहा और कदाचित् मुझसे दूर न हुआ । मैंने तेरा नाश नहीं किया पर तूने अपना नाश आपही किया है । तू मुझको जब प्राप्तहुआ था तब मुझको विवेक उत्पन्नहुआ, उस विवेकने तेरा नाशकिया है इससे तुझको मेरा नमस्कार । और, हे मातातृष्णा ! तुझको भी नमस्कार है । तू सदा मेरे साथ रही है और कदाचित् त्यागनहीं किया । जैसे अयाने बालक का त्याग माता नहीं करती तैसेही तूने मेरा त्याग नहीं किया । अब तू जा । हेकामदेव ! तुझने आपही विपर्यय होकर अपना नाश किया । जब तू बहिर्मुख था तब जीता था और जब अन्तर्मुख हुआ तब तू मिटगया । तुझको नमस्कार है । हे सुकृतो ! तुमको नमस्कार है । तुमने-भी बड़ा उपकार किया कि, नरकोंसे निकालकर स्वर्गों में डाला परन्तु अन्त सब का वियोग होना है इससे तुमभी जाओ । हे दुष्कृतो ! तुम भी जाओ । विकर्मरूपी तुम्हारा क्षेत्र है और युवाअवस्था बीज है उससे दुःख फल होता है तुम्हारे साथभी संयोग हुआ था इससे तुमको भी नमस्कार है, तुमभी जाओ । हे मोह ! तुझको भी नमस्कारहै । तुझसे चिरकाल मैं बँधाथा और नानाप्रकारके स्थानों को प्राप्तहोताथा और तू भयदिखाताथा उससे मैं भयपाता था । इससे तुझको नमस्कारहै, अब तू जा । हे गिरिकन्दरा ! तुझको भी नमस्कार है । तुममें मैंने चिरकाल तपकियाहै । हे बुद्धि ! हे विवेक ! तुमको भी नमस्कारहै । तुमने मेरेसाथ उपकारकिया है कि, संसार बन्धन से मुक्तकिया । तुमभी जावो । हे दण्ड और तूंबा ! तुमको भी नमस्कारहे । तुमभी-जावो । बहुत काल तुमभी मेरे सम्बन्धी रहेहो । हे देह ! रक्त मांसका पिंजर होकर तू मेरे साथ बहुतकाल रहीहै और तूने उपकारकिया है । विवेक उपजानेका स्थान तूही है, तेरे संयोगसे मैंने परमपद पाया है । तूभी अब जा, तुझको नमस्कार है हे संसारके व्यवहारो ! तुमको भी नमस्कार है, तुम्हारेमें मैंने बहुत क्रिया की है । ऐसा

पदार्थ जगत् में कोई नहीं जिससे मैंने व्यवहार न कियाहो, ऐसाकर्म कोई नहीं जो मैंने न किया होगा और ऐसादेश कोई नहीं जो देखा न होगा। अब सबको नमस्कार-है। हे इन्द्रियो, प्राण और मनादिक! तुमको नमस्कारहै। तुम्हारा हमारा चिरकाल संयोग था अब वियोगहुआ क्योंकि; जिसका संयोग होताहै उसका वियोगभी होता-है। इससे तुम्हारा हमारा भी वियोग होता है। नेत्रोंकी ज्योति सूर्य्यमण्डल में जा लीनहोगी, घ्राणोंकी गन्ध पृथ्वीमें लीनहोगी और प्राण त्वचा पवन में, श्रवण आ-काशमें, मन चन्द्रमा में और जिह्वा रस में लीनहोगी। इसीप्रकार सब अपने अपने अंशमें लीनहोंगे। जैसे लकड़ियों के जलेसे अग्नि शान्त होजाती हैं; शरत्काल में मेघ शान्त होजाता है; तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाता है और सूर्य्य के अस्त हुये प्रकाश शान्त होजाता है तैसेही मनादिक शान्त होजावेगा। हे रामजी! ऐसे विचार करते करते उसका मन सर्व्वकार्य्य से रहितहो प्रणव के ध्यानमें लगा और सर्व्व दृश्यसे शान्त और मोहरूपी मलको त्यागकर प्रणवके विचारमें लगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवोपाख्यानेइन्द्रियनिर्वाणं नामद्व्यशीतितमस्सर्गः ८२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार उसने शब्द ब्रह्म प्रणवका उच्चार किया और पंचम भूमिका जो चित्तकी अवस्था है उसको प्राप्तहुआ भीतर–बाहरकेस्थूल सूक्ष्म पदार्थों और त्रिलोकी के सब सङ्कल्पोंको त्यागकर वह अक्षोभरूप स्थितहुआ जैसे चिन्तामणि अपने प्रकाशमें स्थितहोती है; जैसे पूर्णकालसे चन्द्रमा अपने आप में स्थित होता है, जैसे मन्दराचलके निकलनेसे क्षीरसमुद्र स्थितहोता है और मथ-नेसे रहित मन्दराचल स्थित होता है जैसे कुम्हारका चक्र फिरता २ ठहरजाता है जैसे सूर्य्यके अस्तहुये जीवोंकी व्यवहार क्रिया ठहरजाती हैं; जैसेमेघसे रहित शरत् कालका आकाश निर्मल होता है और प्रकाश तमसे रहित आकाश होता है; तैसेही फुरनेसे रहित उसका मन शान्तिको प्राप्त हुआ। प्रणवका ध्यान करके फिर उस वृत्तिके अन्तको प्राप्त हुआ और फिर मंत्रकोभी त्याग--जैसे महापुरुष क्रोध-को त्यागते हैं तैसेही वृत्तिको त्यागा। फिर तेजका प्रकाश उदय हुआ उसको भी निमेष में त्यागा। आगे न तेज है, न तम है उसमें अभाव वृत्ति रहती है उसको भी निमेष में त्यागा, तब जैसे नूतन बालक की जन्म से पदार्थ ज्ञानसे रहित अवस्था होती है तैसेही अवस्था प्राप्त हुई। तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्तपदहै उसका आश्रयकिया और महाअचल जो सुमेरुकीनाईं स्थिर अवस्था है उसको प्राप्तहुआ। फिर केवल अचेतन चिन्मात्र तुरीया निरानन्द आनन्दपदमें जिसमें स्वरूपसे भिन्न और आनन्द नहीं प्राप्तहुआ। वह असत् असत्रूप है सर्व क्रियासे अतीत है, इस

कारण असतहै और अनुभवरूप है इसकारण सत्यरूप है। ऐसे अशब्द पदको वह प्राप्तहुआ जो परमशुद्ध पावन और सर्व्वभावके भीतर प्राप्तहै और सर्व्वभाव शब्दसे रहितहै। जिसको शून्यवादी–शून्य, ब्रह्मवादी–ब्रह्म; विज्ञानवादी–विज्ञान, सांख्य मत-वाले–पुरुष; योगवाले, ईश्वर; शैवी–शिव; वैष्णव–विष्णु; शाक्त–परमशक्ति; काल-वादी–काल; आत्मवादी–आत्मा और माध्यमिक–माध्यम इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं सो एक परब्रह्मकोही कहते हैं जो सर्व्वदा, सर्व्वकाल, सर्व्वप्रकार, सर्व्वमें सर्व्वरूप है। ऐसे सर्व्वात्माको वह मुनीश्वर प्राप्तहुआ। जिस आनन्द समुद्रके बलसे सर्व्वको आनन्द होता है ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनन्दको वह प्राप्तहुआ और वहीरूप होगया। जो अन्य और निरन्य, निरंजन, सर्व्व, असर्व्व, अजर, अमर सबके आदि सकलंक–निष्कलंक है ऐसे आकाश से निर्मल पदको वीतव मुनीश्वर प्राप्तहुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नामत्र्यशीतितमस्सर्गः ८३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दुःखरूप संसारसमुद्र के पार हो वीतव मुनीश्वर उस परमपदको प्राप्तहुआ जिसपदके प्राप्तहुये जीव फिर जन्म मरणको नहीं पाता और जिसपद में स्थितहुआ परमशांत उपशम आनन्दको प्राप्तहोताहै–जैसे समुद्र में पड़ी-हुई बुन्द समुद्र होजाती है तैसेही ब्रह्मसमुद्र में वह ब्रह्महोगया और शरीर जो था वह विरसहोकर गिरपड़ा जैसे शीतकाल में वृक्षों के सूखे पत्र गिरपड़ते हैं। शरीर-रूपी वृक्षमें हृदयरूपी आलय था और उसमें प्राणरूपी पक्षी रहताथा सो चिदाकाश में प्राप्तहुआ जैसे खँभानी से पत्थर धावता है तैसेही जा प्राप्तहुआ और अपने स्व-रूपमें स्थितहुआ। हे रामजी! यह मैंने वीतवकी कथा तुझको सुनाई है सो अनन्त विचारकरयुक्तहै इसप्रकार विचारकर वीतव विश्रामवान् हुआहै। तुमभी उसको विचार कर सिद्धताकेसारको प्राप्तहो और दृश्यकी चिन्तनाको त्यागके सावधानहो। हे रामजी! जो कुछ मैंने तुझसे पूर्व्वकहा है कि, उसपदमें प्राप्तहुआ फिर कुछ पाने योग्य नहीं रहता और अब जो कुछ कहता हूं और जो कुछ पीछे कहूंगा उसको विचारो। मुक्ति ज्ञानहीसे होतीहै और ज्ञानहीसे सबदुःख नाशहोतेहैं; ज्ञानहीसे अज्ञान निवृत्तहोता और ज्ञानही से परमसिद्धता को प्राप्तहोता है। पाने योग्य यही वस्तु है, और कोई दुःखोंका नाश नहीं करसक्ता। यह निश्चय है कि, ज्ञानसे सब फांसी कटजाती हैं और ज्ञानही से वीतवने मनको चूर्णकिया। हे रामजी! वीतवकी संवित् जगत् के अतीत होगई। जो कुछ दुःख है वह मनसे होताहै और मनके उपशम हुये सबजगत् अनुभवरूप होजाता है। वीतवभी मनोमात्रथा; मैंभी मनोमात्रहूं तूभी मनोमात्र है

और पृथ्वी आदि जगत् भी सर्व्व मनोमात्रहै; मनसे भिन्न कुछनहीं। जहां मनहोता है वहां जगत् होता है, मनही जगत्रूप है और जगत्ही मनरूप है। जो ज्ञानवान् पुरुष है वह मनकी दशा को त्यागके केवल चिदानन्द आत्मतत्त्व में स्थित होताहै और रागद्वेष आदि विकार उसके मिटजाते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेवीतवविश्रांतिसमाप्तिर्नामचतुरशीतितमस्सर्गः८४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वीतवकी नाईं विदित वेद होकर तुम भी रागद्वेष से रहित स्थित हो। जैसे तीससहस्र वर्ष वीतव वीतशोक और जीवन्मुक्त होकर विचरा है तैसेही तुम भी विचरो। और भी बोधवान् राजा और मुनीश्वर हुये हैं जैसे वे उस पद में प्राप्त हुये राजादिक व्यवहार में रहे हैं तैसेही तुमभी जीवन्मुक्त होकर रहो। हे रामजी! सुखदुःख कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्व्वज्ञ है; तुम किस निमित्त शोककरतेहो? बहुत विदित वेद पृथ्वीमें विचरते हैं परन्तु शोकको कदाचित् नहीं प्राप्त होते-जैसे तुम अब शोक नहीं करते हो। हे रामजी! तुम अब स्वस्थ, उदार, शम और सर्व्वज्ञहो; अब तुमको फिर जन्म न होगा। जीवन्मुक्त पुरुष जो अपने स्वरूपमें स्थित है वह हर्ष शोकको प्राप्तनहीं होताहै। जैसे सिंह, वानर और श्रृगाल आदिक के वश नहीं होता तैसेही जीवन्मुक्त विकारों से रहित होता है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! इसप्रसंगमें मुझको संदेह हुआहै उसको जैसे शरत्काल में मेघनष्ट होजाता है तैसेही नाशकरो। हे तत्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तके शरीर में शक्ति क्यों नहीं दृष्टिआती कि, आकाश में उड़ता फिरे और सूक्ष्मरूप से और शरीर में प्रवेश करजावे इत्यादिक? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आकाशगमनादिक जो सिद्धि हैं सो तपादिक कर्मों की शक्ति हैं। जो कुछ जगत् विचित्र दिखाई देना और फिर गुप्त होजाना इत्यादिक हैं वे वस्तु द्रव्य के स्वभाव हैं; आत्मा के ज्ञान के नहीं। हे रामजी! कोई द्रव्य, क्रिया और काल को यथाक्रम साधता है उसको भी शक्ति प्राप्त होती है और ज्ञानी साधे अथवा अज्ञानी साधे उसको शक्ति प्राप्त होती है परन्तु वह शक्ति आत्मज्ञानका फल नहीं। आत्मज्ञानीको आत्मज्ञानकीही सिद्धता होती है; वह आत्मासेही तृप्त होता है और सिद्धि जो अविद्यारूप हैं उनकी ओर नहीं धावता। जो कुछ जगत् है वह उसने अविद्यारूप जानाहै इससे वह पदार्थों में नहीं डूबता। जो अज्ञानी है वह सिद्धताके निमित्त इन पदार्थों को साधता है और जो ज्ञानवान् है वह इन पदार्थोंके वास्ते यत्न नहीं करता। यत्न करने से ज्ञानी हो अथवा अज्ञानीहो इन्द्रादिकों के ऐश्वर्य्य को पाता है और वह ज्ञान की शक्ति नहीं, द्रव्य-की शक्ति है सो अविद्यारूप है। अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं ज्ञानवान् नहीं धावते क्योंकि, वे सब से अतीत हैं। जिसने सर्व्व इच्छाका त्याग किया है और

आत्मपद में संतोषपाया है वह इनकी इच्छा नहीं करते। इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाई के निमित्त होती है अथवा मान और जीने और सिद्धि के निमित्त होती है आत्मज्ञानी को भोगों की, सिद्धता की और मानकी इच्छा नहीं होती क्योंकि, ये सब अनात्म धर्म हैं और वह नित्य तृप्त, परमशांतरूप, वीतराग, निर्वासनिक पुरुष है और आकाशकी नाईं सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे सुख स्वाभाविक आता है तैसेही दुःख भी स्वाभाविक आता है। शरीर के सुख दुःखकी अवस्थामें वहचलायमान नहीं होता; नित्यतृप्त और असंग होता है और जीवन मरण की वृत्ति उसको नहीं फुरती सब में सम रहता है जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं और समुद्र अपनी मर्यादा में स्थित रहता है तैसेही ज्ञानवान् को क्षोभ नहीं प्राप्त होता। हे रामजी! जो कुछ ज्ञानवान् को प्राप्त होता है उसे वह आत्मा में अर्चन करता है; उस को करने में कुछ अर्थ नहीं और न करने में कुछ प्रत्यवाय है। उसको किसी का आश्रय नहीं सदा अपने स्वरूप में स्थित है और यह मंत्र सिद्धि काल कर्म से होती है। एक योग क्रिया ऐसी है कि, उसके साधने से उड़ने की शक्ति हो आती है, एक मंत्रों से शक्ति होती है और एक गुटका मुख में रखने से उड़ने इत्यादिक की शक्ति होती है; शक्ति की नीति प्रथमही हो रहती है। उससे अन्यथा नहीं होती। हे रामजी! जैसी शक्ति जिस साधन से नियत हुई है उसको सदा शिव भी अन्यथा नहीं करसक्ते क्योंकि; वह स्वाभाविक स्वतः सिद्ध है—जैसे चन्द्रमा में शीतलता और अग्नि में उष्णता है इत्यादिक आदि नीति है उस को कोई दूर नहीं करसक्ता और सर्व्वज्ञ जो विष्णु भगवान् हैं वे भी अन्यथा नहीं करसक्ते। हे रामजी! जिस द्रव्य में मारने की सत्ता है वह मारता है; और मद्य में मत्त करने की शक्ति है तैसेही द्रव्य, योग, काल आदिक में सिद्धता शक्ति नियतहुई है। जैसे एक औषध में क्लेश करने की शक्ति है तो उसके पाये से क्लेश होताहै तैसेही इनमें अपनी २ शक्ति है। जो इनको साधता है उसको ये प्राप्त होती हैं। आत्मज्ञानी जो उसका साधनकरे तो वह कर्त्ता में भी अकर्त्ता है। आत्मज्ञान के पाने में सिद्धि कुछ उपकार नहीं करसक्ती परन्तु जो इनकी वाञ्छाकरे तो यत्न करके पाता है—यत्न विना नहीं पाता। आत्मज्ञानी को इच्छाभी नहीं होती क्योंकि, आत्मलाभसे उसकी सब इच्छा शान्त होजाती हैं। हे रामजी! जितने लाभ हैं उनसे परम उत्तम आत्मलाभ है। आत्माको पाकर फिर किसी की इच्छा नहीं होती। जैसे अमृतके पानकिये और जलकी इच्छा नहीं होती तैसेही आत्माके लाभ से और इच्छा नहीं होती। ऐसा आत्मलाभ जिसने पाया है उसको इनसिद्धियों की इच्छा कैसेहो? जैसी जैसी किसीकी इच्छा होती है उसको तैसाही प्राप्त होता है। ज्ञानी हो अथवा ज्ञानसे रहितहो इच्छाप्रयत्न के अनुसारही प्राप्त होती है। यह जो

वीतव था उसको इच्छा कुछ न थी और प्रथम जो सूर्य्य के पास जानेकी शक्ति दृष्टि आई थी सो क्रिया के साधन से थी; पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा कुछ न रही। हे रामजी ! जो कुछ किसी को फल प्राप्त होता है सो अपने प्रयत्न से प्राप्त होता है। जो ज्ञानवान् है वह सदा तृप्त रहता है उसको इष्ट अनिष्टकी इच्छा कुछ नहीं फुरती फिर रामजीने पूछा, हे भगवन् ! तीनसौ वर्ष वीतव मुनीश्वर समाधि में रहा तो उस का शरीर पृथ्वी में पृथ्वी क्यों न होगया और सिंह भेड़िये स्यार आदिक उसको क्यों न भोजन करगये ? पीछे विदेहमुक्त हुआ प्रथम क्यों न हुआ ? पृथ्वी में दबे हुये शरीर को निकालने के निमित्त बड़ायत्न क्यों किया, इस संशय को निवारण करो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! संवित् वासनाके साथ बँधीहुई सुख दुःख को भोगती है और मलीन भावसे घिरी हुई है; जो वासना से रहित शुद्ध समतारूप है और जो सुख दुःखके भोगसे रहित है और किसी कारण छेदी नहीं जाती हे रामजी ! जिस जिस पदार्थ में चित्तलगता है वही २ पदार्थ स्वरूपमें भासते हैं यह पदार्थ की शक्ति है। जैसी पदार्थों में शक्ति होती है तैसीहीं भासती है; इसकारण बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं तो भी समाधि के बलसे उसका शरीर ज्योंका त्यों रहताहै क्योंकि; चित्त जिस पदार्थ में लगता है उसकारूप होजाता है। जैसे मित्रको मित्रभावसे देखता है तो स्वाभाविकही प्रसन्न होताहै और शत्रु को देखकर चित्त में स्वाभाविकही अप्रसन्नता फुरआती हैं; मीठी वस्तुको देखकर चित्त स्वाभाविकही लोलप होजाता है और कटु-कमें विरसताको प्राप्त होताहै; मार्ग चलनेवाले का चित्त मार्ग के पर्व्वत और वृक्षों के रागसे बंधायमान नहीं होता; चन्द्रमाके निकटगये से शीतलता होती है और सूर्य्यके निकट उष्णता प्राप्तहोती है सो पदार्थकी शक्तिहै जिस पदार्थकेसाथ वृत्तिका स्पर्श होता है उसका स्वाभाविक आरम्भ विफल प्राप्तहोता है। तैसेही योगी जबदेह और इन्द्रि-योंकी वासना और ममत्वभावको त्यागकरके समभावमें प्राप्तहोता है तब उसको सम-भावका अनुभवहोताहै अर्थात् सबमें एकही भासता है। इसकारण शरीरको सिंहादिक कोई भोजन नहीं करसक्के और जो जीव उसके घात करनेको आते हैं वे हिंसाभावको त्याग अहिंसक होजाते हैं। वीतवका शरीर जो छेदको न प्राप्तहुआ और न पृथ्वी में पृथ्वी होगया उसका यहकारणहै कि, सर्वत्रसमता आकाश एकही स्थित है और काष्ठ, लोष्ठ, पत्थर ब्रह्मादितृण पर्य्यन्त सब में एक अनुस्यूत है; जहां पुर्यष्टका होती है वहां भासता है और जहां पुर्यष्टका नहीं होती वहां नहीं भासता, जैसे सूर्य्यका प्रतिबिम्ब सब ठौरमें पूर्ण है परन्तु जहां स्वच्छ ठौर, दर्पण, जल आदि होते हैं वहां भासता है और जहां उज्ज्वलठौर नहीं होता वहां प्रतिबिम्ब नहीं भासता तैसेही जहां पुर्यष्टका है वहां संवित् भासती है अन्यथा नहीं भासती, इसकारण वीतवकी संवित् जो सम-

भाव में स्थित है उसको किसीतत्त्व और जीवकाक्षोभ नहीं होता। पंचतत्त्वों का क्षोभ तब होता है जब प्राणफुरते हैं और जब प्राणफुरने से रहित होते हैं तब तत्त्वों का क्षोभ नहीं होता; वीतव की प्राणों के भीतर और बाहरकी स्पन्दकला शांतहोगई थी और प्राण और चित्तकला दोनों फुरने से रहितथीं इससे उसका हृदय भी क्षोभित न हुआ। हे रामजी! देहरूपी गृह में जब चित्त और वायुकास्पन्द शांत होजाता है तब शरीर नाशहोजाता है और सब सुमेरुकी नाईं स्थित होजाताहै; तब किसीकी सामर्थ्य नहीं होती कि, इसको क्षोभकरे और नाशकरे। योगीश्वर का चित्त और प्राण निस्पन्द होजाता है। वह इनको वशकरके लगाताहै तब उसको न तत्त्वोंका क्षोभहोताहै, न वात, पित्त, कफकाक्षोभ होता है और न और कुछक्षोभ होता है इसकारण योगीका शरीर सहस्र वर्ष पर्यंत भी ज्योंकात्यों रहता है नष्ट नहीं होता है। जैसे वज्रको कोई चूर्ण नहीं करसक्ता तैसेही उसके शरीर को कोई नाश नहीं करसक्ता—सबकी शक्ति उसपर कुंठित होजाती है। इसकारण वीतव का शरीर ज्योंकात्यों रहा। पहिले वह विदेह मुक्त क्यों न हुआ सोभी सुनो। हे रामजी! तत्त्वज्ञ और विदित वेद, वीतराग महाबुद्धि है। जिनकी अभिमानरूपी गांठि टूटपड़ी है वे पुरुष स्वतन्त्र स्थित होते हैं, उनको न कोई प्रारब्ध कर्म है, न संचितकर्म्म है और न वर्त्तमान का कर्म्म है। तत्त्ववेत्ता सबसे मुक्त, स्वतन्त्र और स्वेच्छ बिचरता है और जैसी इच्छाकरे तैसी शीघ्रही होती है। हे रामजी! वीतवको जब आकाशमात्रसे जीनेका स्पन्द फुरआया तब वह कुछकाल जीतारहा और जब उसकी संवित् में विदेहमुक्त होने का स्पन्दफुरा तब विदेहमुक्त होगया। ज्ञानवानों की स्थिति स्वाभाविक स्वतंत्र होती है; जिसकी वे वाञ्छा करते हैं सो तत्कालही होजाताहै और मन आत्मपद में स्थित होता है; उनको कुछ कृत और कर्त्तव्य नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसिद्धिलाभविचारोनामचतुरशीतितमस्सर्गः ८४॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, जब विचार से वीतव का चित्तशांत होगया तब उसको मैत्री, करुणादिक गुणप्राप्त हुये परन्तु जब विवेक से उसका चित्त नष्ट होगया तो फिर मैत्री आदिक गुणकहां आन प्राप्तहुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्तका नाश दो प्रकारका है। जीवन्मुक्तका चित्त अचित्त रूपहोजाता है और विदेह मुक्तका चित्त स्वरूप से नष्ट होजाता है। जैसे भूनादाना होता है तैसेही जीवन्मुक्तका चित्त देखने में चित्तरूप है बीच से शब्दभावनहीं और जैसे दाना नष्टहोजावे तैसेही विदेह मुक्तका चित्त देखनेमात्रभी नहीं रहता। हे रामजी! चित्तकी सत्यताही दुःखों का कारण है और चित्तकी असत्यताही सुखों का कारण है। जिस चित्त में

विषयों की वासनाफुरती है सो चित्त जन्मों का देनेवाला है और दुःखों का कारण है। गुणों के संगसे अहंमम भाव में रहता है और चित्तकी सत्यता से जीव कहाता है। हे रामजी! जबतक चित्त विद्यमान है तबतक अनन्त दुःख होता है। दुःखरूपी वृक्ष का बीज चित्तही है। जब चित्तनष्ट होता है तब कल्याण होता है। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! मन किस का नामहै? कैसे नष्टहोता है और कैसे अस्त होता है सो कहिये? वशिष्ठजी ने कहा, हे प्रश्नवेत्ताओं में श्रेष्ठ! चित्तसत्ताकालक्षण मैंने तुमसे कहा है; अब चित्तमृतक का लक्षण सुनो। जिसको सुख और दुःखकीदशा धीर्य और स्वरूपकोचला नहीं सक्ती। जैसे सुमेरु को पवन चला नहींसक्ता तैसेही जिसके चित्तको दुःखचला नहीं सक्ता तिसका मृत्यु जानो; अर्थात् जो चित्तसत्पदकी प्राप्तहुआ है उस चित्त से चिंतानाश होजाती है। जैसे भूनेदाने में अंकुर नाश होजाता है तैसेही उसका चित्त नाश होजाता है। जिसको आत्मासे भिन्न कुछनहीं फुरता वह चित्त मृतक हुआ है। हे रामजी! जिसके चित्तको अहं इच्छा द्वेषादिक विकार तुच्छ न करसके उसका चित्त मृतकजानो और जिसको इन्द्रियों के विषय इष्ट अनिष्ट न प्राप्तहों और रागद्वेष से ग्रहण त्याग की द्वैतभावना न उपजे ज्योंकात्यों रहे उसीपुरुष का चित्तमृतक जानो। जिसका चित्त नाशहुआ है उसे जीवन्मुक्तजानो। जिसको संसारके इष्ट पदार्थों में राग होता है वह ग्रहणकी इच्छा करता है और अनिष्ट की प्राप्ति में द्वेषकरके त्यागने की इच्छा करता है। अहं मम भावसंयुक्त देहमें जो अभिमान है उससे आपको सुखी दुःखी मानताहै और अपने में अनुभव होताहै सो चित्त जीता है—यह चित्तसत्यता है जब चित्त संसार से विरक्त हो और सत्संग और सच्छास्त्रों का श्रवण और मनन और स्वरूप का अभ्यास करे तब चित्त अचित्त होजाता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है और तभी जीवन्मुक्त होकर विचरता है। जिसप्रकार मैत्री आदिक गुण जीवन्मुक्त में होते हैं सोभी सुनो। हे रामजी! चित्त में जो संसारकी सत्यता रूपी मैल है यही चित्तभाव है। वह जब आत्मज्ञानसे नष्ट होजाता है तब मैत्री आदिक गुण आन प्राप्त होते हैं। जैसे सूर्य्यके उदय हुये तम नष्ट होजाता है और प्रकाश उदयहोता है और जैसे भूनेदाने का अंकुर जलजाता है तैसेही ज्ञान से चित्तका चित्तस्वभाव नष्ट होजाता है और मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं। तब देखने मात्र चित्त दिखता है और अज्ञानी की नाईं यत्न करता भासता है परन्तु अज्ञानी का चित्त जन्मका कारण है ज्ञानी का चित्त जन्मका कारण नहीं। जैसे कच्चादाना उगता है, भूना नहीं उगता; तैसेही अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता। जैसे चन्द्रमा राहु से छूटता है तब चित्त में मैत्री, करुणा आदिक गुण उदय होते हैं और जैसे वसन्तऋतु के आये बेलें सब प्रफुल्लित हो आती हैं तैसेही चित्त भाव

मिटे से मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक फुरते हैं। जो विदेहमुक्तहोता है उसका चित्त स्वरूप से भी नष्ट होजाता है और वहां गुण कोई नहीं रहता वह अवस्था और कोई नहीं जानता विदेहमुक्तही जानता है। उसमें द्वैतकल्पना कुछनहीं फुरती और निर्मल पावन पदहै। हे रामजी! जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूप में अचित्तहोकर रहता है और विदेहमुक्त में चित्त स्वरूपसे नष्ट होजाता है, इसकारण जीवन्मुक्तमें मैत्री आदिक गुण पाये जाते हैं। आत्मा जो निर्मल और निष्कलंक है सो चित्त के नष्ट हुये विदेहमुक्तमें रहताहै; उस में गुणोंकी कल्पना कोई नहीं फुरती वह परमपावन निर्मल पदमें स्थित होता है और शान्ति आदिक गुणभी नष्ट होजाते हैं क्योंकि; चित्तस्वरूपसे नष्टहोजाता है। चित्तके नष्ट हुये चित्तकी अवस्था कहां रही। तब न कोई गुणरहताहै, न अवगुण रहताहै; न वह गुणोंसे उत्पन्नहुआ सारकहाताहै और न अवगुणों से उत्पन्न हुआ असार कहाता है; न लोलुप है; न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है; न उदय है, न अस्तहै; न हर्ष है, न शोक है; न तेजहै, न तमहै; न दिन है, न रात्रिहै; न संध्याहै, न दिशाहै; न आकाश है; न अर्थ है, न अनर्थहै; न वासना है, न अवासनाहै; न अञ्जनहै, न निरञ्जनहै; न सत्यहै, न असत्य है; न चन्द्रमाहै, न तारे हैं और न सूर्य्य है। ऐसा जो सर्वकलना से रहित शरत्काल के आकाशकी नाईं निर्मल और बुद्धि से परे पदहै उसमें और की गम नहीं। जैसे आकाशके स्थानको पवन जानता है तैसेही उसकी अवस्थाको वही जाने। वहां स्थितहुये सबदुःख शान्तहोजाते हैं और ब्रह्मानन्द में लीनहोजाताहै। ज्ञानवान् आकाश की नाईं निर्मलपदको प्राप्तहोता है जिसके पाये से और पाना कुछ नहीं रहता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेज्ञानविचारोनामपञ्चाशीतितमस्सर्ग्गः ८५॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! परमाकाशके कोशमें एकपहाड़है उसपर जगत्‌रूपी एक वृक्षहै; तारे उसके फूलहैं; मेदुपत्रहैं; सूर्य्य, चन्द्रमा स्कंध हैं और देवता, दैत्य, मनुष्यादिक सब जीव उसपर पखेरूरहते। सातोंसमुद्र उस पहाड़पर बावलियां हैं और अनन्त नदियां उसमें प्रवेशकरती हैं चतुर्दश प्रकारके भूतजात उसमें उत्पन्न होते हैं और सुख दुःखरूपी फलोंसे पूर्ण है, और मोहरूपी जलसे वह सींचा जाता है सो दृढ़होकर स्थित हुआहै। उसका बीज कौन है? बोधकी वृद्धिके निमित्त यह ज्ञानरूपी सार मुझसे संक्षेप से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इससंसारका बड़ाबीज शरीरहै; जिसके भीतर आरम्भकी घनताहै। जब शुभ अशुभका आरम्भ शरीर का अंकुर होताहै तब शुभ अशुभ करताहै, इससे संसारका बीज शरीरही है; और शरीरका बीज चित्तहै; राजस, सात्त्विक और तामस वृत्ति उसकी टहनियां हैं। वही जन्ममरण का भंडारहै और सुख दुःखरूपी रत्नोंका डब्बाहै। ऐसा जो चित्त है वह इस शरीर का

कारण है। हे रामजी ! जो कुछ जगत्जाल दृष्टिआताहै वह सब असत्रूप है। चित्त के फुरनेसे नानाप्रकार के आडम्बर भासते हैं। जैसे गन्धर्वनगर नानाप्रकारके आरंभ सहित भ्रमसे भासता है और सङ्कल्पपुर भासता है सो असत्है तैसेही यह जगत् असत्है। जैसे मृत्तिका में घटभावहोता है तैसे चित्त में जगत्का सद्भाव होताहै। चित्त रूपी अंकुरके वृत्तिरूपी दो टास होते हैं—एक प्राणोंका फुरना और दूसरा दृढ़भावना। जब प्राणस्पंदहोताहै और हृदयमात्रमें जो एकसौएकनाड़ी हैं उनकीओर संवेदनरूप चित्त उदयहोताहै तब प्राणस्पंद उनकी ओर नहीं फुरता। जब प्राण फुरता है तब शुद्ध सात्विक चित्त उपजताहै और उसमें जगत् भासताहै। जैसे आकाशमें नीलता भासती तैसेही प्राणोंमें नीलता भासती है। जब प्राणस्पंद होताहै तब चित्तसंवित् उछलतीहै—जैसे हाथसे ताड़नाकिया गेंद उछलताहै। जैसे प्राणस्पंद में सर्वगत संवित् उपलब्धरूप होती है और वहां प्रतिबिम्बरूप होकर सात्विकभाग में स्थित होती है और महासूक्ष्मसे सूक्ष्म है—जैसे वायुमें गन्धरहती है। वही संवित्रूपको त्यागकर जब बहिर्मुख धावती है तब उससे नानाप्रकार के जगत् भासते हैं और नानाप्रकार की वासना उठती हैं और उनसे अनेकदुःखों को प्राप्तहोताहै। इससे, हे रामजी ! संवित् को अन्तर्मुख रोकनाही कल्याणका कारण है। जब संवित् स्वरूपमें स्थितहोतीहै तब क्षोभ मिटजाताहै और जबशुद्ध संवित्में अहंउल्लेख फुरता है तब वेदनरूप होती है सोहीचित्तहै; चित्तसे अनेक दुःखहोते हैं और चित्तका होना अनर्थका कारण है। जब चित्त न उपजे तब शान्ति होजाती है और चित्त तब निवृत्तहोता है जब प्राणस्पन्द रोकिये अथवा वासना नष्टहो। ध्यान और प्राणायामसे योगीश्वर प्राणोंको रोकता है तब चित्त स्थितहोजाताहै। यह योग से अनुभव करता है। ज्ञानसे जो अनुभव होताहै सोभी सुनो। हे रामजी ! चित्तवासना से उत्पन्नहोताहै और वासना विचार से रहित फुरती है। जैसे बालकोंको जन्मसेही स्तनोंसे दूधपीने की वृत्ति फुरतीहै तैसेही अकस्मात् भावनाकी दृढ़ता से वासना फुरआती है। हे रामजी ! जिसमें पुरुषकीतीव्र भावना होती है वहीरूप पुरुषका होता है। स्वरूपके प्रमादसे जो भासित होता है उस में दृढ़ प्रतीत होजाती है तब उसकी भावना करता है और जगत्की वासनासे मोह प्राप्तहोताहै स्वतःसिद्ध जो अनुभवरूप आत्मा है उसको जाननहींसक्ता। वासना की प्रबलता से स्वरूपका त्यागकरता है और भ्रान्तिरूप जगत् को सत्य देखता है—जैसे मद्यसे मतको पदार्थ और के और भासते हैं तैसेही मूर्खोंको वासनाके बलसे जगत् के पदार्थ सत्यभासते हैं। हे रामजी ! असम्यक्ज्ञानसे जीव दुःखीहोताहै; शान्तिको नहीं प्राप्तहोता और मनकी चिन्तासे जलताहै। मन किसका नामहै सो सुनो। जो असम्यक्ज्ञान से अनात्मामें आत्मभावना हो और वस्तु आत्मामें अवस्तु अनात्म

भावना हो उसका नाम मन है । वह मन ऐसे उत्पन्न होता है कि, प्रथम चेतन संवित् में पदार्थों की चिन्तना होती है फिर तीव्र पदार्थों की दृढ़ भावना होती है तब वही चेतन संवित् चित्तरूप होजाती है । उस चित्तमें फिर जन्म मरणादिक विकार उपजते हैं और फिर किसी का ग्रहण और किसीका त्याग करताहै । जब ग्रहण और त्यागका संकल्प हृदयसे निवृत्त हो तब चित्तभी मृतक होजावे । जब वासना नष्टहो जाती है तब मन अमनपदको प्राप्त होताहै । मन का अमन होनाही परमउपशम का कारण है । हे रामजी ! जो कुछ जगत् के पदार्थ हैं उनकी अभावना कीजिये और सब जगत् अवस्तुभूत त्याग कीजिये तब हृदय आकाश में चित्त शांत होगा । हे रामजी ! चित्तका स्वरूप इतना है । जब पदार्थों से रस उठजावे तव चित्त फिर नहीं उपजता । जबतक पदार्थोंका रस फुरता है तबतक स्थूल रहता है और असम्यक् ज्ञानसे अनात्मामें जो आत्मभावना है ज्यों ज्यों यह दृढ़ होती है त्यों त्यों चित्तरूपीवृक्ष अनर्थ के निमित्त बढ़ता जाताहै और ज्योंज्यों अनात्मासे आत्मबुद्धि निवृत्तहोजाती है अर्थात् अवस्तु में वस्तु बुद्धि नहीं होती त्योंत्यों चित्तरूपी वृक्ष क्षीण होता जाता है सो कल्याण के निमित्त है । जब चित्त यथाभूत यथार्थ को देखता है तब चित्त अ-चित्त होजाता है, सब आशा निवृत्तहोजाती हैं और परमशान्ति और शीतलता हृदय में स्थित होती है तब पदार्थोंको ग्रहणभी करताहै परन्तु हृदयसे राग संयुक्त वासना निवृत्त होती है तो उससे चित्त शांतिको प्राप्त होता है । हे रामजी ! जीवन्मुक्त में भी चेष्टा दृष्ट आती है परन्तु जन्मका कारण नहीं होती क्योंकि; मनमें मनका सद्भाव नहीं होता । जैसे नटुआ अभिमान से रहित अनेक प्रकार के स्वांग धरता है तैसेही वह अभिमान से रहित चेष्टाकरता है और जैसे कुम्हारका चक्र भ्रमता २ ताड़ना से रहित हुआ शनैः स्थिर होजाता है तैसेही ज्ञानवान्का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है परन्तु जन्मका कारण नहीं होता और जब प्रारब्धभोग पूर्ण होता है तब स्वाभाविक ठहरजाता है । जैसे भूनाबीज नहीं उगता तैसेही रागसे रहित ज्ञानी की चेष्टा जन्मका कारण नहीं होती देखनेमात्र ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य होती है । जैसे भूना और कच्चाबीज एक समान भासता है परन्तु कच्चा उगता है और भूना नहीं उगता तैसेही ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं होती क्योंकि; उसका चित्त शांत होजाता है । हे रामजी ! जिसकी चेष्टा अभिमान से रहित है वह जीवन्मुक्त कहाता है । उसका चित्त केवल चिन्मात्रको प्राप्त हुआ है और वह जब शरीर को त्यागता है तब अचित्तरूप चिदाकाश होता है । हे रामजी ! चित्तके दो बीज हैं—एक प्राणों का फुरना और दूसरा वासनाका फुरना । जब दोनों में एक का अभाव हो जाता है तब दोनों नाशहोजाते हैं—ये परस्पर कारणरूप हैं । जैसे तालसे मेघ जल

पान करके फिर वर्षासे तालको पुष्ट करता है सो परस्पर कारणरूप है; तैसेही प्राण स्पन्द और वासना परस्पर कारणरूप हैं। जैसे बीजसे अंकुर होते हैं और अंकुर से बीजहोते हैं तैसेही प्राणस्पन्द से वासना होती है और वासनासे प्राणस्पन्द होता है। ये दोनों चित्तके कारण हैं। जैसे फूल विना सुगन्ध नहीं और सुगन्ध विना फूल नहीं होता तैसेही वासना विना प्राण नहीं होते और प्राण विना वासना नहीं होती। हे रामजी! जब वासना फुरती है तब सम्भवित में क्षोभ होता है और वह प्राणों को जगाती है तब उसमें जगत् उपजताहै। जब हृदयमें प्राणस्पन्दके धर्म्म होते हैं तब संवित् क्षोभवान् होता है और चित्तरूपी बालक उपजता है। इस प्रकार वासना और प्राण दोनों चित्तके कारण हैं जब दोनों में एक का नाश होजावे तब दोनों नाश होजावें और चित्तका भी नाश होजावे। हे रामजी! चित्तरूपी एक वृक्ष है; सुख दुःखरूपी उसके स्कंध हैं; चिन्तारूपी फल हैं; कार्य्यरूपी पत्र हैं; वृत्तिरूपी बेल से वेष्टित हुआ है और राग द्वेषरूपी दो बगले उसपर आन बैठे हैं; तृष्णारूपी काली सर्पिणी से वेष्टित है और इन्द्रियांरूपी पक्षी उसपर आन बैठे हैं; इच्छादिक रोगों से पुष्ट होताहै और अज्ञान इसका मूल है। जब अवासनारूपी खड्गसे शीघ्र-ही काटाजाता है तब संसारकी अभावना और स्वरूप की भावना से शीघ्रही नाश होजाता है। जैसे तीक्ष्ण पवन से पकाहुआ फल वृक्षसे शीघ्रही गिर पड़ताहै तैसेही आत्मभावसे फल गिरपड़ताहै। हे रामजी! चित्तरूपी आंधीने सर्व्व दिशा मलिन करके प्रकाशको घेर लिया है और तृष्णारूपी तृण उसमें उड़ते हैं। शरीररूपी स्तम्भाकार वायुगोला अज्ञानरूपी कुण्डसे उपजा हुआ बड़े क्षोभको प्राप्त करता है। जब हृदय में प्रकाशहो तब तम को दूरकरे और जब स्पन्द रोकिये तब धूर शान्त होजाती है। आत्मविचार से जब वासना रहितहो तब शरीररूपी धुवां शान्तहोजावे। हे रामजी! प्राणों के रोकने से शान्तिहोती है और वासना के न उदय होने से चित्त स्थिर होजाताहै। प्राणस्पन्द और वासनाका बीज संवेदनहै, जब शुद्ध संवित्मात्र से संवेदनका त्यागकरे तब वासना और प्राण दोनों न फुरें। जैसे वृक्षका बीज और मूल काटडालिये तो फिर नहीं उगता, तैसेही इनका मूल संवेदन है। जब संवेदन का अभावहो तब दोनों नहीं बनते। संवेदनका बीज आत्मसत्ता है, संवित्सत्ता से संवेदन प्रकट हुआहै उससे भिन्न नहीं। जैसे तिलोंमें तेलके सिवा और कुछ नहीं होता तैसेही संवित्सत्ता के सिवा हृदय में और कुछ नहीं पायाजाता—वही संकल्प द्वारा संवेदनको देखताहै। जैसे स्वप्ने में मनुष्य अपनी मृत्यु देखता है और देशांतरको प्राप्त होता है तैसेही सब सत्ता संवेदन को देखती हैं। चिन्मात्र संवित् में संवेदन का उत्थान होता है कि, 'अहंअस्मि' तब संवेदन जगत् जाल दिखाती है। अपना

ही संवेदन उठकर आपको भ्रम दिखाता है—जैसे बालकको अपने संकल्प से उपजा वेताल सत्य भासता है और जैसे स्थान में पुरुष भासता है तैसेही संवित् में संवेदन भासता है । हे रामजी ! असम्यक् ज्ञान से संवेदनरूप होजाता है तो उसमें आत्म-बुद्धि होती है और सम्यक् ज्ञान से लीन होजाता है । जैसे रस्सी में असम्यक् ज्ञान से सर्प भासता है तैसेही आत्मा में संवेदन भासता है । तीनों जगत् ब्रह्म संवित्रूप हैं संवेदन भी कुछ भिन्न नहीं । जिनको यह निश्चय दृढ़ होता है उनको बुद्धीश्वर सम्यक् ज्ञानी कहते हैं । प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जो जगत् है उससे वास्तव बुद्धि त्याग करने से भी संसार के पार होता है और जो अवस्तुबुद्धि से न त्यागेगा तो जगत् बड़े विस्तार को पावेगा । हे रामजी ! संवेदन का जो उत्थान होताहै सो बड़े दुःखों का देनेवाला है और संवेदन जो जड़वत् अजड़ है वह परमसुख सम्पदा का कारण है सो आनन्द उत्थान से रहित आनन्दस्वरूप है । जिसको संवेदन उत्थान से रहित असंवेदन संवित् आत्मा की बुद्धि हुई है वह संसारसमुद्र से पार होता है । रामजी ने पूछा, हे प्रभो ! जड़ता से रहित असंवेदन कैसे होता है और असंवेदन से जड़ता कैसे निवृत्त होती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो सर्व्व ठौर में आसक्त नहीं होता और कहीं चित्तकी वृत्ति नहीं लगाता और जिसमें जीव तत्त्वका कुछ ज्ञान न रहे वह असंवेदन जड़ता से रहित है । संवेदन स्पन्दरूप है, जिससे दृश्य भासता है सो दृश्यकी ओर से जड़ है और स्वरूप में चेतन है वह अजड़ कहाता है । हे रामजी ! हृदयाकाश जो चेतन संवित् है उससे संवेदन का स्पर्श कुछ न हो ऐसा संवित् अ-जड़ है । देवता, नाग, दैत्य, राक्षस, हाथी, मनुष्य आदिक स्थावर जंगमरूप सब वही धारती है । हे रामजी ! अपनी चेष्टा से संवित् आपको आपही बँधाती है । जैसे कुसवारी आपही आपको गृहमें बँधाती है तैसेही संवित् आप को बँधाता है । जब अपनी ओर आती है तब आपही आपको प्राप्त होती है । हे रामजी ! जगत् जाग्रत्रूपी समुद्र है उसमें संवित्रूपी जलहै जिससे सब स्थान पूर्ण होगया है । अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आकाश, पर्व्वत, नदी आदिक सब संवित्रूपी जल की लहरें हैं इससे सब जगत् संवित्मात्र है और उसमें द्वैत कलना का अभाव है । यह सम्यक् ज्ञान है । इस संवित् का बीज सन्मात्र है उसमें द्वैत कलना का अभाव है । यह सम्यक् ज्ञान है । इस संवित्का बीज सन्मात्र है और सन्मात्र सत्तासे संवित् उदय हुआ है—जैसे प्रकाश से ज्योति उदय होती है । इस सत्ता के दोरूप हैं—एकरूप नानाप्रकार हो भासता है और दूसरा एकही रूप है । घट, पट, तत्त्व आदिक एकसत्ता के नाना प्रकार के विभाग स्थित हैं और विभागसे रहित एक सत्ता स्थित है—वह सत्ता समान अद्वैतरूप परमार्थ है । हे रामजी ! विषयको त्यागकर जो सन्मात्रहै वह अलेप एक

रूपहै सोही महासत्ता है। उसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं। नानाआकार भी वह सत्ता कभी नहीं धारती। यह संवेदन से हुये हैं इसकारण अवस्तुरूपहै। एक रूप जो परमसत्ता निर्मल अविनाशी है वह न कभी नाश होता है और न विस्मरण होता है क्योंकि; अनुभवरूप है। हे रामजी! एक कालसत्ता है और एक आकाशसत्ता है सो यह सत्ता अवस्तुरूप है। इस विभागसत्ताको त्यागकर संन्मात्रसत्ताके परायण हो। कालसत्ता और आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम हैं परन्तु वास्तव नहीं। जहां नानाविभागकलना, आकार और नाना कारण हैं वह पवित्रकर्त्ता पावन नहीं। इसी से कहाहै कि, आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं और सत्तासमान जो संवित्मात्र है वह सबका बीजहै उसीसे सबकी प्रकृति होती है। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ हैं उनकी कलना सत्तासमानपर्यंत है। उस अनन्त, अनादि, बीजरूप परमपदका बीज और कोई नहीं। जब उसका भान हो तब यह निर्विकार होकर स्थित हो। जीवन्मुक्त उसीको कहते हैं जिसे दृश्यकी भावना कुछ न फुरै। जैसे बालक मूक, और अभिमान से रहित होता है तैसेही ज्ञानसे जीव निर्वासनिक हो तब जड़ता से मुक्त होता है और सर्व्व आत्मभाव को प्राप्त होता है। जिस संवित् में दृश्यका स्पर्श होता है वह संवित् जड़ है क्योंकि; शुद्धस्वरूप में मलिन का स्पर्श होताहै। जो संवित् द्वैत फुरने से रहित है वह शुद्ध और अजड़ है और जो द्वैतभावको ग्रहण करती है वह स्वरूप की ओरसे जड़ है। हे रामजी! जिसकी स्वरूप की ओर स्थितिहुई है और दृश्यभावका लेप नहीं होता है वह सर्व्व वासना को त्यागकर निर्विकल्प समाधि में लगता है। जैसे आकाशमें नीलता स्वाभाविक वर्त्तती है तैसेही योगी आनन्द में वर्त्तता है और निस्संवेदन संवित् में प्रविष्ट होकर वही रूप हो जाता है जिसके मनकी वृत्ति वहां स्थिर होजाती है और बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगन्ध लेते, देखते, सुनते और सब इन्द्रियों की क्रियाकरते भी मन स्थिर रहता है दृश्यका अभिमान नहीं फुरता वह अजड़ कहाता है और संवेदन से रहित सुखीहोता है। हे रामजी! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती परन्तु पीछे सब दुःखोंका नाश कर्त्ता होती है, इससे इसीदृष्टिका आश्रयकरके दुःखरूप जो संसारसमुद्रहै उससे तर जावो। जैसे वटका बीज सूक्ष्महोता है पर विस्तारको पाकर आकाश को स्पर्श करने लगता है तैसेही सूक्ष्म संवेदन से जब संकल्प फैलता है तब वही बड़े जगत् के विस्तार को धारता है और जन्मके जालको प्राप्त होता है। बीजरूप से आपही अपने को जन्मों में डालता है और फिर फिर मोह में गिरता है। जब संवित् अपनी ओर होती है तब मोक्षको प्राप्त होता है और जैसी भावना स्वरूप में दृढ़ होती है वही सिद्ध होती है। जैसे नटुआ अनेक स्वांग को धारता है तैसेही संवित् अनेक

आकारों को धारती है । जब नट भूमिका को त्यागता है तब अपने स्वरूप में प्राप्त होता है । हे रामजी ! संवित्‌रूपी नटनी जगत्‌रूप धारकर नृत्य करती है । जो दुःख रूप संसारसमुद्रसे न गिरे सो सत्ता सब कारणों का कारण है और उसका कारण कोई नहीं और वही सब सारोंका सारहै उसका सार कोई नहीं । उसी चेतनरूपी बड़े दर्पण में समस्त जगत् प्रतिबिम्बित होता है । जैसे ताल में किनारे के वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं तैसेही सब वस्तु चिद् दर्पणमें प्रतिबिम्बित होती है । हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ हैं वे सब आत्मसत्ता से सिद्ध होते हैं और उसी अनुभवमें सबका अनुभव होता है । जैसे षट्‌रसों का स्वाद जिह्वासे सिद्ध होता है तैसेही सब पदार्थ चिदाकाश के आश्रय सिद्ध होते हैं । सब जगत्‌गण उसीसे उपजे हैं; उसीमें वर्तते और बढ़ते हैं; उसी में स्थित दिखते हैं और उसी में लीन होते हैं । सबका अधिष्ठान वही सत्ता है और गुरुका गुरु;लघुकी लघुता;स्थूलकी स्थूलता;सूक्ष्मकी सूक्ष्मता;द्रव्योंका द्रव्य;कष्टों में कष्ट; बड़े में बड़ाई, तेजका तेज;तमका तम; वस्तुकी वस्तु; द्रष्टा का द्रष्टा; किंचनमें किंचन; निष्किंचन में निष्किंचन; तत्त्वोंका तत्त्व; असत्य का असत्य; सत्यका सत्य; आश्रम में आश्रम और अनाश्रम में अनाश्रम वही है । हे रामजी ! ऐसी जो परम-पावन सत्ता है उसमें प्रयत्न करके स्थित हो; फिर जैसे इच्छाहो तैसे करो । वह आत्म-तत्त्व निर्मल, अजर, अमर, शान्तरूप और चित्तके क्षोभसे रहित है; उसमें भवसंसार से मुक्तिके निमित्त स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेस्मृतिबीजविचारोनामषडशीतितमस्सर्ग्गः ८६ ॥

रामजीने पूछा, हे महानन्दके देनेवाले ! यह जो बीजों का बीज आपने कहा है सो किस प्रकार प्राप्तहो ? जिस प्रकार उस पदकी शीघ्र प्राप्तिहो वह उपाय कहिये । वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी ! इन सब के बीजका जो उत्तर दिया है उस उपायसे परमपद की प्राप्तिहोती है । अब और भी जो तुमने पूछा है वह सुनो । सत्तासमान में स्थित होनेके निमित्त यत्न कर्त्तव्य है । जो कुछ संसार की वासना है बलकरके उसको त्याग करिये और शुद्ध आत्मामें तीव्र अभ्यास करिये तब शीघ्रही अविघ्न आत्मस्वरूपकी प्राप्तिहोगी । हे तत्त्ववेत्ता ! उस पदमें एक क्षणभी स्थित होगे तो अक्षयभावको प्राप्त होगे । हे रामजी ! सत्तासमान संवित्‌मात्र तत्त्व है उसमें स्थित होके जो इच्छा हो सो करो तब उसके सिवा और कुछ सिद्ध न होगा—सब वही भासेगा । ऐसा जो अनुभवतत्त्व है वह तुम्हारा स्वरूप है उसके ध्यानमें स्थित हुये तुमको कुछ खेद न होगा । ऐसा संवेदन के साथ ध्यान नहीं होता और ऊंचापद है पुरुषप्रयत्नसे उस पदको प्राप्तहो । हे रामजी ! केवल संवेदन के साथ ध्यान नहीं होता क्योंकि सर्वत्र सम्भव संवित् तत्त्वहै । संवित् सर्वदा सर्व्वकाल सहायक होती है और सबसे मिली हुई है

जो कुछ चितवे, जो इच्छित हो जो कुछकरे सो सब संवित् से सिद्धहोता है । हे राम
जी ! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है पर उसका भान नहीं होता और जो कुछ भासता है वही
अविद्या आवरण है सो इसको दुःखहोता है । स्वरूपके प्रमादसे जो दृश्यकी वासना
करता है उसकी दृढ़तासे अन्तःकरण दुःख पाताहै । जब यत्नकरके वासनाका त्याग
करिये तब मन और शरीरके दुःख सब नाश होजावेंगे । पूर्व्व जो मोह दृढ़ होरहा
है—जैसे मेरुको मूलसे उखाड़ना कठिन है तैसेही वासना का त्याग कठिन है । वह
वासना मनसे होती है; जबतक मन क्षय नहीं होता तबतक वासना भी क्षय नहीं
होती । तत्त्वज्ञान बिना मन नाश नहीं होता । वासना और मनका आवरण एक साथ
दूरहोता है । यह परस्पर कारणरूप है । इस से, हे रामजी ! तुम पुरुषप्रयत्न करके
मनके सङ्कल्प विकल्पको निवृत्त करो और अभ्यास और विचार करके विवेक का
उपाय करो और भोगोंकी वासना दूरसे त्यागो—इसी से तुम शान्तिमान् होगे । इन
तीनों के सम अभ्यास से तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय का वारंवार अभ्यास
करो । जबतक इनको न साधोगे तबतक अनेक उपायों से भी शांतिको न प्राप्त
होगे । हे रामजी ! वासनाक्षय हो और मनोनाश और तत्त्वज्ञान का अभ्यास न
करे तो कार्य सिद्ध नहीं होता और जो मनोनाश करे और तत्त्वज्ञान से वासनाक्षय न
करे तबभी कल्याण न होगा और तत्त्वज्ञान का विचार करे और वासनाक्षय न हो
तौभी कुशल न होगा । जब इन तीनों का सम अभ्यासहो तब फलकी प्राप्तिहो । हे
रामजी ! एकके सेवने से सिद्धता नहीं प्राप्त होती—जैसे मंत्रीको कोई प्रतिबन्ध लय
करे तो मंत्र फलदायक नहीं होता । और एक एक चरणपढ़े तौभी फलदायक नहीं
होता । जबतक सब मंत्र संध्यादिक एकठौर नहीं होते तबतक मंत्र नहीं फुरते; तैसेही
अकेलेसे कार्य सिद्ध नहींहोता । जब चिरकाल इनको इकट्ठा सेवे तब कार्यहो । जैसे सेना
संयुक्त बड़ा शत्रुहो और उसके मारने को एक शूरमा जावे तो शत्रुको मार नहीं सक्ता
और यदि इकट्ठे सेनापर जापड़े तब उसको जीतलेवे; तैसेही संसाररूपी शत्रुके नाशके
लिये जब तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय का इकट्ठा अभ्यासहो तब संसाररूपी
शत्रुनाशहो । हे रामजी ! जब तीनोंका अभ्यासकरोगे तब हृदयकी अहंममग्रंथि टूटप-
ड़ेगी । अनेक जन्मोंकी संसारसत्यता जो इसके हृदयमें स्थित होरही है सो अभ्यास
योगसे टूटपड़ेगी इससे चलते, बैठते, खाते, पीते, सुनते, सूंघते, स्पर्श करते और जागते
इनतीनों का अभ्यास करो । हे रामजी ! वासनाके त्यागसे प्राणस्पन्द रोकाजाता है ।
जब प्राणोंका स्पन्द रोका तब चित्त अचित्त होजाता है । एक प्राणों के रोकनेसेही
वासनाक्षयहोजाती है, तबभी चित्त अचित्त होजाताहै । आत्मयोगसे अथवा वासना
के त्यागसे आत्मतत्त्व प्रकाशेगा । इनमें जो तुम्हारी इच्छाहो वहीकरो; चाहे प्राणों

को योगसे रोको और चाहे वासना का त्यागकरो । प्राणायाम तब होता है जब गुरु की दीहुई युक्ति स्थित होतीहै और आसन और आहार के संयमसे प्राणोंका स्पन्द रोकाजाता है । जब सम्यक् ज्ञानसे जगत् को अवास्तव जानता है तब वासना नहीं प्रवृत्तहोती । जो जगत् के आदि और अन्त में स्थित है उसमें मन जब स्थित होता है तब वासना नहीं उपजती । हे रामजी ! जब व्यवहार में निःसंग और संसारकी भावना से विवर्जित होताहै और शरीर में नाशवन्त बुद्धि होती है तब भी वासना नहीं प्रवृत्तहोती और जब विचार करके वासना क्षयहो तब चित्त भी नष्ट होजावेगा जैसे वायुके ठहरने से धूलि नहीं उड़ती तैसेही वासना के क्षयहुये चित्त नहीं उपजता । जो प्राणस्पन्द है वही चित्तस्पन्द है; जब वासना फुरती है तब जगत् भ्रम उपजता है । जैसे अरुणसे धूलि उपजती है तैसेही चित्तसे वासना उपजती है जब प्राणस्पन्द ठहरता है तब चित्तभी ठहरजाता है; इससे यत्न करके प्राण स्पन्द अथवा वासना के जीतने का अभ्यास करो तब शांतिमान् होगे और जो यह उपाय न करोगे और दूसरे यत्नसे चित्त वशकरने का उपाय करोगे तो बहुत काल से पावोगे । हे रामजी ! इस युक्तिके विना मनके जीतने का और कोई उपाय नहीं है । जैसे मतवाले हाथी को अंकुश विना वश करने का उपाय और कोई नहीं तैसेही मनभी युक्ति विना वश नहीं होता । वह युक्ति यह है कि, सन्तों की सङ्गति और सत् शास्त्रोंका विचार करना । इस उपायसे तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय और प्राणोंका स्पन्द रोकना होताहै चित्त वश करने की यह परमयुक्तिहै–इससे चित्त शीघ्रही जीता जाता है । जो इन उपायों का त्यागकर हठसे मन वश किया चाहते हैं वे क्या करते हैं ? जैसे तमके नाश करने को दीपक जगावे तो नाश होजाता है और शस्त्रोंसे तमको काटे तो तम नाश न होवेगा तैसेही और उपायोंसे चित्त वश न होगा । इसविना जो और उपाय करते हैं वे मूर्ख हैं । जैसे मतवाला हाथी कमलकी तांतसे बांधा नहीं जाता और जो कोई इससे बांधने लगे तो महामूर्ख है; तैसेही मनके जीतने को और प्रकार जो हठ करते हैं सो महामूढ़ हैं । और उपाय करके क्लेश प्राप्त होगा आत्मसुख प्राप्त न होगा । जैसे दुर्भागी जीवोंको कहीं सुख नहीं होताहै । हे रामजी ! जिसने तीर्थ, दान, तप और देवताओंकी पूजा–यहचारों साधन किये हैं और मन जीतनेका उपाय नहीं किया वह मृगकी नाईं भ्रमता फिरताहै और पहाड़ोंकी कन्दरामें फल और पत्रखाता फिरताहै क्योंकि उसने मनका नाश नहीं किया इससे आत्मपदको नहीं पाया वह और पशुओंके समान है; जैसे और पशु होते हैं तैसेही वह भी है । हे रामजी ! जिसपुरुषने मनको वश किया उसको शांति नहीं होती । जैसे कोमलअंग मृग ग्राममें जाने से शांति नहीं पाता और जैसे जलमें पड़ा तृण नदी के वेगसे भटककर कष्टवान् होताहै तैसेही वह

पुरुष कर्म करताहै और मनको स्थितकिये विना कष्टपाताहै। कभी दुःखसे जलता है और कभी कर्मोंके वशसे स्वर्गको प्राप्तहोताहै पर वह भी नाश होजातेहैं। जैसे जल में तरंग उछलते हैं; कभी अधकोजाते और कभी ऊर्ध्वको जाते तैसेही कर्मोंके वशसे जीव स्वर्ग नरक में भ्रमते हैं। इससे ऐसी दृष्टिका त्याग करके शुद्ध संवित् मात्रका आश्रयकरो और वीतराग होकर स्थित हो। हे रामजी! जगत्में ज्ञानवान्ही सुखी है और जीता भी वही है; और सब दुःखी और मृतक समानहैं। और बली भी ज्ञानवान्ही है जो मोहरूपी शत्रुको मारकर संसारसमुद्रके पारहोताहै और सब निर्बल हैं। इससे तुमभी ज्ञानवान्हो संवेदनरहित जो संवित्मात्र तत्त्व है उसमें स्थितहो वह एक है और सबके आदि, सबसे उत्तम, कलना से रहित और सब में स्थितहै तो कर्त्ता हुये भी अकर्त्ता होगे और परब्रह्म उदय होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेसंशयनिराकरणोपदेशोनामा
ष्टाशीतितमस्सर्गः ८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुषने आत्मविचारकर अपना चित्त अल्प भी निग्रह किया है वह सम्पूर्ण फलको प्राप्तहोगा और उसीका जन्म सुफल होगा। हे रामजी! जिस चित्त में विचाररूपी कणका उदयहुआ है वह अभ्यास से बड़े विस्तारको पावेगा। हृदय में जो विरागपूर्वक विचार उपजता है तो वह बढ़ताजाताहै और अविद्यारूपी गुणों के फलको काटडालेगा और सब शुभगुण, आन उसमें आलय करेंगे-जैसे जलसे पूर्ण हुये तालका सब पक्षी आन आश्रय करते हैं। हे रामजी! जिसको सम्यक् ज्ञान प्राप्तहोता है और निर्मल बोधसे यथादर्शन होताहै उसको इन्द्रियां चला नहीं सक्तीं। जबतक स्वरूपका प्रमादहोताहै तबतक आधि व्याधि दुःखहोते हैं और जब स्वरूपमें स्थितिहोती है तब शरीर और मनकेदुःख वश नहीं करसक्ते-जैसे बिजुलीको कोई ग्रहण नहीं करसक्ता, तैसे पुष्टिकर मेघोंको कोई पकड़ नहीं सक्ता, जैसे आकाशके चन्द्रमाको मुष्टिमें कोई नहीं पकड़ सक्ता और मूढ़स्त्री चन्द्रमा को मोहनहीं सक्ती, तैसेही ज्ञानवान्को कोई दुःख वश नहीं करसक्ता। हे रामजी! जो हाथी मदसे मत्तहै और जिसके मस्तकसे मद झरताहै और भँवरे उसके आगे शब्दकरते हैं उसको मच्छरोंके प्रहार और स्त्रियोंके श्वास नहीं छेदसक्ते; तैसेही ज्ञानवान्को विषयोंके राग द्वेष नहीं चलासक्ते। जिस हाथी के मस्तक से मोती निकलतेहैं ऐसे बलवान् हस्ती के नखों से बिदारनेवाले सिंहको हरिण नहीं मारसक्ता; तैसेही ज्ञानवान् को दुःख नहीं चलासक्ता। जिसके फुत्कारसे वन के वृक्ष जलजाते हैं ऐसे सर्पको दर्दुर नहीं ग्रास सक्ते; तैसेही ज्ञानवान्को रागद्वेष नहीं चलासक्ते। जैसे राजसिंहासनपर बैठे राजों को तस्कर दुःख दे नहीं सक्ते तैसेही जो ज्ञानी स्वरूप में स्थित है उसको इन्द्रियों के

विषय दुःख नहीं देसक्के। जो विचारसे रहित देहाभिमानी हैं और आत्मतत्त्वको नहीं प्राप्तहुये उनको विषय उड़ा लेजाते हैं-जैसे सूखे पत्रको पवन उड़ा लेजाताहै-और ज्ञानवान्‌को नहीं चलासक्के। जैसे पर्वत मंद पवनसे चलायमान नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् सुख दुःखमें चलायमान नहीं होता और जो विचारसे रहित है वह देश के परिणाम भाव में स्थित मानता है और जगत् भाव है। संसार भाव पदार्थों में रत मनुष्य जन्म में गुरु और शास्त्र का मार्ग उसकी ओर से सो रहाहै और मूढ़ हो खानेपीने में सावधान है जो विचार से शून्यहै, वह मृतक समान है और मृतक कहाता है। उसको यह विचार कर्त्तव्य है कि, 'मैं कौनहूं' 'यह जगत् क्या है' 'कैसे उत्पन्न हुआ है' और कैसे निवृत्त होगा,। इसप्रकार विचारकर संतों के संग और अध्यात्म शास्त्र के विचार से जो पुरुष दृश्यभाव को त्यागकर आत्मतत्त्व में स्थित होता है वह परमपद पाता है। जैसे दीपक के प्रकाश से पदार्थ पायाजाता है तैसेही विचार से आत्मतत्त्व पाया जाता है। हे रामजी। जिसको शास्त्र विचार से आत्मतत्त्व का बोध होता है वह ज्ञानी कहाता है और वह ज्ञान ज्ञेय के साथ अभिन्न रूप है। अध्यात्मविद्या के विचार करके आत्मज्ञान प्राप्त होता है। जैसे दूध से मथकर मक्खन निकाला जाता है तैसेही विचार से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञेय जो भीतर होता है सोई परब्रह्म स्वरूप है और सत्य है पर असत्य की नाईं होकर स्थित है। ज्ञानवान् उसको पाकर तृप्त होता है और जीवन्मुक्त होकर अपने आप में प्रकाशता है। जैसे चक्रवर्ती राज्य से आनन्द और तृप्ति होती है तैसेही ज्ञानवान् ब्रह्मानन्द में इन्द्रियोंकी इच्छा से रहित शोभता है और शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं होता। सुन्दर राग, तन्त्री के शब्द, स्त्रियों के गाने और कोकिलापक्षी और गन्धर्व गन्धर्वी आदि में जो गायन हैं उन किसी में वह आसक्त नहीं होता। अगर, चन्दन, मन्दार, कल्पवृक्ष के सुन्दर फूलों की सुगन्धि; अप्सरा और नागकन्याओं की नाईं सुन्दर स्त्रियों का स्पर्श करने और हीरे, मणि और भूषण और नानाप्रकार के वस्त्रों में वह बन्धवान् नहीं होता। जैसे चन्द्रमा सुन्दर और शीतल है परन्तु सूर्य्यमुखी कमलों को विकाश नहीं करसक्ता तैसेही सुन्दर स्पर्श ज्ञानी के चित्तको हर्षवान् नहीं करते। जैसे मरुस्थल में हंस प्रसन्न नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् स्पर्श में प्रसन्न नहीं होते और रसादिकमें भी बन्धवान् नहीं होते। दूध, दही, घृतादिकरस; भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य; यह चारों प्रकार के भोजन और कटु, तीक्ष्ण, मीठा, खारा आदि जितने रस हैं इनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते और किसी में बन्धवान् नहीं होते। वे आकाशबोधसे नित्य तृप्त हैं और किसी भोगकी इच्छा नहीं करते जैसे

ब्राह्मण मुर्गी के मांस के खाने की इच्छा नहीं करते तैसेही ज्ञानवान् उर्व्वशी, रम्भा, मेनका आदि अप्सराओं की इच्छा नहीं करता और चन्दन, अगर, कस्तूरी, मन्दार आदि वृक्षोंके फूलों की सुगन्धिकी इच्छा नहीं करते। जैसे मछली मरुस्थल की इच्छा नहीं करती तैसेही ज्ञानवान् सुगन्धि की इच्छा नहीं करता और रूपकी इच्छा भी नहीं करते। सुन्दर स्त्रियां, बाग, तालाब, नदियां इत्यादिक जो रूपवान् पदार्थ हैं तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करता। जैसे चन्द्रमा बादलों की इच्छा नहीं करते तैसेही ज्ञानवान् रूप की इच्छा नहीं करते। और की क्या बात है, इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, समुद्र, कैलास, मन्दराचल, रत्न; मणि और कञ्चन ये जो बड़े बड़े पदार्थ हैं उनकी भी वे इच्छा नहीं करते। जैसे राजा नीच पदार्थों की इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् पदार्थों की इच्छा नहीं करता। समुद्र और सिंह के गर्ज्जने और बिजुली के कड़कने का जो भयानक शब्द है उसको भी सुनकर वह भयवान् नहीं होता—जैसे शूरमा धनुष का शब्द सुनकर भयवान् नहीं होता। ज्ञानवान् मत-वालेहाथी; वैताल, पिशाच और इन्द्र के वज्रके शब्द सुनता और देखता हुआ भी कम्पायमान नहीं होता और सत्स्वरूप की स्थितिसे कभी चलायमान नहीं होता। शरीर को जो आरेसे काटिये, खड्गसे कण कण करिये और बाणों से बेधिये तौभी कम्पायमान नहीं होता। उसको राग द्वेषभी किसी में नहीं होता, यदि शरीर पर एक ओर जलता अंगारा रखिये और एक ओर फूलोंकी माला रखिये तौभी वह हर्ष-शोकवान् नहीं होता। एक ओर खड्ग धारावत् तीक्ष्ण स्थानहो और एकओर पुष्प-शय्या होतो उसको दोनों तुल्य हैं। एक ओर शीतल स्थानहो और एकओर गरम शिला हो तो दोनों उसको तुल्य हैं। एक ओर मारनेवाला विषहो और दूसरी ओर जियानेवाला अमृत हो तो उसको दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! चाहे सम्पदा प्राप्त हो चाहे आपदा हो; चाहे मृत्युहो, चाहे उत्साह हो इनमें व्यवहार करता भी वह दृष्टि आताहै परन्तु हृदय से हर्ष और शोक नहीं। उसका मन हृदय संयुक्त है और सदा सम रहता है। हे रामजी! लोहे के कुल्हाड़े से उसका मांस तोड़िये; नरक में डालिये और ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा हो तौ भी ज्ञानवान् भय न पावेगा और न उद्वेगवान् और न व्याकुल होगा; न दीनहोगा। ज्ञानवान् इनमें सदा शम मन रहकर पहाड़की नाईं धैर्य्यवान् स्थित रहताहै। हे रामजी! ज्ञानवान् रागद्वेषसे रहितहै और देह अभिमान से मुक्तहुआ है। उसका शरीर अग्निमें पड़े, वा खाईं में गिरे अथवा स्वर्गमेंहो उसको दोनों तुल्य हैं और वह हर्ष शोकसे रहितहै। हे रामजी! जिसके स्वरूप में दृढ़ स्थिति हुई है वह चलायमान नहीं होता—जैसे मेरु स्थित है—उसको पवित्र पदार्थ हो अथवा अपवित्र पदार्थ हो पन्थहो वा कुपन्थ हो; विषहो अथवा अमृत हो; मीठा,

खट्टा, सलोना, कड़ुवा, दूध, दही, घृत, रस, रक्त, मांस, मद्य, अस्थि, तृण आदिक जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य भोजन हैं वह सम हैं । न इष्ट में वह रागवान् होता है और न अनिष्ट में द्वेषवान् है । यदि एक पुरुष प्राणों के निकालने को सम्मुख आवे और दूसरा प्राणों की रक्षानिमित्त आवे तो दोनों को वह आत्मस्वरूप, शांतमन और मधुररूप देखता है और रागद्वेष से रहित है । रमणीय अरमणीय पदार्थों को वह सम देखता है और उसने संसार की आस्था त्यागदी है । बोध स्वरूप में वह निश्चित है, चित्त नीराग पदको प्राप्तहुआ है और सब जगत् उसको आत्मस्वरूप भासता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पंचविषयों के भोग अपना अवसर नहीं पाते । जैसे दर्पण देखने से प्रतिबिम्ब भासता है, दर्पण की सुरत नहीं रहती तैसेही वह विषयों में आत्मा देखता है, विषयों की सुरत नहीं रहती अज्ञानी को इन्द्रियां ग्रास लेती हैं—जैसे तृणोंको मृग ग्रास लेता है । जिसने आत्म पद में विश्रान्ति पाई है उसको इन्द्रियां ग्रास नहीं सक्तीं । हे रामजी ! अज्ञानरूपी समुद्र में जो पड़ा है और वासनारूपी लहरों से मिलकर उछलता और गिरता है; उसको आशारूपी तेंदुआ ग्रास करलेता है और वह हाय हाय करता है; शान्ति नहीं पाता । जो विचार करके आत्मपदको प्राप्त हुआ है वह विश्रान्ति को पा चलायमान नहीं होता । जैसे सुमेरु पर्व्वत जल के समूह से चलायमान नहीं होता तैसेही वह संकल्प विकल्प में चलायमान नहीं होता । जिसकी आत्मपद में विश्रान्ति हुई है वह उत्कृष्टताको प्राप्त हुआ है । हे रामजी ! उस को यह जगत् ज्ञानमात्र भासता है और वह उसे संवित्मात्र जानकर विचार करता है; न किसी का ग्रहण है और न त्याग करता है । इससे भ्रान्ति को त्यागकर संवित्मात्रही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है और किसका ग्रहण करता है ? जो आदिमें भी न हो; अन्तमें भी न रहे और मध्यमें भी कुछ न भासे उसे भ्रममात्र जानिये । इसप्रकार जानकर, भाव अभाव की बुद्धिको त्यागकर और निस्संवेदनरूप होकर संसारसमुद्र से तरजावो और मन, बुद्धि और इन्द्रियों से कर्म्मकरो चाहे न करो; निस्सङ्ग होगे तब तुमको लेप न लगेगा । हे रामजी ! जिसका मन अभिमान से रहित हुआ है वह कर्म्म करता भी लेपायमान नहीं होता । जैसे मन और ठौर गया होता है तो विद्यमान शब्द अथवा रूप पदार्थों को प्रस्तुत होते भी नहीं जानता, तैसेही जिसका मन आत्मपदमें स्थित हुआ है उसको सुख दुःख कर्म्म नहीं लगता । जो पुरुष अभिमान से रहित है वह कर्म्मों में सुख दुःख भोगता दृष्टि आताहै परन्तु वह उसको स्पर्श नहीं करता । देखो तो यह बालक भी जानते हैं कि, मन और ठौर जाताहै तो सुनता भी नहीं सुनता; तैसेही वह पुरुषकरता भी नहीं करता । हे रामजी !

जिसका मन असंग हुआ है वह देखताहै परन्तु नहीं देखता; सुनताहै परन्तु नहीं सुनता; स्पर्श करता है परन्तु नहीं करता; सूंघता और रसलेता है परन्तु नहीं लेता इत्यादिक जो कुछ चेष्टाहैं सो कर्त्ता भी वह अकर्त्ता है और उसका चित्त आत्मपदमें लीनहुआ है। जैसे कोई पुरुष देशान्तर को जाताहै तो वह उसदेशमें व्यवहार कर्म्म करता है परन्तु उसका चित्त गृहमें रहता है तैसेही ज्ञानवान् का चित्त आत्मपदमें रहता है। यह बात मूर्खभी जानताहै। जैसावेग मनमें तीव्र होताहै उसकी सिद्धिहोती है और वही भासता है; और नहीं भासता। हे रामजी! सर्व अनर्थों का कारण संग है; संसार के संगसेही जन्म-मरण के बन्धन को प्राप्तहोता है; इससे सब अनर्थों का संसारका कारण संगहै। सब इच्छा का कारण संग है और सब आपदा का कारण संगहै; संगके त्यागे से मोक्षरूप और अजन्मा होता है। इससे संगको त्याग कर और जीवन्मुक्त होकर विचरो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप सर्व संशयरूपी कुहिरेके नाशकर्त्ता शरत्कालका पवनहैं। संग किसको कहते हैं यह संक्षेप से मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भाव-अभाव जो पदार्थ हैं वह हर्ष और शोक के देनेवाले हैं। जिस मलिन वासना से यह प्राप्त होते हैं वही वासना संग कहाता है हे रामजी! देह में जो अहं बुद्धि होती है और संसारकी जो सत्य प्रतीति है तो उस संसार के इष्ट अनिष्ट को रागद्वेष सहित ग्रहण करता है; ऐसी मलिन वासना सङ्ग कहाती है और जीवन्मुक्त की वासना हर्ष शोक से रहित शुद्ध होती है—सो निस्सङ्ग कहाती है। उसकी वासना जन्म मरण नहीं होती। हे रामजी! जिस पुरुष की देह में अभिमान नहीं होता और जिसकी स्वरूप में स्थिति है वह शरीर के इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता क्योंकि, उसकी शुद्ध वासना है और वह जो कर्त्ता है सो बन्धन का कारण नहीं होता। जैसे भुनाबीज नहीं उगता तैसेही ज्ञानवान् की वासना जन्म मरण का कारण नहीं होती और जिसकी वृत्ति जगत के पदार्थों में स्थित है और रागद्वेष से ग्रहण त्याग करता है ऐसी मलिन वासना जन्मों का कारण है। इस वासना को त्यागकर जब तुम स्थित होगे तब तुम कर्त्ताहुये भी निर्लेप रहोगे और हर्ष शोकादि विकारों से जब तुम रहित होगे तब वीतराग और भय और क्रोध से असंग होगे। हे रामजी! जिसका मन असंग हुआ है वह जीवन्मुक्त हुआ है। इससे तुम भी वीतराग होकर आत्मतत्त्व में स्थित हो। जीवन्मुक्त पुरुष इन्द्रियों के ग्राम को निग्रह करके स्थित होता है और मान, मद, वैर को त्यागकर सन्ताप से रहित स्थित होता है। वह सब आत्मा जानकर कर्म करता है परन्तु व्यवहार बुद्धि से रहित असंग होकर कर्म्म करता है। वह करता भी अकरता है उसको आपदा अथवा संपदा प्राप्त हो अपने स्वभाव को नहीं त्यागता, जैसे क्षीर समुद्र मन्दरा

चल पर्व्वतको पाकर शुक्लताको नहीं त्यागा तैसेही जीवन्मुक्त अपने स्वभावको नहीं त्यागते । हे रामजी ! आपदा प्राप्त हो अथवा चक्रवर्त्ती राज्य मिले; सर्पका शरीर प्राप्त हो अथवा इन्द्र का शरीर प्राप्त हो; इन सब में वह सम और आत्मभाव स्थित होता है और हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता । वह सब आरम्भों को त्यागकर नानात्व भाव से रहित स्थित होता है । विचारकरके जिसने आत्मतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हो तैसेही तुम भी स्थित हो । इसी दृष्टिको पाकर आत्मतत्त्वको देखो तब विगत ज्वर होगे और आत्मपदको पाकर फिर जन्म मरण के बन्धनमें न आवोगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआर्षेदेवदूतोक्तमहारामायणंमोक्षोपायन्नामनवतितमस्सर्गः ९० ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणंपंचमंसमाप्तम् ॥

इति ॥

निर्वाणप्रकरणउत्तरार्द्ध

इति ॥

ॐ गणाधिपतये नमः

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे ॥

द्वितीयभाग

निर्वाणप्रकरणंषष्ठंप्रारभ्यते ॥

बाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज ! उपशम प्रकरणके अनन्तर अब तुम निर्वाण प्रकरण सुनो जिसके जानने से तुम निर्वाणपदको प्राप्तहोगे। बड़े उत्तम वचन मुनिनायक ने रामजीसे कहे हैं और रामजी ने सब ओर से मन खैंचकर मुनीश्वर के वाक्यों में स्थापित किया। और राजालोग भी निस्पन्द होगये मानों कागज़ पर चित्र लिखे हैं–और वशिष्ठजी के वचनों को विचारने लगे। राजकुमार भी विचारते और कंठ हिलाते थे और शिर और भुजा फेर के विस्मयको प्राप्तहुये। उसमें वे प्रसन्नताको प्राप्त हुये कि, जिस जगत् को सत्य जानकर हम विचरते थे वह हैहीनहीं। ऐसे आश्चर्यमें वे आश्चर्य को प्राप्तहुये। तब दिनका चतुर्थभाग रहगया और सूर्य्य अस्त हुये–मानों वशिष्ठजी के वचन सुनकर उनको भी फललगाहै–सब तेजक्षीण होगया और शीतलता प्राप्तहुई। स्वर्ग से जो सिद्ध और देवता आयेथे उनके गलेमें मन्दार आदिक वृक्षोंके फूलथे उनसे पवनकेद्वारा सब स्थान सुगन्धित होगये और भँवरे फूलोंपर गुंजार करने लगे और झरोखोंके मार्ग से सूर्य्य की किरणें आती थीं उनसे सूर्यमुखी कमल जो राजा और देवताओंके शीशपरथे वह सूखगये। जैसे मनसेजगत की सत्ता निवृत्त होजातीहै और वृत्ति सकुचती जातीहै। बालक जो सभामें बैठेथे और पिंजरोंमें जो पक्षी बैठेथे उनके भोजन का समयहुआ और बालकोंके भोजन के निमित्त माताउठीं। जब चौथे पहर राजाकी नौबत, नगारे, भेरी, सहनाई, बाजे बजने लगे और वशिष्ठजी जो बड़ेऊंचेस्वर से कथा कहते थे उनकाशब्द नगारे और बाजों से दबगया तब–जैसे वर्षाकालका मेघ गरजताहै और मोरतूष्णी होजाते हैं तैसेही वशिष्ठजी तूष्णी होगये। ऐसाशब्द हुआ कि, जिससे आकाश, पृथ्वी और सब दिशाभरगये और पिंजरों में पक्षी पंखों को फैलाकर भड़ भड़ शब्द करनेलगे–जैसे

इसमतबे में जितने प्रकारकी वेदान्तकी पुस्तकें छपी हैं उनमें से कुछ नीचे लिखीजाती हैं ॥

भगवद्गीतानवलभाष्यका विज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकलनिगमपुराण स्मृति सांख्यादि सारभूत परम-
रहस्य गीताशास्त्रका सर्वविद्यानिधान सौशील्य विनयौदार्य्यसत्यसंगर शौर्य्यादिगुणसम्पन्न नरा-
वतार महानुभाव अर्जुन को परमअधिकारी जानके हृदयजनितमोहनाशार्थ सब प्रकार अपार संसार
निस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचर कराया है वही उक्तभगवद्गीतावज्रवत् वेदान्त व योगशास्त्रा-
न्तर्गत जिसको कि अच्छे२ शास्त्रवेत्तार अपनीबुद्धिसे पारनहींपासके तब मन्दबुद्धी जिनको कि केवल
देशभाषाही पठनपाठन करनेकी सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्राय को जानसके हैं—और यह
प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी वस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धि में न
भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिलै इसकारण सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्ज रसिक
जनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्ततधर्म्मधुरीण सकलकलाचातुरीण सर्व्व विद्याविलासी
भगवद्भक्त्यनुरागी श्रीमन्मुंशीनवलकिशोरजी (सी,आई;ई) ने बहुतसाधन व्ययकर फ़र्रुखाबादनि-
वासि स्वर्गवासि पण्डितउमादत्तजी से इस मनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य्य
निर्मित भाष्यानुसार संस्कृत से सरलदेशभाषा में तिलकरचा नवलभाष्यआख्य से प्रभातकालिक कमल
सरिस प्रफुल्लित करादिया है कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुषभी जानसक्तेहैं ॥

जब छपनेकासमय आया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मतिसे यह विचारहुआ कि इस
अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थकी भाष्य में अधिकतर उत्तमता उस समयपर होगी कि इस शंकराचार्य्य कृत
भाष्य भाषाके साथ और इस ग्रन्थ के टीकाकारों की टीका भी जितनी मिलें शामिल कीजावें जिस
में उन टीकाकारोंके अभिप्रायका भी बोधहोवे इसकारण से श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजीकी शंकरभाष्य
का तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलक अरु श्रीधरस्वामिकृत तिलक भी मूल श्लोकों सहित इस
पुस्तकमें उपस्थितहै ॥

भगवद्गीतामयटीकाभाषाआनन्दगिरि

जिसमें अन्वय करके भावार्थ स्पष्ट कियागया है ॥

भगवद्गीता हरिवंशलालके भाषा टीका सहित

भगवद्गीता भाषा हरिवल्लभजी

इस में सम्पूर्ण भगवद्गीता की कथा दोहा चौपाई इत्यादि छन्दों में वर्णित है ॥

योगवाशिष्ठ द्वितीयभागकी अनुक्रमणिका

इति ॥

ॐ गणाधिपतये नमः

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे ॥

द्वितीयभाग

निर्वाणप्रकरणंषष्ठंप्रारभ्यते ॥

बाल्मीकिजी बोले, हे भरद्वाज ! उपशम प्रकरणके अनन्तर अब तुम निर्वाण प्रकरण सुनो जिसके जानने से तुम निर्वाणपदको प्राप्तहोगे । बड़े उत्तम वचन मुनिनायक ने रामजीसे कहे हैं और रामजी ने सब ओर से मन खैंचकर मुनीश्वर के वाक्यों में स्थापित किया । और राजालोग भी निस्पन्द होगये मानों कागज़ पर चित्र लिखे हैं–और वशिष्ठजी के वचनों को विचारने लगे । राजकुमार भी विचारते और कंठ हिलाते थे और शिर और भुजा फेर के विस्मयको प्राप्तहुये । उसमें वे प्रसन्नताको प्राप्त हुये कि, जिस जगत् को सत्य जानकर हम विचरते थे वह हैहीनहीं । ऐसे आश्चर्यमें वे आश्चर्य को प्राप्तहुये । तब दिनका चतुर्थभाग रहगया और सूर्य्य अस्त हुये–मानों वशिष्ठजी के वचन सुनकर उनको भी फललगाहै–सब तेजक्षीण होगया और शीतलता प्राप्तहुई । स्वर्ग से जो सिद्ध और देवता आयेथे उनके गलेमें मन्दार आदिक वृक्षोंके फूलथे उनसे पवनकेद्वारा सब स्थान सुगन्धित होगये और भँवरे फूलोंपर गुंजार करने लगे और झरोखोंके मार्ग से सूर्य्य की किरणें आती थीं उनसे सूर्यमुखी कमल जो राजा और देवताओंके शीशपरथे वह सूखगये । जैसे मनमेंजगत की सत्ता निवृत्त होजाती है और वृत्ति सकुचती जातीहै । बालक जो सभामें बैठेथे और पिंजरोंमें जो पक्षी बैठेथे उनके भोजन का समयहुआ और बालकोंके भोजन के निमित्त माताउठीं । जब चौथे पहर राजाकी नौबत, नगारे, भेरी, सहनाई, बाजे बजने लगे और वशिष्ठजी जो बड़ेऊंचेस्वर से कथा कहते थे उनकाशब्द नगारे और बाजों से दबगया तब–जैसे वर्षाकालका मेघ गरजताहै और मोरतूष्णी होजाते हैं तैसेही वशिष्ठजी तूष्णी होगये । ऐसाशब्द हुआ कि, जिससे आकाश, पृथ्वी और सब दिशाभरगये और पिंजरों में पक्षी पंखों को फैलाकर भड़ भड़ शब्द करनेलगे–जैसे

भूकंप हुयेसे लोग कांपते और शब्द करते हैं–और बालक माताके शरीर से लपट गये। इसकेअनन्तर मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले कि, हे निःपाप रघुनाथ! मैंने तुम्हारे चित्तरूपी पक्षी के फँसाने के निमित्त अपना वाक्रूपी जालफैलायाहै, इससे अपने चित्तको वशकरके तुम आत्मपद में लगो। हे रामजी! यह जो मैंने तुमको उपदेश कियाहै उसके सारमें दुर्बुद्धि को त्यागकर चित्तको लगाओ। जैसे हंसजलको त्यागकर दूधपान करताहै तैसेही आदिसे अन्तपर्यंत सब उपदेश वारंवार विचारकर सारको अङ्गीकारकरो। इसप्रकार संसारसमुद्र से उतरकर परमपदको प्राप्तहोगे। अन्यथा न होगे। हे रामजी! जो इनवचनोंको अङ्गीकारकरेगा वह संसारसमुद्रसे तरजावेगा और जो अङ्गीकार न करेगा वह नीच गतिको प्राप्त होगा। जैसे विंध्याचल पर्व्वत की खाई में हाथी गिरके कष्टपाता है तैसेही वह संसार में कष्ट पावेगा। हे रामजी! ये जो मेरेवचनहैं इनको ग्रहण न करोगे तो नीचे गिरोगे–जैसे पंथी हाथ से दीपकत्यागकर रात्रि को गढ़े में गिरताहै–और जो असंगहोकर व्यवहारमें बिचरोगे तो आत्म सिद्धि को प्राप्तहोगे। यह जो मैंने तुमको तत्त्वज्ञान; मनोनाश और वासना क्षय कहा है, इसअभ्याससे सिद्धि को प्राप्त होगे। यहशास्त्रका सिद्धांतहै। हे सभा! हे महराजो! हे राम, लक्ष्मण और भूपति! जो कुछ मैंने तुमसे कहाहै उसको तुम बिचारो; जोकुछ और कहनाहै उसे मैं प्रातःकाल कहूंगा। इतनाकह बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! इस प्रकार जब मुनीश्वर ने कहा तब सब सभा उठखड़ीहुई और वशिष्ठजीके वचनों को पाकर सब खिलआये–जैसे सूर्य्यको पाकर कमल खिलआताहै। वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों इकट्ठेउठे और वशिष्ठजी विश्वामित्रको अपने आश्रममें लेगये। आकाशचारीदेवता और सिद्ध वशिष्ठजीको नमस्कारकरके अपने अपने स्थानों को गये, राजादशरथ अर्घ्यपाद्य से वशिष्ठजीकी पूजन करके अपने अन्तःपुरमें गये और श्रोता लोगभी आज्ञालेकर और वशिष्ठजीकी पूजनकरके अपने अपने स्थानोंमें गये। राजकुमार अपने मण्डलकोगये मुनीश्वर वनमेंगये और राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न वशिष्ठजी के आश्रमको गये और पूजाकरके फिर अपने गृहमें आये। सब श्रोता अपने अपने स्थानोंको जाकर स्नानसंध्यादिक कर्म करनेलगे, पितर और देवताओंको पूजा और ब्राह्मणोंसे लेकर भृत्यपर्यंत सबको भोजनकराकर अपने मित्र और भाइयों के साथ भोजन किया और यथाशक्ति अपने वर्णाश्रमके धर्म्मको साधा। जब सूर्य भगवान् अस्तहुये और दिनकी क्रिया निवृत्त होगई तब रात्रिहुई और निशाचर बिचरनेलगे तब भूचर, राजऋषि और राजपुत्र आदिक जो श्रोताथे सो रात्रिको एकन्तमें अपने अपने आसन पर बैठकर बिचारनेलगे। राजकुमार और राजा अपने २ स्थानों पर बैठे और ब्राह्मण, तपस्वी कुशादिक बिछाकर बैठे बिचारते थे कि संसार के तरने

का क्या उपाय कहा है; और जो वशिष्ठजी ने वचन कहे थे उनमें भलेप्रकार चित्त को एकाग्रकर और भलेप्रकार विचारकर निद्रा को प्राप्तहुये । जैसे सूर्य्य उदयहुये पद्मिनियां मुंदजाती हैं तैसेही वे सब सुषुप्ति को प्राप्तहुये; पर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तीनपहर वशिष्ठजी के उपदेशको विचारते रहे और आधेपहरसोकर फिर उठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदिवसरात्रिव्यापारवर्णनन्नामप्रथमस्सर्गः १॥

वाल्मीकिजी बोले, हे साधो ! इसप्रकार जब रात्रिव्यतीतहुई और तमका नाश हुआ तब राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्नादिक स्नान और संध्यादिक कर्म करके वशिष्ठजी के आश्रम में जा स्थित हुये । वशिष्ठजी भी सन्ध्यादिक करके अग्निहोत्र करने लगे और जब करचुके तब रामादिक ने उनको अर्घ्य पाद्य से पूजा और चरणों पर भले प्रकार मस्तक रक्खा । जब रामजी गये थे तब वशिष्ठजी के द्वारे पर कोई न था पर एकघड़ी में अनेकसहस्र जीव आये और वशिष्ठजी रामादिक को साथ लेकर राजा दशरथ के गृहमें आये । तब राजा दशरथ उनकी अगवानी को आगे आये और वशिष्ठजी का आदर व पूजन किया और दूसरे लोगों ने भी बहुत पूजन किया । निदान नभचर और भूचर जितने श्रोता थे वे सब आये और नमस्कार करके बैठे और सब निस्पन्द और एकाग्र होकर स्थित भये । जैसे निस्पन्द वायु से कमलों की पंक्ति अचलहोती है तैसे वे बैठे । भाटजन जो स्तुति करनेवाले थे वे भी एक ओर बैठे और सूर्य्यकी किरणें झरोखों के मार्ग से आईं— मानो किरणें भी वशिष्ठजीके वचन सुननेको आई हैं तब वशिष्ठजीकी ओर रामजी ने देखा जैसे स्वामिकार्त्तिक शंकरकी ओर; कच बृहस्पतिकी ओर और प्रह्लाद शुक्रकी ओर देखें और जैसे भ्रमरा भ्रमता २ आकाशमार्ग से कमलपर आबैठताहै तैसेही रामजी की दृष्टि औरों को देखते २ वशिष्ठजी पर आ स्थित हुई तब वशिष्ठजी ने रामजी की ओर देखा और बोले; हे रघुनन्दन ! मैंने जो तुमको उपदेश किया है वह तुमको कुछ स्मरण है ? वे वचन परमार्थबोध के कारण, आनन्दरूप और महा गंभीर हैं । अब और भी बोधके कारण और अज्ञानरूपी शत्रु के नाशकर्त्ता, इन्दुप्रभा वचनों को सुनो । निरन्तर आत्मसिद्धांत शास्त्र में तुमसे कहताहूं । हे रामजी ! वैराग्य और तत्त्व के विचार से संसार समुद्र को तरताहै और सम्यक्तत्त्व के बोध से जब दुर्बोध निवृत्त होजाता है तब वासना का आवेश नष्ट होजाता है और निर्दुःख पदको प्राप्त होजाता है । वह पद देशकाल और वस्तुके परिच्छेद से रहितहै । वहीब्रह्म जगतरूप होकर स्थित हुआ है और भ्रमसे द्वैतकीनाईं भासता है । वह सब भावोंसे अविच्छिन्न सर्वत्र ब्रह्म है इस प्रकार महत्स्वरूप जानकर शान्तिमान्हो । हे रामजी ! केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपमें स्थितहै; न कुछ चित्तहै, न अविद्या है, न मनहै

न जीवहैं; यह सब कलना ब्रह्ममें भ्रमसे फुरती हैं। जो स्पन्द फुरना दृश्य और चित्त है सो कलनारूप संभ्रम हैं। ब्रह्मसे कोई पदार्थ नहीं। हे रामजी! स्वर्ग, पाताल और भूमि में सदाशिवसे तृण पर्यन्त जो कुछ दृश्य है वह सब परब्रह्म है—चिद्रूपसे अन्य नहीं। उदासीन और मित्र, बांधव से लेकर सब ब्रह्म हैं। जबतक अज्ञान कलना से जगत् में बुद्धि स्थित है और ब्रह्मभाव नानात्व है तबतक चित्तादि कलना होती है; जबतक देह में अहंभाव है और अनात्मदृश्य में ममत्व है तब तक चित्त आदिक भ्रम होता है और जब तक सन्तजन और सच्छास्त्रों से ऊंचेपदको नहीं पाया और मूर्खता क्षीण नहीं हुई तब तक चित्तादिक भ्रमहोता है। हे रामजी! जबतक देहाभिमान शिथिलताको नहीं प्राप्त हुआ; संसारकी भावना नहीं मिटी और सम्यक्ज्ञान करके स्थिति नहीं पाई जब तक चित्तादिक प्रकट हैं; तब तक अज्ञान से अन्धा है और विषयों की आशा के आवेश से मूर्च्छित है और मोह मूर्च्छा से नहीं उठा तबतक चित्तादिक कलना होती है। हे रामजी! जब तक आशारूपी विषकी गन्ध हृदयरूपी वनमें होती है तब तक विचाररूपी चकोर नहीं प्राप्त होता और भोग वासना नहीं मिटती। जब भोगोंकी आशा मिटजावे और सत्य शीतलता और संतुष्टता हृदयमें प्राप्तहो तब चित्तरूपीभ्रम निवृत्त होजाता है। जब मोह और तृष्णा निवृत्त करिये और नित्य संवित्हो तब चित्त शांतभूमिकाको प्राप्त होता है। हे रामजी! जिस पुरुषकी स्थिति स्वरूप में हुई है वह आपको देहसे दूरदेखता है। उस सम्यक्दर्शी के चित्तकी भूमिका कहते हैं। जब अनन्त चेतनतत्त्वकी भावना होती है और दृश्य को त्यागकर आत्मस्वरूप में प्राप्त होता है तब वह पुरुष सब जगत् को अपना अंगही देखता है अर्थात् सब अपना स्वरूप देखता है। ऐसा जो आत्मरूप देखता है। उसको जीवत्वादिक भ्रम कहां है? जब अज्ञानभ्रम निवृत्त होता है तब परम अद्वैतपद उदय होता है। जैसे रात्रि के क्षीण हुये सूर्य्य उदय होता है तैसेही मोह के निवृत्त हुये आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है और जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब चित्त नष्ट होजाता है। जैसे सूखापत्र अग्नि में दग्ध होजाता है तैसेही ज्ञानवान् का चित्त नष्ट होजाता है। हे रामजी! जीवन्मुक्त जो महात्मापुरुष और परावरदर्शी है और जिसको सर्व्वत्र ब्रह्मही दीखता है उसका चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है। वह चित्त सत्य कहाता है और उस में वासना भी दृष्टि नहीं आती। वह चेतनमन है और वह चित्त सत्यपद को प्राप्तहुआ है। यह जगत् ज्ञानवान् को लीलामात्र भासता है और वह हृदयसे शांतिरूप और नित्य तृप्त है। उसको सर्व्वदा आत्मज्योति भासती है; विवेक से उसके चित्तसे जगत् की सत्ता निवृत्त होगई है और स्वरूप में उसने स्थिति पाई है सो

चित्तसत्ता कहाती है । फिर वह कर्म चेष्टा करता भी दृष्टि आता है और मोह को नहीं प्राप्तहोता । जैसे भूनाबीज नहीं उगता तैसेही ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारणनहीं और जो अज्ञानी हैं उनकी वासना मोहसंयुक्त है जैसे कच्चाबीज उगता है तैसेही अज्ञानी वासनासे फिर फिर जन्मलेता है और जिस चित्तसे आसक्ति निवृत्त हुई है उसकी वासना जन्मका कारणनहीं । वह चित्त सत्ता कहाती है हे रामजी ! जिन पुरुषोंने पानेयोग पद पाया है और ज्ञानाग्निसे चित्त दग्धकिया है वे फिर जन्मनहीं लेते। जो कुछ जगत् है उनको सब ब्रह्मरूप है जैसे वृक्ष और तरु नाममात्र दो हैं वास्तवमें एकही हैं; तैसेही ब्रह्म और जगत् नाममात्र दोनों हैं पर वास्तव में एकही है । जैसे जलमें तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही ब्रह्ममें जगत् ब्रह्मरूप है । चेतन आत्मारूपी मिरचमें जगत्रूपी तीक्ष्णता है । हे रामजी ! ऐसे ब्रह्म तुमहो । जो तुम कहो कि, मैं चित्त नहीं तो कुछ मानाजाता है क्योंकि, जो तुम कहो मैं जड़ हूं तो तुम आकाशवत् हुये तुम्हारे में कलना का उल्लेख कैसेहो ? जो चेतनहो तो शोक किसका करतेहो और जो चिन्मयहो तो निरायास आदि अन्तसे रहित हुये । निदान सब तुमहीं हो अपने स्वरूपको स्मरण करो तब शान्ति पावोगे । जो सब भावमें स्थितहो और सबको उदय करने वाले शान्तरूप, चेतन और ब्रह्मरूप हो । हे रामजी ! ऐसी जो चेतनरूपी शिला है उसके उदयमें वासनारूपी फुरना कहां हो ? वह तो महाघनरूप है । हे रामजी ! जो तुमहो सोई हो, उसमें और तुम्हारे में कुछभेद नहीं । वही सत् और असत्रूप होकर भासताहै, जिसके अन्तर सबपदार्थ हैं और जिसमें नानात्व और 'अहं;' 'त्वं,' 'अज्ञ' 'तज्ञ' में कुछ कलना नहीं । ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्माहै उसको नमस्कारहै । हे रामजी ! तुम्हारी जयहो । तुम आदि और अन्तसे रहित विशालहो और शिलाके अन्तर्वत् चिद्घनस्वरूप आकाशवत् निर्मल हो । जैसे समुद्रमें तरंग हैं तैसेही तुम्हारे में जो जगत् है सो लीलामात्र है । तुम अपने घनस्वरूपमें स्थितहो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्रामदृढ़ीकरणन्नामद्वितीयस्सर्गः २ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप रामजी ! जिस चेतनरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरंग फुरते और लीन होजाते हैं ऐसे अनन्त आत्मभाव की भावनासे मुक्त और भाव अभावसे रहित हो । ऐसा जो चिदात्म तुम्हारा स्वरूप है वही सर्व्व जगत्रूप है तब वासनादिक आवरण कहां है ? जीव और वासना और सब आत्माका किञ्चन है दूसरी वस्तु कुछ नहीं तब और कथा और प्रसंग कैसेहो ? हे रामजी ! महासरल गम्भीर और प्रकाशरूप जो चेतन समुद्र है वह तुम्हारा रूप है और रामरूपी एक तरंग फुरआया है सो समुद्र तुम हो । ऐसा जो आत्मतत्त्व है वह जगत्रूपी

होकर व्यापारी भासता है। जैसे अग्नि से उष्णता, फूलसे सुगन्धि; कज्जलसे कृष्णता, बरफ से शुक्लता; गुड़से मधुरता और सूर्य्य से प्रकाश भिन्न नहीं तैसेही ब्रह्म से अनुभव भिन्न नहीं–नित्यरूप है। अनुभवसे अहं भिन्न नहीं; अहं से जीव भिन्न नहीं; जीवसे मन भिन्न नहीं, मनसे इन्द्रियां भिन्न नहीं, इन्द्रियों से देह भिन्न नहीं और देहसे जगत् भिन्न नहीं। इसप्रकार महाचक्र जो प्रवृत्तकीनाईं हुआहै सो कुछ प्रवृत्त नहीं, न शीघ्र प्रवर्त्तन, चिरकाल का प्रवर्त्ता है, न कोई ऊनहै और न अधिक है सर्व्वदा एक अखण्डसत्ता परमात्मतत्त्व है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। वही सत्ता वज्रभूत और वही पूर्णहोकर स्थित है द्वैतकल्पना कुछ नहीं। ऐसे अपने स्वरूप में जो पुरुष स्थित है वह जीवन्मुक्त है। ऐसा जो ज्ञानवान् है वह मन, इंद्रियों और शरीरकी चेष्टाभी करता है पर उसको कर्त्तव्यका लेप नहीं लगता। हे रामजी! ज्ञानवान् को न कुछ त्यागने योग्यरहताहै और न ग्रहण करने योग्यहै; वह सब पदार्थों से निर्लेप रहताहै। जब तक इसको ग्रहण और त्यागकी बुद्धिहोती है तबतक संसारके सुखदुःखका भागी होताहै और इससे हेयोपादेयका जिसको अभावहै वह सुख दुःखकाभागी नहीं होता। हे रामजी? जो कुछ जगत्है वह एक अद्वैत आत्मतत्त्वहै, अन्यत् कुछ नहीं। जैसे घटमठकी उपाधिसे आकाश नानाप्रकार का भासता है और समुद्र तरंगसे अनेक रूप भासताहै पर नानात्व भावको नहीं प्राप्तहोता तैसेही आत्मामें नानाप्रकार जगत् भासताहै और नानात्वको नहीं प्राप्तहोता है। ऐसे स्वरूपको जानकर उसमें स्थित हो; बाहरसे अपने वर्णाश्रमका व्यवहार करो पर हृदयसे पत्थरकी नाईं हर्ष शोकसे रहित स्थितहो! संवित्मात्र आत्माको जो अपनारूप देखताहै वही सम्यक्दर्शी है और उसका अज्ञान और मोहनष्ट होजाता है। जैसे नदीका वेग मूलसहित तटके वृक्षको काटताहै तैसेही आत्मज्ञान मोहसहित अज्ञानको काटताहै। मित्रता, वैर, हर्ष, शोक, राग, द्वेषआदिक जो विकार हैं वे चित्तमेंरहते हैं सो उसकाचित्त नष्ट होजाता है। हे रामजी! ज्ञानीसोताभी दृष्टिआताहै पर कदाचित् नहीं सोता जिसका अनात्मा में अहंभाव निवृत्तहुआ है और जिसकी बुद्धि लेपायमान नहीं होती वह पुरुष इस लोककोमारे तोभी उसने कोईनहींमारा और नवह बंधायमान होताहै। हे रामजी! जो वस्तु नहो और भासे उसको मायामात्र जानिये, जानने से वह नष्टहोजावेगी। जैसे तेल विना दीपक शान्तहोजाताहै तैसेही ज्ञानसे वासना क्षयहोजाती है और चित्त अचित्तहोजाताहै। (जिसको सुखदुःखमें ग्रहणत्यागनहीं वह जीवन्मुक्त आत्मस्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकप्रतिपादनन्नामतृतीयस्सर्गः ३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन, बुद्धि, अहङ्कार और इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं

वह सब अचिन्त्य चिन्मात्र है और जीव भी उससे अभिन्नरूपहै । जैसे सुवर्ण और भूषणमें भेद कुछ नहीं तैसेही चिन्मात्र और जीवादिक अभिन्न हैं । जबतक चित्त अज्ञानमें होता है तबतक जगत् का कारण होता है और जब अज्ञान नष्ट होजाता है तब चित्तादिक का अभाव होजाता है । अध्यात्मविद्या जो वेदान्तशास्त्र है उसके अभ्यास से अज्ञान नष्ट होजाता है । जैसे अग्नि के तेजसे शीतका अभाव होजाता है तैसेही अध्यात्मविद्या के विचार और अभ्यास से अज्ञान नष्ट होजाता है । जबतक अज्ञान का कारण तृष्णा उपशम को नहीं प्राप्त हुई तबतक अज्ञान है और जब तृष्णा नाश हो तब जानिये कि, अज्ञान का अभाव हुआ । हे रामजी ! तृष्णारूपी विसूचिका रोग के नाश करने का मन्त्र अध्यात्मशास्त्रही है, उसके अभ्यास से तृष्णा क्षीण होजाती है । जैसे शरत्काल में कुहिरा नष्ट होजाता है, तैसेही आत्मअभ्यास से चित्त शान्त होजाता है; और जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होजाता है तैसेही विचार से मूर्खता नष्ट होजाती है । जब चित्त अचित्तता को प्राप्त होता है तब वासनाभ्रम क्षीण होजाता है जैसे तागे से मोती पिरोये होते हैं और तागेके टूटे से मोती भिन्न २ होजाते हैं तैसेही अज्ञान के नष्ट हुये मनादिक सब नष्ट होजाते हैं । जो पुरुष अध्यात्मशास्त्र के अर्थ को नहीं धारण करते और न प्रीति ही करते हैं वे पापी कीटादिक नीचयोनिको प्राप्त होंगे । हे कमलनयन ! तुम्हारे में जो कछ मूर्खता और चंचलता थी वह नष्ट होगई है और जैसे पवनके ठहरेसे जल अचल होताहै तैसेही तुम स्थिरता और भाव अभावसे रहित परम आकाशवत् निर्मल पद को प्राप्त हुयेहो । हे रामजी ! मैं ऐसे मानताहूं कि, मेरे वचनों से तुम बोधवान् हुये हो और विस्तृत अज्ञानरूपी निद्रासे जागेहो । समान जीव भी हमारी वाणी से जग आते हैं, और तुम तो अतिउदारबुद्धिहो तुम्हारे जागने में क्या आश्चर्य है ? हे रामजी ! जब गुरु भी दृढ़ होताहै और शिष्यभी शुद्धपात्र होताहै तब गुरुके वचन उसके हृदय में प्रवेश करते हैं सो मैं गुरु भी समर्थहूं कि, मुझको अपना स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है और सत्शास्त्रके अनुसार मैंने वचन कहे हैं और तेरा हृदय भी शुद्धहै उसमें वे प्रवेश करगये हैं । जैसे तप्त पृथ्वी के क्षेत्रमें जल प्रवेश करजाताहै तैसेही तेरे हृदय में वचनों ने प्रवेशकियाहै । हे राघव ! हम महानुभाव रघुवंश कुलके बड़े गुरुके गुरुहैं; हमारे वचन तुमको धारने आते हैं । अब खेदसे रहित होकर अपने प्राकृत आचारको करो । इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब मुनीश्वरने कहा तब सूर्य्य अस्त होनेलगा और सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानों को गई रात्रिके व्यतीतहुये सूर्य्यकी किरणों के निकलतेही सब फिर आबैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तभावाभाववर्णनन्नामचतुर्थस्सर्गः ४ ॥

रामजी बोले, हे मुनीश्वर! मैं परम स्वस्थताको प्राप्तहोकर अपने आपमें स्थित हूं और आपके वचनों की भावना से जगज्जाल के स्थित हुये भी मुझको शान्ति होगई है। आत्मानन्द से मैं तृप्त हुआहूं—जैसे बड़ी वर्षासे पृथ्वी तृप्त होती है—और प्रसन्नताको पाकर स्थित हूं। सब ओर से केवल आत्मारूप मुझको भासता है और नानात्वका अभाव हुआ है। जैसे कुहिरे से रहित दिशा और आकाश निर्मल भासता है तैसेही सम्यक्ज्ञान से मुझको शुद्ध आत्मा भासताहै और मोह निवृत्त होगया है। मोहरूपी जङ्गल में जो तृष्णारूपी मृग और रागद्वेष आदिक धूलि और कुहिरा था सो सब निवृत्त होगया है और ज्ञानरूपी वर्षा से सब शान्त होगये हैं। अब मैं आत्मानन्द को प्राप्त हुआ हूं, जो आदि अन्तसे रहित और अमृत है बल्कि अमृत का स्वाद भी उसके आगे तुच्छ भासताहै। ऐसे आनन्दसे मैं अपने स्वभाव में प्राप्त हुआहूं मैं राम हूं अर्थात् सब में रमनेवालाहूं; मेरा मुझको नमस्कार है। अब मैं सब सन्देहसे रहितहूं और सब संशय और विकार मेरे नष्ट हुये हैं। जैसे प्रातःकाल होनेसे निशाचर और वेताल आदिक निवृत्त होजाते हैं तैसेही राग द्वेषादिक विकारों का अभावहुआ है और निर्मल विस्तीर्ण हिमकीनाईं हृदयकमल में मैं स्थित हूं। जैसे भँवरा फिरता २ कमलमें आस्थित होताहै तैसेही मैं आत्मरूपी सारमें स्थित हूं। अविद्यारूपी कलंक आत्मा को कहां था मैं तो निश्चयसे निर्मलता को प्राप्त हुआहूं। जैसे सूर्यके उदय हुये तमका अभाव होजाता है तैसेही मेरे संशय और अविद्या नाश हुई है। अब मुझे सर्व आत्मा भासता है और कलना कोई नहीं। भावित आनन्द स्वरूप को प्राप्त हुआ मैं पूर्व प्रकृति को देखके हँसता हूं कि; क्या जानकार अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ मैं पूर्व प्रकृति को देखके हँसता हूं कि; क्या जानता था और क्या करता था। मैं तो नित्यशुद्ध ज्योंकात्यों आदि अन्तसे रहितहूं। हे मुनीश्वर! तेरे वचनरूपी अमृतके समुद्रमें मैंने स्नानकियाहै और उससे अजर अमर आनन्द पदको पाकर सूर्य से भी ऊंचेपदको प्राप्त हुआहूं और वीतशोक होकर परमशुद्धता, समता, शीतलता और अद्वैत अनुभवको प्राप्तहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराघवविश्रांतिवर्णनन्नामपंचमस्सर्गः ५॥

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! फिर भी मेरे परम वचनसुनो; तुम्हारे हितकी कामना से मैं कहताहूं। अब तुम आत्मपदको प्राप्त हुयेहो परन्तु बोधकी वृद्धिके निमित्त फिर सुनो; जिसके सुनने से अल्पबुद्धि भी आनन्दपदको प्राप्तहो। हे रामजी! जिसको अनात्ममें आत्माभिमानहै और आत्मज्ञान नहीं हुआ उसको इन्द्रियरूपी शत्रु दुःख देते हैं—जैसे निर्म्मल पुरुषको चोर दुःख देते हैं और जिसको आत्मपदमें स्थिति हुई है उसको इन्द्रियां दुःख नहीं देतीं—जैसे दृढ़राजाके शत्रु भी मित्र होजाते हैं तैसेहीज्ञानवान्के इन्द्रियगण मित्र होते हैं। जिनपुरुषों की देहमें स्थित बुद्धि है और इन्द्रियों के

विषयकी सेवना करतेहैं उनको बड़े दुःख प्राप्तहोते हैं । हे रामजी! आत्मा और शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं है । जैसे तम और प्रकाश विलक्षण स्वभाव हैं तैसेही आत्मा और देहका परस्पर विलक्षण स्वभाव है । आत्मा सर्व विकारों से रहित, नित्यमुक्त, उदय अस्तसे रहित और सबसे निर्लेपहै और सदा ज्योंकात्यों प्रकाशरूप भगवान् आत्मा सत्रूप है उसका सम्बन्ध किससे हो ? देह जड़ और असत्य, अज्ञानरूप, तुच्छ, विनाशी और अकृतज्ञहै उसका संयोग किसभांतिहो ? आत्मा चेतन, ज्ञान, सत् और प्रकाशरूप है उसका देह के साथ कैसे संयोग हो ? अज्ञान से देह और आत्मा का संयोग भासता है; सम्यक्ज्ञान से संयोग का अभाव भासता है । हे रामजी ! ये मैंने निपुण वचन कहे हैं; इनका वारंवार अभ्यास करने से संसारमोहका अभाव होजावेगा । जब संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ तब फिर उसका सद्भाव न होगा जबतक अज्ञानरूपी निद्रासे दृढ़ होकर नहीं जागता तबतक आवरण रहताहै । जैसे निद्रा के जागेसे फिर निद्रा घेर लेतीहै पर जब दृढ़ होके जागे तब फिर नहीं घेरती; तैसेही दृढ़ अभ्यास से अज्ञान निवृत्त हुआ फिर आवरण न करेगा । इससे मोह और दुःख निवृत्त के अर्थ दृढ़ अभ्यासकरो । हे रामजी ! आत्मा देहके गुणको अंगीकार नहीं करता; यदि देह के गुण अंगीकार करे तो आत्मा भी जड़ होजावे पर वह तो सदा ज्ञानरूप है; और जो देह आत्मा का गुण परमार्थ से अङ्गीकार करे तो देह भी चेतन होजावे पर वह तो जड़रूप है, उसको अपना ज्ञान कुछ नहीं । जब ज्योंकात्यों ज्ञानहो तब शरीर तुच्छ और जड़ भासे । हे रामजी ! देह और आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं और समवाय सम्बन्ध भी नहीं फिर इससे मिलकर वृथा दुःखको ग्रहण करना इससे बढ़के और मूर्खता क्या है ? जब कुछ भी इसका समान लक्षणहो तब सम्बन्ध भी हो पर जिसका कुछ भी समान लक्षण न हो उसका सम्बन्ध कैसेहो ? आत्मा चेतन है, देह जड़ है; आत्मा सत्रूप है, देह असत्रूप है; आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है; आत्मा निराकार है, देह साकार है; आत्मा सूक्ष्म है और देह स्थूल है तो फिर आत्मा और देह का सम्बन्ध कैसे हो ? और जब इनका संयोगही नहीं तब दुःख किसका हो ? जैसे सूक्ष्म और स्थूल; दिन और रात्रि; ज्ञान और अज्ञान; धूप और छाया; सत् और असत् का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही आत्मा और देहका संयोग नहीं होता और देहके सुख दुःखसे आत्माको सुखी दुःखी जानना मिथ्या भ्रमहै । जरा-मरण, सुख-दुःख; भाव-अभाव आत्मामें रञ्चकमात्र भी नहीं यदि देहमें अभिमान होता है तो ऊंचनीच जन्म पाताहै; वास्तव में कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें विकार कोई नहीं । जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब जल में होता है और जलके हिलने से प्रतिबिम्ब भी चलता है तैसेही देहके सुख दुःख

से आत्मा में सुख दुःख विकार मूर्ख देखते हैं--आत्मा सदा निर्लेप है और जब यथाभूत सम्यक् आत्मज्ञानहो तब देह में स्थित भी भ्रमको न प्राप्त हो। हे रामजी! जब यथाभूत ज्ञानहोता है तब सत्को सत् जानताहै और असत्को असत् जानता है। जैसे दीपक हाथमें होताहै तब सत्-असत् पदार्थ भासते हैं तैसेही ज्ञानसे सत्-असत् यथार्थ जानताहै और अज्ञान से मोहमें भ्रमताहै। जैसे वायुसे पत्र भ्रमताहै तैसेही मोहरूपी वायुसे अज्ञानी जीव भ्रमता है और कदाचित् स्वस्थ नहीं होता। जैसे यन्त्री की पुतली तागे से चेष्टाकरती हैं तैसेही अज्ञानी जीव प्राणरूपी तागे से चेष्टा करते हैं और जैसे नटुआ अनेक स्वांगधारता है तैसेही कर्मसे जीव अनेक शरीर धारता है। जैसे काठकी पुतली तृण, काष्ठ, फूलादिक को लेती, त्यागती और नृत्यकरती है तैसेही ये प्राणी भी चेष्टा करते हैं और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका ग्रहण करते हैं। जैसे वह पुतलियां जड़ हैं तैसेही ये भी जड़ हैं। यदि कहिये कि; इनमें तो प्राण है तो जैसे लुहारकी धौंकनी श्वासको लेती और त्यागती है तैसेही ये जीवभी चेष्टा करते हैं। हे रामजी! अपना वास्तव स्वरूप है सो ब्रह्म है; उसके प्रमाद से जीव मोह और कृपणताको प्राप्त होते हैं। जैसे लुहार की खाल वृथा श्वास लेती है तैसेही इनकी चेष्टा व्यर्थ है। इनकी चेष्टा और बोलना अनर्थ के निमित्त है-जैसे धनुष से जो बाण निकलता है सो हिंसा के निमित्त है, उससे और कुछ कार्य्य सिद्ध नहीं होता तैसेही अज्ञानी की चेष्टा और बोलना अनर्थ और दुःखके निमित्त है, सुखके निमित्त नहीं और उसकी सङ्गतिभी कल्याण के निमित्त नहीं-जैसे जंगलके ठूंठवृक्षसे छाया और फलकी इच्छा करनी व्यर्थहै, उससे कुछफल नहीं होता और न विश्रामके निमित्त छायाही प्राप्त होती है; तैसेही अज्ञानी जीवकी सङ्गतिसे सुख नहीं होता। उनको दान देना भी व्यर्थ है-जैसे कीचड़ में घृत डाला व्यर्थ होताहै तैसेही मूर्खोंको दानदिया व्यर्थ होताहै और उनकेसाथ बोलना भी व्यर्थ है। जैसे यज्ञमें श्वानको बुलाना निष्फलहै तैसेही उनके साथ बोलना निष्फल है। हे रामजी! जो अज्ञानी जीव हैं वे संसार में आते, जाते और जन्मते, मरते हैं और शरीरमें आस्था करते हैं; एवम् पुत्र, दारा, बान्धव, धनादिक से ममत्व बुद्धि करते हैं पर इस मिथ्यादृष्टिसे वे दुःखपाते हैं और मुक्ति कदाचित् नहींहोती क्योंकि; अनात्ममें आत्मबुद्धिको त्याग नहीं करते और ममता बुद्धिमें दृढ़रहते हैं। हे रामजी! जो अज्ञानी हैं वे असत्पदार्थको देखते हैं और वस्तुरूपकी ओरसे अन्धे हैं इससे वे परमार्थधनसे विमुख रहते हैं। नरकका सार जो स्त्रियादिक हैं उनमें वे प्रीति करते हैं और उनको देखकर प्रसन्न होते हैं। जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होता है तैसेही स्त्रियादिकों को देखकर मूर्ख प्रसन्न होते हैं। हे रामजी! मूर्खके मारनेके निमित्त स्त्री

हैं उनपर जीवरूपी भँवरे आ बैठते हैं और कालरूपी हाथी आकर उनको भोजन करजाता है। हे रामजी! जनतारूपी जीर्णपक्षी आशारूपी फांसी से बांधेहुये वासनारूपी शिक्षामें पड़े हैं और राग द्वेषरूपी अग्नि में पड़ेहुये कालरूपी पुरुष के मुख में प्रवेशकरते हैं। जनरूपी पक्षी उड़ते फिरते हैं सो कोईदिन उनको जब कालरूपी व्याध जाल फैलावेगा तब फँसालेगा। हे रामजी! संसाररूपी तालमें जीवरूपी मछलियां हैं और कालरूपी बगला उनको भोजन करताहै। कालरूपी कुम्हार जनरूपी मृत्तिका के वासन बनाताहै और वे शीघ्रही फूटजाते हैं। जीवरूपी नदी कर्म्मरूपी तरंगों को फैलाती है और कालरूपी बड़वाग्नि में जापड़तीहै। जगत्‌रूपी हाथीके मस्तकमें जीवरूपी मोती हैं; उस हाथीको कालरूपीसिंह भोजन करजाताहै। वह कालरूपी भक्षक ऐसा है कि जिसने ब्रह्माको भी भोजन कियाहै और करता है पर तृप्तनहीं होता। जैसे घृतकी आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होता तैसेही कालजीवों के भोजनसे तृप्तनहीं होता हे रामजी! एक निमेषमें अनेक जगत् उपजते हैं और उसी निमेषमें लीन होजाते हैं सबके अभावहुये जो शेष रहता है वहरुद्र है; फिर वहभी निवृत्तहोता है और सब के पाछे एक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह अज्ञान से भासता है जन्म, मरण, बालअवस्था, यौवन और वृद्धादिक विकार अज्ञान से भासते हैं और अज्ञान के नष्टहुये सब नष्ट होजाते हैं। जबतक आत्मविचार नहीं उपजता तबतक अज्ञान रहता है और जब आत्मविचार उपजता है तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त होजाती है केवल ब्रह्मपद भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअज्ञानमाहात्म्यवर्णनन्नामषष्ठस्सर्गः ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसाररूपी यौवन चेतनरूपी पर्वत के शृङ्गपर स्थित है और अविद्यारूपी बेलि उसमें बढ़कर विकाश को प्राप्त हुई है और सुख, दुःख,भाव, अभाव, अज्ञानपत्र, फूल और फलहैं। जहां अविद्या सुखरूप होकर स्थित होती है वहां ऊंचे सुखको भोगाती है और उसके सत्ताभावको प्राप्त होती है और जहां दुःखरूप होकर स्थित होती है तहां दुःखरूप भासती है। वही सुख दुःख इसके फल गुच्छे हैं। दिनरूपी फूलहैं और रात्रिरूपी भँवरे हैं; जन्मरूपी अंकुरहैं और भोगरूपी रससे पूर्णहैं। जब विचाररूपी घुन अविद्यारूपी वृक्षको खानेलगता है तब वह नष्ट होजाती है। जबतक विचाररूपी घुन नहीं लगा तबतक वह दिनदिन बढ़तीजातीहै और दृढ़ होतीजाती है। हे रामजी! अविद्यारूपी बेलिका मूल संवित् फुरना है उस से फैलीहै; तारागण उसके फूलहैं, चन्द्रमा और सूर्य्य उसका प्रकाशहै और दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कंटक हैं; शुभ कर्मरूपी स्वर्ग उसके फूल हैं और सुख दुःखरूपी फल लगते हैं, जीवरूपी उसके पत्रहैं जो कालरूपी वायुसे हलते हैं और जीर्ण होकर

गिरपड़ते हैं; पृथ्वीरूपी उसकी त्वचाहै, पर्व्वत घोड़े हैं, मरणरूपी उसमें छिद्रहैं, जन्मरूपी अंकुरहैं और मोहरूपी कलियां हैं जिनके महासुन्दर गौर अंग हैं उनसे जीव मोहितहोते हैं—जैसे स्त्री को देखकर पुरुष मोहितहोते हैं—और सात समुद्रके जलसे सींचीजाती हैं जिससे पुष्टहोती है। उसबेलि में एक विषकीभरी सर्पिणी रहती है जो कोई उसके निकटजाताहै उसको काटती है और वह मूर्च्छासे गिरपड़ताहै। संसाररूपी मूर्च्छाकी देनेवाली तृष्णारूपी सर्पिणी है। वह बेलि अन्यथा नष्ट नहीं होती; जब विचाररूपी घुन इसकोलागे तो नष्ट होजाती है। हे रामजी! जो कुछ प्रपञ्च तुमको भासताहै सो सब अविद्यारूपहै; कहीं अविद्या जलरूपहुई है कहीं पहाड़, कहीं नाग, कहीं देवता, कहीं दैत्य, कहीं पृथ्वी, कहीं चन्द्रमा, कहीं सूर्य्य, कहीं तारे, कहीं तम, कहीं प्रकाश, कहीं तेज, कहीं पाप, कहीं पुण्य, कहीं स्थावर, कहीं मूढ़रूप, कहीं अज्ञानसे दीन और कहीं ज्ञानसे आपही क्षीण होजाती है। कहीं तप दान आदिक से क्षीणहोतीहै; कहींपापादिकसे वृद्धहोती हैकहीं सूर्य्यरूपहोकर प्रकाशती है, कहींस्थानरूपहोती है, कहीं नरकमें लीन है, कहीं स्वर्गनिवासी, है कहीं देवता होती है, कहीं कृमि होती है कहीं विष्णुरूप होकर स्थित हुई है; कहीं ब्रह्मा होकर स्थितहै, कहीं रुद्र है, कहीं अग्निरूप है कहीं पृथ्वीरूपहुई है और कहीं आकाश व कहीं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान हुई है। हे रामजी! जो कुछ देखने में आताहै वह सब महिमा इसीकी है। ईश्वरसे आदि तृणपर्य्यंत सब अविद्यारूप हैं जो इस दृश्यजालसे अतीत है उसको आत्मलाभ जानो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्यालतावर्णनंनामसप्तमस्सर्ग्गः ७॥

रामजी ने पूंछा, हे ब्रह्मन्! विष्णु और हर आदिक तो शुद्ध आकार आकाश जाति हैं इनको अविद्या—तुम कैसे कहते हो? यह सुनकर मुझको संशय उत्पन्न हुआ है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम अविद्या और तत्त्वसुनो कि, किसको कहते हैं। जो अविद्यमान हो और विद्यमान भासे वह अविद्या है और जो सदा विद्यमान है उस को तत्त्व कहते हैं। हे रामजी! शुद्ध संवित् और कलना से रहित जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है सोही तत्त्व है; उसमें जो अहं उल्लेखसे संवेदन कलना पूर्णरूप से फुरी है सोही चिन्मात्र संवित् का आभास है। वही संवेदन फुरकर स्थान भेद से सूक्ष्म, स्थूल और मध्यमभावको प्राप्तहुई है और फिर वही दृढ़ स्पन्द से मन भावको प्राप्त हुई है। सात्विक, राजस और तामस तीनों उसी के आकार हुये हैं। वह अविद्या त्रिगुण प्राकृतधर्मिणी हुई है और तीनगुण जो तुझसे कहे हैं वे भी एकएक गुण तीन २ प्रकारके हुये हैं जिससे अविद्याके गुण नवप्रकारके भेद

रूपी विषकी बेलि है; नेत्ररूपी उसके फूल हैं, ओष्ठरूपी पत्र हैं, स्तनरूपी गुच्छे हैं और अज्ञानरूपी भँवरे वहां विराजमान होते हैं । और नाशहोते हैं । मतिरूपी तलाव में हर्षरूपी कमल और चित्तरूपी भँवरे सदा रहतेहैं और अज्ञानरूपी नदी में दुःखरूपी लहरें हैं और तृष्णारूपी बुद्बुदे हैं; ऐसी नदी मरणरूपी बड़वाग्नि में जापड़ेगी । हे रामजी ! जब जन्महोता है तब जीव महागर्भ अग्निसे जलताहुआ निकलता है और महामूर्ख अवस्थामें निकलकर दुःखीहोता है; जब यौवन अवस्था को प्राप्त होताहै तब विषयोंको सेवताहै—वेभी दुःखके कारणहोते हैं और फिर वृद्धावस्थाको प्राप्त होताहै तब शरीर असक्त होताहै और हृदयसे तृष्णा जलाती है। इसप्रकार जन्म मरण अवस्था में जीव भटकते हैं । हे रामजी ! संसाररूपी कूप में मोहरूपी घटोंकीमालाहै और तृष्णा और वासनारूपी रस्सीसे बांधेहुये जीवरूपी टीड भ्रमते हैं। ज्ञानवान्को संसार कोई दुःखनहीं देता; गोपदकी नाईं तुच्छ होजाताहै और अज्ञानीको समुद्रवत् तरना कठिनहोताहै। वह अपने भीतरही भ्रमदेखताहै और निकलनहींसक्ता-थोड़ा भी उसको बहुत होजाता है। जैसे पक्षीको पिंजरे में और कोल्हूके बैलको घरही में बड़ामार्ग होजाताहै तैसेही अज्ञानी को तुच्छ संसार बड़ाहो भासता है। हे रामजी ! जिस जगत्को रमणीय जानकर जीव उसके पदार्थोंकी इच्छा करता है। वे सब पंचभौतिक पदार्थ हैं पर मोहसे उनको सुन्दर जानता है उनमें प्रीतिकरताहै और स्थिर जानता है और वह सब अनर्थ के निमित्त होता है । हे रामजी ! अज्ञानरूपी चन्द्रमा के उदय से भोगरूपी वृक्ष पुष्ट होते हैं और जन्मों की परंपरा रसकोपाते; कर्मरूपी जलसे सिंचते हैं और पुण्य और पापरूपी मञ्जरी उन में होती है। अज्ञानरूपी चन्द्रमा का वासना रूपी अमृत है और आशारूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होताहै । आशारूपी कमलिनीपर अज्ञानरूपी भँवरा बैठकर प्रसन्न होता है इससे सब जगत् अज्ञानसे रमणीक भासता है । हे रामजी! जिस अज्ञान से यह जगत्स्थितहै उसका प्रवाहसुनो ।जब अज्ञानरूपी चन्द्रमापूर्णहोकर स्थितहोता है तब कामनारूपी क्षीरसमुद्र उछलता है और अनेक तरंग फैलाता है । उसके रससे तृष्णारूपी मञ्जरी पुष्टहोती है और काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी चकोर उसको देखकर प्रसन्न होते हैं देह अभिमान रूपी रात्रिके निवृत्तहुये और विवेकरूपी सूर्य्य के उदय हुये अज्ञानरूपी चन्द्रमाका प्रकाश निवृत्त होजाताहै। हे रामजी! अज्ञानसे जीव भ्रमते हैं और उनकी चेष्टा विपर्यय होगई है; जो तुच्छ और नीच दुःखरूप पदार्थ हैं उनको देखकर सुखदायक और रमणीय जानते हैं और स्त्रीको देख प्रसन्न होते हैं। कवीश्वर कहते हैं कि, इसके कपोल कमलवत्, नेत्र भँवरेवत्, होठ हँसने वाले और भुजा बेलिकी नाईं हैं; कंचनके कलशवत् स्तन हैं; उदर और वक्षस्थल

बहुत सुन्दर हैं और जंघस्थल केले के स्तम्भवत् हैं। जिस स्त्रीकी कवि स्तुति करते हैं वह स्त्री रक्तमांस की पुतली है; कपोल भी रक्तमांस हैं, होंठ भी रक्तमांस हैं; भुजा विषके वृक्षके टासवत् हैं स्तन भी रक्तमांस हैं, और संपूर्ण शरीर भी रक्त मांस अस्थिसे पूर्ण है। एक बुत बनी है उसको जो रमणीक जानते हैं वे मूर्ख मोह से मोहित हुये हैं और अपने नाश के निमित्त इच्छाकरते हैं। जैसे सर्पिणी से जो कोई हित करेगा वह नष्ट होगा तैसेही इससे हितकिये से नाश होगा और जैसे कदलीवनका महाबली हाथी कामसे नीचगति पाता है और संकट में पड़ताहै और अंकुश सहकर जो अपमान को प्राप्त होताहै, सो एकके हितसेही ऐसी गतिको प्राप्त होताहै, तैसेही यह जीव स्त्रीकी इच्छा करके अनेक दुःख पाताहै। जैसे दीपकको रमणीय जानकर पतंग उसमें प्रवेश करताहै और नष्ट होताहै तैसेही यह जीव स्त्रीकी इच्छा करता है और उसके संग से नाशको प्राप्त होता है। लक्ष्मीका आश्रय करके जो सुखकी इच्छा करताहै वहभी सुखी न होगा। जैसे पहाड़ दूरसे देखने मात्र सुंदर भासता है तैसेही यहभी देखने में सुन्दर लगती है पर लक्ष्मीका आश्रय करके जो सुखकी इच्छा करे सो सुख न मिलेगा अन्त में दुःखकोही प्राप्त होगा। जब लक्ष्मी प्राप्त होतीहै तब अनर्थ और पाप करनेलगता है और दुःखका पात्रहोताहै; और जब जाती है तब दुःख दे जाती है और उससे जलता रहता है। हे रामजी! जगत् में सुखकी इच्छा करनी व्यर्थ है; प्रथम जन्म लेता है तबभी दुःख से जन्म लेता है; फिर जन्मकर मूर्ख और नीच बालक अवस्थाको प्राप्त होताहै तब कुछ विचार नहीं होता है उसमें दुःखपाताहै और कुछ२ शक्ति नहीं होती उससे दुःखपाताहै; जब यौवन अवस्थारूपी रात्रि आती है तब उसमें काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी निशाचर विचरते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी विचरती है क्योंकि उस अवस्थामें विवेकरूपी चन्द्रमा नहीं उदय होता इससे अन्धकार में वे सब क्रीड़ा करते हैं। हे रामजी! यौवन अवस्थारूपी वर्षाकालमें बुद्धि आदिक नदियां मलिन भावको प्राप्तहोती हैं; कामरूपी मेघगर्जताहै और तृष्णारूपी मोरनी उसको देख प्रसन्न होकर नृत्य करती है। फिर यौवन अवस्थारूपी चूहेको जरारूपीबिल्ली भोजन करलेतीहै और शरीर महाजर्जरी भूत हो आसक्त होजाता है, तृष्णा बढ़ती जाती है और हृदय से जलता है; निदान फिर मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिण को भोजन करलेता है इसप्रकार जीव उपजता और मरता है और आशारूपी रस्सी से बंधाहुआ घटीयंत्र की नाईं भटकताहै-शान्ति कदाचित् नहींपाता। हे रामजी! ब्रह्माण्डरूपी एकवृक्षहै और उसमें जीवरूपी पत्रलगे हैं सो कर्मरूपी वायुसे हलते हैं और अज्ञानरूपी उसमें जड़ताहै। चित्तरूपी ऊंचावृक्ष है उसपर लोभादिक घुघुआ बैठते हैं। जगत्‌रूपी ताल में शरीररूपी कमल

को प्राप्तहुये हैं । जो कुछ तुमको दृश्यभासताहै वह अविद्याके नवगुणों में है । ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सिद्ध, नाग, विद्याधर और देवता अविद्याके सात्त्विक भाग हैं और उस सात्त्विक के विभाग में नाग सात्त्विक-तामस हैं, विद्याधर, सिद्ध, देवता और मुनीश्वर, अविद्या के सात्त्विकभाग में सात्त्विक-राजस हैं और हरिहरादिक केवल सात्त्विक हैं । हे रामजी ! सात्त्विक जो प्रकृत भागहैं उसमें जो तत्त्वज्ञ हुये हैं वे मोहको नहीं प्राप्त होते क्योंकि, वे मुक्तिरूप होते हैं । हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विक हैं और सदा मुक्तिरूप होकर जगत में स्थित हैं । वे जबतक जगत्में हैं तबतक जीवन्मुक्त हैं और जब विदेह मुक्त हुये तब परमेश्वर को प्राप्त होते हैं । हे रामजी ! एक अविद्याके दो-रूप हैं । एक अविद्या विद्यारूप होती-जैसे बीजफलको प्राप्त होता है और फल बीजभाव को प्राप्त होता है जैसे जलसे बुद्बुदा उठता है तैसेही अविद्यासे विद्या उपजती है और विद्यासे अविद्या लीन होती है । जैसे काष्ठ से अग्नि उपजकर काष्ठको दग्धकरती है तैसेही विद्या अविद्यासे उपजकर अविद्या को नाश करती है । वास्तव में सब चिदाकाश है जैसे जलमें तरङ्ग कलनामात्र है तैसेही विद्या अविद्या भावना मात्र है । इसको त्यागकर शेष आत्मसत्ताही रहती है । अविद्या और विद्या आपस में प्रतियोगी हैं-जैसे तम और प्रकाश इससे इन दोनों को त्याग कर आत्मसत्ता में स्थित हो । विद्या और अविद्या कल्पनामात्र है । विद्या के अभाव का नाम अविद्या है और अविद्या के अभाव का नाम विद्या है । यह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठी है । जब विद्या उपजती है तब अविद्याको नष्ट करती है और फिर आपभी लीन होजाती है-जैसे काष्ठ से उपजी अग्नि काष्ठको जलाकर आपभी शान्त होजाती है-उससे जो शेष रहता है वह अशब्द पद सर्वव्यापी है । जैसे बट बीज में पत्र, टास, फूल, फल और पत्ते होते हैं तैसेही सबमें एक अनुस्यूतसत्ता व्यापी है सोही ब्रह्मतत्त्व सर्व शक्ति है, उसीसे सर्व शक्ति का स्पन्द है और आकाश से भी शून्य है । जैसे सूर्यकांत में अग्नि होती है और दूधमें घृत है तैसेही सब जगत् में ब्रह्म व्याप रहा है । जैसे दधिके मथेविना घृत नहीं निकलता तैसेही विचार विना आत्मा नहीं भासता और जैसे अग्निसे चिनगारें और सूर्य से किरणें निकलती हैं तैसेही यह जगत् आत्मा का किंचन रूपहै । जैसे घटके नाशहुये घटाकाश अविनाशी है तैसेही जगत् के अभावसे भी आत्मा अविनाशी है । हे रामजी ! जैसे चुम्बक पत्थर की सत्तासे जड़लोह चेष्टा करता है परन्तु चुम्बक सदा अकर्त्ताही है तैसेही आत्माकी सत्ता से जगत् देहादिक चेष्टा करते हैं और चेतन्य होते हैं परन्तु आत्मा सदा अकर्त्ता है । इस जगत् का बीज चेतन आत्मसत्ता है और उसमें संवित् संवेदन आदिक शब्दभी कल्पना मात्र है । जैसे जलको कहिये कि, बहुत सुन्दर और चञ्चलहै

सो जलही जल है तैसेही संवेदन आदिक सब चेतनरूप हैं। जहां न किञ्चन है, न अकिञ्चन है सो तुम्हारा स्वरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्यानिराकरणंनामअष्टमस्सर्गः ८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्थावर-जंगम जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह अधिभौतिकता को नहीं प्राप्त हुआ। वह सब चिदाकाश रूपहै और उसमें कुछ भाव अभाव की कल्पना नहीं और जीवादिक भेद भी नहीं। हमको तो भेद कल्पना कुछ नहीं भासती। जैसे रस्सी में सर्प का अभाव है तैसेही ब्रह्ममें भेद कल्पना का अभाव है। हे रामजी! आत्मा के अज्ञान से भेद कल्पना भासती है और आत्मा के जाने से भेद कल्पना मिटजाती है वही सर्व संपदाका अन्तहै। शुद्ध चेतनमें चित्तका सम्बन्ध होनेका नाम अविद्या है। जो पुरुष चित्तकी उपाधि से रहित चिन्मात्र है वह शरीर के नाश हुये नाश नहीं होता और शरीरके उपजेसे नहीं उपजता। शरीर के उपजने और विनशने में वह सदा एक रस ज्यों का त्यों स्थित है। जैसे घट के उपजने और विनशने में घटाकाश ज्यों का त्यों रहता है तैसेही शरीरके भाव अभावमें आत्मा ज्यों का त्यों है जैसे बालक दौड़ता है तो उसको सूर्य्य भी दौड़ता भासताहै और स्थित होने में स्थित भासता है परन्तु सूर्य्य ज्यों का त्यों है; तैसेही चित्तकी चञ्चलता से मूर्खजन आत्माको व्याकुल देखते हैं; चित्तके अचलता में अचल देखते हैं और चित्तके उपजने में उपजता देखते हैं परंतु आत्मा सदा ज्योंका त्यों है। जैसे मकड़ी अपने जालेसे आपही वेष्टित होती है और निकल नहीं सक्ती तैसेही जीव अपनी वासना से आपही बन्धवान् होते हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! अत्यन्त मूर्खताको प्राप्तहोकर जो स्थावर आदिक तन में घन स्थित हुये हैं उनकी वासना कैसी होती है सो कृपाकरके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो स्थावर जीव हैं वे अमनसत्ता को नहीं प्राप्तहुये। वे केवल मन अवस्थामें भी तिष्ठित नहीं पर मध्य अवस्थामें हैं। उनकी पुर्य्यष्टका सुषुप्ति रूपहै सो केवल दुःखका कारणहै। उनका मन नहीं नष्टहुआ वे सुषुप्ति अवस्थामें जड़ रूप स्थित हैं सो कालपाकर जागेंगे अब उनकी सत्ता मूकजड़ होकर स्थितहै। रामजी ने पूछा; हे देवताओं में श्रेष्ठ! यदि उनकी सत्ता अद्वैत रूप होकर स्थावर शरीर में स्थितहै तो मुक्ति अवस्था उनके निकट है यह सिद्ध हुआ। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मुक्ति कैसे निकट होती है? मुक्ति तब होती है जब बुद्धि पूर्वक वस्तुको विचारे और यथाभूत अर्थ दृष्टिआवे। जब सत्ता समान का बोधहो तब केवल आत्मपदको प्राप्तहो। हे रामजी! जब ज्योंका त्यों पदार्थ जानकर वासना को त्यागकरे तब सत्ता समान पद प्राप्तहो। प्रथम अध्यात्म शास्त्रको विचारे और उसमें जो सारहै उसकी वारंवार भावनाकरे तब उससे जो प्राप्तहो सो सत्ता समान परब्रह्म

कहाता है। स्थावर के भीतर वासना है परन्तु बाहर दृष्टि नहीं आती क्योंकि; उनकी सुषुप्ति वासना है। जैसे बीज में अंकुर होता है और फिर उगता है; तैसेही उनके जन्महोवेंगे और वासना जागेगी। उनके भीतर जगत् की सत्यता है पर बाहर दृष्टि नहीं आती है। यह सुषुप्तिवत् जड़ धर्म है वे अनन्त जन्मके दुःख पावेंगे। हेरामजी! स्थावर जो अब जड़धर्मा सुषुप्ति पदमें स्थित हैं सो वारंवार जन्म को पावेंगे—जैसे बीजमें पत्र, टास, फूल और फल स्थित होते हैं और मृत्तिका में घट शक्ति है तैसेही स्थावर में वासना स्थित है। जिसमें वासनारूपी बीजहै वह सुषुप्तिरूप कहाता है और वह सिद्धता जो मुक्ति है नहीं प्राप्तकरती। जहां निर्बीज वासना है सो तुरीयापदहै और वह सिद्धता को प्राप्तकरतीहै। हे रामजी! जब चित् शक्ति वासना से मिली होती है तब स्थावरहोती है और वह फिर जागती है। जैसे कोई कर्म करता हुआ सो जाताहै तो सुषुप्तिसे उठकर फिरवही कर्म करने लगता है क्योंकि कर्मरूपी वासना उसके भीतर रहती है; तैसेही स्थावर वासनासे फिर जन्म पावेंगे। जब वह वासना हृदयसे दग्धहो तब जन्मका कारण नहीं होती। आत्मसत्ता समान भाव से घटपट आदिक सब पदार्थोंमें स्थितहै। जैसे वर्षाकालका एकहीमेघ नानारूप होकर स्थित होताहै तैसेही एकही आत्मसत्ता सर्व पदार्थों में स्थित होती है। इससे सबमें आत्माही व्याप रहाहै। ऐसीदृष्टिसे जो रहितहै उसको विपर्यय दृष्टि भ्रमदायकहोती है और जब आत्मदृष्टि प्राप्त होती तब सब दुःख नाश होजाते हैं। हे रामजी! असम्यक् दृष्टिकोही बुद्धीश्वर अविद्या कहते हैं। वह अविद्या जगत्का कारण है और उससे सब पसारा होताहै। जब उससे रहित अपना स्वरूप भासे तब अविद्या नष्ट होती है। जैसे वरफकी कणिका धूपसे नाश होजाती है तैसेही शुद्ध स्वरूप के अभ्याससे अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे स्वप्ने से रहित जब अपना स्वरूप देखता है तब फिर स्वप्नेकी ओर नहीं जाता, तैसेही शुद्ध स्वरूप के अभ्याससे सम्पूर्ण भ्रम निवृत्त होजाते हैं। हे रामजी! जब वस्तुको वस्तु जानताहै तब अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे प्रकाशसे अन्धकार नष्ट होजाताहै पर दीपकको हाथमें लेकर देखिये तो अन्धकारकी कुछ मूर्त्ति दृष्टि नहीं आती, और जैसे उष्णतासे घृतका पीन गलजाता है तैसेही आत्मा के दर्शन हुये अविद्या नहीं रहती। वास्तवमें अविद्या कुछ वस्तुनहीं, अविचार से सिद्ध है और विचार किये से लीनहोजाती है। जैसे प्रकाशसे तम लीन होजाताहै तैसेही विचारसे अविद्या लीन होजाती है। अज्ञानसे अविद्याकी प्रतीति होती है। जब तक आत्मतत्त्वको नहीं देखा तब तक अविद्याही प्रतीति होती है और जब आत्माको देखा तब अविद्याका अभाव होजाता है। प्रथम यह विचारकरे कि; रक्त, मांस और अस्थिका यंत्र जो शरीर है उस में "मैं क्या वस्तुहूं"? सत्य क्या

है? और असत्य क्याहै? इस विचारसे जिसका अभावहोता है वह असत्य है और जिसका अभाव नहीं होता वह सत्य है। फिर अन्वय व्यतिरेकसे विचारे कि, कार्य कल्पित के होतेभी हो और उसके अभाव में भी हो सो अन्वय सत्य है। देहादिके भावमें भी जो आत्मा अधिष्ठान है और इनके अभाव में भी निरुपाधि सिद्ध है सो सत्यहै और देहादिक व्यतिरेक असत्यहै। ऐसे विचारकर आत्मतत्त्वका अभ्यासकरे और असत् देहादिकसे वैराग्यकरे तब निश्चय करके अविद्या लीन होजाती है क्योंकि, वह वास्तव नहीं है, असत्यरूपहै। उसके नष्टहुये जो शेषरहे सो निष्किञ्चन किञ्चन स्वरूपहै और सत्यहै, ब्रह्म निरंतर है सो तत्त्ववस्तु उपादेयकरने योग्यहै। हे रामजी! ऐसे विचार करके अविद्या नष्ट होजातीहै जैसे पौंड़ेका रस जिह्वासे लगता है तब अवश्य स्वाद आता है तैसेही आत्म विचारसे अविद्या अवश्य नष्ट होजाती है। यदि वास्तव में कहिये तो अविद्याभी कुछ भिन्न वस्तुनहीं एक अखंडित ब्रह्मतत्त्व है। जिसके घट, पट, रथ आदिक पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं उसको अविद्या जानो और जिसको सर्व में एक ब्रह्म भावना है उसको विद्याजानो। इस विद्यासे अविद्या नष्ट होजावेगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्याचिकित्सावर्णनंनामनवमस्सर्गः ९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बोधके निमित्त मैं तुमको वारंवार सारकहता हूं कि आत्माका साक्षात्कार भावनाके अभ्यासविना न होगा। यहजो अज्ञान अविद्याहै सो अनन्तजन्म का दृढ़हुआ भीतर बाहर दिखाई देता है, आत्म सर्व इंद्रियोंसे अगोचरहै जब मन सहित षट् इन्द्रियोंका अभाव हो तब केवल शान्तिको प्राप्त होताहै। हे रामजी! जो कुछ वृत्ति बहिर्मुख फुरती है सो अविद्याहै क्योंकि, वह वृत्ति आत्मतत्वसे भिन्न जानकर फुरती है और जो अन्तर्मुख आत्माकी ओर फुरती है सो विद्या अविद्याको नाशकरेगी। अविद्याके दोरूपहैं—एक प्रधानरूप और दूसरा निकृष्टरूप है। उस अविद्यासे विद्या उपजकर अविद्याको नाशकरती है और फिर आपभी नाश होजाती है। जैसे बांससे अग्नि उपजती है और बांसको जलाकर आपभी शान्त होजाती है तैसेही जो अन्तर्मुख है सो प्रधानरूप विद्या है और जो बहिर्मुख है सो निकृष्टरूप अविद्या है। इससे अविद्या भावको नाश करे। हे रामजी! अभ्यास विना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कुछ किसीको प्राप्तहोता है सो अभ्यासरूपी वृक्षका फल है। चिरकाल जो अविद्याका दृढ़ अभ्यास हुआ है तब अविद्या दृढ़ हुई है। जब आत्मज्ञानके निमित्त यत्न करके दृढ़ अभ्यास करोगे तब अविद्या नाश होजावेगी। हे रामजी! हृदयरूपी वृक्षसे जो अविद्यारूपी बुरीलता फैलरही है उसको ज्ञानरूपी खड्गसे काटो और जो कुछ अपना प्रकृत आचार है उसको करो तब

तुमको दुःख कोई न होगा जैसे जनक राजा ज्ञातज्ञेय होकर व्यवहार को करता था तैसेही आत्मज्ञान का दृढ़ अभ्यासकर तुमभी विचरो । हे रामजी ! जैसे निश्चय पवन, विष्णुजी, सदाशिव, ब्रह्मा, बृहस्पति, चन्द्रमा, अग्नि, नारद, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा, भृगु, शुकदेव और ज्ञातज्ञेय ब्राह्मणों का है वही तुमको भी प्राप्तहो । रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण ! जिस निश्चय से बुद्धिमान् विशोक होकर स्थितहुये हैं वह मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे सम्पूर्ण ज्ञानवानों का निश्चय है और जैसे वे व्यवहार में समरहे हैं सो सुनो । विस्ताररूप जो कुछ जगज्जाल तुमको भासता है वह निर्मल ब्रह्मसत्ता अपनी महिमा में स्थित है—जैसे समुद्र में तरंग स्थित होते हैं और नानाप्रकार के उत्पन्न होते हैं सो एक जलरूप है, जल से भिन्न नहीं; तैसेही जो ग्रहण करनेवाला है सो भी ब्रह्म है और जिसको भोजन करता है वह भी ब्रह्म है; मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है । यह निश्चय ज्ञानवान् को सदा रहता है और ब्रह्म को ब्रह्म स्पर्श करता है तब किसको स्पर्श किया ? हे रामजी ! जिनको सदा यही निश्चय रहता है उनको राग द्वेष कुछ दुःख नहीं दे सक्ते । ब्रह्मही ब्रह्ममें फुरता है; भावरूप भी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्महै; कुछ भिन्न नहीं तो फिर रागद्वेष कलना कैसे हो ? ब्रह्मही ब्रह्मको चेतता है; ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है, ब्रह्मही अहंअस्मि है; ब्रह्मही सम है; ब्रह्मही आत्मा है और घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्मही से विस्तार को प्राप्त हुआ है । हे रामजी ! जब सर्वत्र ब्रह्मही है तब राग विराग कलना कैसे होवे ? मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है; मरता भी ब्रह्महै और मारताभी ब्रह्महै । जैसे रस्सीमें सर्प भ्रमसे भासता है तैसेही आत्मामें सुखदुःख मिथ्या है । भोग भी ब्रह्म है, भोगनेवाला भी ब्रह्म है और भोक्तादेह भी ब्रह्म है निदान सर्वत्र ब्रह्मही है । जैसे समुद्रमें तरंग उपजते और मिटजाते हैं सो जल से भिन्न नहीं तैसेही शरीर उपजते और मिटजाते हैं सो ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है । हे रामजी ! जल के तरंग जो मृत्युको प्राप्त होते हैं तो क्या हुआ वे तो जलही हैं; तैसेही मृतक ब्रह्मने जो मृतकदेह ब्रह्मको मारा तब कौन मुआ और किसनेमारा ? जैसे एक तरंग जल से उपजा और दूसरे तरंग से मिल दोनों इकट्ठे होकर मिटगये सो जलही जलहैं; वहां मैं, तू इत्यादिक दूसरा कुछनहीं; तैसेही आत्मा में जो जगत् है सो आत्माही अपने आप में स्थितहै; तेरा, मेरा, भिन्न कुछ नहीं । जैसे सुवर्ण में भूषण और जलमें तरंग अभेदरूप हैं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेदनहीं । हे रामजी ! जो पुरुष यथार्थ दर्शी है उसको सदा यही निश्चय रहता है और जिनको सम्यक्ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ उनको विपर्ययरूप औरका और भासताहै । पर वास्तव में सदा एकरूपहै; ज्ञान और अज्ञानका भेदहै । जैसे रस्सी एक होती है परन्तु जिसको सम्यक्ज्ञान होताहै उसको

रस्सी भासती है और जिसको सम्यक्ज्ञान नहीं होता उसको सर्पही भासताहै; तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुषहै उसको सब ब्रह्मसत्ताही भासती है और जो अज्ञानी है उसको जगत्-रूप भासताहै और नानाप्रकारका जगत् दुःखदायक होताहै पर ज्ञानवान्को सुखरूप है। जैसे अंधेको सबओर अन्धकारही भासताहै और नेत्रवान्को प्रकाशरूप होताहै तैसेही सर्व जगत् आत्मरूपहै परन्तु ज्ञानीको आत्मसत्ता सुखरूप भासती है और अज्ञानीको दुःखदायकहै। जैसे बालकको अपनी परछाहीं में वेतालबुद्धि होतीहै और उससे भयवान् होताहै पर बुद्धिमान् निर्भय होताहै तैसेही अज्ञानी को जगत् दुःख-दायकहै और ज्ञानीको सुखरूपहै। यदि मेरा निश्चयपूछो तो यों है कि, मैं सर्व्व, ब्रह्म, नित्य, शुद्ध सर्व्व में स्थितहूं; न कोई विनशताहै, न उपजता है। जैसे जल में तरंग न कुछ उपजता है और न विनशते हैं जलही जलहै तैसेही भूत भी आत्मा में हैं और जगत् भी आत्मरूप है। आत्मब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और शरीर के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। मृतकरूप भी ब्रह्म है शरीर भी ब्रह्म है ब्रह्मही अनेकरूप होकर भासता है ब्रह्मसे भिन्न शरीर आदिक कुछ सिद्ध नहीं होते। जैसे तरंग, फेन और बुद्बुदे जलरूप हैं तैसेही देह, कलना, इन्द्रियां, इच्छा देवतादिक सब ब्रह्मरूप हैं और जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं होता—सुवर्णही भूषणरूपहोताहै—तैसेही ब्रह्मसे व्यतिरेक जगत् नहीं होता ब्रह्मही जगत्रूपहै। जो मूढ़हैं उनको द्वैतकलना भासती है। हे रामजी! मन, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा; और इन्द्रियां, सब ब्रह्महीके नामहैं और सुखदुःख कुछ नहीं। अहं आदिक, जो शब्द हैं उनमें भिन्न २ भावना करनी व्यर्थ है, अपना अनुभवही अन्यकी नाईं हो भासता है—जैसे पहाड़ में शब्द करने से प्रतिशब्द का भास होता है सो अपनाही शब्द है उसमें और की कल्पना मिथ्याहै। जैसे स्वप्ने में कोई अपना शिरकटा देखता है सो व्यर्थ है पर सोई भासि आताहै। जिसको असम्यक्ज्ञान होता है उसको ऐसेही है हे रामजी! ब्रह्म सर्व्वशक्त है उसमें जैसी भावना होती है वही भासि आता है। जिसको सम्यक्ज्ञान होता वह उसे निरहंकार, सुप्रकाश, और सर्वशक्त देखता है। कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, यह जो षट्कारक बुद्धिहै सो सब सर्वत्र ब्रह्महीहै और ब्रह्मही अर्पण, ब्रह्मही हवि, ब्रह्मही अग्नि, ब्रह्मही होत्र, ब्रह्मही हुतनेवाला और ब्रह्मही फलदेताहै; ऐसे जाननेवालेका नाम ज्ञानीहै और ऐसे नजानने से अज्ञानी है। जाननेवाले का नाम ब्रह्मवेत्ताहै। हे रामजी! यदि चिरकाल का बान्धव हो और उसको देखिये तो जानिये कि, बान्धवहै और जो देखने में न आये और उसका अभ्यास दूर होगया हो तो बान्धव भी अबान्धवकी नाईं होजाता है; तैसेही अपना आपही ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होती है तब ऐसेही भासि आताहै कि, मैं ब्रह्म हूं

और द्वैत कल्पना लीन होजाती है—सर्व ब्रह्मही भासताहै । जैसे जिसने अमृत पान किया है वह अमृतमय होता है और जिसने नहीं पान किया वह अमृतमय नहींहोता; तैसेही जिसने जानाहै कि, मैं ब्रह्महूं वह ब्रह्मही होता है और जिसने नहीं जाना उसको नानात्व कल्पना जन्म मरण भासताहै और ब्रह्म अप्राप्तकी नाईं भासता है । हे रामजी ! जिसको ब्रह्म भावना का अभ्यास जगा है वह अभ्यास के बलसे शीघ्रही ब्रह्महोता है । ब्रह्मरूपी बड़े दर्पण में जैसी कोई भावना करता है तैसाही रूपहो भासता है । मन भावनामात्र है, दुर्वासनासे स्वरूपका आवरण हुआ है; जब वासना नष्ट होती है तब निष्कलंक आत्मतत्त्वही भासता है । जैसे शुद्ध वस्त्रपर केशरकारङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है, तैसेही वासना से रहित चित्त में ब्रह्मस्वरूप भासिआता है । हे रामजी ! आत्मा सर्व्वकलना से रहित है और तीनों काल में नित्यशुद्ध, सम और शान्तरूप है । जिसको ज्ञान होता है वह ऐसे जानता है कि, मैं ब्रह्महूं । और सदाकाल, सर्व में सर्वप्रकार सर्व्वघट, पटादिक जो जगज्जाल है उसमें मैंहीं ब्रह्म आकाशवत् व्याप रहाहूं ? न कोई मुझको दुःख है, न कर्म्म है न किसी का त्याग करताहूं और न वाञ्छाकरताहूं और सर्वकलनासे रहित निरामयहूं । मैंहीं रक्त, पीत, श्वेत और श्यामहूं और रक्त, मांस, अस्थिका वपु भी मैंहींहूं; घट पटादिक जगत् भी मैंहींहूं और तृण, बेलि, फूल, गुच्छे, टास, वन पर्व्वत, समुद्र नदियां, ग्रहण, त्याग, संकुचना, भूत आदिशक्ति सब मैंहींहूं । विस्तार को प्राप्त मैंहीं भयाहूं; वृक्ष, बेलि, फल, गुच्छे, जिसके आश्रय फुरते हैं वह चिदात्मा मैंहींहूं और सब में रसरूप मैंहींहूं । जिसमें यह सर्व है और जिससे यह सर्व है; जो सर्व है और जिसको सर्व है ऐसा चिदात्मा ब्रह्म मैंहींहूं । जिसके चेतन, आत्मा, ब्रह्म, सत्य, अमृत, ज्ञानरूप इत्यादिक नाम हैं; ऐसा सर्वशक्त, चिन्मात्र, चैत्य से रहित प्रकाशमात्र, निर्मल, सर्व भूत प्रकाशक और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का स्वामी मैंहूं । जो कुछ भेद कलना है सो इसने ही की थी और अब इनकी कलना को त्यागकर मैं अपने प्रकाश में स्थितहूं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक जो सब जगत् का कारण है उन सबका चेतन आत्मारूप ब्रह्म, निरामय, अविनाशी, निरन्तर, स्वच्छआत्मा, प्रकाशरूप, मनकेउत्थान से रहित, मौनरूप मैंहींहूं और परम अमृत, निरन्तर सर्वभूतों के सत्तारूप से मैंहीं स्थितहूं । सदा अलेपक, साक्षी, सुषुप्तिकी नाईं और द्वैतकलना से रहित अक्षोभ रूपानुभाव मैंहीं हूं । शांतरूप जगत् में मैंहीं फैलरहाहूं और सब वासना से रहित अक्षोभरूपी अनुभव मैंहीं हूं । जिससे सब स्वाद का अनुभव होताहै सो चेतनब्रह्म आत्मा मैंहींहूं । जिस का चित्त स्त्रीमें आसक्त है; जिसको चन्द्रमाकी कांतिसे अधिक मुदिता है और जिस से स्त्रीका स्पर्श और मुदिताका अनुभव होता है ऐसा चेतन ब्रह्म मैंहीं हूं और सुख

दुःखकी कलना से रहित अमनसत्ता और अनुभवरूप जो आत्मा है सो चेतनरूप आत्माब्रह्म मैंहीं हूं। खजूर और नींब आदिकमें स्वादरूप मैंहींहूं; खेद और आनन्द, लाभ और हानि मुझको तुल्य है और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और साक्षी तुरीयरूप आदि, अन्तसे रहित चेतनब्रह्म निरामय मैंहूं। जैसे एक खेतके पौड़ों में एकहीसा रस होताहै तैसेही अनेक मूर्त्तियों में एक ब्रह्मसत्ताही स्थित है। वह सत्य, शुद्ध, सम, शांतरूप और सर्वज्ञ है, जो प्रकाशक और सूर्य्य की नाईं है सो प्रकाशरूप ब्रह्म मैंहीं हूं और सब शरीरों में व्यापरहाहूं। जैसे मोती की माला में तागा गुप्त होता है जिस में मोती पिरोये हैं; तैसेही मोतीरूपी शरीर में तंतुरूप गुप्त मैंहीं हूं और जगत्रूपी दूध में ब्रह्मरूपी घृत मैंहीं व्यापरहाहूं। हे रामजी! जैसे सुवर्ण में जो नानाप्रकारके भूषण बनते हैं सो सुवर्ण से भिन्न नहीं होते तैसेही सब पदार्थ आत्मा में स्थितहैं—आत्मासे भिन्न नहीं। पर्व्वत, समुद्र और नदियों में सत्तारूप आत्माही है; सर्वसंकल्पोंका फल दाता और सर्वपदार्थोंका प्रकाशक आत्माही है और सब पानेयोग्य पदार्थों का अन्त है। उसआत्माकी उपासना हम करते हैं जो घट, पट, तट, और कंध में स्थित है। जाग्रत् में जो सुषुप्तिरूप स्थित है और जिसमें कोई फुरना नहीं, ऐसे चेतनरूप आत्माकी उपासना हम करते हैं। मधुर में जो मधुरता है और तीक्ष्ण में तीक्ष्णता है और जगत् में चलना शक्ति है उस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत में जो समतत्त्व है उसकी हम उपासना करते हैं। त्रिलोकी के देहरूपी मोतियों में जो तंतुकी नाईं अनुस्यूत है और फैलाने और संकोचने का कारण है उस चेतनरूप आत्माकी हम उपासना करते हैं। जो षोड़श कलासंयुक्त और षोड़श कलासे रहित और अकिंचन, किंचनरूप है उस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं। चेतनरूप अमृत जो क्षीरसमुद्र से निकला है और चन्द्रमाके मण्डल में रहता है, ऐसा जो स्वतःसिद्ध अमृत है जिस को पाकर कदाचित् मृत्यु नहो उसचेतन अमृतकी हम उपासना करते हैं। जो अखण्ड प्रकाश है और सब भूतोंको सुन्दर करता है उस चिदात्माको हम उपासते हैं। जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध प्रकाशते हैं और आप इनसे रहितहैं उस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं। सबमैंहूं और सब मैंनहीं और भी कोई नहीं इसप्रकार विदित जानकर अपने अद्वैतरूप में विगतज्वर होकर स्थितहोते हैं। यही निश्चय ज्ञानवानों का है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तनिश्चयोपदेशोनामदशमस्सर्गः १०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो निष्पाप पुरुषहै उसको यही निश्चयरहताहै कि, सत्यरूप आत्मतत्त्वहै यह पूर्णबोधवान् का निश्चय है। उसको न किसी में रागहोताहै और

:, किसीमें द्वेषहोताहै; उसको जीना और मरना सुख दुःख नहीं देता और वह एकसमान रहताहै । वह विष्णु नारायण का अंगहै अर्थात् अभेद है और सदा अचल है । जैसे सुमेरु पर्व्वत वायुसे चलायमान नहीं होता तैसेही वह दुःखसे चलायमान नहीं होता । ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे वनमें विचरते हैं और नगर द्वीप आदिक नानाप्रकारके स्थानों में भी फिरते हैं परन्तु दुःख नहीं पाते । कोई स्वर्ग्ग में फूलोंके वन और बगीचों में फिरते हैं कोई पर्व्वतकी कन्दराओं में रहते हैं, कोई राज्य करते हैं और शत्रुओंको मारकर शिरपर झुलाते हैं; कितने श्रुति-स्मृति के अनुसार कर्म्म करते हैं; कोई भोग भोगते हैं; कोई विरक्त होकर स्थित हैं, कोई दान, यज्ञादिक कर्म्म करते हैं; कोई स्त्रियों के साथ लीलाकरते, कहीं गीत सुनते और कहीं नन्दनवनमें गंधर्व गायन करते हैं; कोई गृहमें स्थित हैं; कोई तीर्थ और यज्ञकरते हैं, कोई नौबत, नगारे और तुरहियां इत्यादिक सुनते और नानाप्रकारके स्थानों में रहते हैं परन्तु आसक्त नहीं होते । जैसे सुमेरु पर्व्वत तालमें नहीं डूबता तैसेही ज्ञानवान् किसी पदार्थ में बंधवान् नहीं होते । वे इष्टको पाकर हर्षवान् नहीं होते और अनिष्टको पाकर दुःखी नहीं होते । वे आपदा और सम्पदा में तुल्य रहते हैं और प्राकृत आचार कर्म्म करते हैं परन्तु उनका हृदय सर्व आरम्भ से रहितहै । हे राघव ! इसी दृष्टिका आश्रय करके तुमभी विचरो । यह दृष्टि सर्व पापका नाश करती है । अहंकार से रहित होकर जो इच्छाहो सो करो, जब यथाभूतदर्शी हुये तब निर्बन्ध हुये फिर जो कुछ पतित प्रवाह से आ प्राप्त होगा उसमें सुमेरुकी नाईं तुमरहोगे । हे रामजी ! यह सब जगत् चिन्मात्र है; न कुछ सत्य है, न असत्य है; वही इसप्रकार होकर भासता है । इस दृष्टि को आश्रय करके और तुच्छ दृष्टिको त्यागो । हे रामजी ! असंसक्तबुद्धिहोकर सर्व भाव अभाव में स्थितहो राग द्वेषसे चलायमान न हो; अब सावधान हो रहो । रामजी बोले, हे भगवन् ! बड़ा आश्चर्य्य है कि, मैंने आपके प्रसादसे जानने योग्य पद जाना और प्रबुद्ध हुआहूं । जैसे सूर्य्यकी किरणों से कमल प्रफुल्लित होते हैं तैसेही मैं प्रफुल्लित हुआहूं और जैसे शरत्कालमें कुहिरा नष्टहोजाताहै तैसेही और वचनसे मेरासंदेह और मान मोह मद मत्सर सब नष्टहोगये हैं । मैं अब सर्वक्षोभसे रहित शांतिको प्राप्तहुआहूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तनिश्चयवर्णनंनामैकादशस्सर्ग्गः ११ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! सम्यग्ज्ञानविलास से वासना उदय होती है सो जीवन्मुक्तपदमें किसप्रकार विश्रांति पाते हैं सो कहो । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! संसार तरने की युक्ति है सो योगनाम्नी है । वह युक्ति दो प्रकारकी है-एक सम्यग्ज्ञान और दूसरी प्राण के रोकने से । फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! इन दोनों में सुगम कौन है जिससे दुःख भी न हो और फिर क्षोभ भी न हो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी !

दोनों प्रकारसे योग शब्द कहाता है तौभी योग प्राणके रोकनेका नाम है। योग और ज्ञान दोनों संसारसे तरनेके उपाय हैं। इनदोनोंका फल एकही सदाशिवने कहाहै। हे रामजी! किसीको योगकरना कठिनहोताहै और ज्ञानका निश्चय सुगम होताहै और किसीको ज्ञानका निश्चय कठिन होता है और योग करना सुगम है। यदि मुझसे पूछो तो दोनों में ज्ञान सुगम है क्योंकि, इसमें यत्न और कष्ट थोड़ा है। जानने योग्य पदार्थके जानेसे फिर सुपनेमेंभी भ्रम नहीं होता क्योंकि, वह साक्षीभूत होकर देखता है और जो बुद्धिमान् योगीश्वर हैं उनकोभी कुछ यत्न नहीं होता, वे स्वाभाविकही चले जाते हैं और उनकी एक युक्ति समझकर चित्त शांत होजाता है। हे रामजी! दोनों की सिद्धता अभ्यास और यत्नसे होती है; अभ्यास बिना कुछ नहीं प्राप्तहोता। वह ज्ञान तो मैंने तुमसे कहाहै। जो हृदयमें विराजमान ज्ञेयहै उसका जाननाही ज्ञान है जो प्राण अपानके रथपर आरूढ़ है और हृदयरूपी गुहामें स्थित है। हे रामजी! उस योगका भी क्रम सुनो वह भी परमसिद्धता के निमित्त है। प्राणवायु जो नासिका और मुख के मार्ग से आतीजाती है उसके रोकने का क्रम कहताहूं। उससे चित्त उपशम होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेज्ञानज्ञेयविचारोनामद्वादशस्सर्गः १२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाशके किसी कोने से यह जगत्रूपी स्पन्द आभास फुरा है—जैसे मरुस्थल में सूर्य्य की किरणों में मृगतृष्णा का जल फुर आता है—उस जगत् के कारण भाव को वही प्राप्त हुआ है जो ब्रह्मके नाभिकमल से उत्पन्न हुआ है और पितामह नामसे कहाताहै। उसका मानसीपुत्र श्रेष्ठ आचारी मैं वशिष्ठहूं। नक्षत्र और ताराचक्र में मेरा निवासहै और युग युगप्रति मैं वहां रहता हूं। एक समय मैं नक्षत्रचक्र से उड़ा और इन्द्र की सभा में गया तो देखा कि, वहां ऋषीश्वर, मुनीश्वर बैठे थे। इतने में नारद आदिक चिरञ्जीवी का जो प्रसंग चला तो शातातप नाम एक बुद्धिमान् ऋषीश्वर ने कहा कि, हे साधो! सब में चिरञ्जीव एक है। सुमेरु पर्वत की कोण पद्मरागनाम्नी कंदरा के शिखरपर एक कल्पवृक्ष है जो महासुन्दर और अपनी शोभा से पूर्ण है। उस वृक्षके दक्षिण दिशाकी डाल पर बहुत पक्षी रहते हैं उन पक्षियों में एक महाश्रीमान् कौवा रहता है जिसका नाम भुशुण्डि है। वह वीतराग और बुद्धिमान् है और उसका आलय उस कल्पवृक्ष के टास पर बना हुआ है। जैसे ब्रह्मा नाभिकमल में रहते हैं तैसेही वह उस आलय म रहता है। जैसे वह जिया है तैसे न कोई जिया है और न जीवेगा। उसकी बड़ी आयुबल है और वह महाबुद्धिमान्, विश्रांतिमान्, शान्तरूप और काल का वोता है। हे साधो! बहुत जीना भी उसी का फल है और पुण्यवान् भी वही है।

उसको आत्मपदमें विश्रांति हुई है और संसारकी आस्था जाती रही है । इस प्रकार जब उन देवताओंके देवने कहा तब सम्पूर्ण सभामें ऋषीश्वरने दूसरी बार पूछा कि, उसका वृत्तान्त फिर कहो। तब उसने फिर वर्णन किया तो सब आश्चर्यको प्राप्तहुये जब यह कथा वार्त्ता होचुकी तब सब सभा उठखड़ीहुई और अपने २ आश्रम को गये पर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, ऐसे पक्षीको किसी प्रकार देखाचाहिये ऐसा विचार करके मैं सुमेरु पर्वत की कन्दरा के सन्मुख होचला और एकक्षणमें वहां जापहुँचा तो क्या देखा कि; महाप्रकाशरूप वह कन्दरा का शिखर रत्नमणि से पूर्ण है और उसका गेरूकी नाईं रंग है । जैसे अग्निकी ज्वाला होती तैसेही उसका प्रकाश रूपथा मानों प्रलयकाल में अग्निकी ज्वाला जागती है—और बीच में नीलमणि धूमके समानथा—मानों धुआं निकलता है और सब रंगोंकी खानि है । ऐसा चमत्कार प्रकाशथा मानों सन्ध्याके लाल बादल इकट्ठे हुये हैं; मानों योगीश्वरों के ब्रह्मरन्ध्र से अग्नि निकलकर इकट्ठी हुई वा मानों वड़वाग्नि समुद्र से निकलकर मेघको ग्रहण करने के निमित्त स्थित हुई है । निदान महासुन्दर रचना बनी हुई थी जो फल और रत्नमणि संयुक्त प्रकाशवान्था और ऊपर गंगा का प्रवाह चलाजाताथा सो यज्ञोपवीत रूपथा । गन्धर्व्व गीत गाते थे, देवियों के रहने के स्थान बनेथे और हर्ष उपजाने को महासुन्दर लीला के स्थान विधाता ने वहां रचे हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डयुपाख्यानेसुमेरुशिखरलीला वर्णनंनामत्रयोदशस्सर्गः १३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे शिखरपर मैंने कल्पवृक्ष देखा कि, वह महासुन्दर फलोंसे पूर्ण है और रत्न और मणियों के गुच्छे और स्वर्ण की बेलें लगी हुई हैं; तारों से दूने फूल दृष्टि आते हैं; मेघके बादल से दूने पत्र दृष्टि आते हैं और सूर्य्यकी किरणोंसे दुगुने त्रिवर्ग भासते हैं; जिनका बिजली की नाईं चमत्कार है । पत्रोंपर देवता, किन्नर, विद्याधर और देवियां बैठी हैं और अप्सरा आ नृत्य और गान करती हैं—जैसे भँवरे गुञ्जार करते फिरते हैं । हे रामजी ! रत्नों के गुच्छे और कलियां और मणिके फूल फल पत्र निरन्ध्र दृष्टि आतेथे; सब स्थान फूल फल गुच्छोंसे पूर्ण थे और छहोंऋतुके फूल फल वहां पायेजाते थे । उस वृक्षके एकटासपर पक्षी बैठे कहीं फूल फलादिक खातेथे, कहीं ब्रह्माजी के हंस बैठे थे, कहीं अग्निके वाहन तोते, कहीं अश्विनीकुमार और भगवतीके शिखावाले मोर, कहीं बगले, कहीं कबूतर और कहीं गरुड़ बैठे ऐसे शब्द करते थे मानों ब्रह्म कमलसे उपजकर ॐकारका उच्चार करता है कई ऐसे पक्षी देखे कि, उनकी दोदो चोंचेंथीं । फिर मैं आगे देखनेको गया तो जहां उस वृक्षका टासथा वहां अनेक कौवे बैठे देखे । जैसे महाप्रलयमें मेघ और लोका-

लोक पर्वतों पर आन बैठते हैं तैसेही वहां अनेक कौवे अचल बैठेथे जो सोम, सूर्य्य, इन्द्र, वरुण और कुबेर के यज्ञकी रक्षा करनेवाले और पुण्यवान् स्त्रियोंकी प्रसन्नता देनेवाले भर्त्ताके संदेशे पहुँचानेवालेहैं। उनके मध्यमें एक महाश्रीमान् और कान्तिमान् कौवा ऊंची ग्रीवा कियेहुये बैठाथा। जैसे नीलमणि चमकती है तैसेही उसकी ग्रीवा चमकती थी और पूर्णमन और मानी अर्थात् मानकरनेयोग्य; सुन्दर और प्राणस्पंद को जीतनेवाला, नित्यअंतर्मुख और नित्यही सुखी वह चिरञ्जीवीपुरुष वहां बैठा था जगत्में दीर्घआयु और जगत्की आगमापायी गति देखते देखते जिसने बहुतकल्पका स्मरण किया है; इंद्रकी जिसने कई परम्परा देखी हैं; लोकपाल, वरुण, कुबेर, यमादिकके कई जन्म देखे हैं और देवतों और सिद्धों के अनेक जन्म जिस पुरुषने देखे हैं और जिसका प्रसन्न और गम्भीर अन्तःकरण है; जिसकी सुन्दर वाणी वक्रतासे रहित है; जो निर्मल और निरहंकार सबको सुहृद् मित्रहै; बड़ीकोटर हलवेकी नाईं है; जो पितासमान हैं उनको पुत्र की नाईं है और जो पुत्र के समान हैं उनको उपदेश करने के निमित्त पिता और गुरुकी नाईं समर्थ है और जो सर्वथा, सर्वप्रकार, सर्व काल, सब में समर्थ और प्रसन्न, महामति, हृदयपुण्डरीक, व्यवहार का वेत्ता है; गम्भीर और शान्तरूप महाज्ञाताज्ञेय है; ऐसे पुरुष को मैंने देखा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डिदर्शनंनामचतुर्दशस्सर्गः १४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर मैं आकाशमार्ग से वहां आया और महातेजस्वी दीपकवत् प्रकाशवान् मेराशरीरथा। जब मैं उतरा तब जितने पक्षी वहां बैठे थे वे सब जैसे वायुसे कमलकी पंक्ति क्षोभको प्राप्तहोती है और भूकंपसे समुद्र क्षोभ को प्राप्त होता है तैसेही क्षोभको प्राप्तहुये। उनके मध्यमें जो भुशुण्डिथा उसने मुझको यद्यपि अकस्मात् ऐसा तौभी जानगया कि, यह वशिष्ठ है और उठखड़ा हो बोला; हे मुनीश्वर! स्वस्थहो, कुशल तोहै। हे रामजी! ऐसे कहकर उसने संकल्प के हाथरचे और उनसे मेरा अर्घ्यपाद्यकर भावसंयुक्त पूजनकिया और नौकरोंको दूरकरके आपही वृक्षके बड़ेपत्रले और उनका आसन रचकर मुझको बैठा बोला अहो आश्चर्य्य है! हे भगवन्! आपने बड़ीकृपाकी कि, दर्शनदिया। चिरपर्य्यन्त दर्शनरूपी अमृतसे हम वृक्षसहित पूर्णहोरहे हैं। हे भगवन्! मेरेपुण्य इकट्ठे होकर प्रसन्नताके निमित्त आप को प्रेर लेआये हैं। हे मुनीश्वर! देवता जो पूजने योग्य हैं उनके भी आप पूज्यहो। कृपाकरके कहो कि, आप किस निमित्त आये हैं और आपका क्या मनोरथहै? आपके चरणों के दर्शनकरके मैंने तो सब कुछ जानाहै। स्वर्गकी सभामें जब चिरञ्जीवियों का प्रसङ्ग चला था तब मैंभी शरण में आयाथा इससे आप मुझको पवित्र करने आयेहो परन्तु प्रभुके वचनरूपी अमृत के स्वादकी मुझको इच्छा है इस निमित्त मैं प्रभुके

मुखसे कुछ सुनाचाहताहूँ। हे रामजी! जब इसप्रकार चिरंजीवी भुशुण्डिनाम पक्षी ने मुझसे कहा तब मैंने कहा, हे पक्षियों के महाराज! जो कुछ तुमने कहा सो सत्यहै। मैं अभ्यागत तुम्हारे आश्रमपर इस निमित्त आया हूं कि, चिरंजीवियों की कथा चली थी और उसमें तुम्हारा वर्णन हुआथा। तुम मुझको शीतलचित्त दृष्टिआतेहो; और कुशलमूर्ति हो और संसाररूपी जाल से निकलेहुये दीखतेहो। इससे मेरे इस संशय को दूरकरो कि, कब तुमने जन्म लियाथा, ज्ञातज्ञेय कैसेहुये; तुम्हारी आयु कितनीहै; कौन कौन वृत्तान्त तुमको देखाहुआ स्मरणहै और किस कारण यहां निवास किया है; भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने पूंछा वह सब कहता हूँ, शनैःशनैः तुम श्रवण करो। तुम तो स्वयम् साक्षात् प्रभु; त्रिलोकी के पूज्य और त्रिकालदर्शी हो परन्तु जो कुछ तुमने आज्ञा की है सो मानने योग्य है। तुमसारिखे महात्मापुरुषों के सम्मुख हुये अपने में जो कुछ तप्तता होती है वहभी निवृत्त होजाती है—जैसे मेघ के आगे आयेहुये सूर्य्यकी तप्तता मिटजाती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डिसमागमोनामपंचदशस्सर्गः १५॥

भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर! इस जगत् में सब देवताओं के बड़े देव सदाशिव हैं जिन्हों ने अर्द्धाङ्ग भगवती को शरीर में धारण किया है और जो महासुन्दर मूर्त्ति और त्रिनेत्र हैं। जिनकी बड़ी जटा हैं और मस्तकपर चन्द्रमा है जिससे अमृत टपकता है; और जटाके चहुँओर गंगा फिरती हैं—जैसे फूलोंकी माला कंठ में होती है। नीलकंठ कालकूट के पानसे विषविभूषण होगये हैं; कंठमें मुण्डकी माला है और सब ओर से भस्म लगी हुई है। दिशा उनके वस्त्र हैं; श्मशान में गृह है और महाशान्तरूप विचरते हैं। उनके साथ जो सेना है उसके महाभयानक आकार हैं; किसी के तो रुद्रकी नाईं तीन नेत्र हैं; किसी का तोते की नाईं मुख है; किसी का ऊंट का मुख है; कोई गर्दभमुखी हैं; किसी का बैल का मुख है; कोई जीवों के हृदय में प्रवेश करके रक्त मांस के भोजन करनेवाले हैं कोई पहाड़ में रहते हैं; कितने वन, कन्दराओं और श्मशान में रहते हैं। उनके साथ देवियां भी ऐसी हैं जिनकी महाभयानक चेष्टा और आचार हैं। उन देवियों में जो मुख्य देवियां हैं उनका जिस जिस दिशामें निवास है वह सुनो। जया, विजया, जित और अपराजित वामदिशा की ओर तुम्बुरु रुद्रके आश्रित हैं; और सिद्ध, मुखका रक्तका और उत्तला भैरव रुद्रके आश्रित हैं। सर्व्वदेवियों के मध्य ये अष्टनायका और शतसहस्र देवियां हैं रुद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, वाराही, वायवी, कौमारी, वासवी, सौरी इत्यादिक। इनके साथ मिलीहुई आकाशमें उत्तम देव, किन्नर, गन्धर्व्व, पुरुष, सुरसंभवतियां तिनके

साथ हुई हैं। भूचर पृथ्वी में कोटों हैं। और नानाप्रकार रूप, नाम धारकर पृथ्वी में जीवोंको भोजन करती हैं। उनके वाहन ऊँट, गर्दभ, काक, वानर, तोते इत्यादिकहैं। उन देवियों में कई पशुधर्मिणी हैं जो क्षुद्रकर्म्म में स्थित हैं और कई विदितवेद जीवन्मुक्त पद में स्थित हैं। उनके मध्यनायक अलम्बुषा देवी है। जैसे विष्णु का वाहन गरुड़ है तैसेही उस देवी का वाहन काक है और यह देवी अष्टसिद्धि के ऐश्वर्य्यसंयुक्त है। वे देवियां एककाल में विचारती भईं और जगत के पूज्य तुम्बुरु और भैरव की पूजाकर विचार किया कि, सदाशिव हमारे साथ भावसंयुक्त नहीं बोलते और हमको तुच्छ जानते हैं इससे हम इनको कुछ अपना भाव दिखावें क्योंकि प्रभाव दिखाये विना कोई किसीको नहीं जानता। ऐसे विचार रच ये उमाको वश करके दुराय लेगईं और उत्साहकरके मद्य, मांसादिक भोजनकिया। निदान माया के छल से पार्व्वती को मारकर चावलकीनाईं पकाया और उसके कुछ अंग पकायेहुये सदाशिव को दिये। तब सदाशिवने जाना कि, मेरीप्यारी पार्व्वती इन्होंने मारी है। ऐसे निश्चय करके वह कोप करनेलगे तब उन देवियों ने अपने अपने अंग से उनके अंग निकाले सौरी ने नेत्र, कौमारी ने नासा और इसीप्रकार सबने अपने अपने अंग निकाल कर वैसीही पार्वती की मूर्ति लादी और नूतन विवाह कर दिया तब सदाशिव प्रसन्न हुये, सब ठौर उत्साह और आनन्द हुआ और सब देवियां अपने अपने स्थानों को गईं। चन्द्रनाम काक जो अलम्बुषादेवी का वाहनथा उसने ब्रह्माणी की हंसिनी के साथ क्रीड़ाकी और इसी प्रकार सब ने क्रीड़ाकी जिससे सबको गर्भ रहे। निदान वह हंसिनी ब्रह्माणी के पास गई तब ब्रह्माणी ने कहा कि, अब तुमको मेरे उठानेकी शक्ति नहीं—तुम गर्भवतीहो—जहां तुम्हारी इच्छाहो वहां जावो; फिर आना। हे मुनीश्वर! ऐसे कहकर ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधि में स्थितहुई और नाभिसरोवर जो ब्रह्माजी का उत्पत्तिस्थान है वहां जा स्थितहुई और उस ताल के कमलपत्र पर निवास किया। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उन हंसि-नियों ने तीनतीन अंडे दिये। जैसे बेलसे अंकुर उत्पन्न होता है तैसेही उन से एक-विंशति अण्ड क्रमसे उत्पन्नहुये। कुछ काल उपरान्त जब उनको फोड़ा तो उन अण्डों से हमारे अंग उत्पन्नहुये और क्रम करके जब हम बड़े हो उड़ने योग्य हुये तब माता हमको ब्रह्माणी के पास लेगई। उनके आगे हमने मस्तकटेका तब ब्रह्माणी ने, कि, उसी समय समाधिसे उतरी थी हमको देखकर कृपाकी दृष्टिधार हमारे शिरपर हाथ रक्खा। उस के हाथ रखने से हमारी अविद्या नष्ट होगई और हमारामन तृप्त और शांतरूप होगया और हम जीवन्मुक्त पद में स्थित हुये। तब हमको यह वृत्ति फुर आई कि, किसी प्रकार एकान्त ध्यान में स्थित होवें। देवी ने आज्ञाकी कि, अब

तुम जाओ; तब देवीजी की आज्ञा से हम पिता के पास आये और पिताने हमको कण्ठलगाया और मस्तक चूंबा । फिर हमने अलम्बुषा देवी की पूजाकी तब पिताने हमसे कहा, हे पुत्रो ! तुम संसाररूपी जालमें तो नहीं फँसे और यदि फँसे हो तो मैं भगवती की प्रार्थना करताहूं वह भृत्योंपर दयालु है—जैसे तुम प्राप्तहोगे तैसेही तुमको प्राप्तकरेगी । तब हमने कहा, हे पिता ! हम तो ज्ञातज्ञेयहुये हैं; जो कुछ जानने योग्य है वह जाना है और जो पानेयोग्य है वह हमने ब्रह्माणी देवीजी के प्रसाद से पाया है । अब हमको एकान्त स्थानकी इच्छा है जहां एकान्तहो वहां जा बैठें । तब चन्द्र पिता ने कहा, हे पुत्रो ! सुमेरु पर्व्वत निर्दोष, महापावन, निर्भय और क्षोभ-रहित सुन्दर स्थान है, वह सर्व रत्नोंकी खानि है, सर्व देवतों का आश्रयरूप है और सूर्य्य-चन्द्रमा उसके दीपकहैं जो चहुँओर फिरते हैं । ब्रह्माण्डरूपी मण्डपका वह थम्भा है और सुवर्णकाहै, चन्द्र सूर्य उसके नेत्र हैं और तारोंकी कंठमेंमाला है । दशोंदिशा उसके वस्त्रहैं, रत्नमणियोंके भूषण हैं और वृक्ष और बेल रोमावली हैं । उसकी त्रिलोकी में पूजा होती है और वह षोड़शसहस्र योजन पातालमें है जहां नाग और दैत्य पूजा करते हैं और चौरासी सहस्र योजन ऊर्ध्वको है जहां गन्धर्व, देवता, किन्नर, राक्षस, मनुष्य पूजाकरते हैं । ऐसा पर्व्वत जम्बूद्वीप के एक स्थान में स्थित है और उसके आश्रय चतुर्दश प्रकार के भूतजाति रहते हैं वह बड़ा ऊंचा पर्व्वत है और पद्मराग नाम उसका एक शिखर सूर्यवत् उदय है । शिखर पर एक बड़ा कल्पवृक्षहै जो मानों जगत्रूपी शिखर का प्रतिबिम्ब आपड़ाहै । उस कल्पवृक्षके दक्षिणदिशाकी ओर जो डाल है उसमें महारत्न के गुच्छे, सुवर्ण के पत्र और चन्द्रमा के बिम्बवत् फूल हैं और सघन और रमणीय गुच्छे लगे हैं । वहां एक आलय बनाहुआ है; वहां मैं भी आगे रहआयाहूं । जब देवीजी समाधिमें स्थित हुई थीं तब मैं वहां आलयबनाकर स्थित हुआथा । चिन्तामणिकी उसमें शलाका लगी हैं और महारत्नों से बनाहै । वहां जा तुम निवासकरो । वहां और कौवोंके पुत्रभी रहते हैं जिनका हृदय आत्मज्ञान से शीतल है और बाहर से भी फल फूल से शीतल है । तुम को वहां भोग भी है और मोक्षभी है । हे वशिष्ठजी ! जब इसप्रकार पिताने हमसे कहा तब हम सबोंने पिता के चरण परसे और पिताने हमारा मस्तकचूंबा । निदान हम विन्ध्याचल पर्व्वत से उड़े और आकाशमार्ग से मेघनक्षत्र, चक्र, लोकान्तर होकर ब्रह्मलोक में पहुँच देवीजी को प्रणामकिया और उनने भलीप्रकार हमारे ऊपर कृपादृष्टि की और दया और स्नेह सहित कण्ठलगाया और मस्तक चूंबा । हमभी मस्तक टेककर सुमेरु को चले और सूर्य्य और चन्द्रमा के लोकों और तारागण, लोकपाल और देवताओं के लोक, मेघ और पवन के स्थान लांघकर सुमेरुपर्वतके कल्पवृक्षपर पहुँचे । हे मुनीश्वर ! जिस

प्रकार हम उपजे और जिससे ज्ञानको प्राप्त हुये हैं और जिसप्रकार यहां आ स्थितहुये हैं वह सब समाचार तुम्हारे आगे अखण्डित कहा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्यानेऽस्ताचललाभोनामषोडशस्सर्गः १६ ॥

भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर ! यह चिरकाल की वार्त्ता तुम से कही है वह सृष्टि इस सृष्टि से दूरहै परन्तु मैंने तुमको वर्त्तमानकीनाईं अभ्यास के बलसे सुनाया है हे मुनीश्वर ! मेरा कोई पुण्यथा सो फलाहै कि, तुम्हारा निर्विघ्न दर्शनहुआ और यह आलय शाखा और वृक्ष आज पवित्रहुआ। अब जो कुछ संशयहै सो पूछो तो मैं कहूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार कहकर उसने मेरा भलीप्रकार अर्घ्यपाद्य से आदर सहित पूजन किया तब मैंने उससे कहा, हे पक्षियों के ईश्वर ! तुम्हारे वे भाई कहां हैं जो तुम्हारे समान तत्त्ववेत्ताथे; वह तो दृष्टि नहीं आते, अकेले तुमहीं दीखतेहो ? भुशुण्डिबोले, हे मुनीश्वर ! यहां मुझको बहुत युगकी पंक्ति व्यतीत हुई है जैसे सूर्य्य को कई दिन रात्रि व्यतीत होजाते हैं तैसेही मुझको युग व्यतीतहुये हैं। कुछकाल वे भी रहेथे पर समयपाकर उन्होंने शरीर त्यागदिये और तृणकी नाईं तन त्यागकर शिव आत्मपद को प्राप्त हुये। हे मुनीश्वर ! बड़ी आयुर्बल हो अथवा सिद्ध महन्त हो; बली हो, अथवा ऐश्वर्यवान् हो, काल सबको ग्रासि लेताहै। फिर मैंने पूछा, हे साधु ! जब प्रलयकालका समय आता है तब सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ सब अपनी मर्य्यादा त्याग देतेहैं और बड़ा क्षोभहोताहै पर तुमको खेद किसकारण नहीं होता ? सूर्य्य की तपन से अस्ताचल उदयाचलादिक पर्व्वत भस्म होजाते हैं पर उस क्षोभमें तुम खेदवान् क्योंनहींहोते ? भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर ! कई जीव जगत् में आधार से रहते हैं और कई निराधार रहते हैं जिनको सेनादिक ऐश्वर्य पदार्थ होते हैं वे आधारसहित हैं और जो इन पदार्थों से रहित हैं वे निराधार हैं पर दोनों को हम तुच्छ देखते हैं सत् कोई नहीं। बड़े २ ऐश्वर्यवान् और बली भी हैं परन्तु सत्य कोई नहीं। उन में पक्षीकी जाति महातुच्छ हैं जिनका उजाड़ वन में निवास है और वहांही उनका दानापानी है। ये निरालम्बहैं और इनकी जीविका दैवने ऐसेही बनाई है। हे भगवन् ! मैं तो सदा सुखीहूं और अपने आपमें स्थित आत्मसन्तोष से तृप्तहूं कदाचित् इस जगत्के क्षोभसे खेदको प्राप्त नहीं होता और स्वभावमात्र में सन्तुष्ट और कष्टचेष्टा से मुक्तहूं। हे ब्राह्मण ! अब हम केवल कालको व्यतीत करते हैं और जगत् के इष्ट अनिष्ट हमको चला नहीं सक्ते। न मरने की हमको इच्छा है और न जीनेकी इच्छा है क्योंकि; जीना मरना शरीर की अवस्था है, आत्माकी अवस्था नहीं। हमको जीने का राग नहीं और मरने में द्वेष नहीं—जैसी अवस्थाप्राप्तहो उसी में सन्तुष्टहैं। हे मुनी-

श्वर ! ऐसे ऐसे देखे हैं कि वे फिर भस्म होगये हैं; उनकी अवस्था देखकर हमारे मनकी चपलता जाती रही है और हम इस कल्पवृक्ष पर बैठे हैं जिसमें रत्नों की वेलिलगी हैं । इस पर बैठकर मैं प्राण अपान की गतिको देखता हूं । इनकी कलाकी जो सूक्ष्मगति है उसका मैं ज्ञाताहूं और दिन रात्रिका मुझको कुछ ज्ञान नहीं । सत्बुद्धिसे मैं कालको जानता हूं और सार असारको भी भले प्रकार जानता हूं । हे मुनीश्वर ! जो कुछ विस्तार भासता है वह सब झूठ है, सत् कुछ नहीं; इसी कारण हमको किसी दृश्यपदार्थकी इच्छा नहीं, हम परम उपशम पद में स्थित हैं और सब जगत् भी हमको शान्तरूप है । जो कोई इस जगत् जाल का आश्रय करता है वह सुखी नहीं होता । यह सब जगत् चञ्चल रूप है और स्थिर कदाचित् नहीं होता । इसकी अवस्था में हम पत्थरवत् अचल हैं; न किसी का हमको राग फुरता है और न द्वेष है; न हम किसीकी इच्छाकरें; सब जगत् हमको तुच्छ भासता है । यह सब भूतरूपी नदियां कालरूपी समुद्रमें जापड़ती हैं पर हम किनारे खड़े हैं इससे कदाचित् नहीं डूबते; और जितने जीवभूतहैं वे डूबते हैं ? पर कई एक तुम सारिखे निकलेहुये हैं और तुम्हारी कृपासे हम भी निर्विकार पदको प्राप्त हुये हैं । हे मुनीश्वर ! मैं निर्विकार सबजगत् के क्षोभसे रहितहूं और आत्मपदको पाकर उपशम रूपहूं । हे मुनीश्वर ! तुम्हारे दर्शनसे मैं अब पूर्ण आनन्दको प्राप्तहुआहूं; सन्तकीसंगति चन्द्रमाकी चाँदनीवत् शीतल है और अमृतकी नाईं आनन्दको देनेवाली है । ऐसा कौनहै जो सन्तके संगसे आनन्दको न प्राप्तहो; अर्थात् सब आनन्दको प्राप्त होते हैं-यह अर्थहै । हे मुनीश्वर ! सन्त का संग चन्द्रमा के अमृत से भी अधिक है क्यों-कि; वह शीतल गौण है हृदयकी तपन नहीं मिटाता और संत का संग अंतष्करण की तपन मिटाताहै वह अमृत क्षीर समुद्र के मथन के क्षोभ से निकला है और संतका संग सुख से प्राप्त होताहै और आत्मानन्द को प्राप्त करता है—इस से यह परम उत्तम है । मैं तो इससे और कोई उत्तम नहीं मानता; सन्तका संग सबसे उत्तम है सन्तभी वेही हैं जिनकी आपातरमणीय सब इच्छा निवृत्तहुई हैं अर्थात् जो विचार विना दृश्यपदार्थ सुन्दर भासते हैं और नाशवन्त हैं वे उनको तुच्छभासते हैं और वे सदा आत्मानन्द से तृप्त हैं । वे अद्वैतनिष्ठहैं; उनकी द्वैतकलनाका अभाव हुआ है वे सदा आत्मानन्द में स्थित हैं । ऐसे पुरुष सन्त कहाते हैं । उन सन्तोंकी संगति ऐसी है जैसे चिंतामणि होती है; जिसके पायेसे सब दुःख नाश होते हैं । हे मुनीश्वर ! त्रिलोकीरूपी कमल के भँवरे और सब ज्ञानवानों से उत्तम तुमहीं दृष्टि आयेहो । तुम्हारे वचन स्निग्ध, कोमल और आत्मरससे पूर्ण, हृदयगम्य और उचित हैं और तुम्हारा हृदय महा गम्भीर और उदार, धैर्य्यवान् और सदा आत्मानन्द से

तृप्त हैं; इससे तुम सबसे उत्तम मुझको दीखते हो। तुम्हारे दर्शन से मेरे सब दुःख नष्ट हुये हैं और आज मेरा जन्म सुफल हुआ है। तुम सारखे संतोंकासंग आत्मपद को प्राप्त करता है। और दुःख और भय नष्ट करके निर्भयताको प्राप्त करता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंतमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशस्सर्गः १७॥

भुशुंडि बोले, हे मुनीश्वर! तुमने जो पूछा था कि; सूर्य्य, वायु और जलका क्षोभ होता है तो तुम खेदवान् क्यों नहीं होते उसका उत्तर सुनो। जब जगत्‌को क्षोभ होता है तब भी मेरा कल्पवृक्ष यह स्थिर रहता है क्षोभ को प्राप्त नहीं होता। हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सबलोकको अगम है। भूत नष्ट होते हैं तब भी मैं इससे सुखीरहता हूं। जब हिरण्यकशिपु द्वीपोंसहित पृथ्वी समेटकर पाताल लेगयाथा तब भी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ; जब देवता और दैत्योंका युद्ध हुआ तब और सब पर्व्वत चलायमान हुये पर मेरावृक्ष स्थिर रहा और जब क्षीरसमुद्रके मथने के निमित्त विष्णुजी सुमेरुको भुजासे उखाड़ने लगे पर मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ तब मन्दराचलको लेगये। और क्षीरसमुद्रको मथनेलगे। प्रलय कालका पवन और मेघका क्षोभहुआ तबभी मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ। फिर एक दैत्य आनकर सुमेरु को पटकने लगा और उसने कुछ उखाड़ा परन्तु मेरा वृक्ष कम्पायमान न हुआ। हे मुनीश्वर! बड़े बड़े उपद्रव हुये हैं और प्रलय काल के मेघ, पवन और सूर्य्य तपे हैं तबभी मेरावृक्ष स्थिर रहा है। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर मैंने उससे पूछा कि, हे साधो! जब प्रलय कालके वायु और मेघ क्षोभते हैं तब तू विगत ज्वर कैसे रहता है? भुशुण्डिने कहा, हे साधो! जब प्रलय कालके वायु, मेघादिक क्षोभकरते हैं तब मैं कृतघ्नकी नाईं अपने आलयको त्यागकर और सबक्षोभसे रहित आकाश में स्थित होताहूं और सब अंगोंको सकुचा लेताहूं। जैसे वासना के रोंके से मन सकुच जाता है तैसेही मैंभी अंगको सकुचालेताहूं। हे मुनीश्वर! जब प्रलय कालका सूर्य्य तपताहै तब मैं जलकी धारणा से जलरूप होजाताहूं; जब वायु चलता है तब पर्व्वतकी धारणा बांधकर स्थित होजाताहूं, जब बहुत तत्त्वों का क्षोभहोता है तब सबको त्यागकर ब्रह्मांड खप्पर के पार जो निर्मल परमपद है वहां मैं सुषुप्तिवत् अचल गंभीर होजाता हूं और जब ब्रह्मा उपजकर फिर सृष्टि रचताहै तब मैं सुमेरु के वृक्षपर इसी आलय में स्थित होताहूं। फिर मैंने पूछा, हे पक्षियों के ईश्वर! जैसे तुम अखण्ड स्थित होतेहो तैसेही और योगीश्वर क्यों नहीं स्थित होते? भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर! परमात्मा की यह नीति किसी से लंघी नहीं जाती; उन योगीश्वरों की नीति इसी प्रकार हुई है और मेरी उत्पत्ति इसी प्रकार है। ईश्वरकी नीति अतुल है। उसकी तुल्यता किसी से नहीं की जाती; जहां जैसी नीति हुई

है वहां वैसेही है; अन्यथा किसी से नहीं होती । हमको इसी प्रकार हुई है कि, कल्प कल्प में इसी पर्वत के वृक्षपर आलय होता है और हम आय निवास करते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे पक्षियोंके नायक ! तुम्हारी अत्यन्त दीर्घआयुहै; तुम ज्ञान–विज्ञान से सम्पन्न और योगेश्वरहो और तुमने अनेक आश्चर्य देखे हैं उनमें जो स्मरण है वह कहो ! भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर ! एकबार ऐसे स्मरण आता है कि, पृथ्वीपर तृण और वृक्षहीथे और कुछ न था; फिर एकबार एकादश सहस्रवर्ष पर्यन्त भस्मही दृष्टि आती थी; जो वृक्ष और तृण थे सो सब जलगये थे; एकबार ऐसी सृष्टि हुई कि, उसमें चन्द्र और सूर्य्य न उपजे और दिन और रात्रिकी गति कुछ जानी न जाती थी पर कुछ कुछ सुमेरु के रत्नोंका प्रकाश होताथा; एककल्प ऐसा हुआहै कि, जिसमें देवता और दैत्योंका युद्ध हुआ था । और जब दैत्योंकी जीतहुई तो उन्होंने सब देवता मनुष्योंकी नाईं हतकिये । ब्रह्मा, विष्णु औ रुद्र तीनों देवतों के सिवा और सब सृष्टि उन्होंने जीती और बीसयुग पर्यन्त उनहींकी आज्ञाचली । एकबार ऐसे स्मरण आता है कि, दो युग पर्यन्त पृथ्वीपर वृक्षही वृक्षथे और कुछ सृष्टि न थी; एकबार दोयुग पर्यन्त पृथ्वी पर पर्वतही पर्वत सघन होरहे थे और कुछ न था और एकबार ऐसा हुआ कि, सब जलही जल होगया और कुछ न भासे केवल सुमेरु पर्वत थंभेकीनाईं भासे । एकबार अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशासेआये और विन्ध्याचल पर्वत बढ़ा और सब ब्रह्मांड चूर्ण करदिये । हे मुनीश्वर ! बहुत कुछ स्मरणहै परन्तु संक्षेप से सुनो । एककाल सृष्टि में मनुष्य, देवतादिक कुछ न भासते थे; एकबार ऐसी सृष्टि हुईथी; कि, ब्राह्मण मद्यपान करते थे शूद्र बड़ेहो बैठेथे और सब जीवों में विपर्यय धर्म्म होगयेथे; एकबार ऐसी सृष्टिस्मरणमें आती है कि, पृथ्वीमें कोईपर्व्वत दृष्टि न आताथा; एकबार सृष्टि ऐसी उत्पन्नहुई कि, सूर्य्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, लोकपाल आदि कोई न उपजा; एक सृष्टि ऐसी हुई कि, सबही उपजे; एक सृष्टि ऐसी हुई कि, उसमें स्वामिकार्त्तिक न उपजा, दैत्य बढ़गये और दैत्योंहीका राज्य होगया । मुझको बहुत स्मरण है कहांतक कहूं । सूर्य्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, इन्द्र, उपेन्द्र, और लोकपालों के बहुत जन्म मुझको स्मरण आते हैं । जब हिरण्यकशिपु को जो वेदको चुराले-आयाथा हरिने माराथा वहभी स्मरण है और क्षीरसमुद्र मथना भी स्मरणहै । ऐसी सृष्टि भी देखी है कि, जिसमें विष्णुजीका बाहन गरुड़ नहींहुआ; ब्रह्माजी हंसबाहन विनाहुये हैं और रुद्र बैलबाहन विना हुये हैं । इसीप्रकार बहुत कुछ देखाहै क्याक्या तुम्हारे आगे वर्णन करूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुंड्युपाख्यानेजीवितवृत्तान्तवर्णनंनाम अष्टादशस्सर्गः १८ ॥

भुशुंडि बोले, हे मुनीश्वर ! जब फिर सृष्टि उत्पन्नहुई तब तुम, भारद्वाज, पुलस्त्य, नारद, इन्द्र, मरीचि, उद्दालक, क्रतु, भृगु, अंगिरा, सनत्कुमार, भार्गवेश आदिक उपजे। फिर सुमेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्व्वत उपजे और अत्रि, वासुदेव, वाल्मीकि इत्यादिक यह तो अल्पकाल के उपजे हैं। हे मुनीश्वर! तुम ब्रह्माके पुत्रहो और तुम्हारे आठ जन्म मुझको स्मरण आते हैं। कभी तुम आकाशसे उपजे हो, कभी जलसे उपजे, कभी पहाड़से उपजे, कभी पवनसे उपजे और कभी अग्निसे उपजे हो। हे मुनीश्वर! मन्दराचल पर्व्वत को क्षीरसमुद्रमें डालकर जब मथने लगे और देवता और दैत्य क्षोभवान् हुये कि, मन्दराचल नीचे चलाजाताहै तब विष्णुजी ने कच्छपरूप धारणकर पर्व्वतको ठहराया था और अमृत निकालाथा सो मुझको द्वादशबार स्मरण आता है। तीनबार हिरण्यकशिपु पृथ्वीको पातालमें समेट लेगया है और छःबार परशुराम रेणुका माताका पुत्रहुआ है सो बहुत सृष्टिके पीछे हुआहै। जब क्षत्रियोंमें दैत्य उपजने लगे तो उनके नाशनिमित्त विष्णुजीने परशुरामजी का अवतार लियाथा। हे मुनीश्वर! एक सृष्टि ऐसी हुई है कि, जिसमें अगलेसे विपर्य्ययरूप शास्त्र और पुराणके अर्थ हुये और एक कल्पमें औरही पाठ औरही युक्ति औरही अर्थ हुये क्योंकि; युगयुग प्रति औरही पुराण होते हैं, किसी को देवता बनाते हैं और किसीको ऋषीश्वर मुनीश्वर कहते हैं। कथा और इतिहास भी मुझे बहुत स्मरण हैं। वाल्मीकिजी ने द्वादशबार रामायण बनाई और विस्मरण होगया है और व्यासजी ने दोबार महाभारत बनाई और उन्होंने सातबार अवतार लिया है। हे मुनीश्वर! इसप्रकार आख्यान, कथा, इतिहास और शास्त्र जो जो हुये हैं वे सब मुझ को बहुत स्मरण में आते हैं। हे साधो! दैत्यों के मारने के निमित्त विष्णुजी युगयुग प्रति अवतार लेते हैं। एकादशबार मुझको रामजी स्मरणमें आते हैं और वसुदेव के गृह में पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त कृष्णजीने सोलहबार अवतार लिया है सो भी मुझको स्मरण है और तीनबार नरसिंह अवतार धारण कर विष्णुने हिरण्यकशिपु को मारा है। हे मुनीश्वर! इसी प्रकार मुझको अनेक सृष्टि स्मरण आती है परन्तु सबही भ्रममात्र है, कुछ उपजी नहीं। जब आत्मतत्त्व में देखताहूं तब कुछ सृष्टि नहीं भासती सब सत्तामात्र है। जैसे जलमें बुद्बुदे उपजकर लीन होजाते हैं तैसेही आत्मा में मनके फुरने से कई सृष्टि उपजती हैं और लीन होजाती हैं। उस फुरने से कईसृष्टि देखी हैं; कोई सदृशही उपजती हैं कोई अर्ध सदृश और कोई विपर्ययरूप हैं। हे मुनीश्वर! कोई २ सृष्टि में एकसेही आकार और कर्म-आचार होते हैं कोई मन्वन्तर मन्वन्तर प्रति औरही और सृष्टि होती है और किसी में ऐसे होता है कि; पुत्र पिता होजाता है; शत्रु मित्र होजाता है; बान्धव अबान्धव और अबान्धव

बांधव होजाताहै। इस प्रकार भी विपर्यय होते दृष्टि आये हैं। कभी इसही कल्पवृक्षपर हमारा आलय होताहै, कभी मन्दराचलमें; कभी हिमालय पर्वतमें; और कभी मालव पर्वत में होताहै। इसी प्रकार वन, वृक्ष और बेलिपर होजाताहै और कभी इसी कल्पवृक्षके ऊपर होजाता है पर अब तो बहुत कालसे इसी कल्पवृक्ष पर रहताहूं। जब सृष्टिका नाश होजाता है तब भी मेरा यही शरीर रहता है। मैं आसन लगाकर अपनी पुर्यष्टक को ब्रह्मसत्ता में स्थित करताहूं इसी कारण मुझको फिर यही शरीर प्राप्तहोता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् सब सङ्कल्पमात्र है; जैसा सङ्कल्प फुरता है तैसाही आगे हो भासता है यह जगत् सत्य भी नहीं और असत्यभी नहीं केवल भ्रमरूप है। उस जगद्भ्रममें अनेक आश्चर्य दृष्टि आते हैं; पिता पुत्र होजाता है; मित्र शत्रु होजाता है; स्त्री पुरुष होजाती है और पुरुष स्त्री होजाता है। कभी कलियुगमें सतयुग वर्तने लगताहै और सतयुगमें कलियुग वर्तने लगता है और कभी द्वापरमें त्रेता और त्रेतामें द्वापर वर्तताहै। कभी अदृश्यही वेदविद्या के अर्थ होते हैं और नानाप्रकार के आश्चर्य भासतेहैं। हे मुनीश्वर! जब एक सहस्र चौकड़ी युगकी व्यतीत होतीहैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है सो एकबार दो दिन पर्यन्त ब्रह्मा समाधि में लगा रहा और सृष्टि शून्य होरही—यहभी स्मरण आताहै और भी कई देश क्रिया विचित्ररूप चित्त आते हैं; क्या क्या कहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिरातीतवर्णनंनामैकोनत्रिंशतितमस्सर्गः १९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब भुशुण्डि ने कहा तब मैंने फिर जिज्ञासा के अर्थ पूछा कि, हे पक्षियोंके ईश्वर! तुमतो चिरपर्यन्त जगत् में व्यवहार करतेरहे हो तो तुम्हारे शरीरको मृत्युने किस निमित्त न ग्रास किया? भुशुण्डिजी बोले, हे मुनीश्वर! तुम सब जानते हो परन्तु ब्रह्मजिज्ञासा करके पूछते हो इससे जैसे विद्यार्थी वेदार्थ पढ़कर फिर गुरुके आगे कहते हैं तैसेही मैं आज्ञा मानकर कहताहूं। हे मुनीश्वर! मृत्यु किसको मारता है और किसको नहीं मारता सो सुनो। दुःखरूपी मोती वासनारूपी तांतसे पिरोये हैं; यह माला जिसके हृदयरूपी गलेमें पड़ी हुई है उसको मृत्यु मारता है और जिसके कण्ठमें यह माला नहीं पड़ी उसको मृत्यु नहीं मारता। शरीररूपी वृक्षमें चित्तरूपी सर्प बैठा है। आशारूपी अग्नि जिस वृक्ष को नहीं जलाती वह मृत्युके वश नहीं होता। रागद्वेषरूपी विषसे पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प है, तृष्णासे चूर्णहोता है और लोभरूपी व्याधि से नष्ट होता है उसको मृत्यु मारता है और ग्रासलेता है। जिसको इनका दुःख नहीं स्पर्श करता उसको मृत्यु भी नहीं नाशकरता। हे मुनीश्वर! शरीररूपी समुद्र क्रोधरूपी बड़वाग्नि से जलता है जिसको क्रोधरूपी अग्नि नहीं जलाता उसको मृत्युभी नहीं मारता। जिसका मन

परमपावन और निर्मल पदमें दृढ़ विश्रान्त और स्थित हुआ है उसको मृत्यु नाश नहीं करता। हे मुनीश्वर! जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिन्ता, चंचलता, अभिमान प्रमाद इत्यादिक दुःख होते हैं उसको मृत्यु मारताहै और जिसको काम,क्रोध, लोभादिक रोग संसार बंधनका कारण बांध नहीं सक्ते और जो इनसे लेपायमान नहीं होता उसको आधिव्याधिरूपी मल नहीं स्पर्श करता। जो मनुष्य लेता है, देता है और सबकार्य करता है पर चित्तमें अनात्म अभिमान स्पर्श नहीं करता उसको और जो पुरुष इष्टकी वाञ्छा नहीं करता और अनिष्टमें दोष नहीं करता दोनोंकी प्राप्तिमें सम रहता है उसको समाहतचित्त कहते हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ ऐश्वर्यवान् सुन्दर पदार्थ हैं वे सब असत्‌रूप हैं; पृथ्वीपर चक्रवर्तीराजा और स्वर्ग में गन्धर्व्व, विद्याधर, किन्नर, देवता और उनकी स्त्रीगण और सुरोंकी सेना आदिक सब नाशरूप हैं। मनुष्य, दैत्य, देवता, असुर, पहाड़, ताल, नदियां जो कुछ बड़े पदार्थ हैं वे सबही नाशरूप हैं। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताललोक जो कुछ जगत् भोग हैं वे सब असत्‌रूप और अशुभ हैं। कोई पदार्थ श्रेष्ठनहीं; न पृथ्वी का राज्य श्रेष्ठहै, न देवताओं का रूप श्रेष्ठहै, न नागोंका पाताललोक श्रेष्ठ है, न कुछ शास्त्रों का विचारना श्रेष्ठ है, न काव्य जानना श्रेष्ठ है, न पुरातन कथा क्रम वर्णन करना श्रेष्ठ है, न बहुत जीना श्रेष्ठ है, न मूढ़तासे मरजाना श्रेष्ठ है, न नरकमें पड़ना श्रेष्ठ है और न इस त्रिलोकी में और कोई पदार्थ श्रेष्ठ है; जहां सन्तनका मन स्थित है वही श्रेष्ठ। यह नाना प्रकार का जगत् क्रम चलरूप है; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे मूढ़ होकर चल पदार्थ में नहीं रमते और बहुत जीनेकी इच्छा भी नहीं करते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्यानेसङ्कल्पनिराकरण न्नामविंशतितमस्सर्गः २०॥

भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर! केवल एक आत्मदृष्टि सब से श्रेष्ठहै; जिसके पायेसे सब दुःखनाशहोते हैं और परमपद प्राप्तहोते हैं। वह आत्मचिन्तन सर्वदुःखोंका नाशकर्त्ता है और चिरकाल के तीनों तापोंसे तपे और जन्मके मार्गसे थकेहुये जीवके श्रमको दूर करता है और तपन मिटाता है। समस्त दुःखों को जो अविद्या सत्ता अनर्थ प्राप्तकरने वाली है उसको भी नाशकरतीहै। जैसे अन्धकारको प्रकाश नाशकरताहै तैसेही जीव के हृदय में शीतल प्रकाश उपजाती है। हे भगवन्! ऐसी जो आत्मचिन्तना सब संकल्पों से रहित है सो तुम सारिखेको सुगम प्राप्त है और हम सारिखेको कठिन है क्योंकि; सम सत् कलना से अतीत है। हे मुनीश्वर! उस आत्मचिन्तन की सखी और भी कोई प्राप्तहो तो सब ताप मिटजावें और महाशीतलता हो उनमें से मुझको एकसखी प्राप्तहुई है वह सब दुःखों का नाश करती है, सब सौभाग्य देनेवाली और

जीनेका मूल है। ऐसी प्राणचिन्ता मुझको प्राप्तहुई है। हे रामजी! जब इस प्रकार मुझ से काकभुशुण्डिने कहा तब मैंने जानकरभी क्रीड़ाके निमित्त फिर उससे पूंछा कि हे सर्वसंशयोंके निवृत्त करनेवाले चिरंजीवी पुरुष! सत्यकहो प्राणचिन्ता किसको कहते हैं? भुशुण्डि बोले, हे सर्व वेदान्त के वेत्ता और सर्वसंशयों के नाशकर्त्ता! मेरे उपहासके निमित्त तुम मुझसे पूछते हो। तुमतो सब कुछ जानते हो परन्तु तुम से शिक्षक की भांति कहताहूं। क्योंकि, गुरुके आगे कहनाभी कल्याण के निमित्त है। भुशुण्डि के जीने का कारण और भुशुण्डिको आत्मलाभ देनेवाली प्राणचिन्ता कहाती है। हे भगवन्! इसी दृष्टिका आश्रय करके मैं परमपदको प्राप्तहुआहूं मुझको बन्धन नहीं होता और सब अवस्था में बैठते, चलते, जागते, सोते सब ठौर मेराचित्त सावधान रहता है इस कारण कोई बन्धन नहीं होता। हे मुनीश्वर! मैंने प्राण और अपानके संसरने की गति पाई है; उस युक्तिसे मुझको आत्मबोध हुआ है और उस बोध से मेरे मद, मोहादिक विकार सब नष्ट होगये हैं और शान्तरूप होकर स्थित हुआहूं। हे मुनीश्वर! जिसको प्राण अपानकी गति प्राप्त हुई है वह सब आरम्भ कर्मको करे अथवा सब आरम्भ का त्याग करे परन्तु सदा शान्तरूप है; उसका काल सुखसे व्यतीत होता है। हे मुनीश्वर! प्राण हृदय से उपज कर द्वादश अंगुल पर्य्यन्त बाहर जाता है और वहां जाकर स्थित होता है; उस ठौर से अपानरूप हो हृदय में आकर स्थित होता है। हे मुनीश्वर! बाहर आकाश के सन्मुख जो प्राण जाता है सो अग्निमुखवत् उष्ण होता है और जो हृदयाकाश के सन्मुख आता है सो शीतल नदी के प्रवाहवत् आता है। अपान चन्द्रमारूप है और बाहर से अन्तर आता है और प्राण भीतर से बाहर जाता है, वह अग्नि, उष्ण और सूर्य्यरूप है। प्राण वायु हृदयाकाश को तपाता है और अन्न पचाता है और अपान हृदय को चन्द्रमा की सदृश शीतल करता है। हे मुनीश्वर! अपानरूपी चन्द्रमा जब प्राणरूपी सूर्य्य में जहां साठतत्त्व हैं लीन होता है तो उसमें स्थित हुआ मन फिर शोकको नहीं प्राप्तहोता और प्राणरूपी सूर्य्य जब अपानरूपी चन्द्रमा के घरमें लीन होता है उस अवस्था में मन स्थित हुआ फिर जन्म का भागी नहीं होता। हे मुनीश्वर! सूर्य्यरूपी प्राण अपने सूर्य्यभावको त्यागकर अपानरूपी चन्द्रमा को जबतक नहीं प्राप्त हुआ उस अवस्था के देशकाल को विचारे तो फिर शोक नहीं पाता और सब भ्रम नाशहोजाते हैं। द्वादश अंगुलपर्य्यंत जो आकाशहै उससे अपानरूपी चन्द्रमा उपजकर हृदय के प्राणरूपी सूर्य्य में लीन होता है पर सूर्य्यभाव को जबतक नहीं प्राप्त होता उसके मध्यभाव अवस्था में जिसका मन लगा है वह परमपदको प्राप्त होता है। हृदय में चन्द्रमा और सूर्य्य के अस्तभाव और उदयभाव

का ज्ञाताहुआ और इसका आधारभूत जो आत्मा है उसको जानकर फिर मन नहीं उपजता। हे मुनीश्वर ! प्राण और अपानरूपी सूर्य और चन्द्रमा जो हृदय आकाश में उदय और अस्त होते हैं उनके प्रकाश से हृदय में जो भास्कर देव है उसको जो देखता है वही देखता है। बाहर जो सूर्य प्रकाशता है और कभी अन्धकार होता है तो उस प्रकाश के उदय हुये और तम के क्षीणहुये कुछ सिद्ध नहीं होता परन्तु जब हृदय का तम दूर होता है तब परमसिद्धता को प्राप्त होता है। बाहरके तम नष्ट हुये लोकों में प्रकाश होता है और हृदयके तम नष्ट हुये आत्मप्रकाश उदय होताहै और अज्ञान अन्धकार का अभावहो परमपदको जानकर मुक्त होता है। प्राण अपान की युक्ति जाने से तम नष्ट होजाता है। हे मुनीश्वर ! प्राण अपानरूपी जो चन्द्रमा और सूर्य्य हैं सो यत्न बिना उदय और अस्त होते हैं। जब प्राणरूपी सूर्य्य हृदयकोट से उपजकर बाहर जाता है तब उसी क्षण अपानरूपी चन्द्रमा में लीन होताहै और अपानरूपी चन्द्रमा उदय होआता है और जबअपान रूपी चन्द्रमा हृदयकोट के प्राण वायुरूपी सूर्य्य में स्थित होता है तब उसी क्षण में प्राणरूपी सूर्य्य उदय होता है। प्राणके अस्तहुये अपान उदय होता है और अपान के अस्तहुये प्राण उदय होता है। जैसे छायाके अस्तहुये धूप उदय होती है और धूपके अस्तहुये छाया उदय होती है तैसेही प्राण अपानकी गति है। हे मुनीश्वर ! जब हृदयकोटसे प्राण उदय होता है तब प्राणका रेचक होने लगता है और अपान का पूरक होने लगताहै और जब प्राण अपान में स्थित हुआ तब अपान का कुम्भक होता है। उस कुम्भक में जब स्थिति होती है तब फिर तीनों तापों से नहीं तपता। जब अपान का रेचक होता है तब प्राणका पूरक होने लगता है और जब अपान जा स्थित होता है तब प्राणका कुम्भक होता है। उसमें जब स्थित होता है तब भी तीन तापों से तपायमान नहीं होता। हे मुनीश्वर ! प्राण अपान के भीतर जो शान्तरूप आत्मतत्त्व है उसमें जब स्थिति होती है तब मन तपायमान नहीं होता और जब अपान आ स्थित होताहै और प्राण उदय नहीं हुआ उस अवस्था में जो साक्षीभूत सत्ताहै वह आत्मतत्त्व है। उसमें जब स्थिति होतीहै तब फिर वह कठिन नहीं होता। जब अपान के स्थानमें प्राण जा स्थित होताहै और अपान जबतक उदय नहीं हुआ वहाँ जो देश, काल, अवस्था है उसमें मन स्थित होता है तब मन का मनस्त्वभाव जाता है और फिर नहीं उपजता। हे मुनीश्वर ! प्राण जो अपान में स्थित हुआ और अपान उदय नहीं हुआ वह कुम्भक है। अपान प्राण में स्थितभया और प्राण जबतक उदय नहीं हुआ उस कुम्भक में जो शान्ततत्त्व है वह आत्मा का स्वरूपहै और शुद्ध और परमचैतन्यहै। जो उसको प्राप्तहोताहै वह फिर शोकवान् नहीं होता।

जैसे पुष्पमें गन्धसे प्रयोजन होता है तैसेही प्राण अपान के भीतर जो अनुभवतत्त्व स्थित है उससे प्रयोजन है। वह न प्राण है, न अपान है; उस अनुभव आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं। प्राण अपानकोट क्षयको प्राप्तहोता है और अपान प्राणकोट में क्षय होता है; उस प्राण—अपानके मध्यमें जो चिदात्माहै उसकी हम उपासना करते हैं। हे मुनीश्वर ! जो प्राणका प्राण है; अपानका अपान है; जीवका जीव है और देहका अधारभूत है ऐसे चिदात्माकी हम उपासना करते हैं। जिसमें सर्व है, जिससे यह सर्व है और जो यह सर्व है; ऐसा जो चिदात्मा है उसकी हम उपासना करते हैं। जो सर्व प्रकाशका प्रकाश है; सब पावनका पावन है और सब भाव अभाव पदार्थों का अपना आप है उस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं जो पवन परस्पर हृदय में संपुटरूप है उसमें स्थित जो साक्षीरूप और भीतर बाहर सब ठौर वही है; उस चिदात्मा की हम उपासना करते हैं। जब अपान अस्त हुआ और प्राण नहीं उपजा उस क्षणमें जो कलंकसे रहित है उस चेतनतत्त्वकी हम उपासना करते हैं। जब प्राण अस्त हुआ और अपान नहीं उपजा ऐसा जो नासिका के अग्रमें शुद्ध आकाश है और उसमें जो सत्यता है उस चित्सत्यता की हम उपासना करते हैं। जो प्राण अपान के उत्पत्ति का स्थान; भीतर बाहर सब ओर में व्याप्त और सब योगकला का आधारभूत है उस चित्तत्त्व की हम उपासना करते हैं। जो प्राण अपान के रथपर आरूढ़ है और शक्तिका शक्तिरूप है उस चित्तत्त्व की हम उपासना करते हैं। हे मुनीश्वर ! जो संपूर्ण कला कलंकसे रहित और सर्व कला जिसके आश्रय हैं ऐसा जो अनुभवतत्त्व है और सब देवता जिसकी शरण को प्राप्त होते हैं उस आत्मतत्त्व की हम उपासना करते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्यानेप्राणापानसमाधिवर्णननामैकविंशतितमस्सर्गः २१॥

भुशुण्डि बोले, हे मुनीश्वर ! इस प्रकार मैं प्राण समाधि को प्राप्त हुआहूं और इस क्रमसे मैं आत्मपदको प्राप्त हुआहूं। इसी निर्मल दृष्टिका आश्रय करके स्थितहूं और एक निमेषभी चलायमान नहीं होता। सुमेरु पर्व्वत की नाईं स्थितहूं और चलता हुआभी स्थिरहूं; जाग्रत् में सुषुप्ति स्वप्नमें स्थितहूं और सर्वदा आत्मसमाधि में लगा रहताहूं; विक्षेप कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर ! नित्य अनित्य भावसे जो जगत् स्थित है उसको त्यागकर मैं अन्तर्मुख अपने आप में स्थितहूं और प्राण अपानकी कला जो तुम्हारे विद्यमान कही है उसका सदा ऐसेही प्रवाह चला जाताहै उसमें मेरी अयत्न समाधि है इससे मैं सदा सुखी रहताहूं कुछ कष्ट नहीं होता। जिसको यह कला नहीं प्राप्त हुई वह कष्ट पाता है। हे मुनीश्वर ! अज्ञानी जीव महाप्रलयपर्यन्त संसार

समुद्र में डूबते हैं और निकलकर फिर डूबते और इसी प्रकार गोते खाते हैं और
जिन पुरुषोंने पुरुषार्थ कर आत्मपद पाया है वे सुखसे विचरते हैं। हे मुनीश्वर!
भूतकालकी मुझको चिन्ता नहीं और भविष्य की इच्छा नहीं; वर्त्तमान में यथाप्राप्त
राग द्वेषसे रहित होकर विचरताहूं। मैं सुषुप्ति की नाईं स्थितहूं इससे केवल स्वरूप
में भाव अभाव पदार्थोंसे रहितहूं और इस कारण चिरंजीवीहो दुःखसे रहितहूं। प्राण
अपानकी कलाको शमकरके स्वरूपमें स्थितहूं। आज यह कुछपाया है और कल यह
पाऊंगा यह चिन्ता मेरी दूरहोगई है; इस कारण निर्दुःख जीताहूं। न किसीकी प्रशंसा
करताहूं और न कदाचित् निन्दा करताहूं; सब आत्मस्वरूप देखताहूं इस कारण सुखी
जीताहूं। इष्टकी प्राप्तिमें हर्षवान् नहीं और अनिष्टकी प्राप्तिमें शोकवान् नहींहोता मैंने
परमत्याग कियाहै सर्वआत्मभाव देखताहूं और जीवभाव दूरहोगयाहै इसकारण अदुः-
ख जीताहूं। हे मुनीश्वर! मेरे मनकी चपलता मिटगईहै और राग द्वेष दूरहोगये हैं। मन
शान्तहुआहै इसकारण अरोग जीताहूं, काष्ठ, सुन्दरस्त्री, पहाड़, तृण, अग्नि और सुवर्ण
समभाव देखताहूं। हे मुनीश्वर! मैं जरामरणके दुःख और राज्यलाभके सुख और शोक
से रहित समभाव में स्थितहूं और निर्दुःख जीताहूं ये मेरे बांधव हैं, ये अन्ध हैं।
यह मैं हूं, यह मेरा है, यह सब कलना मुझ को कुछ नहीं इसीसे सुखी जीताहूं और
आहार व्यवहार करता, बैठता, चलता, सूंघता, स्पर्श करता और श्वास लेता हूं
परन्तु यह जो अभिमान है कि, 'मैं देहहूं' इस अभिमान से रहितहो सुखी जीताहूं।
इस संसार की ओर से मैं सुषुप्तरूपहूं और इस संसारकी गति को देखकर हँसता
हूं कि, वास्तव में यह है नहीं आश्चर्य है; इस कारण निर्दुःख जीताहूं। हे मुनीश्वर!
मैं सर्वदा काल, सर्व प्रकार, सर्व पदार्थों में समबुद्धिहूं और विषमता मुझको कुछ नहीं
भासती; न किसीसे सुखी होताहूं और न दुःखीहूं-जैसे हाथ फैलाइये तौभी शरीर है
और संकोचिये तौ भी शरीर है इसी प्रकार मैंने सर्वात्मा आप को जाना है इस से
मुझको कोई दुःख नहीं। मेरी बोली और निश्चय स्निग्ध और कोमल सबको हृदय
गम्य है। सर्वत्र मैं जो ऐसे देखताहूं इस कारण निर्दुःख जीताहूं। चरण से मस्तक
पर्यन्त देहमें मुझको ममता नहीं और अहंकाररूपी कीचड़ से मैं निकला हूं इस
कारण अरोग जीताहूं। कार्यकर्त्ता और भोजनकर्त्ताभी दृष्टि आताहूं परन्तु मेरे मन
में निष्कर्मता दृढ़ है। हे मुनीश्वर! सामर्थ्य करके कार्यकरूं तौभी मुझको अभिमान
नहीं और दरिद्रीहोऊं तौभी संपत्ति और सुखकी इच्छा नहीं अर्थात् किसी में आसक्त
नहीं होता। इस असत्यरूप शरीर के नाश हुये अभिमान नाश नहीं होता। भूतों का
समूह सब असत्यरूप है और आत्मा सत्यरूप है; ऐसे जानकर मैं स्थित हूं और
आशारूपी फांसीसे मेरे मुक्तचित्तकी वृत्ति समाहत हुई है और अनात्म में आत्मअ-

भिमानकी वृत्ति नहीं फुरती। हे मुनीश्वर! मैंने जगत् को असत्य जानाहै और आत्मा को सत्य और हाथमें बिल्वफलवत् प्रत्यक्ष जाना है। इस जगत्में मैं सुषुप्त प्रबुद्धहूं। सुख को पाकर मैं सुखी नहीं होता और दुःखको पाकर दुःखी नहीं होता। सर्व्वका मैं परममित्रहूं इसकारण मैं निर्दुःखजीताहूं; आपदामें अचलचित्तहूं; संपदामें सब जगत् का मित्रहूं और भाव अभाव से ज्योंका त्योंहूं इसकारण सदा सुखी जीताहूं। न मैं परिच्छिन्न अहं हूं; न कोई अन्यहै; न कोई मेराहै और न मैं किसीका हूं; यह भावना मेरे चित्तमें दृढ़है। मैं जगत् हूं; और मैंही आकाश, देश, काल, क्रिया सबहूं; यह निश्चय मुझको दृढ़ है। घटभी चेतनहै, पटभी चेतन है, रथ भी चेतन है और यह सब चेतनतत्त्व है; यह निश्चय मुझको दृढ़ है इसकारण अदुःख जीताहूं। हे मुनिशार्दूल! यह सब जो मैंने तुम से कहा भुशुण्डिनाम काकने जो त्रिलोकीरूपी कमलका भँवरा है मुझसे कहा था॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्यानेचिरंजीविहेतुकथनंनाम द्वाविंशतितमस्सर्ग्गः २२॥

भुशुण्डिबोले, हे मुनीश्वर! जैसा मैंहूं तैसा तुम्हारी आज्ञा के सिद्धि अर्थ कहा है नहीं तो गुरुके आगे कहना भी ढिठाई है। तुम ज्ञानके पारगामीहो। फिर मैं बोला, हे भगवन्! आश्चर्यहै और आश्चर्यसे भी आश्चर्य है कि, तुमने श्रवण का भूषण कहा और आत्मउदितरूप वचन जो तुमने कहे हैं वे परमविस्मय के कारण हैं। हे भगवन्! तुम धन्यहो। तुम महात्मा पुरुषहो और चिरंजीवियों के मध्य तुम मुझको साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हो। आज हम भी धन्य हैं कि तुम्हारे ऐसे महापुरुष के मुखसे इसप्रकार आत्मउदित सुनाहै जैसे मैंने पूछा तैसेही तुमने कहा। हे साधु! मैंने सब भूमिलोक देखे हैं और दिशागण, आकाश और पाताललोकभी देखे हैं; त्रिलोकीमें तुमसा कोई बिरलाही है। जैसे बांस बहुतहैं पर मोतीवाला बिरलाही होताहै तैसेही तुम सारिखे बिरले हैं। हे साधु! आज हम पुण्यरूपहुये हैं और आज हमारी देह पवित्रहुई जो तुम ऐसे मुक्तआत्माका दर्शनहुआ है। हे साधु! अब हम सप्तर्षि के मध्य जाते हैं; हमारे मध्याह्नका समय हुआ है। जब मैंने ऐसे कहा तब भुशुण्डि कल्पलता से उठखड़ा हुआ और संकल्पके हाथ करके उसने सुवर्ण का पात्र रचकर मोती और रत्नों से भरा और मुझको अर्घ्यपाद्यकरके पूजन किया। जैसे त्रिनेत्र सदाशिवकी पूजाकरते हैं तैसे ही उसने चरणों से लेकर मस्तकपर्यंत मेरा पूजन किया और बहुत नम्रहोकर प्रणाम किया। मैंनेभी उसको प्रणाम किया और इसप्रकार परस्पर नमस्कार करके मैं वहांसे उठखड़ाहुआ और आकाशमार्ग्ग को चला। जैसे पक्षी उड़ता है तैसेही मैं उड़ा और वह भी मेरे साथ उड़ा। परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये जब एकयोजनपर्यंत चले

गये तब मैंने उससे कहा; हे साधु ! तुम अब यहांसे फिरो । इसप्रकार वारंवार कहकर मैंने उसको ठहराया और मैं चलागया। जबतक मैं उसको दृष्टिआतारहा तबतक वह देखतारहा और जब मैं न दीखा तब वह अपने स्थानमें जा बैठा। मैं सप्तर्षियों के मण्डल में जा पहुँचा और अरुन्धती से पूजितहुआ। हे रामजी ! भुशुण्डिके आश्चर्य्यरूप वचन मैंने तुम को सुनाये हैं । अब भी सुमेरु के शृङ्गपर उस कल्पवृक्ष की लता में वह कल्याणरूप सम स्थित है और शांतिरूप और मान करनेके योग्य है और सदा समाधिमान् है। हे रामजी ! यह हमारा और उसका समागम सतयुग के दोसौवर्ष व्यतीतहुये हुआ था और अब सतयुग क्षीणहो त्रेतायुग वर्तताहै उसमें तुम उपजेहो। हे रामजी ! अभी आठवर्ष बीते हैं कि, हमारा उसका फिर मिलापहुआथा तो वह उसी वृक्षलतापरहै। हे रामजी! यह इतिहास जो मैंने तुमसे कहा है सो परमउत्तम है। जब इसको विचारोगे तब संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा। मुनिवशिष्ठ और भुशुण्डि की कथाको जो निर्मलबुद्धि से विचारेगा वह भवरूप संसारके भयसे तरेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्ड्युपाख्यानसमाप्तिर्नाम त्रयोविंशत्तमस्सर्गः २३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे अनघ! यह जो मैंने तुमसे भुशुण्डिका वृत्तान्त कहा इसे बोधकरके भुशुण्डि महासंकटसे तराहै, इसदशाको तुमभी आश्रयकरके प्राणकी युक्तिकर अभ्यासकरो तब तुमभी भुशुण्डिकी नाईं भवसमुद्र के पारहोगे। जैसे भुशुण्डिने ज्ञानयोग से पानेके योग्य पद पायाहै तैसेही तुम भी पावो और जैसे प्राण अपान के अभ्यास से भुशुण्डि परमतत्त्वको प्राप्तहुआ है तैसेही तुमभी अभ्यास करके प्राप्त हो। विज्ञान दृष्टि जोतुमने सुनी है उसकी ओर चित्तको लगाकर आत्मपदको पावो फिर जैसे इच्छाहो तैसेकरो। रामजीनेपूंछा, हे भगवन्! पृथ्वी में आप के ज्ञानरूपी सूर्य्यकी किरणों के प्रकाश से मेरे हृदयसे अज्ञानरूपी तम दूरहोगयाहै और अब प्रबुद्धहोकर अपने आनंदरूपमें स्थितहुआहूं और जाननेयोग्यपदको जानताहूं—मानो दूसरा वशिष्ठ हुआ हूं। हे भगवन्! यह जो भुशुण्डिका चरित्र आपने परमार्थबोधके निमित्त कहाहै उसमें रक्त,मांस और अस्थिका शरीररूपी गृह किसने रचाहै; कहांसे उपजाहै; कैसे स्थित हुआ है और कौन इसमें स्थित है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! परमार्थ तत्त्व के बोध और दुःखके निवृत्त अर्थ ये मेरे वचन हैं सो सुनो। अस्थि इस शरीररूपी गृहका थम्भा है और इसके नवद्वारे हैं; रक्त मांस से जो यह लेपन किया है सो किसी ने बनाया नहीं आभासमात्र है और मिथ्या भ्रमसे भासताहै। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे भासता है तैसेही असत्यरूप शरीर भी भ्रमसे भासता है। हे रामजी ! जब तक अज्ञान है तब तक देह सत्य भासता है और जब ज्ञान होता है तब देह असत्य

रूप भासता है-जैसे स्वप्नकाल में स्वप्ने के पदार्थ सत्य भासते हैं और जाग्रत्काल में स्वप्ना असत्य भासता है; तैसेही अज्ञानकाल में अज्ञान के देहादिक पदार्थ सत्य भासते हैं और ज्ञानकाल में असत्य होजाते हैं। जैसे जलमें बुद्बुदा जलके अज्ञान से सत्य भासता है और जलके जाने से असत्य भासता है; और सूर्य्य की किरणों में मरुस्थलकी नदी भासती है; तैसेही आत्मा में देह भासता है। हे रामजी ! जो कुछ जगत् भासता है वह सब आभासमात्र अज्ञान से भासता है और 'अहं' 'त्वम्' आदिक कल्पना सब मननमात्र मनमें फुरती हैं। तुम जो कहतेहो कि, देह अस्थि और मांसका गृह रचाहै; सो अस्थि मांस से नहीं रचा संकल्पमात्र है, सङ्कल्प से भासता है और सङ्कल्पके अभाव हुये देह नहीं पायाजाता। हे रामजी ! स्वप्न में जो देह धरकर दिशा, तट, पर्वत इत्यादि तुम देखते फिरतेहो जाग्रत् में तुम्हारा वह देह कहां जाता है ? जो देह सत्य होता तो जाग्रत् में भी रहता और मनोराज से स्वर्ग को जाता है तथा सुमेरु और भूमिलोकमें फिरता है। हे रामजी ! इन स्थानों में जैसे मनका फुरना देह होकर भासता है सो असत्यरूप है तैसेही यह शरीर मन के फुरनेमात्र है इससे असत्य जानो। यह मेरा धन है, यह मेरा देहहै, यह मेरा देशहै इत्यादिक कल्पना मनकी रची हुई है-सबका बीज,चित्तहीहै। हे रामजी ! जगत्को दीर्घ कालका स्वप्ना जानो वा दीर्घ चित्तका भ्रम जानो अथवा दीर्घ मनोराज जानो; वास्तव में जगत् कुछ नहीं। जब अपने वास्तव परमात्मस्वरूप को अभ्यास करके जानता है तब जगत् असत्यरूप भासता है। हे रामजी ! मैंने पूर्व्वभी तुमको ब्रह्मा जीके वचनों में कहाहै कि, सब जगत् मनका रचा हुआ है-इससे सङ्कल्पमात्र है। चिरकाल का जो अभ्यास होरहाहै इससे सत् भासता है; जब दृढ़ पुरुष प्रयत्न से आत्मअभ्यास हो तब असत्य भासेगा। हे रामजी ! जो भावना हृदयमें दृढ़ होती है उसका अभावभी सुगम नहीं होता पर जब उसके विपर्ययभावनाका अभ्यास करिये तब उसका अभाव होजाता है। यह मैंहूं,यह और है इत्यादिक कलना जो हृदयमें दृढ़ होरहीहै जब इसके विपर्यय आत्मभावना हो तब वह मिटे और सर्व्व आत्माही भासे। हे रामजी ! जिसकी तीव्र भावना होती है वही रूपफल उसका होजाता है-जैसे कामीपुरुषको सुन्दरस्त्री की कामना रहती है तैसेही जीवको जब आत्मपदकी चिन्ता रहे तब वहीरूप होताहै। जैसे कीट भृङ्गी होजाता है और जैसे दिनमें व्यापारका अभ्यास होता है तो रात्रिको स्वप्नमेंभी वही देखता है; तैसेही जिसका जीवको दृढ़ अभ्यासहोताहै वही अनुभव होताहै। जैसे सूर्य्य आकाश में तपता है और मरुस्थलमें जल होकर भासता है पर वहां जलका अभाव है; तैसेही भावसे रहित पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रमसे भावरूप भासते हैं। जैसे नेत्र दुखने से आकाश में तरवरे मोर पुच्छवत्

भासते हैं तैसेही अज्ञान से जगत् जाल भासते हैं। हे रामजी! यह जगत् सब आभासरूप है स्वरूप के प्रमाद से भय और दुःखको प्राप्त होता है पर जब स्वरूप को जानता है तब भ्रम, भय और दुःख से रहित होता है। जैसे स्वप्नपुर में चित्तके भ्रम से सिंहों से भय पाता है और जब जाग्रत्स्वरूपमें चित्त आता है तब सिंहका भय निवृत्त होजाता है, तैसेही आत्मज्ञान से निर्भय होता है। जब वैराग्य अभ्यास करके जीव निर्मल आत्मपदको प्राप्त होता है तब फिर क्षोभ को नहीं प्राप्त होता और रागद्वेषरूपी मल उसको नहीं स्पर्शकरता। जैसे तांबा जब पारसके स्पर्शसे सुवर्णहोताहै तब वह तांबेभावको नहीं ग्रहण करता, तैसेही जीव फिर मलिन नहीं होता। अहं, त्वम आदिक जो कुछ जगत् भासता है वह सब आभासमात्रही है। हे रामजी! प्रथम सत्य असत्य को जानकर असत्यका निरादरकरो और सत्यका अभ्यासकरो तब चित्त सर्व्वकलना से रहित होकर शान्तपदको प्राप्त होता है। जो तत्त्वज्ञान से सम्यग्दर्शी हुआ है उसको जगत् के इष्ट पदार्थ पाये से हर्ष नहींहोता और अनिष्टके पाये से शोक नहीं होता; वह न किसीकी स्तुति करता है, न किसीकी निंदा करता है और हृदय में शीतल और शान्तरूप होजाता। जब कोई बांधव मृतकहो तब उसमें तपायमान क्यों होता है वह तो अवश्यही मरता। जब अपनी मृत्यु आवे तब अवश्य शरीर छूटता है वृथा क्यों तपायमान होता है। जब सम्पदा प्राप्त हो तो उससे हर्षवान् नहीं होता क्योंकि; जो कुछ भोगना था भोगा हर्ष किससे हुआ? दुःख आन प्राप्तहो तब शोक क्यों करना शरीर का व्यवहार सुख दुःख आता जाता है और अमिट है और जब अपना किया कर्म उदय होता है तबभी शोक क्यों करता है? हे रामजी! जो सत्य है वह असत्य नहीं और जो असत्य है सो सत्य नहीं फिर जगत् द्वेष किस निमित्त करना? जिसको ऐसा निश्चय हुआ है कि, न मैं हूं, न जगतहै और न पृथ्वी है तो वह शोक किसका करे और जब देह अन्य है और मैं चेतन हूं तो चेतनका तो नाश नहीं होता तब शोक किसका करना? हे रामजी! दुःख तो किसी प्रकार नहीं है पर जबतक विचार नहीं तबतक दुःख होता है और विचार किये से दुःख कोई नहीं रहता। सम्यग्दर्शी जो मुनीश्वर है वह सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानता है इस कारण दुःख नहीं पाता और जो असम्यग्दर्शी है वह अज्ञान से दुःख पाता है। जैसे दिनके अन्त में मण्डल शीतल होजाता है तैसेही सम्यग्दर्शी का हृदय शीतल होताहै। जिसको कर्त्तव्य में कर्तृत्वका अभिमान नहीं है वही सम्यग्दर्शी है। हे रामजी! जितने जगत् के पदार्थ हैं उनको हृदय से आभास मात्र जानो और बाहर जैसे आचार हो तैसे करो अथवा उसका भी त्याग करो और निराभास होकर स्थित हो। मैं चिदाकाश, नित्य, सर्व्वज्ञ और सब से रहितहूं;

ऐसा अभ्यास करके एकांत और निर्मल आपको देखोगे । अथवा ऐसी धारणा करो कि, न मैंहूं, न यह भोग है, न अर्थरूप जगत् आडम्बर है; अथवा ऐसे धारो कि; मैंही नित्यशुद्ध, चिदात्मा और आकाशरूप सब कुछहूं, मेरे से कुछ भिन्न नहीं और मैं अपने आप में स्थितहूं । इन दोनों पक्षों में जो इच्छाहो सो ग्रहण करो तो तुमको सिद्धता का कारण होगा । जगत् को आभासमात्र जानो परन्तु यह भी कलङ्करूप है इस चिंतना को भी त्यागकर निराभास हो । तुम चिदाकाश, नित्य, सर्व्वव्यापी और सब से रहितहो; आभास को त्यागकर निर्मल अद्वैत हो रहो अथवा विधि निषेध दोनों दृष्टोंको आश्रयकरो । हे रामजी ! क्रियाको करो परन्तु राग द्वेषसे रहित हो । जब राग द्वेषसे रहितहोगे तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानन्दको प्राप्त होगे और जो सर्व्व का अधिष्ठान है उसको पावोगे । हे रामजी ! जिसका हृदय रागद्वेषरूपी अग्नि से जलता है उसको सन्तोष, वैराग्य आदिक गुण नहीं प्राप्त होते । जैसे दग्ध भूतलके वनमें हरिण प्रवेश नहीं करते तैसेही राग द्वेषादिकवाले हृदयमें सन्तोषादिक नहीं प्रवेश करते । हे रामजी ! हृदयरूपी कल्पतरु है । ऐसा वृक्ष जो रागद्वेषादिक सर्पों से रहितहै उससे कौन पदार्थ है जो प्राप्त न हो–शुद्ध हृदयसे सब कुछ प्राप्तहोता है । हे रामजी ! जो बुद्धिमान् भी है और शास्त्रका ज्ञाताभी है परन्तु राग द्वेष संयुक्त है वह स्यारकी नाईं नीच है और उसको धिक्कार है । जिन पदार्थों के पाने के निमित्त लोग यत्न करते हैं वे तो आते जाते हैं । धनको इकट्ठा कोई करता है और कोई लेजाता है तब राग द्वेष किसका करिये ? जो कुछ प्रारब्धहै सो अवश्य होता है, धनका व्यर्थ यत्न क्या करिये ? बांधव और वस्त्र आते हैं और फिर जातेभी हैं । जैसे समुद्र में झषका आश्रय बुद्धिमान् नहीं लेते तैसेही जगत् के पदार्थों का आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते । भाव–अभावरूप परमेश्वर की माया है और संसार की रचना स्वप्न की नाईं है; उन में जो आसक्त होते हैं उनको वे सर्पिणीवत् डसते हैं धन, बांधव और जगत् वास्तव में मिथ्याही हैं अज्ञान से सत्य भासते हैं । हे रामजी ! जो आदि न हो और अन्तभी न रहे पर मध्य में भासे उसको भी असत्य जानिये । जैसे आकाश में फूल असत्य हैं तैसेही संसाररचना असत्य है और जैसे सङ्कल्प रचना असत्य है; जैसे गन्धर्व्वनगर सुन्दर भासता है पर नाश होजाता है और जैसे स्वप्नपुर दीर्घकालका भासता है पर भ्रमरूप है; तैसेही यह जगत् असत्यरूप और भ्रममात्र है केवल सङ्कल्परूप अभ्यास के वशसे दृढ़ता को प्राप्त हुआ है । दीवार जो आकारवान् भासती है सो आकार से रहित प्रकाशरूप है और आत्मपद सुषुप्ति की नाईं अद्वैतरूप है । उस सुषुप्तिरूप पद से जब गिरताहै तब दीर्घ स्वप्न को देखताहै । हे रामजी ! अज्ञानरूपी निद्रा में जो अपने स्वभाव से गिरा है वह

संसाररूपी स्वप्नभ्रमको देखता है । जब अज्ञानरूपी निद्राका अभाव हो तब अपने आत्मराज और निर्विकल्प मुदित आत्मपद को प्राप्त होता है । जैसे सूर्य को देखकर कमल प्रफुल्लित होतेहैं तैसेही ज्ञानसे शुभगुण फूलते हैं। आत्मरूपी सूर्य सबदुःख से रहित है । जो पुरुष निद्रामें होताहै वह सूक्ष्म वचनोंसे नहीं जागता पर बड़ेशब्द करने और जल डालने से जागता है सो मैंने तुमपर मेघकी नाईं गर्ज्जकर वचनरूपी जल की वर्षाकी है और ज्ञानरूपी शीतलता सहित ये वचन हैं उनसे अब तुम ज्ञानरूपी जाग्रत् बोधको प्राप्तहुये। ऐसे ज्ञानरूपी सूर्य से जगत् को भ्रमरूप देखोगे । हे रामजी ! तुमको न जन्म है, न मृत्युहै, न कोई दुःखहै, न भ्रमहै, सर्व्व संकल्पों से रहित आत्म पुरुष अपने आप में स्थितहो और तुम्हारी वृत्ति समशान्त और सुषुप्ति की नाईं है और अतिविस्तृत सम और शुद्ध अपने स्वरूपमें स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनामचतुर्विंशतितमस्सर्गः २४ ॥

इतना कहकर, बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजीने वचन कहे तब रामजी सम, शान्त और चेतनतत्त्व में विश्राम पाकर परमानन्द को प्राप्त हुये और समस्त सभा जो बैठी थी वह भी वशिष्ठजी के वचन सुनकर सम और आत्म समाधि में स्थित होरही और बोलने का व्यवहार शान्त होगया । पिंजरे में जो पक्षी बोलते थे वे भी शान्त होगये, वन के जो वानर थे वेभी वचन सुनकर स्थित हो रहे और सर्व्व ओर से शान्ति होगई । जैसे अर्द्धरात्रि के समय भूमि शान्तरूप होजाती है तैसेही सभाके लोग तूष्णी होरहे और वचनों को विचारनेलगे कि, क्या उपदेश मुनीश्वरने किया है । एकघड़ीपर्य्यन्त शांति रही उसके अनन्तर फिर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अब तुम सम्यक्प्रबुद्ध हुयेहो और अपने आपमें स्थित हुयेहो जो कुछ जाना है उसके अभ्यास का त्याग न करना इसीमें दृढ़ रहना । हे रामजी ! संसाररूपी चक्रका नाभि स्थान चित्त है । उस चित्त नाभिके स्थिर हुये संसार चक्रभी स्थिर होजाता है । इस संसाररूपी चक्र का बड़ा तीक्ष्णवेग है; यद्यपि रोकते हैं तौभी फुरने लगता है; इससे दृढ़ प्रयत्न बलकरके इसको रोकिये । सन्तों के संग और सत्शास्त्रोंके वचन युक्त बुद्धिसे रुकता । हे रामजी ! अज्ञान से जो द्वैतकल्पना है उसका त्यागकर अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो; इससे परमशांतपद प्राप्त होता है ब्रह्मा से लेकर चींटीपर्य्यन्त जो सब अज्ञानरूपी संसारचक्र है सो असत्यरूप है और भ्रम से सत्यकी नाईं भासता है इसको त्यागकरो । हे रामजी ! असत्यरूप पदार्थों में जोराग द्वेष करते हैं वे मूर्ख हैं उनसे तो चित्रका पुरुषभी श्रेष्ठ है। जब इष्ट विषय प्राप्त होता है तब वे हर्षसे प्रफुल्लित होतेऔर अनिष्ट की प्राप्तिसे द्वेष करते हैं पर चित्र के पुरुषको राग द्वेष किसी में नहीं होता इस कारण मैं कहताहूं

कि, चित्रका पुरुषभी इनसे श्रेष्ठ है। ये आधिव्याधि से जलते हैं पर वह सदा ज्योंका त्यों है। चित्रका पुरुष तब नाश हो जब आधारभूत को नाश करिये; अधिष्ठान के नाशविना उसका नाश नहीं होता और मनुष्य अविनाश के आधार है उसका नाश नहीं होता पर मूर्खतासे आपको नाशहोता मानते हैं और राग द्वेषसे संयुक्त है इस से चित्रके पुरुष सेभी तुच्छहै। मनोराज संकल्परूप देहभी इस देहसे श्रेष्ठ है क्योंकि, जो कुछ दुःख इसको होते हैं वे बड़े कालपर्यंत रहते हैं पर मनोराजका दुःख और संकल्प के आये से अभाव होजाता है इससे थोड़ा है। संकल्प देहसे भी स्थूल देह तुच्छ है। हे रामजी! जो थोड़े कालसे देह हुई है उस में दुःख भी थोड़ा है और जो दीर्घ संकल्परूपी देह है वह दीर्घ दुःख को ग्रहण करती है इससे महानीच है। हे रामजी! यह देहभी संकल्पमात्र है न सत्य है, न असत्य है; उसके भोग के निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं और क्लेश पाते हैं। देहअभिमान करके इसके सुख से वे सुखी होते हैं और दुःख से दुःखी होते हैं और इसके नष्टहुये आपको नष्ट हुआ मानते हैं। जैसे मनोराज के नाश हुये पुरुष और दूसरे चन्द्रमा के नाश हुये चन्द्रमाका नाश नहींहोता तैसेही इस देह के नाशहुये देही पुरुषका नाश नहीं होता जैसे संकल्प पुरुष के नाशहुये पुरुषका नाश नहीं होता और जैसे स्वप्नभ्रमके नाश हुये पुरुषका नाश नहीं होता,तैसेही देहके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता। जैसे घन धूपके कारण रेणुमें जल भासता है और भली प्रकार जा देखिये तब जलका अभाव होजाता है परन्तु देखनेवालेका अभाव नहीं होता; तैसेही संकल्पसे रचा विनाश रूप जो देहहै उसके नाशहुये तुम्हारा नाश तो नहीं होता। हे रामजी! दीर्घकाल का रचा जो स्वप्नमय देहहै उसके दुःख और नाश से आत्माको दुःख और नाश नहीं होता। चेतन आत्मसत्ता नाश नहीं होती और स्वरूपसे चलायमानभी नहींहोती; न विकारको प्राप्तहोती है; वहतो सर्वदा शुद्ध और अच्युतरूप अपने आपमें स्थित है और देहके नाशहुये उसका नाश नहीं होता। अज्ञानके दृढ़ अभ्यास से देह के धर्म अपने में भासने लगे हैं; जब आत्माका दृढ़ अभ्यासहो तो देहाभिमान और देहके धर्मोंका अभाव होजावे। जैसे कोई चक्रपर चढ़कर भ्रमताहै तो उतरने पर कुछ काल भ्रमता भासता है पर जब चिरकाल व्यतीत होताहै तब स्थित होजाताहै; इसी प्रकार देहरूपी चक्रको प्राप्तहुआ और अज्ञान से भ्रमाहुआ आपको भ्रमता देखताहै और जब अज्ञानका वेग निवृत्त होता है तब भी कोईकाल देहभ्रम भासता है जिससे जानताहै कि, मेरानाश होताहै, मुझको दुःखहोता है इत्यादिक। यह कल्पना अज्ञान से भासती है पर जब उस भ्रमदृष्टिको धैर्य्यसे निवृत्त करतेहैं तब अभावहोजाती है। हे रामजी! जैसे भ्रमसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में देह भासती है सो

असत्य और जड़है; न कर्म करतीहै और न मुक्तहोनेकी इच्छाकरती है। देवपरमात्मा भी कुछ नहीं करता; वह सदाशुद्ध, द्रष्टा और प्रकाशकहै। जैसे निर्वात दीप अपने आपमें स्थित होता है तैसेही तुमभी शुद्धस्वरूप अपने आपमें स्थितहो। जैसे सूर्य्य आकाशमें स्थित होता है पर सर्व जगत्को प्रकाश करता है और उसके आश्रय लोग चेष्टा करते हैं परन्तु सूर्य्य कुछ नहीं करता वह केवल सबका साक्षीभूतहै तैसेही आत्माके आश्रय देहादिक की चेष्टा होती है परन्तु आत्मा साक्षीरूपहै और पाप पुण्य से रहित है। हे रामजी! इस देहरूपी शून्यगृहमें अहंकाररूपी पिशाच कल्पितहै जैसे बालक परछाहीं में बेताल कल्पके भयपाता है तैसेही अहंकाररूपी पिशाच कल्पकर जीव भय पाता है। वह अहंकाररूपी पिशाच महानीच है और सर्व सन्तजनोंने निंद्य है। जब अहंकाररूपी बेताल निकले तब आनन्दहो। देहरूपी शून्यगृह में इसका निवासहै; जो पुरुष इसका टहलुआ होरहाहै उसको यह नरकमें लेजाताहै इससे तुम इसके टहलुआ न होना। जब इसके नाशका उपायकरोगे तब आनन्द पावोगे। हे रामजी! यह चित्तरूपी उन्मत्त बेताल जिसको स्पर्श करता है उसको अशुद्ध करताहै अर्थात् उसका धैर्य और निश्चय विपर्ययकरके उसे दुःख देताहै और निज स्वरूपसे गिरादेता है। जो बड़े२ साधु महन्तहैं वे भी इसके भयसे समाधिमें स्थित होतेहैं कि, किसी प्रकार अहंकारका अभावहो। हे रामजी! अहंकाररूपी पिशाच जिसको स्पर्श करता है उसको आपसा करलेता है। यह जैसे आप तुच्छहै तैसेही औरको भी तुच्छ करताहै। जहां सत्संग सत्शास्त्रका विचार और आत्मज्ञान का निवास नहीं होता उस शून्य और उजाड़रूपी देहमन्दिरमें यह रहता है और जो कोई ऐसे स्थान में प्रवेश करता है उसमें प्रवेश करजाता है। हे रामजी! जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है उसका धनसे कल्याण नहीं होता और न मित्र बान्धवसे कल्याण होताहै। अहंकार पिशाचसे मिलाहुआ जो कुछ क्रियाकर्म्म वह करताहै सो अपने नाशके निमित्त करता है और विषकी बेलिको उपजाता और बढ़ाताहै। हे रामजी! जो पुरुष विवेक और धैर्य्य से रहित है उसको अहंकाररूपी पिशाच शीघ्रही खाजाता है। वह सर्व्वरूप है और जिसको स्पर्शकरताहै उसको शवकर छोड़ताहै। जिसको अहंकाररूपी पिशाच लगा है वह नरकरूपी अग्निमें काष्ठकी नाईं जलेगा। अहंकाररूपी सर्प देहरूपी वृक्ष के छिद्रमें विषकोधारे बैठा है; उसके निकट जो जावेगा उसको मारडालेगा और जो अहंममभावको प्राप्तहोगा सो मृतकसमान होगा और जन्म मरण पावेगा। अहंकार रूपी पिशाच जिसको लगाहै उसे मलिन करताहै और स्वरूपसे गिराकर संसाररूपी गढ़े में डालता है और बड़ी आपदाको प्राप्त करता है। जितनी आपदाहैं उन्हें अहंकार प्राप्त करता है। बहुत वर्षपर्य्यंत भी उन आपदाओं का वर्णन न करसकेगा। हे

रामजी ! यह जो मलिन कल्पना उठती है कि, 'मैंहूं' 'मैंमरताहूं' 'मैंदग्धहोताहूं' 'मैंदुःखीहूं' 'मैंमनुष्यहूं' इत्यादि सो अहंकाररूपी पिशाचकी शक्तिहै। आत्मस्वरूप नित्यशुद्ध, चिदाकाश, सर्व्वगत, सच्चिदानन्द, जो सबका अपना आपहै पर अहंकारके वशसे जीव आपको परिच्छिन्न और अलेप दुःखी मानताहै। जैसे आकाश सर्वगत और अलेपहै, तैसेही आत्मा सबमें अलेपहै और सबसे असम्बन्धहै पर अहंकारके सम्बन्धसे रहित है। हे रामजी ! ग्रहण, त्याग, चलना, बैठना इत्यादिक जो कुछ क्रियाहै सो देहरूपी यन्त्र और वायुरूपी रस्सी से अहंकाररूपी यंत्रीकराताहै और आत्मा सदा निर्लेप सबका अधिष्ठानरूप कारणकार्यभावसे रहित है। जैसे वृक्षकी उँचाईका कारण आकाश निर्लेप है, तैसेही आत्मा सर्व चेष्टाकाकारण अधिष्ठान और निर्लेपहै जैसे आकाश और पृथ्वीका सम्बन्ध नहीं तैसेही आत्मा और अहंकारका सम्बन्ध नहीं है। चित्तको जो आप जानते हैं वे महामूर्खहैं। आत्मा प्रकाशरूप, नित्य और सर्वगत विभुहैं; चित्त मूर्ख जड़है और आवरण करताहै। हे रामजी ! आत्मा सर्वज्ञ और चेतनरूप है; चित्त मूढ़है और पत्थरवत् जड़ है, इसको दूरकरो इसका और तुम्हारा कुछ सम्बन्ध नहीं। तुम इस मोहसे तरो। देहरूपी शून्यगृह में चित्तरूपी वेतालका निवास है; जिसको वह अपने वश करता है उसको बान्धवभी नहीं छुड़ासक्ते और शास्त्रभी नहीं छुड़ासक्ते जिसका देहाभिमान क्षीण होगयाहै उसको गुरु और शास्त्रभी छुड़ासक्ता जैसे अल्पकीचड़से हरिणको निकाल लेते हैं तैसेही गुरु और शास्त्र निकाल लेते हैं। हे रामजी ! जितने देहरूपी शून्यमन्दिर हैं उन सबमें अहंकाररूपी पिशाच रहताहै, कोई देहरूपी गृह अहंकार पिशाच से खाली नहीं और भग से मिलाहुआ है। जैसे पिशाच अपवित्र स्थान में रहता है, पवित्र स्थान में नहीं रहता तैसेही जहां सन्तोष, विचार, अभ्यास, सत्सङ्ग से रहित देह है उस स्थान में अहंकार निवास करता है और जहां सन्तोष, विचार, अभ्यास और सत्संग होताहै तहांसे मिटजाताहै। जितने शरीररूपी श्मशानहैं वे चित्तरूपी वेतालसे पूर्ण हैं और अपरिमित मोहरूपी वेतालके वश जगत्रूपी महावन में मोहको प्राप्त होते हैं। जैसे बालक मोह पाता है। हे रामजी ! तुम आपसे अपना उद्धारकरो और सत्य विचारकरके धैर्य्यको प्राप्तहो। इस जगत्रूपी पुरातन वन में जीवरूपी मृग विचरते हैं और भोगरूपी तृण का आश्रय करते हैं पर वे भोगरूपी तृण देखने में तो सुन्दर भासते हैं परन्तु उनके नीचेगढ़ाहै। जैसे हरियाली और तृणसे ढपाहुआ गढ़ा देखके मृगके बालक भोजन करने लगते हैं और गढ़े में गिरपड़ते हैं तैसेही जीवरूपी मृग भोगोंको रमणीय जानकर भोगने लगते हैं और उनकी तृष्णासे नरक आदिक जन्मों में गिरते और अग्निमें जलते हैं, हे रामजी ! तुम ऐसे न होना। जो कोई भोगकी तृष्णाकरेगा वह नरकरूपी गढ़े में

गिरेगा, इससे तुम मृगमतिको त्यागकर सिंहवृत्तिकोधारो। मोहरूपी हाथी को सिंह होकर अपने नखों से विदारणकरो और भोगकी तृष्णासे रहितहो। भोगकी तृष्णावाले जीव जम्बूद्वीपरूपी जंगलमें मृगकी नाईं भटकते हैं—उन्होंकी नाईं तुम न विचरना। हे रामजी! स्त्री जो रमणीय भासती हैं उनका स्पर्श अल्पकालही शीतल और सुखदायक भासता है परन्तु कीचड़की नाईं है। जैसे कीचड़का लेप भी शीतल भासताहै परन्तु तुच्छहै। जैसे हाथी दलदलमें फँसाहुआ निकल नहींसक्ता, तैसेही यह भोगरूपी दलदलमें फँसाहुआ नहीं निकलसक्ता। इसमें तुम संतकी वृत्तिको ग्रहणकरो। ग्रहण करना किसको कहतेहैं और त्याग किसका नाम है ऐसे विचारसे असत् वृत्तिको त्यागकरो और आत्मतत्त्व का आश्रय करो। हे रामजी! यह अपवित्र देह अस्थि, मांस, रुधिरसे पूर्णहै और तुच्छहै और इसका दुष्ट आचारहै। देहके निमित्त भोगकी इच्छा करने से कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता। देह औरने रची है, चेष्टा औरसे करती है; औरने इसमें प्रवेश कियाहै; दुःखको और ग्रहण करता है जो दुःखका भागी होताहै। संकल्पने देह रची है, प्राणसे चेष्टा करताहै, अहंकार पिशाच ने इसमें प्रवेश कियाहै और गर्जता है; मन की वृत्ति सुख दुःखको ग्रहण करती है और जीव दुःखी होता है। इससे आश्चर्य्य है। हे रामजी! परमार्थ सत्ता एक है और सर्व्व समान है। रसमें भिन्न सत्ता नहीं। जैसे पत्थर घनजड़ होताहै, और उसमें और कुछ नहीं फुरता तैसेही सत्तामात्र से भिन्न द्वैतसत्ता किसी पदार्थ की नहीं। जैसे पत्थर घनरूप है तैसेही परमात्मा घनरूप है और जड़ चेतन भिन्न कोई नहीं यह मिथ्या संकल्पकी रचना है। जैसे बालकको परछाहीं में वेताल भासताहै तैसेही सब कल्पना मनकी है जैसे एक पौंड़े के रससे गुड़, शक्कर इत्यादि होती हैं तैसेही एक परमोत्तम सत्तासमान सर्व है उसमें जड़ चेतनकी कल्पना मिथ्याहै। जबतक सम्यग्दृष्टि नहीं प्राप्तहुई तब तक जड़ चेतनकी दृष्टिहोती है और जब यथार्थदृष्टि प्राप्तहोती है तब भेदकल्पना सब मिटजाती है। जैसे सीपी में रूपा भासता है सो न सत्यहोताहै और न असत्यहोताहै, तैसेही आत्मामें जड़, चेतन, सत्य, असत्य विलक्षण कल्पनाहै। हे रामजी! जो सत्यहै सो असत्य नहीं होता और जो असत्यहै सो सत्य नहीं होता। आत्मा सदा सत्यरूप अपने आपमें स्थितहै और उसमें द्वैत और एकका अभावहै। जैसे पत्थर में अन्य सत्ताका अभाव है तैसेही आत्मामें द्वैतसत्ता का अभाव है। नानारूप भासता है तौ भी द्वैत कुछ नहीं सदा अनुभवरूप है और उसमें विभाग कल्पना कुछ नहीं—सदा अद्वैतरूप है भेदकल्पना चित्तसे भासती है; जब चित्तका अभाव होता है तब जड़ चेतनकी कल्पना मिटजाती है जैसे बंध्याके पुत्र और आकाश में वृक्षका अभाव है तैसेही आत्मामें कल्पना का अभावहै। हे रामजी! यह चेतनहै, यहजड़ है, यह उप-

जता है, यह मिटजाता है इत्यादिक कल्पना सब मिथ्या हैं । जैसे रस्सी में सर्प मिथ्या है तैसेही केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मा में कल्पना मिथ्या है गुरु और शास्त्र भी जो आत्माको चेतन कहते हैं और अनात्मा को जड़ कहते हैं वह भी बोधके निमित्त कहते हैं और दृष्टान्त युक्त से दृश्यको आत्मस्वरूप में स्थिति करते हैं । जब स्वरूपमें दृढ़ स्थितिहोगी तब जड़ चेतन की भेद कल्पना जाती रहेगी केवल अचैत्य चिन्मात्र सत्ता भासेगी जो तत्त्व है । इसप्रकार गुरु जड़ चेतन के विभाग का उपदेश करते हैं तो भी मूर्ख नहीं ग्रहण करसक्ते तो जब प्रथमही अचैत्य-चिन्मात्र-अवाच्य पदका उपदेश करें तब कैसे ग्रहणकरें । हे रामजी ! और आश्चर्य देखो कि, चित्त और है, इन्द्रिय और है, देह और है, देहकाकर्त्ता कोई दृष्टि नहींआता और अहङ्कार से वेष्टितकी है । यह जीव ऐसा मूर्ख है कि, देहको अपना आप जानताहै और दुःख पाताहै पर जो विचारवान् पुरुष आत्मपद में स्थितहुये हैं उन महानुभावों को कोई क्रिया दुःख बन्धन नहीं करसक्ती । जैसे मंत्र जाननेवाले को सर्प दुःख नहीं देसक्ता तैसेही, ज्ञानवान् को कर्म बन्धन नहीं करते । हे रामजी ! न तुम शीशहो, न नेत्रहो, न रक्तहो, न मांसहो, न अस्थि आदिकहो, न मनहो और न भूतजात हो; तुम चित्त से रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप हो इसीलिये शरीर से ममता त्यागकर नित्यशुद्ध और सर्वगत आत्मस्वरूप में स्थितहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्व्वाणप्रकरणेदेहसत्ताविचारो नामपंचविंशतितमस्सर्गः २५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसी दृष्टिका ऐसा आश्रयकरो और भेद कष्टदृष्टि का त्याग और नाशकरो । जब कष्टदृष्टि नष्ट होगी तब ऐसा आत्मानन्द प्रकट होगा जिस आनन्द के पायेसे अष्टसिद्धिका ऐश्वर्यभी अनिष्ट जानकर त्यागोगे । अब और दृष्टि सुनो जो महामोहका नाश करती है और जो आत्मपद पाना कठिन है उसे सुखसे प्राप्त करती है जिसका नाश कदाचित् नहीं होता । यह दृष्टि दुःख से रहित आनन्द रूप शिवजी से मैंने सुनी है जो पूर्वकाल में कैलासकी कन्दरामें संसार दुःख की शान्ति के लिये अर्द्धचन्द्रधार सदाशिव ने मुझसे कही थी । हे रामजी ! महाचन्द्रमाकी नाईं शीतल और प्रकाशमान हिमालय पर्व्वत का एक शिखर कैलास पर्व्वत है जहां गौरी के रमणीय स्थान और मन्दिर हैं और गङ्गाका प्रवाह झरनों से चलता है, पक्षी शब्द करते और मन्द २ सुखदायक पवन चलता है । कुबेर के मोर वहां विचरते हैं, कल्पवृक्ष लगे हुये हैं और महाउज्ज्वल, शीतल, सुन्दर कन्दरा पर मन्दार और तमाल वृक्ष लगेहुये हैं जिनमें ऐसे फूल लगे हैं मानो श्वेत मेघ हैं । वहां गन्धर्व और किन्नर आते और गान करते हैं और देवताओं

के रमणीय सुन्दर स्थान हैं। उस पर्वत पर सदाशिव त्रिनेत्र हाथ में त्रिशूल लिये और गणों से वेष्टित अर्द्धाङ्ग में भगवती को लिये विराजते हैं। ऐसे सर्व लोकों के कारण ईश्वर जिन्हों ने कामदेवका गर्व नाश किया और षट्मुख सहित स्वामिकार्त्तिक जिनके पास बैठे हैं और महाभयानक शून्य श्मशानों में जिनका निवास है उस देवकी मैंने पूजाकी और महापुण्यवान् एक कुटी बनाकर एक कमण्डलु और फूल और माला पूजन के निमित्त रक्खे यथाशास्त्र पुण्यक्रिया से उसमें तप करने लगा। जलपान करूं, फल भोजन करूं, विद्यार्थी जो साथ थे उनको पढ़ाऊं और शास्त्र का अर्थ विचारूं। ब्रह्मविद्या के पुस्तक का समूह आगे था और मृग और उनके बालक विचरते थे इसप्रकार वेद का पढ़ना, ब्रह्मविद्याको विचारना और शास्त्र अनुसार तप करना इन गुणों से कैलास वन कुंजमें हम विश्राम करते थे। निदान श्रावणबदी अष्टमी की अर्द्धरात्रिसे जब मैं समाधि से उतरा तो क्या देखता हूं कि, दशोदिशा काष्ठवत् मौन और शान्तरूप हैं; महातम घिरा है और मन्दमन्द पवन चलता है और उसके कनके गिरते हैं-मानो पवन हँसी करता है। उसीसमय महाशीतल अमृतरूपी किरणों से चन्द्रमा प्रकाशितहो ओषधियों को रससे पुष्टकरने लगा, चन्द्रमुखी कमल खिल आये; चकोर अमृतकी किरणोंको पानकर मानो चन्द्रमा रूपहोगये; प्रातःकाल के तारोंकी नाईं मणी ऊपर आन पड़नेलगीं और सप्तर्षि शिर पर स्थित हुये-मानो मेरे तपको देखने आये हैं। सप्तर्षियों में पिछले जो तीन तारे हैं उनके मध्य में मेरा मन्दिर है वहां मैं सदाविराजताहूं। चन्द्रमा से सब स्थान शीतल होगये और पवन से फूल गिरने लगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठाश्रमवर्णनंनाम षड्विंशतितमस्सर्गः २६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब मुझको तेजका प्रकाश दृष्टि आनेलगा। जैसे मन्दराचल पर्व्वत के पायेसे क्षीरसमुद्र उछल आताहै। मानो हिमालय पर्व्वत मूर्ति धरकर स्थित है। मानो माखनका पहाड़ पिण्ड स्थित हुआ है व सब शंखोंकी स्पष्टता स्थित हुई है वा मोतीका समूह इकट्ठा होकर उड़ने लगा है। महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टिआनेलगा मानो गंगाका प्रवाह उछलने लगा है। उस प्रकाशकी शीतलताने सब दिशा और तट पूर्ण करलिये और मैं देखकर आश्चर्यवान् हुआ कि, क्या अकाल ही प्रलय होने लगा। तब मैं बोधदृष्टि से मन में विचारने लगा कि, यह क्याहै और देखा कि, देवताओं के गुरु ईश्वर सदाशिव चन्द्रकलाको धारेहुये और गौरी भगवती का हाथ ग्रहण किये गणों के समूह से वेष्टित चले आते हैं उनके कानोंमें सर्प पड़े थे, कण्ठ में रुण्डों की मालाथी शीशपर जटाथी और उनपर कदम्ब वृक्ष और तमाल

वृक्षके फूल पड़ेहुये थे। उनको प्रथम मैंने मनसे देखा; मनही से मन्दार वृक्षके पुष्प लेकर अर्घ्यपाद्य किया; मनहीसे प्रणाम किया और मनही से प्रदक्षिणा कर अपने आसनसे उठ खड़ाहुआ फिर अपने शिष्यको जगा अर्घ्यपाद्य लेकर चला और त्रिनेत्र शिवजीको पुष्पअंजली दे और प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया; तब चन्द्रधारी ने मुझको कृपादृष्टि से देखा और सुन्दर मधुर वाणी से कहा; हे ब्राह्मण! अर्घ्यपाद्य लेआवो; हम तेरे आश्रम में अतिथि आये हैं। हे निष्पाप! तुझको कल्याण तो है? तू मुझको महाशान्तरूप भासता है और महासुन्दर उज्ज्वल तपकी लक्ष्मी से तू शोभित है। चलो हम तुम्हारे आश्रम को चलैं। हे रामजी! फूलोंसे आच्छादित स्थान में सदाशिव बैठेथे सो ऐसे कहकर उठ खड़ेहुये और अपने गणोंसहित मेरी कुटीमें आये। वहां मैंने पुष्प और अर्घ्य से उनके चरणों की पूजा करके फिर हाथों की पूजाकी और इसी प्रकार चरणों से लेकर शीशपर्यंत सब अङ्गों की पूजा की। फिर गौरी भगवती का पूजन करके उनकी सखियों और शिवके गणोंको पूजा। हे रामजी! इसप्रकार भक्तिपूर्वक जब मैं पार्वती परमेश्वर का पूजन करचुका तब शशिकला के धारी शिवजीने शीतल वाणीसे मुझसे कहा कि, हे ब्राह्मण! नाना प्रकार की चिन्तनेवाली जो चित्तवृत्ति है सो तेरे स्वरूप में विश्रांति को प्राप्त हुई है और तेरी संवित् आत्मपद में स्थित हुई है। तुम्हारे शिष्यको कल्याण तो है और तुम्हारे पास जो हरिण विचरते हैं वे भी सुखसे हैं? मन्दार वृक्ष तुमको पूजाके निमित्त फूल फल भली प्रकार देते हैं और गङ्गाजी तुमको भली प्रकार स्नान कराती हैं? देहके इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें तुम खेदवान् तो नहींहोते? इस पर्वतमें कुबेरके अनुचर यक्ष और राक्षस जो रहते हैं वे तुमको दुःखतो नहींदेते और मेरेगण जो चक्षु निशाचर हैं वे तो तुमको कष्ट नहीं देते? हे रघुनन्दन! इस प्रकार जब देवेशने मुझसे वांछित प्रश्न किये तब मैंने उनसे कहा; हे कल्याणरूप महेश्वर! जो तुमको सदा स्मरण करतेहैं उनको इसलोकमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो पाना कठिनहो और उनको भयभी किसी का नहीं। जिनका चित्त तुम्हारे स्मरणके आनन्द में सर्व ओरसे पूर्ण हुआहै वे जगतमें दीन नहीं होते। वही देश और उन्हीं जनोंके चरण और वही दिशा पर्वत वन्दना करने योग्यहैं जहां एकान्तबुद्धि बैठकर तुम्हारा स्मरण होताहै। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण पूर्वपुण्यरूपी वृक्षका फल है और वर्त्तमान कर्मों से सिंचता है। तुम मनके परममित्रहो, तुम्हारा स्मरण सर्व आपदा का हरनेवाला है और सर्व सम्पदारूपी लताको बढ़ानेवाला वसन्तऋतु है। हे प्रभो! बड़ी महिमा और बड़ेसे बड़े कर्मों के कारणका कारण तुम्हारा स्मरण है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण विवेकरूपी समुद्र में परमार्थरूपी रत्न है, ज्ञानरूपी तमका नाशकर्ता सूर्यका समूह है, ज्ञान अमृतका कलश

धैर्य्यरूपी चांदनीका चन्द्रमा और मोक्षका द्वारहै। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण अपूर्वरूपी उत्तम दीपकहै और चित्तका मण्डप जो संसार है उस सबको प्रकाशताहै। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण उदार चिन्तामणि की नाईं सर्व आपदा को निवृत्त करनेवाला और बड़े उत्तमपद को देनेवाला है। हे प्रभो! तुम्हारा स्मरण एकक्षण भी चित्त में स्थित हो तो सर्वदुःख और भय नाश करताहै और वरदायकहै। उसके बल मैंभी तुम्हारे नाईं सुखसे बसताहूं। बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनीश्वरने कहा तब दिनका अन्तहुआ; सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थानों को गई और सूर्य्यकी किरणोंके साथ फिर सब अपने २ आसनपर आ बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरुद्रवशिष्ठसमागमो नामसप्तविंशतितमस्सर्गः २७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार कहा तब गौरी भगवती जगत् माता जैसे माता पुत्रसे कहे मुझसे बोलीं; हे वशिष्ठजी! अरुन्धती जो पतिव्रताओं में मुख्य है वह कहां है? उसको लेआवो वह मेरी प्यारी सखी है उससे मैं कथा वार्त्ता करूंगी। हे रामजी! इस प्रकार जब मुझसे पार्वती ने कहा तब मैं शीघ्रही जाकर अरुन्धती को लेआया और वे दोनों परस्पर कथा वार्त्ता करनेलगीं। मैंने विचारा कि, मुझको ईश्वर मिले हैं और पूंछने का अवसर भी पाया है इससे सर्व्व ज्ञानके समुद्रसे पूंछकर संदेह दूरकरूं। हे रामजी! ऐसे विचार करके मैंने गौरीशसे पूंछा और जो कुछ चन्द्रकलाधारीने मुझसे कहा है वह तुझसे कहताहूं। मैंने पूंछा हे भगवन्! भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालके ईश्वर और सब कारणों के कारण तुम्हारे प्रसादसे मैं कुछ पूंछनेको समर्थ हुआहूं। हे महादेव! जो कुछ मैं पूंछता हूं उसे प्रसन्नबुद्धितत्त्वसे उद्वेगको त्यागकर शीघ्रही कहो। हे सर्व्व पापोंके नाश करने और सर्व्व कल्याण के वृद्ध करनेवाले! देव अर्चनका विधान मुझसे कहो। ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! जो उत्तम देव अर्चन है और जिसके किये से संसारसमुद्र से तरजाइये सो सुनो। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! पुण्डरीकाक्ष जो विष्णु हैं सो देव नहीं और त्रिलोचन जो शिव हैं सो भी देव नहीं, कमल से उपजा ब्रह्मा है सोभी देव नहीं और सहस्रनेत्र इन्द्रभी देव नहीं, न देव पवन है, न सूर्य्य है, न अग्नि है, न चन्द्रमा है, न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय हैं, न तुमहो, न मैंहूं, न देहहै, न चित्तहै और न कलनारूप है, अकृत्रिम, अनादि, अनन्त और संवित्‌रूप देव कहाता है। आकारादिक परिच्छिन्नरूपहैं सो वास्तव में कुछ नहीं। एक अकृत्रिम, अनादि, अनन्त, चेतनरूप देवहै सो देव शब्द से कहाता है और उसीका पूजन पूजन है। उस देवको जिससे यह सब हुआ है और जो सत्ता-शान्त-आत्मरूप है उसको सब ठौर में

देखना यही उसका पूजन है पर जो उस संवित् तत्त्वों को नहीं जानते उनको आकार की अर्चना कही है । जैसे जो पुरुष योजन पर्यन्त नहीं चलसक्ता उसको एककोस दो कोसका चलना भी भलाहै; तैसेही जो पुरुष अकृत्रिमदेवकी पूजा नहीं करसक्ता उसको आकार का पूजना भी भला है । हे ब्राह्मण ! जिसकी भावना कोई करताहै उसके फलको उसी अनुसार भोगता है । जो परिच्छिन्न की उपासना करता है उसको फलभी परिच्छिन्न प्राप्त होताहै और जो अकृत्रिम, आनन्द अनन्तदेवकी उपासना करता है उसको वही परमात्मरूपी फल प्राप्त होता है । हे साधु ! अकृत्रिम फल को त्याग कर जो कृत्रिम को चाहते हैं वे ऐसेहैं जैसे कोई मन्दारवृक्ष के वनको त्याग कर कंजके वनको प्राप्तहो । वह देव कैसा है, उसकी पूजा क्या है और क्योंकर होती है सो सुनो । बोध, साम्य और सम ये तीन फूल हैं । बोध सम्यक्ज्ञान का नाम है; अर्थात् आत्मतत्त्वको ज्यों का त्यों जाना; साम्य सब में पूर्ण देखने को कहते हैं और समका अर्थ यह है कि, चित्तको निवृत्त करना और आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ न फुरना इन्हीं; तीनों फूलों से शिव चिन्मात्र शुद्ध देवकी पूजा होती है और आकार अर्चनसे अर्चा नहीं होती आत्मसंवित् जो चिन्मात्र है उसको त्यागकर और जड़ की जो अर्चना करते हैं वे चिरपर्यंत क्लेशके भागी होतेहैं । हे ब्राह्मण ! जो ज्ञानज्ञेय पुरुष हैं वे आत्मध्यानसे भिन्न पूजन अर्चन को बालक की क्रीड़ावत् मानते हैं । आत्मा भगवान् एक देव है सोही शिव है और परमकारणरूप है; उसका सर्वदाही ज्ञान अर्चन से पूजन है और कोई पूजा नहीं है । चेतन, आकाश और अवयवस्वभाव एक आत्मदेव को जान पूज्य पूजक और पूजा त्रिपुटी से आत्मदेवकी पूजा नहीं होती मैंने पूँछा, हे भगवन् ! चेतन आकाशमात्र आत्मा को जैसे जगत् और चेतन को जीव कहते हैं सो कहो । ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! चेतन आकाश प्रसिद्ध है जो सर्व प्रकृतिसे रहित है और जो महाकल्पमें शेष रहता है वह आपही किंचनरूप होता है उस किंचनसे यह जगत् होता है । जैसे स्वप्ने में चिदात्माही सर्वगत जगत्रूप होकर भासता है तैसेही जाग्रत् जगत् भी चिदाकाशरूप है । आदि सर्गसे लेकर इस काल पर्य्यन्त आत्मासे भिन्नका अभाव है । जैसे स्वप्ने में जो जगत् भासता है सो भी सब चिदाकाशरूप है भिन्न कल्पना कोई नहीं । चिन्मात्रही पहाड़रूप है; चिन्मात्रही जगत् है; चिन्मात्रही आकाश है; चिन्मात्रही सब जीवहैं; और चिन्मात्रही सब भूत हैं; चिन्मात्रसे भिन्न कुछ नहीं । सृष्टि के आदिसे अन्तपर्य्यंत जो कुछ द्वैत कल्पना भासती है सो भ्रममात्र है । जैसे स्वप्ने में कोई किसी के अंग काटे सो काटता तो नहीं निद्रा दोष से ऐसे भासता है; तैसेही यह जाग्रत्जगत् भी भ्रम मात्र है । हे मुनीश्वर ! आकाश परमाकाश और ब्रह्माकाश तीनों एकही के पर्याय हैं—जैसे

स्वप्नमें संकल्प के माया से अनुभव होता है सो सब चिदाकाश है; तैसेही यह जाग्रत्जगत् चिदाकाशरूप है और जैसे स्वप्नपुर आकाश से कुछ भिन्न नहीं होता, तैसेही जाग्रत्स्वप्ना भी आत्मतत्त्व होकर भासता है आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं। हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्नमें चिदाकाशही घट पट आदिक होकर भासता है, तैसेही स्थित प्रलयादि जगत् चिदात्मा से कुछ भिन्न नहीं आत्माही ऐसे भासता है। जैसे शुद्ध संवित्मात्र से भिन्न स्वप्नमें नगर नहीं पायाजाता तैसेही जाग्रत् में अनुभव से भिन्न कुछ नहीं पाते। हे मुनीश्वर! जगत् तीनोंकाल भाव अभावरूप पदार्थ भासता है सो सब चिदाकाशरूप है—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। हे मुनीश्वर! यह देव मैंने तुमको परमार्थ से कहा है। तुममें और सर्वभूत जाति जगत् में सर्वका जो देव है सो चिदाकाश परमात्मा है—उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे सङ्कल्पपुर में चिदाकाशही शरीररूप हो भासता है उससे कुछ भिन्न नहीं बना तैसेही यह सब चिदाकाशरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्याने जगत् परमात्मरूप वर्णनन्नामअष्टाविंशतितमस्सर्गः २८॥

ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! इस प्रकार यह सर्वविश्व केवल परमात्मारूपहै। परमात्माकाश ब्रह्मही एक देव कहाताहै; उसही का पूजन सारहै और उसही से सब फल प्राप्त होते हैं। वह देव सर्वज्ञहै और सब उसमें स्थित हैं। वह अकृत्रिमदेव अज, परमानन्द और अखण्डरूप है; उसको साधन करके पानाचाहिये जिससे परमसुख प्राप्त होताहै। हे मुनीश्वर! तू जागाहुआहै इस कारण मैंने तुझसे इस प्रकारकी देवअर्चना कही है पर जो असम्यक्दर्शी बालकहैं, जिनको निश्चयात्मक बुद्धि नहीं प्राप्तहुई उनको धूप, दीप, पुष्पकर्म आदिक अर्चनाही कहीहै और आकार कल्पितकरके देवकी मिथ्या कल्पनाकीहै। हे मुनीश्वर! अपने संकल्प से जो देव बनाते हैं और उसको पुष्प, धूप, दीपादिकसे पूजते हैं सो भावना मात्रहै उससे उनको संकल्परचित फलकी प्राप्ति होती है यह बालक बुद्धिकी अर्चनाहै। तुम सारिखेकी यही पूजा है जो तुम से सर्वआत्म भावनासे कही है। हे मुनीश्वर! हमारे मत में तो और देव कोई नहीं; एक परमात्मा देवही तीनों भुवनमें है। वहीदेव शिव है और सर्व पदसे अतीत है। वह सर्व संकल्पों से उल्लंघन वर्त्तता है और सर्वसंकल्पोंका अधिष्ठान भी वही है। देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से वह रहित है और सर्वप्रकार शांतरूप एक चिन्मात्रनिर्मल स्वरूप है। वही देव कहाता है हे मुनीश्वर! जो संवित्सत्ता पंचभूतकलासे अतीत और सर्व भावके भीतर स्थित है वही सबको सत्ता देनेवाला देव है और सबकी सत्ता हरनेवाला भी वही है। हे ब्राह्मण! जो ब्रह्मसत्य—असत्यके मध्य और सत्य—असत्यके पर कहाता है वही देव परमात्मा है। परमस्वतः सत्तास्वभावसे जो सबको

प्राप्तहुआ है और महाचित्त कहाता है सो परमात्म देवसत्ता है जैसे सब वृक्षोंकी लताके भीतर रसस्थितहै तैसेही सत्तासमानरूपसे परमचेतन आत्मा सर्व ओर स्थित है जो चेतनतत्त्व अरुन्धती का है और जो चेतनतत्त्व तुझ निष्पाप का और पार्वती का है वही चेतनतत्त्व मेरा है और वही चेतनतत्त्व त्रिलोकी मात्रका है सोई देव है और देवकोईनहीं । हाथपांव संयुक्त जो देव कल्पते हैं वह चिन्मात्र सारनहीं; चिन्मात्रही सर्व्व जगत्का सारभूतहै और वही अर्चना करने योग्य है, उससे सर्व फलोंकी प्राप्ति होती है वह देव कहीं दूरनहीं और किसी प्रकार किसीको प्राप्त होना भी कठिन नहीं । जो सबकी देहमें स्थित और सबका आत्माहै सो दूर कैसे हो और कठिनता से कैसे प्राप्तहो । सब क्रिया वही करता है, भोजन, भरण और पोषण वही करताहै, वही श्वास लेताहै और सबका ज्ञाताभी वही है जो पुर्यष्टकामें प्रतिबिम्बितहोकर प्रकाशता है जैसे पर्वतपर जो चर अचरकी चेष्टाहोती है और चलते, बैठते और स्थित होते हैं सो सबका आधारभूत पर्व्वत है; तैसेही मन सहित षट् इन्द्रियों की चेष्टा आत्मा के आश्रय होती है । उसी की संज्ञा व्यवहार के निमित्त तत्त्ववेत्ताओंने देवकल्पी है । एकदेव, चिन्मात्र, सूक्ष्म, सर्वव्यापी, निरंजन, आत्मा, ब्रह्म इत्यादिक नाम ज्ञानवानों ने शास्त्र बुद्धि उपदेश व्यवहार के निमित्त रक्खे हैं । हे मुनीश्वर ! जो कुछ विस्तार सहित जगत् भासता है सबका वह प्रकाशक है और सबसे रहित है, नित्य, शुद्ध और अद्वैतरूप है और सब जगत् में अनुस्यूत है । जैसे वसंतऋतु में नानाप्रकार के फूल और वृक्ष भासते हैं पर सबमें एकहीरस व्यापार है जो अनेक रूप हो भासता है; तैसेही एकही आत्मसत्ता अनेकरूप होकर भासती है । हे मुनीश्वर ! जो कुछ जगत् है सो सब आत्माका चमत्कार है और आत्मतत्त्वमेंही स्थित है; कहीं आकाश, कहीं जीव, कहीं चित्त और कहीं अहंकाररूप है; कहीं दिशारूप कहीं द्रव्य, कहीं भाव विकार, कहीं तम,कहीं प्रकाश और कहीं सूर्य्य पृथ्वी जल अग्नि वायु आदिकस्थावर-जंगमरूप होकर स्थित है । जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे होते हैं तैसेही एक परमात्मादेव में त्रिलोकी है । हे मुनीश्वर ! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक सब एक देवमें बहते हैं । जैसे जलमें तृण बहते हैं, तैसेही परमात्मा में जीव बहतेहैं वही चेतनतत्त्व चतुर्भुज होकर दैत्योंका नाश करताहै जैसे जल मेघरूप होकर धूपको रोकता है-और वही चेतनतत्त्व त्रिनेत्र मस्तकपर चन्द्रधारे और वृषभपर आरूढ़ पार्वतीरूपी कमलिनी के मुखका भँवरा रुद्र होकर स्थित होताहै । वही चेतना विष्णुरूपसत्ता है, जिसके नाभिकमल से ब्रह्मा त्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनी की लता बड़ीहोकर स्थित हुआहै । हे मुनीश्वर ! इस प्रकार एकही चेतनतत्त्व अनेकरूपहोकर स्थित हुआ है जैसे एकही रस अनेकरूप होकर स्थित होता है और जैसे एकही

सुवर्ण अनेकभूषणरूप होकर स्थित होताहै, तैसेही एकही चेतन अनेकरूप होके स्थित होताहै। इससे सर्व देह एकचेतन तत्त्व के है। जैसे एकवृक्ष के अनेकपत्र होते हैं तैसेही एकही चेतन के सर्व देहहैं। वही चेतन मस्तकपर चूड़ामणि धारनेवाले त्रिलोकपति इन्द्र होकर स्थित हुआ है। देवतारूप होकर वही स्थितहुआ है और दैत्यरूप होकर भी वही स्थित है और मरने और उपजने का रूप भी वही धारता है। जैसे एक समुद्र में तरंग के समूह उपजते और मिट जातेहैं सो जल जलरूपही है तैसेही उपजना और विनशना चेतन में होताहै वह चेतनरूप परमात्मा एकही वस्तु है। हे मुनीश्वर! चेतनरूपी आदर्श में जगत्रूपी प्रतिबिम्ब होता है और अपनी रचीहुई वस्तु को आपही ग्रहणकरके अपने में धारता है। जैसे गर्भिणी स्त्री अपने गर्भ को धारती है तैसेही चेतनतत्त्व जगत् प्रतिबिम्बको धारता है। हे मुनीश्वर! सर्व क्रिया उसी देवसे सिद्ध होती हैं और सूर्य्यादिक प्रकाशरूपी उसीसे प्रकाशते हैं और उसीसे प्रफुल्लित होते हैं। जैसे नील और रक्तकमल सूर्य्य से प्रफुल्लित होते हैं तैसेही आत्मासे अन्धकार और प्रकाश दोनों सिद्धहोते हैं। हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी धूड़ चेतनरूपी वायुसे उड़ती है। जो कुछ जगत् के आरम्भ हैं उन सबको चेतनरूपी दीपक प्रकाश करताहै। जैसे जलके सींचने से बेल प्रफुल्लित होती है और फूल फल उत्पन्न करती है, तैसेही चेतनसत्ता सब पदार्थों को प्रकट करती है और सबको सत्तादेकर सिद्ध करती है। हे मुनीश्वर! चेतनही से जड़की सिद्धता और चेतनही से जड़का अभाव होताहै जैसे प्रकाशही से अन्धकार सिद्धहोता है और प्रकाशही से अन्धकार का अभाव होता है तैसेही सबदेह चेतन से सिद्धहोते हैं और चेतनही से देहों का अभाव होता है। चेतनभी उसीसे होताहै और शिवजी भी उसीसे होतेहैं। हे मुनीश्वर! ऐसापदार्थ कोईनहीं जो चेतन विना सिद्धहो; जो कोई पदार्थ है सो आत्माही से सिद्ध होताहै। हे मुनीश्वर! शरीररूपी सुन्दर वृक्ष बड़ीऊंची डालों सहित है परन्तु चेतनरूपी मंजरी विना नहीं शोभता। जैसे रस विना वृक्ष नहीं शोभता तैसेही चेतनविना शरीर नहीं शोभता। बढ़ना, घटना आदिक जो विकारहैं वहएक आत्मासे सिद्ध होते हैं यह जगत् सब चेतनरूप है और चेतन मात्रही अपने आप में स्थितहै इतना कह वशिष्ठजी बोले। हे रामजी! जब इस प्रकार अमृतरूपी वाणी से त्रिनेत्र ने मुझसे कहा तब मैंने अमृतरूपी भलीप्रकार वाणी से पूंछा हे देव! जब सर्वजगत् चेतनदेव व्यापकरूप स्थित है और चेतनही बड़े विस्तार को प्राप्त भया है तब यह प्रथम चेतन था अब यह चेतनता से रहित है इस कल्पनाका सब लोकों में प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होता है, ईश्वर बोले। हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! यह महाप्रश्न तैंने किया है उसका उत्तर सुन इस शरीर में

दो चेतन स्थितहैं एक चैतन्योन्मुखत्व रूपहै और दूसरा निर्विकल्प आत्मा । जो चेतन चैतन्योन्मुखत्व दृश्य से मिला हुआ है सो जीव संकल्प के फुरने से अन्य की नाईं होगया है पर वास्तव में और कुछ नहीं हुआ केवल दृश्य संकल्प के अनुभवको ग्रहण करने से जीवरूपहुआ है । जैसे स्त्री अपने शीलधर्मको त्यागकर दुराचारिणी होजाती है तो उसकी शीलता जाती रहती है परन्तु स्त्री का स्वरूप नहीं जाता तैसेही चैतन्योन्मुखत्व से अनुभवरूपी जीवरूप होजाता है परन्तु चेतनस्वरूप का त्याग नहीं करता । जैसे संकल्पके वश से पुरुष एक क्षण में और रूप होजाता है तैसेही चित्तसत्ता फुरने भाव से अन्यरूप होजाती है । हे मुनीश्वर! आदि में चित्त स्पंद चित्तकलामें हुआहै, तब शब्दके चेतने से आकाशहुआ; फिर स्पर्श तन्मात्राका चेतनाहुआ तब वायु प्रकट हुये; इसीप्रकार पांचोंतन्मात्रा के फुरनेसे पंचतत्त्व हुये । फिर देशआदिक का विभाग हुआ उस में जीव प्रतिबिम्बित हुआ; फिर निश्चय वृत्ति हुई उसका नाम बुद्धिहुआ; फिर अहंवृत्ति फुरी उसका नाम अहंकार हुआ; फिर संकल्प विकल्प वृत्तिफुरी उसका नाम मनहुआ; चिंवनासे चित्तहुआ; फिर संसारकी भावना हुई तब संसारका अनुभव हुआ और अभ्यासके वश से संसार भासनेलगा जैसे विपर्यय भावना करके ब्राह्मण आपको चाण्डालजाने; तैसेही भावनाके विपर्यय होनेसे वही चेतन आपको जीव मानने लगा है; संकल्पकी जड़ता से चेतनरूपी जीवको ग्रहणकर संकल्पमें वर्त्तता है और अनन्त संकल्पों से जड़ता तीव्रताको प्राप्तहोकर जड़भाव को ग्रहणकर देहभावको प्राप्तहोताहै । जैसे जलदृढ़ जड़ता से बरफ रूप होजाता है तैसेही चेतन जब अनन्त संकल्पों से जड़देहभावको प्राप्तहोता है तब चित्त मन मोहित हुआ जड़ताका आश्रय करके संसार में जन्मलेता है और मोहको प्राप्तहुआ तृष्णासे पीड़ित होता और काम, क्रोध, संयुक्त भाव-अभावमें प्राप्तहोता है । एवम् अपनी अनन्तता को त्यागकर परिच्छिन्न व्यवहारमें वर्त्तता है; दुःखदायक अग्निसे तप्तहुआ शून्यभाव को प्राप्तहोता है और भेदभाव को ग्रहणकरके महादीन होजाता है । हे मुनीश्वर ! मोहरूपी गढ़े में जीवरूपी हाथीफँसा है और भाव अभाव से सदा डोलायमान होता है । जैसे जलमें-तृणभासता है तैसेही असाररूप संसारमें विकार संयुक्त रागद्वेष से जीव तपतारहता है शांतिको कदाचित् नहीं पाता और जैसे यूथसे बिछुरामृग कष्टवान् होता है तैसेही आवरणभाव जन्म मरण से जीव कष्टवान् होताहै और अपने संकल्प से आपही भयपाता है । जैसे बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्पकर आपही भयपाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भयभीत होता है और संकट पाता है; आशारूपी फांसीसे बँधाहुआ कष्टसे कष्टपाता है और कर्मोंको करके तपायमान हुआ अनेकजन्म पाता है और भयमें र-

हता है। बालक होता है तब महादीन और परवश होताहै; यौवन अवस्था में कामादिकके वशहुआ स्त्री में रत रहता है और वृद्ध अवस्था में चिन्तासे मग्नहोता है। जब मृतकहोता है तब कर्मों के वश फिर जन्मता है और गर्भमें दुःखपाता है और फिर बालक यौवन वृद्ध और मृतक अवस्था को पाता है। स्वरूपसे गिराहुआ इसीप्रकार भटकता है, कदाचित् स्थिर नहीं होता। हे मुनीश्वर! एक चित्तसत्ता स्पन्दभाव से अनेक भावको प्राप्तहोती है; कहीं दुःखसे रुदनकरती है, कहीं दुःख भोगती है; कहीं स्वर्ग में देवांगना होती है, पाताल में नागनी, असुरों में असुरी, राक्षसों में राक्षसी, वन कोटमें वानरी; सिंहों में सिंही; किन्नरों में किन्नरी;हरिणों में हरिणी,विद्याधरों में विद्याधरी, गन्धर्वों में गन्धर्वी, देवताओं में देवी इत्यादिक जो रूप धारती है सो चैतन्योन्मुखत्व जीवकला है। क्षीरसमुद्र में वह विष्णुरूप होकर स्थित होती है, ब्रह्मपुरी में ब्रह्मारूप होती है, पंचमुख होकर रुद्र होती है और स्वर्ग में इन्द्र होती है। तीक्ष्णकला से सूर्य्य दिनका कर्त्ता होती है और क्षण, दिन, मास, वर्ष करती है। चन्द्रमा होकर वही रात्रिकरती और काल होकर नक्षत्र फेरती है। कहीं प्रकाश, कहीं तम, कहीं बीज, कहीं पाषाण, कहीं मन होती है और कहीं नदी होकर बहती है; कहीं फूल होकर फूलती है; कहीं भँवरहोकर सुगन्धलेती है, कहीं फलहोकर दिखती है, कहीं वायु होकर चलती है, कहीं अग्नि होकर जलाती है, कहीं बरफ होती है और कहीं आकाशहोकर दिखती है। हे मुनीश्वर! इसीप्रकार सर्वगत सर्वात्मा सर्व शक्तता से एकहीरूप चित्तशक्ति आकाशसे भी निर्मल है। जैसे चेतता है तैसेही होकर स्थितहुई है। जैसी २ भावना करती है शीघ्रही तैसारूप होजाती है परन्तु स्वरूप से भिन्न नहीं होती। जैसे समुद्र में फेन तरङ्ग होकर भासता है परन्तु जलसे भिन्न नहीं—जलही जल है तैसेही चित्तशक्ति अनेकरूप धारती है परन्तु चेतनसे भिन्न नहीं होती। चित्तशक्तिही कहीं हंस, कहीं काक, कहीं शूकर, कहीं मक्खी, चिड़िया इत्यादिक रूपधारकर संसारमें प्रवर्त्तती है जैसे जलमें आया तृण भ्रमता है तैसेही भ्रमती है और अपने संकल्पसे आपही भयपाती है और जैसे गधा अपना शब्द सुन आपही दौड़ता है और भयपाता है तैसेही जीव अपने संकल्पसे आपही भयपाता है। हे मुनीश्वर! यह मैंने जीवशक्ति का आचार तुझसे कहा; इसी आचारको ग्रहणकरके बुद्धि नीचपशुधर्मिणी हुई है और स्वरूप के प्रमादसे जैसा २ संकल्प करती है तैसेही तैसी कर्मगति को प्राप्त हो शोकवान् होती है, अनन्तदुःख पाती है और अपनी चैत्यतासेही मलिन होती है। जैसे तुषसेढपा चावल बड़े संताप को प्राप्त होता है; फिर फिर बोयाजाता है; फिर २ उगता है और काटाजाता है; तैसे स्वरूप के आवरण से जीवकला दुर्भाग्यसे जन्म मरण दुःखको प्राप्तहोती है। जैसे भर्त्तार से रहित स्त्री शोकवान् होती है

तैसेही जीवकला कष्टपाती है। हे मुनीश्वर! जड़दृश्य और अनात्मरूपकी प्रीतिकरने और निज स्वरूप के विस्मरण करने से आशारूपी फाँसी से बँधाहुआ चित्त, जीवको नीच योनिमें, प्राप्तकरताहै जैसे घटीयंत्र कभीनीचे जाती है और कभी ऊर्ध्वको जाती है तैसेही जीव आशाके वशहुआ कभी पाताल और कभी आकाश को जाताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठेश्वरसंवादेचैतन्योन्मुखत्व विचारो नामएकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः २९॥

ईश्वरबोले, हे मुनीश्वर! स्वरूप के विस्मरणसे जो इसप्रकार होता है कि, मैं हन्ता हूं, मैं दुःखीहूं; सो अनात्मा में अहंप्रतीति करकेही दुःख का अनुभव करता है। जैसे स्वप्नेमें पुरुष आपको पर्व्वत से गिरता देखके दुःखीहोता है और आपको मृतक हुआ देखता तैसेही स्वरूपके प्रमादसे अनात्म में आत्म अभिमान करके आपको दुःखी देखता है। हे मुनीश्वर! शुद्धचेतन तत्त्वमें जो चित्तभाव हुआ है सो चित्तकला फुरने से जगत्का कारणहुआ है परन्तु वास्तव में स्वरूपसे भिन्ननहीं। जैसे जैसे चित्तकला चेततीगई है तैसेही तैसे जगत् होतागया है। वह चित्तका कारणरूप भी नहीं हुआ और जब कारणही नहीं हुआ तब कार्य्य किसको कहिये? हे मुनीश्वर! न वह चित्त है, न चेतन है, न चेतनेवाली, न द्रष्टाहै, न दृश्य है, और न दर्शन है जैसे पत्थर में तेल नहीं होता, न कारण है, न कर्म्म है और न कारण इन्द्रियां हैं, जैसे चन्द्रमा में श्यामता नहीं होती। न वह मनहै और न मानने योग्य दृश्य वस्तु है—जैसे आकाश में अंकुर नहीं होता। न वह अहंताहै, न तमहै, और न दृश्यहै—जैसे शंखको सामता नहीं होती। हे मुनीश्वर! न वह नाना है, न अनाना है—जैसे अणु में सुमेरु नहीं होता। न वह शब्द है, न स्पर्शका अर्थ है—जैसे मरुस्थल में बेलि नहीं होती। न वस्तु है, न अवस्तु है—जैसे बरफ में उष्णता नहीं होती। न शून्य है, न अशून्य है, न जड़ है, न चेतन है—जैसे सूर्य्यमण्डल में अन्धकार नहीं होता। हे मुनीश्वर! शब्द और अर्थ इत्यादिककी कल्पना भी उसमें कुछ नहीं—जैसे अग्नि में शीतलता नहीं होती। वह तो केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है स्वरूप से किसी को कुछभी दुःख नहीं होता। हे मुनीश्वर! जगत् को असत् जानकर अभावना करना और आत्मको सत् जानकर भावना करना इस भावना से सर्व अनर्थ निवृत्त होजाते हैं पर यह और किसी से प्राप्त नहीं होता अपने आपही से प्राप्त होता है और अनादिही सिद्ध है। जब उसकी ओर भावना होती है तब सब भ्रम मिटजाते हैं और जब अनात्म भावना होती है तब उसका पाना कठिन होता है। जो यत्न के साथ है सो यत्न विना नहीं पायाजाता; आत्मा निर्विकल्प, अद्वैत और सबसे अतीत है, उसे अभ्यास विना कैसे पाइये? आत्मतत्त्व परम, एक, स्वच्छ, तेजका भी प्रकाशक,

सर्वगत, निर्मल, नित्य सदा, उदित, शक्तिरूप, निर्विकार और निरञ्जन है। घट, पट, वट, वृक्ष, गादी, वानर, दैत्य, देवता, समुद्र, हाथी इत्यादिक स्थावर-जंगमरूप जो कुछ जगत् है सब का साक्षीरूप होकर आत्मतत्त्व स्थित है और दीपकवत् सब को प्रकाशता है। आप सर्व क्रिया से अतीत है पर उसी से सर्व कार्य सिद्ध होतेहैं; सर्व क्रिया संयुक्त भासता है और सर्व विकल्प से रहित जड़वत् भी भासता है परन्तु परम चेतन है। आत्मतत्त्व सब चेतनका सार चेतन, निर्विकल्प और परमसूक्ष्म है और अपने आप में किञ्चन हो भासता है। अपनेही प्रमाद से रूप, अवलोक और नमस्कार त्रिपुटी भासती है; जब बोध होता है तब ज्यों का त्यों आत्मा भासता है। नित्य, शुद्ध, निर्मल और परमानन्दरूप के प्रमाद से चेतन चित्त भावको प्राप्त होता है जैसे साधुभी दुर्जनके संगसे असाधु होजाते हैं तैसेही अनात्मा के संगसे यह जीवत को प्राप्त होताहै। जैसे सोना दूसरी धातुकी मिलौनी से खोटा होजाता है और जब शोधाजाता है तब शुद्धता को प्राप्त होता है तैसेही अनात्मके संगसे यह जीव दुःखी होता है और जब अभ्यास और यत्नकरके अपने शुद्धरूपको पाता है तब वही रूप हो जाताहै। जैसे मुखके श्वाससे दर्पणमलीन होजाता है तो उसमें मुख नहीं भासता पर जब मलिनता निवृत्त होती है तब शुद्ध होता है और उसमें मुखस्पष्ट भासता है; तैसेही चित्त संवेदन के प्रमाद से फुरने के कारण जगत्भ्रम भासने लगता है और आत्मस्वरूप नहीं भासता। जब यह जगत् सत्ता फुरने सहित दूर होगी तब आत्मतत्त्व भासेगा और जगत्की असत्यता भासेगी। हे मुनीश्वर! जब शुद्ध संवित् में चेतनताका फुरना निवृत्तहोता है तब जीव अहंता भावको प्राप्तहोता है और अहंकारको प्राप्त होने से अविनाशी रूपको विनाशी जानता है। हे मुनीश्वर! स्वरूपसे कुछभी उत्थान होता है तो उससे स्वरूपसे गिरके कष्टपाता है। जैसे पहाड़से गिरा नीचेचला जाता है और चूर्णहोताहै तैसेही जीव स्वरूपसे उत्थान होता है और अनात्मामें अभिमान और अहंप्रतीति होताहै तब अनेक दुःखोंको प्राप्तहोता है। हे मुनीश्वर! सर्व पदार्थोंका सत्तारूप आत्मा है; उसके अज्ञानसे द्वैतत्व भावको प्राप्त होता है जब उसका बोधहो तब द्वैतभाव निवृत्त होजावेगा वह आत्माशुद्ध और चिन्मात्रस्वरूप है उसी की सत्तासे देह इन्द्रियादिकभी चेतन होते हैं और अपने अपने विषयको ग्रहण करते हैं। जैसे सूर्यके प्रकाश से सब जगत् का व्यवहार होता है और प्रकाश बिना कोई व्यवहार नहीं होता, तैसे आत्माकी सत्तासेही देह, इन्द्रियादिक का व्यवहार होताहै और अपने अपने विषयको ग्रहण करती है। हे मुनीश्वर! प्राणवायुके लिये जो नेत्र में सुख श्यामताहै वह अपने आपमें रूपको ग्रहण करती है; उसका बाहरके विषय से संयोग होताहै और उस रूपका जिसमें अनुभव होताहै

वह परमचेतन सत्ता है । त्वचा इन्द्रियां और स्पर्शका जब संयोग होता है तो इन जड़ों का जिससे अनुभव होता है वह साक्षीभूत परमचेतन सत्ता है और नासिका इन्द्रियका जब गन्धतन्मात्रसे संयोग होताहै तो उसके संयोगमें जो अनुभवसत्ता है सो परमचेतन है । इसीप्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांचो विषयों को श्रोत्र, नेत्र, त्वचा, रसना, नासिका पांचो इन्द्रियों से मिलकर जाननेवाला साक्षीभूत परमचेतन आत्मतत्त्वहै । वह सुख संवित् परमचेतन कहाताहै और जो बहिर्मुख फुरकर दृश्य मे मिला है वह मलीनचित्त कहाता है । जब वही मलीनरूप अपने शुद्धस्वरूप में स्थितहोताहै तब शुद्ध होताहै। हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब आत्मस्वरूपहै और शिला घनकी नाईं अद्वैत और सर्व विकारों से रहित है; न उदय होता है और न अस्त होता है संकल्पके वशसे जीवभाव को प्राप्त होता है और संकल्प के निवृत्त हुये परमात्मारूप होजाता है। हे मुनीश्वर ! आदि चित्तकला जीवरूपी रथपर आरूढ़ हुई है; जीव अहंकाररूपी रथपर आरूढ़ हुआ है; अहंकार बुद्धिरूपी रथपर आरूढ़ है; बुद्धि मनरूपी रथपर आरूढ़ है; मन प्राणरूपी रथपर चढ़ा है और प्राण इन्द्रियां रूपी रथपर चढ़े हैं । इन्द्रियों का रथ देह है और देहका रथ पदार्थ है । जो कर्म इन्द्रियां करती हैं उसी के वश जरा मरणरूपी संसार पिंजरे में भ्रमती हैं। इसप्रकार यह चक्र चलता है और उसमें प्रमाद करके जीव भटकता है। हे मुनीश्वर ! यह चक्र आत्माका आभास विरूप है। जैसे स्वप्नपुर में नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं सो वास्तव में कुछ नहीं हैं; तैसेही यह जगत् वास्तव में कुछ नहीं है और जैसे मृग-तृष्णाकी नदी भ्रमकरके भासती है, तैसेही यह जगत्भ्रम से भासता है । हे मुनी-श्वर ! मनका रथ प्राण है; जब प्राणकला फुरने से रहित होती है तब मन भी स्थित होजाता है मनके स्थितहुये मनका मनन भी शांत होजाता है । जब प्राणकला फुरती है तब मनका मनन भी फुरता है और जब प्राणकला स्थित होती है तब मनन निवृत्त होजाता है । जैसे प्रकाश विना पदार्थ नहीं भासते और वायु के शांत हुये धूर नहीं उड़ती तैसेही प्राण के फुरने से रहित मन शांत होता है । जैसे जहां पुष्प होते हैं वहां गन्धभी होती है और जहां अग्नि है वहां उष्णताभी होती है; तैसेही जहां प्राणस्पन्द होता है वहां मनभी होता है । हृदय में जो नाड़ी है उसमें प्राण स्वतः फुरते हैं और उसीसे मनन होता है । संवित् जो स्वच्छरूप है सो जड़ अजड़ सर्वत्र भासती है और संवेदन प्राणकला में फुरती है । हे मुनीश्वर ! आत्मसत्ता सर्व्वत्र अनुस्यूत है परन्तु जहां प्राणकला होती है वहां भासती है और जहां प्राण कला नहीं होती वहां नहीं भासती । जैसे सूर्य्यका प्रकाश सर्व्व ठौर में होता है परन्तु जहां उज्ज्वलस्थान, जल अथवा दर्प्पण होता है वहां प्रतिबिम्ब भासता है और ठौर

नहीं भासता; तैसेही आत्मसत्ता सर्व्वत्र है परन्तु जहां प्राणकला पुर्य्यष्टकाहोती है वहां भासती है और ठौर नहीं भासती। जैसे दर्पण में मुखका प्रतिबिम्ब भासता है और शिला में नहीं भासता तैसेही पुर्य्यष्टका जो मनरूपहै सो सर्व्वका कारणहै और अहंकार, बुद्धि, इन्द्रियां उसी के भेद हैं; जो आपही से कल्पित है; सर्व्व दृश्यजाल उसही से उदय होताहै और कोई वस्तु नहीं। यह भलीप्रकार अनुभव कियाहै। इससे मनही देहादिकको प्रवर्तता है और परमतत्त्व वस्तु उसही से भासती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेमनप्राणोक्त प्रतिपादनन्नामत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३०॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता विना जीव कन्धवत् होता है और आत्मसत्ता से चेतनहोकर चेष्टाकरता है। जैसे चुम्बकपाषाण की सत्तासे जड़लोहा चेष्टाकरता है, तैसेही सर्वगत आत्माकी सत्तासे जीवफुरता है और आत्मसत्ताभी जीवकला में भासता है और ठौर नहीं भासता। जैसे मुखका प्रतिबिम्ब दर्पण में भासताहै और ठौर नहीं भासता, तैसेही परमात्मा सर्वगत और सर्वशक्तभी है परन्तु जीवकलाही में है। हे मुनीश्वर! शुद्ध वास्तवस्वरूप से जो इस जीवकलाका उत्थान हुआ है और दृश्यकी ओर इससे चित्तभावको प्राप्तहुआ है। जैसे शूद्रकी संगतिकरके ब्राह्मण भी आपको शूद्रमानने लगताहै, तैसेही स्वरूपके प्रमादसे जीवकला आपको चित्त दृश्यभाव जाननेलगीहै। अज्ञानसे घेराहुआ जीव महादीन भावको प्राप्त होता है; जड़ देहके अभ्यास से कष्टपाताहै और काम, क्रोध, वात, पित्तादिकसे जलताहै। जैसी जैसी भावना होतीहै तैसाही तैसा कर्म करताहै और उनकर्मोंकी भावनासे मिलाहुआ भटकता है। जैसे रथपर आरूढ़होकर रथी चलताहै तैसेही आत्मा मन और प्राण कर्म्मको दृढ़ करके चलता है। हे मुनीश्वर! चेतनही जड़दृश्यको अङ्गीकार करके जीवत्वभावको प्राप्त होता है और मन प्राणरूपी रथपर चढ़कर पदार्थकी भावना से नानाप्रकार के भेदको प्राप्तहुये की नाईं स्थित होता है। जैसे जलही तरंग भावको प्राप्त होताहै, तैसेही चेतनही नानाप्रकार होकर स्थित होताहै। निदान यह जीवकला आत्माकी सत्ताको पाकर वृत्ति में फुरनरूप होती है। जैसे सूर्य्य की सत्ताको पाकर नेत्ररूप को ग्रहण करते हैं तैसेही परमात्माकी सत्ता पाकर जीववृत्ति में फुरता है और परमात्मा चित्तत्व में जो स्थित है उससे फुरणरूप जीता है। जैसे घर में दीपक होताहै तब प्रकाशहोता है; दीपक विना प्रकाशनहीं होता। अपने स्वरूपको भुलाकर जीव दृश्य की ओर लगा है इसकारण आधि व्याधिसे दुःखीहोता है। जैसे जब कमल डोडी के साथ लगताहै तब उसपर भ्रमरे आन स्थित होते हैं तैसेही जब जीव दृश्यकीओर लगता है तब दुःख स्थित होते हैं और उनसे जीव दीन होजाताहै—जैसे जलतरंग

भावको प्राप्त होताहै—और अपनी क्रियासे आप बन्धायमान होता है । जैसे बालक अपनी परछाहीं को देखकर आपही अविचार से भयपाता है तैसेही अपने स्वरूप के प्रमाद से जीव आपही दुःखपाता है और दीनताको प्राप्तहोताहै । हे मुनीश्वर! चिद्-शक्ति सर्व्वगत अपनी आप है । उसकी अभावना करके जीव दीनता को प्राप्त होता है । जैसे सूर्य्य बादलसे घिरजाता है तैसेही मूढ़ता से आत्माका आवरण होता है पर जब प्राणोंका अभ्यासकरे तब जड़ता निवृत्तहो और अपना आप आत्मा स्मरणहो जिनकी वासना निर्म्मल हुईहै पर हृदय से दूरनहीं हुई तो वह स्थिरहुई एकरूप हो-जाती है और वे जीव जीवन्मुक्त होकर चिरपर्य्यंत जीते हैं और हृदयकमल में प्राणों को रोककर शान्तिको प्राप्त होते हैं । जब काष्ठ लोष्टवत् देह गिरपड़ती है तब पुर्य्य-ष्टका आकाशमें लीनहोजातीहै । जैसे आकाशमें पवन लीन होताहै तैसेही उनका मन पुर्य्यष्टका वहांही लीनहोजाती है । हे मुनीश्वर ! जिनकी वासना शुद्ध नहीं हुई उनकी पुर्य्यष्टका मृत्युकालमें आकाश में स्थितहोती है और उसके अनन्तर फिर फुर आतीहै तब उस वासनाके अनुसार स्वर्ग नरकको देखनेलगताहै । जब शरीर मन और प्राण से रहितहोताहै तब शून्यरूपहोजाताहै । जैसे पुरुष घरकोत्यागकर दूरजारहता है तैसेही शरीरको त्यागकर मन और प्राण और ठौर जा रहते हैं और शरीर शून्य होजाताहै । हे मुनीश्वर ! चिद्सत्ता सर्वत्रहै परन्तु जहां जीवपुर्य्यष्टका होती है वहांही भासती है और चेतनका अनुभव होताहै और ठौर नहींहोता । हे मुनीश्वर ! जब यह जीव शरीर को त्यागताहै तब पंचतन्मात्राको ग्रहणकरके संगलेजाता है और जहां इसकी वासना होतीहै वहांही प्राप्तहोताहै । प्रथम इसका अन्तवाहक शरीर होताहै, फिरदृश्य के दृढ़ अभ्याससे स्थूलभावको प्राप्तहोजाता है और अंतवाहकता विस्मरण होजाती है । जैसे स्वप्ने में भ्रमसे स्थूल आकार देखताहै; तैसेही मोहकरके मरताहै तब अपने साथ स्थूल आकार देखताहै । फिर स्थूलदेहमें अहंप्रतीत करताहै और उससेमिलकर क्रियाकरता है तब असत्यको सत्यमानता है और सत्यको असत्य जानता है । इस प्रकार भ्रमको प्राप्तहोताहै । जब सर्वगत चिदंशसे जीव मन होताहै तब जगतभावको प्राप्तहोता है । जब देहसे पुर्य्यष्टका निकलजाती है तब आकाश में जा लीन होती है और देहफुरने से रहित होती है तब उसको मृतक कहते हैं और अपने स्वरूपशक्ति को विस्मरण करके जर्जरीभावको प्राप्तहोताहै । जब जीव शक्ति हृदयकमल में मूर्च्छित होती है और प्राण रोकेजाते हैं तब यह मृतकहोता है । एवम् फिर जन्मलेताहै और फिर मरजाता है । हे मुनीश्वर ! जैसे वृक्षमें पत्र लगते हैं और कालपाकर नष्ट होजाते हैं और फिर नूतन लगते हैं तैसेही यह जीव शरीर को धारता है और नष्ट होजाता है; फिर शरीर धारता है और वहभी नष्ट होजाता है । जो वृक्षके पत्रकी नाईं उपजते और नष्टहोते हैं

उनका शोककरना व्यर्थ है। हे मुनीश्वर! चेतनरूपी समुद्र में शरीररूपी अनेकतरङ्ग बुद्बुदे उपजते और नष्ट होते हैं उनका शोककरना व्यर्थ है। जैसे दर्पणमें जो अनेक पदार्थ का प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पण से भिन्न नहीं होता तैसेही चेतन में अनेक पदार्थ भासते हैं। वह चेतन निर्मल आकाश की नाईं विस्तीर्णरूप है, उसमें जो पदार्थ फुरते हैं वे अनन्यरूप हैं और विधिशरीर भी वही रूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेहपातविचारोनाम एकत्रिंशत्तमस्सर्गः ३१॥

वशिष्ठजी बोले, हे अर्द्धचन्द्रधारी! जो चेतनतत्त्व परमात्मा पुरुष है वह अनन्त और एक रूप है उसको यह द्वैत कहां से प्राप्त हुआ? भूत और भविष्यकाल कहां से दृढ़ होरहे हैं? एकमें अनेकता कहां से प्राप्त हुई है? बुद्धिमान् दुःखको कैसे निवृत्त करते हैं और वह कैसे निवृत्त होता है? ईश्वर बोले, हे ब्राह्मण! ब्रह्मचेतन सर्वशक्त है। जब वह एकही अद्वैत होता है तब निर्मलता को प्राप्त होताहै। एकके भाव से द्वैत कहाता है और द्वैतकी अपेक्षा से एक कहाता है पर यह दोनों कल्पनामात्र हैं। जब चित्त फुरता है तब एक और दो की कल्पना होती है और चित्तस्पंद के अभावहुये दोनोंकी कल्पना मिटजाती है और कारणसे जो कार्य भासता है सो भी एकरूप है। जैसे बीजसे लेकर फल पर्यन्त वृक्षका विस्तार है सो एकहीरूप है और बढ़ना घटना उसमें कल्पना होती है; तैसेही चेतनमें चित्तकल्पना होती है तब जगत्‌रूप हो भासता है परन्तु उस कालमें भी वहीरूप है। हे मुनीश्वर! वृक्षके समेतभी बीज एक वस्तुरूप है और कुछ नहीं हुआ परन्तु बीज फुरता है तब वृक्ष होभासता है, तैसेही जब शुद्ध चेतन में चेतनकलना फुरती है तब जगत्‌रूप हो भासता है। हे मुनीश्वर! कारण–कार्य विकाररूप जगत् असम्यक् दृष्टिसे भासता है। जैसे जलमें तरंग भासते हैं सो जलरूप है–जलसे भिन्न नहीं जैसे ससेके सींग असत् हैं और जलमें द्वैततरंग कलना असत् है–अज्ञानसे भासती है; तैसेही आत्मा में अज्ञान से जगत् भासता है। जैसे द्रवता से जलही तरंगरूप हो भासताहै तैसेही फुरनेसे आत्मतत्त्व जगत्‌रूप हो भासताहै और द्वैत नहीं। चेतनरूपी बेल फैली है और उसमें पत्र, फूल और फल एकही रूप हैं। जैसे एक बेल अनेकरूप होभासती है, तैसेही एकही चेतन जो अहं, त्वं, देश, काल आदिक विकार होकरभासता है सो वही रूप है। हे मुनीश्वर! जब सबही चेतन है तब तेरे प्रश्नका अवसर कहां हो? देश, काल, क्रिया, नीति आदिक जो शक्ति पदार्थ हैं सो एकही चिदात्मा है जैसे जलमें जब द्रवता होती है तब तरंगरूप हो भासता है और उसकानाम तरंग होता है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् फुरता है तब अहं, त्वं आदिक नानाप्रकारके नाम होते

हैं पर वह ब्रह्म, शिव, परमात्मा, चेतनसत्ता, द्वैत, अद्वैत आदिक नामों से अतीत हैं; वाणीका विषय नहीं। ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व सदा अपने आप में स्थित है। यह जगत् जो कुछ भासता है सोभी वही चेतनतत्त्व है। जैसे बेलि फूल और पत्र होकर फैलती है तैसेही चेतन सर्व्वरूप होकरफैलता है। हे मुनीश्वर! महाचेतन में जब किंचन होता है तब जीवरूपहोकर स्थित होता है और फिर द्वैत कलनाको देखता है। जैसे स्वप्न में अपना स्वरूप त्यागकर परिच्छिन्न वपुको धारणकरता है और द्वैतरूप जगत् देखता है पर जब जागता है तब अपने अद्वैतरूप को देखता है परंतु जागे बिना भी द्वैत कुछ नहीं हुआ; तैसेही यह जाग्रत् जगत्भी कुछ है नहीं भ्रम से भासता है। जब यह जीव अपने वास्तव स्वरूप की ओर सावधान होताहै तब उसके अभ्यास से वही रूप होजाता है। हे मुनीश्वर! इस जीवका आदि वपु अन्तवाहक है और सङ्कल्पही उसका रूप है; जब उसमें अहंभावना तीव्र होती है तब वही अधिभौतिक होकर भासता है। जब उसमें सत्यता दृढ़ होजाती है तो उस की भावना से रागद्वेष से क्षोभायमान होताहै। पर जब काकतालीयवत् अकस्मात् से हृदय में विचार उपजता है तब संकल्परूपी आवरण दूरहोजाता है और अपने वास्तव स्वरूपको प्राप्त होता है। जैसे बालक अपनी परछाहीं में बेताल कल्पकर भयपाता है तैसेही जीव अपने संकल्प से आपही भय पाता है। हे मुनीश्वर! यह जो कुछ जगत् भासता है सो सब संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प हृदय में दृढ़होता है तैसाही भासने लगता है। प्रत्यक्ष देखो कि, जो पुरुष कुछ कार्य करताहै तो कर्त्तत्व भाव उसके हृदय में दृढ़होता है और कहता है कि, यह कार्य मैं न करूं; जब यही संकल्प दृढ़ होता है तब उस कार्य्य से आपको अकर्त्ता जानता है; तैसेही दृश्यकी भावना से जगत् सत्य दृढ़होगया है। जब दृश्यका संकल्प निवृत्त होता है और आत्मभावनामें लगता है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है और आत्माही भासता है। हे मुनीश्वर! परमार्थ से द्वैत कुछ हैही नहीं सब संकल्प रचना है। संकल्पसे रचा जो दृश्य है सो संकल्प के अभावसे अभाव होजाताहै। जैसे मनोराज और गन्धर्व्व नगर मनसे रचित होता है और जब संकल्प के अभावहुये से अभाव होता है तब क्लेश कुछ नहीं रहता। हे मुनीश्वर! जगत् संकल्पकी पुष्टतासे जीव दुःखका भागी होता है। जैसे स्वप्ने में संकल्प करके जीव दुःखी होता है। इस संकल्पमात्रकी इच्छा त्यागने में क्या कृपणता है? जैसे स्वप्नेमें जो सुख भोगता है सो सुखभी कुछ वस्तु नहीं भ्रममात्र है तैसेही यह सुखभी भ्रममात्र हैं। हे मुनीश्वर! संकल्प विकल्प ने जीवको दीनकिया है। जब संकल्प विकल्पको त्याग करता है तब चित्त अचित्त होजाता है और ऊंचेपद में विराजमान होता है। जिसपुरुषने विवेकरूपी वायुसे

संकल्परूपी मेघको दूरिकिया है वह परम निर्मलताको प्राप्तहोता है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्म्मल होता है तैसेही संकल्प विकल्परूपी मलसे रहित जीव उज्ज्वल भावको प्राप्तहोता है। संकल्प के त्यागे से जो शेष रहता है सो सत्तामात्र परमानन्द तेरा स्वरूप है। हे मुनीश्वर! आत्मा सर्व्व शक्तिरूप है; जैसी भावना होती है तैसाही उसे अपनी भावनासे देखता है इससे सब संकल्पमात्र है; भ्रमसे उदय हुआहै और संकल्प के लीनहुये सब लीनहोजाता है। हे मुनीश्वर! संकल्परूपी लकड़ी और तृष्णारूपी घृतसे जन्मरूपी अग्निको यह जीव बढ़ाताहै और फिर उससे अन्त कदाचित् नहीं होता। जब असंकल्परूपी वायु और जलमें इसका अभाव करे तब शांत होजाता है। जैसे दीपक निर्व्वाण होजाता है तैसेही जन्मरूपी अग्निका अभाव होजाता है और संकल्परूपी वायुसे तृणकी नाईं भ्रमता है। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी कंजकी बेलिको जीव संकल्परूपी जलसे सींचता है; जब असंकल्परूपी शोषता और विचाररूपी खड्गसे काटे तब उसका अभाव होताहै। जो अभावमात्र है सो आभास के क्षयहुये अभाव होजाता है। जैसे गन्धर्व्वनगर होताहै तैसेही यह जगत् असम्यक् ज्ञानसे भासता है और सम्यक् ज्ञानसे लीन होजाता है। जैसे कोई राजा स्वप्नमें अपने को रङ्कदेखे और पूर्व्वका स्वरूप विस्मरण करके दीनता को प्राप्तहो पर जब पूर्व्वका स्वरूप स्मरण आवे तब आपको राजा जाने और दुःख मिटजावे; तैसेही जीवको जब अपने पूर्व्वका वास्तव स्वरूप विस्मरण होजाता है तब आपको परिच्छिन्न दीन और दुःखी जानता है पर जब स्वरूप का ज्ञान होता है तब सब दुःखका अभाव होजाताहै और जैसे शरत्काल का आकाश निर्म्मल होताहै तैसेही निर्म्मल होजाता है। जैसे वर्षाकाल के मेघगये से आकाश निर्म्मल होता है तैसेही अज्ञानरूपी मलसे रहित जीव निर्म्मल होकर शुद्धपदको प्राप्त होताहै। जो ऐसी युक्तिसे भावना करता है कि, मैं एक आत्मा और द्वैतसे रहितहूं तो वही होता है और द्वैतका अभाव होजाताहै और उत्तमपद ब्रह्मदेव पूज्य, पूजक और पूजा; किञ्चित् निष्किञ्चनकी नाईं चित्त एकरूप होजाताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेव प्रतिपादनन्नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ३२॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह देव निरन्तर स्थितहै; द्वैत और एक पदसे रहित है और द्वैत और एक संयुक्त भी वही है। संकल्पसे मिलकर चेतनरूप संसारको प्राप्त हुआहै और जो संकल्प मलसे रहितहै वह संसारसे रहितहै। जब ऐसे जानता है कि, 'मैं हूं' इसी संकल्पसे बन्धवान् होताहै और जब इसके भाव से मुक्तहोता है तब सुख दुःखका अभाव होजाताहै और शुद्ध निरंजन एक सत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होताहै।

इसीका नाम मुक्तिहै। आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होताहै। वशिष्ठजी बोले, हे प्रभो! जब मनमें मनक्षीण होताहै और इन्द्रियां मनमें लीन होती हैं वह द्वितीय और तृतीयपद किसकी नाईं शेष रहता है? जो महासत्ता आत्मसत्ता सर्व्वका लीन करता है सो किस की नाईं है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जब मनसे मनको जिसके अंग इन्द्रियां हैं विचार करके छेदता है अथवा उपासना करके आत्मबोध प्राप्त होताहै तब द्वैत एककी कल्पना नष्टहोजाती है और जगत्जालकी सत्यता नष्ट होजाती है उसके पीछे जो शेष रहता है सो आत्मतत्त्व प्रकाशता है। जैसे भूने बीजसे अंकुर नहीं उपजता तैसेही जब मन उपशम होता है तब उसमें जगत्सत्ताका अभाव होजाता है और चेतनसत्ता चित्तसत्ताको भक्षण करलेती है। जब मनरूपी मेघकीसत्ता नष्ट होती है तब शरत्कालके आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है। जब चित्तकी चपलता मिटजाती है तब परमनिर्मल पावन चिन्मात्रतत्त्व प्राप्त होता है; एकद्वैत–औरभाव–अभावरूपी संसार कल्पना मिटजाती है और सम सत्तारूप तत्त्व जो सर्व्वव्यापक और संसार समुद्रसे पार करनेवाला प्राप्तहोता है। तब सुषुप्त की नाईं निर्भय बोध होजाताहै और शांतिरूप आत्माको पाकर शांतरूप होजाता है। हे मुनीश्वर! मनकी क्षीणता का यह प्रथमपद तुमसे कहा है अब द्वितीयपद सुनो। जब चित्तशक्ति मनके मननसे मुक्त होती है तब चन्द्रमा के प्रकाशवत् शीतल होजाता है; आकाशवत् विस्तृतरूप अपना आप भासताहै और घन सुषुप्तरूप होजाता है। जैसे पत्थरकी शिला पोलसे रहित होती है तैसेही वह दृश्यसे रहित घन सुषुप्त उसकारूप होता है और नमक के सदृश रसमयब्रह्म होजाता है। जैसे आकाशमें शब्द लीन होजाताहै तैसेही वह चित्त आत्मा में लीनहोजाताहै और जैसे वायु चलनेसे रहित अचल होताहै तैसेही चित्त अचल हो जाता है। जैसे गन्ध पुष्पमें स्थितहोती है तैसेही चित्तवृत्ति आत्मतत्त्व में विश्रामको पाती है। वह आत्मसत्ता न जड़है, न चेतन है; सर्व्वकलना से रहित अचैत्य चिन्मात्र अंकुररूप सब सत्ताओं को धारण करनेवाली और देश काल के परिच्छेदसे रहित है। जिसको वह प्राप्त होती है उसको तुरीयापदभी कहते हैं। वह सर्व्वदुःख कलंकसे रहित पद है। उस सत्ता को पाकर साक्षी की नाईं स्थितहोता और सर्व्वत्र,सर्व्वदा सम स्थित होता है। सर्व्वप्रकाश वही है और शांतिरूप है। उस आत्मसत्ता का जिसको आत्मतत्त्वसे अनुभव होता है उसको द्वितीय पद प्राप्तहोता है। हे मुनीश्वर! यह द्वितीय पदभी तुझसे कहा अब तृतीयपद सुन। जब आत्मतत्त्व में वृत्तिका अत्यन्त परिणाम होता है तब ब्रह्म, आत्मा आदिक नामोंकी भी निवृत्ति होजाती है; भाव अभाव की कलना कोई नहीं फुरती और स्थानकी नाईं अचलवृत्तिहोकर परमशांत और निष्कलंक सबसे उल्लंघित तुरीयातीत पदको प्राप्तहोता है। जो सबका अन्त और सबका

आधाररूप एक, अद्वैत, नित्य, चिन्मात्रतत्त्व है और तुरीयासे भी आगे है जिस में वाणीकी गम नहीं। हे मुनीश्वर! सर्व्व कल्पना से रहित अतीतपद जो मैंने तुमसे कहा है उसमें स्थितहो। वही सनातन देव है और विश्वभी वही रूप है। वही तत्त्व संवेदन के वशसे ऐसारूप होकर भासता है पर वास्तव में न कुछ प्रवृत्त है और न कुछ निवृत्त है; आकाशरूप समसत्ता अद्वैत तत्त्व अपने आप में स्थित और आकाशवत् निर्मल है और उसमें द्वैतभ्रमका अभाव है। एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपने आपमें स्थित है उसमें और जगत्में रंचकभी भेद नहीं। जैसे जल और तरंग में कुछ भेद नहीं होता तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। सम सत्यसत्ता शिव शान्तिरूप और सर्व्ववाणी के विलाससे अतीत है। इसकी चतुर्मात्रा हैं और तुरीया परमशान्त है। इतना कह बाल्मीकि जी बोले, हे भारद्वाज! इसप्रकार जब ईश्वर ने कहा और परमशान्तिरूप आत्मतत्त्वका प्रसंग वशिष्ठजी ने सुना तब दोनों की वृत्ति आत्मतत्त्व में स्थित होगई और तूष्णी होगये—मानों चित्र लिखे हैं—और एक मुहूर्त्त पर्य्यंत चित्तकी वृत्ति ऐसेही रही। फिर ईश्वर जागे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेपरमेश्वरोपदेशोनामत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३३॥

बाल्मीकिजी बोले कि, एकमुहूर्त्त उपरान्त सदाशिवजी ने तीनों नेत्र खोले तो जैसे पृथ्वीरूपी डब्बेसे सूर्य्य निकले तैसेही उनके नेत्र निकले और जैसे द्वादशसूर्य्य का प्रकाश इकट्ठाहो तैसेही उनका प्रकाशहुआ। उन्होंने देखा कि, वशिष्ठजी के नेत्र मूँदेहुये हैं, तब कहा कि, हे मुनीश्वर! जागो अब नेत्र क्यों मूँदेहो? जो कुछ देखनाथा सो तो तुमने देखा अब समाधि लगानेका श्रम किस निमित्त करते हो? तुम सरीखे तत्त्ववेत्ताओं को किसी में हेयोपादेय नहीं होता। तुम जैसे बुद्धिमान् हो तैसेही आत्मदर्शीभी हो। जो कुछ पानेयोग्यथा सो तुमने पायाहै और जाननेयोग्य जानाहै। बालकों के बोधके निमित्त जो तुमने मुझसे पूछा था सो मैंने कहाहै अब तुमको तूष्णी रहने से क्याप्रयोजनहै? हे रामजी! इसप्रकार कहकर सदाशिवने मेरेभीतर प्रवेशकरके चित्तकी वृत्तिसे जगाया और जब मैं जागा तब फिर ईश्वरने कहा, हे वशिष्ठजी! इस शरीर की क्रिया का कारण प्राणस्पन्द है। प्राणोंसेही शरीरकी चेष्टा होती है और उसमें आत्मा उदासीनकी नाईं स्थित है वह न कुछ करता है, न भोगता है। जब जीवको अपने स्वरूप का प्रमाद होता है तब देह में अभिमान होता है और क्रिया करता और भोगता आपको मानता है इस से दुःखपाता है और इसलोक परलोक में भटकता है। जब आत्मविचार उपजता है तब आत्माका अभ्यास होता है; देह अभिमान मिटजाता है और दुःखसे मुक्त होता है। शरीर के नष्टहुये आत्मा का नाश

नहीं होता । शरीर चेतनहोकर प्राणों से फुरताहै; जब बीचसे प्राण निकलजाते हैं तब शरीर मूकजड़रूप होजाताहै । चलाने और पवित्र करनेवाली जो संवित् शक्तिहै वह आकाशसेभी सूक्ष्महै । वह शरीरके नाशहुये नाशनहींहोती और जो नाश नहीं होती तो नाशका भ्रम कैसेहो ? हे मुनीश्वर ! आत्मतत्त्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्रहै परन्तु वहीं भासती है जहां सात्त्विकगुणकाअंश मनहोताहै और प्राणहोते हैं । मन और प्राणोंसहित देह में भासती है । जैसे निर्मलदर्पण में मुखका प्रतिबिम्ब भासता है और आदर्श मलिन होता है तब मुख विद्यमानभी होताहै परन्तु नहीं भासता है; तैसेही मन और प्राण जब देहमें होते हैं तब आत्मा भासता है और जब मन और प्राण निकलजाते हैं तब मलिन शरीरमें आत्मसत्ता नहीं भासती । हे मुनीश्वर ! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासती नहीं जब उसका अभ्यास हो तब सर्वात्मरूप होकर भासती है सर्वकलनासे रहित शुद्ध शिवरूप सर्वकी सत्तारूप वही है । विष्णु, शिव, ब्रह्मा, देवता, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्य्यादिक सब जगत्का आदिवपु वही है । वह एक देव शुद्धचेतनरूप सर्व देवोंका देवहै, सब उसके नौकर हैं और सब उसके चित्त उल्लास हैं । हे मुनीश्वर ! इस जगत् में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जो बड़े हैं सो उसही तत्त्व से प्रकट हुये हैं । जैसे अग्निसे चिनगारे उपजते हैं और समुद्रसे तरङ्ग प्रकट होते हैं तैसेही हम उससे प्रकटहुये हैं । यह अविद्याभी उसहीसे प्रकटहो अनेकशाखाओं को प्राप्त हुई है । देव, अदेव, वेद और वेदके अर्थ और जीव सब उस अविद्याकी जटा हैं और अनन्तभावको प्राप्त हुई हैं जो फिर फिर उपजती और मिटती है । देशकाल, पृथिव्यादिक भी सब उसी से उत्पन्नहैं और सर्वसत्तारूप वही आत्मा देव है । हम जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं सो हमारा परमपिता आत्माही है; सर्वका मूलबीज वही देव है और सब उससे उपजे हैं । जैसे वृक्षसेपत्र उपजते हैं तैसेही सब उसी महादेवसे उपजते हैं; सबका अनुभवकर्त्ता वही है और सबको सत्ता देनेवाला और सब प्रकाशका प्रकाश वही है । वह तत्त्ववेत्ताओंसे पूजनेयोग्यहै, सबमें प्रत्यक्षहै और सर्वदा सर्वप्रकार सबमें उदित आकार चेतन अनुभवरूपहै । उसके आवाहनमें मन्त्र, आसन आदिक सामग्री न चाहिये क्योंकि; वह सर्वदा अनुभवरूपसे प्रत्यक्षहै और सर्वप्रकार सर्व ठौरमें विद्यमानहै । जहां जहां उसके पानेका यत्न करिये वहां वहां आगेही विद्यमानहै । वह शिवतत्त्व आदिही से सिद्धहै और मन वाणी में तीनोंरूप वहीहो भासताहै । सब की आदि और पूज्य और नमस्कार करने योग्य है और जानने योग्यभी वही है । हे मुनीश्वर ! ऐसा जो आत्मतत्त्व जरा, मृत्युशोक और भय के काटनेवालाहै उसको जीव आप से आपही देखता है और उस के साक्षात्कार हुये चित्त भूने बीज की नाईं होजाता है फिर नहीं उगता । वह शिवतत्त्व जीव का भी जीव है और

सर्वपदका पद वही है। अनुभवरूप आत्मा परमपद है; भिन्नदृष्टि का त्याग करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेवनिर्णयो नामचतुस्त्रिंशतितमस्सर्गः ३४॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह चिद्रूप तत्त्व सबके भीतर स्थित है। अनुभवमय शुद्ध देव ईश्वर और सब बीजका बीज वही है। सर्व सारोंका सार; कर्मोंका कर्म और धर्मोंकाधर्म चेतनधातु निर्मलरूप सबकारणोंका कारण और आप अपना कारण है। वह सर्वभाव अभावका प्रकाशक और सर्व चेतनका चेतन परमप्रकाशरूप है। भौतिक प्रकाशसे रहित और अवलौकिक प्रकाशक सबजीवों का जीव वही है। चेतन घन निर्मल आत्मा अस्ति तन्मयरूप है और सत् असत्से रहित महासत् रूप है। सर्वसत्ताकी सत्ता वही है। वही चिन्मात्रतत्त्व नानारूप होरहा है। जैसे एकही आत्मसत्ता स्वप्ने में आकाश, कन्ध, पहाड़ आदिक होकर भासती है तैसेही नाना रङ्ग रचना होकर वही भासता है। जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें मरुस्थलकी नदी अनेक कोट किरणों से अनेकतरंग संयुक्त हो भासती है तैसेही यह जगत् उसमें भासता है। हे मुनीश्वर! उसी आत्मतत्त्वका यह आभास प्रकाश है; उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे अग्निसे उष्णता भिन्न नहीं—वहीरूप है; तैसेही आत्मासे जगत् कुछ भिन्न नहीं—वही स्वरूप है। सुमेरुभी उसके आगे परमाणुरूप है; संपूर्णकाल उसका एक निमेषरूप है; कल्पभी निमेष और उन्मेषवत् उदय और लयहोते हैं और सप्तसमुद्र संयुक्त पृथ्वी उसके रोमके अग्रवत् तुच्छ है। ऐसा वह देवहै। वह संसार रचनाको नहीं करता और कर्तृत्व भावको प्राप्त होता है। बड़े कर्मोंको करता भासता है तौभी कुछ नहीं करता; द्रव्यरूप दृष्टि आता है तौभी द्रव्यसे रहित है निर्द्रव्य है तौभी द्रव्यवान् है; देहवान् नहीं तौभी देहवान् है और बड़ा देहवान् है तौभी अदेह है। सर्व्वका सत्तारूप वही देव है। इंढी, भोलि, घले, मतचुल, पिंढली, मांगले, बेल, विलिमिला, लोबलाग, युगुल, सभस इत्यादि वाक्य निरर्थक हैं; इनका अर्थ कुछ नहीं तौभी उस देव से सिद्धहोते हैं। ऐसा कुछ नहीं जो उसदेव में असत् नहीं और ऐसाभी कुछ नहीं जो उस देव से सत् नहीं। हे मुनीश्वर! जिससे यह सर्व्व है; जो यह सर्व्व है और जो सर्व्वमें नित्य है उस सर्वात्माको मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहेश्वरवर्णनन्नामपंचत्रिंशत्तमस्सर्गः ३५॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! शब्दकी सत्तारूप वही है; सर्व्व सत्तारूप रत्नोंकाडब्बा वही है और वही तत्त्व चमत्कार करके फुरता है। जैसे जलही तरंग, फेन, बुद्बुदे आदिक आकार होकरके फुरता है तैसेही वह देव नानाप्रकारके आकार होकर फुरता है। वही फल और गुच्छेरूप होकर स्थित होता है और वही उनमें सुगन्धित होता

है। घ्राण इन्द्रियमें स्थितहोकर आपही उसे सूंघता है; आपही त्वचा इन्द्रिय होता है; आपही पवन होकर चलता है; आपही स्पर्श से ग्रहण करता है; आपही जलरूप होताहै; आपही वायुहोकर सुखाता है; आपही श्रवणेन्द्रिय और आपही शब्दहोकर ग्रहण करता है। इसीप्रकार जिह्वा त्वचा नासिका कर्ण और नेत्रहोकर आपही स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द को ग्रहण करता है। उसीने सब पदार्थ रचे हैं और उसी ने नीति रची है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव और पंचम ईश्वर सदाशिवपर्य्यंत वही देव इसप्रकार हुआ है और आपही साक्षीवत् स्थित होता है । जैसे दीपक के प्रकाश से मन्दिर की सर्व्वक्रिया होती हैं तैसेही संसाररूपी मण्डपकी सब क्रिया उसी साक्षी से होती हैं उसमें उसकी शक्ति नृत्यकरती है और आप साक्षीरूप होकर देखताहै वशिष्ठ जी बोले कि, फिर मैंने पूछा, हे जगन्नाथ ! शिवकीशक्ति क्याहै, कैसे स्थित है; देव को साक्षात् कैसे है और उसकी नृत्य कैसे होती है ? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! आत्म-तत्त्व स्वभाव से अचल और शान्तरूप है । शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्ररूप और निराकार है। उसकी आसक्ति इच्छा और काल, नीति, मोह, ज्ञान, क्रियाकर्त्तादि शक्ति हैं। उन शक्तियों का अन्त नहीं । वह अनन्तरूप चिन्मात्र देवहै। यह जो मैं तुमसे शक्ति कही है सो भी शिवरूप है भिन्न नहीं शिव और शक्ति एकरूप है और बहुत भासती है। जैसे पदार्थों में अर्थशक्ति और आत्मा में साक्षीशक्ति कल्पितहै तैसेही कालशक्ति नृत्यककी नाईं ब्रह्माण्डरूपी नृत्यमण्डल में नृत्य करती है और क्रियाशक्ति भी कर्तृत्वसे नृत्यकरती है सो शक्तिकहाती है। जैसे आदि नीतिहुई है ब्रह्मासे लेकर तृणपर्य्यंत तैसेही स्थितहै–अन्यथा नहीं होती । हे मुनीश्वर! यह सम्पूर्ण जगत् नृत्य करता है। संसाररूपी नटिनी के प्रेरनेवाली नीतिहै और परमेश्वर परमात्मा साक्षीरूप है। वह सदा उदित प्रकाशरूप है और एकरस स्थितहै नीति आदिक शक्तिभी उससे भिन्न नहीं वे वहीरूपहैं–इससे सर्व देवही जानो द्वैत नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेनीति
नृत्यवर्णनंनामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः ३६ ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! वह एक देव परमात्मा सन्तों से पूजने योग्य है। वह चिन्मात्र अनुभवआत्मा घटपटादिक सर्व्व में स्थित है और ब्रह्मा इन्द्रादिक देवता और जीव सब के भीतर बाहर भी वही स्थित है । उस सर्व्वात्मा शांतरूप देव का पूजन दो प्रकार से होता है। उस इष्टदेवका पूजन ध्यान है और ध्यानही पूजन है । जहां जहां मन जावे वहां वहां छलछिद्ररूप आत्माको ध्यानकरो । सबका प्रकाशक आत्माही है; चिद्रूप अनुभव से भीतर स्थित है और अहंता से सिद्ध है। वही सबका साररूप है और सबका आश्रयरूप है । उसका जो विराट्‌रूप है सो सुनो । बाहर

अनन्त पारावारसे रहित है; परमाकाश उसकी ग्रीवाहै; अनन्त पाताल उसके चरण हैं; अनन्तदिशा उसकी भुजाहैं; सर्वप्रकाश उसके शस्त्र हैं; हृदयकोश कोणमें स्थित है और ब्रह्माण्ड समूहोंको परंपरासे प्रकाशता है। परमाकाशपार अपाररूप है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता और जीव उसकी रोमावली हैं, त्रिलोकी में जो देहरूपी यंत्र हैं उनमें इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्यापा है जिससे सब चेष्टा करते हैं। वह देव एकही है और अनन्त है। सत्तामात्र उसका स्वरूपहै, सब जगत्जाल उसका निवृत्तहै, काल उसका द्वारपाल है और पर्वतादिक ब्रह्माण्ड जगत् उसकी देहके किसी कोणमें स्थित है। उस देवकी चिन्तना करो। उसके सहस्र चरण हैं और सहस्रही नेत्र, शीश और भुजा और भुजाओं के विभूषण हैं। सर्वत्र उसकी नासिका इन्द्रिय है; सर्वत्र रसना इन्द्रिय है, सर्वत्र भावना इन्द्रियहै और सर्व ओर मनहै पर सर्व मनन कलासे अतीत है। सर्व ओर वही शिवरूप सर्वदा सर्व्वका कर्त्ता है; सर्व संकल्पोंके अर्थका फलदायक है और सर्वभूतके भीतर स्थित और सर्व साधन का सिद्ध करता है। ऐसा देव सबमें सबप्रकार और सर्वदाकाल स्थितहै। उसी देवकी चिन्तनाकरो और उसी देवके ध्यानमें सावधानरहो। सदा उसहीके आकार रहना उस देवका बाहरी पूजनहै। अब भीतरका पूजन सुनो। हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! संवित्मात्र जो देवहै सो सदा अनुभवसे प्रकाशता है। उसका पूजन दीपक करके नहीं होता और न धूप, पुष्प, दान, लेप और केशर से होता है। अर्घ्य, पाद्यादिक जो पूजाकी सामग्री हैं उनसे भी उस देवका पूजन नहीं होता। उसका पूजन तो क्लेश विना नित्यही होताहै। हे मुनीश्वर! एक अमृतरूपी जो बोध है उससे उस देवका सजातीय प्रतीत ध्यान करना उसका परमपूजनहै। हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्र देव अनुभवरूप है उसका सर्व्वदाकाल और सर्व प्रकार पूजनकरो; अर्थात् देखते, स्पर्श करते, सूंघते, सुनते, बोलते, देते, लेते, चलते, बैठते और उससे लेकर जो कुछ क्रियाहैं सब प्रत्यक्ष चेतन साक्षी में अर्पणकरो और उसीके परायणहो। इसप्रकार आत्मदेवका पूजनकरो। हे मुनीश्वर! आत्मदेवका ध्यानकरनाही धूप दीप है और सर्व सामग्री पूजनकी यही हैं। ध्यानही उसदेवको प्रसन्नकरताहै और उससे परमानन्द प्राप्त होता है और किसीप्रकारसे उसदेवकी प्राप्ति नहीं होती। हे मुनीश्वर! मूढ़भी इसप्रकार ध्यानसे उस ईश्वरकी पूजाकरे तो त्रयोदश निमेषमें जगत् उद्धानके फलको पाताहै और सत्निमेष के ध्यान से प्रभुकोपूजे तो अश्वमेध यज्ञके फलको पावे और केवल ध्यान से आत्मा का एक घड़ीपर्यन्त पूजनकरे तो राजसूययज्ञ किये के फलको पावे। जो दो प्रहरपर्यन्त ध्यानकरे तो लक्षराजसूययज्ञ के फलको पावे और जो दिनपर्यन्त ध्यानकरे तो असंख्य फलपावे। हे मुनीश्वर! यह परमयोग है; यही परमक्रिया है और यही परमप्रयोजन है। हे मुनीश्वर! दोनों पूजा मैंने

तुमसे कही। जिसको ये परमपूजा प्राप्त होती हैं वह परमपदको प्राप्त होता है; उसको सब देवता नमस्कार करते हैं और सब करके वह पुरुष सुमेरुवत् पूजने योग्य होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेअन्तर्बाह्य पूजावर्णनन्नामसप्तत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः ३७ ॥

ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! अब तुम अभ्यन्तर का पूजन सुनो जो सर्व्वत्र पवित्र करनेवाले को भी पवित्र करता है और सब तम और अज्ञानका नाश करता है। वह आत्मपूजन मैं तुमसे कहताहूं जो सर्वप्रकारसे सर्वदा कालमें उस देवका पूजन होता है और व्यवधान कभी नहीं पड़ता; चलते, बैठते, जागते, सोते सर्व्व व्यवहार में नित्यध्यानमें रहताहै। हे मुनीश्वर ! इससंसार में संवित्रूप चिन्मात्र नित्य स्थित है उसका पूजन करो। जो सर्व्व प्रत्ययका कर्त्ता और सदा अनुभवसे प्रकाशताहै उसका आपसे आप पूजन करो। उठते, चलते, खाते, पीते जो कुछ बाहर के अर्थ त्याग, ग्रहण और भोग हैं सबको करतेभी उस देव की पूजाकरो। हे मुनीश्वर ! शरीर में शिवलिंग चिह्नसे रहित बोधरूप देव है, यथाप्राप्त में समरहना उसदेवका पूजन है। यथाप्राप्ति के समभाव में स्नानकरके शुद्धहोकर बोधरूप लिङ्गका पूजनकरो। जो कुछ प्राप्तहो उसमें रागद्वेषसे रहितहोना और सर्वदा साक्षीरूप अनुभव में स्थितरहना यही उसका पूजनहै। हे मुनीश्वर ! सूर्य्यके भुवन आकाशमें यही सूर्य्यहोकर प्रकाशता है और चन्द्रमा के भुवन में चन्द्रमाहोकर स्थित होताहै। इनसे आदिलेकर जो पदार्थ के समूहहैं जैसी जैसी भावना से उनमें फुरना हुआहै वही रूपहोकर वह देव स्थित है। हे मुनीश्वर ! जो नित्य, शुद्ध, बोधरूप और अद्वैत है उसको देखना और किसी में वृत्ति न लगाना यही उस देवका पूजन है। प्राण अपानरूपी रथपर आरूढ़ हुआ जो हृदय में स्थितहै उसका ज्ञानही पूजन है। वही सब कर्म्मकर्त्ता है; सब भोगों का भोक्ता और सर्व्व शब्दका स्मरण करनेवाला और भागवतरूप है और सबकी भावना करने वाला परमप्रकाशरूप है। ऐसा जो संवित्तत्त्व है उसको सर्व्वज्ञ जानकर चिन्तना करना वही उसका पूजन है। वहदेव सकल निष्कलदेहमें स्थित है तौभी आकाशवत् निर्मल है। वह जाता भी है और नहीं जाता। प्राणरूपी आलय में प्रकाशता है, हृदय, कण्ठ तालु, जिह्वा, नासिका और पीठमें व्यापक है शब्दआदिक विषय को कर्त्ता और मनको प्रेरता है। जैसे तिल में तेल आश्रयभूत है तैसेही आत्मा सब में आश्रयभूत है। वह कलनारूपी कलंक से रहितहै और कलनागणसे संयुक्तभी है। सम्पूर्ण देहों में वही एकदेव व्यापरहाहै परन्तु प्रत्यक्ष हृदयमें जो होता है सो निर्मल चिन्मात्र प्रकाश रूपहै और कलनारूपी कलंकसे रहित सदा प्रत्यक्ष है और अपने आपही से अनुभव

होता है। सर्वदा सर्वपदार्थों का प्रकाशक प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्त्व जो अपने आपमें स्थितहै सो अपने फुरनेसे शीघ्रही द्वैतकीनाईं होजाताहै। हे मुनीश्वर! जोकुछ साकार रूप जगत् दृष्ट आता है सो सब विराट् आत्मा है। इससे आपको विराट् की भावना करो कि, हाथ, पांव, नख, केश यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरादेह है; मैंहीं प्रकाशरूप एक देव हूं, नीति इच्छादिक मेरीशक्ति है और सब मेरीउपासना करते हैं। जैसे स्त्री श्रेष्ठ भर्त्तारकी सेवाकरती है तैसेही शक्ति मेरी उपासना करती है; मनमेरा द्वारपाल है जो त्रिलोकी का निवेदन करनेवाला है; चिन्तन मेरी आनेवाली प्रतिहारी है, नानाप्रकार के ज्ञान मेरे अंग के भूषण हैं; कर्म्मइन्द्रियां मेरेद्वारहैं और ज्ञानइन्द्रियां मेरे गण हैं। ऐसा मैं एक अनन्त आत्मा अखण्डरूप भेद से रहित अपने आपमें स्थित सब में परिपूर्णहूं। हे मुनीश्वर! इसी भावना से जो एक देवकी पूजाकरता है वह परमात्मदेवको प्राप्तहोता है। दीनता आदिक उसके क्लेश सब नष्ट होजाते हैं, अनिष्ट की प्राप्ति में उसे शोक नहीं उपजता और इष्टकी प्राप्ति में हर्ष नहीं उपजता; न तोषवान् होता है और न कोपवान् होता है; विषयकी प्राप्ति से न तृप्तमानताहै और न इनके वियोगसे खेदमानता है; और न अप्राप्तकी वाञ्छाकरताहै, न प्राप्तके त्यागकी इच्छाकरताहै; सर्वपदार्थ में समभाव रहताहै। ऐसा पुरुष उसदेवका परमउपासकहै। ग्रहण त्यागसे रहित सब में तुल्यरहना और भेदभाव को प्राप्त न होना उसदेव का उत्तम अर्चनहै। हे मुनीश्वर! चेतनतत्त्व देव मैंने तुमसे कहाहै जो इसीदेह में स्थित है। जो वस्तु प्राप्तहो उससे अर्चन करके उसी के आगेरखना; सबका साक्षीआत्माको देखना और किसी से खेदवान् न होना और उसमें अहंप्रतीति रखकर भिन्नदृश्य की भावना न करना; यही उसदेव की अर्चना है। हे मुनीश्वर! जोकुछ प्राप्तहो उसमें यत्न विना तुल्यरहना जो भक्ष्य, लेह्य, चोष्य भोजन प्राप्तहो उसे देवके आगे रख के ग्रहण त्यागकी बुद्धि उसमें न करना, यह उसदेवका पूजन है। सबपदार्थों की प्राप्तिमें देवकी पूजाकरने से अनिष्ट भी इष्ट होजाता है। मृत्युआवे तो देवकी पूजा, जन्मआवे तब देव की पूजा, दरिद्र आवे तब देवकी पूजा, राग प्राप्तहो तो देवकीपूजा और नानाप्रकार की विचित्र चेष्टाकरनी सो सब उसदेव के आगे पुष्पहैं; रागद्वेष में समरहनाही उसदेवकी पूजा है। सन्तों के हृदय की रहनेवाली जो मैत्री है कि, सम्पूर्ण विश्वका मित्र होना उससे भी उसदेवका पूजन है और भोग, त्याग, रागसे जो कुछ प्राप्तहो उससे उस देवका पूजन करो। जो नष्ट हुआ सो हुआ और जो प्राप्तहुआ सो हुआ दोनों में निर्विकार रहना इससे उसदेवका अर्चन करो। ये भोग आपातरमणीय हैं, होते भी हैं और नष्टभी होजाते हैं इनकी इच्छा न करना; सदा सन्तुष्ट रहना जैसे आनि प्राप्तहो उसमें राग द्वेष से रहित होना सो उस देवका अर्चन है। हे मुनी-

श्वर ! जो कुछ प्रारब्ध से प्राप्तहो उससे आत्माका अर्चनकरो और इच्छा अनिच्छा को त्यागकर जो प्राप्तहो उससे उसदेवका अर्चनकरो। हे मुनीश्वर ! ज्ञानवान् न किसी की इच्छा करता है और न त्याग करता है जो अनिच्छित प्राप्तहो उसको भोगता है। जैसे समुद्र में नदी प्राप्त होती हैं और वह उससे न कुछ हर्ष मानता है न शोककरता है तैसेही ज्ञानवान् इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति में राग द्वेषसे रहित यथाप्राप्तको भोगता है सोही उसदेवका पूजन है। देश, काल, क्रिया, शुभ अथवा अशुभ प्राप्तहो उसमें संसरण विकारको प्राप्त न होना उसदेवकी अर्चनाहै। यदि द्रव्य अनर्थरूपहो तौभी समरससे मिलाहुआ अमृत होजाताहै। जैसे षट्रस स्वाद शकरसे मिलेहुये मधुर होजाते हैं तैसेही अनर्थरूपी रस समरससे मिलेहुये अमृत होजातेहैं, खेद नहीं करते और अनन्तरूप होजातेहैं। चन्द्रमाकी नाईं सब भावना अमृतमय होजाती है। जैसे आकाश निर्लेपहै तैसेही समताभाव करके चित्त रागद्वेषसे रहित निर्मल होजाताहै। द्रष्टा को दृश्यसे मिला न देखना साक्षीरूप रहनाही देवकी अर्चना है। जैसे पत्थरकी शिला निस्पंद होतीहै तैसेही विकल्पसे रहित चित्त अचल होता है; सोही देवकी अर्चनाहै। हे मुनीश्वर ! भीतरसे आकाशवत् असंगरहना और बाहरसे प्रकृति आचार में रहना; किसीकासंग हृदय में स्पर्श न करना और सदा समभाव विज्ञान से पूर्णरहनाही उस देवकी उपासना होतीहै। जिसके हृदयरूपी आकाश से अज्ञानरूपी मेघ नष्ट होगया है उसको स्वप्नमें भी विकार नहीं प्राप्तहोता और जिसके हृदयरूपी आकाशसे अहंतारूपी कुहिरा शान्त होगयाहै वह शरत्काल के आकाशवत् उज्ज्वल होताहै। हे मुनीश्वर ! जिसको समभाव प्राप्तहुआ है और उससे उसने देवको पाया है वह पुरुष ऐसा होजाता है जैसा नूतन बालक राग द्वेषसे रहित होताहै। जीवरूपी चेतनाको उल्लंघकर परम चेतनतत्त्वको प्राप्त होता है और सकल इच्छा और सुख दुःख भ्रमसे मुक्त शरीर का नायक तिष्ठित होताहै सोही देव अर्चना है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदेवअर्चनाविधानन्नामाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ३८॥

ईश्वरबोले, हे मुनीश्वर ! जैसी कामनाहो और जो कुछ आरम्भकरो अथवा न करो सो अपने आपसे चिन्मात्र संवित्तत्त्वकी अर्चनाकरो इससे वह देव प्रसन्नहोताहै और जब देव प्रसन्नहुआ तब प्रकट होताहै। जब उसको पाया और स्थितहुआ तब राग द्वेषादिक शब्दोंका अर्थ नहीं पायाजाता। जैसे अग्निमें बर्फका कणका नहीं पायाजाता तैसेही फिर उसमें राग द्वेषादिक नहीं पायाजाता। इससे उस देवकी अर्चना करनी योग्य है। यदि राज्य अथवा दरिद्र व सुख दुःख प्राप्तहो उसमें समरहनाही देवअर्चना करनी है। हे मुनीश्वर ! शुद्ध चिन्मात्रसे प्रमादी न होना इसीकानाम अर्चनाहै। जो कुछ घट पट आदिक जगत् भासताहै सो सब आत्मरूपहै उससे भिन्न कुछ नहीं। वह आत्मा शिव

शांतिरूप अनाभासहै और एकही प्रकाशरूप है। सम्पूर्ण जगत् प्रतीत मात्र है और आत्मा से भिन्न कुछ द्वैत वस्तु आभास नहीं। सर्वात्मारूप अद्वैततत्त्व जब भासता है तब उसमें प्राप्तहुआ जानता है कि, बड़ा आश्चर्य्य है; घटपटादिक सब वहीरूप है और तो कुछ नहीं। हे मुनीश्वर! यह सब सर्वात्मा अनन्तरूप शिवतत्त्व है, जिसको ऐसे निश्चय प्राप्तहुआ है उसने देव की पूजा जानी है। घटपट आदिक जो पदार्थ हैं और पूज्य—पूजा—पूजकभाव सो सब ब्रह्मरूप है; निर्मलदेव आत्मामें कुछ भेदभाव नहीं है। हे मुनीश्वर! आत्मदेव सर्वशक्त और अनन्तरूप है जगत् में उससे भिन्न कुछ नहीं। निर्मल प्रकाश संवित्रूप आत्मा स्थित है; हमको तो ईश्वर देव से भिन्न कुछ नहीं भासता और सर्वत्र, सर्वप्रकार वही सर्वात्मा सम्पूर्ण दृष्ट आता है। जिनको देशकालके परिच्छेद सहित ईश्वर भासताहै वे हमारे उपदेशके पात्र नहीं; वे ज्ञानबन्ध नीचेहैं। उनकी दृष्टिको त्यागकर मेरी दृष्टिका आश्रयले तो स्वस्थ, वीतराग और निरामयहो और यथाप्रारब्ध जो कुछ सुख दुःख आन प्राप्तहो खेदसे रहित होकर उस देवका अर्चनकरे तब शांति प्राप्तहो। हे मुनीश्वर! उस देवकी सब प्रकार सर्वात्मा करके भावना करो—यही उसका पूजन है। वृत्तिका सदा अनुभवरूप में स्थित रहना और यथाप्राप्तमें खेदसे रहित विचरना यही उस देवकी अर्चना है। जैसे स्फटिकके मन्दिरमें प्रतिबिम्ब भासते हैं सो और कुछ नहीं निष्कलंक स्फटिकही हैं, तैसेही सर्व ओर से रहित और जन्मादिक दुःख से रहित निष्कलंक आत्मा है उसकी प्राप्ति से तेरेमें जन्मादिक कलंक दुःख कुछ न रहेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेईश्वरोपाख्यानेदेवपूजाविचारो नामएकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ३९॥

वशिष्ठजी बोले, हे देव! शिव किसको कहते हैं और ब्रह्म, आत्म, परमात्म, तत्सत्, निष्किञ्चन, शून्य, विज्ञान इत्यादिक किसको कहते हैं और ये भेदसंज्ञा किस निमित्त हुई हैं कृपाकरके कहो? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जब सबका अभाव होता है तब अनादि अनन्त अनाभास सत्तामात्र शेषरहता है जो इन्द्रियों का विषय नहीं उसको निष्किञ्चन कहते हैं। फिर मैंने पूछा, हे ईश्वर! जो इन्द्रियां, बुद्धि आदिक का विषय नहीं उसको क्योंकर पासक्ते हैं? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! जो मुमुक्षु हैं और जिनको वेदके आश्रय संयुक्त सात्त्विकीवृत्ति प्राप्तहुई है उनको सात्त्विकरूप जो गुरुशास्त्र नाम्नी विद्या प्राप्त होती है उससे अविद्याका भाग नष्ट होजाता है और आत्मतत्त्व प्रकाश होआता है। जैसे साबुनसे धोबी वस्त्रका मैल उतारता है तैसेही गुरु और शास्त्र अविद्याको दूर करते हैं। जब कुछ काल में अविद्या नष्ट होती है तब अपना आपही दीखता है। हे मुनीश्वर! जब गुरु और शास्त्रों का मिलकर

विचार प्राप्त होता है, तब स्वरूपकी प्राप्ति होती है; द्वैतभ्रम मिटजाता है और सर्व आत्माही प्रकाशता है और जब विचार द्वारा आत्मतत्त्व निश्चय हुआ कि, सर्व आत्माही है उससे कुछ भिन्न नहीं तो अविद्या जाती रहती है । हे मुनीश्वर ! आत्मा की प्राप्तिमें गुरु और शास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं क्योंकि, जिनके क्षयहुये से वस्तु पाइये उनके विद्यमानहुये कैसे पाइये ? इन्द्रियों के समूह का नाम गुरु है और ब्रह्म सर्व इन्द्रियों से अतीत है; इनसे कैसे पाइये ? अकारण है परन्तु कारणभी हैं क्योंकि; गुरु और शास्त्रके क्रमसे ज्ञानकी सिद्धता होती है और गुरु और शास्त्र विना बोधकी सिद्धता नहींहोती । आत्मा निर्देश और अदृश्य है तो भी गुरु और शास्त्र से मिलताहै और गुरु और शास्त्रसे भी मिलता नहीं अपने आपही से आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है । जैसे अन्धकारमें पदार्थहो और दीपक के प्रकाश से दीखे तो दीपक से नहीं पाया अपने आपसे पाया है; तैसेही गुरु और शास्त्रभी है । यदि दीपकहो और नेत्र न हों तब कैसे पाइये और नेत्रहों और दीपक नहो तौभी नहीं पायाजाता जब दोनोंहों तब पदार्थ पायाजाता है; तैसेही गुरु और शास्त्रभी हो और अपना पुरुषार्थ और तीक्ष्णबुद्धि भी हो तब आत्मतत्त्व मिलता है अन्यथा नहीं पायाजाता । जब गुरु, शास्त्र और शिष्यकी शुद्धबुद्धि तीनों इकट्ठे मिलते हैं तब संसारके सुख दुःख दूरहोते हैं और आत्मपदकी प्राप्तिहोती है । जब गुरु और शास्त्र आवरण को दूरकरदेते हैं तब आपसे आपही आत्मपद मिलता है । जैसे जब वायु बादलको दूरकरती है तब नेत्रों से सूर्य्य दीखता है । अब नाम के भेद सुनो । जब बोधके वशसेकर्म और बुद्धि इन्द्रियां क्षयहोजाती हैं उसके पीछे जो शेषरहता है उसकानाम संवित्तत्त्व आत्मसत्ता आदिक है । जहां ये सम्पूर्ण नहीं और इनकी वृत्ति भी नहीं उसके पीछे जो सत्ता शेष रहती है सो आकाशसे भी सूक्ष्म और निर्मल अनन्त परम शून्यरूप है—जहां शून्य का भी अभाव है । हे मुनीश्वर ! जो शांतरूप मुमुक्षु मननकलना से संयुक्त हैं उन को जीवन्मुक्ति पदके बोधके निमित्त शास्त्र मोक्ष उपाय, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, लोकपाल, पण्डित, पुराण, वेद, शास्त्र और सिद्धान्त रचे हैं और उनमें शास्त्रों ने चेतन, ब्रह्म, शिव, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, सत्, चित्, आनन्द आदिक भिन्न २ अनेक संज्ञा कही हैं पर ज्ञानी को कुछ भेदनहीं । हे मुनीश्वर ! ऐसा जो देव है उसका ज्ञानवान् इसप्रकार अर्चन करते हैं । और जिसपद के हम आदिक टहलुये हैं उस परमपदको वे प्राप्तहोते हैं । फिर मैंने पूछा, हे भगवन् ! यह सब जगत् अविद्यमानहै और विद्यमान की नाईं स्थित है सो कैसे हुआ है । समर्स्त कहने को तुमहीं योग्यहो ? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर ! जो ब्रह्म आदिक नामसे कहाताहै वह केवल शुद्ध संवित्मात्र है और आकाशसे भी सूक्ष्म है । उसके आगे आकाश भी ऐसा स्थूल है जैसा अणुके

आगे सुमेरु स्थूलहोताहै। उसमें जब वेदनाशक्ति आभासहोकर फुरती है तब उसका नाम चेतनहोता है। फिर जब अहन्ताभावको प्राप्तहुआ—जैसे स्वप्ने में पुरुष आप को हाथी देखने लगै तैसे आपको अहं माननेलगा, फिर देशकाल आकाश आदिक देखनेलगा तब चेतनकला जीव अवस्थाको प्राप्तहुई और वासनाकरनेवालीहुई; जब जीवभाव हुआ तब बुद्धि निश्चयात्मक होकर स्थितहुई और शब्द और क्रियाज्ञान संयुक्तहुई और जब एकएकसे मिलकर शीघ्रही कल्पित हुये तब मनहुआ जो संकल्परूपी भाषा का बीज है। तब अन्तवाहक शरीर में आत्मस्वरूप होकर ब्रह्मसत्ता स्थितहुई। इसप्रकार यह उत्पन्नहुई है। फिर वायुसत्ता स्पन्दहुई जिससे स्पर्शसत्ता त्वचाप्रकटहुई; फिर तेजसत्ताहुई जिससे प्रकाशसत्ताहुई और प्रकाशसे नेत्रसत्ता प्रकट हुई; फिर जलसत्ताहुई जिससे स्वाद—रससत्ताहुई और उससे जिह्वा प्रकट हुई; फिर गन्धसत्ता से भूमि, भूमिसे घ्राणसत्ता और उससे पिंडसत्ता प्रकटहुई। फिर देशसत्ता कालसत्ता और सर्वसत्ताहुई जिनको इकट्ठाकरके अत्मसत्ताफुरी। जैसे बीज पत्र, फूल फलादिक के आश्रय होता है तैसेही इस पुर्यष्टका को जानो। यही अन्तवाहक देहहै इसी के आश्रय ब्रह्मसत्ता हुई। वास्तव में कुछ उपजा नहीं केवल परमात्मसत्ता अपने आपमें फुरती है। जैसे जलमें जल फुरताहै तैसेही आत्मसत्ता अपने आप में फुरती है। हे मुनीश्वर! संवित्में जो संवेदन पृथक्रूप होकर फुरे उसे निस्पन्द करके जब स्वरूप को जाने तब वह नष्ट होजाती है। जैसे संकल्पकारचानगर संकल्पके अभाव हुये अभाव होजाताहै; तैसेही आत्माके ज्ञानसे संवेदनका अभाव होजाता है। हे मुनीश्वर! संवेदन तबतक भासता है जबतक उसको जानानहीं; जब जानता है तब संवेदनका अभाव होजाता है और संवित् में लीन होजाती है; भिन्नसत्ता इसकी कुछनहीं रहती। हे मुनीश्वर! जो प्रथम अणुतन्मात्रा थी सो भावना के वशसे स्थूल देहको प्राप्तहुई और स्थूलदेह होकर भासने लगी; आगे जैसे २ देशकाल पदार्थ की भावना होतीगई तैसे तैसे भासनेलगी और जैसे गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर भासता है तैसेही भावना के वशसे ये पदार्थ भासनेलगे हैं मैंने पूंछा, हे भगवन्! गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर के समान इसको कैसे कहते हो? यह जगत् तो प्रत्यक्ष दीखता है? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! संसार को दुःख वासना के वशसे दीखताहै कि, अविद्यमान में स्वरूपके प्रमादकरके विद्यमानबुद्धि हुई है और जगत् के पदार्थों का सत् जान कर जो वासना फुरती है उससे दुःख होता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है। जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य होता है तैसेही यह जगत् असत्य है उसमें वासना, वासक और वासना करने योग्य तीनों वृथाहैं जैसे मृगतृष्णाका जलपान करके कोई तृप्त नहीं होता क्योंकि, जलही असत् है; तैसेही यह जगत्ही असत्

है इसके पदार्थोंकी वासना करनी वृथा है । ब्रह्मासे आदि तृणपर्यंत सब जगत् मिथ्यारूप है। वासना, वासक और वासना करनेयोग्य पदार्थों के अभावहुये केवल आत्मतत्त्व रहता है और सब भ्रम शान्त होजाताहै । हे मुनीश्वर! यह जगत् भ्रममात्रहै-वास्तव में कुछ नहीं । जैसे बालक को अज्ञानसे अपनी परछाहीं में वेताल भासता है और जब विचार करके देखे तब वेतालका अभाव होजाताहै तैसेही अज्ञानसे यह जगत् भासताहै और आत्मविचार से इसका अभाव होजाताहै । जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासतीहै और आकाशमें नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही आत्मामें अज्ञानसे देह भासताहै। जिसकी बुद्धि देहादिकमें स्थितहै वह हमारे उपदेश के योग्य नहीं है । जो विचारवान् है उसको उपदेश करना योग्य है और जो मूर्ख भ्रमी और असत्वादी सत्कर्मसेरहित अनार्यहै उसको ज्ञानवान् उपदेश न करे। जिनमें विचार, वैराग्य, कोमलता और शुभ आचारहों उनको उपदेश करना योग्य है और जो इन गुणोंसे रहित हों उनको उपदेशकरना ऐसे होताहै जैसे कोई महासुन्दर और सुवर्णवत् कांतिवाली कन्याको कल्पित पुरुषको विवाह देनेकी इच्छाकरे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्मिथ्यात्वप्रतिपादन न्नामचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे भगवन्! वह जीव जो आदिस्वर्ग से उत्पन्नहुआ और अपने साथ देहभ्रम देखने लगा उसके अनन्तर वह कैसे स्थितहुआ? ईश्वर बोले, हे मुनीश्वर! वह जीव स्वप्नकी नाईं सर्वगत चिद्घन आत्मा के आश्रय उपजकर अपने शरीरको देखताभया। हे मुनीश्वर! आदि जो जीव फुरकर प्रमाद को न प्राप्तहुआ और अपने स्वरूपहीमें अहंप्रत्यय रहा इसकारण ईश्वरहोकर स्थितहुआ। उसको यह निश्चय रहा कि मैं सनातन, नित्य, शुद्ध, परमानन्द और अव्यक्तरूप परमपुरुष हूं आत्माकी अपेक्षासे उसको जीव कहाहै और सृष्टि जगत्की अपेक्षाकरके उसको ईश्वर कहा। हे मुनीश्वर! वह जो आदिजीवहै सो कभी विष्णुरूप होकर ब्रह्माको नाभिकमल से उत्पन्न करता है किसीसृष्टि में प्रथम ब्रह्मा हुआ है और विष्णु और रुद्र उससे हुये हैं; किसी सृष्टिमें प्रथम रुद्र हुआ उससे विष्णु और ब्रह्माहुये। चेतन आकाशमें जैसा २ संकल्प फुरा है तैसाही तैसा होकर स्थित हुआहै। आदि जीवने उपजकर जिस जिस प्रकार का सङ्कल्प किया है तैसा तैसा होकर स्थित हुआ है। वास्तव में सब असत् रूप है और अज्ञान भ्रमकरके हुआ है। जैसे परछाहीं में वेतालहोताहै तैसेही अज्ञान करके सत्रूप हो भासता है आदि पुरुष से लेकर जो सृष्टि है सो परमाकाश के एक निमेष में हुई है और उन्मेष में लयहोजाती है। एकनिमेष के प्रमाद से कल्प के समूह व्यतीत होजाते हैं और परमाणु परमाण में सृष्टि फुरती है उनमें कल्प और

महाकल्प भासते हैं। कई सृष्टि परस्पर दीखती हैं और कई अन्योन्य अदृश्यरूप हैं। इसीप्रकार सृष्टि उसके स्पन्दकला में फुरी है और चमत्कार होताहै और जब स्पन्द कला स्वरूप की ओर आती है तब लीन होजाती है। जैसे स्वप्नेका पर्वत जागेसे लीन होजाताहै तैसेही जाग्रत्‌की सृष्टि अफुरहुये लीन होजाती है। हे मुनीश्वर! जीवजीवप्रति अपनी अपनी सृष्टि हैं उन सृष्टियोंको कोई देशकाल रोंक नहीं सक्ता क्योंकि, वे अपने अपने संकल्पमें स्थितहैं और आत्मा का चमत्कार हैं। जैसा फुरना फुरता है तैसा चमत्कार भासता है। हे मुनीश्वर! न कुछ उपजा है, न कुछ नाश होता है; स्वतः चेतनतत्त्व अपने आप में चमकता है। जैसे स्वप्ननगर उपजकर नष्ट होजाताहै और संकल्पका पहाड़ उपजकर मिटजाताहै; तैसेही जगत् उपजकर नष्ट होजाताहै। जैसे स्वप्न और संकल्प के पहाड़ को कोई रोंक नहीं सक्ता तैसेही अपनी २ सृष्टि को देश काल रोंक नहीं सक्ता क्योंकि, और ठौरमें इनका सद्भाव नहीं। इससे यह जगत् अपने अपने कालमें सत्‌रूप है, आत्मामें सद्भाव नहीं--संकल्परूप है। हे मुनीश्वर! जैसे आदितत्त्व से जीव ईश्वर फुरे हैं तैसेही कर्म फुरे हैं। रुद्रसे लेकर वृक्षपर्यंत सब एक क्षण में उसी तत्त्व से फुरआये हैं। सुमेरु आदिकभी अपने स्थित में रोंकते हैं अन्य अणुको नहीं रोंकसक्ते क्योंकि, वहां हैही नहीं। इससे आत्मा में सृष्टि आभासरूपहै। हे मुनीश्वर! इसप्रकार सबजगत् मायामात्र है और भावना से भासता है; जब आत्माका अभ्यास होता है; तब भेदकल्पना मिटजाती है और केवल उपशमरूप शिवतत्त्व भासता है। हे मुनीश्वर! निमेष का जो समभाग है उसके अर्द्धभाग प्रमाद होने से नानाप्रकार का जगत् हो भासता है। सत् असत्‌रूप जगत् मनरूपी विश्वकर्मा बनाता है। आत्मतत्त्व न दूर है, न निकट है, न नीचे है, न ऊंचे है, न पूर्व में है और न पश्चिम में है सत् असत् के मध्य अनुभवरूप सर्व का ज्ञाता है। उसमें प्रत्यक्षआदिक प्रमाण नहीं करसक्ते--जैसे जलमें अग्नि नहीं निकलती। हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने पूंछा था सो मैंने कहा उसमें चित्त के लगाने से तुम्हारा कल्याण होगा। इतना कह सदाशिव बोले; कि अब हम अपने वाञ्छित स्थान को जाते हैं; चलो पार्वती अपने स्थान को चलें। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार ईश्वर ने कहा तब मैंने अर्घ्य पाद्यसे उनका पूजन किया और ईश्वर पार्वती और गणोंको लेकर आकाशमार्गको चले। जबतक मुझको दृष्टिआते रहे तबतक मैं उनकी ओर देखतारहा फिर अपने कुशके स्थानपर आन बैठा और जो कुछ ईश्वर ने उपदेश किया था वह मैं अपनी सुध बुधसे विचारने लगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थविचारोनामएकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ ईश्वरने मुझसे कहा सो मैं आपभी जानता था और तुमभी जानतेहो । यह जगत् भी असत् है और देखनेवाला भी असत् है; उस मायारूप जगत् में मैं तुमसे सत् क्याकहूं और असत् क्याकहूं ? जैसे जल में द्रवता होती है तैसेही आत्मामें जगत् है और जैसे पवनमें स्पन्द और आकाश में शून्यता होती है तैसेही आत्मा में जगत् है । हे रामजी ! जो कुछ पतित प्रवाहसे प्राप्त होता है उसीसे मैं देवअर्चन करताहूं । इस क्रमसे मैं निर्वासनिकहूं और जगत् की क्रिया में भी निर्दुःख होकर चेष्टा करता हूं; व्यवहार करता दृष्टि आता हूं तो भी सदा शांतिरूप हूं और यथाप्राप्त आचापरूपी फूलसे आत्मदेवकी अर्चना करताहूं–छेद भेद मुझको कोई नहीं होता है । हे रामजी ! विषय और इन्द्रियों का सम्बन्ध सबजीवोंको तुल्य है पर जो ज्ञानवान् हैं वे सावधान रहते हैं और जो कुछ देखते, सुनते, बोलते, खाते, सूंघते और स्पर्श करते हैं वह सब आत्मतत्त्वमें अर्चन करते हैं और आत्मासे भिन्न नहीं जानते । अज्ञानियोंको कर्तृत्व–भोक्तृत्वका अभिमान होता है और उसमें वे दुःखीहोते हैं । हे रामजी ! तुम भी ऐसी दृष्टिको आश्रयकरके संसाररूपी वनमें निःसंग होकर विचरो तो तुमको कुछ खेद न होगा । जिसकी वृत्ति इस प्रकार समान होगई है उसको बड़ाकष्ट प्राप्तहो व धन बांधवोंका वियोगहो तौभी उसको खेद नहींहोता । यह जो दृष्टि मैंने तुम से कहीहै जब उसका आश्रयकरोगे तब तुमको कोई दुःख न होगा । हे रामजी ! सुख, दुःख, धन और बांधवों का वियोग ये सब पदार्थ अनित्य हैं ये आते भी हैं और जातेभी हैं इनको आगमापायी जानकर विचरो । यह संसार विषमरूप है, एकरस कदाचित् नहीं रहता; इसको स्थित जानकर दुःखी न होना । हे रामजी ! पदार्थ और काल जैसे जावे तैसे जावे और जैसे सुख दुःख आवे तैसे आवे येसब आगमापायी पदार्थ हैं; आतेभी हैं और जातेभी हैं । इष्टकीप्राप्ति और अनिष्टकी निवृत्तिमें हर्षवान् न होना और अनिष्टकी प्राप्ति और इष्टके वियोगसे खेदवान् न होना; जैसे आवे तैसे जावे, जैसे जावे तैसे आवे; जिसको आना है वह आवेगा और जिसको जानाहै वह जावेगा; ये सुख दुःख प्रवाहरूपहैं इनमें आस्था करके तपायमान न होना । हे रामजी ! यह सब जगत् तुमही हो और तुमही जगत रूप हो और चिन्मात्र विस्तृत आकार भी तुमही हो; यदि सब तुमही हो तो हर्ष शोक किस निमित्त करतेहो ? इसी दृष्टिका आश्रय करके जगत् में सुषुप्त होकर विचरो तो तुरीयातीत अवस्थाको प्राप्त होगे जो सम प्रकाशरूप है । हे रामजी ! जो कुछ मुझे तुमसे कहनाथा सो कहा है आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो । पीछे तुमने पूंछाथा कि अनन्तरूप ब्रह्म में कलंक कैसे प्राप्तहुआ है सो अब फिर प्रश्नकरो कि, मैं उत्तरदूं । रामजी ने कहा, हे ब्रह्मन् ! अब मुझको कुछ संशय नहीं रहा; मेरे सब

संशय नष्ट होगये हैं और जो कुछ जाननाथा सो मैंने जानाहै। अब मैं परमअकृत्रिम तृप्तताको प्राप्तहुआ हूं। हे मुनीश्वर! आत्मामें न मैलहै, न द्वैतहै और न एक आदि कोई कल्पना है। पहिले मुझको अज्ञानताथी तब मैंने पूंछाथा; अब तुम्हारे वचनों से मेरी अज्ञानता नष्ट हुई है इससे कुछ कलङ्क नहीं भासता। आत्मा में न जन्महै, न मरणहै सर्व ब्रह्महीं है। हे मुनीश्वर! प्रश्न संशय से उपजता है सो संशय मेरा नष्ट होगया है। जैसे यंत्रीकी पुतली हिलाने से रहित अचल होती है तैसेही मैं संशयसे रहित अचल स्थित हूं और सर्व सारोंका सार मुझको प्राप्त हुआ है। जैसे सुमेरु अचल होताहै तैसेही मैं अचलहूं और कोई क्षोभ मुझको नहीं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मुझको त्यागने योग्यहो और ऐसा भी कोई पदार्त्थ नहीं जो ग्रहणकरने योग्य हो, न किसी पदार्थकी मुझको इच्छाहै और न अनिच्छाहै मैं शांतरूप स्थित हूं; न स्वर्गकी मुझको इच्छा है न नरक में द्वेषहै; सर्व्व ब्रह्मरूप मुझको भासता है और मन्दराचल पर्वतकी नाई आत्मतत्त्व में स्थितहूं। हे मुनीश्वर! जिसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि होती है और कलनाकाल हृदयमें स्थितहोती है वह किसीको ग्रहणकरता है; किसीको त्यागकरता है और दीनताको प्राप्त होता है। हे मुनीश्वर! यह संसार महासमुद्ररूप है; उसमें राग द्वेषरूपी कल्लोलें हैं और शुभ अशुभरूपी मच्छ रहते हैं। ऐसे भयानक संसारसमुद्र से अब मैं आपके प्रसादसे तरगयाहूं और सब सम्पदाके अन्तको प्राप्तहोकर मेरे सबदुःख नष्टहोगयेहैं। सबके सारको प्राप्तहोकर मैं पूर्णआत्माहूं और अदीनपद और परमशान्त अभेदसत्ता को प्राप्त हुआ हूं। आशारूपी हाथीको मैंने सिंह बनकर मारा है अब मुझको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता। मेरे सब विकल्पों के जाल गलगये हैं, इच्छादिक विकार नष्ट होगये हैं और दीनता जातीरहीहै। तीनों जगत्‌में मेरी जयहै और मैं सदा उदितरूपहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्रान्त्यागमनन्नाम द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो केवल देह इन्द्रियों से करता है और मनसे नहीं करता वह जो कुछ करताहै सो कुछ नहीं करता। जो कुछ इन्द्रियोंसे इष्ट प्राप्तहोताहै उससे क्षणमात्र सुख प्राप्तहोता है; उस क्षणकी प्रसन्नता में जो बन्धायमान होताहै वह बालकवत् मूर्खहै। जो ज्ञानवान्‌है वह उसमें बन्धायमाननहींहोता। हे रामजी! वांछाही इसको दुःखी करती है। जो सुन्दर विषयोंकी वांछाकरता है उसे जब यत्नसे उनकी प्राप्ति होतीहै तो क्षणभर सुख होताहै और जब वियोग होताहै तब दुःखदेतेहैं। इस कारण इनकी वांछा त्यागनाही योग्यहै। इनकी वांछा तब होतीहै जब स्वरूपका अज्ञान होता है और देहादिकमें भावहोताहै जब देहादिक में अहंभाव होताहै तब अनेक

अनर्थकी प्राप्तिहोती है; इससे हे रामजी ! ज्ञानरूपी पहाड़पर चढ़ेरहना और अहन्तारूपी गढ़ेमें न गिरना । हे रामजी ! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्वतपर चढ़कर फिर अहन्ता अभिमान करके गढ़ेमें गिरना बड़ी मूर्खता है । जब दृश्यभावको त्यागोगे तब अपने स्वभावसत्ताको प्राप्तहोगे, जो सम और शान्तरूप है और जिससे विकल्पजाल सब मिटजावेगा, समुद्रवत् पूर्णहोगे और द्वैतरूप न फुरेगा । हे रामजी ! जब हृदय में विषय को विषजाने तब मन भी निरस होजाता है । और चित्त निस्संग होता है । वास्तवमें देखो तो सब में सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्घन स्थित है पर द्वैतस्वरूप के प्रमाद से नहीं भासता । हे रामजी ! आत्माका अज्ञानही बन्धनरूप है और आत्मा का बोध मुक्तरूप है; इस से बलकरके आपको आपही जगाओ तब इस बन्धन से मुक्तहोगे । हे रामजी ! जिसमें विषय का स्वाद नहीं और जिस में उनका अनुभव होता है वह तत्त्व आकाशवत् निर्मलसत्ता वासना से रहित है । वासना से रहित होकर जो पुरुष कुछ किया करता है वह विकार को नहीं प्राप्त होता । यद्यपि अनेक क्षोभ आय प्राप्त हों तौभी उसको विकार कुछ नहीं होता । ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ये तीनों आत्मरूप भासते हैं; जब ऐसे जाने तब किसी का भय नहीं रहता । चित्त के फुरने से जगत् उत्पन्न होता है और चित्तके अफुरहुये लीन होजाता है । जब वासना सहित प्राण उदय होते हैं तब जगत् उदय होता है और जब वासनासहित प्राण लीन होते हैं तब जगत् भी लीन होता है । अभ्यास करके वासना और प्राणों को स्थितकरो । जब मूर्खता उदय होती है तब कर्म्म उदय होते हैं और मूर्खता के लीन हुये कर्म भी लीन होते हैं; इस से सत्संग और सत्शास्त्रों के विचार से मूर्खता को क्षयकरो । जैसे वायुके सङ्गसे धूलिउड़के बादल आकार होती हैं तैसेही चित्तके फुरनेसे जगत् स्थित होता है । हे रामजी ! जब चित्त फुरता है तब नानाप्रकार का जगत् फुरआता है और चित्तके अफुरहुये जगत् लीन होजाता है । हे रामजी ! वासना शान्तहो अथवा प्राणों का निरोध हो तब चित्त अचित्त होजाता है और जब चित्त अचित्त हुआ तब परमपदको प्राप्तहोता है । हे रामजी ! दृश्य और दर्शन सम्बन्ध के मध्य में जो परमात्म सुख है और जो एकान्त सुख है सो संवित् ब्रह्मरूप है; उस के साक्षात्कारहुये मन क्षयहोता है । जहां चित्त नहीं उपजता सो चित्तसे रहित अकृत्रिम सुख है । ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं होता । जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता तैसेही चित्तसहित विषय को सुख नहीं होते । चित्तके उपशम में जो सुख है सो वाणी सेकहा नहीं जाता; उसके समान और कोई सुख नहीं और उससे अतिशय सुखभी नहीं । और सुखनाश होजाता है पर आत्मसुख नाश नहीं होता—अविनाशी है और उपजने विनशनेसे रहित है । हे रामजी ! अबोधसे चित्त उदय होता है और आत्मबोध से

शान्त होजाता है। जैसे मोहसे बालक को वेताल दिखाई देता है और मोहके नष्ट हुये नष्ट होजाता है; तैसेही अज्ञान से चित्त उदय होता है और अज्ञान के नष्ट हुये नष्ट होता है। यदि चित्त विद्यमान भी भासता है तबभी बोधसे निर्बीज होता है। जैसे पारसके साथ मिलकर तांबा सुवर्ण होता है तो आकार तो वही दृष्टिआता है परन्तु तांबेभावका अभाव होजाता है; तैसेही अज्ञान से जगत् भासता है और ज्ञान से चित्त अचित्त होजाता है; जड़ जगत् नहीं भासता, ब्रह्मसत्ता होकर भासता है और सत्पद को प्राप्त होता है परन्तु नामरूप तैसेही भासता है। हे रामजी! ज्ञानी का चित्तभी क्रिया करता दृष्टिआता है परन्तु चित्त अचित्त होजाता है। जो अज्ञान करके भासता है सो ज्ञानकरके शून्य होजाता है। जो कुछ जगत् अबोध से भासता था सो बोध से शान्त होजाता है फिर नहीं उपजता। वह चित्त शान्तपदको प्राप्त होता है। कुछ काल तो वह भी तुरीया अवस्था में स्थित हुआ विचरता है फिर तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है। अध, ऊर्ध्व, मध्य सर्व ब्रह्मही इसप्रकार अनेक होकर स्थित हुआ है। अनेक भ्रम करके भी एकही है और सर्वात्माही है—चित्ता-दिक कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तसत्तासूचनंनामत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः ४३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम संक्षेपसे एक अपूर्व और आश्चर्यरूप बोधका कारण ज्ञान सुनो। एक बेल फल है जिसका अनन्त योजनपर्य्यंत विस्तारहै और जिसे अनन्तयुग व्यतीत होगयेहैं जर्जरीभावको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता। वह अनादिहै, उसमें अविनाशी रसहै इससे कभी नाश नहींहोता और चन्द्रमाकी नाईं सुन्दर है। सुमेरु आदिक जो बड़ेपहाड़ हैं उनको महाप्रलयका पवन तृणोंकीनाईं उड़ाता है पर वह पवन भी उसको नहीं हिलासक्ता। हे रामजी! योजनोंकी अनन्त कोटिन कोटि संख्याहै पर उसकी संख्या नहीं कीजाती। ऐसा वह बेलफलहै और बहुत बड़ा है। जैसे सुमेरु के निकट राईका दाना सूक्ष्म और तुच्छ भासताहै तैसेही उस बेल फलके आगे ब्रह्माण्ड सूक्ष्म और तुच्छ भासता है। वह बेलरससे पूर्ण है, कभी गिरता नहीं और पुरातन है। उसका आदि, अन्त और मध्य; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक भी नहीं जानसक्ते और न उसके मूलको कोई जानसक्ताहै; न मध्यको कोई जानसक्ताहै। उसका अदृष्ट आकारहै और अदृष्टफलहै; अपने प्रकाशसे प्रकाशता है; उसका घन आकार है; सदा अचल है किसी विकारको नहीं प्राप्तहोता और सत्, निर्म्मल, निर्वि-कार, निरन्तररूप, निरन्ध्र और चन्द्रमाकी नाईं शीतल सुन्दर है। उसमें ज्ञान संवि-तरूपी रसहै सो अपनारस आपही लेताहै और सबको देता है और सबको प्रकाश-कर्त्ताभी वही है। उसमें अनेक चित्ररेखोंने निवासकियाहै परन्तु वह अपने स्वरूप को

नहीं त्यागता अनेकरूप होकर भासता है और उसमें स्पन्दरूपी रसफुरता है । तत्त्वं, इदं, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, द्वेष, हेयोपादेय, भूत, भविष्यत्, काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या इत्यादि कलनाजाल उस रसके फुरने से फुरते हैं। वह बेल आत्म रूप है और अनुभवरूपी उसमें रसहै । वह सदा अपने आपमें स्थित और नित्य शांतरूप है। उसको जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबिलोपाख्यानन्नामचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४४ ॥

रामजी बोले, हे भगवन् ! सर्वधर्मों के वेत्ता आपने यह बेलरूपी महाचिद्घन सत्ताकही सो मुझे ऐसे निश्चय हुआ कि, चेतन मज्जारूप अहंतादिक जगत् है इसमें भेदरञ्चक भी नहीं; एक द्वैतकलना सर्ववही है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे ब्रह्माण्डकी मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी हैं तैसेही चेतन बेलकी मज्जा यह ब्रह्माण्ड है । सब जगत् चेतन बेलरूप है–भिन्न नहीं और उस सर्व चेतन जगत्का विनाश नहीं होसक्ता । हे रामजी ! चेतनरूपी मिरचे के बीजमें जगत्रूपी चमत्कार तीक्ष्णता है सो सुषुप्तवत् निर्मल है और शिला के अन्तरवत् अमिश्रित है। हे रामजी ! अब और आश्चर्यरूप एक आख्यानसुनो कि, महासुन्दर प्रकाश संयुक्त स्निग्ध और शीतल स्पर्श है और विस्तृतरूप एक शिला है सो महानिरन्ध्र और घनरूप है। उसमें कमल उपजते हैं और उसकी ऊर्ध्व बेल है अधमूल है और अनेक शाखा हैं । रामजी बोले, हे भगवन् ! सत्य कहते हो यह शिला मैंने भी देखी है कि, नदी में विष्णु की मूर्ति शालग्राम है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे तो तुम जानते हो और देखा भी है परन्तु जो शिला मैं कहताहूं वह अपूर्व शिला है और उसके भीतर ब्रह्माण्डके समूह हैं और कुछ भी नहीं। हे रामजी ! चेतनरूपी शिला जो मैंने तुमसे कही है उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डहैं; उस घन चेतनता से शिला वर्णन कीहै । वह अनन्तघन और निरन्ध्र है और आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदियां, समुद्र इत्यादिक सबही विश्व उस शिला के भीतर स्थित है और कुछ नहीं है। जैसे शिला के ऊपर कमल लिखे होते हैं सो शिलारूप हैं; शिला से भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मरूपी शिलामें है; आत्मा से भिन्न नहीं । हे रामजी ! भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनोंकाल उस शिला की पुतलियां हैं। जैसे शिल्पी पुतलियां कल्पताहै तैसेही यह जगत् आत्मा में है उपजा नहीं क्योंकि; मनरूपी शिल्पी कल्पताहै और उससे नानाप्रकार का जगत् भासता है; आत्मा में कुछ उपजानहीं । जैसे सुषुप्तरूप शिला के ऊपर कमलरेखा लिखी होती है वह शिला से भिन्न नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मा में है आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे शिला में पुतली होती हैं सो उदय अस्त नहीं होतीं शिला ज्यों की त्यों है; तैसेही आत्मा में जगत् उदय अस्त नहीं होता क्योंकि वास्तव में कुछ नहीं है।

आत्मा में द्वैतकल्पना अज्ञान से भासती है और जब बोध होता है तब शांत होजाती है। जैसे समुद्र में पड़ी जलकी बूंद समुद्ररूप होजाती है तैसेही बोध से कल्पना आत्मामें लीनहोजाती है। हे रामजी! चेतनआत्मा अनन्तहै और उसमें कोई विकार कल्पनानहीं है पर अज्ञानसे कल्पना भासती है और ज्ञानसे लीनहोजाती है। विकार भी आत्माके आश्रय भासते हैं पर आत्मा विकार से रहितहै। ब्रह्मसे विकार उत्पन्नहोते हैं और ब्रह्महीमें स्थितहैं पर वास्तवमें कुछहुयेनहीं; सब आभासमात्रहैं। जैसे किरणों में जलाभास होताहै तैसेही ब्रह्ममें जगत् विकार आभास होता है। जैसे बीजमें पत्र, डाल; फूल और फलका विस्तार होता है और बीजसत्ता सब में मिलीहोती है; बीज से कुछ भिन्न नहीं होता; तैसेही चिद्घन आत्माके भीतर जगत्विस्तार है सो चिद्घन आत्मासे भिन्न नहीं; वही अपने आपमें स्थितहै और जगत् भी वहीरूप है। यदि एक मानिये तो द्वैत भी होताहै और यदि एकनहीं कहाजाता तो द्वैत कहांहो? जगत् और आत्मामें कुछ भेद नहीं; अद्वैत आत्माही अपने आपमें स्थित है। जैसे शिलामें मूर्ति लिखीहोती है सो शिलारूपहै; तैसेही जगत् आत्मारूप है और जैसे शिलामें भिन्न २ विषम मूर्त्ति होती हैं और आधाररूप शिला अभेद है तैसेही आत्मा में जगन्मूर्त्ति भिन्न २ विषमरूप भासती है और चेतनरूप आधार अभेद है। ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् समस्थितहै बड़े विकार भी उसमें दृष्टिआते हैं परन्तु वास्तव सुषुप्तवत् विकार से रहित स्थितहै और फुरने से रहित चेतनशिला स्थितहै उस नित्यशांत चिद्घनरूप सत्तामें यह जगत् कल्पित है अधिष्ठानसत्ता सदा सर्वदा शांतरूपहै भेद कदाचित् नहीं जैसे जलमें तरंग अभेदरूपहै और सुवर्ण में भूषण अभिन्नरूप है तैसे आत्मा में जगत् अभिन्नरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलाकोशउपदेशोनाम
पंचचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बीजके भीतर फूलफल और सम्पूर्ण वृक्षहोता है सो आदि भी बीज है और अन्त भी बीजहै जब फलपरिपक्क होता है तब बीजही होता है तैसे आत्मा भी जगत् में है परन्तु सदा अच्युत और समहै कदाचित् भेदविकार और परिणाम को प्राप्त नहीं हुआ अपनी सत्तासे स्थितहै जगत् के आदि मध्य अन्त में वही है कुछ और भावको प्राप्त नहीं हुआ देशकाल कर्म आदिक जो कुछ कलना भासती है सो वहीरूप है जो कुछ शब्द और अर्थ है वह आत्मा से भिन्न नहीं जैसे वृक्ष के आदि भी बीजहै और अन्त भी बीज है और जो कुछ मध्य में विस्तार भासता है वह भी वही रूप है भिन्न कुछ नहीं तैसे जगत् के आदि भी आत्मसत्ताहै अन्त भी आत्मसत्ता है जो कुछ मध्यमें भासता है वह भी वहीरूप है। हे रामजी! चेतनरूपी

महाआदर्श में सम्पूर्ण जगत् प्रतिबिम्ब होताहै और सम्पूर्ण जगत् सङ्कल्पमात्र है जैसा जैसा किसी में फुरना दृढ़होता है तैसेही आत्मसत्ताके आश्रित होकर भासता है जैसे चिन्तामणि में जैसा कोई सङ्कल्प धारता है तैसाही प्रकट होआता है सो संकल्पमात्रही होता है, तैसे जैसी जैसी भावना कोई करता है तैसी तैसी आत्मा के आश्रित होकर भासती है अनन्त जगत् आत्मरूपी मणि के आश्रित स्थितहोते हैं जैसी कोई भावना करता है तैसी उसको हो भासती है। हे रामजी ! आत्मरूपी डब्बेसे जगत्रूपी रत्न निकलते हैं। जैसा फुरना होताहै तैसाही जगत् भासि आता है। जैसे शिलाके ऊपर रेखा होती हैं और नानाप्रकार के चित्र भासते हैं सो अनन्यरूप है। तैसेही आत्मा में जगत् अनन्यरूपहै और जैसे शिलाके ऊपर शङ्ख चक्रादिक रेखा भासती हैं तैसेही आत्मा में यह जगत् भासता है सो आत्मरूप है। आत्मरूपी शिला निरन्ध्र है, उसमें छिद्र कोई नहीं जैसे जलमें तरङ्ग जलरूपहोते हैं, तैसेही ब्रह्ममें जगत् ब्रह्मरूप है। वह ब्रह्म सम, शान्तरूप, और सुषुप्तवत् स्थित है उसमें जगत् कुछ फुरानहीं शिलाकी रेखावत् है। जैसे बिलाव के भीतर मज्जा होती है, तैसेही ब्रह्ममें जगत् स्थित है और जैसे आकाश में शून्यता; जल में द्रवता और वायुमें स्पन्दता होती है, तैसेही ब्रह्म में जगत् है। ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे तरु और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं—ब्रह्महीं जगत् है और जगत्ही ब्रह्महै। हे रामजी ! इसमें भाव—अभाव भेदकल्पना कोई नहीं ब्रह्मसत्ताही प्रकाशती है और ब्रह्मही जगत्रूपहोकर भासता है। जैसे मरुस्थल में सूर्य्यकी किरणें जलरूप होकर भासती हैं; तैसेही ब्रह्म जगत्रूपहोकर भासता है। हे रामजी ! सुमेरु आदिक पर्वत और तृण, वन और चित्त जगत् परिणाम से लेकर भूतोंको विचार देखिये तो परमसत्ताही भासती है और सब पदार्थों में स्थूल और सूक्ष्मभाव से वही सत्ताव्यापी है। जैसे जलका रस वनस्पति में व्यापा हुआ है, तैसेही सब जगत् में सूक्ष्मता करके आत्मसत्ता व्यापी हुई है। जैसे एकही रससत्ता, वृक्ष, तृण और गुच्छोंमें व्यापीहुई है और एकही अनेकरूप होकर भासती है; तैसेही एकही ब्रह्मसत्ता अनेकरूपहोकर भासती है। हे रामजी ! जैसे मोरके अण्डे में अनेक रंग होते हैं और जब अण्डा फूटजाता है तब उससे शनैः शनैः अनेक रङ्ग प्रकट होते हैं सो एकही रस अनेकरूपहो भासताहै, तैसेही एकही आत्मा अनेकरूप जगत् आकार होकर भासताहै। जैसे मोरके अण्डे में एकही रस होताहै परन्तु जो दीर्घसूत्री अज्ञानी हैं उनको भविष्यत् अनेक रङ्ग उसमें भासते हैं सो अनउपजेही उपजे भासते हैं; तैसेही यह जगत् अनउपजाही नानात्व अज्ञानी के हृदय में स्थित होताहै और जो ज्ञानवान् हैं उनको एक रस ब्रह्मसत्ताही भासती

है। जैसे मोरका रस परिणाम को नहीं प्राप्तहुआ एक रस है और जब परिणाम को प्राप्तहोकर नानारूपहुआ तब भी एक रस है; तैसेही यह जगत् परमात्मा में गुप्त है तौ भी परमात्माही है और जब नानारूपहोकर भासता है तौ भी वही है परिणाम को नहीं प्राप्तहुआ परन्तु अज्ञानीको नानात्व भासता है और ज्ञानवान्‌को एकसत्ताही भासता है। अथवा इस दृष्टान्तका दूसरा अर्थ यह है कि जैसे मोर के अण्डे में नानात्व कुछ हुआ नहीं पर जिसको दिव्यदृष्टि है उसको उसमें अनउपजी नानात्व भासती है और जिसको दिव्यदृष्टि नहीं उसको बीजही भासता है, नानात्व नहीं भासता; तैसेही जिनको अज्ञानरूपी दिव्यदृष्टि है उनको अनउपजाही जगत् नानात्वही भासता है और जो अज्ञानदृष्टि से रहितहैं उनको एकही ब्रह्म भासता है, और कुछ नहीं भासता। हे रामजी! नानात्व भासता है तौ भी कुछ नहीं; जैसे मोरके अण्डे में नानारंग भासते हैं तौ भी एकरूपहै; तैसेही इस जगत् में भिन्न भिन्न पदार्त्थ भासते हैं तौ भी एक ब्रह्मसत्ताहै; द्वैत कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसत्ताउपदेशोनामषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे अनउपजे कान्तिरंग मयूरके अण्डेमें होते हैं सो बीज से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहं त्वं आदिक जगत् आत्मा में अनउदयही उदयरूपी भासता है। जैसे बीजमें उनरंगोंकी उदय भी अनउदयरूपहै, तैसेही आत्मामें जगत्‌की उदय भी अनउदयरूपहै। आत्मसत्ता अशब्दपद है वाणी से कुछ कहानहीं जाता। ऐसा सुख स्वर्ग तथा और किसी स्थान में भी नहीं है जैसा सुख आत्मा में स्थित हुये पायाजाता है। हे रामजी! आत्मसुख में विश्रान्ति पानेके निमित्त मुनीश्वर, देवता, सिद्ध और महाऋषि दृश्यदर्शन सम्बन्ध फुरनेको त्यागकर स्थित होते हैं इससे वह उत्तम सुखहै। संवित् में संवेदनका फुरना जिनका निवृत्तहुआ है उनपुरुषोंको दृश्य भावना कोई नहीं फुरती और न कोई कर्म्म उनको स्पर्श करता है; प्राण भी उनके निस्पन्दहोते हैं; चित्तचेतनके सम्बन्धसे रहित चित्रकी मूर्त्तिवत् स्थित होते हैं और शान्तरूप स्थित होते हैं। हे रामजी! जब चित्तकला फुरती है तब संसारभ्रम प्राप्तहोता है और जब चित्तका फुरना मिटजाता है तब शान्तरूप अद्वैत स्थित होता है। जैसे युद्ध राजाकी सेना करती है और जीत हार राजाकी होती है तैसेही चित्त के फुरने के द्वारा आत्मामें बन्ध मोक्ष होता है। यद्यपि आत्मा सत्‌रूप और अच्युत है परन्तु मन, बुद्धि और अन्तःकरण के द्वारा आत्मा में बन्ध मोक्ष भासता है। आत्मा सबका प्रकाशक है—जैसे चन्द्रमाकी चांदनी वृक्षादिकों को प्रकाशती है, तैसेही आत्मा सब पदार्थोंको प्रकाशता है। वह आत्मा न दृश्य है न उपदेशका विषय है, न विस्तार रूप है, न दूर है, केवल चेतनरूप अनुभव आत्मा से सिद्ध है। वह न देह है, न

इन्द्रिय हैं; न गुणहै; न चित्तहै, न वासना है; न जीवहै, न स्पन्द है; न और की स्पर्श करताहै, न आकाश हैं; न सत् है, न असतहै; न मध्य है; न शून्यहै, न अशून्य है; न देश,काल, वस्तुहै; न अहंहै, न इतर इत्यादिकहै; सर्वशब्दोंसे रहित हृदय स्थानमें प्रकाशता है और केवल अनुभवरूपहै। उसका न आदिहै, न अंतहै; न उसे शस्त्र काटतेहैं; न उसे अग्नि जलासक्ती है; न जल गलासक्ताहै; न यहहै, न वहहै; न उसेवायुसोख सक्ती है और न किसीकी सामर्थ्य उससे चलती है । वह चित्तरूपी आत्मतत्त्व है न जन्मताहै और न मरताहै। देहरूपी घट कईवार उपजते हैं और कईवार नष्ट होते हैं और आत्मरूपी आकाश सबके भीतर बाहर अखंड अविनाशी है। जैसे अनेक घटोंमें एकही आकाश स्थित होताहै तैसेही अनेक पदार्थों में एकही ब्रह्मसत्ता आत्मरूप से स्थित है। हे रामजी! जो कुछ स्थावर-जंगम जगत् दृष्ट आताहै सो सब ब्रह्मरूप है जो निर्धर्म्म, निर्गुण, निरवयव, निराकार, निर्मल, निर्विकार है और आदि अन्त से रहित, सम और शान्तरूप है। ऐसी दृष्टि का आश्रय करके स्थित हो। हे रामजी! इस दृष्टि का आश्रय करोगे तो बड़े कार्य्य भी तुमको स्पर्श न करेंगे। जैसे आकाश को बादल स्पर्श नहीं करते तैसेही तुमको कर्म्म स्पर्श न करेंगे। काल, क्रिया, कारण, कार्य्य, जन्म, स्थिति, संहार आदिक जो संसरणरूप संसार है सो सब ब्रह्मरूप है। इसी दृष्टिका आश्रय करके विचरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मएकताप्रतिपादनन्नाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४७॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! यदि ब्रह्ममें कोई विकार नहीं तो भाव-अभावरूप जगत् किससे भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विकार किसको कहते हैं? प्रथम तो यह सुनो। जो वस्तु अपने पूर्वरूप को त्यागकर विपर्ययरूप को प्राप्तहो और फिर पूर्व के स्वरूपको न प्राप्तहो उसको विकार कहते हैं। जैसे दूधसे दही होकर फिर दूध नहीं होता; जैसे बालक अवस्था बीत जाती है तो फिर नहीं आती और जैसे युवा अवस्था गई हुई फिर नहीं आती इसका नाम विकार है परब्रह्म निर्मल है; आदि भी निर्विकार है, अन्त भी निर्विकार है और मध्यमें जो उसमें कुछ विकारमल भासता है सो अज्ञान से भासता है। मध्यमें भी ब्रह्म अविकारी ज्योंका त्यों है। हे रामजी! जो पदार्थ विपर्ययरूप होजाता है वह फिर अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त होता और ब्रह्मसत्ता सदा ज्योंकी त्यों अद्वैतरूप है और आत्मअनुभव से प्रकाशती है। जो कभी अन्यथा रूपको प्राप्त न हो उसको विकार कैसे कहिये? हे रामजी! जो वस्तु विचार और ज्ञानसे निवृत्त होजाय उसको भ्रममात्र जानिये वह वास्तव में कुछ नहीं। जो कुछ विकार है सो अज्ञान से भासता है और जब आत्मबोध होता है तब निवृत्त हो

जाताहै। जिसके बोधसे विकार नष्ट होजाय उसे विकार कैसे कहिये? जो ब्रह्म शब्द से कहाता है सो निर्वेदरूप आत्मा है। जो आदि अन्त में सत्हो उसे मध्य में भी सत् जानिये और इससे भिन्नहो सो अज्ञान से जानिये। आत्मरूप सदा सर्वदा समरूप है। आकाश और पवन भी अन्यभावको प्राप्त होजातेहैं परन्तु आत्मतत्त्व कदाचित् अन्य भावको नहीं प्राप्त होता। वह तो प्रकाशरूप एक, नित्य और निर्विकार ईश्वर है; भाव अभाव विकारको कदाचित् नहीं प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! एकतत्त्व विद्यमान है सो ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप है तो उस संचितब्रह्म में यह अविद्या कहांसे आई है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है; आगे भी ब्रह्म था और पीछे भी ब्रह्म होगा। उस निर्विकार और आदि, अन्त, मध्यसे रहित ब्रह्ममें अविद्या कोई नहीं—यह निश्चय है। जो वाच्य-वाचक शब्द से उपदेशके निमित्त ब्रह्मकहाताहै उसमें अविद्या कहां है? हे रामजी! 'अहं' 'त्वं' आदिक जगत्भ्रम और अग्नि, वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ता है और अविद्या रञ्चकमात्र भी नहीं। जिसका नामही अविद्या है उसे भ्रममात्र और असत् जानो। जो विद्यमानही नहीं है उसका नाम क्या कहिये? फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उपशम प्रकरण में आपने क्यों कहा था कि, अविद्या है और अब इसप्रकार कैसे कहते हो कि, विद्यमान नहीं है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इतने काल पर्यंत तुम अबोध थे इस निमित्त मैंने तुम्हारे जागनेके निमित्त युक्ति कल्पकर कहीथी और अब तुम प्रबुद्ध हुयेहो तब मैंने कहा है कि, अविद्या अविद्यमान है। हे रामजी! अविद्या, जीव और जगत् आदिक का क्रम अप्रबोध को जगाने के निमित्त वेदवादी ने वर्णन कियाहै। जबतक मन अप्रबोध होता है तबतक अविद्याभ्रम है और युक्ति विना अनेक उपायों से भी बोधवान् नहीं होता। जब बोधवान् होता है तब सिद्धान्तको उपदेशकी युक्ति विना भी पाताहै और अबोध मन युक्ति विना नहीं पासक्ता। हे रामजी! जो कार्य्य युक्ति से सिद्ध होता है वह और यत्नसे नहीं साधाजाता। जैसे युक्तिरूपी दीपक से अन्धकार दूर होता है और बल यत्न से निवृत्त नहींहोता; तैसेही युक्तिविना और यत्नसे अज्ञानकी निद्रा निवृत्त नहीं होती। यदि अप्रबोधको सर्वब्रह्म सिद्धान्तका उपदेश कीजिये तो वह उपदेश व्यर्थ होता है—जैसे कोई दुःखी अपना दुःख दीवालके आगे जाकहे तो उसका कहा वह नहीं सुनती और उसका कहना भी वृथा होता है; तैसेही अप्रबुद्धको सर्व ब्रह्मका उपदेश व्यर्थ होताहै। मूढ़ युक्तिसे जगताहै और बोधवान् को प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश होताहै। हे रामजी! अब तुम यह धारणाकरो कि, ब्रह्म, तीनों जगत् और अहं, त्वं आदिक सबब्रह्म हैं द्वैत कल्पना कोई नहीं; फिर जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो और दृश्य संवेदन न फुरे सदा आत्मामें स्थित रहो। इसप्रकार अनेक कार्य्यमें भी लेप न होगा। हेरामजी! जो चेतन

वपु परमात्मा प्रकाशरूप है सो सदा अहंभावसे फुरता है । ऐसा जो अनुभवरूप है उसीमें चलते, बैठते, खाते, पीते, चेष्टाकरते स्थितरहो तब तुम्हारा अहंममभाव निवृत्त होजावेगा और जो शांतरूप ब्रह्म सर्वभूतोंमें स्थितहै उसको तुम प्राप्तहोगे और आदि अन्तसे रहित शुद्ध संवित्‌मात्र प्रकाशरूप आत्माको देखोगे । जैसे मृत्तिकाके पात्र घट आदिक सब मृत्तिकाकेही हैं तैसेही तुम सर्वभूत आत्माको देखोगे । जैसे मृत्तिकासे घट भिन्ननहीं तैसेही आत्मासे जगत्‌भी भिन्न नहीं । जैसे वायुसे स्पन्द और जलसे तरंग भिन्ननहीं तैसेही आत्मासे प्रकृति भिन्ननहीं । जैसे जल और तरंग शब्दमात्रदोहैं तैसेही आत्मा और प्रकृति शब्दमात्र दोहैं पर भेदभाव कुछनहीं केवल अज्ञानसे भेद भासताहै और ज्ञानसे नष्ट होजाताहै । जैसे रस्सी में सर्प भासताहै तैसेही आत्मामें प्रकृतिहै । हे रामजी ! चित्तरूपी वृक्षहै और कल्पनारूपी बीजहै; जब कल्पनारूपी बीज बोयाजाता है तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होताहै और उससे जब भावरूप संसार उत्पन्न होताहै तब आत्मज्ञान करके कल्पनारूपी बीज दग्ध होताहै और चित्तरूपी अंकुर नष्ट होजाताहै । हे रामजी ! चित्तरूपी अंकुरसे सुख दुःखरूपी वृक्षउत्पन्न होता है । जब चित्तरूपी अंकुर नष्टहो तब सुख दुःखरूपी वृक्ष कहां उपजे ? हे रामजी ! जो कुछ द्वैतभ्रमहै सो अबोध से उपजता है और बोध से नष्ट होजाता है। आत्मा जो परमार्थसारहै उसकी भावना करो तब संसारभ्रमसे मुक्तहोगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्मृतिविचारयोगोनामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४८॥

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर ! जो कुछ जानने योग्य था सो मैंने जाना और जो कुछ देखने योग्य था सो देखा; अब मैं आपके ज्ञानरूपी अमृतके सींचने से परमपदमें पूर्णात्मा हुआहूं । हे मुनीश्वर ! पूर्णने सब विश्व पूर्णकी है; पूर्ण से पूर्ण प्रतीतकी है और पूर्ण में पूर्णही स्थितहै—द्वैत कुछनहीं, यह अब मुझको अनुभव हुआहै । हे मुनीश्वर ! ऐसे जानकर भी मैं लीला और बोधकी वृद्धिके निमित्त आपसे पूछताहूं । जैसे बालक पिता से पूछता है तो पिता उद्वेगनहीं करता, तैसेही आप उद्वेगवान् न होना । हे मुनीश्वर ! श्रवण, नेत्र, त्वचा, रसना और घ्राण ये पांचों इन्द्रियां प्रत्यक्ष दृष्टि आती हैं पर मरेपर विषयको क्योंनहीं ग्रहण करतीं और जीते कैसे ग्रहण करती हैं ? घटादिककी नाईं बाहर से ये जड़ स्थितहैं पर हृदयमें अनुभव कैसे होताहै ? और लोहेकी शलाकावत् ये भिन्न भिन्नहैं पर इकट्ठी कैसेहुई हैं ? परस्पर जो एक आत्मामें अनुभव होताहै कि, मैं देखता; मैं सुनताहूं इनसे आदि लेकर वृत्ति क्योंकर इकट्ठी हुई है ? मैं सामान्य भावसे जानता भी हूं परन्तु विशेषकरके आपसे पूछताहूं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इन्द्रियां, चित्त और घट, पट आदिक पदार्थ निर्मल चेतनरूप आत्मा से भिन्न नहीं आत्मतत्त्व आकाशसे भी सूक्ष्म और स्वच्छहै । हे रामजी ! जब चेतनतत्त्व से पुर्यष्ट-

का चैत्यता की भावना फुरी तो उसने आगे इन्द्रियगणों को देखा और इन्द्रियगण चित्तके आगे हुयेहैं। इनकी घनतासे चेतनतत्त्व पुर्यष्टकाभावको प्राप्तहुआहै। उसी में सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिम्बितहुये हैं और पुर्यष्टका में भासे हैं। रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! अनन्त जगत् जो रचे हैं और महाआदर्श में प्रतिबिम्बितहैं उस पुर्यष्टका का रूप क्याहै और कैसे हुईहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि अन्तसे रहित जगत्का बीजरूप जो अनादिब्रह्म है सो निरामय और प्रकाशरूपहै और कल्पना और कलनासे रहित, शुद्ध, चिन्मात्र और अचेतन जगत्का बीज वही अनादि ब्रह्म है। वह जब कलनाके सम्मुखहुआ तब उसका नाम जीव हुआ उस जीवने जब देहको चेता और अहंभाव फुरा तब अहंकारहुआ; जब मनन करनेलगा तब मनहुआ; जब निश्चय करनेलगा तब बुद्धिहुई, जब परमात्माके देखनेवाली इन्द्रियोंकी भावनाहुई तब इन्द्रियांहुईं; जब देहकी भावना करनेलगा तब देहहुई और जब घट पट की भावना हुई तब घट पटहुये; इसीप्रकार जैसीजैसी भावना होतीगई तैसेही पदार्थ होतेगये। हे रामजी! यही स्वभाव जिसकाहै उसको पुर्यष्टका कहते हैं। स्वरूपसे विपर्ययरूपी दृश्यकीओर भावनाहोने और कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदिक की भावना, कलना और अभिमान जो चित्तकलामें हुआहै इससे उसको जीव कहते हैं। निदान जैसीजैसी भावना का आकारहुआ तैसीही तैसी वासनाको करताभया। जैसे जलसे सींचाहुआ बीज डाल, पत्र, फूल और फलभाव को प्राप्तहोताहै तैसेही वासना से सींचाहुआ जीव स्वरूप के प्रमादसे महाभ्रमजाल में गिरताहै और ऐसे जानताहै कि, मैं मनुष्य देह सहितहूं अथवा देवता व स्थावरहूं पर ऐसे नहीं जानता कि, मैं चिदात्माहूं। वह देहसे मिलाहुआ परिच्छिन्न और तुच्छरूप आपको देखता है। इस मिथ्या ज्ञान से डूबताहै और देहमें अभिमानसे वासना के वशहुआ चिरपर्यंत नीचे ऊंचे और बीच में भ्रमता है। जैसे समुद्र में आयाहुआ काष्ठ तरंगों से उछलताहै और घटीयन्त्र का वर्त्तन नीचे ऊपर जाता है तैसेही जीव वासना के वश से नीचे और ऊपर भ्रमता है। जब विचार और अभ्यासकरके आत्मबोधको प्राप्त होताहै तब संसार बन्धन से मुक्त होता है और आदि अन्त से रहित आत्मपदको प्राप्तहोताहै। बहुत काल योनिरेखा को भोगके आत्मज्ञानके वशसे परमपदको प्राप्तहोता है। हे रामजी! स्वरूप से गिरे हुये जीव इसप्रकार भ्रमते हैं और शरीर पाते हैं। अब यह सुनो कि, इन्द्रियां मृतकहुये विषय को किस निमित्त ग्रहणनहीं करतीं। हे रामजी! जब शुद्धतत्त्वमें चित्तकलना फुरती है तब वह जीवरूप होती है और मनसहित षट्इन्द्रियोंको लेकर देहरूपी गृह में स्थित हो बाहर के विषयको ग्रहण करती है। मनसहित षट्इन्द्रियों के सम्बन्ध से विषयका ग्रहणहोताहै; इनसे रहित विषयोंको कदाचित् नहीं ग्रहणकरती। इसप्रकार

इनमें स्थित होकर जीव कला विषयको ग्रहण करती है । यद्यपि इन्द्रियां भिन्न भिन्न हैं तो भी इनको एकता करलेती हैं और ये अहङ्काररूपी तागेसे इकट्ठी होती हैं । देह और इन्द्रियां माणिक्यकीनाईं हैं; इनको इकट्ठेकरके जीव कहताहै कि, मैं देखता, सूंघता, सुनता, फिरता, बोलताहूं और इन्हींके अभिमान से विषयको ग्रहण करताहै । हे रामजी ! देह इन्द्रियां मन आदिक जड़ हैं परन्तु आत्माकी सत्तापाकर अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं । जबतक पुर्यष्टका देहमें होती है तबतक इन्द्रियां विषय को ग्रहण करती हैं और जब पुर्यष्टका देहसे निकलजाती है तब इन्द्रियां विषय को नहीं ग्रहण करतीं । हे रामजी ! ये जो प्रत्यक्ष नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा और त्वचा भासते हैं सो ये इन्द्रियां नहीं हैं इन्द्रियां तो सूक्ष्म तन्मात्र हैं; ये उनके रहने के स्थानहैं । जैसे गृहमें झरोखे होतेहैं तैसेही ये स्थान हैं । हे रामजी ! अब जीवकारूप सुनो आत्मतत्त्व सब ठौरमें पूर्णहै परन्तु उसका प्रतिबिम्ब वहांही भासताहै जहां निर्मल ठौरहोता है । जैसे निर्मल जलमें प्रतिबिम्ब होता है और जैसे दोकुण्डहों एक जल से पूर्णहो और दूसराजलसे रहितहो तो सूर्य्यका प्रकाश तो दोनों में तुल्य होता है परन्तु जिसमें जल है उसमें प्रतिबिम्बित होता है और जल के डोलने से प्रतिबिम्ब भी हलता दृष्टि आता है पर जहां जल नहीं है वहां प्रतिबिम्ब भी नहीं; तैसेही जहां सात्त्विक अंश अंतःकरण होता है वहां आत्मा का प्रतिबिम्ब जीव भी होता है और जब तक शरीर में होता है तबतक शरीर चेतन भासता है; पर जब वह जीवकला पुर्यष्टका रूप शरीर को त्यागजाती है तब शरीर जड़ भासता है । जैसे कुण्डसे जल निकल जाय तो कुण्ड सूर्यके प्रतिबिम्ब से हीन होजाता है, तैसेही अंतःकरण और तन्मात्रा पुर्यष्टका में आत्माका प्रतिबिम्ब होता है । जब पुर्यष्टका शरीर को त्यागजाती है तब शरीर जड़ भासता है । हे रामजी ! जैसे झरोखे के आगे कोई पदार्थ रखिये तो झरोखे को पदार्थ का ज्ञान नहीं होता और जब उसका स्वामी देखता है तब पदार्थ को ग्रहण करता है; तैसेही इन्द्रियों के स्थानों में जो सूक्ष्मतन्मात्रा ग्रहण करनेवाली होती है वही विषयों को ग्रहण करती है और जब तन्मात्रा नहीं होती तब इन्द्रियां ग्रहण नहीं करसक्तीं । हे रामजी ! प्रत्यक्ष देखो कि, कथाका श्रोता पुरुष कथा में बैठा होताहै पर यदि उसका चित्त और ठौर निकलजाताहै तब प्रत्यक्ष बैठा रहता है परन्तु कुछ नहीं सुनता क्योंकि; श्रवण उसकी इन्द्रिय मनके साथ गई है; तैसेही जब पुर्यष्टका निकल जाती है तब मृतक होता है और इन्द्रियां भी विषयों को ग्रहण नहीं करतीं । हे रामजी ! अहंमम आदि जो दृश्यहै सो भी सर्ग के आदि में आत्मरूपी समुद्र से तरंगवत् फुरा है, उसके पश्चात् दृश्य कलना हुई है सो न देश है, न काल है, न क्रिया है, यह सब असत्‌रूप है; वास्तव में कुछ नहीं । ऐसे जानकर संसार के

सुख, दुःख, हर्ष, शोक, राग, द्वेषसे रहित होकर विचरो तब तुम माया से तरजावोगे॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंवेदनविचारोनामैकोनपंचाशत्तमस्सर्गः ४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव में इन्द्रियादिक गण कुछ उपजे नहीं; आदि ब्रह्माकी उत्पत्ति जैसे मैंने तुमसे कही है सो सब तुमने सुनी और जैसे आदि जीव पुर्यष्टकारूप ब्रह्मा उपजा है तैसे और भी उपजे हैं। हे रामजी! जीव पुर्यष्टका में स्थित होकर जैसी जैसी भावना करतागया है तैसेही तैसे भासने लगा है और फिर उसीकी सत्तापाकर अपने अपने विषय को ग्रहण करनेलगेहैं, वास्तवमें इन्द्रियां भी कुछ वस्तु नहीं। सब आत्मा के आभाससे फुरती हैं; इन्द्रियां और इन्द्रियों के विषय ये संवेदन से उपजे हैं सो जैसे उपजे हैं तैसे तुम से कहे हैं। हे रामजी! शुद्ध संवित् सत्तामात्रसे जो अहं उल्लेख हुआ है सोही संवेदन हुई है। वही संवेदन जीवरूप पुर्यष्टका भावको प्राप्तहो और बुद्धि, मन और पंचतन्मात्रा को उपजाकर आपही उनमें प्रवेशकर स्थित हुई है उसको पुर्यष्टका कहते हैं परन्तु यह उपजी भी स्पन्दमें है आत्मा से कुछ नहीं उपजा। वह आत्मा न एक है, न अनेक है और परमात्मतत्त्व अस्ति अनामय है और उसमें वेदना भी अनन्यरूप है। हे रामजी! उसमें न कोई द्वैत कलना है और न कुछ मन शक्ति है केवल शांत और सत्ताहै उसी को परमात्मा कहते हैं जो मनसहित षट् इन्द्रियों से अतीत अचैत्य चिन्मात्रहै उससे जीव उत्पन्न हुआ है। यह भी मैं उपदेश के निमित्त कहताहूं वास्तवमें कुछ उपजा नहीं केवल भ्रममात्रहै। जहां जीव उपजाहै वहां उसको अहंभाव विपर्यय हुआहै; यही अविद्या है सो उपदेश से लीनहोजाती है। जैसे निर्मली से जलकी मलिनता लीन हो जाती है तैसेही गुरु और शास्त्रके उपदेश को पाकर जब अविद्या लीनहोजाती है तब भ्रमरूप आकार शांत होजाते हैं और ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है जिसमें आकाश भी स्थूल है। जैसे परमाणु के आगे सुमेरु स्थूल होता है तैसेही आत्माके आगे आकाश स्थूल है। हे रामजी! आत्माके आगे जो स्थूलता भासती है सो भ्रममात्र है। जो बड़े उदार आरम्भ भासते हैं सो तो असत् हैं तब और पदार्थों की क्या बात है? हे रामजी! आत्मामें जगत् कुछ नहीं पायाजाता क्योंकि; वस्तु असम्यक् ज्ञान से भासती है और सम्यक् ज्ञानसे नहीं पाई जाती। जो कुछ—जगत्जाल भासतेहैं वे सब मायामात्र हैं उनसे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जैसे मृगतृष्णा का जल पान नहीं किया जाता तैसेही जगत् के पदार्थों से कुछ परमार्थसिद्धि नहीं होती, सब अज्ञानसे भासते हैं। हे रामजी! जो वस्तु सम्यक् ज्ञानसे पाइये उसे सत् जानिये और जो सम्यक्ज्ञानसे न रहे उसे भ्रममात्र जानिये। यह जीव पुर्यष्टका अविद्यकभ्रमहै, असत्ही सत्हो भासताहै और जब गुरु और शास्त्रों का विचार होता है तब जगत् भ्रम

मिटजाताहै । पुर्यष्टकामें स्थितहोकर जीव जैसी भावना करताहै तैसी सिद्धि होती है । जैसे बालक अपनी परछाहीं में वेताल कल्पताहै तैसेही जीवकला अपने आपमें देश, काल, तत्त्वआदिक कल्पती हैं और भावना के अनुसार उसको भासते हैं । जैसे बीजसे पत्र, डाल, फूल, फलादिक विस्तार होताहै तैसेही तन्मात्रासे भूतजात सब भीतर, बाहर, देश, काल, क्रिया, कर्म हुआहै । आदि जीव फुरकर जैसा संकल्प धारताहै तैसेही हो भासता है सो यह संवेदनभी आत्मासे अनन्यरूप हैं । जैसे मिरचमें तीक्ष्णता और आकाशमें शून्यता अनन्यरूपहै; तैसेही आत्मामें संवेदन अनन्यरूपहै । उस संवेदनने उपजकर निश्चय धाराहै कि, ये पदार्थ ऐसे हैं ये ऐसे हैं सो तैसेही स्थित हुये अन्यथा कदाचित् नहींहोते । आदि जीवने फुरकर जो निश्चय धाराहै उसीका नाम नीति है और स्वरूपसे सर्व आत्मसत्ता है; आत्मसत्ताही रूप धारकर स्थित हुआहै । जैसे एकही पौंड़ेकारस शक्कर आदि और मृत्तिका घट पटादिक आकारको धारती है तैसेही आत्मसत्ता सर्वज्ञानको पातीहै । जैसे एकही जलका रस, पत्र, डाल, फूल, फलादिक होकर भासताहै तैसेही एकही आत्मसत्ता घट पट और दीवार आदिक आकारहो भासतीहै । हे रामजी ! जैसे आदि जीवने निश्चय कियाहै तैसेही स्थित है अन्यथा कदाचित् नहीं होता परन्तु जगत् काल में ऐसे है; वास्तवमें न बिम्ब है और न प्रतिबिम्ब है । ये द्वैतमें होते हैं सो द्वैत कुछ नहीं केवल चिदानन्दब्रह्म आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थितहै और देहादिकभी सर्व चिन्मात्रहै । हे रामजी ! जो कुछ जगत् भासता है सो आत्माका किंचनरूप है । जैसे रस्सी सर्परूप भासती है तैसेही आत्मा जगत्रूप हो भासता है और जैसे सुवर्ण भूषणहो भासताहै तैसेही आत्मा दृश्यरूपहो भासता है जैसे सुवर्णमें भूषण कुछ वास्तव नहीं होते तैसेही आत्मामें दृश्य वास्तव नहीं । जैसे स्वप्नका पत्तनदेश असत्ही सत्हो भासता है तैसेही जीवको देह और भासती है । हे रामजी ! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है परन्तु फुरने से अनेकरूप धारती है । जैसे एक नटवा अनेक स्वांग धारता है तैसेही आत्मसत्ता देहादिक अनेक आकार धारती है और जैसे स्वप्ने में एकही अनेकरूप धार चेष्टा करता है, तैसेही जगत् में आत्मसत्ता नानारूप धारती है । हे रामजी ! आत्मा नित्यशुद्ध और सब का अपना आप है । अपने स्वरूप के प्रमाद से आप से आपका जन्म मरण जानता है पर वह जन्ममरण असत्रूप है जैसे कोई पुरुष आपको स्वप्ने में श्वानरूप देखे तैसेही यह आपको जन्मता मरता देखता है । जैसे इसको पूर्वभावना है और भ्रमसे असत् को सत् जानताहै और जैसे स्वप्न में वस्तु को अवस्तु और अवस्तुको वस्तु देखता है; तैसेही जाग्रत् में विपर्यय देखता है । जैसे जाग्रत् के ज्ञानसे स्वप्नभ्रम निवृत्त होजाताहै तैसेही आत्मा अधिष्ठान के ज्ञानसे जगत्

भ्रम निवृत्त होजाताहै। जैसे पूर्वका दुष्कृत कर्म्म कियाहो तो उसके पीछे सुकृत कर्म्म करे तो वह घटजाता है तैसेही पूर्व संस्कार से जब नीचवासना होती है और फिर आत्मतत्त्वका अभ्यास करता है तो पुरुष प्रयत्न से मलिन वासना नष्ट होजाती है। जबतक वासना मलिन होती है तबतक उपजता विनशता और गोते खाता है और जब संतोंके संग और सत्‌शास्त्रों के विचार से आत्मज्ञान उपजताहै तब संसार बन्धन से छूटता है–अन्यथा नहीं छूटता। हे रामजी! वासनारूपी कलंकसे जीव घेरा हुआ है और देहरूपी मन्दिरमें बैठकर अनेकभ्रम देखताहै। आदि जीवको जो फुराहै सो अपने स्वरूपको त्यागकर अनात्मभ्रम को देखा। जैसे बालक परछाहीं में भूत कल्पे, तैसेही जीवने कल्पकर जैसी भावना की तैसाही भासनेलगा। आदिजीव पुर्य्यष्टकामें स्थितहुआ है। बुद्धि, मन, अहंकार और तन्मात्राका नाम पुर्य्यष्टकाहै और अन्तवाहक देह है। चैतन्य आत्मा अमूर्त्तिहै; आकाशभी उसके निकट स्थूल है, प्राणवायु गुच्छे के समान है और देह सुमेरु के समान है। ऐसा सूक्ष्म जीवहै। सुषुप्त जड़रूप और स्वप्न भ्रम दोनों अवस्थाओं में स्थावर–जंगमरूपी जीव भटकते हैं; कभी सुषुप्ति में स्थितहोते हैं और कभी स्वप्ने में स्थित होते हैं। इसीप्रकार दोनों अवस्थाओं में जीव भटकते हैं। हे रामजी! सबकादेह अंतवाहक है और उसी देहसे सबचेष्टा करते हैं। कभी स्थावर में जाकर वृक्ष और पत्थरादिक योनि पाते हैं। जब स्वप्ने में होते हैं तब जंगमयोनिपाते हैं सो भी कर्म्मवासनाके अनुसार पातेहैं; जब तामसी वासना घनहोती है तब कल्पवृक्ष चिंतामण्यादिक स्वरूप को प्राप्तहोते हैं; जब केवल तामसी घन मोह-रूपी होती है तब वृक्ष और पत्थरादिक योनि पाते हैं। इसकानाम सुषुप्ति है सो लय घनमोहरूप है और इससे भिन्न जंगम विक्षेपरूप स्वप्न अवस्थाहै, कभी उसमें होता है और कभी सुषुप्तिरूप स्थावर होता है। हे रामजी! सुषुप्ति अवस्थामें वासना सुषुप्ति रूप होती है सो फिर उगती है इस से मोहरूप है। उस सुषुप्ति से जब उतरताहै तब विक्षेपरूप स्वप्ना होता है और जब बोधहो तब जाग्रत् अवस्थापावे। जाग्रत् दो प्रकारकी है। जाग्रत् वही है जो लय और विक्षेपता से रहित चेतन अवस्था है; उससे रहित और मनोराज सब स्वप्नरूप है। एक जीवन्मुक्ति जाग्रत् है और दूसरी विदेह-मुक्ति है। जीवन्मुक्ति तुरीयारूप है और विदेहमुक्ति तुरीयातीत है। यह अवस्था जीवको बोधसे प्राप्तहोती है और जीवको बोध पुरुष प्रयत्न से होता है–अन्यथा नहीं होता। हे रामजी! जीवका फुरना ज्ञानरूप है। यदि दृश्यकी ओर लगता है तो वही रूप होजाता है और यदि सत्‌की ओर लगता है तो सत्‌रूप होजाता है एवम् जब दृश्यके सन्मुख होता है तब दीर्घभ्रमको देखता है। जीवके भीतर जो सृष्टिरूप हो फुरता है सोभी आत्मसत्ता से कुछ भिन्न वस्तु नहीं है। जैसे बटलोही में दानोंके समान

जलउछलता है सो उस जलसे वस्तु भिन्न नहीं तैसेही आत्मा के सिवा जीवके भीतर और कुछ वस्तु नहीं और सृष्टि जो भासती है सो मायामात्र है । हे रामजी ! जीवको स्वरूप के प्रमाद से सृष्टि भासती है और सत्वत् होगई है उससे नानाप्रकार का विश्व भासता है और नानाप्रकार की वासना फुरती है उससे बन्धायमान हुआहै । जब वासना क्षयहो तब मुक्तिरूपहो । हे रामजी ! घनवासना मोहरूपका नाम सुषुप्ति जड़ अवस्थाहै और क्षीण स्वप्नरूपहै । जब स्वरूपका प्रमाद होताहै तब दृश्य में सत्बुद्धि होती है और जब उसमें प्रतीति होती है तब नानाप्रकारकी वासना उदय होती है पर जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब संसारसत्यता नाशहोजाती है—फिर वासना नहीं फुरती । हे रामजी ! घनवासना तबतक फुरती है जबतक दृश्यकी सत्बुद्धि होती है और जब जगत्का अत्यन्त अभाव होता है तब वासना भी नहीं रहती । जैसे भूषण पिघला कर जब सुवर्णकिया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती । जो वस्तु अज्ञान से उपजी है सो ज्ञानसे लीन होजाती है, एवं वासनाभ्रम अबोधसे उपजाहै और बोधसे लीन होजाता है । हे रामजी ! घनवासना से सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है और तनु वासना से स्वप्नदेखता है । घनवासना मोहसे जीव स्थावर अवस्थाको प्राप्तहोता है; मध्यवासनासे तिर्य्यक्योनि पाताहै अर्थात् पशु, पक्षी और सर्पादिक होता है; तनु वासना से मनुष्यादिक शरीर पाता है और नष्टवासनासे मोक्षपाता है । हे रामजी ! यह जगत् सब संकल्पसेरचाहै । घटपट आदिक जो बाहर देखते और ग्रहण करतेहो वही हृदय में स्थित होजाते हैं और जब उनको ग्रहण करतेहो तो ग्राह्य ग्राहक का सम्बन्ध देखतेहो कि, यह मैंने ग्रहणकिया है और यह मैंनेलिया है । जो ज्ञानवान् है वह न ग्रहणकरने का अभिमान करताहै और न कुछ त्यागने का अभिमान करता है उसको भीतर बाहर सब चिदाकाश भासता है । चेतनसत्ताका यह चमत्कार है; तीनोंजगत्रूप होकर वही प्रकाशता है रञ्चकमात्र भी कुछ अन्य नहीं—केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै । जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे होकर भासते हैं परन्तु जलहीजलहै—जलसेकुछ भिन्ननहीं तैसेही आत्माजगत्रूप होकरभासताहै द्वैतनहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथार्थोपदेशोनामपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे जीवको स्वप्ने में जो संसार उदय होता है वह कल्पनामात्र होताहै, न सत्है और न असत् है जीवके फुरनेसेही भ्रमभासताहै; तैसेही यह जाग्रत् अवस्था भ्रममात्र है—स्वप्न और जाग्रत् एकरूप है । जैसे स्वप्ने में जाग्रत् का एकक्षण भी दीर्घकाल होताहै तैसेही स्वरूपके प्रमादसे जाग्रत् भी दीर्घकाल का भ्रमहुआ है जिससे सत्को असत् जानताहै और असत्को सत् जानताहै; जड़ को चेतन जानता है और चेतन को विपर्य्यय ज्ञान से जड़ जानता है । जैसे स्वप्नेमें

एकही जीव अनेकताको प्राप्त होताहै; तैसेही आदिजीव एकसे अनेक होकर भासता है। जैसे किसी स्थान में चोरभ्रम भासता है तैसेही आत्मा में तीनों जगत् भ्रम भासता है। जैसे सुषुप्त से स्वप्नभ्रम उदय होता है तैसेही अद्वैततत्त्व आत्मा में जगत्भ्रम होता है। आत्मा अनन्त सर्वगत जीव का बीजरूप है जैसा उसके आश्रय फुरना होता है तैसाही सिद्ध होकर भासता है। हे रामजी! जिस पुरुष की स्वरूप में स्थितिहुई है वह सदा निस्संग होकर विचरताहै। जैसे विष्णुजीके निस्संगताके उपदेशसे अर्जुन मुक्तहोकर विचरेंगे; तैसेही, हे महाबाहो! तुम भी विचरो। हे रामजी! पाण्डव के पुत्र अर्जुन जैसे सुखसे जन्म व्यतीत करेंगे और सब व्यवहारों में भी सुखी और स्वस्थ रहेंगे तैसेही तुम भी निस्संग होकर विचरो। रामजीने पूंछा, हे ब्राह्मण! पाण्डव के पुत्र अर्जुन कब होंगे और कैसे विष्णुजी उनको निस्संगका उपदेश करेंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अस्ति तन्मात्रतत्त्व में आत्मादिक संज्ञा कल्पकर कही हैं। जैसे आकाश में आकाश स्थितहै तैसेही निर्मलतत्त्व अपने आप में स्थितहै; जैसे सुवर्ण में भूषण और समुद्र में तरंग फुरते हैं तैसेही आत्मामें चौदह प्रकार के भूतजाति फुरते हैं और जैसे जाल में पक्षी भ्रमते हैं तैसेही जगत् में जीव भ्रमते हैं और चन्द्रमा, सूर्य, लोकपाल होकर स्थितहैं और उन्होंने पञ्चभूतों के कर्म रचेहैं कि; यह पुण्य ग्रहण करनेयोग्यहै और यह पाप त्यागनेयोग्यहै; पुण्यसेस्वर्गादिक सुख प्राप्तहोताहै और पापसे नरकहोताहै। यह मर्यादा लोकपालने स्थापनकीहै। इस प्रकार संसाररूपी नदी में जीव बहते हैं। संसाररूपी नदी अवच्छिन्नरूप बहती भासती है पर क्षणक्षण में नष्ट होतीहै। इस जगत्में सूर्य्यकेपुत्र यमराज लोकपाल बड़ेप्रतापवान् और तेजोवान् हैं और सब जीवोंको मारते हैं और उसपतित प्रवाह कार्य्य के कर्म्म में स्थित हैं। उनका जीवोंको मारना और दण्डदेनाही नियमहै परन्तु चित्त में पहाड़कीनाईं स्थितहैं। वे यमराज चारचार युगोंप्रति कभी आठ, कभी सात, कभी बारह वा सोलह वर्षोंका नियमधारके किसीजीवको नहीं मारते और उदासीनकी नाईं स्थित होते हैं। जब पृथ्वीमें अधिकभूत होजाते हैं और चलनेको मार्गनहीं रहता और कोई दुष्ट जीव जीवोंको दुःखदेते हैं उससे पृथ्वी भारी और दुःखीहोती है तब पृथ्वीके भार उतारने के निमित्त विष्णुजी अवतार धारकर दुष्ट जीवों का नाश करते हैं और धर्म मार्गको दृढ़करते हैं। हे रामजी! इस प्रकार नियमके धारनेवाले यमको अनन्त युग अपने व्यवहार को करते व्यतीत होगये हैं और भूत और जगत् अनेक होगये हैं। इस सृष्टिका जो अब वैवस्वत यमहै सो, आगे द्वादशवर्ष पर्यंत नियम करेगा और किसीको न मारेगा तब जीव क्रूरकर्म करने लगेंगे और पृथ्वी भूतों से भरजावेगी। जैसे वृक्ष गुच्छों के साथ संघट्ट होजाते हैं तैसेही पृथ्वी प्राणियोंके साथ संघट्ट होजावेगी

और जैसे चोरसे डरकर स्त्री भर्त्ता की शरण जाती है तैसेही पृथ्वी भी दुःखित होकर विष्णु की शरण जावेगी तब विष्णुजी दो देह धारकर पृथ्वीका भार उतारेंगे और सन्मार्ग स्थापन करेंगे। सब देवता भी अवतार लेकर उनकेसाथ आवेंगे और नरों में नायकभावको प्राप्तहोंगे। एक देहसे तो विष्णु भगवान् वसुदेवके गृहमें पुत्ररूप कृष्ण नामसेहोंगे और दूसरी देहसे पाण्डवकेगृह अर्जुन नामसे युधिष्ठिरनाम धर्म्म के पुत्र होंगे और समुद्र जिसकी मेखलाहै ऐसी जो पृथ्वी है तिसका राज्य करेंगे। उसके चचा के पुत्र का दुर्योधन नाम होगा और उसका और भीमका बड़ा युद्धहोगा । दोनों ओर संग्राम की लालसाहोके अठारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होकर बड़े भयानक युद्धहोंगे और उनके बलसे हरि पृथ्वीका भार उतारेंगे। हे रामजी ! उस सेनाके युद्ध में विष्णु का अर्जुन नाम देह होगा जो गाण्डीव धनुषधार के प्रकृतस्वभावमें स्थितहो हर्षशोकादिक विकार संयुक्त निरधर्मा होगा और युद्धमें अपने बान्धवों को देखकर मूर्च्छित होगा और मोह और कायरता से उसके हाथ से धनुष गिरपड़ेगा और आतुर होगा तब बोधदेह से उसको हरि उपदेश करेंगे। जब दोनों सेनाओं के मध्य में अर्जुन मोहित होकर गिरेगा तब हरि कहेंगे कि; हे राजसिंह अर्जुन ! तू मनुष्यभावको प्राप्तहो क्यों मोहित हुआ है ? इस कायरता को त्यागकर; तू तो परम प्रकाश आत्मतत्त्व है। सर्वका आत्मा आनन्द, अविनाशी, आदि–अन्त–मध्य से रहित; सर्वव्यापी, परम अंकुररूप, निर्मल, दुःखके स्पर्शसे रहित, नित्य, शुद्ध, निरामय है। हे अर्जुन ! आत्मा न जन्मताहै, न मरताहै; होकर भी फिर कुछ और नहीं होता क्योंकि; अजनित, निरन्तर और पुरातन सर्वकी आदिहै। उसका शरीर के नाशहुये नाश नहींहोता तू क्यों वृथा कायरताको प्राप्तहुआहै ?॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनारायणावतारोनामैकपञ्चाशत्तमस्सर्ग्गः ५१ ॥

श्री भगवान् बोले, हे अर्जुन ! जो इस आत्मा को हन्ता मानते हैं और हत होता मानते हैं वे आत्मा को नहीं जानते। यह आत्मा न मरताहै और न मारता है क्योंकि जो अक्षयरूप और निराकार आकाश से भी सूक्ष्म है उस आत्मापरमेश्वर को कोई किस प्रकार मारे। हे अर्जुन ! तुम अहंकाररूप नहीं । इस अनात्म अभिमानरूपी मलको त्यागकरो; तुमजन्ममरणसे रहित मुक्तरूपहो । जिसपुरुषको अनात्म में अहंभाव नहीं और जिसकी बुद्धि कर्तृत्व भोक्तृत्व से लेपायमान नहीं होती वह पुरुष सब विश्वको मारे तौ भी उसको नहीं मारता और न बन्धायमान होताहै। हे अर्जुन ! जिस को जैसा दृढ़ निश्चय होता है उसको तैसाही अनुभव होता है; इससे यह, मैं, मेरा इत्यादि जो मलिनसंवित् निश्चय होता है उसको त्यागकर स्वरूप में स्थितहो । जो ऐसीभावनामें स्थित नहीं होते और आपको नष्टहोता मानते हैं सो सुख दुःखसे राग

द्वेष में जलते हैं। हे अर्जुन! वे अपनेगुणों के असंख्यकर्मों में वर्त्तते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनसे पांचोंतत्त्व—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उपजे हैं और उनभूतों के अंश श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका विषयों में स्थित हैं वे अपने विषय को ग्रहण करती हैं। नेत्र—रूप, त्वचा—स्पर्श; जिह्वा—रस, नासिका—गन्ध और श्रवण—शब्द ग्रहण करते हैं; उसमें अहंकार से जो मूढ़हुआ है वह आप को कर्त्ता मानता है कि; मैं देखताहूं, सुनताहूं, स्पर्शकरताहूं, स्वादलेताहूं और गन्ध लेताहूं। हे अर्जुन! ये सब कर्मकलना से रचेहैं। इन्द्रियों से कर्महोते हैं और अहंभाव से जीव वृथा क्लेशका भागी होताहै। बहुत ने मिलकर कर्मकिया और इसमें एक ही अभिमानी होकर दुःखपाता है। बड़ा आश्चर्य है कि, देह और इन्द्रियों से कर्म होते हैं और जीव अभिमानी होकर सुख, दुःख और राग, द्वेषसे जलताहै। इससे इनका संग और अभिमान त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो। योगी केवल इन्द्रियों से कर्म करता है और उनमें अभिमान वृत्ति नहीं करता। हे अर्जुन! इस जीव को अहंकारही दुःखदायक है कि, अनात्म में आत्माभिमान करता है। जो अभिमान रूपी विषके चूर्ण से रहित होकर चेष्टा करता है वह दुःखका कारण नहीं होता; वह सदा सुखरूप है। हे अर्जुन! जैसे सुन्दर शरीर विष्ठा और मलसे मलिन किया हो तो उसकी शोभा जाती रहती है तैसेही बुद्धिमान् शास्त्र का वेत्ता और गुणोंसे सम्पन्न भी हो पर यदि अनात्ममें आत्माभिमान करे तो उसकी शोभा जाती रहती है। जो निर्मल, निरहंकार, सुख, दुःखमें सम और क्षमावान् है वह शुभ कर्मकरे अथवा अशुभ करे उसको किसी कर्मका स्पर्श नहीं होता। हे अर्जुन! ऐसे निश्चयवान् होकर कर्मको करो। हे पांडवपुत्र! युद्ध तुम्हारा परम धर्म है उसे करो। अपना अतिक्रूर कर्म्म भी कल्याण करताहै। पराया धर्म्म उत्तम भी दुःखदायक है और अपना धर्म्म अल्प भी अमृतकी नाईं सुखदायकहै। हे अर्जुन! चाहे जैसा कर्मकरो; यदि तुम्हारेमें अहंभाव न होगा तो वह तुमको स्पर्श न करेगा। संगाभिमान को त्याग और योग में स्थित होकर कर्म करो। जो निःसंग पुरुष है उसको कोई कर्म प्राप्तहो पर वह उस को करता हुआ बन्धायमान नहीं होता। इससे ब्रह्मरूप होकर ब्रह्ममय कर्म करो तब शीघ्रही ब्रह्मरूप होजावोगे। जो कुछ आचार कर्महो उसे ब्रह्म में अर्पण करो। संन्यास योग युक्तिसे कर्मों को करते भी मुक्तिरूप होगे। इतना सुन अर्जुन ने पूंछा, हे भगवन्! संगत्याग, ब्रह्मअर्पण, ईश्वरअर्पण और योग किसको कहते हैं? मोहकी निवृत्तिके लिये इनको पृथक् पृथक् कहिये? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! प्रथम तुम यहसुनो कि, ब्रह्म किसको कहतेहैं। जहां सब संकल्प शान्तहैं केवल एक घन वेदनाहै; दूसरी भावना का उत्थान नहीं केवल अचेत चिन्मात्र सत्ता है उसको परब्रह्म कहते हैं।

उसको जानकर उसके पानेका उद्यमकरना और जिस विचारसे उसको पाइये उसका नाम ज्ञान है । उसमें स्थित होनेका नाम योग है । ऐसा निश्चय करना कि, यह सर्व ब्रह्महै; मैं ब्रह्महूं और सब जगत् मैंहींहूं; और ब्रह्मसे भिन्न कुछ भावना न करना इस का नाम ब्रह्म अर्पण है । नानाप्रकार का जो जगत् भासताहै सो क्या है ? भीतर भी शून्यहै और बाहरभी शून्यहै । जिसकी शिलाकी उपमाहै ऐसा जो आकाशवत् सत्ता-रूप है सो न शून्य है, न शिलावत् है; उसके आश्रय स्पन्दकलना स्फूर्तिकी नाईं अन्यवत् जगत्रूप होकर भासती है परन्तु आकाशकी नाईं शून्य है । जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे अनेकरूप होकर स्थित होते हैं सो जलही हैं और कुछ नहीं एक जलही अनेकरूप भासता है; तैसेही एकही वस्तु सत्ता घट, पट आदिक आ-कार होकर भासती है । संवित्सार आत्मामें भेदकलना कुछ नहीं; अज्ञान से अनेक रूप भेदकलना विकल्पजाल भासते हैं और अनेक भावको प्राप्तहोते हैं । आत्माको अनेक नाम रूप देखना और भिन्न भिन्न देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्ध्यादिक अनेक में अहंप्रतीति से एकत्रभाव देखना अज्ञानता है । यह कलना ज्ञानसे नष्ट होजाती है। हे अर्जुन ! सङ्कल्पजालोंको त्याग करने का नाम असंग कहते हैं । सब कलना जालोंको भी ईश्वरसे भिन्न न जानना इस भावना से द्वैतभाव गलित होजावेगा— इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहते हैं । हे अर्जुन ! जब ऐसी अभेदभावना होती है तब आत्मबोध प्राप्तहोता है । बोधसे सब शब्द अर्थ एकरूप भासते हैं; सब शब्दों का एकही शब्द भासता है और एकही अर्थ सब शब्दों में भासता है । हे अर्जुन ! सर्व जगत् मैं हूं; दिशा और आकाश मैं हूं और कर्म्म, काल, द्वैत, अद्वैत मैंहीं हूं; तू मुझसे मनलगा, मेरी भक्तिकर, मेराही भजनकर और मुझहीको नमस्कारकर तब तू मुझहीको प्राप्तहोगा । हे अर्जुन ! मैं आत्माहूं और तुम मेरेही परायणहो । अर्जुन बोले, हे देव ! आपके दो रूप हैं—एक पर और दूसरा अपर; उन दोनों रूपों में मैं किसका आश्रय करूं जिससे मैं परमसिद्धि पाऊं ? श्रीभगवान् बोले, हे अनघ ! एक समान रूप है और दूसरा परमरूप है । यह जो शङ्ख, चक्र गदादिक संयुक्तहै सो तो मेरा समानरूप है और परमरूप आदि अन्तसे रहित एक अनामय है उस ब्रह्मरूपको आत्मा और परमात्मा आदिक नामसे कहते हैं । जबतक तुम अप्रबोध हो और तुमको अनात्म देहादिक में आत्माभिमान है तबतक मेरे चतुर्भुज आ-कारकी पूजाके परायणहो और कर्मोंको करो, और जब प्रबोध होगे तब मेरे परमरूप को प्राप्तहोगे जो आदि–अन्त–मध्यसे रहित है । उसको पाकर फिर जन्म–मरण में न आवोगे । जब तुमसे शत्रुओं के नाशकर्त्ता और ज्ञानवान् हुये तब आत्मा से मेरा पूजन करो । मैं सर्व का आत्माहूं । हे अर्जुन ! मैं मानताहूं कि, तुम अब प्रबोधहुये

हो, आत्मपद में विश्राम पाया है और सङ्कल्प कलनासे रहित एक आत्मसत्तामें स्थित होकर मुक्तहुयेहो। ऐसेयोगसे तुम सर्वभूतों में स्थितहोकर आत्माको देखोगे; सब भूतोंको आत्मामें स्थित देखोगे और सर्वत्रमें तुमको समबुद्धिहोगी तब स्वरूप में तुमको दृढ़स्थिति होगी। हे अर्जुन! जो सर्वभूतों में स्थित आत्माको देखता है और एकत्वभाव से भजन करताहै और जिसको आत्मासे भिन्न और भावना नहीं फुरती वह सर्व प्रकार वर्त्तमान भी है तो भी फिर जन्म मरणमें नहीं आता। हे अर्जुन! जिस में सर्व शब्दों का अर्थ है और जो सर्वशब्दों में एक अर्थरूप है ऐसी आत्मसत्ता न सत् है और न असत् है; सत्–असत् से जो रहित सत्ता है सो आत्मसत्ता है। वह सब लोगोंके चित्तमें प्रकाशरूप करके स्थित है। हे भारत! जैसे दूध में घृत और जलमें रस स्थित होता है तैसेही मैं सबलोगों के हृदय में तत्त्वरूप स्थितहूं। जैसे दूध में घृत स्थित है, तैसेही सब पदार्थों के भीतर में आत्मा स्थितहूं। और जैसे रत्नों के भीतर बाहर प्रकाश होता है, तैसेही मैं सर्व पदार्थों के भीतर बाहर स्थित हूं। जैसे अनेक घटों के भीतर बाहर एकही आकाश स्थित है तैसेही मैं अनेक देहोंके भीतर बाहर अव्यक्त स्वरूप स्थितहूं। हे अर्जुन! ब्रह्मा से आदि तृण पर्यंत सर्व पदार्थों में सत्ता समान से मैं स्थितहूं और नित्य अजन्माहूं। मुझ में जो चित्त संवेदन फुरा है सो ब्रह्मसत्ता की नाईं हुआ है और फुरने से जगत्‌रूप हो भासता है पर आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है–कुछ द्वैत नहीं। हे अर्जुन! आत्मा सबका साक्षीरूप है–उसको जगत् का सुख दुःख स्पर्श नहीं करता। जैसे दर्पण प्रतिबिम्बको ग्रहण करता है परन्तु सबमें सम है और किसीसे खेदवान् नहीं होता; तैसेही सब पदार्थ अवस्थाका साक्षीभूत आत्मा है परन्तु किसी को स्पर्श नहीं करता और शरीर के नाशमें उसका नाश नहीं होता। जो ऐसा देखताहै सोही यथार्थ देखता है। हे अर्जुन! पृथ्वी में गन्ध, जलमें रस, पवनमें स्पर्श और स्पन्दशक्ति मैंहीहूं; अग्नि में प्रकाश और आकाशमें शब्दशक्ति मैंहीं हूं। तुमसे क्याकहूं कि, यह मैंहूं। सर्वात्म सर्वका आत्मा मैंहूं–मुझसे कुछ भिन्ननहीं। हे पाण्डव! यह जो सृष्टि प्रवर्त्तती है और उत्पन्न और प्रलय होती दृष्टिआती है सो मुझमें ऐसे है जैसे समुद्रमें तरंग उपजते और लीन होते हैं। जैसे पहाड़ पत्थररूप है; वृक्ष काष्ठरूप है और तरंग जलरूप है तैसेही सर्वपदार्थों में मैं आत्मारूपहूं। जो सबभूतों को आत्मा में देखता है सो आत्माको अकर्त्ता देखता है। जैसे समुद्र में नानाप्रकारके तरंग और सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसेही नाना आकार आत्मा में भासते हैं। हे अर्जुन! ये नाना प्रकार के पदार्थ ब्रह्मरूप हैं–ब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं; तब और क्या कहिये; भाव विकार क्या कहिये और जगत् द्वैत क्या कहिये? जो सब वही है तो वृथा मोहित

क्यों होते हो ? इस प्रकार सुनकर बुद्धिमान् इस लोकमें समरसचित्त विचरते हैं । हे अर्जुन ! उस पदको तुम क्यों नहीं प्राप्त होते जो पुरुष निर्वाण और निर्मोह हुये हैं और जिनकी अभिलाषा और द्वेषअभिलाषा निवृत्त हुई है वे अव्यय पद को प्राप्तहुये हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअर्जुनोपदेशोनामद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५२ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे महाबाहो ! फिर मेरे परम वचन सुनो; मैं तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त कहताहूं क्योंकि; तुम्हारा हितकारीहूं । ये जो शीतोष्णविषय हैं सो इन्द्रियों से छूतेहैं और आगमापायी हैं अर्थात् आते हैं और फिर निवृत्त होजाते हैं इससे अनित्य हैं; इनको सहकर तुम आत्माको स्पर्श नहीं करते । तुमतो एकआत्मा आदि अन्त-मध्यसे रहित, निराकार, अखण्ड और पूर्णहो तुमको शीत, उष्ण, सुख, दुःख खण्डित नहीं करसक्ते; ये कलनासे रचेहुये हैं । जैसे सुवर्ण में भूषण का निवास है तैसेही आत्मा में इनका असत् निवास है । हे भारत ! जिसको इन्द्रियों के भ्रमरूप भोग और स्पर्श चलायमान नहीं करसक्ते और सुख दुःख समहैं उस पुरुषको मोक्ष की प्राप्ति होती है । हे अर्जुन ! आत्मा नित्य, शुद्ध और सर्वरूप है और इन्द्रियों के स्पर्श असत्रूपहैं इसलिये असत्रूप सत्रूप आत्माको मोह नहीं करसक्ते । यह अल्पमात्र तुच्छ हैं और बोधरूप आत्मतत्त्व सर्वगत शुद्धरूप है; उसको इनका स्पर्श कैसेहो-सत्को असत् स्पर्श नहीं करसक्ता । जैसे रस्सी में सर्प आभास होता है सो रस्सीको स्पर्श नहीं करसक्ता; जैसे मूर्त्तिकी अग्नि कागज़ को जलानहीं सक्ती और जैसे स्वप्न के क्षोभ जाग्रत् पुरुष को स्पर्शनहीं करसक्ते; तैसेही इन्द्रियां और उनके विषय आत्मा को स्पर्श नहीं करसक्ते हैं । हे अर्जुन ! जो सत्है सो असत् नहीं होता और जो असत् है सो सत्नहीं होता । सुख दुःखादिक असत्रूपहैं और परमात्मा सत्रूप है । जगत्के सत् वस्तु घटादिक और आकाश के असत्फलादिक त्यागसे जो निष्किञ्चन महासत् पद शेष रहै उसमें स्थितहो । हे अर्जुन ! ज्ञानवान् पुरुष इष्ट अनिष्टसे चलायमान नहीं होता; वह इष्ट सुखसे हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट दुःखसे शोकवान् नहीं होता चेतन पाषाणवत् शरीर में स्थित होता है । हे साधो ! यह चित्त भी जड़है और देह इन्द्रियादिक भी जड़हैं । आत्मा चेतनहै इनके साथ मिलाहुआ आपको देह क्या देखताहै ? चित्त और देहभी आपस में भिन्न भिन्न हैं; देहके नष्टहुये चित्तनहीं नष्टहोता और चित्त के नष्टहुये देह नहीं नष्ट होता । इनके नष्टहुये जो आपको नष्ट हुआ मानता है और इनके सुख दुःखसे सुखी दुःखी होता है वह महामूर्ख है । हे अर्जुन ! स्वरूपके प्रमादसे जो देहादिक में अहंप्रतीति करता है और आपको भोक्ता मानता है वह निर्बुद्धि है । जब आत्माका बोध होता है तब

आपको अकर्त्ता, अभोक्ता और अद्वैत देखताहै । जैसे रस्सी के अज्ञानसे सर्प भासता है और रस्सीके बोध से सर्पका अभाव होता है; तैसेही आत्माके अज्ञानसे देह और इन्द्रियों के सुख दुःख भासते हैं और आत्मज्ञानसे सुख दुःखका अभाव होजाता है । हे अर्जुन ! यह विश्व एक अज ब्रह्मस्वरूप है । न कोई जन्मता है और न मरता है— यह सत् उपदेश है । हे अर्जुन ! ब्रह्मरूपी समुद्र में तुम एक तरङ्ग फुरेहो और कुछ काल रहके फिर उसी में लीन होजावोगे—इससे तुम्हारा स्वरूप निरामय ब्रह्म है । सब जगत् ब्रह्मका स्पन्द है और समय पाकर दृष्टि आताहै; इससे मान, मद, शोक और सुख, दुःख सब असत्‌रूपहै । तुम शांतिमान् होरहो । हे अर्जुन ! प्रथम तो तुम ब्रह्ममय युद्धकरो और जो कुछ अक्षौहिणी सेनाहै उसका अनुभव से नाश करो । यह द्वैत कुछ नहीं एकही सर्वदा परब्रह्मरूप स्थित है । ब्रह्ममय युद्धकरो और सुख, दुःख, हानि, लाभ और जय, अजय इनकी उस युद्धमें एकता करो ब्रह्मा से लेकर तृण पर्य्यन्त जो कुछ जगत् भासता है सो सब ब्रह्महीं है, ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं; ऐसे जानके लाभ, हानि में सम होकर स्थित हो और चिन्तना कुछ नकरो । हे अर्जुन ! जड़ शरीर से कर्म्म स्वाभाविक होते हैं; जैसे वायुका फुरना स्वाभाविक होता है तैसेही शरीरसे कर्म्म स्वाभाविक होते हैं । हे अर्जुन ! भोजन, यजन, दान इत्यादिक जो कुछ कार्य्य करो सो आत्माही में अर्पण करो; सदा आत्मसत्ता में स्थितरहो और सबको आत्मरूप देखो । हे अर्जुन ! जो किसी के हृदय में दृढनिश्चय होताहै वही रूप उसको भासता है । जब तुम इस प्रकार अभ्यास करोगे तब ब्रह्मरूप होजावोगे—इस में संशय नहीं । हे अर्जुन ! जो कर्म्मों में आत्माको अकर्त्ता देखता है वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और सम्पूर्ण कर्म्मों के करते भी कुछ नहीं करता । हे अर्जुन ! कर्म्मोंके फलकी इच्छा भी नहो और कर्म्मों से विरसता भी नहो—योग में स्थितहोकर कर्म्मको करो । हे धनञ्जय ! कर्तृत्व के अभिमान और फलकी वाञ्छाको त्यागकर कर्म्म करो । जो कर्म्मों के फल और संगको त्यागकर नित्यतृप्त हुआ है वह करता हुआ भी कुछ नहीं करता । हे अर्जुन ! जिसने सब आरम्भों में कामना और संकल्पका त्यागकिया है और ज्ञान अग्निसे कर्म्म जलाये हैं उसको बुद्धिमान् पण्डित कहते हैं । जो आत्मा में समस्थितहै और सब अर्थों में निस्स्पृह और निर्द्वन्द्वसत्ता में स्थित है यथाप्राप्ति में वर्त्तता है सो पृथ्वीका भूषण है और समुद्रकी नाईं अचल और अपने आपमें तृप्त है । जैसे समुद्रमें अनिच्छितजल प्रवेश करताहै तैसेही ज्ञानवान् में सुख प्रवेश करते हैं । वह शान्तरूप सर्व कामनाओं से रहित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअर्जुनोपदेशेसर्वब्रह्मप्रतिपादनन्नाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५३ ॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! तुम देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित, अविनाशी और अजर आत्मा हो। अजर परिणामसे रहितको कहतेहैं। हे अर्जुन! तुम शोक मतकरो; यह जगत् तुमको अज्ञानसे भासता है। अज्ञान अपने प्रमाद को कहते हैं और प्रमाद अनात्म में आत्म अभिमान करने का नाम है। हे अर्जुन! यह जो संसाररूप तुम्हारा देह है इसमें अभिमान मत करो—यह मिथ्या है—इसमें दुःख होताहै और तुम असंग और अविनाशीहो; तुम्हारा नाश कदाचित् नहीं होता। हे अर्जुन! जो विनाशरूप है वह कदाचित् न होगा और जो सत्य है उसका अभाव न होगा। तत्त्ववेत्ताओंने इन दोनोंका निर्णय किया है। हे अर्जुन! जिसमें यह सर्व प्रकाशता है उसको तुम अविनाशी जानो उसको कोई विनाश नहीं करसक्ता। हे अर्जुन! तुम ऐसेहो और यह आत्मा सबका अपना आप है उसका विनाश कैसे हो? अज्ञानी मनुष्य उसका विनाश होता मानते हैं। अर्जुनने पूछा, हे भगवन्! आप कहते हैं कि, आत्मा अविनाशी है और सबका अपना आप है तो उनका क्योंकर नाश होता है? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! तुम सत्य कहतेहो। किसीका नाश नहीं होता परन्तु अज्ञान से अपना नाश होता मानते हैं। हे अर्जुन! तुम आत्मवेत्ता होरहो। वह आत्मा एक अद्वैतहै जिसको एकभी नहीं कहसक्ते तो द्वैत कहांहो? अर्जुन बोले, हे भगवन्! आप कहतेहैं कि, आत्मा एक है तो मृत्युभी दूसरा न हुआ और लोग मरके नरक स्वर्ग भोगतेहैं; यदि मृत्यु नहीं तो लोग मरते क्योंहैं और पाप पुण्य क्यों भोगते हैं? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! न कोई मरता है और न जन्मता है—यह स्वप्नेकी नाई मिथ्या कल्पना है। जैसे निद्रा दोषसे जन्मना और मरना भासता है तैसेही संसारमें यह जन्म मरण अज्ञान से भासता है। अज्ञान फुरने का नाम है उस फुरनेही से नरक और स्वर्ग कल्पा है। हे अर्जुन! जैसे यह जीव भोगता है सो तुम सुनो। इस जीवने अपने स्वरूपके प्रमादसे संकल्पके शरीर रचेहैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशमें मन, बुद्धि और अहंकारसे जीव प्रकाश करता है। उससे मिलकर जैसी वासना करता है तैसाही आगे भोगता है। वह वासना तीन प्रकारकी है—एक सात्त्विकी; दूसरी राजसी और तीसरी तामसी। जैसी वासनाहोती है तैसाही स्वर्ग और नरक बनजाता है। सात्त्विकी वासना से स्वर्ग बनजाता है और भिन्नसे नरकादिक बनजाते हैं। स्वर्ग नरक केवल वासनामात्र हैं; वास्तव में न कोई स्वर्ग है और न नरक है; न कोई मरता है, न जन्मता है केवल एक आत्माही ज्यों का त्यों स्थित है परन्तु यह जगत्भास भ्रम से भासता है। इस जीवने अज्ञान से चिरकाल वासना का अभ्यास किया है, उसीसे भ्रम देखता है। अर्जुन बोले, हे जगत्पते! यह जीव जो नरक, स्वर्गादिक योनि जगत् में देखता है उसका कारण कौन

है? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! अज्ञान से जो अनात्मा में आत्म अभिमान हुआ है उससे जगत् को सत् जानकर वासना करने लगा है और जैसे जैसे जगत्को सत् जानकर वासना करताहै तैसेही जगत् भ्रम देखता है। जब आत्मविचार उपजता है तब जगत् को स्वप्नेकी नाईं देखता है और वासना भी क्षय होजाती है और जब वासना क्षय होती है तब कल्याण होता है। फिर अर्जुन ने पूछा, हे भगवन्! चिर अभ्यास से जो संसारभ्रम दृढ़होरहा है सो किस प्रकार उपजा है और किस प्रकार लीन होगा? श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मूर्खता और अज्ञता से जो अनात्म देहादिक में आत्मभावना होती है उससे जगत् को सत् जान वासना करता है और उस वासना के अनुसार जगत् भ्रम देखता है पर जब स्वरूपका अभ्यास करता है तब वासना नष्ट होजाती है। इससे हे अर्जुन! तुम स्वरूपका अभ्यास करो। अहं, मम आदिक वासना को त्यागकर केवल आत्मा की भावना करो। यह देह वासनारूप है जब वासना निवृत्तहोगी तब देहभी लीनहोजावेगी और जब देहलीनहुई तब देश, काल, क्रिया, जन्म, मरणभी न रहेंगे। यह अपनेही संकल्पसे उठे हैं और भ्रमरूप हैं; उनकी वासना से घेराहुआ जीव भटकता है। जब आत्मबोध होता है तब वासना से मुक्तहोता है और निरालम्ब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्त्व पाता है। उसीको मोक्ष कहते हैं। हे अर्जुन! जब जीवको तत्त्वबोध होता है तब वासनारूपी जालसे मुक्त होताहै और जो वासनासे मुक्तहुआ सो मुक्तहुआ। यदि पुरुष सर्व धर्म परायणभी हो। और सर्वज्ञ और शास्त्रोंका वेत्ताभी हो पर यदि वासना से मुक्त नहीं हुआ तो वह सब ओरसे बन्ध है जैसे दृष्टिके दोष से निर्मल आकाश में मोरके पुच्छवत् तारे भासते हैं तैसेही मूर्खको शुद्ध आत्मा में वासनारूपी मल जगत् भासता है। जैसे पिंजरे में पक्षी बंद होता है तैसेही वह बन्ध होता है। जिसके हृदय में वासना है वह बन्ध है और जिसके हृदय में वासना नहीं है उसको मोक्ष जानो। हे अर्जुन! जिसके हृदयमें जगत् की वासना है वह यदि बड़ी प्रभुता संयुक्त दृष्टिआता है तौभी दरिद्री है और दुःख का भोगी है; और जिसकी वासना नष्टहुई है वह यदि प्रभुता से रहित दृष्टिआता है तौभी बड़ा प्रभुतावान् है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवनिर्णयोनामचतुःपंचाशत्तमस्सर्गः ५४॥

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! इस प्रकार तुम निर्वासनिक जीवन्मुक्त होकर विचरो तब तुम्हारा अन्तःकरण शीतल होजावेगा; जरा मरणसे मुक्त और निःसंग आकाशवत् होंगे और इष्ट अनिष्टको त्याग वीतराग होकर स्थित न होगे। हे अर्जुन! पतित प्रवाह जो कार्य्य आन प्राप्तहो उसको करो और युद्धमें कायरता मतकरो। आत्मा अविनाशी है और देह नाशवान् है; देहके नाशहुये आत्मा नाश नहीं होता।

हे अर्ज्जुन! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे राग द्वेषसे रहित होकर प्रवाह पतितकार्य्य को करते हैं। तुमभी जीवन्मुक्त स्वभाव होकर विचरो और 'यह मैं करूं' 'यह न करूं' इस ग्रहण त्याग के संकल्पको त्यागो। इसीसे ज्ञानवान् बन्धवान् नहीं होते। जो मूर्ख हैं वे इसमें बन्धवान् होते हैं और जीवन्मुक्त पुरुष सुषुप्तवत् स्थित होकर प्रवाह पतित और प्रबुद्धकीनाई वासनासे रहितहुये कार्य्यकरतेहैं। जैसे कच्छप अपनाअंग समेटलेताहै तैसेही ज्ञानवान् वासनाको सकुचालेताहै और आपको चिन्मात्ररूप जानताहै। मुझमें जगत् मालाके दानोंकीनाईं पिरोयाहुआहै और सबजगत् मेराअंग है। जैसे अपने हाथ पसारे और समेटे और जैसे समुद्रसे तरंगउठते और लीनहोते हैं; तैसेही विश्व आत्मासे उपजते और लीन होते हैं—भिन्न कुछ नहीं। हे अर्जुन! जैसे चँदवेके ऊपर नाना प्रकारके चित्र लिखे होते हैं परन्तु वह रंग वस्त्रसे भिन्न नहीं होते; तैसेही आत्मामें मनरूपी चितेरेने जगत् रचा है और अनउपजाहोकर भासता है। जैसे थंभेमें चितेरा कल्पना करता है कि, इतनी पुतलियां निकलेंगी सो आकाशरूपी पुतलियां उसके मन में फुरती हैं, तैसेही ये तीनों जगत् काल संयुक्त चित्तमें फुरते हैं। चितेराभी मूर्ति तब लिखता है जब उसके चित्त के भीतर कल्पना होती है पर यह आश्चर्य है कि, मन आकाश में चित्र कल्पता है। हे अर्जुन! यह चित्र स्पष्ट भासता है तौभी आकाशरूप है। जैसे स्वप्न सृष्टि आकाशरूप होती है तैसेही यह भी है आकाश और भीतमें भेद नहीं परन्तु आश्चर्य है कि, भेद भासता है। जैसे मनोराज स्वप्नपुरमें जगत् मनके फुरनेसे भासता है और अफुर हुये लय होजाता है सो मनोमात्र है; तैसेही यह मनोमात्र है और आकाशसे भी शून्यरूप है। जैसे स्वप्न पुर और मनोराजमें एकक्षण में बड़े कालका अनुभव होताहै और पूर्वरूपके विस्मरणसे सत्हो भासता है तैसेही यह जगत् सत्हो भासता है। जबतक प्रमाद होता है तबतक भासता है पर जब इस क्रमसे आत्माको देखता है तब जगत् भ्रम निवृत्त होजाता है यद्यपि प्रकट देखता है परन्तु लीन होजाता है और शरत्काल के आकाशवत् निर्मल भासता है। जैसे चितेरेके मन में चित्र फुरते हैं सो आकाशरूपहै तैसेही यह जगत् आकाशरूप है। हे अर्जुन! भाव अभाववृत्तिको त्यागकर स्वरूप में स्थित हो तब आकाशवत् निर्मल होजावोगे। जैसे मेघकी प्रवृत्तिमें और निवृत्तिमें आकाश निर्मलही होताहै, तैसेही तुमभी पदार्थके भाव अभावमें निर्मलहो। जो कुछ पदार्थ भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं। जैसे चितेरेके मनमें पुतलियां भासती हैं तैसेही यह जगत् आकाशरूप है। जैसे एक क्षणमें मन के फुरने से नाना प्रकारके पदार्थ भासिआते हैं और अफुरहुये लीन हो जाते हैं; तैसेही प्रमादसे जगत् भासता है और आत्मा के जाननेसे लीन होजाता है आत्मा में जगत् निर्वाणरूप है पर आत्मा में एक निमेष

के फुरने के द्वारा प्रमादसे वज्रसारकी नाईं दृढ़हो भासता है और चित्तके फुरनेसे सत् भासता है यह सब जगत् आकाशरूप है—द्वैत कुछ हुआ नहीं पर बड़ा आश्चर्य है कि, आकाश पर लिखेहुये चित्र नानारूप रमणीय होकर भासते हैं और मनको मोहते हैं। हे अर्जुन! यही आश्चर्य है कि, कुछ है नहीं और नानाप्रकार के रंग भासते हैं। आकाशरूपी नील तालमें चन्द्रमा और तारेआदिक फूल खिले हैंऔर उन में मेघ रूपी पत्र लगे हैं। हे अर्जुन! और आश्चर्य देखो कि, चित्रभी तब होता है जब उसका आधार भीत अथवा वस्त्र होता है और यहां चित्र प्रथम उत्पन्न होते हैं आधार भूत या दीवार पीछे बनती है। प्रथम ये मूर्त्ति और चित्र बने हैं और पीछे भीत हुई है; यही आश्चर्य है। हे अर्जुन! यह मायाकी प्रधानता है कि, वास्तव आकाश रूप चितेरेने आकाश में आकाशरूप पुतलियां रची हैं। आकाश में आकाशरूप पुतलियां उपजी हैं और आकाशमेंही लीन होती हैं; आकाशही को भोजन करती हैं; आकाशही को आकाश देखता है; आकाशही यह सृष्टि है और आकाशही रूप आ-काश आत्मा में आकाशरूप स्थित है। हे अर्जुन! वास्तव में आत्मा ऐसे है। ऐसे अद्वैतरूप आत्मा में जो उत्थान हुआ है उस उत्थानसे उसको स्वरूपका प्रमादहुआ है जिससे दृश्यभ्रम देखता है और अनेक वासना होती हैं। वासनारूपी रस्सी से बांधाहुआ भटकता है और वासना से घेराहुआ अहं त्वम् आदिक शब्दोंको जानने लगता है और नानाप्रकार के भ्रम देखता है तौभी स्वरूप ज्यों का त्यों है। जैसे द-र्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ता है और दर्पण ज्यों का त्यों रहता है तैसेही आत्मा में जगत् प्रतिबिम्बित होता है और आत्मा छेदभेद से रहित है। ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है—जब सर्व वही है तब छेदभेद किसकाहो? जैसे जलमें तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूपहैं तैसेही यह सब ब्रह्महीसे पूर्ण है उसमें द्वैत कुछ नहीं। जैसे आकाशमें आकाश स्थितहै तैसेही आत्मा में आत्मा स्थित है। उसमें वास वासक कल्पना कोई नहीं परन्तु स्वरूप के प्रमादसे वास वासक भेद होता है। जब स्वरूपका ज्ञान होता है तब वासना नष्ट हो जाती है। हे अर्जुन! जो वासना से मुक्त है वही मुक्त है और वासना से बांधा हुआ बद्ध है। यदि सब शास्त्रों का वेत्ताभी हो। और सर्वधर्म्मों से पूर्णहो तौभी यदि वासना से मुक्त नहीं हुआ तो बद्धही है। जैसे पिंजरे में पक्षी बद्ध होता है तैसेही वह वासना से बँधाहुआ है। हे अर्जुन! जिसके हृदय में वासना का बीज है, यद्यपि बाह्य दृष्टि नहीं आता तौभी बहुत फैल जावेगा। जैसे वट का बीज फैल जाता है तैसेही वह वासना फैल जावेगी। जिस पुरुषने आत्मा का अभ्यास किया है और उस से ज्ञान रूपी अग्नि उपजाकर वासनारूपी बीज जलाया है उसका फिर संसार भ्रम नहीं उदय होता और न वस्तुबुद्धिसे पदार्थों को ग्रहण करता है न सुख दुःख आदिक में

डूबता है—सदा निर्लेप रहता है। जैसे तूंबी जलके ऊपरही रहती है तैसेही वह सुख दुःखके ऊपर रहता है। हे अर्जुन! तुम शांतआत्माहो। तुम्हारा भ्रम अब दूर हुआ है और आत्मपदको तुम प्राप्त हुये हो। तुम्हारा मन और मोह निर्वाण हो गया है और सम्यक्ज्ञानी हुयेहो। व्यवहार करना और तूष्णीरहना तुमको दोनों तुल्यहैं और शांतरूप निःशङ्कपदको प्राप्तहुयेहो। यह मैं जानताहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेश्रीकृष्णसंवादेऽर्जुनविश्रांतिवर्णनं नामपंचपंचाशत्तमस्सर्ग्गः ५५॥

अर्जुन बोले, हे अच्युत! मेरा मोह अब नष्ट है और मैं आत्मस्मृतिको प्राप्त हुआहूं। आपके प्रसादसे मैं अब निःसंदेह होकर स्थितहुआहूं; अब जो कुछ आप कहिये वह मैं करूं। श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! मनकी पांच वृत्तियां हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव और स्मृति। जब ये पांचो हृदयसे निवृत्त हों तब चित्त शांत हो। उसके पीछे चैत्यसे रहित चेतन जो शेष रहता है उसको प्रत्यक् चेतन कहते हैं। वह वस्तुरूप है और सब उपाधिसे रहित सर्व है और सर्वरूप है। जो उस पदको प्राप्त हुआ है उसको आधि—व्याधि आदिक दुःख नहीं होसक्ते। जैसे जालसे निकलकर पक्षी आकाशमार्ग को उड़ता है। तैसेही वह देहाभिमान से मुक्त होकर आत्मपदको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! प्रत्यक् जो चेतनसत्ता है सो परमप्रकाश रूप, शुद्ध और संकल्प-विकल्पसे रहित है और इन्द्रियोंके विषय में नहीं आता—इन्द्रियों से अतीत है। जो पुरुष सब से अतीत पदको प्राप्त हुआ है उसको वासना नहीं स्पर्श करसक्ती। उस के प्राप्त हुये ये घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य होजाते हैं और वहां तुच्छ वासना का कुछ बल नहीं चलता। जैसे अग्नि समूह के निकट बरफ गलजाती है और उसकी शीतलता नहीं रहती, तैसेही शुद्धपद के साक्षात्कार हुये चित्तवृत्ति नष्टहोजाती है और वासनाकाभी अभाव होजाताहै। हे अर्जुन! वासना तबतक फुरती है जबतक संसारको सत्य जानता है; जब आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै तब संसार और वासनाका अभाव होजाता है। इस कारण विरक्त पुरुष को सत्य जानने से कुछ वासना नहीं रहती नानाप्रकार के आकार विकारसंयुक्त विद्या तब तक फुरती है जबतक शुद्ध आत्मा को अपने आपसे नहीं जाना। शुद्ध आत्मा को प्राप्त हुये जगत् भ्रम सब नष्ट होजाता है; स्वच्छपद आत्मतत्त्व में स्थित होता है; आकाशवत् निर्मल भावको प्राप्त होता है और अपने आप से सब को पूर्ण देखता है। वही आत्मसत्ता सब आकाररूप है और सब आकाररूपों से रहितभी है। हे अर्जुन! जो शब्द से अतीत परमवस्तु है उस को किसकी उपमा दीजे? जो वासनारूपी विसूचिका को त्यागकर अपने आत्मस्वभाव में स्थित हुआ पृथ्वी में विचरता है वह

त्रिलोकीकानाथ हैं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार त्रिलोकीके नाथ कहेंगे तब अर्जुन एक क्षण मौन में स्थित होजावेंगे और उसके उपरान्त कहेंगे कि, हे भगवन्! मेरे सब शोक नष्ट होगये हैं और जैसे सूर्य्य के उदय हुये कमल खिल आते हैं तैसेही आपके वचनों से मेरा बोध खिलआया है–अब जो कुछ आपकी आज्ञाहो वह मैं करूं? इस प्रकार कहकर अर्जुन गांडीव धनुष ग्रहण करेंगे और भगवान् को सारथी करके निःसन्देह और निश्शंक होकर रणलीला करेंगे जिसमें हाथी, घोड़े, मनुष्य मारकर लोहू के प्रवाह चलावेंगे तौभी आत्मतत्त्व में स्थित रहेंगे और स्वरूप से चलायमान न होंगे। जैसे पवन मेघको अभाव करदेताहै। तैसेही योधाओं का नाशकरेंगे॥

–इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेभविष्यद्गीता नामोपाख्यानसमाप्तिर्नामषट्पंचाशत्तमस्सर्गः ५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसी दृष्टिका आश्रय करके जो दृष्टि दुःखका नाशकरती है निःसंग संन्यासी हो अपने सब कर्म और चेष्टा ब्रह्म अर्पणकरो। जिसमें यह सब है और जिससे यह सर्व है ऐसी सत्ताको तुम परमात्मा जानो। अनुभवरूप आत्मा है उसकी भावनासे उसीको प्राप्त होता है–इसमें संशय नहीं। जो सत्ता संवेदन फुरने से रहित चेतन प्रकाशता है उसीको तुम परमपद जानो। वह सबका परम द्रष्टारूप है और सब का प्रकाशक है और महाउत्तम परमगुरु का गुरु है। जिसको शून्यवादी शून्य, विज्ञानवादी विज्ञान और ब्रह्मवादी ब्रह्मकहतेहैं वह परमसार शान्त रूप शिव अपने आपमें स्थित है वही आत्मा इस जगत्रूपी मन्दिरको प्रकाश करनेवाला दीपक है; जगत्रूपी वृक्षका रस है; जगत्रूपी पशुका पालनेवाला गोपाल है; जीवभूतरूपी मोतियों को एकत्र करनेवाला तागा है और हृदय और भूतरूपी मिरचों में तीक्ष्णता है निदान सब पदार्थों में पदार्थरूप सत्ता वही है। सत्यमें सत्यता और असत्य में असत्यता वही है। जगत्रूपी गृह में सब पदार्थों का प्रकाशनेवाला दीपक वहीहै और उसीसे सब सिद्धहोतेहैं। चन्द्रमा, सूर्य, तारे आदिक जो प्रकाशरूप दीखते हैं उनका भी वह प्रकाशक है। यह जड़ प्रकाश है और वह चेतन प्रकाश है उसमें ये सिद्धहोते हैं और उसीसे सब प्रकाश प्रकट हुये हैं। वह आत्मसंवित् अपनेही विचार से पायाजाता है। हे रामजी! जो कुछ भाव अभाव पदार्थ भासते हैं वे असत् हैं; वास्तव में कुछ हुये नहीं प्रमाददोषसे भासते हैं और जब विचार उपजता है तब नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! जिसके हृदय में अहंभाव है उसे ऐसा जो जगत् जाल है सो मिथ्या भ्रमसे भासता है उसकी उपजा क्या कहिये और किसकी आस्था कीजिये? यह जगत् कुछ वस्तु नहीं। आदि–अन्त–मध्यकी कल्पनासे रहित जो देव

है वह ब्रह्मसत्ता समान अपने आप में स्थित है और द्वैत कुछ बनानहीं । जब यह तुमको दृढ़ निश्चयहोगा तो तुम व्यवहार करते भी हृदय से निःसंग और शान्तरूप होगे । हे रामजी ! जिस पुरुषकी उस समान सत्तामें स्थितिहुई है वह इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें रागद्वेषसे रहित हृदयसे सदा शान्तरूप रहता है । वह न उदय होता है, न अस्तहोता है; सदा समताभाव में स्थित रहता है । वह स्वस्थरूप अद्वैत तत्त्वमें स्थित होताहै और जगत्की ओरसे सुषुप्तवत् होजाताहै; व्यवहारभी करता है परन्तु दर्पणके सदृश क्षोभवान् नहींहोता । जैसे मणि सब प्रतिबिम्बको ग्रहण करती है परन्तु उसका संग नहीं करती; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कलना कलंकको नहीं प्राप्तहोता; उसका चित्त व्यवहारमें सदा निर्मल रहता है । ज्ञानवान्को जगत् आत्माका चमत्कार भासता है; न एकहै, न अनेकहै; आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है । चित्तमें जो यह चेतनभाव भासता है उस चित्त फुरने का नाम संसार है और फुरने से रहित अफुर का नाम परमपद है । हे रामजी ! महाचेतन में जो निजका अभाव है कि, 'मैं आत्माको नहीं जानता' इसीका नाम चित्तस्पन्दहै और यही संसार का कारण है । जब यह भावना क्षयहो तब चित्त अफुरहो । हे रामजी ! जहां निजभाव होता है वहां पदार्थोंका अभाव होताहै । वह निज सबठौर अपने अर्थ को सिद्धकरती है परन्तु आत्मा में नहीं प्रवर्त्तसक्ती । जब जीव कहता है कि मैं आत्माको नहीं जानता तब भी आत्माका अभाव नहीं होता क्योंकि अभाव को जाननेवाला भी आत्माही है । जो आत्मतत्त्व न हो तो अभाव क्यों न कहे सो आत्मा परमशून्य है परन्तु अजड़रूप परमचेतन है । हे रामजी ! तुम निजका अर्थ आत्मा में करो और आत्माका अभाव न मानो । अनात्म में जो निजका भावत्व है उसका अभाव करो अर्थात् अनात्मको अभावरूप मानो । जब इस प्रकार दृढ़भावना करोगे तब संसार भ्रम निवृत्त होजावेगा और केवल आत्मभाव शेषरहेगा । हे रामजी ! चित्तके फुरने का नाम संसार है चित्तके फुरनेसेही संसारचक्र वर्तता है । जैसे सुवर्ण से भूषण प्रकट होते हैं तैसेही चित्तसे त्रिपुटी होती है पर चित्तस्पन्दभी कुछ भिन्नवस्तु नहीं आत्माका आभासरूप है । अज्ञानसे चित्त स्पन्द होता है और ज्ञानसे लीन होजाता है । जैसे सुवर्ण के भूषण को गलायेसे भूषण बुद्धि नहीं रहती तैसेही चित्त अचल हुये चित्त संज्ञा जाती रहती है और जैसे भूषण के अभाव हुये सुवर्णही रहता है तैसे ही बोध से चित्तके लीन हुये शुद्ध चेतनसत्ता शेष रहती है । फिर भोगों की तृष्णा लीन होजाती है और जब भोग भावना निवृत्त होती है तब ज्ञान का परमलक्षण सिद्धहोता है । हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष है और जिसने सत्‌रूप को जाना है उसको भोगकी इच्छा नहीं रहती । जैसे जो पुरुष अमृतपानसे अघाजाता है उसको

खली आदिक तुच्छ भोजनकी इच्छा नहीं रहती तैसेही आत्मज्ञानसे जो संतुष्टहुआ है उसको विषयकी तृष्णा नहीं रहती। यह निश्चय करके जानो कि, जब चित्त फुरना है तब जगत् भ्रम हो भासता है और सत्यजानकर भोगकी इच्छा होती है पर जब बोधहोता है तब जगत् भ्रम लीन होजाताहै तो फिर तृष्णा किसकी करे। यदि इन्द्रियों के विषय प्राप्तहों और हठकर उनको न भोगे वह मूर्ख है वह मानों अस्त्र से आकाश को छेदता है। हे रामजी! गुरु और शास्त्रों की युक्तिसे मन वश्य होता है; उनकी युक्ति विना शुद्धता नहींहोती। यदि कोई अपने अंगही को काटे और उससे चित्तको स्थित कियाचाहे तौभी चित्त स्थिर नहीं होता और न संसार भ्रमही मिटता है। जबतक चित्तमें स्थिति है तबतक जगत्भ्रम दिखता है और जब गुरु और शास्त्रोंकी युक्ति ग्रहण करके चित्तका अभाव होता है तब चित्त नष्ट और अचल होजाता है। जैसे बालक को अन्धकार में पिशाच भासता है और दीपक जलाकर देखे से अन्धकार निवृत्तहोकर पिशाच भ्रम नष्ट होजाता है तब बालक निर्भय होता है; तैसेही आत्मज्ञान युक्तिसे अज्ञान निवृत्त होता है; असम्यक् बुद्धि से जगत् भ्रम हुआ है और सम्यक् बोधसे निवृत्त होजाता है, फिर जाना नहीं जाता कि, अज्ञान का जगत् भ्रम कहां गया। जैसे दीपक के निर्वाणहुये नहीं जानता कि, प्रकाश कहांगया, तैसेही अज्ञान नष्टहुये नहीं जानाजाता कि, जगत् कहांगया। चित्तके फुरनेसे बन्धहोताहै और अफुरनेसे मोक्ष होता है परन्तु आत्मासे भिन्न कुछनहीं आत्मसत्ता ज्योंकीत्योंहै; उसमें न बन्ध है; न मोक्षहै। हे रामजी! जब मोक्षकी इच्छा होतीहै तबभी उसकी पूर्णताका क्षय होताहै और निःसंवेदन हुये कल्याण होता है। जो अनाभास अजड़रूप परमपद है वह चैतन्योन्मुखत्व से रहित है। हे रामजी! बन्ध मोक्ष आदिकभी कलना में होते हैं। जब कलना से रहित बोध होता है तब बन्ध मोक्ष दोनों नहींरहते। जबतक विचार से नहीं देखा तबतक बन्ध और मोक्ष भासता है विचार किये से दोनों का अभाव होजाता है। जब 'अहम्' 'त्वम्' 'इदम्' आदिक भावनाका अभाव हुआ तब किसको कौन बन्धकहै और किसको कौन मोक्षकहै सब कलना चित्तके फुरने से होती है जब चित्तका फुरना नष्ट होता है तब सब कलनाका अभाव होजाता है तब शांतिमान् होता है अन्यथा नहीं होता। इससे चित्तको आत्मपद में लीनकरो। जिसके आश्रय यह जगत् उपजता है और लीन होताहै ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है उसी अनुपम रूप प्रत्यक् आत्मप्रकाश में स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रत्यगात्मबोधवर्णन नामसप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमतत्त्व परमात्मपद हमको सदा प्रत्यक्ष है और

वस्तुरूप वही है उससे कुछ भिन्न नहीं। यह प्रत्यक्आत्माहै और सर्व्वसत्ताका दर्पणहै; सबसत्ता इसीसे प्रकटहोती है। जैसे बीजसे वृक्षकीसत्ता प्रकटहोती है तैसेही आत्मासे जगत्सत्ता प्रकट होती है। हे रामजी! मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जड़ात्मक हैं और इनसे रहित परमपद है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक सब उसीसे स्थित हैं जैसे चक्रवर्त्ती राजा निर्द्धन से ऊंचा शोभता है तैसेही उससत्ताको पाकर जीव सबलोगोंसे ऊंचे शोभता है। उस आत्माको प्राप्तहोकर फिर मृत्युको नहीं प्राप्त होता और न कदाचित् शोकवान्ही होता है न क्षीणहोता है एकक्षणमात्रभी जो अप्रमादी होकर आत्मा को ज्योंकात्यों जानताहै वह संसारकलना को त्यागकर मुक्तहोता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारके अभावहुये जो सत्तासामान्य शेष रहती है उसका भान कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो सबदेहों में स्थितहोकर भोजन और जलपानकरता और देखता, सुनता, बोलता इत्यादिक क्रियाकरता दृष्टिआता है सो आदि अन्त से रहित संवित्सत्ता सर्वगत अपने आपमें स्थितहै और सर्वविश्वरूप वही है। आकाश में आकाश; शब्द में शब्द; स्पर्श में स्पर्श; नासिका में गन्ध; शून्यमें शून्य; नेत्रों में रूप; पृथ्वी में पृथ्वी; जलमें जल; तेजमें तेज; वृक्षों में रस; मनमें मन; बुद्धि में बुद्धि; अहंकार में अहंकार; अग्नि में अग्नि; उष्णतामें उष्णता; घट में घट; पटमें पट; वटमें वट; स्थावर में स्थावर; जङ्गम में जङ्गम; चेतन में चेतन; जड़ में जड़; कालमें काल; नाशमें नाश; बालक में बालक; यौवन में यौवन; वृद्ध में वृद्ध और मृत्यु में मृत्युरूप होकर वही परमेश्वर स्थित है। हे रामजी! इसप्रकार सब पदार्थों में वह अभिपन्नरूप स्थित है, नानात्व दृष्टिभी आती है परन्तु अनानाहै और भ्रमसे भासती है। जैसे परछाहीं में भ्रमसे वेताल भासता है तैसेही आत्मा में नानात्व भासती है। सबमें, सबठौर, सबप्रकार, सर्व आत्माही स्थितहै; ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमानहै उस में स्थितहो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब दिनअस्त होने से सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गये और सूर्य के निकलतेही फिर अपने अपने आसनपर आनबैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविभूतियोगोपदेशोनामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ५८॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जैसे हमारे स्वप्न में पुर, नगर और मण्डल होते हैं तैसे ही ब्रह्मादिकने उस देवको ग्रहण किया है उनको असत्में प्रतीति है और हमको दृढ़ प्रतीति कैसे उपजीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! प्रथम ब्रह्माको सर्ग असत्वत्भासता है; वास्तव नहीं भासता। सर्वगत चेतन संवित् को संसार के दर्शन से जब सम्यक् दर्शनका अभावहुआ और स्वप्नरूपमें आपसे अहंप्रतीति उपजी तब दृढ़होकर देखने लगा। जैसे अपने स्वप्न में जगत् दृढ़ भासता है और उसे स्वप्ना नहीं जानता; तैसेही

ब्रह्माका जगत्भी दृढ़भासताहै; स्वप्ना नहीं भासता। जो स्वप्न पुरुष से उपजा है सो स्वप्नरूपहै। हे रामजी! ऐसा जो सर्ग्गहै सो जीवजीवप्रति उदयहुआ है। जैसे समुद्रमें तरंग फुरते हैं तैसेही चेतनतत्त्वका आभास जगत् फुरते हैं और जैसे स्वप्नपुरमें असत् पदार्थ होते हैं तैसेही यह पदार्त्थ भी अवास्तव हैं और मनके संकल्पसे भ्रममात्रही स्पष्टभासते हैं। हे रामजी! ऐसापदार्त्थ कोई नहीं कि, इसजगत् में सिद्ध नहीं होता; और का और नहीं भासता और मर्य्यादा नहीं त्यागता क्योंकि, मनके संकल्पमात्र उपजे हैं। तुम देखो कि, जल में अग्नि स्थित है—जैसे समुद्र में वड़वाग्नि है सो विपर्य्ययहै। इसीकारण से कहताहूं कि मनोमात्र है। और देखो कि, आकाश में नगर बसते हैं; विमान प्रत्यक्षचलते हैं और चिन्तामणि आदिकसे कमल उपजते हैं। जैसे हिमालय पर्व्वतमें बरफ उपजती है और सबऋतुके फूल एकही समय उपजते हैं। जैसे संकल्पके वृक्षसे पत्थर निकलआते हैं; शिलामें जल निकलताहै; चन्द्रकांति से अमृत द्रवताहै और निमेषमें घट पट होजाते हैं और पट घट होजाते हैं; निदान स्वरूप के विस्मरण हुये सत्को असत् देखताहै जैसे स्वप्ने में अपना मरना देखताहै; जल ऊर्ध्वको चलता देखताहै; मेघ होकर स्वर्ग्ग में गंगा बहती देखता है और पत्थर उड़ते देखता है। जैसे पङ्खों सहित पहाड़ उड़ते हैं और चिन्तामणि शिलारूप से सब पदार्त्थ उपजते हैं इत्यादिक भ्रमसे नानात्व विपर्य्ययरूपहो फुरते हैं। इससे तुम देखो कि, सब मनोमात्रहैं और का और होजाते हैं। हे रामजी! यह इन्द्रजाल, गंधर्व्वनगर और सांबर मायावत् है; असत्ही भ्रम करके सत्हो भासताहै। ऐसा पदार्त्थ कोई नहीं कि, सत् नहीं और असत् भी नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्व्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नविचारोनामैकोनषष्टितमस्सर्ग्गः ५९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह संसार मिथ्या है। जो पुरुष इसको सत्यजानताहै वह महामूर्खहै और भ्रममें भ्रम देखकर महामोहको प्राप्तहोता है। जैसे कोई मृग गढ़े में गिरपड़ताहै तो महादुःखीहोताहै और फिर उससे भी बड़े गढ़े में गिरताहै तो अति दुःखपाताहै; तैसेही जो मूर्खपुरुषहै वह आत्मा के अज्ञानसे संसाररूपी गढ़े में गिरता है और उससे और और भ्रम देखता है और स्वप्ने से स्वप्नान्तर देखता है। इसीसे एक इतिहास कहताहूं उसे मनलगाकर सुनो। एक मनन और शीलवान् संन्यासी योगके आठवें अङ्ग समाधि में स्थितथा और उसका हृदय समाधि करते करते शुद्ध हुआथा। समाधिमें दिन को व्यतीतकरे और जब समाधि से उतरे तो फिर आसन लगाकर समाधिमें लगे। इसीप्रकार जब बहुत काल बीता तो एक समय समाधि से उतर वह यह चिन्तना करने लगा कि, जैसे प्रकृति पुरुष विचरते और चेष्टा करते

हैं तैसेही मैंभी कुछ चेष्टा रचूं। ऐसे विचारकरके उसने मनके संकल्प से विश्वकल्पा और उसमें एक आप भी बना और उसका नाम झीवट हुआ निदान मद्यपानकरे और ब्राह्मणोंकी सेवाभी करे। चेष्टा करते २ सोगया और स्वप्ने में उसको ब्राह्मण के शरीरका भानहुआ तो उस ब्राह्मण शरीर में वेदका अध्ययन और पाठ करनेलगा। ऐसी चेष्टा से जब उसे चिरकाल बीता तो फिर स्वप्नाआया और आपको बड़ी सेना संयुक्त राजा देखा और उस सेना संयुक्त राजाहोकर विचरनेलगा। कुछकाल जब इसीप्रकार व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्नाआया और उस स्वप्ने में आपको चक्रवर्ती राजा देखा और चक्रवर्ती होकर सारीपृथ्वी पर आज्ञा चलानेलगा। जब कुछकाल बीता तो फिर आपको देवांगना देखा और देवताके साथ बागमें विचरनेलगा और जैसे बेलि वृक्षके साथ शोभा पाती है तैसेही देवताके साथ शोभा पानेलगा। इसी प्रकार जब कुछकाल देवताके साथ बीता तो फिर स्वप्ना आया और आपको हरिणी देखा और वनमें चरनेलगा। कोई काल ऐसे भी व्यतीत हुआ तो फिर स्वप्नाआया और आपको देवताओं के वनकी बेलि देखा। जब ऐसे कुछ समय बीता तो फिर स्वप्नेमें आपको भँवरी देखा और सुगन्धको ग्रहण करनेलगा। उसके अनन्तर फिर स्वप्ना आया कि, मैं कमलिनी हूं और वहां एक दिन हाथी आकर बेलिको खागया। जैसे कोई मूर्खबालक भली वस्तुको भी तोड़डालता है तैसेही वह मूर्खहाथी बेलितोड़ कर खागया। उसके उपरान्त उस बेलिने हाथीका शरीरपाकर बड़ा दुःख पाया और गढ़ेमें गिरा। थोड़े समयके उपरान्त हाथीको स्वप्नाआया और भँवरी होकर कमलों में विचरनेलगा। जब कुछ काल बीता तो फिर वह बेलि हुआ और उस बेलि के निकट एक हाथी आया और उस हाथीके पांवोंसे वह बेलि चूर्णहोगई। तब उस बेलि को एक हंसने खाया तब वह बेलि हंस हुआ और बड़े मानसरोवरमें विचरनेलगा। फिर उस हंसके मन में आया कि मैं ब्रह्माका हंस होऊं। तब वह अपने संकल्प से ब्रह्माका हंस बनगया जैसे जलका तरंग बनजावे। तब ब्रह्माके उपदेश से हंस को आत्मज्ञान प्राप्तहुआ। हे रामजी ! अज्ञान से ऐसे भ्रमपाके ज्ञान से शान्त हुआ फिर सदेह मुक्तहोगा। वह हंस सुमेरुपर्वत में उड़ाजाताथा तब उसके मन में आया कि, मैं रुद्र होऊं इसलिये सत् संकल्प से रुद्र होगया। जैसे शुद्धदर्पणमें शीघ्रही प्रति-बिम्ब पड़ताहै तैसेही शुद्धअन्तःकरणके सङ्कल्पसे वह रुद्र हुआ। जिसको अनुत्तर ज्ञानहो उसको रुद्र कहते हैं और अनुत्तरज्ञान वह है जिसके पाने से और कुछ पाना नहीं रहता। चेष्टासे अपने गुण को देख उस रुद्रके मन में विचार हुआ कि, बड़ा आश्चर्य्य है कि; मैं अज्ञानसे इतने बड़े भ्रमको प्राप्तहुआथा। बड़ी आश्चर्य्य माया है। मैं तो एक और बड़ाहूं और यह विश्व मेरा स्वरूप है। जो मेरे निज शरीर हैं

उनको जाकर जगाऊं। तब रुद्र उठ खड़ाहुआ और अपने स्थानको चला। प्रथम संन्यासीके शरीरको आकरदेखा और चित्तशक्तिसे उसे जगाया तो संन्यासी के शरीर में ज्ञानहुआ कि, सब मैंही खड़ाहूं परन्तु संन्यासीने जाना कि; मुझको रुद्रने जगाया है और इतने शरीर मेरे और भी हैं। फिर वहांसे वह रुद्र और संन्यासी दोनों चले और झीवटके स्थानमें आये तो देखा कि, झीवट शवकी नाईं पड़ा है; मदिराके बासन पड़े हैं, चेतना भी वहांही भ्रमती है और नानाप्रकार के स्थान देखती है–जैसे झरने के छिद्रमें चींटी भ्रमती है। तब उन्हों ने झीवटको चित्तशक्ति से जगाया और वह उठ खड़ाहुआ तो उसको ऐसा स्मरण हुआ कि, मुझे तो इन्हों ने जगाया। फिर झीवटके मनमें विचार हुआ कि, इतने शरीर मेरे और भी हैं। निदान रुद्र, संन्यासी और झीवट तीनों चले। इन्होंने विचार किया कि, हमने इतने शरीर क्यों-करपाये कि, आदि तो मैं एक परमात्मामें चैतन्योन्मुखत्व करके संन्यासीहुआ, फिर संन्यासी से झीवटहुआ और मद्यपान करनेलगा; फिर ब्राह्मण होकर वेदका पाठ करनेलगा और उसके पाठकरने के पुण्यसे राजाका शरीर धारणकिया, उसके आगे जो बड़ापुण्य प्राप्त हुआ उससे चक्रवर्त्ती राजा हुआ; चक्रवर्त्तीराजाके शरीर में काम बहुतहुआ उससे देवताकी स्त्री हुआ और स्त्री के शरीरमें नेत्रों में बहुत प्रीति थी उससे हरिणी हुआ; फिर भँवरी हुआ; उससे आगे बेलिहुआ और इससे लेकर जो शरीरधारे सो मिथ्याधारे और अज्ञान से बहुतकाल भटकतारहा। अनेक वर्ष और सहस्रों युग व्यतीत होगये हैं संन्यासी से आदि रुद्रपर्य्यन्त वासना करके जन्म पाये हैं और इतने जन्मपाकर ब्रह्मा का हंसहुआ तब वहां ज्ञानकी प्राप्ति हुई क्योंकि; पूर्व अभ्यास किया था उससे अकस्मात् से सत्सङ्ग प्राप्त हुआ। ऐसे विचार करते वे वहां से चले और चेतन आकाशमें उड़कर वेदपाठ करनेवाले ब्राह्मण की सृष्टि में गये तो उसको देखा कि, पड़ा है। चित्तशक्ति से उन्होंने उसकोजगा रुद्र, संन्यासी, मद्यपान करनेवाला झीवट और ब्राह्मण चारो वहांसे चले और चित्ताकाश में उड़े और राजाकी सृष्टि में पहुँचे तो देखा कि, राजाकी सृष्टि चेष्टा करती है और राजा जिनकी देह सुवर्ण की नाईं शोभायमान है अपने मन्दिर में रानी समेत शय्या पर सोवे हैं और सहेलियां चमर करती हैं। तब उन्होंने राजाको चित्तशक्तिसे जगाया और उसने देखा कि, सर्वविश्व मेराही स्वरूप है और इतने शरीर मैंने अज्ञान से धरे हैं। निदान रुद्र, संन्यासी, मद्यपान करनेवाला झीवट, ब्राह्मण और राजा वहां से चले और हाथी से आदि लेकर जितने शरीर धरे थे उन सबको जगाया और उनमें यही निश्चय हुआ कि, हम चिन्मात्ररूप हैं और आवरण से रहित हैं अर्थात् अज्ञानके फुरने से रहित हैं। हे रामजी! तब उनके शरीर अलग अलग दीखे परन्तु

चेष्टा और निश्चय सबकी एकसीही थी। उनका नाम शतरुद्र हुआ। हे रामजी! सम्पूर्ण विश्व अज्ञानके फुरने से होता है और ज्ञान से देखिये तो कुछ नहीं। ऐसेही उनका संवेदन और निश्चय एकसा हुआ। एक देखे तो जानेकि, सर्वही मेरारूपहै और जब दूसरा देखेतो विचारे कि, मेराहीरूपहै। जैसे समुद्र से अनेक तरंग होते हैं पर उनके आकार भिन्न भिन्न होते हैं और स्वरूप एकसाही होता है; तैसेही ज्ञानवान् सर्व विश्वको अपनाही स्वरूप देखते हैं और अज्ञानी उनको भिन्न भिन्न जानते हैं और आपको भिन्न जानते हैं। एकको दूसरा नहीं जानता और दूसरे को प्रथम नहीं जानता। हे रामजी! यह विश्व अपनाही स्वरूप है पर अज्ञान से भिन्न भासता है। चिन्मात्रमें फुरने को अज्ञान कहते हैं। चित्तफुरने से संसार है और न फुरने से आत्म स्वरूपही है। इससे हे रामजी! फुरनेका त्याग करो। और कुछ नहीं जिस प्रकार शत्रुमरे उस प्रकार मारिये—यही यत्न करो; और मैं तुमसे ऐसा उपाय कहता हूं कि, जिसमें कुछ यत्न नहीं और शत्रु भी माराजावे। हे रामजी! यह चिन्तनाही दुःख है और चिन्तनासे रहित होनाही सुख है—आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। इस चित्तके फुरनेसे संसार है और निवृत्त होने में स्वरूपही है। जैसे पत्थर में पुरुष पुतलियां कल्पता है तो पत्थर से भिन्न पुतलियों का अभाव है; तैसेही चित्तने विश्व कल्पा है। जब चित्त निवृत्त हो तब विश्व अपनाही स्वरूप है; कुछ भिन्न नहीं। चित्त से जहां जावे वहां पञ्चभूतही दृष्टिआते हैं आत्मा नहीं दृष्टि आता और चित्तसे रहित ज्ञानी जहां जावे वहां आत्माही दृष्टि आता है। जब चित्त की वृत्ति बहिर्मुख होती है तब संसार होता है और पञ्चभूतही दृष्टि आते हैं और जब चित्तकी वृत्ति अन्तर्मुख होती है तब ज्ञानरूप अपना आपही भासता है। जो कुछ पदार्थ हैं सो ज्ञानरूप आत्मा विना सिद्ध नहीं होते। प्रथम आप को जानता है तो और पदार्थ जानते हैं। इसी से ज्ञानवान् सब अपना आप जानता है। हे रामजी! ये जो कुछ पदार्थ हैं सो फुरने से कल्पते हैं और जितने जीव हैं उनकी संवेदन भिन्न भिन्न है। संवेदन में अपनी अपनी सृष्टि है। जैसे किसी सोयेहुये पुरुष को अपने स्वप्ने की सृष्टि भासती है और जो उसके पास बैठा होता है उसको नहीं भासती क्योंकि, उसकी विश्व स्वप्ने को नहीं जानती; तैसेही जो ज्ञानी है उसको अपना आपही भासता और इस सब जगत् को अपना रूप जानता है। ज्ञानी जिस ओर देखता है उसी ओर पञ्चभूत दृष्टि आते हैं। जैसे पृथ्वी के खोदे से आकाशही दृष्टि आता है तैसेही ज्ञानी चित्त सहित जहां देखता है तहां पञ्चभूतही दृष्टि आते हैं। इससे हे रामजी! तुम फुरने से रहित हो। फुरनेही से बन्ध है और न फुरनेसे मोक्ष है; आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसा करो। हे रामजी! जो अफुरने से अस्तहोजावे उसके नाममें कृपणता करना क्या है

और जो अफुरनेसे प्राप्त हो उसको प्राप्तरूप जानो। रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! यह झीवट और ब्राह्मण से आदिलेकर संन्यासीके रूप स्वप्न में हुये उसके उपरान्त फिर क्या हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्राह्मण से आदि जितने शरीर थे वे रुद्र के जगाये हुये सुखी हुये और जब सब इकट्ठे हुये तब रुद्र ने उनसे कहा, हे साधो! तुम अपने २ स्थान को जाओ और कुछ काल अपने कलत्र में भोग भोगो तब तुम मेरे गण होकर मुझको प्राप्त होगे और महाकल्प में हम सबही विदेह मुक्त होंगे। हे रामजी! जब रुद्रने ऐसे कहा तब सब अपने अपने स्थानोंको गये और रुद्रजी भी अन्तर्द्धानहोगये वे अब भी तारोंका आकार धारेहुये कभी कभी मुझको आकाश में दृष्टि आते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपनेकहा कि,संन्यासीने झीवटसे आदि लेकर सब शरीर धारे सो सत् कैसे हुये और उनकी सृष्टि कैसे सत् हुई सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा सबका अपना आप, शुद्ध, चेतन, आकाश और अनुभवरूप है; उसमें जैसे देश, काल और वस्तु का निश्चय होता है तैसेही बनजाता है। जैसे जैसे फुरता है तैसेही तैसे आगे होजाता है। जिसका मन शुद्ध होता है उसका सत् सङ्कल्प होता है और जैसा सङ्कल्प करता है तैसाही होता है। जो तुम कहो कि, संन्यासी का अन्तःकरण शुद्ध था उसने नीच और ऊंच जन्म कैसेपाये अर्थात् मद्यपान करनेवाला और भँवरी, बल्ली से आदि लेकर नीच और ऊंच अर्थात् ब्राह्मण, राजा आदि लेकर शुद्ध अन्तःकरण में ऐसे जन्म न चाहिये; तो उसका उत्तर यह है कि, संवेदन में जैसा फुरना होता है तैसाही हो भासता है। जैसे एकपुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो और उसके मनमें फुरे कि, एक शरीर मेरा विद्याधर हो और एक शरीर भेड़का हो तो उसके दोनों भले और बुरे भी होजाते हैं। जो तुम कहो कि, बुरा क्यों बना भलाही बनता तो उसका उत्तर सुनो कि, जैसे भले पण्डितके घर पुत्र हो और संस्कार अर्थात् वासनासे चोर होजावे तो उसको दुःख होता है। इससे हे रामजी! सब फुरनेहीसे ऊंच नीच होते हैं; जब अभ्यास और परमयोग होता है तब शुद्ध होता है। अभ्यास, मन्त्र, जाप और चित्तके स्थित करने को योग कहते हैं। इससे जैसी जैसी चिन्तना होती है तैसीही सिद्ध होती है और अज्ञानी की नहीं होती। जैसे वस्तु निकट पड़ी है और भावना नहीं तो दूर है; तैसेही अज्ञानी की भावना नहीं तो न दूरवाली वस्तु प्राप्त होती है और न निकटवाली प्राप्त होती है। वह सिद्ध इसलिये नहीं होती क्योंकि, उसकी भावना दृढ़नहीं और हृदय भी शुद्ध नहीं सङ्कल्पभी तब सिद्ध होताहै जब हृदय शुद्ध होता है। शुद्धहृदयवाला जिसकी चिन्तना करता है वह चाहे दूर भी है तो भी सिद्ध होता है और जो निकट है सो भी सिद्ध होता है। जो तुमकहो कि, संन्यासी तो एक था बहुत चेतन शरीर कैसेहुये तो उसका उत्तर

सुनो। जो कोई योगीश्वर हैं और योगिनी देवियां हैं उनका सङ्कल्प सत्य है; उन्हें जैसा सङ्कल्प फुरता है तैसाही होता है। ऐसे सत् सङ्कल्पवाले मैंने अनेक आगे देखे हैं। एक सहस्रबाहु अर्जुनराजाथा जो अपने घरमें बैठा था और उसके शिरपर छत्र झुलता और चमर होतेथे; उसके मन में सङ्कल्प हुआ कि मैं मेघ होकर बरसूं। उस सङ्कल्प के करने से उसका एक शरीर तो राजा का रहा और एक शरीर से मेघ होकर बरसनेलगा। विष्णु भगवान् एक शरीर से तो क्षीरसमुद्र में शयन करते हैं और प्रजा की रक्षाके निमित्त और शरीर भी धारलेतेहैं। यज्ञदेवियां अपनेअपने स्थानों में होती हैं और बड़े ऐश्वर्य में विरचती हैं; इन्द्र एक शरीर से स्वर्ग में रहता है और दूसरे शरीर से जगत् में भी बैठा रहता है। योगीश्वरों का जैसा सङ्कल्प होता है तैसाही सिद्ध होता है और जो अज्ञानी मूर्ख हैं उनका मन बड़े भ्रमको प्राप्त होता है और वे बड़े मोह को प्राप्त होते हैं और मोह से आगे मोह से नीचगतिको प्राप्त होते हैं। जैसे बड़े पर्वतके ऊपर से बट्टा गिरता है सो नीचेकोजाता है तैसेही मूर्ख आत्मपदसे गिरके संसाररूपी गढ़े में पड़ते हैं और बड़े दुःख पाते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, संसार स्वप्नमात्र है सो मैंने जाना कि, अनन्त मोहरूपी विषमता है और आत्मचेतनरूप आनन्द के प्रमाद से जीव आपको जड़ दुःखीजानताहै। यह बड़ा आश्चर्य है! हे भगवन्! यह जो आपने संन्यासी कहा उसके समान कोई और भी है अथवा नहीं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपी मढ़ी में मैं रात्रि के समय समाधि करके देखूंगा और तुमसे प्रभात को जैसे होगा तैसे कहूंगा। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले; हे राजन्! वशिष्ठजीने जब इतना कहा तो मध्याह्न का समय हुआ; नौबत नगारे बजने लगे जिनका प्रलयकालके मेघवत् शब्द होनेलगा और वशिष्ठजीके चरणोंपर राजा और देवताओंने फूलचढ़ाये और सब ने बड़ी पूजाकी। जैसे बड़ा पवन चलता है और वेगकरके बाग वृक्षों के फूल पृथ्वी पर गिरपड़ते हैं तैसेही सब ने बहुत फूलोंकी वर्षा की। इस प्रकार प्रथम तो बहुत पूजा होती रही फिर वशिष्ठजी को नमस्कार करके सब उठके खड़े हुये और आपस में नमस्कार किया। फिर राजा दशरथ से आदि लेकर राजा और ऋषि सब उठे और जैसे मन्दराचल पर्व्वत में सूर्य्य उदय होता है तैसेही वशिष्ठजीसे आदिलेकर ऋषि और राजादशरथ से आदि सब राजा उठे। तब पृथ्वी के राजा और प्रजा पृथ्वी को चले और आकाश के सिद्ध और देवता आकाश को चले और सब अपने अपने कर्म में जालगे और जैसे शास्त्रोक्त व्यवहार है उसमें स्थित हुये। जब रात्रि हुई तब विचार करते रहे कि, वशिष्ठजी ने कैसे ज्ञान उपदेश किया है और उस विचार में उनकीरात्रि एक क्षणकी नाईं बीती।

इतने में सूर्य्यकी किरणों के उदय होतेही राम लक्ष्मण आदि सब आये और परस्पर नमस्कार कर अपने अपने आसनपर शान्तरूप होकर बैठे—जैसे पवन से रहित कमल स्थित होते हैं। तब वशिष्ठजी ने अनुग्रह करके आपही कहा, हे रामजी! तुम्हारी प्रीति के निमित्त मैंने संसार का बहुत खोजकिया और आकाश, पाताल और सप्तद्वीप सब खोजे हैं परन्तु ऐसा कोई संन्यासी न देखा और न अन्यका संकल्प उसकी नाईं भासता है। जब एक प्रहर रात्रिरही तो मैंने फिर ढूंढ़कर उत्तर दिशा में चिन्माचीन नगरमें एक मढ़ी देखी तो उसके दरवाजे चढ़ेहुये थे और उसमें पके बालवाला एक संन्यासी बैठा था और बाहर उसके चेले बैठे थे। वे दरवाजे नहीं खोलते थे कि, ऐसा न हो हमारे गुरुकी समाधि खुलजावे। वह उस स्थान में दूसरे ब्रह्माकी नाईं बैठा है। उसको बैठे अभी इक्कीस दिन हुये हैं पर उसको समाधि में सहस्र वर्षोंका अनुभव हुआ है और उसने बहुत जन्म भी पाये हैं जो उसको प्रत्यक्ष भासितहुये हैं। उसने सृष्टि भी प्रत्यक्ष देखी है और उसमें विचरा है। हे रामजी! इसकासा एक और भी पूर्वकल्पमें था। इतना सुन राजा दशरथने कहा, हे महा मुनीश्वर! जो आप आज्ञादें तो मैं अपना अनुचर चिन्माचीन नगरमें भेजूं कि,वह वहां जाकर उस संन्यासी को जगावे? वशिष्ठजीने कहा, हेराजन्! वह संन्यासी अब ब्रह्माका हंसहोकर ब्रह्माके उपदेश से जीवन्मुक्त हुआ है और यह शरीर उसका अब मृतक हुआ है। उसमें अब पुर्यष्टका अर्थात् जीव नहीं उसका क्या जगाना है? एक महीने पीछे शिष्य उसका दरवाजा खोलेंगे तो उसनगरके लोग देखेंगे कि, वह मृतक पड़ा है। इससे, हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्रही है और जो तुम कहो कि, एकसे क्योंकरहुये तो सुनो कि, जैसे यह मुनीश्वर, ऋषि, राजा और और जो संसारमें लोग हैं वे कईबार एकसा शरीरधारते हैं और कई बार मध्य धारते हैं, कई कुछ थोड़ा धारते हैं और कई विलक्षण धारते हैं। इसनारदजीके समान और भी नारद होंगे उनकी चेष्टाभी ऐसीही होगी और शरीर भी ऐसाही होगा। व्यासजी, शुकदेव, भृगु, भृगुके पिता; जनक, करकर, अत्रिऋषीश्वर और अत्रिकी स्त्री भी जैसी कि अब हैं वैसीही होंगी। जैसे समुद्रमें तरङ्ग एकसेभी और न्यून अधिकभी होते हैं तैसेही यह संसार ब्रह्मासे आदिलेकर पाताल पर्यन्त सब मनका रचाहुआ है और सब मिथ्या है। जब यह चित्तकला बहिर्मुख होती है तब संसार और देश-काल होता है और जब अन्तर्मुख होती है तब आत्मपद प्राप्त होता है। जबतक बहिर्मुख होती है तबतक दुःखपाता है। अपना स्वरूप आनन्दरूप है उसमें चित्तकला जानती है कि, मैं सदादुःखीहूं। देह और इन्द्रियों से मिलकर दुःखी होता है। इससे हे रामजी! इस अज्ञानरूप फुरने से तुम रहित होरहो। फुरने से यह अवस्था प्राप्त

होती है। जैसे चन्द्रमा अमृत से पूर्ण है और उसमें चर्मदृष्टि से कलंकता भासती है तैसेही अमृतरूपी चन्द्रमा आत्मा में अज्ञानदृष्टिसे जन्म, मरण, शोक, दुःख, भय, कलंक दीखता है। यह माया महा आश्चर्यरूप है जैसे चन्द्रमा एक है और नेत्र दोष से बहुत भासते हैं तैसेही एक अद्वैत आत्मा में नानात्व विश्वका भान अज्ञान से होता है। यही माया है। हे रामजी! तुम एकरूप आत्माहो; उसमें फुरने से विश्व कल्पाहै। इससे फुरनेसे रहितहुये विना आत्माका दर्शन नहींहोता। जैसे उदयहुआ सूर्य्य भी बादल के होते शुद्ध नहीं भासता तैसेही फुरनरूपी बादलके दूरहुये आत्म-रूपी सूर्य्य शुद्ध भासता है और दृश्य, दर्शन, द्रष्टा फुरने से कल्पे हैं। हे रामजी! इस संसारका सार जो आत्मा है उसमें सुषुप्तकी नाईं मौन होरहो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं तीन मौन जानताहूं—एक वाणीमौन अर्थात् चुपकर रहना; दूसरा इन्द्रियों का मौन और तीसरा कष्टमौन अर्थात् हठकरके मन और इन्द्रियों को वश करना; सुषुप्तमौन नहीं जानता आप कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये तीनों कष्ट मौन तपस्वियों के हैं और सुषुप्तमौन ज्ञानी और जीवन्मुक्त का है। वे तीनों मौन जो तुमने कहे सो अज्ञानी तपस्वियों के हैं; उनको फिर सुनो। एक वाणी का मौन कि, बोलना नहीं दूसरा मौन समाधि कि, नेत्रों का मूंदलेना और कुछ न देखना और तीसरा हठकर स्थितहोना और मन और इन्द्रियोंको स्थितकरना। एक मौन इन्द्रियों की चेष्टासे रहित होना और ज्ञानी का सुषुप्तमौन सुनो कि, वाणी और इन्द्रियों से चेष्टाकरना पर आत्मा से भिन्न और कुछ न भासित होना अथवा ऐसे होना कि, न मैं हूं, न जगत् है अथवा ऐसे होना कि, सब मैंहींहूं। ऐसे निश्चय में स्थित होना बड़ा उत्तम मौन है। हे रामजी! विधि से भी आत्माकी सिद्धि होती है और निषेध से भी होतीहै। उस आत्मामें स्थित होना बड़ा मौनहै। हे रामजी! यह जो मैंने सुषुप्त मौन कहाहै सो क्याहै कि, द्वैतरूपसंसारके फुरनेसे सुषुप्तहोना; आत्मामें जागना और ऐसेदेखना कि, न मुझमें जाग्रत्है, न स्वप्नहै और न सुषुप्तिहै। इस निश्चय में स्थित होना तुरीयातीतहै। यह पञ्चम मौनहै। ऐसा तुरीयातीत पद अनादि अनन्त जरा से रहित शुद्ध निर्दोषहै। हे रामजी! ज्ञानी इन्द्रियों के रोकनेकी इच्छा भी नहींकरता और न विचरनेकी इच्छाकरताहै जैसे स्वाभाविक आनपड़े उसमें स्थित होताहै। यह परम मौनहै। ज्ञानीको सुखकी इच्छा भी नहीं और दुःखका त्रास भी नहीं; वह हेयोपादेय से रहितहै। हे रामजी! तुम रघुवंशकुलमें चन्द्रमाहो अपने स्वभाव में स्थितहो; संसारभ्रम मनके फुरने से होताहै सो मिथ्या है वास्तव नहीं; और न शरीर सत्य है, न माया सत्यहै। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप ओंकार है और ओंकारको अङ्गीकार करके स्थितहोना परमउत्तम मौनहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो पीछे आपने

सब रुद्र कहे वे रुद्रथे अथवा रुद्रके गण थे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसको रुद्र कहतेहैं–उसीको गणकहते हैं ये सबही रुद्रहैं। फिर रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह जो आपने कहा कि, सब रुद्रहुये ये तो एक चित्त थे सब क्योंकर हुये? जैसे दीपक से दीपक होताहै इसीभांतिहुये? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! एक सावरण है दूसरा निरावरणहै। जिसका शुद्ध अन्तःकरणहै वह निरावरणहै और जिसका मलिन अन्तःकरण है वह सावरण है। शुद्ध अन्तःकरण में जैसा निश्चय होता है तैसाही तत्काल आगे सिद्ध होता है और मलिन अन्तःकरण का फुरना सिद्ध नहीं होता। इससे शुद्ध जो निरावरण रुद्रहै सो आत्मा है और सर्व्वव्यापी है; जैसा उनका निश्चय होताहै सो सत्य है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सदा शिवकी चेष्टा तो मलिन है कि, रुण्डों की माला गरे में धारते हैं और बिभूति लगाकर श्मशान में विहार करते हैं और स्त्री बायें अंगमें रहती है। आप क्योंकर कहते हैं कि, उनका शुद्ध अन्तःकरण है? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! शुद्ध अशुद्ध अज्ञानी को कहते हैं। जो शुद्ध में बरते अशुद्ध में न बरते सो ज्ञानी है। वह अपने में क्रिया नहीं देखता और उसको शुद्ध अशुद्ध मलिन से राग द्वेष नहीं होता है। ऐसे सदा शिवजी को ग्रहण त्याग नहीं है, जो स्वाभाविक चेष्टा होती है सो हो वह ऐसे होती है कि, जैसे आदि परमात्मामें विष्णुभगवान् चार भुजाधारे संसारकी रक्षा करने के लिये शुद्ध चेष्टा से अवतार धारकर धर्म्म की रक्षा करते हैं और पापियों को मारते हैं। यह आदि फुरना हुआ है। जो क्रिया स्वाभाविकही आन प्राप्तहो, उस क्रियाका उनको रागद्वेष करके हेयोपादेय कुछ नहीं और उनको क्रियाका अभिमान भी नहीं होता इसी से क्रिया उनको बन्ध नहीं करती। इससे यह सिद्ध है कि, संसार फुरनेमात्र है। जब तुम फुरने से रहित होगे तब तुमको त्रिपुटी न भासेगी आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासेगा इससे तुम अज्ञानरूप फुरने से रहितहो जब तुमको और आत्मपदका साक्षात्कार होगा। तब तुम जानोगे कि, मुझमें फुरन, दृश्य, अदृश्य कुछ नहीं केवल आत्मपद है जिसमें एक कहना भी नहीं तो द्वैत कहांसे हो? हे रामजी! दृश्य, अदृश्य, फुरना, न फुरना और विद्या, अविद्या ये सब उपदेश के निमित्त कहते हैं, आत्मा में कुछ कहा नहीं जाता। आत्मा एक है जिसमें द्वैत का अभाव है। जब चित्त परिणाम बहिर्मुख होता है तब विश्वका भानहोताहै और जब चित्त अन्तर्मुख परिणाम पाता है तब अहन्ता और ममता का नाश होता है और चेतनमय शेष रहता है। जब अतिशय अन्तर्मुख परिणाम होता है तब चेतन भी नहीं कहाजाता और जब इससे भी अतिशय परिणाम पाता है तब 'है' 'नहीं' भी नहीं कहाजाता। हे रामजी! ऐसाआत्मा तुम्हारा अपना आपस्वरूप और शांतपद है उसमें वाणी का गमनहीं कि, ऐसा कहिये और तैसा कहिये। ऐसा

कहिये तो इन्द्रियों का विषयहै और तैसा कहिये तो इन्द्रियों से परहै । जब तुम अपने में स्थित होगे तब जानोगे कि, मुझमें अहंफुरना कुछ नहीं । आत्मरूपी सूर्य्य के साक्षात्कारहुये से दृश्यरूपी अंधकार का अभाव होजावेगा क्योंकि, आत्मा तुम्हारा अपना आपहै जो केवल शान्तरूप और निर्मल है । जैसे गम्भीर समुद्र वायु से रहित होताहै तैसेही आत्मरूपी समुद्र संकल्परूपी वायु से रहित, गम्भीर और शुद्ध होता है । यह संसार चित्तका चमत्कार है जो निरंश है और जिसमें अंशांशीभाव नहीं—अद्वैतहै । हे रामजी ! जब ऐसे बोध में स्थित होगे तब इस विश्वको भी आत्मरूप देखोगे और यदि बोध विना देखोगे तो विश्वका भान होगा । इससे हे रामजी ! बोध में स्थितरहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकताप्रतिपादनन्नामषष्टितमस्सर्ग्गः ६० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सदा शिवका आदि फुरना हुआहै जो त्रिनेत्र हैं और विश्वका संहार करते और शिरोंकी मालाधारण किये हैं । ब्रह्मा के चारमुख हैं और चारों वेद हाथमें हैं और संसारकी उत्पत्ति करतेहैं उनका ऐसेही फुरना हुआहै । हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों एकरूप हैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक यही बनपड़ी है । उन्होंने यह कर्म न रागसे अङ्गीकार कियाहै और न द्वेषकरके त्यागकरते हैं और यह संज्ञा भी लोगोंके देखने के लिये है वे अपनेज्ञानमें कुछ नहीं करते क्योंकि; बोधमेंही उनका जाग्रत् है बोधमें जाग्रत् क्या और कैसे होता है सो भी सुनो । एक सांख्यमार्ग्ग से होता है और एक योगमार्ग्ग से होता है । सांख्यमार्ग्ग यह है कि, तत्त्व और मिथ्या का विचारना । तत्त्व इसे कहते हैं कि, मैं आत्मा सत् और चेतनहूं और सर्वदृश्य मिथ्या, जड़ और असत् है । मेरेमें अज्ञान कल्पित है पर मैं अद्वैत आत्माहूं और मेरेमें अज्ञान और दृश्य दोनों नहीं । ऐसे निश्चय में स्थित होना सांख्य विचार है । योग प्राणों के स्थित करने को कहते हैं क्योंकि, जब प्राण स्थित होते हैं तब मन भी स्थित होजाता है और जब मन स्थित होजाता है तब प्राणभी स्थित होते हैं—इनका परस्पर सम्बन्ध है । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो प्राणही स्थित हुये से मुक्त होता है तो मृतक पुरुषों के तो प्राण नहीं रहते—वे सब मुक्त होने चाहिये ? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी ! प्रथम तो प्राण श्रवण करो कि, क्याहै । यहजीव पुर्य्यष्टकामें स्थित होकर जैसी वासना करता है तो शरीर को त्यागकर उसी के अनुसार आकाश में स्थित होता है इसका नाम प्राण है । उस वासनारूप प्राण से फिर उसको संसार का भान होता है और जब प्राणकी वासना क्षय होती है तब मुक्त होताहै । ज्ञानीकी वासना क्षय होजाती है इससे वह जन्म—मरण से रहित होता है । जैसे भुनाबीज फिर नहीं उगता तैसेही ज्ञानी को वासना के अभाव से जन्म मरण नहीं

होता। हे रामजी! जन्म मरण दोनों मार्गों से निवृत्त होता है और दोनों का फल कहा है। हे रामजी! ज्ञानसे चित्त सत्यपदको प्राप्त होता है और योग करके प्राण वायु स्थित होती है तब वासना क्षय होजाती है। जब स्वरूप की प्राप्ति होती है तब संसार के पदार्थों का अभाव होजाता है जैसे रसायन से तांबा सोना होके फिर तांबेका भाव नहीं रहता; तैसेही ज्ञानसे विश्वरूपी तांबेकी संज्ञा नहीं रहती। जैसे तांबाभाव जाता रहता है तैसेही ज्ञान से जब चित्त सत्यरूप हुआ फिर संसारी नहीं होता। आत्मामें न बन्ध है और न मुक्त है परमात्मा एक अद्वैत है तब उसमें बन्ध कहां और मुक्त कहां? बन्ध और मुक्त चित्तके कल्पेहुये हैं और जो चित्तके शान्तकरने का उपाय कहा है उससे शान्त होता है इसीको मुक्त कहते हैं और बन्ध मुक्त कोई नहीं। चित्त के उदय होने का नाम बन्ध है और चित्तकाशान्त होनाही मुक्त है। हे रामजी! जब मन अपने वश होता है तब आत्मपद प्राप्त होता है; अथवा जब प्राण स्थितहोते हैं तब आत्मपद प्राप्त होताहै। यह संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्याहै; जब वासना निवृत्तहोती है तब आत्मपदमें स्थिति होती है। जैसे मेघ जब जलसंयुक्त होते हैं तब गर्जते हैं और वर्षाकरते हैं और जब वर्षा से रहितहोते हैं तब शान्तहोजाते हैं तैसेही जब वासनाक्षय होती है तब चित्त शान्त होजाताहै। जैसे शरत्कालमें बादल और कुहिरा निवृत्त होकर शुद्ध और निर्मल आकाशही रहता है, तैसेही वासना के निवृत्त हुये शुद्ध और केवल चेतन आत्मा हो भासता है। जो तुम एक मुहूर्त्त भी चित्त बिना स्थितहो तो तुमको आत्मपदकी प्राप्तिहो। जबतक चित्तकी वासना क्षय नहींहोती तबतक बड़ेभ्रम देखता है। हे रामजी! यह संसार मृगतृष्णा के जलवत् असत् है और आभासमात्र फुरता है। इसपर एक आख्यान जो आगे हुआ है सो कहताहूं मनलगाकर सुनो। दक्षिण दिशा में मन्दराचल पर्वत है उस की कन्दरा में एक वेताल महाभयानक आकार से रहता था और मनुष्यों को खाता था। उसके मनमें विचार उपजा कि, किसी नगर को भोजनकरूं पर वह एकसमय साधुकासंग भी करताथा क्योंकि, एकसाधु उस वैतालको भोजन करता था। उस साधुसंगके प्रसाद से वेताल के मनमें यह उपजा कि, मेरी कौन गति होगी? मेरा आहार मनुष्य है और मनुष्यों का भोजन करना बड़ीहत्या है। इससे मैं एक वृत्तिकरूं कि, जो मूर्ख और अज्ञानी मनुष्यहों उनको भोजन करूं और जो उत्तम पुरुष हैं उनको न खाऊं। हे रामजी! निदान वह वेताल यद्यपि क्षुधातुर भी हो तौ भी भलेमनुष्यों को न खावे इसीप्रकार एकसमय वह क्षुधासे बहुत व्याकुल हो रात्रिके समय घरसे बाहर निकला तो संयोगवश उसनगरके राजा से जो वीरयात्राको निकलाथा भेंटहुई। वेतालने कहा, हे राजन्! तुममुझे भोजनमिलेहो अब मैं तुमको खाताहूं; तुमकहां जावोगे? राजा ने

कहा; हे रात्रिके विचरनेवाले वैताल! जो तू मेरे निकट अन्यायसे आवेगा तो तेराशीश हजार टुकड़ेहोगा और तू गिरेगा। वैतालने कहा, हे राजन्! मैं तुझसे नहीं डरता। हे आत्महत्यारे! मैं तुझे भोजनकरूंगा; चाहे तू जैसा बलीहो मैं नहीं डरता परन्तु एक मेरी प्रतिज्ञा है कि, मैं अज्ञानी को भोजनकरताहूं और ज्ञानी को नहीं मारता। जो तू ज्ञानीहै तो न मारूंगा और जो अज्ञानी है तो मारूंगा जैसे बाजपक्षी पक्षियों कोमारताहै। जो तू ज्ञानीहै तो मेरेप्रश्नों का उत्तरदे। एकप्रश्नयहहै कि, जिसमें ब्रह्माण्ड रूपी अणुहै वह सूर्य्य कौनहै दूसरा प्रश्न यहहै कि, जिस पवन में आकाशरूपीअणु उड़ते हैं वह पवन कौनहै तीसरा प्रश्न यहहै कि, जिसमें केलेके वृक्षवत् और कुछ नहीं निकलता वह कौनवृक्षहै और चौथाप्रश्न यहहै कि, वह पुरुष कौनहै जो स्वप्नेसेस्वप्न और फिर उसमें और स्वप्न देखताहै और एकरहताहै, परिणामको नहीं प्राप्तहोता? इनप्रश्नों का उत्तरदो, जो तुमने मेरे प्रश्नोंका उत्तर न दिया तो तुझे खाजाऊंगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवैतालप्रश्नोक्तिनामएकषष्टितमस्सर्गः ६१॥

राजाबोला हे वैताल! इन प्रश्नोंका उत्तर सुनों ब्रह्माण्डरूपी एक मिरच बीज है और उसमें सत्पद आत्मा चेतनरूपी तीक्ष्णताहै। एकडालमें ऐसीमिरचें कई सहस्र लगीहुई हैं और एक वृक्षमें कई सहस्र ऐसी डालें लगी हैं; ऐसे वृक्ष एक वनमें कई सहस्र हैं और ऐसे कई सहस्र वन एक शिखर पर स्थित हैं; ऐसे कई सहस्र शिखर एक पर्व्वत परहैं और ऐसे कई सहस्र पर्व्वत एक नगर में हैं; ऐसे कई सहस्र नगर एक द्वीप में हैं और ऐसे कई सहस्र द्वीप एक भव पृथ्वी में हैं; ऐसे कई सहस्र पृथ्वी भव एक अण्ड में हैं और ऐसे कई सहस्र अण्ड एक समुद्र में लहरे हैं; ऐसे कई सहस्र समुद्र एक समुद्रकी लहरे हैं और ऐसे कई सहस्र समुद्र एक पुरुष के उदर में हैं; ऐसे कई पुरुषोंकी एक पुरुषके गले में माला पिरोई हुई हैं। ऐसे कई लाख कोटिसूर्य्य के अणु हैं जिस सूर्य्य से सर्व्व प्रकाशमान है। वह सूर्य्य आत्मा है जिसमें अनन्त सृष्टि स्थित है। हे वैताल! जैसे यह सृष्टि भासती है तैसेही सब सृष्टिजान। जो यह सृष्टि सत्य है तो सब सृष्टि सत् है और जो यह सृष्टि स्वप्न है तो सब सृष्टि स्वप्न जानो। आत्मा ऐसा सूर्य्य है जिससे भिन्न और अणु कोई नहीं और सदा अपने आपमें स्थित है। इससे और क्या पूछता है? ऐसे आत्मा में स्थित हो जो आत्मसत्ता मात्रपद है; जिस सत्तामात्रपद से कालसत्ता हुई है और उसी में आकाश सत्ताहुई है। उसी सत् पदसे सबसत्ता संकल्प से उदय हुई है और संकल्प के लय हुये सब लय होजाती हैं। तूने जो प्रश्नकियाथा कि, वह कौन सूर्य्य है जिससे ब्रह्माण्डरूपी अणु होते हैं? वह ब्रह्मसूर्य्य है जिससे भिन्न और कुछ नहीं और केले का वृक्ष जो तू ने पूछा था सो केलेकी नाईं भीतर बाहर विश्वके आत्मास्थित है।

जैसे केलेके भीतर देखे से शून्य आकाशही निकलता है तैसेही विश्व के भीतर बाहर आत्मासे भिन्न और कुछ सार नहीं निकलता जो अद्वैत है उससे भिन्न द्वैत कुछ नहीं। वह पवन ब्रह्म है जिस पवनमें ब्रह्माण्ड के समूह उड़तेहैं और वह पुरुष स्वप्ने से स्वप्ना आगे और स्वप्ना देखता है और एक अपने आपमें स्थितहै। चित्तकला फुरने से अनन्त ब्रह्माण्डों का भान होता है इसीको स्वप्ना कहते हैं; तो भी कुछ भिन्न नहीं एकही रूप नटवत् रहता है और यह सब उसकी आज्ञा से बरतते हैं। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है। जिसमें मन्दराचल पर्व्वत भी अणु है ऐसा स्थूल है और जिसमें वाणी की गमनहीं, अपने आपही में स्थित है और इन्द्रियों से अगोचर है इससे सूक्ष्म से सूक्ष्म है और पूर्णता से स्थूल से स्थूल है। हे मूर्ख बैताल! तू किसको खाता है और क्षुधा से क्यों व्याकुल हुआ है? तू तो अद्वैतरूप आत्माहै और आनन्दरूप है अपने आपमें स्थितहो। जब ऐसे प्रश्नका उत्तर देकर राजाने उपदेश किया तब बैताल वहांसेचला और एकांत स्थानमें स्थित हो विचार करनेलगा कि, ऐसे मृगतृष्णा के जलवत् झूठे संसार से मुझे क्याप्रयोजन है। फिर एकान्त स्थान में जाकर स्थित हुआ और ध्यानलगाकर आत्मामें एकधारा प्रवाहक प्रवाहस्थित हुआ। धारा प्रवाह प्रवाहक उसे कहते हैं कि आत्माका अभ्यास दृढ़ हो, आत्मा से भिन्न कुछ न फुरे और एकरस स्थितहो। ऐसे ध्यान में स्थितहोकर बैताल सत्आत्मपद को प्राप्त हुआ। हे रामजी! यह राजा और बैतालका आख्यान तुमको सुनाया। उस आत्मा में ब्रह्माण्ड अणुकी नाईं स्थित है इससे निर्विकल्प आत्मा में स्थित हो और इन्द्रियों को बाहर से संकोचकर स्थितकरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजाबैतालसंवादेबैतालब्रह्मपद
प्राप्तिर्नामद्विषष्टितमस्सर्गः ६२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं एक और आख्यान कहताहूं उसे सुनो, जिससे भगीरथ राजा की मूढ़तागई; स्वस्थचित्त होकर आत्मपद में स्थित हुआ; अपने प्रतिप्रवाह में विचरा और पुरुषार्थ से स्वर्गलोक से गंगा को मध्यलोक में लेआया है। तुमभी वैसेही विचरो उसके पास जो कोई अर्थी आताथा उसका वह अर्थ पूर्ण करताथा और जिस पदार्थ का कोई संकल्प करके आवे राजा उसका पूर्ण करे जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमणि अमृत स्रवती है तैसेही मित्रभाव का वह राजा था। जो उस राजासे शत्रुभाव रखते थे उनको वह ऐसे नाश करता था—जैसे सूर्य्य के उदय हुये अन्धकार का नाश होजाता है; और जैसे अग्नि से अनेक चिनगारे उठते हैं तैसेही शत्रुओं पर शस्त्रों की भी वर्षा करता था और प्रतिप्रवाह में स्थित रहता और भले बुरे और सुख दुःखमें एकसमान रहताथा रामजी ने पूछा हे भगवन्!

राजा भगीरथके मनमें क्याआई जो गंगाको लेआया ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक समय उसने अपने नगर को देखा कि, लोग भले मार्ग्ग को त्यागकर बुरे मार्ग्ग और पापकर्म में लगे हैं और मूर्ख हुये हैं तब लोगों के उपकार के निमित्त उसने ब्रह्मा, रुद्र और यज्ञऋषियों का तप करके आराधन किया और गंगा के लाने के निमित्त मंत्र जपने लगा । गङ्गाका एक प्रवाह स्वर्ग में चलता है और एक पाताल में चलता है; राजा भगीरथने एक प्रवाह मर्त्यलोक में भी चलाया है और गंगा के लाने से समुद्र पर भी उपकार किया। जो समुद्र अगस्त्यमुनिने सुखाये थे गङ्गाके आने से उन समुद्रों का दरिद्रभी निवृत्त हुआ। उसके मन में विचार उपजा और संसार को देखकर कहने लगा कि, एकही काम वारंवार करना बड़ी मूर्खता है; नितवही भोगना, वही खाना और फिर वही कर्म करने हैं । जिस कर्म किये से पीछे सुख निकले उसके करने का कुछ दूषण नहीं । ऐसा वैराग करके उसको विचार उपजा कि, संसार क्या है ? उस समय में राजा यौवन था—जैसे मरुस्थल में कमल उपजना आश्चर्य्य है तैसेही यौवन अवस्था में ऐसा विचार उपजना आश्चर्य है । हे रामजी ! जब राजा को ऐसा विचार उपजा तब घर से निकलकर अपने गुरु त्रितल ऋषीश्वर के निकट जा प्रश्न किया । हे भगवन् ! वह कौन सुख है जिसके पाये से जरा और मृत्यु के दुःख निवृत्त होते हैं ? यह संसार के सुख तो भीतर से शून्य हैं; इनके परिणाम में दुःखहै। त्रितलऋषि बोले, हे राजन् ! एकज्ञेय अर्थात् जानने योग्य है जिसके जाने से शान्तपद प्राप्त होता है सो आत्मज्ञान है । वह आत्मा न उदय होता है; न अस्त होता है; ज्यों का त्यों अपने आपमें है । हे राजन् ! यह जरा मृत्यु तबतक भासता है जबतक अज्ञान है; जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होगा । तब अज्ञान रूपी अन्धकार निवृत्त होजावेगा और केवल शान्तपदमें स्थित होगा । आत्मानन्द सर्व्वज्ञहै, जिसके जानेसे चित्तजड़ग्रन्थि टूटजाती है अर्थात् अनात्मदेह इन्द्रियादिक में आत्म अभिमान करना निवृत्त होजाता है और सब कर्म भी निवृत्त होकर सब संशय नष्ट होजाते हैं । ऐसे शुद्ध स्वरूप को पाकर ज्ञानी स्थित होतेहैं जो सत्ता सर्व्व है और सर्व्वगत, नित्य स्थित, उदय-अस्त से रहित है । राजा बोले, हे भगवन् ! ऐसे मैं जानताहूं कि, आत्मा चिन्मात्रसत्ता है और देहादिक मिथ्याहै । आत्मा सर्व्वज्ञ शान्त और अच्युतरूप है; ऐसे जानता भी हूं परन्तु मुझे शांतिनहीं हुई और आत्मा चिन्मात्र मुझे नहीं भासता और स्थित नहीं हुई इसलिये कृपा करके कहिये कि, मैं स्थित होऊं । ऋषि बोले, हे राजन् ! तुझसे मैं एकज्ञान कहताहूं जिसके जाने से फिर कोई दुःख न रहेगा और उससे ज्ञेय में तुमको निष्ठाहोगी तब तुम सर्व्वात्मारूप होकर स्थितहोगे और तुम्हारा जीवभाव नष्ट होजावेगा ॥ श्लोक ॥ अशक्तिरनभि

ष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यंचसमचित्तत्व मिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ अर्थात् देह और इन्द्रियों में आत्म अभिमान न करके पुत्र, स्त्री और कुटुम्ब के दुःख से आपको दुःखी न जानना; नित्य सम चित्त रहकर इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में एक रस रहना; चित्तको आत्मपद में लगाकर वृत्तिको और ओर न जानेदेना, एकांतदेश में स्थित होना और अज्ञानी का संग न करके ब्रह्मविद्या का सदाविचार करना; यह लक्षण तत्त्व ज्ञान के दर्शन के निमित्त तुझ से कहे हैं—इससे विपरीत अज्ञानता है। हे राजन्! यह ज्ञेय जानने योग्य है; इसके जाने से केवल शांतपद को प्राप्त होगे और देह का अहंकार भी निवृत्त होगा। हे राजन्! पहिले अहं होताहै और फिर ममहोती है; इससे तू अहंममका त्यागकर। जब अहं मम का त्याग करेगा तब आत्मपद अहं प्रत्यय से भासेगा वह आत्मा सर्व्वज्ञ है; सर्व्व भी आप है; स्वतःप्रकाश और आनन्द रूपहै पर संसार के आनन्द से रहितहै। जब ऐसे गुरुजीने कहा तब राजाबोला; हे भगवन्! यह अहंकार तो चिरकाल का देह में रहता है और अभिमानी है उसका क्योंकर त्याग करूं? ऋषिबोले, हे राजन्! अहंकार पुरुष प्रयत्न करके निवृत्तहोताहै। पहिले भोगों में द्वेष दृष्टि करनी, भोगों की वासना न करनी; वारंवार अपने स्वरूप की भावना करनी और विचार करना; इससे तुम्हारा जीव अहंकार निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! जब तुम्हारा अहंकार निवृत्त होगा तब तुमको सर्व्वात्माही भासेगा और दुःख से रहित शांतरूप का प्रकाश होगा। हे राजन्! यह लज्जारूप फांसी जबतक निवृत्त नहीं होती तबतक आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती। अहं, मम, तृष्णा, शोक, दुःख और भला कहने की इच्छा इत्यादिक जो मोह के स्थान हैं उसे लज्जाकहते हैं। इससे तुम अहं मम से रहित हो तुम्हारे शत्रु जो राज्य लेनेकी इच्छा करते हैं उनको अपना राज्य दो और क्षोभसे रहित होकर पुत्र, स्त्री और बान्धवों के मोहसे रहित हो। मेरे मोह से भी रहितहो और राज्यका त्याग करके एकांत देश में स्थितहो और उन शत्रुओं के घरमें भिक्षामांग कि, तुझे भला कहने की इच्छा न रहे। अब उठखड़ाहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभगीरथोपदेशोनामत्रिषष्टितमस्सर्गः ६३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार त्रितलऋषीश्वर ने उपदेश किया तब राजा उठखड़ाहुआ और घरको गया। गुरुका उपदेश हृदय में धारकर अपने राज्य में स्थितहो राज्यकरनेलगा और मन में विचार भी करता रहा। जब कुछ काल बीता तब राजाने अग्निष्टोम यज्ञ का आरम्भ किया। धन के त्याग करने को अग्निष्टोमयज्ञ कहते हैं। तीन दिनमें धनका त्यागकर हाथी, घोड़े, रथ, भूषण, वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य्य थे सो लोगों को देदिये। ब्राह्मण, अर्थी, पुत्र, स्त्री और शत्रुओं को जब पृथ्वी का राज्य देदिया तो शत्रुओं ने जाना कि, अब राजा भगीरथ में कुछ पराक्रम नहीं

रहा तो उन्होंने आकर इसका देश घेरलिया, हवेलीपर चढ़आये और राजा के सब स्थान रोंकलिये। राजा के पास केवल धोती अँगोछा रहगया तब राजा वहांसे निकल कर वनों में विचरने लगा और शान्तपद आत्मा में स्थित हुआ। जब कुछकाल बीता तो भगीरथ फिर अपने देश में आया और अपने शत्रुओं के घरमें भिक्षामांगनेलगा तब शत्रुओं और दूसरे लोगोंने उसकी बहुत पूजा की और कहा, हे भगवन् ! तुम अपना राज्यलो; पर उसने राज्य न लिया। जैसे पृथ्वीपर पड़ातृणको तुच्छबुद्धिकरके नहीं ग्रहण करता तैसेही उसने राज्य ग्रहण न किया। कुछकाल वहां रहकर त्रितल ऋषिकेपास जो उसका गुरु था अनिच्छित होकर गया। गुरुने आत्मत्वसे उसे ग्रहण किया और शिष्यने भी गुरुको आत्मत्व से ग्रहण किया। गुरु और शिष्यभावना से रहितहो वे दोनों कुछकाल एकस्थानमें रहे और फिर वनमें इकट्ठे विचरने लगे। वे शान्त और आत्मपदमें स्थित रहकर रागद्वेष से रहित केवल एकरस स्थितरहे और उनको न देहत्यागनेकी इच्छा थी, न देहरखनेकी इच्छा थी; केवल अनिच्छित प्रारब्ध में स्थितरहते थे। इतने में स्वर्गलोकके सिद्धोंने आकर उनकी पूजाकी और बड़े ऐश्वर्य पदार्थ चढ़ाये। बहुत अप्सराआईं और जितने ऐश्वर्यभोग पदार्थ थे वे आये पर उनको उन्होंने तुच्छजाना क्योंकि; वे आत्मसुखसे तृप्त और केवल आकाशवत् निर्मल थे और प्रकाशरूप, समचित्त, कलंकतारूपी मलसे रहित थे। हे रामजी ! जैसे राजा भगीरथ स्थित हुये हैं तैसेही तुमभी स्थितहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनन्नामचतुष्षष्टितमस्सर्गः ६४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब कुछकाल बीता तो भगीरथ वहांसे चला और एक देश में पहुंचा जहां का राजा मृतक हुआ था और उसकी लक्ष्मी राजा की याचना करती थी। राजा भगीरथ भिक्षामांगता फिरताथा कि, उस राजा के मन्त्री ने भगीरथको देखा कि, जो कुछ गुण राजामें होते हैं वे इसमें हैं; इसलिये वह राजा भगीरथ से बोला, हे भगवन् ! आप इस राज्यको अङ्गीकार कीजिये क्योंकि, आपको अनिच्छित प्राप्त हुआ है। निदान राजाने उस राज्यको ग्रहण किया और उसे न कुछ भलाजाना न बुरा। फिर राजा हाथीपर आरूढ़हो सेना में सुशोभित हुआ देश और सब स्थान सेनासे पूर्णहुये। जैसे मेघ से ताल पूर्ण होते हैं तैसेही देश और स्थान सेना से पूर्ण होगये और नगारे और साज बजनेलगे। तब राजा गृह में गया और महल की सब स्त्रियां आईं। जहां का राज्य भगीरथने पहिले किया था उस देशसे मन्त्री और प्रजा आये और उन्होंने भगीरथसे कहा, हे भगवन् ! जिन शत्रुओं को तुमने राज्य दिया था उनको मृत्युने भोगकरलिया है। जैसे मछली मल मांस को खालेती है तैसे उनको मृत्युने भोजन करलिया है; इससे तुम राज्यकरो। यद्यपि

इच्छा तुमको नहीं है पर तौभी राज्यकरो क्योंकि, जो वस्तु अनिच्छित प्राप्तहो उस का त्याग करना श्रेष्ठ नहीं इतना सुन राजाने उस राज्यका भी अङ्गीकार किया और राज्य करनेलगा। फिर राजाने पिछला वृत्तान्त स्मरणकर कि, मेरे पितर कपिल मुनि के शाप से भस्म हो कूप में पड़े हैं; विचार किया कि, मैं उनका उद्धार करूं; इसलिये अपने मन्त्रीको राज्यदेकर अकेला वनकोचला और इच्छाकी कि, तप करूं निदान एकस्थानमें स्थित होकर तप करनेलगा और गङ्गाके लानेके निमित्त ब्रह्मा, रुद्र और जगत् ऋषिका सहस्र वर्ष पर्य्यन्त आराधन किया। तब गंगा मध्य मंण्डल में आई जो विष्णु भगवान् के चरणों से प्रकटहुई हैं। जब पितरोंके उद्धार निमित्त गङ्गाके प्रवाहको राजा लेआया तब फिर समचित्त और शान्तपद में स्थित होकर विचरने लगा; जिसमें क्षोभ, मद और इच्छा न थी केवल शान्त आत्मपद में स्थित हुआ। जैसे पवनसे रहित समुद्र अचल होताहै तैसेही सङ्कल्प विकल्प से रहित होकर वह राजा स्थित हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पञ्चषष्टितमस्सर्ग्गः ६५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो भगीरथकी दृष्टि तुमसे कही है उसका आश्रय करके विचरो। यह दृष्टि सब दुःखोंका नाश करती है। एक आख्यान ऐसा आगे भी व्यतीत हुआ है ऐसाही शिखरध्वज राजा हुआ था। इतनासुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह शिखरध्वज कौन था और किस प्रकार चेष्टा करता था सो कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सातमन्वन्तरोंके बीतने के उपरान्त द्वापरयुगकी चौथी चौकड़ी में राजा शिखरध्वज हुआ है और फिर भी होवेगा। वह राजा सम्पूर्ण पृथ्वीका तिलक, महाशूरवीर और सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे संपन्न था परन्तु उसमें बन्धायमान न था। वह बड़ेभोग भोगता और बड़े ओजसे संपन्न, उदार, धैर्य्यवान् था किसी पर अन्याय न करे और समचित्त, शान्तपद में स्थित और सम्पूर्ण दुःखों से रहित था और अर्थीका अर्थ पूर्ण करता था। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ऐसा ज्ञानवान् राजा फिर क्यों जन्म पावेगा, ज्ञानी तो फिर जन्म नहीं पाता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे एक समुद्रमें कईतरङ्ग समान उठते हैं, कई अर्द्धसम और कई विलक्षण भावसे फुरते हैं, तैसेही आत्मसमुद्रमें कई आकार एकसे, कई अर्द्ध और कई विलक्षण भावसे फुरते हैं, जो समान फुरते हैं उनकी चेष्टा और आकार एकसे दृष्टिआते हैं। इसीप्रकार शिखरध्वजकी ऐसीही प्रतिभा होगी। हे रामजी! जब इस सर्ग्ग में सप्तमन्वन्तर और चारचौकड़ी द्वापरयुगकी बीतेंगी तब जम्बूद्वीपके मालवदेशमें एक श्रीमान् शिखरध्वज राजाहोगा परन्तु वह उससा शिखरध्वज दूसरा होगा, वह न होगा। प्रथम

शिखरध्वज जब षोड़श वर्षका राजकुमार था तब एकसमय शिकारको निकला। वसन्त ऋतुका समय था; राजा अपने बागमें जा ठहरा जहां, फूलोंके विचित्र स्थान बनेहुये थे और कमलिनियां मानों स्त्रियां और धूरके कणके उनके भूषण थे और उनके समीप पुष्पवृक्ष लगे थे इसी प्रकार भँवरी और भँवरोंकी सुन्दर लीलादेख राजा को विचार उपजा कि, मुझे स्त्री प्राप्त हो तो मैं भी चेष्टाकरूं । निदान उसे अधिक चिन्तना हुई कि, कब मुझे स्त्री मिलेगी और कब उसके साथ फूलकी शय्यापर शयन करूंगा जब इस प्रकार भोगकी राजा चिन्तना करनेलगा तब मन्त्रियों ने, जो त्रिकालज्ञान रखते थे और राजाके शरीरकी अवस्था जानते थे, जानाकि; हमारे राजाका मन स्त्रीपर है, इससे अब राजाका विवाह करना चाहिये । निदान एक राजा की कन्या जो बहुत सुन्दरी थी और वर चाहती थी उससे राजा शिखरध्वज का विवाह शास्त्रकी विधि सहित किया गया और राजा बहुत प्रसन्न होकर अपने घर आया। उस स्त्रीका नाम चुड़ालाथा और वह बहुत सुन्दरी थी । उससे राजाकी बहुत प्रीतिहुई और उस स्त्री काभी राजासे बहुत स्नेहहुआ; जो कुछ राजा के मनमें चिन्तनाहो वह रानी पहिलेही सिद्ध करदे उनकी परस्पर ऐसी प्रीति बढ़ी जैसे भँवरे और भँवरी में होती है । एक समयराजा मन्त्रियोंको राज्यदेकरवनको गया और वहां नानाप्रकारकी चेष्टाकर दोनों ऐसेविचरे कि, जैसे सदाशिव और पार्वती; व विष्णु और लक्ष्मीविचरें। इसके पश्चात् राजा योगकला सीखनेलगे पर रानी राजाको भोगकला सिखावे; इसी प्रकार वे दोनों सम्पूर्ण कलाओं में संपन्नहुये । चुड़ालाकी बुद्धि राजाकी बुद्धिसे तीक्ष्ण थी वह शीघ्रही सबबातें जानले और राजाको सिखावे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजचुड़ालोपाख्यानन्नाम षट्षष्टितमस्सर्ग्गः ६६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसी प्रकार जब राजा और रानीने अनन्त भोगभोगे तो जैसे कुम्भमें छिद्रहोनेसे शनैःशनैःजल निकलता है तैसेही शनैःशनैः उनके यौवन के दिन निकल गये और वृद्धावस्था आई तब राजा और रानीको वैराग्य उत्पन्न हुआ और वैराग्य से वे यह विचारनेलगे कि, यह संसार मिथ्या और विनाशी है,एक सा नहीं रहता और ये भोग भी मिथ्या हैं कि, इतने काल हम भोगते रहे पर तृष्णा पूर्ण न हुई-बढ़तीही गई । हे रामजी ! इस प्रकार राजा और रानी वैराग्य से विचारते रहे कि, ये भोग मिथ्या हैं और हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत होगई है । जैसे बिजलीका चमत्कार क्षणमात्र होकर बीतजाताहै तैसेही यौवन अवस्था व्यतीत होगई और मृत्यु निकट आई । जैसे नदीका वेग नीचे चलाजाता है तैसेही आयुर्बल व्यतीत होजाती है और जैसे हाथपर जल डालने से बहजाता है तैसेही यौवन

अवस्था निवृत्त होगई है। जैसे जलमें तरङ्ग और बुद्बुदे उपजकर लीन होजाते हैं तैसेही शरीर क्षणभंगुर है। जहां चित्तजाता है वहां दुःख भी इसके साथ चलेजाते हैं—निवृत्त नहीं होते। जैसे मांसके टुकड़ेके पीछे चील पक्षी चलाजाता है तैसेही जहां अज्ञान है वहां दुःख भी पीछे जाते हैं। यह शरीर भी नष्ट होजावेगा। जैसे पका हुआ आंवका फल वृक्षकेसाथ नहीं रहता; गिरपड़ताहै। तैसेही शरीर भी नष्ट होजाता है। जो शरीर कि अवश्य गिरता है उसका क्या आसरा करना है। जैसे सूखा पत्ता वृक्षसे गिर पड़ता है तैसेही यह शरीर गिर पड़ता है। इससे हम ऐसा कुछ करें कि, संसार रूपी विसूचिका निवृत्त हो। यह संसाररूपी विसूचिका ब्रह्मविद्याके मन्त्रसे निवृत्त होती है; ब्रह्मविद्या से ज्ञान उपजता है और आत्मज्ञानसे सर्व दुःख निवृत्त होजाते हैं इसके सिवा और कोई उपाय नहीं; इसलिये आत्मज्ञान के निमित्त हम सन्तों के पास जावें। ऐसे विचार करके राजा और चुड़ाला आत्मज्ञानियों के पास चले। वे आत्मज्ञानकी वार्त्ताकरें और आत्मज्ञानमेंही चित्तभावनाकर आपस में उसीका विचार और चर्चाकरें। निदान वे ऐसे सन्तों के पास पहुंचे जो संसारसमुद्र से तारने वाले और आत्मवेत्ता थे। उनकी पूजाकरके उन्होंने उनसे प्रश्न किया और राजा और रानी उन से ब्रह्मविद्या सुननेलगे कि, आत्मा शुद्ध, आनन्दरूप, चैतन्य और एकहै जिसके पाये से दुःख निवृत्त होजाते हैं। हे रामजी! तब रानीचुड़ाला विचारमेंलगी और राजाकी कोईटहल भी करे तौ भी उसके चित्तकी वृत्ति विचारही में रहे। वह यह विचारे कि, मैं क्याहूं? यहसंसार क्याहै और संसारकीउत्पत्ति किससे है? ऐसे विचारकर वह जानने लगी कि, यह शरीर पञ्चतत्त्वकाहै सो मैं नहीं क्योंकि; शरीरजड़है और कर्मइन्द्रियां भी जड़हैं। जैसाशरीरहै तैसेही शरीरके अंग भी हैं और ये चेष्टा ज्ञानइन्द्रियों से करते हैं सो ज्ञान इन्द्रियां भी मैं नहीं क्योंकि; ये भी जड़ हैं। मन से मनकी चेष्टा होती है सो मन भी जड़ है; इसमें सङ्कल्प विकल्प बुद्धिसे है। बुद्धि भी जड़ है क्योंकि; उसमें निश्चयचेतना अहंकार से होती है और अहंकार भी जड़ है क्योंकि, उसमें अहंचेतनासे होती है। वह चेतनता जीवसे होतीहै वह जीव भी मैं नहीं क्योंकि, जीवत्व फुरन रूप है और मेरा स्वरूप अफुर, सदा उदयरूप और सन्मात्र है। बड़ा कल्याण है कि, चिरकाल के उपरांत मैंने अपना स्वरूप पाया है जो अविनाशी, अनन्त और आत्मा है। जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है तैसेही मैं निर्मल और विगत ज्वर; राग-द्वेषरूपी तापसे रहित चिन्मात्र पदहूं और अहंत्व से रहितहूं। मुझ में फुरना कोईनहीं; इसीसे शान्तरूपहूं। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचलपर्वत से रहित शान्तरूप है; तैसेही मैं चित्तसे रहित अचल और अद्वैतहूं, कदाचित् स्वरूप से परिणाम को नहीं प्राप्त होती। ऐसा जो तन्मात्र पदहै उसको ब्रह्मवेत्ताओंने ब्रह्म और परमात्म

चेतनसंज्ञा कही है । यह आत्माही मन, बुद्धि आदिक दृश्य और संसाररूप होकर फैला है और स्वरूपसे अच्युत है और फुरनेसे आकार भासते हैं तो भी आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे बड़ेपर्वतके पत्थर और बट्टे होते हैं सो पर्वतसे भिन्न नहीं तैसेही यह दृश्य आत्मासे भिन्न नहीं । ये आकार ऐसे हैं जैसे गन्धर्वनगर नाना आकार हो भासता है पर ज्ञानवान्को एकरस है और अज्ञानीको भेदभावना है जैसे बालक मृत्तिका के खिलौने हाथी, घोड़ा, राजा, प्रजा आदि बनाता है और जिसको मृत्तिका का ज्ञान है उसको मृत्तिकाही भासती है भिन्न कुछ नहीं भासता; तैसेही अज्ञानसे नानारंग भासते हैं । अब मैंने जानाहै कि, मैं एकरस हूं । हे रामजी ! इस प्रकार चुड़ाला आपको जानने लगी कि, मैं सन्मात्र, अच्छेद, अदाह, स्वच्छ, अक्षर और निर्मलहूं; मुझमें 'अहम्' 'त्वम्' एक और द्वैतशब्द कोई नहीं और जन्म, मरणभी नहीं । यह संसार चित्त से भासता है और आत्मस्वरूप है । देवता, यक्ष, राक्षस, स्थावर, जंगम आदिक सब आत्मरूप हैं जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे समुद्रसे भिन्न नहीं तैसेही आत्मासे कोई वस्तु भिन्न नहीं । दृश्य, द्रष्टा, दर्शन ये भी आत्माकी सत्तासे चेतन हैं; इनको आपसे सत्ता कुछ नहीं । मुझ में अहम् का उत्थान कदाचित् नहीं—अपने आपमें स्थितहूं । अब इसी पदका आश्रय करके चिरकाल इस संसारमें विचरूंगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचुड़ालाप्रबोधोनामसप्तषष्टितमस्सर्गः ६७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! फिर चुड़ाला जिसकी तृष्णा निवृत्त हुईथी और जो दुःख, भय और भोग वासना से निवृत्तहोकर केवल शांत पदको पाकर शोभित हुई थी पाने योग्य पद पाकर जानने लगी कि; इतने कालतक में अपने स्वरूप से गिरी थी और अब मुझे शान्ति हुई है और दुःख सब मिटगये हैं । अब मुझे कुछ ग्रहण और त्याग नहीं और अब मैं अपने आत्मस्वभाव में स्थितहुई हूं । निदान एकान्त बैठकर समाधि में ऐसी लगी । जैसे वृद्धगऊ पर्वतकी कन्दरापाकर तृण और घास से बहुत प्रसन्न होती है तैसेही अपने आनन्दरूपको पाकर चुड़ाला स्थित भई । हे रामजी ! वह ऐसे आनन्द को प्राप्त हुई जिसको वाणी से नहीं कहसक्के । तब राजा शिखरध्वज रानी को देखकर आश्चर्यवान् हुआ और बोला; हे अङ्गना ! अब तुम फिर यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई हो और तुमको कोई बड़ा आनन्द प्राप्त हुआहै । कदाचित् तुम ने अमृतका सार पानकियाहै इससे अमर हुई हो वा किसी योगीश्वर ने तुझे इस कलाको प्राप्त किया है; अथवा त्रिलोकी का ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हुआ है । हे अङ्गना ! तुझे कौन वस्तु मिलीहै ? तुम्हारे चित्तकी वृत्तिसे ऐसा जानपड़ताहै कि, तुमने अमृत का सार पान किया है व त्रिलोकी के राज्यसे भी कोई अधिक पदार्थ पायाहै । तू तो किसी बड़े आनन्दको प्राप्तहुई है कि, जिसका आदि अन्त कोई नहीं दीखता और

तुझ में भोग वासनाभी नहीं दीखती शांतरूप होगई है । जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है तैसेही तुझमें निर्मलता दीखती है और तेरे श्वेतबालभी बड़े सुन्दर दृष्टि आते हैं इसलिये कह कि, तुझे कौनसी वस्तु प्राप्तहुई है ? चुड़ाला बोली, हे राजन् ! यह जो कुछ दीखताहै सो किंचित्है और इस से जो रहित निष्किंचित्पद है उसको पाकर मैं श्रीमान् हुईहूं । जिसका आकार निष्किंचित् है और जिसमें दूसरे का अभाव है उसीको पाकर मैं श्रीमान् हुई हूं और जो कुछ भोग हैं उन से रहित होकर अभोग भोग भोगा है उस भोगसे तृप्त हुई हूं अर्थात् आत्मज्ञान मैंने पाया है और आत्मा में विश्राम पाया है जिससे सदा शांतरूप और श्रीमान् हूं । हे राजन् ! जितने ये राजभोग सुख हैं उनको त्यागकर मैं परमसुखको भोगती हूं और राग द्वेषसे रहित होकर मैं कैसीहूं कि, 'नहींहूं' और मैंहीं स्थित हूं । जो कुछ नेत्रों से दिखता इन्द्रियों से जानाजाता है और मनसे चिन्तन होता है वह सब मिथ्या स्वप्नवत् है और मैं वहां स्थित हुई हूं जहां इन्द्रिय और मनकी गम नहीं और अहंकार का उत्थान नहीं उस पदको मैंने पाया है । जो सबका आधार और सबका आत्मा है और जो सर्व अमृत हैं उसका सार अमृत मैंने पान किया है इससे मेरा कदाचित् नाश नहीं और कदाचित् भयभी नहीं । हे रामजी ! जब इस प्रकार रानीने कहा तो राजा शिखरध्वज उस के वचन न समझा और हँसकर बोला, हे मूर्ख स्त्री ! यह तू क्या कहती है जो प्रत्यक्ष वस्तुको झूठ बताती है और कहती है कि, मैं नहीं देखती और असत् वस्तु जो नहीं दिखती उसको सत्य कहती है और कहती है कि, मैं देखतीहूं । ये वचन तेरे कौन मानेगा ? इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता । तू जो कहती है कि, मैं ऐश्वर्यको त्यागकर श्रीमान् हुई हूं सो निष्किञ्चनको पाकर इन वचनोंवाला शोभा नहीं पाता । तू कहती है कि, इन भोगोंको मैंने त्यागकिया है और इनसे जो रहित अभोगहैं उनको मैं भोगतीहूं; कभी कहती है कि, मैं कुछनहीं; फिर कहती है मैं ईश्वरहूं; इससे महामूर्ख दृष्टिआती है । जो इसी में तेरा चित्त प्रसन्नहै तो ऐसेही विचर परन्तु यह बात सुनकर कोई सत् न मानेगा और तुझे यह शोभाभी नहीं देती । हे रामजी ! ऐसेकहकर राजा उठखड़ाहुआ और मध्याह्न के समय होजानेसे स्नानके निमित्त गया रानी मनमें बहुत शोकवतीहुई और विचारकिया कि, बड़ाकष्टहै जो राजाने आत्मपदमें स्थिति न पाई और मेरे वचनोंको न जाना । यही मनमें धरकर वह अपने आचार में लगी और फिर अपना निश्चय राजाको न बताया और जैसे अज्ञानकाल में चेष्टाकरती थी तैसेही ज्ञानपाकर भी करनेलगी । एकसमय रानी के मन में आया कि, प्राणोंको ऊपर चढ़ाऊं और ऊर्ध्वको लाकर उदान और अपान को वशकरूं जिससे आकाश और पाताल दोनों स्थानों में जाऊं । ऐसे चिन्तना कर रानी योग में

स्थित हुई और प्राणायाम करनेलगी। इतनासुनकर रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह संसार संकल्प से उत्पन्न हुआहै। स्थावर-जंगमरूप संसार वृक्ष है और संकल्प इसका बीजहै। वह कौन प्राणायाम पवन है जिससे आकाशको उड़ते हैं और फिर नीचे आते हैं? अज्ञानी पुरुष भी जिसे यत्नकरके कैसे सिद्ध करते हैं और ज्ञानवान् कैसे लीला करके विचरते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तीनप्रकारकी सिद्धि होती हैं-एक तो उपादेय सिद्धि है कि, यह वस्तु मुझे मिले। इसके निमित्त अज्ञानी यत्न करते हैं। दूसरी सिद्धि यह है कि, यह दुःख मेरा निवृत्त हो और मैं सुखी होजाऊं। यह चिन्ता महाअज्ञानीको रहती है; और तीसरी सिद्धि यह है कि, जो मैं कर्म्म करताहूं उसका फल मुझे मिले। यह विचार करनेवाला भी अज्ञानीहै क्योंकि; वह आपको कर्त्ता मानता है। ज्ञानवान् इनसे उल्लंघित बर्तता है वह कदाचित् इसमें बर्तता भी है तौभी उसको यह निश्चय रहता है कि, न मैं कर्त्ताहूं और न भोगताहूं। योगकरके इसप्रकार सिद्ध होतेहैं कि, देश, काल, वस्तु और क्रिया उनके आधीन होजाती हैं। मुखमें गुटका राखके जहां चाहे उसी ठौर में जा प्राप्त होना नेत्रोंमें अञ्जन डालके जिसको देखाचाहे उसको देखलेना और खड्ग हाथ में धारण करके सम्पूर्ण पृथ्वी को वशकरलेना-यह तो क्रिया पदार्थ है और देश यह है कि, जो सब पर्वत हैं उनमें कितनी पीठ हैं और बड़े उत्तम हैं। जिस प्रकार ये सिद्ध होते हैं सो भी सुनो नाभि के तले आधार चक्रमें एक कुण्डलिनी शक्ति है, सर्पिणी की नाईं उस में कुण्डल हैं और वह कुण्डल मारबैठी है और वासनाही उसमें विष है जितनी नाड़ी हैं समष्टि नहीं हैं। उस कुण्डलिनी में जब मनन होता है तब मन होकर प्रकट होता है; जब निश्चय होता है तब बुद्धि प्रकट होती है; जब अहंभाव होता है तब अहं-कार प्रकट होता है; जब स्मरण होता है तब चित्त प्रकट होता है और जब उसमें स्पर्श की इच्छा होती है तब पवन प्रकट होता है। इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा और चारों अन्तःकरण प्रकट होते हैं। जितनी नाड़ी हैं वे सब कुण्डलिनी से प्रकट होती हैं और आत्माका प्रकट होनाभी उससे जानाजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उससे आत्माका प्रकट होना कैसे जानाजाता है? आत्मा तो देश, काल और वस्तुके परिच्छेदसे रहित है और सब देश, सर्वकाल और सर्व वस्तु से पूर्णहै। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सूर्य्यका प्रतिबिम्ब जल में और धूप सर्वठौर में दिखता है तैसेही ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है और प्रकट सात्त्विकगुण में दिखता है। जो कुछ नाड़ी और इन्द्रियां हैं वे कुण्डलिनी शक्तिसे उदय होती हैं और जब यह जीव कुण्ड-लिनी शक्तिमें स्थित होकर पवनको स्थित करता है तब जो कुछ भीतर प्राणवायु हैं वे सब इसके वश होती हैं जैसे सर्व सेना राजाके वश होती है उसी प्रकार सब इन्द्रियां

प्राण के वशहोती हैं और जो प्राणवायु वश नहीं होती तो आधि व्याधि रोग उपजते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आधि व्याधि कैसे होतीहैं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मनकी पीड़ाका नाम आधि है और देहके दुःखको व्याधि कहते हैं आधि तब होती है जब सङ्कल्प होताहै कि, यह सुख मुझे मिले पर यदि वह वस्तु नहीं प्राप्त होती तब चिन्ता करके दुःखपाता है और व्याधि तब होती है जब वात, पित्त, कफका विकार शरीर में होता है और उससे दुःख पाताहै। जब मन और शरीर का दुःख इकट्ठा होता है तब आधि, व्याधि, दुःख इकट्ठे होते हैं और जब भिन्न भिन्न होते हैं तब दुःखभी भिन्न भिन्न होते हैं। ज्ञानवान्को न आधि होती है न व्याधि है। यह योगकी कला मैंने विस्तार से नहीं कही क्योंकि, पूर्वके ज्ञान क्रम का प्रसंग रहजाता है। जितनी कला हैं उन सबको मैं जानताहूं परन्तु यह कला ज्ञान मार्गको रोकनेवाली है। वासना चार प्रकारकी हैं सो सुनो। एक वासना सुषुप्ति है; दूसरी स्वप्न, तीसरी जाग्रत् और चौथी क्षीण। स्थावर योनिको सुषुप्ति वासना है सो आगे फुरेगी; तिर्यक् योनिको स्वप्न वासना है कि, उनको वासना का ज्ञानभी नहीं और जंगम अर्थात् मनुष्य, देवता आदिकोंको जाग्रत् वासना है कि, वे वासनाही में लगे हैं। ये तीन वासना तो अज्ञानी को हैं और क्षीणवासना ज्ञानी की है अर्थात् उसको वासना की सत्यता नष्ट हुई है। जब इसप्रकार वासना निवृत्त होती है तब आगे संसार भी नहीं रहता और जब कुण्डलिनी शक्तिसे वासना फुरती है तब पञ्चतन्मात्राकेद्वारा संसार का भान होता है। संसाररूपी वृक्षकाबीज वासनाही है, दशों दिशा उस वृक्षके पत्रहैं, शुभ अशुभ कर्म उसके फूलहैं और स्थावर जंगम फलहैं। जैसी जैसी वासना पुर्य्यष्टकासे मिलकर जीव करता है तैसाही आगे फल होता है। हे रामजी! इससे वासनाका त्यागकरो—वासनाही संसाररूपी वृक्षका बीज है और निर्वासनिक होनाही पुरुष प्रयत्न है—तब विश्व कदाचित् न भासेगा। जैसे सूर्य्य के उदयहुये अन्धकाररूपी रात्रि नहीं रहती तैसेही ज्ञानरूपी सूर्य्य के उदयहुये संसाररूपी अन्धकार निवृत्त होजाताहै। हे रामजी! आधि व्याधि बड़े रोग हैं सो मनसेहोते हैं। रामजीने पूंछा, हे भगवन्। आधिरोग तो मनसे होताहै पर व्याधि तो शरीर का रोग है, मनसे कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! व्याधि दो प्रकारकी है एक लघु और दीर्घ है। जो शरीर को कोई दुःख प्राप्तहो उसे लघु कहते हैं; वह स्नान और जपसे निवृत्त होजाती है और दीर्घ व्याधि जन्म मरण के रोगको कहते हैं वे बड़े रोग हैं और मनके शान्तहुये विना निवृत्त नहीं होते। इसी से आधि व्याधि दोनों मनसे होते हैं। फिर रामजीने पूछा, हे भगवन्! व्याधि मनसे कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब चित्त शान्त होता है तब कोई रोग नहीं रहता और

जबतक चित्तशान्त नहीं होता तबतक आधिव्याधि होती है। जो कुछ अन्न बाहर अग्निसे परिपक्वहोताहै उसको जब मनुष्य भोजन करते हैं तब भीतर जो कुण्डलिनी पुर्यष्टका से मिलीहुई है वह उदानपवनको ऊर्ध्वमुखहो फुराती है और अपानपवन उससे अधको फुरता है; उदान और अपानका आपस में विरोध है—उन के क्षोभसे अग्नि उठती है और हृदयकमल में स्थित होती है तब बाहर अग्निका पका भोजन हृदयकी अग्नि से फिर पकता है और सर्वनाड़ी अपने अपने भाग रसको लेजाती हैं। वीर्य्यवाली नाड़ी वीर्य्य करके रखती है और रुधिरवाली नाड़ी रुधिर करके रखती है पर जब राग और द्वेषसे चित्त कुण्डलिनी शक्तिमें क्षोभित होता है तब नाड़ी अपने २ स्थानोंको छोड़देती हैं और अन्न भी भीतर पक नहीं होता तब उस कच्चे रससे रोग उठता है। जैसे राजाको क्षोभहोता है तो सेनाको भी क्षोभ होता है और जब राजाको शान्ति होती है तब सेनाको भी शांति होती है; तैसेही जब मन में क्षोभहोता है तब रोगहोताहै और जब मनमें शान्ति होती है तब नाड़ी अपने अपने स्थानों में स्थितहोती हैं—रोगकोई नहीं होता। इससे, हे रामजी! आधि-व्याधि रोग तब होते हैं जब मनुष्यका चित्त निर्वासनिक नहीं होता पर जब चित्त शान्त होताहै तब रोग कोई नहीं रहता। इससे निर्वासनिक पदमें स्थितहो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! पीछे आपने कहा है कि, मंत्रोंसे भी रोग निवृत्त होता है सो कैसे निवृत्त होता है? वशिष्ठजी ने कहा, हे रामजी! प्रथम मनुष्यको श्रद्धा होती है कि, इसमंत्र से रोगनिवृत्त होगा तब पुण्यक्रिया, दान, सन्तजनोंकी संगति और य, र, ल, व आ-दिक जो अक्षर हैं इनका जापकरके क्योंकि जितने कुछ जाप और मंत्र हैं सो इन अक्षरों से सिद्ध होते हैं व्याधिरोग निवृत्त होजाता है। योगीश्वरोंका क्रम अणु और स्थूल है सोभी सुनो। जब ये प्राण और अपान कुण्डलिनी शक्ति में स्थित होते हैं तो इनको वशकरके योगी गम्भीर होता है। जैसे मसक में पवन होता है इसी प्रकार पवनको स्थित करके कुण्डलिनी सुषुम्णा में प्रवेश करता है और ब्रह्मरन्ध्र में जा स्थित होता है। एक मुहूर्त्त पर्यन्त वहां स्थित हो तो आकाश में सिद्ध देखता है। जिस प्रकार इसका क्रम है तैसे तुम से कहताहूं। हे रामजी! सुषुम्णा के भीतर जो ब्रह्मरन्ध्र है उसमें जब पूरक द्वारा कुण्डलिनी शक्ति स्थित होतीहै अथवा रेचकप्राण-वायुके प्रयोग से द्वादश अंगुल पर्य्यन्त मुख से बाहर अथवा भीतर वा ऊपर एक मुहूर्त्ततक एकही बेर स्थित होती है तब आकाशमें सिद्धोंका दर्शन होता है। रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जब ब्रह्मरन्ध्र में जीव कला जा स्थित होती है तो कैसे दर्शन होता है? दर्शन तो नेत्रों से होता है सो नेत्र आदिक इन्द्रियां वहां कोई नहीं होतीं; नेत्रोंविना दर्शन कैसे होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो रामजी! पृथ्वी में विचरने

वालों को आकाश में बिचरने वालों का दर्शन नहीं होता परन्तु दिव्यदृष्टि से दृष्ट आता है—चर्मदृष्टि से नहीं दीखते। विज्ञान के निकट जो निर्मलबुद्धि नेत्र होते हैं उनसे दर्शन होता है। जैसे स्वप्ने में चर्मनेत्रों के विना भी सर्व पदार्थ दृष्ट आते हैं तैसेही सिद्धोंका दर्शन होता है परन्तु इतनी विशेषता है कि, स्वप्ने के पदार्थ जाग्रत् में नहीं भासते और न उन से कुछ अर्थ सिद्ध होता है पर सिद्धोंके समागम की चेष्टा जाग्रत् में भी स्थित प्रतीत होती है। मुख के बाहर जो द्वादश अंगुल पर्यन्त अपानका स्थान है उसमें रेचक प्राणायाम का अभ्यास होता है और जब चिरपर्यंत वहां प्राण स्थिरीभूत होता है तब और पुरियों और दिशा के स्थानों में प्राप्त होसक्ता है। रामजीने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो पदार्थ चंचलरूप हैं वे क्योंकर स्थिर होते हैं? वक्ता जो गुरु हैं वे कृपाकरके कहते हैं, वे दुष्ट प्रश्न जो तर्करूप हैं उससे भी खेदवान् नहीं होते। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसी २ वस्तु है तैसी २ उसकी शक्ति स्वाभाविक होती है। आदि जगत् के फुरने से जैसी नीति हुई है तैसेही अबतक आत्मा में स्वभाव शक्तिका फुरना होता है। यह जो अविद्या है सो अवस्तुरूप है और जो कहीं वस्तुरूप होकर भी भासती है सो ऐसे है जैसे वसन्तऋतुमें भी शरत्काल के फूल दृष्टि आते हैं और वसन्तऋतुके शरत्काल में भासते हैं। यह भी एक नीति है कि, इससे इस द्रव्य की शक्ति ऐसे होजावे परन्तु स्वरूप से सब ब्रह्मरूप है; द्वैत नानात्व कुछ नहीं। केवल ब्रह्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है, व्यवहार के निमित्त नानात्व की कल्पना हुई है; वास्तव में द्वैत कुछ नहीं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! सूक्ष्मरन्ध्र से स्थूलरूप वायु कैसे निकल जाती है और अणु सूक्ष्मरूप होकर फिर स्थूलभावको कैसे प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे आरेसे कटे काष्ठके दो टुकड़ेको शीघ्रही घिसिये तो उनसे स्वाभाविक अग्नि प्रकट होती है तैसेही मांसमय जो कमल उदर में है उसके मध्य हृदयकमल है और उसमें सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति है। उस कमल के भीतर दो कमल हैं एक अधः और दूसरा ऊर्ध्व अधः चन्द्रमा की स्थिति है और ऊर्ध्वसूर्य की स्थिति है और उनके मध्य में कुण्डलिनी लक्ष्मी स्थितहै। जैसे पद्मराग मणिका डब्बाहो और मोतियों का भण्डारहो तैसेही उसका महाउज्ज्वलरूप है। जैसे आवर्त्त फेनके मिलने से शलशल शब्द प्रकट होताहै तैसेही उससे शब्द निकलता है और जैसे डण्डेके साथ हिलाये से सर्पिणी शब्द करती है तैसेही उसकुण्डलिनी से प्रणवशब्द उदय होता है। हे रामजी! आकाश और पृथ्वी जो ऊर्ध्व और अधःरूप दो कमल हैं उनके मध्य में कुण्डलिनी शक्ति स्पन्दरूपिणी स्थित है। वह जीवकला पुर्य्यष्टका अनुभवरूप अतिप्रकाश सूर्यकीनाईं हृदयरूप कमलकी भ्रमरी है सो सबोंकी अधिष्ठान आदि शक्ति है और हृदय कमल में विराजमान है। उस हृदय

आकाश में कुण्डलिनी शक्तिहै उसमें से स्वाभाविक वायु निकलती है सो कोमल मृदु रूप है । वही पवन निकलकर दो रूप होता है एक प्राण और दूसरा अपान, वही अन्योन्य मिलकर स्फुरणरूप होता है । जैसे वृक्षके पत्तों के हिलने से उससे शीघ्रही अग्नि प्रकट होती है और बांसों के घिसने से अग्नि प्रकट होती है तैसेही प्राण अपान से अग्नि प्रकट होकर जब आकाश में उदय होती है तब सर्व्व ओर से भीतर प्रकाश होता है। जैसे सूर्य के उदयहुये सर्व ओर से भुवन प्रकाशित होते हैं तैसेही सर्व ओरसे प्रकाशित होताहै और सूर्य्यरूप तारा अग्निवत् तेज आकार हैं। हृदयकमल का भ्रमरा स्वर्णरूप है और उसके चिन्तन से योगी तद्वत् होते हैं। वह प्रकाश ज्ञानरूप है और उस तेजसे योगीकी वृत्ति तद्वत् होती है अर्थात् एकत्व भावको प्राप्त होती है तब लक्षयोजन पर्यन्त जो पदार्थहो उनका उसे ज्ञान हो आता है और सब प्रत्यक्ष दृष्टि पड़ते हैं । उस अग्निका हृदयरूपी ताल स्थान है—जैसे वड़वाग्नि समुद्र में रहती है और उसको जलही इंधन है अर्थात् जलको दग्धकरती है; तैसेही हृदयरूप तालमें उसका निवास है और रस शीतलतारूप जलको पचाती है । उस हृदयकमल से जो अपानरूप शीतलवायु उदय होता है उसका नाम चन्द्रमा है और प्राणरूप उष्णपवन उदय होता है सो सूर्यरूप है। वही उष्ण और शीतल सूर्य्य चंद्रमा नाम से देह में स्थितहैं। आदि प्राणवायुरूप सूर्य अपानरूप चंद्रमा से सूर्य्य रूप होकर स्थित होता है। सूर्य्य उष्ण और चंद्रमा शीतलहै। इन दोनों से जगत् हुआहै। विद्या, अविद्या, सत्य, असत्यरूप जगत् इन दोनोंसे युक्तहै। सत, चित, प्रकाश, विद्या, उत्तरायण, सूर्य्य, अग्नि आदिक नाम बुद्धिमान् निर्म्मल भाव से कहते हैं और असत, जड़, अविद्या, तम, दक्षिणायन आदिक चन्द्रमा रूपसे मलिनभाव कहते हैं । रामजीने पूछा, हे भगवन्! अग्नि, सूर्य्यरूप जो प्राणवायु है उससे शीतल जलरूप चन्द्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता है और अपान जल चन्द्रमारूप से सूर्य कैसे उत्पन्न होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सूर्य्य चन्द्रमा जो अग्नि सोमहैं वे परस्पर कार्य कारण रूप हैं। जैसे बीजसे अंकुर और अंकुर से बीज होता है; जैसे दिनसे रात्रि और रात्रि से दिन होताहै और जैसे छाया से धूप और धूपसे छाया होतीहै; तैसेही सूर्य्य चन्द्रमा परस्पर कार्य्य कारण होते हैं। कभी कभी इनकी इकट्ठी उपलब्धिभी होतीहै—जैसे सूर्यके उदयहुये धूप और छाया दोनों इकट्ठे होजाते हैं। कार्य कारणभी दो प्रकारका है—एक कार्य सत्यरूपपरिणाम से होताहै एक विनाशरूप परिणाम से होता है। एक से जो दूसरा होता है सो जैसे बीज नष्ट होगया तो उससे अंकुर होता है सो विनाशरूप परिणाम होता है और जैसे मृत्तिका से घट उपजता है सो सत्यरूप परिणाम कहाता है। जो कारण कार्य्य के

भाव में भी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष पाइये उसका नाम सत्यरूप परिणाम है और जो कार्यमें इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं पाया जाता जैसे दिनमें रात्रि और रात्रिमें दिन सो विनाशरूप परिणाम कहाता है। जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है तैसेही अभाव प्रमाण भी है। इससे विनाश भाव भी एक कारणरूप है जैसे युक्तिवादी कहते हैं कि, अपने संवित् में कर्त्तव्य नहीं बनता इत्यादि सो इस अर्थ की अवज्ञा करते हैं और अपने अनुभव को नहीं जानते। अनुभव की युक्ति उनको नहीं आती। यह अभावप्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रकट होताहै। शीतलता का प्रमाण यह है कि, जैसे अग्निके भावसे शीतलता के अभाव में उष्णता होती है; दिन के अभाव में रात्रि और छाया के अभावमें धूप इत्यादिक का नाम अभाव प्रमाण कहाता है। अग्निसे धूम्रभाग निकलता है सो मेघ होता है इस कारण सत्त्वरूप प्रमाण से चन्द्रमा का कारण अग्नि होता है और अग्नि नाश होकर शीतलभाव को प्राप्त होती है तब उसका नाम विनाश प्रमाण से अग्नि चन्द्रमा का कारण होताहै। सात समुद्रों का जल पानकरके बड़वाग्निको धूम्रको उद्गीर्ण करता है सो धूम्रमेघको प्राप्त होकर अत्यर्थ जलका कारण होता है। सूर्य जो विनाश के अर्थ चन्द्रमा को पान करता है सो अमावस्या पर्यंतवारंवार भक्षण करता है और फिर शुक्लपक्ष में उद्गीर्ण करता है—जैसे सारसपक्षी कर्मकी जड़ को भक्षण करके उद्गीर्ण कर डालताहै। हे रामजी! अमृतके समान शीतल जो अपानवायु चन्द्रमारूप है सो मुखके अग्रमें रहता है। वह कणकारूप जल जब शरीर में जाता है तब वह जल का अणु अपान और सूर्यरूपी प्राणफुरणको प्राप्त होताहै। इस प्रकार सत्यरूप परिणाम से जल अग्निका कणका होताहै। जब जलका नाशहोजाताहै तब वह उष्णभाव अग्नि को प्राप्त होता है—इनका नाम विनाश परिणाम है। इस प्रकार जल अग्नि का कारण कहाता है। अग्निके नाशहुये चन्द्रमा उत्पन्न होता है इसका नाम विनाश परिणामहै और चन्द्रमा के अभावहुये अग्नि उत्पन्न होता है इसका नामभी विनाश परिणामहै जैसे तमके अभावसे प्रकाश उदय होता है और प्रकाश के अभाव से तम होता है; दिनके अभाव से रात्रि और रात्रि के अभावसे दिन होता है; इसके मध्य में जो विलक्षण रूप है सो बुद्धिमानोंसे भी नहीं पाया जाता। वह तम और प्रकाश दोनों रूपों से युक्त है; इनके मध्य में जो संधिहै सो आत्मरूप है। उस में स्थित होके चेतन और जड़ दोनों रूपों से भूत फुरण होते हैं। जैसे दिन और रात्रि; तम और प्रकाश से पृथ्वी में चेष्टा करते हैं सो चेतन और जड़रूप सूर्य और चन्द्रमा दोनों रूपों से युक्त है। निर्मल रूप प्रकाश जो चिद्रूप है उसका नाम सूर्य्य है और जड़ात्मक तमरूप है सो चन्द्रमा का शरीर है। जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्माका दर्शन होता है तब संसार के दुःखरूप जो तमहैं सो नष्ट होजाते हैं—जैसे आकाश में सूर्य्य

उदय से श्यामरात्रिका तम नष्ट होजाता है । जड़ चन्द्रमारूप जो देह है जब उस को देखता है तब चेतनरूप सूर्य्य नहीं भासता—असत्यकी नाईं होजाता है और चेतनकी ओर देखता है तब देह नहीं भासता । केवल लक्षमें दूसरे की उपलब्धि नहीं होती । केवल चेतनपद को प्राप्त हुये से द्वैत से रहित निर्वाणभाव होता है और जड़भाव को प्राप्त हुये चेतन नहीं भासता । इससे संसारके दर्शन का कारण दोनों हैं । सूर्य्य चेतन से चन्द्रमा जड़की उपलब्धि होती है और जड़ चन्द्रमा से सूर्य्य चैतन्यकी उपलब्धि होती है । जैसे दीपक अग्निका अन्धकार विना प्रकाश नहीं होता तैसेही इन दोनों विना आत्माकी उपलब्धि नहीं होती । प्रकाश विना केवल जड़की उपलब्धि भी नहीं होती—जैसे सूर्य्यका प्रतिबिम्ब जिस दीवारपर पड़ताहै वह दीवार प्रकाश से भासती है और प्रकाश दीवार से भासता है; तैसेही चित्त फुरता है तब चेतनको जगत् भासता है और फुरना जगत्से होताहै—फुरनेसे रहित अचैत्य चिन्मात्र निर्वाण होताहै । इससे हे रामजी ! जगत्को अग्नि और सोम जानो । देह देहसे सम्बन्ध है परन्तु जिसकी अतिशयहो उसकी जय होती है । प्राण—अग्नि उष्णरूप है और अपान शीतल—चन्द्रमारूप है । ये दोनों प्रकाश और छायारूप हैं—इनको जानना सुखकामार्ग है । हे रामजी ! जब बाहरसे शीतलरूप अपान भीतर को आता है तब उष्णरूप प्राणमें जा स्थित होता है और जब हृदयस्थानसे निकल कर उष्णरूप प्राण बाहरको द्वादश अंगुलपर्य्यन्त जाता है तब अपान जो चन्द्रमा का मंडल है उसको प्राप्त होता है । अपान प्राणरूप होकर उदयहोता है और प्राण अपानरूप होकर उदयहोता है । जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है । तैसेही इनका परस्पर आपस में प्रतिबिम्ब पड़ता है जहां षोड़शकला चन्द्रमा को सूर्य्य ग्रास लेता है उस मध्यभाव में स्थितहो । जब अपान प्राणों के स्थान में आन स्थित होता है और प्राणरूप होकर उदय नहीं हुआ सो शान्तिरूप भाव है—उस में स्थितहो । प्राण निकलकर जब मुखसे द्वादश अंगुलपर्य्यन्त बाहर स्थित होताहै और जबतक अपानभावको प्राप्तहोकर उदय नहीं वह वह जो मध्यभावहै उसी में स्थितहो । मेषआदिक जो द्वादशराशिहैं उनमें एकको त्यागकर दूसरी राशिको जबतक संक्रांति नहीं प्राप्तहोती उसकानाम संक्रांतिहै और उनके मध्य में जो सन्धि है उसका नाम पुण्यकालहै सो पुण्य भीतर और बाहर प्राण अपानकी सन्धिके समय में तृणवतहै । उन संक्रांतियोंमें जो वैशाखकी वृषवती संक्रांतिहै सो शिवरात्रि चैत्रकी संक्रांति त्रयोदश दिन होते हैं और अस्तकी संक्रांति त्रयोदशदिन है इनका नाम वृषवतीहै । जहां दिन और रात्रि समहोते हैं और दक्षिणायन और उत्तरायण की जो सन्धि होती हैं इनके भीतर और बाहर भेदको जाने तब जन्मसे रहित होकर परमबोधको प्राप्तहो । हे राम

जी! उत्तरायण मार्ग योगीश्वरों का है उससे वे क्रमसे मुक्त होते हैं और दक्षिणायन मार्ग कर्म करनेवालों का है इससे वे फिर संसारभागी होते हैं। उनके मध्य में जो संधि है उसमें स्थित हुये से परमउत्तमपद प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽग्निसोमविचारयोगोनामाऽष्टषष्टितमस्सर्गः ६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह योगकी सर्वकला मैंने विस्तारसे कही और इसमें उत्तम प्रभाव वर्णन हुआ है। प्रयोजन यही है कि, तुम निर्वाणपद में स्थितहो और आत्मब्रह्म की एकताहो जिससे कि, फिर जन्मादिकोंका दुःख न हो। ब्रह्म सत, चित, आनन्द स्वभावमात्र है। जो एक वार्त्ता में एकत्वभाव होते हैं वही भाव रहते हैं और धनी शक्तिका धनी होता है और अविद्या नाश होजाती है। इसप्रकार जब वही चुड़ालारानी योग और ज्ञान के अभ्यास से पूर्ण हुई तब सब शक्तियों से संयुक्तहोकर धनी, अणिमा आदि सिद्धियोंको प्राप्तहुई। एकरात्रि में राजा सोयाथा तो वह अवकाशपाकर आकाशके बहुत स्थानों में विचरी; फिर देवलोक में अतिचंचल कालीका रूप धारके फिरी; फिर मध्यदिशा, देवलोक, दैत्यों, राक्षसों, विद्याधरों और सिद्धों के लोकमें होकर सूर्य्यलोक, चन्द्रलोक, मेघमण्डल और इन्द्रलोक में गई और वहांका कौतुकदेख कर फिर अधोलोक में आई। समुद्र में प्रवेशकरके फिर अग्निमें प्रवेशकरगई पवनमें पवनरूपहुई और नागलोककी कन्याओं में क्रीड़ाकी। फिर वनों, पर्वतों, भूतों, अप्सराओं और त्रिलोकी के मध्य विचरी। इसीप्रकार लीलाकरके फिर एक क्षणमें उसी स्थानमें जहां राजा सोयाथा आई और राजाके समीप सोरही—जैसे भँवरी भँवरा कमलिनी के मध्यमें शयनकरते हैं पर राजाने न जाना कि रानी कहीं गई थी वा न गईथी जब रात्रिबीती और प्रातःकाल हुआ तो राजा ने स्नानशाला में जाकर स्नानकर वेदोक्तकर्म किये और रानी ने भी प्रवाहकर्म किये। जैसे पिता पुत्र को मीठे वचनों से उपदेश करता है। तैसेही रानी ने राजा को शनैःशनैः तत्त्व का उपदेश किया और पण्डितों से भी कहा कि तुम भी राजा को उपदेश करो कि यह जगत् स्वप्नवत् भ्रम; दीर्घरोग और दुःखों का कारण है। आत्मज्ञान औषधि से यह नाश होता है और इसकी कोई औषधि नहीं। इसीप्रकार आप भी राजाको उपदेश करें और पण्डितलोग भी उपदेश करें परन्तु राजाने वह ज्ञान न पाया और विक्षेपतामें रहा। राजाने उस उत्तमपदमें विश्राम न पाया जो अपना आप केवल चित्तरूप, प्रत्येक और आत्मा है रामजी ने पूछा, हे महामुनि! रानी तो सर्वशक्ति सम्पन्न हुई थी कि, योगकला में भी अतिचतुर और ज्ञानकला में तद्रूप थी और राजा भी अतिमूढ़ न था उसको उसका उपदेश क्यों न दृढ़ हुआ? रानी भी उसको प्रीति से उपदेश करती थी तो क्या कारण था जो वह अपने पद में स्थित न हुआ?

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे अच्छिद्र मोती में तागा प्रवेश नहीं करता तैसेही चुड़ालाके उपदेश ने राजाको न बेधा । जबतक आप विचार न करे और उसमें दृढ़ अभ्यास न हो तबतक यदि ब्रह्माभी उपदेश करें तो उसको न बेधे क्योंकि आत्मा आपही से जानाजाता है और इन्द्रियों का विषय नहीं । अधिष्ठानरूप और स्वभाव मात्र आपही आपको देखता है और किसी मन और इन्द्रियों का विषय नहीं सबका अपना आप है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! यदि अपने आपही से देखता है तो गुरु और शास्त्र किस निमित्त उपदेश करते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! गुरु और शास्त्र जनादेते हैं कि, तेरा स्वरूप आत्मा है परन्तु 'इदम्' करके नहीं दिखाते । विचार नेत्रसे आपको आपही देखताहै; विचार से रहित उसको नहीं देखसक्ता । जैसे किसी पुरुषको चंद्रमा कोई सचक्षु दिखाता है पर जो वह सचक्षु होता है तो देखता है और मन्ददृष्टि होता है तो नहीं देखता; तैसेही गुरु और शास्त्र आत्मा का रूप वर्णन करते हैं और लखाते हैं पर जब वह विचार नेत्रसे देखताहै तब कहता है कि, मैंने देखा और और के दिखाने के योग्य होता है । हे रामजी ! आत्मा किसी इंद्रिय का विषय नहीं; वह अपना आप मूलरूप है और इंद्रियां कल्पित हैं । जो तुमकहो कि, तुम भी तो इन्द्रियसेही उपदेश करतेहो तो सब इन्द्रियों का विस्मरणकरो तो अपना मूल तुम्हें भासे । हे रामजी ! इसपर एक क्रांतका इतिहास है सुनो । एक क्रांत था जिसके पास बहुत धन और अनाज था परन्तु वहऐसा कृपणथा कि, किसी को कुछ न देताथा और धनकी तृष्णा करताथा कि, किसीप्रकार मुझे चिन्तामणि मिले । इसी इच्छासे एकसमय घरसे बाहर निकल पृथ्वीकी ओर देखताजाताथा कि, एकस्थान में पहुँचा जहां घास और भुसपड़ाथा तो उसे उसमें एककौड़ी दृष्टिपड़ी और उसने उस कौड़ी को उठाकर देखनेलगा कि, कुछ और भी निकले तो फिर दूसरी कौड़ी निकली; इसी प्रकार ढूंढ़ते २ उसे तीन दिन व्यतीत हुये तब चार कौड़ी निकलीं और फिर आठ निकलीं । जब तीनदिन और ढूंढ़ते बीते तब चन्द्रमाकी नाईं चिन्तामणि प्रकट देखी और उसे लेकर अपने घरआया और अतिहर्षवान् हुआ । हे रामजी ! तैसेही गुरु और शास्त्रोंसे 'तत्त्वमसि' और 'अहंब्रह्मास्मि' का पाना कौड़ियों का खोजनाहै और आत्मा चिन्तामणिरूपहै । परन्तु जैसे कौड़ियों के खोजमें उसने चिन्तामणि विनाखोजे न पाई तैसेही गुरु और शास्त्रों से आत्मपद मिलताहै–गुरु और शास्त्रों विना नहीं मिलता । धन, तप और कर्म से आत्मा नहीं मिलता, केवल अपने आपसे पायाजाता है । हे रामजी ! जब शिखरध्वज चुड़ाला के पास से उठकर स्नानको गया तब राजा के मन में वैराग्य उपजा कि, यह संसार मिथ्याहै । हमने बहुत भोगभोगे तो भी हृदयको शांति न हुई और इन भोगों का परिणाम दुःखदायक है । जब मनमें ऐसा विचार

उपजा तब राजाने गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, मन्दिर और दूसरी सामग्री बहुत दान की और सब ऐश्वर्य के पदार्थ ब्राह्मणों, गरीबों और अतिथियों को अधिकार के अनुसार दिये। रानीने भी ब्राह्मणों और मंत्रियों से कहा कि, राजाको तुम यही उपदेश दिया करो कि, ये भोग मिथ्या हैं; इनमें कुछ सुख नहीं और आत्मसुख बड़ा सुखहै जिस के पायेसे जन्म-मरण से मुक्त होता है इसी प्रकार राजा ब्राह्मणों से सुने और अपने मन में भी वैराग्य उपजाता था इसकारण विचारे कि, मैं इस संसार दुःख से रहित होजाऊं; यह संसार बड़ा दुःखरूप है और इसमें सदा जन्म मरण है। निदान राजा के मनमें आया कि, मैं तीर्थों को जाऊं और स्नान करूं, इसलिये तीर्थोंकोचला और स्नान, दान करता इसीप्रकार देवता, तीर्थों और सिद्धों के दर्शन करके गृहको आया। रात्रि के समय रानी के साथ शयन किया तो रानी से कहा कि, हे अंगना! अब मैं वन को तप करने के लिये जाताहूं क्योंकि; ये भोग मुझे दुःखदायक भासते हैं और राज्य भी वनकी नाईं उजाड़ भासता है। ये भोग हम बहुत कालपर्यंत भोगते रहे तो भी इनमें सुख दृष्टि न आया, इसलिये मैं वनको जाताहूं-मुझे न अटकाइयो। तब रानी ने कहा, हे राजन्! अब तेरी कौन अवस्था है जो तू वनमें जाताहै? अब तो हमारे राज्य भोगने का समय है। जैसे वसंतमें फूल शोभा पाते हैं और शरत्काल में नहीं शोभते तैसेही हमभी जब वृद्ध होंगी तब वनको जावेंगी और वनही में शोभा पावेंगी। जैसे वनके फूल श्वेत होते हैं तैसेही जब हमारे केश श्वेत होंगे तब शोभा पावेंगे-अब तो राज्य करो। हे रामजी! इस प्रकार रानी ने कहा पर राजा का चित्त वैराग्यही में रहा और रानी का कहना चित्तमें न लाया। जैसे चन्द्रमा विना कमलिनी शांति नहीं पाती तैसेही ज्ञान विना राजाको शांति न हुई परन्तु वैराग्य करके फिर कहने लगा; हे रानी! अब मुझे न रोंक अब राज्य मुझको फीका लगता है इसलिये मैं वनको जाता हूं यहां नहीं ठहर सक्ता। जो तुम कहो कि, हम यहां तेरी टहल करती थी वनमें कौन करेगा तो पृथ्वीही हमारी टहल करेगी, वनकी वीथियां स्त्रियां होंगी, मृगों के बालक पुत्र, आकाश हमारे वस्त्र और फूल के गुच्छे भूषण होंगे। जब दूसरी रात्रिहुई और राजा वहां से चला तो रानी और सेना भी पीछे चली और कोट के बीच सब स्थित हुये। राजा और रानी विश्राम किया-जैसे भँवरा भँवरी सोते हैं और सेना और सहेलियां भी सब सोगये और पत्थर की शिलावत् कर्म निद्रा से जड़ होगये। जब आधी रात्रि व्यतीत हुई तो राजा जगा और देखा कि, सब सोगये हैं। निदान शय्या से उठ और रानी के वस्त्र एक ओर करके और हाथ में खड्ग लेकर निकला जैसे क्षीरसमुद्र से विष्णुभगवान् लक्ष्मी के पास से उठते हैं तैसेही उठ सबलोगों को लङ्घता कोट के दरवाजे पर आया। तो देखा आधे मनुष्य

जागते थे और आधे सोगयेथे । उन्होंने जब राजाको देखा तब राजाने कहा, द्वारपालो ! तुम यहांही बैठे रहो; मैं अकेलाही वीरयात्रा को जाता हूं । इतना कह राजा तीक्ष्ण वेगसे चलागया और बाहर निकल कर कहा, हे राजलक्ष्मी ! तुझको नमस्कार है; अब मैं वनको चलाहूं । फिर एक वनमें पहुँचा जहां सिंह, सर्प तथा और और भयानक जीव थे; उनके शब्द सुनता आगे चलागया तो उसके आगे और वन मिला उसको भी लांघगया । आठ पहर चलकर राजा एक ठौर जा स्थितहुआ और जब सूर्य्य उदय हुआ तब स्नान करके संध्यादिक कर्म किये और वृक्षों के फल भोजन कर फिर वहां से आगे चला । इस डरसे कि, कोई कहीं पीछे से आकर मुझे न रोंके बड़े तीक्ष्ण वेगसे चला और बड़े पहाड़, नदियां और वन उल्लंघ कर बारह दिन पश्चात् जब मन्दराचल पर्वत के निकट जा पहुँचा तब एक वन में जा स्थित हुआ और स्नान करके कुछ भोजन किया । मेघ और छाया से रक्षा के निमित्त उसने वहां एक झोपड़ी बनाई और बासन बनाकर उन में फूल और फल रक्खे । जब प्रातःकाल हो तब स्नान करके प्रहरपर्यंत जापकरे और फिर देवताओं की पूजा के निमित्त फूल चुने; दो प्रहर स्नान करके ऐसे व्यतीत करे, जब तीसरा प्रहरहो तब फल भोजनकरे और चौथे प्रहर फिर संध्या और जापकरे । कुछ काल रात्रिको शयनकरे और बाकी जापमें बितावे; इसी प्रकार कालको व्यतीत करे । हे रामजी ! राजा की तो यह अवस्थाहुई अब रानीकी अवस्था सुनो । जब अर्द्धरात्रिके पीछे रानी जागी तो क्यादेखा कि, राजा यहां नहीं है और शय्या खाली पड़ी है । रानीने सहेलियोंको जगा कर कहा बड़ाकष्टहै कि, राजा वनको निकलगयाहै और बड़े भयानक वनमें जावेगा । ऐसे कहकर मनमें विचार किया कि, राजाको देखा चाहिये इस निमित्त योगमें स्थित होकर आकाश को उड़ी और आकाशकी नाईं देह को अन्तर्द्धान किया । जैसे योगेश्वरी भवानी उड़ती हैं तैसेही उड़ी और आकाश में स्थित होकर देखा कि, राजा चलाजाता है । रानी के मन में आया कि, इसका मार्ग रोकूं पर एक क्षणमात्र स्थित होकर भविष्यत् को विचारने लगी कि; राजा का और मेरा संयोग नीति में कैसे रचा है । विचार करके देखा कि, राजा का और मेरा मिलाप होने में अभी बहुत काल बाकी है; अवश्य मिलापहोगा और मेरे उपदेश से राजा जागेगा परन्तु यह सब बहुत काल उपरान्त होगा अभी इसके कषाय परिपक्व नहीं हुये इस से इस का मार्ग रोंकना न चाहिये । निदान रानी फिर अपने घर आई और शय्यापर शयन कर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुई । जब रात्रि व्यतीतहुई तब मंत्रियों से कहने लगी कि, राजा एक तीर्थ करने गया है और दर्शन करके फिर आवेगा, तुम अपने कार्य करते रहो । यह सुन मंत्री अपनी चेष्टामें बर्तने लगे और इसी प्रकार रानीने आठवर्षपर्यंत

राज्य किया और प्रजाको सुखदिया। जैसे बागवान कमलों और क्यारियोंको पालता है तैसेही रानीने प्रजाको पालकर सुखदिया। उधर राजाको आठवर्ष तपकरते बीते और उसके अङ्ग दुर्बलहोगये और इधर रानीने राज्य किया पर जैसे भँवरा और ठौर हो तैसेही समय व्यतीत हुआ। तब रानी ने विचार किया कि, राजा अब मेरे वचनों का अधिकारी हुआ होगा क्योंकि, अब उसका अन्तःकरण तपकरके शुद्ध हुआ है इस से अब राजाको देखिये। निदान रानी वहांसे उड़के आकाशको गई और इन्द्र के नन्दनवन को देख वहां के दिव्य पवनका स्पर्श हुआ तो उसके चित्त में आया कि, मुझे भर्त्ता कब मिलेगा। फिर कहनेलगी कि, बड़ा आश्चर्य है; मैं तो सत्पद को प्राप्त हुईथी तौभी मेरा मन चलायमान हुआ है तो और जीवोंकी क्या वार्त्ता है। वहांसे भी चली तो आगे कमल फूल देखकर कहनेलगी कि, मुझे भर्त्ता कब मिलेगा मैं तो कामातुर हुईहूं। फिर मन में कहनेलगी कि, हे दुष्टमन! तूतो सत्पदको प्राप्तहुआ था तेराभर्त्ता आत्माहै अब तू मिथ्या पदार्थोंकी अभिलाषा क्या करता है? मालूम होता है कि, जबतक देहहै तबतक देहके स्वभावभी साथ रहते हैं इससे यह अवस्था प्राप्त हुई है तभी मन चलायमान होताहै इस से इतर जीवों की क्या वार्त्ता है। तब रानी मेघ, बिजली, पर्व्वत, नदियां, समुद्र और और भयानक स्थानों को लांघकर मन्दराचल पर्व्वतके पास वनमें पहुँची और देखने लगी कि, मेरा भर्त्ता कहां है। समाधि में स्थित होकर उसने देखा कि, अमुक स्थान में बैठाहै, तप करके महादुर्बल अंग होगये हैं और ऐसे स्थानमें प्राप्तहुआ है जहां और जीवकी गम नहीं। बड़ा आश्चर्य है कि, महावेतालकी नाईं यह रात्रिको चलाआयाहै। अज्ञान महादुष्ट है कि, ऐसा राजा तप में लगाहै और स्वरूपके प्रमादसे जड़है। अब ऐसा हो कि, किसी प्रकार यह अपने स्वरूपको प्राप्तहो। परंतु मेरे इस शरीर से इसको ज्ञान न उपजेगा क्योंकि, प्रथम तो उसको यह अभिमान होगा कि, यह मेरी स्त्री है और फिर कहेगा कि, मैंने इन-हीं के निमित्त राज्य छोड़ाहै और यह फिर मुझे दुःख देने आई है इस से मैं ब्रह्मचारी का शरीर धारूं। ऐसा विचार करके उसने शीघ्रही ब्रह्मचारीका शरीर धरा और हाथमें रुद्राक्षकी माला और कमण्डलु और गले में मृगछाला धारणकिया। जैसे सदाशिवके मस्तक पर चन्द्रमा विराजता है तैसेही सुन्दर विभूति लगा और श्वेतही यज्ञोपवीत धारणकर पृथ्वी के मार्ग से राजाके निकट जापहुँची। राजा उसे देखकर आगे से उठ खड़ाहुआ और नमस्कार कर चरणोंपर फूल चढ़ाये। फिर अपने स्थानपर बैठाकर कहने लगा; हे देवपुत्र! आज मेरे बड़े भाग हैं जो आपका दर्शन हुआ। कृपा करके कहिये कि, आप किसलिये आये हैं? देवपुत्र बोले, हे राजन्! हम बड़े बड़े पर्व्वत देखते और तीर्थ करते आये हैं परंतु जैसी भावना तुझमें देखीहै तैसी किसी में नहीं

देखी। तूने बड़ा तपकिया है और तू इन्द्रियजित् दृष्टिआता है। मैं जानताहूं कि, तेरा तप खड्गकीधारसा तीक्ष्णहै इससे तू धन्यहै और तुझे नमस्कारहै। परन्तु हे राजन्! आत्मयोगके निमित्तभी कुछतप कियाहै अथवा नहीं सो कह? तब राजाने जो फूलों की माला देवपूजनके निमित्त रक्खीथी सो देवपुत्रके गले में डाली और पूजा करके कहा, हे देवपुत्र! तुम ऐसोंका दर्शन दुर्लभ है और अतिथिका पूजन देवता से भी अधिकहै। हे देवपुत्र! आपके अंग बहुत सुन्दर दृष्टिआतेहैं। ऐसेही मेरीस्त्रीकेभी अंग थे; नखसे शिखपर्यन्त तुम्हारे वही अंग दृष्टिआते हैं परन्तु आपतो तपस्वी हैं और आपकी मूर्त्ति शांतिके लिये हुई है मैं कैसेकहूं कि, तुम वही हो। इससे हे देवपुत्र! आप किसके पुत्रहैं; यहां किस निमित्त आयेहैं और आगे कहां जावेंगे यह संशय मेरानिवृत्त कीजिये? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन्! एकसमय नारदमुनि सुमेरुपर्वतकी कन्दरा में जहां आश्चर्य के देनेवाले वृक्ष और मञ्जरियां फूलों और फलों से पूर्णथीं और ब्राह्मणोंकी कुटी बनीहुईथीं समाधि लगाके बैठे। वहां गंगाका प्रवाह चलताथा और सिद्धों के सिवाय और जीवोंकी गम न थी इससे नारदमुनि वहां कुछकाल समाधि में स्थित रहे। जब समाधि से उतरे तब उन्होंने आभूषणोंका शब्द सुना और मनमें महाआश्चर्य माना कि, यहां तो कोई नहीं आसक्ता यह भूषणों का शब्द कहां से आया। तब उठकर देखनेलगे कि, गङ्गाका प्रवाह चलाआता है और वहां उर्वशी आदिक महासुन्दर अप्सरा वस्त्रोंको उतारेहुये स्नानकरती हैं। जब उनको नारदजी ने देखा तो उनका विवेक जातारहा और वीर्य निकलकर उनके पास एकसुन्दर बेलथी उसके पत्रपर स्थित हुआ। इतना सुनके शिखरध्वजने कहा, हे देवपुत्र! ऐसे ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञ मननशील संयुक्त नारदमुनिका वीर्य किस निमित्त गिरा? देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! जबतक शरीर है तबतक अज्ञानी और ज्ञानीका शरीर स्वभाव निवृत्त नहीं होता; परन्तु एक भेद है कि, ज्ञानवान्को यदि दुःख प्राप्तहोता है तो वह दुःख नहीं मानता और यदि सुख प्राप्त होता है तो सुख नहीं मानता और उससे हर्षवान् नहीं होता; और अज्ञानीको यदि दुःख सुख प्राप्त होते हैं तो वह हर्ष शोक करता है। जैसे श्वेत वस्त्रपर केशरका रंग शीघ्रही चढ़जाता है तैसेही अज्ञानी को दुःख सुखका रंग शीघ्रही चढ़जाता है और जैसे मोमके वस्त्रों को जलका स्पर्श नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को दुःख सुखका स्पर्श नहीं होता। जिसके अन्तःकरणरूपी वस्त्रको ज्ञानरूपी मोम नहीं चढ़ा उसको दुःख सुखरूप जल स्पर्श करजाता है। दुःख की और सुखकी नाड़ी भिन्न २ हैं, जब सुखकी नाड़ी में जीव स्थित होता है तब कोई दुःख नहीं देखता और जब दुःखकी नाड़ीमें स्थित होताहै तब सुख नहीं देखता। अज्ञानीको कोई दुःखका स्थान है और कोई सुखका स्थान है और ज्ञानी को एक

आभासमात्र दिखाई देता है—बन्धायमान नहीं होता। जबतक अज्ञानका सम्बन्ध है तब तक दुःख निवृत्त नहीं होता। तब राजाने कहा कि, वीर्य्य जो गिरताहै सो कैसे निवृत्त होता है? देवपुत्रने कहा, हे राजन्! जब चित्त वासना से क्षोभवान् होता है तब नाड़ी भी क्षोभ करती हैं और अपने स्थानोंको त्यागने लगती हैं; उसी अवस्था में वीर्य्यवाली नाड़ीसेभी स्वाभाविकही वीर्य्य नीचेको चला आताहै। फिर राजाने पूछा हे देवपुत्र! स्वाभाविक किसे कहते हैं? देवपुत्रने कहा, हे राजन्! आदि शुद्ध चेतन परमात्मामें जो फुरनाहुआहै उस क्षणमात्र शक्तिके उत्थानसे प्रपञ्चबनगयाहै। उसमें आदि नीतिहुई है कि, यह घटहै; यह पटहै; यह अग्निहै; इसमें उष्णता है; यह जल है; इसमें शीतलता है; तैसेही यहभी नीति है कि; वीर्य्य ऊपर से नीचे को आता है। जैसे पर्वतसे पत्थर गिरता है सो नीचेको चला आता है तैसेही वीर्य्य भी नीचे को आता है। तब राजाने प्रश्न किया कि, हे देवपुत्र! जीवको दुःख सुख कैसे होता है और दुःख सुख का अभाव कैसे होता है? देवपुत्रने कहा, हे राजन्! यह जीव कुण्डलिनी शक्तिमें स्थित होकर दृश्यमें जो चारों अन्तःकरण; इन्द्रियां और देह हैं उनमें अभिमान करके इनके दुःख से दुःखी और इनके सुखसे सुखी होता है तो जैसा २ आगे प्रतिबिम्ब होता है तैसा २ दुःख सुख भासता है। जैसे शुद्ध मणि में प्रतिबिम्ब पड़ताहै। यह सब अज्ञानसे होताहै और ज्ञानसे इसका अभाव होजाताहै। जब ज्ञानरूप का आवरण करके आगे पटल होता है तब प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। देहादिकके अभिमान से रहित होने को ज्ञान कहते हैं कि; न देहादिक हैं और न मैं इन से कुछ करताहूं। जब ऐसे निश्चयहो तब दुःख सुखका भान नहीं होता क्योंकि; संसारका दुःख सुख भावना में होताहै; जब वासना से रहित हुआ तब दुःख सुखभी सब नष्ट होजाते हैं। जैसे जब वृक्षही जलजाता है तब पत्र फूल फल कहांरहे; तैसेही अज्ञानरूप वासनाके दग्धहुये दुःखसुख कहांरहे? फिर राजाने कहा, हे भगवन्! तुम्हारे वचन सुनते मैं तृप्त नहीं होता। जैसे मेघ का शब्द सुनते मोर तृप्त नहींहोता; इस से कहिये कि, तुम्हारी उत्पत्ति कैसे हुई है? देवपुत्रने कहा; हे राजन्! जो कोई प्रश्नकरता है उसका बड़े निरादर नहीं करते; इस से तुम जो पूछतेहो सो मैं कहताहूं। हे राजर्षि! वह वीर्य नारदमुनिने एक मटकी में रक्खा और उसपर दूध डाला। वह मटकी स्वर्ण-वत् थी जिसका उज्ज्वल चमत्कारथा। उस मटकी को पूर्णकर वीर्य्यको एक कोनेकी ओर किया और फिर मन्त्रोंका उच्चार किया और आहुति देकर भले प्रकार पूजन किया। जब एक मास व्यतीत हुआ तब मटकी से बालक प्रकटहुआ—जैसे चन्द्रमा क्षीरसमुद्रसे निकलाहै—उस बालकको लेकर नारद आकाशको उड़े और अपने पिता ब्रह्माजी के पास लेआये और नमस्कारकिया। तब मुझको पितामहने गोदमें बैठालिया

और आशीर्वाद देकर कहा कि, तू सर्व न होगा और शीघ्रही अपने स्वरूपको प्राप्त होगा। कुम्भसे जो मैं उपजाथा इसलिये उन्होंने मेरा नाम कुंभजरक्खा। मैं नारदजी का पुत्र और ब्रह्माजीका पौत्रहूं; सरस्वती मेरी माता है; गायत्रीमेरी मौसीहै और मुझे सर्वज्ञान है। तब राजाने कहा, हे देवपुत्र! तुम सर्वज्ञ दृष्टिआतेहो; तुम्हारे वचनों से मैं जानताहूं। देवपुत्रने कहा, हे राजन्! जो तुमने पूछा सो मैंने कहा; अब कहो तुम कौनहो; क्याकर्म करते हो और यहां किसनिमित्त आयेहो? राजाने कहा, हे देवपुत्र! आज मेरे बड़े भाग उदय हुये हैं जो तुम्हारा दर्शनहुआ। तुम्हारा दर्शन बड़े भाग से प्राप्त होता है। यज्ञ और तपसे भी तुम्हारा दर्शन श्रेष्ठ है। देवपुत्रने कहा, हे राजन्! अपना वृत्तान्तकहो। राजाने कहा, हे देवपुत्र! मैं राजाहूं; शिखरध्वज मेरा नाम है। संसार दुःखदायक भासितहुआ और वारंवार जन्म और मरण इसमें दृष्टि आता है इससे राज्यका त्यागकर यहांपर मैं तपकरने लगाहूं। तुम त्रिकालज्ञ हो और जानते हो तथापि तुम्हारे पूछनेसे कुछ कहना चाहिये। मैं त्रिकालसंध्या और जप करता हूं तो भी मुझे शान्ति नहीं हुई; इसलिये जिससे मेरे दुःख निवृत्त हों वही उपाय कहिये। हे देवपुत्र! मैंने बहुत तीर्थ किये हैं और बहुत देश और स्थान फिरा हूं पर अब इसी वनमें आनबैठाहूं तौभी मुझे शान्ति नहीं। तब देवपुत्रने कहा, हे राजऋषि! तूने राज्यका तो त्याग किया पर तपरूपी गढ़ेमें गिरपड़ा; यह तूने क्या किया? जैसे पृथ्वी का कृमि फिर पृथ्वीमेंही रहता है तैसेही तू एक गढ़ेको त्यागकर दूसरे गढ़े में आपड़ा है और जिस निमित्त राज्यका त्याग किया उसको न जाना। यहां आकर तूने एक लाठी मृगछाला और फूल रक्खेहैं, इनसे तो शान्ति नहीं होती? इससे अपने स्वरूप में जाग; जब स्वरूप में जागेगा तब सब दुःख निवृत्त होंगे। इसीपर एकसमय ब्रह्माजीसे मैंने प्रश्न कियाथा कि, हे पितामहजी! कर्म श्रेष्ठ है अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है— दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है? जो मुझको कर्त्तव्यहो सो कहो। तब पितामहने कहा कि, ज्ञान के पायेसे कोई दुःख नहीं रहता और सर्व आनन्दका आनन्द ज्ञानहै। अज्ञानीको कर्म श्रेष्ठ है क्योंकि, वे पापकर्म करेंगे तो नरकको प्राप्तहोंगे। इससे तप और दान करनेसे स्वरूपकी प्राप्ति नहींहोती तौभी अज्ञानीको कर्मही श्रेष्ठहै कि, नरक न भोगकर स्वर्ग में रहे। जैसे कम्बल से पटकावस्त्र श्रेष्ठ है परन्तु यदि पटका न पाइये तो कम्बलही भला है; तैसेही ज्ञान पटकी नाईं है और तपकर्म कम्बलके समान है—कर्मसे शान्ति नहीं होती। इससे हे राजन्! तुम क्यों इस गढ़ेमें पड़े हो? आगे तू राज्यवासी था और अब वनवासी हुआ; यह क्याकिया कि, अज्ञान से मूर्खताके वश अज्ञान में पड़ारहा है जबतक तुझे क्रियाका भान होता है कि, 'मैं यह करूं' तबतक प्रमाद है; इससे दुःख निवृत्त न होगा। निर्वासनिक होकर अपने स्वरूपमें जाग। निर्वासनिक

होनाही मुक्तिहै और वासनासहितही बन्धन है। निर्वासनिक होनाही पुरुष प्रयत्न है। जबतक वासना सहित है तबतक अज्ञानी है जब निर्वासनिक हो तब ज्ञेयरूप हो। सदा ज्ञेयकी भावना करनेवाले को निर्वासनिक कहतेहैं और ज्ञेय आत्मस्वरूपको कहतेहैं; उसको जानकर फिर कोई इच्छा नहीं रहती। केवल चिन्मात्रपद में स्थित होनेका नाम ज्ञेयहै। जो जानने योग्यहै सो जाना तब और वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होताहै। हे राजन्! तुझे अपने स्वरूपकोही जानना था तो तू और जंजालमें किसनिमित्त पड़ाहै? आत्मज्ञान विना और अनेक यत्नकरो तौ भी शान्ति न प्राप्त होगी। जैसे पवनसे रहित वृक्ष शान्तरूप होताहै और जब पवन होताहै तब क्षोभको प्राप्त होताहै तैसेही जब वासना निवृत्त होगी तब शान्तपद प्राप्त होगा और कोई क्षोभ न रहेगा। जब ऐसे देवपुत्रने कहा तब राजाने कहा; हे भगवन्! तुम मेरे पिताहो, तुमहीं गुरुहो और तुमहीं कृतार्थ करनेवाले हो। मैंने वासना करके बड़ा दुःखपाया है। जैसे किसी वृक्षके पत्र, डाल, फूल, फल सूखजावें और अकेला ठूंठ रह जावे तैसेही ज्ञानविना मैं भी ठूंठसा होरहाहूं इसलिये कृपाकरके मुझे शान्तिको प्राप्त करो। देवपुत्रने कहा, हे राजन्! तुझे त्यागकरके सन्तोंका संग करना चाहिये था और यह प्रश्नकरना चाहिये था कि, बन्ध क्याहै और मोक्ष क्याहै? मैं क्याहूं और यह संसार क्याहै? संसारकी उत्पत्ति किससे होतीहै और लीन कैसे होताहै? तूने यह क्या किया कि, सन्तों विना ठूंठ वनका आकर सेवन किया। अब तू सन्तजनों को प्राप्त होकर निर्वासनिकहो। ऐसे ब्रह्मादिकने भी कहाहै कि, जब निर्वासनिक होताहै तब सुखी होता है। फिर राजाने कहा, हे भगवन्! तुमहीं सन्तहो और तुमहीं मेरे गुरु और पिताहो, जिस प्रकार मुझे शान्तिहो सो कहिये। तब कुम्भजने कहा, हे राजन्! मैं तुझे उपदेश करताहूं तू उसे हृदय में धारणकर और जो तू उसे हृदयमें न धारेगा तो मेरे कहने से क्याहोता है? जैसे डालपर कौवाहो और शब्दभी सुने तौ भी अपने कौवेके स्वभावको नहीं छोड़ता; तैसेही जो तू भी कौवेकी नाईं हो तो मेरे कहने का क्या प्रयोजन है? जैसे तोते को सिखाते हैं तो वह सीखताहै; तैसे तुमभी होजाओ। शिखरध्वज ने कहा, हे भगवन्! जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूंगा। जैसे शास्त्र और वेद के कहे कर्म्म करताहूं तैसेही तुम्हारा कहना करूंगा। यह मेरा नेमहै, जो तुम आज्ञा करोगे सो मैं करूंगा। तब देवपुत्र ने कहा, हे राजन्! प्रथम तो तू ऐसे निश्चयकर कि, मेरा कल्याण इन वचनों से होवेगा और फिर ऐसे जान कि, जो पिता पुत्र को कहताहै तो शुभही कहता है। मैं जो तुझसे कहूंगा सो शुभही कहूंगा और तेरा कल्याण होगा। इससे निश्चय जान कि, इन वचनोंसे मेरा कल्याण होगा। एक आख्यान आगे व्यतीत हुआहै सो सुन। एक पण्डित धन और गुणों से संपन्नथा। वह सर्वदा चिन्ता-

मणिके पानेकी इच्छाकरता और इसके लिये जैसे शास्त्रमें उपाय कहेहैं तैसेही करता था जब कुछकाल व्यतीत भया तब जैसे चन्द्रमाका प्रकाशहोताहै तैसेही प्रकाशवान् चिन्तामणि उसे प्राप्तहुई और उसने उसे ऐसे निकटजाना कि, हाथसे उठा लीजिये । जैसे उदयाचल पर्व्वतके निकट चन्द्रमा उदयहोताहै तैसेही चिन्तामणि जब निकट आ प्राप्तहुई । तब पण्डितके मनमें विचारहुआ कि, यह चिन्तामणिहै अथवा कुछ और है; जो चिन्तामणिहो तो उठालूं और जो चिन्तामणि न हो तो किस निमित्तपकडूं। फिर कहे कि, उठालेताहूं, मणिही होगी; फिर कहे कि, यह मणि नहीं है क्योंकि, मणि तो बड़ेयत्नसे प्राप्तहोतीहै; मुझे सुखसे क्यों प्राप्तहेगी ? इससे विदित होताहै कि, चिन्तामणि नहीं । जो सुखसे प्राप्तहोती तो सबलोग धनी होजाते । जब ऐसे संकल्प विकल्पसे पण्डित विचार करनेलगा और इसीसे उसका चित्त आवरण हुआ तब मणि छिपगई क्योंकि; जो सिद्धि हैं उनका मान और आदर न करिये तो उलटा शाप देती हैं । जिसवस्तुका कोई आवाहन करताहै और उसका पूजन न करे तो वह त्यागजाती है । तब वह बड़ेदुःखको प्राप्तहुआ कि, चिन्तामणि मेरेपाससे चलीगई । निदान वह फिर यत्न करनेलगा तब कांचकी मणि हँसीकरके उसके आगे आपड़ी और उसको देखकर वह कहनेलगा कि, यह चिन्तामणिहै । अबोधके वशसे उसको उठाकर अपने घरलेआया और अबोधके वशसे उसको चिन्तामणि जानता भया । जैसे मोह से जीव असत्को सत् जानता है और रस्सीको सर्प्प जानताहै और जैसे दृष्टिदोषसे दो चंद्रमा देखताहै और शत्रुको मित्र और विषको अमृतरूप जानताहै; तैसेही उसने कांचको चिंतामणि जान जो कुछ अपना धनथा सो लुटादिया और कुटुम्बका त्याग कर कहनेलगा कि, मुझे चिंतामणि प्राप्तहुई है, अब कुटुम्बसे क्या प्रयोजन है ? निदान घरसे निकलकर वनमें गया और वहां उसने बड़े दुःखपाये क्योंकि; कांचकी मणिसे कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुआ । तैसेही हे राजन् ! जो विद्यमान वस्तुहो उसको मूर्ख त्यागते हैं और उसका माहात्म्य नहीं जानते और नहीं पाते ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिन्तामणिवृत्तान्तवर्णनं नामनवषष्टितमस्सर्ग्गः ६९ ॥

देवपुत्र बोले, हे राजन् ! इसीप्रकार एक और आख्यान कहताहूं सोभी सुनो मंदराचल पर्वतके वनमें सब हाथियोंका राजा एक हाथी रहताथा वह मानों स्वयम् मंदराचल पर्वतथा जिसको अगस्त्य मुनि ने रोका था । उसके बड़ेदांत इन्द्रके वज्रकीनाईं तीक्ष्ण थे और प्रलयकालकी वड़वाग्निके समान वह प्रकाशवान्था । वह ऐसाबलवान्था कि, सुमेरुपर्व्वतको दांतोंसे उठावे । निदान उस हस्तीको एक महावतने; जैसे बलिराजाको विष्णुभगवान् ने छल करके बांधाथा लोहेकी जंजीरसे बांधा और आप

पासके वृक्षपर चढ़बैठा कि, कूदकर हाथीके ऊपर चढ़बैठूं। वह हाथी जंजीरमें महाकष्टको प्राप्तहुआ और इतना दुःखपाया जिसका वर्णन नहीं होसक्ता। तब हाथी के मनमें विचारउपजा कि, जो अब मैं बलसे जंजीर न तोडूंगा तो क्यों छूटूंगा; इसलिये उस जंजीरको बलकरके तोड़दिया और वृक्षपर जो महावत बैठाथा सो गिरके हाथी के चरणोंके आगे आ पड़ा और भयको प्राप्तहुआ। जैसे वृक्ष का फल पवनसे गिर पड़ता है तैसेही महावत भयसे गिरपड़ा। जब इसप्रकार महावत गिरा तब हाथी ने विचारकिया कि, यह मृतक समान है इस मुयेको क्या मारनाहै। यद्यपि यह मेरा शत्रु है तौभी मैं इसे नहीं मारता; इसके मारने से मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्धहोगा? इसलिये जैसे स्वर्गके द्वारे तोड़कर दैत्य प्रवेश करलेहैं तैसेही जंजीर तोड़कर वह हाथी वनमें गया और महावत हाथीको गया देख उठबैठा और अपने स्वभावमें स्थितहुआ। वह फिर हाथीके पीछेचला और हाथीको ढूंढ़लिया। जैसे चन्द्रमाको राहु खोज लेता है तैसेही वनमें हाथीको खोजलिया तो क्या देखा कि, वह वृक्षके नीचे सोया पड़ा है। जैसे संग्रामको जीतकर शूरमा निश्चिन्त सोताहै तैसेही हाथीको निश्चिन्तसोया पड़ा देख महावतने विचार किया कि, इसको वश करना चाहिये। यह विचार उसने यह उपायकिया कि, वनके चारोंओर खाईबनाई और खाईके ऊपर कुछ तृण और घासडाला जैसे शरत्कालके आकाशमें बादल देखनेमात्र होताहै तैसेही तृण और घास खाईके ऊपर देखनेमात्र दृष्टि आतीथी। निदान जब किसीसमय हाथी उठकर चला और खाईकेबीच गिरपड़ा तब महावतने हाथीके निकट आ उसे जंजीरों में बांधा और वह हाथी बड़े दुःखको प्राप्तहुआ। जो तप करके वनमें दुःख पाता है उसने भविष्यत्का विचार नहींकिया। अज्ञानीको भविष्यत्का विचार नहींहोता इसीसे वह दुःखपाता है। हे राजन्! यह जो मणि और हाथीके आख्यान तुझे मैंने सुनाये हैं उनको जब तू समझेगा तब आगे मैं उपदेश करूंगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहस्त्याख्यानवर्णनंनामसप्ततितमस्सर्गः ७०॥

इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब देवपुत्रने ऐसेकहा तब राजा बोला, हे देवपुत्र! यह दो आख्यान जो तुमने कहेहैं सो तुम्हीं जानतेहो, मैंतो कुछ नहीं समझा इससे तुम्हीं कहो। देवपुत्रने कहा, हे राजन्! तू शास्त्रके अर्थमें तो बहुत चतुरहै और सर्वअर्थोंका ज्ञाता है परन्तु स्वरूपमें तुझे स्थिति नहीं है; इससे जो वचन मैं कहताहूं उसे बुद्धिसे ग्रहणकर हस्ती क्या है और चिन्तामणि क्याहै? प्रथम जो तूने सर्वत्याग किया था सो चिन्तामणि थी और उसके निकट प्राप्तहोकर तू सुखी हुआथा। यदि उसको तू अपने पास रखता तो सब दुःख निवृत्त होजाते; पर मणि का तो तूने निरादर किया जो उसको त्यागा और कांचकी मणि तप क्रियाको प्राप्त

हुआ इसलिये दरिद्रीही रहा । हे राजन् ! सर्व्व त्यागरूपी चिन्तामणिथी और इस क्रियाका आरम्भ कांचकी मणिहै उसको तूने ग्रहण किया है इससे दरिद्रकी निवृत्ति नहीं होती–दुःखीही रहता है । हे राजन् ! सर्व्व त्याग तूने नहीं किया और जो किया भी था परन्तु कुछ न रहगया और वह रहकर फिर फैलगया । जैसे बड़ा बादल वायु से क्षीण होताहै और सूक्ष्म रहजाता है जो पवनके लगेसे फिर विस्तारको पाताहै और सूर्य्यको छिपालेता है । वह बादल क्या है; सूर्य्य क्या है और थोड़ा रहना क्या है सो भी सुन । स्त्रियों और कुटुम्ब आदि को त्यागकर इनमें अहंकार करना सोई बड़ा बादल है । वैराग्यरूपी पवन से तूने राज्य और कुटुम्ब का अहंकार त्याग किया पर देहादिक में अहंकार सूक्ष्म बादल रहगया था सो फिर वृद्ध होगया जो अनात्मअभिमान करके क्रियाका आरम्भ किया इससे आत्मारूपी सूर्य्य जो अपना आप है सो अहंकाररूपी बादल से ढपगया । और ज्ञानरूपी चिन्तामणि अज्ञानरूपी कांच की मणिसे छिपगई । जब ज्ञानसे आत्मा को जानेगा तब आत्मा प्रकाशेगा, अन्यथा न भासेगा । जैसे कोई पुरुष घोड़ेपर चढ़के दौड़ता है तो उसकी वृत्ति घोड़ेमें होती है तैसेही जिस पुरुषका आत्मामें दृढ़ निश्चय होताहै उसको आत्मा से कुछ भिन्न नहीं भासता । हे राजन् ! आत्मा का पाना सुगम है जो सुखसेही मिलता है और बड़े आनन्द की प्राप्ति होतीहै । तपआदिक क्रिया करके कष्टसे सिद्ध होताहै और स्वरूप सुख की प्राप्ति नहीं होती । हे राजन् ! मैं जानताहूं कि, तू मूर्ख नहीं बल्कि शास्त्रोंका ज्ञाता और बहुत चतुर है तथापि तुझे स्वरूप में स्थिति नहीं । जैसे आकाश में पत्थर नहीं ठहरता । इससे मैं उपदेश करताहूं उसको ग्रहण कर तो तेरे दुःख निवृत्त होजावेंगे । हे राजन् ! यह सब से श्रेष्ठ ज्ञान कहाहै और कहताहूं । तूने जो तप क्रियाका आरम्भ किया है और उसका जो फल जानाहै उस ज्ञानसे यह श्रेष्ठ ज्ञान कहाहै और कहताहूं उस से तेरा भ्रम निवृत्त होजावेगा । हे राजन् ! चिन्तामणि का संपूर्ण तात्पर्य तुझ से कहा; अब हाथीका वृत्तान्त जो आश्चर्यरूप है सो भी सुन जिसके समझने से अज्ञान निवृत्त होजावेगा । मन्दराचल का हाथी तो तू है और महावत तेरी अज्ञानता है । इस अज्ञानरूपी महावतने तुझे बांधा था और तू आशारूपी जंजीरों से बँधा था । और जंजीरें घिसजाती हैं पर आशारूपी फांसी नहीं घटती यह दिन दिन बढ़तीही जाती है । हे राजन् ! आशारूपी फांसी से तू महादुःखी था । हस्ती के जो बड़े दन्त थे जिनसे उसने संकलों को तोड़ा था सो विवेक और वैराग्य था जो तूने विचार किया कि, मैं बल करके छूटूं । राज्य, कुटुम्ब और पृथ्वीका त्यागकर जब तूने उस फांसी को काटा तब आशारूपी रस्से कटे तो अज्ञानरूपी महावत भयको प्राप्त हुआ और तेरे चरणों के तले आपड़ा । जैसे वृक्ष के ऊपर वेताल रहता है और कोई वृक्ष को काटने

आता है तब वेताल भयको प्राप्त होता है तैसेही तूने वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशा के फांस काटे तब अज्ञानरूपी महावत गिरा और तूने एक घाव लगाया परन्तु मार न डाला इससे महावत तुझसे भाग गया—जैसे वृक्षपर वेताल रहता है और वृक्षको कोई काटने लगता है तब वेताल भागजाताहै। हे राजन्! तैसेही वृक्षको तूने वैराग्यरूपी शस्त्रकरके काटा तब अज्ञानरूपी वेताल भागा था मूर्खतासे उसको तूने न मारा बल्कि उसको छोड़कर वनमें गया। जब तू वनमें आया तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पीछे चलाआया और तेरे चारोंओर खाई खोदी और तपआदिक क्रिया आरम्भ कर तू उस खाई में गिरपड़ा और महादुःखको प्राप्त हुआ। तब उसने तुझे जंजीरों से फिर बांधा और देखनेलगा कि, अबतक दुःख नहीं पाता है। अनात्म अभिमान से तूने यहां तपआदिक क्रिया का आरम्भ किया है। ऐसी खाई में तू पड़ा है। हे राजन्! तू जानकर खाई में नहीं पड़ा खाई के ऊपर घास और तृण पड़ाथा उस छलसे तू गिरपड़ाहै सो छल और तृण क्याहै सोभी तू सुन। प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रुको तूने न मारा और जंजीरों के भयसे भागा कि, वन मेरा कल्याण करेगा। संतों और शास्त्रों के वचनों को न जाना कि, तेरे दुःख निवृत्त करेंगे और उन वचनरूपी खाई पर तृणादिक था इस मूर्खता करके तू गिरा। जैसे बलिराजा पाताल में छलसे बांधा हुआ है तैसेही तूने भविष्यत्का विचार न किया कि, अज्ञानरूपी शत्रु जो रहा है वह मेरा नाश करेगा। उस विचारविना तू फिर दुःखी हुआ। सब त्याग तो किया परन्तु ऐसे न जाना कि, मैं अक्रियहूं, इस क्रियाका आरम्भ काहेको करताहूं। इसीसे तू फिर फांसी से बँधाहै। हे राजन्! जो पुरुष इस फांसी से मुक्त हुआहै वह मुक्तहै और जिसका चित्त अनात्मअभिमान से बँधाहै कि, यह मुझे प्राप्तहो उससे वह दुःख पाता है। जिस पुरुषने वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशारूपी जंजीरको नहीं काटा वह कदाचित् सुख नहींपाता। विवेकसे वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे विवेक होताहै। विवेक सत्यके जानने और असत् देहादिकके असत्य जाननेको कहते हैं। जब ऐसे जाना तब असत् की ओर भावना नहीं जाती सो वैराग्यहुआ। वैराग्य से विवेक उपजताहै और विवेकसे वैराग्य उपजताहै। इन विवेक और वैराग्यरूपी दांतों से आशारूपी जंजीरको तोड़। हे राजन्! यह हस्ती का वृत्तान्त जो तुझसे कहाहै इसके विचार किये से तेरा मोह निवृत्त होजावेगा। हे राजन्! वह हाथी बड़ाबली था और महावत छोटाकिये से बलीथा। उस अज्ञानरूपी महावतको मूर्खता करके तूने न मारा उससे दुःख पाताहै। अब तू वैराग्य और विवेकरूपी दांतों से आशारूपी फांसी को तोड़ तब दुःख सब मिटजावेंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहस्तिवृत्तान्तवर्णनन्नामैकसप्ततितमस्सर्गः ७१॥

देवपुत्र बोले, हे राजन् ! ब्रह्मवेत्ता और सर्वज्ञानियों में श्रेष्ठा, साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा और सत्यवादिनी तेरी स्त्री जो चुड़ाला थी उसने तुझे उपदेश किया था पर तूने उस के वचनोंका किस निमित्त निरादर किया ? मैं तो सब जानताहूं क्योंकि, त्रिकालज्ञहूं; तौभी तू अपने मुखसे कह। एकतो यह मूर्खता की कि, उपदेश न अंगीकार किया और दूसरी यह मूर्खता की कि, सर्वत्याग न करके फिर वन अंगीकार किया। जो सर्वत्याग करता तो सर्वदुःख मिटजाते। जब ऐसे देवपुत्रने कहा, तब राजाने कहा; हे देवपुत्र ! मैंने तो स्त्री, पृथ्वी, मन्दिर, हाथी इत्यादिक ऐश्वर्य और कुटुम्बको त्यागकियाहै; आप कैसे कहते हैं कि, त्याग नहीं किया ? देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! तूने क्या त्यागा है ? राज्यमें तेरा क्या था ? जैसे ऐश्वर्य आगे था तैसेही अबभी है और स्त्रियांभी जैसे और मनुष्यथे तैसेही थीं; पृथ्वी, मन्दिर और हस्ती जैसे आगे थे तैसेही अबभी हैं। उन में तेरा क्या था जो त्याग किया ? हे राजन् ! सर्वत्याग तैंने अबभी नहीं किया। जो तेरा हो उसको तू त्यागकर कि, निर्दुःखपद को प्राप्तहो। इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे राम जी ! जब इस प्रकार देवपुत्र ने कहा तब शूरवीर जो इन्द्रियजित् राजा था सो मन में विचारनेलगा कि, यह वन मेराहै और वृक्ष, फूल, फल मेरे हैं इनका त्यागकरूं। ऐसा विचारकर बोला, हे देवपुत्र ! वन, वृक्ष, फूल और फल जो मेरेथे उनका भी मैंने त्याग किया अब तो सर्वत्याग हुआ ? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ क्योंकि, वन, वृक्ष, फूल और फल तुझसे आगे भी थे इनमें तेरा क्याहै ? जो तेरा हो उसको त्याग तब सुखीहोगा। हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रने कहा तब राजा ने मन में विचारा कि, मेरी जलपानकी बावली और बगीचे हैं इनका त्याग करूं तब सर्वत्याग सिद्धहो और कहा, हे भगवन् ! मेरी यह बावली और बगीचे हैं उनकाभी मैंने त्याग किया; अबतो मेरा सर्वत्याग सिद्ध हुआ ? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! सर्वत्याग अबभी नहीं हुआ। जो तेराहै उसको जब त्यागेगा तब शान्तपदको प्राप्त होगा। हे रामजी ! जब इस प्रकार देवपुत्रने कहा तब राजा विचारने लगा कि, अब मेरी मृगछाला और कुटी है उसकाभी त्यागकरूं। ऐसे विचार बोला कि, हे देवपुत्र ! मेरेपास एक मृगछाला और एक कुटी है उसकाभी मैंने त्याग किया अबतो सर्वत्यागी हुआ ? तब देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! मृगछालामें तेराक्याहै यह तो मृगकी त्वचाहै और कुटी में तेरा क्याहै यहतो मिट्टी और शिलाकी बनी है इस से तो सर्वत्याग सिद्ध नहींहोता ? जो कुछ तेराहै उसको त्यागेगा तब सर्वत्याग होगा और तभी तू सब दुःखों से छूटजावेगा। हे रामजी ! जब ऐसे कुम्भजने कहा तब राजाने मन में विचारकिया कि, अब मेरा एक कमण्डलु, एक माला और एक लाठीहै इसकाभी त्यागकरूं। ऐसे विचार कर राजा शांतिके लिये बोला; हे देवपुत्र ! मेरी लाठी, कमण्डलु और एक मालाहै उस

काभी मैंने त्याग किया; अबतो मैं सर्वत्यागी हुआ ? देवपुत्रने कहा, हे राजन् ! कमण्डलु में तेरा क्या है ? कमण्डलु तो वनका तुम्बा है उसमें तेरा कुछ नहीं; लाठीभी वन के बाँसकी है और मालाभी काष्ठ का है उन में तेरा क्या है ? जो कुछ तेराहै उसका त्याग कर। जब तू उसका त्याग करेगा तब दुःखसे रहित होजावेगा। हे रामजी ! जब इस प्रकार कुम्भजने कहा तब राजा शिखरध्वजने मन में विचारा कि, अब मेरा क्या रह गया तब देखा कि, एक आसन और बासनहैं जिसमें फूल और फल रखते हैं; अब इनकाभी त्याग करूं। तब राजाने कहा, हे भगवन् ! आसन और बासन मेरे पास रह गये हैं इनका भी मैं त्याग करताहूं; अब तो सर्वत्यागी हुआ ? तब कुम्भजने कहा; हे राजन् ! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ। आसन तो भेड़की ऊनका है और बासन मृत्तिका के हैं; इनमें तेरा कुछ नहीं। जो कुछ तेराहै उसका त्यागकर तब सर्वत्यागहोवे और तू दुःख निवृत्त हो। हे रामजी ! जब इस प्रकार कुंभजने कहा तब राजा उठ खड़ाहुआ और बनकी लकड़ी इकट्ठी करके उनमें आगलगाई। जब बड़ीअग्नि लगी तब लाठी को हाथमें लेकर कहने लगा; हे लाठी ! मैं तेरेसाथ बहुत देशों में फिराहूं परन्तु तूने मेरे साथ कुछ उपकार न किया; अब मैं कुंभजमुनिकी कृपासे तरूंगा, तुझे नमस्कार है। ऐसे कहकर लाठी को अग्नि में डालदिया। फिर मृगछाला को हाथ में लेकर कहा, हे मृगकीत्वचा ! बहुत काल में तेरेऊपर बैठाहूं परन्तु तूने कुछ उपकारन किया; अब कुंभजमुनिकी कृपासे मैं तरूंगा; तुझे नमस्कार है। ऐसे कहकर मृगछाला को भी अग्निमें डालदिया। फिर कमण्डलु को लेकर कहनेलगा, हे कमण्डलु ! तू धन्य है कि, मैंने तुझे धारणकिया और तूने मेरे जलको धारा। तूने मुझसे गुण गोप नहीं किया तौभी कमण्डलु की जैसी प्रवृत्ति त्यागनी है तैसेही निवृत्ति की कल्पनाभी त्यागनी है; इससे तुझे नमस्कार है; तुमजावो। ऐसे कहकर कमण्डलु भी अग्नि में जला दिया। फिर मालाको हाथ में लेकर कहने लगा; हे माला ! तेरे दाने जो मैंने घुमाये हैं सो मानों अपने जन्म गिनेहैं। तेरे सम्बन्धसे जाप कियाहै और दिशा विदिशा गया हूं, अब तुझको नमस्कार है। ऐसे कहकर मालाकोभी अग्निमें डालदिया। इसीप्रकार फल, फूल, कुटी और आसन सब जलादिये तब बड़ी अग्नि जगी और बड़ा प्रकाश हुआ। जैसे सुमेरु पर्व्वत के पास सूर्य्य चढ़ें और मणिका भी चमत्कार हो तो बड़ा प्रकाश होताहै तैसेही बड़ी अग्नि लगी और राजाने सम्पूर्ण सामग्रीका त्यागकिया। जैसे पकेफलको वृक्ष त्यागताहै और जैसे पवन चलने से ठहरता है तब धूलिसे रहित होताहै तैसेही राजा सम्पूर्ण सामग्री को त्याग निर्विघ्न हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनन्नाम
द्विसप्ततितमस्सर्गः ७२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! निदान सम्पूर्ण सामग्री जलकर भस्म होगई । जैसे सदाशिवके गणों ने दक्षप्रजापति के यज्ञको स्वाहा करदिया था तैसेही जितनी कुछ सामग्रीथीं सो सब स्वाहा होगई और वह वन बड़ा प्रज्वलितहुआ । जितने वृक्ष के रहनेवाले पक्षीथे सो भागगये और मृग, पशु जो आहार करते व जुगाली करते थे सो सब भागगये । जैसे पुर में आगलगे से पुरवासी भागजावें तैसेही सब भागगये; तब राजा ने मनमें विचारा कि, अब कुंभजकी कृपासे मैं बड़े आनन्द को प्राप्तहुआ और अब सब मेरे दुःख मिटगये । जो कुछ वस्तु मन के संकल्पसे रचीथी सो सब जलादी अब उसका न मुझे हर्षहै, न शोक है । ये सब दुःख ममत्वसे होते हैं सो मेरा ममत्व अब किसी से नहीं रहा इससे कोई दुःखभी नहीं । अब मैं ज्ञानवान् भयाहूं, अब मेरी जय है क्योंकि, अब निर्मलहोकर सब का मैंने त्यागकिया है । ऐसा विचारकरके राजा उठ खड़ाहुआ और हाथ जोड़कर बोला; हे देवपुत्र ! अब तो मैंने सबका त्यागकिया क्योंकि; आकाश मेरे वस्त्र हैं और पृथ्वी मेरी शय्या है । जब राजा ने ऐसेकहा तब कुंभज मुनि ने कहा, हे राजन् ! अब भी सर्वत्याग नहीं हुआ । जो तेरा है उसका त्यागकर कि, सब दुःख तेरे निवृत्त होजावें । फिर राजा ने कहा, हे भगवन् ! अब तो और मेरे पास कुछ नहीं रहा, नंगाहोकर तुम्हारे आगे खड़ाहूं; अब एक रक्त मांसकी देह इन्द्रियों को धारनेवाली है जो कहो तो इसका भी त्यागकरूं और पर्वतपर जाकर डालदूं ? ऐसे कहकर राजा पर्वत को दौड़ा पर कुंभजमुनिने रोका और कहा, हे राजन् ! ऐसे पुण्यवान् देहको क्यों त्यागता है ? इसके त्यागे से सर्वत्याग नहीं होता । जिसके त्यागने से सर्वत्यागहो उसका त्यागकर । इस देहमें क्या दूषणहै ? जैसे वृक्षमें फूल फल होते हैं और जब वायु चलता है तब गिरते हैं; सो फूल फल गिरनेका कारण वायुहै, वृक्षमें दूषण कुछ नहीं; तैसेही देह में कुछ दूषण नहीं । देहके पालनेवाला जो अभिमान है उसका त्यागकरो तो सर्वत्याग सिद्धहो और तो सब गुण हैं जो कुछ इसको देता है वही लेताहै । आगे से बोलता नहीं जड़है इसके त्यागे क्या सिद्ध होता है ? जैसे पवन से वृक्ष हिलता है और भूकंपसे पर्वत कांपते हैं; तैसेही देह आप कुछ नहीं करती; और की प्रेरी चेष्टा करती है । जैसे पवन से समुद्र के तरंग तृणोंको जहां लेजाते हैं तहां वे चलेजाते हैं तैसेही देह आपसे कुछ नहीं करती । इसका जो प्रेरणेवाला है उसके बलसे यह चेष्टा करती है इससे देहके प्रेरणेवाले का त्यागकर तो सुखी हो । हे राजन् ! जिससे सर्व है; जिसमें सर्व शब्द है और जो सर्व ओर से त्यागने योग्य है उसका त्यागकरो । राजाने पूछा, हे भगवन् ! वह कौन है जो सर्व है और जिसमें सर्व शब्द है और जो सर्व ओरसे त्यागने योग्य है ? हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ ! जिसके त्यागेसे जरा मृत्यु नष्ट होजावे सो कहिये । तब कुम्भजने कहा, हे राजन् ! जिसका नाम

चित्त, प्राण और देहहै उसकात्यागकरो और बाहर जो नानाप्रकारके आकार चित्तही से दृष्टिआते हैं, इससे चित्तकाही त्यागकरो । हे राजन् ! जैसे सर्प बिलमें बैठाहो तो बिलका कुछ दूषण नहीं विष सर्पमें है जिससे वह डसताहै इसलिये उसके नाश करनेका उपायकरो और सर्व शब्द भी इस चित्तमेंही हैं । आत्मा तो मात्रपद है उसमें न एक कहना है और न द्वैत कहना है । सर्व ओरसे इसी चित्तका त्यागकरना योग्य है । जब इस चित्तका त्यागकरोगे तब त्यागरूपी अमृतसे अमरहोजावोगे और जरामृत्युसेरहित होगे जो चित्तका त्याग न करोगे तो फिर देहधारणकर दुःखभोगोगे । जैसे एक क्षेत्र में अनेक दाने उत्पन्न होते हैं और जब क्षेत्रही जलजाता है तब अन्न नहीं उपजता; तैसेही यह जो देह और जरामृत्यु दुःख संसार हैं इनका बीज चित्तही है । जैसे अनेक दानोंका कारण क्षेत्रहै, तैसेही असंख्य संसारके दुःखका कारण चित्तहै; इससे हे राजन् ! चित्तका त्यागकर जब इसका त्याग करेगा तब सुखी होगा । हे राजन् ! जिसने सर्व त्याग किया है वह सुखीहुआ है । जैसे आकाश सर्व पदार्थों से रहितहै, किसीका स्पर्श नहीं करता और सब से बड़ा और सुखरूप है और सर्वपदार्थों के नष्टहोनेपरभी ज्यों का त्यों रहताहै; तैसेही हे राजन् ! तुमभी सर्वत्यागी होरहो । राज्य, देह और कुटुम्ब और गृहस्थ आदिक जो आश्रमहैं सो सब चित्तने कल्पे हैं । जो एकका त्याग नहीं होता तो कुछ नहीं त्याग । जब चित्तका त्यागकरो तब सर्वत्यागहो । हे राजन् ! यह धर्म्म, वैराग्य और ऐश्वर्य तीनों चित्तके कल्पे हुये हैं । जब चित्त पुण्यक्रियामें लगताहै तब पुण्यही प्राप्तहोता है और जब पापक्रियामें लगताहै तब पापही प्राप्तहोकर अधर्म और दरिद्र होता है जब पुण्यका फल उदय होताहै तब सुख प्राप्त होताहै और जब पापका फल उदय होता है तब दुःख प्राप्तहोताहै—इससे जन्म मरणके दुःख नहीं मिटते । जब चित्त का त्यागहोता है तब सब दुःख नष्ट होजाते हैं । हे राजन् ! जो पुरुष किसी वस्तुको नहीं चाहता उसकी बहुत पूजा होती है और जो कहताहै कि, इसवस्तुको मुझकोदे तो उसको कोई नहीं देता । इससे सर्वत्यागकर कि, सुखीहो । सर्वत्याग किये से सर्व तुही होगा और सर्वात्मा होकर संपूर्ण ब्रह्माण्ड अपने में देखेगा । जैसे माला के दानों में तागाहोताहै और दाने भी तागे के आधार होते हैं, उनमें और कुछ नहीं होता; तैसेही देखोगे कि, मैं सर्वमय और एकरसहूं; मेरेही में ब्रह्माण्ड स्थितहै और मैंहीहूं मुझसे कुछ भिन्न नहीं । हे राजन् ! जिसने सबका त्यागकियाहै वह सुखीहै और समुद्रकीनाईं स्थितहै उसको कोई दुःख नहीं । इससे तुम चित्तका त्यागकरो कि, राजदोष मिटजावे । इस चित्तके इतने नामहैं—चित्त, मन, अहङ्कार, जीव और माया । हे राजन् ! आपने ऐश्वर्य के त्यागने और और की भिक्षा लेनेसे तो चित्तवश नहीं होता; चित्त तबहीं वश होताहै जब पुरुष निर्वासनिक होता है । जबतक चित्त फुरताहै तबतक सर्वत्याग नहीं

होता । जब यही फुरना निवृत्त होता है तब चित्तका त्यागहोता है । चित्तके त्यागसेभी त्यागके अभिमानसे रहितहो तब सर्वात्माहोगे । जब चित्तको त्यागोगे तब उस पदको प्राप्तहोगे जो जितने ऐश्वर्य और सुखहैं उनका आश्रयहै और जितने दुःख हैं उनका नाशकरनेवाला है और जिसके जानेसे किसी पदार्थकी इच्छा न रहेगी क्योंकि; सर्व आनन्दका धारनेवाला तेरास्वरूपहै, फिर इच्छा किसकीरहे । जैसे आकाश के आश्रय देवलोकसे आदि सर्वविश्वरहता है और आकाश को कुछ इच्छा नहीं और जो इच्छा नहींकरता तौभी सब आकाशही में हैं और सबको धारनेहाराहै । हे राजन्! जब तुम भी किसीकी इच्छा न करोगे तब निर्वासनिक होकर अपने स्वरूप में स्थित होगे और जानोगे कि, सर्वका आत्मा मैंही हूं; सबको धाररहा हूं और भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनोंकालभी मेरे आश्रय हैं । जैसे समुद्रके आश्रय तरंगहैं तैसेही मेरे आश्रय कालहै । चित्तका सम्बन्ध तुझे प्रमादसे है और प्रमाद यहीहै कि, चिन्मात्रपदमें चित्त होकर फुरता है । चित्त कैसा है कि, जड़भी है और चेतन भी है । इसीका नाम चिद् जड़ग्रन्थि है । जब यह ग्रन्थि खुलजावेगी तब अपने आपको वासुदेवरूप जानोगे । जब निर्वासनिक होगे तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट होजावेगा । जैसे बीजमें वृक्ष होता है, तैसेही चित्तमें संसार है और जैसे बीजके जलनेसे वृक्षभी जलजाता है तैसेही वासनाके दग्ध हुयेसे संसार भी दग्धहोता है । हे राजन्! जैसे किसी डब्बे में रत्नहोते हैं तो रत्नों के नाशहुये डब्बा नहीं नाशहोता और डब्बेके नष्टहुये रत्न नष्ट होते हैं । डब्बा क्याहै और रत्न क्याहै सो भी सुनो । डब्बा तो चित्तहै और रत्न देह है । इससे चित्त के नष्टहोनेका उपायकरो । जब चित्त नष्ट होगा तब देहसे रहित होगे । देहके नष्टहुये चित्त नष्ट नहीं होता और चित्तके नष्टहुये देह नष्ट होजाती है । जब चित्तरूपी धूड़ से रहित होगा तब केवल शुद्ध आकाश रहेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तत्यागवर्णनंनामत्रिसप्ततितमस्सर्गः ७३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार कुम्भज ने कहा कि, चित्तका त्यागना ही सर्व त्याग है तब शिखरध्वज ने पूछा, हे भगवन्! मैं चित्त को कैसे स्थित करूं? संसाररूपी आकाश की चित्तरूपी धूड़है और संसाररूपी वृक्षका चित्तरूपी वानर है जो कभी स्थित नहीं होता; इससे ऐसे चित्तको मैं कैसे स्थितकरूं? तब कुम्भजने कहा हे राजन्! चित्तका रोकना तो सुगम है । नेत्रों के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्नहै परन्तु चित्तके रोकने में कुछ यत्न नहीं । दीर्घदर्शी को सुगमहै और अज्ञानी को कठिनहै । जैसे चाण्डालको पृथ्वीका राजा होना और तृणको सुमेरु होना कठिन है तैसेही अज्ञानी को चित्तका रोकना कठिनहै । राजाने पूछा, हे देवपुत्र! चित्तका तोड़ना कठिन है तौभी टूटजाता है परन्तु मनका रोकना अतिकठिन है । जैसे बड़े मच्छ

को बालक नहीं रोकसक्ता तैसेही मैं चित्तको नहीं रोकसक्ता। हे देवपुत्र! तुम कहतेहो कि, मनका रोकना सुगमहै और मुझको तो ऐसा कठिन भासताहै। जैसे अन्धे पुरुषको लिखीहुई मूर्त्ति नेत्रों से नहीं दृष्टिआती तो वह उसे हाथमें कैसे ले; तैसेही मनको वश करना मुझे कठिन भासता है। प्रथम चित्तकारूप मुझसे कहिये। कुम्भज बोले, हे राजन्! इस चित्तका रूप वासना है। जब वासना नष्टहोगी तब चित्तभी नष्टहोजावेगा। इससे चित्तके बीज को तू नष्टकर तो चित्तरूपी वृक्षभी नष्टहो और न कोई डालरहे, न कोई फूल फलहों। यदि डालको काटेगा तो वृक्ष फिर होगा क्योंकि डालके काटने से वृक्ष नष्ट नहीं होता फिर कई डालें लगजाती हैं। जब बीजको नष्टकरे तब वृक्षभी नष्ट होजावे। राजा बोले, हे भगवन्! चित्तरूपी फूलकी संसाररूपी सुगन्धिहै; चित्तरूपी कमलकीजड़की संसाररूपी तंतुहै; देहरूपी तृणके उठाने और उड़ानेवाला चित्तरूपी पवनहै; चित्तरूपी तिलका जरा–मृत्यु और आध्यात्मिक आधिभौतिक दुःख तेलहै; चित्तरूपी आकाशकी संसाररूपी अँधेरी है और हृदयरूपी कमलका चित्तरूपी भँवरा है। बीज क्याहै? और डाल क्याहै? डालका काटना क्याहै, वृक्ष क्याहै और फूल, फल क्याहै सो कृपाकर कहो? कुम्भज बोले, हे राजन्! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ और निर्मल है; उसमें अहंभाव बीजहै उसीको अहंकार, चित्त, मन, जड़ और मिथ्या कहतेहैं। उस अहंकार में जो संवेदन है वही देह और इन्द्रियांहो फैली हैं और उसमें जो निश्चय है वह बुद्धि है। उस बुद्धि में जो निश्चय है कि, 'यह मैं हूं' यही संसारहै और वही जीव को अहंकार है। अहंकार इस वृक्षका बीज है; चित्तरूपी इस वृक्षकी डालें हैं और सुख दुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फल हैं। हे राजन्! एकान्त बैठकर और चिन्तना से रहित होकर एक आश्रयका त्याग करना और दूसरेका अङ्गीकार करना और इस प्रकार स्थित होना कि, मैं ऐसा त्यागीहूं इसकी चिन्तनाही उस डालका काटना है। हे राजन्! इस डालके काटेसे वृक्ष नहीं नष्ट होता क्योंकि, यह तो ऐसा होकर स्थित होताहै कि, मैंहूं। वासना त्यागकरे और कुछ न फुरे। जब अहंरूपी बीज नष्ट होजाता है तब चित्तरूपी वृक्षभी नष्टहोजाताहै क्योंकि; इसका बीज अहंही है। जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ तब वृक्षभी नष्टहोजाताहै; इससे चित्तका बीज तुम नष्टकरो। राजा बोले, हे देवपुत्र! तुम्हारा निश्चय मैंने यह जानाहै कि; चित्तके त्यागे से चित्तके बीज का नष्टकरना श्रेष्ठहै। हे भगवन्! इतने काल मैं डालें काटतारहाहूं; इसीसे मेरे दुःख नष्ट नहींहुये और आपने कहा कि; अहंही दुःखदायी है इसलिये कृपाकरके कहिये कि, अहं कैसे उत्पन्न होताहै? कुम्भज बोले, हे राजन्! शुद्ध चेतनमें जो चैतन्योन्मुखत्व अहंका फुरना हुआ कि 'मैंहूं' सोही दृश्यरूप हुआ है और मिथ्या संवेदनसे हुआहै। जैसे शांत समुद्र में पवनसे लहरें होती हैं तैसेही शुद्ध आत्मामें अहं फुरताहै और उससे

संसार हुआ है। इससे अहंभावको नष्टकरो कि, शांतपद में स्थित हो। जो दुःख-दायक वस्तु है उसको नष्टकरे तो शांत हो। राजाने पूछा, हे भगवन्! वह कौन वस्तु है जो जलाने योग्य है और वह कौन अग्नि है जिसमें वह जलती है? कुम्भज बोले, हे त्यागवानों में श्रेष्ठराजा! तेरा जो अपना स्वरूप है उसका विचारकर कि, 'मैंक्याहूं' और 'यह संसार क्या है;' इसका दृढ़विचार करनाही अग्नि है और मिथ्या अनात्मा अर्थात् देह, इन्द्रियादिक में अहंभाव है उसको अवास्तवरूप विचार अग्नि में जलावो। जब विचार अग्निसे अहंकार बीजको जलावोगे तब केवल चिन्मात्र रहेगा। हे राजन्! मेरे उपदेश से तू आपको क्या जानता है सो मुझसे कह? राजाने कहा, मैं राजा, पृथ्वी, पर्व्वत, आकाश, दशोंदिशा, रुधिर, मांस, देह, कर्म्मइन्द्रियां, ज्ञान-इन्द्रियां, मन, बुद्धि और अहंकार नहीं; मैं इनसे रहित शुद्धआत्माहूं; परन्तु हे भगवन्! अहंरूपी कलंकता मुझे कहां से लगी है कि, उस कलङ्क को मैं दूर नहीं करसक्ता? तब कुम्भजने कहा हे राजन्! इसी अहं का त्यागकरो जो मैंने त्याग किया है; बल्कि यह फुरनाभी न फुरे, नितांत, शून्य होरहे। जब इसका त्याग करोगे तब चेतन आकाश होगा। हे राजन्! तू अपने स्वरूपको देखकर जान कि, कौन है। राजाने कहा, हे भगवन्! मैं यह जानता हूं कि, मेरा स्वरूप वही आत्मा है जो सब का आत्मा है; मैं आनंदरूपहूं और सब मेरा प्रकाश है परन्तु मैं यह नहीं जानता कि, अहंभाव कलना कहां से लगी है? इसको मैं नाश नहीं करसक्ता पर यह मैंनेजानाहै कि, संसार का बीज चित्तही है और चित्तका बीज अहंकार है। तुम्हारी कृपासे मैंने जानाहै कि, मेरा स्वरूप आत्मा है और 'अहं' 'त्वं' मेरेमें कोई नहीं। तुमभी इस अहंरूप कलंकताको दूरकर रहेहो—पर मुझसे दूर नहींहोता फिर फिर आ फुरता है कि, मैं शिखरध्वज हूं। इस अहं से मैं संसारीहूं। इसके नाशकरनेका उपाय आप कहिये, कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण विना कार्य्य नहींहोता। जो कारण विना कार्य्य भासे तो जानिये कि, भ्रममात्र और मिथ्या है और जिसका कारण पाइये उसे जानिये कि, सत्यहै। इससे तुमकहो कि, इस अहंकारका कारण—क्या है तब मैं उत्तरदूंगा? राजा बोले, हे भगवन्! अहंकारका कारण शुद्ध आत्मा है। शुद्ध आत्मामें जो जाननाहुआ है और जान-नेमात्रमें जानने का उत्थान हुआ है कि, दृश्यकी ओर लगाहै सो जानना संवेदनही अहंका कारणहै। कुम्भज बोले, हे राजन्! इस जानने का कारण क्या है? प्रथम तू यह कह पीछे दूर करनेका उपाय मैं कहूंगा। हे राजन्! जिसका कारण सत् होता है सो कार्य्यभी सत् होताहै और जो कारण झूठहोता है तो, कार्य्यभी झूठहोता है। जैसे भ्रमदृष्टिसे जो दूसरा चन्द्रमा आकाशमें दिखताहै उसका कारण भ्रमहै। उससे इस जानने संवेदनका कारण कह जो जानना संवेदनदृष्टि और दृश्यरूप होकर स्थित

हुई है और दृश्य द्रष्टरूप होकर स्थित हुई है। राजा बोले, हे देवपुत्र! जानने का कारण देहादिक दृश्यहै क्योंकि; जानना तब होताहै जब जानने योग्य वस्तु आगे होती है और जो आगे वस्तु नहीं होती है तो वह जानाभी नहींजाता। इससे जानने का कारण देहादिक हुये। कुम्भज बोले, हे राजन्! ये देहादिक मिथ्याभ्रमसे हुये हैं; इनका कारण तो कोई नहीं? राजा बोले, हे देवपुत्र! देहका कारण तो प्रत्यक्ष है क्योंकि, खाता पिता है पितासे इसकी उत्पत्ति हुई है और प्रत्यक्ष कार्य्य करता दृष्टि आताहै; आप कैसे कहते हैं कि, कारणविनाहै और मिथ्याहै? कुम्भज बोले, हे राजन्! पिताका कारण कौनहै? पिताभी मिथ्याहै। जैसे स्वप्न में पिता और पुत्र देखिये सो दोनों मिथ्या हैं। इससे कह पिताका कारण क्या है? राजा बोले, हे भगवन्! पुत्रका कारण पिता और पिताका कारण पितामह है; इसीप्रकार परम्परासे सबका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष क्योंकि, सबकी उत्पत्ति ब्रह्माजीसे हुई है। कुम्भज बोले, हे राजन्! ब्रह्मासे आदि काष्ठपर्यंत सर्वसृष्टि सङ्कल्पकी रची है और देहभी भ्रम करके भासता है। जैसे मृगतृष्णाका जल और सीपीमें रूपा भासता है तैसेही आत्मा में देह भासताहै। जैसे आकाश में दो चंद्रमा भ्रम से दीखते हैं तैसेही आत्मामें यह संसार भ्रम से भासता है। जो तू कहे कि, क्रिया कैसे दृष्टि आती है तो सुन। जैसे कोई कहे कि, बन्ध्याके पुत्रको भूषण पहरायेहैं; तो जो बन्ध्याके पुत्रही नहीं तो भूषण किसने पहिरे? अथवा स्वप्नमें सब क्रिया भ्रममात्र होती हैं; तैसेही यह संसार तेरे भ्रम में है। जब भ्रम निवृत्त होगा तब केवल आत्माही भासेगा। हे राजन्! जैसे तू अपनादेह जानताहै तैसेही ब्रह्माको भी जान। ब्रह्माका कारण कौन है? इससे इस भ्रमसे जाग कि, तेरा भ्रम नष्ट होजावे। राजा बोले, हे भगवन्! मैं अब जागाहूं और मेरा भ्रम नष्ट भया है। मैंने यह संसार अब मिथ्याजाना है कि, केवल संकल्पमात्र है। जो कुछ दृश्य है सो मिथ्या है और एक आत्माही मेरे निश्चय में सत् हुआ है। हे भगवन्! ब्रह्माका कारण भी ब्रह्म है और वह अद्वैत अविनाशी और सर्वात्मा है; ब्रह्माका कारण यह हुआ। कुम्भज बोले, हे राजन्! कारण और कार्य्य द्वैतमें होते हैं सो असत् हैं क्योंकि; इस कारण का देश, वस्तु और कालसे अन्त होजाता है और परिणामी होता है जो वस्तु परिणामी हो सो मिथ्या है। हे राजन्! आत्मा अद्वैत है; जिसमें न एक कहना है; न द्वैत कहना है; न वह भोगता है, न भोग है; न कर्म्म है; न अद्वैत है। जो वह स्वरूप से परिणाम को नहीं प्राप्त होता और सर्वात्मा है; जो सर्व्व देश और सर्व्वकालभी है; जो सर्व्व वस्तुमें पूर्ण और अद्वैतहै और जो अद्वैतहै तो कारण कार्य्य किसकाहो? कारण कार्य्य का सम्बन्ध द्वैतमें होता है और परिणामी होता है और जिसमें देश काल का अन्तहै सो अद्वैत आत्मा है। उसमें न कोई देशहै, न काल

है और न कोई वस्तु है; वह केवल चिन्मात्रपद है । हे राजन् ! मैं जानताहूं कि, तू जाग्रत् होगा क्योंकि, भ्रम तेरा नष्ट होता जाता है । जैसे बरफकी पुतली सूर्य्य की किरणोंसे क्षीण होजाती है तैसेही तेरा अज्ञान नष्ट होताजाता है अज्ञानके नष्टहुये से तू आत्माही होगा । तू अपने प्रत्येक चेतनस्वरूपसे स्थित हो और देख कि, ब्रह्मा आदिक सर्व्व परमात्माका किंचन हैं । परमात्माही ऐसे होकर स्थित हुआ है और जो दृष्टि पड़ताहै उस सर्व्वका अपना आप आत्मा है । जब जागेगा तो जाने; जागे विना नहीं जानसक्ता । राजाबोला, हे भगवन् ! तुम्हारी कृपासे अब मैं जागाहूं और जानताहूं कि, मेरास्वरूप आत्मा है और मैं निर्मलहूं । अब मेरा मुझको नमस्कार है । एक मैंहीहूं; मेरे से भिन्न कुछ नहीं और मैंने आपको जानाहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजविश्रान्तिवर्णनन्नामचतुः सप्ततितमस्सर्गः ७४ ॥

राजा ने पूछा, हे भगवन् ! आप कैसे कहतेहैं कि, ब्रह्माका कारण कोई नहीं ? आत्मा ऐसा अनन्त, अच्युत, अव्यक्त और अद्वैत ईश्वरहै जो परमाणुका विषय नहीं और परमब्रह्म तो ब्रह्माका कारण है ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! तूही कहता है कि, आत्मा अनन्त है । जो अनन्त है उसको देश, काल और वस्तुका परिच्छेद नहीं होता जो सर्व्वदेश, सर्व्वकाल और सर्व्ववस्तुमें पूर्ण है सो कारण कार्य्य किसका हो ? कारण तब हो जब प्रथम द्वैतहो सो आत्मा अद्वैत है और कारण उसको कहते हैं जो कार्य्य से पूर्वहो और पीछे भी वही हो—जैसे घटके आदि मृत्तिका है और अन्त भी मृत्तिका होती है; वह कारण कहाता है पर आत्मा में न आदि है, न अन्त है । वह तो आत्मा अनन्त है । कारण तब होता है जब परिणाम होता है सो आत्मा अच्युतहै; अपने स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा और भोक्ताभी द्वैत से होताहै सो आत्मा अद्वैतहै । भोग और भोक्ता दोनों नहीं और आत्मा में कर्मभी नहीं । आत्मा से आदि कौन है जिससे आत्मासिद्धिहो ? वह किसीका कार्य्यभी नहीं क्योंकि; कार्य्य इन्द्रियोंका विषय होताहै सो आत्मा अव्यक्त है और जो कार्य्य होताहै तो उसका कारण भी होता है सो आत्मा सर्वका आदि है उसका कारण कौनहो ? जो सर्वात्माहै और स्वच्छ आकाशवत् निर्मलहै सोही तेरा स्वरूपहै । राजाने पूछा, हे भगवन् ! बड़ा आश्चर्य है ! मैंने जानाहै कि; आत्मा अद्वैतहै वह न किसीका कारणहै, न कार्यहै और अनुभव रूप है सो मैं हूं । मैं निर्मलहूं; विद्या—अविद्याके कार्य्यसे रहितहूं; निर्वाणपदहूं और निर्विकल्पहूं; मेरे में फुरना कोई नहीं और मैंनहीं और मैंहीहूं । मेरा मुझकोनमस्कारहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजविश्रान्तिवर्णनन्नाम पंचसप्ततितमस्सर्गः ७५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! राजा शिखरध्वज कुम्भजमुनिके उपदेशसे प्रबोध हो और ऐसे वचन कहकर केवल निर्वाणपदमें स्थितहुआ। जब निर्विकल्प और फुरनेसे रहितहो एक मुहूर्त्तपर्यंत स्थित रहा—जैसे वायुसे रहित दीपक स्थित होता है—तब कुम्भजने उसे जगाकर कहा; हे राजन् ! तेरासमाधिसे क्याहै और उत्थानसे क्याहै ? तू तो केवल आत्ममात्र है। मैं जानताहूं कि, तू परमज्ञान से शोभित हुआहै। जैसे डब्बे में रत्नहोता है तो उसका प्रकाश बाहर नहीं दृष्टिआता और जब डब्बेसे निकालकर देखिये तब बड़ा प्रकाश भासताहै; तैसेही अविद्यारूपी डब्बे से तू निकला है और परमज्ञान से शोभितहुआ है। हे राजन् ! अब तेरे में न कोई क्षोभहै और न कोई उपाधि है। अब तू संसार के राग द्वेष से रहित, शान्तरूप जीवन्मुक्त होकर विचार से विचर तो तुझे कोई उपाधि न लगेगी। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब इसप्रकार कुम्भज मुनि ने कहा तब राजा शान्तरूप होगया और बोला; हे भगवन् ! जो कुछ आप ने आज्ञाकीहै उसे मैंने भली प्रकार जाना पर अभी एक प्रश्न और है उसका उत्तर कृपा करके कहो कि, मैं दृढ़ स्थितहोके रहूं। हे भगवन् ! आत्मा तो एकहै और शुद्ध और केवल आकाशरूप चेतनमात्रहै उसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटी कहांसे उपजी? कुम्भजबोले, हे राजन् ! जो कुछ स्थावर–जंगम संसार है वह महाप्रलय पर्यन्त है। जब महाप्रलयहोता है तब केवल आत्माही शेषरहता है जो स्वच्छ और निर्मल है; तहां न तेजहोताहै; न अन्धकारहै; वह केवल अपने आप स्वभावमें स्थित होता है। जो कुछ आनन्द है उसका अधिष्ठान आत्माहै और सत् असत्से रहितहै। जिसको बुद्धि 'इदं' करके कहतीहै उसे सत् कहिये और जिसको नहींकहती उसे असत् कहिये। वह सत् असत्से रहित और सर्व लक्ष्मी से संयुक्त है और अपना स्वभावमात्र है। उसमें कोई उपाधि नहीं और सर्वदा प्रकाशवान् और उदयरूपहै। यह संसार उस परमात्माका चमत्कारहै। जैसे रत्नका चमत्कार लाटहोतीहै तैसेही ब्रह्मका चमत्कार यह संसार है इससे ब्रह्मरूपहै। जो ब्रह्मसे भिन्नहै उसे मिथ्याभ्रमही जानना। जो कुछ आकार भासतेहैं सो असत्हैं। हे राजन् ! जो सब आकार मिथ्याहैं तो तेरी संवेदन भी मिथ्याहै। आत्मा में अहंत्वंका कोई उत्थान नहीं; वह केवल ज्ञानमात्रहै; केवल सत् और आनन्दरूप है और अविद्या तमसे रहित प्रकाशरूप है। वह प्रमाणों से जाना नहींजाता क्योंकि; इन्द्रियोंका विषय नहीं और मनकी चिंतनासे रहितहै क्योंकि; सर्वका द्रष्टा है और सर्व का अपना आप अनुभवरूप है। हे राजन् ! तू उसी में स्थितहो। आत्मा, बड़ेसे बड़ाहै; सूक्ष्मसे सूक्ष्महै और स्थूलसे स्थूल है जिसमें आकाशभी किसी और अणुसा भासता है। उसमें ब्रह्माण्डभी तृण समानहै; वह अपने आपसे पूर्ण और धूम है; उससे किंचित्भी उत्पन्न नहींहुआ और नानाप्रकार करके

स्थितहुआहै। फुरने से जगत् भासता है और फुरने के निवृत्तहुये केवल शुद्ध आत्मा है। राजाने पूछा, हे भगवन्! आप कहते हैं कि, संसार फुरनेमात्रहै और आत्मा शुद्ध शान्तिरूप और निर्विकल्पहै तो उसमें संवेदन फुरना कहां से आया है? कुम्भजबोले, हे राजन्! फुरनाभी आत्माका चमत्कार है जैसे पवन में स्पन्द और निःस्पन्द दोनों शक्ति हैं; जब फुरताहै तब चलना प्रकट होताहै और जब ठहरजाताहै तब प्रकट नहीं होता; तैसेही संवेदन जब फुरताहै तब नानाप्रकारहोते हैं और जगत् भासताहै; और जब फुरना मिटजाता है तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है। हे राजन्! आत्मा सत्ता मात्रहै और संसारभी सत्तामात्र आत्माही है। जो सम्यक् दृष्टि से देखिये तो आत्माही भासता है और जो असम्यक् दृष्टिसे देखिये तो दुःखदायक जगत् भासताहै। जिसके मन में संसारभावना है उसको दुःखदायक भासता है और जिसके हृदय में आत्म-भावना होती है उसको आत्माही भासता है और सुखरूप होता है क्योंकि; आत्मा अपने आपका नामहै। जिसने जगत् को अपना आप जानाहै उसको दुःख कहां? हे राजन्! यह संसार भावनामात्रहै; जैसी भावना होती है तैसाहीहो भासताहै। जिसकी भावना विषमें अमृतकी होती है उसे विष भी अमृत होजाताहै और जिसकी भावना अमृत में विषकी होती है तो उसे अमृत भी विष होजाता है क्योंकि; संसार भावना मात्रहै। जैसी भावना दृढ़करताहै यद्यपि आगे वह वस्तु न हो तौभी होजातीहै; इससे संसार भावनामात्र मिथ्या है। ज्ञानवान्को दुःख कदाचित् नहींदेता और अज्ञानी को सुख कदाचित् नहीं देता। हे राजन्! अहंता और संवेदन; चित्त और चैत्य ये भी आत्माही की संज्ञाहैं। जैसे आकाश, शून्य, नभ; ये सर्वसंज्ञा आकाशहीकी हैं तैसेही वह सर्वसंज्ञा आत्माकी हैं आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। 'अहं' 'त्वं' सर्व आत्मा के आश्रय हैं। जैसे भूषण सुवर्ण के आश्रय होते हैं परन्तु सुवर्ण से भूषण तब होताहै जब कि अपने पूर्व्वरूपको त्यागता है; आत्मा तैसेभी नहीं वह केवल एकरस है और अपने आप में स्थितहै कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्तहोता। यह संवेदन आत्माका चमत्कारहै और आत्मा सत् असत् से परे है। जो कुछ दृश्य है सो आत्मामें नहीं चित्तसे रचाहै; इससे परे है। हे राजन्! वह कारण-कार्य किसकाहो? कारण-कार्य तब होताहै जब दृश्य होता है सो आत्मा किसीका विषय नहीं तो कारण कार्य किसकाहो। विश्वके आदि भी आत्माहै; अन्तभी वहीहै और मध्यमेंभी आत्माहीहै। जो कुछ और भासताहै सो भ्रम मात्र है-जैसे आकाश में जो घर, मण्डल और पुर दृष्टि आते हैं उनकी आदि भी आकाश है; अन्तभी आकाश है और मध्यभी आकाश है और जो घर, मण्डल, पुर भासते हैं। सो मिथ्याहैं जैसे अग्नि नानाप्रकार दृष्टिआती है सो सब मिथ्या आकार हैं एक अग्निही है; तैसेही सबके आदि, मध्य और अन्त एक आत्माही सार है।

हे राजन्! जलमें भी देश काल होता है क्योंकि, दृश्य है और इन्द्रियोंका विषय है जैसे कि; यह तरंग अमुक स्थान से उठा और अमुक स्थानमें लीन हुआ यहां स्थान देश हुआ और उपजकर इतना काल रहा सो काल हुआ और जिसको इन्द्रियां विषय न करसकें उसमें देश काल कैसे हो ? राजा बोले, हे भगवन्! अब मैंने भलीप्रकार जाना है कि, आत्मा चिन्मात्र है और ज्ञानइन्द्रियों और कर्म्मइन्द्रियों से परे है। देश, काल और इन्द्रियां मनसे जानी जाती हैं कि, अमुक देशहै और अमुक कालहै पर जहां इन्द्रियां और मनही न हो वहां देश काल कहां है ? कुम्भज बोले, हे राजन्! जो तूने ऐसे जाना तो तू जागा है। आत्मा में देश, काल कोई नहीं। यह मन और इन्द्रियों से जानता है कि, यह देशहै और यह कालहै। जो इनसे रहितहोकर देखे तो आत्माही भासे और जो इनसहित देखे तो संसारही दृष्टिआवेगा। हे राजन्! इनसे रहित होकर देख, तुझमें कुछ संसार न रहै कि, अमुक प्रश्नकिया और अब अमुक प्रश्न करूं। संसार तबतक होता है जबतक इनका संयोग अपने साथ होता है। हे राजन्! ब्रह्मसे ब्रह्मको देख और पूर्णको देख कि, तू भी पूर्णहो। जब तू पूर्णहोगा तब सर्वओर आपकोही जानेगा, सर्वसंज्ञा तेरीही होगी और उस निर्वाच्यपदको प्राप्त होगा जहां इन्द्रियों की गम नहीं, केवल आकाशरूपहै। जैसे आकाश अपनी शून्यता से पूर्णहै तैसेही तू भी अपने चेतन स्वभावसे आप पूर्ण होगा। जब तू मन सहित षट् इन्द्रियों से रहित होकर देखेगा तब अपने आपको फिर यदि इन सहित भी देखेगा तौ भी तुझे चेतन आत्माही भासेगा और संसार का शब्द और अर्थ तेरे हृदय से उठजावेगा–शब्द यह कि, संसार है और अर्थ यह कि, उसको सत् जानना और केवल आकाशरूप आत्माही भासेगा। संसार संवेदनमात्र है और संवेदन चित्त शक्तिका चमत्कार है। यही चित्त शक्ति ब्रह्माहोकर स्थित हुई है और संसार देखने लगी है। जब यह शक्ति अन्तर्मुख होती है तब आत्माही दृष्टि आता है जो सदा एक रसहै और जब बहिर्मुख होती है तब संसार दृष्टिआता है। जैसी जीव भावना करता है तैसेही आगे दृष्टिआता है; जब संसार की भावना होती है तब संसारही भासता है और जब आत्मा की भावना होती है तब आत्माही भासताहै। आत्मा सदा एकरस और असंसारी है इससे; हे राजन्! तू आत्माकी भावनाकर कि, तुझे आत्माही भासे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधनंनामषट्सप्ततितमस्सर्ग्गः ७६ ॥

कुम्भज बोले, हे राजन्! यह संसार जो तुझे भासता है सो आत्मा में नहीं। केवल शुद्ध आत्मा में जो अहं उत्थान है वही संसारहै पर अहं का वह चमत्कार न सत् है, न असत् है; न भीतर है, न बाहरहै; न शून्य है, न अशून्य है; केवल अपने आप में स्थित है। संसार का प्रध्वंसाभाव भी नहीं होता अर्थात् पहले हो और पीछे नाश

होजावे ऐसा नहीं होता। आत्मामें संसार उदय अस्त नहीं होता केवल अपने आपमें स्थित है उससे कुछ भिन्न नहीं। किन्तु आत्माको यह भी नहीं कह सक्ते कि; केवल अपने आपमें स्वाभाविक स्थितहै; उसमें वाणीकी गम नहीं। वाणी उसको कहते हैं जहां दूसरा होताहै पर जहां दूसरा न हो वहां वाणी क्या कहे। यह कहना भी तेरे उपदेशके निमित्त कहा है आत्मा में किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं। हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य्य हो। आत्मा तो शुद्ध, निर्विकार और प्रमाणों से रहित है। जो किसी लक्षणसे प्रमाण नहीं कियाजाता सो आकार होकर स्थितहुआहै और शांतरूप है। हे राजन्! ऐसा आत्मा किसका कारण कार्य्यहो? कारण कार्य्य तब होताहै जब प्रथम परिणाम और क्षोभको प्राप्तहोता है पर आत्मा तो शान्तरूप है और कारण तबहो जब क्रियासे कार्य्यको उत्पन्नकरे सो आत्मा अक्रिय है अर्थात् क्रियासे रहितहै। कारणको कार्य्य से जानाजाताहै पर आत्मा चिह्नसे रहितहै और प्रमाणों का विषय नहीं इस से आत्मा कारण कार्य्य किसी का नहीं और आत्माको कारण कार्य्य मानने से मुझे आश्चर्य आता है। हे राजन्! जो वस्तु उपजती है सो नष्ट भी होती है और जो नष्ट होतीहै सो उपजती भी है पर आत्मा सबके आदिहै और अजन्मा और निर्विकारहै उसमें स्थित हो कि; तेरा संसार निवृत्त होजावे। यह संसार अज्ञान से भासताहै। जब तू स्वरूपमें स्थित होकर देखेगा तब न भासेगा; और ऐसे भी न भासेगा कि; आगे था अब निवृत्त हुआ है तब तो एकरस आत्माही भासेगा और केवल शून्य आकाश होजावेगा। संसार से रहित होनेको शून्य कहते हैं। चेतन स्वरूप नाना होकेभी वही है और एक भी वही है, शून्यहै और शून्यसे रहित भी वही है; द्वैतरूपभी वही है और अद्वैतरूप भी वही है; ऐसा भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजप्रथमबोधनंनाम सप्तसप्ततितमस्सर्गः ७७॥

कुम्भज बोले, हे राजन्! जो कुछ तू देखता है सो सब चेतन घन है उसमें 'अहं' 'त्वं' शब्द कोई नहीं। 'अहं' 'त्वं' शब्द प्रमादसे होते हैं; जब आत्मा में स्थित होकर देखोगे तब आत्मासे भिन्न कुछ न भासेगा तो 'अहं' 'त्वं' शब्द कहां भासे? हे राजन्! यह नानाप्रकार की संज्ञा चित्तने कल्पी है जब चित्त से रहित होगे तब नाना और एक कोई संज्ञा न रहेगी। हे राजन्! 'सर्वब्रह्महै'; यह वाक्य वेदकासारहै। जब इस वाक्य में दृढ़भावना बुद्धिहोगे तब एकरस आत्माही दृष्टि आवेगा और चित्त नष्ट होजावेगा। जब चित्त नष्ट हुआ तब केवल महाशुद्ध आकाश की नाईं स्थित होकर निर्दुःख पद को प्राप्त होगे जो पद सर्वकी आदि है और सर्वदा मुक्तिरूपहै। राजा बोले, हे भगवन्! आपने कहा कि, चित्तके नष्ट हुयेसे कोई दुःख न रहेगा और चित्तके नष्ट होने

का उपाय भी आपने कहाहै परन्तु मैं भली भांति नहीं समझा; मेरे दृढ़होनेके निमित्त कृपा करके फिर कहिये कि; चित्त कैसे नष्ट होताहै? कुम्भज बोले, हे राजन्! यह चित्त न किसी काल काहै; न किसी को है और न यह देखताहै; चित्तहैही नहीं तो मैं तुझे क्या कहूं और जो चित्त तुझको दृष्टि आता है तो तू आत्माही जान; आत्मासे भिन्न कुछ वस्तु नहीं। हे राजन्! महासर्ग के आदि और अन्त कोई सृष्टि नहीं केवल आत्मा है और आत्मा में नहीं कहसक्ते मैंने तेरे जनाने के निमित्त कही है। मध्य जो कुछ दृष्टि आताहै सो अज्ञानीकी दृष्टिहै आत्मामें सृष्टि कोई नहीं और आत्मा किसी का उपादान कारण और निमित्त कारण भी नहीं क्योंकि; अच्युतहै–परिणामको नहीं प्राप्त होता। उपादानभी परिणाम से होताहै आत्मा शुद्ध निराकार आकाशरूपहै सो कारण कार्य्य किसकाहो? चित्त भी वासनारूप है और वासना तब होती है जब वास होती है। जो आगे सृष्टि नहीं तो वासना किसकी फुरे और चित्तमें संसारकी स्थिति कैसेहो? इस से चित्त कुछ नहीं। यह विश्व आत्मा का चमत्कारहै और सृष्टि आत्मा में कोई नहीं; वह निरालम्ब केवल अपने आपमें स्थित है। हे राजन्! संसारभी नहीं हुआ और चित्तभी नहीं हुआ तो 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्दभी आत्मामें कोई नहीं। ये शब्द तब होते हैं जब चित्त होता है और चित्त तबतक है जबतक वासना है। जब निर्वासनिक पद को प्राप्त हुआ तब कोई कल्पना नहीं रहती। हे राजन्! यह संसार महाप्रलयमें नष्ट होजावेगा और सत्–असत् संसार कुछ न रहेगा; एक आत्माही शेष रहेगा जो निराकार और शुद्ध है। जबतक महाप्रलय नहीं होता तबतक संसार है। महाप्रलय क्या है सोभी सुनो। एकक्षण आत्माके साक्षात्कार होनेसे सृष्टिका शेषभी न रहेगा। ज्ञानही महाप्रलय है और अब जो दृष्टि आता है सो मिथ्याहै। यह क्रियाभी मिथ्या है और इसका भान होनाभी मिथ्या है। जैसे स्वप्नेकी क्रियाभी मिथ्या है और उसका भान होनाभी मिथ्या है, तैसेही जाग्रत् संसार स्वप्नमात्रहै और कारण विनाही भासता है। जो कारणविना है सो मिथ्याहै इसका कारण अज्ञानही है कि, अपना न जानना, जब आपको जाना तब अपना आपही भासेगा। जैसे स्वप्नेमें अपने न जाननेसे भिन्नआकार भासते हैं पर जब जगा तब अपना आपही जानता है कि, मैंहीथा। हे राजन्! मुझे तो एक आत्माही दृष्टिआता है; आत्मा से भिन्न संसार कोई नहीं भासता। इस संसारकी स्थिति मानना मूर्खता है, यह सदा अचलरूप है। वेदशास्त्र और लोकभी कहता है कि, संसार मिथ्या है और आपभी जानताहै कि, नष्ट होजाता दृष्टि आता है तो फिर उसमें आस्था करनी मूर्खता है। आत्मा में संसार नाना अनाना कोई नहीं; आत्मा सर्वदा अपने आपमें स्थित है और शुद्ध और अच्युत ज्योंकात्यों है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधनन्नामाष्टसप्ततितमस्सर्गः ७८॥

शिखरध्वज बोले; हे भगवन् ! अब मेरा मोह नष्ट हुआ है और अपना आप मैंने जानाहै। तुम्हारी कृपा से मेरा संसारभ्रम निवृत्त हुआहै और शोकसमुद्र को अब में तरकर शान्तपदको प्राप्तहुआहूं। 'अहं' 'त्वं' शब्द मेरे में कोई नहीं, अब मैं निर्वाणपद को प्राप्तहुआहूं और अच्युत चिन्मात्र केवलहूं और शून्यहूं। कुम्भज बोले, हे राजन् ! आत्मा शुद्ध और आकाशकी नाईं निर्मल है; बल्कि, आकाशसे भी अति निर्मलहै पर उसमें अहंमल अहंमोहसे उपजीहै और मोह अविचारका नाम है। जब विचार होता तब कोई अहं नहीं पायाजाता। यह विश्व संवेदन में है और संवेदन सर्व के आदि होकर स्थितहुई है। जब संवेदन अन्तर्मुख होती है तब सर्व विश्व लीन होजाती हैं; संवेदनही में बन्ध और मुक्ति है; जब बहिर्मुख होती है तब बन्ध है और जब अन्तर्मुख होती है तब मोक्ष है। जिसने मन और इन्द्रियों से रहित होकर अपना आप देखा है उसको ज्योंका त्यों दृष्टि आताहै—और जो मोह संयुक्त देखता है उसको विपर्यय भासता है। जैसे सम्यक् दृष्टिसे भूषण में सुवर्ण भासता है और जब भूषण के आकार मिटजाते हैं तब भी सुवर्णही है और मूर्ख को सोने में भूषण दृष्टि आते हैं। चिरकाल के अभ्याससे जो बुद्धि इनमें फुरती है तो भी प्रारब्ध वेग पर्यन्त चेष्टा होती है तब चेष्टामें भी आत्माही दृष्टि आताहै—इससे केवल आत्माही का किञ्चन होता है। जैसे सोने में भूषण आकाश में नीलता और वायुमें स्पन्द है, तैसेही आत्मामें सृष्टि है। जैसे आकाशमें नीलता देखनेमात्र है वास्तव कुछ नहीं; तैसेही आत्मामें सृष्टि वास्तव कुछ नहीं, भ्रान्तिमात्रही है। जब भ्रान्ति निवृत्त होती है तब जगत्का शब्द अर्थ सर्वओर से शान्तहोजाताहै और शब्द अर्थ की भावनासे जो चेष्टा होती है उससे जब अभिलाषा निवृत्त होजाती है तब कोई दुःख नहीं होता। इसी को मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं। जब निर्वाणपदका ऐसा निश्चयहोता है तब शान्तरूप शून्यपदको पाकर स्थितहोताहै। हे राजन् ! अहंका उत्थानहोनाही बन्धनहै और अहं के निर्वाण होनेसेही मुक्तिहै। अहंकेहोनेसे संसार का दुःखहै; जबतक अहंका उत्थानहै तबतक संसारहै और जबतक संसारहै तबतक अहंकाउत्थान है। जब संसारकीसत्ता जातीरहेगी तब अहंफुरना भी नष्टहोजावेगा और जब फुरना नष्टहुआ तब अहं भी नष्ट होजावेगा। जब अहं नष्टहुआ तब केवल शुद्ध आत्माही शेष रहेगा और उसीका भान होगा। तब अहंब्रह्मका उत्थान भी शान्त होजावेगा और चेतनमात्रही रहेगा। हे राजन् ! जिसको सर्वब्रह्मकी बुद्धिहुई है उसको संसारकी बुद्धि नहीं रहती और जिसको संसार बुद्धि है उसको ब्रह्मबुद्धि नहीं होती। जैसी २ भावना दृढ़होती है तैसाही आगे भासता है; जिसको ब्रह्मभावना दृढ़ होती है वह ब्रह्मरूप होजाता है और जिसको जगत्की भावना दृढ़ होती है उसको जगतही भासता है। हे राजन् ! तू अब जागा

है और ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध, निर्मल और प्रत्यक् है और जो शब्द और लक्षणविषय नहीं और इन्द्रियों का विषय भी नहीं। हे राजन्! ऐसा आत्मा जो केवल अद्वैत है और विश्व जिसका चमत्कार है वह कारण-कार्य किसका हो जैसे समुद्र में नानाप्रकार के तरङ्ग पवन से उपजते हैं तो भी समुद्र से भिन्न नहीं, तैसेही आत्मा में नानाप्रकारकी विश्व संवेदन फुरने से उपजती है तो भी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं-फुरने मात्र है। जैसे थम्भे में मनोराज से कोई पुरुष पुतलियां कल्पताहै और नानाप्रकारकी चेष्टा करता है पर उसकी चेष्टा तबतक है जबतक संकल्प है, और जब सङ्कल्प निवृत्त हुआ तब शून्य थम्भाही रहजाता है जैसा आगे था क्योंकि शिल्पी की संवेदन में सृष्टि थी; तैसेही यह संसार संकल्पमात्र है, जब संकल्प अन्तर्मुख होता है तब संसार की सत्ता जाती रहती है। हे राजन्! संसारसत्ता इस कारण जातीरहती है कि, आगेही असत् है। जो वस्तु सत् होती है उसका कदाचित् नाश नहीं होता। इससे संसार केवल संवेदन कल्पी है। जैसे एक शिला में पुरुष पुतलियां कल्पताहै तो शिलामें तो पुतली कोई नहीं; ज्योंकी त्यों शिलाही है; तैसेही फुरने से आकार दृष्ट आते हैं। जब चित्त फुरने से रहित होगा तब आत्मा को अपना आप जानोगे और अशब्दपदको प्राप्तहोगे जो शान्तपद शुद्ध आकाशरूप है। हे राजन्! सर्व शब्द और सर्वकी अभावनाही ब्रह्मअर्थ है; जहां कोई कल्पना नहीं। जब सम्यक् दृष्टिहोती है तब शेष आत्माही भासता है और यह भावना भी उठजाती है कि, यह संसार है और यह ब्रह्महै; तब केवल ज्ञेयमात्रही होरहता है-अर्थात् शिलाकी नाईं जो ज्ञानहै ऐसा शेष रहता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधवर्णनन्नामनवसप्ततितमस्सर्गः ७९॥

राजा बोले, हे भगवन्! जैसे आपकहते हैं सो सत्यहै और मैं भी ऐसेही जानताहूं कि, संसार आत्माकाकार्यहै और आत्मा कारण है। जो आत्माकाकार्यहुआ तो आत्मस्वरूप हुआ आत्मासे भिन्ननहीं। कुम्भज बोले, हे राजन्! आत्मा चेतनमात्र है, कारण कार्य किसी का नहीं। आत्मा अप्रत्यक् और अक्रिय; अच्युत और निरस है और जो अशब्दपदहै वह कारण कार्य किसकाहो? कारण को कार्यद्वारा जानाजाता है पर आत्मा किसीप्रमाणका विषयनहीं, अप्रत्यक् और अरूपहै। कारण तब होता है जब क्रियाहोती है पर वह न किसी का कारण-कार्यहै और न कर्म्म है केवल ज्योंका त्यों अपने आप में स्थित है और चेतनमात्र शिवरूप शुद्धहै। यह विश्व भी चेतनमात्रहै। जैसे आकाश में आकाश स्थितहै तैसेही आत्मा में विश्व आत्मरूप स्थित है। ऐसा विश्व चेतनमात्रहै पर उसमें असम्यक्दर्शी अज्ञान से नानाप्रकार कल्पता है। वस्तु जो परमात्माहै तिसके प्रमाद से वासनारूप चित्तसे विश्वको कल्पताहै सो विश्व

शब्दमात्रहै अर्थात् कुछ नहीं । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा; समुद्र में तरंग; मृगतृष्णा में जल और परछाहीं में वेताल भासता है तैसेही असम्यक्दर्शी आत्मा में विश्व कल्पताहै और सम्यक्दर्शी ऐसे जानताहै कि, आत्मा शुद्ध, अजन्मा, अविनाशी और परम निरंजन है। हे राजन्! जब तू सम्यक्दृष्टि से देखेगा तब संसार का प्रध्वंसाभाव भी न देखेगा क्योंकि; चित्तका कल्पाहुआहै और चित्त अज्ञानसे उपजाहै। स्वरूपमें न चित्तहै, न अज्ञान है और न संसारहै; केवल अद्वैतमात्रहै; वहां एक कहां और द्वैत कहां, वह तो केवलमात्रपदहै। जब अज्ञान नष्ट होगा तब 'अहं' 'त्वं' चित्त फुरना सब नष्ट होजावेगा और फिर भ्रम दृष्टि न आवेगा। हे राजन्! आत्मासे भिन्न जो कुछ भासताहै सो अज्ञान से भासताहै और विचार कियेसे नहीं रहता । राजा बोले, हे भगवन्! अज्ञान क्याहै और कैसे नाश होताहै सो कहिये? कुम्भज बोले, हे राजन्! एक ज्ञानहै और दूसरा अज्ञानहै। ज्ञान यह कि, पदार्थ को प्रत्यक्ष जानना और अज्ञान यह कि, पदार्थोंको न जानना। एक ज्ञान भी अज्ञानहै सो भी सुन। मृगतृष्णाका जल देखकर आस्था करनी और रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा देखना और उसको सत्य जानना यह ज्ञान भी अज्ञान है क्योंकि; सम्यक्दर्शी होकर नहीं देखता—यह दृष्टान्त है और एक दृष्टान्त यह भी है कि, शुद्ध आत्मा निराकार और अच्युत है उसमें मैंहूं और मेरा अमुक वर्णाश्रम है और नानाप्रकारका विश्वहै। यह ज्ञान भी अज्ञान और मूर्खता है। हे राजन्! न कोई जन्मता है और न कोई मृतक होताहै; ज्योंकात्यों आत्माही स्थितहै; उसमें जन्म मरण आदिक विकार देखना ज्ञान भी अज्ञानहै हे राजन्! जैसे कोई ब्राह्मणहो और ऊंचीबांहकरके कहे कि, मैं शूद्रहूं और मुझे वेदका अधिकार नहीं; और जैसे कोई पुरुष कहे कि, मैं मुआहूं और उसको मैं जानताहूं; तैसेही आपको कुछ वर्णाश्रमका अभिमान लेकर कहना मूर्खता है क्योंकि; यह असम्यक् दर्शन है। जब ज्योंकात्यों जाने तब दुःखी न हो। हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यक् दर्शनसे नष्ट होजावे सो अज्ञानही है। जैसे सूर्य किरणों में जलबुद्धि होती है और किरण के ज्ञान से जलका ज्ञान नष्ट होजाताहै तो वह जलका जानना अज्ञानताही थी और जैसे जेवरी में सर्प जानना जेवरीके ज्ञानसे नष्ट होजाता है यह भी अज्ञान है और सम्यक् दर्शनसे नष्ट होताहै। जब ऐसे सम्यक्दर्शी होगे तब अध्यात्मिक तापोंसे निवृत्त होकर शुद्धहोगे। आत्मा जो अज, शान्तरूप, सत्–असत् है उसमें भिन्न कुछ नहीं और वह प्रकाशरूप है । ऐसा तू है। हे राजन्! अज्ञान भी और कोई नहीं; इसचित्त के उदय होनेकाही नाम अज्ञान है। अज्ञानका कारण चित्त है। जो पदार्थ चित्तसे उदयहुआ है सो नष्ट भी चित्तसेही होता है; इससे तू चित्तसे चित्तको नाशकर। जैसे अग्नि पवनसे उपजती है और पवनही से शान्तहोती है तैसेही

चित्तसे चित्तको नष्टकर। हे राजन्! न तूहै, न मैंहूं, न इन्द्रियहैं, न संसारहै और न यह जगत् है केवल शुद्धआत्माहै। हेराजन्! जो चित्तही नहो तो चित्तकाकार्य विश्व कहांहो? यह अज्ञानीको भासता है कि, चित्त है और विश्व है; आत्मा केवल अपने आपमें स्थितहै। हे राजन्! चित्तका उदय होना अज्ञानसे है। जब अज्ञान नष्टहोता है तब चित्त और 'अहं' 'त्वं' सर्व नष्ट होजाते हैं। हेराजन्! तू शुद्धआत्मा; एक; प्रकाशरूप; अच्युत और निरन्तर है; देह इन्द्रियादिकरूप होकर भी तुही स्थित हुआ है और इच्छा अनिच्छा भी तूहीहै। जैसे चन्द्रमाकी किरणें चन्द्रमा से भिन्न नहीं, तैसेही तूहै। तू निर्विकल्प है और तुझमें कुछ स्फूर्त्तिनहीं; तू केवल ज्योंका त्यों स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थोपदेशोनामअशीतितमस्सर्गः ८०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब ऐसे कुम्भजमुनिने कहा तब शिखरध्वज सुनके शान्तिको प्राप्तहुआ और नेत्रमूंदके सब अंगोंकी चेष्टासे रहित हुआ। जैसे शिलापर पुतली लिखीहो तैसेही स्थितहो एकमुहूर्त्त पर्यंत वह निर्विकल्प स्थितरहा और फिर उठा तब कुम्भजने कहा; हे राजन्! आत्मा जो निर्विकल्प है उस निर्विकल्प शिलामें तूने शयन कियाहै और ज्ञेय जो जानने योग्यहै उसे तूने जाना है। अब अज्ञान तेरा नष्ट हुआ अथवा नहीं और तू शान्तिको प्राप्तहुआ अथवा नहीं सो कह? राजा बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपाने मुझे उत्तमपदको प्राप्त किया है। हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताओंके सङ्ग से जैसा अमृत मिलता है तैसा क्षीरसमुद्रसे भी नहींमिलता और जो देवताओं से भी नहीं मिलता। तुम्हारी कृपा से मैंने ऐसे अमृत को पाया है जिसका आदि अन्त कोई नहीं और जो अनंत और अमृतसार है। अब मेरे सबदुःख नष्टहोगये हैं और मैं जगाहूं। अब मैंने अपने आपको जानाहै कि, मैं आत्माहूं; मेरेसाथ चित्त कोई नहीं और मैं केवल अपने आपमें स्थितहूं। अबमुझे कोई इच्छानहीं मैंने अपने स्वभावको पाया है और सबके आदिपदको प्राप्तहुआहूं। जिसमें कोई क्षोभ नहीं ऐसे निर्विकल्पपदको मैं प्राप्तहुआहूं। हे भगवन्! ऐसा मेरा अपना आप है जिससे सब प्रकाशतेहैं। उसके जानेविना मैंने कोटिजन्म पायेथे। अब मेरेदुःख नाशहुये हैं और तुम्हारी कृपा से एकक्षणमें जानाहै। आगे भी श्रवणकियाथा पर क्या कारण है जो आगे न जाना और अब जाना? कुम्भजबोले, हे राजन्! अब तेरे कषाय परिपक्व हुये हैं। जैसे फलपरिपक्व होताहै तब यत्न विनाही वृक्षसे गिरपड़ताहै तैसेही अब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट होगया है। जब अन्तःकरण मलिन होता है तब सन्तों के वचन नहीं लागते और जब अन्तःकरण शुद्ध होता है तब सन्तों के वचन लागते हैं। जैसे कोमल कमलकी जड़को बाणलगे तो शीघ्रही बेध जाता है तैसेही शुद्ध अन्तःकरण में उपदेश शीघ्रही प्रवेश करता है। हे राजन्! अब तेरी भाग

वासना नष्ट हुई है और स्वरूप जानने की तेरी इच्छा हुई है; इससे तू जगा है । हे राजन् ! मैंने उपदेश तब किया है जब तेरा अन्तःकरण शुद्ध हुआ है । प्रतिबिम्ब भी वहां पड़ता है जहां निर्मल ठौर होताहै । जैसे श्वेतवस्त्रपर केशरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है और रङ्ग भी चटक होता है, तैसेही शुद्ध अन्तःकरण में सन्तों के वचन शीघ्रही प्रवेश करते हैं और शोभा पाते हैं । हे राजन् ! जबतक अन्तःकरण मलिन होता है तबतक चाहे जितना उपदेश कीजिये स्थित नहीं होता । जब भोगसे वैराग्य होताहै तब वासना कोई नहीं रहती केवल आत्मपदकी इच्छाहोती है और तभी स्वरूपका साक्षात्कार होताहै । हे राजन् ! अब तेरा सर्वत्याग सिद्ध हुआ है और अज्ञान नष्ट हुआ है क्योंकि; और उपाधि कोई नहीं रही । चित्तही बड़ी उपाधिहै; जब चित्त नष्ट हुआ तब कोई दुःखनहीं रहता । अब तू सुखसे विचर; तुझको दुःख, शोक और भय कोई नहीं अब तू शान्तपदको प्राप्तहुआ है । राजाने पूछा, हे भगवन् ! अज्ञानी को चित्त का सम्बन्ध है और ज्ञानवान् को चित्तका सम्बन्ध नहीं होता । जो स्वरूपमें स्थितहै वह चित्तबिना जीवन्मुक्ति क्रियामें कैसे वर्त्तता है ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! तू सत्य कहता है कि, ज्ञानीको चित्तका सम्बन्ध नहीं । जैसे पत्थरकी शिलामें अंगुरी नहीं होतीं तैसेही ज्ञानीको चित्तका सम्बन्धनहीं होता । हे राजन् ! चित्त वासनारूप है और वासना जन्म मरणका कारण है पर जीवन्मुक्तिकी वासनानहीं रहती । ज्ञानवान्का चित्त सत्य पदको प्राप्तहै और अज्ञानी चित्तमें बन्धायमानहै; इससे वह जन्मता भी है और मरता भी है । ज्ञानीका चित्त जो शान्तिमें स्थित है इससे उसको न बन्धहै; न मोक्षहै और वह प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है और सर्वात्माही देखता है । यद्यपि इन्द्रियों से वह चेष्टाभी करता है तौभी सर्व ब्रह्मही देखताहै और क्रिया करने में इस अभिमानसे रहित होता है कि, मैं कर्त्ताहूं और भोक्ताहूं । अज्ञानी आपको कर्त्ता मानता है । और उसको संसार सत्य भासता है इससे सङ्कल्प विकल्प कर्त्ता है । ज्ञानवान् को संसारकी सत्यता नहीं भासती; वह आपको अकर्त्ता, अभोक्ता देखता है और अभिलापसे रहित चेष्टाकरता है । जबतक चित्तका सम्बन्ध है तबतक जीव संसारको सत्यजानकर अपने में क्रिया देखता है पर जब चित्तही नष्ट होगया तब संसार और फुरना कहां रहे ? हे राजन् ! अब तूने चित्तका त्याग कियाहै इससे सर्वत्यागी हुआ है और आगे सर्वत्याग न किया था इससे तेरा अज्ञान न नष्ट हुआ था । अब तेरा अहंभाव दूरहुआ है । जब अज्ञान नष्टहुआ तब अहंभाव भी न रहा । अहंके त्याग करनेसे सर्वत्याग सिद्धहुआ । आगे तूने राज्यका त्यागकिया था पर राज्यमें तेरा कुछ न था; फिर तमका त्यागकिया; फिर वनसे आदि सर्व सामग्रीका त्यागकिया पर अब तूने उसका त्यागकिया जो त्यागने योग्य अहंभाव है—इससें सर्वत्यागहुआ । जो कुछ जानने योग्यहै सो अब तूने जाना

है और शान्तपदको प्राप्तहुआ है। हे राजन्! तू आत्मा सबदुःखों से रहितहै। जैसे मन्दराचल पर्व्वत से रहित क्षीरसमुद्र शान्तपदको प्राप्तहुआ है तैसेही अज्ञान से रहित तू शान्तपदको प्राप्तहुआ है। अब तू जागाहै और चित्तका त्याग कियाहै इससे अद्वैत सर्वात्मा हुआ है। हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं तब उनकीसंज्ञा नानाप्रकारकी होती हैं—जैसे अमृत—विष; सुख—दुःख और धर्म—अधर्म—पर जो एकाएकी अक्षर होताहै वह सर्वका आत्माहै; तैसेही तेरा दूसरा अज्ञान नष्टहुआ है और तू सत्यपद को प्राप्तहुआ शुद्धनिर्मल है। हे राजन्! जो ज्ञानवान्है उसने सम्यक् दृष्टिसे चित्तका त्यागकिया है और उसको कोई दुःख नहीं होता। तू उसपदको प्राप्तहुआ है जिसमें कोई दुःख नहीं और जहां स्वर्गादिक सुखभी तुच्छहैं क्योंकि, स्वर्ग में भी अतिशय क्षय होती है। अतिशय इसे कहते हैं कि, जो बड़े पुण्यवाले किसी को आपसेऊंचा देखतेहैं तो चाहते हैं कि, हम भी इसीकेसे होजावें और क्षय इसे कहते हैं कि, ऐसा न हो कि, इनसुखों से गिरूं। निदान स्वर्ग में दोनों प्रकार दुःख होता है पर तूने पुण्य पाप दोनोंका त्याग किया है इससे सर्वत्यागी है। अज्ञानी जो पापीजीव हैं उनको स्वर्गही भलाहै। जैसे सुवर्णका पात्र न पाइये तो पीतलका भी भला है तैसेही स्वर्णका पात्र जो ज्ञानहै जबतक प्राप्त न हो तबतक पीतलके पात्र जो स्वर्गादिक हैं सो नरकसे भलेहैं; पर तुम ऐसे को कुछनहीं। आत्मा में सर्व पदार्थकी पूर्णता है और सर्वकी उत्पत्ति आत्मासेही है। हे राजन्! वर्णाश्रम में क्या आस्था करनी है? जहां से इनकी उत्पत्ति है, जहां लीनहोते हैं और मध्य में जिसके अज्ञान से दृष्टि आते हैं उसमें स्थितहो। हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं उनमें मत स्थितहो पर जिसमें ये उत्पन्न और लीनहोते हैं उसमें स्थितहो। तपादिक क्रियासे क्या सिद्धहोता है? जिससे तपादिक सिद्ध होते हैं उसमें स्थितहो। बूंदमें क्या स्थित होना है? जिस मेघ से बुंद उत्पन्न होते हैं उसमें स्थित होइये। हे राजन्! जैसे स्त्री भर्त्ता से कोई पदार्थ चाहे और आप न कहे तैसेही तपादिक क्रियासे क्या सिद्ध होता है? जो उनसे आत्मपदकी इच्छा करे तो प्राप्त नहीं होसक्ता अपने आपसे पाता है। हे राजन्! आत्मा तेरा अपना आप है उससे सर्व सिद्धि होती है। जो वस्तु पीछे त्याग करनी हो उसको ज्ञानवान् प्रथमही अङ्गीकार नहीं करता। जो कुछ तपादिकहैं उनको चित्तसे क्या रचता है अपने आप को देख कि, अनुभवरूप है और सर्वदा निरन्तर अपने आपमें स्थित है। जब तू अपने आपसे आपको देखेगा तब तपादिक क्रिया को दूर करके शोभा पावेगा। जैसे बादल के दूरहुये प्रकाशवान् चन्द्रमा शोभापाता है तैसेही तू भी भोगकी चपलताको त्याग कर शोभा पावेगा। जब इन्द्रियों को जीत कर किसी पदार्थ में आसक्त न होगा और सर्व वासनाका त्यागकरेगा तब ज्ञानवान् होगा। जिसने सर्व वासना का त्याग किया

है उसको विष्णु जानना; वह सर्व राज्यका स्वामी है और जिसने मन जीता है सो चेष्टा में भी ज्योंकात्यों रहता है और समाधि में भी ज्योंकात्यों है । जैसे पवन चलने और ठहरने में तुल्यहै तैसेही ज्ञानवान् को कहीं खेद नहींहोता । राजाने पूछा, हे सर्व संशयों के नाशकर्त्ता ! स्पन्द और निस्पन्द में ज्ञानी ज्योंकात्यों कैसे रहता है सो कृपा करके कहिये ? कुम्भज बोले, हे राजन् ! चेतन आकाश आकाश से भी निर्मल है; जब उसका साक्षात्कार होताहै, तब जहां देखे तहां चेतनही भासता है । जैसे समुद्र के जाने से तरङ्ग और बुद्बुदे सब जलही भासते हैं तैसेही चित्त विना आत्माके देखे से फुरने में भी आत्माही दृष्टि आता है और जिसने आत्मा को नहीं जाना उसको नानाप्रकार का जगतही भासताहै । जैसे जलके जानेविना तरङ्ग बुद्बुदे भिन्न २ दृष्टि आते हैं और जलके जानने से तरंग भी जलमय भासते हैं । हे राजन् ! सम्यक् दर्शी को जगदात्मा स्वरूप हैं और असम्यक् दर्शीको जगत् है । इससे तू सम्यक् दर्शी होकर देख कि, जगत् भी आत्मरूप है । सम्यक् दर्शन जैसे प्राप्त होता है सो भी श्रवण कर । सम्यक् दर्शन संतके संग करने और सत्शास्त्र के विचार से प्राप्त होता है । भावना करिये तब कितने कालमें स्वरूप का साक्षात्कार होता है । कालकी अपेक्षा भी दृढ़ विचार के निमित्त कही है । जब दृढ़ विचार होता है तब साक्षात्कार होता है और जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है तब स्पन्द और निस्पन्द में एक समान होता है । हे राजन् ! जिसके समीप मक्खी है वह मक्खी के निमित्त पर्वत क्यों खोजे और दौड़े तैसेही तेरे घरमें ब्रह्मवेत्ता चुड़ाला थी उसका त्यागकर तूने वन में आ तपका आरम्भ किया इससे बड़ा कष्ट पाया परन्तु अब तू जागा है और तेरा दुःख नष्ट हुआ है अब तू शान्तपद को प्राप्त हुआ है । जैसे रस्सीके न जानने से सर्प भासता है और भली प्रकार जानने से रस्सीही भासती है तैसेही जिसने भली प्रकार निस्पन्द होकर अपना आप देखा है उसको फुरने में भी आत्माही भासता है । जब मनकी चपलता मिटती है तब तुरीयातीत पद को प्राप्त होता है; जिस पद को वाणी नहीं कह सक्ती । हे राजन् ! तू भी अब उसी पद को प्राप्त हुआ है जो मन और वाणी से रहित तुरीयातीत पद है वहां कोई क्षोभ नहीं केवल शान्तपद है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजबोधवर्णनन्नामैकाशीतितमस्सर्गः ८१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब राजाको कुम्भज मुनि ऐसे उपदेश करचुके; उसके उपरान्त बोले, हे राजन् ! अब हम जाते हैं क्योंकि; स्वर्ग में ब्रह्माजी के पास नारद मुनि आये हैं वे यदि मुझे देवताओं की सभा में न देखेंगे तो क्रोध करेंगे । हे राजन् ! जो कल्याणकृत पुरुष हैं वे बड़ेकी प्रसन्नता लेते हैं । जो उपदेश तुझेकिया है उसको भली प्रकार विचारना । सर्व शास्त्रोंका सार यही है कि, संपूर्ण वासना का

त्याग करना और किसी में चित्तको बन्धायमान न करना। मेरे आने तक स्वरूप में स्थित रहकर किसी चेष्टामें न लगना और स्वरूप को भली प्रकार जानकर चाहे तैसे विचरना। ऐसे कहकर जब कुम्भजमुनि उठ खड़े हुये तब राजाने अर्घ्य और फल चढ़ाने के निमित्त हाथमें लिये पर जल और फूल हाथही में रहे और कुम्भजमुनि अन्तर्द्धान होगये। जब राजाने कुम्भजमुनि को अपने आगे न देखा तब विचार करने लगा कि, देखो ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती कि, नारदमुनि कहां था; उसका पुत्र कुम्भज कहां और मैं राजा शिखरध्वज कहां? मालूम होताहै। नीतिही ने कुम्भज मुनिकारूप धारणकर मुझको जगाया है। कुम्भज बड़ामुनि दृष्टि आया जिसने मुझे उपदेश करके जगाया है। अब मैं अज्ञानरूपी गढ़ेसे निकलकर स्वरूप को प्राप्त हुआहूं; मेरे संपूर्ण संशय नष्टहुयेहैं और मैं निर्दुःख पद में स्थित होकर अज्ञान निद्रा से जागाहूं—बड़ा आश्चर्य है। हे रामजी! ऐसे कहकर राजा शिखरध्वज संपूर्ण इन्द्रियां, प्राण और मन स्थित करके चेष्टा से रहित हुआ और जैसे शिलाके ऊपर पुतली लिखी होती है और पर्वतका शिखर स्थित होता है तैसेही स्थित हुआ इधर चुड़ाला कुम्भजरूप शरीरका त्यागकर और अपना सुन्दररूप धारण कर उड़ी और आकाश को लांघकर अपने नगर में आई। अन्तःपुर में जहां स्त्रियां रहती थीं प्रवेश करके मंत्रियों को आज्ञा दी कि, तुम अपने अपने स्थान में स्थितहो और आप राजा के स्थानमें स्थितहोके भलीप्रकार प्रजाकी खबर लेने लगी। निदान तीन दिन रहकर फिर वहां से उड़ी और जहां वनमें राजा था वहां आ पहुँची और कुम्भजका रूप धारकर देखा कि, राजा समाधि में स्थित है इससे बहुत प्रसन्न हुई। हे रामजी! ऐसे प्रसन्न होकर चुड़ालाने विचार किया कि, बड़ासुखकार्य्य हुआ कि, राजा ने स्वरूप में स्थिति पाई और शांतिको प्राप्त हुआ। फिर यह विचार कर कि, इसको जगाऊं सिंहकी नाईं गरजी और ऐसा शब्द किया कि, उससे वनके पशु पक्षी सब डरगये परन्तु राजा न जगा। फिर उसे हाथसे हिलाया तौभी राजा न जगा। जैसे मेघ के शब्दसे पर्व्वतका शिखर चलायमान नहीं होता तैसेही राजा चलायमान न हुआ और काष्ठ और पाषाणकी नाईं स्थित रहा। तब रानीने विचार किया कि, कहीं राजा शरीरको त्याग न दे, पर फिर विचारा कि, जो राजाने शरीरका त्याग किया हो तो मैं भी त्यागूंगी। हे रामजी! चुड़ालाने शरीर न त्यागा परन्तु आरम्भ करने लगी कि, राजा और मुझको इकट्ठा शरीर त्यागना है। फिर विचार करनेलगी कि, इसकी भविष्यत् क्या होनी है। तब राजाके नेत्रोंपर हाथलगाया और देहसे देहका स्पर्शकर देखा कि, राजाके शरीरमें प्राण हैं। फिर भविष्यत्का विचार किया कि, इसकी सत्त्व शेष रहती है इससे जीवन्मुक्त होकर राज्य में विचरेगा। रामजीने पूछा, हे भगवन्! तुमने

कहा कि, राजा काष्ठ और पाषाणकीनाईं स्थितहुआ और फिरकहा कि, कुम्भजने हाथ लगाकर देखा कि, इसमें प्राणहैं तो कुम्भजने क्योंकर जाना? यह मुझको संशय है सो दूरकरो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस शरीरमें पुर्यष्टका होतीहै उसमें हरियावलता होती है। हे रामजी! अज्ञानीकाचित्त रहता है और ज्ञानीकासत्त्व रहता है जो प्रारब्ध वेगसे फुरता है और ब्रह्माकार वृत्ति फुरने से फिर शरीर पाताहै। ज्ञानी इष्ट–अनिष्टमें एकसमान रहता और अज्ञानी एकसमान नहीं रहता; वह इष्ट में प्रसन्न और अनिष्टकी प्राप्तिमें शोकवान् होताहै। हे रामजी! ज्ञानी जब शरीर को त्यागता है तब ब्रह्मसमुद्र में स्थित होताहै और जबतक सत्त्वशेष है तबतक फुरताहै अज्ञानी जब शरीरको त्यागता तब उसमें सूक्ष्म संसार होता है–जैसे बीज में वृक्ष, फूल और फल सूक्ष्मतासे स्थित होता है सो काल पाकर फिर निकलताहै। उसी प्रकार राजाका सत्त्व शेष रहताथा उस कारण फिर फुरेगा। तब कुम्भजरूप चुड़ाला ने विचारकिया कि, इसके भीतर प्रवेशकरके जगाऊं और जो मैं न जगाऊंगी तौभी नीतिसे इसको जानाहै। ऐसे विचार उसने अपने शरीरको त्यागा और चेतनतामें स्थित हो, फुरनेको लेकर उसमें प्रवेश किया और उसकी चेतनताका जो सत्त्वशेषथा उसको फोड़ा और बड़ा क्षोभकिया। जब राजा वहांसे हिला तब आप निकल आई और अपने शरीरमें प्रवेशकिया। जैसे पखेरू आकाशमें उड़ता है और फिर आलय में आ प्रवेश करताहै तैसेही वह अपने शरीर में आन स्थितहुई और सामवेदका गायन मधुरस्वर से करनेलगी। राजा यह सुनकर कि, कोई सामवेद गाता है जागा और देखा कि, कुम्भजमुनि बैठे हैं। इन्हें देखकर वह बहुत प्रसन्नहुआ और फूल और जल चढ़ाकर बोला, हे भगवन्! मेरे बड़े भाग्य हैं–मैं आपका दर्शन करके बहुत प्रसन्नहुआ। हे भगवन्! कूलरूपी कुलावल पर्वत है उसमें जो देहरूपी वृक्ष है सो अब फूला है और तुमने हमको पावनकिया है। हे भगवन्! किसी की सामर्थ्य नहीं कि, तुम ऐसोंके चित्तमें प्रवेशकरे। जिसमें सर्वदा आत्माका निवासहै उस चित्त में मेरी स्मृतिहुई है कि, आपका दर्शन किया। इससे मेरे बड़े भाग्य हैं। हे भगवन्! अमृतरूपी वचनोंसे तुमने प्रथममुझे पवित्र किया था और अब जो चित्तकिया है सो मुझे पावन किया है। कुम्भज बोले, हे राजन्! तेरा दर्शन करके मैं भी बहुत प्रसन्न हुआहूं और तुम्हारी ऐसीप्रीति मैंने आगे किसीमें नहीं देखी। हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्गसे आयाहूं। स्वर्गकेसुख मुझे भले न लगे और तू बहुत प्रियतम है इसी निमित्त मैं आयाहूं। अब मैं भी स्वर्ग न जाऊंगा, तेरेही पास रहूंगा। राजा बोले, हे भगवन्! जिसपर तुम ऐसोंकी कृपाहोती है उसको स्वर्ग आदिक सुख भले नहीं लगते तो तुम ऐसोंकी बात क्याकहनी है? यह वनहै और यह झोपड़ी है इसमें विश्राम

करो; मेरे बड़े भाग्य हैं जो तुम्हारा चित्त यहां चाहता है। कुम्भज बोले, हे राजन्! अबतुझे शांति प्राप्तहुई है और सङ्कल्पबीज नष्टहुआहै। जैसे नदीके किनारे परकी बेलि जलके प्रवाहसे मूलसमेत गिरती है तैसेही तेरे संकल्पबीज नष्टहुये हैं। अब तू यथाप्राप्तिमें सन्तुष्टहै कि, नहीं? और हेयोपादेयसे रहितहुआ है कि, नहीं; और जो पानेयोग्य पद है सो पाया है कि, नहीं; अपना अनुभवकह? राजा बोले, हे भगवन्! तुम्हारी कृपासे अब मैंने सबसे श्रेष्ठपद पाया है जहां संसारसीमाका अन्तहै। अब मुझे उपदेशका अधिकार नहींरहा क्योंकि, मेरे सम्पूर्ण संशय नष्टहुयेहैं और हेयोपादेयसे रहितहूं इससेसुखी विचरताहूं। जो कुछ जानना योग्यथा सोभी मैंने जानाहै। अब मुझमें कोईनहींऔर मैं सर्वठौर तृप्त, अनित, प्राप्तरूप आत्मा अपने निर्मल स्वभाव में स्थित, सर्वात्मा और निर्विकल्पहूं। मुझमें फुरना कोई नहीं; मैं शान्तरूपहूं और चिर पर्यंत सुखीहूं। इतनाकह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार राजा और कुम्भजका तीन मुहूर्त्त संवादहुआ फिर उसके उपरान्त दोनों उठखड़ेहुये और चले। निकट एक तालाबथा जहां बहुत कमलिनी लगीथीं वहां पहुंच दोनोंने स्नान करके गायत्री और सन्ध्याकी और पूजाकरके फिर वहांसे चले और वनकुंजों में आये। तब कुम्भजने कहा चलिये। राजाने कहा भली बातहै चलिये। निदान दोनों चले और बहुत नगरों, देशों, ग्रामों और तीर्थोंको देखते नानाप्रकार के वनों में जो फूल और फल संयुक्तथे और मरुथलमें विचरे। हे रामजी! ऐसे वे दोनों तीर्थ आदिक सात्त्विकी स्थानों; सुन्दर वन आदिक राजसी स्थानों और मरुथलादिक तामसी स्थानों में विचरे पर हर्ष शोकको न प्राप्तहुये और समता में रहे। हे रामजी! कुम्भज के फिरने का यह प्रयोजन था कि, देखें राजा शुभ अशुभ स्थानों को देखकर हर्ष शोक करेगा अथवा न करेगा पर राजा हर्ष शोकको न प्राप्तहुआ। फिर उन्होंने बड़े पर्वतों की कन्दरा, वन, कुञ्ज और बड़ेकष्टके स्थानदेखे और एक वनमें जारहे। कुछ कालमें राजा और कुम्भज एकहीसे होगये। दोनों इकट्ठे स्नानकरें; एकहीसे जापजपें; एकसी पूजाकरें और एकसे दोनों सुहृदहुये। किसीठौर वे शरीरमें माटी लगावें; किसी ठौर चन्दन का लेपकरें; किसीठौर शरीरमें भस्मलगावें; किसी ठौर दिव्यवस्त्र पहिरें; किसीठौर केले के पत्रोंपर सोवें; किसीठौर फूलकी शय्याहो और किसीठौर क्रूरस्थानों में शयनकरें। हे रामजी! ऐसेशुभ अशुभ ठौरोंमें भी वे ज्योंके त्योंरहे और हर्ष शोकको न प्राप्तहुये। केवल शुद्धसत्त्वमें वे दोनों स्थितरहे और आत्माके सिवाय और कुछ न फुरा। एकबेर रानीके मनमें विचारहुआ कि यह मेराभर्त्ताहै मैं इसको भोगूं क्योंकि, हमारी अवस्थाहै। जो भले कुलकीस्त्रीहैं वे भर्त्ताको प्रसन्नरखतीहैं और राजाका शरीरभी देवतोंकासाहुआ है और स्थानभी शुभहै। जब तक शरीर है तबतक शरीरके स्वभाव भी साथ हैं। फिर

विचार किया कि, राजाकी परीक्षाभी करूं कि, क्याकहे । इतना विचारकर कुम्भज ने कहा, हेराजन् ! अबहम स्वर्गमेंजाते हैं क्योंकि, चैत्रशुद्ध एकमको ब्रह्माजीने सृष्टिउत्पन्नकीहै; इसीदिन वर्षके वर्षउत्सव होताहै और वहां नारदमुनिभी आवेंगे । मेरे आने तक तुम ध्यान में रहना और जब ध्यानसे उतरो तो फूलोंको देखना । ऐसे कहकरउसने फूलोंकी मञ्जरी राजा कोदी और राजानेभी कुम्भजको फूलकी मञ्जरीदी । जैसे नन्दनवनमें स्त्री भर्त्तार के हाथदे और भर्त्तार स्त्रीकेहाथदे तैसेही परस्पर दोनोंनेदिया। फिर कुम्भज आकाशको उड़ा और जैसे मेघको मोरदेखताहै तैसेही राजा देखतारहा। जहांतक राजाकी दृष्टि पड़तीथी वहांतक रानीने कुम्भजका शरीररक्खा और जब दृष्टि से अगोचर हुई तब फूलोंकी माला जो गलेमेंथी तोड़कर राजा के ऊपर डालदी और चुड़ालाका शरीर धारणकर आकाशको लांघ अपने अन्तःपुरमें पहुंची । निदान राजा के स्थानपर बैठकर सबको अपने अपने स्थानों में स्थितकिया और प्रजाकी खबरें सुनकर फिरउड़ी । सूर्यकी किरणों के मार्गसे मेघमण्डलको लांघतीहुई जहां राजाकास्थान था वहां आकर देखा कि, राजा वियोगसे शोकवान् है इसलिये आपभी कुम्भज रूपमें दिलगीर राजाके आगे आई । राजाने कहा, हे भगवन् ! तुमको शोक कैसेहुआहै? ऐसा कौन कष्ट तुमको मार्ग्गमें हुआ है ? सब दुःखोंका नष्टकरनेवाला ज्ञानहै; जो तुम ऐसे ज्ञानवानोंको शोकहो तो और की क्याबात कहनी है । हे मुनि ! तुमको दुःखका कारण कोईनहीं,तुम क्यों शोकवान् होतेहो और तुमकोकौन अनिष्ट प्राप्तहुआहै ? तब कुम्भज ने कहा, हे राजन् ! मुझे एकदुःखहै सो कहताहूं । जो मित्रपूछे तो सत्ही कहा चाहिये और दुःखभी नष्टहोता है । जैसे मेघ जड़ और श्याम होता है और उसका सज्जन जोहै क्षेत्र और पृथ्वी तिसके ऊपर वह वर्षाकरता है तो उसकी जड़ता और श्यामता नष्टहोती है—इससे मैं तुझसे कहता हूं । हे राजन् ! जबतक स्वर्ग में सभा स्थितथी तबतक में नारद के पासरहा और जब सभाउठी तब नारदमुनिभी उठे और मुझसे कहा कि, जहां तेरी इच्छाहो तहां जा और मैंभी जाताहूं—क्योंकि, नारद एकही ठौरमें नहीं ठहरते विश्वमें घूमते फिरते हैं । तबमैं आकाशको चला तो एकठौरसूर्यसे मिलाप हुआ और मेघ के मार्ग से तीक्ष्ण वेग से चला । जैसे नदी पर्व्वत से तीक्ष्ण वेगसे आती है तैसेही मैं तीक्ष्ण वेगसे चलाआताथा तो देखा कि, दुर्वासा ऋषीश्वर महा मेघकीनाईं श्यामवस्त्र पहिरेहुये और भूषणसंयुक्त जैसे बिजली का चमत्कार होताहै उड़ेआतेहैं । भूषणोंका चमत्कार देखकर मैंने दण्डवत् करके कहा,हे मुनीश्वर ! तुमनेक्या रूपधारा है जो स्त्रियोंकी नाईं भासताहै ? दुर्वासाने तब रुष्टहोकर मुझसे कहा, हे ब्रह्मा के पौत्र ! तू कैसा वचन कहताहै ? ऐसा वचन मुनीश्वरप्रति कहना उचितनहीं । हम क्षेत्रहैं; जैसाबीज क्षेत्रमें बोइये तैसा उगताहै; तूने मुझे स्त्रीकहाहै इससे तूभीस्त्रीहोगा।

और रात्रिको तेरे सबअङ्ग स्त्री के होवेंगे। हे मुनीश्वर! जो कल्याणकृत ज्ञानवान् पुरुष हैं उनमें नम्रताहोती है जैसे फल संयुक्तवृक्ष नम्रहोता है तैसेही ज्ञानीभी नम्र होता है—ऐसावचन तुझे कहना न चाहिये। हे राजन्! ऐसे सुनकर मैं तेरे पासचलाआयाहूं और मुझे लज्जाआती है कि, स्त्रीका शरीरधारे देवताओं के साथमें कैसे विचरूंगा—यही मुझकोशोक है। राजाने कहा, क्याहुआ जो दुर्वासाने कहा और स्त्री का शरीरहुआ? तुमतो शरीरनहीं, निर्लेप आत्माहो? हे मुनीश्वर? तुम अपनीसमता में स्थित रहतेहो। ज्ञानवान् पुरुषको हेयोपादेय किसी का नहीं रहता वहतो अपनी समतामें स्थित रहताहै? तब कुम्भजने कहा, हे राजन्! तू सत्य कहताहै। मुझेक्या दुःख है? जो शरीरका प्रारब्धहै सो होता है। यह ईश्वरकी नीति है कि, जबतक शरीर होता है तबतक शरीर के स्वभावभी रहते हैं। शरीर का स्वभाव त्याग करना भी मूर्खता है। जिस स्थान में ज्ञानकी प्राप्तिहो उसी चेष्टामें विचरिये और इन्द्रियोंका रोकना और मनसे विषयकी चिन्तना करनीभी मूर्खता है। इन्द्रियों और देहकी चेष्टा ज्ञानवान्भी करते हैं परन्तु उसमें बन्धवान् नहींहोते। इन्द्रियां विषय में वर्त्तती हैं। ईश्वर की आदिनीति इसीप्रकार है। हे राजन्! नीति का त्याग किसीसे नहीं किया जाता—इससे नीतिका क्या त्यागकरिये। यह नीति है कि, जबतक शरीरहै तबतक शरीर के स्वभावभी होते हैं। जैसे जबतक तिल है तब तक तेलभी होता है तैसेही जब तक शरीर है तब तक शरीर के स्वभावभी होते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुषहैं वे देह और इन्द्रियोंसे चेष्टाभी करतेहैं परन्तु बन्धायमान नहीं होते और अज्ञानी बन्धायमान होते हैं। चेष्टा ज्ञानी भीकरते हैं अज्ञानीभी करते हैं। जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदिजो ज्ञानवान् हैं वे सर्व चेष्टाभी करते हैं परन्तु बन्धायमान किसी में नहीं होते। हे राजन्! तैसे जो अनिच्छित आ प्राप्त हो और जिसको शास्त्र प्रमाण करें उसको भोगने में दूषण कुछ नहीं। राजा बोले, हे भगवन्! ज्ञानवान् को दूषण कुछनहीं। जो सत्ता समान में स्थित है उसे दूषण कुछनहीं होता। अज्ञानी शरीर केदुःख अपने में देखता है उससे दुःखी होता है और ज्ञानवान् शरीर के दुःख अपने में नहीं देखता हे रामजी! ऐसे कहते सूर्य अस्तहुआ तब राजा और कुम्भज दोनों ने सायंकाल में सन्ध्या करके जाप किया और जब रात्रि हुई, तारागणनिकले और सूर्यमुखी कमलों के मुख मूंदगये तब कुम्भजने कहा, हे राजन्! देख कि, मेरे शिरके बाल बढ़तेजाते हैं, वस्त्र भी टखने तक होगये हैं और स्तनभी स्त्रीकीनाईं हैं। निदान चुड़ाला महासुन्दर स्त्री लक्ष्मी की नाईं होगई और उसको देखकर राजाको एकमुहूर्त्त शोकरहा उसके उपरांत सावधान होकर बोला, हे मुनि! क्याहुआ जो तेराशरीर स्त्रीकाहुआ? तुमतो शरीर नहीं आत्मा हो—इससे शोक क्यों करतेहो? तुम अपनी सत्तासमानमें स्थितरहो जब

रात्रिहुई तो रानी ने महा सुन्दररूप धरके फूलोंकी शय्या बिछाई और उसपर दोनों इकट्ठे सोये। हे रामजी! समस्त रात्रि उनको कोई फुरना न फुरा और सत्ता समान में दोनों स्थितरहे और मुखसे कुछ न बोले। जब प्रातःकाल हुआ तब फिर रानी ने कुम्भजका शरीर धारकर स्नान किया और गायत्री से आदि जो कर्म्म हैं सो किये। इसीप्रकार चुड़ाला रात्रिको स्त्री बनजावे और दिनको कुम्भज पुरुषका शरीर धारे। जब कुछकाल ऐसे बीता तब दोनों वहांसे चलकरसुमेरुपर्वत के ऊपरगये और मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत आदि सर्व सुखस्थानों को देखा पर एक दृष्टिको लियेरहे न कोई हर्षवान् हुआ और न शोकवान् ज्योंके त्यों रहे। जैसे पवन से सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही शुभ अशुभ स्थानों में वे समान रहे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिर्नामद्व्यशीतितमस्सर्ग्गः ८२॥

इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार विचरते विचरते वे मन्दराचल की कन्दरामें पहुँचे तो वहां कुम्भजरूप चुड़ालाने राजा से परीक्षाके निमित्त कहा, हे राजन्! जब मैं रात्रिको स्त्री होतीहूं तब मुझे भर्त्ता के भोगनेकी इच्छा होतीहै क्योंकि, ईश्वरकी नीति ऐसीही है कि, स्त्री को अवश्यमेव पुरुष चाहिये जो उत्तम कुलका पुरुष होता है उसको कन्या विवाह करके पिता देता है अथवा जिसको स्त्री चाहे उसको आप देखले—इस से, हे राजन्! मुझे तुझ से अधिक कोई नहीं दृष्टि आता। तूही मेरा भर्त्ता है और मैं तेरी स्त्रीहूं। तू मुझे अपनी भार्य्या जानकर जो कुछ स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं सो कियाकर। मेरी अवस्थाभी यौवन है और तू भी सुन्दर है। ज्ञानवान् अनिच्छित प्राप्तहुयेका त्यागनहीं करते। यद्यपि तुझको इच्छा न हो तौ भी ईश्वरकी नीति इसी प्रकार है उसके उल्लंघनसे क्या सिद्ध होगा? जो अपने स्वरूपसत्ता में स्थितहै उसको ग्रहण त्यागकी कुछ इच्छा नहीं परन्तु जो नीतिहै वह करनी चाहिये। राजा बोला, हे साधु! जो तेरी इच्छा है सो कर मुझको तो तीनोंजगत् आकाशरूप भासते हैं। मुझे प्राप्त होने से कुछसुखनहीं और अप्राप्तिमें दुःख नहीं और न कुछ हर्ष शोकहै। जो तेरी इच्छाहो सोकर। कुम्भज बोले, हे राजन्! आजही पूर्णमासी का भला दिनहै और मैंने आगे से लग्नभी गिन रक्खाहै इस से मन्दराचल पर्वतकी कन्दरा में बैठकर विवाहकरो। निदान राजा और कुम्भज दोनों उठे और जो कुछ सामग्री शास्त्रकी रीति से थीं वे इकट्ठी कर दोनों ने गंगा में स्नान किया। वस्त्र, फूल, फलआदि जो विवाहकी सामग्री हैं सो कल्पवृक्षसे लेकर दोनोंने फल भोजन किये और सूर्यअस्त हुआ तो दोनों ने सन्ध्योपासन कर कुम्भज ने राजा को दिव्यवस्त्र और भूषण पहिनाये और शिरपर मुकुट रक्खा। फिर कुम्भज ने अपना शरीर त्याग कर स्त्री का शरीर धारण किया और राजा से बोला; हे राजन्! अब तू मुझे भूषण पहिरा। तब

राजाने सम्पूर्ण भूषण फूल और वस्त्र उसे पहिराये और वह पार्वतीकी नाईं सुन्दर बनी। तब चुड़ालाने कहा, हे राजन्! मैं अब तेरी स्त्री हूं और मेरा नाम मदनिका है और तू मेरा भर्त्ता है--मुझे तू कामदेवसे भी सुन्दर भासता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार चुड़ालाने बहुत कुछ कहा तौभी राजाका चित्त हर्षको न प्राप्त हुआ और विरागसे शोकवान् भी न हुआ--ज्योंका त्यों रहा। उसके उपरान्त जब विवाह का आरम्भ हुआ तो चन्दुआदिया और पास सुवर्ण के कलश रख के देवताओं का पूजन किया और जो शास्त्रकी विधि थी वह सम्पूर्ण करके मंगल किया। फिर रानी ने यह सङ्कल्प किया कि, सम्पूर्ण ज्ञाननिष्ठा तुझेदी। और राजा ने सङ्कल्प किया कि, सम्पूर्ण ज्ञान निष्ठा तुझे दी जब रात्रि एक प्रहर रही तब राजा और रानीने फूलोंकी शय्या बिछाके शयनकी और आपसमें चरचाही करते रहे मैथुन कुछ न किया। प्रातःकाल हुये कुम्भज ने स्त्री का शरीर त्याग कर कुम्भज का शरीर धारा और स्नान सन्ध्यादिक कर्म किये। हे रामजी! इसी प्रकार एकमास पर्यन्त मन्दराचल पर्वत में वे रहे। रात्रिको रानी स्त्री का शरीर धरे और दिनको कुम्भज का शरीर धरे और जब तीसरा दिनहो तब राजाको शयन कराके राज्यकी सुधिले और फिर आकर राजा के पास शयन करे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविवाहलीलावर्णनन्नामत्र्यशीतितमस्सर्गः ८३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब वहांसे वे चले तो अस्ताचलपर्वत में जाय रहे और उदयाचल, सुमेरु, कैलास इत्यादिक पर्वतों और कन्दरों और वनों में रहे। कहीं एक मास, कहीं दशमास, कहीं पांचदिन, कहीं सप्तदिन रहे। इसी तरह जब एक वनमें आये तब रानी ने विचारकिया कि, इतने स्थान राजाको दिखाये तौभी इसका चित्त किसी में बन्धायमान नहीं हुआ, इस से अब और परीक्षालूं। ऐसे विचारकर उसने अपनी ऐसी माया फैलाई कि, तेंतीस कोटि देवता संयुक्त इन्द्रके आगे किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध और अप्सरा नृत्य करती आईं। सर्व सामग्री संयुक्त इन्द्रको देखकर राजा उठा और बहुत प्रीतिसंयुक्त उसकी पूजा करके बोला, हे त्रैलोक्यके पति! तुम किसलिये वन में आये हो सो कहो? इन्द्रने कहा, हे राजन्! जैसे पक्षी ऊर्ध्वमें उड़ताहै और उसकी पेटीमें तागा होता उससे उड़ता हुआभी नीचे आता है, तैसेही हम ऊर्ध्व के वासी तेरे तप और शुभ लक्षणों के तागेरूपी गुणों को श्रवण करके स्वर्ग से खैंचे चले आते हैं--इस प्रकार हमारा आनाहुआ है। इससे हे राजन्! तू स्वर्ग को चल और स्वर्ग में स्थित होकर दिव्य भोगों को भोग। ऐरावत हाथी पर आरूढ़हो अथवा उच्चैःश्रवा घोड़ा जो क्षीरसमुद्र के मथनसे निकलाहै उसपर आरूढ़ होकर चल। अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठसिद्धियांभी विद्यमान हैं जो इच्छाहो सो लो और स्वर्गमें चलो। हे राजन्! तुम

तत्त्ववेत्ताहो, तुमको ग्रहण त्यागकरना कुछ नहींरहा परन्तुजो अनिच्छित प्राप्तहो उसका त्यागकरना योग्यनहीं—इससे स्वर्ग में चलो राजा बोले, हे देवराज ! जाना तहां होताहै जहां आगे न हुआहो और जहां आगे जाना हुआहो वहां कैसे जावे ? हे देवराज ! हमको सर्वस्वर्गही दृष्टिआता है । जो वहां स्वर्गहो और यहां न होतो जानाभी उचित है परन्तु जहां हम बैठे हैं वहांहीं स्वर्ग भासताहै; इससे हम कहांजावें ? हमको तीनों लोक स्वर्गदृष्टि आते हैं और सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है हम उसी में स्थितहैं । हमको सर्वथा स्वर्ग भासता है और हम सदा तृप्त और आनन्दरूपहैं । इन्द्रबोले, हे राजन् ! जो विदित वेद पूर्णबोधहैं वेभी यथाप्राप्त भोगोंको सेवते हैं तो तुम क्यों नहीं सेवते ? ऐसे जब इन्द्रने कहा तब राजा त्योंहीं कहकर चुपकरगया । फिर इन्द्रनेकहा भला जो तुमनहीं आते तो हमहींजाते हैं । तुम्हारा और कुम्भजका कल्याणहो । हेरामजी ! ऐसे कहकर इन्द्र उठखड़ाहुआ और चला पर जबतक दृष्टिआता था तबतक देवताभी साथ दीखते थे फिर जब दृष्टि से अगोचरहुये तब अन्तर्द्धान होगये । जैसे समुद्रसे तरंग उठ कर फिर लीनहोजाते हैं और जानानहींजाता कि, कहांगये; तैसेही इन्द्र अन्तर्द्धानहोगया । वह इन्द्र कुम्भजरूप चुड़ालाके सङ्कल्प से उठाथा जब सङ्कल्प लीन हुआ तब अन्तर्द्धान होगया और चुड़ालाने देखा कि, ऐसे ऐश्वर्य, सिद्धि और अप्सराओं के प्राप्त भयेभी राजाका चित्त समता में रहा और किसीपदार्थ में बन्धायमान न हुआ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमायाशक्रागमनवर्णन न्नामचतुरशीतितमस्सर्गः ८४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब चुड़ाला इन्द्रकाछल करचुकी तब विचारनेलगी कि, ऐसाचरित्र मैंने राजाके मोहनेके निमित्त किया तौभी राजा किसी में बन्धायमान न हुआ और ज्योंका त्योंहीं रहा । बड़ा कल्याणहुआ कि, राजासत्तासमान में स्थितरहा—इससे बड़ा आनन्दहुआ । अब और चरित्रकरूं जिसमें इसको क्रोध और खेददोनोंहों । ऐसे विचारकर राजाकी परीक्षाके निमित्त उसने यहचरित्रकिया कि, जब सायङ्कालकासमय हुआ तब गङ्गाकेकिनारे राजा सन्ध्याकरनेलगा और कुम्भज वनमें रहा और उसमें संकल्प का मन्दिररचा । जैसे देवताओंकी रचनाहोतीहै तैसेही मन्दिरकेपास फूलोंकी एक बाड़ीलगाई और उसमें कल्पवृक्षआदि नानाप्रकारके फूलफल संयुक्त वृक्षरचे । एवम् संकल्प की शय्या रचकर एक संकल्पका महासुन्दर पुरुषरचा और उसके साथ अंग से अंगलगा और गले में फूलोंकी मालाडाल कामचेष्टा करनेलगी । जब राजा सन्ध्या करचुका तो रानीको देखनेलगा पर वह दृष्टि न आई; निदान ढूंढ़ते ढूंढ़ते उसमन्दिर के निकट आया तो क्या देखा कि, एक कामीपुरुषके साथ मदनिका सोईहुई है और दोनों कामचेष्टा करते हैं । तब राजाने विचारा कि, भले आरामसे दोनों सोरहे हैं इनके

आनन्द में विघ्न क्यों कीजिये। हे रामजी! इस प्रकार राजाने अपनी स्त्रीको देखातौभी शोकवान् न हुआ और क्रोधभी न किया ज्योंका त्यों शान्तपद में स्थितरहा। मन्दिर के बाहर निकलके वहां एक सुवर्ण की शिलापड़ीथी उसपर आन बैठा और आधेनेत्र मूंदकर समाधि में स्थितहुआ। दो घड़ी के उपरान्त मदनिका कामीपुरुषको त्यागकर बाहरआई और राजाके निकट आकर अंगोंको नग्नकिया और फिर वस्त्रों से ढांपा जैसे और स्त्रियां काम से व्याकुल होती हैं तैसेही चुड़ाला को देखकर राजाने कहा, हे मदनिका! तू ऐसे सुख को त्यागकर क्यों आई है? तूतो बड़े आनन्दमें मग्नथी अब वहांहीं फिरजा। मुझे तो हर्ष शोक कुछनहीं मैं ज्योंका त्यों हूं परन्तु तेरी और कामी पुरुष की प्रीति परस्पर देखी है जगत् में परस्पर प्रीति नहीं होती है इससे तू उसको सुखदे वह तुझे सुखदे। तब मदनिका लज्जासे शिरको नीचे करके बोली, हे भगवन्! क्षमाकरो; मुझपर क्रोध मतकरो, मुझसे बड़ी अवज्ञाहुई है परन्तु मैंने जानके नहीं की जैसे वृत्तान्त है सो सुनो। जब तुम सन्ध्या करनेलगे तब मैं वनमें आई तो वहां एक कामीपुरुषका मिलापहुआ, मैं निर्ब्बलथी और वह बलीथा उसने पकड़कर मुझे गोद में बैठाया और जो कुछ भावना थी सो किया। मैंने जो पतिव्रता स्त्री की मर्य्यादाथी उसके अनुसार उसपर क्रोध किया और उसका निरादर किया और पुकार भी की- ये तीनों पतिव्रता की मर्य्यादा हैं सो मैंने कीं-परंतु तुम दूरथे और वह बलीथा मुझे पकड़ और गोद में बैठाकर जो कुछ भावनाथी वह किया। हे भगवन्! मुझ में कुछ दूषण नहीं, इससे तुम क्षमाकरके क्रोध न करो। राजाबोले, हे मदनिका! मुझे कदाचित् क्रोध नहीं होता। आत्माही दृष्ट आता है तो क्रोध किसपर करूं? मुझे न कुछ ग्रहणहै और न त्याग है तथापि यह कर्म्म साधों से निन्दित है, इससे मैंने अब त्याग कियाहै सुखसे विचरूंगा। हमारा गुरु जो कुम्भज है वह हमारे पासही है; वह और हम सदा निरागरूप हैं और तू तो दुर्बासा के शापसे उपजी है तुझसे हमारा क्या प्रयोजन है-तू अब उसीके पासजा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमायापिञ्जरवर्णनन्नामपञ्चाशीतितमस्सर्गः ८५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब मदनिकानाम चुड़ालाने विचार किया कि, बड़ा कार्य्य हुआ जो राजा आत्मपद को प्राप्त हुआ। ऐसे सिद्ध और ऐश्वर्य्य देखे और क्रूरस्थानभी दिखाये तौभी राजा शुभ अशुभमें ज्योंकात्यों रहा। इससे बड़ा कल्याण हुआ कि, राजा को शान्ति प्राप्तहुई और रागद्वेष से रहित हुआ। अब मैं इसे अपना पूर्व रूप चुड़ालाका दिखाऊं और सम्पूर्ण वृत्तान्त राजाको जताऊं। ऐसे विचार कर जब मदनिका शरीर से चुड़ालारूप भूषण और वस्त्रसहित प्रकटहुई तब राजा उसे देखकर महाआश्चर्य्य को प्राप्तहुआ और ध्यान में स्थितहोकरदेखा कि, यह चुड़ाला

कहां से आई है। फिर पूछा, हे देवि! तू कहां से आई है। तुझे देखकर तो मैं आश्चर्य्य को प्राप्त हुआहूं क्योंकि; ऐसी मेरी स्त्री चुड़ाला थी। तू यहां किस निमित्त आई है और कबकी आई है ? चुड़ाला बोली, हे भगवन्! मैं तेरी स्त्री चुड़ाला हूं और तू मेरा स्वामी है। हे राजन्! कुम्भज से आदि इस चुड़ाला शरीरपर्य्यन्त सर्व चरित्र मैंने तेरे जगाने के निमित्त किये हैं। तू ध्यान में स्थित होकर देख कि, ये चरित्र किसने किये हैं ? मैंने अब पूर्वका चुड़ालाका शरीर धाराहै। हे रामजी! जब ऐसे चुड़ाला ने कहा तब राजा ध्यान में स्थित होकर देखने लगा और एक मुहूर्त्त पर्यंत स्थित रहकर सब वृत्तान्त देखलिया। उसके उपरान्त राजाने आश्चर्यको प्राप्त होकर नेत्र खोले और रानीको कंठसे लगाकर मिला। निदान दोनों ऐसे हर्षको प्राप्त हुये जो सहस्र वर्षपर्य्यन्त शेषनाग उस सुखको वर्णनकरें तो भी न कहसकेंगे। वे ऐसे सत्ता समान में स्थित होकर शान्तिको प्राप्तहुये जिसमें क्षोभ कदाचित् नहीं। राजा और रानी दोनों कण्ठलगके मिले थे इससे अंगों में उष्णता उपजी थी इस कारण शनैः शनैः करके उन्होंने अंग खोले और हर्षवान् होकर राजाकी रोमावलि खड़ीहो आईं और नेत्रों से जल चलनेलगा। ऐसी अवस्था से राजा बोला, हे देवि! मुझपर तूने बड़ा अनुग्रह कियाहै। तेरी स्तुति मैं नहीं करसक्ता। जो कुछ संसारके पदार्त्थ हैं वे सब मायामय और मिथ्या हैं। तूने मुझे सत्पदको प्राप्तकियाहै इससे मैं तेरी क्या उपमादूं। हे देवि! मैंने अब जानाहै कि, मैंने राज्यका त्याग कियाहै और इस चुड़ालाके शरीरपर्य्यन्त सब तेरे चरित्रहैं। तूने मेरे वास्ते बड़े कष्ट सहे और बड़े यत्नकिये। आना और जाना, शरीरका स्वांग धारना और उड़ना इत्यादिक तूने बड़ाकष्टपायाहै और बड़े यत्नसे मुझे संसारसमुद्र से पारकरके बड़ा उपकार किया। तू धन्य है और जितनी देवियां अरुंधती, ब्रह्माणी, इन्द्राणी, पार्वती, सरस्वती और श्रेष्ठ कुल की कन्या और पतिव्रता हैं उन सबसे तू श्रेष्ठ है। जिस पुरुषको पतिव्रता प्राप्त होती है उसके सब कार्य्य सिद्ध होकर बुद्धि, शान्ति, दया, शक्ति, कोमलता और मैत्री प्राप्तहोती है। हे देवि! मैं तेरे प्रसादसे शान्तपदको प्राप्तभयाहूं। अब मुझे कोई क्षोभ नहीं और ऐसा पद शास्त्रों और तपसेभी नहीं मिलता। चुड़ाला बोली, हे राजन्! तू काहेको मेरी स्तुति करताहै मैंने तो अपना कार्य्य कियाहै। हे राजन्! तू राज्यका त्यागकर वनमें मोह अर्थात् अज्ञानको साथही लिये आयाथा इससे नीच स्थानमें पड़ा। जैसे कोई गङ्गाजल त्यागकर कीचड़के जलका अंगीकारकरे तैसेही तूने आत्मज्ञान और अक्रिय पदका त्यागकर तपका अंगीकार कियाथा। जब मैंने देखा कि, तू कीचड़में गिराहै तो मैंने तेरे निकालनेके लिये इतने यत्नकिये हैं। हे राजन्! मैंने अपना कार्य्य किया है। राजा बोले, हे देवि! मेरा यही आशीर्वाद है कि, जो कोई पतिव्रता स्त्री हों वे सब ऐसे कार्य्य

करें जैसे तूने किये हैं। जो पतिव्रता स्त्रीसे कार्य होता है वह और से नहीं होता। हे देवि! अरुन्धती आदि जितनी पतिव्रता स्त्रियां हैं उनमें तू प्रथम गिनी जायगी। मैं जानताहूं कि; ब्रह्माजी ने क्रोधकर तुझे इस निमित्त उपजाया है कि; अरुन्धती आदि देवियों ने जो गर्व किया होगा उस गर्वको मिटावें। इससे, हे देवि! तू धन्यहै। तूने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है। हे देवि! तू फिर मेरे अंगसे लग। तूने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। हे रामजी! ऐसे कहकर राजाने रानीको फिर कंठलगाया। जैसे नेवला और नेवली मिलें और मूर्त्तिकी नाईं लिखेहों। चुड़ाला बोली, हे भगवन्! एक तो मुझसे यह कह कि, ज्ञानरूप आत्मा के एकअंश में जगत् लीनहोजाते हैं; ऐसा तूहै सो आपको अब क्या जानता है? अब तू कहां स्थितहै? राज्य तुझे कुछ दिखाई देता है वा नहीं, और अब तुझे क्या इच्छाहै? शिखरध्वज बोले, हे देवि! जो स्वरूप तूने ज्ञानसे निश्चय कियाहै वही मैं आपको जानता हूं और शान्तरूपहूं। इच्छा अनिच्छा मुझको कोई नहीं रही—केवल शान्तरूपहूं। हे देवि! जिस पदकी अपेक्षा करके ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकी मूर्त्ते भी शोकसंयुक्त भासती हैं तिस पदको मैं प्राप्त भयाहूं; जहां कोई उत्थान नहीं; जो निष्किंचित् है और जिसमें किंचिन्मात्र भी जगत् नहीं। मैं जो था वही हुआहूं, इससे और क्याकहूं। हे देवि! तू ने संसार समुद्र से मुझे पार किया है इससे तू मेरी गुरुहै। ऐसे कहकर राजा चुड़ाला के चरणों पर गिरपड़ा और बोला मुझे अज्ञान कदाचित् स्पर्श न करेगा। जैसे तांबा पारस के संगसे सुवर्ण होकर फिर तांबा नहीं होता, तैसेही मैं तेरे प्रसादसे मोहरूपी कीचड़ से निकलाहूं और फिर कदाचित् न गिरूंगा। अब मैं इस जगत् के सुख दुःख से तुष्टहुआ ज्योंका त्यों स्थितहूं और राग द्वेषके उठानेवाला चित्त मेरा नष्ट होगयाहै। अब मैं प्रकाशरूप अपने आपमें स्थितहूं। जैसे जल में सूर्य्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है और जलके नष्टहुये प्रतिबिम्ब भी सूर्य्यरूप होता है, तैसेही मेरा चित्तभी आत्मरूप हुआ है। अब मैं निर्वाणपदको प्राप्तहो सबसे अतीत हुआहूं और सर्व में स्थित हूं। जैसे आकाश सर्व पदार्थों में स्थित है और सर्व पदार्थों से अतीत है, तैसेही मैंभी हूं। 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द मेरे नष्टहुये हैं और मैं शान्तिको प्राप्त हुआहूं। अब मुझमें ऐसा तैसा शब्द कोई नहीं। मैं अद्वैत और चिन्मात्रहूं और न सूक्ष्महूं; न स्थूलहूं। चुड़ाला बोली, हे राजन्! जो तू ऐसे स्थित हुआहै तो तू अब क्या करेगा और अब तुझे क्या इच्छा है? राजा बोले, हे देवि! न मुझे कुछ अंगीकार करनेकी इच्छा है और न त्याग करनेकी इच्छा है, जो कुछ तू कहेगी सो करूंगा। तेरे कहनेको अंगीकार करूंगा और जैसे मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है तैसेही मैं तेरे वचनोंको ग्रहण करूंगा। चुड़ाला बोली, हे प्राणपति—हृदयके प्रियतम राजा!

अब तू विष्णुहुआ है । यह बड़ा उत्तम कार्य्य हुआ है कि, तेरी इच्छा नष्ट हुई है । हे राजन् ! अब उचित है कि, तू और हम मोहसे रहित होकर अपने प्राकृत आचारमें विचरें । अखेद जीवन्मुक्त होकर अपने प्राकृत आचारको क्यों त्यागें । हे राजन् ! जो अपने आचार को त्यागेंगे तो और किसी को ग्रहण करेंगे । इस से हम अपनेही आचार में विचरते हैं और भोग मोक्ष दोनों को भोगते हैं । हे रामजी ! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत हुआ और सायङ्काल की सन्ध्या राजा ने की फिर शय्या का आरम्भ किया उसपर दोनों सोये और रात्रिभर परस्पर चर्चाही करते एक क्षणकी नाईं रात्रि बिताई ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचुड़ालाप्राकट्यंनामषडशीतितमस्सर्ग्गः ८६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब ऐसे रात्रि व्यतीत होकर सूर्य्य की किरणें फैलीं और सूर्य्यमुखी कमल खिल आये तब राजाने स्नान का आरम्भ किया और चुड़ाला ने मन के सङ्कल्प से रत्नोंकी मटकी रच हाथ में ली और उसमें गंगादिक सम्पूर्ण तीर्थोंका जल डाला और राजाको स्नान कराके शुद्ध किया तब राजा ने सन्ध्यादिक सर्व कर्म किये । तब चुड़ालाने कहा, हे राजन् ! मोहको नाश करके सुखसेही अपने राज्यकार्य्य करने चाहियें कि, जिससे आनन्द और सुख भोगें । राजा बोले, हे देवि ! जो तुझे सुख भोगने की इच्छाहो तो स्वर्ग्गमेंभी हमारा राज्य है और सिद्धलोकमें भी हमारा राज्य है इससे स्वर्ग में विचरे ? चुड़ाला बोली, हे राजन् ! हमको न सुख भोगनेकी इच्छाहै, न त्यागनेकी इच्छाहै; हमतो ज्योंकेत्यों हैं । इच्छा और अनिच्छा तब होतीहै जब आगे कुछपदार्थ भासता है पर हमको तो केवल आकाश आत्मा दृष्टिआता है; स्वर्ग कहां और नरक कहां—हम सर्वदा एकरस स्थितहैं । हे राजन् ! यद्यपि हमको कुछनहीं तो भी जबतक शरीरका प्रारब्ध है तबतक शरीर रहता है इससे चेष्टा भी होनी चाहिये और चेष्टा करने से अपने प्राकृत आचार को क्यों न कीजिये कि; राग द्वेष से रहित होकर अपने राज्य को भोगें ? इससे अब उठो और अष्टवसु के तेज को धारकर राज्य करने को सावधान हो । राजाने कहा बहुत अच्छा और अष्टवसु के तेज संयुक्तहो बोला, हे देवि ! तू मेरी पटरानी है और मैं तेरा भर्त्ताहूं तो भी तू और मैं एकहीहूं । राज्य तब होता है जब सेना भी हो इससे सेनाभी रच । इतना सुन चुड़ालाने सम्पूर्ण सेना और हाथी, घोड़े, रथ, नौबत, नगारे, निशान इत्यादिक राज्य की सामग्री रची और सब प्रत्यक्ष आगे आन स्थित हुई । नौबत, नगारे, तुरहियां और सहनाई बजने लगीं और जो कुछ राज्य की सामग्री हैं वे अपने अपने स्थान में स्थित हुईं । राजाके शिरपर छत्र फिरने लगा और राजा और रानी हाथी पर आरूढ़ होकर मन्दराचल पर्व्वत के ऊपर चले और आगे पीछे सब सेनाहुई । राजा

ने जिस जिस ठौरपर तप किया था सो रानीको दिखाता गया कि, इस स्थान में मैं इतने काल रहाहूं; इसमें इतना रहाहूं। ऐसे दिखाते दिखाते तीक्ष्ण वेगसे चले। मंत्री, पुरवासी और नगरवासी राजाको लेनेआये और बड़े आदर संयुक्त पूजन किया। इस प्रकार दोनों अपने मन्दिर पहुँचे और आठ दिन तक राजासे लोकपाल और मण्डलेश्वर मिलने को आते रहे। इसके उपरान्त राजसिंहासनपर बैठकर दोनों राज्य करने लगे और समदृष्टिको लिये दशसहस्र वर्षतक राज्य किया। फिर चुड़ाला संयुक्त जीवन्मुक्त होकर विचरे और दोनों विदेहमुक्त हुये। हे रामजी! दशसहस्र वर्षपर्यंत राजा और चुड़ालाने राज्यकिया और दोनों सत्तासमान में स्थित रहे। किसी पदार्थ में वे रागवान् न हुये और किसी से द्वेषभी न किया क्योंकेत्यों शान्तपद में स्थित रहे। जितनी राज्यकी चेष्टा हैं सो करते रहे परन्तु अन्तःकरण से किसी में बन्धायमान न हुये–केवल आत्मपद में अचल रहे। फिर राजा और चुड़ाला विदेहमुक्त को प्राप्तहुये–जैसे आपको जानते थे उसी के बल परमाकाश अक्षोभपद में जाय स्थित हुये और जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होताहै तैसेही प्रारब्धवेगके क्षयहुये निर्वाणपद में प्राप्त हुये। हे रामजी! जैसे शिखरध्वज और चुड़ाला जीवन्मुक्त होकर भोगों को भोगते विचरे हैं तैसेही तुमभी राग द्वेष से रहित होकर विचरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिखरध्वजचुड़ालाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्ताशीतितमस्सर्ग्गः ८७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शिखरध्वज का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुम से कहा; ऐसी दृष्टिका आश्रय करो जो पापको नाश करती है और उस दृष्टि के आश्रय से जिस मार्ग के द्वारा शिखरध्वज तत्पद को प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होकर राज्य व्यवहार करता रहा तैसेही तुमभी तत्पद का आश्रयकरो और उसीके परायणहो आत्मपद को पाकर भोग और मोक्ष दोनों भोगो। इसी प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कचभी बोधवान् हुआहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जिस प्रकार बृहस्पति का पुत्र कच बोधवान् हुआ है सोभी संक्षेप से कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कचबालक जब अज्ञात अवस्था को त्यागकर पद पदार्थ को जानने लगा तब उसने अपने पिता बृहस्पति से प्रश्न किया कि, हे पिता! इस संसार पिंजरे से मैं कैसे निकलूं? जितना संसार है यह जीवितसे बांधा हुआ है–जीवित अनात्म देहादिकों में मिथ्या अभिमान करने को कहते हैं जो 'अहं' 'त्वं' मानता है उस संसार से कैसे मुक्त होऊं? बृहस्पति बोले, हे तात! इस अनर्थरूप संसार से जीव तब मुक्त होता है जब सर्वका त्याग करता है। सर्व त्याग किये विना मुक्ति नहीं होती; इससे तू सर्व त्यागकर कि, मुक्तहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पतिने कहा तब कच ऐसे पावन वचनों

को सुन ऐश्वर्यका त्यागकर वनको गया और एक कन्दरामें स्थित होकर तप करने लगा। हे रामजी ! बृहस्पतिको कच के जाने से कुछ खेद न हुआ क्योंकि; ज्ञानवान् पुरुष संयोग वियोगमें समभाव रहते हैं और हर्ष शोकको कदाचित् प्राप्त नहीं होते। जब आठवर्षपर्यन्त उसने तपकिया तब बृहस्पतिने जाकरदेखा कि, कच एक कन्दरा में बैठा है तब वह कचके पास आन स्थित हुआ और कचने पिताका पूजन गुरुकी नाई किया। बृहस्पति ने कचको कण्ठलगाया और कचने गद्गदवाणी सहित प्रश्न किया; हे पितः ! आठवर्ष बीते हैं कि, मैंने सर्वत्याग कियाहै तौभी शान्तिको नहीं प्राप्त हुआ ? जिससे मुझे शान्तिहो सो कहो। बृहस्पतिने कहा, हे तात ! सर्वत्याग कर कि, तुझे शान्तिहो। ऐसे कहकर बृहस्पति उठ खड़ाहुआ और आकाशको चलागया। हे रामजी ! जब ऐसे बृहस्पति कहकर चलागया तब कच आसन और मृगछाला को त्यागकर और वनको चला और एक कन्दरामें जाकर स्थितहुआ। तीनवर्ष वहां व्यतीतहुये तो फिर बृहस्पति आये और देखा कि, कच स्थितहै। तब कचने भलीप्रकार गुरु की नाईं उनका पूजनकिया और बृहस्पतिने कचको कण्ठ लगाया तब कचने कहा, हे पितः ! अबतक मुझे शान्ति नहीं हुई और मैंने सर्व्वत्याग भी किया क्योंकि; अपने पास कुछ नहीं रक्खा। इससे जिसकरके मेरा कल्याणहो वही कहो। बृहस्पति ने कहा, हे तात ! अबभी सर्वत्याग नहीं हुआ; सर्वपद चित्तका जब त्यागकरेगा तब सर्वत्याग होगा; इससे चित्तका त्यागकर। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे कहकर जब बृहस्पति आकाश को चलेगये तब कच विचारनेलगा कि, पिता ने सर्वपद चित्त को कहा है सो चित्त क्याहै। प्रथम वनके पदार्थोंको देखकर विचारने लगा कि, यह चित्तहै; फिर देखा कि, यह भिन्न भिन्न है इससे यह चित्त नहीं और नेत्रभी चित्त नहीं क्योंकि; नेत्र श्रवण नहीं और श्रवण नेत्रों से भिन्न हैं और श्रवणभी चित्त नहीं। इसी प्रकार सर्व इन्द्रियां चित्त नहीं क्योंकि; एकमें दूसरेका अभावहै इससे चित्त क्याहै जिसको जानकर त्याग करूं। फिर विचार किया कि, पिताके पास स्वर्गमें जाऊं। हे रामजी ! ऐसे विचार कर उठ खड़ाहुआ और दिगम्बर आकारसे आकाश को चला। जब पिताके पास पहुँचा तब पिताका पूजनकरके बोला, हे तेंतीसकोटि देवताओंके गुरु ! चित्तका रूप क्या है ? उसका रूप कहिये कि, मैं उसका त्यागकरूं। बृहस्पति बोले, हे पुत्र ! चित्त अहंकार का नाम है। वह अज्ञान से उपजा है और आत्मज्ञान से इसका नाश होता है। जैसे रस्सीके अज्ञानसे सर्प भासता है और रस्सीके जाननेसे सर्पभ्रम नष्ट होजाताहै। इस से अहंभाव का त्यागकर और स्वरूप में स्थितहो। कच बोले, हे पितः ! अहंभाव का त्याग कैसेकरूं ? 'अहं' तो मैंहीहूं फिर अपना त्याग करके स्थित कैसे होऊं। इसका त्याग करना तो महाकठिन है। बृहस्पति बोले, हे तात ! अहंकारका त्याग करना तो

महासुगम है। फूलके मिलने में और नेत्रों के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है परन्तु अहंकारके त्यागने में कुछ यत्न नहीं। हे पुत्र! अहंकार कुछ वस्तु नहीं; भ्रमसे उठा है। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहींमें वेताल कल्पताहै; रस्सी में सर्प भासता है; मरुस्थल में जलकी कल्पना होती है और आकाश में भ्रमसे दो चन्द्रमा भासते हैं; तैसेही परिच्छिन्न अहंकार अपने प्रमाद से उपजा है। आत्मा शुद्ध आकाश सेभी निर्मल है और देशकाल वस्तुके परिच्छेद से रहित सत्ता सामान्य चिन्मात्र है, उसमें स्थित हो जो तेरा स्वरूप है; तू आत्माहै, तुझमें अहंकार कदाचित् नहीं है। हे साधो! आत्मा सर्वदा सर्वप्रकार, सर्वमें स्थित है उसमें अहंभाव किंचित् नहीं। जैसे समुद्र में धूलि कदाचित् नहीं तैसेही उस में अहंकार कदाचित् नहीं। आत्मा में न एक ग्रहण है और न दो ग्रहण-केवल अपने आप में स्थित है और जो आकार दृष्टि आते हैं वे चित्तके फुरने से हैं। चित्तके नष्टहुये आत्माही शेष रहता है; इससे अपने स्वरूप में स्थितहो जिसमें तेरा दुःख नष्ट होजावे। जो कुछ यह दृष्टिआताहै उसमेंभी आत्माहै। जैसे पत्र,फूल, फल सब बीजसे उत्पन्न होते हैं तैसेही सब आत्मा का चमत्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबृहस्पतिबोधनन्नामाष्टाशीतितमस्सर्गः ८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पति ने उत्तम उपदेश किया तब कच उसे सुनके स्वरूप में स्थितहुआ और आत्मा और परिच्छिन्न अहंकारकी एकता को प्राप्त होकर आत्मस्वरूप हुआ और जीवन्मुक्त होकर विचरा। हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकर विचरा और निरहंकार हुआ है तैसेही तुमभी निराश होकर विचरो और केवल अद्वैतपद को प्राप्तहो जो निर्मल और शुद्धहै और जिसमें एक और दो कहना नहीं बनता। तुम उसीपदमें स्थितहो। तुममें दुःखकोई नहीं; तुम आत्माहो और तुममें अहंकार नहीं; तुम ग्रहणत्याग किसकाकरो। जो पदार्थ होहीनहीं तो ग्रहण त्याग क्याकहिये? हे रामजी! जैसे आकाशके वनमें फूल नहीं है तो उसका ग्रहण क्या और त्याग क्या; तैसेही आत्मामें अहङ्कार नहीं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे अहंकारका ग्रहण और त्याग नहीं करते। मूर्खको एक आत्मामें नानाआकार भासते हैं इससे किसी का शोक करताहै और कहीं हर्ष करता है। तुम कैसे दुःखका नाश चाहते हो? दुःख तो तुममें हैही नहीं तो तुम कैसे नाशकरने को समर्थ हुये हो? जो कुछ आकार भासते हैं वे मिथ्याहैं पर उनमें जो अधिष्ठानहै वह सत्है। मूर्ख मिथ्याकरके सत्की रक्षाकरते हैं कि, मेरे दुःख नाशहों। रामजी बोले, हे भगवन्! तुम्हारे प्रसादसे मैं तृप्तहुआहूं और तुम्हारे वचनरूपी अमृतसे अघायाहूं। जैसे पपीहा एकबूंदको चाहताहै और मेघ कृपा करके उसपर वर्षाकरके उसको तृप्तकरताहै तैसेही मैं तुम्हारी शरणको प्राप्तहुआथा और तुम्हारे दर्शनकी इच्छा बूंदकी नाईं करताथा पर तुमने कृपाकरके ज्ञानरूपी अमृतकी

वर्षाकी; उस वर्षासे मैं अघायाहूं । अब मैं शान्तपद को प्राप्तहुआहूं; मेरे तीनों ताप मिटगये हैं और कोई फुरना मुझमें नहींरहा । तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को सुनता मैं तृप्त नहीं होता । जैसे चकोर चन्द्रमाको देखकर किरणों से तृप्त नहीं होता; तैसेही तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से मैं तृप्त नहीं होता; इस से एक प्रश्न करताहूं उस का उत्तर कृपा करके दीजिये ? हे भगवन् ! मिथ्या क्या है और सत् क्या है जिसकी रक्षा करते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसपर एक आख्यान है सो कहताहूं जिसके सुनने से हँसी आवेगी । आकाशमें एक शून्यवनहै और उसमें एक मूर्ख बालकहै जो आप मिथ्या है और सत्यके रखनेकी इच्छाकरता है कि, मैं इसकी रक्षा करूंगा । अधिष्ठान जो सत्य है उसको वह नहीं जानता । मूर्खता करके दुःख पाता है और जानता है कि, यह आकाश है; मैंभी आकाशहूं; मेरा आकाश है; और मैं आकाशकी रक्षा करूंगा । ऐसे विचारकर उसने एक दृढ़गृह इस अभिप्रायसे बनाया कि, इसके द्वारा आकाश की रक्षा करूंगा । हे रामजी ! ऐसे विचार करके उसने गृहकी बहुत बनावटकी और वह जो किसी ठौरसे टूटे तो फिर बनाले । जब कुछ काल इस प्रकार बीता तो वह गृह गिरपड़ा तब वह रुदन करने लगा कि, हाय मेरा आकाश नष्ट होगया । जैसे एक ऋतु व्यतीतहो और दूसरी आवे तैसेही कालपाकर जब वह गृह गिरगया तो उसके उपरान्त उसने एक कुआं बनाया और कहने लगा कि, यह न गिरेगा क्योंकि; इसकी भली प्रकार रक्षाकरूंगा । हे रामजी ! इस प्रकार कुयेंको बनाकर उसने सुखमाना । जब कुछकाल बीता तो जैसे सूखापात वृक्षसे गिरता है तैसेही वह कुआंभी गिरपड़ा और वह बड़े शोकको प्राप्त हुआ कि; मेरा आकाश गिर पड़ा और नष्ट होगया अब मैं क्याकरूंगा ऐसे शोकसंयुक्त जब कुछकाल बीता तब उसने एक खांहीं बनाई–जैसे अनाज रखने के निमित्त बनाते हैं–और कहने लगा कि, अब मेरा आकाश कहां जावेगा ? मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षाकरूंगा । ऐसी खांहीं बनाकर उसने बहुत सुख माना और अतिप्रसन्न हुआ पर जब कुछ काल पाकर वह खांहीं भी टूट पड़ी क्योंकि; उपजी वस्तुका विनाश होना अवश्यहै–तो फिर वह रुदन करनेलगा कि, मेरा आकाश नष्ट होगया । जब कुछ काल शोक संयुक्त बीता तो उसने एक घट बनाया और घटाकाशकी रक्षा करने लगा । कुछ कालमें वह घटभी जब नष्ट होगया तब उसने एक कुण्ड बनाया और कुण्डाकाशकी रक्षा करनेलगा । कुछ कालके उपरान्त कुण्डभी नष्ट होगया तब शोकवान् हो उसने एक हवेली बनाई और कहने लगा कि अब मेरा आकाश कहां जावेगा । मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करूंगा । ऐसा विचार कर, वह बड़े हर्षको प्राप्तहुआ पर जब कुछकाल व्यतीतहुआ तब वह हवेलीभी गिरपड़ी तो वह दुःखको प्राप्तहो कहनेलगा कि, हाय ! हाय !! मेरा आकाश नष्ट होगया और मुझे

बड़ा कष्टहुआ है। हे रामजी! आत्मज्ञान और आकाशके जाने विना वह मूर्ख बालक इसी प्रकार दुःख पातारहा। जो आपको भी यथार्थ जानता और आकाशको भी ज्योंका त्यों जानता तो यह कष्ट काहेको पाता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणं नामैकोननवतितमस्सर्गः ८९॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! वह मिथ्या पुरुष कौन था; जिसकी रक्षाकरता था वह आकाश क्या था और जो गृह, कूप आदिक बनाता था सो क्याथा यह प्रकट करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मिथ्यापुरुष तो अहंकार है जो संवेदन फुरनेसे उपजा है; आकाश चिदाकाश है उसे वह उपजा जानता है कि, मैं आकाशकी रक्षाकरूं और आकाश, गृह, घटादिक जो कहा सो देह है। उसमें आत्मा अधिष्ठान है उस आत्माकी रक्षा करनेकी इच्छा वह मूर्खता से करताहै और आपको नहीं जानता कि, मेरास्वरूप क्या है। उस अपने स्वरूपको न जानने से वह दुःख पाता है। आप मिथ्याहै और मिथ्या होकर आकाशको कल्पकर रखने की इच्छा करता है अर्थात् देहसे देही के रखनेकी इच्छा करता है कि, मैं जीता रहूं पर देह तो कालसे उपजा है—फिर देहके नष्टहोने से शोकवान् होताहै और अपने वास्तवस्वरूपको नहीं जानता जिसका नाश कदाचित् नहीं होता ऐसे विचारसे रहित क्लेश पाता है। हे रामजी! जिसमें भ्रम उपजताहै उसकी अधिष्ठान सत्ता नहीं होती। सर्वका अपना आप आत्मा है सो कदाचित् नाश नहीं होता उसमें मूर्खतासे अहंरूप संसारको जीव कल्पताहै। अंहकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति और दृश्य ये सब इसके नाम हैं पर मिथ्या हैं और इसका अत्यन्त अभाव है; अन होताही उदय हुआ है और क्षत्रिय, ब्राह्मण इत्यादि वर्ण और गृहस्थादि आश्रम, मनुष्य, देवता, दैत्य इत्यादिक की कल्पना करता है। हे रामजी! यह कदाचित् हुआ नहीं, न होगा और न किसी काल किसी को है केवल अविचार सिद्ध है और विचार किये से कुछ नहीं रहता। जैसे रस्सी के अज्ञान से जीव सर्प कल्पता है और जानने से नष्ट होजाता है; तैसेही स्वरूपके प्रमाद से अहंकार उदय हुआ है। तुम्हारा स्वरूप आत्मा है जो प्रकाशरूप, निर्मल, विद्या अविद्याके कार्यसे रहित, चेतनमात्र और निर्विकल्पहै। वह ज्योंका त्यों स्थित है; अद्वैतहै और प्रमाणको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता आत्मतत्त्वमात्र है उसमें संसार और अहङ्कार कैसे हो? सम्यग्दर्शी को आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता और असम्यग्दर्शी को संसार भासता है, वह पदार्थोंको सत् जानता है; संसारको वास्तव जानता है और अपने वास्तवस्वरूप को नहीं जानताहै कि, मैं कौनहूं। इस के जाने से अहंकार नष्ट होजाताहै। जितनी कुछ आपदा है उसकी खानि अहंकारहै और सर्वताप अहंकार

सेही उत्पन्न होते हैं इसके नष्टहुये अपने स्वरूपमें स्थित होताहै। और विश्वभी आत्मा का चमत्कारहै–भिन्न नहीं; जैसे समुद्र में पवनसे नानाप्रकार के तरंग और सुवर्ण में नानाप्रकार के भूषण भासते हैं सो वही रूपहै–भिन्न कुछ नहीं तैसेही आत्मासे विश्व भिन्न नहीं। सुवर्ण परिणामसे भूषण और समुद्र परिणामसे तरंग होताहै पर आत्मा अच्युतहै और परिणामको नहीं प्राप्तहोता; इससे समुद्र और सुवर्णसे भी विलक्षणहै। आत्मामें संवेदनसे चमत्कारमात्र विश्वहै सो आत्मस्वरूप है, न कदाचित् जन्मता है, न मृत्युको प्राप्तहोताहै; न किसी कालमें और न किसी से मृतहोता है ज्योंका त्यों स्थित है। जन्म मृत्यु तो तबहो जब दूसराहो पर आत्मा तो अद्वैत है। जिसको एक नहीं कहसके तो दूसरा कहांहो इससे प्रत्येक आत्मा अपना अनुभवरूपहै उसमें स्थित हो कि, दुःख और ताप सब नष्ट होजावें। वह आत्मा शुद्ध और निराकार है। हे रामजी! जो निराकार और शुद्ध है उसे किससे ग्रहण कीजिये, कैसे रचा करिये और किसकी सामर्थ्य है कि, उसकी रक्षाकरे। जैसे घटके नष्टहुये घटाकाश नष्ट नहीं होता तैसेही देहके नष्टहुये देही आत्माका नाश नहीं होता। आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है और जन्म मरण पुर्यष्टकासे भासते हैं। जब पुर्यष्टका देहसे निकल जाती है तब मृतक भासताहै और जब पुर्यष्टका संयुक्त है तब जीवित भासता है। आत्मा सूक्ष्मसे सूक्ष्म है और स्थूलसे स्थूलहै उसका ग्रहण कैसेहो और रक्षा कैसे करिये। स्थूल भी उपदेशके जताने के निमित्त कहतेहैं आत्मा तो निर्वाच्य और भाव अभावरूप संसारसे रहित है। वह सबका अनुभवरूप है उसमें स्थित होकर अहंकार का त्यागकरो और अपने स्वरूप प्रत्येक आत्मा में स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमिथ्यापरुषोपाख्यानसमाप्ति
र्नामनवतितमस्सर्गः ९० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार आत्मरूपहै और जैसे इसकी उत्पत्तिहुई है सो सुनो। निर्विकल्प शुद्ध आत्मामें चेतन लक्षण मनसे विवर्त्त स्थित हुआ है और आगे उसने जगत् कल्पना की है। जैसे समुद्रमें तरंग; सुवर्ण में भूषण; रस्सी में सर्प और सूर्यकी किरणों में जलाभासहै तैसेही आत्मामें विवर्त्त मन है पर आत्मासे भिन्न नहीं। जिसको तरंग का ज्ञान है उसको समुद्रबुद्धि नहीं होती, वह तरंग को और जानता है; जिसको भूषणका ज्ञान है वह सुवर्ण नहीं जानता; सर्पके ज्ञानसे रस्सी को नहीं जानता और जलके ज्ञानसे किरणों को नहीं जानता; तैसेही नानाप्रकारके विश्वके ज्ञानसे जीव परमात्मा को नहीं जानता। जैसे जिस पुरुषने समुद्रको जानाहै कि, जल है उसको तरंग और बुद्बुदेभी जलही भासते हैं जलसे भिन्न कुछ नहीं भासता और जिसको रस्सीका ज्ञान हुआहै उसको सर्पबुद्धि नहीं होती; जिसको सुवर्णका ज्ञानहुआ

है उसको भूषणबुद्धि नहीं होती और जिसको किरणों का ज्ञानहुआहै उसको जलबुद्धि नहीं होती ऐसा पुरुष निर्विकल्प है तैसेही जिस पुरुष को निर्विकल्प आत्माका ज्ञान हुआहै उसको संसार भावना नहीं होती-उसको ब्रह्मही भासताहै। ऐसा जो मुनीश्वर है वह ज्ञानवान्है। हे रामजी! मनभी आत्मासे भिन्न नहीं। आदि परमात्मा से 'अहं' 'त्वं' आदिकमें मन फुरकर मात्रपदमें जो अहंभाव हुआ सो उत्थान है। उससे बहिर्मुख होनेसे अपने निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मस्वरूप का प्रमादहुआहै और उस प्रमाद होनेसे आगे विश्व हुई है। मनभी कदाचित् उदय नहीं हुआ; आत्मा स्वरूप है इससे उदय हुयेकी नाईं भासता है। मन और संसार सत् भी नहीं और असत् भी नहीं; जो दूसरी वस्तुहो तो सत् अथवा असत् कहिये पर आत्मा तो अद्वैत ज्यों का त्यों स्थित है और उसका विवर्त्त मन होकर फुराहै। वही मन कीटहै, और वही ब्रह्माहै। फिर ब्रह्माने मनोराज करके स्थावर जंगम सृष्टि कल्पी है सो न सत्यहै और न असत्य है। हे रामजी! सर्व प्रपञ्च मनने कल्पाहै और उसीने नानाप्रकारके विकार रचेहैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीव सब मनके नामहैं। जब मन नष्ट होजावे तब न संसार है और न कोई विकारहै। यदि मन दृश्यसे मिलकर कहे कि, मैं संसारका अन्तलूं तो कदाचित् अन्त न पावेगा क्योंकि संसरनाही संसार है तो फिर संसरने संयुक्त संसार का अन्त कहां? अन्तलेनेवाला वाणी से आगे फुरकर देखताहै-जैसे कोई पुरुष दौड़ता जावे और कहे कि, मैं अपनी परछाहीं का अन्तलूं कि, कहांतक जातीहै तो, हे रामजी! जबतक वह पुरुष चला जावेगा तबतक परछाहीं का अन्त नहीं होता और जब ठहर जाता है तब परछाहीं का अन्त होजाताहै; तैसेही जबतक फुरना है तबतक संसारका अन्त नहीं होता और जब फुरना नष्ट होजाताहै तब संसार का भी अन्त होताहै और आत्माही दृष्टिआताहै और संसारका अत्यन्त अभाव होजाता है पर जो स्फूर्त्ति संयुक्त देखेगा तो संसारही भासेगा। हे रामजी! जिस पदार्थ को मन देखताहै वह पदार्थ पूर्व कोई नहीं चित्तके फुरने से उदय होता है। जब चित्त फुरा कि यह पदार्थ है तब आगे पदार्थ हुआ और फुरने से रहित होकर देखे तो पदार्थ कोई नहीं भासता केवल शान्त पदहै। हे रामजी! अहंकार का त्यागकरके यह जो नाना प्रकार की कल्पना है उससे रहित निर्विकल्प ब्रह्मपदमें स्थितहो। अहंकार नाम रूप है और देह और वर्णाश्रम में माया से कल्पित है। जब उससे रहित होकर देखोगे तब केवल सच्चिदानन्द आत्मपद शेष रहेगा और जब उस पदको अपना आप जानोगे तब तुमहीं सर्वात्मा होकर विचरोगे और तुमको कोई दुःख न रहेगा। हे रामजी! मनही संसार है और मनही ब्रह्मासे कीटपर्यंत है; मनही सुमेरु है और मनही तृण है और विश्वरूप होकर स्थित हुआ है और वह भी आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे फलही में सम्पूर्ण वृक्ष हैं

तैसेही मन आत्मस्वरूपहै;आत्मासे भिन्न मन कुछ वस्तु नहीं।ऐसेजानकर आत्मस्वरूप होंगे यह जो बन्ध और मोक्ष संज्ञाहै इनका त्यागकर, न बन्धकी वाञ्छाकरो और न मोक्षकी इच्छाकरो । इसकल्पनासे रहितहो; ऐसे न होवे कि, मुक्तहो और यह बन्ध है; केवल सत्तासमान आत्मपदमें स्थितहो । यही भावना करो जिसमें तुम्हारा सर्वदुःख नष्टहोजावे । ऐसा जो पुरुषहै उसका चित्तभाव नहीं रहता उसको सर्व आत्मा भासता है । जैसे जिस पुरुष ने सूर्यको जाना है उसको किरणें भी सूर्यही दृष्टि आती हैं तैसेही जिसको आत्माका साक्षात्कार हुआ है उसको जगत्भी आत्मस्वरूप भासताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनाम
एकनवतितमस्सर्गः ९१ ॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! महाकर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी होरहो और सब शंकाओं को त्यागकर निरन्तर धैर्य्य धारकर स्थितहो । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! महाकर्त्ता; महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपाकरके कहो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुम्हारे प्रश्नपर एक आख्यानहै सो सुनिये । एकसमय सुमेरु पर्व्वतकी उत्तरदिशाके शिखरसे सदाशिवजी आये, जो चंद्रमाको मस्तक में धारे थे और गणोंसंयुक्त गौरी बायें अंग में जिनके साथथीं । तब भृंगी गण ने जो महा-तेजोवान् था और जिसे आत्मजिज्ञासा उपजी थी हाथ जोड़कर प्रश्न किया कि, हे भगवन् ! देवों के देव ! यह संसार मिथ्याभ्रम है; इसमें मैं सत्य पदार्थ कोई नहीं देखता यह सदा चलरूप भासता है और जो सत्पदार्थ है उसको मैं नहीं जानता; मेरे ताप नष्ट नहींहुये और मैं शांत नहीं हुआ इससे आपको दुःखी देखताहूं । जिससे शांतिहो सो कृपाकरके कहो जिसमें खेदसे रहितहोकर मैं चेष्टा में विचरूं । पर खेदसे रहित तब होता है जब कोई आसरा होता है । संसार तो मिथ्या है मैं किसका आसराकरूं ? इससे मुझसे वह कहिये कि, किसका आश्रय किये मेरे दुःख नष्टहों ? ईश्वर बोले, हे भृंगी ! तुम महाकर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी होरहो और सर्व शंकाओं को त्यागकर निरन्तर धैर्यका आश्रयकरो; इससे तुम्हारे दुःख नष्टहोंगे । हे रामजी ! ऐसे भृंगीगण ने जिसको शिवजी ने पुत्रकरके रक्खा है श्रवण करके प्रश्न किया है कि, हे परमेश्वर ! महाकर्त्ता, महाभोक्ता और महात्यागी किसे कहते हैं सो कृपाकरके ज्योंकात्यों मुझ से कहिये ? ईश्वर बोले, हे पुत्र ! सर्वात्मा जो अनुभव रूप है उसका आश्रय करके विचरो कि, दुःख से रहित हो । इन तीनों वृत्तियों से तुम्हारे दुःख नष्ट होजावेंगे । जो कुछ शुभक्रिया आ प्राप्तहो उसको शंकात्यागके करे वह पुरुष महाकर्त्ता है; धर्म अधर्म क्रिया जो अनिच्छित प्राप्तहो उसको राग द्वेष से रहितहोकर जो करे; वह पुरुष महाकर्त्ता है; जो पुरुष मौनी, निरहंकार, निर्म्मल

और मत्सर से रहितहै वह पुरुष महाकर्त्ता है; जो अनिच्छित प्राप्तहुये का त्याग न करे और जो नहीं प्राप्तहुआ उसकी वाञ्छा न करे वह पुरुष महाकर्त्ता है; जो पुण्य पाप क्रिया अनिच्छित प्राप्तहों उनको अहंकार से रहितहोकर करे, पुण्यक्रिया करनेसे आप को पुण्यवान् न माने और पापकिये से पापी न माने सदा आपको अकर्त्ता जाने वह पुरुष महाकर्त्ता है; जो सर्वत्र से विगतस्नेह है; सत्यवत् स्थित है और निरिच्छित वर्त्तताहै वह महाकर्त्ता है। जो दुःखके प्राप्तहुये शोक नहींकरता और सुखके प्राप्तहुये से हर्षवान् नहींहोता स्वाभाविक चित्त समताको देखताहै वह कदाचित् विषमताको नहीं प्राप्तहोता। सुख की जो भिन्न भिन्न विषमता हैं इससे जो रहित है वह पुरुष महाकर्त्ताहै और जिस पुरुष ने सुख दुःखका त्यागकिया है वह पुरुष महाकर्त्ताहै। हे भृंगी! जो पुरुष प्राप्तहुई वस्तुको राग द्वेष से रहित होकर भोगता है सो महाभोक्ता है और जो बड़ाकष्ट प्राप्तहो उसमें भी द्वेष नहींकरता और बड़े सुखकी प्राप्तिमें हर्षवान् नहींहोता वह पुरुष महाभोक्ता है। जो बड़े राज्यके सुख भोगनेमें आपको सुखी नहीं मानता और राज्यके अभावहोने और भिक्षामांगने में आपको दुःखी नहीं मानता सदा स्वरूप में स्थितहै वह महाभोक्ता है। जो मान, अहंकार और चिन्तनासे रहित केवल समता में स्थितहै वह महाभोक्ता है और जो कोई कुछदे तो आपको लेने वाला नहीं मानता और शुभक्रिया में भोक्ताहुआ आपको कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता वह पुरुष महाभोक्ता है। जो मीठा, खट्टा, तीक्ष्ण, सलोना, कटु छहोंरसोंके भोगनेमें समचित्त रहता है और सम जानता है वह महाभोक्ताहै। जो रसवान् पदार्थ प्राप्तहुये से हर्षवान् नहीं होता और विरसके प्राप्तहुये से द्वेषवान् नहीं होता ज्योंकात्यों रहताहै और जैसा बुराभला प्राप्तहो उसको दुःखसे रहित होकर भोगताहै वह पुरुष महाभोक्ता है। जो कुछ शुभ,अशुभ,भाव, अभावक्रियाहै उसके सुख दुःखसे चलायमान नहीं होता सो पुरुष महाभोक्ताहै और जिसको मृत्युका भय नहीं और जीनेकी आस्था नहीं और उदय अस्तमें समानहै वह महाभोक्ताहै। जो बड़े सुख प्राप्त में हर्षवान् नहीं होता और दुःखकी प्राप्ति में शोकवान् नहीं ज्योंकात्यों रहताहै वह महाभोक्ताहै। जो कुछ अनिच्छित प्राप्तहो उसको कर्त्ताहुआ अहंकार से जो रहित है वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो पुरुष शत्रु, मित्र और सुहृद् में समबुद्धि रखताहै और विषमताको कदाचित् नहीं प्राप्त होता वह पुरुष महाभोक्ताहै। जो कुछ शुभ, अशुभ, दुःख, सुख प्राप्तहो उसको जो धार लेताहै कदाचित् विषमताको नहीं प्राप्त होता—जैसे समुद्रमें नदियां प्राप्त होती हैं उनको धारकर वह सम रहता है; तैसेही ज्ञानवान् शुभ अशुभको धारकर सम रहताहै। जो संसार, देह इन्द्रियां और अहंकार की सत्ताको त्यागकर स्थित हुआहै और जानता है कि, 'न मैं देहहूं'; 'न मेरी देह है' मैं इनका साक्षीहूं ऐसी वृत्ति के धारनेवाला महात्यागी

है और जो सर्व चेष्टा करता है और राग द्वेषसे रहित है वह महात्यागी है । जो शुभ अशुभ प्राप्त हुयेको अहंकार से रहित होकर करता है वह महात्यागी है और जो मन, इन्द्रियां और देह भी इच्छासे रहित हुआ है वह सर्व चेष्टा भी करताहै पर महात्यागी है । जो पुरुष समचित्त, इन्द्रियजित् और क्षमावान् है वह महात्यागी है । हे रामजी ! जिस पुरुष ने धर्म अधर्म की देह और संसारके मद, मान, मनन इत्यादिक कल्पना का त्याग किया है वह महात्यागी है । हे रामजी ! इसप्रकार सदाशिवजी ने जो हाथ में खप्परलिये, बाघाम्बरओढ़े और चन्द्रमा मस्तकमें धारेहुये परम प्रकाशरूप हैं भृंगीगणको उपदेश किया और जैसे भृंगीगण विचरा तैसेही तुम भी विचरो तो तुम्हारे सब दुःख नष्ट होंगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहाकर्त्राद्युपदेशोनामद्विनवतितमस्सर्गः ९२ ॥

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर ! जो आपने उपदेशकिया वह मैं समझगया । आपने आगे उपशम प्रकरणमें उपदेश किया था कि, आत्मा अनन्त और शुद्धहै तब मैंने प्रश्न किया था कि, जो आत्मा अनंत और शुद्धहै तो यह कलना कैसे उपजी है—जैसे समुद्र निर्मल है उसमें धूल कैसेहो—तो आपने प्रतिज्ञा की थी कि, इसप्रश्नका उत्तर सिद्धान्त कालमें कहेंगे सो मैं अब सिद्धान्त का पात्रहूं मुझसे कहिये । जैसे स्त्री भर्त्ता से प्रश्न करती है और भर्त्ता कृपाकरके उपदेश करताहै तैसेही मैं आपकी शरणहूं कृपाकरके मुझे उत्तर दीजिये; क्योंकि; आशा और तृष्णाके फांस मेरे टूटे हैं और आशारूपीजाल से मैं निकलाहूं । मेरे हृदयसे संशयरूपी धूल उठगई है उसको वचनरूपी वर्षा से शान्त करो और मेरे हृदय में अन्धकारहै उसे वचनरूपी क्रीड़ासे निवृत्तकरो । आप के वचनरूपी अमृतसे मैं तृप्तनहीं होता । हे भगवन् ! गुरुके उपदेश किये विना अपने विचार ज्ञान से नहीं शोभता । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो पुरुष शांतिमान; क्षमावान् और इन्द्रियजित् है और जिसने मनके सङ्कल्प विकल्पको जीता है वह सिद्धान्त का पात्र है । हे रामजी ! तुम अब सिद्धान्तके पात्रहो इससे उपदेश करताहूं । जो पुरुष राग द्वेष सहित क्रिया में स्थित है और इन्द्रियों के सुखसे जिसको आराम है वह सिद्धान्तके वाक्य "अहंब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" को सुनकर भोगों में स्थित होता है और अधोगति पाता है क्योंकि; उसको निश्चय नहीं होता और उस का हृदय मलिन है इससे इन्द्रियों के सुख करके आपको सुखी मानता है और नीच स्थानोंको प्राप्त होता है । जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुआ है उसको "अहंब्रह्मास्मि" और "सर्वब्रह्म" के सुनने से शीघ्रही भावनासे आत्मपदकी प्राप्तिहोती है । तुम ऐसे जो पुरुष क्षमा आदिक साधनों से पवित्र हुये हैं उनको स्वरूप की प्राप्ति सुगम होती है और जिनका अन्तःकरण मलिन है उनको प्राप्त होना कठिनहै ।

जैसे भूने बीजको पृथ्वी में बोइये तो उसका अंकुर नहीं होता तैसेही इन्द्रियारामी पुरुषको आत्माकी प्राप्ति नहीं होती और तुम सारिखे जिनका हृदय शुद्धहै उनको ज्ञानकी प्राप्तिहोती है और वेही इन वचनों को पाकर शोभते हैं। जैसे वर्षाकालमें धान पृथ्वीमें वर्षासे शोभापाते हैं तैसेही सिद्धान्त वचनोंको पाकर वे ज्ञानरूपी दीपक से प्रकाशते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष ऊंची बांहकरके कहते हैं और सब शास्त्र भी कहते हैं उन सर्व शास्त्रोंके सिद्धान्तों को और उनके दृष्टान्तोंको मैं जानताहूं; इससे सर्व सिद्धान्तोंका सार कहताहूं तुम सुनो तो जो तुम्हारा स्वरूप है उसको जानोगे। हे राम जी! जिसको अभ्यास करके एक क्षण भी साक्षात्कार हुआ है वह फिर गर्भ में नहीं आता और उसको सत् असत्में कुछ भेद नहीं होता संवेदनमें भेद है। जैसे जाग्रत् और स्वप्नके सूर्य्य के प्रकाश दोनों समानहैं; जाग्रत् में जाग्रत् सूर्य का प्रकाश अर्थाकार होता है और स्वप्नेमें स्वप्नेका सूर्य अर्थाकार होता है पर प्रकाश दोनों का सम है और संवित् भिन्न है। स्वप्नेको मिथ्या जानता है और जाग्रत् को सत् जानता है तो संवेदनसे भेदहुआ स्वरूप से भेद कुछ न हुआ। जैसे मनसे एक बड़ा पर्वत रचिये तो संकल्प से दिखता है और एक पर्वत बाहर प्रत्यक्ष दिखता है तो संवित् का भेद हुआ स्वरूप दोनों का तुल्य है। जैसे समुद्र में तरंग हैं तो स्वरूपमें जल और तरंगों का भेद कुछ नहीं पर जिसको जलका ज्ञान नहीं सो तरंगही जानताहै, इससे संवित् में भेद है; तैसेही स्वरूप में सत् असत् तुल्य है। वास्तव में कुछ भिन्न नहीं केवल शान्तरूप आत्मा है और शब्द अर्थ संवेदन में है। शब्द अर्थात् नाम और अर्थ याने नामी संवेदन फुरनेसेहैं; जब फुरना नष्ट होजावेगा तब सर्व अर्थ भी आत्माही भासेगा। जगत्की सत्ता तबतक है जबतक आत्माका प्रमाद है और प्रमाद तबतक है जबतक अहंभाव है। जब अहंभाव नष्टहो तब केवल आत्मा शेषरहेगा जो शुद्ध, विद्या-अविद्याके कार्य्यसे रहित और कदाचित् स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! अविद्याकी दो शक्ति हैं; एक आवरण और दूसरी विक्षेप। आत्माके न जानने का नाम आवरणहै और कुछ जानने को विक्षेप कहते हैं। वह आत्मा सदा ज्ञानरूप है, उस को आवरण कदाचित् नहीं होता और अद्वैत है, उससे कुछ भिन्न नहीं बना-इसीसे वह शुद्ध, केवल और ज्ञानमात्र है। हे रामजी! जो आत्ममात्र और चिन्मात्र है और जिसमें अहं का उत्थान नहीं केवल निर्वाण पद है और जहां एक और द्वैत कहना भी नहीं केवल अपने आपमें स्थित है उसमें कलनारूपी धूल कहां हो? राम जीने पूछा, हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्म है तो मन, बुद्धि आदिक कौन हैं जिनसे तुम यह शास्त्र उपदेश करते हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शास्त्र के व्यवहार के अर्थ शब्द हैं परमार्थ में कोई कल्पना नहीं। यह मन, बुद्धि आदिक कुछ वस्तु नहीं; ब्रह्म

सत्ताही अपने आपमें स्थित है । जैसे तरंग जल से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । तैसे मनादिक हैं । आत्मतत्त्व नित्य, शुद्ध और सन्मात्र है; नाहकी नाईं स्थित है हे रामजी ! ऐसे आत्मामें संसार अविद्याका नाम आदिक कैसे हो ? आत्मा ब्रह्म है उससे भिन्न कुछ नहीं । वह सर्वका अधिष्ठान, अविनाशी और देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित है इसीसे ब्रह्म है । हे रामजी ! ऐसा जो अपना आप आत्मा है उसीमें स्थितहो । यह जगत् जो दृष्टि आताहै सो सर्व्व चिदाकाशहै भिन्न नहीं । जैसे स्वप्ने में विश्व देखताहै सो अनुभवमात्रहै तैसेही जाग्रत् विश्व भी आत्मरूपहै । ऐसा जो तुम्हारा शुद्ध, नित्यउदित और अविनाशी रूपहै उसमें जब स्थितहोगे तब कलना जो तुमको भासती है सो नष्ट होजावेगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकलनानिषेधोनामत्रिनवतितमस्सर्गः ९३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! संसारकाबीज अहंकारहै । जब अहंभाव होता है तब संसारहोताहै पर अहंकार कुछ वस्तु नहीं भ्रमसे सिद्धहुआहै । जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में पिशाच कल्पताहै सो पिशाच कुछ वस्तु नहीं उसके भ्रम से होताहै तैसेही अहंकार कुछ वस्तु नहीं स्वरूपके भ्रमसे होताहै । हे रामजी ! जो वास्तव कुछ वस्तु नहीं तो उसके त्यागने में क्या यत्नहै ? तुम में अहंकार वास्तव नहीं है, तुम केवल शान्तरूप चेतनमात्रहो और उसमें अहंभाव होना उपाधि है उससे सुमेरु पर्व्वत आदिक जगत् बनजाताहै सो संवेदनरूप है । चित्तरूपी पुरुष चेतनके आश्रय से फुरता है और विश्व कल्पताहै । जैसे रस्सी के आश्रयसे सर्प फुरताहै तैसेही चेतन के आश्रय विश्व और चित्त फुरते हैं सो आत्मासे भिन्न नहीं । अहंकार हुयेकी नाईं हुआ है कि, 'मैंहूं' ऐसा जो अहंभाव है सो दुःखकी खानिहै । सर्व आपदा अहंकार से होती है । जब अहंकार नष्ट होगा तब सब दुःख भी नष्ट होंगे । हे रामजी ! जैसे सूर्य्यके आगे बादल होते हैं तो प्रकाश नहीं होता और जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाशवान् भासता है और कमल प्रफुल्लित होते हैं; तैसेही आत्मरूपी सूर्य्यको अहंकाररूपी बादलका आवरण हुआहै मायाके किसी गुण से मिलकर कुछ आपको मानने को अहंकार कहते हैं । जब अहंकाररूपी बादल नष्ट होगा तब आत्मरूपी सूर्य्य का प्रकाश होगा और ज्ञानवान् रूपी कमल उस प्रकाश को पाकर बड़े आनन्द को प्राप्त होंगे । हे रामजी ! इससे अहंकार के नाश का उपाय करो जो तुम्हारे दुःख नष्ट होजावें । वह कौन पदार्थ है जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता ? अहंकार के नाश का उपाय करिये तो वह भी नष्ट होजाताहै । अहंकार के नष्ट करने का यह उपाय है कि, सत् शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मविद्या के वारंवार अभ्यास और सन्त के संगद्वारा कथाकी परस्पर चर्चा करने से अहंकार नष्ट होजाता है । जैसे पानी भरने की रस्सी से पत्थरकी शिला घिस जाती है

तैसेही ब्रह्मविद्याके अभ्याससे अहंकार नष्ट होता है बल्कि, शिला के घिसने में तो कुछ यत्नभी है पर अहंकार के त्यागने में कुछ यत्ननहीं। हे रामजी! सदा अनुभवरूप जो आत्मा है उसका विचार करो कि, मैं कौन हूं? इन्द्रियां क्या हैं? गुण क्याहै और संसार क्या है? ऐसे विचारसे इनका साक्षीभूतहो कि, मुझमें 'अहंत्वं' कोई नहीं। इस से तुम अहंकार का नाश करो और शुद्धहो। मेरा भी आशीर्वाद है कि, तुम सुखी होजाओ। जब अहंकार नष्ट होगा तब कलना कोई न फुरेगी केवल सुषुप्तकीनाई स्थितहोगे। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जो आपका अहंकार नष्ट हुआहै तो प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे दिखते हो और जो अहंकार नहीं है तो सर्वशास्त्र और ब्रह्म-विद्या कहां से उपजे हैं और उपदेश कैसे होताहै? उपदेश में तो अन्तःकरण चारों सिद्ध होते हैं। प्रथम जब उपदेश करनेकी इच्छा होती है तब अहंकार सिद्ध होताहै; जब स्मरण होताहै कि, उपदेश करूं तब चित्त भी चैत्य से सिद्ध होता है; फिर यह उप-देश करिये यह न करिये, ऐसे संकल्प किये से मनकी सिद्धि होती है। फिर जब निश्चय किया कि, यह उपदेश करिये तब बुद्धिकी सिद्धि होती है। इससे चारों अन्तःकरण सिद्ध होते हैं आप कैसे कहते हैं कि, अहंकार नष्ट होजाता है और सर्व चेष्टा होती हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मस्वरूपमें अहंकार आदिक अन्तःकरण और इन्द्रियां कल्पित हैं वास्तव में कुछ नहीं। शास्त्र उपदेश भी कल्पना है, आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है उससे संवेदन करके अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं और उसके निवृत्त करनेको प्रवर्त्तते हैं। जैसे रस्सी में भ्रमसे सर्प भासता है तो उसके भयसे आदमी दुःख पाता है पर जब कोई कहे कि, यह सर्प नहीं रस्सी है तू भय मतकर, इसको भली प्रकार देख; तो उसके उपदेश से वह भली प्रकार देखता है तब उसका भय और शोक निवृत्त होजाता है क्योंकि, उसको भ्रमसे सर्पभान हुआ था सो भी मिथ्या है और उसको रस्सीका उपदेश करना भी मिथ्या है क्योंकि, रस्सी तो आगे से सिद्धहै उपदेशसे सिद्ध नहीं होती; तैसेही रस्सी की नाईं आत्माहै उसकी निवृत्ति जो चेतन लक्षण है उसको अहंभाव कहते हैं और उस अहंकार के निवृत्त करने को शास्त्र हुये हैं। आत्म-रूपी रस्सी के प्रमादसे अहंकाररूपी सर्प फुरा है और उसके निवृत्त करने को शास्त्रके उपदेश हुये हैं और आत्माको जतादेते हैं। जब भली प्रकार रस्सीकीनाईं आत्माको जाना तब सर्पकी नाईं जो परिच्छिन्न अहंकार है सो नष्ट होजाता है। जैसे नेत्रका मैल जब अञ्जनके लगाने से नष्ट होजाता है तब ज्यों के त्यों निर्मल नेत्र होतेहैं; तैसेही अज्ञानरूपी मैल गुरु और शास्त्रके उपदेशरूपी सुरमे से नष्ट होजाता है। वास्तव में न कोई अहंकार है और न शास्त्र है क्योंकि; आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है परंतु तोभी गुरु शास्त्रसे जानाजाता है। हे रामजी! ज्ञानवान् के साथ चारों अन्तःकरण

और इन्द्रियांभी दृष्टि आती हैं पर उन में सत्यता नहीं होती-जैसे भूना बीज दृष्टि आता है परन्तु उगने की सत्यता नहीं रखता और जैसे जला वस्त्र देखनेमात्र है पर उसमें सत्यता कुछ नहीं होती तैसेही ज्ञानवान् को अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता और उससे वह कष्ट नहीं पाता जैसे सूर्यकी किरणों से मरुस्थल में जलाभास होता है और उसको देखकर पान करने के निमित्त मृग दौड़ता है और दुःखी होता है तैसेही दृश्यरूपी मरुस्थलमें पदार्थरूपी जलाभासको देखकर अज्ञानरूपी मृग दौड़ते हैं और दुःखपाते हैं। जब ज्ञानरूपी वर्षा से आत्मरूपी जलचढ़ा तब चित्तरूपी मृग कहां दौड़े। जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है और अनुभवरूपी जल चढ़ता है तब चित्त रूपी मृगमें यत्नरूपी जो फुरनाथा सो नष्ट होजाता है। हे रामजी! अहंकार अविचारसे सिद्ध है और विचारसे क्षीण होजाता है। जैसे बर्फकी पुतली सूर्य्यकी किरणों से क्षीणहोती है और जब अधिक तेजहोता है तब जलरूप होजातीहै, बर्फ की संज्ञा नहीं रहती; तैसेही अहंकाररूपी बर्फ विचाररूपी किरणों से क्षीण होजाती है। जब दृढ़विचार होता है तब अहंकारसंज्ञा नष्ट होजाती है और केवल आत्माही रहता है रामजीने पूछा, हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन्! जिसका अहंकार नष्ट होता है उसका लक्षण क्याहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानरूपी गढ़ा संसारहै उसमें पदार्थ की भावना से वह नहीं गिरता और जैसे समुद्र में नदियां स्वाभाविक आय प्राप्तहोती हैं तैसेही उसको क्षमा शान्ति आदिक शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होते हैं उसका क्रोध भी नष्ट होजाता है और देखनेमात्र यदि भासता भी है तौभी अर्थाकार नहीं होता; विषमता करके भिन्न भावना हृदय में नहीं फुरती और केवल सत्तासमान में स्थित होताहै। जैसे शरत्कालका मेघ गर्जता है पर वर्षा से रहित होताहै तैसेही इन्द्रियों की चेष्टा वह अभिमान से रहित होकर करता है। जैसे वर्षाऋतु के जाने से कुहिरा नहीं रहता तैसेही उसकी अभिमान चेष्टा नष्ट होजाती है और लोभभी मनसे जातारहता है। जैसे वनमें अग्नि लगती है तो मृग और पक्षी उसवनको त्यागजाते हैं तैसेही लोभरूपी मृग उसको त्यागजाते हैं और उसके मनमें कोई कामना नहीं रहती। जैसे दिनमें उलूक और पिशाच नहीं विचरते तैसेही जहां ज्ञानरूपी सूर्य्य उदय होता है वहां सम्पूर्ण कामनारूपी तम नष्टहोजाता है और शान्तरूप आत्मामें स्थितरहता है। जैसे मजदूर दोपोटोंको ज्येष्ठ आषाढ़की धूपमें उठाताहै और गरमी में थकता है तो उसको डारकर वृक्षके नीचे सुखसे स्थित होता है तैसेही वासनारूपी पोट है और अज्ञानरूपी धूपहै उससे दुःखी होता है पर ज्ञानरूपी बलकर वासनारूपी पोटको डार के सुखसे स्थित होता है। हे रामजी! उस पुरुषकी भोग भावना नष्ट होजाती है और फिर उसे दुःख नहीं देती। जैसे गरुड़को देखकर सर्प भागता है और फिर

निकट नहीं आता, तैसेही ज्ञानरूपी गरुड़को देखकर भोगरूपी सर्प भागते हैं और फिर निकट नहीं आते। आत्मपदको पाकर ज्ञानी शान्तिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान् होता है और भाव—अभाव पदार्थ उसको स्पर्श नहीं करते और संसारभ्रम निवृत्त होजाताहै। ज्ञान समझने मात्रहै कुछ यत्न नहीं। सन्तों के पास जाकर प्रश्न करना कि मैं कौनहूं? जगत् क्याहै? परमात्मा क्याहै? भोग क्या है? और इससे तरकर कैसे परमपदको प्राप्तहूं। फिर जो ज्ञानवान् उपदेशकरे उसके अभ्याससे आत्मपदको प्राप्त होगा अन्यथा न होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसज्जनलक्षणमाहात्म्यवर्णनं नामचतुर्नवतितमस्सर्गः ९४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसप्रकार तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकु नामक बड़े राजा जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं तैसेही तुमभी विचरो क्योंकि, तुमभी उसी कुलमें उपजेहो। हे रामजी! वह सूर्यवंशी इक्ष्वाकुराजा मनुका पुत्र और सूर्यका पौत्र सब राजाओं से श्रेष्ठहुआहै—जैसे पितरों का राजा धर्म्म है—और बर्फ की नाईं उसका शीतल स्वभाव था। जैसे सूर्यको देखकर मणिसे तेज प्रकट होताहै तैसेही उसको देखकर शत्रु तपायमान होते थे और साधु मित्र और प्रजाको रमणीय भासता था और वे सब उसको देखकर शान्तिमान् होते थे। जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसेही उसको देखकर सब प्रसन्नहों। वह पापरूपी वृक्षों का काटनेवाला कुल्हाड़ा और मित्रका सुखदायक था—जैसे मोरोंको मेघ सुखदायक है। सुन्दर वह ऐसा कि, जिसको देखकर लक्ष्मी स्थित होरहीथी और उसके यशसे सम्पूर्ण पृथ्वी पूररहीथी। ऐसा राजा भलीप्रकार प्रजाकी पालना करताथा कि, एककाल उसके मनमें विचार उपजा कि, संसारमें जरा, मरण आदिक बड़ेक्षोभहैं इस संसार दुःख के तरने का क्या उपायहै। ऐसे वह विचारताथा कि, शम्भुमुनि ब्रह्मलोक से आये और उसने उनका भलीप्रकार पूजन करके पूछा, हे भगवन्! आपकी कृपाका पराक्रम मेरे हृदय में बैठ कर प्रश्न करने को—प्रेरताहै इससे मैं प्रश्न करताहूं। हे भगवन्! मेरे हृदयमें संसार फुरता है और जैसे समुद्र को वड़वाग्नि जलाती है तैसेही मुझको जलाताहै। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे मुझको शान्तिहो। हे भगवन्! यह संसार कहांसे उपजा है; दृश्यका स्वरूप क्या है और कैसे निवृत्तहोता है? जैसे जालसे पक्षी निकल जाता है; तैसेही जन्म, मरण महाजाल संसारसे मैं निकलना चाहताहूं और जैसे वरुण समुद्र के सब स्थान जानता है तैसेही तुम जगत् के सब व्यवहारों को जानते और संशय के निवृत्त करनेवाले हो। अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता तुम सूर्यहो और तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से मैं शान्तिको प्राप्तहूंगा। मुनि बोले, हे साधु! मैं चिरकालपर्यंत

जगत् में विचरता रहाहूं परन्तु ऐसा प्रश्न मुझसे किसीने नहीं किया—तुमने परमसार प्रश्न किया है? यह प्रश्न अनर्थका नाशकरनेवाला है और तेरी बुद्धि विवेकसे विकाशमानहुई दृष्टिआती है। हे राजन्! जो कुछ जगत् तुझको भासताहै सो सब असत् है। जैसे रस्सी में सर्प, स्वप्नमें गन्धर्वनगर; मरुस्थलमें जल; सीपी में रूपा; आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे भासते हैं; तैसेही यह जगत् असत्रूप है और जैसे जलमें चक्र और तरंग असत्रूप हैं तैसेही जगत् असत्रूप है। जो मन सहित षट् इन्द्रियों से अतीत है और शून्य भी नहीं सो सत् और अविनाशी आत्मा कहाता है। वह निर्मल परब्रह्म सर्व ओरसे पूर्ण और अनन्तहै, उसी में जगत् कल्पित है। हे राजन्! जैसे सर्ववृक्षों में एकहीरस व्यापक है तैसेही सर्व पदार्थों में एक चिन्मात्र सत्ता व्यापकहै और जैसे अचल समुद्रमें द्रवतासे तरंग फुरते हैं तैसेही परमात्मा में जगत् फुरते हैं। उस महादर्पणमें सर्ववस्तु प्रतिबिम्बित होती हैं जैसे समुद्र में कोई तरंग और कोई बुद्बुदे, चक्रादिक होते हैं तैसेही आत्मा में जीवादिक आभास होते हैं। प्रथम फुरनेरूप होते हैं और पीछे कारण कार्य्यरूप होते हैं सो चित्तशक्ति अपने सङ्कल्प से भूतादिक देह रचकर उसमें स्वरूप के प्रमाद से आत्मा अभिमान करता है। जैसे कुसवारी की क्रिया अपने बन्धनके निमित्त होती है तैसेही जीवको अपना सङ्कल्प बन्धनका कारण होताहै। हे राजन्! जीवकला को स्वरूप का अज्ञान हुआ है। इससे जैसे बालकको अपनी परछाहीं यक्षरूप होकर भय देती है तैसेही यह नानाप्रकारके आरम्भको प्राप्तहुआ है और अकारणही ब्रह्मशक्ति फुरने से कारणभाव को प्राप्तहुआ है। उसमें बन्ध और मोक्ष भासते हैं तैसेही वास्तवमें न बन्धहै और न मोक्षहै; निरामय ब्रह्महीं अपने आपमें स्थितहै और उसमें एक और अनेक कुछ नहीं कह सक्ते। इससे बन्ध मोक्ष की कल्पनाको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनाम पञ्चनवतितमस्सर्गः ९५॥

मुनि बोले, हे राजन्! जैसे द्रवता से जलही तरङ्गभाव को प्राप्त होता है तैसेही चिन्मात्रही संकल्पके फुरनेसे जीव होताहै और वह जीव संसारमें कर्मोंके वशसे भ्रमता हुआ आप को कर्त्ता देखता है पर सर्व्वात्मा परब्रह्म करताहुआ भी कुछ नहीं करता। जैसे सूर्य्य के प्रकाशसे सब चेष्टा होती हैं और सूर्य्य अकर्त्ता है तैसेही आत्माकी शक्ति से जगत् चेष्टा करता है और जैसे चुम्बक पत्थरके निकट लोहा चेष्टा करता है तैसेही आत्माकी चेतनतासे सब देहादिक चेष्टा करते हैं और आत्मा सदा अकर्त्ता है। जैसे जलमें तरंग फुरते हैं तैसेही आत्मामें देहादिक फुरते हैं। जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पना

होती है तैसेही आत्मा में मोहसे सुख दुःख कल्पते हैं पर आत्मामें कुछ कल्पना नहीं। शुद्ध आत्मामें मूढ़ों ने सुख दुःखकी कल्पनाकी है पर जो ज्ञानवान्हैं उनको मन, चित्त, सुख, दुःख सब आकाशरूपहैं। वे देहसे रहित केवल चिदाकाश भावको प्राप्त होते हैं, जरा, मरणको नहीं प्राप्तहोते और सब कार्यको करते दृष्टिआते हैं पर हृदयसे सदा अकर्त्तारूपहैं। जैसे जल और दर्पणमें पर्व्वतका प्रतिबिम्ब पड़ता है परन्तु स्पर्श नहीं करता तैसेही ज्ञानवान्को क्रिया स्पर्श नहीं करती। शरीरके व्यवहार में भी वह सदा निर्मलभाव है। हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूपहै परन्तु भ्रमसे चञ्चल भासता है। जैसे जलकी चञ्चलतासे पर्व्वतका प्रतिबिम्ब भी चञ्चल होताहै, तैसेही देहादिक से आत्मा चलता भासताहै पर आत्मा नित्य शुद्ध और अपने आपमें स्थितहै। जैसे घटके नाशहुये से घट नाश नहीं होता तैसेही देहके नाशहुये आत्माका नाश नहीं होता और जैसे शुद्ध मणिमें नानाप्रकारके प्रतिबिम्ब होते हैं पर उनसे वह रञ्जित नहीं होती तैसेही आत्मामें मन, इन्द्रियां और देह दृष्टि आते हैं पर स्पर्श नहीं करते। जैसे सब मिष्ट पदार्थोंमें एकही मिठाई व्यापी है तैसेही सब पदार्थों में एक आत्मसत्ता व्यापी है। हे राजन्! आत्मा सदा अचलरूप है परन्तु अज्ञानसे चलरूप भासता है। जैसे दौड़ते बालकको सूर्य दौड़ता भासताहै तैसेही आत्मा देह के संगसे अज्ञानवश विकारवान् भासताहै और जैसे प्रतिबिम्ब का विकार आदर्शको नहीं स्पर्श करता तैसेही देहका विकार आत्माको स्पर्श नहीं करता। जैसे अग्निमें सुवर्ण डालिये तो मैल दग्ध होजाता है पर सुवर्णका नाश नहीं होता; तैसेही देहके नाशहुये आत्मा का नाश नहीं होता जो नित्यशुद्ध अवाक् और अचिन्त्यरूप है। हे राजन्! वह चिंतवने में नहीं आता परन्तु चेतनवृत्ति से सब दिखताहै। जैसे राहु अदृष्टहै परन्तु चन्द्रमाके संयोग से दृष्टि आताहै, तैसेही आत्मा अदृष्ट है परन्तु चेतनवृत्ति से जानाजाता है। जैसे शुद्धदर्पणमें प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही निर्मल बुद्धिमें आत्मा साक्षात् भासता है। और सङ्कल्पसे रहित अपने आपमें स्थितहै। जब बुद्धि निर्मल होती है तब अपने आपमें उसको पाती है। हे राजन्! जबतक अपनी बुद्धि निर्म्मल न हो तबतक शास्त्र और गुरुसे ईश्वर नहीं मिलता और जब अपनी बुद्धि सत्पद में निर्मल हो तब अपने आप से दिखताहै। जब संसारकी सत्यता हृदय से दूरहो और आत्मा का अभ्यासहो तब बुद्धि निर्म्मल होती है। हे राजन्! सर्वभाव--अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं सो असत् और केवल भ्रममात्रहैं उनकी आस्थाका त्यागकरो। जैसे कोई मार्ग में चलता है तो अनेक पदार्थ मिलते हैं परन्तु उनमें वह कुछ राग, द्वेष नहीं करता तैसेही देह और इन्द्रियों के स्नेह से रहित आत्मतत्त्व सदा अपने आप में स्थित है और उसमें देहादिक इन्द्रजालकी नाईं मिथ्याहैं उनकी भावना दूरसे त्यागकर नित्य आत्मा शीतल

चित्तमें स्थितहोरहो । हे राजन् ! जीव आपही अपना मित्र है और आपही अपना शत्रुभी है क्योंकि; आत्मामें और का ठौर नहीं–आत्मामें आत्माकाही भाव है–द्वैत नहीं । जो दृश्य पदार्थकी ओरसे और अनात्म धर्म विषय से खैंचकर चित्तको अपने आपमें स्थित करता है वह अपना आपही मित्र है और जो अनात्म धर्म में पदार्थों की ओर चित्तलगाता है वह अपना आपही शत्रुहै । वास्तव में जो कुछ दृश्यजाल है वह भी आत्मरूप है आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं । जैसे समुद्रमें जलसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं जलही जलहै; तैसेही आत्मासे भिन्न जगत् कुछ वस्तु नहीं–सब अनुस्यूत एक आत्मसत्ताही स्थित है । जैसे अनेक घटोंके जलमें एकही सूर्यका प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है, तैसेही अनेक देहों में एकही आत्मा व्यापरहा है । वह न अस्त होता है और न उदय होता है; सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्योंकात्यों स्थित है और उस में अहंभावना करके संसार भासता है । जैसे सीपी में रूपे की बुद्धि होती है तैसेही आत्मामें अहंबुद्धि संसार का कारण है और इसी बुद्धि से सर्व दुःखका भागी होताहै । जैसे वर्षाकालमें सब नदियां समुद्रमें प्रवेश करती हैं तैसेही अनात्म अभिमान से सब आपदा प्राप्तहोती हैं । वास्तव में चिन्मात्र और जीवमें रंचकभी भेदनहीं एकहीरूप है । ऐसी जो बुद्धिहै सो बन्धन से मुक्तिका कारण है । आत्मा सर्व में अनुस्यूत व्यापा है । जैसे सूर्यका प्रकाश सर्वठौर में होता है परन्तु जहां शुद्ध जलहै वहां भासता है तैसेही आत्मा सबठौर पूर्ण है परन्तु शुद्धबुद्धि में भासता है । जैसे तरंग और बुद्बुदोंमें जल ही व्यापरहा है तैसेही अविनाशी आत्मा दृश्य कलना से सर्वत्र व्यापा है पर जैसे सुवर्ण में भूषण नहीं तैसेही आत्मामें जगत्का अभावहै । हे राजन् ! यह संसार आत्मा में नहीं है; केवल आत्माही है । जो एकवस्तु पात्रकी नाईं होती है उसमें दूसरी वस्तु होती है पर आत्मा तो अद्वैत है दूसरी वस्तु संसार कहां हो ? जैसे चित्तसे सुवर्ण में भूषण कल्पित हैं–वास्तव में कुछ नहीं; तैसेही आत्मा में संसार अज्ञान से कल्पितहै और वास्तव कुछ नहीं–केवल चिदाकाश है । जैसे नदियां और समुद्र नाममात्र भिन्न हैं, वास्तवमें जलही है, तैसेही केवल चिदाकाश में विश्व नाममात्रहै । जितने आकार भासते हैं उनको काल भक्षण करता है जैसे नदियों को समुद्र भक्षण करके नहीं अघाता तैसेही पदार्थ समूहों को काल भक्षण करके नहीं अघाता । हे राजन् ! ऐसे पदार्थों में क्या अभिलाषा करनी है ? कई कोटि सृष्टि उत्पन्न होती हैं और उनको काल भक्षण करता है–कोई पदार्थ कालसे मुक्त नहीं होता जैसे समुद्र में तरंग और बुद्बुदे उपजते हैं और नष्टहोजाते हैं । इससे तू काल से अतीत पदकी भावनाकर कि, कालको भी भक्षण करे । कैसे भावना करिये और कैसे भक्षण करिये सो भी सुन । जैसे मन्दराचलने अगस्त्यमुनिके आनेकी भावना करी है तैसेही तुम भी

अपने स्वरूपकी भावनाकरो तब कालको भक्षणकरोगे। जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र को भक्षण कियाथा तैसेही आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्र को भक्षण करेगा। हे राजन्! जन्म मरणादिक जो विकार हैं सो भ्रम करके हैं और आत्माके प्रमाद से भासते हैं। जब आत्माको निश्चय करके जानोगे तब कोई विकार न भासेगा, क्योंकि; ये अज्ञानसे रचे हैं—आकाश में कोई नहीं। जैसे भ्रमसे रस्सी में सर्प भासता है सो तबतक है जबतक रस्सीको नहीं जाना और जब रस्सीको जाना तब सर्प भ्रम निवृत्त होजाता है; तैसेही जन्म मरणादिक विकार आत्मामें तबतक भासताहै जब तक आत्माको नहीं जाना; जब आत्माको जानोगे तब सर्व विकार नष्ट होजावेंगे। हे राजन्! ऐसा विकार से रहित आत्मा तेरा स्वरूप है उसकी भावना कर कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। आत्मपदको कहीं खोजने नहीं जाना है; न किसी वस्तुको जान कर ग्रहण करना है कि, यह आत्मा है और न किसी कालकी अपेक्षाही है, आत्मा तेरा अपना स्वरूप है और सर्व्वदा अनुभवरूप है। तुझ से भिन्न कुछ वस्तु नहीं तू आपको ज्योंकात्यों जान। आत्मा के न जानने से आपको दुःखी जानता है। मैं मरूंगा, मैं दरिद्रीहूं, मैं दासहूं इत्यादिक दुःख तबतक होते हैं जबतक आत्मा को नहीं जाना; जब आत्माको जानोगे तब आनन्दरूप होजावोगे। जैसे किसी स्त्री की गोद में पुत्रहो और वह स्वप्न में देखे कि, बालक मेरे पास नहीं है तो बड़े दुःख को प्राप्त हो और रुदन करने लगे पर जब स्वप्नसे जागे और देखे कि, बालक मेरी गोदमें है तो बड़े आनन्दको प्राप्तहोती है और दुःख शोक नष्टहोजाते हैं। हे राजन्! उसीप्रकार तेरा आत्मा अपना आप है और सदा अनुभवरूप है; उसके प्रमाद से तू आपको दुःखी जानता है; जब अज्ञानरूपी निद्रासे तू जागेगा तब आपको जानेगा और तेरे दुःख और शोक नष्ट होजावेंगे। देह और इन्द्रियादिक जो दृश्य हैं उनसे मिलकर आपको यह जानना कि 'मैं हूं' यही अज्ञान निद्रा है। इससे रहित होकर देख कि, आनन्दको प्राप्तहो। यह जो पदार्थ भासते हैं सो सब मिथ्याहैं जैसे बालक मृत्तिका में राजा, सेना, हाथी और घोड़ा कल्पताहै सो न कोई राजाहै, न सेनाहै न कोई हाथी घोड़ा है एक मृत्तिकाही है; तैसेही चित्तरूपी बालकने आत्मरूपी मृत्तिकामें जो राजा और सेना आदिक सम्पूर्ण विश्व कल्पा है सो सब मिथ्या है। हे राजन्! एक उपाय तुझसे कहताहूं उसे कर कि, तेरे दुःखनष्ट होजावें एक वस्तु जो 'अहं अभिलाषा सहित फुरना है' उसका त्यागकरो; फिर जहां इच्छाहो वहां विचरो तुझे दुःखका स्पर्श न होगा। संकल्पही उपाधि है और उपाधि कोई नहीं। जैसे मणि तृणसे आच्छादित होती है तब दृष्टि नहीं आती और जब तृण दूर करिये तब मणि प्रकट होआती है; तैसे ही आत्मारूपी मणि वासनारूपी तृणसे ढँपी है; जब वासनारूपी तृण दूर कीजिये

तब आत्मारूपी मणि प्रकटहो । हे राजन् ! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिसे रहित जो आत्मपदहै जब उसको प्राप्त होगे तब जानोगे कि, मैं मुक्तहूं । तेरा स्वरूप जो केवल आत्मरूपहै उस पदमें स्थितहो । वह अजन्मा और नित्यहै । और चेतनमात्र सर्वका अपना आपहै, उसके प्रमादसे दुःख होताहै जैसे बालक मृत्तिका के खिलौने बनाते हैं और हाथी, घोड़ा आदि उनके नाम कल्पकर अभिमान करते हैं कि, मेरे हैं और उनके नाश होनेसे दुःखी होते हैं; तैसेही बालकरूप अज्ञानी स्वरूपके प्रमादसे अभिमान करताहै कि, यह मेरे हैं; मैं इनकाहूं और उनके नाश होनेसे दुःखी होताहै–ऐसे नहीं जानता कि, सत्का नाश नहीं होता । असत्के नाश होनेसे सत्का नाश मानताहै । जैसे घटके नाशहोने से घटाकाश नाश मानिये तैसेही मूर्खता से दुःख पाताहै । हे राजन् ! तू आपको आत्माजान । आत्मादिक संज्ञाभी शास्त्रों ने जताने के निमित्त कल्पी हैं नहीं तो आत्मा निर्वाच पद है; उसमें वाणी की गम नहीं और इनहीं से जाना जाताहै क्योंकि; मन और वाणी में भी आत्मसत्ता है उसी से आत्मादिक संज्ञा सिद्धि होती हैं । जैसे जितने स्वप्न के पदार्थ हैं उन में अनुभव सत्ताहै उससे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं; तैसेही जितनी कुछ अर्थ संज्ञाहैं सो सब आत्मासे सिद्ध होती हैं । ऐसा जो तेरा स्वरूप है उस में स्थित हो कि, जरा मृतादिक दुःख नष्टहोजावें । हे राजन् ! निस्स्पन्द होकर देखेगा तब स्पन्द में भी वही भासेगा और स्पन्द–निस्स्पन्द तुल्यहोकर भासेंगे जो समाधिमें होवेगा अथवा ऐसेही चेष्टा करेगा तौभी तुल्यहोवेगी और न समाधि में शान्ति भासेगी और न चेष्टा में दुःख भासेगा दोनों में एकरस रहेगा । हे राजन् ! देना अथवा लेना, यज्ञ, दान आदिक क्रिया जो कुछ प्राकृत आचार प्राप्तहो उनको मर्यादा और शास्त्र की विधि संयुक्त कर पर निश्चय आत्मस्वरूपमेंही रख । जैसे नट स्वांगोंको धारकर सम्पूर्ण चेष्टा करता है पर उस में निश्चय नटत्वही का रहता है, तैसेही तुमभी सर्व चेष्टा करो पर उसके अभिमान और सङ्कल्प से रहितहो । ग्रहण अथवा त्याग जो कुछ स्वाभाविक आ प्राप्त हो उसमें ज्योंकेत्यों रहो । जब निर्विकल्प होकर अपने स्वरूपको देखोगे तब उत्थानकाल मेंभी तुम्हें आत्माही भासेगा जैसे जलके जाने से तरंग फेन बुद्बुदा सर्व जलही भासते हैं तैसेही जब तुम आत्माको जानोगे तब संसारभी आत्मरूप भासेगा । जो आत्मा को नहीं जानता उसको जगत्ही दृष्टि आता है और उससे दुःख पाता है; इससे तू अन्तर्मुखहो और सङ्कल्प को त्यागकर परमनिर्वाण अच्युतपदमें स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशोनाम षण्णवतितमस्सर्गः ९६ ॥

मुनि बोले, हे राजन् ! यह जो सङ्कल्पपुरुष है सो सङ्कल्पसेही आप बँधाता है

और आपही मुक्त होता है। जब संकल्प से दृश्यकी भावना करता है तब जन्म मरण को प्राप्त होकर दुःखी होताहै। आपही सङ्कल्प करताहै और आपही बन्धनको प्राप्त होता है जैसे कुसवारी आपही गुफा बनाकर और आपही उसको मूँदकर फँसती हैं तैसेही जीव अपने संकल्पसे आपही दुःख पाता है और जब संकल्पको अन्तर्मुख करता है तब मुक्तहोता है और मुक्तही मानता है। इस से हे राजन्! संकल्पको त्यागकर आत्मा जो सर्व का अपना आप है उसकी भावनाकर कि, तू सुखी हो। हे राजन्! आत्मा के प्रमादसे देह आस्थाकी भावना हुई है उससे दुःख पाता है; इस से आत्मस्वरूप की भावना करो। तुम आत्मा चिद्रूप हो। महाआश्चर्य्य माया है जिसने संसार को मोह लिया है। आत्मा सर्वदा अनुभवरूप और अंग अंग व्यापी है उसको जीव नहीं जानते यही आश्चर्य है। हे राजन्! आत्मा सदा अनुभवरूप उसमें स्थितहो। संसार आत्मा के प्रमाद और फुरने से हुआहै सो सत्भी नहीं। और असत्भी नहीं। जो आत्मासे भिन्न देखिये तो मिथ्या है-इससे सत् नहीं और जो आत्माके सिवा दूसराहै नहीं इससे असत्भी नहीं। तू आत्माकी भावनाकर। जो कुछ पदार्थ भासते हैं उन्हें आत्मासे भिन्न न जान-सर्वात्माही है। आत्माके सिवा जो और भावना है उसका त्यागकर। हे राजन्! जैसे जलमें तरङ्ग और बुद्बुदे होते हैं सो जलसे भिन्न नहीं-जलही ऐसे भासते हैं; तैसेही जगत् जो दृष्टि आता है सो आत्मा ही ऐसे भासता है जैसे सूर्य्य और किरणों में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं। आत्माही जगत्रूप है और भिन्नभिन्न आकार चित्तशक्ति से हैं सो भिन्न नहीं आत्मसत्ताही है। जैसे तप्तहुआ लोहा वस्त्रादिकको जलाता है; सो लोहेको अपनी सत्ता नहीं अग्निकी सत्ता है; तैसेही चेतनकी सत्ता जगत्रूप होकर स्थित हुई है। आत्मा सदा केवलरूप है जिसमें प्रकाश और तम दोनों नहीं और न सत् है; न असत् है, न कोई देशहै, न काल है, न कोई पदार्थ है केवल चेतन मात्र गुणातीत है उसमें न कोई गुण है न माया है केवल शान्तरूप आत्मा है। हे राजन्! वह शास्त्रों और गुरुके वचनों से पाया जाताहै और तपसे नहीं मिलता। केवल अपने आपसे जानाजाताहै और शास्त्रादिक लखा देते हैं परन्तु "यह है" ऐसा कहकर नहीं जानते। द्रष्टा पुरुष अपने आपमें जानताहै। जैसे सूर्यकी ज्योति जो नेत्रों में है वही सूर्यको देखती है, तैसेही आत्माही आत्मा को देखताहै और अन्तर्मुख होकर संकल्पसे रहित हुआ अपने आपको देखताहै। जब संकल्प बहिर्मुख होता है तब वही दृढ़होकर स्थित होताहै और फिर उसकी भावना होती है। जब संकल्परूप जगत् दृढ़तासे स्थित होताहै तब दुःखदायी होताहै। हे राजन्! जीवको दुःखदायी और कोई नहीं; अपनेही संकल्प करके असम्यक्दर्शी दुःखी होताहै और असम्यक्दर्शी को

जगत् दृष्टिभी आताहै तौ भी दुःखदायी नहींहोता। जैसे रस्सी में सर्पकी भावनाहोती है तो भय प्राप्त होताहै फिर जब रस्सी के जानने से सर्प भावना दूर होती है तब भयभी जातारहताहै; तैसेही जिसपुरुषको संसार की भावना होती है वह दुःखदायी है। इससे आत्माकी भावनाकर कि, तेरे सबदुःख नष्टहोजावें। हे राजन्! तू सर्वदा आनन्दरूप और अद्वैत है; तेरे में कोई कल्पना नहीं और तू आत्मस्वरूप है। आत्मा षट्विकारों से रहितहै; विकार मिथ्यादेहके हैं आत्माशुद्धहै और आत्मा के प्रमाद से विकार भासते हैं। जब तू आत्माको जानेगा तब कोई विकार न दृष्टिआवेगा क्योंकि; आत्मा अद्वैतहै। राजाने पूछा, हे भगवन्! तुम कहतेहो कि, आत्मा अद्वैतहै। जो इसप्रकार है तो पर्वत आदिक विश्वका कैसे भान होता है और पत्थररूप बड़े आकार बनके कहां से उपजेहैं? इसका रूप क्याहै कृपाकरकेकहो? मुनिबोले, हे राजन्! आत्मा में संसार कोईनहीं वह सदाशान्तरूप और निराकारहै और उसमें स्पंद निस्स्पन्द दोनों शक्तिहैं जब निस्स्पन्दशक्ति होतीहै तब केवल अद्वैत भासताहै और जब स्पंदशक्ति फुरती है तब नानाप्रकारके जगत् आकार भासतेहैं पर वास्तवमें आत्माही है–कुछ भिन्ननहीं। जैसे समुद्र में तरंग कुछ और नहीं वही रूपहैं पर पवन के संयोगसे तरंग फुरते हैं तो भिन्नभिन्न दृष्टिआते हैं; तैसेही फुरनशक्तिसे अहंकार भिन्नभिन्न भासते हैं–वास्तव में आत्मस्वरूपहै–इतर कुछ नहीं। जैसे वटके बीजमें पत्र, डाल, फूल और फल अनेक दृष्टि आतेहैं तैसेही आत्मसत्ताने जो नानाप्रकार के आकार धारे हैं यद्यपि वे दृष्टि आते हैं तौ भी कुछ बना नहीं केवल अद्वैत आत्मा ज्योंकात्यों स्थित है और सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है और पर्व्वत आदिक जो विश्व भासता सो आत्माका चमत्कार है जैसे स्वप्नमें पर्व्वत और वृक्षादिक नानाप्रकार के जो आकार भान होते हैं वे अनुभव रूपहैं–उनसे इतर कुछनहीं; तैसेही जाग्रत् विश्वभी आत्माका अनुभवरूप है–आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। इक्ष्वाकु ने पूछा, हे भगवन्! जो आत्मा सूक्ष्म है तो पर्व्वतादिक स्थूल असत्‌रूप सत् होकर कैसे भासते हैं सो कृपाकरके कहो? मुनिबोले, हे राजन्! आत्मामें अनन्त शक्ति है सो आत्मा से भिन्न नहीं वही रूप है। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य्य से भिन्न नहीं, तैसेही आत्माकी शक्ति आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे पवन में दो शक्ति हैं–स्पन्द और निस्स्पन्द सो वही रूपहै–स्पन्दशक्तिसे प्रकट भासता है और निस्स्पन्दसे प्रकट नहीं भासता; तैसेही आत्मामेंभी स्पन्द–निस्स्पन्द दो शक्तिहैं। जब स्पन्दशक्ति फुरती है तब अहंभाव प्रकट होता है और जब अहंभाव हुआ तब चित्त उदयहोताहै। अहंही चित्त है; जब चित्तहुआ तब आकाशकी भावनासे आकाश बन जाताहै; जब स्पर्श की भावना हुई तब पवन उत्पन्न होताहै; रूपकी भावना से अग्नि बनतीहै और जब रसकी भावना हुई तब जल उत्पन्नहुआ। इसीप्रकार चित्तकी कल्प-

नासे तत्त्व उपजेहैं। जब चारोंतत्त्व इकट्ठे हुये तब एक अण्डहुआ और जब दृढ़ संकल्प किया तब स्वायंभूमनु हुआ। जब अण्ड फूले तब स्वर्ग मध्य और पाताल तीन लोक हुये वे तीनों लोक राजस सात्त्विक और तामस तीनों गुण हुये। फिर पर्व्वत आदिक दृश्य पदार्थ हुये। हे राजन्! केवल संकल्पमात्रही सब हुये हैं। जब स्पन्द शक्ति फुरतीहै तब इस प्रकार आत्मामें भासतेहैं परन्तु कुछ बना नहीं। जैसे समुद्र में फेन और बुद्बुदे फुरतेहैं सो जलरूपहैं—जलसे कुछ भिन्ननहीं; तैसेही आत्मा से भिन्न कुछवस्तुनहीं। आदिमनु जो स्वायंभू हैं उनके संकल्पने आगे मन कल्पेहैं। इसीप्रकार त्रिगुणमय सृष्टि उत्पन्न होती है सो केवल संकल्पमात्र है। जबतक चित्त है तबतक विश्वहै; जब चित्त फुरनेसे रहितहुआ तब निस्स्पन्दशक्ति होतीहै और जब निस्स्पन्द हुई तब फिर जगत् नहीं देखाईदेता। हे राजन्! यह विश्व मनके फुरनेसेहै और सत्य की नाईं स्थितहुआहै। सत् जोहै सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु सो नहीं भासता और असत् सत्की नाईं भासता है। वह सत् कैसे असत्की नाईं हुआहै और असत् कैसे सत्कीनाईं हुआहै सो सुन। सत् जो है सर्वदेश, सर्वकाल, सर्ववस्तु नहीं भासती और असत् जो परिच्छिन्नरूप देश, काल, वस्तु परिच्छेदसंयुक्तहै वह सत्की नाईं हुईहै। जहां देखिये वहां दृश्यही गुणमय संसार भान होता है। महाआश्चर्यरूप माया है जिसने सत्यको असत्यकी नाईं किया है और असत्य को सत्यकी नाईं स्थित कियाहै सो चित्त के सम्बन्धसेही संसार भासताहै आत्मामें संसार कोई नहीं। जब चित्तको स्थितकरके देखोगे तब तुम्हें संसार न भासेगा। जैसे गम्भीरजल होताहै तो चलता नहीं भासता तैसेही गम्भीर आत्मामें संसार नहीं जानाजाता कि, कहां फुरता है। संसार भी आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं आत्मस्वरूपही है। जैसे अग्नि के चिनगारे और जल के तरंग जलसे भिन्न नहीं और मणिका प्रकाश मणिसे भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा से संसार भिन्न नहीं केवल आत्मस्वरूप है। ऐसे आत्माको जानकर शांतिमान् हो कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। केवल शान्तपद आत्मा तेरा अपना आपहै। अपने स्वरूप को भूलके तू दुःखी हुआ है। जब आत्माको जानोगे तब संसार भी आत्मरूप भासेगा क्योंकि; आत्मस्वरूप है आत्मा से भिन्न कोई वस्तु नहीं। ऐसा आत्मा तेराखरूप है उसमें स्थितहो। हे राजन्! यह सर्व जगत् चिदाकाशरूप है; यही भावना दृढ़करो जिसको ऐसी भावना दृढ़है और जिसकी सब इच्छा शांत होगई उस पुरुष को कोई दुःख नहीं लगता। उसने निरिच्छारूपी कवच पहिनाहै। हे राजन्! जो अहंके अर्थ से रहित है, जिसका सर्व शून्य होगया है और जिसने निरालम्बका आसरा किया है वह पुरुष मुक्तिरूपहै॥

इति यो॰ नि॰ प्र॰ मनुइक्ष्वाकुआख्यानेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनामसप्तनवतितमस्सर्गः ९७॥

मनु बोले, हे राजन्! यह संसार आत्मासे कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल और तरंग; सूर्य और किरणें; अग्नि और चिनगारे भिन्न नहीं तैसेही आत्मा और संसार भिन्ननहीं-आत्मस्वरूपही है। जैसे इन्द्रियों के विषय इन्द्रियों में रहते हैं तैसेही आत्मामें संसारहै। जैसे पवनमें स्पन्द-निस्स्पन्द शक्ति है सो पवनसे भिन्न नहीं; तैसेही संसार आत्मासे भिन्न नहीं--आत्मस्वरूप है। हे राजन्! विषयकी सत्यताको त्याग कर केवल आत्माकी भावनाकर कि, तेरे संशय मिटजावें। तुम आत्मस्वरूप और निर्गुणहो; तुमको गुणोंका स्पर्श नहीं होता और तुम सबसे परे हो। जैसे आकाश में धूल, धुवां, मेघ और बादल विकार भासते हैं पर आकाश को कुछ लेप नहीं करते-आकाश अद्वैतरूप है; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष जिनको आत्मज्ञान हुआहै उनको सुख, दुःख, राजस, तामस, सात्त्विक गुण लेप नहीं करते। यद्यपि उनमें लोकदृष्टि से ये गुण दीखते हैं पर वे अपने में नहीं दीखते। जैसे समुद्र में अनेक तरंग जलरूप होते हैं और शुद्धमणि में नील, पीत आदिक प्रतिबिम्ब पड़ते हैं सो देखनेमात्र हैं, मणिको स्पर्श नहीं करते; तैसेही जिस पुरुष के हृदयसे वासना का मल दूरहुआहै उस के शरीरको सम्बन्ध करके राजस, सात्त्विक और तामस गुणों के कार्य सुख दुःख देखनेमात्र होते हैं परन्तु स्पर्श नहीं करते। उसमें केवल सत्ता समान पदका निश्चय होताहै और उसको कोई रंग स्पर्श नहीं करता। जैसे आकाशको धूलका लेप नहीं होता तैसेही आत्माको गुणोंका सम्बन्ध नहीं होता। जो पुरुष ऐसे जानताहै उसको ज्ञानी कहते हैं। जब जीव निस्स्पन्द होताहै तब आत्मा होताहै और जब स्पन्द होताहै तब संसारी होताहै। जब चित्त फुरताहै तब अनेक सृष्टि भासती हैं और जब चित्त फुरने से रहित होताहै तब संसारका अत्यन्ताभाव होता है और प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता। तब संसारभी केवल आत्मरूप होजाताहै। इस से हे राजन्! वासना को त्यागकर चित्तको स्थिरकरो। यह वासनाही मलहै। जब वासना का त्याग होगा तब केवल आकाशकी नाईं आपको स्वच्छ जानोगे। आत्मा वाणीका विषय नहीं; वह केवल आत्मत्वमात्रहै; अपने आप में स्थितहै और सर्वदा उदयरूप है। विश्व भी आत्मा का चमत्कार है कुछ भिन्न वस्तु नहीं। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी है सो अज्ञानसे भासती है; आत्मा सर्वदा एकरूप और त्रिपुटी से रहितहै। फुरने से आत्माही त्रिपुटीरूप होकर स्थित हुआ है; इस से चित्तको स्थिरकर देख कि, आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। फुरने में संसार है जब फुरना मिटता है तब संसार भी मिट जाता है। उस फुरनेकी निवृत्ति के लिये सप्त भूमिका कहताहूं। जब प्रथम जिज्ञासु होता है तब चाहता है कि; संतजनोंका संगकरूं और ब्रह्मविद्याशास्त्र को देखूं और सुनूं-यह प्रथम भूमिका है। भूमिका चित्तके ठहराने के ठौरको कहते हैं। फिर जब

सन्तों के संग और शास्त्रों से बुद्धिबढ़ी तब सन्तों और शास्त्रोंके कहनेको विचारना कि, मैं कौनहूं और संसार क्या है—यह दूसरी भूमिका है। उसके उपरान्त यह विचारना कि, मैं आत्माहूं; संसार मिथ्याहै और मुझमें कोई संसार नहीं; ऐसी भावना वारंवार करनी तीसरी भूमिकाहै। जब आत्मभावनाकी दृढ़ता से आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सम्पूर्ण वासना मिटजाती हैं और जब स्वरूपसे उतर कर देखता है तब संसार भासताहै परन्तु स्वप्न की नाईं जानता है—इस से वासना नहीं फुरती। ऐसे जो अवलोकन हैं सो चौथी भूमिका है। जब अवलोकन होता है तब आनन्द प्रकट होता है। ऐसे महाआनन्दका प्रकट होना पञ्चम भूमिका है। जब आनन्द प्रकट होता है और उसमें बलसे स्थित हुआ तो इसका नाम पंचम भूमिका है। तुरीया पद छठी भूमिका है। चित्तके दृढ़ताका नाम तुरीया है। जब तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है तब परमनिर्वाण होताहै—उसको सप्तम भूमिका कहते हैं। उस परमनिर्वाण पदकी जीवन्मुक्तिको गम नहीं क्योंकि; तुरीयातीत पद है उसको वाणी से नहीं कह सक्के। प्रथम तीन भूमिका जो कही हैं सो जाग्रत् अवस्था हैं; उन में श्रवण, मनन और निदिध्यासन करताहै और संसार की सत्ताभी दूर नहीं होती। चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है उसमें संसार की सत्ता नहीं होती और पंचम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है क्योंकि; आनन्द घन में स्थित होता है। छठी भूमिका तुरीया पदहै जो जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति तीनोंका साक्षी है; उसमें केवल ब्रह्मही प्रकाशता है और निर्वाण पद में चित्तकी लय होजाती है। तुरीया पद में जीवन्मुक्त विचरते हैं। सप्तम भूमिका तुरीयातीत पद है सो परमनिर्वाण पद है। तुरीया में ब्रह्माकारवृत्ति रहती है और ब्रह्माकारवृत्तिभी लीनहोजाती है जहां वाणी की गम नहीं वहां चित्त नष्ट होजाता है; वह केवल आत्मत्वमात्र है और अहंभाव नहीं होता। शान्त और परमनिर्वाण तेरा स्वरूप है और सर्वविश्वभी वही रूप है कुछ भिन्न नहीं। जैसे सुवर्णही भूषण हैं और और सुवर्ण में भूषण कल्पताहै। भूषणभी परिणाम से होताहै पर आत्मा सदा अच्युतरूप है और कदाचित् परिणाम को नहीं प्राप्त होता। वह केवल एकरस है उस ने चित्त के फुरने से विश्व कल्पा है इससे विकारसंयुक्त भासता है। हे राजन्! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है उसमें स्थित होकर अपने प्राकृत आचार में निरहंकार होकर विचरो बल्कि अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्यागकर केवल आत्मरूपहो रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमनिर्वाणवर्णनन्नामाष्टनवतितमस्सर्गः ९८॥

मनु बोले, हे राजन्! सर्व चिदाकाश सत्ता आदि–मध्य–अन्त से रहित अनाभास ज्योंकात्यों स्थितहै और आगेभी वही स्थिररहेगा। उसमें न ऊर्ध्व है, न अध है, न तम है, न प्रकाश है और न कुछ उससे भिन्नहै। सर्व्वकी सत्ताहै जो चिन्मात्र परम

सार है उसने आपही संकल्पसे चिन्तनाकी तब जगत् हुआ । हे राजन्! यह विश्व आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । जैसे जलमें तरंग, मिरच में तीक्ष्णता, शकर में मधुरता; अग्निमें उष्णता; बरफ़ में शीतलता; सूर्यमें प्रकाश; आकाश में शून्यता और वायु में स्पन्दहै; तैसेही आत्मामें विश्वहै सो आत्मस्वरूपहीहै कुछ भिन्न नहीं । हे राजन्! जो सब आत्मस्वरूपही है तो शोक और मोह किसका करताहै ? जैसे काष्ठकी पुतली यन्त्रीके तागेसे अनिच्छित चेष्टा करती है तैसेही नीतिरूप तागेसे अभिमानसे रहित होकर तूभी विचर और यह निश्चय रख कि, न मैं कुछ करताहूं; न कराताहूं और किसीमें रागद्वेष न कर । जैसे शिलापर जो मूर्त्ति लिखी होती है उसको न किसी का राग है और न द्वेष है; तैसेही तूभी विचर कि आत्मासे भिन्न कुछ न फुरे ऐसा निरहङ्कारहो । चाहे व्यवहारी गृहस्थहो, चाहे संन्यासीहो; चाहे देहधारीहो, चाहे देहत्यागी हो; चाहे विक्षेपी हो; चाहे ध्यानी हो तुझे कोई दुःख न होगा ज्योंका त्योंहीं रहेगा । फुरनाही संसारहै और फुरनेसे रहित असंसारहै । जब फुरताहै तब संसारी होता है और जब फुरना मिटजाता है तब केवल आकाशरूप भासता है । हे राजन्! यह जगत् सब आत्मरूपहै और आत्माही अपने आपमें स्थित है । जो सर्वात्माही है तो शोक और मोह किसका कीजिये ? हे राजन्! आत्मा सर्वदा एक रस है और विश्व आत्माका चमत्कारहै । जन्म मरण आदि नानाविकार आत्माके अज्ञान से भासते हैं; जब आत्माका ज्ञान होगा तब आत्मरूपही एकरस भासेगा और विषमता कुछ न भासेगी । संवेदन से आकार भासते हैं । संवेदन अहंकार और वासनाके सम्बन्ध को कहते हैं । अहंकार और चित्त दोनों पर्याय हैं । हे राजन्! इसका अहंकार के साथ होनाही दुःखदायी है । केवल चिन्मात्र में अहंभाव मिथ्या है । जबतक संवेदन दृश्य की ओर फुरती है तबतक दृश्य का अन्त नहीं आता और नानाप्रकार के विकार भासते हैं पर जब संवेदन आत्मा अधिष्ठान की ओर आती है तब आत्मा शुद्ध अपना आप होकर भासता है । संवेदन भी आत्माका आभास कल्पित है; आभासके आश्रय विश्व कल्पा है और फुरने में भी और अफुरने में भी आत्मा ज्योंका त्यों है परन्तु फुरने में विषमता भासती है और अफुरने में ज्योंका त्यों भासता है । जैसे रस्सीके अज्ञानसे सर्प भासता है और जब रस्सी का ज्ञान होता है तब सर्प की विषमता जाती रहती है और ज्यों की त्यों रस्सी भासती है पर सर्प भासनेके कालमें भी रस्सी ज्योंकी त्योंहीं थी; उसमें कुछ नहीं हुआ था—जानने न जानने में एक समानही थी; तैसेही आत्मा भी फुरनेके कालमें जगत् भासता है और फुरने से निवृत्तहुये आत्माही भासता है पर आत्मा दोनों कालमें एक समान है । जैसे सूर्य्यकी किरणें सूर्य्य से भिन्न नहीं और अग्निसे उष्णता भिन्न नहीं, तैसेही आत्मा से विश्व भिन्न नहीं—आत्मस्वरूप

ही है। हे राजन्! अहंकार को त्याग करके अपने सत्ता समान स्वरूप में स्थित हो तब तेरे सब दुःख निवृत्त होजावेंगे एक कवच तुझसे कहताहूं उसको धारण करके विचर तो यद्यपि अनेक शस्त्रोंकी वर्षाहो तौ भी तुझे दुःख न होगा। "जो कुछ देखता सुनता है" उसे सर्वब्रह्म जान और वारंवार यही भावनाकर कि, ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं। जब ऐसी भावना दृढ़करैगा तब कोई शस्त्र छेद न सकेगा। यह ब्रह्मभावनाही कवच है। जब इसको तू धारेगा तब सुखीहोगा। इतना कह बाल्मीकि जी बोले कि, जब वशिष्ठजी ने रामजी को मनु और इक्ष्वाकुका संवाद सुनाया तब सायंकाल होकर सूर्य्य अस्तहुआ और सम्पूर्ण सभा और वशिष्ठजी भी स्नानको उठे। फिर सूर्य्य की किरणों के निकलतेही सब आपहुंचे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमोक्षरूपवर्णनन्नामनवनवतितमस्सर्गः ९९॥

मनु बोले, हे राजन्! जिसका कारणही मिथ्या है उसका कार्य कैसे सत्हो! यह आभास जो संवेदन है सोही विश्वका कारण है। जो आभासही मिथ्या है तो विश्व कैसे सत्यहो और जो विश्वही असत् है तो भय और शोक किसका करता है! हे राजन्! न कोई जन्मता है न मरता है, न सुख है, न दुःख है ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है उसीसे संवेदन ने विश्व कल्पा है; इससे संवेदन का त्याग कर कि, न 'मैं हूं' न यह है। जब तुझे ऐसा दृढ़ निश्चय होगा तब आत्माही शेष रहेगा और अहंकार निवृत्त होजावेगा क्योंकि; आत्माके अज्ञान से हुआ है और आत्मज्ञानसे नष्ट होजाता है। हे राजन्! जो वस्तु भ्रम सिद्धहो और सत् दृष्टि आवे उसको प्रथम विचारिये; जो विचार कियेसे रहे तो सत्यजानिये और आत्मा जानिये और जो विचार किये से नष्ट होजावे उसको मिथ्या जानिये। जैसे हीरा भी श्वेत होता है और बरफ़ का कणका भी श्वेत होता है और एक समान दोनों भासते हैं पर तिनकी परीक्षा के लिये सूर्य्य के सम्मुख दोनोंको रखिये तो जो धूपसे गलजावे सो झूठा जानिये और जो ज्योंका त्यों रहे उसको सत् जानिये; तैसेही विचाररूपी सूर्य्य के सम्मुख करिये तो अहंकार बरफ़ की नाईं नष्ट होजाता है क्योंकि; जो अहंकार अनात्म अभिमान में होता है सो तुच्छ है—सर्वव्यापी नहीं। जीव इन्द्रियोंकी क्रिया जो अपने में मानता है और परधर्म अपने में कल्पता है सो भी तुच्छ है; एवम् आपको भिन्न जानता है और पदार्थ आपसे भिन्न जानता है इससे विचार कियेसे बरफ़के हीरेकीनाईं मिथ्या होता है दूसरे अविचार सिद्ध है विचार कियेसे नष्ट होजाती है पर आत्मा सर्वसाक्षी ज्योंकात्यों रहता है। वह अहंकार और इन्द्रियों का भी साक्षी है और सर्व्वव्यापी है हे राजन्! जो सत् वस्तु है उसकी भावनाकर और सम्यक् दर्शीहो। सम्यक् दर्शी को कोई दुःख नहीं होता। जैसे मार्ग में रस्सी पड़ीहो उसको रस्सी जानिये तो कोई

दुःख नहीं और सर्प जानिये तो भय होता है। इससे सम्यक्दर्शी हो-असम्यक्दर्शी मतहो। हे राजन्! जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सुखदायी नहीं हैं दुःखदायीही हैं जबतक इनका संयोग है तबतक सुखभासताहै पर जब वियोग होताहै तब दुःख को प्राप्त करते हैं। इससे तू उदासीनहो; किसी दृश्य पदार्थ को सुखदायी न जान और दुःखदायी भी न जान। सुख और दुःख दोनों मिथ्या हैं इनमें आस्था मतकर और अहंकार से रहित जो तेरा स्वरूप है उसमें स्थितहो। जब अहंकार नष्ट होगा तब आपको जन्म मरण विकारों से रहित आत्मा जानोगे कि, मैं निरहंकार ब्रह्म चिन्मात्रहूं। ऐसे अहंभाव से रहित होनेपर अपना होना भी न रहेगा, केवल चिन्मात्र; आनन्द और रागद्वेषके क्षोभसे रहित शान्तरूप होगा। जब ऐसा आपको जाना तब शोच किसका करेगा? हे राजन्! इस दृश्य को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहो और इस मेरे उपदेशको विचारो कि, मैं सत्य कहताहूं अथवा असत्य कहताहूं। जो विचार से संसार सत्यहो तो संसार की भावनाकरो और जो आत्मा सत्यहो तो आत्माकी भावना करो। हे राजन्! तू सम्यक्दर्शी हो सत्को सत्जान और असत्को असत्जान कि, जो असम्यक्दर्शी हैं वे सत्यको असत्य मानते हैं और असत्य को सत्य मानते हैं। ऐसे न जानने से असत् वस्तु स्थिर नहीं रहती अज्ञानी दुःख पाताहै। जैसे कोई पुरुष एक कुटी रचकर चिन्तनेलगा कि, मैंने आकाशकी रक्षाकीहै तो जब कुटी नष्टहो तब शोक करताहै कि, आकाश नष्ट होगया क्योंकि; आकाशको वह कुटी के आश्रय जानता था; तैसेही अज्ञानी पुरुष आत्माको देहके आश्रय जानकर देह के नष्टहुये आत्मा का नाश मानता है और दुःखी होता है। जैसे सुवर्ण के भूषण कल्पित हैं; भूषणों के नष्ट हुये मूर्ख सुवर्ण को नष्ट मानता है, तैसेही देह के नष्टहुये अज्ञानी आपको नष्ट जानता है पर जिसको सुवर्ण ज्ञान है वह भूषणों के नाशसे भी सुवर्ण को देखता है और भूषणसंज्ञा कल्पित जानता है, पर ज्ञानवान् आत्माको अविनाशी जानता है और देह और इन्द्रियों को असत् जानता है। हे राजन्! तू देह और इन्द्रियों के अभिमान से रहित हो। जब अभिमान से रहित इन्द्रियों की चेष्टा करेगा तब शुभ अशुभ क्रिया तुझे बांध न सकेंगी और जो अभिमान सहित करेगा तो शुभ अशुभ फलको भोगेगा। हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी हैं वे ऐसी क्रियाका आरम्भ करते हैं जिसका कल्पपर्यंत नाश न हो और देह-इन्द्रियों के अभिमान का प्रतिबिम्ब आपमें मानते हैं कि, मैं करताहूं, मैं भोगताहूं; इससे अनेक जन्म पाते हैं क्योंकि, उनके कर्मोंका नाश कभी नहीं होता और जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान् पुरुष हैं वे आपको देह और इन्द्रियों के गुण से रहित जानते हैं और उनके संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट होजाते हैं। संचितकर्म वृक्षकी नाईं हैं और क्रियमाण फूलफलकी नाईं हैं। जैसे रुई से लपेटकर

अग्नि लगाये से वृक्ष, फूल, फल, सूखे तृणवत् दग्ध होते हैं तैसेही ज्ञानरूपी अग्नि से संचित और क्रियमाण कर्म दग्ध होजाते हैं। इससे हे राजन्! जो कुछ चेष्टा तू वासना से रहित होकर करेगा उसमें कोई बन्धन नहीं जैसे बालक के अंग स्वाभाविकही भली बुरी प्रकार हिलते हैं, उसके हृदय में अभिमान नहीं फुरता इससे उसको बन्धन नहीं; तैसेही तूभी इच्छा से रहित होकर चेष्टाकर तो तुझे कोई बन्धन न होगा। यद्यपि सब चेष्टा तुझमें तब भी भासेंगी तौभी वासना से रहित होगा और और जन्म न पावेगा। जैसे भूनाबीज देखनेमात्र होता है और उगता नहीं तैसेही तुझमें सर्व क्रिया दृष्टि आवेंगी परन्तु जन्मका कारण न होंगी और पुण्यक्रियाका फल और सुख न भोगेगा और पापक्रिया से दुःख न भोगेगा और पाप पुण्यका स्पर्श न होगा। जैसे जल में कमल स्थित होता है और उसको जल स्पर्श नहीं करता तैसेही पाप पुण्य का स्पर्श तुझे न होगा। इससे अभिलाष से रहित होकर जो कुछ अपना प्रकृत आचार है सोकर। हे राजन्! जैसे आकाश में जलसे पूर्ण मेघ भासते हैं परन्तु आकाश को लेप नहीं करते तैसेही तुझको कोई क्रिया बन्धन न करेगी। जैसे विष के खानेवाले को विष नहीं मारसक्ता तैसेही ज्ञानी की क्रिया नहीं बांध सक्ती। ज्ञानवान् क्रिया करने में भी आपको अकर्त्ता जानताहै पर अज्ञानी न करने में भी अभिमान से कर्त्ता होता है और देह और इन्द्रियों के न करते आपको कर्त्ता मानता है। जो देह इन्द्रियों से कर्त्ता है और उसके अभिमान से रहित है वह अकर्त्ता है और जो पुरुष कर्म से इन्द्रियों को संयमकर बैठताहै पर मनमें विषयके भोगकी तृष्णा रखताहै और जिसका अन्तःकरण रागद्वेषसे मूढ़ है और बड़ी क्रियाको उठाता और दुःखी होता है वह मिथ्याचारी है। जो पुरुष मनमें इन्द्रियों के रागद्वेष से रहित है—पर कर्म इन्द्रियों से चेष्टा करताहै वह विशेष है अपने जाने में कुछ नहीं करता। वह मोक्ष पाता है। हे राजन्! अज्ञानरूप वासना से रहित होकर विचरो। जो ऐसे होकर विचरोगे तो आपको ज्योंका त्यों आत्माजानोगे और सदा उदयरूप सर्व का प्रकाशक आपको जानोगे और जन्म मरण बन्धमुक्ति विकार से रहित ज्योंका त्यों आत्मा भासेगा। हे राजन्! उस पद को पाकर न शान्तिमान् होगा। अन्य सर्वकला अभ्यास विशेष विना नष्ट होती है। जैसे रसविना वृक्ष होता है तो यद्यपि फैलाववाला होता तौभी उगता नहीं। ज्ञानकला अभ्यास विना नहीं उपजती और उपजकर नाश नहीं होती। जैसे धानबोते हैं तो दिनप्रतिदिन बढ़ने लगते हैं, तैसेही ज्ञानकला प्राप्तकर दिनप्रतिदिन बढ़ती है। हे राजन्! ज्ञान उपजने से ऐसे जानता है कि, मैं न मरताहूं, न जन्मताहूं, निरहंकार, निष्किंचनरूपहूं; सर्वका प्रकाशहूं, अजरहूं और अमरहूं। हे राजन्! ऐसी ज्ञानकला पाकर जीव मोहको नहीं प्राप्त होता। जैसे दूधसे दही हुआ फिर दूध नहीं होता

और जैसे दूधको मथकर घृत निकाला तो फिर नहीं मिलता तैसेही जिसको ज्ञानकला उदय हुई है वह फिर मोहको नहीं स्पर्श करता । हे राजन्! अपने स्वरूप में स्थित होकर और उपायके त्याग करने का नाम पुरुष प्रयत्नहै । जिस पुरुषको आत्माकी भावना हुई है वह संसारसमुद्र से पार हुआ है और जिसको संसार की भावना है वह संसारी जरामृत्यु दुःखको प्राप्त होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थोपदेशोनामशततमस्सर्ग्गः १०० ॥

मनु बोले, हे राजन्! बड़ा आश्चर्य है कि, शुद्ध चिन्मात्र आत्मा में माया से नाना प्रकार के देह, इन्द्रियां और दृश्य भासि आये हैं । हे राजन्! दृश्यका कारण अज्ञान है । जिस आत्माके अज्ञानसे दृश्यरूप भासताहै उसी के ज्ञान से लीन होजाता है इससे इस संवेदनको त्यागकर आत्माकी भावना कर । यह मैं हूं, ये मेरे हैं ये सङ्कल्प मिथ्याही फुरते हैं । हे राजन्! प्रथम कारण रूपसे एक जीव उपजा और उस आदि जीवसे अनेक जीवगण हुये । जैसे अग्निसे चिनगारे निकलते हैं तैसेही उसने अनेक रूप धारे हैं और कोई गन्धर्व, कोई विद्याधर, कोई मनुष्य, कोई राक्षस इत्यादिक हुये हैं । फिर जैसे २ संकल्प होतेगये हैं तैसेही रूप होतेगये, वास्तवमें जैसे जलमें तरङ्ग स्वरूपके प्रमादसे अनेकभावको प्राप्त होते हैं तैसेही अपने संकल्प आपही को बन्धनरूप होतेगये हैं । इससे संकल्प नानात्व कलना मिथ्याहै । हे राजन्! इस भावनाको त्यागकर आत्मपदकी शरणको प्राप्तहो जो आत्मा अनन्तहै । कोई विश्व और प्रकारकी भान होती है । जैसे समुद्र समहै पर उसमें कोई आवर्त्ततरङ्ग और बुद्बुदे उठते हैं सो जलसे भिन्न नहीं तैसेही आत्मामें अनेक प्रकारका विश्व फुरताहै सो आत्मासे भिन्न कुछ नहीं आत्मस्वरूपही है इससे आत्माकी भावनाकर । कहीं ब्रह्म सत्संकल्प होकर फुरताहै तो जानता है कि, मैं ब्रह्म, शुद्धरूप और सदा मुक्तरूपहूं और इस संसार समुद्र से पार होगयाहूं । जहां चेतनता शक्तिहै वहां आपको जीवता मानता है और दुःखीभी जानताहै । अन्तःकरण से मिलकर भोगकी भावना करना और सदा विषय की तृष्णा करना जीवात्मा कहाता है और जहां वासना क्षयहुई है और शुद्ध आत्मा में आत्मा प्रत्यक्ष है वहां जीवसंज्ञा नष्ट होजाती है और केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है । हे राजन्! चेतन जब अन्तःकरण से मिलकर बहिर्मुख फुरता है तब संसारी हुआ जरा मरण से दुःखी होता है और जहां चेतनशक्ति अन्तर्मुख होती है तब जन्म, मरणकी भावनाको त्यागकर स्वरूपकी भावना करता है । और सर्व्व दुःखकी निवृत्ति होती है । जब इसकी भावना स्वरूपकी ओर लगती है तब कोई दुःख नहीं रहता और जब स्वरूपका प्रमाद होताहै तब दुःख पाताहै । स्वरूपके ज्ञानसे आनन्दरूप मुक्त होताहै । हे राजन्! तू संसाररूपी कूपकी गरारी न हो । जब गरारी रस्सी

से बँधती है तो कभी ऊर्ध्वको जाती है और कभी अधोको जाती है पर जब रस्सी टूटपड़ती है तब न ऊर्ध्वको जाती है और न अधोको जाती है। कूप क्या है? अधो क्याहै, और ऊर्ध्व क्याहै ? सो भी सुन। हे राजन्! संसाररूपी कूप है, स्वर्गलोक ऊर्ध्व है और नरक अधो है। पुण्य कर्म से स्वर्गको जाता है और पाप कर्म से नरक में जाता है। इसी प्रकार आशारूपी रस्सी से बँधाहुआ जीव जन्ममरणरूपी चक्र में फिरता है। स्वर्ग और नरकके फिरने का कारण आशा है। जब आशा निवृत्त होती है तब न कोई नरकहै न स्वर्ग है। जबतक देहमें अभिमान है तबतक नीच से नीच गतिको प्राप्त होताहै। जैसे पत्थरकीशिला समुद्र में डारिये तो नीचे से नीचे चलीजाती है तैसेही नीचस्थानोंको देखकर देहाभिमानी नीचेको चलाजाता है। जब इन्द्रियादिक का अभिमान त्याग करताहै तब जैसे क्षीर समुद्रसे निकलकर चन्द्रमा अधो से ऊर्ध्वको चलाजाता है तैसेही ऊर्ध्वको जाता है। हे राजन्! यदि आत्माकी भावना करोगे तो आत्माही होगा; इससे आशारूपी फांसीको तोड़कर शान्तपदको प्राप्तहो आत्मा चिन्तामणिकी नाईं है। जैसी भावना कीजिये तैसेही सिद्धि होती है, यदि तू आत्म भावना करेगा तो सम्पूर्ण विश्व अपने में देखेगा। जैसे पर्वत शिला और पत्थर सब अपने में देखता है तैसेही तूभी सर्व आत्मामें जानेगा। हे राजन्! जो कुछ दृष्टि है सो सर्वात्मा के आश्रय है; शास्त्र और शास्त्रदृष्टि सब आत्माके आश्रय हैं और राजाभी आत्माके आश्रय है वह सर्वसत्य आत्मा चिन्तामणि कल्पवृक्ष है, जैसी कोई भावना करता है तैसी सिद्धि होती है। हे राजन्! फुरने में यह सर्व दृष्टि सत्य है और जब फुरना नष्ट होताहै तब न कोई शास्त्रहै और न कोई दृष्टिहै। केवल अद्वैत आत्माहै तो निषेध किसका कीजिये और अंगीकार किसका करिये। जो पुरुष अहंकारसे रहित हुआहै वह सर्व शास्त्र दृष्टिपर विराजताहै और सर्व आत्मा होताहै। जैन उसी को जैन कहते हैं और कालवाले उसी को काल कहते हैं। सर्वका आसरा आत्मा है। जो पुरुष देह अभिमानी है वह मूर्ख है और स्वरूपके अज्ञान से अधोऊर्ध्वलोकको गमन—आगमन करता है; पशु, पक्षी, स्थावर—जंगमयोनि पाता है और आशारूपी फांसी से बँधाहुआ दुःखको प्राप्तहोताहै। जो पुरुष सम्यक्दर्शी है और जिसकी शुद्ध चेष्टा है उसको कोई विकार दृष्टि नहीं आता सब आकाशकी नाईं सदा निर्मल भासताहै। उसको सम्पूर्ण विश्व आत्मस्वरूप भासताहै और जो चेष्टा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादिक करते हैं उसका कर्त्ताभी आपको जानता है। उसको सर्व दुःख का अन्त होता है, वह आत्मपदको प्राप्त होता है और उसको सर्व सुखकी सीमा प्राप्त होती है। हे राजन्! जैसे नदी तबतक चलती है जबतक समुद्रको नहीं प्राप्त हुई पर जब समुद्रको प्राप्त होती है तब नहीं चलती तैसेही जब तू आत्मपदको प्राप्तहोगा

तब कोई इच्छा तुझे न रहेगी । हे राजन्! तू अहंकारका त्यागकर अथवा ऐसा जान कि, सर्व मैंही हूं । जरा मरणआदिक दुःख तबतकहैं जबतक आत्मबोध नहीं प्राप्तहुआ; जब आत्मबोध होता है तब कोई दुःख नहीं रहता । दोनोंही दुःख भारी हैं पर ज्ञानी को इन्द्र के वज्र समान दुःखभी स्पर्श नहीं करता । हे राजन्! जैसे पेड़ से सूखकर फल गिरता है उसी प्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होता है तब मन, बुद्धि, अहंकार पेड़कीनाईं गिरपड़ता है । जबतक मनकी चपलता है तबतक दुःखपाता है और जब मनकी चपलता निवृत्तहोती है तब कोई क्षोभ नहीं रहता और शांतपदको प्राप्तहोता है । शांति तब होती है जब प्रकृतिका वियोग होताहै । प्रकृतिके संयोगसे संसारी होताहै और दुःखपाता है इससे प्रकृति अर्थात् अहंकारका त्यागकर और अहंकार से रहित होकर चेष्टाकर । जब तू अहंकारसे रहित होगा तब उस पदको प्राप्त होगा जो न जड़ है, न चेतन है, न शून्य है, न अशून्य है, न केवल है, न अकेवल है उसे न आत्मा कहसक्ते हैं न अनात्मा; न एक, होता है न दो । जो कुछ नाम हैं सो प्रतियोगी से मिले हुये हैं । प्रतियोगीहुआ द्वैत होता है और आत्मा अद्वैतमात्र है जिसमें वाणी की गम नहीं और जो अवाच्यपद है उसको कैसे कहिये? जितनी नाम संज्ञा हैं सो उपदेशमात्र हैं, आत्मा अनिर्वाच्य पदहै । इससे संकल्प का त्यागकर और आत्माकी भावनाकर । जब तू आत्मभावना करेगा तब केवल आत्माही प्रकाशेगा । जैसे फूल का कोई अंग सुगन्ध से रहित नहीं तैसेही आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । हे राजन्! जब अहंकार का त्याग करोगे तब अपने आपसे शोभायमान होगे और आकाश की नाईं निर्मल आत्मा में स्थित होगे । अहंकार को त्यागकर उस पदको प्राप्त होगे जहां शास्त्र और शास्त्रों के अर्थ प्राप्त नहीं होते; जहां सम्पूर्ण इन्द्रियों के रस लीन होजाते हैं और सब दुःख नष्ट होजाते हैं तब केवल मोक्षपदको प्राप्तहोगे । हे राजन्! मोक्ष किसी देशमें नहीं कि, वहां जाकर पावे, न किसी कालमेंही है कि, अमुक काल आवेगा तब मुक्त होगा और न कोई पदार्थही है कि, उसको ग्रहण करेगा; केवल अहंकार के त्याग से मोक्ष होता है । जब तू अहंकारका त्याग करेगा तभी मोक्ष है। जब तू इस अनात्म अभिमान को त्यागेगा तब अपने आपसे शोभायमान होगा और जैसे धुवां विना अग्नि प्रकाशमान होती है तैसेही अहंकार विना प्रकाशेगा। जैसे बड़ेपर्वत पर निर्मल और गम्भीर तालाब शोभता है तैसेही तू शोभेगा । हे राजन्! तू अपने स्वरूपमें स्थित हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसमाधानवर्णनंनामैकाधिकशततमस्सर्गः १०१ ॥

मनु बोले, हे राजन्! तू शुद्ध और राग द्वेषसे रहित आत्मारामी नित अन्तर्मुख होरह । जब तू आत्मारामी होगा तब तेरी व्याकुलता नष्ट होजावेगी और शीतल

चन्द्रमा सा पूर्णवत् होजावेगा। ऐसाहोकर अपने प्राकृत आचार में विचर और किसी फलकी वांछा न कर। जो पुरुष वांछासे रहित होकर कर्म करता है वह सदा अकर्त्ता है और महाशोभा पाता है। ऐसी अवस्था में स्थितहोकर जो भोजन आवे उसको भक्षणकर और जो अनिच्छित वस्त्रआवे उसको पहिर; जहां नींदआवे वहां सोरह और राग द्वेष से रहितहो। जब तू ऐसा होगा तब शास्त्र और शास्त्रों के अर्थ से उल्लंघित बर्तेगा जो ऐसा पुरुष है वह परमरस को पाकर मतवाला होताहै और उसको संसार की कुछ इच्छा नहीं रहती। हे राजन्! ज्ञानवान् चाहे काशी में देह त्यागे अथवा चाण्डालके गृहमें त्यागे उसे सब स्थानों में मुक्तिहै और वह सदा आत्मस्वरूप में स्थित है। वर्त्तमान कालमें वह देहको नहीं त्यागता क्योंकि; जिस कालमें उसको ज्ञानहुआ उसी काल में देहका अभावहुआ—ज्ञानसे देह दग्ध होजाती है। हे राजन्! ज्ञानवान् सदा मुक्तरूप है; वह न किसीकी स्तुति करताहै और न निन्दा करताहै क्योंकि; उसके चित्तकी कलना मिटगई है। यद्यपि राग द्वेष ज्ञानवान्में भी दृष्टिआते हैं और वह हँसता रोताभी देखपड़ताहै परन्तु उसके अन्तःकरण में न रागहै और न द्वेषहै; और वह न हँसताहै, न रोता है—ज्योंका त्यों है। जैसे आकाश शून्यरूप है और उसमें मेघ बादलभी दृष्टि आते हैं परन्तु आकाशको कुछ लेप नहीं करते; तैसेही ज्ञानवान्को कोई क्रिया बन्धन नहीं करती पर अज्ञानी जानते हैं कि, ज्ञानवान्को क्रिया बन्धन करती है। हे राजन्! ज्ञानवान् सर्वदा नमस्कार करने और पूजने योग्यहै। जिस स्थानमें ज्ञानवान् बैठताहै उस स्थानकोभी नमस्कार है; जिससे बोलता है उस जिह्वाको भी नमस्कारहै और जिसपर ज्ञानवान् दृष्टिकरताहै उसकोभी नमस्कारहै; वह सबका आश्रयभूत है। हे राजन्! जैसा ज्ञानवान् की दृष्टि से आनन्द मिलता है वैसा आनन्द तप, दान और यज्ञकर्मोंसेभी नहीं मिलता और ऐसीदृष्टि किसी में नहीं होती जैसी सन्तकी दृष्टि है वह ऐसे आनन्दको पाताहै जिसमें वाणीकी गमनहीं। जो पुरुष संत की दृष्टिको पाकर सुखी होता है उससे लोग दुःख नहीं पाते और लोगोंसे वह दुःखी नहीं होता और न किसीका भय करताहै; न किसीका हर्ष करताहै। हे राजन्! सिद्धि पानेका सुख अल्प है, क्योंकि, उड़नेकी सिद्धिपाई तो अनेक पक्षी उड़ते फिरते हैं; इससे आत्मज्ञान तो नहीं मिलता और आत्मज्ञान विना शांति नहीं होती जब आत्मज्ञान प्राप्तहोताहै तब जरा, मृत्यु आदिक दुःखसे मुक्त होताहै और कोईदुःख नहीं रहता। जैसे पिंजरेसे छूटा सिंह फिर पिंजरे के बन्धनमें नहीं पड़ता, तैसेही वह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरेमें नहीं फँसता। हे राजन्! इससे तू आत्मा की भावनाकर कि, तेरे दुःख नष्ट होजावें। अज्ञान से तुझे दुःख भासते हैं—अज्ञानसे रहित सदा आनन्दरूप है इससे अनुभवरूप आत्मा में स्थितहो। जब तू आत्मा में स्थित होगा तब जैसे

शुद्ध मणिके निकट श्वेत, रक्त, पीत, श्याम आदि रंग रखिये तो वह उनके प्रतिबिम्बको ग्रहण करती है पर कोई रंग स्पर्श नहीं करता कल्पित से भासते हैं, तैसेही तू प्राकृत आचार को अंगीकार करता रहेगा पर तुझे पाप पुण्यका स्पर्श न होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिर्नामद्व्यधिकशततमस्सर्गः १०२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार उपदेशकरके जब मनुजी तूष्णी होगये तब राजाने भलीप्रकार उनका पूजन किया। फिर मनुजी आकाश को उड़के ब्रह्मलोक में जापहुँचे और राजाइक्ष्वाकु राज्य करनेलगा। हे रामजी! जैसे राजाइक्ष्वाकु ने जीवन्मुक्त होकर राज्यकिया है तैसेही तुमभी इस दृष्टि का आश्रय करके विचरो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो कहा कि, जैसे राजाइक्ष्वाकु ज्ञान पाकर राज्यचेष्टा करता रहा तैसेही तू भी कर उसमें मेरा यह प्रश्न है कि; जो अतिशय अपूर्व हो उसका पाना विशेषहै और जो पूर्व में किसीने पायाहै उसका पाना अपूर्व और अतिशयनहीं; इसलिये मुझसे कहिये कि; सर्व से विशेष अपूर्व अतिशय क्याहै। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानवान् सदा शान्तरूप और राग द्वेषसे रहितहै और वह अपूर्व अतिशयको पाताहै। जो कुछ और अतिशयहै वह पूर्व अतिशयहै पर ज्ञानवान् अपूर्व अतिशयको पाता है—ज्ञानी से अन्य कोई नहीं पाता आत्मज्ञानको ज्ञानीही पाताहै और वह ज्ञान एकही है। हे रामजी! जो दूसरा नहीं पाता तो अपूर्व अतिशय हुआ। हे रामजी! अपूर्व अतिशयको पाकर ज्ञानवान् प्राकृत आचार और सर्व चेष्टाभी करताहै तो भी निश्चय सर्वदा आत्मामें रखता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसा ज्ञानवान् जो अज्ञानी की नाईं सर्व चेष्टा करताहै उसको किन लक्षणों से तत्त्ववेत्ता जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक स्वसंवेद लक्षण है और दूसरा परसंवेद लक्षण है। आपही अपने को जाने और न जाने इसे स्वसंवेद कहते हैं और जिसको और भी जानते हैं उसे परसंवेद कहते हैं। हे रामजी! परसंवेद के लक्षण कहताहूं सो सुनो। तप, दान, यज्ञ, व्रत इत्यादिक करना परसंवेद है और दुःख-सुखकी प्राप्ति में धैर्य्य से रहना समान साधु के लक्षणहैं। महाकर्त्ता और महाभोक्ता और महात्यागी होना, क्षमा, दया इत्यादिक लक्षण साधुके हैं ज्ञानवान् के नहीं और उड़ना, छिपजाना, जो अणिमादिक सिद्धि हैं वे भी समान लक्षण हैं परन्तु ये स्वाभाविक आन फुरते हैं सो और से भी जाने जाते हैं पर जो ज्ञानी के लक्षणहैं वे स्वसंवेद हैं। इससे भिन्न उसके शिरमें सींग नहीं होते कि, उससे जानिये। जैसे और व्यवहार हैं तैसेही ज्ञानीको सिद्धिसमान है। यह भी ज्ञानवान् का लक्षण नहीं और पुण्य पापादिक क्रिया परसंवेद हैं सो मायाके कल्पे हैं ज्ञानी के नहीं। जितने लक्षण देखने में आवेंगे वे मिथ्या हैं और माया के कल्पे हैं

ज्ञानी का लक्षण स्वसंवेदहै। वह सर्वदा आत्मामें स्थित है और अपने आपसे सन्तुष्ट है। उसे न किसीका हर्षहै, न शोक है; जन्म मरणमें समान है और काम, क्रोध, लोभ, मोह सर्वको जानता है। उसका लक्षण इन्द्रियों का विषय नहीं क्योंकि; वह निर्वाच्य पदको प्राप्त हुआ है। हे रामजी! जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसका चित्त स्वाभाविकही विषयों से विरसहोता है और वह इन्द्रियजित् होताहै—उसको भोगोंकी इच्छा निवृत्त होजाती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेज्ञानिलक्षणविचारोनामत्र्यधिकशततमस्सर्गः१०३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायाजालका काटना महाकठिन है। यह आदि कलना जीवको हुई है। जो कोई इसमें सत्बुद्धि करताहै वह पखेरू की नाईं जालमें फँसा हुआ निकल नहींसक्ताहै—तैसेही अनात्म अभिमान से निकल नहींसक्ता है। हे रामजी! फिर मेरे वचन सुनो क्योंकि; जैसे मेघका शब्द मोरको प्रियतम लगता है, तैसेही मेरे वचन प्रियलगते हैं। मैं भी तेरे हितके निमित्त कहता और उपदेशकरता हूं। रघुकुल का ऐसा गुरु कोई नहीं हुआ जो शिष्य का संशय निवृत्त न करे। हे रामजी! मेरा शिष्य भी ऐसा कोई नहीं हुआ जो मेरे उपदेशसे न जगाहो। इसनिमित्त मैं तप, ध्यान आदिकको भी त्यागकर तुझे जगाऊंगा—इससे मैं तुझको उपदेश करता हूं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा में जो अहंभाव हुआ है और जो कुछ अहंकार से भासता है सो मिथ्या है—इसमें कुछ सत्नहीं—और जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है वह सत्य है—उसका कदाचित् नाश नहीं होता। जो जो वस्तु फुरने से उपजी हैं वे सब नाशवंत हैं—यह बात बालक भी जानते हैं। जो सत्य है वह असत्य नहीं होता और जो वस्तु असत् है वह सत् नहीं होती। जैसे रेतसे घृत निकलना असत् है अर्थात् कदाचित् नहीं निकलता। जैसे एक मेढ़क के लाख कणका करिये अथवा शिलापर घिसिये पर जब उसपर वर्षा होती है तब सर्व कणके दर्दुर होजाते हैं। हे रामजी! तो वे दर्दुर तब उत्पन्न हुये जब उनमें सत्यताथी। इससे सत्यका कदाचित् नाश नहीं होता और असत्यका सद्भाव कदाचित् नहीं होता। हे रामजी! सत्ब्रह्मकी भावनाकरो। जो ब्रह्म की भावना करता है वह ब्रह्मही होता है। जैसे घृतमें घृत; दूधमें दूध और जल में जल मिलजाता है तैसेही यह जीव भावना करके चिद्घन ब्रह्मकेसाथ एक होजाताहै और जीवसंज्ञा निवृत्त होजाती है। जैसे अमृत के पानकिये से अमर होता है तैसेही ब्रह्मकी भावना करने से ब्रह्म होता है। जो अनात्माकी भावना करता है तो पराधीन होकर दुःखपाता है। जैसे विषके पानकिये से अवश्य मरताहै तैसेही अनात्माकी भावना से अवश्य दुःखपाता है और उसका नाश होता है। इससे आत्मभावना करो। हे रामजी! जो वस्तु संकल्प से उदय होती है वह थोड़ेकाल रहती है और जो चलवस्तु

है वह भी अवश्य नाशहोती है। यहदृश्य आत्मामें भ्रमसे सिद्ध है। जैसे मृगतृष्णा का जल; सीपीमें रूपा और आकाशसे दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे सिद्ध है—वास्तव नहीं; तैसेही अहंकार देह इन्द्रियोंसे सुख भासता है सो सब मिथ्याहै। इससे दृश्यकी भावना त्यागकरके अपने अनुभव स्वरूपमें स्थितहो। जब आत्मामें स्थित होगे तब मोह को न प्राप्तहोगे। जैसे पारसके स्पर्शसे सुवर्णहुआ तांबा फिर तांबा नहीं होता, तैसेही तूभी जब आत्मपदको जानेगा तब फिर इस मोहको न प्राप्तहोगा कि, मैंहूं, यह मेराहै अहं, त्वं भाव तेरा निवृत्त होजावेगा और यह भावना न रहेगी। रामजीने पूछा, हे भगवन्! मच्छर और जूंआदिक जो प्रस्वेदसे उत्पन्न होते हैं सो सब कर्मकरके उत्पन्न होते हैं और देवता, मनुष्यादिक सब कर्मोंसे उत्पन्न होते हैं अथवा कर्मों विनाभी कुछ होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि परमात्मासे जो सब जीव उत्पन्नहुये हैं सो चार प्रकारके हैं। एकतो कर्मोंसे उत्पन्न हुये हैं और एक कर्मोंविना हुये हैं; एक आगे होंगे और एक अबभी उत्पन्न होते हैं। रामजी बोले, हे संशयरूपी हृदय अन्धकारके निवृत्त करनेवाले सूर्य और संदेहरूपी बादलों के निवृत्त करनेवाले पवन! कृपा करके कहिये कि, कर्मोंविना कैसे उत्पन्नहोते हैं और कर्मोंसे कैसे उत्पन्नहोते हैं? कैसे कैसे हुये हैं; कैसे होते हैं और कैसे आगे होंगे? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा चिदाकाश अपने आपमें स्थित है। जैसे अग्नि अपनी उष्णतामें स्थित है तैसेही आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है। वह अनन्त और अविनाशी है-उसमें फुरनशक्ति स्वाभाविक स्थित है जैसे पवनमें स्पन्दशक्ति स्वाभाविक होती है और जैसे फूलों में सुगन्धि स्वाभाविक रहती है, तैसेही आत्मा में फुरनशक्तिहै। हे रामजी! फुरनशक्ति जैसेही आद्यफुरी है तो उस शब्दकी अपेक्षासे आकाश हुआ और जब स्पर्श की अपेक्षाकी तब पवन प्रकट हुआ। इसी प्रकार पञ्चतन्मात्रा होआई शुद्ध संवित् में जो आदि फुरनाहुआ उससे प्रथम अन्तवाहक शरीर हुये; उनका निश्चय आत्मामें रहा कि, हम आत्माहैं और सम्पूर्ण विश्व हमारा संकल्पहै। हे रामजी! कई इस प्रकार उत्पन्न होकर अन्तवाहकसे फिर विदेह मुक्ति को प्राप्तहुये। जैसे जलसे बरफहोकर सूर्यके तेजसे शीघ्रही फिर जलहोजाती है तैसेही वे शीघ्रही विदेहमुक्ति हुये। कई अन्तवाहक से आधिभौतिक इस प्रकार होगये कि, जबतक अन्तवाहक में स्मरण रहा तबतक अन्तवाहकरहे और जब स्वरूपका प्रमादहुआ और संकल्प से जो भूत रचे थे उन में दृढ़ निश्चय हुआ और जाना कि, हम ये हैं तब आधिभौतिक होगये जैसे ब्राह्मण शूद्रों के कर्म करने लगे और उसके निश्चयमें होजावे कि, मेरा यही कर्म है और जैसे शीत करके जल से बरफ होजाती है तैसेही संवित् में जब दृढ़ संकल्प हुआ तब उन्होंने आपको आधिभौतिक जाना। हे रामजी! आदि परमात्मा से जो कर्म विना उत्पन्न हुये हैं उनका

कोई कर्म नहीं क्योंकि; जो अन्तवाहकमें रहे उनकी ईश्वर संज्ञाहुई। उनके सङ्कल्प से जीव उपजे, उनका कारण ईश्वर हुआ और आगे जीवकलना से उनका फुरना कर्म हुआ। आगे जैसे जैसे कर्म संकल्पसे करते हैं तैसे तैसे शरीर धारते हैं। हे रामजी! आत्मा से जो जीव उपजे हैं सो आदि-अकारण होते हैं; जो आज उपजे हैं तौभी और जो चिरकाल से उपजे हैं तौभी। वे पीछे कारणभावको कर्म के वशसे प्राप्त हुये हैं। हे रामजी! जिनका आदि फुरना हुआ है और स्वरूपमें दृढ़ निश्चय रहा है उनकी संज्ञा पुण्य है और जो स्वरूपको विस्मरण करके आधिभौतिक में निश्चय करते रहे उनकी धन संज्ञाहै। हे रामजी! पुण्यसे धन होना सुगमहै और धन से पुण्य होना कठिन है-कोई भाग्यवान् पुरुषही यत्न करके धन से पुण्यवान् होताहै। जैसे पर्वत से पत्थर गिरना सुगमहै तैसेही पुण्यसे धन होना सुगम है और जैसे पत्थरको पर्वतपर चढ़ाना कठिनहै तैसेही धन से पुण्य होना कठिनहै। कितने चिरकाल धन में बहते हैं और कितने यत्न करके शीघ्रही पुण्यवान् होते हैं। हे रामजी! जो सदा अन्तवाहक रहते हैं उनकी संज्ञा ईश्वर है और जो अन्तवाहक को त्यागकर आधिभौतिक होते हैं वे जीव कहाते हैं और परतंत्र हैं-जैसे कर्म्म करते हैं तैसेही शरीर धारते हैं। जो धन से पुण्य होते हैं वे ज्ञानवान् हैं और उनका फिर जन्म नहीं होता। अबभी जो प्रथम उत्पन्न होते हैं वे कर्म विना होते हैं और जब अपने स्वरूपसे गिरते हैं तब जैसा संकल्प करते हैं तैसेही शरीर धारते हैं। हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र है; इससे संकल्पका त्याग करो। इस दृश्यकी आस्था न करो। हे रामजी! खाना, पीना इत्यादिक चेष्टा करो परन्तु उसमें अहंभाव न करो। अहंकार अज्ञानसे सिद्ध हुआ है सो दृश्य मिथ्याहै। अहंभाव के होनेसे दुःखी होता है। इससे अहंकार से रहित चेष्टा करो। हे रामजी! बन्धन और मोक्षका लक्षण सुनो। विषय और इन्द्रियों के संयोग से इष्टमें राग करना और अनिष्ट में द्वेष करनाही बन्धन है। जैसे जलमें पक्षी बंधायमान होता है। ग्राह्य ग्राहक इन्द्रियां और विषय के सम्बन्ध से इष्ट अनिष्ट होताहै। जिसमें इन्द्रियों का संयोग होता है उसमें समबुद्धि रहै, उनके धर्म अपने में न देखे और उनका जानने वाला जो अनुभवरूप आत्मा है उसमें साक्षीरूप होकर स्थित रहे; इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है वह सदा मुक्तिरूप है और जो इससे भिन्न है वह मूर्खजीव बन्धायमानहै। तुम इस ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध से सावधान रहो। इनका सम्बन्धही बन्धन है और इनसे रहित होना मुक्तिहै। राग-द्वेष करनेवाला मन है; इस मन का त्याग करो; मनही दुःखदायी है। जैसे कुम्हारका चक्र फिरता है और उससे बासन उत्पन्न होते हैं तैसेही मनरूप चक्रसे पदार्थरूपी बासन उत्पन्न होते हैं। मन के फुरने से संसार सत्य होता है और जब फुरना निवृत्त होगा तब कोई दुःख न रहेगा।

हे रामजी! जब फुरने और अफुरने में समान होगे तब रागद्वेष से रहित होकर विचरोगे। यह हो और यह न हो; इससे रहित होकर चेष्टा करो। अभिलाषपूर्वक संसार में न फुरो। हे रामजी! पूर्व जो ज्ञानवान् हुये हैं उनको चित् चिंतना न थी और आगे होनेकी आशा भी न थी। वर्त्तमानकालमें शास्त्र के अनुसार रागद्वेष से रहित वे चेष्टा करते हैं; इससे तू भी सङ्कल्प का त्यागकर स्वरूप में स्थितहो। हे रामजी! ब्रह्मासे आदि तृणपर्यन्त किसी पदार्थ में राग हुआ तो बन्धन है। मेरा यही आशीर्वाद है कि, ब्रह्मासे आदि तृणपर्यंत किसी पदार्थ में तुम्हें रुचि न हो, अपने आपही में रुचिहो। हे रामजी! यह संसार मिथ्या है और इसमें कोई पदार्थ सत् नहीं है— सर्व मनके रचेहुये हैं; इससे मनको स्थित करो। जैसे धोबी साबुन मिलाके वस्त्र का मैल दूर करता है तैसेही मनसे मनको स्थिर करो। जब मनको स्वरूप में स्थिरकरोगे तब मन अपने सङ्कल्प को आपही नाश करेगा। जैसे दुष्ट पुरुष की जब धन से वृद्धिहोती है तब वह अपने भाई आदिक के नाश करने का उपाय करता है, तैसेही मन जब आत्मपद में स्थित होता है तब अपने संकल्प को नाश करता है जब तुम्हारा मन स्वरूप में स्थित होगा तब तुम अमन होगे और तुम्हारे सब दुःख नष्ट होजावेंगे। मनके नाश विना कोई सुख नहीं। हे रामजी! यह मन ऐसा दुष्टहै कि, जिससे उपजता है उसी के नाश का निमित्त होता है। जैसे बांस से अग्नि उपजकर उसीको जलाती है, तैसेही आत्मा से उपजकर यह मन आत्माही को तुच्छ करता है। जैसे राजा का नौकर राजा की सत्ता पाकर राजाकोही मारकर आप राजा होता है, तैसेही मन आत्माकी सत्तापाकर और उसको ढांपकर आपही कर्त्ता भोक्ताहो बैठा है। इससे मनको मनही से नाश करो। जैसे लोहा तपाकर लोहे को काटता है तैसेही मन से मनही को शुद्धकरो। हे रामजी! वृक्ष, बेलि, फल, फूल, पशु, पक्षी, देवता, यक्ष, नाग जो कुछ स्थावर-जंगम पदार्थ हैं वे प्रथम कर्म्मों के विना उत्पन्न हुये हैं और पीछे जब स्वरूप से गिरते हैं और धनपदको प्राप्त होते हैं तब कर्म्मोंसे शरीर होते हैं। कर्म्मों का बीज अहंकार है और अहंकार में शरीर है। जैसे बीज से वृक्ष होता है और समय पाकर फूल, फल प्रकट होते हैं; तैसेही अहंकार से शरीर प्रकट होते हैं और जब अहंकार नष्ट हुआ तब कोई शरीर नहीं— केवल आत्मपद है। अहंकार है नहीं और प्रत्यक्ष दिखाई देता है और आत्मा अच्युत है पर गिरेकी नाईं भासता है; निरवलम्ब है और अवलम्ब की नाईं दृष्टि आता है; निराकार है पर आकार सहित भासता है; निराभास है और आभास सहित दिखाई देता है। इससे केवल चिन्मात्र आत्मामें स्थितहो। यह सब चिन्मात्रहीरूप है। हे रामजी! जब ऐसी भावना होती है तब चित् अचित् होजाता है और

जब चित् अचित्हुआ तब जगत्कलना मिटजाती है केवल आत्मतत्त्वही भासता है॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकर्म्माकर्म्मविचारोनाम
चतुरधिकशततमस्सर्गः १०४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जीव के तीन स्वरूपहैं—एक स्वरूप तो शुद्धात्मा चिदानन्द ब्रह्महै जिससे सर्व्व प्रकाशतेहैं; दूसरा अन्तवाहक पुण्यनाम है जो आत्मा के प्रमाद से हुआ है। जो मात्रपदसे उत्थान हुआहै तौ भी प्रमाद नहीं क्योंकि; आत्मा का स्मरण रहा है और जब आत्माका स्मरण भूला तब तीसरा आधिभौतिक हुआ और पंचतत्त्वको अपना आप जाननेलगा है। हे रामजी! ये तीनस्वरूप जीवके हैं। आत्माके प्रमाद से जीव संज्ञा पाताहै और दुःखी और परतंत्र होता है। इससे पाञ्चभौतिक और अन्यवाहक को त्यागकर वास्तवस्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! ये जो स्थूल और सूक्ष्मशरीर हैं सो विचार से नष्ट होजाते हैं पर तीसरा जो स्वरूप है वह सत्य है। तू उसी में स्थित हो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये तीनरूप जो तुमने जीव के कहे उनके मध्यमें नाशरूप कौन है और सत्‌रूप कौन है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! हाथ पांव संयुक्त जो देह है और भोग से मिलीहुई है वह स्थूलरूप है और यह जीव अपनेही संकल्प से सदा फैलाव रचता है। चित्तरूपी देह इस फुरनेरूप से अन्तवाहक है वह सदा प्राणवायु के रथपर स्थित रहताहै—देहहो चाहे न हो। हे रामजी! ये दोनों शरीर उपजते और नष्टभी होते हैं और आदि अंतसे रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं उसे जीवका परमरूप जानो। जो तुरीयपद है उसी से जाग्रदादिक उपजेहैं और उसी में लीनहोते हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! मैं तीनको जानताहूं—एक जाग्रत्है जो निद्रा से रहित है और जिसमें इन्द्रियां और चार अन्तःकरण अपने अपने विषयको ग्रहण करते हैं; दूसरा स्वप्न है वहां भी इन्द्रियां विषय को जाग्रत् की नाईं संकल्प से ग्रहण करती हैं और तीसरे में इन्द्रियां अपने विषय से रहित होती हैं और जड़त्ता आती है, तब कुछ नहीं भासता शिलाकी नाईं जड़ता तमोगुण आत्मा है—सो सुषुप्ति है। इनतीनोंको तो मैं जानताहूं पर तुरीया और तुरीयातीतको कृपा करके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अपना होना और न होना दोनों को त्याग कर पीछे केवल तुरीयपद रहता सो शान्त और निर्मल पद है। हे रामजी! तुरीया जाग्रत् नहीं क्योंकि; जाग्रत् संकल्प जालहै और उसमें इन्द्रियों से रागद्वेष होता है तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं क्योंकि; स्वप्न भ्रमरूपहोता—जैसे रस्सी में सर्प भासता है सो और का और संकल्प होता है और तुरीया सुषुप्ति भी नहीं क्योंकि; उसमें अत्यन्त जड़ता है और तुरीया चेतनरूप, उदासीन और शुद्ध है और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से रहित है। जीवन्मुक्त तुरीयपद में स्थित रहता है। हे रामजी! जो

तुरीयपद में स्थितहै उसको यह स्थितिभी है और वह जगत्से भी शान्तरूप होजाताहै और अज्ञानीको वज्रसारवत् दृढ़है । ज्ञानी सदा शान्तरूपहै क्योंकि; वह तीनों अवस्थाओं का साक्षी है, उसको न उन के रागहैं, न द्वेष हैं उदासीनकी नाईं हैं । तुरीयातीतपदको वाणीकी गम नहीं । जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होताहै तब इसीपद को प्राप्त होताहै जहां वाणी की भी गम नहीं । जब तक जीवन्मुक्तहै तब तक तुरीयपदमें स्थित रह राग द्वेषसे रहित होताहै और इन्द्रियांभी अपने विषयमें राग द्वेषसे रहित होकर स्वाभाविक बर्तती हैं । जिस पुरुषको राग द्वेष उत्पन्न होताहै वह तुरीयपदको नहीं प्राप्त हुआ और चित्त सहितहै और जिस पुरुषको राग द्वेष नहीं उत्पन्न होता उसका चित्त सत्पदको प्राप्त हुआहै । जिसका चित्त सत्पदको प्राप्त हुआ है उसको संसारकी सत्यता नहीं भासती; वह स्वप्नवत् जगत्को देखताहै । इससे तूभी सत्पद में स्थित होकर साक्षीरूप होरह ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेतुरीयपदविचारोनाम
पञ्चाधिकशततमस्सर्ग्गः १०५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! कर्त्ता, कारण और कर्म्म ये तीनों हों पर तू इनका साक्षीहो । इनका कर्तत्व अभिमान तुझे न हो कि, मैं यह करताहूं अथवा मैंने इसका त्याग किया है, उदासीन की नाईं होरह । इसी पर एक आख्यान कहताहूं उसे सुनो । तुम प्रबुद्धहो तौभी दृढ़बोधके निमित्त सुनो । हे रामजी ! एक वनमें काष्ठमौन नामक एक मुनि रहताथा। निदान एकदिन एक वधिक किसी मृगपर बाण चलाते हुये उस के पीछे दौड़ता जाता था जब वह आगे गया तो मृग वधिककी दृष्टिसे अगोचर होगया । वधिक ने देखा कि, एक तपस्वी बैठाहै; उससे पूछा, हे मुनीश्वर ! यहां एकमृग आयाथा सो किस ओरको गया तुमने देखा हो तो मुझसे कहो ? काष्ठमौन बोले, हे वधिक ! हमको कुछ सुधि नहीं क्योंकि; हम निरहङ्कार हैं, हमारे साथ चित्त और अहङ्कार दोनों नहीं । जो तुम कहो कि, इन्द्रियोंकी चेष्टा कैसे होती है; तो जैसे सूर्यके आश्रय लोगोंकी चेष्टा होती है और दीपक की मणिके आश्रय चेष्टा होती है और सूर्य दीपक मणि प्रकाश के साक्षीभूतहैं तैसेही हम इन्द्रियोंके साक्षीभूतहैं और इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती है । हमको इनसे कुछ प्रयोजन नहीं । हे वधिक ! अहंभाव करने वाला अहंकार है । जैसे माला के भिन्न भिन्न दाने तागे के आश्रय होते हैं और सब में एक तागा होता है तब माला होता है पर जब तागा टूटपड़ताहै तब दाने भिन्न भिन्न होजाते हैं; तैसेही इन्द्रियांरूपी दाने हैं और अहंकाररूपी तागा है; उस अहंकार रूपी तागेके टूटने से इन्द्रियां भिन्न भिन्न होजाती हैं । जैसे राजा के नाशहुये सेना और

गोपाल के नष्ट हुये गौवें भिन्न भिन्न होजाती हैं और पिताके नष्टहुये बालक व्याकुल होते हैं तैसेही अहंकार विना इन्द्रियां व्याकुल होती हैं। इनका अभिमान मुझमें कुछ नहीं। इनका अभिमानी अहंकार था सो मेरा नष्ट होगया है। इन्द्रियां अपने २ विषय में विचरती हैं मुझको इनका न रागहै और न द्वेषहै। हे साधु! मुझे न जाग्रत्है और न स्वप्न, सुषुप्ति भासती है; इन तीनों से रहित हम तुरीयपद में स्थित हैं और हमारा अहं त्वं मिटगयाहै। हम नहीं जानते कि, मृग बायेंगया या दाहिने क्योंकि; नेत्र इन्द्रियां देखनेवाली हैं उनको बोलने की शक्ति नहीं। ये अपने २ विषयको ग्रहण करती हैं, एक इन्द्रियको दूसरेकी शक्ति नहीं फिर तुझसे कौनकहे? इन सबका धारनेवाला अहंकारथा जो सबको अपना आप जानता था। जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होते हैं तैसेही अहंकार के नष्टहोनेसे हम स्वच्छ, निर्मल शान्त तुरीयपद में स्थितहैं। इन्द्रियोंका जीव और अहंकार मृतक होगयाहै और इन्द्रियांभी मृतक होगई हैं देखने मात्र दृष्टि आती हैं। जैसे भीतपर पुतलियां लिखीहों पर उनके कार्य कुछ न हों तैसेही हमारी इन्द्रियों से कुछ कार्य नहीं होता तो तुझसे कौन कहे। वशिष्ठजी बोले, हे रामचन्द्र! जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा तब वधिक समझकर उठगया। हे रामजी! तुरीयपद शान्तरूप है जहां जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनोंका अभाव है। वह केवल अद्वैत पद है। ये जो ब्रह्म, आत्मा, चिदानन्द आदि संज्ञाहैं सो तुरीयपद में हैं और तुरीयातीतपदमें शब्द की गम नहीं वह अशब्दपद है। विदेहमुक्त पुरुष उसी पदको प्राप्तहोते हैं और जीवन्मुक्त साक्षात् करके तुरीयावस्था में विचरते हैं; जहां जाग्रत् जो दीर्घ दुःख सुखका भानहै सो नहीं और स्वप्न जो राग द्वेषके लिये अल्पकाल है सो भी नहीं और जड़ता तामस अवस्था भी नहीं। इनतीनों से रहित तुरीयपदहै और शान्तहै उसमें कोई क्षोभ नहीं। यह जगत् उसका आभासहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग वास्तव में कुछ नहीं—जलहीहै, तैसेही केवल तुरीयस्वरूप सत्तासमान तेरा स्वरूप है उसमें स्थित हो। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सिद्ध,ज्ञानी इत्यादिक स्थित हैं और काष्ठमौन वधिकका उपदेशकरनेवाला भी तुरीयपदमें स्थित है। उसकी विशेष कलना जो भिन्न भिन्न नामरूपको देखनेवाली थी निवृत्त हुई थी केवल सत्ता समानमें स्थित था। इससे कलना को त्यागकर तुमभी तुरीयपद में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकाष्ठमौनवृत्तान्तवर्णनन्नाम षडधिकशततमस्सर्गः १०६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व केवल आकाशरूप है पर आत्मा से भिन्न कुछ नहीं, आत्माकाही चमत्कार है। जैसे मेघमें बिजली का चमत्कार होता है तैसेही यह विश्वरूप चित्तकला आत्मा का चमत्कार है। हे रामजी! वास्तव में ब्रह्मही है

कुछभिन्न नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह विश्व आपने ब्रह्मरूप कहा कि, मेघ में बिजलीकी नाईं क्षणमें उपजता और क्षणमें लीनहोता है; पर मेघमें बिजली दृष्टि आती है। जहां मेघ होता है वहां बिजलीभी होती है इससे मेघसे बिजली उत्पन्न हुई तो उसका कारण मेघहै। हे मुनीश्वर! इस चित्तस्पंद कलाके कारणकी उत्पत्ति ब्रह्म से कैसे हुईहै सो कृपाकरके मुझसे समझाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो वितण्डक होकर तुम तर्क करतेहो सो कुछ नहीं–इस नाशबुद्धिको त्यागो। यह तो बालक भी जानते हैं कि, बिजली क्षणभंगुररूप है सत्य नहीं। तुम्हारा और क्या प्रयोजन है सो कहो। यह तर्क कारण कार्यरूपका कैसा करतेहो? रामजी बोले, हे भगवन्! यह स्पंदकला सत्यहै वा असत्य है? इसका कारण कौन है जिससे यह फुरती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वप्रकारसे सर्वात्माही स्थित है। चित्त और चित्तस्पंद यह भेद कल्पना वास्तवमें कुछ नहीं; ब्रह्महीं अपने स्वरूपमें आप स्थित है और सब भ्रमसे भासते हैं। जैसे भ्रमदृष्टिसे आकाशमें मोती भासते हैं और नेत्र मूंदकर खोलो तो तरुवरे आकार भासते हैं, तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै। हे रामजी! हम इस संसारसमुद्र के पारहुये हैं। हम प्रभृति ज्ञानवानों के यथार्थ वचन सुनकर हृदयमें धारो तो शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहो और जो मूर्खता करके मेरे वचनोंको न धारोगे तो तुम्हारे दुःख नष्ट न होंगे और वृक्ष, तृण, बेलि आदिक योनि पाओगे। हे रामजी! आकाश और काल आदिक पदार्थ सर्वकलनासे सिद्धहुये हैं–आत्मामें कोई नहीं। हे रामजी! वायुसे रहित जो समुद्रका चमत्कारहै उसका कारण कौन है? दीपकमें जो प्रकाश और अग्निमें उष्णताहै तो उसप्रकाश और उष्णताका कारण कौनहै? वायुके निस्स्पंद और स्पंदका कारण कौनहै? जैसे इनका कारण कोई नहीं, वायुका रूप स्पन्द निस्स्पन्दहै, अग्निका रूप उष्णताहै और दीपकका रूप प्रकाश है तैसेही कलनाभी आत्मस्वरूप है–कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! यह कलना जो तुझ को भासती है उसको त्यागकरो। जब अपने आपको देखोगे तब संशय मिटजावेंगे। जैसे जब प्रलयकाल का जल चढ़ता है तब सर्व जलमय होजाता है–कुछ भिन्न नहीं होता, तैसेही अपने स्वरूपको जब तुम देखोगे तब तुमको सर्वआत्माही भासेगा–आत्मासे भिन्न कुछ न दृष्टि आवेगा। हे रामजी! आत्मा एकरस है; सम्यक् दर्शनसे ज्योंका त्यों भासेगा और असम्यक् दर्शनसे औरका और भासेगा। जैसे रस्सीको यथार्थ न देखिये तो सर्पभ्रम होता है और भयवान् होताहै और जब ज्योंकी त्यों रस्सी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त होजाता है तैसेही आत्माके न जानेसे जीव संसारी होता है, भयभीत होताहै, आपको जन्मता मरता मानता है और सर्वविकार देहके आत्मा में जानताहै पर जब आत्माको जानता है तब सर्वभ्रम निवृत्त होजाते हैं। जैसे नेत्रों से तारे

दिखतेहैं और जब नेत्र मूंदलो तो उनका आकार अन्तःकरणमें भासताहै क्योंकि, उनकी सत्यता हृदयमें होती है--पर जब हृदय से उनकी सत्यता उठजाती है तब फिर नहीं भासते, तैसेही चित्तके भ्रमसे संसार हुआहै उसको मिथ्याजानो। हे रामजी! फुरने में जो दृढ़भावनाहुई है सोही सत्यहोकर मिथ्या संसारहुआहै; जब चित्तका त्याग करोगे तब संसारकी सत्यता जाती रहेगी। रामजी बोले, हे भगवन्! आपने जो कहा कि, यह विश्व कल्पनामात्र है सो मैंने जाना कि, इसीप्रकार है—कुछ सत्य नहीं। जैसे राजालवण, इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र और शुक्रकी कलना जब फुरने में दृढ़हुई तब उन्हें फुरन रूप विश्व सत्यहोकर स्थित हुआ और भासनेलगा। हे भगवन्! यह मैं जानताहूं कि, विश्व फुरनेमात्र है पर जब फुरन मिटजाती हैं तो उसके पीछे जो शान्तिरूप शेष रहताहै सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम सम्यक् बोधवान्हुयेहो और जो जानने योग्यहै वह तुमने जानाहै। हे रामजी! अध्यात्मशास्त्रका यह सिद्धांतहै कि, और सब दृश्य असंभव है एक चिद्घन ब्रह्म अपने आप में स्थित है। हे रामजी! आत्मा शुद्ध, निर्म्मल और विद्या—अविद्या से रहित है और संसार का उसमें अत्यन्त अभावहै। जो कुछ शुद्ध आदिक संज्ञा कहाती हैं वे भी फुरने में हैं आत्मा तो निर्वाच्य पदहै। उसकी संज्ञा इतनी शास्त्रकारों ने कही है। शून्यवादी तो उसीको शून्य कहतेहैं; विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं; उपासनावाले उसी को ईश्वर कहते हैं; कोई कहते हैं आत्मा सर्व का कारणहै वही शेष रहता है; कोई आत्माको सर्वशक्त कहते हैं; कोई कहते हैं कि, आत्मा निःशक्तहै और कोई साक्षी आत्मा और शक्तिको भिन्न मानते हैं। हे रामजी! जितने वादहैं सो सर्वही कलना से हुये हैं और कलनाको मानकर सब वाद उठाते हैं, वास्तव में कोई वाद नहीं आत्मा निर्वाच्यपद है। मेरा जो सिद्धान्तहै वह भी सुनो। आत्मा सर्व कलना से अतीत हैं। जैसे पवन स्पन्दशक्ति से फुरता है और निस्स्पन्द से ठहरजाताहै क्योंकि, स्पन्दभी पवनहै और निस्स्पन्द भी पवनहै इतर कुछ नहीं, तैसेही आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है और कलना भी आत्मा के आश्रय फुरती है आत्मा से भिन्न नहीं। और जो भिन्न प्रतीत होती है उसको मिथ्या जानकर त्यागो और अपने निर्विकारस्वरूप में स्थित रहो। जब तुम आत्मस्वरूप में स्थित होगे तब जितने शास्त्रों के भिन्न भिन्न मतवाद हैं सो कोई न रहेंगे केवल अपना आप स्वच्छ आत्माही भासेगा। हे रामजी! उस निर्विकल्पपद को पाकर तुम शान्तिमान्हुये हो और असत्की नाईं स्थितहुये हो क्योंकि, उनकी द्वैतकलना कुछ नहीं फुरती। हे रामजी! आत्मा, ब्रह्म आदिक शब्द भी उपदेश निमित्त कहेहैं पर आत्मा शब्द से अतीत है और सर्व्व जगत् आत्मस्वरूप है और संसाररूप विकार आत्मा में असम्यक् दर्शन से भासते हैं जैसे शून्य आकाश में तरुवरे मोतीवत् भासते हैं सो अविदित हैं।

तैसेही आत्मा में जगत्द्वैत अविदित भासता है। इससे जगत्द्वैत की भावना त्याग कर निर्विकल्प आत्मस्वरूप में स्थितरहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽविद्यानाशरूपवर्णनंनाम सप्ताधिकशततमस्सर्गः १०७॥

रामजीनेपूछा, हे भगवन्! देह, इन्द्रियां और कलनामें सार वस्तु क्याहै? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! जो कुछ यह अहं त्वम् आदि जगत् दृश्यहै सो सब चिन्मात्रहै। जैसे समुद्र जलहीमात्र है। तैसेही जगत् चिन्मात्र है। मनसहित षट्इन्द्रियों से जो कुछ दृश्य भासता है सो भ्रममात्र है। हे रामजी! देह, इन्द्रियां आदि सब मिथ्याहैं; आत्मामें कोई नहीं चित्तके कल्पेहुये हैं और चित्तही इनको देखताहै। जैसे मरुस्थल में मृगको जलबुद्धिहोती है तो जलके निमित्त दौड़कर दुःखपाताहै, तैसेही चित्तरूपी मृग आत्मरूपी मरुस्थल में देहइन्द्रियां विषयरूपी जल कल्पकर दौड़ता है और दुःखपाता है सो देहइन्द्रियोंमें भ्रमकरके भासते हैं। जैसे मूर्ख बालक परछाहीं में वेताल कल्पता तैसेही मूर्खचित्तने देहइन्द्रियादिक कल्पना की हैं। हे रामजी! आत्मा शुद्ध निर्विकार है उसमें चित्तने भ्रमसे विकार आरोपण किये हैं। जैसे भ्रान्तिदृष्टि से आकाशमें दो चन्द्रमा भासते हैं, तैसेही चित्तने देह इन्द्रियां कल्पी हैं पर चित्त भी आपसे कुछ नहीं आत्माकी सत्तालेकर चेष्टाकरताहै। जैसे चुम्बककी सत्तालेकर लोहा चेष्टा करता है तैसेही निर्विकार आत्मा की सत्तालेकर चित्त नानाप्रकार के विकार कल्पता है। इससे चित्तका त्याग करो जिसमें तुम्हारा विकार जाल मिटजावे। हे राम जी! देह इन्द्रियों में सार क्या है सो सुनो। जो कुछ संसार है उसमें सार देहहै क्योंकि, सब देहके सम्बन्धी हैं। जब देह मिटजाता है तब सम्बन्धी भी नहीं रहते। देह में सार इन्द्रियां हैं; इन्द्रियों में सार प्राण हैं; प्राणों में सार मन है और मन का सार बुद्धिहै। बुद्धिका सार अहंकार है, अहंकार का सार जीवहै, जीवका सार चिदावली है–चिदावली वासनासंयुक्त चेतना को कहते हैं–और चिदावली का सार चित्त से रहित शुद्ध चेतनहै जिसमें सर्व विकल्प की लय है और जो शुद्ध, निर्मल और चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है उसमें कोई उत्थान नहीं। हे रामजी! चिदावली पर्यन्त सर्व को त्याग कर इनका जो सार चेतनमात्र आत्मा है उसमें स्थित हो। विश्व कलनामात्र है, आत्मा में कुछ नहीं संकल्पकी दृढ़ता से सत् की नाईं भासता है। आगे भी शुक्र और लवण राजा और इन्द्र के पुत्रों का वृत्तान्त कहा है कि, संकल्प की भावना से उन्हें जगत् दृढ़ होकर भासि आयाथा सो वास्तव में कुछ नहीं था; तैसेही यह विश्वभी चित्त के फुरनेमें स्थित है। असम्यक् दृष्टि से अद्वैत आत्मा में दृश्य भासताहै। जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मा में अहंकार आदिक अज्ञान से

दृश्य भासते हैं। इससे इनको त्यागकर अपने वास्तवस्वरूप में स्थितहो। हे रामजी! एक गढ़ तुम से कहताहूं जिसमें किसी शत्रुकी गम नहीं उसमें स्थितहो। हमभी उसी गढ़में स्थित हैं और जितने ज्ञानवान् हैं वे भी उसी में स्थित होते हैं। हे रामजी! काम, क्रोध, लोभ, अभिमानादिक विकार आत्मा में नहीं पायेजाते। जैसे रात्रि में दिन नहीं होता, तैसेही विकाररूपी दिन गढ़रूपी रात्रि में नहीं पायाजाता इससे अचिन्त्य रूप गढ़में जहां कोई फुरना नहीं और जो केवल शान्तरूप है उसमें अहंभाव त्याग कर स्थितहो तो अहंत्वंभाव निवृत्त होजावें। जब स्वरूप का साक्षात्कार होता है तब ज्ञानी फुरने अफुरने में स्वरूपको तुल्य देखताहै और सम्पूर्ण जगत् उसको आत्मरूप भासता है। इससे चिदावली से आदि देहपर्य्यन्त जो अनात्म है उसको क्रम करके त्यागो। प्रथम देहको त्यागो, फिर इन्द्रियों के अभिमानको त्यागो; इसी क्रमसे सब को त्याग के अपने वास्तवस्वरूप में स्थितहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवत्वाभावप्रतिपादनन्नामा
ष्टाधिकशततमस्सर्गः १०८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार चेतनमात्र है। आत्मा से कुछ भिन्न नहीं, आत्माही विश्वरूप होकर स्थित हुआ है। जैसे सूर्य्य की किरणेंही जलाभास होती हैं तैसेही आत्माका चमत्कार दृश्यरूप होकर स्थित हुआहै। जैसे संकल्प और संकल्प-कर्त्ता भिन्न नहीं और आकाशही भ्रमसे मोती की मालाहोकर भासता है, तैसेही आत्माही दृश्यरूप होकर भासता है। जैसे बीजही वृक्ष, फूल और फल होता है तैसेही विश्व आत्माही है और दृश्यरूप होकर स्थितहुआ है। जैसे जल के तरङ्ग जलही हैं तैसेही विश्व आत्माही है। हे रामजी! चिदावली भी जीव, अहंकार, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियां, देह, विश्व, आकाश, काल, दिशा, पदार्थ, सब आत्माही है–आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। इससे विश्वको अपना स्वरूप जानो। जैसे सूर्य्य का प्रकाश सूर्य्यही है तैसेही तुम जानो कि, सर्व मैंहीहूं। जो ऐसे न जानसको तो ऐसे जानो कि, देह भी जड़ है और इन्द्रियों से पालित है; सो मैं नहीं। इन्द्रियां भी मैं नहीं क्योंकि, प्राण, इन्द्रियों का सार है जो प्राण न हो तो इन्द्रियां किसी कामकी नहीं। प्राण भी मैं नहीं क्योंकि, प्राणका सार मन है जो मन मूर्च्छित होताहै और प्राण आतेजाते भी हैं तौभी किसी कामके नहीं। मन भी मैं नहीं क्योंकि,मन के प्रेरनेवाली बुद्धिहै; जो निश्चय बुद्धि करती है मन भी वहीं जाता है बुद्धिभी मैं नहीं क्योंकि, बुद्धिका प्रेरक अहंकार है और अहंकार भी मैं नहीं क्योंकि, अहंकार का सार जीव है जीव बिना अहंकार किसी काम का नहीं। जीव भी मैं नहीं क्योंकि, जीव का सार चिदावली है चिदावली शुद्ध चिद् में चैतन्योन्मुखत्व होनेको कहते हैं। जीवसंज्ञासे प्रथम ईश्वरभाव चिदावलीभी

में नहीं क्योंकि, चिदावलीका सार चिन्मात्र है सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है। ये सर्व्व अनात्मभ्रम से सिद्धहुये हैं, मैं केवल शान्तरूप आत्मा हूं। हे रामजी ! जो तुम्हारा वास्तव स्वरूप है वही होरहो उससे भिन्न अनात्म में अहंप्रतीतिका त्यागकरो तुम देहसे रहित निर्विकारहो, तुममें जन्म मरणादिक कोई विकार नहीं और शान्तरूप ज्यों के त्यों स्थितहो। तुम कदाचित् स्वरूपसेऔर नहीं हुये–उसी स्वरूपमें स्थितरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसारप्रबोधनन्नामनवाधिकशततमस्सर्ग्गः १०९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मा चिन्मात्रसे बढ़के और सार कुछ नहीं। उसी में स्थित रहो जिसमें सब ताप मिटजावें। हे रामजी ! सर्व आत्माही स्थित है। जैसे बीजही फलफूल होकर स्थित होता है तैसेही सर्व्व आत्माही स्थित है तो निषेध और त्याग किसका करिये। इतना कह बाल्मीकिजी बोले, हे शिष्य ! ऐसे वशिष्ठजी के वचन सुनके रामजी प्रसन्नहुये और जैसे कमल सूर्य्यको देखकर खिलआताहै तैसेही रामजीकी बुद्धि वशिष्ठजी के वचनरूपी सूर्य्य से खिलआई। तब बोले, हे भगवन् सर्व धर्मज्ञ ! आपकी कृपा से अब मैं जगा। बड़ा आश्चर्य है कि आत्मा सर्वदा अनुभवरूप और अपना आपहै पर उसके प्रमाद से मैंने इतने काल दुःखपाया। अहंता और ममतारूपी बड़ा बोझा जो शिरपर था उससे मैं दुःखी था। जैसे किसी के शिरपर पत्थर की शिलाहो और ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप में वह पैदलचले तो दुःखपाता है और जो उसके शिरसे कोई उस शिलाको उतारले और छायामें बैठावे तो बड़े सुखको प्राप्त होता है; तैसेही अज्ञानरूपी धूपमें अहंता ममतारूपी शिलासे मैं दुःखी था और आपने वचन रूपी बलसे उस शिलाको उतार लिया और आत्मरूपी वृक्षकी छाया में विश्राम कराया। हे भगवन् ! अब मुझे शान्तपद प्राप्त हुआ है और मेरे तीनोंताप मिटगये हैं। अब जो सुमेरु पर्वत का भार भी आन प्राप्त हो तो भी मुझे कोई कष्टनहीं। अब मेरे सर्व संशय निवृत्तहुये हैं। जैसे शरत्कालका आकाश निर्म्मल और स्वच्छरूप होता है, तैसे रागद्वेषरूपी द्वन्द्व मेरा नष्ट हुआहै। अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआहूं परन्तु एकप्रश्न है कृपाकरके उसका उत्तर कहिये। महापुरुष वारंवार प्रश्न करने में खेद नहीं मानते। हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, सर्व ब्रह्महीहै तो शास्त्रका विधि निषेध और उपदेश किसको कहते हैं कि, यह कर्म कर्त्तव्य है और यह कर्म कर्त्तव्य नहीं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। विश्व भी उसका चमत्कार है। जैसे समुद्र में पवन से नानाप्रकार के तरंग फुरते हैं पर जलसे कुछ भिन्न नहीं, तैसेही चेतनमात्र आत्मासे चैतन्योन्मुखत्व अहंभाव को लेकर फुराहै उससे देश, काल, वस्तु बनगये हैं और शास्त्र फुरे हैं। फिर फुरने में दो रूप हुये हैं–एक विद्या और दूसरा अविद्या। उसमें विद्यारूप जो जीवहुये हैं वे ईश्वर कहाते हैं और अविद्यारूप जीव

हैं । जिनको अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय वास्तव की रही है सो ईश्वर हैं और जिनको स्वरूप का प्रमादहुआ और संकल्प विकल्पमें बहते हैं वे जीव दुःखी हैं । हे रामजी ! इतनी संज्ञाफुरने में हुई है तौ भी आत्मासे कुछ भिन्न नहीं । जैसे एकही रस फूल,फल और वृक्ष हुआ है रससे कुछ भिन्न नहीं । आत्मा रसकी नाईं भी प्रमाणको नहीं प्राप्त हुआ; फुरने से ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुई है—आत्मामें कुछ नहीं । हे रामजी ! जिन का संकल्प आधिभौतिकमें दृढ़ नहीं हुआ वे जीव शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त होते हैं । और उनको आत्माका साक्षात्कार शीघ्रही होता है । जिनका संस्कार आधिभौतिक में दृढ़ हुआ है वे चिरकाल में आत्मपदको प्राप्तहोते हैं । आत्मपदकी प्राप्ति विना वे दुःख पाते हैं और जिनको आत्मपद की प्राप्ति होती है वे सुखी होते हैं । हे रामजी ! ज्ञानी और अज्ञानी के स्वरूप में और कुछ भेद नहीं केवल सम्यक् और असम्यक् दर्शन का भेद है । हे रामजी ! विद्या भी दोप्रकारकी है—एक ईश्वरवाद और दूसरा अनीश्वरवाद है । जो ईश्वरवादी हैं वे तुरीयपद को प्राप्त होते हैं और जो अनी-श्वरवादी हैं उनको जब ईश्वर की भावना होती है तब वे शास्त्र और गुरुद्वारा ईश्वर को प्राप्त होते हैं । ईश्वरवादी भी दोप्रकारके हैं—एक वे जो और वासना त्याग कर ईश्वर परायण होते हैं । वे शीघ्रही ईश्वर को प्राप्त होते हैं । आत्माही ईश्वर है जो सर्व का अपना आप है । दूसरे ईश्वर को मानते हैं पर उनकी वासना संसार की ओर होती है । वे चिरकाल में आत्मपदको प्राप्त होते हैं । अनीश्वरवादी भी दोप्रकारके हैं—एक कहते हैं कि, कुछ होगा । उनको होतेहोते की भावना से शास्त्र और गुरु के द्वारा आत्मपदकी प्राप्ति होगी । दूसरे कहते हैं कि, कुछ नहीं; उनको चिरकाल में जब आस्तिक भावना होगी तब आत्मपदको प्राप्तहोंगे । हे रामजी ! उनके निमित्त विधि और निषेध कहे हैं कि, शुभकर्मको अंगीकार करो और अशुभकर्म त्यागो तो उससे जब अन्तःकरण शुद्धहोगा तब आत्मपदकी प्राप्ति होगी । जो विधिनिषेध शास्त्र न कहें तो बड़ा छोटे को भोजन करलेवे । इस निमित्त शास्त्रका दंड है । हे रामजी ! स्वरूप से किसी को उपदेश नहीं, भ्रम में उपदेश है । जिस पुरुष का भ्रम निवृत्त हुआ है वह फिर मोह में नहीं डूबता—जैसे जल में डूबा नहीं डूबता । और जिसका चित्त वासना से घेराहुआ संसरता है उसको इससंसार से निकलना कठिन है । जैसे उजाड़ के कुयें में गिरके निकलना कठिन होता है तैसेही चित्त से मिलकर संसार से निकलना कठिन होता है । हे रामजी ! इस चित्तको स्थिर करो कि, तुम्हारे दुःख मिट जावें और सत्तासमान पदको प्राप्त हो । हे रामजी ! जिसको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है और अनात्म में अहंप्रत्यय निवृत्त हुआहै वह पुरुष जो कुछ करता है उसमें बन्धायमान नहीं होता वह सदा अकर्त्ता आपको देखताहै और जिसको अहंप्रत्यय

अनात्ममें हैं वह पुरुष करे तौभी कर्त्ता है और जो न करे तौभी कर्त्ता है । हे रामजी ! जो ज्ञानी शुभकर्म करताहै तो शुभ कर्म करता हुआ स्वर्गको प्राप्त होताहै और अशुभ कर्म करने से नरक को प्राप्त होताहै । जो शुभकर्म को त्यागताहै तौभी नरक को प्राप्त होता है क्योंकि; अनात्ममें आत्माभिमान है । इससे बुद्धि और इन्द्रियों को मन से निग्रहकरो और कर्म इन्द्रियोंसे चेष्टाकरो । देखने, सुनने, सूंघनेको मैं तुम्हें नहीं बर्जता; यही कहताहूं कि, अनात्म में अभिमान को त्यागो । जब अनात्माभिमान को त्यागोगे तब शान्तपदको प्राप्तहोगे और जहां तुम्हारा चित्तफुरेगा वहां आत्माही भासेगा—आत्मा से भिन्न कुछ न भासेगा । इससे चित्तको त्यागो—चित्त अहंभाव का नामहै—और आत्मपदमें स्थितहो । जैसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है सो भी सुनो । शुद्ध चेतनमात्र स्वरूप में चिदावलीरूप अहं तरङ्ग फुरा है । उस चिदावलीरूपी समुद्र में जीवरूपी तरङ्ग उपजता है और जीवरूपी समुद्र में अहंकाररूपी तरङ्ग भासित हुआ है । अहंकाररूपी समुद्र में बुद्धिरूपी तरङ्ग उपजाहै, बुद्धिरूपी समुद्रमें चित्तरूपी तरङ्ग भासाहै और चित्तरूपीसमुद्र में सङ्कल्परूपी तरङ्ग उपजाहै । उस संकल्परूपी समुद्रमें जगत्‌रूपी तरंग उपजाहै और जगत्‌रूपी समुद्रमें देहरूपी तरंग भासित हुआ है और उसके संयोगसे दृश्यका ज्ञान हुआ है कि; यह पदार्थहै, यह नहीं है, ये ऐसे हैं; उसीमें देश, काल, दिशा सर्व हुये हैं । हे रामजी ! निदान वे सब संकल्प से होगये हैं सो आत्मासे भिन्न कुछ नहीं । केवल शान्तरूप एकरस आत्मा है उसमें नानाप्रकार के आचार रचे हैं । जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारहो भासती है सो अपनाही अनुभव होताहै तैसेही इस जगत्‌को भी जानो; आत्मा सर्वदा एकरस, अद्वैत, शुद्ध, परम निर्वाण, अपने आपमें स्थित है और फुरने से नानाप्रकारकी कल्पना उदय हुई है । हे रामजी ! शुद्धआत्मा में चिदेव संज्ञा भी संकल्पसे हुई है—"चिदेवपञ्चभूतानि; चिदेवभुवनत्रयम्" आत्मा निर्वाच्यपद है उसमें वाणी की गमनहीं और शुद्ध शान्तरूप है । चिदेव जो फुरी है उस फुरने में संसार हुये की नाईं स्थितहै । जैसे एकही बीजने वृक्ष, फूल, फल आदिक संज्ञा पाई है सो बीज से भिन्न कुछ नहीं और आत्मा बीजकी नाईं भी नहीं संकल्पसेही नानासंज्ञा कल्पी है और जगत् स्थित हुआ है तौ भी आत्मासे कुछ भिन्न नहीं । जैसे वायु चलती है तौ भी वायु है और ठहरती है तौ भी वायुहै; तैसेही आत्मामें नानात्व कुछ नहीं केवल शुद्ध अद्वैत है । आत्मरूपी समुद्र में नानाप्रकार विश्वरूपी तरंग स्थित हैं । हे रामजी ! आकार भी आत्मा से कुछ भिन्न नहीं; जो आत्मासे भिन्नभासे उसे मिथ्याजानो और मृगतृष्णा के जलकी नाईं जानकर उसकी भावना त्यागो और स्वरूप की भावना करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकत्वप्रतिपादनन्नाम दशाधिकशततमस्सर्गः ११० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! मेरे वचनोंकोधारो और हृदयमें आस्तिक भावनाकरो। जब सर्वत्याग करोगे तब चित्त क्षीण होजावेगा और जब चित्त क्षीण हुआ तब शान्ति होगी। हे रामजी ! काष्ठवत् मौनहोकर हृदय में सर्वका त्यागकरो। बाहर से कर्मोंको करो पर अभिमान से रहित होकर अन्तर्मुखी होरहो। अन्तर्मुखी आत्मामें स्थित होने को कहते हैं। जब आत्मामें स्थितहोगे तब विद्यमान दृश्य भी तुम्हें न भासेगा क्योंकि; तब सर्व आत्माही भासेगा। जो तुम्हारे पास भेरी के शब्दहोंगे तो भी न सुन पड़ेंगे और जो सुगन्धिलोगे तौ भी नहीं ली; निदान जो कुछ क्रिया करोगे सो तुम्हें स्पर्श न करेंगी—आकाश की नाईं सर्व से असंग रहोगे। हे रामजी ! स्वरूप से भिन्न न देखना और आत्मा से भिन्न न फुरना, अन्धे गूंगेकी नाईं और पत्थर की शिलावत् मौन हो रहो तब तुम्हारी चेष्टा यंत्रकी पुतलीवत् खड़ीहोगी। जैसे यंत्र की पुतली तागेकी सत्तासे चेष्टा करती है तैसेही तुम्हारी नीति शक्तिसे प्राणोंकी चेष्टा होगी। स्वाभाविक क्रियामें अभिमान से रहित होकर स्थित होना, जो अभिमान सहित चेष्टा करता है वह मूर्ख और असम्यक्‌दर्शी है और जो सम्यक्‌दर्शी है उसको अनात्म में अभिमान नहीं होता। हे रामजी ! जिसको अनात्माभिमान नहीं और जिसका चित्त दृश्य में लेपायमान नहीं होता वह सारी सृष्टि को संहारकरे अथवा उत्पन्न करे उसको कुछ बन्धन नहीं होता क्योंकि; वह सर्व्व कर्म अभिलाष से रहित होकर करता है। हे रामजी ! समाधिमें स्थितहो और जाग्रत्‌की नाईं सब कर्म करो। तुम में सब कर्म दृष्टि भी आवें तो भी उनमें सुषुप्तकी नाईं कोई फुरना न फुरे। अपने स्वरूप की समाधि भी रहे। समाधि भी तब कहिये कि, कोई दूसराहो जो इसमें स्थितहो व इसका त्याग करे। हे रामजी ! जहां एक शब्द और दो शब्द भी नहीं कहसक्के वह अद्वितीयात्मा परमार्थ सत्ताहै; उसमें चित्तने नानाप्रकार के विकार कल्पे हैं—ज्ञानीको एकरस भासता है। ज्ञानी को ज्ञानीजानताहै। जैसे सर्प के खोजको सर्पही जानताहै; तैसेही ज्ञानी को एकरस आत्माही भासताहै सो ज्ञानीही जानताहै। मूर्खको संकल्पसे नानाप्रकार का जगत् भासताहै इससे संकल्पको त्यागकर अपने प्रकृत आचार में विचरो। जैसे उन्मत्त और बालककी चेष्टा स्वाभाविक होती है कि, अंग हिलते हैं; तैसेही अभिमान से रहित होकर चेष्टा करो। जैसे पत्थर की शिला जड़ होती है तैसेही दृश्य की भावना से ऐसे रहितहो कि, जड़की नाईं कुछ न फुरे। जब ऐसेहोगे तब शान्तपदको प्राप्त होगे। हे रामजी ! चित्तके सम्बन्धसे क्षोभ उत्पन्न होता है। जैसे वसन्तऋतु में फूल उत्पन्न होते हैं तैसेही चित्तरूपी वसन्तऋतु में दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं। जब तुम चित्तको शान्त करोगे तब परमपदको प्राप्त होगे जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल है। इससे तुम असंग होरहो। जब तुम स्थूल से स्थूल होगे तब भी

असंगरहोगे । ऐसे पदको पाकर काष्ठ पत्थर की नाईं मौन होरहो । हे रामजी ! दृश्य पदार्थको त्यागकर जो द्रष्टा जाननेवाला है उसमें स्थितहो । हे रामजी ! इन्द्रियां तो अपने २ विषयको ग्रहण करती हैं उनकी ओर तुम भावना मतकरो कि, यह सुन्दर रूप है और इसकी प्राप्तिहो । भले के प्राप्त होने की भावना मतकरो; इनके जानने वाला जो आत्मा है उसीमें स्थितरहो । जो पुरुष द्रष्टामें स्थित होता है वह गोपदकी नाईं संसारसमुद्रको लांघजाता है । हे रामजी ! जो पदार्थ दृष्टि आते हैं उनमें अपनी अपनी सृष्टि है सो संकल्पमात्रही है और अपने अपने संकल्प में स्थितहै पर सर्वसंकल्प आत्मा के आश्रय हैं । जैसे सब पदार्थ आकाश में स्थित हैं तैसेही सर्व संकल्प की सृष्टि आत्मा के आश्रय है । एकके संकल्पको दूसरा नहीं जानता–सृष्टि अपनी अपनी हैं । जैसे समुद्रमें जितने बुद्बुदे हैं उनको जलसे एकता है और आकार से एकता नहीं, तैसेही स्वरूप से सबकी एकता है; और संकल्पसृष्टि अपनी अपनी है । जो पुरुष ऐसे चिन्तता है कि, मैं उसकी सृष्टिकोजानूं तब जानताहै । हे रामजी ! आत्मा कल्पवृक्षहै; उसमें जैसी कोई भावनाकरताहै तैसीही सिद्धिहोती है । जब ऐसीही भावना करके जीव स्वरूपमें लगताहै कि, सबसृष्टि मुझे भासे तो भावना से भासिआती है । ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता क्योंकि, आत्मा से भिन्न वह कोई पदार्थ नहीं जानता और जानता है कि, स्वरूपसे सबकी एकता है पर संकल्परूप से एकता नहीं होती । जैसे तरंगोंकी एकता नहीं पर जलकी एकता है और जो एक तरंग दूसरे के साथ मिलजाता है तो उससे एकता होती है, तैसेही एक का संकल्प भावना से दूसरे के साथ मिलता है; इससे ज्ञानी जानता है कि, संकल्परूप आकार नहीं मिलते और स्वरूप से सबकी एकता है । जिसकी भावना होती है कि, मैं इसकी सृष्टिको देखूं तो वह उसके संकल्प से अपना संकल्प मिलाकर देखता है तब उसकी सृष्टि जानता है । जैसे दो मणियोंका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है और जब दोनों इकट्ठी एकही ठौर में रखिये तो दोनोंका प्रकाश इकट्ठा होजाता है; तैसेही संकल्प की एकता भावना से होती है । ज्ञानी को प्रथम संकल्पहो कि, मैं उसकी सृष्टि देखूं तो संकल्पसे देखता है और ज्ञानके उपजे से वाञ्छा नहीं रहती । हे रामजी ! इच्छा चित्तका धर्म्म है । जब चित्तही नष्ट होगया तब इच्छा किसकी रहे । जब स्वरूपका प्रमाद होताहै तब चित्त रूपी दैत्य प्रसन्न होता है कि, यह मेरा आहार हुआ और मैं इसको भोजन करूंगा । हे रामजी ! जो पुरुष चित्तकी ओर हुआ है और जिसको स्वरूपकी भावना नहीं हुई सो चित्तरूपी दैत्य उसे जन्मरूपी वनमें लिये फिरता है; उसको भोजन करता रहता है; उसका पुरुषार्थ नाश करता है और आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न नहीं होने देता । जैसे वृक्षको अग्नि लगे तो फिर उसमें फल नहीं लगते, तैसेही पुरुषार्थ

रूपी वृक्षको भोगरूपी अग्नि लगी तो शुद्ध बुद्धिरूपी फल उत्पन्न नहीं होते। हे रामजी! अपना चित्त आत्मामें लगावो और विषयकी ओर जाने न दो। यह चित्त दुष्ट है; जब इसको स्थित करोगे तब परमअमृत से शोभायमान होगे और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से शोभताहै तैसेही ब्रह्मलक्ष्मी से शोभोगे और परम निर्वाण पदको प्राप्त होगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनन्नामैकादशाधिकशततमस्सर्गः १११॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानकी सप्तभूमिका हैं इनसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिस भूमिकामें जिज्ञासी प्राप्त होता है उसका लक्षण क्या है और ये सप्तभूमिका क्या हैं और कैसे प्राप्त होती हैं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये सप्तभूमिका जिसप्रकार प्राप्त होती हैं और जिसप्रकार इनसे ज्ञान प्राप्त होताहै सो सुनो। हे रामजी! जब बालक माता के गर्भ में होता है तब उसको दृढ़ सुषुप्ति जड़ अवस्था होती है-जैसे ज्ञानी को होती है-परन्तु बालक में संस्कार रहता है उससे संस्कारकी सत्यता आगे होती है। जैसे बीजमें अंकुर होता है उससे आगे वृक्ष होता है तैसेही बालक की भावी होती है और ज्ञानीकी भावी नहीं होती। जैसे दग्धबीज में अंकुर नहीं होता तैसेही ज्ञानी की भावी नहीं होती क्योंकि; वह संसारसे सुषुप्ति है और स्वरूप में नहीं। जब बालकको बाहर निकल के कुछ काल व्यतीत होता है तब दृढ़ जड़ता निवृत्त होजाती है और सुषुप्ति रहती है। कुछ काल के उपरान्त सुषुप्ति भी लयहोजाती है और चेतनता होती है। तब वह जानता है कि, 'यह मैंहूं;' "ये मेरे पिता-माताहैं"। तब कुलवाले उसको सिखाते हैं कि, यह मीठाहै; यह कडुआ है; यह तेरी माताहै; यह तेरापिताहै; यह तेराकुलहै; इससे पाप होता है; इससे पुण्य होताहै: इससे स्वर्ग मिलताहै; इससे नरक पाताहै; इसप्रकार यज्ञ होता है; इस प्रकार तप होताहै और इसप्रकार दानकरते हैं। हे रामजी! इसप्रकार कुलके उपदेश और शास्त्र के भयसे वह धर्म में विचरता है और पापका त्यागकरताहै। ऐसा शास्त्र अनुसार विचरनेवाला पुरुष धर्मात्मा कहाता है। वे धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकारके हैं-एक प्रवृत्तिकी ओर है और दूसरा निवृत्तिकी ओर है। जो प्रवृत्ति की ओर है वह पुण्यकर्मों से स्वर्ग के फल भोगता है और मोक्ष को उत्तम नहीं जानता, इससे संसार में जलके तृणवत् भ्रमता है और कभी चिरकाल से इस क्रम से मुक्त होता है। जो निवृत्ति की ओर होता है उसको विषय भोग से वैराग्य उपजताहै और वह कहता है कि, यह संसार मिथ्याहै; मैं इससे तरूं और उस पदको प्राप्तहोऊं जहां क्षय और अतिशय न हो-यह संसार सर्वदा चलरूप और दुःखदायी है। हे रामजी! उस पुरुषको इस क्रम से ज्ञान और विज्ञान उत्पन्न होता है और जो पशुधर्मा मनुष्यहै

उस को ज्ञान प्राप्तहोना कठिनहै–शास्त्रके अर्थ के न जाननेवालोंको पशुधर्मा कहते हैं। वे अपनी इच्छासे विचरकर अशुभ को ग्रहण करते और विचार से रहित होते हैं। मनुष्य भी दो प्रकारके हैं–एक प्रवृत्तिके धारनेवाले और दूसरे निवृत्ति के धारने वाले। प्रवृत्तिमार्ग इसे कहते हैं कि, जिसको शास्त्र शुभकहे उसको ग्रहण करना और जिसे अशुभ कहे उसका त्याग करना और कामना करके फलके निमित्त यज्ञादिक शुभकर्म करने कि, स्वर्ग, धन, पुत्रादिक मुझे प्राप्तहों। ऐसी कामना धारकर जो शुभ कर्म करके इसप्रकार संसारसमुद्र में बहते हैं वे चिरकाल में निवृत्ति की ओर भी आते हैं तब स्वरूप पाते हैं। निवृत्ति यह है कि, जो निष्काम होकर और शुभकर्म करके अन्तःकरण शुद्धकरताहै उसको वैराग्य उपजता है और वह कहता है कि, मुझे कर्मोंसे क्या है और फलोंसे क्या है; मैं किसीप्रकार आत्मपदको प्राप्तहोऊं। वह यही विचारता है कि, मैं संसारसे कब मुक्तहूंगा? यह संसार मिथ्याहै और मुझे भोगसे क्याहै? यह भोग तो सर्प है। हे रामजी! इस प्रकार वह भोगोंकी निन्दाकरताहै; संसार से उपरत होता है; शम, दम आदिक जो ज्ञानके साधन हैं उन में विचरता है; देश, काल और पदार्थको शुभ अशुभ विचारता है; मर्य्यादासे बोलता है; सन्तजनों का संग करता है और सत्शास्त्र और ब्रह्मविद्या को वारंवार विचारता है। इस प्रकार सन्तजनों के सङ्गसे उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है। जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला दिन दिनप्रति बढ़ती है तैसेही उसकी बुद्धि बढ़ती है और विषयों से उपरत होती है तब वह तीर्थ, ठाकुरद्वारों आदि शुभ स्थानों को पूजता है; देह और इन्द्रियों से सन्तोंकी टहल करता है और सर्व से मित्रता रखके दया, सत्य और कोमलता पूर्व्वक विचरता है। वह ऐसे वचन बोलता है कि, जिससे सब कोई प्रसन्नहो और जो यथाशास्त्र हों; इससे भिन्न किसीको नहीं कहता। वह अज्ञानीका संग त्यागता है; स्वर्ग आदिक सुखकी भावना नहीं करता है––केवल आत्मपरायण होता; सन्त और शास्त्रोंकी दृढ़ भावना करता है और उनके अर्थों में सुरत लगाकर और किसी ओर चित्त नहीं लगाता है। जैसे कादर्य दरिद्री सर्वदा धनकी चिन्तना करता है तैसेही वह सदा आत्माकी चिन्तना करताहै। जो पुरुष इतने गुणों संयुक्त है उस को प्रथम भूमिका प्राप्त हुई है। वह पापरूपी सर्पको मोरके समान नाश करता है; सन्तजन, सत्शास्त्र और धर्म्मरूपी मेघको गर्दन ऊंची करके देखता है और प्रसन्न होता है। इसका नाम शुभेच्छा है। उसको फिर दूसरी भूमिका प्राप्त होती है तब जैसे शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला बढ़ती जातीहै तैसेही उसकी बुद्धि बढ़ती जाती है। उसके ये लक्षण हैं; सत्शास्त्रों और ब्रह्म विद्याको विचारके दृढ़ भावना करनी। उस विचार का कवच जो गले में डालता है उससे शस्त्रों का कोई घाव नहीं लगता। इन्द्रियरूपी

चोर के हाथमें इच्छारूपी बरछी है सो विचाररूपी कवच पहिरनेवाले को नहीं लगती। हे रामजी! इन्द्रियरूपी सर्प में तृष्णारूपी विष है उससे मूर्खको मारताहै। विचारवान् पुरुष इन्द्रियों के विषयोंको नाश करडालता है और सर्व ओरसे उदासीन रहता है और दुर्जनों की संगतिका बल करके त्याग करताहै। जैसे गधा तृण को त्यागता है तैसेही मूर्खकी संगति वह त्यागता है। उसमें सर्वइच्छा का भी त्याग होता है परन्तु एक इच्छा रहती है, कि दया सबपर करताहै और सन्तोषवान् रहताहै। उसके निषेध गुण स्वाभाविक जातेरहते हैं और दम्भ, गर्व, मोह, लोभ आदिक स्वाभाविक नष्ट होजाते हैं। जैसे सर्प कंचुकी को त्यागकर शोभायमान होता है तैसेही विचारवान् इन्द्रियों के विषयों को त्याग करके शोभता है। जो उसमें क्रोध भी दृष्टिआता है तो क्षणमात्र होताहै हृदयमें स्थित नहीं होसक्ताहै। वह खाना, पीना, लेना, देना आदि क्रिया विचारपूर्वक करता है और सर्वदा शुद्धमार्ग्ग में विचरताहै; सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों के अर्थ विचारने से बोधको बढ़ाता और तीर्थों के स्नानसे कालव्यतीत करताहै। हे रामजी! यह दूसरी भूमिका है। जब तीसरी भूमिका आती है तब श्रुति जो वेद और स्मृति जो धर्म्मशास्त्र उन के अर्थ हृदय में स्थित होते हैं और जैसे कमलपर भँवरे आन स्थित होते हैं, तैसेही उस पुरुषके हृदयमें शुभगुण स्थितहोते हैं; तब उसे फूलोंकी शय्या सुखदायी नहीं भासती, वन और कन्दरा सुखदायक भासते हैं। निदान उसका वैराग्य दिन २ बढ़ता जाताहै और वह तालाब, बावलियों और नदियों में स्नान करके शुभस्थानों में रहताहै; पत्थरकी शिलापर शयनकरताहै; देहको तपसे क्षीणकरताहै,धारणासे चित्तको किसी ठौरमें नहीं लगाता;आत्मभावना और ध्यान करके भोगों से सर्वदा उपराम होता है। भोगों को अन्तवन्त विचार के कि, यह स्थिर नहीं रहते और देहके अहंकारको उपाधी जानकर वह त्यागताहै, देहको रक्त, मांस, पुरीषादिक से पूर्ण जानकर उसमें अहंकारको त्यागता है और निन्दाकरता है और सूखे तृणकी नाईं तुच्छ जानकर त्यागता है। जैसे विष्ठा संयुक्त तृणको पशुत्यागताहै तैसेही देहके अहंकारको वह त्यागता है और कन्दराओं में विचर के फल फूलों का आहार करताहै, सन्तजनोंकी टहल करके आयुर्बल बिताता है और सदा असंग रहता है। यह तीसरी भूमिका है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षणविचारोनाम द्वादशाधिकशततमस्सर्ग्गः ११२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानका यह साधन है कि, ब्रह्मविद्याको विचार के उसके अर्थको वारंवार भावना करना और पुण्यक्रिया में विचरना; इस से भिन्न ज्ञानका कोई साधन नहीं—इसीसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। जिस पुरुष को ऐसी भावना

होती है उस को यदि नाना प्रकार की सुगन्ध—अगर, चन्दन, चोये आदि और अप्सरा अनिच्छित प्राप्तहों तो उनका निरादर करता है और जो स्त्रीको देखता है तो माता समान जानता है; पराये धनको पत्थर के बट्टे समान देखकर वांछा नहीं करता और सब भूतों को देखकर दयाही करताहै । जैसे आपको सुखसे प्रसन्न और दुःख से अनिष्ट जानता है तैसेही वह और को भी आप जानकर सुखदेता है और दुःख किसी को नहीं देता । इस प्रकार वह पुण्यक्रिया में विचरताहै । सतशास्त्रों के अर्थ का अभ्यास करताहै और सर्वदा असंग रहताहै । असंगतिभी दो प्रकारकी है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! संग असंग का लक्षण क्याहै—इनका भेद समझाकर कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! असंग दो प्रकार का है—एक समान और दूसरा विशेष; उनका लक्षण सुनो । समान असंग यह है कि मैं कुछ नहीं करता । न मैं किसी को देताहूं और न मुझे कोई देताहै । सर्व ईश्वरकी आज्ञाहै, जिसको धन देनेकी इच्छाहोती है उसको धन देताहै और जिससे लेना होताहै उससे लेताहै, अपने आधीन कुछ नहीं । समान असंगवाला जो कुछ दान,तप,यज्ञादि करताहै वह ईश्वरार्पण करताहै और अपना अभिमान कुछ नहीं करता और कहता है कि, सब ईश्वरकी शक्ति से होताहै । इस प्रकार निरभिमान होकर वह धर्म चेष्टा में स्वाभाविक विचरताहै और जो कुछ इन्द्रियों के भोग की सम्पदा है उसको आपदा जानता है, और भोगों को महाआपदारूप मानता है । सम्पदा आपदारूप है; संयोग वियोगरूप है और जितने पदार्थ हैं वे सब सन्निपातरूप हैं—विचारसे नष्ट होजाते हैं इससे सबको वह नाशरूप जानता है । यह संयोग वियोग को दुःखदायी जानता है; परस्त्री को विषकी बेलि समान रससे रहित जानताहै और सर्व पदार्थों को प्रणामी जानकर किसीकी इच्छा नहीं करता सम्पूर्ण विश्वका जो ईश्वरहै उसे जिसको सुखदेनाहै उसको सुखदेताहै और जिसको दुःखदेना है उसको दुःख देताहै; अपने हाथ कुछ नहीं करने करानेवाला ईश्वर है । न मैं करताहूं; न मैं भोक्ताहूं; और न मैं वक्ताहूं—सब ईश्वरकी सत्तासे होताहै । ऐसे निरभिमान होकर वह पुण्यक्रिया करताहै । यह समान असंग है । उसके वचन सुनने से श्रवणको अमृत की प्राप्ति होती है । इस प्रकार सन्तों के मिलने और तीसरी भूमिकाकी प्राप्ति से जिस की बुद्धि बढ़ी है और जो निरभिमानहै उसके उपदेश में अनुभव से तबतक अभ्यास कर जबतक हाथपर आंवलेकी नाईं आत्माका अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्षहो विशेष असंगवाला कहताहै कि; न मैं कुछ करताहूं, न कराताहूं; केवल आकाशरूप आत्माहूं न मुझमें करनाहै,न करानाहै; न कोई और है, न मेराहै;मैं केवल आकाशरूप अद्वैत आत्माहूं। हे रामजी ! वह पुरुष न भीतर,न बाहर, न पदार्थ,न अपदार्थ,न जड़,न चेतन, न आकाश, न पाताल, न देश,न पृथ्वी,न मैं,न मेरेको देखताहै,वह निर्वास,अज, अविनाशी,सर्व शब्द

अर्थोंसे रहित, केवल शून्य आकाशमें स्थित है । चित्तसे रहित चेतनमें जो प्रस्थितहै उस को श्रेष्ठ असंग कहते हैं और उसकी चेष्टा दृष्टिभी आतीहै तौभी उसमें हृदयसे पदार्थोंकी भावना का अभावहै । जैसे जलमें कमल दृष्टिभी आताहै परंतु ऊंचाही रहता है, तैसेही वह क्रियामें विचरता दृष्टि भी आता है परंतु असंग रहता है । उसको कोई कामना नहीं रहती कि, यह हो और यह न हो क्योंकि; उसको संसारका अभाव निश्चय हुआ है और सर्वकलनासे रहितहै । उसको आत्मासे भिन्न किसी पदार्थकी सत्ता नहीं फुरती । यह श्रेष्ठ असंग कहाता है । कार्य करने से उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और न करनेमें कुछ हानि नहीं होती; वह सर्वदा असंगहै और संसारमें कदाचित् नहीं डूबता क्योंकि, वह तो संसारसमुद्र के पार हुआहै और उसने अनात्ममें आत्मभावना त्यागी है; अहंभाव का त्याग किया है; इष्ट अनिष्ट रूप जितने पदार्थ हैं उनके सुख दुःखकी वेदना उसे नहीं फुरती और वह सदा मौनरूप है । उसे पैसा पत्थर के समान है । यह श्रेष्ठ असंग कहाता है । हे रामजी ! एक कमल है जो अज्ञानरूपी कीचड़से निकलकर आत्मरूपी जलमें विराजता है उसका बीज संसारकी अभावना है । उस जलमें तृष्णा रूपी मछलियां हैं जो उस कमल के चहुँओर फिरती हैं और उसके साथ कुकर्म दुःख रूपी कांटे हैं । अज्ञानरूपी रात्रिसे उस कमल का मुख मूंदा रहता है और विचाररूपी सूर्य के उदय हुये से खिलता और शोभताहै । उसमें सुगन्ध सन्तोष है । और वह हृदय के बीच लगता है । उसका फल असंग है । यह तीसरी भूमिकामें उगताहै । हे रामजी ! सन्तकी संगति और सत्शास्त्रों का विचारना सार को प्राप्त करता है और अमृत मोक्षको प्राप्त होताहै । बड़ा कष्टहै कि, ऐसे स्वरूपको विस्मरण करके जीव दुःखी होते हैं । इसका स्वरूप जो दुःखोंका नाश करताहै और जिस में कोई दुःख नहीं आनन्द रूप है सो इन भूमिकाओं के द्वारा प्राप्त होताहै । हे रामजी ! यह तीसरी भूमिका ज्ञान के निकट बनती है और विचारवान् इन भूमिकाओं में स्थित होकर बुद्धिको बढ़ाते हैं । जब इस प्रकार वह बोधको बढ़ाता है तो शास्त्रकी युक्तिसे रचा करता है और क्रम करके इस तीसरी भूमिका को प्राप्त होताहै जहां असंगता प्राप्त होती है । जैसे किसान खेती की रक्षा करके बढ़ाताहै । तैसेही वह विचाररूपी जलसे बुद्धिको बढ़ाताहै तब बुद्धिरूपी वल्ली बढ़ती है । फिर चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है और अहंकार, मोहादिक शत्रुओं से रक्षा करता है । हे रामजी ! इस भूमिकाको प्राप्त होकर ज्ञानवान् होता है सो यह भूमिका क्रम करके प्राप्त होती है अथवा बड़े पुण्यकर्म किये हो उन से आन फुरती है वा अकस्मात् भी आन फुरती है । जैसे नदी के तटपर कोई आ बैठाहो और नदी के वेगसे बीचमें जा पड़े तैसेही जब पहिली भूमिका प्राप्त होती है तब बुद्धिको बढ़ाती है और जब बुद्धिरूपी बेलि बढ़ती है तब ज्ञानरूपी फल लगता है । जब ज्ञान

उपजता है तब उसमें प्रत्यक्ष क्रिया दृष्टि भी आवे तो भी उसका वह अभिमान नहीं करता जैसे शुद्धमणि प्रतिबिम्बको ग्रहणभी करतीहै परन्तु उसमें कोई रंग नहीं चढ़ता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेतृतीयभूमिकाविचारोनाम त्रयोदशाधिकशततमस्सर्गः ११३ ॥

रामजी बोले, हे भगवन् ! आपने भूमिका का वर्णन किया पर उसमें मुझे यह संशय है कि, जो भूमिकासे रहित और प्रकृत के सम्मुख हैं उनको भी कदाचित् ज्ञान उपजेगा अथवा न उपजेगा ? और जो एक, दो वा तीन भूमिका पाकर शरीर छूटे और आत्माका साक्षात्कार न हुआ हो और उसको स्वर्गकी भी कामना नहीं तो वह कौन गति पाताहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो पुरुष विषयी हैं उनको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है; वे वासना करके घटीयंत्रकी नाईं कभी स्वर्ग और कभी पाताल को जाते हैं और दुःख पाते हैं; कदाचित् अकस्मात् काकतालीय न्यायकी नाईं उनको सन्तकेसंग और सत्शास्त्रोंको सुननेकी वासना फुरती है। जैसे मरुस्थलमें बेलि लगना कठिनहै तैसेही जिस पुरुष को आत्माका प्रमाद है और भोगकी भावनाहै उसको ज्ञान प्राप्त होना कठिन है। परन्तु जब अकस्मात् उसे सन्तोंके संगसे वैराग्य उपजता है और उसकी बुद्धि निवृत्तिकी ओर आतीहै तब भूमिकाके द्वारा उसे ज्ञान प्राप्तहोता है और तभी मुक्त होताहै । हे रामजी ! अकस्मात् यही भावना उपजे विना योनियों में भ्रमता है । जिसको एक अथवा दो भूमिका प्राप्त हुई हैं और शरीर छूटगया तो वह और जन्म पाकर ज्ञानको प्राप्त होता है और पिछला संस्कार जाग आता है और दिन दिन बढ़ता जाता है । जैसे बीजसे प्रथम वृक्षका अंकुर होता है, फिर डाल, फूल और फलसे बढ़ता जाता है तैसेही उसको अभ्यास का संस्कार बढ़ता जाता है और ज्ञान प्राप्त होता है । जैसे पहलवान खेलकर रात्रिको सोजाताहै और फिर दिन हुये उठता है तब पहलवानही का अभ्यास आय फुरता है और जैसे कोई मार्ग चलता चलता सोजावे और जागकर चलनेलगे तैसेही वह फिर पूर्व के अभ्यास को लगाता है । हे रामजी ! जिसको यह भावना होती है कि, मुझे विशेषता प्राप्त हो वह जन्म पाता है और ब्रह्मासे चींटी पर्यंत जिसको विशेष होने की कामना है सो जन्म पाता है । ज्ञानी को भोगों की और विशेष प्राप्त होनेकी इच्छा नहीं होती । जिसको भोगकी इच्छा होती है वह भोगसे आपको विशेष जानता है और अनिष्ट की निवृत्ति की इच्छा करताहै ज्ञानी को कोई वासना नहीं होती कि, यह विशेषता मुझे प्राप्त हो इसी से वह फिर जन्म नहीं पाता जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही वासना से रहित ज्ञानी जन्म नहीं पाता । हे रामजी ! जन्मका कारण वासना है । जैसी जैसी वासना होती है तैसी तैसी अवस्थाको जीव प्राप्त होताहै । नानाप्रकारकी वासनाहैं; जब शरीर छूटने

का समय आताहै तब जो वासना दृढ़ होती हैं और जिसका सर्वदा अभ्यास होताहै वही अन्तकालमें दिखाई देती है चाहे वह पाठकी, तपकी, कर्मकी, देवता इत्यादिक की हो सबको मर्दन करके वही उस समय भासती है। हे रामजी! उस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं सो भी नहीं भासते और पांचो इन्द्रियों के विषय विद्यमानहों तौ भी नहीं भासते पर वही पदार्थ भासता है जिसका दृढ़ अभ्यास किया होता है। वासना तो अनेक होती हैं परन्तु जैसी वासना दृढ़ होती है उसी के अनुसार शरीर धारता है। जब देह छूटता है तब मुहूर्त्तपर्यन्त सुषुप्ति की नाईं जड़ता रहती है उस के उपरान्त चेतनता होती है तब वासना के अनुसार शरीर देखता है और जानता है कि, यह मेरा शरीर है; मैं उत्पन्न हुआहूं। कोई ऐसे होते हैं कि, उसीक्षणमें युगका अनुभव करते हैं; कोई ऐसे होते हैं कि, चिरकालपर्यंत जड़ रहते हैं तब उनको चेतनता फुरती है और उसके अनुसार संसारभ्रम देखते हैं और कोई जो संस्कारवान् होते हैं उनको शीघ्रही एक क्षण में चेतनता होती है और वे जानते हैं कि, हम उसठौर मुए्थे और इसठौर जन्मे हैं; यह हमारी माता है, यह पिता है और यह कुलहै। इसप्रकार एक मुहूर्त्त में जागकर वे देखते हैं और बड़े कुलको देखते हैं। इसी प्रकार वे परलोक और यमराज के दूतों को देखते हैं और जानते हैं कि, यह हमें लियेजाते हैं और हमारे पुत्रोंने पिण्डकिये हैं उनमें हमारा शरीरहुआ है और दूत लेचले हैं। तब आगे ये धर्मराज को देखते हैं और उसके निकट जाके खड़े होते हैं और पुण्य पाप दोनों मूर्त्तिधारकर उनके आगे स्थित होते हैं। तब धर्मराज अन्तर्यामी से एक एक का हाल पूछता है कि, इसने क्या कर्म किये हैं? यदि पुण्यवान् होता है तौ स्वर्ग भोग भोगाकर फिर योनि में डालाजाता है और जो पापी होता है तो नरक में डालदेते हैं। निदान सब प्रकार जन्मों को धारता है। सर्पकी योनि में कहता है कि मैं सर्पहूं और बैल, वानर, तीतर, मच्छ, बगला, गर्दभ, बेलि, वृक्ष इत्यादिक योनि पाता है,तो जानता है कि, मैं यहीहूं। अकस्मात् काकताली योगकी नाईं कदाचित् मनुष्य शरीर पाताहै तो माताके गर्भ में जानता है कि, यहां मैंने जन्म लिया है; यह मेरी माता है, मैं पितासे उत्पन्न हुआहूं और यह मेरा कुलहै। फिर बाहर निकलताहै और बालक होताहै तब जानताहै कि, मैं बालकहूं; यौवन अवस्था होती है तब जानताहै कि, मैं जवानहूं और फिर वृद्धहोताहै तब जानताहै कि, मैं वृद्धहूं। इसप्रकार काल बिताकर जब मरता है तो सर्प, तोता, तीतर, वानर, मच्छ, कच्छ, वृक्ष, पशु, पक्षी, देवता इत्यादिक का जन्म धारण करताहै। हे रामजी! संसारमें वह घटीयंत्रकी नाईं फिरता है और कभी ऊर्ध्व और कभी अधको जाता है और इसी प्रकार स्वरूप के प्रमाद से दुःखपाताहै। हे रामजी! इतना विस्तार जो तुमसे कहाहै सो बना कुछ नहीं

केवल अद्वैत आत्माहै पर चित्तके संयोग से इतना भ्रम देखताहै और वासनाद्वारा विमानों को देखताहै और आकाश में जाताहै। जैसे पवन गन्धको लेजाता है तैसेही पुर्यष्टकाको लेजाताहै और शरीर देखताहै। हे रामजी ! आत्मासे भिन्न कुछ नहीं परन्तु चित्तके संयोग से इतने भ्रम देखताहै। इससे चित्तको स्थितकरो तो भ्रम मिटजावेगा और आत्मतत्त्वमात्रही शेष रहेगा। जो शुद्ध और आनन्दरूपहै उसी में स्थितहोरहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्ववासनारूपवर्णनंनाम चतुर्दशाधिकशततमस्सर्गः ११४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह तो प्रवृत्तिवाले का क्रम कहा अब निवृत्तिका क्रम सुनो ! जिसको भूमिका प्राप्त हुई है और आत्मपद नहीं प्राप्त हुआ उसके पाप सब दग्ध होजाते हैं। जब उसका शरीर छूटताहै तब वह वासनाके अनुसार शून्याकारहुआ फिर अपनेसाथ शरीर देखताहै और फिर बड़े परलोक को देखताहै जहां स्वर्ग के सुख भोगताहै। फिर विमानपर चढ़के लोकपालों के पुरों में विचरताहै जहां मन्दमन्द पवन चलता है, सुन्दर वृक्षोंकी सुगंधिहै और पांचों इन्द्रियों के रमणीय विषय हैं। देवताओं में क्रीड़ा करता है और भोगों को भोगकर संसार में उपजताहै और फिर भूमिका क्रमको प्राप्तहोताहै। जैसे मार्ग चलता कोई सोजावे तो जागकर फिर चलताहै तैसेही शरीर पाकर वह फिर भूमिकाके क्रमको प्राप्त होता है और जैसीजैसी भावना दृढ़होती है तैसेही भासता है। यह सब जगत् संकल्पमात्रहै, संकल्पके अनुसारही भासताहै और वासना के अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है, वहां से भोगकर फिर संसार में आनपड़ता है। इसी प्रकार संकल्प से भटकता है और जब आत्मा की ओर आता है तब संसार भ्रम मिटजाता है। जबतक आत्मा की ओर नहीं आता तबतक अपने संकल्प से संसार को देखता है। जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि भासती है देवता दैत्य भूमिलोक स्वर्ग सब संकल्प के रचेहुये हैं। जो कुछ संसार भासता है, ब्रह्मा विष्णु रुद्र से आदिलेकर वह सब मनोमात्र है, मनके संकल्प से उदय हुआ है और असत्‌रूप हैं। जैसे मनोराज, गन्धर्वनगर और स्वप्न सृष्टि भ्रमरूप हैं तैसेही यह जगत् भ्रमरूप है। यह सृष्टि परस्पर अदृष्ट है; कहीं उदय होती भासती है और कहीं लय होजाती है। जैसे मूर्ख और देश को जाताहै तैसेही देहको त्यागकर जीव परलोक जाताहै पर स्वरूपमें आना, जाना, अहं, त्वं कल्पना कोई नहीं; केवल सत्तामात्र अपने आपमें स्थितहै और जगत् भी वही है। हे रामजी ! यह विश्व आत्मस्वरूप है। जैसे मणिका चमत्कार होता है तैसेही विश्व आत्माका चमत्कार है और जो कुछ तुम को भासता है सो आत्माही है—आत्मा विना आभास नहीं होता। जैसे ईखमें मधुरता और मिरचों में तीक्ष्णता होती है तैसेही आत्मामें विश्व है। जो कुछ देखते, सुनते, स्पर्श

करो। और सुगन्धलो उसे सब आत्माहीजानो अथवा जो इनके जाननेवाला अनुभव रूप है उसमें स्थितहो और इन्द्रियां और विषयको त्यागकर अनुभवरूप में स्थित हो। हे रामजी! यह विश्व संवित्‌रूप है और संवित्‌ही विश्वरूप है। जब संवित् बहिर्मुख होकर रस लेती है तब जाग्रत् को देखती है; जब अन्तर्मुख होकर रस लेती है तब स्वप्न होता है और जब शान्त होजाती है तब सुषुप्ति होती है संसार को सत्य जानकर जब रस लेती है तब जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाहोती है और जब संवित् से रसकी सत्यता जातीरहती है तब तुरीयपद होताहै। यह पदार्थ है, यह नहीं; जब यह नष्टहो तब तुरीयपद है। हे रामजी! यह विश्व फुरनेमात्र है; जब फुरना नष्टहो तब विश्व देखा नहीं जाता। जैसे स्वप्न के देश, काल, पदार्थ जागेसे मिथ्याहोते हैं तैसेही यह जाग्रत् जगत्‌भी मिथ्याहै। जीव जीव प्रति जो अपनी अपनी सृष्टिहोती है उसमें आपभी कुछ बनजाता है इससे दुःखी होता है। जब इस अहंकार को त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थितहो तब विश्व कहीं नहीं है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनंनामपंचदशाधिकशततमस्सर्गः ११५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस सृष्टिका स्वरूप संकल्पमात्र है और संकल्प भी आकाशरूपहै। आकाश और स्वर्ग में कुछ भेद नहीं; जैसे पवन और स्पन्दमें भेद नहीं। सृष्टि में अनेक पदार्थ हैं परन्तु परस्पर नहीं रोकती और वास्तव में विश्व भी आत्मा का चमत्कार है और आत्मरूपहै। जो आत्मरूपहै तो राग और द्वेष किसमें कीजिये? चेतन धातुमें कोटिब्रह्मांड स्थितहैं और यह आश्चर्य है कि, आत्मासे कुछ नहीं हुआ। भिन्न भिन्न संवेदनदृष्टि आती है पर नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं। हे रामजी! जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है। एक सृष्टि ऐसी है कि, उसका संकल्प एक दृष्टि आताहै परन्तु सृष्टि अपनी अपनी है और कई ऐसी हैं कि, भिन्न भिन्न हैं परन्तु समानता करके एकही दृष्टि आती हैं। जैसे जलकी बूंदें इकट्ठी होती हैं और धूलिके कण भिन्न भिन्न होते हैं परन्तु एकही धूलि भासती है। जैसे नदी में नदी पड़ती है तो एकही जल होजाता है तैसेही समान अधिकरण करके सब संकल्प एकही भासते हैं; एक एकके साथ मिलते हैं और नहीं भी मिलते। जैसे क्षीर समुद्र में घृत डालिये तो नहीं मिलता तैसेही एक संकल्प ऐसेहैं कि, और से नहीं मिलते—जैसे सूर्य्य, दीपक और मणि का प्रकाश भिन्न भिन्न दृष्टि आताहै पर एकसे होते हैं तैसेही कई सृष्टि एकही भासती हैं और भिन्न भिन्न होती हैं और कई इकट्ठी होती हैं और भिन्न भिन्न दृष्टि आती हैं हे रामजी! इतनी सृष्टि जो मैंने तुमसे कही हैं सो सब अधिष्ठानमें फुरने से कई कोटि उत्पन्न होती हैं और कई कोटि लीन होजाती हैं। जैसे जलमें तरंग और बुद्बुदे उपज

कर लीनहोजाते हैं तैसेही सृष्टि उत्पन्न और लीनहोती है पर अधिष्ठान ज्योंका त्यों है क्योंकि; उससे कुछ भिन्न नहीं । ब्रह्म, आत्माआदिक जो सर्व हैं सोभी फुरने में हुये हैं । जबतक शब्द अर्थकी भावना है तबतक भासते हैं और जब भावना निवृत्त हुई तब शब्द अर्थ कोई न भासेगा केवल शुद्ध चेतनमात्रही शेष रहेगा और संसारका भाव किसी ठौर न होगा । जैसे पवन जबतक चलताहै तबतक जानाजाता है कि, पवनहै और गन्धभी पवनकरके जानीजाती है कि, सुगन्ध आई अथवा दुर्गन्धआई और जब पवन नहीं चलता तब नहींभासता और गन्धभी नहीं भासती; तैसेही जब फुरना निवृत्त हुआ तब संसार और संसारका अर्थ दोनों नहींभासते । फुरने में जीवजीवप्रति ज्यों ज्यों अपनी अपनी सृष्टिहै उस सृष्टि में सत्तासमान ब्रह्म स्थित है और सर्वका अपना आपहै–द्वैतभावको कदाचित् नहीं प्राप्त हुआ । हे रामजी ! इससे ऐसे जानो कि, आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि सर्व पदार्थ आत्माही हैं अथवा ऐसे जानो कि, सर्व मिथ्याहैं और इनका साक्षीभूत सत्य ब्रह्मही अपने आप में स्थित है उस से कुछ भिन्न नहीं और उसी ब्रह्म में अंशसे अनेक सुमेरु और मन्दराचल आदिक स्थितहैं । अंशांशी भाव भी आत्मा में स्थूलता के निमित्त कहे हैं वास्तव नहीं–जनावने निमित्त कहे हैं । आत्मा एकरस है । हे रामजी ! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्मसत्ता विनाहो । जिसको सत्यजानतेहो सोभी आत्मा है और जिसको असत्य जानतेहो वहभी आत्मा है; आत्मा में जैसे सत्यका फुरनाहै तैसेही असत्यका फुरना है--फुरना दोनों का तुल्यहै । जैसे स्वप्ने में एक सत्य जानताहै और दूसरा असत्य जानता है तैसेही जो इन्द्रियों के विषय होते हैं उनको सत्य जानताहै और आकाश के फूल और शशेके शृंग को असत्य कहताहै सो सर्व अनुभवसे फुरे हैं इससे अनुभवरूपहैं । ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो आत्मामें असत् नहीं; जो कुछ भासते हैं सो सर्व फुरने में हुये हैं सत्य क्या और असत्य क्या; सब मिथ्या और स्वप्ने के सत् और असत्की नाईं हैं । जो अनुभव करके सिद्ध है सो सब सत्य है और अनुभवसे भिन्न सत्य है । हे रामजी ! गुणातीत परमात्म स्वरूप में स्थितहो । हे रामजी ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीनोंकाल में ज्ञानवान् पुरुष समहै और दशों दिशा, आकाश, जल, अग्नि आदिक पदार्थ उसको सर्व आत्माही दृष्टिआता है–आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता । सूर्य, चन्द्रमा, तारे सब आत्मा हैं यह विश्व आकाशरूपहै और शुद्ध निर्मल हैं; आकाश में आकाश स्थित है, कुछ भिन्न नहीं । जो तुम्हें भिन्न भासे उन्हें मिथ्याजानो वे भ्रम करके सिद्धहुये हैं; कोई सत् नहीं । पर परमार्थ से देखो तो सर्व आत्मा है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्वाकाशैकताप्रतिपादनं नामषोडशाधिकशततमस्सर्गः ११६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व स्वप्ने के समान है। जैसे स्वप्नेकी सेना नानाप्रकारकी दिखती है और शस्त्र चलते भासते हैं पर आत्मामें इनका रूप देखना और मानना और शब्द अर्थ कोई नहीं; वह जगत् से रहित है और जगत्रूप भान होताहै। अहं, त्वं जो कुछ भासताहै सो सब स्वप्नवत् है और भ्रमसे सिद्धहुआ है। जो सर्वका अधिष्ठान हैं वह सत्यहै और सब उसी में कल्पित हैं। जो अनुभवसे देखिये तो सर्व आत्मस्वरूप हैं और भिन्न देखिये तो कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने के देश, काल, पदार्थ सब अर्थाकार भी भासते तौभी मिथ्याहैं तैसेही यह विश्व भ्रम करके फुरता है। उनकी अपेक्षासे वह और तूहै और उसकी अपेक्षा से वह अहं है वास्तवमें दोनों नहीं—जो है सो आत्माही है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, त्वम् आदिक अहंपर्यन्त और अहम् आदिक त्वंपर्यन्त सर्व स्वप्नसेनाकी नाईं मिथ्या हैं और अनुभवसे देखिये तो आत्मरूप हैं तो हम स्वप्नसेना में हैं अथवा हमारा अहम्आत्मा है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनात्म देहादिक में यह अहंभावना करनी कि, मैंहूं तो स्वप्न सेनाके तुल्यहै और अधिष्ठान चिन्मात्र दृश्य और अहंकार से रहित अहंभावना करनी आत्मरूपहै। हे रामजी! तुम आत्मरूपहो। यह विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं; जो अधिष्ठानरूप से देखिये तो आत्मरूप है और जो अधिष्ठान से रहित देखिये तो मिथ्याहै। वह अधिष्ठान शुद्ध, आनन्दरूप, चित्तसे रहित चिन्मात्र परब्रह्म है उसमें अज्ञानसे दृश्य दीखताहै। जैसे असम्यक् दृष्टिसे सीपी में रूपाभासताहै तैसेही आत्मा में अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं। हे रामजी! दृश्य अविचार से सिद्धहै और विचार किये से कुछ वस्तु नहीं होती पर जिसके आश्रय कल्पित है सो अधिष्ठान सत्यहै। जैसे सीपी के ज्ञान से रूपेकी बुद्धि जाती रहती है तैसेही आत्मविचार से विश्वबुद्धि जाती रहती है। जैसे समुद्रमें पवनसे चक्र तरंग फुरते और प्रत्यक्ष भासते हैं पर विचार किये से चक्रसे भी जलबुद्धि होती है तैसेही आत्मरूपी समुद्रमें मन के फुरने से विश्व रूपी चक्र उठते हैं और विचार कियेसे तुमको मन के फुरने में भी आत्मरूप भासेगा, विश्वरूपी चक्र न भासेंगे और भ्रम निवृत्त होजावेगा। जो वस्तु फुरने में उपजीहै सो अफुर करके निवृत्त होजाती है। यह विश्व अज्ञानसे उपजाहै और ज्ञानसे लीन होजायगा। इससे विश्वको भ्रममात्र जानो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, ब्रह्मा, रुद्र आदि और उत्पत्ति, संहार करने पर्यंत सर्व विश्व भ्रममात्रहै; इस जानने से क्या सिद्ध होताहै, यह तो प्रत्यक्ष दुःखदायक भासताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुम देखतेहो सो सम्यक् दृष्टि से सब आत्मरूपहै—कुछ भिन्न नहीं—और असम्यक् दृष्टि करके विश्वहै तो दृष्टिका भेदहै—सम्यक् असम्यक् देखनेका अधिष्ठान ज्योंका त्यों है। जैसे एक अन्धकारकी उपाधि से रस्सी सर्पहो भासती है और भयदायक होतीहै और जो

प्रकाश से देखिये तो रस्सीही भासती है; तैसेही जिसने आत्मा को जाना है उस को दृश्य भी आत्मारूपहै। अज्ञानीको विश्व भासता है और दुःखदायी होताहै। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वेताल कल्पकर भयवान् होता है और अपने न जानने से दुःख पाताहै जो जाने तो भय किस निमित्त पावै? हे रामजी! जीव अपनेही संकल्प से आप बन्धायमान होता है। जैसे कसवारी कीट अपने बैठने का स्थान बनाकर आपही फँसमरती है, तैसेही अनात्मा में अहं प्रतीत करके जीव आपही दुःख पाताहै। हे रामजी! जीव आपही संसारी होता है और आपही ब्रह्म होता है। जब दृश्यकी ओर फुरताहै तब संसारी होता और जब स्वरूपकी ओर आताहै तब ब्रह्म आत्मा होताहै। इससे जो तुम्हारी इच्छाहो सोकरो; जो संसारी होनेकी इच्छाहो तो संसारीहो औरजो ब्रह्म होनेकी इच्छाहो तो ब्रह्महोजावो। मुझसे पूछो तो दृश्यअहंकारको त्यागकर आत्मा में स्थित होरहो—विश्व भ्रममात्रहै, कुछ वास्तव नहीं। यही पुरुषार्थ है कि,संकल्पसेसंकल्पको काटो। जब बाहर से अन्तर्मुख होगे तब ब्रह्मही भासेगा और दृश्यकी कल्पना मिटजावेगी क्योंकि; आगे भी नहीं था। हे रामजी! जो सत्वस्तु आत्माहै उसका अनेक यत्नोंसे नाश नहीं होता और जो असत्य अनात्मा है उसके निमित्त यत्न कीजिये तो सत् नहीं होता। जो सत्य वस्तु है उसका कदाचित् अभाव नहीं और जो असत् है उसका भाव नहीं होता। असत् वस्तु तब तक भासती है जब तक उसको भले प्रकार नहीं जाना और जब विचारसे देखिये तब नाश होजाती है। अविद्याके पदार्थ विद्यासे नष्ट होजाते हैं—जैसे स्वप्ने का सुमेरु पर्वत सत्यहो तो जाग्रत् मेंभी भासे-इस से है नहीं। यह संसार जो तुमको भासताहै सो स्वरूप के ज्ञानसे नष्टहोजावेगा। हम से पूछो तो हमको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता, सर्व आत्माही है; यहभी नहीं कि, यह जीव अज्ञानीहै किसीप्रकार मोक्ष होवे। न हमको ज्ञानसे प्रयोजन है, न मोक्षहोने से प्रयोजन है क्योंकि; हमको सर्व आत्माही भासता है। हे रामजी! जब तक चेतन है तब तक मरता और जन्मभी पाताहै; जब जड़ होता है तब शांतिको प्राप्तहोकर मुक्त होता है। चेतन दृश्य की ओर फुरने को कहते हैं, इसीसे जन्म मरण के बंधन में आताहै। जब दृश्य के फुरनेसे जड़ होजावे तब मुक्तहो। इसका होनाही दुःखहै और न होनाही मुक्ति है। अहंकार का होना बंधन है, और अहंकार का न होना मुक्तिहै। इससे पुरुष प्रयत्न यही है कि,अहंकार त्यागकरो और चेतन ब्रह्मघन अपने आप में स्थित हो। जिसको संसारकी सत् भावना है उसको संसारही है, ब्रह्म नहीं और जिसको ब्रह्म भावना हुई है उसको ब्रह्मही भासता है। हे रामजी! जो पाताल में जावे अथवा सम्पूर्ण पृथ्वी, दशोंदिशा, आकाश, देवताओं के स्थान में फिरे तौ भी सुख न पावेगा और आत्मा का दर्शन न होगा क्योंकि; अनात्मा में अहंकार

किये से सुख नहीं। जब आत्मदर्शी होकर देखोगे तो सर्व आत्माही भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्वविजयोनाम सप्तदशाधिकशततमस्सर्ग्गः ११७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार संकल्पमात्र है और तुच्छहै। पर्वत, नदियां, देश और काल सर्व भ्रमसे सिद्धहैं। जैसे स्वप्ने में पर्वत, नदियां, देश, काल, निद्रादोष से भासते हैं; तैसेही अज्ञाननिद्रा से यह संसार भासताहै। हे रामजी! जागकर देखो तो संसार है नहीं, इसका तरना महासुगमहै और सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं सो कमल की नाईं कोमलहैं। जैसे कमलके मुँदनेमें कुछ यत्न नहीं तैसेही यह कोमल निवृत्त होते हैं। आकारभूत प्राणियों की स्थूलदृष्टि हैं और आकारको देखरहे हैं। जैसे पवनका चलना जाना जाताहै और जब चलनेसे रहित होताहै तब मूर्ख नहीं जानता तैसेही भूतप्राणी आकार को जानते हैं और इसमें जो निराकार स्थितहै उसको नहीं जानते। जैसे पवन चलताहै तौभी पवनहै और ठहरता है तौभी पवनहै तैसेहीविश्व फुरताहै सोभी आत्माहै और अफुरने मेंभी वही है। इससे विश्व भी आत्मरूपहै, कुछ भिन्न नहीं; जो सम्यक्दर्शी हैं उनको फुरने न फुरनेमें आत्माही भासताहै। जैसे स्पन्द निःस्पन्दरूप पवनही है, तैसेही ज्ञानीको सर्वदा एकरसहै और अज्ञानीको द्वैत भासता है। जैसे वृक्षमें बालक पिशाचबुद्धि करता है तैसेही आत्मामें जगद्बुद्धि अज्ञानी करताहै और जैसे नेत्रदोषसे आकाश में तरुवरे भासतेहैं तैसेही मनके फुरने से जगत् भासता है। हे रामजी! जैसे वायुकारूप कदाचित् नहीं तैसेही जगत्के रूपका अत्यन्त अभावहै और जैसे मरुस्थलमें जलका अभावहै तैसेही आत्मामें जगत्का अभावहै। हे रामजी! सुमेरुपर्वत, आकाश, पाताल, देवता, यक्ष, राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेकब्रह्मांड इकट्ठे करके विचाररूपी कांटेमें रक्खे और पीछे आधीरत्ती डाली तौभी पूरे नहीं होते क्योंकि; हैं नहीं; अविचारसिद्धहैं। स्वप्नेके पर्वत जागेपर चावल प्रमाणभी नहींरहते क्योंकि, हैंनहीं; भ्रममात्र है। हे रामजी! इससंसारकी भावना मूर्ख करते हैं। ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुषहैं उनको ऐसे जानो कि, जैसे लुहारकी फुकनीसे पवन निकलताहै तैसेही उन पुरुषोंके श्वास वृथा आते जातेहैं। जैसे आकाशमें अँधेरी व्यर्थ उठतीहै तैसेही उन पुरुषोंका जीना और सर्वचेष्टा व्यर्थहै और वे आत्मघातीहैं अर्थात् अपनाआप नाशकरते हैं और उनकी चेष्टा दुःखके निमित्तहैं। हे रामजी! यह अपनेआधीनहै। जो दृश्यकीओर होता है तो संसार होता है और जो अन्तर्मुख होता है तो सर्व आत्माही होता है। यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये; न असत् कहिये; भ्रमसे हुआ है ये जीव भूत, भविष्य और वर्त्तमानकालमें बन्धहोते हैं और अग्नि शीतलहोती है, आकाश पातालमें, पाताल आकाश में, तारे पृथ्वीपर, पृथ्वी आकाश के ऊपरभी होतीहै; (बादल

विना मेघ वर्षाकरताहै और आकाशमें हल फिरतेहैं ऐसे कौतुक मैं देखताहूं । हे रामजी ! इसमें कुछ आश्चर्यनहीं; मनकरके सबकुछ होताहै । जैसे मनोराजकिया तैसाहीआगे स्थित होताहै और सिद्धि होती है । पर्वत पुरमें भिक्षुकके समान भिक्षा मांगते फिरते हैं; ब्रह्माण्ड उड़ते फिरते हैं; बालूसे तेल निकलताहै और मृतक युद्धकरते हैं, मृग गातेहैं और वन नृत्य करते हैं । हे रामजी ! मनोराज करके सब कुछ बनताहै । चन्द्रमा की किरणों से पर्वत भस्म होतेहैं, इसमें क्या आश्चर्य है ? ऐसेही यह संसार भी मनोराज है और शीघ्रसंवेग है इससे इसको जीव सत् मानताहै और आगे जो बालूसे तैलादिक कहेहैं उनको सत् नहीं जानता क्योंकि; उसमें मृदुसंवेगहै पर दोनों तुल्यहैं । हे रामजी ! जिनको सत् और असत् कहतेहो सो आत्मा में दोनों नहीं । ये जो तुम को सत् पदार्थ भासते हैं तो अग्नि आदिक शीतल भी सत् हैं और जो ये मिथ्या भासतेहैं तो वे भी मिथ्या हैं, केवल तीव्र और मृदुसंवेग का भेद है । जब तीव्रसंवेग दूर होताहै तब सब मिथ्या मानतेहैं । जैसे स्वप्ने से जागाहुआ स्वप्नेको मिथ्या कहता है और जाग्रत् को सत्यकहता है पर दोनों मनोराजहैं । हे रामजी ! जितने आकार दृष्टिआते हैं उन सबको मिथ्याजानो; न तुम हो, न मैंहूं और न यह जगत् है । परमार्थ सत्ता ज्यों की त्यों है, उसमें अहं त्वं का उत्थान कोई नहीं; वह केवल शांत रूप; आकाशरूप और निराकाशरूप है जिसमें कुछ द्वैत नहीं—केवल अपने आपमें स्थित है जैसे बालक मृत्तिका के हाथी, घोड़े और मनुष्य बनाकर उनके नाम कल्पता है कि, यह राजाहै; यह हाथी है; यह घोड़ाहै सो मृत्तिकासे भिन्न नहीं पर बालकके मनमें उन के नाम भिन्न भिन्न दृढ़ होते हैं; तैसेही मनरूपी बालक नानाप्रकारकी संज्ञा कल्पता है पर आत्मा से कुछ भिन्न नहीं इस से हे रामजी ! तुम किसका भय करतेहो ? निर्भय हो रहो । तुम्हारा स्वरूप शुद्ध, निर्भय और अविद्या के कारण कार्य से रहित है उसमें स्थित रहो । यह संसार तुम्हारे फुरने में हुआ है; आत्मा न सत्य है, न असत्य है, न जड़ है, न चेतन है, न प्रकाश है, न तम है, न शून्यहै, न अशून्य है । शास्त्र ने जो विभाग कहेहैं कि, यह जड़ है, यह चेतन है सो इस जीव के जगाने के निमित्त कहे हैं । आत्मामें कोई वास्तव संज्ञा नहीं—केवल आत्मत्वमात्रहै । इससे दृश्यकी कलना त्यागकर आत्मा में स्थित हो । ब्रह्मासे आदि स्थावरपर्यन्त सर्वकलनामात्रहैं; इसमें क्याआस्था करनी है ? संसार के भाव दोनों तुल्यहैं । फुरना जैसा भावका है, तैसाही अभावकाहै—स्वरूप में दोनों की तुल्यताहै और व्यवहार कालमें जैसाहै तैसाही है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्वप्रमाणवर्णनंनामा
ष्टादशाधिकशततमस्सर्गः ११८ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! भूमिका प्रसंग यहां चलाथा; उसमें जो सार आपने

कहा वह मैं समझगया; अब भूमिकाओं का विस्तार कहिये । योगी का शरीर जब छूटता है और स्वर्ग के भोगोंको भोगकर गिरता है तो फिर उसकी क्या अवस्था होती है सो भी कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिसयोगीको भोगकी वाञ्छा होती है वह स्वर्ग में जाकर भोग भोगता है परयदि उसको और भी भोगने की इच्छा होती है तो वह मध्यमण्डल मनुष्य लोकमें पवित्र स्थान और धनवानों के गृहमें जन्मलेता है और जो उसको भोगकी वाञ्छा और नहीं होती तो ज्ञानवानों के गृह में जन्मलेता है । थोड़े काल के उपरांत उसका पिछला संस्कार आफुरता है वह स्मरण करके आत्माकी ओर होताजाताहै । जैसे कोई पुरुष लिखताहुआ सोजाताहै पर जब जागताहै तब उस लिखे को देखकर फिर आगे लिखता है तैसेही वह योगी पूर्व के अभ्यास को पाकर दिन दिन बढ़ाता जाता है । वह अज्ञान का संग नहीं करता क्योंकि; वह भोगों के सम्मुख है और आत्ममार्ग से बहिर्मुख है; जो चुग़ुली करनेवाले हैं उनका संग नहीं करता; उसके सर्व अवगुण त्यागजाते हैं और दम्भ, गर्व, राग, द्वेष, भोगकी तृष्णा आदि स्वाभाविक छूटजाते हैं । वह शान्तिको प्राप्तहोता है और उसको कोमलता, दया आदि शुभगुण स्वाभाविक प्राप्त होते हैं । हे रामजी ! इस निश्चय को पाकर वह वर्ण आश्रम के धर्म यथाशास्त्र करताहुआ संसारसमुद्र के पारके निकट प्राप्त होताहै परपार नहीं होता यह भेदहै सो तीसरी भूमिका है–फिर मोहको नहीं प्राप्त होता । जैसे चन्द्रमाकी किरणें कदाचित् तापको नहीं प्राप्त होतीं तैसेही तीसरी भूमिकावाला संसार रूपी गढ़े में नहीं गिरता । हे रामजी ! यह सत भूमिका ब्रह्मरूपहै पर इतनाही भेद है कि तीन भूमिका जाग्रत् अवस्था है, चतुर्थ स्वप्नहै, पंचम सुषुप्तिहै, षष्ठ तुरीय है और सप्तम तुरीयातीत है । हे रामजी ! प्रथम तीन भूमिकाओं में संसारकी सत्यता भासती है इससे जाग्रत् कही है और पिछलीचारों में संसारका अभावहै इस से जाग्रत् से विलक्षण है । जाग्रत् में घट, पट आदिक सत् भासते हैं कि, घट घटही है और पट पटही है अन्यथा नहीं, अपनाही अपना कार्य सिद्ध करते हैं, इससे अपने काल में ज्यों के त्यों हैं । इसी प्रकार सर्व पदार्थ हैं । तीसरी भूमिकावाला स्थावर––जंगमको जानता है और नाम और रूप से ग्रहण करता है पर हृदयमें राग द्वेष नहीं धारता क्योंकि; विचार करके तुच्छ जानेहै पर इस से संसार का अत्यन्त अभाव नहींजाना और ब्रह्मस्वरूप भी नहीं जानता क्योंकि; उसके स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ । जब स्वरूप को जाने तब संसारका अत्यन्त अभाव होजावे । इन तीनों भूमिकाओं से संसार की तुच्छता होती है नष्टता नहीं होती । इनको पाकर जब शरीर छूटता है तब और जन्म में उसको ज्ञान प्राप्त होताहै और दिनदिन में ज्ञानपरायण होताहै । जब दृढ़बुद्धि होती है तब ज्ञान उपजताहै । जैसे बीजसे प्रथम अंकुर होताहै और फिर डाल

फल, फल निकलतेहैं तैसेही प्रथम भूमिका ज्ञानकाबीजहै, दूसरी अंकुरहै; तीसरी डाल हैं और चतुर्थसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है सोही फलहै । प्रथम तीन भूमिकाओंवाला धर्मात्मा होताहै और पुरुषोंमें श्रेष्ठहै । उसका लक्षण यहहै कि, वह निरहंकार, असंगी और धीरहोताहै । उसकी बुद्धिसे विषयोंकी तृष्णा निवृत्त होजाती है और वह आत्मपदकी इच्छा रखता है । यह पुरुषश्रेष्ठ कहाता है, प्राकृत आचार में यथाशास्त्र विचरता है और शास्त्रमार्ग को कदाचित् नहीं छोड़ता जो शास्त्रमार्गको मर्य्यादा के साथ अपने प्राकृत आचार में विचरताहै सो पुरुषश्रेष्ठहै । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! पीछे आपने कहा है कि, जब मनुष्य शरीर छोड़ता है तब एक मुहूर्त्त में उसको युग व्यतीत होता है और जन्म से आदि मरणपर्यंत जैसी किसीको भावना होती है तैसा आगे भासताहै सो एक मुहूर्त्तमें युग कैसे भासताहै यह कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जगत् जो तीनों कालमें संयुक्त भासता है वह ब्रह्मस्वरूपही है भिन्न कुछ नहीं—समानही है । जैसे इक्षुमें मधुरता है तैसेही ब्रह्ममें जगत् है और जैसे तिलों में तेलहै और मिरचोंमें तीक्ष्णताहै तैसेही आत्मामें जगत्है । जैसे तिलों में तेलहोताहै तैसेही ब्रह्ममें जगतहै । कहीं सत, कहीं असत; कहीं जड़, कहीं चेतन; कहीं शुभ, कहीं अशुभ; कहीं नरक; कहीं मृतक, कहीं जीवित; ब्रह्मासे काष्ठपर्यंत भाव अभावरूप होताहै । वह सत् असत्से विलक्षणहै । आत्मसत्तासे सर्व सत्यहै और भिन्न देखिये तो असत्य है । हे रामजी ! जिनको सत्य असत्य जानतेहो कि, पृथ्वीआदिक पदार्थ सत्य और आकाशके फूलादिक असत्य हैं सो दोनों तुल्य हैं । जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानिये तो आकाशके फूल भी सत् मानिये । जैसे स्वप्ने में कई पदार्थ सत् और असत् भासते हैं तैसेही जाग्रत्में भासते हैं पर फुरना दोनोंका समान है । जैसे सत्य पदार्थोंका फुरना हुआहै तैसाही असत्का भी हुआहै; फुरने से रहित सत् असत् दोनों का अभाव होजाताहै । इससे यह विश्वभ्रम से सिद्ध हुआ है । जैसे जलमें पवन से चक्र उठते हैं तैसेही आत्मामें फुरने से संसार भासता है; इसकी भावना त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो । तुमने जो प्रश्न किया कि, एक मुहूर्त्त में युग कैसे भासता है उसका उत्तर सुनो । जैसे किसी पुरुषको स्वप्न आता है तो एकक्षण में बड़ाकाल बीता भासता है और और का और भासता है सो आश्चर्य तो कुछ नहीं; मोहसे सब कुछ उत्पन्न होताहै और भ्रम से दृष्टि आताहै । हे रामजी ! जैसे पुरुष सोया है तो एक आपही होता है पर उसमें नानाप्रकार का जगत् भ्रम से भासता है तैसेही स्वरूपके प्रमाद से जीव कई भ्रम देखता है । स्वरूप के जाने विना भ्रम का अन्त नहीं होता इससे तुम और प्रश्न किस निमित्त करते हो ? एक चित्तको स्थिर करके देखो तो न कोई संसार भासेगा; न कोई जन्म—मरण होंगे; न कोई बन्धहै; न मोक्ष है केवल आत्माही भासे-

गा। जब संकल्प फुरता है तब अविद्या से आपको बन्ध जानता है और संकल्प से रहित मुक्त जानता है और विद्यासे मुक्त जानता है पर आत्मस्वरूप ज्योंकात्यों है उसे न बन्ध है, न मुक्त है, न विद्या और न अविद्या है—केवल शांतरूप है। इससे सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वओरसे ब्रह्महीं है दूसरा कुछ नहीं। हे रामजी! जब स्वरूप की भावना होती है तब संसारकी भावना जाती रहती है—ये सर्व शब्द कलनामें हैं यह पदार्थ है, यह नहीं है आत्मामें यह कोई नहीं। जैसे पवन चलने और ठहरने में एकहीहै तैसेही विश्व चित्तका चमत्कार है। ब्रह्मासे चींटीपर्य्यन्त ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है और आत्माही के आश्रय सर्वशब्द फुरते हैं पर आत्मा फुरने और न फुरनेमें सम है क्योंकि; दूसरा कोई नहीं। हे रामजी! जो ब्रह्मसत्ताहीहै तो आकाश क्याहै; पृथ्वी क्याहै; मैं क्याहूं; यह जगत् क्याहै; ये प्रश्न बनतेही नहीं। एकमनकोस्थिर करकेदेखो कि,ब्रह्मासे चींटीपर्यंत कुछभी पदार्थ भासताहै; जो भासे तो प्रश्न कीजिये। इससे जैसे भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही जगत् भी भ्रमसे भासताहै। रूप अर्थात् दृश्य; अवलोक अर्थात् इन्द्रियां; मनस्कार अर्थात् मनकी स्फूर्त्ति, ये शब्द कलना में फुरे हैं सो सब मिथ्याहैं—आत्मामें ये कोई नहीं। हे रामजी! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं सो भावना में स्थित हुये हैं। जैसी भावना करता है तैसेही पदार्थ सिद्ध होते और भासते हैं। जब संसार की भावना उठजावे तब कोई पदार्थ न भासे। हे रामजी! सुषुप्तिमेंही जब इसका अभाव होजाताहै तो तुरीया में कैसे भानहो। जब जीवस्वरूपसे गिरताहै तब उसको संसार भासताहै और संसारमें वासना और प्रमाद से घटी यंत्रकीनाईं फिरता है। स्वरूप से उतरकर अनात्म में इस अभिमान करने को प्रमाद कहते हैं कि, मैंहूं। यही अज्ञान है जिससे दुःखपाताहै; जब अज्ञाननष्टहो तब संसारके शब्द अर्थका अभावहोजावे। अहंकार से संसार होताहै; संसारका बीज अहंकारही है। अहंकार अनात्मामें आत्म अभिमान करने को कहते हैं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा अहंकारके उत्थानसे रहित केवल शांतरूपहै और विश्वभी वही रूप है। इसकी भावनामें दुःखहै। यह संवित्शक्ति आत्माके आश्रय फुरती है। जैसे तेलकी बूंदी जलमें डालिये तो चक्रकी नाईं फिरती है तैसेही संवेदनशक्ति आत्माके आश्रित फुरती है और ब्रह्म एक स्वरूप है उसका स्वभाव ऐसे है। जैसे मोरका अण्डा और उसका वीर्य एकरूप है अपने स्वभाव से वीर्यही नानाप्रकार के रंग धारता है तो भी मोरसे कुछ भिन्न नहीं; तैसेही आत्माके संवेदन स्वभाव से नाना प्रकार का विश्व भासता है परन्तु आत्मा से कुछ भिन्न नहीं—आत्मरूपही है। सम्यक्दर्शी को नानाप्रकार में एक आत्माही भासता है और अज्ञानी को नानाप्रकारका जगत् भासताहै। हे रामजी! ब्रह्मरूपी एकशिलाहै उसमें त्रिलोकीरूपी अनेकपुतलियां कल्पित

हैं। जैसे एक शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पता है कि, इसमें इतनी पुतलियां होंगी सो वे पुतलियां उसके चित्त में हैं और शिलामें कुछ नहीं हुआ तैसेही आत्मरूपी शिला में चित्तरूपी शिल्पी नानाप्रकार के पदार्त्थरूपी पुतलियां कल्पता है सो सर्व आत्मारूप है। इससे पदार्थों की भावना त्यागकर आत्मा में स्थितहो। यह संसार भी निर्व्वाच्य है क्योंकि; ब्रह्मही है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। न कोई उपजता है, न कोई विनशता है ज्योंकात्यों आत्माही स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदभावप्रतिपादनंनामशताधिकैकोनविंशतितमस्सर्ग्गः ११९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तो इस संसार का बीज अहंकार हुआ। इसका पिता अहंकार है तो मिथ्यासंसार जो अविद्यमानही विद्यमान भासताहै सो भ्रमरूप हुआ? और जो भ्रमरूपहै तो लोग और शास्त्र; श्रुति और स्मृति क्यों कहते हैं कि, इसका शरीर पिण्डसे होताहै? और जो पिण्डसे होताहै तो आप कैसे भ्रमकहतेहैं? जो भ्रमहै तो लोग, शास्त्र,श्रुति और स्मृति क्यों पिण्डसे कहते हैं? इससे मेरे संशयको निवृत्त कीजिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरा कहना सत्यहै। ऐसेही है। ब्रह्ममें ब्रह्मतत्त्व स्वभाव है और जगत्का लक्षण भी वही है। हे रामजी! आदि जो किंचनहुआ है और चित्त शक्ति फुरी है वही ब्रह्मरूपहुआ है और उसमें पदार्थ का मनोराजहुआ है। यह आकाश है; यह पवनहै; यह कर्त्तव्यहै; यह अकर्त्तव्यहै; यह सत्यहै; यह झूठहै इत्यादि जबतक मनोराजहै तबतक सर्वमर्यादा ऐसेही है। फिर ब्रह्मामें ऐसेहुआ कि, जगत् की मर्यादा के निमित्त वेदकहताहै कि, यह पदार्थ शुभहै और यह अशुभहै। हे रामजी! आत्मामें कुछ द्वैतनहीं; मायारूप जगत्में मर्यादा है; तो अध, ऊर्द्ध, नीच, ऊंच कौनकहे? यह मर्यादा भी वेदमें नीति निश्चयहुई है कि, ये शुभकर्म हैं; इनके किये से स्वर्ग सुखही भोगते हैं और ये अशुभकर्म हैं इनके किये से नरकदुःख भोगते हैं। हे रामजी! जैसे वेदमें निश्चय किया है तैसेही जीव अपनी वासना के अनुसार भोगता है। हे रामजी! यह रचितशक्ति नीति होकर ब्रह्मादिक में फुरी है परन्तु उनको सदा स्वरूप में निश्चय है इससे वे बन्धायमान नहीं होते और ब्रह्मा विष्णु रुद्रने यह वेदमाला धारी है कि; जैसा कोई कर्मकरे तैसाही फल देते हैं। यह वेद सर्वकी नीति है हे रामजी! जिन पुरुषों को संसारकी सत्यता दृढ़ हुई है वे जैसे कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसेही शरीर को धारते हैं। इसमें संशय नहीं कि, जो शास्त्रमर्यादाको अपनी इच्छासे उल्लंघित वर्तते हैं सो शरीर त्यागकर कोई काल मूर्च्छित होजाते हैं और आत्मज्ञान विना एक मुहूर्त्त में जाग कर बड़े नरकों को चलेजाते हैं। जिनको शून्यभावना हुई है कि, आगे नरक स्वर्ग कोई नहीं और जो लोक—परलोकके भयको त्यागकर शास्त्र

बाहरसे वर्तते हैं सो मरकर पत्थर वृक्षादिक जड़योनि पाते हैं और चिरकालसे उनकी वासना प्रणमती है फिर दुःखभागी होते हैं और जिनको आत्मभावना हुई है और संसारकी भावना निवृत्तहुई है वे शास्त्रविहित करें अथवा अविहित करें उनका कोई बन्धन नहीं। हे रामजी! चित्तरूपी भूमिमें निश्चयरूपी जैसा बीज बोताहै तैसाही कालपाकर उगता है—यह निःसंशय है। इससे तुम आत्मभावनारूप बीज बोओ कि, सर्व आत्मा है। ऐसी भावना करो तब सिद्ध आत्माही भासेगा और जिनको संसार का निश्चय हुआ है उनको संसार है। हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा हैं उनको उसी वासना के अनुसार भासता है। धर्मात्माभी दो प्रकारके हैं—एक सकामी और दूसरे निष्कामी। जो धर्म करते हैं और पापरूपी कामनासहित हैं तो वे स्वर्गभोग भोगकर फिर गिरते हैं और जो निष्काम ईश्वरार्पण कर्मकरते हैं उनका अंतःकरण शुद्ध होकर ज्ञानकी प्राप्ति होती है। यह भी संसार में मर्यादा है कि, जैसा किसीको निश्चय होता है तैसाही संसार को देखताहै। पिण्डकरके भी शरीर होता है क्योंकि, यह भी आदि नीति में निश्चय हुआ है जैसे आदि नीति में निश्चय हुआ है तैसेही होता है। जो पवन है सो पवनही है और जो अग्नि है सो अग्निही है। इसी प्रकार कल्पपर्यंत जैसे मनोराज हुआ है तैसेही स्थितहै। जैसे जल नीचेही को जाताहै—ऊंचे नहीं जाता; तैसेही जो आदि किंचन में निश्चय हुआ है वही कल्पपर्यंत है। हे रामजी! जगत् व्यवहार में तो ऐसे हैं और परमार्थ से दूसरा कुछ हुआ नहीं, इस जीवने आकाश में मिथ्यादेह रची है। परमार्थ से केवल निराकार अद्वैत आत्माहै शरीर इसके साथ नहीं है इससे जगत् कैसे हो?

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपिण्डनिर्णयोनामशताधिकविंशतितमस्सर्गः १२०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रश्नपर एक इतिहास बृहस्पति और बलि राजाका है सो सुनो। जब छः कल्प व्यतीत हुये तो दूसरे परार्द्ध में राजा बलि हुआ। वह महापराक्रमकी मूर्त्तिथा। उस राजा बलि ने सम्पूर्ण दैत्यों और राक्षसों को जीतकर अपने वश किया और उनपर अपनी आज्ञा चलाई। इन्द्रको भी जीतकर अपने वश किया और उसका सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य एक नगरकी नाईं लेलिया था। देवता और किन्नरोंपर उसकी आज्ञाचली और भूलोकभी उसने लेलिया। जब वह सब को लेचुका तब उसने धर्म आचारको ग्रहण किया। एकसमय सबसभा बैठी थी और यह कथाचली कि; जन्म कैसे होता है और मरण कैसे होता है। तब राजाबलि ने देवगुरु बृहस्पति से प्रश्न किया कि; हे ब्राह्मण! यह पुरुष जब मृतक होता है तब शरीर तो भस्म होजाताहै फिर कर्मों के फल कैसे भोगताहै और शरीर विना कैसे आताजाता है

सो कहिये ? बृहस्पति बोले, हे राजन् ! जीवके देह नहीं है । जैसे मरुस्थल में जल भासता है पर है नहीं; तैसेही जीवके साथ शरीर भासता है और है नहीं । जीव न जन्मताहै; न मरताहै; न भस्महोता है; न जलके दुःखी होताहै । यह सदा अच्युतरूप है पर स्वरूपके प्रमादसे आपको दुःखी जानताहै कि; मैं इनको भोगताहूं और जन्मा हूं; इतना काल हुआ है; यह मेरी माता है; यह पिता है; मैं इनसे उपजाहूं और फिर आपको मृतक हुआ जानता है । हे राजन् ! भ्रमसे ऐसे देखता है । जैसे निद्रा भ्रमसे स्वप्नमें देखताहै तैसेही अज्ञानसे जीव आपको मानता है । जब मृतक होताहै तब जानता है कि; मेरा शरीर पिण्डसे हुआ है और अब मैं दुःख सुख भोगूंगा । जैसे स्वप्नमें आकाश होताहै और वहां वासनासे अपने साथ शरीर देखताहै और सुख दुःख भोगता है; तैसेही मरकर जीव अपने साथ शरीर देखता है और दुःख सुखका भागी होता है। परमार्थ से इसके साथ शरीरही नहीं तो जन्म मरण कैसेहो ? स्वरूप से प्रमाद करके देहधारी की नाईं स्थित हुआहै और उस देहसे मिलकर जैसी जैसी भावना करता है तैसाही फल भोगता है और वासना के अनुसार जैसी भावना होती है तैसेही आगे शरीर देखताहै और पंचभौतिक संसारको देखताहै । इसप्रकार भ्रमताहै और जन्मता मरता आपको देखता है । जैसे समुद्र से तरंग उठता और मिटजाता है तैसेही शरीर उपजता और नष्ट होताहै । शरीरके सम्बन्धसेही उपजता और विनशता भासता है । यह आश्चर्य है कि, आत्मा ज्योंकात्यों स्वाभाविक स्थितहै उसमें वासना के अनुसार विश्व देखता है । हे राजन् ! विश्व इसके हृदय में स्थित है और भावना के अनुसार आगे देखताहै । इस जीवमें विश्वहै और विश्वमें जीव नहीं । जैसे तिलमें तेलहै और तेल में तिलनहीं और सुवर्णमें भूषण कल्पित है भूषण में सुवर्ण कल्पित नहीं वैसेही विश्व सत् भी नहीं और असत् भी नहीं । सत् इस कारण नहीं कि, चलरूप है स्थित नहीं और असत् इससे नहीं कि, विद्यमान भासता है । इससे इसकी भावना त्यागो; यह दृश्य मिथ्या है और इसका अनुभव मिथ्या है और इसका जाननेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है । जैसे मरुस्थल में जल मिथ्या है तैसेही आत्मा में अहंकार और जीव मिथ्या है । हे राजन् ! जबतक शास्त्रके अर्थ में चपलता है और स्थित से रहितहै तबतक संसारकी निवृत्ति नहींहोती और जब दृश्य के फुरने और अहंकार से जड़हो तब इसको आत्मपद की प्राप्तिहो । जबतक दृश्यकी ओर फुरता है और चेतन सावधान है तबतक संसारमें भ्रमताहै । हे राजन् ! आत्मा न कहीं जाताहै; न आता है; न जन्मता है; न मरताहै । जब चेत और चित्तका सम्बन्ध मिटजावे तब आनन्द रूपही है । चेत दृश्यको कहते हैं और चित्त अहंकारसंवित्का नामहै । जब दोनों का सम्बन्ध आपस में मिटजावेगा तब शेष आत्माही रहेगा । वह ब्रह्म आत्मा और शिव

पदहै जिसमें वाणीकी गम नहीं और अनुभव निर्वाच्य पदहै उसी में स्थितहो। हे रामजी ! जिस युक्ति से इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्तहो सो युक्ति श्रेष्ठ है। जबतक फुरना उठता है कि, यह भावहै यह अभावहै; तबतक इसको जीव कहते हैं और जब भाव अभावका फुरना मिटजाताहै तब जीवसंज्ञा भी जाती रहती है। शिवपद आत्मा को प्राप्तहो जहां वाणीकी गम नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबृहस्पतिबलिसंवादवर्णनं नामशताधिकैकविंशतितमस्सर्गः १२१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार बृहस्पतिने बलिराजा से कहाथा वह तेरे प्रश्नके उत्तरनिमित्त मैंने कहा है। जबतक हृदयमें संसारकी सत्यता है तबतक जैसे कर्मकरेगा तैसाही शरीर धरेगा। हे रामजी जिस वस्तुको चित्त देखता है उसकी ओर अवश्य जाताहै; उसका संस्कार उसके हृदयमें होताहै और जिस पदार्थ को सत्जानताहै उस पदार्थका संस्कार स्थित होजाता है। जैसे मोरके अण्डेमें शक्ति होती है और जब समय आता है तब नाना प्रकार के रंग उसमें प्रकट भासते हैं; तैसेही चित्तका संस्कारभी समय पाकर जागता है। हे रामजी ! चित्त अज्ञान से उपजा है। फिर बृहस्पतिने कहा, हे राजन् ! बीज पृथ्वी पर उगता है आकाश में नहीं उगता; जैसा बीज पृथ्वीमें बोया जाताहै तैसाही फल होताहै। यहां अहंरूप अपना होना यही पृथ्वी है; जैसी जैसी भावना से कर्मकरता है तैसा तैसा चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्न होताहै और फिर उसमें फलहोता है। उन कर्मों के अनुसार धारके सुख दुःखको भोगता है। ज्ञानवान् आकाशरूप हैं आकाशमें बीज कैसे उपजे ? बीजभावना से अज्ञानरूपी पृथ्वी में उगता है। बलिने पूछा, हे देवगुरु ! आपने कहा कि, जीव जीताहो अथवा मृतकहो इसे अपनी भावनाही से अनुभव होताहै तो जब यह मृतकहुआ और इसकी पिण्डादिकमें भावना न हुई तो फिर इसका शरीर कैसे होताहै ? बृहस्पति बोले, हे राजन् ! पिण्डदानआदिक क्रिया न हों पर उसके हृदय में भावनाहो और उसी समय किसीने किया तो भी वह जो हृदय में भावना है वही कर्मरूप है और उसी से भासि आता है और जो उसके हृदय में भावना नहीं और किसी बांधवने इसके निमित्त पिण्डदान किया तोभी इसको भासिआताहै क्योंकि; वहभी इसकी वासनामें स्पन्दहै। हे राजन् ! जो अज्ञानी जीवहैं और जिनको अनात्म में आत्मबुद्धिहै उनके कर्म्म कहांगये हैं, वे जो कर्म करते हैं वही उनके चित्तरूपी भूमि में उगते हैं। उनके शरीरकी क्या संख्या है ? वे वासनारूपी अनेक शरीर ज्ञान विना स्वप्नवत् धारते हैं। बलि बोले, हे देवगुरु ! यह निश्चयकरके मैंने जानाहै कि, जिसको निष्किंचनकी भावना होती है वह निष्किंचन पदको प्राप्त होता है और संसारकी ओरसे शिलाकी नाईं होजाता है।

जिसकी जैसी भावना होती है तैसाही स्वरूप होजाताहै। जब संसारसे पत्थरवत्हो तब मुक्तहो। बृहस्पति बोले, हे राजन्! निष्किंचन को जब जानता है तब संसार की ओरसे जड़होजाताहै। संसार के न फुरनेही का नाम जड़है और केवल सारपद के स्थित होताहै। जिसे गुण चला न सकें उसे जानिये कि, निष्किंचनपदको प्राप्तहुआ है। वही निःसंदेह मुक्तहै। हे राजन्! जबतक संसारकी सत्यता चित्तमें स्थितहै तबतक वासना है और जबतक वासनाहै तबतक संसार है। संसारके अभाव विना शान्ति नहीं होती। स्वरूप के प्रमाद से चित्तहुआहै; चित्तसे वासनाहुई है और वासना से संसार हुआ है; इससे इस वासना को त्यागकरो। कोई फुरना फुरे तो निष्किंचनभावहो और शान्तभागी हो। हे राजन्! जिस युक्ति और क्रमसे यह निष्किंचनरूपहो वही करे। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार से सुरपुर में असुरनायकको सुरगुरुने जो पिण्डदानादि क्रिया कही वह मैंने तुमको सुनाई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबृहस्पतिबलिसंवादोनाम शताधिकद्वाविंशतितमस्सर्गः १२२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चाहे जीताहो चाहै मृतकहो जो कुछ इसके चित्त के साथ स्पर्श होगा उसका अनुभव अवश्य करेगा। जैसे मोरके अण्डे में रस होता है तो वह समय पाकर विस्तार पाताहै तैसेही इसके भीतर जो वासना का बीजहै वह यदि प्रकट नहीं भासता तौ भी समय पाकर विस्तारवान् होता है। जबतक चित्तहै तबतक संसार है और जब चित्त नष्टहो तब सब भ्रम मिटजावे। हे रामजी! चित्तभी असत् है तो विश्व भी असत्य है। जैसे आकाशरूपमें नीलता भ्रमसे भासती है तैसेही आत्मामें विश्व भ्रमहै। हे रामजी! हमको न चित्त भासताहै न विश्व भासता है; मैं भी आकाशहूं और तुमभी आकाशरूपहो। यह चित्त स्वरूप के प्रमाद करके उपजताहै। जैसे जहां काजल होता है वहां श्यामता होती है तैसेही जहां चित्त होताहै वहां वासना होती है। जब ज्ञानरूपी अग्निसे वासना दग्धहो तब चित्त सत्पदको प्राप्तहोताहै और जीवतसंज्ञा निवृत्तहोती है। हे रामजी! चित्तके उपशम का उपाय मुझसे सुनो तो उससे चित्त निर्वाण होजावेगा। जो सात भूमिका ज्ञानकी हैं उनसे चित्त नष्टहोजावेगा। उनमें से तीन भूमिका तो तुमसे क्रमसे कही हैं और चार कहने को रही हैं। हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाओं में से जिसको एकभी प्राप्त होती है; उसको महापुरुष जानो। उसके मान और मोह निवृत्त होजाते हैं और उसे संगदोष नहीं लगता। उसमें विचार स्थिति से कामना नष्ट होजाती है और राग द्वेष न रहकर सुख दुःख में सम रहताहै। ऐसा अमूढ़ पुरुष अव्यय पदको प्राप्त होता है। इतने गुण तीसरी भूमिकामें प्राप्त होते हैं और

चित्त नष्ट होजाता है तब संसार को नहीं दृष्टि आता है जैसे दीपक से देखिये तो अन्धकार नहीं मिलता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तअभावप्रतिपादनन्नाम शताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः १२३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब तीसरी भूमिका दृढ़पूर्ण होके दृढ़ अभ्यास से चौथी भूमिका उदय होती है तो अज्ञान नष्ट होजाता है और सम्यक्ज्ञान चित्त में उदय होता है। तब वह पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शोभापाता है और आदि अन्त से रहित निर्विभाग चेतनतत्त्वमें उस योगी का चित्त स्थित होताहै और वह सब को सम देखताहै। जिस योगीको चतुर्थ भूमिका प्राप्तहोतीहै उसके नाना प्रकारके भेद भाव निवृत्त होजाते हैं और अभेदसर्व आत्माभाव उदयहोता है। उसको जगत् स्वप्नकी नाईं भासता है और इन्द्रियों का व्यवहार स्वप्नवत् होजाता है। जैसे जिसको अर्द्ध सुषुप्ति होती है उसे उस कालमें खानापीना रससे रहित होजाताहै तैसेही चतुर्थ भूमि का वाले का व्यवहार रससे रहित होताहै। जैसे सूर्य अपने प्रकाशसे प्रकाशताहै तैसेही उसको आत्माका प्रकाश उदयहोता है और उसकी सब कल्पना नाश होजाती है; न किसी पदार्थ में राग रहता है, न किसीमें द्वेष रहता है। संसारसमुद्र में डुबानेवाले राग और द्वेष हैं। इष्टपदार्थ में राग होताहै और अनिष्ट में द्वेषहोताहै। इससे वह संसार समुद्र में गोते नहीं खाता और उसके चित्तको कोई मोहित नहीं करसक्ता। हे रामजी! जबतक तृतीय भूमिका होती है तबतक उसको जाग्रत् अवस्था होती है और जब चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है तब जगत् स्वप्न होजाता है। तब वह सर्व्व जगत् को क्षणभंगुर और नाशवन्त देखता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य भावनाका अभाव होजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का लक्षण कहिये और तुरीया और तुरीयातीत मुझसे कहिये। गुरु शिष्यको उपदेश करते खेदवान् नहीं होते। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तत्त्वका विस्मरण, पदार्थों की भावना और नाशवन्त पदार्थों को सत्की नाईं जाननाही जाग्रत् है। पदार्थों में भाव-अभावकी सत्यता और जगत् को मिथ्या भावनामात्र जानना स्वप्न कहाता है और जाग्रत् और स्वप्न जिसमें लय होजावें सो सुषुप्ति है। यदि ज्ञानभाव से भेदकी शांति होजावे और जाग्रत् स्वप्न-सुषुप्ति तीनों का अभावहो ऐसी जो निर्मल स्थिति है सो तुरीया है। हे रामजी! अज्ञानीजीव संसारको वर्षाकाल के मेघकी नाईं देखते हैं क्योंकि, उन को दृढ़होकर भासता है पर जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्तहुईहै वह शरत्कालके मेघकी नाईं संसार को देखताहै और जिसको पंचमभूमिका प्राप्त हुई है वह शरत्काल के मेघ नष्ट हुयेकीनाईं देखताहै। जैसे निर्मल आकाशहोताहै तैसेही उसको निर्मलभासताहै। इन

तीनोंका वृत्तान्त सुनो। अज्ञानी जगत्को जाग्रत्की नाईं देखता है और उसको जगत् की दृढ़ सत्यता भासती है इससे उसे राग द्वेष उपजताहै। चतुर्थ भूमिकावाला जगत् को ऐसे देखता है जैसे शरत्कालका मेघ वर्षा से रहित होता है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि होती है तैसेही उसको जगत् की सत्यता नहीं भासती क्योंकि; उसकी स्मृति स्वप्ने की होती है और वह जगत् को स्वप्नवत् देखता है इससे उसको राग द्वेष नहीं उपजता। पंचम भूमिका की प्राप्तिवाला जगत् को सुषुप्ति की नाईं देखता है। जैसे शरत्काल का मेघ नष्टहोके फिर नहीं दीखता तैसेही उसको संसार का भान नहीं होता और उस की चेष्टा स्वाभाविक होती है। जैसे कमल स्वाभाविकही खुलता और मूंदजाता है तैसेही उसको कुछ यत्ननहीं–चेष्टामें जैसा प्रतियोगी स्वाभाविक प्राप्तहोताहै सो करता है। जैसे कमल के खुलने का प्रतियोगी जब सूर्य उदयहुआ तब खुलगया और जब मूंदने का प्रतियोगी रात्रिहुई तब मूंदजाताहै–उसको कुछ खेद नहीं; तैसेही उस पुरुष की अहंममतासे रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है। हे रामजी! अहंता ममतारूपी जाग्रतसे वह पुरुष सुषुप्त होजाताहै और सम्पूर्ण भावरूप जो शब्द और अर्थ हैं उनका उसको अभाव होजाता है; उसका अशेष शेषका मनन नष्ट होजाता है और उसको पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता; भला, बुरा इत्यादिक भिन्न भिन्न पदार्थों की भावना नहीं रहती; उसकी द्वैतकलना नष्ट होजाती है और एक ब्रह्मसत्ताही भासती है–संसार नहीं भासता। हे रामजी! अहंतारूपी तिलसे संसाररूपी तेल उपजता है और अहंतारूपी फूलसे संसाररूपी गन्ध उपजती है। संसार का कारण अहंताही है। जिस पुरुष की अहन्ता नष्ट होजाती है वह इन्द्रियों के इष्टको पाकर हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट के प्राप्त हुये द्वेष नहीं करता। वह ऐसे आपको नहीं जानता कि, मैं खड़ाहूं वा बैठाहूं अथवा चलताहूं; वह आपको सर्वदा आकाशरूप जानता है और न भीतर देखताहै, न बाहर देखता है; न आकाशको देखताहै और न पृथ्वीको देखताहै सर्व ब्रह्मही देखताहै। उस को भिन्न कुछ नहीं भासता और वह द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनोंका साक्षी रहता है। वह अहंकारका भी साक्षी; इन्द्रियोंका भी साक्षी और विश्वका भी साक्षीहै और इनके साथ स्पर्श कदाचित् नहीं करता। जैसे ब्राह्मण चाण्डालसे स्पर्श नहीं करता। जैसे बीजसे अंकुर होताहै और फिर अंकुर से डाल होते हैं; इसीप्रकार सब पदार्थों का परिणाम है पर उनमें आकाश ज्योंका त्यों रहता है क्योंकि, उनके साथ स्पर्श नहीं करता; तैसेही वह पुरुष द्रष्टा, दर्शन, दृश्य से अतीत रहताहै। जैसे मरुस्थल में जल असत्है तैसेही उस पुरुषको त्रिपुटी असत्यहै। त्रिपुटी और अहंता उस पुरुषकी नष्ट होजाती है इससे भेद बुद्धि भी नहीं रहती और इसीसे वह शान्त; निर्मल, संसारसे सुषुप्त; चेतन घनता से पूर्ण और सर्वदा शान्तरूप है। जिन नेत्रों से लोग संसार देखते हैं उनसे वह अन्धा

हुआ है-अर्थ यह कि, जिस मनसे फुरना होता है उसको उसने नाश किया है और यदि भय, क्रोध, अहंकार, मोह इत्यादि उस पुरुष में दीखते भी हैं पर उसके हृदय में कुछ स्पर्श नहीं करते। जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है परन्तु आकाशको स्पर्श नहीं करसक्ता तैसेही उस पुरुष को कोई विकार स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! उस पुरुष के सम्पूर्ण संशय नष्ट होगये हैं और वह सर्वदा स्वरूपमें स्थित और शान्तरूप है; आत्मासे भिन्न वह किसी सुखकी वाञ्छा नहीं करता और उसके सर्व संकल्प नष्ट हुये हैं। उसे आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता; जाग्रत् की नाईं दृष्टि आता है पर सर्वदा जाग्रत् से सुषुप्त है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपञ्चमभूमिकावर्णनन्नाम चतुर्विंशतिशताधिकतमस्सर्गः १२४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तीसरी भूमिकापर्यन्त जाग्रत् है और चतुर्थ भूमिका में जाग्रत् अवस्था को स्वप्नवत् देखता है। पञ्चम भूमिकावाला संसार से सुषुप्त होता है और छठी भूमिकावाला तुरीयपद में स्थित होता है और सर्वदा अक्रिय है अर्थात् किसी क्रिया में बन्धायमान नहीं होता। वह सर्वकाल आनन्दरूप है; भिन्न होकर आनन्द को नहीं भोगता आपही आनन्द है; केवल अपने आप स्वतः स्थित है और सर्वदा निर्वाण है। हे रामजी! सर्वक्रिया में वह यथाशास्त्र विचरता दृष्टिआता है परन्तु हृदय में शून्य है-उसको किसी से स्पर्श नहीं। जैसे आकाश में सर्व पदार्थ भासते हैं और आकाश का स्पर्श किसी से नहीं; तैसेही सर्वक्रिया उसमें विद्यमान दृष्टि भी आती हैं तो भी वह हृदय से किसी से स्पर्श नहीं करता क्योंकि; उसको क्रिया में बन्धायमान करनेवाला जो अहंकार था सो उसका नष्ट होगया है-केवल शान्तरूप है। उसमें अहंकार फुरना चिन्मात्रमें से निवृत्त हुआ है। चिन्मात्रसे अहंभाव का उत्थानही अज्ञान है और वही दुःखदायी है। जब अहंभाव निवृत्त होता है तब कोई कर्म स्पर्श नहीं करता। यद्यपि उसको विश्व दृष्टि भी आताहै तो भी वास्तव से नहीं देखता क्योंकि उसको सर्वब्रह्मही भासता है; खाता है और नहीं खाता; देता भी है और कदाचित् नहीं देता; लेता है तो भी कदाचित् किसी से कुछ नहीं लेता और चलता है परन्तु कदाचित् नहीं चला। हे रामजी! जो देशकाल-वस्तु पदार्थ हैं उन सब में वह आत्मभाव रखता है यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष चेष्टा दीखती है तो भी उसके हृदय में कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में खाता, पीता, लेता, देता आपको भासता है और जागे से सब का अभाव होजाता है तैसेही जो पुरुष परमार्थसत्तामें जगाहै उसको गुणकी क्रिया अपने से नहीं भासती और जो करता है उसमें अभिलाषा नहीं रखता, उसकी सब चेष्टा स्वाभाविक होती है। अपने निमित्त उसे कुछ कर्त्तव्य नहीं। ऐसे भगवान्ने भी कहा

है और वह सर्व आत्माही दीखता है। आकाश, पृथ्वी, सूर्य, ब्राह्मण, हाथी, श्वान, चाण्डाल आदिक सर्व में वह आत्मभाव देखता है और आकार को मृगतृष्णाके जलवत् देखताहै कि, इसका अत्यन्त अभाव है। द्रष्टा, दर्शन, दृश्यभी उसको आकाशवत् भासते हैं और वह निर्मल आकाशवत् शान्तरूप है। अहंभाव से रहित वह केवल चिन्मात्र में स्थित है और ग्रहण–त्याग से अतीत; सर्व कलना से रहित; निर्वाण, स्वच्छ, निर्मल आकाशरूप स्थित है। अहंमम आदिक चिद्ग्रन्थि उसकी भेदी हैं और अनात्म में अहं अभिमान उसका नष्ट होताहै–केवल शांतरूप होरहताहै। जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल पर्वत निकलकर शांतरूप हुआ तैसेही वह राग–द्वेषरूपी क्षोभ करनेवाले अन्तःकरणरूपी समुद्र से निकल गया तब शांतरूप अक्षोभ हुआ परम शोभासे शोभताहै। जैसे विश्वकर्माने सूर्यका मण्डल रचाहै और वह प्रकाशसे शोभा पाताहै तैसेही ज्ञानरूपी प्रकाश से वह प्रकाशता है। जैसे चक्र फिरता २ रहजाता है और शान्त होता है तैसेही अज्ञानसे फिरता २ ठहरकर वह सदा शान्तको प्राप्तहुआ है और अपने आपसे प्रकाशता है। जैसे पवन से रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही कलनारूपी पवन से रहित पुरुष अपने आपसे प्रकाशता है और सर्वदा निर्मल और एकरस है। जैसे घट के भीतर और बाहर शून्यहै तैसेही देह के भीतर बाहर आत्मा है। जैसे जलमें घटरखिये तो उसके भीतर बाहर जलहोता है तैसेही वह पुरुष अपने आपसे भीतर बाहर पूर्ण होरहा है और एकरस है–द्वैतकलना को नहीं प्राप्तहोता और उस पदको पाकर आनन्दवान् है। जैसे कोई मारेजानेके निमित्त पकड़ा गयाहो और उसकी रक्षाहो तो वह बड़े आनन्दको प्राप्त होता है तैसेही वह पुरुष आनन्दको प्राप्त होताहै। जैसे कोई आधि व्याधि से छूटा आनन्दको प्राप्त होता है तैसेही वह ज्ञानवान् आनन्द को प्राप्त होता है। जैसे कोई मंज़िल चलने से थकाहुआ शय्यापर विश्रामकरे और आनन्दको प्राप्तहोता है तैसेही ज्ञानवान्को आनन्द है। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अमृत से आनन्दवान् होताहै तैसेही वह पुरुष अपने आनन्द से पूर्णहै। जैसे काष्ठके जलेसे रहित अग्नि धुयें से रहित प्रज्वलित होतीहै; तैसेही ज्ञानवान् अज्ञानरूपी धुयेंसे रहित शोभता है। हे रामजी ! जब वह संसार की ओर देखताहै तो उसे अग्निसे जलताहुआ आपसे जुदा देखता है और ज्ञानरूपी पर्वत के ऊपर स्थितहोकर संसार को जलता देखता है। हे रामजी ! यह जो कहाहै कि; संसार को जलता देखता है सो ऐसेभी नहीं फुरता कि; मैं ज्ञानीहूं और यह संसारहै। स्वरूप की अपेक्षासे यह कहा है कि, संसार उसको दुःखदायी भासता है। वह आनन्द से रहित परमानन्द को प्राप्तहुआ है और सत् असत्से रहित जो अपना आप है उस में स्थित है। जैसे पर्वत भीतर बाहर अपने आप में स्थित और एकरस है तैसेही

वह पुरुष एकरस है। संसार में जाग्रत् होकर चेष्टा करताहै पर हृदय में संसारकी भावना से रहितहै। उस पदमें वाणीकी गमनहीं परन्तु कुछ कहताहूं सुनो; कोई उसे ब्रह्म कहते हैं; कोई चेतन कहते हैं; कोई आत्मा कहते हैं; कोई साक्षी कहते हैं; कालवाले उसीको काल कहते हैं; ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं; सांख्यवाले प्रकृति इत्यादिक संज्ञाओं से कहते हैं। ये सब उसी के नाम हैं—उससे भिन्न नहीं। उस पदको सन्तजन जानते हैं। हे रामजी! ऐसे पदको पायके वह अपने आपसे शोभताहै। जैसे मणिके भीतर बाहर प्रकाश होताहै तैसेही वह पुरुष भीतर बाहरसे शोभता है और अपने स्वरूपसे सदा घूर्म रहताहै। जो पुरुष छठी भूमिकामें स्थितहै उसके ये लक्षण होते हैं कि, संसारसे सुषुप्त होकर स्वरूप में चेतन होताहै और उसका जीवत्वभाव जातारहताहै। जैसे घटकी उपाधिसे घटाकाश प्रच्छिन्न भासताहै और जब घटभग्न हुआ तब घटाकाश महाकाश एक होजाता है तैसेही अहंकाररूपी घटके भग्न हुये आत्माही भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेषष्ठभूमिकाउपदेशोनाम शताधिकपंचविंशतितमस्सर्गः १२५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसके अनन्तर जब सप्तम भूमिका उस पुरुषको प्राप्त होतीहै तब आपको आत्माही जानता है और भूतोंका ज्ञान जातारहताहै। तब केवल आत्मत्वमात्र होताहै और दृश्यका ज्ञान नहीं रहता; बल्कि यह भी ज्ञान नहीं रहता कि, विश्व मेरे आश्रय फुरतीहै। देहसहित हो अथवा विदेहहो उसको आत्मा से उत्थान कदाचित् नहीं होता। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही वह आत्मस्वरूप में स्थित होता है और उसकी चेष्टा भी स्वाभाविक होती है। जैसे बालक पालने में अपने अंग स्वाभाविक हिलाता है तैसेही उसकी खान, पान आदिक चेष्टा स्वाभाविकही है और जैसे काष्ठकी पुतली तागे से चेष्टा करती है तैसेही प्रारब्ध वेग के तागे से उसकी चेष्टा होती है—उसको अपनी कुछ इच्छा नहीं रहती। हे रामजी! (सप्तम भूमिकावाला जैसी अवस्था को प्राप्त होता है सो आपही जानताहै और कोई नहीं जानसक्ता) जिसका चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है वह भी उस अवस्था को नहीं जानसक्ता; जिसको वह पद प्राप्त हुआ है वही जानैहै। हे रामजी! जीवन्मुक्त का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है और यह तुरीयपद में स्थित होता है। उसका चित्त निर्वाण होजाता है और तुरीयातीत पदको प्राप्त होकर विदेहमुक्त होता है। उसको अहंभावका उत्थान कदाचित् नहीं होता और सत्रूपहै पर असत् की नाईं स्थित है। हे रामजी! वह पुरुष उस पद को प्राप्त होता है जिसको वाणीकी गमनहीं परन्तु कुछ कहता हूं। वह पद, शुद्ध, निर्मल, अद्वैत, चेतन, ब्रह्म और कालका भी काल केवल

चिन्मात्र है और ज्योंकात्यों अच्युतपद है । उस पदको पाकर ऐसे होताहै । जैसे वस्त्रके ऊपर मूर्त्ति लिखी हो तैसेही यह उत्थान से रहितहै और उसको अहंब्रह्म का उत्थान भी नहीं रहता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसप्तभूमिकालक्षणविचारोनाम
षड्विंशाधिकशततमस्सर्ग्गः १२६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ये सप्त भूमिका जो तुमसे कही हैं, ज्ञानकी प्राप्ति इनहीं से होती है; अन्य साधनसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती । हे रामजी ! जब पुरुष ज्ञानवान् हो तब जानिये कि, उसकी वृत्ति प्रथम भूमिका में स्थित हुई है । इससे तुम भूमिका की ओर चित्तरूप चरण रक्खो तब तुमको स्वरूपकी प्राप्ति होगी । हे रामजी ! तीसरी भूमिकापर्य्यन्त सर्व कामना निवृत्त होती हैं केवल एक आत्मपदकी कामना रहती है । यदि उस अवस्था में शरीर छूटजावे तो और जन्म पाकर ज्ञानको प्राप्त होता है और यदि चतुर्थ भूमिका में प्राप्तहोकर शरीर छूटे तो फिर जन्म नहीं पाता क्योंकि; आत्मपद की प्राप्ति हुये से फिर कुछ पानेकी इच्छा नहीं रहती । जन्म का कारण इच्छा है; जब कुछ इच्छा न रही तब जन्म भी न रहा । जिसको चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है उसको स्वरूपकी प्राप्ति होती है तो फिर इच्छा कैसेहो ? जैसे भूनाबीज नहीं उगता तैसेही उसका चित्त ज्ञानअग्नि से दग्ध होता है क्योंकि; वह सत्पद को प्राप्त होता है; इसी से वह जन्म नहीं लेता और मरता भी नहीं–संसार को स्वप्नवत् देखता है । पञ्चम भूमिकावाला सुषुप्ति की नाईं होता है और छठी भूमिका साक्षीरूप तुरीयपद है; सप्तम तुरीयातीत निर्व्वाच्यपद है । हे रामजी ! मुझे इतने कहने का प्रयोजन यही है कि, (वासनाका त्यागकरो और अचितपद को प्राप्त हो । इसका अभिमान होनाही वासना है; जब इसका अभिमान निवृत्तहो तब शान्ति होगी यह परिच्छिन्न अहङ्कार न रहेगा । आत्मा के अज्ञान से हुआहै और आत्मज्ञान से लीन होजाता है । हे रामजी ! संसाररूपी एक नदी में आधि–व्याधि उपाधि रोग तरंगें हैं; राग द्वेषरूपी छोटे मच्छ हैं और तृष्णारूपी बड़े मच्छ हैं उसमें जीव दुःख पाते हैं । जैसे जल नीचे को चलाजाता है तैसेही मृत्युके मुख में संसार चला जाता है और अज्ञानरूपी जल है । हे रामजी ! तृष्णासे पुरुष बांधे हैं; इससे तुम हाथी की नाईं वैराग्य और अभ्यासरूपी दांतोंसे तृष्णारूपी जंजीरकाटो । हे रामजी ! (तृष्णारूपी सर्पिणी विषयरूपी फुत्कारे से विचाररूपी बेलिको जलाती है इससे जीवरूपी किसान दुःख पाता है । इससे तुम वैराग्यरूपी अग्निसे उस सर्पिणी को जलाओ।) हे रामजी ! (तृष्णा दुःखदायी है । जबतक तृष्णा है तबतक सन्तों के वचन स्थित नहीं होते ।)जैसे दर्पणपर मोती नहीं ठहरता तैसेही तृष्णावान् के हृदय में सन्तों के

वचन नहीं ठहरते। तृष्णा के इतने नाम हैं तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फुरना, संसरना इत्यादिक सर्व इसी के नामहैं इच्छारूपी मेघने ज्ञानरूपी सूर्य्यको ढांका है इससे वह नहीं भासता जब विचाररूपी पवन चले तब इच्छारूपी मेघ नष्ट होजावे और आत्मरूपी सूर्य्य का साक्षात्कारहो। हे रामजी! यह जीव आकाशका पक्षी है पर कर्म में इच्छारूपी तागे से बँधा है इससे नहीं उड़सक्ता और परमात्मपदको भी प्राप्तनहीं होता—इच्छाहीसे दीन है जब इच्छा नष्टहो तब आत्मस्वरूप है। इससे तुम इच्छाको नाशकर आत्मपरायणहो अर्थात् विषय संसारसे वैराग्य और आत्माभ्यास करो। हे रामजी! यह जो मैंने तुम से भूमिका का क्रमकहाहै जब इसमें आवे तब ज्ञानकी प्राप्ति हो परइनको तब प्राप्त होताहै जब कि, एक हथिनीको जीते जो एक वनमें रहती और महामत्तरूप उसके दो पुत्र हैं जो अनेक जीवों को मारकर अनर्थ प्राप्त करते हैं। उसके जीते से सर्व जगत् जीताजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ऐसी मत्तरूप हथिनी कौनहै औरकहां रहती है? उसके दांत और पुत्र कौनहैं? कैसे वह मरती है, कैसे उत्पन्न हुई है और कौन वन है? यह सब मुझ से कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इच्छारूपी हथिनी शरीररूपी वन है औरमनरूपी गुफामें रहती है; इन्द्रियांरूपी उसके बालक हैं और संकल्प विकल्परूपी दांतहैं उनसे छेदतीहै। हे रामजी! एक नदीहै जिस का प्रवाह सदा चलाजाताहै और जिसमें दो मच्छरहते हैं जो कभी नाश नहीं होते संसरनाही नदीहै जिसमें राग द्वेष मच्छ रहते हैं सो नाश नहीं होते। हे रामजी! वे मच्छ तब नाशहों जब संसरणरूपी जल नष्टहो जिसके सुकृत दुष्कृतरूपी किनारे हैं; चितारूपी ग्राहहैं और कर्मरूपी लहरें हैं उनमें जीवरूपी तृण आकर भटकता है। इस तृष्णारूपी विषबेलिका नाशकरो। हे रामजी! तृष्णारूपी अंकुर का बढ़ाना घटाना अपने ही आधीन है; जो अंकुरको जलदीजिये तो बढ़ताजाता है और जो न दीजिये तो जल जाताहै। फुरनरूपी जलदेने से तृष्णारूपी अंकुर बढ़ताजाता है और न देनेसे स्वरूप के अभ्यास द्वारा जलजाता है। हे रामजी! तृष्णारूपी बड़ा मच्छहै जो धैर्य आदिक मांसको भक्षण करनेवालाहै; उसे वैराग्यरूपी कण्डी और अभ्यासरूपी दांतों से नाश करो। हे रामजी! इच्छा का नाम बन्धन है और निरिच्छा का नाम मुक्ति है। हे रामजी! एक सुगम उपाय कहताहूं जिससे तृष्णा नष्ट होजावेगी निज अर्थकी भावना करो तो उस भावना से शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी, एवम् तुम्हारी जय होगी और सबसे उत्तम पदको प्राप्त होगे; फिर तुम्हें वासना न रहेगी और शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और सर्व संकल्प नष्ट होजावेंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसरणभावप्रतिपादनन्नाम शताधिकसप्तविंशतितमस्सर्गः १२७॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप कहते हैं कि, निज अर्थ की भावना से वासना नष्ट होजावेगी और शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होगी सो वासना तो चिरकाल की चित्त में स्थितहै एकही बार कैसे नष्ट होगी? तथा आप कहते हैं कि; वासना के नष्टहुये जीवन्मुक्त होता है पर जिसकी वासना नष्ट होगी उसका शरीर कैसे रहेगा; वासना बिना चेष्टा क्योंकर होगी और जीवन्मुक्तपद कैसे होगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरे वचनों को जो कानों के भूषण हैं सुनेसे दरिद्र न रहेगा। निज अर्थ के धारने से संशय नष्ट होजावेंगे और आत्मपदकी प्राप्ति होगी। उस निज अक्षरके तीन अर्थ हैं–एक तो अन्य के अर्थ हैं कि, पंचभौतिक शरीर से तेरा स्वरूप विलक्षण है और दूसरा अर्थ विरुद्ध है अर्थात् शरीर जड़ और तमरूप है और तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण और तम से परे है। हे रामजी! जब तूने ऐसे धारणा की कि, मैं आत्मा हूं और यह देहादिक अनात्माहै तब देहसे मिलकर अभिलाषा कैसे रहेगी? अर्थ यह कि, अभिलाषा न करेगा क्योंकि, जबतक जाना नहीं तबतक अभिलाषा है। तीसरा अर्थ यह है कि, अभाव है अर्थात् न मैंहूं और न कोई जगतहै। जब ऐसे जाना तब किसकी इच्छारहेगी? अर्थात् किसीकी न रहेगी। अथवा जो तुम आपको देहसे विलक्षण आत्मा जानोगे तौ भी अविद्यक तमरूप शरीर की अभिलाषा न रहेगी। देह तमरूप है और तुम आदित्य वर्ण हो अर्थात् प्रकाशरूप हो; तुम्हारा और इसका क्या संयोग जैसे सूर्य्य के मण्डल में रात्रि नहीं दिखती तैसेही जब तुम आपको प्रकाशरूप जानोगे तब तमरूप संसार न दीखेगा। तब शरीर की चेष्टा स्वाभाविक होगी और तुममें कुछ चेष्टा न होगी। जैसे अर्द्धनिद्रावाले की चेष्टा होती है तैसेही चेष्टा होगी और तुमको बालक की नाईं अभिमान न होगा। जैसे बालक की उन्मत्त चेष्टा होती है तैसेही तुम्हारी चेष्टा भी स्वाभाविक होगी। हे रामजी! यदि तुम यह इच्छाकरो कि, यह सुखहो और यह दुःख न हो तो कदाचित् न होवेगा। जो कुछ शरीर की प्रारब्ध है सो अवश्य होती है परन्तु ज्ञानवान् के हृदय से संसार की सत्यता जातीरहती है और स्वाभाविक चेष्टा होती है; इच्छा नहीं रहती। हे रामजी! जैसे कोई पुरुष किसी देशको जाताहै और पहुँचने का समय थोड़ाहो तो वह मार्ग के स्थान देखता भी जाता है परन्तु बन्धवान् किसी में नहीं होता; तैसेही चित्तको आत्मपदमें लगावो। ऐसा शरीर पाकर यदि आत्मपद न पाया तो कब पावेगा? जो आत्मपद से विमुख है वह वृक्षादिक जन्मोंको पावेगा इससे; हे रामजी! चित्त आत्मपद में रक्खो और स्वाभाविक इच्छा विना चेष्टाकरो इच्छाही दुःखदायक है। जब इच्छा नष्ट होती है तब उसी को ज्ञानवान् तुरीयपद कहते हैं जहां जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति का अभावहो सो तुरीयपद है। हे रामजी! यह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था जहां न पाइये सो तुरीयपद है। जब संवेदन फुरना

अहंकारका अभाव होजावे तब तुरीयपद प्राप्त होताहै। हे रामजी! अहंकार का होना दुःखदायक है। जब इसका नाशहो तबहीं आनन्दहै। आत्मपदसे भिन्न जो माया की रचना है उससे मिलकर आपको जानताहै कि, 'कि मैं हूं' यही अनर्थहै। इससे अहंकार का त्यागकरो। जिसको देखकर यह फुरताहै उसको निज अर्थ की भावना से नाशकरो और जो आत्मपदसे भिन्न भासता है उसे मिथ्या जानो। यही निज अक्षर का अर्थ है जो कुछ संसार भासता है उसको स्वप्नमात्र जानो। इसको सत्य जानकर इसकी इच्छा करनाही अनर्थ है और मिथ्या जानकर इच्छा न करनी कल्याण है। हे रामजी! मैं ऊंची बाहुकरके पुकारताहूं पर मेरे वचन कोई नहीं सुनता कि; इच्छाही संसार का कारणहै और इच्छासे रहित होनाही परमकल्याण है। जब जीव इच्छासे रहित होता है तब शान्तपदको प्राप्त होता है और निरिच्छित हुये से आत्माही भासता है जो आनन्दरूप, सम और अद्वैत है और उसमें जगत् का अभाव है। हे रामजी! मोह का बड़ा माहात्म्य है। हृदयमें जो आत्मरूपी चिन्तामणि स्थित है उसको विस्मरण करके मूर्ख अहंकाररूपी कांचको ग्रहण करते हैं। हे रामजी! तुम निरभिमान होकर चेष्टा करो। जैसे यंत्रीकी पुतली में अभिमान कुछ नहीं होता और उसकी चेष्टा होती है; तैसेही प्रारब्ध वेगसे तुम्हारी चेष्टा होगी। यह अभिमान तुम न करो कि, ऐसे हो और ऐसे न हो। जब ऐसे होगे तब शान्तपदको प्राप्त होगे; जहां वाणी की गम नहीं ऐसे आनन्दको प्राप्त होगे। जबतक इन्द्रियों के अर्थ की तृष्णा है तबतक जन्म मृत्युके बन्धन में है इससे पुरुष प्रयत्न यही है कि, तृष्णाका नाश करो; कर्म के फलकी तृष्णा न हो और कर्म के करने की भी इच्छा न हो। इन दोनों को त्यागकर स्वरूप में स्थित होरहो बल्कि ऐसा भी निश्चय न हो कि; मैंने त्याग किया है। हे रामजी! जिस पुरुषने कर्म को त्याग किया है और अहंकारसहित है उसने पुण्य और पाप सब कुछ किया है और जिसमें अहंभाव नहीं है वह चाहे जैसे कर्म करे तो भी कुछ नहीं करता और वह बन्धन को नहीं प्राप्त होता। जो कर्म में आपको अकर्त्ता जानता है और न करने में अभिमानसहित है उसको कर्त्ता देखते हैं वह बन्धवान् है। हे रामजी! ऐसे आत्मा को जानकर अहंमम का त्याग करो। ऐसे संवेदन के त्यागने में कुछ यत्न नहीं है। स्मृति उसकी होती है जिसका अनुभव होता है पर जिसका अनुभव नहीं उसका त्याग करना सुगम है। अनुभव प्रत्यक्ष देखने को कहते हैं। तुम्हारे स्वरूप में विश्व नहीं है तो अनुभव क्या हो। ये पदार्थ जो तुमको भासते हैं उनके कारण को जानो। इनका कारण अनुभवहै; जो अनुभवही इनका मिथ्याहै तो स्मृति कैसे सतहो? रस्सी में सर्प का अनुभव हुआ और फिर स्मरण किया कि, वहां सर्प देखाथा; जो सर्प का अनुभवही मिथ्या है फिर उसका स्मरण कैसे सतहो? इससे जो वस्तु मिथ्या है

उसके त्यागने में क्या यत्न है? जब प्रपञ्च को मिथ्या जाना तब तुझको कोई क्रिया बन्धन न करेगी; चेष्टा स्वाभाविक होगी और राग द्वेष जाता रहेगा। जैसे शरत्काल की बेलि सूखजाती है और उसका आकार दृष्टि आताहै; तैसेही तुम्हारा चित्त देखने में आवेगा और चित्तकाधर्म जो राग द्वेषहै वह जातारहेगा—वह चित्त सत्पदको प्राप्तहोगा। जब सब विस्मरण होताहै उसको शिवपद कहते हैं वह परमपद ब्रह्मशब्द—अर्थसेरहित केवल चिन्मात्र अद्वैतपदहै; उसमें अहंममका त्याग करके स्थित रहो। संसार इसीका नाम है कि, अहंहूं और यह मेरा है। इसको त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो। हे रामजी! जबतक अहंमम का संवेदन है तबतक दुःख नहीं मिटते और जब यह संवेदन मिटा तब आनन्द है। आगे जो इच्छा हो सो करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइच्छाचिकित्सोपदेशंनाम शताधिकाष्टविंशतितमस्सर्गः १२८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अद्वैत आत्मा जिसको एक दो नहीं कहसक्ते अपने आप स्वभावमें स्थित है और अन्तःकरण चतुष्टय बाह्यपदार्थ सब चेतनमात्र हैं कुछ भिन्ननहीं। रूप, इन्द्रियां और मनका फुरना; देश, काल सर्व आत्मारूपही है। जैसे बालक मट्टीकी सेनां बनाकर हाथी, घोड़े, राजा, प्रजानाम कल्पताहै सो सब मट्टीही हैं—भिन्न कुछनहीं; तैसेही अहंमम आदिकभी सर्व आत्मरूपहै—कुछ पृथक् नहीं। जैसे मट्टीमें हाथी,घोड़ाआदि नाम कल्पितहैं; तैसे आत्मामेंही जीव जगत् कल्पताहै-आत्मासे भिन्नकुछनहीं। इस अहंकारको त्यागकरो कि आत्मपदसे भिन्न कुछ न फुरे। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिका के नामहैं और मान; मेय; प्रमाण आदिक यह सब वही रूप हुये तो किससे किसको सञ्चित कहिये? यह अहं मम आदिक भी चिदाकाशसे कुछ भिन्न वस्तु नहीं। इनको ऐसे जानकर अफुर शिलावत् निःसंग होरहो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि; अहंमम फुरनेका त्यागकरो यह मिथ्या है और अहंमम असत् है। ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं कि, इनकी सत्ता कुछ नहीं और तुम असंग होरहो पर असंग निष्कर्म्म से होताहै अथवा सकर्म से होताहै यह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तुमहीं कहो कि; कर्म क्या है और निष्कर्म्म क्या है; इनका कारण कौन है और इनका नाश कैसे हो और नाश होनेसे क्या सिद्धि होगी; जो तुम जानतेहो तो कहो? रामजी बोले, हे भगवन्! जैसे आपसे सुनाहै और समझा है सो मैं कहताहूं। जो वस्तु नाश करनी हो उसको निश्चय करके मूलसे नाश कीजिये तभी उसका नाशहोताहै, शाखा और पत्र काटे से उसका नाश नहीं होता—इससे इनका क्रम सुनो। इस संसाररूपी वनमें देहरूपी वृक्ष है जिसका बीज कर्म्म है; पाणि पाद आदिक पत्र हैं; रुधिर, श्वास और

वासना रस हैं और सुख दुःख फूल हैं। जाग्रत् कर्म्म वासनारूपी वसन्तऋतु है उससे वह प्रफुल्लित होताहै और सुषुप्ति पापकर्मरूपी शरत्काल है उससे सूखजाता है। ऐसा शरीररूपी वृक्षहै। तरुणपनरूपी उसकी कलीहै सो क्षणकाञ्चण सुन्दरहै; जरारूपी फूल इसको हँसते हैं और द्वेषरूपी वानर क्षण क्षणमें क्षोभते हैं। जाग्रतरूपी वसन्तऋतु है जो सुषुप्तिरूपी हिम करती है और वासनारूपी रससे बढ़ता है। पुत्र कलत्र आदिक तृण और घास हैं और इन्द्रियों के गढ़रूपी मुखहैं जिनसे शरीरकी चेष्टा होती है। ज्ञानइन्द्रियां पञ्च थम्भ हैं जिनसे वृक्ष सधा है और इच्छारूपी बेलिहै जो अपने अपने को चाहती हैं। बड़ा थम्भ इसका मन है जो सबको धारता है और पंचप्राण इसके रसहैं उनसे प्रत्यक्ष सबको ग्रहणकरताहै। इनका बीज जीवहै—जीव चैत्यान्मुखत्व चेतन को कहते हैं; जीवका बीज संवित् है जो मात्रपद से उत्थान हुआहै और उस संवित्का बीज ब्रह्महै—उसका बीज कोई नहीं। हे भगवन्! सबकामूल संवित्का फुरना है; जब इसका अभाव होताहै तब आत्माही शेष रहता है। हे भगवन्! यहतो मैं जानताहूं आगे आपभी कुछ कृपाकरके कहिये। हे भगवन्! जबतक चित्त से सम्बन्धहै तबतक संसारमें जन्म मरण होता है और जब चित्तसे रहित होता है तब परब्रह्म है—वह शिवपद अनिच्छित, शान्त और अनन्तरूप है। चिन्मात्र में जो अहंका उत्थान है वही कर्मरूपी वृक्षका कारण है। जबतक अनात्मा से मिलकर कहता है कि, 'मैं हूं' वही संसारका कारण है। यह आपके वचनों से मैंने समझा है सो प्रार्थना की है आगे कुछ कृपाकरके आपभी कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी प्रकार कर्मका बीज सूक्ष्म संवित् है। जबतक संवित् है तबतक कर्मोंका बीज नाश नहीं होता और ये सब संज्ञा इसीकी हैं। कर्मों का बीज इच्छा, तृष्णा, अज्ञान, चित्त और ग्रहण त्यागकी बुद्धि इत्यादिक बहुत संज्ञाहैं; क्या किसी में हेयोपादेय बुद्धिकरै? हे रामजी! जबतक अज्ञानहै तबतक इच्छा नाश नहीं होती और कर्मभी नाश नहीं होते। नाश दोनोंका नहीं होता परन्तु भेद इतनाही है कि, अज्ञानीको भासताहै कि, यह इच्छा है, यह कर्म है। ज्ञानवान् को सब ब्रह्मही भासता है इससे वह सुखी रहता है और अज्ञानीको कर्ममें कर्म भासता है इसलिये बन्धवान् होताहै। कर्म से कर्मबुद्धि जानेको त्यागकहतेहैं, क्रियाका त्यागकरनेको त्याग नहीं कहते। हे रामजी! बड़ीउपाधि अहंकार है। जिसका अहंकार नष्टहुआ है वह पुरुष कर्म करता है तौभी उसने कभी कुछ नहीं किया और जो अहंकारसहितहै वह पुरुष जो तूष्णीहो बैठाहै तौभी सबकर्म करता है। इस अहंके त्यागका नाम सर्वत्यागहै; क्रियाके त्यागका नाम सर्वत्याग नहीं। सबकर्मों के बीज अहंकारका त्यागना और परमशान्तिको प्राप्त होनाही पुरुषप्रयत्नहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकर्मबीजदाहोपदेशंनामशताधिकनवविंशस्सर्गः १२९

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस संवेदन का होनाही अनर्थ है कि, आपको कुछ जानता है । जब यह निवृत्तहो तबहीं इसको आनन्दहै । हे रामजी! ज्ञानीकी चेष्टा अहंकार से रहित स्वाभाविक होती है। जैसे अर्द्धनिद्रित पुरुष होताहै तैसेही ज्ञानी अपने स्वरूपमें घूर्म है । जैसे हाथी मदसे उन्मत्त होताहै तैसेही ज्ञानवान् स्वयंब्रह्म लक्ष्मीसे घूर्म है। जैसे कामीको काम व्यसन होताहै तैसेही सुखरूपीस्त्रीको पाकर ज्ञानी घूर्म रहता है क्योंकि; निरहंकारहै। सब दुखोंका बीज अहंकार है, जब अहंकार नष्टहो तब आनन्दहो । हे रामजी! संसाररूपी विषकी बेलिका बीज अहंकार है; जब अहंकारका अभावहो तब संसारकाभी अभाव होताहै । हे रामजी! अहंकारही दुःख का मूलहै। इस संवेदनका विस्मरण करना बड़ा कल्याणहै और अनात्मासे मिलकर आपको माननाही अनर्थ है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो वस्तु असत्यहै वह नहीं होती और जो सत्य है उसका अभाव नहीं होता फिर आप कैसे कहते हैं कि; अहं संवेदनका नाश करो? ये तो सत् भासती है संवेदन कैसे हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम सत्य कहतेहो कि, जो वस्तु असत्यहै वह नहीं होती और जो सत्य है उसका नाश नहीं होता। हे रामजी! यह जो अहंकार दृश्य तुमको भासता सो कदाचित् नहींहुआ– मिथ्या कल्पितहै। जैसे रस्सी में सर्प होताहै तैसेही आत्मा में अहंकारहै और जैसे सूर्यकी किरणों में जलाभास होताहै तैसेही आत्मा में अहंकार शब्द अर्थ फुरता है। यह शब्द और अर्थ मिथ्या है। इसका लक्षण यहहै कि, मैं हूं सो कल्पितहै; आत्मा केवल शुद्ध स्वरूपहै उसमें अहं त्वं का शब्द अर्थ कोई नहीं। यह अबोधसे भासते हैं और बोधसे लीन होजाते हैं। वेदनाका बोध अनर्थका कारण है और अबोध तम है। जब यह निर्वाण हो तब कर्मका बीज मूलसे कटे। हे रामजी! जो कर्मोंका त्यागकर एकान्त जाकर बैठता है और ऐसे मानताहै कि मैं कर्म नहीं करता सो कहताही है पर वास्तवमें अहंकारसे है इससे फलको भोगताही है क्योंकि; अहंकारसहित फिर अहंकार करेगा। वह आत्म ज्ञान बिना अनात्मसे मिलकर आपको मानताहै। जो पुरुष कर्म इन्द्रियों से चेष्टा करता है और आत्माको लेप नहीं जानता वह अकर्त्ताही है–उसके करनेसे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होते और न करने से भी नहीं होते। ऐसा पुरुष परमनिर्वाण पदको प्राप्त होताहै जिसको वाणीकी गम नहीं। हे रामजी! उसमें फुरना कोई नहीं–केवल चमत्कार है अर्थात् हुआ कुछ नहीं और भासता है। जैसे बिल्ली की मज्जा बिल्ली से भिन्न नहीं तैसेही जगत् है । जैसे सोने से भूषण भिन्न नहीं तैसेही निज शब्द का अर्थ है पर ये भिन्नभिन्न शब्द अर्थ तबतक भासते हैं जबतक अहंवेदनाकारहै। हे रामजी! आत्मपद सदा अपने आपमें स्थितहै। जैसे पत्थर अपनी जड़तामें स्थितहै तैसेही आत्मा अपनी चेतनघनता में स्थितहै। उसको मुनीश्वर चेतनसार कहते हैं और उस अपने

स्वरूपके प्रमादसे दुःख पाता है। हे रामजी! जो पुरुष गृहस्थी में स्थित है पर अहंकार से रहित है उसको वनवासी जानो और सदा एकांत है और जो वनवासी अहंकारसहित है वह सदा जनोंमें स्थितहै। प्रथम तो वह एक गढ़ेमें था फिर उसको त्यागकर दूसरे गढ़े में पड़ाहै कि वेषधारी हैं और वनवास लिया है। ईश्वर चाहे तो निकसे नहीं तो बड़े कूपमें पड़ा है। हे रामजी! जो पुरुष अर्द्ध त्याग करता है वा एक अंग का त्याग करता है और दूसरे का अंगीकार करता है ऐसा पुरुष आपको निष्कामी मानता है पर उसको यह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगती है। हे रामजी! यह जीव निष्कर्म तबहीं होता है जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है—अन्यथा नहीं होता। इससे कर्म को मूलसे उखाड़ो। जैसे सुरदण्ड बेलि और वृक्षको मूलसे काटते हैं, तैसेही काटो। अहंवेदनाही मूल है उसकी मूल काटना चाहिये। हे रामजी! पुरुष प्रयत्न इसी का नाम है कि, अपने आपका नाश करना और आपही रहना। देहसे मिलाहुआ आप को जानता है उसका नाशकरना और शिवपदको प्राप्त होना जो सर्वदा सत्स्वरूप अद्वैत है—यह विश्व भी उसका चमत्कार है। जैसे नारियल में खोपरा होता है और उसके बहुत नाम रखते हैं सो नारियल से कुछ भिन्न नहीं, तैसेही संसार आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे थम्भे में काष्ठ से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह संसार है। यह नानात्व भी चेतनघन आत्माही है निज अक्षर का अर्थ जो कहा है सो भी वही है तो विधि निषेध किसका कीजिये? सब परमात्मतत्त्व है दूसरा किंचिन्मात्र भी नहीं। हे रामजी! ऐसे आत्मा को जानकर सुख से विचरो। जैसे अर्द्धनिद्रित की चेष्टा होती है और जैसे बालक पालने में सोकर स्वाभाविक अङ्ग हिलाताहै तैसेही तुम्हारी चेष्टा होगी। अपना अभिमान तुम न करो। हे रामजी! जो कुछ भाव—अभाव पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं वे असत्य हैं; आत्मा के साक्षात्कार हुये से परमात्मतत्त्वही भासेंगे, तब अहंकार उत्थान निवृत्तहोगा। हे रामजी! एक और युक्ति सुनो जिससे आत्मज्ञान हो यह जो अहं अहं क्षणक्षण में फुरती है सो जब फुरे तबहीं उस क्षणमें जानो कि, मैं नहीं। जब ऐसे दृढ़हुआ तब अहंकाररूपी पिशाच नाशहोजावेगा और आत्मतत्त्व का साक्षात्कारहोगा। इससे अहंकार के नाशका यत्नकरो कि, 'न मैंहूं' 'न जगतहै'। हे रामजी! ज्ञान इसी का नाम है कि, 'अहं' 'मम' न रहे। उसको मुनीश्वर परब्रह्म और सम्यक्‌पद कहते हैं। और जहां (अहंमम) है वहां अविद्यारूपी तम खड़ाहै। हे रामजी! अज्ञानी के हृदयमें सर्वपदार्थोंका भाव स्थितहै इससे उसको देश, काल, घर, नगर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक त्रिगुण संसार भासताहै। जब इनका अभावहोजावे तब शान्तिपदकी प्राप्तिहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअहंकारनाशविचारो नामशताधिकत्रिंशतितमस्सर्गः १३०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिसके मनसे 'मैं' और 'मेरे' का अभिमान गयाहै उसको शान्तिहुई है और जिसके हृदयमें 'मैं' देह, 'मेरे सम्बन्धी' गृह आदिक का अभिमानहै उसको कदाचित् शान्ति नहीं और शान्ति विना सुख नहीं। हे रामजी ! प्रथम आप बनता है तब जगत् है। जो आप न बनें तो जगत् कहांहो ? इसका होनाही अनर्थ का कारण है । जिस पुरुष ने अहंकार का त्याग किया है वह सर्वत्यागी है और जिसने अहंकार का त्याग नहीं किया उसने कुछ नहीं त्यागा। जिसने क्रिया का त्याग किया और आपको सर्वत्यागी माना है सो मिथ्या है । जैसे वृक्षकी डालें काटिये तो फिर उगताहै नाश नहीं होता; तैसेही क्रियाके त्यागकिये त्याग नहीं होता। जो त्यागने योग्य अहंकार नष्ट नहीं होता तो क्रिया फिर उपजती है। इससे अहंकार का त्यागकरो तब सर्वत्यागी होगे । इसका नाम महात्याग है और स्वप्न में भी संसार न भासेगा, जाग्रत् का क्या कहना है—उसको संसार का ज्ञान कदाचित् नहीं होता। हे रामजी ! संसार का बीज अहंभाव है; उसी से स्थावर जंगम जगत् भासता है; जब इसका नाश हुआ तब जगत् भ्रम मिटजाता है—इससे इसके अभाव की भावना करो। जब तुम्हें अहंभावकी भावनाफुरे तो जानना कि, मैं नहीं। जब इसप्रकार अहंका अभाव हुआ तब पीछे जो शेषरहेगा सोही आत्मपद है । हे रामजी ! सब अनर्थों का कारण अहंभाव है उसका त्यागकरो । हे रामजी ! शस्त्र के प्रहार और व्याधि रोगको यह जीव सहसक्ता है तो इस अहं के त्यागने में क्या कदर्थना है ? हे रामजी ! संसार का बीज अहं का सद्भावहै, उसका नाशकरना मानों संसार का मूलसंयुक्त नाशकरना है—इसीके नाशका उपायकरो। जिसका अहंभाव नष्टहुआ है उसको सब ठौर आकाशरूपहै और उसके हृदयमें संसारकी सत्ता कुछ नहीं फुरती । यद्यपि वह गृहस्थमें हो तौभी उसको यह प्रपंच शून्य वन भासताहै। जो अहंकारसहितहै और वनमें जाबैठे तौभी वह जनोंकेसमूहमें बैठा है क्योंकि; उसका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ। जिसने मनसहित षट्इंद्रियोंको वश नहीं किया उसको मेरी कथा के सुननेका अधिकार नहीं—वह पशुहै। जिस पुरुषने मनको जीताहै अथवा दिन प्रतिदिन जीतनेकी इच्छाकरताहै वह पुरुषहै और जो इंद्रियोंका विश्रामी अर्थात् क्रोध, लोभ, मोहसे संपन्नहै वह पशुहै और महाअंधतमको प्राप्तहोता है। हे रामजी ! जो पुरुष ज्ञानवान्है उसमें यदि कर्म की इच्छा दृष्टि आती है तो भी वह उस की इच्छा अनिच्छाही है और उसके कर्म अकर्मही हैं। जैसे भूना दाना फिर नहीं उगता पर उसका आकार भासताहै तैसेही ज्ञानवान् की चेष्टा दृष्टि आतीहै सो देखने मात्र है उसके हृदयमें कुछ नहीं। हे रामजी ! जो पुरुष कर्मेन्द्रियों से चेष्टा करताहै और हृदय में जगत् की सत्यता नहीं मानता उसे कोई बन्धन नहीं होता और जो जगत् को सत्य मानकर थोड़ा भी कर्म करता है तो भी वह फैलजाता है—जैसे थोड़ी अग्नि जागकर

बहुत होजाती है—ज्ञानीको नहीं होता। उसकी प्रारब्ध शेषहै सो भी हृदय में नहीं मानता और जानता है कि, ये कर्म शरीरके हैं आत्मा के नहीं। जैसे कुम्हार के चक्रका वेग उतरता जाताहै तैसेही प्रारब्ध वेग उसका उतरता जाताहै और फिर जन्म नहीं होता क्योंकि; उसको अहंकाररूपी चरण नहीं लागता। इससे अहंकार का नाश करो; जब अहंकार नाश होगा तब सब के आदिपद की प्राप्ति होगी जो परम निर्वाणपद है और जिसमें निर्वाण भी निर्वाण होजाताहै। हे रामजी! जब वर्षाकाल होता है तब बादल होते हैं जब शरत्काल आता है तब बादल जाते रहते हैं। हे रामजी! जब तक अज्ञानरूपी वर्षाकाल है तबतक अहंकाररूपी वर्षा है और जब विचाररूपी शरत्काल आवेगा तब अहंकाररूपी मेघ जाते रहेंगे और आत्मरूपी आकाश निर्मल भासेगा। हे रामजी! जैसे मलिन आदर्श में मुखका प्रतिबिम्ब उज्ज्वल नहीं भासता और जब मैल निवृत्त होता है तब मुखका प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष भासता है तैसेही; अहंकाररूपी मैलसे जीव ढांपा हुआ है इससे आत्मा नहीं भासता; जब अहंकाररूपी मैल निवृत्तहो तब आत्मा ज्योंकात्यों भासे। जैसे समुद्रमें नानाप्रकार के तरंग उठते हैं तो सम्यक्दर्शी को सब जलमय दृष्टि आते हैं और भूषण में सुवर्णही भासता है तैसेही नानाप्रकारके प्रपंच उस समदर्शीको चैतन्यघन आत्माही दृष्टिआते हैं—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं देखता। वह सब से पत्थरकी शिलावत् होजाता है क्योंकि; उसका अहंकार नष्ट होगया है और जो अहंकार संयुक्त है और क्रियाका त्यागकर आपको सुखी मानता है वह मूर्ख है। जैसे कोई लकड़ी लेकर आकाशको नाश किया चाहे तो वह नष्ट नहींहोता तैसेही क्रिया के त्यागसे दुःख नष्ट नहीं होते—जब सम्पूर्ण संसार क्रिया के बीज अहंकार का नाशहो तब अक्रिय आत्मस्वरूप को प्राप्त होताहै। जैसे तांबा अपने ताम्रभाव को त्यागकर सुवर्ण होताहै तैसेही जब जीव अपना जीवत्वभाव त्यागे तब आत्मा होता है और जैसे तेलकी बूंद जलमें फैलजाती है और नानाप्रकार के रंग जलमें भासते हैं तैसेही ब्रह्ममें अहंता प्रकार की कलना दिखाई देती हैं—आत्मा ब्रह्म निराकार, निरञ्जन इत्यादिक नाम भी अहंकार से शुद्धमें कल्पे हैं; वह अफुर केवल सत्तामात्र है और सत्य और असत्यकी नाईं स्थित है। हे रामजी! संसाररूपी मिरच का पेड़है अथवा संसाररूपी फूलहै उसमें अहंतारूपी सुगन्धिहै; जब अहंता उदयहोती है तब संसार क्षणमें उदय होता है और अहन्ता के नाश हुये संसार क्षणमें नाश होजाता है। क्षणमें उदय होता है और क्षणमें नाश होता है सो अहंताका होनाही उदय होने का क्षणहै और अहंता का लीन होना नाश का क्षणहै। हे रामजी! जैसे मृत्तिका में जल के संयोगसे घट बनताहै तब मृत्तिका घटसंज्ञा पाती है; तैसेही पुरुषको जब अहंकार का संग होता है तब संसारी होता है और जीवसंज्ञा पाताहै और देश,

काल, पृथ्वी, पर्वत आदिक दृश्यको प्रत्यक्ष देखताहै; और जब अहंता नाश होती है तब सुखी होताहै; निदान जो कुछ मानरूप और उसका अर्थ है सो अहन्तासे भासताहै और जब अहन्ता को त्यागे तब शान्तरूप आत्माही शेष रहता है । जैसे पवन से रहित दीपक प्रकाशताहै तैसेही अहंकाररूपी पवनसे रहित जीव अपने स्वभाव में स्थित होकर आनन्दपदको प्राप्त होता है; अनादिपद पाता है; सबका अपना आप होताहै और देश, काल, वस्तु अपने में देखता है । हे रामजी ! जबतक अहन्ताका नाश नहीं होता तबतक मेरे वचन हृदयमें स्थित न होंगे । जैसे रेतमें तेल निकलना कठिन है तैसेही जिस पुरुषने अपना स्वभाव नहीं जाना उसको ब्रह्मकापाना कठिनहै । अपना स्वभाव जानना अतिसुगमहै । जब अहंताका त्यागकरे कि, न मैं हूं और न जगत् है तब कल्याणहोताहै और तभी अहन्ताका नाशहोताहै और कोई भ्रम नहीं रहता । जैसे रस्सी के जानेसे सर्पभ्रम निवृत्त होजाताहै । जबतक अहंता फुरती है तबतक उसको उपदेश नहीं लगता । जैसे आरसी पर मोती नहीं ठहरता तैसेही जिसको अहन्ता फुरती है उसके हृदय में मेरे वचन नहीं ठहरते और जिसका हृदय शुद्धहै उसको मेरे वचन लगते हैं । जैसे तेलकी बूंद जल में फैलजाती है तैसेही उसको थोड़े वचन भी बहुत लगते हैं । हे रामजी ! इसी पर एक पुरातन इतिहास कहताहूं सो तुम सुनो; वह मेरा और काकभुशुण्डि का संवाद है । एक समय मैं सुमेरु पर्वत के शिखर पर गया तो वहां भुशुण्डि बैठा था, उससे मैंने प्रश्न किया कि, हे अंग ! ऐसा भी कोई पुरुष है जिसकी आयुर्बल बड़ी हो और ज्ञानसे शून्य रहा हो ? जो उसको देखा हो तो कहो । भुशुण्डि बोले, हे भगवन् ! एक विद्याधर हुआ है जिसकी बड़ी आयुर्बलथी और जिसने बहुत विद्या अध्ययन कीथी । वह सत्कर्मों में बहुत विचरता था; उसने बहुत भोग भोगे थे और चारयुगपर्यन्त जप, तप, नियम आदिक सकामकर्म किये थे । जब चतुर्थयुग का अन्त हुआ तब उसको विचार उपजा और जितने भोग सुखरूप जानकर भोगता था उनमें उसको वैराग्य हुआ; तब उनको त्यागकर लोकालोक पर्वत पर जा विचरा और विचारा कि; यह संसार असाररूप है किसी प्रकार इससे छूटूं । इसमें वारंवार जन्म और मरण है, और कोई पदार्थ सत्य नहीं, किसका आश्रय करूं ? ऐसे विचारकरके वह विकृत आत्मा पुरुप सुमेरु पर्वत पर मेरेपास आया और शिर नीचाकरके मुझे दण्डवत् की । मैंने भी उसका बहुत आदर किया तब हाथ जोड़कर उसने कहा, हे भगवन् ! इतने कालपर्यन्त मैं विषयों को भोगता रहा परन्तु मुझे शांति न हुई इससे मैं दुःखी हूं तुम कृपा करके शांति का उपाय कहो । हे भगवन् ! चित्ररथ के बाग में जिसमें सदाशिवजी रहते हैं और जहां बहुत कल्पवृक्ष हैं उसमें मैं चिरकाल रहा; फिर विद्याधरों के स्वर्ग में रहा; फिर

इन्द्र के नन्दनवन और सुवर्ण की कन्दरामें रहकर सुन्दर अप्सराओं के साथ स्पर्श किया और विमानपर बहुत आरूढ़ रहाहूं। हे भगवन्! बहुत स्थान मैंने देखे हैं और तप, दान, यज्ञ, व्रतभी बहुत किये हैं। सहस्र वर्षतक ऐसे सुन्दर रूप देखता रहाहूं जिनकी सुन्दरता नहीं कहसक्ता तौ भी नेत्रोंको तृप्ति न हुई; बहुत सुगन्धि सूंघी पर नासिका को तृप्ति न हुई; रसना से भोजन बहुत प्रकार के खाये पर शांति न हुई बल्कि तृष्णा बढ़तीगई; कानों से बहुतप्रकार शब्द और रागसुने और त्वचा से बहुत स्पर्श किये हैं तौभी शांति न हुई। हे भगवन्! मैं जिसओर सुख जानकर प्रवेश करूं उसीओर दुःख प्राप्त होवे—जैसे मृग क्षुधा निवारने के लिये घास खाने जाता है और राग सुनकर मूर्च्छित होजाता है तब उसको वधिक पकड़ लेता है तो मृग दुःख पाता है तैसेही मैं सुखजानकर विषयोंको ग्रहण करताथा और बड़ेदुःखोंको प्राप्तहोता था हे भगवन्! मैंने चिरकालतक पांचों इन्द्रियों और छठेमनसहित दिव्यभोग भोगे हैं जो कुछकहेनहीं जाते परन्तु मुझे शान्ति न हुई और न इन्द्रियां तृप्तहुईं। जैसे घृतसे अग्नि तृप्त नहीं होती तैसेही दिन दिन प्रति तृष्णा वृद्ध होती जाती है और हृदय जलाती है। जो पुरुष इन भोगों के निमित्त यत्न करता है कि, मैं इनसे सुखीहूंगा वह मूर्खहै और उसको धिक्कार है—वह समुद्रमें तरंगका आश्रय करताहै। ये तबतक सुखरूप भासतेहैं जबतक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है; जब इन्द्रियों से विषयों का वियोग होता है तब महादुःख को प्राप्तहोता है क्योंकि; तृष्णा हृदय में रहती है और भोग जातेरहते हैं तब जो २ विषय भोगेहोते हैं वे दुःखदायक होजाते हैं। हे भगवन्! मैंने इसीसे बहुतदुःख पायाहै। यद्यपि इन्द्रियां कोमलहैं तौभी सुमेरुकी नाईं कठिनहैं। कोमल भासती हैं परन्तु ऐसी हैं जैसे सर्पिणी और खड्गकी धार कोमल होती है पर स्पर्शकियेसे मरजाताहै। जैसे जलमें नाव पवनसे भ्रमतीहै; तैसेही अज्ञानरूपी नदी में पवनरूपी इन्द्रियों ने मुझे दुःखदियाहै। हे भगवन्! ऐसेभी मैंने देखे कि, सारादिन मांगते रहे और भोजन खानेकेनिमित्त इकट्ठानहींहुआ और ऐसेभी देखे हैं कि, उन्होंने ब्रह्मासे आदि काष्ठपर्य्यन्त सबभोग एकदिन में भोगे हैं पर जिसको दिनमें भोजनमात्रभी प्राप्त नहींहोता और जो सबमें इन्द्रियोंके इष्टरूप भोगताहै उनदोनोंको भस्महोते देखाहै और भस्म दोनों की तुल्यहोजाती है—विशेषता कुछनहीं। इन्द्रियों के बंधनमें वारंवार जन्मते मरते अज्ञानी शांति नहीं पाते। जो तुम कहो कि, तूतो सुखी दृष्टिआता है तुझे क्या दुःखहै तो हे भगवन्! यह दुःख देखनेमें नहीं आता परन्तु मेरे हृदयकी इन्द्रियां जलती हैं। हे भगवन्! ब्रह्माके लोक में मैंने बड़े सुख देखेहैं परन्तु वहां भी दुःखीही रहाहूं क्योंकि; क्षय और अतिशय वहांभी रहती है इससे वेभी जलते हैं। इन्द्रियोंका शस्त्रसे भी कठिन घावहै जो नानाप्रकारकी संसारकी विषमता दिखाती हैं और उनमें सर्वदा

रागद्वेष रहता है जिससे मैं बहुत जलतारहा हूं। इससे मुझसे वही उपाय कहिये जिस से मैं शांतिपाऊं। वह कौन सुख है जिससे फिर दुःखी न होऊं और जिसका कदाचित् नाशनहीं और जो आदि अन्तसे रहित है। जो उसके पाने में कष्ट है तौभी मैं यत्नकरताहूं कि; किसी प्रकार प्राप्तहो। हे मुनीश्वर! इन्द्रियों ने मुझे बड़ाकष्ट दिया है। ये इन्द्रियां गुणरूपी वृक्षको अग्निहैं; शुभगुणोंको जलाती हैं और विचार, धैर्य्य, सन्तोष और शांति आदिक गुणरूपी वृक्षके नाशकरनेवाली हैं। हे भगवन्! इन्होंने मुझे दुःखदिया है। जैसे मृगका बच्चा सिंहके वशपड़े तो वह उसको मर्दन करताहै; तैसेही इन्द्रियों ने मुझे मर्दनकिया है। हे भगवन्! जिस पुरुषने इन्द्रियोंको वशकिया है उसका पूजन सब देवता करते हैं और उसके दर्शनकी इच्छाकरते हैं और जिसने मनको नहीं वश किया उसको दीन जानते हैं। जिस पुरुष ने इन्द्रियोंको वश किया है वह सुमेरु पर्वतकी नाईं अपनी गम्भीरतामें स्थितहै और जिसने इन्द्रियां वश नहींकीं वह तृण की नाईं तुच्छ है। जिसको इन्द्रियों के अर्थ में सदा तृष्णा रहती है वह पशुहै; उसको मेरा धिक्कार है। हे मुनीश्वर! जो बड़ा महन्त भी हो, यदि उसके इन्द्रियां वश नहीं तो वह महानीचहै। हे मुनीश्वर! इन्द्रियोंने मुझे बड़ा दुःखदिया है। जैसे महाशून्य उजाड़में चोर लूटलेते हैं तैसेही इन्द्रियोंने मुझे लूटलिया है। इन्द्रियांरूपी सर्पिणी में तृष्णारूपी विष है इससे इनमें साराविश्व मोहित देखपड़ताहै और कोई बिरला इन से बचाहोगा। ये इन्द्रियां दुष्ट हैं जो अपने २ विषय को लेती हैं और को नहीं देतीं और तुच्छ और जड़हैं। जैसे बिजलीका चमत्कार होता है और फिर छिपजाता है तैसेही इन्द्रियों के सुख क्षणमात्र दिखाई देते हैं और फिर छिपजाते हैं। जब तक इन्द्रियों और विषयोंका संयोग है तब तक सुखभासता है और जब इनका वियोग होताहै तब दुःख उत्पन्नहोताहै क्योंकि; तृष्णारहती है। एकसेना है उसमें इन्द्रियों के भोग उन्मत्त हाथी हैं; तृष्णारूपी जंजीर है; इन्द्रियांरूपी रथ हैं; नानाप्रकारके विषय घोड़े हैं और संकल्प विकल्परूपी खड्गों का धारनेवाला अहंकार है और यह जो क्रिया अहंकार सहित होती है सो शस्त्रों के समूह हैं। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने इस सेनाको नहीं जीता वह मोहरूपी अन्धेकुयें में गिरके कष्टपाता है और जिसने जीताहै वह परमसुखको प्राप्तहोता है। हे मुनीश्वर! ये इन्द्रियां भोगकी इच्छारूपी खाईं में अहंकाररूपी राजाको डालदेती हैं और उसमें से निकलना कठिन होताहै। जिस पुरुषने इनको जीता है उसकी त्रिलोकी में जय होती है और जिसने नहीं जीता वह महादीनता को प्राप्त होता है और जन्म जन्मान्तर पाता है। इन इन्द्रियों में रजोगुण और तमोगुण रहता है। ये तब तक दाह देती हैं जब तक रज तम वृत्ति है। यहभी मनकी वृत्ति है। जब इनका अभाव होताहै तब शांति प्राप्तहोती

है। यह शोध करके देखा है कि, इन्द्रियां तप, यज्ञ, व्रत, तीर्थ और किसी औषधसे वश नहीं होतीं और न इनके वश करने का कोई उपाय है; केवल सन्त के संगसे निर्वासी हो तब वश होती हैं। इस से मैं तुम्हारी शरणहूं; कृपाकरके मुझे आपदा के समुद्र से निकालो क्योंकि; मैं डूबताहूं। मैं इस संसारसमुद्रमें दीनहूं, तुम पारकरो और तुम्हारी महिमा सन्तों ने भी सुनीहै। हे भगवन्! जो कोई आयुर्बलपर्यंत विषय के दिव्यभोग भोगतारहे और इनसे शांतिचाहे तो न प्राप्तहोगी। बड़े सुख दुःख समानहैं। आकाश में उड़नेवालेभी इन्द्रियों को वश नहीं करसक्ते इससे दीन और दुःखी रहते हैं। कोई पुरुष वीर्यवान् हो और फूलकी नाईं महामत्त हाथीके दांतको चूर्ण करसक्ता हो परन्तु इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करना महाकठिनहै। हे मुनीश्वर! इतने कालतक मैं महाअध्यात्म तप से दुःखी रहाहूं। तुम कृपाकरके निकालो, मैं तुम्हारी शरण हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरवैराग्यवर्णनंनाम शताधिकैकत्रिंशतितमस्सर्गः १३१॥

भुशुण्डि बोले, हे वशिष्ठजी! जब इसप्रकार विद्याधर ने मेरे आगे प्रार्थना की तो मैंने कहा, हे अंग! तू धन्य है। अब तू जागा है। जैसे कोई पुरुष अन्धे कुयें में पड़ाहो और उसकी इच्छा हो कि; निकलें तो जानिये कि, निकलेगा। हे विद्याधर! मैं उपदेश करताहूं सो तू अंगीकार करियो और सत्य जानके मेरे वचनों में संशय न करना। जो सबके सारवचन हैं सो तुझसे कहता हूं। जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिम्ब को यत्नबिना ग्रहण करती है तैसेही मेरे वचन शीघ्रही तेरे हृदयमें प्रवेशकरेंगे। जिसका अन्तःकरण शुद्धहोता है उसको सन्त उपदेश करें अथवा न करें उसको सहज वचनही उपदेश हो लगते हैं। जैसे शुद्धआदर्श प्रतिबिम्बको यत्न विना ग्रहण करता है तैसेही मेरे वचनों को तू धारलेगा तो तेरे दुःख नाश होजावेंगे और परमानन्द को जो अविनाशी सुख और आदि अंत से रहितहै सो प्राप्तहोगा। इन्द्रियों के सुख आगमापायी हैं सो दुःखके तुल्य हैं–इनसे रहित परमसुखहै। हे विद्याधरों में श्रेष्ठ! जो कुछ तुझे सुखरूप दृष्टि आवे उसका त्यागकर तब तुझे परमसुख प्राप्तहोगा। सब दुःखोंका मूल अहंभाव है; जब अहंकार नाश हो तब शान्ति होगी। संसार का बीजभी अहंकार है और संसार मृगतृष्णाके जलवत् है। तब तक संसार नष्ट नहीं होता जब तक अहंतारूपी संसार का बीज है; जब अहंतारूपी बीज नष्टहोजावे तब संसार भी निवृत्त होजावे। संसाररूपी वृक्षके सुमेरु आदिक पर्वत पत्र हैं; तारागण कली और फूल हैं; सातों समुद्र रस हैं; जन्म मरण बेलहैं; सुख दुःख फल हैं और वह आकाश, दिशा, पातालको धारके स्थित हुआहै। अहंकाररूपी वृक्ष पृथ्वीपर उत्पन्न हुआहै; अहंकारही उसका बीज है और वृक्ष मिथ्या भ्रममात्र असत्य और सत्यकी नाईं स्थित हुआ

है। इससे अहंकार के बीजका नाशकरो और निरहंकाररूपी अग्नि से इसको जलाओ तब अत्यन्त अभाव होजावेगा । यह भ्रमकरके भयदेता है । जैसे रस्सी में सर्प भ्रम और भय देताहै इससे निरहंकाररूपी अग्निसे इसका नाशकरो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसाररूपवृक्षवर्णनंनामशताधिकद्वात्रिंशतितमस्सर्गः १३२ ॥

भुशुण्डि बोले, हे विद्याधर ! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होताहै सो सुनो । ब्रह्मविद्याशास्त्रके सुनने और आत्मविचार से यह उपजता है। उस आत्मज्ञानरूपी अग्नि से संसाररूपी वृक्षको जलाओ । यह आगेभी नहीं था, अनहोताही उदय हुआहै और मनके संकल्पसे हुयेकी नाईं स्थितहै । जैसे पत्थरमें शिल्पी कल्पता है कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी सो हुई कुछ नहीं; तैसेही मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियां कल्पता है । जब मनका नाशकरोगे तब संसारभ्रम मिटजावेगा; आत्मविचार करके परमपद को प्राप्तहोगे और अपना आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासेगा । इससे अहंताको त्याग करके अपने स्वरूप में स्थित होरहो । हे विद्याधर ! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीजसे उपजाहै; उसको जब ज्ञानरूपी अग्निसे जलाइये तब फिर यह जगत् न उपजेगा । यदि इसको विचार करके देखिये तब अहं त्वं नहीं रहता । हे विद्याधर ! यह अहं त्वं मिथ्या है—इनके अभाव की भावना करो, यही उत्तम ज्ञान है । हे साधु ! जब गुरुके वचन सुनकर उनके अनुसार पुरुषार्थ करे तब परमपद को प्राप्त होताहै और जय होती है । हे विद्यारूपी कन्दरा के धारनेवाले पर्वत और विद्यारूपी पृथ्वी के धारनेवाले ! यह संसाररूपी एक आडम्बर है और उसके सुमेरु ऐसे कई थम्भे हैं जो रत्नोंकी पंक्तिसे जड़ेहुये हैं और वन, दिशा, पहाड़, वृक्ष, कन्दरा, वेताल, देवता, पाताल, आकाश इत्यादिक ब्रह्मांड उसके ऊपर स्थितहैं । रात्रि, दिन, भूत, प्राणी और इन के जो घर हैं सो चौपड़ के खाने हैं; जो जैसा कर्म करताहै वह उसके अनुसार दुःख सुख भोगताहै । ऐसेही संपूर्ण प्रपंच जो क्रियासंयुक्त दिखाई देताहै सो भ्रमसेसिद्धहै—इससे मिथ्याहै । जैसे स्वप्नेकी सृष्टि संकल्प से भासतीहै तैसेही यह सृष्टिभी भ्रमसेभासती है और अज्ञानकी रचीहुईहै; आत्माके अज्ञानसे भासतीहै और आत्माके ज्ञानसे लीन होजाती है । जब सृष्टिहै तबभी परमात्मतत्त्वहीहै और जब सृष्टिहोगी तबभी परमात्मतत्त्वही होगा; आगेभी वहीथा और जो कुछ प्रपंच तुझे दृष्टिआता है सो शून्य आकाशहीहै । त्रिगुणमय प्रपंच गुणोंका रचाहुआ अपने स्वरूप के प्रमाद से स्थित हुआहै और आत्मज्ञानसे शून्य होजावेगा । जब प्रपंचही शून्यहुआ तब आत्मा और अनात्मा का कहना भी न रहेगा और पीछे जो शेषरहेगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है और तेरा अपना आपहै, उसमें स्थित होरहु और द्वैतका त्यागकर कि, न मैंहूं और न

जगत् है। जब तू ऐसा होगा तब तेरी जयहोगी। आत्मपद सबसे उत्तमहै जब तू आत्मपद में स्थित होगा तब सबसे उत्तम होगा और तेरी जयहोगी—इस से आत्मपद में ही स्थित होरह॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंसारआडम्बरउत्पत्ति-
र्नामशताधिकत्रयस्त्रिंशतितमस्सर्गः १३३॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह प्रपंचभी आत्मा का चमत्कार है आत्मा शुद्ध चेतन है जिस में जड़ और चेतन स्थितहैं और वह सबका अधिष्ठान है सो सत्तामात्र तेरा अपना आप है और अहं त्वं शब्द—अर्थ से रहित आत्मत्वमात्र है पर सत्यस्वरूप होके असत्यकी नाईं स्थित है। हे विद्याधर! तू इस जड़ और चेतन से अबोधवान् होरह। जब तू अबोध होगा तब शान्त और चिद्घन होगा। ये जो जड़ और चेतन हैं इन दोनोंका परमार्थ चेतनके आगे अन्तर रहता है; यद्यपि वह अदृश्यहै तौ भी इनके भीतरही रहताहै। जैसे समुद्रके भीतर वड़वाग्नि रहती है। इन जड़ चेतनरूप का कारण रूप वही है, उत्पत्ति भी उसीसे होतीहै और नाश भी वही करताहै। हे विद्याधर! जब ऐसे जाना कि; मैं चेतनरूपभी नहीं और जड़भी नहीं तो पीछे जो रहेगा वह तेरा स्वरूपहै। जब तेरे भीतर इन जड़ और चेतन दोनोंका स्पर्श नहीं हुआ तब सबके भीतर जो चेतन है वही ब्रह्म तुझे भासेगा और विश्व आत्मामें कुछ नहीं हुआ। जैसे सूर्यकी किरणोंका चमत्कार जलाभास होता है तैसेही शुद्ध चेतन का चमत्कार विश्वहो भासताहै। हे अंग! जैसे भीतिपर पुतलियां लिखी होती हैं सो भीतिसे कुछ भिन्न नहीं, चितेरे ने लिखी हैं; तैसेही शून्य आकाश में चित्तरूपी चितेरे ने विश्वरूपी पुतलियां कल्पी हैं सो आत्मरूपी भीतिसे भिन्न नहीं। जैसे सुवर्ण में भूषण कल्पितहै सो सुवर्ण से भिन्न नहीं,तैसेही आत्मामें अज्ञान से विश्व देखते हैं वह आत्मासे भिन्न नहीं,जगत्,ब्रह्म, आत्मा, आकाश, देश, काल सब उसी तत्त्वकी संज्ञाहैं। वही शुद्ध चेतन आकाशहै जिसका चमत्कार ऐसे स्थितहै। उसी तत्त्वमें तूभी स्थित होरह। यह जगत् ऐसे है जैसे दूरदृष्टिसे आकाशमें बादल हाथीकी सूंड़से भासते हैं। यह जो अहं त्वं रूप जगत् है सो अबोध से भासता है और बोधकरके लीन होजाताहै—जैसे मरुस्थलमें सूर्यकी किरणोंसे जल भासताहै और गन्धर्वनगर है तैसेही यह जगत् है—इससे इसका त्याग करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचित्तचमत्कारोनाम
शताधिकचतुस्त्रिंशतितमस्सर्गः १३४॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! यह स्थावर जंगम जगत् सब आत्मासे उत्पन्नहुआ है और आत्माही में स्थितहै और आत्माही विश्वमें स्थितहै। जैसे स्वप्नेका विश्व स्वप्ने

वाले में स्थितहै । आत्मा किसीका कारण नहीं क्योंकि; अद्वैत है । हे अंग ! जो तू उस पद के पानेकी इच्छा करता है तो तू ऐसे निश्चयकर कि, न मैंहूं और न यह जगत् है । जब तू ऐसा होगा तब आत्मपद की प्राप्ति होगी जो देश, काल और वस्तु के प्रच्छेद से रहित है और सर्व वही परमात्मतत्त्व स्थित है । जगत् का कर्त्ता संकल्पही है क्योंकि; संकल्प से जगत् उत्पन्न होता है । जैसे पवन से अग्नि उत्पन्न होता है और पवनही से दीपक निर्वाण होता है, तैसेही जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है तब संसार उदय हो भासता है और जब संकल्प अन्तर्मुख होता है तब आत्मपद प्राप्त होता है और सर्व प्रपंच लय होजाता है । इससे संसार की नानाप्रकार की संज्ञा फुरनेसेही होती हैं स्वरूप में कुछ नहीं, न सत्य है; न असत्य है; न स्वतः है; न अन्यहै । यह सब कलनामात्र है सत्, असत् और स्वतः, अन्य का अभाव हुआ तो वहां अहं त्वं कहां पाइये ? वह है नहीं और बालक के यक्षवत् भ्रममात्रहै । हे साधो ! जहां अहं त्वं नष्ट होगये तहां जो सत्ता है सो परमपद है और जहां जगत् है वहां विचार से लीन हो-जाता है । वास्तव में पूछो तो ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं—नाममात्र दोहैं—जैसे घट और कुंभ हैं—परन्तु भ्रमसे नानात्व भासते हैं । जैसे समुद्र में आवर्त्त और तरंग उठतेहैं सो जलसे कुछ भिन्न नहीं और पवनके संयोग से आकार भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् कुछ भिन्न नहीं; संकल्पके फुरने से नानाप्रकार का जगत् भासता है । हे अंग ! संकल्प के साथ मिलकर चित्त जैसी भावना करता है तैसाही रूप अपना देखता है स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं परन्तु भावना से और का और देखता है । जैसे शुद्ध मणिके निकट कोई रंग रखिये तो तैसाही रूप भासता है और मणिमें कुछ रंग नहीं तैसेही चित्त शक्ति में कुछ हुआ नहीं और हुये की नाईं स्थित है । इससे अपने स्वरूप की भावना करो और जड़ चैतन्य को छोड़कर शुद्ध चैतन्य में स्थितहोरहो । जब ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित होगे तब तुम्हें उत्थानमें भी अपना स्वरूप भासेगा जैसे स्थिर समुद्र में तरंग फुरते हैं सो कारण रूप जलविना तो नहीं होते, तैसेही ब्रह्म कारणरूप विना जगत् नहीं परन्तु ब्रह्मसत्ता अकर्त्तारूप, अद्वैत और अच्युत है इसी से कहा है कि, अकर्त्ता है और जगत् अकारणरूपहै । जो जगत् अकारणरूप है तो न उपजता है और न नाशहोता है—मरुस्थल के जलवत् है । इसी से कहा है कि, जगत् कुछ वस्तु नहीं केवल अज, अच्युत और शान्तरूप आत्मतत्त्वही अखण्डित स्थित है और शिलाकोशवत् अचैत्य चिन्मात्र है । जिसके हृदयमें चिन्मात्रकी भावना नहीं उस मूर्ख से हमारा क्याहै ? हे साधो ! परमार्थ से कुछ नहीं बना पर जहां जहां मनहै तहां तहां अनेक जगत् हैं और तृण सुमेरु आदिक सब में जगत् है । जो विचार कर देखिये तो वहीरूपहै और कुछ नहीं । जैसे सुवर्णके जानेसे भूषण भी सुवर्ण भासते हैं तैसे

ही केवल सत्ता समानपद एक अद्वैतहै भिन्न कुछ नहीं और भिन्न भिन्न संज्ञाभी वही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्गोपसर्गोपदेशोनाम शताधिकपंचत्रिंशत्तमस्सर्गः १३५॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जब आत्मपद प्राप्त होता है तब ऐसी अवस्था होतीहै कि, जो नग्नशरीर हो और उसपर बहुत शस्त्रों की वर्षाहो तो उससे दुःखी नहीं होता और सुन्दर अप्सरा कंठसे मिले तो हर्षवान् नहीं होता; अर्थात् दोनोंही में तुल्य रहता है। हे विद्याधर! तबतक आत्मपद का अभ्यास करे जबतक संसार से सुषुप्त की नाईं न हो। अभ्यासही से आत्मपदको प्राप्तहोगा। जब आत्मपदकी प्राप्तिहोगी तब पंचभौतिक शरीर को ज्वर स्पर्श न करेंगे और यद्यपि शरीर में प्राप्ति भी हों तौ भी उसके भीतर प्रवेश नहीं करते। वह केवल शान्तपद में स्थित रहता है—जैसे जल में कमलको स्पर्श नहीं होता। हे देवपुत्र! जबतक देहादिकों में अभ्यास है तबतक आत्मा के प्रमाद से सुख दुःख स्पर्श करते हैं और जब आत्मा का साक्षात्कार होता है तब सब प्रपंच भी आत्मरूप होजाते हैं। हे विद्याधर! जैसे कोई पुरुष विषपान करता है तो उसको जलन और खाँसी होती है—यह अवस्था विषकी है—सो विष से और कुछ नहीं परन्तु नाम संज्ञा हुई है। विष न जन्मता, न मरता है और धूप खाँसी उसमें दृष्टि आतीहै तैसेही आत्मा न जन्मताहै और न मरता है और गुणों के साथ मिलकर अवस्था को प्राप्त हुआ दृष्टिआताहै। आत्मा जन्म मरण से रहित है पर गुणों के संकल्प के साथ मिलने से जन्मता मरता भासताहै और अन्तःकरण, देह, इन्द्रियादिक भिन्न भिन्न भासते हैं। हे साधो! यह जगत् भ्रमसे भासताहै; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस जगत् को गोपद की नाईं अपने पुरुषार्थ से लांघजाते हैं और जो अज्ञानी हैं उनको अल्प भी समुद्र समान होजाताहै। इससे आत्मपद पानेका यत्न करो जिस के जाने से संसारसमुद्र तुच्छ होजावे। वह आत्मतत्त्व सब में अनुस्यूत और सब से अतीतहै, उसके जाने से अन्तःकरण शीतल होजाता है और सब ताप नष्ट होजाते हैं। हे साधो! फिर उसका त्याग करना अविद्या है और बड़ी मूर्खताहै। हे साधो! ये सब पदार्थ ब्रह्मस्वरूपही हैं और जो ब्रह्मस्वरूप हुये तो मन, अहंकार, कलंकआदिक भी वही है—किसीसे किसीको कुछ दुःख सुख नहीं। हे विद्याधर! जब आत्मपद को जाना तब अन्तःकरण भी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे। जो संकल्पसे भिन्न भिन्न जानते हैं वे संकल्पके होते भी ब्रह्मस्वरूप भासेंगे। इससे निःसंकल्प होकर स्थितहो कि, न मैंहूं; न यह जगत् है और न इदम् है। इन शब्दों और अर्थोंसे रहित होकर स्थितहोरह कि; सब संशय मिटजावें। हे विद्याधर! जब तू ऐसे निरहंकार और निःसंकल्प होगा तब उत्थानकाल में भी बुद्धि, बोध, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, यश, कीर्त्ति इत्यादिक जो शुभाशुभ अवस्था हैं

सब आत्मस्वरूप भासेंगी और सर्वआत्मबुद्धि रहेगी। इनके प्राप्तहुयेभी केवल परमार्थ सत्तासे भिन्न न भासेगा—जैसे अन्धकारमें सर्पके पैरका खोज नहीं भासता क्योंकि; है नहीं; तैसेही तुमको सर्व अवस्था न भासेंगी—सर्व आत्माही भासेगा—और जितने कुछ भावरूप पदार्थ स्थितहैं सो अभाव होजावेंगे। हे अंग! जिस पुरुष ने विचारकर आत्मपद पानेका यत्नकियाहै वह पावेगा और जिसने कहा कि, मैं मुक्त होरहूँगा और ईश्वर मुझपर दया करेंगे वह पुरुष कदाचित् मुक्त न होगा। पुरुष के प्रयत्न विना कदाचित् मुक्ति न होगी। आत्मस्वरूपमें न कोई दुःखहै और न किसी गुणसे मिला हुआ सुखहै वह केवल शांतरूपहै। किसीसे किसीको कुछ सुख दुःखनहीं; न सुखहै और न दुःख है, न कोई कर्त्ता है और न भोक्ताहै केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशो नामशताधिकषट्त्रिंशत्तमस्सर्ग्गः १३६॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! जैसे कोई कल्पनाकरे कि; आकाशमें और आकाश स्थितहै तो मिथ्याप्रतीति है; तैसेही आत्मामें जो अहंकार फुरताहै सो मिथ्याहै। जैसे आकाशमें और आकाश कुछ वस्तुनहीं। परमार्थ तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है कि; उसमें आकाश भी स्थूलहै और ऐसा स्थूलहै कि, जिसमें सुमेरुआदिकभी सूक्ष्म अणुरूपहैं और राग द्वेष से रहित चेतन केवल शांतरूपहै—गुण और तत्त्व के क्षोभसे रहित हैं। हे देवपुत्र! अपना अनुभवरूपी चन्द्रमा अमृतका वर्षनेवालाहै। हे अंग! जितने दृश्यपदार्थ भासते हैं सो हुये कुछ नहीं। हे अंग! आत्मरूप अमृतकी भावनाकर कि, तू जन्म मरण के बन्धनसे मुक्तहो। जैसे आकाशमें दूसरे आकाशकी कल्पना मिथ्याहै तैसेही निराकार चिदात्मामें अहं मिथ्याहै; और जैसे आकाश अपने आपमें स्थितहै तैसेही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और अहं त्वं आदिकसे रहित है। जब उसमें अहं का उत्थान होताहै तब जगत् फैल जाताहै—जैसे वायु फुरने से रहित हुई आकाशरूप होजाती है तैसेही संवित् उत्थान अहं से रहित हुई आत्मरूप होजाती है और जगत् भ्रम मिट जाताहै। फुरनेसे जगत् फुरआयाहै; वास्तवमें कुछ नहीं। ज्ञानवान्‌को आत्माही भासता है और देश, काल, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, स्मृति, कीर्त्ति सब आकाशरूपहैं—ब्रह्मरूपी चन्द्रमाके प्रकाशसे प्रकाशते हैं। जैसे बादलोंके संयोग से आकाश धूम्रभावको प्राप्त होताहै; तैसेही प्रमादसे संवित् दृश्यभावको प्राप्त होती है परन्तु और कुछ नहीं होती। जैसे तरंग उठने से जल और कुछ नहीं होता और जैसे काष्ठ छेदे से और कुछ नहीं होता; तैसेही द्रष्टा से दृश्य भिन्न नहीं होता। जैसे केलेके थम्भ में पत्र विना और कुछ नहीं निकलता और पत्र शून्यरूपहै तैसेही क्रूररूप जगत् भासताहै परन्तु आत्मा से भिन्नहीं शून्यरूपहै। शीश, भुजा, नेत्र, चरण आदिक नानाप्रकार भिन्न भिन्न भासते हैं

परन्तु सब शून्यरूप केलेके पत्रोंकी नाईं भासते हैं और सब असाररूप हैं। हे विद्याधर! चित्तमें रागरूपी मलिनता है; जब वैराग्यरूपी झाड़ से झाड़िये तब चित्त निर्मलहो। जैसे दीवारपर चित्र लिखेहोते हैं तैसेही आत्मामें जगत् भासता है और देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य आदिक सब जगत् संकल्परूपी चितेरेने चित्रलिखेहैं; स्वरूपके विचार से निवृत्त होजाते हैं। जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है तब भाव अभावरूप जगत् फैलजाता है। जैसे जलमें तेलके बूंद फैलजाते हैं और जैसे बाँससे अग्नि निकल कर बाँसको दग्ध करती है तैसेही स्नेह इससे उपजकर इसीको खाते हैं। आत्मा में जो देश काल पदार्थ भासतेहैं यही अविद्या है—पुरुषार्थ से इसका अभावकरो। दो भाग साधुके संग और कथा सुनने में व्यतीत करो; तृतीयभाग शास्त्रका विचारकरो और चतुर्थभाग में आत्मज्ञानका आपही अभ्यासकरो। इस उपायसे अविद्या नष्ट होजावेगी और अशब्द और अरूपपदकी प्राप्तिहोगी। विद्याधरने पूछा, हे मुनीश्वर! भाग में जो उपायसे अशब्दपद प्राप्त होता है सो सबकाल क्याहै? नाम अर्थके अभाव हुये शेष क्या रहता है? भुशुण्डि बोले, हे विद्याधर! संसारसमुद्र के तरने को ज्ञानवानोंका सङ्गकरना और जो विकृत निर्वैर पुरुषहैं उनकी भलीप्रकार टहलकरना; इससे अविद्याका अर्द्धभाग नष्ट होगा; तीसरा भाग मनन करके और चतुर्थ भाग अभ्यास करके नष्ट होगा। जो यह उपाय न करसको तो यह युक्ति करो कि, जिसमें चित्त अभिलाषा करके आसक्तहो उसी का त्याग करो। एकभाग अविद्या इस प्रकार नष्टहोगी। तीनभाग शास्त्र विचार और अपने यत्नसे शनैःशनैः नष्ट होवेगी। साधुसंग; सत्शास्त्र विचार और अपना यत्न होवे तो एकही बार अविद्या नष्ट होजावेगी। यह समकाल कहे। एक एक के सेने से एक एक भाग निवृत्त होता है। पीछे जो शेष रहता है उसमें नाम अर्थ सब असत्रूप हैं और वे अजर, अनन्त, एकरूप हैं। संकल्पके उपजे से पदार्थ भासते हैं और संकल्पके लीनहुये लीनहोजाते हैं। हे विद्याधर! यह जगत् संकल्पसे रचाहै—जैसे आकाश में सूर्य निराधार स्थितहोता है तैसेही देश काल की अपेक्षा से रहित यह मननमात्र स्थित है। तीनों जगत् मनके फुरने से फुर आते हैं और मनके लय हुये लय होजाते हैं—जैसे स्वप्ने के पदार्थ जागेसे अभाव होजाते हैं। हे विद्याधर! ब्रह्मरूपी वनमें एक कल्पवृक्ष है जिसकी अनेक शाखाहैं। उसकी एक शाखा से जगत्रूपी पुरैनका फल है जिसमें देवता, दैत्य, मनुष्य, पशुआदिक मच्छरहैं। वासनारूपी रससे पूर्णमज्जा पहाड़है, पंचभूत मुखद्वारा उसका निकलनेका खुला मार्ग इत्यादिक सुन्दर रचना बनी हैं। उसमें त्रिलोकी का ईश्वर इन्द्र एक हुआ और गुरुके उपदेश से उसका आवरण नष्टहोगया। फिर इन्द्र और दैत्यों का युद्धहोनेलगा और इन्द्र अपनी सेनाको लेचला पर उसकी हीनता हुई इसलिये

वह भागा और दशोंदिशाओंमें भ्रमतारहा पर जहां जावे वहां दैत्य उसके पीछेचले आवें। जैसे पापी परलोकमें शोभा नहीं पाता तैसेही इन्द्रने जब शान्ति न पाई तब अन्तवाहक रूप करके सूर्यकी त्रिसरेणुमें प्रवेश करगया। जैसे कमल में भँवरा प्रवेशकरे तैसेही उसने प्रवेश किया तो वहां उसको युद्ध का वृत्तान्त विस्मरण होगया तब एक मन्दिरमें बैठा आपको देखताहुआ। जैसे निद्रासे स्वप्नसृष्टि भासआवे तैसेही उसने वहां रत्न और मणियों संयुक्त संवित् नगर देखा—वह उसमें गया और पृथ्वी, पहाड़, नदियां, चन्द्र, सूर्य्य, त्रिलोकी इसको भासनेलगी और उस जगत् का इन्द्र आपको देखा कि, दिव्य भोग और ऐश्वर्य से संपन्न मैं इन्द्र स्थितहूं। वह इन्द्र कुछ काल के उपरांत शरीर को त्याग के निर्वाण हुआ—जैसे तेलसे रहित दीपक निर्वाण होता है—तब कुन्दनाम उसका पुत्र इन्द्रहुआ और राज्य करनेलगा। फिर उसके एक पुत्र हुआ तब कुन्द भी इन्द्र शरीर को त्यागकर परमपद को प्राप्त हुआ और उसका पुत्र राज्य करनेलगा। फिर उसके भी एकपुत्र हुआ; इसीप्रकार सहस्रपुत्र होकर राज्य करतेरहे उन्हीं के कुल में यह हमारा इन्द्र राज्य करता है। इससे यह जगत् संकल्पमात्रहै और उस त्रिसरेणु में यह सृष्टिहै। इसलिये इस जगत् को संकल्पमात्र जानकर इसकी आस्था त्यागो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्रोपाख्यानेत्रिसरेणुजगत् वर्णनन्नामशताधिकसप्तत्रिंशतितमस्सर्ग्गः १३७॥

भुशुण्डिजी बोले, हे विद्याधर! फिर उनके कुलमें एक बड़ा श्रीमान् इन्द्र हुआ जो त्रिलोकी का राज्य करतारहा और फिर निर्वाण हुआ। उसके एक पुत्र था जिसको बृहस्पतिजी के वचनों से ज्ञानरूप प्रतिभा उदयहुई तब वह विदितवेद होकर स्थित हुआ; यथा प्राप्ति में इन्द्र होकर राज्य करनेलगा और दैत्यों को जीता। एक काल में वह किसी कार्य्य के निमित्त कमल की तन्तु में घुसगया तो वहां उसको नानाप्रकार का जगत् भासने लगा और अपनी इन्द्रकी प्रतिभा हुई इससे उसे इच्छा उपजी कि; मैं ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त होजाऊं और दृश्य पदार्थ की नाईं उसे प्रत्यक्षदेखूं। इसलिये वह एकान्त बैठकर समाधि में स्थितहुआ तो उसको भीतर बाहर ब्रह्म साक्षात्कारहुआ और उस प्रतिभाके उदयहोनेसे यह निश्चय हुआ कि; सर्व ब्रह्मही है और सबओर पूजने योग्यहै। सब उसीको पूजतेभीहैं और सर्व हैं। सर्वशब्द, रूप, अवलोक और मननसे भी रहित केवल शुद्ध आत्मपद है और सर्व ओर उसी के प्राणपद हैं। सब शीश और मुख उसीके हैं; सब ओर उसी के श्रवण हैं; सब ओर उसीके नेत्र हैं और सब में आत्मत्वसे वही स्थित होरहा है। सब इन्द्रियों और विषयों को वही प्रकाशताहै और सब इन्द्रियों से रहित है और आसक्तहुआ भी सबको धार रहा है। वह निर्गुण है और इन्द्रियों के साथ मिलकर गुणों का भोक्ता है और सब भूतों के भीतर

बाहर व्यापरहा है। सूक्ष्महै इससे दुर्विज्ञेयहै और इन्द्रियों का विषय नहीं। अज्ञानी को अज्ञान से दूरहै और आत्मत्वद्वारा ज्ञानीको ज्ञानसे निकट है और अनन्त, सर्वव्यापी केवल शान्तरूपहै जिसमें दूसरा कोई नहीं। घट, पट, दीवार, गाय, आवा, बरा, नरा, सबमें वही तत्त्व भासताहै और पर्वत, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, देश, काल, वस्तु सब ब्रह्महीहै—ब्रह्मसे भिन्न नहीं। हे विद्याधर ! इसप्रकार इन्द्रको ज्ञानहुआ और जीवन्मुक्त हुआ। तब वह सब चेष्टाकरै परन्तु अन्तःकरण में बन्धायमान न हो। जब कुछकाल बीता तब इन्द्र उस निर्वाण पदको प्राप्त हुआ जिसमें आकाश भी स्थूल है। फिर उस इन्द्र का एक बड़ा शूरवीर पुत्र सब दैत्योंको जीतकर देवता और त्रिलोकी का राज्य करनेलगा और उसको भी ज्ञान उत्पन्न हुआ। सत्शास्त्र और गुरुके वचनों से कुछकाल में वह भी निर्वाण हुआ तब उसका जो पुत्ररहा वह राज्य करनेलगा। इसीप्रकार कई इन्द्रहुये और राज्य करतेरहे और नानाप्रकार के व्यवहारों को देखतेरहे। फिर उसके कुलमें कोई पुत्र था उसको यह हमारी सृष्टि भासि आई तो वह भी ब्रह्मध्यानी हुआ और इस त्रिलोकी का राज्य करनेलगा और अबतक विश्व का इन्द्र वही है। हे विद्याधर ! इसप्रकार जो विश्वकी उत्पत्ति है सो संकल्पमात्र है और सब मैंने तुझसे कही हैं। पहिले उसको त्रिसरेणु में सृष्टिभासी; फिर उस सृष्टि के एक कमलकी तन्तु में भासी और फिर उस में कई वृत्तांत जो संकल्पमात्र थे उसने देखे और उस अणुमें अनेक अवस्था देखीं। हे विद्याधर ! पर वास्तवमें वह कुछ हुई नहीं। जैसे आकाश में नीलता भासती है और है नहीं; तैसेही यह विश्वहै। आत्मा में विश्व का अत्यन्त अभाव है। यह विश्व अहंभाव से उपजा है। जब अहंभाव फुरता है तब आगे सृष्टि बनती है और जब अहंका अभाव होता है तब विश्व कोई नहीं। इस विश्व का बीज अहंहै, इससे तू ऐसी भावनाकर कि, न मैं हूं और न जगत् है। जब ऐसी भावना की तब आत्माही शेष रहैगा जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपना आप है। हे विद्याधर ! इस मेरे उपदेशको अंगीकार कर॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसंकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनन्नामशताधिकअष्टत्रिंशतितमस्सर्ग्गः १३८॥

भुशुण्डि बोले, हे विद्याधर ! जब अहंका उत्थान होता है तब आगे सृष्टि बनकर भासताहै और जब अहंका अभाव होता है तब विश्व कुछ नहीं भासता केवल शुद्ध आत्माही भासता है। हे विद्याधर ! इन्द्र ने कहा कि, मैं हूं, उसको सूर्यकी किरणों के अणु में ऐसे अहंहुआ तो उसमें नाना विस्तार देखा और कष्ट पाया। जो उसको अहं न होता तो दुःख न पाता। दुःखरूपी वृक्षका अहंरूपी बीज है और आत्मविचार से इसका नाश होता है। जब अहं का नाश होता है तब आत्मपद का साक्षात्कार होता है और आत्मपद के साक्षात्कार हुये से प्रच्छन्न अहंका नाशहोता है। हे विद्याधर ! आत्मरूपी

एकपर्वतहै जिसपर आकाशरूपी वन है और उसमें संसाररूपी वृक्षलगाहै । उसमें वासनारूपी रसहै; अज्ञानरूपी भूमिसे उत्पन्नहुआहै; नदियां-समुद्र उसकी नाड़ी हैं; चन्द्रमा और तारे फूलहैं; वासनारूपी जलसे बढ़ताहै और अहंकाररूपी वृक्षकाबीज है । सुख-दुःखरूपी इसके फलहैं; आकाश इसकीडालेंहैं और जड़ पातालहै । तुमइस वृक्षको ज्ञानरूपी अग्निसेजलावो और अहंरूपी वृक्षके बीजका नाशकरो । हे विद्याधर ! एकखाई है जिसके जन्म मरणरूपी दो किनारे हैं; अनात्मरूपी उसमें जल है; वासनारूपी तरंगहैं और विश्वरूपी बुद्बुदे होतेभी हैं और मिटभीजातेहैं । शरीररूपी झाग है और अहंकाररूपी वायुहै; जब वायुहुई तब तरंग और बुद्बुदे सब होते हैं और जब वायुमिटगई तब केवल स्वच्छ निर्मलही भासता है । हे विद्याधर ! जो वायुहुई तौ जलसे भिन्न कुछ न हुआ और जो न हुई तौभी जलसे भिन्न कुछनहीं-जलही है; तैसेही अज्ञानके होते और निवृत्तहुयेभी आत्मपद ज्योंकात्यों है परन्तु सम्यक् दर्शनसे आत्मपद भासताहै और अज्ञानसे जगत् भासताहै । अहंकाहोनाही अज्ञानहै । जब अहंहुआ तब मम भी होताहै । सो 'अहंमम' नाम संसारकाहै, जब अहं मम मिटता है तब जगत्का अभाव होताहै । अहंकेहोते दृश्यभासताहै और दृश्यमें अहं होताहै; इससे संवेदनको त्यागकर निर्वाणपदमें प्राप्तहो । इतनाकह भुशुण्डिजी ने मुझसे कहा कि, हे वशिष्ठजी ! इसप्रकार जब मैंने विद्याधरको उपदेशकिया तो वह समाधिमें स्थितहुआ और परम निर्वाणपदको प्राप्तहुआ । जैसे दीपक निर्वाण होजाताहै तैसेही उसका चित्त क्षोभ से रहित शान्ति को प्राप्तहुआ । हे ब्राह्मण ! उसका हृदय शुद्ध था इसकारण मेरे वचन शीघ्रही उसके हृदयमें प्रवेशकरगये । जब वह समाधि में स्थित हुआ तो मैंने उसको वारंवार जगाया परन्तु वह न जागा-जैसे कोई जलता जलता शीतल समुद्रमें जाय बैठे और उससे कहिये कि, तू निकल तो वह नहीं निकलता, तैसेही संसार तापसे जलता हुआ जब आत्मसमुद्र को प्राप्त होता है तब वह अज्ञानरूपी संसार के प्रवाह को नहीं देखता । हे वशिष्ठजी ! जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है उसको थोड़े वचन भी बहुतहो लगते हैं । जैसे तेलकी एक बूंद जलमें बहुत फैल जातीहै तैसेही जिसकाअन्तःकरण शुद्धहोताहै उसको थोड़ावचन भी बहुत होकर लगताहै और जिसका अन्तःकरण मलिन होता है उसको वचन नहीं लगते । जैसे आरसीपर मोती नहीं ठहरता तैसेही गुरु शास्त्र के वचन उसको नहीं लगते । जब विषयों से वैराग उपजै तब जानिये कि; हृदय शुद्धहुआ है । हे वशिष्ठजी ! जब मैंने विद्याधर को उपदेश किया तब वह शीघ्रही आत्मपदको प्राप्त हुआ क्योंकि; उसका चित्त निर्मल था । हे मुनीश्वर ! जो तुमने मुझसे पूछा था सो कहा कि, उस विद्याधर को मैंने ज्ञान से रहित चिरकाल जीतादेखा । इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ऐसे कहकर कागभुशुण्डि चुपहोरहा और मैं

नमस्कारकरके आकाश मार्गसे अपने घरआया। हे रामजी! मेरे और कागभुशुण्डि के इस संवाद को एकादशचौकड़ी युग बीते हैं। हे रामजी! यह नियम नहीं है कि; थोड़े काल में ज्ञान उपजै वा बहुत कालमें यह हृदयकी शुद्धताकी बातहै; जिसका हृदय शुद्धहोताहै उसको गुरु और शास्त्रोंका वचन शीघ्रहीलगताहै—जैसे जल नीचेको स्वाभाविक जाताहै। हे रामजी! इतना उपदेश जो तुमको मैंने क्रमसे कियाहै उसका तात्पर्य यही है कि; फुरने को त्यागकरो कि; न मैं हूं और न कोई जगत् है—तब पीछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहेगा जो सबका अपना आप है और उसका साक्षात्कार तुमकोहोगा। जैसे मलिनदर्पण में मुखनहीं दीखता तैसेही आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलसे ढपा है; जब इसका त्यागकरो तब आत्मपदकी प्राप्तिहोगी और जगत् भी अपना आप भासेगा। आत्मा से कुछ भिन्न नहीं क्योंकि; केवल आत्मत्वमात्र है और जो कुछ भासताहै उसे मृगतृष्णा के जलवत् और बन्ध्या के पुत्रवत् जानो, यह जगत् आत्मा के प्रमाद से भासता है—जैसे आकाशमें नीलता भासती है पर है नहीं; तैसेही जगत् प्रत्यक्ष भासता है और है नहीं। जैसे रस्सीमें सर्प मिथ्याहै तैसेही आत्मा में जगत् मिथ्या है। जब आत्माका ज्ञान होगा तब जगत् का अत्यन्त अभाव होगा और केवल आत्मत्वमात्र अपना आप भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभुशुण्डिविद्याधरोपाख्यान
समाप्तिर्नामशताधिकनवत्रिंशतितमस्सर्ग्गः १३९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम अहंवेदना से रहितहोरहो। संसाररूपी वृक्षका बीज अहंही है। वासना से शुभअशुभरूप कर्मका सुखदुःखफल है और वासनाही से प्रफुल्लित होताहै; इससे अहंभावको निवृत्तकरो। जब अहंफुरता है तब आगे जगत् भासता है; जब अहंतासे रहितहोगे तब जगत् भ्रम मिटजावेगा। अहंता आत्मबोधसे नष्ट होता है। आत्मबोधरूपी खुंभारी से उड़ाया अहंतारूपी पाषाण न जानोगे कि, कहां गया और सुवर्ण पाषाण तुल्य तुमको होजावेगा शरीररूपी पत्रपर अहंतारूपी अणु स्थित है; जब बोधरूपी वायुचलेगी तब न जानोगे कि, कहांगया। शरीररूपी पत्रपर अहंतारूपी बरफ का कणका स्थितहै; बोधरूपी सूर्य के उदयहुये न जानोगे कि वह कहां गया बोध बिना अहंता नष्ट नहीं होती चाहे कीचड़ में रहे और चाहे पहाड़में जावे; चाहेघर में रहे और चाहे स्थल में रहे; चाहे स्थूल हो और चाहे सूक्ष्महो चाहे निराकारहो और चाहे रूपान्तरको प्राप्तहो; चाहे भस्महो और चाहे मृतकहो; चाहे दूरहो अथवा निकटहो जहां रहेगा वहांहीं अहंता इसके साथ है। हे रामजी! संसाररूपी बटका बीज अहंताहै उसी से सब शाखा फैली हैं। सब अर्थोंका कारण अहंताहै; जबतक अहंताहै तबतक दुःख नहीं मिटता और जब अहंभाव नष्टहो तब परमसिद्धि की प्राप्ति

हो। हे रामजी ! जो कुछ मैंने उपदेश कियाहै उसको भलीप्रकार विचारकर उसका अभ्यासकरो तब संसाररूपी वृक्षका बीज जलजावैगा और आत्मपदकी प्राप्तिहोगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽहंकारास्तयोगोपदेशोनाम शताधिकचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः १४० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! संसार संकल्पमात्र सिद्ध है और भ्रमसे उदय हुआ है। आत्मस्वरूप में अनेक सृष्टि बसती हैं; कोई लीन होती हैं; कोई उत्पन्न होती हैं और कोई उड़ती हैं; कहीं इकट्ठी होती हैं और कहीं भिन्न भिन्न उड़ती हैं सो सब मुझ को प्रत्यक्ष भासती हैं। देखो वे उड़ती जाती हैं सो ये सब आकाशरूप हैं और आकाशही से मिलती हैं। जैसे केलेका वृक्ष देखनेमात्र सुन्दर होता है पर उसमें कुछ सार नहीं होता तैसेही विश्व देखने मात्र सुन्दर है पर आकाशरूप है। जैसे जल में पहाड़ का प्रतिविम्ब पड़ता है और हिलता भासता है तैसेही यह जगत् है। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! आप कहते हैं कि, सृष्टि मुझे प्रत्यक्ष उड़ती भासती हैं—तुमभी देखो; यह तो मैंने कुछ नहीं समझा कि, आप क्याकहते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अनेक सृष्टि उड़ती हैं सो सुनो। पांचभौतिक शरीरमें प्राण स्थित हैं; प्राणमें चित्त स्थित है और उस चित्तमें अपनी २ सृष्टिहै। जब यह पुरुषशरीरका त्यागकरताहै तब लिंगशरीर जो वासना और प्राणवायु हैं वे उड़ते हैं। उस लिंगशरीर में जो विश्व है सो सूक्ष्म दृष्टिसे मुझको भासती है। हे रामजी ! आकाश की जो वायुहै जिसका रूपरंग कुछ नहीं वही वायु प्राणों से मिलकर मुझे प्रत्यक्ष दिखाईदेती है—इसीका नाम जीव है। स्वरूप से न कोई आता है न जाता है परन्तु लिंगशरीर के संयोग से आता—जाता और जन्मता—मरता दीखता है और अपनी वासना के अनुसार आत्मा में विश्व देखता है और कुछ नहीं बना। यह वासनामात्र सृष्टि है; जैसी वासना होती है तैसाही विश्व भासता है। हे रामजी (यह पुरुष आत्मस्वरूप है परन्तु लिंगशरीर के मिलने से इसका नाम जीव हुआ है) और आप को प्रच्छिन्न जानता है; वास्तव में ब्रह्मस्वरूप है। देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित ब्रह्म है पर उसके प्रमाद से आपको कुछ मानता है इसीका नाम लिंगशरीर है। जैसे घटाकाश भी महाकाश है परन्तु घटके खप्पर से प्रच्छिन्न हुआ है तैसेही यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है और अहंकारके संयोग से प्रच्छिन्न हुआ है। जैसे घटको एक देश से उठाकर देशान्तर में लेजारक्खो तो आकाश तो न कहीं गया और न आया परन्तु आता जाता भासता है, तैसेही आत्मा अखण्डरूप है परन्तु प्राण चित्तसे चलता भासता है। जब अहंकाररूप चित्त नष्ट हो तब अखण्डरूपहो; जबतक अहंकार नहीं जाता तबतक जगत्भ्रमदिखताहै और वासना करके भटकता फिरताहै। वासनाकी सृष्टि अपने२ चित्त

में स्थितहै। जब शरीर का त्यागकरताहै तब आकाशमें उड़ता है और प्राणवायु उड़कर जो आकाशमें शून्यरूप वायुहै उससे जामिलतीहै। वहां सबको अपनी २ वासना के अनुसार सृष्टि भासिआतीहै और अपनी सृष्टिलेकर इसप्रकार उड़ते हैं जैसे वायु गन्धको लेजातीहै सोही मुझको सूक्ष्मदृष्टि से उड़ते भासते हैं। हे रामजी! स्थूलदृष्टि से लिंगशरीर नहीं भासता; सूक्ष्मदृष्टि से दिखता है। जिस पुरुषको सूक्ष्मदृष्टि से लिंगशरीर देखने की शक्ति है और ज्ञानसे रहित है वह भी मेरे मत में मूर्ख और पशु है। हे रामजी! जब मनुष्य वासना का त्यागकरताहै–अर्थात् इस अहंकारको कि, मैंहूं; त्यागकरता है तो आगे विश्व नहीं दिखाई देता केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासताहै और उसके प्राण नहीं उड़ते वहांही लीन होजाते हैं क्योंकि; उसका चित्त अचित्त होजाताहै। जबतक अहंकार का संयोगहै तबतक विश्वभी चित्तमें स्थितहै। जैसे बीजमें वृक्ष और तिलों में तेल स्थित होताहै तैसेही उसके हृदयमें विश्व स्थितहै। जैसे मृत्तिकामें बड़े छोटे बासन; लोहेमेंसुई और खड्ग और बीजमें वृक्षभाव स्थितहै चैतन्य अथवा जड़हो तैसेही यह संकल्प कलनामें भेदहै, स्वरूपसे कुछ नहीं और वैसेही यह जगत्भीहै। हे रामजी! विश्वसंकल्प मात्रहै क्योंकि; दूसरी अवस्थामें नाशहोजाताहै। यह जाग्रत् जो तुमको भासती है सो मिथ्याहै। जब स्वप्नआताहै तब जाग्रत् नहीं रहती और जब जाग्रत् आतीहै तब स्वप्न नष्ट होजाताहै; जब मृत्युआतीहै तब सृष्टिका अत्यन्त अभाव होजाता है और देश, काल, पदार्थ सहित वासनाके अनुसार और सृष्टि भासती है। हे रामजी! यह विश्व ऐसाहै जैसे स्वप्ननगर। जैसे संकल्पपर होते हैं तैसेही ये सब संकल्प उड़ते फिरते हैं। कई सृष्टि परस्पर मिलती हैं; कई नहीं मिलतीं परन्तु सब संकल्परूपहैं और भ्रमसे और का और भासता है। जैसे कोई पुरुष बड़ा होताहै और कोई छोटा भासता है तो छोटे को बड़ा भासताहै और जैसे हाथी के निकट और पशु तुच्छ भासते हैं और चींटी के निकट और बड़े भासते हैं तैसेही जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको बड़े पदार्थ देश, काल संयुक्त विश्व तुच्छ भासता है और वह उन्हें असत्य जानता और जो अज्ञानीहै उसको संकल्प सृष्टि बड़ी होकर भासती है। जैसे पहाड़ बड़ाभी होताहै परन्तु जिसकी दृष्टिसे दूरहै उसको महालघु और तुच्छसा भासता है और चींटी के निकट तुच्छ मृत्तिका का ढेला भी पहाड़ के समान है तैसेही ज्ञानी की दृष्टि से यह जगत् रहित है इस से बड़ा जगत् भी उसको तुच्छरूप भासता है और अज्ञानी को तुच्छरूप भी बड़ा भासता है। हे रामजी! यह विश्व भ्रमसे सिद्ध हुआ है। जैसे भ्रमसे सीपी में रूपा और रस्सीमें सर्प भासता है तैसेही आत्माके प्रमादसे यह विश्व भासता है पर आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे निद्रादोषसे जीव अपने अंग भूलजाते हैं और जागे हुये सब अंगभासते हैं तैसेही अविद्यारूपी निद्रामें सोया हुआ जब जगताहै तब उसे सब विश्व अपना आप दिखाई

देताहै । जैसे स्वप्ने से जगाहुआ स्वप्ने के विश्वको अपना आपही देखता है तैसेही यह विश्व अपना आपही भासेगा । हे रामजी ! जब मनुष्य निद्रा में होता है तब उसे शुभ अशुभ विश्व में राग कुछ नहीं होता और जब जगता है तब इष्टमें राग और अनिष्ट में द्वेषहोताहै इसीप्रकार जब तक विश्व में हेयोपादेय बुद्धिहै तब तक जो सर्वज्ञ भी हो तो भी मूर्खहै । हे रामजी ! जब जड़ होजावे तब कल्याणहो । जड़होना यही है कि, दृश्य से रहित आत्मामें स्थितहो वह आत्मा चिन्मात्रहै । जबतक आत्मासे भिन्न जो कुछ सत्य अथवा असत्य जानताहै तबतक स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती और जब संवित् फुरने से रहित हो तब स्वरूप का साक्षात्कारहो । इससे फुरनेका त्यागकरो । यह स्थावर जंगम जगत् जो तुमको भासताहै सो सर्व ब्रह्मस्वरूप है । जब तुम ऐसे निश्चयकरोगे तब सर्व विवर्त्त का अभाव होजावेगा और आत्मपदही शेष रहैगा । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! यह जीव जो आपने कहा सो जीवका स्वरूप क्याहै; वह आकारको कैसे ग्रहण करता है; उसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है और उसके रहने का स्थान कौन है सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जीव शुद्ध परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्र पद है; उसमें चैत्योन्मुखत्व हुआ कि, मैं हूं; ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूप फुरी है और उसको चित्का सम्बन्धहुआ है उसीका नाम जीवहै । वह जीव न सूक्ष्महै; न स्थूलहै; न शून्य है; न अशून्यहै; न थोड़ाहै; न बहुत है; केवल शुद्ध आत्मत्वमात्र है । वह न अणु है; न स्थूल है; अनन्त चैतन्य आकाशरूप है उसी को जीव कहते हैं । स्थूल से स्थूल वही है और सूक्ष्म से सूक्ष्म वही है । अनुभव चैतन्य सर्वगत रूप जीवहै; उसमें वास्तव शब्द कोई नहीं और जो कोई शब्द है सो प्रतियोगी से मिलकर हुआ है । जीव अद्वैत है उस का प्रतियोगी कैसे हो । यही जीवका स्वरूप है । चैत्य के संयोग से जीव हुआ है और उसका अधिष्ठान चैतन्य आकाश, निर्विकल्प, चैत्य से रहित, शुद्ध, चैतन्यपरमात्मतत्त्व है; उसमें जो संवित् फुरीहै उसी का नाम जीव है वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल और सर्व का बीज है । इसी का नाम वैराज कहते हैं और उसका शरीर मनोमय है । आदि परमात्मतत्त्व से फुराहै और और अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् प्रच्छिन्नता को नहीं प्राप्त हुआ—आपको सर्वआत्मा जानता है । इसका नाम विराट्है उसका प्रथम शरीर मनोमात्र और शुद्ध प्रकाशरूप रागद्वेषरूपी मल से रहित अनन्त आत्माहै और सर्वमन, कर्मों और देहोंका बीजहै; सब में व्याप रहाहै और सबजीवों का अधिष्ठाताहै । उसी के संकल्प से ये जीव रचे हैं और पंच ज्ञान इन्द्रियों, अहंकार; मन और संकल्प इनआठों के आकार धारे हैं और आपही ग्रहण किये हैं । परमार्थरूप को त्याग फुरने से जो आकार उत्पन्नहुये हैं उनको ग्रहण करना इसीका नाम पुर्यष्टका है । फिर इन इन्द्रियों के छिद्र रचे और स्थूलरूप रचकर

उनमें आत्मप्रतीत किया। जैसे जीव शयनकाल में जाग्रत् शरीर को त्यागकर स्वप्न शरीर का अंगीकार करताहै, तैसेही शुद्ध, चिन्मात्र, निर्विकार, अद्वैत स्वरूपको त्यागकर उसने वासनामय शरीर का अंगीकार किया है पर वास्तवस्वरूप का कुछ त्याग नहीं किया और स्वरूप से नहीं गिरा शुद्ध निर्विकल्प भावको त्यागकर विराट् भाव हुआ है। इसीप्रकार आगे उस पुरुषने ज्ञान से चारों वेद रचे और नीतिको निश्चय किया। नीति इसे कहते हैं कि; यह पदार्थ ऐसे हो और इतने कालतकरहे—निदान यह रचना रची और जो जो संकल्प करता गया सो सो देश,काल,पदार्थ, दिशा, ब्रह्मांड सब आगे हुये। ईश्वर, वैराज, आत्मा, परमेश्वर इत्यादिक जीवके नामहैं पर जीवका वासनारूप स्वरूप कुछ झूंठ नहीं। वासना के शरीर ग्रहण करने से वासनारूप कहा है पर वास्तव रूप शुद्ध, निर्विकार और अद्वैतहै और कदाचित् स्वरूप से अन्य अवस्थाको नहीं प्राप्त हुआ; सदा ज्ञानरूप, अद्वैत और परमशुद्ध है। उसको अपने चैतन्य स्वभाव से चैत्य का संयोगहुआ है इससे कहा है कि; उसका वपु वासनारूप है। उसी आदि जीव से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता, दैत्य, आकाश, मध्य, पाताल और त्रिलोकी उत्पन्न हुई हैं। जैसे दीपक से दीपक होता है और जलसे जलहोता है तैसेही सब विराट् स्वरूप है। महाआकाश उस विराट् का उदर है; समुद्र रुधिर है; नदियां नाड़ी हैं और दिशा वपु हैं। उसके उदर में कई ब्रह्मांड सुमेरु पर्वत सहित समाये रहते हैं पवन उसका मूंह है; उंचास पवन प्राणवायु हैं; पृथ्वी मांस है; सुमेरु आदिक पर्वत हाथ हैं; तारे रोमावली हैं; सहस्र शीश नेत्र हैं और अनन्त और अनादिहै। चन्द्रमा उस का कफहै जिससे अमृत स्रवताहै और भूत उपजतेहैं और सूर्य्य पित्त है जो सर्व का उत्पन्नकर्त्ता है और सब मन; सब कर्मों और सब शरीरों का आदि बीज विराट् है। हे रामजी! इस चित्त के सम्बन्ध से तुच्छ हुआ है पर वास्तव में परमात्मस्वरूप है। जैसे महाकाश घटके संयोग से घटाकाश होता है तैसेही विराट् परमात्मा ने फुरने से सृष्टि रची है और उसमें अहंप्रत्यय की है इससे तुच्छ हुआ है; सो इसको मिथ्या भ्रम हुआ है। जैसे स्वप्ने में कोई अपना मरना देखता है तैसेही आपको दृश्य देखता है। लघुता भी आत्मा की अपेक्षा से है; दृश्य में विराट् है और आत्मा में इसका अनुभव है। हे रामजी! इसीप्रकार उसने उपजकर सृष्टि रची है। जैसे एक विराट् पुरुष ने आदि निश्चय किया है तैसेही अब तक है। यह आपही उपजा है और आपही लीन होजाता है। हे रामजी! जिस प्रकार विराट् की आत्मा से उत्पत्ति हुई है तैसेही सब जीवों की है। यह सब विराट्रूप है परन्तु जो स्वरूप से उपजकर दृश्य से तद्रूप हुये हैं और जिनका वास्तवस्वरूप भूलगया है सो तुच्छरूप जीव हुये और जो स्वरूप से फुरकर स्वरूपसे न गिरे और जिसे आगे अपनाही संकल्परूप

विश्व देखकर प्रमाद न हुआ उसका नाम विराट् आत्मा है। हे रामजी ! जीव चैतन्य और निराकाररूप है इस को शरीर का संयोग कलना से हुआ है। जब आपको दृश्य संयुक्त देखताहै तब महाआपदा को प्राप्त होताहै और जब द्वैतसे रहित निर्विकल्प होकर देखे तब शुद्ध चैतन्य आत्मपद को प्राप्त होता है। हे रामजी ! यह विराट् सब को उत्पन्न करता है ऐसे कई विराट् आत्मपद से उदय हुये हैं; कई मिट गये हैं और कई आगेहोंगे। जैसे समुद्र से कई तरंग बुद्बुदे उठते हैं और लीनहोते हैं तैसेही आत्मरूपी समुद्र से कई विराट् उठते हैं; कई लीनहोते हैं और कई उपजेंगे। ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है और सब के भीतर बाहर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है। ऐसा तेरा अपना आप अनुभवरूप है। हे रामजी ! इस संवेदन को त्यागकर देखो वही परमात्मस्वरूप है यह जो कुछ तुमको भासता है उसको विचारकर त्यागो। जब तुम इसका त्याग करोगे तब चिन्मात्र जो परमशुद्ध तुम्हारा स्वरूप है सो तुमको भासेगा—उस के आगे चैतन्यताही आवरणरूप है। जैसे सूर्यके आगे बादलों का आवरण होता है और जबतक बादल होते हैं तबतक सूर्य्य का प्रकाश ज्यों का त्यों नहीं भासता पर जब बादल दूर होते हैं तब प्रकाश स्वच्छ भासता है, तैसेही जब फुरना निवृत्त होवेगा तब शुद्ध आत्माही प्रकाशेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवैराजात्मवर्णनं नामशताधिकैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह परमात्मा पुरुष फुरने से जीव संज्ञा को प्राप्त हुआहै। फुरने में भी वही है पर अपने स्वरूपको नहीं जानता इसीसे दुःख पाता है। जैसे पवन चलता है तौभी वहीरूप है और जब ठहरता है तौभी वहीरूप है—दोनों में तुल्यहै—तैसेही आत्मा सर्वदा एकरसहै कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्तहुआ। जीव प्रमादसे दृश्यको कल्पता है और दृश्यको आप जानता है इसीसे दुःख पाताहै पर जो इसको अपना स्वरूप स्मरण रहे तो दृश्यमें भी अपना रूपभासे और जो निःसंकल्पहो तौभी विश्व अपनारूप भासे। विश्वभी इसीका रूप है परन्तु अविचार से भिन्न भिन्न भासता है। जैसे स्वप्नेका विश्व स्वप्नेवाले का रूपहै परन्तु निद्रादोषसे नहीं जानता और जब जागता है तब जानता है कि; मैं ही था; तैसेही यह प्रपंच सब तुम्हारा स्वरूप है। तुम अपने स्वरूपमें निरहंकार स्थित होकर देखो तो कुछ नहीं बना। जो आत्मासे भिन्न तुम कुछ बनोगे तो प्रपंच विश्व भासेगा और जो आत्मस्वरूप में स्थितहो तो अपना आप भासेगा और प्रपंचका अभाव होजावेगा। हे रामजी ! शून्य, अशून्य; जड़, चैतन्य; किंचन, निष्किंचन; सत्य, असत्य; सब आत्माही पूर्ण है तो निषेध किसका करिये ? हे रामजी ! वह ऐसा अनुभवरूप है जिससे सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं पर

ऐसे आत्माको मूर्ख नहीं जानते। जैसे जन्मका अंधा मार्ग को नहीं जानता तैसेही अज्ञानी महाअन्ध जागती ज्योति आत्मा को नहीं जानते और जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुये को नहीं जानते तैसेही वासना से घेरेहुये आपको नहीं जानसक्के। जैसे जालमें पक्षी फँसा होता है तैसेही जीव फँसेहुये हैं। इसी का नाम बन्धन है। जब वासनाका वियोग हो तो इसीका नाम मुक्ति है। हे रामजी! विषमतासे जीवसंज्ञा हुई है; जब समहुआ तब ब्रह्म है सो ब्रह्म अहंकार को त्यागकर होता है जैसे खप्परके संयोग से घटाकाश कहाता है और जब खप्पर टूटजाता है तब महाकाश होजाता है; तैसेही जब अहंकार नष्टहोता है तब आत्मस्वरूप है। हे रामजी! अज्ञान से एकदेशी जीव हुआ है; जब प्रच्छिन्नताका वियोग हो तब आत्मस्वरूपही है। हे रामजी! अपने वास्तव निर्गुण स्वरूप में गुणोंका संयोग उपाधि से भासताहै सो अनर्थरूपहै। जब निर्गुण और सगुणकी गांठटूटे तब केवल अद्वैत तत्त्व अपना आप भासेगा जो अनामय और दुःख से रहित है और सत् असत्सेपरे ज्ञानरूप और आदि-अन्तसे रहितहै जिसके पायेसे फिर कुछ पाना नहीं रहता और जिसके जानेसे और कुछ जानना नहीं रहता। ऐसा जो उत्तम पद है उसको आत्म तत्त्वसे प्राप्त होगे। हे रामजी! यह जो ज्ञान तुम से कहा है उसका आश्रय करके तुम ज्ञानवान् होना; ज्ञानबन्ध न होना। ज्ञानबन्धसे तो अज्ञानी भला है क्योंकि; अज्ञानी भी साधुओं के संग और सत्शास्त्रों के सुनने से ज्ञानवान् होता है पर ज्ञानबन्ध मुक्त नहीं होता। जैसे रोगी कहै कि, मुझको कोई रोग नहीं है, मैं अरोगहूं; तो वह वैद्यकी औषधि भी नहीं खाता क्योंकि; वह आपको अरोग जानताहै तैसेही जो ज्ञानबन्ध है उससे सन्तोंका संग और सत्शास्त्रों का श्रवण भी नहीं होता इससे वह अन्धतमको प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ज्ञान और ज्ञानबन्ध का लक्षण क्याहै और ज्ञानबन्ध का फल क्याहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसपुरुष ने आत्माके विशेषण शास्त्रों में श्रवण किये हैं कि; आत्मा नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और तीनों शरीरों से भिन्नहै और ऐसे सुनकर आपको मानताहै पर विषयों के भोगने की सदा तृष्णा करता है कि किसीप्रकार इन्द्रियों के विषय मेरे लिये प्राप्तहों ऐसा पुरुष ज्ञानबन्धहै। वह बोधशिल्पी है जो कर्म फलके विचारसे रहित है अर्थात् भला बुरा विचार नहीं करता और उसमें विचरता है और जो मुखसे शुभ अशुभ निरूपण करताहै वह शास्त्रशिल्पी है और फलके अर्थ कर्म करताहै। कोई ऐसा है कि, शास्त्रोक्त आपको उत्तम मानताहै; शास्त्रों के अर्थ बहुत प्रकार भी कहता है, पढ़ता और पढ़ाता भी है पर विषयों से बन्धायमान है और सदा विषयों की चिन्तना करता है-ऐसा पुरुष ज्ञानबन्ध है और इसी निमित्त अर्थशिल्पी भी कहाता है अर्थात् चितेरा करने को समर्थ है और धारने को समर्थ नहीं। हे रामजी! एक प्रवृत्तिमार्ग है

और एक निवृत्तिमार्ग है । प्रवृत्ति संसारमार्ग है और निवृत्ति आत्मज्ञानमार्ग है। जिस पुरुषने निवृत्तिमार्ग धारण किया है पर प्रवृत्तिमार्गमें अर्थात् बहिर्मुख विषय की ओर बर्तताहै; इन्द्रियोंके विषयोंकी वाञ्छा करता और विषयोंसे उपराम नहीं होता एवम् उनसे तुष्टवान् होकर स्वरूपका अभ्यास नहीं करता वह ज्ञानबन्ध कहाता है। हे रामजी ! जो पुरुष श्रुतिउक्त शुभकर्म फलकी हृदय में कामना धारताहै वह पुरुष ज्ञानके निकटवर्ती है तौभी ज्ञानबन्ध है । जिसको आत्मा में प्रीतिभी है पर विषयको चिन्तताहै और आपको उत्तम मानता है वह ज्ञानबन्ध कहाता है और जो आत्मतत्त्व का यथार्थ निरूपण करताहै और स्थित नहीं वह ज्ञान आभासहै और ज्ञानका फल उसको साक्षात्कार नहीं । जिस पुरुषने सिद्धि और ऐश्वर्य पायाहै और उससे आपको बड़ा जानताहै पर आत्मज्ञानसे रहितहै वह ज्ञानबन्ध कहाताहै । हे रामजी ! निदिध्यास से ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उससे शांतिका प्रकाश होता है । जब तक शांति प्राप्त नहीं होती तब तक आपको बड़ा ज्ञान न माने । हे रामजी ! ज्ञान से बड़ाहोताहै; जबतक ज्ञान नहीं उपजा तबतक आत्मपरायणहो; अभ्यास और यत्न करो; शुभ व्यवहारसे प्राणों की रक्षाके निमित्त उपजीविका उत्पन्नकरो और ब्रह्मजिज्ञासाके अर्थ प्राणोंकी धारणाकरो । ब्रह्मजिज्ञासा इस निमित्त है कि, दुःखरूप संसार समुद्र से मुक्त हो; फिर संसारी न हो और आत्मपरायण हो । जब आत्मपरायण होंगे तब सब दुःख मिटजावेंगे । जैसे सूर्य्य के उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मपद के प्राप्तहुये सबदुःख नष्ट होजाते हैं । उस पदके प्राप्त होने का उपाय यह है कि, सत्शास्त्रोंसे जो विशेषण सुनेहों उनको समझकर बारंबार अभ्यास करना; दृश्य के उपरान्त होना और उनको मिथ्या जानकर वैराग्य करना । इसी से आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेज्ञानबन्धयोगोनामशताधिक द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिज्ञासीहोकर ज्ञाननिष्ठ होना और जो कुछ गुरु शास्त्रों से आत्मविशेषण सुने हैं उनमें अहंप्रत्यय करके स्थित होना इसीकानाम ज्ञाननिष्ठा है। इस ज्ञाननिष्ठा से परम उच्चपदको प्राप्त होता है जो सब का अधिष्ठानपद है । जब उस पदमें स्थितहुआ तब कर्म्मों के फलका ज्ञान नहीं रहता क्योंकि; शुभकर्म्मों में फलका राग नहीं रहता और अशुभकर्म्मों के फल में द्वेष नहीं रहता । ऐसा पुरुष ज्ञानी कहाता है और वह शीतलचित्त रहता है; अकृत्रिम शांति को प्राप्त होताहै; किसी विषयके सम्बन्धसे नहीं फँसता और उसकी वासनाकी गांठ टूटजातीहै। हे रामजी ! बोध वही है जिसको पायेसे फिर जन्म न हो और जो जन्ममरणसे रहितहो उसीको

ज्ञानी कहतेहैं। जब संसार से विमुखहो और संसार की सत्यता न भासे तब जानिये कि, फिर जन्म न पावेगा क्योंकि; उसकी संसार की वासना नष्ट होगई है। हे रामजी! जिससे ज्ञानी की वासना नष्ट होती है वह भी सुनो। वह इस संसार का कारण नहीं देखता। जो पदार्थ कारण से उत्पन्न नहीं हुआ वह सत्य नहीं होता; इससे संसार मिथ्याहै। जैसे रस्सी में सर्प भासताहै तो उसका कारण कोई नहीं भ्रम से सिद्ध हुआ है, तैसेही यह विश्व कारण विना दृष्टि आताहै इससे मिथ्याहै। जो मिथ्या है तो उसकी वासना कैसे हो? हे रामजी! जो प्रवाह पतित कार्य्य प्राप्तहो उसमें ज्ञानी विचरता है और संकल्प से रहित होकर अपना अभिमान कुछ नहीं करता कि, इसप्रकार हो और इसप्रकार न हो। वह हृदय से आकाश की नाईं संसार से न्यारा रहता है और फुरने से शून्यहै। ऐसा पुरुष पण्डित कहाता है। हे रामजी! यह जीव परमात्मरूप है। जब अचेतन अर्थात् संसार के फुरने से रहित हो तब आत्मपद को प्राप्तहो। जैसे आंब का वृक्ष फलसे रहितहै तौभी उसका नाम आंब है परन्तु निष्फलहै तैसेही यह जीव आत्मस्वरूप है परन्तु चित्तके सम्बन्धसे इसका नाम जीव है। जब चित्तको त्यागकरे तब आत्माहो। जैसे आंबके पेड़में फल लगनेसे शोभताहै और सफल कहाताहै तैसेही जब जीव आत्मपदको प्राप्तहोताहै तब महाशोभा से विराजताहै। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष कर्म के फलकी स्तुति नहीं करता अर्थात् इन्द्रियों के इष्ट विषयकी वाञ्छा नहीं करता। जैसे जिस पुरुषने अमृतपान कियाहो वह मद्यपानकरने की इच्छा नहीं करता तैसेही जिसको आत्मसुख प्राप्तहोताहै वह विषयों के सुखकी इच्छा नहीं करता। जो किसी पदार्थ को पाकर सुख मानतेहैं वे मूढ़ हैं। जैसे कोई पुरुषकहे कि; बन्ध्या के पुत्रके कांधेपर आरूढ़होकर नदी के पार उतरते हैं तो वहपुरुष महामूढ़ है क्योंकि; जो बन्ध्या के पुत्र हैही नहीं तो उसके कांधेपर कैसे आरूढ़होगा; तैसेही जो कोई कहे कि, मैं संसारके किसी पदार्थ को लेकर मुक्तहूँगा तो वह महामूढ़ है। हे रामजी! ऐसा पुरुष ज्ञानसे शून्य है उसकी इन्द्रियां स्थिर नहीं होतीं और वह शास्त्रों के अर्थ प्रकटभी करता है परमात्मा के ज्ञानसे रहित है उसको इन्द्रियां बल से विषयों में गिरादेती हैं जैसे चील पक्षी आकाशमें उड़ता उड़ता मांसको देखकर पृथ्वी पर गिरपड़ता है तैसेही अज्ञानी विषयको देखकर गिरपड़ता है। इससे इन इन्द्रियों को मनसंयुक्त वशकरो और युक्तिसे तत्परायण और अन्तर्मुख होरहो। यह जो संवेदन फुरती है उसका त्यागकरो। जब फुरना निवृत्तहोगा तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा और जब परमात्माका साक्षात्कार होगा तब "रूप, अवलोक और मनस्कार" जो त्रिपुटी है उसकेसब अर्थकीभावना जातीरहेगी; केवलआत्मतत्त्वही प्रत्यक्षभासेगा और संसार का अत्यन्त अभाव होजावेगा। हे रामजी! संसार का आद्य परमात्मतत्त्व है

और अन्तभी वहीहै । जैसे स्वर्ण गलाइये तौभी स्वर्णहै और जो न गलाइये तौभी स्वर्ण है; तैसेही जब सृष्टिका अभाव होताहै तौभी आत्माही शेषरहताहै; जब उपजी न थी तब भी आत्माही था और मध्यभी वहीहै परन्तु सम्यक्दर्शीको भासता है और असम्यक् दर्शी को आत्मसत्ता नहीं भासती । हे रामजी ! विश्व आत्मा का परिणाम नहीं, चमत्कारहै । जैसे सुवर्ण गलताहै तो उसकी रेणी संज्ञा होतीहै अथवा शलाका कहाताहै । यद्यपि उसमें भूषण नहीं हुये तौभी उसका चमत्कार ऐसाही होताहै कि, उससे भूषण उपजकर लीन होजाता है और जैसे सूर्यकी किरणें जलाभासहो भासती हैं, तैसेही विश्व आत्माका चमत्कार है और बनाकुछ नहीं आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों है और उसका चमत्कार विश्व होकर स्थित हुआ है । हे रामजी ! जब तुमने ऐसे जाना कि केवल आत्मसत्ता है तब वासना क्षय होजावेगी और चेष्टा स्वाभाविक होगी । जैसे वृक्ष के पत्र पवन से हिलतेहैं तैसेही शरीरकी चेष्टा प्रारब्धवेग से होगी । हे रामजी ! देखने मात्र तुम्हारे में क्रिया होगी और हृदय में शून्य भासेगा । जैसे यंत्रीकी पुतली संवेदन विना तागेसे चेष्टा करती है तैसेही शरीर की चेष्टा प्रारब्ध से स्वाभाविक होवेगी और तुमको अभिमान न होगा । जैसे कोई पुरुष दूधके निमित्त अहीर के पास बासनले-जाय और उसको दूध दुहने में कुछ विलम्ब हो तो कहे कि, बासन यहां रक्खा है मैं गृहसे कोई कार्य शीघ्रही करआऊं तो यद्यपि वह गृहका कार्य करने लगता है पर उसका मन दूधकी ओरही रहता है कि, शीघ्रही जाऊं, ऐसा न हो कि; वह दुहताहो, तैसेही तुम्हारी क्रिया प्रारब्धवेगसे होगी पर मन आत्मतत्त्व में रहेगा और अहंकार से रहित होगे । जबतक अहंकार फुरताहै तबतक प्रच्छिन्न अर्थात् तुच्छ जीव है और उसको शरीरमात्रका ज्ञान होता है और अन्तःकरण में जो प्रतिबिम्ब जीव है उसको नखशिख पर्यन्त शरीरका ज्ञान होता है । इसी में आत्माभिमान होताहै और ज्ञान नहीं होता इससे जीवहै और विराट् जो आगे तुमसे कहाहै सो ईश्वरहै; सर्वशरीर और अन्तःकरणका ज्ञाता है; सर्वलिंगशरीर का अभिमानी है और सबको अपना आप जानता है । हे रामजी ! यद्यपि विश्वरूप है तौभी अहंकार से तुच्छसा हुआहै । जैसे मेघसे भिन्न हुआ एकबादर कहाता है और घटसे घटाकाश कहाताहै पर वह बादल भी मेघहै और घटाकाशभी महाकाशहै तैसेही अहं फुरनेसे प्रच्छिन्नहुआहै सो फुरना दृश्यमें हुआहै और दृश्य फुरनेमें हुईहै । जैसे फूलोंमें गन्ध और तिलों में तेलहै तैसेही फुरनेमें दृश्यहै । हे रामजी ! आत्मामें बुद्धिआदिक फुरनाहै कि; 'मैंहूं' जब ऐसे फुरताहै तब आगे दृश्य होती है और जब अहंकारहोताहै तब आगे देह इंद्रियादिक विश्व रचता है; इससे फुरने में दृश्यहुई और फुरना दृश्यमें हुआ । देह, इन्द्रियां, मनआदिक जो दृश्य हैं उनमें अहंप्रत्ययसे फुरनाहुआहै इसीकारणसे इसकी जीव संज्ञाहुई है; जब फुरना नष्ट

होजावे तब आत्मा का साक्षात्कार हो। यह जन्म, मरण, आना, जाना आदिक विकार संयुक्त प्रपञ्च भासताहै तौ भी मिथ्या है क्योंकि; विचारकिये से कुछ नहीं रहता। जैसे केलेके थंभेमें कुछ सार नहीं तैसेही विचारकियेसे प्रपञ्च नहीं रहता और जैसे स्वप्नेमें जन्म, मरण, आना, जाना देखताहै परन्तु मिथ्याहै तैसेही जाग्रत् क्रियाभी सर्व मिथ्याहैं हे रामजी! जो पारावारदर्शी है वह इतनी अवस्थाओंमें निर्विकल्पहै और जन्मताभी है परन्तु नहीं जन्मता और सर्वक्रिया करताभीहै परन्तु नहीं करता—वह सबको स्वप्नवत् समझताहै और स्वरूपसे कदाचित् कुछ नहीं हुआ। हे रामजी! ज्ञानी जाग्रत् मेंभी ऐसेही देखताहै। जब यह आत्मपदमें जागताहै तब सर्वविकारका अभाव होजाताहै कोई विकार नहीं भासता हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियोंके विषयकी चिन्तना करता रहताहै सो बन्ध है क्योंकि; अभिलाषही दुःखदायक है। यद्यपि वह राजा हो पर उसके हृदयमें अभिलाषहै इससे उसे दरिद्रीजानो और जिस पुरुषका छादन, भोजन, शयन, कष्टसे देखतेहो कि; भोजन तो भिक्षा से होताहै अथवा किसी और यत्न से होताहै और छादन भी निर्गुणसा पहिरता है और शयनकरने का स्थानभी जैसा तैसा हो पर ज्ञानसे सम्पन्न है तो उसको चक्रवर्तीजानो—यथा॥

दो० सातगांठकोपीनकी, साधुनमानैशंक। रामअमलमाताफिरे, गिनैइन्द्रकोरंक ७॥

हे रामजी! उसको चक्रवर्ती सेभी अधिकजानो। यद्यपि वह आरम्भ क्रिया करता भी दृष्टआताहै पर संकल्प से रहित है तो कुछ नहीं करता; उसका करना, न करना दोनों तुल्य हैं क्योंकि; वह निरभिमानहै और शुभकर्मों के करने से स्वर्ग नहीं भोगता और अशुभकर्मसे नरक नहीं भोगता—उसको दोनों एकसमानहैं। हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानी की चेष्टा समान है परन्तु अज्ञानी अहंकार सहित करता है इससे दुःख पाता है। इससे तुम अहंकार का त्यागकरो और अपना स्वरूप जो चैत्यसे रहित चैतन्य है उसमें स्थित होरहो कि, सब संशय मिटजावें। जितने जीव तुमको भासते हैं सो सब संवित् अर्थात् ज्ञानरूप हैं परन्तु बहिर्मुख जो फुरते हैं उससे भ्रमको प्राप्त हुये हैं और जब अन्तर्मुख हो तब केवल शान्तरूपहो जहांगुणों और तत्त्वोंका क्षोभ नहीं। वह शान्तपद कहाताहै। हे रामजी! जैसे विराट्का मन चन्द्रमाहै तैसेही सब जीवोंका है अर्थात् सब विराट्रूपहैं परन्तु प्रमादसे वास्तव स्वरूप नहीं भासता। हे रामजी! जैसे गुलाब की सुगन्ध संपूर्ण वृक्षमें व्यापक है परन्तु फूलही में भासती है तैसेही चैतन्य सत्ता सब शरीरमें व्यापक है परन्तु हृदय में भासती है जो त्रिकोणरूप निर्मल चक्र है वहांही अहंब्रह्मका उत्थान होताहै; वहांसे वृत्ति फैलकर पंचइंद्रियोंके छिद्र से निकल कर विषयको ग्रहण करती है और उन इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष मानता है। इससे, हे रामजी! इतनाकष्ट प्रमाद से है; जब बोध होताहै तब संसारभ्रम

मिटजाताहै । हे रामजी ! वासनारूप जो संसार है उसका बीज अहंभाव है और वह प्रत्यक्ष संसार में फुरताहै । जब इसकी अचिन्तनाहो और स्वरूप में अहंप्रत्ययहो तब संसारभ्रम मिटजावे । अहंभाव के शान्तहुये ज्ञानवान् यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टा करता है । हे रामजी ! जो पदार्थ सत्य है उसका कदाचित् अभाव नहीं होता और जो असत्य है वह सत्य नहीं होता और यद्यपि होने की भावना कीजिये तो भी नहीं होता । जैसे अग्निको जानकर स्पर्श कीजिये तो भी जलाती है और अजान स्पर्श करिये तो भी जलाती है क्योंकि; सत्य है और जैसे जलकी भावना से मृग मरुस्थल में धावता है परन्तु जलनहीं पाता क्योंकि; असत्य है; तैसेही हे रामजी ! अहंकार जो फुरता है सो असत्य है; भ्रमसे सिद्ध है और विचार से नष्ट होजावेगा । हे रामजी ! यह अहंकाररूपी कलंक उठा है । यदि निरहंकार होकर देखो तो मुक्तरूपहो और यदि अहंकार संयुक्त हो तो बन्धहै । इससे निरहंकार होकर परम निर्वाण को प्राप्त होरहो यही हमारा सिद्धान्त है और परम भूमिका भी यही है । जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही तुम ब्राह्मी लक्ष्मी से शोभा पावोगे । हे रामजी ! ज्ञानवान् का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है इससे अहंकार नहीं रहता और उसके चित्तकी चेष्टा फलदायक नहीं होती । जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसेही उसको जन्मफल नहीं होता और अज्ञानी का चित्त जन्म मरण का कारण होताहै । जैसे कच्चा बीज उगताहै तैसेही अज्ञानी की चेष्टा जन्मफल देतीहै । हे रामजी ! जितने पदार्थ हैं उन सबसे निराश होरहो कि, हृदयमें किसीकी अभिलाषा न फुरे और न किसीका सद्भाव फुरे और पाषाणकी नाईं तुम्हारा हृदयहो । हे रामजी ! जिसका हृदय कोमल स्नेह संयुक्त है वह अज्ञानी है और जिसका हृदय पाषाण समान और स्नेह से रहित है वह ज्ञानी है; इससे निर्मम और निरहंकाररूप होकर स्थित होरहो । ये भोग मिथ्या हैं—इनकी इच्छा में सुख नहीं । हे रामजी ! जब संसार से उपरान्त और अन्तर्मुख आत्मपरायण होगे तब अहंकार निवृत्त होजावेगा और आत्माही भासेगा । जैसे वसन्तऋतुआती है तो वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं और पुरातन पत्र त्यागकर नूतन होआते हैं तैसेही जब तुम अन्तर्मुख होगे तब अहंकार निवृत्त होजावेगा, विभुताको प्राप्तहोगे; अहंप्रत्यय जाती रहेगी और परमनिर्वाण पद पावोगे । इससे एक अहंकार संवेदनका त्यागकरो और कोई यत्न न करो । तुमको यही हमारा उपदेश है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुखेनयोगोपदेशःशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जो वासनारूपी संसार है उससे तुम मंकीऋषि के सदृश तरजाओ । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! मंकीऋषि किसप्रकार तरे हैं सो कृपा करके कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मंकीऋषि का वृत्तान्त सुनो, उसने महा

तीक्ष्ण तपकिये थे। एकसमय मैं आकाश में अपने गृहमें था और तुम्हारे पितामह राजा अजने मेरा आवाहनकिया तब मैं राजा अजके निमित्त आकाश से उतरा तो मार्ग में एक वनदेखा जिसमें अनेक वनके समूहथे जो भयानक और शून्यथे। वहां न कोई मनुष्य दृष्टि आता था और न कोई पशु केवल महाशून्य वन था—मानो एकांत ब्रह्मस्थानहै—और कईयोजनपर्यन्त मरुस्थलही दृष्टि आता था। मध्याह्नकासमय था और अतितीक्ष्णधूप पड़तीथी, ऊरुपर्यन्त तपीहुई रेतमें मैंनेप्रवेशकिया और कईवृक्ष वहां दग्धहुये दृष्टिआये। हे रामजी ! उसशून्यस्थलमें एक अति दुःखित विदेशी मुझ आताको दृष्टिआया और उसने यहवाक्य मुख से निकाला कि, हायहाय ! मैंने महाकष्टपाया है। जैसे किसी को दुष्टजन दुःखदेते हैं और दयानहींकरते तैसेही मुझको धूप और मंजिलने जलायाहै और मैं अतिदुःख को प्राप्त हुआहूं । हे रामजी ! ऐसेवचन कहताहुआ वह मेरेसाथ चलाजाताथा। जब कुछ मार्ग आगेगयातो एक धीवरका गांव दृष्टि पड़ा जहां पांच अथवा सातगृहथे; उसको देखकर वह शीघ्र चलनेलगा कि, वहां मुझको शान्ति होगी और मैं जलपान करके छायाकेनीचे बैठूंगा। हे रामजी ! उसको देखकर मुझे दया उपजी तो मैंने कहा कि, हे मार्ग के मीत ! तू कहां जाता है ? जिनको सुखदायी जानकर तू धावताहै सो तो दुःखदायकहैं जैसे मरुस्थलको नदीजानकर मृग जलपान के निमित्त धावता है कि, शान्ति पाऊं सो अति दुःख पाता है तैसेही जिस स्थान को तू सुखरूप जानता है सो दुःखरूप है । हे अंग ! ये जो इस गांव के वासी हैं उनका संग कदाचित् न करना। इनका संग दुःखरूप है जो पुरुष विचारपूर्वक चेष्टा करता है उसको दुःख नहीं होता और जो विचारे विना चेष्टा करता है सो दुःख पाता है। ये जो नगर वासी हैं वे आप जलते हैं तो मुझको सुख कैसे देंगे। जैसे कोई पुरुष अग्निकुण्ड में जलता हो और उससे कहिये कि, तू मेरी तपन शान्तकर तो कहनेवाला मूढ़ होता है क्योंकि, वह तो आपही जलता है और की तपन कैसे शान्त करेगा; तैसेही वे तो आप इन्द्रियों के विषय की तृष्णारूपी अग्नि में जलते हैं तुझको कैसे शान्त करेंगे ? हे मार्ग के मीत ! पृथ्वी के छिद्रमें सर्प होना; मरुस्थल का मृग होना और पाषाण की शिला में कीटहोकर रहना अंगीकार कीजिये परन्तु अज्ञानी का संग न कीजिये; जिनको इन्द्रियों के सुखकी तृष्णा रहती है। इन्द्रियों के सुख कैसे हैं कि, आपातरमणीय हैं अर्थात् यह कि, जबतक इन्द्रियों का विषय के साथ संयोग है तबतक सुख है और जब वियोग होता है तब दुःख होता है। विषयीजनों की प्रीति भी विषवत् है और विचारवती बुद्धिरूपी कमलिनी के नाश करनेवाली बरफ है। इनकी संगति में वचनरूपी पवन से राख उड़ती है और पास बैठनेवाले को अन्धकार में डालती है। इससे इन ग्रामवासी अज्ञानियों का संग न करना। ये अज्ञानी विचारवती बुद्धि-

रूपी सूर्य के आवरण करनेवाले बादल हैं । जैसे बेलिपर अग्नि डालिये तो जलाती है तैसेही वैराग्य को ग्रहण करनेवाली बुद्धि के नाश करनेवाली इनकी संगति है—इस से इनका संग न करना । हे साधो ! संग उसका कर जिसके संग से तेरा ताप मिटे । इनके संग से शान्ति न पावेगा । हे रामजी ! इस प्रकार जब मैंने कहा तब वह मेरे निकट आकर बोला; हे भगवन् ! तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे वचन सुनकर मैं शान्तिको प्राप्त हुआ हूं । तुम शून्य ऐसे दृष्टि आतेहो; पर सर्व गुणों से पूर्णहो और तुम्हारा दिव्य प्रकाश मुझको भासता है । तुम आदि पुरुष विराट् हो और तुम सुन्दर दृष्टिआतेहो । हे भगवन् ! जो सुन्दर होताहै उसको देखकर राग उपजता है और चित्त क्षोभ को भी प्राप्त होता है । तुम ऐसे सुन्दरहो कि; तुम्हारे दर्शन से मुझको शान्ति आती जाती है । तुम दिव्यतेजको धारेहुये दृष्टि आतेहो और ऐसे तेजोवान् हो कि, देखने नहीं देते—अर्थ यह है कि, तुम्हारे समान किसी की सुन्दरता नहीं और तुम्हारा तेज हृदय में शान्ति उपजाता है और शीतल प्रकाश है । हे भगवन् ! तुम धर्म से उन्मत्तवत् दृष्टि आतेहो सो तुम कैसी शान्ति को लेकर एकांत में स्थित हो ? अपने स्वरूप प्रकाश को तुम दयाकरते दृष्टि आतेहो और पृथ्वी पर स्थित भी दृष्टि आतेहो परन्तु त्रिलोकी के ऊपर विराजमान भासते हो । एकही दृष्टि आतेहो परन्तु सर्वात्मा हो और किंचित्—अकिंचित् और सर्वभाव पदार्थों से शून्य दृष्टि आतेहो पर सर्व पदार्थ तुम्हारी सत्तासे प्रकाशते हैं । तुम सर्वपदार्थों के अधिष्ठान हो और तुम्हारे नेत्रों के खोलने से उत्पत्ति होती और मूंदने से लय होजाती है; इस से ईश्वर हो । तुम सकलंक दृष्टि आतेहो परन्तु निष्कलंकहो अर्थात् तुम्हारे में फुरना दृष्टि आता है परन्तु हृदय से शून्य हो । तुम किसी अमृतको पानकरके आयेहो और बड़े ऐश्वर्य से सम्पन्न दृष्टि आतेहो । इससे, हे भगवन् ! तुम कौनहो ? यदि मुझसे पूंछो कि, तू कौन है तो मैं मांडव्य ऋषि के कुलमें हूं और मेरा नाम संकी है । मैं ब्राह्मण हूं और तीर्थयात्रा के निमित्त निकला था । मैं सर्वदिशाओं में भ्रमा और अति भयानक स्थानों में जो तीर्थ हैं वहां भी गया परन्तु मुझको शान्ति न हुई । ऐसी शान्ति कहीं न पाई कि, इन्द्रियों की जलनसे रहित होरहूं—अब मैं अपने गृहको चलाहूं । हे भगवन् ! अब गृहसे भी मेरा चित्त विरक्त हुआहै कि; यह संसारही मिथ्या है तो गृह किसका है ? संसार में सुख कहीं नहीं । यह प्राण ऐसे हैं जैसा दामिनी का चमत्कार होता है और तैसेही यह संसार भी नष्ट होता दृष्टि आता है । शरीर उपजते भी हैं और मिट भी जाते हैं—दृष्टिमात्र हैं । जैसे रात्रि आती है और फिर नहीं जानपड़ती कि;कहां गई । हे भगवन् ! इस संसार को असार जानकर मैं उदासीन हुआहूं क्योंकि; अनेक जन्म पाये हैं सो नष्ट होगये हैं और इसीप्रकार भ्रमता फिरताहूं । अब तुम्हारी शरणागत

हूं और जानताहूं कि, तुमसे मेरा कल्याण होगा। तुम कल्याणरूप दृष्टि आते हो इससे कृपा करके कहो कि, कौनहो ? हे रामजी ! इतना सुन मैंने कहा; हे मंकी ऋषि ! मैं वशिष्ठ ब्राह्मणहूं और मेरा गृह आकाश में है। मुझको राजा अजने स्मरण किया है इस लिये मैं इस मार्ग से जाताहूं। अब तुम संशय मतकरो ज्ञानमार्ग को पावो गे। हे रामजी ! जब मैंने ऐसेकहा तब वह मेरेचरणोंपर गिरपड़ा और उसके नेत्रों से जल चलनेलगा; और महाआनन्द को प्राप्त हुआ। तब मैंने कहा कि हे ऋषि ! तू संशय मतकर। मैं तुझको अकृत्रिम शान्तिको प्राप्तकरके जाऊंगा। जो कुछ तू पूंछाचाहता है सो पूंछ; मैं तुझको उपदेश करूंगा और मैं जानताहूं कि; तू कल्याणकृतहै इस लिये जो कुछ मैं कहूंगा सो तू धरेगा। तू कुछ प्रश्नकर क्योंकि; तेरेकषाय परिपक्क हुये हैं। और तू मेरे वचनोंका अधिकारी है तुझको मैं उपदेश करूंगा। अब तू संसारके तटको प्राप्त हुआहै और अब तुझको निकालने का विलम्ब है अर्थात् तू वैराग्यसे पूर्ण है और संसारका तट वैराग्यही है; इससे संशय मतकर॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमंकीऋषिपरमवैराग्यनिरूपणं नामशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४४॥

मंकी बोले; हे भगवन् ! अब मैं जानताहूं कि, मेरा कार्य सिद्ध हुआहै। मुझको अज्ञानसे मोह था उसके नाश करनेको तुम समर्थ दृष्टिआते हो और मेरे हृदयके तम नाश करने को तुम सूर्य उदय हुयेहो। हे भगवन् ! यह संसार असार है पर लोगों की बुद्धि विषयों की ओरही धावती है जहां दुःखही होते हैं। जैसे जल नीचे स्थान को चलाजाता है तैसेही हमारी बुद्धि नीचे स्थानों में धावती है और वहीं चाहती है। हे भगवन् ! जितने भोग हैं उनको मैंने भोगा है परन्तु शान्ति न पाई बल्कि, उलटी तृष्णा बढ़ती गई। जैसे तृषा लगे और खारा जल पान करिये तो तृषा नहीं मिटती बल्कि बढ़तीही जातीहै; तैसेही विषयों के भोगने से शान्ति नहीं प्राप्तहोती– तृष्णा बढ़ती जाती है। हे मुनिराय ! देह जर्जरीभाव होजाती है दांत गिरपड़ते हैं और अतिक्षोभ होताहै तौभी तृष्णा नहीं मिटती; इससे अब मैं दुःख चाहताहूं, सुख कोई नहीं चाहता क्योंकि; संसार के जितने सुख हैं उनका परिणाम दुःख है। जो प्रथम दुःखहैं उनका परिणाम सुखहै इसी से दुःख चाहताहूं और संसार के सुख नहीं चाहता। हे भगवन् ! अपनी वासनाही दुःखदायक है। जैसे कुसवारी गुफा बनाकर उसमें आपही फँसमरती है तैसेही अपनी वासनासे जीव आपही बन्धायमान होताहै। हे मुनि ! वह कौन काल था जब अज्ञानरूपी हाथी ने मुझको वश किया था और उसका नाश करनेवाला ज्ञानरूपी सिंह कब प्रकटहोगा ? कर्मरूपी तृणों का नाशकर्त्ता विवेकरूपी वसन्त कब प्रकटेगा और वासनारूपी अन्धेरी रात्रिका नाशकर्त्ता ज्ञानरूपी

सूर्य कब उदय होगा ? हे भगवन् ! वेताल तबतक भासता है जबतक निशा है और जब सूर्य उदय होताहै तब निशा जाती रहती है और वेताल नहीं भासता तैसेही अहंकाररूपी वेताल तबतक है जबतक अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं हुई । हे भगवन् ! जब सन्तजनों के उपदेशसे आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रकट होताहै तब अहंकाररूपी वेताल वहां नहीं विचरता । सन्तजनोंकासंग और सत्शास्त्रोंका देखना चांदनीरात्रिवत्है; उनसे जब स्वरूपका साक्षात्कारहो तब दिनहुआ जानिये और जबतक सन्तजनोंका संग न करे और सत्शास्त्रोंको न देखे तबतक अँधेरी रात्रिहै । हे भगवन् ! जो सत्शास्त्रोंको भी सुने और फिर विषयोंकी ओर भी गिरे उसे बड़ा अभागी जानिये सो मैंहूं; परन्तु अब मैं तुम्हारीशरण आयाहूं मेरे हृदयरूपी आकाशमें जो अज्ञानरूपी कुहिरा है सो तुम्हारे वचनरूपी शरत्कालसे नष्ट होजावेगा और हृदयाकाश निर्मल होगा । हे भगवन् ! मैंने त्रिदण्ड साधे हैं अर्थात् मन, शरीर और वाणीसे तीन तप दीर्घकाल पर्यन्त किये हैं परन्तु आत्मप्रकाश नहींहुआ । अब मैं तुम्हारी शरणागत होके तरूंगा इसलिये कृपा करके उपदेश करो कि, मेरे हृदय का तम दूरहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमंकीवैराग्ययोगोनाम
शताधिकपंचचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४५ ॥

वशिष्ठजी ने कहा; हे तात ! संवेदन, भावना, वासना और कलना ये चारों अनर्थ के कारणहैं । जब इनका अभावहो तब कल्याणहो । शुद्ध चिन्मात्रपद प्रत्यक्ष चैतन्य अपने आपमें स्थितहै । जो अहंकार का उत्थान है सोही संवेदनहै । भावना यह है कि; पहिले आप कुछ बना फिर चेता और अपना आप चित्त स्मरण हुआ तब भ्रम मिटजाताहै और जो कुछ बना उसकी भावना होती है कि,मैं यह हूं तो इससे संसार दृढ़ होताहै फिर तैसेही वासना दृढ़ होती है और अपने शरीरके अनुसार नानाप्रकारकी कलना होती हैं । और फिर संसारके संकल्प विकल्प उठतेहैं । हे ब्राह्मण ! ये चारों अनर्थ के कारण हैं । जब इनका अभाव हो तब कल्याण हो । जितने कुछ शब्द अर्थ हैं उनका अधिष्ठानप्रत्येक चैतन्य है; सर्व शब्द उसी के आश्रित हैं और सर्व वहीहै । जब तू ऐसे जानेगा तब वासना क्षय होजावेगी । जब अहं संवेदन फुरती है तब आगे संसार भासताहै । जैसे जब वसन्तऋतु आती है तब बेलें प्रफुल्लित होती हैं तैसेही जब संवेदन फुरती है तब आगे संसार सिद्ध होता है और जब संसार हुआ तब नानाप्रकार की वासना फुरती हैं और संसार नहीं मिटता । हे अंग ! संसार इसीका नाम है कि, संसरता है । जब संसरता मिटे तब आत्मपदही शेषरहेगा सो तेरा अपना आपहै इससे इस फुरने को त्यागकर अपने आपमें स्थितहोरह—सब तेराहीरूप है । जबतक वासना फुरती है तबतक संसार दृढ़ रहता है । जैसे वृक्षको जल दीजिये तो बढ़ता

जाताहै तैसेही वासनारूपी जलदेनेसे संसाररूपी वृक्ष वृद्ध होजाताहै। इससे वासना का नाशकरो कि, यह संवेदन न फुरे। जब जलसे रहित होता है तब आपही जलजाताहै। हे पुत्र! आत्मामें जगत कुछ हुआ नहीं केवल परमार्थसत्ता है। जैसे रस्सी में सर्प कुछ वस्तु नहीं रस्सी के अज्ञानसेही भासता है तैसेही आत्मा के अज्ञान से संसार भासता है। जब तू आत्मपद को जानेगा तब परमार्थसत्ताही भासेगी। जैसे बालक अपनी परछाहीं में भूतकल्पकर भय पाताहै और जब विचारकर देखताहै तब भूत कोई नहीं सब भय दूर होजाताहै; तैसेही आत्मा के अज्ञान से संसार के राग द्वेष जलाते हैं। ज्ञानवान् को वासना संयुक्त संसारका अभाव होजाताहै और केवल अद्वैत आत्म सत्ताही भासती है। जैसे स्वप्न से जागकर स्वप्न के प्रपञ्च का वासनासंयुक्त अभाव होजाताहै; तैसेही जब आत्माका साक्षात्कार होताहै तब वासनासंयुक्त संसार का अभाव होजाता है क्योंकि; है नहीं। जैसे घटादिक में मृत्तिका से भिन्न कुछ नहीं तैसेही सर्व प्रपञ्च चिन्मात्र स्वरूप है कुछ भिन्न नहीं। जितने शब्द अर्थ हैं सर्व आत्माही हैं। हे मित्र! जो कुछ आत्मा से इतर भासताहै उसको भ्रममात्र जानो। जैसे आकाश में नीलता भासती है सो भ्रममात्र है तैसेही विश्व असम्यक् दृष्टि से भासता है और सम्यक्दृष्टि से सर्व प्रपञ्च आत्मस्वरूप हैं और दृष्टि, दर्शन, दृश्य–त्रिपुटी भी बोध स्वरूपहै। बोधही त्रिपुटीरूप होकर स्थित होता है। जैसे स्वप्न में एकही अनुभव त्रिपुटी रूपहो भासता है तैसेही यह जाग्रत् की त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है। हे अंग! जितने स्थावर–जंगम पदार्थ हैं सो सर्व आत्मस्वरूप हैं–जो परमात्मस्वरूप न हों तो भासें नहीं। द्रष्टारूप जो अनुभव करताहै सो एक अद्वैतरूप है–उसी स्वरूप के प्रमाद से भिन्न भिन्न त्रिपुटी भासती है तो भी कुछ भिन्न नहीं। जैसे स्वप्न में त्रिपुटी अपने अनुभव से भासती है; जो अनुभव न हो तो क्योंकर भासे? तैसेही यह त्रिपुटी भी अनुभव आत्मा से भासती है। इससे सर्व परमात्मस्वरूप है कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्न नहीं तो है नहीं क्योंकि; सबकी एकता परमार्थस्वरूप में होती है। हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिलजाती है। जैसे जलमें जलकी बुन्द डालिये तो मिलजाती है क्योंकि; एकरूप है; तैसेही बोधसे सर्व पदार्थों की एकता भासती है क्योंकि; द्वैतसत्ता नहीं है। जैसे स्पंद और निस्पंद दोनों पवनही हैं और जल और तरंग अभेदरूप हैं तैसेही विश्व परमार्थ स्वरूप है। इससे ऐसे निश्चय करो कि, सर्वब्रह्म स्वरूप है अथवा आपको उठादो कि, मैं नहीं–जब तू न होगा तब विश्व कहांसे होगा। हे मंकीऋषि! प्रथम जो अहं होता है तो पीछे ममत्वभी होताहै; इसलिये जो अहंही न रहेगा तो ममत्व कहां रहेगा? इस अहंका होनाही बन्धन है और इसके अभावका नाम मुक्तिहै। हे मित्र! इस युक्ति में क्या यत्न है? यह तो अपने आधीन है कि मैं नहीं। जब अहंकार को निवृत्त किया तब शेष वही रहेगा

जो सर्वका परमार्थरूप है और उसीको ब्रह्म कहते हैं । हे मुनीश्वर । जब अहंकार फुरता है तब नानाप्रकार की वासना होती हैं और उन वासना के अनुसार अनेक जन्म पाता है जो वर्णन नहीं किये जाते । जैसे पवन से तृण भटकते फिरते हैं तैसेही वासना करके जीव भटकते फिरते हैं । जब पर्वत से कंकड़ गिरताहै तब चोटें खाता नीचे को चलाजाता है तैसेही स्वरूप के प्रमादसे जीव जन्म जन्मान्तर पाते चलेजाते हैं और वासनानुसार घटीयंत्र की नाईं कभी ऊद्र्ध्व और कभी अधको जाते हैं । जैसे हाथ से ताड़ना किया गेंद कभी ऊद्र्ध्व और कभी अधको जाताहै । हे अङ्ग ! इस संसारका बीज वासना है । जब वासना निवृत्तहो तब सबकी एकता होजाती है और जबतक संसार की वासना दृढ़ है तब तक एकता नहीं होती । जैसे दूध और जल मिलता है तो उनका संयोग होजाता है तैसेही आत्मा और विश्वका संयोग नहीं—आत्मा केवल अद्वैत और सबका अपना आप है । जैसे मृत्तिकाही घटादिक रूप हो भासती है तैसेही आत्मसत्ताही जगत्‌रूपहो भासती है—इससे आत्मासे भिन्न कुछ वस्तु नहीं । हे साधो ! आत्मा और दृश्यका काष्ठ और लाखवत् अथवा घट और आकाशवत् कुछ संयोग नहीं क्योंकि; आत्मा अद्वैत है और सर्व्व दृश्य बोधमात्र है । हे साधो ! जो जड़है सो चैतन्य नहीं होता और चैतन्य जड़ नहीं होता; इससे न कोई जड़है, न चैतन्यहै; चैतन्य आत्माही भावना से जड़ दृश्यहो भासता है और उसके बोध से एक अद्वैतरूप होजाताहै तो जानताहै कि; सर्व वही है भिन्न कुछ नहीं । हे मित्र ! अज्ञान से नानाप्रकारका विश्व भासताहै । जैसे मेघकी वर्षा से नानाप्रकार के बीज प्रफुल्लित हो आते हैं तैसेही अहंरूपी बीजसे संसाररूपी वृक्ष वासना सुखसे प्रफुल्लित होता है। जब अहंकाररूपी बीज नष्टहो तब संसाररूपी वृक्षभी नष्ट होजावेगा । हे अङ्ग ! जैसे वानर चपलता करता है तैसेही आत्मतत्त्व से विमुख अहंकाररूपी वानर वासना से चपलता करता है । जैसे गेंद हाथके प्रहार से अध और ऊद्र्ध्व को उछलताहै तैसेही जीव वासना के प्रहारसे जन्मान्तरों में भटकता फिरता है और कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी भूलोक में आता है स्थिर कदाचित् नहीं होता । इस से वासना का त्यागकर आत्मपद में स्थित हो रहो । हे तात ! यह संसार रात्रिकी मंजिलहै देखते २ नष्ट होजाती है । इसको देखकर इस में प्रीति करनी और सत्य जाननाही अनर्थ है । इससे संसार को त्याग करके आत्मपद में स्थितहो रहो । चित्तकी वृत्ति जो संसरती है इसी का नाम संसार है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमंकीऋषिप्रबोधोनामशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे तात ! यह संसारका मार्ग गहन है और इसमें जीव भटकते

हैं। यह चैतन्यवृत्ति जो संसरती है। यही संसार है। जब यह संसरना मिटे तब स्वच्छ अपना आपही स्वरूप भासै। चेतनवृत्ति जो बहिर्मुख फुरती है इसी का नाम बन्धन है; और कोई बन्धन नहीं। हे साधो! यह जगत् वासना से बांधा है। जैसे वसन्त ऋतुसे रस फैलताहै तैसेही वासना से जगत् फैलताहै। बड़ा आश्चर्य्य है कि; मिथ्या वासना से जीव भटकते फिरते हैं; दुःख भोगते हैं और वारंवार जन्म मृत्यु पाते हैं। बड़ा आश्चर्य्य है कि, विषमरूप वासना से वशहुये जीव अविद्यमान जगत् को भ्रम से सत्य जानते हैं। हे साधो! जो इस वासनारूप संसार से तरगये हैं वे धन्य हैं और वे प्रत्यक्ष चन्द्रमा की नाईं हैं। जैसे चन्द्रमा अमृतरूप, शीतल और प्रकाशवान् है और सबको प्रसन्न करताहै; तैसेही ज्ञानी पुरुष है। इससे तू धन्यहै जिसको आत्मपदकी इच्छाहुई है। हे अंग! यह संसार तृष्णासे जलता है। जिनकी चेष्टा तृष्णा संयुक्तहै उनको तू बिल्ला जान। जैसे बिल्ला तृष्णासे चूहे को ग्रहण करता है तैसेही वे भी अपनी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं। इस मनुष्यशरीर में यही विशेषता है कि, किसी प्रकार आत्मपद को प्राप्त हो। जो नरदेहपाकर भी आत्मपद पानेकी इच्छा न करे तो वह पशुसमान है। हे मित्र! मूढ़जीव ऐसी चेष्टाकरते हैं कि; प्राणोंके अन्तपर्य्यन्त भी तृष्णा करते रहते हैं। हे अंग! ब्रह्मलोक से काष्ठपर्यन्त जितने इन्द्रियों के विषयहैं उनके भोगने से शान्ति नहीं होती क्योंकि, आपातरमणीय हैं—इन में सुख कदाचित् नहीं—जो ज्ञानवान् पुरुषहैं उनकी शान्ति ऐसी है जैसे चन्द्रमा में। और वे सूर्य्यकी नाईं प्रकाशते हैं विषयोंकी तृष्णा कदाचित् नहीं करते। जैसे कोईपुरुष अमृत पानकरके तृप्त हुआ हो तो वह खली खानेकी इच्छा नहींकरता, तैसेही जिसपुरुष को आनन्द प्राप्त होता है वह विषयों के भोगनेकी इच्छा नहीं करता। इससे इसी वासना का त्यागकरो। वासनाका बीज अहंकार है उसको निवृत्तकरो कि, 'मैं नहीं' क्योंकि; मेरा होनाही अनर्थ है। हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकार पदमें जो कुछ तू आपको प्रसन्न जानता है कि, 'मैं ब्राह्मणहूं' अथवा किसी प्रकृति से मिलकर आपको मानताहै कि, 'मैं यहहूं' यही अनर्थहै। हे ऋषे! तेरे नेत्रों के खोलने से संसार उत्पन्न होताहै और नेत्रोंकेमूंदनेसे नष्टहोजाताहै; सो नेत्र अहंकार का फुरनाहै; इसीसे आगे विश्व सिद्धहोता है। इससे तेरा होनाही अनर्थ है। हे अङ्ग! जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र उदय होताहै तैसेही आत्मामें अहंकार उदय हुआहै। इसी के अभावसे भय शान्त होती है। जब अहंकार होताहै तब आगे स्त्री, कुटुम्ब और धन होते हैं सोही बन्धनहैं। इनके चमत्कार ऐसे हैं जैसे दामिनीका चमत्कार क्षणमें उदयहोकर नष्ट होजाता है; इससे इनमें बन्धायमान न होनाचाहिये। हे अङ्ग! जब तू कुछ बना तब सब आपदा तुझे प्राप्तहोंगी और यदि तू अपना अभाव जानेगा तो पीछे आत्मपदही शेषरहेगा जो परमशांतरूप है और

जिसकी अपेक्षा से चन्द्रमा भी अग्निवत् जानपड़ता है। वह परमशून्य और सर्व पदार्थोंकी सत्ता और आकाशरूप है। हे मित्र! मेरे इन वचनों को धारणकर कि, तेरा मोह नष्टहोजाय। यह विश्व कुछ हुआ नहीं। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है पर है नहीं तैसेही विश्व नहीं आत्माके प्रमादसे भासताहै। हे ऋषि! तू उसीकोजान जिसके अज्ञान से विश्व भासताहै और जिसके ज्ञानसे लयहोजाताहै। हे मंकी! जैसे आकाश शून्यमात्रहै; पवन स्पन्दमात्र है और जल तरंगमात्र है तैसेही जगत् संवित्मात्र है उस संवित् आकाशसे जो भिन्न भासताहै उसे भ्रममात्र जानो। जैसे असम्यक् दृष्टि से जल पहाड़रूप भासता तैसेही असम्यक् दृष्टिसे जगत् भासताहै और सम्यक् अवलोकन से परमार्थसत्ताही भासती है। जिसके अज्ञान से विश्व भासता है उसको भी ज्ञानवान् ब्रह्मशब्द कहते हैं उस ब्रह्मपद के अहंकारही व्यवधानहैं सो ज्ञानवान् का नष्ट भया है इससे वह सर्व का अधिष्ठान एक परमार्थ स्वरूप देखता है उसी में तू भी एकत्र होरह जैसे आकाश अनेक घटके संयोग से भिन्न भिन्न भासता है और घटको फोड़िये तो सर्व एकही होजाता है तैसेही अहंकाररूपी घट फोड़िये तो सर्व पदार्थ एकत्र होजाते हैं। हे अंग! सर्वकी परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद है जो अजन्मा, अच्युत, आनन्द, शान्तरूप, निर्विकल्प, अद्वैत, सर्वका अधिष्ठान है; उस शिलावत् आत्मसत्ता से भिन्न कुछ न फुरे; इससे निर्बोधबोध होजावो। हे मंकीऋषि! ये जो पदार्थ दुःख के देनेवाले हैं और ऐसे जो शब्द अर्थ हैं सो आकाश के फूलहैं; इससे शोक मत कर क्योंकि; सर्व परमार्थसत्ताही है। जैसे पुरुष निराकार है पर उसकी भावना से अंगका संयोग होता है तैसेही विश्व भी इसकी भावना से होता है और जैसी जैसी संसार की भावना दृढ़ होती है तैसाही रूप आगे दृष्टि आता है। जो विश्व उपादान से नहीं हुआ तो आरम्भ परिणाम से भी कुछ नहीं बना। हे मित्र! शुद्ध परमात्मा का पाना साधनहै, विश्व उपादान है सो शब्द है। आत्मा अद्वैत है सो इन का हेतुहै और अचिन्त्यहै इसीसे विश्व निरुपादान स्वप्नवत् है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि निरुपादान होती है तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी है। जैसे मृत्तिकासे घटकार्य बनता है आत्मा विश्व का उपादान ऐसे भी नहीं क्योंकि, मृत्तिका परिणाम से घटाकार होती है और आत्मा अच्युत है। जैसे भीत विना चित्रहो सो हैही नहीं—इससे यह विश्व आकाश में चित्रहै। जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार का विश्व आधार भीत विना चित्रहोताहै तैसेही यह विश्व भी आकाश में चित्र हुआ है। इसी से आत्मा अकर्ता है और विश्व जो दृष्टि आताहै सो निरुपादानहै इसका शोक और हर्ष क्या करें? यह प्रपंच सर्व आत्मरूपहै प्रमादसे नहीं जानाजाता। हे साधो! संवेदनसे जो अहंकार फुरताहै तब विश्व भासता है। जैसे स्वप्ने में जो कुछ बनताहै सो अपने स्वरूप से भिन्न देखता है और उसी में

रागद्वेष भासते हैं पर जागेहुये और कुछ नहीं सब कल्पनाही का अनुभवथा,तैसेही जब संवेदन उठगई तब सब विश्व अपना आप होजाताहै। यह अहंकार होनाही विश्व है; जब अहङ्कार नष्टहो तब सर्व शब्द अर्थ कि, मैं दुःखीहूं; मैं सुखीहूं; यह नरकहै; यह स्वर्ग है इत्यादिक परमार्थसत्ताही में फुरते हैं। सर्वका अधिष्ठान आत्मा है इससे सर्व आत्मस्वरूपहै जो दृश्यसे रहित द्रष्टाहै, ज्ञेयसे रहित ज्ञाताहै और निर्बोधबोधहै, इच्छा से रहित इच्छाहै, अद्वैतहै और नानात्वभी वही है, निराकार है और आकार भी वही है, अकिंचन और किंचन भी वही है और अक्रिय है और सर्वक्रिया भी वही करताहै। ऐसे आत्मज्ञानको पाकर आत्मवेत्ता विचरते हैं और जगत्का भान उनको किंचित् भी नहीं होता। जैसे सुवर्ण के भूषण जलके तरंग होते हैं तैसेही सब विश्व उसको आत्मस्वरूप भासताहै। ऐसे जानकर वे सर्व चेष्टाकरते हैं। जैसे यंत्रीकी पुतली में संवेदन नहीं फुरती तैसेही उनको जगत् में सत्यता नहीं फुरती क्योंकि; वे निरहङ्कार हुये हैं। हे मंकीऋषि! जैसे सुवर्ण में भूषण बन आये हैं तैसेही आत्मा में विश्व फुर आया है सो अहङ्कार फुरा है; इससे इसके अभाव की भावना करो और निरहंकार होकर चेष्टा करो। जैसे पालने में बालक के अंग स्वाभाविक हिलते हैं तैसेही ज्ञानी की निर्वेदन चेष्टा होती है। हे ऋषि ! जब तू इस मेरे उपदेशको धारेगा तब सुखसेही आत्मपदकी प्राप्ति होगी और यह विश्व भी आत्मस्वरूपही भासेगा। जो कुछ विश्व भासताहै सो सब आत्मरूपही है। हे रामजी ! जब मैंने इसप्रकार कहा तब मंकीऋषि परमनिर्व्वाण पदको प्राप्त हुआ और परमसमाधि में एक वर्ष स्थित रहा शिलावत् कुछ न फुरा। हे रामजी ! जैसे मंकीऋषि स्वरूप को प्राप्त हुआ तैसेही तुमभी स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमङ्कीऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नामशताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह विश्व आत्माका चमत्कार है और सर्व वही चिन्मात्र स्वरूप है। हे रामजी ! मेरा आशीर्वाद है कि, तुम चिन्मात्र स्वरूप को प्राप्त हो रहो और जो तुम्हारा अपना आप है उसको अपना आप जानो कि, तुम्हारे दुःख नष्ट होजावें। हे रामजी ! तुम निर्वाण शान्त आत्मा होरहो; यथालाभमें सन्तुष्ट रहो, सत्य हुये भी असत्य की नाईं स्थित होरहो और राग द्वेष का रङ्ग तुम को स्पर्श न करे। हे रामजी ! यह सब जगत् एकही स्थित है और वास्तव में एक में कुछ स्थित नहीं—आदि अन्त से रहित एक चिदाकाश अपने आप में स्थित है और शरीरादिक के नाशमें भी अखण्डरूप है उसी का यह जगत् चमत्कारहै जो उपज उपज कर लयहोजाताहै। हे रामजी ! ध्याता, ध्यान, ध्येय, त्रिपुटी भ्रान्तिमात्र सिद्ध है और

वास्तव में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य सर्व आत्मस्वरूप हैं; उससे भिन्न कुछ नहीं और सदा एक रस है कदाचित् क्षोभको नहीं प्राप्त होता । यद्यपि यह दशा हो कि; अमावस का चन्द्रमा दृष्टि आवे और प्रलयकाल विना प्रलयकाल की वायु चले तो भी आत्मा को क्षोभ नहीं होता—आत्मपद सदा ज्योंका त्यों है । हे रामजी ! ऐसे आत्माके प्रमाद से जीव दुःखपाते हैं । जब आत्माका प्रमाद होता है तब देह और इन्द्रियां अपने आप में प्रत्यक्ष भासती हैं पर जैसे बालूसे तेल नहीं निकलता; आकाश में वन नहीं होता और चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता तैसेही आत्मा में देह—इन्द्रियां कदाचित् नहीं । हे रामजी ! ये सर्व जीव आत्मरूप हैं, इससे इनको देह इन्द्रियों का सम्बन्ध कुछ नहीं; परन्तु इनको जो क्रियामें अभिमान होता है इसी से बन्धायमान होते हैं । हे रामजी ! जैसे नावपर बैठेहुये पुरुष को भ्रान्ति से नदी तट के वृक्ष चलते भासते हैं तैसेही मन के भ्रमसे आत्मा में चित्त और देह इन्द्रियां भासती हैं । वास्तव में चित्त, देह और इन्द्रियां कुछ भिन्न वस्तु नहीं ये भी आत्मस्वरूपही हैं तो निषेध किसका कीजिये ? हे रामजी ! मन और इन्द्रियादिक को अपनी सत्ता कुछ नहीं भ्रान्ति से भासती हैं । जैसे पर्व्वतपर उज्ज्वल मेघ होता है और उसमें वस्त्रबुद्धि निष्फल होती है तैसेही देहादिक हैं; इनमें अहंबुद्धि निष्फल है । इससे हे रामजी ! एक अखण्ड आत्मतत्त्व है और द्वैत कुछ नहीं जब तुम ऐसे धारो तो निरञ्जन स्वरूप हो । हे रामजी ! ये सर्व शरीर चित्त के फुरने से स्थित हैं जैसे चित्त के फुरने से शरीर है तैसेही जीवमें चित्त है और परमात्मामें जीव है । हे रामजी ! इस प्रकार फुरनेमात्र दृश्य हुई तो द्वैत तो कुछ न हुआ ? इस प्रकार विचारपूर्व्वक दृश्यभ्रम को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो । हे रामजी ! ऐसे धारणकर सुखसे विचरो और जो कुछ चेष्टा नीति से प्राप्तहो उसको करो परन्तु अपना अभिमान न हो । जब अपना अहंभाव दूरहोगा तब स्पंदहो अथवा निस्स्पंदहो, समाधि में स्थितहो अथवा राज्य करो तुमको दोनों तुल्य होजावेंगे । जब अपनी अभिलाषा दूर होती है तब जैसी चेष्टा प्राप्तहो तैसाहीहो वह फुरना भी अफुरहै और एक अद्वैत का सत्ताही भान होगा । जैसे सम्यक्दर्शी को तरङ्ग और सोमजल एक भासता है तैसेही तुमको भी एकही भासेगा । चाहे जीवन्मुक्त होरहो अथवा विदेहमुक्त हो; समाधिहो अथवा राज्यहो तुमको दोनों तुल्य हैं । हे रघुकुल आकाश के चन्द्रमा रामचन्द्रजी ! जीवको अपनी अभिलाषाही बन्धन करती है । जब अभिलाषा मिटती है तब कर्म्मकरो अथवा न करो कुछ बन्धन नहीं क्योंकि; करनेमें भी आत्माको अक्रिय देखता है और न करनेमें भी वैसेही देखता है और उसकी द्वैतभावना निवृत्त होजाती है इससे उसको चित्त, देह, इन्द्रियादिक सर्व पदार्थ आत्मरूपही भासते हैं । हे रामजी ! मैं जानता हूं

कि, तुम्हारे हृदयका मोह निवृत्त हुआ है अब तुम जागेहो। यदि कुछ तुमको संशय रहाहो तो फिर प्रश्नकरो कि, मैं उत्तर दूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुखेनयोगोपदेशोनाम शताधिकअष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४८॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! एक संशय मुझको और है उसको भी आप निवृत्त कीजिये। कोई कहते हैं कि, वीर्य्य से अंकुर होताहै और कोई कहते हैं कि, अंकुर से वीर्य्य होता है; कोई कहते हैं कि, जो कुछ करताहै सो दैवही करता है और कोई कहते हैं कि, कर्म्म करते हैं तब जन्म पाते हैं और कर्म्महीसे सब कुछ होता है किसी के अधीन नहीं, कोई कहते हैं कि, जब देह होती है तब कर्म्म करते हैं और कोई कहते हैं कि, कर्म्मों से देह होती है; बाजे कहते हैं कि, देहसे कर्म्म होते हैं और कोई पुरुष प्रयत्न मानते हैं सो यह जैसे है तैसे तुम कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एकएक मैं तुमको क्या कहूं; कर्म्म से दैव और घटसे आकाशपर्य्यन्त जितने क्रिया, कर्म्म और द्रव्य हैं, ये सब विकल्पजाल भ्रान्तिमात्र हैं केवल आत्मस्वरूप अपने आपमें स्थित है–द्वैत कुछ नहीं हुआ। हे रामजी! जब संवेदन फुरती है तब सब कुछ भासताहै और निःसंवेदनहुये कुछ नहीं। जैसे शीत, श्वेत आदिक बरफके पर्याय हैं तैसेही कर्म्म पुरुष प्रयत्न आदि सब आत्मा के पर्याय हैं। दैव पुरुष है और पुरुष दैव है; कर्म्म देह है और देह कर्म्म हैं; वीर्य्य अंकुर है और अंकुर वीर्य्य है; दैव कर्म्म है और कर्म्म दैव है और वही पुरुष प्रयत्न हैं; जो इनमें भेद मानते हैं वे पण्डितों में पशु हैं क्योंकि; उनका वीर्य्य अहंकार है–जब अहंकारहुआ तब सब कुछ सिद्धहुआ। जैसे वीर्य्य से वृक्ष, फल, फूल और डाल होते हैं पर जो वीर्य्यही न हो तो वृक्ष कैसे उपजे। हे रामजी! इनका वीर्य्य संवेदन है। अहंकार, संकल्प और संवेदन तीनों पर्याय हैं। जब फुरना हुआ तब कर्म, देह, दैव सर्व सिद्ध होते हैं और जब फुरना मिटगया तब कुछ नहीं भासता। इसीको ज्ञानअग्नि से जलाओ कि, फूल फल, टहनी सब जल जावें। यह जो संवेदन फुरती है कि, 'मैंहूं' यही संसारका वीर्य्य है; इसे ज्ञानरूपी अग्निसे जलाओ। जब अहंकार नष्ट होगा तब द्वैत कुछ न भासेगा। हे रामजी! यह जो प्रपञ्च भासता है उसका वीर्य्य संवेदन है और संवेदन का वीर्य्य शुद्ध संवित्तत्त्व है पर उसका वीर्य्य और कोई नहीं। हे रामजी! आदि जो स्पंद संवेदन फुरना हुआहै उसीका नाम दैवहै क्योंकि; वह कर्म से आदिही फुरताहै; फिर जो आगे क्रिया करती है सो कर्म्म है और इसी का नाम पुरुष प्रयत्न है। वह जो कर्मसे आदि दैवरूप फुरा है सो क्या रूप है? इसीका जो प्रकृत कर्महुआ है उसी का नाम दैव कहते हैं। इन सबका वीर्य्य संवेदन है हे रामजी! वह स्वतः पुरुष

चिन्मात्रपद एकही था; जब उससे विकार संयुक्त उत्थान हुआ तब प्रपंच भासने लगा और फिर जब उत्थान का अभाव हो तब प्रपञ्च का भी अभाव होजावै। हे रामजी! जब जीव कुछ बनता है तब सर्व आपदा उसको प्राप्त होती हैं। जैसेसुई वस्त्रमें प्रवेश करती है तो उसके पीछे तागा भी चलाजाता है और जोसुई प्रवेश न करे तो तागा कहांसेजावे; तैसेही जब अहंकार प्रवेशकरता है तबसब आपदाभीआती हैं और जब अहंकार निवृत्त हो तब सब विश्व आनन्दरूप और अपना आप भासता है। इससे अहंकार का अभावकरो क्योंकि;विश्वभ्रांति से सिद्ध है,आगे कुछ हुआ नहीं; सर्वआत्म-स्वरूप है। हे रामजी! विश्व वासनामात्र है; जब वासना नष्ट हो तब परम कल्याण है। जिसप्रकार वासनाक्षयहो वही युक्ति श्रेष्ठ है। जब युक्तिसे वासना क्षयहोगी तब चेष्टा भी होगी परन्तु फिर जन्म न देगी। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य दृष्टिआती है परंतु ज्ञानीका संकल्प दग्धवीर्य्यवत् है–फिर जन्म नहीं देता और अज्ञानी का संकल्प कच्चेवीर्य्यवत् है–फिर जन्म देता है पर वास्तव में देखिये तो न कोई जन्मही पाता है और न कोई मृतक होता है केवल अपने आप भाव में स्थित है और भ्रांति करके भिन्न भिन्न भासते हैं। स्वरूप से सब अपनाही आप है–द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो भासता है सो मिथ्या है। जैसे केले के थम्भ में सार कुछ नहीं होता तैसेही सर्व प्रपंच मिथ्या है इसमें सार कुछ नहीं–इससे इसकी वासना त्यागकर अपने आपमें स्थित हो। हे रामजी! जिसप्रकार तुम्हारी वासना निर्मूल हो उसी यत्न से निर्मूल करो तब परम शिवपदही शेष रहेगा। हे रामजी! पुरुष प्रयत्न से जब निरहंकार होगे तब वासना आपही क्षय होजावेगी। वासनाक्षय का उपाय अपने पुरुष प्रयत्न के सिवा और कोई नहीं। इससे हे रामजी! पुरुषार्थ करके इसी एक देवके परायण होरहो, कर्म, दैव आदिक वही पुरुष होकर भासता है और कुछ हुआ नहीं–जैसे एकही पुरुष देवनका स्वांग धारे। हे रामजी! इस प्रकार विचारपूर्वक सब ईक्षणा को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिराशयोगोपदेशोनाम शताधिकनवचत्वारिंशत्तमस्सर्गः १४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानवान्की बुद्धि निर्म्मल होजाती है। उसके हृदयमें शीतलता होती है और उसकी बुद्धि चैतन्यसे पूर्णहोती है और दूसरा भान उठजाता है। इससे तुम भी नित अन्तर्मुख और वीतराग निर्वासी हो रहो और चिन्मात्र, निर्मल और शांतरूप सर्वब्रह्मकी भावनाकरो। उस ब्रह्मपदको पाकर नीति के अनु-सार अज्ञानी के समान चेष्टाकरो; जो हर्षका स्थानहो उसमें हर्षकरो और शोक के स्थानमें शोककरो पर हृदयमें आकाशकी नाईं रहो। हे रामजी! जब इष्टकी प्राप्तिहो तो

दृष्टि में अब भी कुछ नहीं हुआ केवल आत्मस्वरूपही भासता है और फुरना न फुरना दोनों तुल्य दिखाई देते हैं। अन्तःकरण चतुष्टय आत्मस्वरूप है और अज्ञानी को भिन्न भिन्न भासते हैं इसी से चित्त आदिक जड़ और मिथ्याहैं और आत्मस्वरूप से सब आत्मस्वरूप हैं आत्मा देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित है—ज्ञानी को सर्व आत्माही भासता है चाहे वह कैसीही चेष्टा करे वह लोक, धन, पुत्र आदि सर्व इषणा से रहित है; केवल आत्म अनुभवरूप में स्थित है और सबको अपना आप जानता है। हे रामजी ! जिसपद को वह प्राप्त होता है उस पद को मेरी वाणी नहीं कहसक्ती वह अनिर्वाच्यपद है। जो पुरुष कहता है कि, अहं ब्रह्मास्मि—अर्थात् मैं ब्रह्महूं और यह जगत् है तो जानिये कि, उसको ज्ञान नहीं उपजा—उसको शास्त्र श्रवण का अधिकार है। जैसे कोई कहे कि, मेरे हाथ में दीपक है और अन्धकार भी मुझको दृष्टि आता है तो जानिये कि, इसके हाथमें दीपक नहीं; तैसेही जबलग जगत् भासता है तबलग ज्ञान नहीं उपजा यह जीव निर्व्वाण होजावेगा। जब प्रत्यक् चैतन्य में स्थित हो तब जड़ होजावेगा और संसार का भास कुछ न रहेगा—ऐसीभी दृष्टि न रहेगी कि, मैं सम्यक्दर्शी हूं, केवल निर्वाण होजावेगा। हे रामजी ! अब भी निर्वाणपद है, किससे किसको कौन उपदेशकरे ? केवल एकरस शून्य है; शून्य और आत्मामें कुछ भेद नहीं और जो कुछ भेद है उसको ज्ञानवान् जानते हैं वाणीकी गम नहीं। उसमें जो अनन्त संवेदन फुरती है तिससे संसार फुरता है और संवेदनही से लीन होता है। जैसे पवन से अग्नि प्रज्वलित होता है और पवन ही से लीन होता है तैसेही जब संवेदन बहिर्मुख फुरती है तब संसार भासता है और जब अन्तर्मुख होतीहै तब जगत् लीन होजाताहै—इसमें संसार फुरनेमात्र है। जैसे आकाश में नीलता भ्रम से भासती है तैसेही आत्मामें जगत् कुछ बनानहीं केवल ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्यों है—उसीमें स्थित होरहो। जब उसमें स्थितहोगे तब अशेषभाव मिटजावेगा। हे रामजी ! तब ग्राह्य और ग्राहक सम्बन्धभी जाता रहेगा और केवल परमात्मतत्त्व जो शुद्ध, अजर और अमर है उसमें खाते, पीते, चलते, फिरते वृत्ति रहेगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभावनाप्रतिपादनोपदेशोनाम शताधिकपञ्चाशत्तमस्सर्गः १५०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिस प्रकार पुरुष आत्मपद को प्राप्त होताहै सो सुनो। जब निरहंकार होता है तब आत्मपद को प्राप्त होता है। जो सर्वात्मा है उसको आवरण करनेहारी अविद्याही है। जैसे सूर्य्यमण्डल को बादल ढाँप लेता है तैसेही अविद्या आत्मा में आवरण करती है। उस अविद्या से उन्मत्त की नाईं मूर्ख चेष्टा करते हैं और जो अहंसत्ता से रहित ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको कोई दुःख नहीं स्पर्श करता—

संदेह भी निर्दुःख होता है। जैसे भीतपर लिखी युद्धकीसेना देखनेमात्र क्षोभित दृष्टि आती है परन्तु शान्तरूप है; तैसेही ज्ञानवान् की चेष्टा में भी क्षोभ दृष्टि आता है परन्तु सदा अक्षोभ और निर्वाणरूप है और वासना सहित दृष्टि आता है पर सदा निर्वासनिक है। जैसे जलमें लहर और चक्र क्षोभ दृष्टि आते हैं परन्तु जलसे भिन नहीं; तैसेही ज्ञानवान्को ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं भासता। जिसके हृदय से दृश्यभाव शान्त होगया है और बाहर से क्षोभवान् दृष्टि आता है तौभी वह मुक्तरूप है। जैसे धुयें के बादल आकाश में हाथी, घोड़ा और पहाड़रूप दृष्टि आते हैं परन्तु हैं कुछ नहीं तैसेही जगत् दृष्टि आता है परन्तु है कुछ नहीं; अहंकार से भासता है और अहंकार से रहित निर्विकार शान्तरूप होता जाता है। ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है उसको पाकर ज्ञानवान् शोभता है। शरत्काल का आकाश, क्षीरसमुद्र और पूर्णमासी का चन्द्रमा भी ऐसा नहीं शोभता जैसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है। हे रामजी! अहंताही इसपुरुष को मल है; जब अहंता नष्ट हो तब स्वरूप की प्राप्तिहो और संसार के पदार्थोंकी भावना निवृत्त हो क्योंकि; भ्रम से उपजी थी। जो वस्तु भ्रमसे उपजी होती है उसका भ्रमके अभाव हुये अभाव होजाता है। जैसे आकाश में धुयें का बादल नानाप्रकार के आकारहो भासता है पर है नहीं; तैसेही यह विश्व अनहोता भासता है और विचार किये से नहीं रहता। हे रामजी! जबतक संसार की वासना है तब तक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तब आत्मपद की प्राप्ति हो, संपूर्ण कलना मिटजावे और इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट में तुल्य होजावे। तब वह यद्यपि व्यवहार करताहो तौभी शान्तरूप है। जैसे शब्दको राग द्वेष नहीं फुरता तैसेही ज्ञानी निर्वाण पद को प्राप्त होता है जिसमें सत् असत् शब्द कोई नहीं केवल ब्रह्मस्वरूप है बलिक ब्रह्म कहना भी वहां नहीं रहता, केवल आत्मतत्त्वमात्र है और अद्वैतहै। हे रामजी! विश्व भी वहीरूप चैतन्य आकाश है। जैसी जैसी भावना होती है तैसाही तैसा चैतन्य होकर भासता है। जब जगत् की भावना होती है तब नानाप्रकार के आकार दृष्टि आते हैं और ब्रह्म की भावना से ब्रह्म भासता है। जैसे विष में यदि अमृत की भावना होती है और विधि संयुक्त खाते हैं तो वह विष भी अमृत होजाता है और जो विधि बिना खाइये तो मृत्यु का कारण होताहै; तैसेही इस संसार को यदि विधिसंयुक्त देखिये अर्थात् विचार करके देखिये तो ब्रह्मस्वरूप भासताहै और जो विचार बिना देखिये तो जगद्रूप भासता है पर विचार तब होताहै जब अहंकार निवृत्त होता है। अहंकार आकाश में उपजा है; आकाश शून्यता में उपजा है और शून्यता आत्माके प्रमादसे उपजी है। फिर अहंकार से जगत् हुआ है और अहंकार मिथ्या है। हे रामजी! शरीर आदिक चित्तपर्यन्त विचारकर देखिये तो दृष्टि कहीं नहीं आते;

इनमें जो अहंप्रत्ययहै वह भ्रान्तिमात्र है । जब तुम विचार करके देखोगे तब मरीचिका के जलवत् भासेगा । हे रामजी ! जैसे स्वप्ने के पर्वत के त्यागने में कुछ यत्न नहीं तैसेही मिथ्या संसार के त्यागने में कुछ यत्न नहीं–फिर इसका निर्णय क्या कीजिये ? जैसे बन्ध्या के पुत्रकी वाणी विचारिये कि, सत्य कहता है अथवा असत्य कहता है तो मिथ्या कल्पनाहै क्योंकि, बन्ध्याका पुत्र हैही नहीं तो उसका विचार क्या करिये; तैसेही प्रपञ्च है नहीं तो इसका निर्णय क्या कीजिये ? इससे तुम ऐसे होरहो जैसे मैं कहताहूं तब आत्मपदकी प्राप्ति होगी । हे रामजी ! ऐसी भावना करो कि, न मैं हूं और न जगत् है जब अहंकारही न रहा तब कलना कहां हो; इसका होनाही अनर्थ है । जब ऐसा विचार उत्पन्न होता है तब भोगोंकी वासना क्षय होजाती है और सन्तोंकी संगति होतीहै–अन्यथा भोगकी वासना नहीं नष्ट होती । हे रामजी ! जबतक अहंता उठतीहै अर्थात् दृश्य और प्रकृति से मिलाप है तबतक द्वैत भ्रम नहीं मिटता और जब अहंकार का उत्थान मिटजावे तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ता होरहे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहंससंन्यासयोगोनाम शताधिकएकपञ्चाशत्तमस्सर्गः १५१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब अहंताका उत्थान होताहै तब स्वरूपका आवरण होताहै और जब अहंता मिटजाती है तब स्वरूप की प्राप्ति होतीहै । इस संसार का वीर्य्य अहंताही है; सो अहंकारही मिथ्या है तो उसका कार्य्य कैसे सत्यहो और जो प्रपञ्च मिथ्या हुआ तो पदार्थ कहांसे सत्यहों ? हे रामजी ! ऐसा जो ब्रह्महै उसकी युक्ति क्याहै ? सङ्कल्प पुरुषभी असत्यहै; उसका संशयभी मिथ्याहै और जिस प्रति प्रश्नकरता है सो भी मिथ्याहै । जैसे स्वप्ने में द्वैतकलना होतीहै सो असतहै तैसेही यह जगत् द्वैत भी असत्यहै । हे रामजी ! यह सब जगत् इसके भीतर स्थितहै और प्रमाद से बाहर भासता है । यह अपनाही स्वप्ना दृष्टि आता है कि, भीतर की बाहर सृष्टि भासती है । इससे यह जगत् सब चिद्रूपहै–भिन्न कुछ नहीं । यह चैतन्यसत्ता आकाशसे भी अति सूक्ष्म और स्वच्छ है । हे रामजी ! यह जगत् चित्तसे चेताहै इससे कहीं हुआ नहीं और न किसीका नाश होताहै; न कोई उत्पन्न होताहै, न कहीं जन्महै और न मरणहै-सर्व ब्रह्मही है । हे रामजी ! जगत् के नाशहुये कुछ नाश नहीं होता क्योंकि, हुआ कुछ नहीं । जैसे स्वप्नेके पहाड़ और संकल्पपुर नष्टहुये तो क्या नष्टहुये वे तो कुछ उपजेही नहीं, तैसेही यह जगतहै । यह विचारकर देखाहै कि जो वस्तु अविचारसे उपजी होतीहै सो विचार करनेसे नहीं रहती । जैसे जो पदार्थ तमसे उपजा होता है सो प्रकाश हुयेसे नहीं रहता तैसेही यह जगत् है; अविचार से भासता है और विचार करनेसे नाश होजाता है । हे रामजी ! यह जगत् संकल्पहीमात्र है–जैसे संकल्पनगर होता है तैसेही यह संसार है

इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं; इससे रूप, इन्द्रियां और मन के अभाव की चिन्तना करना। यह संसार ऐसा है जैसे समुद्र में चक्र; इसमें प्रीति भावना करनी अज्ञानता है। हे रामजी ! कोई ऐसेहैं कि, बाहरसे शान्तरूप दृष्टि आते हैं पर उनके हृदयमें क्षोभ होताहै और कोई पुरुष ऐसेहैं कि, हृदयसेशीतलहैं और बाहर नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं पर जिनके दोनों मिटजातेहैं वे मोक्षकेभागी होते हैं और उनकेभीतर बाहर एकता होती है-जैसे समुद्रमें घटभरके रखिये तो उसके भीतर बाहर जलही होताहै। हे रामजी ! जिस पुरुषने आत्माको ज्योंका त्यों जानाहै उसको भय, शोक और मोह नहीं होता वह केवल स्वच्छरूप शान्त आत्मामें स्थित है। भय तब होताहै जब दूसरा भासता है सो उसको सर्वद्वैतका अभावहोकर शान्तरूपहोताहै। हे रामजी ! सम्यक्दर्शीको जगत् दुःखनहींदेता और असम्यक्दर्शीको दुःखदेताहै। जैसे रस्सी को जो जानताहै उसको रस्सीही भासती है और जो नहीं जानता उसको सर्प भासता है और भयपाताहै; तैसेही जिसको आत्माका साक्षात्कार है उसको जगत् कल्पना कोई नहीं भासती केवल चिदानन्दब्रह्म अधिष्ठानरूप भासताहै और जिसको अधिष्ठानका अज्ञानहै उसको जगत् द्वैतरूपहोकर भासताहै और वह रागद्वेषमें जलताहै। हे रामजी ! और जगत् कोई नहीं इसके अनुभव मेंही जगत् कल्पना होती है और अज्ञान से द्वैतरूपहो भासता है पर जब अपने स्वभावसत्ता में जागता है तब सब अपना आप भासता है। जैसे स्वप्नेमें अपना आपही द्वैतरूपहो भासता है और राग द्वेष उपजता है पर जब जागता है तब सब आत्मरूप हो भासता है; तैसेही यह जगत् है; न इस जगत्का कोई निमित्त कारणहै और न कोई उपादान कारणहै। जो पदार्थ कारण विना भासे उसे असत् जानिये वह वास्तवमें उपजा नहीं भ्रमसे सिद्ध हुआ है। जैसे स्वप्नसृष्टि अकारणहै तैसेही यह जगत् अकारणहै और भ्रमकरके भासता है। हे रामजी ! शास्त्रकीयुक्तिसे विचारकरके देखो तो द्वैतभ्रम मिटजावे रञ्चकमात्र भी कुछ बनानहीं। जैसे आकाश में नीलता नहीं और मरुस्थल में नदी नहीं तैसेही इस जगत् को भी जानो। आत्मा शुद्ध और अद्वैतहै उसमें अहंकृतका फुरनाही दुःखहै और दुःख का कारण है। जो स्वरूप का प्रमाद न हो तो अहंकृत भी दुःखका कारण नहीं और जो स्वरूप भूला तो अहंकृतादिक दृश्य विषकी बेलि बढ़ती जाती है और नानाप्रकार के आकार धारती है और वासना दृढ़ होती है। जबतक वासना होती है तबतक बन्ध है और जब वासना निवृत्त हो तबहीं कल्याण होता है। हे रामजी ! जिस दृश्य की जीव भावना करता है वह जैसे समुद्रमें तरङ्ग और चक्र होते हैं सो समुद्रसे भिन्न कुछ नहीं होते तैसेही अहंकारआदिक जो दृश्यहैं सो हैं नहीं और जो हैं नहीं तो उनकी इच्छा करनी मूर्खता है। ज्ञानवान् की वासना क्षय होजाती है और उसको बन्धनका कारण नहीं होता क्योंकि; संसारकी सत्यता उसके हृदय में नहीं रहती और सत्यता

इससे नहीं रहती कि; आत्मा का साक्षात्कार हुआहै। जब आत्माका प्रमाद होताहै तब अहन्ता उदय होती है और दृश्य भासती है। जैसे नेत्रके खोलने से दृश्यका ग्रहण करताहै और जब नेत्र मूंदलिये तब दृश्यरूपका अभाव होजाताहै तैसेही जब अहन्ता उदय होती है तब दृश्य भी होती है और जब अहन्ता नष्ट होती है तब संसारका अभाव होजाताहै। हे रामजी! अहन्ताका उदय होनाही अज्ञानताहै और अहन्तासेही बन्धहै; अहन्तासे रहित मोक्षहै—आगे जो इच्छाहो सो करो। हे रामजी! देह, इन्द्रियादिक मृगतृष्णा के जलवत् हैं; इनमें अहन्ता करनी मूर्खताहै। ज्ञानवान् अहन्ताको त्यागकर आत्मपदमें स्थित होताहै और संसारके इष्ट अनिष्टमें हर्ष और शोक नहीं करता। जैसे आकाशमें बादल हुआ तौभी वह ज्योंकात्यों है; तैसेही ज्ञानी ज्योंकात्यों है। उसमें अहंकार नहीं होता इससे वह सुखरूपहै। हे रामजी! रूप, दृश्य, इन्द्रियां और मन उसके जाते रहते हैं। जैसे बन्ध्याके पुत्रकी नृत्य नहीं होती तैसेही ज्ञानी के रूप, अवलोक, मनस्कार नष्ट होजाते हैं क्योंकि; उसको सर्वब्रह्म भासताहै और द्वैत भावना उसकी नष्ट होजाती है संसारका बीज अहन्ता अज्ञानियों में दृढ़है। हे रामजी! अहन्तासे जीवकी बुद्धि बुरी होजाती है अर्थात् स्थूल होजाती है इससे वह दुःख पाता है। इस दुःखके नाशका उपाय यह है कि, सन्तजनों के वचनों की भावना करना और विचार करके हृदयमें धारणा—इससे अहन्तारूपी दुःख नष्ट होजाताहै। सन्तों के वचनों का निषेध करना मुक्तिफल के नाश करनेवालाहै और अहन्तारूपी वेतालके उपजाने वालाहै—इस लिये सन्तों की शरणमें जाओ और अहन्ताको दूरकरो इसमें कुछ खेद नहीं; यह अपने अधीन है। अपने अभावके चिन्तने में क्या खेदहै? हे रामजी! आत्मपद सन्तोंकी संगति द्वारा बहुत सुगमतासे प्राप्त होताहै। ज्ञानवानोंकी पृथक् पृथक् सेवा करो और उनके वाक्य विचार करके बुद्धिको तीक्ष्ण करो; जब बुद्धि तीक्ष्ण होगी तब अहन्तारूपी विषकी बेलिका नाशकरेगी। यह विचार करना चाहिये कि; 'मैं कौन हूं;' और 'यह जगत् क्याहै;' इसप्रकार सन्तों के वचनों और शास्त्रों के वचनोंके निर्णय किये से सत्य सत्य होताहै और जो असत्य है वह असत्य होजाता है। सत्य जानकर आत्माकी भावना करना और असत्य जगत्को मृगतृष्णाके जलवत् जानकर भावना त्यागना तो जिनको सुख जानकर पानेकी भावना करता था सो दुःखदायी भासते हैं। जैसे अधिष्ठानके अज्ञानसे मरुस्थलमें जल जानकर मृग दौड़ताहै तो दुःख पाताहै तैसेही सब का अधिष्ठान आत्मतत्त्व है; सो शुद्धरूप, परमशान्त और परमानन्द स्वरूप है जिसको पाकर फिर दुःखी नहीं होता। हे रामजी! बन्धनका कारण भोगकी वासना है पर भोगों से शान्ति नहीं होती; जब सन्तों की संगति होती है तब कल्याण होता है और अनात्ममें अहंभाव छूटजाता है; और प्रकार शान्ति नहीं होती। हे रामजी!

बालक की नाईं हमारे वचन नहीं हैं, हमारा कहना यथार्थ है क्योंकि; हमको स्वरूपका स्पष्ट भानहै । जब अहन्ता मिटजावे तब सुखीहो । इससे अहन्ताका नाशकरो । जब अहन्ता नाशहो तब जानिये कि, चैत्यकी भावना मिटजाती है । हे रामजी ! जब ज्ञान रूपी सूर्य्य उदय होता है तब अहन्तारूपी अंधकार नष्ट होजाता है । ज्ञान तब होता है जब सन्तोंका विचार; विषयों से वैराग्य और स्वरूपका अभ्यास करे-इससे स्वरूप की प्राप्ति होती है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणयुतयुक्त्युपदेशोनाम शताधिकद्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः १५२ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिन पुरुषोंने ज्ञानसे अपना अज्ञान नष्ट नहीं किया उन्होंने करने योग्य कुछ नहीं किया । अज्ञान से पहिले अहंभावना होती है तब आगे जगत् भासता है और लोक परलोक की भावना करता है और इसी वासनासे जन्म मरण पाता है । हे रामजी ! जबतक हृदयमें संसारका शब्द अर्थ दृढ़ है तबतक शब्द अर्थके अभावकी चिन्तना करे और जहां जगत् भासता है तहां ब्रह्मकी भावना करे । जब ब्रह्म भावना करेगा तब संसार के शब्द अर्थ से रहित होगा और आत्मपद भासेगा । हे रामजी ! इस संसारमें दो पदार्थ हैं-एक यह लोक और दूसरा परलोक । अज्ञानी इस लोकका उद्यम करते हैं और परलोकका नहीं करते इससे दुःख पाते हैं और तृष्णा नहीं मिटती और विचारवान् पुरुष परलोक का उद्यम करते हैं इससे यहां भी शोभा पाते हैं और परलोक में भी सुख पाते हैं और उनके दोनों लोकों के कष्ट मिटजाते हैं । जो इसी लोक का उद्यम करते हैं उनको दोनोंही दुःखदायक होते हैं अर्थात् यहां तृष्णा नहीं मिटती और आगे जाकर नरक भोगते हैं । जिन पुरुषों ने आत्मा का यत्न किया है उनको वही सिद्ध होता है और वे सुखी होते हैं और जिसने यत्न नहीं किया वह दुःखी होता है । इससे अहंकार से रहित होनेसे ही आत्मपद की प्राप्ति है । जबतक प्रच्छिन्न अहंकार होता है तबतक दुःखी होता है और नाम इस का जीव है । जो कुछ फुरता है उससे विश्व की उत्पत्ति होती है । जैसे नेत्रों के खोलने से रूप भासता है और नेत्रों के मूंदने से रूप का अभाव होजाता है; तैसेही जब अहन्ता फुरती है तब दृश्य भासती है और जब अहन्ता का अभाव होता है तब दृश्यका भी अभाव होजाता है । अहन्ता अज्ञान से सिद्ध होती है और ज्ञानके उपजे से निवृत्त होजाती है । हे रामजी ! यदि पुरुष अपना प्रयत्न करे और साथही सत्सङ्गकरे तो इस संसारसमुद्र से उतर जावेगा; और किसी प्रकार नहीं तरता । हे रामजी ! युक्ति करके जैसे विषभी अमृत होजाता है तैसेही पुरुषार्थ से सिद्धि प्राप्त होती है । हे रामजी ! इस जीवको दो व्याधि रोगहैं-एक यह लोक और दूसरा पर-

उससे स्पर्शकरो परंतु हृदयमें तृष्णा न करो; जब युद्धप्राप्तहो तब शूरमाहोकर युद्ध करो; जो दीनहो उसपर दयाकरो; जो राज्य प्राप्तहो तो उसको भोगो और जो कोई कष्टप्राप्त हो तो उसको भी भोगो-ये सब चेष्टा अज्ञानीकी नाईं करो पर हृदयमें समता रक्खो; आत्मा से भिन्न कुछ न फुरनेदो और राग द्वेष से रहित सदा निर्मल होरहो। जब तुम ऐसे निश्चयको धारोगे तब तुमको कुछ खेद न होगा। यद्यपि बड़ादुःख और इंद्रका वज्रपड़े तौ भी तुमको स्पर्श न करेगा। हे रामजी! तुम्हारारूप न शस्त्र से कटता है न अग्निसे जलता है; न जलसे गलता है और न पवनसेसूखता है—केवल निराकार, अजर अमर और सबका अपना आप है। हे रामजी! कष्ट तबहोता है जब विलक्षण वस्तु होती है और अग्नि तब जलती है जब काष्ठ आदिक भिन्न वस्तु होती हैं; अग्नि को अग्नि तो नहीं जलाती और जलको जल तो नहीं गलाता? इससे तुम अपने आपमें स्थित होरहो। हे रामजी! संवित्‌रूप आलयवत् स्थिर स्थान है उसी में स्थित होरहो—जैसे पक्षी सर्व ओर से संकल्पको त्यागकर आलय में स्थित होता है तब सुखपाता है तैसेही जब तुम सर्वकलना को त्यागकर अंतर्मुख संवित् में स्थित होगे तब राग द्वेपरूपी धुंध कोई न रहेगा। हे रामजी! संसाररूपीसमुद्र का बड़ा प्रवाह है, आश्रय बिना उससे नहीं निकलसक्ता; सो आश्रय मैं तुमसे कहताहूं कि; अनुभवरूप आत्माको आश्रय करके संसार समुद्रके पार होरहो; विलम्ब न करो और अपने आपमें स्थितहोरहो। हे रामजी! यदि कोई संसाररूपी वृक्षका अन्त लियाचाहे तो नहींलिसक्ता। संसाररूपी एकवृक्ष है उस में चैतन्यमात्र सुगंधि है सो तेरा अपना आपहै उसको ग्रहणकर। जो सर्वका अधिष्ठानहै जब उसको ग्रहणकिया तब सबको ग्रहण किया। हे रामजी! जो कुछ प्रपंच तुमको भासताहै सो सब आत्मरूपहै—उसीकी भावनाकरो जाग्रत्‌में सुषुप्तहोरहो और सुषुप्ति में जाग्रत् होरहो। संसारकी सत्ता जो जाग्रत्‌है उसकी ओरसे सुषुप्त होरहो अर्थात् फुरने से रहित होकर तुरियापद में स्थित होरहो जहां गुणका क्षोभ कोई नहीं और निर्मल शान्तिरूप है और जहां एक और दोकी कलना कोई नहीं। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! ऐसे जो शान्तिरूप तुरियापद में स्थित होना तुमने कहा सो तुम्हारे में यह नहीं फुरता कि, मैं वशिष्ठहूं; उसकारूप क्या है कि, अहंप्रतीति तुमको नहीं होती है? इतनाकह बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब इस प्रकार रामजी ने प्रश्नकिया तब वशिष्ठजी चुपहोगये और सब सभा संशय के समुद्र में मग्नहुई। तब रामजी बोले, हे भगवन्! चुपहोना तुम्हारा अयोग्यहै। तुम साक्षात् विश्व गुरु और ब्रह्मवेत्ताहो। ऐसी कौन बात है जो तुमको न आवै? क्या मुझको समर्थ नहीं देखते? जब ऐसे रामजीने कहा तब वशिष्ठजी एकघड़ीके उपरांत बोले, हे रामजी! असामर्थ्य से मैं चुपनहींहुआ परन्तु जैसा तेरे प्रश्नका उत्तर है वही दिखाया कि तेरे प्रश्नका

चुपही उत्तरहै । जो प्रश्नकरनेवाला अज्ञानीहो तो उसको अज्ञानलेकर उत्तर देते हैं और जो ज्ञानवान्हो उसकोज्ञानसे उत्तर देते हैं। आगे तुम अज्ञानी थे तब मैं सविकल्प उत्तर देता था और अब तुम ज्ञानवान्हो तुम्हारे प्रश्नका उत्तर तूष्णीही है । हे रामजी !जो कुछ कहनाहै सो प्रतियोगीसे मिला हुआहै; प्रतियोगी बिना शब्द मैं कैसेकहूं? आगे तुम सविकल्प शब्द के अधिकारी थे और अब तुमको निर्विकल्प का उपदेशकिया है। हे रामजी ! शब्द चारप्रकारके हैं-एक सूक्ष्म अर्थका; दूसरा परमार्थका; तीसरा अल्प और चौथा दीर्घ । तीनि कलंक इनमें रहते हैं-एक संशय; दूसरा प्रतियोग और तीसरा भेद। जैसे सूर्य्यकी किरणों में त्रसरेणु रहते हैं तैसेही शब्द में कलंक रहते हैं पर जो पद मन और वाणी से अतीत हैं उनको कलंकित शब्द कैसे ग्रहण करें ? हे रामजी ! काष्ठमौन उसको कहते हैं जहां इन्द्रियां न फुरें; न मनफुरे और कोई फुरना न फुरे-ऐसेपदको मैं वाणीसे कैसे कहूं ? जो कुछ बोला जाता है सो सविकल्प होता है-तुम्हारे उस प्रश्नका उत्तर तूष्णी है। रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! तुम कहते हो कि, बोलना सविकल्प और प्रतियोगी सहित होता है तो जो कुछ ब्रह्म में दूषणहै उसका निषेध करके कहो मैं प्रतियोगीको न विचारूंगा । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं चिदाकाश स्वरूप; चैत्यसे रहित; चिन्मात्र; शान्तरूप; सम और सर्वकलना से रहित केवल आत्मत्वमात्र हूं; और तुम और जगत् भी चिदाकाश है अहंत्वं कोई नहीं क्योंकि; दूसरीसत्ता कोई नहीं सब अहंसंवेदनसे रहित शुद्ध चिदाकाश है। जो सापेक्षक अहं अहं फुरती है और मोक्ष की भी इच्छा होती है तो सिद्ध नहीं होती क्योंकि; आपको कुछ मानकर फुरती है इससे एक अहंकारके कई अहंकार हो जाते हैं। यही अहं गले में फांसी पड़ती है; जब अहंतासे रहितहो तब आत्मपदको प्राप्तहो । हे रामजी ! जब शवकी नाईं होजावे और कुछ अपना अहंताभिमान न फुरे तब संसारसमुद्रसे पार हो और जबतक द्वैतसे मिलाहुआ जीताहै तबतक जन्म मरण के बन्धनमें है कदाचित् मुक्त नहीं होता। जैसे जन्मका अन्धा चित्रकी पुतली को नहीं देखसक्ता तैसेही अहंता संयुक्त मुक्ति नहीं पाता । जब अहंताका अभाव हो तब कल्याणहो-स्वरूप के आगे अहंताही आवरण है। हे रामजी ! जब जीव चैतन्य हुआ फुरा तब उसको बन्धन पड़ा और जब जड़-अफुर हो तब कल्याण हो। जब चैतन्योन्मुखत्व होताहै तब इसका नाम पशु होता है और पशुका शरीरपा जब चैत्यसे रहित शुद्ध चैतन्य प्रत्यक् आत्मामें स्थित होताहै तब मनुष्य जन्म सफल होताहै। मनुष्य जन्म पा जो कुछ पाना है सो पाताहै। हे रामजी ! यदि मनुष्य जन्मको पाकर न जानेगा तो और किस जन्म में जानेगा ? यह संसार चित्तके फुरने से उत्पन्न हुआ है; जब चित्त संसरने से रहित हो तब केवल केवलीभाव स्वरूप भासै । ज्ञानवान् की

लोक है उनसे दुःख पाता है। जिनपुरुषोंने सन्तों के मिलापरूपी औषधि से चिकित्सा की है वे मुक्तरूप हैं और जिन्हों ने वह औषधि नहीं की वे पुरुष पण्डितहों तौ भी दुःख पाते हैं। सो औषधि क्या है? शम, दम और सत्संग; इन साधनों के यत्नसे जिसने आत्मपद पाया है वह कल्याणमूर्त्ति है। हे रामजी! चिकित्साकी औषधि भी यही है। जिसने कियाहै उसनेकिया और जिन्होंने न किया वे भोगमें लम्पट रहे व वे मूर्ख वहां पड़ेंगे जहां फिर कोई औषधि न पावेंगे। इससे, हे रामजी! इन भोगोंका त्याग करो और आत्मविचारमें सावधान होरहो—यही औषधि है। हे रामजी! जिस पुरुषने मन नहीं जीता वह मूढ़है—वह भोगरूपी कीचड़ में मग्न है और आपदाका पात्र है। जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं, तैसेही उसको आपदा प्राप्त होती हैं। जिस की तृष्णा भोगसे निवृत्त हुई है और वैराग्य उपजा है वह मुक्त होता है। जैसे जीवने की आदि बालक अवस्थाहै तैसेही निर्वाणपदकी आदि वैराग्यहै। हे रामजी! जैसे दूसरा चन्द्रमा, संकल्पनगर और मृगतृष्णाका जल भ्रमसे भासताहै तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासताहै। संसारका बीज अहन्ताहै; जब अहन्ता उदय होती है तब रूप और अवलोक भासते हैं, इससे यही चिन्तनाकरो कि, मैं नहीं। जब यही भावना करोगे तब शेष जो रहेगा सो तुम्हारा शान्तरूपहै; जिसमें आकाश भी शून्यहै और अहंके उत्थानसे रहित जड़ अजड़ केवल आत्मत्वमात्रहै। जड़ताका उसमें अभाव है इससे अजड़ है और केवल ज्ञानमात्रहै। उसमें विश्व ऐसे है जैसे जलमें तरङ्ग; पवनमें स्पन्द और आकाश में शून्यता। आत्मासे भिन्न कुछ नहीं जो आत्मासे कुछ भिन्न होता तो प्रलयमें नाश होजाता पर आत्मा तो प्रलयकालमेंभी रहताहै। जैसे सूर्यकी किरणोंमें सदा जलाभास रहता है तैसेही आत्मा में विश्वका चमत्कार रहताहै और जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवरूप होती है तैसेही यह जाग्रत् सृष्टिभी अनुभव है। आत्मा भीतर बाहरसे रहित, अद्वैत, अजर, अमर, चैत्यसेरहित, चैतन्य और सर्वशब्द अर्थका अधिष्ठानहै; फुरने से दूसरा भासता है और फुरना न फुरना वही है। जैसे चलना और ठहरना दोनों पवनके रूपहैं—जब चलता है तब भासताहै और जब ठहरता है तब नहीं भासता; तैसेही जब चित्त शक्ति फुरती है तब विश्वरूप होकर भासती है और जब अफुर होती है तब केवलमात्र पद रहताहै सो निराभास, अविनाशी, निर्विकल्प और सब का अपना आपहै और सत्य, असत्य; जड़, चैतन्य आदिक शब्दअर्थ सब उसी अधिष्ठानसत्ता में फुरते हैं। इससे उसी अपने स्वरूप में स्थित होरहो जो परमार्थसत्ता आत्मतत्त्व अपने स्वभाव में स्थित और अहं त्वं से रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशान्तिस्थितियोगोपदेशो नामशताधिकत्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः १५३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिनको दुःख सुख चलाते हैं और जो इन्द्रियों के इष्ट में सुखी और अनिष्ट में दुःखीहोते हैं और राग द्वेषके आधीन वर्त्तते हैं उनको ऐसे जानो कि, वे नष्ट हुये हैं। जिनका पुरुष प्रयत्न नष्ट हुआ है वे वारंवार जन्म पावेंगे और जिनको सुख दुःख नहीं चलाते उनकोअविनाशी जानो। वे जन्म मरणकी फांसी से मुक्त हुये हैं और उनको शास्त्रका उपदेश नहीं है। हे रामजी! रागद्वेष तब फुरता है जब मन में इच्छा होती है और इच्छा तब होती है जब संसार की सत्यता दृढ़ होती है। जिसको असत्य जानता है उसको बुद्धि नहीं ग्रहण करती और इच्छा भी नहीं होती और जिसको सत्य जानता है उस में बुद्धि दौड़ती है। हे रामजी! अज्ञानी को संसार सत्य भासता है इससे वह दुःख पाता है। जब वह शान्तपद का यत्नकरे तब दुःख से मुक्तहो। जिस में अहं, त्वं, जगत्, ब्रह्म आदि शब्द कोई नहीं और जो केवल चिन्मात्र आकाशरूप है उसमें ये शब्द कैसे हों? ये सब शब्द विचार के निमित्त कहे हैं पर वास्तव में शब्द कोई नहीं अद्वैत और चैत्य से रहित चिन्मात्र है। जब सर्व्व शब्द का बोध किया तब शान्तपद रहता है-अभावसे नहीं-इसी से आत्मत्वमात्र कहा है और जगत् फुरने से उसी में भासता है। उस जगत् में जहां ज्ञप्ति जाती है उसका ज्ञान होता है। हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है और दूसरा ज्ञप्तिज्ञान है; अधिष्ठान ज्ञान सर्वज्ञ ईश्वर को है और ज्ञप्तिज्ञान जीव को है। एक लिंगशरीर का जिसको अभिमान है वह जीव है और सर्वलिंग शरीर का अभिमानी ईश्वर है। जहां इस जीव की ज्ञप्ति पहुँचती है उसको जानता है। जैसे एक शय्यापर दो पुरुष सोयेहों और एकको स्वप्न आवे उसमें मेघ गर्ज्जते हैं और दूसरा वह मेघका शब्द नहीं सुनता क्योंकि; ज्ञप्ति उसके में नहीं आई परन्तु मेघ तो उसके स्वप्न में है। जैसे सिद्ध विचरते हैं और जीवको दृष्टि नहीं आते क्योंकि; इसकी ज्ञप्ति नहीं जाती और सब सृष्टि बसती है तिसका ज्ञान ईश्वर को है सो सृष्टि भी संकल्पमात्र है; कुछ बनी नहीं और भ्रमसे भासती है। जैसे बादल में हाथी, घोड़े, मनुष्य आदिक विकार भासते हैं वे भ्रान्ति मात्र हैं तैसेही आत्मा के अज्ञान से यह सृष्टि नानाप्रकार की भासती है, हे रामजी! यह आश्चर्य्य है कि, आत्मा में अहंकार का उत्थान होता है कि, मैं हूं और अपने को वर्णाश्रम मानता है पर विचार करके देखिये तो अहं कुछ वस्तु नहीं सिद्ध होती है और अहं अहं फुरती है। यह आश्चर्य्य है कि, भूत कहां से उठा है और शुद्ध आत्मब्रह्म यह कैसे हुआ है? अनहोते अहंकार ने तुमको मोहित किया है इसके त्यागने में तो कुछ यत्न नहीं, इसका त्याग करो। हे रामजी! यह मिथ्या संकल्प उठा है। जब अहंकार का उत्थान होता है तब जगत् होताहै और जब अहंता मिटजाती है तब जगत् का भी अभाव होजाता है क्योंकि; कुछ बना नहीं भ्रममात्र है। जैसे संकल्पनगर और स्वप्न की सृष्टि

भ्रममात्रहै तैसेही यह विश्व भी भ्रममात्रहै। कुछ बनानहीं और आत्मतत्त्वरूप है-भिन्न नहीं। जैसे पवन के दो रूप हैं चलता है तौभी पवन है और ठहरता है तौभी पवन है; तैसेही विश्व भी आत्मस्वरूप है। जैसे पवन चलता है तब भासता है और ठहरजाता है तब नहीं भासता, तैसेही चित्त चैत्यशक्ति का चमत्कार है; जब फुरता है तब विश्व भासता है पर तौभी चिद्घनहै और जब ठहरजाताहै तब विश्व नहीं भासता परन्तु आत्मा सदा एकरसहै। जैसे जलमें तरङ्ग और सुवर्ण में भूषणहैं सो भिन्ननहीं; तैसेही आत्मामें विश्व कुछ हुआ नहीं-आत्मस्वरूपही है। ज्ञप्ति भी ब्रह्म है और ज्ञप्ति में फुरा विश्व भी ब्रह्महै तो विधि, निषेध और हर्ष, शोक किसका करें? सब वही है। हे रामजी! संकल्पको स्थिरकरके देखो कि, सब तुम्हाराही स्वरूपहै। जैसे मनुष्य शयन करताहै तो उसको स्वप्नसृष्टि भासती है और जब जागताहै तब देखताहै कि; सब मेराही स्वरूपहै; तैसेही जाग्रत् विश्वभी तुम्हारा स्वरूपहै। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठते हैं सो जलरूपहैं तैसेही विश्व आत्मस्वरूपहै और जैसे चितेरा काष्ठमें कल्पनाकरताहै कि;इतनी पुतलियां निकलेंगी और जैसे मृत्तिकामें कुम्हार घटादिक कल्पताहै कि, इसमें इतने पात्र बनेंगे पर काष्ठ और मृत्तिकामें तो कुछ नहीं; ज्योंका त्यों काष्ठहै और ज्योंकी त्यों मृत्तिका है परन्तु उनके मनमें आकार की कल्पना है; तैसेही आत्मामें संसाररूपी पुतलियां मन कल्पताहै। जब मनका संकल्प निवृत्त हो तब ज्योंका त्यों आत्मपद भासे। जैसे तरङ्ग जलरूप हैं; जिसको जलका ज्ञानहै सो तरङ्ग भी जलरूप जानता है और जिसको जलका ज्ञाननहीं सो भिन्न भिन्न तरङ्गके आकार देखताहै; तैसेही जब निस्संकल्प होकर स्वरूप को देखे तब फुरने में भी आत्मसत्ता भासेगी। अहंत्वमादिक सब जगत् ब्रह्मस्वरूपही है तो भ्रम कैसेहो और किसको हो। सब विश्व आत्मस्वरूपहै और आत्मा निरालम्ब अर्थात् चैत्य और अहंकारसे रहित केवल आकाशरूपहै। जब तुम उसमें स्थितहोगे तब नानाप्रकारकी भावना मिटजावेगी क्योंकि, नानाप्रकारकी भावना जगत् में फुरती है। जगत्का बीज अहंताहै; जब अहंता नष्टहो तब जगत्का भी अभाव होजावेगा। हे रामजी! अहंताका फुरनाही बन्धनहै और निरहंकार होनाही मोक्ष है। एक चित्तबोध है और दूसरा ब्रह्मबोध है-चित्तबोध जगत्है और ब्रह्मबोध मोक्ष है। चित्तबोध अहंता का नामहै, जबतक चित्तबोध फुरता है तबतक संसार है और जब चित्तका अभाव होताहै तब मुक्त होताहै। इस चित्तके अभावका नाम ब्रह्मबोधहै। हे रामजी! जैसे पवन फुरताहै तैसेही ब्रह्ममें चित्तबोधहै और जैसे पवन ठहरजाता है तैसेही चित्तकाठहरना ब्रह्मबोधहै।जैसे फुर अफुर दोनों पवनहीहै तैसेही चित्तबोध और ब्रह्मबोध ब्रह्महीहै-भिन्नकुछनहीं। हमको तो ब्रह्मही भासताहै जो चैतन्यमात्र और शान्तरूप अपने स्वभाव में स्थित है। जिसको अधिष्ठान का ज्ञान होता है उसको निवृत्त भी वही रूप

भासताहै और जिसको अधिष्ठान का ज्ञान नहीं होता उसको भिन्न भिन्न जगत् भासता है। जैसे एक बीज में पत्र, डाल, फूल और फल भासते हैं पर जिसको बीजका ज्ञान नहीं उसको भिन्न भिन्न भासते हैं। हे रामजी! हमको अधिष्ठान आत्मतत्त्वका ज्ञान है इससे सब विश्व आत्मस्वरूप भासता है और अज्ञानी को नानाप्रकारका विश्व और जन्ममरण भासते हैं। हे रामजी! सब शब्द आत्मतत्त्व में फुरते हैं और सब का अधिष्ठान, निराकार, निर्विकार, शुद्ध आत्मा सबका अपना आपहै; इससे सब विश्व आकाशरूपहै कुछ भिन्ननहीं। जैसे तरङ्ग जलरूपहै तैसेही विश्व आत्मस्वरूप है। चित्त जो फुरता है उसके अनुभव करनेवाली चैतन्यसत्ता है सोही ब्रह्म है और तुम्हारा स्वरूप भी वही है; इससे अहं त्वं आदिक जगत् सब ब्रह्मरूपहै तुम संशय त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहो। आगे तुमसे जो द्वैत अद्वैत कहाहै वह सब उपदेशमात्र है। एक चित्तकी वृत्तिको स्थित करके देखो सब ब्रह्म है भिन्न कुछ नहीं तो निषेध किसका कीजिये? हे रामजी! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान् कहते हैं—एक मोक्षरूपहै और दूसरी बन्धरूपहै। जो वृत्ति स्वरूपकी ओर फुरती है सो मोक्षरूप और जो दृश्यकी ओर फुरती है सो बन्धरूप है। जो तुमको शुद्ध भासती हो वही करो। जो द्रष्टाहै सो दृश्य नहीं होता और जो दृश्यहै वह द्रष्टा नहीं होता पर आत्मा तो अद्वैत है इससे द्रष्टामें दृश्य पदार्थ कोई नहीं। तुम क्यों दृश्यकी ओर फुरतेहो और अनहोती दृश्यको ग्रहण करतेहो? द्रष्टा भी तुम्हारा नाम दृश्यसे होताहै। जब दृश्यका अभाव जानो तब अवाच्यपदहै उसको वाणी से कुछ कहा नहीं जाता। हे रामजी! जैसे अंगी और अंगवाले; आकाश और शून्यता; जल और द्रवता और बरफ और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद नहीं। कोई जगत् कहे अथवा ब्रह्म कहे एकही पर्यायहै; जगत्ही ब्रह्म है और ब्रह्मही जगत् है। इससे आत्मपदमें स्थित होरहो; भ्रम करके जो आपको कुछ और मानते हो उसको त्यागकर ब्रह्मही की भावना करो और आपको मनुष्य कदाचित् न जानो जो आपको मनुष्य जानोगे तो यह निश्चय अधोगतिको प्राप्त करनेवाला है इससे अपने स्वरूपमें स्थितहोरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनामशताधिक
चतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः १५४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब देशसे देशांतरको वृत्ति जाती है तो उसके मध्य जो संवित्तत्त्वहै उसको जो अनुभव करता है सो तुम्हारा स्वरूप है उसमें स्थित होरहो और जैसी चेष्टा आवे तैसी करो। देखो, सुनो, स्पर्श करो, गन्धलो, बोलो, चलो, हँसो, सब क्रियाकरो परन्तु इनके जाननेवाली जो अनुभवसत्ता है उसी में स्थित हो रहो। यह जाग्रत्में सुषुप्ति है। चेष्टा शुभ करो और हृदयमें फुरनेसे रहित शिलावत् हो

रहो। हे रामजी! तुम्हारा स्वरूप निराभास; निर्मल और शान्तरूप है। जैसे सुमेरु पर्वत स्थित है तैसेही होरहो। यह दृश्य अज्ञानसे भासता है पर तमरूप है और आत्मा सदा प्रकाशरूप है; उस प्रकाशमें अज्ञानी को तम भासता है। जैसे सूर्य्य सदा प्रकाशरूपहै पर उलूकको नहीं भासताहै और अज्ञान करके तमही भासताहै तैसेही अज्ञानी को जो अविद्यारूप जगत् भासता है सो अविचारसे सिद्धहै। अविद्या से इसकी विपर्ययदृष्टि हुई है पर इसका वास्तव स्वरूप निर्विकार है अर्थात् जायते, अस्ति, वर्द्धते, परिणमते, विपक्षीयते, नश्यते इन षट् विकारों से रहितहै पर उसको विकार जानताहै; आत्मा निर्विकार निराकार है पर उसको साकार जानताहै; आत्मा आनन्दरूपहै पर उसको दुःखी जानता है; आत्मा शान्तरूप है पर उसको अशान्त जानता है; आत्मा महत् है पर उसको लघु जानता है; आत्मा पुरातनहै पर उसको उपजा मानता है; आत्मा सर्वव्यापक है पर उसको प्रच्छन्न मानताहै; आत्मा नित्य है पर उसको अनित्य देखता है; आत्मा चैत्य से रहित शुद्ध चिन्मात्र है पर यह उसे चैत्यसंयुक्त देखताहै; आत्मा चैतन्य है यह उसे जड़ देखताहै; आत्मा अहंसे रहित सदा अपने स्वभाव में स्थित है और यह अनात्म अहंकार में अहंप्रतीति करता है और आत्मा में अनात्मभावना करता है और अनात्म में आत्मभावना करता है; आत्मा निरवयवहै उसको यह अवयवी देखताहै; आत्मा अक्रियहै उसको यह सक्रिय देखताहै; आत्मा निरंशहै उसको अंशांशीभाव करके देखताहै; आत्मा निरामय है पर उसको रोगी देखताहै; आत्मा निष्कलंक है पर उसको कलंकसहित देखताहै; आत्मा सदा प्रत्यक्ष है उसको परोक्ष जानता है और जो परोक्ष है उसको प्रत्यक्ष जानता है। हे रामजी! यह सब विकार आत्मामें अज्ञानसे देखताहै पर आत्मा शुद्ध और सूक्ष्म से सूक्ष्म; स्थूल से स्थूल, बड़े से बड़ा और लघुसे लघु है और सर्वशब्द और अर्थ का अधिष्ठान है। हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बा है उसमें जगत्रूपी रत्न है। पर्वत और वनसहित भी जगत् दृष्टआताहै परन्तु आत्माके निकट रुई के रोम सा लघुहै। आत्मरूपी वनहै उसमें संसाररूपी मञ्जरी उपजी है! पांचों तत्त्व—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश उसके पत्रहैं उनसे शोभती है सो अहंताके उदयहुये उदय होतीहै और अहंताके नाशहुये नाशहोती है। आत्मरूपी समुद्रहै उसमें जगत्रूपी तरङ्गहैं सो उठते भी हैं और लीन भी होजाते हैं। आत्माकाशमें संसार भ्रममात्रहै और आकाश वृक्ष की नाईं है और आत्माके प्रमादसे भासता है। हे रामजी! मायारूपी चन्द्रमाकी किरणें जगत् हैं और नेतिशक्ति नृत्य करनेवाली है सो तीनों अविचार सिद्ध हैं और विचार किये से शान्त होजाते हैं। जैसे दीपक हाथ में लेकर अन्धकार देखिये तो दृष्ट नहीं आता तैसेही विचार करके देखिये तो जगत् का अभाव होजाताहै और केवल

शुद्धआत्माही प्रत्यक्ष भासता है। हे रामजी! जगत् कुछ बना नहीं—जैसे किसीने बरफ कही और किसीने शीतलता कही तो उसमें भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं और जो भेद भासता है सो भ्रममात्र है। जैसे तागे और पटमें भेद कुछ नहीं तैसेही आत्मा और जगत् है। हे रामजी! आत्मरूपी रंग में जगत्‌रूपी चित्र पुतलियां हैं और आत्मरूपी समुद्रमें जगत्‌रूपी तरंग हैं सो जलरूप हैं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेद कुछनहीं—आत्माही है आत्मासे भिन्न कुछ नहीं बना। जिससे सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं; जिससे सर्व क्रिया सिद्ध होती हैं और जो अनुभवरूप सदा अप्रौढ़ है उसको प्रौढ़ जाननाही मूर्खता है। हे रामजी ! यह विश्व तुम्हाराही स्वरूप है; तुम जागकर देखो तुमहीं खड़ेहो और स्वच्छ आकाश, सूक्ष्म, प्रत्यक्ष ज्योति अपने आपमें स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थयोगोपदेशोनाम
शताधिकपञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः १५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जलमें लहर और तरंग उठते हैं सो जलरूप हैं; तैसेही आत्मामें रूप, अवलोक और मनस्कार फुरते हैं सो सब आत्मरूप हैं—भिन्न नहीं। हे रामजी! यह शुद्ध परमात्माका चमत्कारहै और आत्मा दृश्यसे रहित, शुद्ध, चिन्मात्र निर्मल और अद्वैतहै उसमें जगत् कुछनहीं बना। हमको तो सदा वही भासताहै—जगत् कुछनहीं भासता। जैसे कोई आकाशमें नगर कल्पता है और उसमें सब रचना देखता है सो उसके हृदयमें दृढ़ होजाती है और जो संकल्पकी सृष्टिको मिथ्या जानता है उस को शून्याकाशही भासताहै। तैसेही यह विश्व मूर्खके हृदयमें दृढ़ होताहै और ज्ञानवान् को आत्मरूपही भासताहै। जैसे मट्टीके खिलौने की सेना होती है तो जिसको मट्टी का ज्ञानहै वह उसमें राग द्वेष नहींकरता और बालक मट्टीके ज्ञानसे रहितहै इससे वह उसमें रागद्वेष करता है; तैसेही ज्ञानवान् इस जगत् में रागद्वेष नहीं करते और अज्ञानी रागद्वेष करते हैं। जैसे खिलौने में सारभूत मृत्तिका होती है तैसेही इस जगत्‌में सारभूत चैतन्य आत्मा है। जो कुछ पदार्थ भासते हैं वे आत्माके विवर्त्त हैं। और मिथ्याही भ्रमसे सिद्ध हुये हैं। जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र हो उसमें सुखके निमित्त इच्छा करना ही मूर्खता है। हे रामजी! हमको तो इच्छा कुछनहीं क्योंकि, हमको जगत् मृगतृष्णा के जलवत् भासता है किसकी इच्छा करें। जिसमें सत्य प्रतीति होती है उसमें इच्छा भी होती है और जो सत्यही न भासे तो इच्छा कैसे हो? हे रामजी! इच्छाही बन्धन है और इच्छा से रहित होनेका नाम मुक्तिहै। इससे ज्ञानवान्‌को इच्छा कुछ नहीं रहती उसकी अनिच्छितही चेष्टा होती है। जैसे सूखे बाँस के भीतर बाहर शून्य होताहै और संवेदन उसको कुछनहीं फुरती तैसेही ज्ञानवान् के अन्तःकरण और बाह्यकरण में

भी शान्ति होती है; अन्तःकरण में संकल्प कोई नहीं उठता और बाहर भी कोई उपाधि नहीं निस्संकल्प निरुपाधि उसकी चेष्टा होती है। हे रामजी! जिस पुरुष के हृदय से संसारका रससूखगया है वह संसारसमुद्र से पार हुआ है और जिसका रस नहीं सूखा उसको रागद्वेष फुरते हैं उसे संसार बन्धन में जानो। हे रामजी! मैं तुमसे ऐसी समाधि कहताहूं कि, जो सुखसे प्राप्त हो और जिससे मुक्तहो। सर्व इच्छा से रहित होनाही परमसमाधि है। जिस पुरुष को इच्छा फुरती है उसको उपदेशभी नहीं लगता। जैसे आरसी के ऊपर मोती नहीं ठहरता तैसेही उसके हृदय में उपदेश नहीं ठहरता। इच्छाही जीव को दीन करती है और इच्छासे रहित हुआ शान्तरूप होताहै और फिर शान्तिके निमित्त कर्त्तव्य कुछ नहीं रहता। हे रामजी! हमतो निरिच्छित हैं इससे हमको भीतर बाहर शान्ति है और हमको कर्त्तव्य करने योग्य कुछ नहीं—यह सब प्रारब्ध के अनुसार रागद्वेष से रहित चेष्टा होती है और बोलते हैं परन्तु बांसुरी की नाईं। जैसे बांसुरी अहंकार से रहित बोलती है तैसेही ज्ञानवान् अहंकार से रहित हैं और स्वादको ग्रहण करते हैं। जैसे करछी सर्व व्यञ्जनों में डालीजाती है और उसी के द्वारा सब व्यञ्जन निकलते हैं परन्तु उसको कुछ रागद्वेष नहीं फुरता; तैसेही ज्ञानवान् स्वाद लेता है। जैसे पवन भली बुरी गन्ध को लेताहै परन्तु रागद्वेषसे रहित है तैसेही ज्ञानवान् रागद्वेषकी संवेदन से रहित गन्ध को लेता है और इसी प्रकार सर्व इन्द्रियों की चेष्टा करता है परन्तु इच्छा से रहित होताहै इसीसे परमसुखरूपहै। जिस की चेष्टा इच्छा सहित है वह परमदुःखी है। हे रामजी! जिस पुरुष को भोग रस नहीं देते वही सुखी है और जिसको रस देते हैं और जिसकी रागसे तृष्णा बढ़ती जाती है उसको ऐसे जानो जैसे किसी के मस्तक पर अग्निलगे और उसपर तृण बुझाने के निमित्त डाले तो वह बुझती नहीं बलिक बढ़ती जाती है; तैसेही विषयों की इच्छा भोगने से तृप्ति नहीं होगी। इच्छाही बन्धनहै और इच्छा की निवृत्ति का नाम मोक्षहै। हे रामजी! संसाररूपी विषका वृक्ष है और उसका बीज इच्छा है जिसकी इच्छा बढ़ती जाती है उसका संसार बढ़ता जाता है और उससे वह वारंवार जन्म पाता है। हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्माके लोकमें भी नहीं जैसा सुख इच्छा की निवृत्ति में है और ऐसा दुःख नरक में भी नहीं जैसा दुःख इच्छा के उपजाने में है। इच्छा के नाशका नाम मोक्ष है और इच्छा के उपजाने का नाम बन्धन है। जिस पुरुष को इच्छा उत्पन्न होती है वह दुःख पाता है और संसाररूपी गढ़े और खत्ते में पड़ता है इच्छा रूपी विषकी बेल है उसको समतारूपी अग्नि से जलावो। सम्यक्दर्शनसे जलाये विना बड़ादुःख देगी और बढ़तीजावेगी। हे रामजी! जिसपुरुषने इच्छाके दूरकरने का उपाय नहीं किया उसने अन्धे कूपमें प्रवेश किया है। शास्त्रका श्रवण और तप, दान,

यज्ञ इसी निमित्त है कि, किसी प्रकार इच्छा निवृत्तहो जो एकहीबार निवृत्त न करसको तो शनैःशनैः निवृत्तकरो । हे रामजी ! यह विषकी बेल बढ़ीहुई दुःख देती है । जो पुरुष शास्त्रोंको पढ़ता और इच्छाको बढ़ाता है वह मानो दीपक हाथ में लेकर कूपमें गिरता है । इच्छारूपी कँटिआरी का वृक्ष है जिसमें सर्वदा कंटक लगे रहते हैं—उसमें कदाचित् सुख नहीं । जो पुरुष कांटेकी शय्यापर शयनकरके सुखी हुआ चाहे तो नहीं होता; तैसेही संसार से कोई सुख पाया चाहे तो कदाचित् न होगा । जिससे इच्छानिवृत्ति हो वही उपाय किया चाहिये । इच्छाके निवृत्त होनेमें सुख है और इच्छा के उत्पन्न होने में बड़ा दुःख है । हे रामजी ! जो अनिच्छित पदमें स्थित हुआ है उसको यदि एक क्षण भी इच्छा उपजती है तो वह रुदन करता है । जैसे चोरसे लूटा रुदन करता तैसेही वह रुदन और पश्चात्ताप करता है और उसके नाशकरने का उपाय करताहै । हे रामजी ! इच्छारूपी क्षेत्र में रागद्वेषरूपी विषकी बेल है । जो पुरुष उसके दूरकरने का उपाय नहीं करता वह मनुष्यों में पशु है यह इच्छारूपी विषकावृक्ष बढ़ाहुआ नाशका कारण है इससे तुम इसका नाश करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइच्छानिषेधयोगोपदेशोनाम शताधिकषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः १५६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इच्छारूपी विषके नाशकरनेका उपाय तुम से आगे भी कहा है और अब फिर स्पष्टकरके कहताहूं । इच्छा त्यागकरनेके योग्य संसार है; यदि आत्मसत्ता से भिन्न कीजिये तो मिथ्या है उसमें क्या इच्छा उसकी करनी है और जो आत्माकी ओर देखिये तो सर्व आत्माही है क्या इच्छा करनी है; इच्छा दूसरे में होती है पर दूसरा तो कुछ हैही नहीं तो इच्छा किसकी कीजिये ? हे रामजी ! द्रष्टा और दृश्य भी मिथ्या हैं; दृष्ट । इन्द्रियां और दृश्य विषय; ग्राहक इन्द्रियां और ग्राह्यविषय अविचार सिद्ध हैं और भ्रमकरके भासते हैं आत्मा में कोई नहीं । जैसे स्वप्ने में भ्रमसे रूप भासते हैं तैसेही यह ग्राह्य-ग्राहकभ्रमसे भासते हैं और सुख दुःख भी इनहीं से होताहै आत्मामें कोई नहीं । हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों ब्रह्ममें कल्पित हैं और वास्तवमें ब्रह्महीं है; चिरकाल से हम खोज रहे हैं परन्तु द्वैत हमको कुछ दृष्टि नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ताही ज्यों की त्यों भासती है जो निराभास, फुरनेसे रहित और ज्ञानरूप है; आकाशसे भी सूक्ष्महै और सर्व्वजगत् भी वही है—सो मैं हूं । हे रामजी ! जैसे जलमें तरंग; आकाशमें शून्यता; पवनमें स्पन्द और अग्नि में उष्णता है सो सब ही अनन्यरूपहै तैसेही आत्मा में जगत् अनन्यरूपहै । आत्माही विश्व आकार होकर भासताहै और कुछ नहीं हुआ । हे रामजी ! जो वहीहै तो इच्छा किसकी करतेहो । यह जो मैं तुम से मोक्षउपाय कहताहूं तो तुम आपको क्यों बन्धन करतेहो ? बड़ा बन्धन

इच्छाही है जिसपुरुषकी इच्छा बढ़ती जाती है वह जगत्रूपी वनका मृग है, उस मृग और पशुका संग कदाचित् न करना; मूर्खका संग बुद्धिको विपर्ययकर डालता है इससे विपर्यय बुद्धिको त्यागकर आत्मपदमें स्थितहोरहो। विश्व भी सब तुम्हारा अनुभवरूपहै और इसका सुख दुःख विद्यमान भी दिखताहै परन्तु आत्मा में भ्रममात्र भासताहै-कुछहै नहीं। विश्व भी आनन्दरूप शिवही है; तुम विचारकरके देखो दूसरा तो कुछ नहींहै जैसे मृत्तिकामें नानाप्रकार की सेना, हाथी, घोड़ा आदिक होते हैं परन्तु मृत्तिकासे भिन्न कुछ नहीं तैसेही सब विश्व आत्मरूप है, भिन्न नहीं और उसमें कारण कार्यभाव देखना भी मूर्खताहै। क्योंकि जो दूसरी वस्तुही नहीं तो कारणकार्य किसकाहो और इच्छा किसकी करतेहो? जिससंसारकी इच्छा करतेहो वह है ही नहीं। जैसे सूर्य्यकी किरणोंमें जलाभास होता है और सीपी में रूपा भासता है सो दूसरी वस्तु कुछ नहीं अधिष्ठान किरण और सीपी है, तैसेही अधिष्ठानरूप परमार्थ सत्ताही है। न सुख है, न दुःखहै; यह जगत् केवल शिवरूप है। उस शिव चिन्मात्रसे मृत्तिकाकी सेनावत् अन्य कुछ नहीं तो इच्छा कैसे उदयहो? रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! जो सर्व ब्रह्मही है तो इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं? इच्छा उदयहो चाहे न हो। फिर आप कैसे कहते हैं कि; इच्छाका त्यागकरो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसपुरुषकी ज्ञप्ति जागी है अर्थात् जो ज्ञानरूप आत्मामें जागा है उसको सर्व ब्रह्मही है और इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं। इच्छा भी ब्रह्महै और अनिच्छा भी ब्रह्म है। हे रामजी! ज्यों ज्यों ज्ञानसंवित् होती है त्यों त्यों वासना क्षय होतीहै जैसे सूर्य के उदयहुये रात्रि नष्ट होजाती है तैसेही ज्ञान के उपजेसे वासना नहीं रहती। हे रामजी! ज्ञानवान् को ग्रहण और त्यागका कर्त्तव्य नहीं और उसे इच्छा अनिच्छा तुल्य है। यद्यपि ऐसेही है परन्तु स्वाभाविकही उसे वासना नहीं रहती। जैसे सूर्य के उदयहुये अन्धकार नहीं रहता तैसेही आत्माके साक्षात्कारहुये द्वैतवासना नहीं रहती। ज्यों ज्यों ज्ञानकला जागती है त्यों त्यों द्वैत नाश होता जाताहै और द्वैतके निवृत्त होने से वासना भी निवृत्त होजातीहै। हे रामजी! ज्यों ज्यों स्वरूपानन्द उसको प्राप्त होता है त्यों त्यों संसार विरस होता जाता है और जब संसार विरस होगया तब वह वासना किसकी करे? हे रामजी! अमृत में इसको विषकी भावना हुई थी इससे अमृत विष भासता था पर जब विषकी भावना का त्याग हुआ तब अमृत तो आगेही था सोई होजाता है; तैसेही जो कुछ तुमको भासता है सो सब ब्रह्मरूपी अमृतही है। जब उस ब्रह्मरूपी अमृत में अज्ञान से जगत्रूपी विषकी भावना होती है तब दुःख पाताहै और जब संसारकी भावना त्यागी तब आनन्दरूपही है और उसको करना, न करना दोनों तुल्य हैं। यद्यपि ज्ञानवान् में इच्छादृष्टि आती है तौभी उस के निश्चय में नहीं उसकी इच्छा भी अनिच्छाही है क्योंकि; उसके हृदय

में संसार की भावना नहीं तो इच्छा किसकी रहे ? हे रामजी ! यह संसार है नहीं; हम को तो आकाशरूप भासता है । जैसे और के मनोराजके संकल्प में आने जाने का खेद नहीं होता तैसेही यह जगत् हमको और की चिन्तनावत् है । जैसे किसी पुरुष ने मनोराजसे मार्ग में कोई स्थान रचकर उस में किवाड़ लगायेहों और नानाप्रकार का प्रपञ्च रचाहो तो दूसरे पुरुष को उसमें जाने केलिये कोई नहीं रोंकता और न कोई किवाड़ हैं, न कोई पदार्थ है; उसको शून्यमार्गका निश्चय होता है; तैसेही हमको तो सब प्रपञ्च शून्यही भासता है । अज्ञानी के हृदय में हमारी चेष्टा है पर हमको ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं भासता । हे रामजी ! जिसको जगत्‌ही न भासे उसको इच्छा किसकी हो ? जिसके हृदय में संसार की सत्यता है उसको इच्छा भी फुरती है और रागद्वेष भी उठता है । जिसको रागद्वेष उठता है तो जानिये कि, संसारसत्ता उसके हृदय में स्थित है और जिसको नानापदार्थ सहित संसार सत्य भासता है सो मूर्ख है और वह अज्ञाननिद्रा में सोयाहुआ है । जैसे निद्रादोष से कोई स्वप्ने में अपना मरण देखता है तैसेही जिसको यह जगत् सत्य भासताहै सो निद्रामें सोया है । हे रामजी ! मैंने बहुत प्रकारके स्थान देखे हैं जिनमें रोग और औषध भी नानाप्रकार के हैं परन्तु इच्छारूपी छुरी के घावकी औषध नहीं दृष्टि आई । वह जप, तप, पाठ, यज्ञ, दान और तीर्थ से निवृत्त नहीं होती और जितने संसार के पदार्थ हैं उनसे भी इच्छारूपी रोग नष्ट नहीं होता; जब आत्मरूपी औषध कीजावे तबहीं नाश होताहै अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता । हे रामजी ! जिस पुरुष को ज्ञान प्राप्त होताहै उसकी इच्छा स्वाभाविकही निवृत्त होजाती है और आत्मज्ञान विना अनेक यत्न से भी न जावेगी । जैसे स्वप्ने की वासना जागे विना नहींजाती और अनेकउपायकरिये तौभी दूर नहींहोती । हे रामजी ! ज्योंज्यों वासना क्षीण होती है त्योंत्यों सुखकी प्राप्ति होती है और ज्योंज्यों वासना की अधिकता है त्योंत्यों दुःख अधिकहैं । यह आश्चर्य्य है कि, मिथ्या संसार सत्यहो भासताहै । जैसे बालक को वृक्ष में वैताल हो भासता है और उससे वह भय पाता है पर वह है नहीं; तैसेही मूर्खता से आत्मा में संसार कल्पना है उससे जीव दुःखी होता है । हे रामजी ! स्थावर-जङ्गम जो कुछ जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूपहै, ब्रह्मसे भिन्न नहीं पर भ्रमसे भिन्न भिन्न हो भासता है । जैसे आकाश में शून्यता जलमें द्रवता और सत्यता में सत्यता ही है; तैसेही आत्मा में जगत् है सो न सत्य है और न असत्य है—आत्मा अनिर्वाच्य है । हे रामजी ! दूसरा कुछ बना नहीं तो क्या कहिये ? केवल ब्रह्म सत्ता अपने आपमें स्थितहै सो सबका अपना आप वास्तवरूप है । जब उसका साक्षात्कारहोताहै तब अहंरूप भ्रम मिट जाताहै । जैसे सूर्य्य के उदय हुये अन्धकारका अभाव होजाता है तैसेही आत्माके साक्षात्कारहुये अनात्म अभिमानरूपी अन्धकार का अभाव होजाता है और परम निर्वाण

भासता है। उसको एक और दो भी नहीं कहसक्के; वह केवल शान्तरूप परमशिव है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी! जिन्हों ने ऐसे निश्चय किया है उनको इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्यहैं तौभी मेरे निश्चय में यह है कि; इच्छा के त्याग में सुख है। जिसकी इच्छा दिन दिन घटती जावे और आत्मा की ओर आवे उसको ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं क्योंकि; संसार भ्रमसे सिद्ध है और अपनीही कल्पना जगत्रूपहोकर भासतीहै; विचार कियेसे कुछ नहीं निकलता। संसारके उदय होने से आत्मा को कुछ आनन्द नहीं और नाश होने से खेद नहीं होता क्योंकि; कुछ भिन्न नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और विनशते हैं तो जलको हर्ष और शोक कुछ नहीं होता क्योंकि; वे जलसे भिन्न नहीं हैं; तैसेही संपूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है तो इच्छा क्या और अनिच्छा क्या? हे रामजी! आदि जो परमात्मासे चित्तशक्ति फुरीहै उसमें जब अहंहुआ तब स्वरूप का प्रमादहुआ और यही चित्तशक्ति मनरूपहुई; फिर आगे देह इन्द्रियां हुई और अज्ञान से मिथ्या भ्रम उदय हुआ इसीप्रकार अपने साथ मिथ्याशरीर देखता है। जैसे जल दृढ़जड़तासे बरफरूप होजाता है तैसेही चित्तसंवित् प्रमादकी दृढ़तासे मन, इन्द्रियां, देहरूप होता है। जैसे कोई स्वप्ने में अपना मरना देखता है तैसेही अपने साथ जीव शरीर को देखता है। जब चित्तशक्ति नष्ट होती है तब शरीर कहां—और मन कहां यह कोई नहीं भासता? जैसे स्वप्ने में भ्रमसे शरीरादिक भासते हैं तैसेही इस जगत्को भी जानो कि, मिथ्या भ्रमसे उदय हुयेहैं। जब अपने स्वरूप की ओर आवे तब सबही भ्रम मिटजाते हैं हे रामजी! जैसे भ्रमसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही विश्व भी अनहोताही भ्रमसे भासता है; आत्मा में कुछ आरम्भ और परिणाम करके नहीं बना—वही स्वरूप है। जैसे आकाश और शून्यता और पवन और स्पन्दमें भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अनुभवरूपहै कुछ भिन्ननहीं; तैसेही जगत् और आत्मा अनुभवसे कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी! चेतन आकाशपरमशान्तरूप है; उसमें देह और इन्द्रियां भ्रमसे भासतीहैं और क्रिया, काल, पदार्थ सब भ्रममात्र हैं जब आत्मस्वरूप में जागकर देखोगे तब द्वैतभ्रम निवृत्त होजावेगा और कैवल्य, अद्वैत आत्माहीभासेगा—दृश्यका अभाव होजावेगा। यहपृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं सो अविद्यमान हैं और इनकी प्रतिभा मिथ्या उदय हुई है। जैसे स्वप्ने में अनहोते पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परन्तु हैं नहीं तैसेही आत्मा में यह जगत् भासता है। हे रामजी! पृथ्वी, दीवार, कीट, पर्वत आदि प्रपञ्च आकाशरूप हैं तो ग्रहणत्याग किस का हो? आकाशरूपी दीवार पर संकल्प ने चित्र रचे हैं और रंग आत्मचैतन्यता है इससे विश्व संकल्पमात्रहै और जैसाजैसा निश्चय होताहै तैसीही तैसी सृष्टि भासतीहै। यदि कुछ बनाहोता तो और का और न भासता; इससे कुछ बना नहीं जैसा संकल्प

होताहै तैसाही आगे रूप हो भासता है । हे रामजी ! सिद्धोंके पास एक चूर्ण होताहै उससे वे जो चाहते हैं सो करते हैं पर्व्वतको आकाश और आकाशको पर्व्वत करते हैं—वह चूर्ण मैं तुमसे कहताहूं । जब चित्तरूपी सिद्ध संकल्परूपी चूर्ण से फुरता है तब आत्मरूपी आकाशमें पर्व्वतहो भासते हैं और जब चित्तरूपी सिद्धका संकल्प उलटताहै तब पर्वतभी आकाशरूपहो भासताहै । जैसे स्वप्नेमें संकल्प फुरता है तब अनुभवमें पर्व्वत आदिक पदार्थ भासि आते हैं और जब संकल्प से जागता है तब स्वप्ने के पर्व्वत आकाशरूप होजाते हैं तो आकाशही पर्व्वतरूप हुआ और पर्व्वतही आकाश रूप होता है; तैसेही हे रामजी ! यह सृष्टि कुछ बनी नहीं संकल्पमात्र है; जैसा संकल्पहोता है तैसा भासताहै । जब विश्वके अत्यन्त अभावका संकल्प किया तब तैसेही भासता है । जैसे विश्वका अभ्यास कियाहै और विश्व भासा है तैसे हो आत्माका अभ्यास कीजिये तो क्यों न भासे ? वह तो अपना आप है, जब आत्माका अभ्यास कीजियेगा तब आत्माही भासेगा विश्वका अभाव होजावेगा । अनेक सृष्टि अपने अपने संकल्प से आकाशमें भासती हैं; जैसा किसीका संकल्प होता है तैसीही सृष्टि उसको भासतीहै । जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में दृढ़ संकल्प होताहै तो यथा इच्छित पदार्थ निकल आते हैं पर वे कुछ बने नहीं और चिन्तामणि भी परिणामको प्राप्त हुई ज्यों की त्यों पड़ी है केवल संकल्पकी दृढ़तासे भासि आते हैं; तैसेही यह प्रपञ्च भी आकाशरूपहै । जैसे आकाशमें शून्यता है तैसेही आत्मा में जगत् है । हे रामजी ! सिद्धके जो वचन फुरते हैं सोही संकल्पकी तीव्रता होती है; जो चित्त शुद्ध होता है तो दूसरी सृष्टिको भी जानता है । जो पुरुष वचनसिद्धि होने के निमित्त वासनाको सूक्ष्म करता है अर्थात् रोंकता है तो उससे वचनसिद्धि पाता है और जैसा संकल्प करता है तैसाही सिद्ध होता है । हे रामजी ! जितना यह दृश्यकी ओरसे उपरान्त होकर अन्तर्मुख होता है उतनीही वचन सिद्धि होती जाती है—चाहे वर दे, चाहे शापदे वह सिद्ध होता है हे रामजी ! एक भ्रमाण ज्ञान है कि, यह पदार्थ इस प्रकार है । उसका जो नामरूपहै वह सब आकाशरूप भ्रममात्र है—आत्मामें और कुछ नहीं । आत्मरूपी समुद्र में जगत्‌रूपी तरङ्ग उठते हैं सो आत्मरूपही हैं; जिनको ऐसा ज्ञान हुआहै उनको इच्छा और अनिच्छाका ज्ञान नहीं रहता और सब आकाशरूप भासता है । हे रामजी ! आत्मरूपी फूलमें जगत्‌रूपी गन्धहै । जैसे पवन और स्पन्द में भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं । पत्थर पर लकीर खैंचिये तो वह पत्थर से भिन्न नहीं होती तैसेही ब्रह्मसे जगत् भिन्न नहीं । हे रामजी ! देश, काल, पृथ्वी आदिक तत्त्व और मैं, मेरा सब आत्मरूप है और अविनाशी है । जिनको ऐसे निश्चय हुआ है उनको रागद्वेष नहीं रहता, उन्हें सब आत्मरूपही भासताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदुपदेशोनामशताधिकसप्तपञ्चाशस्सर्गः १५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शुद्ध आत्मतत्त्वमें जो संवेदन फुरी है उससे आगे जगत् भासित हुआ है। जैसे किसीके नेत्रमें एक अञ्जन डालकर आकाश में पर्व्वत उड़ते दिखाते हैं तैसेही अनहोता जगत् फुरने से भासता है। हे रामजी ! ब्रह्म स्वर्ग और चित्त स्वर्ग में कुछ भेद नहीं परमार्थ से एकही है और दृष्टि, सृष्टि और वस्तु पर्याय है और नाना तत्त्व भी इसकी भावना से भासते हैं आत्मा में दूसरा कुछ नहीं बना। चित्त और चैत्य आत्मा से भिन्न नहीं; चित्तही चैत्य होकर भासताहै और ज्ञानसे इनकी एकता होती है—इसी से दृश्य भी द्रष्टारूप है। जैसे स्वप्नेमें शुद्ध संवित्‌ही दृश्यरूप होकर स्थित होती है और जागेसे एक होजाती है। एकता भी तब होती है जब वही रूपहो, इससे तुम अब भी वही जानो। दृश्य, दर्शन और द्रष्टा त्रिपुटी भी सब वही रूपहै। हे रामजी ! जो सजाति है उसकी एकता होती है, विजाति की एकता नहीं होती। जैसे जलमें जलकी एकता होती है, तैसेही बोधसे सबकी एकता होतीहै—इससे दृश्य भी वही रूपहै कि, एकता होजाती है। जो दृश्य कुछ आत्मासे भिन्न होती तो एकता न होती। हे रामजी ! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूपहैं। जिससे ये सर्व हैं; जो यह सर्व है और जो सर्वव्यापी सर्वगत सबको धार रहा है और सब वही है ऐसे सर्वात्माको मेरा नमस्कार है। जो कुछ भासता है सर्व वही है। जैसे जलमें गलाने की शक्तिहै और काष्ठ में नहीं तैसेही ब्रह्ममें भावना स्वभाव है और में नहीं। ब्रह्मभावना से सर्व ब्रह्मही भासताहै। हे रामजी ! जड़ पदार्थ भी ब्रह्मही हैं क्योंकि; जो भासता है सो ब्रह्मही है जड़ हो तो भासे नहीं। जड़भी चेतनता शुद्ध संवित्‌में है; उसमें शब्द चेतनहै भिन्न कुछ नहीं भासता। जैसे शुद्ध संवित् में स्वप्ना फुरता है और उसमें जड़ और चेतन भी भासते हैं परन्तु जो जड़ भासते हैं वेभी उस संवित् में चेतनहैं क्योंकि चेतन हैं तब फुरते हैं। जिनको शुद्ध संवित् में अहंप्रयत्न नहीं वह जान नहीं सक्ता अज्ञानी है परन्तु सब ब्रह्महै। जैसे समुद्र में जल होता है सो ऊंचे आवे तौभी जल है और नीचेको जावे तौभी जल है तैसेही जो कुछ दिखता और भासता है सो सब ब्रह्म स्वरूपहै भिन्न नहीं और इन्द्रियोंका ग्रामभी आत्मा है। पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरे हैं उनमें प्रथम आकाश फुराहै, फिर वायु फुरीहै; फिर अग्नि, फिर जल और पृथ्वी फुरी है सो सब अनिच्छित चमत्कारकी नाईं फुरे हैं-इस से सब आत्मरूपहैं। जैसे वट बीजमें वृक्ष होता है तैसेही आत्मरूपी बीजमें जगत् होता है और नानाप्रकार भासते हैं। हे रामजी ! जैसे एक बीजही नानाप्रकारके रूपधारताहै परन्तु बीजसे भिन्न कुछ नहीं तैसेही आत्मसत्ता नानाप्रकारहो भासती है परन्तु बीजकी नाईं भी प्रमाण नहीं। विश्व आत्माका चमत्कार है इससे वही रूप है। जैसे सुवर्ण में अनेक भूषण होते हैं सो सुवर्णसे भिन्न नहीं तैसेही विश्व आत्मस्वरूपहै द्वैत नहीं और जो आत्मासे इतरहो तो भासे नहीं; इससे जो भासताहै सो चेतनरूप है और दृश्य और

द्रष्टा एकही रूपहै; द्रष्टाही दृश्यकी नाईं हो भासताहै। हे रामजी! जैसे कोई पुरुष तुम्हारे निकट सोया हो और उसको स्वप्ना आवे कि, मेघ गर्ज्जते हैं और नानाप्रकार की चेष्टा होती है तो वह सब उसीको भासताहै और तुमको नहीं भासता; तैसेही यह दृश्य तुम्हारी भावनामें स्थित है और हमको आकाशरूप है। हे रामजी! चेतन आकाश शांतरूप है; उसमें सृष्टि कुछ बनी नहीं और जो कुछ उपजा नहीं तो नष्ट भी नहीं होता केवल शांत रूपहै पर भ्रमसे जगत् भासताहै। जैसे कोई बालक मनोराज से आकाशमें पुतलियां रचे तो आकाश में कुछ नहीं बना परन्तु उसके संकल्प में है; तैसेही यह विश्व मनरूपी बालकने रचा है उसके रचेहुये में ज्ञानवान् को शून्यता भासती है। हे रामजी! संकल्प मात्रही सृष्टिहुईहै; जब इसका संकल्प नष्ट होताहै तब शांतपद शेष रहताहै। निरहंकार सत्तामात्र असत्की नाईं स्थित है फिर उस चिन्मात्र अद्वैत में अहन्ता करके जगत् भासि आताहै। जब अहन्ता फुरतीहै तब जगत् भासताहै और जब स्वरूप का साक्षात्कार होताहै तब अहन्तारूप भ्रम मिटजाता है। जब अहन्तारूप भ्रम मिट जाताहै तब जगत् और इच्छाका भी अभाव होजाताहै, इससे ज्ञानी को इच्छा और वासना कोई नहीं रहती। जब प्रच्छन्नरूप अहन्ता नष्ट होती है तब उस पदको प्राप्त होता है जिस पदमें अणिमा आदिक सिद्धियां भी सूखे तृणकी नाईं भासती हैं और वह ऐसा आनन्दरूपहै जिसमें ब्रह्मादिक का सुख भी तृण समान भासताहै। हे रामजी! जिसको ऐसा ब्रह्मानन्दपद प्राप्त हुआ है उसको फिर किसीकी इच्छा नहीं रहती और उसको मारनेवाले विषयादिक पदार्थ मृतक नहीं करते और जिलाने वाले पदार्थ अमृत आदिक नहीं जिलाते केवल निर्वाणपदमें उसकी स्थिति है। हे रामजी! जिस पुरुषको संपूर्ण संसारसे वैराग्य हुआहै उसको संसार के पदार्थ सुखदायक नहीं भासते, मिथ्या भासते हैं और वह संसारसमुद्रसे पारहुआहै। जिनकी संसारकी वासना और अहन्ता नष्ट हुईहै उनकी मूर्त्ति देखनेमात्र भासती है और वे निर्वासी ज्ञानवान् शान्तरूप हैं। हे रामजी! इच्छाही बन्धन है। जब इच्छाका अभाव हो तब आनन्दहो। इच्छा भी तब फुरती है जब संसारको सत्य जानता है और संसारकी सत्यता अहन्तासे भासती है। जब अहन्तारूपी बीज नष्टहो तब निर्वाणपद की प्राप्ति हो। हे रामजी! संसार कुछ बना नहीं—भ्रमसे सिद्धहुआहै। सर्वही ब्रह्महै; उस परमात्मामें जो प्रच्छन्न अहन्ता फुरी वही उपाधि है। हे रामजी! बुद्धिसे आदि लेकर जितनी दृश्यहै यह जिसको अपने में स्वाद नहीं देती और जो आकाशकी नाईं रहताहै उसको सन्त मुक्तरूप कहते हैं। हे रामजी! यह अहं विचार से सत्य भासती है और विचार किये से असत्य होजाती है। अनहोती अहन्ताने दुःख दियाहै; इससे तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो। जैसे यंत्री की पुतली अभिमानसे रहित चेष्टा करती है तैसेही तुम निरहंकार होकर चेष्टा करो और

अपने स्वरूपमें स्थितहोरहो तब व्यवहार और अव्यवहार तुमको तुल्य होजावेगा। जैसे पवनको स्पंद निस्स्पंद दोनों तुल्य होते हैं तैसेही तुमको होजावेगा और अहंकार से रहित तेरी चेष्टा होगी। अहन्ताही दुःख है; जब अहन्ताका नाश होगा तब तुम शांत, निर्मल और अनामय पदको प्राप्त होगे जो सर्व्व पदार्थ का अधिष्ठान है और सब का अपना आपहै; उसमें न कोई सुखहै; न दुःख है; न कोई इन्द्रियोंका विषय है परम शांतरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमनिर्वाणयोगोपदेशोनाम
शताधिकअष्टपञ्चाशत्तमस्सर्ग्गः १५८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वह निरावरण है अर्थात् दोनों आवरणों से रहितहै। एक असत्यत्वापादक आवरणहै और दूसरा अभावनापादक आवरण है। जो आत्मब्रह्मकी सत्यता हृदयमें न भासे सो असत्यत्वापादक है और जो आत्मा की सत्यता हृदय में भासे परन्तु दृढ़ प्रत्यक्ष न भासे सो अभावनापादक आवरण है। असत्यत्वापादक आवरण अज्ञानी को भासता है और अभावनापादक आवरण जिज्ञासीको होताहै पर ज्ञानवान् को ये दोनों आवरण नहीं रहते इससे वह निरावरण; शांतरूप, आकाशवत् निर्मल और निरालम्ब किसी गुणत्वके आश्रय नहीं होता और एक द्वैत भ्रम उसका नष्ट होजाताहै क्योंकि, उसने आत्मरूपी तीर्थका स्नान किया है जो अपवित्रको भी पवित्र करता है। जिस पुरुषने शरीर में आत्माका दर्शन कियाहै उसका शरीर भी पवित्र होताहै। ऐसे पुरुषको शरीर की सत्यता नहीं रहती और संसार भी नहीं रहता। आत्मा के साक्षात्कार हुये से सब इच्छा नष्ट होजाती हैं और सर्व ब्रह्महीं भासताहै—द्वैत कुछ नहीं भासता। सर्व्व आत्मस्वरूप है पर उसमें संकल्पसे नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है। हे रामजी! तुम संकल्पकी ओर मतजाओ क्योंकि; चित्तकी वृत्ति क्षणक्षणमें प्रणमती है और अनन्त योजनपर्यन्त चली जाती है। जो उसके अनुभव करने वाली सत्ता मध्यमें है और जिसके आश्रय वह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूपहै। जब तुम उसमें स्थितहोकर देखोगे तब फुरने में भी ब्रह्मसत्ता भासेगी। हे रामजी! यह संवित् सदा प्रकाशरूप; चित्तके क्षोभ से रहित और द्वैतरूप विकारसे रहित शुद्ध है। जितने प्रकाशहैं उनके विरोधी भी हैं जैसे दीपकका विरोधी पवन है जो निर्वाण करताहै और सूर्यका विरोधी राहु केतुहै जो घेरलेताहै और महाप्रलयमें सर्वप्रकाश तमरूप होजाते हैं पर आत्मप्रकाशतत्त्व सिद्धहै; तुमको भी प्रकाशताहै और सदा ज्ञानरूप एक रसहै। उसको त्यागकर और किसीओर न लगना। हे रामजी! यह दृश्य सब मिथ्याहै; जैसे रस्सी में सर्प और सीपी में रूपा कल्पितहै। जब तुम जागकर देखोगे तब सबका अभाव होजावेगा—जैसे बंध्या के पुत्रके रूपका

अभाव है तैसेही सब विश्व मिथ्या भासेगा क्योंकि; है नहीं—भ्रममात्र स्वप्ने की नाईं अविचार सिद्धहै और विचार कियेसे आत्माही है; भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभव से कुछ भिन्न नहीं तैसेही यह आत्मस्वरूप विश्व भी ज्ञानमात्र है और अहं, मम, देह, इन्द्रियादिक भी सब ज्ञानमात्र हैं—दृश्य कुछ दूसरी वस्तु नहीं । जब ऐसे निश्चय धारोगे तब निश्शोक और मोहसे भी रहित होगे और परमार्थ सत्ता ज्यों की त्यों भासेगी । जैसे समुद्र में तरंग उठते हैं; तैसेही आत्मामें दृश्य उठती है सो वही रूपहै और जो भिन्न भासे सो मिथ्या है । सब सृष्टि इसके हृदयमें स्थित है पर अज्ञान से बाह्य भासती है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपने भीतर होती है और अपना स्वरूप होता है पर निद्रा दोषसे बाहर भासती है और जब जागता है तब अपनाही स्वरूप भासता है; तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी विचार किये से अपने अनुभव में भासती है । इससे स्थित होकर देखो कि, सर्वदा जागती ज्योति है; उसको त्यागकर और यत्न करना व्यर्थ है । हे रामजी ! अपने अनुभव में स्थित होना क्या कष्ट है? जो इसे कठिन जानते हैं वे मूढ़ हैं और उनको मेरी धिक्कार है क्योंकि; वे गऊके पग को समुद्रवत् जानते हैं उनसे और कौन मूर्ख है । अनुभव में स्थित होना गऊके पग की नाईंहीं तरना सुगम है और जो और पदार्थों के पाने की इच्छा करेगा तो उनमें व्यवधान है पर आत्मा में व्यवधान कुछ नहीं क्योंकि, अपना आपहै । हे रामजी ! जिन पुरुषों ने आत्मा में स्थिति पाई है उनको मोक्ष की इच्छा भी नहीं तो स्वर्गादिक की इच्छा कैसे हो ? मोक्ष और स्वर्ग आत्मा में रस्सी के सर्पवत् मिथ्या भासते हैं—उनको केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है । हे रामजी ! स्वप्ने में सुषुप्ति नहीं और सुषुप्ति में स्वप्ना नहीं—इनके अनुभव करनेवाली शुद्ध सत्ता है और ये दोनों मिथ्याहैं । उनको निर्वाण और जीना दोनों तुल्यहैं । ऐसे जानकर वे इच्छा किसी की नहीं करते—प्रपञ्च उनको शशेके सींग और बंध्याके पुत्रवत् भासतेहैं । हे रामजी ! हमको तो संसार सदा आकाशरूप भासता है । यदि तुम कहो कि, उपदेश क्यों करतेहो ? तो हमको कुछ भास नहीं तुम्हारीही इच्छा तुमको वशिष्ठरूप होकर उपदेश करती है । हमको विश्व सदा शून्यरूप भासताहै और हमको चेष्टा करते भी अज्ञानी जानते हैं पर हमारे निश्चयमें चेष्टा भी नहीं और हमारी चेष्टा कुछ अर्थाकार भी नहीं । अज्ञानीकी चेष्टा अर्थाकार होती है हमारी चेष्टा सत्य नहीं इससे अर्थाकार भी नहीं होती । जैसे ढोलके शब्दका अर्थ नहीं होता कि, क्या कहता है और वाणी से जो शब्द बोला जाताहै उसका अर्थ होता है; तैसेही हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं अर्थात् जन्म नहीं देती और अज्ञानी की चेष्टा जन्म देती है । हमको संसार ऐसे भासता है जैसे अवयवी सर्व अवयवों को अपना स्वरूपही देखता है अर्थात् हस्त, पाद, शीश आदिक सबको अपनेही अंग देखताहै ।

हे रामजी ! जगत्में एक ऐसे जीव दृष्टि आते हैं कि, उनको हम स्वप्ने के जीव भासते हैं और हमको वे शून्य आकाशवत् दृष्टि आतेहैं और उनके हृदय में हम नानाप्रकार की चेष्टा करते और की नाईं भासते हैं। हमको तो जगत् ऐसे भासताहै जैसे समुद्रमें तरंग। मैं भी ब्रह्महूं; तुमभी ब्रह्महो, जगत् भी ब्रह्महै और रूप, अवलोक, मनस्कार सब ब्रह्मरूपहै; इससे तुमभी ब्रह्मकी भावनाकरो। अपने स्वभावमें स्थित होना परमकल्याण है और पर स्वभाव में स्थित होना दुःखहै। हे रामजी ! अपना स्वभाव साधनेका नाम मोक्षहै और न साधनेका नाम बंधनहै। हे रामजी ! धन, मित्र, क्रियाआदि कोई पदार्थ उपकार नहीं करता केवल अपना पुरुषार्थही उपकार करता है सो यही है कि,अपने चैतन्य स्वभाव में स्थित होना और पर स्वभावका त्याग करना। जब अपने स्वभावमें स्थित होगे तब सब अपना स्वरूपही भासेगा। जो स्वरूपसे भिन्न होके देखो तो न मैं हूं; न तुमहो और न जगत् है; सब भ्रममात्र है और मृगतृष्णा के जलवत् भासता है। ऐसे जानो कि, मैं भी ब्रह्महूं; तुमभी ब्रह्महो और जगत् भी ब्रह्महै; वा ऐसे जानो कि, न तुम हो, न मैं हूं और न जगत् है तो पीछे जो शेष रहेगा सो तुम्हारा स्वरूप है। हे रामजी ! जिन पुरुषों को ऐसे निश्चय हुआ है कि; मैं तू, और जगत् सब ब्रह्म है अथवा मैं, तू और जगत् सब मिथ्याहै; उनको फिर कोई इच्छा नहीं रहती और जिनको इच्छा उठती है उनको जानिये कि, ब्रह्मात्माका साक्षात्कार नहीं हुआ। जब भोगों की वासना निवृत्तहो और संसार विरस होजावे तब जानिये कि, यह संसारसे पार हुआ अथवा होगा। हे रामजी ! यह निश्चय करके जानो कि, जिसको भोगोंकी वासना क्षीण होती है उसको स्वभावरूपी सूर्य उदय होता है और भोगों की तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है। यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष भोगोंकी तृष्णा दृष्टि आती है तौ भी उसकी भास जाती रहती है और ब्रह्मसत्ताही भासती है। संसारकी ओर से वह सुषुप्त और मृतककी नाईं होजाता है, अपने स्वरूपमें सदा जाग्रत् रहता है और अपने स्वभावरूपी अमृत में मग्न होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठगीतोपदेशोनाम शताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः १५९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! रूप, अवलोक और मनस्कार यह परस्वभाव है; इन को ब्रह्मरूप जानो। पर स्वभाव क्या है और ब्रह्मरूप क्या है सो भी सुनो। हे रामजी ! तुम्हारा स्वरूप शुद्ध आकाश है और उसमें जो रूप, अवलोक और मनस्कार फुरे हैं सो प्रकृति की मायासे फुरे हैं। माया स्वभावसे परस्वभाव है परन्तु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ता है इससे आत्मस्वरूप है। आत्माके जानेसे इसका अभाव होजाता है। हे रामजी ! जब ज्ञान उपजता है तब संसार स्वप्नवत् होजाता है और उसकी सत्ता कुछ नहीं भासती। जब दृढ़ता होती है तब सुषुप्त होजाता है इनका भाव भी नहीं रहता

और तुरीय में स्थित होता है । जब तुरीयातीत होता है तब अभावका भी अभाव होजाता है और परमकल्याणरूप सत्ता समान पदको प्राप्त होता है जो आदि अन्त से रहित परमपद है । ऐसा मैं ब्रह्मस्वरूप; परमशान्तरूप और निर्दोष हूं और जगत् भी सब ब्रह्मरूप है । हमको सदा यही निश्चय रहता है और ऐसा उत्थान नहीं होता कि; मैं वशिष्ठ हूं । हमारा प्रच्छन्न अहंकार नष्ट होगया है इससे हम निरहंकार पदमें स्थित हैं । जब तुम ऐसे होकर स्थित होगे तब परम निर्मल स्वरूप होजाओगे । जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल शोभता है तैसेही तुम भी शोभोगे । हे रामजी ! कैसे पुरुष को बन्धन है सो भी सुनो जिससे वह आत्मपदको नहीं प्राप्त होता । प्रथम धन मणिका बन्धन है, दूसरे भोग की तृष्णा और तीसरे बान्धवों का बन्धन है । जिसको इन तीनों की वासना रहती है उसको मेरा धिक्कार है । बड़े अनर्थ के देने वाली यह वासना है । यह भोग महारोग हैं; बान्धव दृढ़ बन्धनरूप हैं और अर्थकी प्राप्ति अनर्थ का कारण है । इससे इस वासना को त्यागकर आत्मपद में स्थित होरहो । यह संसार भ्रममात्र है, इसकी वासना करना व्यर्थ है और इसको सत्य न जानना । यह जो तुम को सङ्ग और मिलाप भासता है सो कैसा है जैसे बैठेहुये स्मरण आवे कि, मैं अमुक से मिला था तो वह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदय में भासती है । जैसे सङ्कल्प से नगर रच लिया तो उसमें मनुष्यादिक के चित्र भासने लगते हैं तैसेही इस जगत् को भी जानो । हे रामजी ! तुम, मैं और यह जगत् भ्रममात्र संकल्पनगर के समान है । जैसे भविष्यत् नगर की रचना है तैसेही यह जगत् है । कर्त्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं सो भी भ्रममात्रहैं केवल आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है । आत्मरूपी आकाश में यह जगत्रूपी पुतलियां हैं और सङ्कल्पमात्र प्रत्यक्ष हुआ है वास्तव में केवल शान्तरूप आत्मतत्त्व है । हे रामजी ! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं उनको आत्मतत्त्वही भासता है और जिनको आत्मतत्त्व का प्रमाद है उनको नानाप्रकारका जगत् भासता है पर आत्मामें यह जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना । जैसे सूर्य्य की किरणों में अज्ञान से जलाभास भासते हैं तैसेही आत्मामें अज्ञान से जगत् की प्रतीति होतीहै । जब आत्मा का सम्यक् ज्ञानहो तब जगत् भ्रम निवृत्त होजाता है—जैसे सूर्य्य की किरणों के जाने से जलभ्रम निवृत्त होजाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवशिष्ठगीतासंसारोपदेशोनाम शताधिकषष्टितमस्सर्गः १६० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! रूप, अवलोक, मनस्कार सब ब्रह्मरूप हैं । जिसको ज्ञान प्राप्त होता है उसको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है—यही ज्ञानका लक्षण है । ज्यों ज्यों ज्ञानकला उदय होती है त्यों त्यों भोगों की वासना क्षीणहोती जाती है और जब

पूर्णबोध की प्राप्ति होती है तब किसीको इच्छा नहीं रहती। जैसे ज्यों ज्यों सूर्य प्रकाशता है त्यों त्यों अन्धकार नष्ट होताजाताहै और जब पूर्ण प्रकाश होताहै तब रात्रिका अभाव होजाता है; तैसेही जिसको ज्ञान उत्पन्न हुआ है उसको भोगों की वासना नहीं रहती और संसार उसको जले वस्त्रकी नाईं भासता है पर अज्ञानी को सत्य भासता है। जैसे स्वप्ने में सुषुप्ति नहीं होती और सुषुप्ति में स्वप्ना नहीं होता और स्वप्नेका पुरुष सुषुप्ति को नहीं जानता और सुषुप्तिवाला स्वप्नेवाले को नहीं जानता तैसेही जिसको तुरीयपदकी प्राप्ति होती है उसको संसारका अभाव होजाता है और वह अपने स्वभाव में स्थित होताहै। जो संसारको सत् जानते हैं वे स्वप्ननरहैं—सुषुप्ति को नहीं जानते। हे रामजी! तेरास्वरूप जो तुरीयपद है उसको अज्ञानी नहीं जानसक्ते और जो जानें तो उनका प्रच्छन्न अहंकार नष्ट होजावे। जब अहंकार नष्टहो तब सर्व आत्मा हुआ। हे रामजी! जीवको अहन्ताने तुच्छ किया है; इससे तुम अहन्तारूप दृश्यका त्याग करके अपने स्वभाव में स्थित होरहो। संसाररूपी एक पुतली है जो भ्रमसे उठी है; उसका शीशऊर्ध्व ब्रह्मलोक है; टखने और पांव पाताल लोक हैं; दशोंदिशा वक्षस्स्थल है; चन्द्रमा और सूर्य्य नेत्रहैं; तारागण रोमहैं; आकाश वस्त्रहैं; सुख दुःखरूपी स्वभावहै; पवन प्राणवायुहै; बगीचे भूषणहैं; द्वीप और समुद्र कंकणहैं और लोकालोक पर्वत मेखला है। हे रामजी! ऐसी जो पुतली है सो नृत्य करती है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और नाशहोते हैं परन्तु जल ज्योंकात्योंहीं है तैसेही जलकी नाईं सर्व ब्रह्मरूप है और भ्रमसे विकार दृष्टि आते हैं। हे रामजी! कर्त्ता, क्रिया और कर्म भी आत्मस्वरूप हैं। जब तुम आत्माकी भावना करोगे तब तुम्हारा हृदय आकाशवत् शून्य होजावेगा। जैसे पत्थरकी शिला जड़ होती है; तैसेही तुम्हारा हृदय जगत् से जड़ और शून्य होजावेगा। हे रामजी! आत्मपद शान्त रूप और आकाशवत् निर्मल है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा में जगत् है; न उदय होताहै और न अस्त होता है केवल शान्तरूपहै। उदय अस्त भी तब होताहै जब कुछ दूसरी वस्तु होती है पर जगत् कुछ भिन्न नहीं आत्मस्वरूपही है। द्वैत और एक कल्पना से रहित आत्मा अपने आपमें स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्उपशमयोगोपदेशोनाम शताधिकएकषष्टितमस्सर्गः १६१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विश्व आत्मा का चमत्कारहै। जैसे मृत्तिका की पुतली मृत्तिकारूप और कागज की पुतली कागजरूप होती है तैसेही विश्व आत्मरूप है। जैसे मृत्तिकाका दीपक देखनेमात्र होताहै और प्रकाशका कार्य नहीं करता तैसेही यह जगत् देखनेमात्रहै विचार कियेसे आत्माके सिवा भिन्नसत्ता कुछ नहीं; इससे जगत् की सत्यता आत्मासे कुछ भिन्न नहीं। जगत् की आस्था आत्माके आश्रित होती है। जैसे

जल में तरंग; आकाश में शून्यता और पवन में फुरना है तैसेही आत्मा में जगत् अभिन्नरूप है; और जैसे वायु चलती है तब भी पवन है क्योंकि, उसको वायुका निश्चय है; तैसेही चैतन्यमें निश्चयहै कि, जगत् वही स्वरूपहै—इससे चैतन्यहै। ज्ञानवान् जानताहै कि, जगत् मेराही स्वरूप है। हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि, जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं और भ्रम करके भिन्न भासता है। जैसे कथा में कथा के पुरुष विद्यमान भासते हैं और क्रिया करते हैं तैसेही इस जगत्को भी मनोमात्र जानो। हे रामजी! जो विद्यमानहै सो अविद्यमान होजाताहै और जो अविद्यमान है सो विद्यमान होजाताहै। जैसे स्वप्न में जगत् अनुभव स्वरूपहै—भिन्न नहीं तैसेही जाग्रत् जगत् विचारकर देखोगे तब ब्रह्मस्वरूपही भासेगा। जैसे जो पुरुष सोया होता है और स्वप्न जगत् उसी का रूपहै परन्तु जबतक निद्रादोष है तबतक भिन्न भासता है पर जब जागा तब सब अपनाही आप भासताहै, तैसेही जब मनुष्य अपने स्वरूप में स्थित होकर देखता है तब सब अपना आपही भासताहै। हे रामजी! रूप, अवलोक, मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप हैं पर आत्मा इंद्रियों का विषय नहीं, वह तो निराकारहै और मनके चिंतने से रहित है। सङ्कल्पसे आपही रूप, अवलोक और मनस्कार करके स्थित हुआ है, भिन्न नहीं। सर्व वही है और शास्त्रकारों ने शिव, ब्रह्म, आत्मा, शून्य आदि उसके नाम सङ्कल्प में कहेहैं। आत्मा केवल चिन्मात्रहै; वह वाणीका विषय नहीं और शान्तरूप, चैत्य अर्थात् दृश्यसे रहित और सर्वशब्द अर्थोंका अधिष्ठानहै और जगत् उसका चमत्कार है। हे रामजी! आत्मामें एक और द्वैतकल्पना कोई नहीं क्योंकि; वह आत्मत्वमात्रहै और जगत्भी आत्मरूपहै। जैसे आकाश और शून्यतामें भेदनहीं तैसेही आत्मा और जगत् में भेदनहीं। हे रामजी! यदि ऐसा भी किसी देश अथवा कालमेंहो कि; सुवर्ण और भूषण में कुछ भेदहो अर्थात् सुवर्ण भिन्नहो और भूषण भिन्नहो परन्तु आत्मा और जगत् में भेदनहीं; आत्माही ऐसे प्रकाशताहै और अपने स्वभाव में स्थित है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे मृत्तिकाकी सेना नानाप्रकारकी संज्ञाधारती है परन्तु मृत्तिकासे भिन्न कुछ दूसरी वस्तु नहीं है तैसेही फुरने से नानाप्रकारकी संज्ञा दृष्टि भी आती हैं परन्तु आत्मासे भिन्ननहीं—वहीरूप है। हे रामजी! यह सर्वपदार्थ अनुभव से भासते हैं। पदार्थकी सत्ता अनुभवसे भिन्ननहीं। जब तुम अनुभवमें स्थितहोकर देखोगे तब अनुभवरूप अपना आपही भासेगा। अपना स्वभाव ज्ञानमात्र है; उसीके जानने का नाम ज्ञानहै हे रामजी! ज्ञान विना जो तप, यज्ञ, दानआदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं। सब क्रियों की सिद्धि ज्ञानसे होती है। हे रामजी! जो कुछ क्रिया ज्ञानके निमित्त कीजिये सोही पुरुष प्रयत्न श्रेष्ठहै और इससे अन्यथा व्यर्थ है। धन के उपजाने में भी और रखने में भी कष्ट है परन्तु जो ज्ञान के साधन निमित्त इसको रखिये और दीजिये तो यह अ-

मृत होजाता है। हे रामजी! यह जगत् भ्रममात्र है। जैसे मलिन नेत्रवाले को रूप विपर्य्यय भासता है और स्वप्नेकी सृष्टि में अज्ञ तज्ञ भी भासते हैं परन्तु असत्य रूप हैं; तैसेही यह जगत् विद्यमान भासताहै पर अविद्यमान है और आत्मा सदा विद्यमानहै। हे रामजी! विद्यमान देव जो विष्णु हैं उनको त्यागकर जो और देवका पूजन करते हैं उनकी पूजा सफल नहीं होती और विष्णु उनपर कोपवान् भी होते हैं इसी तरह आत्मा जो अनुभवरूप विद्यमान है उसको त्यागकर जो और की पूजन करते हैं वे जन्म मरण के बन्धन से मुक्त नहीं होते--मूढ़ता में रहते हैं। आत्मदेव की पूजा सुनो। जो कुछ अनिच्छित आवे सो उसको अर्पण कीजिये और इसके जाननेवाले में अहंप्रत्यक्ष करना--यही बड़ी पूजाहै। हे रामजी! इस आत्मदेव से भिन्न जो सूर्य्य, चन्द्रमा आदिक भेदपूजा है सो तुच्छ है। जब तुम आत्मपूजा में स्थित होगे तब और पूजा तुमको सूखे तृणकी नाईं भासेगी। दान भी आत्मदेवकोही करना है सो बोध से करने योग्य है और वैराग्य, धैर्य और संतोष बोधका कारणहै। यथा लाभ में संतुष्ट रहकर ब्रह्मविद्याका विचारकरो और सन्तोंका संगकरो। इन साधनों से जब बोधरूपीसूर्य उदय होगा तब द्वैतरूपी अन्धकार नष्ट होजावेगा और ज्ञानरूपही भासेगा। फिर जो ज्ञान उपजा है वह भी शान्त होजावेगा-इससे उसी देव की पूजा करो जिससे आत्मपद को प्राप्तहो। आत्मदेवकी पूजा के निमित्त फूल भी चाहिये इसलिये आत्मविचार करके चित्तकी वृत्ति अन्तर्मुख करना और यथालाभ में संतुष्ट रहकर सन्तोंकी संगति करना--इन फूलों से निवेदन करना। यह पूजा भी तब होती है जब अन्तःकरण शुद्ध होता है; उससे ज्ञान उत्पन्न होता है और जब ज्ञान उपजता है तब आत्मदेव का साक्षात्कार होता है। ज्ञानका लक्षण सुनो। गुरु और शास्त्र से जो वस्तु सुनी है उसमें स्थित होती है और संसार की वासना क्षीण होजाती है तब ज्ञानी कहाता है। जब इस ज्ञानकी पूर्णता होती है तब जगत् उसको ब्रह्म स्वरूपही भासता है और तब उसको शस्त्र काट नहींसक्के और सिंह, सर्प, अग्नि और विष का भी भयनहीं होता। हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूप है। जैसी भावना कोई करता है तैसाही आगे हो भासताहै। जब शस्त्रमें शस्त्र के अर्थकी भावना होती है तब शस्त्रही भासतेहैं; इसीप्रकार सर्प और अग्नि सब अपने २ अर्थाकार भासते हैं। जब सर्व आत्म भावना होती है तब सर्व आत्माही भासता है क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ बनी नहीं तो दिखाई कैसे दे। जो पुरुष कृतकृत्य नहीं हुआ और आपको कृतार्थ मानताहै पर दुःख की निवृत्ति का उपाय नहीं करता तो दुःख के आये से दुःखही होवेगा और दुःख उस को चलालेजावेगा और जब सुख आवेगा तब सुख भी चलालेजावेगा। हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहाता है पर निश्चय से रहित है और शास्त्र भी बहुत देखता है

वह महामूर्ख है। जैसे जन्मका अन्धा सूर्य्य को नहीं जानता तैसेही वह आत्मानुभव से रहित है। जब आत्मपदका साक्षात्कार होगा तब ऐसा आनन्द प्राप्त होगा जिस के पाये से और पदार्थ रससे रहित भासेंगे और ब्रह्मा से काष्ठपर्यन्त सब पदार्थ विरस होजावेंगे। इससे आत्मपरायण होकर सदा आत्मपदकी भावनाकरो। हे रामजी! जैसे शुद्ध मणि के निकट जैसी वस्तु रखिये तैसाही प्रतिबिम्ब होता है तैसेही जीव जैसी भावना करता है तैसाहीरूप भासता है। इससे जगत् को ब्रह्मस्वरूप जानो और जो दूसरा भासे उसे भ्रममात्र जानो। जैसे पत्थर की शिलापर पुतलियां लिखते हैं सो शिलारूपही हैं तैसेही यह सब जगत् आत्मस्वरूप है। जब आत्मपद की तुमको प्राप्ति होगी तब सब पदार्थ विरस होंगे। हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है। जो पुरुष इस जगत् को पदार्थ जानता है और कहता है कि, हम मुक्तहोंगे सो ऐसा है जैसे अंधेकूपमें जन्मका अन्धा गिरे और कहे कि, अन्धकारके साथ मैं सचक्षुहूंगा। वह मूर्ख है क्योंकि, आत्मज्ञान विना मुक्त नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपुनर्निर्वाणोपदेशोनाम शताधिकद्विषष्टितमस्सर्ग्गः १६२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अहन्ता आदि जो जगत् भासता है सो मिथ्या भ्रम करके उदय हुआ है; इसको त्यागकर अपने अनुभवस्वरूप में स्थित हो। इस मिथ्या जगत् में आस्था करनी तो मूर्खता है। जो ज्ञानवान् है उसको जगत् भ्रम का अभाव है। अब ज्ञानी और अज्ञानी का लक्षण सुनो। हे रामजी! जैसे किसी पुरुष को ताप चढ़ता है तो उसका हृदय जलता है और तृषा बहुत होती है पर जिसका ताप नष्ट होगया है उसका हृदय शीतल होता है और जलकी तृषाभी नहीं होती; तैसेही जिस पुरुष को अज्ञानरूपी ताप चढ़ाहुआ है उसका हृदय जलताहै और भोग रूपी जलकी तृष्णा बहुत होती है पर जिसके हृदय में अज्ञानरूपी ताप मिटगया है उसका हृदय शीतल होता है और भोगरूपी जलकी तृष्णा मिटजाती है। अब ताप निवृत्त करने का उपाय सुनो। शास्त्रों के अर्थवाद से तो बुद्धिभ्रम होजाता है और मैं तुमसे सुगम उपाय कहताहूं कि; निरहंकार होनाही सुगम उपाय है। 'न मैंहूं' और 'न यह जगत् है'; जब तुम ऐसा निश्चय धारोगे तब सब जगत् तुमको ब्रह्मस्वरूप भासेगा और किसी पदार्थ की वाञ्छा न रहेगी। जब सब पदार्थों को मिथ्या जानकर अपना भी अभाव करोगे तब पीछे प्रत्येक चैतन्य परमानन्द स्वरूप सब का अधिष्ठान शेष रहेगा। हे रामजी! यह अहन्तारूपी यक्ष जो उठाहै सो मिथ्याहै और उस मिथ्या पुरुषने नानाप्रकारका जगत् कल्पाहै। अहंकार भी मिथ्या है और जगत् भी मिथ्याहै। जब तुम अपने स्वरूप में स्थित होगे तब जगत्भ्रम मिट जावेगा। जैसे

स्वप्ने के जगत्में सुन्दर पदार्थ भासते हैं और मनुष्य उनकी इच्छा करता है। जबतक जागता नहीं तबतक जानताहै कि, ये पदार्थ कदाचित् नाश न होंगे और कहताहै कि, अमुकरूप देखिये और अमुक भोजन कीजिये पर जब जाग उठा तब जानता है कि, मेराही सङ्कल्प था और फिर वे पदार्थ सुन्दर स्मरण भी होते हैं अथवा भासते हैं तौ भी उनको मिथ्या जानताहै; तैसेही जब आत्मस्थितिमें जागताहै तब सर्वब्रह्मही भासता है। हेरामजी! इस जगत्का बीज अहंताहै। जैसे दुःखका बीज पाप होताहै तैसेही जगत् का बीज अहंताहै, इससे तुम निरहंकार पदमें स्थित होरहो। यह सब तुम्हाराही स्वरूप हैं पर भ्रमसे जगत् भासताहै हेरामजी! जगत्का अत्यन्ताभावहै। जैसे रस्सी में सर्प का अत्यन्ताभावहै पर भ्रमदृष्टिसे सर्प भासताहै और जब विचाररूपी दीपकसे देखिये तो सर्पका अभाव होजाता है तैसेही आत्मा में यह जगत् भ्रमसे भासता है। जब विचार करके जगत्का अभाव निश्चय करोगे तब आत्मपद ज्योंका त्यों भासेगा। जैसे जब वसन्तऋतु आती है तब सब फूल, फल और डालें दृष्टि आते हैं सो एकही रस इतनी संज्ञाको धारता है; तैसेही तुम जब आत्मपद में स्थितहोगे तब तुमको सब आत्मरूपही भासेगा। और सर्वनाम भी आत्माही भासेगा। हे रामजी! आदि भी आत्माही है और अन्तमें भी आत्माहीहोगा पर मध्य में जो जगत्के पदार्थ भासतेहैं उनकी ओर मतजावो—जो इनका जाननेवालाहै और जिससे सब पदार्थ प्रकाशते हैं उसमें स्थित होरहो। ये सब मनुष्य मृगकी नाईं हैं। जैसे मरुस्थल में जल जानकर मृग दौड़ते हैं तैसेही जगत्रूपी मरुस्थलकी भूमिकाशून्यहै और तीनोंलोक मृगतृष्णा के जलहैं उनमें मनुष्यरूपी मृग दौड़तेहैं और दौड़ते दौड़ते हारजाते हैं कदाचित् शान्ति नहींहोती क्योंकि; जगत्के पदार्थ सब असत्यहैं। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार सब मृगतृष्णाके जलहैं; इनको जो सत्य जानता है वह मूर्खहै। यह जगत् गन्धर्वनगर की नाईं है तुम जागकर देखो; इनको सत्य जानकर क्यों तृष्णा करतेहो। इनको सत्य जानकर तृष्णा करनाही बन्धन है। हे रामजी! तुम आत्माहो। इसकी इच्छासे बन्धायमान क्यों होतेहो? जैसे सिंह पिंजरेमें आकर दीन होता है पर बल करके जब पिंजरेको तोड़डालताहै तब बड़े वनमें जाय निवास करताहै और निर्भय होताहै तैसेही तुमभी वासनारूपी पिंजरेको तोड़कर आत्मपदमें स्थित होरहो जो सर्वका अधिष्ठान और सबसे उत्कृष्टहै। जब तुम उस पदको प्राप्तहोगे तब इस संसारकी वासना नष्टहोकर आनन्द होगा और तुम निर्वाणपदको प्राप्तहोकर अफुर होगे; परम उपशम ज्ञेयपदको प्राप्तहोगे और द्वैतभाव मिटकर केवल परमार्थ सत्ता भासेगी—इसीका नाम निर्वाणहै। जैसे कोई मार्ग चलकर तपता आवे तो वह शीतल स्थानमें आकर शान्ति पाताहै तैसेही यह चारों भूमिका शान्तिका स्थानहै। निर्वाणता, निरहंकारता, वासनाका

त्याग और परम उपशम इनसे ज्ञेय में स्थित होना । जब तुमभी इन शान्तियों में स्थित होगे तब द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटीका अभाव होजावेगा और केवल द्रष्टाही रहेगा। हे रामजी ! द्रष्टा भी उपदेश जताने के निमित्त कहाहै; जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा किसकाहो; केवल अपने आपमें स्थितहो जो शुद्धहै यह जगत् बुद्धि जन्मका देनेवालाहै। जो जगत् के पदार्थ सुखदायी भासतेहैं सो दुःखके देनेवाले हैं, इनको विष जानकर त्याग करो । जैसे आकाशमें तरुवरे भासते हैं तैसेही यह जगत् अनहोता भासताहै—आत्मामें दृश्य नहीं। एकही पदार्थ में दो दृष्टिहैं—ज्ञानी उसको आत्मा और अज्ञानी जगत्जानतेहैं॥

दो० सबभूतनकीरात्रिमेंसन्तनकादिनहोय । जोलोकनदिनसानियांसंतरहेतवसोय १ ॥

ज्ञानी परमार्थतत्त्व में जागते हैं और संसारकी ओरसे सोरहे हैं और अज्ञानी परमार्थ तत्त्व में सोये हुये हैं और संसार की ओर सावधान हैं । हे रामजी ! यह जगत् मनसे फुराहै और ज्ञानी का मन सत्पदको प्राप्त हुआ है इससे उसे जगत्की भावना नहीं फुरती । जैसे बालकको संसारके पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता तैसेही ज्ञानी के निश्चय में जगत् कुछ वस्तु नहीं । हे रामजी ! जब ज्ञान उपजता है तब जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं भासता । जैसे जलकी बूंदें जलमें डालिये तो भिन्न नहीं भासतीं तैसेही ज्ञानीको जगत् भिन्न नहीं भासता । जैसे बीजमें वृक्ष होता है तैसेही मनमें जगत् स्थित होता है और जैसे वृक्ष बीजरूप है तैसेही जगत् मनरूप है; जब जगत् नष्ट हो तब मन भी नष्ट होजावेगा और मन नष्ट हो तब दृश्य भी नष्ट होगी—एकके अभाव हुये दोनों का अभाव होजाता है—मन नष्ट हो तो फुरना भी नष्ट हो और फुरना नष्ट हो तो मन भी नष्ट होताहै । हे रामजी ! जगत् के भीतर बाहर जो भासताहै वही मन है । इससे जब मनको स्थित करके देखोगे तब जगत्की सत्यता न भासेगी । अज्ञानीके हृदयमें जगत् दृढ़ स्थितहै इससे वह दुःख पाताहै । जैसे बालकको अपनी परछाहीं में भूत भासता है तिससे वह दुःख पाताहै और जो कोई निकट खड़ाहै उसको नहीं भासता इससे वह दुःख नहीं पाता । हे रामजी ! यह जगत् कुछ सत्य वस्तु होती तो ज्ञानवान्को भी भासता पर ज्ञानीको नहीं भासता इससे जगत् कुछ वस्तु नहीं है । जैसे एकही स्थान में दो पुरुष बैठेहों और एक को निद्रा आवे तो उसको स्वप्नेका जगत् भासताहै और नानाप्रकारकी चेष्टा होतीहै पर दूसरा जो बैठा जागताहै उसको उसका जगत् नहीं भासता; तैसेही जो पुरुष परमार्थसत्ता से जाग्रत् है उसको जगत् शून्य भासता है। हे रामजी ! यह जगत् मिथ्याहै; उसकी तृष्णा तुम काहेको करते हो—अपने स्वभाव में स्थित होरहो । यह जगत् परस्वभाव है—ऐसे जानकर चाहे जैसी चेष्टा करो तुमको बन्धन न करेगी और पूर्वपदकी प्राप्ति होगी । जैसे अग्निसे जले सूखे तृणको पवन उड़ा लेजाता है और नहीं जाना जाता कि, कहांगया; तैसेही ज्ञानरूपी अग्नि से जलाया

और निरहंकारतारूप पवन से उड़ाया हुआ संसाररूपी तृण न जाना जायगा कि; कहां गया? जैसे लाखयोजनपर्यन्त चलाजावे तौभी यही दृष्टि आताहै कि आकाशही सब सृष्टिको धार रहाहै; तैसेही सब दृश्य जगत्‌को आत्मा धारताहै। संसारका शब्द अर्थ आत्मामें कोई नहीं, इसको छोड़कर देखो कि, सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान आत्माही है। हे रामजी! रूप, अवलोक और मनस्कार मिथ्या उदय हुयेहैं—इनका त्याग करो। जैसे मरुस्थलमें जलाभास मिथ्याहै तैसेही आत्मामें जगत् मिथ्या भ्रममात्रहै। इसका सम्बन्ध करके जीव दुःखी होताहै। जैसे रस्सी में सर्प और सीपीमें रूपा मिथ्याहै, तैसेही आत्मा में जगत्‌है। तुम आत्मब्रह्महो, दुःखसे रहित अपने स्वभावमें स्थितरहो और आत्मदृष्टि से देखो कि, सर्व्व आत्माहो; अथवा जगत्‌को मिथ्या जानो तौ भी शेष आत्मपदही रहेगा। जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके अभाव हुयेसे शान्तपद शेष रहता है, तैसेही जगत्‌के अभाव किये से आत्मपद शेष भासेगा। इस जगत् का अत्यन्ताभावहै और जो दृष्टि आताहै सो भ्रममात्रहै। जो एक कालमें होताहै वह दूसरे कालमें नष्ट होजाता है। स्वप्न में जाग्रत् का अभाव होजाता है और जाग्रत् में स्वप्नेका अभाव होजाता है पर सुषुप्ति में दोनों का अभाव होजाता है इससे वे भ्रममात्र हैं विश्व आत्माका चमत्कार है। जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं तैसेही आत्मामें जगत् है। अहन्ता से यह उदय होताहै और अहन्ताके अभावसे अभाव होजाता है। जिनकी अहन्ता का अभाव हुआ है वेही सन्त और उत्तम पुरुष हैं; उन महानुभाव पुरुषों का अभिमान और भोगों की आशा नष्ट होजाती है वे निर्भ्रान्तिरूप नित्यही समाधिरूप होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मैकताप्रतिपादनन्नाम
शताधिकत्रिषष्टितमस्सर्ग्गः १६३॥

रामजी बोले; हे भगवन्! यह मनरूपी मृग भटकता है और वनमें जलता है; वह समाधानरूप कौन वृक्षहै जिसके नीचे आकर शान्तहो? उसके फूल, फल और लता कैसे हैं और वह वृक्ष कहां होताहै। सो कृपाकरके कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रकार समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है सो सुनो। इसके पत्र, पुष्प और लता आदि सब समाधान रूपहैं। हे रामजी! यह वृक्ष सब जीवों को कल्याण के निमित्त साधने योग्य है। अब तुम इसका क्रम सुनो। बलसे तो यह उत्पन्न होताहै और सन्त जनों के वनमें यह वृक्ष उपजता है; चित्तरूपी पृथ्वीमें लगताहै और वैरागरूपी इसका बीजहै। वैराग दो प्रकार से प्राप्त होता है—एकतो दुःख और कष्ट प्राप्त होनेसे वैराग उपज आताहै; दूसरे शुद्ध निष्काम हृदय होताहै तौ भी वैराग उपजताहै। उस वैराग रूपी बीजको जब चित्तरूपी भूमिका में डालते हैं; वासनारूपी हल फेरते हैं और सन्तोंकी

संगति और सत्‌शास्त्ररूपी जल जो निर्मल; शीतल और हृदयागम्य है मनरूपी क्यारी में पड़ता है तब उस वृक्षके बढ़ने की आशा होती है। क्रियारूपी झाड़ू से जब अनुभव रूपी कूड़ेको दूरकरते हैं; बहुत जलसे भी उसकी रक्षा करते हैं अर्थात् आत्मविचार रूपी सूर्य्यकी किरणों से सुखाते हैं और उसके चहुँफेर धैर्य्यरूपी बाड़ी करते हैं और तप, दान, तीर्थ, स्नानरूपी चौतरेपर उस बीजको रखके बैठते हैं कि, जल न जावे और आशा रूपी पक्षीसे रक्षाकरते हैं कि; वैरागरूपी बीजको काढ़ न लेजावे और अभिलाषारूपी बूढ़े बैलसे रक्षा करते हैं कि, क्षेत्रमें प्रवेश करके उसको मर्दन न करे उसके निमित्त सन्तोष और सन्तोषकी स्त्री मुदिता दोनों बैठा रखते हैं और इस बीजका नाशकर्त्ता जो मेघसे उपजता है कुहिरा उससे भी रक्षाकरते हैं। संपदा, धन और सुन्दर स्त्रियों की प्राप्ति होनीही वैरागरूपी बीजका नाशकर्त्ता ओलाहै। इसकी रक्षाका एक सामान्य उपाय है और एक विशेषउपायहै। तप करके इन्द्रियोंको सकुचाना, दुःखीपर दया करना और सन्तोषमात्र पाठ और जाप करना इत्यादिक शुभ क्रियारूपी यन्त्रीकी पुतली इसको विद्यमान रखिये तो सब विघ्न दूरहोजाता है। दूसरा परमउपाय यह है कि, सन्तोंकी संगति करके सत्‌शास्त्रोंका सुनना, प्रणव जो ॐकार है उसका ध्यान और जपकरना और उसका अर्थ विचारना यही त्रिशूलरूप ओलों के नाश का परम उपाय है। जब इतने शत्रुओं से रक्षाकरे तब उस बीजकी उत्पत्तिहो। सन्तों के सङ्ग और सत्‌शास्त्रों के विचार रूपी वर्षाकालके जलसे सींचिये तब अंकुर निकलता है और बड़ा प्रकाश होताहै। जैसे द्वितीया के चन्द्रमाको सब कोई प्रणाम करता है तैसेही सन्तोष दया और यशरूपी अंकुर निकलता है। उसके दोपत्र निकलते हैं--एक वैराग दूसरा विचार और वे दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं। शास्त्रोंसे जो सुना है कि; आत्मा सत्यहै और जगत् मिथ्या है उसका वारंवार अभ्यास करना चाहिये इस जल के सींचने से वे अंकुर दिन प्रतिदिन बढ़ते जावेंगे और उनके थम्भ बड़ेहोंगे। हे रामजी! जब डालें बड़ी होती हैं तब रागद्वेषरूपी वानर उनपर चढ़कर तोड़डालते हैं इससे इस वृक्षको दृढ़ वैराग, सन्तोष और अभ्यास रूपी रससे पुष्टकरना योग्य है। जैसे सुमेरु पर्वत है तैसेही सन्तोषसे उसे पुष्टकरना। जब ऐसे होगा तब उसमें सुन्दर पत्र, डालें, फूल और मञ्जरी लगेंगी; बड़े मार्ग्गपर्यन्त इसकी छाया होगी और शान्ति, शीतलता, शुद्धता, कोमलता, दया, यश और कीर्त्ति इत्यादिक गुण प्रकट होंगे। उसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पाकर शीतल होताहै और आध्यात्मिक; आधिभौतिक और आधिदैविक ताप मिटजाते हैं और परमशान्ति पाताहै। हे रामजी! यह मैंने तुमसे समाधानरूपी वृक्ष कहाहै। जहां यह वृक्ष उत्पन्न होताहै उस स्थानकी शोभा कही नहीं जाती और जो इस वृक्षकी शरण जाताहै उसके ताप मिटजाते हैं और शान्तिमान् होता है। यह वृक्ष ब्रह्मरूपी आकाशके आश्रय बढ़ता है और वैरागरूपी रस

और सन्तोषरूपी छालसे पुष्ट होताहै। जो पुरुष इसका आश्रय लेगा सो शान्तिमान् होगा। हे रामजी! जब तक मनरूपी मृग इस समाधानरूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता तबतक भटकता फिरता है पर शान्ति नहीं पाता। जैसे मृग वनमें भटकता है तैसेही मनमृग भटकताहै और द्वैत, अज्ञान और प्रमादरूपी वेधक मारने लगते हैं उससे दुःख पाता है जब भयसे इन्द्रियरूपी गांववासियोंके निकट जाताहै तब वे आपही इसको खेदकर पकड़ लेते हैं अर्थात् विषयोंकी ओर खींचते हैं और उससे बड़ा कष्ट पाता है। इनके भयसे जब फिर वनमें जाताहै तो वहां विषयकी अप्राप्तिरूपी तपनसे दुःखी होताहै। जब उसको भी त्यागकर रसरूपी स्थानोंको शान्तिके निमित्त दौड़ताहै तो कामरूपी श्वान मारने को दौड़ता है और उसके भयसे जब फिर वैरागरूपी वनकी ओर धावताहै तब क्रोधरूपी अग्नि जलाती है; वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं और लोभ और मोहरूपी अँधेरीमें अन्धा होजाताहै। निदान पुत्र और धनरूपी हरेहरे तृणों को देखकर ग्रहण करताहै तब गढ़े में गिरपड़ता है। वह गढ़ा तृणसे ढपाहुआ है सो तृण पुत्र धनहै तिनको सुन्दर देख तब ममतारूपी गढ़े में गिरपड़ता है। इस प्रकार दुःखपाता है। हे रामजी! जब यह मन झूंठ बोलताहै तब मृत्तिकामें लोटतेकीसी चेष्टा करता है और जब मनरूपी भेड़िया आता है तब उसको भक्षण करजाता है। जब समाधानरूपी वृक्षसे जीव विमुख होताहै तब इतने कष्ट पाता है। और जब मनरूपी भेड़िये से छूटता है तब आशारूपी जञ्जीरमें बन्धायमान होताहै; निदान जबतक इस वृक्ष के निकट नहीं आता है तबतक बड़े कष्ट स्थानों को जाता है। तमालवृक्षादिकके तलेभी जाता है और कंटक के वृक्षोंके तलेभी जाताहै परन्तु शान्तिमान् किसी स्थान में नहीं होता—बड़े २ कष्टों कोही पाताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहरिणोपाख्यानेवृत्तान्तयोगोपदेशोनामशताधिकंचतुष्षष्टितमस्सर्गः १६४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार मूढ़बुद्धि मनरूपी हरिण भटकता है। इससे मेरा यही आशीर्वाद है कि, तुमको उस वृक्षका सङ्गहो। जब उस वृक्षके निकट जीव जाताहै तब शान्ति होती है और जब इसके नीचे आबैठताहै तब तीनों ताप अन्तःकरण से मिटजाते हैं। जितने विषयरूपी वृक्षहैं उनके निकटगया मनरूपी मृग शान्ति नहीं पाता पर जब समाधानरूपी वृक्षके निकट आता है तब शान्ति पाता है और बुद्धि खिलआती है—जैसे सूर्यमुखीकमल सूर्य को देखकर खिलआता है। उस वृक्षके अनुभवरूपी फल और शास्त्रके विचाररूपी पत्र और फूलोंको देखकर वह बड़े आनन्द को पाता है और उस वृक्षके ऊपर चढ़जाता है और पृथ्वीका त्याग करता है। जैसे सर्प अपनी पुरानी कंचुकीका त्याग करताहै और नूतन सुन्दर शरीरसे शोभताहै। जब उस

वृक्षपर चढ़ता है तब गिरतानहीं । क्योंकि, उसकेपत्र बहुत बली हैं उनकेआश्रय ठहरता है । समाधानरूपी वृक्षके सत्शास्त्ररूपी पत्र हैं । जब समाधानरूपी वृक्षसे उतरता है तब शास्त्रके अर्थ में ठहरता है और जितने पदार्थ देखता है वे उसे स्वारवत् दृष्टिआते हैं और अपनी पिछली चेष्टा को स्मरण करके पछताता है । जैसे कोई मद्यपान करके उस में नीच चेष्टा करे तो जब मद उतरता है तब पछताता है तैसेही मनरूपी मृग अपनी पिछली चेष्टा को धिक्कार करता है और कहता है कि; बड़ा आश्चर्य है जो मैं इतने काल इस वृक्षसे विमुख हुआ भटकता रहा–अब मुझको शांति हुई है । जैसे दिनकी तपन के अभाव हुये से चन्द्रमुखी कमलिनी को शांति होती है तैसेही मनरूपी मृगको शांति होती है । हे रामजी ! पुत्र, धन, स्त्रीआदिक जो दीखतेहैं उनको वह संकल्पपुर और स्वप्नवत् देखता है । जैसे स्वप्नसे जागकर कोई स्वप्नपुरको स्मरण करता है परन्तु उसमें अभिमान नहीं होता तैसेही उसमें भी अभिमान नहीं होता । जब जीव अनुभवरूपी फल को पान करता है तब बड़े आनन्द पाता है जिसको वाणी नहीं कहसक्ती और शांत; निर्मल और निरतिशयपदको प्राप्त होता है । जो मनका विषयहो सो सातिशयपद है और जो मनका विषय नहीं वह निरतिशयपद है । जो इन्द्रियों का विषय है उसका नाश भी होता है और जो इन्द्रियों और मनका विषय नहीं उसका नाश नहीं होता । वह उसी अविनाशी पदको पाता है । जैसे किसी को बाण लगताहै और उसकी विरोधीबूटी उसके सन्मुख रखिये तो निकल आता है तैसेही अनुभवरूपी बूटी के सन्मुख हुये मोह बन्धनरूपी शर खुलपड़ते हैं और परमपद पाता है । हे रामजी ! ज्ञानवान् जगत् से मृतक होजाता है; उसको संसार का कुछ लेप नहीं लगता । जैसे लकड़ी विना अग्नि शांतहो जाती है तैसेही वासना से रहित ज्ञानवान् की चेष्टा शांत होजाती है अर्थात् संसार की सत्यता से रहित चेष्टा होती है और फिर संसाररूपी अग्नि नहीं उदय होती । तब द्वैत और एक कल्पना भी मिटजाती है और उन्मत्त की नाईं अपने स्वरूप में घूर्म रहता है जैसे मरुस्थलका मार्ग चलनेवाला धूपकी इच्छा नहींकरता तैसेही ज्ञानी विषयरूपीतृष्णा नहीं करता । जिसने आत्म अनुभवरूपी अमृत पान किया है उसको विषयरूपी कांजी की इच्छा नहीं रहती–वह पुरुष सदा निर्वासी है । जब जीव निर्वासी होता है तब चंचल जो मनकी वृत्ति है सो सब लीन होजाती है और केवल आत्मत्वमात्रपद रहता है 'मैं' 'मेरा' इत्यादि भावना नष्ट होजाती है जबतक चित्तका सम्बन्ध होता है तबतक 'मैं' और 'मेरा' भासता है और जब चित्तका सम्बन्ध मिटजाता है तब एकाकार होजाता है । जैसे एक सूखा काष्ठ होता है और एक गीला काष्ठ होता है; सूखा तो शुद्ध कहाता है और गीला उपाधिक कहाता है और जब जल सूखगया तब वह भी शुद्ध होता है; तैसेही जब मनकी उपाधि नष्ट होती है तब शुद्ध आत्माही रहता है और एकरस भासता है ।

हे रामजी! संसार द्वितीय भ्रमसे भासताहै। जैसे पत्थरकी शिलामें पुतली अनउपजीही भासती हैं सो न सत् हैं और न असत् हैं; यदि पत्थर से भिन्न करके देखिये तो सत् नहीं और जो शिला में देखिये तो वेही रूपहैं;तैसेही जगत् आत्मा से भिन्न सत्य नहीं और आत्मसत्ता में आत्मरूप है। जैसे छोटे बालकके हृदय में जगत् का शब्द अर्थ नहीं होता; तैसेही ज्ञानी की चेष्टा भी प्रारब्धवेगसे होती है और उसके हृदयमें जगत्के शब्दअर्थ का अभाव है। हे रामजी! जो कुछ प्रारब्ध होती है सो अवश्य उसको भी प्राप्त होती है, मिटती नहीं; शुभहो अथवा अशुभहो। जैसे मेघसे गिरती हुई बूंद नहीं नष्ट होती मेघ मंत्रशक्ति से नष्ट होता है; तैसेही प्रारब्धकर्म उसका भी नष्ट नहीं होता परन्तु वह उनमें बन्धायमान नहीं होता। अज्ञानीके हृदय में संसार सत्य भासताहै और भिन्न भिन्न पदार्थ संयुक्त भासताहै; क्योंकि,उसे पदार्थका ज्ञानहै पर ज्ञानीके हृदयमें आत्माका ज्ञानहै उस को संसारकी सत्यता नहींभासती। हे रामजी! यह जो समाधानरूपीवृक्ष मैंने तुमसे कहा है उसकी विधिसंयुक्त सेवाकरने से अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है और जो बोधसे रहित होकर सेवन करताहै तो अनेक यत्नसे भी फलकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; उसे ऐसी भावना नहीं होती कि; आत्मा शुद्ध है और सत्-चित्-आनन्दहै। जिनको यह भावना प्राप्त होतीहै उनको भोगोंकी इच्छा नहींरहती। जैसे किसीने अमृतपान कियाहो तो अमल और कटुक फलकी वाञ्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानी किसीकी इच्छा नहीं करता। जैसे रुईके फाहेको अग्नि लगे और ऊपरसे तीक्ष्ण पवन चले तो नहीं जाना जाता कि, कहां जापड़ा; तैसेही जगत्रूपी रुई का फाहा ज्ञान अग्नि से दग्ध किया हुआ और वैराग्रूपी पवन से उड़ाया नहीं जाना जाता कि, कहां जापड़ा। तब आकाशही आकाश भासता है और जगत् सत्य नहीं भासता तो फिर तृष्णा किसकी करे—तब वह तृष्णा से रहित स्थित होता है। हे रामजी! दुःखका मूल तृष्णाहै; तृष्णाहीसे भटकताहै। जैसे जबतक पर्वतोंके पंखथे तबतक वे उड़ते थे, पंख बिना उड़नेसेरहित होकर गंभीरस्थित होरहे हैं; तैसेही जब मनसे वासना नष्ट होती है तब मन स्थिर होजाता है। हे रामजी! वाञ्छित देश को विदेशी तब जा प्राप्त होता है जब एक देश का त्याग करता है; तैसेही शुद्धस्वरूप परमानन्द अपना आप आत्मा तब प्राप्त होता है जब धन, लोग और पुत्र इषणाका त्यागकरे। जब आत्मा की प्राप्ति होती है तब निर्विकल्पसमाधि से निर्विकल्प चैतन्यका साक्षात्कार होता है और जब समाधि में उसका साक्षात्कार होता है तब उत्थानकाल में भी समाधि में स्थित रहता है; परमनिर्वाणपद को प्राप्त होता है और चित्तरूपी बेलि दूर होजाती है। जैसे रस्सी में जो बल होता है तो उसको खैंचकर फिर छोड़ते हैं तब वह सीधी होजाती है; तैसेही जिसको समाधि में चैतन्य का साक्षात्कार होता है उसको उत्थानकाल में भी वही भासता है और जिसको उसका

प्रमादहै उसको जगत् भासता है। हे रामजी! वस्तु एक है परन्तु उसमें दो दृष्टि हैं। जैसे रस्सी एक है पर सम्यक्‌दर्शी को रस्सी भासती है और असम्यक्‌दर्शीको सर्पहो भासता है; तैसेही ज्ञानवान्‌को आत्मा भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है। जिस पुरुषने ज्ञानसे जगत् को असत्य नहीं जाना वह मानो चित्तकी अग्नि है उस से कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता और जिसको स्वरूपकी इच्छा है और जो तृष्णाके नाश करने का प्रयत्न करता है और जगत् को मिथ्या विचारता है वह आत्मपदको प्राप्तहोगा और उस की तृष्णा भी निवृत्त होजावेगी। हे रामजी! ज्ञानवान् की तृष्णा स्वाभाविक मिटजाती है। जैसे सूर्य्यके उदय हुये अन्धकार मिटजाता है तैसेही वस्तु की सत्ता पाकर उसकी तृष्णा नष्ट होजाती है और परमपद में स्थित होताहै। हे रामजी! जिसको दृश्य में निरसता है वह उत्तम पुरुष है, वह मनुष्य शरीर पाकर ब्रह्म होता है; उसको मेरा नमस्कार है और वह मेरा गुरू है। हे रामजी! जब जीव की बुद्धि विषय से विरस होती है तब कल्याण होताहै। वैराग से बोध होता है और बोध से वैराग होता है क्योंकि; परस्पर दोनों सम्बन्धी हैं—जब एक आता है तब दूसरा भी आताहै। जब यह आते हैं तब तीनों ईषणा निवृत्त होजाती हैं और जब तीनों ईषणा होती हैं तब अमृत की प्राप्ति होती है। हे रामजी! सन्तों के सङ्ग और सच्छास्त्रों के सुनने से अपने स्वरूप का अभ्यास करो—इससे आत्मपदकी प्राप्ति होती है। यह तीनों परस्पर श्रेष्ठहैं। जैसे आठ पांववाला कीट प्रथम चरण को रखकर और चरण को रखता है तब सुख से चला जाताहै, तैसेही सन्तों के संग और सच्छास्त्रोंके सुननेसे जो आत्मपद का अभ्यास करता है वह शीघ्रही आत्मपद को प्राप्त होता है और उसे जगत्‌का अभाव होजाता है। हे रामजी! जगत् के भाव और अभाव को ज्ञानी जानता है। जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिको तुरीयावाला जानता है; तैसेही जगत् के भाव अभाव को ज्ञानी जानता है। जैसे अग्नि में सूखा तृण डाला दृष्ट नहीं आता, तैसेही ज्ञानवान् को जगत् नहीं दृष्ट आता। हे रामजी! ज्ञानवान् को सर्वदा समाधि है, कदाचित् उत्थान नहीं होता। जबतक उस पदको प्राप्त न हो तब तक साधना में लगारहे और जब उस पदको प्राप्तहो तब फिर कोई यत्न नहीं रहता। हे रामजी! इस चित्तके दो प्रवाह हैं—एकतो जगत्‌की ओर जाता है और दूसरा स्वरूप की ओर जाता है। जो जगत् की ओर जाता है सो उपाधिक है और जो स्वरूप की ओर जाता है सो उपाधि को दूर करनेवाला है। जैसे एक लकड़ी गीली और एक सूखी होती है; जो गीली है उसमें उपाधिजलहै सो फैलजाता है और जब जल नष्ट होजाताहै तब वह शुद्ध होती है फिर प्रफुल्लित नहीं होती; तैसेही संसार की सत्यता से चित्त दृढ़ होता है और जब संसार की वासना नष्ट होती है तब शुद्ध पद पाता है। हे रामजी! वाद जो करते हैं सो भी दो प्रकार के हैं; जो वाद किसी को दुःख

दे उसे मूर्ख करते हैं और जो परस्पर मित्र भाव से निरूपण तत्त्वका करें सो ज्ञानवान् करते हैं। जैसा जो वाद करते हैं उसका उन्हें दृढ़ अभ्यास होता है और तैसाही रूपहोजाता है। जो कष्ट और झगड़ा करतेहैं उनका वही रूप होजाता है और जो मित्रता से स्वरूप का वाद करते हैं तो वही रूप होता है-उसपदको पाकर परमशान्ति होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमनमृगोपाख्यानयोगोपदेशोनामशताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्ग्गः १६५॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपूर्वार्द्धसमाप्तम्॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे ॥

निर्वाणप्रकरणेउत्तरार्द्धप्रारभ्यते ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस पुरुष ने समाधानरूपी वृक्ष के फल को जानकर पान कियाहै और उसको पचाया है उसे परमस्थिति प्राप्त होती है। जैसे पंख टूटे से पर्वत स्थित होरहे हैं तैसेही तृष्णारूपी पंख के टूटेसे जीव स्थित होता है। हे रामजी ! जब उसको फल प्राप्तहोता है तब उसका चित्तभी आत्मरूप होजाता है। जैसे दीपक निर्वाण होता है तब जाना नहीं जाता कि, कहां गया; तैसेही आत्मपदके प्राप्तहुये चित्त भिन्न होकर दिखाई नहीं देता। हे रामजी ! जबतक वह अकृत्रिम आनन्द प्राप्त नहीं हुआ और उस पदमें विश्रान्ति नहीं पाई तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती। वह पद निर्गुण, शुद्ध, स्वच्छ और परमशान्त है जब उस पदमें स्थिति होती है तब परम समाधि होजाती है। ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं जो उसको उतारे। जैसे चित्रकी मूर्त्ति होती है तैसेही उसकी अवस्था होती है और उसकी सब चेष्टा इच्छा से रहित होती है। जैसे पंखसे रहित पर्वत स्थित होताहै तैसेही मन अमन होजाता है और शान्तिपदको प्राप्त होताहै। हे रामजी ! जिसके मन में संसारका अभाव हुआ है वह शान्तिपद को प्राप्त होता है और जो वासनासंयुक्त है तो मनहै। जिस क्रम और युक्ति से वासना क्षयहो सोही कर्त्तव्यहै। हे रामजी ! जब वासना क्षयहोती है तब बोधरूप शेष रहता है, इस लिये जिस क्रमसे वह प्राप्तहो वही किया चाहिये क्योंकि; उस पदके प्राप्तहुये विना शान्ति कदाचित् न होगी। जब चित्त उस पदकी ओर आवे तब शान्तहोकर दुःखसे रहित और अविनाशीहो क्योंकि; सर्व्व आत्मा निर्विभाग; अनन्त परमशान्तिरूप और सब को कर्मके फल का देनेवालाहै। हे रामजी ! जब ऐसे पदको जीव प्राप्तहोताहै तब उस को उत्थानकालमें भी आत्माही भासताहै द्वैत नहीं भासता तो समाधिसे उत्थान कैसे हो ? ऐसा कोई समर्थ नहीं कि, उसको समाधि से उतारे। जब ऐसा पद प्राप्त होता है तब संसार विरस होजाता है। हे रामजी ! जबतक मनुष्य मूर्त्तिवत् नहीं होता तबतक विषयका त्याग करे और जब ऐसी दशाहो तब कुछ कर्त्तव्य नहीं रहता त्याग करे अथवा न करे। यह मुझे निश्चय है कि, जब ज्ञान उपजेगा तब विषयों से विरक्त होजावेगा। ब्रह्मा से आदि काष्ठपर्य्यन्त जितने पदार्थ हैं वे सब उसको विरस होजाते हैं।

ऐसा जो पुरुष है उसको सदा समाधि है। हे रामजी! जिसको समाधिका सुख आताहै वह स्वाभाविक समाधिकी ओर आताहै। जैसे वर्षाकालकी नदी स्वाभाविक समुद्र को जाती हैं तैसेही वह पुरुष समाधिकी ओर लगारहता है। जो पुरुष विषयों से निरिच्छित और आत्मारामी होता है उसको वज्रसारकी नाईं स्थिति होती है। जैसे पंख से रहित पर्वत स्थित होते हैं तैसेही जिस पुरुषने संसारको विरस जानकर त्याग किया है और आत्मामें क्रीड़ा करके तृप्तहुआ है उसका ध्यान चलायमान नहीं होता। हे रामजी! जिस पुरुषकी चेष्टाभी होती है पर सङ्कल्प विकल्पसे रहित है वह सदा मुक्त रूपहै; उसको कोई क्रिया बन्धायमान नहीं करतीं क्योंकि; क्रिया और साधनका अभाव होजाता है। जिस पुरुषको जगत् विरस होगया है उसको विषयों की तृष्णा कैसे हो और जब तृष्णा न रही तब दुःख कैसेहो? दुःख तबतक होता है जबतक विषयों की तृष्णा होती है और विषयों की तृष्णा तब होती है जब अपने स्वभावको त्यागता है। हे रामजी! जब अपने स्वभाव में स्थितहो तब परस्वभाव जो इन्द्रियों के विषय हैं सो रससंयुक्त कैसे भासें और दुःख और तृष्णा कैसे हो? हे रामजी! जब अपने स्वभाव को जानताहै तब उस परमनिर्वाणपद को प्राप्त होता है जो आदि और अन्त से रहित है। तिसकी प्राप्तिका उपाय यह है कि, वेदका अध्ययन करना और प्रणवका जप करना। जब इनसे थके तब समाधि करे और जब फिर थके तब वहीं जा पाठ करे। जब ऐसे दृढ़ अभ्यासहो तब उस पदको प्राप्तहोवेगा जो संसार के पार गमनका मार्ग है और जब उसको पाया तब परमशान्ति को प्राप्त होवेगा और स्वच्छ निर्म्मल अपने स्वभावमें स्थित होवेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वभावसत्तायोगोपदेशो नामशताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः १६६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह संसार बड़ा गम्भीर है और इसका तरना कठिनहै जिसको इससे तरनेकी इच्छाहो उसको यह कर्त्तव्य है कि, वेदका अध्ययन; प्रणवका जाप और चित्तको स्थितकरे। जब ऐसा उपाय करे तब ईश्वर उसपर प्रसन्नहोंगे और उसके हृदय में विवेक का कण उत्पन्न होगा जिससे संसार असत्य भासेगा और संतजनोंका सङ्ग प्राप्तहोगा; जिनका शुभ आचारहै और जो परमशीतल और गम्भीर ऊंचे अनुभवरूपी फल संयुक्त वृक्षहैं और यश, कीर्त्ति और शुभआचाररूपी फूल और पत्रों सहितहैं। ऐसे सन्तजनोंकी संगति जब प्राप्त होती है तब जगत् के रागद्वेषरूपी तम मिटजाते हैं। जैसे किसी मजूर के शिरपर भारहो और तपनसे दुःखीहो पर जब वृक्षकी शीतलछाया प्राप्त हो तब शीतल होताहै और फलके भक्षणसे तृप्तहोताहै और थकानका कष्ट दूर होजाताहै तैसेही सन्तों के संगसे सुखको प्राप्त होताहै। जैसे चन्द्रमाकी किरणों से शीतल

होता है तैसेही सन्तजनोंके वचनोंसे शांति होती है। हे रामजी! सन्तजनोंके दर्शन किये से पापदग्ध होजाते हैं जो पुरुष सकाम तप, यज्ञ और व्रत करते हैं उनकी संगति न कीजिये क्योंकि; वे ऐसे हैं जैसे यज्ञका थंभा जो पवित्र भी होता है परन्तु उसकी छाया कुछ नहीं इससे उसके नीचे कोई सुख नहीं पाता। हे रामजी! सब सकामकर्म्म जन्म मरण देने वाले हैं। यद्यपि यज्ञ, व्रत और तप जिज्ञासी भी करते हैं तो भी उनसे विशेष हैं क्योंकि; निष्काम हैं। उनको विषयों में विरस भावना है और उनका शुभ आचार है। हे रामजी! ऐसे जिज्ञासी की संगति विशेष है जिसकी चेष्टा की सब कोई स्तुति करता है और जो सबको सुखदायक भासताहै। जो जिज्ञासी नवनीतवत् कोमल, सुन्दर और स्निग्ध होता है उसको सन्तों की संगति प्राप्त होती है। हे रामजी! फूलोंके बगीचे और सुन्दर फूलों की शय्या आदिक विषयों से भी ऐसा निर्भय सुख नहीं प्राप्त होता जैसा निर्भय सुख सन्तों की संगति से प्राप्त होता है क्योंकि, उनका निश्चय सदा आत्मा में रहता है। हे रामजी! ऐसे ज्ञानवानों की संगति करके जब हृदय शुद्ध होता है तब आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है और जबतक हृदय मलिन है तबतक प्राप्ति नहीं होती। जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है और लोहे की शिला प्रतिबिम्ब को नहीं ग्रहण करती; तैसेही जब हृदय उज्ज्वल होता है तब सन्तों के वचन हृदय में ठहरते हैं। और जैसे वर्षाकाल का बादल थोड़े से बहुत होजाता है तैसेही जब हृदय शुद्ध होता है तब बुद्धि बढ़ती जाती है। जैसे वन में केले का वृक्ष बढ़ता जाता है तैसेही बुद्धि बढ़ती जाती है। जब आत्म विषयिणि बुद्धि होती है तब वही रूप होजाता है और बुद्धि की भिन्नसंज्ञा का अभाव होजाता है जैसे लोहे को पारसका स्पर्श होता है तब सुवर्ण होजाता है और फिर लोहे की संज्ञा नहीं रहती तैसेही आत्मपदकी प्राप्तिहुये बुद्धि की संज्ञा नहीं रहती और विषय भोग की तृष्णा भी नहीं रहती। हे रामजी! विषयों की तृष्णा और अभिलाषाने जीव को दीन किया है; जब तृष्णा का त्यागकरे तब परमनिर्म्मलता को प्राप्त होता है। जैसे हस्ती शिरपर मृत्तिका डालता है तबतक मलीन है और जब नदी में प्रवेश करता है तब निर्म्मल होजाता है; तैसेही जब जीव तृष्णारूपी राखका त्याग करता है और आत्मा में स्थित होता है तब निर्म्मल होता है। हे रामजी! जब भोगों की इच्छा त्यागता है तब बड़ी शोभाधारता है। जैसे सुवर्ण को अग्नि में डालने से उसका मैल जलजाता है और उज्ज्वलरूप धारता है। हे रामजी! भोगरूपी बड़ा विष है; उसको दिन दिन त्यागकरना विशेष है। जब तृष्णाका त्याग करता है तब मुख भी बड़ीशोभासे शोभता है जैसे राहु दैत्यसे रहितहुआ चन्द्रमाकामुख शोभा पाता है तैसेही तृष्णाके वियोग हुये पुरुष का मुख शोभताहै। हे रामजी! जब भोगोंसे वैराग

होता है तब दो पदार्थों की प्राप्ति होती है। जैसे नूतन अंकुरके दोपत्रहोते हैं तैसेही तृष्णाके त्याग से एकतो सन्तों की संगति और दूसरा सच्छास्त्रका विचार उत्पन्नहोता है। और उनमें जब दृढ़ भावना होती है तब अभ्यास करके वही परमानन्दरूप होता है जिसको वाणी की गम नहीं। तब भोगों की इच्छा से मुक्त होता है और परमशान्त सुख पाता है। जैसे पिंजरे से निकल कर पक्षी सुखी होताहै तैसेही वह सुखी होता है। हे रामजी! जीव को भोग की इच्छानेही दीन किया है। जब इच्छा निवृत्त होती है तब गोपद की नाईं संसार समुद्र को लांघ जाता है और तब उसको तीनों जगत् सूखे तृणकी नाईं भासते हैं। हे रामजी! जब वह भोगकी इच्छा से मुक्त होता है तब ईश्वर होता है। जिस पुरुष को आत्मसुख प्राप्त हुआ है वह भोगोंकी इच्छा कदाचित् नहीं करता और जब वे आन प्राप्त होते हैं तब भी उसको विरस और मिथ्या भासते हैं इससे उनके भोग को नहीं चाहता। जैसे जालसे निकला हुआ पक्षी फिर जाल को नहीं चाहता तैसेही वह पुरुष भोगों को नहीं चाहता। जब विषयों की तृष्णा निवृत्त होती है तब परमशोभा पाता है और सन्तों के वचन उसके हृदय में शीघ्रही प्रवेश करते हैं। हे रामजी! मोक्षरूपी स्त्री के कानों के भूषण सन्तोंकी संगति है। जब साधुकी संगति होती है तब अशुभ क्रिया का त्याग होजाता है और बिराने धनकी इच्छा नहीं रहती। तब जो कुछ अपना होता है उसके भी त्यागने की इच्छा होती है और भले भोग जो भोगने के निमित्त आते हैं उनको विभाग देकर खाता है। निदान बड़े उत्तम भोगों से लेकर साग पर्यंत जो कुछ प्राप्त होता है उसमें से देकर खाता है। तथा शक्ति जब ऐसे प्रमाण हुआ तब फिर ऐसा होजाता है कि; यदि कोई शरीर मांगता तो शरीर भी देता है क्योंकि; उसको देनेका अभ्यास होजाता है पर और से साग मांगनेकी भी इच्छा नहीं रखता उसी में सन्तोष से यथा प्राप्त चेष्टा और तप, दान करता है; यज्ञ, व्रत और ध्यान करके पवित्र रहता है और तृष्णाका त्याग करताहै। हे रामजी! ऐसादुःख क्रूरनरकमें भी नहीं होता जैसादुःख तृष्णासे होताहै। जो धनवान् हैं उनको धनके उपजनेकी चिन्ताहै; रखनेकी चिन्ता है और उठते,बैठते,खाते, पीते, चलते, सोते सदा धनकीही चिन्ता रहती है। इसही चिन्ता में वे मचिमचि मरजाते हैं और फिर जन्मते हैं। हे रामजी! निर्द्धन को भी चिन्ता रहती है परन्तु थोड़ी होती है। जबतक चिन्ता रहती है तबतक दुःखी रहता है पर जब चिन्ता नष्ट होती तब परमसुखी होता है। हे रामजी! यद्यपि धनी हो और उसे सन्तोष नहीं तो वह परमदरिद्री है और जो धन से हीन है परन्तु सन्तोष-वान् है वह परमईश्वर है। जिसको सन्तोष है उसको विषय बन्ध नहीं करसक्के। हे रामजी! जबतक धनकी इच्छा नहीं की तबतक भोगरूपी विष नहीं लगता और जब धनकी इच्छा उपजती है तब परमविष लगता है; विपरीत भावना में दुःख होता है और

जो दुःखदायक पदार्थ हैं उनको सुखदायक जानताहै। हे रामजी ! जो कुछ अर्थहै वही अनर्थ है; जिसको संपदा जानाहै वही आपदा है और जिनको भोगजाना है वही सब रोगरूप हैं । इनको संपदा जानकर बिचरताहै इससे बड़ादुःखी होताहै । हे रामजी ! रसायन सबदुःख नाश करती है परन्तु वह देवताओं के पास होती है । यदि अमृत चाहिये तो संतोष परमरसायन है । जब विषयों में दोषदृष्टि होती है और सन्तोषधारण करता है तब मूर्खता दूर होजाती है और गोपदकी नाईं संसार समुद्र से शीघ्रही तरजाता है । जैसे गोपदको सुगमही लंघ जाते हैं तैसेही संसार समुद्रको वह सुगम तरजाताहै । हे रामजी ! जिसको सन्तोष प्राप्त होता है उसको परमशान्ति होती है । कदाचित् वसन्तऋतुभी सुख का स्थानहो; नन्दनवन भी सुखका स्थानहो; उर्वशी आदिक अप्सरा हों; चन्द्रमा विद्यमान बैठा हो; कामधेनु विद्यमानहो और इन्द्रियों के सब सुख विद्यमानहों तो भी शान्ति न होगी परन्तु एक संतोषसेही शांतिहोगी। संतोषवान्को यह विषय चला नहीं सक्के । हे रामजी ! जैसे अर्घा भरभर छोड़नेसे तालाब नहीं भरा जाता और जब मेघके जलकी बर्षा होतीहै तब शीघ्रही भरजाताहै; तैसेही विषयके भोगनेसे शांति नहीं होती पर संतोषसे पूर्ण आनन्द और ओजकी प्राप्तिहोतीहै। गम्भीर, निर्मल, शीतल, हृदयगम्य और सबका हितकारी ओज संतोषी पुरुषों को प्राप्तहोता है। और जो ओज हैं वे सात्त्विकी, राजसी और तामसी होते हैं पर यह शुद्धसात्त्विकी है । जिस पुरुषको संतोष होताहै वह ऐसे शोभताहै जैसे वसन्तऋतुका वृक्ष फूल, फल और पत्रों से शोभापाता है और जिसको तृष्णाहै वह चरणों के नीचे आये कीटवत् मर्दन होता है । हे रामजी ! जिसको तृष्णा है उसको सन्तोष और शान्ति कदाचित् नहीं होती । जैसे जल में डाला तृणोंका पूला तीक्ष्ण पवनसे बड़े क्षोभको प्राप्त होताहै तैसेही तृष्णावान् पुरुष को क्षोभ होताहै । हे रामजी ! जो पुरुष अर्थके निमित्त सदा इच्छाकरता है वह अग्नि में प्रवेश करता है अर्थात् सर्वदाकाल तपता रहता है और जैसे गर्दभविष्ठाके स्थान में प्रवेश करता है तैसेही तृष्णावान् जो विषयरूपी स्थान में प्रवेश करता है सो गर्दभ है । जैसे गर्दभ के साथ स्पर्श करना योग्य नहीं तैसेही तृष्णावान् गर्दभ से स्पर्श करना योग्य नहीं है । हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है; जो इस संसारके पदार्थों को चाहता है वह मूर्ख है । इस जगत् के अधिष्ठानके प्राप्त होने से निर्वासनिकहोता है और जब निर्वासनिक होताहै तब सन्तोष को प्राप्त होता है । तब ऐसा होताहै जैसे तारोंमें चन्द्रमा शोभा पाताहै—इससे इच्छाके नाश करने का उपाय करो । हे रामजी ! जब इच्छा नष्ट होती है और सन्तोषरूपी गंभीरता प्राप्त होकर द्वैत कालना मिटती है तब उसीको पण्डित परमपद कहते हैं । यहपद कैसे प्राप्त होता है सो भी श्रवणकरो । हे रामजी ! जब संसार से वैराग, सन्तों की संगति और सच्छास्त्रों के अर्थों और आत्म

में दृढ़भावना होती है तब जगत् विरस होजाता है अर्थात् जगत् असत् भासता है हृदय में शान्ति होतीहै; स्वाभाविक आपको ब्रह्म जानने लगता है और प्रच्छन्नता मिटजाती है। जबतक आपको प्रच्छन्न जानता था तबतक सब दुःखका अनुभव करता था और जब सन्तोंकी संगति और सच्छास्त्रों से जगत् विरस हुआ तब परमपद को प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमोक्षोपदेशोनामशताधिक सप्तषष्टितमस्सर्गः १६७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब संसारसे वैराग होताहै तब संतोंकी संगति होती है; फिर शास्त्र सुनता है तब संपूर्ण जगत् विरस होजाता है। जब जगत् विरस हुआ और आत्मा में दृढ़ अभ्यास हुआ तब अपनी स्वभाव सत्ता प्रकाशित होती है, उसी स्वभाव सत्ता में स्थितहुये तब परमानन्द की प्राप्तिहोती है जिसमें वाणी की गम नहीं। हे रामजी! जब यह अवस्था प्राप्त होतीहै तब मन अमन होजाताहै; अर्थोंकी तृष्णा नहीं रहती; जो अपने पास होताहै उसको रखनेकी भी इच्छा नहीं रहती—सहज त्याग होजाता है—और पुत्र, धन, स्त्रियादिक सब विरस होजाते हैं। यद्यपि वह इनके बीच भी रहता है तौभी इनमें, 'अहं' 'मम' अभिमान नहीं करता। जैसे मजदूर किसी मार्ग में आ उतरताहै और मार्गवाले से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता तैसेही वह किसी विषयसे सम्बन्ध नहीं रखता और जो अनिच्छित इन्द्रियों के सुख प्राप्तहोते हैं उनमें रागद्वेष नहीं करता। जैसे किसी पत्थरकी शिलापर जल चला जाता है तो उसको कुछ राग द्वेष नहीं होता, तैसेही ज्ञानवान् को राग द्वेष किसी में नहीं होता। हे रामजी! उसके शरीरकी यह स्वाभाविक अवस्था होजाती है कि, वह एकांत को चाहताहै और वन और कन्दरा में रहनेकी इच्छा करताहै मुमुक्षु को अज्ञानके स्थान स्त्रीभोग, राग,—द्वेष के इष्ट—अनिष्ट भी जो दैवसंयोग से प्राप्त होते हैं तो भी शीघ्रही त्यागदेता है। हे रामजी! जब क्षेत्रमें बीज डालना होताहै तब पहिले जो कांटा आदि होते हैं उन्हें फडुवे से काटकर दूर कियाजाता है तब खेत अच्छा और सुन्दर फलता है; तैसेही जिस पुरुष को मनरूपी क्षेत्रमें अनुभवरूपी फल देखना हो सो इच्छारूपी कंटक और वृक्षोंको अनिच्छारूपी फडुवे से काटे और सन्तोषरूपी बीजको बोवे तो क्षेत्र भी सुन्दर फलेगा। हे रामजी! जब अनुभवरूपी फल प्राप्त होताहै तब मनुष्य सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल होजाताहै और सर्वआत्मा होकर स्थित होता है। हे रामजी! जब चित्त अदृश्य होताहै तब द्वैत भावना मिटजाती है और जब द्वैतभावना मिटी तब चित्त अदृश्यको प्राप्त होताहै। उस चित्तको जो उपशमका सुख होताहै सो वाणीसे कहा नहीं जाता—उसका नाम निर्वाण पद है। जब ईश्वरकी भक्ति करता है और दिन रात्रि

चिरकाल पर्यन्त भक्ति करतारहता है तब ईश्वर प्रसन्नहोता है और निर्वाणपद की प्राप्तिहोतीहै । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! सर्व तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ ! वह कौन ईश्वरहै और उसकी भक्ति क्याहै जिसके करने से निर्वाणपद को प्राप्त होता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! वह ईश्वर दूर नहीं; उसमें भेदभी कुछनहीं और दुर्लभ भी नहीं क्योंकि; अनुभव ज्योति है और परमबोध स्वरूप है । सर्व जिसके वश है; जो सर्वहैं और जिससे सर्व है उस सर्वात्माको मेरा नमस्कार है । हे रामजी ! सब कोई उसीको पूजतेहैं । जाप मंत्र, तप, दान, होम जो कुछ कोई करताहै सो सर्वही उसको पूजतेहैं । देवता, दैत्य, मनुष्य जो कुछ स्थावर-जंगम जगतहै वे सब उसीको पूजतेहैं और सबको फल देनेवाला भी वहीहै । उत्पत्ति और प्रलयमें जो पदार्थ भासतेहैं वे सब उसीसे सिद्ध होतेहैं—ऐसा वह ईश्वरहै । जब उस ईश्वरकी प्रसन्नता होतीहै तब वह अपना एकदूत जो शुभक्रिया संयुक्त पवित्रहै भेजताहै । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! ईश्वर जो अद्वैतआत्मा शुद्धब्रह्महै उसका दूत कौनहै और वह कैसे आताहै सो मुझे कहिये ? वशिष्ठजीने कहा, हे रामजी ! वह ईश्वर जो परमदेवहै उसका दूत विवेकहै और हृदयरूपी गुफामें उदयहोताहै । जब वह उदयहोताहै तब उससे परमशोभा प्राप्तकरताहै । जैसे चन्द्रमाके उदयहुये आकाश शोभा पाता तैसेही वहपुरुष शोभापाता है । हे रामजी ! जब विवेकरूपी दूत आता है तब जीवको संसारसे पवित्र करताहै । प्रथम वासनारूपी मैलसे भराथा और चिन्तारूपी शत्रुने बांधाथा पर जब विवेकरूपी दूत आताहै तब चित्तरूपी शत्रु को मारता है और वासनारूपी मैलको नाश करके देवकेनिकट लेजाता है । जब उस देवका दर्शन होता है तब परमानन्द को प्राप्तहोता है और बड़ासुख पाता है । हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र में मृत्युरूपी भँवर है; तृष्णारूपी तरंग है, अज्ञानरूपी जल है और इन्द्रियां रूपी तँदुये हैं । उसीसमुद्र में यह जीव पड़े हैं जब विवेकरूपी नौका अकस्मात् प्राप्त होती है तब संसार समुद्र से पारहोते हैं । हे रामजी ! जीवप्रमादसेही जड़ताको प्राप्त हुये हैं । जैसे जलशीतलता से ओलेकी संज्ञाको पाता है तैसेही प्रमादसे जीव संज्ञा को पाताहै और वासना से ढपगया है पर जब अन्तर्मुख होताहै तब उस देवके सन्मुख होता है और वह देवप्रसन्न होता है । उस जीव के सहस्रशीश, सहस्रपद, सहस्रभुजा, सहस्रनेत्र और सहस्र कर्ण हैं । सर्व्वचेष्टा का वहीकर्त्ता है और देखता, सुनता, बोलता और चलता भी वही है और अपने स्वभाव सत्तासे प्रकाशता है । जैसे सब घटों में चलनाशक्ति पवनकी है तैसेही प्रकाश शक्ति उस देवकी है जब जीव उसके सन्मुख अन्तर्मुख होताहै तब वह प्रसन्नहो के विवेकरूपी दूत भेजता है तब इसको संत की संगति होती है और सच्छास्त्रों को सुनकर उनके अर्थ में दृढ़भावना होती है और वह विवेकरूपी दूत इसको अदृश्यता में प्राप्तकरता है तब यह शून्य होजाता है । फिर

यहशून्यको भी त्यागकर बोधमात्र में स्थितहोता है तब पूर्ण आनन्द प्राप्तहोता है। हे रामजी! मनुष्य आनन्द स्वरूप है और यह विश्वभी अपना आपहै परन्तु अज्ञान से भिन्न भासताहै। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा; मरुस्थल में जल और आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही भ्रांतिसे जगत् भासता है पर भूतों के भीतर बाहर और अध ऊर्ध्व में सब ब्रह्मदेवही व्यापरहाहै और स्थावर; जंगम आदि सब जगत् उसी आत्म-तत्त्वके आश्रय फुरताहै; इससे वही स्वरूप है और वही सबको धाररहाहै। वही ईश्वर ब्रह्महै और गम्भीर, साक्षी, आत्मा, ओंकार, प्रणव सब उसी के नाम हैं। जब ऐसे ईश्वर की कृपाहोती है तब जीव अन्तर्मुखहोकर शुद्ध और निर्मल होताहै। हे रामजी! जब हृदय शुद्धहोताहै तब आत्मपदकी ओर भावनाहोती है कि; सब आत्माही हैं। जब यह भावना होतीहै सोही भक्तिहै—तब वह ईश्वर कृपाकरके विवेकरूपी दूत भेजताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविवेकदूतवर्णनंनाम
शताधिकअष्टषष्टितमस्सर्गः १६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब विवेककी दृढ़ता होती है तबजीव उस परमपदको प्राप्तहोता है जो चैतसेरहित चैतन्यघन है तब चैतका सम्बन्ध टूटजाताहै और जब चैतका सम्बन्धटूटा तब विश्वका क्षयहोजाताहै; जब विश्वक्षयहुआ तब वासना भी नहीं रहती। हे रामजी! यह जगत् भी फुरने से है। जब जीव शुद्ध चैतन्यमें चैत्योन्मुखत्व होताहै तब मनोमात्र शरीर होता है जिसको अन्तवाहक कहते हैं और जब वासना की दृढ़ता होती है तब अधिभौतिक भासने लगता है। हे रामजी! इसका उत्थानही अनर्थका कारणहै; जब यह चेतनभाव होताहै तब इसको अनर्थकी प्राप्ति होती है और मैं—मेरा इत्यादिक जगत् भासि आता है जो यह न हो तो जगत् भी न हो; इसके होने सेही जगत् भासताहै। इससे मेरा यही आशीर्वादहै कि, तुम चेतनतासे शून्य होजाओ और अहंतारूपी चेतनतासे रहित अपने बोधमें स्थितरहो। हे रामजी! मनसेही जगत् हुआहै सो मन और जगत् दोनों मिथ्या और शून्यहैं। रूप, अवलोक और नमस्कार तीनोंका नाम जगत् है सो मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या शून्य है। जब इनका अभाव होताहै तब शून्यभी नहीं रहता केवल बोधमात्र चेतन होता है। हे रामजी! दृश्य, दर्शन और द्रष्टा ये तीनों भावनामात्र हैं; जब ये होते हैं तब जगत् भासता है और जब अहंता का अभाव होताहै तब आत्मपद शेष रहताहै। जैसे सुवर्ण में भूषण होते हैं तैसेही आत्मामें जगतहै दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी। वासनासे दृश्य भासतीहै सो वासना मनसे फुरीहै और मन अज्ञानसे हुआ है। जब मन अमनपद को प्राप्त होताहै तब दृश्यसब एकही रूप होजाती है। जबतक वासना उठती है तब तक मनमें शान्ति नहीं होती। जैसे कोई पुरुष भँवरी घुमाता है तो बलचढ़ने जाते हैं और जब

ठहरताहै तब वह बल उतरजाताहै; तैसेही जबतक चित्तवासनाकरके भ्रमताहै तबतक जन्मरूपी बल चढ़ते जाते हैं और जब चित्त ठहरता है तब जन्मका अभावहोजाता है। हे रामजी ! जबतक चित्तका दृश्यके साथ सम्बन्ध है तबतक कर्म से नहीं छूटता और जब चित्तका दृश्य से सम्बन्ध टूटताहै तब शुद्ध अद्वैतपद को प्राप्त होता है। हे रामजी ! जब शुद्धचिन्मात्र में उत्थान होताहै तब उसका नाम चैत्योन्मुखत्व होता है, वही अहन्ता दृश्य की ओर फुरती जाती है तब प्रमाद होजाता है और जड़ता होती है। जैसे जल ओला होजाता है तैसेही चित्तशक्ति प्रमाद से जड़ होजाती है। जब दृढ़ वासना ग्रहण करताहै तब अन्तवाहक से अधिभूतिक अपना शरीर दृष्टि आताहै; फिर पृथ्वी आदिक भूत भासने लगते हैं और ज्यों ज्यों चित्तशक्ति बहिर्मुख फिरतीजाती है त्यों त्यों संसार होताजाता है। जब चित्तवृत्ति फुरने से रहित होकर अपने स्वरूपकी ओर आतीहै तब अपना आपही भासता है; द्वैत मिटजाताहै और परमानन्द अद्वैत पद भासता है। जब पूर्णबोध होता है तब द्वैत और एक संज्ञा भी जाती रहती है केवल आत्ममात्र शुद्धचैतन्य रहता है और ईश्वरसे एकता होती है और जगत्की भास जातीरहती है। जब उसपदकी प्राप्ति होती है तब दृश्यका अभाव होजाता है क्योंकि; जगत् भावनामात्र है। जैसे भविष्यकाल का वृक्ष आकाश में हो तैसेही यह जगत् है क्योंकि; इसका अत्यन्त अभाव है-कुछ बना नहीं भ्रांति करके भासता है। हे रामजी ! मेरे वचनोंका अनुभव तब होगा जब स्वरूपका ज्ञान होगा और तभी ये वचन हृदय में फुरेंगे। जैसे कथावाले के हृदय में कथा के अर्थ फुरते हैं तैसेही मेरे ये वचन आन फुरेंगे। हे रामजी ! जबतक मन फुरता है तबतक जगत्का अभावनहीं होता और जब मन उपशम होताहै तब जगत्का अभाव होजाता है। जैसे स्वप्नेको जब स्वप्ना जानताहै तब फिर स्वप्नेके पदार्थोंकी इच्छानहींकरता पर जब तक सत्य जानता है तबतक इच्छा करता है। हे रामजी ! सब जीव वासना से ढँपे हुये हैं। जब वासनाका क्षयहोता है उसीका नाम ज्ञान है। अज्ञानरूपी भूत इनको लगा है उससे उन्मत्त होकर जगत् भासता है और जगत् के भासने से नानाप्रकार की वासना दृढ़होगई है उससे दुःखपाते हैं। जब यह चित्तउलटकर अन्तर्मुखहो और आत्मा में दृढ़भावना करे तब ज्ञानरूपी मंत्र प्राप्त होता है और अज्ञानरूपी भूत जाता रहताहै। हे रामजी ! अनुभवरूपी कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसाही भानहोता है। हे रामजी ! प्रथम इसका शरीर अन्तवाहकथा और अपना स्वरूप भूला न था इससे आपको आत्माही जानताथा और जगत् अपना संकल्पमात्र भासताथा। जब उस संकल्प में दृढ़भावनाहुई तब वह शरीर अधिभूतिक भासने लगा और जब उसमें दृढ़भावनाहुई तब देह और इन्द्रियां सब अपने में भासने लगीं तो

इनके सुख दुःख को जाननेलगा और जब जगत् के सुख दुःख भासे तब सर्वआपदा प्राप्त हुई पर वास्तवमें न कोई सुख है, न दुःख है और न जगत् है केवल भावनामात्र है। जैसी चित्तकी भावना होतीहै तैसेही आगे भासताहै। हे रामजी! जब यह भावना उलटकर अन्तर्मुख आत्माकी ओर होती है तब एकही बोधका भानहोताहै और जब एक बोधका भानहोता है तब द्वैत सब मिटजाता है। हे रामजी! आत्मामें अन्तवाहकभी नहींहै। यह जो ब्रह्माहै वहभी बोधस्वरूपहै; यदि बोधसेभिन्न अंतवाहक कुछहोता तो भासता। अन्तवाहकभी उसीसेहै—अंतवाहक शुद्धचिन्मात्रमें चैत्योन्मुख होना और चित्तशक्ति फुररहनेका नामहै जब उसको पंचतन्मात्राका सम्बन्ध होताहै तो यही जड़—चेतन ग्रन्थि है। चित्तशक्ति चेतनहै और पञ्चतन्मात्रा जड़ हैं—इनके इकट्ठा होने का नाम अन्तवाहक शरीर है। यदि यह भी आत्मा में कुछ हुआ होता तो ये वचन न होते—इससे चिन्मात्र है, कुछ बनानहीं क्योंकि; आत्मा अद्वैत है। हे रामजी! दूसरा कुछ बनानहीं पर भ्रमसे द्वैतभासता है; तैसेही यह जाग्रत् भी भ्रान्ति से भासता है—कुछ है नहीं। हे रामजी! जड़ है नहीं तो किसकी इच्छा करता है? इतना सुख इन्द्रियों के इष्टभोग से नहीं होता जितना इनके त्यागने से होता है। हे रामजी! एकयज्ञ है जिसके किये से पुरुष परमपदको प्राप्त होता है पर वह यज्ञ तब होता है जब एक थम्भा गड़े और उसके नीचे बलिकरे। जब यज्ञ करचुके तब सर्व्व त्याग करना होता है तब फलकी प्राप्ति होती है। इस क्रम के किये विना यज्ञ सफल नहीं होता। सो वह थम्भा क्या है; बलि क्या है; यज्ञ क्या है; त्याग क्याहै और फल क्याहै सो श्रवणकरो। हे रामजी! ध्यानरूपी तो थंभागाड़े कि; आत्मपद का सदा अभ्यास हो और उसके आगे तृष्णारूपी बलि करे और ज्ञानरूपी यज्ञ करे—अर्थात् आत्माके जो नित, शुद्ध, बोधरूप; अद्वैत, निर्विकल्प, देह, इन्द्रियां, प्राण आदिक से रहित इत्यादि विशेषण वेदशास्त्र में कहे हैं ऐसे जानने का नाम ज्ञानहै। यही यज्ञहै। ध्यानरूपी थंभे, तृष्णारूपी बलि और मनरूपी दृश्यको जीतकर यह यज्ञ पूर्ण होताहै। जब ऐसा यज्ञ समाप्त होताहै तब उसके पीछे दक्षिणाभी चाहिये तब यज्ञ का फलहो। सर्वस्व देनाही दक्षिणाहै—सो अहंकार त्यागकरनाही सर्वस्वत्यागहै। जब सर्वस्वत्याग होता है तब यह यज्ञ सफल होता है। इसकानाम विश्वजित् यज्ञ है। जब इसप्रकार यज्ञ होता है तब इसका फल भी होता है—सो फल यह है कि, यद्यपि अंगार की वर्षा हो, प्रलयकाल का पवन चले और पृथ्वी आदिक तत्त्व नाश हों तो ऐसे क्षोभों में भी चलायमान नहीं होता। यह फल प्राप्त होता है कि, कदाचित् स्वरूप से नहीं गिरता—यह शत्रु नाश वज्र ध्यान है। हे रामजी! अहंता का त्याग करना सबसे श्रेष्ठ त्याग है। जो कार्य्य अहंता के त्याग किये से होता है सो और उपाय से नहीं होता

और तप, दान, यज्ञ, दमन, उपदेश इन उपाधियों से भी अहंता का त्याग करना बड़ा साधन है; और सर्व साधन इसके अन्तर्भूत होते हैं। हे रामजी! जब तुम अहंता का त्याग करोगे तब तुमको भीतर बाहर ब्रह्मसत्ताही भासेगी और द्वैत भ्रम संपूर्ण मिटजावेगा। हे रामजी! मनके सर्व अर्थरूपी तृणोंको ज्ञानरूपी अग्निलगाइये और वैराग्यरूपी वायु से जगाइये। जब इन तृणोंको भस्म करडालो तब तुम परम शान्ति को प्राप्त होगे। मनके जलाने से परम संपदा प्राप्त होती है-इससे भिन्न सब आपदा है। मन उपशम करने में कल्याण है। यह जो भीतर बाहर नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं सो मनके मोहसे उत्पन्न हुये हैं; जब मन उपशम को प्राप्तहो तब नानाप्रकार जो भूतों की संज्ञा है अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, पृथ्वी आदिक सो सब आकाशरूप होजाते हैं। हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है; ज्ञानी को एक सत्ता भासती है क्योंकि, दूसरा कुछ बना नहीं भ्रमसे जगत् भासता है। उसमें जब नानाप्रकार की वासना होती है तो अपनी अपनी वासना के अनुसार जगत् को देखता है। इससे तुम जागो और वासना के पिंजरेको काटकर आत्मपद को प्राप्त होरहो। हे रामजी! अज्ञान से जो आत्मपदकी तरफसे सोये पड़े हैं और वासनाके पिंजरे में पड़े हैं उन अज्ञानियोंकी नाईं तुम न होना। अज्ञान से जीव का नाश होता है; जो कुछ जगत् देखतेहो सो भ्रममात्र है। जैसे बांसुरी में पवन का शब्द होता है तैसेही यह भी प्राणवायुसे बोलते दृष्टि आते जानो। जगत् भ्रममात्र है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वसत्ताउपदेशोनाम शताधिकनवषष्टितमस्सर्गः १६९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सम्पूर्ण जगत् में सप्तप्रकारकी सृष्टि है और सातही भांति के जीव हैं उनको भिन्न भिन्न सुनो। एक स्वप्नजाग्रत् हैं; दूसरे संकल्प जाग्रत् हैं; तीसरे केवल जाग्रत् हैं; चौथे चिरजाग्रत् हैं; पंचम दृढ़जाग्रत् हैं; षष्ठम जाग्रत् स्वप्न हैं और सप्तम क्षीण जाग्रत् हैं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो यह सात प्रकार की सृष्टि कही सो बोधके निमित्त मुझसे खोलकर कहिये। यह ऐसे है जैसे नदियों के जल का समुद्र में भेद हो और इनका पूछना भी ऐसेही है जैसे एक जल से फेन बुद्बुदे और तरंग वायु से होते हैं इसलिये विस्तार से कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक तो यह है कि; किसी जीव को किसी कल्प में अपनी जाग्रत्में सुषुप्ति हुई और उसमें जो स्वप्ना हुआ तो उसको हमारी जाग्रत्का जगत् भासिआया और वह उसको शब्द अर्थ संयुक्त सत्जानकर ग्रहण करनेलगा तो उसके स्वप्न में हम स्वप्न नरहैं परन्तु उसके निश्चय में नहीं क्योंकि,वह अपनी जाग्रत् मानताहै पर हमारा और उसका कल्प एक होगयाहै इसीसे वह भी जाग्रत् जानता है और पूर्व कल्प में

भी उसका शरीर चैतन्य फुरता था परन्तु सोया पड़ा है। रामजीने पूछा; हे भगवन्!
जब वह पुरुष अपने कल्प में जागताहै तब यह उसको क्या भासता है और जब वह
जागे और वहां कल्पका प्रलयहो तब उसके शरीरकी क्या अवस्थाहो? एवम् यदि
यहां ज्ञानकी प्राप्ति हो तो उस शरीरकी क्या अवस्थाहो सो क्रम करके कहो! वशिष्ठ
जी बोले, हे रामजी! यदि वह पुरुष अपने कल्प में जागे तो यह जाग्रत् उसको स्वप्न
भासे और जो वहां न जागे और उस कल्प का प्रलयहो तो वह जीव वहीं चेष्टाकरे।
यदि ज्ञानकी प्राप्तिहो तो उसशरीर और इसशरीरकी वासना इकट्ठीहोकर निर्वाण को
प्राप्तहो और जो ज्ञान न प्राप्तहो तो उस जीवके शरीरको त्यागकर और जगत् भ्रम
भास आवे। आपको पूर्ववत् जाने चाहे न जाने परन्तु जगत्भ्रम विना ज्ञान नहीं मि-
टता। हे रामजी! यह और वह दोनों तुल्यहैं; ब्रह्मसत्ता सर्व ठौर समान प्रकाशतीहै।
हे रामजी! जैसे गूलरमें मच्छर होते हैं तैसेही ये जीव भी भ्रमसे फुरते हैं। यह जाग्रत्
कही स्वप्नमें जो जाग्रत्है उसकानाम स्वप्नजाग्रत्है। पुरुष बैठाहो और एक ऐसीचित्त
की वृत्ति ठहरजाय पर निद्रा नहीं आई पर उसमें जो मनोराज हुआ और उस मनो-
राजमें जगत् होके उसी में दृढ़ वासना होगई और पूर्वकी वासना विस्मरण हुई; यह
सत्ताभासी और उसमें मनोराजका शरीर रचा वहीं अधिभौतिकता दृढ़ होगई उसका
नाम संकल्प जाग्रत्है। आदि परमात्मतत्त्व से फुरा और निश्चयात्मपद में जो और ज-
गत् भासित हुआ उसको संकल्पमात्र जाना उसका नाम केवल जाग्रत्है। आदि प-
रमात्म तत्त्वसे फुरना हुआ; उसमें सृष्टि हुई और उसको सत्जानकर ग्रहण किया;
स्वरूपका प्रमाद हुआ और आगे जन्मांतरको प्राप्त हुआ उसका नाम चिरजाग्रत् है
जब इसमें दृढ़ घनभूत वासना हुई और पापकर्म करनेलगा उस के वशसे स्थावर
योनि पाई तो उसका नाम घन जाग्रत् और सुषुप्त जाग्रत् है। जब इस में सन्तों की
संगति और सत्शास्त्रों के विचारसे बोध प्राप्तहुआ तब यह जाग्रत् उसको स्वप्नहोजाती
है उसका नाम स्वप्नजाग्रत्है। जब बोधमें दृढ़ स्थिति हुई तब उसको तुरिया पदकहते
हैं—इसका नाम क्षीणजाग्रत्है। जब इस पदको प्राप्त होता है तब परमानन्दकी प्राप्ति
होती है। हे रामजी! ये सात प्रकारके जीव और सृष्टि मैंने तुमसे कही हैं इनको विचार
करके देखो कि, तुम्हारा भ्रम निवृत्तहोजावे। यह भी क्या कहना है कि, यह जीव है
और यह सृष्टिहै; सर्व ब्रह्मसत्ताहै, दूसरा कुछ हुआ नहीं, मनके फुरनेसे दृश्य भासती
है और मनको स्थिर करके देखो तो सब शून्य होजावेगी और शून्य भी न रहकर
शून्य का कहना भी न रहेगा—इस गिनती को भी स्मरण करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनंनाम
शताधिकसप्ततितमस्सर्गः १७०॥

रामजी ने पूंछा, हे भगवन् ! आपने जो केवल जाग्रत्‌की उत्पत्ति अकारण, अकर्मक और बोधमात्र में कही सो असम्भव है-जैसे आकाश में वृक्ष नहीं होसक्ता तैसेही आत्मामें सृष्टि नहीं होसक्ती-क्योंकि, आत्मा निराकार है और निष्क्रियहै; वह न समवाय कारणहै और न निमित्त कारण है। जैसे मृत्तिका घट आदिकका कारण होती है तैसेही आत्मा सृष्टिका समवाय कारणभी नहीं क्योंकि; अद्वैत है और जैसे कुलालघटादिक का निमित्त कारण होताहै तैसे आत्मा सृष्टिका निमित्त कारणभी नहीं क्योंकि; अक्रियहै। उस अकारणक और अकर्मक में सृष्टि कैसे होसक्ती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुम धन्यहो और अब तुम जागेहो। आत्मा में सृष्टिका अत्यन्त अभाव है क्योंकि; वह निर्विकार और निष्क्रिय है। वह न भीतर है, न बाहरहै; न ऊर्ध्व है, न अधहै; केवल बोधमात्र है और उसमें न कोई आरम्भहै और न परिणामहै; केवल बोधमात्र अपने आपमें स्थित है। जैसे सूर्यकी किरणों में जल कल्पितहै; तैसेही आत्मा में जगत् मिथ्या है। हे महाबुद्धिमान् ! आत्मा अकारणरूप है उसमें कार्य्यरूप जगत् कैसेहो ? उसमें जगत् कुछ नहीं उत्पन्न हुआ। उसके अभावसे सबका अभाव है, न कुछ उपजा है; न भास होता है; उपदेश और उसका अर्थ आरोपितहै और कुछ हैही नहीं। आरोपित शब्दभी जिज्ञासी के जताने के निमित्त कहा है, है कुछ नहीं; आत्मा सदा अद्वैतरूप है। रामजी ने पूंछा, हे भगवन् ! जो आत्मा में सृष्टि हैही नहीं तो पिण्डाकार कैसे भासते हैं ? उनको किसने रचाहै और मन, बुद्धि, इन्द्रियों का भान क्या होता है ? चैतन्यको स्नेह और रागसे किसने मोहित कियाहै और आत्मा में आवरण कैसे होताहै सो मुझे समझाकर कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! न कोई पिण्ड है, न किसी ने इनको कियाहै; न कोई भूतहै, न किसीने इनको मोहित किया है और न किसीको आवरण किया है; भ्रांति से आवरण भासता है। जो आत्माको आवरण होता तो किसी प्रकार नष्टहोता परन्तु आवरणही नहीं तो नष्ट कैसे होवे ? हे रामजी ! जिसको आवरण होता है उसका स्वरूप एक अवस्था को त्यागकर दूसरी अवस्थाको ग्रहण करता है पर आत्मा तो सदा ज्ञानस्वरूप है इससे अन्य अवस्थाको कदाचित् नहीं प्राप्तहोता सदा ज्योंका त्यों है। उस में मन, बुद्धि आदिक भी कुछ नहीं बने तब मोह कहां और आवरण कहां ? सदा एक रस आत्म तत्त्व है; ज्ञानीको ऐसे भासता है और अज्ञानी को नानाप्रकार का जगत् भासता है। वह आत्मा ज्ञानकालमें और अज्ञानकाल में एक रस है पर उस में दो दृष्टि होती हैं, ज्ञान दृष्टि से तो सर्वआत्मा है और अज्ञान से नानाप्रकारका जगत् भासता है। हे रामजी ! जैसे एक समुद्र से अनेक तरङ्ग और बुद्बुदे उठते और लीन होते हैं पर उनका उत्पन्न और लीन होना जलमें है, जलसे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही जितने विचार और इच्छा भासते हैं सो सब आत्मा में होते हैं और दूसरी वस्तु नहीं। विकार

और अविकार सब परमात्मतत्त्व है समुद्र में लहरें और बुद्बुदे परिणाम से होते हैं; आत्मा सदा ज्योंका त्यों है और नानाप्रकार के आकार भासते हैं सो भी वहीरूप है। जैसे सुवर्ण में नानाप्रकार के भूषण होते हैं सो सब सुवर्णही हैं दूसरी वस्तु कुछ नहीं और भ्रांतिसे नानाप्रकारकी संज्ञाहोती है। जैसे कोई पुरुष जाग्रत् बैठाहो और नींद आने से स्वप्नसृष्टिभासे तो चाहे वह जाग्रत् के अज्ञानसे स्वप्नसृष्टि भासीहो पर जब निद्रा निवृत्त होती है तब जाग्रतही भासती है सो जाग्रत्भी परमात्मतत्त्व के अज्ञान से भासती है। जब उसपदमें जागेगे तब जाग्रत् भ्रम निवृत्त होजावेगा। हे रामजी! यह संसार अपने फुरने से हुआ है। जब फुरना दृढ़हुआ तब दुःख पानेलगा। जैसे बालक अपनी परछाहीं में बैताल कल्पितकर आपही दुःख पाता है तैसेही जीव अपने फुरने से आपही दुःख पाता है। जब आत्मबोध होताहै तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है। हे रामजी! यह संसार जो रससंयुक्त भासता है सो भावनामात्रहै। जब यही भावना उलटकर आत्माकी ओर आवे तब जगत् भ्रम मिट जावेगा। देह, इन्द्रियादिक जो आत्माके अज्ञानसे फुरे हैं और उनमें अहंकार हुआहै सो आत्मभावना से निवृत्त होजावेगा। जैसे वर्षाकाल में मेघ घनहोते हैं और जब शरत्काल आताहै तब नष्ट होजाते हैं तैसेही जब बोधरूपी शरत्काल आता है तब अनात्म में आत्म अभिमान रूपी मेघ नष्ट होजाता है और परमस्वच्छता प्रकट होती है। हे रामजी! जितना जगत् पिण्डरूप होकर भासताहै सो जब आत्माका साक्षात्कार होगा तब पिण्ड बुद्धि जाती रहेगी और सब जगत् आकाशरूप होजावेगा। जैसे शरत्कालमें मेघकी घनता जाती रहती है और आकाशरूप होजाताहै। हे रामजी! यह भ्रान्तिकी कठिनता तब तक भासती है जब तक स्वरूपसे सुषुप्तिवत् है, जब जागेगा तब जगत् सब आकाशरूप होजावेगा। जैसे स्वप्ने से जागकर स्वप्न जगत् आकाशरूप होजाता है। हे रामजी! यह विकार; क्षोभ और नानात्व प्रमाद से भासते हैं, जब आत्मबोध होताहै तब सब क्षोभ और विकार मिटजाते हैं और सर्व प्रपञ्च एकताको प्राप्त होकर द्वैतभाव मिट जाता है। जैसे प्रज्वलित अग्निमें घृत अथवा ईंधन और मिष्टान्न जो कुछ डालिये सो एक रूप होजाता है; तैसेही जब बोधकी प्राप्ति होती है तब सब जगत् एकरूप होजाताहै; और जैसे नानाप्रकार के भूषण अग्निमें डालिये तो एक सुवर्णही होजाता है और भूषण की संज्ञा नहीं रहती है तैसेही मनको जब आत्मबोध में स्थित किया तब जगत् संज्ञा नहीं रहती केवल परमात्मतत्त्व होजाता है। हे रामजी! इन्द्रियां और जगत् तब तक भासता है जब तक स्वरूपमें सोयापड़ा है; जब जागेगा तब संसारकी सत्यता मिटजावेगी और इच्छा भी कोई न रहेगी। जैसे किसी पुरुषको स्वप्ना आता है और जब उस स्वप्ने से जागता है तब स्वप्नेके स्मरणकी इच्छा नहीं करता कि, मुक्त

को प्राप्तहो क्योंकि; उसकी सत्यता नहीं भासती तो इच्छा कैसे करे; तैसेही जबतकस्वरूप से सोया पड़ा है तबतक संसार के पदार्थों को मिथ्या नहीं जानता उनकी इच्छा करता है। जब तुम स्वरूप में जागोगे तब सब पदार्थ विरस होजावेंगे और जब ज्ञानसे जगत् को मिथ्या स्वप्नवत् जानोगे तब इच्छा भी न करोगे। हे रामजी! जीवन्मुक्त की चेष्टासबदृष्टि आती है परन्तु उसके हृदय में जगत् की सत्यता नहीं होती क्योंकि, उसको आत्मानुभव हुआ है। जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है पर जिसने सूर्यकी किरणें जानी हैं उसको जल नहीं भासता किरणेंहींभासती हैं और जिसने किरणें नहींजानी उसको जल भासता है। दृष्टि दोनों की तुल्य है परन्तु ज्ञानवान्के निश्चय में जगत् जलवत् नहीं और अज्ञानी को जगत् जलवत् दृढ़भासता है। हे रामजी! मनरूपी दीपक प्रज्वलित है; उसमें ज्ञान रूपी जलडालिये तो निवारण होजावे। जब मन निर्वाण होगा तब उस पदको प्राप्त होगे जहां जगत् और अहंकार का अभाव है; वह न शून्य है, न अशून्य है और केवल, अकेवल; उदय, अस्त भी नहीं। हे रामजी! जो पुरुष ऐसे पदको प्राप्त हुआ है वह कृतकृत्य होता है और रागद्वेषसे रहित परमशान्ति पद को प्राप्त होता है। उसका अहंकार निर्वाण होजाता है और केवल निर्वाच्य पदको प्राप्त होता है जहां कोई उत्थान नहीं। हे रामजी! आत्मा में जगत् के पदार्थ कोई नहीं परन्तु मनके संकल्प से भासते हैं। जैसे थंभे में चितेरा कल्पना करता है कि; इतनी पुतलियां इस थंभेमें हैं सो उसके निश्चय में हैं थंभेमें पुतलियोंका अभाव है; तैसेही मनके निश्चय में जगत् है; आत्मा में कुछ नहीं बना जिस पुरुष का मन सूक्ष्म होगया है उसको जगत् स्वप्न भासता है; जब उसने स्वप्न जाना तब वह इच्छा और त्याग किसकाकरे। हे रामजी! जगत् तबतक भासता है जबतक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ; जब आत्मानुभव होगा तब जगत् रस संयुक्त कदाचित् न भासेगा। जैसे धूप और छाया इकट्ठी नहीं होतीं तैसेही ज्ञान और जगत् इकट्ठे नहीं होते–आत्मज्ञान हुये जगत् का अभाव होजाता है और जैसे पूर्व काल वर्त्तमान काल में नहीं होता; तैसेही आत्मा में जगत् नहीं होता। हे रामजी! यह जगत् भ्रमसे भासता है और विचार किये से इसका अभाव होजाता है। द्रष्टा–दर्शन–दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो भी मिथ्या है। जैसे निद्रादोष से स्वप्ने में तीनों भासते हैं और जागे से अभाव होजाते हैं तैसेही अज्ञान से ये भासते हैं और ज्ञानसे त्रिपुटी का अभाव होजाता है। हे रामजी! जैसे मनोराजकरके मन में जगत् स्थित होता है तैसेही ये पर्वत, नदियां, देश, काल, जगत् भी जानो। इससे इस जगत् भ्रमका त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित होरहो। यह जगत् भ्रमसे उदय हुआ है। विचार कियेसे नष्ट होजावेगा और तुमको परमशान्ति प्राप्त होगी। हे रामजी! जिसका मन उपशमभाव को प्राप्त हुआ है, वह पुरुष मौनी है। वह निरोध पदको प्राप्त हुआ है और संसार समुद्र से

तरकर कर्मोंके अन्त को प्राप्त हुआ है। उसको संपूर्ण जगत्, पहाड़, नदियां, संयुक्तलीन होजाता है। अज्ञानके नष्ट हुये विद्यमान जगत् भी नष्ट होजाता है क्योंकि; वहशान्त अन्तःकरण और परमशान्तिरूप अमृतसे तृप्त है। वह ज्ञानवान् निरावरण होकर स्थितहोताहै॥

इति श्रीयो॰निर्वाणप्रकरणेसर्वशान्त्युपदेशोनामशताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः १७१॥

रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! जिस क्रमसे बोधआत्मा जगत्रूप हो भासता है सो क्रमभेदके निवृत्तके अर्थ फिर मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितना जगत् दृष्टि आता है उसका चित्तमें निश्चय होता है। ज्ञानवान् को भी चित्तसे भासता है और अज्ञानी को भी चित्तसे भासता है परन्तु इतना भेद है कि, अज्ञानी जगत् को देखता है तब सत् मानता है और ज्ञानवान् शास्त्र युक्तिसे देखकर पूर्व अपर अर्थ के विचार से भ्रान्तिमात्र जानता है। यह जगत् अविद्यासे भासता है सो अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं। जैसे सूर्य्यकी किरणों में जल भासता है सो कुछ है नहीं, तैसेही अविद्या कुछ वस्तु नहीं है। जितना स्थावर–जङ्गम जगत् भासता है सो कल्पके अन्त में नष्ट होजाताहै। जैसे समुद्रसे एक बुन्द निकालिये तो नष्ट होजाती है क्योंकि; विभागरूप है, तैसेही माया, अविद्या, सत्, असत् आदिक सर्व सम्बन्ध का अभाव होजाता है क्योंकि; सब शब्द जगत् में हैं; जब जगत् लीनहुआ तब शब्द कहां रहे? और वास्तवमें न कुछ उपजाहै; न लीन होताहै--एकही चिदाकाश है जो तुम कहो कि, देह उपजती है सो देह और तत्त्व को स्वप्नवत् जानो। जो तुम कहो कि, जगत् प्रलय में लीन होता है इससे कुछ है; तो नाश वही होता है जो असत्य होताहै। जो तुम कहो कि, असत्य है तो फिर क्यों उपजताहै तो उपजी वस्तु भी सत् नहीं होती। जो तुम कहो कि, महाप्रलयमें चिदाकाशही रहता है और वही जगत्रूप हो भासताहै तो जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं हुआ--बोधमात्रही इस प्रकार हो भासता है जैसे बीज और वृक्षमें कुछ भेद नहीं तैसेही जिससे जगत् भासता है वही रूपहै, कुछ उपजानहीं; जो उपजा नहीं तो विकार और भेद कैसेहो--इससे बोधमात्रही अपने आपमें स्थित है। कारण कार्य से रहित परम शान्तरूप अपने आपमें आत्मसत्ता स्थित है, वही जगत्रूप होकर भासता है और देश, काल, पदार्थ भी सब महाप्रलय रूप हैं। जब महाप्रलय होताहै तब ब्रह्मदेव पर्यन्त सब पदार्थ नष्ट होजाते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वीका नामभी नहीं रहता और अर्थ भी नहीं रहता; तब केवल बोधमात्र और बोधसे भी रहित शेष रहता है जो परमशान्तरूप है और उसमें वाणी और मनकी गमनहीं—केवल अचेत चिन्मात्र सत्ताही है। उसीको तत्त्ववेत्ता अनुभव कहते हैं और कोई नहीं जानसक्ता। हे रामजी! जो पुरुष अविद्यारूपी निद्रासे जागा है वह निराभास होता है अर्थात् चित्तसे चैत्यका सम्बन्ध टूट जाता है और उसको परम प्रकाशरूप आत्मपद प्राप्त होकर स्वभावमें स्थिति होती

है और परभाव जो प्रकृतिहै उसका अभाव होजाता है । हे रामजी ! जो कुछ जगत् परभाव से भिन्न भिन्न भासताथा सो सब एकरूप होजाता है । जैसे स्वप्ने में सब पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं और जागे से सब एकरूप होजाते हैं, अपना आपही भासता है; तैसेही जब आत्माका अनुभव होताहै तब जगत् अपना आपही भासता है । हे रामजी ! एकरूप तबहो भासता है जब और कुछ नहीं बना । जैसे सुवर्ण के भूषण अग्नि में डालिये तो अनेक भूषणों का एक पिंड होजाता है और एकही आकार भासता है; तैसेही जब बोधका अनुभव होताहै तब सर्व्व एकरूप होजाता है । हे रामजी ! भूषणों के होतेभी सुवर्णही था इसी से सब एकरूप होगया, तैसेही जब बोधका अनुभव होताहै तब सर्व एकरूप हो भासताहै इससे जगत् के होते भी जगत् आत्मरूपहै । जगत् है नहीं और हुयेकी नाईं भासित होकर भिन्न भिन्न दृष्टिआता है—जैसे सोमजलमें तरंग हैं नहीं और भासते हैं तौभी जलरूप हैं—असम्यक् दृष्टि करके भिन्न भिन्न भासते हैं । हे रामजी ! ज्ञानी को जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त तुल्य हैं । जैसे भूषणके होते भी स्वर्णहै और भूषणके अभाव हुये भी स्वर्ण है तैसेही ज्ञानवान् को देहके होते भी ब्रह्महै और देहके अभावहुये भी ब्रह्महै । जो अज्ञानीहै उसको नानाप्रकारका जगत् फुरताहै । अज्ञानी वही है जिसको मनका सम्बन्धहै । हे रामजी ! यह जगत् भिन्न भिन्न फुरताहै । जैसे काष्ठके थंभे में चितेरा पुतलियां कल्पता है सो और को नहीं भासतीं उसीके मनमें होती हैं; तैसेही भिन्न भिन्न पदार्थरूपी पुतलियां अज्ञानी के मनमें फुरती हैं और ज्ञानवान् को नहीं भासतीं । जबकाष्ठका आधारहोता है तब चितेरा पुतलियां कल्पताहै पर यह आश्चर्य देखो कि, मनरूपी ऐसा चितेराहै कि, आकाशमें पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है और बिन खोदी भासतीं हैं । हे रामजी ! और दूसरा कुछ नहीं बना; जैसे किसी पुरुषने कागजपर पुतली लिखीहो सो कागज रूपहै और कुछ नहीं बनी; तैसेही यह जगत् भी वही स्वरूपहै । हे रामजी ! जब तुमको आत्मपदका अनुभव होगा तब जितने जगत् के शब्द अर्थ हैं वे सब उसी में भासेंगे जैसे जिसने स्वर्णको जाना उसको भूषणके शब्द—अर्थ स्वर्णही भासते हैं, तैसेही जब आत्मपदको जानोगे तब तुमको जगत्के शब्द अर्थ आत्माही में दृष्टि आवेंगे । हे रामजी ! यह जीव महासूक्ष्मरूप हैं । और इनमें अपनी २ सृष्टि है । जबतक फुरनाहै तबतक सृष्टिहै; जब सृष्टि फुरना अपनी ओर आताहै तब सब सृष्टि एक आत्मरूप होजाती है और आकाश, काल, दिशा, पदार्थ सर्व आत्माहै; आत्मासे भिन्न कुछ नहीं, वह अपने आप में स्थितहै—जो अद्वैत चिन्मात्रपद है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनन्नाम शताधिकद्विसप्ततितमस्सर्गः १७२ ॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! सर्व तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ द्रष्टा और दृश्यका सम्बन्ध कैसेहुआ है? कालमें कालत्व; आकाशमें शून्यता; और वायुमें स्पन्द कैसेहुई है? जड़में जड़ता; भूतोंमें भूतता; सङ्कल्पमें स्पन्द; सृष्टिमें सृष्टिता; मूर्त्तिमें मूर्त्तिता; भिन्नमें भिन्नता और दृश्य में दृश्यता किससे हुयेहैं सो मुझसे कहिये क्योंकि; अर्द्ध प्रबुद्धिको बोधके निमित्त कहना योग्य है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर आदिक जो सब हैं सो प्रलयकाल में जिसमें लीन होतेहैं उसका नाम प्रलय है। उसका शब्द 'प्रलय' शब्द है और सर्व 'निर्वाण' होजातेहैं 'यह अर्थ है। हे रामजी! ऐसा जो अनंत आकाश है सो सम, शुद्ध, आदि-अन्त-मध्यसे भी रहित; चैतन्य, घन और अद्वैत है जहां एक और दो शब्द भी नहीं और जिसमें आकाश भी पहाड़ के समानस्थूल है और ऐसा सूक्ष्म है कि, 'है, 'नहीं, 'दोनों,' शब्दों से रहित अपने आपमें स्थित है। जैसे पाषाण का शिलाकोश होता है तैसेही वह चित्त के फुरने से रहित है। ऐसे परमात्म तत्त्व अकारण से सृष्टि का उपजना कैसे कहिये? जैसे आकाश अपने आप में स्थित है तैसेही ब्रह्म अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! एक निमेष के फुरने से जो वृत्ति अनेक योजनपर्य्यन्त जाती है उसके मध्य जो अनुभव करनेवाली सत्ता है उसमें तुम स्थित होकर देखो कि, जगत् और उसकी उत्पत्ति कहां है? हे रामजी! उत्पत्ति जो होती है सो समवाय कारण और निमित्त कारण से होती है पर आत्मा निराकार, अद्वैत और सन्मात्र है—न समवाय कारणहै और न निमित्त कारण है। इससे आत्मा अच्युत है अर्थात् स्वरूप से कदाचित् नहीं गिरा तो समवाय कारण कैसे होवे? निमित्त कारण भी नहीं क्योंकि, निराकार है; इससे आत्मामें जगत् कोई नहीं भ्रान्तिमात्र और अविद्या करके भासता है। जो वस्तु होवे नहीं और प्रत्यक्ष भासे उसे अविद्या से जानिये। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है। जलमें जो तरंग और आवर्त्त उठते हैं सो जलरूप हैं जल से भिन्न कुछ नहीं। जब तुम अपने आप में स्थित होगे तब जगत् का शब्द अर्थ भिन्न न भासेगा क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ नहीं है। हे रामजी! ब्रह्म अमूर्त्ति है; उसमें यह मूर्त्ति कैसे उत्पन्न हो? यह भ्रान्तिमात्र है। जो वस्तु कारण से उपजी हो सो सत् होती है और जो कारण विना दृष्टिआवे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है उसका कोई कारण नहीं इससे मिथ्याभ्रम से भासता है, तैसेही यह जगत् मिथ्यामात्र है विचार कियेसे नहीं रहता। हे रामजी! आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं सो सब शून्य हैं; आत्मामें न उदय हुये हैं और न अस्त होते हैं—ज्यों कात्यों आत्माही स्थित है॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्गः १७३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही ब्रह्मरूपी आकाश अपने आपमें स्थितहै सो कैसे किसी का कारणहो ? कारण और कार्य तब होता है जब द्वैत होता और आरम्भ, परिणाम होता है पर आत्मा तो अद्वैत, अच्युत और निर्गुण है उसमें आरम्भ कैसे हो ? हे रामजी ! जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो सब काष्ठवत् मौन है अर्थात् वहां मनका फुरना शून्य है । हे रामजी ! जो कुछ द्वैत भासता है सो भ्रममात्र है । जो कुछ हुआ होता तो ज्ञानी को भी प्रत्यक्ष होता पर ज्ञानकाल में नहीं भासता इससे भ्रममात्र है । हे रामजी ! पृथ्वी, जलआदि जो पदार्थ हैं तिनका फुरना स्वप्ने की नाईं है । जैसे स्वप्ने में चेष्टा होती है सो पास बैठेकी नहीं भासती क्योंकि, है नहीं; तैसेही सृष्टि अकारण संकल्पमात्र है । हे रामजी ! जैसे शशे के सींगों का कारण कोई नहीं तैसेही जगत् का कारण कोई नहीं । जो कुछ हो तो उसका कारण भी हो पर जो कुछ हैही नहीं तो किसका कारण कौन हो । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जैसे वटके बीज में वृक्षका भाव होताहै पर काल पाकर बीज से वृक्ष हो आता है तैसेही इस जगत् का कारण परमाणु क्यों न हुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सूक्ष्म में स्थूल सङ्कल्पमात्र होता है । मैं भी कहता हूं कि, सूक्ष्म में स्थूल होता है परन्तु सङ्कल्पमात्र होता है—कुछ सत्य नहीं होता । जो कहिये कि, सत्य होता है तो नहीं होसक्ता । जैसे राई के कणके में सुमेरु पर्व्वत का होना नहीं होसक्ता तैसेही सूक्ष्म परमाणु से जगत् का उत्पन्न होना असम्भव है । हे रामजी ! सूक्ष्म परमाणुका कार्य्यभी जगत् तब कहा जाय जब सूक्ष्म अणुभी आत्मा में पाया जावे; आत्मा तो अद्वैतहै और उसमें एक और दो कहनेका अभावहै । आत्मामें जानना भी नहीं—केवल आत्मतत्त्व मात्र है और आधार आधेय से रहित है । बीजभी तब प्रणमता है जब उसको जल देते हैं और रक्षा करने का स्थान होता है पर आत्मा आधार आधेयसे रहित केवल अपने भाव में स्थित है और अद्वैत सत्तामात्रहै । जैसे बन्ध्याके पुत्रका कारण कोई नहीं, तैसेही जगत् का कारण कोई नहीं; जो बन्ध्या का पुत्रही नहीं तो उसका कारण कौनहो तैसेही जगत् है नहीं तो ब्रह्म इसका कारण कैसे हो ? जिसको तुम दृश्य कहते हो सो द्रष्टाही दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है । हे रामजी ! जैसे सूर्यकी किरणों में जलाभास होकर स्थितहै; तैसेही ब्रह्मही जगत् आकार होकर दृष्टि आता है; दृश्य भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं । जैसे समुद्रही तरङ्ग और आवर्त्त रूप होकर भासता है तैसेही अनन्तशक्ति होकर परमात्मसत्ताही स्थित है । हे रामजी ! मैं और तुम आदि जगत्के पदार्थ सब फुरनेमात्र हैं । जैसे सङ्कल्प नगर होताहै जो मन से रचाहै; तैसेही यह जगत्भी मिथ्याहै आत्मा में कुछ बना नहीं केवल ब्रह्मही अपने आप में स्थित है—हमको तो सदा वही भासता है । हे रामजी ! आत्मा में यह

जगत् न उदय होताहै और न अस्त होता है सदा ज्यों का त्यों निर्मल शान्तपद है ॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेद्वैतएकताप्रतिपादनन्नाम
शताधिकचतुःसप्ततितमस्सर्गः १७४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जगत्का भाव–अभाव; जड़–चैतन्य; स्थावर–जंगम; सूक्ष्म–स्थूल; शुभ–अशुभ कुछ हुआ नहीं तो मैं तुमसे क्याकहूं कि, यह कार्य है और इसका यह कारण है ? यह हुआही नहीं तो फिर कारण कार्य कैसेहो ? जो सर्व देश, सर्वकाल और सर्व वस्तुहो सो कारण कार्य कैसे हो ? आत्मा केवल अपने आप में स्थितहै और जो है और नहीं की नाईं स्थित हुआ है; उसमें संवेदनहै और उसके फुरने से जगत् भासता है। वह फुरना चैतन्यमात्र का विवर्त्त है और उस विवर्त्त से जगत्भ्रमहुआ है; जब यही फुरना उलटकर अपनी ओर आता है तब जगत् भ्रम मिटजाता है और जब फुरता है तब ध्यान, ध्याता और ध्येयरूप होकर स्थित होता है। इसही का नाम जगत् है और इसी में बन्ध और मुक्त होता है; आत्मा में न बन्ध है और न मोक्ष है। हे रामजी ! जब तरंग घनभूत होकर बहता है तब एक नदी होकर चलता है; तैसेही जब वासना दृढ़ होती है तब जगत्रूप होकर स्थित होता है और भासता है। जब ऐसी वासना दृढ़हुई तब रागद्वेष संकल्पसे बन्धायमान होताहै और जब वासना क्षयहोती है तब जगत् का अभाव होकर स्वच्छ आत्मा भासता है। जैसे शरत्कालका आकाश स्वच्छहोताहै–उससे भी निर्मलभासताहै। हे रामजी ! जीव जो निकलजाताहै सो मरतानहीं; मुआ तब कहाजाय जब अत्यन्त अभावकोप्राप्तहो और न जानाजाय; इससे यह मरना नहीं क्योंकि; फिर जगत् भासताहै। यह मरना सुषुप्ति की नाईं हुआ–जैसे सुषुप्ति से जागे हुये जगत् भासताहै और वही चेष्टाकरने लगताहै और जैसे स्वप्न और जाग्रत् होता है तैसेही मृत्यु और जन्म भी है। यदि मरनेका शोक उपजे तो जीनेका सुख भी मानिये और जो जीनेका हर्ष उपजे तो उस में मरनेका शोक मानिये–दोनों अवस्था शरीरकी समरखीहैं। जब यह अवस्थाशरीर की जानी तब तुम्हारा हृदय शीतल होजावेगा। जब संवेदन फुरने का अत्यन्त अभाव हो तब परमशांति होतीहै। ध्यान, ध्याता और ध्येय तीनों का अभाव होजाताहै और अज्ञान भी नहीं रहता। जब ऐसा अभाव होताहै तब पीछे स्वच्छनिर्मलपदरह ताहै। हे रामजी ! अब भी निर्मलपद है परन्तु भ्रमसे पदार्थसत्ता भासती है। जैसे निद्रा दोषसे केवल अनुभव में पदार्थ सत्ता होकर भासती है और जागेसे कहता है कि, केवल भ्रममात्रही था; तैसेही इसजगत् को भी भ्रममात्र जानो। परमार्थ स्वरूप के प्रमादसे यह जगत् भासता है और स्वरूप में जागे से इसका अभाव होजाता है। हे रामजी ! जैसे स्वप्ने में जीव अनहोताही राज्य देखताहै तैसेही तुम इस जगत् को

जानो । इसका फुरनाही इसको बन्धन का कारण हैं । जैसे कुसवारी आपही स्थान बनाकर आपही फँस मरती है और जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करके मुखसे औरका और बोलता है और उससे बन्धायमान होताहै; तैसेही जीव अपने संकल्पही से बँधता है और जब संकल्प मिटता है तब परमानन्द को प्राप्त होकर परम स्वच्छशान्ति उदय होती है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमशान्तिनिर्वाणवर्णनन्नाम शताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्ग्गः १७५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जहां आकाश होता है वहां शून्यताभी होती है; जहा अवकाश होता है वहां आकाश भी होता है और जहां आकाश है वहां पदार्थ भी होते हैं; तैसेही जहां चैतन्य सत्ताहै वहां सृष्टि भी भासती है पर बनी कुछ नहीं और सदा रहती है । जैसे सूर्य्यकी किरणों में जल कदाचित् नहीं उत्पन्न हुआ और जलाभास सदा रहता है क्योंकि, उसीका विवर्त्तहै; तैसेही सृष्टि आत्माका विवर्त्त है--जहां चैतन्यसत्ता है वहां सृष्टिभी है । इसीपर मैं एक इतिहास तुमसे कहता हूं जिसके सुने और समझे से जरामृत्यु से रहित होगे । वह इतिहास परमसुन्दर और चित्तका मोहनेवाला आश्चर्यरूप है और मेरा देखाहुआहै । हे रामजी ! एककाल में मेराचित्त जगत् से उपरत हुआ तो मैंने विचार किया कि; किसी एकान्त स्थान में जाकर समाधान करूं क्योंकि; जगत् मोहरूप व्यवहार से दृढ़ हुआ है और जितना कुछ जानने योग्यहै उसको मैं जाननेवालाहूं परन्तु व्यवहार करके भी शान्तरूप होऊं । तब ऐसा मैंने विचार किया कि, निर्विकल्प समाधि करके परमशान्तिपाऊं और जो आदि, अन्त और मध्य से रहित परमानन्दस्वरूप और अविनाशीपद है उसमें विश्रामकरूं । हे रामजी ! तब भी मैं ज्ञानवृत्तिमान् और परमात्मस्वरूपही था परन्तु चित्तकी वृत्ति जब जगत् भाव से उपरत हुई तो व्यवहार सेभी एकान्त समाधिकी इच्छा की कि; जहां कोई क्षोभ न हो वहां स्थितहूं । ऐसे विचार करके मैं आकाश में उड़ा और एक देवता के पर्वत पर जाबैठा तो वहां बहुत प्रकारके इन्द्रियों के विषय देखे कि; अङ्गना गान करती हैं । शिर पर चमर होते हैं; और मन्दमन्द पवन चलता है । पर वहभी मुझको आपात रमणीय भासे क्योंकि, किसी कालमें किसी को सुखदायक नहीं—समाधिवाले के ये शत्रुहैं । उनको विरसजानकर मैं फिर उड़ा और एक पर्वतकी कन्दरामें जो बहुत सुन्दरथी और जहां एक सुन्दर वनथा और उसमें सुन्दर पवन चलताथा पहुँचा । ऐसे स्थानको मैंने देखा तो वहभी मुझको शत्रुवत् भासित हुआ क्योंकि; पक्षियों के शब्द होते थे और पवनका स्पर्श होताथा व और भी अनेक विघ्न थे । उनको देखकर

मैं आगेचला तो नागोंके देश और सुन्दर नागकन्या देखीं और इन्द्रियों के बहुत सुन्दर विषयभी देखे पर वह भी मुझको सर्पवत् भासे। जैसे सर्प के स्पर्श किये से अनर्थ होता है तैसेही मुझको विषय भासे। हे रामजी! जितने इन्द्रियों के विषय हैं वे सब अनर्थ के कारण हैं; उनमें प्रीति मूढ़ और अज्ञानी करते हैं। फिर मैं समुद्र के किनारेगया और उसके पास जो पुष्पके स्थानथे उनमें विचरा और कन्दरा और वनको देखता हुआ पर्वत, पाताल और दशोंदिशा देखता फिरा परन्तु एकान्त स्थान मुझको कोई दृष्ट न आया। तब मैं फिर आकाशको उड़ा और पवन; मेघों; देवगणों; विद्याधरों और सिद्धोंके स्थान लांघतागया तो आगे देखा कि, कई ब्रह्माण्ड भूतों के उड़ते थे उनमें मैंने अपूर्व्वभूत और नानाप्रकारके स्थान देखे। फिर गरुड़ के स्थान लांघे तो कहीं सूर्य्यका प्रकाश होताथा और कहीं सूर्य्यका प्रकाशही न था। फिर मैं चन्द्रमा के मण्डलको लांघगया और अग्निके स्थान लांघकर महा आकाश में गया जहां इन्द्रियोंका रोकना भी न था क्योंकि; इन्द्रियों के विषय कोई दृष्ट न आते थे केवल एक आकाशही आकाश दृष्ट आता था और वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी चारोंका अभाव था। हे रामजी! निदान मैं उस स्थान में गया जहां भूत स्वप्नमें भी दृष्ट न आते थे और सिद्धोंकी भी गम न थी। वहां मैंने संकल्प की एक कुटीरची और उसके साथ फूल और पत्रों से पूर्ण कल्पवृक्ष रचे और उसके एक ओर मैंने छिद्र रक्खा। मेरा तो सूक्ष्म संकल्प था इसलिये सब प्रत्यक्ष आन हुआ। उस कुटीको रचकर उसमें मैंने प्रवेश किया और सङ्कल्प किया कि; एक वर्ष पर्य्यन्त मैं समाधि में रहूंगा और उससे उपरान्त समाधि से उतरूंगा। ऐसे विचारकर मैंने पद्मासन बांधा और समाधि में स्थित होकर परमशान्ति में एक वर्ष पर्यन्त स्थित हुआ जहां कोई क्षोभ न था जब वर्ष व्यतीत हुआ तब वह भावी समाधि के उतरनेकी थी इस लिये वह संकल्प आन फुरा। जैसे पृथ्वीमें बोया हुआ बीज कालपाकर अंकुर लेता है तैसेही वह संकल्प आन फुरा। प्रथम, जैसे सूखावृक्ष वसन्तऋतु में हरा हो आता है तैसेही प्राण फुरिआये; फिर, जैसे वसन्तऋतु में फूल खिल आते हैं तैसेही ज्ञान इन्द्रियां खिल आईं और फिर स्पन्द जो अहंकाररूपी पिशाच है सो फुरा कि, मैं वशिष्ठहूं; और उसकी इच्छारूपी स्त्री फुरी। हे रामजी! वह वर्ष मुझको ऐसे व्यतीत हुआ जैसे निमेषका खोलना होताहै। कालभी बहुत प्रकार से व्यतीत होता है; किसी को थोड़ाही बहुत होजाताहै और किसी को बहुत थोड़ा होजाता है। जब सुख होताहै तब बहुत कालभी थोड़ाहो भासता है और जब दुःख होता है तब थोड़ाकाल बहुत होजाता है। हे रामजी! इस समाधिका जो मैंने वर्णन किया यह शक्ति सब जीवों में है परन्तु सिद्ध नहीं होती क्योंकि, नानाप्रकार की वासनासे अन्तःकरण मलिन है। जब

अन्तष्करण शुद्धहो तब जैसा सङ्कल्पकरे तैसाही सिद्ध होता है और मलिन अन्तष्करण वाले का सङ्कल्प सिद्ध नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेआकाशकुटीवशिष्ठसमाधिवर्णनन्नाम शताधिकषष्ठसप्ततितमस्सर्ग्गः १७६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमतो निर्वाण स्वरूपहो तुमको अहंकाररूपी पिशाच कैसे फुरा—यह मेरा संशय दूरकीजिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी जबतक शरीर का सम्बन्ध है तबतक अहंकार दूर नहीं होता। जैसे जहां आधार होता है वहां आधेय भी होता है और जहां आधेय होता है वहां आधार भी होता है; तैसेही जहां देह होती है वहां अहंकार भी होता है और जहां अहंकार होता है वहां देह भी होती है। हे रामजी ! अहंकार विना शरीर नहीं रहता पर वह अहंकार अज्ञानरूपी बालकने कल्पा है और ज्ञानीको अहंकार नष्ट होजाता है। हे रामजी ! यह अहंकार अविद्या ने कल्पा है। जो वास्तवमें मिथ्या हो और भासे वह अविद्या है। और जो अविद्याही मिथ्या है तो उसका कार्य अहंकार कैसे सतहो ? यह केवल मिथ्या भ्रमसे उदयहुआ है। जैसे भ्रमसे वृक्ष में वेताल भासता है तैसेही भ्रमसे अहंकाररूपी वेतालउदय हुआ है और इसका कारण अविचार सिद्ध है; विचार कियेसे इसका अभाव होजाता है। जहां विचार होता है वहां अविद्या नहीं रहती। जैसे जहां दीपक होता है तहां अन्धकार नहीं रहता क्योंकि; दीपक के जागेते अंधकारका अभाव होजाता है; तैसेही विचार के उदय हुये अविद्या का अभाव होजाता है। जो वस्तु विचार किये से न रहे उसे मिथ्या जानिये और जो आपही मिथ्या है तो उसका कार्य कैसे सत्य हो ? इससे अहंकार को मिथ्या जानो। हे रामजी ! जैसे आकाशके वृक्षका कारण कोई नहीं; तैसेही अहंकार का कारण कोई नहीं। मनसहित जो षट्इन्द्रियांहैं शुद्ध आत्मा उनका विषय नहीं क्योंकि; वे साकार और दृश्यहैं। साकार का कारण निराकार आत्मा कैसेहो ? जो कुछ आकारहै सो सब मिथ्याहै। जो बीजहोताहै उससे अंकुर उत्पन्न होताहै तब जाना जाताहै कि, बीजसे अंकुर उत्पन्न हुआ है परन्तु बीजही न हो तो उसका कार्य अंकुर कैसे उत्पन्नहो ? तैसेही जगत्का कारण संवेदनही न हो तो जगत् कैसेहो ? जैसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमाहो तो उसका कारणभी मानिये और जो दूसरा चन्द्रमाही न हो तो उसका कारण कैसे मानिये ? हे रामजी ! ब्रह्म आकाश, अद्वैत, शुद्ध, फुरने से रहित, अच्युत और अविनाशी है, वह कारण कार्य कैसेहो ? हे रामजी ! पृथ्वी आदिक तत्त्व अविद्यमान हैं पर भ्रमसे भासते हैं। केवल शुद्धआत्मा अपने आपमें स्थितहै। जो तुमकहो कि, अविद्यमानहैं तो भासते क्यों हैं तो उसका उत्तर यहहै कि; जैसे स्वप्ने में अनहोती सृष्टि भासती है तैसेही यह जगत् भी अनहोता भासताहै। जैसे भ्रमसे आ-

काशमें वृक्ष अनहोते भासतेहैं तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं और संकल्प नगर रचलीजे तो चेष्टाभी होती है परन्तु इसका स्वरूप संकल्पमात्र है वास्तवमें अर्थाकार कुछ नहीं होता और अपने कालमें सत्य भासताहै पर जब संकल्पका लयहोताहै तब उसका भी अभाव होजाताहै–इससे आकाशके वृक्षकी नाईं हुआहै। जैसे आकाशके वृक्ष भावना से भासतेहैं। तैसेही यह जगत् संकल्पमात्र है। स्वरूपसे कुछ नहीं है जो विचारकरके देखिये तो इसका अभाव होजाताहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है वही जगत्का आकारहो भासता है–दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे स्वप्न में जितने पदार्थ भासतेहैं सो सब अनुभवरूपहैं तैसेही जगत् भी ब्रह्मरूपहै। हे रामजी! हमको सदा वही भासताहै तो अहंकार कहांहो? न मैं अहंकारहूं और न मेरा अहंकारहै केवल आकाश में अहंकार कहांहो? हे रामजी! न मैंहूं और न मेरेमें कुछ फुरना है; अथवा सर्व आत्मसत्ता मैंहींहूं तो भी अहंकार न हुआ। हे रामजी! हमारा अहंकार ऐसा है जैसे अग्निकी मूर्त्ति लिखीहोती है तो उससे कुछअर्थ सिद्ध नहीं होता–दृश्यमात्र होती है। तैसेही ज्ञानीका अहंकार देखनेमात्र है उन्हें कर्तृत्व भोक्तृत्व का नहीं होता और वे अपने स्वभावमें स्थितहैं। सर्व ज्ञानवानों का एकही निश्चयहै कि, ब्रह्महीं भासताहै और अहंकार का अभावहै। अहंकार न आगे था, न अबहै और न फिर होगा–भ्रमसे अहंकार शब्द जानाजाताहै। हे रामजी! जब ऐसे जानोगे तब अहंकार नष्ट होजावेगा। जैसे शरत्काल में मेघ देखनेमात्र वर्षासे रहित होताहै, तैसेही ज्ञानी का अहंकार देखनेमात्र होताहै। और की बुद्धिमें भासताहै परंतु ज्ञानीके निश्चयमें असंभवहै क्योंकि; उसका अहंप्रत्यय आत्मामें रहताहै और प्रच्छन्न अहंकार का अभाव होजाताहै। जब अहंकार नाशहोताहै तब अविद्याका भी नाश होजाताहै और यही अज्ञान का नाश है—यह तीनों पर्याय हैं हे रामजी! अपने स्वभाव में स्थितरहो और प्रकृत आचार करो; हृदय से शिलाकोशवत् होरहो और बाहर इन्द्रियों की सब क्रियाहों; अपने निश्चयको गुप्तरक्खो और सब इन्द्रियों को इसप्रकार धारो जैसे आकाश सबको धार रहाहै; अन्तर से शिलाके जठरवत् रहो और देखनेमात्र तुम्हारे में भी अहंकार दृष्ट आवेगा। जैसे अग्निकी मूर्त्ति लिखी दृष्टि आती है तैसेही तुम्हारे में अहंकार दृष्टआवेगा परन्तु अर्थ कारण होगा और केवल ब्रह्मसत्ताही भासेगी और कुछ न भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविदितवेदअहंकारवर्णनन्नाम शताधिकसप्तसप्ततितमस्सर्गः १७७॥

रामजीने पूछा; हे भगवन्! बड़ा आश्चर्य है कि तुमने अहंकारके त्यागे से परम सात्त्विकी प्राप्ति का उपदेश किया है। यह परम दशा है और राग द्वेषमल से रहित; निर्मल; उत्तम; अविनाशी और आदि–अन्त से रहितहै। यह दशा तुमने परम विभुता

केअर्थ कही है। हे भगवन्! सर्वदाकाल और सर्वप्रकार सर्व वस्तु वही ब्रह्मसत्ता है और समरूप सत्ताके अनुभव से परम निर्मल है तो शिलाख्यान किस निमित्त कहा है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह तो सर्व में; सर्वदाकाल और सबसे रहित है पर उसके बोधकेअर्थ मैंने तुझको शिलाख्यान का दृष्टांत कहा है। हे रामजी! ऐसा स्थान कोई नहीं जहां सृष्टिनहो। सब स्थान में सृष्टि भासती है पर आदि से कुछ नहीं बना और सर्वदाकाल बसती है—शिलाके कोश में भी अनेक सृष्टि भासती हैं। जैसे आकाश में शून्यता है तैसेही शिला कोश में भी सृष्टि बसती हैं। श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! जो सर्व में सृष्टि बसती है तो आकाशरूप क्यों न हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यही मैं भी तुमसे कहताहूं कि; जो कुछ सृष्टि है वह सब आकाशरूप है। स्वरूप में तो सृष्टि उपजीही नहीं; सर्वदा आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और आकाश की वार्त्ता क्या कहनी है कि; शिला कोश में सृष्टि बसती है और आकाशरूप है—अर्थात् कुछ हुई नहीं हे रामजी! पृथ्वी में ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो। अणु अणु में सृष्टि है और सर्व ओरसे बसती है परन्तु परमार्थसे कुछ नहीं बना केवल आत्मरूप है और सर्व सृष्टि शब्दमात्रहै। जैसे यह सृष्टि भासती है तैसेही वह भी है। जो यह शब्दमात्रहै तो वह भी शब्दमात्र है और जो यह सत्य भासती है तो वह भी सत्य भासती है। हे रामजी! ऐसा कोई जलकाकण नहीं जिसमें सृष्टि नहो; सर्वमेंही सृष्टि है और यह आश्चर्य देखो कि, इस विना कुछ नहीं और ऐसा कोई अग्नि और वायुका कणनहीं जिसमें सृष्टि नहो। सबमें सृष्टि है और आकाशरूपहै, कुछ बना नहीं—ब्रह्मसत्ता अपने आपमें सदा ज्योंकी त्यों स्थित है। हे रामजी! आकाश में ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें सृष्टि न हो परन्तु कुछ उपजी नहीं। ऐसा ब्रह्मअणु कोई नहीं जहां सृष्टि नहो परन्तु स्वरूप से कुछ हुई नहीं—ब्रह्मसत्ता अपने आपमें सदा स्थित है। हे रामजी! ऐसा अणु कोई नहीं जिसमें ब्रह्मसत्ता नहीं और ऐसा कोई चिद् अणु नहीं जिसमें सृष्टि नहीं पर जैसे किसीने अग्नि कही और किसीने उष्णताकही तो उसमें भेद कोई नहीं तैसेही कोई ब्रह्म कहते हैं और कोई जगत् कहते हैं। शब्द दोहैं परन्तु वस्तु एकहीहै—जगत्ही ब्रह्म है और ब्रह्मही जगत् है—कुछ भेद नहीं। जैसे बहते जलका शब्द होता है पर उसमें कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता; तैसेही जगत् मुझको कुछ पदार्थ नहीं भासताहै क्योंकि दूसरी वस्तु बनी नहीं। मैं, तुम और यह जगत्, सुमेरु आदि पर्वत, देवता, किन्नर, दैत्य, नाग इत्यादिक जगत् सब निर्वाण स्वरूपहैं—आत्मतत्त्वमें कुछ नहीं बना। यह बोलते और चालते जो भासते हैं उसे स्वप्ने की नाईं जानो। जैसे कोई पुरुष सोयाहो और स्वप्नेमें उसे नानाप्रकारकेयुद्ध होते वा यंत्र बजते और चेष्टा होती दिखाईदें पर जो उसके निकट जाग्रत् पुरुष बैठा हो उसको कुछ नहीं भासता क्योंकि; बना कुछ नहीं और उसको सब कुछ भासता है;

तैसेही ज्ञानीके हृदय में जगत् शून्यहै और अज्ञानीको भ्रमसे नानाप्रकारका भासता है। इससे, हे रामजी ! स्वप्नवत् इस जगत् को जानकर प्रकृत आचार करो और हृदय से शिलाकी नाईहो कि; कुछ न फुरै। ब्रह्म और जगत्में रञ्चकभी भेद नहीं; ब्रह्मही जगत् है और जगत् ब्रह्महै। जगत्का स्पष्ट अर्थ ब्रह्मसे भिन्न नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगत्एकताप्रतिपादनन्नाम शताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः १७८॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! आपने आकाश कोशमें कुटी बनाकर एकवर्षकी समाधि लगाई तो उसके अनन्तर जो वृत्तान्त हुआ सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब मैं समाधि से उतरा तब आकाश में एक परम मनोहर मतुरी की तानके सदृश अंगनाका शब्द सुना तब मैंने विचार किया कि, मैं तो बहुत ऊंचेपर आयाहूं जहां सिद्धों की भी गम नहीं और सिद्धोंसे भी तीनलाख योजन ऊंचा आयाहूं यह शब्द कहां से आया ? ऐसे विचारकर मैं देखने लगा तो दशों दिशाओं में आकाशही दीखा परन्तु सृष्टिका कर्त्ता कोई दृष्टि न आया। तब मैंने विचार किया कि, सृष्टि आकाश में होती है इससे मैं आकाशही होजाऊं और इस शब्दको पाऊं कि; किसका शब्दहै; बलिक आकाश कोभी त्यागकर चिदाकाश होजाऊं जहां भूताकाशभी कुटीवत् भासता है तब इसका भी अन्त भासेगा और जानलूंगा कि, यह किसका शब्द होताहै। ऐसे विचार कर मैंने निश्चय किया कि, यह शरीर यहां रहे और नेत्र मुँदे रहैं। तब पद्मासन बांध कर मैंने बाहरकी इन्द्रियों को रोंका और जो इन्द्रियोंकी वृत्ति शब्द आदिक को ग्रहण करती थी उसको भी रोंकलिया। निदान भीतर बाहर की सब वृत्तियों और अहंवृत्ति को त्यागकर मैं आकाशरूप होगया। जैसे इसब्रह्माण्ड में आकाशका अन्त नहीं मिलता तैसेही मैं इसको त्यागकर चिदाकाशरूप होगया जिसका संकल्पहीरूप है। उसको भी त्यागकर मैं बुद्धि आकाशमें आया; फिर उसको भी त्यागकरके चिदाकाशमें आया और उस शब्द के सुनने के संकल्प से चिदाकाशरूप होगया। जैसे समुद्र में मिली जल की बूंद समुद्ररूप होजाती है तैसेही मैं चिदाकाश होगया जो निराकार और निराधारहै; सबको धाररहाहै और परमानन्दस्वरूप, शान्त और अनन्त है और जिसमें सर्व ब्रह्माण्ड प्रतिबिम्बित होते हैं जब मैं आत्मा आदर्श में स्थितहुआ तब मुझको अनन्त सृष्टि अपने आपमें भासनेलगीं। जैसे सूर्यकी किरणों में त्रसरेणु होतेहैं तैसेही ब्रह्ममें सृष्टियां हैं परन्तुजीव २ की अपनी २ सृष्टिहै एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता। जैसे कईएक मनुष्य सोये हों और अपनी अपनी स्वप्नसृष्टिको देखें तो उसमें अपना आकाश और कालदेखतेहैं; इसकी सृष्टिको वह नहीं जानता और उसकी सृष्टि को यह नहीं जानता परन्तु ज्ञानी सर्वसृष्टियां देखताहै; तैसेही मुझको सर्वसृष्टियां चिदाकाश

में भासी पर जीवोंको अपनी अपनी सृष्टि भासती थी । हे रामजी ! एक सृष्टि ऐसी भासी कि, उसमें कोई आवरण न था जैसे पृथ्वी के चौफेर समुद्र होते हैं—कहींकहीं एकही भूतका आवरण था और कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टिआई जिनको पांचो तत्त्वों का आवरणथा प्रथम पृथ्वी का; दूसरा जलका; तीसरा अग्नि का; चतुर्थ वायुका और पंचम आकाश का आवरण था । कहीं ऐसी सृष्टियां देखीं जिनको बारही तत्त्वों का आवरण था; कहीं ऐसी देखीं जिनको षट्आवरणथे; कहीं दश आवरण दृष्टिआये, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टिआवे जिसको षोड़श आवरण हैं और कहीं ऐसी दृष्टिआवें जिनको चौंतीस आवरणथे और कहीं तत्त्वोंके छत्तीस आवरण संयुक्त सृष्टि देखीं । हे रामजी ! इसप्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां चिदाकाश में देखीं परन्तु सब आकाशरूप थीं; आत्मा से कुछ भिन्न वस्तु न थी; मनके फुरने से मुझको सृष्टि दृष्टि आई क्योंकि, सब संकल्पमात्रही थी—कुछ बनानहीं । जैसे दीवारपर चित्रलिखे हों तैसेही आत्मरूपी दीवारपर चित्ररूप सृष्टि दृष्टि आई कि; अपने २ व्यवहार में मग्न हैं । हे रामजी ! ऐसी अनन्त सृष्टियां देखीं पर एकको सृष्टिको दूसरा न जानताथा सब अपनी २ सृष्टिको जानतेथे । जैसे अनेक मनुष्य एकही काल में शयनकरें और अपनी अपनी स्वप्न सृष्टि देखें तौभी दूसरी सृष्टि को वे नहीं जानते । हे रामजी ! कुछ ऐसी सृष्टि देखीं जहां न सूर्य का प्रकाश था न चन्द्रमा का प्रकाश था और न अग्नि का प्रकाश था और उनकी चेष्टा बड़ी होती थी कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहां सूर्य और चन्द्रमा हैं और कहीं ऐसी देखी कि; उनको कालका ज्ञान भी नहीं और न वहां कोई दिन है, न रात्रि है; सदा एक समान रहते हैं । कहीं महाशून्यरूप तमही दृष्टिआया; कहीं ऐसे दृष्टि आया कि, देवताही रहते हैं; कहीं मनुष्यही रहते हैं; कहीं तिर्यक्ही रहते हैं; कहीं दैत्यही दृष्टि आये; कहीं जलही दृष्टिआया और कोई तत्त्व न दृष्टिआया और कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टिआई जहां शास्त्रका विचारही नहीं; कहीं शास्त्र पुराण विपर्ययरूप थे और कहीं समान थे । कहीं प्रलय होती दृष्टिआई और कहीं उत्पत्ति होती दृष्टिआई । हे रामजी ! इसी प्रकार अनन्त सृष्टि मैंने देखीं परन्तु जब स्वरूप की ओर देखूं तब केवल ब्रह्मरूपही भासे और कुछ बना दृष्टि न आवे और जब संकल्प करके देखूं तब अनन्त सृष्टि दृष्टिआवें । कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टिआवे जहां बालक, वृद्ध, यौवन अवस्था की मर्यादाही नहीं—जैसे जन्मे तैसेही रहे—कहीं ऐसी सृष्टि है कि; चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं और अग्नि के प्रकाश से उनकी चेष्टा होती है और कहीं ऐसे देखे कि, ऊर्ध्व को चलेजावें; कहीं नीचेको चलेजावें । कहीं ऐसे देखे जो शास्त्रकी मर्यादा से चेष्टा करें और कहीं कृमिही बसते हैं और कोई नहीं । हे रामजी ! चैतन्यरूपी वन में मैंने अनन्तसृष्टिरूपी वृक्षदेखे परन्तु दूसरा कुछ बना दृष्टि न आया; सब चै-

तन्यका आभासही दृष्टिआया। जैसे सूर्यकी किरणों में जलाभास होताहै और बना कुछ नहीं; तैसेही सृष्टि बनी कुछ नहीं और जैसे आकाशमें नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही अनहोती सृष्टि भासे। जैसे मरुस्थल में जल और गन्धर्वनगर की सृष्टि भासती है तैसेही संपूर्ण सृष्टि भासी हैं। हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश में चित्त-रूपी गन्धर्व ने सृष्टिरची है पर स्वरूपसे भिन्न कुछ उपजा नहीं—सब अकारणहै। जो समवायकारण विना सृष्टि भासे उसे भ्रममात्र जानिये। जैसे स्वप्ने की सृष्टि कारण विना होती है और अर्थाकार हो भासती है तौ भी अजातजात है अर्थात् उपजे विना उपजी भासती है; तैसेही संपूर्ण सृष्टि आभासमात्रहै। हे रामजी! आभासमें भी अधिष्ठानसत्ता होती है जिसके आश्रय आभास फुरताहै। सच्चिदानन्द ब्रह्म सब का अधिष्ठानहै और सर्व आत्मता सेही स्थित हैं--ब्रह्मसत्तासे भिन्न कुछ नहीं। चेतना करकेही नानात्व भासताहै परन्तु नानात्व हुआ कुछ नहीं; आत्माही सर्वदा अपने आप में स्थित है। जैसे क्षीरसमुद्रमें वायुसे नानाप्रकारके तरंग उपजते भासतेहैं तौ भी क्षीर से भिन्न नहीं—ऐसा क्षीरसमुद्र का तरंग कोई नहीं जिसमें घृत न हो; तैसेही जो कुछ पदार्थ हैं उन सब में ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत है। जैसे क्षीर मथन किये से घृत निकलता है; तैसेही विचार कियेसे जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है—कुछ भिन्न नहीं दिखता क्योंकि; कारण द्वारा कुछ नहीं उपजा परमार्थ से केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। फुरनरूपी भ्रम से कुछ हुआ दृष्टिआताहै और जब फुरनरूपी भ्रम निवृत्त होता है तब ब्रह्मही भासताहै; इससे अविद्यारूप फुरने को त्यागकर अपने निर्विकल्पस्वरूप में स्थित होरहो तब जगत् भ्रम निवृत्त होजावेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगज्जालसमूहवर्णनन्नाम शताधिकसप्तनवतितमस्सर्गः १७९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार मैंने सृष्टि देखी तब फिर विचार हुआ कि, वह शब्द करनेवाला कौन था उसको देखूं। तब मैं देखने लगा तो देखते देखते तीतरी की नाईं शब्दसुना परन्तु उसको न देखा। तब फिर देखा तो शब्द का अर्थ भासने लगा और फिर देखा तो एक अंगना दृष्टिआई जिसका शरीर सुवर्णवत्था; बहुत सुन्दर वस्त्र पहिरे हुयेथी और सब अंग भूषणों से पूर्ण थे; मानो लक्ष्मी वा भवानी थी। जब मैंने उसको देखा तब वह मेरे निकट आई और कहनेलगी; हे मुनीश्वर! और संसार जो मैंने देखा है वह सामान्यधर्म्मा मुझको दृष्टि आया है पर तुम उत्तमधर्म्मा और संसारसमुद्र के पारहुये दृष्टि आते हो। तुम संसारसमुद्र पार के वृक्षहो; जो कोई तुम्हारी ओर आता है उसके आश्रयभूत हो और उसको निकाल भी लेते हो पर और जीव संसारसमुद्र में बहेजाते हैं और तुम पारहुये हो; इससे

तुमको नमस्कार है । हे रामजी ! जब इस प्रकार उस अंगनाने कहा तब मैं आश्चर्य में हुआ कि; इसने मुझे कदाचित् देखा भी नहीं और सुनाभी नहीं फिर इसने क्योंकर जाना ? तब मैंने ऐसे विचार किया कि, यह माया का कोई चरित्र है और सब ब्रह्मांड मुझको इसकरके दृष्टिआये हैं ! हे रामजी ! ऐसे विचारकर मैं फिर आकाश को उड़ा तब और सृष्टि भासने लगी । जैसे स्वप्ने की सृष्टि संकल्प की सृष्टि और गन्धर्व्वनगर की सृष्टि होती हैं तैसेही यह सृष्टि है—वास्तव में कुछ बनानहीं । जैसे स्वप्नादिक की सृष्टि अनहोती भासती है तैसेही यह जगत् है—केवल बोधमात्र आत्मा अपने आप में स्थित है । हे रामजी ! जब मैं बोध में स्थित होकर देखूं तब मुझको आत्माही भासे और जब संकल्प करके देखूं तब नानाप्रकार के जगत् भासें कहीं नष्टहोते भासें और कहीं नष्टहोकर उत्पन्न होते भासें । जैसे पीपल के पत्ते गिरते हैं और तैसेही उपजते हैं; तैसेही जगत् उपजते भासें । कहीं ऐसे दृष्टि आवें कि; नाशहोकर और के और उत्पन्न हों, कहीं उत्पन्न होतेही दृष्टिआवें और कहीं भिन्न भिन्न सृष्टि और भिन्न भिन्न शास्त्र दीखे । कहीं सूर्य्य चन्द्रमा और तारोंका चक्र ऐसेही फिरता दृष्टि आवे और कहीं और प्रकार दृष्टिआवे; कहीं नरककी सृष्टि और कहीं स्वर्ग के स्थान दृष्टि आवें । इसीप्रकार अनन्त सृष्टियां देखीं; अनन्तही रुद्र देखे; अनन्तही ब्रह्मा देखे और अनन्तही विष्णु देखे । कहीं प्रलयके मेघ गर्जतेथे; कहीं सुमेरुआदिक पर्वत उड़ते दृष्टिआते थे; कहीं ब्रह्माण्ड जलते और द्वादश सूर्य्य तपते थे और कहीं ऐसे स्थान दृष्टि आते थे कि, जन्मतेही पुष्टहोजावें । कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टिआई कि; एक सृष्टि में मुआ और दूसरी सृष्टि में आया और दूसरी सृष्टि में मुआ उसी सृष्टि में आया । कहीं प्रलय होती दृष्टि आवे; कहीं ज्योंकी त्यों सृष्टि दृष्टि आवे और उनके निकट उनको कुछ कष्ट न हो । जैसे दो पुरुष एकही शय्यापर सोयेहों और दोनों को स्वप्ना आवे तो एककी सृष्टि में प्रलय होती है और दूसरेकी ज्योंकीत्यों रहे—इसमें कुछ आ-श्चर्य नहीं । हे रामजी ! इसप्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं परन्तु उनमें सार ब्रह्म-सत्ताही थी और सब स्वप्नवत् थे जैसे केलेके वृक्षमें सार कुछ नहीं निकलता, तैसेही उस स्थान में सार कुछ न देखा । हे रामजी ! क्रिया—काल सब विश्व ब्रह्मस्वरूप है । जैसे समुद्र में तरङ्ग बुद्बुदे सब जलरूप हैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मस्वरूपहै, भिन्न नहीं। जैसे क्षीरसमुद्रमें तरङ्ग आवृत क्षीरसे भिन्न कुछ नहीं होते, तैसेही तुम और मैं, सब जगत् ब्रह्मही है । जब मैं बोधकी ओर देखूं तब सर्व ब्रह्मही दृष्टि आवे और जब संकल्प की ओर देखूं तब नानाप्रकार का जगत् दृष्टि आवे । इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टियां देखीं । कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, अधही है, कहीं गुणकी सृष्टि देखी और कहीं ऐसी सृष्टि थी कि, धर्म अधर्म को जानतीही न थी । हे रामजी ! एक सौ पचास सृष्टियां

त्रेतायुग की मैंने देखीं जो भिन्न भिन्न थीं और भिन्नही भिन्न जगत् भी थे। उनमें ब्रह्मके पुत्र वशिष्ठ भिन्न भिन्न देखे जिसको मेरे समान ज्ञान था और मेरेही समान मूर्त्ति थी। फिर कोई २ मुझसे उत्तम भी थे और उन सबके आगे उपदेश लेनेके निमित्त रामजी बैठेथे। त्रेतायुगमें अनेकयुग और अनेक द्वापर, त्रेता और सतयुग देखे कि, सब चैतन्य आकाश के आश्रय हैं। हे रामजी! हुये विनाही यह सब दृष्टि आये। जैसे मरुस्थलमें जल, आकाश में अनहोती नीलता और रस्सी में सर्प्प भासता है तैसेही ब्रह्मसे अनहोता जगत् भासता है। हे रामजी! मनके फुरनेसे जगत् भासता है और फुरनेके मिटे से सब ब्रह्महीं भासता है। हे रामजी! जैसे सूर्य्यकी किरणों में अनन्त त्रसरेणु दृष्टि आते हैं, तैसेही अनन्त सृष्टि देखीं जो एक चैतन्य से अनेक चैतन्य दृष्टि आई। जैसे वृक्षसे फल प्रकट होते हैं, तैसेही संकल्परूपी वृक्षसे सृष्टिरूपी फल दृष्टि आये। जैसे एक गूलरके फलमें अनन्त मच्छर होते हैं, तैसेही एक आत्मसत्ता के आश्रय अनन्त सृष्टि संकल्पके फुरनेसे मुझको दृष्टि आईं। कहीं महाप्रलयके क्षोभ होतेथे और समुद्र उछलते थे उनके तरंग देवलोक को गिराते, कहीं श्यामरूप चन्द्रमा उष्ण और सूर्य्य शीतल दृष्टि आताथा, कहीं ऐसी सृष्टि दृष्टि आई कि, दिन को अन्धेरा होजावे और रात्रिको जीव उलूकादिक की नाईं चेष्टा करते थे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि उनको रात्रि और दिनका कुछ ज्ञान नहीं; कालका ज्ञान भी नहीं और धर्म अधर्म्म का भी ज्ञान नहीं; जैसी अपनी इच्छाहो तैसेही करते थे। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, पुण्य करनेवाले नरकको प्राप्त होते थे और पापकर्त्ता स्वर्ग को जाते थे और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, बालू से तेल निकलता था; विषपान किये से अमर होतेथे और अमृत पान किये से मरजाते थे। हे रामजी! जैसे किसीका निश्चय होताहै तैसेही आगे भासता है। यह जगत् संकल्पमात्र है। जैसी भावना होती है तैसाही आगेहोकर भासता है। कहीं पत्थरों में कमल उपजते थे और कहीं वृक्षों में रत्न और हीरे दृष्टि आते थे और बड़े प्रकाश संयुक्त आकाश में वृक्षोंके वन दृष्टि आये। कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, मेघके बादलही उनके वस्त्र हैं और वस्त्रों की नाईं बादलों को पकड़लें; कहीं शीशपर मारलिये तब चेष्टा करते थे। निदान अन्धे, काने, बहरे इत्यादिक नानाप्रकारकी सृष्टि देखी। हे रामजी! जब मैं स्वरूप की ओर देखूं तब सब सृष्टि शून्यरूप दृष्टि आवे और जब संकल्प की ओर देखूं तब नानाप्रकार का जगत् भासे। कहीं ऐसेही सृष्टि दृष्टि आवे कि, वे चन्द्रमा और सूर्य्य को जानतेही नहीं, कहीं एक पृथ्वी की सृष्टि पृथ्वी में; अग्निकी सृष्टि अग्नि में और जल की सृष्टि जलमें देखी; कहीं पांचभूतकी सृष्टि देखी—जैसे यह विद्यमान है और कहीं काष्ठ की पुतलीवत् सृष्टि चेष्टा करती देखी—जैसे यह विद्यमान है और भोजनकरती है

और कहीं कहीं प्राणोंविना यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टाकरती हैं । हे रामजी ! जब ऐसे सृष्टि देखी तो मैं महाआकाशमें अनन्तयोजन पर्यंत चलागया परन्तु एक आकाशही दृष्टि आताथा और कोईतत्त्व न दीखा । फिर ऐसी सृष्टि देखी कि, वे खाना, पीना आदि सब चेष्टा वैतालकी नाईं करतेथे परन्तु दृष्टि न आतेथे । जैसे बैताल सब चेष्टा करते हैं और दृष्टि नहीं आते तैसेही वे दृष्टि न आवें । कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, जहां मैं और तुमकी कल्पना भी नहीं केवल निश्चित पदथा और कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, उनका मनही नहीं । कहीं अहंकारसृष्टि देखी; कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि; वे सबमें आत्मभावना करते हैं, कहीं सब अपना आपही जानें और भेदभावना किसीकी न करें कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि, सब मोक्षकी लक्ष्मीसे शोभते हैं; कहीं ऐसी सृष्टि देखी कि; उपजकर नाश होजावें–जैसे नख और केश उपजते हैं–और कहीं ऐसे देखे कि, चिरकाल पर्यंत रहें । हे रामजी ! इसप्रकार मैंने अनन्तसृष्टि देखी जो अनहोतीही फुरती हैं और संकल्पमात्र हैं । और जब सङ्कल्प लय होजाता है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है । चित्त के स्पंदमें सब जगत् जाल देखे पर वास्तवमें मैं ऊर्ध्वगया, अधगया और दशोंदिशा गया परन्तु सब चेतनरूपी समुद्रके बुद्बुदे हैं और कुछ न भासा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्जालवर्णनंनाम शताधिकाशीतितमस्सर्गः १८० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चिदाकाश ब्रह्म अपने आपमें स्थित है–जैसे जल अपने जलभाव में स्थित है–और उसमें जो चैत्योन्मुखत्व होता है मुनीश्वर उसको चिदाकाश कहते हैं । उस मनमें संकल्प विकल्प फुरने से जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड बनगये हैं उनका नाम भूताकाश है । मनसे उपजे हैं इस कारण इनकानाम भूताकाशहै ये संकल्पमात्र हैं–आत्मासे भिन्न नहीं । श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन् ! यह जो संकल्प है कि, ब्रह्माके दिनमें भूत उत्पन्नहोते हैं; रात्रिमें प्रलय होजाते हैं और जब महाप्रलय होता है तब कोई भूत नहीं रहता सब ब्रह्मसत्तामें लीन होजाते हैं और सब जीवन्मुक्त होजाते हैं केवल सूक्ष्म ब्रह्मही शेष रहता है; तो उस सूक्ष्म ब्रह्मसे फिर कैसे सृष्टि उत्पन्न होती है सो कृपाकरके कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है तब सबभूत नष्ट होजाते हैं और ब्रह्मसत्ताही शेष रहती है उसको तुम मानते हो क्योंकि; तुमने भी कहा कि, पीछे ब्रह्मसत्ताही शेष रहती है । जब तुमने माना कि, सबका कारण ब्रह्मशेष रहताहै तो वह ब्रह्मसत्ता शुद्धस्वरूपहै और आकाश से भी सूक्ष्म है; वरन आकाश के हजारहवें भागसे भी अतिसूक्ष्म है । हे रामजी ! ऐसे सूक्ष्म ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति कैसेकहूं ? और जो उत्पत्तिही नहीं तो उसकाप्रलय कैसे हो । यह जगत् जो दृष्टिआताहै सो ब्रह्मका हृदय है । अपनी जो स्वभावसत्ता है

तिसका नाम हृदय है सो यह और जगत् ब्रह्मकावपु है। जैसे स्वप्ने में अपनी संवित्‌ही देश, काल, पर्व्वत आदिकरूप होती है तैसेही यह जगत् संवित्‌रूप है और अपने स्वरूपके अज्ञानसे हुयेकीनाई दुःखदायक भासताहै। जैसे अपनी परछाहीं में अज्ञानसे भूतकल्पके बालक भयपाता है पर जब विचारसे देखता है तब भय निवृत्त होजाता है, तैसेही यह जगत् कुछ उपजानहीं। हे रामजी! चेतन–संवित्‌ही जगत् आकार होकर भासती है और कुछवस्तु नहीं। जो सब वही हुआ तो आदि सर्गका होना और प्रलय सब उसीके अङ्गहैं भिन्ननहीं। 'अस्ति', 'नास्ति','उदय','अस्त' आदि जो शब्दहैं वे सब आकाशरूपहैं और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है। सर्व शब्द ब्रह्महीमें होते हैं और ब्रह्म सर्वशब्दोंसे रहितभी है। जो वह सर्वशब्दोंसे रहितहुआ तो जगत्‌की उत्पत्ति और प्रलय क्योंकर कहीजावे। आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, और अदृश्यहै इन्द्रियोंका विषय नहीं और जगत् भी अविनाशी है क्योंकि, उपजाही नहीं। हे रामजी! जगत् भी आत्मा से भिन्ननहीं–आत्मरूपही है और जो आत्मरूप है तो विकार कहां हो? सर्व्वशब्द और अर्थका अधिष्ठान आत्मसत्ता है इससे जगत् ब्रह्मस्वरूप है। जैसे अंगवाला सर्वअंग अपनेही जानताहै तैसेही सब जगत् ब्रह्मके अंग हैं और वह सबको जानताहै। वास्तवमें सुस्वच्छ; आकाशवत् और देश, काल, वस्तु, सुख, दुःख; जन्म, मरण; साकार, निराकार; केवल, अकेवल; नाशी, अविनाशी इत्यादिक सर्व्व शब्द और अर्थ उसहीके नामहैं। जैसे अवयव अवयवी पुरुषके हैं जो फैलावे तो भी अपना स्वरूप है जो संकोचे तौभी अपने अवयव हैं; तैसेही उत्पत्ति और प्रलय सब ब्रह्मही के अवयव हैं; भिन्ननहीं परन्तु भिन्नकीनाईं जगत् हुआ भासता है। जैसे सूर्य्यकी किरणों में जल कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु हुयेकीनाईं दृष्टि आता है और किरणेंही जल होकर भासती हैं; तैसेही आत्मा जगत् आकार होकर भासताहै सो आत्मा स्वरूपही है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपी एक वृक्षहै उसमें जो संवित् फुरना हुआहै सोही दृढ़मूल है; चित्तशरीररूपी थंमहै; लोकपालडालें हैं; शाखाजगत्‌है; फलप्रकाशहै जिससे जगत् प्रकाशताहै; अन्धकार श्यामता है; पोल आकाशहै; फूलोंके गुच्छे प्रलय हैं; गुच्छों के हिलानेवाले भँवरे विष्णु, रुद्रादिक हैं और जड़ता त्वचाहै। इस प्रकार सम और सत् आत्मब्रह्म है। ब्रह्मत्वभावसे भी कुछ नहीं बना सर्वदा अपने स्वभावमें स्थित है। हे रामजी! जगत्‌का भाव, अभाव; उत्पत्ति प्रलयादिक सर्व्वस्वभाव अनुभवरूप ब्रह्मस्थितहै और उसमें कोई विकार नहीं; वह केवल, शुद्ध; निरञ्जन, आत्मआकाश निर्मलहै! जैसे चन्द्रमाके मंडलमें विषकी वेलनहीं होती, तैसेही आत्मामें कोई विकार नहीं होता निर्मल आकाशरूपहै और आदि––अन्त–मध्यकी कलनासे रहितहै तो

लोकपाल भ्रम कैसे हो ? यह सम्पूर्ण विकार आत्माके अज्ञानसे भासते हैं; जबतुम एकाग्रचित्त करके देखोगे तब जगत्भ्रम शांत होजावेगा । यह जगत्भ्रम फुरने से भासित हुआ है, जब फुरना उलटकर आत्माकी ओर आवेगा तब यह जगत्भ्रम मिट जावेगा । जैसे पवनसे अग्नि जागता है और पवनहीसे दीपक लीनहोजाता है तैसे-ही चित्तके फुरने से जगत् भासता है और जब चित्तका फुरना अन्तर्मुख होता है तब जगत्भ्रम मिटजाता है । हे रामजी ! जब ज्ञानसे देखोगे तब अज्ञानरूप फुरने का त्रिकाल अभाव होजावेगा और बन्धमुक्ति आत्मामें न भासेगी—इसमें कुछ संशय नहीं। यह जगत् जाल आत्मा में कुछ उपजा नहीं अज्ञानसे भासता है; जब विचार करके देखोगे तब अष्टसिद्धिका ऐश्वर्य तृणवत् भासेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेबोधजगदेकताप्रतिपादनंनाम शताधिकैकाशीतितमस्सर्गः १८१ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! यह जगत्जाल तुमने चिद्रूप होकर एकस्थान में बैठ कर देखा अथवा सृष्टिमें जाकरदेखा ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं अनन्त आत्मा सर्वशक्तिसम्पन्न और सर्वव्यापी चिदाकाशहूं मुझ में आनाजाना कैसेहो ? न एक स्थानमें बैठकर देखी और न सृष्टिमें जाकरदेखी । हे रामजी ! मैं चिदाकाशहूं मैंने चि-दाकाशमें देखी । हे रामजी ! जैसे तुम अपने अंगोंको शिखासे लेकर नखपर्य्यन्त देख-तेहो तैसेही मैंने ज्ञाननेत्रसे अपने आपही में जगत् देखा जो निराकार, निरवयव, आकाशरूप, निर्मल; सावयव और फुरनेसे दृष्टिआये हैं; वास्तव में कुछनहीं केवल आकाशरूप है । जैसे स्वप्ने में सृष्टिका अनुभवहो परन्तु संवित्रूपहै बनाकुछनहीं और जैसे वृक्षकेपत्र, टास, फूल, फल सबवृक्षके अङ्गहोतेहैं तैसेही ज्ञाननेत्रसे मैंने जगत् को देखा । हे रामजी ! जैसे समुद्रतरङ्ग, फेन, बुद्बुदे और जलको अपनेआपहीमें देखताहै; तैसेही मैं अपने आपमें जगत्को देखताहूं और अबभी मैं इसदेहमें स्थितहुआ पर्वतकी सृष्टिको ज्ञानसे देखताहूं । जैसे कुटीके भीतर बाहर आकाश एकरूपहै तैसेही मुझको आगे और अबभी जगत् आकाशरूप अपने आप में भासते हैं । जैसे जल अपनेरस को जानता है; बरफ अपनी शीतलता को जानताहै और पवन अपनी स्पन्दताको जा-नता है तैसेही मैं ज्ञानसे सृष्टि अपने में देखताभया । जिस ज्ञानवान् पुरुषको शुद्ध बुद्धि में एकताहुई है वह अपनेको सर्वात्मा देखता है और जिसको आत्मस्थितिहुई है वह वेदनको भी अवेदन देखता है और कदाचित् उपजानहींमानता । जैसे देवता अ-पने अपने स्थानोंमें बैठेहुये दिव्यनेत्रसे कोटियोजन पर्यंत अपने विद्यमान देखते हैं तैसेही जगतोंको मैंने सर्वात्महोकर देखा । जैसे पृथ्वी में निधि; औषध और रससहित पदार्थहोतेहैं सो पृथ्वी अपनेमेंही देखतीहै, तैसेही मैंने जगत्को अपनेमेंहीदेखा । रामजी

ने पूछा, हे भगवन्! वह जो कमलनयनी कांता छन्दकेपाठ करनेवाली थी उसने फिर क्याकिया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह आकाश वपुको धारके मेरे निकटआई और जैसे भवानी आकाशमें आन स्थितहों तैसेही आन स्थितहुई। जैसे मैं आकाश वपु था तैसेही उसकोभी मैंने आकाश वपुदेखा। प्रथम मैंने आकाश में इस कारण न देखा कि, मेरा आधिभौतिक शरीरथा। जब चित्तपद होकर मैं स्थित हुआ तब वह कांता देखी। मैं आकाशरूपी हूं और वह सुन्दरी भी आकाशरूप है और जगत् जाल जो देखे सो भी आकाश रूप हैं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमभी आकाशरूप थे और वह भी आकाशरूप थी पर वचन विलास तो तब होता है जब शरीर होता है और उस में बोलने का स्थान कंठ, तालु, नासिका, दन्त, होठ और हृदय में प्रेरनेवाले प्राण होतेहैं और अक्षरका उच्चार होता है और तुम तो दोनों निराकारथे; तुम्हारा देखना और बोलना किस प्रकार हुआ? बोलना रूप, अवलोक और मनस्कार से होता है——रूप अर्थात् दृश्य; अवलोक अर्थात् इन्द्रियां और मनस्कार अर्थात् मनका फुरना—इन तीनों विना तुम्हारा बोलना कैसेहुआ? वशिष्ठ जी बोले हे रामजी! जैसे स्वप्ने में रूप अवलोक और मनस्कार; शब्द पाठ और परस्पर वचन होतेहैं सो आकाशरूप होते हैं तैसेही हमारा देखना, बोलना और आपसमें संवाद हुआथा। जैसे स्वप्नेमें रूप अवलोक और मनस्कार आकाशरूप होतेहैं और प्रत्यक्षभासतेहैं तैसेही हमारा देखना और बोलना हुआ। यह प्रश्न तुम्हारा नहीं बनता कि, देखना और बोलना कैसे हुआ? जैसे आकाश में सृष्टि देखी है तैसे यह सृष्टि भी है और जैसे उनके शरीर थे तैसेही इनके और हमारे शरीर हैं जैसे यह जगत् है तैसेही वह जगत् है। हे रामजी! यह आश्चर्य्य है कि सत् वस्तु नहीं भासती और असत् वस्तु भासती है। जैसे स्वप्ने में पृथ्वी, पर्व्वत, समुद्र और जगत् व्यवहार है नहीं पर प्रत्यक्ष भासता है और सत्वस्तु अनुभवरूप नहीं भासती तैसेही हम तुम जगत् सब आकाश रूप हैं। जैसे स्वप्ने में युद्ध होते भासते हैं और शब्द होते हैं और आनाजाना भासता है वह सब आकाशरूप है और हुआ कुछनहीं तैसेही यह जगत्भी है। हे रामजी! स्वप्नसृष्टि मिथ्याहै, कुछ बनी नहीं और जो कुछहै सो अनुभवरूपहै——भिन्न कुछनहीं। जो तुम पूछो कि, स्वप्ना क्या है और कैसे होता है तो सुनो; आदि परमात्मतत्त्व में स्वप्ने वचन हुआ है सो विराट्आत्माहै और फिर उससे यह जीव हुये हैं सो आकाशरूप हैं क्योंकि; विराट् आकाशरूप है और ये सब आकाशरूप हैं। स्वप्ने का दृष्टान्त भी मैंने तुमसे बोध के निमित्त कहा है क्योंकि; स्वप्नाभी कुछ हुआनहीं केवल आत्ममात्र है; ब्रह्महीअपने आपमें स्थित है। हे रामजी! वह कान्ता जब मैंने देखी तो मैंने उससे पूछा

क्योंकि; सङ्कल्प मेरा और उसका एकथा। जैसे स्वप्ने में स्वप्ना होता है तैसेही हमारा हुआ। हे रामजी ! जैसे स्वप्ने की सृष्टि आकाशरूप होती है तैसेही हम, तुम और सब जगत् आकाशरूप हैं कुछ हुआ नहीं। स्वप्नजगत् और जाग्रत्जगत् एकरूप है परन्तु जाग्रत् दीर्घकाल का स्वप्ना है इससे इस में दृढ़व्यवहार; उत्पन्न और प्रलय होते भासते हैं। हे रामजी ! स्वप्ने में भोग होते भासते हैं सो भ्रांतिमात्र हैं; निर्मल आकाशरूप आत्मा से भिन्न कुछ नहीं बना। दृश्य और द्रष्टा स्वप्ने की नाईं अनहोते भासते हैं। जो हम तुम आदिक दृश्य को मनरूपी द्रष्टा सत्य मानता है सो दोनों अज्ञान से भ्रममात्र उदय हुये हैं और जो शुद्ध द्रष्टा है सो दृश्य से रहित है। जैसे द्रष्टा आकाशरूप है तैसेही दृश्य भी आकाशरूप हैं और जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभव से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह जाग्रत् भी अनुभवरूप है। हे रामजी ! चिदाकाश जो अनन्त आत्मा है वह इस जगत् का कारण कैसेहो ? जैसे स्वप्ने की सृष्टि का कारण कोई नहीं; तैसेही इस जाग्रत् जगत् का कारण भी कोई नहीं क्योंकि; हुआ कुछ नहीं और जो कुछ है सो अनुभवरूपहै—इससे यह जगत् अकारणहै। हे रामजी ! सब जीव साकाररूप हैं और इनके स्वप्ने की सृष्टि जो नानाप्रकार की होती है सोभी आकाशरूप है कुछ आकार नहीं। जो निराकार अद्वैत आत्मसत्ता है उसमें आदि आभासरूप जगत् फुरा है तो वह आकाशरूप क्यों न हो ? अब साकार और निराकार का भेद कहते हैं सो सुनो। एकचित्त है और दूसरा चैत्यहै—चित्त शुद्ध चिन्मात्र का नाम है और चैत्य दृश्यफुरने को कहते हैं। जिसचित्तको दृश्यका संबन्ध है उसका नाम जीवहै। जिसचित्तको अज्ञान से द्वैतका संबन्ध है और अनात्म में आत्म अभिमान करता है ऐसा जीव साकार रूप है और उसके स्वप्ने की सृष्टि आकाशरूप है सो अचैत्य चिन्मात्र निराकार सत्ता है तो उसका स्वप्ना आभासरूप जगत् आकाशरूप क्यों न हो ? हे रामजी ! यह जगत् निरुपादानरूप है अर्थात् कुछ बनानहीं और चिदाकाश निराकाररूप है। जैसे स्वप्ने में जगत् अकृत्रिम होता है तैसेही यह जगत् है; न इसको कोई निमित्त कारण है और न समवाय कारण है पर आत्मा अच्युत और अद्वैत है सो दृश्य का कारण कैसे कहिये ? हे रामजी ! न कोई कर्त्ता है; न भोक्ता है और न कोई जगत् है और नाहीं कहना भी नहीं बनता। ऐसा जो ज्ञानवान् है सो पाषाणवत् मौन स्थित होता है और जब प्रकृत आचार आन पड़ता है तब उसको भी करता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदेकताप्रतिपादनंनाम शताधिकद्व्यशीतितमस्सर्गः १८२॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! वह जो तुम्हारे निकट आकाशरूप कान्ताआई तो वह शरीर विना अनेक क, च, ट, तादिक अक्षर कैसे बोली और जो तुम स्वप्नेकी नाईं कहो

तो स्वप्ने में भी केवल आकाश होता है वहां य, र, ल, वादिक कैसे बोलते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्वप्ने में जो शरीर होता है सो आकाशरूप है; उस में क, च, ट, तादिक अक्षर कदाचित् उद्देश नहीं हुये। जैसे मृतक कदाचित् नहीं बोलता तैसेही आकाशरूप आत्मा में शब्द कदाचित् नहीं होता। जो तुम कहो कि, स्वप्ने में जो य, र, ल, वादिक अक्षर प्रवृत्त होते हैं तो उसका उत्तर यह है कि; जो कुछ शब्द वहां सत् हुये होते तो निकट बैठे भी सुनते। हे रामजी! निकट बैठे जगत् को नहीं सुना तो ऐसे मैं कहताहूं कि; आकाशरूप है कुछ हुआ नहीं और जो हुआ भासता है सो भ्रान्तिमात्र केवल चिन्मात्र आकाश का किंचन है और आकाश में आकाशही स्थित है; तैसेही यह जगत् भी कुछ हुआ नहीं। हे रामजी! जैसे चन्द्रमा में श्यामता; आकाशमें वृक्ष और पत्थर में पुतलियां नृत्य करती भासें तो मिथ्या है तैसेही इस जगत् का होना भी मिथ्या है। हे रामजी! स्वप्ने में जो जगत् भासता है सो चिदाकाश का किंचन है सो भी आकाशरूपहै—भिन्न कुछनहीं। जैसे स्वप्नेका जगत् आकाशरूपहै तैसेही यहजगत् भी आकाशरूप है और जैसे यह जगत् है तैसेही वे जगत् भी थे और यह जो आकाश है सो आत्माकाश में अनाकाश हैं। जैसे स्वप्ने की सृष्टि भ्रम से प्रवृत्त भासती है तैसे-ही जगत् भी भ्रम से प्रत्यक्ष भासता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो यह जगत् स्वप्ना है तो जाग्रत् क्यों भासता है और जो असत् है तो सत्यकी नाईं क्यों भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक मृदुसंवेग है; दूसरा मध्यसंवेग है और तीसरा तीव्रसंवेग है—संवेग संकल्पके प्रमाण को कहते हैं सो त्रिविध है। जैसे कोई पुरुष अपने स्थान में बैठा हुआ मनोराज से किसी व्यवहारको रचता है सो उसको जानता है कि; संकल्पमात्र है और नट स्वांग धारता है तब वह जानता है कि, मेरा स्वांग है और अपने स्वरूप को सत्य जानता है। इसका नाम मृदुसंवेग है क्योंकि; अपना स्वरूप नहीं भूला। मध्यसंवेग यह है कि, जैसे किसी पुरुष को स्वप्ना आता है तो उसमें स्वप्न सृष्टि भासती है और एक शरीर अपना भासताहै; तब अपने शरीर को सत्य जानता है और जगत् को भी सत्य जानता है क्योंकि; स्वरूप का प्रमाद है इससे स्वप्न कालकी सृष्टि को सत्य जानता है और आगे हुये को असत्य जानता है। इसका नाम मध्य संवेगहै क्योंकि; सोया हुआ शीघ्रही जाग उठता है और जो सोया और जागे नहीं उसका नाम तीव्रसंवेग है। हे रामजी! आदि संकल्प स्वप्न में रूपभासते हैं और उस में नानाप्रकारकी सृष्टि होकर स्थित है। जिनको आदिस्वरूप का प्रमाद नहीं हुआ उनको यह जगत् मृदुसंवेग है क्योंकि; वे अपनी लीलामात्र असत्य जानते हैं और जिनको आदिस्वरूप का प्रमाद हुआ है वे फिर शीघ्रही जाग उठते हैं तब उन को वह जगत् असत्य भासता है और इस जगत् में सत्य प्रतीति नहीं होती। जिनको

प्रमाद हुआ है और फिर नहीं जागे। उनको यह जगत् सत्यही भासताहै क्योंकि; उनकी चित्तकी वृत्तिका प्रमाण तीव्र होगया है इसकारण अज्ञानी को यह जगत् स्वप्न जाग्रतहो भासता है--जैसे स्वप्नकाल में स्वप्नेकी सृष्टि सत्यहो भासती है। हे रामजी! चित्तके फुरनेका नाम जगत् है; जब चित्त बहिर्मुख होता है तब जगत् हो भासता है और स्वरूप का अज्ञान होता है और जब अज्ञान होता है तब जगत्भ्रम दृढ़ होताजाता है--इससे इस जगत् का कारण अज्ञान है। हे रामजी! आत्माके अज्ञान से जगत् भासता है; जब आत्मज्ञान होगा तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा। वह आत्मा अपना आपहै इससे आत्मपदमें स्थित होरहो तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा। हे रामजी! अज्ञान से इस जगत्की सत्य प्रतीति होती है और उसमें जैसी जैसी भावना होती है तैसेही जगत्हो भासता है। हे रामजी! जिस प्रकार जगत्भ्रम सत्यहो भासता है सो भी सुनो कि, जो अज्ञानी जीव है वह जब मृतक होता है तब मुक्त नहीं होता बल्कि अज्ञान के वशसे जड़ पत्थरवत् होता है क्योंकि; चेतनरूपहै। हे रामजी! जब मृत्यु होती है तब आकाशरूप चित्तमेंही जगत् फुर आताहै और अपनी वासना के अनुसार नानाप्रकार का जगत् हो भासता है, एवम् नाना प्रकार के व्यवहार रचना क्रिया सहित होकर भासते हैं। कल्पपर्यंत सब क्रिया जीवोंकी अन्तवाहक होती हैं--जैसी हमारी है। हे रामजी! तुम देखो वह जगत् क्यारूप है--किसी कारणसे तो नहीं उपजा? जैसे वह जगत् कलनामात्र सत्हो भासता है; तैसेही इसजगत् कोभी जानो। हे रामजी! यह जो तुमको स्वप्ना आताहै और उसमें पुरुष पदार्थ हैं वे भी सत्य हैं क्योंकि; ब्रह्मसत्ता सर्वात्मक है। हे रामजी! प्रबोध हुये से भी स्वप्न के पदार्थ विद्यमान भासते हैं, इसीसे कहाहै कि; स्वप्न संकल्प और जाग्रत् तुल्य है। जैसे आगे शुक्र, ब्राह्मणके पुत्र इन्द्र, लवण और गाधिका उदाहरण कहा है, इनको मनोराजभ्रम प्रत्यक्ष हुआ है और दीर्घतपाको जिसका उदाहरण आगे कहेंगे प्रत्यक्ष स्वप्न हुआ है। जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है क्योंकि; संकल्प अपना अपना है इससे सृष्टि भिन्न भिन्न है और सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है। सर्व सृष्टि का प्रतिबिम्ब आत्मरूपी आदर्श में होता है और सर्व सृष्टि आत्माका अनुभव है। जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है और उस वृक्षसे और वृक्षहोते हैं तौ भी विचारसे देखो कि, बीज तो एकही था और सब वृक्षआदि उसी बीजसे उपजे हैं; तैसेही एक आत्मा से अनेक सृष्टि प्रकाशती हैं परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं। जैसे एक पुरुष सोया है और उसको स्वप्नेकी सृष्टि भासती है और फिर स्वप्ने में जो बहुत जीव भासते हैं उनको भी अपने अपने स्वप्नेकी सृष्टि भासती है। हे रामजी! जिससे आदि स्वप्नेकी सृष्टि भासती है वह पुरुष एकही है और उस एकही में अनन्त सृष्टि चित्त के फुरने

से होती हैं; तैसेही आत्मसत्ता के आश्रय अनन्तसृष्टि फुरती हैं परन्तु स्वरूप से कुछ हुआ नहीं सब आकाशरूप हैं और जीवों को अपनी अपनी सृष्टि अज्ञान से भासती है। हे रामजी! जीवोंको और सृष्टि का ज्ञान नहीं होता अपनीही सृष्टि को जानते हैं क्योंकि; संकल्प भिन्न भिन्न हैं। कितनों को हम स्वप्नों के नरहैं और कितने हमको स्वप्ने के नरहैं; वे और सृष्टि में सोये हैं और हमारी सृष्टि उनको स्वप्नेमें भासती है तिनको हम स्वप्ने के नरहैं और जो हमारी सृष्टिमें सोये हैं उनको स्वप्ने में और सृष्टि भासि आई है सो हमारे स्वप्ने के नर हैं। हे रामजी! इस प्रकार आत्मतत्त्व के आश्रय अनन्त सृष्टि भासती हैं। जो जीव सृष्टिको सत् जानकर विचरते हैं वे मोक्ष मार्ग से शून्य हैं। जैसे मनुष्य जो शयन करता है तो उसको स्वप्ने में प्रमाण होताहै और उसमें जो जीव होते हैं उनको फिर स्वप्ना होता है तब अपनी अपनी सृष्टि उनको भासती है तो वह अनन्तसृष्टि अनुभव के आश्रय होती हैं; तैसेही एक आत्मा के आश्रय असंख्य सृष्टि फुरती हैं सो कई समान; कई अर्द्ध समान; और कई विलक्षण भासती हैं पर अपनी अपनी सृष्टि को जीव जानते हैं। जैसे एक मन्दिर में दश पुरुष सोये हैं और उनको अपना अपना स्वप्ना आवे तब उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता उसकी सृष्टि को वह नहीं जानता; तैसेही यह सृष्टि भी और को नहीं भासती क्योंकि; संकल्प अपना अपना है। जैसे पत्थर को पत्थर नहीं जानता और जो अन्तवाहक शरीर योगेश्वर हैं उनको सृष्टिका ज्ञान होता है। हे रामजी! वास्तव में सृष्टि भी निराकार आकाशरूप है। जैसे सूर्य्यकी किरणों में जलाभास होताहै तैसेही आत्मा में सृष्टिहै और जैसे रस्सीमें सर्पभासता है तैसेही आत्मामें सृष्टि भासती है। हे रामजी! वास्तव में कुछ हुआ नहीं; सर्वदाकाल सर्वप्रकार आत्माही अपने आपमें स्थित है; जिनको आत्माका प्रमाद हुआहै उनको जगत् भासताहै वास्तवमें जगत् किसी कारण से नहीं उपजा—आभासरूप हैं। सम्यक्ज्ञान के हुये से ब्रह्म अद्वैत भासता है और असम्यक्ज्ञानसे अद्वैतरूप जगत् हो भासता है। जैसे रस्सीके सम्यक्ज्ञानसे रस्सीही भासती है और असम्यक्ज्ञान से सर्प भासता है; तैसेही आत्माके असम्यक्ज्ञान से जगत् भान होता है। हे रामजी! मैंने उस देवीसे प्रश्न किया कि; हे देवि! तुम कहां से आईहो; तुम्हारा स्थान कहां है; तुम कौनहो और यहां किसनिमित्त आईहो? तब वह देवी बोली, हे मुनीश्वर! ब्रह्मरूपी महाकाश के अणुकाभी जो अणुहै और उसके छिद्रमें भी जो छिद्रहै तिसमें तुम रहतेहो और तुम्हारा यह जगत् भी उसी में है। तुम्हारी सृष्टिका जो ब्रह्माहै तिसकी संवेदनरूपी कन्याने यह जगत् रचाहै। उस तुम्हारे जगत् में पृथ्वी है और उसके ऊपर समुद्र है जिनसे पृथ्वी घेरीहुई है उसके ऊपर दूना और द्वीपहै और उस द्वीपके ऊपर दूना समुद्र है। इसी प्रकार पृथ्वी को

लघके आगे सुवर्णकी पृथ्वी आती है जो दशसहस्रयोजन पर्यन्त महासुन्दर प्रकाशरूप है और उसने सूर्य्य चन्द्रमा के प्रकाश को भी लज्जित किया है। उसके परे और लोकालोक पर्व्वत हैं जो सब ठौर प्रसिद्ध हैं और उन में बहुत नगर बसते हैं। कहीं ऐसे स्थान हैं जहां सदा प्रकाशही रहता है—जैसे ज्ञानीके हृदय में सदा प्रकाश रहता है; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां सर्वदा अन्धकारही रहता है—जैसे अज्ञानी के हृदय में अन्धकार रहता है; कहीं ऐसेही स्थान हैं जहां प्रत्यक्ष पदार्थ मिलते हैं—जैसे पण्डित के हृदय में अर्थ प्रत्यक्ष होते हैं; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां पदार्थ नहीं मिलते—जैसे मूर्खके हृदय में श्रुतिका अर्थ नहीं होता; कहीं ऐसे स्थान हैं जिनके देखने से हृदय प्रसन्नहोता है—जैसे सन्तोंके दर्शन से हृदय प्रसन्न होता है; कहीं ऐसे स्थान हैं जिन में सदा दुःखही रहता है जैसे अज्ञानी की संगति में सदा दुःख रहता है; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां सूर्य्य उदय नहीं होता; कहीं सूर्य्य चन्द्रमा दोनों उदय होते हैं; कहीं पशुही रहते हैं; कहीं मनुष्यही रहते हैं; कहीं दैत्य और कहीं देवताही रहते हैं; कहीं किसान रहते हैं; कहीं धर्म्मका व्यवहार होता है; कहीं विद्याधरही रहते हैं; कहीं उन्मत्तहाथी हैं कहीं बड़े नन्दनवन हैं; कहीं ऐसे स्थान हैं जहां शास्त्रका विचारही नहीं; कहीं शास्त्र के विचारवान् हैं; कहीं राज्यही करते हैं; कहीं बड़ी बस्तियां हैं; कहीं उजाड़ वन हैं; कहीं पवन चलता है; कहीं बड़े खात छिद्र हैं; कहीं ऊर्ध्वशिखर हैं जहां विद्याधर और देवता रहते हैं; कहीं मच्छ, यक्ष और राक्षस हैं और कहीं विद्याधरी देवियां महामत्त रहती हैं। इसी प्रकार अनन्त देशों और स्थानोंकी बस्तियां हैं। उस लोकालोक के शिखर पर सात योजन का एक तालाब है जिसमें फूले कमल लगे हैं; सब ओर कल्पवृक्ष हैं और वहां के सब पत्थर चिन्तामणि हैं। उसके उत्तर दिशा में एक सुवर्णकी शिला पड़ी है जिसके शिखर पर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बैठते हैं और विलास करते हैं उसके ऊपर शिलामें मैं रहतीहूं और मेरा भर्त्ता और सम्पूर्ण परिवार भी वहांही रहता है। हे मुनीश्वर! उसमें एक वृद्ध ब्राह्मण रहता है जो अब तक जीताहै और एकांत जाकर सदा वेदका अध्ययन करता है। उसने मुझको अपने बिवाहके निमित्त अपने मनसे उपजाया है और अब मैं बड़ी हुई हूं तो वह मेरे साथ विवाह नहीं करता। वह जबसे उपजाहै तब से ब्रह्मचारीही रहताहै और वेदका अध्ययन करके विरक्तचित्तहुआ है। हे मुनीश्वर! मैं वस्त्रों और भूषणों संयुक्तहूं; चन्द्रमाकीनाईं मेरे सुन्दर अंगहैं और मैं सब जीवोंके मोहनेवालीहूं। मुझको देखकर कामदेव भी मूर्च्छित होजाताहै; फूलोंकी नाईं मेरा हँसना है और सबगुण मेरेमें हैं। महा लक्ष्मी की मैं सखीहूं पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकांत जाकर बैठाहै और सदा वेदका अध्ययन करताहै। वह बड़ा दीर्घसूत्री है; जब मैं उत्पन्न हुई थी तब वह कहताथा कि; मैं तुझको बिवाहूंगा पर अब मैं यौवन अवस्था

को प्राप्तहुईहूं तब त्यागकर एकांत जाबैठाहै : हे मुनीश्वर! स्त्रीको सदा भर्त्ता चाहिये। अब मैं यौवन अवस्था से जलती हूं और बड़े तालाव जो कमल सहित दृष्टि आते हैं वे भर्त्ताके वियोगसे मुझे अग्निके अंगारे भासते हैं और नन्दनवन आदिक बड़े बाग मुझको मरुस्थलकी नाईं भासते हैं। इनको देखकर मैं रुदन करतीहूं और नेत्रों से ऐसा जल चलता है जैसे वर्षा कालका मेघ वर्षता है। जब मैं मुख आदिक अपने अंगोंको देखतीहूं तब नेत्रोंके जलसे कमलिनी डूब जाती है और जब कल्पतरु और तमाल वृक्षके फूल और पत्र शय्यापर बिछाकर शयन करतीहूं तब अंगोंके स्पर्श से फूल जलते हैं। जिस कमलसे मेरा स्पर्श होताहै सो जलजाताहै। हे भगवन्! भर्त्ताके वियोग से मैं तपीहुईहूं। जब मैं बर्फके पर्व्वतपर जा बैठती हूं तब वहभी अग्निवत् हो-जाताहै और मैं नानाप्रकारके फूलोंको गलेमें डारती हूं तब भी तप्तता निवृत्त नहीं होती। मेरे भर्त्ताकी देह त्रिलोकी है और उसके चरणों में सदा मेरी प्रीति रहती है। मैं गृहके सब आचार करतीहूं और सब गुणोंसे सम्पन्नहूं; सबको धार रहीहूं; सबकी प्रतिपालक हूं और ज्ञेय की मुझको सदा इच्छा रहती है। हे मुनीश्वर! मैं पतिव्रताहूं; जो पुरुष पतिव्रता स्त्री के साथ स्पर्श करताहै वह बहुत सुख पाता है और तीनों तापसे रहित होता है क्योंकि उसमें सबगुण मिलते हैं और वह सदा भर्त्तामें प्रीति करती है और भर्त्ता की प्रीति उसमें होती है—ऐसी मैं हूं पर मुझको त्यागकर वह ब्राह्मण एकान्त जा बैठा है और सर्वकाल वेदका अध्ययन और विचार करता रहता है। मेरे भर्त्ताने कामना का त्याग किया है, उसको कोई इच्छा नहीं रही और मैं उसके वियोग से जलती हूं। हे भगवन्! वह स्त्री भी भली है जिसका भर्त्ता बिवाह करके मरगया हो; कुँवारी भी भली है और जो भर्त्ता के संयोग से प्रथमही मरजाती है वह भी श्रेष्ठ है पर जिसको भर्त्ता प्राप्त हुआ है परन्तु उसको स्पर्श नहीं करता तो उसको बड़ा दुःख होता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष परमात्माकी भावना के संस्कार से रहित उत्पन्न हुआ है वह निष्फल है। जैसे पात्रबिना अन्न निष्फल होता है—अर्थ यह कि, सन्तजन, तीर्थ आदिक से रहित पापस्थानों में डालाहुआ धन निष्फल होता है और जैसे सम दृष्टि विना बोध और वेश्याकी लज्जा निष्फल है; तैसेही मैं पति विना निष्फल हूं। हे भगवन्! जब मैं शय्याबिछाकर शयन करती हूं तब फूलभी जल जाते हैं। जैसे समुद्र को बड़वाग्नि जलाता है तैसेही कमलों को मेरे अंगजलाते हैं। हे मुनीश्वर! जो सुख के स्थान हैं सो मुझको दुःखदायक भासते हैं और जो मध्य स्थान हैं सो न सुखदेते हैं न दुःखदेते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरीविशोकवर्णनंनाम शताधिकद्व्यशीतितमस्सर्गः १८२॥

हे मुनीश्वर! इसप्रकार मैं तपकरती फिरती हूं। अब मुझको भी भर्त्ता के वियोग से वैराग्य उपजा है। भर्त्ता का वैराग्य रूपी ओला मेरी तृष्णारूपी कमलिनी पर पड़ा है और उससे मैं जलगई हूं इससे जगत् मुझ को विरस भासता है। हे मुनीश्वर! यह जगत् असार है, इसमें स्थिर वस्तु कोई नहीं; इसकारण मुझको भी वैराग्य उपजा है। मेरा भर्त्ता जो स्वभूत है सो संसार से विरक्त होकर एकांतजा बैठा है और वेद को विचारता रहता है परन्तु आत्मपद को नहीं प्राप्त हुआ। वह मन के स्थिर करने का उपाय करता है परन्तु अब तक उसका मन स्थिर नहीं हुआ। सर्व ईषणासे रहित होकर वह शास्त्रको विचारता रहताहै पर आत्माका साक्षात्कार उसे नहीं हुआ। मुझको भी वैराग्य उपजा है; अब हम दोनों वैराग्य से संपन्न हुये हैं और परम पद पाने की इच्छा हुई है। शरीर हमको विरस होगया है—जैसे शरत्काल की बेलि विरस होती है--इसकारण मैं योग की धारणा करनेलगी हूं। यह शक्ति अब मुझको उत्पन्न हुई है कि; आकाशमार्ग को आऊं और जाऊं; योग धारणासे आकाश पर उड़ने की भी शक्तिहुई है और सिद्ध मार्गकी धारणासे सिद्धों के मार्ग में भी आतीजाती हूं परन्तु अर्थ कुछ सिद्ध न हुआ क्योंकि; पाने योग्य आत्मपद प्राप्ति नहीं हुआ। जिसके पाये से कोई दुःख न रहै। अब मुझको निर्वाण की इच्छाहुई है। मैंने सिद्धों के गण; देवता; विद्याधर और ज्ञानियों के बहुत स्थान देखे हैं परन्तु जहांगई वहां सब तुम्हारी ही स्तुति करते हैं कि; वशिष्ठजी बल के द्वारा अज्ञान को निवृत्त करते हैं। जैसे बड़ा मेघ वर्षता है परन्तु जब वायु चलता है तब मेघको दूर करताहै तैसेही तुम्हारे वचन अज्ञान को दूरकरते हैं। जब ऐसे मैंने तुम्हारी स्तुति सुनी तब मैंने इस सृष्टि में आने का अभ्यास किया और धारणाके अभ्यास से तुम्हारी सृष्टि में आई हूं। इससे, हे मुनीश्वर! मेरे और मेरे भर्त्ताको शान्ति के अर्थ आत्मज्ञान का उपदेश करो। मेरा भर्त्ता जो मन के स्थित करने का यत्न करता है उसको तुम ऐसा उपदेश करो कि, शीघ्रही स्थित हो और आत्मपद को प्राप्तकरे और मुझको भी आत्मज्ञान का उपदेश करे। हे भगवन्! तुममाया से पार मुझको दृष्टि आते हो इसकारण मैं तुम्हारी शरण आई हूं। मैं स्त्री बुद्धिकरके तुम्हारे निकट नहीं आई पर शिष्यभाव को लेकर आई हूं और मैं जानती हूं कि; मेरा अर्थ सिद्ध होरहा है क्योंकि; जो कोई महापुरुष की शरणआय प्राप्त होता है तो निष्फल नहीं जाता बल्कि सब अर्थ सम्पूर्ण होता है। जैसा किसी का अर्थ होता है वैसा महापुरुष सिद्ध करदेते हैं। जैसे कल्पवृक्ष के निकट कोई जाता है तो उसका अर्थ पूर्णहोता है, तैसेही मेरा अर्थ सफल होजावेगा। इससे कृपाकरके मुझको उपदेश करो। हे मुनीश्वर! तुम मानो दयाके समुद्रहो। सबके अर्थ सम्पूर्ण करने को तुम समर्थ हो और सुहृद् हो अर्थात् उपकार की अपेक्षा बिना उ-

पकार करते हो; इससे मैं अनाथ तुम्हारी शरण में आई हूं मुझको आत्मपद को प्राप्त करो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधरीवेगवर्णनन्नाम शताधिकत्र्यशीतितमस्सर्ग्गः १८३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार विद्याधरीने मुझसे कहा तब मैं आकाश में सङ्कल्पका आसन रचकर उसपर बैठा और सङ्कल्पसेही एक आधार भूतका आसन रचकर उसको बैठाया क्योंकि, हमारा शुद्ध सङ्कल्पहै जो कुछ चिन्तना करते हैं सो होजाता है। तब मैंने कहा, हे देवि! यह तू कैसे कहती है कि; शिलामें हमारी सृष्टि है सो कह? शिलामें सृष्टि कैसे बसती है? विद्याधरी बोली; हे भगवन्! तुम्हारी सृष्टि में जो लोकालोक पर्व्वत हैं सो प्रसिद्ध हैं, उनके उत्तरदिशा शिखरपर एक सुवर्ण की शिला है उस में हमारी सृष्टि है, तैसे उस शिला में सृष्टि बसती है। उस सृष्टि का ब्रह्मा मेरा भर्त्ता है और मैं उसकी स्त्रीहूँ। त्रिलोकी इस प्रकार बसती है कि, ऊर्ध्वलोक में देवता रहते हैं; पातालमें दैत्य और नाग रहते हैं; मध्य मण्डल में मनुष्य और पशु, पक्षी बसते रहते हैं और समुद्र, पर्व्वत, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशभी हैं। समुद्रने गम्भीरता; जीवोंने प्राण; पवनने आकाश में चलना; आकाशने पोल; पृथ्वी ने धैर्य; विद्याधरोंने ज्ञान; अग्निने उष्णता; सूर्यने प्रकाश; दैत्योंने क्रूरता; विष्णुने जगत् की रक्षा के निमित्त अवतार; नदियों ने चलना और पर्वतों ने स्थिरता अंगीकार कियाहै। इस प्रकार सब नीति परमात्मा के आश्रयरची हुईहै और कल्प पर्यंत ज्यों की त्यों मर्यादा रहती है। इसीप्रकार जीव जन्मते और मरते हैं; देवता विमान पर आरूढ़ फिरते हैं; दिनका स्वामी सूर्य है; रात्रिका स्वामी चन्द्रमा है और नक्षत्र और तारोंका चक्र पवन से फिरता है। इस चक्रके दो ध्रुव हैं और काल इस चक्रको फेरता है सो फेरता फेरता नाशरूप जो कालहै सो कल्प के अन्तमें उस चक्रके मुखमें जारहता है। हे मुनीश्वर! परमात्मा अनन्त है, उसका कोई अन्त नहीं जानसक्ता; जब संवेदन फुरती है तब जानता है कि, यह जगत् ईश्वरकी सत्तासे है। और जब फुरने से रहित होताहै तब जाना नहीं जाता कि, जगत् कहांगया। हे मुनीश्वर! तुम चलो और हमारी सृष्टिका विलास देखो। तुम तो जगत् के विलाससे पारहुये हो और यद्यपि तुमको इच्छा नहीं है तो भी कृपाकरके उस शिलामें हमारी सृष्टि देखो। इतना कहकर वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! इसप्रकार कह कर वह आकाश मार्ग में मुझे लेचली-जैसे गन्ध को वायु लेजाता है-तब हम और वह दोनों आकाश मार्ग में उड़े और भूताकाश में चिरकाल उड़ते गये तब हम को लोकालोक पर्वत दृष्टि में आया, उसके निकट जाकर उसके शिखर देखे कि; बहुत ऊंचेगये हैं और बड़े मेघ

उसपर बिचरते हैं और शिखर ऐसे सुन्दर हैं कि, मानों क्षीरसमुद्र से चन्द्रमा निकला है वहां जाकर मैंने महासुन्दर सुवर्ण की एक शिला देखी और उसके निकट गया तो मैंने कहा, हे देवि! यह तो शिला पड़ी है, तुम्हारी सृष्टि कहां है? इसमें पृथ्वी द्वीप की मर्यादा जिसका आवरण चहुंफेर समुद्र होता है और उनपर की दशसहस्र योजनपर्य्यन्त सुवर्ण की पृथ्वी, पर्वत, सप्तलोक, आकाश, दशोंदिशा, तारामण्डल, सूर्य, चन्द्रमा जो रात्रि दिन के प्रकाशक हैं और भूतों का संचार, देवगण, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, योगीश्वर, वरुण, कुबेर, जगत् की और उत्पत्ति प्रलय का संचार, पाताल की भूमिका; मण्डलेश्वर; न्याय करनेवाले; मरुस्थल की भूमिका; नन्दनवनादिक; दैत्यों के विरोध संचारक देवता कहां हैं? यह तो एक शिला दृष्टि में आती है। हे रामजी! जब मैंने आश्चर्य को प्राप्त होकर ऐसे कहा तब विद्याधरी बोली; हे भगवन्! मुझ को तो प्रत्यक्ष इस शिला विषय में अपनी सृष्टि भासती है—जैसे शुद्ध आदर्श में अपना मुख भासता है तैसेही मुझको अपनी सृष्टि इस शिला में प्रत्यक्ष भासती है—जैसी मर्यादा देश देशान्तर की मुझ को भासती है इसका संस्कार पूर्व का मेरे हृदय में है इसी से मुझको प्रत्यक्ष भासती है और तुम्हारे हृदय में इसका संस्कार नहीं है इसी से तुम को नहीं भासती। तुम्हारी सृष्टि की अपेक्षासे यह शिला पड़ी है और तुमको शिला का निश्चय है इस कारण तुम को इसमें जगत् नहीं भासता। हे भगवन्! जिसका अभ्यास होता है सो पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और वही भासता है। हे मुनीश्वर! गुरु शिष्य को उपदेश करता है पर उपदेश-मात्र से इष्ट की प्राप्ति नहीं होती, जब उसका अभ्यास करे तब इष्ट की प्राप्ति होती है। हे मुनीश्वर! ऐसा शास्त्र कोई नहीं कि, अभ्यास किये से न मिले; ऐसा न्याय और सिद्धता कोई नहीं जो अभ्यास किये से न मिले; ऐसी कला कोई नहीं जो अभ्यास किये से न पाइये और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यास की प्रबलता से सिद्ध न हो; जो थक कर फिरे नहीं तो अवश्य सिद्ध होते हैं। हे मुनिश्वर! जो कुछ सिद्ध होता दृष्ट आता है सो सब अभ्यास के वश से होता है। प्रथम जब मैं तुम्हारे साथ आई थी तब मुझको भी शिला में सृष्टि नहीं भासी थी क्योंकि, यह सृष्टि अन्तवाहक शरीर में स्थितहै। तुम्हारे साथ द्वैतरूपी कथा के कहने से अन्तवाहक शरीर मुझको विस्मरण होगया था इससे विश्व की चर्चा और तुम्हारी सृष्टि की चर्चा करके मुझको वह स्पष्ट नहीं भासती। जैसे मलिनदर्पण में मुख नहीं भासता तैसेही तुम्हारी सृष्टि के सङ्कल्प से मुझको भी अपनी सृष्टि भासती नहीं परन्तु चिरकाल जो अभ्यास किया है इससे फिर भासती है क्योंकि, जो कुछ दृढ़ अभ्यास होता है उसकी जय होती है। हे मुनीश्वर! चिन्मात्रपद में फुरने से आदि जीवों के शरीर अन्तवाहक हुये हैं अर्थात् आकाशरूप शरीर थे; जब उन में प्रमाद करके दृढ़ अभ्यास हुआ तब आधिभौतिक होकर भासने लगे। जब फिर

भावना उलटकर योग की धारणा से अभ्यास होता है तब आधिभौतिकता क्षीण होजाती है और अन्तवाहक प्रकट होता है उससे आकाश में पक्षी की नाईं उड़ता फिरता है। इससे तुम देखो कि, अभ्यास के बलसे सब कुछ सिद्ध होता है। हे मुनीश्वर! अज्ञान से जगत् को अहंकाररूपी पिशाच लगा है सो दृढ़ स्थित हुआ है; जब शास्त्र के वचनों में दृढ़ अभ्यास होता है तब क्षीण होजाता है। हे मुनीश्वर! तुम देखो कि, जिस किसी को सृष्टि की प्राप्ति होती है सो अभ्यास के बलसे होती है; जो अज्ञानी होता है और ब्रह्म अभ्यास करता है तो ज्ञानी होता है? पर्वत बड़ा है परन्तु जब अभ्यास से चूर्ण किया चाहे तो चूर्ण होता है; और संपूर्ण वृक्ष को भोजन करना कठिन है परन्तु अभ्यास करके शनैः शनैः घुनखाजाता है; आप तो छोटा है परन्तु जो वस्तु पानी कठिन हो सो अभ्यास से सुगम होजाती है। जैसे चिन्तामणि और कल्पतरु के निकट जाकर जिसपदार्थ की वाञ्छा करो सो सिद्धहोती है; तैसेही आत्मरूपी चिन्तामणि और कल्पतरु है उसमें जिसपदार्थ का अभ्यास करता है सो सिद्धहोताहै और अभ्यासरूपीभूमिका फल देती है। जो बालकअवस्था से अभ्यास होता है सोही वृद्धावस्थापर्य्यन्त रहता है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष बांधव नहीं होता और निकट आरहता है तो निकट के अभ्यास से बांधव होजाता है परन्तु बांधव जो विदेश में रहता है तो अभ्यास की क्षीणता से अबांधव होजाता है। हे मुनीश्वर! विष भी अमृत की भावना करने से अभ्यास के द्वारा अमृत होजाता है। जो मिष्टान्न में कटुक भावना होती है तो कटु भासता है और कटु में मिष्टान्न की भावना कीजिये तो मिष्टान्नहो भासता है—जैसे किसी को नींब प्रियतम है और किसी को मिष्टान्न प्रियतम है। हे मुनीश्वर! जो कुछ सिद्धहोता है सो अभ्यास के बलसे सिद्धहोता है; जो पुण्य कियाहोता है तो पापके अभ्यास से नष्ट होजाता है और पाप पुण्य के अभ्यास से नाश होता है; माताभी अमाता होजाती है; अर्थ के अनर्थ होजाते हैं; मित्र अमित्र होजाता है और भाग्य अभाग्यरूप होजाते हैं; निदान सब पदार्थ चल होजाते हैं परन्तु अभ्यास का नाश कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ निकट पड़ा होता है और साधक इन्द्रियां भी विद्यमान होती हैं तौ भी अभ्यास विना प्राप्त नहीं होता। जहां अभ्यासरूपी सूर्य उदय होता है वहां दृष्टिरूप पदार्थ की प्राप्ति होती है। अज्ञानरूपी विसूचिकारोग ब्रह्मचर्चा के अभ्यास से नाश होजाता है। हे मुनीश्वर! संसाररूपी समुद्र आदि—अन्तसे रहित है पर आत्म अभ्यासरूपी नौका द्वारा उससे तरजाताहै—जो अभ्यासको न त्यागोगे तो अवश्य तरोगे। हे मुनीश्वर! जो पदार्थ उदय हो उसके अभावकी भावना कीजिये तो अस्त होजाता है और जो अस्त हो पर उसके उदय होने की भावना कीजिये तो उदय होता है। जैसे सिद्धके

शापसे उदय पदार्थ की नष्टता होती है और वरसे अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति होती है। हे मुनीश्वर ! जो पुरुष शास्त्र से इष्ट पदार्थ को सुनता है और उसका अभ्यास नहीं करता उसे मनुष्यों में नीच जानो; उसको इष्ट पदार्थ की कदाचित् प्राप्ति नहीं होती जैसे बन्ध्याके पुत्र नहीं होता, तैसेही उसको इष्ट पदार्थ की सिद्धि नहीं होती। हे मुनीश्वर ! जो आत्मरूपी इष्ट को त्यागकर और किसी पदार्थ की वाञ्छा करता है वह अनिष्ट से अनिष्ट पाकर नरक से नरक को भोगता है। हे मुनीश्वर ! जिसको अभ्यास का भी अभ्यास प्राप्त हुआ है उसको शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होती है और अभ्यासके बलसे इष्ट को पाता है—जैसे प्रकाशसे पदार्थ देखिये कि, वह पड़ा है तो उसका नाम अभ्यास है और उसके निमित्त यत्न करना अभ्यास का अभ्यास है। जब यत्न और अभ्यास करते हैं तब पदार्थ पाते हैं। वारंवार चिन्तनाकरने का नाम अभ्यासहै; जब ऐसा अभ्यासहो तब इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है—अन्यथा नहीं होती। हे मुनीश्वर ! चौदह प्रकार के भूतजात हैं; जैसा जैसा किसी को अभ्यास है उसके बलसे तैसाही तैसा सिद्धहोता है। अभ्यासरूपी सूर्यके प्रकाश से जीव अपने इष्ट पदार्थ पाता है और अभ्यास के बल से भय निवृत्त होताहै और पृथ्वी, पर्व्वत, वन, कन्दरामें निर्भय होकर विचरता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्याधैर्य्यभ्यासवर्णन
न्नामशताधिकचतुरशीतितमस्सर्ग्गः १८४ ॥

विद्याधरीबोली, हे मुनीश्वर ! सर्व पदार्थ निरन्तर अभ्याससे सिद्धहोते हैं। तुम्हारा शिला में दृढ़निश्चय होता है इससे तुमको शिलाही भासती है और मुझको इसमें सृष्टि भासती है। जब तुम्हारा संकल्प भी मेरे संकलपके साथ मिले तब तुमको भी यह जगत् भासे। यह जगत् जो स्थित है सो मेरे अन्तवाहकमें है और आदिवपु सबका अन्तवाहक है सो अन्तवाहक में सबकी एकता है—जैसे समुद्रमें सब तरंगोंकी एकताहोती है। हे मुनीश्वर ! जब तुम धारणाका अभ्यास करके शुद्ध बुद्धि में प्राप्तहोगे तब तुम को इस शिलामें सृष्टि भासेगी। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब उसने इसप्रकार मुझ से शुद्ध युक्ति कही तब मैंने पद्मासन बांधकर सब विषय त्याग किये और कथाकेक्षोभ काभी त्यागकर अपने आधिभौतिककाभी त्याग किया, तब निरन्तर शुद्धबोधका अभ्यास करने से मुझको बोधका अनुभव उदय हुआ। जैसे मेघके अभाव से शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही कलना से रहित मुझको शुद्धबोध का अनुभव उदय हुआ जो उदय और अस्तसे रहित परमशान्तरूप है और उसमें वह शिला मुझ को आकाशरूप दृष्टि आई और शिला तत्त्व करके केवल बोधमात्र दृष्टि आई। पृथ्वी आदिक तत्त्व मुझको कोई दृष्टि न आये केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्त्वमात्र अपना आपही दृष्टि आया पर जब बोधमात्र से अन्तवाहकरूप होकर स्पन्द फुरा तब

अन्तवाहक करके उस शिला में सृष्टि भासने लगी—जैसे मनोराज की सृष्टि होती है और बोध से भिन्न भिन्न नहीं होती तैसेही वह सृष्टि मुझको दृष्टिआई और शिला का रूप भासी। जैसे स्वप्ने के गृह में शिला दृष्टि आवे तो वह अनुभवही शिला और गृहरूप होकर भासता है कुछ भिन्न नहीं होता, तैसेही वह शिला दृष्टिआई। हे रामजी! जैसे मैंने आकाशरूप वह शिला देखी, तैसेही सब जगत् चिदाकाशरूप है कुछ द्वैत नहीं बना। सर्वदाकाल आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है पर आत्मा के अज्ञान से द्वैत भासता है—जैसे कोई पुरुष स्वप्ने में अपना शिर कटादेखे और रुदनकरे पर जाग कर आपको ज्योंकात्यों आनन्द देखता है; तैसेही जबतक जीव अज्ञान निद्रामें सोता है तबतक जगत्भ्रम पर नहीं मिटता पर जब स्वरूप में जागकर देखेगा तब सब भ्रम मिटजावेगा और केवल अपनाही आप भासेगा। हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि; जो वस्तु सत्रूप है सो असत् की नाईं भासती है। आत्मा सदा सत्रूप है पर ज्ञान करके नहीं भासता और जो असत्यरूप है वह सत्की नाईं हो भासती है। शरीरादिक दृश्य असत्रूप हैं सो सत्यवत् होकर भासते हैं। हे रामचन्द्र! आत्मा सदा प्रत्यक्षहै और शरीरादिक परोक्ष हैं पर अज्ञानसे शरीरआदिक प्रत्यक्ष भासते हैं और आत्मपद परोक्षभासता है। हे रामजी! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है और इसलोक अथवा परलोक की क्रिया जो सिद्ध होती है सो संपूर्ण आत्मसत्तासेही सिद्ध होती है। प्रत्यक्ष प्रमाण आत्मसत्तासेही भासताहै—आदि प्रत्यक्ष आत्माही है और सब कुछ आत्माके पीछे जानता है। जो पुरुष कहते हैं कि, आत्मा योग और मनसे प्रत्यक्ष होता है सो मूर्ख हैं; आत्मासदा प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणभी आत्मासे सिद्ध होते हैं। माया इसीकानाम है कि, सदा अपरोक्ष वस्तु आत्माको परोक्ष जानना और शरीरादिक असत्यको सत्य मानना। हे रामजी! जितने जीव हैं उनका वास्तवरूप ब्रह्महीहै और उनमें आदिफुरना अन्तवाहकरूप हुआ है; उसके अनन्तर आधिभौतिक भासनेलगा है और भ्रमकरके आधिभौतिक को अपना आप जानते हैं पर जो सदा निर्विकार, निराकार, निर्गुण स्वरूप अपना आप अनुभवरूप है उसको कोई नहीं जानते। आदि शरीर सर्व जीवका अन्तवाहक है सो शुद्ध आत्माका किञ्चन केवल आकाशरूप है और कुछ बना नहीं संकल्प करके आधिभौतिकता दृढ़हुई है सो मिथ्याभ्रान्तिसे भासती है जैसे स्वप्ने में आधिभौतिक शरीर भासताहै तैसेही जाग्रत् में आधिभौतिकशरीर भासता है और अन्तवाहक अविनाशी है—इसलोक और परलोक में इसका नाश नहीं होता। वास्तव बोध स्वरूपसे भिन्न कुछ नहीं, भ्रमकरके आधिभौतिक दृष्टि आताहै। जैसे सूर्यकी किरणों में जल; सीपी में रूपा; रस्सी में सर्प और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही भ्रमसे अपने में आधिभौतिक शरीर भासता है। हे रामजी! यह आश्चर्य है कि, सत्य

वस्तु असत्यहो भासती है और जो असत्य वस्तु है वह सत्य होकर भासती है सो अविचार से भासती है। यह मोहका माहात्म्य है कि, सबके आदि जो प्रत्यक्षआत्माहै उसको लोग अप्रत्यक्ष जानते हैं और अप्रत्यक्ष जगत्को प्रत्यक्ष जानते हैं। हे रामजी! यह जगत् भ्रमसे भासताहै और स्वप्नेकी नाईं मिथ्याहै। जो पदार्थ जीव सुखरूप मानते हैं वे दुःख के कारण हैं क्योंकि; परिणाम इनका दुःखहोता है। जो प्रथम क्षीण सुखभासताहै और फिर उनके वियोगसे दुःखहोताहै इसीकारण इनकानाम आपात-रमणीय है–इनको पाकर शांतिमान् कोई नहीं होता। जैसे मृगतृष्णा का क्षीणसुख भासताहै और फिर उनके वियोग से दुःखहोता है क्योंकि, उस जलको पाकर कोई तृप्त नहीं होता; तैसेही विषयके सुखों से कोई तृप्त नहीं होता–जो उनमें लगते हैं वे मूर्ख हैं। जो अत्युत्तम सुख है वह अनुभवकरके प्रकाशता है; उसको त्यागकर विषय के सुख में जो लगते हैं सो मूर्ख हैं; वे शुद्ध आकाशरूप अन्तवाहक में जगत् देखते हैं। हे रामजी! जगत् जालहुये की नाईं भासते हैं तो भी हुये कुछ नहीं–जैसे स्थान में पुरुष भासता है तौभी हुआ नहीं और जैसे सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसेही यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है पर कुछ नहीं है। हे रामजी! प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं है तो अनुमानादिक प्रमाण कहांसे सत्यहों? जैसे जिसनदीमें हाथी बहेजाते हैं तो उसमें रुई के बहनेमें क्या आश्चर्य है? तैसेही सब प्रत्यक्षप्रमाण जगत्को असत्जानो तो अनु-मानप्रमाण कर क्या सत्होनाहै? हे रामजी! केवल बोधमात्रमें जगत् कुछ बनानहीं। हमको तो सदा ऐसेही भासता है और अज्ञानी को जगत् भासता है–जैसे किसी पुरुषको स्वप्ने में पर्वतदृष्टआते हैं और जाग्रत्पुरुषको नहीं भासते तैसेही अज्ञानी को यह जगत् भासताहै पर हमको तो आकाश, समुद्र, पर्व्वत, सब केवल बोधमात्र भासते हैं। जैसे कथाके अर्थ श्रोताके हृदयमें होते हैं और जिसने नहीं सुनी उसके हृदयमें नहीं होते, तैसेही मेरे सिद्धांतको ज्ञानवान् जानते हैं और अज्ञानी जान नहीं सक्ते। हे रामजी! जितना कुछ अधिभौतिक जगत् भासता है सो अप्रत्यक्ष है और आत्मा सदा प्रत्यक्षहै। जो इसलोक अथवा परलोकका अर्थ है सो अनुभवसे सिद्ध होता है क्योंकि, सबके आदि अनुभव प्रत्यक्षहै; उसको त्यागकर जो देहादिक दृश्य को अपना आप जानते हैं और इनहीं को प्रत्यक्ष जानतेहैं वे मूर्ख पशु और पत्थरवत् हैं और सूखे तृणकी नाईं तुच्छहैं। जैसे भ्रमणसे पर्व्वत आदिक पदार्थ भ्रमते भासते हैं तैसेही अज्ञानीको अधिभौतिक भासतेहैं। हे रामजी! यह जगत् सब परोक्षहै क्यों-कि; इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होताहै। जो नेत्रहोते हैं तो रूप भासते हैं और जो नेत्र न हों तो न भासें; इसीप्रकार सब इन्द्रियोंके विषयहैं जो होवें तो भासें नहींतो न भासें और आत्मा सदाप्रत्यक्ष है उसके देखने में किसी विषयकी अपेक्षा नहीं। हे रामजी! जो

इन्द्रियों कर सिद्धहै सो असत् है; जो जगत्ही असत्हुआ तो उसके पदार्थ कैसे सत् हों ? इससे इस जगत्की सत्यता त्यागकर शुद्धबोध में स्थित हो रहो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रत्यक्षप्रमाणजगत्निराकरणन्नाम शताधिकषष्ठाशीतितमस्सर्गः १८६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब मैं उस शिलाको बोधदृष्टिसे देखूं तब वह मुझको ब्रह्मरूपभासे और जब संकल्प दृष्टि से देखूं तब पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, पर्व्वत, लोक, लोकपाल, सूर्य्य, चन्द्रमा, तारागण, पाताल संयुक्त जगत् दृष्ट आवे। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब भासताहै, तैसेही आत्मरूपी आदर्श में जगत् भासता है। तब देवीने शिला में प्रवेश किया और मैंभी संकल्परूपी शरीर से उसके साथ चलागया। हम दोनों जगत्के व्यवहार को लांघते गये। और जहां परमेष्ठी ब्रह्माका स्थान था वहां हम जा बैठे। तब देवीने कहा, हे भगवन् ! तुम परमेष्ठीसे ऐसे कहना कि, मुझको यह ले आई है; और यह पूंछना कि, इसको जो तुमने विवाह के निमित्त उपजाया था तो फिर क्यों इसका त्याग किया ? हे मुनीश्वर ! उसने मुझको विवाहके अर्थ उत्पन्न किया था पर जब मैं बड़ी हुई तब उसने मेरा त्याग किया है। उसको वैराग्य उपजाहै और उसे देखकर अब मुझको भी वैराग्य उपजाहै; इसीसे हम परमपदकी इच्छा रखती हैं जहां न द्रष्टा है, न दृश्य है और न शून्यहै केवल शान्तरूपहै और जो सर्ग के आदि और महाकल्प के अन्तमें रहताहै उसमें स्थित होनेकी इच्छा है जिसमें स्थित हुये पहाड़वत् समाधि होजावे। ऐसे परमपदका उपदेश करो। हे रामजी ! इसप्रकार कहकर वह भर्त्ता के जगाने के निमित्त निकट जाकर बोली, हे नाथ ! तुम जागो; तुम्हारे गृह में दूसरी सृष्टिके ब्रह्माके पुत्र वशिष्ठमुनि आये हैं। तुम उठकर इनका अर्घ्यपाद्यसे पूजनकरो क्योंकि; गृह में अतिथि आये हैं। महापुरुष केवल पूजासेही प्रसन्न होते हैं। हे रामजी ! जब इसप्रकार देवीने कहा तब ब्रह्माजी समाधि से उतरे और उनके प्राणदेह और नाड़ियों में आन स्थितहुये। जैसे वसन्तऋतु से सब वृक्षों में रसहोआताहै तैसेही उसकी दशों इन्द्रियों और चारों अन्तःकरण में शनैः२ करके प्राणस्थित हुये और सब इन्द्रियां खिलआईं। तब उन्होंने मुझको और देवी को अपने सन्मुख देखा और ज्ञान से ॐकार का उच्चारकरके सिंहासन पर बैठे। ब्रह्माजी के जागने से बड़ाशब्द होने लगा और विद्याधर, गन्धर्व, ऋषि, मुनि आ प्रणाम करके स्तुति और वेदकी ध्वनि से पाठकरने लगे। ब्रह्मा बोले, हे ऋषि ! कुशल तो है ? तुम इतनी दूरसे क्यों आये हो तुम तो सार असारको जाननेवालेहो ? जैसे हाथमें बेलका फल होता है तैसेही तुमको ज्ञान है बल्कि ज्ञानरूपी समुद्रहो। ऐसे कहकर उसने अपने निकट आसन दिया और नेत्रों से आज्ञाकी कि, इसपर विश्राम करो। हे रामजी ! जब इस प्रकार

उसने मुझसे कहा तब मैं प्रणाम करके उसके निकट जा बैठा और एक मुहूर्त पर्यंत देवता, सिद्ध और ऋषियों के प्रणाम होते रहे । उसके अनन्तर जब विद्याधर और देवता सब चलेगये तब मैंने कहा, हे भूत-भविष्य-वर्त्तमान तीनोंकालों के ज्ञाता ईश्वरपरमेष्ठी ! तुम ऊंचे आसनपर विराजमानहो और साक्षात् ब्रह्मज्ञान के समुद्रहो यह जो तुम्हारी शक्ति देवी है जिसको तुमने भार्या करने के निमित्त उत्पन्न कियाथा और फिर उसे विरस जानकर त्यागकियाहै तो तुम्हारे वैराग्य करनेसे इसकोभी वैराग्य उपजा है इसनिमित्त यह मुझको यहां लेआई है कि, तुम परमात्मतत्त्वकी वाणीसे हमको उपदेशकरो सो इससे इसका क्या अभिप्राय है ? ब्रह्माबोले, हे मुनीश्वर ! मैं शांत, अजर अमररूप हूं और मुझ में उदय अस्त कदाचित् नहीं । मैं परमआकाशरूप हूं और अपने आपमें स्थितहूं । न मेरी कोई स्त्री है और न मैंने किसी को उत्पन्न किया है तथापि जैसे वृत्तान्त हुआ है तैसे मैं कहताहूं क्योंकि; महापुरुषके विद्यमान ज्यों का त्यों कहना योग्य है । हे मुनीश्वर ! आदि शुद्ध चिदात्मा चिन्मात्र पदहै, उसका वचन जो अहंहोकर फुरा है उसका नाम आदि ब्रह्मा है सो मैंहूं जैसे भविष्यत्सृष्टि काहो-अर्थ यह है कि, सङ्कल्परूपद्रष्टा और सङ्कल्परूप मैं हूं-और वास्तव में आकाशरूप सदा निरावरणहूं और अपने आपही में मेरी अहंप्रतीति है । उसमें आदि जो सङ्कल्प का फुरना हुआ है उसमें जगत्भ्रम रचाहै और उस जगत्भ्रम में मर्यादाहुईहै और सङ्कल्पका अधिष्ठाता जो ब्रह्मशक्ति है सोभी शुद्ध है । हे मुनीश्वर ! उस मर्यादा को सहस्र चौकड़ी युगोंकी बीती हैं-अब कलियुग है । कल्प और महाकल्पकी मर्यादा पूरीहुई है इससे मुझको परम चिदाकाश में स्थित होने की इच्छा हुई है और इसीसे इसको विरस जानकर मैंने त्याग किया है । जब इसका त्यागकरूंगा तब निर्वाणपदको प्राप्तहोऊं क्योंकि; यह मेरी इच्छा वासनारूप है जो वासना का त्यागहो तो निर्वाणपद प्राप्तहो । यह जो शुद्ध चित्तकला है इसने धारणाका अभ्यास किया था इससे इसमें अन्तवाहकशक्ति प्राप्त हुई है अन्तवाहक शक्ति से यह आकाश में फुरी है और संसार से विरक्त हुई है । आकाश मार्ग में इसको तुम्हारी सृष्टि भासिआई और परमपद पाने की इच्छा से इसको तुम्हारी संगति प्राप्त हुई-इससे तुम्हारी शरण आई है और तुमको लेआई है । जो श्रेष्ठ हैं वे बड़ों की शरण जाते हैं; यह अपने कल्याण के निमित्त तुमको लेआई है । हे मुनीश्वर ! यह मेरी मूर्त्तिरूप वासनाशक्ति है; आगे मैंने इसको उत्पन्न करके इस जगत्जाल को रचा पर अब मुझको निर्विकल्प निर्वाणपद की इच्छा हुई है इससे मैंने इसका त्याग किया है । अब इसको भी वैराग उपजा है इस कारण तुम बोधरूप की शरण में आई है । हे मुनीश्वर ! यह जगत् विलास सङ्कल्प हुआ है, वास्तव में कुछ हुआ नहीं; परमात्मतत्त्व ज्योंकात्यों अपने आपमें स्थित है और मैं, तुम; मेरा, तेरा

इत्यादिक शब्द समुद्र के तरङ्ग की नाईं हैं। जैसे समुद्र में तरंग उपजकर शब्द करते हैं और फिर लीन होजाते हैं; तैसेही हमारा तुम्हारा बोलना और मिलाप होता है। हे मुनीश्वर! वास्तव में न कोई उपजा है और न कोई लीन होता है। जैसे तरंग जलरूपहै–भिन्न कुछ नहीं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है–भिन्न कुछ नहीं, इन्द्रियां; मन, बुद्धि सब वही रूपहैं। हे मुनीश्वर! मैं चिदाकाशहूं और चिदाकाश में स्थितहूं। यह ब्रह्मशक्ति है जिसने जगत् रचा है; यह भी अजर और अमर है और न कदाचित् उपजाहै और न नाश होगा। शुद्ध आत्मा किंचन द्वारा जगतहो भासताहै। जैसे सूर्य की किरणें जलहो भासती हैं; परन्तु जल कुछ हुआ नहीं तैसेही आत्माही है; विश्व कुछ हुआ नहीं। हे मुनीश्वर! जगत्जाल होकर आत्मा भासता है पर जगत्के उदय अस्त होनेसे आत्मामें कुछ क्षोभ नहीं होता;वह ज्योंका त्यों एकरस स्थितहै। जैसे समुद्र में तरंग उपजते और लीन होतेहैं परन्तु समुद्र ज्योंका त्यों रहता है; तैसेही जगत् कुछ उपजा नहीं सङ्कल्पसे उपजे की नाईं भासता है। जैसे दृढ़तासे जल ओला होजाता है, तैसेही चिन्मात्रमें चैतन्यता से पिंडाकार भासताहै परन्तु उपजा कुछ नहीं। हे मुनीश्वर! यह जो शिला है जिसमें हमारी सृष्टिहै सो केवल चित्घनरूपहै। तुम्हारी सृष्टिमें यह शिला है और हम चैतन्य घनहैं चैतन्य आकाश आत्मा शिला होकर भासता है। जैसे स्वप्न में सृष्टि सब जाग्रत् भासती है सो बोधरूप है–बोधही जगत् सा भासता है; तैसेही यह जगत् और शिलारूप होकर बोधही भासता है। हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्न में ग्रहकाचक्र फिरता दृष्टआता है तैसेही सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, नदी, वरुण, कुबेर आदिक जगत् जो भ्रमसे दृष्टआता है सो बना कुछनहीं–चैतन्यका किंचनहीं ऐसे भासताहै। जैसे सूर्यकी किरणों में किंचन जलाभास होताहै तैसेही जहां आत्मसत्ता है वहां जगत् भासता है। सब पदार्थ आत्मसत्ता सेही भासते हैं, ब्रह्मसत्ता सबमें अनुस्यूत है इससे सब ओरसे सृष्टि बसती है। जैसे एक शिलामें हमारी सृष्टि में जो कुछ पदार्थ भासतेहैं और इनमें सृष्टि बसती है सो प्रच्छन्न दृष्टि से नहीं भासती पर जब अन्तवाहक दृष्टि से देखिये तब सृष्टि भासती है। घटों में, गढ़ों में और पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश आदि ठौरों में सृष्टिहै और बना कुछ नहीं। जैसे जहां समुद्र है तहां तरंग भी होते हैं परन्तु समुद्र से भिन्न कुछ तरंग हुये भी नहीं–वही रूप हैं, तैसेही यह जगत् कुछ उपजता नहीं और न लीन होता है; ज्योंका त्यों आत्मसमुद्र अपने आप में स्थित है; जगत् संकल्पशक्ति से फुरता है और सङ्कल्पशक्ति अहंरूपी किंचनमात्र उदय हुई है। जैसे कमल से सुगन्ध लेकर तरियां निकलती हैं तैसेही मूलसे देवी जगत्रूपी सुगन्ध को लेकर उदय हुई है परन्तु वास्तव जगत् कुछ बना नहीं केवल सङ्कल्प शक्ति से बसे की नाईं भासता है। हे मुनीश्वर! वास्तव में न कोई

सङ्कल्प है और न प्रलयहै; ज्योंकात्यों ब्रह्म अपनेस्वभावमें स्थितहै। जैसे आकाश में आकाश और समुद्र में समुद्र स्थित है, तैसेही ब्रह्ममें ब्रह्म स्थित है। हे मुनीश्वर! यह जगत् न सत्य है और न असत्य है; आत्मा में न यह उदय हुआ और न अस्त होवेगा। जैसे आकाश में नीलता न सत्य है, न असत्यहै; तैसेही ब्रह्ममें जगत् न सत्य है और न असत्य है। मैं उस ब्रह्मका किंचन ब्रह्माहूं और यह जगत् मेरे सङ्कल्प से उत्पन्न हुआहै। अब मैं सङ्कल्पको निर्वाणकरताहूं; जब सङ्कल्प निर्वाण होगा तब जैसे कमलके नाशहुये सुगन्धका अभाव होजाताहै तैसेही जगत् का अभाव होजावेगा। मेरे से इच्छाफुरी थी, उसमें वासना है और वासना में जगत्है। अब मैं इसको निर्वाण करताहूं; जब इच्छा निर्वाणहोगी तब जगत्काभी स्वाभाविक अभाव होजावेगा। तुम्हारा शरीर सङ्कल्पसे भासताहै इससे तुम अपनी सृष्टिमें जाओ; ऐसा नहीं कि, तुम्हारा शरीरभी यहां निर्वाण होजावे। हे रामजी! इसप्रकार वह मुझसे कहकर फिर देवी से बोला, हे देवी! अब तू निर्वाण हो और अपने आपमें बोध आदिकको भी लीनकर॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलांतरवशिष्ठब्रह्मासंवादवर्णनन्नाम शताधिकसप्ताशीतितमस्सर्गः १८७॥

वशिष्ठजीबोले, हे रामजी! इसप्रकार ब्रह्माने कहकर पद्मासन बांधा और सब जनोंके संयुक्त 'अकार', 'उकार, 'मकार' को छोड़कर अर्द्धमात्रा में स्थितहुआ तब उस की मूर्ति ऐसीदृष्टि आनेलगी जैसे कागज पर मूर्ति लिखी होती है और उसे सम्पूर्ण जगत्जाल का ज्ञान विस्मरण होगया और देवीभी उसीप्रकार पद्मासन बांधकर ब्रह्माजी के निश्चय में लीनहोजाने लगी। जब ब्रह्माजी निर्वेदना ब्रह्म में लीन होनेलगे उससमय जितने उपद्रवथे सब उदय हुये मनुष्य पापकरने लगे, स्त्रियां दुराचारिणी होगईं; सब जीवों ने धर्मका त्यागदिया; कामीपुरुष बहुत हुये जो परस्त्रियों के साथ सङ्ग करते थे और पुरुष स्त्रियां किसीकी शंका न करतीथीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष बढ़गये और शास्त्रकी मर्यादा त्यागकर लोग अनीश्वरवादी हुये। वर्षा बन्द होगई और कुहिरा पड़ने लगा, कालपड़ा; दुष्टजन धनपात्रहोने लगे, धर्मात्मा आपदा भोगनेलगे, चोर चोरीकरने लगे राजा मद्यपान करने लगे; जीवों को बड़े दुःख प्राप्त होनेलगे और तीनोंतापों से जलनेलगे और राजाओं ने न्याय को त्यागदिया। निदान जो पाप आचारथे सो उदय हुये और धर्म छिपगया; अज्ञानी राज्य करें; पण्डितज्ञानी टहलकरें; दुर्जनों की मानपूजा हो, सत् पण्डितों का निरादर हो; जीवों के समूह इकट्ठे हुये, और पृथ्वी ने अपनी सत्ताको त्याग दिया क्योंकि, पृथ्वी ब्रह्मा के सङ्कल्प में पड़ी थी, जब उस ने अपना सङ्कल्प खैंचा तब निर्जीव होगई और चैतन्यता निकल गई। जो स्थान भूतों के बिचरने के थे सो खाईं की नाईं होगये, भूता-

नाश होगये और पृथ्वी भी नाश होने लगी; पर्व्वत कांपने लगे; और भूचाल और हाहाकार शब्द होने लगे जैसे शरत्काल में बेल सूखजाती है और जर्जरीभाव को प्राप्त होती है, तैसेही पृथ्वी जर्जरीभावको प्राप्त हुई क्योंकि; चैतन्यता और शरीर सर्व जगत् का ब्रह्माहै, ज्यों ज्यों संकल्परूपी चैतन्यता क्षीण होती गई त्यों त्यों पृथ्वी जर्जरीभूत होती गई। जैसे किसी पुरुषका अर्द्धाङ्ग मरजाता है तब वह अङ्ग शवसा होजाता है और फुरना उसमें नहीं रहता तैसेही ब्रह्मकी संकल्परूप चैतन्यता पृथ्वी से निकलती जाती थी इसकारण पृथ्वी दुःखी हुई; धूड़ उड़नेलगी और नगर नष्ट होने लगे। इस प्रकार उपद्रव उदय हुये क्योंकि; पृथ्वीके नाशका समय निकट आया और समुद्र जो अपनी मर्यादा में स्थित थे उन्होंने भी अपनी मर्यादा त्यागदी। जैसे कामी पुरुष मद्यपान किये से अपनी मर्यादाको त्यागताहै, तैसेही समुद्र उछले, किनारे गिर-गये और पर्व्वत कन्दरासे निकलकर पृथ्वीको नाश करनेलगे। राजा और नगरवासी भागने लगे और उनके पीछे तीक्ष्णवेग से जल चलनेलगा; बड़े पर्व्वत गिरने लगे और चक्रकी नाईं फिरने लगे। समुद्रके तरङ्गों से पर्व्वत गिरते थे और उड़ते थे और तरङ्गे उछलकर पातालको गईं और पाताल का नाशहोने लगा। बड़ेरत्नों के पर्व्वत जब गिरे, तब रत्नों का ऐसाचमत्कार हो जैसे तारामण्डलका होताहै। इसी प्रकार बड़ाक्षोभ होनेलगा और तरङ्ग उछलकर सूर्य्य चन्द्रमा के मण्डलको जाने लगे और उनका प्रकाश जातारहा। बड़वाग्नि उदय हुई तब वरुण, कुबेरआदि देवतों के वाहन भयमान हुये और जलके वेगसे पर्व्वत नृत्य करनेलगे—मानों पर्वतों के पंख लगे हैं और स्वर्ग के कल्पतरु समुद्र में आन पड़े और चिन्तामणि, सिद्ध और गन्धर्व्व गिरने लगे। समुद्र इकट्ठे होगये। जैसे गंगा, यमुना और सरस्वती एकत्र होती हैं तैसेही समुद्र मिलकर शब्द करनेलगे और उन में से ऐसे मच्छ निकले जिनके पूंछों के लगने से पर्व्वत उड़ जावें कन्दरा में जो हाथी थे वे पुकार करने लगे और सूर्य्य, चन्द्रमा, तारागण क्षोभको प्राप्त होकर स-मुद्र में गिरनेलगे। हे रामजी ! इस प्रकार प्रलय के क्षोभ से जितने लोकपाल थे वे सब समुद्र के मुख में आनपड़े और मच्छ उनको भक्षण कर गये। तरङ्ग आपस में युद्ध क-रने लगे जैसे मतवाले हाथी शब्द करते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्यजगत्प्रलयवर्णनन्नामशताधिक अष्टाशीतितमस्सर्गः १८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! उस विराट्रूप ब्रह्मा ने जिसका देह सम्पूर्ण जगत् था अपने प्राणको खैंचा तब छत्र चक्रके फेरनेवाला जो वायु है सो अपनी मर्य्यादा त्याग कर क्षोभ करनेलगा और वे चक्र नाश होनेलगे क्योंकि; ब्रह्मा के संकल्प में वे थे किसी को सामर्थ्य नहीं कि, उनको रक्खे। तेज में जो देवता थे सो पवनके आधार थे,

पवनके निकलने से वे निराधार होकर समुद्र में गिरने लगे और जैसे वृक्षसे फल गिरते हैं तैसेही गिरते भये । जैसे संकल्प के नाश हुये संकल्पका वृक्ष गिरता है और जैसे पक्कफल समय पर वृक्षसे गिरता है, तैसेही सब गिरते भये । सुमेरु की कन्दरा गिरी और पवनका बड़ाक्षोभ और शब्द हुआ । जैसे अपनी शान्ति के निमित्त पवनमें तृण फिरता है तैसेही आकाश में पवन फिरनेलगा देवतों के रहनेवाला जो सुमेरु पर्वत था सो भी गिरपड़ा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संकल्परूप जो ब्रह्मा था सो तो विराट् आत्मा है और सब जगत् उसकी देह है । भूमण्डल, पाताल और स्वर्गलोक उस के कौन अङ्ग हैं और संकल्परूप कैसे अङ्ग होते हैं? संकल्प तो आकाशरूप होते हैं और जगत् प्रत्यक्ष पिण्डाकार दृष्ट आता है? जो जिससे उपजता है सो वैसाही होताहै तो यह जगत् ब्रह्मा के अंग कैसे हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस जगत् से पूर्व केवल चिन्मात्र था और उस में जगत् न सत्य था, न असत्य था; केवल आत्मत्वमात्र अपने आप में स्थित था । जैसे आकाश अपने आपमें स्थित है और एक और दो शब्द से रहित है । उस केवल चिन्मात्रका किञ्चन अहं होकर स्थित हुआ है; उसका दृश्यसे सम्बन्ध हुआ और उसके अनुभव ग्रहणसे जो निश्चय हुआ उसका नाम बुद्धि है और वह जब व्यतीत हुआ उसका नाम मन है; उस मन के फुरनेसे जगत् दृश्य हुआ है । हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्य है वही ब्रह्मारूप कहाता है; उस के फुरने में आगे जगत् खड़ा हुआ है और उस संकल्परूप जगत्का वह विराट् है परन्तु आकाशरूप है और कुछ नहीं बना । यह जो आकार सहित जगत् भासता है सो ब्रह्मसे भासता है पर सब संकल्प आकाशरूपहैं । जैसे स्वप्ने में जगत् भासता है सो सब आकाशरूप होताहै परन्तु निद्रादोषसे पिण्डाकार भासता है और आत्मसत्ता सदा केवल आकाश ज्योंकात्यों अपने आपमें स्थित है । हे रामजी! अहं जो फुराहै सो मिथ्या है अज्ञान से दृढ़ स्थित हुआ है और असम्यक्दर्शी को दृढ़भासता है सो केवल संकल्पमात्रहै, और कुछ नहीं बना । इस से जितना जगत् भासता है सो सब चिदाकाशहै; एक और द्वैतकलना और सर्व शब्दों से रहित आत्मामात्र है; मैं और तुम शब्द कोई नहीं और यह जगत् उनका किंचन है । जैसे सूर्य्यकी किरणों में जलाभास होता है तैसेही आत्माका आभास जगत् है; संकल्पकी दृढ़ता से दृश्य भासता है पर है नहीं । जैसे संकल्परूप गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर होते हैं, तैसेही यह जगत् है । हे रामजी! जिस प्रकार मैंने जगत् वर्णन किया है उसे जो पुरुष मेरे कहेके अनुसार ज्योंका त्यों धारे तो उसकी वासना नष्ट होजावे और पूर्ववत् आत्मा ज्योंका त्यों भासे । तब जैसे जगत् के आदि आत्मत्वमात्रथा तैसेही भासेगा क्योंकि; और कुछ हुआ नहीं केवल आत्मत्वमात्र ज्योंका त्यों स्थित है । जो आत्माही है तो समवायकारण और निमित्तकारण कैसे हो? जगत् का उदय और

नाशहोना असत्य है और अद्वैत और अनन्त कहना भी कोई नहीं। जब सब शब्दों का अभाव होता है तब परमचिदाकाश अनुभव सत्ताही शेष रहती है इसी का नाम मोक्ष है। हे रामजी ! हमको तो अबभी संवित्सत्ताही भासती है और मैं शुद्ध हूं; सर्व कल्पना से रहित हूं; और चिदाकाशहूं। मुझ में जो वशिष्ठ अहं फुरा है सो फुरा नहीं फुरे की नाईं भासता है और आत्माकाही किंचन है; हुआ कुछ नहीं। इससे तुम भी इसीप्रकार जागकर निर्व्वासनिक हो रहो और अपने प्रकृत आचारको करो अथवा न करो, जो इच्छा है सो करो परन्तु करने और न करने का संकल्प मत करो और परममौन में स्थित हो रहो। ज्ञानवान् को यही अनुभव होता है, इस से तुम भी ऐसेही धारो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनन्नामशताधिक नवाशीतितमस्सर्ग्गः १८९॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! बंध मोक्ष जगत् बुद्धि न सत् है और न असत्है उदय भी नहीं हुआ और अस्त भी नहीं होता केवल ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है; ऐसे आपने मुझको उपदेश किया है इसलिये मैंने जाना है कि, आत्मा में जगत् न उपजता है और न मिटता है पर तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को सुनता मैं तृप्तनहीं होता और अमृतकी नाईं पान करताहूं। जगत् सत् असत्से रहित सन्मात्रहै उसको भी मैंने जानाहै अब यह कहिये कि, संसारभ्रम कैसे उपजताहै और अनुभव कैसे होता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ तुम को स्थावर–जङ्गम जगत् सर्व प्रकार देशकाल संयुक्त दीखता है उसके नाशका नाम महाप्रलय है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र भी लीन होजाते हैं और उसके पीछे जो शेष रहता है वह स्वच्छ, अज, अनादि, केवल आत्मतत्त्वमात्र है–उसमें वाणीकी गम नहीं वह केवल अपने आपमें स्थित है और परमसूक्ष्म है जिसमें आकाश भी स्थूल है। जैसे सुमेरुपर्वत के निकट राईकादाना सूक्ष्म है तैसेही आकाशसेभी आत्मा सूक्ष्म है, और संवेदन से रहित चिन्मात्र है उसमें अहङ्किंचन होकर फुरा है। आत्मा सदा निर्विकल्प है, समुद्रवत् है, देशकाल के भ्रमसे रहित है और केवल चेतनघन अपने आपमें स्थित है। जैसे स्वप्ने में अपने भावको लेकर जीव स्थित होताहै तैसेही आत्मा अपने भावको लेकर चेतन किंचन होता है। उसीका नाम ब्रह्मा है और वहभी चिद्रूप है। हे रामजी! चिद्अणु जो अपने भावको लेकर उदय हुआ है उसने चैत्यनाम दृश्यको देखा इससे उसका अनुभव मिथ्या हुआ। जैसे स्वप्ने में कोई अपना मरण देखता है सो अनुभव मिथ्या है; तैसेही चिद् अणुदृष्टि से दृश्यको देखता है सो मिथ्या दृष्टि है। जब चिद्अणु अपने स्वरूप को देखताहै सो केवल निराकाररूप है परन्तु अहं ऐसे बीज दृढ़ होताहै उससे अपने आप

से निकल दृश्य को संकल्प से देखता है। जैसे बीज से अंकुर निकलता है तैसेही संकल्प के फुरने से देश, काल, द्रव्य, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य होता है, वास्तव में हुआ कुछ नहीं, आत्मा सदा अपने स्वभाव में स्थित है परन्तु संकल्प से हुये की नाईं भासता है। जहां चिद् अणु भासे वह देश है; जिस समय भासे वह काल है; जो भानहो वह क्रिया हुई; भानका ग्रहण द्रव्य है और देखने को जो वृत्ति दौड़ती है वह नेत्र होकर स्थित हुई है। जिसको देखते हैं वह भी शून्य है और देखने वाले भी शून्य हैं; सब अस्त हैं—कुछ बना नहीं। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा अपने आपमें स्थित है। संकल्प द्वारा सब कुछ बनता जाता है। चिद् अणु जो भासित हुआ है वह दृश्यरूप होकर स्थित हुआ है। जब चिद् अणुमें स्वरूप की वृत्ति फुरती है तब चक्षुइंद्रियां होकर स्थित होती हैं, जब सुनने की वृत्ति फुरती है तब श्रोत्रहोकर स्थित होते हैं, जब स्पर्शकी वृत्ति फुरती है तब त्वचा इंद्रियहोकर स्थित होती है; जब सुगन्ध लेनेकी वृत्ति फुरती है तब नासिका इन्द्रिय होकर स्थित होती है और जब रस लेनेकी इच्छा होती है तब जिह्वा इन्द्रिय होकर स्वाद लेती है। हे रामजी! प्रथम यह चिद् अणु नाम से रहित फुरा है और सम्पूर्ण जगत् भी तद्रूपही था और अब भी वही केवल आकाशरूपहै। संकल्प से अपनेमें पिंडघन देखकर शरीर और इन्द्रियां देखीं। अनादि सत् स्वरूप चिद् अणु इन्द्रियों के संयोग से पदार्थों को ग्रहण करता है और स्पंदरूप जो वृत्तिफुरी है उसीका नाम मनहुआ। जब निश्चयात्मक बुद्धिहोकर स्थित हुई तब चिद् अणुमें यह निश्चयहुआ कि, मैं द्रष्टाहूं—यही अहंकार हुआ। जब अहंकार से चिद् अणु का संयोग हुआ तब अपने में देश काल का परिच्छेद देखा, आगे दृश्य और पूर्व उत्तरकाल देखा कि, इस देश में बैठाहूं और यह मैंने कर्म किया है—यह विषम अहंकार हुआ। निदान देश, काल, क्रिया, द्रव्यके अर्थको भिन्न भिन्न ग्रहण करता है और आकाश होकर आकाश को ग्रहण करता है। हे रामजी! आदि फुरने से चिद् अणु में प्रथम अन्तवाहक शरीर हुआ, फिर संकल्पके दृढ़ आभ्यास से अधिभौतिक भासने लगा है। जैसे आकाशमें और आकाशहो तैसेही यह आकाश हैं और अनहोते भ्रमसे उदय हुये हैं और सत्कीनाईं भासते हैं। जैसे मरुस्थल में भ्रमसे नदी भासती है तैसेही अविचारसे संकल्प की दृढ़तासे पञ्चभौतिक आकार भासते हैं। उन में अहंप्रत्यय होनेसे देखता है कि, यहमेरा शिरहै; यह मेरे चरण हैं; यह अमुक देश है इत्यादिक शब्द अर्थ और नानाप्रकार का जगत् और भाव अभावग्रहण करता है और इसप्रकार कहता है कि; यह देश है; यहकालहै; यहक्रिया है और यह पदार्थ है। हे रामजी! जब इसप्रकार जगत् के पदार्थों का ज्ञान होताहै तब चित्त विषयों की ओर दौड़ता है और रागद्वेषको ग्रहण करता है। जो कुछ देहादिक [illegible] फुरने से भासते हैं सो केवल संकल्पमात्र हैं और संकल्प की दृढ़तासे दृढ़ हुये हैं।

हे रामजी! इसप्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रउत्पन्न हुये हैं और इसीप्रकार कीट उत्पन्नहुये हैं परन्तु प्रमाद अप्रमाद का भेद है। जो अप्रमादी हैं वे सदा आनन्द रूप स्वतन्त्र ईश्वर हैं, उनको यह जगत् और वह जगत् अपना आपरूप है और जो प्रमादी हैं वे तुच्छ हैं और सदा दुःखी हैं पर वास्तव में परमात्मतत्त्व से भिन्न कुछ हुआ नहीं। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है तैसेही आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और सर्व का बीज; त्रिलोकीरूप बूंदकामेघ; कारण का कारण; काल में नीति और क्रिया से क्रिया वही है। आदि विराट् पुरुष का शरीर भी नहीं और हम तुम भी नहीं—केवल चिदाकाशरूप है। अब भी इनका शरीर आकाशरूप है और आत्मसत्ता भिन्न अवस्था को नहीं प्राप्त हुई—केवल आकाशरूप है। जैसे स्वप्ने में युद्ध होते और मेघगरजते इत्यादि शब्द—अर्थ भासते हैं सो केवल आकाशरूप हैं बनाकुछनहीं परन्तु निद्रादोषसे भासते हैं और जब जागता है तब जानताहै कि, हुआ कुछ न था—आकाशरूपहै; तैसेही जो पुरुष अनादि अविद्यासे जागा है उसको जगत् आकाशरूप भासता है। हे रामजी! बहुत योजन पर्यंत विराट् पुरुष का देह है तौभी ब्रह्म आकाश के सूक्ष्म अणुमें स्थित है। यह त्रिलोकी एक चिद्अणु में स्थित है और विराट् पुरुष इसका ऐसा है जिसका आदि, अंत और मध्य नहीं भासता तौ भी एक चावल के समान भी नहीं है। हे रामचन्द्र! यह जगत् और जगत् के भाग विस्तीर्ण दृष्टि आते हैं पर जैसे स्वप्ने के पर्वत जाग्रत् के एक अणु के समान नहीं तैसेही विचाररूपी तराजू से तोलिये तो परमार्थसत्ता में इनकी कुछ सत्यता नहीं दृष्टि आती परन्तु आत्मसत्ता से कुछ भिन्न नहीं हुआ, आत्मसत्ता ही इसप्रकार भासती है। इसी का नाम स्वायंभुव मनु और विराट् है और इसीको जगत् कहते हैं। जगत् और विराट् में कुछ भेद नहीं—वास्तव में आकाशरूप है। सनातन भी इसीको कहते हैं और रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र, पवन, मेघ, पर्वत, जल जितने भूत हैं उसका वपु हैं। हे रामजी! इसका आदि वपु जो चिन्मात्ररूप है उसमें चैतन्यता से अपना अणु सा वपु देखता है—जैसे तेजका कणका होता है उस तेज अणुसे चैतन्यता—और क्रमकरके अपना बड़ा शरीर जगत्रूप देखता है। जैसे स्वप्ने में कोई पुरुष आपको पर्वत देखे, तैसेही वह आपको विराट् रूप देखता है। जैसे पवन के दोरूप हैं—चलता है तौभी पवन है और नहीं चलता तौभी पवन है—तैसेही जब चित्त फुरता है तब भी ब्रह्मसत्ता ज्यों का त्यों है और जब चित्त नहीं फुरता तब भी ज्यों का त्यों है परन्तु जब स्पन्द फुरता है तब विराट्रूप होकर स्थित होता है और जब चित्त अफुरहोताहै तब अद्वैतसत्ता भासती है और सदा अद्वैतही विराट् स्वरूप है। हे रामजी! इस दृष्टि से उसके शिर और पाद नहीं भासते। जितनी ब्रह्माण्ड की पृथ्वी है सो उसका मांस है; सब समुद्र उसका रुधिर है; नदी नाड़ी हैं;

दशोदिशा वक्षस्थल हैं; तारागण रोमावली हैं; सुमेरु आदिक अंगुलियां हैं; सूर्य्यादिक तेज पित्तहैं; चन्द्रमा कफहै; पवन प्राणवायुहै; सम्पूर्ण जगत् जाल उसका शरीर है और ब्रह्मा हृदय है सो आकाशरूप है पर संकल्प से नानारूप हो भासता है, स्वरूप से कुछ बना नहीं। आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाशरूप है और अपने आपही में स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविराट्आत्मावर्णनन्नाम शताधिकनवतितमस्सर्ग्गः १९० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आदि जो विराट् है सो ब्रह्महै उसका तो आदि-अन्त कुछनहीं और यह जगत् उसका छोटा वपुहै; उसी चैतन्यवपुका किंचन ब्रह्मा रूपहुआहै। उसके विस्तार का क्रम सुनो—उस ब्रह्मा ने, जिसका वपु संकल्पमात्र है, अपने संकल्प से एक अंडरचा और उसको तोड़ फोड़कर ऊर्ध्वभाग ऊपरकिया और नीचेका भाग नीचे गया। पाताल ब्रह्माका चरण हुआ; ऊर्ध्वशिर हुआ; मध्य आकाश उदर हुआ; दशो दिशा वक्षस्थल; हाथ सुमेरु आदिक पर्वत; मांस पृथ्वी; समुद्र और सब नदियां उसकी नाड़ी; जल रुधिर; प्राण अपान वायु पवन; हिमालय पर्वत कफ; सर्वतेज पित्त; चन्द्रमा और सूर्यनेत्र; तारागण स्थूललार और लारप्राणके बलसे निकलतीहै—जैसे ताराचक्रको पवनफेरता है—ऊर्ध्वलोक उसकी शिखा; मनुष्य, पशु औरपक्षीरोम; सब भूतोंकी चेष्टा उसका व्यवहारहै; पर्वत अस्थि ब्रह्मलोक उसका मुख है और सब जगत् उस विराट्का वपुहै। रामजी बोले, हे भगवन्! यह जो आपने संकल्परूप ब्रह्मा और जगत् उसका वपुकहा उसे मैं मानता हूं परन्तु यह जगत् तो उसीका शरीरहुआ फिर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा कैसे बैठता है और अपने शरीर में भिन्नहोकर कैसे स्थित होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? जो तुम ध्यान लगाकर बैठो और अपनी मूर्त्ति अपने हृदयमें रचकर स्थितहो तो बनजावे। जैसे मनुष्यको स्वप्नआताहै और उसमें जगत् भासताहै सो सब अपना स्वरूपहै परन्तु अपनी मुक्तिधारकर और को देखता है; तैसेही ब्रह्माका एक शरीर ब्रह्मलोक में भी होताहै। ब्रह्मा और जीवमें इतनाभेदहै कि, जीवभी अपनी स्वप्न सृष्टिका विराट्है परन्तु उसको प्रमादसे नहीं भासती और ब्रह्मा सदा अप्रमादी है उसको सब जगत् अपना शरीर भासता है। हे रामजी! देवता, सिद्ध, ऋषीश्वर और विद्याधर उस विराट् पुरुषकी ग्रीवामें स्थितहैं; भूत, प्रेत, पिशाच सब उस विराट्पुरुषके मलसे उपजेहैं और कीटकी नाईं उदरमें स्थितहैं और स्थावर जंगम जगत् सब संकल्पसे रचाहुआ विराट् में स्थितहै—सब उसी के अंगहैं। जो जगत् है तो विराट् भी है और जगत् नहीं तो विराट् भी नहीं। जगत्, ब्रह्म और विराट् तीनों पर्याय हैं; इससे संपूर्ण जगत् विराट् का वपु है—निराकार क्या और आकार क्या—सब भीतर बाहर

विराट्का वपुहै। जैसे भीतर बाहर आकाशमें भेद नहीं तैसेही विराट् आत्मामें भेद नहीं। जैसे पवन के चलने और ठहरने में भेद नहीं, तैसेही विराट् और आत्मा में भेद नहीं। जैसे चलना और ठहरना दोनोंरूप पवन के हैं तैसेही साकार निराकार सब विराट्का शरीर है। हे रामजी ! इस प्रकार जगत् हुआ है सो कुछ उपजा नहीं संकल्पसे उपजे की नाईं भासता है। जैसे सूर्य की किरणों में जलहै नहीं और हुयेकी नाईं भासता है; तैसेही ब्रह्मसत्ता में जगत् उपजे की नाईं भासताहै और उपजा कुछ नहीं--केवल अपने आपमें स्थितहै। वह शिला जठर की नाईं स्थितहै अर्थात् तुम्हारा संकल्प विकल्प और चैतन्यरूप चैत्यसे रहित चिन्मात्र स्वरूपहैं--इससे कलना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित हो रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविराट्शरीरवर्णनन्नाम शताधिकएकनवतितमस्सर्गः १९१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! प्रथम प्रलय का प्रसंग फिर सुनो। मैं ब्रह्मपुरी में ब्रह्मा के पास बैठाथा, जब मैंने नेत्रखोलकर देखा कि, मध्याह्नका समय है और दूसरा सूर्य्य पश्चिम दिशामें उदयहुआ है उसका बड़ाप्रकाश है--मानो संपूर्ण तेज इकट्ठा हुआ है वा वड़वाग्निकी नाईं प्रकाश हुआ है और बिजुलीकी नाईं स्थित हुआहै--उसको देख कर मैं आश्चर्य्यवान् हुआ। ऐसे देखताथा कि, एक और सूर्य्य उदयहुआ; फिर उत्तर दिशाकी ओर और सूर्य उदय हुआ; इसीप्रकार दशसूर्य्य आकाश में प्रकटहुये और एक प्रथम था और द्वादश वड़वाग्नि समुद्र से उदयहुईं उनसे एकसूर्य्य निकला सब द्वादश सूर्य इकट्ठे होकर विश्वको तपानेलगे। हे रामजी ! प्रलयके तीननेत्र उदयहुये--एक नेत्र सूर्य, दूसरा नेत्र वड़वाग्नि और तीसरा नेत्र बिजुली वे तीनों विश्व को जलाने लगे; दिशा सब रक्तहोगईं; अट्टअट्ट शब्द होनेलगे; नगर, वन, कन्दरा, पृथ्वी जलने लगीं; देवताओं के स्थान जलजलकर गिरनेलगे; पर्वत जलकर श्यामहोगये; ज्वाला के कण निकलकर पाताल को गये वह भी जल गया; समुद्र जलकर सूखगये और हिमालय पर्व्वत के बरफ का जलहोकर जलनेलगा--जैसे दुर्ज्जनों के संगकर साधु का हृदय तप्त होता है--जब इसी प्रकार बड़ी अग्नि प्रज्वलित हुई तब मुझको भी तपन आन लगी और मैं वहां से दौड़कर नीचे जाकर स्थित हुआ। वहां मैंने देखा कि, अस्ताचल पर्व्वत जलताहुआ उदयाचल पर्व्वत के पास आपड़ा; मन्दराचल और सुमेरु पर्व्वत जलकर गिरने लगे और अग्निकी ज्वाला ऊंचे उठकर भड़भड़ शब्द करनेलगी। हे रामजी ! इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व जलनेलगा; बड़ा क्षोभहुआ और जहां कुछ रस था सो सब फैल गया। हे रामजी ! जिसको अज्ञानी रस कहते हैं सो सब विरस है परन्तु अपने अपने कालमें रससंयुक्त दृष्टि आते हैं। उसकालमें मुझको सब ऐसे भासे जैसे जली

हुई बेल होती है। हे रामजी! इसप्रकार मैंने सब विश्व जलता देखा परन्तु ज्ञान से जिसका अज्ञान नष्ट हुआ था सो सुखी दृष्टि आता था और सब अग्निमें जलते दृष्टि आते थे और बड़े भयानक शब्द होते थे। शिवका जो कैलास पर्वत है उसके निकट जब अग्नि आई तब सदाशिव ने अपने नेत्रसे अग्नि प्रकटकी जिससे बड़ा क्षोभ हुआ और ब्रह्माण्ड जलने लगा। तब महापवन चला और बड़े पर्वत उड़ने लगे—जैसे तृण उड़ते हैं। जो स्थान जलेथे उनकी अँधेरी होकर यक्षोंके स्थान भी उड़ने लगे, निदान बड़ा क्षोभ उदय हुआ और इन्द्रादिक देवता अपने स्थान को त्यागकर ब्रह्मलोक में चलेगये; बड़े मेघ जो जल से पूर्ण थे सूखकर जलने लगे और कल्परूपी पुतली नृत्य करने लगी। जले स्थानों से जो धूम्र निकलता था वह उसके केश थे और प्रलय शब्द उसका बोलना था। बड़ा पवन चलने लगा, पर्वत जलकर उड़ने लगे और सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नाईं उड़ते थे। निदान जीवों को बड़ा कष्ट हुआ जो कहा नहीं जाता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगत्ब्रह्मप्रलयवर्णनन्नाम
शताधिकद्विनवतितमस्सर्ग्गः १९२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब अग्नि से सब स्थान जलगये उसके उपरान्त पुष्कलमेघ गर्जकर वर्षनेलगे और प्रथम मुसल की, फिर थंभधारा, फिर नदीकी नाईं और फिर महानद की नाईं वर्षने लगे जिनकी गंगा यमुना नदी लहरें हैं और उनसे सब स्थान शीतल होगये—जैसे तीनों तापों से जला हुआ अज्ञानी सन्तोंके संगसे शीतल होता है। हे रामजी! फिर ऐसा जल चढ़ा जिससे सुमेरु आदिक पर्वत नृत्य करने लगे और जैसे समुद्र में झाग होते हैं तैसेही होगये अथवा ऐसे जानपड़ते थे जैसे जलचर होते हैं। हे रामजी! ऐसे जल चढ़े कि, कहा नहींजाता; बड़ेबड़े स्थान और देवता, सिद्ध, गन्धर्व बहेजाते थे। जिनको अज्ञानी परमार्थ जानकर सेवन करते हैं वे भी बहुत दृष्टि आये। जैसे कोई पुरुष कंटकके अन्धेकूप में गिरके दुःखपावे तैसेही वे दृष्टि आवें पर मुझको सब ब्रह्म दृष्टि आवे पर जब संकल्प की ओर देखूं तब महाप्रलय दृष्टि आवे और मेघ गर्जते जटा होकर दृष्टि आवें। निदान ब्रह्मलोक पर्यंत जल चढ़गया और मैं देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजलमयवर्णनंनाम
शताधिकत्रिनवतितमस्सर्ग्गः १९३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस ब्रह्माका जगत् जलमय होगया और मुझे जल से भिन्न कुछ न भासे सब शून्यही भासे। ऊर्ध्व, अध और मध्य दिशा भी न भासें और न कोई तत्त्व, न कोई पर्वत; न कोई देवता; न पशु और न पक्षी भासें। तब मैंने ब्रह्मपुरीको देखा कि, इसकी क्या दशा है। फिर जैसे प्रातः कालका सूर्य अपनी प्रतिभाको

फैलाता है; तैसेही मैंने ब्रह्मपुरी को दृष्टि फैलाके देखा तब ब्रह्माजी मुझको परम समाधि में दृष्टि आये और और जो जीवन्मुक्त ब्रह्माके परिवारवाले थे वे भी सब पद्मासन बांध करके परम समाधि लगाये बैठे थे और जैसे पत्थरपर मूर्त्तिहो तैसेही सब परम समाधिमें अचल स्थितथे और संवेदन फुरने से रहित थे। चारों वेद मूर्त्तिधरे और बृहस्पति, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम, चन्द्रमा, अग्नि, देवता इत्यादि ऋषीश्वर मुनीश्वर जीवन्मुक्त सबको मैंने ध्यान में स्थित देखा और द्वादशसूर्य भी जो विश्वको तपातेथे सो पद्मासन बांधकर समाधिमें स्थित हुये थे। एक मुहूर्त्त पर्यंत मैंने इसीप्रकार देखा जब एक मुहूर्त्त बीता तब सूर्य्य विना सब अन्तर्द्धान होगये। जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपने विद्यमान होती है और जागेसे अभावना होजाती है; तैसेही मेरे देखते देखते ब्रह्मपुरी शून्य वनकी नाईं होगई। जैसे राजपतन से मार्गप्रलय होजाते हैं तैसे प्रलय होगई। हे रामजी! जैसे स्वप्न में मेघ गर्ज्जते दृष्टि आते हैं—और यह दृष्टांत तो बालक भी जानते हैं कि, प्रत्यक्ष अनुभवको छिपातेहैं वे मूर्ख हैं। मैं अनुभवसे भी जानताहूं; स्मृति भी होती है और सुना भी है कि, जब तक निद्रा है तब तक स्वप्न की सृष्टि भासती है और जागेसे उसका अभाव होताहै—तैसेही जबतक ब्रह्माकी वासना थी तबतक सृष्टि थी, जब वासना क्षय हुई तब सृष्टि कहांरही। जब वासना नष्टहोती है तब अन्तवाहक आधिभौतिक शरीर नहीं रहते। हे रामजी! जब शुद्धमात्र पदसे चित्तशक्तिफुरती है तब पिंडाकारहो भासती है और जब तक वह शरीर है तब तक संसार उपजता भीहै और नष्ट भी होताहै; तैसेही ब्रह्माकी सुषुप्ति में जगत् लीन होजाताहै और जाग्रत्में उत्पन्न होताहै क्योंकि; ब्रह्माके शरीरका सुषुप्तिमें लीनहोनाही प्रलय है। यदि कहिये कि, इस शरीर के नाशका नाम महाप्रलय हो तो ऐसे नहीं है क्योंकि; मृतकहुये शरीरका नाश होताहै और फिर लोक भासताहै। और जो कहिये कि, वह परलोक भ्रममात्रहै तैसेही यह भी भ्रांतिमात्रहै और वह परलोक भ्रांतिमात्रहै इसीका नाम महाप्रलय है तो ऐसे भी नहीं है क्योंकि; श्रुति,स्मृति और पुराण सब कहतेहैं कि; महाप्रलयमें कुछ नहीं रहता केवल आत्मसत्ताही रहती है। और जो कहिये कि, परलोक भ्रांतिमात्र है इसका नाम होना क्याहै तो श्रुति और शास्त्रका कहना व्यर्थहोता है और जो उनका कहना व्यर्थ हो तो इनके कहने से ब्रह्माकर वृत्ति किसीको उत्पन्न नहो। जो तुम कहो कि, जैसे अङ्ग वाला अङ्गको सकुचा लेताहै तैसेही स्थूलभूत सकुचकर अपने सूक्ष्मकारणमें जा लीन होतेहैं इसीका नाम महाप्रलय है, तो ऐसे भी नहीं क्योंकि; सूक्ष्मभूतके रहते महाप्रलय नहींहोता और जो तुमकहो कि, संवेदन जो अज्ञान है जिसमें अहंफुरताहै उसका नाम महाप्रलय है तो यह भी नहीं क्योंकि; मूर्च्छा में इसको अज्ञानहोता है परन्तु फिर सृष्टि भासती है और मृत्यु होती है सो बड़ी मूर्च्छा है पर उसमें भी फिर पंचभौतिक शरीर

भासताहै और आगे जगत् भासताहै इससे इसकानामभी महाप्रलय नहीं । जो तुम कहो कि; जबतक यह पंचभौतिक शरीरहै तबतक जगत् है और इसका अभावहो तब महाप्रलयहै तो यह भी नहीं क्योंकि; जब शरीरको जीव त्यागताहै और उसकी क्रिया नहीं होती तो पिशाच होताहै। इसशरीरका जब नीरूपहोताहै और मनुष्य शव होजाता है तब क्षत्रियब्राह्मणकी संज्ञानहींरहती, इससे तुमदेखो कि; बस देहकानामभीमहाप्रलय नहीं और प्रमादकरके विपर्ययकानामभी महाप्रलयनहीं। महाप्रलय उसको कहते हैं कि, जिसमें सबका अभाव होजावे और सर्वका अभाव तबहोता है जब वासना क्षयहोजाती है। इसलिये वासना के क्षयका नाम ज्ञानी निर्वाण कहते हैं। जैसे जबतक निद्रा है तब तक स्वप्नेका जगत् भासता है और जब जाग्रत् में स्वप्ने के जगत् का अभाव होजाता है, तैसेही जबतक वासना है तबतक जगत् है, जब वासना का क्षय होताहै तब जगत् का अभाव होता है। हे रामजी ! वासना भी फुरती नहीं आभासमात्र है और तुम जो कहो कि, भासता क्योंहै ? तो जो कुछ भासता है सो वही अपने भाव में आप स्थित है। हे रामजी ! भाव से उत्थान होने का नाम बन्धन है और उत्थान के मिटने का नाम मोक्ष है। हे रामजी ! नेत्र के खोलने और मूंदने में भी कुछ यत्न है पर मुक्तहोने में कुछ यत्न नहीं। जो वृत्तिबहिर्मुख हुई तो बन्धन हुआ और वृत्ति अन्तर्मुख हुई तो मुक्तहुआ। इसमें क्यायत्न है ? इसलिये सुषुप्त की नाईं निर्वासनिक स्थित होरहो। जब अहंसंवेदन फुरता है तब मिथ्या जगत् सत्ता हो भासताहै। आगे जो इच्छा है सो करो पर जब अहं उत्थान से रहित होगे तब निर्वाण पदको प्राप्त होगे, जहां एक और दो कल्पना कोई नहीं उस परमशान्त निर्विकल्प पदको प्राप्त होगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवासनाक्षयप्रतिपादनंनाम शताधिकचतुर्नवतितमस्सर्गः १९४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! निदान वे ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये—जैसे तेलबिना दीपक निर्वाण होजावे। जब ब्रह्माजी ब्रह्मपदमें निर्वाण हुये और द्वादशसूर्य फिर ब्रह्मपुरीको जलानेलगे और सम्पूर्ण ब्रह्मपुरी जलगई तब वे सूर्य भी ब्रह्माकी नाईं पद्मासन बांध स्थित हुये। जैसे तेल बिना दीपक निर्वाण होता है तैसेही वे सूर्य्य भी निर्वाण होगये। हे रामजी ! जब द्वादश सूर्य निर्वाण होगये तब समुद्र उछले और ब्रह्मपुरी को ढाँपलिया। जैसे रात्रिमें अन्धकार नगर को ढाँपलेता है तैसेही ब्रह्मपुरी को उन्हों ने आच्छादित किया; बड़े तरंग उछले और पुष्कर मेघ भी तरंगों से छेदेगये और जलरूप होगये। हे रामजी ! तब एक पुरुष आकाश से निकला मुझको दृष्ट आया, जो महाभयानक श्यामरूप उग्रआकाश था। उसने सबको ढाँपलिया और वह कृष्णमूर्ति मानों कल्पपर्यंत रात इकट्ठी होकर उसका रूप आन स्थितहुआ है। और मुखसे ज्वाल

निकलती है। उसके शरीर का बड़ा प्रकाश था मानों कोटिसूर्य स्थितहैं और बिजली का प्रकाश इकट्ठा हुआ है। उसके पंचमुखथे, दशभुजा थीं और तीन नेत्र थे—मानों तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं। हाथमें उसके त्रिशूलथा और आकाश की नाईं उसकी मूर्त्तिथी। जैसे क्षीर समुद्र के मथने को भुजा बड़ी करके विष्णु ने शरीर धाराथा और क्षीरसमुद्रको क्षोभायाथा तैसेही नासिकाके पवनसे वह समुद्रको क्षोभित करता हुआ। जैसे आकाशका बड़ा वपुहै तैसाही उसने स्वरूप धारण किया—मानों प्रलयकाल के समुद्र मूर्त्ति धरके स्थितहुये हैं; अथवा मानों सर्व अहंकारकी समष्टिता अथवा महा-प्रलयकी बड़वाग्निकी मूर्त्ति स्थित वा प्रलयकाल के मेघमूर्त्ति धरके स्थितहुये हैं। हे रामजी! मैंने जाना कि, यह महारुद्रहै क्योंकि, इसके हाथमें त्रिशूलहै, तीन नेत्र और पंचमुख हैं। ऐसे जानकर मैंने उसे प्रणाम किया। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! उसका भयानकरूप क्या था और रुद्र किसको कहते हैं? उसका बड़ा आकार, दशभुजा, पंचमुख और तीननेत्रक्याथे और हाथमें त्रिशूल क्या था? क्या वह किसका भेजा आयाथा उसने क्या किया और कहां गया? वह अकेला था अथवा उसके साथ कोई और था और वह श्याममूर्त्ति क्यों था? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विषम विष प्रच्छन्न जो अहं-कार है सो त्यागने योग्य है और समष्टि अहंकार सेवने योग्य है। सर्व आत्मा प्रतीत का नाम समष्टि अहंकार और उसीका नाम रुद्र है। कृष्णमूर्त्ति इस निमित्तथी कि, आ-काशरूप है। जैसे आकाश में नीलता है तैसेही उसमें कृष्णता थी सर्व जीव जो अपने अहंकार को त्यागकर निर्वाणहुये उनकी समष्टिता होकर रुद्ररूप भासी इसी से उग्र था पंचमुख ज्ञानइन्द्रियोंकी समष्टिता थी और दश भुजा कर्म्म इन्द्रियों की समष्टिता थी राजस, तामस और सात्विक तीनगुण तीनों नेत्र थे अथवा भूत, भविष्यत, वर्त्तमान; वा ऋग्, यजुः और साम तीनों वेद नेत्र थे; अथवा मन, बुद्धि और चित्त तीनों नेत्र थे। ॐकारकी तीनमात्रा उसके नेत्र और आकाशरूपी वपुथा और त्रिलोकी रूपी हाथ में त्रिशूल थे। चित्संवित् से फुराथा इससे उसीका भेजा आयाथा और फिर उसी में लीन होगा। वह केवल आकाशरूप था जो कुछ उसने किया वह भी सुनो। हे रामजी! ऐसा वह रुद्र था मानों आकाश के पंखलगे हैं; उसने अपने नेत्र प्राणोंको खींचा तो सर्व जल उसके मुखमें प्रवेश करने लगे। जैसे नदी समुद्र में प्रवेश करती है तैसेही सब जल रुद्र में लीन हुये और जैसे बड़वाग्नि समुद्र को पान करलेती है, तैसेही उस रुद्रने एक मु-हूर्त्त में सब जल पान करलिया; कहीं जलका अंश भी दृष्टि न आवे। जैसे अन्धकार को सूर्य लीन करलेता है तैसेही उसने जल पान करलिया और जैसे अज्ञानी का अज्ञान सन्त के संगसे नष्ट होजाता है तैसेही उसने जलको पान करलिया। तब केवल शुद्ध आकाश होगया; न कहीं पृथ्वी दृष्टि आवे; न अग्नि; न वायु; कोई तत्त्व कहीं दृष्टि न

आवे-एक आकाशही दृष्टि आवे। जैसे उज्ज्वल मोती होता है तैसेही उज्ज्वल आकाश दृष्टि आवे और चारों तत्त्व कहीं न भासें। एक तो अधोभाग दृष्टि आवे; दूसरे मध्य भाग आकाश सो रुद्रही दृष्टि आवे; तीसरे ऊर्ध्वभाग दृष्टि आवे और चौथे चिदाकाश दृष्टि आवे कि, सर्वात्मा है और कुछ दृष्टि न आवे। हे रामजी! वह रुद्र भी आकाशरूप था और उसका कोई आकार न था केवल भ्रांति से आकार भासता था। जैसे भ्रमसे आकाश में नीलता और तरुवरे भासते हैं और जैसे स्वप्नेमें भ्रमसे आकार भासते हैं; तैसेही उस रुद्र का आकार दृष्टि आया पर आत्मा आकाशसे भिन्न न था। जसे चिदाकाश में भूताकाश भ्रम से भासता है, तैसेही रुद्र का शरीर भासा। वह रुद्र सर्वात्मा था और आकाश होकर भासा सो किंचन था। हे रामजी! आकाश में रुद्र निराधार भासा था। जैसे मेघ निराधार होते हैं तैसेही वह निराधार दृष्टि आता था। श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! इस ब्रह्मांडके ऊपर क्याहै और फिर उसके ऊपर क्याहै सो कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जो ब्रह्माण्ड का आकाश है उस पर दशगुणा जल अवशेष है; जलके ऊपर दशगुण अग्नि है; उसके ऊपर दशगुण वायु है और उसके ऊपर दशगुण आकाश है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये तत्त्व जो तुमने वर्णन किये सो किसके ऊपर हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये तत्त्व पृथ्वी के ऊपर स्थित हैं। जैसे माता की गोदमें बालक आन बैठता है तैसेही ये तत्त्व पृथ्वी पर हैं और पृथ्वी भाग के आश्रय है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! पृथ्वी आदिक तत्त्व सहित निराधार ब्रह्माण्ड किसके आश्रय स्थित हुआ है; उनका चलना और ठहरना कैसे होता है और नाश कैसे होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हीं कहो कि, आकाश में मेघ किसके आश्रय होते हैं? सूर्य और चन्द्रमा किसके आश्रय होते हैं? जैसे ये संकल्प के आश्रय हैं तैसेही ब्रह्माण्ड भी संकल्प के आश्रय है और जैसे स्वप्ने की सृष्टि संकल्प ही के आश्रय है और संकल्प आत्मा के आश्रय है; तैसेही यह जगत् और तत्त्व भी आत्मसत्ता के आश्रय स्थित हैं और इनका ठहरना और गिरना भी आत्मा के आश्रय है। जैसे आदि चित्त स्पंद होकर नीति हुई है तैसेही है। इस प्रकार गिरना है; इस प्रकार ठहरना है; इस प्रकार इसका नाश होना है और इसप्रकार रहना है तैसेही परम स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं-केवल भ्रममात्र है जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और चित्त संवित्ही जगत् आकार हो भासती है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और जैसे तलवार में श्यामता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् है। जैसे नेत्रदोष से आकाश में मोती भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और मिथ्या जगत् की संख्या कीजिये तो नहीं होती। जैसे सूर्यकी किरणोंका आभास और रेतके कणके

में संख्या नहीं होती; तैसेही जगत् की संख्या नहीं होती और वास्तव में कुछ बना नहीं—अजातजात हैं। जैसे स्वप्न में अनहोती सृष्टि भासती है तैसेही यह जगत् भासता है, इससे दृश्य को मिथ्या जानकर जगत् की वासना त्यागो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनंनाम शताधिकपंचनवतितमस्सर्गः १९५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस रुद्रका तो मैंने बड़ा भयानकरूप देखा था। उसके नेत्र बड़े तेज से पूर्णथे—चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि ये तीनोंउसके नेत्रथे और वह महा भयानक था—मानों प्रलयके समुद्र मूर्त्ति धरके स्थित हुये हैं। रुण्डोंकीमाला उसके कंठमें थी और उसकी परछाहीं बड़ी और श्यामरूपी निकलती थी; उसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, यहां सूर्य और अग्नि भी नहीं और किसी का प्रकाश भी नहीं तो यह परछाहीं किस प्रकार है और क्या है। ऐसे मैं देखताही था कि, वह परछाहीं नृत्य करनेलगी और उससे एकस्त्री निकली जिसका शरीर दुर्बल, बड़ा ऊंचा आकार और कृष्णवर्ण था—मानों अँधेरीरात्रि मूर्त्ति धरके स्थित हुई है। और उसके तीननेत्र बड़ी भुजा और ऊंची ग्रीवाथी—मानों प्रलय कालके मेघ मूर्त्तिधारके स्थित हुये हैं। उसके गलेमें रुद्राक्ष और रुण्डोंकी माला परीहुई थी और विकराल स्वभाव हाथों में त्रिशूल, खड्ग, बाण, ध्वजा, ऊखल, मूशल आदिक आयुध लियेथी। ऐसा भयानक आकार देखकर मैंने विचार किया कि, यह काली भवानी है। उसको जानकर मैंने नमस्कार किया। जैसे अग्नि के जलेहुये पर्वत के शिखर श्याम होते हैं तैसेही वह श्याम आकार थी और उसके मस्तक में तीसरा नेत्र बड़वाग्नि की नाईं तेजवान् निकला था। कभी उसकी दोभुजा दृष्टि आवें; कभी सहस्रभुजा दृष्टि आवें; कभी अनन्त भुजा हों: कभी एक एक भुजा दीखे और कभी कोई भुजा न दृष्टि आवे; कभी शिर पाद कोई न रहे केवल एक बुतसी भासे और नृत्यकरे। ज्यों ज्यों वह नृत्य करे त्यों त्यों शरीर स्थूल दृष्टि आवे—मानों आकाश को भी ढाँप लिया है और दशों दिशा आकाश से पूर्ण किये हैं नख शिख की भी मर्य्यादा कुछ न दृष्टि आवे ऐसा आकार बढ़ाया। जब वह भुजा को हिलावे तब मानों आकाश को मापती है। पाताल पर्य्यन्त उसके चरण; आकाश पर्यन्त शीश; पृथ्वी उसका उदर, सुमेरु आदिक पर्व्वत नाभिस्थान और दशों दिशा भुजाथीं—मानों प्रलयकाल की मूर्त्तिधारकर स्थित भई हैं। बड़े पर्वत की कन्दरावत् जिसकी नासिका थी; लोकालोक पर्वत हाड़ थे और कण्ठ में नदियों की माला थी जो चलती थी। बरुण, कुबेर आदिक देवतों के शिरकीमाला उसके कण्ठ में थी; पवन नासिका के मार्ग से निकसता था उससे सुमेरु आदिक पर्वत तृणों की नाईं उड़े जाते थे। ब्रह्माण्ड की माला उसके गले में थी, हाथों में ब्रह्माण्ड

रूपी भूषण थे और कटिमें ब्रह्माण्ड के घुंघुरू और करधनी थी । जब वह नृत्यकरे तब सब ब्रह्माण्ड नृत्यकरे । जैसे पवन से पत्र नृत्यकरते हैं तैसेही सुमेरु आदिक नृत्य करें और उसके एक एक रोम में ब्रह्मांड थे । जैसे तारागण वायु के आधीन हैं । उस के कानों में धर्म्म अधर्मरूपी मुद्राथी और बड़े २ कान और बड़ा मुख था—मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भक्षण करती है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों स्थानथे और उन स्थानों में चारोंवेदों और शास्त्रों के अर्थरूपी दूध निकलता था । निदान जगत् की सब मर्य्यादा मुझको उसमें दृष्टि आई । उसके नृत्यकरने से कई ब्रह्मांड और अ-स्ताचल आदिक पर्व्वत तृणों की नाईं नृत्यकरें और सब कुछ विपर्यय होता दृष्टि आवे । उसके शरीर में आकाश अधको दृष्टिआवे; पृथ्वी ऊर्ध्व को दृष्टिआवे और तारामंडल, सिद्ध, देवता, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, दैत्य, स्थावर, जङ्गम सब उसमें दृष्टिआवें—मानों संपूर्ण ब्रह्माण्डोंका आदर्शहै । भुजों के उछलने से चन्द्रमा की नाईं नखोंका प्रकाश हो और मन्दराचल, उदयाचल पर्व्वत कानों में भूषण दृष्टि आवें और हिमालय पर्वत बरफ के कणके समान दृष्टिआवे । हे रामजी ! इसप्रकार उस देवी के शरीरमें मुझको अनन्तसृष्टि दृष्टि आई । कहीं इकट्ठी और कहीं भिन्न भिन्न कहीं एकहीसी चेष्टाकरे और कहीं भिन्न भिन्न चेष्टाकरे । मानों ब्रह्माण्डरूपी रत्नोंकाडब्बा है । हे रामजी ! जब मैं संकल्प सहित देखूं तब मुझको सृष्टि दृष्टि आवे और जब आत्मा की ओर देखूं तब केवल आत्मरूपही भासे और कुछ दृष्टि न आवे । संकल्प दृष्टि से सम्पूर्ण जगत् नृत्यकरते दृष्टि आवें पर ऐसी सामर्थ्य किसीकी दृष्टि न आवे कि, नृत्य न करे । जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब उसही में दृष्टि आवें और सम्पूर्ण क्रिया उसही से होती दृष्टि आवें । उसही में सिद्ध, देवता, गन्धर्व, अप्सरा विमानपर आरूढ़ फिरें और नक्षत्रों के चक्रफिरें—मानों ब्रह्माण्ड फिर उदय हुये हैं । जब मैं फिर आत्मदृष्टि से देखूं तब ब्रह्मस्वरूप भासे और संकल्प दृष्टि से जगत् भासे । वह चित्तकला जो संकल्परूप है उसमें सबही दृष्टि आवे । हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, सूर्य्य, चन्द्रमाआदि सब उसी में दृष्टिआते थे । जैसे मच्छर वायु से उड़ते हैं तैसेही अनन्तसृष्टि उसके शरीर में उड़ती दृष्टिआवें इससे मैं महाआश्चर्य्यवान् हुआ । वह भैरव था और यह भैरवी उसकी शक्तिथी; दोनों मुझ को दृष्टिआये कि, बड़ेवपुधारी हैं । यह नित्यशक्ति सर्वात्माथी और परमात्माकी क्रिया शक्ति सब विश्वको अपने आपमें जानती थी । जैसे समुद्र सब तरंगों को अपने में अ-पना आपजानताहै तैसेही सर्व ब्रह्माण्ड को वह अपने में अपना आप जानती थी । वह तो सदाशिवसेभी बड़े अहंकारको धारेथी मानों सब ब्रह्माण्ड की माला कण्ठ में डाले है और यमादिक सब उसकी मर्यादाहैं । हे रामजी ! इसप्रकार मैंने रुद्र और काली

भवानी को देखा । रुद्रके शिरपर जो जटाथीं सो मोरकी पंखकी नाईं थीं और काली को मैंने देखा कि, नानाप्रकार के मृग और दम दमसे आदिलेकर शब्द करती थी और यह शब्द भी करतीथी—"दिग्वंदिग्वं तुदिग्वं पंचमनावह संसंमप्रलये मियतुयत्रिपंत्रो त्रीलं त्रीषलषलुमं षनुषं सुमंष मषमत्रिगुही गुहींगुंही उगुमियगुंदलुमददारी मीदातं दती"। हे रामजी ! इसप्रकार के शब्दकरतीहुई वह श्मशानों में नृत्यकरती थी । हे रामजी ! ऐसी देवी तुम्हारे सहायहो जो सर्वशक्ति परमात्माहै और सब ब्रह्मांड उसके आश्रयहै । क्षणमें वह अंगुष्ठप्रमाण होजाती थी और क्षणमें बड़े दीर्घ आकार धारण करतीथी । सब जगत् में जो क्रिया होती हैं सो उसके आश्रय होती हैं; कहीं उत्पत्ति होती है और कहीं युद्धहोते हैं और नानाप्रकार की क्रिया उस देवी के आश्रयहोती हैं। जैसे आदर्श में प्रतिबिम्बहोता है तैसेही उसदेवी में क्रियाहोती हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेदेवीरुद्रोपाख्यानवर्णनं नामशताधिकषण्णवतितमस्सर्ग्गः १९६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! यह जो तुमने रुद्र और कालिकाका वर्णन किया सो कौनथे ? महाप्रलयमें तो कुछ नहीं रहता ? उसके शरीर में तुमने सृष्टि कैसे देखी और महाप्रलयहोकर उसके शरीर में सृष्टि ने कैसे प्रवेश किया ? उसके हाथमें शस्त्र क्याथे; कहांसे आईथी और कहांगई और उसका आकार क्याथा ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! न कोईरुद्रहै; न कालीहै; न कोई पुरुष है; न कोईस्त्रीहै; न कोई नपुंसक है; नपुरुष मिलकर कुछहुआ है; न ब्रह्माण्डहै और न पिंड है; केवल चिदाकाश है और संकल्पसे उपजे आकार भासते हैं । जैसे स्वप्ने में आकार भासते हैं । तैसेही वे आकार भी भासते हैं वास्तवमें केवल चिदाकाश ज्योंकात्यों है । हे रामजी ! आत्मपद अनन्त; चैतन्य, सत्य, प्रकाशरूप, अविनाशी और अपने आप स्वभाव में स्थित है । रुद्रदेवका आकार जो भासाथा सो चेतन आत्माही ऐसे होकर भासित हुआथा—कोई और आकार न था । जैसे सुवर्णही भूषणहोकर भासताहै तैसेही परम देव चिदाकाश ऐसे होकर भासाथा क्योंकि, चेतनस्वरूपहै । जैसे मधुरता पौंड़ेका स्वरूपहै, तैसेही आत्माका चेतन स्वरूपहै । हे रामजी ! चेतनसत्ता अपने स्वरूपको नहींत्यागती, आकारहोकर भासतीहै और सदा अपने आपमें स्थितहै । जैसे पौंड़ेके रसमें मधुरता न हो तो उसको कोई रस नहीं कहता, तैसेही आत्मसत्तामें चेतनता न हो तो चेतन कोई न कहे । जो आत्मा चेतनताको त्यागे तो परिणामी हो और चेतन न कहाये परन्तु वह तो सदा अपने आप स्वभाव में स्थितहै और किसी और अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ, इसीसे कहा है कि; जो कुछ भासता है सो आत्माका किंचनहै । हे रामजी ! जैसे पौंड़ेके रसमें मधुरताहोती है तैसेही आत्मा में चेतनताहै । चेतनमात्र में चेतनता लक्षण चेतनता रूप रहता है

इससे यह जगत् भावरूप लखाता है; जो शुद्धचिन्मात्र में चित्तका उत्थान न होता तो जगत्भाव न लखाता। आत्मसत्ता दोनों अवस्थाओं में सदा ज्योंकीत्यों है—जैसे वायु जब स्पन्द होताहै तब उसका स्पर्शरूप लक्षण प्रतीत होताहै और जब निःस्पन्द होता है तब उस में कोई शब्द नहीं प्रवेश करसक्ता; पर वायु दोनों अवस्थाओं से तुल्य है; तैसेही शुद्ध चेतन में किसी शब्दका प्रवेश नहीं पर चेतनता भावमें है और आत्मसत्ता सदा तुल्य है—इससे वास्तव यह जगतही नहीं है। हे रामजी! आदि, मध्य, अन्त, जगत्, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जन्म, मरण, सत्, असत्, प्रकाश, अन्धकार, पंडित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी, नामरूप, कर्मरूप, अवलोक, मनस्कार, विद्या, अविद्या, दुःख, सुख, बन्ध, मोक्ष, जड़, चेतन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आना, जाना, जगत्, अजगत् कुछ नहीं है। बढ़ना, घटना, मैं, तुम, वेद, शास्त्र, पुराण, मंत्र, अकार, उकार, मकार, जय, नाम आदिक स्थावर—जंगम जगत् सब ब्रह्मस्वरूप है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। जैसे समुद्र में तरंग, बुद्बुदे और आवृत सब जलरूप हैं, तैसेही सब ब्रह्मस्वरूप है ब्रह्मसे भिन्न जगत् कुछ वस्तु नहीं। जैसे स्वप्ने में पर्वत भासते हैं सो अनुभव से भिन्न नहीं होते तैसेही यह जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं। जैसे सूर्यकी किरणों में जलरूप होकर भासता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूप होकर भासती है। हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश आदिक जितने शब्दहैं वे सब ब्रह्मसत्ताही से होकर स्थितहुये हैं परन्तु सत्ता अपने आपमें ज्यों की त्योंहै कदाचित् परिणामको नहीं प्राप्तहुई और वही सत्ता सर्वकी आत्माहै। जैसे समुद्र अपने तरंगभावको त्यागे तो अपने सौम्यभाव में स्थित होताहै, तैसेही ब्रह्मसत्ता फुरने को त्यागे तो अपने स्वभाव में स्थितहो सो अनामयहै अर्थात् दुःखों से रहित, परमशांतिरूप, अनन्त और निर्विकार है जब इसप्रकार बोध हो तब उस ब्रह्मसत्ता को प्राप्तहो और बोध, अबोध, विधि, निषेध भी वही है। जैसे जल और समुद्र की संज्ञा कहीहै और तरंग शब्द कहने से विलक्षण भासता है पर जब जल तरंगबुद्धि को त्यागे तब केवल समुद्ररूप है, तैसेही यह जीव जब अपने जीवत्व भावको त्यागे तब आत्मरूपी समुद्र को प्राप्त हो अर्थात् जब दृश्यका सम्बन्ध त्यागकरे तब आत्मा हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम शताधिकसप्तनवतितमस्सर्ग्गः १९७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमसे मैंने जो चिदाकाश कहा है सो परमचिदाकाश है और सदा अपने आपमें स्थितहै। हे रामजी! शुद्धचिदाकाश जो मैंने तुमसे कहा है वही यह रुद्ररूपहै और वही नृत्य करताथा। वहां आकार कोई न था केवल चिद्घनसत्ताथी

और वही ऐसेहोकर किंचन होतीथी। हे रामजी! जब मैं आत्मदृष्टिसे देखताथा तब मुझ
को चिदाकाशरूपही भासताथा। हे रामजी! जैसे सा हो वही तैसारूप देखे और नहीं देख
सक्ताहै। हे रामजी! जिसका नाम कल्पांत कहाताहै वही रुद्र और भैरव है और वही
कल्पांतकी मूर्त्ति नृत्यकरके अन्तर्द्धान होगई और वास्तव में मायामात्ररूप था। यह
चेतनसत्ताके आश्रय नाचतेथे। हे रामजी! जैसे सोने में भूषण है परन्तु सोने विना
नहीं होते तैसेही चेतनता किंचन से जगत् भासता है और फिर वही प्रसादसे आधि-
भौतिक होजाता है, वास्तवमें शुद्ध चिदाकाशरूपही है और चेतनतासे वहीजगत्रूपहो
भासता है। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! प्रथम तो आप ने कहा कि आत्मतत्त्व अद्वैत
यह जगत् प्रमाद से नाशरूप कल्पित है और जोहै तो कल्पके अन्त में नाशहोजाता
है, केवल अद्वैतसत्ता रहती है और फिर आपही कहते हैं कि, चैत्यता से जगत्रूप
भासता है। अद्वैत में चैत्यता कैसे हुई है और कौन चेतनेवाला हुआ? प्रलयके अनन्तर
काली क्योंकर भासी? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई चैत्य है और न कोई चेत-
नताहै केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है जो चेतनघन, परमनिर्मल और शान्त
रूपहै और शिवतत्त्व भी उसीको कहते हैं। वही शिवतत्त्व रुद्र आकार को धारण किये
दृष्टिआयाथा दूसरा कुछनहीं--केवल परम चिदाकाशहै। वही चिदाकाश आकार हो
भासताहै और कोई आकार नहीं हुआ; न भैरव है, न भैरवीहै, न काली है न यह जगत्
है सब मायामात्रहै। जैसे स्वप्ने में आत्मसत्ता चैत्यताके कारण जगत्रूपहो भासती है
पर स्वरूपते न कुछ चैत्यता है और न जगत् है, आत्मसत्ताही अपने आप में स्थित
है; तैसेही उस जगत्को भी जानो। कुछ और नहीं हुआ अद्वैतसत्ताही है; इससे चेत
और चेतनेवाला मैं तुमको क्या कहूं सब वृत्तिके बल भासते हैं आत्मामें यह कुछनहीं
उपजे केवल स्वच्छ चिदाकाशहै। हमको तो सदा वही स्वरूप भासता है पर अज्ञानी
को नानाप्रकार का जगत् भासता है और आत्मा सदा एक है--किञ्चन करके उसमें
आकार भासते हैं। भैरव और काली सब निराकार हैं और भ्रान्तिकरके आकार भा-
सते हैं। जैसे मनोराजमें युद्ध भासते हैं और जैसे कथामें अर्थ भासते हैं सो अनहोते
ही संकल्प विलासते हैं; तैसेही चिदात्मामें यह जगत् भासताहै। जैसे आकाशमें तरुवरे
भासते हैं; तैसेही यह आकार भासते हैं। हे रामजी! यह जो जगत् प्रलय और महा-
प्रलयादिक शब्द हैं उनका नाशकरने के लिये मैं तुमको कहताहूं। आत्मा एक अद्वैत
चैतन्य है, उस चेतनताका अभाव कभी नहीं होता अपने आपमें स्थित है और किं-
चन है। जैसे सूर्यकी किरणें किंचनरूप होती हैं और उनमें जल भासता है; तैसेही
चैत्यका किंचन जगत् भासता है और वही महाप्रलय में रुद्र और भैरवी हो भासती
है वास्तव में न कुछ रुद्र है और न काली है सर्व आत्माही है। हे रामजी! जो कुछ

कहना सुनना होता है तो वाच्य वाचक कहाता है आत्मा में कहना और सुनना कुछ नहीं। वही चिदाकाश सङ्कल्प से रुद्र नृत्य करता था। जैसे सुवर्ण भूषण होकर भासता है, तैसेही चिदाकाश सङ्कल्प से आकार होकर भासता है दूसरा कुछ नहीं बना। मैं, तुम और जगत्, चैत और अचैत सब वही रूप हैं; उसमें कोई शब्द नहीं फुरा। जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार के शब्द भासते हैं सो कुछ वास्तव नहीं—पत्थर की नाईं मौन है—तैसेही जाग्रत् जगत् में भी जितना शब्द होता है सो सब स्वप्न है; कुछ हुआ नहीं केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। जैसे आकाश अपनी शून्यता में स्थित है, तैसेही आत्मसत्ता अपने आप भाव में स्थित है जहां न एक है; न द्वैतहै; न सत्य है; न असत्यहै; न चित्त है; न चेत है; न मौनहै; न अमौन है और न कोई चेतनेवाला है; चेतके अभाववत् केवल अचेत चिन्मात्र आत्मसत्ता निर्विकल्परूप स्थित है। हे रामजी ! सबसे बड़ा शास्त्र का सिद्धान्त यही है; इस दृष्टि मौन में तुम स्थितहो। हे रामजी ! सर्व सिद्धान्तों की समता यही है कि, निर्विकल्प होना। जैसे पत्थर की शिला परममौन होती है, तैसेही चेतसे रहित हो जो कुछ प्रत्यक्ष आचार प्राप्त हो उसमें प्रवर्त्तना और सदा आत्मनिश्चय रखना इसीका नाम परम मौन है। सब क्रिया होतीरहैं पर अपने से कुछ न देखना—जैसे नट स्वांग धरता है और उसके अनुसार विचरता है परन्तु निश्चय उसका आदिही वपु में होता है, उससे चलायमान नहीं होता; तैसेही जो कुछ अनिश्चित प्राप्तहो उसको यथाशास्त्र करना परन्तु अपने निर्गुण निष्क्रियस्वरूप से चलायमान न होना उसी अद्वैत स्वरूप में स्थित रहना। रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! वह रुद्र क्या था और वह काली शक्ति क्या थी ? उनके अंग जो बढ़ते घटते थे; नृत्यकरना क्या था और वस्त्र क्या थे सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शिवतत्त्वही आकार होकर भासता है और कोई आकार नहीं जो चिन्मात्र; अमल, विद्या और अविद्याके कार्य्य से रहित; शान्त और अवाच्यपद है। यह संज्ञाभी सङ्कल्प में तुमसे कही है; आत्मवेत्ता आत्मपद को अवाच्यपद कहते हैं तथापि मैं कुछ कहता हूं। हे रामजी ! केवल आत्मतत्त्वमात्र जो चिदाकाश है, वही शिव भैरव है; उसी के चमत्कारका नाम चित्तशक्ति है और उसी का नाम काली है उस काली आत्मा और शिवरूप में कुछ भेद नहीं। जैसे पवन और स्पन्दमें; और अग्नि और उष्णतामें कुछ भेद नहीं होता तैसेही चित्तकला और आत्मामें कुछ भेद नहीं। जैसे पवन निःस्पन्द होता है तब उसका लक्षण नहीं होता अवाचकरूप होताहै और जब स्पन्द होताहै तब उसका लक्षण भी होताहै और उसमें शब्द प्रयोग होताहै; तैसेही चित्तशक्तिसे उसका लक्षण होताहै। उसके अनेक नामहैं; उसी का नाम स्पन्द और इच्छाहै; उसीको चैत्योन्मु-

खत्वसे वासना कहते हैं; उसीके स्वादकी इच्छासे जब चित्त संवित् में वासना फु-रती है तब उसका नाम वासना करनेवाला वासक कहाताहै--फिर आगे दृश्यहोती है। जब त्रिपुटी हुई अर्थात् वासना, वासक और वासहुये तब वासक को जीव कहते हैं-और जो जीवत्वभावलेकर स्थितहोता है। जब इसको यह भावना होती है कि, मैं जीवहूं और मेरा नाश कदाचित् न हो इस इच्छा से जीव कहाता है ऐसी संज्ञा जो चित्तशक्ति की होती है सो स्पन्द में होती है पर शिवतत्त्व अफुर है और अचेतशक्ति में फुरने की नाईं स्थित है। जैसे सूर्य की किरणों में जल नहीं होता और हुये की नाईं भासता है, तैसेही यह जगत् है नहीं और हुये की नाईं भासता है इससे उसमें यह संज्ञा देते हैं। काली जो परमात्मा की क्रियाशक्ति है सो प्रथम तो कारणरूप प्रकृतिहै और इसीसे सब हैं-इसीसे प्रकृति रूप है, विकृति नहीं; अर्थात् किसी का कार्य नहीं। महदा-दिक पंचभूत महत्तत्त्व, बुद्धि और अहंकार यह सप्त प्रकृति--विकृति हैं-अर्थात् कार्य्य भी हैं और कारण भी हैं। कार्यआदि देवी के हैं और कारण षोड़श हैं-पंचज्ञान इन्द्रियां, पंच कर्मइन्द्रियां, पंचप्राण और एक मन। इनके सप्तदश कारण हैं। षोड़श तो विकृत हैं अर्थात् कार्यरूप हैं, कारण किसीका नहीं, और पुरुष जो परमात्माहै वह अद्वैत अचित्त और चिन्मात्रहै न किसीका कारण है और न कार्यहै अपने आप में स्थित है इससे जितनी द्वैतकलना कारण कार्य में हैं वह सब चित्तशक्तिमें स्थित है। जब यह निःस्पन्द होती है तब तत्त्वरूप शिवपदमें निर्वाण होजाती है और कारण कार्यरूपी भ्रम सब मिटजाताहै केवल आकाशवत् शेषरहताहै। वह शुद्ध, अद्वैत, अचेत, चिन्मात्र सदा अपने आप भावमें स्थितहै और उसकी स्पन्दरूप क्रियाशक्तिकी इतनी संज्ञा है। प्रथम तो सब का कारणरूप प्रकृति है जो शोष है अर्थात् जैसे बड़वाग्नि समुद्रको सुखाती है तैसेही वह जगत् को सुखातीहै; सिद्धिहै अर्थात् सिद्ध उसे आश्रय-भूतकरके सेवतेहैं; जयन्ती है अर्थात् उसकी जय है; चण्डिका है अर्थात् जिसके क्रोध से जगत् प्रलय होताहै और भयपाता है; वीर्य्य है अर्थात् जिसका अनन्त वीर्य्य है; दुर्गाहै अर्थात् इसका रूप जानना कठिन है; गायत्री है अर्थात् जिसके पाठसे सं-सारसमुद्र से रचा होतीहै; सावित्री है अर्थात् जगत्की पालना करती है; कुमारी है अर्थात् कोमल स्वभाव है; गौरी है अर्थात् गौर अङ्गहै; शिवा है अर्थात् शिवके बायें अंगमें उसका निवासहै; विजया है अर्थात् सब जगत् को जीतरही है; सुशक्ति है अर्थात् अद्वैत आत्मा में उसने विलास रचाहै और इन्द्रसारा है अर्थात् यह जो उकार इन्द्रआत्मा है उसका सार अर्द्धमात्रा है और उकार—अकार—मकार तीनों मात्रा अधिष्ठान है। हे रामजी! राजसी; तामसी और सात्त्विकी तीन प्रकारकी जो क्रिया होती हैं सो इसी से होती हैं; यह सब संज्ञा क्रियाशक्तिकी कही। अब उसका

शस्त्र और बढ़ना घटना सुनो। हे रामजी! वह नृत्य जो करती थी सोही क्रिया है; सो क्रिया सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार की है। गुसल ज था सो ग्राम, पुर और नगर थे और उसके अङ्ग सृष्टि थे। जब वह शिवसे व्यतिरेक होती थी तब उसके अङ्ग सृष्टिरूप बहुत होजाते थे; जब शिवकीओर आती थी तब सृष्टिरूप अङ्ग थोड़े होजाते थे और जब शिवको आमिलती थी तब शिवही होती थी—सृष्टिरूपी अङ्ग कोई न रहता था। यह तो आत्माकी कालीशक्ति की क्रिया का वर्णन तुमको सुनाया है अब शिवका वर्णन सुनो। वह तो वाणीसे अतीत है तथापि मैं कुछ कहताहूं। वह परमशुद्ध, निर्मल और अच्युत है और उस में कुछ हुआ नहीं केवल क्रियाशक्ति के फुरने से जगत् हो भासता है। जब वह अपने अधिष्ठान की ओर देखता है तब अपना स्वरूप दृष्टि आता है। क्रियाशक्ति और आत्मा में कुछ भेद नहीं—जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं क्योंकि; आकाश का अङ्ग शून्यता है—और अवयवी और अवयव में भी कुछ भेद न ीं जैसे अग्निका रूप उष्णता है, तैसेही आत्माका स्वभाव चित्तशक्ति है। इसका नाम काली इससे है कि कृष्णरूप है। जैसे आकाश ऊर्ध्वको श्याम भासता है तैसेही आकाश वपु है। और जैसे आकाश निराकार है तैसेही काली निराकार श्यामा भासती है। आकाशकी नाईं इसका वपु है इससे इसका नाम कृष्णवपुहै और काली जगत् के नाश के अर्थ है। वह जब स्वरूपकी ओर आती है तब जगत् का नाश करती है। हे रामजी! स्पन्दशक्ति जब तक शिवसे व्यतिरेक है तब तक जगत् को रचती है—जहां यह है तहां जगत् है—जगत्से विलक्षण नहीं रहती। जैसे जहांसूर्यकी किरणें हैं वहां जलाभास होता है—किरणविना जलाभास नहीं रहता; तैसेही स्पन्दशक्ति जगत् विना नहीं रहती। जैसे आकाश के अंग आकाश हैं तैसेही इसके अंग जगत् हैं और जैसे समुद्रमें तरंगसमुद्ररूपहै; तैसेही जगत् इसकारूपहै और यह शक्तिचिदाकाशहै उससे व्यतिरेक नहीं। जब यह फुरती है तब जगत् आकारहो भासती है और जब शिवकी ओर आती है तब शिवरूप होजाती है। और जगत्काभाव कोई नहीं रहता। इससे, हे रामजी! तुम्हारी चित्तशक्ति जब तुम्हारी ओर आवे तब जगत्भ्रम मिटे। इस चित्तशक्तिनेही जगत्भ्रम रचा है। शिवपूजा निर्मल और शान्तरूप है और अजर, अमर, अचेत, चिन्मात्र है उस में कुछक्षोभ नहीं—आत्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तुमने काली के अंगकी जो सृष्टि देखीथी वह आत्मा में सत् है अथवा असत् है सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह कालीदेवी आत्माकी क्रियाशक्ति है अर्थात् फुरनशक्ति है इससे आत्मा में सत्य है और वास्तव में आत्मा में कुछ नहीं मिथ्या है। जैसे तुम मनोराजसे अपने में दूसरी चिंतनाकरो तो वह कुछ वस्तु नहीं पर उस काल में सत् भासती है; तैसेही जि-

तनी सृष्टिहै सो आत्मामें कोई सत्य नहीं परन्तु चित्तशक्ति से बसती दृष्टि आती है। जैसे कुछ विधि–निषेध पदार्थ और आकाश, पर्वत, समुद्र, वन, जगत्, तीर्थ, कर्म, बन्ध, मोक्ष, गुरु, शास्त्र, युद्ध, शस्त्रआदिक जो भासते हैं वह सब चिदाकाश ब्रह्मरूप हैं और वास्तव में इनका होना ब्रह्म से भिन्न नहीं; सर्वप्रकार और सर्वदाकाल आत्मा अपने आपमें स्थित है जो शुद्ध, अद्वैत, निराकार, निर्विकार और ज्योंकात्यों है उस में जगत् कोई नहीं उपजा। सब जगत् आत्मा में क्रिया शक्तिने रचा है सो मायाकाल में सत्य है वास्तव में कुछ नहीं। जैसे सोने वाले को स्वप्न में सृष्टि भासती है और उसके शरीर को कोई हिलावे तो वह नहीं जागता पर जो कुछ सृष्टि होती तो हिलाने से उसका कोई स्थान गिर पड़ता—इसीसे जानाजाता है कि, किसी का नाश नहीं होता–वास्तव में कुछ नहीं। हे रामजी ! वह सृष्टि जो प्रत्यक्ष अर्थाकार होती है उसके चित्त स्पंद में स्थित है परन्तु जबतक निद्राहै तबतक वह सृष्टि है और जब निद्रा निवृत्त होती है तब स्वप्नसृष्टि भी नहीं भासती तैसेही यह सृष्टि भी कुछ वास्तव में नहीं अज्ञान से चित्त शक्तिमें भासती है। हे रामजी ! सब पदार्थ चित्तके फुरने से भासते हैं। जिसका संकल्प शुद्ध होता है उस के मनोराज की सृष्टि यदि देशकाल से प्रत्यक्ष होती है तो संकल्परूप होती है क्योंकि, कुछ बनानहीं। जब संकल्प फुरता है तब संकल्प के अनुसार सृष्टि भासती है; इससे संकल्परूपही हुई और जो उसकी सत्यता हृदय में होती है तब इसका अर्थ हृदय में अनुभव होता है। जैसे परलोक अदृष्टि है पर जब उसकी सत्यता हृदय में होती है तब उसका रागद्वेष भी हृदय में फुरता है क्योंकि; संकल्प में उसका भाव खड़ा है; तैसेही जबतक चित्त स्पंद फुरता है तबतक जगत् सब खड़ाहै। और जब चित्तनिस्पंद होताहै तब जगत् की सत्यता नहीं भासती। हे रामजी ! यह सब जगत् क्रिया शक्तिने आत्मा में रचा है। जबतक यह काली क्रिया शक्ति शिवसे व्यतिरेक होती है तबतक नानाप्रकार के जगत् रचती है और क्षोभको प्राप्त होती है और जब शिवकी ओर आती है तब शान्तरूप होजाती है; तब फिर प्रकृतिसंज्ञा उसकी नहीं रहती–अद्वैत तत्त्व में अद्वैतरूपही होजाती है। जैसे जब तक पवन चलता है तब तक शीत, उष्ण, सुगन्ध, दुर्गन्ध, बड़ी और छोटी संज्ञा होती है और जब ठहरता है तब कहा नहीं जाता कि; ऐसा है अथवा वैसा है; तैसेही जब तक चित्तशक्ति स्पन्दरूप होती है तब तक जगत् रचती है और प्रकृति कारण रूप कहाती है और उस में दोप्रकार के शब्द होते हैं–विद्या और अविद्या। हे रामजी ! जो कुछ कहना होता है सो स्पन्दरूप जो चित्रलिखा है उस में है और जब शिवतत्त्व में अंकुर होता है तब अद्वैतरूप होजाती है–वहां किसी शब्दकी गम नहीं। हे रामजी ! शिव क्या है और शक्ति क्या है सोभी सुनो। ये सबजीव शिवरूप हैं और इनके चित्तका फुरना काली है। जब तक इच्छा से चित्तशक्ति बाहर

फुरती है तबतक भ्रमका अन्त नहीं आता और नानाप्रकार के विकारों का अनुभव होता है कदाचित् शान्ति नहीं होती और जब चित्तशक्ति उलटकर अधिष्ठान को देखती है तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाताहै और परमशान्तिको प्राप्तहोताहै। हे रामजी! आत्मा और चित्तसंवित् में कुछ भेद नहीं। जैसे वायु के स्पन्द और निस्पन्दमें कुछ भेदनहींहोता परन्तु जब स्पन्दहोती है तब जानीजाती है और निस्पन्द नहीं जानीजाती; तैसेही चित्तसंवित् जब फुरता है तब जानाजाता है और नहीं फुरता तब नहीं जानाजाता और जानना और न जानना दोनों नहीं रहते हैं। हे रामजी! जबतक इच्छाशक्ति शिवकी ओर नहीं देखती तबतक नानाप्रकार का नृत्यकरती है अर्थात् जगत्को रचती है और जब शिवकी ओर देखती है तब नृत्यविरस होजाता है और सब अंग सूक्ष्महोजाते हैं। हे रामजी! इसकाली का आकार प्रमाणमें आता न था पर शिवकी ओर देखने से सूक्ष्म होगया। प्रथम पर्वत समान था; फिर निकटआई तब ग्राम के समान हुआ; फिर वृक्षके समान रहा और जब निकटआई तब सूक्ष्म आकार होगया और शिवकेसाथ मिली तब शिवरूप होगई। शिवके सम्मिलनसे इसका जो विलास है सो शून्य होजाताहै और परमशान्त शिवपदकी प्राप्तिहोती है। श्रीरामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! यह जो परमेश्वरी कालीशक्तिहै सो उसको मिलकर शान्तकैसेहुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवी परमात्माकी इच्छाशक्ति है और जगन्माता इसका नामहै। जबतक यह शिवतत्त्वसे व्यतिरेकरहती है तबतक जगत्को रचती और जब अपने अधिष्ठानकी ओर आती है जो नित्यतृप्त, अनामय, निर्विकार, द्वैतभाव से रहित परमशान्तिको प्राप्तहोती है। तब इसकी प्रकृतसंज्ञा जातीरहती है। जैसे नदी जबतक समुद्रको नहीं प्राप्तहुई तबतक दौड़ती और शब्दकरती है पर जब समुद्र को मिली तब शब्दकरना और दौड़ना नष्ट होजाता है और नदी संज्ञा भी नहीं रहती—समुद्रको मिलकर परमगंभीर समुद्ररूप होजाती है; तैसेही जबतक चित्तशक्ति शिवसे व्यतिरेक होती है तबतक जगत् भ्रमको रचती है और जब शिवतत्त्वको मिली तब शिवरूप होजाती है और द्वैतभ्रम मिटजाताहै। हे रामजी! जब यह चित्तशक्ति शिवपदमें लीन होजाती है तब प्रथम जो देह और इन्द्रियोंसे तद्रूपहुई थी; इन्द्रियों के इष्ट—अनिष्ट में आपको सुखी दुःखी मानतीथी और रागद्वेष से जलतीथी सो नित्यतृप्त और अनामय पदके मिलेसे सुख दुःख से रहितहोती है क्योंकि; अनात्मदेह इन्द्रियों की तद्रूपता का अभाव होजाता है और आत्मतत्त्वकेसाथ तद्रूपहोती है। जैसे पत्थर की शिलाकेसाथ मिलकर खड्गकीधार तीक्ष्ण होती है तैसेही चित्तसंवित् जब आत्मपदमें मिलती है तब एक अद्वैतरूप होजाती है। और आत्मपदके स्पर्शकिये से अनात्मभाव का त्याग करती है। जैसे तांबा पारसके स्पर्श से सुवर्ण होजाता है और फिर तांबा नहीं होता

तैसेही यह वृत्ति अनात्मभाव को नहीं प्राप्त होती। चित्तकला तबतक विषय की ओर धावती है जबतक अपने वास्तव स्वरूप को नहीं प्राप्त हुई; जब अपने वास्तव स्वरूपको प्राप्तहोती है तब विषयकी ओर नहीं धावती है। जैसे जिसपुरुष को अमृत प्राप्त होता है और उसके स्वाद का उसे अनुभव होता है तब वह नींबपान करने की इच्छा नहींकरता; तैसेही जिसको आत्मानन्द प्राप्तहुआहै वह विषयों के सुखकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी! यह संसार भ्रम चित्संवित् में दृढ़सत्यहोकर स्थित हुआ है और संसार के सुखका त्याग नहीं करसक्ता पर जब आत्मसुख प्राप्तहोगा तब त्याग देगा। जैसे किसी पुरुष को जबतक पारस नहीं प्राप्तहुआ तबतक वह और धन को त्याग नहींसक्ता पर जब पारस प्राप्त होताहै तब तुच्छधनका त्यागकरता है और फिर यत्न नहीं करता; तैसेही जब जीवको आत्मानन्द प्राप्त होता है तब विषय के सुखका त्यागकरता है और पानेकायत्न नहीं करता। हे रामजी! भँवरा तबतक और स्थानों में भ्रमता है जबतक कमलकी पंक्तिपर नहीं पहुंचता पर जब उस पंक्तिपर पहुंचताहै तब और स्थान को त्याग देता है; तैसेही चित्तशक्ति जब आत्मपद में लीनहोती है तब किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करती। निर्विकल्प पदको प्राप्त होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपुरुषप्रकृतिविचारो नामशताधिकअष्टनवतितमस्सर्गः १९८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब पूर्वका प्रसंग फिर सुनो। जब काली नृत्यकरके निर्वाण होगई तब शिव अकेला रहगया वही मुझको दृष्टि आवे और दोखण्ड आकाश के दृष्टि आवें—एक अधोभाग और दूसरा ऊर्ध्वभाग और कुछ दृष्टि न आवे। तब रुद्रने नेत्रोंको फैलाकर दोनोंखण्ड देखे—जैसे सूर्य जगत् को देखताहै—और प्राणको भी खैंचा तब ऊर्ध्व और अध दोनोंखण्ड इकट्ठे होगये और ब्रह्माण्डको अन्तर्मुख करलिया—एक शिवही रहगया और कुछ दृष्टि न आवे। हे रामजी! जब एकक्षण व्यतीत हुआ तब रुद्र बड़े आकार को धारेहुये ब्रह्माण्डको भी लांघगया और एक वृक्षके समान होगया। फिर अंगुष्ठमात्र शरीरहोकर एकक्षण में सूक्ष्मअणुसा होगया; फिर रेतके कणके से भी सूक्ष्महोगया और फिर नेत्रों से दृष्टि न आवे तब दिव्यदृष्टि से मैं देखतारहा और फिर वह भी नष्टहोगया केवल चिदाकाशही शेषरहा और दूसरी वस्तु कुछ न भासे। जैसेवर्षाकालके मेघ शरत्कालमें नष्टहोजाते हैं तैसेही वह रुद्र भी नष्टहोगया। हे रामजी! उस कालमें मुझको तीनों इकट्ठे दीखे—एकदेवी ब्रह्माकी शक्ति; दूसरी कालीशक्ति और तीसरी शिला। तब मैंने विचार किया कि, यह स्वप्न नगरवत् आश्चर्यथा और कुछ नहीं। तब मैंने क्यादेखा कि; स्वर्णकी शिलाही पड़ी है। यह श्रेष्ठशिलाके कोशमें स्थितथी। तब मैंने विचार किया कि; यह सृष्टि शिलाके एककोशमें है और सृष्टिभीहोगी क्योंकि; सर्व वस्तु

सर्वप्रकार और सर्वठौरपूर्णहै; इसलिये उसमेंभी मैं सृष्टि देखनेलगा और नानाप्रकार की सृष्टिदेखीं। जब मैं बोधदृष्टि से देखूं तब सर्वब्रह्महीं भासे। संकल्प दृष्टि से आत्म-रूपी आदर्श में अनन्तसृष्टि दृष्टआवें और चर्मदृष्टिसे शिलाही पड़ी दीखे। इसप्रकार मैं शिलाकोश में चला तो वहां मुझे घास, तृण, पत्थर, फल और फूलों में अनन्त सृष्टि दृष्टिआवें और निस्संकल्प आत्मदृष्टिसे देखूं तब अद्वैत आत्माही भासे। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टिदेखीं; कहीं ऐसी सृष्टि भासे कि, ब्रह्माउपजे हैं और रचना रचनेको समर्थ हुये हैं; कहीं ब्रह्माने चन्द्रमा सूर्य उपजाये हैं और मर्यादा स्थापितकी हैं; कहीं सम्पूर्ण पृथ्वीआदिक तत्त्व उपजाये हैं पर प्राण नहीं हुये; कहीं समुद्र नहीं उपजे; कहीं आचार सहित सृष्टिदृष्टि आवे; कहीं चन्द्रमा सूर्य नहीं उपजे और कहीं उपजेहैं; कहीं चन्द्रमा शिवसे नहीं निकले; कहीं क्षीरसमुद्र मथानहीं गया और अमृत नहीं निकला और लक्ष्मी, हाथी, घोड़ा, धन्वन्तरिवैद्यभी नहीं निकले; कहीं विष और अमृत नहीं निकला—देवता मरतेहैं; कहीं क्षीरसमुद्र मथाहै उससे अमृत निकला है कहीं प्रकाश नहीं होता; कहीं सदा प्रकाशही रहताहै; कहीं पृथ्वीपर पर्व्वतोंके सिवा कुछ दृष्ट न आवे; कहीं इन्द्र के वज्रसे पर्व्वतकटते हैं और उड़तेथे; कहीं प्राणियोंको जरामृत्यु नहीं होता कल्पपर्यंत ज्योंकेत्यों रहते हैं; कहीं प्रलय होतीहै, कहीं मेघ गर्जते हैं; कहीं सम्पूर्ण जलही दृष्ट आवे; कहीं आकाश दृष्ट आवे और प्राणी कोई न दीखे; कहीं देवताओं के युद्धहोते थे; कहीं देवोंको दैत्यजीतते थे; कहीं दैत्यों को देवता जीतते थे; कहीं देवता और दैत्यों की परस्पर प्रीतिथी; कहीं बलि और इन्द्र; रुद्र और वृत्रासुरका युद्ध होताथा; कहीं मधुकैटभदैत्य ब्रह्मा की कन्यासे उत्पन्न होते थे, कहीं सदा प्रसन्नताही रहती है और तीनोंकालोंको जानते हैं; कहीं सदाशोकवानही रहते हैं; कहीं सतयुग का समय है और दान, पुण्य, तप होतेथे; कहीं कलियुगका समयथा और प्राणी पापमें विचरते थे; कहीं अर्द्धयुग बीताथा; कहीं रामजी और रावणका युद्ध होताथा; कहीं रावणको रामजीने मर्दन कियाथा, कहीं रामजीको रावणने मर्दन कियाथा; कहीं सुमेरु पर्व्वत तले है और पृथ्वी ऊपर है; कहीं शेषनागपर पृथ्वीहै और भूचाल से भ्रमती है कहीं प्रलयकालका जल चढ़ाहै और एक बालक बटकेवृक्षपर बैठा अपने अंगुष्ठको चूसता है सो विष्णु भगवान् हैं और कहीं ब्रह्माके कल्पकी रात्रिहै और महाशून्य अन्धकार है; कहीं कौरव पांडवकी सहायता कृष्ण करते हैं; कहीं महाभारत का युद्ध होताहै और दोनों ओरसे अक्षौहिणी सेना निकली है और श्रीकृष्णजी पांड-वोंकी सहायता करते हैं; कहीं एकसृष्टि नाशहोती है और दूसरी उसीमें उसीकीसी और उत्पन्न होतीहै और उसीकासा कर्म, उसीकासा कुल, जाति और गोत्र होते हैं कहीं उससे अर्द्धभाग मिलताहै; कहीं चतुर्थभाग उसीकासा मिलताहै और कहीं विल-

क्षण भासहोता है। हे रामजी! इस प्रकार मैंने अनन्त सृष्टि देखीं जो आत्मआदर्श में प्रतिबिम्बितहैं। जब मैं आत्मदृष्टिसे देखूं तब सब चिदाकाशही भासे और जब सङ्कल्प दृष्टिसे देखूं तब जगत् भासे। कहीं ऐसी सृष्टि देखी जहां दशरथके पुत्र रामहैं और रावणके मारनेको समर्थहुये हैं; कहीं तुम्हारे रूपवड़े तपस्वीरहते हैं जिनके मन सदा प्रसन्न हैं। ऐसी अनन्तसृष्टि देखीं। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! मैं आगेभी ऐसाही हुआहूं अथवा किसी और प्रकार हुआहूं सो कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कई उसीकेसे; कई अर्द्धलक्षणके और कई चतुर्थभाग लक्षणवाले होते हैं। जैसे अन्न का बीज उसीकासा होताहै और कोई उससे विशेषभी होता है; तैसेही ये सब पदार्थ होते हैं। हे रामजी! तुमभी आगेहोगे और मैंभी आगेहूंगा परन्तु आत्माका विवर्त्त है। जैसे समुद्रमें एकसे तरङ्गभी होते हैं और विलक्षणभी दृष्टआते हैं परन्तु वही रूपहैं; तैसेही हमारे सदृशभी फिरहोंगे परन्तु आत्मत्व भिन्न कुछ नहीं—सङ्कल्प से भिन्नकी नाईं विलक्षण रूप भासते हैं जैसे समुद्र में वायुसे तरङ्ग भासते हैं; तैसेही आत्मा सङ्कल्पसे जगत्रूप होभासताहै। यद्यपि नानाप्रकार होभासताहै तौभी दूसरा कुछहुआ नहीं। यह जगत चैतन्य का विलासहै और चित्तके फुरनेमें अनन्तसृष्टि भासती हैं। जैसे स्वप्न की सृष्टि बड़े आरम्भ से भासती है परन्तु स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं तैसेही यह जगत् आरम्भ परिणाम से कुछ बनानहीं आत्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअनन्तजगद्वर्णनंनामशताधिकाष्टनवतितमस्सर्गः १९८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार मैंने सृष्टिदेखी और फिर दृश्यभ्रमको त्याग कर अपने वास्तवस्वरूप में स्थितहुआ। मैं अनन्त, नित्य, शुद्ध, बोध, चिदाकाश और सर्वदा अपने आपमें स्थितहूं। हे रामजी! चिन्मात्र आत्मा किसी स्थानमें संवेदन आभास फुराहै—जैसेअनाज के कोठेसे एक मूठीभर निकालिये और क्षेत्रमें डारिये तो उसीसे किसी ठौर में अंकुर निकसे; तैसेही चैतन्यमें संवेदन फुरा है और उस संवेदनसे जगत् उपजाहै। जैसे जलके दियेसे अंकुर निकल आता है, तैसेही मेरे में सृष्टिका अनुभव होनेलगा और मैंने जाना कि, सृष्टि मुझसे फुरी है। रामजी बोले, हे भगवन्! तुम जो आकाशरूप अपने आपमें स्थितथे उसमें सृष्टि तुमको कैसे फुरी? दृढ़ बोधके निमित्त मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वास्तव तो कुछ उपजा नहीं परन्तु जैसे हुई है तैसेसुनो। मुझ अनुभव आकाश और अनन्तके किसी स्थान में संवेदन चित्त 'अहं' फुरा अर्थात् 'मैंहूं'; उस अहंभावके होनेसे मैं आपको सूक्ष्मतेज अणुसा जाननेलगा और उस अणु में अहंकारफुरा जिसको तुम ऐसे अहंकारकहतेहो

उस अहंकारकी दृढ़तासे निश्चयात्मक बुद्धि फुरी; उसबुद्धिसे संकल्प विकल्परूप मन फुरा और उसमनने प्रपंचरचा । उसमन में देखनेका स्पंदफुरा तब चक्षुइन्द्रियांहुईं और जिसकोदेखनेलगा वहरूप दृश्यहुआ । फिरसुननेकी इच्छाफुरी तब श्रवण इन्द्रिय हुई और वह शब्दही सुननेलगी । फिररसलेनेकी इच्छाहुई तब जिह्वा इंद्रियहुई और वह रसको ग्रहणकरनेलगी । जबसुगन्धिलेनेकी इच्छाकी तब नासिका इन्द्रियहुई और सुगन्धिग्रहण करनेलगी और फिर स्पर्शकरनेकी इच्छासे त्वचाइन्द्रिय प्रकटहोकर स्पर्श ग्रहणकरनेलगी । इसप्रकारमुझको ज्ञानइन्द्रियआनफुरीं और उनमेंशब्द,स्पर्श,रूप,रस और गन्ध उदयहुईं तबमैंने अपनेसाथ स्थूलवपुदेखा । जैसे कोई स्वप्न देखताहै और उसमें अपना शरीर देखताहै तैसेही मैं देखताहुआ । हे रामजी! जिसको मैं देखने लगा वह दृश्यहुआ और जिससे मैं देखताथा वे इन्द्रियांहुईं । जब दृश्य फुरना हुआ वह कालहुआ; जहांहुआ वह देशहुआ और ज्योंकरहुआ वह क्रियाहुई । इसप्रकार सब देशकाल पदार्थहुये हैं सो मैंने तुमसेकहे । हे रामजी ! वास्तवमें न कोईदेहहै; न इन्द्रियांहैं और न सृष्टिहै पर चित्तकलामें हुयेकीनाईं दृष्टआते हैं । जैसे स्वप्नेकी सृष्टिभासती है । जब वहसृष्टि मुझको फुरी तब पूर्वस्वरूप मुझे विस्मरणहुआ । जैसे सुषुप्ति में अपनास्वरूप विस्मरणकीनाईं होताहै; तैसेही मुझको विस्मरणहुयेकी नाईं भासा । तब जैसे स्वप्ने में जाग्रतस्वरूपका विस्मरण होताहै और जाग्रत्में स्वप्नेके स्वरूपका विस्मरणहोता है, तैसेही पूर्वकास्वरूप मुझको विस्मरणहुआ । जब शरीर और इंद्रियां मुझको अपने साथभासीं तो उनमें मैंने अहंप्रत्ययकरके ओंकार शब्द उच्चार किया । जैसे बालक माताके गर्भसे उत्पन्नहोकर शब्दकरताहै, तैसेही मैंने ओं शब्द का उच्चारकिया । जैसे कोई पुरुष स्वप्नेमें उड़ता और शब्दकरता है तैसेही मैंने ओंकारका उच्चार कियाजो आदि, मध्य और अन्तसे रहित परमब्रह्महै और सर्वब्रह्मांडरूपी तरंगका आधार समुद्रहै । हे रामजी ! जब मैं आधिभौतिकदृष्टिसेदेखूं तब मुझको शिलाहीभासे और जब अन्तवाहक दृष्टिसे देखूं तब अनन्तब्रह्मांड दृष्टआवे और नानाप्रकारकी क्रिया और मर्यादा सहितभासे पर जब आत्मदृष्टिसे देखूं तब अद्वैत अपना आपही भासे । हे रामजी ! जैसे सूर्यकी किरणोंमें मरुस्थलकीनदी भासती है, तैसेही मुझको सृष्टिभासे । जैसे मरुस्थलकी नदी मिथ्याहै, तैसेही ग्रहण करनेवाली वृत्ति मिथ्याहै । जैसे संवेदनमें मनन फुरताहै सोभी मिथ्याहै क्योंकि, नदी मिथ्या है तो मनन उसका सत् कैसे हो; तैसेही यहभी जीवकारूप-अवलोक मिथ्या है और भ्रांतिकरके सत्यभासता है । जैसेस्वप्नसृष्टि, संकल्पपुर और मनोराजका नगर मिथ्याहै और कथाका वृत्तांत अनहोताही भ्रांतिसे प्रत्यक्ष भासताहै; तैसेही यहजगत् भ्रांतिसे सत्यभासताहै—वास्तवमें कुछनहीं पर संकल्पविलासमें बना दृष्टआताहै । हे रामजी !

जिसप्रकार मुझको सृष्टि भासी है सो सुनो। जब मेरे में पृथ्वी की धारणा हुई तब पृथ्वी मुझको शरीर होकर भासनेलगी क्योंकि; मैं विराट् आत्माथा। उस पृथ्वीपर वन, पर्वत, नदी, समुद्र, वृक्ष, फल, फूल, मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता, ऋषीश्वर, दैत्य, नाग आदिक जो स्थितहैं सो पृथ्वी मेरा शरीर हुआ; पर्वत मेरे मुखहुये; सुमेरुआदि पर्वत मेरी भुजाहुईं; सप्तसमुद्र इंद्रियहुईं; सर्वनदी मेरे कंठमें माला और वन मेरी रोमावली हुई; मरुस्थलकी नदी मरे ऊपर विस्तारहुये और देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, दैत्य इत्यादि मेरे में कीटभासे–शरीर में जुआं लीखआदिकहैं किसी ठौर मेरेऊपर हलचलातेहैं और बीजबोते हैं जिससे खेतीउगती है और प्राणीखाते हैं; कहीं खोदते हैं; कहीं पूजाकरते हैं; कहीं समुद्र स्थित हैं; कहीं नदीचलती हैं, कहीं राजा राज्यकरते हैं और कहीं मेरे ऊपर झगड़ाकरते हैं एक कहताहै पृथ्वी मेरी है और दूसरा कहताहै मेरीहै; इसप्रकार ममताकरके युद्धकरते हैं। कहीं हाथी चेष्टाकरते हैं कहीं रुदन करते हैं; कहींहास्यकरते; कहीं वृत्तिफैलाते हैं; कहीं सुगंधहै, कहीं दुर्गन्धहै; कहीं नदियांचलतीं और क्षोभकरती हैं; कहीं देवता और दैत्य मेरे ऊपर युद्धकरते हैं; कहींशीतलता से जल मेरे ऊपर बरफ होजाता है। इसप्रकार इष्ट–अनिष्ट स्थान मैंने अपने ऊपर देखे और राजसी, तामसी और सात्त्विकी जितनी जीवोंकी क्रियाहोती हैं उनसबका आधार मैं हुआ पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं की संज्ञा संवेदन फुरने से हुई है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्तरोपाख्यानेपृथ्वीधातुवर्णनं नामशताधिकनवनवतितमस्सर्गः १९९॥

रामजीने पूंछा; हे भगवन्! तुमको जो धारणा से पृथ्वी का अनुभव हुआ और उसमें जगत् उत्पन्न हुआ वह संकल्परूप था वा मनसे उपजाथा अथवा आधिभौतिक था? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सब जगत् संकल्परूप है और आधिभौतिक की नाईं भासताहै परन्तु केवल चिदाकाश अपने आप में स्थितहै। वह चिदाकाश मैंहूं, न कदाचित् उपजाहूं और न नाशहोऊंगा; सर्वदा अद्वैत, अचैत्य, चिन्मात्ररूपहूं। उसके संकल्प का नाम मन है; आभास का नाम संकल्प है और उसीकानाम ब्रह्मा और इच्छाहै; उसी में जगत् स्थित है सो आकाशरूप है–कुछ बना नहीं। हे रामजी! जिसको सत्य और असत्य कहते हो वह शुभ–अशुभरूप जगत् मनमें स्थित है और सर्वआकार निराकार रूपहै; भ्रांतिसे पिंडाकार भासते हैं। जैसे स्वप्नेमें शुभ–अशुभ पदार्थ भासतेहैं;सो निराकारहैं पर भ्रांतिसे पिंडाकार भासते हैं; तैसेही वे जगत् भी निराकार हैं पर भ्रमसे पिंडाकार भासते हैं और विचारकिये से शून्य होजाते हैं। जैसे मनोराजसे आकार रचित है, तैसेही हमारे आकार जानो–स्वरूपसेकुछ उपजेनहीं। जैसे मृत्तिकासे बालक नानाप्रकारकी सेना रचतेहैं और उसमृत्तिकाका उनको भिन्न भिन्न

भाव निश्चय होता है; तैसेही अद्वैत आत्मामें मनरूपी बालक ने जगत् कल्पा है, वास्तव में कुछ नहीं—आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे मृगतृष्णाका जलही नहीं तो उसमें डूबा किसे कहिये; तैसेही मन आप आभासरूप है तो उसका रचा जगत् कैसे सत् हो? हे रामजी! सब चिदाकाशरूप है—दूसरा कुछ बना नहीं। आत्मरूप आकाश म मनरूपी नीलता है सो अविचार सिद्ध है और विचार किये से नीलता कुछ वस्तु नहीं। जैसे दीपकके विद्यमान अन्धकार नहीं रहता, तैसेही विचार किये से मन और मन की रचना जगत् नहीं रहती। मनका निर्वाण करनाही परमशांति है और कोई उपाय नहीं। हे रामजी! जितने क्षोभ हैं उनका कर्त्ता मन है और संपूर्ण शब्द अर्थ कल्पना मनसे उठतीहै—मनके निर्वाण हुये कोई नहीं रहती। रामजी ने पूंछा, हे मुनीश्वर! आप अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुये सो कुछ और रूप भी हुये अथवा न हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मरूपी जो जाग्रत् है उसमें मैं अनन्त ब्रह्माण्ड की पृथ्वी होकर स्थित हुआ। मैं चैतन्य था और जड़की नाईं स्थित हुआ—वास्तव में मैं जगत् न था केवल चिदाकाशथा जिसमें न कुछ नानाहै; न अनाना है; न अस्तिहै; न नास्ति है और जिसमें अहं—त्वं—इदं का अभाव है। वह केवल परमआकाश है जो आकाशसे भी निर्मल चिदाकाश है और जो है सो सर्व शब्दब्रह्म है। जगत्के होते भी वह अरूप है क्योंकि; कुछ आरम्भ परिणामसे नहीं बना—केवल आत्माका चमत्कार है। हे रामजी! जहां जहां पदार्थसत्ता है वहां वहां जगत् वस्तु है। सर्वदाकाल, सर्वप्रकार, सर्व पदार्थों का स्पन्द ब्रह्म है; जहां ब्रह्मसत्ता है वहां जगत् है। इसप्रकार मैंने अनन्त ब्रह्मांड को देखा। जब मैं अनन्त ब्रह्माण्डकी पृथ्वी होकर स्थित हुआ तो जब जलकी धारणा की तब जलरूप होकर फैला और वृक्ष, घास, फूल, फल, गुच्छे, डाल, तमाल और पत्रों में रस होकर स्थित हुआ; थंभे में मैंही बलहुआ और समुद्र हुआ; नदियों के प्रवाह होकर मैंही बहने लगा और उनमें गड़ गड़ शब्द करनेलगा और तरंग बुद्बुदे फेन को फैलाकर विलास किया; उसके कणके होकर मैंही स्थित हुआ; आकाश में मेघहोकर बर्षता और प्राणियोंको तृप्त करनेलगा। उनमें रुधिर आदि रस होकर मैंही स्थित हुआ और उनकी नाड़ियों में मथन करके आपही प्रवेश किया। जैसी जैसी नाड़ी होती है तैसा तैसा रस होकर मैं स्थित हुआ। रस, बीज, कफ, पित्त, मूत्र आदिक सब नाड़ियों में मैंही स्थित हुआ। सर्व प्राणियों की जिह्वाके अग्रभाग में रस होकर मैं स्थित हुआ और अपने आपको आपसे स्वादुको ग्रहण करने लगा और हिमालय में बरफ होकर स्थित हुआ। हे रामजी! मैं चैतन्य होके जड़की नाईं स्थित हुआ; बीज होकर मैंनेही उत्पन्न किया और प्रलयके मेघहोकर मैंही ने नाशकिया। इसप्रकार जलहोकर स्थावर जंगम सर्व जगत्में स्थित हुआ और सदा अपने आपमें स्थित होकर अपने स्वरूप

को न त्यागा। जैसे स्वप्ने में जगत् अनुभवरूप है और अनहोता भासता है; तैसेही मैं जलरूप होकर जगत् को धारता भया। हे रामजी! नानाप्रकार के स्थानों में मैं स्थित हुआ; फूलोंकी शय्यापर चिरकालपर्यंत विश्राम करता रहा; गन्धहोकर फूलोंमें स्थित हुआ और मेघहोकर आकाशमें विचरा और ऐसी वर्षाकी कि, पर्वतों पर वेगसे प्रवाह चलने लगा और मैं कणके कणके होके समुद्र और नदी में विचरा। यह प्रतिभास चिदूअणु में मुझको हुई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानेजलरूपवर्णनन्नाम द्विशततमस्सर्गः २००॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जलके अनन्तर मैंने तेजकी भावनाकी अर्थात् तेजधारा, तब मुझमें इतने अंग उदय हुये—चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि—और इनसे जगत् की क्रिया सिद्ध होने लगी। जैसे राजाके अंग अनुचर और हरकारे होते हैं तैसेही तमरूपी चोर को दीपकरूपी हरकारे मारनेलगे आकाशरूपी जो मैं था इससे मेरे कंठमें तारावली रूपी माला पड़ीथी। सूर्य होकर मैं जलको सोखता और दशोंदिशाओंको प्रकाशता रहा। आकाश जो ऊर्ध्वतासे श्याम भासता है वह मेरे निकट प्रकाशमान होता था; सब जगत् में मैंही फैलरहा था और जहां मैं रहूं तहां से तमका अभाव होजावे। चन्द्रमा और सूर्यरूपी डब्बाहै जिसमें दिन, रात और काल, वर्षरूपी अनेकरत्न सर्वदा निकलतेरहते हैं। राजसी, सात्विकी और तामसी क्रियारूपी कमलिनीका मैं सूर्य हुआ और सर्व देवतों और पितरों को तृप्त करता रहा। यज्ञकी अग्नि और रत्न, मोती, मणि आदिक जो प्रकाश पदार्थ हैं उनमें प्रकाश मैंही हुआ। प्राणों के भीतर मैं स्थित हुआ और प्राण—अपानके क्षोभ से अन्नको पचानेलगा। जैसे आत्माके प्रकाशसे रूप, अवलोक और मनस्कार प्रकाशते हैं; तैसेही सब पदार्थ मेरे प्रकाशसे प्रकाशित होनेलगे क्योंकि; मैं तेजरूप था—मानों चैतन्यसत्ताका दूसरा भाईहूं। जैसे सर्व पदार्थ आत्मासे सिद्ध होते हैं, तैसेही मुझसे सिद्ध होनेलगे। हे रामजी! राजों में तेज और सिद्धों में वीर्य मैंही था; बलरूप होकर जगत्को मैंही पुष्ट करता था; वड़वाग्नि दाहक शक्ति होकर जगत्को मैंही नष्ट करता था और तेजवानों में तेज; बलवानों में बल मैंही था। तले भी मैं था; मध्य भी मैंहीथा और चन्द्रमा सूर्यसे रहित जो स्थानहैं उनमें भी मैंहीथा। अग्निरूपी दीपक और चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्रोंसे मध्यमंडलमें स्पष्ट मैं देखता था। हे रामजी! इसप्रकार तेजरूप होकर भीतर बाहर स्थावर जंगम पदार्थोंमें मैं स्थित हुआ पर जब बोधदृष्टिसे देखूं तब सर्व आत्माही का भानहो और जब अन्तवाहक दृष्टिसे आपको विराट्रूप जानूं कि; सर्वजगत्में मैंही फैलरहाहूं और सर्वपदार्थ मेरेही अंग हैं। निदान तेजवानों में तेज और क्रोधवानों में क्रोध; यतियोंमें यती और अजीत मैं

हुआ और सर्व ओर मेरीही जय है क्योंकि; जय उसकी होतीहै जिसमें बल और तेज होताहै–सो बलमें हूं और तेज भी मैं हूं इससे मेरी जय है। हे रामजी ! सुवर्ण और रत्नमणिमें जो प्रकाश और रूपहै सो मैं हुआ। रामजी ने पूंछा, हे भगवन् ! इसप्रकार जो आप जगत् की क्रिया अनुभव करने लगे कि, जलरूप होकर अग्निको बुझाना और अग्नि होकर जलको जलाना इत्यादिक क्रिया जो तुम्हारे ऊपर इष्ट अनिष्ट से होती रहीं उनको तुमने सुख दुःख से अनुभव किया वा न किया सो मेरे बोध के निमित्त कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे चैतन्य पुरुष स्वप्नेमें पर्वत, वृक्ष, देह, इन्द्रियां और नानाप्रकारके जड़पदार्थ देखते हैं जो वास्तव में उनमें नहीं हैं; केवल अनुभवरूप हैं परन्तु निद्रादोष से वे उन्हें द्वैतकी नाईं जानते हैं और उनका राग–द्वेष अपने में मानते हैं, यथार्थमें द्रष्टाही दृश्यरूप होकर स्थित होता है परन्तु निद्रादोषसे नहीं जान सक्ता और जब जागता है तब स्वप्नेकी सब सृष्टि को अपना आपही जानता है; तैसेही यह जगत् अपने स्वरूपमें नहीं है; जब बोधस्वरूपमें जागोगे तब पदार्थ भावना जाती रहेगी और सब जगत् बोधस्वरूप भासेगा। हे रामजी ! जिस पुरुषको देश, काल और वस्तुके परिच्छेद से रहित अखंड सत्ता उदय हुई है उसको ज्ञानी कहते हैं। जब यह पुरुष परमात्म अवलोकन करता है तब सब जगत् आत्मस्वरूपही भासता है। जिस पुरुषको स्वप्नेकी सृष्टिमें पूर्वका स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ उसको अन्तवाहक कहते हैं और उसको पत्थर, जल और अग्निमें प्रवेश करने से भी खेद नहीं होताहै। हे रामजी ! मैं जो आकाश में उड़ता फिरा और आकाश को भी लांघकर ब्रह्माण्डके खप्पर पर फिराहूं सो अन्तवाहक शरीरसेही फिराहूं। जिसको अन्तवाहक शरीर प्राप्तहोता है उसको कोई आवरण नहीं रोकसत्ता क्योंकि; सब उसके अंग होते हैं। मुझको शुद्ध आत्मा में स्वप्ना हुआ था पर पूर्व का स्वरूप विस्मरण नहीं हुआ इससे सब जगत् मुझको अपना स्वरूपही भासता रहा और अपने संकल्पसे कल्पे अपनेही अंग भासते थे। जैसे कोई मनोराज से अग्नि का समुद्र रचे और उसमें स्नानकरे तो वह भी होता है क्योंकि; उसको खेद नहींहोता सब अपने संकल्पमेंही उसको भासते हैं। अन्तवाहक शरीरसे विराट् सबको अपना आप देखता है तैसेही सब जगत् मुझको अपना आप भासता था तो खेदकैसेहो ? जैसे स्वप्नेवाला स्वप्नेमें पर्वत, नदियाँ और अग्नि देखता है सो वही रूप है और आप भी एक आकार धारण करके बन जाता है और पूर्व का स्वरूप उसकी परिच्छिन्नतासे भूल जाताहै और रागद्वेषसे जलता है। मैंने तत्त्वरूपबनके जो आपको जड़रूप देखा तो मैंने आपको चैतन्यरूप देखा और जड़की नाईं भी जाना। इसप्रकार मुझको अपना स्वरूप विस्मरण न हुआ तब मैं विराट्रूप सबको अपना अंगही देखतारहा इससे मुझे खेद कैसेहोता ? खेद तब होता है जब अपना स्वरूप

भूलता है और परिच्छिन्न बनजाताहै, पर मैं तो बोधवान् रहा कि, मैंने स्पन्दसे सब रूप धारे हैं । हे रामजी ! जिसको यह निश्चयहै उसको दुःखकहां ? सुखदुःखरूप जो पदार्थ हैं सो मैंने अपने में ऐसे देखे जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब भासताहै । जिसको यह दृष्टि हो उसको दुःख कहांहै ? हे रामजी ! जिसको अन्तवाहक शक्ति प्राप्त होती है वह पाताल और आकाश में जानेको समर्थ होताहै और जहां प्रवेश किया चाहे वहां जासक्ता है क्योंकि; सृष्टि संकल्पमात्रहै । हे रामजी ! और कुछ सृष्टि बनी नहीं आत्माका किंचन ही सृष्टिरूप होकर भासता है । हे रामजी ! यह सृष्टि सब ब्रह्मस्वरूप है । हमको तो सदा ऐसेही भासती है । जब तुम जागोगे तब तुमको भी ऐसेही भासेगी । तुमभी अब जागे हो । उसप्रकार मैं अग्नि होकर स्थित हुआ कि,जिसकी शिखासे कालष निकलती थी । प्रकाश मैंही हुआ और अपने चित्स्वरूप अनुभवमें मुझको जगत् भासे उसमें मैं स्थित हुआ । अन्धकार और उलूकादि भी मेरे प्रकाशसे प्रकाशतेहैं और भावरूप पदार्थ भी मैं अपने में जानताभया क्योंकि; भावरूप पदार्थ तब भासते हैं जब उनका रूप होता है; सो रूपवान् पदार्थ मैंही था इसकारण सब मेरेही में सिद्धहोते थे । इसप्रकार मुझको प्रतिभा हुई ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेऽन्तरोपाख्यानेचिद्रूप वर्णनन्नामद्विशताधिकप्रथमस्सर्ग्गः २०१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! फिर मैंने पवनकी धारणाका अभ्यास किया तब पवन रूप होकर विचरनेलगा और कमलके फूलों और वृक्षों को हिलाने लगा । तारों और नक्षत्रों का आधारभूत हुआ और वे मेरे आधार पर फिरने लगे। चन्द्रमा और सूर्यके चलानेवाला भी मैंही हुआ और समुद्र और नदियोंके प्रवाह मेरीही शक्तिसे चलतेरहे मनका बड़ावेग भी मैंहीहुआ और प्राणियोंके शरीरोंमें मेरानिवासहुआ मैंहीप्राण, अपान, उदान, समान और व्यान पंचरूप होकर स्थित हुआ और सब नाड़ियोंमें मेरा निवास हुआ । सबनाड़ियों को रस अपना अपना भाग मैंही पहुँचाता रहा और हलना, चलना, बोलना, लेना, देना सब मुझहीसे सिद्धहोता था निदान सर्व पदार्थों में स्पर्शशक्ति मैंही हुआ और सर्व शब्द मेरेहीसे सिद्ध होतेथे । क्रियारूपी बुंदका मैं मेघहुआ; आकाश रूपी गृह में मेरा निवास था और दशोंदिशा सब मेरेमेंही फुरीथीं । देवताओंको गन्ध से मैंही सुख देताथा और दीपक को मैंही प्रज्वलित करताथा । पक्षियों में मेरा सदा निवास था। जैसे अग्निमें उष्णता रहतीहै तैसेही सबके सुखाने और हरियावल करने वाला मैंहीहूं । हे रामजी ! इसप्रकार मैं पवन होकर स्थित हुआ इसलिये रूप, अवलोक और मनस्कार सर्व पदार्थ मैंही हुआ और चन्द्रमा, सूर्य, तारे, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वरुण, कुबेर, यमआदिक जगत् होकर मैंही स्थित हुआ। पंचभूतों के भीतर

और बाहर भी मैं था; प्राण–अपानके क्षोभसे जो दुःख होता है सो मैंहीं साकार निराकाररूपहूं और रक्तपीत श्यामरंग पदार्थ सब मैंहीं हूं। पञ्चभूत जो चिद्अणु फुरे हैं सो उसीका रूप है जैसे स्वप्ने की सृष्टि सब अपनाही रूप होती है–इतर कुछ नहीं होती। हाड़, मांस, पृथ्वी होकर भूतों में स्थितहुआ और वायुरूप प्राण, अग्निरूप सुधा और आकाशरूप अवकाश भयाहूं। इसप्रकार मैं सर्व में स्थितभया। मैंभी चैतन्यवपु था और वे तत्त्व भी चैतन्यवपु थे। जैसे स्वप्ने में जगत् आकाशरूप होता है तैसेही वे भी आकाशरूप हैं। हेरामजी! सर्वकाल, सर्वप्रकार सर्वकासर्वात्मा स्थितहैदूसरा कुछनहीं। आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है इससे भिन्नजानना भ्रांतिमात्र है। यह दृष्टि ज्ञानवान्की है पर जो असम्यक्दर्शी हैं उनको भिन्नभिन्न पदार्थ भासते हैं। इसप्रकार मैंने संपूर्ण जगत् अपनेमेंही देखा। हे रामजी! मैं ब्रह्मरूप था इससे उसमें जगत् उत्पन्नहोते दृष्टआये और जो मैं ब्रह्मसे इतर होता तो एकतृण भी न उत्पन्नहोता। मैं जो ब्रह्मरूप था इससे सृष्टि उत्पन्नहोती है। हे रामजी! जब मैंने बोधदृष्टि से देखा तब आत्मासे भिन्न कुछ न दीखा और जब अन्तवाहक दृष्टिसे देखा। तब स्पन्दके कारण अणुअणु में सृष्टिभासी। जैसे जहां चन्दनकाअणु होता है वहां सुगन्ध भी होती है; तैसेही जहां जहां तत्त्वके अणु हैं वहां वहां सृष्टि भी है। हे रामजी! एक अणु में अनन्त सृष्टि मुझको भासी। जैसे एक पुरुष शयन करता है और उसको स्वप्ने में सृष्टि भासती है और फिर स्वप्नेसे स्वप्नान्तर की सृष्टि देखता है तो एकही जीव में बहुत भासते हैं; तैसेही एकअणुसे अनेक सृष्टिहोती हैं। हे रामजी! जो सृष्टि है सो आभासरूप है और आभास अधिष्ठान के आश्रयहोता है। सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है जो देश और कालके प्रच्छेदसे रहित अखण्ड अद्वैत सत्ता है। इसीसे कहा है कि, अणुअणुमें सृष्टि है क्योंकि; कोई अणु भिन्न वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताही है; जोसर्व ब्रह्म है तो सृष्टि भी ब्रह्मरूप है–इससे सब ब्रह्मही जानो। ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद नहीं। जैसे वायु और स्पन्दमें भेदनहीं, तैसेही ब्रह्म और जगत्में भेद नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगत्एकताप्रतिपादन
न्नाम द्विशताधिकद्वितीयस्सर्गः २०२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार जब मेरेमें सृष्टिफुरी तब मैं उनके भ्रमको त्याग और संकल्पको खैंचकर अन्तर्मुख हुआ और अपनी जो कुटी थी उसकी ओर आया। जब मैंने कुटी देखी तो उसमें एकपुरुष बैठा मुझको दृष्टआया। तब मैंने विचार किया कि, यह तो किंचन है; मेराशरीर कहां है? मैंने विचार करके देखा कि, यह कोई महासिद्ध है। मेरा शरीर इसने मृतक जानकर गिरा दिया है और आप पद्मासन बांधकर दोनों टँखने पुट्ठोंके ऊपर किये और शिर और ग्रीवा सूधेकिये बैठा है। दोनों

हाथ कांधोंपर ऊर्ध्वकिये है—मानों कमलफूल है वा मानों अन्तरका प्रकाश बाहर उदयहुआ है और नेत्रमूंदे है—मानों सबवृत्ति खैंचली है। हे रामजी! इसप्रकार समाधिलगाकर पद्मासनबांधे वह आत्मपदमें स्थित बैठाथा और उसका मुख सूर्यकी नाईं प्रकाशताथा। जैसे धुयेंसे रहित अग्नि प्रकाशताहै, तैसेही वह सिद्ध प्रकाशमान स्थित था। इसप्रकार मैंने उसको आत्मपदमें स्थित देखा। जैसे दीपक निर्वाण स्थित होताहै, तैसेही उसे स्थित देखकर मैंने विचारकिया कि इसे इहांहीं बैठा रहनेदूं और मैं अपने स्थान सप्तर्षि लोकमें जाऊं। इसप्रकार कुटीके संकल्पको त्यागकर मैं उड़ा और उड़ते हुये मार्ग में मुझको विचार उपजा कि; देखूं अब उस सिद्धकी क्या दशा है फिर निदान उलट कर देखा तो कुटीसहित सिद्ध वहां नहीं था क्योंकि; कुटी उसकी आधारभूतथी सो मेरे सङ्कल्पमें स्थितथी, जब मेरा सङ्कल्प निर्वाण होगया तब वह कुटी गिरपड़ी तो उसमें वह सिद्ध कैसेरहे; वह भी गिरपड़ा। हे रामजी! उसको गिरता देखकर मैंभी उसके पीछे हुआ कि, उसका कौतुक देखूं। निदान आगे वह चला और मैं पीछे नीचेको चला परन्तु मैं स्वाधीन चला जाताथा और वह पराधीन चला जाता था। जैसे मेघसे बूंद गिरती है तो वहीं, ठहरती तैसेही वह चला और सप्तद्वीपके पार दशसहस्रयोजन स्वर्णकी धरती है उसपर आनपड़ा और उसीप्रकार पद्मासनबांधेहुये शीश और ग्रीवा उसी प्रकार सम ठहरेरहे क्योंकि; उसके शीश और ग्रीवाऊर्ध्वकोथे। हे रामजी! शरीर प्राणसे हलता चलताहै; जब प्राणठहर जाते हैं तब शरीर नहीं हलता चलता इसकारण उसका शरीर समहीरहा और जैसेकुटीमें बैठाथा उसीप्रकार आसन करके पृथ्वीपर आपड़ा। तब मेरे मन में आया कि, इसकेसाथ कुछ चर्चा भी करना चाहिये परन्तु यह तो समाधि में स्थित है इसलिये प्रथम किसीप्रकार इसको जगाऊं। हे रामजी! ऐसा विचारकरके मैं मेघ होकर उसके शिरपर वर्षा करनेलगा और बड़ाशब्द किया जिससे पहाड़ फटनेलगे पर उसशब्द और वर्षासे भी वह न जागा। फिर जब मैं ओले होकर उसके ऊपर वर्षा करनेलगा—जैसे पत्थरकी वर्षा होती है—तब ऐसी वर्षा होनेसे वह नेत्र खोल कर देखनेलगा—जैसे पर्वतपर मोर मेघको देखनेलगे और मैं वपु त्यागकर उसके आगे आ स्थित हुआ। तब उसने समाधि खोली और उसकी प्राण इन्द्रियां अपने स्थान में आईं। हे रामजी! जब मुझको उसने अपने अग्र देखा तब मैं अद्वैतभाव को त्याग कर बोला, हे साधु! तू कौन है; कहां स्थित है; क्या करता था और किसनिमित्त कुटी में स्थितथा? सिद्ध बोले; हे मुनीश्वर! मैं अपने प्रकृतभाव में स्थितहूं और सब कुछ कहूंगा परन्तु जल्दी मतकर—मैं स्मरण करके कहताहूं। हे रामजी! मुझसे इसप्रकार कहकर वह स्मरण करनेलगा और फिर स्मरण करके बोला; हे वशिष्ठजी! मुझ पर क्षमाकरो क्योंकि सन्तों का शान्त स्वभाव होता है। मुझसे तुम्हारी बड़ी अवज्ञा

हुई है परन्तु तुम क्षमाकरो–मेरा तुमको नमस्कार है । हे रामजी ! इस प्रकार नमस्कार करके उसने निर्मल आनन्द के उपजानेवाले यह वचन कहे कि; हे मुनीश्वर ! संसार रूपी नदी है जिसका बड़ा प्रवाह है और कदाचित् नहीं सूखता । चित्तरूपी समुद्र से यह प्रवाह निकलता है; जन्म मरण इसके दोनों किनारे हैं; रागद्वेषरूपी इसमें तरङ्गहैं और भोगकी तृष्णा इसमें चक्र फिरता है–उसमें मैंने बड़ादुःख पाया है । हे मुनीश्वर ! अपने सुखके निमित्त देवों के स्थानों में भी मैं गया; दिव्यभोग भोगे और स्पर्श आदिक जो भोगहैं वे भी सब मैंने भोगे हैं परन्तु शान्ति मुझको नहीं प्राप्तहुई और जिस सुखको मैं चाहताथा सो न पाया । जैसे पपीहा मेघकी बूंद चाहता है और मरुस्थलकी भूमिका में उसको शान्ति नहीं होती; तैसेही मुझको विषयों के सुखमें शान्ति न हुई । हे मुनीश्वर ! इस जगत् को असार जानकर मेरा चित्त विरक्त हुआ है कि; इतने काल मैंने भोग भोगे परन्तु मुझको शान्ति न हुई । इनको असत् जानकर मैं फिरा और विचार किया कि, जो सारहो उसमें स्थित होरहूं । तब मैंने जाना कि, सार अपना अनुभवरूप ज्ञानसंवित्ही है–इससे मैं उसीमें स्थित हुआ हूं । हे मुनीश्वर ! जितने विषय हैं वे विषरूपहैं । विषके पानकिये से मृत्युही होती है । स्त्री, धन आदिक सुख मोह और दुःखके देनेवाले हैं । ऐसा कौन पुरुषहै जो इनमें आया सावधान रहता है ? ये तो स्वरूप से नष्ट करनेवाले हैं । हे मुनीश्वर ! देहरूपी एक नदी है जिसमें बुद्धिरूपी एक मछली रहती है; जब वह शिर बाहर निकालती है अर्थात् इच्छा करती है तब भोग रूपी बगला इसको खाजाताहै अर्थात् आत्ममार्ग से शून्य करता है । ये जो भोगरूपी चोर हैं जब इनका संग जीव करता है तब वे इसको लूट लेते हैं अर्थात् आत्मज्ञान से शून्य करते हैं और जब आत्मज्ञान से शून्य होता है तब जन्मों का अन्त नहीं आता–अनेक शरीर धारता है । जैसे चक्रपर चढ़ीहुई मृत्तिका अनेक बासनों के आकार धारती है तैसेही आत्मज्ञानसे रहित जीव अनेक शरीर धारता है पर अब मैं जागा हूं मुझको वे अब नहीं लूट सक्ते । हे मुनीश्वर ! भोगरूपी बड़ेनाग हैं; और जो नागहैं उनके डसे से शरीर मृतक होते हैं पर विषयरूपी सर्प के फूत्कारसेही मृतक होता है अर्थात् इच्छा करने सेही आत्मपद से शून्य होता है । जब जीव को विषयों की इच्छा से सम्बन्ध होता है तब उसका क्षण क्षणमें निरादर होता है–जैसे कदलीवनसे रहित हुआ और महावत के वशमें आया हस्ती निरादर पाताहै । हे मुनीश्वर ! जिस शरीर के निमित्त जीव विषयोंकी इच्छा करता है वह शरीर भी नाशरूपहै । इसमें अहंप्रतीति करनी परम आपदाका कारण है और अहंप्रतीति न करनी परमसुखका कारण है । जैसे सर्प के मुखमें पड़ा हुआ दर्दुर व मच्छर खानेकी इच्छा करता है सो महा मूर्ख है । किसी क्षण काल इसको ग्रसलेगा; इससे भोगों की इच्छा करनी व्यर्थ है और दुःखका

कारण है। हे मुनीश्वर! जब बाल्यावस्था व्यतीत होती है तब युवावस्था आती है और युवा के उपरान्त जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होताहै। जैसे वसन्तऋतुकी मञ्जरी ज्येष्ठ आषाढ़ में सूखजाती है, तैसेही वृद्धावस्था में शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता और दुःख पाता है। बालक अवस्था में जीव क्रीड़ा में मग्न होताहै; यौवन अवस्थामें कामादिक सेवता और वृद्धहोकर चिन्ता में मग्न रहता है। इस प्रकार जब यह तीनों अवस्था व्यतीत होती हैं तब मरजाताहै। जीवोंकी अवधि इसप्रकार व्यतीत होती है और परमपदसे अप्राप्त रहते हैं। हे मुनीश्वर! यह आयुर्बल बिजली के चमत्कारकी नाईं है। इसक्षणभंगुर अवस्था में जो भोगोंकी वाञ्छा करते हैं वे महादुःख को प्राप्तहोते हैं। इनमें सुख देखकर जो कोई कहे कि मैं स्वस्थरहूंगा तो कदाचित् न होगा। जैसे जलके तरंगोंमें बैठकर कोई स्थित हुआचाहे तो नहीं होसकता—अवश्य मरेगा—तैसेही विषय भोगोंसे शान्ति सुख नहीं होता। जैसे कोई महा धूपसे तपाहुआ सर्पके फनकी छायाके नीचे बैठकर सुखकी वाञ्छा करे तो सुख न पावेगा पर जब आत्मज्ञानरूपी वृक्षकी छायाके नीचे बैठे तब शान्त और सुखी होगा। जिन पुरुषों ने विषयोंकी सेवनाकी है वे परमदुःखको प्राप्तहोते हैं और जिन्हों ने आत्मपद की सेवनाकी है वे परमानन्दको प्राप्त होते हैं। जैसे नदीका प्रवाह नीचे चलाजाता है, तैसेही मूर्खका मन विषयोंकी ओर धावता है। यह संसार मायामात्र है और इसमें शान्ति कदाचित् नहीं प्राप्त होती। जैसे मरुस्थलकी नदी के जलसे तृषा निवृत्त नहीं होती तैसेही विषयभोग से शान्ति कदाचित् नहीं होती। जो आत्मपदसे विमुख हैं वे विषयोंकी ओर धावते हैं और जो आत्मपद में स्थित हैं वे विषयोंकी ओर नहीं दौड़ते। जैसे समुद्रमें तरंग उपजकर नष्टहोते हैं और जैसे नदीका वेग समुद्रकी ओर गमन करता है पर पत्थरकी शिला गमन नहीं करती; तैसेही भोगरूपी समुद्रकी ओर अज्ञानरूपी नदी गमन करती है पर ज्ञानरूपी पत्थरकी शिला नहीं गमन करती। हे मुनीश्वर! कमल में सुगन्ध तबतक होती है जबतक सर्प के मुखका वायु नहीं लगा; तैसेही बुद्धि में विचार तबतक है जबतक चित्तरूपी सर्प्प के भोग और इच्छारूपी वायु नहीं लगा। जब यह लगता है तब विचाररूपी सुगन्ध लेजाता है और विषरूपी तृष्णा को छोड़ जाता है। बाण निशानकी ओर तब धावता है जब धनुष और चिल्ले को त्यागता है और त्यागेसे फिर नहीं मिलता, तैसेही आत्मारूपी चिल्ले से जब चित्तरूपी बाण छूटता है तब भोगरूपी निशानकी ओर धावता है और जब जाताहै तब फिर आना कठिन होताहै—अर्थात् अन्तर्मुख होना कठिन होता है। हे मुनीश्वर! यह आश्चर्य्य है कि, जो पदार्थ सुखदायक नहीं हैं उनकी ओर चित्त बड़ा यत्न करता है पर तो भी वे सिद्ध नहीं होते और अयत्न सिद्ध आत्मपद है उसको त्यागते हैं। जिनको यह

है और जो वर्त्तमान पदार्थ होता है उसी का ज्ञान होता है । इसी कारण उसने मेरा शरीर डालदिया था क्योंकि; वह समाधि के व्यवहारमें लगाथा और मेरे संकल्पसे वह कुटी भी तब गिरीथी कि, जब मैं अपने स्थान के व्यवहार को ऐसी चिन्तना करके चलाथा । जो मैं चिन्तना में न होता, अन्तवाहक शरीर में होता और उस कुटी का भविष्यत् विचार उस संकल्प को रहने देता तो वह सिद्ध न गिरता पर मैं तो औरही व्यवहार में लगाथा इससे अन्तवाहक विस्मरण होगया जिससे वह कुटी गिरपड़ी और सिद्ध भी गिरपड़ा । हे रामजी ! इसप्रकार सिद्धगिरा और उससे चर्चा हुई तब मैं वहां से चला और अन्तवाहक शरीर से आकाशमार्ग में फिरने लगा । सिद्धों के समूह और देवता, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि, मुनि, वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमआदि सब के स्थान देखे परन्तु मुझको कोई न देखे । मैं बड़े बड़े शब्द करूं कि, किसीप्रकार कोई शब्द सुने और मुझको देखे परन्तु मेरा शब्द कोई न सुने और न कोई देखे। जैसे स्वप्नमें कोई शब्दकरे तो उसका शब्द जाग्रत्वाला कोई नहीं सुनता और जैसे असंकल्पवाला दूसरे की सृष्टि व्यवहार का शब्द नहीं जानता था, तैसेही मुझ को कोई न जानता था । हे रामजी ! इसप्रकार मैं प्रथम आकाश पिशाच होकर विचरा और फिर दैत्यों के स्थानों में विचरा और मैं सब को देखूं पर मुझको कोई न देखे । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! पिशाच का शरीर, जाति और क्रिया कैसी होती है और उनके रहने का कौन स्थान है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! पिशाचकी कथा से कुछ प्रयोजन न था तथापि तुमने प्रसंग पाकर पूछा है इससे मैं कहताहूं । पिशाच का आकार नहीं होता और जो जो रूप वे धारते हैं सो सुनो । कई तो आकाश की नाईं शून्य होते हैं और परछाहीं की नाईं भय देते हैं; कई मेघ और कईकाकरूप धार कर स्थित होते हैं । ऐसे रूपधारके वे विचरते हैं और सबको देखते और जानते हैं पर उनको कोई नहीं जानता । शीत-उष्णसे वे भी दुःखपाते हैं और इच्छा, द्वेष, लोभ, मान, मोह, क्रोध आदिक विकार उनमें भी रहते हैं । शीतलजल और भलेभोजन की वे भी इच्छा करते हैं और नगरों वृक्षों और दुर्गन्धस्थानों में भी रहते हैं । कहीं सियार होकर दिखाई देते हैं और कहीं श्वान हो दृष्ट आते हैं । मनमें भी प्रवेश करते हैं और मंत्र, पाठ, दान आदिक से जो वश होते हैं सो भी अपनी अपनी वासना के अनुसार होते हैं । इनमें भी उत्तम, मध्यम और नीच होते हैं; जो उत्तम हैं वे देवताओं के स्थानों; मध्यम मनुष्यों के स्थानों और नीच नरकों के स्थानों में रहते हैं और इनकी उत्पत्ति अचैत्य चिन्मात्र जो दृश्यसे रहित शुद्ध चैतन्यहै उससेहुई है । हे रामजी ! सबका अपना आप वही चैतन्यसत्ता कल्पवृक्षकी नाईं है, उसमें जैसी जैसी वासना होती है तैसाही तैसा पदार्थ हो भासता है । हे रामजी ! न कहीं पिशाच है और न

जगत्‌है; ब्रह्मसत्ताही ज्योंकीत्यों अपने आपमें स्थित है। शुद्ध आत्मत्वमात्र में किंचन 'अहं' होकर फुराहै उसीको जीव कहते हैं। उसअहंकी दृढ़तासे मनफुराहै सो मन ब्रह्मारूपहोकर स्थितहुआ है। उसब्रह्माने मनोराज से आगे जगत् उत्पन्न किया है और ब्रह्माही जगत्‌रूप होकर स्थित हुआ है सो ब्रह्ममें ब्रह्म स्थित है। हे रामजी! ब्रह्माका शरीर अन्तवाहक और केवल आकाशरूप है और उसके दृढ़संकल्पसे आधिभौतिक जगत् दृढ़हुआहै—उसीमनसे और मनहुआहै। हे रामजी! जैसे ब्रह्माका शरीर अन्तवाहकहै तैसेही सबका शरीर अन्तवाहक है परन्तु संकल्पकी दृढ़ता से आधिभौतिक भासताहै और सबमनरूपहै परन्तु दीर्घकालका स्वप्नहै वह जाग्रत्‌होकर स्थित हुआ है इससे दृढ़भासताहै। जिनको संकल्प ब्रह्मशरीर में अहंकार है उनको जगत् आधिभौतिक भासताहै और जो प्रबोधरूप हैं उनको सब जगत् संकल्परूप है—वास्तव में कहो तो कुछ उपजा नहीं, न तुमहो, न मैंहूं, न ब्रह्माहै और न जगत्‌है—सर्वही ब्रह्मरूप है। जैसे आकाश और शून्यतामें कुछ भेद नहीं; अग्नि और उष्णतामें कुछ भेद नहीं और वायु और स्पन्दमें कुछ भेदनहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेदनहीं। ब्रह्मा और जगत् दोनोंअजहैं; न ब्रह्माही उपजाहै और न जगत्‌ही उपजाहै—दोनों ब्रह्मरूप हैं। जो ब्रह्मसे भिन्न भासताहै वह भ्रांतिमात्रहै। हे रामजी! पञ्चभूत और छठा मन इनका नाम जगत् है। जबतक ये भूत उसमें दृष्टआते हैं तबतक भ्रांति है और जब इन से रहित केवल चैतन्य भासे तब उसीका नाम परमपद है। हे रामजी! जब आत्मपद में जागोगे तब पञ्चभूत भी आत्मासे भिन्न भासेंगे। सबका अधिष्ठान चैतन्य सत्ताहै जबतक आत्माका प्रमादहै तबतक संसार भ्रम न मिटेगा। सब जगत् निराकार संकल्पमात्र है परन्तु संकल्पकी दृढ़ता से आकाश में स्थूलभूत दृष्टआते हैं। ज्ञानकाल और अज्ञानकाल में जगत् उपजानहीं परन्तु अज्ञानी को दृढ़भासता है। जैसे मनोराजसे किसी ने नगर रचाहो तो वह उसी के हृदयमें है और कहीं नहीं भासता; तैसेही जबतक जीव अज्ञाननिद्रा में सोया है तबतक जगत् भासता है पर जब जागेगा तब आकाशरूप देखेगा। हे रामजी! अपना संकल्प आपको नहीं बांधता। जबतक स्वरूपका प्रमाद नहीं होता तबतक ब्रह्माका संकल्प ब्रह्माको नहीं बन्धन करता। स्वरूप भी अहं प्रत्यय से तो संकल्परूपहै और दूसरी कुछ वस्तु सत्य नहीं—आत्माही है वास्तव में न जगत्‌का आदि है, न मध्यहै और न अन्तहै, न जगत् का होना है और न अनहोनाहै—आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! जो सर्वात्माही है तो राग-द्वेष किसकाहो? सब अपना आपही है और अपना आप जो आत्मतत्त्वहै उसका किंचन संवेदन फुरने से जगत्‌रूप होकर स्थित हुआहै। जैसे किसीपुरुष ने मनोराजसे एकस्थानरचा और उसमें दृढ़ भावनाहुई तो आधिभौतिक भासने लगजाताहै; तैसेही

सुख जानता है वे सब दुःखके स्थान हैं। जिस अपने होनेको यह भला जानता है वह अनर्थ का कारण है। जिस देहको जीव सुखरूप जानता है वह सर्वरोगका मूल है। जिनको यह भोग जानता है वे इसको दुःख देनेवाले परम रोगहैं और जिनको यह सत्य जानता है वे सब मिथ्याहैं; जिनको यह स्थिर जानता है वे स्थिर नहीं चलरूप हैं; जिनको यह रस जानता है वे सब विरस हैं; जिनको बान्धव जानताहै वे सब अबान्धव हैं और दृढ़ बन्धनरूप हैं और जिसको यह सुख देनेवाली स्त्री जानता हैं वह सर्पिणी है और परम विषके देनेवाली है जिसका काटा मर जाता है फिर नहीं जीता अर्थात् आत्मपदमें स्थित नहीं होता। हे मुनीश्वर ! मैं परम आपदाका कारण देहको जानताहूं। इसके निवृत्तहुये जीव परमपदको प्राप्तहोताहै। जिसपुत्र, धन आदिकको जीव संपदा जानता है सो परम दुःखरूप आपदा हैं; इनमें सुख कदाचित् नहीं। यहवार्ता मैं सुनकर नहीं कहता; मैंने देखकर विचारकिया है; विचार करके अनुभव किया है और अनुभव करके कहा है कि; यह संसार मायामात्र है। बड़ेबड़े स्थानों में भी मैं गया हूं परन्तु सार पदार्थ मुझको कोई दृष्ट नहीं आया। स्वर्ग में नन्दनवन आदि काष्ठरूपही दीखे; पृथ्वी में आकर देखे तो पञ्चभूतही दृष्ट आये और शरीर में रक्त, मांस, हाड़, मूत्र आदिक देखे; इससे कि; जो ऐसे शरीर में अहं प्रत्यय करते हैं मैं उनको धिक्कार देताहूं। शरीरकी आयुर्बल ऐसी है जैसे दोनों हाथों में जल लीजिये तो बह जाता है अथवा जैसे जल में तरंग बुद्बुदे उपजकर नष्ट होते हैं वा बिजलीका चमत्कार होकर नष्ट होजाता है। जो ऐसे शरीरको पाकर सुखकी तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं बालक अवस्था तरंगकी नाईं नष्ट होजातीहै; यौवन अवस्था बिजलीके चमत्कारवत् छिपजाती है और वृद्ध अवस्थामें केश श्वेत होजाते हैं और दांत घिसकर गिरपड़ते हैं। जैसे नीचे स्थानमें जल स्थित होजाता है तैसेही सब रोग वृद्ध अवस्था में आ स्थित होते हैं और तृष्णा दिन दिन बढ़ती जाती है। हे मुनीश्वर ! उस समय सब पदार्थ जर्जरीभूत होजाते हैं और तृष्णा जवान होतीहै—जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी बढ़ती जाती है—और जो सुख भोग प्राप्त होकर बिछुरजाते हैं उनका दुःख होता है। हे मुनीश्वर ! इस प्रकार इनको असत्य जानकर मैं स्वरूपमें स्थित हुआ हूं। यदि पांचों इन्द्रियों के इष्ट बड़ी उत्तम मूर्तिधारके आ स्थितहों तौभी हमको खैंचनहीं सक्ते। जैसे मूर्तिकी लिखी कमलिनी भँवरको नहीं खैंचसक्ती; तैसेही हम सरीखोंको विषयनहीं चलासक्ते। हे मुनीश्वर ! तुम्हारा शरीर मैंने अवज्ञा करके डालदियाहै—विचारसे नहींफेंका। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जो त्रिकालज्ञहैं वे भी इस चर्मदृष्टिसे नहीं जानसक्ते; जब विचारसे देखते हैं तभी जानते हैं; इस कारण विचार विना मैंने तुम्हारा शरीर फेंकदिया था। अब तुम क्षमाकरो। ज्ञानी विचारसेही भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानको जानता है; इन नेत्रोंसे तो

वही जाना जाता है कि; जो अग्रभाग में होता है विशेष नहीं जाना जाता, इस कारण मुझसे तुम्हारा शरीर गिरा है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेआकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनन्नाम द्विशताधिकचतुर्थस्सर्ग्गः २०४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे साधो ! मुझसे भी तेरा गिरना विचार विना हुआ है कि, विचार विना मैं उठगया था। यह कुटी मेरे अन्तवाहक संकल्प में थी सो मैं अपने स्थानको चला इस कारण यह कुटी गिरपड़ी और तुम भी गिरपड़े। जो बीतगई सो भली हुई उसकी क्या चिन्तना कीजिये ? ज्ञानवान् बीती की चिन्तना नहीं करते जो होनी थी सो भली हुई। हे साधो ! अब जहां तुम्हें जाना है वहां जावो और हम भी जाते हैं। हे रामजी ! इस प्रकार चर्च्चा करके हम दोनों आकाशमार्ग्गको उड़े—जैसे पक्षी उड़ते हैं—और परस्पर नमस्कार करके हम दोनों भिन्न भिन्न होगये। वह अपने स्थानको गया और मैं अपने स्थान को चला और बहुतेरे स्थान देखता गया परन्तु मुझको कोई न जानता था। हे रामजी ! यह संपूर्ण वृत्तांत जो मैंने तुमसे कहा है उसे तुम विचारो। रामजीने पूछा, हे भगवन् ! आपने जो सिद्ध के साथ समागम किया था तो आकाश मार्ग में कैसे शरीर से किया था और पाञ्चभौतिक शरीर तो पृथ्वी पर पड़ाथा और पृथ्वी में अणुरूप होगया था फिर आप किस शरीर से विचरे ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अन्तवाहक शरीर से मैं विचरता फिराथा और उससेही मैं सिद्ध और देवतों के स्थानों और इन्द्र, वरुण और कुबेर के स्थानों में फिराहूं परन्तु मुझे कोई न देखता था और मैं सब को देखता था। संकल्प पुरुषसे मेरा व्यवहार हुआ था और किससे कहूं ? रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर ! अन्तवाहक शरीर तो इन्द्रियों का विषय नहीं है फिर सिद्धसे आपने चर्च्चा कैसेकी और उसने तुमको कैसे देखा ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार जो तुम कहते हो तो सुनो। सिद्धको मैं इस निमित्त दृष्ट आया कि, मेरासत्य संकल्प था। मुझे यह फुरना हुआ कि, सिद्ध मुझको देखे और मुझसे चर्च्चाकरे इससे उसने मुझको देखा और उसका संकल्प भी मेरे में आया तब जाना। जो दोनों सिद्धहों और उनका संकल्प भिन्न भिन्न हो तो एक दूसरे के संकल्प को नहीं जानते परन्तु किसी का विशेष संकल्प हो तो वह दूसरे के संकल्प को जानता है। इससे यद्यपि उसका संकल्प मेरे देखने को न था पर मेरा जो दृढ़ था इससे मैं उसके संकल्प को खैंचकर अपनी ओर ले आया। जो बली होता है उसी की जय होती—इससे उसने मुझको देखा। हे रामजी ! जो अन्तवाहक में स्थित होता है उसको तीनों कालका ज्ञान होता है परन्तु व्यवहार में लगे तो उसे भूलजाता

यह जगत् भी ब्रह्माका संकल्पहै और चन्द्रमा, सूर्य्य, अग्नि, रुद्र, वरुण, कुबेरआदिक सब संकल्परूप हैं पर संकल्पकी दृढ़तासे अधिभौतिक भासते हैं। हे रामजी! आत्मा रूपी एकताल है जिसमें चैतन्यरूपी जलहै; फुरनरूपी कीचड़ है और उसमें चौदह प्रकार के भूतजातरूप दर्दुररहते हैं सो सब संकल्पमात्रहैं। हे रामजी! आकाशमें एक आकाशक्षेत्र है जिसमें शिला उत्पन्न होती हैं। स्वर्गलोक और देवता बड़ीशिला हैं; एक उनमें उज्ज्वलशिला है सो ज्ञानवान् हैं; मध्यम शिला मनुष्यलोक है; नीचशिला तिर्यक्आदिक योनि है सो सबही निर्बीज हैं अर्थात् कारण से रहित हैं और अद्वैत आत्मा सदा अपने आप में स्थितहै—कुछ उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु भ्रांति से भिन्न भिन्न भासताहै। जैसे फेन बुद्बुदे और तरंग सब जलरूपहैं; तैसेही यह जगत् सब आत्मरूप है और जैसे स्वप्न और संकल्पकी सृष्टि कारण विना होती है, तैसेही यह जगत् कारण विना संकल्पसे उत्पन्नहुआहै। जैसे ब्रह्मादिक जगत् उदय हैं तैसेही पिशाचभी उदयहुये हैं। हे रामजी! जैसा किंचन आत्मामें होता है तैसाही होकर भासता है; वास्तव में पृथ्वीआदिक तत्त्व कहीं नहीं और न कहीं ब्रह्मा उपजा है, न कोई जगत् उपजाहै सब भ्रममात्र हैं। जितने वपु, भासते हैं वे सब निर्वपु हैं; चैतन्यतासे फुरे हैं और सब जीवों का आदि अन्तवाहक शरीर है। जैसे ब्रह्मा का अन्तवाहक शरीर था, तैसेही सर्व जीवों का अन्तवाहक शरीर होता है परन्तु संकल्प की दृढ़ता से अधिभौतिक हो भासता है। सब जीवों का अपना अपना भिन्न भिन्न संकल्प है उसी के अनुसार अपनी अपनी सृष्टि होती है। जो तुम कहो कि, भिन्न भिन्न हैं तो जीव इकट्ठे क्यों दृष्ट आते हैं; चाहिये कि, अपनी अपनी सृष्टि में हों? तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे एक नगरवासी और नगर में जावे और एक नगरवासी और में आवे और दोनों जाय इकट्ठे बैठें, तैसेही सब जीव इकट्ठे भासते हैं पर उनके इकट्ठे हुये भी इसकी सृष्टि को वह नहीं देखता और उसकी सृष्टि को यह नहीं देखता। जैसे स्वप्न में भिन्न भिन्न भूतजात होते हैं और अनुभव में इकट्ठे दृष्ट आते हैं और एक अनुभव में भिन्न भिन्न होते हैं; एक दूसरे की सृष्टि को नहीं जानते। जीव अन्तवाहक भूलगया है इससे अधिभौतिक दृढ़ होरहा है जैसा अनुभव में अभ्यास होता है तैसाही भासताहै। जहां पिशाच होता है वहां अन्धकार भी होता है। जो मध्याह्न का सूर्य उदयहो और पिशाच आगे आवे तो अन्धकार होजाता है ऐसा तमरूप वह होताहै। जैसे उलूकादिकको प्रकाशमें अन्धकार होताहै तैसेही अनेक सूर्यका प्रकाशहो तो भी पिशाचको अन्धकारही रहता है। हे रामजी! जैसा उनमें निश्चय होताहै तैसाही भानहोताहै क्योंकि; उनका ओज तमरूप है। जैसा किसीको निश्चय होता है तैसाही भासता है। हमको तो सदाआत्माका निश्चय है इससे हमें सदाआत्मतत्त्वका भान

होता है। जैसे पिशाच पंचभौतिक शरीर से रहित चेष्टाकरते हैं तैसेही मैं पंचभौतिक शरीर से रहित आकाश में चेष्टाकरतारहाहूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअन्तरोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकपंचमस्सर्गः २०५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं चिदाकाशरूपहूँ इसलिये पंचभौतिक शरीर से रहित अन्तवाहक शरीर से मैं विचरतारहा परन्तु मुझको कोई न देखे। चन्द्रमा, सूर्य और इन्द्र जो सहस्र नेत्रवाले हैं और सिद्ध, गन्धर्व, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रभी इसचर्मदृष्टि से मुझे न देखसकें और मैं सबको देखता फिरूं। इन्द्रके निकट जाकर मैंने उसके अंगहिलाये परन्तु उसने मुझको न जाना। जैसे संकल्पनर किसीको हिलावे और वह देखे पर अधिभौतिक शरीर न हिले तैसेही उनके शरीर मेरे हिलाने से नहीं हिले। इससे मैं अतिमोहको प्राप्तहुआ कि, इतने काल में रहा और मुझको कोई देख नहीं सक्ता। तब मैंने यह इच्छाकी कि, मुझको सब देखें। मैं तो सत्य संकल्परूप था इससे सबमुझे देखनेलगे। जैसे कोई इन्द्रजालको देखे तैसेही वे मुझको देखनेलगे। जिसने पृथ्वी पर देखा उसने पृथ्वी से उपजा वशिष्ठजाना और मनुष्यलोक में कई जलसे उपजाजानें कि, वारंवार वशिष्ठ है। जिनऋषीश्वरों और मुनीश्वरों ने जलसे उपजा देखा उन्होंने जाना कि, यह वारिवशिष्ठहै; कई ने वायु से उपजा जाना और कई जानें कि, सप्तऋषियों के मध्य जो तेज वशिष्ठ है वही है। इसप्रकार जगत् में मुझको सब देखनेलगे और मैं सब के साथ व्यवहार करनेलगा। जब बहुतकाल इसीप्रकार व्यतीत हुआ तब सबने भावना की दृढ़ता से पंचभौतिक शरीर मुझको देखा और प्रथम वृत्तान्त सब को विस्मरणहो अधिभौतिकता दृढ़ होगई जैसे अज्ञान से जीव स्वप्न के नरको अधिभौतिक देखता है, तैसेही मेरे साथ उन्होंने आकार देखा पर मुझको सदा अपने स्वरूप में अहं प्रत्यय से भिन्न द्वैत कुछ न भासता था क्योंकि; मैं ब्रह्मरूप था। मेरानाम वशिष्ठ ऐसा है जैसे रस्सी में सर्प होता है; मैं तो चिदाकाशरूपहूं पर औरोंको वशिष्ठ प्रतीति उपजी है। हे रामजी! तुम सरीखों को मेरा आकार दृष्टआता है पर मुझको अधिभौतिक और अन्तवाहक दोनों शरीर चिदाकाशका किंचन भासते हैं। मैं सदा निराकार अद्वैतरूपहूं। चेष्टा तुम्हारी और हमारी समान है परन्तु मुझको सदा आत्मपदका निश्चय है इसकारण मैं जीवन्मुक्त होकर विचरताहूं। अज्ञानी को क्रिया में द्वैत भासता है और हमको क्रियामें भी अद्वैत भासता है; ब्रह्माभी ब्रह्मरूप भासताहै और उसका संकल्प जो जगत् है वह भी ब्रह्मरूपहै। जैसे समुद्र में तरंग जलरूप है—भिन्न कुछ नहीं, तैसेही ब्रह्ममें जगत् ब्रह्मरूप

है--भिन्न कुछ नहीं। इससे मैं चिदाकाश रूप हूं—द्वैत कुछ नहीं फुरता। जब अहं फुरती है तब जगत् द्वैतरूप होकर भासता है। जैसे अहं के भुरने से स्वप्न की सृष्टि होती है, तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी होती है सो संकल्पमात्र है। ब्रह्मा और ब्रह्माका जगत् संकल्पकी दृढ़ता से अधिभौतिक की नाईं होभासता है पर वास्तव में न ब्रह्मा उपजा है और न जगत् उपजा है चिदानन्द ब्रह्म अपने आप में स्थित है और सदा एक रस है। हे रामजी! सृष्टिकीआदि से प्रलयपर्य्यन्त जो कुछ क्षोभ हैं उनमें आत्मा सदा एक रस है और उसमें कदाचित् क्षोभ नहीं क्योंकि, वास्तव कुछ उपजा नहीं; जो कुछ भासता है सो अज्ञानसे सिद्ध है और ज्ञानसे जगत्भ्रम निवृत्त होजाता है। जैसे स्वप्न सृष्टिमें किसी को कहीं निधि भासे तो वह उसकी प्राप्तिके निमित्त यत्न करता है पर जब जागता है तो उसको स्वप्ना जान फिर उसके पानेका यत्न नहीं करता, तैसेही जब आत्म बोध होता है तब फिर इस जगत्में जगत्बुद्धि नहीं रहती। अज्ञानही जगत्भ्रम का कारण है और उस अज्ञानके निवृत्तका उपाय यही है कि, इस महारामायण का विचार करना—उसीसे संसारभ्रम निवृत्त होगा। यह संसार अविद्यासे वासनामात्र है, जो इस को सत्य जानकर इसकी ओर धावते हैं वे परमार्थ से शून्य हैं, मूढ़ हैं, कीटहैं और वानर की नाईं चंचलहैं। जिनको भोगों में सदा इच्छा रहती है वे नीच पशु हैं और उनको संसारसे निवृत्त होना कठिन है क्योंकि उनके हृदयमें सदा तृष्णा रहती है और वैराग्य को नहीं प्राप्त होते। हे रामजी! भोग तो ज्ञानवान् भी भोगते हैं परन्तु वे भोग बुद्धिसे नहीं भोगते पर प्रवाह पतित जो कुछ प्रारब्धवेगसे प्राप्त होता है उसको भोगते हैं और जानते हैं कि; गुणोंमें गुण वर्तते हैं और इन्द्रियों सहित भोगको भ्रांतिमात्र जानते हैं। जो अज्ञानी हैं वे आसक्त होकर भोगते और तृष्णा करते हैं और भोगकी तृष्णासे उनका हृदय जलता है—इसी का नाम बन्धनहै। भोग दुःखरूपहैं; जो इनको सेवते हैं वे हृदयमें सदा तृष्णासे जलते हैं और उनका द्वैतरूप जगत्भ्रम कदाचित् नहीं मिटता और ज्ञानवान् सदा आत्मासे तृप्तरहते हैं इससे शान्तरूप हैं। जैसे हिमालयपर्व्वत में सब पदार्थ शीतल होजाते हैं तैसेही आत्मज्ञानसे हृदय शीतल होजाता है; आत्मानन्दकी प्राप्ति होती है और कोई दुःख नहीं रहता। जिनका चित्त सदा स्त्री, पुत्र और धनमें आसक्त है और इच्छा करते हैं वे महामूर्ख और नीचहैं; उनको धिक्कारहै। जिसको आत्मपदकी इच्छाहो उसको सदा सन्तों का संग करना चाहिये और शास्त्रों को श्रवण करके विचार करना चाहिये। इस अभ्याससे आत्मपदकी प्राप्ति होती है। हे रामचन्द्र! इस शास्त्रका विचार परमपदको प्राप्त करनेवाला है। जो पुरुष इस शास्त्र को त्यागकर और की ओर लगते हैं वे मूर्ख हैं। बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सायङ्कालका समय हुआ और सर्व श्रोता परस्पर

नमस्कार करके गये और सूर्य की किरणों के उदय होने से फिर आन स्थित हुये॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेअन्तरोपाख्यानवर्णनसमाप्तिर्नाम
द्विशताधिकषष्ठस्सर्गः २०६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी तुमको यह अन्तरोपाख्यान सुनाया है इसके विचारसे जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा। ऐसे जब तुम विचारकर देखोगे तब अनन्त ब्रह्मांड आत्मा में धसते दृष्टि आवेंगे। हे रामजी! आत्मामें जगत् कुछ वास्तव नहीं हुआ इससे मिटता भी नहीं; चित्तके फुरने से भासता है; जब चित्तका फुरना अधिष्ठानमें लीन होजावेगा तब अद्वैत तत्त्व आत्माही भासेगा। हे रामजी! अद्वैत तत्त्वमें जगत्भ्रम से भासता है। ज्ञानवान्की दृष्टि में सदा अद्वैतही भासता है! जगत्, मैं और तुम सब चिदाकाश हैं। आत्मासे भिन्न कुछ नहीं—आत्मसत्ताही जगत् होकर भासती है। जैसे अपना अनुभव स्वप्ने में स्वप्ने की सृष्टि हो भासता है सो अनुभवरूपही है, तैसेही यह जगत् भी चिदाकाशरूप है। यदि नानाप्रकारके विकार भी दृष्टि आते हैं तोभी आत्मसत्ता अनुस्यूत और अखण्डरूप है—आत्मसत्ता और जगत् में भेद कुछ नहीं। जैसे सुवर्ण और भूषणों में भेद कुछ नहीं होता, तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछभेद नहीं ब्रह्मही चेतनतासे जगत्रूप हो भासता है। जैसे स्वप्ने में अपनेही अनुभवसे बहुत कुछ वृथा हो भासता है सो अनुभवसे इतरकुछ नहीं हुये और जैसे समुद्र और तरंग में कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म; जगत् और अनुभव तीनों में कुछभेद नहीं—असम्यक् दृष्टि से भेद भासताहै, सम्यक् दृष्टिसे कोई भेद नहीं। हे रामजी! आत्मसत्तामें प्रथम आभासफुराहै सो ब्रह्मारूप होकर स्थितहुआ है वह ब्रह्मा चिदाकाशरूप है और वही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। उसी ब्रह्मसत्ता ने अपने भावकी नाईं त्यागा और ब्रह्मारूप होकर स्थित हुई है। फिर उसने जगत् रचा इसलिये वह जगत् भी आकाशरूप है। वास्तवमें न जगत् उपजा है, न ब्रह्मा उपजा है और न स्वप्ना हुआ है और परमार्थ सत्ता सदा अपने आपमें स्थित है जो शुद्ध, अनन्त, अविनाशी, अचेत चिन्मात्र है और जगत् भी वही स्वरूप है हे रामजी! मैं चिदाकाशरूपहूं; न मेरे साथ कोई आकार है, न मैं कदाचित् उपजाहूं और न मैं कदाचित् मृतक होताहूं। मैं नित्य, शुद्ध, अजर, अमर सदा अपने स्वभाव में स्थित हूं और अनेक विकारों में भी एकरस हूं। जैसे स्वप्ने में बड़े क्षोभहोते हैं तो भी जाग्रत् वपुकोस्पर्श नहीं करते क्योंकि; उसमें कुछ हुये नहीं आभासमात्र हैं; तैसेही जगत् की उत्पत्ति-प्रलयादिक क्षोभमें आत्मसत्ता को स्पर्श नहीं होता अर्थात् वह क्षोभसे रहित सदा अनुभवरूप है। जिसपुरुष ने ऐसे अनुभव को नहीं पहिंचाना जिससे सब कुछ सिद्धहोता है और उसे छिपाया है वह महामूर्ख है और आत्महत्यारा है—वह महा आपदाके समुद्र में डूबेगा—और जिसको अपने स्वरूप

में अहंप्रत्ययहुई है उसको मानसी दुःख कदाचित् नहीं स्पर्शकरता। जैसे पर्व्वत को चूहा नहीं चूर्णकरसक्ता, तैसेही उसको दुःख नहीं स्पर्शकरता। जिसको आत्मा में अहंप्रत्यय नहीं उसको शान्ति नहीं प्राप्तहोती। जैसे बायुगोलेमें उड़ा हुआ तृण स्थिर नहीं होता, तैसेही देहअभिमानी को कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्तहोती। जो अपने शुद्ध स्वरूपको त्यागकर देहसे आपको मिलाहुआ जानताहै सो क्या करताहै ? वह मानों चिन्तामणिको त्यागकर राखको अंगीकार करता है और शुद्ध चिन्मात्र अपने स्वरूप को त्यागकर देह में आत्मअभिमान करता है। हे रामजी ! जब जीव अनात्ममें आत्म अभिमान करताहै तब आपको विकारवान् और जन्मता मरता मानताहै और जब देहअभिमानको त्यागकर आत्माको आत्मा मानता है तब न जन्मता है, न मरता है, न शस्त्र से कटताहै, न अग्निसे दग्ध होता है, न जलसे डूबताहै और न पवनसे सूखताहै—निराकार, अविनाशी और चिदाकाशरूप है। हे रामजी ! यदि चेतनकी मृत्युहोतीहो तो पिता के मरेसे पुत्र भी मरजावे और एकके मरेसे सब जगत् मरजावे क्योंकि; आत्मसत्ता चेतन एक अनुस्यूतहै पर एकके मरे तो सब नहीं मरते, इससे चेतन आत्माको मृत्यु कदाचित् नहीं। शरीर के काटे से आत्मा नहीं कटता शरीर के दग्ध हुये आत्मा नहीं दग्ध होता और संपूर्ण विश्व भस्म होजावे तौभी आत्मा भस्म नहीं होता। आत्मा नित्य, शुद्ध, अनन्त, अच्युतरूपहै—कदाचित् स्वरूपसे अन्यथाभाव को नहीं प्राप्तहुआ। हे रामजी ! मैं अहंब्रह्मरूपहूं अर्थात् सब में अहंरूप निराकार अखण्ड मैंहूं; न मुझको जन्महै और न मृत्यु है; सुखकी इच्छा नहीं; न कुछ हर्ष है, न शोक है न जीनेकी इच्छाहै और न मरनेकी इच्छाहै। जैसे रस्सीमें सर्प्प और सुवर्ण में भूषण कल्पितहैं तैसेही आत्मामें वशिष्ठ नामरूपहै और देश, काल, वस्तुके परिच्छेद से रहित अनन्त आत्मा; नित्य, शुद्ध और बोधरूपहूं। सर्वका स्वरूप आत्मतत्त्वहै परन्तु वास्तवस्वरूपके प्रमादसे और अवस्तुको प्राप्तहुयेकी नाईं भासताहै। जो पुरुष स्वरूपमें स्थित नहीं हुये वे संसारमार्गकी ओर दृढ़हुये हैं, उनका जीना वृथाहै और वे कहनेमात्र चैतन्य हैं, नहीं तो पाषाणकी शिलावत्हैं। जैसे लुहारकी धौंकनी से पवन निकलता है, तैसेही उनका जीना वृथाहै। वे घड़ीयन्त्रकी नाईं वासनामें भटकते हैं, आत्मानन्द को नहीं प्राप्तहोते और सदा तपते रहते हैं। जिनको आत्मपदमें स्थितिहुई है उनको दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करता। यदि प्रलयकाल का पवनचले और पुष्कर मेघकी वर्षाहो; वा बड़वाग्निलगे और द्वादशसूर्य तपें पर वे ऐसे क्षोभोंमेंभी चलायमान नहीं होते क्योंकि; वे सर्व ब्रह्मस्वरूप जानते हैं। जैसे तृणसे पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही वे बड़े दुःखोंसेभी चलायमाननहीं होते। दुःख तब होताहै जब आत्मासे भिन्न कुछ भासताहै पर उनको तो आत्मासे भिन्न कुछ भासताही नहीं। हे रामजी ! यह सब ज-

गत् आत्मअनुभवरूप है क्योंकि; परमात्माका स्वरूपहै । जैसे स्वप्ने में अनुभव से भिन्न कुछ वस्तु नहीं होती तैसेही सब जगत् अनुभवरूपहै और जो भिन्न भासता है सो भ्रांतिमात्र है । यह जगत् जो नानाप्रकार का भासताहै सो आत्मा में अव्यक्तरूपहै और भ्रमसे प्रकट भासताहै । जैसे आकाशमें नीलता भ्रमसे सिद्धहै, तैसेही आत्मामें जगत् भ्रमसे सिद्धहै । वास्तव में ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं; आत्मसत्ताही जगत्रूप होकर भासती है और उसमें जैसा जैसा निश्चय होताहै तैसाही अधिष्ठानरूप भासता है । जिनको कारणसे सृष्टिका अधिष्ठान दृढ़ होरहा है उनको वैसाही भासताहै; जिनको परमाणु से सृष्टि उत्पन्न होनेका निश्चय है उनको वैसेही सत्य भासती है और माध्यमिक सत्असत् के मध्य वस्तुको मानते हैं । एक चारबाकी म्लेच्छहैं जो चारों तत्त्वों से सृष्टिकी उत्पत्ति मानते हैं; बौध कहते हैं कि, जो कुछ वस्तु है वह बोधहै इसके अभावहुये से शून्यही रहती है—एक, अनेक, ब्राह्मण, हाथी, गौ, श्वान, घोड़ा, सूर्य्यादिकमें भिन्न २ प्रतीत होरही है पर जो ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं वे सबमें एक ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत देखते हैं । हे रामजी ! वस्तु तो एक है पर उसमें जैसा निश्चय जिसको हुआहै तैसाही भासताहै । जैसे चिन्तामणि और कल्पतरुमें जैसी भावना करते हैं तैसीही सिद्ध होती है; तैसेही आत्मसत्ता में जैसी भावना करते हैं, तैसाही रूपहो भासताहै । हे रामजी ! बुद्धिमानों से निर्णय कियाहै कि, सारभूत आत्मसत्ताही है; जब उसमें दृढ़ अभ्यास करोगे तब आत्मसत्ताही भासेगी और फिर उस निश्चयसे चलायमान न होगे । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जगत्, पाताल, भूतल और स्वर्ग में बुद्धिमान् कौन हैं जिनको पूर्वापर के विचारसे पारावारका साक्षात्कार हुआ है और आत्मस्वरूप का वे कैसे निश्चय करते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जितना जगत्है सब इन्द्रियों के विषयोंकी तृष्णा से जलताहै और इष्टकी प्राप्ति में हर्ष और अनिष्टकी प्राप्ति में शोक करताहै । ऐसाकोई बिरलाही है जो जगत् में सूर्यकी नाईं प्रकाशताहै; नहीं तो सब तृणवत् भोगरूपी वायुमें भटकते हैं और जो सब में श्रेष्ठ कहाता है वह भी विषयरूपी अग्निमें जलता है । जैसे कृमि अशुभ स्थानों में रहते हैं और उनसे आपको प्रसन्न मानते हैं, तैसेही देवताभी सदा भोगरूपी अपवित्र स्थानों में आपको प्रसन्न मानते हैं सो मेरेमत में दुर्गन्धिके कृमि हैं । गन्धर्व तो मूढ़हैं उनको तो कुछ सुधि नहीं अर्थात् आत्मपदकी गन्धिभी नहीं—वे तो मेरे मतमें मृग हैं । जैसे मृगको राग में आनन्द होताहै, तैसेही गन्धर्व रागसे उन्मत्त रहते हैं और आत्मपद से विमुख हैं । विद्याधरभी मूर्ख हैं क्योंकि; वे वेदके अर्थरूपी चतुराई को अग्नि में जलाते हैं और वेद के सारभूत अमृतको नहीं जानते इसलिये आत्मपदसे विमुख हैं । सिद्ध मेरेमत में पक्षी हैं जो पक्षीकी नाईं उड़ते फिरते हैं और अभिमानरूपी पवनके चलने से अना-

त्मरूपी गढ़ेमें आनपड़ते हैं अपने वास्तवस्वरूपमें स्थित नहींहोते यक्ष धन के अभिमान से मूर्खकी प्रीतिकर जलते हैं और आत्मपद में स्थिति नहींपाते । योगिनी भी मदसे सदा उन्मत्त रहती हैं इससे आत्मपद में स्थिति नहीं पाती और दैत्योंकोभी सदा देवताओं के मारनेकी इच्छारहतीहै इससे सदा शोकमेंरहते हैं और आत्मपदसे विमुख हैं । तुमतो आगे से भी जानतेहो और आगेभी माराथा और अब भी मारोगे । मनुष्यभी आत्मपदसे गिरेहुये हैं क्योंकि–सदा यही इच्छारहती है कि गृहबनाइये और वे खाने और धन इकट्ठे करने के निमित्त जगत् करतेहैं और इन्द्रियोंके विषयों में डूबेहुये हैं । पातालमें नाग रहते हैं जिनका जलमेंभी निवास है वे सुन्दर नागिनियों में आसक्तरहतेहैं इसलिये वे भी आत्मानन्दसे गिरेहुये हैं । निदान जितने भूत प्राणी हैं वे सब विषयोंके सुखमें लगेहुये हैं और आत्मपदसे विमुखहैं । सब जातों में बिरले जीवन्मुक्तभी हैं और ज्ञानवान्भी हैं–उन्हेंसुनो । देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सदा आत्मानन्द में मग्न हैं और चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र, धर्मराज, वरुण, कुबेर, बृहस्पति, शुक्र, नारद, कचआदि जीवन्मुक्तपुरुष हैं । सप्तर्षि और दक्षप्रजापति, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन जीवन्मुक्त हैं और २ भी बहुत मुक्त हैं । सिद्धों में कपिलमुनि; यक्षों में विद्याधर और योगिनी और दैत्यों में हिरण्यकशिपु; प्रह्लाद, बलि, विभीषण, इन्द्रजीत, स्वरमेय, चित्रासुर, नमुचिआदिक जीवन्मुक्त हैं । मनुष्योंमें राजर्षि और ब्रह्मर्षि और नागों में शेषनाग; वासुकि नाग आदिक जीवन्मुक्त हैं । ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोकमें कोई कोई बिरले जीवन्मुक्त हैं । हे रामजी ! जात जातमें जो जीवन्मुक्त हुये हैं सो तुमसे संक्षेप से कहे हैं और जहां जहां देखता हूं वहां वहां अज्ञानीही बहुतहैं ज्ञानवान् कोई बिरला दृष्टि आता है । जैसे सब जगह और वृक्ष बहुत हैं परन्तु कल्पवृक्ष कोई बिरला होताहै, तैसेही संसारमें अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं; ज्ञानी कोई बिरलाहै । हे रामजी ! शूरमा और कोई नहीं, जिनकी आत्मपदमें स्थिति हुई है वही शूरमाहैं और संसारसमुद्र तरना उनहीं को सुगमहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमुक्तसंज्ञावर्णनन्नामद्विशताधिकसप्तमस्सर्गः २०७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो विवेकी पुरुष विरक्तचित्त हैं और जिनकी स्वरूप में स्थिति हुई है उनके राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, अभिमान, दंभ आदिक विकार स्वाभाविक नष्ट होजातेहैं । जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार स्वाभाविक निवृत्त होजाता है और जैसे बाणको देखकर कौवा भागजाता है तैसेही विवेकरूपी बाण को देखकर विकाररूपी कौवे भागजाते हैं । विवेकी पुरुषों के हृदयमें इतने गुण स्वाभाविक आन स्थित होते हैं कि; वे किसी पर क्रोध नहीं करते और जो करते भी दृष्टि आते हैं–सो किसी निमित्तमात्र जानना, उनके हृदय में सदा शीतलता और दया रहती है और

जो कोई उनके निकट आता है वह भी शीतल होजाता है क्योंकि; वे निरावरण स्थित हैं। जैसे चन्द्रमा के निकट गयेसे शीतल होता है तैसेही ज्ञानवान् के निकट आये से हृदय शीतल होता है और कोई पुरुष उनसे उद्वेगवान् नहीं होता। जो कोई निकट आता है उसको वे विश्रामके निमित्त स्थान देते हैं और उसका अर्थ भी पूर्ण करते हैं। जैसे कमलके निकट भँवरा जाताहै तो वे उसको विश्रामका स्थान देते हैं और सुगन्ध से उसका अर्थ पूर्ण करते हैं; तैसेही संतजन अर्थ पूर्ण करते हैं। व यथाशास्त्र चेष्टा करते हैं और हेयोपादेयकी विधिकोभी जानते हैं। जो कुछ उन्हें स्वाभाविक प्राप्तहो उसको वे शास्त्रकी विधि सहित अंगीकार भी करते हैं और हृदय में सर्वकी भावना से रहित हैं। उनमें दान, स्नान आदिक शुभक्रिया स्वाभाविक होती हैं और उदारता, वैराग्य, धैर्य्य, शम, दम आदिक गुण स्वाभाविक होते हैं। वे इसलोक में भी सुख देनेवाले हैं और परलोकमें भी सुख देनेवाले हैं। हे रामजी! जिन पुरुषों में ऐसे गुण पाइये वेही सन्तहैं। जैसे जहाजके आश्रय समुद्र से पार होते हैं, तैसेही संसारसमुद्रके पारकरनेवाले सन्तजन हैं। जिनको सन्तजनोंका आश्रयहुआ है वेही तरे हैं। सन्तजन संसारसमुद्रके पारके पर्वतहैं। जैसे समुद्र में बहुतजल होताहै तो बड़े तरङ्ग उछलते हैं और उसमें बड़े मच्छररहते हैं पर जब उसका प्रवाह उछलताहै तब पर्व्वत उस प्रवाहको रोकताहै और उछलने नहींदेता तैसेही चित्तरूपी समुद्र में इच्छारूपी तरङ्ग हैं और राग-द्वेषरूपी मच्छररहते हैं; जब इच्छारूपी तरङ्गकाप्रवाह उछलताहै तब सन्तरूपी पर्वत उसको रोकते हैं। सन्तजन अपने चित्तको भी रोकते हैं और जो उनके निकट कोईजाताहै तो उसकीभी रक्षाकरते हैं। यदि शरीर नष्ट होनेलगे अथवा नगर नष्ट होनेलगे वा निकट अग्निलगे तौभी ज्ञानवानों का हृदय स्वरूप से चलायमान नहीं होता; वे सदा अपने स्वरूप में स्थिर रहते हैं। जैसे भूकम्पसे सुमेरु चलायमान नहीं होता; तैसेही वेभी चलायमान नहीं होते। यह जो मैंने तुमसे शुभगुण स्नान, दान आदि कहे हैं सो जीवोंको सुख देनेवाले हैं और दुःखको निवृत्त करनेवाले हैं। इनसे सुखकी प्राप्ति होतीहै और दुःख नष्ट होजाताहै। जब स्नान दानकी ओर मनुष्य आताहै तब सन्तोंकी संगतिमें भी उसका चित्त लगताहै और जब सन्तोंकी संगति में चित्तलगा तब क्रमसे परमपदकी प्राप्ति होती है इससे मनुष्यको यही कर्त्तव्य है कि, शास्त्र के अनुसार शुभगुणोंकी चेष्टाकरे और सन्तों के निश्चय का अभ्यासकरे। हे रामजी! जिसको सन्तोंकी संगति प्राप्त होती है वहभी सन्त होजाताहै। सन्तोंका संग वृथानहीं जाता। जैसे अग्नि से मिला पदार्थ अग्निरूप होजाता है; तैसेही सन्तों के संग से असन्तभी सन्तहोजाता है और मूर्खोंकी संगति से साधुभी मूर्ख होजाताहै। जैसे उज्ज्वल वस्त्र मलके संगसे मलिन होजाता है तैसेही मूढ़के संगकरने से साधुभी

मूढ़ होजाता है क्योंकि; पापके वश से उपद्रव भी होते हैं इसीसे पापके वश साधुको भी दुर्जनोंकी संगतिसे दुर्जनताआनि उदय होती है। इससे, हे रामजी ! दुर्जनकी संगति सर्वथा त्यागनी चाहिये और सन्तोंकी संगति कर्त्तव्यहै। जो परमहंस सन्त मिले और जो साधुहो और जिसमें एक गुण भी शुभहो उसका भी अंगीकार कीजिये परन्तु साधु के दोष न विचारिये—उसका शुभगुणही अंगीकार कीजिये। जैसे भँवरा केतकी के कंटकों की ओर नहीं देखता, उसकी सुगन्ध को ग्रहण करता है। इससे हे रामजी ! संसार मार्गको त्यागकर सन्तोंकी संगतिकरो तब संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तव्यवहारोनाम द्विशताधिकाष्टमस्सर्गः २०८॥

रामजीने पूछा; हे भगवन् ! हमारे दोष तो सत्शास्त्र सत्संग और उनकी युक्ति से और समान दुःख तीर्थ, स्नान, दान, जप और पूजा से निवृत्त होते हैं पर और जीव जो कीट, पतंग, पशु, पक्षी आदिक हैं उनके दुःख कैसे निवृत्त होंगे ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो वास्तवसत्ताहै उसीका नाम ब्रह्महै और वह अखण्ड अद्वैतहै, उस में कुछ द्वैतका विभाग नहीं है परन्तु उसमें जो चित्त किञ्चन आभास फुराहै सो फुरना ही नानात्व हुयेकी नाईं स्थित हुआ है वास्तव में कुछ हुआ नहीं। जैसे स्वप्ने में स्वप्नेकी सृष्टि भासती है परन्तु वास्तव कुछहुई नहीं निद्रादोषसे भासती है, तैसेही जाग्रत् सृष्टि भी कुछ वास्तव नहींहुई अज्ञान से जीवोंको भासती है। वास्तव में सब ब्रह्मरूप है पर अपने स्वरूपके प्रमादसे जीवत्वभाव को अंगीकार किया है। उस अंगीकार करने और अनात्म देहादिकमें आत्म अभिमान करके जैसा निश्चय करता है तैसीही गति पाताहै। देश, काल, क्रिया और द्रव्यका जैसा संकल्प अनुभव सत्ता में दृढ़होता है तैसाही भासता है। उस में चार अवस्था कल्पित होती हैं और जैसी जैसी भावना होती है उसके अनुसार अवस्थाका अनुभव होताहै। वे चार अवस्था ये हैं—एक घन-सुषुप्ति; दूसरी क्षीणसुषुप्ति; तीसरी स्वप्नअवस्था और चौथी जाग्रत्। पर्वत और पाषाण घनसुषुप्ति में हैं। जैसे सुषुप्ति अवस्था में कुछ नहीं फुरता, जड़ीभूत होजाताहै; तैसेही इसको कुछ फुरना नहीं फुरता—घनसुषुप्ति में स्थित है। वृक्ष क्षीणसुषुप्ति में स्थितहै। जैसे क्षीणसुषुप्ति में कुछ फुरना फुरताहै, तैसेही वृक्षोंमें भी फुरना होताहै इस से वे क्षीणसुषुप्ति में हैं। तिर्यक् जो पक्षी, कीट, पतंग आदि जीवहैं वे स्वप्न अवस्था में स्थित हैं। जैसे स्वप्नेमें पदार्थ भासताहै परन्तु दृढ़ समष्टि नहीं भासता तैसेही इन को थोड़ा सूक्ष्म ज्ञानहै इससे वे स्वप्नअवस्था में स्थितहैं। मनुष्य और देवता जाग्रत् रूप जगत्का अनुभव करते हैं। हे रामजी ! यह चारो अवस्था आत्मामें स्थित हैं और आत्मसत्ताहीमें स्थितहैं। सबका अहंप्रत्ययरूप आत्माहै—बड़ेका क्या और छोटेका

क्या। उसमें जैसा संकल्प दृढ़ होताहै तैसाही हो भासताहै हे रामजी! हमको एक दिन व्यतीत होताहै और चींटीको उसी में युगका अनुभव होता है; हमको जो सूक्ष्म अणुहोता है उनको वही पर्वतके समान भासता है। हे रामजी! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ता है परन्तु भावना से भिन्न २ भासता है। एक कीटहै जो बहुत सूक्ष्महै, जब वह चलताहै तब जानताहै कि, मेरा गरुड़कासा वेगहै और उसको वही सत् होरहाहै बालखिल्य का अंगुष्ठप्रमाण शरीर है उनको वही बड़ा भासता है और विराट्को वही अपना बड़ा शरीर भासता है। निदान जैसी जिसको भावना होती है तैसाही उसको भासता है। मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी सबका अपना २ भिन्न भिन्न संकल्पहै; जैसा संकल्प किसी को दृढ़ होरहा है उसको तैसाही स्वरूप भासताहै। जैसे मनुष्य राग, द्वेष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक आदि विकारों में आसक्त होता है, तैसेही कीट, पतंग, पक्षी आदि को भी होता है परन्तु इतना भेद है कि; जैसे हमको यह जगत् स्पष्टरूप भासता है, तैसे उनको नहीं भासता। संसारी सब है परन्तु वासना के अनुसार न्यून अधिक भासता है और दुःखका अनुभव स्थावर जंगम को भी होताहै। जब किसी स्थान में अग्नि लगती है और उसमें वृक्ष और पाषाण जलते हैं तब उनको भी दुःख होता है परन्तु सूक्ष्म स्थूल का भेद है। जैसे और जीव के शस्त्रप्रहार किये से शरीर नष्ट होने का दुःख होता है, तैसेही वृक्षादिक को भी होता है परन्तु घनसुषुप्ति; क्षीणसुषुप्ति और स्वप्न जाग्रत् का भेद है। पर्वत पाषाण को सूक्ष्म दुःख होता है; वृक्षको पाषाण से विशेष होता है परन्तु स्पष्ट मान और अपमानका दुःख नहीं होता, स्वप्ने की नाईं होता है। मनुष्य और देवताओं को स्पष्ट राग--द्वेष जाग्रत् की नाईं होताहै क्योंकि; वे जाग्रत् अवस्था में स्थित हैं और वृक्ष, पाषाण आदिक को स्पष्टदुःखका विकल्प नहीं उठता क्योंकि, वे जड़ता स्वभाव में स्थित हैं पर दुःख तो सब को होता है। और आश्चर्य देखो कि, कीट महादुःखी रहते हैं; जब वे मृतक होते हैं तब सुखी होते हैं। अज्ञान से जो इस शरीर में आस्था हुई है उसको भी मरना बुरा भासता है तो और जीवको भला कैसे न लगे। हे रामजी! अपने स्वरूपके प्रमादसे भय, क्रोध, लोभ, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, हर्ष, शोक, इच्छादिक विकारों की अग्निसे जीव जलते हैं। आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होते और घड़ीयन्त्रकी नाईं वासना के अनुसार भटकते हैं। जब वासना दृढ़ पापकी होतीहै तब जीव पाषाण और वृक्षयोनि पाते हैं और जब क्षीण वासना तामसी होती है तब तिर्यक् पक्षी, सर्प और कीटयोनि पाते हैं। हे रामजी! राजसी वासनासे जीव मनुष्य होते हैं और सात्विकी वासनासे देवता होते हैं पर जब मनुष्य शरीर धारकर निर्वासनिक होते हैं तब मुक्तिपाते हैं। जब ज्ञान उत्पन्नहोता है तब जीवों

के दुःख नष्ट होजाते हैं; दुःख के नाश करने का और कोई उपाय नहीं । यह जगत् के दुःख तबतक भासते हैं जबतक आत्मज्ञान नहीं उपजा; जब आत्मज्ञान उपजता है तब जगत्भ्रम सब मिटजाता है । मुझसे पूछो तो वास्तव में न कोई देवता है; न मनुष्य है; न पशु है; न पक्षी है; न पाषाणहै; न वृक्षहै और न कीटहै; सब चिदाकाश रूप हैं दूसरा कुछ नहीं बना भ्रांति से नानास्वरूप हो भासता है और सदा सर्वदा काल सर्वप्रकार आत्मसत्ता आपमें स्थित है । हे रामजी ! न कुछ जगत्का होना है; न अनहोना है; न आत्मता है; न परमात्मता है; न मौन है; न अमौन है; न शून्य है; न अशून्य है केवल अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थित है और उसमें जन्म और जन्मांतर भ्रमसे भासते हैं । जैसे स्वप्ने से स्वप्नांतर भ्रमसे भासता है और जैसे स्वप्ने में एक अपना आप होता है और निद्रादोष से द्वैत भासता है; तैसेही अब भी आत्मा अद्वैतरूप है पर अविचार से नानात्व भासता है । दुःख भी अज्ञान से भासता है विचार किये से दुःख कुछ नहीं । जो मृतक होकर उत्पन्न होताहै तो शान्ति हुई दुःख कोई नहीं और जो मृतक होकर शान्तहोजाता है उपजता नहीं तौ भी दुःख कोई नहीं मुक्तहुआ; जो मरता नहीं तौभी ज्योंका त्यों हुआ दुःख कोई नहीं हुआ और जो सर्व चिदाकाश है तौभी दुःख कोई न हुआ । हे रामजी ! अज्ञानी के निश्चय में दुःख है पर विचार किये से दुःख कोई नहीं । यह जगत् आत्मरूपी आदर्शमें प्रतिबिम्बितहै परन्तु यह जगत्रूपी कैसा प्रतिबिम्ब है जो अकारणरूप है इसका कारणरूप बिम्ब कोई नहीं कारण से रहित है । जैसे नदी में नीलता का प्रतिबिम्ब पड़ताहै सो अकारणरूप है, तैसेही यह जगत् अकारणरूप है । अज्ञानी को प्रमाददोष से उसमें सत्यता है और ज्ञानी को द्वैत नहीं भासता–अज्ञानी को द्वैत भासता है । हे रामजी ! हमको तो सदा चिदाकाश हो भासता है–हम जागेहुये हैं इससे द्वैत कुछ नहीं भासता। जैसे सूर्यको अन्धकार नहीं भासता तैसेही हमको द्वैत नहीं भासता। जो ज्ञानी है उसको ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं भासता उसे सर्व ब्रह्महीं भासता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थरूपवर्णनं
नामद्विशताधिकनवमस्सर्गः २०९ ॥

श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो कुछ तुमने कहाहै सोतो मैंने जाना परन्तु नास्तिकवादीका कल्याण किसप्रकार होताहै क्योंकि; वे कहते हैं कि, जबतक जीव है तबतक सुखकरे और जब मरजावेगा तब भस्मीभूत होवेगा; न कहीं आनाहै, न कुछ जानाहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मसत्ता आकाशकीनाईं अखण्डित सर्वत्र पूर्ण है; जब तक उसका भान नहीं होता तबतक मनकी तप्तता नहीं नष्टहोती । जब आत्मसत्ताका भानहोताहै तब शान्ति प्राप्तहोती है और आपको अमर जानताहै । जिस पुरुषने अ-

खंडनिश्चय अंगीकार किया है उसको दुःख स्पर्श नहीं करता वह ब्रह्मदर्शी होता है और जिसको ब्रह्मसत्ता का निश्चय नहीं हुआ उसको मनकेताप नहीं छोड़ते और स्वरूप के प्रमाद से आपको मरता जानताहै पर महाप्रलयरूप आत्मा में सर्व्व शब्द का अभाव है। जैसे महाप्रलय में सर्व शब्दों का अभाव होता है; तैसेही आत्मा में सर्व्व शब्दों का अभाव है। जिसको आत्मा में निश्चय हुआ है उसको सर्व शब्दों का अभाव होजाता है और वह महाज्ञानवान् है उसको आत्मसत्ताही भासती है। जो वास्तव है उसको हमारे उपदेशकी आवश्यकता नहीं—वह ज्ञानी है। हे रामजी! आत्म सत्ता में द्वैत जगत् कुछ नहीं बना; परमार्थसत्ता सदा अपने आप में स्थितहै और उसमें जो सृष्टि भासतीहै सो स्वप्नवत् अकारण है इसलिये ज्ञानवान् पुरुष सर्व शब्द अर्थोंको नहीं जानता है। ऐसापुरुष हमारे उपदेशके योग्यनहीं क्योंकि, सर्वशास्त्रों का सिद्धान्त आत्मपदहै जो उसको जानता है उसको फिर कर्त्तव्य कुछ नहीं रहता। जिसको ऐसी दशा नहीं प्राप्तहुई वह उपदेशका अधिकारी है। यह जगत् आत्माका किंचनहै अज्ञानी को सत्य भासताहै और ज्ञानीके निश्चयमें कुछ नहीं। जैसे किसी ने संकल्पसे एक वृक्षरचाहो तो उसके पत्र,टास,फूल,फल उसको भासतेहैं पर और के मनमें शून्यहोते हैं, तैसेही अज्ञानी के निश्चयमें जगत्होता है और ज्ञानीके निश्चय में विलास और आत्मा से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सर्वत्र और सर्वव्यापी है; उसमें जैसा निश्चय फुरना होताहै तो अहंप्रत्ययभावना की दृढ़ता से तैसेही भासताहै। जिस पदार्थ का निरंतर दृढ़अभ्यास होताहै तो शरीर के त्यागेसे भी वही अभ्यासरूप धारणकरलेताहै पर आत्मसत्ता ज्ञानमात्र है और केवल अद्वैतसंवित् सबका अपना आप है। जिसको स्वरूपका ज्ञान होताहै सो शास्त्रों के दंडसे रहित होताहै। वेद और शास्त्र जिस पदार्थका भला, बुरा, सच वा झूठ वर्णन करते हैं उसमें जिस पुरुषको निश्चय होता है उसको वासना के अनुसार वे फल देतेहैं और जिसके निश्चय में आत्मा से भिन्न सर्व शब्द का अभाव होता है उसको आत्म अनात्म विभाग कलना भी नहीं रहती—देहरहे अथवा न रहे। हे रामजी! जिसकी संवित् जगत्के शब्द; अर्थ में बँधीहुई है उसको पदार्थों में राग द्वेष उपजताहै। जैसे सुषुप्ति में भी आत्मसत्ताहै पर अभाव की नाईं स्थितहै; तैसेही नास्तिकवादी भी अपने जड़स्वरूपको देखते हैं क्योंकि; उनको जड़ शून्यताकाही अभ्यासहै और उसीसे उनकी सम्पत्ति दृश्य सुखसे बँधीहुई है इससे उनका जगत् भ्रम नहीं मिटता। उस मलिन वासना से जो संवित् मिली है इससे उनको जड़ पत्थररूप प्राप्त होते हैं। उस जड़ताको भोगकर वे वासना के अनुसार फिर सुख भोगेंगे। उस भावना से कुछ जगत्भान शून्य होजाताहै पर कुछ काल पीछे चैतन्य होकर फिर उन्हीं कर्मोंको भोगते हैं। जैसे सूर्य्य के आगे बादल आवे और फिर निवृत्तहो, तैसेही जगत्

होता है । फुरनरूप जो जीव है उसमें जैसा निश्चय होताहै तैसाही भासताहै । जिसको एक आत्मामें निश्चय होता है सो जन्म मरण आदिक विकारसे रहित होता है और जिसको नानास्वरूप जगत् में निश्चय होता है सो जन्म मरणसे नहीं छूटता । हे रामजी ! जिसकी बुद्धि में पदार्थोंका रंग चढ़ता है वह रागद्वेषरूपी नरकसे मुक्त नहीं होता और जिसको एक आत्माका अभ्यास होता है उसको अभ्यासके बलसे सब जगत् आत्मत्वसेही भासता है और वह रागद्वेषसे मुक्त होता है । जैसे स्वप्नेमें किसीको अपना जाग्रत्स्वरूप स्मरण आता है तब वह स्वप्ने के सर्व जगत् को अपना आप देखता है, तैसेही जिसको आत्मज्ञान होता है उसको सर्व जगत् अपना आपही भासता है । सर्वदा काल आत्मसत्ता अनुभवरूप जाग्रत् ज्योतिहै; जिसको ऐसी आत्मसत्ता में नास्तिभावना होती है वह ऐसी अवस्था को प्राप्त होता है कि, गढ़े में कीट होता है; पाषाण, वृक्ष, पर्वत आदिक स्थावर योनि को प्राप्त होता है और उनमें चिरकाल पर्यंत रहता है । जबतक उसकी बुद्धि को द्वैतका संयोग होता है तबतक वह जगत् भ्रम देखता है—और भ्रम नहीं मिटता पर जब उसकी संवित्को द्वैतका संयोग मिटजावे तब जगत् भ्रम निवृत्त होजाता है । हे रामजी ! सम्यक्ज्ञानसे जगत्के भ्रमका अभाव होजावेगा । अभावका निश्चय फुरे तब फिर जगत् नहीं भासता और जब संसारके पदार्थोंसे संवित् बेधीहुई है तब जैसा निश्चयहोगा तैसाही प्राप्तहोगा और उसी निश्चयके अनुसार गतिपावेगा । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! नास्तिकवादीका वृत्तान्त तो तुमने कहा सो मैंनेजाना पर जिसपुरुषके हृदय में जगत्की सत्यता स्थित है और जो आत्मबोधके मार्गसे शून्य है और शुद्धस्वरूपको नहींजानता उसके मोक्षकी क्या युक्तिहै और उसकी क्या अवस्था होती है—मेरेबोधके दृढ़के निमित्तकहो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसका उत्तर मैंने प्रथमहीं तुमसे कहा है पर अब फिर तुमने जो पूछा है इससे फिरकहताहूं । प्रथमतो पुरुषका अर्थसुनो । हे रामजी ! यह जगत् नेत्रों में स्थितनहीं है, न श्रवणमें है और न नासिकाआदि इन्द्रियोंमें स्थितहै—चैतन्य संवित्में स्थितहै । चैतन्य संवित्ही पुरुषरूप है; जिसपुरुषको उसमें निश्चय है सो ज्ञानवान्है और उसको द्वैतकलना नहीं फुरती और जो प्रत्यक्ष दृष्टि भी आती है परन्तु उसके निश्चयमें नहीं होतीहै । जैसे आकाशमें धूड़ भी दृष्टि आती है परन्तु स्पर्शनहींकरती; तैसेही ज्ञानवान्को द्वैतकलना स्पर्श नहींकरती । जिस चेतन संवित्से फुरनेका संबन्ध है उसको जगत्का आकार भासता है और जिसपुरुषकी संवित्में देश, काल, क्रिया और द्रव्यका संबन्ध है वह कलंकमें दृढ़होरहा है और जो अपने वास्तव अद्वैत स्वरूपके अभ्याससे मार्जन नहीं करता वह वास्तव चैतन्य आकाशरूप भी है तो भी कलंकसे वासनाके अनुसार जगत् उसको आपसे भिन्नभासता है—द्वैत भ्रमनहीं

मिटता। हे रामजी ! जो पुरुष ऐसा भी है कि, देहके इष्ट–अनिष्टकी प्राप्तिमें समरहता है पर उसे आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों नहीं भासती तो वह अज्ञानी है; आत्मसत्ता जाने विना उसका संसार निवृत्त नहीं होता। जब आत्मसत्ता का साक्षात्कारहोगा तभी सब भ्रम निवृत्तहोगा। हे रामजी ! यह पुरुष न जीव है, न फुरन है और न शरीर के नाश होनेसे नाश होताहै; यह केवलचिन्मात्र स्वरूपहै पर वासनासे भ्रमको देखताहै और शून्यवादी वृक्ष, पर्वत, जड़ादिक योनिपाते हैं। जो सदा अनुभव है उसको त्यागकर जो और कुछ इष्टजानते हैं वे मूर्ख हैं और उनको आत्मसुखनहीं प्राप्त होता। आत्मा के प्रमाद से अहं, त्वं, भीतर, बाहर आदिक शब्द भासते हैं और जब आत्मज्ञान हुआ तब सर्वशब्द आत्मरूप होजाता है। जिनपुरुषों ने आत्म अनात्मको निर्णय करके नहीं देखा वे पुरुषों में नीच हैं और जिसपुरुषने निर्णय करके आत्मा में अहं प्रतीति की है और अनात्म का त्यागकिया है वह महापुरुष है और उसको मेरा नमस्कार है। जिसने अनात्मा में अहंप्रतीति की है और आत्मा को त्याग किया है वह बालक है। जैसे आकाश में बादलकेचक्र हाथी और घोड़के आकारहो भासते हैं और समुद्र में तरंगभासते हैं; तैसेही आत्मा में जगत् भासता है सो द्वैत कुछ नहीं। जैसे स्वप्नेके नगर अपने २ अनुभव में स्थितहोते हैं और बाहर द्वैतकी नाईं भासते हैं सो आभासमात्र हैं; तैसेही आत्मामें जगत् भासता है सो आभासमात्र है—वास्तव में कुछ नहीं। जिसको आत्मसत्ताका अनुभव हुआ है उसको जगत्के शब्द–अर्थ और राग द्वेष किसीकी कल्पना नहीं रहती और पुण्यपापका फल उसको स्पर्श नहीं करता। हे रामजी ! ज्ञान संवित्का नाश कदाचित् नहीं होता इससे विश्व भी अनुभवरूप है। इस जगत्का निमित्तकारण और समवायकारण कोई नहीं क्योंकि; अद्वैत है और जो तुमकहो कि; प्रत्यक्ष घटादिक समवाय और निमित्तकारण उपजते दीखते हैं; तो जैसे स्वप्नेमें कारण–कार्य अनहोते भासते हैं, तैसेही यह भी जानो। प्रथम तो स्वप्नेमें ये बनेहुये दृष्टि आते हैं और पीछे कारण से होते दृष्टि आते हैं, तैसेही यह भी जानो–केवल भ्रममात्र है। जैसे स्वप्न सृष्टि का जागेहुयेसे अभाव होताहै, तैसेही ज्ञान से इसका अभाव होजाता है। यह दीर्घकालका स्वप्ना है इससे जाग्रत् कहाता है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपने आपहोती है—और निद्रादोषसे भिन्न भासतीहै, तैसेही यह जगत् अपना आप है परन्तु अज्ञानसे भिन्नभासता है। जाग्रत् में ज्ञानसे सब अपना आप भासता है इससे रागद्वेषका अभाव होजाता है। जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमाकी चांदनीमें भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेद नहीं—आत्माही जगत् रूप होभासता है। हे रामजी ! तुम अपने अनुभवमें स्थित होकर देखो कि, सर्व ब्रह्मरूप है जगत् कुछ नहीं भासता–सर्वात्मकरूपहै और साध्य है। जैसे शरत्कालका आकाश

शुद्धहोता है, तैसेही आत्मसत्ता फुरनेरूपी बादलसे परमशुद्ध और शान्तरूप है और उसमें स्थित हुये से मान और मोहका अभाव होजाता है; किसी पदार्थ तृष्णामें नहीं रहती और प्रारब्ध वेगसे जो कुछ आन प्राप्त होता है उसको भोगताहै । वह आत्म दृष्टि से दुःख से रहित हुआ प्रत्यक्ष आचार करताहै; उसको शास्त्रका दण्ड नहीं रहता और परमशान्तरूप विराजताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनास्तिकवादीनिराकरणं नामद्विशताधिकदशमस्सर्गः २१० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं चिदाकाशरूपहूं और द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है सो भी चिदाकाशरूप है । आत्मसत्ताही त्रिपुटीरूपहो भासती है—दूसरी वस्तु कुछ नहीं । नास्तिकवादी जो कहते हैं कि, परलोक कोई नहीं अर्थात् जो कहते हैं कि, आत्मसत्ता कोई नहीं सो मूर्ख हैं । हे रामजी ! जो अनुभव आत्मसत्ता न हो तो नास्तिक किससे सिद्धहो ? जिससे नास्तिकवाद भी सिद्ध होता है सोही आत्मसत्ता है । जो इष्ट-अनिष्ट पदार्थ में रागद्वेष करते हैं और आत्माको नाशकहते हैं सो महामूर्ख हैं जैसे जाग्रत् के प्रमाद से स्वप्ने में इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष होता है और इष्ट को ग्रहण करता और अनिष्ट को त्यागताहै और जागेसे सर्व्व अपनाही स्वरूपभासता है और ग्रहण-त्याग और रागद्वेष किसी पदार्थ में नहीं रहता, तैसेही आत्माके अज्ञान से किसी पदार्थ में रागहोता है और किसी में द्वेषहोता है पर जब आत्मज्ञान होता है तब सब अपनाही स्वरूप भासता है और रागद्वेष किसी में नहीं रहता । चित्तके फुरने से जगत् उत्पन्न होता है और चित्तके शान्तहुये लयहोजाताहै, इससे जगत् मनमें स्थितहै; और वह मन आत्माके अज्ञान से हुआ है; जब आत्मज्ञान होताहै तब मनुष्य, देवता, हाथी, नाग आदिक स्थावर-जंगम जगत् सब आत्मरूप भासता है और राग द्वेष किसी में नहीं रहता । नास्तिकवादी जो नास्ति कहते हैं सोही नास्तिका साक्षी सिद्धहोता है । जिससे नास्ति भी सिद्धहोता है सो अस्ति आत्मपद है; उस अस्ति अनुभव के इतनेनाम शास्त्रकार कहते हैं—सत्, आत्मा, विष्णु, शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहंब्रह्म और अस्मि । एक कहते हैं कि, शून्यही रहता है और एक कहते हैं कि अस्तिपद रहता है । हे रामजी ! ये सर्व्वसंज्ञा आत्मसत्ताही की है, सो आत्मसत्ता अपनाही आप स्वरूपहै । वही आत्मा मैंहूं और ये अंग जो मेरे साथ दृष्टि आते हैं इनको दृष्टि पदार्थों से लेपनकीजिये अथवा चूर्णकरिये तो मुझको हर्ष और शोक कुछ नहीं । इनके बढ़ने से मैं बढ़ता नहीं और इनके नष्टहुये मैं नष्ट नहींहोता । हे रामजी ! तीन शब्दहोते हैं कि, 'मैं जन्माहूं'; मैं जीताहूं और मैं मरूंगा । जो प्रथम न हो और उपजे उस को जन्मकहते हैं; मध्यमें जीताकहते हैं और फिर नाशहो उसको मृतक कहते हैं ॥

में तीनोंविकार नहीं हैं। आत्मा उपजाभी नहीं क्योंकि, आदिही सिद्ध है; मृतकभी नहीं होता क्योंकि, अविनाशी है। चैतन्य आकाश सबका अधिष्ठान है और कालका भी अधिष्ठान है फिर उसका कैसे नाशहो ? वह तो उदयअस्त से रहित है। जिसमें देश, काल, वस्तु और जगत्का किंचनहोता है उससे आत्माकानाश कैसेहो—इससे आत्मा अविनाशी है। हे रामजी ! जिस वस्तुको देश, कालका परिच्छेद होता है उसकानाश भी होता है सो देश, काल और वस्तु तीनों आत्मा में कल्पित हैं। जैसे सूर्यकी किरणों में जल कल्पित होता है, तैसेही आत्मामें तीनोंकल्पित हैं। कल्पित वस्तु के साथ सत्य का अभाव कैसेहो ? इससे आत्मा अविनाशी और अद्वैत है उसमें दूसरीवस्तुकुछनहीं। जैसे शून्यस्थान में वैताल कल्पित होता है, तैसेही आत्मा में जगत् कल्पित है उस अभावरूप जगत् में प्रमाद से एकको अभाव जानता है और एकको सद्भावजानताहै। जब इस निश्चयको त्यागकर भीतर मोक्षहो तब शान्ति प्राप्तहोगी। विचार करके देखिये तो इस संसार में दुःखकहीं नहीं। जो मरके फिर जन्मलेताहै तौभी दुःख कहीं न हुआक्योंकि; शरीर जब वृद्धिभाव को प्राप्तहोकर क्षीणहुआ तब उसको त्यागकर नवतनु कोग्रहणकिया तो उत्साहहुआ; जो मृतकहोकर फिर नहीं उपजता तौभी आनन्दहुआ क्योंकि; जबतक जीता था तबतकतापथा—एककाभाव जानताथा, एकको ग्रहणकरताथा और एकको त्यागकरता था तिनसेतपताथा—उनसे यदिछूटा तो बड़ा आनन्द हुआ और जो सर्व चिदाकाशरूप है तौभी अपना आप आनन्दरूपहै दुःख कुछ न हुआ। हे राम-जी ! एक प्रमादसेही दुःख होता है और किसीप्रकार दुःख नहीं होता। यह सब जगत् आत्मरूप है और जो आत्मरूप है तो दुःख कैसेहो ? जो तुमकहो कि, मैं अपने कर्मसे डरताहूं जो परलोक में मुझको भयका कारण होगा तो ऐसे जानो कि, बुरेकर्म का दुःख यहां भी होता है और परलोकमें भी होगा—इससे बुरे कर्म मतकरो। मैंतुमसे ऐसा उपाय कहताहूं जिससे तुम्हारे सर्व दुःख नष्टहोजावें। वह उपाय यह है कि, तुम जानो 'मैं नहीं'; अथवा ऐसे जानो कि, 'सर्व मैंहीहूं' और सर्व वासना त्यागकर आप को अविनाशी जानो और आत्मसत्ता में स्थित होरहो। यह जगत् भी सब तुम्हारा स्वरूप है; जब कि, ऐसे आत्माको जानोगे तब शरीर के त्याग कियेसे भी कोई दुःख न रहेगा और शरीरके होते भी दुःख कहीं नहीं। यदि पूर्व शरीर को त्यागकर नूतन जन्म लिया तौभी आनन्दहुआ और परमशान्तिहुई और जो चिदाकाशरूप है तौभी परमआनन्द हुआ। हे रामजी ! सर्वप्रकार आनन्द है परन्तु भ्रान्तिसे दुःख भासता है। जब स्वरूपका साक्षात्कारहोगा तब सर्व जगत् ब्रह्मानन्द स्वरूप भासेगा। हे राम जी ! जिसको आत्मसत्ताका प्रकाश है सो पुरुष सदा आनन्द में मग्न रहता है और प्रकृत आचारको भी करता है परन्तु इष्ट—अनिष्टकी प्राप्ति में स्वरूप से चलायमान

कदाचित् नहीं होता। जैसे सुमेरुपर्वत वायुसे चलायमान नहीं होता, तैसेही ज्ञानी इष्ट अनिष्ट में चलायमान नहीं होता और परम गम्भीरतामें रहता है। इससे जो कुछ आत्मासे भिन्न उत्थान होता है उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित होरहो कि, चिन्मात्रसत्ता शरत्कालके आकाशवत् निर्मल है। जब ऐसे स्वच्छ केवल और चिन्मात्र का अनुभवहोगा तब जगत् द्वैतरूपहोकर न भासेगा व्यवहारमें भी द्वैत न फुरेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमउपदेशवर्णनं
नामद्विशताधिकएकादशस्सर्गः २११॥

रामजी ने पूंछा; हे भगवन्! जिन पुरुषोंको आत्मा परमात्माका साक्षात्कार हुआ है वह कैसे होजाते हैं और उनका कैसा आचार होता है सो मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे उनकी चेष्टा और जैसे उनका निश्चय है सो सुनो। सबके साथ उनका मित्रभाव होता है; बल्कि; पाषाणसे भी मित्रभाव होता है; बन्धुवोंको वे ऐसे जानते हैं जैसे वनके वृक्ष और पत्रहोते हैं और स्त्रीपुत्रादिकके साथ वे ऐसे होतेहैं जैसे वनकेमृगकेपुत्र से होते हैं। जैसे उनमें स्नेह नहींहोता, तैसेही पुत्रादिकमें भी वे स्नेहनहींकरते और जैसे माताकी पुत्रमें दयाहोती है, तैसेही वे सबपर दयाकरते हैं और निश्चयमें उदासीनरहते हैं। जैसे आकाश किसीसे स्पर्शनहीं करता, तैसेही वे किसीसे स्पर्शनहीं करते और जो कुछ आपदाहै वह उनको परमसुखहै। जितनेकुछजगत्में रस हैं सो उनको विरसहोजाते हैं; न किसीमें वे रागकरते हैं और न किसीमें द्वेषकरते हैं। वे तृष्णा करते दृष्टि भी आते हैं परन्तु हृदयसे जड़ और पत्थरकी नाईं होते हैं, व्यवहार करते भी हैं परन्तु निश्चयमें परमशून्य और मौन होते हैं अर्थात् सदा समाधिमें स्थितहोतेहैं। वे सब क्रियाकरते दृष्टि आते हैं सो इसप्रकार करते हैं कि, सबको स्तुति करनेयोग्यहैं। वे यत्नसे रहित सब क्रियाका आरंभ करते भी हैं परन्तु और निश्चयसे सदा आपको अकर्त्ता मानते हैं। जो कुछ उन्हें प्रारब्ध वेगसे प्राप्तहोता है; उसको भोगते हैं और देशकाल क्रिया सबको अंगीकार करतेहैं। जो परस्त्रियादिक अनिष्ट आ प्राप्तहों उनको त्याग भी करते हैं परन्तु निश्चयमें सदा अकर्त्ता ज्योंकेत्यों रहते हैं और सुख दुःखकी प्राप्तिमें समबुद्धिरहते हैं। प्रकृति आचार में यथाशास्त्र विचरते हैं परन्तु स्वरूपसे कदाचित् चलायमान नहीं होते। जैसे फूलके मारने से सुमेरुपर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही दुःख सुखकी प्राप्ति में वे चलायमान नहींहोते। वे सदा स्वभावमें स्थित रहते हैं और सुख दुःखको भोगते भी दृष्टि आते हैं, पर उनके निश्चयमें कुछ नहींहोता। जैसे स्फटिक मणिके सन्मुख कोई रंग रखिये तो उस में भासता है परन्तु उसकारूप कुछ और नहीं होजाता वह ज्योंकीत्योंही रहती है; तैसेही सुखदुःख के भोग ज्ञानवान् में भी दृष्टिआते हैं परन्तु वह स्वरूप से कदाचित् चलायमान नहींहोता-चेष्टा वे अज्ञानीकी

नाईं करते हैं परन्तु निश्चय से परम समाधी हैं। जैसे अज्ञानीको भविष्यत्का राग, द्वेष, सुख, दुःख कुछनहीं होता; तैसेही ज्ञानी को वर्त्तमानका रागद्वेष नहीं होता और स्वाभाविक चेष्टा उसकी ऐसेही होती है। वह सबसे मित्रभाव रखता है; न उससे कोई खेदवान् होताहै और न वह किसीसे खेदवान् होता है। जब उसको सुख प्राप्त होताहै तब रागवान् दृष्टि आता है और दुःखकी प्राप्तिमें द्वेषवान् दृष्टि आता है परन्तु निश्चय से उसको हर्ष शोक कुछनहीं। जैसे नट स्वांग लाता है और जैसा स्वांग होता है तैसी-ही चेष्टाकरता है—राजाकास्वांगहो अथवा दरिद्रीका—परन्तु निश्चय उसे अपने रूप मेंही होता है; तैसेही ज्ञानवान्‌में सुखदुःख दृष्टि आते हैं परन्तु निश्चय उसका आत्म स्वरूपमेंही होता है और पुत्र, धन, बान्धव आदिकको बुद्‌बुदेकी नाईं जानता है। जैसे जलमें तरंग और बुद्‌बुदे होते हैं और फिर लीन भी होजाते हैं परन्तु जलको कुछ रागद्वेष नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान्‌को रागद्वेष कुछ नहीं होता। वह सबपर दयास्वभाव रखताहै और पतित प्रवाह में जो सुखदुःख आन प्राप्तहोता है उसको भोगताहै। जैसे वायु दुर्गन्ध सुगन्ध को साथ लेजाती है परन्तु उसको रागद्वेष कुछनहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को रागद्वेष कुछनहीं होता। बाहर अज्ञानी की नाईं वह व्यवहार करता है परन्तु निश्चय में जगत् को भ्रान्तिमात्र जानता है अथवा सर्वब्रह्म जानताहै। वह सदा स्वभाव में स्थित होता है और अनिच्छित प्रारब्ध को भोगता है परन्तु जाग्रत् में सुषुप्ति की नाईं स्थित है; पूर्व और भविष्यत् की चिंतना नहीं करता और वर्त्तमान में विचरता है। वह हृदयसे शीतल रहता है और बाहर इष्ट—अनिष्ट दृष्टि आते हैं पर हृदयसे अद्वैतरूप है। ज्ञानवान् कर्म करता है परन्तु कर्म में अकर्म को जानताहै और जीताही मृतककी नाईं है। हे रामजी! जैसे मृतक होता है और उसको फिर जगत् की कलना नहीं फुरती, तैसेही जिसको आत्मपदकी अहंप्रत्यय हुई है उसको द्वैत नहीं भासता और प्रत्यक्ष व्यवहार उसमें दृष्टि भी आता है परन्तु निश्चयमें अर्थशान्त होगया है। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! यह ज्ञानी के लक्षण जो आपने कहे सो उन को वही जानें और कोई नहीं जानता क्योंकि; बाहरकी चेष्टा तो अज्ञानीके तुल्यही है और हृदयसे शान्तरूप हैं? ब्रह्मचर्य से भी हृदय में धैर्य होता है और तपस्या से भी रागद्वेष कुछनहीं फुरता। एक मिथ्या तपसी हैं कि, उसी प्रकार बन बैठते हैं; उन का निश्चय सत्य है अथवा असत्य है उनको कैसे जानिये? वशिष्ठजी बोले, हे राम-जी! यह निश्चय सत्यहो अथवा असत्यहो यह लक्षण सन्तकेही हैं और आत्मा के साक्षात्कारका निश्चय अपने आपसे जानता है और किसी से नहीं जानाजाता इस कारण उसका लक्षण ज्ञानीही जानता है और कोई नहीं जानता। जैसे सर्प के खुदको सर्पही जानता है और कोई नहीं जानता; तैसेही ज्ञानी का लक्षण सुसंवेद है। हे

रामजी ! यह जो गुणकहे हैं सो ज्ञानवान् में स्वाभाविकही रहते हैं और दूसरे को यत्न सिद्ध हैं। ज्ञानवान् को सर्व जगत् भ्रांतिमात्र है अथवा अनुभव दृष्टि से अपना आपही भासता है इसी कारणसे वह परमशान्त है और रागद्वेष उसके निश्चय में नहीं फुरता और न वह अपने निश्चय को बाहर प्रकट करताहै पर जो अधिकारी है वह उसको जानताहै और जो अनधिकारी अज्ञानी है वह उसको नहीं जानसक्ता। जैसे वन में चन्दन की बड़ीसुगन्ध होती है परन्तु दूरसे नहीं भासती, तैसेही अज्ञानी उसके निश्चय से दूरहै इसकारण वह नहीं जानसक्ता। चर्मदृष्टि से उसको देखे तो नहीं देखसक्ता और वह अधिकारी विना जनावता भी नहीं। जैसे अमूल्य चिन्तामणि नीचको दीजिये तौभी उसके माहात्म्य को वह नहीं जानता, इससे उसको निरादर करता है; तैसेही आत्मरूपी चिन्तामणि और अनधिकारी अज्ञानी उसका माहात्म्य नहीं जानता इससे उसका निरादर करता है—इसीकारण ज्ञानवान् प्रकट नहीं करते। हे रामजी ! यह जो प्रकट है कि, हमको अर्थकी प्राप्ति होगी; हमारा मानहोगा; हमारे चेले बनेंगे और हमारी पूजाहोगी उसे ज्ञानवान् गन्धर्वनगर और इन्द्रजाल की नाईं जानते हैं, फिर वे किसकी वाञ्छा करें ? इसकारण वे अनधिकारी को अपना इष्ट नहीं प्रकट करते और जो कोई निकट बैठताहै तौभी अपने निश्चय रूपी अंगको सकुचालेते हैं। जैसे कुज अपने अंगको सकुचा लेताहै तैसेही वह अपने निश्चयरूपी अंगको सकुचा लेताहै पर जिसको अधिकारी देखता है उससे प्रकट करता है। हे रामजी ! पात्र में रक्खा पदार्थ शोभता है अपात्र में रक्खा अनिष्ट होजाता है। जैसे गौको घास दिये से क्षीर होजाता है और सर्पको क्षीरदिये से विष होजाता है; तैसेही अधिकारी को दिया उपदेश शुभ होता है और अनधिकारी को अनिष्ट होजाता है। हे रामजी ! अणिमा आदिले जो सिद्धी हैं वे जप, द्रव्य, काल अथवा देशसे सबको प्राप्त होती हैं और अभ्यास के बलसे अज्ञानी को भी प्राप्त होती हैं और ज्ञानी को भी होती हैं परन्तु ये ज्ञानका फलनहीं, जप आदिकका फलहै। जिसकी सिद्धिके निमित्त जो पुरुष दृढ़ होकर लगता है वही सिद्धहोता है; जो इन सिद्धियों का दृढ़ अभ्यास करता है तो उनसे आकाशमार्ग में उड़ने और आनेजाने लगता है पर यह पदार्थ तबतक रसदेते हैं जबतक आत्ममार्ग से शून्य हैं। हे रामजी ! परम सिद्धता इनसे नहीं प्राप्त होती। परमसिद्धि आत्मपद है। जिसको आत्मपद की प्राप्तिहुई है वह इनकी अभिलाषा नहीं करता। ऐसा पदार्थ पृथ्वी में कोई नहीं और न आकाश में देवताओं के स्थानों मेंही है जिसमें ज्ञानीका चित्त मोहित हो ज्ञानवान् को सब पदार्थ मृगतृष्णा के जलवत् भासते हैं। मेरे सिद्धांत में तो यही है कि, सदा विषयों से उपराम रहना और आत्मा को परमइष्ट जानना इसीका नाम

ज्ञानहै। ज्ञानी को जो प्रारब्ध से प्राप्त हो उसको करता है परन्तु करने से उसका कुछ अर्थ सिद्धनहीं होता और न करने में कुछ प्रतिवाय भी नहीं होती। न किसी अर्थ का वह आश्रय करता है; न उसके निमित्त किसी भूतका आश्रय करता है और सर्वदा अपने आप स्वभाव में स्थित होता है। ऐसे निश्चय को पाकर वह आश्चर्य्यवान् होताहै और कहता है कि; बड़ा आश्चर्य है कि जो सदा अपना आप स्वरूप है उसको विस्मरण करके मैं इतने काल भ्रमता रहा पर अब मुझको शांति प्राप्तहुई है। जगत् को देखके वह हँसता है क्योंकि; यह जगत् अनायासरूप है और अपनी ही संवित् में स्थित है। जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब स्थित होता है, तैसेही अपनी संवित् में जगत् स्थित है उसको जो द्वैत जानता है और रागद्वेष से जलता है ऐसे अज्ञानीको देखकर वह हँसताहै और व्यवहार करता भी हँसता है। जैसे किसी ने स्वप्ने में हाथ में सुवर्ण दिया और फिर लेलिया और इसने उसको स्वप्नाजाना तो चेष्टाकरता है परन्तु हँसताहै और कहता है कि; यह मेराही स्वरूप है; तैसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपने निश्चय में हँसता है। जैसे किसी ग्राममें अग्निलगे और एकपुरुष उस गांवसे निकलकर पर्वतपर जा बैठे तब वह जलतोंको देखकर हँसता है; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष भी संसाररूपी जलते नगर से निकलकर आत्मरूपी पर्वतपर जा बैठा है और अज्ञानियों को दग्ध होता देखकर हँसता है अर्थात् आप अशोच होकर उनको सशोच देखता है। हे रामजी! जब ज्ञानवान् बोध दृष्टि से देखता है तब अद्वैत सत्ता भासती है और जब अन्तवाहक में स्थित होकर देखता है तब जैसे पदार्थ होते हैं तैसेही उनको देखता है और आपको सदा शांतरूप देखता है—अर्थ यह कि, जो आत्मतत्त्व परमानन्द स्वरूप है उससे भिन्न जितने कुछ पदार्थ हैं सो सब दोषरूप हैं और सिद्धि से आदि लेकर जितनी क्रिया हैं वे संसार का कारण हैं। जैसे समुद्र में कई तरंग बड़े और कई छोटे होते हैं परन्तु समुद्रही में हैं जिस तरंग का आश्रय करेगा वह सिद्धता को प्राप्तहोवेगा और हलने, डोलने, कहने से मुक्तहोवेगा; तैसेही सिद्धता आदिक जो क्रिया हैं वे कहीं बड़े ऐश्वर्य हैं और कहीं छोटे ऐश्वर्य हैं परन्तु संसारही में हैं जो पुरुष इस क्रियाको त्यागकर अन्तर्मुख होगा वह संसाररूपी समुद्र को त्यागकर आत्मरूपी पारको प्राप्तहोगा। हे रामजी! जिस पुरुष को जिस पदार्थ का अभ्यास होता है उसको वही प्राप्तहोता है। जैसे पाषाणको नित्यप्रति घिसते रहिये तो वहभी चूर्ण होजाता है; तैसेही जिस पदार्थका सर्वदा परम अभ्यास करताहै सो प्राप्त होताहै। जिसको अभ्यास से आत्मपद प्राप्तहोता है वह श्रेष्ठहोजाता है; सब जगत् से ऊंचे विराजता है और परम दयाकी खानहोता है। जैसे मेघ समुद्र से जल लेकरवर्षा करते हैं सो जलकास्थान समुद्रही होता है; तैसेही जितने कुछ

दयाकरते दृष्टिआते हैं सो ज्ञानके प्रसादसेही करते हैं । सर्व दयाकास्थान ज्ञानवान्ही है और ज्ञानवान् सबका हृदय है । जो कुछ प्रवाहपतित कार्य आनप्राप्त होता है उसको वह करताहै और जो शरीरको दुःख आन प्राप्त होताहै उसको ऐसे देखता है जैसे अन्य शरीर को होताहै और अपने में सुख दुःख दोनों का अभाव देखता है । जिनको यह अभ्यास नहीं हुआ वे शरीर के रागद्वेषसे जलते हैं और ज्ञानीको शांतिमान् देखकर औरोंको भी प्रसन्नता उपज आती है। जैसे पुण्य करके जो स्वर्ग को गयाहै उसको वहां इष्ट पदार्थ दृष्ट आते हैं और कल्पवृक्ष की सुन्दर मंजरियां और सुन्दर अप्सरा आदिक भासती हैं जिन पदार्थों को देखकर प्रसन्नता उपजती है; तैसेही ज्ञानवान् की संगति में जो पुरुष जाता है उसको प्रसन्नता उपज आती है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतलता उपजाता है; तैसेही ज्ञानवान्की संगति शीतलता उपजाती है। ज्ञानवान् आत्मपदको पाकर आनन्दवान् होता है और वह कभी आनन्द दूर नहीं होता क्योंकि; उसको उस आनन्द के आगे अष्टसिद्धि तृण समान भासती हैं। हे रामजी! ऐसे पुरुषों का आचार और जिन स्थानों में वे रहते हैं वह भी सुनो। कई तो एकांत जा बैठते हैं, कई शुभस्थानों में रहते हैं, कई गृहस्थीही में रहते हैं; कई अवधूत हुये सबको दुर्वचन कहते हैं कई तपस्या करते हैं; कई परमध्यान लगाके बैठते हैं; कई नंगे फिरते हैं कई बैठे राज्य करते हैं कई पंडित होकर उपदेश करते हैं; कई परममौन धारे हैं;कई पहाड़ की कन्दराओं में जा बैठते हैं; कई ब्राह्मण हैं; कई संन्यासी हैं; कई अज्ञानीकी नाईं विचरते हैं; कई नीच पामर होतेहैं और कई आकाश में उड़ते हैं और नानाप्रकार की क्रिया करते दृष्ट आतेहैं परन्तु सदा अपने स्वरूप में स्थित हैं। हे रामजी! जिसको पुरुष कहते हैं सो देह और इन्द्रियां पुरुष नहीं और अन्तःकरण चतुष्टय भी पुरुष नहीं; पुरुष केवल चिदाकाशरूपहै; वह न कुछ करताहै और न किसीसे उसका नाश होताहै। जैसे नट स्वांग ले आताहै और सब चेष्टा करता है परन्तु नटभाव से आपको असंग देखता है; तैसेही ज्ञानवान् व्यवहार भी करते हैं परन्तु आपको अकर्त्ता और असंग देखते हैं और ऐसा निश्चय रखते हैं कि, हम अछेद, अदाह, अक्लेद, अशोष,नित,सर्वगत, स्थिर अचल और सनातन हैं। हे रामजी! इस प्रकार आत्मामें जिसको अहंप्रतीति हुई है उसका नाश कैसे हो और वह बन्धमान कैसे हो ? वह पुरुष चाहे जैसे आरम्भकरे और चाहे जैसे स्थान में रहे उसको बन्धन कुछ नहीं होता। चाहे वह पाताल में चलाजावे, आकाश में उड़ता फिरे अथवा देशांतरों में भ्रमता फिरे उसको न कुछ अधिकता है और न कुछ ऊनता है। पहाड़ में चूर्ण होजावे तौभी वह चूर्ण नहीं होता। यह तो चैतन्य पुरुष है शरीर के नाशहुये इसका नाश कैसे हो ? ऐसे अपने स्वरूप में वह सदा स्थित है और आकाशवत् परम निर्मल, अजर, अमर और

शिवपद है। इससे हे रामजी! ऐसे जानकर तुम भी अपने स्वरूप में स्थित होरहो॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचैतन्यआकाशपरमज्ञानवर्णनन्नाम
द्विशताधिकद्वादशस्सर्ग्गः २१२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक भावमात्र है; दूसरा भासमात्र है और तीसरा भासितमात्रहै। भावमात्र केवल चैतन्यमात्रको कहते हैं; उसमें जो चैत्योन्मुखत्व अहंकार का उत्थान हुआ उसका नाम भासहै और उसमें जो जगत् हुआ उसका नाम भासित है। भासित कल्पितका नामहै। कल्पितके नाशहुये अधिष्ठानका नाश नहीं होता; जो अधिष्ठान कुछ और भावहो तो उसका नाश भी होवे सो तो और कुछ बना नहीं। उसके फुरनेसे तीनसंज्ञा हुई हैं सो फुरना भी उसीका किंचनहै। आत्मा फुरने न फुरने में ज्योंका त्योंहै। जैसे स्पंद और निस्पंदवायु एकही है; तैसेही बोध-अबोध में आत्मा एकही है। बोध, अबोध, फुरना, अफुरना एकही अर्थ है। हे रामजी! वह आत्मा किस से और कैसे नाशहो? चैतन्यभी मरताहो तो इसका किंचन जगत् कैसे रहे? किंचन आभासको कहते हैं, सो आभास अधिष्ठान विना नहीं होता-इससे आत्माका नाश नहीं होता और तुम जो चैतन्यको भी मरता मानो कि, मरके फिर नहीं उपजता तौभी आनन्दहुआ। मेरा भी यही उपदेश है कि, चैतन्यता मिटे। जब चैतन्यता उपजती है तब जगत् भासताहै और उसके मिटेसे आत्माही शेषरहेगा। ब्रह्म चैतन्यका तो नाश नहीं होता। जो तुम कहो कि, वह चैतन्य नाश होजाताहै-यह और चैतन्य है जिससे जगत् होता है तो; हे रामजी! अनुभव तो एकही है उसका नाश कैसे मानिये? जैसे बरफशीतल है चाहे किसी ठौर पान कीजिये वह सबको शीतलही है और अग्नि उष्णही है चाहे जिस ठौर से स्पर्श कीजिये उष्णही अनुभव होता है तैसेही आत्माका स्वरूप चैतन्य है। वह एक अखण्डरूप है और जहां कोई पदार्थ भासता है उसी चैतन्यतासे प्रकाशता है। वह चैतन्यसत्ता स्वच्छ निर्मल और अद्वैत सदा अपने आप में स्थित है; उसका नाश कैसेहो? जो तुम शरीरके नाश हुये आत्मा को नाश होता मानो तो नहीं बनता क्योंकि, शरीर यहां अखण्ड पड़ाहै और वह परलोक में चेष्टा करताहै और पिशाच आदिकका शरीर भी नहीं दृष्ट आता। जो शरीर विना उसका अभाव होताहो तो उनका भी अभाव होजाता; इससे शरीरके अभावहुये आत्माका अभाव नहीं होता क्योंकि; शरीरके मृतक हुये कुछचेष्टा शरीरसे नहीं होती क्योंकि; पुर्यष्टका जीवकलामें नहीं। शरीर तो अखंड पड़ाहै उससे कुछ नहीं होता और जीव परलोक में सुखदुःख भोगताहै तो शरीर के नाश हुये नाश न हुआ। जो तुम कहो कि, सब स्वभाव उसमेंरहता है तो सर्वदा काल उसको क्यों नहीं देखते उसी समय आपको क्यों मृतक देखते हैं और बान्धव, भाई, जन सब उसी समय क्यों मृतक जानते हैं और जो तुम कहो कि,

जीवित धर्म्म से वेष्टित है इसीसे सब अवस्था का अनुभव नहीं करता मृत्युसमय जब जीवत्व भाव नष्ट होजाता है तब मृतक होता है जो ऐसेहो तो परलोकका अनुभव न करे तो ऐसा नहीं है क्योंकि, जब शरीर पात होता है तब सब अवस्था को भी जानता है और परलोक में शब्द होता है उसका अनुभव करता है; अपने कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगता है और देश स्थान को प्राप्त होता है। यह वार्त्ता शास्त्रसे भी प्रसिद्ध है और अनुभव करके भी प्रसिद्ध है कि; मृतक को किसीने नहीं जाना और अभाव को किसीने नहीं जाना और जिसनें जाना वह आत्मा एक अखण्ड है-इससे हे रामजी! शरीर के नाशमें आत्माका नाश नहींहोता; वहतो नित्यशुद्धहै औरजैसा निश्चय उसमें होता है तैसाही होभासताहै और जैसा मिलताहै; तैसा प्रकाशताहै। ऐसा जो सत्यआत्माहै वह किसीमें बन्धमाननहीं होता जैसे रस्सीमें सर्पआकार भासताहै पर वह रस्सी सर्प तो नहीं होजाती जब कल्पित सर्पका अभाव होजाता है तब रस्सी ज्यों की त्यों रहती है; तैसेही आत्मसत्ता आकार हो भासती है परन्तु आकार तो नहीं होती जब आकारका अभाव होजाता है तब आत्मसत्ता ज्यों की त्यों रहती है इसी कारण बन्धमान नहीं होती। ऐसी आत्मसत्ता में जो विकार भासते हैं सो भ्रममात्र हैं और भ्रांति से ही लोग दुःखपाते हैं। हे रामजी! वह जगत् आभासमात्र है और उस आभासमात्र में जो रागद्वेष आदिक फुरते हैं उनकी निवृत्तिका उपाय मैं तुमसे कहताहूं। जो कुछ उपदेश मैंने किया है उसके विचारने से भ्रांति निवृत्त होजावेगी और आत्मपद की प्राप्ति होगी। अभ्यास विना आत्मपद की प्राप्ति चाहे तो कदाचित् न होगी; जब वारंवार अभ्यास करेगा तब द्वैत भ्रम मिटजावेगा और आत्मपद प्राप्तहोगा। जिसका कोई नित अभ्यास करता है और उसका यत्न भी करता है सो प्राप्त होता है। वह कौन पदार्थ है जो अभ्यास से प्राप्त न हो! जो थककर फिरे नहीं और दृढ़ अभ्यासकरे तो प्राप्त होताही है। राज्य की लक्ष्मी तब प्राप्त होती है जब रणमें दृढ़ होकर युद्धकरते हैं और जयहोती है और केवल मुख से कहे कि, मेरी जय हो तो नहीं होती; तैसेही आत्मपद भी तब प्राप्तहोगा जब दृढ़ अभ्यास करोगे—अभ्यास विना कहने मात्रसे प्राप्त नहीं होता। हे रामजी! इस मनके दो प्रवाह हैं एक जगत् का कारण है और दूसरा स्वरूप की प्राप्ति का कारण है। जो असत्य शास्त्र हैं और जिनमें आत्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहा उनको त्यागो। यह जो महारामायण मोक्ष उपाय है उस में चारवेद षट्शास्त्र और सर्व इतिहास और पुराणों का सिद्धांत मैंने कहा है और इसके समान और न किसीने कहा है न कोई कहेगा। ऐसा जो शास्त्र है इसके विचारमें मनकोलगावो तो शीघ्रही आत्मपदको प्राप्तहोगे। हे रामजी! आत्मज्ञान वर और शापकी नाईं नहीं कि; कहनेमात्रसे सिद्धहो; इसकी प्राप्ति तबहोगी जब वारंवार विचार करके दृढ़ अ-

भ्यास करोगे और जब इसकी भावनाहोगी तब मुक्तिपदको प्राप्तहोगे। ऐसाकल्याण पिता, माता और मित्र भी न करेंगे और तीर्थआदिक सुकृतसे भी न होगा जैसा कल्याण बारंबार विचारनेसे मेराउपदेश करेगा। इससे और सब उपायोंको त्यागकर इसीका विचारकरो तो सबभ्रान्ति मिटजावेगी और शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहोगी। हे रामजी! अज्ञानरूपी विसूचिकारोग है और उसमें पड़ेजीव जलते हैं। जो हमारे शास्त्रको विचारेगा उसकारोग नष्टहोजावेगा। ईश्वरकी यह महामाया है कि, मिथ्याभ्रमसे जीव दुःखीहोते हैं। जो अपनादुःख नाशकरना चाहे वह मेराशास्त्र विचारे। जितने सुन्दरपदार्थ दृष्टआते हैं वे सब मिथ्याहैं और उनके निमित्त यत्नकरना परमआपदा है। यह सबपदार्थ आपातरमणीय हैं जो देखनेमात्र सुन्दर हैं पर भीतरसे शून्य हैं। इनकी प्राप्तिमें मूर्खआनन्द मानते हैं। हे रामजी! यह पदार्थ तबतक सुन्दर भासते हैं जबतक मृत्युनहींआई, जबमृत्युआवेगी तब सब क्रिया रहजावेंगी इस लिये इनकेनिमित्त जो यत्नकरते हैं वे मूर्ख हैं। जिसकालमें मृत्युआती है उसकाल कष्ट प्राप्त होता है और यदि चन्दनका लेप कीजिये तौभी शीतल नहीं होता। जिस द्रव्य के निमित्त जीव बड़े यत्नकरता है; युद्धकरता है और प्राण त्यागता है सो धन स्थिरनहीं रहता एकदिन धन और प्राणीका वियोग होजाता है और जब वियोग होता है तब कष्ट पाता है। मैं ऐसा उपाय कहताहूं जिसमें यत्न भी थोड़ाहो और सुगमता से आत्मपद प्राप्त हो। जब शास्त्रके अर्थ में दृढ़ अभ्यास होता है तब वह अजर, अमरपद प्राप्त होता है; इससे तुम बोधवान् हो और बोध करके अभ्यासका यत्न करो। जो यत्न न करोगे तो अज्ञानरूपी शत्रु लातें मारेगा; यदि उस शत्रुको मारनाहो तो निर्मान और निर्मोह होकर आत्मपद का अभ्यासकरो। हे रामजी! जो पुरुष अबतक अज्ञानरूपी शत्रुके मारने और आत्मपद पानेका यत्न नहीं करते वे परमकष्ट पावेंगे और संसाररूपी दुःखसे कदाचित् मुक्त न होंगे। इस कष्टसे निकलने का यही उपाय है कि, महारामायण ब्रह्म विद्याका जो उपदेश है उसको विचार करके अपने हृदय में धारणा करें। इस उपाय से भ्रांति मिटजावेगी। यह महारामायण उपदेश सर्व सिद्धान्तों का सार है; और २ शास्त्रों से आत्मपद को प्राप्तहो अथवा न भी हो परन्तु इसके विचार से अवश्य आत्मा को प्राप्त होगा। जैसे तिल की खली से तेल निकलना कठिन है और तिलों से तेल निकालिये तो निकलताहै; । तैसेही मेरा उपदेश तिलकी नाईं है। और इतर खली की नाईं है हे रामजी! संपूर्ण शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्तों का सार जो सिद्धांत है सो मैंने तुम से कहा है। जो आत्मा सदा विद्यमान है उसको लोग भ्रांति से अविद्यमान जानते हैं इसलिये उसी के विद्यमान करने को सर्वशास्त्र प्रवर्त्तते हैं पर जो उनके विचार से आत्मपद को विद्यमान नहीं

जानता वह मेरे उपदेश के विचारने से अवश्य आत्मपद को विद्यमान जानेगा यह निश्चय है । हे रामजी ! और शास्त्रों के दृढ़विचार और यत्न से जो सिद्धि होती है सो इस शास्त्र के विचार से सुख सेही प्राप्त होगी । शास्त्रकर्त्ता का और लक्षण न विचारना पर शास्त्रकीयुक्ति विचार देखनी है । जो कुछ सर्वशास्त्र का सार सिद्धान्त है सो मैंने तुमसे सुगममार्ग से कहा है । इसके विचारसे इसकी युक्ति देखो अज्ञानी जो कुछ मुझको कहते हैं और हँसते हैं सो मैं सबही जानताहूं परन्तु मेरा जो दयाका स्वभावहै इससे मैं चाहताहूं कि, किसीप्रकार वे नरकरूप संसार से निकलें और इसीकारण मैं उपदेश करताहूं। हे रामजी ! मैं जो तुमको उपदेशकरताहूं सो किसी अपने अर्थके निमित्त नहीं करता कि, मेरा कुछ अर्थ सिद्धहो। जो कोई तुमको उपदेश करताहै सो सुनो; तुम्हारा जो कोई बड़ापुण्यहै वही शुद्ध संवित् होकर मलिन संवित् को उपदेश करता है । वह संवित् न देवता है; न मनुष्य है; न यक्ष है; न राक्षस है और पिशाच आदिक भी नहीं है; केवल जो ज्ञानमात्र है सो तुमहीं हो; मैं भी वही हूं और जगत् भी वही है और जो सर्व वही है तो वासना किसकी करनी है । हे रामजी ! जीवको दुःखका कारण वासनाही है । जो पुरुष इस संसारबन्धन के दुःख की चिकित्सा अब न करेगा वह आत्महत्यारा है और बड़े दुःख में जापड़ेगा जहां से निकसने की सामर्थ्य न होगी इससे अबहीं उपायकरो । जबतक सर्वभाव की वासना निवृत्त नहीं होती तबतक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता—इसी का नाम बन्धन है । जब वासना क्षय होगी तब आत्मपदकी प्राप्ति होगी । जितने पदार्थभासते हैं वे सब अविचार सिद्धहैं, विचार किये से कुछ नहीं रहते; और जो विचार किये से न रहें उनकी अभिलाषा करनी व्यर्थ है। जो वस्तु होती हो उसके पानेका यत्न भी कीजिये तो बनताहै और जो वस्तु होवेही नहीं उसके निमित्त यत्न करना मूर्खताहै । यह जगत् के पदार्थ असत्यरूपहैं । जैसे शशेके सींग असतहैं और मरुस्थलकीनदी असत् होती है; तैसेही यह जगत् असतहै। जो सम्यक्दर्शी ज्ञानवान् पुरुषहै वह जानताहै कि,यह जगत् शशे के सींगवत् असत् और भ्रांतिमात्र है इसलिये इसके निमित्त यत्न करना मूर्खताहै । जो पदार्थ कारण विना दृष्टिआवे उसको भ्रांतिमात्र जानिये । आत्मा जगत् का कारण नहीं इससे जगत् मिथ्याहै । आत्मपद सब इन्द्रियों और मनसे अतीतहै और जगत् पाञ्चभौतिकहै । जगत् मन और इन्द्रियों का विषय है और आत्मपद मन और इन्द्रियोंका विषय नहीं तो उसे जगत्का कारण कैसे कहिये ? जो अशब्दपदहै सो नानाप्रकार शब्दका कारण कैसेहो और जो निराकार आत्मपद है सो पृथ्वी आदिक नानाप्रकार के भूत आकारों का कारण कैसेहो ? हे रामजी ! जैसा कारण होताहै उससे तैसाही कार्य उपजताहै; आत्मा निराकारहै और जगत् साकारहै इसलिये निराकार

साकारका कारण कैसेहो ? जैसे बटका बीज साकार होताहै इसलिये उसका कार्य बट भी साकार होताहै और साकारसे निराकार कार्य तो नहीं होता; तैसेही निराकारसे साकार कार्य भी नहीं होता। इससे इस जगत् का कारण आत्मा नहीं और न समवायकारणहै, न निमित्तकारण है। निमित्तकारण तब होता है जब कुछ द्वितीय वस्तु होती है। जैसे मृत्तिकासे कुलाल घट बनाताहै। पर आत्मा तो अद्वैत है वह निमित्तकारण कैसे हो ? और समवायकारण भी तब होताहै जब साकार वस्तु होतीहै—जैसे मृत्तिका प्रणाम से घट होता है—पर आत्मा निराकार अप्रणामी है जगत् का कारण कैसेहो ? दोनों कारणों से जो रहित भासे उसे जानिये कि, भ्रांतिमात्र है जैसे स्वप्न में नानाप्रकारके आकार भासते हैं सो कारण विना भासते हैं इसलिये वह भ्रांतिमात्र है; तैसेही यह जगत् भी कारण विना भ्रांतिमात्र भासताहै। आत्मामें जगत् कदाचित् नहीं हुआ। जैसे प्रकाशमें तम नहीं होता, तैसेही आत्मामें जगत् नहीं। यदि तुम कहो कि, तो फिर भासता क्याहै तो उसीका किंचन भासताहै जो वही रूपहै जैसे चलतीहै तौभी वायु है और ठहरती है तौभी वायुहै, चलने और ठहरने में कुछ भेद नहीं होता और जैसे आकाश और शून्यता में भेद कुछ नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेद नहीं है— वही आत्मसत्ता फुरनेसे जगत्रूप हो भासती है। जैसे जल और तरंग में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत्में कुछ भेद नहीं और कुछ द्वैत वस्तुहै नहीं। जो लोग कहते हैं कि, जगत् कर्मोंसे होताहै सो असत्यहै क्योंकि, कर्मभी बुद्धिसे होते हैं सो आत्मा में बुद्धिही नहीं तो कर्म कैसेहो और जो कर्मही नहीं तो जगत् कैसेहो ? जैसे शशे के सींगके धनुषसे बाणचलाना असत्यहै, तैसेही कर्मसे जगत्का होना असत्य है। एक कहतेहैं कि, सूक्ष्मपरमाणुसे जगत् होजाता है पर यह भी असत्यहै क्योंकि, जो सूक्ष्म परमाणु प्रमाण से जगत्रूप हुये होते तो बुद्धिरूप जगत् न भासता पर यहतो बुद्धि रूपक्रिया होती दृष्ट आतीहै। जो परमाणुसे जगत् होता तो इनहीं से बढ़ताजाता क्योंकि; जो परमाणु जड़हैं वही बढ़ते हैं पर ऐसे तो नहींहोता; बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्ट आती है, इसीसे कहा है कि, वे असत्य कहते हैं क्योंकि; सूक्ष्मभी किसी से उत्पन्न हुआ चाहिये और कोई उसके रहने का स्थान भी चाहिये पर आत्मा में देश, काल और वस्तु तीनों कल्पित हैं। जो आत्मा में ये न हुये तो परमाणु कैसेहो और जगत् कैसेहो ? आत्मा अद्वैतहै इससे जगत् न उपजा है और न नष्ट होता है। जो जगत् उपजा होता तो नष्ट भी होता, जो उपजाही नहीं तो वह नष्ट कैसेहो ? आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आप में स्थितहै। इससे हे रामजी ! मैं, तुम और सब जगत् आकाशरूपहै किसीके साथ आकार नहीं—सब निराकाररूपहै। जो तुम कहो कि फिर बोलते चालते क्योंहैं ? तो जैसे स्वप्न में सब आकाशरूप होते हैं पर नानाप्रकारकी चेष्टा करते

दृष्ट आते हैं और बोलते चालते हैं; तैसेही यह भी बोलते चालते हैं परन्तु आकाश रूपहै । तुम्हारा जो स्वरूपहै सो भी सुनो । देशको त्यागकर देशांतरको जो संवित् जाताहै और उसके मध्य जो ज्ञानसंवित्‌है वही तुम्हारा स्वरूपहै । वह अनामय और सर्व दुःखसे रहितहै । जैसे जब जाग्रत् दशाको त्यागकर जीव स्वप्नमें जाताहै तो जाग्रत् त्याग दियाहो और स्वप्ना न आयाहो मध्यमें जो अचेत चिन्मात्रसत्ता है वही तुम्हारा स्वरूपहै; उसमें पण्डित और ज्ञानवानों का निश्चयहै और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक उसीमें स्थित रहते हैं—उनको कदाचित् उत्थान नहीं होता । जैसे बरफसे अग्नि कदाचित् नहीं उपजती, तैसेही उनको स्वरूपसे उत्थान कदाचित् नहीं होता । वह आत्मसत्ता न उपजती है; न विनशती है और न और की और होतीहै—सर्वदा अपने स्वभावमें स्थितहै । हे रामजी ! जितना कुछ जगत् तुम देखतेहो सो वास्तवमें कुछ उपजा नहीं—भ्रमसे भासताहै । जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकार के आरम्भहोते दृष्ट आते हैं और जागे से उनका अत्यन्त अभाव भासताहै, तैसेही यह जगत् भी है । आदि जो अद्वैत तत्त्वमें स्वप्नाहुआहै उसमें ब्रह्मा उपजे और उन्होंने आगे जगत् रचा सो ब्रह्मा भी आकाशरूपहै स्वरूपसे भिन्न कुछ नहीं हुआ—सब असत्यरूप है । जैसे स्वप्ने में नदी और पर्वत दृष्ट आते हैं परन्तु कुछ उपजे नहीं; अनुभवसत्ताही ज्यों कीत्यों स्थित है; तैसेही ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त जगत् सब असत्यरूप है जिसको तुम ब्रह्मा कहते हो वह वास्तव में कुछ उपजे नहीं तो जगत्‌की उत्पत्ति मैं तुमसे कैसे कहूं ? जैसे मरुस्थल की नदीही उपजी नहीं तो उसमें मछलियां कैसे कहिये ? तैसेही आदि ब्रह्मा नहीं उपजा तो उसमें जगत् कैसे उपजा कहिये ? केवल आत्म चैतन्यसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और यह जगत् भी वही रूपहै परन्तु अज्ञान से विपर्ययरूप भासता है । जैसे स्वप्ने में पुरुष अनुभवरूप होताहै और अपने प्रमादसे नानाप्रकारके पदार्थ और पर्वत, जल, पृथ्वी, जन्म, मरणादिक विकार देखताहै परन्तु हुआ कुछ नहीं आत्मसत्ताही ज्योंकीत्यों स्थितहै और अज्ञानसे विषयरूप भासते हैं; तैसेही इस जगत्‌को भी जानो-आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं सब चिदाकाशरूप है और अज्ञान से आत्मसत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है । इससे, हे रामजी ! जिसके अज्ञानसे यह जगत् भासताहै और जिसके ज्ञान से निवृत्त होजाताहै ऐसे आत्मतत्त्व के पानेका यत्नकरो । वह नित्य, शुद्ध और परमानन्द स्वरूप है और सदा अपने स्वभाव में स्थित है और वही तुम्हारा अनुभवरूप है जो सदा अनुभवकरके प्रकाशताहै और उसमें स्थितहोने में क्या कायरता करनी है ? हे रामजी ! जितना प्रपंचहै सो सब भ्रांतिमात्रहै । जैसे रस्सीमें सर्प भ्रांतिमात्रहै तैसेही आत्मामें जगत् भ्रममात्रहै इससे उसको त्यागकर अपने स्वभाव में स्थितहो ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वपदार्थभाववर्णनंत्रयोदशाधिकद्विशततमस्सर्गः २१३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिसप्रकार यहजगत् आभास फुराहै और भासता है सो भी सुनो । आदि जो शुद्ध अचेत चिन्मात्रहै उसमें जब चैतन्यता फुरती है तब वह वेदन होती है और उसमें शब्दतन्मात्र होता है फिर उसमें आकाश उत्पन्न होता है और फिर स्पर्शकी इच्छाहोती है तब वायुउपजती है । जब आकाशमें उत्थान होताहै तब उस वायु और आकाशके संघर्षणभावसे अग्नि उपजती है, और जब अग्नि में उष्णस्वभाव होताहै तब जल उत्पन्न होताहै अर्थात् जब तेजकी अधिकता होती है तब जल उत्पन्न होआता है । जब स्वेदवत् जल बहुत इकट्ठा होता है तब उसमें पृथ्वी उत्पन्न होती है । इसप्रकार आकाश और वायुसे जल और पृथ्वी उत्पन्नहोतेहैं तब तत्त्वों से शरीर उपजते हैं और स्थावर जंगमभूत और नानाप्रकार का जगत् दृष्टआता है सो सब पाञ्चभौतिकहैं और वास्तव में न पंचभूत हैं; न कोई उपजताहै और न नष्ट होता है केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है । जैसे स्वप्न में नानाप्रकार का जगत् आरम्भ प्रमाणसहित भासताहै परन्तु वास्तव में कुछ उपजानहीं आत्मसत्ता-ही चित्तकेफुरने से जगत्रूप हो भासती है; तैसेही यह जाग्रत् जगतभीजानो । हे रा-मजी ! यह जगत् सब अपना अनुभव रूपहै पर भ्रमकरके आकारसहित भासता है और जब भलीप्रकार विचारके देखिये तब जगत्भ्रम मिटजाताहै केवल चैतन्य आ-त्मतत्त्वमात्र शेषरहताहै । जैसे निद्रादोष से स्वप्नेमें नानाप्रकारके क्षोभ भासते हैं और जब जागताहै तब एक अपना आपही भासता है; तैसेही आत्मसत्तामें जागे से अद्वैत ही अद्वैत भानहोता है । हे रामजी ! जो बोधसमय में द्वैत कुछ न भासे तो अबोधसमय भी जानिये कि, द्वैत कुछ नहीं हुआ और जो बोधके समय सत्यभासे तो जानिये कि, सर्वदाकाल यही सत्ताहै । हे रामजी ! यह निश्चयधारो कि जगत् कुछ वस्तु नहीं—जैसे आकाशमें नीलता; किरणों में जल और रस्सी में सर्पभासताहै, तैसेही आत्मा में जगत् भासता है और विचार किये से कुछ नहीं पायाजाता । हे रामजी ! अपनी कल्पनाही जीवको जगत्रूपहो भासती है और कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपनी कल्पना रूप है परन्तु निद्रादोष से भिन्नहो भासती है और उसमें राग द्वेष उपजता है पर जागे से सब क्षोभ मिटजाते हैं; तैसेही अज्ञानसे जगत् सत्यभासताहै और उसमें राग द्वेष भासते हैं—ज्ञानसे सब शांत होजातेहैं । हे रामजी ! यह जगत् भ्रममात्र है; ज्ञानवान्के निश्चय में सब चिदाकाशहै और अज्ञानीके निश्चयमेंजगत्है । यदि बड़ेक्षोभ प्राप्तहों तौभी ज्ञान-वान्को चलानहींसक्ते क्योंकि, उसके निश्चयमें कुछ द्वैतनहीं फुरता, वह सदा एकरस रहता है । यदि प्रलयकालके मेघगर्जें; समुद्र उछले और पहाड़के ऊपर पहाड़पड़े; ऐसे भयानक शब्दहों तौभी ज्ञानवान् के निश्चय में कुछ द्वैतनहीं फुरता । जैसे कोई पुरुष सोयापड़ाहो तो उसके स्वप्नेमें बड़ेक्षोभ होते हैं और जाग्रत्के निकट बैठेभीनहीं

भासते; तैसेही ज्ञानवान्को निश्चय में द्वैतकुछनहीं भासता क्योंकि; है नहीं और अज्ञानीको होते भासतेहैं। जैसे बन्ध्यास्त्री स्वप्नेमें अपनेपुत्रको देखती है सो अनहोता भ्रमसे उसको भासताहै तैसेही अज्ञानी को अनहोता जगत् सत्यहोकर भासताहै। हे रामजी! भ्रमसे अनहोता जगत् भासताहै और होतेका अभाव भासता है। जैसे बन्ध्या अनहोते पुत्रको देखतीहै और पुत्रवाली स्वप्नेमें पुत्रका अभाव देखतीहै; तैसेही अज्ञानसे अनहोता जगत् सत् भासताहै और सदाअनुभवरूप आत्माका अभाव भासता है सो भ्रमसेही और का और भासताहै। जैसे दिनमें सोयाहुआ स्वप्ने में रात्रि देखताहै और रात्रिको सोयाहुआ स्वप्नेमें दिनदेखताहै; शून्यस्थानमें नानाप्रकारके व्यवहार और अन्धकार में प्रकाश देखताहै सो भ्रमसेही देखताहै और पृथ्वी पर सोयाहै और स्वप्नेमें आकाशपर दौड़ता फिरता है और आपको नदे में गिरता देखताहै सोभी भ्रमसेही भासताहै; तैसेही यहजाग्रत् जगत्का विपर्ययरूपभीभ्रमसेही देखताहै। जाग्रत और स्वप्नेमें कुछभेदनहीं; जैसे स्वप्नेमें हुयेभी बोलते चालते दृष्ट आते हैं। हे रामजी! जैसे स्वप्नेमें तुमको नानाप्रकारका जगत्भासताहै और जागकर कहतेहो सब भ्रममात्रथा; तैसेही हमको यह जाग्रत् जगत् भ्रममात्र भासताहै। जैसे जल और तरंग में कुछ भेदनहीं, तैसेही जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछभेदनहीं। जैसे दो मनुष्य एकही से होते हैं और दोसूर्यहों तो उनमें कुछ भेदनहींहोता, तैसेही जाग्रत् और स्वप्नेमें कुछभेद न जानना। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! स्वप्ने की प्रतिभा अल्पमात्र भासती है और शीघ्रही जागकर कहताहै कि, भ्रममात्रथी और जाग्रत् दृढ़होकर भासती है पर तुम दोनोंको समान कैसे कहतेहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रतिभाका प्रत्यक्ष अनुभव होताहै सो जाग्रत् कहाती है और जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहींहोता और चित्तमें स्मृति होती है वह स्वप्नाहै। वह जाग्रत् और स्वप्ना दो प्रकारका है—जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होताहै वह जाग्रत् है और उसमें जब सो गया तब स्वप्ना हुआ उस स्वप्ने में जगत् भासिआया तो जहां जगत् भासिआया वही उसकी जाग्रत् होगई और जहांसे सोयाथा वहस्वप्नाहोगया। वहांजो स्वप्ना भासित हुआ उसको जाग्रतजानो और लोगोंसे चेष्टाकरनेलगा जब वहां से मृतकहोगया फिर उसमें आया तो पिछले को स्वप्नाजाननेलगा तो चित्तके भ्रमसेस्वप्ने को जाग्रत् देखा और जाग्रत्को स्वप्नादेखा। हे रामजी! सोयहक्याहुआ? जैसे किसीकोस्वप्ना आया और उसमें अपनी चेष्टा और व्यवहार करनेलगा और फिर उसमें स्वप्नाहुआ उस स्वप्नांतरसे जागा फिर उसस्वप्नेमें आया तो उसको स्वप्नाजाननेलगा और उसस्वप्ने को जाग्रत् जाननेलगा। हे रामजी! जैसे वह स्वप्नांतरसे जागकर उसको स्वप्ना कहताहै और स्वप्नेको जाग्रत् कहताहै, तैसेही यहांजाग्रत् स्वप्नारूप है और आगे

जो होता है वह स्वप्नान्तर है। एक और प्रकार है कि, जो इसजाग्रत् में मृतक हुआ शरीर छूटगया तब परलोक देखताहै सो परलोक जाग्रत् होगया और इस जाग्रत् को स्वप्न जाननेलगा। जैसे स्वप्ने से जागा स्वप्ने को भ्रम कहता है, तैसेही इस जाग्रत् को परलोक में भ्रमजानताहै। फिर परलोक में स्वप्न आया तब परलोककी जाग्रत् स्वप्नवत् होगई और जो स्वप्ने में सृष्टि भासी उसको जाग्रत् जानता है। फिर वहां से मृतक होकर यहां आया तब यह जाग्रत् होगई और परलोक स्वप्न होगया। इससे हे रामजी! स्वप्न और जाग्रत् दोनों मिथ्या हैं। जब मूर्ख स्वप्ने से जागते हैं तब वे जानते हैं कि, इसका नाम जागना है और इसको जाग्रत् मानते हैं और उसको स्वप्न जानते हैं। पर वास्तवमें वह स्वप्नान्तर है और यह स्वप्न है। इसमें जो तीव्र संवेग होरहाहै इससे इसको जाग्रत् जानते हैं और उसको स्वप्न जानते हैं पर दोनों तुल्य हैं कुछ भेदनहीं। आत्मा में दोनों असत्यरूप हैं और इनकी प्रतिभा भ्रममात्र भासती है। आत्मा न कदाचित् उपजता है; न मरता है और उपजताभी है और मरताभी है। उपजता इस कारण से नहीं कि; पूर्व सिद्ध है और मरता इस कारण नहीं कि, भविष्यत्कालमें भी सिद्धहै। परलोक में सुखदुःख भोगता है और २ भ्रमकाल में जन्मता भी है और मरता भी है सो प्रत्यक्ष भासता है पर वास्तव में ज्यों का त्यों है। हे रामजी! यह जगत् उसका आभासहै और चैतन्य का चमत्कार चैत होकर भासता है। जैसे घट मृत्तिकारूप है—मृत्तिकासे भिन्न नहीं; तैसेही चेतनभी चैतन्य रूप है। चैतन्य से भिन्न जगत् नहीं—स्थावर जंगम जगत् सब चिन्मात्र है। हे रामजी! जैसे तुमको स्वप्न आता है और उसमें पत्थर और पहाड़ भासते हैं सो तुम्हाराही अनुभव रूप हैं भिन्न तो नहीं; तैसेही यह दृश्य सब चिन्मात्र रूप है। जैसे घट मृत्तिका से भिन्न नहीं; तैसेही जगत् चिदाकाश से भिन्न नहीं। जैसे काष्ठके पात्र काष्ठसे भिन्ननहीं—सब काष्ठहीरूप हैं; तैसेही जगत् चैतन्यरूप है—चैतन्य से भिन्न नहीं। जैसे पाषाणकी मूर्त्ति पाषाणरूप है; तैसेही जगतभी चैतन्य रूप है जैसे समुद्रही तरंग रूपहो भासता है; तैसेही चैतन्य जगत्रूपहो भासता है जैसे अग्नि उष्णरूप है, तैसेही चैत चैतन्य रूप है जैसे वायु स्पंदरूप है तैसे चैतन्य चैतरूप है जैसे वायु निस्स्पंदरूप है तैसे चैतन्य चैत रूप है; जैसे पृथ्वी घन रूपहोती है और आकाश शून्य रूप होताहै—जहां शून्यताहै वहां आकाशहै- तैसेही जहां चैतहै तहां चैतन्य है। जैसे स्वप्ने में शुद्ध संवित् पहाड़ और नदियांरूप हो भासती हैं; तैसेही चिन्मात्र सत्ता जगत्रूप हो भासती है। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ तुमको भासते हैं उनको त्यागकर आत्माकी ओर देखो। यह सब विश्व आत्मरूप है शुद्ध चिदाकाशरूप निर्दुःख आकाश में निर्मल है; ऐसे जानकर उस में स्थित

हो। हे रामजी ! जब तुमको स्वभाव सत्ताका अनुभव साक्षात्कार होगा तब सर्व द्वैत कलना जो भासती है सो शांत होजावेगी और केवल आत्मतत्त्व मात्र शेष रहेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नैकताप्रतिपादनन्नामचतुर्दशाधिकद्विशततमस्सर्ग्गः २१४ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! चिदाकाश कैसा है जिसको तुम परब्रह्म कहते हो और उसका क्या रूप है ? तुम्हारे अमृतरूपी वचनों को पानकरता मैं तृप्त नहीं होता इससे कृपाकरके कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसे एक माता के गर्भसे दो पुत्र जोड़े उत्पन्न होते हैं और उनका एकसा आकार होता है पर जगत् के व्यवहार के निमित्त उनका नाम भिन्न भिन्न होता है और भेद कुछनहीं और जैसे दोपात्रों में जल रखिये तो जल एकही है और पात्रों के नाम भिन्न भिन्न होतेहैं तैसेही स्वप्न और जाग्रत् दो नाम हैं परन्तु एकही से हैं पर आत्मा में दोनों कल्पित हैं और जिस में दोनों कल्पितहैं सो चिदाकाश है। वृत्ति जो फुरती है और देश देशांतर को जाती है उसके मध्यमें जो संवित् ज्ञानरूप है कि; जिसके आश्रय वृत्ति फुरती है सो चिदाकाश संवित् है और वृक्ष जो रसको खैंचकर ऊर्ध्व को जाते हैं सो उसी के आश्रय जातेहैं—ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश रूप है। हे रामजी ! जैसे सर्व वृक्ष फूल, फल, टास आदि सहित रसके आश्रय फुरते हैं, तैसेही यह सब जगत् चिदाकाश के आश्रय फुरता है और उसीके आश्रय वृत्ति फुरती है—ऐसी जो सत्ता है सो चिदाकाश है। जिसकी इच्छा सब निवृत्त होगई है और रागद्वेषरूपी मल शरत्काल के आकाशवत् निवृत्त होगया है और शुद्ध संवित् है उसको चिदाकाश जानो। हे रामजी ! जगत् का जब अन्तहुआ पर जड़ता नहीं आई उसके मध्य जो अद्वैतसत्ता है सो चिदाकाश है; बेल, फूल, फल, गुच्छे और वृक्ष जिसके आश्रय बढ़ते हैं सो चिदाकाश है और रूप, अवलोक, मनस्कार इन तीनों का जहां अभावहै—ऐसी जो शुद्ध संवित् है—वह चिदाकाश है। पृथ्वी, पर्वत और नदियाँ सर्वका जो आश्रयहै सो चिदाकाश है और द्रष्टा, दृश्य, दर्शन; ये तीनों जिससे उपजे हैं और फिर जिसमें लीनहोते हैं ऐसी जो अधिष्ठान सत्ता है सो चिदाकाश है। जिससे सर्व उपजते हैं; जो यह सर्व है और जिसमें सर्व है; ऐसा सर्वात्मा चिदाकाश है और अर्द्धरात्रि को जो उठता है और इन्द्रियों की चपलता का विषय से अभाव होता है और उस काल में अफुरसत्ता होती है सो चिदाकाश है। हे रामजी ! जिस संवित् में स्वप्ने की सृष्टि फुरती है और फिर जाग्रत् भासती है और दोनोंके करनेवाले में शोभताहै सो चिदाकाश है। जैसा फुरना होता है, तैसाही जगत् में भासता है और वही द्रष्टा, दर्शन, दृश्य होकर भासता है

दूसरा कुछ नहीं। आत्मरूपी सूत्र में असत्य–सत्य जगत्‌रूपी मणिपिरोये हुये हैं। जिसके आश्रय इनका फुरना होताहै वह चिदाकाश है। हे रामजी ! जिसके आश्रय एक निमेष में जगत् उपजता है और उनमेषमें लीन होजाताहै, ऐसी जो अधिष्ठान सत्ताहै उसको चिदाकाश जानो। यह सब जगत् मिथ्या है और भ्रांति से भासता है जैसे मरुस्थल की नदी भासती है। इससे जो रहित है और जिसमें संकल्प विकल्प का क्षोभ नहीं और सदा अपने आपमें स्थित और दुःख से रहित निर्विकल्प सत्ता है वही चिदाकाशहै। हे रामजी ! नेति नेति से जो पीछे अनाद्यपद शेष रहता है उसको तुम चिदाकाश जानो। शुद्ध चैतन आत्मसत्ता सबका अपना आप और सबका अनुभव रूप होकर प्रकाशता है। उसमें जैसा फुरना होता है कि, ये ऐसे हैं तैसाही हो भासता है सो चिदाकाशरूपहै। इससे शुद्ध आत्मसत्ताही फुरने से जगत् रूप होभासती है। जैसे जाग्रत् के अन्त में अद्वैतसत्ता होती है और फिर उससे स्वप्ने की सृष्टिभासिआती है पर स्वप्ने की सृष्टि वास्तव कुछ नहीं उपजी वही अनुभव स्वप्ने की सृष्टि होभासती है; तैसेही यह जगत् जो कार्यरूप दृष्टि आताहै सो अविद्यासे भासता है वास्तवमें कुछ उपजा नहीं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अकारण भासतीहै, तैसेही यह सृष्टि अकारणहै। ब्रह्मासे आदि चींटीपर्यन्त सर्व स्थावर जंगमरूप जगत् चिदाकाशरूपहै कुछ उत्पन्न नहीं हुआ और जो दूसरा कुछ न हुआ तो कारण कार्य भी कुछ न हुआ। हे रामजी ! न कोई द्रष्टाहै, न दृश्यहै, न भोक्ता है और न भोगहै सब कल्पनामात्र है। आत्म अज्ञानसे कल्पना उठती हैं और आत्मज्ञानसे लीन होजाती हैं–जैसे समुद्रके जानेसे तरंग कल्पना मिटजाती है, क्योंकि, अनुभव आत्मामें कारण–कार्य कुछ नहीं हुआ। जो तुमकहो कि, कारण कार्य क्यों भासते हैं तो जैसे इन्द्रजाल की बाजी में नानाप्रकारके पदार्थ दृष्टिआते हैं परन्तु वास्तव कुछ नहीं बने, तैसेही यह जगत् कारण–कार्य कुछ बना नहीं। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभवही नगररूपहो भासताहै; तैसेही यह जगत् भासता है। हे रामजी ! आत्मसत्ताही फुरने से जगत् की नाईं भासती है। जिसजगत्‌को इन्द्ररूप कहते हैं वह अहंरूप है; जिसको समुद्र कहते हैं वहभी अहंकार रूपहै; जिसको रुद्र कहते हैं वह अपनाही अनुभवरूप है इत्यादिक जो सब जगत् भासताहै सो भावनामात्र है। जैसी जिसकी भावना दृढ़होती है तैसाही रूप होकर भासताहै। जैसे चिन्तामणि और कल्पांतर में जैसी भावना होतीहै, तैसाही सिद्ध होताहै; तैसेही आत्मसत्तामें जैसी भावना होती है तैसाही हो भासती है। इससे जब चिदाकाशका निश्चय दृढ़ होता है तब अज्ञानसे जो विरुद्ध भावना हुई थी सो निवृत्त होजाती है॥

इतियोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगन्निर्वाणवर्णनंपंचदशाधिकद्विशततमस्सर्गः २१५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जब मन थोड़ा भी फुरता है तब यह जगत् उत्पन्न हो आता है और जब फुरनेसे रहित होता है तब जगत् भावना मिटजाती है इस प्रकार जो जानता है सो ज्ञानवान् है; वह पुरुष इन्द्रियोंसे देखता है, सुनता, ग्रहण करताभी निर्वासनिक होजाता है और जगत्की ओरसे घनसुषुप्त होता है । हे रामजी ! जिसकामन निर्वासनिक और शान्तहुआ है वह बोलता, चालता, खाता, पीता भी पाषाणवत् मौन होजाता है–इससे यह जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ । जैसे मृगतृष्णा की नदी अनहोती भासती है और भ्रमसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही मनके भ्रमसे आत्मा में जगत् भासता है; आदि कारणसे कुछ नहीं उत्पन्न हुआ । जिसका आदि कारण न पाइये वहकारण भी असत्यजानिये इससे सब जगत् कारणविनाही भासताहै उपजाकुछ नहीं । हे रामजी ! जो पदार्थ कारण विना भासता है और जिसमें भासता है वह अधिष्ठान सत्ता है क्योंकि; जो अधिष्ठानमें भासित होता है उसको भी वहीरूपजानिये और जो अधिष्ठान से व्यतिरेकभासे उसे भ्रममात्रजानिये । जैसे स्वप्नेमें इन्द्रियादिकपदार्थ भासते हैं और उसमें दृश्य दर्शन सब मिथ्या हैं हुआ कुछ नहीं, तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी मिथ्याहै, न कुछ उपजाहै; न स्थित हुआहै; न आगे होना है और न नाश होताहै । जो उपजाही नहीं तो नाश कैसेहो ? न कोई द्रष्टाहै; न दर्शनहै और न दृश्यहै; केवल चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थितहै । रामजी ने पूंछा, हे भगवन् ! यह द्रष्टा, दर्शन और दृश्य क्याहै और कैसे भासताहै? यह आगे भी कहाहै और अबफिर भी कहिये । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह दृश्यसब अदृश्य रूपहै; कारणही दृश्यहो भासती है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो कुछ जगत् विस्तार सहित भासता है सो आदिस्वरूप से सब परमात्म स्वरूप है । जैसे स्वप्नेमें आकाशका वनभासे और और पदार्थ भासें सो सब चिदाकाशरूप हैं तैसेही यह जगत् भी चिन्मात्ररूप है–कारण कार्यभाव कहीं नहीं । जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तब भासती है और निस्पन्द हुये नहीं भासती; तैसेही आत्मामें जब चित्तफुरता है तब आत्मसत्ता जगत् रूपहो भासती है सो वही आत्मसत्तारूप भावमेंभाव है । जैसे आकाशमें शून्यता है; तैसेही आत्मामें जगत् आत्मरूप है इससे जो कुछ भासता है सो चैतनका आभास प्रकाश है और परमार्थ सत्ता केवल अपने आपमें स्थित है । इससे इतर कहिये तो न द्रष्टा है और न दृश्य है आत्मसत्ताही ज्यों की त्यों है । रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण ब्रह्मकेवेत्ता ! जो इसीप्रकार है तो कारण–कार्य्यका भेद कैसे होता दीखता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसा जैसा फुरना उसमें होता है तैसाही तैसारूप हो भासता है चैतन आकाशही जगत् रूप हो भासता है और कहीं न कारण है; न कार्य है । जैसे स्वप्न सृष्टि कारण–कार्य सहित भासती है सो किसी कारण से नहीं उपजी–अकारण रूप है; तैसेही यह सृष्टि

किसी कारण से नहीं उपजी अकारण रूप है। न कहीं कर्त्ता है और न भोक्ता है केवल भ्रम से कर्त्ता भोक्ता भासता है और स्वप्न की नाईं विकल्प उठते हैं वास्तव में ब्रह्मसत्ताही है। हे रामजी! जैसे स्वप्न में नगर और जगत् भासता है सो चिदाकाश अनुभव सत्ताही ऐसे हो भासती है—अनुभव से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यहजगत् संपूर्ण चिदाकाश है। जब ऐसे जानोगे तब जगत् भी भ्रम तत्त्व भासेगा। हे रामजी! यह जगत् चित्त के फुरने से उपजा है। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है तैसेही चित्त भ्रम से जगत् को कल्पता है पर इसका कारण ब्रह्मही है और कारण कहीं नहीं क्योंकि; महाप्रलय में चिदाकाशही रहता है सो कारण किसका हो? वही सत्ता इन्द्र, रुद्र, नदियां, पर्वत आदि जगत् हो भासता है और उस से भिन्न द्वैत रूप कुछ नहीं। इसमें जैसा जैसा फुरना होताहै तैसाही रूप भासता है। जैसे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष में जैसी भावना होती है तैसाही रूप भासताहै; तैसेही आत्मसत्ता में जैसी भावना होती है तैसाही पदार्थरूप हो भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकारणकार्याभाववर्णनं
नामषोडशाधिकद्विशततमस्सर्ग्गः २१६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अचैत चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्मसत्ता है सोही जगत्रूपहो भासती है। शुद्धचिन्मात्र में जब अहं फुरना होताहै तब जगत्हो भासता है वही अहंरूप जीव है जगत् में जीवता दृष्टि आता है परन्तु मृतक की न्याईं स्थित है और तुम, मैं आदिक सब जगत् जीवता, बोलता, चलता और व्यवहार करता भी दृष्टि आता है परन्तु काष्ठ मौनवत् स्थित है। आत्मरूपी रत्नका जगत्रूपी चमत्कार है और वह प्रकाश आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे आकाश में तरवरे; मरुस्थल में जल और धुयें के पर्वत मेघ भासते हैं सो भ्रांति मात्र है तैसेही यह जगत् लक्षण भी भासताहै परन्तु वास्तव में कुछनहीं अवस्तु भूत है—उपजा कुछनहीं। हे रामजी! चित रूपी बालक ने जगत् जाल रूपी सेना रची है सो असत्य है। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु आदिक भूत भ्रांतिमात्र हैं और उनमें सत्य प्रतीति करनी मूर्खता है। बालक की कल्पना में सत्य प्रतीति बालकही करते हैं और जो इसजगत् का आश्रय करके सुखकी इच्छा करते हैं वे मानो आकाशके धोनेका यत्न करते हैं और उनका सर्व यत्न, व्यर्थ है। यह सब जगत् भ्रांतिरूप है; इसमें जो आस्था करके इसके पदार्थपानेका यत्न करते हैं सो जैसे कहीं पुत्र पानेका यत्नकरें सो व्यर्थ है, तैसेही जगत् में जो सुख के पानेका यत्न करते हैं सो व्यर्थ यत्न है। हे रामजी! यह पृथ्वी आदिक जो संपूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं सो भ्रांति मात्र है और जो भ्रांति मात्र है तो इनकी उत्पत्ति किससे और कैसे कहिये? जो मूर्ख बालक हैं उनको पृथ्वी आदिक जगत् के पदार्थ

सत्य भासते हैं ज्ञानवान् को ये सत्य नहीं भासते और अज्ञानी को सत्य भासते हैं पर उनसे हमको क्या प्रयोजनहै? जैसे सोयेको स्वप्न में आत्म अनुभव सत्ताही पृथ्वी पहाड़ और नदियां जगत् हो भासता है पर वे सब आकार भासते भी निराकाररूप हैं तैसेही यह जगत् आकार सहित भासता है परन्तु आकार कुछ बना नहीं—निराकार सत्ताही जगत् रूपहो भासती है और यह जगत् निराकारही है पर और कुछ नहीं आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअभावप्रतिपादनन्नाम सप्तदशाधिकद्विशततमस्सर्ग्गः २१७ ॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन्! तुम कहतेहो कि; जगत् अविद्यमान है पर अज्ञान से स्वप्ने की नाईं सत्य भासता है इससे विद्यमान भी है और जैसे स्वप्ने का नगर शून्य रूप है तैसेही यह जगत् अज्ञानरूप है सो अज्ञान क्या है और कितने कालकी अविद्या हुई है; किसको है और इसका प्रमाण क्याहै सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी ! जो कुछ तुमको जगत् दृष्टि आताहै सो सब अविद्या है। वह अविद्या अनन्त है और देश और कालसे इसका अन्त कदाचित् नहीं होता। जिसका अपने वास्तव स्वरूप का अज्ञानहै उसको सत् दिखाई देताहै। इसपर एक इतिहास है सो सुनिये। हे रामजी ! आत्मरूप चिदाकाशके अणुमें अनन्त ब्रह्मांड स्थितहैं। उनमें से एक ब्रह्मांड इसीकासा है और उस ब्रह्मांड के जगत् में तुरमत नाम एक देशहै जिसका राजा विपश्चितथा। वह एक समय अपनी सभा में बैठा था और उसके चारोंदिशा में उसकी बड़ी तेजवान् सेना उपस्थित थी। वह अग्नि देवता के सिवा और किसी देवता को न पूजता था और बड़ी लक्ष्मी से शोभित और बहुत गुणों और ऐश्वर्य से सम्पन्न था एक काल में वह सभामें बैठाथा कि, पूर्व दिशाकी ओर से हरकारा आया और उसने कहा, हे भगवन्! तुम्हारा जो पूर्वदिशाका मंडलेश्वर था वह जरासे मृतक होके मानों यमको जीतने गयाहै इससे पूर्वदिशाकी रक्षाकरो क्योंकि, वहां और मंडलेश्वर आताहै । हे रामजी ! इस प्रकार वह कहताहीथा कि, दूसरा हरकारा पश्चिम से आया और कहने लगा कि, हे भगवन् ! तुमने जो पश्चिमदिशा का मंडलेश्वर कियाथा सो तपसे मृतकहोगया है और वहां एक और मंडलेश्वर आता है इसलिये वहां की रक्षा करो । हे रामजी ! इसप्रकार दूसरा हरकारा कहरहा था कि, एक और हरकारा आया और उसने कहा कि, हे भगवन् ! दक्षिणदिशाका मंडलेश्वर पूर्व पश्चिम की रक्षाके निमित्त गया था सो मार्गही में मृतक हुआ इससे दोनों की रक्षाके निमित्त सेनाभेजो क्योंकि एक दृढ़शत्रु आया है और विलम्बका समय नहीं है शीघ्रही सेनाभेजिये । हे रामजी ! इस प्रकार सुनकर राजा बाहर निकला और कहनेलगा कि, सब सेना मेरे पास हो-

कर दिशाओंकी रक्षाके निमित्तजावे और बड़े बड़े शस्त्र, हाथी, घोड़े, रथआदिक सेना लेजावो। हे रामजी ! इस प्रकार राजा कहताही था कि, एक और पुरुष आया और बोला कि, हेभगवन् ! उत्तरदिशाकी ओर जो तुम्हारा मण्डलेश्वरथा उसके ऊपर और शत्रु आपड़ाहै और बड़ायुद्ध होता है इससे उसकी रक्षाके निमित्त शीघ्रही सेना भेजो अब विलम्ब का समय नहीं है और आगे कई दुष्टचले आते हैं। मैं फिरा जाताहूं क्योंकि, मेरा स्वामी युद्ध करता है। हे रामजी ! इसप्रकार कहकर वह चलागया तब द्वारपालने आकर कहा कि, हेभगवन् ! उत्तरदिशाका मण्डलेश्वर आया है आज्ञाहो तो लेआऊं ! राजाने कहा, लेआवो । वह उसे लेआया और उस मण्डलेश्वर ने राजा के सम्मुख आकर प्रणाम किया। राजाने देखा कि, उसके अंग टूटगये हैं और मुखसे रुधिर चलाजाता है पर ऐसी अवस्था में भी उस धैर्य संयुक्त मण्डलेश्वर ने कहा कि, हे भगवन् ! मेरे अंगों की यह दशाहुई है । मैं तुम्हारा देश रखने को चलाथा पर मेरे ऊपर शत्रु आनपड़ा और मेरी सेना थोड़ी थी इसकारण दौड़कर तुम्हारे पास आयाहूं कि; प्रजाकी रक्षाकरो। हे रामजी ! जब इसप्रकार उसने कहा तब राजा ने सब मन्त्रियों को बुलाया । मन्त्री राजा के पास आये और बोले, हे भगवन् ! अब तीन उपाय छोड़ो और एक उपाय करो अर्थात् एक नम्रता, दूसरा धन देना और तीसरा बुद्धिभेद ये तीनों अब नहीं चाहिये। ये दुष्ट नम्रता माननेवाले नहीं हैं क्योंकि, नीच और पापी हैं और धन इसकारण न देना चाहिये कि, ये आधीन हैं और बुद्धि करि भेद भी नहीं जानते क्योंकि; सब मिलके इकट्ठे हुये हैं इससे ये तीनों उपाय छोड़ो और एक उपायकरो कि, युद्ध हो अब विलम्ब का समय नहीं है क्योंकि, उनकी सेना निकटआई है—अब उत्साह सहित कर्म करना है प्राणों की रक्षा नहीं चाहिये । हे राम जी ! जब इसप्रकार मंत्रियों ने कहा तब राजा ने आज्ञाकी कि, सब सेना मेरी आज्ञा से उनके सम्मुखजावे और निशान, नगारे, हस्ती, घोड़ा, रथ, पियादे सेना के साथ जावें। इसप्रकार जब राजा ने कहा तब सब विद्यमान सेना आन स्थित हुई और नौबत नगारे बजानेलगे। जब नानाप्रकार के शस्त्रोंसहित चारोंप्रकार की सेना इकट्ठी हुई तब राजा ने कहा, हे साधो ! तुम आगेजावो। सेना आगेहो उसके पीछे सेनापति जावें और शत्रुओं के साथ युद्धकरो मैं भी स्नानकरके आताहूं । हे रामजी ! इसप्रकार कहकर राजा ने मंत्रीको भेजा और आप गंगाजलसे स्नानकर एक स्थान में अग्नि का कुंडथा उसके निकटजाकर हवन करनेलगा। जब अग्नि प्रज्वलितहुई तब राजा ने कहा; हे भगवन् ! इतनाकाल मुझको व्यतीतहुआ है कि, यथाशास्त्र मैं विचरता रहा; अपनीप्रजा सुखीरक्खी; अभय राज्यकिया; शत्रुको नाशकरके सिंहासनके नीचे दबाया और आप सिंहासनपर बैठाहूं । पातालवासी दैत्यभी मैंने जीत रक्खे हैं; दशों दिशा

अपने आधीनकी हैं; सातोंसमुद्र पर्यंत सब मेरेभयसे काँपते हैं और सबठौर में मेरी कीर्ति होरही है । रत्नों के स्थान मेरे भरेहुये हैं और वस्त्र, सेना, घोड़े और हाथी भी बहुतहैं । मैंने बड़े भोग भी भोगकर बड़ेबड़े दानभी किये हैं और सिद्ध और देवताओं में भी मेरायशहुआ है । निदान सबओर मेरायशहुआ है; शरीर भी बूढ़ाहुआ है और क्षोभ भी बड़ा प्राप्त हुआ है इससे अब मेरा जीने से मरना भलाहै । हे भगवन् ! मैं तुम को शीशनिवेदन करताहूं; कृपाकरके लो । यदि मुझपर प्रसन्नहोना तब एककी चारमूर्ति देना कि, चारोंओरजाऊं और जहां मुझको कुछकष्टहो वहां दर्शन देना । हे रामजी ! इसप्रकार कहकर उसने खड्गनिकाला और अपना शीश काटकर अग्नि में डालदिया तब धड़ भी आपही अग्नि में जापड़ा और शीशधड़दोनों भस्महोगये अथवा अग्नि ने भक्षण करलिये । तब उसीकीसी चारमूर्ति निकलआईं और उनके उसीकेसे आकार वस्त्र, भूषण, मुकुट और कवच पहिरे और नानाप्रकार के शस्त्र धारेहुये उदयहुये । हे रामजी ! इसप्रकार बड़ेतेज संयुक्त चारोंराजा विपश्चित प्रकटभये और रथ, हस्ती, घोड़े, प्यादे और चारोंप्रकार की सेना भी प्रकटहुई । निदान चारोंओर से शत्रु युद्ध करनेलगे और बड़ायुद्ध होनेलगा । नगर जलनेलगे, बड़ा हाहाकार शब्द होनेलगा और शूरवीर युद्ध में प्राणको त्यागते और उछल २ कर लड़तेथे । बड़े रुधिर के प्रवाह चलते थे,खड्ग और बरछी की वर्षाहोती थी और अग्नि का अट्ट अट्ट शब्द होताथा-मानो समय विनाही प्रलय होने लगी है । निदान बड़ा युद्धहुआ जो सूरमाथे वे युद्धमें मरने को जीनामानतेथे और जीनेको मरना जानतेथे; ऐसा निश्चयधरके वे युद्धकरतेथे और जो कायरथे वे भागभाग जातेथे-जैसे गरुड़केभयसे सर्पभागजाते हैं और सूरमें सम्मुख होकर लड़ते थे । इसप्रकार बड़ायुद्ध होनेलगा और रुधिर की नदियांचलीं जिनमें हाथी, घोड़े, रथ और सूरमें बहतेजातेथे और बड़े बड़े वृक्ष और नगर गिरते और बहतेजाते थे । मांसभक्षण के निमित्त योगिनी भी आ उपस्थित हुई । जोजोयुद्ध में मृतकहो उसको अप्सरा और विद्याधरी विमानपर चढ़ाकर स्वर्ग को लेजातीथीं । हे रामजी ! इसप्रकार जब युद्धहुआ तब राजा विपश्चितकी सेना सब शून्यहोगई अर्थात् थोड़ीहोगई । राजाने सुना कि, सेना बहुत मारीगई है इसलिये उसने सवार होकर देखा कि, सेना थोड़ी रहगई है इससे एकएक राजा एकएक ओरकोगया अर्थात् चारों राजा चारोंओरगये और विचार करनेलगे कि, यह महागम्भीर सेनारूपी समुद्र है, इससे शस्त्ररूपी जलहै, धाररूपी तरंगहै और सूरमेंरूपी मच्छहैं । ऐसा जो समुद्र है उसको अगस्त्यहोकर मैं पानकरूं-ऐसे विचारकर उसने उद्यम किया क्योंकि; शत्रुकी विशेष सेनादेखी-एक तो आगेहीको चलीआवें, दूसरे बहुतसूरमें तेजसे सेनाकोजलावें और तीसरे बहुतसेनाआवे । ऐसी तीनप्रकार की सेनाके राजा ने तीन उपाय किये । प्रथम

उसने वायव्यास्त्र हाथ में लिया और परमात्मा ईश्वरको नमस्कारकर और मन्त्रपढ़के पवनका अस्त्रचलाया। इससे—अँधेरीआगई और जितनी सेना आगेचली आतीथी वह सब उलटी उड़नेलगी। फिर उसने मेघरूपी अस्त्रचलाया तब वर्षा होनेलगी और उससे जो तेज उनकी सेनाको जलाताथा वह शीतलहोगया। उसके अनन्तर उसने शिवअस्त्रचलाया उसमें से प्रथमशस्त्रोंकी नदीचली, फिर त्रिशूलोंकी नदीचली, फिर चक्रोंकी नदी चली, फिर वज्रकी नदीचली, बरछीकी नदीचली; बिजली की नदी चली और अग्नि इत्यादिक की नदीचली और दूसरे शस्त्रों और अस्त्रों की वर्षाहुई। जब इसप्रकार नदियांचलीं तब जो कुछ सेना सम्मुख आती थी सो मृतक होगई। जैसे कमलनी काटीजाती है तैसेही शूरवीर काटेगये। कोई पहाड़ों की कन्दराओं में गिरें और वहांसे उड़कर समुद्रमें जापड़ें और कोई सुमेरुकी कन्दराओं में जाकर छिपें और समुद्र में जाकर डूबें—जैसे अज्ञानी विषयों में डूबते हैं। इसप्रकार दोनों ओर से सेना शून्य हुई और चारों दिशाओं की सेना नष्ट होगई। नीच से नीच देशों के और पहाड़ की कन्दराओं के रहनेवाले सब बहतेजावें। हे रामजी! कई शस्त्रों से और कई आंधी से उड़े सो सब क्षेत्रों में जापड़े और कई वन में और कई नीचे देशों में गिरे। जो पुण्यवान् थे वे उत्तम क्षेत्र में जापड़े और मृतक होकर वे स्वर्ग में गये और पापी नीच देशों में जायपड़े उससे दुर्गतिको प्राप्त हुये। कई पिशाचहुये, कितनों को विद्याधरियां लेगईं और कई ऋषीश्वरों के स्थानों में जीतकर जापड़े उनकी उन्हों ने रक्षाकी। इसीप्रकार कितने बाणों से छेदेहुये नाशहुये और कई रुधिरकी नदियों में बहते समुद्रकी ओर चलेगये। हे रामजी! जब सब सेना शून्यहोगई तब आकाशशुद्ध हुआ। जैसे ज्ञानीकामन निर्मल होता है तैसेही आकाश अधिक क्षोभसे रहितभया। जब सबसेना शून्यहोगई तब चारोंराजा आगे चले। हे रामजी! निदान चारों विपश्चित चारोंदिशाओंके समुद्रोंपर जापहुंचे, तब उन्होंने क्यादेखा कि, बड़ेगम्भीर समुद्र हैं; कहींरत्न और कहीं हीरा मोती इत्यादिक चमकते हैं और बड़ेगम्भीर समुद्रमें बड़ेमच्छ और तरङ्ग उछलते हैं और रेती में नानाप्रकारके लौंग, इलाची, चन्दन इत्यादिकके वृक्ष समुद्रपर जाकरदेखे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चितसमुद्र प्राप्तिर्नामद्विशताधिकाष्टादशस्सर्गः २१८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार राजाविपश्चित समुद्रकेपारजा पहुँचा तब उसके साथ जो मन्त्री पहुँचे थे उन्होंने राजाको सबस्थान दिखाये जो बड़ेगम्भीरथे। बड़ेगम्भीर समुद्र जो पृथ्वीके चहुँफेर वेष्टितथे वह भी दिखाये और बड़े२ तमालवृक्ष बावलियां; पर्वतोंकी कन्दरा; तलाव और नानाप्रकारके स्थानदिखाये। ऐसे स्थान

राजाको मन्त्रीने दिखाकरकहा, हे राजन्! तीनपदार्थ बड़े अनर्थ और परमसार के कारण हैं—एकतोलक्ष्मी, दूसरादेह आरोग्य और तीसरा यौवनावस्था। जोपापीजीव हैं वे लक्ष्मी को पापमें लगाते हैं, देह आरोग्यतासे विषय सेवते हैं और यौवन अवस्था में भी सुकृत नहीं करते, पापही करते हैं और जो पुण्यवान् हैं वे मोक्ष में लगाते हैं अर्थात् लक्ष्मीसे यज्ञादिक शुभकर्म और आरोग्यसे परमार्थ साधते हैं और यौवन अवस्था में भी शुभकर्म करते हैं पाप नहीं करते। हे रामजी! जैसे समुद्र और पर्वत के किसी ठौर में रत्नहोते हैं और किसी ठौर में दर्दुर होते हैं; तैसेही संसाररूपी समुद्र में कहीं रत्नों की नाईं ज्ञानवान्होते हैं और कहीं अज्ञानीरूपी दर्दुर होते हैं। हे राजन्! यह समुद्र मानो जीवन्मुक्त है क्योंकि; जलसे भी मर्यादा नहीं छोड़ता और राग द्वेष से रहित है। किसी स्थानमें दैत्यरहते हैं कहीं पंखोंसंयुक्त पर्वत; कहीं बड़वाग्नि और कहीं रत्न हैं परन्तु समुद्र को न किसीस्थान में राग है; न द्वेष है। जैसे ज्ञानवान् को किसी में राग द्वेषनहीं होता परन्तु सब में ज्ञानवान् कोई बिरला होताहै। जैसे जिस सीपी और बांससे मोती निकलते हैं सो बिरलेही होते हैं तैसेही तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् कोई बिरलाहोता है। हे रामजी! सम्पूर्ण रचना यहांकी देखो कि, कैसे पर्वत हैं जिनके किसीस्थान में पक्षीरहते हैं; किसीस्थान में विद्याधर रहते हैं; कहीं देवियां विलास करती हैं कहींयोगी रहते हैं और कहीं ऋषीश्वर; मुनीश्वर; कहीं ब्रह्मचारी, वैरागी आदिक पुरुष रहते हैं। यहद्वीप है और सातसमुद्र हैं जिनके बड़े तरंग उछलते हैं और पर्वतका कौतुक और आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, तारे, ऋषि, मुनिकोदेखो और देखो कि, सबको आकाश ठौर देरहा है पर महापुरुष की नाईं आप सदा असंग रहता है और शुभ अशुभ दोनों में तुल्य है। स्वर्गादिक शुभस्थान है और चांडाल पापी नरकस्थान और अपवित्र है परन्तु आकाश दोनों में तुल्य है—असंगत से निर्विकार है। जैसे ज्ञानीका मन सर्वस्थानों से निर्लेप होता है, तैसेही आकाश सर्व पदार्थों से असंग और न्यारा है और महात्मापुरुष की नाईं सर्वव्यापी है। हे आकाश! तू कैसाहै कि, सर्वप्रकाश तुझ में अन्धकार दृष्टि आताहै—यह आश्चर्य है। हे आकाश! तू सबका आधारभूतहै और जो तुझको शून्य कहते हैं वे मूर्ख हैं; दिनको तुझमें श्वेत भासताहै; रात्रिको अन्धकार भासताहै और संध्याकाल में तेरेमें लाली भासती है पर तू तीनों से न्याराहै। ये तीनों राजसी, तामसी और सात्त्विकी गुण हैं पर तू इनके होते भी असंग है। हे आकाश! तू निर्मल है और तम तेरे में दृष्टि आताहै परन्तु तू सदा ज्योंकात्यों है। यह अनित्यरूपहै। चन्द्रमातेरे में शीतलता करताहै, सूर्य दाहक होते हैं; तीर्थआदिक पवित्र स्थानहैं और पापीआदिक अपवित्र स्थानहैं परन्तु तू सबमें एकसमान ज्योंकात्यों रहताहै और वृक्षको बढ़ने और ऊंचे

होने तूही देताहै। अपनी महिमाको तू आपहीजाने और कोई तेरी महिमा पा नहीं सक्ता। तू निष्किंचन अद्वैतहै;सबको धाररहाहै और सबकाअर्थ तुझसेही सिद्धहोता है। तृण और जलनीचे को जाताहै और तू सबसे ऊंचाहै और विभुहै। अनेकपदार्थ तेरेमें उत्पन्नहोते और नष्टहोजाते हैं पर तू सदा ज्योंकात्यों रहताहै। जैसे अग्निते चिनगारे उपजते और अग्निही में लीन होजाते हैं; तैसेही तेरेमें अनन्तजगत् उपजते और लीन होते हैं और तू सदा ज्योंकात्यों रहताहै। जो तुझको शून्य कहते हैं वे मूढ़हैं। हे राजन्! ऐसा आकाशकौनहै सोभी सुनो। ऐसा आकाशआत्माहै जो चैतनआकाश है और जिसमें अनन्तजगत् उत्पन्न और लीन होजाते हैं। उसको जो शून्यकहते हैं वे महामूर्ख हैं—जो सर्वका अधिष्ठान है; सर्वको धाररहाहै और सदानिःसंगहै ऐसे चिदाकाश को नमस्कार है। हे राजन्! यह आश्चर्य है कि, वह सदा एकरसहै पर उसमें नानातरंग भासते हैं—यही मायाहै। हे राजन्! एक विद्याधरी और विद्याधर थे उनके मन्दिर में एक ऋषि आनिकला पर उस विद्याधरने उनका आदरभाव न किया इससे ऋषीश्वरने शापदिया कि; तू द्वादशवर्ष पर्यन्त वृक्ष होगा। निदान वह विद्याधर वृक्ष होगया पर अब जो हम आये हैं हमारे देखतेही वह शापसे मुक्तहो वृक्षभावको त्यागकर फिर विद्याधर हुआहै। यह ईश्वरकी मायाहै कि, कभी कुछ होजाताहै और कभी कुछ होजाताहै। हे मेघ! तू धन्य है! तेरीचेष्टा भी सुन्दर है; तीर्थमें सदा तेरा स्नान होताहै; तू सबसे ऊंचे विराजता है और सब आचार तेराभला दृष्टिआता है परन्तु एकतुझमें नीचता है कि, ओलेकी वर्षाकरता है जिससे खेतियां नष्ट होजाती हैं और फिर नहीं उगतीं। तैसेही अज्ञानीकीचेष्टा देखनेमात्र सुन्दर है और हृदयसे मूर्ख हैं उनकीसंगति बुरी है और ज्ञानवान्कीचेष्टा देखने में भलीनहीं तौभी उनकी संगति कल्याणकरती है। हे राजन्! सबमेंनीच श्वान है क्योंकि; जो कोई उसके निकट आता है उसकोकाट लेता है, घरघरमें भटकता फिरता है और मलीनस्थानों में जाता है; तैसेही अज्ञानी जीव श्रेष्ठपुरुषों की निंदाकरता है पर मन में तृष्णारखता है और विषयरूपी मलीन स्थानों में गिरता है। वह मूर्खमनुष्य मानो श्वान है और श्वानसे भी नीच है। ब्रह्माने संपूर्ण जगत् को रचा है परन्तु उसमें श्वान सबसे नीच है पर श्वान क्या समझता है सो सुनो। एक पुरुषने श्वानसे प्रश्न किया कि, हे श्वान! तुझसे कोई नीच है अथवा नहीं? तब श्वानने कहा कि, मुझसे भी नीच मूर्ख मनुष्य है और उससे मैं श्रेष्ठहूं क्योंकि; प्रथम तो मैं सूरमाहूं; दूसरे जिसका भोजनखाताहूं उसकी रक्षाकरताहूं और उसके द्वारे बैठारहताहूं परमूर्ख से ये तीनों कार्य नहीं होते। इससे मैं उससे श्रेष्ठ हूं क्योंकि; मूर्खको देहाभिमानहै इससे वह श्वानसेभी नीचहै। हे राजन्! परमअनर्थ का कारण देहाभिमान है। देहाभिमान से जीव परमआपदाको प्राप्त होता है। वह

मूर्ख नहीं मानो कौवाहै जो सबसे ऊंची टहनी पर बैठकर कां कां करता है । हेराजन्! कमलकी खानोंके तालके निकट एककौवा जानिकला तो क्यादेखे कि, भँवर बैठे कमलकी सुगन्धि लेतेहैं; उनको देखकर वह हँसनेलगा और कां कां शब्द किया । तब उसको देख भँवरे हँसे कि, यह कमलकी सुगन्धि क्याजाने; तैसेही जिज्ञासी भँवरे के समान हैं जो परमार्थरूपी सुगन्धि लेते हैं । जो अज्ञानरूपी कौवेहैं वे परमार्थरूपी सुगन्धि नहीं जानते इसकारण मूर्खको देखकर जिज्ञासी हँसतेहैं जो आत्मरूपी सुगन्धिको नहीं जानते । अरे कौवे ! तू क्यों हंसकी रीसकरताहै हंसतो हीरे और मोती चुगनेवालेहैं और तू नीचस्थानोंको सेवनेवालाहै । मंत्रीने कहा, हे कोयल ! तुम कमल को देखकर क्या प्रसन्न होतेहो ? प्रसन्नतो तबहो जब वसन्तऋतुहो पर यहतो वर्षाकाल का समय है-यह फूल ओलों से नष्ट होजावेंगे । हे राजन् ! कोयलरूपी जो जिज्ञासी हैं उनको यह उपदेशहै । हे जिज्ञासी ! जो सुन्दर पदार्थ तुमको दृष्टिआतेहैं इनको देखकर तुम क्यों प्रसन्न होतेहो ? प्रसन्न तो तबहो जो यह सत्यहों पर यहतो मिथ्या हैं और अविद्याके रचेहैं । तुम क्यों प्रसन्न होतेहो ? अपने कुलमें जाबैठो और अज्ञानीका मार्ग छोड़दो । जैसे कौवा हंसोंमें जा बैठताहै तौभी उसका चित्त गन्दगीके भोजनमें होताहै और हंसका आहार जो मोती है उन मोतियोंकी ओर देखताभी नहीं; तैसेही अज्ञानी जीव कदाचित् सन्तों की संगति में जाभी बैठताहै तौभी उसकाचित्त विषयोंकी ओरही भ्रमता फिरताहै और स्थिरनहींहोता । जैसे कोयलका बच्चा कौवेको मातापिता जानकर उनमें जा बैठता है तब उनकी संगति से यहभी गन्दगी के भोजन करनेवाला होजाता है इससे कोयल उसको बर्जन करते हैं कि,रे बेटा! तू कौवेकी संगति मत बैठ, अपने कुलमें बैठ क्योंकि; तेराभी नीच आहार होजावेगा; तैसेही जिज्ञासी जो अज्ञानी का संग करताहै तो उसके अनुसार उसकोभी विषयोंकी तृष्णा उत्पन्न होती है तब उसको बर्जन करतेहैं कि, रे जिज्ञासी ! तू मूर्ख अज्ञानियोंमें मत बैठ; अपना कुल जो संतजनहैं उनमें बैठ । जैसे कोयलके बच्चेको कौवे सुख देनेवाले नहीं होते; तैसेही मूर्ख तुझको सुख देनेवाले नहींहोंगे । मंत्री फिर कहनेलगा; अरी ईल ! तू क्यों हंसकीरीस करतीहै ? तू भी बहुतऊंचे उड़ती है परन्तु हंसकागुण तेरेमेंकोई नहीं । जबतू मांसको पृथ्वीपर देखती है तब वहां गिरपड़ती है और हंस नहीं गिरते; तैसेही जो मूर्ख हैं वे संतोंकी नाईं ऊंचेकर्म भीकरते हैं परन्तु विषयोंकोदेखकर गिरते हैं पर संतनहीं गिरते तो मूर्ख संतोंकीरीस कैसे करें । फिर मंत्रीने कहा; हे बगला ! तू हंसकी रीस क्या करता है ? अपने पाखण्डको छुपाकर तू आपको हंसकी नाईं उज्ज्वल दिखाता है पर जब मछली निकलती है तब तू खालेता है; यही तेरेमें अवगुण है । हंस मानसरोवरके मोती चुगने वाले हैं और तू गढ़ेमें से तृष्णा करके मछली खानेवालाहै; तू क्यों आपको हंस मानताहै ? तैसेही अज्ञा-

नीजीव विषयों की तृष्णा करते हैं और ज्ञानवान् विवेकसे तृप्तहैं; उनकी रीस अज्ञानी क्यों करताहै ? हेराजन् ! जो हंसहैं वे सदा अपनी महिमामें रहतेहैं और अपना जो मोती का आहारहै उसको भोजन करते हैं; दूसरे किसी पदार्थका स्पर्श नहींकरते। जैसे चन्द्र-मुखी कमल चन्द्रमाको देखकर शोभापाते हैं—चन्द्रमा विना शोभानहींपाते; तैसेही बुद्धि भी तब शोभापाती है जब ज्ञान उदय होताहै—आत्मज्ञान विना बुद्धि शोभा नहींपाती। बड़ेबड़े सुगन्धवाले वृक्षका माहात्म्य भँवरेही जानते हैं और जीव नहीं जानते। इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! समुद्रके किनारेपर राजा विपश्चितको मंत्रियोंने ऐसे कहकर फिर कहा; हे राजन् ! अब पृथ्वीनगर के मंडलेश्वर स्थापन करो। हे रामजी ! जब ऐसे मंत्रीने कहा तब सर्वदिशाओंके मंडलेश्वर स्थापन कियेगये और चारों राजा जो अपनी अपनी दिशाके समुद्रपर बैठेथे उन्होंने अपने अपने मंत्रीसे कहा, हे साधो ! अब हमने समुद्रपर्यन्त दिग्विजयकी है और अब हमारी जय हुई है; अब चेत जो दृश्यहै सो दृश्य विभूतिको देखो। समुद्रके पार द्वीपहै, फिर उस समुद्रके पार और द्वीपहै; फिर समुद्र है और फिर द्वीप है और इसीप्रकार सप्तद्वीप और सात समुद्रहैं पर उनके पार क्याहै ? इसप्रकार सर्वदृश्य देखनेकी इच्छाकरके उन्होंने अग्निदेवताका आवाहन किया तब उनकी दृढ़भावनासे अग्निदेवता सन्मुख आन स्थितहुये और बोले, हेराजन् ! जो कुछ तुमको वाञ्छाहै सो मांगो। तब राजाने कहा, हे भगवन् ! ईश्वरकी मायासे पाञ्चभौतिक दृश्यमें जो भूतहैं उनके देखनेकी हमारी इच्छाहै सो पूर्णकरो। हे देव ! हम इसीशरीर से दृश्य देखनेजावें और जब यह शरीर चलनेसे रहितहो तब मंत्रसत्तासे जावें पर जहां मंत्रकीभी गम नहीं वहां सिद्धिसे जावें और जहां सिद्धिकीभी गमनहीं वहां मनके वेगसे जावें और मृतकभी नहों। यह वर हमको दो। हे रामजी ! जब इसप्रकार राजाने कहा तब अग्निने कहा कि, ऐसेहीहो। इसप्रकार कहकर अग्नि अन्तर्द्धान होगये। जैसे समुद्र से तरंग उठकर फिर लयहोजावें तैसेही अग्नि अन्तर्द्धान होगये। जब राजाविपश्चित वर पाकर चलनेको समर्थ हुआ तब जितने मंत्री और मित्रथे वे रुदन करने लगे और बोले, हे राजन् ! तुमने यह क्या निश्चय किया है ? ईश्वरकी मायाका अन्त किसीने नहीं पाया इससे तुम अपने स्थानको चलो; यह क्या निश्चय तुमने धाराहै ? हे रामजी ! इसप्रकार मंत्री कहतेरहे परन्तु राजाने उनको आज्ञा देकर एक एक दिशाके समुद्र में प्रवेश किया और चारों दिशाओंमें चारों राजाओंने गमन किया पर जो बड़ेबड़े शक्तिमान् मंत्रीगणथे वे साथही चले तब राजा मंत्रशक्तिसे समुद्रको लांघगया। कहीं पृथ्वीपर चले और कहीं ऊंचे चले इसीप्रकार और द्वीपमें जा निकला, तब बड़ा समुद्र आया उसमें प्रवेश करगया जिसमें बड़े तरंग उछलतेथे और जिसका सौ योजनपर्यन्त विस्तारथा। कभी अधको और कभी ऊर्ध्वको जातेथे। हे रामजी ! ऐसे तरंग उछलें

मानो पर्वत उछलते हैं जब वे ऊर्ध्वको उछलें तब स्वर्गपर्यन्त उछलते भासें और जब अधको जावें तब पातालपर्यन्त चलतेभासें । जैसे पानीमें तृण फिरता है, तैसेही राजा फिरे । इसप्रकार कष्टसे रहित समुद्र और दिशाको लांघगया परन्तु मध्यमें जो वृत्तांत हुआहै सो सुनो । क्षीरसमुद्र में एक मच्छ रहताथा जिसको सर्व देवता प्रणाम करते थे और जो विष्णु भगवान्के मच्छ अवतारके परिवारमें था । जब राजाने क्षीरसमुद्रमें प्रवेश किया तब राजाको उसने मुखमें डाललिया पर राजा मंत्रके बलसे उसके मुख से निकलगया । आगे फिर एक मच्छ मिला उसनेभी उसे मुखमें डाललिया पर उससे भी वह निकलगया । फिर आगे पिशाचिनीका देशथा वहां राजाको पिशाचने कामसे मोहित किया । फिर उसने दक्षप्रजापति की कुछ अवज्ञाकी जिससे उसने शाप दिया और राजा वृक्ष होगया । निदान कुछकाल वृक्ष रहकर फिर छूटा तो एक देशमें दर्दुर हुआ और सौवर्षपर्यन्त खाई में पड़ारहा । फिर उससे छूटकर मनुष्यहुआ तब किसी सिद्धके शापसे शिलाहोगया और सौवर्षपर्यन्त शिलाही रहा । उसके उपरांत अग्नि देवताने शिलासे छुड़ाया तो फिर मनुष्यहुआ । तब वह सिद्ध आश्चर्यवान् हुआ । कि, मेरे शापको दूरकरके यह मनुष्य क्योंकर हुआहै—यह तो मुझसेभी बड़ासिद्धहै । ऐसे जानकर उसने उसके साथ मैत्रीकी । इसीप्रकार दूसरे समुद्रोंकोभी यहलांघतागया और क्षीरसमुद्र खारीसमुद्र और इक्षुके रसके समुद्रको लांघकर द्वीपोंको लांघतागया । फिर एकअप्सरासे मोहितहुआ और बहुतकालमें वहांसेछूटा—तो एकदेशमें पक्षीहुआ और बहुतकालपर्यन्त पक्षी रहकर छूटा तो एक गोपी पिशाचिनी थी उसने बैल बनाके उसे रक्खा और दूसरे विपश्चितने बैल विपश्चितको उपदेश करके जगाया । निदान हे रामजी ! चारों दिशाओं में चारों विपश्चित भ्रमते फिरे । दक्षिण दिशाको तो पिशाचिनी से मोहित हुआ इससे उसने बहुत जन्मपाये और पूर्व का बहताहुआ मच्छके मुखमें चलागया और उसने निकालडाला, इससे लेकर वह अवस्था देखी । उत्तर दिशाका जो हुआ उसने वह अवस्था देखी और पश्चिम दिशाका हेमचूपक्षी की पीठपर प्राप्त हुआ और उसने उसे कुशद्वीपमें डाल दिया इससे उसने भी अनेक अवस्था पाई । हे रामजी ! एकएक विपश्चित ने भिन्न भिन्न योनि और अवस्थाका अनुभव किया । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! तुम कहतेहो कि, विपश्चित एकही था और उनकी संवित् भी एकही थी और आकार भी एकही था तो भिन्न भिन्न रुचि कैसेहुई जो एकपक्षीहुआ; दूसरा वृक्षहुआ और इससे लेकर वासनाके अनुसार अनेक शरीरपाते फिरे । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसमें क्या आश्चर्य है ? उनकी संवित् एकहीथी परन्तु भ्रमसे भिन्नता होजाती है । जैसे किसी पुरुष को स्वप्न आता है तो उसमें पशु पक्षी होजाते हैं और भिन्न भिन्न रुचिभी होजाती है, तैसेही उसकी भी भिन्न भिन्न रुचिहोगई । जैसे

देखो कि, शरीर तो एकही होता है पर उसमें नेत्र, श्रवण, नासिका, जिह्वा और त्वचा की रुचि भिन्न भिन्न होती है और अपने अपने विषयों को ग्रहण करती हैं सो एकही शरीर में अनेकता भासती है; तैसेही उनकी एकही संवित्थी परन्तु संकल्प भिन्न भिन्न होगयाथा इससे मनके फुरने से एकमें अनेकभासीं। जैसे एकही योगेश्वर इच्छाकरके और और शरीर धरलेताहै और एकमें अनेक होजाताहै। एकसहस्राबाहु अर्जुनथा सो एकभुजासे युद्धकरताथा; दूसरीभुजा से दानकरताथा और एकसे लेता देता था; इसी प्रकार सब भुजाओं से चेष्टा करताथा--वे भी भिन्न भिन्न हुये। एकही शरीर में भिन्न भिन्न चेष्टा होती है। जैसे विष्णु भगवान् कहीं दैत्यों के साथ युद्धकरते; कहीं कर्म करते हैं; कहीं लीलाकरते हैं और कहीं शयन करते हैं सो संवित् तो एकही है परन्तु चेष्टा भिन्न भिन्न होती है;तैसेही उनकी संवित् में अनेकरुचिहुई तो इसमें क्या आश्चर्यहै? हे रामजी! इसप्रकार उन्होंने जन्मसे जन्मान्तरको अविद्यक संसार में देखा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वे तो बोधवान् विपश्चित थे और बोधवान् जन्मनहीं पाता फिर उनको किसप्रकार जन्म हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वे विपश्चित बोधवान् न थे परन्तु बोधके निकट धारणा अभ्यासवाले थे। जो वे ज्ञानवान् होते तो दृश्यभ्रम देखने की इच्छा क्यों करते? इससे वे ज्ञानवान् न थे--धारणा अभ्यासीथे और समुद्रको लांघगये और मच्छ के उदर से बल करके निकले सो यह योगशक्ति प्रसिद्ध है। ज्ञानका लक्षण सुसंवेद है असंवेद नहीं। राजा विपश्चित ज्ञानवान् न थे इसकारण देश देशांतर में भ्रमतेरहे और ज्ञानविना अविद्यक संसार में जन्म मरणमें भटकतेरहे। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ज्ञानवान् योगेश्वरों को भूत,भविष्य, वर्त्तमान; तीनों कालों का ज्ञान कैसे होताहै और एकदेश में स्थितहुआ सर्वत्र कर्मों को कैसे करताहै सो सब मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अज्ञानी की वार्त्ता यह मैंने तुमसे कही है और जितना जगत् है सो सब चिदाकाश स्वरूप है। जिनको ऐसी सत्ताका ज्ञान हुआ है वे महापुरुष हैं। जैसे स्वप्ने से कोई पुरुषजागे तो स्वप्ने की सब दृष्टि उसको अपनाही स्वरूप भासती है और उसमें बन्धायमान नहीं होता। हे रामजी! यह सब नानात्व भासती है सो नानानहीं और अनानाभी नहीं केवल आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थितहै। जैसेआकाश अपनी शून्यता में स्थित है,तैसेही आत्मा अपने आप में स्थित है। ये तीनों काल भी ज्ञानवान् को ब्रह्मरूप होजाते हैं और सब जगत् भी ब्रह्मरूप होजाते हैं और द्वैतभाव उसका मिटजाता है। ऐसे ज्ञानवान् को ज्ञानीही जानता है और कोई नहीं जानसक्ता जैसे अमृत को जो पान करता है सोही उसके स्वाद को जानता है और कोई जान नहीं सक्ता। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तो तुल्य भासती है परन्तु

ज्ञानीके निश्चय में कुछ और है और अज्ञानी के निश्चयमें और है । जिसका हृदय शीतल हुआ है वह ज्ञानवान् है और जिसका हृदय जलताहै वह अज्ञानी है । वह बांधाहुआहै और ज्ञानवान् का शरीर चूर्णहो अथवा उसे राज्य प्राप्तहो तौभी उसको रागद्वेष नहीं उपजता; वह सदा ज्यों का त्यों एकरस रहताहै । वह जीवन्मुक्तहै परन्तु यह लक्षण उसका कोई जान नहीं सक्ता वह आपही जानता है । शरीरको दुःख और सुखभी प्राप्त होता है; मरता और रुदनभी करता है और हँसता, लेता और देताभी है और इससे लेकर सब चेष्टा करता दृष्टि आताहै पर वह अपने निश्चयमें न दुःखी होता है; न सुखी होता है; न देताहै और न लेता है–सदा ज्योंकात्यों रहता है । हे रामजी ! व्यवहार तो उसका भी अज्ञानी की नाईंही दृष्टि आताहै परन्तु हृदयसे उसका यह निश्चय होताहै और अद्भुतपद में स्थित रहताहै कदाचित् नहीं गिरता। उसका परम उदितरूप होताहै और रागसहित भी दृष्टि आताहै परन्तु हृदयसे राग किसी में नहीं करता; क्रोध करता भी दृष्टि आता है परन्तु उसको क्रोध कदाचित् नहीं होता । जैसे आकाश शुभ पदार्थ को धारताहै और धूम और बादल से ढापा भी दृष्टि आताहै परन्तु किसी से स्पर्श नहीं करता; तैसेही ज्ञानवानों में सब क्रिया दृष्टि आतीहैं परन्तु अपने निश्चय में वह किसी से स्पर्श नहीं करता । जैसे नटवा स्वांग लेआता है और चेष्टा करता दीखताहै पर हृदयसे अपने नटत्वभावमें निश्चय होताहै; तैसेही ज्ञानवान्को भी सर्व क्रिया में अपना आत्मभाव निश्चय होताहै । जैसे जिसको स्वप्नआता है वह यदि स्वप्नेमें भी अपना पूर्वरूप स्मरण रखताहै तो स्वप्नेके पदार्थ में बर्त्तताहै तौभी उनके सुखमें आपको सुखी नहीं मानता और दुःखमें आपको दुःखी नहीं मानता–सब सृष्टि उसको अपनाही स्वरूप भासती है; तैसेही ज्ञानवान्को अपने स्वरूप के निश्चय से सुख दुःखका क्षोभ नहीं होता । जो ऐसे पुरुषहैं उनको दुःखसे क्या होताहै ? जैसे उनकी इच्छा होती है, तैसेही सिद्ध होकर भासती है । हे रामजी ! यह जितनी सृष्टि है सो सब चित्सत्तामेंहै और योगेश्वर पुरुष उसी में स्थितहोकर जहां प्राप्तहुआ चाहते हैं वहां अन्तवाहकसे जा प्राप्त होतेहैं और तीनोंकाल उनको विद्यमान होतेहैं साधन कुछ नहीं परन्तु ज्ञानी अवश्य करके किसी निमित्त यत्न नहीं करते–जैसा प्राप्तहोता है उसीमें प्रसन्न रहते हैं । हे रामजी ! एककाल में ब्रह्माजी ऊर्ध्व मुखसे सामवेद को गायन करते थे और सदाशिव का मान न किया तब सदाशिवने अपने नखसे ब्रह्मा का पांचवां शीश काटडाला परन्तु ब्रह्माजी के मनमें कुछ क्रोध न फुरा । उन्होंने विचारा कि; मैं चिदाकाशहूं सो अब भी चिदाकाशहूं मेरा तो कुछ गया नहीं; शिरसे मेरा क्या प्रयोजन है ? न कुछ हानिहै और न कुछ लाभहै । हे रामजी ! इसप्रकार सर्वविश्व रचनेवाले ब्रह्माजी का शिर कटा; जो वे फिरभी शिर लगा लेते तो समर्थ थे परन्तु

उनको लगानेका कुछ प्रयोजन न था और न लगाने में कुछ हानि भी न थी। उनका भी निश्चय सदा आत्मपद में है इसकारण उन्हें कुछ क्षोभ न हुआ। हे रामजी! काम के सदृश और कोई विकार नहीं है। जो सदाशिव पार्वतीको बायें अंगमें धारते हैं और कामदेव के पांचबाण चलने से सर्वविश्व मोहित होता है उस काम को सदाशिव ने भस्म करडाला तो क्या स्त्री के त्यागनेको वे समर्थ नहीं हैं परन्तु उनको रागद्वेष कुछ नहीं इसकारण त्याग नहीं करते। त्यागनेसे उन्हें कुछ अर्थ की सिद्धि नहीं होती और रखनेसे कुछ अनर्थ नहीं होता—जो कुछ प्रवाहपतित कार्य होताहै उसको करते हैं कुछ खेद नहीं मानते इससे वे जीवन्मुक्तहैं। विष्णुजी सदा विक्षेपमें रहते हैं; आपभी कर्म करते हैं और लोगोंसे भी कराते हैं और शरीर धारतेहैं और त्याग भी देते हैं इत्यादिक क्षोभमें रहते हैं सो त्यागनेको समर्थ भी हैं परन्तु त्यागने में उनका कुछ कार्य्य सिद्ध नहीं होता और करने में कुछ हानि नहीं होती। उनको लोग कईगुणों से गुणवान् जानते और मुझको तो शुद्ध चिदाकाशरूप भासताहै। मूर्ख कहते हैं कि, विष्णु श्यामसुन्दर हैं परन्तु वे शुद्ध चिदाकाशरूप हैं और सदा शुद्धस्वरूपमें उनको अहंप्रत्ययहै। आकाशमार्ग में जो सूर्य्यस्थितहैं वे कभी ऊर्ध्वकी ओर और कभी नीचे जाते हैं तो क्या उनको स्थित होनेकी सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु चलना और ठहरना दोनों उनको समहैं और खेदसे रहितहोकर प्रवाहपतित कार्य में रहते हैं इससे जीवन्मुक्तहैं। जीवन्मुक्त चंद्रमाभी है सो घटते २ सूक्ष्महोते दृष्टिआते हैं और कभी बढ़ते जाते; शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष उनमें होते हैं और रात्रिको प्रकाशते हैं तो क्या वे अपनी क्रियाको त्याग नहीं सक्ते? नहीं त्याग सक्तेहैं; परन्तु क्षोभसे रहितहोकर प्रवाह पतित कार्य्य में विचरते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं। अग्नि सदा दौड़ता रहताहै और यज्ञ और होमके भोजन करने को सर्व ओर जाताहै तो क्या उसको गृहमें बैठनेकी सामर्थ्य नहीं है? है परन्तु जो कुछ अपना आचारहै उसको वह नहीं त्यागता क्योंकि, ठहरने में उसका कुछकार्य सिद्ध नहीं होता और चलने में कुछ हानि नहीं होती—दोनों में वे तुल्य जीवन्मुक्त हैं। हे रामजी! बृहस्पति और शुक्रको बड़ाक्षोभ रहता है; बृहस्पति देवतों की जयके निमित्त यत्न करते हैं और शुक्र दैत्योंकी जयके निमित्त यत्नकरते रहते हैं तो क्या इनको त्यागनेकी सामर्थ्यनहींहै परन्तु दोनों इनकोतुल्यहैं इसकारण खेदसेरहित होकर अपने कार्यमें विचरते हैं इससे जीवन्मुक्त पुरुषहैं। हे रामजी! राज्यमें बड़ेक्षोभ होते हैं पर राजाजनक आनन्द सहित राज्यकरता है और जीवन्मुक्त है और प्रह्लाद, बलि, वृत्रासुर और मुरआदि दैत्य जीवन्मुक्त हुयेहैं और समताभावको लिये खेदसे रहित नानाप्रकारकी चेष्टा करते रहेहैं और हृदयसे शीतल और जीवन्मुक्त रहेहैं। राजा नल, दिलीप और मान्धाता आदिने भी समताभावको ले राज्य किया है सो जीव-

न्मुक्तहैं। ऐसेही अनेक राजा हुयेहैं और उनमें रागवान्भी दृष्टिआये हैं परन्तु हृदय में रागद्वेषसे रहित शीतलचित्त रहेहैं। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्यहोती है परन्तु इतना भेदहै कि; ज्ञानीका चित्त शान्तहै और अज्ञानी का चित्त क्षोभमें है; इष्टकी प्राप्तिमें वह हर्षवान् होता है और अनिष्टकी प्राप्तिमें द्वेष करता है और ग्रहणत्याग की इच्छासे जलताहै क्योंकि, उसको संसार सत्य भासता है और जिसका चित्त शान्त होगयाहै उसके भीतर न रागहै, न द्वेषहै; स्वाभाविक शरीरकी जो प्रारब्धहोतीहै उसमें कुछ अपना अभिमान नहीं होता। उसके निश्चयमें सब आकाशरूपहै, जगत् कुछ बनानहीं—भ्रममात्र है जैसे आकाश में नीलता भ्रममात्रहै और दूर नहीं होती तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासता है परन्तु है नहीं। जैसे आकाश में नाना प्रकारके तरुवरे भासते हैं, तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै और जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठरूप होती है, तैसेही जगत् भ्रमरूप है। जो कुछ भ्रमसे भिन्न भासता है वह सब भविष्यन्नगरमें असत्य है और जो कुछ तुम्हें दृष्टि आताहै सो कुछ नहीं केवल सर्व कलनासे रहित, शुद्धसंवित् जड़ता विना मुक्तस्वभाव एक अद्वैत आत्मसत्ता स्थित है और केवल आकाशरूप है, उसमें जगत्भी वहीरूप है और पाषाणकी शिलावत् घनमौन है। तुमभी उसीरूपमें स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नाम द्विशताधिकैकोनविंशतितमस्सर्ग्गः २१९॥

रामजीने पूंछा; हे भगवन्! उसराजा विपश्चित ने फिर क्या किया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो उनकी दशाहुईहै सो तुमसुनो। पश्चिम दिशाका विपश्चित वनमें विचरता फिरताथा कि, एक मत्तहाथी के वशपड़ा और उसने उसेपहाड़की कन्दरामें मारडाला; दूसरे विपश्चितको राक्षसलेगया और बड़वाग्नि में डालदिया वहां अग्नि ने उसे भक्षण करलिया; तीसरे विपश्चितको एकविद्याधर स्वर्ग में लेगया और उसने वहां इन्द्रको मान न किया इसलिये उसको इन्द्रने शापदिया और यह भस्महोगया; इसीप्रकार चौथाभी हुआ, उसके एक मच्छने आठ टुकड़ेकरडाले। जैसे प्रलयकाल में लोक भस्म होजाते हैं तैसेही चारों विपश्चित मरगये। तब उनकीसंवित् आकाशरूप हुई परन्तु उनको जगत् देखने का संस्कारथा इससे उनकी आकाशरूप संवित् फिर आनफुरी उससे जाग्रत् भासनेलगा और पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, स्थावर जंगमरूप जगत्को देखा और अन्तवाहक शरीरसे चेष्टा करनेलगे। उनमें से एक पश्चिम दिशाका विपश्चित विष्णु भगवान् के स्थानमें मुआ निर्वाण होगया इससे उसकी संवित् में सर्व अर्थ शून्य होगये और वह वहां मुक्तहुआ। एक मच्छ के उदर में सहस्रवर्षपर्यन्त रहा उससे फिर एक देशका राजा हुआ और वहां राज्य करनेलगा। एक चन्द्रमा के

निकटजा वहां मरके चन्द्रमा के लोकको प्राप्तहुआ और एक बहता हुआ समुद्रके पार हुआ और आगे चौरासी हज़ार योजन पृथ्वीको लांघतागया। इसीप्रकार चारों फिर जिये और समुद्र, वन और पर्वतोंको लांघतेगये। सबकेआगे दशसहस्र योजन सुवर्णकी पृथ्वीआई जहां देवताओं के विचरने के स्थानहैं उनको भी वे लांघतेगये। आगे लोकालोक पर्वत आया जिसने सर्व पृथ्वीको आवरणकिया है-जैसे वृक्षोंसे वन का आवरण होताहै, तैसेही उस पर्वतने पञ्चाशत् कोटियोजन पृथ्वीको आवरणकिया है और पचास हजार योजन ऊंचाहै-वे लोकालोक पर्वत में पहुँचे जहां तारों का नक्षत्रचक्र फिरता है उसको भी वे लांघगये। उसमें आगे एक शून्यनक्षत्रथा सो महा शून्यथा जहां पृथ्वी, जल आदिक तत्त्व कोई न था, एकशून्य आकाश है जहां न कोई स्थावरपदार्थ है, न कोई जंगमपदार्थ है, न कोई उपजै है, न कभी मिटै है उसको भी उन्होंने देखा। इसीप्रकार सम्पूर्ण भूगोल को उन्होंने देखा। रामजीने पूंछा,हे भगवन्! भूगोलक्याहै; किसके आश्रयहै और उसके ऊपर क्याहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे गेंद होताहै, तैसे भूगोल है और संकल्पके आश्रय है। सर्व ओर उसके आकाश है और सूर्य्य, चन्द्रमा; नक्षत्र सहित चक्रफिरताहै। हे रामजी ! यह कोई वस्तु से बुद्धि नहीं बनी संकल्पसे बनी है; जो वस्तु बुद्धि से बनी होती है सो क्रम से स्थितहोती है और यह तो विपर्य्ययरूप से स्थितहै। पृथ्वी के चहुँफेर दशगुण जलहै उससेपरे दश गुणी अग्निहै; उसके उपरान्त दशगुणा वायुहै और फिर ब्रह्माण्ड खप्परहै। वहखप्पर एक अधको और एकऊर्ध्वको गयाहै और उसके मध्यमें जो पोल है वह आकाश है जो वज्रसारकी नाईंहै और अनन्तकोटि योजन का उसका विस्तार है उस ब्रह्माण्ड का उसमें भूगोल है; उसके उत्तरदिशा में सुमेरुपर्वत है, पश्चिमदिशा में लोकालोक पर्वत है और ऊपर नक्षत्रचक्र फिरताहै। जहां वह जाताहै वहां प्रकाश होताहै और जहां वह नहीं होता वहां तमरूप भासता है-सो सब संकल्परचना है। जैसे बालक संकल्पसे पत्थरका बट्टारचे, तैसेही चैतन्यरूपी बालकने यह संकल्परूपी भूगोल रचा है। हे रामजी ! जैसे जैसे उस समय उसमें निश्चय हुआ है तैसेही स्थित हुआ है। जहां पृथ्वी स्थित रचीहै वहांहीं स्थितहै और जहां खातरची है वहां खातही है परन्तु जैसे स्वप्नेमें अविद्यमान प्रतिभाहोतीहै, तैसेही भूगोल है। हे रामजी ! जिनको ऐसा ज्ञानहै कि, सुमेरुमें देवता और पूर्वादि दिशाओंमें मनुष्य आदि जीव रहते हैं वे पंडितहैं तौभी मूर्ख हैं क्योंकि, ये तो भ्रममात्रहैं कुछ बनेनहीं। जो हमसे आदि लेकर तत्त्ववेत्ता हैं उनको ज्ञाननेत्र से आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों भासती है और जो मन सहित षट्इन्द्रियोंसे अज्ञानी देखते हैं उनको जगत् भासता है। ज्ञानवानोंको परब्रह्म सूक्ष्म ज्योंकात्यों भासताहै और जगत्को वे असत् जानते हैं। जैसे आकाशमें अनहोती

नीलता भासती है; तैसेहीं आत्मा में अनहोता जगत् भासता है । जैसे नेत्रदूषण से आकाश में तरुवरे भासते हैं, तैसेही अज्ञान से आत्मामें जगत् भासता है सो केवल आभासमात्र है । हे रामजी ! जगत् उपजा भी दृष्टि आता है और नष्ट होता भी दृष्टि आता है परन्तु बना कुछ नहीं । जैसे संकल्प का रचा फुरना अपने मनमें भासता है, तैसेही यह जगत् मनसें फुरता है । यह संपूर्ण भूगोल संकल्पमें स्थित है। जैसे बालक संकल्प करके पत्थरका ब्रह्मारचे, तैसेही भूगोल है । यह ब्रह्मांड सौकोटि योजनपर्यन्त है। उसका एकभाग अधको गया है और एक ऊर्ध्वको गया है, उसमें चैतन्यरूपी बालक ने यह भूगोल रचा है सो संकल्पके आश्रय खड़ा है। जैसे आदि नीति हुई है, तैसेही भासता है। इस पृथ्वीके उत्तर दिशामें सुमेरु पर्वत है; पश्चिम दिशाकी ओर लोकालोक पर्वत है और ऊपर तारों और नक्षत्रोंका चक्र फिरता है; लोकालोकके जिस ओर वह आता है उस ओर प्रकाश होता है । भूगोल ऐसे है, जैसे गेंद होता है और उसके एक ओर पाताल है, एक ओर स्वर्ग है, एक ओर मध्यमंडल है और आकाश सर्व ओर है । पातालवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं, आकाशवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं और मध्यवासी जानते हैं कि, हम ऊर्ध्व हैं । इस प्रकार भूगोल है और उसके ऊपर महातमरूप एक शून्य खात है। जहां न पृथ्वीहै, न कोई पहाड़ है, न स्थावर है, न जंगम है और न कुछ उपजा है । उसके ऊपर एक सुवर्णकी दीवार है जिसका दशसहस्र योजन विस्तार है और उसके ऊपर दशगुणा जल है सो पृथ्वी को चहुँफेरसे घेरे है; उससे परे दशगुण अग्नि है; फिर दशगुण वायु है और उसके आगे आकाश है । फिर ब्रह्माकाश महाकाश है जिसमें अनन्त ब्रह्मांड स्थित हैं परन्तु ये तत्त्व जैसे तृणके आश्रय कपूर ठहरता है तैसेही पृथ्वीभागके आश्रय ठहरे हैं वास्तवमें शुद्ध चैतन्य ब्रह्मका चमत्कार है जो आकाशवत् निर्मल है और उसमें कोई क्षोभ नहीं है, परमशान्त, अनन्त और सर्वका अपना आप है । हे रामजी ! अब फिर विपश्चितकी वार्त्ता सुनो । जब वे लोकालोक पर्वत पर जा स्थित हुये तब एक शून्य खात उनको दृष्टि आया और पर्वत से उतरकर खातमें वे जापड़े । वह खात भी पर्वतके शिखर पर था और वहां शिखरकी नाईं बड़े २ पक्षी भी रहते थे इस कारण उन पक्षियों ने चोंचोंसे इनके शरीर चूर्णकिये, तब उन्होंने अपने स्थूल शरीरको त्यागकर अपना सूक्ष्म अन्तवाहक शरीर जाना । रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! आधिभौतिकता कैसे होती है और अन्तवाहक क्याहै? फिर उन्होंने क्या किया ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे कोई संकल्पसे दूरसे दूर चला जावे तो जिस शरीरसे जावे वह अन्तवाहक है और जो पांचभौतिक शरीर प्रत्यक्ष भासता है सो आधिभौतिक है । जब मार्गसे कहीं जानेको चित्तका संकल्प उठताहै तब स्थूल शरीर गये विना नहीं पहुँचसक्ता और जब मार्गमें चले तब पहुँचता है सोही आधिभौ-

तिक है और यह प्रमादसे होता है। जैसे रस्सीके भूलने से सर्प भासता है, तैसेही आत्मा के अज्ञानसे आधिभौतिक शरीर भासता है और जैसे कोई मनोराजका पुर बनाके उसमें आप भी एक शरीर बनकर चेष्टा करताफिरे तो उसे जबतक पूर्वका शरीर विस्मरण नहीं हुआ तबतक वह संकल्प शरीरसे चेष्टा करता है सो अन्तवाहक है। उस शरीर को संकल्पमात्र जानना-विशेष बुद्धि कहाती है। आत्मबोध हुये विना जो उस संकल्प शरीर में दृढ़ भावना होती है तो उसका नाम आधिभौतिक होता है-सो घटबढ़ कहाता है। इससे जबतक शरीरका स्मरण है तबतक आधिभौतिकता नहीं होती और जब शरीरका विस्मरण होता है तब आधिभौतिकता होजाती है। विपश्चित् जो आधिभौतिक थे सो आत्मबोध से रहित थे और जहां चाहते थे तहां चलेजाते थे पर स्वरूपसे न कुछ अन्तवाहक है और न कुछ आधिभौतिक है; प्रमादसे ये सब आकार भासते हैं। वास्तव में सब चिदाकाशरूप है, दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी सब वही है और उसीके प्रमादसे विपश्चित् अविद्यक जगत् को देखने चलेथे वह अविद्या भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं-ब्रह्मही है तो ब्रह्मका अन्त कहां आवे। वहांसे वे चले परन्तु जानें कि, हमारा अन्तवाहक शरीर है। निदान वे सब पृथ्वी को लांघगये फिर जलको भी लांघगये और उसके परे जो सूर्यवद्दाहक अग्नि का आवरण प्रकाशवान् है तिसको भी लांघकर मेघ और वायुके आवरण को भी लांघे। फिर आकाश कोभी लांघगये तो उसके परे ब्रह्माकाश था जहां उनको सङ्कल्प के अनुसार फिर जगत् भासनेलगा पर उसको भी लांघे। फिर आगे ब्रह्माकाशमिला और फिर उनको पञ्चभूत भासि आये उसके आवरणको भी लांघगये। फिर उस ब्रह्मांड कपाटके परे तत्त्वों को लांघकर ब्रह्माकाशआया उसमें एक और पाञ्चभौतिक ब्रह्मांडथा उसको भी लांघ गये पर अन्त न पाया। स्वरूप के प्रमादसे दृश्य के अन्तलेने को वे भटकते फिरे पर अविद्यारूप संसार का अन्त कैसे आवे? यह जीव तबतक अन्त लेने को भटकता फिरता है जबतक अविद्या नष्ट नहीं होती; जब अविद्या नष्ट होगी तभी अविद्यारूप संसार का अन्त होगा। हे रामजी! जगत् कुछ बनानहीं वही ब्रह्माकाश ज्योंका त्यों स्थित है और उसका न जाननाही संसार है। जबतक उसका प्रमाद है तबतक जगत्का अन्त न आवेगा और जब स्वरूपका ज्ञानहोगा तब अन्त आवेगा। सो वह जानना क्या है? चित्तको निर्वाण करनाही जानना है। जब चित्त निर्वाण होगा तब जगत् का अन्त आवेगा। जबतक चित्त भटकता फिरता है तबतक संसार का अन्त नहीं आता। इससे चित्तका नामही संसार है। जब चित्त आत्मपदमें स्थित होगा तब जगत्का अन्त होगा। इस उपाय विना शान्ति नहीं प्राप्त होती॥

इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणेविपश्चिदुपाख्यानवर्णनंद्विशताधिकविंशतितमस्सर्गः २२०॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! वे जो दो विपश्चित् थे उनकी क्या दशाहुई, यह भी कहो ? वे तो दोनों एकही थे । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक तो निर्वाण हुआ था और दूसरा ब्रह्मांडोंको लांघता २ और एक ब्रह्मांड में गया तब वहां उसको सन्तोंका संग प्राप्त हुआ और उनकी संगति से उसको ज्ञान प्राप्त हुआ । ज्ञानको पाकर वह भी निर्वाण होगया । एक अबतक दूर फिरता है और एक यहां पहाड़की कन्दरा में मृग होकर विचरता है । हे रामजी ! यह जगत् आत्माका आभास है । जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है और जबतक किरणें हैं तबतक जलाभास निवृत्त नहीं होता; तैसेही जबतक आत्मसत्ता है तबतक जगत्का चमत्कार निवृत्त नहीं होता और आत्माके जानेसे जगत्सत्ता नहीं रहती । जैसे किरणों के जानेसे जलाभास नहीं रहता और जो जल भासताहै तौभी किरणोंहीकी सत्ता भासती है; तैसेही आत्माके जाने से आत्माकी सत्ताही भासती है—भिन्न जगत् की सत्ता नहीं भासती । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! विपश्चित् एकहीथा तो एकही संवित् में भिन्न भिन्न वासना कैसे हुई ? एक मुक्त होगया, एक मृगहोकर फिरता रहा और एक आगे निर्वाण होगया—यह भिन्नता कैसे हुई है ? संवित् तो एकही थी उसमें कम और अधिक फल कैसे प्राप्त हुये सो कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वासना जो होती है सो देश, काल और पदार्थों से होतीहै । उसमें जिसकी दृढ़ भावना होती है उसकी जय होती है । जैसे एक पुरुषने मनोराज से अपनी चारमूर्त्तियां कल्पीं और उनमें भिन्न भिन्न वासना स्थापनकी पर संवित् तो एक है, यदि पूर्वका शरीर भूलकर उसमें दृढ़ होगये तो जैसी २ भावना उनके शरीर में दृढ़ होती है वही प्राप्त होती है; तैसेही संवित्में नानाप्रकारकी वासना फुरती हैं । जैसे एकही संवित् स्वप्ने में नानाप्रकार धारती है और भिन्न २ वासना होती है; तैसेही आकाशरूप संवित्में भिन्नभिन्न वासना होती है । हे रामजी ! संवित् उनकी एकथी परन्तु देश, काल और क्रियासे वासना भिन्न भिन्न होगई और पूर्व की संवित् स्मृति भूलगई उससे उन्होंने न्यून और अधिक फलपाये । वह संवित् क्यारूपहै ? हे रामजी ! देश से देशान्तरको जो संवेदन जाती है उसके मध्य जो संवित्सत्ताहै सो ब्रह्मसत्ताहै । जैसे जाग्रत के आकार को छोड़ा और स्वप्ना नहीं आया उसके मध्य जो ब्रह्मसत्ता है वह किंचन रूप जगत् होकर भासती है परन्तु किंचन भी कुछ भिन्न वस्तु नहीं । वह एकहै, न दोहै; एक कहना भी नहीं होता तो दो कहांहो और जगत् कहांहो ? यही अविद्याहै कि, है नहीं और भासती है । जिस जिस आकार में जैसी जैसी वासना फुरती है और जो दृढ़ होजाती है उसकी जय होती है । इस कारण एक विपश्चित् जनार्दन विष्णु के स्थान में निर्वाण होगया और दूसरा दूरसे दूर ब्रह्माण्ड को लांघता गया और उसको सन्तों का संग प्राप्त हुआ जिससे ज्ञान उदय होकर वासना मिटगई और उसका अज्ञान नष्ट

होगया। जैसे सूर्य के उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाता है, तैसेही जब उसका अज्ञान नष्ट होगया तब वह उस पदको प्राप्त भया जिसके अज्ञानसे दूरते दूर भटकताहै, तीसरा दूरसे दूर भटकता फिरता है और चौथा पहाड़की कन्दरामें मृग होकर विचरता है। हे रामजी! जगत् कुछ वस्तु नहीं, अज्ञानके वशसे भटकता है इसलिये अज्ञानही जगत् है। जबतक अज्ञानहै तबतक जगत् है। जब ज्ञान उदय होताहै तब वह अज्ञान को नाशकरताहै और तभी जगत्का भी अभाव होजाताहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो मृग हुआहै सो कहां कहां फिराहै और कहां २ स्थित हुआहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दो ब्रह्मांडको लांघते दूरसे दूर चलेगयेथे, उनमें से एक अबतक चलाजाता है और पृथ्वी, समुद्र, वायु, आकाश उसकी संवित्में फुरते हैं। यह तो दूरसे दूर चलागया है और हमारी आधिभौतिक दृष्टिका विषय नहीं और एक ब्रह्मांडको लांघता गयाथा पर अब इस जगत् में पहाड़की कन्दराका मृग हुआहै सो हमारी इस दृष्टिका विषयहै। रामजीने पूछा, हे भगवन्! ये तो दूरगयेथे और उनमें से एक इस जगत्में अब मृगहुआ है; तुमने कैसे जाना कि, आगे वह ब्रह्मांडमेंथा और अब इस जगत्में है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं ब्रह्महूं और सर्वब्रह्मांड मेरे अंगहैं। मुझको सबका ज्ञान है। जैसे अवयवी पुरुष अपने अंगोंको जानताहै कि, यह अंग फुरताहै और यह नहीं फुरता; तैसेही मैं सब को जानताहूं। जहां जहां यह लांघतागयाहै उसे बुद्धिके नेत्रों से मैं जानताहूं परंतु तुम नहीं जानसक्के। जैसे समुद्रमें अनेक तरंग फुरते हैं और समुद्र सबको जानताहै, तैसेही मैं समुद्ररूपहूं और मेरेमें ब्रह्माण्डरूपी तरंगेंहैं इससे मैं सबको जानताहूं। हे रामजी! वह जो मृगहै सो दूर ब्रह्माण्ड में फिरताहै। वह विपश्चित् यह सामान्यमृग नहीं है परन्तु जैसा है सो सुनो। हे रामजी! एक ब्रह्माण्ड इस हमारे ब्रह्माण्ड सा है जिसका ऐसाही आकार है, ऐसीही चेष्टा है, एकहीसा जगत् है और स्थावर जंगम सब एकही से हैं। वहां जो देश, काल और क्रियाका विचरना होता है सो इसकेही समान होता है। जैसे नामरूप आकार यहां होते हैं; जैसे बिम्बका प्रतिबिम्ब तुल्यही होता है और जैसे एकही आकार का एक प्रतिबिम्ब जलमें होता है और द्वितीय दर्पण में होता है सो दोनों तुल्य हैं; तैसेही दोनों ब्रह्माण्ड एक समान हैं और ब्रह्मरूपी आदर्श में प्रतिबिम्बित होते हैं। इस कारण यह मृग विपश्चित् है इसी निश्चय को धारेहुये है यह और वह दोनों तुल्यहैं सो पहाड़ की कन्दरामें है। रामजी ने पूंछा, हे भगवन्! वह विपश्चित् अब कहां है और उसका क्या आचार है? अब मैं जानताहूं कि, उसका कार्य हुआ है। अब चलकर मुझको दिखाओ और उसको दर्शन देकर अज्ञान फांस से मुक्तकरो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले, हे अंग! जब रामजी ने इस प्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जहां तुम्हारा लीलाका स्थान है और

तुम क्रीड़ाकरतेहो उस ठौर में वह मृग बांधाहुआ है। यह तुमको तिरगदेश के राजाने दिया है सो बहुत सुन्दर है इसकारण तुमने उसे रक्खा है। उसको मँगावो। तब रामजीने अपने सखाओं से जो निकटवर्त्ती थे कहा कि, उस मृगको सभामें लेआओ। हे राजन्! जब इसप्रकार रामजीने कहा तब वे सभामें उस मृगको लेआये और जितने श्रोता सभामें बैठेथे वे बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुये। वह मृग बड़ीग्रीवा किये महासुन्दर और कमलकी नाईं नेत्रवालाथा; कभी वह घास खानेलगे कभी सभा में खेले और कभी ठहरजावे। तब रामजी ने कहा, हे भगवन्! आप इसको कृपाकरके मनुष्य योनिको प्राप्तकीजिये और उपदेशकरके जगाइये कि, हमारेसाथ प्रश्न उत्तर करे; अभी तो यह प्रश्न उत्तर नहीं करता? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार इसको उपदेश न लगेगा क्योंकि; जिसको कोई इष्टहोता है उसीसे उसको सिद्धिहोती है; इससे मैं इसके इष्टको ध्यानकरके बुलाताहूं—उससे इसका कार्य सिद्धहोगा। बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! इसप्रकार कहकर वशिष्ठजीने कमंडलु हाथमें लेकर तीन आचमन कीं और पद्मासनबांध, नेत्रमूंद और ध्यानमें स्थितहोकर अग्निका आवाहन किया। हे वह्नि! यह तेरा भक्तहै इसकी सहायताकरो और इसपर दयाकरो। तुम सन्तों का दयालुस्वभाव है। जब ऐसे वशिष्ठजीने कहा तब सभामें बड़े प्रकाशकोधारे अग्नि की ज्वाला काष्ठ अंगारसेरहित प्रकटहुई और जलनेलगी। जब ऐसे अग्नि जागी तब वह मृग उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके चित्तमें बड़ी भक्ति उत्पन्नहुई। तब वशिष्ठजी ने नेत्रखोलकर अनुग्रहसहित मृगकी ओर देखा उससे उसके सम्पूर्ण पाप दग्धहोगये। वशिष्ठजीने अग्निसे कहा, हे भगवन् वह्नि! यह तेराभक्तहै। अपनी पूर्वकीभक्ति स्मरण करके इसपर दयाकरो और इसके मृगशरीर को दूरकरके इसको विपश्चित् शरीरदो कि, यह अविद्या भ्रमसे मुक्तहो। हे राजन्! इसप्रकार वशिष्ठजी अग्निसे कहकर रामजीसे बोले, हे रामजी! अब यही मृग अग्निमें प्रवेशकरेगा तब इसका मनुष्य शरीर होजावेगा। ऐसे वशिष्ठजी कहतेही थे कि, अग्निको वह मृगदेखकर एकचरण पीछेको हटा और उछलकर अग्निमें प्रवेशकरगया। जैसे बाण निशानमें आप्रवेश करते हैं, तैसेही उसने प्रवेशकिया। हे राजन्! उस मृगको कुछ खेद न हुआ बल्कि उसको अग्नि आनन्दवान् दृष्टिआया तब उसका मृगशरीर अन्तर्द्धान होगया और महाप्रकाशरूप मनुष्य शरीरको धारे अग्निसे निकला। जैसे कपड़े के ओढ़ेसे स्वांगी स्वांगधारणकर निकल आताहै, तैसेही वह निकलआया और अति सुन्दर वस्त्रपहिरेहुये, शीशपर मुकुट कंठमें रुद्राक्षकी माला और यज्ञोपवीत धारण कियेथा। अग्निवत् वह तेजोवान्था किन्तु सभामें जो बैठेथे उनसेभी अधिक उसका तेजथा—मानो अग्निकोभी लज्जितकिया है। जैसे सूर्यके उदयहुये चन्द्रमाका प्रकाश

लज्जित होजाता है, तैसेही वह सर्वसे प्रकाशवान् होगया। फिर जैसे समुद्रसे तरंग निकलकर लीनहोजाताहै, तैसेही वह अग्नि अन्तर्द्धानहोगये। उसको देखकर रामजी आश्चर्य को प्राप्तहुये और सर्वसभा विस्मयको प्राप्तहुई। तब बड़ेप्रकाश को धारणे वाला विपश्चित् निकलकर ध्यान में लगगया और विपश्चित् से आदि लेकर इस शरीरपर्यंत सर्वशरीर स्मरणकरके नेत्रखोल वशिष्ठजीके निकट आ अष्टांगप्रणामकर बोला, हे ब्राह्मण! ज्ञानके सूर्य और प्राणके दाता! तुमको मेरा नमस्कार है। हे राजन्! जब इसप्रकार उसने कहा तब वशिष्ठजी ने उसके शिरपर हाथरक्खा और कहा, हे राजन्! तू उठखड़ाहो। अब मैं तेरी अविद्या दूरकरूंगा और तू अपने स्वरूप को प्राप्तहोगा। तब राजा विपश्चित् ने उठकर राजा दशरथको प्रणाम किया और बोला, हे राजन्! तेरी जयहो। तब राजा दशरथने आसनसे उठकर कहा, हे राजन्! तुम बहुत दूर फिरते रहेहो अब यहां मेरेपास बैठो। तब राजा विपश्चित् विश्वामित्र आदिक जो ऋषिबैठेथे उनको यथायोग्य प्रणाम करके बैठगया और राजा दशरथ ने विपश्चित्को जो बड़े प्रकाशको धारेहुये था भास कहके बुलाया और कहा, हे भास! तुम संसार भ्रमके लिये चिरकाल फिरते रहेहो; थकेहोगे अब विश्रामकरो और जो जो देशकाल क्रिया की हैं और देखाहै सो कहो। यह आश्चर्य है कि, अपने मन्दिर में सोयेहो और निद्रादोषसे गढ़ेमें गिरते फिरे और देश देशांतरों को भटकते फिरे। यही अविद्याहै। हे भास! जैसे वनका विचरनेवाला हाथी जंजीरसे बंधायमान हुआ दुःखपाता है, तैसेही तुम विपश्चित् भी थे और अविद्या से जगत्के देखने के निमित्त भटकते रहे। हे राजन्! जगत् कुछ वस्तु नहीं है पर भासता है यही मायाहै। जैसे भ्रमसे आकाशमें नाना प्रकार के रंग भासते हैं, तैसेही अविद्यासे यह जगत् भासते हैं और सत्यप्रतीत होते हैं पर सब आकाशरूपही आकाशमें स्थित हैं। उस आकाश में जो कुछ तुमने आत्मरूपी चिन्तामणिके चमत्कार से देखाहै सो कहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चिच्छरीरप्राप्ति र्नामद्विशताधिकैकविंशतितमस्सर्गः २२१॥

दशरथजी बोले, हे भास! बड़ाआश्चर्यहै कि, तुम विपश्चित् बुद्धिमान्थे और चेष्टा से तुमने अविपश्चित् होकर बुद्धिकी है जो अविद्याके देखनेको समर्थहुयेथे। यह जगत् प्रतिभा तो मिथ्याउठी है; असत्यके ग्रहणकी इच्छा तुमने क्योंकी? बाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा तब प्रसंगपाकर विश्वामित्र बोले, हे राजा दशरथ! यह चेष्टा वही करता है जिसको परमबोध नहीं होता और केवल मूर्ख और अज्ञानी भी नहीं होता क्योंकि; जिसको परमबोध और आत्माका अनुभव होताहै वह जगत्को अविद्यक जानता है और उस अविद्यक जगत्के अन्त लेनेको इतना यत्न

नहीं करता क्योंकि, वह तो असत्य जानताहै और जो देहाभिमानी मूर्ख अज्ञ है वह भी यह यत्न नहींकरता क्योंकि; उसको देखनेकी सामर्थ्य भी नहीं होती। इससे मध्य भावीहै। जो आत्मबोध से रहितहै और जिसने आधिभौतिक शरीरत्याग कियाहै वह भी संसार देखनेका यत्न करताहै और जिनको उत्तम बोध नहींहुआ वे इसप्रकार बहुत भटकते फिरतेहैं। हे राजन्! इसीप्रकार वटधानाभी इसी ब्रह्मांडमें फिरते हैं। सत्तर लक्षवर्ष उनके व्यतीतहुये हैं कि, इसीब्रह्मांड में फिरतेहैं। उननेभी यहीनिश्चयधाराहै कि, पृथ्वी कहांतक चलीजाती है। इस निश्चय से वह निवृत्त नहींहोते और इसी ब्रह्मांडमें भ्रमते हैं और उनको अपनी वासनाके अनुसार विपरीत औरही और स्थान भासते हैं। हे राजन्! जैसे किसी बालक का रचा संकल्पका वृक्ष आकाशमें हो, तैसेही यह भूगोल ब्रह्माके संकल्पमें स्थितहै और संकल्प से गेंदकेसमान आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांचोंतत्त्वों का ब्रह्मांडरचाहै और उसके चौफेर चींटियां फिरती हैं जिस ओर से वे जाती हैं सो ऊर्ध्वभासताहै सो औरही और निश्चय होताहै, तैसेही यह संकल्प के रचे भूगोल के किसी कोणमें वटधाना जीवहुआहै। हे राजन्! उसके तीन पुत्रथे, उनको यह सङ्कल्प उदय हुआ कि, हम जगत्का अन्त देखें। इसी सङ्कल्पसे फिरते २ पृथ्वी लांघते हैं, फिर पृथ्वी और जलआताहै जल लांघते हैं; फिर आकाश आताहै फिर पृथ्वी, जल, वायु फिर उसी भूगोलके चहुँफेर फिरते रहे। जैसे आकाश में गेंदहो तैसेही यह पृथ्वी आकाशमें है और इसका अध ऊर्ध्व कोई नहीं। चरण अध शिरका पासा ऊर्ध्व उसीके चौफेर घूमतेरहे परन्तु अपने निश्चयसे और का और जानतेरहे। जबतक स्वरूपका प्रमाद है तबतक जगत्का अभाव नहींहोता और जब आत्माका साक्षात्कार होता है तब जगत् ब्रह्मरूप होजाता है। जगत् कुछबनानहीं, फुरनेसे भासता है जैसे स्वप्ने में अज्ञानसे अनन्त जगत् दिखताहै कि, यह हुआहै सो फुरना परब्रह्ममें हुआहै और जो फुरनेमें हुआहै सोभी परब्रह्म है और कुछबनानहीं— आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। जैसे पत्थरकी शिला घनरूपहोती है, तैसे है आत्मतत्त्व चैतन्यघन है। जैसे आकाश और शून्यता में कुछभेदनहीं, तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेदनहीं। कल्पना परब्रह्मरूप है और ब्रह्मही कल्पनारूपहै। इस जड़ और चैतन्य में कुछभेदनहीं। हे राजन्! जिसको जगत्शब्दसे कहतेहो वह ब्रह्मसत्ता ही है। न कुछ उत्पन्न हुआहै और न प्रलयहोताहै—सर्व ब्रह्मही है। जैसे पहाड़में पत्थर से इतर कुछ नहीं होता तैसेही यहजगत् ब्रह्मसत्ता से इतर कुछ नहीं। जैसे पाषाणकी पुतली पाषाणरूपहीहै, तैसेही जगत् ब्रह्मरूपही है। एक सूक्ष्मअनुभव अणुसे अनेक अणुहोते हैं। जैसे एक पहाड़ से अनेकशिला होती हैं। हे राजन्! जो ज्ञानवान्पुरुष हैं उनको जगत् ब्रह्मरूप भासताहै और जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकारका भासता

है। जगत् कुछ वस्तु नहीं है परन्तु जबतक संकल्पहै तबतक जगत् फुरताहै। जैसे रत्नों का चमत्कार होताहै, तैसेही जगत् आत्माका चमत्कार है और चैतन्य आत्माके आश्रय अनन्त सृष्टियां फुरती हैं सो सृष्टि सब आत्मरूप हैं आत्मासे भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जो जाग्रत् पुरुष ज्ञानवान्हैं उनको ब्रह्मरूपही भासताहै और जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकारका जगत् भासताहै। हे राजन्! कईएक इसको शून्य कहते हैं कि, शून्यही है और कुछनहीं; कई इसको जगत् कहते हैं और कई ब्रह्मकहतेहैं। जैसा किसीको निश्चय होताहै उसको वहीरूप भासताहै। आत्मरूपी चिन्तामणिहै, जैसा जैसा संकल्प उसमें फुरताहै तैसा तैसाही भासताहै। सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है; जैसाजैसा उसमें निश्चय होताहै तैसाही तैसा होकर भासता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य--त्रिपुटी जो भासती है सो भी ब्रह्महोकर भासती है द्वितीय कुछ वस्तु नहीं और और जो कुछ भासता है वही अज्ञान है। हे राजन्! जबतक वासना नष्ट नहीं होती तबतक दुःखभी नहीं मिटते और जब वासना मिटजावे तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासे और रागद्वेष किसीमें न रहे। जैसे स्वप्नमें नानाप्रकारकी सृष्टिभासती हैं पर पूर्वस्वरूप स्मरण आता है तो सर्वरूप आप होजाता है और रागद्वेष मिटजाता है; तैसेही ज्ञानवान् को यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आप भासता है और समानरूप विचार से रहित होताहै। पूर्व, अपूर्व और अपरको विचारना कि, यह शुभ है और यह अशुभ है; अशुभ का त्यागकरना यह गुण विचारहै। जबतक पूर्वापर विचार मनमें रहता है तबतक जगत्में भटकता है और बांधारहता है क्योंकि, शुभ अशुभ दोनों जगत्में हैं। जब इनका विस्मरण होजावे और सम्पूर्ण जगत्को भ्रममात्र जानकर आत्मपदमें सावधान हो तब मुक्तहोता है। इस जीवको अपनी वासनाही बन्धनका कारण है। जब तक जगत्में दुःखकी वासना होती है तबतक राग द्वेष उपजता है और उससे बांधा रहताहै। जिनको जगत्के सुख दुःख में रागद्वेषकी भावना नहीं उपजती और जिन की वासना भी नष्ट होती है उनको यह जगत् ब्रह्मरूप अपना आपही भासता है और जगत् में दुःखदायक कुछ नहीं भासता। उनको सब ब्रह्मही भासताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेवटधानोपाख्यानवर्णनन्नाम द्विशताधिकद्वाविंशतितमःसर्गः २२२॥

दशरथजीने विपश्चित् से पूछा, हे भास! तुम चिरकालपर्यंत जगत्में फिरते रहेहो जिसप्रकार तुमने चेष्टाकी है और जो देश, काल, पदार्थ देखे हैं सो सबही कहो। भास बोले, हे राजन्! मैं जगत्को देखता फिराहूं और फिरता २ थक गयाहूं परन्तु देखने की जो इच्छाथी इसकारण मुझको दुःख नहीं हुआ है। जो कुछ मैंने चेष्टा की है और जो देखा है सो कहता हूं। हे राजन्! मैंने बहुत जन्म धारे हैं;

और बहुतबार मृतकहुआहूं; बहुतबेरशापपायाहै; ऊंचनीच जन्मधारे हैं और मरमर गया हूं और बहुत ब्रह्माण्ड देखे हैं परन्तु यह सब अग्नि देवताके वर से देखे हैं। एकबार मैं वृक्ष हुआ और सहस्रवर्षपर्य्यन्त फूल फल टास संयुक्त रहा। जब कोई काटे तब मैं दुःखीहोऊं और मेरामन हृदयसे पीड़ापावे। फिर वहांसे शरीरछूटा तब मैं सुमेरुपर्वत पर सुवर्णका कमलहुआ और वहांका जलपानकिया। फिर एकदेश में पक्षी हुआ और सौवर्ष पक्षी रहकर फिर सियारहुआ और मुझे हस्ती ने चूर्ण किया इससे मृतक होकर फिर सुमेरुपर्वत पर सुन्दर मृगहुआ और देवता और विद्याधर मेरेसाथ प्रीति करने लगे। कुछकाल में मरकर फिर देवताओंके वनमें मञ्जरी हुआ और वहां देवियां और विद्याधरियां मुझको स्पर्शकरें और सुगन्धलें। तब मैं देवताओं की स्त्री हुआ, फिर सिद्धहुआ और मेरा वचन फुरनेलगा; फिर मैंने और शरीर धारा और एक ब्रह्माण्ड लांघगया। इसीप्रकार कई बह्माण्ड मैं लांघगया तब एक ब्रह्माण्ड में जो आश्चर्य देखा है सो सुनो। वहां मैंने एक स्त्री देखी जिसके शरीरमें कई ब्रह्माण्डथे इससे मैं आश्चर्य-वान्हुआ और देशकाल क्रियासेपूर्ण कई त्रिलोकी देखीं। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब दृष्टि आता है; तैसेही मुझको उसमें जगत् भासे। तब मैंने उससेकहा; हे देवी! तुम कौनहो और यह तेरे शरीरमें क्या है? देवी बोली, हे साधु! मैं शुद्धचित्शक्तिहूं और यहसब मेरेअंग मेरेमें स्थित हैं। मेरी क्या बात पूछनी है—यहसब जगत् जो तू देखताहै चिद्रूप हैं; चैतन्यसे भिन्न और कुछ नहीं और सब में ब्रह्माण्ड त्रिलोकी स्थित हैं जो अपना आपही है। जो पूर्वके अपने स्वभावमें स्थितहैं उनको अपनेही में ये भासते हैं और अपनाही स्वरूप भासता है और जो स्वभाव में स्थित नहीं हैं उनको जगत् बाहर और आपसे भिन्न भासते हैं। हे राजन्! यह जगत् कुछ बनानहीं। जैसे स्वप्नेमें गन्धर्वनगर भासता है, तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै और जैसे जलमें तरङ्ग भासता है सो जलरूप है—तरङ्ग कुछ भिन्नवस्तु नहीं होते; तैसेही सब जगत् चिद्रूप में भासताहै सो चैतन्य से भिन्न कुछनहीं परन्तु जब स्वभावमें स्थितहोकर देखोगे तब ऐसेही भासेगा और जो अज्ञानदृष्टि से देखोगे तो नानाप्रकारका जगत् दृष्टि आवेगा। हे राजा दश-रथ! जब इसप्रकार उस देवीने मुझ से कहा तब मैं वहांसे चला और आगे दूसरी सृष्टि में गया तो देखा कि, वहां सब पुरुषही रहते हैं, स्त्री कोई नहीं और पुरुष से पुरुष उत्पन्न होते हैं। उससे भी आगे और सृष्टिमेंगया तो वहां न सूर्यथा, न चन्द्रमाथा, न तारे थे, न अग्नि थी, न दिन था और न रात्रिथी। जैसे चन्द्रमा, सूर्य और तारोंका प्रकाश होता है, तैसेही सब अपने प्रकाशसे प्रकाशते थे उनको देखकर मैं आगे और सृष्टि में गया तो वहां क्या देखा कि, आकाशही से जीव उत्पन्न होकर आकाशही में लीन होते हैं और इकट्ठेही सब उपजते और इकट्ठेही सब लीन होजाते हैं; न वहां मनुष्य

हैं, न देवता हैं, न वेद हैं, न शास्त्र हैं, न जगत् है–इनसे विलक्षणही प्रकार है। हे राजन्! इसप्रकार मैंने कईसृष्टियां देखी हैं जो मुझकोस्मरण आती हैं। आगे और सृष्टि में गया तो वहां क्या देखा कि, सब जीव एकही समान हैं; न किसी को रोग है और न किसीकोदुःखहै–सब एकसेगंगाके तीरपर बैठेहैं। हे राजन्! एक और आश्चर्य मैंनेदेखा है सोभी सुनो। एक सृष्टि में मैं गया तो वहां क्षीरसमुद्र मन्दराचल में मथाजाताथा एक ओर विष्णुभगवान् और देवता थे और मन्दराचल पर्वत रत्नोंसे जड़ा हुआ शेषनागसे रस्सीकी नाईं लपिटाहुआथा मथनेके निमित्त दूसरी ओर दैत्यलगेथे और बड़ा सुन्दर शब्द होता था। वहां वह कौतुक देखकर मैं आगे गया तो एक और सृष्टि देखी जहां मनुष्य आकाशमें उड़ते फिरते थे और देवताओं की पृथ्वीपर मनुष्य विचरते और वेदशास्त्रजानतेथे। हे राजन्! एक और आश्चर्य मैंने देखा सोभीसुनो। एक सृष्टि में मैं जा निकला तो वहां मन्दराचल पर्वत पर कल्पतरुका वनथा और उस में मन्दरका नाम एक अप्सरा रहती थी। वहां जाकर मैं सो रहा तो ज्योंहीं रात्रि का समय आया कि, वह अप्सरा मेरे कंठमें आलगी। तब मैंने जागकर उसको देखा और कहा कि, हे सुन्दरी! तूने मुझको किस निमित्त जगाया? मैं तो सुखसे सो रहा था। तब उस अप्सरा ने कहा कि, हे राजन्! मैंने इस निमित्त तुझको जगाया है कि; चन्द्रमा उदय हुआ है और चन्द्रकान्तमणि चन्द्रमाको देखकर स्रवेगी और नदीकी नाईं प्रवाह चलेगा ऐसा न हो कि, उसमें तू बहि जावे। हे राजादशरथ! इसप्रकार उसने कहाही था कि, नदीका प्रवाह चलनेलगा। तब वह अप्सरा उसप्रवाहको देखकर मुझे आकाश की लेउड़ी और पर्वतके ऊपर जहां गङ्गाका प्रवाह चलताथा उसके तटपर मुझको स्थित किया। सातवर्षपर्यन्त मैं वहां रहकर फिर एक और ब्रह्मांड में गया तो देखा कि, वहां तारा, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य कुछ भी न थे। उसको देखकर मैं और आगेगया इसीप्रकार अनंत ब्रह्मांड मैंने देखे। हे राजन्! ऐसादेश व ऐसी पृथ्वी, नदी और पहाड़ कोई न होगा जिसको मैंने न देखाहो और ऐसी चेष्टा कोई न होगी जो मैंने न की हो। कई शरीरों के मैंने सुखभोगे हैं; कितनों के दुःखभोगे हैं और वन, कन्दरा और गुप्तस्थानों में फिरकर सब देखा परन्तु अग्नि देवताके वरको पाकर फिरता २ मैं थकगया तौभी आगेही चलागया और अनेक अविद्यक ब्रह्मांड भी देखे परन्तु अब उनका अन्त आया है कि, यहजगत् भ्रममात्रहै। मैंने शास्त्रोंमें सुनाहै कि, यह जगत् है नहीं तौभी दुःख देता है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में बेताल भासता है; तैसेही यह जगत् अविचार से भासता है और विचार किये से निवृत्त होजाता है। एक आश्चर्य और सुनो कि, एक ब्रह्मांडमें मैं गया तो वहां महाआकाश था। उस महाआकाश से गिरकर मैं पृथ्वी पर आनपड़ा और वहां सोगया तब मैं

महागाढ़ सुषुप्तिरूप होगया और सब जगत् का मुझे विस्मरण होगया । जब वह गाढ़सुषुप्ति क्षीण हुई तब एक स्वप्नआया और उसमें तुम्हारा यह जगत् मुझको भासिआया । उसमें मुझको पहाड़, कन्दरा, देश, और बहुत से गुप्त, प्रकट स्थान भासिआये जहां केवल सिद्धों की गम थी वहां भी मैं गया और जहां सिद्धोंकी भी गम न थी वहां भी मैं गया । इसप्रकार अनेक जगत् मैंने देखे परन्तु आश्चर्य है कि, स्वप्ने की सृष्टि प्रत्यक्ष जाग्रत् की तरह दृष्टि आती थी और स्वप्ने के शरीर जाग्रत् में पड़े भासते थे । इससे सब जगत् भ्रममात्र है और असत्यही सत्य होकर दिखाई देता है । इसप्रकार देखकर मैं बड़े आश्चर्य में पड़ाहूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चितकथावर्णनन्नाम
द्विशताधिकत्रयोविंशतितमस्सर्गः २२३ ॥

विपश्चित बोले; हे राजन् ! एक सृष्टि और भी मैंने देखी है जो इसी महाआकाश में है–अर्थात् इस महाआकाश से भिन्न नहीं और जहां तुम्हारी भी गमनहीं । जैसे स्वप्ने की सृष्टि कोई जाग्रत् में देखा चाहे तो दृष्टि नहीं आती तैसेही वह सृष्टि है । हे राजन् ! पृथ्वी का एक स्थान मेरे देखतेही देखते परछाहीं की नाईं फुरनेलगा और फिर उस आकाश में वही पहाड़की नाईं भासने लगा, यहां तक कि मनुष्यों के शरीर और दशोदिशाओं को रोंकलिया और आकाश से भी बड़ा भासने लगा इससे आकाश में भी न समाताथा । उसने सूर्य्य और चन्द्रमा को भी मेरे देखतेही देखते ढांपलिया और फिर भूकंप सा आया मानों प्रलयकालही आगया । तब मैंने अपने इष्ट अग्नि देवता की ओर देखकर प्रार्थना की कि, हे भगवन् ! तुम मेरी जन्म जन्म रक्षाकरते आये हो इससे अब भी रक्षा करो; मैं नष्ट होता हूं । तब अग्नि ने कहा तू भय मतकर । फिर मैंने अग्नि में जीव प्रवेश किया, तब अग्निने कहा कि, मेरे वाहन पर सवार होकर मेरे स्थान को चल । फिर अग्निदेव मुझको अपने वाहन तोतेपर चढ़ाकर आकाश मार्गसे ले उड़ा । जब हम उड़े तब पीछे से वह शव त्रोतक पृथ्वीपर गिरा और उसके गिरने से सुमेरु ऐसे पर्वत भी पाताल को चलेगये । वह महाशरीर सैकड़ों सुमेरुकेसमान गिरा और मन्दराचल, मलयाचल, अस्ताचलसे लेकर जो बड़े बड़े पर्वत थे सो भी नीचेको चलेगये । पृथ्वी में जर्जरीभाव से फटकर गढ़े पड़गये और उसके शरीर के नीचे जो वृक्ष, मनुष्य, दैत्य, स्थावर, जंगम आये वे सब नष्ट होगये और बड़ा उपद्रव उदयहुआ; निदान उसके शरीर से सर्व दिशा पूर्ण होगईं और उसके अंग ब्रह्माण्ड से भी पार निकलगये । हे राजादशरथ ! इसप्रकार मैं भयानक दशादेखकर अपने इष्टदेव अग्नि से बोला कि, हे देव ! यह उपद्रव क्योंकर हुआ; यह सब क्या है और ऐसा शरीर क्यों पड़ाहै ? आगे तो कोई भी ऐसा शरीर नहीं

देखासुना ? अग्निने कहा, तू अभी तूष्णीहोरह। यह सब वृत्तांत मैं तुझसे कहूंगा पर प्रथम इसको शान्त होने दे। इसप्रकार अग्नि कहताही था कि देवता, विद्याधर, गन्धर्व और सिद्ध जितने स्वर्गवासी थे वे सब आकर स्थितहुये और विचार करनेलगे कि यह उपद्रव प्रलयकाल विना हुआ है इसके नाश करने को देवीजी की आराधना करनाचाहिये। हे राजन् ! ऐसे विचारकरके वे देवी की स्तुति करनेलगे कि; हे देवी ! शववाहिनी ! काकदेशी चण्डिका ! हम तेरी शरणआये हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षा करो। ऐसे कहकर वे स्तुति करनेलगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहाशववृत्तान्तवर्णनन्नाम
द्विशताधिकचतुर्विंशतितमस्सर्गः २२४॥

विपश्चित बोले; हे राजादशरथ ! उन देवताओं ने स्तुति करके शवकीओर जो देखा तो क्या देखते हैं कि, सातोंद्वीप उसके उदर में समागये हैं; भुजाओं से सुमेरु आदिक पर्वत ढपगये हैं और उसके दूसरे अंग ब्रह्माण्ड को भी लांघगये हैं और साथही पाताल को भी गये हैं। निदान उनकी मर्यादा कहीं पाई नहीं जातीथी एकही अंग से पृथ्वी छिपगई। ऐसे देखकर विद्याधर, गन्धर्व और सिद्धों से लेकर सम्पूर्ण नभचर स्तुति करनेलगे। हे अम्बेचण्डिका ! अपने गण को साथ लेकर इस उपद्रव से हमारी रक्षाकरो-हम तेरी शरण आये हैं। हे राजन् ! जब इसप्रकार स्तुति करके देवता आराधना करनेलगे तब चण्डिका आकाशमार्ग से यक्ष, वेताल, भैरव आदिक गण अपने साथ लेकर आई और जैसे मेघ सर्व दिशाओं को ढांपलेता है तैसेही सर्व ओर से उसके गणों ने आकर आकाशको ढांप लिया और चण्डिका ऐसे तेजरूप को धारेहुये चलीआती थी मानों अग्नि की नदी चलीआती थी। उसके रक्तनेत्र, शिरपर पक्केकेश और श्वेत दांत थे और वह बड़े शस्त्र धारेहुये कई कोटियोजनपर्यन्त उसका विस्तार था। वह सब दिशा और आकाश अपने शरीर से आच्छादित किये; कण्ठ में मुण्डों की माला पहिने; मुरदे वाहनपर आरूढ़ और परमात्मा पद में उसकी स्थिति थी। वह ऐसी महाप्रकाशवान् थी मानों सूर्य्य, चन्द्रमा, अग्नि आदिक के प्रकाशको भी लज्जित कररही है और हाथों में खड्ग, मूसल, ध्वजा, ऊखल आदिक नानाप्रकार के शस्त्र धारे आकाश में तारागण की नाईं गर्ज्जतीहुई गणों सहित इस प्रकार चलीआती थी मानों समुद्र से निकसी साक्षात् बड़वाग्नि चलीआती है जब वह निकट आई तब देवता फिर प्रार्थना करनेलगे कि, हे अम्बे ! इसका नाशकरो व अपने गणोंको आज्ञादीजिये कि; इसका भोजन करें; हम इसको देखकर बड़े शोकको प्राप्तहुये हैं और तेरी शरण हैं, इस उपद्रव से हमारी रक्षाकरो। हे राजादशरथ ! जब इसप्रकार देवताओं ने कहा तब चण्डिका ने प्राणवायु को खींचा और जितना

शवमें रक्तथा वहसब पानकरगई, जैसेसमुद्रको अगस्त्यजीने पानकियाथातैसेही उसनेरक्त पानकिया । जब उससे देवीका उदर और अंग सब पूर्णहोगये और नेत्रलालहो आये तब देवी नृत्यकरनेलगी और उसके गणसब उसशवका भोजनकरनेलगे । कई मुखको खानेलगे; कई भुजाको; कई उदरको; कई वक्षस्स्थलको; कईटांगोंको और कई चरणों को, इसी प्रकार उसके सब अंग गण भोजन करनेलगे । कईगण आंतें लेकर आकाशमें सूर्यके मंडलकोगये; कई गण उस अंगके अन्तपानेको उड़े सो मार्गही में मरगये परन्तु कहीं अन्त न पाया और देवी जो उसशवकी ओर देखतीथी इससे उसके नेत्रों से अग्नि निकलती थी–और उससे मांसपरिपक्वहोताथा और गण भोजनकरतेथे । मांस पकनेकेसमय जो शरीर से कहीं रक्तकी बूंद निकलतीथी उस से मन्दराचल और हिमाचलपर्वत लालहोगये–मानों पर्वतों ने भी लालवस्त्र पहिरे हैं रक्तकी नदियां बहनेलगीं और जो बड़े सुन्दर स्थान और दिशाथीं वे सब भयानक होगईं और पृथ्वी के जीव सब नष्टहोगये पर जो पहाड़की कन्दरा में जाकर दबरहेथे सो बचगये शेष सब नष्टहोगये । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! तुम कहतेहो कि; उसके नीचे प्राणीआकर सब नष्टहोगये और अंग उसके ऐसे कहते हो कि; ब्रह्मांड को भी लांघगये एवम् फिर कहतेहो कि; देवताबचरहे सो क्या कारणहै ? वशिष्ठजी बोले हे रामजी ! जोउसकेशरीर और अंगकेनीचे आये वे तो नष्टहोगये पर मुख और ग्रीवामें कुछ भेदहै तिसमें जो पोलहै और गोदी और टांगकेनीचे के पोलमें और सुमेरु, मन्दराचल, उदयाचल औरअस्ताचल पर्वतोंमेंकुछपोलहै उनकी कन्दरामेंबैठेहुये देवता बच गये और जो अंगके छिद्रोंमेंरहे वे भी बचरहे और कहने लगे कि बड़ाकष्टहै जोहमारे बैठनेके कईस्थान नष्टहोगये । हाय ! वेवृक्ष कहांगये, बरफका पर्वत हमारा कहांगया, उन की सुन्दरता कहांगई, वन और बगीचे कहांगये, चंदन के वृक्ष कहांगये और वे जनों के समूह कहांगये जो हमको यज्ञकरके पूजतेथे ? वे ऊँचे वृक्षकहांगये जिनके ब्रह्मलोक पर्यन्त फूल और टहनीजाती थीं और वह क्षीरसमुद्र कहांगया जिसके मथनेसे बड़ा शब्द हुआ था ? उसके पुत्र जो रत्न, कल्पतरु और चंद्रमाथे वे कहांगये और जम्बूद्वीप कहांगया जिसमें जम्बूके फलकी नदी चलाई थी और सुवर्णवत् जलके चक्र उठते थे ? ईषके रसका समुद्र कहांगया ? हाकष्ट ! हाकष्ट ! शकर के और मिश्री के पर्वत और अप्सराओं के विचरने के स्थान कहांगये और पृथ्वी कहांगई ? वे नंदनवन के स्थान कहांगये जहां हम अप्सराओंके साथ विलास करते थे ? उन विषयोंका अभाव नहीं हुआ मानों हमको शूलचुभते हैं । जैसे फलको कंटक चुभते हैं, तैसेही विषय के आभासरूपी हमको कंटक चुभते हैं । इसी प्रकार वे अतिशोकवान् हुये और कहने लगे हाकष्ट ! हाकष्ट ! इधर विषयोंका स्मरण करके देवता शोककरते थे और उधर

उसशवके जितने अंगथे उनको गणोंने भोजनकर लिया और उससे अघागये । कुछ मेदाका पिंडशेष रहगयाथा उससे बहुत दुर्गन्धि हुई और उस पिंडकी पृथ्वीहोगई इस से उसका नाम मेदिनी होगया और मोटेहाड़ोंके सुमेरुआदिक पर्वतहुये । तब ब्रह्माजी ने देखा कि, सब विश्वशून्यसा होगयाहै इससे उन्होंने संकल्प किया कि, अब फिर मैं सृष्टिरचूं । निदान पूर्वकी नाईं उनने सृष्टि रची और जगत्का सब व्यवहार उसी प्रकार चलनेलगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वयंमाहात्म्यवृत्तांतवर्णनन्नाम द्विशताधिकपंचविंशातितमस्सर्गः २२५ ॥

विपश्चितबोले । हे राजादशरथ ! जब यहकर्महोरहाथा तब मैंने अपने इष्टदेवतासे जो तोतेवाहनपर आरूढ़था, प्रश्नकियाकि, हे महादेव ! सर्वजगत्केईश्वर और सर्वजगत् के भोक्ता ! यहशव कौनथा; कहां स्थितथा और किसप्रकारगिरा ? अग्निबोले, हे राजन् ! जिसका अनन्तत्रिलोकी आभासहै उससे इसशवकावृत्तांत वर्णनहोसक्ताहै; एकत्रिलोकीसे इसकावृत्तांत नहींहोसक्ता । इससेसुनो;हे राजन् ! एकपरमआकाशहै जो चिन्मात्र पुरुष सर्वज्ञ, अनामय और अनन्तहै । वह आत्मतत्त्व केवल अपने आप में स्थित है पर उसका जो आभास संवेदन फुरनाहै, वही किञ्चन होताहै । वह जब किसी स्थान में फुरताहै तब ऐसी भावना होतीहै कि; मैं तेज अणुहूं । उसभावनाके वशसेअणुसी होजाती है । जैसे कोई पुरुष सोयाहै और स्वप्नेमें आपको मार्गमें चलता देखता है, अथवा जैसे तुम स्वप्नेमें आपको पौढ़े देखो तैसेही चित्संवेदनने आपको अणुजानाहै जैसेफुरना ब्रह्माको हुआ है तैसेही धूरके कणकेकाभी अधिष्ठानमें फुरना तुल्य हुआहै । जब उसअणुको शरीरकी भावनाहोती है तब अपने साथ शरीर देखताहै और शरीरके होनेसे नेत्र आदिक इन्द्रियांघन होती हैं तब शरीर और इन्द्रियों से आपको मिलाहुआ जानता है । जब अपना आप जानकर और उनको ग्रहण करके इन्द्रियों से विषयको ग्रहण करता है तब वही चिद्रूपजीव प्रमाद से आधाराधेय भावको मानताहै पर अधिष्ठान सत्तामें कुछ हुआ नहीं; वह अद्वैत सत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपमें स्थितहै । जैसे स्वप्ने में प्रमादसे अपने आपको किसी गृहमें बैठे देखताहै, तैसेही यहां प्रमादसे आधाराधेय भावको देखताहै और प्राण और मन अहंकारको धारताहै और जानताहै कि मेरेमाता, पिताहैं और मैं अनादि जीवहूं । अपना शरीर जानकर आगे पंचभौतिक जगत् शरीरको देखता है और अपने फुरने के अनुसार अंग होते हैं । इसीप्रकार जो आदि शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वमें फुरनाहुआ तो चित्तकलाफुरी और उसने आपको तेजअणुजाना । तब उसमें अहंवृत्ति तो अहंकार हुआ; निश्चयात्मक बुद्धि हुई, चैतनतारूप चित्त और संकल्प विकल्परूप मन हुआ । यह उत्पन्न होकर फिर

तन्मात्रा उपजी, फिर उसके इच्छाद्वाराशरीर और इन्द्रियां उत्पन्नहुई और उनसे देखनेकी इच्छाहुई । उससंवित्‌काल में जब आगे दृश्य भासिआई तब संवित् शक्ति ने आपको प्रमाद द्वेषसे द्वैतजाना और साथही उसके अपने माता, पिता और कुल फुरआये कि; यह मेरी माताहै, यह मेरा पिता है और यहमेरा कुलहै, सो चिरकाल से चला आता है। इसी प्रकार एक दैत्य अहंकार सहित विचरने लगा और एक कुटी में एक ऋषि बैठाथा, उसकुटीकी ओर गया और उसकी कुटी चूर्ण करके जब ऋषि के निकट आया तब ऋषि ने कहा, हे दुष्ट ! तूने यह क्या चेष्टा ग्रहणकी है । अब तू मरकर मच्छर होगा । हे विपश्चित ! उसऋषि के शापरूपी अग्निसे उसका शरीर भस्म होगया और उसकी निराकार चैतन संवित् भूताकाशरूप होगई । फिर आकाश में उसका वायुसे संयोग हुआ और उस ऋषिमौनी के शापकी वासना आन उदय हुई । जैसे पृथ्वी में समय पाकर बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है; तैसेही पंचतन्मात्रा उदय हुई और अपना मच्छरका शरीर जिसकी आयुर्बल दो अथवा तीन दिनकी होती है अज्ञानसे भासिआया । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जीव जो जन्मपाते हैं सो जन्मसे जन्मांतरको चलेआते हैं अथवा ब्रह्मसे उपजे होते हैं—यहकहो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! कई जन्मसे जन्मांतर चलेआते हैं और कई ब्रह्मासे उपजे होते हैं । जिनको पूर्ववासना का संसरना होता है वे वासनाके अनुसार शरीर धारते हैं और जन्मते जन्मांतरको चलेआते हैं और जिनको संस्कार विना भूत भासिआते हैं वे ब्रह्मासे उत्पन्न होते हैं । हे रामजी ! आदिमें सबजीव संस्काररूपी कारणविना उत्पन्नहुये हैं और पीछेसे जन्मांतर होताहै । जो संस्कार विना भूतभासे, उसे जानिये कि; ब्रह्मासे उपजा है और जिसको संस्कारसे सृष्टिभासे उसे जानिये कि; इसका जन्मांतरहै । यह दोप्रकारसे भूतोंकी उत्पत्ति मैंने तुमसे कहीहै अब फिर उसमच्छरका क्रमसुनो । हे रामजी ! जब उसने मच्छरका जन्मपाया तबकमलनियों और हरीघास,तृण और पत्तोंमेंमच्छरों को साथलिये रहनेलगा । निदान वहां एकमृगआया और उसका चरण उसमच्छर पर इसप्रकार आ पड़ा जैसे किसीपर सुमेरु पर्वत आपड़े । तब वह मच्छर चूर्ण होकर मृतकहोगया और मृतक होने के समय मृग की ओर देखने लगा इससे मर के तत्कालही मृगहुआ और वनमें विचरने लगा फिर एककालमें उसको बधिक ने देखकर बाण चलाया और उसबाणसे वह मृग बेधागया । बेधेहुये मृग ने बधिक की ओर देखा इसलिये वह मरके बधिक हुआ और धनुषबाण लेकर मृग और पक्षियों को मारनेलगा । एक समय में वह वनको गया और वहां एक मुनीश्वर को देख उसके निकट जा बैठा, तब मुनीश्वर ने कहा, हे भाई ! तूने यह क्या पापचेष्टा का आरम्भ किया है ? इस चेष्टा से तो तू नरक को प्राप्त होवेगा इससे किसी जीवको दुःख न

दे। जिनभोगों के निमित्त तू यह चेष्टाकरता है सो बिजुली के चमत्कारवत् हैं। जैसे मेघमें बिजुली का चमत्कार होता है और फिर मिटजाता है, तैसेही ये भोगभी होकर मिटजाते हैं और जैसे कमल के पत्रपर जलकी बुंद ठहरती है पर उसकी आयुर्बल कुछनहीं होती क्षणपल में गिरपड़ती है; तैसेही इस शरीर की आयुर्बल कुछनहीं है। जैसे अंजली में जलडाला नहीं ठहरता तैसेही यौवनअवस्था चलीजाती है। क्षण भंगुररूप वृक्षहै और यौवन असार है उसमें भोगनाक्या है? इनसे कदाचित् शान्ति नहींहोती। जो तुझको शांतिकी इच्छाहो तो निर्वाण का प्रश्नकर, तब तू दुःख से मुक्त होगा। अपने हिंसाकर्म को त्यागदे इसके करने से नरकमें जावेगा और कदाचित् शान्ति तुझको न प्राप्तहोगी। तू अपने हाथसे अपने चरण पै क्यों कुल्हाड़ा मारताहै और अपने नाशके निमित्त तू क्यों विषकाबीज बोताहै? इसकर्म से तू संसार दुःख में भटकता फिरेगा और शान्तिमान् कदाचित् न होगा। इससे अबतू वही उपाय कर जिससे संसार समुद्रसे पारहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमच्छरव्याधवर्णन्नाम द्विशताधिकषड्विंशतितमस्सर्ग्गः २२६॥

अग्निबोले; हे राजन्! जब इसप्रकार ऋषीश्वरने उस बधिक से कहा तब उसने धनुषबाण को डालदिया और बोला हे भगवान्! जिसप्रकार मैं संसार समुद्रसे पारहो जाऊं वहउपाय कृपाकरके मुझसे कहिये परन्तु वहकैसा उपायहो जो न दुःसाध्य और न मृदुहो अर्थात् जो अल्पभी न हो और कठिन भी न हो। ऋषीश्वर बोले, हे बधिक! मनको एकाग्रकरनेकानामशमहै और इंद्रियोंके रोकनेको दमकहतेहैं—वही मौनहै। मन को एकाग्र करनेसे अन्तःकरण शुद्धहोताहै और अन्तःकरणकी शुद्धतासे आत्मज्ञान उपजता है इससे संसार भ्रम निवृत्तहोकर परमानन्दकी प्राप्ति होती है। अग्निबोले, हे राजन्! इस प्रकार जब ऋषीश्वरने कहा तब वहबधिक उठखड़ाहुआ और प्रणाम करके तपकरनेलगा। इन्द्रियों को उसने संयममेंरक्खा और जो अनिच्छित यथाशास्त्र प्राप्त हो उसका भोजन करनेलगा और हृदयसे सब क्रियाओं की मौनवृत्ति धारण की। जब उसको कुछकाल तपकरतेव्यतीत हुआ तब उसका अन्तःकरण शुद्धहुआ और ऋषीश्वरके निकटआ प्रणामकरके बैठगया और बोला; हे भगवन्! बाहर जो दृश्यहै सो हृदयमें किसप्रकार प्रवेशकरतीहै और स्वप्नेकी सृष्टिअन्तरकी बाह्यरूपहो कैसेभासती है? यह कृपाकरके कहो। ऋषीश्वरबोले, हे बधिक! यह बड़ागूढ़ प्रश्न तूने कियाहै। यही प्रश्न मैंनेभी गणपतिसे कियाथा और उनकेकहनेसे मैंने जोग्रहण कियाहै सो सुन। एकसमय यही सन्देह दूरकरनेकाउपाय मैंनेभी कियाथा और पद्मा-

सनबाँध, बाहरकी इन्द्रियों को रोक मन में लगा मन, बुद्धि आदिकको पुर्य्यष्टका में स्थित किया। फिर पुर्य्यष्टकाको भी शरीरसे विरक्तकिया और उसको आकाश में निराधार ठहराया। निदान जब विलक्षणहुआ चाहूं तब विलक्षण होजाऊं और जब शरीर में व्यापाचाहूं तब व्यापजाऊं। हे वधिक! इसप्रकार जब मैं योगधारणा से पूर्ण हुआ, तो एककाल में एक पुरुष हमारी कुटीके पास सोरहाथा और उसके श्वास भीतर बाहर आते जाते थे। उसको देखकर मैंने यह इच्छाकी कि; इसके भीतरजाकर कौतुक देखूं कि, क्या अवस्था होती है। ऐसे विचारकरके मैंने पद्मासनबांधा औरयोगकी धारणाकरके उसके श्वासमार्ग से भीतर प्रवेश किया। जैसे उष्ट्र ऊँघताहो और उसके श्वासमार्ग से सर्पप्रवेशकरे। तैसेही मैंने प्रवेश किया तो उसके भीतर अपने अपने रसको ग्रहण करने वाली नाड़ियां मुझे दृष्टि आईं। कईवीर्य को ग्रहण करनेवाली हैं, कई रक्त और कफ को ग्रहणकरती हैं, कई मलमूत्रवाली हैं और अनेक विकार जो उसके भीतर थे सो सब देखे। इससे मैं अप्रसन्नभया कि; महासंकल्परूप स्थान है और रक्त मज्जा संयुक्त महानरक के तुल्य अन्धकार है। फिर और आगेगया तो वहां एक कमल देखा कि, उसमें उसका संवेदनफुरताहै और संवित्शक्ति जो महातेजोवान् हृदयाकाश है सोभी वहां स्थितहै। वही त्रिलोकीका आदर्श है और त्रिलोकी में जो पदार्थ हैं उनका दीपक है और सर्व पदार्थों की सत्तारूप है। ऐसा संवित्रूपी जीवसत्ता वहां स्थित था उससे मैं तद्रूपताको प्राप्तहुआ। फिर मैंने सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पर्व्वत, समुद्र, देवता, गन्धर्व आदि नानाप्रकार के स्थावर-जंगम विश्व को देखा। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित सम्पूर्ण सृष्टि को उसके भीतर देखकर मैं आश्चर्य्यवान् हुआ कि; उसके भीतर सृष्टि क्योंकर भासी। हे वधिक! उसने जाग्रत् में उस सृष्टिका अनुभव इन्द्रियों से कियाथा और भीतर चित्तत्त्व में उसका संस्कार हुआ था वही भीतर भासने लगा और भीतर जो भूतसत्ताथी सो उसके स्वप्ने में सृष्टिरूप बाहर बनी और मुझको प्रत्यक्ष भासने लगी। जैसे जाग्रत् प्रत्यक्ष अर्थाकार भासती है, तैसेही मुझको यह सृष्टि भासने लगी। हे वधिक! इस जाग्रत् सृष्टि और उससृष्टि में मैंने कुछ भेद न देखा-दोनों तुल्यहैं। चिरपर्य्यन्त प्रतीति का नाम जाग्रत् है और अल्पकाल की प्रतीति का नाम स्वप्ना है पर स्वरूप से दोनों तुल्यहैं। जो उसके स्वप्ने के अनुभव में था सो मुझको जाग्रत् भासा और जो मुझको जाग्रत्भासा सो उसको स्वप्ना भासा। निद्रादोष से उसको स्वप्नाहुआ सो उसको भी उसकाल में जाग्रत्रूप भासने लगा क्योंकि; स्वप्ना जो स्वप्नरूप है सो जाग्रत् में स्वप्ना है और स्वप्न में तो जाग्रत् है; तैसे जाग्रत् भी अपने कालमें जाग्रत् है, नहीं तो स्वप्नरूपहै सो जाग्रत् में भी जो सत्य प्रतीतिहै वही प्रमाद है। इन दोनों में कुछ भेदनहीं क्योंकि; जाग्रत् और स्वप्न दोनोंका

अधिष्ठान चैतन्यसत्ता परब्रह्महीं है और उसी के प्रमाद से प्राणके साथ सम्बन्धहुआ है। जब प्राणसे चित्तसंवेदन मिलती है तब उसफुरनरूपके इतने नाम होते हैं—जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकारआदिक। वही संवेदन जो बाह्यरूपहो फुरती है तब जाग्रत् रूप जगत्‌हो भासता है और पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ पाँचकर्मइन्द्रियां और चतुष्टय अन्तः-करण ये चौदह अपने अपने विषय को ग्रहण करते हैं—इसका नाम जाग्रत् है जब चित्तस्पन्द निद्रादोष से अन्तर्मुख फुरता है तब नानाप्रकार की स्वप्न की सृष्टि देखताहै और उसकाल में वही जाग्रत्‌रूपहो भासता है। अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है जब संवेदन उसकी ओर फुरती है और बाह्य विषय के फुरने से रहित अफुरन होती है तब न जाग्रत् भासती है और न स्वप्न भासती है केवल निर्विकल्प आत्मसत्ता शेष रहती है। हे वधिक! मैंने विचार देखा है कि, जगत् और कुछ वस्तुनहीं फुरनेही का नाम जगत् है। जब चित्तसंवेदन फुरनरूप होती है तब जगत् भासता है और जब चित्तसंवेदन फुरने से रहित होती है तब जगत् कल्पना मिटजाती है; इसलिये मैंने निश्चय किया है कि; वास्तव में केवल चिन्मात्र है। जगत् कुछ वस्तु नहीं मिथ्या कल्पनामात्र है। हे वधिक! जगद्भावना त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहोरहो। अब वही वृत्तान्त फिर सुनो। जब उसके भीतर मैंने स्वप्न और जाग्रत् अवस्था देखीं तब मैंने यह इच्छाकी कि, सुषुप्ति अवस्था भी देखूं और विचार किया कि; सुषुप्ति प्रलय का नाम है जहां द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनोंका अभाव होजाता है परन्तु जहां मैं देखनेवाला हुआ वहां महाप्रलय कैसेहोगी और जो मैं जाननेवाला न होऊं तब सुषुप्ति को कौन जानेगा। हे वधिक! तब मैंने विचार के देखा कि, और सुषुप्ति कोई नहीं जहां चित्तकी वृत्ति नहीं फुरती उसीकानाम सुषुप्ति है। ऐसे विचार करके मैंने चित्तको फुरने से रहितकिया तब उसकी सुषुप्ति देखी तो क्यादेखा कि; न कोई वहां अहं और त्वं शब्दहै; न शुभहै; न अशुभहै; न जाग्रतहै; न स्वप्न है और न सुषुप्ति की कल्पना है; सर्व कल्पना से रहित केवल चित्तसत्ता मैंने देखी। जो तुमकहो कि, सुषुप्ति निर्विकल्प तुमने कैसे देखी तो उसका उत्तर यह है कि; अनुभव ज्ञानरूप आत्मसत्ता सर्व्वदाकाल में ज्योंकी त्यों है और उसमें जैसा आभास फुरताहै तैसाही ज्ञान होताहै। यह जो तुम भी दिन प्रतिदिन देखतेहो और सुषुप्ति से उठकर जानतेहो कि, मैं सुख से सोयाथा सो अनुभवसेही देखतेहो; तैसेही मैंनेभी वहदेखा जहां चित्तसंकल्प कोई नहीं फुरता केवल निर्विकल्प है परन्तु सम्यग्बोध से रहित है उस अभाववृत्तिका नाम सुषुप्ति है। फिर मुझको तुरीया देखने की इच्छाहुई पर तुरीया देखनी महाकठिन है। तुरीया साक्षीभूत वृत्तिका नामहै, वह सम्यक्‌ज्ञानसे उत्पन्न होती है और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीभूत है और सुषुप्ति की नाईं है। जैसे सुषुप्ति में अहं त्वं आ-

दिक कल्पना कोई नहीं होती तैसेही तुरीया में भी नहीं। उसमें ब्रह्मका सम्यग्बोध होता है और सुषुप्ति जड़ीभूततमरूप अविद्या होती है। तुरीया में जड़ता नहीं होती; सुषुप्ति और तुरीया में इतनाही भेद होता है। सच्चिदानन्द साक्षी वृत्ति होती है। सम्यग्बोधकानाम तुरीयपद है और तुरीय इससे भिन्ननहीं। ऐसे निश्चयसे मैंने उसको देखा। हे वधिक! चारों अवस्था मैंने माया अर्थात् फुरनेसहित भिन्नभिन्नदेखीं पर आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है उसमें न कोई जाग्रत् है न स्वप्न है, न सुषुप्ति है और न तुरीया है—इनका भेद वहाँ कहीं नहीं। आत्मसत्ता सदा अद्वैत है और ये चारचित्त संवेदन में होती हैं। हे वधिक! ऐसा अनुभव करके मैं बाहरआया और बाहर भी मुझको वैसेही भासनेलगा; तब मैंने कहा कि, यही जगत् तो मुझको उसके भीतर भासाथा यह बाहर कैसे आया? तब मैंने फिर उसके भीतर प्रवेश किया। प्रथम जो उसके भीतर मैंने प्रवेशकियाथा और उसके भीतरसृष्टि देखीथी तब उसकी और मेरी संवेदन मिलगई थी पर जब मैंने अपनी संवेदन उससे भिन्नकी तब दो ब्रह्माण्ड होगये और एक उसकी संवेदन फुरन में और एक मेरी संवेदन में भासनेलगा क्योंकि; मैंने प्रथम उसकी सृष्टि को देख और अर्थरूप जानकर ग्रहण किया था पर उसका संस्कार होगया। आत्मसत्ताके आश्रय जैसे संवेदन फुरतीगई तैसेहोकर भासनेलगा। उसका स्वप्न मुझको जाग्रत् होकर भासनेलगा—जैसे एक दर्पणमें दो प्रतिबिम्ब भासें, तैसेही एक अनुभव में मुझे दो सृष्टि भासनेलगीं। तब मैंने विचार किया कि, सृष्टि संकल्परूप है; संकल्प जीव २ का अपना अपनाहै और अपने २ संकल्प की भिन्न भिन्न सृष्टि है इससे अनुभव के आश्रय जैसा जैसा संकल्प फुरता है तैसी तैसी सृष्टि भासती है; सृष्टि का कारण और कोई नहीं। हे वधिक! अष्टनिमेषपर्यन्त मुझको दो सृष्टि भासती रहीं, फिर मैंने उसके और अपने चित्तकी वृत्ति इकट्ठी करके मिलाई तो दोनों तद्रूप होगये—जैसे जल और दूध मिलकर एकरूप होजाते हैं और दूसरी सृष्टिका अभावहोगया। जैसे भ्रमदृष्टि से आकाशमें दो चन्द्रमा भासते हैं और भ्रमकेगये से दूसरे चन्द्रमाका भाव अभाव होजाता है; तैसेही द्वितीय वृत्ति के अभाव हुये से दूसरी सृष्टि का अभाव होगया। निदान एकही सृष्टि भासनेलगी और नानाप्रकार के व्यवहार होते दृष्ट आवें और चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र स्पष्ट भासनेलगे। कुछकाल के उपरान्त चित्त की वृत्ति सुषुप्ति की ओर आई और स्वप्ने की सृष्टि का विस्तार लीन होनेलगा—जैसे सन्ध्या के समय सूर्यकी किरणें सूर्य्य में लय होजाती हैं। जब वह सृष्टि चित्त में लय होनेलगी तब स्वप्ने की सृष्टि मिटगई; सुषुप्ति अवस्था हुई और सर्व्व इन्द्रियां स्थिर होगईं। हे वधिक! सुषुप्ति तब होती है जब जीव अन्न भोजन करता है और वह समवाही नाड़ीपर आन स्थित होता है; तब जाग्रत्वाली नाड़ी ठहरजाती

है, उससे प्राण भी ठहरजाते हैं और तब मन भी ठहरजाता है–उसका नाम सुषुप्ति है। जब मन फिर फुरता है तब जाग्रत् होती है। इतना सुन रामजी ने पूंछा, हे मुनीश्वर! जब मन प्राणोंही से चलता है तब मनका अपना रूपतो कहीं न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमार्थ से कहिये तो देहही नहीं है तो मन क्या हो। जैसे स्वप्ने में पहाड़ भासते हैं, तैसेही यह शरीर भासता है क्योंकि; जो सबका आदिकारण कोई नहीं इससे जगत् मिथ्याभ्रम है–केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। जो तत्त्ववेत्ता हैं उनको तो ऐसेही भासता है और अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते जैसे सूर्य उलूक के अनुभव को नहीं जानता और उलूकसूर्य्य के निश्चय को नहीं जानता, तैसेही ज्ञानी और अज्ञानीका निश्चय भिन्न २ होता है। शुद्ध चिन्मात्र आकाश में जगद्भ्रम कोई नहीं पर फुरनभाव से अपने चेतन वपुको भूल ज्ञान विनाही मनभावको प्राप्त होता है और तब मन आत्मसत्ता के आश्रय होकर प्राणवायु को अपना आश्रयभूत कल्पता है कि; मेरा प्राण है। हे रामजी! फिर जैसे २ मन कल्पना करता है, तैसे तैसे देह; इन्द्रियां और जगत् भासते हैं। परब्रह्म सर्वशक्तिसंपन्न है उस में जैसी जैसी भावना से मन फुरता तैसाही तैसा रूप हो भासता है–वास्तव में और कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। मनका फुरना जैसे जैसे दृढ़हुआ है तैसेही तैसे देह; इन्द्रियां और जगत् भासनेलगा है। जैसे स्वप्ने में कल्पनामात्र जगत् भासता है तैसेही इसे जानो। हे रामजी! जितने विकल्प उठते हैं वे सब मनके रचेहुये हैं। जब मन उदय होता है तब यह फुरना होता है कि, यह पदार्थ सत्य है और यह असत्य है जब चित्तशक्ति का मनसे सम्बन्ध होता है तब प्रथम प्राण उदय होते हैं और प्राणको ग्रहण करके मन कहता है कि, मैं जीवहूं; प्राणही मेरी गति है और प्राण विना मैं कहांथा। फिर कहता है कि, जब प्राण का वियोगहोगा तब मैं मरजाऊंगा–फिर न रहूंगा। फिर ऐसे कहता है कि, मुआ हुआ भी मैं जाऊंगा। हे रामजी! जब तक चाहिये तबतक ये तीन विकल्प उठते हैं और संशयवाले को न इसलोक में सुख है और न परलोक में सुख है जबतक आत्मबोध का साक्षात्कार नहीं होता तबतक चित्त भी निर्वाण नहीं होता और तीनों विकल्पभी नहीं मिटते। हे रामजी! मनके विस्मरण का उपाय आत्मज्ञान से इतर कोई नहीं और मनके शान्त हुये विना कल्याण भी नहीं होता। दो उपायों से मन शान्त होता है मनकी वृत्ति स्थितकरनी और प्राण स्पन्द के रोंकने से मन स्थित होता है तब प्राण रुकजाते हैं और प्राणके स्पन्द को रोंकने से मन स्थित होताहै। जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त भी क्षोभता है और तभी आध्यात्मिक और आधिभौतिक तापों की अग्नि से जलता है। मनके स्थित करने से परमसुख प्राप्त होता है सो मनकी स्थिति दो प्रकार की है–एक ज्ञानकी स्थिति है

और दूसरी अज्ञानकीस्थिति है । जब प्राणी बहुत अन्न भोजनकरता है तब वह नाड़ी पर जास्थित होताहै और प्राणठहरजाता है और जब प्राण ठहरे तब मनभी जड़ीभूत होजाता है—उसीका नाम सुषुप्ति है । वे नाड़ी कौनहैं जिनपर अन्नजाय स्थित होता है ? वे नाड़ी वेही हैं जिनके मार्ग से जाग्रत् में प्राण निकलते हैं । जब वासना सहित वेही नाड़ी रोंकीजाती हैं तब मन सुषुप्त होजाताहै । यह अज्ञानी के मनकी स्थिति है क्योंकि; जड़ता है सो संसार को लिये शीघ्रही फिर उठआता है । जैसे पृथ्वी में बीजसमयपाकर अंकुर लेआता है, तैसेही वह संस्कार से फिर सुषुप्ति से उठताहै । जो ज्ञानवान् सम्यक्दर्शी है उसका चित्त चैतन्यताके लिये स्थित होताहै । वह चैतन्यता दो प्रकारकी है—एकतोयोगीको होती है जिससे वह समाधिमें मनको स्थित करताहै । वह समाधिनिष्ठ चित्तहै; जड़ता नहीं । जैसे सुषुप्तिमें जड़ता होतीहै तैसी जड़ता वह नहींहै । दूसरे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त के चित्तकी वृत्ति सम्यक्ज्ञान से स्थितहोती है क्योंकि, उसका चित्त वासनासे रहितहै । यही स्थिति है । जिसकाचित्त इसप्रकार स्थित है उसी पुरुषको शांतिहै और जिसका चित्त वासनासहित है उसको कदाचित् शान्ति नहीं प्राप्त होती और उसके दुःखभी नहीं मिटते । उसे निर्वासनिकचित्त करनेको सम्यक् ज्ञानका कारण यह मेराशास्त्रही है । इसके समान और कोई उपाय नहीं । हे रामजी ! यह जो मोक्ष उपायशास्त्र मैंने कहाहै उसके विचारसे शीघ्रही स्वरूपकी प्राप्ति होवेगी; इससे सर्वदा इसीका विचार कर्त्तव्य है । जब इसको भलीप्रकार विचारोगे तब चित्त निर्वासनिक होजावेगा । अब वही वधिकका प्रसंग सुनो । मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! जब मैंने उस शव पुरुषके चित्तमें प्राणके मार्ग से प्रवेशकिया तब क्या देखा कि, उसकेप्राण रोंकेगये हैं और अन्नकरके जाग्रत्नाड़ी जो फुरती थी सो रोंकीगई है क्योंकि; अन्न पचा न था इसकारण वह सुषुप्ति में था । उसकी सुषुप्ति में मुझको भी अपना आप विस्मरण होगया । जब कुछ अन्नपचा तब उसके प्राण फुरनेलगे और जब प्राण फुरे तब चित्तकी वृत्ति भी कुछ जड़ताको त्यागती भई पर संपूर्ण जड़ताको त्याग नहीं किया । प्राणके फुरनेसे चन्द्रमा, सूर्य आदिक जो कुछ विश्व है सोभी फुरा तब मैंने नानाप्रकारके जगत् को देखा और मुझे अपना पूर्वसंस्कार भूलगया । निदान वहां मैंभी अपने कुटुम्बमें रहनेलगा; साथही उसके मुझे अपनीकुटी भासी और स्त्री, पुत्र, भाई, जन, बांधव सब भासिआये । फिर मेरेमें देखते देखते प्रलयकालके पुष्कर मेघ गर्जनेलगे; मूशलधार जलबरसनेलगा और सातों समुद्र उछलनेलगे । निदान जो कुछ प्रलयकालके उपद्रव होते हैं सोभी उदय हुये । प्रथम अग्निलगी; जब अग्नि लगचुकी और सब स्थान जलगये तब जलका उपद्रव उदय हुआ तब मैंने क्या देखा कि, नगर, ग्राम, पुर, मनुष्य, पशु, पक्षी सब बहतेजाते हैं और हाहाकार शब्द करते

निदान बड़ा क्षोभहुआ और मैंने एक आश्चर्य्य देखा कि, मेरीकुटीभी बहीजाती है और स्त्री, पुत्र, भाई, जन इत्यादिक सब जलके प्रवाह में बहेजाते हैं। जिस स्थान में हमथे वह स्थानभी बहाजाता था और मैंभी लुढ़कता जाताथा। निदान बहते २ मुझको ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ कि, कहने में नहीं आता। एक तरंगसे तो मैं ऊर्ध्व को चलाजाऊं और एक तरंग के साथ नीचे चलाजाऊं। तब मुझे अपना पूर्वशरीर स्मरण आगया और जितनाकुछ जगत्है वह मुझको सब भासनेलगा; मिथ्या राग द्वेष सब मिटगया और शरीरकी सब चेष्टा उसीप्रकार होनेलगी कि, तरंग के साथ कभी ऊर्ध्व और कभीनीचे आपड़ा परन्तु हृदयमेरा शान्त होगया। उसकालमें नगर, देश और मंडल बहतेजाते थे और त्रिनेत्रसदाशिव और विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध आदि सब बहतेजातेथे। अष्टदल कमलकी पंखड़ीपरबैठे ब्रह्माजी और इन्द्र, कुबेर और विष्णुजी अपनी २ पुरियों सहित बहतेजाते थे और पहाड़, द्वीप, लोकपाल भी बहतेजाते थे। पातालवासी सब प्रलयके जलमें बहतेजाते थे और यमभी अपने वाहनसहित बहतेजातेथे; ऐसीसामर्थ्य किसीकोनथी कि, किसीकोकोई निकाले क्योंकि; आपही सब बहतेजातेथे और डूबते और गोतेखातेथे। बड़े ऐश्वर्यसहित देवभी बहे जातेथे। जो संसारसुखके निमित्त यत्न करते हैं वे महामूर्ख हैं और जिनके निमित्त यत्न करते हैं वे सुख और सुखके देनेवाले सब बहतेजाते थे तैसेही सब ऋषीश्वर भी बहते जाते थे। हे वधिक! मैंने इसप्रकार उसके स्वप्ने में महाप्रलय होतीदेखी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहृदयान्तरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनन्नाम द्विशताधिकसप्तविंशतितमस्सर्ग्गः २२७॥

वधिकने पूंछा, हे मुनीश्वर! यह जो महाप्रलय तुमनेकही कि, जिसमें ब्रह्मादिक भी बहतेजातेथे सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिकतो स्वतन्त्र ईश्वरहैं परन्तु परतंत्रहुये बहतेजाते तुमने कैसे देखे? वे अन्तर्द्धान क्यों न हुये? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! यह जो प्रलयहुई सो क्रमसे नहीं हुई। जब क्रमसे प्रलय होती है तब यह ईश्वर समाधि से शरीरको अंतर्द्धान करलेते हैं परन्तु अन्तर्द्धान होनेका जलचढ़जाताहै। इनका कुछ नियम नहीं क्योंकि, यह जगत् भ्रमरूपहै; इसमें क्या आस्था करनी है स्वप्ने में क्या नहीं बनता और स्वप्न भ्रांति करके विपर्ययभी होते हैं इसलिये उनको बहते देखाहै। व्याधने पूंछा, हे मुनीश्वर! जब वह स्वप्नभ्रमथा तो उसका वर्णन क्या करना? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! तुझसे इसकी समानताका अर्थ कहताहूं इससे कि, स्थावर जंगम जगत् बहतादेखा और साथही मैं भी बहताजाताथा और जलकी लहरें उछलतीथीं और उनतरंगों में मैंभी उछलताथा परन्तु मुझको कुछ कष्ट न होताथा। निदान मैं बहता बहता एक किनारे पर जा लगा और उसके पास एक पर्वतथा उसकी कन्दरा में जा

स्थितहुआ । वहां मैंने देखा कि, जीव बहते हैं और जलभी सूखता जाताहै । जलके सूखनेसे कीचड़होगई; किसी ठौरमें जलरहा उसमें कईडूबते दृष्टआतेथे; कहीं ब्रह्मा के हंस; कहीं यम के वाहन और कहीं विष्णुके वाहन कीचड़में पहाड़कीनाईं डूबते दृष्टआतेथे । कहीं इन्द्रके हाथी और विद्याधरआदि वाहन कीचड़में दृष्टआये और देवता, सिद्ध, गन्धर्व, लोकपाल दृष्टआये इससे मैं आश्चर्यवान् हुआ । हे वधिक ! इसप्रकार देखताहुआ जब मैं पहाड़की कंदरामें सोगया तब मुझको अपनी संवित्में स्वप्नआया और चन्द्रमा, सूर्य्यआदिक नानाप्रकार के भूत जलतेदेखे; नगर और पर्वत जलते देखे और जगत् बड़े खेदको प्राप्तहुआ देखा । जब रात्रिहुई तो मैं वहां सोयाहुआस्वप्ने को देखा किया और दूसरे दिन उसमें मैंने फिर जगत् देखा और सूर्य, चन्द्रमा, देश, नदियाँ, समुद्र, मनुष्य, देवता, पशु,पक्षी नानाप्रकारकी क्रियासंयुक्त दृष्ट आनेलगे । मैंने अपना षोड़शवर्षका शरीर देखा और मुझे अपने पिता और माता दृष्टआये । उनको देख मैं पिता और माताजानूं और वे मुझको अपना पुत्र जानें । निदान स्त्री, कुटुम्ब, बांधव समस्त मुझको दृष्टआये और मैं बोधसे रहित और तृष्णासहित था इससे मुझे अहंममका अभिमान आन फुरा और मैंने एकग्राममें जहां मेरा गृहथा ईंट और काष्ठ संग्रह करके एककुटी बनाई और उसके चौफेरबूटे लगाकर एकआसन बनाया जहां कमण्डलु और माला पड़ीरहे । मैं ब्राह्मणथा, मुझको धन उपजानेकी इच्छाहुई और जो कुछ ब्राह्मणका आचार चेष्टाथी सोभी मैं करताथा । बाहरजाके ईंट और काष्ठलेआऊं और आनकर कुटी बनाऊं । यह चेष्टा हमारी होनेलगी और शिष्य और सेवक हमारीपूजाकरनेलगे और मैं यथायोग्य उनको आशीर्वाददूं । इसप्रकार गृहस्थाश्रममें मैं चेष्टाकरूं और मुझको यह विचारउपजे कि, यह कर्तव्यहै इसकेकरने से भला होताहै । नदियां और तालोंमें मैं स्नान करूं; गो की टहलकरूं और अतिथिकी पूजाकरूं । हे वधिक ! इसप्रकार चेष्टाकरता मैं सौवर्षपर्यंत वहांरहा तब एककाल मेरे गृह में एकमुनीश्वर आया तो प्रथम मैंने उसको स्नानकराया; फिर भोजनसेतृप्त किया और रात्रिके समय उसको शय्यापर शयनकराया । इसप्रकार उसकी टहलकर रात्रिको हम वार्त्ता चर्चा करनेलगे उसमें उसने मुझको बड़े पर्वत, कन्दरा और चित्त के मोहनेवाले सुन्दरदेशस्थान और नानाप्रकारके स्वादसुनाये और कहनेलगा कि, हे ब्राह्मण ! जितने सुन्दरस्थान और संवाद तुझको सुनाये हैं उनसबों में सार एक चिन्मात्ररूपहै इससे सब चिन्मात्रस्वरूप है । सब जगत् उसका चमत्कार और आभासकिंचन है उससे कोईवस्तु भिन्ननहीं । इससे हे ब्राह्मण ! उसीसत्ताको ग्रहणकरो जो सबका अनुभव और परमानन्दस्वरूप है । उसीमें स्थित होरहो । हे वधिक ! जब इसप्रकार उस मुनीश्वरने मुझसे कहा तब आगे जो मेरामन योगसे निर्मलथा इससे

उसके वचन मेरेचित्तमें चुभगये और अपने स्वभावसत्तामें मैं जागउठा। तब मैंने क्या देखा कि, सबमेराही संकल्पहै, मुझसेभिन्नकोईनहीं; मैंतो मुनीश्वरहूं और यह स्वप्ना आयाथा। मैंनेजागकरदेखा कि, उसीपुरुषका स्वप्नाथा; तब मेरे चित्तमें आया कि, किसी प्रकार इसकेचित्तसे बाहरनिकलूं और अपनेशरीरमें प्रवेशकरूं। तब मैंने फिर विचारा कि यहजगत् तो उसपुरुषकावपु है, वहीपुरुषविराट् है जिसकेस्वप्ने में यहजगत् है परन्तु उसपुरुषको अपनेविराट्स्वरूपका प्रमादहै इससे जैसावपु हमारावनाहै उसकेस्वप्ने में वहभी तैसाएकविराट् इतरबनपड़ाहै तो फिर उसविराट्को कैसेजानिये कि, उसके चित्तसे निकलजावे। हे वधिक! इसप्रकार विचारकरके मैंने पद्मासनबांधा और योगकीधारणा कर उस विराट्स्वरूपके शरीरकोदेखा। फिर जहां चित्तकीवृत्ति फुरतीथी उसके साथ मिलकर और प्राणकेमार्गसे निकलकर अपनीकुटीको देखा और उसमें अपनेशरीरको पद्मासन बांधेदेखा। तब उसमें मैंनेप्रवेशकरके नेत्रखोले तो अपने सन्मुख शिष्यबैठेदेखे और वह पुरुष सोयाथा उसको देखा। एकमुहूर्त्त बीता तब मैं आश्चर्यवान् हुआ कि, भ्रममें क्या २ चेष्टा देखपड़ती है कि, यहां एक मुहूर्त्तबीता है और वहां मैंने सौवर्षका अनुभवकिया। बड़ाआश्चर्य है कि, भ्रमसे क्या नहीं होता। फिर मेरे मनमें उपजी कि, उसके चित्तमें प्रवेश करके कुछ और कौतुक भी देखूं। तब फिर प्राणके मार्ग्ग से उसके चित्तमें मैंने प्रवेशकिया तो क्यादेखा कि, अगिली कल्पना व्यतीत होगई है; बांधव, पुत्र, स्त्री, माता, पिताआदिक सबनष्टहोगयेहैं और दूसरा कल्पहुआहै उसकी भी प्रलयहोतीहै। बारहसूर्यउदयहोकर विश्वजलानेलगेहैं; बड़वाग्नि जलानेलगी है; मन्दराचल और अस्ताचल पर्वत जलकर टूक टूक होगये हैं; पृथ्वी जर्ज्जरीभावको प्राप्तहुई है; स्थावर जंगम जीव हाहाकार शब्द करते हैं; बिजुली चमत्कार करती है; और बड़ाक्षोभ उदयहुआ। हे वधिक! मैं अग्नि में जापड़ा और मेराशरीर भी जल-नेलगा परन्तु मुझको कष्ट कुछ न हुआ। जैसे किसीपुरुषको अपने स्वप्नेमें कष्ट प्राप्त हो और जागउठे तो कुछ कष्टनहींहोता तैसेही अग्निका कष्ट मुझको कुछ न हुआ। मैं आपको वहीरूप जाग्रत्वाला जानताथा और जगत्प्रलयको भ्रममात्र जानता था इसकारण मुझको कष्ट न होताथा। और चेष्टातो मैंभी उसीप्रकार देखता और करता था परन्तु हृदय से ज्योंका त्यों शीतलचित्त था और और लोग जो थे सो अग्नि के क्षोभ से कष्ट पाते थे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेहृदयान्तरप्रलयाग्निकदाहवर्णनन्नाम द्विशताधिकाष्टविंशतितमस्सर्ग्गः २२८॥

मुनीश्वरबोले, हे वधिक! प्रलयके क्षोभमें मैंभी भटकताथा और जलमें बहताथा परन्तु पूर्व का शरीर मुझको विस्मरण न हुआ इसकारण शरीरका दुःख मुझको

स्पर्श न करता था। मैंने विचारा कि, यह जगत् तो मिथ्याहै इसमें विचरने से मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? यह तो स्वप्नमात्र है इसमें मैं किस निमित्त खेदपाऊं—इससे जगत् से बाहर निकलूं। वधिक ने पूँछा, हे मुनीश्वर ! तुमने जो उस स्वप्न में जगत् को देखा वह जगत् क्या वस्तु था और स्वप्ना क्या था ? उसकी संवित् में जगत्था और उस जगत् का उसको ज्ञान था वा वह प्रमादी था ? तुमने तो जाग्रत् हो करके उसका स्वप्ना देखा था, उसके हृदय में पहाड़ कहां से आया और नदियां, वृक्ष आदि नाना प्रकारके भूतजात और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि आदिक विश्व की रचना कहां से आई ? वह सब क्या था यह संशय मेरा दूरकरो। जो तुम कहो कि, अपने स्वप्ने में तुम भी अपनी सृष्टि देखतेहो तो हे भगवन् ! हमको जो स्वप्ना आता है उसको हम अपने स्वरूप के प्रमादसे देखते हैं और तुमने जाग्रत् होकर देखा तो कैसे देखा ? मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! प्रथम जो मैंने देखा था सो आपको विस्मरण करके उसके हृदय में जगत् देखा था और दूसरी बार जो देखा था सो आपको जानकर जगत् देखा था सो क्या वस्तुहै सुनो। हे वधिक ! जो वस्तु कारणसे होती है सो सत्य होती है और जो कारण बिना भासती है सो मिथ्या होती है। मुझको जो सृष्टि उसके स्वप्ने में भासीथी सो कारण बिना थी क्योंकि; कारण दो प्रकारका होताहै—एक निमित्तकारण; जैसे घटका कारण कुलाल होताहै और दूसरा समवायकारण; जैसे घट मृत्तिकाका होताहै। जो दोनों कारणों में उत्पन्नहो वह कारण पदार्थ कहाता है पर आत्मा तो दोनों प्रकारों में जगत्का कारण नहीं; वह अद्वैत है इससे निमित्तकारण नहीं और समवायकारण भी इससे नहीं कि, अपने स्वरूपसे अन्यथा भाव नहीं हुआ। जैसे मृत्तिकाके परिणाम से घट होता है, तैसेही आत्माका परिणाम जगत् नहीं। आत्मा अच्युत है। वह जगत् कारण बिना भासि आयाथा इससे भ्रममात्रही था। हे वधिक ! वस्तु वही होती है और जगत्की भ्रांति आत्मामें भासी तो जगत् आत्मरूप हुआ। जब सृष्टि फुरी न थी तब अद्वैत आत्मसत्ता थी उसमें संवेदन फुरनेसे जगत् हुयेकी नाई उदयहुआ सो क्या हुआ—जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है सो किरणही जलरूप भासती है, तैसेही वह जगत् आत्माका आभास है सो आत्माही जगद्रूप हो भासता है। वहां न कोई शरीर था, न कोई हृदयथा, न पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश था और न उत्पत्ति और प्रलय थी न और कोई था; केवल चिन्मात्ररूपही था। हे वधिक ! ज्ञानदृष्टि से हमको तो सच्चिदानन्दही भासता है जो शुद्ध और सर्व दुःखोंसे रहित परमानन्द है और जगत् भी वहीरूप है। तुम सारिखे को जो जगत् शब्द अर्थरूप भासता है सो आत्मामें कुछ हुआ नहीं केवल चिन्मात्र सत्ताहै। सर्वदा हमको आत्मरूपही भासताहै। जो तू चाहे कि, मुझको भी चिन्मात्रही भासे तो सर्वकल्पना मनसे त्यागकर उसके पीछे

जो शेषरहेगा वह आत्मसत्ता है और सबका अनुभवरूप वही है और प्रत्यक्ष, शुद्ध, सर्वदा स्वभावसत्ता में स्थित है और अमर है। तुमभी उस स्वभावमें स्थित होरहो। हे वधिक! आत्मसत्ता परमसूक्ष्महै जिसमें आकाश भी स्थूलहै। जैसे सूक्ष्मअणुसे पर्वत स्थूल होता है, तैसेही आत्मासे आकाशभी स्थूल है। आत्मा में यही सूक्ष्मता है कि, आत्मत्वमात्र है जिसमें कोई उत्थान नहीं केवल निर्मल स्वभावसत्ता और निराभास है उसी में यह जगत् भासता है। इससे वहीरूप है जैसे कालमें क्षण, पल, घड़ी, पहर, दिन, मास, वर्ष और युग संज्ञा होती है सो कालही है; तैसेही एकही आत्मामें अनेक नामरूप जगत् होताहै। जैसे एक बीजमें पत्र, टहनी, फूल, फल नाम होते हैं तैसेही एक आत्मामें अनेक नामरूप जगत् होता है सो आत्मासे कुछ भिन्न वस्तु नहीं सब आत्म स्वरूप है और जो आत्मासे भिन्नभासे उसे भ्रममात्र जानो। जैसे संकल्पपुर होता है तैसेही यह जगत् है। हे वधिक! आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं। वही आत्मा तेरा अपनाआप अनुभवरूप है और परमशुद्ध है। उसमें न जन्म है, न मृत्यु है और चिदाकाश अपना आपहै जो तेरा आप अनुभवरूप शुद्ध सत्ता है—उसको नमस्कार है। हे वधिक! तू उसमें स्थित होरह तब तेरे दुःख नष्ट होजावेंगे। यह जगत् अज्ञानीको सत्य भासताहै और ज्ञानवान्को सदा आकाशरूप भासताहै। जैसे एक पुरुष सोयाहै और एक जागताहै तो जो सोयाहै उसको स्वप्न में महल आदिक जगत् भासता है और जो जाग्रत् है उसको आकाशरूप है; तैसेही अज्ञानी को जगत् भासता है और ज्ञानवान् को आत्मरूपहै। वधिक बोला, हे मुनीश्वर! कितने कहते हैं कि, यह जीव कर्मसे होताहै और कितने कहते हैं कि, कर्मविना उत्पन्न होताहै तो इन दोनों में सत्य क्याहै? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! आदि जो परमात्मासे ब्रह्मादिक फुरेहैं सो कर्मसे नहींहुये, वे कर्म विनाही उत्पन्नहुयेहैं और उन्हें न कहीं जन्महै और न कर्महै। वे ब्रह्मस्वरूपही हैं और उनकाशरीर भी ज्ञानरूप है। वे और अवस्थाको नहीं प्राप्त होते सर्वदा उनको अधिष्ठान आत्मा में अहंप्रतीत है। हे वधिक! सृष्टिके आदि जो ब्रह्मादिक फुरे हैं वे ब्रह्मसे भिन्न नहीं और और जो अनन्त जीव फुरे हैं और जिनका आदिही आत्मपदसे प्रकट होना हुआ है वे भी ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मसे कुछ भिन्न नहीं। आदिसबका ब्रह्मचेतन स्वयंभू हैं परन्तु ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिकको अविद्याने स्पर्श नहीं किया वे विद्यारूपहैं और दूसरे जीव अविद्याके वशसे प्रमादकरके परतंत्रहुये हैं और कर्मकरके कर्मके वशहुये हैं और संसारमें शरीर धारतेहैं। जब उनको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है तब वे कर्मके बन्धनसे मुक्तहोकर आत्मपदको पाते हैं। हे वधिक! आदि जो सृष्टिहुई है सो कर्म विना उपजी है और पीछे अज्ञान के वश से कर्मके अनुसार जन्म मरण देखते हैं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि आदि कर्मविना उत्पन्न होती है और पीछे कर्मसे उत्पन्न होती भासती है; तैसेही यह जगत्है। आदिजीव कर्मविना

उपजे हैं और पीछे कर्मके अनुसार जन्म पाते हैं। ब्रह्मादिकके शरीर शुद्ध ज्ञानरूपहैं। ईश्वर में जीवभाव दृष्टिआता है पर उसकालमें भी ब्रह्महीस्वरूप है क्योंकि, उनके कर्म कोई नहीं केवल आत्माही उनको भासता है—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में द्रष्टाही दृश्यरूप होताहै और नानाप्रकारके कर्म दृष्टि आते हैं परन्तु और कुछ हुआ नहीं, तैसेही जो कुछ जगत् भासता है सो सब चिन्मात्र स्वरूप है और कुछ नहीं। सुख दुःखभी वहीं भासताहै परन्तु अज्ञानीको जबतक जगत् प्रतीति होतीहै तबतक कर्म-रूपी फाँसीसे बाँधाहुआ दुःखपाताहै और जब स्वरूपमें स्थितहोगा तब कर्मके बंधन से मुक्तहोगा वास्तव में न कोई कर्म है और न किसीको बन्धन है। यह मिथ्या भ्रमहै केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है दूसरा कुछहो तो मैं कहूं कि, इस कर्मने इसको बन्धन कियाहै। यह जगत् आत्मामें ऐसाहै जैसे जलमें तरंग होता है सो भिन्न कुछ नहीं। जलसे तरंग उत्पन्न होताहै सो किस कर्म से होताहै और क्या उसका रूप है? जैसे वह जलहीरूप है, तैसेही यह जगत् भी आत्मस्वरूपहै—आत्मासे इतर कुछ नहीं जो कुछ कल्पना कीजिये सो अविद्यामात्र है। हे वधिक! जबतक यह संवित् बहिर्मुख फुरतीहै तबतक जगत् भासताहै और कर्महोते दृष्टिआते हैं और जब संवित् अन्त-र्मुख होगी तब न कोई जगत् रहेगा और न कोई कर्म दृष्टिआवेगा; तब सब आत्मसत्ता ही भासेगी। जैसे हमको सदा आत्मसत्ता भासती है, तैसेही तुमको भी भासेगी। हे वधिक! जो ज्ञानवान् पुरुषहैं उनको जगत् आत्मत्व दिखाई देताहै और जो अज्ञानी हैं उनको प्रमादसे द्वैतरूप भासता है इससे वह पदार्थों को सुखरूप जानकर पानेका यत्न करता है और सुखसे सुखी और दुःखसे द्वेष करताहै पर परमानन्द जो आत्मप-दहै उसके पानेका यत्न नहीं करता। ज्ञानवान् सदा परमानन्दमें स्थित है और सब जगत् उसको ब्रह्मस्वरूप भासता है। हे वधिक! सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आता है वह चिन्मात्र स्वरूप ब्रह्म है; न कोई स्वप्नहै, न कोई जाग्रत् है, न कोई कर्म है और न कोई अविद्या है सर्व्व ब्रह्मस्वरूप सदा अपने आप में स्थित है—उसमें और कुछ नहीं जैसे जल में आवर्त्त स्थित होता है परन्तु जलसे भिन्न कुछ नहीं होता; तैसेही ब्रह्म में जगत् हुयेकी नाईं भासता है परन्तु ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है तू विचार करके देख तब तेरे दुःख मिटजावेंगे। जबतक विचार करके स्वरूप को न पावेगा तबतक दुःख न मिटेगा। जब स्वरूप को पावेगा तब सब कर्म नष्ट होजावेंगे। जितना जितना विचार होता है उतनाही उतना सुख है। जहां वि-चार उत्पन्न होता है वहां से अविद्या नष्ट होजाती है। जैसे जहां प्रकाश होता है वहां अन्धकार नहीं रहता; तैसेही जहां सत्य असत्य का विचार उत्पन्न होता है वहां अविद्याका अभाव होजाता है और फिर वह संसार चक्रमें नहीं गिरता बल्कि परम

पदको प्राप्त होताहै। जिस ज्ञानवान्को यह पद प्राप्त हुआहै वह दुःखी नहीं होता॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकर्म्मनिर्णयोनाम
द्विशताधिकैकोनत्रिंशत्तमस्सर्ग्गः २२९॥

मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जो ज्ञानवान् पुरुषहै वह अवश्य उस परमानन्दको प्राप्त होता है जिसके पायेसे इन्द्रियों का आनन्द सूखे तृणवत् तुच्छ प्रतीत होता है और वैसा सुख पृथ्वी आकाश और पाताल में भी कहीं नहीं मिलता जैसा सुख ज्ञानवान्को प्राप्त होताहै। जिसको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआहै वह किसकी इच्छा करे? आत्मानन्द तब प्राप्त होताहै जब आत्मअभ्यास होताहै। आत्मा शुद्ध और सर्वदा अपने आप में स्थितहै और जो कुछ आगे दृष्टि आताहै सो अविद्याका विलासहै। जब तू अपने स्वरूपमें स्थितहोगा तब तुझको सब ब्रह्महीं भासेगा। हे वधिक! पृथ्वी आदिक तत्त्व जो दृष्टिआतेहैं सो हैं नहीं; ये जो कुछहोते तो इनका कारणभी कोई होता पर जो येही नहीं हैं तो इनका कारण किसको कहिये और जो इनका कारण नहीं तो कार्य किसका कहिये इसलिये ये भ्रममात्र हैं। विचार कियेसे जगत् का अभाव होजाता है और आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों भासती है। जैसे किसी को रस्सी में सर्प भासता है पर जब वह भलीप्रकार देखता है तब सर्पभ्रम मिटजाता है और ज्योंकी त्यों रस्सीही भासती है; तैसेही विचार कियेसे आत्मसत्ताही भासती है। जैसे आकाश में सङ्कल्पका कल्पवृक्ष अथवा देवताकी प्रतिमा रचकर उससे प्रार्थना की तो अनुभवसे कार्य्य सिद्ध होताहै तैसेही जितना जगत् तू देखता है सो सब सङ्कल्पमात्र और अनुभवरूप है। जैसे स्वप्न में नानाप्रकारकी सृष्टि स्वप्नमात्र है; तैसेही यह सर्व विश्व ब्रह्मा के संकल्प में स्थितहै। आदि परमात्मा से कर्मबिना जो सृष्टि उपजी है वह किञ्चन आभासरूप है; फिर आगे जो ब्रह्माने रचा है सो संकल्परूप है और फिर आगे अज्ञान से कर्म करने लगे तब उन कर्मोंसे उत्पत्तिहोती दृष्टिआई है। जैसे स्वप्नमें स्वप्नेकी सृष्टि भ्रममात्र ही दृढ़हो भासती है; जबतक स्वप्नकी अवस्था है तबतक जैसा वहां कर्म करेगा तैसाही भासेगा और जो जागउठे तो न कहीं कर्महै न जगतहै; तैसेही यह सब संकल्पमात्रहै ज्ञानसे इसका अभाव होजाताहै। हे वधिक! ये जो मुझको मनुष्य भासतेहैं सो मनुष्य नहीं तो उनके कर्म मैं तुझसे कैसेकहूं? जैसे स्वप्ने के निवृत्त हुये स्वप्ने की सृष्टिका अभाव होताहै तैसेही अविद्या के निवृत्तहुये अविद्या की सृष्टिकाभी अभाव होजाता है। आत्मसत्ता अद्वैतहै उसमें जगत् कुछबना नहीं—वहीरूपहै। जैसे आकाश और शून्यता; अथवा वायु और स्पन्द में भेद नहीं होता; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। जब चित्तसंवित् फुरती है तब जगत् होकर भासती है और जब नहीं फुरती तब अद्वैतहोकर स्थित होतीहै पर आत्मसत्ता फुरने और न फुरनेमें ज्योंकीत्यों है। जन्म,मरण

और बढ़ना, घटना मिथ्याहै क्योंकि; दूसरी वस्तु कुछ नहीं । जैसे किसी ने जल और किसीने पानी कहा तो दोनों एकही वस्तुके नामहोतेहैं; तैसेही आत्मा और जगत् एकही के नामहैं परन्तु अज्ञानसे भिन्न भिन्न भासते हैं। जैसे स्वप्ने में कार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं; तैसेही जाग्रत्में कारण कार्य भासते हैं परन्तु हैं नहीं—वास्तवमें आत्मतत्त्व है । उस आत्मामें जो अहं मम चित्त फुरता है और उस उत्थानसे आगे जो कुछ फुरना होताहै वही जगत् है; उस जगत् में जैसा जैसा निश्चय होताहै वैसाही वैसा भासने लगता है—इसका नाम नेति है । उसमें देश, काल और पदार्थ की संज्ञा होने लगती है और कारण कार्य्य दृष्टि आते हैं सो क्या हैं; केवल आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और कुछ हुआ नहीं परन्तु हुये की नाईं भासता है; तैसेही स्वप्ने में नाना प्रकार का जगत् भासता है और कारण कार्य्य भी दृष्टि आता है परन्तु जागनेपर कुछ दृष्टि नहीं आता क्योंकि; हैही नहीं; तैसेही यह जगत् कारण कार्य्यरूप दृष्टिआता है परन्तु है नहीं आत्मासे दृष्टि आताहै इससे आत्माही है। जैसे संकल्पनगर दृष्टि आताहै, तैसेही आत्मामें घन चैतन्यता से जगत् भासताहै सो वही रूपहै—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं । जैसा आत्मामें निश्चय होताहै तैसाही प्रत्यक्ष अनुभव होताहै । यह सब जगत् संकल्पमात्र है; संकल्प हो जहां तहां उड़ते फिरते हैं और अनुभव सत्ता ज्योंकी त्यों है—संकल्पही मरके परलोक देखता है । वधिक बोला, हे भगवन् ! परलोकमें जो यह मरके जाताहै तो उस शरीरका कारण कौन होताहै और वह हंत्री और हन्ता कौनहै ? यह शरीर तो यहांही रहताहै वहां भोगताशरीर कौन होताहै जिससे सुख दुःख भोगताहै ? जो तुम कहो कि, उस शरीरका कारण धर्म अधर्म होताहै तो धम अधर्म तो अमूर्त्तिहै उससे समूर्त्ति और साकाररूप क्योंकर उत्पन्न हुआ ? मुनीश्वरबोले, हे वधिक ! शुद्ध अधिष्ठान जो आत्मसत्ताहै उसके फुरनेकी इतनी संज्ञाहोती हैं—कर्म, आत्मा, जीव, फुरना, धर्म, अधर्म आदि नाना प्रकारके नाम होतेहैं । जब शुद्ध चिन्मात्रमें अहंका उत्थान होताहै तब देहकी भावना होतीहै और देहही भासने लगतीहै; आगे जगत् भासताहै और स्वरूपके प्रमादसे सङ्कल्परूप जगत् दृढ़होजाताहै; फिर उसमें जैसा जैसा फुरताहै तैसा तैसाही भासताहै । हे वधिक ! यह जगत् सङ्कल्पमात्र है परन्तु स्वरूपके प्रमादसे सत्यहोभासता है । प्रमादसे शरीरमें अभिमान होगया है उससे कर्त्तव्य भोक्तव्य अपनेमें मानताहै और वासना दृढ़होजाती है उसके अनुसार परलोक देखताहै । हे वधिक ! वहां न कोई परलोकहै और न यह लोकहै; जैसे मनुष्य एक स्वप्नेको छोड़कर और स्वप्नेको प्राप्तहो; तैसेही अविदित वासना से इसलोकको त्यागकर जीव परलोकको देखताहै । जैसे स्वप्ने में निराकारही साकार शरीर उत्पन्नहोता है; तैसेही परलोकमें है पर वास्तवमें सङ्कल्पही

पिंडाकार होकर भासता है और जैसी जैसी वासनाहोती है तैसाही उसके अनुसार होकर भासताहै वास्तवमें शरीर और परमार्थ सबही आकाशरूपहैं । हे वधिक ! असत्यही सत्यहोकर जन्म मरण भासताहै और जैसा जैसा फुरनाहोता है तैसाही तैसा भासताहै—जगत् आभासमात्र है । जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको आत्मभावही सत्यहै और उसमें जैसा निश्चयहोताहै तैसा होकर भासताहै । ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञातारूप जगत् जो भासताहै वह अनुभवसे भिन्ननहीं । जैसे स्वप्ने में अनेक पदार्थ भासते हैं सो अनुभवही अनेकरूप हो भासताहै और प्रलयमें एकहोजाते हैं; तैसेही ज्ञानरूपी प्रलयमें सब एकरूप होजाते हैं । जब संवित् फुरती है तब नानाप्रकार का जगत् भासताहै और जब संवित् अफुरहोती है तब प्रलयहोजाती है और एकरूप होजाताहै । एक चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थितहै और पृथ्वी आदिक पदार्थ उसका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कुछ नहीं, आत्मसत्ता निर्विकारहै और उसमें निराकार और साकारभी कल्पित है । जो पुरुषदृश्यसे मिले चैतन्यहैं वे जड़धर्मी हैं और उनको नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं; ज्ञानवान् को सत्यरूप चिन्मात्रही भासताहै । हे वधिक ! यह जगत् सब चिन्मात्रहै; जब चित्तसंवित् फुरती है तब स्वप्नरूप जगत् भासताहै और जब चित्तसंवित् फुरने से रहितहोती है तब सुषुप्ति होतीहै । ऐसेही चित्तसंवित्के फुरने से सृष्टि होतीहै और चित्तके स्थित होनेसे प्रलयहोजाती है । जैसे स्वप्न और सुषुप्ति आत्मा में कल्पित है, तैसेही आत्मामें कल्पितसृष्टि और प्रलय आभासमात्रहै और जगत् कुछ बनानहीं; फुरनेसे जगत् भासताहै इससे जगत्भी आत्मरूपहै और पंचतत्त्व भी आत्माका नाम है और सदा अद्वैतरूप जगत् आभासमात्रहै । जैसे आत्मामें साकार कल्पित है तैसेही निराकारभी कल्पित है और जैसे स्वप्नमें किसीको साकार जानताहै और किसीको निराकार जानताहै पर दोनों फुरनामात्र हैं । जो फुरनेसे रहित है सो आत्मसत्ता है और साकार और निराकारभी वही है । आत्मसत्ताही इसप्रकार होभासती है और निराकारही साकारहो भासताहै । हे वधिक ! सर्व जगत् जो तुझ को दृष्टि आताहै सो चिन्मात्रस्वरूप है, भिन्न कुछ नहीं; परन्तु अज्ञानसे नानाप्रकार के कार्य कारण और जन्म मरण आदि विकारभासतेहैं; वास्तव में न कोई जन्महै और न मरणहै; न कोई कार्य है और न कारणहै । यदि जीव मरताहोता तो परलोक भी न देखता और अपने मरने को भी न जानता जो मरके परलोक देखताहै सो मरता नहीं । यदि मनुष्य मृतक हो तो पूर्व संस्कारको न पावे और पूर्वस्मृति इसको न हो पर तू तो पूर्वसंस्कारसे क्रियामें प्रवर्त्तताहै और प्रतियोगसे तुझे पदार्थोंकी स्मृति भी हो आती है फिर कर्म भोगता है । पूर्वलोकमें तो पुरुष मृतक नहींहोता केवल भ्रमसे मरण भासताहै और कारणकार्यरूप पदार्थ भासतेहैं और जब मरके परलोक देखताहै और

सुख दुःख भोगताहै तो वह शरीर किसीकारण से नहीं बना। जैसे वह शरीर अकारण है तैसेही और जो आकार दृष्टि आते हैं वे भी अकारण हैं—इसीसे आभासमात्र हैं। जैसे स्वप्ने के शरीर से नानाप्रकारकी क्रियाहोती है और देशदेशान्तर देखता है सो सब मिथ्याहै, तैसेही यह जगत् मिथ्याहै और मरणभी मिथ्याहै। जो तू कहे कि, इसके साकारका अभाव देखताहै सो मृतक है तो हे वधिक! जो यह पुरुष परदेश जाता है तो भी इसका आकार दृष्टि नहीं आता। जैसे दृष्टिके अभाव में असत्यहोताहै, तैसे ही देहके त्यागमेंभी इसका असत्यभावहोताहै पर इस पुरुषका अभाव कदाचित् नहीं होता। जो तू कहे कि, परदेशगया फिर आमिलताहै शरीरके त्यागसे फिर नहीं मिलता तो परदेशगया फिर मिलकर वार्त्ता चर्चा करता है और मुआ तो कदाचित् चर्चा नहीं करता पर जिसके पितर प्रीतिसे बँधेहुये मरते हैं और जिनकी यथाशास्त्र क्रिया नहीं होती तो वे स्वप्ने में आ मिलते हैं और यथार्त्थ कहते हैं कि; हमारी क्रिया तुम ने नहीं की; हम अमुक स्थान में पड़े हैं और अमुक द्रव्य अमुक स्थान में पड़ाहै तुम निकाल लो; तो जैसे परदेशी गण मिलते हैं और वार्त्ता चर्चा करते हैं तैसेही मुये भी करते हैं। हे वधिक! वास्तव में न कोई जगत् है और न कोई मरता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और जैसा जैसा उस में फुरना फुरताहै तैसाही तैसा हो भासता है। हे वधिक! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है; जैसा २ उसमें फुरना फुरता है तैसाही तैसा हो भासता है। एक संकल्पसिद्ध और एक दृष्टिसिद्ध वस्तुहै; जब इन की दृढ़ भावना होती है तब ये दोनों सिद्ध होती हैं। जो इन्द्रियों में द्रव पदार्थहै सो दृष्टिसिद्ध वस्तु कहाती है; जो इसीकी भावना होती है तो यही प्राप्तहोती है और जो अपने मनमें आपही मान लीजिये कि; मैं ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वर्ण हूं अथवा गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी वा संन्यासी आश्रमहूं तो यह संकल्प सिद्ध है। जबतक इनमें अभ्यास होताहै तबतक आत्मसत्ताकी प्राप्ति नहीं होती और जब आत्मसत्ताका अभ्यास होता है तब इन दोनों का अभाव होजाताहै और आत्माही प्रत्यक्ष अनुभव से भासताहै। हे वधिक! जिस वस्तुका अभ्यास होताहै उसकी यदि भावना करे और थककर फिरे नहीं तो वह अवश्य प्राप्त होतीहै पर अभ्यास विना कुछ सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई पुरुष कहे कि, मैं अमुकदेश जाताहूं तो जबतक उसकी ओर वह चले नहीं तबतक अनेक उपाय करे भी नहीं प्राप्त होता और जब उसकी ओर चलेगा तब पहुंच रहेगा; तैसेही जब आत्माका अभ्यास बहुत एकाग्र होकर करेगा तब उसको प्राप्त होगा अन्यथा आत्मपदको न प्राप्तहोगा। हे वधिक! जिस पुरुषको जगत्के पदार्थोंकी इच्छाहै उसको आत्मपद नहीं प्राप्त होता और जिसको आत्मपद की इच्छाहै उसको वही प्राप्त होवेगा; जगत् के पदार्थ न भासेंगे। यदि ऐसी

भावनाहो कि; मेरीदेवताकीसी मूर्त्तिहो और उससे मैं स्वर्गमें विचरूं और एकस्वरूप से भूलोकमें मृगहोके भ्रमणकरूं तो दृढ़ अभ्यासमे वही होजाताहै क्योंकि; जगत् संकल्पमात्रहै जैसा जैसा निश्चयहोताहै तैसाही भासिआताहै। हे वधिक! दोस्वरूपकी क्या वार्त्ताहै जो सहस्रमूर्त्तिकी भावनाकरे तो वही तद्रूप होजावेगा। यह मनुष्य जैसी भावना करता है तैसाही रूप होजाता है। यह अविद्या का भ्रममात्र जगत् है इसकी भावना त्यागकर आत्मपदका अभ्यासकर तब तेरे दुःख मिटजावेंगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेमहाशवोपाख्यानेनिर्णयोपदेशो नामद्विशताधिकत्रिंशत्तमस्सर्गः २३० ॥

मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जैसे अगाध समुद्रमें अनेक तरंग फुरतेहैं, तैसेही आत्मा में अनेक सृष्टि फुरती है और जीव २ प्रति अपनी २ सृष्टिहै परन्तु परस्पर अज्ञात है और एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता और दूसरेकी सृष्टिको वह नहीं जानता। जैसे एकही स्थानमें दो पुरुष सोये हों तो उनको अपने २ फुरने की सृष्टि भासिआती है पर एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता परस्पर दोनों अज्ञात होते हैं; तैसेही सब सृष्टि आत्मा में फुरतीहै परन्तु एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता। जो धारणाभ्यासी योगी है उसको अन्तवाहक शरीर प्रत्यक्ष होताहै और वह दूसरेकी सृष्टिको भी जानताहै। जैसे एक तालाब का दर्दुर होताहै; एक कूपका दर्दुर होताहै और एक समुद्रका दर्दुर होताहै सो स्थान तो भिन्न भिन्न होते हैं परन्तु जल एकही है इससे चाहे जैसा दर्दुर हो पर उसको जल जानताहै कि, मेरे में हैं; तैसे जगत् भिन्न २ अन्तःकरणों में है परन्तु आत्मसत्ताके आश्रय है और आदि जो संवेदन उसमें फुरी है सो अन्तवाहक है। जब अन्तवाहक में योगी स्थित होताहै तब और के अन्तवाहक को भी जानताहै। इसप्रकार अनन्तसृष्टि आत्मा के आश्रय अन्तवाहक में फुरती हैं सो आत्माका किंचन है, फुरतीभी है और मिटजातीहै। संवेदनके फुरनेसे सृष्टि उत्पन्न होती है और संवेदन के ठहरने से मिटजातीहै क्योंकि, आकाशरूप होतीहै। जैसे वायुके ठहरने से जल एक रूप होजाता है और जलसे इतर कुछनहीं भासता; तैसेही संवेदनके फुरने से आत्मा में अनन्तसृष्टि भासतीहै और संवेदनके ठहरनेसे सब आत्मरूप होजाती है तबआत्मा से इतर कुछ नहीं भासता क्योंकि इससे इतर प्रमाद से भासताहै और फिर कारण–कार्य्य भ्रम भासता है। प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो कारण–कार्य्यके क्रम और संस्कार से रहित है; पीछे कारण कार्य क्रम भासित हुआ और फिर उसका संस्कार हृदय में हुआ तब संस्कार के वशसे भासने लगीं। जिनको स्वरूपका प्रमाद नहीं हुआ उनको सदा परब्रह्मका निश्चय रहता है और जगत् अपना संकल्पमात्र भासताहै और जिनको स्वरूपका प्रमाद होताहै उनको संस्कार पूर्वक जगत् भासताहै–संस्कार भी

कुछ वस्तु नहीं। हे वधिक ! जो जगत्ही मिथ्याहै तो उसका संस्कार कैसे सत्यहो? परन्तु ज्ञानवान् को इसप्रकार भासताहै और जो अज्ञानी हैं उनको स्पष्ट भासताहै। हे वधिक ! जैसे तुम संकल्पके रचे पदार्थ; स्मृति और स्वप्नसृष्टिको असत् जानतेहो; तैसेही हम इस जाग्रत्सृष्टि को असत् जानते हैं और जैसे मृगतृष्णा का जल असत् भासता है, तैसेही हमको यह जगत् असत्यहै तो फिर कारण कार्य कर्म संस्कार हम को कैसे भासे ? अज्ञानी को तीनों भासते हैं। हे वधिक ! जब चित्त संवित् बहिर्मुख होतीहै तब जगत् भासताहै और जब अन्तर्मुख होतीहै तब अपने स्वरूपको देखती है। जब आत्मतत्त्व का किंचन संवेदन फुरती है तब स्वप्न जगत् हो भासता है और जब ठहरजाती है तब सुषुप्ति प्रलय होजाती है। फुरने का नाम सृष्टिकी उत्पत्ति है और ठहरने का नाम प्रलय है। जिसके आश्रय फुरना फुरताहै सो शुद्धसत्ता अव्यक्त और निराकार है–यही आकाररूप भासता है और जो अकारण निराकार है उस में अकारण आकार भासताहै इससे जानताहै कि; वहीरूपहै और कुछनहीं। आकार भी निराकार है; सृष्टिही दृश्यरूप हो भासती है और जगत् आभासमात्र है। जैसे समुद्र का आभास तरंग होते हैं तैसेही आत्मा का आभास जगत् है सो आत्मानन्द चिदाकाश है और सर्व जगत्का अपना आप है। वधिक बोला, हे मुनीश्वर ! तुम जगत् को अकारण कहते हो तो कारण विना कैसे उत्पन्न होता है क्योंकि; प्रत्यक्ष भासता है और जो कारण से उत्पत्ति कहो तो स्वप्नवत् क्यों कहते हो ? स्वप्न सृष्टि तो कारण विना होती है इससे यह कहो कि, यह सृष्टि कारण सहितहै अथवा कारणसे रहित अकारण है ? मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! यह जगत् आदि अकारण है और आत्माका आभासमात्र है; इसका आत्मात्यन्ताभाव है और कुछ पदार्थ बने नहीं आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है सो चिदाकाश चिन्मात्र है और उसको किंचन चैतन्यता है। जैसे सूर्य्य की किरणों का आभास जल भासता है परन्तु जड़ है; तैसेही आत्माका किंचनभी चैतन्य है। वह किंचन संवेदन अहंभाव को लेकर फुरती गई है और जैसे जैसे फुरती है तैसाही तैसा जगत्हो भासताहै। जो जो उसमें निश्चय कियाहै कि, यह कर्त्तव्यहै, इसके करनेसे पापहै; यह करनाहै यह नहीं करना है और देश, काल, क्रिया क्रमहै, यह इसीप्रकार है। यह ऋषिहै, यह देवताहै; यह मनुष्यहै; यह द्वैतहै, यह धर्म है, यह कर्म है; इससे इनकी बन्धनहै; इससे इनकी मोक्ष है। हे वधिक ! जो आदिनेति रची है तैसेही अबतक स्थित है अन्यथा नहीं होती–उसीमें कारणकार्य क्रमहै। प्रथम जो सृष्टि फुरी है सो बुद्धिपूर्वक नहींबनी–आकाशमात्र फुरीहै और जैसे फुरीहै तैसेही स्थितहै। फिर पदार्थ जो एकभावको त्यागकर और भावको अंगीकार करते हैं सो कारणसे करते हैं; कारणविना नहीं होते क्यों-

कि; प्रथम सृष्टि अकारणहुई है और पीछेसे उसी सृष्टिभावमें कारण कार्य हुये हैं; परन्तु हे वधिक ! जिनपुरुषोंको आत्माका साक्षात्कार हुआहै उनको यह जगत् कारण विना ब्रह्मस्वरूप भासताहै और जिनको आत्मसत्ताका प्रमादहै उनको जगत् कारण असत्य भासता है परन्तु आत्माब्रह्म निराकार अकारण है उसमें संवेदन के फुरने से अब्रह्मता भासती है; निराकार में आकार भासता है और अकारण में कारण भासता है। जब संवेदन जो मनका फुरना है सो स्थिर होजाता है तब सर्व जगत् कारण कार्यसहित भासता है पर प्रथम अकारण फुरा है पीछे से देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पदार्थों की मर्यादा भई है और बन्धमोक्षकी नेतिहुई है सो ज्योंकी त्यों है कि; जल शीतलही है और अग्नि उष्णही है। जब जीव आत्मसत्ता में जागता है तब कारण-कार्यसहित जगत् नहीं भासता। जैसे स्वप्नसृष्टि प्रथम अकारण भासि आतीहै और जब दृढ़ होजाती है तब कारण से कार्य होताहै सो दृढ़ होआता है; जैसे मृत्तिका बिन घट नहीं बनता पर जागउठे से सर्व जगत् आत्मरूप होजाता है। हे वधिक ! यह जगत् संवेदन में स्थित है, जबतक अहंभाव का फुरना है तबतक जगत् है और जब अहंभाव मिटता है तब सर्व जगत् शून्य आकाशवत् होताहै। जबतक अहंफुरती है तबतक नानाप्रकार का जगत् भासता है और जैसी भावना होती है तैसा भासताहै। सर्व पदार्थ सर्वदाकाल अपनी २ शक्तिमें और जैसे आदिनेति हुई है तैसेही स्थित है। जो जीव जैसी क्रिया का अभ्यास करेगा उसका फलपावेगा; जो बन्धन के निमित्त अभ्यासकरेगा सो बन्धनपावेगा और मोक्ष के निमित्त करेगा सो मोक्ष पावेगा-ऐसेही आदिनेतिहुई है। हे वधिक ! इसप्रकार किंचन होकर मिटजाती है और आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों है। जगत्की उत्पत्ति और प्रलय ऐसे हैं जैसे हाथी अपनी सूंड़को पसारे और खैंचे और ऐसेही चित्तसंवेदन के पसरने से जगत् उत्पत्ति होती है और निस्पन्द में प्रलय होजाती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकार्यकारणाकारणनिर्णयोनाम द्विशताधिकैकत्रिंशत्तमस्सर्गः २३१॥

मुनीश्वर बोले हे वधिक ! यह सम्पूर्णजगत् चिद्अणुके ओजमेंहै और उस सम्बन्धके अभ्याससे आत्मा चिद्अणुकी संज्ञा पाता है। ओज, अन्तःकरण और हृदय तीनों अभेद हैं और चैतन्यसत्ता उसमें स्थित है जो बाहर से मृतक रूपवत् होती है और उसमें जीवितरूपहै और वहां बड़े प्रकाशसे प्रकाशती है। उस सत्ताका आगे चित्त से संयोगहुआ है और फिर चित्त और प्राणकलाका संयोग हुआहै। हे वधिक ! जब प्राण क्षोभते हैं तब चित्त खेदको प्राप्त होताहै और जब चित्त खेदको पाताहै तब प्राण भी खेद पातेहैं। जब प्राण स्थित होते हैं तब जीव शान्ति पाताहै और जो प्राणस्थित

नहीं होते तो जीव जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में भटकता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था भिन्न आती है सो सुनो, हे वधिक! जब यह पुरुष अन्नभोजनकरता है तब वह अन्न जाग्रत्वाली नाड़ीपर स्थित होता है और वह नाड़ी रुकजाती है उससे सुषुप्तिआतीहै। जिननाड़ियों में गईहुई चित्तकी वृत्ति जाग्रत् जगत् को देखती है सो जाग्रत् नाड़ी कहाती है। उनपर अन्नजाय स्थित होता है और चित्त सत्ता जो चित्तमें प्रतिबिम्बित है वह चित्तनाड़ी उसके तले आजाती है तब प्राणवायु भी उसनाड़ीमें ठहरजाता है और चित्तस्पन्दभी ठहरजाता है तब सुषुप्ति होती है। जो पित्त बहुत होती है तो सूर्य, अग्निआदिक उष्णपदार्थ स्वप्नेमें दिखते हैं और जब वह अन्नपचता है और उन नाड़ियों में प्राण जातेहैं तब स्वप्न अवस्था आतीहै। जब जल के शोषनेको वायु बहता है तब जीव स्वप्ने में उड़ताहै और जो कफ बहुत होताहै तब जलको देखताहै और नदियां, तालआदि देखताहै और जाकर डूबता है। जब उष्ण नाड़ीमें अन्नजल पहुंचता है तब जाग्रत् अवस्था होती है। इसीप्रकार जीव तीनों अवस्थाओंमें भटकता है। जगत् न कुछ भीतरहै और न बाहरहै केवल अद्वैतसत्ता ज्योंकी त्यों है। उसके प्रमाद से चित्तकी वृत्ति जब बहिर्मुख फुरती है तब जगत् को जाग्रत् देखता है; जब बाहरकी इन्द्रियों को त्याग के भीतर आती है तब अन्तस्वप्न जगत् देखता है और जब अपने स्वभाव में स्थित होती है तब और कल्पना मिट जाती है सर्व ब्रह्मही भासता है। इससे सर्व कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिविचारोनाम
द्विशताधिकद्वात्रिंशतितमस्सर्गः २३२॥

मुनीश्वर बोले, हे वधिक! यह तीनों अवस्था आती और जातीहैं इनके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है सो आत्मसत्ता है और वह सदा एकरस है। जिस पुरुष को अपने स्वरूप का अनुभव हुआ है उसको अपना किंचन भासता है और जिसको प्रमादहै उसको जगत् भासता है। यह जगत् चित्तका कल्पाहुआ है और इन्द्रियों का जिसको प्रमादहै उसको जगत् भासता है। जब इन्द्रियां विषयोंके सन्मुख होती हैं तब जगत् देखती हैं और उस संकल्प जगत् को देखकर रागद्वेषवान् होती हैं। फिर इन्द्रियों के अर्थपाकर जीव हर्ष शोकवान् होताहै। हे वधिक! जिस चिद्अणुका इन्द्रियों से सम्बन्धहै उसको संसारका अभाव नहीं होता। नेत्र, त्वचा, जिह्वा, नासिका और श्रोत्र से देखता, स्पर्शकरता, रसलेता, सूंघता, सुनता और मानता है तब संसारी होकर दुःख पाताहै और जब इनके अर्थको त्यागके अपने स्वभाव की ओर आताहै तब सर्व जगत्को आत्मरूप जानकर सुखी होताहै। हे वधिक! चित्तके फुरने का नाम जगत् है

और चित्तके स्थित होनेका नाम ब्रह्म है—जगत् और कुछवस्तु नहीं इसीका आभास है। चित्तके आश्रय सब नाड़ी हैं उनमें स्थित होकर जीव तीनों अवस्था देखताहै पर वास्तवमें जीव चिदाकाश आत्मा है—अज्ञानसे जीवसंज्ञा पाई है। हे वधिक! ओज धातु जो हृदय है उसमें चिद्अणु स्थित होकर दीपक की ज्योतिवत् प्रकाशता है और उसीके ओजके आश्रय सब नाड़ी हैं सो अपने २ रसको ग्रहण करती हैं। जब प्राणी भोजन करता है और अन्न जाग्रत् नाड़ी में पूर्णहोताहै तब जाग्रत्का अभाव होजाता है और चित्तकी वृत्ति और प्राण आनेजाने से रहित होजाते हैं—वह नाड़ी मूंदजाती है। फिर जब कफनाड़ीमें प्राण फुरते हैं तब स्वप्न भासता है। हे वधिक! जब इन्द्रियों को ग्रहण करके चित्तकी वृत्ति बाहर निकलती है तब जाग्रत् जगत्हो भासताहै। जब तन्मात्राको लेकर चित्तकी वृत्ति ओजधातुमें फुरती है तब स्वप्न भासता है और जब ओजधातुपर अन्नआदिक द्रव्यका बोझपड़ताहै तब सुषुप्ति होती है। जब निद्रा और जाग्रत् का बल होता है तब दोनों भासते हैं और जब दोनोंमें से एकका बल अधिक होताहै तब वही जाग्रत् अथवा सुषुप्ति भासती है। जब निद्रा से रहित मन्द संकल्प होताहै तब उसको मनोराज कहते हैं और जब बाह्यविषयोंको त्यागकर चित्तकी वृत्ति अन्तर्मुख होतीहै तब स्वप्न होताहै। वहां जिस सिद्धान्त में जाताहै उसके अनुसार भीतर जगत् भासताहै। कफके बलसे चन्द्रमा, क्षीरसमुद्र, नदियां, जलसे पूर्ण ताल और वृक्ष, फूल, फल, बागीचे, सुन्दरवन, हिमालय, कल्पवृक्ष, तमाल, सुन्दरस्त्रियां, बेलें, बावलियां इत्यादि सुन्दर और शीतल स्थान देखता है। जब पित्तका बल अधिक होताहै तब सूर्य, अग्नि और सूखे वृक्ष, फल और टास देखता है; सन्ध्याकाल के मेघ की लाली देखताहै; वन और दूसरे स्थानों में अग्निलगी देखता है और पृथ्वी और रेततपीहुई और मरुस्थलकी नदी दृष्टआती हैं; जल उष्ण लगताहै; हिमालय का शिखरभी उष्ण लगता है और नाना उष्ण पदार्थ दृष्टआते हैं। जब वायुका बल अधिक होताहै तब स्वप्नेमें अधिकवायु देखता है और पाषाणकी वर्षा होती दृष्टआती हैं; अन्धे कूपमें गिरता देखताहै और हाथी घोड़े उड़ते दृष्टआते हैं; आपको उड़ता फिरता देखता है; अप्सराके पीछे दौड़ताहै; पहाड़ोंकी वर्षाहोती; वायु तीक्ष्णवेगसे चलती और अन्नसे आदि लेकर पदार्थ चलते दृष्ट आते हैं और विपरीत होकर भासते हैं। इस प्रकार वात, पित्त और कफसे स्वप्नेमें जगत् देखता है और जिसका बल विशेष होता है वह उस धर्म में दृष्टिआता है। वासनाके अनुसार जीव न्यूनाधिक राजसी, तामसी और सात्त्विकी पदार्थ देखताहै और जब तीनों इकट्ठे होकर कोपित होतेहैं तब प्रलय काल दृष्ट आता है। हे वधिक! जबतक वात, पित्त और कफके अंशके साथ मिला हुआ पुर्यष्टक कफके स्थान में प्रवेश करताहै तबतक समान जलके क्षोभ भासते हैं।

इसीप्रकार वात, पित्त और कफ जिसके स्थानमें जाता है और और के स्वभावको लेताहै तबतक समान क्षोभ भासताहै । जब केवल वातका क्षोभ होताहै तब महाप्रलयकालके पवन चलते और पहाड़पर पहाड़ गिरते और भूकंप आदि क्षोभ होतेहैं; जब कफका क्षोभ होताहै तब समुद्र उछलते हैं और पित्तसे अग्नि लगती है और महाप्रलयकी नाईं तत्त्वक्षोभवान् होते । जब प्राण जाग्रत् नाड़ी में जाते हैं और वह अन्नसे पूर्ण होतीहै तब जीव उसके नीचे आजाते हैं । जैसे कन्धके नीचे दर्दुर आवे; पाषाणकी शिलामें कीट आजावे और काष्ठकी पुतली काष्ठमें हो । जैसे इन में अवकाश नहीं रहता तैसेही और नाड़ीमें फुरनेका अवकाश नहीं रहता रुकजाती है तब इसको सुषुप्ति होती है । जब कुछ अन्नपचताहै तब चित्तसंवित् अपने भीतर स्वप्न देखती है जिसको जिसका विकार विशेष होता है उसीका कार्य देखता है । जब अन्न और जल पचताहै तब फिर जाग्रत् जगत् देखताहै और जब जाग्रत् और स्वप्नदोनों का बल सम होताहै तब दोनोंको देखता और अनुभव करताहै । हे वधिक ! इसी प्रकार तीनों अवस्था होतीं और मिटजाती हैं सो तीनों गुणों से होती हैं । इनका द्रष्टा इनको अनुभव करनेवालाहै सो गुण से अतीतहै और सर्वका आत्मा है । यह जगत् और स्वप्न जगत् संकल्पमात्र है,कुछ बना नहीं ब्रह्मसत्ताही किंचन करके जगत्रूप हो भासती है परन्तु अज्ञानी उसको जगत् जानतेहैं और जगत्को सत्यजानकर इष्ट अनिष्टमें रागद्वेष करते हैं । जब बाहरकी इन्द्रियां सुषुप्ति होजाती हैं तब भीतर स्वप्ने में भटकताहै और उसमें सूर्य, चन्द्रमा, वन, फूल, फल, वृक्ष आदिक जगत् देखता है और जब स्वरूपका अनुभव होताहै तब सर्व भटकना मिटजाता है और शान्ति पद को प्राप्त होताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनंनाम
द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः २३३ ॥

वधिक बोला, हे मुनीश्वर ! उस पुरुषके हृदयमें जो तुमने जगत् और प्रलयदेखी थी उसके अनन्तर क्या किया और क्या अवस्था देखी ? मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! उसके चित्त स्पन्दमें मैंने देखा कि, बड़ेबड़े पहाड़ प्रलयकी वायुसे सूखे तृणकी नाईं उड़ते हैं और पाषाणकी वर्षा होती है । इसप्रकार मैंने प्रलयके क्षोभको देखा और मेरे देखते देखते जाग्रत्वाली नाड़ीमें अन्न स्थितहुआ तो वहां जो अन्नके दाने गिरे सो पर्वतवत्भासे और चित्त स्पन्द जो संवित्थी सो रोकीगई एवम् उसमें मैंथा सो तामस नरकमें जापड़ा—मानों वहां मैंभी जड़होगया और मुझको कुछ ज्ञान न रहा । जब कुछ अन्न पचा और कुछ अवकाश हुआ तब प्राणका स्पन्द फुरा और जैसे वायु निस्स्पन्द हुई स्पन्दहोकर चले तैसेही वहां संवित् फुरी तब सुषुप्ति दृश्यहोकर भासने

लगी–मानों आत्मा द्रष्टाही दृश्यरूपहोकर भासने लगा परन्तु और कुछनहीं बना। जैसे अग्नि और उष्णता; जल और द्रवता और मिरच और तीक्ष्णतामें भेद नहीं तैसेही आत्मा और दृश्य में कुछ भेद नहीं। हे वधिक! इस प्रकार मैंने जगत् को देखा और सुषुप्ति जाग्रत् दृश्यसे दृश्य उपजी और मुझको दृष्टिआई–जैसे कुमारी कन्यासे सन्तान उपजे। वधिक बोला, हे मुनीश्वर! जो सुषुप्ति आत्मामें दृश्यउपजी सो सुषुप्ति क्या है जिसमें तुम दबगये थे वहीसुषुप्ति है जिससे जगत् उपजता है? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जहां सर्वसम्बन्धका अभाव है केवल आत्मसत्ता से भिन्न कुछ कहना नहींबनता उसकानाम सुषुप्ति है और उसमें जो फुरना हुआ उसके तीन पर्याय हैं सो सब सन्मात्रके हैं। जो वस्तु देश, काल और वस्तुके परिच्छेदसे रहितहै वह सन्मात्र है; उस सन्मात्र में और कुछ बना नहीं उसके जो सब पर्याय हैं वहीरूप हैं। वहीसत्यवस्तु अपने आपमें विराजता है और कदाचित् अन्यथा भावको नहीं प्राप्त होता; किंचन में भी वहीरूप है और अकिंचन में भी वहीरूप है। आत्माहीका नाम सुषुप्ति है और उसीसे सब जगत् होताहै। जिससत्ता का नाम सुषुप्ति है वही स्वप्नदृश्य होकर भासता है–उससे भिन्न कुछनहीं। जैसे वायु निस्स्पन्द स्पन्दमें वही रूपहै, तैसेही आत्मा दोनों अवस्थाओं में एकहीहै। हे वधिक! हम सरीखोंकी बुद्धि में और कुछ नहीं बना आत्माही सदा ज्योंकात्यों स्थित है और शरीरके आदि भी और अन्तभी वहीरूपहै। उसमें जो किंचनद्वारा भासित हुआ है वहभी वहीरूप है। जैसे सुषुप्ति अवस्था में मुझको अद्वैत का अनुभव होताहै और कहीं फुरना नहीं होता और उसमें जो स्वप्न और जाग्रत् भासिआती है सोभी वहीरूपहै और जिसमें फुरती और जिसमें भासती है उसमें भिन्न कुछनहीं; इससे यह जगत् आत्मा का किंचन आत्मरूपहै। जब तू जागकर देखेगा तब तुझको आत्मरूपही भासेगा। जैसे स्वप्नपुर और संकल्पनगर का अनुभव होताहै और आकाशरूपहै तैसेही यह जगत् आकाशरूप है और शक्ति भी वही है। सर्वशक्ति आत्मा निष्किंचन भी और किंचन भी और शून्यभी वहीहै जो वाणी से कहा नहींजाता। उस अवस्था में ज्ञानी स्थित है। हे वधिक! ज्ञानवान् को प्रत्यत्तकरके अनुभवरूपही भासताहै जैसे स्वप्नेमेंजीव और ईश्वर भिन्न २ भासते हैं और उपाधि करके अनुभवभेदभासता है–वास्तव में कुछभेदनहीं; तैसेही जाग्रत् में अज्ञान उपाधिसे भेद भासता है पर स्वरूपसे आत्मा एकरूप है और जब अज्ञान निवृत्तहोता है तब सर्व आत्मरूपही भासता है। हे वधिक! सर्वजगत्अपनास्वरूप है परन्तु अज्ञानसे भेदहोताहै; जब आपको जाने तब द्वैतभेदभी मिटजावे। जैसे किसी पुरुषने अपनी भुजापर सिंहकी मूर्त्तिलिखी हो और उसके भयसे दौड़ता फिरे और कष्टपावे तो वह प्रमाद से भयवान् होता है क्योंकि,

वह तो अपनाही अंगहै और अपने अंगके जानेसे भय मिटजाता है; तैसेहीस्वरूप के ज्ञान से जगत् भय मिटजाताहै। जैसे स्वप्नेमें अज्ञानसे नानात्व भासता है पर बना कुछनहीं; तैसेही जाग्रत् में नानात्वभासताहै परन्तु बना कुछनहीं। जब मनुष्य अन्तर्मुख होताहै तब बोधकी दृढ़ता होआती है। जैसे प्रातःकाल को ज्यों ज्यों सूर्य्य की किरणें प्रकट होती हैं त्यों त्यों सूर्य्यमुखी कमल खिलते हैं; तैसेही ज्यों ज्यों मनुष्य अन्तर्मुख होता है त्यों त्यों बोध खिलता है। विषयों से वैराग्य और आत्मा के अभ्यास से बुद्धि अन्तर्मुख होकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है तब आत्मा सर्व एक रस भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुषुप्तिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकचतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः २३४॥

मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! तब मैंने उसकी सुषुप्ति से जागकर जगत् को देखा—जैसे कोई पुरुष समुद्रसे निकल आवे; जैसे संकल्प सृष्टि फुरआवे; जैसे आकाश में बादल फुरते हैं और वृक्षसे फल निकल आते हैं; तैसेही उसकी सुषुप्तिसे सृष्टि निकल आई—मानों आकाश से उड़आई वा मानों कल्पवृक्ष से चिन्तामणि निकलआई है। जैसे शरीरके रोम खड़े होआते हैं; जैसे गन्धर्वनगर फुरिआता है; अथवा जैसे पृथ्वीसे अंकुर निकलआता है; तैसेही सृष्टि फुरिआई। जैसे कन्धपर पुतलियां लिखी हों और जैसे थंभमें पुतलियां हों; तैसेही मैंने सृष्टिको देखा। जैसे थंभमें पुतलियां निकली नहीं परन्तु शिल्पी कल्पताहै कि; इतनी पुतलियां निकलेंगी; तैसेही अनहोती सृष्टि आत्मरूपी थंभसे निकल आती है। आत्मरूपी माटीसे पदार्थरूपी वासन निकलते हैं परन्तु यह आश्चर्य है कि, आकाश में चित्र होते हैं और निराकार चैतन्य आकाशमें पुतलियां मनुष्य कल्पता है। हे वधिक ! जैसे आकाश में मकड़ी के समूह निकल आते हैं, तैसेही शून्याकाश से सृष्टि निकलकर उस पुरुषके हृदय में मुझको स्पष्ट भासनेलगी। देश, काल, क्रिया और द्रव्यसे अकस्मात् सत्यासत्य पदार्थ भासने लगते हैं और असत्य पदार्थ सत्य हो भासते हैं। जैसे मणि मंत्र औषध द्रवके बलसे असत्यपदार्थ सत्यहो भासनेलगते हैं और सत्यपदार्थ असत्यभासते हैं, तैसेही अभ्यास के बलसे मुझको उस पुरुषके हृदयमें सृष्टि भासनेलगी। हे वधिक ! जैसा निश्चय संवित् में दृढ़होता है तैसाहीरूप होकर भासताहै, वास्तवमें न कोई पदार्थहै, न भीतर है, न बाहर है, न जाग्रत् है, न स्वप्नहै और न सुषुप्तिहै; यहसबसृष्टि इसके भीतरही स्थित है और प्रमाददोष से बाहरसे फल उत्पन्न होते देखता है। जैसे स्वप्ने में सब पदार्थ अपने भीतर बाहर होतेभासते हैं तैसेही ये पदार्थ अपने भीतर से बाहर फुरतेभासते हैं। हे वधिक ! यह जगत् जो आकारसंयुक्त दृष्टि आताहै सो सब निराकार

है और कुछ बनानहीं ब्रह्मसत्ताही अज्ञानसे जगत्‌रूपहो भासती है; जो ज्ञानवान्‌पुरुष हैं उनको जगत् सत्य असत्य कुछनहीं भासता केवल ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित भासतीहै और जो अज्ञानी हैं उनको भिन्न भिन्न नाम रूप भासता है। जब चित्त की वृत्ति बाहर फुरती है उसको जाग्रत् कहतेहैं; जब अन्तर्मुख फुरतीहै तब उसको स्वप्न कहते हैं और जब स्थित होती है तब उसको सुषुप्ति कहते हैं; तो एकही चित्तवृत्तिके तीनपर्यायहुये और कुछ वास्तव तो नहीं। इसी जगत् के आदि शुद्ध केवल आत्मसत्ताथी और उसमें जब चित्तसंवित्‌फुरी तब जगत्‌रूप भासनेलगी और किसीकारण जगत् उपजानहीं। जिसका कारण कोई नहीं उसको असत्य जानिये—वास्तव में कुछ बना नहीं सर्वजगत् शान्तरूप ब्रह्मही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसुषुप्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिकपञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः २३५॥

वधिकबोला, हे मुनीश्वर! प्रलयके अन्तर तुमको क्या अनुभवहुआथा? मुनीश्वर बोले, हे वधिक! तब मुझको उसके भीतर सृष्टिफुरआई और अपने पुत्र,कलत्र,स्त्री आदि संपूर्ण कुटुम्ब भासिआये। उनको देखकर मुझको ममत्वफुरआया और पूर्वकी स्मृति भूलगई। अपनी षोड़शवर्षकी आयुर्बल भासी और गृहस्थाश्रममें स्थित हुआ तब रागद्वेषसहित मुझको जीवकेधर्म फुरआये क्योंकि; दृढ़बोध मुझको न हुआ था। हे वधिक! जब दृढ़बोध होताहै तब रागद्वेषादिक जीव धर्म्म चलानहीं सक्ते और संसार को सत्यजानकर कोई वासना नहीं होती इसीकारण चलायमान नहीं होता। जिसको बोधकी दृढ़ता नहीं हुई उसको जगत् की वासना खैंचलेजातीहै। हे वधिक! अब मुझको दृढ़बोध हुआ है। इस वासनाको तरना महाकठिन है; यह पिशाचिनी महाबली है क्योंकि; चिरकालसे दृश्यका अभ्यासहुआ इसकारण चलालेजाती है। जब सत्‌शास्त्र का विचार और सन्तोंका संग जीवको प्राप्तहोता है और अभ्यासदृढ़होता है तब दृश्यकासद्भाव निवृत्तहोजाता है। जबतक यह मोक्षकाउपाय नहीं प्राप्तहोता तब तक यह भ्रम दृढ़ रहताहै और जब सन्तोंके संग और सत्‌शास्त्रों के विचारसे यह विचार उपजताहै कि,'मैं कौनहूं' और 'यह जगत् क्याहै' और इसको विचारकर आत्म पदका दृढ़अभ्यास होताहै तब दृश्यभ्रम मिटजाताहै क्योंकि, असम्यक् ज्ञानसे जगत् सत् भासितहुआ है, जब सम्यक्‌ज्ञान हुआ तब जगत्‌का सद्भाव कैसे रहै। जैसे आकाशमें नीलता; बाजीगर की बाजी और रस्सी में सर्प भ्रमसे भासते हैं, तैसेही आत्मामें जगत् भ्रमसे भासता है। जब प्राणी अपने स्वरूप में जागता है तब जगत् भ्रम मिटजाता है पर जबतक स्वरूपमें नहीं जागता तबतक जगत् भ्रम नहीं मिटता। वधिकबोला, हे मुनीश्वर! यह तुम सत्य कहतेहो कि, जगत् भ्रम मिटना कठिन है।

मैं तुम्हारे मुखसे वारंवार सुनताहूं और विचारताहूं और पदपदार्थ का ज्ञानभी मुझ-
को दृढ़होगया है परन्तु संसारभ्रम नष्टनहीं होता। यह मैं जानता और सुनताहूं कि,
सन्तोंकेसङ्ग और सत्शास्त्रों के विचार बिन शान्ति नहींहोती पर यह संशय मुझको होता
है कि; तुम जाग्रत् जगत्को स्वप्नवत् कैसेकहतेहो ? कई पदार्थ सत्यभासतेहैं और कई
असत्य भासतेहैं। मुनीश्वरबोले, हे वधिक! यह सर्वजगत् पृथ्वी आदिक पदार्थसत्यभा-
सतेहैं और शशेके सींग आदिक असत्यभासतेहैं सो सबमिथ्यारूपहैं। जैसे स्वप्ने में सत्य
असत्यपदार्थ भासते हैं सो सर्व असत्यरूप हैं, तैसेही यह जगत् असत्यरूपहै पर उसमें
अल्प और चिरकालकी प्रतीतिका भेद है। जाग्रत् चिरकालकी प्रतीति है उसमें प-
दार्थ सत्य भासते हैं और स्वप्ना अल्पकालकी प्रतीति है इससे स्वप्ने के पदार्थ अ-
सत्यभासतेहैं परन्तु दोनों भ्रमरूप और असत्यहैं इसकारण मैं तुल्यकहताहूं। असत्य
ही पदार्थ भ्रमसे सत्यकीनाईं भासते हैं और यह सर्व जगत् स्वप्नमात्र है उसमें सत्य
और असत्य क्या कहूं। जैसे स्वप्ने में कई पदार्थ सत्य और कई असत्य भासते हैं
पर सबही असत्य हैं, तैसेही जाग्रत् में कई पदार्थ सत्य भासते और कई असत्यभा-
सते हैं परन्तु दोनों भ्रममात्रहैं इसीसे असत्यहैं। हे वधिक! प्रतीति का भेद है, पदार्थ
में भेद कुछ नहीं। जिसमें प्रतीतिदृढ़ होरही है उसको सत्यकहते हैं और जिसमें प्रतीति
दृढ़नहीं उसको असत्य कहते हैं। एक ऐसे पदार्थ हैं कि, स्वप्ने में उनकी भावना दृढ़
होगई है सो जाग्रत् में भी प्रत्यक्षभासते हैं और मनोराजकी दृढ़ता जाग्रत् रूप हो-
जाती है सो भावनाही की दृढ़ता है और भेद नहीं। जिसमें भावना दृढ़ होगई है
वह सत्य भासनेलगा है जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् संकल्प मात्रही भासताहै
संकल्पसे भिन्न जगत् का कुछ रूप नहीं तो उसमें मैं सत्य और असत्य क्याकहूं ? सब
जगत् भ्रममात्र है, जो ज्ञानवान् हैं उनको सत्य असत्य कुछ नहीं सब ज्ञानरूपही भा-
सताहै। जैसे जिसको स्वप्ने में जाग्रत्की स्मृति आईहै उसको फिर स्वप्ना नहीं भासता
है, तैसेही जिसको जाग्रत् रूपस्वप्नेमें बोधस्मृतिहुईहै वह फिर मोक्षको नहीं प्राप्त होता।
इससे न कोई जाग्रत् है, न कोई स्वप्ना है और न कोई नेति है क्योंकि; नेतिभी कुछ
और वस्तु नहीं। जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं और उनकी मर्यादा
नेतिभी भासती है तो वह नेति किससे है ? सब ज्ञानरूप होती हैं; तैसेही जाग्रत् में
भी सब ज्ञानरूप है और संवित् के फुरने से नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और
उसमें नेतिभी भासती हैं; इससे न कोई जगत् और न कोई नेति है। इसका कारण
कोई नहीं; कारण विनाही जगत् अकस्मात् फुरआता है और मिटभी जाता है। सं-
वेदन के फुरने से जगत् फुरआता है और संवेदन के मिटे से मिटजाता है—इससे ज-
गत् संवेदन रूप है। जैसे वायु स्पन्दरूप होती है; तैसेही संवेदनही जगत्रूप हो

भासता है। जैसे वायु स्पन्द रूप होती है तब फुरन रूपहो भासती है और निस्स्पन्द को कोई नहीं जानता परन्तु वायुको दोनों तुल्य हैं; तैसेही चित्त संवेदन के फुरने में जगत् भासता है और ठहरने में जगत् किंचन मिटजाताहै—फुरना और ठहरना दोनों उसके किंचन हैं और आप दोनों में तुल्य है । हे वधिक ! नेतिभी अज्ञानीके समुझाने के निमित्त कही है। स्वप्ना भी असत्य है सब कोई जानता है पर स्वप्नेका वृत्तान्त जाग्रत् में सिद्ध होता दृष्टि आता है; कोई कहता है कि, रात्रिमें मुझको स्वप्ना आया है कि; अमुक कार्य्य इसप्रकार होगा और जाग्रत् में वैसाही होता दृष्टि आताहै; पिता पुत्र से कहजाता है कि; मेरीगति करना और अमुकस्थान में द्रव्यपड़ा है तुम निकाललो सो उसीप्रकार होता दृष्टि आया है। जो नेतिहोती तो कोई कार्य्य सिद्ध न होता पर सो तो होताहै इससे नेतिभी कुछ वस्तु नहीं। आत्मासे भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जाग्रत् उसका नाम है जिसको आत्मशब्द कहते हैं और जिसको तुम जाग्रत् कहते हो सो कुछ वस्तु नहीं । जाग्रत् मन सहित षट्इन्द्रियोंकी संवेदन होती है सो स्वप्ने में भी मन सहित षट्इन्द्रियों की संवेदन होती हैं और उनमें ग्रहण होताहै इससे जाग्रत् कुछ वस्तु नहीं । जो जाग्रत् में अर्थ सिद्धहोता है और स्वप्ने में भी होवे तो जाग्रत् कुछ वस्तु न हुई और जो तू कहे कि, स्वप्ना कुछ वस्तु है तो स्वप्नाभी कुछ वस्तु नहीं क्योंकि, स्वप्ना तहां होताहै जहां निद्राभ्रम होताहै। केवल शुद्ध चिन्मात्र सत्ताकाजगत् किंचन है। जैसे रत्नों का चमत्कार स्थित होताहै सो रत्नों से भिन्न कुछ वस्तु नहीं रत्नही व्यापा है, तैसेही जाग्रत् स्वप्न जगत् आत्मा का चमत्कार है । बोधसत्ता केवल अपने आप में स्थित है सो अनन्त है उसमें जगत् कुछ बना नहीं । जो आत्मा से भिन्न जगत्भासता है सो नाशरूप है और आत्मासदा अविनाशी है। हे वधिक ! जब यह पुरुष शरीरको छोड़ताहै तब परलोकमें सुख दुःख ऐसे भोगताहै जैसे कि, जलमें तरङ्ग उठकर मिटजाता है और दूसरी ठौर और प्रकारसे उठताहै सो जलही जल है; आगे भी जलथा, पीछे भी जलहै, तरङ्ग भी जलहै और जलही का विलास इसप्रकार फुरता है; तैसेही यह शरीर भी अनुभवरूप है—अनुभवसे भिन्न कुछ नहीं । जैसे मनुष्य एक स्वप्न को छोड़कर दूसरा स्वप्ना देखताहै तो क्याहै; अपनाही आपहै; तैसेही यह जगत् भी आत्मरूपहै। हे वधिक ! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया येही चारों वपु हैं। जाग्रत् जो सृष्टिकी समष्टिताहै उसका नाम विराट् है; स्वप्न जो लिंग शरीर की समष्टिताहै उसका नाम हिरण्यगर्भ है; सुषुप्ति शरीर की समष्टिता अव्याकृत मायाहै और तुरीया सर्व शरीरों की समष्टिता है सो चेतनरूप आत्माहै । तुरीया साक्षी भूतके जाननेको कहते हैं; उसकी समष्टिता रूप चेतनवपुहै; चारों शरीर उसके हैं और वह सदा निराकार अचेत चिन्मात्रहै। हे वधिक ! ये चारों परमात्माके शरीरहैं वह परमात्मा

निराकारहै और आकार जो उसमें दृष्टि आता है सो भी वही रूपहै । आकार कल्पना मात्र है और आत्मा सर्वकल्पना से रहितहै—इससे सब जगत् चिदाकाशरूप हैं । जैसे पत्थरकी शिलामें कमलके फूल नहीं लगते—उनका होना असंभव है; तैसेही आत्मा में जगत्का होना असंभव है । हे वधिक ! आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है; तू जागकर देख कि सर्व पदार्थ संकल्पमात्र हैं और जिसमें कल्पित हैं वह नामरूपसे रहित है । जब तू उसको देखेगा तब सब जगत् आत्मरूप भासेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वप्ननिर्णयोनाम
द्विशताधिकषट्त्रिंशत्तमस्सर्ग्गः २३६ ॥

वधिक बोला, हे मुनीश्वर ! उस पुरुषके हृदयमें जो तुमने सृष्टि देखीथी उसमें तुम किसप्रकार विचरतेथे और क्या देखाथा सो कहो ? मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! जो कुछ वृत्तांत है सो तू सुन । जब मैंने उसके हृदयमें नानाप्रकारका जगत् देखा तब मैं अपने कुटुम्ब में रहनेलगा और पूर्वकी स्मृति विस्मरणकर षोड़शवर्ष पर्यंत उसीको सत्य जान कर चेष्टा करतारहा । तब मेरे गृह में मान करने योग्य उग्रतपानाम एक ऋषीश्वर आया और उसका मैंने बहुत आदर किया । उसके चरणधोकर उसे मैंने सिंहासन पर बैठाया और नानाप्रकारके भोजन से उसको तृप्तकिया । जब उस ऋषि ने भोजन करके विश्राम किया तब मैंने कहा; हे ऋषीश्वर ! अदृष्टि क्रोधको मैं जानताहूं । तुम परमबोधवान् हो क्योंकि, आपको आपही जानतेहो जब तुम आयेथे तब थकेहुये थे परन्तु तुममें क्रोध न दृष्टि आया और जब तुमने नानाप्रकारके भोजन किये तब तुम हर्षवान् भी न हुये; इसकारण मैंने जाना कि, तुम परम बोधवान्हो और तुम्हारेमें राग द्वेष कुछ नहीं है इससे मैं संशययुक्त होकर एकप्रश्न करताहूं कृपा करके उसका उत्तर देकर मेरे संशयको दूरकीजिये । हे भगवन् ! इस जगत्में जो दुर्भिक्ष पड़ता है और सब इकट्ठे मरजाते हैं और कष्टपाते हैं इसका क्या कारणहै ? यह तो मैं जानताहूं कि जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म जीव करता है उसका फल पाता है । जैसे धानको बोता है तो समयपाकर फल भी अवश्य आता है, तैसेही कर्मका फल भी अवश्य प्राप्तहोताहै और जिसने कियाहै वही भोगताहै पर दुर्भिक्ष में इकट्ठा कष्ट क्योंकर प्राप्त होता है ? उग्रतपा बोले, हे साधो ! प्रथमयहसुनो कि, जगत् क्या वस्तु है । यह जगत् कारणविना उत्पन्नहुआ है और जो कारणविना दृष्टिआवे उसे भ्रममात्रजानिये इससे तू विचारकर देख कि, 'यह जगत् क्या है;' 'तू कौन है;' 'इसमें क्याहै, और इसका अन्त प्रमाण कहांतक है ? हे वधिक ! यह जगत् स्वप्नमात्र है और यह शरीर भी स्वप्नमात्र है । तू मेरास्वप्ननर है; मैं तेरा स्वप्ननर हूं और सब जगत् स्वप्ननर है । कारण कार्य कोईनहीं, सब आभासमात्र हैं; आभासमें कुछ और वस्तु नहीं होती इससे सब जगत्

आत्मस्वरूप है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रममात्र होता है; सर्प कुछ नहीं रस्सीही है; तैसेही सब जगत् चिन्मात्ररूप है। उसमें जगत् कुछ बनानहीं केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें अहंहोकर इसप्रकार चैतन्यता संवेदन फुरती है तब जगत् आकारका स्मरणहोता है और जैसे जैसे संकल्प फुरता है तैसाही तैसा जगत् भासता है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि और संकल्पनगर नानाप्रकारके भासते हैं पर अनुभवसे भिन्न नहीं, तैसेही यह जगत् भासता है। जिस संवित् में अपना स्वरूप स्मरणहोता है उसको जगत्कारण कार्यरूप भासता है—वहीजीव है और जिससंवित्को कर्मकी कल्पनास्पर्श करती है उसको उन कर्मोंका फल नहीं लगता और कर्त्तव्य दृष्टिभी आताहै परन्तु उसके हृदय में कर्त्तव्यका अभिमान नहीं स्पर्शकरता। जिसके हृदयमें कर्त्तव्यका अभिमान होता है उसको फल भी होताहै। हे साधो! यह जो सृष्टिहै उसका एकविराट्पुरुष है उसी का यह शरीर है और यह विराट् भी और विराट्के संकल्पमें है। यह विराट् उस विराट् का रोमांच है। जब विराट् पुरुषके अंगमें क्षोभहोताहै और जीवकी पापवासना उदय होती है तब वासना और अंगकाक्षोभ इकट्ठाहोकर उसस्थानमें उपद्रव और कष्टहोता है। जैसे वनमें बहुत वृक्षहोते हैं और उनपर वज्रआनपड़ताहै तो उससे सबचूर्ण होजाते हैं तैसेही इकट्ठे पापसे इकट्ठेही मरजाते हैं और इकट्ठे दुर्भिक्षमें कष्टपातेहैं। जैसे किसी पुरुषके अंगपर मक्खीकाटे तो उससे वह अंग कांपताहै और उस अंगकेकांपनेसे रोम भी कांपने लगजाते हैं और जो सर्पादिक जीव कहीं डसता है तो साराशरीरकष्टपाताहै और सब रोम कष्टपाते हैं; तैसेही यह जगत् विराट्पुरुषका शरीर है जब किसी नगर में पापउदय होता है तब एक रोमरूपी नगर जीव कष्टपाते हैं और जो सारे अंगरूपी देशमें पाप उदय होता है तब सर्पके काटनेके समान विराट्का साराशरीर क्षोभवान् होता है और उसके शरीरपर रोमरूपीसबजीव कष्टपाते हैं। आत्मसत्ता केवल अनुभव रूप है उसके प्रमादसे यह आपदा दृष्टि आती है। यह जगत् कारणसे उपजाहोता तो सत्य होता सो तो कारणसे उपजानहीं सत्यकैसेहो? इस जगत्में सत्य प्रतीतिकरनीही अज्ञानता है। हे साधो! इसआकाशकाकारण कोईनहीं; पृथ्वीका कारण कोई नहीं और अविद्याका कारण भी कोई नहीं। स्वयंभू अकारण है। स्वयंभू उसकानामहै कि, जो अपने आपसे प्रकट है तो उसका कारण कौनहो? अग्नि, जल, वायुका कारण भी कहीं नहीं। जो तुमकहो कि, सबकाकारण आत्मा है तो आत्माको निमित्तकारण कहोगे अथवा समवायकारण कहोगे? यदि प्रथमपक्ष निमित्तकारण कहिये तो नहीं बनता क्योंकि आत्मा अद्वैत है और दूसरीवस्तु कोई नहीं तो निमित्तकारण किसकाहो? यदि समवाय कारण कहिये तो भी नहीं बनता क्योंकि, समवायकारण आप परिणाम से कार्य होता है पर आत्मा अच्युत है और अपने स्वरूपको नहीं त्यागता सो समवाय का-

रण कैसेहो ? इससे यदि आत्मामें कारण-कार्यभाव नहीं तो फिर जगत् किसका कार्य हो ? हे अंग ! जो कारण से रहित दृष्टि आवे उसको जानिये कि, भ्रममात्र भासता है और जो तू कहे कि, कारण विना पिंडाकार नहीं होते कहीं कारण भी होगा; तो हे अंग ! जैसे मनुष्य देहको त्यागता है और परलोक जा देखता है तो कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगता है पर उस शरीर का कारण किसे कहिये ? वह तो कारणसे नहीं उपजा भ्रममात्र है; तैसे यह भी भ्रममात्र जानो । जैसे स्वप्ने में नानाप्रकारके आकार भासि आते हैं सो किसी कारण से नहीं उपजते और आकाशमें तरुवरे और रंगभासते हैं सो भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र है । जैसे बालकको अनहोता वेताल भासता है और उससे वह भयवान् होता है, तैसेही यह जगत् भी अनहोता स्वरूप के प्रमादसे भासता है; वास्तव में परमात्मसत्ता ज्योंकीत्यों है वही संवेदन से जगत्-रूपहो भासती है-उसमें वहीरूप है । जैसे वायु चलने और ठहरने में एकही रूप है परन्तु चलने से भासती है और ठहरने से नहीं भासती; तैसेही चित्तसंवित् फुरनेसे जगत् आकार हो भासती है और उसमें नानाप्रकारके शब्द-अर्थ दृष्टिआते हैं और जब फुरने से रहित होती है तब अपने स्वभाव को देखती है जब संकल्प की दृढ़ता होती है तब कारण कार्य भासनेलगते हैं। जिसको कारण कार्य भासताहै उसको जगत् सत्यभासता है और जिसको कार्यसे रहित भासता है उसको जगत् आत्मरूप है । जिस को कारण कार्य बुद्धि है उसको वही सत्यहै । वह पुण्य करेगा तो स्वर्गमें सुख पावेगा और पाप करेगा तो नरकदुःख भोगेगा-इससे उसको पुण्यही करना भलाहै । जब जीव के पाप इकट्ठेहोते हैं तब दुर्भिक्ष पड़ती और मृत्युआती है । जैसे पत्थरकी वर्षा हो तैसेही वे कष्टपाते हैं और जो मेरा निश्चय पूछो तो न पाप है, न पुण्य है, न दुःख है, न सुख है और न जगत् है । जब स्वरूपके प्रमादसे अहंता उदयहोती है तब नानाप्रकारके विकार भासते हैं और जब प्रमाद निवृत्तहोता है तब सब आत्मरूप भासता है-इससे तुम सर्वकल्पनाको त्यागकर अपने स्वरूपमें स्थितहोरहो तब सर्व संशय मिटजावेंगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वप्नविचारोनाम
द्विशताधिकसप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः २३७ ॥

मुनीश्वरजी बोले, हे वधिक ! इसप्रकार उग्रतपा ऋषीश्वरने उपदेश किया उससे मैं अपने स्वभाव में स्थितहुआ और अकृत्रिमपद को प्राप्तहुआ । उग्रतपा के साथ मानो विष्णुभगवान् उपदेश करने आन बैठेथे, उन्हीं के उपदेशसे मैं जागा । जैसे कोई रजसे वेष्टित स्नानसे उज्ज्वलहो तैसेही मैं हुआ अपनी पूर्वस्मृति और अवस्था को स्मरणकर और समाधिवाले शरीर और आत्मवपुको भी जान, यह उग्रतपा तेरे पास बैठाहै । अग्निबोले, हे राजन् ! जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा तब वधिक वि-

स्मयको प्राप्तहुआ और बोला, हे मुनीश्वर ! बड़ाआश्चर्य है जो तुम कहतेहो कि, स्वप्नमें मुझको उग्रतपाने उपदेश कियाथा और फिर जाग्रत्में कहतेहो कि, यह बैठा है। यहवार्त्ता तुम्हारी कैसे मानिये ? जैसे बालक अपनी परछाहींमें वेताल कल्पे और कहे यह प्रत्यक्ष बैठाहै तो जैसे वह स्पष्ट नहीं भासता, तैसेही यह तुम्हारा वचन स्पष्ट नहीं भासता। यह अपूर्व वार्त्ता सुनकर मुझको संशय उपजाहै सो तुम दूरकरो। मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! यह बात आश्चर्य्यके उपजानेवाली है परन्तु जैसे यह वृत्तान्त हुआ है सो संक्षेपसे तुमसे कहताहूं सुनो। जब उग्रतपाने मुझको उपदेश किया तब मैंने कहा, हे भगवन् ! तुम यहां विश्रामकरो और जिसप्रकार मैं रहताहूं तैसेही तुम भी रहो। तब मैं वहां रहनेलगा और उसका उपदेश पाकर विचारा कि, यह जगत् मिथ्या है, मेरा शरीर भी मिथ्या है और इसके सुखके निमित्त मैं क्या यत्न करताहूं ? इन्द्रियां तो ऐसी हैं जैसे सर्प्प होते हैं; इनके सेवनेवाला संसाररूप बन्धनसे कदाचित् मुक्त नहीं होता। मेरेजीनेको धिक्कारहै। जो इनके सुखकी वाञ्छा करते हैं वे मूर्ख हैं और मृगकी नाईं मरुस्थलके जलपान करने के निमित्त दौड़ते हैं और थकपड़ते हैं पर तृप्त कदाचित् न होंगे। मैं अविद्यासे सुखके निमित्त यत्न करताथा पर इनसे तृप्ति कदाचित् नहीं होती। हे वधिक ! ममता के रूप जो बान्धव हैं सोही चरणोंमें जंजीर है और अन्धकूपमें गिरनेका कारण है इनसे बांधाहुआ मैं इन्द्रियोंके विषयरूपी कूपमें गिराथा। अब मैंने विचार किया है कि, बन्धनका कारण कुटुम्ब है उसको मैं त्यागदूं। फिर विचारकिया कि, इनके त्यागमें भी सुखनहीं प्राप्तहोता जबतक अविद्याको नष्ट न करूं। हे वधिक ! ऐसे विचारकर मैं गुरुके पासगया और मनमें विचारकिया कि, जगत्भ्रममात्र है और गुरु भी स्वप्नमात्र है इनसे क्या प्राप्त होगा ? फिर विचारकिया कि, नहीं ये ज्ञानवान् पुरुष हैं और इनको 'अहंब्रह्म' का निश्चयहै इससे ये ब्रह्मस्वरूप हैं और कल्याणमूर्ति हैं इनसे जाके प्रश्न करूं। तब मैंने जाकर उनको प्रणामकिया और कहा, हे भगवन् ! उस अपने शरीर को देखआऊं और इसके शरीर को भी देखूं कि, कहां है। इसजगत्का विराट्पुरुष है। हे वधिक ! जब इसप्रकार मैंने कहा तब ऋषि ने हँसकर मुझसे कहा, हे ब्राह्मण ! वह तेरा शरीरकहां है ? वह शरीर तो दूरगया है अब उसेकहां देखेगा ? तू आपही जानेगा। तब मैंने हाथ जोड़कर ऋषिसे कहा, हे ऋषे ! अब मैं जाताहूं, मेरे आनेतक तुम यहां बैठे रहना। हे वधिक ! ऐसे कहकर मैं आधिभौतिक देहके अभिमानको त्यागकर अन्तवाहकशरीरसे उड़ा और आकाश मार्ग में उड़ता उड़ता थकगया परन्तु शरीर कहीं न पाया। तब मैं फिर ऋषिके पास आया और कहा हे पूर्व अपरके वेत्ता और भूत भविष्यत्के जाननेवाले ! वे दोनों शरीर कहां गये ? न इस सृष्टिके विराट्का शरीर भासता है जिसके मार्ग से हम आये थे और न अपना शरीर

भासता है ? हे संशयरूपी अन्धकारके नाशकर्त्ता सूर्य ! आप इसका कारण बताइये । उग्रतपा बोले, हे कमलनयन और तपरूपी कमलकी खानि के सूर्य्य और ज्ञानरूपी कमलके धारण करनेहारे विष्णुकी नाभि और आनन्दरूपी कमलकी खानि ! तू सब कुछ जानता है और आत्मपद में जागाहुआ । तू तो योगीश्वर है, ध्यान करके देख कि, सब वृत्तांत तुझको दृष्टिआवे । हे मुनीश्वर ! यह जगत् असत्यरूपहै इसमें स्थिर कोई वस्तु नहीं । विचारकर देखो कि, शरीरकी अवस्था तुमको दृष्टिआवे और जो मुझसे पूँछतेहो तो मैं कहताहूँ । हे मुनीश्वर ! जिस वन में तुम रहते थे और जहां तुम्हारे शरीर थे उस वनमें एक कालमें अग्निलगी और सबप्रकार के वृक्ष और बेलि जल गईं जलभी अग्निसे क्षोभनेलगा और वनचारी पशु पक्षी सब जलगये और महाकष्ट को प्राप्तहुये उसीके साथ तुम्हारा शरीरभी जलगया और कुटी भी जलगई । मुनीश्वर बोले, हे भगवन् ! उस अग्निसे जो सम्पूर्णवन जलगया तो, उसका कारण कौनथा ? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर ! यह जगत् जिसमें हम और तुम बैठे हैं इसीका विराट्है और जिसके शरीरमें तुमने प्रवेश किया था और जिसमें उसका और तेरा समाधिवाला शरीर है उसका विराट् और है—वहसृष्टि उस विराट्का शरीर है । हे मुनीश्वर ! उस विराट् के शरीर में जो क्षोभहुआ इसकारण अग्नि उत्पन्न हुई और शरीर, वृक्ष इत्यादिक सब जलगये । इससृष्टि के विराट्का नाम ब्रह्माहै; उस ब्रह्माका विराट् और है और उसका विराट् आत्मा है जो सदा अपने आपमें स्थित है । और उसमें कुछ और नहीं बना । जिस पुरुषको उसका प्रमादहै उसको उपद्रव और कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं उससे वह कर्मों के अनुसार दुःख सुख भोगता है और जिसको स्वरूप का साक्षात्कार है उसको जगत् आत्मसहित भासताहै और सर्व ओरसे ब्रह्म भासता है । हे मुनीश्वर ! जब इसप्रकार वनके पशु पक्षी सब जले तब तुम्हारी कुटी में भी आगलगी इससे वह कुटी और तुम्हारा शरीर अग्नि से जलगया और जिसके शरीर में तुमने प्रवेश किया था वहभी जलगया । तुम्हारे शिष्य और उसका ओज भी जल गया । और तुम दोनोंकी संवित् आकाशरूप होगई । वह अग्निभी वनको जलाकर अन्तर्द्धान होगई । जैसे अगस्त्यमुनि समुद्र का आचमन करके अन्तर्द्धान होगये थे, तैसेही वह अग्निभी वनको जलाकर अन्तर्द्धान होगई और अब तुम्हारे शरीर की राखभी नहीं रही । जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में नहीं दिखाई देती, तैसेही तुम्हारे शरीर अदृष्ट होगये । हे मुनीश्वर ! यह सर्व जगत् स्वप्नमात्र है । मैं तेरे स्वप्न में हूं और सब जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है सो सबका अपना आप है, जगत् उसीका आभास है । जैसे संकल्पसृष्टि, स्वप्ननगर और गन्धर्वनगर होता है, तैसेही यह जगत् भी है । हे मुनीश्वर ! यह जगत् तेरे स्वप्नमें स्थित है और तुझको चिरकालकी प्रतीति

से जाग्रत्‌रूप कारणकार्य्य नानाप्रकारका सत्य होकर भासता है। मुनीश्वर बोले, हे भगवन्! जो यह स्वप्ननगर सत्य होगया है तो सबही स्वप्ननगर सत्यहोंगे? उग्रतपा बोले, हे मुनीश्वर! प्रथम तू सत्यको जान कि, सत्य क्या वस्तु है; पर जगत् जो तुझको भासताहै सो सबही स्वप्ननगर है इसमें कोई पदार्थ सत्य नहीं। इस जगत् को तू समाधिवाले शरीरकी अपेक्षा से असत्य कहता है और जिसको तू जाग्रत्‌वपु कहता है सो किसकी अपेक्षा से कहेगा? यह तो अदृष्टिरूप है इससे इसको स्वप्नाजान। जिस सत्ता में यह समाधिवाला शरीर भी स्वप्ना है उस सत्ताको जान तब तुझको सत्यपद की प्राप्ति होगी। जैसे यह जगत् आत्मसत्ता में आभासफुरा है, तैसेही वहभी है। तू जागकर देख तो इसमें और उसमें कुछ भेद नहीं और सर्व्व जगत् जो भासताहै सो सब आत्मरूप रत्नका चमत्कार है। जैसे सूर्य्यकी किरणों में अनहोताही जल भासता है, तैसेही सब जगत् आत्मा में अनहोता भासता है और आत्मा के प्रमाद से सत्य भासता है। तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख। मुनीश्वर बोले, हे वधिक! उग्रतपा ऋषीश्वर रात्रि के समय इसप्रकार कहते हुये शय्यापर सोगया और जब कुछ काल में जागा तब मैंने कहा कि, हे भगवन्! और वृत्तांत मैं फिर पूंछूंगा परन्तु यह संशय प्रथम दूरकरो कि, उस व्याधका गुरु तुमने मुझको किस निमित्त कहा; मैंतो व्याधको जानताभी नहीं? उग्रतपा बोले, हे दीर्घतपस्विन्! ध्यान करके देख तूतो सब कुछ जानता है जिसप्रकार वृत्तांत है उसको जानेगा। जो मुझसे पूंछता है तो मैंभी कहताहूं और यह वृत्तांत तो बड़ा है पर मैं तुझको संक्षेप से कहता हूं, हे मुनीश्वर! तुम्हारे देशमें राजा के बांधव और सब लोग अपना धर्म छोड़देंगे तब दुर्भिक्ष पड़ेगा और वर्षा न होगी इससे लोग दुःख पावेंगे और मरमर जावेंगे। तेरे कुटुम्बभी मरेंगे और कुटी भी नष्ट होजावेगी और वृक्ष, फल, फूलसे रहित होवेंगे। केवल तू और मैं दोनों वनमें रहजावेंगे क्योंकि; हमको सुख और दुःखकी वासना नहीं हम विदितवेदहैं— विदित वेदको दुःख कैसे हो? हे मुनीश्वर! कुछ काल तो इसप्रकार चेष्टा होगी, फिर कुटी के चौफेर फूल, फल, तमालवृक्ष, कल्पतरु, कमलताल आदि नानाप्रकार की सामग्री होगी; बड़ी सुगंधि फैलेगी; मोर और कोकिला विराजैंगे और भँवरे कमलपर गुंजारकरेंगे निदान ऐसा विलास प्रकट होगा मानों इन्द्रका नन्दनवन आनलगा है और ऐसी दशा फिर होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरात्रिसंवादोनाम
द्विशताधिकाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः २३८॥

मुनीश्वर बोले, हे वधिक! उग्रतपा ऋषीश्वरने मुझसे फिर कहा कि; हे मुनीश्वर! इस प्रकार वह वन होगा तब तू और मैं एकसमय तपकरने उठेहोंगे और वहां एक

व्याध मृग के पीछे दौड़ता तेरी कुटीके निकट आवेगा, इसको तू सुन्दर और पवित्र कथा उपदेश करेगा और उसमें स्वप्ने का प्रसंग चलेगा। उस प्रसंगको पाकर स्वप्न और जाग्रत् का वृत्तान्त वह पूछेगा, उससे तू स्वप्ने का प्रसंगकहेगा और उसस्वप्ने के प्रसंग में उसको तू परमार्थ उपदेश करेगा क्योंकि; सत्यका स्वभाव यह है और मेरे समागम का वृत्तान्त उपदेश करेगा। तेरे वचनों को पाकर वह पुरुष विरक्त चित्त होकर तपकरेगा; उससे उसका अंतःकरण निर्मलहोगा और सत्यपदको प्राप्तहोगा। हे मुनीश्वर! इसप्रकार होगा सो मैंने तुझे संक्षेप से कहा है, तू भी ध्यानकरके देख इसकारण मैंने तुझको व्याधका गुरु कहा है। हे व्याध! इसप्रकार जब उग्रतपा ने मुझसे कहा तब मैं सुनकर विस्मित हुआ कि; इसने क्या कहा? बड़ा आश्चर्य है; ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती कि, क्या होना है। हे वधिक! इसप्रकार मेरी और उसकी चर्चा हुई तब रात्रि व्यतीत होगई और मैंने स्नान करके प्रीति बढ़ाने के निमित्त भलीप्रकार उसकी टहलकी तब वह वहां रहने लगा। फिर मैं विचार करने लगा कि, यह जगत् क्या है; इसका कारण कौन है और मैं क्या हूं। तब मैंने विचार किया कि, यह जगत् अकारण है, किसी का बनाया नहीं और स्वप्न मात्र है। आत्मरूपी चन्द्रमाकी जगत्रूपी चांदनी है; उसीका चमत्कार है और वही आत्मसत्ता घट, पट आदिक आकारहो भासतीहै वास्तवमें न कोई कर्म है, न क्रियाहै; न कर्त्ता है; न मैं हूं और न जगतहै। जो तू कहै कि, क्यों नहीं सर्व अर्थ और ग्रहण त्याग तो सिद्ध होते हैं तो ग्रहण त्याग पिंडसे होताहै और पिंड तत्त्वका होता है, सो तो यह पिंड न किसी तत्त्वसे बना है और न किसी माता पितासे है; यह तो स्वप्ने में फुर आयाहै तो इसका कारण किसे कहिये? और जो कहिये कि; भ्रममात्र है तो भ्रमका कारण कौन है और भ्रांतिका द्रष्टा कौनहै? जिस शरीरसे दृष्टि आताथा उसका द्रष्टा रूप मैं तो भस्म होगया इससे जगत् और कुछवस्तु नहीं; केवल आदिअन्तसे रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है सोही मेरा स्वरूप है। वहां यह जगत्रूप होकर भासताहै पर केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदिक पदार्थ सब आत्मरूपहैं। जैसे समुद्र तरंगरूपहोभासता है परन्तु कुछ और नहीं होता, तैसेही आत्मा नानाप्रकारहो भासता है पर कुछ और नहीं होता ब्रह्मसत्ताही निराभासहै और आभासभी कुछहुआ नहीं केवल चेतनसत्ता ऐसे रूपहोकर भासती है। हे वधिक! इसप्रकार विचार करके मैं विगतज्वर हुआ और मुनीश्वर के वचनों से पर्वतकी नाईं अपने स्वभावमें अचल स्थित हुआ। जो कुछ इष्ट अनिष्ट पदार्थ प्राप्त हो उसमें समरहूं अभिलाषसे रहित सब अपनी चेष्टाको करूं परन्तु अपने स्वभाव में स्थित रहूं। हे वधिक! सुखभोगनेके निमित्त न मुझको जीने की इच्छा है और न

मरनेकी इच्छाहै; न जीनेमें हर्षहै और न मरनेमें शोकहै; मैं सदा आत्मपदमें स्थितहूं कुछ संशय मुझको नहीं। संपूर्ण संशय फुरनेमेंहै सो फुरना मेरेमें नहीं रहा इसलिये संस.र भी नहीं है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरात्रिप्रबोधोनाम द्विशताधिकैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २३९॥

मुनीश्वर बोले, हे व्याध! इसप्रकार जब मैंने निर्णय किया तब तीनोंताप मेरेनष्ट होगये और वीतराग होकर निःशंक हुआ। तब किसी पदार्थकी मुझको तृष्णा न रही और निरहंकारहुआ और अनात्मामें जो आत्म अभिमानथा सो निवृत्त होकर निर्वाण और निराधार और निराधेय हुआ और अपने स्वभाव आत्मत्वमें मैं स्थितहोकर सर्वात्मा हुआ। हे वधिक! जो कुछ शरीरका प्रारब्ध प्राप्तहो उसमें मैं यथाशास्त्र विचरूं परन्तु कर्तृत्वका अभिमान निश्चय न हो जगत् मुझको आत्मरूप भासे और तृष्णा करनेवाली मिथ्याबुद्धि आभासमात्रहुई सो आभास कुछ वस्तुनहीं—चिदाकाश आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। हे वधिक! मुनीश्वरका कहा वृत्तान्त होगया। तुम मेरे पास आये हो इसलिये जो कुछ उपदेश मैंने किया है वह परमपावन और सब का सार है। जिसप्रकार जगत् के पदार्थ, तुम और मैं और जाग्रत् वृत्तान्त है सो मैंने तुझसे कहा। व्याधने पूछा, हे मुनीश्वर! यदि इसप्रकार है तो तुम; मैं और ब्रह्मादिक भी सब स्वप्ने के हुये और असत्यही सत्यकी नाईं भासते हैं? मुनीश्वर बोले, हे व्याध! तुम, मैं और ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब स्वप्ने के पदार्थ हैं; न यह जगत् सत्य है, न असत्य है और न सत्यासत्यके मध्य है; न अनिर्वचनीय है क्योंकि; अनुभवरूप है। हे व्याध! जो अनुभव से देखिये तो वही रूप है और जो अनुभवसे भिन्न कहिये तो हैही नहीं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अनुभव में फुरती है, जो अधिष्ठानकी ओर देखिये तो वहीरूपहै और उससे भिन्न कहने में नहींआता। हे वधिक! जैसे कोई नगरदेखा है और वह दूरहै तो यदि स्मृति करके देखिये तो भासता है परन्तु कुछ बना नहीं स्मृतिमात्र है; तैसेही सब पदार्थ संकल्पमात्रहैं कुछबने नहीं। अपने स्वभावमें स्थितहोकर देख; तूतो बोधवान्है मिथ्याभ्रममें क्योंपड़ाहै? हे व्याध! तू मेरे उपदेशसे विश्रामवान् हुआ कि, नहीं हुआ? मैं जानता हूं कि, ऐसी परमपदसत्तामें तुमने क्षणभी विश्राम नहीं पाया क्योंकि; दृढ़भावना नहीं हुई। हे वधिक! परमपद पाने का मार्ग यही है कि, संतोंकी संगति और सत्शास्त्रोंका विचार करे और उनके अभ्यासमें दृढ़अभ्यास करे। इस मार्ग विना शांति नहीं होती। जब दृढ़अभ्यासहो तब शांतिहो और चित्त निर्वाणहो तब द्वैत अद्वैत कल्पनामिटे। इसी का नाम निर्वाणकहतेहैं; जबतक चित्त निर्वाण नहीं होता तबतक रागद्वेष नहीं मिटता

और जब अभ्यासके बलसे चित्त निर्वाण होजाताहै तब अविद्या नष्ट होजातीहै और आत्मपद और शान्त शिवपद प्राप्तहोताहै जो मान और मोहसे रहितहै। जिसने संगका द्वेष जीताहै और किसीके संगसे बन्धायमान नहींहोता; जो अध्यात्मविचार नित्यकरता है और जिसकी सर्व कामना निवृत्त हुईहै; जो इष्टके रागद्वेष धुंधसे मुक्त है और जो सुख दुःख में सम है ऐसा ज्ञानवान् पुरुष अविनाशी आत्मपदको पाताहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेयथार्थोपदेशोनाम द्विशताधिकचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः २४० ॥

अग्नि बोले, हे राजा विपश्चित ! जब इसप्रकार मुनीश्वर ने कहा तब वधिक बड़े आश्चर्य को प्राप्तहुआ और मुनीश्वरके वचन सुनकर मूर्त्तिवत् होगया। जैसे कागद पर मूर्त्ति लिखी होतीहै तैसेही वह आश्चर्य्यवान् हुआ और संशयकेसमुद्रमें डूबगया जैसे चक्रपर चढ़ा बासन भ्रमताहै, तैसेही वह संशय में भ्रमनेलगा; मुनीश्वरका उपदेश उसने सुना परन्तु अभ्यास विना आत्मपदमें विश्रांति न पाई। हे राजन् ! परम वचनों को उसने अंगीकार न किया। जैसे राख में डाली आहुति निरर्थक होती है, तैसेही मूर्खको उपदेश करना निरर्थक होता है । मूर्खतासेही वह संशयमें रहा और विचारनेलगा कि यह संसार अविद्यक है तो मैं इसका अन्त लेऊं और जो मुझको आत्मपद भासे इससे तपकरूं। हे राजा विपश्चित ! इसप्रकार विचारकर वह उठा और उनके पास फिरनेलगा । पवित्रचेष्टा अंगीकार करके उसने व्याधका धर्म त्यागकिया और जिसप्रकार वह चेष्टाकरे तैसेही वह भी अधिक चेष्टाकरे। निदान सहस्रवर्ष पर्यंत बड़ातपकिया परन्तु मनमें कामना यही रक्खी कि, मेरा शरीर बड़ाहो और दिन दिन बहुत भोजन बढ़े; मैं अविद्यकसंसारका अन्त लेऊं कि, कहांतकचलाजाताहै क्योंकि, जब अविद्याका अंतआवेगा तब आगे आत्माका दर्शनहोगा । सहस्रवर्षके उपरांत जब समाधिसे उतरा तो गुरूके निकट जाकर प्रणामकिया और बोला, हे भगवन् ! मैंने इतने कालतपकियाहै परन्तु शांति मुझको न हुई । मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! तुझको जो मैंने उपदेशकियाथा उसका तूने भलीप्रकार अभ्यास न किया इसकारण तुझकोशांति न हुई। हे वधिक ! मैंने तेरेहृदयमें ज्ञानरूपी अग्निकी चिनगारीडालीथी परन्तु तूने अभ्यासरूपी पवनसे उसे प्रज्वलित न किया इससे यह ढँपगई-जैसे बड़े काष्ठके नीचे रंचक चिनगारी ढँपजातीहै । हे वधिक ! तू न मूर्खहै और न पण्डितहै क्योंकि; जो तू पण्डित होता तो आत्मपदमें स्थिति पाता । यदि यह नष्ट न होगी तो अभ्यासकी दृढ़ताहोगी तब वह ज्ञान और शांति उदयहोगी । अब जो तेरी भविष्यत् होगी वह मैं तुझसे कहता हूं । हे व्याध ! यही तूने भलीप्रकार विचारा है कि, संसार अविद्यक है और इसका अन्तलेऊं कि, कहांतक चलाजाता है । अब तेरे चित्तमें यही निश्चय है और

आगे तू यही करेगा कि, सौयुगपर्यंत उग्रतपकरेगा तब तुझपर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होंगे और देवताओंसहित तेरेगृहमेंआकर तुझसेकहेंगे कि, कुछवरमांग । तब तू कहेगा, हे देव ! ऐसा अविद्यकजगत् है; अविद्या किसी और अणुमेंहै। जैसे दर्पणमें किसी ठौर मलिनताहोतीहै और उसके नाशहुये दर्पण शुद्धहोताहै; तैसेही आत्माके किसी कोणमें अविद्यारूपी मलिनता है; उसके नाशहुये चिदात्माका साक्षात्कारहोगा इसलिये जब अविद्यारूपीजगत्का अंतदेखूंगा तब मुझको आत्माभासेगा। मेराशरीर घड़ी घड़ीमें योजनपर्यंत बढ़ताजावे। जैसे गरुड़कावेगहोताहै तैसेही मेराशरीर बढ़ताजावे और मृत्युभी मेरे वशहो, शरीरभी अरोग्य रहे और ब्रह्मांडखपरको भी मैं लांघजाऊं। जहां मेरीइच्छाहो वहां चलाजाऊं और मुझको कोई न रोंके; जब मैं संसारका अन्तदेखूंगा तब आत्माको प्राप्तहोऊंगा। हे देव ! इतनेवरदो कि, मेरा मनोरथ पूर्ण हो; और कुछ नहीं चाहिये। हे वधिक ! जब इसप्रकार तू वरमांगेगा तब ब्रह्माजी कहेंगे कि, ऐसेहीहो। तब तेरा तपसे दुर्बलहुआ शरीर फिर चन्द्रमा और सूर्यकी नाईं प्रकाशवान्होगा और घड़ीघड़ी में योजनपर्यंत बढ़ताजावेगा। जैसे गरुड़का तीक्ष्ण वेगसे चलना है; तैसेही तेरा शरीर वेगसे बढ़ताजावेगा और जैसे प्रातःकालका सूर्य्य उदय होताहै और प्रकाश बढ़ता जाताहै, तैसेही तेरा शरीर बढ़ता जावेगा और चन्द्रमा, सूर्य और अग्निकी नाईं प्रकाशवान् होगा । ब्रह्माजी वर देकर अन्तर्द्धान होजावेंगे और अपनी ब्रह्मपुरीमें प्राप्तहोंगे और तेरा शरीर प्रलयकाल के समुद्रकी नाईं बढ़ताजावेगा । जैसे वायुसे सूखे तृण उड़तेहैं, तैसेही तुझको ब्रह्मांड उड़ते भासेंगे तब तेराशरीर बढ़ता २ ब्रह्मांडखपरकोभी लांघजावेगा और उसके परे आकाशभासेगा, फिर ब्रह्मांडभासेगा और आगे फिर ब्रह्मांडभासेगा; इसीप्रकार तू कई ब्रह्मांड लांघता जावेगा परन्तु तुझको खेद कुछ न होगा । निदान महाआकाशकोभी तू ढांप लेगा और जहां किसीतत्त्वकाआवरणआवेगा उसको तू वरप्राप्त देहसे सूक्ष्मतासहित लांघताजावेगा। हे वधिक ! इसीप्रकार तू कई सृष्टि लांघजावेगा जो इन्द्रजालवत्हैं। जो दीर्घदर्शीहैं वे इनको असत्य जानते हैं और जो प्राकृतजन हैं उनको जगत् सत्य भासता है । ज्ञानवान्को मिथ्या भासता है; उस मिथ्या जगत्को तू लांघता जावेगा और तहां जा स्थितहोगा जहां अनन्त सृष्टि फुरती भासेगी । जैसे समुद्रमें अनेक तरंग उठते हैं, तैसेही तुमको सृष्टि फुरती भासेगी परन्तु जिसमें सृष्टि फुरती है उस अधिष्ठानका तुझको ज्ञान न होगा । वहां तू देखेगा कि, मैं बड़ा उत्कृष्ट हुआहूं और जब तुझको ऐसा अभिमान उदय होगा तब साथही तप का फल वैरागभी उदय होगा। और उसीकेसाथ यह संस्कार तेरे हृदयमें फुरेगा कि, इससे तू उस शरीरका निरादर करेगा और कहेगा कि, हा कष्ट ! हा कष्ट ! हे देव ! क्या शरीर तूने मुझको

दियाहै। जगत्के अन्तलेनेको जो मैंनेशरीरबढ़ायाथा सोतो अन्त कहीं न आया क्योंकि; अविद्या नष्ट न हुई। अविद्या तब नष्ट होती है जब ज्ञान होता है और आत्मज्ञान तब होताहै जब सत्शास्त्रोंका विचार और सन्तोंका संग होताहै। जब संग और सत्शास्त्र मुझको प्राप्तहोवें तब ज्ञान उपजेगा। यह तो मुझको ऐसाशरीर प्राप्तहुआहै कि, बड़ा भार उठाये फिरताहूं और अनेक सुमेरु पर्वत भी इसकेपास तृणवत् हैं। ऐसाउत्कृष्ट मेरा शरीर है; इस शरीर से मैं किसकी संगतिकरूं और किसप्रकार शास्त्र का श्रवण करूं ? यह शरीर मुझको दुःखदायी है इससे इस शरीर का त्यागकरूं। हे वधिक! ऐसे विचारकर तू प्राणायाम करेगा और उसकी धारणा से शरीर त्यागदेगा। जैसे पक्षी फलको खाकर गुठलीको त्यागदेताहै और जैसे इन्द्रके वज्रसे खंडितहुये पर्वत गिरते हैं तैसेही एक सृष्टि भ्रममें तेराशरीर गिरेगा और उसकेनीचे कई पर्वत, नदियां और जीव चूर्णहोंगे और वहां बड़ाखेदहोगा; तब सबदेवता चण्डिकाका आराधनकरेंगे और वह चण्डिका भगवती तेरे शरीरको भोजन करजावेगी तब सृष्टि में फिर कल्याणहोवेगा। इस वनमें जो तमाल वृक्ष हैं उनके नीचे तू तपकरेगा। यह मैंने तेरी भविष्यकही; अब जैसी तेरी इच्छाहो तैसेकर। व्याधबोला, हे भगवन्! बड़ाकष्ट है कि, मैं इतने खेद को प्राप्तहोऊंगा; इससे कोई ऐसा उपायकरो जिससे यह भावना निवृत्त होजावे। मुनीश्वरबोले, हे वधिक! जो कुछ वस्तुहोनी है सो अन्यथा कदाचित् नहीं होती—जो कुछ शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्य होती है। जैसे चिल्ले से छूटा बाण तबतक चला जाता है जबतक उसमें वेग होता है और जब वेग पूर्ण होजाताहै तब पृथ्वीपर गिरपड़ता है अन्यथा नहीं गिरता; तैसेही जैसा प्रारब्धका वेग उछलता है तैसेही होगा। जो भावी फिरनेकी शक्ति होती है उसमें जीवउपासी बायांचरण दाहने और दाहना बायें नहीं करसक्ता—जो होना है वही होगा। ज्योतिश्शास्त्रवाले जो भविष्यद्दशा आगे कहते हैं तैसेही होता है क्योंकि; होनी होती है—जो न हो तो क्याकहों इससे भावी मिटतीनहीं। हे वधिक! मैंने तुझको दोमार्ग कहे हैं। जबतक कर्मकी कल्पना स्पर्श करती है तबतक कर्मके बन्धनते नहीं छूटता और जो कर्मकी कल्पना आत्माको स्पर्श न करे तो कोई कर्म नहीं बन्धनकरता क्योंकि; उसको अद्वैत आत्माका अनुभव होता है और द्वैतरूप कर्म नहीं दिखाई देते सर्व सुखदुःख आत्मरूप होजातेहैं। कर्म तबतक बन्धन करते हैं जबतक आत्मबोध नहीं हुआ; जब आत्मबोध होता है तब सर्वकर्म दग्धहोजाते हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेभविष्यत्कथावर्णनन्नाम द्विशताधिकएकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४१ ॥

व्याधबोला, हे भगवन्! यह जो तुमने मुझकोकहा सो मैं सुनके आश्चर्य को

प्राप्त हुआ। शरीर गिरनेके उपरान्त मेरी क्या अवस्थाहोगी जब विस्ताररूप वासनाशरीर आकाशरूपहोगा। मुनीश्वर बोले, हे वधिक! जब तेराशरीर गिरेगा तब तेरी संवित् प्राणवासना सहित आकाशरूप महासूक्ष्म अणुवत् होजावेगी और उस संवित् में तुझको फिर नानाप्रकारका जगत् भासेगा और पृथ्वी, देश, काल, पदार्थ सब भासि आवेंगे। जैसे सूक्ष्मसंवित् में स्वप्नका जगत् भासि आता है, तैसेही तुझको जगत् भासि आवेगा। वहां तेरी संवित् में यह फुरेगा कि, मैं अष्टवर्ष का राजाहूं और मेरे पिताकानाम इन्द्र है और माताका नाम प्रद्युम्नकी पुत्री बधलेखाहै; मेरे पिता मुझको राज्य देकर वनको गये हैं और तपकरनेलगे हैं और चारों ओर समुद्र पर्यन्त हमारा राज्य है। हे वधिक! वहां तेरानाम सिद्धहोगा और कईसौ वर्षपर्य्यन्त तू राज्यकरेगा और नानाप्रकार के विषयों को भोगेगा। हे वधिक! विदूरथ नाम एक राजा पृथ्वीमें होगा जो तेरे साथ शत्रुभाव करेगा और तेरी पृथ्वी और सीमा लेने का यत्न करेगा तब तू मनमें विचार करेगा कि; मैं बड़ा सिद्धहूं और कईसौ वर्ष मैंने निर्विघ्न भोग भोगे हैं परन्तु एक विदूरथनाम शत्रुको नाशकरूं हे वधिक! उसके मारनेके निमित्त तू सेनालेके चढ़ेगा और वह चारोंप्रकारकी सेना नाशको प्राप्तहोगी अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ और प्यादा दोनों ओरकी सेना नष्ट होगी और तुम रथसे उतर कर परस्पर युद्ध करोगे। तुम्हारे भी बहुत शस्त्र लगेंगे और शरीर काटाजावेगा तो भी तुम उसके सन्मुख जा युद्धकरोगे और उसकी टांग काटकर कुहाड़े से उस को मारके फिर अपनेगृहमें आवोगे। सब दिक्पाल तुमसे भयपावेंगे और तुम बड़ेतेजोवान्होगे। बड़ा आश्चर्य्य है कि, विदूरथको जीतकर तुम यमपुरी पठावोगे तब तुम कहोगे कि, हे मंत्रियो! इसमें क्या आश्चर्य है! मेरे भयसे तो दिक्पाल भी कांपते हैं और प्रलयकालके समुद्र और मेघवत् मेरी सेना है जिसका किसी ओर से आदि और अन्त नहीं आता। विदूरथ के जीतने में मुझको क्या आश्चर्य है? तब मंत्री कहेगा; हे राजन्! इतनी सेना तेरेसाथ है तो क्याहुआ उस विदूरथकी स्त्री लीलाको तुम नहीं जानते; उसने तपकरके एकदेवी को वशकिया है जिसके क्रोध करनेसे संपूर्ण विश्व नाश होजाता है। वह माता सरस्वती ज्ञान शक्ति और सर्व भूतोंके हृदयमें स्थित है जैसा उसमें कोई अभ्यास करता है वही सरस्वती सिद्धकरती है। हे राजन्! वह राजा और उसकीस्त्री लीला सरस्वती से मोक्ष मांगते थे कि; किसीप्रकार हम संसार बन्धन से मुक्तहों; इस कारण वे मोक्ष हुये और तुम्हारी जय हुई। राजा ने पूछा; हे अंग! जो सरस्वती मेरे हृदयमें स्थित है तो मुझको मुक्त क्यों नहीं करती? मैं भी तो सदा सरस्वतीकी उपासना करताहूं? मंत्री बोला; हे राजन्! सरस्वती जो चित्तसंवित् है उसमें जैसा निश्चय होता है उसीकी सिद्धता होती है। हे राजन्! तुम सदा

अपनी जयही मांगते थे इससे तुम्हारी जयहुई और वह मुक्ति मांगताथा इससे उसकी मुक्ति हुई उसका पिछला संस्कार उज्ज्वलथा इससे मुक्तहुआ और तुम्हारा पिछले जन्मका संस्कार तामसी था इसकारण तुमको इच्छा न हुई और शान्तिभी प्राप्त न हुई । आदि परमात्मसत्ता से सब पदार्थ प्रकट हुये हैं । केवल आत्मसत्ता जो निष्किञ्चन पद है सो सदा अपने स्वभावमें स्थित है उसीमें चैतन्यता संवेदन फुरती है । 'अहं अस्मि' अर्थात् 'मैं हूं' इसभावनाका नाम चित्तहै; इसी चैतन्यताने देह, इद्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदिक दृश्य जगत् कल्पा है । उस कल्पना से विश्व चित्त में स्थित है और चित्तने आत्मासे फुरकर प्रमाद से देहादिकको कल्पाहै । राजा ने पूछा, हे साधु ! आत्मा तो निष्किञ्चन और केवल निर्विकारपद है उसमें तामसी देह कहां से उपजी ? मंत्री बोले, हे राजन् ! जैसे स्वप्ने में प्रमाद से तामसी वपु दृष्टि आता है परन्तु है नहीं; तैसेही यह आकारभी दृष्टिआते हैं परन्तु हैं नहीं अज्ञान से भासते हैं । इससे तुझको प्रमाद हुआ है तब वासना के अनुसार जन्मपाता फिरा है; इसप्रकार तेरे बहुत जन्म बीते हैं परन्तु पिछला शरीर जो तूने भोगा है वह तामस तामसी था इसकारण तुझको मोक्षकी इच्छा न हुई । हे राजन् ! तुम्हारे जो जन्म बीते हैं उनको मैं जानताहूं पर तुम नहीं जानते । राजाने पूछा, हे निर्मल आत्मा ! तामस तामसी किसको कहते हैं ? मंत्री बोले, हे राजन् ! एक सात्त्विक सात्त्विकी है; दूसरा केवल सात्त्विकी है; तीसरा राजस राजसी है; एकतामस तामसी है और एक केवल तामसी है सो भिन्न भिन्न सुनो । हे राजन् ! निर्विकल्प अचैत चिन्मात्रसत्ता से जो संवित् फुरी है और जिसकी अहं प्रतीति अधिष्ठान में रही है निश्चयको नहीं प्राप्तहुये और अनात्म भावको भी स्पर्श नहीं किया ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं वे सात्त्विक सात्त्विकी हैं । जिनको विभूति सात्त्विकी पदार्थ भासनेलगे हैं और स्वरूपका प्रमाद है बुद्धि से स्पर्श हुआ अथवा न हुआ वे केवल सात्त्विकी हैं । जिनकी संवित्का बुद्धि से सम्बन्ध हुआ है और नाना प्रकार के राजसी पदार्थों में सत्य प्रतीति हुई है; जिन्हें राजसकर्म्मों में दृढ़ अभ्यास है और उसके अनुसार शरीर को धारते चलेगये पर स्वरूप की ओर नहीं आये और चिरपर्य्यन्त ऐसेही रहे वे राजस राजसी हैं । जिनको बोधमें अहं प्रतीति हुई है पर स्वरूपका प्रमाद है और जगत् सत्य भासताहै एवम् राजसी पदार्थों में अधिक प्रतीति है और राजसी कर्मोंका अभ्यास है उसके अनुसार वे जन्म पाते हैं और फिर शीघ्रही स्वरूप की ओर आते हैं उनका नाम केवल राजसी है, वे राजस राजसी से श्रेष्ठ हैं । जिनको स्वरूपका प्रमाद है और जगत् में सत्यप्रतीतिहुई है एवम् उसजगत् के तामस कर्मोंमें दृढ़अभ्यास हुआ है वे महामूढ़ उसमें चिरपर्यन्त जन्मपाते चलेजाते हैं और यदि दैवसंयोग से कभी मोक्षकी संगति प्राप्त भी होती है तो उसे त्यागजाते हैं वे तामस

तामसी हैं । जिनको स्वरूपका प्रमाद हुआहै और तामसी कर्मोंकी रुचिहै वे उनकर्मों के अनुसार जन्म पातेजाते हैं और जो हटपड़ा और तामसीकर्मोंकोत्यागकर मोक्षपरायण होते हैं सो केवल तामसी हैं पर वे तामस तामसीसे श्रेष्ठहैं। हे राजन्! तुम तामस तामसी थे इसकारण सरस्वती से तुम अपनी जयही मांगते रहे और मोक्षका अभ्यास तुमने नहीं किया । राजा बोला, हे निर्मलचित्त मंत्री ! मैं तामस तामसी था इस कारण मोक्ष इच्छा न की परन्तु अब मुझसे तुम वही उपाय कहो जिससे मेरा अहंभाव निवृत्तहो और आत्मपदकी प्राप्ति हो । मंत्री बोला, हे राजन् ! निश्चय करके जानो जो कोई कैसेही पदार्थ की इच्छाकरे अभ्यास ते वह पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है और जिसकी भावना करके वह अभ्यास करता है वह पदार्थ निस्सन्देह प्राप्त होता है; जिसका जो दृढ़ अभ्यास करता है वह वहीरूप होजाता है । ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जो अभ्यासके वशसे न पाइये । जो प्रथम दिनमें कोई विकर्म किसी से हुआहो और अगले दिन शुभकर्म करे तो वह विकर्म लोप होजाता है और शुभकर्मही मुख्य होजाता है । जब तुम आत्मपदका अभ्यास करोगे तब तुमको आत्मपद प्राप्त होगा और तुम्हारा जो तामस तामसी भाव है सो निवृत्त होजावेगा । हे राजन् ! जो पुरुष किसी पदार्थ के पानेकी इच्छा करता है और हटकर नहीं फिरता तो वह अवश्य उसको पाता है देह इन्द्रियों का अभ्यास मनुष्य को दृढ़ होरहा है उससे फिर फिर देह इन्द्रियांही पाता है, जब उनसे उलटकर आत्माका अभ्यास करे तब आत्मपद की प्राप्ति होगी और देह इन्द्रियों का वियोग होजावेगा । इसलिये आप भी सदा आत्मपद का अभ्यास करें तो उससे आत्मपद प्राप्त होगा । इतना कह फिर मुनीश्वर बोले कि, हे वधिक ! इस प्रकार तू सिद्धराजा होगा और मंत्री तुझको उपदेशकरेगा तब तू राज्य को त्यागकर वन में जावेगा और उपदेश करनेवाला मंत्री दूसरे मंत्रियों और सेना संयुक्त तुझसे कहेंगे कि, तू राज्यकर परन्तु तेराचित्त विरक्तहोगा और तू राज्य अंगीकार न करेगा । उस वन में किसी संतके स्थान में जाकर तू स्थित होगा और परमवैराग्य सम्पन्न होगा तब उनकी कथा और प्रसंग तुझको स्पर्श करेंगी। यदि संतोंसे कुछ न मांगिये तौभी वे अमृतरूपी वचनोंकी वर्षा करते हैं—जैसे पुष्पों से बे मांगे सुगन्ध प्राप्त होती है तैसेही सन्तजनों से मांगे बिनाही अमृत प्राप्त होता है । जब मनुष्य संतों के अमृत वचन सुनता है तब उसको विचार उत्पन्न होताहै कि, 'मैं कौनहूं' 'यह जगत् क्याहै' और 'जगत् किससे उपजाहै' । निदान तू उनका उपदेश पाकर इस प्रकार जानेगा कि मैं अचेत चिन्मात्र स्वरूपहूं और जगत् मेरा आभास है । चित्तका फुरनाही जगत् का कारणहै सो चित्तही मेरे में नहीं है तो जगत् कैसेहो? जगत् तो मेरे में नहीं है मैं अपनेही आपमें स्थितहूं । हे वधिक ! इसप्रकार

जब तू सर्व अर्थोंसे मन को शून्य करके अपने स्वरूपमें स्थित होगा तब परमानन्द निर्वाण पदको प्राप्त होगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसिद्धनिर्वाणवर्णनंनाम द्विशताधिकद्वाचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४२ ॥

मुनीश्वर बोले, हे वधिक ! इसप्रकार तेरी भावी है सो सब मैंने तुझसे कही आगे जो भला जानताहो सो कर । अग्नि बोले, हे राजा विपश्चित् ! इसप्रकार जब मुनीश्वर ने वधिकसे कहा तब वह आश्चर्यवान् हुआ और वहां से उठकर मुनीश्वर सहित स्नान को गया । निदान दोनों तप करने और शास्त्रको विचारने लगे तब कुछ कालके उपरांत मुनीश्वर निर्वाण होगया और केवल वधिकही तप करने को समर्थ हुआ कि, किसी प्रकार मेरी अविद्या नष्टहो । हे राजा विपश्चित् ! सौयुगपर्यंत जब वधिक ने तप किया तब ब्रह्माजी देवताओं को साथ लेकर आये और बोले कि, कुछ वरमांग; तब उस वधिक ने कहा कि, मेरा शरीर बड़ा हो और मैं अविद्या को देखूं । हे राजन् ! यद्यपि वधिकने जाना कि, इस वरके मांगे से मेरा भला नहीं है परन्तु दृढ़ भावना के बलसे जानकर भी यही वरमांगा कि, घड़ी घड़ी में मेरा शरीर योजनपर्यन्त बढ़े । ब्रह्माजी ने कहा कि, ऐसेही होगा । इसप्रकार कहकर जब ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये तब उसका शरीर बढ़ने लगा और एक घड़ी में एकयोजन बढ़ते २ कल्पपर्यंत बढ़तागया और कई ब्रह्मांडोंपर्यंत चलागया पर जिस ओर को वह देखे उसओर अविद्यारूपी अनन्त सृष्टियां उसे दीखें । निदान जब वह चलते २ थका तब उसने विचारा कि, अविद्याका तो अन्त नहीं आता इस शरीरको मैं कहांतक उठाये फिरूं अब इसका त्यागकरूं तब आत्मपद को प्राप्तहोऊंगा । हे राजा विपश्चित् ! तब उसने प्राणको ऊर्ध्व खैंचकर शरीर को त्यागदिया वही शरीर यहां आनपड़ाहै । जिस ब्रह्मांड से यह गिरा है वह हमारे स्वप्नेकी सृष्टि है अर्थात् यह अन्य सृष्टि का था इसकी इस सृष्टि में स्वप्नवत् प्रतिभा आनपड़ी थी और यहां जाग्रत् सृष्टि में आनपड़ा है और पृथ्वी, पहाड़ आदि सब नाश करडाले हैं जहां से यह गिराहै वहां आकाशमें तरुवरे की नाईं भासता था और यहां इसप्रकार गिरा है जैसे इन्द्रका वज्र हो । हे विपश्चितों में श्रेष्ठ ! वही वधिक का महाश्वथा । जब उसका शरीर गिरा तब भगवती ने उसका रक्त पानकिया इसलिये उसका नाम रक्ताभगवती हुआ और और जो शरीर की सामग्रीरही सो पृथ्वीहुई । जब चिरकाल व्यतीत हुआ तब मृत्तिका पृथ्वी होगई और उस पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा । ब्रह्माजीने जो नवीन सृष्टिरची है उस पृथ्वी पर अब कल्याण हुआ है इससे अब जहां तेरी इच्छा हो वहां जा और मैं भी अब जाताहूं । इन्द्रको सुवायज्ञ करनाहै और उसने मेरा आवाहन कियाहै वहां

मैं जाताहूं । भासबोले, हे राजा दशरथ ! इसप्रकार मुझसे कहकर अग्नि देवता अन्तर्द्धान होगये । जैसे महाश्याम मेघसे दामिनी चमत्कार करके अन्तर्द्धान होजाती हैं तैसेही अग्नि जब अन्तर्द्धान होगया तब मैं वहांसे चला और एक सृष्टि में गया तो वहां और प्रकार के शास्त्र और औरही प्रकार के प्राणीथे । फिर आगे और सृष्टि में गया वहां ऐसे प्राणीदेखे कि, जिनकी टांगें काष्ठ की और आचार मनुष्यका था। आगे और सृष्टि में गया तो उसमें लोगों के शरीर तो पाषाण के थे पर दौड़ते और व्यवहार करते थे । उसके उपरान्त और सृष्टि में गया तो वहां शास्त्ररूपी उनकी मूर्ति थी । उसके आगे गया तो वहां क्या देखा कि, प्राणी बैठेही रहते हैं और बलसे वार्ताकरते हैं परन्तु न कुछ खाते हैं और न पीते हैं । हे राजा दशरथ ! इस प्रकार जब मैं चिरकालपर्य्यन्त फिरता रहा परन्तु अविद्या का अन्त कहीं न आया तब मैंने विचार किया कि, आत्मज्ञानी होरहूं तब अन्तआवेगा और किसी प्रकार अन्त न आवेगा । इस प्रकार विचारकरके मैं एक वनमें गया और ज्ञानकी सिद्धिके लिये तपकरनेलगा । जब कुछ काल तपकिया तब चित्तमें यह उपजी कि, किसीप्रकार संतों के निकट जाऊं तो उनकी संगति से मुझको शांतिपद प्राप्त होगा । हे राजन् ! ऐसे विचारकर मैं वहांसे चला और कल्पवृक्ष के वनमें आया तो वहां एकपुरुष मुझको मिला और उसने कहा, हे साधो ! तू कहांचला है; मेरेनिकट तो आ ? तब मैंने उस से पूँछा कि, तू कौनहै ? तब उसने कहा कि, मैं तेरातपहूं जो तूने किया है । अब तू कुछ वरमांग सो मैं तुझको देदूं । तब मैंने कहा कि, हे साधो ! मेरी इच्छा यही है कि, मैं आत्मपदको प्राप्तहोऊं । उसने कहा, हे साधो ! अब तुझे एक जन्म और मृगका पाना है । जब वह तेरा शरीर अग्निमें जलेगा तब तू मनुष्य शरीर पावेगा और ज्ञानवानों की सभामें जावेगा । उस सभामें जब तू मनुष्य शरीर धरेगा तब तुझे सब जन्मों और क्रियाओंकी स्मृतिहो आवेगी और स्वरूपकी प्राप्ति होगी इसलिये तू अब मृग शरीर धारणकर । हे राजा दशरथ ! इस प्रकार जब उसने कहा तब मैंने चिन्तनाकी कि, मृग होऊं और मुझे स्वप्नरूप प्रतिभा फुरी कि, मैं मृगहोगया । तुम्हारी सृष्टि में एक पहाड़ की कन्दरामें मैं विचरताथा कि, उसका राजा शिकार खेलनेचला और उसने मुझको देख मेरे पीछे घोड़ा उड़ाया । आगे २ मैं दौड़ता जाता था और पीछे घोड़ाथा पर उस का वेग ऐसा तीक्ष्णथा कि, उसने मुझको पकड़ लिया और अपने गृह में लेआया । तीन दिन उसने मुझे गृहमें रक्खा परन्तु मेरी बहुत सुन्दर चेष्टा देखी इस कारण प्रसन्नतासे यहां लेआया । हे राजा दशरथ ! अब मैंने मृगके शरीरको त्यागकर मनुष्य का शरीर पायाहै और जो कुछ तुमने पूंछाथा सो सब तुमसे कहा । बाल्मीकिजी बोले, हे अंग ! जब इसप्रकार विपश्चित् कहचुका तब रामजी ने विपश्चित् से प्रश्न किया कि,

हे विपश्चित् ! वह मृग तो और सृष्टिकाथा यहां क्योंकर आया ? भास बोले, हे रामजी ! जहां वह मिलाथा वहभी और सृष्टिका था । एक कालमें दुर्वासा ऋषीश्वर आकाशमार्गमें ध्यान लगाये बैठाथा कि, उसी मार्गसे इन्द्र पृथ्वीमें यज्ञके निमित्त चला और दुर्वासाको शव जानकर चरण लगाया । तब दुर्वासाने समाधि से उतरकर इन्द्र की ओर देखा और शापदिया कि, हे शक्र ! तूने मुझे जानकर भी गर्वकरके चरण लगाया इसलिये तेरे यज्ञका एक शवमृतक नाशकरेगा और जिस स्थानपर वह पड़ेगा सो पृथ्वीभी नाशहोगी । जब ऐसे उस ऋषिने शापदिया और इन्द्र यज्ञ करनेलगा तब और सृष्टिसे वह शव आनपड़ा और पृथ्वी चूर्णहोगई । वह तो उस प्रकार गिरा और मैं तपरूपी मुनीश्वरके वरसे मृगहोकर तुम्हारी सभामें आया । हे रामजी ! जो असत्य होता तो प्रकट न होता और जो सत्यहोता तो स्वप्नरूप न होता—जो स्वप्ने की सृष्टिका था । हे रामजी ! तुम हमारी स्वप्नेकी सृष्टिमेंहो और हम तुम्हारी सृष्टि के स्वप्नेमें हैं । जैसे स्वप्न पदार्थोंका होना हुआ है तैसेही शवका होना भी हुआ है और मृगका भी हुआहै । जैसे यह सृष्टिहै तैसेही वह सृष्टि भी है; जो यह सृष्टि सत्यहै तो वहभी सत्यहै परन्तु वास्तवमें न यह सत्यहै और न वह सत्यहै; यहभी भ्रममात्र है और वहभी भ्रममात्र है । सत्य वस्तु वहीहै जो मनसहित षट्इंद्रियोंसे अगम है और वह आत्मसत्ताहै जिससे यह सर्वहै और जिसमें सर्वहै । ऐसी जो परत्मात्मसत्ता है सो परमसत्ताहै और उसमें सब कुछ बनताहै । हे रामजी ! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पका मिलना क्या आश्चर्य है ? जैसे छाया और धूप एक नहीं होते और सत्य और झूठ; और ज्ञान—अज्ञान इकट्ठे नहींहोते परन्तु आत्मामें इकट्ठेहोते दीखतेहैं । हे रामजी ! जब मनुष्य शयनकरताहै तब अनुभवरूप होता है; फिर स्वप्ने में स्वप्नेका नगर भासिआताहै; छाया धूपभी भासिआता है और ज्ञान—अज्ञान, सच—झूठभी भासते हैं । जैसे आकाशमें विरुद्ध पदार्थ भासिआते हैं, तैसेही संकल्प से संकल्प मिल जाताहै इसमें क्या आश्चर्य है ? सब जगत् आकाशवत् शून्य निराकार निर्विकार है; निराकारमें आकार और निर्विकारमें विकार भासते हैं यही आश्चर्यहै ! सर्व आकार दृष्टि आते हैं सो वही निराकाररूपहैं; ब्रह्मसत्ताही इसप्रकार होकर भासती है । जगत् को असत्य कहना भी नहीं बनता; जो असत्य होता तो प्रलय होकर पृथ्वी, अप,तेज और वायुसे आकाश फिर प्रकट न होता पर प्रलय होकर जो फिर उत्पन्न होतेहैं इस से असत्य नहीं । चैतनरूप आत्माकाही स्वभाव है; आत्मसत्ताही इस प्रकार होकर भासती है । हे रामजी ! जब प्रलय होती है तब सब भूतपदार्थ नष्ट होजाते हैं और फिर उत्पन्न होतेहैं इसीसे यह सृष्टि आत्माका आभासमात्र है । ब्रह्मसत्तामें अनन्त जगत् फुरतेहैं पर अपनी २ सृष्टिही को जीव जानते हैं । सब जीव ब्रह्मरूपी समुद्रके

कणके हैं सो एक सृष्टिको दूसरा नहीं जानता। जैसे सिद्धोंकी सृष्टि अपने अपने अनुभवमें फुरती है और जैसे स्वप्नेकी सृष्टि भिन्न भिन्न होती है, तैसेही यह अपनी २ सृष्टि पृथक्‌है और मिलभी जातीहै। आत्मामें सबकुछ बनताहै जोकि; अनादि और आदि; विधि और निषेध और विकार और निर्विकार इकट्ठे नहीं होते सो आकाश में आत्मसत्ता और स्वप्नेमें इकट्ठे दृष्टि आते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं; आत्मसत्ताही इसप्रकारहो भासती है। हे रामजी! चार सत्ता इस जगत्‌में फुरी हैं—सारधी, गोपती, समानब्रह्मसत्ता और अविद्या—उनमेंसे सारधी और गोपतीसत्ता तो जिज्ञासुकी भावनामें भासती हैं; समानसत्ता ज्ञानी को भासती है और अविद्या अज्ञानीको भासती है। ये चारोंभी ब्रह्मसे भिन्न नहीं, ब्रह्मही के नामहैं। ब्रह्मसत्ता स्वभाव चैतनतासे ऐसेही भासती है। जैसे वायु फुरने से चलती भासती है और ठहरने से अचल भासती है तैसेही चैतनता फुरने से नानाप्रकार के कौतुक उठते हैं और फुरने से रहित निर्विकल्प होजाता है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, उसमें सत्य नहीं और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं कि, असत्य नहीं—सब समान हैं। जैसे आकाश के फूल हैं, तैसेही घट, पटादिक हैं और जैसे इनके उत्थानका अनुभव होताहै, तैसेही उनका अनुभव होता है। सब पदार्थ सत्ताही से सत्य भासते हैं। सर्व शब्द अर्थ जो फुरेहैं सो सब मिटजातेहैं इससे असत्यहै और आत्मसत्ता ज्योंकीत्यों है कदाचित् अन्यथा नहींहोता। जो मरके न जन्मे तो आनन्दहै क्योंकि,मुक्तहुआ और जो मरके जन्म लेताहै वह भी अविनाशी हुआ इसलिये शोककरना व्यर्थहै। हे रामजी! जगत्‌के आदिमें भी ब्रह्मसत्ताथी और अन्तमेंभी वही रहेगी; जो आदि और अन्त में वहीहै तो मध्यमें भी उसेही जानिये। इससे सब जगत् आत्मरूप है और सर्व शब्द अर्थ संयुक्त है और सर्व शब्द और अर्थाकार का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ताही है। जिसको यथार्थ अनुभव होताहै उसको ऐसे भासता है और जिसको यथार्थका अनुभव नहीं होता उसको नानाप्रकार का जगत् भासता है पर आत्मा में जगत् कुछ बना नहीं सब आकाशरूप है और ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। ब्रह्म से भिन्न जो कुछ भासताहै सो भ्रममात्र और नाशरूपहै। सबदृश्यपदार्थ नाशरूपहैं जिसने उन्हें सत्य जाना है उनसे हमको कुछ प्रयोजन नहीं। जो दूसरा कुछ बनानहीं तो मैं क्या कहूं? जिसमें यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं उस अधिष्ठानको देखे तो सब वही रूप भासेंगे। जो पुरुष स्वभाव में स्थित है उसको यह वचन शोभावान् होते हैं। मैंने अनन्त सृष्टियां देखीहैं और उनके भिन्न भिन्न आचार भी देखे हैं। दशो दिशाओं में मैं फिराहूं और बहुत भोगभोगे हैं; बड़ी बड़ी विभूति पाई और देखी और अनेक प्रकारकी चेष्टाकीहै परन्तु मुझको स्वप्नप्राप्तहुआ क्योंकि; सबभोग पदार्थ और कर्म

अविद्याके रचेहुये हैं । उसी अविद्याके अन्तलेने काम अनेक युगपर्यंत फिरा पर अन्त कहीं न पाया । वशिष्ठजीकी कृपासे अब मुझको स्वरूपका साक्षात्कार हुआ; अविद्या नष्ट हुई और मैं परमानन्दको प्राप्तहुआहूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविपश्चितद्देशांतरभ्रमवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४३ ॥

बाल्मीकिजी बोले, हे साधो ! जब इस प्रकार विपश्चित्ने कहा तब सायंकाल हुआ और सूर्य अन्तर्द्धान होगये—मानों विपश्चित्के वृत्तांत देखनेको अन्यसृष्टि में गये—और नौबननगारे बाजनेलगे—मानों राजा दशरथकी जय जय करतेहैं । उससमय राजा दशरथ ने धन, जवाहिर और वस्त्राभूषणसे राजाविपश्चित्का यथायोग्य पूजन किया; दशरथसे आदि लेकर सब राजाओं ने वशिष्ठजीको प्रणाम किया और परस्पर प्रणाम करके सर्वसभा ने अपने अपने स्थानों को जा स्नान करके यथाक्रम भोजन किया और नियम करके विचारसहित रात्रि व्यतीतकी और जब सूर्यकी किरणें उदयहुईं तो फिर अपने अपने स्थानोंपर परस्पर नमस्कार करके आ बैठे तब वशिष्ठजी पूर्वके प्रसंग को लेकर बोले; हे रामजी ! यह अविद्या अविद्यमानहै और है नहीं पर भासती है यही आश्चर्य है । जो वस्तु सदा विद्यमानहै सो नहीं भासती और जो अविद्या हैही नहीं सो सदा भासती है इसीसे इसका नाम अविद्याहै । हे रामजी ! आत्मसत्ता अनुभवरूपहै; उसका अनुभवहोना निश्चय हो रहाहै और अविद्यक जगत् जो कभी कुछ हुआ नहीं सो स्पष्टहोकर भासताहै—यही अविद्याहै । हे रामजी ! सिद्धराजा के मंत्री का उपदेश भी तुमने सुना और विपश्चित्का वृत्तांत भी विपश्चित्के मुखसेही सुना; अब इस विपश्चित्की अविद्या हमारे आशीर्वाद और यथार्थ वचनों से नष्टहोतीहै । अब यह जीवन्मुक्त होकर विचरेगा । मेरे उपदेशसे इसकी अविद्या अब नष्ट होती है और अब जीवन्मुक्त होकर जहां जहां इसकी इच्छाहो विचरे । जब जीव आत्माकी ओर आताहै तब अविद्या नष्ट होजाती है । आत्मतत्त्वको यथार्थ न जाननेहीका नाम अविद्याहै जो आत्मज्ञानसे नष्ट होजाती है । जैसे अंधकार तबतक रहता है; जबतक सूर्य उदय नहीं हुआ पर जब सूर्य उदय होताहै तब अन्धकार नष्टहोजाता है; तैसेही अविद्या तबतक अनन्तहै जबतक आत्माकी ओर नहीं आया पर जब आत्माका साक्षात्कार होताहै तब अविद्याका अत्यन्त अभाव होजाता है । अविद्या अविद्यमानहै पर असम्यक्दर्शीको सत्य भासती है । जैसे मृगतृष्णा का जल अविद्यमान है और विचार कियेसे उसका अभाव होजाताहै, तैसेही भली प्रकार विचार कियेसे अविद्या का अभाव होजाताहै । हे रामजी ! अविद्यारूपी विषकी बेलि देखनेमात्र फूलसहित सुन्दर भासती है परन्तु स्पर्श किये से कांटे चुभते हैं और फल भक्षण कियेसे कष्टहोता

है। यह सब शब्द, स्पर्श,रूप,रस, गंध इन्द्रियों के विषय देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं यही फूल फल हैं पर जब इनका स्पर्श होताहै तब तृष्णारूपी कंटक चुभते हैं और इन्द्रियों के भोगने से राग, द्वेष और कष्ट प्राप्त होताहै। हे रामजी! अविद्या भीतरसे शून्य है और बाहर से बड़े अर्थ संयुक्त भासती है। जैसे आकाशमें इन्द्रधनुष नानाप्रकार के रंगसहित दृष्टि आताहै परन्तु अन्तरसे शून्यहै—अनहोताही भासताहै; तैसेही अविद्या अनहोतीही भासती है; और जैसे इन्द्रधनुष जलरूप मेघके आश्रय रहता है, तैसेही यह अविद्या जड़ मूर्खोंके आश्रय रहती है। अविद्यारूपी धूर जिसको स्पर्श करती है उसको आवरण करलेती है; जबतक अर्थ नहीं जाना तबतक भासती है और विचार कियेसे कुछ नहीं निकलता। जैसे सीपीमें रूपा भासताहै पर विचार किये से उसका अभाव होजाताहै, तैसेही विचार कियेसे अविद्याका भी अभाव होजाता है। विचार कियेसेही अविद्या नष्ट होजातीहै और वह चंचलहै और भासतीहै। हे रामजी! अविद्यारूपी नदीमें तृष्णारूपी जलहै; इन्द्रियोंके अर्थरूपी भँवरहैं और रागरूपी तेंदुये हैं; जो पुरुष इस नदीके प्रवाहमें पड़ताहै उसको बड़े कष्ट प्राप्त होते हैं। जो तृष्णारूपी प्रवाहमें बहते हैं उनको अविद्यारूपी नदी का अन्त नहीं आता और जो किनारे के सन्मुख होकर वैराग्य और अभ्यासरूपी नावपर चढ़के पार हुये हैं उनको कोई कष्ट नहीं होता। जो पदार्थ अविद्यारूप हैं उनमें जो भावना करतेहैं वे मूर्खहैं। यह सब अविद्याका विलासहै। एक ऐसी सृष्टिहै जिसमें सैकड़ोंचन्द्रमा और सहस्रों सूर्य उदय होतेहैं; कई ऐसी सृष्टियां हैं जिनमें जीव सदा समताभावको लिये विचरते हैं और सदा आनन्दी रहते हैं; कई ऐसी सृष्टि हैं कि; जिनमें अन्धकार कभी नहीं होता; कई ऐसी सृष्टिहैं जहां प्रकाश और तम जीवों के आधीनहै कि; जितना प्रकाश चाहैं उतनाही करें और कई ऐसी सृष्टि हैं जहां जीव न मरते हैं और न बूढ़ेहोते हैं सदा एक रस रहते हैं और प्रलयकालमें सब इकट्ठेही मरतेहैं। कहीं ऐसी सृष्टिहै जहां स्त्री कोई नहीं कहीं और पहाड़कीनाई जीवोंके शरीर हैं। हे रामजी! इनसे लेकर अनन्त ब्रह्मांड फुरतेहैं सो सबअविद्याका विलासहै। जैसे समुद्रमें वायुसे तरंगफुरते हैं, वायु विनानहीं फुरते;तैसेही परमात्मरूपीसमुद्रमें जगत्रूपीतरंग अविद्यारूपी वायुकेसंयोगसे उठते हैं औ मिटभीजातेहैं। हे रामजी! बड़े बड़े मणि, मोती, सुवर्ण और धातुमय स्थान; भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य चारों प्रकार के तृप्तिकर्त्ता पदार्थ; घृतरूप स्थान; ऊखके रसके समुद्र; माखन, दही और दूधके समुद्र; अमृतके तालाब; बड़े बड़े कल्प और तमाल वृक्षसे आदिलेकर सुन्दर स्थान और सुन्दर अप्सरा और बड़ेदिव्य वस्त्रों से आदि लेकर जो पदार्थ हैं वे सब संकल्परूप और अविद्याके रचेहुये हैं; जो इनकी तृष्णा करते हैं वे मूर्ख हैं और उनके जीनेको धिक्कार है। हे रामजी! यह अविद्याका विलास

है विचार किये से कुछ नहीं निकलता । जैसे मरुस्थलमें अनहोती नदी भासती है और विचार कियेसे उसका अभाव होजाताहै, तैसेही आत्मविचार किये से अविद्या के विलास जगत् का अभाव होजाताहै । जिसको आत्माका प्रमादहै उसको देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक इष्ट-अनिष्ट अनेक प्रकारके पदार्थ भासते हैं और कारण कार्यभावसे जगत् भी स्पष्ट भासता है पर जिसको आत्माका अनुभव हुआ है उस को सर्व आत्माही भासताहै । हे रामजी ! एक सदृष्ट सृष्टिहै और दूसरी अदृष्टसृष्टि है। यह जो प्रत्यक्ष भासती है सो सदृष्ट सृष्टि है और जो दृष्टि नहीं आती वह अदृष्ट सृष्टि है पर दोनों तुल्य हैं । जैसे सिद्धलोग आकाशमें जो सृष्टि रचलेतेहैं सो संकल्पमात्रहोती है । उनकी सृष्टि परस्पर अदृष्टहै और अनेक प्रकारकी रचना है । उनकी सुवर्णकी पृथ्वी है और रत्न और मणियों से जड़ीहुई है; अनेक प्रकारके विषयहैं और अमृत कुंडभरेहुये हैं, उनके आधीन तम और प्रकाश हैं और अनेक प्रकारकी रचना बनी हुई है सो सब संकल्पमात्र है । इसीप्रकार यह जगत् संकल्पमात्र है जैसा जैसा संकल्प होताहै तैसीही तैसी सृष्टि आत्मा में हो भासती है । हे रामजी ! आत्मारूपी डब्बेमें सृष्टिरूपी अनेक रत्नहैं; जिसपुरुषको आत्मदृष्टिहुई है उसको सर्वसृष्टि आत्म रूपहै और जिसको आत्मदृष्टि नहीं हुई उसको सर्व जगत् भिन्न २ भासताहै । जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही पदार्थ हो भासता है । जो कुछ जगत् भासताहै सो सब संकल्पमात्र है; जो तुमको ऐसा तीव्र संवेगहो कि, आकाशमें नगरस्थितहो तो वही भासनेलगे । हे रामजी ! जिस ओर मनुष्यदृढ़निश्चय करता है वही सिद्ध होता है । जो आत्माकी ओर एकत्र होताहै तो वही सिद्धहोताहै और जो दोनों ओर होता है तो भटकताहै । जो जगत्की सत्यताको छोड़कर आत्मपरायण होरहे तो तीव्र भावना से मोक्ष प्राप्त होती है और जो संसारकी ओर भावना होती है तो संसारकी प्राप्ति होती है निदान जैसा अभ्यास करता है वही सिद्ध होता है । आदि सृष्टि के कारणमें दूसरी वस्तु कुछ नहीं वही रूपहै फिर जैसी जैसी भावना होती है उसके अनुसार जगत् भासताहै । जिसकी भावना धर्मकी ओर होती है और सकाम होता है उसको स्वर्गादिक सुख भासते हैं और जिसकी भावना अधर्ममें होती है उसको नरकादिक दुःख पदार्थ भासते हैं । शुभकर्मों से शान्तिकी इच्छा नहीं भासती । शुभभी दोप्रकार केहैं-एकको स्वर्गसुख भासतेहैं और दूसरेको सिद्धकी भावनासे सिद्धलोक भासते हैं । जिसको अशुभ भावना होती है उसको नानाप्रकारके नरक भासतेहैं । हे रामजी ! जब यह संवित् अनात्ममें आत्मअभिमान करती है और उनके कर्मों में आपको जानती है वह पापकरके ऐसे अनेक दुःखोंको प्राप्तहोतीहै जो कहे नहीं जाते-जैसे पहाड़ोंमें पीसनेसे बड़ा कष्टहोताहै अथवा अंगारों की वर्षा और अंधे कूपमें गिरने

से कष्ट होताहै। स्त्रीके भोगनेसे अंगारोंके साथ स्पर्श करना होता है और अग्नितप्त लोहेको कंठलगना पड़ताहै। जिस स्त्रीने परपुरुषको भोगा है वह अंधेकूपरूप उखली में खड्गरूपी मूसलसे कुटतीहै और जो देहाभिमानी देवतों, पितरों और अतिथि के दियेविना भोजन करताहै उसको भी यमकेदूत बड़ा कष्ट देते हैं और खड्ग और बरछीसे उसके मांसको काटते और प्रहार करते हैं और वे परलोकमें क्षुधा और तृष्णा से कष्टवान् होतेहैं। जिन नेत्रोंसे व्यभिचारियोंने परस्त्री देखी है उनपर छुरीका प्रहार होताहै। एक वृक्ष है जिसके पत्र खड्गके प्रहारकी नाईं लगते हैं और शूलीके ऊपर चढ़नेसे आदिलेकर उनको कष्टहोते हैं। जो शुभकर्म करते हैं वे स्वर्ग भोगतेहैं। इस से जैसे जैसे कर्मकरते हैं उनके अनुसार जगत् देखते हैं और जिस जिस भावकी चिन्तना करते शरीर त्यागतेहैं वह उनको प्राप्तहोते हैं। केवल वासनामात्र संसार है जैसा निश्चय होताहै तैसाही भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४४॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! यह जो तुमने मुनीश्वर और वधिकका वृत्तान्त कहा है सो बड़ा आश्चर्यरूप है। यह वृत्तान्त स्वाभाविक हुआ है अथवा किसी कारण कार्यसे हुआहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे समुद्रसे तरंग उठतेहैं, तैसेही ब्रह्म में यह प्रतिमा स्वाभाविक उठतीहै और जैसे पवनमें फुरना स्वाभाविक होताहै, तैसेही आत्माका चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होतीहै सो वही रूप है, उससे भिन्न नहीं। चिन्मात्र में जो चेतना फुरीहै वह जैसी फुरीहै तैसेही स्थितहै; जबतक इससे भिन्न और फुरना नहीं होता तबतक वही रहताहै। जिस प्रतिमासे कार्यकारण भासता है–जैसे शुद्धचिदाकाश में स्वप्ने की सृष्टि भासतीहै–उसमें साररूप वहीहै। वही चित्त चमत्कारसे फुरताहै–जैसे समुद्रमें तरंग फुरतेहैं सो समुद्ररूप हैं उससे भिन्न कुछ वस्तु नहीं तैसेही सर्व शब्द अर्थ जगत् जो भासताहै वही चिन्मात्रहै भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जिनको ऐसा यथार्थ अनुभव हुआहै उनको जगत् स्वप्नपुर और संकल्पनगरवत् भासताहै और पृथ्वीआदिक पदार्थ पिण्डाकार नहींभासते सब ब्रह्मरूपहो भासता है। हे रामजी! जो वस्तु व्यभिचारी और नाशवन्तहै वह अविद्यारूपहै और जो अव्यभिचारी और अविनाशीहै वह ब्रह्मसत्ताहै। वह ब्रह्मसत्ता ज्ञान संवित्रूप है और अपने भावको कदाचित् नहीं त्यागती। वह अनुभवसे सर्वदाकाल प्रकाशती है उसमें अविद्या कैसेहो? जैसे समुद्रमें धूरका अभाव है, तैसेही आत्मा में अविद्याका अभाव है जो सर्व आकार दृष्टिआतेहैं सो सब चिदाकाशरूपहैं–जैसे तुम अपने मन में संकल्प धारकर इन्द्रहोबैठो और चेष्टाभी इन्द्रकीसी करनेलगो अथवा ध्यानमें इन्द्ररचौ और ध्यानसे

प्रतिमा सिद्धहोआवै तो जबतक वह संकल्परहे तबतक वही भासताहै और जब इन्द्रका संकल्प क्षीण होजाता है तब इन्द्रभावकी चेष्टा भी निवृत्त होजाती है सो संकल्पसे वही चिन्मात्र इंद्ररूपहो भासताहै; तैसेही यह सर्वजगत् जो भासताहै सो सब चिन्मात्ररूप है पर संवेदनद्वारा पिंडाकारहो भासताहै और जब संवेदन फुरना निवृत्त होताहै तब सब जगत् आत्मरूप भासताहै। ब्रह्मसत्ता तो सदा अपनेआपमें स्थितहै पर जैसा फुरनाहोता है, तैसाहो भासताहै–सब जगत् उसीका चमत्कारहै। जैसे समुद्रमें तरंग समुद्ररूप होते हैं। तैसेही निराकार परमात्मामें जगत् भी आकाशरूपहै, भिन्न कुछ नहीं सर्व ब्रह्मस्वरूप है। इसका नाम परमबोध है। जब इस बोधकी दृढ़ता होती है तब मोक्ष होता है। जिस को सम्यक्बोध होता है उसको सर्वजगत् ब्रह्मस्वरूप और अपना आप भासताहै और जिसको सम्यक्बोध नहींहुआ उसको नानाप्रकारका द्वैतरूप जगत् भासताहै। हे राम जी ! जिसकी बुद्धि शास्त्रों से तीक्ष्णहुईहै और वैराग्य अभ्याससे सम्पन्न और निर्मल है उसको आत्मपद प्राप्त होता है और जिसकी बुद्धि शास्त्रके अर्थसे निर्मल नहीं भई उसको अज्ञानसहित जगत् भासता है। जैसे किसी पुरुषके नेत्रमें दूषण होता है तो उसको आकाशमें दो चन्द्रमा भासते हैं और भ्रमसे तारे भासते हैं, तैसेही अज्ञान से जगत् भासताहै यह सर्व जाग्रत् जगत् स्वप्नमात्र है। जब जीव स्वप्नेमें होता है तब स्वप्ना भी जाग्रत् भासता है और जाग्रत् स्वप्ना होजाता है और जाग्रत् में स्वप्ना स्वप्न होजाता है और जाग्रत् सत्य भासती है। अल्पकाल का नाम स्वप्ना है और दीर्घकाल का नाम जाग्रत् है पर आत्मामें दोनों के तुल्यभाव होते हैं। जैसे दोभाई जोड़े जन्मते हैं सो नाममात्र दो हैं वास्तवमें एकरूप हैं; तैसेही जाग्रत् स्वप्न तुल्यही हैं। जब पुरुष शरीर को त्यागता है तब परलोक जाग्रत् होजाता है और यह जगत् स्वप्नवत् होजाता है। जैसे स्वप्ने से जाग स्वप्ने के पदार्थों को भ्रममात्र जानता है और जाग्रत् को सत् जानता है, तैसेही जब जीव परलोकको जाता है तब इस जगत् को स्वप्न भ्रममात्र जानता है और कहता है कि; स्वप्नासा मैंने देखाथा और वह परलोक सत्यहो भासता है। फिर वहांसे गिरकर इस लोक में आपड़ता है तब इस लोक को सत्य जानता है और जाग्रत् मानता है और उस परलोक को स्वप्नभ्रम मानता है। हे रामजी ! जब तक शरीर से सम्बन्ध है तबतक अनेकबार जाग्रत् देखता है और अनन्तही स्वप्ने देखता है। हे रामजी ! जैसे मृत्युपर्यन्त अनेक स्वप्ने आते हैं, तैसेही मोक्षपर्यन्त अनेक जाग्रत्रूप जगत् भासते हैं और भ्रमान्तर में इनकी सत्यता और जाग्रत् में स्वप्ने के पदार्थ स्मरण करता है। जैसे सिद्ध प्रबुद्ध होकर अपने जन्म को स्मरण करता है और कहता है कि, सब भ्रममात्र थे, तैसेही यह जब जागेगा तब कहेगा कि, सब भ्रममात्र प्रतिमा मुझको भासी थी, न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है क्योंकि, दृश्य

अविद्यक बन्ध मोक्ष ऐसाहै कि, जब चित्तकी वृत्ति निर्विकल्प होती है तब मोक्ष भासता है और जबतक वासना विकल्प सत्य है तबतक बन्ध भासता है। हे रामजी! आत्मा में बन्धमोक्ष दोनों नहीं क्योंकि, बन्ध हो तो मोक्षभी हो पर बन्धही नहीं तो मोक्ष कैसे हो? बन्ध और मोक्ष दोनों चित्तसंवेदन में भासते हैं इससे चित्तको निर्वाण करो तब सब कल्पना मिट जावेगी। जितने पदार्थों के प्रतिपादन करनेवाले शब्द हैं उनको त्यागकर निर्मल ज्ञानमात्र जो आत्मसत्ता है उसमें स्थित हो रहो और खाना, पीना, बोलना, चलना आदि सब क्रियाकरो परन्तु हृदयसे परमपदके पाने का यत्नकरो। हे रामजी! प्रथम नेति नेति करके सर्व शब्दोंका अभाव करो; फिर अभावका भी अभाव करो तब उसके पीछे जो शेष रहेगा वह आत्मसत्ता परमनिर्वाणरूप है उसी में स्थित होरहो। जो कुछ अपना आचार कर्म है उसे यथाशास्त्र करके हृदय से सर्व कल्पनाका त्यागकरो—इसप्रकार आत्मसत्ता में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणोपदेशोनाम द्विशताधिकपञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्वपदार्थ जो भासते हैं वे सब चिदाकाश आत्मरूप हैं। ज्ञानवान् को सदा वेही भासते हैं—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता। रूप, दृश्य, अवलोक, इन्द्रियां और मनस्कार फुरने का नाम संसार है सो यह भी आत्मरूप है—आत्मसत्ताही इसप्रकारहो भासती है। जैसे अपनीही संवित् स्वप्ने में रूप, अवलोक और मनस्कारहो भासती है। आत्मासे भिन्न कुछ नहीं परन्तु अज्ञानसे भिन्न भिन्न भासते हैं। जो जागा है उसको अपनाआप भासता है। जैसे अपनी चैतन्यताही स्वप्नपुर होकर भासती है; तैसेही जगत् के पूर्व जो चैतन्यसत्ता थी वही जगत्रूप होकर भासती है। जगत् आत्मासे कुछ भिन्न वस्तु नहीं वही स्वरूपहै। जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होता है इससे तरंगरूप हो भासता है, तैसेही आत्माका स्वभाव चैतन्य है। वही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत् आकार हो भासतीहै इसप्रकार जानकर जो परम शान्ति निर्वाणपदहै उसमें स्थित होरहो। हे रामजी! जगत् कुछ है नहीं और प्रत्यक्ष भासता है; असत्यही सत्य होकर भासताहै। यही आश्चर्य है कि, निष्किंचन और किंचनकी नाईं होकर भासता है। आत्मसत्ता सदा अद्वैत और निर्विकार है परन्तु अज्ञानदृष्टि से नानाप्रकार के विकार भासते हैं। जब सर्व विकारों को निषेध करके असत्रूप जानिये तब सर्व के अभाव हुये आत्मसत्ता शेष रहती है। जैसे शून्यस्थान में अनहोता वेताल भासि आता है, तैसेही अज्ञानी को अनहोता जगत् आत्मा में भासि आता है। जो पुरुष स्वभाव में स्थित हुये हैं उनको जगत् भी अद्वैतरूप आत्मा भासता है। जब सत्शास्त्रों और सन्तों की सङ्गति होती है और उनके ता-

त्पर्य्य अर्थ में दृढ़ अभ्यास होताहै तब स्वभावसत्ता में स्थिति होतीहै । जिन पदार्थों के पानेकेनिमित्त मनुष्य यत्न करताहै वे मायिक पदार्थ बिजुलीके चमत्कारवत् उदयभीहोते हैं और नष्टभी होते हैं । ये पदार्थ विचार विना सुन्दरभासते हैं और इनकी इच्छा मूर्ख करते हैं क्योंकि; उनको जगत् सत्य भासताहै । ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थोंकी तृष्णा नहीं होती क्योंकि; वह जगत् को मृगतृष्णाकी नाईं असत्य जानताहै और ब्रह्मभावना में दृढ़ है । अज्ञानी को जगत् की भावना है इससे ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता पर अज्ञानी के निश्चयको ज्ञानी जानताहै। जैसे सोये हुये पुरुष को निद्रादोषसे स्वप्ना आताहै और उसमें जगत् भासताहै पर जाग्रत् पुरुष जो उसके निकट बैठा है उसको वह स्वप्नेका जगत् नहीं भासता । वह असत्है इसलिये उसके निश्चयको स्वप्न वाला नहीं जानता और स्वप्नेवाले के निश्चयको वह जाग्रत्वाला नहीं जानता; तैसेही ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता । मृत्तिकाकी सेनाको बालक सेनाकरि मानता है पर जो जाननेवाले बड़े पुरुषहैं उनको वह सब सेना मृत्तिकारूप भासती है और जब वह बालकभी भलीप्रकार जानता है तब उसकोभी सेना और वेतालका अभाव होजाता है मृत्तिकाही भासतीहै; तैसेही ज्ञानवान् को सब जगत् ब्रह्मरूपही भासताहै । हे रामजी! जब पुरुषको आत्माका अनुभव होताहै तब जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं रहती । जैसे स्वप्नेमें किसीको मणि प्राप्तहोतीहै तो वह प्रीति करके उसको रखताहै पर जब जागता है तब उसे भ्रम जानकर उसकी इच्छा नहीं करता; तैसेही जब जीव आत्मपदमें जागेगा तब जगत् के पदार्थोंकी इच्छा न करेगा। जैसे जो कोई मरुस्थलकी नदीको असत्य जानताहै वह उसमें जलपान के निमित्त यत्न नहीं करता तैसेही जो जगत् को असत् जानता है वह उसके पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता । जिस शरीरके निमित्त मनुष्य यत्न करताहै वह शरीरभी क्षणभंगुर है । जैसे पत्रपर जलकी बूंद स्थित होतीहै सो क्षणभंगुर और असार है और पवन लगने से क्षणमें गिरजाती है; तैसेही यह शरीर भी नाशवंत है । जैसेधूपसे तपाहुआ मृग मरुस्थलकी नदीको सत्य जानकर जलपान करनेके निमित्त दौड़ताहै और मूर्खता के कारण कष्ट पाता है परंतु तृप्त नहीं होता; तैसेही मूर्ख मनुष्य विषय पदार्थोंको सत्य जानकर उनके निमित्त यत्न करके कष्ट पाता है और कदाचित् तृप्त नहीं होता । हे रामजी ! पुरुष अपना आपही मित्र है और अपना आपही शत्रुहै । जब सत्यमार्ग में विचरता है और अपना उद्धार करताहै तब पुरुष प्रयत्न से अपना आपही मित्र होता है और जो सत्यमार्ग में नहीं विचरता और पुरुष प्रयत्न करके अपना उद्धार नहीं करता तो वह जन्म मरण संसार में आपको डालता है और वह अपना आपही शत्रु है । जो अपने आपको यत्न करके उद्धार करता है वह अपने ऊपर दया करता है । हे रामजी ! जो इन्द्रियों के विषयरूपी कीचड़ में गिराहुआ है और अपने ऊपर अपने

निकालने की दया नहीं करता वह महा अज्ञानतम को प्राप्त होता है और जो पुरुष इन्द्रियोंको जीतके आत्मपद में स्थित नहीं होता उसको शांतिभी नहीं होती। जब बालकअवस्था होती है तब शून्यबुद्धि होती है; वृद्धअवस्था में अंगक्षीण होजाते हैं और यौवनअवस्था में इन्द्रियों को नहीं जीतसक्ता तो कब होगा? जो तिर्यक् आदिक योनिहैं वे मृतकवत्हैं। यत्नका समय यौवनअवस्था है क्योंकि; बालकअवस्था तो जड़ गुङ्गरूप है और वृद्धअवस्था महानिर्बलसी है उसमें अपने अंगही उठाने कठिन हो जाते हैं तो विचार को क्या सामर्थ्य होगा—वह तो बालकवत्है। इससे कुछ यत्न यौवन अवस्था मेंही होताहै जो इस अवस्था में लंपट रहा वह महा अनिष्ट नरक को प्राप्त होगा। हे रामजी! विषयों में प्रसन्न न होना। यह शरीर नाशरूप है तो विषय कौन भोगे। श्रुतिकरकेभी जानताहै और अनुभव करकेभी जानताहै कि, यहशरीर नाशरूपहै पर उसी शरीर में सत्यभावना करके जो विषयों के सेवनेका यत्न करताहै उसके सिवा दूसरा मूर्ख कहीं नहीं; वही मूर्खहै। इससे जो इन्द्रियों को जीतेगा वह जन्म जन्मान्तर को न प्राप्त होगा। हे रामजी! तुम जागो और आपको अविनाशी और अच्युत परमानन्दरूप जानो। यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप उदय हुआहै—इसको त्यागदो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेअविद्यानाशोपदेशोनाम
द्विशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४६॥

श्रीरामजी बोले, हे भगवन्! तुम सत्य कहतेहो कि, इन्द्रियों के जीते विना शांति नहीं होती; इससे इन्द्रियों के जीतनेका उपाय कहो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष को बड़े भोग प्राप्त हुये हैं और उसने इन्द्रियोंको जीता नहीं तो वह शोभा नहीं पाता जो त्रिलोकी का राज्य प्राप्तहो और इन्द्रियां न जीतीं तो उसकी उपमा भी कुछ नहीं। जो बड़ा शूरवीर है पर उसने इन्द्रियोंको नहीं जीता उसकी शोभाभी कुछ नहीं और जिसकी बड़ी आयुर्बल है पर उसने इन्द्रियां नहीं जीतीं तो उसका जीना भी व्यर्थ है। जिसप्रकार इन्द्रियां जीती जाती हैं और आत्मपद प्राप्त होताहै सो प्रकार सुनो। हे रामजी! इस पुरुष का स्वरूप अचिन्त्य चिन्मात्र है; उसमें जो संवित् फुरी है उस ज्ञान संवित् को अन्तःकरण और दृश्य जगत् से सम्बन्ध हुआहै—उसीका नाम जीवहै। जहांसे चित्त फुरता है वहांहीं चित्तको स्थित करो तब इन्द्रियों का अभाव होजावेगा। इन्द्रियों का नायक मन है; जब मनरूपी मतवाले हाथी को वैराग्य और अभ्यासरूपी जंजीर से वश करो तब तुम्हारी जय होगी और इन्द्रियां रोकी जावेंगी। जैसे राजा के वश किये से सब सेना भी वश होजाती है; तैसेही मनको स्थित किये से सब इन्द्रियां वश होजावेंगी। हे रामजी! जब इन्द्रियों को वश करोगे तब शुद्ध आत्मसत्ता तुमको भासि आवेगी। जैसे वर्षाकाल के अभाव से शरत्काल में शुद्ध निर्मल

आकाश भासताहै और कुहिरे और बादलका अभाव होजाता है, तैसेही जब मनरूपी वर्षाकाल और वासनारूपी कुहिरे का अभाव होजावेगा तब पीछे शुद्ध निर्मल आत्मसत्ताही भासेगी। हे रामजी ! ये सर्व पदार्थ जो जगत् में दृष्टि आते हैं वे सब असत्य रूप हैं—जैसे मरुस्थलकी नदी असत्यरूप होती है—इनमें तृष्णा करना अज्ञानता है। जो पदार्थ प्रत्यक्ष प्राप्तहों उनको त्यागकर आत्माकी ओर वृत्ति आवे तब जानिये कि, मुझको इन्द्रका पद प्राप्त हुआ है। विषयों में आसक्त होनाही बड़ी कृपणता है। इनसे उपराम होनाही बड़ी उदारता है; इससे मनको वशकरो कि; तुम्हारी जय हो। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ में पृथ्वी तप्त होती है और जो चरणों में जूता चढ़ाते हैं तब तप्त नहीं होती तैसेही अपना मन वशकिये से जगत् आत्मरूप होजाता है। हे रामजी ! जिसप्रकार जनेन्द्रने मनको वशकिया था तैसेही तुम भी मनको वशकरो। जिस जिस ओर मनजावे उस उस ओरसे रोंको; जब दृश्य जगत्की ओरसे मनको रोंकोगे तब वृत्ति संवित्ज्ञानकी ओर आवेगी और जब संवित्ज्ञानकी ओर आई तब तुमको परम उदारता प्राप्त होगी और शुद्ध आत्मसत्ता का अनुभव होगा। तीर्थ, दान और तप करके संवित् का अनुभव होना कठिन है परन्तु मनके स्थित करने से सुगमही अनुभवकी प्राप्ति होती है। मन स्थित करनेका उपाय यही है कि; सन्तोंकी संगति करना और रात्रिदिन सत्शास्त्रों का विचारना। सर्वदाकाल यही उपाय करने से शीघ्रही मन स्थित होताहै और जब मन स्थित होताहै तब आत्मपदका अनुभव होताहै। जिसको आत्मपद प्राप्त हुआ है वह संसारसमुद्र में नहीं डूबता। चित्तरूपी समुद्र में तृष्णा रूपी जल है और कामनारूपी लहरें हैं। जिस पुरुषने शम और सन्तोष से इन्द्रियां जीती हैं वह चित्तरूप समुद्रमें गोते न खावेगा और जिसने इन्द्रियोंको जीतकर आत्मपद पायाहै उसको नानात्व जगत् फिर नहीं भासता। जैसे मरुस्थलकी निराकार नदी में लहरें भासती हैं पर जब निकट जाकर भलीप्रकार देखिये तो वह लहरों संयुक्त बहती दृष्टि नहीं आती; तैसेही यह जगत् आत्माका आभासहै और जब भलीप्रकार विचार के देखिये तब नानात्व दृष्टि नहीं आता आत्मसत्ताही किञ्चन करके जगत्रूपहो भासती है। जैसे जल अपने द्रवस्वभाव से तरङ्गरूपहो भासता है, तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यतासे जगत्रूपहो भासती है। हे रामजी ! जब आत्मबोध होताहै तब फिर दृश्य भ्रम नहीं भासता। जैसे साकाररूप नदीका भाव निवृत्त होताहै तो फिर बहती है और जो निराकार नदीका सद्भाव निवृत्त होताहै तब फिर नदीका सद्भाव होता है। निराकार मृगतृष्णाकी नदी जब ज्योंकी त्यों जानो तब फिर सत्ता होती है। हे रामजी ! वास्तवमें न कर्म हैं; न इन्द्रियां हैं; न कर्त्ता और न कुछ उपजा है। जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकारकी क्रिया कर्म दृष्टि आते हैं परन्तु आकाशरूपहैं कुछ बने नहीं, तैसेही यहभी जानो। आकाशरूप

आत्मामें आकाशरूप जगत् स्थितहै। जैसे अवयवी और अवयवमें भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं और जैसे अवयव अवयवीका रूपहै, तैसेही जगत् आत्मा का रूपहै। जब आत्मामें स्थिति होगी तब अहं-त्वंआदिक शब्दोंका अभाव होजावेगा और द्वैत अद्वैत शब्द भी न रहेंगे। द्वैत अद्वैत शब्दभी अज्ञानी बालकके समझाने के निमित्त कहे हैं, जो दृढ़ज्ञानवान् हैं वे इन शब्दोंपर हँसी करते हैं कि, अद्वैतमात्र में इन शब्दोंका प्रवेश कहां है। जिनको यह दशा प्राप्त हुई है उनको न बन्ध है और न मोक्ष है। हे रामजी! सुषुप्ति और तुरीया में कुछ थोड़ाही भेद है कि; सुषुप्ति में अज्ञान और जड़ता रहती है और तुरीया में अज्ञान और जड़ता नहीं रहती वह चैतन्य अनुभव सत्तारूप है और स्वप्न और जाग्रत् में भी भेद नहीं परन्तु इतना भेदहै कि, अल्पकालकी अवस्थाको स्वप्न कहते हैं और चिरकालकी अवस्थाको जाग्रत् कहते हैं। हे रामजी! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों स्वप्न और सुषुप्तिरूप हैं। जाग्रत् और स्वप्न ये उभय स्वप्नरूप हैं; सुषुप्ति अज्ञानरूप है; जाग्रत् तुरीयारूप है और जाग्रत् कोई नहीं। जिस जागने से फिर भ्रम प्राप्तहो उसको जाग्रत् कैसे कहिये? उसको तो भ्रम मात्र जानिये और जिस जागनेसे फिर भ्रमको न प्राप्तहो उसका नाम जाग्रत् है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया चारों अवस्थाओंमें चिन्मात्र घनीभूत होरहा है वह चारोंको नहीं देखता। ज्ञानवान् जब प्राणका स्पन्द रोककर आत्माकी ओर चित्तको लगाते हैं; परस्पर ज्ञानमात्र का निर्णय और चर्चा करते हैं और ज्ञानमात्रकीही कथा कीर्त्तन करते और उससे प्रसन्न होते हैं ऐसे नित्य जाग्रत्पुरुष जो निरन्तर प्रीति पूर्वक आत्माको भजते हैं उनको आत्मविषयिणी बुद्धि उदय होती है और उससे वे शांति को प्राप्त होते हैं। जिनको सदा अध्यात्मअभ्यास है और उस अभ्यास में वे उत्तम हुये हैं उनको आत्मपद प्राप्त होताहै और वेही हँसाकरते हैं क्योंकि; उनको शांतिपद प्राप्त हुआ है। जो अज्ञानी हैं वे रागद्वेषसे जलते हैं और जिनको आत्माका दृढ़अभ्यास हुआ है उनको अवेदनसत्ता शांति प्राप्त होती है और आत्मस्थिति प्राप्त होती है जिस के आगे-इन्द्रका राज्य भी सूखेतृणवत् भासताहै और सर्वजगत् उसको आत्मरूप भासताहै। जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकारके जगत् भासते हैं। जैसे सोयेहुये पुरुषको स्वप्नेकी सृष्टि सत्यहोकर भासती है और जाग्रत् के स्मरणवाले को स्वप्नेकी सृष्टि भी अपना आपरूप और सत्यरूप भासती है। ज्ञानवान्को सर्व्व आत्मरूप भासता है, आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता। जब आत्मअभ्यास का बलहो और अनात्माके अभावको अभ्यास दृढ़हो तब जगत्का अभाव होजावे और अद्वैतसत्ताका भान हो। हे रामजी। मैंने तुमको बहुत उपदेश किया है; जब इसका अभ्यास होगा तब इसका फल जो ब्रह्मबोध है सो प्राप्त होगा अभ्यास विना नहीं प्राप्तहोता। जो एक तृणलोप

करना होताहै तौभी कुछ यत्नकरना होताहै यह तो त्रिलोकी लोपकरनी है । हे रामजी ! जैसे बड़ाभार जिसपर पड़ता है वह बड़ेही बलसे उठाताहै, विना बड़े बल नहीं उठता; तैसेही जीवपर दृश्यरूपी बड़ाभार पड़ाहै, जब आत्मरूपी अभ्यासका बड़ा बलहो तब वह इसको निवृत्तकरे नहीं तो निवृत्त नहीं होता । यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको वारंवार विचारो । मैंने तो तुमको बहुतप्रकार और बहुतबार कहा है । हे रामजी ! अज्ञानी को ऐसे बहुत कहने से भी कुछ नहीं होता । तुमको जो मैंने उपदेश किया है वह सर्वशास्त्रों और वेदोंका सिद्धान्तहै । जिसप्रकार वेदको पाठ करते हैं उसी प्रकार इसको पाठ कीजिये और विचारिये और इसके रहस्यको हृदय में धारिये तब आत्मपदकी प्राप्तिहोगी और और शास्त्रभी इसके अवलोकनसे सुगम होजावेंगे । यदि नित्य इसशास्त्रको श्रद्धासहित सुने और कहे तो अज्ञानी जीवकोभी अवश्य ज्ञान की प्राप्ति होती है । जिसने एकबार सुनाहै और कहने लगाहै कि, एकबार तो सुना है फिर क्या सुननाहै उसकी भ्रान्ति निवृत्त न होगी और जो वारंवार सुने, विचारे और कहे तो उसकी भ्रान्ति निवृत्त होजावेगी । सब शास्त्रोंसे उत्तमयुक्तिकी संहिता मैंने कही है जो शीघ्रही मन में आती है । जो पुरुष मेरे शास्त्रके सुनने और कहने वाले हैं उनको बोध उदय होता है और दूसरे शास्त्रोंका अर्थभी सुन्दरता से खुलआता है । जैसे लवणका अधिकारी व्यंजन पदार्थ है उसमें डालालवण स्वादी होताहै और प्रीति सहित ग्रहण कियाजाता है; तैसेही जो इस शास्त्र के सुनने और कहनेवाले हैं वे और शास्त्रोंकाभी सुन्दर अर्थ करेंगे । हे रामजी ! किसी और पक्षको मानकर इसका सुनना त्यागना न चाहिये । जैसे किसी के पिता का खारा कुवांथा और उसके निकट एक मिष्टजल का कुवांभी था पर वह अपने पिताका कूपमानकर खारीही जल पीता था और निकट के मिष्टजलके कुयेंका त्याग करता था, तैसेही अपने पक्षको मानकर मेरे शास्त्र का त्याग न करना । जो ऐसे जानकर मेरे शास्त्रको न सुनेगा उसको ज्ञान प्राप्त न होगा । जो पुरुष इस शास्त्र में दूषण आरोपण करेगा कि; यह सिद्धान्त यथार्थ नहीं कहा उसको कदाचित् ज्ञान न प्राप्त होगा—वह आत्महन्ताहै उसके वाक्य न सुनना । जो प्रीति पूर्वक पूजाभावकरके सुने और विचारकर पाठकरे उसको निर्मलज्ञान होगा और उसकी क्रिया भी निर्मल होगी इससे यह नित्यप्रति विचारने योग्यहै । हे रामजी ! तुमको मैंने अपने किसी अर्थके निमित्त उपदेश नहीं किया केवल दयाकरके किया है और तुम जो किसीको कहना तो अर्थ विना दया करकेही कहना ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्रिययज्ञवर्णनन्नाम
द्विशताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्ग्गः २४७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आत्मामें जगत् कुछ हुआ नहीं । जब शुद्ध चिन्मात्र में

अहं फुरताहै तब वही संवेदनफुरना जगत्रूपहो भासता है और जब वह अधिष्ठान की ओर देखताहै तब वही संवेदन अधिष्ठानरूप होजाता है और अपने रूपको त्याग कर अचेत चिन्मात्र होताहै। हे रामजी! फुरने और अफुरने दोनों में वही है परन्तु फुरने से जगत् भासता है सो जगत् भी कुछ और वस्तु नहीं वही रूप है। जब संवित् संवेदन फुरने से रहित होती है तब अपना चिन्मात्ररूप होजाती है इसकारण ज्ञानवान् को जगत् आत्मरूप भासताहै ब्रह्मसे भिन्न नहीं भासता। जैसे किसी पुरुष का मन और ठौर गया होताहै तो उसके आगे शब्द होता है तौभी नहीं सुनाई देता और वह कहता है कि, मैंने देखा सुना कुछ नहीं क्योंकि, जिस ओर चित्त होताहै उसीका अनुभव होता है; तैसेही जिनका मन आत्माकी ओर लगताहै उनको सब आत्माही भासताहै—आत्मा से भिन्न जगत् कुछ नहीं भासता। जिसको आत्मसत्ताका प्रमाद है और जगत् की ओर चित्त है उसको जगत्ही भासता है। हे रामजी! ज्ञानवान् के निश्चय में ब्रह्मही भासताहै और अज्ञानी के निश्चयमें जगत् भासताहै तो ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय एक कैसेहो? जो मनुष्य स्वप्ने में है उसको स्वप्नेका जगत् भासता है और जाग्रत्को वह जगत् नहीं भासता तो उनको एकही निश्चय कैसेहो? जगत् के आदि और अन्त दोनों में ब्रह्मसत्ता है और मध्यमें भी उसेही जानो—आत्मसत्ताही चैतन्यता से जगत्रूप हो भासती है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि के आदि भी ब्रह्मसत्ता होती है, अन्त भी ब्रह्मसत्ता होती है और मध्य जो भासताहै सोभी वही है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं तैसेही यह जगत् आदि, अन्त और मध्य में भी आत्मा से भिन्न नहीं। ज्ञानवान् को सदा यही निश्चयहै कि, जगत् कुछ उपजा नहीं और न उपजेगा केवल आत्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै और सर्व ब्रह्मही है अहं त्वं आदिक अज्ञानसे भासता है जैसे स्वप्ने में अहं त्वं आदि अनुभव होता है तो अहं त्वं आदिक भी कुछ नहीं सब अनुभवरूप है, तैसेही यह जगत् सर्व अनुभवरूप है। हे रामजी! जैसे एकही रस फूल, फल, टहनी और वृक्षहोकर भासता है, रससे भिन्न कुछ नहीं होता, तैसेही नानात्वरूप जगत् भासता है परन्तु आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर अपने अपने अनुभवसे भिन्न नहीं परन्तु स्वरूपके विस्मरणसे आकाररूप भासते हैं, तैसेही यह जगत् आकार भासता है सो ज्ञानरूपसे भिन्न नहीं। सब जगत् आत्मरूपहै परन्तु अज्ञानसे भिन्न भिन्न भासताहै। यह जगत् सब अपना आपरूप है और जो आत्मरूपहै तो ग्राह्य ग्रहणभास कैसेहो? यह मिथ्या भ्रमहै। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, घट, पट आदिक सब जगत् ब्रह्मरूप है; ज्ञानवान्को सदा यही निश्चय रहताहै कि, अचेत चिन्मात्र अपने आपमें स्थितहै। ब्रह्मादिकभी कुछ फुरकर उदय नहीं हुये ज्योंकेत्यों हैं। उत्थान कुछ नहींहुआ पर अज्ञानी के निश्चय में नानाप्रकार

का जगत्‌है और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, ब्रह्मादिक संपूर्ण हैं। हे रामजी! यह कुछ उपजा नहीं कारणत्वके अभावसे सदा एकरस आत्मसत्ताही है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम द्विशताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः २४८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब जाग्रत् और स्वप्नका निर्णय सुनो। जब इस जगत् में मनुष्य सो जाताहै तब स्वप्ने की सृष्टि देखता है; उसमें जाग्रत् होती है और जाग्रत् होकर भासती है और जब वहां सो जाताहै तब फिर यह सृष्टि देखता है तो यही जाग्रत्‌ही भासती है। यहां सोकर स्वप्ने में जाग्रत् होती है और वहां सोकर यहां जाग्रत् होती है तो स्वप्न जाग्रत् हुआ जाग्रत् का जाग्रत् नहीं होता। जाग्रत् जो वस्तु है सो आत्मसत्ताहै, उससें जागना वही जाग्रत् की जाग्रत्‌है और सब स्वप्न जाग्रत्‌है। जब मनुष्य यहां शयन करताहै तब स्वप्ने का जाग्रत् सत्यहोकर भासता है और यह असत्य होजाताहै और स्वप्नेमें वहां शयनकरताहै अर्थात् जब स्वप्ने से निवृत्त होताहै और जाग्रत् में जागताहै तब वहां असत्य होजाताहै और वह स्वप्ना जाग्रत् में स्मृति को प्राप्तहोताहै। जब जाग्रत् में सोया और स्वप्ने में जागा तब जाग्रत् स्वप्नभावको प्राप्तहुई और जब स्वप्ने से उठकर जाग्रत् में आया तब स्वप्नरूप जाग्रत् स्मृतिभावको प्राप्त हुई और जाग्रत् जाग्रत्‌रूप हुई तो हे रामजी! स्वप्ना तो कोई न हुआ। इसको सर्वठौर जाग्रत् हुई और जाग्रत् तो कोई न हुई क्योंकि; जब जाग्रत् से स्वप्ने में गया तब स्वप्ना जाग्रत्‌रूप होगया और जाग्रत् स्वप्ना होगई और जब स्वप्ने से जाग्रत्‌में आया तब जाग्रत् जाग्रत्‌रूप होगई और स्वप्ना जाग्रत् स्वप्नरूप होगई तो क्या हुआ कि; जाग्रत् कोई नहीं सब स्वप्न और असत्यरूपहै। अपने कालमें यह जाग्रत्‌है और स्वप्न-रूप है और जब यहांसे मृतक होता है तब यह जगत् स्वप्नरूप होताहै और स्वप्नरूप परलोक जाग्रत् होताहै और जाग्रत् स्मृति प्रत्यक्ष होजाताहै तो उसमें वह नहीं रहता और उसमें वह नहीं रहता और जाग्रत् स्वप्न दोनों में परलोक नहीं रहता। इस जाग्रत् में देखिये तो स्वप्ना और परलोक दोनों नहीं भासते और स्वप्ने में इस जाग्रत् और परलोक दोनों का अभाव होजाता है तो यह सिद्ध हुआ कि, सब स्वप्नमात्र हैं। हे रामजी! चिरकालकी प्रतीतिको जाग्रत् कहते हैं और अल्पकालकी प्रतीतिको स्वप्ना कहते हैं। जो आदिस्वप्ना हुआ और उसमें दृढ़ अभ्यास होगया उससे जाग्रत् हो भासतीहै; इसलिये जो आकार तुमको सत्य भासते हैं वे सब निराकार आकाशरूप हैं कुछ बने नहीं। जैसे स्वप्ने में त्रिलोकी जगत् भ्रम उदय होताहै परन्तु सब आकाशरूप होताहै; तैसेही ये जगत् के पदार्थ अविद्या से साकार भासते हैं सो सब निराकार और आकाश रूप हैं। जब अधिष्ठान आत्मतत्त्व में जागोगे तब सबही आकाशरूप भासेंगे। अद्वैत

आत्मतत्त्व में जो ग्राह्य–ग्राहकभाव भासते हैं सो मिथ्या कल्पना है, वास्तवमें कुछ नहीं। सबजगत् मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्याहै उसमें ग्रहण और त्याग क्या कीजिये? इन दोनों की कल्पना को दूरकरो। यह हो और यह न हो इस कल्पना को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थितहोरहो तब सर्व शांति प्राप्त होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनंनाम
द्विशताधिकैकोनपंचाशत्तमस्सर्ग्गः २४९॥

वशिष्ठजी बोले, हे राजन्! इन अर्थोंका जो आश्रयभूत है सो मैं तुमसे कहताहूं। इस जगत् के आदि अचेत चिन्मात्र था और उसमें किसी शब्दकी प्रवृत्ति न थी–अशब्द पद था। फिर उसमें जागना फुरा और उसका आभास जगत् हुआ। उस आभास में जिसको अधिष्ठानकी अहंप्रतीति है उसको जगत् आकाशरूप भासता है और वह संसार में नहीं डूबता क्योंकि, उसको अज्ञानका अभावहै। जो डूबता नहीं वह निकलता भी नहीं; उसे अज्ञान निवृत्ति और ज्ञानकाभी अभाव है क्योंकि, वह स्वतः ज्ञानस्वरूप है। जिनको अधिष्ठान का प्रमाद हुआ है उनको दोनों अवस्था होती है। जो ज्ञानवान् है उसको जगत् आत्मरूप भासताहै और जो ज्ञान से रहितहै उसको भिन्न भिन्न नामरूप जगत् भासता है हे रामजी! आत्मा निराख्यात है; वह चारों आख्यातों से रहित निराभाससत्ताहै और चारों आख्यात उसमें आभासहैं एक आख्यात, दूसरा विपर्ययाख्यात; तीसरा असत्याख्यात और चौथा आत्माख्यात है। आख्यात ज्ञानको कहते हैं। जिसको यह ज्ञान है कि; 'मैं आपको नहीं जानता;' इसका नाम आख्यातहै। आप को देह इन्द्रियरूप जानने का नाम विपर्ययाख्यात है। जगत् असत्यजानने का नाम असत्याख्यातहै और आत्मा को आत्माजानने का नाम आत्माख्यातहै। ये चारों आख्यात चिन्मात्र आत्मतत्त्व के आभास हैं। आत्मसत्ता निर्विकल्प अचेत चिन्मात्र है उसमें वाणी की गमनहीं है। हे रामजी! जगत् भी वही स्वरूपहै और कुछ बनानहीं और घनशिलाकी नाईं अचिंत्यस्वरूप है। इसपर एक आख्यान है जो श्रवणों का भूषण है इसलिये तुझसे कहताहूं। वह द्वैतदृष्टि को नाश करताहै और ज्ञानरूपी कमल के विकाश करनेवाला सूर्य्य है और परमपावन है सो सुनो। हे रामजी! एक बड़ीशिलाहै जिसका कोटि योजनपर्यन्त विस्तारहै; अनन्तहै किसी ओर उसका अन्त नहीं आता और शुद्ध, निर्मल और निरासाध है अर्थात् यह कि, अणु अणुसे पुष्ट नहीं हुई अपनी सत्तासे पूर्णहै और बहुत सुन्दर है। जैसे शालिग्राम की प्रतिमा सुन्दर होती है, तैसेही वह सुन्दरहै और जैसे शालिग्राम पर शंख चक्र, गदा और पद्मकी रेखाहोती हैं तैसेही उसपररेखाहैं और वहीरूपहै। वह वज्रसे भी

क्रूर, शिलाकी नाईं निर्विकाश और निराकार अचेतन परमार्थ है । यह जो कुछ चैतन्यता भासती है सो उसपर रेखा है और अनन्त कल्प बीतगये हैं परन्तु उसका नाशनहीं होता । पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश; ये सबभी उसपर रेखा हैं और आप पृथ्वी आदिक भूतों से रहित और शिलावत् है और इन रेखाओंकी जीवितकी नाईं चेतती है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जो वह अचेतन है और शिलाकी नाईं निर्विकाश है तो उसमें चैतन्यता कहां से आई जिससे जीवितधर्माहुई—वह तो अचैतन्य थी ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वह तो न चैतन्य है और न जड़ है शिलारूपहै और पत्थर से भी उज्ज्वल है । यह चैतन्यता जो तुम कहते हो सो चैतन्यता स्वभाव से दृष्टिआती है—जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत है, तैसेही चैतन्यताभी उसका स्वभाव है और जैसे जलमें तरंग स्वाभाविक भासतेहैं, तैसेही इससे चैतन्यता स्वाभाविक भासती है परन्तु भिन्न कुछ नहीं । वह सदा अपने आपमें स्थित है और किसी से जानी नहीं जाती—अबतक किसीने नहीं जाना । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! किसी ने उसको देखाभी है अथवा नहीं देखा और किसी से वह भंगभी हुई है कि, नहीं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैंने उस शिलाको देखाहै और तुमभी जो उस शिलाके देखनेका अभ्यास करोगे तो देखोगे । वह परमशुद्धहै—उसको मैल कदाचित् नहीं लगता । वह छिद्रों, पोलों और आदि, मध्य, अन्त से रहित है । न उसे कोई तोड़सक्ता है और न वह तोड़ने योग्यहै, उससे कोई अन्यहो तो उसको भेदे । ये जितने पदार्थ पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, अप, तेज, वायु, आकाश, देवता, दानव, सूर्य और चन्द्रमाहैं वे सब उसीकी रेखा हैं और उसके भीतर स्थित हैं । वह शिला महासूक्ष्म निराकार आकाशरूपहै । रामजी ने पूछा हे भगवन् ! जो वह आदि, मध्य और अन्तसे रहित है तो तुमने कैसे देखी सो कहो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वह और किसीसे जानी नहीं जाती अपने आप अनुभव से जानीजाती है । मैंने उसे अपने स्वभावमें स्थित होकर देखाहै । जैसे थंभेको अनथंभे में स्थित होकर देखे, तैसेही मैंने उसमें स्थित होकर देखा । हमभी उस शिलाकी रेखा हैं; इससे मैंने उसमें स्थित होकर देखा है । रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! वह कौन शिला है और उसपर रेखा कौन है सो कहो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! वह परमात्मरूपी शिलाहै । मैंने शिलारूप इसलिये कहा कि, वह घन चैतन्यरूपहै उससे इतर कुछ नहीं और अचित्‌रूप है उसपर पंचतत्त्व रेखाहैं सो वे रेखाभी वही रूपहैं । एक रेखा बड़ीहै और जिसमें और रेखा रहती हैं । वह बड़ीरेखा आकाश है जिसमें और तत्त्व रहतेहैं । सब पदार्थ आकाशमें हैं सो सब वही रूपहैं; तुमभी वही रूपहौ और मैंभी वही रूपहूं और कुछ हुआनहीं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादि सर्वपदार्थ और कर्म जो भासते हैं सो सब ब्रह्मरूपी शिलाकी रेखा हैं और कुछ हुआ नहीं, सर्व

कालमें ब्रह्मसत्ताही स्थितहै। नानाप्रकार के व्यवहार भी दृष्टिआते हैं परन्तु वही रूपहैं और कुछ है नहीं तैसेही वह भी जानो। घट, पट, पहाड़, कन्दरा, स्थावर, जंगम, जगत् सब आत्मरूपहै। आत्माही फुरने से ऐसे भासताहै। जैसे जलही तरंग और लहरें होकर भासताहै, तैसेही ब्रह्मसत्ताही जगत्‌रूपहोकर भासती है और सर्व पदार्थ पवित्र, अपवित्र; सत्य, असत्य; विद्या, अविद्या; सब आत्मसत्ताही के नामहैं इतर वस्तु कुछ नहीं। ब्रह्मसत्ताही अपने आप में स्थित है। हे रामजी! सर्वही घन ब्रह्मरूपहै और चिन्मात्र घनही सब में व्यापरही है वह परमार्थसत्ता घन शान्तरूप है और यह भी सर्वपरमार्थ घनरूपहै इसलिये संकल्परूपी कलना को त्यागकर उसमें स्थितहोरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनन्नाम द्विशताधिकपंचाशत्तमस्सर्गः २५०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष स्वभावसत्तामें स्थित हुये हैं उनको ये चारों आख्यात कहे हैं और इनसे लेकर जितने शब्दार्थ हैं वे शशेके सींगवत् असत्य भासते हैं। जगत्‌का निश्चय उनमें नहीं रहता और सर्व ब्रह्माण्ड उनको आकाशवत् भासता। आख्यातकी कल्पना भी उन्हें कुछ नहीं फुरती और सर्व जगत् को दीखता है वह निराकार परमचिदाकाशरूप है और परमनिर्वाणसत्ता से युक्त भासताहै और उसीसे निर्वाण होजाताहै इसलिये वही स्वरूपहै। हे रामजी! जब इस प्रकार जानकर तुम उस पदमें स्थित होगे तब बड़े शब्दको करते भी तुम निश्चयसे पाषाण शिलावत् मौन रहोगे और देखोगे, खावोगे, पियोगे, सूंघोगे परन्तु अपने निश्चय में कुछ न फुरेगा। जैसे पाषाणकी शिलामें फुरना नहीं फुरता, तैसेही तुम रहोगे—जो चरणों से दौड़ते जावोगे तो भी निश्चय से चलायमान न होगे। जैसे आकाश, सुमेरु, पर्वत अचलहैं; तैसेही तुम भी स्थित रहोगे और क्रिया तो सब करोगे परन्तु हृदय में क्रिया का अभिमान तुमको कुछ न होगा केवल स्वभावसत्तामें स्थित होगे। जैसे मूढ़ बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्पता है सो अविचार सिद्ध है और विचार कियेसे कुछ नहीं रहता, तैसेही मूर्ख अज्ञानी आत्मामें मिथ्या आकार कल्पते हैं विचार कियेसे सब आकाशरूप है कुछ बना नहीं। जैसे मरुस्थलमें नदी तबतक भासती है जबतक विचार करके नहीं देखता और विचार कियेसे नदी नहीं रहती; तैसेही यह जगत् विचार किये से नहीं रहता। जगत् चैतन्यरूपी रत्नका चमत्कारहै; चैतन्य आत्माका किंचन फुरने सेही जगत्‌रूपहो भासता है। रामजी बोले, हे भगवन्! इस जगत्‌का कारण मैं स्मृति मानताहूं; वह स्मृति अनुभव से होती है और स्मृतिसे अनुभव होता है। स्मृति और अनुभव परस्पर कारणहै, जब अनुभव होताहै तब उसको स्मृति भी होती है और वह स्मृति संस्कार फिर स्वप्नमें जगत्‌रूपहो क्यों भासती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी!

यह जगत् किसी संस्कार से नहीं उपजा और किसी स्मृतिका संस्कार नहीं काकतालीयवत् अकस्मात् फुरआया है। हे रामजी ! यह जगत् आभासमात्रहै; आभासका अभाव कदाचित् नहीं होता क्योंकि; उसका चमत्कारहै । इतर कुछ बनाहो तो उसका नाश भी हो पर भिन्न तो कुछ हुआही नहीं नाश कैसे हो ? यह जगत् सत्यभी नहीं और असत्य भी नहीं; आत्मसत्ता अपने स्वभाव में स्थित है और जगत् उसका आभासहै । हे रामजी ! तुम जो स्मृति कारण कहतेहो तो कारण कार्य भाव आभास वहां भासते हैं जहां द्वैतहै स्वरूप में तो कुछ कारण कार्यभाव नहीं जैसे स्वप्नेके मरुस्थल में जल भासितहुआ तो उसमें जल मानागया; इसलिये तुम आगे जाकर उसको देखो तो उस जलकी स्मृति हुई अथवा स्वप्नेके व्यवहार कर्त्ताको स्वप्नान्तरहुआ और उस स्वप्नान्तर में फिर व्यवहार किया ? हे रामजी ! तुम देखो कि, उसकी स्मृति भी असत्य हुई और जो उसने अनुभव किया सोभी असत्य है; तैसेही यह संसार भी है कुछ भिन्ननहीं । हे रामजी ! इसलिये न जाग्रत् है, न स्वप्नाहै; न कोई सुषुप्ति है और न तुरीयाहै केवल अद्वैतसत्ता सर्वउत्थान से रहित चिन्मात्र स्थितहै; इसलिये जगत् भी वहीरूप है और जो क्रियाभी दृष्टआती है तौभी कुछ हुआनहीं । जैसे स्वप्ने में अंगना कंठसे आ मिलती है तो उसकी क्रिया कुछ सच नहींहोती; तैसेही यह क्रिया भी सचनहीं । जाग्रत्; स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया शब्दों का अर्थ स्वभाव निश्चय ज्ञानवान् पुरुषको है और शशेकेसींग और आकाश के फलवत् असत्य भासते हैं । जैसे वन्ध्याकापुत्र और श्याम चन्द्रमा शब्द कहने मात्र हैं और इनका अर्थ असत्य है; तैसेही ज्ञानीके निश्चयमें पांचों अवस्थाओंका होना असंभव है । वह सर्वदाकाल में जाग्रत् है; जाग्रत् उसका नामहै जहां कुछ अनुभवहो । वह अनुभवसत्ता सदाजाग्रत्रूप है और जैसा पदार्थ आगे आताहै उसीका अनुभव करताहै–इससे सर्वदा सर्वकाल जाग्रत् है । अथवा सर्वदाकाल स्वप्ना है; स्वप्ना उसका नाम है जहां पदार्थ विपर्यय भासते हैं सो सर्व पदार्थ विपर्ययही भासते हैं । विपर्ययसे रहित आत्मा है उसमें जो पदार्थ भासते हैं सो विपर्यय हैं इसलिये सर्वकाल में स्वप्नाही है; अथवा सर्वदाकाल सुषुप्तिही है; सुषुप्ति उसका नाम है जहां अज्ञानवृत्तिहो । मैं आप को भी नहीं जानता इसलिये न जाननेसे सर्वदाकाल सुषुप्तिहै, अथवा सर्वदाकाल तुरीया है; तुरीया उसका नाम जो साक्षीभूत सत्ताहो और जिसमें जाग्रत्, स्वप्ना और सुषुप्ति अवस्था का अनुभव होता है । वह सर्वदाकाल सबका अनुभव करता है सो प्रत्यक् चैतन्य है इससे सर्वदाकाल में तुरीया पदहै । अथवा सर्वदाकाल तुरीयातीत पद है तुरीयातीत उसको कहतेहैं कि, जो अद्वैतसत्ताहै, जिसकेपास द्वैत कुछनहीं सो सर्वदा काल अद्वैतसत्ताहै और उसमें जगत् का अत्यन्त अभाव है जैसे मरुस्थल में जलका

अभावहै—इसलिये सर्वदाकाल में तुरीयातीत पद है और जो मुझसेपूँछो तो मुझको तरंग, बुद्बुदे, झाग और आवर्त्त कुछनहीं भासते—सर्वदाकाल चित्तसमुद्रही भासता है। उदय अस्त से रहित आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और पृथ्वी आदिक तत्त्वजो भासतेहैं सोभी कुछउपजेनहीं आत्मसत्ताका किंचनइसप्रकार भासता है। जैसे नख और केश उपजतेभी हैं और नाशभी होजाते हैं; तैसेही आत्मा में जगत् उपजता भी है और लीनभी होजाता है। जैसे नख और केशके उपजने और काटने से शरीर ज्योंकात्यों रहता है; तैसेही जगत्के उपजने और लीनहोने में आत्मा ज्योंका त्यों रहताहै। हेरामजी! यहजगत् उपजानहीं तो उसमें सत्य और असत्यकल्पना और स्मृति क्याकहिये और भीतर और बाहर क्याकहिये? अद्वैतसत्तामें कुछ कल्पना नहींबनती। जो तुमकहो कि, स्मृति भीतर होती है परन्तु भीतरसे बाहर दृष्ट आती है तो भीतर अनुभवकी अपेक्षा से हुई है सोभी उत्पन्ननहीं हुई तोमैं भीतर और बाहर क्याकहूँ? जैसे स्वप्ने की सृष्टि भासिआतीहै सो अपनाही अनुभव होता है और वहीसृष्टिरूप हो भासता है वहां तो भीतर बाहर कुछ नहींहै तैसेही यह जगत्भी भीतर बाहर कुछ नहीं है सब भ्रमरूपहै। जिसको इच्छाकरतेहैं उसेही स्मृति कहते हैं और विद्या, अविद्या; इष्ट, अनिष्ट आदिशब्द सब आत्मा के नामहैं—आत्मासे भिन्न और पदार्थ कुछ नहीं। हे रामजी! जागकरदेखो कि, सब तुम्हाराही स्वरूप है। मिथ्या भ्रमको अंगीकारकरके भिन्न क्यों देखते? सर्व शब्द अर्थ विना कहीं नहींहै और शब्द अर्थका विचार संकल्प से होता है। संकल्प तब फुरताहै जब चित्तमें अहंअभिमान होताहै। उस चित्तको आत्मासार में लीनकरो; जब चित्तको निर्वाण करोगे तब सब जगत् शांतहो जावेगा। जैसे दर्पणमें जगत्रूपी प्रतिबिम्ब होताहै। जगत् कुछ वस्तुनहीं; जब चित्त निर्वाण होजावेगा तब द्वैत कल्पना सब मिट जावेगी। यह जो मोक्ष शास्त्र मैंने तुमसे कहाहै इसके अर्थ विचार कर और संकल्प को त्यागकर अपने परमानन्द स्वरूप में स्थित होरहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिअभाववर्णनं नामद्विशताधिकैकपंचाशत्तमस्सर्गः २५१॥

वशिष्ठजी बोले; हेरामजी! यह जगत् किसीकारण से नहीं उत्पन्नहुआ। जैसे समुद्रमें तरंग स्वाभाविक फुरते हैं तैसेही संवित् सत्तासे आदिसृष्टिफुरी है और जैसे जल स्वाभाविक द्रवतासे तरंगरूप अपनी सत्तासे बढ़ता जाता है; तैसेही आत्मसत्तासे जगत् विस्तार होता है सो आत्मा से कुछ भिन्ननहीं; आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है जब चिन्मात्र आत्मसत्ता का अभ्यास बहिर्मुख फुरता है तब अन्तःकरण चतुष्टयांगहोतेहैं और उसमें जो निश्चयहोताहै उसका नाम नेति है। वह प्रथम अकस्मात्

से कारण विना स्वाभाविकही फुरिआया है और आभासमात्र है जब वह दृढ़ होगया तब नेति स्थितहुई और वास्तवमें द्वैत कुछ बनानहीं। जो सम्यक्दर्शी पुरुषहैं उनको सब आत्माही दृष्ट आताहै-जैसे पत्र, फूल, फल, टहनी सब वृक्षपर होते हैं भिन्ननहीं होते। हे रामजी! वृक्षसे जो फूल, फल और टहनी होती हैं सो किसकारण बुद्धिपूर्वक नहीं होतीं? तैसेही इस जगत् कोभी जानो। जो सम्यक्दर्शीहैं उनको भिन्न भिन्न रूप भी पत्र, टास आदिक विस्तार एक वृक्षरूपही भासता है; तैसेही यथार्थज्ञानीको सब आत्माही भासता है और मिथ्यादृष्टिको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं। हे रामजी! वृक्षका देखनेवाला भी और होताहै और दृष्टान्तमें दूसरा कोई नहीं। चैतन्य आत्मा का आभासही चैत्यहै, वही चैतन्यरूपहो भासताहै। उसचैतन्य आभासको असम्यक् दृष्टिसे भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं और सम्यक्दर्शी सबको-आत्मरूप देखता है। जैसे पत्र, फूल, फल और वृक्ष आपको भिन्नजाने। ज्ञानी और अज्ञानी सब आत्म रूपहै-जैसे दीवारपर पुतलियां लिखी होती हैं सो दीवारसे भिन्न नहीं होतीं तैसेही सर्व्वगत आत्मरूपी दीवारके चित्र हैं सो आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे आकाश में शून्यता; फूलोंमें सुगन्धि; जलमें द्रवता; वायुमें स्पन्द और अग्निमें उष्णताहै तैसेही ब्रह्ममें जगत् है। हे रामजी! जगत् आत्माका आभासहै इसलिये वही रूपहै। यह जगत्भी अचैत्य चिन्मात्रहै। जो तूकहे कि, अचैत्य चिन्मात्रहै तो पृथ्वी, पहाड़आदिक आकार क्यों भासते हैं? तो हे रामजी! जैसे नित्यप्रति जो तुमको स्वप्नआताहै और उस अनुभव आकाशमें पृथ्वीआदिक तत्त्व भासिआते हैं तो वही चिन्मात्रही आकार होकर भासताहै और कुछनहीं; तैसेही इसेभीजानो। यह सबजगत् जो तुमको भासता है सो अनुभवरूपहै। जैसे चिन्मात्र आत्मामें सृष्टि आभासमात्रहै; तैसेही कारणकार्य-भाव भी आभासमात्र है परन्तु वहीरूपहै-आत्मसत्ताही इसप्रकार होकर भासती है। ये पदार्थ कार्य्य-कारण अभ्यासकी दृढ़ता से उपजे भासते हैं पर आदि सृष्टि किसी कारणसे नहीं उपजी--पीछे कारणसे कार्य उत्पन्न दृष्ट आते हैं। यद्यपि कार्य-कारण दृष्ट आते हैं तौभी कुछ उपजे नहीं सदा अद्वैत रूपहैं। जैसे स्वप्नेमें नानाप्रकार के कार्य कारण भासिआते हैं परन्तु कुछ हुये तो नहीं सदा अद्वैतरूपहैं; तैसेही जाग्रत् मेंभी जानो। पदार्थों की स्मृतिभी स्वप्ने में होती है और अनुभवभी स्वप्नेमें होताहै; जो स्वप्नाही नहीं फुरा तो मृत्यु कहां है और अनुभव कहांहै? न जगत्का अनुभव है और न जगत्है; अनुभवसत्ताही जगत्रूप हो भासती है जो जाग्रत्रूपहै; जब उसका अनुभव होगा तब न स्मृति रहेगी और न जगत् रहेगा। इसलिये, हे रामजी! जो अनुभवरूपहै उसका अनुभव करो। यह जगत् भ्रमरूप है। जो उपजा नहीं सो स्वतः सिद्ध है और जो उपजा है और जिसमें भासता है उसको उसी का रूप जानो

भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में पदार्थ भासते हैं सो उपजे नहीं परन्तु उपजे दृष्ट आते हैं सो अनुभव में उपजे हैं। अनुभव स्वतःसिद्धहै उसमें जो पदार्थ भासतेहैं सो अनुभवरूप हैं और अनुभवरूपही इसप्रकार हो भासताहै; तैसेही ये सब अनुभवरूपहैं—भिन्न कुछ नहीं। यह सर्व जगत् आत्मरूपहै; इसलिये हे रामजी! सर्वजगत् अकारण है और आत्माका आभासहै—कारण से कुछ नहीं बना। अनन्त ब्रह्माण्ड ब्रह्मसत्ता में आभास फुरतेहैं और अज्ञानी को कार्य—कारणसहित भासतेहैं। उसमें नेति हुई है पर जब जागकर देखोगे तब सर्व अद्वैतरूप भासेगा न कोई नेतिहै और न जगतहै। (जबतक अज्ञाननिद्रा में सोया हुआ है तबतक जो पदार्थ उस सृष्टिमें है वही भासेगा और जैसा कर्म है सो भासेगा)। यह जगत्रूपी स्वप्ना है जिसमें स्वर्गादिक इष्टपदार्थ हैं और नरकादिक अनिष्ट पदार्थ हैं और उनके प्राप्त होनेका साधन धर्म अधर्म है। धर्म स्वर्गसुखका साधन है और अधर्म नरकदुःखका साधन है। जबतक अविद्यारूपी निद्रा में सोया हुआ है तबतक इनको यथार्थ जानताहै पर जब जागेगा तब सब आत्मरूप होगा और इष्ट अनिष्ट कोई न रहेगा। यह सब जगत् अनुभवरूप है और अनुभव सदा जाग्रज्ज्योति है उसीको जानो। जिन पुरुषों ने इस अनुभव को नहीं जाना वे उन्मत्त पशु हैं क्योंकि; वे आत्मबोध से शून्य हैं और सदा समीप आत्मा को नहीं जानते इससे उन्मत्त है क्योंकि; उन्मत्तको भी अपना आप भूल जाता है। जैसे किसीको पिशाच लगताहै तब उसको अपनास्वरूप विस्मरणहोजाताहै और पिशाचही देहमें बोलताहै; तैसेही जिसको अज्ञानरूपी भूत लगताहै वह उन्मत्त होजाता है; अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानता और विपर्यय बुद्धि से देहादिक को आत्मा जानता है और विपर्यय शब्द करताहै। जिनको स्वरूपमें अहंप्रतीति है उनको सर्व जगत् आत्मरूप भासताहै। हे रामजी! आदिसृष्टि किसीकारणसे बनी होती तो उसके पीछे प्रलयादिकमें कुछ शेषरहता पर वहतो अत्यन्तअभाव होतीहै,इसलिये सब जगत् अकारण है। जैसे चिन्तामणि से अकारणपदार्थ दृष्टिआता है, तैसेही यह अकारण है। न कहीं संस्कार है और न स्मृति है सब आत्माके पर्याय हैं आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। इससे सर्व जगत्को आत्मरूप जानो। रामजीने पूँछा; हे भगवन्! जो संस्कार से अनुभव नहीं होता और अनुभव से स्मृति नहीं होती तो इसप्रकार प्रसिद्ध क्यों दृष्टआते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह संशयभी तुम्हारा दूरकरताहूं। जैसे हाथी के बालक के मारने में सिंहको कुछ यत्न नहींहोता, तैसेही इससंशय के नाशकरनेमें मुझे कुछयत्ननहीं है। जैसे सूर्य के उदयहुये तिमिरका अभाव होजाताहै;तैसेही मेरे वचनोंसे तुम्हारा संशय दूर होजावेगा। हे रामजी! यह सर्वजगत् चिन्मात्रस्वरूप है—उससे भिन्ननहीं। जैसे थंभेमें शिल्पी पुतलियां कल्पता है परन्तु पुतलियां कुछबनी

नहीं उसके चित्तमें पुतलियोंका आकारहै; तैसेही आत्मरूपी थंभे में चित्तरूपी शिल्पी पुतलियां कल्पता है । हे रामजी ! थंभे में पुतलियां निकालते हैं तभी निकलती हैं परन्तु आत्मा तो अद्वैत और निराकार है उसमें और कुछनहीं निकलता और उस में वाणीकी भी गमनहीं चैतन्यमात्र है अहं के फुरने से वह आपको चैतन्य जानता है और फिर आगे शब्दों के अर्थ कल्पता है शुद्धअधिष्ठान चैतन्य आपको जानना यही स्वर्ग है । ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, देश, काल इत्यादिक शब्द और अर्थ फुरनेही में हुयेहैं—जैसे एकही समुद्र में द्रवतासे आवर्त, तरंग, फेन और बुद्बुदे नाम होते हैं, तैसेही सब ब्रह्मही के नाम हैं ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं; ब्रह्मही अपने आप में स्थित है और वही फुरने में जगत् आकारहो भासता है और फुरनेसे रहित होनेसे जगत् आकार मिटजाता है परन्तु फुरने अफुरने में ब्रह्म ज्यों का त्यों है । जैसे स्पन्दमें निस्स्पन्द में वायु ज्योंकी त्योंहै और सब पदार्थ जो भासते हैं सो ब्रह्मस्वरूप हैं । जैसे स्वप्ने में अपनाही अनुभव पहाड़, वृक्षआदिक नाना प्रकारका जगत् हो भासता है, तैसेही ब्रह्मसत्ताही जाग्रत् जगत्रूपहो भासती है और वही कहीं अन्तवाहक; कहीं अधिभौतिक; कहीं ईश्वर और कहीं जीवआदि हो भासता है इससे आदिलेकर शब्द अर्थ संयुक्त जो जीव फुरता गया है सो ब्रह्मसत्ताही इसप्रकार स्थितहुई है । जैसे थंभेमें पुतलियां थंभरूप होती हैं, तैसेही आत्माकाश में जगत् आत्मरूप है—आत्मा से भिन्न कुछ नहीं । जैसे उसमें जगत् आभास है, तैसेही स्मृति अनुभव भी आभास है । स्मृति जो संस्कार है उससे जगत् की उत्पत्ति तब कहिये जब स्मृति आभास न हो सो तो स्मृति संस्कार भी अभासहै यह जगत् का कारण कैसेहो ? स्मृति भी तब होती है जब प्रथम जगत् होताहै सो जगत् नहीं तो स्मृति कैसेहो ? इससे जगत् आभासमात्र है और इसका कारण कोई नहीं । हे रामजी ! स्मृति संस्कार जगत्का कारण तबहो जब कुछ जगत् आगे हुआहो सो तो कुछहुआ नहीं और अनुभव उसकाहोता है जो पदार्थ भासताहै सो तो इसजगत्के आदि कुछ जगत्का अंश न था फिर अनुभवकैसेकहूं ? जो अनुभवही न हुआतो स्मृति किसकोहो और जब स्मृतिही न हुई तो फिर उससे जगत् कैसेकहूं ? इसलिये, हे रामजी ! आदि जगत् अकारण अकस्मात् फुराहै । जैसे रत्नकी लाटहोती है तैसेही जगत् है और पीछे से कारण कार्यरूप भासता है । इससे हे रामजी ! जिसका कारण कोई न हो उसे जानिये कि, उपजानहीं जिसमें भासताहै वहीरूपहै अधिष्ठानसे भिन्न कुछनहीं । सबजगत् ब्रह्मस्वरूपहै; स्मृति भी भ्रममें आभास फुरा है और अनुभव भी आभासहै सो ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं और आभासभी कुछ फुरानहीं आभासकी नाई जगत् भासताहै—आत्मसत्ता अद्वैतहै जिसमें आभास, स्मृति, अनुभव, जाग्रत् और

स्वप्न कल्पना कुछनहीं तो क्याहै ? ब्रह्महीहै फुरना जो कुछ कहतेहैं सो कुछ वस्तुनहीं। जैसे थंभे में शिल्पी पुतलियां कल्पताहै, तैसेही स्पन्द चैतन्य आत्मा में जगत् कल्पती है। शिल्पी तो आप भिन्नहोकर कल्पताहै और यह चित्तसत्ता ऐसीहैकि, अपनेहीस्वरूप में कल्पती है और जगत्रूपी पुतलियां देखती है। आत्मा आकाशरूपी थंभहै उस में जगत्भी आकाशरूपी पुतलियां हैं। जैसे आकाश अपने आकाशभाव में स्थित है, तैसेही ब्रह्म अपने ब्रह्मत्वभावमें स्थितहै। जगत् भिन्नभी दृष्टआता है परन्तु अचैत चिन्मात्रस्वरूप है भेदभावको नहीं प्राप्तहुआ और विकारवान्भी दृष्टआता है परन्तु विकारनहीं हुआ। जैसे स्वप्नेमें आपही सब स्पष्ट भासतेहैं, तैसेही यहजगत् अपने आप में भासताहै परन्तु कुछनहीं है। हे रामजी! यही आश्चर्य है कि, मैंने अपने अनुभव को प्रकट करके उपदेश किया है; जीव आपभी जानतेहैं स्वप्नेमें नित्य देखतेहैं और सुनते भी हैं परन्तु निश्चय करके जाननहीं सक्ते और स्वप्नके पदार्थोंको मूर्खतासे त्याग नहींसक्ते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेशालभजनकोपदेशोनाम
द्विशताधिकद्विपंचाशत्तमस्सर्गः २५२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंको पाकर सुखनहीं मानता और अनिष्ट विषयों को पाकर दुःख नहीं मानता; इनके भ्रमसे मुक्त है और बड़े भोग प्राप्तहों तौभी अपने स्वरूपसे चलायमान नहीं होता उसको जीवन्मुक्त जानो। हे रामजी! सर्व शब्द अर्थ जिसको द्वैतरूप नहीं भासते उसे तुम जीवन्मुक्त जानो। जिस अविद्यारूपी जाग्रत् में अज्ञानी जागते हैं उसमें ज्ञानवान् सोरहेहैं और परमार्थरूपी जाग्रत्में अज्ञानी सोरहेहैं, वे नहीं जानते कि, यह अर्थहै पर उसमेंजीवन्मुक्त स्थितहैं इसकारण ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट विषयों को पाकर सुखी और दुःखी नहींहोते उन का चित्त सदा आत्मपदमें स्थितहै। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! जो पुरुष सुखपाकर सुखी नहीं होता और दुःखसे दुःखी नहीं होता सोतो जड़हुआ, चैतन्य तो न हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सुख दुःख तबतक होताहै जबतक चित्तको जगत्का सम्बन्धहोताहै। जबचित्त जगत्के संबंधसे रहित चिन्मात्र होताहैतब उपाधिक सुखदुःखनहीं रहते और जो अपने स्वभाव में स्थित पुरुषहैं वे परम विश्रामको प्राप्तहोतेहैं और सब कुछकरतेहैं परन्तु स्वरूपसे उनको कर्तव्यका उत्थान कुछनहींहोता और सदा अद्वैत में निश्चयरहताहै। नेत्रों से वे देखते हैं परन्तु द्वैतकी भावना उनको कुछनहीं फुरती। जैसे अत्यन्त उन्मत्तको सर्व पदार्थ दृष्टभीआतेहैं परन्तु पदार्थों का ज्ञाननहीं होता, तैसेही जिसकीबुद्धि अद्वैतमें घनीभूतहुईहै उसको द्वैतरूप पदार्थ नहीं भासते। जिनकोद्वैत नहीं भासता उनको सुख दुःख कैसे भासे? उन पुरुषों ने वहां विश्राम किया है जहां न जाग्रत् है, न स्वप्नहै और न सुषुप्ति है। वे सर्व द्वैतसे रहित अद्वैतरूपी शय्या में

विश्राम कररहे हैं और संसार मार्गसे उलंघ गये हैं। आत्माके प्रमाद से जीवको कष्ट होताहै। जो अपनी विभूति विद्याको त्यागकर प्रसन्न होताहै और फिर संसार के क्रूरमार्ग में कष्ट पाता है वह मनुष्य नहीं मानों मृग है। वह संसाररूपी जंगल में कष्टपाताहै और जब तृषासे कायर होताहै तब जलकी ओर दौड़ताहै पर जहां जाता है वहां मरुस्थल की नदी भासतीहै और जल प्राप्त नहीं होता; तब आगे दौड़ता है और तृषा अधिक बढ़तीजातीहै। इसप्रकार दौड़ता दौड़ता जड़ होजाता है और दुःखी होकर मरजाता है परन्तु जल प्राप्त नहीं होता। यह जल, दौड़ना, जड़ता और मरना चारों भिन्न भिन्न सुनो। हे रामजी! मनरूपी तो मृग है जो संसाररूपी जंगल में आनपड़ा है और इन्द्रियोंके विषयरूपी जलाभास को सत्य जानकर शांति के निमित्त तृष्णारूपी मार्ग में दौड़ता है पर वे विषय आभासमात्र हैं और उनमें शांतिरूपी जल नहीं है इसलिये वह दौड़ता दौड़ता जब वृद्ध अवस्थामें जापड़ताहै तब जड़ होजाता है और बड़े कष्टको प्राप्तहोता है पर शांतिरूपी जल नहीं पाता इससे तृप्तभी नहीं होता। हे रामजी! मनुष्य मानों मज़दूर है जिसके शिरपर बड़ा भारहै और क्रूरमार्गमें चलाजाताहै जहां उसको चोरने लूटलियाहै इससे जलताहै। हे रामजी! मनुष्यरूपी मज़दूरके शीशपर जन्मका बड़ाभार है और संशयरूपी क्रूर मार्ग में खड़ाहै। कर्मइन्द्रिय और ज्ञानइन्द्रियके इष्ट अनिष्ट विषय हैं इससे रागद्वेषरूपी तस्करने विचाररूपी धन हरलियाहै इससे वह राग, द्वेष और तृष्णारूपी अग्नि से जलता है। बड़ा आश्चर्य है कि, ऐसे क्रूरमार्ग को त्यागकर उन्होंने परमपदमें विश्राम पायाहै और अन्य आनन्दको त्यागकर परमपद आनन्दको प्राप्त हुये हैं। उन मुक्तपुरुषोंको संसारका दुःख सुख व्याप नहीं सक्ता क्योंकि, वे परम अद्वैत शुद्धसत्ता को प्राप्त हुये हैं। वे सबको देखते हैं और ग्रहण और त्यागरूपी अग्निको त्याग कर उन्होंने परमपदमें विश्राम पायाहै और सदा सोये रहते हैं। प्रकटमें सुखसे जो सोते हैं तो वही सोते हैं और उनके भीतर सदा शांति रहती है परंतु जड़तासे रहित हैं और आकाशसे भी अधिक सूक्ष्मसत्ताको प्राप्त हुये हैं। जैसे समुद्रमें धूलनहीं होती और सूर्य में तमनहीं होता तैसेही उनमें इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंकी तृष्णा नहीं होती। उनसे रहित होकर उन्हों ने विश्राम पायाहै। यह आश्चर्य है कि, अणुसे अणु होकर और महत्‌से महत् होकर भी वे केवल विश्रामवान् हुये हैं। हे रामजी! (जो आत्मसत्ताकी ओरसे सोये पड़े हैं उनको दुःख होता है और ज्ञानवान् द्वैत जगत्‌की ओर जड़हुये हैं और अपने स्वरूपमें स्थित हैं इससे चैतन्यको दुःख कुछ नहीं।) वे जाग्रत की ओरसे सोये हैं और उनको अविद्यक जगत् और दृश्यका सम्बन्ध दूरहोगया है जब वे इस ओरसे सोये हैं तो उनको फिर दुःख कैसेहो ? वे पुरुष सदा अद्वैतरूप हैं।

जो अनन्त जगत्को कर्त्ता है और आपको सदा अकर्त्ता जानताहै ऐसे आश्चर्य पद में उन्होंने विश्राम पायाहै । जगत्के समूह सत्ता समान में स्थिति करके उन्होंने विश्राम पायाहै—यह आश्चर्य है । वे सम्पूर्ण क्रियाको करते हैं परन्तु सदा अक्रियपद में स्थितहैं और सम्पूर्ण पदार्थोंको स्वप्नवत् जानकर सुषुप्त हुयेहैं । वे आकाश से भी अधिक सूक्ष्महैं क्योंकि, आत्मसत्ता में विश्राम पायाहै । वह आत्मसत्ता आकाशको भी व्यापरहीहै; उसीको आत्मवत् जानकरके वे स्थितहुये हैं । जो परमस्वच्छपद है उसमें सर्व शब्द अर्थ आकाशरूप होजाते हैं और आकाशभी आकाश होजाताहै; उस पद में उन्होंने विश्राम किया है सोही आश्चर्य है । नेत्र उसके खुलेहुये हैं पर सुषुप्ति में स्थित हैं । क्या सुषुप्ति है कि,दृग और दृश्यभाव उनका दूरहोगयाहै और जगत्के प्रकाशसे रहित और परम प्रकाशरूपहैं । हे रामजी ! बाहरके भोगपदार्थोंसे वे रहितहैं और आत्मामें स्थितहैं । प्रकट वे सोतेहैं पर सुषुप्ति में जागतेहैं और जाग्रत्से उनको सुषुप्तिहै । उस सुषुप्तिसे वे सोयेहैं और कर्म करते हैं परन्तु कर्त्ता कारणभावसे रहित हैं । क्रोध भी करते हैं परन्तु क्रोधके फुरनेसे रहितहैं और सर्व ओरसे प्रकाशवान् निर्भय होकर विश्राम करते हैं । कामना करते भी दृष्ट आते हैं परन्तु तृष्णासे रहितहैं और निस्संकल्पपदमें स्थित हुये हैं । यह आश्चर्यहै कि, जिस क्रियाकी ओर वे देखते हैं उसी ओर उनको शांति भासती है क्योंकि, एक मित्र उनके साथ रहताहै उससे कोई दुःख उनके निकट नहीं आता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तलक्षणवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्रिपंचाशत्तमस्सर्गः २५३ ॥

रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! वह मित्र कौनहै ? ज्ञानीका कोई कर्ममित्रहै अथवा आत्मामें विश्रामका नाम मित्रहै; यह संक्षेपपूर्वक मुझसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! एक अकृत्रिम कर्म हैं अपने सुकर्म उनका नाम है और अपनाही प्रयत्न उनका मित्र है । अध्यात्मिक, अधिदैविक और अधिभौतिक ये तीनों ताप सदा अज्ञानी को जलाते हैं पर ज्ञानी को नहीं भासते । जो बड़ाकष्ट प्राप्त हो जिसे लांघना कठिन है और बहुत कोपहो साभी उसको स्पर्श नहींकरता । जैसे कमलको जल नहीं स्पर्श करता, तैसेही ज्ञानीको कष्टनहीं स्पर्शकरता क्योंकि; वह मित्र उसके साथ रहता है । जैसे बालक का मित्र बालक होताहै सो बड़े भये भी उसका हितू होताहै, तैसेही चिरकाल जो ज्ञानवान्ने अभ्यास कियाहै सोही अभ्यास उसका मित्रहो रहताहै और दुष्टक्रिया की ओर उसे नहीं विचरने देता शुभकी ओर बरताताहै । जैसे पिता पुत्रको अशुभकी ओरसे बरजकर शुभकी ओर लगाताहै, तैसेही विचाररूपी मित्र उसको तृष्णासे बर्जन करताहै और आत्माकी ओर स्थित करताहै । वह रागद्वेषरूपी अग्निसे निकाल

कर समतारूपी शीतलताको उसे प्राप्तकरताहै। ऐसा विचाररूपी उसकामित्र है जो सर्व दुःख क्लेशादिसे उसे तार लेजाताहै—जैसे मल्लाह नदी से तारलेजाताहै। हे रामजी! विचाररूपी मित्र बहुत सुन्दरहै; शान्तरूपहै और सर्व मैलको जलानेवाली अग्नि है। जैसे सुवर्ण के मैलको अग्निजलाकर निर्म्मल करती है, तैसेही विचाररूपी अग्नि राग द्वेषरूपी मलको जलाती है। जब विचाररूपी मित्रआताहै तब स्वाभाविक चेष्टा निर्मल होजाती है और वेदोक्त विचरता है। तब सब कोई उसको देखकर प्रसन्न होता है और दया, कोमलता, अमान और अक्रोध आदिक गुण आनप्राप्त होते हैं। जैसे तिलों में तेल, फूलमें सुगन्धि और अग्निमें उष्णता रहती है, तैसेही विचारमें शुभ आचार रहते हैं। विचाररूपी मित्र शूरमाहै जो कोई शत्रु होताहै प्रथम वह उसको मारता है और अज्ञानरूपी शत्रुको नाशकरताहै—जैसे सूर्य तमको नाशकरताहै—और दीपकके प्रकाशवत् साथहोताहै एवम् विषयभोगरूपी अन्धेकूपमें जो मैलहै उसमें गिरने नहीं देता और सर्व ओरसे रक्षाकरताहै। जिस ओरसे वह पुरुष जाताहै उस ओर सबको प्रसन्नता उपजती है। हे रामजी! उसका वचन कोमल, मधुर और स्निग्ध होताहै और वह उदारात्मा क्षोभसे रहित और लोगोंपर उपकार और प्रसन्नताके लिये बोलताहै और सौहार्दता; शान्तरूप और परमार्थका कारणहै। हे रामजी! वचन तो उसकी प्रसन्नताके लिये होते हैं और आपभी सदा प्रसन्न रहताहै। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने भर्त्तार को सदा प्रसन्नरखती है, तैसेही विचाररूपी मित्र उसको सदा प्रसन्न रखताहै और शुभ आचारमें चलाताहै। दान, तप यज्ञादिक शुभक्रिया वह आपभी करताहै और लोगोंसेभी कराताहै। जिसके अन्तःकरणमें विवेकरूपी मन्त्री आताहै वहां वह अपने परिवारकोभी साथ लेआताहै। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! उसका परिवार कौनहै; उसका स्वरूप क्या है और क्या आचार है संक्षेपसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्नान, दान, तपस्या और ध्यान ये चारों उसके बेटे हैं। स्नान तो यह है कि, वह सदा पवित्र रहताहै और यथायोग्य और यथाशक्ति दानकरताहै। बाहरकी वृत्तिको भीतर स्थित करनेका नाम तपहै और आत्माकी वृत्तिमें चित्तको लगाने का नाम ध्यान है। ये चारों उसके बेटे हैं जो आत्मदर्शी हैं परन्तु वृत्तिको सदा स्वाभाविक अन्तर्मुखकरके व्यवहारकरते हैं। मुदिता उसकी स्त्री है—सदा प्रसन्नरहनेका नाम मुदिताहै—जो नमस्कारके योग्यहै। जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाकी रेखाको देखकर सब कोई प्रसन्न होता है और नमस्कार करताहै तैसेही उसको देखकर सब कोई प्रसन्न होताहै और नमस्कार करता है। मुदितारूपी स्त्री के साथ करुणा और दया नामा एकसहेली रहती है और समतारूपी द्वारपालनी सन्मुख खड़ी रहती है। जब विवेकराजा अन्तःपुरमें आताहै तब वह सन्मुख होकर सब स्थान दिखाती है और सदा संगीरहती है। जिस ओर राजा देखता

है उस ओर समताही दृष्टआतीहै जो आनन्दके उपजावनेवाली है । वह दो पुत्र साथ लेकर पुरीमें विचरतीहै और जिस ओर राजा भेजताहै उसओर धैर्य्य और धर्म लिये फिरती है । जब राजा सवार होकर चलताहै तब वहभी समतारूपी बाहनपर आरूढ़ होकर राजाके साथजाती है और जब राजा विषयरूपी पांचों शत्रुओं से लड़ाई करता है तब धैर्य्य और सन्तोष मन्त्री मन्त्र देताहै और विचाररूपी बाणसे उनको नष्टकरता है। हे रामजी ! विचार सदा उसके संगरहताहै और सब कार्यको करता है । यह चेष्टा उससे स्वाभाविक होतीहै; आप सदा अमानरहता है और कर्तृत्व-भोक्तृत्वका अभिमान उसको कोई नहींफुरता जैसे कागजपर मूर्त्ति लिखीहोती है जो अभिमानसे रहित है, तैसेही वहभी अभिमानसे रहितहै और परमार्थ निरूपणसे रहित निरर्थक वचन नहीं बोलता जैसे पाषाण नहीं सुनता-और जो क्रिया शास्त्रों और लोगों से निषेध की गई है वह नहीं करता जैसे शवसे कुछ क्रिया नहीं होती, तैसेही उसको क्रियाका उत्थान नहीं होता । जहां ज्ञानवान् और जिज्ञासियोंकी सभाहोतीहै वहां वह परमार्थ के निरूपणको शेषनाग और बृहस्पति की नाई होताहै और सावधानता इत्यादिक जो शुद्धक्रिया है सो उसमें स्वाभाविक होती है। जैसे सूर्य, चन्द्रमा और अग्निमें प्रकाश स्वाभाविक होताहै, तैसेही उसमें शुभक्रिया स्वाभाविक होती हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवन्मुक्तिबाह्यलक्षणव्यवहारवर्णनन्नाम द्विशताधिकचतुःपंचाशत्तमस्सर्ग्गः २५४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जगत् वास्तवमें ज्ञानस्वरूपहै और आत्मसत्ताका चमत्कारहै; और कुछ बनानहीं ब्रह्मसत्ताही फुरनेसे इस प्रकारहो भासती है । इसका कारण भी कोई नहीं । जब महाप्रलयथी तब शब्द-अर्थ द्वैत कुछ न था उस अद्वैत सत्तासे जगत् फुर आयाहै। जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होताहै सो बीज भी जगत्का कोई न था तो किसकारणसे उत्पन्न हुआ और तो कोई कारण न था इससे अबभी जगत् को महाप्रलयरूप जानो । हे रामजी ! न कोई पृथ्वी आदिक तत्त्वहै; न जगत्है न आभासहै और न फुरनाहै । जैसे आकाशके फूलोंमें सुगन्धि नहीं होती तैसेही इनका होना भी नहींहै केवल स्वच्छ ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । रूप, इन्द्रियां और मन भी ब्रह्मस्वरूपहै । जैसे स्वप्ने में अपना अनुभवहै और मनही नानाप्रकारका जगत् आकार और इन्द्रियां होकर भासता है और तो कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् भी वही रूपहै । हे रामजी ! सर्व जगत् आत्मरूप है । जैसे कारण विना आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासिआताहै सो कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जगत् आत्माका आभासहै और जिसमें यह आभास फुरा है सो अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है । ये सर्व पदार्थ जो तुमको भासते हैं उन्हें ब्रह्मस्वरूप जानो । जैसे मनोराजकी सृष्टि होती है सो अपने अनुभवमें

होती है और उसका स्वरूप अनुभव से भिन्न नहीं होता, तैसेही सृष्टि के आदि जो अनुभव होताहै सो अनुभवरूपहै और कुछ उपजा नहीं–वही अनुभवसत्ता इसप्रकार भासती है। हे रामजी ! देशसे देशांतर को जो संवित् प्राप्तहोती है उसके मध्यमें जो अनुभव है सोही तुम्हारा स्वरूप है और सब आभासमात्र है। जाग्रत् देशको त्यागकर जो स्वप्न शरीरके साथ नहीं मिली और जाग्रत् स्वप्न देशके मध्य में ब्रह्मसत्ता है वही तुम्हारा स्वरूप है। वह प्रकाशरूप और अपने आपमें स्थित है और जाग्रत् जगत् जो भासता है सोभी उसीका स्वभाव है। जैसे रत्नोंका स्वभाव चमत्कारहै; अग्निका स्वभाव उष्ण है, जलका स्वभाव द्रव है और पवनका स्वभाव फुरना है, तैसेही ब्रह्मका स्वभाव जगत् है। जैसे सूर्य्यकी किरणों में जल भासता है, तैसेही आत्मामें जगत भासता है। हे रामजी ! यह आश्चर्य है कि अज्ञानी सत्यको असत्य और असत्यको सत्य जानते हैं; जो अनुभवसत्ता है उसको छिपाते हैं और शशेके सींगवत् जगत्को प्रत्यक्ष जानते हैं। वे मूर्ख हैं, उनको क्या कहिये ? सबका प्रकाशक आत्मसत्ता है। जिसको तुम सूर्य्य देखतेहो सो वही परमदेव सूर्य्य होकर भासता है और चन्द्रमा और अग्नि उसी के प्रकाश से प्रकाशते हैं निदान सबका प्रकाश और तेजसत्ता वही है। जैसे सूर्य्यकी किरणों में सूक्ष्म अणुहोते हैं; तैसेही आत्मसत्ता में सूर्य्यादिक भासते हैं। जिसको साकार और निराकार कहतेहो वह सब शशेके सींगवत् हैं। ज्ञानवान्को ऐसेही भासता है कि, जगत् कुछ उपजा नहीं तो मैं क्या कहूं ? जहां सर्व शब्दोंका अभाव होजाता है और उसके पीछे चिन्मात्र सत्ता शेषरहती है वहां शून्यकाभी अभाव होजाताहै। हे रामजी ! जिनको तुम जीता कहते हो सो जीताभी कोई नहीं और जो जीतानहीं तो मुआ कैसे हो ? जो कहिये जीता है तो जैसे जीताहै तैसेही मृतक है; मृतक और जीते में कुछ भेदनहीं; इसलिये सर्व शब्दों से रहित और सबका अधिष्ठान वही सत्ता है। उसमें नानात्व भासता भी है परन्तु हुआ कुछ नहीं। पर्वत जो स्थूल दृष्टआते हैं सो अणुमात्र भी नहीं–जैसे स्वप्ने में पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं परन्तु कुछहुये नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और उसी में जगत् भासताहै। हे रामजी ! जो परमार्थसत्तासे जगत्भासआया सो तो और कुछ न हुआ; इससे वही सत्ता जगत्रूपहो भासतीहै। कोई कहते हैं कि, आत्मामें है और कोई कहते हैं कि, आत्मामें कुछनहींहै पर आत्मामें दोनोंशब्दोंका अभाव है और अभावकाभी अभाव है। यहभी तुम्हारे जानने केनिमित्त कहताहूँ; वह तो स्वस्थ और परमशांतरूपहै और उसमें और तुम्हारे में कुछ भेद नहीं। वह परिपूर्ण अच्युत अनन्त और अद्वैतहै और वही जगद्रूपहोकर भासता है जैसे कोई पुरुष शयनकरताहै तो सुषुप्तिमें अद्वैत रूप होजाताहै; फिर सुषुप्तिसे स्वप्न फुर आताहै और फिर सुषुप्ति में लीनहोजाता है तो उपजा क्या और लीन क्या हुआ ?

स्वप्नके आदिभी अद्वैतसत्ता थी; अन्तमें भी वहीरही और मध्यमें जो कुछ भासा वह भी वही रूपहुआ, आत्मासे भिन्न तो कुछ न हुआ ? इसलिये सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है—ब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं। हे रामजी ! हमको तो सदा अनुभवरूप जगत् भासताहै। हम नहीं जानते कि, अज्ञानी को क्या भासताहै। जैसे स्वप्न की सृष्टि से जो जागा है उसको अद्वैत अपना आप भासताहै, तैसेही तुरीयामें भासताहै। तुरीया और जाग्रत् में भेद कुछनहीं, जाग्रत्ही तुरीया का नामहै और जाग्रत् तुरीयारूपहै बल्कि, यहभी क्याकहनाहै सबही अवस्था तुरीयारूपहै। तुरीया जाग्रत् सत्ताका नामहै। जो अनुभवसाक्षी ज्योतिहै सो जाग्रत्में भी साक्षीरूप है; स्वप्नेमेंभी साक्षीरूप है और सुषुप्तिमेंभी साक्षीरूपहै। इसलिये सब तुरीयारूपहै परन्तु जिसको स्वरूपका अनुभवहुआ है उस ज्ञानवान् को ऐसेही भासता है और अज्ञानीको भिन्न भिन्न अवस्था भासती हैं। हे रामजी ! एक पदार्थका वृत्तिने त्यागकिया पर दूसरे पदार्थ में नहीं लगी वह जो मध्य में अनुभव ज्योति है उसको तुम आत्मसत्ताजानो और उसमें जो फिर कुछ भासा उसेभी वही रूपजानो। जैसे जाग्रत् को त्यागकर स्वप्ने के आदि साक्षी अनुभव मात्र होताहै और उस सत्ता में स्वप्नेका शरीर और पदार्थ भासते हैं वहभी आत्मरूप हैं; तैसेही जो कुछ जाग्रत् शरीर और पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूप हैं। जब तुम ऐसे जानोगे तब तुमको कोई दुःख स्पर्श न करेगा। जैसे स्वप्ने की सृष्टि में अपने स्वरूपकी स्मृतिआनेसे दुःखभी सुखहोता है और बोलना, चालना, खाना, पीना, देना, लेना आदि शब्द और अर्थ और द्वैतरूप युद्धकर्म सब अद्वैत अपना आप होजाते हैं और व्यवहार भी सब करता है परन्तु अपने निश्चय में कुछ नहीं फुरता, तैसेही जो पुरुष अपने स्वरूप में जागे हैं उनको सब जगत् आत्मरूपही भासता है। जैसे अग्नि में उष्णता और बरफ में शीतलता स्वाभाविक है, तैसेही ज्ञानवान् को आत्मदृष्टि स्वाभाविक है। और लोगों को यह दृष्टि यत्न से प्राप्त होती है पर ज्ञानवान् को स्वाभाविक होती है। जिसको तुम इच्छा कहते हो सो ज्ञानवान् को सब भ्रमरूप है और अनिच्छा भी ब्रह्मरूप भासती है। ज्ञानवान् को आत्मानन्द प्राप्त हुआ है और वह अपना जो स्वभाव है उसमें सदा स्थित है इससे उसको कोई कल्पना नहीं उठती और वह विद्यमान निरावरण दृष्टि लेकर स्थित होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेद्वैतएकताअभाववर्णनं नामद्विशताधिकपंचपंचाशत्तमस्सर्ग्गः २५५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे स्वप्ने में पृथ्वी आदिक पदार्थ भासते हैं सो अविद्यमानहैं—कुछहैं नहीं; तैसेही पिता माता जो आदिब्रह्माजी हैं उनको भी आकाशरूप जानो। वह भी कुछहुये नहीं और आत्मसत्ता से भिन्न कुछ उनकाहोनानहीं। जैसे समुद्र

में तरंग और बुद्बुदे उठते हैं सो स्वाभाविक हैं और तरंग शब्द कहनाभी उनको नहीं बनता वे तो जलरूप हैं, तैसेही जिनको तुम ब्रह्माजी कहतेहो सो और कोई नहीं आत्मसत्ताही इसप्रकारहो भासती है। ब्रह्माजी इसप्रकार का विराट् है कि, जैसे पत्र, फूल, फल और टासवृक्षके अंग हैं, तैसेही सब भूत उसविराट् के अंगहैं। जो विराट् ब्रह्माही आकाशरूपहै तो उसके अंग जगतकी वार्त्ता क्या कहिये? हे रामजी! विराट् के न प्राणहै, न आकारहै, न इन्द्रियां हैं; न मनहै, न बुद्धिहै, और न इच्छा है केवल अद्वैत चिन्मात्रसत्ता अपने आपमें स्थितहै। जो विराट्ही नहीं तो जगत् कैसेहो? जो तुम कहो आकाशरूप के अङ्ग कैसे भासते हैं? तो हे रामजी! जैसे स्वप्ने में बड़े पहाड़ और पर्वत प्रत्यक्ष दृष्टआते हैं परन्तु कुछ बने नहीं आकाशरूप हैं; तैसेही आदि विराट्भी कुछ बनानहीं आकाशरूप है तो उसके अंग में आकाररूप कैसे कहूं? सब आकार संकल्पपुर की नाईं कल्पित हैं। एक आत्मसत्ताही सर्वदा काल ज्योंकी त्यों स्थित है उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये? अनुभव और स्मृतिभी उसीका आभास है। जैसे समुद्र में तरंग आभास होते हैं, तैसेही आत्मामें अनुभव और स्मृति भी आभास है। स्मृति भी उसकी होती है जिसका प्रथम अनुभव होता है सो अनुभव भी जगत् में होता है पर जहां जगतही उपजा न हो तो अनुभव और स्मृति उसको कैसे हो? इसलिये न अनुभव है और न स्मृति है इस कल्पना को त्याग दो। जहां पृथ्वी होती है तहां धूड़भी होती है पर जहां पृथ्वी से रहित आकाशही हो वहां धूड़ कैसे उड़े? इसी प्रकार जहां पदार्थ होते हैं वहां स्मृति अनुभव भी होता है और जहां पदार्थही नहीं तो यह कैसे हो? इससे दोनों का अभाव है। रामजी ने पूँछा, हे भगवन्! स्मृतिमानों में इष्ट स्मृति का अनुभव तो प्रत्यक्ष होता है? प्रथम पदार्थ का अनुभव होताहै पीछे उसकी स्मृति होती है और उसस्मृति संस्कारसे फिर अनुभव होताहै तो ऐसेही भ्रमादिक का क्यों नहीं होता ये तो प्रत्यक्ष भासते हैं? तुम कैसे इन का अभाव कहते हो और अभाव में विशेषता क्याहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्मृतिसे अनुभव वहां होताहै जहां कार्य कारण भाव होताहै। ब्रह्मा से आदिलेकर काष्ठपर्यंत सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो सब आकाशरूप है कुछ बना नहीं और अविद्यमानही भ्रमसे विद्यमान भासता है। जैसे सूर्यकी किरणों में जल आभास है सो अविद्यमान है पर भ्रमसे जल भासता है; तैसेही यह जगत् भ्रमसे भासता है। स्मृति उसकी होती है जिस पदार्थका प्रथम अनुभव होताहै। जो कहिये कि, भ्रमादिक स्मृति संस्कारसे उपजी है तो ऐसे नहीं बनता क्योंकि; प्रथम तो ज्ञानवान् स्मृति से नहीं होता तो उनका स्मृति कारण कैसे कहिये? और द्वितीय यह है कि, इस जगत्के आदि कोई जगत् न था जिसकी स्मृति मानिये। इस जगत् के आदि

केवल अद्वितीय आत्मसत्ताथी उसमें स्मृति क्या और अनुभव क्या ? इसलिये ब्रह्मादिक और जगत् किसी कारण कार्य्यभावसे नहीं उपजे अकारण हैं । हे रामजी ! प्रथम तो तुम यह देखो कि; ज्ञानीको जगत् नहीं भासता तो स्मृति किसको कहिये ? उसको तो केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है । जैसे सूर्य्यको रात्रिकी स्मृति नहीं होती; तैसेही ज्ञानी को जगत्की स्मृति नहीं होती हमारे निश्चय में तो यह है कि; जगत् न हुआ है और न आगे होगा केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है सो अद्वैत है और उसीका सब आभास है जो आभास को सत्य जानते हो तो स्मृति को भी सत्यजानो और जो आभास को असत्य जानतेहो तो स्मृतिको भी असत्यजानो । जैसे स्वप्न में सृष्टि का आभास होता है और उसमें अनुभव और स्मृति होती है पर जागेसे सृष्टि अनुभव स्मृतिका अभाव होजाता है; तैसेही अद्वैत परमात्मसत्ता के जाग्रत् में अनुभव और स्मृतिका अभावहै और उसमें जगत् कुछ बना नहीं । जैसे कोई पुरुष मरुस्थल में भ्रम से नदी देखता है और सत्य जानकर उसकी स्मृति करता है पर वह नदी तो कुछ नहीं है जो नदीही असत्यहै तो उसकी स्मृति कैसे सत्यहो; तैसेही अज्ञानी के निश्चयमें जगत् भासित हुआ है सो जगत्ही असत्य है तो उसकी स्मृति अनुभव कैसे हो ? ज्ञानवान् के निश्चय में ऐसेही भासता है । हे रामजी ! स्मृति पदार्थ की होती है सो पदार्थ कोई नहीं सर्व ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है और जैसे जैसे उनमें फुरना होता है तैसाही होकर भासते हैं परन्तु और कुछ वस्तु नहीं । जैसे वायु चलताभी है और ठहरताभी है पर चलने और ठहरने में वायुको कुछ भेद नहीं; तैसेही ज्ञानवान् को जगत्के फुरने अफुरनेमें ब्रह्मसत्ता अभेद भासती है और कारण कार्य नहीं भासता । जैसे पत्र, टहनी, फूल और फल सब वृक्षके अवयव हैं, तैसेही जगत् आत्माके अवयव हैं; आत्मा में प्रकट होते हैं और फिर आत्मामेंही लीन भी होजाते हैं भिन्न कुछ नहीं । जब चित्त स्वभाव फुरता है तब जगत् होकर भासता है कुछ आरम्भ और परिणाम करके नहीं होता—आभासमात्र है । जैसे घटपट आदिक आत्माका आभासहै, तैसेही स्मृति भी आभास है । स्मृति भी जगत् में उदयहुई है जो जगत्ही असत्य है तो स्मृति कैसे सत्यहो ? जो यथार्थदर्शी हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासताहै । हमको न कुछ मोक्ष उपाय भासता है और न इसका कोई अधिकारी भासता है; हमारे निश्चय में अद्वैत ब्रह्मसत्ताही भासती है । जैसे नट स्वांग धारताहै पर सब स्वांगों को आभासमात्र जानता है किसीको सत्य नहीं जानता पर उससे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही हमको ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं भासता । अज्ञानी के निश्चय को हम नहीं जानते । जिसप्रकार उसको जगत् शब्द है सो उसके निश्चय को कोई नहीं जानता । हमारे निश्चय में सब चिन्मात्र है । अज्ञानी को जगत् द्वैतरूप भासता है और विपर्य्यय भावना होती है और ज्ञानवान्

को चिन्मात्र से भिन्न कुछ नहीं भासता । जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपने अनुभव में स्थित होती है और सर्वका अधिष्ठान अनुभव सत्ताहै परन्तु निद्रा दोष से भिन्न भिन्न भासती है; तैसेही अज्ञानी को जगत् भिन्न भिन्न भासता है और जो जागे हुये ज्ञानवान् हैं उनको भिन्न कुछ नहीं भासता और न उनको अविद्या, न मूर्खता और न मोह भासता है उन्हें सब अपना आपही ब्रह्मस्वरूप भासता । जहां कुछ दूसरी वस्तु नहीं बनी वहां स्मृति और अनुभव किसका कहिये ? यह कलना सबही मिथ्या है । हे रामजी ! सब अर्थों का जो अर्थभूत है सो ब्रह्म है उसी में सब पदार्थ कल्पित हैं । स्मृति और अनुभव मनमें होताहै सो मन आत्मामें ऐसे है जैसे सूर्य्यकी किरणों में जलाभास होताहै तो उसमें स्मृति और अनुभव क्या कहिये ? सब कल्पित है । पृथ्वी आदिक तत्त्वआत्मा में कुछ बने नहीं ब्रह्मसत्ताही इसप्रकार भासती है—ज्ञानवान् को सदा ऐसेही भासता है । आभासभी आत्मा में आभासहै और कारण कार्यभाव कदाचित् नहीं भासता । जैसे सूर्य्य को अन्धकार कदाचित् नहीं भासता; तैसेही ज्ञानवान्को कारण कार्य्यभाव दिखाई नहीं देता । जैसे स्वप्नेके आदि अद्वैतसत्ता होती है और उसमें अकारण स्वप्ने की सृष्टि फुरआती है; तैसेही अद्वैतसत्ता में अकारण आदिसृष्टि फुरआई है । न पृथ्वी है और न कोई दूसरा पदार्थ है सब चिदाकाशरूप है और कुछ बना नहीं तो आभासमात्र जगत् में स्मृतिकी कल्पना कैसेहो ?

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेस्मृतिअभावजगत्परमाकाश
वर्णनन्नामद्विशताधिकषट्पंचाशत्तमस्सर्ग्गः २५६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जिसमें सर्व अनुभव होताहै उसके देहमें अहंप्रत्यय किसप्रकार होतीहै ? वहतो सर्वात्मा है उस सर्वात्माको एक देहमें अहंप्रत्यय क्योंकर होती है और काष्ठ पाषाण पर्वत और चैतन्यताका अनुभव किसप्रकार होगया है वह तो अद्भुत स्वरूप है उसमें जड़ चैतन्य ये दोनों भेद कैसे हुये ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे शरीरमें हाथ आदिक अपने अंग हैं और उनसर्व अंगोंमें एकशरीरफुरना व्यापाहुआ है पर, जो उन अंगों में एक अंगको पकड़कर कहे कि, नाम ले कौन है तब वह अपनी नाम संख्या कहता है; तो तुम देखो कि उस एक अंग में अपना आप कहा परन्तु सर्व अंगोंमें उसकी आत्मता तो नाश नहीं होजाती है; तैसेही आत्मा अनुभवरूप है तौभी एक अंगमें उसकी आत्मता फुरती है इससे उसकी सर्वात्मता खण्डन तो नहीं होजाती ? जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी आदिक सर्व अंगमें वृक्ष एकही व्यापा हुआ है परन्तु जो एक टहनी अथवा पत्रको पकड़कर कहता है कि, यह वृक्षहै तो इसके एक अंगमें वृक्ष भावना कहना वृक्षका सर्वात्मभाव नष्ट नहींहोता; तैसेही सर्वात्मा एक देहमें अहंभाव सिद्ध होता है और जड़ और चैतन्य भी दोनों भाव

एकही के धारे हैं और एकहीके दोनों स्वरूप हैं। जैसे एकही शरीर में दोनों सिद्ध होते हैं और हाथ, पांव आदिक जड़हैं और नेत्र इसके द्रष्टा चेतनहैं सो एकही शरीर दोनों धारे हैं और दोनों एकही शरीर के स्वरूपहैं; तैसेही एक आत्माने दोनों धारे हैं और एकही के स्वरूपहैं। जैसे वृक्ष अपने अंगको धारताहै और वृक्षस्वभावकोभी धारता है तैसेही सर्वात्मा सर्व को धारता है। जैसे स्वप्ने की सृष्टि सर्वको अनुभव धारती है और सर्व क्रिया को भी धारती है; तैसेही आत्मसत्ता सर्व जगत् और जगत् की सर्व-क्रिया को धारती है क्योंकि; सर्वात्मा है और जो सर्वात्माहै सो क्यों न धारे ? जैसे एकही समुद्र में अनेक तरंग उठते हैं परन्तु सबही समुद्रके आश्रय हैं और वही रूप हैं; तैसेही सर्व जीव परमात्मा में फुरते हैं; परमात्मा के आश्रयहैं और वही रूप हैं। जैसे तरंग आपको जाने कि, मैं जलही हूं तो तरंग उसकी संज्ञाजाती रहती है जल-रूपही दिखता है; तैसेही जीव जब परमात्मासे आपको अभेद जाने कि, 'मैं आत्माही हूं' तब उसके जीवत्व भावका अभाव होजाता है, परमात्माही दिखता है। हे रामजी ! जैसे जलमें द्रवता से तरंग भासते हैं परन्तु तरंग जलसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं, तैसे-ही शुद्ध चिन्मात्र में संवेदन से आदिब्रह्मा फुराहै और उसने यह जगत् मनोराज से कल्पा है सो आकाशरूप निराकार है और कुछ बनानहीं। जो विराट्ही आकाशरूप हुआ तो उसका शरीर कैसे साकार हो—वह भी निराकार है। जैसे अपना अनुभव स्वप्ने में पर्वत, नदियां, जड़ और चैतन्य होकर भासता है; तैसेही सर्व जगत् जो भासता है सो आत्मरूप है। हे रामजी ! जैसे एक निद्राके दो स्वरूप हैं—स्वप्न और सुषुप्ति, तैसेही एकही आत्माने जड़ और चैतन्य दो स्वरूपधारे हैं। जगत् आत्मामें कुछ बना नहीं यह आभास रूपहै और आत्मसत्ताही अपने वचन द्वारा जगतरूपहो भा-सती है। जैसे आकाश में घन शून्यताकेकारण नीलताभासती है सो अविचार सिद्धहै—नीलता कुछ बनीनहीं ; तैसेही आत्मामें घन चैतन्यतासे जगत् भासताहै परन्तु जगत् आकार कुछ बना नहीं सर्वदाकाल आत्मा अद्वैत निराकार है । अनन्तसृष्टि आत्मा में आभास उपजकर लीनहोजाती है और आत्मा ज्योंका त्योंहै । जैसे समुद्र में तरंग उपजकर लीनहोजाते हैं परन्तु जलरूप हैं; तैसेही परब्रह्म में सृष्टि परब्रह्मरूप है । हे रामजी ! यह जगत् विराट्का शरीर है; महाकाश उसका शीश है; दशों दिशा उसकी भुजा हैं; पृथ्वी उसके चरण हैं; पातालरूप तली हैं अन्तरिक्ष मध्यलोक उदर है; सर्व जीव उसकी रोमावली हैं और इनसे लेकर सर्व पदार्थ विराट् के अंग हैं सो विराट् आकाशरूपहै। जैसे विराट्ब्रह्माजी आकाशरूप है, तैसेही उसका जगत् भी आकाश-रूपहै। इससे सर्व जगत् विराट्रूपहै सो ब्रह्महीहै और कुछ बना नहीं। चन्द्रमा और सूर्य उसके नेत्र हैं; मैं और तुमसे आदि लेकर सर्व शब्दों का अधिष्ठान ब्रह्मही है सो

ब्रह्म मैं हूं । जिसमें दूसरा बनानहीं सदा मैं अपनेही आपमें स्थितहूं । हे रामजी ! शून्य-वादी, पाँच रात्रिक, शैवी, शक्ति आदि जो शास्त्र हैं उन सबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है और सबका साररूप वही सर्वात्मरूप है । जैसा किसी को निश्चय होता है तैसाही उसको वह सर्वरूप होकर फल देता है और कुछ बना नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनंनाम द्विशताधिकसप्तपंचाशत्तमस्सर्गः २५७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस जगत्के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ताथी और उसमें जो जगत् आभास फुरा है उसको भी तुम वही स्वरूप जानो । जैसे स्वप्ने के आदि अनुभव आकाश होता है और उसमें स्वप्ने की सृष्टि फुरआतीहै सो अनुभवरूप है भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है भिन्न नहीं । जैसे समुद्र द्रवतासे तरंग रूपहो भासता है, तैसेही चैतन्य ब्रह्म जगत्रूप हो भासता है सो जगत् भी वही रूप है । हे रामजी ! वास्तव में कोई दुःख नहीं है; दुःख और सुख अज्ञान से भासते हैं । जैसे एक निद्रा में दो वृत्ति भासती हैं—एक स्वप्नवृत्ति और दूसरी सुषुप्तिवृत्ति; तैसेही अज्ञानी की दो वृत्ति होती हैं—सुखकी और दुःखकी और ज्ञानवान्की सर्व ब्रह्मरूप है । जैसे कोई पुरुष स्वप्ने से जागउठता है तो उसको स्वप्नेकी सृष्टि असत्य रूप भासती है, तैसेही ज्ञानवान् को यह सृष्टि असत्य भासती है । जैसे जिसने मरुस्थलकी नदीके जलका अत्यन्ताभाव जाना है वह जलपान की इच्छा नहीं करता, तैसेही सम्यक्दर्शी जगत् को असत्य जानता है, इसलिये वह जगत् के पदार्थों की इच्छाभी नहीं करता । जो असम्यक्दर्शी हैं उनको जगत् सत्य भासता है और वह किसी पदार्थ को ग्रहण करता हैऔर किसीका त्याग करता है । हे रामजी ! ईश्वर जो परमात्माहै उसमें जगत् इसप्रकारहै जैसे समुद्र में तरंग होतेहैं । जैसे समुद्र और तरंग में भेदनहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेदनहीं । जो तुम कहो कि, अविद्याही जगत् का कारण है तो अविद्या जगत् का कारण तब कहाती जो वह जगत् से प्रथम सिद्ध होती पर अविद्यातो अविद्यमानहै । जैसे परमात्मामें जगत् आभासमात्रहै, तैसेही अविद्याभी आभासमात्रहै । जो आपही आभासमात्रहो तो उसे जगत्का कारण कैसेकहिये ? जगत् आभास और अविद्याका आभास इकट्ठाहो फुरा है । जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासआती है औ उसमें घट, पटादिपदार्थ भासते हैं सो किसीकुलालने मृत्तिका लेकर तो नहीं बनाये । जैसे घट भासा है, तैसेही कुलाल और मृत्तिकाभी भासिआयेहैं । जैसे इन सबका भासना इकट्ठाही होताहै, तैसेही जगत् और अविद्या इकट्ठेही फुरेहैं । अविद्या पूर्वमें तो सिद्धनहीं होती तो उसको जगत्का कारण कैसे मानिये ? हे रामजी ! परमात्मा से जगत् और अविद्या इकट्ठेही आभासमात्र फुरे हैं पर वह आभास कुछ वस्तुनहीं;

ब्रह्मसत्ताही अपने आप में स्थित है, न कहीं अविद्या है; न जगत् है आत्मसत्ता सदा ज्योंकी त्यों स्थितहै। हे रामजी! निर्विकल्प में जगत्का अत्यन्ताभाव होताहै सो निर्विकल्प कैसेहो? जो निर्विकल्प होताहै तब जड़ता आती है और जब विकल्प उठताहै तब संसार उदय होता। जब ध्यान लगाता है तब ध्याता, ध्यान और ध्येय त्रिपुटी होजाती है। इसप्रकार तो निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती क्योंकि; निर्विकल्प में भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती। निर्विकल्प उसका नामहै जहां चित्तकी वृत्ति न फुरे पर तब भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; वहां भी अभाववृत्ति सुषुप्तिवत् रहती है और जड़ात्मक सुषुप्तिरूप है। सविकल्प सुषुप्ति में भी स्वरूप की प्राप्ति नहींहोती इससे सम्यक्बोधका नाम निर्विकल्पहै। जिसको सम्यक्बोध निर्विकल्पता से जगत् का अत्यन्ताभाव हुआ है वह जीवन्मुक्त है, वही निर्विकल्प कहाता है और वही परम जड़ताहै जहां जगत्का परमअसम्भव है। हे रामजी! वह जो निर्विकल्प और सविकल्प है उससे स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि; ये दोनों मनकी वृत्ति हैं। जैसे एक निद्राकी वृत्ति स्वप्न और सुषुप्तिरूप है, तैसेही यह निर्विकल्प और सविकल्प मनकी वृत्तिहै। निर्विकल्प सुषुप्तिरूप और पत्थरवत् है और सविकल्प स्वप्नवत् चंचलरूप है। निर्विकल्पमें भी अभाव वृत्ति रहतीहै इससे उसमें भी मुक्तिनहीं होती। मुक्ति तब होती है जब दृश्यका अत्यन्ताभाव होता है। हे रामजी! जहां आत्मअनुभव आकाशसे इतर उत्थान नहीं होता—उसका नाम अत्यन्त सुषुप्ति निर्विकल्पता है। हे रामजी! ऐसे होकर तुम चेष्टा भी करोगे तौ भी कर्तृत्व और भोक्तृत्वका अभिमान तुमको न होगा। आत्माको अद्वैत और जगत् का अत्यन्ताभाव जाननेही का नाम बोध है। जब इस बोध की दृढ़ता और इसके ध्यानकी दृढ़ताहो तब उसकानाम परमपद है; उसीका नाम निर्वाणहै और उसीको मोक्षभी कहतेहैं। जो पद किंचन और अकिंचनहै और सर्वदा काल अपने आपमें स्थित है उसमें न नानात्वकहनाहै; न अनाना शब्द है; न सविकल्प है; न निर्विकल्प है; न सत्यहै; न असत्य है; न एकहै और न दोहैं उसमें सर्व शब्दोंका अन्तहै और किसी शब्दसे वाणी नहीं प्रवर्त्तती। उसीसत्ता को प्राप्त होनेका उपाय मैं कहताहूं। हे रामजी! यह मोक्षका उपाय ग्रंथ जो मैंने तुम से कहा है इसको विचारना। जो पुरुष अर्द्धप्रबुद्धहै और पदपदार्थ जाननेवालाहै उसको यदि मोक्षकी इच्छाहै तो वह इस ग्रंथको विचारताहै, शुभआचार करके बुद्धिको निर्मल करताहै और अशुभक्रियाका त्याग करता है तो उसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्तिहोगी। हे रामजी! जो मोक्ष उपाय शास्त्र के विचार से प्राप्तहोताहै सो तीर्थ, स्नान तप और दान से नहीं प्राप्तहोता। तप, दानादिक करके स्वर्ग प्राप्त होता है मोक्ष नहीं मिलता। मोक्षपद अध्यात्मशास्त्र के अर्थ अभ्यास सेही प्राप्तहोता है। यह जगत्

आभासमात्र है; वही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है । जैसे जलही तरंगरूप होकर भासता और वायुही स्पन्दरूपहै, तैसेही ब्रह्म जगत्‌रूप होकर भासताहै । जैसे स्पन्द और निस्स्पन्दमें वायु ज्योंकीत्यों है परन्तु स्पन्द होती है तब भासती है और निस्स्पन्द होतीहै तो नहीं भासती, तैसेही ब्रह्ममें संवेदन फुरतीहै तब जगत्‌हो भासती है और जब निर्वेदन होती है और अन्तर्मुख अधिष्ठानकी ओर आती है तब जगत् समेटाजाताहै परन्तु संवेदनके फुरनेमें भी वही है और न फुरनेमें भी वही है। इसलिये, हे रामजी ! सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूपहै, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं बना और जो इतर भासता है सो भ्रममात्रही जानना । जब आत्मपदका आभासहो तब भ्रान्ति शान्त होजाती है । जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट होजाता है, तैसेही आत्मपद के अभ्यास से भ्रांति निवृत्त होजाती । यद्यपि नानाप्रकारकी सृष्टि भासतीहै परन्तु कुछ हुई नहीं । जैसे स्वप्ने में सृष्टि दृष्टि आती है परन्तु कुछ बनी नहीं; वही अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकर भासती है, तैसेही यह जगत् सब अनुभवरूप है । जैसे रत्न और रत्न के चमत्कारमें कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं । हे रामजी ! तुम स्वभाव निश्चय होकर देखो कि, भ्रम मिटजावे । सृष्टि, स्थिति और प्रलय सब उसीकी संज्ञाहैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनन्नाम द्विशताधिकाष्टपंचाशत्तमस्सर्गः २५८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! ये सब आकार जो तुम को भासते हैं सो संवेदनरूप हैं और कुछ बने नहीं । सृष्टिके आदि भी अद्वैतसत्ता थी; अन्तमें भी वही रहती है और मध्यमें जो आकार भासतेहैं उसेभी वही रूप जानो । जैसे स्वप्नेकी सृष्टिके आदि शुद्ध संवित् होती है और उसमें आकार भासि आता है सो भी अनुभवरूप है, और कुछ नहीं बना; आत्मसत्ताही पिण्डाकारहो भासती है और जितने कुछ पदार्थ भासते हैं सो आकाशरूप आभासमात्र हैं । आत्मसत्ता सदा शुद्ध है परन्तु अज्ञानसे अशुद्ध की नाईं भासती है; विकारसे रहितहै परन्तु विकारसहित भासती है; अनाना है परन्तु नानाकी नाईं भासती है और आकारसे रहितहै परन्तु आकारसहित भासती है । जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपना अनुभवरूप होतीहै परन्तु स्वरूपके प्रमादसे नानाप्रकार भिन्न भिन्नहो भासती है और जागेसे एक आत्मरूपहोजाती है; तैसेही यह सृष्टिभी अज्ञान से नानाप्रकार भासतीहै और ज्ञानसे एकरूप भासती है । विद्यमान भासतीहै पर उसे असत्यही जानो । आत्मसत्ता सदा शुद्धरूप, शांत और अनन्त है और उसमें देश, काल और पदार्थ आभासमात्रहैं । जो तुम कहो कि, आभासमात्रहै तो अर्थाकार क्यों होतेहैं ? तो उसका उत्तरयहहै कि; जैसे स्वप्नमें अंगना कंठसे मिलतीहै और उसमें

प्रत्यक्षराग और विषयरस होताहै सो आभासमात्रहै; तैसेही जाग्रत् में अर्थाकार, क्षुधा को अन्न, तृषाको जल और और भी सब ऐसेही होते हैं और सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष भासतेहैं पर जो इनका कारण विचारिये तो कारण कोई नहींमिलता। जिसका कोई कारण न मिले उसे जानिये कि, आभासमात्र है। हे रामजी! यह जगत् बुद्धिपूर्वक नहीं बना; आदि जो आभास फुराहै वह बुद्धिपूर्वकहै और उसमें जगत्का संकल्प दृढ़हुआहै तब कारण करके कार्य भासनेलगा परन्तु जिनको स्वरूपका प्रमाद हुआहै उनको कारणसे कार्यभासनेलगे और जो आत्मस्वभावमें स्थितहुयेहैं उनको सर्व जगत् आत्मस्वरूप है। हे रामजी! कारण से कार्य तब हो जब पदार्थ भी कुछ वस्तुहो। जैसे पिताकी संज्ञा तबहोतीहै जब पुत्र होताहै और जो पुत्रही न हो तो पिता कैसे कहिये? तैसेही कारण तब कहिये जब कार्यहो; जो कार्य जगत् ही कुछ नहीं तो कारण कैसे कहिये? हे रामजी! कारण और कार्य अज्ञानीके निश्चयमें होते हैं। जैसे चरखेपर बालक भ्रमता है तो उसको सबपृथ्वी भ्रमती दृष्टि आतीहै; तैसेही अज्ञानीको मोह दृष्टिसे कारण कार्य भाव दृष्टि आताहै और ज्ञानी को कारण कार्यभाव नहीं भासता। स्मृतिभी जगत् का कारण तब कहिये जो स्मृति जगत् से पूर्वहो पर स्मृतिभाव अनुभवभी इसजगत् मेंही फुरी है। यहभी आभासमात्र है परन्तु जिसको भासीहै उसको तैसीही है हे रामजी! स्मृति, संस्कार और अनुभव ये तीनों आभासमात्र हैं। जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासताहै तैसेही आत्मामें तीनों भासते हैं। इसलिये इस कलनाको त्यागकर जगत् आभासमात्र जानो। जैसे स्वप्ने में घट भासते हैं पर उनका कारण मृत्तिका कहिये तो नहीं बनता क्योंकि; घट और मृत्तिका आभास इकट्ठा फुरा है इसलिये वे आभासमात्र हुये उसमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये; तैसेही स्मृति, संस्कार, अनुभव और जगत् सब इकट्ठे फुरे हैं इनमें कारण किसको कहिये और कार्य किसको कहिये? इसलिये सब जगत् आभासमात्रहै। हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको भासता है सो आत्मसत्ताका आभासहै; आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासतीहै। जैसे नेत्रका खोलना और मूँदना होताहै, तैसेही परमात्मामें जगत्की उत्पत्ति और प्रलय होती है। जब चित्तसंवेदन फुरती है तब जगत्रूप हो भासती है और जब फुरनेसे रहित होतीहै तब जगत् आभास मिटजाता है। जगत् की उत्पत्ति और प्रलयमें आत्मसत्ता ज्योंकी त्योंहै। जैसे खुलना और मूँदना नेत्रोंका स्वभावहै, तैसेही फुरना और न फुरना संवेदनके स्वभावहैं। जैसे चलना और ठहरजाना उभय वायुके स्वभावहैं; जब चलती है तब भासती है और जब नहीं चलती तब नहीं भासती। चलने में वायुकी तीन संज्ञा होती हैं—एक मन्दमन्द चलती है अथवा बहुत चलतीहै; दूसरे शीतल अथवा उष्ण स्पर्श होताहै और तीसरे सुगन्धि अथवा दुर्गंधि

युक्तहोती है। ये तीनों संज्ञा फुरने में होती हैं पर जब फुरनेसे रहितहोती है तब तीनों संज्ञा मिटजाती हैं । जैसे एकही अनुभवमें स्वप्न और सुषुप्तिकी कल्पना होती है; स्वप्न में जगत्ही भासता है और सुषुप्तिमें नहीं भासता परन्तु दोनों में अनुभव एकही है, तैसेही संवित् के फुरनेसे जगत् भासता है और ठहरने में अच्युतरूप होजाता है पर आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों एकरूप है । इसलिये जो कुछ जगत् भासताहै सो आत्मा से भिन्ननहीं वही रूपहै और जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तीनों आत्मा के आभास हैं—उनमें आस्था न करना । हे रामजी ! यह परमसिद्धांत तुमको मैंने उपदेश कियाहै और जिन युक्तियों से कहाहै वैसी कोई नहीं कहेगा । अज्ञानी को संसार रूपी बड़ी भ्रांति उदयहुई है परन्तु जो मेरेशास्त्र को वारंवार विचारेगा उसकी भ्रांति निवृत्तहोजावेगी । दिन के दो विभाग करे; आधेदिनपर्यन्त मेराशास्त्र विचारे और आधादिन अपने आचार में व्यतीत करे पर जो आधेदिन इसशास्त्र का विचार न करसके तो एक प्रहरही विचारे । जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार निवृत्त होताहै, तैसेही उसकी भ्रांति निवृत्त होजावेगी । जो मेरे वचनोंको वृथा जानकर निन्दा करेगा उसको आत्मपदकी प्राप्ति न होगी क्योंकि; उसने शास्त्रके नेवकोनहीं जाना । जीवको यह कर्त्तव्य है कि, प्रथम और शास्त्र को देखकर विचारले फिर पीछे से इसका विचार कि, उसको इसशास्त्रकी महिमा भासे । हे रामजी ! यह मोक्षोपाय शास्त्र आत्मबोधका परमकारण है यदि जीवपद पदार्थोंका जाननेवालाहो और इस शास्त्र को वारंवार विचारे तो उसकी भ्रान्ति निवृत्तहोजावेगी । जो संपूर्ण ग्रन्थके आशयको न जानसके तो थोड़ाथोड़ाबांचे और विचारे तो उसको सबसमझ पड़ेगा । हे रामजी ! यदि मनुष्यकुछ भी पदार्थ जाने तो इसके विचारने और पढ़नेसे बुद्धिमान् होताहै और यह प्रीतिमान् करलेता है । इसके विचारनेवालेकी बुद्धि और शास्त्रकी ओर नहींजाती इससे यह विचारने योग्यहै । जो पुरुष आत्मविचारसे रहितहै उसका जीना वृथाहै और जिनको यह विचार है उनको सब पदार्थ आत्मरूप होजातेहैं । जो एकश्वासभी आत्मविचार से रहित होता है सो वृथा जाता है । एक श्वासके समान संपूर्ण पृथ्वीका धन नहींहै । जो संपूर्ण पृथ्वी के रत्न न जावें और एक श्वास जाय तो फिर मांगे नहीं मिलता । ऐसे श्वास को जो वृथागवाँते हैं उनको तुम पशुजानो । हे रामजी ! आयुर्बल बिजुली के चमत्कारवत् है । जैसे बिजुलीका चमत्कार होकर मिटजाता है, तैसेही शरीर आयुर्बल होकर नष्ट होजाता है । ऐसे शरीर को धारकर जो सुखकी तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं । हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् आभासमात्र है और सत्यभासता है तौभी इसको असत्यजानो । जैसे स्वप्न की सृष्टिमें कोई मृतक होताहै और उसके बांधवरुदन करते हैं और इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है परन्तु हुआ कुछनहीं सब भ्रांतिमात्र है

तैसेही यह जगत् भ्रममात्र जानो ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपरमार्थगीताव-र्णनन्नामद्विशताधिकैकोनषष्टितमस्सर्गः २५९ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! जगत् तो अनेक और असंख्यरूप हुये हैं और आगे होंगे पर उन जगतों की कथाओं से आपने मुझे उपदेश करके क्यों न जगाया? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये जो जगज्जालके समूहहैं उनमें जो पदार्थ हैं सो सब शब्द अर्थसे रहित हैं और जो शब्द अर्थ से रहितहुये तो कुछनहुये; इसलिये व्यर्थ कहने का क्याप्रयोजनहै। हे रामजी! जब तुम विदितवेद और निर्मल त्रिकालदर्शी होगे तब इन जगतों को जानोगे। मैंने आगेभी तुम से बहुतबार कहा है और बारंबार वही वर्णन करने में पुनरुक्तिदूषण होता है परन्तु समझाने के निमित्त कहाहै। जैसे एक सृष्टि को जाना तैसेही संपूर्ण सृष्टियोंको जानो। जैसे अन्नके समूहसे एकमुट्ठीभरके देखने से जानलियाजाताहै कि, सब ऐसेही हैं; तैसेही एकही सृष्टिको यथार्थ जाना तो सबसृष्टि-योंको भी जानलिया। हे रामजी! यहसर्व जगत् किसी कारणसे नहीं उत्पन्न हुआ। जिसमें कारण बिन पदार्थ भासे उसे जानिये कि, वहीरूप है। सृष्टि के आदि भी वही सत्ताथी; अन्तभी वहीहोगी और मध्य में जो कुछ भासता है उसे भी वही रूप जानिये। जैसे स्वप्ने के आदिभी अपना निर्मल अनुभव होता है; स्वप्ने के निवृत्त हुये भी वही रहता है और स्वप्ने के मध्य जो पदार्थ भासता है उसेभी वही जानिये और वस्तु कुछ नहीं अनुभवसत्ताही इसप्रकार हो भासती है। जब तुम विदितवेद होगे तब सर्व जगत् तुमको अपना आप भासेगा। हे रामजी! एक एक अणु में अ-नेक सृष्टि हैं सो सब आकाशरूप हैं कुछ हुई नहीं। इसपर एक आख्यान कहताहूं सो सुनो। एककाल मैंने ब्रह्माजी को एकांत पाकर प्रश्नकिया कि; हे भगवन्! यह सृष्टि कितनी है और किसमें है? तब पितामह ने कहा, हे मुनीश्वर! सर्व जगतों के शब्द अर्थ सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्म से इतर कुछ नहीं; जो अज्ञानी हैं उनको नानाप्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् हैं तिनको सब जगत् आत्मरूप भासता है। जिसप्रकार जगत् हुआ है सोभी सुनो। हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाशके सूक्ष्मअणु में फुरना हुआ कि, 'अहमस्मि'; तब उस अणु ने आपको जीव जाना। जैसे अपने स्वप्ने में आपको जीव जाने और सर्व्वात्माहो तैसेही चिद्अणु सर्व्वात्मा अहंकारको अंगीकारकरके आपको जीव जाननेलगा और उसमें जो निश्चय होगया वह बुद्धि हुई। जैसे वायु में फुरना हो तैसेही तिसमें संकल्प विकल्परूपी फुरना हुआ उसका नाम मनहुआ। तब मनके साथ मिलकर चिद्अणु देहको चेता और अपने में देह और इन्द्रियां भासनेलगीं और अपने साथ शरीर देखा कि, यह शरीर मेराहै। जैसे स्वप्ने में अपने साथ कोई शरीर को देखे और बड़ा स्थूल दृष्टिआवे, तैसेही उसने

अपने साथ स्थूल शरीर देखा। जैसे स्वप्न में सूक्ष्म अनुभवसे बड़े पर्वत दृष्टि आते हैं, तैसेही सूक्ष्म अणुसे स्थूल विराट् शरीर भासनेलगा। फिर देशकाल की कल्पना की और नानाप्रकारके स्थावर जंगम प्राणी विराट् भासनेलगे। जैसे स्वप्न में देश, काल और पदार्थ भासिआवें सो कुछ नहीं हैं, तैसेही देशकाल पदार्थ भासिआये परन्तुहैं कुछनहीं। जब चित्तसंवित् बहिर्मुख फुरती है तब नानाप्रकारका जगत् भासता है और जब अन्तर्मुख होती है तब अवाच्यरूप होजाती है। जैसे वायु चलने और ठहरने में एकरूपहोती है, तैसेही फुरने अफुरने में संवित् एकही अभेदहै। हे रामजी! जितना जगत् है वह आकाश में आकाशरूप अपने आपमें स्थित है और अणु अणु प्रति सर्वदाकाल सृष्टि है परन्तु आभासमात्र है जो चैत्यसम्बन्धी होकर जीव सृष्टिका अंत ले तो सृष्टि अनंत है इसका अंत कहींनहीं आता। यह सृष्टि अविद्यारूप है सो अद्याही चैत्य है। जब अविद्यासम्बन्धी होकर जगत् का अंत देखेगा तब अंत कहीं न आवेगा और संसरने का नाम संसार है; जब स्वरूप में स्थित होगे तब सब जगत् ब्रह्मरूप होजावेगा और जगत् की कल्पना कुछ न भासेगी। हे रामजी! इस जगत् के आदिभी अद्वैतसत्ताथी; अंत में भी अद्वैतसत्ता रहेगी और मध्य में जो कुछ भासता है उसको भी वही रूपजानो और कुछ बना नहीं। यह जगत् अकारण है अधिष्ठानसत्ता के अज्ञानसे भासताहै। इसीकानाम जगत् है और इसीकानाम अविद्या है। अधिष्ठान के जानने का नाम विद्याहै। हे रामजी! न कोई अविद्याहै और न जगत् है, ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है। चाहे जगत् कहो और चाहे ब्रह्मकहो दोनों एकही वस्तुके नाम हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्माण्डोपाख्यानन्नाम
द्विशताधिकषष्टितमस्सर्गः २६०॥

रामजी ने पूंछा; हे भगवन्! यह मैंने जाना कि, जगत् अकारण है। जैसे संकल्प नगर और स्वप्नपुर होताहै, तैसेही यह जगत् है। पर जो अकारणही है तो अब यहां पदार्थ कारणरूप काहे को उपजते दृष्टि आते हैं? कारण विना तो नहीं उत्पन्न होते भासते हैं; यह क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सर्वात्म है, उसमें जैसा निश्चय होता है तैसाही होकर भासताहै; पर क्या भासता है; अपना अनुभवही ऐसे होकर भासता है। जैसे स्वप्न में अपना अनुभवही नानाप्रकार के पदार्थ होकर भासता है परन्तु उपजा कुछ नहीं सर्व पदार्थ आकाशरूप हैं; तैसेही यह जगत् कुछ उपजा नहीं कारणसे रहित आकाशरूप है। हे रामजी! आदि सृष्टि अकारण हुई है; पीछे से सृष्टि में आभासरूप मनने जैसा जैसा निश्चय किया है तैसेही है क्योंकि; सर्व शक्तिरूप है। आदिसृष्टि जो उपजती है सो अकारणरूप है और पीछे से सृष्टिकाल

में कारणकार्यरूप हुये हैं। जैसे स्वप्नसृष्टि आदिकारण विना होती है और पीछेसे कारण कार्य भासते हैं पर वास्तवमें न कोई आकाश; न शून्यहै, न अशून्यहै; न सत्य है, न असत्यहै; न असत्य सत्यके मध्य है, न नित्य है, न अनित्य है; न परम है, न अपरमहै; न शुद्धहै, न अशुद्ध है; द्वैत कुछ नहीं सब भ्रम है। हे रामजी! ज्ञानवान्को सर्व शब्द और अर्थ ब्रह्मरूप भासते हैं। हमको तो कारण–कार्यभावकी कल्पना कुछ नहीं। जैसे सूर्यमें अन्धकारका अभावहै, तैसेही ज्ञानवान् को कारण कार्यका अभाव है। जो सर्वात्माही है तो कारण कार्य किसको कहिये? रामजीने कहा कि; हे भगवन्! मैं ज्ञानी की बात पूंछताहूं; उनको कारणकार्यभाव किसनिमित्त नहीं भासता? जो कारण कार्य नहीं तो मृत्तिका और कुलालआदि द्वारा घटादिक क्योंकर उत्पन्नहोते दृष्टि आतेहैं? इससे तुमकहो कि, ज्ञानवान् को अकारण कैसे भासताहै और अज्ञानीको सकारण क्योंकर भासता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई कारण है, न कार्य है और न कोई अज्ञानी है मैं तुम्हसे क्याकहूं? जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनके निश्चय में जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती; उनके निश्चय में तो जगत् हैहीनहीं तो ज्ञानी और अज्ञानी क्या है? हे रामजी! आकाश का वृक्ष नहीं तो उसका वर्णन क्या कीजिये? जैसे हिमालय पर्वत में अग्निका कणका नहीं पायाजाता, तैसेही ज्ञानीके निश्चय में जगत् नहीं। ज्ञानी और अज्ञानी और कारण और कार्य ये शब्द जगत् में होते हैं पर जो जगत्ही नहीं फुरा तो कारण, कार्य, ज्ञानी और अज्ञानी तुमसे क्या कहूं? जैसे स्वप्ने की सृष्टि सुषुप्ति में लीनहोजाती है और वहां शब्द और अर्थ कोई नहीं फुरता, तैसेही ज्ञानवान् के निश्चय में जगत्ही नहीं फुरता। हे रामजी! हमको तो सर्व ब्रह्मही भासता है। मुझको कुछ कहना नहीं आता परन्तु तुमने पूंछा है इस निमित्त कुछ कहताहूं और अज्ञानी के निश्चय को अंगीकार करके कहताहूं। हे रामजी! यह जगत् अकारण और आभासमात्र है; किसी आरम्भ और परिणामसे नहींहुआ। जब पदार्थोंका कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान ब्रह्मही निकलता है जो अद्वैत, अच्युत और सर्व इच्छासे रहितहै तो उसको कारण कैसे कहिये? इससे जानाजाताहै कि, जगत् आभासमात्रहै और कुछ वस्तु नहीं आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अकारण होती है और उसमें अनेक पदार्थ भासते हैं पर उसका कारण विचारिये तो सबका अधिष्ठान अनुभवही निकलताहै और उसमें आरम्भ और परिणाम कुछ हुआ नहीं। सृष्टि अनुभवरूपहै भासती है जो पुरुष स्वप्ने में है उसको स्वरूपके प्रमादसे कारण कार्य जगत् और पुण्य पाप सब यथार्थ भासते हैं; तैसेही जाग्रत् जगत् भासताहै। हे रामजी! सृष्टि आदि अकारणहुई है और पीछे सृष्टिकाल में कारण–कार्यरूपहो भासते हैं। जिसको अपना वास्तवस्वरूप स्मरण है

उसको अकारण भासता है और जिस अज्ञानी को अपने वास्तवस्वरूप का प्रमाद है उसको कारण कार्य्यरूप सृष्टि स्वप्नवत् भासती है। हे रामजी! वास्तवमें एकही अनुभव आत्मसत्ताहै परन्तु जैसा जैसा अनुभवमें संकल्प दृढ़ होता है उसहीकी सिद्धि होती है और जिसका तीव्र संवेग होताहै वहीहो भासता है। इसमें कुछ संदेह नहीं कि, कल्पवृक्षके पदार्थ संकल्पकी तीव्रतासे प्रत्यक्ष होते हैं तो उन्हें किसका कार्य कहिये? यदि जगत् किसीकारणसे उत्पन्न होता तो महाप्रलय में भी कुछ शेष रहता— जैसे अग्नि के पीछे राख रहजाती है पर जगत् के पीछे तो कुछ नहीं रहता और जैसे स्वप्नेकी सृष्टि जागेहुये पर कुछ नहीं रहती, तैसेही महाप्रलयमें जगत्का शेष कुछ नहीं रहता; इससे जाना जाताहै कि, यह आभासमात्र है। जैसे ध्यानमें ध्यातापुरुष किसी आकार को रचता है तो उसका कारण कोई नहीं होता वह तो आकाशरूप है और अनुभवसत्ताही फुरने से इसप्रकारहो भासती है—आकार तो कोई नहीं और जैसे गन्धर्वनगर कारण से रहित भासताहै, तैसेही यह जगत् कारण विना भासिआया है। न कोई पृथ्वी है, न कोई जलहै, न तेज, वायु और आकाशहै सब आकाशरूपहै परन्तु संकल्पकी दृढ़तासे पिण्डाकार भासते हैं। हे रामजी! जब मनुष्य मरजाता है तब शरीर यहांहीं भस्म होजाताहै, फिर परलोकमें अपने साथ शरीर देखताहै और उस शरीरसे स्वर्ग नरकमें सुख दुःख भोगता है तो उसका कारण कौनहै? उसका कारण कोई नहीं पायाजाता केवल अपनी चैतनता में संकल्पकी वासना जो दृढ़ हुई है उसीके अनुसार शरीर भासता है और स्वर्ग नरकमें दुःख सुख भासते हैं और तो कुछ वस्तु नहीं। सब पदार्थ संकल्पके रचे हुये हैं सो सब आत्मरूप हैं जैसे आकाश व्योम और शून्य एकही वस्तु के नाम हैं, तैसेही कोई जगत्कहो और कोई ब्रह्मकहो इनमें भेद नहीं। फुरनेका नाम जगत् कहते हैं और अफुरनेका नाम ब्रह्म है। जैसे वायु के चलने और ठहरने में भेदनहीं, तैसेही ब्रह्मको संवेदन के फुरने और न फुरने में भेद कुछ नहीं। जो सम्यक्दर्शी हैं उनको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है इसकारण दोष किसीमें नहीं रहता और जो बड़ाकष्ट प्राप्तहोता है तौभी वे खेदवान् नहीं होते। जैसे कोई पुरुष स्वप्ने में युद्ध करता है और उसको अपना जाग्रत्स्वरूप हृदय में आता है तो स्वप्ने को स्वप्ना जानता हुआ और युद्ध करता है तौभी दुःख होता है, तैसेही जो पुरुष परमपदमें जागा है उसको सब क्रिया होती हैं परन्तु आपको अक्रिय जानताहै। हे रामजी! ज्ञानवान् को सब चेष्टा होती हैं परन्तु उसके निश्चयमें क्रिया का अभिमान नहीं होता। जैसे नटुवा सब स्वांग धारता है परन्तु आपको स्वांगसे रहित जानता है और स्वांगकी क्रियाको असत्य जानता है क्योंकि; उसको अपना स्वरूप स्मरण रहता है; तैसेही ज्ञानवान् सब क्रिया को असत्य जानता है। हे रामजी! ये

सर्व पदार्थ अजातजात हैं–उपजे कुछ नहीं। जैसे स्वप्नेमें पदार्थ भासते हैं परन्तु उपजे नहीं अपना अनुभवही इसप्रकार भासता है; तैसेही ये जगत् के पदार्थ भी अनुभवरूप जानो। हे रामजी! बहुत शास्त्र और वेद मैं तुमको किस निमित्त सुनाऊं और किस निमित्त पढ़ूं; वेदान्त शास्त्रों का सिद्धान्त यही है कि, वासना से रहित हो। इसीका नाम मोक्ष है और वासना सहित का नाम बन्ध है। वासना किसकी कीजिये यह तो सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है। इसमें क्या आस्था बढ़ाइये; ये तो स्वप्ने के पर्वत हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मगीतावर्णनन्नाम द्विशताधिकैकषष्टितमस्सर्ग्गः २६१॥

श्रीरामजी ने पूंछा; हे भगवन्! सब जगत् में तीनप्रकार के पदार्थ हैं–एक अप्रत्यक्ष पदार्थ; दूसरे प्रत्यक्ष पदार्थ और तीसरे मध्यभावी। जैसे वायु अप्रत्यक्ष है क्योंकि; रूप से रहित है परन्तु स्पर्श संयोग से भासती है इसलिये मध्यभावी प्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष जो किसी से मिले नहीं सो यह संवित् अप्रत्यक्ष है। हे मुनीश्वर! चन्द्रमा के मण्डल में भी यह संवेदन जाती है और फिर गिरती है और वृत्ति चित्तकरके चन्द्रमा को देखती है और फिर आती है इससे जाना कि, निराकारहै; जो साकार होती तो चन्द्रमारूप होजाती फिर संवेदन आती–जैसे जलमें जल डाला फिर नहीं निकलता इसकारण जानता हूं कि, यह अप्रत्यक्ष अर्थात् निराकार है। हे मुनीश्वर! अज्ञानी का आशय लेकर मैं कहताहूं कि; इस शरीर में जो प्राण आतेजाते हैं सो कैसे आते जाते हैं? जो तुम कहो कि, संवित् जो ज्ञानशक्तिहै सो इस शरीर और प्राणको लिये फिरती है–जैसे मजूर भारकोलिये फिरता है–तो ऐसे कहना नहीं बनता क्योंकि; संवित् अप्रत्यक्ष निराकार है। अप्रत्यक्ष साकार से नहीं मिलती तो वह चेष्टा क्योंकर करे? जो कहो कि, निराकार संवितही चेष्टा कराती है तो पुरुष की संवित् चाहती है कि; पर्वत नृत्यकरे पर वह तो इसका चलाया नहीं चलता और कहते हैं कि, ये पदार्थ उठआवें परन्तु वे तो नहीं उठते क्योंकि; पदार्थ साकाररूप हैं और वृत्ति निराकार है; इसका उत्तर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस शरीर में एक नाड़ी है जब वह अवकाशरूपी होती है तब उसमें से प्राणवायु निकलता है और जब संकोचरूप होती है तब प्राणवायु भीतर आता है जैसे लुहारकी धौंकनी होती है तैसेही इसके भीतर पुरुष बल है उससे चेष्टा होती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! धौंकनी भी तब हलती है जब उसके साथ बलका स्पर्श होता है और स्पर्श तब होता है जब प्रत्यक्ष वस्तु होतीहै पर चैतन्यता तो निराकार है उसको स्पर्श क्योंकरकहिये? जो तुमकहो कि; उसकी इच्छाही से स्पर्श होता है तो, हे मुनीश्वर! मैं चाहताहूं कि, मेरे सम्मुख जो वृक्ष है सो गिरपड़े पर

वह तो नहीं गिरता क्योंकि, इच्छा निराकार है जो साकार से स्पर्शहो तब उसकी शक्ति से गिरपड़े । यदि इच्छासेही चेष्टा होती है तो कर्म इन्द्रियां किस निमित्त हैं इच्छाही से जगत् की चेष्टा हो ? यह भी संशय है कि, एकके बहुत क्योंकर होजाते हैं और बहुत का एक क्योंकर होजाता है ? एक चैतन है पर जब प्राण निकलजाते हैं तब पाषाण और वृक्षकीनाईं जड़ होजाताहै; आत्मा तो सर्वव्यापी है जड़ कैसे होजाताहै ? कोई पाषाण और वृक्षरूप जड़है और कोई चैतन है यह भेद एकआत्मा में कैसेहुआ ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! तुम्हारे संशयरूपी वृक्षों को मैं वचनरूपी कुल्हाड़े से काटता हूँ । जिनको तुम प्रत्यक्ष साकार कहते हो सो आकार कोई नहीं सब निराकार हैं; वह शुद्ध आत्मा अद्वैतसत्ताही इसप्रकारहो भासती है—ये आकार कुछ बने नहीं । जैसे स्वप्ननगर में आकार भासते हैं सो सब आकाशरूप निराकार हैं; तैसेही ये आकारभी जो तुमको दृष्टि आते हैं सो सब निराकारहैं । स्वप्ने में जो पर्वत भासते हैं सो किसके आश्रय होतेहैं और देहादिक भासते हैं सो किसके आश्रयहैं; इसलिये वे कुछ बने नहीं अनुभवसत्ताही आकाररूप हो भासती है; तैसे इसेभी जानो कि, आकार कोई नहीं हे रामजी ! जब इन पदार्थों का कारण विचारिये तो कारण कोई नहीं निकलता, इसीसे जानाजाता है कि; आभासमात्र हैं बने कुछ नहीं और आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है । आत्मसत्ता अद्वैत और परमशुद्ध है उसमें जगत् कुछ बना नहीं तो मैं आकार क्याकहूं और निराकार क्याकहूं ? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशभी द्वैत कुछ नहीं शुद्ध आत्मसत्ताही इसप्रकार हो भासती है । जैसे संकल्पके रचे पदार्थ होते हैं सो अनुभवहैं; तैसेही ये सब पदार्थ अनुभवरूपहैं—अनुभवसे भिन्न कुछ नहीं । इसपर एक आख्यान कहताहूं उसे मनलगाके सुनो । हे रामजी ! आगे भी मैंने तुमसे कहाहै और अब भी प्रसंगको पाकर कहताहूं । एक समय एक सृष्टिमें एक इन्द्र ब्राह्मण था जो मानों ब्रह्माही था । उसके गृह में दश पुत्र हुये जो मानों दशों दिशा थे । कुछ कालमें वह ब्राह्मण मृतक हुआ और उसकी स्त्री पतिव्रता थी इसलिये उसके प्राण भी छूटगये—जैसे दिनके पीछे संध्या आजाती है । तब उन पुत्रोंने यथाशास्त्र क्रमसे उनकी क्रियाकी और फिर एक पहाड़की कन्दरामें जा स्थितहुये और विचारनेलगे कि; किसी प्रकार हम ऊंचे पदको पावें । हे रामजी ! आगे मैंने तुमको सुनायाहै कि, प्रथम उन्हों ने मंडलेश्वर; चक्रवर्ती राजा और इन्द्रादिकके पदको विचारा और फिर बड़े भाईने निर्णय करके यही कहा कि; सबसे ऊंचा ब्रह्माजीका पदहै जिनकी यह सबसृष्टि रचीहुई है इस लिये हम दशों ब्रह्माहोवें । ऐसे विचारकरके वे दशों पद्मासन बांधके बैठे और यह निश्चय धारा कि हम चतुर्मुख ब्रह्माहैं और सबसृष्टि हमारी रची है । निदान वे ऐसे होगये मानों पुतलियां लिखी हुई हैं और खानपानसे रहित मास, युग और वर्ष व्यतीतहोगये पर वे

ज्योंकेत्योंरहे चलायमान न हुये। जैसे जल नीचे ठौरमें जाताहै ऊंचेको नहीं जाता, तैसेही उन्होंने अपना निश्चय नत्यागा और दृढ़रहे। जब कुछ कालव्यतीतहुआ तब उनके शरीर गिरपड़े और उनको पक्षीखागये परउनकी जो ब्रह्माकी वासना संयुक्त संवित्थी उस वासनासे दशोंब्रह्माहोगये और उनकी दशहीसृष्टि देश, काल, पदार्थ और नेतिसहित होगई। जैसे हमारीसृष्टिहै, तैसेही वे सृष्टि हुई। हे रामजी! वे सृष्टि क्या रूपहुई आत्माही वस्तु हुई और तो कुछनहीं; कुछ और होवे तो कहूँ। इससे सृष्टिका और रूप कुछ नहीं अपना अनुभवही सृष्टिरूप भासता है और जो कुछ पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मरूप हैं। हे रामजी! जैसे हम ब्रह्माके संकल्पमें रचे हैं तैसेही उन्होंनेभी रचालिये और वेभी इसप्रकार स्थितहोगये; इससे सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है। जो किसी कारण से जगत् बनाहोता तो जानाजाता कि, कुछ हुआ है पर इसका कारण कोई नहीं पायाजाता इससे संकल्पमात्र और आभासमात्र है। इससे कहता हूं कि, ब्रह्महीहै और वस्तु कुछ नहीं। जो कुछ पदार्थ पाषाण, वृक्ष, जड़–चैतन्य भासते हैं सो सब भ्रमस्वरूपहैं उनसे भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! महाभूत जो वृक्ष, पृथ्वी, आकाश, पहाड़हैं ये सब चिदाकाशरूपहैं–चिदाकाशसे भिन्नकुछनहीं। जैसे इन्द्रकेपुत्र एकसे अनेकहोगये, तैसेही यह सृष्टिभी एकसे अनेकहै और प्रलयमें अनेकसे एक होजाती है। जैसे एक तुम स्वप्ने में अनेक होजातेहो और सुषुप्तिमें अनेकसे एक होजातेहो तैसेही यह जगत्भी है और अकारणरूपहै। यदि इसे सकारणभीमानिये तो आत्मरूपीकुलालहै; संकल्पचक्रहै और अनुभव चैतन्यरूपी घट उससे उपजते हैं और आभासभी वही है कुछ दूसरी वस्तुनहीं। यह सब जगत् वही रूपहै। जैसे इन्द्र ब्राह्मणके पुत्रोंको अपने अनुभवही से सृष्टि फुरआई सो अनुभवरूपही भासनेलगा इससे और कुछ न भई, तैसेही इस सृष्टिकोभीजानो। हे रामजी! घट, वृक्ष, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब चैतन्यरूपहैं–चैतन्यसे भिन्न कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभवही घट, पहाड़, नदियां और पदार्थ हो भासता है–अनुभवसे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यहजगत् अनुभवसे भिन्न नहीं–ज्ञानीको सदा यही निश्चय रहताहै। अब एक अनेक का उत्तर सुनो। हे रामजी! जैसे मनोराज में एकसे अनेक होजाते हैं और अनेकसे एक होजाताहै; एवम् चैतन्यसे जड़ होजाताहै पर जड़ कोई पदार्थ नहीं भासता सर्वपदार्थ चैतन्यरूपहै। जहां अन्तःकरण प्रकटहोताहै सो चैतन्य भासताहै और जहां अन्तःकरण नहीं मिलता सो जड़ भासताहै–चैतन्यका आभास अन्तःकरण में मिलता है पर जब पुर्य्यष्टका निकलजाती है तब जड़ भासताहै। यह अज्ञानीकी दृष्टिकही है पर मुझसे पूछो तो जिसको जड़ कहते हैं और जिसको चैतन्य कहते हैं और पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी कहतेहैं वे सब ब्रह्मरूपहैं–ब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं। जैसे स्वप्ने में कितने जड़ और कितने चैतन्य पदार्थ भासते हैं और नानाप्रकार के पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं पर सब

आत्मरूपहैं; भिन्न कुछ नहीं; तैसेही यह जगत् सब आत्मरूपहै और इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप हैं । सब नामरूप आत्माके हैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं । शून्य, अशून्य, सत्य, असत्य सब आत्माके नाम हैं—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं । हे रामजी ! जिसको मूर्ख जड़कहते हैं सो जड़नहीं सब चैतन्यरूप हैं और सृष्टिकाल में जड़ही हैं । वे संवेदन में जड़रूप होकर रचितहुये हैं; वे चैतन्यही रचे हैं; जिसको अपने वास्तव स्वरूप का प्रमाद होता है उसको ये जड़ चैतन्य भिन्न भिन्न भासते हैं पर जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको एक ब्रह्मसत्ताही भासती है । हे रामजी ! यह मैंने तुम को उपदेश कियाहै सो वारंवार विचारने योग्यहै । जो कोई इसको नित्य विचारता रहेगा उसके दोष घटते जावेंगे और हृदय शुद्ध होगा और जो ब्रह्मविद्याको त्यागकर जगत्की ओर चित्तलगावेगा उसके दोष बढ़ते जावेंगे । हे रामजी ! ज्योंज्यों जीवको ब्रह्म विचार उदय होता जावेगा त्योंत्यों दुःख नाशहोते जावेंगे जैसे ज्यों ज्यों दिन उदय होताहै त्यों त्यों तम नष्ट होजाताहै—और विचारके त्यागे दुःख बढ़ते जाते हैं । जो महापापी हैं उनके पाप मेरे शास्त्रका संग न करनेदेंगे और उनको यह जगत् वज्रसार की नाईं दृष्टिआता है और संसार भ्रम कदाचित् निवृत्त नहीं होता । यह सब जगत् मैं, तुमआदि आकाशरूप हैं और भाव—अभाव आदिक सबशब्द ब्रह्मसत्ता के नाम हैं जो परमशुद्ध, निरामय और अद्वैत है और सदा अपनेही आप में स्थित है । जितने पदार्थ उसमें भासतेहैं वे ऐसेहैं जैसे शिला में शिल्पी पुतलियां कल्पताहै सो सब शिल्पी के चित्तमें होती हैं, तैसेही जगत्के पदार्थोंकी प्रतिभा जो सब मनमेंहै सो उसीका किंचनरूप है कुछ भिन्नवस्तु नहीं । वह सदा अपने आपमें स्थित है और परममौन रूप है उस में विकल्प कोई नहीं प्रवेश करसक्ता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेइन्द्राख्यानवर्णनंनाम
द्विशताधिकद्विषष्टितमस्सर्गः २६२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! सर्वलोक चिन्मात्र है इसीसे शांत और अद्वैतरूप है । अज्ञानीको भिन्नभिन्न जगत् भासता है और ज्ञानीको सब निराकार और आकाशरूपहै । आकार कुछ बने नहीं, आत्मसत्ता निराकार है और वही परमशुद्धसत्ता इसप्रकार भासती है सोशांतरूप, अनंत और चिन्मात्रहै; इंद्रियांभी ज्ञानरूपहैं और हाड़, मांस, रुधिर, हाथ, पैर, शिरआदिक संपूर्णशरीरभी ज्ञानमात्र है—ज्ञानसे भिन्न कुछ नहीं, चिन्मात्रही इसप्रकारहो भासता है । जैसे स्वप्ने में शरीरादिक और पहाड़, नदियां और वृक्ष भासतेहैं सो अपनाही अनुभवरूप है कुछ और नहीं बना तैसे और यहजगत् सब अनुभवरूप है और कारणसे रहित कार्य भासता है । तुम अपने अनुभव में जागकर देखो कि, सब अनुभवरूपहै । आकाश में आकाशभी आकाशरूपहै; सत्य में

सत्यहै; भावमें भावहै और अभावमें अभाव है सर्व आत्मरूप है भिन्न कुछ नहीं। जो तुमकहो कि, वस्तु कारणहीसे उत्पन्न होती है सो सत्यहोती है परन्तु जगत्का कारणकहींनहीं मिलता इससे यह मिथ्या है तो कारणभी इसका तब कहिये जब यहकुछ वस्तु हो और कार्यभी तब कहिये जब इसका कारण सत्यहो। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता तो न किसीका समवायकारण है और न किसीका निमित्तकारणहै। वह तो केवल अच्युत है इसीसे समवायकारण नहीं और अद्वैत है इससे निमित्तकारणभी नहीं। वह तो सर्व इच्छासे रहितहै उसको किसका कारण कहिये और जो कारण नहीं तो कार्य किसका हो। इससे सर्व जगत् जो भासता है सो आभासमात्र है–उसी ब्रह्मसत्ताकानाम जगत्है। जैसे निद्रा एक है और उसके दोस्वरूपहैं–एक स्वप्न और दूसरासुषुप्ति–फुरनेरूपका नाम स्वप्ना है और न फुरनेरूपका नाम सुषुप्तिहै; तैसेही चैतन्यके भी दोस्वरूप हैं फुरनेरूप चैतन्यका नाम जगत् है और अफुररूप का नाम ब्रह्म है। जैसे एकही वायुके चलना और ठहरना दो पर्याय हैं–जब चलतीहै तब लखने में आती है और ठहरतीहै तब अलक्ष्य होजाती है और शब्दका विषय नहींहोती; तैसेही ब्रह्मसत्ताअफुरमें शब्दकी प्रवृत्ति नहीं होती। जब फुरती है तब द्रष्टा, दर्शन और दृश्य त्रिपुटीरूप हो भासती है और एक से अनेकरूपहो भासती है, अनेकसे एकरूप है। जैसे एकही जल नदी, नाला, तालाब आदि भिन्न २ संज्ञापाता है और जब समुद्र में मिलताहै तब एकरूपहो भासताहै; एवम् जैसे एकही कालके दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प, घटी, मुहूर्त आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु काल तो एकही है; एक मृत्तिकाकी सेनाके हाथी, घोड़े आदिक बहुत नाम होते हैं परन्तु मृत्तिका तो एकही है; एक वृक्षके फूल, फल, टास, पत्र भिन्न २ नाम होते हैं परन्तु वृक्षतो एकहीरूप है और एक जल के तरंग, बुद्बुदे, आवर्त्त, फेन आदिक नाम होते हैं परंतु जल तो एकही है; तैसे परमात्मा में जगत् अनेक नाम रूपको प्राप्त होता है परन्तु सदा एकही रसरूप है। जैसे स्वप्ने में एकही अद्वैत अनुभवसत्ता होती है और भिन्न २ नामरूपहो भासती है पर जब जागताहै तब अद्वैतरूप होता है; तैसेही यह जगत्भी भिन्न २ नामरूप भासताहै परन्तु आत्मसत्ता एकही है। हे रामजी! जब तुम उस में जागोगे तब तुमको सब अपना आप अनुभवहो भासेगा जो केवल आत्मत्वमात्र और अनन्य अनुभवरूप है। आत्मरूपीसमुद्रमें जगत्रूपी जलके कणके हैं। जैसे आकाशमें नक्षत्र फुरते हैं,तैसेही आत्मा में जगत् फुरतेहैं। तारे तो आकाशसे भिन्न हैं परन्तु जगत् आत्मासे भिन्न नहीं–जैसे जलसे बूंद अभिन्न है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वब्रह्मप्रतिपादनंनाम
द्विशताधिकत्रिषष्टितमस्सर्गः २६३॥

श्रीरामजीने पूछा, हे भगवन्! अंधकार में जो पदार्थ होता है सो ज्योंका त्यों क्यों नहीं भासता पर जब सूर्य का प्रकाश होताहै तब ज्योंका त्यों भासता है। इस निमित्त कहताहूं कि; संशयरूपी तमके कारण जगत् ज्योंकात्यों नहीं भासता। पर तुम्हारे वचनरूपी सूर्यकेप्रकाशसे जो पदार्थ सत्यहै उसको सम्यक्ज्ञानसे जानूंगा। हे भगवन्! पूर्वमें एक इतिहास हुआ है उसमें मुझको संशय है सो दूर कीजिये। एक कालमें मैं अध्ययनशालामें विपश्चित् पंडितसे अध्ययनकरताथा और बहुत ब्राह्मण बैठेथे कि, एक ब्राह्मण विदितवेद; बहुत सुन्दर; वेदान्त; सांख्य आदि शास्त्रोंके अर्थसे सम्पन्न; बड़ा तपस्वी और ब्रह्मलक्ष्मीसे तेजवान्–मानों दुर्वासा ब्राह्मण है–सभामें आकर परस्पर नमस्कार करके आसन पर बैठा और हम सबने उसको प्रणाम किया। उस समय वेदांत, सांख्य, पातंजलादिक शास्त्रों की चर्चा होती थी परन्तु सब तूष्णीं होगये और मैं उससे बोला कि, हे ब्राह्मण! तुम बड़ी दूरसे आये हो; तुमने किस परमार्थ के निमित्त इतना कष्ट उठाया और तुम कहां से आते हो सो कहो? ब्राह्मण बोला, हे भगवन्! जिस प्रकार वृत्तांत हुआ है सो मैं कहताहूं। हे रामजी! विदेह नगर का मैं ब्राह्मण हूं–वहां मैंने जन्म लिया था और कुन्दवृक्ष के श्वेत फूलों के समान मेरे दांत हैं इस कारण मेरे पिता माता ने मेरा नाम कुन्ददन्त रक्खा है। विदेह राजा जनक का जो नगर है वहां से मैं आयाहूं। वह नगर आकाश में जो स्वर्ग है मानों उसका प्रतिबिम्बहै और वहांके रहनेवाले शांतिमान् और निर्मल हैं। वहां मैं विद्या पढ़ने लगा और मेरा मन उद्वेगवान् हुआ कि, यह संसार महाक्रूर बन्धन है इसलिये किसीप्रकार इस बन्धनसे छूटूं। हे रामजी! ऐसा वैराग्य मुझको उत्पन्नहुआ कि, किसी प्रकार शांतिमान् न हुआ। तब मैं वहांसे निकला और जो जो शुभस्थानथे वहां विचरने लगा। सन्तों और ऋषियोंके स्थान, ठाकुरद्वारे और तीर्थ आदि जो २ पवित्रस्थान थे उनका दर्शन किया। वहां से आते एक पर्वत मिला उस पर मैं चढ़गया और एक उत्तम स्थानपर चिरपर्य्यंत तप किया। फिर वहांसे एकांत के निमित्त चला तो आगे एक आश्चर्य देखा सो कहताहूं। हे रामजी! मैं वहां से चलाजाताथा कि, बड़ा श्यामवन दिखलाई दिया जो मानों आकाशकी मूर्त्तिथा और शून्य और तमरूप था। उस वन में एकवृक्ष मुझको दृष्टि आया जिसके कोमल पत्र और सुन्दर टहनियांथीं और उसमें एकपुरुष लटकताथा जिसके पांवमें मूंजका रस्सा बँधाथा जो वृक्षसे बांधाहुआथा और उसका शीशनीचे, चरणऊपर और दोनों हाथ छातीपर पड़ेहुयेथे। तब मैंने विचार किया कि, यह मृतकहोगा इसकोदेखूं। जब मैं निकटगया तब उसमें श्वास आतेजाते देखे। उसका युवावस्थाका शरीर था और वह हृदय से सबका ज्ञाता और शीत, उष्ण, अन्धेरी और मेघको सहरहाथा। हे रामजी! तब

मैंने जाना कि, यह तपस्वी है और इसकी शूरवीरता बड़ी है। निदान मैं उसके निकट बैठगया और उसके चरण जो बांधेहुये थे उनको कुछ ढीला किया। फिर उससे मैंने कहा कि, हे साधो! ऐसी क्रूरतपस्या तुम किस निमित्त करतेहो; अपना वृत्तांत मुझसे कहो? उसने नेत्र खोलके कहा, हे साधो! यह तप मैं अपनी किसी कामना के अर्थ करताहूं पर वह ऐसी कामनाहै कि, जो तुम उसे सुनोगे तो हँसी करोगे। हे रामजी! जब इसप्रकार उसने कहा तब मैंने कहा, हे साधो! मैं हँसी न करूंगा, तू अपना वृत्तान्त कह और जो कुछ तेरा कार्यहो तो कह मैं करदूंगा। जब मैंने इसप्रकार वारंवार कहा तब उसने कहा कि, मनको उद्वेगसे रहित करके सुन मैं कहताहूं। मैं ब्राह्मणहूं और मथुरामें मेरा जन्म हुआहै। वहां जब मेरी बालअवस्था व्यतीतहुई और यौवन अवस्था का प्रारम्भहुआ तब मैंने वेद और शास्त्रों को भलीप्रकार जाना पर एक वासना मुझे उदयहुई कि; सब से बड़ा सुख राजा भोगताहै इसलिये मैं राजा होकर सुख भोगूं कि; क्या सुख है क्योंकि, और सुख मैंने भोगे हैं। फिर विचार किया कि, राज्यका सुखतो तब भोगसक्ताहूं जब राजाहोऊं पर राजा क्योंकरहोजाऊं; राजा तब होता है जब तप करताहै; इससे तपकरूं। हे साधो! ऐसे विचारकर मैं तप करनेलगाहूं। द्वादशवर्ष मुझे तपकरते व्यतीतहुये हैं और आगेभी करूंगा। जबतक सप्तद्वीपका राज्य मुझको नहीं प्राप्त होता तबतक मैं तप करूंगा। मैंने यही निश्चय धाराहै कि, यातो मेरा शरीरही नष्ट होगा अथवा सप्तद्वीपका राज्यही मुझको प्राप्तहोगा। यही मेरा निश्चयहै सो मैंने तुझसे कहा, अब जहां जानेकी तुझको इच्छाहो वहांजा। हे रामजी! इसप्रकार कहकर उस तपस्वी ने फिर नेत्र मूंदकर चित्त स्थित करने को समाधानकिया और इन्द्रियों से विषयों को त्यागकर मन निश्चल किया। तब मैंने उससे कहा कि, हे मुनीश्वर! मैंभी तेरे पास बैठाहूं और जबतक तुझे वरकी प्राप्ति नहीं होती तबतक मैं तेरीटहलकरूंगा—मुझे तेरेऊपर दया आई है। हे रामजी! इसप्रकार उससे कहकर मैं उद्वेगसे रहित षट्मासपर्यंत उसके पास बैठारहा; और उसकी रक्षा करता रहा; जब धूप आवे तब छायाकरूं और आंधी और मेघमें अपने शरीर को कष्ट देके उसकी रक्षाकरूं। निदान छः महीने बीते तब सूर्य के मंडल से एक पुरुष निकला जो बड़ा प्रकाशवान्—मानों विष्णुभगवान्का तेजथा और वह हमारे निकट आया। उसको देखकर मैंने मन, वाणी और शरीर तीनोंसे उसकी पूजाकी; तब उस पुरुष ने कहा; हे तपस्विन्! अब इसतपको त्याग और जो कुछ इच्छाहै सो मांग। तेरी इच्छा तो यही है कि, मैं सप्तद्वीपका राजाहोऊं सो तू सप्तद्वीप पृथ्वी का राजा और जन्म में होगा और सप्त सहस्रवर्षपर्यंत राज्य करेगा परन्तु और शरीरसे होगा। हे रामजी! इसप्रकार कहकर वह पुरुष सूर्य के मंडल में अन्तर्द्धान होगया जैसे समुद्र

से तरंग निकलकर लयहोजावे, तैसेही वह लीनहुआ तब मैंने उससे कहा, हे ब्राह्मण! अब तू क्यों संकटलेता है? जिस निमित्त तू तपकरता था सो वर तो तुझको प्राप्तहुआ—अब क्यों संकट करता है? हे रामजी! जब इसप्रकार मैंने कहा कि, सूर्य के मंडल से निकलकर एकबड़ा तेजवान् पुरुष तुझको वर देगया है तब उसने नेत्र खोल दिये और मैंने उसके चरणों से रस्सीखोलदी। उसका तेज उस समय बड़ा होगया और उसके शरीर की कांति प्रकाशवान् हुई। उस स्थान के निकट एक जल से रहित तालाब था सो उसके पुण्य से जलसे पूर्ण होगया और उसमें हम दोनोंने स्नान किया और मंत्र पाठकरके संध्याकी। और फिर हम दोनों वृक्षोंके नीचे आये और जो वृक्ष फल से रहित थे वे उसकी पुण्यवासना से फल से पूर्ण होगये निदान उन फलों को हमने भक्षणकिया और तीनदिन पर्यंत वहां रहकर फिर चले तब वह बोला; हे साधो! हमदेश को चले हैं। जब तक शरीर है तबतक शरीर के स्वभाव भी हैं। फिर आगे एक वनआया जिसमें बहुत सुन्दर फूल, फल और बूटे लगेहुये थे और उनपर भँवरे विचरते थे; जल के प्रवाहचलते थे और कोयल, तोते, बगले आदि पक्षी संयुक्त वृक्ष हमने देखे। आगे फिर तालवृक्ष बहुत देखे और कन्दरा के स्थान आये उन्हें हम लांघतेगये। हे रामजी! इसी प्रकार हम राजसी, तामसी और सात्त्विकी तीनों गुणों के रचे स्थानोंको लांघते २ मथुरा नगरके मार्ग आये जो सूधाथा पर उसको छोड़कर वह टेढ़ेमार्ग को चला तब मैंने कहा; हे साधो! सूधे मार्ग को छोड़कर तू टेढ़ा क्योंचलता है? उसने कहा, हे साधो! चलाआ इसमार्ग में गौरी भगवतीका स्थान है उनका दर्शन करतेचलें और मेरे सातभाई जो गौरी के स्थानपर उसीकामनाको लेकर तप करते थे उनकी भी सुधिलें। हे रामजी! जब हम उसमार्ग के सन्मुखचले तब आगे एक महाशून्यवनआया जो मानो शून्य आकाशथा और महातमरूप था। कि, वहां वृक्ष, पशु, पक्षी और मनुष्य कोई दृष्टि न आताथा। उसवनमें पहुंचकर उसने मुझसे कहा, हे ब्राह्मण! इसस्थानमें मैं आगे षट्मासरहाहूं और मेरे सातभाई और थे उन्हों ने भी यही कामना धारकरके देवीका तप आरम्भ कियाथा चलो देखें। वह महापवित्र स्थान है जिसके दर्शन किये से सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं। तब मैंने कहा चलिये पवित्रस्थानको अवश्य देखा चाहिये। हे रामजी! ऐसे विचारकर हमचले और जाते २ मरुस्थलकी तपीहुई पृथ्वीपर जानिकले तब वह ब्राह्मण देखकर गिरपड़ा और कहने लगा कि, हा कष्ट २ हम कहां आनपड़े! तब तो मुझको भी भ्रम उदयहुआ कि, यह क्या हुआ। निदान वह फिर उठा और दोनों आगे गये तो एक वृक्ष हमको दृष्टपड़ा कि; उसके नीचे एक तपस्वी ध्यानमें स्थित बैठाथा। हम उसके निकट गये और कहा; हे मुनीश्वर! जाग जाग। जब हमने बहुत बार कहा तब उसने नेत्र खोलकर हमको

देखा और कहा तुम कौनहो? ऐसे कहकर फिर कहा बहुत आश्चर्य है कि, यहां गौरी का स्थानथा वह कहांगया और और वृक्ष, बावलियां, कमल और सुन्दरस्थान और बड़े ऋषीश्वर और मुनीश्वरों के स्थानथे वह कहांगये ? हे साधु ! यह क्या आश्चर्य हुआ सो तुम कहो ? तब हमने कहा, हे मुनीश्वर ! हम नहीं जानते हम तो अभी आये हैं; इसको तो तुम्हीं जानो। तब उनने कहा बड़ा आश्चर्य है ! हे रामजी ! ऐसे कह कर वह फिर ध्यान में स्थित होगया और व्यतीत वृत्तांत का ध्यानकरके देखनेलगा। एक मुहूर्त्त पर्यन्त देखकर उसने फिर नेत्र खोलकर कहा कि, बड़ा आश्चर्य हुआ है। तब हमने कहा, हे भगवन् ! जो कुछ वृत्तांतहुआ सो कृपाकरके हमसे कहो। तब तपस्वीने कहा, हे साधो ! एक समय वागेश्वरी भवानी इस वनमें आई और उसने रहने का एक स्थान बनाया जिसमें वह शिवकी अर्द्ध शरीर गौरी रही। उस स्थानके निकट बहुत सुन्दर कल्पवृक्ष, तमालवृक्ष, कदम्बवृक्ष इत्यादिक बहुत वृक्ष लगाये; कमलफूल आदि सर्व ऋतों के फूललगाये और बावलियां और बगीचे अति रमणीयरचे जिनपर कोयल, भँवरे, तोते, मोर, बगले आदि पक्षी विश्राम करने और शब्द करनेलगे। उसके निकट ऋषीश्वरों; मुनीश्वरों और तपस्वियोंकी कूटियां इन्द्र के नन्दनवन सदृश थीं और निकट व गांवकी बस्ती बहुत हुई। हे साधो ! यहां आठ ब्राह्मण तप के निमित्त आये थे और षट्मास यहांही रहे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मगीतागौरीबागवर्णनंनाम द्विशताधिकचतुःषष्टितमस्सर्गः २६४ ॥

कदम्ब बोले, हे साधो ! मुझसे पूंछो तो अपना वृत्तांत मैं कहताहूं। मैं मालवदेश का राजाथा और चिरपर्यंतखेदसे रहित मैंने विषय भोग भोगे तब मुझको यह विचार उपजा कि, यह संसार स्वप्नमात्र है और इसको सत्य जानकर स्थितहोना मूर्खता है। इतनी मेरी आयुबेल बीती पर मैंने सुकृत कुछ न किया। यह विषयभोग आपातरमणीय और नाशवन्त हैं इनको मैं चिरपर्यंत भोगता रहाहूं और मुझको शान्ति न प्राप्त हुई--तृष्णा बढ़तीगई--इससे वही उपायकरूं जिससे मुझको शान्तिहो और फिरकदाचित् दुःखी न होऊं। हे साधो ! जब यहविचार मुझको उदयहुआ तब मैंने वैराग्य करके राज्यकीलक्ष्मी त्यागकी और ऋषि और मुनियोंके स्थान देखता इसकदम्बवृक्ष के नीचे आया। यहां आठ भाई ब्राह्मण आये थे उनमेंसे एक यह तो इसी पर्वतपर तपकरनेलगा था; दूसरा स्वामिकार्त्तिक के पर्वतपर तपकरने गया; तीसरा बनारस में तप करनेलगा, और चौथा हिमालयपर तपकरनेगया। चारभाई तो इसप्रकार चारस्थानोंको गये और चारभाई यहां तपकरनेलगे। उनसबकी यही कामना थी कि, हम पृथ्वीके सातोंद्वीपोंके राजाहों। हे साधो ! इसको तो सूर्य ने वरदिया है और बाकी

जो सात थे उन्होंने वागेश्वरी भवानीका इष्ट करके तपकिया । जब वह प्रसन्नहुई और बोली कि, वर मांगो तब उन्होंने कहा कि, हम सप्तद्वीप पृथ्वीके राजाहों । निदान उन सातोंने एकही वरमांगा और उनको वर देकर परमेश्वरी अन्तर्द्धान होगई । उन्हों ने यहभी वरमांगा था कि, यहां के वासियोंका स्थानभी हमारेपासहो । हे साधो ! इस वरको पाकर वे वहांसे चले और अपने गृहगये और वागेश्वरी वहां बारहवर्ष पर्यन्त रहकर फिर उनकी मर्यादा थापनेके निमित्त यहां से अन्तर्द्धान होगई और यहां के वासी भी सब जातेरहे । वागेश्वरीके जाने से यह स्थान शून्य होगया । एकयह कदम्ब का वृक्ष रहगया है और एक मैं ध्यानमें स्थितरहाहूं । यह कदम्बका वृक्ष वागेश्वरीने अपने हाथसे लगाया इस कारण यह नष्ट नहीं हुआ और जर्जरीभावभी नहीं हुआ । हे साधो ! और सब जीव यहां आकर अदृष्टहोगये इसकारण सब शुभआचाररहे । उन आठों भाइयों में सात आगे गयेहैं और एक यह बैठाहै इसको भी घरजानाहै; वहां सब इकट्ठे होंगे । जैसे अष्टवसु ब्रह्मपुरीमें एकत्रहों । हे साधो ! जब वे गृहसे तप करनेके निमित्त निकले तब उनकी स्त्रियोंने विचार किया कि; हमारे भर्त्ता तो तपकरने गयेहैं हमभी जाकर तपकरें इसलिये उन आठों ने तप आरम्भ किया और सौ सौ चान्द्रायणव्रत किये तब उनका शरीर जैसे वसंतऋतुकी मञ्जरी जेठ आषाढ़ में कृशहोजाती है तैसेही होगया । एक तो भर्त्ताका वियोग; दूसरे तपसे वे कृशहोगईं तब पार्वती वागेश्वरी प्रसन्न हुई और बोलीं कि, कुछ वरमांगो । जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होकर बोलता है, तैसेही वे प्रसन्न होके बोलीं; हे देवताओं की ईश्वरी ! हम यह वरमांगती हैं कि, हमारे भर्त्ता अमरहों और जैसे तेरा और शिवका संयोगहै तैसेही हमारा उनकाहो । तब भवानीने कहा हे सुभद्रे ! इस शरीरसे तो कोई अमर नहीं रहता । आदि जो सृष्टि हुई है उसमें नीतिहुईहै कि, शरीर से कोई अमर न रहेगा और जितना कुछ जगत् देखती हो वह सब नाशरूपहै; कोई पदार्थ स्थिर नहीं रहता इसलिये और कुछ वरमांगो । तब ब्राह्मणियोंने कहा, हे देवी ! भलाजो हमारे भर्त्ता मरें तो उनकेजीव हमारे गृहमें रहैं और उनकी संवित् बाहर न जावे । तब वागेश्वरीने कहा, ऐसेही होगा कि, उनके जीव तुम्हारेही घरमें रहेंगे और उनको जो लोकान्तर भासेगा उसके साथही तुमभी उनकी स्त्रीहोकर स्थित होगी । ऐसे कहकर वागेश्वरी अन्तर्द्धान होगई । कुन्ददन्त बोले, हे रामजी ! इसप्रकार सुनकर मैं आश्चर्यवान् हुआ तब मैंने कहा, हे मुनीश्वर ! यह तो तुमने बड़ी आश्चर्य्य कथा सुनाई कि, आठों भाइयों ने एकही वरपाया । उनको एक पृथ्वी में सात २ द्वीपोंका राज्य क्योंकर प्राप्त होगा ? हे रामजी ! जब इस प्रकार उस से मैंने पूछा; तब कदम्बतपने कहा, हे साधो ! यह कथा आश्चर्य है और आश्चर्य्य सुनो । हे ब्राह्मण ! जब यह आठों भाई तप के लिये घर से निकले थे

तब इनके पिता माताने भी विचार किया कि, हमारे पुत्र तो तपकरने गये हैं इसलिये हमभी उनके निमित्त जाकर तपकरें और उनकी स्त्रियों को अपने साथलेकर तीर्थ और ठाकुरद्वारे दिखाते फिरें। निदान उन्होंनेभी बैठकर तपकिया और कुछ चान्द्रायणव्रत करके देवीको प्रसन्न किया। देवी से वरलेकर जब वे अपने घरको आनेलगे तब एक स्थान में दुर्वासा ऋषीश्वर बैठाथा, जिसके दुर्बल अंग और विभूति लगीथी और जटा खुलीहुई थी। उसको देखकर वे पाससेही चलेगये पर उसे नमस्कार न किया तब उसने कहा, हे ब्राह्मण! तुम क्यों दुष्ट स्वभावसे हमारे पास से चलेगये और हम को नमस्कारभी न किया? अब तुम्हारावर निवृत्तहोगा। जो वर तुमको प्राप्तहुआ है सो नहोगा उसके विपरीत होजावेगा। तब उन्होंने कहा, हे मुनीश्वर! यह वचन तुम कैसे कहते हो; हमारे ऊपर क्षमाकरो। यह ऐसेही कह रहेथे कि, वह अन्तर्द्धान होगया और ब्राह्मण अपने गृहमें आये और शोकवान् हुये हे ब्राह्मण! देख जबतक आत्मबोधसे शून्य है तबतक अनेक दुःख उपजेंगे; कई प्रकारके आश्चर्य भासेंगे और संदेह दूर न होवेगा। जब आत्मबोधहोगा तब कोई संसार आश्चर्य न भासेगा। हे ब्राह्मण! यह सब चिदाकाशमें मायामात्रही रचना बनती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्राह्मणकथावर्णनन्नाम
द्विशताधिकपञ्चषष्टितमस्सर्ग्गः॥ २६५॥

कुन्ददन्तने कहा, हे भगवन्! मैं यह सुनकर आश्चर्यवान् हुआहूँ और मुझे एक संशय उत्पन्नहुआ है सो निवृत्त कीजिये? तुमने कहा कि, एकद्वीप में आठों इकट्ठे सप्तद्वीपके राजा होंगे पर सातों द्वीप तो एकही हैं और राज्य करनेवाले आठहैं, यह कैसे राज्यकरेंगे? और इन्होंने वर और शाप दोनों पाये हैं यह इकट्ठे क्योंकर होंगे? जैसे धूप और छाया; और दिन और रात्रि इकट्ठे होने कठिन हैं; तैसेही वर और शाप एक होने कठिन हैं। कदम्बतप बोले, हे साधो! जो कुछ इनकी भविष्यत्होगी सो मैं कहताहूँ जब कुछ काल गृहस्थी में व्यतीत होगा तब इनके शरीर छूटजावेंगे और इनको कुटुम्बी जलावेंगे। इनकी पुर्यष्टका अनुभव से मिलीहुई है इस कारण एक मुहूर्त्त पर्यंत इनको जड़ीभूत सुषुप्तिहोगी और उसके अनन्तर चैतन्यता फुर आवेगी। तब शंख, चक्र, गदा, पद्म सहित चतुर्भुज विष्णु का रूप धारके वर आवेंगे और त्रिनेत्र हाथ में त्रिशूल लिये और भृकुटी चढ़ाये क्रोधवान् सदाशिवका रूप धारणकर शाप आवेंगे; तब वर कहेंगे कि, हे शाप! तुम क्यों आयेहो अब तो हमारा समय है? जैसे एकऋतु के समय दूसरी नहीं आती, तैसेही तुम न आवो। तब शाप कहेंगे, हे वरो! तुम क्यों आयेहो अब तो हमारा समय है? जैसे एकऋतु के होते दूसरीका आना नहीं बनता, तैसेही तुम्हारा आना नहीं बनता। तब वर कहेंगे

हे शाप ! तुम्हाराकर्त्ता ऋषि मनुष्यहै और हमाराकर्त्ता देवता है । मनुष्यसे देवता पूजने योग्यहै क्योंकि; बड़ेहैं, इससे तुम जावो । जब इसप्रकार वर कहेंगे, तब शाप क्रोधवान्होंगे और मारनेके निमित्त त्रिशूल हाथमें उठावेंगे । तब वर कहेंगे, हे शाप ! यदि तुम और हम लड़ेंगे तो पीछे किसी बड़े न्यायकर्त्ता के पास जावेंगे जो हमारा न्याय चुकादेगा इससे प्रथमही क्यों न जावें ? तब शाप कहेंगे, हे वर ! जो कोई युक्तिसहित वचन कहताहै उसको सब कोई मानते हैं; तुमने भला कहा है चलिये । ऐसे चर्चा करके दोनों ब्रह्मपुरीमें जावेंगे और ब्रह्माजीको प्रणाम करेंगे और अगला वृत्तांत कह कर कहेंगे, हे देव ! यह हमारा न्यायकरो कि, उनको वर स्पर्शकरे अथवा शाप स्पर्श करे ? तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे साधो ! जिसका अभ्यास उनके भीतर दृढ़हो वह प्रवेश करै । तब वरके स्थान शाप जाकर ढूंढ़ेंगे और शापके स्थान वरजाय ढूंढ़ेंगे और ढूंढ़ कर शापआयके कहेंगे; हे स्वामिन् ! हमारी हानिहुई और वरकी जयहुईहै क्योंकि; उनके भीतर वरही स्थितहै । जिसका अभ्यास हृदयमें स्थितहै उसीकी जय होती है सो तो इनके भीतर वज्रसारकीनाईं वर स्थितहै । हे स्वामिन् ! हमारा आधिभौतिक शरीर कोई नहीं; हमतो संकल्परूपहैं । जिस संकल्पकी दृढ़ता होती है वही उदय होताहै—वरका कर्त्ताभी ज्ञानमात्र होताहै; वरको लेताभी वहीज्ञानरूप है और वरको ग्रहण करता जानता है कि; यह हमारा स्वामी है । उस संकल्पसे वरका कर्त्ता देवता जानताहै कि, मैंने वरदिया है और ग्रहण करनेवाला जानता है कि मैंने वरलिया है । हे ईश्वर ! उसका जो वररूप संकल्प है सो उसके निश्चय में दृढ़ होजाताहै । जिस संकल्पकी संवित्से एकता होती है वही प्रकट होताहै । इसीप्रकार शापभीहै परन्तु न कोई वरहै, न शापहै दोनों संकल्परूप हैं । जैसा संकल्प अनुभव आकाश में दृढ़ होताहै वही भासता है । वरदेनेवाला भी अनुभवसत्ता है और लेनेवाला भी आत्मसत्ताहै । वही सत्ता वररूप होकर स्थित होती है और वही सत्ता शापरूप होकर स्थित होती है । जिस संकल्पकी दृढ़ता होती है उसीका अनुभव होताहै । हे स्वामिन् ! यहतुमसे सुनाहुआ हम कहते हैं कि; इसको कोई बाहरका कर्म फलदायक नहींहोता जो कुछ भीतर सार होताहै वही फल होताहै । इनके भीतर तो वरका संकल्प दृढ़ है और हमारा नहीं है तो हमारा तुमको नमस्कार है—अब हम जाते हैं । हे कुन्ददन्त ! इस प्रकारसे शाप आधिभौतिक शरीर त्यागकर अन्तवाहक शरीर से अन्तर्द्धान होजावेंगे । जैसे आकाशमें भ्रमसे तरुवरे भासें और सम्यक्ज्ञानसे अन्तर्द्धान होजावें; तैसेही शाप अन्तर्द्धान होजावेंगे । तब ब्रह्माजी कहेंगे, हे वर ! तुम शीघ्रही उनके पास जावो और वह वर और दूसरा वर जो उनकी स्त्रियोंने लियाथा कि, उनकी पुर्यष्टका अन्तःपुरमें रहे फिर पूँछेंगे, हे भगवन् ! हमको क्या आज्ञाहै । हमको तो उनको

उसी मन्दिरमें रखना है और उनको सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्यभी भोगना है और दि-ग्विजय करनाहै यह कैसे होगा ? तब ब्रह्माजी कहेंगे हे साधो ! यह क्या है ? जो उन्हें सप्तद्वीपकी पृथ्वीका राज्य करनाहै तो उनका तुम्हारे साथ विरोध कुछ नहीं। तुमको उसी मन्दिरमें उनकी पुर्यष्टका रखनी है और वहांहीं राज्य भुगावना है इस-लिये जो कुछ तुम्हारा स्वभाव है सो करना । कुन्ददन्त ने पूँछा, हे भगवन् ! इससे तो हमको बड़ा संशय उत्पन्न हुआ है कि, उसी मन्दिर में आठो भाई सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य कैसे करेंगे ? इतनी पृथ्वी उस मन्दिर में क्योंकर समावेगी यही आ-श्चर्यहै ? जैसे कमलके फूलकी कलीमें कोईकहे कि, हाथी शयनकरे वा हाथीकीपंक्तिहै सो आश्चर्यहै; तैसेही यह आश्चर्यहै । ब्राह्मण बोले, हे साधो ! ब्रह्मरूपी आकाशहै उसके अणुका जो सूक्ष्मअणुहै उसमें जो स्वप्नफुराहै सो हमारा जगत्है । यदि स्वप्न में यह सृष्टि समारही है तो मन्दिरमें समाना क्या आश्चर्य है ? हे साधो ! यह सब जगत् स्वप्नमात्रहै और अहंत्वमादिक सब जगत् स्वप्ननिद्रामें फुरताहै । आत्मसत्ता सदा अद्वैत, परमशांत और अनन्तहै और उसमें जगत् आभासमात्रहै । जैसे स्वप्न में अपना अनुभवही सूक्ष्मसे सूक्ष्म होताहै और उसमें त्रिलोकी भासि आतीहै । यदि सूक्ष्म संवित्में त्रिलोकी भासिआतीहै तो मन्दिरमें भासना क्या आश्चर्यहै ? हे साधो ! जब यह पुरुष मरजाताहै तब इसकी सूक्ष्मपुर्यष्टका जड़ होजाती है और उसमें फिर त्रिलोकी फुर आती है । तुम देखो कि यदि सूक्ष्महीमें भासि आई और जो परमसूक्ष्म में सृष्टि बनजाती है तो मन्दिरमें होनेका क्या आश्चर्य है । हे साधो ! यह सर्वजगत् जो भासता है सो आत्मा में स्थितहै और उसका किंचन इसप्रकार होभासताहै । अब तुम जावो उनको राज्य भुगावो । हे कुन्ददन्त ! जब इस प्रकार ब्रह्माजीकहेंगे तब वर नमस्कार करके आधिभौतिक शरीर त्यागदेंगे और अन्तवाहक शरीरसे उनके हृदय में स्थित होंगे । जैसे एक शत्रुको दूरकरके दूसरा स्थितहो तैसेही शापको दूरकरके उनके हृदय में वर आन स्थित हुये और उनको त्रिलोकी भासनेलगी और पुर्यष्टका को अन्तःपुरमें वरने रोकछोड़ा । जैसे जल वनको रोकताहै तैसेही उनकी पुर्यष्टकाको वरने रोका । हे कुन्ददन्त ! इस प्रकार उनको अपने अन्तःपुर में सृष्टिभासी और उ-न्होंने जाना कि, हम सातोंद्वीपके राजा हुये हैं । इस प्रकार वे आठों उस अन्तःपुरमें सातोंद्वीप पृथ्वी के राजाहुये परन्तु परस्पर अज्ञात रहे । एक सप्तद्वीपका-राजा हुआ और जम्बूद्वीप में जो उज्जैननगर है उसमें उसकी राजधानी हुई । दूसरा कुशद्वीप में रहनेलगा; तीसरा क्रौंचद्वीप में रहनेलगा, चौथा शाकद्वीपका राजा हुआ और उससे हरकारे कहने लगे कि, पातालके नाग बड़े दुष्टहैं उनको किसीप्रकार जीतो । तब वह समुद्र के मार्ग से पाताल में नागोंको जीतने जावेगा और एक द्वीपमें अपनी स्त्रीसे शांत

होजावेगा । पांचवां शाल्मलिद्वीपमें स्थितहोगा जहां बड़ीप्रकाश संयुक्त स्वर्णकी पृथ्वी है। वहां एक पर्वत होगा और उसके ऊपर एक तालहोगा जिसमें वह विद्याधरों से लीला करता फिरेगा। और दिग्विजय करके आवेगा। उसकी प्रजा बड़ी धर्मात्मा और मानसी पीड़ासे रहित होगी। छठा गोमेदकनाम द्वीप में होगा और उसका युद्ध पुष्करद्वीपवालेसे होवेगा। सातवां पुष्करद्वीपका राजा होगा जो गोमेदकवाले राजासे युद्ध करेगा और आठवां लोकालोक पर्वतका राजा होगा। हे कुन्ददन्त ! इसप्रकार वे अपने अन्तःपुर में सृष्टि देखेंगे और राज्य भोगेंगे परन्तु परस्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होगी। सबकी राजधानी भी मैंने तुझसे कही कि, एककी जम्बूद्वीपके उज्जैननगर में; दूसरेकी कुशद्वीपमें; तीसरेकी क्रौंचद्वीपमें, चौथे की शाकद्वीप में, पांचवेंकी शाल्मलि द्वीपमें; छठेकी गोमेदकद्वीपमें; सातवेंकी पुष्करद्वीपमें और आठवेंकी लोकालोक पर्वत स्वर्ण पृथ्वी में होगी। हे साधो ! इसप्रकार उनकी भविष्यत होगी सो मैंने सब तुमसे कही। जैसा हृदयमें निश्चय होताहै तैसाही फल होता है। बाहर कैसीही क्रिया करो और भीतर सत्ता नहीं तो वह फलदायक नहीं होती। जैसे नट स्वांग बनाकर चेष्टा करताहै परन्तु उसके भीतर उसका सद्भाव नहींहोता इससे वह फलदायक नहीं होती। हे साधो ! जैसा हृदयमें निश्चय होता है वही वरदायक होता है, इसलिये परमार्थ का निश्चय करना योग्यहै ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्राह्मणभविष्यद्राज्यप्राप्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकषट्षष्टितमस्सर्गः २६६ ॥

कुन्ददन्त बोले, हे मुनीश्वर ! मुझको बड़ा संशय हुआ है कि; उसी अन्तःपुर में अपने अपने द्वीपोंका राज्य वे क्योंकर करेंगे ? कदम्बतप बोले, हे साधो ! यह सर्व जगत् जो तुझको दृष्टि आता है सो कुछ बनानहीं; शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपने आप में स्थित है। उनको जो अन्तःपुरमें अपनी अपनी सृष्टि भासेगी सो क्या रूप होगी ? उनका जो अपना अनुभव है वही सृष्टिरूपहो भासेगा कि; आपही सृष्टिरूप और आपही राजा होंगे। यह जो कुछ जगत् तुझको भासता है सोभी परब्रह्म है भिन्न कुछनहीं। जैसे समुद्रमें तरंग स्वाभाविक फुरते हैं सो जलहीरूपहैं और लीन होते हैं तौभी जलही रूप हैं, जलसे भिन्न नहीं और न कुछ उपजता है, न मिटता है; तैसेही ब्रह्ममें जगत् न उपजता है और न लीन होता है परब्रह्मसे भिन्न कुछनहीं इससे वे ब्राह्मण भी अजरूप अपने आपको फुरनेसे जगत्रूप देखेंगे। हे साधो ! जब सुषुप्ति होती है तब अद्वैत अपनाही अनुभवहोता है और फिर उसमें स्वप्नेकी सृष्टि फुरआती है पर वही सुषुप्तिरूप है; तैसेही परमसुषुप्तिरूप आत्मा है जहां सुषुप्तिभी लीन होजाती है और उसमें यह जगत् फुरता है सो वही रूपहै। आधार-आधेयसे रहित ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित

है। हे साधो ! जैसे एकही मन्दिर में बहुत पुरुष शयनकरें तो उनको अपने अपने स्वप्नेकी सृष्टि भासती है इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, तैसेही उनको अपनी अपनी सृष्टि भासेगी तो इसमें क्या आश्चर्य है ? जो कुछ जगत् भासता है सो ब्रह्ममें है और ब्रह्म रूपही अपने आपमें स्थितहै। कुन्ददन्त बोले, हे भगवन् ! आत्मसत्ता तो एक और केवलहै बल्कि उसको एक भी नहीं कहसक्के और परमशांतरूप, शिवपद और अद्वैतरूपहै तो नानाप्रकार क्यों भासती है ? यह तो स्वभाव सिद्धहै सो नानात्व होकर वास्तव क्यों भासती है ? कदम्बतप बोले, हे साधो ! सर्वशांतरूप और चैतन्य आकाशहै और नानाप्रकारकी जो भासती है सो और कोई नहीं आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि भासती है सो कुछ नहीं बनी अपना अनुभवही सृष्टिरूपहो भासताहै; तैसेही यह जगत् अनुभवरूपहै। हे साधो ! सृष्टिके आदि अद्वैत आत्मसत्ताथी उसमें जो जगत् भासिआया सोभी तुम वही रूप जानो। जैसे समुद्रही तरंगरूपहो भासताहै, तैसेही आत्मसत्ता सृष्टिरूपहो भासती है। जैसे कोई थंभे से रहित स्थानमें सोयाहो उसको बहुत थंभोंसंयुक्त मन्दिर भासिआवे तो वहां बना तो कुछ नहीं अनुभव आकाशही थंभरूपहो भासता है; तैसेही जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो अपना अनुभवरूप जानो। जैसे आकाश में शून्यता; अग्नि में उष्णता और बरफ में शीतलता है; तैसेही आत्मा में जगत् है। चाहे कोई जगत् कहो अथवा ब्रह्मकहो पर ब्रह्म और जगत् में भेदनहीं। जैसे वृक्ष और तरु एकही वस्तु है; तैसेही ब्रह्म और जगत् एकही वस्तुके दो नाम हैं। इस जगत्; इन्द्रियों और मनसे अतीत आत्माको जानो और जो इन तीनोंका विषय है सोभी आत्मा को जानो दूसरी वस्तु कुछ नहीं। नानारूप जो दृष्टि आता है सो नानात्व नहींहुआ—दूसरा नहीं भासता है। जैसे स्वप्ने में बड़ेआरम्भ दृष्टिआते हैं और सेना और नानाप्रकार के पदार्थ भासते हैं परन्तु कुछ हुये नहीं, तैसेही यह जगत् नानाप्रकार भासता है परन्तु कुछहुआ नहीं सर्वचिदाकाशरूप है। जैसे एक निद्राकी दो वृत्ति हैं—एकस्वप्न और दूसरी सुषुप्तिरूप—स्वप्ने में नानात्व भासती है और सुषुप्तिमें एकसत्ता होती है; तैसेही चित्संवित् के फुरने में नानात्व भासता है और न फुरने में एकहै। हे साधो ! वह तो सर्वदा काल में एकरूप है परन्तु प्रमाद से भेदभासताहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अपनाही अनुभवरूप है परन्तु प्रमादसे भिन्नभिन्न भासती है; तैसेही यह जगत् है। हमको तो सर्वदा काल वही भासता है। जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी एकही वृक्षके नामहैं; जो वृक्षका ज्ञाता है उसको सब वृक्षरूपही भासताहै; तैसेही सर्वनामरूपसे हमको आत्माही भासताहै—आत्मासे भिन्न कुछ नहीं भासता। आदिफुरनेमें जैसे निश्चयहुआ है सो और निश्चयपर्यंत तैसेही रहता है यह सब विश्व संकल्परूप है और संकल्पका

अधिष्ठान ब्रह्महै–ब्रह्मही संकल्परूप होकर भासताहै । इससे सब संकल्परूप जगत् भासताहै सो ब्रह्मरूपहै; ब्रह्म और जगत्में भेदनहीं–एकही वस्तुके दो नामहैं । जैसे वृक्ष और तरु दोनों एकवस्तुके नाम हैं, तैसेही ब्रह्म और जगत् दोनों एक चैतन्यके नामहैं । हे साधो ! जो वाणीसे अकथहै उसको ब्रह्म जानो और जो शब्द वाणीमें आता है उसको भी तुम ब्रह्म जानो–ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं । जो ज्ञानवान्है उसको सब ब्रह्म ही भासताहै पर अज्ञानीको नानात्व भासताहै । जब अध्यात्म्य अभ्यास करोगे तब सब जगत् ब्रह्मरूपही भासेगा–इसका नाम घोषहै । हे साधो ! नानाप्रकार होकर जगत् दिखाई देता है तौभी नानात्व कुछनहीं । जैसे समुद्रमें द्रवतासे नानाप्रकारके तरंग, बुद्बुदे और चक्र दृष्टिआतेहैं परन्तु जलसे भिन्न कुछ नहीं; तैसेही सर्वपदार्थ जो दृष्टि आतेहैं सो सब आत्मरूपहैं और जितने जीव बोलते दृष्टिआते हैं सोभी महामौनरूप हैं कुछ बनेनहीं । चित्तके फुरनेसे नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं परन्तु आत्मासे भिन्न कुछ नहीं–वही चिदाकाश ज्योंकात्यों स्थितहै और जो कुछ आत्मासे भिन्न विद्यमान भासताहै उसको अविद्यमान जानो । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसे आदि जितना जगत् भासताहै सो सब स्वप्ने का विलासहै जैसे नेत्रदूषणसे आकाशमें तरुवरे भासतेहैं, तैसेही भ्रमदृष्टिसे आत्मामें जगत् भासताहै–कुछ बना नहीं । जैसे सुषुप्तिमें पुरुष सोया होताहै उसको फुरनानहीं फुरता और फिर उसी सुषुप्तिसे स्वप्नेकी सृष्टि फुर आतीहै सो बनी कुछनहीं वही सुषुप्तिरूपहै पर स्वप्ने में स्थित पुरुष को सत्य भासता है और जो अनुभवमें जागाहै उसको सुषुप्तिरूपहै; तैसेही इस जगत्को जानो । आत्मा से भिन्न कुछनहीं, जब जागकर देखोगे तब सब चिन्मात्रही भासेगा जो शांतरूप, अनंत और सदा अपने आपमें स्थितहै । उसमें जो जगत् भासताहै सो सत्यभी नहीं और असत्यभी नहीं; सत्य इसकारणसे नहीं कि, आभासमात्र और नाशवन्तहै और असत्य इसकारण नहीं कि, प्रकट भासताहै और वास्तवमें आत्मसत्तासे भिन्न नहीं । भाव, अभाव, सुख, दुःख, उदय, अस्त वही आत्मसत्ता इसप्रकारहो भासती है जैसे एकही निद्राके स्वप्ना और सुषुप्ति दो पर्याय हैं, तैसेही जगत् और आत्मा दोनों एकहीसत्ता के पर्यायहैं । जैसे एकही वायु स्पन्द और निस्स्पन्ददो रूपहोतीहै; तैसेही आत्मसत्ता के दोनोंरूपहैं । जब संवेदन नहीं फुरता तब अनिर्वाचीरूप होती है और जब अहंभावको लेकर फुरती है तब संकल्परूपी सृष्टि बनजाती है । आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, तत्त्व, नक्षत्र, चक्र, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी जलका नीचे चलना; अग्निका ऊर्ध्व चलना; तारागण प्रकाशवान्होना; पृथ्वीस्थित भूतआदि जो स्थावर–जंगमरूप सृष्टि है सो अपने स्वभावसहित भासती आती है और शुभ–अशुभ कर्म होते हैं उनमें सुख दुःख फलकी नेति होतीहै परन्तु आत्मसत्ताही इसप्रकार भासतीहै । जैसे तू मनो-

राजसे स्वप्ननगर कल्पले और उसमें अनेकप्रकार की चेष्टाकरे सो जबतक संकल्प होताहै तबतक वही सृष्टि स्थित होतीहै और जब संकल्प मिटगया तब सृष्टि लय होजा- तीहै तो औरवस्तु कुछ न हुई तेरा अनुभवही सृष्टिरूप होकर स्थितहुआ; तैसेही यह जगत् अनुभवरूपहै और कुछनहीं। कुन्ददन्तने पूछा, हे तपस्विन्! संकल्प तो पूर्वस्मृ- तिको लेकर फुरताहै; ब्रह्मामें मनोराज संकल्पकी सृष्टि किससंस्कार को लेकर फुरती है यह संशय मेरा निवृत्तकरो? कदम्बतपा बोले, हे साधो! यह सम्पूर्ण सृष्टि किसीसंस्का- रसे नहीं उत्पन्नहुई, भ्रमसे भासती है। जैसे स्वप्नेमें मनुष्य आपको मृतक हुआ जा- नताहै सो उसको पूर्वके संस्कारकी स्मृति तो नहीं होती अपूर्वही भासिआती है; तैसेही ये पदार्थ जो तुझको भासते हैं सो अपूर्व हैं किसी स्मृति से नहीं हुये। स्मृति और अनुभव तो जगतही में उत्पन्नहुये हैं पर जब जगत्का फुरना न था तब स्मृति और अनुभवभी न थे। जब जगत् फुरा तब येभी फुरे हैं इससे संपूर्ण जगत् अपूर्व है और भ्रमसे भासताहै। जैसे स्वप्ने में सुआ किसी कुल में अपना जन्म देखे और उसको ऐसे भासे कि, कुल चिरकाल की चलआतीहै पर जब जागउठे तब पूर्व किसको कहे। और स्मृति किसकी करे; न कहीं जन्म रहता है और न कुल रहता है; तैसेही ज्ञान- वान्को यह जगत् आकाशरूप भासताहै तो मैं तुझको पूर्वकी स्मृति क्याकहूं? हे ब्राह्मण! और कुछ बनानहीं आत्मसत्ताही ज्योंकीत्यों स्थितहै। जिससे यह सर्वजगत हुआ है; जिसमें यह सर्व है और जो सर्वहै सो सर्वात्माहै। जो वही है तो दूसरा किसको कहूं? इससे ऐसे जानकर तुम विचारो तब सर्वदुःख तुम्हारे नष्ट होंगे। हे साधो! कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं। कर्त्ता कर्म के करनेवाले को कहते हैं; कर्म जो है सो करने की संज्ञा है; करण क्रियाका साधक है सम्प्रदान जिस निमित्तहो; अपादान जिससे लयकीजिये और अधिकरण जिसमें कीजिये। हे साधो! ये छः कारक ब्रह्मरूप हैं। विश्वका कर्त्ता भी ब्रह्म है; विश्वकर्माभी ब्रह्म है; विश्वका साधक भी ब्रह्म है; जिसमें निमित्त यह विश्वहै सोभी ब्रह्म है और जिसमें यह विश्वहोता है सोभी ब्रह्म है। हे साधो! ऐसा जो सर्वात्मा है उसको नमस्कार है। हे साधो! उस सर्वात्मा को ऐसे जाननाही उसकी परम पूजा है। ऐसेही तुमभी पूजनकरो। हे साधो! अब तुम जावो और अपने वाञ्छितमें विचरो। तुम्हारे बांधव तुमको चितवतेहोंगे उनके पासजावो—जैसे कमलके पास भँवरेजाते हैं— और हमभी समाधि में स्थित होतेहैं। जो कुछ गुह्यबातहै सोभी मैं कहताहूं। जिससे कोई सुखपाताहै, वही करता है। मुझको तो जगत् दुःखदायक दृष्टि आया है इस कारण मैं समाधि में लगताहूं। हे साधो! यद्यपि मुझे सब अवस्थातुल्य हैं तौभी चित्त की वृत्ति जो संसारके कष्टसे दुःखित होकर आत्मपदमें स्थित हुई है उस स्थिति के

सुखके संस्कारसे फिर उसी ओर धावतीहै । अब तुमजावो मैं समाधिमें स्थितहोताहूं ॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकुन्ददन्तोपदेशोनाम
द्विशताधिकसप्तषष्टितमस्सर्ग्गः २६७ ॥

कुन्ददन्त बोले, हे रामजी ! इसप्रकार कहकर वह फिर समाधिमें लगा और इन्द्रियों और मनकी क्रिया से रहित हुआ—मानों कागजपर मूर्त्ति लिखीहो । तब फिर हम उसे बहुत जगातेरहे और बड़े शब्दकिये परन्तु वह न जागा । निदान हम वहांसेचले और उस ब्राह्मणके घर आये तो उनके घरमें बड़ा उत्साहहुआ और समयपाकर क्रमसे वे सातो भाई मरगये पर अष्टम मेरा मित्र जीतारहाथा वहभी कुछ दिनमें मृतक होगया तब मैं बहुत शोकवान् हुआ कि, मेरा प्रियतमभी मरगया अब मैं क्याकरूं । हे रामजी ! तब मैंने विचार किया कि, फिर मैं कदम्बतपाके पासजाऊं तो मेरादुःख नष्टहोगा । निदान मैं वहांगया और तीनमासपर्य्यन्त उसके पासरहा । उसको मैं जगातारहा परन्तु वह न जागा पर जब तीनमास होचुके तब वह जागा और मैंने उसको प्रणाम करके कहा; हे मुनीश्वर ! वे तो अपने अपने राज्य को भोगने लगे और मैं अकेला कष्टवान् हूं इस से मेरादुःख तुमनष्टकरो—मैं तुम्हारी शरण आयाहूं । कदम्बतपा बोले, हे साधो ! मेरे उपदेशसे तुझको स्वरूपका साक्षात्कार न होगा क्योंकि; तुझको अभ्यास नहीं है । अभ्यासविना स्वरूपका साक्षात्कार नहींहोता इससे मेरा कहनाभी व्यर्थहोगा । मैंदुखःनष्ट होनेका एकउपाय तुझसे कहताहूं उससे तू मेरेसमान और दुःखसे रहित होकर अनन्त आत्माहोगा । हे साधो ! अयोध्यानगरीके राजादशरथके गृहमें रामजीपुत्रहुये हैं जिनको वशिष्ठजी मोक्षोपाय उपदेश करेंगे और बड़ीसभामें कहेंगे वहां तू जा तो तुझको भी स्वरूपकी प्राप्तिहोगी—संशयमतकर । हे रामजी ! जब इसप्रकार उस तपस्वीने मुझसे कहा,तब मैं वहांसे चलकर तुम्हारेपास आयाहूं । जोकुछ तुमने पूछाथा सो सब वृत्तांत मैंने कहा और जो कुछ देखासुनाथा वहभी कहा । रामजीबोले, हे वशिष्ठजी ! जो वृत्तांत मैंने उससे सुनाथा सो प्रभुके आगे कहा और कुन्ददन्तभी तुम्हारे पास बैठा है अब इससे पूछिये कि; स्वरूपकी प्राप्तिहुई अथवा नहींहुई ? बाल्मीकिजी बोले,हे भरद्वाज ! जब इसप्रकार रामजीने कहा तब मुनियों में शार्दूल वशिष्ठजी उसकी ओर कृपादृष्टि करके बोले, हे ब्राह्मण ! यह मोक्षोपाय जो मैंने संपूर्ण कहा है उसको सुनकर तूने क्या जाना ? कुन्ददन्तबोले, हे सर्वसंशयों के निवृत्तकरनेवाले ! तुम्हारे वचनरूपी प्रकाशसे मेरे अज्ञानरूपी अन्धकारका नाशहुआ है; जो कुछ जानने योग्य पदहै सो मैंने जाना है और जो कुछ पाने योग्यथा सो मैंने पाया । अब मैं अपने स्वभाव में स्थित हुआहूं और मुझको कोई कल्पना नहीं रही । मैं अनन्त आत्माहूं और नित्य, शुद्ध, अच्युत, परमानन्दस्वरूपहूं—सर्व जगत् मेराही स्वरूपहै । हे भगवन् ! अन्तःपुर

में इतनी सृष्टि के समानेका जो संशयथा सो तुम्हारे वचनों से दूरहुआ और अब एक एक राई में मुझको ब्रह्मांड भासते हैं; और आत्मत्वभाव से दिखाई देते हैं। जैसे अनेक दर्पणों में अपना मुखही भासता है; तैसेही मुझको सर्व और अपना आपही भासता है। हे भगवन्! तुम्हारे वचन मैंने आदिसे लेकर अन्तपर्यन्त संपूर्ण सुने हैं जो परमपावन; सारके परमसार और आत्मबोध के कारण हैं। उनके विचारे से मेरी भ्रांति निवृत्तहोगई है और अब मैं अपने आपमें स्थित हुआहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेकुन्ददन्तविश्रामप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टषष्टितमस्सर्गः २६८॥

बाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार कुन्ददन्तनेकहा तब वशिष्ठजी सुनकर परम उचित वचन परमपदपावनका कारण फिर कहनेलगे कि; हे रामजी! अब कुन्ददन्त ने आत्मअनुभव में विश्राम पाया है। इसको अब हस्तामलकवत् अपनाआप अनुभवरूप जगत् भासता है। आत्माही निद्रास्वरूप होकर भासता है और आत्माही द्रष्टारूप है दूसरी वस्तु कुछ नहीं। अपना अनुभवही जगत्रूप हो भासताहै सो अनुभव आकाश सम शांतरूप, अनन्त और अखण्ड सदा ज्योंकात्योंहै। हे साधो! वह नानारूप भासताहै परन्तु अनाना है और सदा ज्योंकात्यों अचेतचिन्मात्र परमशून्यहै जिसमें शून्यभीशून्य होजाता है और चेत दृश्यरूप फुरने से रहित है इसीकारण परमशून्यहै; बोलता दृष्टि आताहै परंतु परममौन है। हे रामजी! उसमें जगत् कुछबना नहीं; जैसे स्वप्नमें पहाड़ दृष्टिआते हैं सो न सत्यहैं और न असत्यहैं; तैसेही यह जगत् सत्य असत्यसे विलक्षण है क्योंकि; कुछबनानहीं–जो कुछ भासता है सो आत्माहै। जैसे रत्नोंका प्रकाश चमत्कार होता है, तैसेही आत्मा का प्रकाश जगत् है और जैसे समुद्र द्रवता से तरंगरूप हो भासता है, तैसेही ब्रह्मसंवेदन से जगत्रूपहो भासताहै। आदि स्पंद फुरआई है सो जगत्रूपहोकर स्थितहै और वह जैसे हुआ है तैसे हुआ है पर आत्मा कार्य कारण भावसे रहितहै। जिसको प्रमादहै उसको यह कारणभाव भासता है और उसको तैसाही है पर जो सत्यजानकर पापकरते हैं उनके बड़ेपाप उदयहोते हैं और स्थावररूपहोकर फिर जंगममनुष्यहोते हैं। हे रामजी! इसप्रकार यह ज्ञानसंवित् चैत्यसंबन्धी होकर नानाप्रकारके रूप धारती है और प्रमादसे भिन्न २ भासती है परन्तु स्वरूपसे कुछ और नहीं होती सदा अखण्डरूप है। जबतक प्रमाद होताहै तबतक जगत्का आदि और अन्तनहींभासता और जब प्रमादसे जागताहै तब सर्वकल्पना मिटजातीहैं। हे रामजी! यह सर्व्वजगत् जो भासता है सो कुछबना नहीं वही ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जब जाग्रत् अवस्थाका अभावहोता है और सुषुप्तिआती है तो उसमें न शुभकी कल्पना रहती है और न अशुभकी कल्पना रहती है; उदय—अस्तकी

कल्पनासे रहित केवल अद्वैतसत्ता रहती है और जब फिर उसमें चैतन्यता फुरती है तब फिर स्वप्नेकी सृष्टि भासती है । कहीं स्थावर जंगम सृष्टि भासती है जिसमें संवेदन फुरती भासती है सो जंगम कहाता है और जिसमें संवेदन फुरना नहीं भासता सो स्थावर कहाताहै परन्तु और कुछ नहीं वही अद्वैत अनुभवसत्ता स्थावर जंगमरूप हो भासती है; तैसेही आत्मा अनुभव यह जगत् हो भासता है । हे रामजी ! सृष्टि के आदि परमसुषुप्तिसत्ता थी उसमें संवेदन फुरने से जगत् भासि आया सो वही संवेदनरूप जगत् है और जिस आत्मसत्ता में फुरी है वहीरूप है भिन्न कुछ नहीं । जैसे शरीर के अंग हाथ, पांव, नख, केशादिक सब शरीररूपहैं; तैसेही परमात्मा के अंग हस्त पादादिक हैं रोम सृष्टि और नखकेशादिक स्थावर सृष्टि सब आत्मरूपहैं और दूसरी वस्तु कुछ नहीं बनी । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अनुभवरूप होती है और संकल्प पुरकीरची सृष्टि संकल्परूप होती है; तैसेही यह सृष्टि अनुभवरूपहै और किसीकारण से नहीं उपजी—इससे ब्रह्महीरूप है । ब्रह्मके सूक्ष्म अणु में सृष्टि फुरी है सो क्या रूप है ? ब्रह्मही सृष्टि है और सृष्टिहीब्रह्म है—ब्रह्म और जगत्में भेद कुछ नहीं परन्तु अज्ञाननिद्रा से भिन्न भिन्न भासता है । रामजीने पूछा, हे भगवन् ! निद्रा का कितना प्रमाण है और कितने कालपर्यंत रहती है ? सूक्ष्म अणु में सृष्टि कैसे फुरी है और कैसे स्थित है ? अणु उसकी क्यों संज्ञा है और अनन्त क्योंकरहै ? जो देवता असुरादिक रूपको चित्त प्राप्तहुआ है वह क्या है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अज्ञान निद्रा अपने कालमें तो अनादिहै और नहीं जानीजाती कि, कबकीहुई है और अन्त भी नहीं जानाजाता कि, कबतक रहेगी । अज्ञानकाल में तो इसका आदि अन्त प्रमाण कुछ नहीं भासता और बोध में इसका अत्यन्ताभाव दिखताहै । चित्तसत्ताकी जो अनन्तता पूँछो तो वह तो अद्वैत चिन्मात्र आत्मसमुद्र है और उसमें सूक्ष्मभाव अहमस्मि जो संवित् फुरती है उसका नाम चित्तहै । उस चित्तमें आगे जगत् होताहै । शुद्धचिन्मात्रमें संवेदन चित्त फुरताहै उसमें जगत्है; वही चित्त देवता, असुर और जंगमरूप हो भासताहै और नाग, पिशाच, कीटादिक स्थावर—जंगमरूप हो भासतीहै । वास्तव में चैतन्यसत्ताही है उससे भिन्न कुछ नहीं और सब चिदाकाशरूप है फुरने से नानाप्रकार है । हे रामजी ! परमशुद्ध चिद्अणुसे मिलकर चित्त अनेक ब्रह्मांड धारता है और उस सूक्ष्मअणु में अनन्त ब्रह्मांड फुरते हैं परन्तु उससे भिन्न नहीं । जैसे एक पुरुष शयन करताहै तो उसको स्वप्ने में अनेकजीव भासि आते हैं और उन जीवों में अपने अपने स्वप्ने की सृष्टि फुरती है सो अनेक सृष्टि होजाती हैं तैसेही सूक्ष्म चिद्अणु में अनन्त सृष्टि फुरती हैं परन्तु आत्मसत्ता से भिन्न कुछ नहीं बना । जैसे सूर्यकी किरणों में अनन्त सूक्ष्म त्रसरेणु होती हैं; तैसेही परमात्मसूर्य के चिद्-

अणु सूक्ष्म है । इन त्रसरेणुसे भी सूक्ष्म चिद्अणु में अनन्त सृष्टि अपनी अपनी फुरती हैं। हे रामजी! जबतक चित्त फुरतारहताहै तबतक सृष्टिका अन्तनहीं आता। असंख्य जगद्भ्रम आगे देखे हैं और असंख्यही आगे देखेंगे। जब चित्त फुरने से रहित होता है तब जगत्कल्पना मिटजाती है । जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है और बड़े व्यवहार होतेहैं पर जब जागउठता है तब स्वप्ने की सृष्टि व्यवहारकी कल्पना मिटजाती है और अद्वैत अपना आपही भासता है; तैसेही चित्तके ठहरने से सब भ्रम मिट जाताहै। हे रामजी! सूक्ष्मचिद्अणुकीभी संज्ञा तब हुईहै जब इसको चित्का संबन्धहुआ है। जब चित्को अपने स्वभावमें स्थितकरोगे तब द्वैतकल्पना और सूक्ष्म स्थूलभाव मिटजावेंगे । इसकी सूक्ष्म संज्ञा अविद्यकभाव से है जो इन्द्रियोंका विषय नहीं इससे अणुताहै; सूक्ष्मअणुमेंभी व्यापाहुआ है इससे सूक्ष्मअणु कहाता है और अनन्तता इसकारण है कि, सबको धाररहा है । हे रामजी! यह जगत् अभावमात्र है। जैसे मरुस्थलमें जलाभास होताहै, तैसेही आत्मामें जगत् भासताहै। यह जगत् ही नहीं है तो इसका कारण किसे कहिये? आदि सृष्टि अकारण फुरी है और फिर उस में कारण-कार्य भासनेलगे हैं सो आभास की दृढ़तासे हैं। जैसे स्वप्ने में आदि सृष्टि अकारण बीज, वृक्ष, कुलाल, मट्टी और घट इकट्ठे फुरआते हैं। जब उस स्वप्ने की दृढ़ता होजाती है तब कारण कार्य भासते हैं परन्तु जो सोया पड़ाहै उसको दृढ़ भासते हैं; तैसेही अज्ञानी को जगत् कार्य्य कारण दृढ़ भासताहै और ज्ञानवान् को सब अपना आपही भासता है । जैसे स्वप्ने से जागे स्वप्ने की सृष्टि अपने आपही भासती है कि, मैंहीं था और कुछ न था; तैसेही ज्ञानवान् को सब जगत् आकाशरूप भासता है पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्व्वत, वृक्ष, नदी, स्थावर-जंगम सर्व जगत् सब आकाशरूपहैं और संवेदन के फुरनेसे दृष्टिआते हैं वास्तव में भिन्न कुछनहीं। हे रामजी! यह जगत् चित्तमें स्थित है। जैसे किसीपुरुष ने थंभेमें पुतलियां कल्पीं तो उन पुतलियों के दो रूप होते हैं-एक शिल्पी के चित्तमें फुरतीहै सो आकाशरूपहै और एक थंभे में कल्पीहै सो थंभरूपहै और थंभेमें स्थितरूपहै पर शिल्पी के चित्तमें नृत्य करतीहै। हे रामजी! और तो कुछ नहींबना सब थंभेरूपहैं और शिल्पी के चित्तमें कल्पनामात्र हैं; तैसेही चित्तरूपी शिल्पीकी जगद्रूपी पुतलियां कल्पनामात्रहैं पर आत्मरूपी थंभा ज्योंका त्योंहै-आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। जैसे पटके ऊपर मूर्त्ति लिखी हो तो उस मूर्त्तिका रूप पटही है-पटसे भिन्न कुछ नहीं-वह पटही मूर्त्तिरूप भासता है; तैसेही यह जगत् आत्मा से भिन्न नहीं-आत्माही जगत्रूप हो भासता है। आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे ब्रह्म आकाशरूपहै, तैसेही जगत् आकाशरूप है। जगत्रूप आधाररहै और उसमें ब्रह्म बसनेवाला है । ब्रह्मरूप आ-

धारहै और उसमें जगत् बसनेवाला है । हे रामजी ! जितने समूह जगत्में विद्या और अविद्यारूपहैं सो सब संकल्पसे रचित हैं और वास्तव में सब आत्मस्वरूपहैं । समता, सतता और निर्विकारता आदि और इनसे विपरीत अविद्यारूप सब एकहीरूपहैं; एकही में फुरते हैं और एकहीरूप हैं । जैसे अनुभवरूप स्वप्न जगत् अनुभवमें स्थित होताहै सो सर्व आत्मरूप होताहै; तैसेही यहजगत् सर्व ब्रह्मरूपहै-ब्रह्मसे भिन्न न कुछ वरकी कल्पना है और न शापकी कल्पनाहै । ब्रह्मसत्ता निर्विकार अपने आपमें स्थितहै उसमें न कारणहै और न कार्यहै । जैसे ताल, नदी और मेघ जलही होते हैं; तैसेही सब जगत् ब्रह्मरूप है । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! वर और शाप के कर्त्ता तो प्रच्छिन्न हैं और कारण विना तो कार्य नहीं बनता तुम कैसे कहते हो कि, कारण–कार्य कोई नहीं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता का किंचन जगत् होता है जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं, तैसेही आत्मसत्ता में जगत् फुरते हैं और जैसे तरंग जलरूपहोते हैं, तैसे ही जगत् आत्मरूपहै–आत्मासे भिन्न कुछ नहीं । जैसे आदि परमात्मा से सृष्टिका फुरना हुआहै तैसेही स्थित है अन्यथा नहीं होता । सब जगत् संकल्पहै । अनेकप्रकार की वासना संवेदन में फुरती है पर जिनको स्वरूपका विस्मरण हुआहै उनको यह जगत् सत्यरूप भासताहै । जो उनको विचार उत्पन्न हो तो वहीकाल है जिसकाल में विचार उत्पन्न होता है और उसीकाल में अज्ञाननिद्रा का अभाव होता है । हे रामजी ! जब विचार अभ्यासकरके मन तद्रूप होता है तब यथाभूत दर्शन होताहै और संपूर्णब्रह्मांड अपना आपही भासता है क्योंकि; अपने आप में स्थित है । सबका अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है उसमें अहंप्रतीति होती है इसकारण अपने आप में सृष्टि भासती है । जैसे स्पन्द फुरते हैं, तैसेही उनकी सिद्धि होती है; निरावरण दृष्टि होता है निरावरण दृष्टि करके सर्व संकल्प सिद्ध होताहै क्योंकि; यह जगत् सब आत्मामें संकल्प का रचा हुआहै और उसमें इसको अहंप्रत्यय हुई है । हे रामजी ! जो यह संकल्प उठता है कि, यह कार्य ऐसे हो तो वह तैसेही होताहै । हे रामजी ! शुद्ध संवेदनमें जैसा संकल्प होताहै वही हो भासता है संकल्परूपही है संकल्प से भिन्न नहीं । इसकारण वर और शापका और कोई कारण नहीं; वर और शापभी संकल्परूपहैं और उससे जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे किसी समवाय कारण से तो नहीं उत्पन्न हुये संकल्पहीसे हुये हैं इससे सब अकारणरूप है । ब्रह्मरूपी समुद्र के तरंग उठते हैं तो कारण और कार्य्य मैं तुमसे क्या कहूं ? सब जगत् ब्रह्मरूपहै और द्वैत और एककी कल्पना कुछ नहीं । हे रामजी ! हमको सदा ब्रह्मसत्ताही भासती है और कार्य्य कारण कोई नहीं भासता । जैसे स्वप्ने में किसी के घरमें पुत्रहुआ और वह बड़े उत्साहको प्राप्तहुआ पर जब जाग्रत् का संस्कार चित्आया तब उसका पिताही उपजा नहीं तो पुत्र कैसे कहिये ? तब तो

सब अपना आपही होजाता है, न कोई कारण भासता है और न कार्य भासता है। जो स्वप्ने में सोया है उसको जैसे भासता है तैसेही भासता है। जैसे वर और शाप का आसरा संकल्प है और संकल्पही वर और शाप हो भासता है और अकारणही होता है। जिसको शुद्ध संवेदन से एकता हुई है वह निरावरण है और उसमें जैसे फुरना आभास फुरता है, तैसाही सिद्ध होता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! एक ऐसे हैं जिनको आवरण है और उनका संकल्प जैसे फुरता है—वर देवें अथवा शाप देवें—तैसेही होजाता है और स्वरूपका साक्षात्कार उनको नहीं हुआ पर शुभकर्म उनमें प्रत्यक्ष मिलते हैं तो शुभकर्मही वर और शाप के कारण हुये; तुम कैसे कहते हो कि, निरावरण पुरुष का संकल्प सिद्ध होता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ता है वही चित् धातु कहाती है। उस चित् धातु में जो आभास फुरना है वही संवेदन कहाता है। वह संवेदन जब फुरती है तब जीव जानता है कि, 'मैं ब्रह्मा हूँ;' तो संवेदन नेही आपको जगत् का पितामह जाना और उसी ने आगे मनोराज कल्पा तब पंचभूत का ज्ञान हुआ कि; शून्यरूप आकाश; स्पन्दरूप वायु; उष्णरूप अग्नि; द्रवतारूप जल और कठोररूप पृथ्वी है, फिर उसी से देश और कालकी कल्पना हुई और स्थावर जंगम पदार्थकी कल्पना से वेद, शास्त्र, धर्म, अधर्म का फुरनाहुआ जिससे यह निश्चयहुआ कि, यह तपस्वी है और इसने तपकिया है इसके कहेसे वरहो पर स्वरूप के साक्षात्कार से रहितहै तौभी इसका कहाहो यह तपका फल है। आदि संकल्प ऐसे हुआहै तो वर और शापका कर्त्ता तपस्वी नहीं इसका अधिष्ठान वही संवेदन है जिससे आदि संकल्प फुराहै। हे रामजी! वर और शाप संकल्परूप हैं, संकल्प संवेदन से फुराहै और संवेदन आत्माका आभास है तौ मैं कारण और कार्य क्या कहूं? और जगत् क्या कहूं? आत्मा का आभास संवेदन ब्रह्माहै जिसने आगे संकल्पपुर सृष्टिरची है और हम, तुम आदिक सब उसके संकल्प में हैं। वह ब्रह्माजी निराकार, निराधार और निरालम्ब स्थितहै कुछ आकारको नहीं प्राप्त हुये, इससे उसका विश्वभी वही रूप जानो। हे रामजी! जैसे उसका स्पन्दहुआ है तैसेही स्थितहै; अन्यथा नहीं होता जो वही विपर्ययकरे तो हो और नहीं होता। अग्निमें उष्णता; वायुमें स्पन्द इत्यादिक जो पदार्थ हैं सो अपने अपने स्वभाव में स्थित हैं और हमको सब ब्रह्मरूपहैं। जैसे शरीरमें हाड़ मांससे भिन्न नहीं होता तैसेही हमको ब्रह्मसे भिन्न नहीं भासता। जैसे घटमें मृत्तिकासे भिन्न कुछ नहीं होता और काष्ठकी पुतलीको काष्ठसे भिन्न चेष्टा नहीं होती तैसेही जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं होता। हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुमको भासताहै सो ब्रह्मही है। ब्रह्मही फुरने से नानाप्रकार जगतहो भासता है। जैसे समुद्र द्रवता से तरंग बुद्बुदे, फेनहो भासता है; तैसेही ब्रह्म संवेदनसे जगत्रूपहो भासताहै परब्रह्म से

भिन्न कुछ नहीं । जैसे पर्वतसे जलगिरताहै सो कणके कणके हो भासताहै और जब गिरकर ठहरजाताहै तब समुद्ररूप होताहै परन्तु जलसे भिन्न कुछ नहीं होता; तैसेही जब चित्त फुरता है तब नानाप्रकारका जगत्हो भासता है और जब ठहरजाता है तब सर्व जगत् एक अद्वैतरूप हो भासताहै पर ब्रह्मसेभिन्न कुछनहींहोता; ब्रह्मही स्थावर जंगम रूपहो भासताहै । जहां पुर्यष्टका का सम्बन्धनहीं भासता सो अजंगम कहाता है और जहां पुर्यष्टकाका सम्बन्ध होताहै वह जंगमरूप भासताहै परन्तु आत्मा में उभय तुल्य हैं । जैसे एकही हाथकी अंगुलीहै जिसको उष्णता अथवा शीतलताका संयोग होता है सो फुरनेलगती है और जिसको शीत उष्णका संयोग नहीं होता सो नहीं फुरती;तैसेही जिस आकारको पुर्यष्टकाका संयोगहै सो फुरता है और चैतन्यता भासती है और जिसको पुर्यष्टकाका संयोग नहीं होता उसमें जड़ता भासती है । जड़भी दो प्रकारके हैं–एकको पुर्यष्टकाका संयोग है और जड़ है और दूसरेको पुर्यष्टकाका संयोग नहीं और जड़है । वृक्ष और पर्वतों को पुर्यष्टकाका संयोगहै परन्तु घनसुषुप्ति जड़तामें स्थितहैं इसकारण जड़ भासतेहैं और मृत्तिक पुर्यष्टकासे रहितहै इसकारण जड़है परन्तु वास्तवमें स्थावर, जंगम; इष्ट, अनिष्ट; वर, शाप; देश, काल, पदार्थ; सबही ब्रह्मरूप है और ब्रह्मसत्ताही ऐसे स्थितहुई है जैसे अपने अनुभवमें सङ्कल्प नगर नानाप्रकार का भासताहै परन्तु संकल्परूप है–संकल्पसे भिन्नकुछ नहीं और मृत्तिकाकी सेना अनेक प्रकारकी होतीहै परन्तु मृत्तिकारूपहै–मृत्तिकासे भिन्न कुछनहीं; तैसेही सर्वअर्थ के धारनेवाली चैतन्यधातु नानाप्रकारके आकारको प्राप्तहोती है परन्तु चैतन्यता से भिन्न कुछनहीं होती । हेरामजी ! धातु उसको कहतेहैं जो अर्थको धारे । जितने पदार्थ तुमको भासतेहैं सो सब अर्थरूपहैं और वस्तुरूप जो धातुहै सो आत्मसत्ताहै । उसने दोअर्थ धारेहैं–एक स्वप्नअर्थ और दूसरा बोधअर्थ–स्वप्नअर्थ में तो नानात्व भासती है और बोधअर्थ में एक अद्वैतसत्ता भासतीहै । जैसेएकही धातुमिलने और बिछुरने से दोअर्थ धारतीहै सो परस्पर प्रतियोगी शब्दहैं परन्तु एकहीने धारेहैं; तैसेही स्वप्ने और बोधअर्थ इनदोनोंको आत्मसत्ताने धाराहै । जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे जलरूपहैं; तैसेही जगत् ब्रह्मरूपहै । जो ज्ञानवान्हैं उनको सब ब्रह्मरूप भासताहै और अज्ञानीको नानात्वभासताहै । इससे तुम स्वभाव निश्चयहोकरदेखो सब ब्रह्मरूप है–भिन्नकुछनहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेब्रह्मप्रतिपादनंनाम
द्विशताधिकैकोनसप्ततितमस्सर्गः २६९ ॥

रामजीने पूछा, हे भगवन् ! जो सर्व ब्रह्महीहै तो नेति क्या है और नाना प्रकारके पदार्थ क्यों भासतेहैं ? तुम कहतेहो कि, जगत् संकल्पसे रचितहै तो हे भगवन् ! ये जो पदार्थ असंख्यरूपहैं कि, उनकी संज्ञाकी नहीं जाती और इनपदार्थों का स्वभाव

एकएकका अचलरूप होकर कैसे स्थितहै ? सर्वदेवताओंमें सूर्यकाप्रकाश क्योंअधिकहै और एकही सूर्यमें दिन और रात्रि छोटे बड़े क्योंहोते हैं; यह विचित्रता क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! शुद्धचिन्मात्रसत्तामें अकस्मात् से जो आभासफुरा है उस आभासका नाम नेतिहै और सृष्टिभी आभासमात्रहै किसीकारण करके नहीं उपजी। जिसके आश्रय आभास फुरताहै वही वस्तु अधिष्ठानहोतीहै, इससे जगत् सब ब्रह्मरूपहै और चिन्मात्र सत्ता अपने आप में स्थितहै, न उदयहोतीहै और न अस्तहोती है वह परिणामसे रहित सदाअद्वैतरूप स्थितहै और उसमें न जाग्रतहै; न स्वप्नहै और न सुषुप्तिहै तीनों अवस्था आभासमात्रहैं पर चैतन्यसत्तामें इनसे द्वैतनहीं बना; यह तीनों इसीका स्वभाव प्रकाशरूपहै—इससे भिन्नकुछ नहीं। जैसे आकाश और शून्यता;वायु और निस्स्पन्द; अग्नि और उष्णता और कर्पूर और सुगन्धिमें भेद नहीं; तैसेही जाग्रदादिक जगत् और ब्रह्ममें भेदनहीं। हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रमें जो चित्तभावहुआहै उसमें चैतन्य आभास फुराहै और उसमें जैसा संकल्प फुराहै तैसेही स्थित हुआहै। कि; यह इसप्रकारहो और इतने कालरहे; उसी संकल्प निश्चयकानाम नेति है। जैसे आदि संकल्प दृढ़हुआहै, तैसेही अबतक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश अपने अपने भावमें स्थित हैं और अपने स्वभावको नहीं त्यागते जबतक उन की नेति है तबतक तैसेही जगत्संत्ता में स्थितहैं। हे रामजी ! इसकानाम नेतिहै। जैसे आदि संकल्प धाराहै तैसेही स्थितहै और वास्तवमें आभासरूप है। अकस्मात् से यह आभास फुराहै सो किसी सूक्ष्म अणुमें फुराहै। जैसे समुद्रके किसी स्थान में तरंग बुद्बुदे फुरतेहैं, सम्पूर्ण समुद्र में नहीं फुरते; तैसेही जहां संवेदनमें जैसा फुरना होताहै तैसेही स्थितहोताहै सो नेतिहै। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे समुद्रसे भिन्न नहीं, तैसेही नेति आत्मासे भिन्ननहीं। जैसे द्रवतासे समुद्रमें तरंग फुरतेहैं, तैसेही आत्मा में संवेदनकरके नेति और जगत् जो फुरतेहैं सो वही रूपहै—आत्मा से भिन्नकुछ नहीं जैसे किसीने कहा कि, चन्द्रमाका प्रकाशहै सो चन्द्रमा और प्रकाशमें भेदनहीं, तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं। यह विश्व आत्माका स्वभावहै। जैसे एकहीकाल की दिन, पक्ष,वार, मास, वर्ष, युग, कल्प इत्यादिक बहुतसंज्ञा हैं परन्तु काल एकही है, तैसेही भिन्नभिन्न जगत्के नामहैं सो सब ब्रह्महीं है। हे रामजी ! जब संवेदन चित्तके सन्मुख होतीहै तब प्रथम शब्दतन्मात्रा फुरतीहै और उससे आकाश उपजता है जिसका स्वभाव शून्यताहै;फिर जबवह स्पर्शतन्मात्राको चेता तब उससे इसमें वायुफुरा और वायुका स्पंदस्वभावहै। फिर रूप तन्मात्राको चेता तब उससे अग्नि प्रकट हुई जिसका उष्ण स्वभावहै। फिर रसतन्मात्राको चेता तब उस से जल प्रकटहुआ जिसका द्रवस्वभाव है। फिर गन्ध तन्मात्राको चेता तब उससे पृथ्वी प्रकट हुई जिसका

स्थिर स्वभावहै। इसप्रकार पंचभूत फुरआये। हे रामजी! आदि जो शब्द तन्मात्रा फुरी है सो जितने कुछ शब्दसमूहहैं उनका बीज है सब उसी से उत्पन्नहुये हैं। पदार्थ, वाक्य, वेद, शास्त्र, पुराण सब उसीसे फुरे हैं इसीप्रकार पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इनका जो कार्य स्वभाव है सो सबका बीजआदिक इनकी तन्मात्राहै और उस तन्मात्रा का बीज वह संवित् सत्ताहै। हे रामजी! अबइनतत्त्वोंकी खानिसुनो। पृथ्वीसे अणुभी होतीहै और एकदलाभी होती है सो पृथ्वी तो एकहै और अणुभी वही है; तैसेहीसर्व तत्त्वोंको समुझदेखना। पृथ्वीकी खानि भूपीठहै जो सम्पूर्णभूत जातको धारती है; जल की खानि समुद्रहै जो सर्वपदार्थोंमें रसरूप होकर स्थितहै; अग्निका तेज जो प्रकाशहै उसकी समष्टिता सूर्यहै; सर्वस्पन्द समष्टिता पवनहै और सम्पूर्णशून्य पदार्थोंकीखानि आकाशहै। इसप्रकार ये पांचों तत्त्व संकल्पसे उपजे हैं। जैसे बीजसेअंकुर उपजताहै, तैसेही यहभूतसंकल्पसे उपजेहैं। संकल्पसंवेदनसे फुराहै और संवेदन आत्माकाआभासहै जो अद्वैत,अच्युत, निर्विकल्प और सर्वदा अपने आपमें स्थितहै। उसीके आश्रय संवेदन आभास फुराहै, फिर संवेदनसे संकल्पफुराहै और संकल्पसे जगत् बनगयाहै। जैसे समुद्रमें तरंगफुरतेहैं और लीनहोतेहैं; तैसेहीसंकल्पमेंजगत् उपजाहै और फिर संकल्पहीमें लीन होताहै। जैसे तरंग जलरूपहै, तैसेही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश सब चैतन्यरूप हैं। सर्वपदार्थ जो देखने सुननेमें आते हैं और नहीं आते सो सबचैतन्यरूपहैं, आत्मासे भिन्नकुछ नहीं; वहीआत्मा इसप्रकार होताहै। स्वप्नेमें अपनाअनुभवहीपदार्थहो भासताहै परन्तु कुछबनानहीं। नानाप्रकार भासताहै तौभीअनानाहै तैसे ही जगत् नानाप्रकार भासताहै तौभी कुछबना नहीं। जैसे एक निद्राके दोरूपहैं—एक स्वप्न और दूसरा सुषुप्ति—जब फुरना होता है तब स्वप्ने की सृष्टि भासती है और जब फुरना निवृत्त होजाता है तब सुषुप्ति होती है और जैसे वायुके दोरूप हैं; जब स्पन्द होतीहै तब भासती है और जब निस्स्पन्द होतीहै तब नहींभासती; तैसेही जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है और जब नहीं फुरती तबजगत्भी नहींभासता—इसीकानाम महाप्रलय है—पर दोनों आत्माके आभास हैं। हे रामजी! संकल्प रूप ब्रह्मा बालकने आत्मा में आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, चक्र इत्यादि क्रमसे रचेहैं जैसे बालक अपने में संकल्प रचे, तैसेही ब्रह्माने रचा है। उसने एक भूगोल रचाहै जिस पर नक्षत्रचक्र रचाहै और उसचक्रके दोभागकियेहैं जो अन्योन्यसन्मुख स्थित हैं। जब सूर्य उसके सन्मुख होताहै तब सातघड़ी दिन और रात्रिका प्रमाण होताहै। जबसूर्य उस नक्षत्रचक्रके ऊर्ध्व ओर उदय होताहै तब दिन बड़े होतेहैं और जब अधकी ओर उदय होताहै तब दिन छोटेहोजाते हैं निदान ज्यों ज्यों सूर्य क्रमकरके ऊर्ध्व से अधकी ओर उदय होताहै त्यों त्यों दिनछोटे होतेजाते हैं और रात्रि बढ़तीजाती है और जब

षट्मासके उपरांत पौषत्रयोदशीसे सूर्यक्रमकरके ऊर्ध्वकोउदयहोताहै तबदिन बढ़ता जाता है। आषाढ़ की द्वादशीसे लेकर पौषत्रयोदशी पर्यंत रात्रि बढ़ती है और दिन घटता है और फिर रात्रि घटतीजाती है और दिन बढ़ता जाताहै। जब सूर्यउसचक्र के मध्य उदय होताहै तब दिन और रात्रि समान होजाता है परन्तु संवेदनरूप ब्रह्मा का सब संकल्प विलास है। जैसे शिल्पी शिलामें पुतलियां कल्पताहै और चेष्टाकरता है पर बनाकुछ नहीं शिलाही अपने घन स्वभावमें स्थित होती है; तैसेही चित्त रूपी शिल्पी आत्मारूपी शिलामें जगत्‌रूपी पुतलियां कल्पता है परन्तु बना कुछ नहीं ब्रह्मसत्ताही सदा अपने आपमें स्थित है। संवेदन फुरने से जब उसे रूपदेखने की इच्छा होती है तब चक्षुइंद्रिय बनजातीहै जो रूप को ग्रहण करती है; जब स्पर्श की इच्छा होती है तब त्वचा इन्द्रिय बनजाती है जो स्पर्श को ग्रहण करती है; जब गन्धकी इच्छा होती है तब घ्राण इन्द्रिय बनकर गन्ध ग्रहणकरती है; जब शब्द सुननेकी इच्छा होतीहै तब श्रवणइन्द्रियां बनजातीहैं जो शब्दविषयोंको ग्रहणकरती हैं और जब रसकी इच्छा होतीहै तब रसना इन्द्रिय प्रकटहोकर स्वादग्रहण करतीहै। जब अपने और वायु देखनेकी ओर चेतती है तब अपनेसाथ वायु देखती है और उस वायु में प्राण फुरते देखती है। हे रामजी! देखना, सुनना, रसलेना, स्पर्शकरना, बोलना और गन्धलेना जहां जहां इन्द्रियां विषयों को ग्रहणकरती गईं सो देश है; जिसविषय को ग्रहणकरने लगती हैं सोपदार्थहैं और जिस समयग्रहण करनेलगती हैं सो काल है इसप्रकार देश, काल और पदार्थ हुयेहैं और फिर क्रमसे शुभ अशुभ कर्मभासनेलगे। हे रामजी! इसप्रकार संवेदन ने फुरकर जगत्‌को रचाहै और शरीर को रचकर इष्टअनिष्ट को ग्रहण करतीहै। जो तुम कहो कि, इन्द्रियां तो भिन्नभिन्नहैं और अपने २ विषयको ग्रहण करती हैं सर्व इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्ट इसजीवकोकैसे होते हैं तो इसका दृष्टांतसुनो। हे रामजी! जैसे तुमएकहो और माला के दाने बहुत हैं पर सर्वका आश्रयसूत्र है; तैसेही अहंकार रूपी सूत्रमें सर्वइंद्रिय रूपी दाने हैं, इस कारण अहंकार जीव आश्रयभूत इन्द्रियों के सुखसे सुखी होता है और दुःखसे दुःखी होताहै। इन्द्रियां आपही से कार्य करनेको समर्थ नहींहोतीं अहंकार जीवकी सत्तासे चेष्टा करती हैं। जैसे शङ्खको आपसे बजनेकी सामर्थ्य नहीं पर जब पुरुष बजाताहै तो शब्द करताहै; तैसेही इन्द्रियोंकी चेष्टा अहंकार और जीवसे होतीहै। हे रामजी! वास्तवमें न कोई इन्द्रियां हैं, न इनके विषयहैं और न मनका फुरनाहै सर्व आभास मात्रहै। जब संवेदन फुरतीहै तब इतनी संज्ञा धारती है और जब संवेदन निर्वाण होतीहै तब सर्वकल्पना मिटजाती हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजीवसंसारवर्णनेद्विशताधिकसप्ततितमस्सर्गः२७०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह संपूर्ण कल्पना का क्रम मैंने तुमसे कहा है। जितना कुछ जगत् देखतेहो सो संवेदनरूप है। शुद्ध चिन्मात्र सत्ताका आदि आभास और चैतन्यताका लक्षण चित्त अहं जो अस्मि है उसका नाम संवेदन है और उसके इतने पर्यायहुये हैं कि, कोई तो ब्रह्मा कहते हैं; कोई विष्णु कहतेहैं; कोई प्रजापति कहते हैं और कोई शिवआदि नामलेतेहैं। उस संवेदनने आगे संकल्प फुरके विश्वरची जो अकारण है किसी कारणसे नहीं बनी। काकतालीयवत् अकस्मात् आभासफुरा है और आकार सहित दृष्टि आती है परन्तु अन्तवाहक है और व्यवहार सहित दृष्टिआती है परन्तु अव्यवहार है। हे रामजी! संवेदन जो अन्तवाहक रूप है उसने आगे विश्वरचीहै सोभी अन्तवाहकरूपहै परन्तु अज्ञानी को संकल्पकी दृढ़तासे अधिभौतिक रूपहो भासती है। जैसे संकल्प नगर और स्वप्नपुर संकल्पसे भिन्न नहीं और संकल्पकी दृढ़तासेही आकाररूप पहाड़, नदियां, घट, पट, आदिपदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं परन्तु बने तो कुछनहीं शून्यरूप हैं; तैसेही यह जगत् निराकार शून्यरूप है। हे रामजी! आदि अन्तवाहकरूप संवेदनही बहिर्मुख फुरनेसे देश, काल, पदार्थ रूप होकर स्थित हुई है। जब बहिर्मुख फुरना मिटजाता है तब जगत् आभास भी मिटजाता है। जैसे स्वप्नेका आभास जगत् तबतक भासता है जबतक निद्रामें सोया होता है पर जब जागता है तब स्वप्नेका जगत् मिटजाता है और एक अद्वैतरूप अपना आपही भासता है; तैसेही यह जगत् अज्ञान के निवृत्तहुये लीन होजाता है। सब जगत् निराकार है पर संकल्पकी दृढ़तासे आकार भासते हैं। हे रामजी! संवेदनमें जो संकल्प फुरता है वही अन्तःकरण चतुष्टय होके भासता है। पदार्थ के चितवने से इसका नाम चित्तहोता है; संकल्प विकल्पके संसरने से इसका नाम मन होता है; ज्यों का त्यों निश्चय करने से इसकानाम बुद्धिहोताहै और वासना के समूह मिलने से पुर्यष्टका कहाती है पर सब संकल्पमात्र है और उनसे जगत् उपजा है वह भी संकल्परूप है। जैसे इन्द्रजालकी बाजी और स्वप्नेका नगर संकल्पकी दृढ़ता से पिण्डाकार भासते हैं परन्तु सब आकाश रूप हैं; तैसेही यह जगत् आकाशरूप है—आत्मासे भिन्न कुछ है नहीं। जो तुम कहो कि; भासता क्यों है? तो जिसमें भासता है उसे वही रूप जानो और देश, काल, नदी, पहाड़, पृथ्वी, देवता, मनुष्य, दैत्य, ब्रह्मासे आदि कीट पर्यंत जो स्थावर-जंगमरूप जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है और वेद, शास्त्र, जगत्, कर्म, स्वर्ग, तीर्थ इत्यादिक जो पदार्थ हैं वेभी सब ब्रह्मरूप हैं। वही निराकार अद्वैत ब्रह्मसत्ता संवेदनसे जगत्रूप हो भासती है। जैसे स्वप्नेमें अपनाही अनुभव सृष्टि रूप हो भासता है; तैसेही अपनाही अनुभव यह जगत् होभासता है और जैसे समुद्र द्रवता से तरंगहो भासता है पर जलही जलहै; तैसेही शुद्ध चिन्मात्रमें संवेदन से जगत् आभास फुरता है सो ब्रह्मही ब्रह्म है भिन्नकुछ

नहीं। हे रामजी! जो कुछ तुमको भासता है सो सब अच्युत और अनन्तरूप अपने आप में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेसर्वब्रह्मरूपप्रतिपादनन्नाम द्विशताधिकैकसप्ततितमस्सर्गः २७१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब द्रष्टा दृश्यरूपको चेतता है तब विश्व होती है सो विश्व सब अन्तवाहक रूप है। निराकार संकल्प को अन्तवाहक कहते हैं। जब दृश्यमें अहंभाव से चैतन्यता रहती है तब अन्तवाहक से अधिभौतिक शरीर होजाता है। आदि जो ब्रह्मा संवेदन फुरा है सो अन्तवाहक शरीर हुआ है और जब उसने वारंवार अपने शरीर को देखा तब वह भी चतुष्टयमुख अधिभौतिक होगया। उसने ओंकार का उच्चार करके वेद और वेदके क्रमको रचा और संकल्प से विश्वरचा। जैसे कोई बालक मनोराज से बगीचा रचे और उसमें नानाप्रकारके वृक्ष, फल, फूल, टास और पत्र रचे; तैसेही ब्रह्माजी ने रचा और अन्तवाहक जीव उपजे और जब जीवों को शरीर में दृढ़अभ्यास हुआ तब वे अन्तवाहक से अधिभौतिक होगये। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ब्रह्मसत्ता तो निराकार थी उसको शरीरका संयोग कैसे हुआ है और उस से अधिभौतिकता कैसे होगई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! न कोई शरीर है। और न किसी को शरीरका संयोग हुआ है केवल अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और उसमें जो चैतन्य संवेदन फुरी है वही संवेदन दृश्यको चेतती रहती है। वही जगत्‌रूप होकर स्थित हुई है। जब संकल्प की दृढ़ता हुई तब अपने साथ शरीर और आकार भासने लगे परन्तु सब आकाशही रूप हैं—कुछ बनेनहीं। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि को उपजी कहिये तो उपजी नहीं और उसका कारण भी कोई नहीं केवल आकाशरूप है और कोई पदार्थ उपजा नहीं परन्तु स्वरूप के विस्मरणसे आकार भासते हैं; तैसेही यह शरीर और जगत् जो भासता है सो केवल आभासमात्र है और असंभावनाकी दृढ़ता से प्रत्यक्ष भासता है। जब स्वरूपका विचार करके देखोगे तब शान्त होजावोगे। हे रामजी! अविद्या भी कुछ वस्तु नहीं। जैसे स्वप्ने के पदार्थ अविद्यमान होते हैं और विद्यमान भासते हैं पर जब जागता है तब अविद्यमान होजाते हैं; तैसेही यह जगत् अविचार सिद्ध है विचार कियेसे शान्त होजाताहै। जब विचार करके देखोगे तब सर्वात्माही भासेगा। हे रामजी! आत्मसत्ता अव्यभिचारी है अर्थात् सत्तामात्र है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता और अच्युत है अर्थात् सदा ज्योंका त्यों है अपने भावको कदाचित् नहीं त्यागता इसलिये जो उससे भिन्नभासे उसे भ्रममात्र जानो। हे रामजी! विचार करके जब दृश्य भ्रमशान्त होता है तब मोक्ष प्राप्त होता है। आत्मसत्ता ज्ञानरूप और निराकार सदा अपने आप में स्थित है। जब सम्यक्-

ज्ञानका बोध होता है तब जगद्भ्रम नष्टहोता है । रामजीने पूंछा हे मुनीश्वर ! सम्यक्ज्ञान और बोध किसको कहते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! केवल जो बोधमात्र है सो बोध कहाता है और उसको ज्योंका त्यों जानना सम्यक्ज्ञान है । रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! केवल बोध और केवल ज्ञान किसको कहते हैं ? वशिष्ठजी बोले, हे राघव ! दृश्यसे रहित जो चिन्मात्र है उसको तुम केवल बोध जानो—उसमें वाणीकी गमनहीं । इसीप्रकार अचेत चिन्मात्र सत्ताको ज्योंका त्यों जाननाही केवल ज्ञान है । रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! केवल बोध अचेत चिन्मात्र है तो उसमें जगत् भ्रम क्यों भासता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चिन्मात्र जो द्रष्टारूप है उसमें जब संवेदन चेतना फुरती है तब वही चेतना चैतरूप दृश्यहो भासती है । जैसे स्पंदसे रहित वायु निर्लक्ष रूप होती है और जब स्पन्दरूप होती है तब स्पर्श से भासती है; तैसेही संवेदन से जो दृश्य भासती है सो वही संवेदन दृश्य हो भासती है । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! जो द्रष्टा दृश्यरूप भासता है तो दृश्य बाहर क्यों भासता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसीकारण भ्रम कहा है कि; अपने भीतर है और बाहर भासती है । जैसे स्वप्ने की सृष्टि अपनेही अन्तर होती है पर वास्तव में न भीतरहै और न बाहरहै, आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है; तैसेही अबभी ज्योंकी त्यों स्थित है, भीतर और बाहर भ्रमसे भासती है । रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! जो आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है और दृश्य भ्रम से भासती है तो शशे के सींग भी भ्रममात्र हैं वे क्यों नहीं भासते और अहं और त्वं क्यों भासते हैं ? भूतोंकी चेष्टा तो प्रत्यक्ष भासती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अहं त्वमादिक जगत् भी कल्पनामात्र है । जैसे शशेके सींग कल्पनामात्र हैं और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे भासता है; तैसेही यह जगत् भी भ्रम मात्र है । जैसे मृगतृष्णाका जल और संकल्प नगर भ्रममात्र है; तैसेही यह जगत् भ्रममात्र है, किसीकारण से नहीं उपजा । जैसे स्वप्ने में शशे के सींग नहीं भासते हैं और जगत् भासताहै; तैसेही यह भ्रमहै । रामजी ने पूंछा; हे मुनीश्वर ! भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में जगत् की स्मृति अनुभव से जानते हैं और कारण—कार्य भाव पाते हैं तो तुम भ्रममात्र कैसे कहते हो ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! मैं यह कहताहूं कि; जो कारणसे कार्य होताहै सो सत्य होताहै । तुम कहो कि, जगत् का कारण क्या है अर्थात् जैसे बीजसे वटहोता है; तैसेही इसका कारण कौन है ? रामजी बोले; हे भगवन् ! जगत् सूक्ष्म अणुसे उपजता है और लीन भी सूक्ष्म तत्त्वके अणुमें ही होता है । वशिष्ठजी ने पूंछा, हे रामजी ! सूक्ष्मअणु किसमें रहते हैं ? रामजी बोले, हे मुनीश्वर ! महाप्रलयमें शुद्ध चिन्मात्रसत्ता शेषरहती है और उसी में अणुरहते हैं । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! महाप्रलय किसको कहते हैं ? जहां सर्वशब्द और अर्थकाअभाव

है उसका नाम महाप्रलय है । वहां तो शुद्धचिन्मात्र सत्ता रहती है जिसमें वाणीकी गमनहीं तो उसमें सूक्ष्मअणु कैसेहो और कारण कार्यभाव कैसेहो ? रामजीने पूंछा, हे मुनीश्वर ! जो शुद्धचिन्मात्रसत्ताही रहती है तो उसमें जगत् कैसे निकलआताहै ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! विश्व कुछ उपजा हो तो मैं तुम से कहूं कि, इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति होती है पर जो जगत् कुछ उपजाही नहीं तो इसकी उत्पत्ति कैसे कहूं ? जब चिन्मात्रमें चैतता फुरती है तब जगत् अहं त्वमादिक भासताहै सो फुरनाहीरूप है और कुछ उपजा नहीं--वहीरूपहै । हे रामजी ! ज्ञानका जो दृश्यभ्रमसे मिलापहै सोही बन्धनका कारणहै और उसका अभाव होना मोक्षहै । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! ज्ञानके हुये जगत्का अभाव कैसे होताहै ? यहतो दृढ़ होरहाहै इसकी शांति कैसेहोतीहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! सम्यक् ज्ञानसे जो बोध होताहै उस बोधसे दृश्यका सम्बन्ध निवृत्त होताहै । वहबोध निराकार और निज शीतलरूप है उसीसे मोक्षमेंप्रवर्त्तताहै । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! बोध तो केवलरूपहै; सम्यक्ज्ञान किसको कहते हैं जिससे यह जीव बन्धनसे मुक्तहोताहै ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिसज्ञानसे ज्ञेय दृश्यका संयोग नहीं होता उसको केवल ज्ञानी अविनाशी रूप कहतेहैं । जब ज्ञेयका अभाव होताहै तब सम्यक्ज्ञान कहाताहै । जगत् ज्ञेय अविचारसिद्धहै । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! ज्ञानसे ज्ञेय भिन्नहै अथवा अभिन्न है और ज्ञान क्योंकर उत्पन्नहोता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बोधमात्रका नाम ज्ञानहै और उससे ज्ञानज्ञेय भिन्न नहीं । जैसे वायुसे वायुका फुरना भिन्ननहीं । रामजीने पूंछा कि, हे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के जाननेवाले ! जो शशेके सींगकी नाईं ज्ञेय असत्यहै तो भिन्नहोकर क्यों भासती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रांतिसे भासताहै; उसका सद्भाव नहीं है और न भीतर जगत्है न बाहर जगत्है अर्थसे रहित भासताहै । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! अहं त्वमादिक तो प्रत्यक्ष भासते हैं और इनका अर्थसहित अनुभव होताहै तुम कैसे अभाव कहते हो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह सर्व जगत् विराट्पुरुष का वपुहै सो आदिविराट्ही उपजा नहीं तो और की उत्पत्ति कैसे कहिये ? रामजीने पूंछा; हे मुनीश्वर ! जगत् का सद्भाव तो तीनोंकालों में पायाजाताहै पर तुम कहतेहो कि, उपजाही नहीं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसे स्वप्न में सब जगत् अर्थ प्रत्यक्ष भासते हैं पर कुछ उपजे नहीं और जैसे मृगतृष्णा का जल; आकाश में द्वितीय चन्द्रमा और संकल्प नगर भ्रमसे भासता है; तैसेही अहं त्वमादिक जगत् भ्रमसे भासता है । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! अहं त्वमादिक जगत् दृढ़ भासता है तो कैसे जानिये कि, उपजानहीं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो पदार्थ कारणसे उपजताहै वह निश्चय सत्यजाना जाताहै । जब महाप्रलय होती है तब कारण कार्य कुछ

नहीं रहता सब शान्तरूप होताहै और फिर उस महाप्रलयसे जगत् फुरआताहै । इसी से जानाजाताहै कि; सब आभासमात्रहै । रामजीने पूंछा; हे मुनीश्वर ! जब महाप्रलय होती है तब अज और अविनाशी सत्ता शेष रहती है, इससे जानाजाता है कि; वही जगत्का कारणहै । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसाकारण होताहै तैसाही उसका कार्य होताहै उससे विपर्यय नहीं होता । जो आत्मसत्ता अद्वैत और आकाशरूप है तो जगत् भी वहीरूप है । घटसे पटकी नाई और तो कुछ नहीं उपजता ? रामजीने पूंछा, हे भगवन् ! जब महाप्रलय होती है तब जगत् सूक्ष्मरूप होकर स्थित होताहै और उसी से फिर प्रवृत्ति होती है । वशिष्ठजी बोले; हे निःपाप रामजी ! महाप्रलय में जो तुमने सृष्टिका अनुभव किया सो क्यारूप होती है ? रामजी बोले; हे भगवन् ! ज्ञप्तिरूप सत्ताही वहां स्थित होतीहै और तुम ऐसोंने अनुभवभी किया है । कि; आकाशरूप है । सत्य और असत्य शब्दसे नहीं कहा जाता । वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो ! जो ऐसे हुआ तौभी जगत् तो ज्ञप्तिरूप हुआ—इससे जन्म मरणसे रहित शुद्धज्ञानरूपहै । रामजी ने पूंछा, हे भगवन् ! तुम कहतेहो कि, जगत् कुछ उत्पन्न नहीं हुआ भ्रममात्र है सो भ्रम कहां से आया है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जगत् चित्तके फुरनेसे भासता है । जैसे जैसे चित्त फुरता है तैसेही तैसे भासताहै इसका और कोई कारण नहीं। रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! जो यह चित्तके फुरने से भासता है तो परस्पर विरुद्ध कैसे भासते हैं कि, अग्नि को जल नष्ट करता है और जलको अग्नि नष्ट करती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो द्रष्टा पुरुषहै सो दृश्यभावको नहींप्राप्तहोता और ऐसी कुछवस्तु नहीं । भानरूप आत्माही चैतन्य घन सर्वरूप हो भासता है । रामजीने पूँछा; हे भगवन् ! चिन्मात्र तत्त्व आदि अन्त से रहित है और जब वह जगत् को चैतता है तब होता है पर तौभी तो कुछ हुआ ? जगत् को चैतका असंभव कैसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इसका कारण कोई नहीं, इससे चैतका असंभव है । चेतन सदा मुक्ति और अवाच्यपद है। रामजीने पूँछा; हे भगवन् ! जो इसप्रकार है तो जगत् और तत्त्व कैसे फुरते हैं और अहंत्वं आदिक द्वैत कहां से आये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कारण के अभाव से यह जगत् कुछ आदि से उपजा नहीं सर्वशान्तरूप है और नानाभासता है सो भ्रममात्रहै । रामजी ने पूँछा; हे भगवन् ! निर्मलतत्त्व जो सर्वदा प्रकाशरूप है सो निरुल्लेख और अचलरूप है उसमें भ्रांति कैसे है और किसको है ? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी ! कारणके अभावसे निश्चय करके जानो कि; भ्रांति कुछवस्तु नहीं । अहं त्वं आदिक सर्व एक अनामय सत्ता स्थित है । रामजीने पूँछा; हे ब्राह्मण ! मैं भ्रम को प्राप्तहुआ हूँ इससे और अधिक पूँछना नहींजानता और अत्यन्त प्रबुद्ध भी नहीं तो अब क्या पूँछूँ ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह प्रश्नकरो कि; कारण विना जगत्

कैसे उत्पन्न हुआ ? जब विचार करके कारण का अभाव जानोगे तब परम स्वभाव अशब्द पदमें विश्रांति पावोगे। रामजी ने पूँछा; हे भगवन्! मैं यह जानता हूं कि कारण के अभावसे जगत् कुछ उपजा नहीं परन्तु चैतका फुरना भ्रम कैसे हुआ वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कारण के अभाव से सर्वत्र शांतिरूप है। भ्रम भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं। जब तक आत्मपद में अभ्यास नहींहोता तब तक भ्रमभासता है और शांति नहीं होती पर जब अभ्यास करके केवल तत्त्व में विश्रांति पावोगे तब भ्रम मिटजावेगा। रामजीने पूँछा; हे भगवन्! अभ्यास और अनभ्यास कैसे होता है और एक अद्वैत में अभ्यास अनभ्यास भ्रांति कैसे होती है ? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! अनन्त तत्त्वमें शांतिभी कुछवस्तु नहीं और जो आभास शांति भासती है सो महाचिद्घन अविनाशरूप है। रामजीने पूँछा; हे ब्राह्मण! उपदेश और उपदेश के अधिकारी ये जो भिन्न भिन्न शब्द हैं सो सर्व आत्मा में कैसे भासते हैं ? वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! उपदेश और उपदेश के योग्य ये शब्द भी ब्रह्महीं में स्थित हैं। शुद्ध बोध में बंध और मोक्ष दोनों का अभाव है। रामजीने पूँछा; हे भगवन्! जो आदि में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ तो देश, काल, क्रिया और द्रव्य के भेद कैसे भासतेहैं ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देश, काल, क्रिया और द्रव्य के जो भेदहैं सो संवेदनदृश्य में हैं और अज्ञानमात्र भासते हैं—अज्ञानमात्र से कुछ भिन्न नहीं। रामजीनेपूंछा; हे भगवन्! बोधको दृश्यकी प्राप्ति कैसे हुई ? जहां द्वैत और एकता कारणका अभाव है वहां दृश्यभ्रम कैसे है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! बोधको दृश्यप्राप्ति और द्वैत एकका भ्रम मूर्खका विषय है; हम ऐसोंका विषय नहीं। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! अनन्त तत्त्व जो केवल बोधरूप है तो अहं त्वं हमारे में कैसा होताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्धबोध सत्ता में जो बोध का जानना है सो अहं त्वं करके कहाता है।जैसे पवनमें फुरना है तैसेही उसमें चेतना फुरती है। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! जैसे निर्मल अचलसमुद्रमें तरंग और बुद्बुदे होते हैं सो कुछ जल से भिन्ननहीं; तैसेही बोध में बोधसत्ता से भिन्न कुछ नहीं जो अपने आप में स्थित है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो ऐसे है तो किसका किसको दुःख हो। एक अनन्त तत्त्व अपने आप में स्थित और पूर्ण है। रामजीने पूंछा, हे भगवन्! जो वह एक और निर्मल है तो अहं त्वं आदिक कलना कहां से आई और दृढ़ हुई कि, भोक्ताकी नाईं भोगता है ? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! ज्ञेय जो दृश्यसत्ता है उसका जानना उसको बन्धन नहीं क्योंकि; ज्ञानही सर्व अर्थ रूपहोकर स्थित हुआ तो बन्ध और मोक्ष किसको हो ? रामजीने पूछा, हे भगवन्! ज्ञप्ति जो बाह्य अर्थ को देखतीहै—जैसे आकाश में नीलता और स्वप्ने में पदार्थ सो असत्यरूप सत्यहो भासतेहैं; तैसेही यह बाह्य अर्थ भी असत्य

ही सत्य हो भासते हैं । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! कारणसे रहित जो बाह्यअर्थसत्य भी भासते हैं सो भ्रममात्र हैं—भिन्नकुछ नहीं ? रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! जैसे स्वप्नकाल में स्वप्नेके पदार्थों का दुःख होताहै चाहे वे सत्यहों अथवा असत्यहों तैसेही इस जगत्में सत्य और असत्यका दुःख होताहै परन्तु इसकी निवृत्तिका उपाय कहिये । वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो इस प्रकारहै कि; जगत् स्वप्नकी नाईंहै तो यह सब पिण्डाकार भ्रममात्रसे भासताहै और सर्वअर्थ शान्तरूपहै नानात्व कुछनहीं । रामजीने पूंछा; हेभगवन् ! स्वप्नऔर जाग्रत्में पिण्डाकार और पर अपररूप कैसे उत्पन्न होतेहैं और कैसे शांत होते हैं ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! पूर्व अपर का विचार कीजिये कि; जगत् आदिमें क्यारूपथा और अन्तमें क्यारूप होताहै; जब ऐसा विचार होगा तब शांति होजावेगी । जैसे स्वप्ने में स्थूल पदार्थ पिण्डरूप भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं; तैसेही जाग्रत् पदार्थभी आकाशरूपहैं । रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! जब भिन्नभावकी भावना प्राप्त होती है तब जगत्को कैसे देखता है और संस्कार भ्रम शान्त कैसे होता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो निर्वासी पुरुष है उसके हृदय से जगत् का सद्भाव उठ जाता है । जैसे संकल्प नगर और कागद की मूर्ति असत् भासती है, तैसेही उसको जगत् असत् भासता है । रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! जब वासना से रहित पिण्डभाव शान्तहुये जगत् को स्वप्नवत् जानता है तो उसके उपरान्त क्या अवस्था होती है ? वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! जगत् को जीव जब संकल्प रूप जानता है तब वासना निर्वाण होजाती है और पंचतत्त्वों का क्रम उपजना और विनशना लीन होजाता है । तब केवल परमतत्त्व भासता है और सब आकाशरूप होजाता है । रामजी ने पूंछा; हे भगवन् ! अनेक जन्मकी जो वासना दृढ़ होरही है और अनेक शाखा होकर फैली है इसलिये संसार का कारण घोरवासनाही है सो कैसे शान्तहोती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब यथा भूतार्थ ज्ञान होता है तब आत्मा में भ्रांति रूप जगत् स्थितहुआ शान्त होता है । जब पिण्डाकार अर्थ पदार्थ सोजाता है तब कर्मरूप दृश्य चक्रभी शान्त होजाता है जैसे स्वप्ने के पदार्थ जाग्रत् में नष्ट होजाते हैं; तैसेही आत्मतत्त्व के बोध से सब वासना नष्ट होजाती हैं । रामजीने पूंछा हे मुनीश्वर ! जब पिण्डग्रहण निवृत्त हुआ और कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ तब फिर क्या प्राप्तहोता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब पिण्डग्रहण भ्रमशान्त होता है तब जीव निर्मल होकर क्षोभ से रहित होता है; जगत् आस्था दृश्यकी शान्ति होजाती है और चित्त परमात्मतत्त्व को प्राप्तहोता है । रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! यह बालक के संकल्पवत् कैसे स्थित है ? जो संकल्परूप है तो इसके जो जड़में पदार्थ है उसके नष्ट हुये इसको दुःख क्यों प्राप्त होता है और

इस जगत् की आस्था कैसे शान्त होती है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो पदार्थ संकल्प से उत्पन्न हुआ है उसके नष्टकरने में दुःख नहीं होता और जो पूर्व अपर विचार करके चित्तसे रचा जानिये तो भ्रम शान्त होजाताहै। रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! चित्त कैसा है और उससे कैसे रचा विचारिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चित्सत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरतीहै। उसीको संकलपरूप चित्त कहते हैं। उससे रहित विचारने से वासना शान्त होजाती है। रामजी बोले; हे ब्रह्मन् ! चैत्यसे रहित चित्त कैसे होताहै और चित्तसे उदय हुआ जगत् निर्वाण कैसे होता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चित्त कुछ उत्पन्न नहीं हुआ, अनहोताही द्वैत भासता है–कुछ है नहीं। रामजी बोले; हे भगवन् ! जगत् तो प्रत्यक्ष भासता है; जो उपजाही नहीं तो इसका अनुभव कैसेहोता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अज्ञानी को जो जगत् भासता है सो सत्यनहीं और ज्ञानवान्को जो भासता है सो अवाच्यसत्ता अद्वैतरूप है। रामजीने पूँछा; हे भगवन् ! अज्ञानीको तीनोंजगत् जो सत्यनहीं कैसे भासते हैं और ज्ञानवान्को कैसे भासते हैं जो कहने में नहींआता ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अज्ञानीको द्वैतसघन दृढ़भासता है और ज्ञानवान्को सघन द्वैत नहींभासता क्योंकि; आदि तो उपजा नहीं अद्वैत आत्मतत्त्व अवाच्यपद है। रामजीने पूंछा; हे भगवन् ! जोआदि उपजा नहीं तो अनुभव भी न हो पर यह तो प्रत्यक्ष अनुभव होताहै, इसे असत्य कैसे कहिये ? वशिष्ठजी बोले हे रामजी ! असत्यही सत्यकी नाईं हो भासता है–इसी कारण रहित भासता है। जैसे स्वप्ने में पदार्थ का अनुभव होता है तरन्तु वास्तव में कुछनहीं, तैसेही यह असत्यही अनुभव होताहै। रामजी बोले हे भगवन् ! स्वप्ने में असंकल्पमें जो दृश्य शंकाका अनुभव होता है सो जाग्रत् के संस्कार से होता है और कुछ नहीं। वशिष्ठजी ने पूंछा; हे रामजी ! स्वप्ना और संकल्प उसके संस्कार से होता है सो जाग्रत् के संस्कार से कैसे होताहै ? वहीरूपहै अथवा जाग्रत्से अन्यहै ? रामजी बोले; हे भगवन् ! स्वप्ने के पदार्थ और मनोराज जाग्रत् के संस्कार से भ्रम से जाग्रत्की नाईं भासते हैं। वशिष्ठजी ने कहा; हे रामजी ! जो स्वप्ने में जाग्रत् संस्कार से जगत् जाग्रत्की नाईं भासता है कि; स्वप्ने में किसी का घर लुटगया अथवा जलके प्रवाह में बहगया–तो जाग्रत् में तो कुछहुआ नहीं क्योंकि; प्रातःकाल उठकर देखताहै तब ज्योंकात्यों भासता है–तो संसार भी कुछ न हुआ सब कल्पनामात्र जानना। रामजी बोले; हे भगवन् ! अब मैंने जाना कि; यह सब ब्रह्महीहै; न कोई देह है, न जगत् है, न उदय है और न अस्त है; सर्वदाकाल सर्वप्रकार वही ब्रह्मसत्ता अपनेआप में स्थित है और उससे भिन्न जो कुछ भासताहै सो भ्रममात्र है और भ्रमभी कुछवस्तु नहीं सर्व चिदाकाश ब्रह्मरूप है। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो कुछ भासता है सो

सब ब्रह्महीका प्रकाशहै। वही अपने आपमें प्रकाशताहै। रामजीने पूछा; हे भगवन्! सर्गके आदिमें देह चित्तादिक कैसे फुरआये हैं और आत्माका प्रकाशरूप जगत् कैसे है? प्रकाशभी उसका होताहै जो साकाररूप होता है परब्रह्म तो निराकार है उसका प्रकाश कैसे कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्वब्रह्मरूप है। प्रकाश और प्रकाशक का भेद भी कुछनहीं और दूसरी वस्तुभी कुछनहीं वही अपने आपमें स्थित है—इसी से स्वप्रकाश कहाहै। सूर्य आदिक का प्रकाश त्रिपुटी से भासता है सोभी उसके आश्रय होकर प्रकाशता है और उसके प्रकाश का आधारभूत कहाता है जिसके आश्रयहोकर सूर्य जगत् को प्रकाशताहै। आत्मसत्ता अद्वैत और विज्ञानघन है उसमें जो चित्तसंवेदन फुरी है वही जगत्रूप होकर स्थितहुई है। आत्मसत्ता और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत् में भेदनहीं—वही इसप्रकार हुयेकी नाईं स्थित हुआहै। हे रामजी! निराकारही स्वप्नवत् साकाररूप हो भासता है। इस जगत् के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता थी उसीसे जो नानाप्रकार का जगत् दृष्टिआया सो वहीरूप हुआ और कारण तो कोई नहीं। जैसे स्वप्न के आदि अद्वैतसत्ता निराकार है और उससे जो सूर्यादिक पदार्थ भासिआते हैं सोभी वहीरूप हुये पर प्रकट भासते भी हैं; तैसेही इस जगत् कोभी अकारण और निराकार जानो। हे रामजी! न कोई जाग्रत्है; न स्वप्न है और न सुषुप्ति है सब आभासमात्रहै—वही आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। हमको तो वही सदा विज्ञानघन आत्मसत्ता भासतीहै जैसे दर्पणमें अपनामुखभासताहै; तैसेही हमको अपना आप भासता है और अज्ञानी को भ्रांतिरूप जगत् भासता है। जैसे वृक्षके झुण्डमें दूरसे भ्रांति करके पुरुष भासता है; तैसेही अज्ञानी को जगत् भासता है। हे रामजी! न कोई द्रष्टा है और न दृश्य है। द्रष्टा तो तब कहिये जो दृश्यहो; और दृश्य तब कहिये जो द्रष्टाहो; जो दृश्यनहीं तो द्रष्टा किसका और जो द्रष्टाही नहीं तो दृश्य किसका? इससे निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है जो आकार भी भासते हैं तौभी निराकार है—आत्मसत्ताही संवेदन करके आकाररूपहो भासती है और जैसे थम्भेमें चितेरा पुतलियां कल्पताहै कि; इतनी पुतलियां थंभे में निकलेंगी तो उसको खोदे विनाही प्रत्यक्ष भासती हैं; तैसेही खोदे विना ब्रह्मरूपी थंभे में मनरूपी चितेरा ये पुतलियां देखता है सो हुआ कुछनहीं। हे रामजी! इन मेरे वचनों को तुम स्वप्न और संकल्प दृष्टांत से देखो कि; अनुभवरूपही आकारहो भासता है—अनुभव से भिन्न कुछ नहीं। इस मेरे वचनरूपी उपदेश को हृदयमें धारो और अज्ञानियों के वचनको त्यागदो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविद्यावादबोधोपदेशोनाम द्विशताधिकद्विसप्ततितमस्सर्गः २७२॥

रामजी बोले; हे भगवन् ! बड़ा आश्चर्य है कि; हम अज्ञान से जगत्को देखते थे। जगत् तो कुछ वस्तुनहीं सर्वब्रह्मही है और अपने आपमें स्थित है । यह जगत् भ्रम से भासता है। अब मैंने जाना कि; यह जगत् वास्तव में न पीछे था और न आगे होवेगा; सर्वशान्त निरालम्ब विज्ञानघनसत्ता है और भ्रांतिभी कुछ वस्तु नहीं ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है जो निर्विकार और शांतरूप है । जैसे स्वर्ग, परलोक, स्वप्न और सङ्कल्पपुरके आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता होती है और उसका आभास संवेदन स्पन्द फुरती है तो अनेक पदार्थसहित जगत् भासिआता है सो अनुभवरूप होता है भिन्न कुछ वस्तु नहीं; तैसेही यह जगत् अनुभवरूप है। हे प्रभो ! अब मैंने तुम्हारी कृपासे ऐसे निश्चय कियाहै कि; जगत् अविचार सिद्धहै और विचार किये से निवृत्त होजाता है । जैसे शशेके सींग और आकाशके फूल असत्य होते हैं; तैसेही जगत् असत्य है। बड़ा आश्चर्य्य है कि; असत्यरूप अविद्याने जगत् को मोहित किया था। अब मैंने जाना कि; अविद्या कुछ वस्तु नहीं अपनी कल्पनाही आपको बन्धनकरती है। जैसे अपनी परछाहीं में बालक भूतकल्पता है और आपही भय पाताहै; तैसेही अपनी कल्पनाही अविद्यारूप भासती है पर जबतक विचार प्राप्त नहीं हुआ तभी तक भासती है विचार किये से उसका अत्यन्त अभाव होजाता । जैसे जेवरी में सर्प भासता है और जेवरीके जानेसे सर्पका अत्यन्त अभाव होजाता है। जैसे किसी स्थान में भ्रमसे मनुष्य भासताहै; तैसेही आत्मामें भ्रमसे अविद्यारूप जगत् भासताहै। जैसे आकाशके फूल और शशेके सींग कुछ वस्तुनहीं; तैसेही अविद्याभी कुछ वस्तु नहीं। जैसे बन्ध्याका पुत्रभासे तौभी भ्रममात्र जानाजाता है और स्वप्ने में अपने मरनेका अनुभव हो वहभी भ्रममात्र है; तैसेही अविद्यारूप जगत् भासता है तौभी असत्यहै प्रमाणरूपनहीं। प्रमाण उसे कहते हैं जो यथार्थ ज्ञानका साधकहो पर यह जो प्रत्यक्ष प्रमाण है सो यथार्थ कर्त्ता नहीं क्योंकि; वस्तुरूप आत्मा है सो ज्योंका त्यों नहीं भासता सीपीमें रूपेके समान विपर्यय भासताहै। यह प्रत्यक्ष अनुभवभी होता है तौभी असत्य रूप है–प्रमाण क्योंकर जाने । हे भगवन् ! यह जगत् और कुछ वस्तु नहीं केवल कल्पनामात्र है जैसे जैसे आत्मा में संकल्प दृढ़ होताहै; तैसेही, तैसे जगत् भासता है। जैसे जो पुरुष स्वर्ग में बैठाहो उसके हृदय में यदि कोई चिन्ता उपजे तो उसको स्वर्ग भी नरकरूप होजाता है क्योंकि; भावना नरककी होजाती है । हे भगवन् ! यह जगत् केवल वासनामात्र है । आत्मा में जगत् कुछ आरम्भ परिणाम से नहीं बना केवल यह जगत् चित्त में है। जैसे पत्थरकी शिलामें शिल्पी पुतलियां कल्पताहै सो जैसी कल्पता है तैसेही भासती हैं–शिला से भिन्न कुछ नहीं; तैसेही आत्मामें चित्त ने जगत् पदार्थ रचे हैं और जैसे जैसे भावना करता है तैसेही तैसे यह भासता है।

आत्मा में जगत् न कुछ हुआ है और न आगे होगा। ब्रह्मसत्ता केवल अपने आप में स्थित है जो स्वच्छ, अद्वैत, परममौनरूप और द्वैत और एक कल्पनासे रहित है और परममुनीश्वरों के सेवने योग्य है। ऐसा जो पद है सो मैंने पायाहै और अपने आप में स्थित और सर्व दुःखोंसे रहित हूँ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकत्रिसप्ततितमस्सर्ग्गः २७३ ॥

रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर ! आदि, अन्त और मध्यसे रहित जो पदहै और जिसका मुनियोंको भी जानना कठिन है वह पद मैंने पाया है और एक और द्वैतकी कल्पना जो शास्त्र और वेदोंमें कही है वह मेरी मिटगई है। अब मैं परमशान्त होकर निश्शंक हुआहूँ और कोई दुःख मुझको नहीं रहा। सब जगत् मुझको आत्मरूपही भासता है। हे भगवन् ! अब मैंने जाना कि; न कोई अविद्या है; न विद्या है; न सुख है और न दुःख है मैं सर्वदा अपने आत्मपद में स्थित हूँ और पानेयोग्य पद पाया है जो आगे भी प्राप्त था। जो कहते हैं कि, हम उस पदको नहीं जानते उनको भी वह प्राप्तरूप है परन्तु वे अज्ञान से नहीं जानते। वह पद और किसीसे नहीं जानाजाता अपने आपसे जानाजाता है और ऐसे भी नहीं है कि; किसी से जनाइये और जानने योग्य हो; वह तो आपही बोधरूप है और न कोई भ्रांति है; न जगत् है सर्व आत्माही है। हे मुनीश्वर ! अज्ञान और ज्ञान भी ऐसे हैं जैसे स्वप्ने की सृष्टि हो। जैसे उसमें अन्धकार भासता है सो तब नाश होता है जब सूर्य उदयहो। जब स्वप्नेसे जाग उठे तब न अन्धकार रहता है और न प्रकाशही रहता है; तैसेही आत्मपद में जागेसे ज्ञान और अज्ञान दोनों का अभाव होजाता है और द्वितीयकल्पना मिटजाती है। जब संवेदन फुरती है तब जगत् भासता है परन्तु जगत् आत्मासे भिन्न नहीं। जैसे आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं, तैसेही आत्मा और जगत् में भेद नहीं जैसे शिलाका अन्तर जड़ीभूत होता है; तैसेही आत्माका रूप जगत् है जैसे जल और तरंग में भेदनहीं; तैसेही आत्मा और जगत् अभेदरूप है। हे मुनीश्वर ! जिस पुरुष को ऐसे आत्मा में अहंप्रतीति हुई है वह कार्यकर्त्ता दृष्टि आता है तौभी हृदयके निश्चय से कुछ नहीं करता और अशान्तरूप दृष्टिआता है तौभी सदा शान्तरूप है। हे मुनीश्वर ! अज्ञानरूपी मध्याह्न का सूर्य है और जगत् की सत्यतारूपी दिन है। जगत् का भाव अभाव पदार्थरूपी उसका प्रकाश है और तृष्णारूपी मरुस्थल है जिस में अज्ञानी जीवरूपी मार्ग्गपन्थी हैं उनको दिन और मार्ग निवृत्त नहीं होता। जो ज्ञानवान् स्वभावमें स्थित हैं उनको न संसार की सत्यतारूपी दिन भासता है और न तृष्णारूपी मरुस्थल भासता है। वे संसार की ओर से सोरहे हैं। ऐसी अद्वैतसत्ता

उनको प्राप्तहुई है जहां सत्य और असत्य दोनों नहीं इसकारण उन्हें जगत्कलना नहीं भासती। हे मुनीश्वर! अब मैं जागाहूं और सब जगत् मुझको अपना आपही दृष्टिआता है। मैं निर्वाणरूप, निराकार, निरिच्छित और स्वभावसत्तारूपहूं। अब कोई दुःख मुझको नहीं। हे मुनीश्वर! उसपद को मैंने पाया है जिसके पानेसे तृष्णा कदाचित् नहीं उपजती। जैसे पाषाणकी शिलामें प्राण नहीं फुरते, तैसेही मुझमें तृष्णा नहीं फुरती। सर्व आत्मरूपही मुझको भासता है। यह जो जीव है उसमें जीवत्व कुछनहीं; जीवत्व भ्रान्तिसिद्ध है सब आत्मस्वरूप है। मुझको तो निरालम्बसत्ता अपने आपही भासती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनन्नाम द्विशताधिकचतुस्सप्ततितमस्सर्गः २७४॥

रामजी ने पूँछा; हे मुनीश्वर! आत्मामें अनन्तसृष्टिफुरती हैं। जैसे मेघकी बूंदों की गिनती नहीं होती, तैसेही परमात्मा में सृष्टि के अन्तकी गिनती नहीं होती। जैसे एक रत्नकी असंख्यात किरणें होती हैं; तैसेही परमात्मा में असंख्य सृष्टि हैं; कई परस्पर मिलतीं और कई नहीं मिलतीं परन्तु स्वरूप से एकरूपहैं। जैसे समुद्रमें लहरें उठती हैं तो उनमें कई नूतन भिन्न भिन्न औरही प्रकारकी उठती हैं; कई परस्पर ज्ञात होती हैं और कई नहीं होतीं और एकहीज्वाला के बहुतदीपक होते हैं और कोई अन्योन्य और कोई परस्पर मिलते हैं और परस्वरूपसे एकरूप है तैसेही आत्मा में अनन्त जगत् फुरते हैं परन्तु परस्पर एकरूप हैं यदि नानाप्रकार का जगत् दृष्टि आया तो उसमें वहीरूपहुआ और कारण तो कोई नहीं? जैसे शून्य के आदि निराकारसत्ता होती है और उसीसे सूर्यादिक पदार्थ भासिआते हैं सोभी वहीरूपहुये प्रकट भासते भी हैं परन्तु निराकार होते हैं; तैसेही यह जगत् भी अकारण निराकार है। हे मुनीश्वर! अब मैंने ज्योंकात्यों जाना है। जैसे स्वप्नेमें मुयेहुये बोलते हैं, जीतेहुये मृतक दृष्टआते हैं और सब पदार्थ विपर्यय भासते हैं परन्तु जब जागउठे तब सब ज्योंकेत्यों भासते हैं; तैसेही मैं जागउठाहूं अब मुझको विपर्यय नहीं भासता—यथाभूतार्थ मुझको अब सर्वात्माही भासता है। हे मुनीश्वर! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे परमसमाधि में स्थित हैं और उनको उत्थान कदाचित् नहीं होता अर्थात् स्वरूपसे भिन्न नहीं भासता। वे व्यवहार करते दृष्टिआते हैं परन्तु व्यवहारसे रहित हैं क्योंकि; उनको अभिलाषा कुछ नहीं रहती बिना अभिलाषा चेष्टा करते हैं और उनको हृदयसे कुछ कर्त्तृत्वका अभिमान नहीं फुरता। इसीका नाम परमसमाधि है। जब बोधकी प्राप्ति होती है तब तृष्णा कोई नहीं रहती और सब पदार्थ विरस होजाते हैं क्योंकि; आत्मपद परमानन्दरूप है और तृष्णासे रहित है। उसीकानाम मोक्ष है और उसीकानाम निर्वाण है, जिसमें उत्थान

कोई नहीं। हे मुनीश्वर ! आत्मानंद ऐसा पद है जिसके आनन्दको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक और ज्ञानवानोंकीवृत्ति सदा दौड़ती है और संसार के पदार्थोंकी ओर नहीं धावती। जिसपुरुषको शीतलस्थान प्राप्तहुआहै वह फिर ज्येष्ठ आषाढ़की धूपकोनहीं चाहता कि, मरुस्थल में दौड़े; तैसेही ज्ञानवान्की वृत्ति आनंदकीओर नहीं धावती। हे मुनीश्वर ! मैंने निश्चयकिया है कि; तृष्णा कासा ताप कोई नहीं और अतृष्णा कीसी शान्ति कोई नहीं। यदि कोई पुरुष परमैश्वर्य्य को प्राप्तहुआ हो पर उसको हृदयकी तृष्णा जलातीहो तो वह कृपण और दरिद्री है और आपदाका स्थानहै और जो निर्द्धन दृष्टिआताहो परन्तु उसके हृदय में कोई तृष्णा नहीं तो वह परमैश्वर्य से सम्पन्नहै और परम सम्पदाकी मूर्त्तिहै। जो बड़ा पण्डितहो परन्तु तृष्णासहितहो तो उसे परममूर्ख जानिये; उसको बोधकी प्राप्ति कदाचित् नहोगी। जैसे मूर्त्तिकी अग्नि शीतको निर्वाण नहीं करती; तैसेही उसकी मूर्खताको पण्डितभी निर्वाण नहींकरसक्ता। हे मुनीश्वर ! सहस्रोंमें कोई बिरला पुरुष तृष्णासे रहित होताहै। जैसे पिंजरेमें पड़ा सिंह पिंजरेको तोड़कर निकले, तैसेही कोई बिरला तृष्णाकेजालको तोड़कर निकलता है। जो पण्डितस्वरूप को विचारके वितृष्णा नहीं होता और अतीत होकर वितृष्णा नहीं होता तो वे पण्डित और अतीत दोनों मूर्ख हैं। ज्योंज्यों तृष्णाको घटावे त्योंत्यों जाग्रत् बोध उदय होगा। जैसे ज्योंज्यों रात्रिकी क्षीणता होतीहै, त्योंत्यों दिनका प्रकाश होता है और ज्योंज्यों रात्रि की वृद्धि होती है त्योंत्यों दिनकी क्षीणता होती है; तैसेही ज्योंज्यों तृष्णा बढ़ती जावेगी त्योंत्यों बोधकी प्राप्ति कठिन होगी और ज्यों ज्यों तृष्णा घटती जावेगी त्योंत्यों बोधकी प्राप्ति सुगम होगी। हे मुनीश्वर ! अब मैं उस पदको प्राप्त हुआहूं जो अच्युत, निराकार और द्वैत-एक कलना से रहित है। उस पदको मैंने आत्मा से जानाहै और अब मैं निश्शंक हुआहूं। जिस पदके पायेसे कोई इच्छा नहींरही सो परमानन्द आत्मपद है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रान्तिवर्णनंनाम द्विशताधिकपञ्चसप्ततितमस्सर्गः २७५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! बड़ा कल्याणहुआहै कि; तुम जागेहो। ऐसे परमपावन वचन तुमने कहे हैं कि; जिनके सुनने से पापका नाश होताहै। ये वचन अज्ञानरूपी अन्धकारके नाशकर्त्ता सूर्य्य हैं और तन मनके तापको नाशकर्त्ता चन्द्रमाकी किरणें हैं। हे रामजी ! जो पुरुष अपने स्वभावमें स्थित हैं उनको व्यवहार और समाधि में एकही दशा है और वे अनेक प्रकारकी चेष्टा करते भी दृष्टि आते हैं परन्तु उनके निश्चयमें कर्तृत्वका अभिमान कुछ नहीं फुरता, वे सदा परमध्यान में स्थित हैं। जैसे पत्थरकी शिला में स्पन्द कुछ नहीं फुरता; तैसेही उनको कुछ कर्तृत्व बुद्धि नहींफुरती

क्योंकि; उनके हृदय में देहाभिमान निवृत्त हुआ है और चिन्मात्रस्वस्वरूप में स्थित हुईहै। वह आत्मपद परम शांतरूप, द्वैत और कलनासे रहित एकहै। ऐसा जो पद है उसे ज्ञानवान् आत्मतासे जानता है; उसको निर्वाण कहते हैं और उसीको मोक्ष कहतेहैं। हे रामजी! ऐसा जो पदहै उसमें हम सदास्थितहैं और ब्रह्मा, विष्णुसे आदि लेकर जो ज्ञानवान् पुरुषहैं वे भी उसी पदमें स्थितहैं। वे नानाप्रकारकी चेष्टाकरते भी दृष्टि आते हैं परन्तु सदा शांतरूप हैं और उनको क्रिया और समाधिमें एकही आत्मपद निश्चय रहताहै। जैसे वायुस्पन्द और निस्स्पन्दमें एकही है और जल और तरंग ठहरने में एकही है; तैसेही ज्ञानी दोनोंमें समहै। जैसे आकाशरूप और शून्यतामें भेद नहीं; तैसेही आत्मा और जगत्में भेद नहीं। रामजीने पूछा;हे भगवन्! तुम्हारी कृपासे मुझको कोई कलनानहीं फुरती। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसे आदि लेकर जो कुछ जगत्है सो सब आकाशरूप मुझको भासताहै और सर्वदा काल सर्वप्रकार मैं अपने आपमें स्थित अच्युत और अद्वैतरूपहूं। मेरेमें जगत्की कलना कोई नहीं; चित्संवेदन द्वारा मैंहीं जगत्रूपहो भासताहूं पर स्वरूपसे कदाचित् चलायमाननहीं होता। मैं अचैत चिन्मात्र स्वरूपहूं और अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता। वशिष्ठजी बोले;हे रामजी! मैं जानताहूं कि, तुम जागेहो परन्तु अपने दृढ़बोध के निमित्त मुझसे फिर प्रश्नकरो कि,"यह जगत्है नहीं,, तो भासता क्याहै? रामजी बोले; हे भगवन्! मैं तुमसे तो तब पूछूं जो मुझको जगत्का आकार भासताहो मुझ को तो जगत् कुछ भासताही नहीं। जैसे संकल्प के अभाव हुये संकल्पकी चेष्टा भी नहीं भासती; जैसे बाजीगरकी मायाके अभावहुये बाजी नहीं रहती; स्वप्नेके अभाव हुये स्वप्नेकी सृष्टि नहीं भासती और भविष्यत्कथाके पुरुष नहीं भासते; तैसेही मुझ को जगत् नहीं भासता; तो फिर मैं किसका संशय उठाऊं? आदि जो संवेदन फुरी है सो विराट्पुरुष होकर स्थित हुई है और उसीने आगे देश, काल, पदार्थ, स्थावर-जंगम जगत् रचाहै- उसीके समष्टि वपुका नाम विराट्है। जैसे स्वप्नेका पर्वतहो; तैसेही यह विराट्पुरुषहै जो आकाशरूपहै। जो वह आपही आकाशरूप है तो उसका रचा जगत् मैं क्यों पूछूं? जैसे स्वप्नेकी मृत्तिका आकाशरूपहै अर्थात् जो उपजीही अनउपजी है तो उसके पात्रको मैं क्यों पूछूं? इसलिये न कोई विराट् है और न उसका जगत्है; मिथ्याही विराट्है और मिथ्याही उसकी चेष्टा है। केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै; न कोई जगत् है और न कोई उसका विराट् है। जैसे स्वप्नेका पर्वत आभासमात्र होताहै; तैसेही यह जगत् आकार भासताहै। जैसे बीजसे वृक्ष होताहै; तैसेही ब्रह्म से जगत् प्रकट हुआ है। बल्कि, यह भी कैसे कहिये? बीज तो साकार होताहै और उसमें वृक्षकासद्भाव रहताहै जो परिणामसे वृक्ष होताहै और आत्मा ऐसे

कैसेहो; वह तो निराकार है और उसमें जगत् नहीं है क्योंकि; वह निर्विकार, अद्वैत और निर्वेदहै उसको जगत्का कारण कैसे कहिये ? न कोई जाग्रतहै;न स्वप्नाहै और न सुषुप्तिहै; ये अवस्था भी आकाशमात्र हैं । आत्मा परिणामभावको नहीं प्राप्तहोता वह तो सदा अपने आपमें स्थितहै । हेमुनीश्वर ! मैं, तुम, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब आकाशरूपहै और अब मुझको सर्व आत्माही भासता है । हे मुनीश्वर ! एक सविकल्प ज्ञान है और दूसरा निर्विकल्पज्ञान है सो आकाशवत् अचैत चिन्मात्र है । जो दृश्य के सम्बन्ध से रहित है उसे आकाशवत् निर्मल जानो; वही निर्विकल्पज्ञान है । जिनको यह ज्ञान प्राप्त हुआहै कि, वे महापुरुष हैं उनको मेरा नमस्कार है और जिनको दृश्यका संयोग है वे सविकल्प ज्ञानी हैं । वे संसारी हैं और उनको जगत् भिन्न भिन्न विषमता सहित भासता है परंतु तो भी भिन्न कुछ नहीं । जैसे समुद्र में नाना प्रकारके तरंग भासते हैं तो भी जल स्वरूपहैं; तैसेही भिन्न भिन्न जीव और उनका ज्ञान है तो भी मुझको अपना आपही भासता है । जैसे अवयवीको सब अंग अपनेही भासते हैं; तैसेही सर्वजगत् मुझको अपना आपही केवल अद्वैतरूप भासता है और जगत्की कलना कोई नहीं फुरती । जैसे स्वप्ने से जागे को स्वप्ने की सृष्टि नहीं फुरती, कल्पना से रहित अपना आपही अद्वैत भासता है; तैसेही मुझको जगत् कल्पना से रहित अपना आपही भासता है । हे मुनीश्वर ! आगमसे लेकर जो शास्त्र हैं उनसे उल्लंघ कर मैंने वचन कहेहैं परन्तु जो मेरे हृदय में है वही कहा है । जो कुछ हृदय में होता है वही बाहर से वाणी से कहाजाता है । जैसे जो बीज बोया है सोई अंकुर निकलता है, बीज विना अंकुर नहीं निकलता; तैसेही जो कुछ मेरे हृदय में है सोई वाणीसे कहता हूं । यह विद्या सर्व प्रमाणसे सिद्ध है । हे मुनीश्वर ! जिसको यहदशा प्राप्त है वही जानताहै और कोई नहीं जानसक्ता । जैसे जिसने मद्यपान किया है वही उन्मत्तताको जानताहै और कोई नहीं जानसक्ता; तैसेही जो ज्ञानवान् है वही आत्मरसको जानता है और कोई नहीं जानता । उस आत्मरस के पानेसे फिर कोई कल्पना नहीं रहती । हे मुनीश्वर ! मैं आत्माअजन्मा, अविनाशी और परमशान्तरूपहूँ; उभय एककी कल्पना सेरहित अचेत चिन्मात्रहूँ और जगत्रूप हुयेकी नाईंभी मैं भासताहूं पर निराभास हूं; मेरेमें आभासभी कोई वस्तुनहीं क्योंकि; निराकार हूं । इसप्रकार मैंने अपने आप को यथार्थ चिन्मात्र जाना है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेरामविश्रांतिवर्णनन्नाम
द्विशताधिकषट्सप्ततितमस्सर्गः २७६ ॥

बाल्मीकिजीबोले, हे भरद्वाज ! इसप्रकार कहकर रामजी एकमुहूर्त्तपर्यंत तूष्णीहो गये अर्थात् उन्होंने परमात्मपदमें विश्रांतिपाई और इन्द्रियों और मनकी वृत्तिआत्म

पदमें उपशमहुई। उसके उपरांत जानकरभी कमलनयन रामजी ने लीला के निमित्त प्रश्नकिया कि, हे संशयरूपी मेघके नाशकर्त्ता शरत्काल! मुझको एक कोमलसा संशय हुआ है उसको दूरकरो? हे मुनीश्वर! आत्मपद अव्यक्त और अचिन्त्यहै अर्थात् इंद्रियों और मनका विषय नहीं और मनकी चिन्तना में भी नहीं आता और जो बड़े महापुरुषहैं उनके कहने में भी नहीं आता तो ऐसा जो अचैत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है वह शास्त्र से कैसे जानाजाता है? शास्त्र तो अविच्छेद प्रतियोगी करके कहतेहैं सो सविकल्प है पर सविकल्पसे निर्विकल्प पद कैसे जानाजाता है कि; गुरु और शास्त्र से जानिये? विकल्परूप शास्त्र हैं उनमें भी सार अर्थ मिलताहै परन्तु विकल्प परिच्छेद प्रतियोगीजो उसके साथ हैं उनसे सर्वात्मा क्योंकर जानिये? वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! वहगुरु और शास्त्रसे नहीं जानाजाता और गुरु और शास्त्र विना भी नहीं जानाजाता। हे रामजी! नानाप्रकारके जो विकल्परूप शास्त्र हैं उनसे निर्विकल्प रूप कैसे जानता है सो भी सुनो। हे रामजी! व्यवधान देश के एक किटक थे जो गृहस्थी में रहते थे, निदान उनको आपदा प्राप्तहुई और चिन्ता से दुर्बल होनेलगे और भोजनभी न मिले जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढ़ के धूप से सूखजाती है और जैसे जलसे निकला कमल सूखजाताहै; तैसेही सम्पदारूपी जलसे निकलकर आपदारूपी धूपसे किटक सूखगये। तब उन्हों ने विचारकिया कि; किसीप्रकार हमारा उदरपूर्णहो इसलिये हम वनमें जाकर लकड़ी चुनें कि, हमाराकष्ट दूरहो। हे रामजी! ऐसे विचार करके वे वनमें गये और लकड़ियां ले आये। इसीप्रकार वे लकड़ियां लेआवें और बाजारमें बेंचकर उदर पूर्णकरें। जब कुछकाल व्यतीत हुआ तब उनमें से किसी एकने चन्दन की लकड़ी पहिंचानी और उनसे विशेषमोल पाया। इसीप्रकार एकको ढूँढ़ते ढूँढ़ते रत्न प्राप्तहुये और उनको विशेष ऐश्वर्य प्राप्त हुआ इसलिये उन्होंने लकड़ी उठानी छोड़दी। वे फिर और स्थान ढूँढ़ने लगे कि; रत्नसे भी विशेष कुछपाइये और वनकी पृथ्वीको खोदतेखोदते उनको चिन्तामणि मिली, इसलिये उनको बड़ाही ऐश्वर्य प्राप्त हुआ और जैसे ब्रह्मा; इन्द्रादिकहैं तैसेहीहोगये। हे रामजी! जिन्होंने उद्यमकरकेवनकी सेवनाकीथी उनको बड़ा सुख प्राप्तहुआ कि; लकड़ियां उठाते २ उनका उदरपूर्णहुआ और दुःख निवृत्त हुआ; जिनको चन्दनकी लकड़ी प्राप्त हुई उनका उदरपूर्ण होने से और भी सन्ताप मिटे और जिनको चिन्तामणि प्राप्तहुई उनके सर्व सन्ताप मिटगये और वे परमैश्वर्यवान् हुये परन्तु सबको वनसे प्राप्तहुआ और जो वनके निकट उद्यम करनेनगये घरहीबैठेरहे उन्होंने दुःखितहोकर प्राणोंको त्यागदिया परन्तु सुख न पाया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिन्तामणिप्राप्तिर्नाम
द्विशताधिकसप्तसप्ततितमस्सर्गः २७७॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! यह जो तुमने किटकका वृत्तांत कहा उसका तात्पर्य मैंने कुछ न जाना। वे कीट कौन कौन थे; वह वन क्या था और आपदा क्याथी सो कृपाकर-के प्रकट कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ये सर्व जीव जो तुम देखतेहो सो सब कीट हैं और उनको अज्ञानरूपी आपदा लगी है और आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आ-धिदैविक तापोंकी चिंता से वे जलते हैं। आध्यात्मिक काम क्रोधादिक मानसी दुःखहैं; आधिभौतिक देहके वात, पित्त, कफ आदिक दुःखहैं और आधिदैविक वे दुःख हैं जो ग्रहों से अनिच्छित प्राप्त होतेहैं। हे रामजी! उनमें प्रयत्न करके जो शास्त्ररूपी वन में गये हैं सो सुखीभये और जो अर्थी सुख के निमित्त शास्त्ररूपी वन को सेवते हैं उन को सत्यकर्मरूपी लकड़ियां प्राप्तहोती हैं जिनसे नरकरूपी उदर पूर्णका जो दुःख था सो निवृत्त होता है और स्वर्गरूपी सुखपातेहैं। फिर शास्त्ररूपी वन को सेवते सेवते उपा-सनारूपी चन्दनवृक्ष प्राप्त होता है उससे और दुःख भी निवृत्त होते हैं और विशेष सुखको पातेहैं जब अपने इष्टदेवको सेवता है तब स्वर्गादिक विशेष सुखपाता है और अपने स्थानको प्राप्त होता है। फिर जब शास्त्ररूपी वनको ढूंढ़ता है तब विचाररूपी रत्नविशेष पाता है। जब सत्य असत्यका विचार प्राप्त होताहै तब सर्वदुःख नष्टहोजाते हैं। यह जो सुख प्राप्त होता है सो शास्त्रसेही होता है। जैसे चन्दन और लकड़ियां आदि पदार्थ वनमें प्रकटथे और चिंतामणि गुप्तथी; तैसेही और शास्त्रोंमें धर्म, अर्थ और काम प्रकटहैं और ज्ञानरूपी चिंतामणि गुप्तहै। जब दूसरे शास्त्ररूपी वन को वैराग्य और अभ्यासरूपी यत्न से खोजे तब आत्मरूपी चिंतामणि पाता है। हे रामजी! वनमेंही उसने चिंतामणि पाईथी क्योंकि; वहां चिंतामणिका वन था परंतु जब अभ्यास किया था तब पाई थी और उसी वन में पाई थी; तैसेही गुरु और शास्त्र का भी जब मट्टी के खोदने के समान अभ्यास करता है तब आपही चिंतामणिवत् आत्मप्रकाश होता है। जैसे मट्टी के खोदने से चिंतामणिका प्रकाश नहीं उपजता क्योंकि, चिंता-मणि तो आगेही प्रकाशरूप थी; खोदने से केवल आवरण दूर हुआ तब आप-ही भासिआई; तैसेही गुरु और शास्त्रों के वचन के अभ्यास से अन्तःकरण शुद्ध होता है तब आत्मसत्ता स्वतः प्रकाश आती है। गुरु और शास्त्र हृदयकी मलिनता दूर करतेहैं और जब मलिनता दूर होती है तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशतीहै। इससे गुरु और शास्त्रों से मलिनता दूर होती है परन्तु इनकी कल्पनाभी द्वैतमें होती है सो कल्पना द्वैत संसार को नाशकरनेवाली है। परमार्थ की अपेक्षा से शास्त्र और गुरु भी द्वैत कल्पना हैं और अज्ञानीकी अपेक्षा से गुरु और शास्त्र कृतार्थ करतेहैं और इनके अभ्यास से आत्मपद पाता है। प्रथम अज्ञानी शास्त्र को भोग के निमित्त सेवते हैं और शास्त्र में भोग का अर्थ जानते हैं। जैसे लकड़ियों के निमित्त वे कीट वनको

सेवते थे। शास्त्र में सबकुछहै; जैसे जिसको रुचिसे अभ्यास होताहै तैसेही पदार्थ उसको प्राप्तहोतेहैं। शास्त्र एकही है परन्तु पदार्थों में भेद है। जैसे पौंड़े के रससे गुड़, शक्कर और मिश्री होतीहै; तैसेही शास्त्रएकहै उसमें पदार्थ भिन्न भिन्नहैं। जिस जिस अर्थके पाने के निमित्त कोई यह यत्न करेगा उसी को पावेगा—शास्त्र में भोग भी हैं और मोक्षभीहैं। अज्ञानी भोगके निमित्त यत्न करते हैं परन्तु वे भी धन्य हैं क्योंकि; शास्त्र तो सेवने लगे; उन्हें सेवते सेवते कभी किसी कालमें आत्मपदरूपी चिंतामणि भी प्राप्त होवेगी परन्तु आत्मपद पाने के निमित्त शास्त्र श्रवण करना योग्य है। सुनसुनकर अभ्यास द्वारा आत्मपद प्राप्तहोगा आत्मपद पानेसे तत्र सर्वओर से समभाव होगा। जैसे सूर्यके उदयहुये सर्वओरसे प्रकाश फैलजाताहै; तैसेही सर्व ओरसे समता प्रकाशेगी तब सुषुप्ति की नाईं स्थितिहोगी अर्थात् द्वैत और एक कलना भी शांत होजावेगी और अनुभव अद्वैतमें जाग्रत् होगी परंतु संतों के संग और शास्त्रों के विचार अभ्यास द्वारा होगी। जो जन परोपकारी संसारसमुद्र से पारकरनेवालेहों सोही सन्तजन हैं; उनके संगसे आत्मपद प्राप्त होगा। हे रामजी! गुरु और शास्त्र नेति नेति करके जानते हैं अर्थात् अनात्म धर्म को निषेध करके आत्मतत्त्व शेष रखते हैं। जब अनात्म धर्म को त्याग करोगे तब आत्मतत्त्व शेषरहेगा। उसको जानलोगे तो उसके जानेसे और कुछ जानना नहीं रहता और उसके जानने में यत्न भी कुछ नहीं केवल आवरण दूरकरने के निमित्त यत्न है। जैसे सूर्य के आगे बादल आता है तो सूर्य नहीं भासता इसलिये बादलों के दूरकरने का यत्न चाहिये सूर्य के प्रकाश के निमित्त यत्न नहीं चाहिये। जब बादल दूर होते हैं तब स्वाभाविकही सूर्य प्रकाशता है; तैसेही गुरु और शास्त्र के यत्नसे जब अहंकाररूपी आवरण दूरहोते हैं तब सुप्रकाश आत्मा भासिआता है सात्त्विकगुणी जो गुरु और शास्त्रहैं उनसे जब रज और तमगुणों का अभाव होता है तब परमअनुभव ज्योति आत्मा अकस्मात् प्रकाशिआता है और जब वह प्रकाशहुआ तब उस में उन्मत्त होजाता है और द्वैतरूपी संसार की कल्पना नहीं रहती। जैसे सुन्दर स्त्रीको देखकर कामीपुरुष उन्मत्त होजाता है और संसारकी सुरति भूलजाती है; तैसेही ज्ञानी आत्मपदको पाकर उन्मत्त होता है और संसार की सुरति उसे भूलजाती है और परमैश्वर्यवान् होता है। उसका साधन केवल शास्त्र का विचार है। वनके सेवने से चिंतामणि पानेका जो दृष्टांत कहा है सो जानलेना॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेगुरुशास्त्रोपमावर्णनंनाम द्विशताधिकाष्टसप्ततितमस्सर्गः २७८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ सिद्धांत संपूर्ण है सो मैंने तुमसे विस्तारपूर्वक कहाहै उसके सुनने और बारंबार विचारने से मूढ़ भी निरावरणहोंगे तो उत्तम पुरुष को

निरावरण होनेमें क्या आश्चर्य है ? हे रामजी ! यह मैंभीजानताहूँ कि; तुम विदितवेद हुयेहो प्रथम मैंने उत्पत्तिप्रकरण तुम से कहा है कि; जगत्की उत्पत्ति चित्त संवेदनसे हुईहै, फिर स्थितिप्रकरण कहा है कि; जगत् की स्थिति इसप्रकार हुई है। उत्पत्ति यह कि, चित्त संवेदन के फुरनेसे जगत् उपजाहै और संवेदन फुरनेकी दृढ़तासेही उसकी स्थिति हुईहै । उसके उपरांत उपशमप्रकरण कहाहै कि; मन इसप्रकार अंकुर होताहै ; जब चित्त उपशमहुआ तब परमकल्याण हुआ । मनके फुरनेका नाम संसारहै । जब मन उपशम होजाता है तब संसार की कल्पना मिटजातीहै । यह संपूर्ण विस्तारपूर्वक कहाहै परन्तु अब जानता हूँ कि; तुम बोधवान् हुयेहो । हे रामजी ! मैंने तुमसे प्रथम भी आत्मज्ञान का उपाय कहा है और जिनको ज्ञान प्राप्त हुआ है उनके लक्षण भी कहे हैं और अबभी संक्षेपसे कहता हूँ । प्रथम बालअवस्था में सन्तजनों का संग करना चाहिये और सच्छास्त्रों को विचारना चाहिये । इस शुभ आचार से अभ्यास द्वारा जब आत्मपद की प्राप्ति होती है तब समता प्राप्त होतीहै और सब का सुहृद् होजाता है । सुहृदता परमानन्दरूप जननी है जो सदा संग रहती है । जैसे सुन्दर पुरुष को देखकर उसकी स्त्री प्रसन्न होतीहै और प्राणका त्यागना भी अंगीकार करती है परन्तु उस पुरुष को नहीं त्यागती; तैसेही जिस ज्ञानवान् पुरुषकी ब्रह्मलक्ष्मी से सुन्दर कांति है उसको समता, मुदिता और सुहृदतारूपी स्त्री नहीं त्यागती; सदा उसके हृदयरूपी कंठ में लगी रहती है और वह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी ! जिसको देवताओं का राज्य प्राप्त होताहै वह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता और जिसको सुन्दर स्त्रियां प्राप्त होती हैं वहभी ऐसा प्रसन्न नहीं होता जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होता है । हे रामजी ! समता तो द्विधारूपी अन्धकारका नाश-कर्त्ता सूर्य है और तीनों तापरूपी उष्णता के नाश करने को पूर्णमासी का चन्द्रमा है सुहृदता और समता सौभाग्यरूपी जलका नीचास्थान है । जैसे जल नीचे स्थानमें स्वाभाविकही चलाजाता है ; तैसेही सुहृदता में सौभाग्यता स्वाभाविक होती है । जैसे चन्द्रमाकी किरणों के अमृत से चकोर तृप्तवान् होताहै; तैसेही आत्मरूपी चन्द्रमा की समता और सुहृदतारूपी किरणों को पाकर ब्रतादिक चकोर तृप्त होकर आनन्दवान् होते हैं और जीते हैं । हे रामजी ! वह ज्ञानवान् ऐसी कांति से पूर्ण है जो कदाचित् क्षीणनहीं होती । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमामें भी उपाधि दृष्टि आती है परन्तु ज्ञानवान् के मुखमें तैसी भी उपाधिनहीं । जैसे उत्तम चिन्तामणि की कांति होती है, तैसेही ज्ञानवान् की कांति होती है जो राग द्वेषसे कदाचित् क्षीण नहीं होती । वह सदा प्रसन्न रहता है । हे रामजी ! समताही मानों सौभाग्यरूपी कमलकी खानि है । समदृष्टि पुरुष ऐसे आनन्दकेलिये जगत्में विचरताहै और प्राकृत आचारको करताहै ।

वह भोजनकरताहै, ग्रहणकरताहै वा कुछलेतादेताहै सबलोग उसकेकर्तृत्वकी स्तुतिकरतेहैं। हे रामजी! ऐसा पुरुष ब्रह्मादिकोंसे भी पूजनेयोग्यहै; सबही उसका मानकरतेहैं और सब उसके दर्शनकी इच्छा करतेहैं और दर्शनकरके प्रसन्नहोतेहैं। जैसे सूर्य के उदयहुये सूर्यमुखी कमल खिलआतेहैं और सर्वहुलासको प्राप्तहोते हैं; तैसेही उस का दर्शन करके सब हुलासको प्राप्तहोतेहैं। वह जो करताहै सो शुभआचारही करताहै और जो कुछ और भी करबैठताहै तौभी उसकी निन्दा लोग नहीं करते क्योंकि; जानतेहैं कि; यह समदर्शी है। समतासे वह सबका सुहृद् होताहै और शत्रुभी उसके मित्र होजातेहैं। जिनको समताभाव उदयहुआ है उनको अग्नि जला नहीं सक्ता; जल डुबानहींसक्ता और वायु सुखानहींसक्ता। वह जैसीइच्छाकरे तैसेही सिद्धिहोतीहै। हे रामजी! जिसको समता प्राप्तहुई है वह पुरुष अतोल होजाताहै और संसार की उपमा उसको कोई दे नहीं सक्ता। जिसको समता नहीं प्राप्तहुई वह सबके संग सुहृदता का अभ्यासकरे तो जो उसका शत्रुहो वहभी मित्रहोजाता है क्योंकि; अभ्यासकी दृढ़तासे शत्रुभी मित्र भासने लगतेहैं। जो सर्वमें समताका अभ्यास करताहै वही दृढ़ होताहै और समताभावसे कदाचित् चलायमान नहीं होता। हे रामजी! एकराजाथा उसने अपने शरीरका मांसकाट क्षुधार्थीको दिया परन्तु समतासे चलायमान न हुआ; ज्योंका त्योंरहा। एक पुरुषको उसकी पुत्री अतिप्यारीथी और उसने उसे किसीको दिया जिसने शत्रुकोदी परंतु वह ज्योंका त्योंरहा। एक और राजाथा जिसको स्त्री अति प्यारीथी पर उसने उसका कुछ व्यभिचारसुना और मारडाला परंतु समतारूपधर्मको न त्यागा। हे रामजी! जब राजाके गृहमें मंगलहोताहै तब वह अपने नगरकोभूषणों और वस्त्रोंसे सुन्दर करताहै और प्रसन्न होताहै सो अवस्था राजा जनककी देखीथी। एक समय उसने सर्वस्थान अतिप्रज्वलित अग्निसे जलते देखे पर अपने समताभावसे चलायमान न हुआ। एक और राजाथा उसने राज्यभी औरको देदिया और आपराज्यविना विचरतारहा परंतु समताभावसे चलायमान न हुआ। हे रामजी! एक दैत्यथा उसको देवताओंका राज्यमिला और फिर राज्यनष्ट होगया परंतु दोनों भावों में वह समहीरहा। एकबालकथा उसने चन्द्रमाको लड्डू जानकर फूंकमारी परन्तु वह ज्योंका त्योंरहा। हे रामजी! इसीप्रकार मैंने अनेक देखे हैं जिनको सम्यक् आत्मज्ञान प्राप्त हुआहै और वे सुख दुःखसे चलायमान नहींहुये। हे रामजी! ज्ञानी और अज्ञानीका प्रारब्धभोग तुल्य है परंतु अज्ञानी राग द्वेषसे तपायमान होताहै और ज्ञानी दृढ़समझके वशसे तपायमान नहीं होता, सर्व अवस्थाओंमें उसको समताभावहोता है। जो फल आत्मपदके साक्षात् होनेसे प्राप्तहोताहै सो तप, तीर्थ, दान और यज्ञसे प्राप्तनहीं होता। जब अपना विचार उत्पन्न होताहै तब सर्व भ्रांति निवृत्तहोजाती हैं और सर्व ज-

गत् आत्मरूपही भासताहै । इसीं दृष्टिको लिये ज्ञानी प्राकृत आचारमें विचरते हैं परंतु निश्चय में सदा निर्गुणहैं । रामजीने पूंछा; हे मुनीश्वर ! ऐसी अद्वैतदृष्टिनिष्ठा जिनको प्राप्तहुई है उनको कर्मोंके करने से क्या प्रयोजनहै; वे त्याग क्यों नहीं करते ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठ हैं उनसे त्याग ग्रहणकी भ्रांति चली जाती है और उस भ्रमसे रहित होकर वे प्रारब्धके अनुसार चेष्टा करते हैं । हे रामजी ! जो कुछ स्वाभाविक क्रिया उनको बनपड़ी है उसका वे त्याग नहीं करते । उसमें उनको ज्ञान प्राप्तहुआ है सो आचार करते हैं—और को ग्रहण नहीं करते और उसका त्याग नहीं करते । हे रामजी ! जिनको गृहस्थीहीमें ज्ञानप्राप्तहुआहै वे गृहस्थीही में विचरते हैं उसका त्याग नहीं करते—जैसे हम स्थित हैं और जिनको राज्यमें ज्ञान प्राप्त हुआहै सो राज्य हीमें रहे हैं–जैसे तुमहो । जो ब्राह्मण को ज्ञान प्राप्त हुआहै वह ब्राह्मणही के कर्मों में रहे हैं और इसीप्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जिस वर्णाश्रममें किसीको ज्ञानप्राप्त हुआ है वही कर्म करताहै । हे रामजी ! कई ज्ञानवान् गृहस्थीहीमें रहे हैं; कई राज्यही करते हैं; कई संन्यासी होरहे हैं; कई वनमें विचरते फिरते हैं; कई पर्वत कन्दरामें ध्यानास्थित होरहेहैं; कई नगरोंमें रहतेरहेहैं; कई मथुरा, केदारनाथ, प्रयाग, जगन्नाथ इत्यादिकमें रहेहैं; कई देवताकापूजन; कई कर्म; कई तीर्थ और अग्निहोत्र करते हैं और कई हमारीनाईं जप करते हैं । कई अस्ताचलपर्वत में; कई उदयाचलपर्वत में और कई मन्दराचल, हिमाचल इत्यादिक पर्वत स्थानोंमें विचरते रहेहैं । कई शास्त्रविहित कर्म्म करते रहेहैं; कई अवधूत होरहे हैं; कई भिक्षामांगमांग भोजन करते रहे हैं कई कठिन वचन बोलते रहे हैं; कई अज्ञानीहुये विचरते रहे हैं और कई विद्याध्ययन इत्यादिक नानाप्रकारकी चेष्टा करते रहेहैं क्योंकि; उनको चेष्टा स्वाभाविक प्राप्तहुई है; वे यत्नसे कुछ नहीं करते । हे रामजी ! वे शुभकर्म करें अथवा अशुभकर्मकरें परन्तु कोई क्रिया उनको बन्धन नहीं करती और जो अज्ञानी हैं सो जैसे कर्मकरेंगे तैसेही फलको भोगेंगे । जो पुण्यकर्मकरेंगे तो स्वर्गसुख भोगेंगे और पापसे नरकदुःख भोगेंगे । जो कामनासे रहित शुभकर्म करेगा उसका अन्तःकरण शुद्धहोगा और सन्तों के संग और सच्छास्त्रों से शुद्धताको प्राप्त होगा । हे रामजी ! जो अर्द्धप्रबुद्ध हैं वे पाप करने लगजावें और आत्मअभ्यास त्यागदें तो वे दोनों मार्गों से भ्रष्टहैं—न स्वर्गको प्राप्तहोते हैं और न आत्मपदको प्राप्त होतेहैं । तप,दान,तीर्थादिक सेवनेसेभी आत्मपद नहीं प्राप्तहोता; जब विचार उपजताहै और आत्मपदका अभ्यास होताहै तभी आत्मपद मिलताहै और जब आत्मपद प्राप्त होताहै तब निश्शंकहोजाताहै और चेष्टाव्यवहार करता भी दृष्टिआता है परन्तु उसका चित्त शांत होजाताहै । जैसे तांबेको जब पारसका स्पर्श कीजिये तब वह सुवर्ण होजाताहै; आकार उसका नष्टही रहता है परन्तु तांबेभावका अभाव होजाताहै; तैसेही जब

चित्तको आत्मपदका स्पर्शहोता है तब चित्त शान्त होजाताहै परन्तु चेष्टा उसीप्रकार होतीहै और जगत् की सत्यता नष्ट होजाती है । हे रामजी! अब तुम जागेहो और निश्शंकहुयेहो। रागद्वेष तुम्हारा नष्ट होगया है और तुम निर्विकार आत्मपदको प्राप्त हुयेहो। जन्म, मृत्यु, बढ़ना, घटना, युवा और वृद्धहोना; इन सर्व्वविकारों से रहित आत्मपदको तुमने पाया है और सर्वका अधिष्ठान जो परम शुद्ध चैतन्यहै सो तुमको प्राप्त हुआहै। हे रामजी! जो कुछ मुझको कहना था सो कहा। यह सारकासार आत्मपदहै और जो कुछ जानने योग्य था सो तुमने जाना इसके उपरान्त न कुछ कहना रहाहै और न कुछ जानना रहाहै—यहींतक कहना और जाननाहै । अब तुम निश्शंक होकर विचरो तुमको संशय कोई नहीं रहा और क्षय और अतिशयसे रहित पद तुमने पायाहै अर्थात् तुमने अविनाशी और सर्व से उत्तमपद पायाहै। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! जब इस प्रकार मुनियों में शार्दूल वशिष्ठजी कहकर तूष्णी होरहे तब सर्वसभा जो बैठीथी सो परम निर्विकल्प पदमें स्थित होगई और जैसे वायुसे रहित कमल फूल पर भँवरे अचल होते हैं, तैसेही चित्तरूपी भँवरे आत्मपदरूपी कमलके रसको लेते हुये स्थित होरहे। सबके सब ब्रह्मको जानकर ब्रह्मरूपहुये और ब्रह्महीमें स्थितहुये। निकट जितने मृगथे वेभी तृणकाखाना छोड़कर अचल होगये; दूसरे पशु; पक्षीभी सुन कर निस्स्पन्दहोरहे और स्त्रियां जो बालकों संयुक्त चपलथीं वे सुनकर जड़वत् होगईं पूर्व जो मुक्तिमान् सिद्धोंके गण मोक्ष के उपायके श्रवणको आये थे और देवता अरु सिद्धोंने तमाल, कदम्ब, पारिजात, कल्प इत्यादिक दिव्य वृक्षों के फूलोंकी वर्षाकी और नगारे, भेरी और शंख बजने और वशिष्ठजीकी स्तुति करनेलगे । निदान बड़े शब्द हुये जिनसे दशों दिशा पूर्ण होगईं और ऊपरसे देवतों और सिद्धों के नगारों के शब्द हुये जिनसे पर्वतों में शब्दभाव उठे और दिव्यफूलोंकी ऐसी सुगन्धि फैली—मानों पवन भी रंगित हुआहै। तब सिद्धों ने कहा; हे वशिष्ठजी! हमनेभी अनेक मोक्षके उपाय सुने और उच्चार किये परन्तु जैसा तुमने कहा है तैसा न आगे सुनाहै; न गायाहै और न कहा है। जो तुम्हारे मुखारविंदसे श्रवण किया है उससे हम परमसिद्धांत को जानगये हैं। इसके श्रवण से पशु, पक्षी और मृगभी कृतार्थ हुये हैं और मनुष्यों की तो क्या वार्त्ता कहिये वे तो कृतार्थही हुये हैं और निष्पाप ज्ञानको पाकर मुक्तहोंगे। बाल्मीकिजी बोले; हे साधो! ऐसे कहकर उन्होंने फिर फूलोंकी बर्षाकी और वशिष्ठजीको चन्दन का लेप किया। जब इस प्रकार वे पूजा करचुके तब और जो निकट बैठे थे सो परमविस्मयको प्राप्तहुये कि; ऐसा परम उपदेश वशिष्ठजी ने किया। तब राजा दशरथ उठखड़ाहुआ और हाथ जोड़कर वशिष्ठजी को नमस्कार करके बोला; हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से हम षडैश्वर्यों से सम्पन्न हुये हैं । हे भगवन्! तुमने सम्पूर्ण

शास्त्र सुनाया है जिसको सुनकर हम पूजन करनेके योग्य हैं; इसलिये हे देव! हम तुम्हारा पूजन किससे करें? ऐसा कोई पदार्थ पृथ्वी आकाश और देवताओं में भी नहीं दृष्टि आता जो तुम्हारी पूजाके योग्यहो–सर्व पदार्थ कल्पित हैं; और जो सत्य पदार्थ से पूजाकरें तो सत्य तुमहींसे पाया है। इससे ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो तुम्हारी पूजाकेयोग्यहो तथापि अपनी २ शक्तिके अनुसार हम पूजन करते हैं तुम क्रोधवान् न होना और हँसी भी न करना। हे मुनीश्वर! मैं राजा दशरथ; मेरे अन्तःपुरकी संपूर्ण स्त्रियां; मेरे चारोंपुत्र; मेरा सम्पूर्ण राज्य और सम्पूर्ण प्रजा सहित जो कुछ मैंने लोक में यश किया है और परलोकके निमित्त पुण्य किया है वह सर्व तुम्हारे चरणोंके आगे निवेदन करताहूं। हे साधो! इस प्रकार कहकर राजा दशरथ वशिष्ठजी के चरणों पर गिरे। तब वशिष्ठजी बोले; हे राजन्! तुम धन्यहो, जिनको ऐसी श्रद्धा है परन्तु हम तो ब्राह्मण हैं हमको राज्य क्या करना है और हम राज्यका व्यवहार क्या जानें? कभी ब्राह्मणने राज्य किया है; राजा तो क्षत्रियही होते हैं; इसलिये तुमहीं से राज्यहोगा। यह जो तुम्हारा शरीर है उसे मैं अपनाही जानताहूं और ये तेरे चतुष्टय पुत्र मैं आगे से अपने जानताहूं। हम तो तुम्हारे प्रणामसेही संतुष्ट हैं; यह राज्यका प्रसाद हमने तुमकोही दिया। फिर बाल्मीकिजी बोले कि; जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब राजा दशरथने फिर कहा कि; हे स्वामिन्! तुम्हारेलायक कोई पदार्थ नहीं। तुम ब्रह्मांडके ईश्वरहो बल्कि तुमसे ऐसे वचन कहते भी हमको लज्जा आती है परन्तु योग के निमित्त तुम्हारे आगे बिनती की है कि; मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवणकिया है इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हारा पूजनकरें। तब वशिष्ठजी ने कहा; बैठो और राजा बैठगया। फिर रामजीने निरभिमान होकर कहा; हे संशयरूपी तिमिर के नाशकर्त्ता सूर्य! तुम्हारा पूजन हम किससे करें ? कोई पदार्थ गृहमें अपना नहीं। हे गुरो! मेरे पास और कुछ नहीं है केवल एक नमस्कारही है। ऐसे कहकर वे चरणोंपर गिरे और नेत्रों से जल चलनेलगा। वे वारंवार उठें और आत्मानन्द प्राप्तिके उत्साह से फिर गिरपड़ें। निदान जब वशिष्ठजीने कहा बैठजावो तब रामजी भी बैठगये। फिर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राजर्षि और ब्रह्मर्षि आदि सब अर्घ्यपाद्यसे पूजनेलगे और फूलों की वर्षाकी जिससे वशिष्ठजीका शरीर भी ढकगया और जब वशिष्ठजीने भुजासे फूल दूर किये तब मुखदृष्टिआनेलगा। जैसे बादलोंके दूरहुये चन्द्रमा दृष्टिआता है; तैसेही मुख दीखनेलगा। फिर वशिष्ठजीने व्यास, वामदेव, विश्वामित्र, नारद, भृगु, अत्रि इत्यादिक जो बैठेथे उनसे कहा; हे साधो! जो कुछ मैंने सिद्धान्तके वचन कहे हैं इनसे न्यून वा अधिक जो कुछ हो सो अब तुम कहो। जैसे जैसा स्वर्ण होताहै तैसाही अग्नि में दिखाई देता है; तैसेही तुम कहो। तब सबने कहा; हे मुनीश्वर! ये तुमने परमसार

वचन कहे हैं; जो तुम्हारे वचनको न्यून वा अधिक जानकर उनकी निन्दाकरेगा वह महापतित होगा । ये वचन परमपद पानेके कारण हैं । हे मुनीश्वर ! हमारे हृदय में भी जो कुछ जन्म जन्मान्तरका मैलथा वह नष्टहोगया । हम तो पूर्ण ज्ञानवान्थे परन्तु पूर्वजन्म जो धरे हैं उनकी स्मृति हमारे चित्तमें थी कि; अमुकजन्म हमने इसप्रकार पाया था और अमुकजन्म इसप्रकार पाया था सो सर्व स्मृति अब नष्ट हुई है और जैसे अग्नि में डाला सुवर्ण शुद्ध होता है तैसेही तुम्हारे वचनों से हमारा स्मृतिरूप मल नष्ट हुआ है । अब हम जानते हैं कि, न कोई जन्मथा और न हमने कोई जन्म पाया है-हम अपनेही आपमें स्थित हैं । हे मुनीश्वर ! तुम संपूर्ण विश्वके गुरु और ज्ञान अवतारहो इसलिये तुमको हमारा नमस्कार है । राजा दशरथ भी धन्य हैं जिनके संयोगसे हमने मोक्ष उपाय सुना है और ये रामजी विष्णुभगवान् हैं । इतना कह फिर बाल्मीकिजी बोले कि, इसी प्रकार ऋषीश्वर और मुनीश्वर वशिष्ठजी को परमगुरु जानकर स्तुति करनेलगे, रामजी को विष्णुभगवान् जानकर उनकी भी स्तुतिकी और राजा दशरथकी भी स्तुतिकी कि, जिनकेगृहमें विष्णुभगवान्ने अवतारलिया फिर वशिष्ठजीको अर्घ्यपाद्यसे पूजने लगे । आकाशके सिद्ध बोले; हे वशिष्ठजी ! तुम को हमारा नमस्कार है तुम गुरुके भी गुरुहो । हे प्रभो ! जो कुछ तुमने उपदेश किया है और जो कुछ उस में युक्ति कही है ऐसे वचन वागीश्वरी भी कहे अथवा न कहे । तुमको वारंवार नमस्कार है और राजादशरथ चतुर्द्वीप पृथ्वी के राजा को भी नमस्कार है जिसके प्रसंग से हमने ज्ञान और युक्ति सुनी । ये रामजी विष्णु भगवान् नारायण हैं और चारों आत्मा हैं इनको हमारा प्रणाम है । ये चारों भाई ईश्वर हैं जिनपर विष्णुभगवान् दयाकरते हैं और जीवन्मुक्त अवस्थाको धारकर बैठे हैं । वशिष्ठजी परमगुरु हैं और विश्वामित्र तपकी मूर्ति हैं । बाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब सिद्ध कहचुके तब वे फूलोंकी वर्षा करने लगे । जैसे हिमालय पर्वत पर बरफकी वर्षा होती है और वह बरफ से पूर्ण होजाता है; तैसेही वशिष्ठजी पुष्पों से पूर्णहुये । आकाशचारी जो ब्रह्मलोक के वासीथे उन्होंने भी उनपर पुष्पोंकी वर्षाकी और जो सभामें ब्रह्मर्षिआदि बैठेथे उनका भी यथायोग्य पूजन किया । इसप्रकार जब सिद्ध पूजन करचुके तब कई ध्याननिष्ठ होरहे; सबके चित्त शरत्कालके आकाशवत् निर्मल होगये और अपने स्वभाव में स्थितहुये । जैसे स्वप्न की सृष्टिका कौतुक देखकर कोई जागउठे और हँसे; तैसेही वे हँसनेलगे । तब वशिष्ठजीने रामजीसे कहा; हे रघुवंशीकुलरूपी आकाशके चन्द्रमा ! तुम अब किस दशामें स्थित हो और क्या जानते हो ? रामजी बोले; हे भगवन् ! सर्व धर्म ज्ञानके समुद्र ! तुम्हारी कृपा से मैं अब अपने आपमें स्थितहूं और कोई कल्पना मुझे नहीं रही । अब मैं परमशांतिमान् हुआहूं और मुझको शेष विशेष कोई नहीं भासता

केवल अपना आपही पूर्ण भासता है—अब मुझको कोई संशय नहीं रहा और इ-च्छाभी कुछनहींरही। मैंने अब परम निर्विकल्प पदपायाहै और कोई कल्पना मुझको नहीं फुरती। जैसे नील, पीतादिक उपाधि से रहित स्फटिक प्रकाशती है; तैसेही मैं निरुपाधि स्थित हूँ और संकल्प—विकल्प उपाधि का अभाव होगयाहै। अबमैं परम शुद्धता को प्राप्त हुआहूं; मेरा चित्त शांत होगयाहै और मेरी चेष्टा पूर्ववत् होगी पर निश्चय में कुछ न फुरेगा। जैसे शिला में प्राण नहीं फुरते; तैसेही मुझको द्वैतकल्पना कुछनहीं फुरती। हे मुनीश्वर! अब मुझको सब आकाशरूप भासताहै। मैं शांतरूप होकर परम निर्वाण हूं और भिन्नभाव जगत् मुझको कुछनहीं भासता—सर्व्व अपना आपही भासता है। अब जो कुछ तुम कहो वही करूं। अब मुझको शोक कोई नहीं रहा और राज्यकरना, भोजन, छादन, बैठना, चलना, पानकरना जैसे तुम कहो तैसेही करूं। तुम्हारे प्रसादसे मुझको सर्व समानहैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेविश्रामप्रकटीकरणंनाम
द्विशताधिकैकोनाशीतितमस्सर्गः २७९॥

बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब ऐसे रामजीने कहा तब वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! बड़ा कल्याणहुआ कि; तुम अपने आपमें स्थितहुयेहो। अब तुमने यथार्थ जानाहै पर अब जो कुछ सुननेकीइच्छाहो सो कहो। रामजीबोले; हेसंशयरूपी अन्ध-कारके नाशकर्त्ता सूर्य और संशयरूपी वृक्षोंके नाशकर्त्ता कुठार! अब तुम्हारे प्रसाद से मैं परम विश्रांति को प्राप्त हुआ हूँ और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिकी कलनासे रहित हूं। जाग्रत् जगत् भी मुझको सुषुप्तिवत् भासता है और श्रवण करनेकी इच्छा नहीं रही। अब परमध्यान मुझको प्राप्तहुआ है अर्थात् आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु नहीं भासती। मैं आत्मा, अज, अविनाशी, शान्तरूप और अनन्त, सदा अपने आप में स्थित हूँ। ऐसे मुझको मेरा नमस्कार है। अब प्रलयकालका पवनचले और समुद्र उछलें और नानाक्षोभ हों तौभी मेरा चित्तस्वरूपसे चलायमान न होगा और जो त्रिलोकी का राज्य मुझको प्राप्तहो तोभी मेरे चित्तमें हर्ष न उपजेगा। मैं सत्ता समान में स्थितहूँ। बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज! जब इसप्रकार रामजीनेकहा तब मध्याह्न का सूर्य शिरपर उदयहुआ और राजा जो रत्न और मणियोंके भूषण पहिनकर बैठे थे उन मणियोंकी कांति किरणोंसे अति विशेषहुई और सूर्यके साथहो एकहोगई—मानों ऐसे वचन सुनकर नृत्यकरती है। तब वशिष्ठजीने कहा; हे रामजी! अब हम जाते हैं क्योंकि, मध्याह्नकी उपासनाका समयहै; जो कुछ तुम्हें पूछनाहो सो कल फिर पूछना। तब राजा दशरथ पुत्रोंसहित उठ खड़ेहुये और वशिष्ठजी का बहुत पूजन किया। जो ऋषीश्वर, मुनीश्वर और ब्राह्मणथे उनकाभी यथायोग्य पूजनकिया और

मोती और हीरोंकी माला; मोहरें, रुपये, घोड़े, गऊ, वस्त्र, भूषण आदि जो ऐश्वर्य्य की सामग्री है उससे यथायोग्य पूजन किया। जो विरक्त संन्यासीथे उनको प्रणाम करके प्रसन्न किया और जो राजर्षिथे उनका भी पूजन किया। तब वशिष्ठजी उठखड़े हुये और परस्पर सबने नमस्कार किया और मध्याह्न के नौबत नगारे बजने लगे। सब श्रोता उठकर विचरने लगे। कोई चलेजाते थे और कोई शीश हिलाते कोई हाथकी अंगुली हिलाते, नेत्रनकीभवें हिलाते परस्परचर्चा करतेजाते थे। इसप्रकार सब अपने स्थानों को गये। वशिष्ठजी सन्ध्या उपासना करने लगे और सर्व श्रोता विचार पूर्वक रात्रिको व्यतीतकर सूर्यकी किरणोंके निकलतेही आपहुँचे। गगनचारी; सप्तलोक के रहनेवाले; ऋषि और देवता; भूमिवासी राजर्षि, ब्रह्मर्षि और जो श्रोता थे सो सब आकर अपने २ स्थानपर बैठगये और सबने परस्पर नमस्कार किया। तब रामजी हाथ जोड़कर उठखड़ेहुये और बोले, हे भगवन्! अब जो कुछ मुझको सुनना और जानना रहा है सो तुमही कृपाकरके कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ सुनने योग्यथा सो तुमने सुनाहै। अब तुम कृतकृत्यहुयेहो और सर्व रघुवंशियों का कुल तुमने तारा है और जो आगेहोंगे सो सब तुमने कृतकृत्य किये हैं। अब तुम परमपद को प्राप्त हुयेहो और जो कुछतुमको पूछनेकी इच्छाहै सो पूछलो। हेरामजी! जो सत्तासमान में स्थितहुयेहो तो विश्वामित्रके साथजाकर इनका कार्यकरो और जो कुछपूछनेकी इच्छाहो सोपूछलो। रामजीनेपूछा; हेभगवन्! आगे मैं अपने आपको इस देह संयुक्त प्रच्छन्नरूप देखता था और अब अपने आपसे भिन्न मुझको कुछ नहीं भासता—सब अपना आपही भासता है। हे मुनीश्वर! अब इसशरीरसे मुझको कुछ प्रयोजन नहींरहा। जैसे फूल से सुगन्धलेकर पवन चलाजाता है और फूलसे उसका प्रयोजन नहीं रहता; तैसेही इस देहमें जो कुछसारथा सो मैं पाकर अपने आप में स्थितहूं और शरीरके साथ मुझको प्रयोजन नहींरहा। अब राज्य भोगनेसे कुछ सुख दुःख नहीं और इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्टमें मुझको कुछ हर्ष शोक नहीं। मैं अब सब से उत्तम पदको प्राप्त हुआहूं और सब कलनासे रहित अविनाशी, अव्यक्तरूप सर्व से निरंतर सदा अपने आपमें स्थित और निराकार और निर्विकारहूं। जो कुछ पानेयोग्य था सो मैंने पायाहै और जो कुछ सुनने योग्यथा सो सुनाहै और जो कुछतुमकोकहना था सो कहाहै अब तुम्हारी वाणी सफल हुई है। जैसे कोई रोगीको औषध देता है तो उस औषधसे उसका रोग जाताहै और उसका कल्याण होता है; तैसेही तुम्हारी वाणीसे मेरा संशयरूपरोग गयाहै और अपने आपसे तृप्त हुआहूं। अब मैं निःशंक होकर अपने आपमें स्थितहूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेनिर्वाणवर्णनंनामद्विशताधिकाशीतितमस्सर्गः२८०॥

वशिष्ठजी बोले; हे महाबाहो रामजी! तुम मेरे परमवचनसुनो दृढ़ अभ्यास केनिमित्त मैं फिर कहताहूं। जैसे आदर्शको ज्यों ज्यों मार्जन करतेहैं त्यों त्यों उज्ज्वल होता है; तैसेही वारंवार सुननेसे अभ्यास दृढ़ होता है। जितना कुछ जगत् भासता है सो सब चिदानन्द स्वरूप है। भासती भी वहीवस्तु है जो आगे भानरूप होती है। वह भानरूप चेतनहै इससे जो पदार्थ भासतेहैं सो सब चेतनरूप हैं और जो भिन्न २ पदार्थ द्वैतकी कल्पना से भासते हैं सोभी वास्तव में भानरूप चेतन हैं। जैसे जो कुछ उच्चार करतेहैं सो सब शब्द है पर शब्दरूप एक है और अर्थ से भिन्न २ भासते हैं। जब अर्थ की कल्पना त्यागदीजे तब यही शब्द है और जो अर्थ कीजिये कि, यह जल है, यह पृथ्वी है; यह अग्नि है इनसे आदि लेकर अनेक शब्द और अर्थ होतेहैं और अर्थ से रहित शब्द एकही है; तैसेही यह सब चेतन है पर चित्तकी कल्पना से भिन्न २ पदार्थ भासते हैं और कुछ वस्तु नहीं और जो भासता है सो उसी का आभास है। हे रामजी ! आभास भी अधिष्ठानसत्ता भासती है परन्तु ज्ञानमें भेद होताहै पर ज्ञान में भी भेद नहीं वृत्ति में भेद है जिसमें अर्थ भासते हैं। ज्ञानरूप अनुभव सत्ता है; इसमें जैसे अर्थकी वृत्ति आभास होती है उसी को जानता है। जैसे एकही रस्सी पड़ी होती है और उसमें सर्प का अर्थ वृत्ति न ग्रहण करे तो सर्प तो कुछ नहीं वह रस्सीहीहै; तैसेही अर्थ भेद ग्रहणकीजिये तो भेद है नहीं तो ज्ञानही है और सर्व पदार्थ जो भासते हैं वे सब ज्ञानरूपी हैं और कुछ बना नहीं। हे रामजी ! स्वप्ने के दृष्टांत मैंने तुमको जताने के निमित्त कहेहैं, वास्तव में स्वप्ना भी कोई नहीं; अद्वैतसत्ताही अपने आपमें स्थित है। जैसे समुद्र सदा जलरूप है पर द्रवता से तरंग बुद्बुदे भासतेहैं सो नानारूप नहीं और नानाहो भासता है; तैसेही सर्व जगत् अनानारूप है और नानाहो भासता है। तुम अपने स्वप्ने की स्मृति को विचारकर देखो कि; तुम्हारा अनुभवही नानाप्रकार हो भासताहै परन्तु कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी तुम्हारा अपना आप है और दूसरा कुछ नहीं। सदा निराकार, निर्विकार और आकाश रूप आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! जो अद्वैतसत्ता निराकार, निर्विकार और सदा अपने आपमें स्थित है तो पृथ्वी कहांसे उपजी है; जल कैसे उपजाहै और अग्नि, वायु, आकाश, पुण्य, पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाशमें कैसे उपजे हैं मेरे दृढ़बोधके निमित्त कहो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह तुम कहो कि; स्वप्ने में पृथ्वी कहांसे उपज आती है और जल, वायु, अग्नि, आकाश, पाप, पुण्य, देश, काल, पदार्थ कहांसे उपजते हैं ? रामजी बोले; हे मुनीश्वर ! स्वप्ने में जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, देश, काल, पदार्थ भासतेहैं सो सब आत्मरूप होतेहैं और आत्मसत्ताही ज्योंकीत्यों होती है सो तत्त्ववेत्ताओं को ज्योंकी

त्यों भासती है और जो सम्यक्‌दर्शी हैं उनको भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं। भासना दोनों का तुल्य होता है परन्तु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थको ग्रहण करती है उसकोज्यों की त्यों आत्मसत्ता भासती है और जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थ ग्रहण नहीं करती उसको वही वस्तु और रूपहो भासती है। हे मुनीश्वर! और जगत् कुछ बना नहीं वही आत्मसत्ता स्थितहै। जब कठोररूपकी संवेदनफुरती है तब पृथ्वी और पहाड़रूप हो भासती है; जब द्रवताका स्पन्द फुरता है तब जलरूपहो भासती है और उष्ण रूप की संवेदन फुरती है तब अग्नि भासती है; इसीप्रकार वायु, आकाशादिक पदार्थों से जैसे फुरना होता है तैसेही हो भासता है। जैसे जल तरंगरूपहो भासता है परन्तु जलसे भिन्न कुछनहीं, जलही रूपहै; तैसेही आत्मसत्ता जगत्‌रूपहो भासती है और वही रूपहै जगत् कुछ वस्तु नहीं। यह गुण और क्रिया सब आकाश में है वास्तवमें कुछ नहीं क्योंकि; कारण रहित असत्यरूप है। यह अहं त्वं से आदिक लेकर सब जगत् आकाशरूप है कुछ बनानहीं, आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और कोई आधार नहीं है। अद्वैतसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै और नानारूपहो भासती है। जब चित्त संवेदन फुरती है तब पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, पदार्थ, देश, कालहो भासता है। कहींसर्व आत्माका ज्ञान फुरता है और कहीं परिच्छिन्नता भासती है परन्तु वास्तव में कुछ बना नहीं वही वस्तु है; जैसा उसमें फुरना फुरता है तैसाही हो भासता है। अनुभवसत्ता परम आकाशरूप है जिसमें आकाशभी आकाशरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेचिदाकाशजगदेकताप्रतिपादनं नामद्विशताधिकैकाशीतितमस्सर्ग्गः २८१॥

रामजी बोले; हे भगवन्! अब यहप्रश्न है कि, जो जाग्रत् और स्वप्ने में कुछभेद नहीं और परम आकाशरूप हैं तो उससत्ताको जाग्रत् और स्वप्ने के शरीर से कैसे संयोग है; वह तो निरवयव और निराकार है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह सर्व आकार जो तुमको भासते हैं सो सब आकाशरूपहैं और आकाशमें आकाशही स्थित है सर्गके आदिमें आकारका अभावथासोही अबभी जानो कि; उपजा कोई नहीं परम आकाशसत्ता अपने आपमेंस्थितहै। जब वह अद्वैतसत्ता चिन्मात्रमें चित्त किंचनहोता है तब वहीसत्ता आकारकीनाईं भासतीहै परन्तु कुछहुआनहीं, आकाशही रूपहै। जैसे स्वप्नेमें शरीरोंका अनुभव करताहै पर वे कुछ आकारतो नहीं होते केवल आकाशरूप होते हैं; तैसेही यह जगत् भी निराकार है परन्तु फुरनेसे आकारहो भासता। जिन तत्त्वों से शरीर होताहै सो तत्त्वही उपजे नहीं तो शरीर की उत्पत्ति कैसे कहूं? हे रामजी! और जगत् कुछ उपजा नहीं ब्रह्मही किंचन से जगत् रूपहो भासता है। जैसे जल और द्रवता में भेद नहीं और जैसे आकाश और शून्यता में भेदनहीं; तैसेही

ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं । संवेदन से अर्थ संकेतहै और जब संवेदना न फुरे तब अर्थ संकेत न हो । भिन्न भिन्न वस्तुसे एकहीसत्ताके नाम हैं । भिन्न २ नाम तब भासते हैं जब वेदना फुरती है, नहीं तो शब्द जलरवके तुल्य है—वस्तुसे भेदनहीं । जैसे वायु और स्पन्दमें भेद नहीं; स्पन्दरूपहो भासती है और निस्स्पन्द नहीं भासती परन्तु दोनोंरूप वायुकेहीहैं; तैसेही स्पन्दसे ब्रह्ममें किंचन जगत् भासताहै और जब संवेदन नहीं फुरती तब जगत् नहीं भासता परन्तु दोनों रूप ब्रह्मकेही हैं ब्रह्म और जगत् में भेद कुछनहीं । जैसे एक निद्रा के दोरूप होते हैं—एक स्वप्ना और दूसरी सुषुप्ति—परन्तु दोनों एक, निद्राकेही पर्याय हैं, तैसेही जगत्का होना और न भासना एकब्रह्मकी दोनों संज्ञाहैं, चाहे ब्रह्म कहो और चाहे जगत्कहो, ब्रह्म और जगत्में भेदकुछनहीं;ब्रह्म-ही जगत्रूपहो भासता है । जैसे निर्मल अनुभव से स्वप्ने में शिला भासिआती है पर वह शिला तो स्वप्ने में कुछ उपजी नहीं, अपना अनुभवही शिलारूपहो भासता है; तैसेही ये सर्व आकार जो भासते हैं सो आकाशरूप हैं और आत्मसत्ताही आकाश रूप जगत्हो भासतीहै जगत् कुछ उपजानहीं और न सत्यहै, न असत्यहै, न आताहै, न जाताहै केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै । रामजीने पूछा, हे मुनीश्वर! आगे तुमने मुझसे अनेक सृष्टि कही हैं कि, कई जलमें; कई अग्नि में; कई पृथ्वी में; कई वायुमें; कई पहाड़ और पत्थरों में और कई आकाशमें पक्षीवत् इत्यादिक नानाप्रकार की सृष्टि तुमने कही हैं तो अब यह प्रश्न है कि, हमारी सृष्टि किससे उत्पन्न हुई है ? वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! तुम तो वहीप्रश्न करतेहो जो अपूर्व होताहै और जो आगे देखा और सुना न हो और जगत् से जाना भी न हो । इस जगत् की उत्पत्ति वेद पुराण तो योंही कहते हैं और लोकमें भी प्रसिद्धहै कि, ब्रह्मासे हुई है पर वास्तव में चिदाकाश रूप है कुछउपजी नहीं । ये दोनों प्रकार मैंने तुमसे कहे हैं पर उनको तुम जानकर भी प्रश्न करतेहो इसलिये तुम्हारा प्रश्नही नहीं बनता । रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर ! यह सृष्टि कितनी है; कहांतक चलीजातीहै और कितनेकाल पर्यंत रहेगी ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जितनी सृष्टि तुमजानते हो वह है नहीं--ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थितहै—और सृष्टि बहुत हैं परन्तु वास्तव में कुछ हुई नहीं और आदि, अन्त और मध्यसे रहित हैं । वही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै और यह जितनी सृष्टि हैं सो आभासमात्रहैं । ब्रह्म जो आदि, अन्त और मध्यसे रहितहै उसका आभासभी तैसाही है । जैसे जितनावृक्ष होता है उतनीही छायाहोती है; तैसेही ब्रह्मका आभास सृष्टि है और वास्तव में पूछो तो आभास भी कोई नहीं ब्रह्मही अपने आपमें स्थितहै और वही जगत्रूप आपको देखताहै—ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं । जैसे स्वप्ने के पुर में पर्वत, नदी, आयुध आदि नानाप्रकारके व्यवहारके रूप धारकर आत्मसत्ताही स्थित होती

है और कुछनहींबना और जैसे सङ्कल्प नगर भासताहै; तैसेही इसजगत्को भी जानो क्योंकि, और कुछबनानहीं आत्मसत्ताही जगत्रूपहो भासती है। जगत् यदि किसी कारणसे उपजा होता तो सत्होता पर इसका कारण कोई नहीं पायाजाता इसलिये असत् है, इसका न कोई निमित्तकारण पायाजाताहै और न समवाय कारणपायाजाता है। हे रामजी! जो किसी कारण से न उपजाहो और भासे उसको स्वप्नपुरवत् आकाशमात्र जानो। जिसमें आभास भासती है सो अधिष्ठान सत्ता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है सो सर्प कुछनहीं रस्सीही सर्प रूपहो भासती है; तैसेही जगत् का अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता सत्य है और शुद्ध, निर्दुःख, अच्युत, विज्ञान सदा अपने आप में स्थित है। वही सत्ता जगत् रूपहो भासती है। जैसे जलही तरंग रूपहो भासताहै तैसेही ब्रह्मही जगत् रूपहो भासताहै। हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मका हृदयहै अर्थात् उसीका स्वभावहै ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं। ज्ञानीको सर्वदा ऐसेही भासताहै। जैसे स्वप्ने से जागकर सब अपना आपही भासता है; तैसेही यह जगत् अपना आप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेजगदाभाववर्णनंनाम
द्विशताधिकद्व्यशीतितमस्सर्गः २८२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस जगत्का कारण कोई नहीं। जो जगत्ही नहीं तो कारण कैसे हो और कारण नहीं तो जगत् कैसे हो? इससे सर्व ब्रह्मही है। इसी पर एक उपाख्यानहै सो सुनो। हे रामजी! कुशद्वीपके पूर्व और पश्चिम दिशाके मध्य में सुवर्णकी ऐलवती नगरी महा उज्ज्वल रूपहै और उसमें बड़े २ ऊंचे थंभ बने हैं मानों पृथ्वी और आकाशको उन्होंनेही पूर्ण कियाहै। उस नगरीका एक प्रगपती राजा है। एक कालमें मैं आकाशसे शीघ्रवेगसे उसके गृहमें आया और उसने भलीप्रकार अर्घ्यपाद्यसे प्रीतिपूर्वक मेरापूजन किया और सिंहासन पर बैठाकर मुझसे एक महा प्रश्न किया कि, जिस प्रश्न से उपरांत कोई प्रश्न नहीं। राजा बोले; हे भगवन्! तुम संशयरूपी तमके नाशकर्त्ता सूर्यहो। मुझको एक संशयहै सो दूरकरो। हे मुनीश्वर! प्रथम तो यह प्रश्नहै कि, जब महाप्रलय होताहै तब कार्य, कारण और सर्व शब्दकी कल्पनाका अभाव होजाता है, उसके पीछे महाआकाश सत्ता शेष रहती है जिसमें वाणीकी भी गम नहीं अवाच्यपदहै तो उससे फिर सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है? वहां उपादान कारण और निमित्त कारण तो कोई न रहता तो सृष्टि कैसे होती है? श्रुति और पुराणमें सुनताहूं कि, महाप्रलयसे फिर सृष्टि उत्पन्न होतीहै। दूसरा यह प्रश्न है कि, जंबूद्वीप में कोई मृतक हुआ अथवा किसी और ठौर गयाहुआ मृतक हुआ तो उसका वह शरीर तो वहांही भस्म होजाताहै और परलोकमें पुण्य पापका फल दुःख

सुख भोगताहै तो जिस शरीरसे भोगताहै उस शरीरका कारण तो कोई नहीं ? जो तुम कहो कि, पुण्य और पापही उस शरीरका कारणहै तो पुण्यपाप तो आपही निराकार हैं उनसे साररूप शरीर कैसे उपजे ? और जो तुम कहो परलोक कोई नहीं और पुण्य पाप भी कोई नहीं तो श्रुति और पुराण के वचनों से विरोध होताहै क्योंकि, सबही वर्णन करते हैं कि, मर कर परलोक जाता है और जैसे कर्म किये हैं तैसे भोगताहै ? जिस शरीर से भोगता है उसका कारण तो कोई नहीं और न कोई पिता है; न माता है ? वह शरीर कैसे उत्पन्न हुआ ? तीसरा प्रश्न यह है कि, जब यह परलोक में जाता है तो उसके निमित्त दान पुण्य करते हैं उनका फल उसको कैसे प्राप्त होता है ? चतुर्थ प्रश्न यह है कि, महाप्रलय में जो ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ ? जो महाप्रलय में न उपजाहो और अपने आपही से उपजे वह स्वयंभू कहाता है पर महाप्रलय में तो शेष अद्वैत रहाथा उससे जो उत्पन्न हुआ उसे स्वयंभू कैसे कहिये ? जो कहो स्वयंभू अपने आप से उपजता है तो अपना आप आत्मा है जो सबका अपना आप है; अब क्यों नहीं उससे ब्रह्मा उत्पन्न होता है ? पांचवां प्रश्न यह है कि, एक पुरुष था जिसका एक मित्रथा और एक शत्रुथा और उन दोनोंने प्रयाग क्षेत्रमें जाकर करवट लिया। जो इसका मित्रथा उसने वाञ्छा की कि, मेरा मित्र चिरकाल जीतारहे और चिरंजीव हो और दूसरे ने यह संकल्प धारा कि, मेरा शत्रु इसी कालमें मरजावे। हे मुनीश्वर ! एकही काल में दो अवस्था कैसेहोवेंगी ? छठा प्रश्न यह है कि; सहस्रों मनुष्य ध्यान लगाये बैठे हैं कि; हम इसी आकाश के चन्द्रमा हों सो एकही आकाश में सहस्रों चन्द्रमा कैसेहोंगे ? सप्तम प्रश्न यहहै कि; सहस्रों पुरुष यही ध्यान लगाये बैठे हैं कि, एक सुन्दर स्त्री जो बैठीथी वह हमको मिले पर वहस्त्री पतिव्रता है उसके सहस्र भर्त्ता एककाल में कैसेहोंगे ? अष्टम प्रश्न यह है कि, एक पुरुष था उसको किसी ने वरदिया कि, तुम जाकर मृतक हो और सप्तद्वीप का राज्यकरो और किसीने शापदिया कि, तेरा जीव अपनेही गृहमें रहेगा और मृतक हो बाहर न जावेगा तो ये दोनों एकही कालमें कैसे होंगे ? नवम प्रश्न यह है कि, एक काष्ठका थम्भाथा उसको एकने कहा कि, यह सुवर्णका होजावेगा और वह सुवर्ण का होगया; तो सुवर्ण कैसे उत्पन्न हुआ ? उसका कारण कोई न था–कारण विना कार्य कैसे उत्पन्न हुआ ? जैसा अन्नका बीजबोते हैं तैसाही अन्न उत्पन्न होता है, और नहीं उगता तो काष्ठ से स्वर्ण कैसे उत्पन्न हुआ ? जो कहो संकल्प से उपजा तो हम भी संकल्प करते हैं कि, अमुककार्य ऐसेहो पर वह क्यों नहीं होता ? इसलिये जानाजाता है कि, संकल्प से भी उत्पन्न नहीं होता। हे मुनीश्वर ! जिस प्रकार यह वृत्तांत है सो कहो। एक कहते हैं कि, आगे असत्‌ही था तो असत्‌से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई ?

यह मुझको संशय है उसको दूरकरो। जो कोई संतके निकट आता है सो निष्फल नहीं जाता इसलिये कृपाकरके कहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रश्नवर्णनन्नाम द्विशताधिकत्र्यशीतितमस्सर्ग्गः २८३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार उसने मुझसे अपने संशयोंका समूह कहा तब मैंने उससे कहा; हे राजन्! ये सर्व संशय जो तुझको हैं सो मैं सब दूर करूंगा। जैसे सम्पूर्ण अन्धकारको सूर्य नाश करताहै। हे राजन्! यह सर्व जगत् जो तुझको भासता है सो ब्रह्मरूपहै और सदा अपने आपमें स्थितहै। जब उसमें चित्त फुरताहै तब वही चित्त संवेदन जगत्‌रूपहो भासताहै, इससे जो कुछ आकार भासते हैं सो सब चिन्मात्ररूपहैं; न कोई कार्यहै और न कारणहै; और जो तुम प्रत्यक्ष प्रमाण से संशय करो कि; सब चिन्मात्ररूपहै तो जब यह शरीर मृतक होजाताहै तब चेतता क्यों नहीं; चाहिये कि, उस कालमें भी उसमें ज्ञानहो। हे राजन्! जब जाग्रत्‌का अन्त होताहै पर स्वप्ना नहीं आया तब शुद्ध चिन्मात्र रहताहै। फिर जब उसमें स्वप्नेकीसृष्टि भासि आती है तो उस सृष्टि में कई चेतन भासते हैं; कई मृतक भासते हैं कई जड़ भासते हैं और स्थावर-जंगम नानाप्रकारकी सृष्टि भासती हैं परन्तु और तो कुछ नहीं वही चिन्मात्र स्वरूपहै जो अनुभवरूपहो भासती है। कहीं चेतन बोलते और चलते भासते हैं परन्तु वही है? जो चेतनता न होती तो कैसे भासते? जिससे भासते हैं तिससे सब चेतनहैं। तैसेही इस जगतमें भी कहीं बोलते चलते भासते हैं और कहीं शव भासते हैं परन्तु वही चिन्मात्रसत्ता है; जैसा २ संकल्प उसमें फुरता है तैसा २ हो भासताहै। हे राजन्! जैसे प्रथम प्रलयसे सृष्टि उत्पन्न हुईथी तैसेही उत्पन्न होतीहै। यह सृष्टि किसीका कार्य नहीं और किसीका कारण भी नहीं-विना कारण उपजी भासती है। हे राजन्! जो महाप्रलयमें शेष रहताहै सो चिन्मात्र है। उस चिन्मात्रसत्ता से जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरीहै सो ब्रह्मा विराट्‌रूप होकर स्थित हुई और उसी ने जगत् कल्पनाकी है। उसमें उसने नेति रची है कि, यह पदार्थ इस प्रकारहो तैसेही चित्त संवेदन में दृढ़ होकर भासित हुआहै उसका नाम जगत्‌है। वही आत्मसत्ता किंचनरूप होकर जगत्‌रूप भासती है। हे राजन्! जैसे तेरे संकल्प और स्वप्ने के सृष्टि की आदि शुद्ध आत्मसत्ताथी और वही फुरने से पदार्थरूपहो भासती है; तैसेही इसे भी जानो; वास्तव में न कोई कार्यहै और न कोई कारणहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि अकारण होती है; तैसेही यह जगत् भी अकारण है और आदि अन्तके विचारसे रहितहै। जो वर्त्तमान प्रत्यक्ष प्रमाणको मानते हैं उनको कार्य और कारण प्रत्यक्ष भासते हैं और उनके वचनभी निरर्थकहैं। जैसे अन्धे कूपके दर्दुर शब्द करते हैं; तैसेही वे भी निरर्थक

प्रत्यक्ष प्रमाण से कार्यकारणके वाद करतेहैं। उनको हमारे वचन सुननेका अधिकार नहीं और हमको भी उनके वचन सुनने योग्य नहीं। हे राजन्! जिस शास्त्रके सुनने और जिस गुरुके मिलने से संपूर्ण संशय निवृत्त न हों उस शास्त्र और गुरुका कहना भी अन्धकूपके दर्दुरवत् व्यर्थ है। जो परमार्थसत्तासे विमुख हुये हैं उनको यह भ्रम अपनेमें भासताहै और शरीरके मृतकहुये आपको मरता जानता है और फिर वासना के अनुसार शरीर उपजता और जीताहै तब मानते हैं कि; अब हम उपजे हैं। फिर अपने पुण्य पापकर्म का अनुभव करते हैं। जैसे स्वप्ने में कोई अपनेसाथ शरीर देखताहै तैसेही परलोक में जीवको अपने साथ शरीर भासि आताहै और तैसेही यह शरीर भी भासिआयाहै। न कोई इसका कारणहै; न पांचभौतिकहै; न इसका शरीर है और न किसी कारणसे भूत उपजे हैं, (अपनीही कल्पना आकाररूप होकर भासती है; और आकार कोई नहीं केवल ब्रह्मसत्ताही अपने आपमेंस्थितहै और जैसा संकल्प उसमें दृढ़ होताहै तैसा पदार्थ भासिआताहै।) हे राजन्! (जो तू इस जगत्‌को सत्य मानता है तो सब कुछ सिद्ध होताहै, शरीर भी है; परलोक भी है और नरक स्वर्ग भी है। जैसा यह लोकहै तैसाही परलोकहै; जो यह लोक निश्चयमें सत्यहै तो वह लोक भी सत्यहो भासेगा। और जैसा कर्म करेगा तैसा फल भोगेगा॥)

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रश्नोत्तरवर्णनंनाम
द्विशताधिकचतुरशीतितमस्सर्ग्गः २८४॥

वशिष्ठजीबोले, हे राजन्! यह सर्व जगत् जो तुझको भासताहै सो सब संकल्पमात्र है। जैसे कोई बालक अपने मन में वृक्ष और उसमें फूल, फल और टासकल्पे सो संकल्पमात्र है; तैसेही यह जगत् भी संवेदनरूपी ब्रह्माने कल्पाहै और उसके मनमें फुरता है सो संकल्परूप है। जैसे उसने संकल्पकिया है तैसेही स्थित है और जैसे उसमें क्रम रचा है कि, इस प्रकार यह पदार्थ होगा सो तैसेही स्थित हुआ है और देश, काल, पदार्थ भी तैसेही स्थित हैं। इसका नाम नेतिहै। हे राजन्! तू ने प्रश्न कियाथा कि, जो पुरुष अरूपहै और दूरहै यदि उसके अर्थ किसीने दिया तो उसको कैसे पहुंचता है और स्वरूप और स्वरूपका कैसे संयोग है? जो कोई शुद्ध संवेदन पुरुष है उसको सब पदार्थ निकट भासतेहैं और जो कोई पुरुष मनोराज कल्पताहै और उसमें बड़ादेश रचता है सो दूरसे दूरमार्गहै तो जो उसदेशके वासी हैं उनको देशकी अपेक्षासे दूसरा देश दूरसे दूर है परन्तु जिसका मनोराज है उसको तो सब निकट है और अपना आपही रूप है। इस प्रकार जो शुद्धसंवेदनरूप है उसके अर्थ जो कोई देताहै–ईश्वरअर्थ अथवा देवताकेअर्थहो–उसको निकटसे निकट सब अपने में भासता है। आदिनेति इसी प्रकारहुई है कि, शुद्धसंवेदन को सब अपने निकट से

निकटही भासताहै क्योंकि; सब संकल्पहै और जैसी रचना संकल्पमें रचतीहै तैसेही होती है–संकल्प में क्या नहीं होता ? थम्भेका प्रश्न जो तूने कियाहै कि, काष्ठका था सुवर्णका कैसेहोगया; सोभी सुनो । हे राजन् ! आदि जो संवेदनरूप ब्रह्माहै उस ने अपने मनोराजमें नेतिकी है कि; तपादिकसे वर और शाप सिद्ध होता है। उस के कहे से जो काष्ठ का थम्भा स्वर्ण होगया तो तू विचारकर देख कि, किस कारण से काष्ठका सुवर्ण हुआ। वह केवल संकल्पमात्रहै; जो संकल्पसे भिन्न कुछभी होता तो काष्ठका सुवर्ण न होता। यह सर्व विश्व संकल्परूप है; जैसा संकल्प दृढ़ होता है, तैसाही हो भासताहै। जैसे तू अपने मनोराज में संकल्प करैहै कि, यह ऐसेरहे और जो उससे और प्रकारकरे तोभी होजावे सो होता है; तैसेही वर और शापभी और प्रकार होजातेहैं। न और कोई जगत्है, न कार्यहै और न कारणहैवहीआत्मसत्ता ज्योंकीत्योंहै; जैसा संकल्प जिसमें फुरताहै तैसाहोभासताहैतू पूँछताहै कि, असत्यसे फिर जगत् कैसे उत्पन्न होताहै जो आपही न हो तो उससे जगत् कैसेप्रकटै ? हे राजन् ! असत्य इसीका नामहै कि, जो जगत् असत्यथा इसलिये श्रुतिने उसे असत्यकहा। जो आदि असत्यथा इसलिये असत्यता जगत्की कहीहै पर आत्मातो असत्य नहींहोता ? सबका शेषभूत आत्माहै; जब उसमें संवेदन फुरतीहै तब ब्रह्म अलक्ष्यरूप होजाताहै परन्तु उस संवेदन के फुरने और मिटने में ब्रह्म ज्योंका त्यों है; उसका अभाव नहीं होता। जैसे जल में तरंग उपजता है और फिर लीन होजाताहै परन्तु उसके उपजने और मिटने में जल ज्योंका त्योंहै और तरंग उसके आभास फुरते हैं। जैसे तू मनोराजसे एकनगर कल्पे और फिर संकल्प छोड़दे तब संकल्परूपनगरका अभाव होजाता है परन्तु सदाअविनाशीरहताहै। जैसे स्वप्नेकी सृष्टि उपजती भीहै और लीनभी होजाती है परन्तु अधिष्ठान ज्यों का त्यों है; और जैसे रत्नोंका प्रकाश उठताहै और लीनभी होजाताहै परन्तु रत्न ज्यों का त्यों होताहै; तैसेही आत्मा विश्व के भाव अभाव में ज्यों का त्यों रहता है पर उसका आभास जगत् उपजता मिटता भासता है। उपजता है तब उत्पत्ति भासती है और जब मिटता है तब प्रलय होजाती है परन्तु उभय आभासहैं। जैसे वायु फुरती है तब भासती है और ठहरजाती है तब नहीं भासती परन्तु वायु एकहै; तैसेही आत्मा एकही है फुरने का नाम उत्पत्ति है और न फुरने का नाम जगत् की प्रलयहै सो सर्व किंचनरूप है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेप्रश्नोत्तरद्वितीयोनाम द्विशताधिकपंचाशीतितमस्सर्गः २८५ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे राजन् ! तूने प्रयागके जो दो पुरुषों का प्रश्नकिया है उसका उत्तर सुन। जो उसका शत्रुबनगयाथा सोतो उसका पापथा और जो उसका मित्र बन

गया था सो उसका पुण्यथा। प्रयागतीर्थ धर्मक्षेत्रथा। हे राजन्! पापरूप वासना के अनुसार मृत्यु भासती है पर पुण्यरूपी जो मित्र है सो पापरूपी शत्रुको रोंकताहै और पुण्यरूपी तीर्थ के बल से हदन्त से अल्परूपी पाप वेगसे भासता है। जब मृत्यु आती है तब वह आपको मरता जानता है औ भाईजन कुटुम्बी रुदन करते हैं पर जब अपनी ओर देखता है तब जानता है कि, मैं तो मुआनहीं। जब मृतक सर्गकी ओर देखता है तब आप को मुआजानता है और भाईजन रुदन करते हैं। इसप्रकार उसको मरना भासता है और यह देखता है कि; भाईजन जलाने चले हैं; उन्हों ने अग्नि में मुझको डाला है और मैं जलताहूं। जब फिर पुण्यकी ओर देखता है तब जानता है कि, मैं मुआनहीं जीताहूं और जब फिर पाप की ओर देखता है तब जानता है कि; मैं मुआ हूं और मुझको यमदूत लैचले हैं; यह परलोक है और यहां मैं सुख दुःख भोगता हूं। जब फिर पुण्य की ओर देखता है तब जानता है कि, मैं मुआनहीं; जीताहूँ; यह मेरे भाईजन बैठेहैं और वहां मेरा व्यवहार चेष्टा है। इसप्रकार उभय अवस्था को पुरुष देखता है। जैसे संकल्पपुर और स्वप्ननगर में उभय अवस्था देखे और एकही पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टा देखता है। कहीं जीता देखता है, कहीं मृतक देखता है; कहीं व्यवहार देखता है और कहीं निर्व्यापार इत्यादिक नानाप्रकार की चेष्टा एकही पुरुष में होतीहैं; तैसेही एकही पुरुषको पुण्य पापकी वासना से जीना मरना भासता है। हे राजन्! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र है; जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही रूप हो भासता है। परलोक जानना भी अपने वासना के अनुसार भासता है और जो कुछ उसके निमित्त पुत्र बांधव देते हैं सो पुत्र बांधव भी उसकी पुण्य पाप वासनासे स्थित हुये हैं। वे जो कुछ इसके निमित्त करते हैं उनसे यह सुख, दुःख, नरक, स्वर्ग भोगता है पर वास्तव में कोई बांधव और पुत्र नहीं; उसकी वासनाही नाना प्रकारके आकार को धारकर स्थित हुई है। हे राजन्! सहस्र चन्द्रमा का जो तूने प्रश्न कियाहै उसका उत्तर सुन। सहस्र भी इसी आकाश में स्थित होतेहैं और अपनी अपनी वासना से कला संयुक्त चन्द्रमा हो विराजते हैं परन्तु एक को दूसरा नहीं जानता परस्पर अज्ञात हैं—जो अन्तवाहक दृष्टि से देखे उसको भासते हैं। हे राजन्! जो कोई ऐसी भावना करे कि, मैं उसके मण्डल को प्राप्त होऊं तो ततकालही जा प्राप्त होता है। जैसे एकही मन्दिर में बहुत मनुष्य सोये हों तो उनको अपने अपने स्वप्ने की सृष्टि भासती है और अन्योन्य विलक्षण है—एककी सृष्टिको दूसरा नहीं जानता; तैसेही एक आकाश में सहस्रचन्द्रमा बनते हैं। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के दशपुत्र दशब्रह्माहो बैठेथे तैसेही (जिसकी कोई तीव्र भावना करता है वही होजाताहै।) जो कोई भावनाकरे कि; हम इसी मन्दिरमें सप्तद्वीपका राज्यकरें तो वैसाही होजाताहै क्योंकि; अनुभवरूपी

कल्पवृक्षहै उसमें जैसी तीव्रभावना होती है, तैसेही हो भासती है। वरके वशसे उस पुरुषको सप्तद्वीपका राज्य प्राप्तहुआ और शापके वशसे उसका जीव उसी मन्दिर में रहकर द्वीपका राज्य करतारहा। जैसे स्वप्न में राज्य करे हैं तैसेही अपने मन्दिर में अपनी संवेदनही सृष्टिरूपहो भासती है। इसी प्रकार जो एक स्त्रीकी भावना करके सहस्रपुरुष ध्यान लगाये बैठे थे कि; हम उसके भर्ताहों सोभी होजाते हैं। हे राजन्! उनकी जो तीव्रभावना है वही स्त्रीकारूप धारकर उनको प्राप्तहोगी वे जानेंगे कि; वही स्त्री हमको प्राप्त हुईहै। यह जगत् केवल संकल्पमात्रहै, संकल्पसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं; और सब चिदाकाशरूपहै अपनेही अनुभवसे प्रकाशताहै और जैसे उसमें संकल्प फुरताहै तैसेही हो भासता है। पृथ्वी, जल, तेज आदिक तत्त्व कोई नहीं आत्मसत्ताही इसप्रकार स्थितहै जो परमशांत, निराकार, निर्विकार और अद्वैतरूपहै। राजा बोले; हे मुनीश्वर! जगत्के आदि जो आत्मसत्ताथी सो किस आकाररूप देहमें स्थित थी; देह विना तो स्थित नहीं होती? जैसे आधार विना दीपक नहीं रहता आधार होताहै तो उसमें जागताहै तैसेही आत्मसत्ता किसमें स्थितथी? वशिष्ठजीने कहा, हे राजन्! जितने आकार तुझको भासते हैं और जिनको देखकर तूने प्रश्न उठाया है सो है नहीं; ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है। जिन भूतोंसे बना देह भासता है सो भूत भी मृगतृष्णाके जलवत्हैं। जैसे रस्सी में सर्प; सीपीमें रूपा; आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्रहै क्योंकि, इनका अत्यन्त अभावहै; तैसेही यह भूताकार ब्रह्ममें भ्रम से भासते हैं–ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै। तूने पूछा था कि; ज्यों स्वयंभू अपने आपसे उपजते हैं तो अब क्यों नहीं होता सो, हे राजन्! कई उसके सदृश उत्पन्नहोते हैं पर वास्तवमें कुछ उपजा नहीं और नानाप्रकार भासताहै परन्तु नानाप्रकार नहीं हुआ। जैसे स्वप्ने में सदा तू देखताहै कि; अद्वैत अपना आपही नाना रूपहो भासता है और पर्वतपर दौड़ता फिरताहै सो किस शरीरसे दौड़ताहै और क्यारूप होताहै? जैसे वहपर्वत और शरीर आकाशरूप होताहै और भ्रमसे पिंडाकार भासताहै; तैसेही यह जगत् भी आकाशरूपहै भ्रमसे पिंडाकार भासताहै। हे राजन्! तू अपने स्वभाव में स्थित होकर देख कि, यह सब जगत् तेरा अनुभव आकाशहै स्वप्नेका दृष्टांतभी मैंने तुमसे चेतनने के निमित्त कहा है। स्वप्ना भी कुछ हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै; जब उसमें आभास संवेदन फुरती है तब वही जगत्रूपहो भासती है और जब आभास संकल्प मिटजाता है तब प्रलयकाल भासता है। वास्तव में न कोई उत्पन्न होताहै और न प्रलय होताहै ज्योंकीत्यों आत्मसत्ता स्थितहै। जैसे एक निद्राके दोरूप होतेहैं–एक स्वप्ना और दूसरा सुषुप्ति पर जाग्रत्में यह दोनों आकाशमात्र होती हैं; तैसेही आभासकी दो संज्ञा होती हैं–एक जगत् और दूसरी

महाप्रलय पर आत्मरूपी जाग्रत् में दोनोंका अभाव होजाताहै । हे राजन्
में जा.र और कलना को त्यागकर देख कि, सब आत्मरूप है—और कुछ
रामज ! इस प्रकार मैं राजाको कहकर उठखड़ाहुआ तब उसने भली प्रका
संयुक्त मेरा पूजनकिया और जब वह पूजन करचुका तब मैं जिसकार्य के लिये आया
सोकार्य करके स्वर्ग को चलागया ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेराजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनंनाम
द्विशताधिकषडशीतितमस्सर्गः २८६ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह जगत् सब चिदाकाशरूपहै और दूसरा कुछ बना नहीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! तुम कहते हो कि, सब चिदाकाश है बना कुछनहीं तो सिद्ध, साधु, विद्याधर, लोकपाल, देवता इत्यादिक जो भासते हैं; कुछ बने क्योंनहीं ? वशिष्ठजीबोले, हे रामजी ! ये जो सिद्ध, साधु, विद्याधर, देवता, लोक और लोकपाल हैं सो वास्तव में कुछ उपजे नहीं; ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है और ये जो प्रत्यक्ष भासते हैं सो शुद्ध संकल्प से रचेहुये हैं परन्तु वास्तव में कुछबने नहीं, भ्रमसे इन की सत्यता भासती है । जैसे मृगतृष्णाकीनदी, रस्सी में सर्प, सीपी में रूपा और संकल्प नगरहै; तैसेही आत्मामें यह जगत् है । हे रामजी ! जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार की रचना भासती है परन्तु कुछ हुआ नहीं; तैसेही यह जगतहै । जो पुरुष इसको देखकर सत्य मानताहै वह असम्यक्दर्शी है और जो आत्माको देखताहै वही देखताहै और वही सम्यक्दर्शी है । हे रामजी ! ये लोक और लोकपाल जगत् सत्तामें ज्योंकेत्यों हैं और जैसे स्थितहैं तैसेही हैं परन्तु परमार्थ से कुछउपजे नहीं, अनुभवसत्ताही संवेदन से दृश्यरूपहो भासती है और द्रष्टाही दृश्यरूपहो भासता है परन्तु स्वरूप से भिन्न कुछ नहीं हुआ । जैसे आकाश और शून्यता और अग्नि और उष्णता में भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं । हे रामजी ! अब एक और वृत्तांत तुम सुनो । पूर्व एक कल स्वप्ने में जैसे अब हम हैं तैसेही एक आगे भी चित्त प्रतिमा हुईथी । पूर्व एक कल तुम और हम हुयेथे । तुम मेरे शिष्यथे और मैं तुम्हारा गुरुथा । तूने एक वन से प्रश्न कियाथा कि, हे भगवन् ! एक मुझको संशयहै सो नाशकरो । (म नाश क्या होताहै और अविनाशी क्या रहताहै ? तब मैंने कहाथा, शेष विशेषरूप जगत् है सो सब नाश होजाता है—जैसे स्वप्नेका न होजाताहै और निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है । क्रिया क अप, तेज, वायु, पहाड़, नदियां और इनसे लेकर संयुक्तहै वह सब नाश होजाता है और ब्रह्मा उनका नाम भी नहीं रहता । संवेदन श

...। चिन्मात्र एक चिदाकाशही शेष रहताहै । शिष्य बोले; हे मुनीश्वर! जो ... होती है उसका नाश नहीं होता और जो असत्य होती है सो अभास ... पर यह जगत् तो विद्यमान भासताहै सो महाप्रलयमें कहां जावेगा? गुरुबोले, हे ...त! जो सत्यहै उसका नाश कदाचित् नहीं होता और जो असत्यहै उसका भाव नहीं; इसलिये जितना कुछ जगत् तुझको भासता है सो सब भ्रममात्र है इसमें कोई वस्तु भी सत्य नहीं भासती है परन्तु जैसे मृगतृष्णा का जल स्थित नहीं होता और दूसरा चन्द्रमा व आकाश में तरुवरे भ्रममात्रहैं; तैसेही यह जगत् भी जो भासता है सो भ्रममात्र है। जैसे स्वप्नेका नगर प्रत्यक्ष भी भासताहै परन्तु भ्रममात्रहै; तैसेही यह जगत् भी भ्रमरूपजानो। हे तात! आत्मसत्ता सर्वदा काल सर्वत्र अपने आप में स्थित है। जैसे स्वप्ने में जाग्रत् का अभाव होता है और जाग्रत् में स्वप्नेका अभाव होताहै तो सृष्टि कहां जाती है? जैसे जाग्रत् में स्वप्ने की सृष्टिका अभाव होजाता है, तैसेही महाप्रलय में इसका अभाव होजाताहै। शिष्यबोले; हे भगवन्! यह जो भासता है सो क्याहै और जो नहीं भासता सो क्याहै? इसकारूप क्याहै और चिदाकाश से कैसे हुआहै? गुरुबोले; हे शिष्य! जब शुद्ध चिदाकाशमें किंचन संवेदन फुरती है तब जगत् रूपहो भासती है इससे इसका रूपभी चिदाकाशही है—चिदाकाश से भिन्न कुछ नहीं सृष्टि और प्रलय दोनों उसी के रूप हैं; जब संवेदन फुरती है तब सृष्टिहो भासती है और जब अफुर होती है तब प्रलयरूप हो भासती है पर दोनों उसके रूपहैं। जैसे एकही वपुमें दो स्वरूपहैं—दन्तों से शुक्ल लगताहै और केशों से कृष्ण लगताहै; तैसेही आत्मा में सर्ग और प्रलय दो रूप होते हैं पर दोनों आत्मरूप हैं। जैसे एकही निद्रा की दो अवस्था होती हैं—एक स्वप्ना और दूसरी सुषुप्ति पर जाग्रत् में उभय नहीं तैसेही निद्रारूप संवेदनमें सर्ग और प्रलय भासती है पर जाग्रत्रूप आत्मामें दोनों का अभाव है। हे तात! जो कुछ तुझको भासताहै सो सब चिदाकाश रूपहै—और ... नहीं ब्रह्मसत्ताही अपने आपमें स्थितहै। जैसे स्वप्ने में अपना अनुभवही जगत् ...भासता है; तैसेही आत्मामें जगत् भासता है। शिष्य बोले; हे भगवन्! जो ... है कि; द्रष्टाही दृश्यरूप हो भासताहै तो और जगत् तो कुछ न हुआ सब ...ले; हे तात! इसीप्रकार है। जगत् कुछ वस्तु नहीं चिदाकाशही जगत् ...र आत्मसत्ताही इसप्रकार भासती है और कुछ नहीं क्योंकि; सब ...में सर्वदा काल सर्व प्रकार वही सृष्टि होकर फुरती है और ... हुआ नहीं (आत्मसत्ताही अपने आपमें स्थित है ... जानो। जिसको तू सर्ग और प्रलय क- ...र्वदाकाल सर्व प्रकार स्थितहै। एकही

जो परमदेव है वही घटपट रूपहुआ है। पर्वत, पट, जल, तृण, अग्नि, पृथ्
स्थावर, जंगम, अस्ति, नास्ति, शून्य, अशून्य, क्रिया, काल, मूर्त्ति, अमूर्त्ति, बंध, मो
सर्व शब्द अर्थ से जो पदार्थ सिद्धहोते हैं सो सर्व आत्मरूपहैं और सर्वमें सर्वदाक
सर्वप्रकार आत्माही है और जिसमें सर्वदा काल सर्वप्रकार नहीं वह भी आत्माही है
जो सदा ज्योंकात्योंही है। जैसे स्वप्नेमें जो कुछ भासता है सो सब आत्मसत्ताही है और
दूसरा कुछ बना नहीं। हे तात! तृणही कर्त्ता है; तृणही भोक्ता है और तृणही सर्वे-
श्वर है। घट कर्त्ता है, घट भोक्ता है और घटही सर्वका ईश्वर है। पट कर्त्ता है; पट
भोक्ता है और पटही परमेश्वर है। नर कर्त्ता है; नर भोक्ता है और नरही सर्वका ई-
श्वर है। इसी प्रकार एक एक वस्तु नाम से जो वस्तु है सो कर्त्ता भोक्ता सर्व ब्रह्मरूप
है। ब्रह्मासे लेकर तृण पर्य्यंत जो कुछ जगत् भासता है सो सर्व आत्मरूप है और क्षय,
उदय, भीतर, बाहर, कर्ता, भोक्ता सब ईश्वर है सो विज्ञानमात्र है। कर्ता-भोक्ता वही है
और न कर्त्ता है, न भोक्ता भी वही है। विधिमुख करके भी वही है और निषेध भी
वही है। शुद्धदृष्टि से सब चिदात्माही भासता है जो सर्व दुःख से रहित है। जिनको
आत्मदृष्टि नहीं प्राप्त हुई उनको भिन्न भिन्न जगत् भासता है जो अनुभव से भिन्न
नहीं है। ऐसे जानकर अपने स्वरूप में स्थित होरहो। हे रामजी! इसप्रकार मैंने तुम
से कहाथा परन्तु उससे तुमको अभ्यास की ऊनता से बोध न हुआ इसलिये वही
संस्कार अब तुमको प्राप्तहुआ है और इसीकारण से अबतुम जागे हो। हे रामजी!
अब तुम अपने स्वरूप में स्थित होकर कृतकृत्य हुये हो इसलिये अपनी राजलक्ष्मी
को भोगो; प्रजाकी पालना करो और हृदयसे आकाशवत् निर्लेप रहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेपूर्वरामकथावर्णनंनाम
द्विशताधिकेसप्ताशीतितमस्सर्गः २८७॥

बाल्मीकि जी बोले; हे भरद्वाज! जब वशिष्ठजी इसप्रकार रामजीसे कह चुके
आकाशमें जो सिद्ध और देवता स्थित थे वे फूलोंकी वर्षा करने लगे-मानों मे
की वर्षा करते हैं अथवा आकाश कंपायमान हुआ है उससे तारेगिरते हैं-
की वर्षा करचुके तब राजा दशरथ उठखड़ेहुये और अर्घ्यपाद्य दे औ
जोड़के कहनेलगे कि; हे मुनीश्वर! बड़ा कल्याण और बड़ा हर्षहु
से हम आत्मपद को प्राप्तहोकर कृतकृत्य हुये। चित्तका नि
फुरने का भी अभाव हुआ है और हम अचित; चिन्
हुये हैं और हमारे सब सन्ताप मिटगये हैं।
थकेहुये अब हम विश्रान्तिको प्राप्तहुये
आपदासे तरगया हूं और जोकुछ

त देकर जगाया है अर्थात् शून्यके दृष्टान्त, सीपीमें रूपा; मृगतृष्णा का रस्सामें सर्प; आकाशमें दूसरा चन्द्रमा और नावपर नदीके किनारों का चलते वासना; जलमें तरंग; स्वर्ण में भूषण; वायु का फुरना; गन्धर्वनगर; संकल्पपुर आदि दृष्टान्त कहे हैं जिनसे हमने तुम्हारी कृपासे जाना है कि; आत्मसत्तासे भिन्न कुछ नहीं। बाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार दशरथ कहचुके तब रामजी उठे और हाथ जोड़कर इसप्रकार कहनेलगे कि, हे मुनीश्वर ! तुम्हारी कृपासे मेरा मोह नष्टहुआ है। अब मैं परमपदको प्राप्तहुआ हूं; किसीमें मुझको न राग है और न द्वेष है और परमशांति को प्राप्तहुआ हूं। न अब मुझे किसीकेकरने से अर्थ है और न करने में कुछ अनर्थ है— मैं परमशांतपदको प्राप्तहुआ हूं। हे मुनीश्वर ! तुम्हारे वचनों को स्मरण करके मैं आश्चर्यको प्राप्तहोकर हर्षित होताहूं। मेरे सब संदेह नष्ट होगये हैं और अब मुझको और नहीं भासता सर्व ब्रह्मही भासता है। लक्ष्मण बोले, हे भगवन् ! मैं संतोंकेवचन इकट्ठे करता रहा था और संपूर्ण जो मेरे पुण्य थे सो अब इकट्ठे हुयेथे जिन सबका फल अब उदयहुआ है। तुम्हारी कृपासे अब मैं सर्व संशयोंसे रहित होकर परमपदको प्राप्तहुआ हूं। तुम्हारे वचन चन्द्रमा की किरणों के समान शीतलहैं किन्तु उनसे भी अधिक हैं इससे मैंने परमशांति पाई है और मेरे दुःख सन्ताप सर्वनष्टहुये हैं। शत्रुघ्न बोले; हे मुनीश्वर ! जगत् और मृत्युकाजो भयथा वह तुमने दूरकिया है और अपने अमृतरूपी वचनों का सुधा पानकराया है। अब हमारे संशय सब नष्टहुये हैं और हम आत्मपद को प्राप्त हुये हैं। हमारे जो चिरकालके पुण्यथे उनका फल आजपाया है। विश्वामित्र बोले; हे मुनीश्वर ! सर्व तीर्थों के स्नान करने और दूसरे कर्मों से भी मनुष्य ऐसा पवित्र नहीं होता जैसे तुम्हारे वचनों से हम पवित्र हुये हैं। आज हमारे श्रवण पवित्र हुये हैं। नारदजी बोले; हे मुनीश्वर ! ऐसा मोक्षउपाय मैंने देवतों; सिद्धोंके स्थान में भी नहीं सुना और ब्रह्माके मुखसे भी नहीं सुना जैसा कि उपदेश किया है। इसके श्रवण कियेसे फिर संशय नहीं रहता। फिर दशरथ बोले; ! आत्मज्ञान ऐसी सम्पदा कोई नहीं; इससे तुमने परम सम्पदा हमको जैसे फिर किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रही। अब तो हम अपने स्व- हैं और सम्पूर्ण कर्म हमको छोड़गये हैं। हमारे बहुत जन्मों के सो ये तुम्हारे पावन वचन सुने हैं। रामजी बोले; हे मुनी- म्पदा का अधिष्ठान प्राप्त हुआ है और सर्व आ- जो अज्ञानी हैं वे बड़े अभागी हैं। जो आत्म- ने हैं वे भी यत्न करके प्राप्त होते हैं पर आत्मपदको पाकर मैं शांतिमान्

होकर हर्ष शोकसे रहित हुआहूँ और मैंने अचलपद पायाहै और अजित
सदा अपने आपमें स्थितहूँ ।तुम्हारी कृपा से आपको ऐसा जानताहूँ । लक्ष्म-
हे मुनीश्वर ! सहस्र सूर्य एकत्र उदय हों तोभी हृदय के तमको दूर नहीं करसक्त
वह तम तुमने दूरकिया है; और सहस्र चन्द्रमा इकट्ठे उदय हों तौभी हृदयकी त
निवृत्त नहीं करसक्ते पर तुमने सम्पूर्ण तपन निवृत्त की है । हम निःसंतापपदको प्रा
हुये हैं । बाल्मीकिजी बोले; हे साधो ! जब इस प्रकार सब कह चुके तब वशिष्ठजी
कहा । हे रामजी ! इस मोक्ष उपाय कथाको सुनकर सर्व ब्राह्मणोंका यथायोग्य पूज
करो और दानकरो और जो इतर जीवहैं वे भी यथायोग्य यथाशक्ति पूजनकरते हैं
तुम तो राजाहो । जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तब राजा दशरथने उठकर सहस्र
मथुरावासी विद्यावान् ब्राह्मणों को भोजन कराया और दक्षिणा, वस्त्र, भूषण, घोड़े, गां
आदिकदिये और यथायोग्य पूजन किया । निदान बड़ा उत्साहहुआ; अंगना नृत्य कर-
नेलगीं और नगारे, सहनाई आदि बाजन बजनेलगे और चक्रवर्ती राजा होकर दशरथ
ने उत्साह किया । इस प्रकार सातदिनतक ब्राह्मणों, अतिथियों और निर्धनों को द्रव
देकर राजाने पूजनकिया और अन्न और वस्त्रआदिकसे सबको प्रसन्नकिया ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेनिर्वाणप्रकरणेउत्साहवर्णनन्नाम
द्विशताधिकअष्टअष्टाशीतितमस्सर्ग्गः २८८ ॥

बाल्मीकिजी बोले; हे भरद्वाज ! इसप्रकार वशिष्ठमुनि के वचन सुनकर सब
कृतकृत्यहुये । जैसे रामजी सुनकर संशय रहित जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं; तैसे
भी विचरो । यह मोक्ष उपाय ऐसाहै कि, जो अज्ञानी श्रवणकरे तो
प्राप्तहो । तुम्हारी क्या बात है तुम तो आगेसे भी बुद्धिमान
ब्रह्माजीने कहाथा सो मैंने तुमको सुनायाहै । जैसे रामजी
आदिक राजा जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं; तैसेही
दृष्टि आताथा परन्तु वे स्वरूपसे चलायमान
नहीं और अज्ञान ऐसा दुःखभी को
नाय मैंने ... तु कहाहै सो प
अन्धकारको नर्त्ता सू
का वारंवार
मोक्ष उप